श्री

प्रथम संस्करण विक्रमाब्द २०१५, शकाब्द १८८०, ख्रिस्ताब्द १९५८

मूल्य—बीस रुपये

मुद्रक
ओम्प्रकाश कपूर
ज्ञानमण्डल लिमिटेड
वाराणसी (बनारस) ४१०५-

समर्पण

सर्वश्री बीम्स, ब्यूलर, ह्योर्नले, पिशल, ग्रियर्सन,
डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डॉ० एस्०
एम्० कात्रे आदि भाषा-शास्त्र के
आचार्यों को
परम श्रद्धावनत हृदय से

—हेमचन्द्र जोशी

प्राकृत भाषाओं का व्याकरण

अनुवादक

डॉक्टर हेमचन्द्र जोशी, डी० लिट्

प्राकृत भाषाओं का व्याकरण

डॉ० आर० पिशल

डॉ० रिचार्ड पिशल

आपकी गणना विश्वविख्यात विद्वानो मे होती है। श्री एल० डी० वार्नेट (L D Barnett) ने आपके विपय में लिखा है—

"..... Few scholars have been more deeply and widely admired than he... In his knowledge of classical languages of India he was equalled by few and surpassed only by Keilhorn."—Journal of the Royal Asiatic Society, 1909–Page 537.

विद्वत्ता के साथ अत्यधिक सरलता एव विनम्रता आपकी विशेपता थी।

आपके पिता का नाम ई० पिशल था।

आपका जन्म आज से १०९ वर्ष पूर्व, सन् १८४९ ई० की १८ जनवरी को जर्मनी (Germany) के ब्रेजला (Breslau) नामक स्थान में हुआ था। वहीं आपने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। प्रारम्भिक शिक्षा-काल में ही आप सस्कृत के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुए। विख्यात विद्वान् स्टेन्जलर (Stenzler) से आपने सस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। सन् १८७० ई० में ब्रेजला-विश्वविद्यालय (Breslau University) से आपको 'De Kalidasse Cakuntali Recensionibus' नामक कृति पर 'डाक्टरेट' की उपाधि मिली। फ्रास के युद्ध (French War) से आपके अध्ययन में वडी वाधा पहुँची थी, जिसे पूरा करने के लिए आपने अपना कुछ समय इङ्गलैण्ड (England) के विभिन्न पुस्तकालयों मे विताया।

सन् १८७४ ई० में आप ब्रेजला-विश्वविद्यालय मे पुन. भारतीय विद्या-विभाग (Deptt. of Indology) के रीडर (Reader) पद पर नियुक्त होकर चले आये। सन् १८७५ ई० में वहाँ से आप कील-विश्वविद्यालय (Kiel University) मे सस्कृत तथा तुलनात्मक भापाशास्त्र-विभाग (Department of Sanskrit and comparative Philology) में प्राध्यापक (professor) के पद पर बुला लिये गये और ठीक दो वर्षों के पश्चात्, अर्थात् सन् १८७७ ई० मे उक्त विश्वविद्यालय मे ही भारतीय विद्या-विभाग के अध्यक्ष हो गये। सन् १८८५ ई० में आप हेली-विश्वविद्यालय (Halle University) मे आये। इसके वाद सन् १९०२ ई० मे अल्ब्रेच वेवर (Albrecht Weber) का देहान्त हो जाने पर आप उनके रिक्त पद पर वर्लिन-विश्वविद्यालय (Berlin University) मे चले आये। सन् १९०८ ई० की ३० अप्रैल के Sitzungsherichte (एकेडमी ऑफ सायन्सेज की पत्रिका) मे आपने 'Ins Gras berssen and its analogues in Indian literature' शीर्पक से एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण निवन्ध लिखा। यही आपकी अन्तिम कृति थी।

सन् १९०९ ई॰ में कलकत्ता-विश्वविद्यालय से प्राकृत भाषाओं पर भाषण देने के लिए आप आमंत्रित किये गये। नवम्बर मास में आप उक्त निमंत्रण पर जर्मनी से भारत के लिए चले। रास्ते में ही आप बहुत अस्वस्थ हो गये। जब लंका पहुँचे, तो आपने अपने को कुछ स्वस्थ पाया और बहुत आशा के साथ आप उत्तर की ओर बढ़े। किन्तु, मद्रास आते-आते आपका स्वास्थ्य पुनः बिगड़ गया तथा २६ दिसम्बर को क्रिसमस (Christmas) के दिन यहीं आपका शरीरान्त हो गया, और इस प्रकार भारतीय साहित्य-संस्कृति में अपार श्रद्धा रखनेवाले विदेशी विद्वान् का शरीर भारत की मिट्टी में ही मिला।

अपने जीवन-काल में आप कितनी ही विश्वविख्यात संस्थाओं के सदस्य रहे। ऐसी संस्थाओं में प्रमुख हैं—एकेडमीज ऑफ सायन्सेज, बर्लिन, गोटिंगेन, म्युनिक, पेटर्सबर्ग (Academies of Sciences Berlin Goettingen, Munich, Petersburg), इन्स्टिट्यूट डी फ्रांस (Institute de France), रॉयल एशियाटिक सोसाइटी आफ ब्रिटेन (Royal Asiatic Society of Britain) अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी (American Oriental Society)। इनके अतिरिक्त मध्यएशिया के तुरफान (Turfan) के अनुसन्धान-अभियान का संचालन तथा नेतृत्व भी आपने किया था।

आपकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

1 Kalidasa s Shakuntala, The Bengali Recension with critical notes Kiel 1877, 2nd Edition 1886

2 Hemchandra s Grammatik der Prakrits prachen (Hemachandra's Grammar of the Prakrit languages) Halle a. s 1877 1880 2 vols

3 Grammatik der Prakritsprachen (Grammar of the Prakrit Languages) Strassburg, 1900

4 Pischel-Geldner Vedische Studien (Vedic Studies), Stuttgart, 1889-1897 2 vols

5 Leben und Lehre des Buddha (Life and Tea ching of the Buddha), Leipzig 1906

2nd Edition 1910 edited by Heinrich Lueders
3rd „ 1916, , „ „
4th „ 1926, „ Johannes Nobel.

6 Stenzler—Pischel, Elementarbuch der Sanskritsprache (Elementary Grammar of the Sanskrit Language) Breslau, 1872, 1885 & 1892, Munich, 1902

7 Various Treatises of the Prussian Academy of Sciences, f.i "Der Ursprung des christlichen

Fischsymbols" (The Origin of the Christian Fish-symbol) and "Ins Gras beissen" (To Bite the Dust).

8. Vice-chancellor's Address : "Heimat des Puppenspiels" (Home of the Puppet-play).

9. Beitraege Zur Kenntnis der deutschen Zigeuner (Contributions towards the Study of German Gipsies), 1894.

इनमें प्राकृत भाषाओं की व्याकरण-सम्बन्धी रचना आपकी सर्वश्रेष्ठ कृति कही जाती है। भाषाशास्त्र पर वर्ष की सर्वश्रेष्ठ कृति होने के कारण इसी पर आपको 'इन्स्टिट्यूट डी फ्रांस' से भोलनी-पुरस्कार (Volney Prize) प्राप्त हुआ था। इस कृति का अभी हाल ही में डॉ० सुभद्र झा ने 'कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ् द प्राकृत लैंग्वेजेज' (Comparative Grammar of the Prakrit Languages) के नाम से अंगरेजी में अनुवाद किया है। किन्तु, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से मूल-जर्मन-ग्रन्थ का यह हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया गया है।*

* इस परिचय के तैयार करने में निम्नलिखित सामग्रियों का उपयोग किया गया है—

(क) जर्नल ऑफ् द रायल एसियाटिक सोसाइटी (१९०९) में प्रकाशित पिशल पर डॉ० एल्० डी० बार्नेट का लेख।

(ख) डिक्शनरी ऑफ् इण्डियन बायोग्राफी (बकलैण्ड) में प्रकाशित पिशल का परिचय।

(ग) डा० पिशल के पुत्र श्री डब्ल्यू० पिशल द्वारा जर्मन-दूतावास (दिल्ली) के अनुरोध पर परिषद् को प्रेषित जीवन-परिचय।

इसके अतिरिक्त डेकान कॉलेज (पूना) के निर्देशक श्री एल्० डी० शकालिया, भण्डारकर-ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट (पूना) के क्यूरेटर श्री पी० के० गोरे तथा जर्मन गणतन्त्र दूतावास (दिल्ली) के सांस्कृतिक पार्षद डॉ० के० फीतर ने भी उक्त परिचय तैयार करने में अपना बहुमूल्य सहयोग देकर हमें अनुगृहीत किया है।

आमुख

पिशल का यह 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' पाठकों के सामने है। इस ग्रन्थ की महत्ता जगत् के भाषाशास्त्री मानते हैं। भारतीय मध्यकालीन या नवीन भाषाओं पर शायद ही कोई पुस्तक लिखी गई हो, जिसमें इससे सहायता न ली गई हो। इसका आधार प्रामाणिक माना जाता है। कारण यह है कि पिशल ने प्राकृतों का पूरा ज्ञान प्राप्त करने और उसके समय में प्राप्य सब व्याकरणों तथा नाना प्राकृतों के प्राप्य हस्तलिखित और छपे ग्रन्थों को गम्भीर और विस्तृत अध्ययन करने के बाद यह परम उपादेय ग्रन्थ लिखा। इसमें प्राकृत का कोई व्याकरणकार छूटा नहीं है। सबके नियम शृंखलाबद्ध दिये गये है। इन वैयाकरणों में समय की प्राचीनता तथा नवीनता के हिसाब से बहुत फेर-फार पाया जाता है। देश-भेद से भी ध्वनि का हेर-फेर पाया जाता है, और कई अशुद्धियाँ भी लिपिकारों के कारण आ गई हैं। इससे छपे ग्रन्थ भी दूषित हो गये हैं। इन सबका निराकरण, अर्थात् इनका नीरक्षीर-विवेक पिशल ने अपने प्रगाढ पाण्डित्य से किया है। नाना प्राकृतों की ध्वनियों और बोलने के नियमों में भेद था। उन विभिन्नताओं का प्रभाव आज भी भारतीय नवीन आर्य-भाषाओं मे वर्त्तमान है। उदाहरणार्थ, हिन्दी का **सो** और बॅगला का **से** पर क्रमशः महाराष्ट्री और मागधी का प्रभाव है। मागधी में सज्ञा और सर्वनामों के अन्त में **ए**कार आता था और वह पूर्वी बिहार तथा पश्चिमी बगाल में बोली जाती थी। पिशल ने सब प्राकृतों के नियम बाँध दिये हैं। भारत में व्याकरण रटा जाता है, भले ही उसमें बीसियों अशुद्धियाँ हों। गुरु और चेला—किसी को यह नहीं सूझती कि 'दोषास्त्याज्या गुरोरपि', अर्थात् गुरु के दोष त्याज्य याने सशोधनीय है। लिपिकार की मोटी अशुद्धियाँ भी पाणिनि, वररुचि आदि के सर मढी जाती है। इस विषय पर यूरोपियन पण्डित सत्य की शोध में प्राचीनता को आदर-योग्य नहीं मानते। वे कालिदास की भाँति कहते हैं—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्त परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि ॥

सत्य और शुद्ध बात का आविष्कार आज ही क्यो न हो, वह अवश्य ग्रहणीय है, असत्य चाहे अनादि काल से प्रचलित हो, शुद्ध रूप सामने आते ही छोड दिया जाना चाहिए। इस कारण ही कभी भारतीय आर्यों ने प्रार्थना की थी—

असत्यान्मा सत्यं गमय।

बात यह है कि सत्य-मार्ग पर चलने पर ही, तथ्य की ही शोध करने पर, मानव मृत्यु को पार करके अमरत्व प्राप्त करता है। इस कारण ही भारतीय आर्यों ने सत्य को सबसे अधिक महत्त्व दिया। पश्चिमूमी रूप के निवासी असत्य को प्रत्येक क्षेत्र से

भगाने में कटिबद्ध हैं। इस कारण, यहाँ के भाषाशास्त्र के विद्वानों ने संस्कृत, पाली प्राकृत आदि पर जो भी लिखा, उस पर कलम तोड़ दी। प्राकृतों के विषय में पिशल ने यही काम किया है। यह देख आश्चर्य होता है कि उसने प्राकृत के सब व्याकरण और सारा प्राप्य साहित्य मथकर यह ग्रंथ ऐसा रचा कि प्राकृत के अधिकांश नियम पक्के कर दिये। कई तथ्य उसने नये और महत्त्व के ऐसे बताये हैं कि लेखक का अगाध पांडित्य देखकर वराहमिहिर के निम्न श्लोक की याद आती है —

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक्शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ‒ ॥

इन ऋषियों के सामने भारतीय विद्वत्ता पानी भरती है। हमारे विद्वान् प्राकृताचार्यों ने सदा भाषा की व्युत्पत्ति संस्कृत से दी, किसी ने यह न देखा कि प्राकृत का एक स्रोत वैदिक भाषा है। सबने लिखा कि प्राकृत की प्रकृति संस्कृत है। प्रकृतिः संस्कृतम् (सब व्याकरणकार)। वह यही समझते रहे और इसी समझ पर काम करते रहे कि प्राकृत संस्कृत से निकली है। इसीलिए परम पंडित हेमचंद्र ने खंभा का स्तंभ से व्युत्पन्न किया। उसने संस्कृत का कोश अभिधान चिन्तामणि लिखा, पाणिनि के टक्कर का संस्कृत-व्याकरण लिखा और उसके आठवें पाद में प्राकृतों का व्याकरण जोड़ा, पर यह न जाना कि ऋग्वेद में स्कम्भ शब्द स्तम्भ के अर्थ में कई बार आया है। यह तथ्य वैदिक भाषा, संस्कृत, पाली और प्राकृतों के परम विद्वान् पिशल ने बताया। ऐसे सैकड़ों शब्दों की ठीक व्युत्पत्ति इस ऋषिवत् म्लेच्छ यवन ने हमें दी है। क्षाम का झाम और क्षर का झर किस रीति से हुआ, इस तथ्य का पता भी अपभ्रंश की भाषा के इस विद्वान ने इसी ग्रंथ में साफ निकाला है। प्राकृत के नियमों में जहाँ अनस्थिरता या अस्थिरता थी उन्हें इसने सकारण स्थिर नियमों के भीतर बाँध दिया। हमारे नाटकों या प्राकृत के ग्रंथों में जहाँ-जहाँ नाना अशुद्धियाँ आई हैं, उन्हें पिशल ने शुद्ध किया है और नियम स्थिर कर दिये हैं कि प्राकृत शब्दों का रूप किस प्राकृत भाषा में क्या होना चाहिए, और यह सब असंख्य प्रमाण दे कर। अपनी मनमानी उसने कहीं नहीं की है। जो लिखा है सब साधार, सप्रमाण। यह है निष्काम विद्वत्ता का प्रताप। पाठक इस ग्रंथ में देखेंगे कि भारत की किसी आर्य-भाषा और विशेष कर नवीन भारतीय आर्यभाषाओं पर कुछ लिखने के लिए केवल भारत की ही प्राचीन मध्यकालीन और नवीन आर्यभाषाओं के ज्ञान की ही नहीं अपितु ग्रीक लैटिन गौथिक प्राचीन स्लैविक ईरानी आर्मेनियन आदि कम-से-कम बीस-पचीस भाषाओं के भाषाशास्त्रीय ज्ञान की भी आवश्यकता है। अन्यथा अनेक हिंदी शब्दों के ठीक अर्थ का निर्णय करना दुष्कर है।

नवीन भारतीय आर्यभाषाओं के लिए प्राकृतों का क्या महत्त्व है और किस प्रकार हिंदी मध्यकालीन आर्यभाषाओं की परंपरा से प्रभावित है इसका परिचय पाठक उन नोटों से पायेंगे जो अनुवादक ने स्थान-स्थान पर दे रखे हैं और मूल भाषा से हिंदी तक का प्राकृतीकरण का काम जिस क्रम से एक ही परम्परा में आया है वह भी स्पष्ट है। पिशल के प्राकृत व्याकरण की महिमा वर्णन में नहीं आती।

इधर ही बीस बाईस वर्ष पहले डोल्ची निति महोदय ने अपनी पुस्तक Les Grammairiens Prakrit में पिशल पर कुछ लिखा है। पाठकों को उससे अवश्य लाभ मिलेगा, इसलिए हम यहाँ उसे उद्धृत करते हैं। डोल्ची निति का दृष्टिकोण प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड ज्ञान के आधार पर है, इस कारण उस पर ध्यानपूर्वक विचार करना प्रत्येक प्राकृत विद्वान् या विद्या के जिज्ञासु का कर्तव्य है। पिशल के व्याकरण पर इधर जो भी लिखा गया है, उसका ज्ञान होने पर ही पिशल के व्याकरण का सम्यक् ज्ञान निर्भर है। इस कारण उसके उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं—

“यदि हम पिशल के प्राकृत भाषाओं के व्याकरण का दूसरे पाराग्राफ को जाँचें और पड़तालें तो और इसकी लास्सन के ग्रन्थ 'इन्स्टिट्यूत्सिओने प्राकृतिकाए' के वर्णन से तुलना करें तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि लास्सन ने इस सम्बन्ध में सभी पहलुओं से विचार किया है और उसके निदान तथा मत पिशल से अधिक सुनिश्चित हैं।

कई कारणों से आज कल केवल पिशल की पुस्तक ही पढ़ी जाती है, इसलिए हम अति आवश्यक समझते हैं कि सबसे पहले, अर्थात् अपने मुख्य विषय पर कुछ लिखने से पहले, उन कुछ मतों की अस्पष्टता दूर कर दी जाय, जिनके विषय में पिशल साहब अपने विशेष विचार या पक्षपात रखते हैं।

अब देखिए जब कोई ग्रन्थकार दण्डिन् का काव्यादर्श (१।२४) वाला श्लोक उद्धृत करता है और महाराष्ट्री की चर्चा करता है, तो उसे उक्त श्लोक के पहले पाद को ही उद्धृत न करना चाहिए। क्योंकि यह बात दूसरे पाद में स्पष्ट की गई है। श्लोक यों है—

महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्॥

इसका अर्थ है—'महाराष्ट्र में बोली जानेवाली भाषा को लोग प्रकृष्ट प्राकृत समझते हैं। इसमें सूक्ति रूपी रत्नों का सागर है और इसी में 'सेतुबन्ध' लिखा गया है।'

इस श्लोक में दण्डिन् का विचार यह नहीं था कि वह प्राकृत भाषाओं का वर्गीकरण करे। वह तो केवल यह एक तथ्य बताता है कि महाराष्ट्री इसलिए प्रकृष्ट है कि उसका साहित्य सबसे अधिक भरा-पूरा है।

अब यदि कोई यह दावा करे कि महाराष्ट्री सबसे उत्तम प्राकृत है, क्योंकि वह संस्कृत के सबसे अधिक निकट है, तो यह मत स्पष्ट ही अस्वीकार्य है और इस प्रकार की उल्टी बात भारत के किसी व्याकरणकार ने कभी नहीं व्यक्त की। उनके लिए तो संस्कृत के निकटतम शौरसेनी रही है। हम भी इसी निदान पर पहुँचे हैं। उदाहरणार्थ, मार्कण्डेय (प्राकृतसर्वस्व, ९।१) का निदान भी ऐसा ही है—

शौरसेनी महाराष्ट्र्याः संस्कृतानुगमात् क्वचित्।

यह भी ठीक नहीं है कि हम व्याकरणकारों की प्राचीनता तथा नवीनता की पहचान या वर्गीकरण इस सिद्धांत पर करें कि पुराने व्याकरणों में प्राकृत के कम भेद गिनाये गये हैं तथा नयों में उनकी संख्या बढ़ती गई है। कम या अधिक प्राकृत

भाषाओं का व्याकरण देना अथवा उल्लेख करना प्राकृत भाषा के किसी व्याकरण की प्राचीनता या नवीनता से कुछ संबंध नहीं रखता।

मेरी पुस्तक (प्राकृत के व्याकरणकार = डे ग्रामैटिकिस प्राकृतिकिस, अनु) में इस तथ्य के प्रमाण कई स्थलों पर हैं। यहाँ पर मैं केवल एक बात की याद दिलाना चाहता हूँ कि अभिनवगुप्ताख्य नाट्यशास्त्र प्राकृत भाषाओं के सब व्याकरणकारों के ग्रन्थों से पुराना है। केवल वररुचि इसका अपवाद है। उक्त नाट्यशास्त्र में नवीनतम प्राकृत व्याकरणकार से भी अधिक संख्यक प्राकृत भाषाएँ दी गई हैं।

साधारण बात तो यह है कि उन व्याकरणकारों ने, जिन्होंने नाट्यशास्त्र पर लिखा है, अनेक प्राकृत भाषाओं को अपने ग्रन्थ में लिया है, पुरुषोत्तम ने भी ऐसा ही किया है और पुरुषोत्तम तेरहवीं सदी से पहले का है।

महाराष्ट्री के व्याकरणकारों ने केवल महाराष्ट्री का विशेष अध्ययन किया है और उस पर जोर दिया है। लाख-लाख तक भी वे ऐसा ही करते रहे हैं। प्राकृत प्रकाश में अन्य प्राकृत भाषाओं पर जो अध्याय जोड़े गये हैं, वे भामह अथवा अन्य टीकाकारों ने जोड़े हैं। किन्तु प्राकृत-संजीवनी और प्राकृत-मंजरी में केवल महाराष्ट्री का ही वर्णन है।

इन सबको पढ़कर जो निदान निकलता है, वह लास्सन और पिशल के इस मत के विरुद्ध पाया जाता है कि नये व्याकरणकार अधिकाधिक भाषाओं का उल्लेख करते हैं। वास्तव में पाया यह जाता है कि जितना नया व्याकरणकार है, वह उतनी कम प्राकृत भाषाओं का उल्लेख करता है। यह दशा विशेषकर जैन व्याकरण कारों की है, जो प्राकृत को अपनी धार्मिक भाषा मानते हैं, और जिन्हें नाटकों की भाषा में किसी प्रकार का रस नहीं मिलता उनके व्याकरणों में केवल मुख्य प्राकृत के ही नियम मिलते हैं और वे भी किसी बड़े ग्रन्थ से उद्धृत करके दिये जाते हैं, जिनमें अन्य प्राकृत भाषाओं पर भी विचार रहता है। इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण मद्रास की सरकारी लाइब्रेरी म सुरक्षित 'वाल्मीकिसूत्र' है।

पिशल (प्राकृत भाषाओं का व्याकरण § २) के साथ यह भी नहीं कहा जा सकता कि वररुचि महाराष्ट्री छोड़ अन्य प्राकृत भाषाओं के बारे में बहुत कम सूत्र देता है। इस प्रकार वह वररुचि के व्याकरण पर भ्रम पैदा करता है। अभी इस तथ्य का भली भाँति निर्णय नहीं हो पाया है कि प्राकृतप्रकाश का अंतिम अध्याय लेखक है या स्वयं वररुचि ने लिखा है, तो भी यहाँ भारतीय व्याकरणकारों की पद्धति को समझना बहुत जरूरी है। भारतीय व्याकरणों में विशेष यत्न किया गया है कि कोई सूत्र या बात दुहरायी न जाय। अब भली भाँति समझने का स्थल है कि जब प्राकृत प्रकाश का लेखक उदाहरणार्थ पैशाची पर लिखना आरंभ करता है तो उसके मन में स्वभावतः यह बात है कि आरम्भ में मुख्य प्राकृत (महाराष्ट्री अनु) पर जो कुछ लिखा गया है विशेष बातों को छोड़ वह सब नई प्राकृत भाषा पर भी लागू होगा। इस प्रकार हमें यह न मान लेना चाहिए कि वररुचि ने पैशाची पर केवल चौदह सूत्र ही दिये हैं, बल्कि पैशाची पर महाराष्ट्री पर दिये गये ४२४ सूत्र भी लागू हैं तथा इनके

साथ पैशाची से सबधित चौदह विशेष सूत्र भी हैं। ये चौदह विशेष सूत्र तो पैशाची में महाराष्ट्री से अधिक हैं और पैशाची की स्पष्ट विशेषताएँ है तथा उन्हें बताने दिये गये हैं। इसी प्रकार, अन्य प्राकृत भाषाओं पर जो विशेष सूत्र दिये गये हैं, उनकी दशा समझिए।"

—डौल्ची निचि के ग्रथ, पृ० १,२ और ३

"मुख्य प्राकृत के सिवा अन्य प्राकृत भाषाओं को निकाल देने और प्राकृतप्रकाश के भामह-कौवेल-सस्करण मे पॉचवें और छठे परिच्छेदों को मिला देने का कारण और आधार वररुचि की टीकाएँ और विशेषत. वसतराज की प्राकृत सजीवनी है।

× × ×

कौवेल ने भामह की टीका का सपादन किया है। इसके अतिरिक्त इधर इस ग्रथ की चार टीकाएँ और मिली हैं, जो सभी प्रकाशित कर दी गई हैं।

वसतराज की प्राकृत सजीवनी का पता बहुत पहले से लग चुका है। कर्पूरमजरी के टीकाकार वसुदेव ने इसका उल्लेख किया है। मार्कण्डेय ने अपने प्राकृतसर्वस्व में लिखा है कि उसने इसका उपयोग किया है। कौवेल और ऑफरेष्ट ने प्राकृत के सबध मे इसका भी अध्ययन किया है। पिशल ने तो यहाँ तक कहा है कि प्राकृतसजीवनी कौवेल के भामह की टीकावाले सस्करण से कुछ ऐसा भ्रम पैदा होता है कि प्राकृत-सजीवनी एक मौलिक और स्वतत्र ग्रथ है। इस टीका की अतिम पक्ति में लिखा है—'इति वसन्तराजविरचिताया प्राकृतसंजीवनीवृत्तौ निपातविधिर् अष्टमः परिच्छेदः समाप्त'।' रचयिता ने प्राकृत सजीवनी को इसमें 'वृत्ति' अर्थात् टीका बताया है।

पिशल ने अपने ग्रन्थ (प्राकृत भाषाओं का व्याकरण §४०) में इस लेखक का परिचय दिया है। यदि हम पिशल की विचारधारा स्वीकार करें तो प्राकृत-संजीवनी का काल चौदहवीं सदी का अत-काल और पन्द्रहवीं का आरभ काल माना जाना चाहिए।

× × ×

यह टीका भामह-कौवेल-सस्करण की भूलों को शुद्ध करने के लिए बहुत अच्छी और उपयुक्त है। कुछ उदाहरणों से ही मालूम पड जाता है कि इससे कितना लाभ उठाया जा सकता है ! इसमें अनेक उदाहरण हैं और वे पुराने लगते हैं। बहुसख्यक कारिकाएँ उद्धृत की गई हैं। इनमें से कुछ स्वय भामह ने उद्धृत की हैं। इनसे पता लगता है कि वररुचि की परंपरा में बडी जान थी। इसकी सहायता से वररुचि के पाठ में जो कमी है, वह पूरी की जा सकती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि वसतराज ने वररुचि के सूत्रों की पुष्टि में अपना कोई वाक्य नहीं दिया है। कहीं कहीं छीन-छूट, एक-दो शब्द या वाक्य इस प्रकार के मिलते हैं, वे भी बहुत साधारण ढंग के। वसंतराज ने किसी प्राकृतव्याकरणकार के नाम

का उल्लेख नहीं किया है। वह ग्रन्थ के अंत में (८, ११) में कहता है—'वह सब, जिसके लिए कोई विशेष नियम नहीं दिया गया है, प्राकृत में भी उसी प्रकार कहा जा सकता है, जिस प्रकार संस्कृत में। इनपर व्याकरणकार शाकटायन, चंद्र (—गोमिन्, अनु) पाणिनि और सर्ववर्मन् के लिखे नियम चलेंगे।

प्राकृतसर्वस्व की सदानन्द-कृत प्राकृतसुबोधिनी टीका भी सम्पादित हो चुकी है। यह प्राकृत-संजीवनी के साथ ही छपी है। इसमें विशेष दिलचस्पी की कोई बात नहीं है। यह प्राकृतसंजीवनी का सार है और उसी पर आधारित है। यह न भी छपती तो कोई हानि न होती। किन्तु इससे एक लाभ भी है। इसमें कुछ ऐसे सूत्र हैं, जो प्राकृत-संजीवनी से लुप्त हो गये हैं। मैं इसके रचयिता के विषय में कुछ नहीं जानता हूँ और न ही मुझे इसके समय का कुछ पता है।

तीसरी टीका का नाम प्राकृत-मञ्जरी है। इसकी विशेषता यह है कि यह सारी की सारी श्लोकों में है। इसकी एक हस्तलिपि पिशल के पास थी, जो अधूरी थी। यह मलयालम-वर्णमाला में लिखी थी। यह लन्दन की रायल एशियैटिक सोसाइटी में थी। पिशल का कहना है कि इसका रचयिता दक्षिण-भारत का कोई भारतीय था। इसका नाम और काल का पता नहीं है। उसे कभी कात्यायन नाम दिया गया है, किन्तु यह स्पष्ट भूल है; क्योंकि इसके आरम्भ के श्लोक में कात्यायन का जो नाम दिया गया है, वह वररुचि के स्थानपर दिया गया है, जिसके सूत्रों पर इस टीका के लेखक ने टीका की है (पिशल का प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ १–११)।

मैंने इसके उस संस्करण का प्रयोग किया है, जिसका सम्पादन मुकुन्दशर्मन् ने किया है और जो १९ १ ई. में निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, से छपा था। इसकी भूमिका संस्कृत में है, लेकिन उसमें लेखक तथा उसके समय के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है। पी. एल्. वैद्य (प्राकृतप्रकाश की भूमिका, पृ. ८) के अनुसार प्राकृत-मंजरी कलकत्ते से भी छपी थी। इसे श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय ने अपने प्राकृतप्रकाश के साथ छपवाया था (प्रकाशक मे. एस्. के. लाहिरी एण्ड कं., कलकत्ता)। निर्णय सागरवाले संस्करण के अन्त में परिशिष्ट में उक्त तीनों टीकाओं में वररुचि के सूत्रों में क्या-क्या अन्तर आ गया है, इसकी तालिका भी दे दी गई है। उसे देखकर कोई पिशल के मत के साथ अपना मत नहीं मिला सकता कि प्राकृत-मंजरी के रचयिता को भामह का परिचय था (पिशल का प्राकृत भाषाओं का व्याकरण § ३३)।'

—डॉक्टर निति डे मार्टिनियाँ प्राकृत, पृ. २१–२१

"हेमचन्द्र को सौभाग्य प्राप्त हुआ कि वह भारत की अलस्य जलवायु में भी, चौरासी वर्ष की लंबी आयु में मरा। इस बीच वह जो काम कर गया, उसके मरने के बाद भी उसका प्रचार हुआ।

जैनों में धर्म का उत्साह बहुत होता है और उनमें अपने धर्म का प्रचार करने की बड़ी प्रतिभा है। इस पर हेमचन्द्र का दूसरा सौभाग्य यह रहा कि उसका संपादन

रिचार्ड पिशल ने किया। और, ऐसे समय किया, जब उसके प्राकृत व्याकरण की बहुत माँग थी। उन्नीसवीं सदी के दूसरे अर्द्धांश मे प्राकृत भाषाओ के अध्ययन का उत्साह बहुत बढ गया था। कौवेल ने वररुचि का जो सस्करण निकाला था, वह हाथो-हाथ बिक गया और कुछ ही वर्षों मे उसका दूसरा सस्करण प्रकाशित हो गया। सिद्धहेमचन्द्र के आठवे अध्याय के सामने वह फीका लग रहा था। इससे हेमचन्द्र की महिमा बढ रही थी। वह मानों प्रातःकाल की ऊषा की तुलना मे दक्षिण दिशा के सूर्य की भाँति तप रहा था। × × ×

पिशल के लिए किसी व्याकरण का इतना बडा महत्त्व नहीं है, जितना सिद्ध-हेमचन्द्र का (दे० डे० ग्रामाटिका प्राकृतिका, पेज २७)। इस विषय पर वह नाम-मात्र वादविवाद करना नहीं चाहता। उसे भय था कि कहीं यह वादविवाद लम्बा न हो जाय। सिद्ध हेमचन्द्र के सपादन और प्राकृत भाषाओं के व्याकरण लिखने के बाद उक्त भय ने उसका पीछा न छोडा, क्योकि उसने अपने थीसिस में इस विषय पर जो मत दिया था, उसे उक्त पुस्तकों मे उसने नाम मात्र न बदला। (दे० सिद्धहेमचन्द्र का सस्करण और प्राकृत भाषाओं का व्याकरण § ३६)।

यदि पिशल अधिक विनयशील होता, तो वह समझ जाता कि जो ग्रन्थ वास्तव में 'विशाल कार्य' था, वह सिद्धहेमचन्द्र का आठवाँ अध्याय नहीं, किन्तु इस ग्रन्थ का वह सस्करण था, जिसका सपादन स्वय पिशल ने किया था। इस ग्रन्थ की क्या सज-धज है, इसकी छपाई मे क्या चमत्कार है, इसकी सपादन की सावधानी अपूर्व है, परि-शिष्ट की महान् महिमा है। थोडे में यही कहा जा सकता है कि इसमें विद्वानों को कोई कमी दिखाई नहीं देती। इसे देख लोग यही समझते हैं कि प्राकृत के व्याकरण की शोध के लिए इससे सभी काम चल जाते हैं। × × ×

यदि आप सचमुच में हेमचन्द्र का ठीक मूल्य आँकना चाहते हों और उसकी तुलना प्राकृत के अन्य व्याकरणकारों से करना चाहते हों, तो यह इसलिए कठिन हो गया है कि, क्या हिन्दू, क्या यूरोपियन, सबने जैनों के प्रचार-कार्य तथा पिशल के प्रमाण-पत्र के प्रभाव से उसका महत्त्व बहुत बढा दिया है।

प्राकृत के सभी व्याकरणकारों की कडी आलोचना की जा सकती है, और टौमस ब्लौख ने की भी है। किन्तु मैं ऐसी आलोचना के पक्ष में नहीं हूँ। × × × मैं, अवश्य, इतना कहूँगा कि मेरी सम्मति मे प्राकृत भाषाओं के वैयाकरणों में हेमचन्द्र में लेशमात्र भी किसी विशेष प्रतिभा के दर्शन नहीं मिलते। खास कर उसने प्राकृत व्याकरण की पूर्णता और प्रौढता प्राप्त नहीं की। × × × पिशल ने ठीक ही देख लिया था कि उससे पहले प्राकृत के अनेक वैयाकरण हुए थे, जिनके व्याकरणों से उसने बहुत लिया है। उसका (हेमचन्द्र का) ग्रथ पढकर मेरे ऊपर तो ऐसा प्रभाव पडा है कि उसमें मौलिकता नाम-मात्र को नहीं है और थोडा यत्न करने पर उसने कहाँ से क्या लिया है, इसका पता लगाया जा सकता है, क्योंकि उसके व्याकरण का प्रत्येक विषय अलग किया जा सकता है और उससे पहले के व्याकरणों से उसका मूल खोजा

जा सकता है। भारतीय परम्परा यही बताती है और नाना स्थलों पर हेमचन्द्र ने स्वयं यह माना है।

हेमचन्द्र ११४५ विक्रम संवत् में कार्तिक पूर्णिमा (= १०८८ या १०८९ ई० का नवम्बर दिसम्बर) को अहमदाबाद के निकट धंधूक गाँव में पैदा हुआ। उसके माँ-बाप वैश्य या बनिया जाति के थे और दोनों ही जैन थे। उसने राजा जयसिंह की इच्छा को संतुष्ट करने के लिए अपना व्याकरण लिखा। एक अच्छे दरबारी की भाँति आरम्भ में उसने राजा की प्रशस्ति कही है, जिसमें छत्तीस श्लोक हैं। इसमें सभी चालुक्यों का वर्णन है, अर्थात् मूलराज से लेकर उसके संरक्षक जयसिंह तक की विरुदावली है। जयसिंह के विषय में उसने कहा है—

सम्यक् निषेव्य चतुरश् चतुरोऽप्युपायान्
जित्वोपभुज्य च भुवं चतुरब्धिकाञ्चीम्।
विद्याचतुष्टयविनीतमतिर् जितात्मा
काष्ठाम् अवाप पुरुषार्थ चतुष्टये यः ॥ १४ ॥
तेनातिविस्तृतदुरागमविप्रकीर्ण—
शब्दानुशासनसमूहकदर्थितेन ।
अभ्यर्थितो निरवमं विधिवद् व्यधत्त
शब्दानुशासनमिदं मुनिहेमचन्द्रः ॥ १५ ॥

अर्थात्, उस चतुर ने भली भाँति अथवा पूर्णतमा चारों उपायों (साम, दाम, दण्ड, भेद) का उपयोग करके चारों सागरों से घिरी पृथ्वी का उपभोग किया। चारों विद्याओं के उपार्जन से उसकी मति विनीत हो गई और वह जितात्मा बन गया और इस प्रकार चारों पुरुषार्थों का (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त कर उसने सफल जीवन की चरम सीमा प्राप्त की ॥ १४ ॥

जो अनेकानेक कठिन और नाना विषयों के शास्त्रों और अनादर पाये हुए शब्दानुशासनों के ढेर से घिरे, उसके याचना करने पर मुनि हेमचन्द्र ने यह शब्दानुशासन नियमानुसार रच दिया ॥ १५ ॥

प्रभावक चरित के अनुसार (इस ग्रंथ में बाईस जैन मुनियों के जीवन-चरित हैं), जो प्रभाचंद्र और प्रद्युम्नसूरि ने तेरहवीं सदी में लिखा है, हेमचन्द्र ने राजा जयसिंह से निवेदन किया कि सब से पुराने आठ व्याकरणों की एक-एक प्रति मेरे लिए प्राप्त की जायें। इनकी बहुत खोज की गई। ये व्याकरण कहीं भी एक ठौर में एकत्र नहीं मिले। फिर पता लगा कि ये काश्मीर में सरस्वती के मन्दिर में हैं। इससे हेमचंद्र को संतोष हुआ। इस प्रकार उसका शब्दानुशासन प्राचीन व्याकरणों का सार है। इस विचार की सिद्धहेमचंद्र ग्रन्थ से पुष्टि ही होती है। किन्तु हेमचंद्र के व्याकरण के मूल स्रोतों की खोज अभी तक पूर्ण सफल नहीं हुई है।

इस विषय पर व्याकरणकार स्वयं हमारी बहुत कम सहायता करता है। अपने विशाल ग्रंथ में ग्रन्थकार कहीं भी अपने से पहले के वैयाकरणों का नाम नहीं लेता।

केवल एक शब्द के सिलसिले में उसने हुग्ग का नाम दिया है। यह नाम विचित्र है और अति अज्ञात है। यह उल्लेख वहाँ हुआ है, जहाँ यह बताया गया है कि कहीं कहीं क का ह हो जाता है—जैसे, स० **चिकुर->**प्रा०**चिहुर** (हेमचद्र १, १८६, वररुचि २, ४)। टीका मे हेमचद्र ने स्वय बताया है कि **चिहुर** का प्रयोग स० में भी है। लिखा है—'**चिहुरशब्दः संस्कृतेऽपीति हुग्गः।**' पिशल ने इसका अनुवाद किया है—'हुग्ग (§ ३६) कहता है कि **चिहुर** शब्द सस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु इस विषय पर हुग्ग के अतिरिक्त किसी दूसरे वैयाकरण का प्रमाण नहीं दे सका। हेमचद्र के ग्रन्थ की हस्तलिपियों मे इस नाम के नाना रूप पाये जाते है—कहीं **हुग्गः** है, तो कहीं **दुर्गः** पाया जाता है। त्रिविक्रम ने १, ३, १७ में **हुंगाचार्यः** लिखा है। त्रिविक्रम की दूसरी हस्तलिपि में इस स्थान पर **आहुर् आचार्याः** पाया जाता है। लक्ष्मीधर की छपी षड्भाषा-चन्द्रिका की प्रति में (पृ० ७४) इसके स्थान पर **भृङ्गाचार्यः** (हस्तलिपि मे भृङ्गयाचार्यः है)। इन पाठातरों से प्रमाणित होता है कि लिपिकार हुग्ग को जानते ही न थे तथा हेमचद्र के चेले भी उससे अपरिच्वित थे।

हुग्ग की समस्या पिशल के समय से अभी तक एक कदम भी आगे नहीं बढी। पिशल के समय यह जहाँ थी, अभी वहीं है। मुझे लगता है कि यह समस्या हुग्ग के नाम से कभी सुलझेगी भी नहीं। हुग्गः सभवत सिद्ध के स्थान पर अशुद्ध लिखा गया है। यह अशुद्धि एक बहुत पुरानी हस्तलिपि में पाई जाती है, जो हेमचद्र के बाद ही लिखी गई थी। इस स्थान पर होना चाहिए—**चिहुरशब्दः संस्कृतेऽपि सिद्धः, चिहुर** शब्द सस्कृत से भी सिद्ध होता है। इससे थोड़े ही पहले ऐसे ही अवसर पर (हेमचद्र १,१७१) आया है—**मोरो मऊरो इति तु मोरमयूरशब्दाभ्याम् सिद्धम्**, इसका अनुवाद पिशल साहब ने किया है—**मोर** और **मऊर** शब्द **मोर** और **मयूर** से सिद्ध होते है। '(इससे मालूम पडता है कि हेमचद्र **मोर** को भी सस्कृत शब्द मानता है, किंतु अब तक यह संस्कृत मे मिला नहीं है।)'

यदि हुग्ग ही भ्रमपूर्ण पाठ है, तो यह बहुत ही कठिन है कि जो आचार्य विना नाम के उद्धृत किये गये हैं, उनका परिचय प्राप्त करना असभव ही है। इति अन्ये, इति कचित्, इति कश्चित् आदि का क्या पता लग सकता है ?"

—डौल्ची नित्तिः ले ग्रामैरियॉ प्राकृत, पृ० १४७-१५०

ऊपर के उद्धरणों से पिशल से, प्राकृत भाषाओं के विद्वान् डौल्ची नित्ति का मतभेद प्रकट होता है। साथ साथ तथाकथित आचार्य हुग्ग के नाम का कुछ खुलासा भी हो जाता है। मतभेद या आलोचना सत्य की शोध में मुख्य स्थान रखती है। हमारे विद्वानों ने कहा है—

शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषास्त्याज्या गुरोरपि।

यह महान् सत्य है। इसके अनुसार चलने से ज्ञान-विज्ञान आगे बढते हैं। इस कारण ही प्राकृत भाषाओं के इस व्याकरण के भीतर देखेंगे कि पिशल ने कई

आलोचनाओं का स्वागत किया है, माने अपने विरुद्ध लिखित सत्य को माना है। अपनी भूल न मानने के दुराग्रह से ज्ञान बढ़ने या शुद्ध होने नहीं पाता। इस दृष्टि से ऊपर की आलोचनायें जोड़ दी गई हैं। इससे 'प्राकृत भाषाओं के व्याकरण' में नवीनतम संशोधन भी जुड़ जाता है और यह संस्करण आधुनिकतम बन जाता है। इस प्रकार हिंदी के एक महान् अभाव की पूर्ति होगी। हिंदी-भाषा में प्राकृत परंपरा का शुद्ध ज्ञान का प्रचार होगा। मध्यभारतीय आर्य तथा नवीन भारतीय आर्य-भाषाओं पर संसार का जो भी विद्वान् कुछ लिखता है, पिशल के इस व्याकरण की सहायता के बिना उसका लेख या ग्रंथ पूरा नहीं होता। इससे इसके माहात्म्य पर उत्तमता और प्रामाणिकता की छाप लग जाती है। हिंदी में यह व्याकरण प्राप्त होने पर हिंदी भाषा की शोध का मार्ग प्रशस्त हो जायगा, यह आशा है।

वाराणसी
जन्माष्टमी, संवत् २०१५

—हेमचंद्र जोशी

अत्यावश्यक सूचना

मेरा विचार था कि पिशल के इस 'प्राकृत भाषाओं के व्याकरण' का प्रूफ मे स्वय देखूँ, जिससे इसमे भूल न रहने पाये। किन्तु वास्तव मे ऐसा न हो पाया। कई ऐसे कारण आ गये कि मै इस ग्रन्थ के प्रूफ देख ही नहीं पाया। जिन ५, ७ फर्मों के प्रूफ मैने शुद्ध भी किये, तो वे शुद्धियाँ अशुद्ध ही छप गई। पाठक आरम्भ के प्राय. १२५ पृष्ठों मे 'प्राकृत', दशरूप', 'वाग्भटालंकार' आदि शब्द उल्टे कौमाओं मे बन्द देखेंगे तथा बहुत-से शब्दों के आगे—० चिह्न का प्रयोग ऽ के लिए किया गया है। यह अशुद्ध है और मेरी हस्तलिपि में इसका पता नहीं है। यह प्रूफ रीडर महोदय की कृपा है कि उन्होंने अपने मन से मेरी हिन्दी शुद्ध करने के लिए ये चिह्न जोड दिये। यह व्याकरण का ग्रन्थ है, इस कारण एक शुद्धि पत्र जोड दिया गया है। उसे देख और उसके अनुसार शुद्ध करके यह पुस्तक पढी जानी चाहिए।

पिशल ने गौण **य** को **य़** रूप मे दिया है। प्राकृतों मे गौण **य़** का ही जोर है कृत का **कय़**, **गणित** का **गणिय़** आदि आदि रूप मिलते हैं। अत उसका थोडा-बहुत महत्त्व होनेपर भी सर्वत्र इस **य़** की बहुलता देख, अनुवाद मे यह रूप उडा देना उचित समझा गया। उससे कुछ बनता-बिगडता नहीं। मुझे प्रूफ देखने का अवसर न मिलने के कारण इसमे जो अशुद्धियाँ शेष रह गई हों, उसके लिये मे क्षमा चाहता हूँ। स्वय प्रूफ न देख सकना, मेरा महान् दुर्भाग्य रहा। यदि मै प्रूफ देख पाता, तो अशुद्धियाँ अवश्य ही कम रह पातीं।

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि सस्कृत मे चाहे **कार्य्य** लिखा जाय या **कार्य**, दोनों रूप शुद्ध माने जाते हैं, किन्तु विद्वान् वैयाकरण व्यर्थ को आधी मात्रा भी बढाने में सकुचाते हैं। इसलिए मै **कार्य** लिखना उचित समझता हूँ, पाश्चात्य विद्वान् भी ऐसा ही करते हैं। सस्कृत मे हर वर्ण के साथ उसके वर्ग का अनुनासिक **ङ**, **ञ**, **ण**, **न**, **म** जोडा जाता है। मध्य-भारतीय आर्य-भाषाओं के समय से इनका महत्त्व कम होने लगा। अब हिन्दी में अनुस्वार का महत्त्व बढ गया है, जो अनुचित नहीं कहा जा सकता। इससे लिखने की सुविधा और शीघ्रता होती है। किन्तु पिशल साहब ने अनुनासिकवाले रूप अधिक दिये हैं। ग्रन्थ में यदि कहीं, इस विषय की कोई गडबडी हो, तो पाठक, पिशल के शुद्ध रूप विषयानुक्रमणिका तथा शब्दानुक्रमणिका को देखकर शुद्ध कर लें। उनका प्रूफ मैंने देखा है, सो उनकी लेखन शैली पिशल की शैली ही रखी है। पिशल के मूल जर्मन-ग्रन्थ में प्रूफ देखने में बहुत सी भूलें रह गई हैं। इस ग्रन्थ का ढंग ही ऐसा है कि एक मात्रा टूटी, या छूटी तो रूप कुछ-का-कुछ हो गया। सस्कृत **कार्य** का रेफ टूटा या छूटा तो उसका रूप **काय** हो गया और ध्यान देने का स्थान है कि **कार्य**, **काय** में परिणत होकर 'शरीर' का अर्थ देने लगता है। यह महान् अनर्थ है। किन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी के मूल्यवान् ग्रन्थों और पत्रों

तथा पत्रिकाओं में हजारों अशुद्धियाँ देखने में आती हैं, जिसे हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। यह दुर्दशा बँगला, मराठी, गुजराती-ग्रन्थों और छापाखानों की नहीं है। इसका कारण क्या है? उसे ढूँढ़ हमें उसका कुछ इलाज करना चाहिए। क्या कारण है कि यूरप में भारतीय भाषाओं पर जो ग्रन्थ निकलते हैं उनमें नाम मात्र भूल भी कम देखने में आती है और राष्ट्रभाषा में यह भूलों की भरमार! इसका शीघ्र उपाय होना चाहिए, अन्यथा हिन्दी पर चारों ओर से जो प्रहार हो रहे हैं, उनकी सार्थकता ही सिद्ध होगी और राष्ट्रभाषा, अपने ही बहुजन प्रचलित होने के कारण, अपना पद बचाये रहे, किन्तु आज-कल की ही भाँति अन्य नवीन-भारतीय भाषा तथा अनार्य भाषा भाषी उसका आदर न कर सकेंगे। अतः आवश्यक है कि हमारी पुस्तकें ज्ञान, छपाई, सफाई, शुद्धि आदि में अन्य भाषाओं से बढ़-चढ़कर हों। इसीमें हिन्दी का कल्याण है।

निवेदक
हेमचन्द्र जोशी

जन्माष्टमी, संवत् [illegible]

विषयानुक्रमणिका

(पिशल के अनुसार)

तथा पत्रिकाओं में हजारों अशुद्धियाँ देखने में आती हैं, जिसे हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। यह दुर्दशा बँगला, मराठी, गुजराती-ग्रन्थों और छापाखानों की नहीं है। इसका कारण क्या है? उसे ढूंढ हमें उसका कुछ इलाज करना चाहिए। क्या कारण है कि यूरप में भारतीय भाषाओं पर जो ग्रन्थ निकलते हैं, उनमें नाम मात्र भूल भी कम देखने में आती है और राष्ट्रभाषा में यह भूलों की भरमार! इसका शीघ्र उपाय होना चाहिए, अन्यथा हिन्दी पर चारों ओर से जो प्रहार हो रहे हैं, उनकी सार्थकता ही सिद्ध होगी और राष्ट्रभाषा, भले ही बहुजन प्रचलित होने के कारण, अपना पद बचाये रहे, किन्तु आज-कल की ही भांति अन्य नवीन भारतीय-आर्य तथा अनार्य-भाषा-भाषी उसका आदर न कर सकेंगे। अतः आवश्यक है कि हमारी पुस्तकें ज्ञान, छपाई, सफाई, शुद्धि आदि में अन्य भाषाओं से बढ़-चढ़कर हों। इसीमें हिन्दी का कल्याण है।

निवेदक
हेमचन्द्र जोशी

जन्माष्टमी, संवत् [illegible] १५

विषय	पारा

विषय-सूची

(अनुवादक के अनुसार)

विषय-प्रवेश

पृष्ठ

अध्याय १

'अ' ध्वनित और स्वर

अध्याय २

स्वर

ब. व्यंजन

तीसरा खंड : रूपावली-शिक्षा

प्राकृत भाषाओं का व्याकरण

विषय-प्रवेश

अ. प्राकृत भाषाएँ

§ १—भारतीय वैयाकरणो और अलकार शास्त्र के लेखकों ने कई साहित्यिक भाषाओं के समूह का नाम 'प्राकृत' रखा है और इन सब की विशेषता यह बताई है कि इनका मूल सस्कृत है। इसलिए वे नियमित रूप से यह लिखते हैं कि **प्राकृत** प्रकृति अथवा एक मूल तत्त्व या आधारभूत भाषा से निकली है तथा यह आधारभूत भाषा उनके लिए सस्कृत है। इस विषय पर 'हेमचन्द्र' आदि मे ही कहता है—

प्रकृतिःसंस्कृतम्। तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्। १।१

अर्थात् 'आधारभूत भाषा सस्कृत है और इस सस्कृत से जो भाषा निकली है या आई है, वह प्राकृत कहलाती है।' इसी प्रकार 'मार्कण्डेय' ने भी अपने 'प्राकृत सर्वस्वम्' के आरम्भ मे ही लिखा है—

प्रकृतिःसंस्कृतम्। तत्रभवं प्राकृतम् उच्यते। १

'दशरूप' की टीका मे 'धनिक' ने २–६० मे लिखा है—

प्रकृतेर् आगतं प्राकृतम्। प्रकृतिःसंस्कृतम्।

'वाग्भटालकार' २–२ की टीका में 'सिहदेवगणिन्' ने लिखा है—

प्रकृतेःसंस्कृताद् आगतं प्राकृतम्।

पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट के ३४३–७ मे 'प्राकृत चन्द्रिका' में आया है—

प्रकृतिःसंस्कृतम्। तत्र भवत्वात् प्राकृतम् स्मृतम्।

'नरसिंह' ने 'प्राकृत शब्द प्रदीपिका' के आरम्भ में ही कहा है। उसकी तुलना कीजिए—

प्रकृतेःसंस्कृतायास् तु विकृतिः प्राकृती मता।

विषय-प्रवेश

अ. प्राकृत भाषाएँ

§ १—भारतीय वैयाकरणों और अलकार शास्त्र के लेखकों ने कई साहित्यिक भाषाओं के समूह का नाम 'प्राकृत' रखा है और इन सब की विशेषता यह बताई है कि इनका मूल सस्कृत है। इसलिए वे नियमित रूप से यह लिखते हैं कि **प्राकृत** प्रकृति अथवा एक मूल तत्व या आधारभूत भाषा से निकली है तथा यह आधारभूत भाषा उनके लिए सस्कृत है। इस विषय पर 'हेमचन्द्र' आदि में ही कहता है—

प्रकृति संस्कृतम्। तत्र भव तत आगतं वा प्राकृतम्। १।१

अर्थात् 'आधारभूत भाषा सस्कृत है और इस सस्कृत से जो भाषा निकली है या आई है, वह प्राकृत कहलाती है।' इसी प्रकार 'मार्कण्डेय' ने भी अपने 'प्राकृत सर्वस्वम्' के आरम्भ में ही लिखा है—

प्रकृतिःसस्कृतम्। तत्रभवं प्राकृतम् उच्यते । १

'दशरूप' की टीका में 'धनिक' ने २–६० में लिखा है—

प्रकृतेर् आगतं प्राकृतम्। प्रकृति सस्कृतम्।

'वाग्भटालकार' २–२ की टीका में 'सिहदेवगणिन्' ने लिखा है—

प्रकृतेःसंस्कृताद् आगतं प्राकृतम्।

पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट के ३४३–७ मे 'प्राकृत चन्द्रिका' मे आया है—

प्रकृति संस्कृतम्। तत्र भवत्वात् प्राकृतम् स्मृतम्।

'नरसिंह' ने 'प्राकृत शब्द-प्रदीपिका' के आरम्भ में ही कहा है। उसकी तुलना कीजिए—

प्रकृतेःसंस्कृतायास् तु विकृति प्राकृती मता।

कर्पूरमंजरी के बम्बई-संस्करण में वासुदेव की जो संजीवनी टीका दी गई है उसमें लिखा है—

प्राकृतस्य तु सर्वम् एव संस्कृतम् योनिः । ५२

अन्य व्युत्पत्तियों के लिए सोलहवाँ पाराग्राफ देखिए।

§ २—गीतगोविन्द ७–२ का नारायण द्वारा जो 'रसिकसर्वस्व' टीका लिखी गई है उसमें कहा गया है—

संस्कृतात् प्राकृतम् इष्टम् ततोऽपभ्रंश भाषणम्।

अर्थात् 'ऐसा माना जाता है कि संस्कृत से प्राकृत निकली है और प्राकृत से अपभ्रंश भाषा बनती है'*। शकुन्तला १–२ की टीका करते हुए 'शंकर' ने साफ लिखा है—

संस्कृतात् प्राकृतम् श्रेष्ठम् ततोऽपभ्रंश भाषणम्।

अर्थात् 'संस्कृत से श्रेष्ठ (भाषा) प्राकृत आई है और प्राकृत से अपभ्रंश भाषा निकली है। †

दण्डिन के काव्यादर्श १–३४ के अनुसार महाराष्ट्री श्रेष्ठ प्राकृत है (§ १२)—

महाराष्ट्राश्रयाम् भाषाम् प्रकृष्टम् प्राकृतम् विदुः।

इसका कारण यह है कि ये भारतीय विद्वान् ऐसा समझते थे कि संस्कृत महाराष्ट्री प्राकृत के बहुत निकट है। भारतीय जब कभी साधारण रूप से प्राकृत का जिक्र करते हैं तब उनका प्रयोजन प्रायः सबदा महाराष्ट्री प्राकृत से होता है। ऐसा माना जाता है कि महाराष्ट्री वह भाषा है जो दूसरी प्राकृत भाषाओं का आधार है और यह देशी व्याकरणों द्वारा लिखे गये प्राकृत भाषाओं के व्याकरणों में सर्वप्रथम स्थान पाती है। सबसे पुराने वैयाकरण वररुचि ने ९ अध्याय और ४२४ सूत्र में महाराष्ट्री का व्याकरण दिया है तथा उसने जो अन्य तीन प्राकृत भाषाओं के व्याकरण दिये हैं उनके नियम एक-एक अध्याय में, जिनमें क्रमशः १४, १७ और १२ नियम हैं समाप्त कर दिये हैं। वररुचि ने अन्त में (१२ ३२) लिखा है कि जिन जिन प्राकृत भाषाओं के विषय में जो बात विशेष रूप से न कही गई हो वह महाराष्ट्री के समान ही मानी जानी चाहिए—

शेषम् महाराष्ट्रीवत्।

अन्य व्याकरण भी ऐसी ही बात लिखते हैं।

* [illegible] 'भ्रंश' का अर्थ [illegible] नहीं होता [illegible] है कि संस्कृत से प्राकृत [illegible] प्राकृत में भी [illegible] है— [illegible]

† [illegible] है कि संस्कृत से [illegible]

१ पिशल द्वारा लिखे गये डी ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज, १—२ लास्सन इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए पेज, ७। म्यूर ओरिजिनल सैंस्क्रत टेक्स्टस् २, २, पेज ४३ और आगे—३ मार्कण्डेय पन्ना ४। ४ वररुचि ने १०,२,११,२ में इससे भिन्न मत दिया है। म्यूर के उक्त स्थल की तुलना करें।

§ ३—प्राकृत के रूप के विषय में व्यापक रूप से हमें क्या समझना चाहिए? इस विषय पर भारतीय आचार्यों के विचार भिन्न-भिन्न और कभी कभी परस्पर विरोधी भी हैं। वररुचि के मत से महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी प्राकृत भाषाएँ हैं। हेमचन्द्र इनके अलावा आर्ष, चूलिका, पैशाचिक और अपभ्रंश को भी प्राकृत भाषाएँ मानता है। त्रिविक्रम, सिंहराज, नरसिंह और लक्ष्मीधर भी उक्त भाषाओं को प्राकृत समझते हैं, पर त्रिविक्रम आर्षम् भाषा को प्राकृत भाषा नहीं मानता। सिंहराज, नरसिंह और लक्ष्मीधर इस भाषा का उल्लेख ही नहीं करते। मार्कण्डेय का कहना है कि प्राकृत भाषाएँ चार प्रकार की हैं—भाषा, विभाषा, अपभ्रंश और पैशाच। वह भाषाओं में निम्नलिखित प्राकृत भाषाओं को गिनता है—महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, अवन्ती और मागधी। वह एक स्थान पर किसी नामहीन लेखक[१] के विरुद्ध लिखते हुए यह बात बताता है कि अर्द्धमागधी शौरसेनी से दूर न रहनेवाली मागधी ही है। दाक्षिणात्या प्राकृत के विशेष लक्षणवाली 'प्राकृत' भाषा नहीं है और बाह्लीकी भी ऐसी ही है। ये दोनों भाषाएँ मागधी के भीतर शामिल हैं। वह विभाषाओं में शाकारी, चाण्डाली, शाबरी, आभीरिकी, शाक्की आदि सत्ताइस प्रकार की अपभ्रंश भाषाओं के केवल तीन भेद करता है अर्थात् नागर, व्राचड और उपनागर। वह ग्यारह प्रकार की पैशाची बोलियों को तीन प्रकार की नागर भाषाओं के भीतर शामिल कर लेता है—कैकेय, शौरसेन और पाचाल[२]। रामतर्कवागीश[३] भी प्राकृत भाषाओं और अपभ्रंश के इसी प्रकार के भेद करता है, किन्तु सब वैयाकरण महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची को प्राकृत भाषाएँ मानते हैं।

१ जैसा कई विद्वान् समझते हैं कि यह नामहीन लेखक 'भरत' है, मुझे ठीक नहीं जँचता। यद्यपि विभाषा पर उक्त श्लोक भारतीय नाट्यशास्त्र १७–४९ से बिलकुल मिलता-जुलता है, पर और सूत्र 'भरत' से भिन्न हैं। यह उद्धरण पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट के ३४६ और उसके बाद के पन्नों में छपी हुई कृष्ण पण्डित की 'प्राकृतचन्द्रिका' में भी आया है। इस विषय पर लास्सन की इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए पेज २१ में रामतर्कवागीश की पुस्तक में इसकी तुलना करने योग्य है—२ यह, इस पुस्तक का कुछ अंश जो औफरेष्ट ने औक्सफोर्ड से प्रकाशित अपने काटालोगुस काटालोगोरुम के पेज १८१ में प्रकाशित किया है, उससे लिया गया है—३ लास्सन इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए, पेज १९ से २३, इस विषय पर क्रमदीश्वर ५,९९ और भारतीय नाट्यशास्त्र १७,४८ तथा उसके बाद के पेज तुलना करने योग्य हैं।

कर्पूरमंजरी के बम्बई-संस्करण में वासुदेव की जो संजीवनी टीका दी गई है, उसमें लिखा है—

प्राकृतस्य तु सर्वम् एव संस्कृतम् योनिः । १।८

अन्य व्युत्पत्तियों के लिए छठवाँ पाराग्राफ देखिए ।

§ २—गीतगोविन्द ९–२ की नारायण द्वारा जो 'रसिकसर्वस्व' टीका लिखी गई है उसमें कहा गया है—

संस्कृतात् प्राकृतम् इष्टम् ततोऽपभ्रंश भाषणम् ।

अर्थात् 'ऐसा माना जाता है कि संस्कृत से प्राकृत निकली है और प्राकृत से अपभ्रंश भाषा बनती है'*। शकुन्तला ९–१ [illegible] की टीका करते हुए 'शंकर' ने साफ लिखा है—

संस्कृतात् प्राकृतम् श्रेष्ठम् ततोऽपभ्रंश भाषणम् ।

अर्थात् 'संस्कृत से श्रेष्ठ (भाषा) प्राकृत आई है और प्राकृत से अपभ्रंश भाषा निकली है ।'†

दण्डिन के काव्यादर्श १–३४ के अनुसार महाराष्ट्री श्रेष्ठ प्राकृत है (§ १२)—

महाराष्ट्राश्रयाम् भाषाम् प्रकृष्टम् प्राकृतं विदुः ।

इसका कारण यह है कि ये भारतीय विद्वान् ऐसा समझते थे कि संस्कृत महाराष्ट्री प्राकृत के बहुत निकट है। भारतीय जब कभी साधारण रूप से प्राकृत का जिक्र करते हैं तब उनका प्रयोजन प्रायः सदा 'महाराष्ट्री प्राकृत' से होता है। ऐसा माना जाता है कि महाराष्ट्री वह भाषा है जो दूसरी प्राकृत भाषाओं का आधार है[1], और वह देशी वैयाकरणों द्वारा लिखे गये प्राकृत भाषाओं के व्याकरणों में सर्वप्रथम स्थान पाती है। सबसे पुराने वैयाकरण 'वररुचि' ने [illegible] अध्याय और ४२४ सूत्र में महाराष्ट्री का व्याकरण दिया है तथा उसने जो अन्य तीन प्राकृत भाषाओं के व्याकरण दिये हैं उनके नियम एक एक अध्याय में जिनमें क्रमशः १४, १७ और १२ नियम हैं, समाप्त कर दिये हैं। वररुचि ने अन्त में (१२ ३२) लिखा है कि जिन जिन प्राकृत भाषाओं के विषय में जो बात विशेष रूप से न कही गई हो वह महाराष्ट्री के समान ही मानी जानी चाहिए—

शेषम् महाराष्ट्रीवत् ।

अन्य वैयाकरण भी ऐसी ही बात लिखते हैं ।

* [illegible] का यह अर्थ ठीक नहीं जँचता; क्योंकि इसम का अर्थ निकलना नहीं होता [illegible] अर्थ स्पष्ट है। यहाँ यह तात्पर्य है कि संस्कृत न प्राकृत मनोहर और प्रिय है जो [illegible] भाषा है। [illegible] में [illegible] लिखा है—[illegible] —अनु

† [illegible] —अनु

पूरा पालन किया जाता है। दूसरे प्रकार की अपभ्रंश भाषा मे जनता की बोली और मुहावरों का प्रयोग रहता है। पुराने 'वाग्भट' ने भी अपभ्रंश के इन दो भेदो का वर्णन किया है। 'वाग्भटालकार' के २-१ मे उसने लिखा है कि चार प्रकार की भाषाएँ है अर्थात् सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और भूतभाषित अथवा पैशाची तथा २-३ में लिखा है कि भिन्न-भिन्न देशों की विशुद्ध भाषा वहाँ की अपभ्रंश भाषा है।

अपभ्रंशस् तुयच् छुद्धम्तत्तद्देशेषु भाषितम्।

नया वाग्भट अलकारतिलक के १५-३ में सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्य-भाषा के भेद बताता है। वल्भी की एक प्रस्तरलिपि मे 'गुहसेन' की यह प्रशस्ति गाई गई है कि वह सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश—इन तीन भाषाओं में अनायास ही ग्रन्थों का निर्माण कर सकता था (इण्डियन ऐण्टीक्वैरी १०,२८४)। 'रुद्रट' ने 'काव्यालकार' के २-१२ मे ६ भाषाओं का उल्लेख किया है—प्राकृत, सस्कृत, मागधभाषा, पिशाचभाषा, शौरसेनी और अपभ्रंश। इस अपभ्रंश भाषा के बारे में उसने कहा है कि देश भेद से इसके नाना रूप हो जाते हैं—

षष्ठोत्र भूरि भेदो देशविशेषाद् अपभ्रंशः।

अमरचन्द्र ने 'काव्यकल्पलता' की वृत्ति के पृष्ठ ८ मे छ प्रकार की भाषाओं का यही भेद बताया है।

१ इण्डिशे आल्टरटूम्सकुण्डे दूसरा वर्ष, दूसरा खड, पृष्ठ ११६९—२ वेबर, इण्डिशे स्टाइफन २,५७, पिशल, कून्स बाइत्रैगे ८,१४५—३ वररुचि उण्ट हेमचन्द्र नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १४ और उसके बाद के पृष्ठ जो कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३३,३२२ पृष्ठ और उसके बाद के पृष्ठों मे छापा गया था—यह पुस्तक जर्मनी के ग्यूटर्सलोह नामक स्थान से १८९३ में प्रकाशित हुई थी—४ दण्डिन् का अनुसरण कविचन्द्र ने अपनी 'काव्यचन्द्रिका' में किया है। यह पुस्तक लास्सन के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए के पेज ३२ से छपी है। भाषाओं की यह सख्या भोजदेव के सरस्वती-कठाभरण २-७ पेज ५६ मे बहुत अस्पष्ट है—५ लास्सन इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लि० प्रा० के २१ तथा उसके बाद के पृष्ठों मे छपी है। इस सबध में म्यूर के ओरिजिनल सँस्कृत टेक्सट्स्, दूसरे खड के दूसरे भाग का पृष्ठ ४६ देखिए—६ सस्कृतम्, प्राकृतम् और देशभाषा सोमदेव के लिए (कथासरित्सागर ६,१४८) मनुष्य जाति की तीन भाषाएँ है। उसने लिखा है भाषात्रयम् यन्मनुष्येषु संभवेत्। इस संबध मे 'क्षेमेन्द्र' की 'बृहतकथामजरी' ६-४७ और ५२ देखें।

है और विशुद्ध हिंदी शब्दो की व्युत्पत्ति भी उनमें मिलती है, क्योंकि जो शब्द वैदिक रूप में तथा सस्कृत मे घिसते-मँजते प्राकृत यानी जनता की बोली के काम में आने लगे, उनका रूप बहुत बदल गया और कुछ का रूप ऐसा हो गया है कि पता नहीं लगता कि ये देशज थे या सस्कृत। इनका शोध सस्कृत द्वारा नहीं, प्राकृतों के अध्ययन और ज्ञान मे सरल हो जाता है।—अनु०

§ ४—'वररुचि' अपभ्रंश का नाम नहीं लेता (§ १)-पर इससे लास्सन[1] की भाँति इस निदान पर पहुँचना कि अपभ्रंश भाषा वररुचि[1] के बाद चली है, भ्रमपूर्ण है। वररुचि ने अपभ्रंश का उल्लेख नहीं किया है, इसलिए ब्लौख[1] की भाँति 'वररुचि' पर यह दोष मढ़ना कि उसके ग्रंथ में छिद्रान्वेषण और तथ्यों के विपरीत बातें लिखी गई हैं भूल है। वररुचि के ऐसा लिखने का कारण यह है कि यह अन्य वैयाकरणों के साथ साथ यह मत रखता है कि अपभ्रंश भाषा प्राकृत नहीं है जैसा कि 'रुद्रट के काव्यालंकार २-१२ पर टीका करते हुए नमिसाधु' ने स्पष्ट लिखा है कि कुछ लोग तीन भाषाएँ मानते थे—प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश—

यद् उक्तम् कैश्चिद् यथा। प्राकृतम् संस्कृतम् चैतद् अपभ्रंश इति त्रिधा।

इन विद्वानों में एक दण्डिन् भी है जो अपने काव्यादर्श के १-३२ में चार प्रकार की साहित्यिक कृतियों का उल्लेख करके उनके भेद बताता है। ये कृतियाँ संस्कृत अथवा प्राकृत या अपभ्रंश में लिखी गई हैं और ये ग्रन्थ एक से अधिक भाषाओं में निर्मित किये गये। ऐसे ग्रंथों को दण्डिन् मिश्र' भाषा में लिखे गये बताता है। काव्यादर्श के १-३६ के अनुसार दण्डिन् यह मानता है कि आभीर आदि भाषाएँ अपभ्रंश हैं और केवल उस दशा में इन्हें अपभ्रंश भाषा कहना चाहिए जब कि ये काव्यों के काम में लाई जाती हों पर शास्त्रों में अपभ्रंश भाषा वह है जो संस्कृत से भिन्न हो। मार्कण्डेय अपनी पुस्तक के (पन्ना २) एक उद्धरण में आभीरों की भाषा को विभाषाओं (§ ३) में गिनता है और साथ ही उसे अपभ्रंश भाषाओं की पंक्ति में भी रखता है। उसने पांचाल मालव गौड़ ओड्र कालिंग, कार्णाटक द्राविड़ गुर्जर आदि २६ प्रकार की अपभ्रंश भाषाओं का उल्लेख किया है। उसके अनुसार अपभ्रंश भाषाओं का तात्पर्य जनता की भाषाओं से है भले ही वे नाम या अनाम व्युत्पत्ति की हों। इस मत के विरुद्ध रामतर्कवागीश[1] यह लिखता है कि विभाषाओं को अपभ्रंश नाम से न कहना चाहिए विशेषकर उस दशा में जब कि वह नाटक आदि के काम में लाई जायें। अपभ्रंश तो वे भाषाएँ हैं जो जनता द्वारा वास्तव में बोली जाती रही होंगी। बोएटलिंक द्वारा १८४६ में सेन्ट पीटर्सबुर्ग से प्रकाशित विक्रमोर्वशी के पृष्ठ ५ ९ में 'रविकर' का जो मत उद्धृत किया गया है। उसमें दो प्रकार के अपभ्रंशों का भेद बताया गया है। उसमें यह कहा गया है कि एक तरह की अपभ्रंश भाषा प्राकृत से निकली है और वह प्राकृत भाषा के शब्दों और धातुरूपों से बहुत कम भेद रखती है तथा दूसरी भाँति की भाषा देशभाषा[1] है जिसे जनता बोलती है[2]। एक ओर संस्कृत और प्राकृत में व्याकरण के नियमों का पूरा

इसमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि उस प्रकार की जो प्राकृत भाषाएँ जनता द्वारा नाना प्रान्तों में बोली जाती थीं हमारी हिन्दी उसकी एक है; किंतु प्राकृत ग्रंथों की 'साधु भाषा' में बोली जानेवाली भाषा कम मिलती है। स्वयं अपभ्रंश भाषा के ग्रंथों में प्रचलित भाषा को व्याकरण-सम्मत बनाने के प्रयत्न में लेखकों ने साहित्यिक भाषा का रूप देकर उसे इतना सँवारा कि 'साधु' और 'प्रचलित' दो भिन्न भाषाएँ बन गईं, जिनमें बहुत कम साम्य रह गया। इसपर भी प्राकृत तथा अपभ्रंश में हिंदी के व्याकरण का इतिहास स्पष्ट रूप से मिलता

पूरा पालन किया जाता है। दूसरे प्रकार की अपभ्रंश भाषा मे जनता की बोली और मुहावरो का प्रयोग रहता है। पुराने 'वाग्भट' ने भी अपभ्रंश के इन दो भेदो का वर्णन किया है। 'वाग्भटालकार' के २-१ में उसने लिखा है कि चार प्रकार की भाषाएँ हैं अर्थात् सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और भूतभाषित अथवा पैशाची तथा २-३ में लिखा है कि भिन्न-भिन्न देशो की विशुद्ध भाषा वहाँ की अपभ्रंश भाषा है।

अपभ्रंशस् तुयच् छुद्धम्तत्तद्देशेषु भाषितम्।

नया वाग्भट अलकारतिलक के १५-२ में सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्य-भाषा के भेद बताता है। वलभी की एक प्रस्तरलिपि मे 'गुहसेन' की यह प्रशस्ति गाई गई है कि वह सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश—इन तीन भाषाओ में अनायास ही ग्रन्थों का निर्माण कर सकता था (इण्डियन ऐण्टीक्वैरी १०,२८४)। 'रुद्रट' ने 'काव्यालकार' के २-१२ मे ६ भाषाओं का उल्लेख किया है—प्राकृत, सस्कृत, मागधभाषा, पिशाचभाषा, शौरसेनी और अपभ्रंश। इस अपभ्रंश भाषा के बारे में उसने कहा है कि देश भेद मे इसके नाना रूप हो जाते हैं—

षष्ठोत्र भूरि भेदो देशविशेषाद् अपभ्रंशः।

अमरचन्द्र ने 'काव्यकल्पलता' की वृत्ति के पृष्ठ ८ में छ प्रकार की भाषाओं का यही भेद बताया है।

१ इण्डिशे आल्टरटूम्सकुण्डे दूसरा वर्ष, दूसरा खड, पृष्ठ ११६९—२ वेबर, इण्डिशे स्टूडिएन २,५७, पिशल, कून्स बाइत्रैगे ८,१४५—३ वररुचि उण्ट हेमचन्द्र नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १८ और उसके बाद के पृष्ठ जो कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३३,३३० पृष्ठ और उसके बाद के पृष्ठों मे छापा गया था—यह पुस्तक जर्मनी के ग्यूटर्सलोह नामक स्थान से १८९३ मे प्रकाशित हुई थी—४ दण्डिन् का अनुसरण कविचन्द्र ने अपनी 'काव्यचन्द्रिका' में किया है। यह पुस्तक लास्सन के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए के पेज ३२ से छपी है। भाषाओ की यह सख्या भोजदेव के सरस्वती-कठाभरण २-७ पेज ५६ मे बहुत अस्पष्ट है—५ लास्सन इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लि० प्रा० के ३१ तथा उसके बाद के पृष्ठो मे छपी है। इस सबध मे म्यूर के ओरिजिनल सैस्कृत टेक्सटस्, दूसरे खड के दूसरे भाग का पृष्ठ ४६ देखिए—६ सस्कृतम्, प्राकृतम् और देशभाषा सोमदेव के लिए (कथासरित्सागर ६,१४८) मनुष्य जाति की तीन भाषाएँ है। उसने लिखा है भाषात्रयम् यन्मनुष्येषु संभवेत्। इस सबध मे 'क्षेमेन्द्र' की 'बृहत्कथामजरी ६-४७ और ५२ देखें।

है और विशुद्ध हिंदी शब्दो की व्युत्पत्ति भी उनमें मिलती है, क्योंकि जो शब्द वैदिक रूप में तथा सस्कृत मे घिसते-मंजते प्राकृत यानी जनता की बोली के काम में आने लगे, उनका रूप बहुत बदल गया और कुछ का रूप ऐसा हो गया है कि पता नहीं लगता कि ये देशज थे या सस्कृत। इनका शोध सस्कृत द्वारा नहीं, प्राकृत के अध्ययन और ज्ञान से सरल हो जाता है।—अनु०

§ ५—इन मतों के अनुसार अपभ्रंश का तात्पर्य उन बोलियों से है, जिन्हें भारत की जनता अपनी बोलचाल के काम में लाती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन अपभ्रंश बोलियों में बहुत प्राचीन समय से ही नाना प्रकार की साहित्यिक कृतियाँ लिखी जाती थीं। इन बोलियों में नाटक लिखे जाते होंगे, इस बात का प्रमाण भारतीय नाट्यशास्त्र १७–४६ से मिलता है। इसमें नाटक के पात्रों को यह आज्ञा दी गई है कि नाटकों की भाषा, शौरसेनी के साथ साथ, अपनी इच्छा के अनुसार से अन्य कोई भी प्रान्तीय भाषा काम में लाये—

शौरसेनम् समाश्रित्य भाषा कार्या तु नाटके।
अथवा छन्दतः कार्या देश भाषा प्रयोक्तृभिः॥

यहाँ कालिदास भवभूति आदि महाकवियों के समय के नाट्यशास्त्र के नियमों से सजागसुसज्जित नाटकों के विषय में नहीं लिखा गया है, बल्कि जनता द्वारा खेले जानेवाले उन नाटकों का उल्लेख है, जिन्हें बंगाल में यात्रा और उत्तर भारत में रास आदि कहा जाता है। ये वही नाटक हैं जो अल्मोड़ा* और नेपाल में भी जनता द्वारा जनता के आमोद-प्रमोद के लिए खेले जाते हैं और जिनका एक नमूना 'हरिश्चन्द्र नृत्यम्' के रूप में जर्मनी में प्रकाशित हुआ है। इस अपभ्रंश को कभी किसी ने प्राकृत नहीं बताया है। यह वह अपभ्रंश भाषा है जो 'दण्डिन्' के अनुसार काव्य के काम में लाई जाती थी और जो 'रविकर' के मतानुसार प्राकृत से नाम मात्र को भिन्न होती थी (§ ४) तथा जिसका सम्बन्ध प्राकृत के साथ रहता था (§ २)। यह वह अपभ्रंश है जिसे पिंगल और दूसरे व्याकरणों में प्राकृत वैयाकरणों ने उल्लिखित किया है (§ २९)। भारतीय विद्वान् प्राकृत भाषाओं को केवल साहित्यिक भाषाएँ समझते हैं। मृच्छकटिक की टीका की भूमिका में 'पृथ्वीधर' (गोडबोले द्वारा सम्पादित बम्बई में छपे संस्करण के पृष्ठ ४९१ में) स्पष्ट शब्दों में कहता है—

महाराष्ट्र्याश्रया काव्य एव प्रयुज्यन्ते।

हेमचन्द्र ने २–१७४ पृष्ठ ९८ में उन शब्दों का वर्णन किया है, जिनका प्रयोग प्राचीन कवियों ने नहीं किया था (पूर्वैः कविभिः) और जिनका प्रयोग कवियों को न करना चाहिए। दण्डिन् ने काव्यादर्श के १–३५ में लिखा है कि नाटक के पात्रों की बातचीत में शौरसेनी गौडी, लाटी और इस प्रकार की अन्य भाषाएँ प्रयोग में लाई जा सकती हैं और 'रासतरंगिणी' ने लिखा है कि जब नाटक के आदि में विभाषाएँ काम में लाई जायँ तब उसमें अपभ्रंश भाषा न करना चाहिए। इस प्रकार हमें एक भाषा शौरसेनी-अपभ्रंश के रूप में मिलती है जो शूरसेन प्रदेश में जनता की बोली रही थी। आजकल इसकी परम्परा में गुजराती

* अल्मोड़े में आज भी गाँव-गाँव में रामलीला नाटक खेला जाता है। आज छः वर्ष पहले यह स्थानीय बोली में किया जाता था। किंतु इस समय इसकी बोली हिंदी हो गई है। फिर भी नवरात्र के अवसर पर आश्विन मास में कुमाऊँ भर में इसकी धूम रहती है और जनता इसमें जो रस लेती है वह देखने योग्य है। —अनु

और मारवाड़ी[७] भाषाएँ हैं और एक शौरसेनी प्राकृत भी मिलती है, जो कृत्रिम भाषा थी और नाटकों के गद्य में काम में लाई जाती थी। इसकी सारी रूपरेखा संस्कृत से मिलती है, किन्तु शौरसेनी-अपभ्रंश में भी आत्म-संवेदनामय कविता लिखी जाती थी और आत्म-संवेदनामय कविता की मुख्य प्राकृत भाषा में—महाराष्ट्री के ढंग पर—गीत, वीर रस की कविताएँ आदि रची जाती थीं, पर इसमें बोली के मुहावरे आदि मुख्य अंग वैसे ही रहते थे जैसे जनता में प्रचलित थे। हेमचन्द्र ने ४,४४६ में इसका एक उदाहरण दिया है—

कंठि पालम्बु किदु रदिए,*

शौरसेनी प्राकृत में इसका रूप—

कंठे पालंबं किदं रदीए,

पर महाराष्ट्री में इसका रूप होता है—

कंठे पालंबं कअम् रईए।

इसमें 'द' के स्थान पर 'अ' आ जाता है। 'हेमचन्द्र' ने भूल से अपभ्रंश में भी शौरसेनी के नियम लागू कर दिये हैं (§ २८)। इसी तरह एक महाराष्ट्र-अपभ्रंश† भाषा भी थी। इसकी परम्परा में आजकल की बोली जानेवाली मराठी[८] है और एक महाराष्ट्र-प्राकृत भी थी, जिसे वैयाकरण महाराष्ट्री कहते हैं। एक भाषा मागध-अपभ्रंश भी थी जो लाट बोली के द्वारा धीमे-धीमे आजकल के बिहार और पश्चिमी बंगाल की[९] भाषा बन गई है और एक मागध-प्राकृत भी थी जिसे वैयाकरण मागधी[१०] कहते हैं। पैशाची भाषा के विषय में २७ वाँ पाराग्राफ देखिए और आर्ष भाषा के सम्बन्ध में १६ वाँ।

१ विल्सन की 'सिलेक्ट स्पीसिमेन्स ऑफ द थियेटर आफ द हिन्दूज' खण्ड २ भाग ३, पेज ४१२ और उसके बाद के पेज, निशिकान्त चट्टोपाध्याय द्वारा लिखित 'इंडिशे एस्सेज' (ज्यूरिच १८८३) पृष्ठ १ और उसके बाद— २ एफ० रोजन द्वारा लिखित 'डी इन्द्रसभा देस अमानत' (लाइपत्सिख १८९२), भूमिका—३ ओल्डनबुर्ग, 'जापिस्की वोस्तोच्नागो ओतदेलेनिया इम्पराटोरस्कागो रुस्कागो आरकेओलोजिचेस्कागो ओब्श्चेस्त्वा' ५,२९० और

---

* रति ने गले में (अभी-अभी फिर) लम्बी माला डाल दी। —अनु०

† जो प्राकृत, महाराष्ट्री नाम से है, वह सारे भारत राष्ट्र में गाथाओं के काम में लाई जाती थी। भले ही लेखक कश्मीर का हो अथवा दक्षिण का, गाथाओं के काम में यही प्राकृत लाता था। इसलिए महाराष्ट्री को महाराष्ट्र तक सीमित समझना या यह समझना कि यह महाराष्ट्र की जनता या साहित्यिकों की ही बोली रही होगी, भ्रामक है। महाराष्ट्र का पुराना नाम मरहट्ठा था जिसका रूप आज भी मराठा है। इसकी स्थानीय बोली भिन्न थी, जो कई स्थानीय प्रयोगों के मराठी शब्दों से आज भी प्रमाणित होता है। मराठी में जो आँख को डोळा, कान को [illegible], निचले भाग को [illegible] आदि कहते हैं, ये शब्द मराठी देशी प्राकृत के हैं जिसे डा० पिशल ने देशी [illegible] कहा है। [illegible] 'नयन' [illegible] है वह महाराष्ट्री प्राकृत [illegible] है। —अनु०

बाद के पेज—४ वकरनागेल—'दे ग्रेचमिस बाणभाषा पोपुल्यप् इण्डिकि सेर्वन्दिइस (हाल्ले १८७१) पृष्ठ १ और उसके बाद; पिशल कम्यकोग दर विस्सिमोईक बेर डी एम जी (स्साइटस्क्रिफ्ट १८८१) १५ वाँ और उसके बाद—५ डास हरिवंशपुराणम्। भाइन भाल्स्स्मपाक्केजीधाम तामसरसीलो। (साइपत्सिख १८९१ में था कॉप्राडी द्वारा प्रकाशित)—६ इसमें अष्टित दीक्षित का वह उद्धरण आया है जो गारबोके द्वारा सम्पादित पुस्तक के पृष्ठ १ में दिया गया है—७ आकादेमी १८७३ के पृष्ठ ३९८ में पिशल का लेख; होएर्नले का 'कम्पेरेटिव ग्रैमर' की भूमिका का पृष्ठ २५—८ गारेंज का 'जूर्नाल आसियाटीक' ६ २ पेज २ ३ और उसके बाद का लेख (पेरिस १८७२); यह बात होएर्नले ने अपने 'काम्परेटिव ग्रमर' में प्रयुक्त की है—९ होएर्नले की 'कौम्परेटिव ग्रैमर' की भूमिका पेज २४। मैंने ऊपर दी गई 'आकादेमी' पत्रिका में मूल से लिखा था कि पाली मागध की अपभ्रंश है इसके विरुद्ध कून ने अपने 'बाइत्रेगे त्सूर पाली ग्रामाटीक' (बर्लिन १८७५) के पृष्ठ ८ में ठीक ही लिखा था। यह भूल मैंने १८७५ के यनाएर लीतेराटूर त्साइटुङ् के पेज ३१६ में स्वीकार की है—१ आकादेमी' १८७३ के पृष्ठ ३०९ और उसके बाद के पृष्ठों में जो सिद्धान्त मैंने स्थिर किया था उसको मैंने कई प्रकार से और भी पुष्ट कर दिया है। मेरा ही जैसा मत होएर्नले ने भी अपने 'काम्परेटिव ग्रमर' की भूमिका के १७ वें और उसके बाद के पृष्ठों में प्रकट किया है। किन्तु मैं कई छोटी मोटी बातों में उससे मतभेद रखता हूँ जैसा कि नीचे लिखे गये पाराग्राफों से स्पष्ट है। 'गौडवहो' की भूमिका के पृष्ठ ५१ और उसके बाद के पृष्ठों में शंकर पाण्डुरंग पंडित ने अपभ्रंश और प्राकृत को अदल-बदल दिया है।

§ ९—प्राकृत भाषाएँ वास्तव में कृत्रिम और काव्य की भाषाएँ हैं, क्योंकि इन भाषाओं को कवियों ने अपने काव्यों के काम में लाने के प्रयोजन से, बहुत तोड़ मरोड़ और बदल दिया। किन्तु वह इस अर्थ में तोड़ी-मरोड़ी हुई या कृत्रिम भाषाएँ नहीं हैं कि हम यह समझें कि ये कवियों की कल्पना की उपज हों[1]। इनका ठीक वही हिसाब है जो संस्कृत का है, जो शिक्षित भारतीयों की सामान्य बोलचाल की भाषा नहीं है और न इसमें बोलचाल की भाषा का पूरा आधार[2] मिलता है, किन्तु अवश्य ही यह जनता के द्वारा बोली गई किसी भाषा के आधार पर बनी थी और राजनीतिक या धार्मिक इतिहास की परम्परा के कारण यह भारत की सामान्य साहित्यिक भाषा बन गई[3]। भेद इतना है कि यह पूर्णतया असंभव है कि सब प्राकृत भाषाओं को संस्कृत की भाँति एक मूल भाषा तक पहुँचाया जाय। केवल संस्कृत को ही इनका मूल समझना जैसा कि कई विद्वान समझते हैं और इन विद्वानों में हाएफर लास्सन भंडारकर[4] याकोबी भी शामिल हैं, भ्रमपूर्ण है। सब प्राकृत भाषाओं का वैदिक व्याकरण और शब्दों का नानात्वों में साम्य है और ये बातें संस्कृत में नहीं पाई जातीं। ऐसे स्थल निम्नलिखित हैं—संधि के नियम बिलकुल भिन्न हैं। स्वरों के बीच ड का ळ और ढ का ळ्ह और ल्ह हो जाता है; —जाप का वैदिक

रूप -त्वन[८] होता है,* स्वर-भक्ति। स्त्रीलिंग का षष्ठी एकवचन का रूप -आए होता है, जो वैदिक -आयै से निकला है। तृतीया बहुवचन का रूप-एहिं वैदिक-एभिः से निकला है। आज्ञावाचक होहि = वैदिक बोधि है। ता, जा, एत्थ = वैदिक तात्, यात्, इत्था, कर्मणि ते,|मे वैदिक हैं, अम्हे = वैदिक अस्मे के, प्राकृत पासो(आँख) = वैदिक पश्[९] के, अर्धमागधी वग्गूहिं = वैदिक वग्नुभिः, सद्धिं =वैदिक सध्रीम् के; अपभ्रंश दिवे दिवें = वैदिक दिवे, दिवे, जैन शौरसेनी और अपभ्रंश किध, अर्धमागधी और अपभ्रंश किह = वैदिक कथा है, माइं = वैदिक माकीम् , णाइम् = वैदिक नाकीम्, अर्धमागधी विऊ = वैदिक विदुः[१०], मागधी -आहो, -आहु,अपभ्रंश आहों = वैदिक आसः, मागधी, जैन-महाराष्ट्री, अपभ्रंश कुणइ, जैन-शौरसेनी कुणदि = वै० कृणोति के, अर्धमागधी, जैन-महाराष्ट्री सक्का = वैदिक शक्याद् के, अपभ्रंश साहु = वैदिक शाश्वत् के, अर्धमागधी घिंसु = वैदिक घ्रंस के, ख-भ = वै० स्क-भ, मागधी, अर्धमागधी जैन महाराष्ट्री, और शौरसेनी रुक्ख (रूख)=वैदिक रुक्ष के है, भविष्यकाल वाचक सोच्छं का संबंध वैदिक श्रुष् से है। अर्धमागधी सामान्य रूप (intnitive) जिसके अन्त में -अए, -त्तए = वैदिक -तवै, अर्धमागधी शब्द जिनका अर्थ 'करके' होता है, जैसे- -प्पि, -पि,-वि = वैदिक -त्वी = जो शब्द प्पिणु में समाप्त होते हैं, वे = वैदिक -त्वीनं आदि-आदि, जो इस व्याकरण में प्रासंगिक स्थलों पर दिये गये हैं। केवल एक यह बात सिद्ध करती है कि प्राकृत का मूल संस्कृत को बताना संभव नहीं है और भ्रमपूर्ण है[११]।

१ बीम्स का 'कम्पैरेटिव ग्रैमर ऑफ द मौडर्न एरियन लैंग्वेजेज', खण्ड १, पेज २०१; २२३, सौरेन्सेन कृत 'औम सांस्कृत्स स्टिलिङ्ग इ डेन आलमिंडेलिगे स्प्रोगउडविक्लिङ्ग इ इण्डियन' (च्योबनहाग्न [कोपनहागन] १८९४), पेज २२० और उसके बाद के पृष्ठ— २ फ्रांके 'बेत्सेनबर्गर्स बाइत्रैगे त्सूर कुंडे डेर इडोगर्मानिशन स्प्राखन' १७, ७१। मुझे इस बात पर सन्देह है कि सारे आर्यावर्त में कभी कोई ऐसी भाषा रही होगी, जिसे सभी शिक्षित भारतवासी बोलते होंगे। इस विषय पर वाकरनागल की 'आल्टइंडिशे ग्रामाटीक' की भूमिका के पृष्ठ ४२ का नोट नं० ७ देखने योग्य है— ३ मैंने 'गोएटिंगिशे गेलैर्तें आन्त्साइगन' १८८४ के पेज ५१२ में अपना यह निदान प्रकट किया है कि साहित्यिक संस्कृत का आधार ब्रह्मावर्त की बोली है— ४.'डे प्राकृत डिआलेक्टो' पाराग्राफ ८— ५ लास्सन कृत 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस०' पृष्ठ २५ और उसके बाद, इंडिशे आल्टरटूम्स कुंडे २, २, ११६३, नोट पाँचवाँ— ६ जोर्नाल ऑफ द बौम्बे ब्राञ्च ऑफ द एशियैटिक सोसाइटी १६, ३१५— ७ 'कून्स त्साइटश्रिफ्ट' २४, ६१४ जिसमें लिखा गया है कि 'पाली और प्राकृत मोटे

* इस त्वन का त्तण बनकर हिंदी में पन या प्पन बन गया। जैसे—छुटपन, बडप्पन आदि। अतः हिंदी का आधार केवल संस्कृत या मुख्यतः संस्कृत मानना भूल है। हिंदी के अनेक शब्द प्राकृतों और देशी-अपभ्रंशों द्वारा वैदिक बोलियों से आये हैं। इसका प्रमाण इस ग्रंथ में नाना स्थलों पर दिया गया है।—अनु०

हिसाब से संस्कृत के बने रूप हैं — ८ फ्रान माउके त्साइटश्रिफ्ट डेर डीयत्शन मौर्गेनलैण्डिशन गेजैलशाफ्ट ५० १०१— ९ पिशल और गेल्डनर 'वेदिशे स्टूडियन १ भूमिका के पृष्ठ ३१ का नोट २— १ 'वेदिशे स्टूडियन २ २३५ और उसके बाद के पृष्ठ— ११ इस विषय पर वेबर ने ईंदिशे स्टूडियन १११ में जो लिखा है कि प्राकृत भाषाएँ प्राचीन वैदिक बोली का विकास नहीं हैं, इसका तात्पर्य है कि वह अपनी मूल में बहुत आगे बढ़ गया है। § ९ देखिए।

§ ७ जितना घना सम्बन्ध प्राकृत भाषाओं का वैदिक बोली के साथ है, उतना ही घना सम्बन्ध इनका मध्यकालीन और नवीन भारतीय जनता की बोलियों से है। ईसा के जन्म से पूर्व दूसरी सदी से लेकर ईसवी सन् की तीसरी सदी तक जो प्रस्तर-लेख गुफाओं, स्तूपों, स्तम्भों आदि में मिलते हैं, उनसे सिद्ध होता है कि उस समय जनता की एक भाषा ऐसी थी जो भारत के सुदूर प्रान्तों में भी समान रूप से समझी जाती थी। फ्रेंच विद्वान् सेनार ने इन प्रस्तरलेखों की भाषा को 'स्मृतिस्तम्भों की प्राकृत' कहा है¹। यह नाम भ्रमपूर्ण है, क्योंकि इससे यह अर्थ निकलता है कि यह भाषा लोगों आने कृत्रिम भाषा रही होगी। इस मत को मानने के लिए उतने ही कम प्रमाण मिलते हैं जितने कि डच विद्वान् 'कर्न' के इस मत के लिए कि पाली में कृत्रिम भाषा का रूप देखना चाहिए। चूँकि गुफाओं में अधिकांश प्रस्तर-लेख इस बोली में पाये जाते हैं, इसलिए मेरा सुझाव है कि इस बोली का नाम 'लेण' बोली रखा जाय। लेण' का अर्थ गुफा है। यह शब्द संस्कृत लयन से निकला है जो इन प्रस्तर लेखों में बहुधा पाया जाता है। ऐसा ही एक शब्द लाट है जो प्राकृत में लट्ठी कहा जाता है और संस्कृत में यष्टि (स्तम्भ) है। ये बोलियाँ संस्कृत की परंपरा में नहीं हैं बल्कि संस्कृत की 'बहन बोलियों से निकली हैं' और इनकी विशेषताएँ प्राकृतों में बहुतायत से देखने में आती हैं। अशोक के पहले स्तम्भ में से कुछ उदाहरण यहाँ देता हूँ। गिरनार' के इस प्रस्तर-लेख में लिख् धातु से बना हुआ रूप लेखापिता मिलता है और शाहबाजगढ़ी में लिखापितु जौगड में लिखापिता तथा मनशेरा में (इ) लखपित है। प्राकृतों में समाप्त होनेवाले धातुओं के ऐसे ही रूप 'लेण' बोली में मिलते हैं—व (²) भापयति कीडापयति पीडापयति व ( ) वापयति (हाथी गुंफा के प्रस्तर लेख पृष्ठ १५५, १५८ २१ १६१)¹ इसी प्रकार पाली लिखापेति और लिखापिय ११ ११ औसगेबैल्टे एर्सेलुंगन इन महाराष्ट्री, इसका प्रयोग प्राकृत में बहुत किया जाता है। (§५५२), अशोक का लिखापित जैन महाराष्ट्री लिहाविय का प्रतिशब्द है। सपादक हरमान याकोबी आर्ट्स्ट्रिएल १८८६), अशोक के स्तम्भों का लिखापइस्सं (गिरनार १४ १) मागधी लिहावइश्शाम (मृच्छकटिक १३६ २१)। हु (हवन करना) से प्र के साथ प्रजुहितव्यम् से मालूम होता है कि इसमें पाली और प्राकृत में प्रचलित रीति के अनुसार वर्तमान काल के धातु का विस्तार हो गया है। 'गिरनार' के स्तम्भ में समाजम्हि और महानसम्हि सप्तमी में है जिसमें सर्वनामों के अंत में लगनेवाला सप्तमी बतानेवाला पद म्हि अंत के साथ जोड़ दिया गया है। शाहबाजगढ़ी और कालसी के स्तम्भों में यह रूप महानसासि महानसासि अथात् महानससि दिया गया है।

'लेण' बोली मे ज (ं) तुदिपम्हि (कार्ले के प्रस्तर-लेख, सख्या १)[५], थुवस्हि, स्तूपे[६] के स्थान में आया है। अनुगामिम्हि (नासिक के प्रस्तर-लेख सख्या ६)[७], तिरण्हुम्हि (नासिक सख्या ११-१९)[८], इसमें तिरण्हुमि अर्थात् तिरण्हुम्मि[९] भी आया है। मागधी, जैन-महाराष्ट्री, जैन-शौरसेनी और अर्धमागधी भाषाओं में यह सप्तमी वाचक रूप म्मि और अर्धमागधी में ंसि लिखा जाता है। इसके अतिरिक्त अस्ति का बहुवचन में प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है, क्योंकि प्राकृत में भी अत्थि बहुवचन में भी काम मे आता है (देखो § ४९८), से शब्द के विषय में भी यही बात है। यह अर्धमागधी में आता है और वैदिक है। 'लेण' बोली के विषय मे यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि इसमें इ और उ में अन्त होनेवाले शब्दों के रूप षष्ठी में ध्यान देने योग्य हैं। इनका षष्ठी एकवचन नो और स अर्थात् स्स बोला जाता है जैसा कि प्राकृत में भी होता है। इन बातों तथा और बहुत-सी बातों में प्राकृत भाषाएँ मध्यकालीन भारतीय जनता की बोलियों से मिलती-जुलती हैं, और ये सब बाते सस्कृत में बिलकुल नहीं मिलतीं।

१. पियदासी के प्रस्तर-लेख २, ४८८ सोसेन्सन ने पेज १८७ में इसके अनुसार ही लिखा है— २ 'ओवर डे यारटेलिंग डेर जुइडेलिके वुधिस्टन', आम्सटरडाम १८७३, पेज १४ और उसके बाद— ३ आक्ट घू सीजीएम कौंग्रैस ऑतरनासिओनाल देओरीआँतालिस्त', (लाइडन १८८५) ३, २— ४ पिशल, 'गोएटिंगिशे गेलैर्ते आनूत्साइगन' १८८१, १३२३ पेज १३२३ और उसके बाद— ५ जेम्स बर्गेस और भगवानूलाल इन्द्रजी कृत इन्सक्रिप्शन्स फ्रौम द केव-टेम्पल्स औफ़ वैस्टर्न इडिया', (बबई १८८१) पेज २८— ६. सेनार की ऊपर उद्धृत पुस्तक २, ४७२— ७ 'आर्किओलौजिकल सर्वे औफ़ वैस्टर्न इडिया, ४, १०१, १५४— ८ 'आर्किओलौजिकल सर्वे औफ वैस्टर्न इडिया,' ४, १०६, ११४— ९ 'आर्किओलौजिकल सर्वे औफ़ वैस्टर्न इडिया' ४, ९९।

§ ८—आधुनिक भारतीय भाषाओं का सन्धिहीन रूप या पृथक्-करणशीलता की प्रवृत्ति देखकर प्राकृत और हिन्दी की विभक्तियों में, प्राकृत में विभक्तियाँ जुडी रहने और हिन्दी मे अलग हो जाने के कारण, सज्ञा के इन रूपों में समानता दिखाना बहुत कठिन है। इसके विपरीत ध्वनि के नियमों और शब्द सम्पत्ति में समानता बहुत साफ और स्पष्ट दिखाई पडती है। पतञ्जलि अपने व्याकरण-महाभाष्य १, पेज ५ और २१ तथा उसके बाद यह बताता है कि प्रत्येक शब्द के कई अशुद्ध रूप होते है। इन्हे उसने अपभ्रश कहा है। उदाहरणार्थ—उसने गौ शब्द दिया है जिसके अपभ्रश रूप गावी, गोणी, गोता और गोपोतालिका दिये हैं[१]। इनमें से गावी शब्द प्राकृत में बहुत प्रचलित है। जैन महाराष्ट्री में गोणी शब्द प्रचलित है और इसका पुँल्लिग गोणो भी काम में आता है (§ ३९३)। पाणिनीय व्याकरण १, ३, १ की अपनी टीका में 'कात्यायन' आणपयति का उल्लेख करता है। इसमें 'पतञ्जलि' ने वट्टति, वडढति दो शब्द और जोडे है। पाणिनि के ३, १, ९१ (२, ७८) सूत्र पर 'पतञ्जलि' ने खुपति शब्द दिया है जिसे 'कैयट' ने अस्पष्ट शब्दों में अपभ्रश शब्द बताया है[२]। अशोक के प्रस्तर-लेखों में आनपयति शब्द आया है

(सेनार २, ५५९) और यही शब्द 'रेण' बोली में भी मिलता है (आर्किओलौजिकल सर्वे औफ वैस्टर्न इण्डिया ४ १ ४,११)। शौरसेनी और मागधी में इसके स्थान पर आणवेदि शब्द प्रचलित है और पाली मे आणपेति शब्द चलता है। वड्ढति, वड्ढदि, सुपति के लिए पाली में भी यही शब्द हैं। यह बात 'होएर्नले' ने पहले ही सूचित कर दी थी। प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री, अर्ध-मागधी और जैन महाराष्ट्री में वड्ढइ जैन शौरसेनी और शौरसेनी में वड्ढदि तथा महाराष्ट्री, अर्ध-मागधी और जैन महाराष्ट्री में वड्ढइ शौरसेनी में वड्ढदि (§ २८९ और २९१), महाराष्ट्री में सुवई सुमइ और जैन महाराष्ट्री में सुयइ (§ ४९७) होता है। भारतीय वैयाकरण और अलंकार-शास्त्र के लेखक प्राकृत की शब्द-सम्पत्ति को तीन वर्गों में बाँटते हैं (१) —संस्कृतसम अर्थात् ये शब्द संस्कृत शब्दों के समान ही होते हैं (चण्ड १ १ के प्रामा टिकिस प्राकृतिकिस् पेज ८)। इन शब्दों को तत्सम यानी उसके समान भी कहते हैं। प्रयोजन यह है कि ये शब्द संस्कृत और प्राकृत में एक ही होते हैं (पिशल द्वारा सम्पादित त्रिविक्रम पेज २९; मार्कण्डेय पन्ना २; दण्डिन् के काव्यादर्श १,९३२; धनिक के दशरूप २ १), और वाग्भटालंकार २,२ में तत्तुल्य शब्द काम में लाया गया है और भारतीय नाट्यशास्त्रम् में समान शब्द काम में आया है। सिंहराज संस्कृतभव यानी 'संस्कृत से निकला हुआ' शब्द काम में लाया है। इस शब्द को त्रिविक्रम, मार्कण्डेय दण्डिन् और धनिक तद्भव कहते हैं। हेमचन्द्र ने १ १ में तथा चण्ड ने तद्भव के स्थान पर संस्कृतयोनि शब्द का व्यवहार किया है। 'वाग्भट' ने इसे तज्ज कहा है और 'भारतीय नाट्यशास्त्र' ने १७ ३ में विभ्रष्ट शब्द दिया है। हेमचन्द्र, त्रिविक्रम, सिंहराज मार्कण्डेय और वाग्भट ने देश्य या देशी शब्द (देशी नाममाला, पेज १, २ दण्डिन् और धनिक) तथा चण्ड ने इसे देशी प्रसिद्ध कहा है और भारतीय नाट्यशास्त्रम् १७ ३[1] ने इसे देशी मत नाम दिया है। तत्सम वे शब्द हैं जो प्राकृत में उसी रूप में आते हैं जिसमें वे संस्कृत में लिखे जाते हैं; जैसे—कर, कोमल, जल सोम आदि। तद्भव के दो वर्ग किये गये हैं—साध्यमान संस्कृतभवा और सिद्ध संस्कृतभवाः। पहले वर्ग में वे प्राकृत शब्द आते हैं जो उन संस्कृत शब्दों का जिनसे ये प्राकृत शब्द निकले हैं बिना उपसर्ग या प्रत्यय के मूल रूप बताते हैं। इनमें विशेषकर शब्द रूपावली और विभक्तियाँ आती हैं जिनमें वह शब्द व्याकरण के नियमों के अनुसार बनाया जाता है और जिसे साध्यमान कहते हैं। बीम्स ने इन शब्दों को आदि तद्भव (Early tadbhavas) कहा है। ये प्राकृत के वे अंश हैं जो स्वयं सर्वांगपूर्ण हैं। दूसरे वर्ग में प्राकृत के वे शब्द शामिल हैं, जो व्याकरण से सिद्ध संस्कृत रूपों से निकले हैं; जैसे—अपभ्रंश मागधी वन्दित्ता जो वन्दित्वा का विकृत रूप है। चूँकि आधुनिक भारतीय भाषाओं में अधिकांश शब्द तत्सम और तद्भव हैं इसलिए यह मानना भ्रमपूर्ण है कि इस प्रकार के सभी शब्द संस्कृत से निकले हैं। अब हम लोग यह बात भी अच्छी तरह जानते हैं कि आधुनिक भारत की सब भाषाएँ संस्कृत से ही नहीं निकली हैं।

१ वेबर इंडिशे स्टूडिएन १३, ३९५— २ होएर्नले 'ग्रामाटिकल

टेर डौयत्शन मौर्गेन लैण्डिशन गेजेलशाफ्ट' ३९, ३२७ सोरेन्सन— ३ बीम्स 'कम्पैरेटिव ग्रैमर', पेज १, ११ और उसके बाद के पेजों से तुलना कीजिए, होएर्नले, 'कम्पेरेटिव ग्रैमर' भूमिका का ३८ वाँ और उसके बाद के पेज के ऊपर आये ग्रंथ के पेज १८० से तुलना कीजिए। वेवर, 'इण्डिशे स्टूडियन' १६, ५९ में भुवनपाल के ये शब्द उद्धृत हैं कि एक चौथा वर्ग भी है जिसके शब्द सामान्य भाषा से लिये गये हैं— ४. 'कम्पैरेटिव ग्रैमर' १, १७— ५ पिशल की हेमचन्द्र के १, १ सूत्र पर टीका।

§ ९—**देश्य** अथवा **देशी** वर्ग में भारतीय विद्वान् परस्पर विरोधी तत्त्व सम्मिलित करते है। वे इन शब्दों के भीतर वे सब शब्द रख लेते हैं जिनका मूल उनकी समझ में सस्कृत में नहीं मिलता। सस्कृत भाषा के अपने-अपने ज्ञान की सीमा के भीतर या शब्दों की व्युत्पत्ति निकालने में अपनी कम या अधिक चतुराई के हिसाब से देश्य शब्दों के चुनाव मे नाना मुनियों के नाना मत है। कोई विद्वान् एक शब्द को **देशी** बताता है तो दूसरा उसे **तद्भव** या **तत्सम** श्रेणी में रखता है। इस प्रकार **देशी** शब्दों में ऐसे शब्द आ गये हैं जो स्पष्टतया सस्कृत मूल तक पहुँचते हैं। किन्तु जिनका सस्कृत में कोई ठीक-ठीक अनुरूप शब्द नहीं मिलता, जैसे—**पासो** (= ऑख, त्रिविक्रम का ग्रन्थ जो 'बेत्सेनबर्गर्स बाइत्रैगे त्सूर कुण्डे डेर इण्डोगर्मानिशन स्प्राखन' ६,१०४ मे छपा है) या **पासम** (देशी० ६,७५) जो अर्धमागधी **पासइ = पश्यति** (देखता है) का एक रूप है, अथवा **सिव्वी** (= सूई, देशी० ७,२९, अथवा बेत्सेनबर्गर की ऊपर लिखी पुस्तक के ३,२६० में छपा है) जो सस्कृत **सीव्यति** से निकला है। देशी भाषा में कुछ ऐसे सामासिक और सन्धियुक्त शब्द भी रख दिये गये हैं, जिनके सब शब्द अलग-अलग तो सस्कृत में मिलते हैं, किन्तु सारा सन्धियुक्त शब्द सस्कृत में नहीं मिलता, जैसे—**अच्छिवडणम्** (= ऑख बन्द करना, देशी० १, ३९, बेत्सेनबर्गर की ऊपर लिखी पुस्तक में त्रिविक्रम, १३, ५)। असल में यह शब्द **अक्षि + पतन** से बना है, पर सस्कृत में **अक्षिपतन** शब्द इस काम में नही आता, अथवा **सत्तावीसंजोअणो**, जिसका अर्थ चॉद है, (देशी० ८, २२, चड १, १ पेज ३९ और 'वाग्भटालकार' की 'सिंहदेवगणिन्' की टीका २, २ में भी आया है) **सप्तविंशति + द्योतन** है[१] जो इस रूप में और इस अर्थ में सस्कृत में नहीं मिलता। देश्य या देशी में ऐसे शब्द भी रख दिये गये हैं जिनका मूल सस्कृत में नहीं मिलता। जैसा—**जोडम्** (= कपाल, देशी ३, ४९), **जोडो** (बेत्सेनबर्गर की ऊपर लिखी गई पुस्तक में त्रिविक्रम १३, १७ और उसके बाद), अथवा **तुप्पो***(= चुपडा हुआ, **पाइयलच्छी** २३३, देशी० ५, २२, हाल २२, २८९, ५२०), जिसको आजकल मराठी में **तूप** कहते हैं और जिसका अर्थ शुद्ध किया हुआ मक्खन या घी है[२]। देश्य या देशी में वह शब्द भी शामिल किये गये हैं जो ध्वनि के नियमों की विचित्रता दिखाते हैं, जैसे—

* 'तुप्प' शब्द कुमाउनी बोली में 'तोपो' हो गया है। कभी इसका अर्थ 'घी' रहा होगा और वाद को घी महँगा होने से तथा निर्धन लोगों में एक दो पैसे का कम घी मिलने के कारण इस शब्द का अर्थ 'कम मात्रा' हो गया। अब कम घी को 'तोपो घी' कहते हैं।—अनु०

गड्डरो (= गिद्ध पाइयलच्छी १२६ देशी० २, ८४; बेत्सेनबर्गर की पुस्तक में त्रिविक्रम १, ९३)। त्रिविक्रम ने इस शब्द का मूल 'गृध्र' ठीक ही बताया है; अथवा चिड्डुण्डुओ (= राहु देशी ७, ९५ बेत्सेनबर्गर की पुस्तक में त्रिविक्रम १, २५२) शब्द बराबर है—'विधुन्तुदः'[1] के। इन देशी शब्दों में क्रिया वाचक शब्दों की बहुतायत है। इन क्रिया वाचक शब्दों को वैयाकरण धात्वादेश, अर्थात् संस्कृत धातुओं के स्थान पर बोलचाल के प्राकृत धातु, कहते हैं (वररुचि ८, १ और उसके बाद हेमचन्द्र ४, १ और उसके बाद क्रमदीश्वर ४, ४६ और उसके बाद मार्कण्डेय पन्ना ५२ और उसके बाद)। इन क्रिया-वाचक शब्दों अर्थात् धातुओं का मूल रूप संस्कृत में बहुधा नहीं मिलता, पर आधुनिक भारतीय भाषाओं के धातु इनसे पूरे मिलते-जुलते हैं जैसा कि देशी शब्द के नाम से ही प्रकट है। ये शब्द प्रादेशिक शब्द रहे होंगे और बाद को सार्वदेशिक प्राकृत में सम्मिलित कर लिये गये होंगे। इन शब्दों का जो सबसे बड़ा संग्रह है वह हेमचन्द्र की 'रयणावली' है। ऐसे बहुत से देशी शब्द प्राकृत या अपभ्रंश से संस्कृत कोशों[2] और धातु-पाठ[3] में ले लिये गये। यह सम्भव है कि देशी शब्दों में कुछ अनार्य शब्द भी आ गये हों किन्तु बहुत अधिक शब्द मूल आर्य भाषा * के शब्द भंडार से हैं, जिन्हें हम व्यर्थ ही संस्कृत के भीतर ढूँढते हैं। 'रुद्रट' के काव्यालंकार' २, १२ की अपनी टीका में 'नमिसाधु' ने प्राकृत की एक व्युत्पत्ति दी है जिसमें उसने बताया है कि प्राकृत और संस्कृत की आधारभूत भाषा प्रकृति अर्थात् मानव जाति की सहज बोल-चाल की भाषा है, जिसका व्याकरण के नियमों से बहुत कम सम्बन्ध है अथवा यह प्राकृत ही स्वयं वह बोल-चाल की भाषा हो सकती है जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, यह मत भ्रमपूर्ण है। बात यह है कि सब प्राकृत भाषाओं का मुख्य भाग संस्कृत शब्दों से बना है विशेषतः महाराष्ट्री का जो काव्यों और नाटकों में मुख्यतया प्रयोग में आती है। 'गउडवहो' और 'रावणवहो' में महाराष्ट्री प्राकृत भाषा का बोलबाला है, तथा ये काव्य संस्कृत काव्यों की ही रूपरेखा के अनुसार रचे गये हैं। इन काव्यों में इसलिए देशी शब्दों की संख्या नाममात्र की है, जब कि जैन महाराष्ट्री में देशी शब्दों की भरमार है। मेरा मत सेनार[4] से बिलकुल मिलता है कि प्राकृत भाषाओं की जड़ें जनता की बोलियों के भीतर जमी हुई हैं और इनके मुख्य तत्त्व आदि काल में जीती जागती और बोली जानेवाली भाषा से लिये गये हैं, किन्तु बोलचाल की वे भाषाएँ, जो बाद को साहित्यिक भाषाओं के पद पर चढ़ गईं संस्कृत की भांति ही बहुत ठोकी-पीटी गईं ताकि उनका एक सुगठित रूप बन जाय।

१. इसका अर्थ १० [illegible] है— २. वेबर, त्साइटश्रिफ्ट डेर डौयत्शन मौर्गेनलैण्डिशन गेज़ेलशाफ्ट २८, ३५५— ३. पिशल देशी १, ५; ब्यूलर पाइयलच्छी पेज ११ और उसके बाद— ४. इसके बीसियों उदाहरण हेमचन्द्र

* मूल अथवा आदि आर्य भाषा वह भाषा है जिससे कुछ रूप आर्य कहाने जानेवाले वैदिक रूपों से भिन्न हैं और जिसे बोलनेवाले आदि-आर्य अपने मूल देश में वहीं से इधर उधर बिखरने के पहले व्यवहार में लाते होंगे। —अनु

के अनुवाद और 'हाल' की 'सप्तशती' में वेबर ने जो टिप्पणियाँ दी हैं, उनमें मिलते हैं — ५. सासारिआए की पुस्तक 'बाइत्रैगे त्सूर इण्डिशन लेक्सीकोग्राफी' (बर्लिन १८८३), पेज ५२ और उसके बाद, वाकरनागल की आल्ट इण्डिशे ग्रामाटीक, भूमिका के पेज ५१ और उसके बाद— ६. वेन्फे, फौलस्टैण्डीगे ग्रामाटीक, पाराग्राफ १४०, २, पिशल, व्यूलर, फ्रांके आदि सब विद्वान् इस मत का समर्थन करते है— ७ पिशल, गोएटिंगीशे गेलैर्ते आन्त्साइगन १८८०, पेज ३२६ जिसमें यह बताया गया है कि रावणवहो की टिप्पणियों में इस विषय पर बहुत सामग्री प्राप्य है, शकर पाण्डुरंग पण्डित, गउडवहो, भूमिका का पेज ५६—८. लेपिग्राफी ए लिस्त्तार लांगिस्तीक द लाद, एक्सत्रैदे कौंत रॉद्यू दे सेआस द लाकादेमी देज़ारक्रूपन्शिओं ए वेल्लैत्र (पेरिस १८८६) पेज १७ और उसके बाद, लेज़ास्क्रिप्सिओं द पियदासी, २, पेज ५३० और उसके बाद।

§ १०—प्रस्तर लेखो में प्राकृत भाषा का प्रयोग निम्नलिखित लेखो मे हुआ है—पल्लव राजा 'शिवस्कन्दवर्मन्'[१] और पल्लव युवराज 'विजयबुद्धवर्मन्' की रानी के दान-पत्रों में, कक्कुक का घटयाल प्रस्तर-लेख तथा सोमदेव के 'ललित विग्रहराज' नाटक के अशो में। पहले प्रस्तर-लेखों का प्रकाशन व्यूलर ने एपिग्राफिका इण्डिका १, पेज २ और उसके बाद के पेजों में प्रकाशित किया है। 'लौयमान' ने एपिग्राफिका इडिका के २,४८३ और उसके बाद के पेजो में व्यूलर के पाठ में कुछ सशोधन किये है। पिशल ने भी १८९५ ई० मे व्यूलर के पाठ की कुछ भूलें शुद्ध की है। मैंने इन दान पत्रों को 'पल्लवग्राण्ट' नाम दिया है। व्यूलर ने विद्वानों का ध्यान इस तथ्य की तरफ खींचा है कि इन प्रस्तर-लेखों में कुछ बातें ऐसी हैं जो स्पष्ट बताती हैं कि इनपर प्राकृत का बहुत प्रभाव पड़ा है और ये विशेषताएँ केवल साहित्यिक प्राकृत में ही मिलती हैं, उदाहरणार्थ इन लेखों मे **य** **ज** में परिवर्तित हो गया है। इसके उदाहरण हैं—**कारवेज्जा, वट्टेज, होज, जो, संजुत्तो**। **न** बहुधा **ण** में परिणत हो गया है। **प** **व** लिखा जाने लगा है, जैसे—**कस्सव, अणुवट्टावेति, -वि, भड, कड** आदि, व्यञ्जनों के द्वित्व का प्रयोग होने लगा है, जैसे—**अग्निष्टोम** का **अग्गिट्ठोम, अश्वमेध** का **अस्समेध, धर्म** का **धम्म सर्वत्र** का **सवत्थ, राष्ट्रिक** का **रट्ठिक** आदि[२]। ये विशेषताएँ 'लेण'[३] बोली के किसी-न किसी प्रस्तर-लेख में मिलती ही हैं। यद्यपि दूसरे प्रस्तर-लेखों में यह विशेषता इतनी अधिक नहो मिलती और इस कारण इस भाषा को हम प्राकृत मान सकते हैं, तथापि यह सर्वत्र विशुद्ध प्राकृत नहीं है। इनमें कहीं **य** के स्थान पर **ज** हो गया है और कहीं वह सस्कृत **य** के रूप में ही दिखाई देता है। **न** बहुधा **न** ही रह गया है और **प** का **व** नही हुआ है। प्राकृत के दुहरे व्यञ्जन के स्थान में इकहरे काम में लाये गये हैं, जैसे—शिव खंधवमो, गुम्मिके, वधनिके[४] आदि। प्राकृत भाषा के नियमों के बिलकुल विपरीत शब्द भी काम में लाये गये है; जैसे— **काञ्चीपुरा** जो प्राकृत में **कंचीपुरा** होता है, **आत्ते°** (६,१३) जो प्राकृत में **अत्ते°** होता है, **वत्स°** (६,२२) प्राकृत **वच्छ°** के लिये, **चात्तारि** (६,३९) प्राकृत **चत्तारि** के लिए। कुछ शब्दों का प्रयोग असाधारण हुआ है, जैसे—प्राकृत **वितरामो** (५,७) के स्थान

पर थितराम और दुग्ध के स्थान पर दूध (६,११) का प्रयोग; °विण्णम् के स्थान पर °वृत्तम् (६,१२) और विण्णा के स्थान पर वृत्ता (७,४८) अर्थात् वृत्ता का प्रयोग। इन प्रयोगों से स्पष्ट पता चलता है कि इस भाषा में कृत्रिमता आ गई थी*। प्राकृत के इतिहास के लिए प्रस्तर-लेख भी महत्त्व के हैं, और ये इसलिए इस व्याकरण में सर्वत्र काम में लाये गये हैं। 'जैन बोली और 'गाथा'[1] की बोली हमारे विषय से बहुत दूर हैं और इसलिए हमने प्राकृत भाषाओं के इस व्याकरण में उन भाषाओं का प्रयोग नहीं किया। कक्कुक प्रस्तर-लेख मुन्शी देवीप्रसाद ने सन् १८९५ के जोर्नल आफ द रौयल एशियैटिक सोसाइटी के पेज ५११ और उसके बाद के पेजों में प्रकाशित कराया है। यह जैन महाराष्ट्री में लिखा गया है।

१ फ्लीट द्वारा इण्डियन ऐण्टीक्वेरी ९ पेज १ और उसके बाद के पेजों में प्रकाशित। इसके साथ एपिग्राफिआ इण्डिका १ २ में प्रकाशित ब्यूलर के लेख में उसके और भी देखिए— २ ब्यूलर के उक्त लेख का पेज २ और उसके बाद— ३, सनार पियदसी २ पेज ४८९ और उसके बाद तथा पेज ५१८ और उसके बाद— ४ ब्यूलर एपिग्राफिका इण्डिका में छपे उक्त निबन्ध का पेज २ और उसके बाद— ५ यह बात सेनार ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक के २, ४९४ पत्र में 'जैन बोली के बारे में और भी जोर देकर कही है— ६ सेनार का मत है कि नाम उचित नहीं है, देखो उसकी उपर्युक्त पुस्तक २ पेज ४९९; उसका यह प्रस्ताव कि इस भाषा को 'संस्कृत मिश्रित' कहना चाहिए बहुत कमजोर है। इस विषय पर बार्करनागल ने अपने ग्रन्थ आल्टइण्डिशे ग्रामाटीक' की भूमिका के पत्र ३९ और उसके बाद विस्तार से लिखा है।

§ ११—सोमदेव के 'ललितविग्रहराज'नाटक के अंश काले पत्थर की दो पट्टियों में खुदे हैं जो 'अजमेर' में पाये गये थे। ये कीलहोर्न द्वारा इण्डियन एण्टीक्वेरी २० २०१ पेज और उसके बाद के पेजों में प्रकाशित किये गये थे। उनमें तीन प्राकृत बोलियाँ मिलती हैं। महाराष्ट्री शौरसेनी और मागधी। कोनो ने[1] यह सिद्ध कर दिया है कि इन भाषाओं के प्राकृत रूप मोटे तौर पर, हेमचन्द्र के व्याकरण के नियमों से मिलते हैं, किन्तु जिन नियमों के अनुसार 'सोमदेव ने अपना नाटक लिखा है, उनका आधार हेमचन्द्र नहीं कोई दूसरा लेखक होना चाहिए (यह बात मैंने इन प्रस्तर लेखों के प्रकाशित होते ही समझ ली थी)। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण के ४ २७१ में इस बात का अधिकार दिया है कि शौरसेनी प्राकृत के लेखक किंही शब्द 'कृत्वा के स्थान पर 'दूण लिख सकते हैं; पर सोमदेव ने इसके स्थान पर ऊण लिखा है जो महाराष्ट्री प्राकृत का रूप है। हेमचन्द्र ने ४ २८ में बताया है कि य्यय होना चाहिए, पर सोमदेव ने इसके स्थान पर ज्जय लिखा है। सोमदेव ने मागधी के संयुक्त व्यञ्जनों में ज् का प्रयोग किया है; किन्तु हेमचन्द्र ४ २८९ में इस

*दुग्ध के स्थान पर दूध का प्रयोग बताता है कि इस बोली में जनता की बोलचाल की भाषा से शब्द आ रहे थे। और यह भी सिद्ध होता है कि दूध शब्द बहुत पुराना है।—अनु

श् के स्थान पर स् का प्रयोग उचित बताता है, सोमदेव ने र्थ के स्थान पर श्त का प्रयोग किया है जिसके स्थान पर हेमचन्द्र ४,२९१ में स्त को उचित समझता है और वह ᳵक के स्थान पर श्क का प्रयोग करता है जिसके लिए हेमचन्द्र ४,२९६; २९७[१] में स्क का प्रयोग ठीक समझता है। हिन्दी 'करके' के स्थान पर ऊण का प्रयोग अशुद्ध भी माना जा सकता है और यह सम्भव है कि स्वयं सोमदेव ने यह अशुद्धि की हो, इसके स्थान पर -दूण शब्द भी अशुद्ध है (§ ५८४), स्त के स्थान पर श्त आदि नकल करनेवाले अर्थात् लिखनेवाले की भूल हो सकती है, जिस भूल की परम्परा ही चल गई, क्योंकि ऐसी एक और गलती ५६६, ९ मे यथार्थस् के स्थान पर यहस्तं रह गई है। किन्तु ᳵक के स्थान पर श्क के लिए 'कोनो' के मत से मत मिलाना पड़ता है कि स्क पत्थर पर खोदनेवाले की भूल नहीं मानी जा सकती, क्योंकि इसके कई उदाहरण मिलते है। इस प्रस्तर-लेख की लिपि के बारे में यह बात स्पष्ट है कि यह एक ही लेखक द्वारा लिखी गई है। इस लेख में बहुत बड़ी-बड़ी अशुद्धियाँ हैं जो उस समय की बोलचाल की भाषा के नियमों के विरुद्ध जाती है और जो अशुद्धियाँ उस समय के नाटकों की हस्तलिपियों में भी मिलती हैं। कोनो द्वारा बताई गई ऊपर लिखी भूलों (पेज ४७९) के अतिरिक्त मै इस प्रस्तर-लेख की कुछ और अशुद्धियाँ यहाँ देता हूँ—शौरसेनी तुज्झ (५५४, १३, § ४२१), ज्जेव (५५४, ४, ५५५, १८)। यह शब्द अनुस्वार के बाद जेव हो जाता है, णिम्माय (५५४, १३ देखो § ५९१); कर्मवाच्य विलोइज्जन्ति, पॅक्खिज्जन्ति (५५४, २१, २२), किज्जदु (५६२, २४), जम्पिज्जदि (५६८,६) आये हैं, जिन्हें हेमचन्द्र विलोईअन्ति, पेक्खीअन्ति, करिअदु, जम्पीअदि के स्थान पर स्वीकार करता है (देखो § ५३५), किंति के लिए (५५५, ४) कित्ति शब्द काम में आया है, रदणाइं के स्थान पर रयणाई (५५५,१५) रदण के स्थान पर रअण (५६०,१९) आया है और गद्दिद के स्थान पर गिहीद (५६०, २०) और एदारिसम् के स्थान पर एआरिसम् खोदा गया है। मागधी प्राकृत में भी बोली की अशुद्धियाँ हैं—पॅश्किय्यन्दि (५६५, १३) पॅश्कीअन्ति के स्थान पर लिखा गया है, पॅकीअसि के स्थान पर पॅश्किय्यसि (५६५, १५) आया है, याणीअदि के स्थान पर याणिय्यदि (५६६, १) खोदा गया है, पच्चश्की कदं के स्थान पर पच्चक्खी कदं (५६६,१) लिखा गया है, यदृहस्तम् के स्थान पर यहस्तम् (५६६, ९) का प्रयोग किया गया है। णिय्यहल, युय्य्ह के स्थान पर निज्झल और युज्झ (५६६,९,११) का प्रयोग है (§ २८०, २८४ देखिए), येव के लिए एव (५६७, १) शब्द है। ये सब वे अशुद्धियाँ है जो हस्तलिखित पुस्तकों में भी सदा देखी जाती हैं जैसा कि तमपस्तर (५५५, ११), पचक्खाइ (५५५,१४) इशल्लूवं (५६५, ९)। जो हस्तलिखित नाटक हमें आजकल प्राप्त हैं, उनके लिखे जाने से पहले इन प्रयोगों का लोप हो गया था, इनमें से कुछ अशुद्धियाँ जैसा कि ऊण शौरसेनी और इज्ज– मागधी रूप–इय्य–लेखकों की अशुद्धियाँ समझी जा सकती है। राजशेखर (देखो § २२) और उसके बाद के कवियों ने भी नाना प्रान्तीय

बोलियों को आपस में मिला दिया है। ण के स्थान पर न और अन्य शब्दों में य' का आगम बताता है कि यह भाषा जैन है। 'हरकेलि नाटक' का एक अंश जो अजमेर में मिला है, 'विग्रहराज देव' का लिखा हुआ बताया जाता है और यह पता चलता है कि इसमें २२ नवम्बर, ११५१ की तिथि पड़ी हैं। इससे ज्ञात होता है कि हेमचन्द्र का व्याकरण अधिक-से अधिक विक्रम संवत् ११९७ के अन्त में तैयार किया गया था अर्थात् यह ११४ ई में लिखा गया था। साथ साथ यह बात भी ध्यान देना चाहिए कि 'सोमदेव' और 'हेमचन्द्र' समकालीन थे। 'हरकेलि' नाटक में यद्यपि बहुत अशुद्धियाँ पाई जाती हैं तथापि मागधी प्राकृत के लिए ये अत्यन्त महत्त्व की हैं। मागधी प्राकृत केवल इन अशों में ही उस रूप में मिलती है, जो पूर्णतया व्याकरण के नियमों के अनुकूल है।

१ गोएटिंगिशे गेलैर्टे आन्त्साइगन १८९४ पेज ४०८ और उसके बाद— २ इंडियन ऐंटिक्वेरी २ २ ४— ३ कोनो की उपर्युक्त पुस्तक पेज ४८१— ४ उक्त पुस्तक पेज ४८२— ५ उक्त पुस्तक पेज ४८०— ६ इण्डियन ऐंटिक्वेरी में कीलहौर्न का लेख २ २ १— ७ ब्यूलर की पुस्तक; ई. ब्यूलर द्वारा केवल वेस् डैस मोएंशेस् हेमचन्द्रा वियना १८८९ पे १८।

§ १२—प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री प्राकृत (§ २) सर्वोत्तम गिनी जाती है, जो महाराष्ट्र देश के नाम पर, जहाँ मराठे रहते हैं, महाराष्ट्री कही जाती है और जैसा कि गारेंज ने (§ ५) बताया है कि वर्तमान मराठी के साथ *निस्सन्देह और स्पष्ट सम्बन्ध सिद्ध करती हैं।* न कोई दूसरी प्राकृत साहित्य में कविता और नाटकों के प्रयोग में इतनी अधिक लाई गई है और न किसी दूसरी प्राकृत के शब्दों में इतना अधिक फेर-फार हुआ है। महाराष्ट्री प्राकृत में संस्कृत शब्दों के व्यंजन इतने अधिक और इस प्रकार से निकाल दिये गये हैं कि अन्यत्र कहीं यह बात देखने में नहीं आती। इसका फल यह हुआ है कि इस प्राकृत का एक शब्द कई संस्कृत शब्दों का अर्थ देता है और उनके स्थान पर प्रयोग में आता है। महाराष्ट्री काअ शब्द = काच और इसके; कइ = कति कपि, कवि, कृति, काअ = काक काय काय; गआ = गता गदा गजाः, मअ = मत मद मय, मृग मृत; पअ = पयस्, पयस पत पद—सुअ = शुक, सुत श्रुत आदि-आदि। इसलिए बोम्स' साहब ने ठीक ही बात कही है कि महाराष्ट्री 'Emasculated stuff' अर्थात् पुंस्त्वहीन भाषा है। जैसा कि विद्वान् लोग पहले से मानते आ रहे हैं कि महाराष्ट्री प्राकृत से व्यंजन इसलिए भगा दिये गये कि इस प्राकृत का प्रयोग सबसे अधिक गीतों में किया जाता था तथा इसमें अधिकाधिक लालित्य लाने के लिए यह भाषा श्रुतिमधुर बनाई गई। ऐसे पद गाहा = संस्कृत गाथा हैं। ये गाहा हमें हाल की सत्तसई और जयवल्लभ" के 'वज्जालग्ग' में संग्रहीत मिलती हैं; ये गाहाएँ पुराने कवियों के संग्रहों में भी कई स्थानों पर रख दी गई हैं। इनका नाम स्पष्ट रूप में गाहा रक्खा गया है और ये गाये जानेवाले गीत हैं (देखिए हाल १ ८ ६ १९८ ७८ ७० ८१५; वज्जालग्ग १ ४ ९,

१०)। 'मुद्राराक्षस' ८३,२,३ में दिया गया पद जो विशुद्ध महाराष्ट्री मे है और जो एक सपेरे तथा प्राकृत कवि के रूप मे पार्ट खेलनेवाले पात्र 'विराधगुप्त' ने मन्त्री 'राक्षस' के पास भेजा था, वह **गाथा** बताया गया है। 'विश्वनाथ' ने भी 'साहित्यदर्पण' ४३२ में बताया है कि नाटक मे कुलीन महिलाएँ शौरसेनी प्राकृत में बोलती है; किन्तु अपने गीतों में (**आसाम् एव तु गाथासु**) इनको महाराष्ट्री काम में लानी चाहिए। 'शकुन्तला नाटक' में ५५, १५ और १६ में ५४, ८ को 'प्रियवदा' **गीदअम् = गीतकम्** बताती है और ५५, ८ को **गीजिआ = गीतिका** कहती है। मुद्राराक्षस ३४, ६ और उसके बाद के पद्य ३५, १ के अनुसार **गीदाइं** यानी **गीतानि** अर्थात् गीत हैं। नाटक की पात्री अपने पदों को महाराष्ट्री में गाती है (**गायति**), उदाहरणार्थ देखो 'शकुन्तला नाटक' २, १३, 'मल्लिका मारुतम्' १९, १, 'कालेय कुतूहलम्' १२, ६ (**वीणम् वादयन्ती गायंति**), 'उन्मत्त' 'राघव' २, १७, तुलना कीजिए 'मुकुन्दानन्द भाण' ४, २० और उसके बाद, महाराष्ट्री भाषा में लिखे गये उन पदों के विषय में, जो कि रगमच के भीतर से गाये जाते थे, लिखा गया है कि '**नेपथ्ये-गीयते**'। उदाहरणार्थ—'शकुन्तला' नाटक ९५, १७, 'विद्धशालभजिका' ६, १, कालेयकुतूहलम् ३, ६, कर्णसुन्दरी ३, ४ गीतों अथवा गाये जाने के लिए लिखी गई कविता में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग निस्सन्देह बहुत प्राचीन काल से है और मुख्यतया इस एक कारण से ही, श्रोताओं के आगे 'कोमलकान्तपदावली' गाने के लिए अधिकाश व्यञ्जन सस्कृत शब्दों से खदेड कर ही महाराष्ट्री कर्णमधुर बनाई गई[५]।

१. ई कून ने कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३३,४७८ में यह मत दिया है कि महाराष्ट्री प्राकृत का सबसे प्राचीन रूप पाली में देखा जाना चाहिए, मैं इस मत को भ्रमपूर्ण समझता हूँ— २. इसके कुछ उदाहरण शकर पाण्डुरंग पण्डित द्वारा सम्पादित 'गउडवहो' की भूमिका के पेज ५६ और ५८ में मिलते हैं— ३. कम्पैरेटिव ग्रैमर १, २२३— ४ भण्डारकर, रिपोर्ट १८८३ और १८८४ (बम्बई १८८७), पेज १७ और ३२४ तथा उसके बाद; इसका शुद्ध नाम वज्जालग्ग है (३ और ४ तथा ५, पेज ३२६,९), जिससे वज्जालय (पेज ३२६,५) शब्द निकला है, यह शब्द वज्जा=व्रज्या (वोएटलिंक और रोट का पीर्टसबुर्गर कोश, वेबर, हाल की भूमिका का पेज ३८, पिशल, डी होफडिस्टर डेस, लक्ष्मण सेन (गोएटिंगन १८९३) पेज ३०, और लग्ग (=लक्षण चिह्न, देशी० ७,१७)। इस शब्द का सस्कृत रूप 'लग्न' है। इस शब्द का सस्कृत अनुवाद पद्यालय अशुद्ध है— ५ वेबर, इण्डिशे स्टूाइफन २, १५९, २७९, हाल' की भूमिका का पेज २०।

§ १३—महाराष्ट्री प्राकृत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण पुस्तक 'हाल' की 'सत्तसई' है। इसके आरम्भ के ३७० पद वेबर ने १८७० में ही प्रकाशित करवा दिये थे और अपनी इस पुस्तक का नाम रक्खा था, 'इ यूवर डास सप्तशतकम् डेस हाल, लाइप्त्सिख १८७०' अर्थात् 'हाल' की सप्तशती के विषय

बोलियों को आपस में मिला दिया है। ण के स्थान पर न और अन्य शब्दों में य[१] का आगम बताता है कि यह भाषा जैन है। 'हरकेलि नाटक' का एक अंश जो अजमेर में मिला है, 'विग्रहराज देव' का लिखा हुआ बताया जाता है और यह पता चलता है कि इसमें २२ नवम्बर, ११५३ की तिथि पड़ी है[२]। इससे ज्ञात होता है कि हेमचन्द्र का व्याकरण अधिक-से-अधिक विक्रम संवत् ११९७ के अन्त में तैयार किया गया था अर्थात् यह ११४ ई० में लिखा गया था। साथ-साथ यह बात भी जान लेना चाहिए कि 'सोमदेव' और 'हेमचन्द्र' समकालीन थे। हरकेलि' नाटक में यद्यपि बहुत अशुद्धियाँ पाई जाती हैं तथापि मागधी प्राकृत के लिए ये अत्यन्त महत्त्व की हैं। मागधी प्राकृत केवल इन अंशों में ही उस रूप में मिलती है, जो पूर्णतया व्याकरण के नियमों के अनुकूल है।

१ गौएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगन १८९४ पेज ४७८ और उसके बाद— २ इंडियन ऐंटिक्वेरी २० २०१—३ कोनो की उपर्युक्त पुस्तक पेज ४८३— ४ उक्त पुस्तक पेज ४८१— ५ उक्त पुस्तक पेज ४८०—६ इण्डियन ऐंटिक्वेरी में कीलहौर्न का लेख २० २०१— ७ ब्यूलर की पुस्तक, 'इ' यूबर दास लेबन देस् जैन मोएंश्स् हेमचन्द्रा, विएना १८८९ पे १८।

§ १२—प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री प्राकृत (§ २) सर्वोत्तम गिनी जाती है, जो महाराष्ट्र देश के नाम पर, जहाँ मराठे रहते हैं, महाराष्ट्री कही जाती है और जैसा कि गारेज ने (§ ५) बताया है कि वर्तमान मराठी के साथ निकट-तर और स्पष्ट सम्बन्ध सिद्ध करती है[१]। न कोई दूसरी प्राकृत साहित्य में कविता और नाटकों के प्रयोग में इतनी अधिक लाई गई है और न किसी दूसरी प्राकृत के शब्दों में इतना अधिक फेर-फार हुआ है। महाराष्ट्री प्राकृत में संस्कृत शब्दों के व्यंजन इतने अधिक और इस प्रकार से निकाल दिये गये हैं कि अन्यत्र कहीं यह बात देखने में नहीं आती। इसका फल यह हुआ है कि इस प्राकृत का एक शब्द कई संस्कृत शब्दों का अर्थ देता है और उनके स्थान पर प्रयोग में आता है। महाराष्ट्री कइ शब्द = कच और कृतके, कइ = कति कपि कवि कृति; काअ = काक काच काय; गआ = गता गदा गजाः; मअ = मत मद मय मृग मृत; वअ = वचस्, वयस् व्रत, पद-; सुअ = शुक सुत श्रुत आदि-आदि। इसलिए बीम्स[२] साहब ने ठीक ही बात कही है कि महाराष्ट्री Emasculated stuff' अर्थात् पुंसत्वहीन भाषा है। जैसा कि विद्वान् लोग पहले से मानते आ रहे हैं कि महाराष्ट्री प्राकृत से व्यंजन इसलिए भगा दिये गये कि इस प्राकृत का प्रयोग सबसे अधिक गीतों में किया जाता था तथा इसमें अधिकाधिक लालित्य लाने के लिए यह भाषा श्रुतिमधुर बनाई गई। ऐसे पद्य गाहा = संस्कृत गाथा हैं। ये गाहा हमें हाल' की सत्तसई और जयवल्लभ" के 'वज्जालग्ग' में संग्रहीत मिलती हैं ये गाथाएँ पुराने कवियों के समहों में भी कई स्थानों पर रख दी गई हैं। इनका नाम स्पष्ट रूप में गाहा रक्खा गया है और ये गाये जानेवाले गीत हैं (देखिए हाल १ ५ ६ ६९८, ७ ८, ७ ९ ८१५। वज्जालग्ग १, ४, १,

का लेखक मानता है, उस 'अपराजित' से भिन्न है जिसके विषय मे 'कर्पूरमजरी' ६,१ में लिखा गया है कि उसने 'मृगाकलेखाकथा' नामक ग्रन्थ लिखा और यह 'अपराजित' 'राजशेखर' का समकालीन था। इस बात का कुछ पता नहीं चलता कि यह दूसरा 'अपराजित' संस्कृत का प्रयोग बिल्कुल नहीं करता था, क्योंकि यह भी हो सकता है कि ऊपर लिखा हुआ प्राकृत पद स्वय 'राजशेखर' ने संस्कृत से प्राकृत मे कर दिया हो। 'सुभाषितावली' का १०२४ वॉ संस्कृत श्लोक 'अपराजित' के नाम मे दिया गया है। 'भुवनपाल' के अनुसार 'हाल' की सत्तसई के श्लोक २१७ और २३४ 'सर्वसेन' ने लिखे हैं और इस सर्वसेन के विषय में 'आनन्दवर्द्धन' के 'ध्वन्यालोक' १४८,९ में लिखा गया है कि इसने 'हरिविजय' नामक ग्रन्थ लिखा है और १२७,७ मे उसके एक पद को उद्धृत भी किया गया है। हेमचन्द्र ने 'अलकार चूडामणि' में भी यह पद दिया है (कीलहॉर्न की हस्तलिखित प्रतियों की रिपोर्ट, पेज १०२, सख्या २६५। यह रिपोर्ट बम्बई मे १८८१ ई० मे छपी थी[४])। नामी कवियो मे भुवनपाल ने 'प्रवरसेन' का नाम 'वाक्पतिराज' भी लिखा है, पर 'रावणवहो' और 'गउडवहो' मे ये पद नहीं मिलते। 'गउडवहो' के अनुसार वाक्पतिराज ने 'महुमहविअअ' नाम का एक और काव्य लिखा था। आनन्दवर्द्धन के ध्वन्यालोक १५२,२, 'सोमेश्वर' के 'काव्यादर्श' के पेज ३१ (कीलहोर्न की हस्तलिखित प्रतियों की रिपोर्ट पेज ८७ सख्या ६६) और हेमचन्द्र के 'अलकारचूडामणि' के पेज ७ के अनुसार उसने 'मधुमथन-विजय' रचा है, इसलिए उसके नाम पर दिये गये श्लोक उक्त ग्रन्थों में मिलने चाहिए, किन्तु इस विषय पर भी मतभेद है और कोई विश्वसनीय बात उनमें नहीं पाई जाती। यह सब होने पर भी यह बात तो पक्की है और सत्तसई से इस बात का प्रमाण मिलता है कि प्राकृत में उससे पहले भी यथेष्ट समृद्ध साहित्य रहा होगा और इस साहित्य में महिलाओं ने भी पूरा-पूरा भाग लिया था[५]।

१ इसकी एक महत्त्वपूर्ण सूचना गारेंज ने जूरनाल आशियाटीक के खण्ड ४,२०,१९७ और उसके बाद छपवाई है— २ पिशल, गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगन १८९१,३६५, कर्पूरमजरी १९,२ भी देखिए— ३ इण्डिशे स्टूडिएन १६,२४, नोट १— ४ पिशल, त्साइटुङ्ग-डेर, मौरगेन लैण्डिशन गेज़ेलशाफ्ट ३९, ३१६— ५ वेबर के दोनों सस्करण हाल[१] और हाल[२] छापकर उनमें भेद दिखा दिया है, जो आवश्यक है। बिना सख्या के केवल 'हाल' से दूसरे सस्करण का बोध होता है।

§ १४—प्राकृत में समृद्ध साहित्य के विषय में दूसरा सग्रह अर्थात् 'जयवल्लभ' का 'वज्जालग्ग' भी (देखो § १२) प्रमाण देता है। 'जयवल्लभ' श्वेताम्बर सम्प्रदाय का जैन था। हस्तलिखित पुस्तकों की उक्त रिपोर्ट में भण्डारकर ने बताया है कि इस पुस्तक में ४८ खण्ड है, जो ३२५ पृष्ठों में पूरे हुए है और इसमें ७०४ श्लोक है जिनके लेखक, दुर्भाग्य से इनमे नहीं बताये गये हैं। इसका दूसरा श्लोक 'हाल' की सत्तसई का दूसरा श्लोक है। ३२५ पेज में छपे हुए ६ से १० तक श्लोक 'हाल' के नाम पर दिये गये हैं, पर सत्तसई में ये देखने को नहीं मिलते। यह वाछनीय है कि

में काइप्सिस १८७०[1]। वेबर ने इस विषय पर जर्मन पौवात्य विद्वत्-समिति की पत्रिका के २६ वें वर्ष के ७१ पेज और उसके बाद के पेजों में अपने नये विचार और पुराने विचारों में सुधार प्रकाशित किये हैं। इसके बाद उसने १८८१ ई० में काइप्सिस से 'हाल' की सत्तसई का सम्पूर्ण संस्करण निकाला जिसमें उसका जर्मन अनुवाद और शब्द-सूची भी दी है। वेबर ने, 'हाल' की सतसई पर 'भुवनपाल ने छेकोक्ति विचारलीला' नाम से जो टीका लिखी है, उसके विषय में अपने इण्डिशे स्टूडिएन के १६ वें भाग में विचार प्रकट किये हैं। इस ग्रन्थ का एक उत्तम संस्करण दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरंग परब ने निकाला है, जिसका पाठ कई स्थानों पर बहुत अच्छा सुधारा गया है और जिसमें एक उत्तम टीका भी दी गई है। 'सातवाहन की यह 'गाथा सत्तसई' बम्बई के निर्णय सागर प्रेस से 'गंगाधर भट्ट' की टीका सहित काव्य माला के २१ वें भाग के रूप में निकली है। वेबर का मत है कि यह सत्तसई अधिक-से अधिक ईसा की तीसरी सदी से पुरानी नहीं है; किन्तु यह सातवीं सदी से पहले लिखी गई होगी। उसने अपनी भूमिका में इस ग्रन्थ की अन्य छः हस्तलिपियों पर बहुत कुछ लिखा है और फिर 'भुवनपाल' की सातवीं हस्तलिपि पर विस्तार के साथ विचार किया है। सत्तसई को देखने से यह पता चलता है कि महाराष्ट्री प्राकृत में बहुत ही अधिक समृद्ध साहित्य रचा गया होगा। आरम्भ में सत्तसई के प्रत्येक पद के लेखक का नाम उसके पद के साथ दिया जाता रहा होगा (देखो हाल ७ १)। खेद है कि इन नामों में से कुछ इने गिने नाम ही हम तक पहुँचे हैं और उनमें से भी बहुत-से नाम विकृत रूप में मिल रहे हैं। कुछ टीकाकारों ने ११२ नाम दिये हैं। 'भुवनपाल' ने ३८४ नाम दिये हैं जिनमें से सातवाहन, शालिवाहन, शालाहण और हाल एक ही कवि के नाम हैं। इनमें से दो कवि हरिवृद्ध' (हरिउड्ढ) और पौट्टिस' के नाम राजशेखर' ने अपनी 'कर्पूरमञ्जरी' में दिये हैं। इस ग्रन्थ में कुछ और नाम भी आये हैं जैसे णन्दिउड्ढ (नन्दिवृद्ध), हाल, पालित्तअ बप्पराअ और मल्लसेहर। इनमें से 'पालित्तअ' के नाम पर 'भुवनपाल' ने सत्तसई के दस पद लिखे हैं। यदि 'पालित्तअ वही कवि हो, जिसे वेबर' ने पादलिप्त' बताया है तो यह वही पादलिप्ताचार्य होगा जिसे हेमचन्द्र ने 'देशी नाम माला' के १ २ में 'देशीशास्त्र' नामक ग्रन्थ के एक लेखक के नाम से लिखा है। मल्लसेहर पर 'कोनो' ने जो लेख लिखा है उससे उक्त लेखक के नाम के विषय में (भुवनपाल ने मल्लसेहर को मलयशेखर लिखा है) अब किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया है। 'भुवनपाल' के अनुसार अभिमान जिसका पद 'हाल ५१८ है अभिमानचिह्न' के नाम से विदित था। पादलिप्त' के सूत्र में किसी अन्य लेखक ने वृत्ति जोड़ रखी है, पर अभिमान' ने अपने ग्रन्थ में अपने ही उदाहरण दे रखे हैं (देखो देशीनाममाला १ १४४ ६ ९३, ७,१ ८ १२ और १७)। भुवनपाल के अनुसार हाल २२ और ११९ के कवि 'देवराज' के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। 'देशीनाममाला ६ ५८ और ७२ ८ १७ के अनुसार देवराज देशी भाषा का लेखक था। 'अपराजित जिसे भुवनपाल सत्तसई के ७५१ पद

'सरस्वतीकण्ठाभरण' में मिलते है। 'साखारिआए'[४] के मत से इसमे ३५० पद उद्धृत मिलते है, जिनमे से १५० (जेकब[५] के अनुसार केवल ११३) सत्तसई के पद हैं, प्रायः ३०[६] पद 'रावणवहो' से लिये गये हैं, महाराष्ट्री प्राकृत के और पद कालिदास, श्रीहर्ष, राजशेखर आदि से लिये गये है और बहुत-से पद उन कवियों से उद्धृत किये गये हैं जिनका अभीतक कुछ पता नहीं चल सका। 'बरुवा'[७] का यह मत कि इन पदों मे एक कविता 'सत्यभामासवाद' या इसी विषय पर कोई इसी भाँति की किसी कविता से उद्धृत है, **कुविआ च सच्चहामा** (३२२,१५) और **सुरकुसुमेहि कलुसिअम्** (३२७,२५) इन दो पदों पर आधारित है। कहा जाता है कि ये पद 'सत्यभामा' ने 'रुक्मिणी' से कहे थे, इस विषय पर इस ग्रन्थ के ३४०,९, ३६९,२१, ३७१,८ पद तुलना करने योग्य हैं। इस विषय पर मुझे जो कुछ ज्ञात हुआ है, उससे तो मालूम पड़ता है कि ये पद 'सर्वसेन' के 'हरिविजय' या 'वाक्पतिराज' के 'मधुमथन-विजय' से लिये गये है। इनमें महाराष्ट्री प्राकृत के नाटक और गाथाएँ हैं।

१. बेत्सेनबैरगैर्स, बाइत्रैगे १६,१७२ में पिशल का लेख देखिए—२. काव्यमाला में इसका जो सस्करण छपा है, उसमे बहुत लीपा-पोती की गई है। हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर यह इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए—**महु महु त्ति, भणंत्तिअहो वज्जइकालु जणस्सु। तो वि ण देउ जणद्दणऊ गोअरिहोइ मणस्सु**— ३ औफरेष्ट, काटालोगुस, काटालोगोरुम १,५९— ४. गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगन १८८४, पेज ३०९— ५. जोरनल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी १८९७, पेज ३०४, वेबर के हाल[२] की भूमिका के पेज ४३ नोट १ में औफरेष्ट ने ७८ की पहचान दी है— ६ साखारिआए की उपरिलिखित पुस्तक— ७ बरुवा का सस्करण (कलकत्ता १८८३), भूमिका का पेज ४।

§ १५—महाराष्ट्री प्राकृत, महाकाव्यों की भाषा भी है, जिनमें से दो काव्य अभी तक प्रकाशित हो चुके है। इनके नाम हैं, 'रावणवहो' और 'गउडवहो'। रावणवहो का कवि अज्ञात है। 'रावणवहो' को 'दहमुहवहो' भी कहते हैं तथा यह ग्रन्थ अपने सस्कृत नाम 'सेतुबन्ध' से भी विख्यात है। साहित्यिक परम्परा के अनुसार इसका लेखक प्रवरसेन है। सम्भवतः यह कश्मीर का राजा 'प्रवरसेन' द्वितीय हो[१], जिसके कहने पर यह काव्य ग्रन्थ लिखा गया हो। 'बाण' के समय में अर्थात् ईसा की ७वीं सदी में यह ग्रन्थ ख्याति पा चुका था, क्योंकि 'हर्षचरित' की भूमिका में इसका उल्लेख है। दण्डिन् के 'काव्यादर्श' १,३४ में इसका जो उल्लेख है, उससे पता चलता है कि यह 'बाण' के समय से भी कुछ पहले का हो। 'रावणवहो' के तीन पाठ अभी तक मिले है, एक चौथा पाठ भी मिला है जिससे यह ज्ञात होता है कि इसका कभी सस्कृत मे भी अनुवाद हुआ था जिसका नाम 'सेतुसरणि'[२] था। इसका एक प्राकृत सस्करण 'अकबर' के समय में 'रामदास' ने टीका सहित लिखा था, पर उसने मूल का अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझा। इस विषय पर आधुनिक काल मे सबसे पहले 'होएफर' ने काम किया जिसका १८४६ ई० में यह विचार था[३] कि 'रावणवहो'

'जयवल्लभ' का 'वज्जालग्ग' शीघ्र प्रकाशित किया जाय। 'वज्जालग्ग' के ऊपर १३९३ संवत् में (१३३६ ई०) 'रत्नदेव' ने छाया लिखी थी। इसके पेज १२४,२६ के अनुसार इस ग्रन्थ का नाम 'जयवल्लहम्' है। इसके अतिरिक्त अन्य कई कवियों ने महाराष्ट्री के बहुत से पद बनाये हैं। वेबर ने हाल की सत्तसई के परिशिष्ट में (पेज २ ९ और उसके बाद) 'दशरूप' की धनिक' द्वारा की गई टीका, 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' से ६७ पद एकत्र किये हैं और उसने १२ पद ऐसे दिये हैं जो सत्तसई की नाना हस्तलिखित प्रतिलिपियों के अलग-अलग स्थान में मिलते हैं। इनमें से ९५८वाँ पद जिसके आरम्भ में दे आ पसिअ है 'ध्वन्यालोक' २२,२ में पाया जाता है। यह 'अलंकारचूडामणि' के चौथे पृष्ठ में भी मिलता है तथा अन्यत्र कई जगह उद्धृत किया गया है ९६१ वाँ पद जो अण्णम् लडहत्तणअम् से आरंभ होता है, 'रुय्यक' के 'अलंकार-सर्वस्व' के ६७,२ में पाया जाता है और 'अलंकारचूडामणि' के १७ वें पेज में भी है, यह श्लोक अन्यत्र भी कई जगह मिलता है। ९७ वाँ श्लोक 'जयरथ' की 'अलंकार विमर्शिणी' के २८ वें पेज में पाया जाता है (यह ग्रन्थ हस्तलिखित है जो ब्यूलर द्वारा लिखी गई डिटेल्ड रिपोर्ट संख्या २२७ में मिलता है)। इस प्रकार के अन्य पद भी नाना लेखों ने उद्धृत किये हैं। ९७० वाँ पद, जो ओपरिहरिउँ शब्दों से आरम्भ होता है, ९८८ वाँ श्लोक जो त ताण से आरम्भ होता है, ९८९ वाँ पद जिसके प्रारम्भ में ताला जाअन्ति है और ९९९ वाँ पद जो होमि वहत्थिअरेहो से आरम्भ होता है, आनन्दवर्धन की कविता 'विषमबाणलीला' से लिये गये हैं। इन पदों को स्वयं आनन्दवर्धन' ने ध्वन्यालोक ६२,३ १११ ४; १५२ ३; २४१,१२ और २ में उद्धृत किया है और आनन्दवर्धन' के अनुसार ये कवियों की शिक्षा के लिए (कविव्युत्पत्तये) लिखे गये थे। इस विषय पर ध्वन्यालोक २२२ १२ पर अभिनव गुप्त की टीका देखिए। ९७१ वें पद के बारे में 'सोमेश्वर के काव्यादर्श के ५९ वें पेज (कीलहौर्न की हस्तलिखित प्रतियों की रिपोर्ट १८८ ,८१ पेज ८७, संख्या ६६) और जयन्त की 'काव्यप्रकाशदीपिका' के पेज ६५ में (ब्यूलर की हस्तलिखित प्रतियों की डिटेल्ड रिपोर्ट संख्या २४४) प्रमाण मिलते हैं कि ये पद उद्धृत हैं। उक्त दोनों कवियों ने इसे 'पञ्चबाणलीला' से लिया हुआ बताया है। ९८८ और ९८९ संख्या के पद स्वयं आनन्दवर्धन' ने ध्वन्यालोक में उद्धृत किये हैं[1] और ९९९ वाँ पद अभिनवगुप्त ने १५२ १८ की टीका करते हुए उद्धृत किया है। ये पद 'विषमबाणलीला' के हैं यह बात सोमेश्वर (उपर्युक्त ग्रन्थ पेज ६२) और जयन्त ने (जयन्त का ऊपर दिया गया ग्रन्थ पेज ७९) बताई है। इस 'वज्जालग्ग' ग्रन्थ से 'आनन्दवर्धन' ने प म ताण मअह से आरम्भ होनेवाला पद 'ध्वन्यालोक' २४१,११ में उद्धृत किया है। २४१ पेज का २ वाँ पद यह प्रमाणित करता है कि कवि अपभ्रंश भाषा में भी कविता करता था। 'ध्वन्यालोक की टीका के पेज २२१ के ११ वें पद के विषय में अभिनवगुप्त' लिखता है कि यह श्लोक मैंने अपने गुरु 'भट्टेन्दुराज' की प्राकृत कविता से लिया है; और इस भट्टेन्दुराज को हम बहुत पहले से संस्कृत कवि के रूप में जानते हैं[1]। इनमें से अधिकांश प्राकृत पद 'भोजदेव' के

ये तीनों ग्रन्थ महाराष्ट्री प्राकृत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण साधन हैं। चूँकि इन ग्रन्थों में महाराष्ट्री के उत्तम-उत्तम शब्द आये हैं, इसलिए मैंने 'ध्वनि-शिक्षा' नामक अध्याय में ऐसे शब्दों को गउड०, हाल और रावण० संक्षिप्त नाम से दिया है। वेबर ने 'हाल' की सत्तसई के पहले संस्करण में महाराष्ट्री प्राकृत के व्याकरण की रूपरेखा दी है, पर यह उस समय तक प्रकाशित सत्तसई के अंशों तक ही सिमित है।

१. मैक्सम्यूलर, इंडिएन इन जाइनर वेल्टगेशिष्ट लिशन वेडोयटुङ्ग (लाइप्त्सिख १८८४) पेज २७० और उसके बाद, यह मत कि कालिदास रावणवहो का लेखक है, उस सामग्री पर आधारित है जो कालिदास के समय से बहुत बाद की है—२. एस गोल्डस्मित्त, रावणवहो, भूमिका का पेज ५ और उसके बाद—३.डौयत्शन् मौर्गेन लैन्डिशन गेजेलसाफ्ट की १८४५ की वार्षिक रिपोर्ट (लाइप्त्सिख १८४६) पेज १७६, त्साइटश्रिफ्ट फ्यूर डी विस्सन् शाफ्ट डेर स्प्राखे २,४८८ और उसके बाद—४ इसके साथ गोएटिंगिशे गेलैर्त्ते आन्त्साइगन १८८०, पेज ३८० और उसके बाद के छपे पेजों में पिशल का लेख देखिए—५. पण्डित, गउडवहो, भूमिका के पेज ६४ और उसके बाद—६ पण्डित, गउड-वहो भूमिका का पेज ८ और ग्रन्थ के पेज ३४५ तथा उसके बाद—७.पण्डित, गउडवहो, भूमिका के पेज ७ में इस विषय पर कई अन्य बातें बताई गई हैं; याकोबी, गोएटिंगिशे गेलैर्त्ते आन्त्साइगन १८८८, पेज ६३—८ गोएटिंगिशे गेलैर्त्ते आन्त्साइगन १८८०, पेज ६१ और उसके बाद के पेजों में याकोबी का लेख—९ पण्डित ने गउडवहो की भूमिका के पेज ५२ और उसके बाद के पेजों में वाक्पतिराज को आसमान पर चढ़ा दिया है, इस विषय पर गोएटिंगिशे गेलैर्त्ते आन्त्साइगन १८८८, पेज ६५ में याकोबी का लेख देखिए।

§ १६—महाराष्ट्री के साथ-साथ लोग जैनों के द्वारा काम में लाई गई दोनों बोलियों का निकट सम्बन्ध मानते हैं। इन दोनों बोलियों को हरमान याकोबी[१] जैन-महाराष्ट्री और जैन-प्राकृत के नाम से अलग अलग करता है। वह जैन-महाराष्ट्री नाम से टीकाकारों और कवियों[२] की भाषा का अर्थ समझता है और जैन-प्राकृत, उस भाषा का नाम निर्दिष्ट करता है जिसमें जैनों के शास्त्र[३] और जैन-सूत्र[४] लिखे गये हैं। जैन-प्राकृत नाम जो 'ई म्यूलर'[५] ने अपनाया है, अनुचित है और उसका यह दावा कि जैन-प्राकृत पुरानी या अतिप्राचीन महाराष्ट्री है, भ्रामक है[६]। भारतीय वैयाकरण पुराने जैन-सूत्रों की भाषा को **आर्षम्** अर्थात् 'ऋषियों की भाषा' का नाम देते हैं। हेमचन्द्र ने १,३ में बताया है कि उसके व्याकरण के सब नियम आर्ष भाषा में लागू नहीं होते, क्योंकि आर्ष भाषा में इसके बहुत-से अपवाद हैं और वह २,१७४ में बताता है कि ऊपर लिखे गये नियम और अपवाद आर्ष भाषा में लागू नहीं होते, उसमें मनमाने नियम काम में लाये जाते हैं। त्रिविक्रम[७] अपने व्याकरण में आर्ष और देश्य भाषाओं को व्याकरण के बाहर ही रखता है, क्योंकि इनकी

का एक संस्करण प्रकाशित किया जाय, पर उसे सफलता न मिली। इस काव्य में १५ 'आश्वास' हैं। इनके पहले १५ में 'आश्वास' के दोनों अंश पौल गौल्दश्मित्त ने १८७१ ई. में प्रकाशित करवाये। इस पुस्तक का नाम पड़ा—'स्पिसिमैन डेस् सेतुबन्ध'। यह पुस्तक गोएटिंगन से १८७३ ई. में निकली। स्ट्रासबुर्ग से १८८ ई० में 'रावण वह ओडर सेतुबन्ध' नाम से सीगफ्रीड गोल्दश्मित्त ने सारा ग्रन्थ प्रकाशित करवाया तथा मूल के साथ उसका जर्मन अनुवाद भी दिया और यह अनुवाद १८८१ ई० में प्रकाशित हुआ। इसका एक नया संस्करण जो वास्तव में 'गोल्दश्मित्त' के आधार पर है बम्बई से 'शिवदत्त और परब' ने निकाला। इसमें रामदास की टीका भी दे दी गई है। इस ग्रन्थ का नाम है 'द सेतुबन्ध ऑफ प्रवरसेन' बम्बई १८९५ (काव्यमाला संख्या ४७)। 'गउडवहो' का लेखक 'बप्पइराअ' (संस्कृत वाक्पतिराज) ६। वह कान्यकुब्ज के राजा 'यशोवर्मन्' के दरबार में रहता था अर्थात् वह ईसा की ७वीं सदी के अन्त या ८वीं सदी के आरम्भकाल का कवि है। उसने अपनेसे पहले के कुछ कवियों के नाम गिनाये हैं, जो ये हैं—भवभूति, भास, ज्वलनमित्र, कान्तिदेव, कालिदास, सुबन्धु और हरिचन्द्र। अन्य महाकाव्यों से 'गउडवहो' में यह भेद है कि इसमें सर्ग, काण्ड आदि नहीं हैं। इसमें केवल श्लोक हैं जिनकी संख्या १२०९ है और यह आर्या छन्द में है। इस महाकाव्य के भी बहुत पाठ मिलते हैं, जिनमें श्लोकों में तो कम भेद दीख पड़ता है; किन्तु श्लोकों की संख्या और उनके क्रम में प्रत्येक पाठ में बहुत भेद पाया जाता है। इस ग्रन्थ पर 'हरिपाल' ने जो टीका लिखी है, उसमें इस महाकाव्य के विषय पर मुख्य मुख्य बातें ही कही गई हैं। इसलिए 'हरिपाल' ने अपनी टीका का नाम 'गौडवधसार टीका' रक्खा है। इस टीका में विशेष कुछ नहीं है, प्राकृत शब्दों का संस्कृत अर्थ दे दिया गया है। 'गउडवहो' महाकाव्य हरिपाल की टीका सहित और शब्द सूची के साथ शंकरपाण्डुरंग पंडित ने प्रकाशित करवाया है। इसका नाम है— द गउडवहो ए हिस्टोरिकल पोयम इन प्राकृत बाइ वाक्पति बम्बई १८८७ (बम्बई संस्कृत सिरीज संख्या ३४)। यह बात हम पहले ही (§ १२) बता चुके हैं कि 'वाक्पतिराज' ने प्राकृत में एक दूसरा महाकाव्य भी लिखा है जिसका नाम 'महुमहविअअ' है। इसका एक श्लोक अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक १५२, १६ की टीका में उद्धृत किया है तथा दो और श्लोक साम्भवतः सरस्वतीकण्ठाभरण १, २, १५; १६७, २६ में उद्धृत हैं। पंडित के संस्करण में, हेमचन्द्र की भाँति ही श्लोकों की लिखावट है अर्थात् इसमें जैन लिपि का प्रयोग किया गया है जिसमें आरम्भ में न लिखा जाता है और यश्रुति रहती है। बात यह है कि इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ जैनों की लिखी हैं और जैनलिपि में हैं। मुनिराज की टीका सहित 'सेतुबन्ध' की जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसका मूल ग्रन्थ भी जैन लिपि में लिखा है। 'सेतुबन्ध' और 'गउडवहो' पर उनमें पद लिखा गई उन प्राकृत की पुस्तकों का बहुत प्रभाव पड़ा है जो भारी भरकम और कृत्रिम भाषा में लिखी गई थीं। भवभूति के नाटकों में और बाद को 'मृच्छकटिक' में भी ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है। 'गउडवहो' हाल की सतसई से पुराना—

वाग्भट ने 'अलंकार-तिलक' १,१ में कहा है—**सर्वार्ध मागधीम् सर्वभाषासु परिणामिणीम्। सार्वीयाम्**[10] **सर्वतोवाचम् सार्वज्ञीम् प्रणिदध्महे।** अर्थात् हम उस **वाच** का प्रणिधान करते हैं जो विश्वभर की अर्द्धमागधी है, जो विश्व की सब भाषाओं में अपना परिणाम दिखाती है, जो सब प्रकार से परिपूर्ण है और जिसके द्वारा सब-कुछ जाना जा सकता है। 'पण्णवणासुत्त' ५९ में आर्यों की ९ श्रेणियाँ की गई हैं जिनमें से छठी श्रेणी **भासार्या,** अर्थात् वह आर्य जो आर्य भाषा बोलते हैं, उनकी है। ६२ वें[11] पेज में उनके विषय में यह बात कही गई है—**से किं तं भासारिया। भासारिया जे णं अद्धमागहाए भासाए भासन्ति : जत्थ वि य णं बम्भी लिवी पवत्तइ** अर्थात् '**भासारिया**' (भाषा के अनुसार आर्य) कौन कहलाते हैं? भाषा के अनुसार आर्य वे लोग हैं जो अर्द्धमागधी भाषा में बातचीत करते और लिखते-पढते हैं और जिनमें ब्राह्मी लिपि काम में लाई जाती है'। महावीर ने अर्द्धमागधी भाषा में ही अपने धर्म का प्रचार किया, इस बात का उल्लेख ऊपर बताये गये 'समवायगसुत्त' के अतिरिक्त 'अववाइअसुत्त' के पारा ५६ में भी है : **तए णं समणे भगवं महावीरे अद्धमागहाए भासाए भासइ। अरिहा धम्म परिकहेइ। तेसिं सव्वेसिं आर्य अणारियाणं अगिलाए धम्मं आइक्खइ। सवियणं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियं-अणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ** अर्थात् 'भगवान महावीर इन श्रमणों से.. अर्द्ध-मागधा भाषा में (अपने धर्म का व्याख्यान करता है)। अर्हत् धर्म को भलीभाँति फिर-फिर समझाता है। वह उन सब आर्यों और अनार्यों के आगे धर्म की शिक्षा देता है। वे सब लोग भी इस अर्धमागधी भाषा से सब आर्य और अनार्यों के बीच अपनी-अपनी बोली में अनुवाद करके इस धर्म का प्रचार करते हैं।' इस तथ्य का उल्लेख 'उवासगदसाओ' के पेज ४६ में 'अभयदेव' ने किया है और,वेबर द्वारा प्रकाशित 'सूरियपन्नति' की टीका में मलयगिरि ने भी किया है (देखो भगवती २,२४५), हेमचन्द्र की 'अभिधान-चिन्तामणि' ५,९ की टीका भी तुलना करने योग्य है। हेमचन्द्र ने ४,२८७ में एक उद्धरण में कहा है कि जैनधर्म के प्राचीन सूत्र अद्धमागह भाषा में रचे गये थे''—' **पोराणं अद्धमागह भासा निययं हवइ सुत्तं।** इसपर हेमचन्द्र कहता है कि यद्यपि इस विषय पर बहुत प्राचीन परम्परा चली आई है तो भी इसके अपने विशेष नियम हैं, यह मागधी व्याकरण के नियमों पर नहीं चलती[12]। इस विषय पर उसने एक उदाहरण दिया है कि **से तारिसे दुक्खसहे जिइन्दिये** (दसवेयालियसुत्त ६२३,१९) मागधी भाषा में अपना रूप परिवर्तन करके **तालिशे दुक्खशहे यिदिंदिए** हो जायगा।

१ कल्पसूत्र पेज १७, ओसगेवैल्ते एर्स्सेलुंगन, इन महाराष्ट्री (लाइप्त्सिख १८८६), भूमिका का पेज ११—२.कल्पसूत्र पेज १७—३ एर्स्सेलुगन भूमिका का पेज १२—४.कल्पसूत्र पेज १७—५.बाइत्रैगे त्सूर ग्रामाटीक डेस जैन प्राकृत (बर्लिन, १८७६)—६.§ १८ देखिए—७.पिशल, दे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज २९—८ दालिवस, ऐन इन्ट्रोडक्शन टु कच्चाय-

उत्पत्ति स्वतन्त्र है जो जनता में रूढ़ि बन गई थीं; (रूढ़स्यात्)। इसका अर्थ यह है कि आर्षभाषा को प्रकृति या मूल संस्कृत नहीं है और यह बहुधा अपने स्वतन्त्र नियमों का पालन करती है (स्वतन्त्रयाच् च भूयसा)। प्रेमचन्द्र तर्कवागीश ने दण्डिन् के काव्यादर्श १,३३ की टीका करते हुए एक उद्धरण दिया है जिसमें प्राकृत का दो प्रकारों में भेद किया गया है। एक प्रकार की प्राकृत वह बताई गई है जो आर्षभाषा से निकली है और दूसरी प्राकृत वह है जो आर्ष के समान है— आर्षोत्थम् आर्षतुल्यम् च द्विविधम् प्राकृतम् विदुः। 'रुद्रट' के काव्यालंकार २,१२ पर टीका करते हुए 'नमिसाधु' ने प्राकृत नाम की व्युत्पत्ति यों बताई है कि प्राकृत भाषा की प्रकृति अर्थात् आधारभूत भाषा वह है जो प्राकृतिक है और जो सब प्राणियों की बोलचाल की भाषा है तथा जिसे व्याकरण आदि के नियम नियन्त्रित नहीं करते चूँकि यह प्राकृत से पैदा हुई है अथवा प्राकृत जन की बोली है, इसलिए इसे प्राकृत भाषा कहते हैं। अथवा इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि प्राकृत प्राक्कृत शब्दों से बनी हो। इसका तात्पर्य हुआ कि यह भाषा जो बहुत पुराने समय से चली आई हो। साथ ही यह भी कहा जाता है कि यह प्राकृत जो आर्ष शास्त्रों में पाई जाती है अर्थात् अर्धमागध वह भाषा है, जिसे देवता बोलते हैं— आरिसवयणे सिद्धम् देवाणम् अद्धमागहा वाणी। इस लेखक के अनुसार प्राकृत वह भाषा है जिसे स्त्रियों, बच्चे आदि बिना कष्ट के समझ लेते हैं; इसलिए यह भाषा सब भाषाओं की जड़ है। बरसाती पानी की तरह प्रारम्भ में इसका एक ही रूप था; किन्तु नाना देशों में और नाना जातियों में बोली जाने के कारण (उनके व्याकरण के नियमों में भिन्नता आ जाने के कारण) तथा नियमों में समय समय पर सुधार चलते रहने से भाषा के रूप में भिन्नता आ गई। इसका फल यह हुआ कि संस्कृत और अन्य भाषाओं के अपभ्रंश रूप बन गये जो 'रुद्रट' ने २,१२ में गिनाये हैं (देखो § ४)। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'नमिसाधु' के मतानुसार संस्कृत की आधारभूत भाषा अथवा कहिए कि संस्कृत की व्युत्पत्ति प्राकृत से है। यह बात इस तरह स्पष्ट होती है कि बौद्धों ने जिस प्रकार मागधी[1] को सब भाषाओं के मूल में माना है उसी प्रकार जैनों ने अर्धमागधी को अथवा वैयाकरणों द्वारा वर्णित आर्ष भाषा को यह मूल भाषा माना है जिससे अन्य बोलियाँ और भाषाएँ निकली हैं। इसका कारण यह है कि महावीर[2] ने इस भाषा में अपने धर्म का प्रचार किया। इसलिए समवायंगसुत्त ९८[3] में कहा गया है—भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्मं आइक्खइ। सा वि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरिय-अणारियाणम् दुप्पय चौप्पयमियपसुपक्खिसरी सिवाणं अप्पणो हियसिवसुहदाय भासत्ताए परिणमइ अर्थात् भगवान् यह धर्म (जैनधर्म) अर्धमागधी भाषा में प्रचारित करता है और यह अर्धमागधी भाषा जब बोली जाती है तब आर्य और अनार्य, दोपाये और चौपाये, जंगली और घरेलू जानवर, पक्षी सरीसृप (साँप केंचुआ) आदि सब प्रकार के कीड़े इसी में बोलते हैं और यह उनका हित करती है उनका कल्याण करती है और उन्हें सुख देती है।

(दे० § २०२) जो मागधी में कहीं-कही होता है। सम्बोधन के एकवचन में अ में समाप्त होनेवाले शब्दों में बहुधा प्लुति आ जाती है, किन्तु प्लुति का यह नियम ढक्की और अपभ्रंश भाषा में भी चलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अर्धमागधी और मागधी में बहुत-से सम्बन्ध प्रमाणित किये जा सकते, यदि मागधी मे बहुत-से स्मृति-स्तम्भ वर्त्तमान होते और वे अच्छी दशा में रक्षित मिलते। वर्तमान स्थिति में तो इनकी समानता के प्रमाण मिलना किसी सुअवसर और सौभाग्य पर ही निर्भर है। ऐसा सयोग से प्राप्त एक शब्द अर्धमागधी **उसिण** है (= सस्कृत उष्ण) जो मागधी **कोशिण** (= सस्कृत कोष्ण) की रीति पर है, (दे० § १३३)। यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि अर्धमागधी और मागधी सस्कृत षष्ठी एकवचन **तव** का ही रूप व्यवहार में लाते है और यह रूप अन्य प्राकृत भाषाओं में नहीं मिलता (§ ४२१)। अर्धमागधी में लाटी प्राकृत से अ मे समाप्त होनेवाले शब्दों का सप्तमी एकवचन के अन्त में 'सि' लगने की रीति चली है। अर्धमागधी में बहुधा यह देखने में आता है कि प्रथमा के एकवचन के अन्त में **ए** के स्थान पर **ओ** का भी प्रयोग होता है। मेरे पास जो पुस्तकें हैं, उनमें अगर एक स्थान मे प्रथमा एकवचन के लिए शब्द के अन्त में ए का प्रयोग हुआ है, तो उसके एकदम पास में **ओ** भी काम में लाया गया है। 'आयारागसुत्त', पेज ४१ पक्ति १ में **अभिवायमीगे** आया है, पर पक्ति २ में **हयपुव्वो** है और ३ में **लसियपुव्वो** है। पेज ४५ की पक्ति १९ में **नाओ** है, किंतु २० में **से महावीरे** पाठ है। २२ में फिर **अलद्धपुव्वो** आया है और **गामो** भी है। पेज ४६, ३ में **दुक्खसहे, अपडिन्ने**, ४ में **सूरो**, ५ में **संवुडे**, ६ में **पडिसेवमाणो**, ७ में **अचले**, १४ में **अपुट्ठे** और उसी के नीचे १५ में **पुट्ठो, अपुट्ठो** पाठ है। ऐसे स्थलों पर लिपिकारो की भूल भी हो सकती है जो प्रकाशकों को शुद्ध कर देनी चाहिए थी। कलकत्ते के सस्करण में ४५ पेज की लाइन २२ में **गामे** शब्द हैं और ४६, ६ में **पडिसेवमाने** छपा है। एक स्थान पर **ओ** भी है। उक्त सब शब्दों के अन्त में **ए** लिखा जाना चाहिए। कविता में लिखे गये अन्य ग्रंथों में, जैसा कि 'आयारागसुत्त' पेज १२७ और उसके बाद, के पेजों में १ पेज १२८, ३ में **मउडे** के स्थान पर हस्तलिखित प्रति बी के अनुसार, **मउडो** ही होना चाहिए। यह बात कविता में लिखे गये अन्य ग्रथों में भी पाई जाती है। 'सूयगडगसुत्त,' 'उत्तरज्झयणसुत्त', 'दसवेयालियसुत्त' आदि में ऐसे उदाहरणों का बाहुल्य है। कविता की भाषा गद्य की भाषा से ध्वनि तथा रूप के नियमों में बहुत भिन्न है और महाराष्ट्री और जैनों की दूसरी बोली जैन-महाराष्ट्री से बहुत कुछ मिलती है, किन्तु पूर्णतया उसके समान भी नहीं है। उदाहरणार्थ सस्कृत शब्द **म्लेच्छ** अर्धमागधी के गद्य मे **मिलक्खु** हो जात है, पर पद्य में महाराष्ट्री, जैन महाराष्ट्री, शौरसेनी, अपभ्रश की भाँति मेच्छ (§ ८४) होता है। केवल काव्य ग्रन्थों में, महाराष्ट्री, और जैन महाराष्ट्री की भाँति, अर्धमागधी में **कृ** धातु (§ ५०८) का रूप कुणइ* होता है। साथ ही

* यह 'कुणइ' शब्द कुमाऊँ की बोली में आज भी चलता है। 'तुम क्या करते हो' के लिए कुमाउनी बोली में 'तुमके कणौ छा' का व्यवहार होता है। उत्तर-भारत के कई स्थानों में यह शब्द मिल सकता है।—अनु०

मार ग्रैमर औफ द पाली लैंग्वेज (कोलम्बो १८६३) भूमिका का पेज १०७ म्यूर, ओरिजिनल सैंस्कृत टैक्स्ट्स् २ ५४; प्रोसीडिंग्स औफ द एशियाटिक सोसाइटी औफ बैंगाल १८७९, १५७—९ इसका पाठ वेबर ने अपनी इंडिशे स्टुडिएन २ २ ३ १ में भी छापा है; समवायंगसुत्त आगे के पारा भागों से उद्धृत वाक्यों से भी तुलना कीजिए—१ हस्तलिखित प्रतियों में ऐसा पाया जाता है; बम्बई १८ ४ में प्रकाशित काव्यमाला संख्या ४३ में छपे संस्करण में सर्वेषाम् छपा है—११ इसका पाठ वेबर ने इण्डिशे स्टूडिएन १६ ३९९ और फरसाइशनिस २ ५१२ में छापा है—१२ लौयमान ने औप पातिक सुत्त (लाइप्सिग १८८३) पेज ९१ में नियमम् रखाया है वह मागधी भाषा में यह निश्चय (बोधक) के समान है; किन्तु हेमचन्द्र स्वयं इसका अर्थ विपत देता है जो ठीक है—१३ होएर्नले ने अपने ग्रन्थ द प्राकृत—लक्षणम् आर चण्डाज ग्रामर औफ द एन्शण्ट आर्ष प्राकृत (कलकत्ता १८८) भूमिका का पेज १९ और उसके बाद।

§ १७—उक्त बातों से यह पता लगता है कि आर्ष और अर्धमागधी भाषाएँ एक ही हैं और जैन-परम्परा के अनुसार प्राचीन जैन सूत्रों की भाषा अर्धमागधी थी[*]। इन तथ्यों से एक बात का और भी बोध होता है कि 'दसवेयालियसुत्त' से हेमचन्द्र ने जो उद्धरण लिया है, उससे प्रमाण मिलता है कि अर्धमागधी में गद्य ही गद्य नहीं लिखा गया; बल्कि इसमें कविता भी की गई। किन्तु गद्य और पद्य की भाषा में कितनी अधिक समानता क्यों न पाई जाती हो, साथ ही एक बहुत बड़ा भेद भी है। मागधी की एक बड़ी पहचान यह है कि र का ल हो जाता है और स का श तथा अ में समाप्त होनेवाले अथवा व्यंजनों में अन्त होनेवाले ऐसे शब्दों का कर्ता कारक एक वचन जिनकी संज्ञा अ में समाप्त होती हो ए में बदल जाता है और ओ के स्थान में ए हो जाता है। अर्धमागधी में र और स बने रहते हैं, पर कर्ता कारक एकवचन में आ का ए हो जाता है। समवायंगसुत्त पेज ९८ और 'उवासगदसाओ' पेज ४६ की टीका में अभयदेव इन कारणों से ही इस भाषा का नाम अर्धमागधी पड़ा, यह बात बताता है—अर्धमागधी भाषा यस्याम् रसोर् लशौ मागध्याम्[1] इत्यादिकं मागधभाषा लक्षणं परिपूर्ण नास्ति। स्टीवेनसन ने यह तथ्य सुझाया है और वेबर ने शब्दों के उदाहरण देकर प्रमाणित किया है कि अर्धमागधी और मागधी का सम्बन्ध अत्यन्त निकट का नहीं है। कर्ताकारक एकवचन के अन्त में ए लगने के साथ साथ अर्धमागधी और मागधी में एक और समानता है, वह यह कि क में समाप्त होनेवाले धातु के त के स्थान में ड हो जाता है †। किन्तु मागधी में यह नियम सर्वत्र लागू नहीं होता (देखो § २१)। इन दोनों भाषाओं में एक और समानता देखी जाती है कि इन दोनों में ग का बहुत भाग है। लेकिन इस बात में भी दोनों भाषाओं के नियम भिन्न भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त क का ग हो जाता है

* ऐसी भाषा [illegible] है।—अनु

१ [illegible]।—अनु

और बाते मागधी भाषा में लिखी गई है, इसलिए स्वय हेमचन्द्र अपने प्राकृत व्याकरण के ४,३०२ मे 'क्षपणक' की भाषा के शब्द मागधी भाषा के उदाहरण के रूप में देता है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के पेज ४६ से ६४ तक एक क्षपणक आया है जो दिगम्बर जैन साधु बताया गया है। रामदास ठीक ही कहता है कि उसकी भाषा मागधी है और वह यह भी निर्देश करता है कि भिक्षु, क्षपणक, राक्षस और अन्तःपुर के भीतर महिलाओं की नौकरानियाँ मागधी प्राकृत मे बातचीत करती हैं। 'लटक मेलक' के पेज १२–१५ और २५ से २८ में भी एक दिगम्बर पात्र नाटक में खेल करता है, जो मागधी बोलता है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि नाटकों में सर्वत्र ये 'क्षपणक' दिगम्बर होते हैं। इसकी बोली मुख्य-मुख्य बातों में श्वेताम्बर जैनियों की बोली से थोडी ही भिन्न है और काफी मिलती-जुलती है और ध्वनि के महत्त्वपूर्ण नियमों के अनुसार मागधी के समान ही है (§ २१)। नाटकों में अर्धमागधी काम में बिलकुल नहीं लाई गई है। उनमें इसका कहीं पता नहीं मिलता।

१. विलसन, सिलेक्ट वर्क्स १,२८९, वेबर, भगवती, १,३९२—२ वेबर ने फैर्तसाइशनिस २,२,४०६ में यह पाठ छापा है, इसका नोट संख्या ८ भी देखिए—३. वेबर अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में सत्य लिखता है कि यह उद्धरण किसी अज्ञातनामा व्याकरण से लिया गया है। यह 'रुद्रट' के काव्यालकार २,१२ की टीका में 'नमिसाधु' ने भी दिया है। उसमें उसने **मागध्याम्** के स्थान पर **मागधिकायाम्** शब्द का उपयोग किया है। चण्ड ३,३९ में लिखा गया है—**मागधिकायाम् रसयोर् लशौ**। वेबर का यह मत (फैर्त्साइशनिस २,३ भूमिका का पेज की नोट संख्या ७), कि यह नाम 'अद्धमागहा भाषा' इसलिए पड़ा कि इसका अर्थ 'एक छोटी सी भाषा अर्थात् इस भाषा में बहुत कम गुण है' इस तात्पर्य से रखा गया, अशुद्ध है—४ द कल्पसूत्र एण्ड नवतत्त्व (लण्डन १८४८), पेज १३७ तथा उसके बाद—५ भगवती १,३९३ और उसके बाद—६ ई० म्यूलर, बाइत्रैगे पेज ३, म्यूलर ने इस भाषा का सम्बन्ध दिखाने के लिए साम्य की जो और बातें बताई हैं, वे और बोलियों में भी मिलती हैं—७ होएरनले ने चण्ड की भूमिका के पेज १९ में जो लिखा है कि अर्धमागधी + महाराष्ट्री=आर्ष, यह बात भ्रमपूर्ण है।

§ १८—कोलब्रुक[१] का मत था कि जैनों के शास्त्र मागधी प्राकृत में लिखे गये हैं और साथ ही उसका यह विचार था कि यह प्राकृत उस भाषा से विशेष विभिन्नता नहीं रखती, जिसका व्यवहार नाटककार अपने ग्रन्थो में करते है और जो बोली वे महिलाओं के मुख में रखते हैं। उसका यह भी मत था कि मागधी प्राकृत सस्कृत से निकली है और वैसी ही भाषा है जैसी कि सिंहल देश की पाली भाषा। लास्सन[२] का विचार था कि मागधी प्राकृत और महाराष्ट्री एक ही भाषाएँ हैं।

केवल कविता में, महाराष्ट्री और जैन-महाराष्ट्री की तरह, संस्कृत—त्वा के स्थान में —तूण या ऊण होता है (§ ५८४ और उसके बाद)। संधि के नियमों, संज्ञा और धातु के रूपों और शब्दसंपत्ति में पद्य में लिखे गये ग्रन्थों और गद्य की पुस्तकों में महान् भेद मिलता है। इसके ढेर-के ढेर उदाहरण आप 'दसवेयालियसुत्त', 'उत्तरज्झय णसुत्त' और 'सूयगडंगसुत्त' में देख सकते हैं। कामद्रयों की इस भाषा पर ही 'क्रमदी श्वर' की (५, ९८) यह बात ठीक बैठती है कि अर्धमागधी, महाराष्ट्री और मागधी के मेल से बनी भाषा है—महाराष्ट्री मिश्रार्धं मागधी'। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि अर्धमागधी जैनियों की प्राचीन प्राकृतों का तीसरा भेद है। पाली भाषा में भी कविता की भाषा में बहुत पुराने रूप और विशेषता पाई जाती है जो गद्य में नहीं मिलतीं किंतु इस कारण किसी ने यह नहीं कहा कि गद्य और पद्य की भाषायें दो विभिन्न बोलियाँ हैं। इसलिए, चूँकि, अर्धमागधी के गद्य और पद्य की भाषा का आधार निस्सन्देह एक ही है, इसलिए मैंने इन दोनों प्रकार की भाषाओं को, परम्परा से चला आता हुआ एक ही नाम अर्धमागधी दिया है। 'भारतीय नाट्यशास्त्र' १७,४८ में मागधी, आवंती प्राच्या, शौरसेनी, बाह्लीका और दाक्षिणात्या के साथ अर्ध मागधी को भी सात भाषाओं के भीतर एक भाषा माना है और १७, ५० में (= साहित्य-दर्पण, पेज १७१, १) कहा है कि यह नाटकों में नौकरों, राजपूतों और श्रेष्ठियों द्वारा बोली जानी चाहिए—चेटानाम् राजपुत्राणाम् श्रेष्ठिनाम् चार्ध मागधी। किन्तु संस्कृत नाटकों में यह बात नहीं मिलती तथा मार्कण्डेय (§ १) का मत है कि अर्धमागधी और मागधी शौरसेनी की ही बोलियाँ हैं जो आपस में निकट संबंधी हैं। ऐसी आशा करना स्वाभाविक है कि नाटकों में जब जैन पात्र आते होंगे तब उनके मुँह में अर्धमागधी भाषा की बातचीत रखी जाती होगी। लास्सन ने अपनी पुस्तक 'इंस्टिट्यूत्सिओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए' में 'प्रबोधचन्द्रो दय' और 'मुद्राराक्षस' नाटकों से उदाहरण देकर अर्धमागधी की विशेषतायें दिखाने का प्रयत्न किया है और उसका मत है कि 'धूर्तसमागम' नाटक में नाई अर्धमागधी बोलता है। 'मुद्राराक्षस' नाटक के पेज १७४ १७८ १८१ १८७ और १९०-१९४ में जीवसिद्धि क्षपणक पात्र आता है। इसके विषय में टीकाकार 'ढुंढिराज' ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है—क्षपणको जैनाकृतिः, अर्थात् भीख माँगनेवाला साधु जीवसिद्धि जैन के रूप में है। इस क्षपणक की भाषा अर्धमागधी से मिलती है और उसने ओ के स्थान पर ए का प्रयोग किया है, उदाहरणार्थ—कुपिदे भदंते (१७८ ४)। उसने नपुंसक लिंग में भी ए का प्रयोग किया है, जैसे—अदुपिआवने पच्चक्खे (१७९ १ और २)। इसके अतिरिक्त उसकी भाषा में क ग में परिणत हो गया है। यह बात विशेषकर सावगाणं (१७९ १, १८९,१, १९ ,१) सम्बोधन का एक वचन सावगा (१७५,१, १७७,१ १८१ ५ आदि) से प्रमाणित होती है। यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इसका अन्तिम स्वर भी लम्बा कर दिया गया है (§ ७१)। कर्ता एकवचन में ए जोड़ दिया गया है, जैसे—सावगे (१७८,२; १९१,१) और भदन्त° का हगे हो गया है (§ १४२, १९४ और ४१७)। इसकी

गया हो''। ऐसा नहीं मालूम होता कि महाराष्ट्री का प्रभाव विशेष महत्त्वपूर्ण रहा होगा, क्योंकि अर्धमागधी का जो मूल रूप है, वह इसके द्वारा अछूता बचा रह गया।

अर्धमागधी की ध्वनि के नियम जैसा कि **एव** से पहले **अम्** का **आं** हो जाना (§ ६८), इति का ई हो जाना (§ ९३), उपसर्ग **प्रति** से इ का उड़ जाना; विशेषकर इन शब्दों में—पडुच्च, पडुपन्न, पडोयारय, आदि (§ १६३), तालव्य के स्थान पर दन्त्य अक्षरों का आ जाना (§ २१५), अहा (= **यथा**) में से य का छूट जाना (§ ३३५), सधि-व्यजनों का प्रयोग (§ ३५३), इसके अतिरिक्त सप्रदान कारक के अन्त में—**त्ताए** (§ ३६४) का व्यवहार, तृतीया विभक्ति का—सा में समाप्त होना (§ ३६४), **कम्म** और **धम्म** का तृतीया का रूप **कम्मुणा** और **धम्मुणा** (§ ४०४), उसके विचित्र प्रकार के सख्यावाचक शब्द, अनेक धातुओं के रूप जैसे कि **ख्या** धातु से **आइक्खइ** रूप (§ ४९२), **आप्** धातु में **प्र** उपसर्ग जोडकर उसका **पाउणइ** रूप (§ ५०४), **कृ** धातु का **कुव्वइ** रूप (§ ५०८),—**इ** और-**इत्तु** और **त्ताए** में समाप्त होनेवाला सामान्य रूप (Infinitive) (§ ५०७), सस्कृत **त्वा** और हिन्दी **करके** के स्थान पर—**त्ता** (§ ५८२), —**त्ताणं** (§ ५८३),—**च्चा**, —**च्चाणं**, —**च्चाण** (§ ५८७), —**याणं**, —**याण** (§ ५९२) आदि महाराष्ट्री भाषा में कहीं भी नहीं मिलते। अर्धमागधी में महाराष्ट्री से भी अधिक व्यापक रूप से मूर्धन्य वर्णों का प्रयोग किया गया है (§ २१९, २२२, २८९ और ३३३), इसी प्रकार अर्धमागधी में ल के स्थान पर र हो गया है। (§ २५७)। ध्वनि के वे नियम जो अर्धमागधी में चलते हैं, महाराष्ट्री में कभी-कभी और कहीं-कहीं दिखाई पडते हैं। इसके उदाहरण हैं, अशस्वर* अ का प्रयोग (§ १३२) दीर्घ स्वरों का व्यवहार और—त्र (§ ८७) प्रत्यय और **क्ष** (§ ३२३) व्यजन को सरल कर देना, **क** का **ग** में परिणत हो जाना (§ २०२), **प** का **म** हो जाना (§ २४८) आदि। **य** श्रुति (§ १८७) जो बहुधा शब्द-सम्पत्ति के भिन्न-भिन्न रूप दिखाती है और कई अन्य बातें अकाट्य रूप से सिद्ध करती हैं कि अर्धमागधी और महाराष्ट्री मूल से अलग होते ही अलग-अलग भाषाएँ बन गई। साहित्यिक भाषा के पद पर बिठाई जाने के बाद इसमें से भी व्यजन खदेड दिये गये और यह अन्य प्राकृत बोलियों की भाँति ही इस एक घटना से बहुत बदल गई। इसमें कर्त्ता कारक के अन्त में जो **ए** जोडा जाता है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है

* अश-स्वर या आंशिक स्वर अ का मतलब है कि अ बोलने में कम समय लगता है अर्थात् उसका कालमान या काल की मात्रा घट जाती है। 'प्रमाण' का आज भी गाँवों में 'परमाण' बोला जाता है, किन्तु प्रमाण में प हलंत है और उसका स्वर अश-स्वर है, किन्तु परमाण बोलने में समय की मात्रा समान ही रह जाती है और र में जो अकार है, उसे बोलने में आधा या आंशिक समय लगता है। यही बात **प्रसन्न** का **परसन्न**, श्लाघा का **सलाहा** (=सराहना) होने पर घटती है। यहाँ **सलाहा** में **स** पहले हलत था, अब इसका अश **अ** बन गया है। **प्रमाण** में **प** हलत है, पर **परमाण** में प में अ जुड गया है अर्थात् इसका अश बन गया है। इस शब्दप्रक्रिया में जो अ आता है, उसे अश-स्वर कहते हैं। —अनु०

होएफर[1] इस मत पर डटा था कि जैन शास्त्रों की प्राकृत भाषाएँ कुछ भिन्नताएँ और विशेषताएँ अवश्य हैं, जो अन्य प्राकृतों में साधारणतया देखी नहीं जातीं। लेकिन जब हम व्यापक दृष्टि से इस भाषा पर विचार करते हैं तब स्पष्ट पता चल जाता है कि यह भी वही प्राकृत है। याकोबी इस सिद्धान्त पर पहुँचा है कि जैन शास्त्रों की भाषा बहुत प्राचीन महाराष्ट्री[2] है; किन्तु इस मत के साथ ही वह यह भी लिखता है कि यदि हम जैन प्राकृत को अर्थात् जैन शास्त्रों के सबसे पुराने उस रूप को देखें, जो इस समय हमें मिलता है* और उसकी तुलना एक ओर पाली और दूसरी ओर हाल, सेतुबन्ध आदि ग्रन्थों में मिलनेवाली प्राकृत से करें तो साफ दिखाई देता है कि यह उत्तरकालीन प्राकृतों[3] से पाली भाषा के निकटतर है, यह एक पुरानी भारतीय बोली है जो पाली से घना सम्बन्ध रखती है, पर इससे[4] नवीनतर है। इस मत के विरुद्ध वेबर का कहना है कि अर्धमागधी और महाराष्ट्री के बीच कोई निकटतर सम्बन्ध नहीं है और पाली के साथ भी इसका सम्बन्ध सीमित है तथा जैसा कि वेबर से पहले स्टीगर्स[5] बता चुका था और उसके बाद इसकी पुष्टि याकोबी ने भी की है कि अर्धमागधी पाली से बहुत बाद की भाषा है। अर्धमागधी ध्वनितत्त्व, संज्ञा और धातु की रूपावलियों तथा अपनी शब्द-सम्पत्ति में महाराष्ट्री से इतना अधिक भेद रखती है कि यह सोलह आने असम्भव है कि इसके भीतर अति प्राचीन महाराष्ट्री का रूप देखा जाय। स्वयं याकोबी ने इन दोनों भाषाओं में जो अनगिनत भेद हैं, वे एकत्र किये हैं और इन महत्त्वपूर्ण भेदों का उससे भी बड़ा समह ई० म्यूलर[6] ने किया है। ई० म्यूलर स्पष्ट तथा जोरदार शब्दों में यह अस्वीकार करता है कि अर्धमागधी प्राचीन महाराष्ट्री से निकली है। वह अर्धमागधी को प्रस्तर-लेखों की मागधी से सम्बन्धित करता है। प्रथमा एकवचन का —ए इस बात का पक्का प्रमाण है कि अर्धमागधी और महाराष्ट्री दो भिन्न भिन्न भाषाएँ हैं। यह ऐसा ध्वनि-परिवर्तन नहीं है जिसके लिए यह कहा जाय कि यह समय बदलने के साथ-साथ घिस-मज कर इस रूप में आ गया बल्कि यह स्थानीय भेद है जो भारतीय भाषा के इतिहास से स्पष्ट है। भारतीय भाषा का इतिहास बताता है कि भारत के पूर्वी प्रदेश में अर्धमागधी बहुत व्यापक रूप में फैली थी और महाराष्ट्री का प्रचलन उधर कम था। यह सम्भव है कि देवर्धिगणिन् की अध्यक्षता में 'वलभी' में जो सभा जैनशास्त्रों को एकत्र करने के लिए बैठी थी या 'स्कन्दिलाचार्य'[11] की अध्यक्षता में मथुरा में जो सभा हुई थी उसने मूल अर्धमागधी भाषा पर पश्चिमी प्राकृत भाषा महाराष्ट्री का रंग चढ़ा दिया हो। यह बहुत सम्भव है कि अर्धमागधी पर महाराष्ट्री का रंग वलभी में गहरा जम

---

* इस रूप का प्रचार संज्ञा-शब्दों के बाद बहुवचन में हिन्दी में विभक्तियों के प्रयोग के बाद कम हो गया है, फिर भी सुदूर प्रान्तों में जहाँ भाषा के रूप में प्राचीनता के कुछ अवशेष बचे हैं ऐसे प्रयोग मिल सकते हैं। इन्हें ढूँढ़ने का काम विद्यापीठवालों और कालेजों के हिन्दी के अभ्यासियों और शोध में रस लेनेवाले छात्रों का है। कुमाऊँ की बोली में आज भी ऐसा प्रयोग मिलता है। वहाँ बामणाण काम दियो का अर्थ है—ब्राह्मणों को दो। बानराण का अर्थ है—बन्दरों की जाति।—अनु

उपाग अर्थात् 'ओववाइयसुत्त' और 'निरयावलियाओ' और छेदसूत्रों में से 'कप्पसूय' के पहले भाग के विषय में कही जा सकती है। मूल सूत्रों में से बहुत ही अधिक महत्त्व का 'उत्तरज्झबण सुत्त' है, जो प्रायः सम्पूर्ण छन्दों में लिखा गया है। इसके भीतर अति प्राचीन और चित्र-विचित्र रूपों का ताँता बँधा हुआ है। 'दशवेयालियसुत्त' भी महत्त्व का है, किन्तु कई स्थलों पर उसकी भाषा में विकृति आ गई है। एक ही शब्द और कथोपकथन सैकड़ों बार दुहराये जाने के कारण बुरे-से बुरे पाठ की जाँच-पड़ताल पक्की कर देता है, पर सर्वत्र यह जाँच-पड़ताल नहीं हो सकती। कई स्थलों पर पाठ इतना अशुद्ध है कि लाख जतन करने पर भी दीवार से सर टकराना पड़ता है। यह सब होने पर भी वर्तमान स्थिति में अर्धमागधी भाषा का शुद्ध और स्पष्ट रूप सामने आ गया है, क्योंकि यह अर्धमागधी भाषा विशुद्ध रूप से रक्षित परपरा से चली आ रही है और यही सब प्राकृत बोलियों में से सर्वथा भरपूर बोली है।[१] अर्धमागधी प्राकृत पर सबसे पहले 'स्टीवेनसन' ने कल्पसूत्र (पृ० १३१ और उसके बाद) में बहुत अशुद्ध और बहुत कम बातें बताईं। इससे कुछ अधिक तथ्य 'होएफर' ने 'त्साइट्ड्रग डेर विस्सनशाफ्ट डेर स्प्राख' में दिये (३रे खड पेज २६४ और उसके बाद)। 'होएफर' ने विद्वानों का ध्यान अर्धमागधी की मुख्य विशेषताओं की ओर खींचा, जिनमें विशेष उल्लेखनीय य श्रुति, स्वरभक्ति और क का ग में परिवर्तन आदि हैं। इस भाषा के विषय में इसके अध्ययन की जड़ जमा देनेवाला काम वेबर ने किया। 'भगवती के एक भाग पर' नामक पुस्तक के खड १ और २ में, जो बर्लिन से १८६६ और १८६७ में पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुए थे और जो बर्लिन की 'कोएनिगलिशे आकोडमी डेर विस्सनशाफ्टन' के कार्यक्रम की रिपोर्ट देनेवाली पत्रिका के पृष्ठ ३६७-४४४ तक में १८६५ में और उसी रिपोर्ट की १८६६ की सख्या के पेज १५३ ३५२ तक में निकले थे। वेबर ने इसके आरम्भ में जैनों की हस्तलिखित पुस्तकों की लिपि की रूपरेखा पर लिखा है और यह प्रयत्न किया है कि जैन-लिपि मे जो चिह्न काम में लाये जाते हैं, उनकी निश्चित ध्वनि क्या है, इसका निर्णय हो जाय, भले ही इस विषय पर उसने भ्रामक विचार प्रकट किये हों। अपने इस ग्रन्थ में उसने व्याकरण का सारांश दिया है जो आज भी बड़े काम का है तथा अन्त में इस भाषा के नमूनों के बहुत-से उद्धरण दिये हैं। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि, 'भगवती' ग्रन्थ श्वेताम्बर जैनों का पाँचवाँ अग है और उसका शास्त्रीय नाम 'विवाहपन्नत्ति' है और वेबर के व्याकरण में केवल 'भगवती' नाम से ही इस ग्रन्थ के उद्धरण दिये गये हैं। ई म्युलर ने इस विषय पर जो शोध की है, वह इस प्राकृत के ज्ञान को बहुत आगे नहीं बढाती। ई म्युलर की पुस्तक का नाम 'बाइत्रैगे त्सूर ग्रामाटीक डेस जैन-प्राकृत' (जैन प्राकृत के व्याकरण पर कुछ निबन्ध) है, जो बर्लिन में १८७६ ई० में छपी थी। इस पुस्तक में जैन प्राकृत के ध्वनि-तत्त्व के विषय में वेबर की कई भूलें सुधार दी गई हैं। हरमान याकोबी ने 'आयारगसुत्त' की भूमिका पृष्ठ ८-१४ के भीतर जैन-प्राकृत का बहुत छोटा व्याकरण दिया है, जिसमें उसकी तुलना पाली भाषा के व्याकरण से की गई है।

१. इस ग्रन्थ में जो-जो सस्करण उल्लिखित किये गये हैं, उसकी सूची

कि अर्धमागधी भाषा का क्षेत्र शायद ही 'प्रयाग' के बाहर पश्चिम की ओर गया होगा। इस समय तक इस विषय पर हमें जो कुछ तथ्य ज्ञात हैं, उनके आधार पर इस विषय पर कुछ अधिक नहीं लिखा जा सकता।

१ मिसलेनियस एसेज ३१, २१३— २ इन्स्टीट्यूत्सीओनेस पेज १ और ४२ तथा ४३— ३ त्साइटश्रिफ्ट फ्यूर डी विस्सनशाफ्ट डेर स्प्राखे ३ ३०१— ४ कल्पसूत्र पेज १८; इस ग्रन्थ का पेज १९ और एर्त्सेलुंगन की भूमिका के पेज १२ से भी तुलना कीजिए, वेबर फैरत्साइशनिस २ ३ भूमिका के पेज १४ का नोट संख्या ७ — ५. सेक्रेड बुक्स औफ द ईस्ट खंड २२ की भूमिका का पेज ४१— ६ आयारंग सुत्त की भूमिका का पेज ८— ७ भगवती १ ३९९— ८ ग्युर्सिगर गेलैर्तें आन्त्साइगन १८८९, पेज ९११— ९ कल्प सूत्र पेज १७ एर्त्सेलुंगन भूमिका का पेज १२— १ बाइत्रैगे पेज ३ और उसके बाद— ११ याकोबी कल्पसूत्र पेज १५ और उसके बाद; सेक्रेड बुक्स औफ द ईस्ट १२ वाँ खंड भूमिका का पेज ३७ और उसके बाद; वेबर इण्डिशे स्टूडिएन १६ २१८— १२ एर्त्सेलुंगन की भूमिका के पेज १२ में याकोबी की स्वीकारोक्ति इस विषय पर § २४ भी देखिए।

§ १९—वेबर ने अपने इण्डिशे स्टूडिएन के १६ वें खंड (पेज २११ ४७९) और १७ वें खण्ड (पेज १ ९ तक) में अर्धमागधी में रचे गये श्वेताम्बरों के धर्मशास्त्रों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। उसका यह लेख उन उत्तम और सुनिश्चित उद्धरणों से सब तरह सम्पूर्ण हो गया है जो उसने बर्लिन के सरकारी पुस्तकालय के संस्कृत और प्राकृत की हस्तलिखित प्रतियों के सूचीपत्र के खंड २, भाग २ में, पेज ३५५ से ८२१ तक में दिये हैं। इसी सूची के भीतर उन ग्रन्थों के उद्धरण भी हैं जो भारत और यूरोप में अबतक प्रकाशित हो चुके हैं। अबतक व्याकरण-साहित्य के बारे में जो कुछ भी लिखा जा चुका है, वे सब उपयोग में लाये जा चुके हैं। अत्यन्त खेद है कि अभी तक इन ग्रन्थों के आलोचनात्मक संस्करण नहीं निकल पाये हैं। जो मूल पाठ प्रकाशित भी हो पाये हैं वे अर्धमागधी के व्याकरण का अध्ययन करने की दृष्टि से बिलकुल निकम्मे हैं। इस भाषा के गद्य साहित्य का अध्ययन करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण पाठ पहला अंग अर्थात् 'आयारंगसुत्त' है। इसमें अन्य सब ग्रन्थों से अधिक पुरानी अर्धमागधी मिलती है। इसके बाद महत्त्व में विशेष स्थान दूसरे अंग का है अर्थात् 'सूयगडंगसुत्त' का जिसका पहला भाग जो अधिकांशतः छंद में है, भाषा के अध्ययन के लिए बड़े महत्त्व का है। जो स्थान 'आयारंगसुत्त' का गद्य के लिए है, वही स्थान 'सूयगडंग सुत्त' का छन्द की भाषा के लिए है। चौथा अंग अर्थात् 'समवायंग' सबसे बाधक शब्दों के अध्ययन के लिए महत्त्व रखता है। छठा अंग 'नायाधम्मकहाओ' सातवाँ 'उवासगदसाओ' ग्यारहवाँ 'विवागसुय' और पाँचवाँ अंग अथवा 'विवाहपण्णत्ति' के कई भाग एक के बाद एक कहानियों से भरे हैं और अपनी भाषा के द्वारा अन्य सब ग्रन्थों से अधिक संज्ञा और धातु के रूपों पर प्रकाश डालते हैं। यही बात दूसरे

उपांग अर्थात् 'ओववाइयसुत्त' और 'निरयावलियाओ' और छेदसूत्रों में से 'कप्पसूय' के पहले भाग के विषय में कही जा सकती है। मूल सूत्रों में से बहुत ही अधिक महत्त्व का 'उत्तरज्झयण सुत्त' है, जो प्रायः सम्पूर्ण छन्दों में लिखा गया है। इसके भीतर अति प्राचीन और चित्र-विचित्र रूपों का ताँता बँधा हुआ है। 'दशवेयालियसुत्त' भी महत्त्व का है, किन्तु कई स्थलों पर उसकी भाषा में विकृति आ गई है। एक ही शब्द और कथोपकथन सैकडों बार दुहराये जाने के कारण बुरे-से बुरे पाठ की जाँच-पडताल पक्की कर देता है, पर सर्वत्र यह जाँच-पडताल नहीं हो सकती। कई स्थलों पर पाठ इतना अशुद्ध है कि लाख जतन करने पर भी दीवार से सर टकराना पडता है। यह सब होने पर भी वर्तमान स्थिति में अर्धमागधी भाषा का शुद्ध और स्पष्ट रूप सामने आ गया है; क्योंकि यह अर्धमागधी भाषा विशुद्ध रूप से रक्षित परंपरा से चली आ रही है और यही सब प्राकृत बोलियों में से सर्वथा भरपूर बोली है।[१] अर्धमागधी प्राकृत पर सबसे पहले 'स्टीवेनसन' ने कल्पसूत्र (पृ० १३१ और उसके बाद) में बहुत अशुद्ध और बहुत कम बातें बताईं। इससे कुछ अधिक तथ्य 'होएफर' ने 'त्साइटुंग डेर विस्सनशाफ्ट डेर स्प्राख' में दिये (३रे खड पेज ३६४ और उसके बाद)। 'होएफर' ने विद्वानों का ध्यान अर्धमागधी की मुख्य विशेषताओं की ओर खींचा, जिनमें विशेष उल्लेखनीय य श्रुति, स्वरभक्ति और **क** का **ग** में परिवर्तन आदि हैं। इस भाषा के विषय में इसके अध्ययन की जड जमा देनेवाला काम वेबर ने किया। 'भगवती के एक भाग पर' नामक पुस्तक के खड १ और २ में, जो बर्लिन से १८६६ और १८६७ में पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुए थे और जो बर्लिन की 'कोएनिगलिशे आकोडमी डेर विस्सनशाफ्टन' के कार्यक्रम की रिपोर्ट देनेवाली पत्रिका के पृष्ठ ३६७-४४४ तक में १८६५ में और उसी रिपोर्ट की १८६६ की सख्या के पेज १५३ ३५२ तक में निकले थे। वेबर ने इसके आरम्भ में जैनों की हस्तलिखित पुस्तकों की लिपि की रूपरेखा पर लिखा है और यह प्रयत्न किया है कि जैन-लिपि मे जो चिह्न काम में लाये जाते हैं, उनकी निश्चित ध्वनि क्या है, इसका निर्णय हो जाय, भले ही इस विषय पर उसने भ्रामक विचार प्रकट किये हों। अपने इस ग्रन्थ में उसने व्याकरण का सारांश दिया है जो आज भी बडे काम का है तथा अन्त में इस भाषा के नमूनों के बहुत-से उद्धरण दिये हैं। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि 'भगवती' ग्रन्थ श्वेताम्बर जैनों का पाँचवाँ अग है और उसका शास्त्रीय नाम 'विवाहपन्नत्ति' है और वेबर के व्याकरण में केवल 'भगवती' नाम से ही इस ग्रन्थ के उद्धरण दिये गये हैं। ई म्युलर ने इस विषय पर जो शोध की है, वह इस प्राकृत के ज्ञान को बहुत आगे नहीं बढाती। ई म्युलर की पुस्तक का नाम 'बाइत्रैगे त्सूर ग्रामाटीक डेस जैन-प्राकृत' (जैन प्राकृत के व्याकरण पर कुछ निबन्ध) है, जो बर्लिन में १८७६ ई० में छपी थी। इस पुस्तक में जैन प्राकृत के ध्वनि-तत्त्व के विषय में वेबर की कई भूलें सुधार दी गई हैं। हरमान याकोबी ने 'आयारंगसुत्त' की भूमिका पृष्ठ ८-१४ के भीतर जैन-प्राकृत का बहुत छोटा व्याकरण दिया है, जिसमें उसकी तुलना पाली भाषा के व्याकरण से की गई है।

१. इस ग्रन्थ में जो-जो सस्करण उल्लिखित किये गये हैं, उसकी सूची

और ग्रन्थसूचक संक्षिप्त नामों की तालिका इस व्याकरण के परिशिष्ट में देखिए। —२ यह बात उस बुरी परम्परा के कारण हुई है जो कुछ विद्वानों ने जैन-ग्रन्थों के नाम संस्कृत में देकर चलाई है। इन ग्रन्थों के नाम कल्पसूत्र, औपपातिकसूत्र दसवैकालिकसूत्र भगवती जीतकल्प आदि रखे गये हैं। केवल हयर्नले ने बहुत अच्छा अपवाद किया है और अपने संस्करण का नाम 'उवासगदसाओ' ही रखा है। इस व्याकरण में मैंने ये संस्कृत नाम इसलिए दिये हैं कि पाठकों को भाषा संस्करणों के सम्पादकों के दिये गये नाम पुस्तक ढूँढ़ने की सुविधा प्रदान करें और किसी प्रकार का भ्रम न होने पावे। —३. होयर्नले का संस्करण जो बिबलिओथेका इण्डिका में कलकत्ते से १८९० ई० में छपा है जैन ग्रन्थों का केवल एकमात्र संस्करण है, जिसके पाठ और टीका की आलोचनात्मक दृष्टि से शोध की गई है। ये पाठ बहुधा नाममात्र भी समझ में नहीं आते, जब तक कि इनकी टीका से काम न उठाया जाय।—४ पिशल : त्साइटुंग डेर मौर्गेन लैण्डिशन गेजेलशाफ्ट ५२ पृष्ठ ९५।

§ २० —श्वेताम्बरों के जो ग्रन्थ धर्मशास्त्र से बाहर के हैं, उनकी भाषा अर्धमागधी से बहुत भिन्नता रखती है। याकोबी ने जैसा कि हम पहले (§ १६ में) उल्लेख कर चुके हैं, इस प्राकृत को 'जैन महाराष्ट्री' नाम से संबोधित किया है। इस से भी अच्छा नाम संभवतः जैन शौरसेनी होता और इसके पहले याकोबी ने इस भाषा का यह नाम रखना उचित समझा था'। यह नाम तभी ठीक बैठता है जब हम यह मान लें कि महाराष्ट्री और शौरसेनी ऐसी प्राकृत बोलियाँ थीं, जो बहुत निकट से सम्बन्धित थीं; पर इस बात के प्रमाण अभी तक नहीं मिले हैं। इसलिए हमें जैन महाराष्ट्री नाम ही स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह बोली महाराष्ट्री से बहुत अधिक मिलती-जुलती है भले ही उसकी महाराष्ट्री से सोलहों आने समानता न हो। याकोबी का यह कहना पूर्णतया भ्रामक है कि हेमचन्द्र द्वारा वर्णित महाराष्ट्री जैन-महाराष्ट्री है और यह हाल, सेतुबन्ध आदि काव्यों तथा अन्य नाटकों में व्यवहार में लाई गई महाराष्ट्री से नहीं मिलती-जुलती। हेमचन्द्र के ग्रन्थों में दिये गये उन उदाहरणों से जो उन प्राचीन ग्रन्थों से मिलाये जा सकते हैं और जिनसे कि वे लिये गये हैं यह स्पष्ट हो जाता है कि ये उद्धरण हाल, रावणवहो, गउडवहो, विषमबाणलीला और कर्पूरमंजरी से उद्धृत किये गये हैं। हेमचन्द्र ने तो केवल यही हेर-फेर किया है कि जैनों की हस्तलिखित प्रतियों में, जो जैन-लिपि काम में लाई जाती थी (§ १५), उसका व्यवहार अपने ग्रन्थों में भी किया है। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि हेमचन्द्र ने जैनों के अर्धमागधी भाषा में लिखे गये ग्रन्थों के अलावा वे विशेष जैन कृतियाँ भी देखी थीं जो जैन महाराष्ट्री में लिखी गई थीं। कम-से-कम इतना तो हम जान जाते हैं कि हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में जो नियम बताये हैं, उनका पूरा समाधान जैन महाराष्ट्री से नहीं होता और न वे उसपर पूरी तरह लागू ही होते हैं। एक और बात पर भी ध्यान देना उचित है, वह यह कि जैन महाराष्ट्री पर अर्धमागधी अपना प्रभाव डाले बिना न रही। ऊपर

(§ १८ मे) अर्धमागधी की जो विशेषताएँ बताई गई हैं, उनमें से अधिकाश जैन-महाराष्ट्री में भी मिलती हैं। उदाहरणार्थ, सन्धि व्यजन, त में समाप्त होनेवाले सज्ञा-शब्दों के कर्त्ताकारक में म्, साधारण क्रिया-रूपों की-इत्तु में समाप्ति, त्त्वा (करके) के स्थान पर त्ता, क के स्थान पर ग का हो जाना आदि। विशुद्ध महाराष्ट्री-प्राकृत और जैन-महाराष्ट्री एक नहीं हैं, किन्तु ये दोनों भाषाएँ सब प्रकार से एक दूसरे के बहुत निकट हैं। इसलिए विद्वान् लोग इन दोनों भाषाओं को महाराष्ट्री नाम से सम्बोधित करते हैं। जैन-महाराष्ट्री में सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'आवश्यक कथाएँ' है। इस ग्रन्थ का पहला भाग एर्नेस्ट लौयमान ने सन् १८९७ ई० में लाइप्त्सिख से प्रकाशित करवाया था। इस पुस्तक में कोई टीका न होने से समझने में बडी कठिनाई का सामना करना पडता है। इसके बहुत-से भाग अन्धकारमय लगते हैं। इसपर भी इस पुस्तक के थोडे से पन्ने यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि हमें जैन-महाराष्ट्री प्राकृत की पुस्तकों से बहुत-कुछ नई और महत्त्वपूर्ण सामग्री की आशा करनी चाहिए। विशेषकर शब्द-सम्पत्ति के क्षेत्र में, क्योंकि शब्द-सम्पत्ति के विषय में बहुत-से नये नये और चुनिन्दा तथा उपयुक्त प्रयोग इसमें किये गये हैं। जैन-महाराष्ट्री के उत्तरकालीन ग्रन्थों का समावेश 'हरमान याकोबी' द्वारा प्रकाशित—'औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री, त्सूर आइनफ्यूरुग इन डास स्टूडिउम डेस प्राकृत ग्रामाटीक टैक्स्ट, वोएरतरबुख' (महाराष्ट्री से चुनी हुई कहानियाँ) प्राकृत के अध्ययन में प्रवेश कराने के लिए हुआ है। व्याकरण, मूल पाठ और शब्दकोष जो १८८६ ई० में लाइप्त्सिख से छपा था और इसके आरम्भ में जो व्याकरण-प्रवेशिका है, उसमें वाक्य रचना पर भी प्रकाश डाला गया है। पर यह व्याकरण के उन्हीं रूपों तक सीमित है, जो पुस्तक में दी हुई प्राकृत कहानियों में आये हुए हैं। जैन-महाराष्ट्री के अध्ययन के लिए कक्कुक प्रस्तर-लेखों (§ १०) और कुछ छोटे-छोटे ग्रन्थों का जैसे कि कालकाचार्यकथानक, जो 'त्साइटुग डेर डौयत्शन मौर्गेनलैण्डिशन गेजेलशाफ्ट (जर्मन प्राच्य विद्या-समिति की पत्रिका) के ३४ वें खण्ड में २४७ वे पृष्ठ और ३५ वे में ६७५ और ३७ वें में ४९३ पृष्ठ से छपा है, द्वारावती की पतन की कथा, जो उक्त पत्रिका के ४२ वें खण्ड में ४९३ पृष्ठ से छपी है, और मथुरा का स्तूप जिसके बारे में वियना की सरकारी एकेडेमी की रिपोर्ट में लेख छपा है, 'ऋषभपञ्चाशिका', जो जर्मन प्राच्यविद्यासमिति की पत्रिका के ३३ वें खण्ड में ४४३ पृष्ठ और उसके आगे छपा है तथा १८९० ई० में बम्बई से प्रकाशित 'काव्यमाला' के ७ वें भाग में पृष्ठ १२४ से छपा है। इस भाषा के कुछ उद्धरण कई रिपोर्टों में भी छपे हैं। जैन महाराष्ट्री में एक अलकार ग्रन्थ भी लिखा गया था, जिसके लेखक का नाम 'हरि' था और जिसमें से 'रुद्रट' के 'काव्यालकार' २,१९ की टीका में 'नमिसाधु' ने एक श्लोक उद्धृत किया है[3]।

१ कल्पसूत्र पृष्ठ १८।—२ कल्पसूत्र पृष्ठ १९।—३ पिशल त्साइटुंग डेर मौर्गेन लैण्डिशन गेजेलशाफ्ट ३९, पृष्ठ ३१४। इस ग्रन्थ की १,२ की टीका में 'रुद्र' के स्थान पर 'हरि' पढा जाना चाहिए।

§ २१—दिगम्बर जैनों के धर्म-शास्त्रों की भाषा के विषय में, जो श्वेताम्बर

जैनों की भाषा से बहुत भिन्न[1] नहीं है, हमें अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है। यदि हम इसके विषय में धर्म-शास्त्रों को छोड़ अन्य ऋषियों के ग्रन्थों की भाषा पर विचार करते हैं, तो इसकी ध्वनि के नियमों का जो पता चलता है, वह यह है कि इसमें त के स्थान पर द और थ के स्थान पर ध हो जाता है। यह भाषा श्वेताम्बर जैनों की अर्धमागधी की अपेक्षा मागधी के अधिक निकट है। दिगम्बर जैनों के उत्तरकालीन ग्रन्थ उक्त तथ्य को सिद्ध करते हैं। याकोबी द्वारा वर्णित 'गुर्वावलि' की गाथाएँ[2] और भण्डारकर[3] द्वारा प्रकाशित 'कुन्द कुन्दाचार्य' के 'पवयणसार' और कार्तिकेय स्वामिन्' की 'कत्तिगेयाणुप्पेक्खा' से यह स्पष्ट हो जाता है। ध्वनि के ये नियम शौरसेनी में भी मिलते हैं और अ में समाप्त होनेवाले संज्ञा-शब्दों के कर्ता एकवचन का रूप दिगम्बर जैनों की उत्तरकालीन भाषा में ओ में समाप्त होता है। इसलिए हम इस भाषा को जैन-शौरसेनी कह सकते हैं। जिस प्रकार ऊपर यह बताया जा चुका है कि जैन महाराष्ट्री नाम का चुनाव समुचित न होने पर भी काम चलाऊ है, वही बात जैन शौरसेनी के बारे में और भी जोर से कही जा सकती है। इस विषय पर अभी तक जो थोड़ी-सी शोध हुई है, उससे यह बात विदित हुई है कि इस भाषा में ऐसे रूप और शब्द हैं, जो शौरसेनी में बिल्कुल नहीं मिलते; बल्कि इसके विपरीत वे रूप और शब्द कुछ महाराष्ट्री में और कुछ अर्धमागधी में व्यवहृत होते हैं। ऐसा एक प्रयोग महाराष्ट्री की सप्तमी (अधिकरण) का है। महाराष्ट्री में अ में समाप्त होनेवाले संज्ञा-शब्दों का सप्तमी का रूप -म्मि जोड़ने से बनता है, जैसा कि दाणम्मि, सुहम्मि असुहम्मि णाणम्मि, दंसणमुहम्मि (पवय १८३, ६९; १८५, ६१; १८७, ११); कालम्मि (कत्तिगे ४ ०, ३२२); और संस्कृत ष्य के स्थान पर च्च का प्रयोग (पवयण १८१ ४४)। कृ धातु के रूप भी महाराष्ट्री से मिलते हैं और कहीं-कहीं इससे नहीं मिलते। 'कत्तिगेयाणुप्पेक्खा' ३९९, ३१ और ३३; ४ २ ३९९।३६७।३७ और ३७१; ४ १, ३८५; ४ ४, ३८८ ३८९ और ३९१ में महाराष्ट्री के अनुसार कुणदि आया है और कहीं-कहीं कृ धातु के रूप अर्धमागधी के अनुसार कुव्वदि होता है जैसा कि कत्तिगेयाणुप्पेक्खा ३९९, ३१३; ४ ३९९; ४ १ ३४ में दिया गया है और ४ १, ३८४ में कुव्वदे रूप है। इन रूपों के साथ-साथ शौरसेनी के अनुसार कृ धातु का करेदि भी हो गया है (पवयण ३८४, ५; कत्तिगे ४ ३२४; ४ २, ३९३; ४ १ ३७७।३७८। ३८१ और महाराष्ट्री जैनमहाराष्ट्री तथा अर्धमागधी करदि भी आया है (४, ३३२)। इस धातु का कर्मवाच्य कीरदि मिलता है जो महाराष्ट्री और जैन-महाराष्ट्री रूप है (कत्तिगे ३९६, ३२; ४ १ ३४२।३५)। सं॰ कृत्वा (करके) के स्थान में त्ता आता है जो अर्धमागधी रूप है। उदाहरणार्थ सं॰—त्वा के स्थान पर—त्ता हो जाता है। (पवयण ३८५, ६४ कत्तिगे ४ ३०४); जाणित्ता (पवयण ३८ ६८; कत्तिगे ४ १ ३४।३४२ और ३५); पियाणित्ता (पवयण ३८७ २१); णयमित्ता विदइत्ता (पवयण ३८६ ६ और ७); णिद्दिसित्ता (कत्तिगे ४ १ ३३९); संस्कृत कृत्वा (करके) के स्थान में कभी-कभी -य

भी होता है, जैसे—भविर्यं (पवयण० ३८०, १२, ३८७, १२), आपिच्छ संस्कृत आपृच्छ के स्थान पर आया है (पवयण० ३८६, १), आसिज्ज, आसे ज्ज जो संस्कृत आसाद्य के स्थान पर आया है (पवयण० ३८६, १ और ११), समासिज्ज (पवयण० ३७९, ५), गहिर्यं (कत्तिगे० ४०३, ३७३), पप्प (पवयण० ३८४, ४९) और यही क्त्वा (करके), शब्द के अन्त में-च्चा से भी व्यक्त किया जाता है, जैसे—किच्चा (पवयण० ३७९, ४), (कत्तिगे० ४०२, ३५६।३५७।३५८।३७५। ३७६), ठिच्चा (कत्तिगे० ४०२, ३५५), सो च्चा (पवयण० ३८६, ६) । उक्त रूपों के अतिरिक्त क्त्वा के स्थान में-दूण, कादूण, णेदूण काम में आते है (कत्तिगे० ४०३, ३७४ और ३७५), अशुद्ध रूपों में इसी के लिए-ऊण भी काम में लाया जाता है। जैसे—जाइऊण, गमिऊण, गहिऊण, भुजाविऊण (कत्तिगे० ४०३, ३७३।३७४।३७५ और ३७६)। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में इस प्रयोग के लिए जो—त्ता और दूण आदि प्रत्यय दिये है, जो नाटकों की शौरसेनी में कहीं नहीं पाये जाते है, उनके कारण दिगम्बर ग्रन्थों के ऐसे प्रयोग रहे होंगे (§ २२,२६६,३६५, ४७५, ५८२ और ५८४)। इस भाषा में अर्धमागधी पप्पोदि (= संस्कृत प्राप्नोति) (पवयण० ३८९, ५) के साथ-साथ साधारण रूप पावदि भी मिलता है (पवयण० ३८०, ११), (कत्तिगे० ४००, ३२६, ४०३, ३७०), शौरसेनी जाणादि (पवयण० ३८२, २५) के साथ-साथ जाणदि भी आया है (कत्तिगे० ३९८, ३०२ और ३०३, ४००, ३२३) और इसी अर्थ में णादि भी है (पवयण० ३८२, २५)। उक्त शब्दों के साथ मुणदि भी काम में लाया गया है (कत्तिगे० ३९८, ३०३; ३९९, ३१२।३१६ और ३३७) मुणेदव्वो भी आया है (हस्तलिखित प्रति में ०एय० है, पवयण० ३८०, ८) । यह बात विचित्र है कि इसमें महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी के रूप एक दूसरे के पास पास आये है । इस विषय पर जो सामग्री अभी तक प्राप्त हुई है, उससे यही निदान निकलता है कि जैन महाराष्ट्री से जैन-शौरसेनी का अर्धमागधी से अधिक मेल है और जैन-शौरसेनी आंशिक रूप मे जैन महाराष्ट्री से अधिक पुरानी है । इन दोनों भाषाओं के ग्रन्थ छन्दों में हैं ।

१ भण्डारकर, रिपोर्ट ऑन द सर्च फौर सैंस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स् इन द बौम्बे प्रेजीडेंसी ड्यूरिंग द ईयर १८८३-८४ (बौम्बे १८८७), पेज १०६ और उसके बाद वेबर, फेर्त्साइशनिस २, २, ८२३— २ कल्पसूत्र पेज ३०— ३ इसी ग्रन्थ के पेज ३७९ से ३८९ तक और ३९८ से ४०४ तक। ये उद्धरण पेजों और पदों के अनुसार दिये गये हैं। इस विषय पर पीटर्सन की फोर्थ रिपोर्ट के पेज १४२ और उसके बाद के पेजों की भी तुलना कीजिए— ४ हस्तलिखित प्रतियों में शौरसेनी रूप के स्थान पर बहुधा महाराष्ट्री रूप दिया गया है।

§ २२—प्राकृत बोलियों में जो बोलचाल की भाषाएँ व्यवहार में लाई जाती हैं, उनमें सबसे प्रथम स्थान शौरसेनी[१] का है। जैसा कि उसका नाम स्वयं बताता है, इस प्राकृत के मूल में शौरसेन में बोली जानेवाली बोली है । इस शौरसेन की राजधानी मथुरा थी[२] । भारतीय नाट्यशास्त्र १७,४६ के अनुसार नाटकों की बोलचाल मे शौरसेनी

जैनों की भाषा से बहुत भिन्न नहीं है, इसमें अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है। यदि हम इसके विषय में धर्म-शास्त्रों को छोड़ अन्य ऋषियों के ग्रन्थों की भाषा पर विचार करते हैं, तो इसकी ध्वनि के नियमों का जो पता चलता है, वह यह है कि इसमें त के स्थान पर द और थ के स्थान पर ध हो जाता है। यह भाषा श्वेताम्बर जैनों की अर्धमागधी की अपेक्षा मागधी के अधिक निकट है। दिगम्बर जैनों के उत्तरकालीन ग्रन्थ उक्त तथ्य को सिद्ध करते हैं। याकोबी द्वारा वर्णित 'गुरुावलि' की गाथाएँ' और भण्डारकर' द्वारा प्रकाशित 'कुन्द कुन्दाचार्य' के 'पवयणसार' और कार्तिकेय स्वामिन्' की 'कत्तिगेयाणुप्पेक्खा' से यह स्पष्ट हो जाता है। ध्वनि के ये नियम शौरसेनी में भी मिलते हैं और अ में समाप्त होनेवाले संज्ञा-शब्दों के कर्ता एकवचन का रूप दिगम्बर जैनों की उत्तरकालीन भाषा में ओ में समाप्त होता है। इसलिए हम इस भाषा को जैन-शौरसेनी कह सकते हैं। जिस प्रकार ऊपर यह बताया जा चुका है कि जैन महाराष्ट्री नाम का चुनाव समुचित न होने पर भी काम चलाऊ है, यही बात जैन शौरसेनी के बारे में और भी जोर से कही जा सकती है। इस विषय पर अभी तक जो थोड़ी-सी शोध हुई है, उससे यह बात विदित हुई है कि इस भाषा में ऐसे रूप और शब्द हैं, जो शौरसेनी में बिल्कुल नहीं मिलते बल्कि इसके विपरीत ये रूप और शब्द कुछ महाराष्ट्री में और कुछ अर्धमागधी में व्यवहृत होते हैं। ऐसा एक प्रयोग महाराष्ट्री की सप्तमी (अधिकरण) का है। महाराष्ट्री में अ में समाप्त होनेवाले संज्ञा-शब्दों का सप्तमी का रूप-म्मि जोड़ने से बनता है, जैसा कि धम्मम्मि सुहम्मि असुहम्मि णाणम्मि, दंसणमुहम्मि (पवय० ३८१, ६१ ३८५, ६१ ३८७ ११), कालम्मि (कत्तिगे ४ ३२२); और संस्कृत स्व के स्थान पर प्प का प्रयोग (पवयण ३८१, ४४)। कृ धातु के रूप भी महाराष्ट्री से मिलते हैं और कहीं-कहीं इससे नहीं मिलते। 'कत्तिगेयाणुप्पेक्खा' ३९९ ३१ और ४०३; ४ २, ४०३।३६७।३७ और ४०१; ४ ३, ४०५; ४ ४, ४०८ ४०९ और ४११ में महाराष्ट्री के अनुसार कुणदि आया है और कहीं-कहीं कृ धातु के रूप अर्धमागधी के अनुसार कुव्वदि होता है जैसा कि कत्तिगेयाणुप्पेक्खा ३९९, ३११; ४ , ४०३; ४ १ ३४ में दिया गया है और ४ ३, ४०४ में कुव्वदे रूप है। इन रूपों के साथ-साथ शौरसेनी के अनुसार कृ धातु का करेदि भी हो गया है (पवयण० ३८४, ५९; कत्तिगे ४ , ३२४; ४ २, ३३९ ४ ३, ३७७।३७८। ३८१ और महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री तथा अर्धमागधी करदि भी आया है (४ ३३९)। इस धातु का कर्मवाच्य कीरदि मिलता है जो महाराष्ट्री और जैन-महाराष्ट्री रूप है (कत्तिगे ३९५, ३२ ; ४ १, ३४२।३५)। सं० कत्वा (करके) के स्थान में त्ता आता है जो अर्धमागधी रूप है। उदाहरणार्थ सं०—त्वा के स्थान पर—त्ता हो जाता है। (पवयण ३८५, ६४; कत्तिगे ४ ३७४), जाणित्ता (पवयण ३८५ ६८; कत्तिगे ४ १, ३४ ।३४२ और ३५) वियाणित्ता (पवयण ३८७ २१); पयसित्ता णिरुद्धित्ता (पवयण ३८९ १ और ७) णिह णित्ता (कत्तिगे ४ १, ३३९); संस्कृत कत्वा (करके) के स्थान में कभी-कभी —य

अनेक पात्र इसी प्राकृत में बातचीत करते हैं। प्राचीन काल के व्याकरणकार शौरसेनी प्राकृत पर बहुत थोड़ा लिख गये हैं। वररुचि ने १२,२ में कहा है कि इसकी प्रकृति संस्कृत है अर्थात् इसकी आधारभूत भाषा संस्कृत है। वह अपने ग्रन्थ में शौरसेनी के विषय में केवल ३२ नियम देता है, जो इस ग्रन्थ की सभी हस्तलिखित प्रतियों में एक ही प्रकार के पाये जाते हैं[५] और १२,३२ में उसने यह कह दिया है कि शौरसेनी प्राकृत के और सब नियम महाराष्ट्री-प्राकृत के समान ही हैं—**शेषम् महाराष्ट्रीवत्**। हेमचन्द्र ने ४,२६०से २८६ तक इस प्राकृत के विषय में २७ नियम दिये हैं, इनमें से अन्तिम अर्थात् २७ वाँ नियम **शेषम् प्राकृतवत्** है, जो वररुचि के १२,३२ से मिलता है, क्योंकि प्राकृत भाषाओं में महाराष्ट्री ही श्रेष्ठ और विशुद्ध प्राकृत मानी गई है। अन्य नियमों में वररुचि और हेमचन्द्र बिलकुल अलग अलग मत देते हैं, जिसका मुख्य कारण यह मालूम पड़ता है कि हेमचन्द्र की दृष्टि के सामने दिगम्बर जैनों की शौरसेनी भी थी (§ २१), जिसकी विशेषताओं को भी जैनियों ने नाटकों की शौरसेनी के भीतर घुसेड़ दिया। इस कारण शुद्ध शौरसेनी का रूप अस्पष्ट हो गया और इससे उत्तरकालीन लेखकों पर भ्रामक प्रभाव पड़ा[६]। 'क्रमदीश्वर' ५,७१–८५ में शौरसेनी के विषय में बहुत कम बताया गया है, इसके विपरीत उत्तरकालीन व्याकरणकार शौरसेनी पर अधिक विस्तार के साथ लिखते हैं। पृष्ठ ६५–७२ तक में 'मार्कण्डेय' ने इस विषय पर लिखा है और ३४ वे पन्ने के बाद 'रामतर्कवागीश' ने भी इसपर लिखा है। यूरोप में उक्त दोनों लेखकों के ग्रन्थों की जो हस्तलिखित प्रतियाँ पाई जाती हैं, वे इतनी बुरी हैं कि उन्होंने जो कुछ लिखा है, उनके केवल एक अंशमात्र का अर्थ समझ में आ पाया है। इन नियमों की जाँच-पड़ताल बहुत कठिन हो जाती है, क्योंकि संस्कृत-नाटकों के जो संस्करण छपे हैं, उनमें से अधिकांश में आलोचना-प्रत्यालोचना का नाम नहीं है। जो संस्करण भारत में छपे हैं, उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जो किसी काम में आ सकते हों। हाँ, भण्डारकर ने १८७६ में बम्बई से 'मालती-माधव' का जो संस्करण निकाला है, वह आलोचनात्मक है। यूरोप में इन नाटकों के जो पाठ प्रकाशित हुए हैं, वे भाषाओं के अध्ययन की दृष्टि से नाममात्र का महत्त्व[७] रखते हैं। इन नाटकों के हाल में जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उनमें भी कोई प्रगति नहीं दिखाई देती। तैलंग के १८८४ ई० में बम्बई से प्रकाशित 'मुद्राराक्षस' के संस्करण से संवत् १९२६ (= सन् १८६९ ई०) में कलकत्ते से प्रकाशित मजुमदार सिरीज में जो 'मुद्रा-राक्षस' तारानाथ तर्कवाचस्पति ने सम्पादित किया है, वह अच्छा है और बौल्लें नसेंन ने १८७९ ई० में लाइप्त्सिख से 'मालविकाग्निमित्र' का जो संस्करण निकलवाया है, वह दुर्भाग्य से बहुत बुरा है। जो हो, मैंने छपे हुए ग्रन्थों और हस्तलिखित प्रतियों इन दोनों से ही लाभ उठाया है, कहीं-कहीं हस्तलिखित प्रतियों के पाठ में बहुत शुद्धता देखने में आती है, इसलिए उनका प्रयोग भी अनिवार्य हो जाता है। अनेक स्थलों पर तो एक ही नाटक के अधिक-से-अधिक पाठों को देखने से ही यह सम्भव हो सका कि किसी निदान पर पहुँचा जाय[८]। कई संस्करण भाषाओं के मिश्रण का विचित्र नमूना दिखाते हैं। अब देखिए कि 'कालेयकुतूहल' के प्रारम्भ में ही ये प्राकृत

भाषा का आश्रय लेना चाहिए और इसी ग्रन्थ के १७,५१ के अनुसार नाटकों में महिलाओं और उनकी सहेलियों की बोली शौरसेनी होनी चाहिए। 'साहित्यदर्पण' के पृष्ठ १७२,२१ के अनुसार शिक्षित स्त्रियों की बातचीत नाटकों के भीतर शौरसेनी प्राकृत में रक्खी जानी चाहिए, न कि नीच जाति की स्त्रियों की और इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १७३,११ के अनुसार उन दासियों की बातचीत, जो छोटी नौकरियों में नहीं हैं, तथा बच्चों, हिजड़ों, छोटे मोटे ज्योतिषियों, पागलों और रोगियों की बोलचाल भी इसी भाषा में कराई जानी चाहिए। 'दशरूप' २,६ में बताया गया है कि स्त्रियों का वार्तालाप इसी प्राकृत में कराया जाना चाहिए। 'भरत १७,५१; 'साहित्यदर्पण' १७३,४ (स्टेन्सलर-द्वारा सम्पादित 'मृच्छकटिक' की भूमिका के पृष्ठ ५ के अनुसार जो गौडबोले द्वारा सम्पादित और बम्बई से प्रकाशित 'मृच्छकटिक' के पृष्ठ ४९१ के बराबर है, उसमें पृथ्वीधर की टीका में बताया गया है कि विदूषक तथा अन्य हँसोड़ व्यक्तियों को प्राच्या में वार्तालाप करना चाहिए। 'मार्कण्डेय ने लिखा है कि प्राच्या का व्याकरण शौरसेनी के समान ही है और उससे निकला है—प्राच्यायाः सिद्धिः शौरसेन्याः। मार्कण्डेय ने ऊपर लिखा मत भरत से लिया है। मार्कण्डेय की हस्तलिखित प्रतियाँ इतनी अस्पष्ट और न पढ़ी जाने लायक हैं कि उसने प्राच्या की विशेषताओं के विषय में जो कुछ लिखा है उसका कुछ अर्थ निकालना कठिन ही नहीं, असम्भव है। दूसरी बात यह है कि इस विषय पर उसने बहुत कम लिखा है और जो कुछ लिखा है, उसमें भी अधिकांश शब्दों का संग्रह ही है। प्राच्या बोली में मूर्ख के स्थान पर मुरुक्ख व्यवहार में लाया जाना चाहिए। सम्बोधन एक वचन भवती का भोदि होना चाहिए पक्ष के लिए एक ऐसा रूप+ बताया गया है जो शौरसेनी से बहुत भिन्न है। का में समाप्त होनेवाले शब्दों के सम्बोधन एक वचन में *प्लुति होनी चाहिए। अपना सन्तोष प्रकट करने के लिए विदूषक को ही ही भो करना चाहिए, कोई अद्भुत बात या घटना होनेपर (अद्भुते†) ही माणहे कहना चाहिए और गिरने-पड़ने की हालत में अविद का व्यवहार करना चाहिए। ऐसा भी आभास मिलता है कि वयम् पद और सम्भवतः भविष्यकाल के विषय में भी उसने एक एक नियम दिये हैं। पृथ्वीधर ने इस प्राकृत की विशेष पहिचान यह बताई है कि इसमें प्रचुरता का स्वार्थे का प्राधान्य है। हेमचन्द्र ४,२८५ में ही ही विदूषकस्य सूत्र में बताता है कि विदूषक शौरसेनी प्राकृत बोलचाल के व्यवहार में लाता है और ४,२८२ में ही माणहे विस्मय निर्वेद में बताता है कि ही माणहे भी शौरसेनी है और उसकी यह बात बहुत पक्की है। विदूषक की भाषा भी शौरसेनी है इसी प्रकार नाटकों में आनेवाले

\+ मार्कण्डेय ने लिखा है— वहुमक्खिभिद्धिरप्पउमिल अर्थात् प्राच्या में कोई कोई बहुत बोलते हैं। और 'वच्चे तु वच्चु वा' पाठ के स्थान पर वच्चु शब्द आता है। वच्चु का वैदिक रूप वग्नु है जिसका अर्थ बकनेवाला है। —अनु

• दीर्घ में भी यह बाबा अधिक। —अनु

† मेरे पास मार्कण्डेय की जो हस्तलिखित प्रति है उसमें अद्भुदे(त)ही माणहे पाठ है। और उदाहरण दिया गया है—'हीमाणहे ! अविदुणं असुवस्सपं णु ईदिसं रूवं। म्—अनु

बन गया है, यही हाल दक्षिण भारतीय 'विक्रमोर्वशी'[९] का भी है जो किसी प्रकार की आलोचना के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी यह सभव हो गया है कि शौरसेनी प्राकृत का रूप पूर्णतया निश्चित किया जाय। ध्वनि-तत्त्व के विषय में सबसे बडी विशेषता यह है कि त के स्थान पर द और थ के स्थान पर ध हो जाता है (§ २०३)। सज्ञा और धातु के रूपों का जहाँ तक सम्बन्ध है, इसमें रूपो की वह पूर्णता नहीं है जो महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और जैन-शौरसेनी में है। इस कारण अ में समाप्त होनेवाले सज्ञा शब्दों में केवल अपादान एकवचन में दो और अधिकरण (सप्तमी) एकवचन में ए लगाया जाता है। बहु-वचन में सभी सज्ञा शब्दों के अन्त में करण कारक (तृतीया), सम्बन्ध (षष्ठी) और अधिकरण में भी अनुनासिकों का प्रयोग होता है। इ और उ में समाप्त होने वाले सज्ञा शब्दों के सम्बन्ध कारक एकवचन के अन्त में केवल णो आता है -स्स नहीं आता। क्रिया में आत्मनेपद का नाम मात्र का चिह्न भी नहीं रह गया है। इच्छार्थक धातुओ के रूपों के अन्त में एअ और ए रहता है। बहुत सी क्रियाओं के रूप महाराष्ट्री रूपों से भिन्न होते हैं। भविष्य काल के रूपों के अन्त में इ लगता है, कर्मवाच्य के अन्त में ईअ जोडा जाता है। सस्कृत आदि के स्थान पर महाराष्ट्री भाषा के नियमों के विपरीत, धातु के रूप के अन्त में इय लगाया जाता है (= सस्कृत य) आदि[१०]। शौरसेनी भाषा धातु और शब्द-रूपावली तथा शब्द सम्पत्ति में सस्कृत के बहुत निकट है और महाराष्ट्री प्राकृत से बहुत दूर जा पडी है। यह तथ्य 'वररुचि' ने बहुत पहले ताड लिया था।

१ उसे कई विद्वान सूरसेनी भी कहते हैं। वह बहुधा सूरसेनी नाम से लिखी गई है जो अशुद्ध है— २ लास्सन, इन्डिशे आल्टरटूम्स कुण्डे १[२], १५८ नोट २, ७९६ नोट २ २[२], ५१२, कर्निंहम, द एन्सेण्ट जिओग्रैफी औफ इण्डिया (लण्डन १८७१) १, ३७४— ३ पिशल, डी रेसेन्सीओनन डेर शकुन्तला (ब्रासलौ १८७५) पृष्ठ १६— ४ पिशल द्वारा सम्पादित हेमचन्द्र १,२६ में पिशल की सम्मति— ५ पिशल कून्सबाइत्रैगे ८,१२९ और उसके बाद— ६ लौयमान, इन्डिशे स्टुडिएन १७,१३३ के नोट संख्या १ से स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि हेमचन्द्र स्वय श्वेताम्बर जैन था। उसने दिगम्बर जैनों के ग्रन्थों से काम लिया है— ७ पिशल, हेमचन्द्र की भूमिका १,११। खेद है कि १८७७ ई० से अब तक किसी विद्वान् ने उस मत का सशोधन नहीं किया। व्याकरण के रूपों के प्रतिपादन के लिए प्रमुख ग्रन्थ स्टेन्त्सलर द्वारा सम्पादित मृच्छकटिक, पिशल द्वारा सम्पादित शकुन्तला और बौल्लॅनसॅन द्वारा सम्पादित विक्रमोर्वशी से सहायता ली गई है, इसके बाद सहायता लेने योग्य ग्रन्थ कापे-लर द्वारा सम्पादित रत्नावली है, जो वास्तव में इस सस्कृत नाटक का सर्वोत्तम संस्करण है, किन्तु खेद है कि इसमें पाठ-भेद नहीं दिये गये हैं और इसका सम्पादन रूखे ढंग से किया गया है। कोनो ने कर्पूरमजरी का जो उत्तम सस्करण निकाला है, उसके प्रूफों से ही मैंने सहायता ली है। जैसा कि मैं ऊपर बता चुका हूँ राज-

शब्द आये हैं—जो किं ति मुध इकारिदो इगे। मं गुरु यणिह। (पाठ यहाँ ऐ है) मुद्दा माहेह। इस वाक्य में तीन बोलियाँ हैं—इकारिदो शौरसेनी है, इगे मागधी, और यणिह तथा माहेह महाराष्ट्री है। मुकुन्दानन्द भाण ५८, १४ और १५ में जो पाठ है, वह महाराष्ट्री और शौरसेनी का मिश्रण है। उसमें शौरसेनी करुण की जगह में ही महाराष्ट्री शब्द काउण आया है। इस सम्बन्ध में अधिक सम्भव यह मालूम पड़ता है कि यह इन संस्करणों की भूल है। अन्य कई स्थलों में स्वयं कवि लोग यह बात न समझ पाये कि भाषाओं को मिलाकर खिचड़ी भाषा में लिखने से कैसे बचा जाय। इसका मुख्य कारण यह था कि वे भाषाओं में भेद न कर सके। 'राजशेखर' (§ ११) और 'राजशेखर' में यह भूल स्पष्ट देखने में आती है। 'कर्पूरमंजरी' का जो आलोचनात्मक संस्करण कोनो ने निकाला है उससे यह ज्ञात होता है कि राजशेखर की पुस्तकों में भाषा की जो अशुद्धियाँ हैं, उनका सारा दोष हस्तलिखित प्रतियों के लेखकों के सर पर ही नहीं मढ़ा जा सकता; बल्कि ये ही अशुद्धियाँ उसके दूसरे ग्रंथ 'बाल रामायण' और 'विद्धशालभंजिका' में भी दुहराई गई हैं। कोनो द्वारा सम्पादित कर्पूरमंजरी ७६ में जो बम्बइया संस्करण का ११२ है, सब हस्तलिखित प्रतियाँ घें रूप लिखती हैं जो शौरसेनी भाषा में एक ही शुद्ध रूप में अर्थात् गें लिखा जाता है। यह भूल कई बार दुहराई गई है (§ ५८४)। कोनो (१,५ = बम्बइया संस्करण ११५) में सम्प्रदान में सुहाम दिया गया है। यह अशुद्ध, शौरसेनी है (§ ३६१)। शौरसेनी भाषा पर चोट पहुँचानेवाला प्रयोग मुज्झ है (कोनो १ १ = बं० सं० १४,७ और कोनो १ ,१ = बं० सं० १४,८) तथा मुज्झ भी इसी श्रेणी में आता है (§ ४२१ और ४१८ क्रमशः) प्रिय (§ १४१) के स्थान पर प्प (कोनो १४,२ = बं० सं० १७,५) लिखा गया है। सप्तमी रूप मज्झम्मि (कोनो १,१ = बं० सं० ९,५) मज्झ के लिए आया है और कव्यम्मि (कोनो ११,८ = बं० सं० १६,१) कव्ये के लिए आया है (§ ३६६ अ)। अपादान रूप पामराहिंतो (कोनो २ ,१ = बं० सं० २२,) पामरादो (§ ३६५) के लिए आया है आदि। राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में देशी शब्दों का बहुत प्रयोग किया है, उसकी महाराष्ट्री में कई गलतियाँ हैं जिनकी ओर मार्कण्डेय' ने ध्यान खींचा है—राजशेखरस्य महाराष्ट्र्याः प्रयोग दर्शनेषु अपि दृश्यत इति केचित्। जिसका अर्थ यह मालूम पड़ता है कि इसमें द के स्थान पर त कहीं-कहीं छूट गया है। उसके नाटकों की हस्तलिखित प्रतियों में, बहुधा शौरसेनी द के स्थान पर त मिलता है। शकुन्तला नाटक के देवनागरी और दक्षिण भारतीय पाठों में नाना प्राकृत भाषाएँ परस्पर में मिल गई हैं और इस कारण इन भाषाओं का और अंतक का

भारतीय के भिन्न का अर्थ में है। पुरानी हिंदी-रूप ओहि पर का रूपान्तर है। वैदी का हिंदि और भिन्न हिंद तथा भिन्न रूपों में प्राकृत भाषाओं में आया है। इसमें ओहि' और वे दोनों रूप मिलते। और है कि हिंदी के विद्यार्थी वे इस ग्रंथ में नहीं के बराबर ध्यान देते हैं।—अनु

१ यह प्राचीन हिन्दी भाषा के प्राचीन रूपों में मिलता है और कुमाऊँ में जहाँ आज भी अविकृत प्राकृत का बोलचाल में वर्तमान है उसका प्रचलन है।—अनु

भीतर सिद्धार्थक और समिद्धार्थक, जो चाण्डाल के वेश में अपना पार्ट खेलते हैं, मागधी बोलते हैं और ये ही दो पात्र जब पृष्ठ २२४ और उसके बाद के पृष्ठों में दूसरे पात्र का पार्ट खेलते हे तब शौरसेनी प्राकृत में बातचीत करने लगते हैं। 'ललित-विग्रहराज' नाटक में ५६५ से ५६७ के भीतर भाट और चर, ५६७ पृष्ठ में मागधी बोलते हैं और ५६७ तथा उसके बाद के पृष्ठ में ये एकाएक शौरसेनी भी बोलने लगते हैं। 'वेणीसंहार' नाटक में पृष्ठ ३३ से ३६ के भीतर राक्षस और उसकी स्त्री, 'मल्लिकामारुतम्' के पृष्ठ १४३ और १४४ में महावत, 'नागानन्द' नाटक में पृष्ठ ६७ और ६८ में और 'चैतन्यचन्द्रोदय' में पृष्ठ १४९ में सेवक और 'चण्डकौशिकम्' में पृष्ठ ४२ और ४३ में धूर्त, पृष्ठ ६० ७२ के भीतर चाण्डाल, 'धूर्तसमागम' के १६ वे पृष्ठ में नाई, 'हास्यार्णव' के पृष्ठ ३१ में साधुहिंसक, 'लटकमेलक' के पृष्ठ १२ और २५ तथा उनके बाद दिगम्बर जैन, 'कंसवध' के पृष्ठ ४८ ५२ में कुबडा और 'अमृतोदय' पृष्ठ ६६ में जैन साधु मागधी बोलते है। 'मृच्छकटिक' के अतिरिक्त मागधी में कुछ छोटे-छोटे खण्ड लिखे हुए मिलते हैं और इनके भारतीय सस्करणों की यह दुर्दशा है कि इनमें मागधी भाषा का रूप पहचाना ही नहीं जा सकता। खेद है कि बम्बई की सस्कृत सिरीज में 'प्रबोधचन्द्रोदय' छापने की चर्चा बहुत दिनों से सुनने में आ रही है, पर वह अभी तक प्रकाशित न हो सका। ब्रौकहाउस ने इसका जो सस्करण प्रकाशित किया है, वह निकम्मा है। पूना, मद्रास और बम्बई के सस्करण इससे अच्छे हैं। इसलिए मैंने सदा इनकी सहायता ली है। इन सब ग्रन्थों से 'ललितविग्रहराज' नाटक में जो मागधी काम में लाई गई है, वह व्याकरणकारों के नियमों के साथ अधिक मिलती है। अन्य ग्रन्थों में मृच्छकटिक और शकुन्तला नाटक की हस्तलिखित प्रतियाँ स्पष्टतया कुछ दूसरे नियमों के अनुसार लिखी गई हैं। मोटे तौर पर ये ग्रन्थ शौरसेनी प्राकृत से जो वररुचि ११,२ के अनुसार मागधी की आधारभूत भाषा है और हेमचन्द्र ४,३०२ के अनुसार अधिकाश स्थलों में मागधी से पूरी समानता दिखाती है, इतनी अधिक प्रभावित हुई है कि इस बोली का रूप लीपापोती के कारण बहुत अस्पष्ट हो गया है। सबसे अधिक सचाई के साथ हेमचन्द्र के ४,२८८ वें नियम रसोर्लशौ का पालन किया गया है। दूसरे नियम ४,२८७ का भी बहुत पालन हुआ है। इसके अनुसार जिन सशा शब्दों की समाप्ति अ में होती है, मागधी के कर्त्ता एकवचन में इस अ के स्थान में ए हो जाता है। वररुचि ११,९ तथा हेमचन्द्र ४,३०१ के अनुसार अहं के स्थान पर हगे हो जाता है और कभी-कभी वय के स्थान पर भी हगे ही होता है। इसके विपरीत, जैसा कि वररुचि ११,४ और ७ तथा हेमचन्द्र ४,२९२ में बताया गया है, य जैसे का तैसा रहता है और ज के स्थान पर भी य हो जाता है। द्य, र्य और र्ज के स्थान पर य्य होता है, जो 'ललितविग्रहराज' के सिवा और किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता। किन्तु इसमें नाममात्र का सन्देह नहीं है कि यह नियम व्याकरणकारों के अन्य सब नियमों के साथ साथ कभी चलता रहा होगा और यह हमें मानना ही पड़ेगा, भले ही हमें जो हस्तलिखित प्रतियाँ इस समय प्राप्त हैं, उनमें इनके उदाहरण न मिलें। वररुचि से लेकर सभी प्राकृत व्याकरणकार

लेकर शौरसेनी का प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है— ८ जिन पाठों से मैंने इस ग्रन्थ में सहायता ली है उनकी सूची इस व्याकरण के अन्त में दी गई है— १ पिशल कून्स बाइत्रैगे ८।९ और उसके बाद ही रैसेम्सीओनम डेर फ्रकुन्तला पृष्ठ १९ और उसके बाद, मोनाट्सबेरिष्टे डेर कोएनिगलिशे आकाडेमी डेर विस्सनशाफ्टन त्सुबर्लिन १८७५ पृष्ठ ६१२ और उसके बाद। ग्रुक हार्ड फिलोलेगिस ओमेस प्राकृतिकाए क्वास एडिडि सियोनि सुमाए शाकुन्तलि मो मुप्फी- मेस्त्री भाईबसिट। (ग्रातिस्लाविआए १८७४)— १ पिशल पैनाएर विस्सेनशाफ्टलिशे साइटुग १८७५ पृष्ठ ७९४ और उसके बाद; पाकोबी एर्सेलुंगम भूमिका के पृष्ठ ७ और उसके बाद इस विषय पर इस व्याकरण के अनेक धाराओं में विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

§ २३—शौरसेनी से भी अधिक असमृद्ध दशा में मागधी की हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे पास तक पहुँची हैं। मार्कण्डेय के ग्रन्थ के ७४वें पन्ने में कोहल का मत है कि यह प्राकृत राक्षसों, भिक्षुओं, क्षपणकों दासों आदि द्वारा बोली जाती है।¹ 'भरत' १७५ और 'साहित्यदर्पण' पृष्ठ १७३ २ में बताया गया है कि राजाओं के अन्त पुर में रहनेवाले आदमियों द्वारा मागधी व्यवहार में लाई जाती है। दशरूप' का भी यही मत है। साहित्यदर्पण' ८१ के अनुसार मागधी नपुंसकों किरातों, बौनों म्लेच्छों, आभीरों,शकारों, कुबड़ों आदि द्वारा बोली जाती है। 'भरत' २४,५ ५९ तक में बताया गया है कि मागधी नपुंसकों स्नातकों और प्रतिहारियों द्वारा बोली जाती है। 'दशरूप २,६ में लिखा गया है कि पिशाच और नीच जातियाँ मागधी बोलती हैं और सरस्वतीकण्ठाभरण' का मत है कि नीच स्थिति के लोग मागधी प्राकृत काम में लाते हैं। संस्कृत नाटकों में प्रतिहारी हमेशा संस्कृत बोलता है (शकुन्तला नाटक ११ पृष्ठ और उसके बाद; विक्रमोर्वशी पृष्ठ ३० और उसके बाद; वेणीसंहार पृष्ठ १० और उसके बाद, नागानन्द पृष्ठ ११ और उसके बाद; मुद्राराक्षस पृष्ठ ११ और उसके बाद अनर्घराघव पृष्ठ १ * और उसके बाद; पार्वतीपरिणय पृष्ठ १६ और उसके बाद; प्रियदर्शिका पृष्ठ २ और पृष्ठ २८ तथा उसके बाद; प्रतापरुद्रीय पृष्ठ ११२ और उसके बाद)। मृच्छकटिक में शकार, उसका सेवक स्थावरक, मालिश करनेवाला जो बाद का भिक्षु बन जाता है; वसन्तसेना का नौकर कुम्भीलक वर्धमानक जो चारुदत्त का सेवक है दोनों चाण्डाल रोहसेन और चारुदत्त का छोटा लड़का मागधी में बात करते हैं। शकुन्तला नाटक में पृष्ठ ११३ और उसके बाद दोनों प्रहरी, और धीवर, पृष्ठ १५४ और उसके बाद शकुन्तला का छोटा बेटा सर्वदमन इस प्राकृत में बातालाप करते हैं। प्रबोधचन्द्रोदय' के पेज २८ से ३२ के भीतर चार्वाक का चेला और उड़ीसा से आया हुआ दूत पृष्ठ ४६ से ६४ के भीतर दिगम्बर जैन मागधी बोलते हैं। मुद्राराक्षस में पृष्ठ १५३ में, वह नौकर जो स्थान बनाता है पृष्ठ १७४ १७८ १८३ १८७ और १ से १ ४ के भीतर जैन साधु इस प्राकृत में बात चीत करते हैं तथा पृष्ठ १ ७ में दूत' भी मागधी बोलता है। पृष्ठ २५६ २६९ के

१ राक्षसभिक्षुक्षपणकचेटाद्या मागधीं प्राकृतं वदन्ति कोहलः।—अनु

भीतर सिद्धार्थक और समिद्धार्थक, जो चाण्डाल के वेश मे अपना पार्ट खेलते हैं, मागधी बोलते हैं और ये ही दो पात्र जब पृष्ठ २२४ और उसके बाद के पृष्ठों में दूसरे पात्र का पार्ट खेलते है तब शौरसेनी प्राकृत मे बातचीत करने लगते हैं। 'ललितविग्रहराज' नाटक में ५६५ से ५६७ के भीतर भाट और चर, ५६७ पृष्ठ में मागधी बोलते है और ५६७ तथा उसके बाद के पृष्ठ में ये एकाएक शौरसेनी भी बोलने लगते है। 'वेणीसंहार' नाटक मे पृष्ठ ३३ से ३६ के भीतर राक्षस और उसकी स्त्री, 'मल्लिकामारुतम्' के पृष्ठ १४३ और १४४ मे महावत, 'नागानन्द' नाटक में पृष्ठ ६७ और ६८ में और 'चैतन्यचन्द्रोदय' में पृष्ठ १४९ में सेवक और 'चण्डकौशिकम्' में पृष्ठ ४२ और ४३ में धूर्त, पृष्ठ ६० ७२ के भीतर चाण्डाल, 'धूर्तसमागम' के १६ वे पृष्ठ में नाई, 'हास्यार्णव' के पृष्ठ ३१ में साधुहिंसक, 'लटकमेलक' के पृष्ठ १२ और २५ तथा उनके बाद दिगम्बर जैन, 'कंसवध' के पृष्ठ ४८-५२ मे कुबडा और 'अमृतोदय' पृष्ठ ६६ में जैन साधु मागधी बोलते हैं। 'मृच्छकटिक' के अतिरिक्त मागधी में कुछ छोटे-छोटे खण्ड लिखे हुए मिलते हैं और इनके भारतीय सस्करणों की यह दुर्दशा है कि इनमें मागधी भाषा का रूप पहचाना ही नहीं जा सकता। खेद है कि बम्बई की सस्कृत सिरीज में 'प्रबोधचन्द्रोदय' छापने की चर्चा बहुत दिनों से सुनने में आ रही है, पर वह अभी तक प्रकाशित न हो सका। ब्रौकहाउस ने इसका जो सस्करण प्रकाशित किया है, वह निकम्मा है। पूना, मद्रास और बम्बई के सस्करण इससे अच्छे हैं। इसलिए मैंने सदा इनकी सहायता ली है। इन सब ग्रन्थों से 'ललितविग्रहराज' नाटक में जो मागधी काम में लाई गई है, वह व्याकरणकारों के नियमों के साथ अधिक मिलती है। अन्य ग्रन्थों में मृच्छकटिक और शकुन्तला नाटक की हस्तलिखित प्रतियाँ स्पष्टतया कुछ दूसरे नियमों के अनुसार लिखी गई हैं। मोटे तौर पर ये ग्रन्थ शौरसेनी प्राकृत से जो वररुचि ११,२ के अनुसार मागधी की आधारभूत भाषा है और हेमचन्द्र ४,३०२ के अनुसार अधिकाश स्थलों में मागधी से पूरी समानता दिखाती है, इतनी अधिक प्रभावित हुई है कि इस बोली का रूप लीपापोती के कारण बहुत अस्पष्ट हो गया है। सबसे अधिक सचाई के साथ हेमचन्द्र के ४,२८८ वें नियम **रसोर्लशौ** का पालन किया गया है। दूसरे नियम ४,२८७ का भी बहुत पालन हुआ है। इसके अनुसार जिन सज्ञा शब्दों की समाप्ति अ में होती है, मागधी के कर्त्ता एकवचन में इस अ के स्थान में **ए** हो जाता है। वररुचि ११,९ तथा हेमचन्द्र ४,३०१ के अनुसार **अहं** के स्थान पर **हगे** हो जाता है और कभी-कभी **वयं** के स्थान पर भी **हगे** ही होता है। इसके विपरीत, जैसा कि वररुचि ११,४ और ७ तथा हेमचन्द्र ४,२९२ में बताया गया है, य जैसे का तैसा रहता है और ज के स्थान पर भी य हो जाता है। द्य, र्य और र्ज के स्थान पर य्य होता है, जो 'ललितविग्रहराज' के सिवा और किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता। किन्तु इसमें नाममात्र का सन्देह नहीं है कि यह नियम व्याकरणकारों के अन्य सब नियमों के साथ साथ कभी चलता रहा होगा और यह हमें मानना ही पडेगा, भले ही हमें जो हस्तलिखित प्रतियाँ इस समय प्राप्त हैं, उनमें इनके उदाहरण न मिलें। वररुचि से लेकर सभी प्राकृत व्याकरणकार

मुख्य मुख्य नियमों के विषय में एक मत हैं। हेमचन्द्र ने ४,३ २ के अनुसार ये विशेषताएँ मुद्राराक्षस शकुन्तला और वेणीसंहार में देखीं, जो उन हस्तलिखित प्रतियों में जो हमें आजकल प्राप्य हैं, बहुत कम मिलती हैं और हेमचन्द्र के ग्रन्थों की जो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्य हैं, उनमें तो ये विशेषताएँ पाई ही नहीं जातीं। जितनी अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती जायेंगी, उनमें उतने भिन्न भिन्न पाठ मिलेंगे जो अभी तक प्राप्य हस्तलिखित प्रतियों के विरुद्ध जायेंगे। 'मृच्छकटिक' के स्टेन्त्सलरवाले संस्करण के २२ ४ में जो गौडबोले द्वारा प्रकाशित संस्करण के ११,५ से मिलता है (और गौडबोले ने स्टेन्त्सलर के पाठ का ही अनुकरण किया है) यह पाठ है - तवग्गे ॅय्य हस्ते चिष्टदु। व्याकरणकारों के नियमों के अनुसार यह पाठ यों होना चाहिए—तव य्ये ॅय्य हस्ते चिष्ठदु। गौडबोले की (D H) हस्तलिखित प्रति में यॅय्य है और (C) में य्ज ॅय्य है; अन्य हस्तलिखित प्रतियों में हस्ते और चिष्ठदु अर्थात् चिष्ठदु है। चिष्ठदु जे (J) हस्तलिखित प्रति में है। ऐसे पाठ बराबर मिलते रहते हैं। मुद्राराक्षस १५४,१ में हेमचन्द्र के ४,१ २ के अनुसार य्ये ॅय्य पाठ मिलता है (E हस्तलिखित प्रति में) और इसी ग्रन्थ के २६४,१ में अधिकांश हस्तलिखित प्रतियाँ यॅय्य पाठ देती हैं। वेणीसंहार ३५ ७ और ३६ ५ में भी यॅय्य पाठ है। हेमचन्द्र का नियम ४ २९५ जिसमें कहा गया है कि यदि संस्कृत शब्द के बीच में छ रहे तो उसके स्थान पर श्च हो जाता है। मैंने शकुन्तला की हस्तलिपियों से उदाहरण देकर प्रमाणित किया है और मृच्छकटिक की हस्तलिखित प्रतियाँ उक्त नियम की पुष्टि करती हैं (§ २११)। उन्हीं हस्तलिखित प्रतियों में हेमचन्द्र ४ २९१ वाले नियम कि स्थ और र्थ के स्थान पर स्त हो जाता है, के उदाहरण मिलते हैं (§ ११ और २९)। मागधी के ध्वनितत्त्व के विषय में विशेष मार्के की बातें ये हैं; र के स्थान पर ल हो जाता है, स के स्थान पर श हो जाता है य जैसे का तैसा बना रहता है ज बदल कर य हो जाता है; य, र्य य का य्य हो जाता है; ण्य, न्य ञ का ञ्ञ हो जाता है, च्छ का श्च बन जाता है ट्ट और ष्ठ का स्ट हो जाता है आदि (§ २४)। शब्द के रूपों में इसका विशेष लक्षण यह है कि अ में समाप्त होनेवाले सब शब्दों के अन्त में ए लगता है। शब्दों के अन्य रूपों में यह प्राकृत शौरसेनी से पूर्णतया मिलती है (§ २२) और यह शौरसेनी के अनुसार ही त के स्थान पर द और थ के स्थान पर ध कर देती है।

१ प्रांपस्थापिक (भरत नाट्यशास्त्र) भिक्षुप्रज्ञा का क्या अर्थ है यह अस्पष्ट है—२ यह बात स्टैन्त्सलर की भूमिका के पृष्ठ ५ और गौडबोले के ग्रन्थ पृष्ठ ४९१ में पुष्कीपर ने बताई है। इन संस्करणों में यह शौरसेनी बताया है; किन्तु हस्तलिखित प्रतियों में इन स्थानों में सर्वत्र मागधी का प्रयोग किया गया है। १६१ ९ अए अट १६१ १६ में मागध १६५-२५ में अट गौडबोले के पृष्ठ ४९९,९ में मागध भी आया है। जो रूप यहाँ दिखाया गया है उसमें ३२० १ जो गौडबोले के संस्करण के ४८७ १२ में है उसमें

आउत्ते रूप मिलता है। ब्लौख में वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा के पृष्ठ ४ के विषय में भ्रामक सम्मति दी है। पारा ४२ से भी तुलना कीजिए— ३. हिल्लेब्रान्त, त्साईटुडेर, मौर्गेन लैण्डिशन गेज़ेलशाफ्ट ३९,१३० से तुलना करें— ४ इस विषय पर पारा २४ और इस व्याकरण के वे पाराग्राफ भी देखिए, जिनमें इस विषय पर लिखा गया है।

§ २४—स्टेन्त्सलर द्वारा सम्पादित 'मृच्छकटिक' की भूमिका के पृष्ठ ५ और गौडबोले के सस्करण के पृष्ठ ४९४ में जो सवाद है, वह राजा शाकारी और उसके दामाद का है और यह 'पृथ्वीधर' के अनुसार अपभ्रश नामक बोली मे हुआ है। इस अपभ्रश बोली का उल्लेख 'क्रमदीश्वर' ने ५,९९, लास्सन के इन्स्टिट्यूत्सिओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए मे पृष्ठ २१ में, 'रामतर्कवागीश' के ग्रन्थ में, मार्कण्डेय के पन्ने ७६ में, भरत के १७,५३, साहित्यदर्पण पृष्ठ १७३,६ में है। लास्सन ने अपने इन्टीट्यूत्सिओनेस के पृष्ठ ४२२ और उसके आगे के पृष्ठों में यह प्रयत्न किया है कि इस अपभ्रश बोली के विशेष लक्षण निश्चित कर दिये जायँ और वह अपने इस ग्रन्थ के पृष्ठ ४३५ मे इस निदान पर पहुँचा है कि शाकारी मागधी की एक बोली है। इसमें सन्देह नहीं कि उसका यह मत ठीक है। यही मत मार्कण्डेय का भी है, जिसने अपने ग्रन्थ के ७६ वें पन्ने में बताया है कि शाकारी बोली मागधी से निकली है— **मागध्याः शाकारी, साध्यतीति शेषः**। 'मृच्छकटिक' के स्टेन्त्सलरवाले सस्करण के ९,२२ (पृष्ठ २४०) से, जो गौडबोले के सस्करण के पृष्ठ ५०० के समान है, यह तथ्य मालूम होता है कि इस बोली में तालव्य वर्णों से पहले य बोलने का प्रचलन था अर्थात् सस्कृत **तिष्ठ** के स्थान पर **यचिष्ठ** बोला जाता था (§ २१७)। यह **य** इतनी हल्की तरह से बोला जाता था कि कविता में इसकी मात्रा की गिनती ही नहीं की जाती थी। 'मार्कण्डेय' के अनुसार यही नियम मागधी और व्राचड अपभ्रश में भी बरता जाता था (§ २८) और विशेषताएँ जैसे कि **त** के स्थान पर **द** का प्रयोग (§ २१९), अ में समाप्त होनेवाले सज्ञा शब्दों के षष्ठी एकवचन के अन्त में—**अश्श** के साथ साथ **आह** का प्रयोग (§ ३६६), अन्य पात्रों की भाषा में पाये जाते हैं, किन्तु सप्तमी के अन्त में—**आहिं** (§ ३६६अ) और सम्बोधन बहुवचन के अन्त में **आहो** का प्रयोग (§ ३७२) शकार की बोली में ही पाये जाते हैं। ऊपर कहे हुए अन्तिम तीन रूपों में शाकारी बोली अपभ्रश भाषा से मिलती है। इसलिए 'पृथ्वीधर' का इस बोली को अपभ्रश बताना अकारण नहीं है। ऊपर लिखे गये व्याकरणकार और अलकारशास्त्री एक बोली चाण्डाली भी बताते हैं। 'मार्कण्डेय' के ग्रन्थ के पन्ने ८१ के अनुसार यह चाण्डाली बोली मागधी और शौरसेनी के मिश्रण से निकली थी। लास्सन ने अपने इन्स्टिट्यूत्सिओनेस के पेज ४२० में ठीक ही कहा है कि यह बोली एक प्रकार की मागधी समझी जाती थी। 'मार्कण्डेय' ने पन्ने ८१ में चाण्डाली से शाबरी बोली का निकलना बताया है। इसकी आधारभूत भाषाएँ शौरसेनी, मागधी और शाकारी हैं (इस विषय पर लास्सन के इन्स्टिट्यूत्सिओनेस के § १६२ को भी देखिए)। 'मार्कण्डेय' के अनुसार मागधी की एक बोली

बाह्लीकी भी है जो भरत १७.५२ और साहित्यदर्पण पेज १७३, में नाटक के कुछ पात्रों की बोली बताई गई है तथा कुछ लेखकों के अनुसार बाह्लीकी पिशाचभूमि में बोली जाती है (§ २७)। इसमें नाममात्र का भी संदेह नहीं कि मागधी एक भाषा नहीं थी। बल्कि इसकी भिन्न भिन्न बोलियाँ स्थान स्थान में बोली जाती थीं। यही कारण है कि क्ष के स्थान पर कहीं ह्क और कहीं स्क, र्थ के स्थान पर कहीं स्त और स्त एक के स्थान पर कहीं श्क और कहीं स्क लिखा मिलता है। इसमें मागधी में वे सब बोलियाँ सम्मिलित करनी चाहिए, जिनमें स के स्थान पर श, र के स्थान पर ल, स के स्थान पर श लिखा जाता है और जिनके अ में समाप्त होनेवाले संज्ञाशब्दों के अन्त में अ के स्थान पर ए बोला जाता है। मैंने (§ १७ और १८ में) यह बताया है कि कर्ता एकवचन के अन्त में ए बोलनेवाली बोलियों का प्रवेश सारे भारत में व्याप्त था। भरत ने १७.५८ में यह बात कही है कि गंगा और समुद्र के बीच के देशों में कर्ता एकवचन के अन्त में ए लगाये जानेवाली भाषाएँ बोली जाती हैं। इससे उसका क्या अर्थ है, यह समझना टेढ़ी खीर है। होएर्नले ने[1] सब प्राकृत बोलियों को दो वर्गों में बाँटा है एक को उसने शौरसेनी प्राकृत बोली कहा है और दूसरी को मागधी प्राकृत बोली तथा इन बोलियों के क्षेत्रों के बीचोबीच में उसने इस प्रकार की एक रेखा खींची है, जो उत्तर में खालसी से लेकर बैराट, इलाहाबाद और फिर वहाँ से दक्षिण को रामगढ़ होते हुए जौगड़ तक[2] गई है। ग्रियर्सन[3] होएर्नले के मत से अपना मत मिलाता है और उसका विचार यह भी है कि उक्त रेखा के पास आते आते धीमे-धीमे ये दोनों प्राकृत भाषाएँ आपस में मिल गई और इसका फल यह हुआ कि इनके मेल से एक तीसरी बोली निकल आई, जिसका नाम अर्धमागधी पड़ा। उसने बताया है कि यह बोली इलाहाबाद के आस-पास और महाराष्ट्र में बोली जाती होगी। मेरा विश्वास है कि इन बातों में कुछ धरा नहीं है। एक छोटे से प्रदेश में बोली जानेवाली लाट बोली में भी कई बोलियों के अवशेष मिलते हैं, बल्कि धौली और जौगड़[4] के बीच जो बहुत ही संकीर्ण क्षेत्र है, उस लाट भाषा में भी कई बोलियों का मेल हुआ था; किन्तु मोटे तौर पर देखने से ऐसा लगता है कि किसी समय लाट भाषा सारे राष्ट्र की भाषा थी और इसलिए यह भारत के उत्तर पश्चिम और दक्षिण में बोली और समझी जाती रही होगी। खालसी दिल्ली और मेरठ के अशोक के प्रस्तर-लेख बैराट के प्रस्तर लेख तथा दूसरे लेख इस तथ्य पर कुछ प्रकाश नहीं डालते कि इन स्थानों में कौन सी बोलियाँ बोली जाती रही होंगी। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन समय में और आज भी एक ही प्रवृत्ति काम करती थी और कर रही है अर्थात् अड़ोस-पड़ोस की बोलियों के शब्द धीरे धीरे आपस में एक दूसरे की बोली में घुल-मिल जाते हैं तथा उन बोलियों के भीतर इतना अधिक घर कर जाते हैं कि बोलनेवाले नहीं समझते कि हम किसी दूसरी बोली का शब्द काम में लाते हैं* (प्राचीन समय में जो बोलियाँ

* हिंदी में प्रचलित आमारी पैसा व्यापार अभ्यास गप्प आदि शब्द यद्यपि मराठी और बंगला से आये हैं, किन्तु बोलनेवाले इनको हिंदी ही समझते हैं। ऐसे कान्वेन्ट आलमारी कमरा आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। —अनु

इस प्रकार आपस में मिल गई थीं, उन्हे हम प्राकृत नहीं कह सकते)। इसके लिए अर्धमागधी एक प्रबल प्रमाण है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि आज की मागधी[6] और पुरानी मागधी में कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता।

१. कम्पैरेटिव ग्रैमर, भूमिका के पेज १७ और उसके बाद के पेज— २ चण्ड की भूमिका का पेज २१— ३. सेवन ग्रैमर्स औफ द डायलैक्टस एण्ड सब-डायलैक्स औफ द विहारी लैंग्वेज, खण्ड १ (कलकत्ता १८८३) पेज ५ और उसके बाद— ४ सेनार, पियदसी २, ४३२— ५ सेनार पियदसी २, ४३३ और उसके बाद— ६ ग्रियर्सन, सेवन ग्रैमर्स, भाग ३ (कलकत्ता १८८३)।

§ २५—पूर्व बगाल में स्थित 'ढक' प्रदेश के नाम पर एक प्रकार की प्राकृत बोली का नाम ढक्की है। 'मृच्छकटिक' के पृष्ठ २०–३९ तक मे जुआ-घर का मालिक और उसके साथी जुआरी जिस बोली में बातचीत करते है, वह ढक्की है। मार्कण्डेय पन्ना ८१, लास्सन के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस पृष्ठ ५ में 'रामतर्कवागीश' और स्टैन्त्सलर द्वारा प्रकाशित 'मृच्छकटिक' की भूमिका के पृष्ठ ५ में, जो गौडबोले के सस्करण मे पृष्ठ ४९३ है, 'पृथ्वीधर' का भी मत है कि शाकारी, चाण्डाली और शाबरी के साथ-साथ ढक्की भी अपभ्र श की बोलियों में से एक है। उसकी भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार यह वह बोली है, जो मागधी और अपभ्र श बोली बोलनेवाले देशों के बीच में रही होगी। पृथ्वीधर के अनुसार इसकी ध्वनि की यह विशेषता है कि इसमें लकार का जोर है और तालव्य शकार और दन्त्य सकार की भी बहुतायत है—**लकार प्रायो ढक्कविभाषा, संस्कृत प्रायत्वे दन्त्यतालव्य सशकारद्वययुक्ता' च।** इसका तात्पर्य इस प्रकार है कि जैसे मागधी में **र** के स्थान पर **ल** हो जाता है, **ष स** में बदल जाता है, **स** और **श** अपने सस्कृत शब्दों की भाँति स्थान पर रह जाते हैं, ऐसे ही नियम ढक्की के भी हैं। इस प्राकृत की जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिली है, उनकी लिपि कहीं व्याकरण-सम्मत और कही उसके विपरीत है, पर अधिकाश में पाठ जैसा चाहिए, वैसा है। स्टैन्त्सलर ने २९,१५,३०, १ में **अरेरे** पाठ दिया है, ३०, ७ में **रे** और ३०, ११ में **अरे** पाठ दिया है; किन्तु गौडबोले ने ८२, १, ८४,४,८६, १ में **अले** और ८५,५ में **ले** दिया है, जो उसे मिली हुई हस्तलिखित प्रतियों में से अधिकाश का पाठ है। इस प्रकार का पाठ स्टैन्त्सलर की हस्तलिखित प्रतियों में भी, ऊपर लिखे अपवादों को छोड अन्य सब स्थानों पर मिलता है (३०,१६,३१, ४।९ और १६,३५,७ और १२,३६,१५, और ३९,१६)। इस भाषा के नियम यह बताते हैं कि **रुद्ध**' के स्थान पर **लुद्धु** हो जाता है (२९,१५ और ३०,१) **परिवेपित** के स्थान पर **पलिवेविद** होता है (३०,७), **कुरुकुरु** के स्थान पर **कुलुकुलु** का प्रयोग किया जाता है (३१,१६), **धारयति** का **धालेदि** होता है (३४,९ और ३९,१३), **पुरुष' पुलिसो** बन जाता है (३४,१२), किन्तु अधिकाश स्थलों में इन ग्रन्थों और हस्तलिखित प्रतियों में **र ल** नहीं हुआ है, **र** ही रह गया है। इस प्रकार सर्वत्र **जूदिअर** ही मिलता है (२९,१५,३०,१ और १२,३१,१२ और ३६,१८), केवल ३६,१८ में जो स्थल गौडबोले के सस्करण में १०६,४ है, वहाँ **ल** का प्रयोग

किया गया है। मृच्छकटिक' के कलकत्तावाले संस्करण में जो शाके १७९२ में प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ ८५ १ में जूदकअस्स शब्द का प्रयोग किया गया है और कलकत्ता से १८२९ ई में प्रकाशित इसी ग्रन्थ के पेज ७४,१ में अन्य संस्करणों में छपे हुए मुट्ठिप्पहारेण के स्थान पर मुट्ठिप्पहालेण छापा गया है। जब कि इसकी दूसरी ही पंक्ति में सहिरपहम् मणुसरेम्ह मिलता है, यद्यपि हमें आशा करनी चाहिए थी कि इस स्थान पर लुहिलपधम् मणुसलेय होगा। १ ४ और ५ के श्लोक में सलणम् शब्द आया है, जिसके स्थान पर शाके १७९२ वाले कलकत्ता के संस्करण में शुद्ध शब्द शलणम् है और रुद्दो रक्खिस्सदु तरह आया है, जिसके स्थान पर लुद्दो लक्खिस्सदु तदीश होना चाहिए था। ऐसे अन्य स्थल १ ११ है जिसमें अनुसरे म्ह आया है, १२ १ और १४ २५ में मायुरु शब्द का व्यवहार किया गया है १२ १ और १२ में पिदरम् और मादरम् का व्यवहार किया गया है, १२, १६ में पसरु, १४ ११ में उज्जर (इसके बगल में ही पुलिसो शब्द है) १६ २४ में धमरोसेण और १९ ८ में भट्टरेण रह दिया गया है, जो सब शब्द इन्हीं के नियमों के अनुसार शुद्ध नहीं हैं क्योंकि जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इसकी बोली में र के स्थान में ल होना चाहिए। ये हस्तलिखित प्रतियाँ बहुधा स के स्थान पर श और श का स लिख देती हैं। शुद्ध शब्द दशशुवण्णाह (२९,१५ और ३ ,१) के पास में ही दशसुवण्णम् (११,४;१२ १;१४,९ और १२ इत्यादि), शुण्णु (१ , ११), शोक (१ ,१७) के पास म ही जंस (१ ९) आया है जो अशुद्ध है। आर्यसमाभि (१४,२५) परिरक्खिदुविय (१५ ५) प्रयोग भी किये गये हैं। कई स्थलों पर तालव्य शकार का अशुद्ध प्रयोग हुआ है जैसे शमविशर्य सकस्सुशसम् (१ ८ और ९)। इस स्थान पर गौडबोले ने (८५ ६ और ७) समभिसर्य पाठ दिया है जो शुद्ध है और भट्ट कसण (भट्ट के स्थान पर भट्टि होना चाहिए), इसके विपरीत ११४, ९ में कश्टा शब्द अशुद्ध आया है, इसके स्थान पर स्टैन्त्सलर के संस्करण के पेज ११,८ में कस्ट शब्द आया है जो शुद्ध है। लकार और शकार का प्रयोग इसी को मागधी से मिलाता है इसी प्रकार संज्ञा शब्दों के अन्त में—उ जो संस्कृत के—अः के काम में आता है और—अम् का प्रयोग तथा आशाकारक के द्विवचन का रूप इसे अपभ्रंश से सम्बन्धित करता है। इस विषय पर भी हस्तलिखित प्रतियों के पाठ पर भरोसा नहीं किया जा सकता। देवस्सु (१ ११) शब्द के नीचे ही देवस्सम् (१ १२) का उपयोग किया गया है। पस्सु (१ १२;१४, १७ और १५ १५) उसके निकट ही पसो (१ ,१) का प्रयोग हुआ है। संस्कृत शब्द प्रसर के लिए पसलु (१९,१६) शब्द आया है और उसके पास ही गेल्ह (२६, १६ और १ २) काम में लाया गया है, प्रयच्छ के लिए पअच्छ लिखा गया है (११,४;७;९;१२,८;१२;१४;१४ २४;१५ ७)। अनेक स्थानों पर कर्ता कारक के लिए—उ आया है जैसे रुद्रः के स्थान में लुद्दु (२६,१५ और १ १) पिप्पलीउपाडु जो संस्कृत विप्रतीपः पादः (१ ,११) के लिए आया है, पुत्तु मायुलु और मित्तु (१२,७) विद्दु (१४ १७) उदाहरण हैं। इनके साथ

साथ वद्धो (३१,१२) प्पाउडो, पुलिसो सस्कृत प्रावृत्तः, पुरुषः के लिए आये हैं (३४,१२) । आचक्खन्तो (पारा ४९९) है और वुत्तो सस्कृत वृत्तः के लिए लिखा गया है। कर्त्ताकारक के अन्त में कहीं-कहीं ए का प्रयोग भी किया गया है जैसे, सस्कृत पाठः के लिए पाढे (३०,२५ और ३१,१) का पाठ, लब्धः पुरुषः के स्थान पर लब्धे गोहे का प्रयोग मिलता है। इन अशुद्धियों का कारण लेखकों की भूल ही हो सकती है और इनमें बोलियों की कोई विशेषताएँ नहीं हैं, इसका पता स्पष्ट रूप से इस बात से चलता है कि मागधी प्रयोग वग्घे के स्थान पर (३१,१४ में) वग्घो लिखा मिलता है, जो किसी दूसरे सस्करण में नहीं मिलता। माथुरु (३२,७ और ३४,२५) का प्रयोग भी अशुद्ध है, इसमें थ के स्थान पर ध होना चाहिए। इसका शुद्ध पाठ माधुलु है। सब सस्करणों के पाठे के स्थान पर भी (३०,२५ और ३१,१) और स्वय मागधी में भी (३१,२) गौडबोले के डी० तथा एच० सस्करणों के अनुसार, जिसका उल्लेख उसकी पुस्तक के पेज ८८ में है, पाडे होना चाहिए। के० हस्तलिखित प्रति में पाढे पाठ है, ढक्की प्राकृत में यही पाठ शुद्ध है। इस प्रकार ३०,१६ में भी कथम् का रूप कधम् दिया गया है, जो ठीक है, किन्तु ३६,१९ में रुधिरपथम् के लिए रुहिरपहम् आया है, जो अशुद्ध है। शुद्ध रूप लुधिलपधम् होना चाहिए। जैसा मैंने ऊपर शौरसेनी और मागधी के विषय में कहा है, वही बात ढक्की के बारे में भी कही जा सकती है कि इस बोली में जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं, उनपर भी कोई भरोसा नहीं किया जा सकता और चूँकि इस बोली का उल्लेख और इस बोली के ग्रन्थ बहुत कम मिलते हैं तथा ऐसी आशा भी नहीं है कि भविष्य में भी इसके अधिक ग्रन्थ मिलेंगे। इसलिए इस बोली पर भविष्य में अधिक प्रकाश पड़ेगा, यह भी नहीं कहा जा सकता[३]। इस विषय पर § २०३ भी देखिए।

१ स्टेंत्सलर ने इस शब्द का पाठ शुद्ध दिया है, पृष्ठ २ और ४९४ में गौडबोले ने इसका रूप वकार प्राया लिखा है— २ यह पाठ गौडबोले ने शुद्ध दिया है— ३ लास्सन, इन्स्टीट्यूत्सीओनेस पृष्ठ ४१४ और उसके बाद में लिखता है कि जुआरी दाक्षिणात्या, माथुर और आवन्ती में बातचीत करता है। इस विषय पर § २६ भी देखिए, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा पेज ४ में ब्लौख़ की सम्मति भ्रमपूर्ण है।

§ २६—व्याकरणकारों द्वारा वर्णित अन्य प्राकृत बोलियों के विषय में यही कहा जाना चाहिए कि ढक्की बोली के समान ही, इनपर अधिक प्रकाश पड़ने की, बहुत कम आशा है। 'पृथ्वीधर' के मतानुसार 'मृच्छकटिक' नाटक में वीरक और चन्दनक नाम के दोनों कोतवाल पृष्ठ ९९-१०६ में आवन्ती भाषा बोलते हैं। पृथ्वीधर ने यह भी बताया है कि आवन्ती भाषा में स, र तथा मुहावरों की भरमार है—तथा शौरसेन्य् अवन्तिजा प्राच्या। एतासु दन्त्यसकारता। तत्रावन्तिजा रेफवती लोकोक्ति बहुला। पृथ्वीधर का यह उद्धरण भरत के नाट्यशास्त्र के १७,४८ से मिलता है। भरत १७,५१ और 'साहित्यदर्पण' पृष्ठ १७३,४ के अनुसार नाटकों में

धूर्तोः को अवन्तिजा बोली बोलनी चाहिए। लास्सन के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस पेज ११ में कई प्राचीन टीकाकारों का मत दिया गया है कि धूर्ताः का तात्पर्य जुआरियों से है। इस कारण लास्सन ने पृष्ठ ४१७-४१९ में माथुर की बोली को आवन्ती बताया है, पर यह मत भ्रामक है। मार्कण्डेय के ग्रन्थ के १ रे पन्ने और 'क्रमदीश्वर' ५,९९ में कहा गया है कि आवन्ती भाषाः में गिनी जाती है और मार्कण्डेय ने पन्ना ७१ में कहा है कि आवन्ती शौरसेनी और महाराष्ट्री के मेल से बनी है और यह मेल एक ही वाक्य के भीतर दिखाई देता है—आवन्ती स्याम् महाराष्ट्री शौरसेन्यास् तु संकरात्। अनयोः संकरात् आवन्ती भाषा सिद्धा स्यात्। संकरश् चैकस्मिन्नेव वाक्ये बोद्धव्यः। इस बोली में भवति के स्थान पर होइ, प्रेक्षते की जगह पेच्छदि और पश्यति के लिए दरिसेदि आता है। हस्तलिखित प्रतियों में दोनों बोलियों का जो गड़बड़झाला मिलता है, उससे ऊपर लिखे वर्णन का पूरा साम्य है, उस श्लोक में, जो ९९ १६ और १७ में आया है, शौरसेनी अच्छाय के पास में ही महाराष्ट्री में तूण और चवइ है। ९९,२४ और २५ में शौरसेनी आअच्छाय और महाराष्ट्री तुरियम् उत्तेइ करें इसाद और पहवइ एक ही श्लोक में आये हैं। दरिसेसि शब्द १ ४ में आया है और १ १२ में महाराष्ट्री भई आया है जिसके एकदम बगल में शौरसेनी शब्द सुविदो है। १ , १०,१ १ ७ और १ ५,९ में पच्चदि शब्द आया है जो महाराष्ट्री चवइ (९९,१७) और शौरसेनी पच्चादि का वर्णसंकर है और उदाहरण देखिए कि १ १५ में चवाद शब्द आया है जो उक्त दोनों भाषाओं का मिश्रण है; १ १ १५ में कहिज्जदि शब्द आया है और उसी के नीचे की लाइन १६ में सासिज्जइ आया है। यह दूसरा शब्द विशुद्ध महाराष्ट्री है और पहला शब्द महाराष्ट्री कहिज्जइ और शौरसेनी कथीअदि की खिचड़ी है। गद्य और पद्य में ऐसे दर्जनों उदाहरण मिलते हैं। इन सब उदाहरणों से यह जान पड़ता है कि 'पृथ्वीधर' का मत ठीक ही है। किन्तु चन्दनक की बोली के विषय में स्वयं चन्दनक ने पृथ्वीधर के मत का खण्डन किया है। उसने १ १ ५ में कहा है—वअम् दक्खिणत्ता अव्वत्त भासिणो म्लेच्छ-जातीनाम् अनेकदेशभाषाभिज्ञा यथेष्टम् मन्त्रयामः , अर्थात् 'हम दाक्षिणात्य अस्पष्टभाषी हैं। चूँकि हम म्लेच्छ जातियों की अनेक भाषाएँ जानते हैं, इसलिए जो बोली मन में आई बोलते हैं । चन्दनक अपनेको दाक्षिणात्य अर्थात् दक्कन का बताता है। इस विषय पर उसने १ १ १६ में भी कहा है—कण्णाड कलहप्पमोक्खम् करेमि। अर्थात् मैं कर्णाट देश के ढंग से झगड़ा प्रारम्भ करता हूँ। इसलिए इसपर सन्देह करने का स्पष्ट कारण है कि उसने आवन्ती भाषा में बातचीत की होगी; वरन् यह मानना अधिक संगत प्रतीत होता है कि उसकी बोली दाक्षिणात्या रही होगी। इस बोली को 'भरत' ने १७,४८ में सात भाषाः के नामों के साथ गिनाया है और भरत' के 'नाट्यशास्त्र' के १७ ५२ और 'साहित्यदर्पण' पृष्ठ १७३५ में इस बोली के विषय में कहा गया है कि इसे नाटकों में शिकारी और कोतवाल बोलते हैं। 'मार्कण्डेय' ने अपने प्राकृतसर्वस्व में इसे भाषा मानना अस्वीकार किया है, क्योंकि

इसमें भाषा के कोई विशेष लक्षण नहीं पाये जाते (**लक्षणाकरणात्**)। लास्सन ने अपने इन्स्टीट्यूत्सीओनेस के पृष्ठ ४१४-४१६ में 'मृच्छकटिक' के अज्ञातनामा जुआरी को दाक्षिणात्या बोलनेवाला बताया है और कोतवाल की बोली में भी इसी भाषा के लक्षण पाये हैं (शकुन्तला पेज ११३ ११७)। ये दोनो मत भ्रमपूर्ण हैं। जुआरी की बोली ढक्की है (§ २५) और शकुन्तला में कोतवाल की जो भाषा पाई जाती है, वह साधारण शौरसेनी से कुछ भी भिन्नता नहीं रखती। यह बात 'बोएटलिंक' ने[1] पहले ही ताड ली थी। शकुन्तला नाटक की जो हस्तलिखित प्रतियाँ बगाल में पाई गई हैं, उनमें से कुछ में महाप्राण वर्णों का द्वित्त किया गया है। पहले[2] मेरा ऐसा विचार था कि यह विशेपता दाक्षिणात्या प्राकृत के एक लक्षण के रूप में देखी जानी चाहिए। किन्तु उसके बाद मुझे मागधी की हस्तलिखित एक ऐसी प्रति मिली, जिसमें महाप्राण वर्णों का द्वित्त किया गया है। यह लिपि का लक्षण है न कि भाषा का (§ १९३)। अबतक के मिले हुए प्रमाणों से हम इस विषय पर जो कुछ निदान निकाल सकते हैं, वह यह है कि दक्खिणात्ता बोली उस आवन्ती बोली से, जिसे वीरक बोलता है, बहुत घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध है और ये दोनों बोलियाँ शौरसेनी के बहुत निकट हैं। इसमें बोलियों का मिश्रण तो हो ही गया है, किन्तु अम्हे के स्थान मे **वअम्**, **दो** के स्थान पर **दो** का प्रयोग शौरसेनी भाषा के व्यवहार के विरुद्ध है तथा बड़े मार्के की बात है। **दक्खिणत्ता** में त्य के स्थान पर **त्त** का प्रयोग (§ २८१) तथा **दरिसअन्ति** भी, जो 'मृच्छकटिक' ७०,२५ में शौरसेनी भाषा में भी काम में लाया गया है, बहुत खटकते हैं।

१ शकुन्तला के अपने सस्करण के पृष्ठ २४० में— २ नाख़रिख़्टन फौन डेर कोयेनिगलिशे गेज़ेलशाफ्ट डेर विस्सनशाफ्टन त्सु गोएटिंगन १८७३, पेज २१२ और उसके बाद।

§ २७—एक बहुत प्राचीन प्राकृत बोली पैशाची है। 'वररुचि' १०,१ तथा उसके बाद इस नाम की एक ही बोली का उल्लेख करता है। 'क्रमदीश्वर' के ५,९६ में भी इसका नाम आया है। 'वाग्भटालकार' २,३ की टीका मे 'सिंहदेव गणिन्' ने इसका उल्लेख पैशाचिक नाम से किया है। 'रुद्रट' के 'काव्यालकार' २,१२ की टीका में 'नमिसाधु' ने भी इसे पैशाचिक ही बताया है और किसी व्याकरणकार का एक उद्धरण देकर इसका नाम पैशाचिकी दिया है। हेमचन्द्र ने ४,३०३ से ३२४ में पैशाची के नियमों का वर्णन किया है और उसके बाद ३२५-३२८ में चूलिका पैशाचिक के नियम बताये हैं, उसके बाद 'त्रिविक्रम' ३,२,४३, 'सिंहराज' पृष्ठ ६३ और उसके बाद इसका उल्लेख करते हैं। उन्होंने चूलिका पैचाशिक के स्थान पर चूलिका पैशाची के नियम बताये हैं। एक अज्ञातनामा लेखक द्वारा (§ ३ नोट १) जिसका उल्लेख मार्कण्डेय के 'प्राकृतसर्वस्व' में है, ११ प्रकार की प्राकृत भाषाओं के नाम गिनाये गये हैं—**काचिदेशीयपण्ड्ये च पाचालगौडमागधम्। व्राचडम् दाक्षिणात्यम् च शौरसेनम् च कैकयम्। शाबरम् द्राविणम् चैव एकादश पिशाचकाः।** किन्तु स्वय 'मार्कण्डेय' ने केवल तीन प्रकार की पैशाची बोलियों

का उल्लेख किया है—कैकेय, शौरसेन और पांचाल। ऐसा मालूम पड़ता है कि मार्कण्डेय के समय में ये तीन ही साहित्यिक पैशाचिक बोलियाँ रही होंगी। उसने लिखा है—कैकेयम् शौरसेनम् च पांचालम् इति च त्रिधा। पैशाच्यो नागरा यस्मात् तेनाप्यन्या न लक्षिताः। मार्कण्डेय' के मतानुसार कैकेय पैशाची संस्कृत भाषा पर आधारित है और शौरसेनपैशाची शौरसेनी पर। पांचाल और शौरसेनी पैशाची में केवल एक नियम में भेद है। यह भिन्नता इसी में है कि र के स्थान पर ल हो जाता है। लास्सन के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस के पृष्ठ २२ में उद्धृत 'रामतर्कवागीश' ने दो वर्ग गिनाये हैं। एक का नाम 'कैकेयपैशाचम्' है और दूसरी पैशाचीका नाम लेखकों ने अक्षर बिगाड़ बिगाड़ कर ऐसा बना दिया है कि अब पहचाना ही नहीं जाता। यह नाम हस्तलिखित प्रतियों में 'चस्क' पढ़ा जाता है, जिसका क्या अर्थ है, समझ में नहीं आता। न्यूनाधिक विशुद्धता की दृष्टि से इनके और भी छोटे छोटे भेद किये गये हैं। लास्सन के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस के परिशिष्ट के पृष्ठ ९ में मागध और माचड (हस्तलिखित प्रतियों में यह शब्द माव्ड लिखा गया है) पैशाचिका ये दो नाम आये हैं। लास्सन के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस के पृष्ठ १२ में उद्धृत लक्ष्मीधर के ग्रन्थ में यह लिखा पाया जाता है कि पैशाची भाषा का नाम पिशाच देशों से पड़ा है, जहाँ यह बोली जाती है। प्राचीन व्याकरणकारों के मत के अनुसार उसने इसके निम्नलिखित भेद दिये हैं—पाण्ड्य, कैकय, बाह्लीक, सह्य, नेपाल, कुन्तल, गान्धार। अन्य जातों के नाम विकृत हो गये हैं और हस्तलिखित प्रतियों में इस प्रकार मिलते हैं—सुदेश, भोट, हैव और कनोजन। इन नामों से पता चलता है कि पैशाची प्राकृत की बोलियाँ भारत के उत्तर और पश्चिमी भागों में बोली जाती रही होंगी। एक पैशाच जाति का उल्लेख महाभारत ७,१२१,१४ में मिलता है। भारतीय लोग पिशाच का अर्थ भूत करते हैं (कथासरित्सागर ७,२६ और २७)। इसलिए वररुचि १०,१ की टीका में 'भामह' ने कहा है—पिशाचानाम् भाषा पैशाची और इस कारण ही यह बोली भूतभाषा अर्थात् भूतों की बोली कही जाती है (दंडिन् का काव्यादर्श १,३८; सरस्वती कण्ठाभरण ९५,११ और १३। कथासरित्सागर' ७,२९ और ८,३; हील द्वारा सम्पादित वासवदत्ता' पृष्ठ २२ का नोट) अथवा यह भूतभाषित और भौतिक भी कही जाती है (वाग्भटालंकार २,१ और ३), भूतवचन (बालरामायण ८,९ और सरस्वती-कण्ठाभरण' ५७,११)। भारतीय जनता का विश्वास है कि भूतों की बोली की एक अचूक पहचान यह है कि भूत जब बोलते हैं तब उनका बोल नाक के भीतर से बोलने में लगता है और कुछ ने इसलिए यह अनुमान लगाया है कि यह भाषा आजकल की अंगरेजी की भाँति पिशाच भाषा कही गई। इस मत का उल्लेख प्राकृत व्याकरणकारों में कहीं नहीं मिलता। मैं यह बात अधिक संगत समझता हूँ कि आरम्भ में इस भाषा का नाम पैशाची इसलिए पड़ा होगा कि यह महाराष्ट्री शौरसेनी और मागधी की भाँति ही पिशाच जनता द्वारा या पिशाच देश में

१ यह मद्रास में नर्मदा प्रदेश का नाम है।—अनु

बोली जाती होगी और बाद को पिशाच कहे जानेवाले भूतों की भाषा पिशाच नाम के कारण भूल से पैशाची कही गई होगी। इसका अर्थ यह है कि पिशाच एक जाति का नाम रहा होगा और बाद को भूत भी पिशाच कहे जाने लगे तो जनता और व्याकरणकार इसे भूतभाषा कहने लगे। पिशाच जनता या पैशाच लोगों का उल्लेख 'महाभारत' के ऊपर दिये गये स्थल के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलता, किन्तु इस जाति की उपजातियों के नाम बहुधा देखने में आते हैं, जैसे कैकैय या कैकय और बाह्लीक। इनके बारे में 'मार्कण्डेय' का कहना है कि ये मागधी बोलते हैं (§२४) तथा कुन्तल और गान्धार। 'दशरूप' २,६० के अनुसार पिशाच और बहुत नीची जाति के लोग पैशाच या मागध प्राकृत बोलते हैं। 'सरस्वती-कण्ठाभरण' ५६,१९ और 'साहित्यदर्पण' पृष्ठ १७३,१० के अनुसार पैशाची पिशाचों की भाषा है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' ५०,२५ में भोजदेव ने उच्च जाति के लोगों को विशुद्ध पैशाची बोलने से रोका है—**नात्युत्तमपात्रप्रयोज्या पैशाची शुद्धा**। उसने जो उदाहरण दिया है, वह हेमचन्द्र ४,३२६ में मिलता है, किन्तु हेमचन्द्र ने इसे 'चूलिकापैशाचिक' का उदाहरण बताया है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' ५८,१५ में यह कहा गया है कि उत्तम मनुष्यों को, जो ऊँचे पात्रो का पार्ट नहीं खेलते, ऐसी भाषा बोलनी चाहिए जो एक साथ सस्कृत और पैशाची हो। बात यह है कि पैशाची में भाषाश्लेष की चातुरी दिखाने की बहुत सुविधा है, क्योंकि सब प्राकृत भाषाओं में पैशाची सस्कृत से सबसे अधिक मिलती जुलती है। 'वररुचि' १०,२ में शौरसेनी को पैशाची की आधारभूत भाषा बताता है और इस मत से हेमचन्द्र अपने प्राकृत व्याकरण के ४,३२३ में पूर्णतया सहमत है। पर पैशाची अपनी ध्वनि-सम्पत्ति के अनुसार—जैसा कि हेमचन्द्र ने ४,३२४ में बताया है—सस्कृत, पाली और पल्लववश के दानपत्रों की भाषा से मिलती है। पैशाची और इससे भी अधिक चूलपैशाचिक, जिन दोनों भाषाओं को व्याकरण-कार विशेष रूप से अलग-अलग नहीं समझते (§ १९१), में मध्यवर्ण बदल कर प्रथमवर्ण हो जाते है, जैसा पैशाची और चूलपैशाचिक में **मदन** का **मतन**, **दामोदर** का **तामोतर**, पैशाची में **प्रदेश** का **पतेश**, चूलिकापैशाचिक में **नगर** का **नकर**,* **गिरि** का **किरि**, **मेघ** का **मेख**, **घर्म** का **खम्म**, **राजा** का **राचा**, **जीमूत** का **चीमूत** आदि हो जाता है (§ १९०, १९१)। इसका एक विशेष लक्षण यह भी है कि इसमें अधिकाश व्यजन वैसे ही बने रहते हैं और **न** भी जैसे का तैसा ही रह जाता है, बल्कि **ण** बदल कर **न** हो जाता है और इसके विपरीत **ल** बदल कर **ळ** हो जाता है। मध्यवर्णों का प्रथमवर्ण में बदल जाने, **ण** का **न** हो जाने और **ल** के स्थान पर **ल्ड** हो जाने के कारण होएर्नले इस निदान पर पहुँचा है कि पैशाची आर्यभाषा का वह रूप है जो द्राविड भाषाभाषियों के मुँह से निकली थी जब

---

* कुमाऊँ के विशेष स्थानों और विशेषकर पिठौरागढ (= पिथौरागढ) की बोली में पैशाची के कई लक्षण वर्तमान समय में भी मिलते हैं। वहाँ **नगरी** का **नकरी** बोला जाता होगा जो आजकल '**नाकुरी**' कहा जाता है। —अनु०

कि वे आरम्भ में आर्यभाषा बोलने लगे होंगे। इसके विरुद्ध 'सेनार'[1] ने पूरे अधिकार के साथ अपना मत दिया है। होएर्नले के इस मत के विरुद्ध कि भारत की किसी भी अन्य आर्य बोली में मध्यमवर्ण बदल कर प्रथमवर्ण नहीं बने थे, यह प्रमाण दिया जा सकता है कि ऐसा शाहबाजगढ़ी[2] लाट तथा लेण[3] के प्रस्तरलेखों में पाया जाता है और नई बोलियों में से दरद्, काफिर और जिप्सियों की भाषा में महाप्राणवर्ण बदल जाते हैं। इन तथ्यों से इस बात का पता चलता है कि पैशाची का घर भारत के उत्तरपश्चिम में रहा होगा[4]। पैशाची ऐसे विशेष लक्षणों से युक्त और आत्मनिर्भर तथा स्वतन्त्र भाषा है कि यह संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के साथ, अलग भाषा गिनी जा सकती है (कथासरित्सागर ७,२९ और साथ ही ६,१४८ की तुलना भी कीजिए बृहत्कथामंजरी ६,५२ बालरामायण ८,४ और ५; वाग्भटालंकार २,१)। सम्भवतः ग्राम्यभाषा का तात्पर्य पैशाची भाषा ही रहा होगा जिसमें 'वाग्भट' के 'अलंकारतिलक' १५,१३ के अनुसार 'भीम' काव्य रचा गया था। ये सब बातें देखकर खेद और भी बढ़ जाता है कि हमें इस भाषा के ज्ञान और इसकी पहचान के लिए व्याकरणकारों के बहुत ही कम नियमों पर अवलम्बित रहना पड़ता है। 'गुणाढ्य' की 'बृहत्कथा' पैशाची में ही रची गयी थी[5] और ब्यूह्लर के अनुसार यह ग्रन्थ ईसा की दूसरी शताब्दी में लिखा गया था। एक दूसरे से असम्बद्ध इस भाषा के कुछ टुकड़े हेमचन्द्र ४ ३१ । ३१६। ३२ । ३२२। और ३२३[6] में मिलते हैं और सम्भवतः हेमचन्द्र के ४ ३२६ में भी इस भाषा के ही उदाहरण दिये गये हैं। उत्तरापथ के बौद्ध धर्मावलम्बियों की विवरणपत्रिकाओं में यह बात लिखी गई है कि बुद्ध के निर्वाण ११६ वर्ष बाद चार स्थविर आपस में मिले थे जो संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और पैशाची भाषाएँ बोलते थे[7]। ये स्थविर भिन्न भिन्न वर्णों के थे। इन स्थविरों ने जो वैभाषिक की एक मुख्य शाखा के थे भारत में पैशाची में बातचीत की।

१ एन इंट्रोडक्शन टु द पॉपुलर रिलीजन एण्ड फोकलोर ऑफ नौर्दर्न इण्डिया (इलाहाबाद १८९४) पेज १४९— २ कम्पेरेटिव ग्रैमर की भूमिका का पत्र १९— ३ पियदसी २ १ १ (सेनार) नोट संख्या १— ४ योहानसोन शाहबाजगढ़ी १ १०१— ५ सेनार पियदसी २ ३०५ (कम्बोज); ३०६ पनिपातस्पठम् आदि; ३९० (तुके आदि)— ६ तुलना [illegible] मैलांज [illegible] १० ५५९; ४ १६ नोट संख्या ७— ७ मिक्लोशिश बाइत्रेगे त्सूर केन्टनिस डेर त्सिगोयनर मुण्डआर्टेन एक और दो (वियेना १८७४) पत्र १५ और उसके बाद; चार (वियेना १८७८) पेज ५१। मिक्लोशिश बाइत्रेगे त्सूर केन्टनिस डेर [illegible] त्सिगोयनर (हाल्ले आम जाले १८९४) पत्र ११ से तुलना कीजिए। जिप्सियों का मूल शब्द हिन्दी के

[illegible] का प्रभाव तुर्की की बोलियों में बहुत अधिक पड़ा है। [illegible] के समय से ही [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] तुर्की का भी [illegible]। —अनु

छूर शब्द के समान है, कलश का खास शब्द जिप्सियों के खस शब्द के समान है जो हिन्दी में घास् के समान और संस्कृत में घास है।— ८ पिशल, डॉयत्से एण्डर्शी ३५ (बर्लिन १८८३), पेज ३६८ इस मासिक पत्रिका में यह मत अशुद्ध है कि गुणाढ्य कश्मीरी था। वह दक्षिणी था, किन्तु उसका ग्रन्थ कश्मीर में बहुत प्रसिद्ध था जैसे कि सोमदेव और क्षेमेन्द्र के ग्रन्थ। —९ हौल, वासवदत्ता (कलकत्ता १८५९) पेज २२ का नोट, ब्यूलर, इण्डियन एण्टीक्वेरी १,३०२ और उसके बाद · लेवि, जूरनाल आशिआटीक १८८५, ४,४१२ और उसके बाद, रुद्रट के काव्यालंकार के २,१२ की टीका में नमिसाधु का मत देखिए।— १० डिटेल्ड रिपोर्ट पेज ४७।— ११ पिशल, डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज ३३, मैं यह प्रमाण नहीं दे सकता हूँ कि यह वाक्य सोमदेव ने कहाँ लिखा है। कथासरित्सागर ११,४८ और ४९ उससे कुछ मिलता-जुलता है, किन्तु पूरा नहीं। वेन्फे द्वारा रूसी से अनूदित वास्सिलिऐफ का ग्रन्थ, डेर बुधिज्मुस, जाइने डोगमन, गेशिष्ट उण्ट लीटेराटूर, १,२४८ नोट ३, २९५ (सेण्टपीर्टसबुर्ग १८६०)।

§ २८—मोटे तौर पर देखने से पता चलता है कि प्रामाणिक संस्कृत से जो बोली थोडा-बहुत भी भेद दिखाती है, वह अपभ्रंश है। इसलिए भारत की जनता द्वारा बोली जानेवाली भाषाओं का नाम अपभ्रंश पडा (§ ४) और बहुत बाद को प्राकृत भाषाओं में से एक बोली का नाम भी अपभ्रंश रखा गया। यह भाषा जनता के रात दिन के व्यवहार में आनेवाली बोलियों से उपजी और प्राकृत की अन्य भाषाओं की तरह थोडा-बहुत फेर-फार के साथ साहित्यिक भाषा बन गई (§ ५)। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण के ४,३२९ से ४४६ सूत्रों तक एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में अपभ्रंश के नियम बताये हैं। किन्तु उसके नियमों को ध्यान से देखते ही यह निदान निकलता है कि अपभ्रंश नाम के भीतर उसने कई बोलियों के नियम दे दिये हैं। **भ्रुम्, त्रम्** (४,३६०), **तुध्र** (४,३७२), **प्रस्सदि** (४,३९३), **व्रोँप्पिणु, व्रोँप्पि** (४,३९१), **गृह्णन्ति, गृण्हेप्पिणु** (४,३४१, ३९४ और ४३८) और **व्रासु** (४, ३९९), जो कभी **र** और कभी **ऋ** से लिखे जाते हैं। ये दूसरी दूसरी बोलियों के शब्द हैं और हेमचन्द्र ने इनके विषय में अपने अन्य दूसरे सूत्रों में भी बहुत लिखा है। उसका नियम ४,३९६, जिसके अनुसार अपभ्रंश भाषा में **क, ख, त, थ, प, फ** क्रमशः **ग, घ, द, ध, ब** और **भ** में बहुधा बदल जाते हैं, यह अन्य अनेक नियमों और उदाहरणों के विरुद्ध जाता है। नियम ४,४४६ भी, जिसमें यह कहा गया है कि अपभ्रंश के अधिकांश नियम शौरसेनी के समान ही हैं[१], हेमचन्द्र के अन्य नियमों के विरुद्ध है। पिंगल की भाषा अक्षरों के सरलीकरण की प्रक्रिया में कालिदास की 'विक्रमोर्वशी' हेमचन्द्र के प्राकृत में दी हुई अपभ्रंश भाषा से बहुत आगे बढ गई है। हेमचन्द्र के पन्ना २ में एक अज्ञातनामा लेखक ने २७ प्रकार की भिन्न-भिन्न अपभ्रंश बोलियों के नाम गिनाये हैं। इनमें से अधिकांश ही नहीं, बल्कि प्राय. सभी नाम पैशाची भाषा के विषय पर लिखते हुए

इन्हें § २७ में दे दिये हैं। 'मार्कण्डेय' ने लिखा है कि थोड़े थोड़े भेद के कारण (सूक्ष्मभेदत्वात्) अपभ्रंश भाषा के तीन भेद हैं—नागर, ब्राचड और उपनागर। यही भेद 'क्रमदीश्वर' ने भी ५,६९ और ७० में बताये हैं। पर 'क्रमदीश्वर' ने दूसरे उपप्रकार का नाम ब्राचट बताया है। मुख्य अपभ्रंश भाषा नागर है। 'मार्कण्डेय' के मतानुसार पिंगल की भाषा नागर है और उसने इस भाषा के जो उदाहरण दिये हैं वे पिंगल से ही लिये गये हैं। ब्राचड नागर अपभ्रंश से निकली हुई बताई गई है जो 'मार्कण्डेय' के मतानुसार सिन्ध देश की बोली है—सिन्धुदेशोद्भवो ब्राचडोऽपभ्रंशः। इसके विशेष लक्षणों में से 'मार्कण्डेय' ने दो बताये हैं—१ च और ज के आगे इसमें य लगाया जाता है और ष तथा स का रूप श में बदल जाता है। ध्वनि के ये नियम, जो मागधी में व्यवहार में लाये जाते हैं और जिन्हें पूर्वीय प्रकार की भाषा के ध्वनि नियम बताता है (§ २४), अपभ्रंश में लागू बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त आरम्भ के त और द वर्ण का इच्छा के अनुसार ट और ड में बदल देना और जैसा कि कई उदाहरणों से आभास मिलता है, भृत्य आदि शब्दों को छोड़कर ऋ कार को जैसे-का-तैसा रहने देना इसके विशेष लक्षण हैं। इस भाषा में लिखे गये ग्रन्थों या ग्रन्थखण्डों की हस्तलिखित प्रतियाँ बहुत विकृत रूप में मिलती हैं। नागर और ब्राचड भाषाओं के मिश्रण से उपनागर निकली है। इस विषय पर 'क्रमदीश्वर' ने ५ ७ में जो लिखा है वह बहुत अस्पष्ट है।

'मार्कण्डेय' के पन्ना ८१ के अनुसार 'हरिश्चन्द्र' ने 'टाक्की' या 'ढक्की' को भी अपभ्रंश भाषा में सम्मिलित किया है जिसे मार्कण्डेय संस्कृत और शौरसेनी का मिश्रण समझता है और पन्ना १ में इसे एक प्रकार की विभाषा मानता है। इस भाषा का एक शब्द है पद्दुदुजल* जो संस्कृत शब्द पद्य यदि के स्थान पर आया है। यह शब्द 'पिंगल १ ४ में आया है। 'रविकर' के मतानुसार, जो 'बोल्लें नसॅन' द्वारा सम्पादित बिब्लोथेकी के पेज ५२७ की टीका में मिलता है, यह शब्द मागधी भाषा का है जिससे पता चलता है कि यह बंगाल' में बोली जाती होगी। इस विषय पर § २५ में ढक्की भाषा का रूप भी देखिए। इन बातों से कुछ इस प्रकार का निदान निकल सकता है कि अपभ्रंश भाषा की बोलियाँ सिन्ध से लेकर बंगाल तक बोली जाती रही होंगी, चूँकि अपभ्रंश भाषा जनता की भाषा रही होगी इस दृष्टि से यह बात जँचती है। अपभ्रंश भाषा का एक बहुत छोटा हिस्सा प्राकृत ग्रन्थों में प्राकृत भाषा के रूप में बदल कर ले लिया गया है पिंगल १ १, २० और ६१ में 'लक्ष्मीधर भट्ट' ने कहा है कि पिंगल की भाषा अवहट्ट भाषा है जिसका संस्कृत रूप अपभ्रष्ट है। किन्तु पेज १२ १५ में यही लक्ष्मीधर भट्ट कहता है कि वह वणमकरी को जिसे पिंगल और अन्य लोगों ने छोड़ दिया था उसे मैं शास्त्रीय प्राकृतिक अवहट्ट की वर्णन करना चाहता है। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला १ ३० में कहा है अपरभाषा (= उपभाषा) उसने अपने ग्रन्थ में नहीं रखा है; क्योंकि इसका [illegible]

* यह शब्द अपभ्रंश भाषा के शब्दों में पद के स्थान पर बार-बार आता है। जैसे 'शालिक' [illegible] 'पायमित्तलेदि' में जैंह भी है और जैंहु भी (१ १ १ ८ १ ५)—अनु

अपभ्रष्टं इव रूपं है। इसी ग्रन्थ के १, ६७ में उसने कुछ विद्वानों के मत उद्धृत किये हैं जिनके अनुसार आसिअओ आयसिकः का अपभ्रंश है और १७, १४१, मे विशुद्ध महाराष्ट्री शब्द 'एसो ठिओ' पखु मज्झाणे'[५] अपभ्रष्ट भाषा के शब्द हैं। साहित्यिक अपभ्रंश प्राकृतोऽपभ्रंशः अर्थात् प्राकृत अपभ्रंश है। इसकी ध्वनि के अनुसार स्वरों को दीर्घ और ह्रस्व करने की पूरी स्वतन्त्रता रहती है जिसके कारण कवि महोदय चाहें तो किसी स्थान पर और अपनी इच्छा के अनुसार स्वरों को उलट-पलट दें, चाहें तो अन्तिम स्वर को उडा ही दे, शब्दों के वर्णों को खा जायँ, लिंग, विभक्ति, एकवचन, बहुवचन आदि में उथलपुथल कर दें और कर्तृ तथा कर्मवाच्य को एक दूसरे से बदल दें आदि-आदि बातें अपभ्रंश को असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण और सरस बना देती हैं। अपभ्रंश भाषा की विशेषता यह भी है कि इसका सम्बन्ध वैदिक भाषा से है (§ ६)।*

१ पिशल, हेमचन्द्र १, भूमिका का पेज ९।— २ बौल्लेनसेन के पाठ में एहो रूप है, किन्तु टीका में एद्ह शब्द है, बम्बई के संस्करण के पाठ में एओ आया है।— ३. बोएटलिंक और रोट के संस्कृत-जर्मन कोश में वरेन्द्र और वारेन्द्र देखिए।— ४ बम्बई के सस्करण में सर्वत्र—हट्ट—आया है, इस सम्बन्ध में सरस्वतीकंठाभरण ५९, ९ देखिए।— ५ ब्लौकहाउस ने अशुद्ध रूप मज्झाओ दिया है। दुर्गाप्रसाद और परब ने ठीक ही रूप दिया है। उन्होंने केवल खु रूप दिया है।

§ २९—अबतक जो सामग्री प्राप्त हुई है, उसमें से, हमारे अपभ्रंश के ज्ञान के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के अध्याय ४ के सूत्र ३२९ से ४४६ तक हैं। त्रिविक्रम ३,३ और १ तथा उसके बाद के पेजों में हेमचन्द्र का ही अनुसरण किया गया है। मेरे द्वारा सम्पादित हेमचन्द्र के सस्करण में मैंने जो सामग्री एकत्र की है, उसके अतिरिक्त इस व्याकरण में मैंने उदय सौभाग्यगणिन् की 'व्युत्पत्तिदीपिका' ग्रन्थ की पूना से प्राप्त दोनों हस्तलिखित प्रतियों का प्रयोग किया है। इस ग्रन्थ में इसका नाम हैमप्राकृतवृत्तिढुंढिका लिखा हुआ है तथा इसमें हेमचन्द्र के नियमों के आधार पर कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी गई है। इसलिए

* इस अपभ्रंश भाषा से भारत की वर्तमान आर्यभाषाओं का निकट सम्बन्ध है। अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि कभी यह भाषा भारत-भर में व्याप्त थी—विशेषत उस क्षेत्र में जहाँ आजकल नवीन आर्यभाषाएँ बोली जाती हैं। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि अपभ्रंश कभी उत्तरभारत में बगाल से सिन्ध तक और कश्मीर से महाराष्ट्र तक फैली थी। साहित्य की भाषा हमें आज भी मिलती है, जिसमें जनता की बोली के शब्दों के साथ उच्च साहित्यिक भाषा के प्रयोग मिलते हैं। किन्तु अपभ्रंश से स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश-काल हिन्दी का आरम्भ-काल था। प्राय १२०० वर्ष पुराना एक उदाहरण पाठक पढ़े —जलइ मरइ उवजइ बज्झइ तइ परम महासुह सिज्झइ। इसमें वर्तमान धातु का एक रूप, जले, मरे, उपजे, बधे, सीझे स्पष्ट है। पुरानी हिन्दी में जो लहइ, सोहइ आदि रूप हैं, उनकी उत्पत्ति भी अपभ्रंश में दिखाई देती है, पाता है, सोहता है, लेता है आदि रूप जो आजकल हिन्दी में चलते हैं, शौरसेनी प्राकृत से प्रभावित अपभ्रंश के रूप हैं जो व्रजभाषा और मेरठी बोली से आये हैं। इस विषय पर भूमिका देखिए। —अनु०

अधिकांश में यह ग्रन्थ सर्वथा अनुपयोगी है। इसका पाठ दो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलने पर भी नहीं सुधारा जा सका है, क्योंकि इसमें वे ही सब दोष हैं जो उन हस्तलिखित प्रतियों में हैं, जिनका मैंने इससे पहले उपयोग किया। किन्तु 'उदय सौभाग्यगणिन्'ने, त्रिविक्रम' के समान ही अपभ्रंश के उदाहरणों के साथ साथ संस्कृत अनुवाद भी दे दिया है और इस एक कारण से ही इसे समझने में बड़ी सुविधा हो जाती है तथा मेरा तो इससे बहुत काम निकला है। इसका अभी तक कुछ पता नहीं चला है कि हेमचन्द्र ने अपने उदाहरण किस ग्रन्थ से लिये। उन्हें देखकर कुछ ऐसा लगता है कि वे किसी ऐसे संग्रह से लिये गये हैं, जो सत्तसई के ढंग का है जैसा कि 'ब्लाखरिआए'[1] ने बताया है। हेमचन्द्र के पद ४,३५७,२ और ३, 'सरस्वतीकंठाभरण' के पेज ७६ में मिलते हैं जिसमें इनकी सविस्तर व्याख्या दी गई है, इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र ४,३५३ पच्छ १,११ भ (पेज ३६) में मिलता है, ४,३३ ,२, भी पद्य २,२७ (पेज ४०) में मिलता है। इस ग्रन्थ के २,२७ में (पेज ४७) एक स्वतन्त्र अपभ्रंश पद भी है। § २४ नोट ४ हेमचन्द्र ४,४२ ९ सरस्वतीकंठाभरण' के ९८ में मिलता है और ४ ३६७,५ शुकसप्तति के पेज ११ में आया है। 'हेमचन्द्र' के बाद महत्त्वपूर्ण पद 'विक्रमोर्वशी' पेज ५५ से ७२ तक में मिलते हैं। शंकर परब पण्डित और ब्लोख' का मत है कि ये मौलिक नहीं, क्षेपक हैं; किन्तु ये उन सभी हस्तलिखित प्रतियों में मिलते हैं जो दक्षिण में नहीं लिखी गई हैं। यह बात हम जानते हैं कि दक्षिण में लिखी गई पुस्तकों में पूरे पाठ का संक्षेप किया गया है और अंश-के-अंश निकाल दिये गये हैं[1]। इन पदों की मौलिकता के विरुद्ध जो कारण दिये गये हैं वे ठहर नहीं सकते, जैसा कि कोनो ने प्रमाणित कर दिया है। यदि 'पिंगल छन्दःसूत्र' का हमारे पास कोई आलोचनात्मक संस्करण होता तो उसमें अपभ्रंश की सामग्री का जो खजाना है उसमें बहुत कुछ देखने को मिलता। इस शोध का आरम्भ 'बौल्लें नसेन' ने 'विक्रमोर्वशी' के अपने संस्करण के पेज ५२ और उसके बाद के पेजों में किया है। उसकी सामग्री श्रीमान्‌ गौल्दश्मित्त बर्लिन से लाया था, क्योंकि उसका विचार एक नया संस्करण निकालने का था। और सामग्री बहुत समृद्ध रूप में भारतवर्ष में है। इस संस्करण का नाम 'श्रीमन्नागभट्टविरचित प्राकृत पिंगलसूत्राणि, लक्ष्मीनाथ भट्ट विरचितया व्याख्ययानुगतानि' है। यह ग्रन्थ शिवदत्त और काशिनाथ पांडुरंग परब द्वारा सम्पादित किया गया है और बम्बई से १८९४ में निकला है। यह काव्यमाला' का ४१ वाँ ग्रन्थ है और अधिक काम का नहीं है। मैंने इस ग्रन्थ को एस. इ. गौल्दश्मित्त द्वारा संशोधित लिपि २ १४ तक के पाठ से मिलाया है। कुछ स्थलों में गौल्दश्मित्त का पाठ मेरे काम का निकला किन्तु अधिकांश स्थलों में यह बम्बई के संस्करण से स्वयं अशुद्धियों में भी मिलता है जिससे यह बात साफ हो जाती है कि यूरोप में इस विषय पर पर्याप्त सामग्री नहीं है। निश्चय ही गौल्द श्मित्त का पाठ प्रकाशित किये जाने के लिए संशोधित नहीं किया गया था, वह उसने अपने काम के लिए ही ठीक किया था। इस क्षेत्र में अभी बहुत काम करना

बाकी है। जबतक कोई ऐसा संस्करण नहीं निकलता जिसमें आलोचनापूर्ण सामग्री हो तथा सबसे पुराने और श्रेष्ठ टीकाकारों की टीका भी साथ हो, तबतक अपभ्रंश के ज्ञान के बारे में विशेष उन्नति नहीं हो सकती। अपभ्रंश के कुछ पद इधर-उधर बिखरे भी मिलते हैं। 'याकोबी' द्वारा प्रकाशित एर्त्सेलुगन पेज १५७ और उसके बाद, कालकाचार्य कथानक २६०,४३ और उसके बाद के पेजों में, २७२, ३४ से ३८ तक, द्वारावती ५०४, २६-३२, सरस्वतीकठाभरण पेज ३४, ५९, १३०, १३९, १४०, १६५, १६०, १६९, १७७, २१४, २१६, २१७, २१९, २५४, २६०, दशरूप १३९, ११ और १६२, ३ की टीका में ध्वन्यालोक २४३, २० में और शुकसप्तति में अपभ्रंश के पद मिलते हैं। रिचार्ड स्मित्त (लाइप्त्सिख १८९३) में प्रकाशित शुकसप्तति के पेज ३२, ४९, ७६, १२२, १३६, १५२ का नोट, १६० नोट सहित, १७० नोट, १८२ नोट, १९९; ऊले द्वारा सम्पादित 'वेतालपचविंशति' के पेज २१७ की सख्या १३, २२० सख्या २०, इण्डिशेस्टुडिएन १५,३९४ में प्रकाशित 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' में, बम्बई से १८८० में प्रकाशित 'प्रबन्धचिन्तामणि' के पेज १७, ४६, ५६, ५९, ६१, ६२, ६३, ७०, ८०, १०९, ११२, १२१, १४१, १५७, १५८, १५९, २०४, २२८, २३६, २३८, २४८, बीम्स के कम्पेरेटिव ग्रैमर २,२८४ में मिलते हैं। इन पदों में से अधिकाश इतने विकृत हैं कि उनमें से एक दो शब्द ही काम के मिलते हैं। वाग्भट्ट ने 'अलकारतिलक' १५,१३ में 'अब्धिमथन'[10] नाम से एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है, जो अपभ्रंश में था।

१ श्रीधर आर० भण्डारकर, ए कैटलौग औफ द कलेक्शन्स औफ मैन्युस्क्रिप्टस् डिपौजिटेड इन द डेकन कालेज इन (बम्बई १८८८) पेज ६८ संख्या २७६, पेज ११८ सख्या ७८८।—— २ हेमचन्द्र १,भूमिका का पेज ९।—— ३ गोएर्टिंगिशे गेलेर्ते आन्त्साइगेन १८८४, पेज ३०९।— ४ विक्रमोर्वशीयम् (बम्बई १८८९) पेज ९ और उसके बाद।—— ५ वररुचि उण्ट हेमचन्द्र, पेज १५ और उसके बाद।— ६ पिशल नाखरिख्टन फौन डेर कोएनिग्लिशे गेजेलशाफ्ट डेर विस्सनशाफ्टन त्सु गोएर्टिंगन १८७४, २१४, मोनाट्स बेरिष्टे डेर आकाडेमी त्सु बर्लिन १८७५, ६१३। पञ्चतन्त्र और महाभारत के दक्षिणी संस्करण सक्षिप्त हैं, किन्तु सबसे प्राचीन नहीं हैं।—— ७ गोएर्टिंगिशे गेलेर्ते आन्त्साइगेन १८९४, ४७५।—— ८ वेबर, फैर्त्साइशनिस २,१,२६९ और उसके बाद।— ९ औफरेष्ट, काटालोगुस काटालोगोरुम १,३३६ और उसके बाद, २, ७५, इसमें ठीक ही लिखा गया है कि इन ग्रन्थों में बाहर से ली गई बहुत-सी सामग्री मिलती है, उदाहरणार्थ कर्पूरमजरी पेज १९९, २०० और २११ के उद्धरण।— १० वेबर, फैर्त्साइशनिस २,१, २७० सख्या १७११।

§ ३०—'भारतीय नाट्यशास्त्र' १७, ३१–४४[1], दशरूप २, ५९ तथा ६० और 'साहित्यदर्पण' ४३२ में यह बताया गया है कि उच्चकोटि के पुरुष, महिलाओं में तपस्विनियों, पटरानियों, मन्त्री की कन्याओं और मगलामुखियों को सस्कृत में बोलने का अधिकार है। 'भरत' के अनुसार नाना कलाओं में पारंगत महिलाएँ सस्कृत बोल

सकती हैं। अन्य स्त्रियाँ प्राकृत बोलती हैं। इस संसार में आने पर अप्सराएँ संस्कृत या प्राकृत, जो मन में आवे, बोल सकती हैं। संस्कृत नाटकों को देखने पर पता चलता है कि उनमें भाषा के इन नियमों के अनुसार ही पात्रों से बातचीत कराई जाती है। इन नियमों के अनुसार यह बात पाई जाती है कि पटरानियाँ यानी महिषियाँ प्राकृत में बोलती हैं। मालतीमाधव' में मंत्री की बेटी मालती और मदयंतिका' प्राकृत बोलती हैं। 'मृच्छकटिक' में वेश्या 'वसन्तसेना' की अधिकांश बात चीत प्राकृत म ही हुई है किन्तु पेज ८१–८६ तक में उसके मुँह से जो पद्य निकले हैं, वे सब संस्कृत में हैं। वेश्याओं के विषय में यह बात सरलता से समझ में आ जाती है कि वे प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाएँ साधिकार बोलती रही होंगी। एक सर्वगुण सम्पन्न वेश्या का यह लक्षण होता था कि वह चौंसठ गुणों की खान होती रही होगी और उसका जनता की १८ प्रकार की बोलियों से भी परिचय रहता होगा—गणिया

चौसट्ठि कलापंडिया चौसट्ठि गणियागुणेववेया अट्ठारसदेशीभाषा विसारया (नायाधम्मकहा ४८, विवागसुम ५५ और उसके बाद)। व्यवसाय में विशेष लाभ करने के लिए उक्त बातों का गणिका में रहना जरूरी समझा जाता रहा होगा जो स्वाभाविक है। 'कुमारसम्भव' ७ में नवविवाहित दम्पती की प्रशंसा करते समय सरस्वती शिव के बारे में संस्कृत में श्लोक पढ़ती है और पार्वती की जो स्तुति करती है वह सरलता से समझ में आनेवाली भाषा में अर्थात् प्राकृत में करती है। कर्पूरमञ्जरी' ५,१ और ४ में 'राजशेखर' ने अपना मत व्यक्त किया है कि संस्कृत के ग्रन्थों की भाषा कठोर होती है तथा प्राकृत पुस्तकों की कान्त और कोमल; इनमें उतना ही भेद है जितना कि पुरुष और स्त्री में। 'मृच्छकटिक' के ४४ १ में विदूषक कहता है कि उसे दो बातों पर बहुत हँसी आती है, उस स्त्री को देखकर जो संस्कृत बोलती है और उस पुरुष को देखकर, जो बड़ी धीमी आवाज में गाता है वह स्त्री जो संस्कृत बोलती है उस सुअर की भाँति जोर जोर से सु सु करती है जिसकी नाक में नकेल डाल दी गई हो और वह आदमी, जो धीमे स्वर में गाता है उस बूढ़े पुरोहित के समान है जो हाथ में सूखे फूलों का गुच्छा लेकर अपने यजमान के सर पर आशीर्वाद के श्लोक गुनगुनाता है। 'मृच्छकटिक' का सूत्रधार, जो नाटक को विदूषक का पार्ट खेलता है, प्रारम्भ में संस्कृत बोलता है; किन्तु जैसे ही वह स्त्री से सम्भाषण करने की तैयारी करता है वैसे ही वह कहता है (२ १४) कि परिस्थिति और परंपरा के अनुसार मैं प्राकृत में बोलना चाहता हूँ। पृथ्वीधर (४९५ ११) ने इस स्थान पर उद्धरण दिया है जिसके मतानुसार पुरुष को स्त्री से बातचीत करते समय प्राकृत बोली का उपयोग करना चाहिए—स्त्रीषु नाभाषाक्रमम् वदेत्। उक्त सब मतों के अनुसार प्राकृत भाषा विशेषकर स्त्रियों की भाषा मान ली गई है और यही बात अलंकारशास्त्रों के सब लेखक भी कहते हैं। किन्तु नाटकों में स्त्रियाँ संस्कृत भलीभाँति समझती ही नहीं, बल्कि अवसर पड़ने पर संस्कृत बोलती भी हैं विशेषकर श्लोक संस्कृत में ही वे पढ़ती हैं। विद्धशालभंजिका पेज ७५ और ७६ में विचक्षणा; मालतीमाधव पेज ८१ और

८४ में मालती, पेज २५३ में लवगिका; 'प्रसन्नराघव' के पेज ११६–११८ तक में गद्य वर्तालाप में भी सीता और पेज १२०, १२१ और १५५ में श्लोकों में, 'अनर्घराघव' के पेज ११३ में कलहसिका, कर्णसुन्दरी के पेज ३० में नायिका की सहेली और पेज ३२ में स्वय नायिका, 'बालरामायण' के पेज १२० और १२१ में सिन्दूरिका, 'जीवानन्दन' के पेज २० में छर्दि, 'सुभद्राहरण' नाटक के पेज २ मे नाटक खेलनेवाली और पेज १३ में सुभद्रा; 'मल्लिकामारुतम्' के ७१,१७ और ७५,४में मल्लिका, ७२,८में और ७५,१० में नवमालिका, ७८,१४ और २५१,३ में सारसिका, ८२,२४, ८४, १० और ९१,१५ में कालिन्दी, धूर्तसमागम के पेज ११ मे अनगसेना वार्तालाप में भी प्राकृत का ही प्रयोग करती हैं। 'चैतन्यचन्द्रोदय' में भी स्त्रियाँ प्राकृत बोलती हैं। बुद्धरक्षिता ने इस विषय पर 'मालतीमाधव' पेज २४२ और 'कामसूत्र' १९९,२७ के उद्धरण दिये हैं। वे पुरुष, जो साधारण रूप से प्राकृत बोलते हैं, श्लोक पढते समय सस्कृत का प्रयोग करते हैं ऐसा एक उदाहरण 'विद्धशालभजिका' के पेज २५ में विदूषक है जो अपने ही मुँह से यह बात कहता है कि उस जैसे जनों के लिए व्यवहार की उपयुक्त भाषा प्राकृत है— **अम्हारिसजणजोग्गो पाउडमग्गो**। 'कर्णसुन्दरी' के पेज १४ और 'जीवानन्दन' के पेज ५२ और ८३ ऐसे ही स्थल हैं। 'कसवध' के पेज १२ का द्वारपाल, 'धूर्तसमागम' के पेज ७ का स्नातक और 'हास्यार्णव' के पेज २३,३३ और ३८ के स्थल तथा पेज २८ में नाऊ भी ऐसे अवसरो पर सस्कृत का प्रयोग करते हैं, 'जीवानन्द' के पेज ६ और उसके बाद के पेजों में 'धारणा' वैसे तो अपनी साधारण बातचीत में प्राकृत का प्रयोग करती है, परन्तु जब वह तपस्विनी के वेष में मन्त्री से बातचीत करती है तब संस्कृत में बोलती है; 'मुद्राराक्षस' के ७० और उसके बाद के पेजो में विराधगुप्त वेष बदल कर सँपेरे का रूप धारण करता है तो प्राकृत में बोलने लगता है, किन्तु जब वह अपने असली रूप में आ जाता है और मन्त्री राक्षस से बातें करता है तब (पेज ७३,८४ और ८५) साधारण भाषा सस्कृत बोलता है। 'मुद्राराक्षस' २८,२ में वह अपनेको प्राकृत भाषा का कवि भी बताता है। एक अज्ञातनामा कवि को यह शिकायत है कि उसके समय में ऐसे बहुतेरे लोग थे जो प्राकृत कविता पढना नहीं जानते थे और एक दूसरे कवि ने ('हाल' की सत्तसई २ और वज्जालग्ग ३२४,२०) यह प्रश्न उठाया है कि क्या ऐसे लोगों को लाज नहीं आती जो अमृतरूपी प्राकृत काव्य को नहीं पढते और न उसे समझ ही सकते हैं, साथ ही वे यह भी कहते हैं कि वे प्रेम के रस में पगे हैं। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' ५७,८ में **नाड्यराजस्य** शुद्ध पाठ है और उससे किसका प्रयोजन है, यह अभी तक अस्पष्ट ही रह गया है और इसी प्रकार 'साहसाक' ५७,९ का किससे सम्बन्ध है, इसका भी परदा नहीं खुला है। ऊपर लिखे हुए 'सरस्वती-कण्ठाभरण' के उद्धरण से यह पता लगता है कि उक्त राजा के राज्य में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं था जो प्राकृत बोलता था और साहसाक के उक्त वाक्य से मालूम होता है कि उस समय में एक भी आदमी ऐसा नही था जो सस्कृत न बोलता हो[४]। यद्यपि कहीं कहीं प्राकृत भाषा की बहुत प्रशसा की गई है, तथापि ऐसा आभास मिलता है कि सस्कृत की तुलना में प्राकृत का पद नीचा ही माना जाता होगा और इस कारण

तो इस भाषा का नाम प्राकृत पड़ने से भी प्राकृत का तात्पर्य, जैसा कि अन्य स्थलों पर इसका अर्थ होता है, 'साधारण'; 'सामान्य' 'नीच' रहा होगा। प्राकृत की बोलियों की प्राचीनता और ये बोलियाँ एक दूसरे के बाद किस क्रम से उपजीं, इन विषयों पर शोध करना व्यर्थ ही है (§ ३२)।

१ भरत ने बहुतेरी विशेषताएँ दी हैं जिनके बारे में मैं बहुत कम लिख रहा हूँ; क्योंकि पाठ कई प्रकार से अनिश्चित हैं।— २ जनता की बोलियों की संख्या १८ भी। इसका उल्लेख ओववाइयसुत्त § १ ९ में, नायाधम्मकहा § १२१ और रायपसेणसुत्त २९१ में भी उदाहरण मिलते हैं। कामसूत्र ३६,९ में देशी भाषाओं का उल्लेख मोटे तौर पर किया गया है।— ३ पिशल हेमचन्द्र २ पेज ४७ जिसमें हेमचन्द्र १ २१ की टीका है। — ४ दोनों पद ५७१ और ११ बालरामायण ८४ और १६ का शब्द-प्रतिशब्द नकल हैं बार पद ५७,१६ बालरामायण ८७ से मिलता-जुलता है। चूँकि राजशेखर भोज से सौ वर्ष पहले वर्तमान था इसलिए सरस्वतीकण्ठाभरण के लेखक ने ये पद उद्धृत किये हैं।

ही इस भाषा का नाम प्राकृत पड़ने से भी प्राकृत का तात्पर्य, जैसा कि अन्य स्थलों पर इसका अर्थ होता है, 'साधारण', 'सामान्य' 'नीच' रहा होगा। प्राकृत की बोलियों की प्राचीनता और ये बोलियाँ एक दूसरे के बाद किस क्रम से उपजीं, इन विषयों पर शोध करना व्यर्थ ही है (§ १२)।

१ भरत ने बहुतेरी विभाषाएँ दी हैं जिनके बारे में मैं बहुत कम लिख रहा हूँ, क्योंकि पाठ कई प्रकार से अनिश्चित हैं।— २ जनता की बोलियों की संख्या १८ थी इसका उल्लेख ओववाइयसुत्त § १ ९ में, नायाधम्मकहा § १२१ और रायपसेणसुत्त १९१ में भी उदाहरण मिलते हैं। कप्पसुत्र ११ ९ में ऐसी भाषाओं का उल्लेख मोटे तौर पर किया गया है।— ३ पिशल हेमचन्द्र २ पेज ७४ जिसमें हेमचन्द्र १ २१ की टीका है। — ४ दोनों पद ५०१ और ११ बालरामायण ८ ४ और १३ का शब्द-प्रतिशब्द नकल हैं और पद ५०,१३ बालरामायण ८ ० से मिलता-जुलता है। चूँकि राजशेखर भोज से सौ वर्ष पहले वर्तमान था इसलिए सरस्वतीकण्ठाभरण के लेखक ने ये पद उद्धृत किये हैं।

ही इस भाषा का नाम प्राकृत पड़ने से भी प्राकृत का तात्पर्य, जैसा कि अन्य स्थलों पर इसका अर्थ होता है, 'साधारण', 'सामान्य', 'नीच' रहा होगा। प्राकृत की बोलियों की प्राचीनता और ये बोलियाँ एक दूसरे के बाद किस क्रम से उपजीं इन विषयों पर शोध करना व्यर्थ ही है (§ १२)।

१ भरत ने बहुतेरी विशेषताएँ दी हैं जिनके बारे में मैं बहुत कम लिख रहा हूँ, क्योंकि पाठ कई प्रकार से अनिश्चित हैं। — २ जनता की बोलियों की संख्या १८ थी इसका उल्लेख ओववाइयसुत्त § १०९ में, नायाधम्मकहा § १२१ और रायपसेणइसुत्त २९१ में भी उदाहरण मिलते हैं। कप्पसुत्त ११,९ में देसी भाषाओं का उल्लेख मोटे तौर पर किया गया है। — ३ पिशल हेमचन्द्र २ पेज ४१ जिसमें हेमचन्द्र १,२१ की टीका है। — ४ दोनों पद ५७,१ और ११ बालरामायण ८४ और १६ का शब्द-प्रतिशब्द नकल हैं और पद ५७,१६ बालरामायण ८७ से मिलता-जुलता है। चूँकि राजशेखर भोज से सौ वर्ष पहले वर्तमान था इसलिए सरस्वतीकण्ठाभरण के लेखक ने ये पद उद्धृत किये हैं।

यह भी कहा जाता है कि पाणिनि ने प्राकृत में दो काव्य लिखे थे। एक का नाम था 'पातालविजय' और दूसरे का 'जाम्बवतीविजय'[६]। यद्यपि 'पातालविजय' से गृह्य और पश्यती रूप उद्धृत किये गये हैं तथापि पाणिनि के अपने सूत्र ७,१,३७ और ८१ इन रूपों के विरुद्ध मत देते हैं। इसलिए 'कीलहौर्न'[७] और 'भण्डारकर'[८] 'पातालविजय' और 'जाम्बवतीविजय' के कवि और व्याकरणकार पाणिनि को एक नहीं समझते और इस मत को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इधर शोधों से पता चला है कि उक्त दो काव्यों की प्राचीनता उससे और भी अधिक है, जितनी कि आवश्यक मानी जाती थी।[९] गृह्य शब्द रामायण और महाभारत में बार बार आया है और इसी प्रकार अन्ती के स्थान पर अती में अन्त होनेवाले कृदन्त रूप भी उक्त ग्रन्थों में कम बार[१०] नहीं आये हैं। यह असम्भव है कि पाणिनि ने महाभारत से परिचय प्राप्त न किया हो। उसका व्याकरण कविता की भाषा की शिक्षा नहीं देता बल्कि ब्राह्मणों और सूत्रों में काम में लाई गई विशुद्ध संस्कृत[१] के नियम बताता है और चूँकि उसने अपने ग्रन्थ में ब्राह्मणों और सूत्रों के बहुत से रूपों का उल्लेख नहीं किया है, इस बात से यह निदान निकालना अनुचित है कि ये रूप उसके समय में न रहे होंगे और कवि के रूप में यह इनका प्रयोग न कर सका होगा। भारतीय परम्परा व्याकरणकार और कवि पाणिनि को एक ही व्यक्ति[१] समझती है तथा मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि इस परम्परा पर सन्देह किया जाय। पाणिनि प्राकृत के व्याकरण पर भी बहुत कुछ लिख सकता था। सम्भवतः उसने अपने संस्कृत व्याकरण के परिशिष्ट रूप में प्राकृत व्याकरण लिखा हो। किन्तु पाणिनि का प्राकृत व्याकरण न तो मिलता है न उसके उद्धरण ही कहीं पाये जाते हैं। पुरान व्याकरणकारों के नामों में मार्कण्डेय के ग्रन्थ के पन्ना ७१ में 'कपिल' भी उद्धृत किया गया है।

१ पिशल : द ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज १। —२ मैंने इस विषय पर काव्यमाला संख्या ४९ में प्रकाशित शिवदत्त और परब द्वारा सम्पादित संस्करण के साथ-साथ पूना की दोनों हस्तलिखित प्रतियों से सहायता ली है। इनकी जो प्रतिलिपियाँ मेरे पास आई हैं वे बहुत पुरानी हैं और यह संस्करण

जिसका प्राकृत में गेण्हइ, घेप्पइ रूप होने हैं; घुण भ्रमणे जिससे घूर्ण धातु के मेल और वजन पर हिन्दी घूमना निकला है; घट्ट चुराने जिससे घड़ना घड़ाघड़ आदि शब्द आये हैं; चप सान्त्वने जो हिन्दी चुप का मूल है; चुंट छेदने जिससे च्यूंटी शब्द आया है; जम् अदने से जमना और जीमना निकले हैं; चुड संवरणे चुड़ा और ओढ़ने के मूल में है; टंक् बंधने जिससे टाँका लगाना टाँकना आदि निकले हैं; डंग् गत्यर्थे डाँग डाँगना आये हैं; ढंस दर्शने दशनयोः जिससे ... ढूँसना बना है; और गतिचातुर्ये जिससे दौड़ना निकला है; यह इसमें धातु पढ़ना की जड़ में है; लार शब्द इससे ही आया है; पीड् भय पाइने से पूड़ना निकला है; पेच् गती से पेचना (रेल) पेल आये हैं; वाड् आप्लावने से बाढ़ निकला है; मंग मंगन से माँग शब्द बना है; मरक् गत्यर्थे (इस से—) मस की जड़ में है; हिंड गत्यर्थे जो बंगाली हाँटा और कुमाउनी हिटणो के मूल में है; ... से इस शब्द की व्युत्पत्ति मिलती है आदि। इन धातुओं का व्यवहार संस्कृत में नहीं मिलता और रूप भी स्पष्ट प्राकृत है।—अनु

यह भी कहा जाता है कि पाणिनि ने प्राकृत में दो काव्य लिखे थे। एक का नाम था 'पातालविजय' और दूसरे का 'जाम्बवतीविजय'[९]। यद्यपि 'पातालविजय' से गृह्य और पश्यती रूप उद्धृत किये गये हैं तथापि पाणिनि के अपने सूत्र ७ १,३७ और ८१ इन रूपों के विरुद्ध मत देते हैं। इसलिए 'कीलहोर्न'[१०] और 'भण्डारकर'[११] 'पातालविजय' और 'जाम्बवतीविजय' के कवि और व्याकरणकार पाणिनि को एक नहीं समझते और इस मत को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इधर शोधों से पता चला है कि उक्त दो काव्यों की प्राचीनता उससे और भी अधिक है, जितनी कि आवश्यक मानी जाती थी।[१२] गृह्य शब्द रामायण और महाभारत में बार बार आया है और इसी प्रकार पश्यती के स्थान पर मती में अन्त होनेवाले कृदन्त रूप भी उक्त ग्रन्थों में कम बार[१३] नहीं आये हैं। यह असम्भव है कि पाणिनि ने महाभारत से परिचय प्राप्त न किया हो। उसका व्याकरण कविता की भाषा की शिक्षा नहीं देता बल्कि ब्राह्मणों और सूत्रों में काम में लाई गई 'विशुद्ध संस्कृत' के नियम बताता है और चूँकि उसने अपने ग्रन्थ में ब्राह्मणों और सूत्रों के बहुत-से रूपों का उल्लेख नहीं किया है इस बात से यह निदान निकालना अनुचित है कि ये रूप उसके समय में न रहे होंगे और कवि के रूप में वह इनका प्रयोग न कर सका होगा। भारतीय परम्परा व्याकरणकार और कवि पाणिनि को एक ही व्यक्ति' समझती है तथा मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि इस परम्परा पर सन्देह किया जाय। पाणिनि प्राकृत के व्याकरण पर भी बहुत-कुछ लिख सकता था। सम्भवतः उसने अपने संस्कृत व्याकरण के परिशिष्ट रूप में प्राकृत व्याकरण लिखा हो। किन्तु पाणिनि का प्राकृत व्याकरण न तो मिलता है न उसके उद्धरण ही कहीं पाये जाते हैं। पुराने व्याकरणकारों के नामों में मार्कण्डेय के ग्रन्थ के पन्ना ७१ में कपिल भी उद्धृत किया गया है।

१ पिशल : डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज १।—२ मैंने इस विषय पर काव्यमाला संख्या ५१ में प्रकाशित शिवदत्त और परब द्वारा सम्पादित संस्करण के साथ-साथ पूना की दोनों हस्तलिखित प्रतियों से सहायता ली है। इनकी जो प्रतिलिपियाँ मेरे पास आई हैं वे बहुत पुरानी हैं और यह संस्करण

जिसका प्राकृत में येण्हइ, येण्हइ रूप होते हैं। घुम् भ्रमने जिसमें घूर्ण धातु के भेद और चक्कर पर हिन्दी घूमना निकला है। चक् तृप्तौ जिससे छकना, चखना आदि शब्द आते हैं। चप सान्त्वने जो हिंदी चुप का मूल है। चुंट छेदने जिससे च्यूँटी शब्द बना है। छम् अदने से जमना और छीमना निकले हैं। छुड संवरणे छुड़ा और छोड़ने के मूल में है। टंक् बंधने जिससे टाँका लगाना, टाँकना आदि निकले हैं। टंग गत्यर्थ टाँग, टाँगना आदि हैं। ढंस दशन दशनयोः जिससे प्राकृत डंसण बना है। थोर् गतिचातुर्ये जिससे दौड़ना निकला है। पट इससे धातु पटना की जड़ में है पाट शब्द इससे ही बना है। पील् भप गायन में धूकना निकला है। पेस् गतौ से पसना (रेंग), पेल आदि हैं। बाड् आप्लाव्ये से बाढ़ निकला है। मंख् मंडने से माँग शब्द बना है। मसक् गत्यर्थे (इस से—) मस की जड़ में है। हिंड् गत्यर्थे की बंगाली हाँटा और कुमाउनी हिटणों के मूल में है। हल् धम्मे में हल चक की व्युत्पत्ति मिलती है आदि। इन धातुओं का व्यवहार संस्कृत में नहीं मिलता और रूप भी स्पष्टतः प्राकृत है।—अनु

यह नाम बहुत बार आया है और अपनी भूमिका में इस लेखक ने 'कात्यायन' और 'वररुचि' नाम में बड़ी गड़बड़ी की है तथा 'प्राकृतप्रकाश' के २ २ में उसने वररुचि के स्थान पर कात्यायन नाम का प्रयोग किया है[९]। वार्तिककार कात्यायन के नाम के विषय में भी ऐसी ही गड़बड़ी दिखाई देती है। सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' २,१ और क्षेमेन्द्र ने 'बृहत्कथामञ्जरी' १, ९८ और २, १९ में यह बताया है कि कात्यायन का नाम वररुचि भी था। यह परम्परा प्राचीनता में 'गुणाढ्य' तक पहुँचती है और 'सायण' तक चली आई है तथा सब कोषकारों ने इसको लगातार पुष्ट किया है। सुभाषितों के एक संग्रह 'सदुक्तिकर्णामृत' में एक श्लोक दिया गया है जो वार्तिककार का बताया गया है। इस नाम से केवल 'कात्यायन' का ही बोध हो सकता है किन्तु पाणिनि के सूत्र ४१ १ १ (जो कीलहोर्न के संस्करण २, ११५ में है) की टीका में पतंजलि ने किसी वाररुच काव्य का उल्लेख किया है। इससे यह सम्भावना होती है कि वार्तिककार कात्यायन केवल व्याकरणकार नहीं था बल्कि कवि भी था जैसा कि उससे पहले पाणिनि रहा होगा (§ ११) और उसके बाद पतंजलि[१०] हुआ होगा। इससे यह मालूम होता है कि कात्यायन, वररुचि के नाम से बदला जा सकता था और यह वररुचि परम्परा से चली हुई लोककथा के अनुसार कालिदास का समकालीन था तथा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक था[११]। वेबर[१२] ने बताया है कि 'प्राकृतमंजरी' के लेखक ने भी इस विषय पर गड़बड़ी की है और मेयर[१३], वेस्टरगार्ड[१४] तथा ब्लीस[१५] ने कोवेल[१६], मैक्समूलर[१७] पिशल[१८] और कोनो[१९] के मत के विरुद्ध यह बात कही है कि वार्तिककार और प्राकृतवैयाकरण एक ही व्यक्ति होने चाहिए। यदि वररुचि का हेमचन्द्र तथा दक्षिण के अन्य प्राकृत वैयाकरणों ने आलोचना के क्षेत्र में कुछ पीछे छोड़ दिया तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि 'आलोचनात्मक ज्ञान में बहुत ऊँचा उठा हुआ वार्तिककार' पाणिनि के व्याकरण का निर्दय चीर फाड़ करनेवाला[२०] कात्यायन उससे अलग करने योग्य है। हेमचन्द्र के समय में प्राकृत व्याकरण ने बहुत उन्नति कर ली थी। यह बात वररुचि के समय में नहीं हुई थी उसके समय में प्राकृत व्याकरण का श्रीगणेश किया जा रहा था। यह बात दूसरी है कि सामने पड़े हुए ग्रन्थों का संशोधन और उनसे संग्रह किया जाय किन्तु किसी विषय की नींव डालना महान् कठिन उद्योग है। पतंजलि ने कात्यायन के वार्तिक की पंक्तियाँ उद्धृत की हैं; पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वररुचि ने जिन प्राकृत भाषाओं की शिक्षा दी है और जिनमें विशेष उल्लेखनीय महाराष्ट्री प्राकृत है, भवाद और नाटिक' के प्रस्तर-खण्डों से पानि तक की दृष्टि से नई हैं। चूँकि प्राकृत भाषाओं का प्रयोग काव्यों में पूर्वतम भी हुआ है और ये प्राकृत बोलियाँ जनता और राज्य की भाषा के साथ साथ चल रही थीं इसलिए यह निर्णय भ्रम होगा कि हम इन प्रस्तर-खण्डों से प्राकृत भाषाओं के विषय में एक निदान निकालें जिससे उनके काल-क्रम का ज्ञान हो। याकोबी और ल्योन का मत है कि महाराष्ट्री ईसवी सदी सन् के प्रारम्भ से पहले साहित्य के काम में नहीं आने लगी थी, परन्तु यह मत भ्रमपूर्ण है। यह इससे प्रमाणित होता है कि यदि उपर्युक्त एक ही उपाय द्वारा किसी

यह नाम बहुत बार आया है और अपनी भूमिका में इस लेखक ने 'कात्यायन' और 'वररुचि' नाम में बड़ी गड़बड़ी की है तथा 'प्राकृतप्रकाश के २ २ में उसने वररुचि के स्थान पर कात्यायन नाम का प्रयोग किया है'। वार्तिककार कात्यायन के नाम के विषय में भी ऐसी ही गड़बड़ी दिखाई देती है। सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' २,१ और क्षेमेन्द्र ने 'बृहत्कथामञ्जरी' १, ९८ और २, १५ में यह बताया है कि कात्यायन का नाम वररुचि भी था। यह परम्परा प्राचीनता में 'गुणाढ्य' तक पहुँचती है' और 'सायण'' तक चली आई है तथा सब कोशकारों' ने इसको लगातार पुष्ट किया है। सुभाषितों के एक संग्रह 'सदुक्तिकर्णामृत' में एक श्लोक लिया गया है जो वार्तिककार का बताया गया है। इस नाम से केवल 'कात्यायन' का ही बोध हो सकता है' किन्तु पाणिनि के सूत्र ४१ १ १ (जो कीलहोर्न के संस्करण २, ११५ में है) की टीका में पतंजलि ने किसी वाररुचं काव्य का उल्लेख किया है। इससे यह सम्भावना होती है कि वार्तिककार कात्यायन केवल व्याकरणकार नहीं था बल्कि कवि भी था जैसा कि उससे पहले पाणिनि रहा होगा (§ ११) और उसके बाद पतंजलि' हुआ होगा। इससे यह मालूम होता है कि कात्यायन, वररुचि के नाम से बदला जा सकता था और यह वररुचि परम्परा से चली हुई लोककथा के अनुसार कालिदास का समकालीन था तथा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक था''। वेबर'' ने बताया है कि 'प्राकृतमंजरी' के लेखक ने भी इस विषय पर गड़बड़ी की है और वेबर'', वेस्टरगार्ड'' तथा ब्लोख'' ने कोवेल'', मैक्सम्यूलर'' पिशल'' और कोनो'' के मत के विरुद्ध यह बात कही है कि वार्तिककार और प्राकृतवैयाकरण एक ही व्यक्ति होने चाहिए। यदि वररुचि को हेमचन्द्र तथा दक्षिण के अन्य प्राकृत वैयाकरणों ने आलोचना के क्षेत्र में कुछ पीछे छोड़ दिया तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि 'आलोचनात्मक ज्ञान में बहुत ऊँचा उठा हुआ वार्तिककार' पाणिनि के व्याकरण का निर्दय चीर-फाड़ करनेवाला'' कात्यायन उससे अलग करने योग्य है। हेमचन्द्र के समय में प्राकृत व्याकरण ने बहुत उन्नति कर ली थी। यह बात वररुचि के समय में नहीं हुई थी उसके समय में प्राकृत व्याकरण का श्रीगणेश किया जा रहा था। यह बात दूसरी है कि सामने पड़े हुए ग्रन्थों का संशोधन और उनसे संग्रह किया जाय किन्तु किसी विषय की नींव डालना महान् कठिन उद्योग है। पतंजलि ने कात्यायन के वार्तिक की धज्जियाँ उड़ाई हैं; पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वररुचि ने जिन प्राकृत भाषाओं की शिक्षा दी है और जिनमें विशेष उल्लेखनीय महाराष्ट्री प्राकृत है, अशोक और नासिक' के प्रस्तर-लेखों से ध्वनि तत्त्व की दृष्टि से नई हैं। चूँकि प्राकृत भाषाओं का प्रयोग काव्यों में कृत्रिम भी हुआ है और ये प्राकृत बोलियाँ जनता और राज्य की भाषा के साथ साथ चल रही थीं इसलिए यह विपरीत भ्रम होगा कि हम इन प्रस्तर-लेखों से प्राकृत भाषाओं के विषय में ऐसे निदान निकालें, जिनसे उनके काल-क्रम का ज्ञान हो। याकोबी और ब्लोख का मत है कि महाराष्ट्री ईसवी तीसरी सदी के प्रारम्भ से पहले व्यापक रूप से काम में नहीं आने लगी थी; परन्तु यह मत भ्रमपूर्ण है। यह इससे प्रमाणित होता है कि यदि सचमुच एक ही लेखक द्वारा किसी

१५ वररुचि उण्ड हेमचन्द्रा पेज ९ और उसके बाद।—१६ द प्राकृतप्रकाश २ पेज ४ भूमिका।—१७ हास्यार्णव पेज १४८ और २२९।—१८ डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज ९ और उसके बाद।— १९ गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगेन १८९४ ५०३।— २ पिशल इण्डिशे स्टूडिएन ३ २०८।— २१ याकोबी एर्सेलुंगन भूमिका का पेज १७; वररुचि और हेमचन्द्र पेज १२।— २२ पिशल डोपफ़िक्स्टर पेज ३ ।— २३ पिशल उपर्युक्त ग्रन्थ पेज २२।—२४ पिशल ब्लूरास ऑगारविक्क का पेज (कील १८८९) पेज १३ और १।

§ ३२—वररुचि हर प्रकार से, यदि प्राचीनतम नहीं तो प्राचीनतम प्राकृत व्याकरणकारों में से एक है। उसके व्याकरण का नाम प्राकृतप्रकाश है और इसे कौवेल ने अपनी टिप्पणियों और अनुवाद के साथ प्रकाशित कराया है जिसका नाम रखा गया है— द प्राकृतप्रकाश और, 'द प्राकृत ग्रैमर ऑफ वररुचि विथ द कमेंटरी (मनोरमा) ऑफ भामह', सेकंड इस्यू। लंदन १८६८ (पहला संस्करण हर्टफोर्ड से १८५४ ई में छपा था)। इसका एक नया संस्करण रामशास्त्री तैलंग ने १८९९ ई में बनारस से निकाला है जिसमें केवल मूलपाठ है। वररुचि १ तक पारच्छेदों में महाराष्ट्री का वर्णन करता है दसवें में पैशाची, ग्यारहवें में मागधी और बारहवें में शौरसेनी के नियम बताता है। हमारे पास तक जो पाठ पहुँचा है, वह अशुद्धिपूर्ण है और उसकी अनेक प्रतियाँ मिलती हैं जो परस्पर एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं।[1] इससे सिद्धान्त निकलता है कि यह ग्रन्थ पुराना है। इस ग्रंथ का सब से पुराना टीकाकार भामह[2] है जो कश्मीर का निवासी था और स्वयं अलंकारशास्त्र का रचयिता और कवि था।[3] इसके समय का केवल इतना ही निर्णय किया जा सकता है कि यह (भामह) उद्भट[4] से पुराना है। उद्भट[5] कश्मीर के जयापीड[6] राजा के राज्यकाल (७७९ ८१३ ई)में जीवित था और इसने भामह के अलंकारशास्त्र की टीका लिखी[7]। 'भामह' की टीका का नाम मनोरमा[8] है। पर बारहवें परिच्छेद की टीका नहीं मिलती। इसमें सन्देह नहीं कि और अशुद्धियों के साथ साथ भामह[9] ने वररुचि[10] को गलत ढंग से समझा है। ठीक नहीं समझा इसका स्पष्ट प्रमाण ४, १८[11] है। यह भी अनिश्चित है कि उसने वररुचि[12] की समझ के अनुसार गणों[13] का समाधान किया हो। इस कारण से पाठक को सूत्र और टीका का अर्थ भिन्न भिन्न लगाना चाहिए और यह बात सारे व्याकरण में सर्वत्र पाई जाती है। 'भामह' ने कहाँ-कहाँ से अपनी सामग्री एकत्र की है इस पर सूत्रों से संबंध रखनेवाले उदाहरण प्रकाश डालते हैं। ऐसे उदाहरण वह वररुचि के निम्नलिखित सूत्रों की टीका में देता है—८ ९, ९ २ और ४ से ७ तक ९ से १७ तक, १ , ४ और १४,११ ६। इनमें से ९ २ हुं साहसु सब्भावय हेमचन्द्र के ४५१ के समान है, पर हेमचन्द्र की किसी हस्तलिपि में हुं नहीं मिलता। 'भुवनपाल के अनुसार (इण्डिशे स्टूडिएन १६ १२) इस पद का कवि विष्णुनाथ[14] है। ९ ९ किणो धुवसि हेमचन्द्र के ३६९ के समान है और यह पद हैमचन्द्र ने २ २१६ में भी उद्धृत किया है। 'भुवनपाल का मत है कि यह पद 'वंसराज' का है (इण्डिशे स्टूडिएन १६ १२)। शेष उदाहरणों के प्रमाण मैं नहीं दे सकता। १ , ४ और १४ के उदाहरण 'बृहत्कथा' से लिये

१५ वररुचि उण्ड हेमचन्द्रा पेज ९ और उसके बाद ।—१६ द प्राकृतप्रकाश १ पेज १ भूमिका ।—१७ हास्यार्णव पेज १३४ और २३९ । —१८ डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज ९ और उसके बाद ।— १९ गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगन १८९४ ९०३ ।— २ वेबर इण्डिशे स्टूडिएन ३ २७८ ।— २१ याकोबी एर्सेलुंगन भूमिका का पेज १४; वररुचि और हेमचन्द्र पेज १२ ।— २२ पिशल होफडिख्टर पेज ३० ।— २३ पिशल उपयुक्त ग्रन्थ पेज २१ ।—२४ पिशल रुद्रराज शृंगारतिलक का पेज (कील १८८६) पेज १३ नोट १ ।

§ ३३—वररुचि हर प्रकार से, यदि प्राचीनतम नहीं तो प्राचीनतम प्राकृत व्याकरणकारों में से एक है। उसके व्याकरण का नाम प्राकृतप्रकाश है और इसे कौवेल ने अपनी टिप्पणियों और अनुवाद के साथ प्रकाशित कराया है जिसका नाम रखा गया है— द प्राकृतप्रकाश और द प्राकृत ग्रैमर औफ वररुचि विथ द कमेंटरी (मनोरमा) औफ भामह', हेर्टफ़ र्ड्स । लंदन १८६८ (पहला संस्करण हर्टफोर्ड से १८५४ ई में छपा था) । इसका एक नया संस्करण रामशास्त्री तैलंग ने १८९९ ई में बनारस स निकाला है जिसमे केवल मूलपाठ है। वररुचि १ तक परिच्छेदों में महाराष्ट्री का वर्णन करता है, दसवें में पैशाची, ग्यारहवें में मागधी और बारहवें में शौरसेनी के नियम बताता है। हमारे पास तक जो पाठ पहुँचा है, वह अशुद्धिपूर्ण है और उसकी अनेक प्रतियाँ मिलती हैं जो परस्पर एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं ।[१] इससे निदान निकलता है कि यह ग्रन्थ पुराना है। इस ग्रंथ का सब से पुराना टीकाकर भामह[२] है जो कश्मीर का निवासी था और स्वयं अलंकारशास्त्र का रचयिता और कवि था ।[३] इसके समय का केवल इतना ही निर्णय किया जा सकता है कि यह (भामह) उद्भट[४] से पुराना है। उद्भट[५] कश्मीर के जयापीड[६] राजा के राज्यकाल(७७९ ८१३ ई)में जीवित था और इसने भामह के अलंकारशास्त्र की टीका लिखी[७] । भामह[८] की टीका का नाम मनोरमा[९] है। पर बारहवें परिच्छेद की टीका नहीं मिलती। इसमें सदेह नहीं कि और अशुद्धियों के साथ-साथ भामह ने वररुचि को गलत ढंग से समझा है। ठीक नहीं समझा, इसका ज्वलंत प्रमाण ४, १४[१०] है। यह भी अनिश्चित है कि उसने 'वररुचि' की समझ के अनुसार गणों[११] का समाधान किया हो। इस कारण से पाठक को सूत्र और टीका का अर्थ भिन्न भिन्न लगाना चाहिए और यह बात सारे व्याकरण में सर्वत्र पाई जाती है। भामह ने कहीं-कहीं से अपनी सामग्री एकत्र की है इस पर सूत्रों से संबंध रखनेवाले उद्धरण प्रकाश डालते हैं। ऐसे उद्धरण वह वररुचि के निम्नलिखित सूत्रों की टीका में देता है—८ ९,१ २ और ८ से ७ तक ९ से १७ तक, १ ४ और १४,११ ६। इनमें से २ हुं साहसु सप्पायय हेमचन्द्र के ४५१ के समान है। पर हेमचन्द्र की किसी हस्तलिपि में हु नहीं मिलता। 'भुवनपाल के अनुसार (इंडिशे स्टुडियन १६ १२) इस पद का कवि विष्णुनाथ है। ९ ९ किणो धुवसि हेमचन्द्र के ३९९ के समान है और यह पद हेमचंद्र ने २, २१६ में भी उद्धृत किया है। 'भुवन पाल का मत है कि यह पद रुद्रराज का है (इंडिशे स्टुडियन १६ १२)। शेष उद्धरणों के प्रमाण मैं नहीं दे सकता। १ , ४ और १४ के उद्धरण बृहत्कथा से किये

गये होंगे। ९, ४ में सभी उद्धरणों के विषय मे गाथाओं की ओर सकेत किया गया है। एक नई टीका 'प्राकृतमञ्जरी' है। इसका अज्ञातनामा लेखक पद्यों में टीका लिखता है और स्पष्ट ही यह दक्षिण भारतीय है। इसकी जिस हस्तलिखित प्रति से मै काम ले रहा हूँ, वह लदन की रौयल एशियाटिक सोसाइटी' की है। यह भ्रष्ट है और इसमें कई स्थल छूट गये हैं। यह टीका वररुचि के ६, १८ तक की ही प्राप्त है। यह साफ है कि इस टीकाकार को 'भामह' का परिचय था। जहाँ तक दृष्टांतों का सबध है, ये दोनों टीकाकारो के प्राय' एक ही है, किंतु अज्ञातनामा टीकाकार 'भामह' से कम 'दृष्टांत देता है। साथ ही एक दो नये दृष्टात भी जोड देता है। उसका 'वररुचि का पाठ 'कौवेल' द्वारा सपादित पाठ से बहुत स्थलों पर भिन्न है।' यह टीका विशेप महत्त्व की नहीं है।

१ कौवेल पेज ९७, पिशल, डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज १०और १३, व्यूलर, डिटेल्ड रिपोर्ट पेज ७५, होएर्नले, प्रोसीडिंग्स औफ द एशियाटिक सोसाइटी औफ बैंगाल १८७९, ७९ और बाद का पेज।— २. इण्डिशे स्टुडिएन १६, २०७ और बाद के पेज में औफरेष्ट का लेख, काटालोगुस काटालोगोरुम १, ४०५ और बाद का पेज, पीटर्सन, सुभाषितावली पेज ७९, पिशल, रुद्रट पेज ६ और बाद का पेज।— ३ पिशल, रुद्रट पेज १२।— ४ औफरेष्ट अपने काटालोगुस काटालोगोरुम में इसे भूल से प्राकृतमनोरमा नाम देता है। उसका यह कथन भी असत्य है कि इसका एक नाम प्राकृतचद्रिका भी था। इन दोनों अशुद्धियों का आधार कीलहौर्न की पुस्तक अ कैटैलौग औफ सैंस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस एक्जिस्टिंग इन द सैंट्रल प्रोविन्सेज (नागपुर १८७४) पेज ८४ सख्या ३४ है। औफरेष्ट ने जिन-जिन अन्य मूलस्रोतों का उल्लेख किया है उन सबमे केवल मनोरमा है। होएर्नले ने भी प्रोसीडिंग्स औफ द एशियाटिक सोसाइटी औफ बैंगाल १८७९, ७९ और बाद के पेज में जिस हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है, उसमें इसके लेखक रूप में वररुचि का नाम दिया गया है।—५ ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज २८१।— ६ यह बिलकुल निश्चित नहीं है कि ब्लौख की 'वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा' ग्रन्थ मे दिया मत, कि गणों का कभी निश्चित ध्वनिरूप नहीं था, ठीक है। जैसा सस्कृत मे वैसा ही प्राकृत में नाना विद्वानों में इस विषय पर मतभेद रहा होगा।—७ इस प्रकार कौवेलके के साहुसु के स्थान पर तैलग का कधेहि साहुसु पढ़ना चाहिए और इसका अनुवाद साधुषु किया जाना चाहिए।— ८ यह तथा औफरेष्ट के काटालोगुस काटालोगोरुम १, ३६० में दृष्टि से चूक गया है।— ९ इस विषय पर और भी महत्त्वपूर्ण तथ्य पिशल के ग्रन्थ 'द ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस' के पेज १०-१६ में दिये गये है।

§ ३४—चड के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। इसका ग्रन्थ 'प्राकृत-लक्षण' होएर्नले ने प्रकाशित किया है। इसका नाम उसने रखा है—'द प्राकृत-लक्षणम् और चड्डाज ग्रैमर औफ द एन्शेण्ट (आर्प) प्राकृत', भाग १, टेक्स्ट विथ अ क्रिटिकल

१५ वररुचि उण्ड हेमचन्द्र पेज १ और उसके बाद।—१६ द प्राकृतप्रकाश १ पेज ४ भूमिका।—१७ हास्यार्णव पेज १४८ और २११।—१८ डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज ९ और उसके बाद।— १९ गोएटिंगिशे गेलर्ते आन्त्साइगेन १८९४ ७०१।— २ वेबर इण्डिशे स्टूडिएन १ २०८।— २१ याकोबी, एर्सेलुंगन भूमिका का पेज १७, वररुचि और हेमचन्द्र पेज ११।— २२ पिशल होफ़विस्सर पेज १ ।— २३ पिशल उपर्युक्त ग्रन्थ पेज ११।—२४ पिशल रुद्रट शृंगारतिलक का पेज (कील १८८६) पेज १३ और १।

§ ३३—वररुचि हर प्रकार से, यदि प्राचीनतम नहीं तो प्राचीनतम प्राकृत-व्याकरणकारों में से एक है। उसके व्याकरण का नाम प्राकृतप्रकाश है और इसे कौवेल ने अपनी टिप्पणियों और अनुवाद के साथ प्रकाशित कराया है जिसका नाम रखा गया है— द प्राकृतप्रकाश और, द प्राकृत ग्रैमर औफ वररुचि विथ द कमेंटरी (मनोरमा) औफ भामह', सेकंड इश्यू। लदन १८९८ (पहला सस्करण हर्टफ़ोर्ड से १८५४ ई० में छपा था)। इसका एक नया संस्करण रामशास्त्री तैलंग ने १८९९ ई० में बनारस से निकाला है जिसमें केवल मूलपाठ है। वररुचि १ तक परिच्छेदों में महाराष्ट्री का वर्णन करता है, दसवें में पैशाची, ग्यारहवें में मागधी और बारहवें में शौरसेनी के नियम बताता है। हमारे पास तक जो पाठ पहुँचा है, वह अशुद्धिपूर्ण है और उसकी अनेक प्रतियाँ मिलती हैं जो परस्पर एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं।[1] इससे निदान निकलता है कि यह ग्रन्थ पुराना है। इस ग्रंथ का सब से पुराना टीकाकार भामह' है जो कश्मीर का निवासी था और स्वयं अलंकारशास्त्र का रचयिता और कवि था।[2] इसके समय का केवल इतना ही निर्णय किया जा सकता है कि यह (भामह) उद्भट' से पुराना है। उद्भट कश्मीर के जयापीड' राजा के राज्यकाल(७७९-८१३ ई०)में जीवित था और इसने भामह के अलंकारशास्त्र की टीका लिखी'।'भामह' की टीका का नाम मनोरमा" है। पर बारहवें परिच्छेद की टीका नहीं मिलती। इसमें सदेह नहीं कि और अशुद्धियों के साथ साथ 'भामह' ने वररुचि का गलत ढंग से समझा है। ठीक नहीं समझा, इसका ज्वलंत प्रमाण ४, १८' है। यह भी अनिश्चित है कि उसने वररुचि' की समझ के अनुसार गणों' का समाधान किया हो। इस कारण से पाठक को सूत्र और टीका का अर्थ भिन्न भिन्न लगाना चाहिए और यह बात सारे व्याकरण में सर्वत्र पाई जाती है। भामह ने कहीं-कहीं से अपनी सामग्री एकत्र की है, इस पर सूत्रों से संबंध रखनेवाले उदाहरण प्रकाश डालते हैं। ऐसे उदाहरण जो वररुचि के निम्नलिखित सूत्रों की टीका में देता है—८ ९, ९ २ और ८ ४ ७ तक, ९ से १७ तक, १ , ४ और १८,११ ९। इनमें से ९ २ हुं साहयु सम्पादय हेमचन्द्र के ४५१ के समान है। पर हेमचन्द्र की किसी हस्तलिपि में हुं नहीं मिलता। 'भुवनपाल के अनुसार (इण्डिशे स्टूडिएन १६ १२) इस पद का कवि विष्णुनाथ' है। ९, ९ किणो धुवसि हेमचन्द्र के १६ के समान है और यह पद हेमचन्द्र ने २ २१६ में भी उद्धृत किया है। भुवन पाल का मत है कि यह पद [illegible] का है (इण्डिशे स्टूडिएन १६ १२)। शेष उदाहरणों के प्रमाण मैं नहीं दे सकता। १ , ४ और १४ के उदाहरण गुहाकथा से लिये

गये होंगे। ९, ४ में सभी उद्धरणों के विषय में गाथाओं की ओर संकेत किया गया है। एक नई टीका 'प्राकृतमजरी' है। इसका अज्ञातनामा लेखक पद्यों में टीका लिखता है और स्पष्ट ही यह दक्षिण भारतीय है। इसकी जिस हस्तलिखित प्रति से मैं काम ले रहा हूँ, वह लंदन की रोयल एशियाटिक सोसाइटी[८] की है। यह भ्रष्ट है और इसमें कई स्थल छूट गये हैं। यह टीका वररुचि के ६, १८ तक की ही प्राप्त है। यह साफ है कि इस टीकाकार को 'भामह' का परिचय था। जहाँ तक दृष्टांतों का संबंध है, ये दोनों टीकाकारों के प्रायः एक ही हैं, किंतु अज्ञातनामा टीकाकार 'भामह' से कम 'दृष्टांत देता है। साथ ही एक-दो नये दृष्टांत भी जोड देता है। उसका 'वररुचि का पाठ 'कौवेल' द्वारा संपादित पाठ से बहुत स्थलों पर भिन्न है।[९] यह टीका विशेष महत्त्व की नहीं है।

१ कौवेल पेज ९७, पिशल, डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज १०और १३, ब्यूलर, डिटेल्ड रिपोर्ट पेज ७५, होएर्नले, प्रोसीडिंग्स औफ द एशियाटिक सोसाइटी औफ बैंगौल १८७९, ७९ और बाद का पेज।— २. इण्डिशे स्टुडिएन १६, २०७ और बाद के पेज में औफरेष्ट का लेख, काटालोगुस काटालोगोरुम १, ४०५ और बाद का पेज, पीटर्सन, सुभाषितावली पेज ७९, पिशल, रुद्रट पेज ६ और बाद का पेज।— ३ पिशल, रुद्रट पेज १३।— ४ औफरेष्ट अपने काटालोगुस काटालोगोरुम में इसे भूल से प्राकृतमनोरमा नाम देता है। उसका यह कथन भी असत्य है कि इसका एक नाम प्राकृतचंद्रिका भी था। इन दोनों अशुद्धियों का आधार कीलहौर्न की पुस्तक अ कैटैलौग औफ सैंस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स एक्जिस्टिंग इन द सेंट्रल प्रौविन्सेज (नागपुर १८७४) पेज ८४ संख्या ३४ है। औफरेष्ट ने जिन-जिन अन्य मूलस्रोतों का उल्लेख किया है उन सबमें केवल मनोरमा है। होएर्नले ने भी प्रोसीडिंग्स औफ द एशियाटिक सोसाइटी औफ बैंगौल १८७९, ७९ और बाद के पेज में जिस हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है, उसमें इसके लेखक रूप में वररुचि का नाम दिया गया है।—५ ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज २८१।— ६ यह बिलकुल निश्चित नहीं है कि ब्लौख की 'वररुचि उण्ट हेमचंद्रा' ग्रन्थ में दिया मत, कि गणों का कभी निश्चित ध्वनिरूप नहीं था, ठीक है। जैसा संस्कृत में वैसा ही प्राकृत में नाना विद्वानों में इस विषय पर मतभेद रहा होगा।—७ इस प्रकार कौवेलके के साहुसु के स्थान पर तैलग का कधेहि साहुसु पढ़ना चाहिए और इसका अनुवाद साधुषु किया जाना चाहिए।— ८ यह तथा औफरेष्ट के काटालोगुस काटालोगोरुम १, ३६० में दृष्टि से चूक गया है।— ९ इस विषय पर और भी महत्त्वपूर्ण तथ्य पिशल के ग्रन्थ 'द ग्रामाटिक्सि प्राकृतिकिस' के पेज १०-१६ में दिये गये हैं।

§ ३४—चंड के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। इसका ग्रन्थ 'प्राकृत लक्षण' होएर्नले ने प्रकाशित किया है। इसका नाम उसने रखा है—'द प्राकृत-लक्षणम् और चंडाज ग्रैमर औफ द एन्शेण्ट (आर्ष) प्राकृत', भाग १, टेक्स्ट विथ अ क्रिटिकल

इण्ट्रोडक्शन एण्ड इंडेक्सेज कलकत्ता १८८०। होएर्नले का दृष्टिकोण है कि चंड ने आर्ष भाषा का व्याकरण लिखा है (§ १६ और १७)। उसके संस्करण के आधार ए' और बी' हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। इनका पाठ सबसे संक्षिप्त है। उसका यह भी विचार है कि सी' 'डी' हस्तलिखित प्रतियाँ बाद को लिखी गई और उनमें क्षेपक भी हैं। उसके मत से चंड वररुचि और हेमचन्द्र से पुराना है। इस हिसाब से चंड आजतक के हमें प्राप्त प्राकृत व्याकरणकारों में सबसे प्राचीन हुआ। इसके विपरीत ब्लोख' का मत है कि चंड का व्याकरण 'और ग्रन्थों से लिया गया है और वह अशुद्ध तथा छीछला है। उसमे बाहरी सामान्य नियम हैं। सम्भवतः उसमें हेमचन्द्र के उदाहरण भी लिये गये हों।' दोनों विद्वानों का मत असत्य है। चंड उतना प्राचीन नहीं है जितना होएर्नले मानता है। इसी एक तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि पहले ही श्लोक में चंड ने साफ बताया है कि मैं इस ग्रन्थ को पुराने आचार्यों के मत के अनुसार (वृद्धमतात्) तैयार करना चाहता हूँ। प्रारम्भ का यह श्लोक होएर्नले की सभी हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है। यह श्लोक पीटर्सन की थर्ड रिपोर्ट (बम्बई १८८७) पेज २६५ और भण्डारकर के लिस्टस् आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस् इन प्राइवेट लाइब्रेरीज इन द बम्बे प्रेसिडेन्सी, भाग १ (बम्बई १८९३) पेज ५८ में वर्णित चण्ड-व्याकरण में भी मिलता है। इसलिए होएर्नले के पेज १ के नोट में दिया गया मत कि यह श्लोक क्षेपककारों का है, तर्क के लिए भी नहीं माना जा सकता। बात तो सच यह है कि क्षेपक के प्रश्न को मानना ही सन्दिग्ध है। सब दृष्टियों से देखने से 'सी' हस्तलिखित प्रति की टीका में मालूम पड़ता है कि टीका में क्षपकों का जोर है। सी डी में दिये गये सभी नियम नहीं, बल्कि बी सी डी में एक समान मिलनेवाले नियम और भी कम मात्रा में मूल पुस्तक में क्षेपक मान जा सकते हैं। चंड ने स्पष्ट ही महाराष्ट्री जैनमहाराष्ट्री अर्ध मागधी और जैनशौरसेनी का वर्णन किया है जो एक के बाद एक है। इसके प्रमाण नियम जैसे १ ५ है जिसमें षष्ठी के दो रूप—आणम् और आहम् साथ-साथ दिये गये हैं २ १ है जिसमें प्रथमा का रूप 'ए' और साथ ही 'ओ' में समाप्त होता है, करके सिखाया गया है २ १ जिसमे संस्कृत कृत्वा' के महाराष्ट्री अर्ध मागधी जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी तथा स्वयं अपभ्रंश के रूप तक (१ ११ और १२ में) गड्डमड्ड मिला दिये गये हैं। 'सी डी' हस्तलिखित प्रतियों में यह विशेषता बहुत अधिक बढ़ाई गई है। १ २६ ए में (पेज ४२) ऐसा ही हुआ है, क्योंकि यहाँ अपभ्रंश रूप हर्ड के साथ-साथ हं और अहं रूप भी द दिये गये हैं, २,१९ में महाराष्ट्री अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री जैनशौरसेनी और अपभ्रंश के कृत्वा' के रूपों के साथ-साथ महाराष्ट्री और अपभ्रंश के कुछ और रूप भी दे दिये गये हैं; २ २७ ई-१ में अधिकांश अपभ्रंश के कई अतिरिक्त शब्द भी दे दिये गये हैं २७ आई-के में अधिकांश जैनशौरसेनी के। १९ में (पेज ४८) जैनशौरसेनी, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री के रूप मिला दिये गये हैं, ३ ११ ए में चूलिकापैशाचिक के सम्बन्ध में ३,११ और १२ का परिशिष्ट दिया गया है। इनमें १९ (पेज ४८) ग्रन्थ का

साधारण रूप का प्रतिनिधि है। कहीं-कहीं हेमचन्द्र के व्याकरण से अतिरिक्त नियम लिये गये हैं, ऐसा मालूम पडता है। इस प्रकार चण्ड के १,१ में प्राकृत की जो व्याख्या की गई है, वह वही है जो हेमचन्द्र १,१ में दी गई है, किन्तु केवल आरम्भिक भाग १,११ ए (पेज ३६) हेमचन्द्र के ४,३५३ के समान है। २-१ सी (पेज ३७) हेमचन्द्र के १,६ के समान, पर उससे कुछ छोटा है। ३,११ ए (पेज ४८) हेमचन्द्र के ४,३२५ से मिलता है, किन्तु और भी छोटा है। इस प्रकार चण्ड सर्वत्र संक्षिप्त है और कहीं कहीं जैसे ३,३४ में (पेज ५१), जो हेमचन्द्र के १, १७७ के समान है, चण्ड सब प्रकार से मिलान करने पर इतना विस्तृत है कि वह हेमचन्द्र से नियम नहीं ले सकता। इसके विपरीत हेमचन्द्र का सूत्र ३, ८१ चण्ड के १,१७ पर आधारित मालूम पडता है। यह बात होएर्नले ने अपने ग्रन्थ की भूमिका के पेज १२ में उठाई है। चण्ड ने वहाँ पर बताया है कि षष्ठी बहुवचन में **से** भी आता है और हेमचन्द्र ने ३,८१ में बताया है कि कोई विद्वान षष्ठी बहुवचन में **से** प्रत्यय का प्रयोग चाहते हैं—**इदंतदोर् आमापि से आदेशम् कश्चिद् इच्छति**। अवश्य ही ब्लौख[१] का मत है कि हेमचन्द्र ने एकवचन **कश्चित्** पर कुछ जोर नहीं दिया है। किन्तु हेमचन्द्र के उद्धृत करने के सारे ढग पर ब्लौख का सारा दृष्टिकोण भ्रमपूर्ण है और वास्तव में इस विषय पर सभी भारतीय व्याकरणकारों का सारा दृष्टिकोण दोषपूर्ण है। हेमचन्द्र ने जो **कश्चित्** कहा है, उसका तात्पर्य एक व्याकरणकार से है। अभी तक चण्ड के अतिरिक्त किसी व्याकरणकार का पता नहीं लगा है जिसने यह नियम दिया हो। इसलिए सबसे अधिक सम्भावना इसी बात की जान पडती है कि जिन जिन स्थानों पर चण्ड और हेमचन्द्र एक समान नियम देते है, वहाँ चण्ड ने नहीं, वल्कि हेमचन्द्र ने उससे सामग्री ली है। होएर्नले ने अपने ग्रन्थ की भूमिका के पेज १२ और उसके बाद के पेजों में इस विषय पर बहुत सामग्री एकत्र की है[४]। मुझे इस विषय पर इतना और जोडना है कि चण्ड के पेज ४४ में २,१२ अ में उदाहरण के रूप पर **चऊवीसम् पि** उदाहरण दिया गया है, वह हेमचन्द्र के ३,१३७ में भी है, पर चण्ड ने इसे बहुत विस्तार के साथ दिया है। दोनों व्याकरणकारों की परिभाषा की शब्दावली सर्वत्र समान नहीं है। उदाहरणार्थ, चण्ड ने अपने ग्रन्थ के पेज ३७ के २,१ बी मे व्यजनों के लुप्त होने पर जो स्वर शब्द में शेष रह जाता है, उसे **उद्धृत** कहा है और हेमचन्द्र ने १, ८ में उसी का नाम **उद्वृत्त** रखा है। चण्ड २,१० में **विसर्जनीय** शब्द आया है, किन्तु हेमचन्द्र १,३७ में **विसर्ग** शब्द काम में लाया गया है। चण्ड २,१५ में (जो पेज ४५ में है) **अर्धानुस्वार** शब्द का व्यवहार किया गया है, किन्तु हेमचन्द्र ने ३,७ में इस शब्द के स्थान पर ही **अनुनासिक** शब्द का प्रयोग किया है, आदि। इन बातो के अतिरिक्त चण्ड ने बहुत से ऐसे उदाहरण दिये है जो हेमचन्द्र के व्याकरण में नहीं मिल्ते। ऐसे उद्धरण २, २१।२२ और २८, ३, ३८ और ३९ हैं। पेज ३९ के १,१ में वाग्भटालकार २, २ पर सिंहदेवगणिन् की जो टीका है, उसका उदाहरण दिया गया है (§ ९)। पेज ४६ के २, २४, २, २७ बी और २, २७ आइ (पेज ४७) में ऐसे उदाहरण हैं। चण्ड ने कहीं यह इच्छा प्रकट नहीं

की है कि वह केवल आर्षभाषा का व्याकरण बताना चाहता है। तथाकथित प्राचीन रूपों और शब्दों का व्यवहार, जैसा कि संस्कृत त और थ को प्राकृत में भी जैसे का तैसा रखना शब्दों के अन्त में काम में लाये जानेवाले वर्ण–आम्, –ईम्,–ऊम् को दीर्घ करना आदि हस्तलिखित प्रतियों के लेखकों की भूलें हैं। ऐसी भूलें जैन हस्तलिखित प्रतियों में बहुत अधिक मिलती हैं। बल्कि यह कहा जा सकता है कि चण्ड के ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों में ये अशुद्धियाँ अन्य ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों की तुलना में कम पाई जाती हैं। चण्ड ने मुख्यतया जिस भाषा का व्याकरण लिखा है वह महाराष्ट्री है। किन्तु इसके साथ-साथ वह स्वयं ३, ३७ में अपभ्रंश ३, ३८ में पैशाचिकी ३, ३९ में मागधिका का उल्लेख करता है, पेज ४४ के २, ११ ए और बी में आर्षभाषा का, जिसके बारे में हम पहले ही लिख चुके हैं, ए और बी पाठों में इस विषय पर भी बहुत विस्तार के साथ लिखा गया है। ३, ३९ ए (पेज ५२) में शौरसेनी का उल्लेख भी है। डी पाठ में पेज ३७ के २, ' सी में जो उदाहरण दिया *गया है, वह गउडवहो का २१ वाँ श्लोक है और हेमचन्द्र १ ६ में भी उद्धृत* किया गया है। सी और डी पाठों में दूसरा उदाहरण जो पेज ४२ के १ २६ ए में तेण अहम् जिओ हाल की सत्तसई ४४१' से लिया गया है। चूँकि सभी हस्तलिखित प्रतियों में ये उदाहरण नहीं मिलते, इसलिए यह उचित नहीं है कि हम इनका उपयोग चण्ड का कालनिर्णय करने के विषय में करें। इस ग्रन्थ का मूल पाठ बहुत दुर्दशा में हमारे पास तक पहुँचा है, इसलिए यह बड़ी सावधानी के साथ और इसके भिन्न-भिन्न पाठों की यथेष्ठ जाँच-पड़ताल हो जाने के बाद में काम में लाया जाना चाहिए। किन्तु इतनी बात पक्की मालूम पड़ती है कि चण्ड प्राकृत का हेमचन्द्र से पुराना व्याकरणकार है और हेमचन्द्र ने जिन जिन प्राचीन व्याकरणों से अपनी सामग्री एकत्र की है उनमें से एक यह भी है। इसकी अतिप्राचीनता का एक प्रमाण यह भी है कि इसके नाना प्रकार के पाठ मिलते हैं। चण्ड संज्ञा और सर्वनाम के रूपों से (विभक्तिविधान) अपना व्याकरण आरम्भ करता है। इसके दूसरे परिच्छेद में स्वरों के बारे में लिखा गया है (स्वरविधान) और तीसरे परिच्छेद में व्यंजनों के विषय में नियम बताये गये हैं (व्यंजनविधान)। सी तथा डी पाठों में यह परिच्छेद ३,३६ के साथ समाप्त हो जाता है और ३,३७—३९ ए तक चौथा परिच्छेद है जिसका नाम (भाषान्तरविधान) अर्थात् अन्य भाषाओं के नियम दिया गया है। इस नाम का अनुकरण करके इस परिच्छेद में महाराष्ट्री जैनमहाराष्ट्री और जैन शौरसेनी को छोड़कर अन्य प्राकृत भाषाओं के नियमों और विशेषताओं के बारे में लिखा गया है। इस कारण ब्यूलर (त्साइटश्रिफ्ट डेर मौरगेन लण्डिशन गेजेलशाफ्ट ४२ ५५१) और भण्डारकर ने (रिपोर्ट पेज ५८) इस सारे ग्रन्थ का नाम ही प्राकृत भाषान्तरविधान रख दिया था। ब्यूलर और भण्डारकर इस लेखक का नाम चन्द्र बताते हैं। यह लेखक चण्ड ही है, इसका पता भण्डारकर द्वारा दिये गये उद्धरणों से चलता है। सी और डी पाठों में इस ग्रन्थ के जो विभाग किये गये हैं, वे निश्चय ही ठीक हैं। इसमें बहुत कम सन्देह इसलिए होता है कि भण्डारकर की हस्तलिखित प्रति

का अन्त वहाँ होता है, जहाँ ए और श्री पाठों का होता है। चण्ड ने क्रियाओं के रूपों पर कुछ भी नहीं लिखा है, सम्भवतः यह भाग हम तक नहीं पहुँच पाया है। यह व्याकरण बहुत सक्षेप में था, इसका पता—थर्ड रिपोर्ट पेज २६५ में दिये गये पीटर्सन की हस्तलिखित प्रति के नाम से लगता है जो 'प्राकृत सोराद्धारवृत्तिः' दिया गया है।

१. वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ८। —२ जैनशौरसेनी के स्थान पर शौरसेनी भी लिखा जा सकता है, किंतु इस व्याकरण का सारा रूप विशेषत 'सी डी' हस्तलिखित प्रतियों में ३,६ (पेज ४८) बताता है कि यह जैनशौरसेनी है। —३ वररुचि उण्ट हेमचद्रा, पेज ८।— ४ होएर्नले ने अपनी भूमिका के पेज १२ में जो मत दिया है कि चड के व्याकरण के २-२७१ (पेज ४७) में जो रूप हैं, वे साधारण प्राकृत के माने जा सकते हैं, वह भ्रामक है। यह पद विशुद्ध अपभ्रंश में लिखा गया है। पद इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए—कालु लहेविणु जोइया जिँव जिँव मोहु गलेइ। तिँव तिँव दसणु लहइ जो णिअमें अप्पु मुणेइ। अर्थात् समय पाकर जैसे-जैसे योगी का मोह नष्ट होता है वैसे-वैसे जो नियमानुसार आत्मा का चिंतन करता है, वह (आत्मा) के दर्शन पाता है। जोइया का अर्थ जायाया नहीं है, बल्कि योगिकः = योगी अर्थात् योगिन् है। — ५ त के विषय में § २०३ देखिए। — ६ § ४१७ के नोट १ की तुलना कीजिए। — ७ इस नाम का सर्वोत्तम रूप चड है। किसी को इस सबध में चद्र अर्थात् चद्रगोमिन् (लीबिश का 'पाणिनि' पेज ११) का आभास न हो, इस कारण यहाँ यह बताना आवश्यक है कि इंडियन एंटिक्वैरी १५,१८४ में छपे कीलहोर्न के लेख से स्पष्ट हो जाता है कि चद्र का शब्दसमूह चड से पूर्णतया भिन्न है।

§ ३५—प्राकृत का कोशकार 'धनपाल' रहा है जिसका समानार्थी शब्दकोश पाइयलच्छी अर्थात् 'प्राकृतलक्ष्मी' ब्यूलर ने प्रकाशित कराया है। इसका नाम रखा गया है—'द पाइयलच्छी नाममाला', अ प्राकृत कोश बाइ धनपाल। इसका सम्पादन गेओर्ग ब्यूलर ने किया है जिसमें आलोचनात्मक टिप्पणियाँ दी गई हैं, भूमिका लिखी गई है और अन्त में शब्द-सूची दे दी गई है। आरम्भ में यह पुस्तक बेत्सन्-बेर्गेर्स बाइ त्रैगे त्सूर कुण्डे डेर इण्डोगर्मानिशन् स्प्राखन ४,७० से १६६ ए तक में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद गोएटिंगन से १८७८ में पुस्तक रूप में छपी। 'धनपाल' ने श्लोक २७६–२७८ तक में अपने ही शब्दों में बताया है कि उसने अपना ग्रन्थ विक्रम-सवत् १०२९ अर्थात् ई० सन् ९७२ में उस समय लिखा जब 'मालवराज' ने मान्यखेट पर आक्रमण किया। यह ग्रन्थ उसने अपनी छोटी बहन 'सुन्दरी'[१] को पढाने के लिए 'धारा' नगरी में तैयार किया। उसने यह भी कहा है कि यह नाममाला है (श्लोक १) और श्लोक २७८ में इसे देसी (देशी) बताया है। ब्यूलर ने पेज ११ में बताया है कि 'पाइयलच्छी' में देशी शब्द कुल चौथाई है,

बाकी शब्द तत्सम और तद्भव हैं* (§ ८)। इस कारण यह ग्रन्थ विशेष महत्त्व' का नहीं है। इसमें आर्याछन्द के २७९ श्लोक हैं, जिनमें से पहला श्लोक मंगलाचरण का है और अन्तिम ४ श्लोक इस पुस्तक के तैयार करने के विषय में स्वीकारोक्तियाँ हैं। १ ११ तक के श्लोकों में एक-एक पदार्थ के पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं। २ १४ तक के श्लोकों में ये पर्यायवाची शब्द एक एक पद में आये हैं, १५२ २ तक में आधे पद में आये हैं और २०१ २७५ तक फुटे शब्द आये हैं जो एक एक पर्याय देकर अधिक से अधिक आधे पद में आ गये हैं। हेमचन्द्र ने अपने देशी नाममाला के १, १४१; १, २२ ४, १ ; ६ १ १ और ८,१७ में बताया है कि उसने धनपाल से भी बहुत कुछ सामग्री ली है। उसने जो उदाहरण दिये हैं, वे 'पाइय लच्छी' १, २२; ४, १ और ८, १७ से बिलकुल नहीं मिलते और आंशिक रूप में १ ४१ और ६, १ १ में हेमचन्द्र ने जो बातें कही हैं, उनसे भी नहीं मिलते। इस लिए ब्यूलर ने ठीक ही अनुमान लगाया है कि (पेज १५) धनपाल' ने प्राकृत में इसी प्रकार का एक और ग्रन्थ भी लिखा होगा जिसमें से हेमचन्द्र ने उक्त सामग्री ली होगी। जैनधर्म ग्रहण करने के बाद धनपाल' ने 'ऋषभपंचाशिका' नाम की एक और पुस्तक लिखी थी।

१ इस विषय पर अधिक बातें ब्यूलर के ग्रन्थ के पेज ५ तथा इसके बाद के पेजों में दी गई हैं। — २ ब्यूलर का उक्त ग्रन्थ के पेज १२ और उसके बाद — § २ देखिए; ब्यूलर का ग्रंथ पेज ९; त्साइटुङ्ग डेर मौरगेन लण्डिशन गेज़ेलशाफ्ट खंड ३३ ४४५ में याकोबी का लेख। धनपाल की अन्य साहित्यिक कृतियों के संबंध में ब्यूलर के ग्रन्थ का पेज १ देखिए; त्साइटश्रिफ्ट डेर मौरगेन लण्डिशन गेज़ेलशाफ्ट के खंड १० २ में औफरेष्ट का लेख कातालोगुस कातालोगोरुम १ २६०।

§ १९—आजतक के प्रकाशित सभी प्राकृत व्याकरणों से सर्वोत्तम और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हेमचन्द्र (ई सन् १ ८८ ११७२ तक) का प्राकृतभाषा का व्याकरण है। यह प्राकृत व्याकरण सिद्ध हेमचन्द्र नामक ग्रन्थ का ८ वाँ अध्याय है। उक्त नाम का अर्थ यह है कि यह व्याकरण सिद्धराज को अर्पित किया गया और 'हेमचन्द्र' द्वारा रचा गया है'। इसके १ ७ अध्याय संस्कृत व्याकरण के नियमों पर हैं। हेमचन्द्र ने स्वयं अपने व्याकरण की दो टीकाएँ भी की हैं। एक का नाम है—'बृहती-वृत्ति', दूसरी का 'लघु-वृत्ति'। लघु-वृत्ति का नाम 'प्रकाशिका' भी है; बम्बई से संवत् १९२९ में प्रकाशित महाराज कृष्ण के संस्करण और जर्मनी में ईसवी १८७७ में हाल्ले नाम नगर से प्रकाशित पिशल के हेमचन्द्राज ग्रामाटीक डेर प्राकृट स्प्राखन (सिद्ध हेमचन्द्रम् अध्याय ८) से मालूम होता है जिसके भाग १ और २ स्वयं पिशल ने अनूदित और संशोधित किये हैं। उदयसौभाग्यगणिन्' ने इस वृत्ति की एक टीका लिखी है जिसमें

* मध्यकाल में ये सब शब्द देशी या देश्य मान लिये गये थे जो वास्तव में संस्कृत से निकले थे पर उनका रूप इतना अधिक विकृत हो गया था कि बहुत कम पहचान में आते थे। —अनु

शब्दों के विषय पर उत्तम ग्रन्थों की छानबीन करके अपना निर्णय दिया—अस्माभिस् तु सारदेशीनिरीक्षणेन विवेकः कृतः। वह १, १०५ में बहुत विचार-विमर्श करने के बाद यह निश्चय करता है कि उत्तुहिअ शब्द के स्थान पर पुरानी हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि करनेवालों ने भूल से उड्डुहिअ लिखा है, इसी प्रकार ६, ८ में उसने बताया है कि चोर के स्थान पर वोर हो गया है। उसने २, २८ का निर्णय करने के लिए देशीभाषा के कई ग्रन्थों का उल्लेख किया है और ३, १२ और ३३ में अपना मत देने से पहले इस विषय पर सर्वोत्तम ग्रन्थों का मत भी दिया है। जब उसने ८,१२ पर विचार किया है तब देशी ग्रन्थों के नवीनतम लेखकों और उनके टीकाकारों का पूरा पूरा हवाला दिया है, ८, १३ का निर्णय वह सहृदयों अर्थात सज्जन समझदारों पर छोड़ता है—केवलम् सहृदयाः प्रमाणम्। उसने १, २ मे बताया है, इस ग्रन्थ में उसने जो विशेषता रखी है, वह वर्णक्रम के अनुसार शब्दों की सजावट है और १, ४९ में उसने लिखा है कि उसने यह ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिए लिखा है। जिन लेखकों के नाम उसने दिये है, वे है—अभिमानचिह्न। (१, १४४, ६, ९३; ७, १, ८, १२ और १७), अवन्तिसुन्दरी (१, ८१ और १५७), देवराज (६, ५८ और ७२, ८,१७), द्रोण अथवा द्रोणाचार्य (१, १८ और ५०, ६, ६०, ८, १७), धनपाल (१, १४१, ३, २२; ४, ३०, ६, १०१, ८, १७), गोपाल (१, २५। ३१ और ४५, २, ८२, ३, ४७, ६, २६। ५८ और ७२, ७, २ और ७६, ८, १। १७ और ६७), पादलिप्त (१, २), राहुलक (४,४), शीलांक (२, २०, ६, ९६, ८, ४०), सातवाहन (३, ४१, ५, ११, ६, १५। १८। १९। ११२ और १२५)। इनमे से अभिमानचिह्न, देवराज, पादलिप्त और सातवाहन सत्तसई मे (§ १३) प्राकृत भाषा के कवियों के रूप मे भी मिलते हैं। 'अवन्तिसुन्दरी'[१०] के बारे में ब्यूलर का अनुमान है कि वह वही सुन्दरी है जो धनपाल की छोटी बहन है और जिसके लिए उसने 'पाइयलच्छी' नाम का देशी भाषा का कोश लिखा था। पर ब्यूलर ने यह कहीं नहीं बताया कि सुन्दरी ने स्वय भी देशी भाषा में कुछ लिखा था, यह बात असम्भव लगती है। हेमचन्द्र ने जिस अवन्तिसुन्दरी का उल्लेख किया है, उसका 'राजशेखर' की स्त्री 'अवन्तिसुदरी' होना अधिक सम्भव है। 'कर्पूरमजरी' ७, १ के कथनानुसार इस अवन्तिसुन्दरी के कहने पर ही प्राकृतभाषा मे लिखा हुआ कर्पूरमजरी नामक नाटक का अभिनय किया गया था और हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में उक्त नाटक से कई वाक्य उद्धृत किये हैं। 'शारंगधर-पद्धति' और 'सुभाषितावलि' में राहुलक का नाम सस्कृत कवि के रूप में दिया गया है। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण मे सस्कृत ग्रन्थकारों के निम्नलिखित नाम आये है—कालापा॰ (१, ६), भरत (८, ७२), भामह (८, ३९) और बिना नाम बताये उसने हलायुध से भी (१, ५ और २, ९८) में उद्धरण लिये हैं।

उसने अधिकतर लेखकों का उल्लेख बिना नाम दिये साधारण तौर पर किया है। उदाहरणार्थ—अन्ये (१, ३।२०।२२।३५।४७।५२,६२।६३।६५।६६,७०।७२।७५,७८। ८७।८९।९९।१००।१०२।१०७।११२।१५१।१६० और १६३, २,११।१२।१८।२४।२६।

प्रमाण देकर किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं की जा सकती। हेमचन्द्र की दृष्टि में चंड का ग्रन्थ रहा होगा इस विषय का § १४ में उल्लेख किया जा चुका है। व्याकरण के अतिरिक्त हेमचन्द्र ने 'देशी नाममाला' या देशी शब्दसंग्रह नाम से एक कोश भी लिखा है। इस कोश का नाम स्वयं हेमचन्द्र के शब्दों में 'रयणावलि' अर्थात् 'रत्नावलि' (८ ७७) है। देश १, ४ और उसके बाद हेमचन्द्र ने लिखा है कि यह कोश प्राकृत व्याकरण के बाद लिखा गया और १, १ के अनुसार यह व्याकरण के परिशिष्ट के रूप में लिखा गया है। यह पुस्तक पिशल ने बम्बई से १८८८ ई० में प्रकाशित कराई थी। इसका नाम है— द देशी नाममाला औफ हेमचन्द्र पार्ट वन् टैक्स्ट ऐण्ड क्रिटिकल नोट्स।' धनपाल की भाँति (§ ३५) हेमचन्द्र ने भी देशी शब्दों के भीतर संस्कृत के तत्सम और तद्भव रूप भी दे दिये हैं पर उसके ग्रन्थ में, ग्रन्थ का आकार देखकर यह कहा जा सकता है कि ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है और प्राकृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ असाधारणतया महत्त्वपूर्ण है। देशीनाममाला में आठ वर्ग हैं जिनमें वर्णमाला के क्रम से शब्द सजाये गये हैं। शब्द दो प्रकार से रखे गये हैं। आरम्भ में अक्षरों की संख्या के अनुसार सजाये गये वे शब्द हैं जिनसे केवल एक अर्थ (एकार्थाः) निकलता है। ऐसे शब्दों के बाद वे शब्द सजाये गये हैं जिनके कई अर्थ (अनेकार्थाः) निकलते हैं। पहले वर्ग में शब्दों पर प्रकाश डालने के लिए कविताओं के उदाहरण दिये गये हैं जो कविताएँ स्वयं हेमचन्द्र ने बनाई हैं, जो बहुत साधारण हैं और कुछ विशेष अर्थ नहीं रखतीं। इसका कारण यह है कि उदाहरण देने के लिए हेमचन्द्र को विवश होकर नाना अर्थों के द्योतक कई शब्द इस कविता में भर्ती करने पड़े। ये पद्य केवल इसलिए दिये गये हैं कि पाठकों को हेमचन्द्र के कोश में दिये गये देशी शब्द सरली से याद हो जायें। इन पद्यों में देशी शब्दों के साथ-साथ कुछ ऐसे प्राकृत शब्द और रूप ठूँसे गये हैं जिनके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ये कब और किन ग्रन्थों में काम में लाये गये। इन पद्यों में रखे गये बहुत से देशी शब्दों के अर्थ भी ठीक बैठते नहीं। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला की एक टीका भी स्वयं लिखी है। हेमचन्द्र ने भोले से भी यह बात नहीं कही है कि उसका ग्रन्थ मौलिक है और उसमें प्राचीन ग्रन्थों से कोई सामग्री नहीं ली गई है, बल्कि उसने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि 'देशीनाममाला' इसी प्रकार के पुराने ग्रन्थों से संगृहीत की गई है। उसने १,३७ में इस बात का निश्चय कि अम्बसमी या अम्बमसी इन दोनों में से कौन सा रूप शुद्ध है, विद्वानों पर छोड़ा है : अम्बमसीति केचित् पठन्ति। तत्र केषाम् चिद्भ्रमोऽभ्रमो वेति बहुश्रुतव्याख्या एव प्रमाणम्। वह १ ४१ में अच्छिवडणो के रूप और अर्थ के विषय में कुछ अन्धकार में है इसलिए उसने लिखा है कि चूँकि इस विषय पर पुराने लेखकों में मतभेद रहा है इसलिए इसके ठीक रूप और अर्थ का निर्णय बहुत विद्वान् ही कर सकते हैं; तद् एवं ग्रन्थकृद्विप्रतिपत्तौ बहुश्रुता प्रमाणम्। १,४७ में उसने अपडाक्रिय और अवडक्किय इन दो शब्दों को अलग-अलग किया है। पहले के लेखकों ने इन दोनों शब्दों को समनार्थी बताया था पर हेमचन्द्र ने इन

शब्दों के विषय पर उत्तम ग्रन्थों की छानबीन करके अपना निर्णय दिया—**अस्माभिस् तु सारदेशीनिरीक्षणेन विवेकः कृतः**। वह १, १०५ में बहुत विचार-विमर्श करने के बाद यह निश्चय करता है कि उत्तुहिअ शब्द के स्थान पर पुरानी हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि करनेवालों ने भूल से उड्डुहिअ लिखा है, इसी प्रकार ६, ८ में उसने बताया है कि चोर के स्थान पर वोर हो गया है। उसने २, २८ का निर्णय करने के लिए देशीभाषा के कई ग्रन्थों का उल्लेख किया है और ३, १२ और ३३ में अपना मत देने से पहले इस विषय पर सर्वोत्तम ग्रन्थों का मत भी दिया है। जब उसने ८,१२ पर विचार किया है तब देशी ग्रन्थों के नवीनतम लेखकों और उनके टीकाकारों का पूरा पूरा हवाला दिया है, ८, १३ का निर्णय वह सहृदयों अर्थात् सज्जन समझदारों पर छोड़ता है—**केवलम् सहृदयाः प्रमाणम्**। उसने १, २ में बताया है, इस ग्रन्थ में उसने जो विशेषता रखी है, वह वर्णक्रम के अनुसार शब्दों की सजावट है और १, ८९ में उसने लिखा है कि उसने यह ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिए लिखा है। जिन लेखकों के नाम उसने दिये हैं, वे हैं—अभिमान-चिह्न। (१, १४४, ६, ९३, ७, १, ८, १२ और १७), अवन्तिसुन्दरी (१, ८१ और १५७), देवराज (६, ५८ और ७२, ८,१७), द्रोण अथवा द्रोणाचार्य (१, १८ और ५०, ६, ६०, ८, १७), धनपाल (१, १४१, ३, २२, ४, ३०, ६, १०१, ८, १७), गोपाल (१, २५। ३१ और ४५, २, ८२, ३, ४७, ६, २६। ५८ और ७२, ७, २ और ७६, ८, १। १७ और ६७), पादलिप्त (१, २), राहुलक (४,४), शीलाक (२, २०, ६, ९६, ८, ४०), सातवाहन (३, ४१, ५, ११, ६, ८५। १८। १९। ११२ और १२५)। इनमे से अभिमानचिह्न, देवराज, पादलिप्त और सातवाहन सत्तसई मे (§ १३) प्राकृत भाषा के कवियों के रूप में भी मिलते हैं। 'अवन्तिसुन्दरी[१०] के बारे में ब्यूलर का अनुमान है कि वह वही सुन्दरी है जो धनपाल की छोटी बहन है और जिसके लिए उसने 'पाइयलच्छी' नाम का देशी भाषा का कोश लिखा था। पर ब्यूलर ने यह कहीं नहीं बताया कि सुन्दरी ने स्वयं भी देशी भाषा में कुछ लिखा था, यह बात असम्भव लगती है। हेमचन्द्र ने जिस अवन्तिसुन्दरी का उल्लेख किया है, उसका 'राजशेखर' की स्त्री 'अवन्तिसुंदरी' होना अधिक सम्भव है। 'कर्पूरमजरी' ७, १ के कथनानुसार इस अवन्तिसुन्दरी के कहने पर ही प्राकृतभाषा में लिखा हुआ कर्पूरमजरी नामक नाटक का अभिनय किया गया था और हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में उक्त नाटक से कई वाक्य उद्धृत किये हैं। 'शारगधर-पद्धति' और 'सुभाषितावलि' में राहुलक का नाम सस्कृत कवि के रूप में दिया गया है। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में सस्कृत ग्रन्थकारों के निम्नलिखित नाम आये है—कालापा· (१, ६), भरत (८, ७२), भामह (८, ३९) और बिना नाम बताये उसने हलायुध से भी (१, ५ और २, ९८) में उद्धरण लिये हैं।

उसने अधिकतर लेखकों का उल्लेख विना नाम दिये साधारण तौर पर किया है। उदाहरणार्थ—अन्ये (१, ३।२०।२२।३५।४७।५२,६२।६३।६५।६६,७०।७२।७५,७८। ८७।८९।९९।१००।१०२।१०७।११२।१५१।१६० और १६३, २,११।१२।१८।२४।२६।

२९।३६।४५।४७।५ ।५२।६६।६७।६९।७७।७९।८९ और ९८; ३,३।६।८।२८।४ ।४१। ५८ और ५९; ४, ३।४।५।६।७।१८।२२।२३।२६।३३।४४ और ८७; ५, ५१ ।३३। ३६।४ ।४९।५० और ६१ ६ १४।१५।१६।२१।२८।२५।२६।२८।४२।४८।५३।५८। ६१।६३।७५।८१।८३।८८।९१।९३।९४।९७।९९।१०५।१ ६।११६। १२१। ११२। ११४। १४ और १४५; ७, २।१६।१७।१८।२१।३१।३३।३७।४४।४५।४८।६२।६८।६९।७४। ७५।७६।८८ और १, ८, १ ।१५।१८।२२।२७।३५।३६।३८।४८।४५।५९ और ६७; एके (२ ८५ ४,५ और १२; ६,११; ७,३५; ८ ७) कश्चित् (१, ८१ २, १८; ३,५१; ५,११ ८,७५) केचित् (१ ५।२६।३४।३७।४१।४६।४७।६७।७१ ३। १०५।११७।१२ ।१२९।१३१ और १५३; २ १३।१५।१९।१७।२०।२९।३३।३८।५८। ८७ और ८९; ३ १ ।१२।२२।२३।३३।३४।३५।३६।४४ और ५१; ४ ४।१ ।१५ और ४५। ५,१२।२१।४४ और ५८, ६, ४।५५।८ ।९ ।११ ९२।९३।९५।९६।११० और १११; ७ २।३।६।४७।५८।६५।७२।८१ और ९३; ८ ४।५१।६९ और ७) पूर्वाचार्याः (१,११ और १३) यदाह (यद् आह) (१, ८ और ५) (हलायुध) ३७।७५।१२३।१७१ २,३३।४८।९८ (हलायुध) ३ २३।५४ (सस्कृत), ४, ४।१ २१।२४ और ४५ ५, १ और ६१; ६ १५।४२।७८।८१।९३।१४० और १४२ ७ ४६।५८ और ८४, ८ ११।१४३ और ९८), यदाहुः (१,५, ३,६ और ४,१५); ऐसे ही अन्य सर्वनामों के साथ । १, १८।१४।१८ और १७४, ३३१; ८, ३७ ६, ८।५८ और ९१, ८ १२।१७ और २८) । इससे अधिक अपने से पहले के विद्वानों के ग्रन्थों से बहुत सावधानी के साथ उनसे सहायता लेने पर भी हेमचन्द्र बड़ी मोटी मोटी अशुद्धियों से अपने को बचा न सका। इसका कारण कुछ ऐसा लगता है कि मूल शुद्ध ग्रन्थ उसके हाथ में नहीं लगे, बल्कि दूसरे-तीसरे के हाथ से लिखे तथा अशुद्धियों से भरे ग्रन्थों से उसने सहायता ली। इसलिए वह २ २४ में लिखता है कि कंठदीणार स्नुगमाली माला के सिक्के में एक भेद है (= सूचि विचार) ३,६७ में उसने बताया है कि पपरो अन्य अर्थों के साथ साथ माला के सिक्के में भेद का अर्थ भी देता है (सूचिविचार) और एक तरह का गहने का नाम है जिसे कंठदीणार कहते हैं। इसका कारण स्पष्ट ही है कि उसने ६ ६७ से मिलते-जुलते किसी पद्य में सप्तमी के स्थान पर कर्ता एकवचन कंठदीणारो पढ़ा होगा और उसे देख उसने २ २४ वाला रूप बना दिया। बाद को उसने ६ ६७ में शुद्ध पाठ दे दिया; पर वह अपनी पुरानी भूल ठीक करना भूल गया। निश्चय ही कंठदीणार गले में पहनने का एक गहना है जिसे दीनार नामक सिक्कों की माला कहना चाहिए। पांथासो जिसका अर्थ सेज है और जो ६ ९२ में आया है अवश्य ही ७ ७९ में आनेवाले पांथासले शब्द का ही रूप है, वह संधि में उत्तर पद में आनेवाला रूप रहा होगा"। चाहे जो हो, देशीनाममाला 'उत्तम श्रेणी की सामग्री देनेवाला एक ग्रन्थ है'। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि इससे भारतीय भाषाओं पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है और यह मालूम होता है कि प्राकृत भाषा में अभी और भी अधिक सम्पन्न साहित्य मिलने की आशा है।

१ ब्यूलर की पुस्तक 'इयूबर डास लेवन डेस जैन मोएन्शेस हेमचन्द्रा' (विएना १८८९) पेज १५। — २ ब्यूलर का उपर्युक्त ग्रन्थ, पेज ७२ नोट ३४। — ३.औफरेष्ट के ग्रन्थ काटालोगुस काटालोगोरुम १, ३६० में इसके लेखक का नाम नरेन्द्रचन्द्र सूर्य दिया गया है। पीटर्सन द्वारा सम्पादित 'डिटेल्ड रिपोर्ट' के पेज १२७ की सख्या ३०० और भण्डारकर द्वारा सम्पादित 'ए कैटैलौग ऑफ द कलेक्शन्स ऑफ द मैनुस्क्रिप्ट्स् डिपौजिटेड इन द डेकान कॉलेज' (वम्बई १८८८) के पेज ३२८ की सख्या ३०० मे इस लेखक का नाम 'नरेन्द्रचन्द्रसूरि' दिया गया है। मै इस हस्तलिखित ग्रन्थ को देखना और काम में लाना चाहता था, पर यह लाइब्रेरी से किसी को दी गयी थी। — ४. पिशल की हेमचन्द्रसम्बन्धी पुस्तक १, १८६, गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगेन १८८६, ९०६ नोट १ तथा डी इण्डिशन व्योर्टरव्यूशर (कोश) स्ट्रासबुर्ग १८९७, ग्रुण्डरिस १, ३ वी पेज ७, 'मेखकोश' के सस्करण की भूमिका (विएना १८९९) पेज १७ और उसके वाद। — ५ येनायेर लिटेराटूरत्साइटुग १८७६, ७९७। — ६ पिशल की हेमचन्द्र-सम्बन्धी पुस्तक २, १४५। — ७ वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा पेज २१ तथा उसके वाद। यह ग्रन्थ ब्यूलर ने खोज निकाला था। देखिए 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' २, १७ और उसके वाद के पेज। — ८ इसका दूसरा खण्ड, जिसमें कोश है, ब्यूलर प्रकाशित करना चाहता था, पर प्रकाशित न कर सका। — ९ पिशल द्वारा सम्पादित 'देशीनाममाला' पेज ८। — १०. पाइयलच्छी पेज ७ और उसके बाद। — ११. जीगफ्रीड गौल्दश्मित्त ने डौयत्शे लिटेराटूरत्साइटुग २, ११०९में कई दूसरे उदाहरण दिये हैं। — १२.जीगफ्रीड गौल्डश्मित्त की उपर्युक्त पुस्तक।

§ २७—'क्रमदीश्वर' के समय का अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका। अधिकतर विद्वानों का मत है कि वह हेमचन्द्र के बाद और बोपदेव के पहले जीवित रहा होगा। ल्साख्सारिआए[1] का मत है, और यह मत ठीक ही है कि प्रमाणों से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि क्रमदीश्वर हेमचन्द्र के बाद पनपा होगा। साथ ही, बहुत कम ऐसे प्रमाण इकट्ठे किये जा सकते हैं जिनसे यह प्रायः असम्भव मत सिद्ध हो सके कि क्रमदीश्वर ने हेमचन्द्र से भी पहले अपना व्याकरण लिखा होगा। क्रमदीश्वर ने अपना व्याकरण, जिसका नाम 'सक्षिप्तसार' है, हेमचन्द्र की ही भॉति ८ भागों में बॉटा है जिसके अन्तिम अध्याय का नाम 'प्राकृत-पाद' है और इस पाद में ही प्राकृत व्याकरण के नियम दिये गये हैं। इस विषय में वह हेमचन्द्र से मिलता है, और बातों में दोनों व्याकरणकारों का नाममात्र भी मेल नहीं है। सामग्री की सजावट, पारिभाषिक शब्दों के नाम आदि दोनों में भिन्न भिन्न हैं[2]। क्रमदीश्वर की प्राचीनता का इससे पता चलता है कि उसने अपने सस्कृत व्याकरण में जो श्लोक उद्धृत किये हैं वे ईसा की आठवीं शताब्दि के अन्तिम भाग और नवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल से अधिक पुराने नहीं हैं। सबसे नवीन लेखक, जिसका उद्धरण उसने अपने ग्रन्थ में दिया है, मुरारि[3] है। मुरारि के विषय में हम इतना जानते हैं कि वह 'हरविजय'[4] के कवि 'रत्नाकर' से पुराना है, जो ईसा की

नवीं शताब्दी के मध्यकाल में जीवित था। 'क्रमदीश्वर' हेमचन्द्र के बाद जन्मा। इसका प्रमाण इससे मिलता है कि उसने उत्तरकालीन व्याकरणकारों की भाँति प्राकृत की बहुत अधिक बोलियों का जिक्र किया है जो हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में नहीं मिलता। 'क्रमदीश्वर' पर सब से पहले लास्सन' ने अपने इन्स्टीट्यूत्सीओनेस में विस्तारपूर्वक लिखा है। इसके व्याकरण का वह भाग, जिसमें धातुओं के रूप, धात्वादेश आदि पर लिखा गया है, बेल्हिउस द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। इसका नाम है— 'राजिवेसप्राकृतिकाए' (बोनाए आडेरुम् १८३९)। 'प्राकृतपाद' का सम्पूर्ण संस्करण राजेन्द्रलाल मित्र ने 'बिब्लिओटेका इण्डिका' में प्रकाशित कराया था'। मैं यह ग्रन्थ प्राप्त न कर सका। मेरे पास क्रमदीश्वर' की पुस्तक के मूल पाठ के पेज पर १७ २४ तक और शब्दसूची के पेज १४१-१७२ तक जिनमें भावुको से सप्ताधिभवि तक शब्द हैं तथा अंग्रेजी अनुवाद के पेज १-८ तक हैं। इन थोड़े से पेजों से कुछ निदान निकालना इसलिए और भी कठिन हो जाता है कि यह संस्करण अच्छा नहीं है। क्रमदीश्वर के प्राकृतव्याकरण अर्थात् 'संक्षिप्तसार' के ८ वें पाद का एक नया संस्करण सन् १८८९ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था।'ब्लोख की कृपा से यह ग्रन्थ मुझे मिला है और मैंने इस ग्रन्थ में जो उद्धरण दिये हैं वे उसी पुस्तक से ही दिये गये हैं। इस पुस्तक में भी बहुत सी अशुद्धियाँ हैं और मैंने जो उद्धरण दिये हैं वे लास्सन' की पुस्तक में जो उद्धरण दिये गये हैं उनसे मिलाकर ही दिये हैं। क्रमदीश्वर ने वररुचि को ही अपना आधार माना है और प्राकृत-प्रकाश' तथा 'संक्षिप्तसार' में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाई देता है किन्तु जैसा लास्सन ने अपने इन्स्टीट्यूत्सीओनेस' के परिशिष्ट के पेज ४ और उसके बाद के पेजों में उत्तम रीति से दिखाया है कि वह कई स्थलों पर वररुचि के नियमों से बहुत दूर चला गया है। इन स्थलों से यह पता चलता है कि इन नियमों और उदाहरणों की सामग्री उसने किसी दूसरे लेखक से ली होगी। क्रमदीश्वर ने अपभ्रंश पर भी लिखा है, पर वररुचि में इस प्राकृत भाषा का उल्लेख नहीं मिलता। क्रमदीश्वर ने 'संक्षिप्तसार' पर स्वयं एक टीका लिखी है। इसी टीका की व्याख्या और विस्तार जूमरनन्दिन् ने रसवती में किया है। केवल 'प्राकृतपाद' की टीका चण्डीदेव' शर्मन ने प्राकृतदीपिका' नाम से की है। राजेन्द्रलाल मित्रने प्राकृत पाद टीका' नाम की तीसरी टीका का भी नाम दिया है। इसका लेखक 'विद्याविनोद' है जो 'जटाधर ' का प्रपौत्र वाचेश्वर का पौत्र और नारायण' का पुत्र है। इस टीका का उल्लेख औफ्रेख्ट' ने भी किया है जिसने प्रथम पहले'' इसके लेखकका नाम 'नारायण विद्याविनोदाचार्य' दिया है। मैंने औक्सफोर्ड की इस हस्तलिखित प्रति से काम किया है, किन्तु उस समय जब छपा हुआ 'संक्षिप्तसार न मिलता था''। राजेन्द्रलाल मित्र ने जिस हस्तलिखित प्रति को छपाया है वह औफ्रेख्ट की प्रति से अच्छी है। उसकी भूमिका और प्रत्येक पाद के अन्त में जो समाप्तिसूचक पद हैं उनमें हस्तलिखित प्रति के लेखक ने जो वर्णन किया है, उससे विदित होता है कि लेखक का नाम 'विद्याविनोदाचार्य है और उसने जटाधर के पौत्र तथा वाचेश्वर के पुत्र 'नारायण' के किसी पुराने ग्रंथ को सुधार कर यह पुस्तक तैयार की थी। शायद इसी नारायण के

भाई का नाम 'सुमेरु' था। 'नारायण' ने इससे भी बडा एक ग्रन्थ तैयार किया था जिसे किसी दुष्ट व्यक्ति ने नष्ट कर दिया। प्रस्तुत ग्रन्थ 'विद्याविनोद'[13] ने बनाया जिसमें 'नारायण' के बड़े ग्रन्थ के उद्धरण हैं। 'प्राकृतपाद' क्रमदीश्वर की टीका है। उसमें इस पुस्तक का कहीं उल्लेख नहीं है। समाप्तिसूचक वाक्य में लेखक का नाम 'विद्याविनोदाचार्य' दिया गया है और पुस्तक का नाम 'प्राकृतपाद' है। इसलिए मुझे यह बात सन्देहजनक लग रही है कि राजेन्द्रलाल मित्र का सस्करण ठीक है या नहीं। इस ग्रन्थ के लेखक ने हर बात में वररुचि का ही अनुकरण किया है और इस पुस्तक का विशेष मूल्य नहीं है।

१ बेत्सनबेर्गर्स बाइत्रैगे ५,२६। — २ बेत्सनबेर्गर्स बाइत्रैगे में त्साखारिआए का लेख ५,२६, आठवें पाद के अंत में क्रमदीश्वर ने संक्षेप में छंद और अलकार पर विचार किया है। — ३. बेत्सनबेर्गर्स बाइत्रैगे ५,५८ में त्साखारिआए का लेख। — ४ पीटर्सन द्वारा सपादित 'सुभाषितावलि' पेज ९१। — ५ राजेन्द्रलाल मित्र के 'अ डेस्क्रिप्टिव कैटेलौग ऑफ सैंस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द लाइब्रेरी ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बैंगौल, प्रथम भाग' ग्रैमर (कलकत्ता १८७७), पेज ७५, जौर्नल औफ द बौंबे एशियाटिक सोसाइटी १६, २५० में भंडारकर का लेख। — ६ यह सूची पुस्तक का अग नहीं है, किंतु इसमें बहुत से प्राकृत शब्दों के प्रमाण वररुचि, मृच्छकटिक, शकुंतला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र, रत्नावली, वेणीसंहार, मालतीमाधव, उत्तररामचरित, महावीरचरित, चैतन्यचंद्रोदय, पिंगल और साहित्यदर्पण से उद्धरण दिये गये हैं। — ७ लास्सन, इन्स्टीट्यूत्सीओनेस, पेज १५, बेत्सनबेर्गर्स बाइत्रैगे ५,२२ और उसके बाद के पेजों में त्साखारिआए का लेख, औफरेष्ट का काटालोगुस काटालोगोरुम १,६८४। — ८ लास्सन, इन्स्टीट्यूत्सीओनेस, पेज १६, औफरेष्ट का काटालोगुस काटालोगोरुम १,६८४। — ९ नोटिसेज औफ सैंस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स ४,१६२ तथा बाद के पेज (कलकत्ता १८७८)। — १० काटालोगुस काटालोगोरुम १,६८४। — ११ औक्सफोर्ड का कैटेलौग पेज १८१। — १२ डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस, (व्रातिस्लाविआए १८७४, पेज १९)। —१३ इसकी भूमिका बहुत अस्पष्ट है, और यह सदेहास्पद है कि ऊपर दिया हुआ स्पष्टीकरण ठीक हो, इस विषय पर औफरेष्ट द्वारा सपादित औक्सफोर्ड का कैटेलौग से तुलना करें, पेज १८१। काटालोगुस काटालोगोरुम में ८,२१८ में औफरेष्ट ने पीटर्सन के अलवर कैटेलौग के साथ मेरी सम्मति (व्याख्या) दी है। पुस्तक अब नहीं मिलती। इनमें इस ग्रथ का नाम स्पष्ट ही 'प्राकृत-व्याकरण' दिया गया है।

§ ३८—'आदित्य वर्मन' के पौत्र और 'मल्लिनाथ' के पुत्र 'त्रिविक्रम देव' ने प्राकृत व्याकरण की टीका में हेमचन्द्र को ही अपना सम्पूर्ण आधार माना है। मैंने इस पुस्तक की दो हस्तलिखित प्रतियों से लाभ उठाया है। इण्डिया औफिस लाइब्रेरी के 'बुर्नेल कलेक्शन' सख्या ८४ वाली हस्तलिखित प्रति तजौर की एक हस्तलिखित प्रति की नकल है और ग्रन्थ लिपि में है। दूसरी हस्तलिखित प्रति १०००६ सख्यावाली तजौर की हस्तलिखित प्रति की नागरी में नकल है तथा जिसके सूत्र

निज को, जो त्रिविक्रम से सम्बद्ध है, गलत समझा है। इस ग्रन्थ का नाम 'प्राकृतव्याकरण' है, 'वृत्ति' नहीं। यह वृत्ति उपनाम है और इसका सम्बन्ध टीका से है। — ३ इसका उल्लेख पिशल ने अपने 'डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस' के पेज ३४-३७ तक में किया है। — ४ डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज ३८। — ५ सेवेल की पुस्तक 'अ स्केच ऑफ द डाइनैस्टीज ऑफ सदर्न इण्डिया' (मद्रास १८८३), पेज ३३। — ६ औफरेष्ट द्वारा सम्पादित ऑक्सफोर्ड का कैटेलौग, पेज ११३। — ७ औफरेष्ट का काटालोगुस काटालोगोरुम १, ६१६। — ८ सेवेल की ऊपर लिखी पुस्तक पेज ११४। — ९ ऑक्सफोर्ड का कैटेलौग पेज ११३।

§ ३९—'त्रिविक्रम देव' के व्याकरण को आधार मान कर 'सिंहराज' ने अपना 'प्राकृतरूपावतार' लिखा। यह सिंहराज 'समुद्रबन्धयज्वन्' का पुत्र था। मैंने लन्दन की रौयल एशियैटिक सोसाइटी की दो हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया है। इनमें से १५९ संख्यावाली प्रति ताड के पत्रों पर मलयालम् अक्षरों में लिखी हुई है और दूसरी हस्तलिखित प्रति ५७ संख्यावाली है जो कागज पर मलयालम् अक्षरों में लिखी गयी है। वास्तव में यह संख्या १५९ वाले की प्रतिलिपि है। सिंहराज ने 'त्रिविक्रम देव' के व्याकरण को कौमुदी के ढंग से तैयार किया। ग्रन्थ के प्रारम्भ में उसने **संज्ञा विभाग** और **परिभाषा विभाग** में पारिभाषिक शब्दों पर सार रूप से लिखा है और **संहिता विभाग** में उसने सन्धि और लोप के नियम बताये हैं। इसके बाद ही उसने **सुबन्त विभाग** दिया है जिसमें रूपावलि और अव्ययों के नियम दिये हैं, जिसके बाद **तिङन्त विभाग** आरम्भ होता है जिसमें धातुओं के रूपों के नियम हैं और जिसके भीतर धात्वादेश (**धात्वादेशाः**) भी शामिल हैं। इसके अनन्तर **शौरसेन्यादि विभाग** है जिसमें शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाचिक और अपभ्रंश के नियम दिये गये हैं। प्रत्येक प्रकार की संज्ञा के लिए उसने अलग अलग रूपावलियाँ दे दी हैं। 'अ' में अन्त होनेवाली संज्ञा की रूपावली के नमूने के तौर पर उसने **वृक्ष** शब्द की रूपावली दी है। 'ई' में अन्त होनेवाली संज्ञा का नमूना उसने **अग्नि** लिया है। 'उ' के लिए **तरु**, 'ऊ' के लिए **खलपू***
और 'ऋ' के लिए **भर्तृ**[१] दिया है। उसने बताया है कि इन संस्कृत शब्दों से प्राकृत शब्द किन नियमों के अनुसार बनते हैं। उसके बाद वह बताता है कि शब्दों के नाना रूपों के अन्त में अमुक अमुक स्वर और व्यंजन लगते हैं तथा वे अमुक प्रकार से जोड़े जाते हैं। इसी प्रकार उसने स्वरान्त स्त्री और नपुंसक-लिंग, व्यंजनान्त संज्ञा, युष्मद् और अस्मद् सर्वनाम तथा धातुओं पर लिखा है। धातुओं के लिए उसने नमूने के तौर पर **हस्** और **सह्** धातुओं के रूप दे दिये[१] हैं। संज्ञा और क्रियापदों की रूपावली के ज्ञान के लिए 'प्राकृतरूपावतार' कम महत्वपूर्ण नहीं है। कहीं कहीं सिंहराज ने हेमचन्द्र और त्रिविक्रम देव से भी अधिक

---

* पूखल का अर्थ मेहतर या खलिहान साफ करनेवाला है। —अनु०

भाग की हस्तलिखित प्रति की संख्या १० ४¹ है। ये दोनों नकलें बुर्नेल ने मेरे लिए तैयार करा दी थीं। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ प्रदर्शनी पुस्तकमाला की संख्या १–१२ में जो प्राचीन ग्रन्थों के पाठों का संग्रह छपा है, उसे इस ग्रन्थ के संस्करण का भी मैंने उपयोग किया है किन्तु यह ग्रन्थ केवल पहले अध्याय के अन्त तक ही छपा है। 'त्रिविक्रम देव' ने अपने व्याकरण² के सूत्रों में एक विचित्र पारिभाषिक शब्दावलि का प्रयोग किया है। उसने इन शब्दों को अपने ग्रन्थ के आरम्भ में अर्थ देकर समझाया है³। सूत्रों में लिखी हुई अपनी वृत्ति में उसने १ १, १७ से आगे प्रायः सर्वत्र हेमचन्द्र के शब्दों को ही दुहराया है, इसलिए मैंने उसमें से बहुत कम उद्धरण लिये हैं। त्रिविक्रम देव' ने अपनी प्रस्तावना में यह उल्लेख किया है कि उसने अपनी सामग्री हेमचन्द्र से ली है। मैंने हेमचन्द्र के व्याकरण का जो संस्करण प्रकाशित किया है उसके पेज की किनारी में 'त्रिविक्रम देव' से मिलते-जुलते नियम भी दे दिये हैं। उसने जो कुछ अपनी ओर से लिखा है वह १, १, १ ६, १ ४ १२१, ३, १ १०, ३, १, ११२ और ३, ४ ७१ में है। इन स्थलों में ऐसे शब्दों का संग्रह एक स्थान पर किया गया है जो व्याकरण के नियमों के भीतर पकड़ में नहीं आते और जिनमें से अधिकतर ऐसे शब्द हैं जो देशी शब्द द्वारा व्यक्त किये जा सकते हैं। ३ ४ ७१ में दिये गये शब्दों के विषय में तो स्वयं ग्रन्थकार ने लिखा है कि ये देशी अर्थात् देश्याः हैं। इसके प्रारम्भ के दो अध्यायों को मैंने प्रकाशित कराया है और बेस्सनबेर्गर्स बाइत्रैगेत्सूर कुण्डेडेर इण्डोगरमानिशन श्प्राखन के ३, २१५ और उसके बाद के पेजों में, ६ ८४ और उसके बाद के पेजों में तथा १३, १ और उसके बाद के पेजों में इस ग्रन्थ की आलोचना भी की है। क्रमदीश्वर के काल का निश्चय इस प्रकार किया जा सकता है कि वह हेमचन्द्र के बाद का लेखक है और हेमचन्द्र की मृत्यु सन् ११७२ ई० में हुई है। वह कोलाचल मल्लिनाथ के पुत्र कुमार स्वामिन् से पहले जीवित रहा होगा क्योंकि विद्यानाथ के प्रतापरुद्रीय' ग्रन्थ की टीका में जो सन् १८६८ ई० में मद्रास से छपा है, २१८, २१ में वह नाम के साथ उद्धृत किया गया है। इसके अतिरिक्त ६२ १९ और उसके बाद के पेजों में २ १ ९१ और २१४ ४ में 'त्रिविक्रम देव बिना नाम के उद्धृत किया गया है⁴। द्वितीय प्रतापरुद्र जिसको विद्यानाथ ने अपना ग्रन्थ अर्पित किया है, ईसवी सन् १२९५–१३२३ तक राज्य करता था। कुमार स्वामिन् ने १२३ १ और उसके बाद लिखा है कि पुरानी बात है (पुराप्रसिद्ध) कि प्रतापरुद्र सिंहासन पर बैठा था। उसके पिता कोलाचल मल्लिनाथ ने बोपदेव⁵ से उद्धरण लिये हैं जो देवगिरि के राजा महादेव के दरबार में रहता था। महाराज महादेव ने ईसवी सन् १२६० १२७१ तक राज्य किया⁶। इससे औफरेष्ट के इस मत की पुष्टि होती है कि मल्लिनाथ का समय ईसा की १४ वीं सदी से पहले का नहीं माना जा सकता। इस गणना के अनुसार त्रिविक्रम का काल १३ वीं शताब्दी में रखा जाना चाहिये।

१ बुर्नेल का 'क्लैसिफाइड इण्डेक्स १ ४१। — २ त्रिविक्रम सूत्र का रचयिता भी है; वे मामारिकिस प्राकृतिकिस पेज ११ में त्रिविक्रमसूत्रमार्गम् के

निज को, जो त्रिविक्रम से सम्बद्ध है, गलत समझा है। इस ग्रन्थ का नाम 'प्राकृतव्याकरण' है, 'वृत्ति' नहीं। यह वृत्ति उपनाम है और इसका सम्बन्ध टीका से है। — ३ इसका उल्लेख पिशल ने अपने 'डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस' के पेज ३४–३७ तक में किया है। — ४ डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज ३८। — ५ सेवेल की पुस्तक 'अ स्केच ऑफ द डाइनैस्टीज ऑफ सदर्न इण्डिया' (मद्रास १८८३), पेज ३३। — ६ औफरेष्ट द्वारा सम्पादित ऑक्सफोर्ड का कैटेलौग, पेज ११३। — ७ औफरेष्ट का काटालोगुस काटालोगोरुम १, ६१६। — ८ सेवेल की ऊपर लिखी पुस्तक पेज ११४। — ९ ऑक्सफोर्ड का कैटेलौग पेज ११३।

§ ३९—'त्रिविक्रम देव' के व्याकरण को आधार मान कर 'सिंहराज' ने अपना 'प्राकृतरूपावतार' लिखा। यह सिंहराज 'समुद्रबन्धयज्वन्' का पुत्र था। मैंने लन्दन की रौयल एशियैटिक सोसाइटी की दो हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया है। इनमें से १५९ सख्यावाली प्रति ताड के पत्रों पर मलयालम् अक्षरों में लिखी हुई है और दूसरी हस्तलिखित प्रति ५७ सख्यावाली है जो कागज पर मलयालम् अक्षरों में लिखी गयी है। वास्तव में यह सख्या १५९ वाले की प्रतिलिपि है। सिंहराज ने 'त्रिविक्रम देव' के व्याकरण को कौमुदी के ढग से तैयार किया। ग्रन्थ के प्रारम्भ में उसने **संज्ञा विभाग** और **परिभाषा विभाग** में पारिभाषिक शब्दों पर सार रूप से लिखा है और **संहिता विभाग** में उसने सन्धि और लोप के नियम बताये हैं। इसके बाद ही उसने **सुबन्त विभाग** दिया है जिसमें रूपावलि और अव्ययों के नियम दिये हैं, जिसके बाद **तिङन्त विभाग** आरम्भ होता है जिसमें धातुओं के रूपों के नियम हैं और जिसके भीतर धात्वादेश (**धात्वादेशाः**) भी शामिल हैं। इसके अनन्तर **शौरसेन्यादि विभाग** है जिसमें शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाचिक और अपभ्रश के नियम दिये गये हैं। प्रत्येक प्रकार की सज्ञा के लिए उसने अलग अलग रूपावलियाँ दे दी हैं। 'अ' में अन्त होनेवाली सज्ञा की रूपावली के नमूने के तौर पर उसने **वृक्ष** शब्द की रूपावली दी है। 'ई' में अन्त होनेवाली सज्ञा का नमूना उसने **अग्नि** लिया है। 'उ' के लिए **तरु**, 'ऊ' के लिए **खलपू*** और 'ऋ' के लिए **भर्तृ** दिया है। उसने बताया है कि इन सस्कृत शब्दों से प्राकृत शब्द किन नियमों के अनुसार बनते हैं। उसके बाद वह बताता है कि शब्दों के नाना रूपों के अन्त में अमुक अमुक स्वर और व्यजन लगते हैं तथा वे अमुक प्रकार से जोड़े जाते हैं। इसी प्रकार उसने स्वरान्त स्त्री और नपुंसक-लिंग, व्यजनान्त सज्ञा, युष्मद् और अस्मद् सर्वनाम तथा धातुओं पर लिखा है। धातुओं के लिए उसने नमूने के तौर पर **हस्** और **सह्** धातुओं के रूप दे दिये हैं। सज्ञा और क्रियापदों की रूपावली के ज्ञान के लिए 'प्राकृतरूपावतार' कम महत्वपूर्ण नहीं है। कहीं कहीं सिंहराज ने हेमचन्द्र और त्रिविक्रम देव से भी अधिक

* पूखल का अर्थ मेहतर या खलिहान साफ करनेवाला है। —अनु०

रूप दिये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें से अधिकतर रूप उसने नियमों के अनुसार गढ़ लिये हैं, पर इस प्रकार के नये-नये रूप व्याकरण के अनुसार गढ़ने की किसी दूसरे को नहीं सूझी, इसलिए उसका यह विषय बहुत ही सरस है। ठीक जिस प्रकार 'सिंहराज' ने त्रिविक्रम देव' के सूत्रों को बड़े ढंग से सजाया है उसी प्रकार रघुनाथ शर्मन्' ने वररुचि के सूत्रों को अपने 'प्राकृतानन्द' में सजाया[1] है। 'लक्ष्मीधर' ने भी अपनी षड्भाषा चन्द्रिका'[1] में सूत्रों का क्रम इस तरह से ही रखा है। प्राकृत के सबसे नये ग्रन्थ षड्भाषा सुबन्त रूपादर्श में 'नागोबा' ने भी यही ढंग रखा है। यह ग्रन्थ गम्भीर ज्ञान का नहीं बल्कि चलतू ज्ञान का परिचय देता है। नागोबा की पुस्तक प्राकृत की 'शब्दरूपावलि' है।

१ इस विषय में पिशल के 'डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस' में पेज ३९-४१ तक सविस्तार वर्णन किया गया है। — २ प्रोसीडिङ्ग्स ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बैंगॉल, १८८ के पेज ११ और इसके बाद के पेजों में होएर्नले का लेख। — ३ बुर्नेल द्वारा संपादित 'क्लैसिफाइड इंडेक्स पेज ४१; लास्सन के 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस के पेज ११-१५ तक की तुलना भी करें।— ४ बुर्नेल की उपर्युक्त पुस्तक पेज ४१।

§ ४ — महाराष्ट्री, जैन महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैन शौरसेनी के अतिरिक्त अन्य प्राकृत बोलियों के नियमों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'मार्कण्डेय कवीन्द्र' का 'प्राकृतसर्वस्वम्' बहुत मूल्यवान है। मैंने इस पुस्तक की दो हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया है। एक ताड़पत्र पर लिखी हुई है और इण्डिया आफिस में है। मैकेंजी की हस्तलिखित प्रतियों में इसकी संख्या ७ है और यह नागरी लिपि में लिखी गयी है। इसे सुरक्षित रखने के लिए इसके बाहर लकड़ी के दो टुकड़े रखे गये हैं। उनमें से ऊपर की लकड़ी के टुकड़े पर नागरी अक्षरों में लिखा है— 'पिंगल व्याकरण' और रोमन अक्षरों में लिखा है— पैंगल, प्रोक्रेत सुर्व भाषा व्याकरनम्। अब यह शीर्षक मिट गया है और नीचे के तख्ते में लिखा है—'पैंगल प्रोक्रेत सुर्व भौषा व्याकरणुम्। पहले ही पन्ने में नागरी में लिखा है— श्री रामः, पिंगलप्राकृत सर्वस्व भाषाव्याकरणम्। दूसरी हस्तलिखित प्रति ऑक्सफोर्ड की है जिसका वर्णन औफ्रेष्ट के कातालोगुस कातालोगुरुम के पेज १८१ संख्या ४१२ में है। ये दोनों हस्तलिखित प्रतियाँ एक ही मूल पाठ से उतारी गयी हैं और इतनी बिगड़ी हैं कि इनका अर्थ लगाना कठिन हो जाता है। इसलिए इसके कुछ अंश ही मैं काम में ला पाया हूँ। इस ग्रन्थ के अन्त में इस ग्रंथ की नकल करनेवाले का नाम ग्रन्थकार का नाम और जो समय दिया गया है, उससे ज्ञात होता है कि 'मार्कण्डेय' उड़ीसा का निवासी था और उसने 'मुकुन्ददेव' के राज्य में अपना यह ग्रन्थ लिखा। औफ्रेष्ट का अनुमान है कि यह मुकुन्ददेव वही राजा है जिसने 'स्टर्लिंग' के मतानुसार सन् १६६४ ई० में राज्य किया किन्तु निश्चित रूप से यह बात नहीं कही जा सकती। 'मार्कण्डेय' ने भिन्न-भिन्न लेखकों के ग्रन्थों से अपनी सामग्री ली है उनके नाम हैं— शाकल्य भरत कोहल वररुचि भामह (§ ३१ से ३३ तक) और वसन्तराज।

वसन्तराज वह है जिसने 'प्राकृतसंजीवनी' बनायी है। कौवेल्[1] और औफरेष्ट[2] यह मानते हैं कि 'प्राकृतसजीवनी' वररुचि की टीका है। किन्तु यह बात नहीं है। यद्यपि वसन्तराज ने अपना ग्रन्थ वररुचि के आधार पर लिखा तथापि उसका ग्रन्थ सब भाँति से स्वतत्र है। यह ग्रथ कर्पूरमञ्जरी ९, ११ में (बम्बई संस्करण) उद्धृत किया गया है: 'तदुक्तम् प्राकृतसंजीविन्याम्। प्राकृतस्य तु सर्वम् एव संस्कृतम् योनिः' (§ १)। मुझे अधिक सम्भव[3] यह मालूम पडता है कि यह वसन्तराज[4] राजा कुमारगिरि वसन्तराज है, जो काटयवेम[5] का दामाद है, क्योंकि काटयवेम ने यह बात कही है कि वसन्तराज ने एक नाट्यशास्त्र लिखा, जो उसने वसन्तराजीयम्[6] बताया है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि उसे स्वभावतः प्राकृतभाषा से प्रेम और उसका ज्ञान रहा होगा। काटयवेम के शिलालेख ईसवी[7] सन् १३९१, १४१४ और १४१६ के मिलते हैं। यदि मेरे अनुमान के अनुसार नाट्यकार और महाराजकुमार वसन्तराज एक ही हों तो 'मार्कण्डेय' का काल १५ वीं सदी की पहली चौथाई में होना चाहिए। वह वसन्तराज, जिसने शाकुन ग्रथ लिखा है, हुल्त्श[8] के मतानुसार प्राकृत व्याकरणकार से भिन्न है। अपने ग्रथ मे मार्कण्डेय ने अनिरुद्धभट्ट, भट्टिकाव्य, भोजदेव, दण्डिन्, हरिश्चन्द्र, कपिल, पिंगल, राजशेखर, वाक्पतिराज, सप्तशती और सेतुबन्ध[9] का उल्लेख किया है। इनमें सबसे बाद का लेखक 'भोजदेव' है जिसने अपना करण ग्रथ 'राजमृगाङ्क' शक सवत् ९६४ (ईसवी सन् १०४२-४३) में रचा[10] है। विषय-प्रवेश के बाद मार्कण्डेय ने प्राकृत भाषाओं का विभाजन किया है। इसी विभाजन के अनुसार उसने पुस्तक में प्राकृत भाषाओं का साररूप से व्याकरण दिया है। सबसे पहले उसने महाराष्ट्री प्राकृत के नियम बताये हैं, जो आठ पादों में पूरे हुए हैं। पुस्तक का यह सबसे बडा खड वररुचि के आधार पर है और हेमचन्द्र के व्याकरण से बहुत छोटा है, जिसमें कई बातें छूट गयी हैं और कई स्वतन्त्र नियम जोड दिये गये हैं। इसके अनन्तर ९वाँ पाद है, जिसके ९वें प्रकरण में शौरसेनी के नियम हैं। १०वें पाद में प्राच्य भाषा के विषय में सूत्र हैं। ११वें में आवन्ती और बाल्हीकी का वर्णन है और १२वें पाद मे मागधी के नियम बताये गये हैं, जिनमें अर्धमागधी का उल्लेख है (§ ३)। ९ से १२ तक के पाद एक अलग खण्ड सा है और इसका नाम है 'भाषाविवेचनम्'। १३ से १६वें पाद तक में विभाषाः (§ ३) का वर्णन है। १७ और १८ वें में अपभ्रश भाषा का तथा १९ और २० वें पाद में पैशाची के नियम बताये गये हैं। शौरसेनी के बाद अपभ्रश भाषा का वर्णन बहुत शुद्ध और ठीक-ठीक है। हस्तलिखित प्रतियों की स्थिति बहुत दुर्दशाग्रस्त होने के कारण इसमें जो बहुमूल्य सामग्री है उससे यथेष्ट लाभ उठाना असम्भव है।

१ 'वररुचि' की भूमिका का पेज १० और बाद के पेज। — २ काटालोगुस काटलोगोरुम १, ३६०। — ३ राजा का नाम 'कुमारगिरि' और उसका उपनाम 'वसन्तराज' है, 'एपिग्राफिका इण्डिका' ४, ३१८ पेज तथा बाद के पेजों से प्रमाण मिलता है। हुल्त्श पेज ३२७ से भी तुलना करें। — ४ काटयवेम नाम

मैंने पहले-पहल की एस० पत्रिका १८७२ में पेज २ १ और बादके पेजों में सप्रमाण दिया है। औफरेष्ट ने इस नाम को अपने काटालोगुस काटालोगोरुम में फिर से अशुद्ध 'काश्यपेस' कर दिया है। 'एपिग्राफिका इण्डिका' ४ १.१८ तथा बाद के पेजों के शिलालेख इस नाम के विषय में नाममात्र सन्देह की गुंजाइश नहीं रखते। — ५ दे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज १८। इस तथ्य से कि काश्यपेस ने भाष्यों की जो टीकाएँ लिखी हैं उनमें 'प्राकृतसंजीवनी' का उल्लेख नहीं किया है। यदि ये दोनों एक ही व्यक्ति के नाम हों तो हम यह सिद्धान्त निकाल सकते हैं कि ये टीकाएँ वसन्तराज ने अपने अलंकारशास्त्र की पुस्तकों के बाद और 'काश्यपेस' नाम से लिखी होंगी। — ६ दे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज १८; एपिग्राफिका इण्डिका ४ १२० पद १०। — ७ हुल्श एपिग्राफिका इण्डिका २ ११८। — ८ वसन्तराज शाकुन 'मेनर टेक्सटमोसन' नामक ग्रन्थ की भूमिका (काइसिल १८७९) पेज ११। — ९ पिशल दे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज १०। — १ थीओ आउफ्रेष्ट माक्ट्रोमोसी आउफ्रेष्टेबी उण्ड मार्थेमाटीक (स्ट्रासबुर्ग १८९९, ग्रुन्डरिस भाग ३ ९) § २७।

§ ४१— मार्कण्डेय' के व्याकरण से बहुत कुछ मिलता जुलता विशेषतः महाराष्ट्री को छोड़ अन्य प्राकृत भाषाओं के विषय में मेल खानेवाला एक और ग्रन्थ रामतर्कवागीश का 'प्राकृतकल्पतरु' है, जिसकी एकमात्र हस्तलिखित प्रति बंगाला लिपि में इण्डिया आफिस में ११ ९ संख्या देकर रखी गयी है। यह बहुत दुर्दशाग्रस्त है इसलिए इसका बहुत कम उपयोग किया जा सकता है। 'रामतर्कवागीश' पर लास्सन' ने अपने 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस' के पेज १९ से २१ तक में विचार किया है। पेज २ से यह पता चलता है कि 'रामतर्कवागीश' ने 'लंकेश्वर द्वारा लिखे गये किसी प्राचीन ग्रन्थ के आधार पर अपनी पुस्तक लिखी। यह पुस्तक रावण द्वारा लिखी गयी प्राकृत कामधेनु' है। इसका दूसरा नाम 'प्राकृत लंकेश्वर रावण' भी है और कई लोग इसे केवल लंकेश्वर' भी कहते' हैं। अभीतक प्राकृतकामधेनु' के खण्ड-खण्ड ही मिले हैं पूरी पुस्तक प्राप्त नहीं हुई है। यदि यह लंकेश्वर वही है जिसने काव्य माला खण्ड' में पेज ९ से ७ तक में छपी शिवस्तुति लिखी है तो यह अप्पयदीक्षित से पुराना है, क्योंकि बनारस से सवत् १९२८ में प्रकाशित 'कुवलयानन्द' के श्लोक ५ की टीका में अप्पयदीक्षित ने इसका उद्धरण' दिया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह ईसवी सन् की १६ वीं सदी के अन्त से पहले का है। रामतर्कवागीश' उसके बाद के हैं। नरसिंह की प्राकृतशब्दप्रदीपिका त्रिविक्रम के ग्रंथ का महत्त्वहीन रूपान्तर है। इसका प्रारम्भिक भाग' ग्रन्थ-प्रदर्शनी' नामक पुस्तक-संग्रह की संख्या ३ और ४ में प्रकाशित किया गया है। ऊपर दिये गये ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक लेखकों के नाम हस्तलिखित प्रतियों में पाये जाते हैं इनमें से अधिकांश के विषय में हम इनके लेखकों और ग्रन्थों के नामों को छोड़कर और कुछ नहीं जानते और किसी किसी लेखक और ग्रन्थ का यह हाल है कि कहीं-कहीं केवल रचयिता का और कहीं-कहीं केवल ग्रन्थ का नाम मिलता है। शुभचन्द्र ने शब्दचिन्तामणि

नाम का ग्रन्थ लिखा। होएर्नले[६] के कथनानुसार इस ग्रन्थ में चार-चार पादों के दो अध्याय हैं। यह पुस्तक हेमचन्द्र के व्याकरण का अनुसरण करती है। दक्षिण के लेखक 'त्रिविक्रम देव' और 'सिंहराज' (§ ३८ और ३९) की भाँति 'शुभचन्द्र' इसका प्रारम्भ कई सज्ञासूत्रों से करता है। सभवत. राजेन्द्रलाल मित्र[७] ने जिस 'औदार्यचिन्तामणि' का उल्लेख किया है और जिसके विषय में उसने लिखा है कि इसका लेखक कोई 'शुभसागर'[८] है, वह यही ग्रन्थ है। 'कृष्णपडित' अथवा 'शेषकृष्ण' की 'प्राकृवचन्द्रिका' श्लोकों में लिखा गया दोषपूर्ण ग्रन्थ है। पीटर्सन ने थर्ड रिपोर्ट के पेज ३४२ से ३४८ तक मे उसके उद्धरण दिये है। ३४३, ५ से ज्ञात होता है कि उसका गुरु 'नृसिंह' था और ३४८, २१ में इस गुरु का नाम 'नरसिंह' बताया गया है। सम्भवतः 'प्राकृत शब्दप्रदीपिका' का रचयिता इसीको समझना चाहिए। इस ग्रथ के ३४६, ६ के अनुसार यह पुस्तक बच्चों के लिए लिखी गयी थी (शिशुहिता कुर्वे प्राकृतचन्द्रिकाम्)। ३४३, १९ के अनुसार ऐसा भान होता है कि वह महाराष्ट्री और आर्षम् को एक ही मानता है, क्योंकि वह वहाँ पर उसका उल्लेख नहीं करता यद्यपि केवल इस बोली पर उसने अन्यत्र लिखा है। जैसा उसके उदाहरणों से पता चलता है, उसने हेमचन्द्र के ग्रन्थ का बहुत अधिक उपयोग किया है। नाना प्राकृतों का विवरण और उनके विभाग, जो विशेष व्यक्तियों के नाम पर किये गये हैं (पेज ३४६ ३४८), शब्द प्रतिशब्द 'भरत' और 'भोजदेव' जैसे प्राचीन लेखकों से ले लिये गये हैं। इनमें पेज ३४८ में 'भारद्वाज' नया है। एक 'प्राकृतचन्द्रिका' वामनाचार्य ने भी लिखी है, जो अपना नाम 'करञ्जकविसार्वभौम' बताता है और 'प्राकृतपिंगल' (§ २९) की टीका का भी रचयिता है[९]। प्राकृत-शिक्षा प्रारम्भ करनेवालों के लिए एक सक्षिप्त पुस्तक प्रार्थितनामा अप्पयदीक्षित[१०] का 'प्राकृतमणिदीप' है। यह लेखक सोलहवीं शताब्दि के उत्तरार्ध में हुआ है। जिन-जिन ग्रन्थों से उसने अपनी सामग्री एकत्र की है उनका उल्लेख करते हुए वह त्रिविक्रम, हेमचन्द्र, लक्ष्मीधर, भोज, पुष्पवननाथ, वररुचि तथा अप्पयज्वन् के नाम गिनाता है (§ ३२)। 'वार्त्तिकार्णवभाष्य', जिसका कर्त्ता या स्वतन्त्र लेखक 'अप्पयज्वन्' ही है, किन्तु वास्तव में उसका ग्रन्थ त्रिविक्रम की पुस्तक में-से सक्षिप्त और अशुद्ध उद्धरणमात्र है जिसका कोई मूल्य नहीं है। इसका बहुत छोटा भाग 'ग्रन्थप्रदर्शिनी' की सख्याएँ ३, ५, ६, ८-१० और १२ में छपा है। एक प्राकृतकौमुदी[११] और समन्तभद्र[१२] आदि के प्राकृतव्याकरण का उल्लेख और करना है। 'साहित्यदर्पण' १७४, २ के अनुसार 'विश्वनाथ' के पिता 'चन्द्रशेखर' ने 'भाषार्णव' नाम का ग्रन्थ लिखा था। पिशल द्वारा सम्पादित शकुन्तला के १७५, २४ में 'चन्द्रशेखर' ने अपनी टीका में 'प्राकृत साहित्य रत्नाकर' नाम के ग्रन्थ का उल्लेख किया है और इसी ग्रन्थ के १८०, ५ में भाषाभेद से एक उद्धरण दिया गया है, जो सम्भवत प्राकृत पर कोई ग्रन्थ रहा होगा। 'मृच्छकटिक' १४, ५ पेज २४४ (स्टैत्सलर का एक सस्करण जो गौडबोले के ४०, ५ पेज ५०२ में है) की टीका में 'पृथ्वीधर' ने 'देशीप्रकाश' नाम के किसी ग्रन्थ से **काणेली कन्यका माता** उद्धृत किया है। टीकाकारों ने स्थान-स्थान पर प्राकृत सूत्र

मैंने पहले-पहल जे बी एन पत्रिका १८७१ में पेज १ १ और बाद के पेजों में सप्रमाण दिया है। औफरेख्त ने इस नाम को अपने 'कात्सोगुस कात्सोगोरुम' में फिर से अशुद्ध 'कात्यवेम' कर दिया है। 'एपिग्राफिका इण्डिका' ४,३१४ तथा बाद के पेजों के लेखक इस नाम के विषय में नाममात्र सन्देह की गुंजाइश नहीं रखते। — ५ दे प्रामातिकिस प्राकृतिकिस पेज १४। इस तथ्य से कि कात्यवेम ने नाटकों की जो टीकाएँ लिखी हैं उनमें 'प्राकृतसंजीवनी' का उल्लेख नहीं किया है। यदि ये दोनों एक ही व्यक्ति के नाम हों तो हम यह सिद्धान्त निकाल सकते हैं कि ये टीकाएँ वसन्तराज ने अपने अर्लंकारशास्त्र की पुस्तकों के बाद और 'कात्यवेम' नाम से लिखी होंगी। — ६ दे प्रामातिकिस प्राकृतिकिस पेज १४; एपिग्राफिका इण्डिका ४ ३१० पद १०। — ७ हुल्श एपिग्राफिका इण्डिका ४ ३१८। — ८ वसन्तराज शाकुन 'मेमर डेस्क्रोप्तन' नामक ग्रन्थ की भूमिका (लाइपसिख १८७९) पेज २१। — ९ पिशल दे प्रामातिकिस प्राकृतिकिस पेज १०। — १ बीनो व्यास्कोमोमी व्यास्कोलोजी उन्द मार्येमाटीक (स्ट्रासबुर्ग १८९९; मु करीस भाग ३ ९) § ३०।

§ ४१—'मार्कण्डेय' के व्याकरण से बहुत कुछ मिलता जुलता विशेषतः महाराष्ट्री को छोड़ अन्य प्राकृत भाषाओं के विषय में मेल खानेवाला एक और ग्रन्थ रामतर्कवागीश का 'प्राकृतकल्पतरु' है जिसकी एकमात्र हस्तलिखित प्रति बंगाला लिपि में इण्डिया आफिस में ११ ६ संख्या देकर रखी गयी है। यह बहुत दुर्दशाग्रस्त है इसलिए इसका बहुत कम उपयोग किया जा सकता है। 'रामतर्कवागीश' पर लास्सन ने अपने इन्स्टीट्यूत्सीओनेस के पेज १९ से २१ तक में विचार किया है। पेज २ से यह पता चलता है कि 'रामतर्कवागीश' ने 'लंकेश्वर' द्वारा लिखे गये किसी प्राचीन ग्रन्थ के आधार पर अपनी पुस्तक लिखी। यह पुस्तक रावण द्वारा लिखी गयी प्राकृत कामधेनु' है। इसका दूसरा नाम प्राकृत लंकेश्वर रावण' भी है और कई लोग इसे केवल 'लंकेश्वर' भी कहते' हैं। अभीतक 'प्राकृतकामधेनु' के खण्ड-खण्ड ही मिले हैं, पूरी पुस्तक प्राप्त नहीं हुई है'। यदि यह लंकेश्वर वही है जिसने काव्य माला खण्ड' में पेज ६ से ७ तक में छपी शिवस्तुति लिखी है तो यह अप्पयदीक्षित से पुराना है क्योंकि बनारस से सवत् १९२८ में प्रकाशित कुवलयानन्द' के श्लोक ५ की टीका में अप्पयदीक्षित ने इसका उद्धरण' दिया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह ईसवी सन् की १६ वीं सदी के अन्त से पहले का है। रामतर्कवागीश' उसके बाद के हैं। नरसिंह की प्राकृतशब्दप्रदीपिका त्रिविक्रम के ग्रंथ का महत्त्वहीन अपवरण है। इसका प्रारम्भिक भाग पद्य-प्रदर्शनी नामक पुस्तक संग्रह की संख्या ३ और ४ में प्रकाशित किया गया है। ऊपर दिये गये ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक लेखकों के नाम हस्तलिखित प्रतियों में पाये जाते हैं इनमें से अधिकांश के विषय में हम इनके लेखकों और ग्रन्थों के नामों को छोड़कर और कुछ नहीं जानते और किसी किसी लेखक और ग्रन्थ का यह हाल है कि कहीं-कहीं केवल रचयिता का और कहीं-कहीं केवल ग्रन्थ का नाम मिलता है। शुभचन्द्र ने 'शब्दचिन्तामणि'

की आशा है। (२) उनकी लिखी बातों की शुद्धि के विषय मे उन्हीं की हस्तलिखित प्रतियों से छानबीन की जा सकती है। (३) हमारे पास जो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं उनमें कहीं कहीं जो मतभेद दिखाई देता है उसे तबतक असत्य मानना पड़ेगा जबतक कोई अच्छी हस्तलिखित प्रति प्राप्त न हो और उसके द्वारा इसके मतभेद की पुष्टि न मिले। (४) हमें यह न मानना चाहिये कि हमारी हस्तलिखित प्रतियों की ये बातें, जिनके विषय में उन्होंने मौन धारण कर रखा हो, वे न जानते थे और इससे भी बड़ी बात यह है कि ये बातें या रूप उनके समय में विद्यमान न थे। प्राकृत व्याकरणकारों के विषय मे यह दलील गलत है कि उन्होंने जो बात न लिखी हो उसे वे न जानते हों।' इन चार बातों में से चौथी बात अंशतः ठीक है। अन्य तीन बातें मूलतः गलत हैं। हमें हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार व्याकरणकारों को शुद्ध करना नहीं है, बल्कि व्याकरणकारों के अनुसार हस्तलिपियाँ सुधारनी हैं[२]। इस विषय पर मैं यह संकेत करके संतोष कर लूँगा कि पाठक २२ से २५ § तक शौरसेनी, मागधी, शाकारी और ढक्की के विषय में पढ़कर उनपर इस दृष्टि से विचार करें। इन बोलियों का चित्र व्याकरणकारो के नियमों को पढ़कर ही हम बहुत-कुछ तैयार कर सकते हैं, हस्तलिखित प्रतियों में बहुत-सी बातें मिलती ही नहीं। उदाहरणार्थ 'ब्लौख'[३] के मतानुसार 'मृच्छकटिक' की 'पृथ्वीधर' की टीका में पृथ्वीधर के मत से 'चारुचन्द्र' का पुत्र 'रोहसेन' मागधी प्राकृत में बातचीत करता है, किन्तु 'स्टैन्त्सलर' के मतानुसार वह शौरसेनी बोलता है। इन दो भिन्न-भिन्न मतों से यह पता चलता है कि इन विद्वान टीकाकारों पर कितना भरोसा किया जा सकता है। जैसा § २३ के नोट, संख्या २ में दिखाया गया है कि हस्तलिखित प्रतियों में ऐसे लक्षण विद्यमान हैं जिनसे ज्ञात होता है कि यह दोष हस्तलिखित प्रतियों के सिर पर मढ़ा जाना चाहिए न कि विद्वानों के। मेरे द्वारा सम्पादित शकुन्तला का संस्करण प्रकाशित होने के पहले विद्वानों को यह मानना पड़ा कि 'सर्वदमन' (पेज १५४ से १६२ तक) शौरसेनी प्राकृत में बोलता होगा। मेरे संस्करण में जो आलोचना की गई है उससे ज्ञात होता है कि मागधी के चिह्न कितने कम मिलते हैं। ऐसी स्थिति में आज भी किसी विद्वान को यह कहने में कोई हिचक नहीं हो सकती कि भले ही अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में इसके बहुत कम चिह्न मिलते हैं जिनसे कि मागधी नियम स्पष्ट रूप से समझ में आये तो भी मागधी का शुद्ध रूप हमें खड़ा करना होगा। इसलिए 'कापेलर'[४] की बात बिल्कुल ठीक है कि 'सर्वदमन' और 'रोहसेन' एक ही भाषा बोलते होंगे। इस बात में सन्देह नहीं कि व्याकरणकारों ने इस विषय में जो नियम बनाये हैं उनकी उचित रीति से छानबीन और पूर्ति की जानी चाहिए। मुझे कोई कारण नहीं दीखता कि हेमचन्द्र[५] के बारे में जो सम्मति मैं दे चुका हूँ उसे बदलूँ। हमें यह न भूलना चाहिए कि प्राचीन काल के व्याकरणकारों के सामने जो-जो सामग्री प्रस्तुत थी हमें अभी तक उस साहित्य का केवल एक छोटा सा भाग प्राप्त हुआ है*। हेमचन्द्र के व्याकरण

* अपभ्रंश, जैन महाराष्ट्री आदि पर इधर बहुत सामग्री प्रकाशित हुई है। उसका लाभ उठाया जाना चाहिए। —अनु०

दिये हैं जिनके बारेमें यह पता नहीं चलता कि ये किन ग्रन्थों से लिये गये हैं।

१ यही स्वीकारोक्ति संभव है। राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा संपादित 'नोटिसेज १ २३१ संख्या ३१५७' में उसके ग्रंथों की भूमिका में स्पष्ट शब्दों में ग्रंथकर्ता का नाम 'रावण' दिया गया है और समाप्तिसूचक पंक्ति यों है—इति रावणकृता प्राकृतकामधेनुः समाप्ता। संख्या ३१५८ की समाप्तिसूचक पंक्ति में रचयिता का नाम 'प्राकृतलंकेश्वर रावण' दिया गया है। 'लास्सन' ने अपने ग्रंथ 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस ' में 'कोलबुक' के मतानुसार ग्रन्थ का नाम 'प्राकृत-लंकेश्वर' दिया है। उसका यह भी मत है कि यह ग्रन्थ 'प्राकृतकामधेनु' से भिन्न है और 'एगलिंग' के साथ उसका भी यह मत है कि इसका कर्ता विघ्न विनोद है। रामतर्कवागीश ने (लास्सन : इन्स्टीट्यूत्सीओनेस पेज २) ग्रन्थ कर्ता का नाम 'लंकेश्वर' बताया है। यही नाम 'शिवस्तुति' और 'कामिनिस्तो-पनिषद्' के रचयिता का भी है (औफरेष्ट : कातालोगुस कातालोगोरुम १ ५७२)। यह स्पष्ट ही रावण का पर्याय है। राजेन्द्रलाल मित्र की इस सम्मति पर विश्वास हो जाता है कि राक्षस दशमुख रावण से यह 'रावण' भिन्न है। — २ नोटिसेज १ २३८ और उसके बाद के पेज में संख्या ३१५७ और ३१५८ में स्पष्टतः इस ग्रन्थ के कई भागों के उद्धरण दिये गये हैं। संभावना यही है। पहले अंश में ऐसा मालूम होता है कि पिंगल के अपभ्रंश पर लिखा गया है। — ३ दुर्गा-प्रसाद और परब : काव्यमाला १ ७में नोट १। — ४ काव्यमाला १ ९१ नोट १; एपिग्राफिका इण्डिका ४ २०१। — ५ औफरेष्ट के कातालोगुस कातालोगो-रुम १ ८१ के अनुसार ऐसा मत बन सकता है कि यह ग्रन्थ संपूर्ण प्राप्त है पर केवल आठ ही पन्ने छपे हैं। — ६ एपिग्राफिका इण्डिका २ २९। — ७ प्रोसीडिंग्स ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बैंगॉल १८७५ ७७। —८ इस सम्बन्ध में औफरेष्ट के कातालोगुस कातालोगोरुम १ ६६९ की तुलना कीजिए। — ९ औफरेष्ट : कातालोगुस कातालोगोरुम १ ३३७; ३३ ; ५६३ 'राजेन्द्रलाल' मित्र के 'नोटिसेज ४ १७२की संख्या १६ ८'से पता चलता है कि 'प्राकृतचंद्रिका' इससे पुराना और विस्तृत ग्रन्थ है। — १ औफरेष्ट : कातालोगुस कातालोगो रुम १ २९, २ ५ में समयसम्बन्धी भूल है। हुल्ट्श की 'रिपोर्टस् ऑन संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स् इन सदर्न इण्डिया १ ६७ की संख्या २६५ में बताया गया है कि इस ग्रन्थ का रचयिता 'चिन्नबोम्मभूपाल' है। यही बात समाप्तिसूचक पद में भी है। इस संस्करण के पेज २१ और २७ से भी तुलना करें। — ११ औफरेष्ट : कातालोगुस कातालोगोरुम १ ३३ । —१२ औफरेष्ट : कातालोगुस कोटालोगोरुम १ ३३१।

§ ४२—भारत के प्राकृत व्याकरणकारों के विषय में 'ब्लौख' ने विशेष पक्षियासूचक सम्मति नहीं दी है। उनकी यह सम्मति चार वाक्यों में आ गयी है — (१) प्राकृत व्याकरणकारों का हमारे लिए केवल इसलिए महत्त्व है कि इनके प्राचीन समय की एक भी हस्तलिखित प्रति हमारे पास नहीं है और न जिनके

की आशा है। (२) उनकी लिखी बातों की शुद्धि के विषय मे उन्हीं की हस्तलिखित प्रतियों से छानवीन की जा सकती है। (३) हमारे पास जो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं उनमें कहीं कहीं जो मतभेद दिखाई देता है उसे तबतक असत्य मानना पड़ेगा जबतक कोई अच्छी हस्तलिखित प्रति प्राप्त न हो और उसके द्वारा इसके मतभेद की पुष्टि न मिले। (४) हमे यह न मानना चाहिये कि हमारी हस्तलिखित प्रतियों की ये बातें, जिनके विषय मे उन्होंने मौन धारण कर रखा हो, वे न जानते थे और इससे भी बडी बात यह है कि ये बातें या रूप उनके समय में विद्यमान न थे। प्राकृत व्याकरणकारों के विषय मे यह दलील गलत है कि उन्होंने जो बात न लिखी हो उसे वे न जानते हों।' इन चार बातों में से चौथी बात अशतः ठीक है। अन्य तीन बातें मूलतः गलत हैं। हमे हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार व्याकरणकारों को शुद्ध करना नहीं है, बल्कि व्याकरणकारों के अनुसार हस्तलिपियाँ सुधारनी हैं[२]। इस विषय पर में यह सकेत करके सतोष कर लूँगा कि पाठक २२ से २५ § तक शौरसेनी, मागधी, शाकारी और ढक्की के विषय में पढकर उनपर इस दृष्टि से विचार करें। इन बोलियों का चित्र व्याकरणकारों के नियमों को पढकर ही हम वहुत-कुछ तैयार कर सकते है, हस्तलिखित प्रतियों में बहुत-सी बातें मिलती ही नहीं। उदाहरणार्थ 'ब्लौख'[३] के मतानुसार 'मृच्छकटिक' की 'पृथ्वीधर' की टीका में पृथ्वीधर के मत से 'चारुचन्द्र' का पुत्र 'रोहसेन' मागधी प्राकृत में बातचीत करता है, किन्तु 'स्टैन्त्सल्र' के मतानुसार वह शौरसेनी बोलता है। इन दो भिन्न-भिन्न मतों से यह पता चलता है कि इन विद्वान टीकाकारों पर कितना भरोसा किया जा सकता है। जैसा § २३ के नोट, सख्या २ में दिखाया गया है कि हस्तलिखित प्रतियों में ऐसे लक्षण विद्यमान हैं जिनसे ज्ञात होता है कि यह दोष हस्तलिखित प्रतियों के सिर पर मढा जाना चाहिए न कि विद्वानों के। मेरे द्वारा सम्पादित शकुन्तला का सस्करण प्रकाशित होने के पहले विद्वानों को यह मानना पडा कि 'सर्वदमन' (पेज १५४ से १६२ तक) शौरसेनी प्राकृत में बोलता होगा। मेरे सस्करण में जो आलोचना की गई है उससे ज्ञात होता है कि मागधी के चिह्न कितने कम मिलते हैं। ऐसी स्थिति में आज भी किसी विद्वान को यह कहने में कोई हिचक नहीं हो सकती कि भले ही अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में इसके बहुत कम चिह्न मिलते हैं जिनसे कि मागधी नियम स्पष्ट रूप से समझ में आयें तो भी मागधी का शुद्ध रूप हमें खडा करना होगा। इसलिए 'कापेलर'[४] की बात बिल्कुल ठीक है कि 'सर्वदमन' और 'रोहसेन' एक ही भाषा बोलते होंगे। इस बात में सन्देह नहीं कि व्याकरणकारों ने इस विषय में जो नियम बनाये हैं उनकी उचित रीति से छानवीन और पूर्ति की जानी चाहिए। मुझे कोई कारण नहीं दीखता कि हेमचन्द्र[५] के बारे में जो सम्मति मैं दे चुका हूँ उसे बदलूँ। हमें यह न भूलना चाहिए कि प्राचीन काल के व्याकरणकारों के सामने जो-जो सामग्री प्रस्तुत थी हमें अभी तक उस साहित्य का केवल एक छोटा सा भाग प्राप्त हुआ है*। हेमचन्द्र के व्याकरण

* अपभ्रंश, जैन महाराष्ट्री आदि पर इधर बहुत सामग्री प्रकाशित हुई है। उसका लाभ उठाया जाना चाहिए। —अनु०

के ग्रन्थ के समान ग्रन्थ बहुत प्राचीन साहित्य के आधार पर लिखे गये हैं। जैन शौरसेनी के (§ २१) थोड़े-से नमूने इस बात पर बहुत प्रकाश डालते हैं कि शौरसेनी के नियमों पर लिखते हुए हेमचन्द्र ने ऐसे रूप दिये हैं जो प्राचीन व्याकरणकारों के ग्रन्थों और नाटकों में नहीं मिलते। 'लास्सन' ने १८१७ ई. में व्याकरणकारों के ग्रन्थों से बहुत से रूपों की पुष्टि की थी और आज कई ग्रन्थों में उनके उदाहरण मिल रहे हैं। इसी प्रकार हम भी नये नये ग्रन्थ प्राप्त होने पर यही अनुभव प्राप्त करेंगे। व्याकरणकारों की अवहेलना करना उसी प्रकार की भयंकर भूल होगी जिस प्रकार की भूल विद्वानों ने वेद की टीका करते समय इस विषय की भारतीय परम्परा की अवहेलना करके की है। इनका निरादर न कर हमें इनके आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित करने चाहिए।

१ वररुचि उण्ड हेमचन्द्रा पेज ४८। — २ उपर्युक्त ग्रन्थ पेज ७। — ३ येनाएर लिटराटूरत्साइटुंग १८७७ ११४। — ४ याकोबी गे. गे. आ. १८८८ ७१। — ५ हेमचन्द्र १ भूमिका पेज ४।

§ ४१—प्राकृत व्याकरण पर सबसे पहले 'होएफर' ने अपनी पुस्तक 'डे प्राकृत डिआलेक्टो लिब्रि दुओ' में जो बर्लिन से सन् १८३६ ई. में प्रकाशित हुई थी अपने विचार प्रकट किये। प्रायः उसी समय 'लास्सन' ने अपनी पुस्तक 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए' प्रकाशित की। इसमें उसने प्राकृत की प्रचुर सामग्री एकत्र की। यह पुस्तक बौन से सन् १८३९ ई. में प्रकाशित हुई। 'लास्सन' की उक्त पुस्तक निकलने के समय तक भारतीय व्याकरणकारों की एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। प्राकृत में जो साहित्य है उसमें से नाटकों का कुछ हिस्सा छप सका था। 'मृच्छकटिक' 'शकुन्तला', 'विक्रमोर्वशी' 'रत्नावली', 'प्रबोधचन्द्रोदय', 'मालतीमाधव', 'उत्तररामचरित' और 'मुद्राराक्षस' छप चुके थे किन्तु इनके संस्करण अति दुर्दशाग्रस्त तथा बिना आलोचना के छपे थे। यही दशा 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' की थी जिनमें अनेक भूल भ्रमों की त्यों छोड़ दी गयी थीं। ऐसी अवस्था में लास्सन ने मुख्यतया केवल शौरसेनी पर लिखा। महाराष्ट्री पर उसने जो कुछ लिखा उसमें व्याकरणकारों के मतों की कुछ चर्चा कर दी तथा 'मृच्छकटिक' 'शकुन्तला' और 'प्रबोधचन्द्रोदय' से उद्धरण लेकर मागधी प्राकृत पर भी विचार किया। ऐसी स्थिति में, जब कोई प्राकृत-व्याकरण प्रकाशित नहीं हुआ था तथा संस्कृत नाटकों के भी अच्छे संस्करण नहीं निकल सके थे अपर्याप्त सामग्री की सहायता से प्राकृत पर एक बड़ा ग्रन्थ लिखना 'लास्सन' का ही काम था। उसकी इस कृति को देखकर इस समय भी आश्चर्य होता है। अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि और उत्तम ढंग से उसने बिगड़े हुए असंख्य स्थलों पर विकृत तथा अशुद्ध पाठों को सुधारा तथा उसका ठीक ठीक संशोधन किया। उसकी बुनियाद पर बाद में संस्कृत और प्राकृत पाठों के संशोधन का भवन निर्माण किया गया। फिर भी उसके आधार पर काम करनेवाला अभी तक कोई पैदा नहीं हुआ। 'वेबर' ने महाराष्ट्री और अर्धमागधी पर काम किया। 'एडवर्ड म्यूलर' ने अर्धमागधी पर शोध की। 'याकोबी' ने जैन महाराष्ट्री बोली पर बहुत कुछ लिखा।

इन विद्वानों का उल्लेख यथास्थान किया गया है। 'कौवेल' ने 'ए शौर्ट इण्ट्रोडक्शन टू द औडनरी प्राकृत औफ द सस्कृत ड्रामाज् विथ ए लिस्ट औफ कौमन् इरेगुलर प्राकृत वर्ड्स्' पुस्तक लिखी, जो लन्दन से सन् १८७५ ईसवी में प्रकाशित हुई। यह ग्रन्थ वररुचि के आधार पर लिखा गया है। इसमे प्राकृत पर कुछ मोटी-मोटी वातें हैं। इसके प्रकाशन से कोई विशेष उद्देश्य पूरा न हो सका[२]। रिशी केश शास्त्री ने (जिनका शुद्ध नाम 'हृषीकेश' होना चाहिए) सन् १८८३ ई० में कलकत्ता से 'ए प्राकृत ग्रैमर विथ इङ्गलिश ट्रासलेशन' पुस्तक प्रकाशित की थी। इसमें भारतीय प्राकृत व्याकरणकारों के विचारों को यूरोपियन ढग से सजाने का उसने प्रयास किया है। उसने उन हस्तलिपियों का उपयोग किया जिनका पाठ वहुत अशुद्ध था। आलोचनात्मक दृष्टि से पाठों को उसने देखा तक नहीं इसलिए उसका व्याकरण निकम्मा है। वहुधा प्राकृत के मोटे-मोटे नियम देने में ही वह अपने व्याकरण की सफलता समझता है। उसने केवल एक नयी बात बतायी है, एक अज्ञात नामा पुस्तक 'प्राकृतकल्पलतिका' की सूचना उसने पहले पहल अपनी पुस्तक में दी है। 'हौग' ने सन् १८६९ई० में बर्लिन से 'फैरग्लाइशुङ्ग डेस प्राकृता मित डेन रोमानिशन् श्प्राखन' पुस्तक प्रकाशित करायी। इसमें उसने प्राकृत और स्पैनिश, पोर्तुगीज, फ्रेञ्च, इटालियन आदि रोमन भाषाओ के रूपों में, जो समान ध्वनि-परिवर्तन के नियम लागू हुए हैं, तुलना की है। प्राकृत व्युत्पत्ति-शास्त्र के इतिहास पर होएर्नले[३] ने भी लिखा है। इस विषय पर सन् १८७०-८१ ई० तक जो-जो पुस्तकें निकली हैं या जो कुछ लिखा गया है, उनपर वेवर[४] ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

१ वेनार्री द्वारा सम्पादित 'यारव्यूशर प्यूर विस्सनशाफ्लिशे क्रिटीक १८३६', ८६३ और उसके वाद के पेज। — २ येनाएर, लिटराटूर्त्साइटुग १८७५ के ७९४ और उसके वाद के पेजों में पिशल के लेख की तुलना कीजिए। — ३ 'कलकत्ता रिव्यू' सन् १८८० के अक्तूवर अक में 'अ स्केच ऑफ द हिस्ट्री ऑफ प्राकृत फाइलोलौजी' शीर्षक लेख। 'सेंटिनरी रिव्यू ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ वैंगौल (कलकत्ता १८८५)' खण्ड २ पेज १५७ और उसके वाद के पेज। — ४ हाल २ (लाइपत्सिख़ १८८१) भूमिका के पेज ७ और उसके वाद, नोट सहित।

§ ४४—इस व्याकरण में पहली वार मैंने यह प्रयत्न किया है कि सभी प्राकृत वोलियाँ एक साथ रख कर उन पर विचार किया जाय तथा जो कुछ सामग्री आज तक प्राप्त हुई है उसका पूरा पूरा उपयोग किया जाय। 'लास्सन' के वाद इस समय तक अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और महाराष्ट्री का प्रायः नव्वे प्रतिशत नया ज्ञान प्राप्त हुआ है। ये प्राकृत वोलियॉ वड़े महत्त्व की हैं, क्योंकि इनमें प्रचुर साहित्य रहा है। मैने इस पुस्तक में ढक्की, दाक्षिणात्या, आवन्ती और जैन शौरसेनी प्राकृत वोलियों पर विल्कुल नयी सामग्री दी है। ये वे वोलियॉ हैं जिन-पर विचार प्रकट करने के लिए अभी तक वहुत कम पाठ मिल पाये हैं। शौरसेनी और मागधी पर मैंने फिर से विचार किया तथा उसका सशोधन किया है, जैसा

के ग्रन्थ के समान अन्य बहुत प्राचीन साहित्य के आधार पर लिखे गये हैं। जैन शौरसेनी के (§ २१) थोड़े से नमूने इस बात पर बहुत प्रकाश डालते हैं कि शौरसेनी के नियमों पर लिखते हुए हेमचन्द्र ने ऐसे रूप दिये हैं जो प्राचीन व्याकरणकारों के ग्रन्थों और नाटकों में नहीं मिलते। 'लास्सन' ने १८३७ ई० में व्याकरणकारों के ग्रन्थों से बहुत से रूपों की पुष्टि की थी और आज कई ग्रन्थों में उनके उदाहरण मिल रहे हैं। इसी प्रकार हम भी नये नये ग्रन्थ प्राप्त होने पर यही अनुभव प्राप्त करेंगे। व्याकरणकारों की अवहेलना करना उसी प्रकार की भयंकर भूल होगी जिस प्रकार की भूल विद्वानों ने वेद की टीका करते समय इस विषय की भारतीय परम्परा की अवहेलना करके की है। इनका निरादर न कर हमें इनके आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित करने चाहिए।

१ वररुचि उण्ड हेमचन्द्रा पेज ४८। — २ उपर्युक्त ग्रन्थ पेज १। — ३ येनाएर लिटराटूरत्साइटुंग १८७७ १२४। — ४ याकोबी गे गे आ १८८८, ७१। — ५. हेमचन्द्र १ भूमिका पेज ४।

§ ४१–प्राकृत व्याकरण पर सबसे पहले 'होएफर' ने अपनी पुस्तक 'डे प्राकृत डिआलेक्टो लिब्रि दुओ' में जो बर्लिन से सन् १८३६ ई० में प्रकाशित हुई थी अपने विचार प्रकट किये। प्रायः उसी समय 'लास्सन' ने अपनी पुस्तक 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए' प्रकाशित की। इसमें उसने प्राकृत की प्रचुर सामग्री एकत्र की। यह पुस्तक बोन से सन् १८३९ ई० में प्रकाशित हुई। लास्सन की उक्त पुस्तक निकलने के समय तक भारतीय व्याकरणकारों की एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी। प्राकृत में जो साहित्य है उसमें से नाटकों का कुछ हिस्सा छप सका था। 'मृच्छकटिक', 'शकुन्तला', 'विक्रमोर्वशी' रत्नावली, 'प्रबोधचन्द्रोदय', 'मालतीमाधव', 'उत्तररामचरित' और 'मुद्राराक्षस' छप चुके थे किन्तु इनके संस्करण अति दुर्दशाग्रस्त तथा बिना आलोचना के छपे थे। यही दशा 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' की थी जिनमें अनेक भूलें ज्यों की त्यों छोड़ दी गयी थीं। ऐसी अवस्था में 'लास्सन' ने मुख्यतया केवल शौरसेनी पर लिखा। महाराष्ट्री पर उसने जो कुछ लिखा उसमें व्याकरणकारों के मतों की कुछ चर्चा कर दी तथा 'मृच्छकटिक' 'शकुन्तला' और 'प्रबोधचन्द्रोदय' से उद्धरण लेकर मागधी प्राकृत पर भी विचार किया। ऐसी स्थिति में, जब कोई प्राकृत-व्याकरण प्रकाशित नहीं हुआ था तथा संस्कृत नाटकों के भी अच्छे संस्करण नहीं निकल रहे थे, अपर्याप्त सामग्री की सहायता से प्राकृत पर एक बड़ा ग्रन्थ लिखना 'लास्सन' का ही काम था। उसकी इस कृति को देखकर इस समय भी आश्चर्य होता है। अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि और उत्तम ढंग से उसने बिगड़े हुए अशुद्ध रूपों पर विजय तथा अशुद्ध पाठों को सुधारा तथा उनका ठीक ठीक संशोधन किया। उसकी बुनियाद पर बाद में संस्कृत और प्राकृत पाठों के संशोधन का भवन निर्माण किया गया। फिर भी उसके आधार पर काम करनेवाला अभी तक कोई पैदा नहीं हुआ। वेबर ने महाराष्ट्री और अर्धमागधी पर काम किया। 'एडवर्ड म्यूलर' ने अर्धमागधी पर शोध की। याकोबी' ने जैन महाराष्ट्री भाषी पर बहुत कुछ लिखा।

इन विद्वानों का उल्लेख यथास्थान किया गया है। 'कौवेल' ने 'ए शौर्ट इण्ट्रोडक्शन टू द औडनरी प्राकृत औफ द संस्कृत ड्रामाज् विथ ए लिस्ट औफ कौमन् इरेगुलर प्राकृत वर्डस्' पुस्तक लिखी, जो लन्दन से सन् १८७५ ईसवी में प्रकाशित हुई। यह ग्रन्थ वररुचि के आधार पर लिखा गया है। इसमें प्राकृत पर कुछ मोटी-मोटी बातें हैं। इसके प्रकाशन से कोई विशेष उद्देश्य पूरा न हो सका[२]। रिषीकेश शास्त्री ने (जिनका शुद्ध नाम 'हृषीकेश' होना चाहिए) सन् १८८३ ई० में कलकत्ता से 'ए प्राकृत ग्रैमर विथ इङ्गलिश ट्रांसलेशन' पुस्तक प्रकाशित की थी। इसमें भारतीय प्राकृत व्याकरणकारों के विचारों को यूरोपियन ढग से सजाने का उसने प्रयास किया है। उसने उन हस्तलिपियों का उपयोग किया जिनका पाठ बहुत अशुद्ध था। आलोचनात्मक दृष्टि से पाठों को उसने देखा तक नहीं इसलिए उसका व्याकरण निकम्मा है। बहुधा प्राकृत के मोटे-मोटे नियम देने में ही वह अपने व्याकरण की सफलता समझता है। उसने केवल एक नयी बात बतायी है, एक अज्ञात नामा पुस्तक 'प्राकृतकल्पलतिका' की सूचना उसने पहले पहल अपनी पुस्तक में दी है। 'हौग' ने सन् १८६९ई० में बर्लिन से 'फैरग्लाइशुङ्ग डेस प्राकृता मित डेन रोमानिशन् श्प्राखन' पुस्तक प्रकाशित करायी। इसमें उसने प्राकृत और स्पैनिश, पोर्तुगीज, फ्रेञ्च, इटालियन आदि रोमन भाषाओं के रूपों मे, जो समान ध्वनि-परिवर्तन के नियम लागू हुए हैं, तुलना की है। प्राकृत व्युत्पत्ति-शास्त्र के इतिहास पर होएर्नले[३] ने भी लिखा है। इस विषय पर सन् १८७०-८१ ई० तक जो-जो पुस्तकें निकली हैं या जो कुछ लिखा गया है, उनपर वेबर[४] ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

१ वेनारी द्वारा सम्पादित 'यारब्यूशर फ्यूर विस्सनशाफ्लिशे क्रिटीक १८३६', ८६३ और उसके बाद के पेज। — २ येनाएर, लिटराटूरन्साइटुंग १८७५ के ७९४ और उसके बाद के पेजों में पिशल के लेख की तुलना कीजिए। — ३ 'कलकत्ता रिव्यू' सन् १८८० के अक्तूबर अंक में 'अ स्केच ऑफ द हिस्ट्री ऑफ प्राकृत फाइलोलौजी' शीर्षक लेख। 'सेंटिनरी रिव्यू ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बैंगौल (कलकत्ता १८८५)' खण्ड २ पेज १५७ और उसके बाद के पेज। — ४ हाल २ (लाइपत्सिख़ १८८१) भूमिका के पेज ७ और उसके बाद, नोट सहित।

§ ४४—इस व्याकरण में पहली बार मैंने यह प्रयत्न किया है कि सभी प्राकृत बोलियाँ एक साथ रख कर उन पर विचार किया जाय तथा जो कुछ सामग्री आज तक प्राप्त हुई है उसका पूरा पूरा उपयोग किया जाय। 'लास्सन' के बाद इस समय तक अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और महाराष्ट्री का प्राय· नब्बे प्रतिशत नया ज्ञान प्राप्त हुआ है। ये प्राकृत बोलियाँ बड़े महत्त्व की हैं, क्योंकि इनमें प्रचुर साहित्य रहा है। मैंने इस पुस्तक मे ढक्की, दाक्षिणात्या, आवन्ती और जैन शौरसेनी प्राकृत बोलियों पर बिल्कुल नयी सामग्री दी है। ये वे बोलियाँ हैं जिनपर विचार प्रकट करने के लिए अभी तक बहुत कम पाठ मिल पाये हैं। शौरसेनी और मागधी पर मैंने फिर से विचार किया तथा उसका संशोधन किया है, जैसा

में पहले लिख चुका हूँ (§ १९, २२ और २१)। अधिकांश ग्रन्थों के पाठ, जो अर्धमागधी, शौरसेनी और मागधी में मिलते हैं, छपे संस्करणों में आलोचनात्मक दृष्टि से सम्पादित नहीं किये गये हैं, इसलिए इनमें से ९९ प्रतिशत ग्रन्थ व्याकरण की दृष्टि से निरर्थक हैं। इस कारण मेरे लिए एक बहुत बड़ा काम यह आ गया कि कम से कम शौरसेनी और मागधी पर कुछ ऐसी सामग्री इकट्ठी की जाय जो भरोसे के योग्य हो, और मैंने इसलिए अनेक नाटकों के तीन या चार संस्करणों की तुलना करके उनका उपयोग किया है। इस काम में मुझे बहुत समय लगा और खेद इस बात का है कि इतना करने पर भी मुझे सफलता नहीं मिली। अर्धमागधी के लिए ऐसा करना सम्भव न हो सका। इस भाषा के ग्रन्थों का आक्षेप नात्मक दृष्टि से सम्पादन करने पर इनमें बहुत संशोधन किया जा सकता है। यद्यपि मैं पहले कह चुका हूँ कि प्राकृत भाषा के मूल में केवल एक संस्कृत भाषा ही नहीं अन्य बोलियाँ भी हैं, तथापि यह स्वयंसिद्ध है कि संस्कृत भाषा ही प्राकृत की आधारशिला है। यद्यपि मेरे पास अन्य भाषाओं की सामग्री बहुत है तथापि मैंने पाली, अशोक के शिलालेखों की भाषा, लेख प्रस्तर लेखों की बोली और भारतीय नयी बोलियों से बहुत सीमित रूप में सहायता ली और तुलना की है। यदि मैं इस सामग्री से अधिक काम उठाता तो इस ग्रंथ का आकार, जो वैसे ही अपनी सीमा से बहुत बढ़ चुका है, और भी अधिक बढ़ जाता। अतः मैंने भाषासम्बन्धी कल्पित विचारों को इस ग्रन्थ में स्थान नहीं दिया। मेरी दृष्टि में यह बात रही कि भाषा-शास्त्र की पक्की बुनियाद डाली जाय और मैंने अधिकांश प्राकृत भाषाओं के भाषा-शास्त्र की नींव डालने में सफलता प्राप्त की। *जितने उदाहरणों की आवश्यकता समझी जा सकी, उनसे भी अधिक उदाहरण* मैंने इस ग्रन्थ में दिये। प्राकृत भाषाओं और उनके साहित्य का ज्ञान अति संकीर्ण दायरे में सीमित है। इसलिए मैंने यह उचित समझा कि प्राकृत भाषाओं के नियमों का उदाहरण से प्रयोग किया जाय और साथ ही इनके शब्द-संग्रह का आरम्भ किया जाय।

अध्याय दो

ध्वनिशिक्षा

§ ४५—प्राकृत की ध्वनिसम्पत्ति का प्राचीन सस्कृत से यह भेद है कि प्राकृत में एँ ओँ[1] ळ (§ २२६) बोलियों में और स्वतन्त्र ञ (§ २३७), ल्ह (§ २४२) और सयुक्त ध्वनियाँ ञ्ञ (§ २८२), ञ्च, ञ्ज (§ २१७), य्ह (§ ३३१), ल्ह (§ ३३०), स्क, स्ख, ह्क (§ ३०२, ३२४), स्त (§ ३१०), श्ट (ष्ट = श्ट), श्ठ, स्ट (§ ३०३) सस्कृत से भिन्न हैं। इसके विपरीत सभी प्राकृत बोलियों में ऋ, ऌ, ऐ, औ[2] और ष नहीं होते। केवल मागधी में ष कभी आता है[2] जैसे तिष्ठति का मागधी रूप चिष्ठदि है। (§ ३०३) विसर्ग (:) और विना स्वर के व्यजन नहीं मिलते[3]। अधिकाश प्राकृतों में ऋ, न, य और श भी नहीं मिलते। अस्वर व्यजन अर्थात् हलन्त्य अक्षर प्राकृत में नहीं होते। ङ, ञ स्ववर्ग के साथ सयुक्त होते हैं, जो व्यजन शब्द के भीतर स्वरों के बीच में होने से लुप्त हो जाते हैं और उनके स्थान पर हल्के य की ध्वनि बोली जाती है। जैन हस्तलिपियों में यह य लिखा मिलता है (§ १८७)।

१ एस० गौल्डश्मित्त एँ और ओ को अस्वीकार करता है। देखिए उसकी पुस्तक 'प्राकृतिका' पेज २८ से। याकोबी और पिशल इस मत के विरुद्ध हैं। — २ प्राकृत में केवल विस्मयबोधक ऐ रह गया है। देखिए § ६०। — ३. चण्ड २, १४ पेज १८ और ४४, हेच १, १, त्रिवि० और सिंह० पिशल की पुस्तक के ग्रामाटिकिस पेज ३४ और बाद के पेज में, पीटर्सन की थर्ड रिपोर्ट ३४४, १ में, कृष्णपण्डित, आव० एर्त्से० के पेज ६ के नोट ४ मे, कल्पचूर्णी पिंगल १, २ पेज ३, ४ और बाद के पेज, जिसमे ५ पक्तियों में म के स्थान में भ पढना चाहिए। लाइन ६ है सआदपुट्ठे दि वे वि। पादवे ण दुअंति के स्थान पर कुछ ऐसा पाठ होना चाहिए पाउए णत्थि अत्थि, इसमें अत्थि, जैसा बहुधा होता है (§ ४९८) बहुवचन सन्ति के लिए आया है। इस छन्द में न तो हवन्ति और न होंति=भवन्ति ही मात्रा के हिसाब से ठीक बैठता है। छठी पक्ति में भी म के स्थान में भ पढा जाना चाहिए और सातवीं पक्ति में अड अः व य। इस उक्ति के अनुसार प्राकृत मे व भी नहीं होता। इस विषय पर § २०१ देखिए।

§ ४६—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री का ध्वनिबल (ऐक्सेंट) तथा अपभ्रश कविता और अधिकाश में जैन शौरसेनी का भी वैदिक से मिलता है। चूँकि ध्वनिबल पर स्वरों का निबल (अशक्त) पडना और उतार चढाव निर्भर करता है और कहीं-कहीं निश्चित स्थिति में व्यजनों को द्विज करना भी इसी पर

अवलम्बित करता है इसलिए यह केवल संगीतमय अर्थात् ताल स्वर की ही दृष्टि से नहीं बल्कि यह प्रधानतया गले से निकालनेवाले निश्वास-प्रश्वास से सम्बन्ध रखता होगा। शौरसेनी मागधी और ढक्की में प्राचीन संस्कृत का ध्वनिबल प्रमाणित किया जा सकता है। यह ध्वनिबल (ऐक्सेंट) लैटिन से बिलकुल मिलता है। पाराग्राफों में इस पर सविस्तर लिखा गया है। पिशल के इस मत का विरोध 'याकोबी' और 'ग्रियर्सन' करते हैं।

अ। ध्वनित और स्वर

१ ध्वनित

§ ४७—अपभ्रंश प्राकृत में ऋ बोली में (§ २८) रह गया है। (हेमचन्द्र ४, ३२९; क्रमदीश्वर ५, १६; नमिसाधु की टीका, जो उसने रुद्रट के 'काव्यालंकार' पर २, १२ और पेज १५९ में की है): तृणु=तृणम् (हेमचन्द्र ४, ३२९; नमिसाधु उपयुक्त स्थान पर): सुकृदु (हेमचन्द्र ४, ३२९) सुकृदम् (क्रमदीश्वर ५, १६) = सुकृतम्; गृण्हइ=गृह्णाति गृण्हिअ=गृह्यमाणानि, गृण्हेप्पिणु=गृहीत्वा (§ ५८८)=गृहीत्वा (हेमचन्द्र ४, ३९६ और ३४१, २)। कृदन्त हों=कृतान्तस्य(हेमचन्द्र ४,३७,४) अधिकांश अपभ्रंश बोलियों में, जैसा सभी प्राकृत भाषाओं का नियम है, ऋ नहीं होता। पुष्पी पैशाचिक मूलतः=घृत, यह शब्द क्रमदीश्वर ५,१ २ में आया है और ऐसा लगता है कि इसका पाठ घृत* होना चाहिए जैसा कि इसी ग्रन्थ के ५,११२ में व्यञ्जनक के लिए स ठ हितपक्ष दिया गया है। यह उदाहरण 'लास्सन' के इन्स्टीट्यूत्सीओनेस' के पेज ४४१ में नहीं पाया जाता। ध्वनित अक्षर के रूप में ऋ इस 'अ' 'इ' और 'उ' के रूप में बोला जाता है। जैसा व्यञ्जन र कार (§ २८७ से २९५) वैसे ही ध्वनित ऋ-कार भी अपने पहले आये हुए व्यंजन से मिल जाता है जिसके कारण केवल स्वर ही स्वर (अर्थात् अ या इ) शेष रह जाता है। इस नियम के अनुसार प्राकृत और अपभ्रंश में व्यञ्जनों के बाद का ऋ, अ, इ, उ, में परिवर्तित हो जाता है।[१] शब्दों के आरम्भ में आनेवाले ऋ के विषय में § ५६ और ५७ देखिए। ऋ के लिए ए कहीं पर आता है इस विषय पर § ५३ देखिए।

१ मार्गोप। आल्साइमर क्पूर डायग्नास्ट आस्तरूम उण्ड डीकासे फिरेराबूर २११। बोहान्सस रिमच लिंग्विस सूर गशिण्ट डस इण्डोगर्मानिशन वोकालिज्मुस १ १ और बाद के पत्र; ब्रिंडीक डेर सार्सस्क्रेट ग्रेमोरी पेज १०५ और बाद के पत्र, बन्द्रक। 'डी इण्डोगर्मानिशन इण्डोगर्मानिशन प्रॉरटरके जाइट इग्रक्युघर' पत्र १२८ और उसके बाद के पत्र। इस विषय का विस्तृत साहित्य पाकरनागल के आल्टइण्डिशे ग्रामाटीक § २८ और उसके आगे मिलता है। पाकरनागल' के मत से इसका मूल र स्वर था।

§ ४८—ऋ के साथ कौन स्वर बोला जाता है यह अनिश्चित होने के कारण

* पूत का प्राकृती में घृत भी होता है। पुष्पीपैशाचिक में गाथापाराणा घ का घ हो जाता है। —अनु

ऋकार भिन्न-भिन्न प्राकृतों में नहीं, बल्कि एक ही बोली में और एक ही शब्द के भीतर ध्वनियाँ बदलता है। भारतीय व्याकरणकार अकार को ऋकार का नियमित प्रतिनिधि समझते हैं और उन्होंने उन शब्दों के गण तैयार कर दिये हैं, जिनमें अकार के स्थानपर इकार या उकार हो जाता है (वररुचि १,२७-२९, हेमचन्द्र १,१२६-१३९, क्रमदीश्वर १,२७,३०,३२, मार्कण्डेय पेज ९ और १०, 'प्राकृत-कल्पलतिका' पेज ३१ और उसके बाद)। प्राकृत के ग्रन्थ साधारणतया अपने मत का प्रतिपादन करते हैं और विशेषकर वे ग्रन्थ, जो महाराष्ट्री में हैं, इन नियमों के अनुसार लिखे जाते हैं तथा इन ग्रन्थों में जो अशुद्धियाँ भी हों तो वे इस नियम के अनुसार सुधारी जानी चाहिए। इस विषय के जो उदाहरण दिये जायेंगे वे जहाँ तक सम्भव हों, व्याकरणकारों द्वारा इस सम्बन्ध में दिये गये नियमों का ध्यान रखकर ही दिये जायेंगे।

§ ४९—ऋकार के स्थानपर अकार हो जाता है। उदाहरणार्थ, महाराष्ट्री **घअ= घृत** (हाल=२२), अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री **घय** (चण्ड २,५, हेमचन्द्र १,१२६, पाइयलच्छी १२३, आयारगसुत्त २,१,४,५ २,६,१,९ और १२:२,१३,४, विवाहपन्नत्ति ९१०, उत्तररामचरित १७०।४३२, कप्पसुत्त, आवश्यक एर्त्सेलुगन १२,१२ : तीर्थकल्प ६,४।७), किन्तु शौरसेनी और मागधी में **घिद** मिलता है (मृच्छकटिक ३,१२ : ११७,८ : १२६,५ [यह शब्द घिअ* के स्थान पर आता है])। पल्लवदानपत्र में **तण = तृण** (६,३३), महाराष्ट्री प्राकृत में भी यही रूप आया है (भामह १,२७, हेमचन्द्र १,१२६, क्रमदीश्वर १,२७, गउड० ७०,हाल, रावण), अर्धमागधी में यही रूप है(आयारगसुत्त १,१,४,६ : १,६,३,२ : सू० १२९।८१०।८१२:विवाहपन्नति १२०।४७९।५००।६४५।६५८।१२४५।१२५० : उत्तररामचरित१०६।२१९।३७१।५८२। ६९५।१०४८ : जीवा० ३५६।४६४।४६५: पण्णव० ३३।४३ आदि), **तणग=तृणक**† (आयारगसुत्त२,२३,१८: दश० ६२३,१), **तणइल्ल** (= **तृण** से भरा हुआ, जीवा० ३५५), यह शब्द जैन महाराष्ट्री में भी आया है (कक्कुक शिलालेख १२, द्वारा० ५०२, ३१ : ५०४, १३), यह शौरसेनी में भी मिलता है (शकुन्तला १०६, १३), अपभ्रंश में भी है (हेमचन्द्र ४, ३२९, ३३४।३३९), अर्धमागधी में **तिण** हो जाता है (विवाहपन्नति १५२६), जैन महाराष्ट्री में, (एर्त्सेलुगन), जैनशौरसेनी में, (कत्तिगे० ३९९,३१३), शौरसेनी में, (विक्रमोर्वशी १५,११), महाराष्ट्री **कअ = कृत** (भामह १, २७, हेमचन्द्र १, १२६, पाइयलच्छी ७७, गउड०, हाल, रावण०), पल्लवदानपत्र में **अधिकते = अधिकृतान** (५, ५) है। **कड** (७, ५१) अर्धमागधी में **कय** (उवा०, ओव०) और **कड** (आयारगसुत्त १, ८, १, ४, सूय० ४६, ७४, ७७, १०४, १०६, १३३, १३६; १५१; २८२, ३६८ ४६५, निरया०, भग०, कप्प०), इसी प्रकार सन्धि के साथ **अकड**‡ शब्द आया

* यह घिअ हिन्दी 'घी' का पूर्वज है। —अनु०

† यह तिनके का पूर्वज है। इसका रूप कुमाऊनी बोली मे आज भी तणिल है। तणग से पाठक हिन्दी तनिके[तनक] की तुलना करें।—अनु०

‡ किसी भाषा की शब्द-सम्पत्ति किन-किन स्रोतों से शब्दसागर में आती है, यह अकड शब्द

अवलम्बित करता है, इसलिए यह केवल संगीतमय अर्थात् ताल-लय की ही दृष्टि से नहीं बल्कि यह प्रधानतया गले से निकलनेवाले निश्वास-प्रश्वास से सम्बन्ध रखता होगा। शौरसेनी मागधी और ढक्की में प्राचीन संस्कृत का ध्वनिबल प्रमाणित किया जा सकता है। यह ध्वनिबल (ऐक्सेंट) लैटिन से बिलकुल मिलता है। पाठमालाओं में इस पर सविस्तर लिखा गया है। पिशल के इस मत का विरोध 'याकोबी' और 'ग्रियर्सन' करते हैं।

अ। ध्वनित और स्वर

१ ध्वनित

§ ४७—अपभ्रंश प्राकृत में ऋ बोली में (§ २८) रह गया है। (हेमचन्द्र ४ ३२९; क्रमदीश्वर ५, १६; नमिसाधु की टीका, जो उसने रुद्रट के 'काव्यालंकार' पर २, १२ और पेज १५९ में की है): तृणु = तृणम् (हेमचन्द्र ४, ३२९; नमिसाधु तणु के स्थान पर): सुकृदु (हेमचन्द्र ४, ३२९), सुकृदम् (क्रमदीश्वर ५, १६) = सुकृतम्; गृण्हइ = गृह्णाति गृण्हन्ति = गृह्णन्ति, घृण्हेप्पिणु = गृहीत्वीनम् (§ ५८८) = गृहीत्वा (हेमचन्द्र ४, ३३६ और ३४१, २)। कृदन्त हो = कृतान्तस्य (हेमचन्द्र ४,३७०,४) अधिकांश अपभ्रंश बोलियों में, जैसा सभी प्राकृत भाषाओं का नियम है, 'ऋ' नहीं होता। चूली पैशाचिक मृत = घृत, यह शब्द क्रमदीश्वर ५,१२ में आया है और ऐसा लगता है कि इसका पाठ घस* होना चाहिए जैसा कि इसी ग्रन्थ के ५ ११२ में वस्तुतः व्यक्त के लिए त ठ द्वित्वपन किया गया है। यह उदाहरण 'लास्सन' के 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस' के पेज ४४१ में नहीं पाया जाता। ध्वनित अक्षर के रूप में ऋ इस 'अ' 'इ' और 'उ' के रूप में बोला जाता है। जैसा व्यञ्जन र कार (§ २८७ से २९५) वैसे ही ध्वनित ऋ-कार भी अपने पहले आये हुए व्यञ्जन से मिल जाता है जिसके कारण केवल स्वर ही स्वर (अर्थात् अ या इ) शेष रह जाता है। इस नियम के अनुसार प्राकृत और अपभ्रंश में व्यञ्जनों के बाद का ऋ, अ, इ उ, में परिणत हो जाता है।[1] शब्दों के आरम्भ में आनेवाले ऋ के विषय में § ५६ और ५७ देखिए। ऋ के लिए ए कहाँ पर आता है इस विषय पर § ५३ देखिए।

१ मार्कीप। भाण्डारकर 'ट्सूर डीफ्रेन्शियाल स्प्राखलीम डेस इंटियन स्टिरागूर' ११ १। योहान्नेस श्मिट 'क्रिटिक ड्सूर गेशिष्टे डेस इण्डोगर्मानिशन बोकालिस्मुस' २ २ और बाद के पेज; क्रिटीक डेर सोनांटन थेओरी पेज १७५ और बाद के पेज, वेस्टक। 'डी हाउप्टप्रोब्लेमडेर इण्डोगर्मानिशन लाउटलेरे साइट इकार्डूसर' पेज १२८ और उसके बाद के पेज। इस विषय का विस्तृत साहित्य वाकरनागल के 'आल्टइण्डिशे ग्रामाटीक' § २८ और उसके आगे मिलता है। वाकरनागल के मत से इसका मूल र स्वर था।

§ ४८— ऋ के साथ कौन स्वर बोला जाता है यह अनिश्चित होने के कारण

---

* पूरब के प्राकृतों में घस भी होता है। चूलीपैशाचिक में साधारणतया घ का ख हो जाता है। —अनु

१०४८ : पण्णव० १२२ : अणुओग०, ५०२ : कप्प० § ११४ और १०८), जैन-महाराष्ट्री में **वसह** आया है (द्वारा० ४९८, २४ : कक्कुक शिलालेख : एर्त्से०) और **वसभ** भी चलता है (एर्त्से०) : जैन शौरसेनी में **वसह** रूप है (पवयण० ३८२,२६ और ४३) : किन्तु शौरसेनी में **वृषभ** के लिए सदा **वुसह** शब्द आता है (मृच्छ० ६, ७, मालवि० ६५, ८, बा० रा० ७३, १८, ९३, १०, २८७, १५, प्रसन्न० ४४, १३), महाराष्ट्री के उदाहरणों में कहीं-कहीं **उसह** मिलता है लेकिन यह अशुद्ध है (हाल ४६० और ८२०, इसके बम्बई-सस्करण में **वु** के स्थान पर **व** ही छपा है) । — अर्धमागधी मे **धृष्ट** के स्थान पर **घट्ठ*** मिलता है (हेमचन्द्र १, १२६ : आयार० २, २, १, ३, २, ५, १, ३, २, १०, ५ : पण्णव० ९६ और ११० : जीवा० ४३९।४४७।४४९।४५३।४८३ और उसके बाद, ओव०) । **मृत्तिका** के स्थान पर अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में **मट्टिया** तथा शौरसेनी में में **मट्टिआ** होता है (आयार० २, १, ६, ६, २, १, ७, ३, २, ३, २, १३ : विवाह० ३३१।४४७।८१०।१२५३।१२५५, ठाणग० ३२१, पणहावा० ४१९ और ४९४ : उत्तर०, ७५८ · नायाध० ६२१ रायपसे०, १७६ : उवास० ओवे० : एर्त्से० . मृच्छ० ९४, १६, ९५, ८ और ९, शकु० ७९, १, १५५, १०; भर्तृहरि निर्वेद १४, ५) । — अर्धमागधी में **वृत्त** के स्थान पर **वट्ट** शब्द आता है (हेमचन्द्र २, २९, आयार० १, ५, ६, ४, २, ४, २, ७ और १२ सूय० ५९०; ठाणग० २०, विवाह० ९४२, उत्तर १०२२, पण्णव० ९ और उसके बाद, उवास०, ओव०, कप्प०) ।—अर्धमागधी में **वृष्णि** शब्द का रूप **वण्हि** हो जाता है (उत्तर ० ६६६; नायाध० १२६२)। **अन्धकवृष्णि** के स्थान पर **अन्धक-वण्हि** हो जाता है (उत्तर ० ६७८, दसवे० ६१३, ३३, विवाह० १३९४; अन्तग० ३) ।

§ ५०—सभी प्राकृत भाषाओं में अत्यधिक स्थानों में **ऋ** का रूप **ई** हो जाता है और आज भी भारतीय भाषाओं में **ऋ** का **रि** होता है। वररुचि १,२८; क्रमदीश्वर १, ३२, मार्कण्डेय पेज ९ और उसके बाद 'प्राकृत-कल्पलतिका' पेज ३१ में **ऋ** से आरम्भ होनेवाले शब्दों के लिए **ऋष्यादि गण** बनाया गया है, हेमचन्द्र ने १,१२८ में **कृपादि गण** दिया है, जो हेमचन्द्र के आधार पर लिखे गये सब व्याकरणों में मिलता है। इस नियम के अनुसार महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी में **कृष** शब्द का रूप **किस**† हो जाता है (हेमचन्द्र १, १२८, हाल, उत्तर० ७५०, उवास, शकु० ५२, ९)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, शौरसेनी और मागधी मे **कृपण** के लिए **किविण** रूप काम आता है (हेमचन्द्र १,१२८, गउड०, हाल०, कप्प०, कालेयक० २६,१ [इस ग्रन्थ में **वि** के स्थान में **व** आया है जो अशुद्ध पाठ है]; मृच्छ० १०,६,

---

* **घट्ठ** शब्द ढीठ का प्रारम्भिक रूप है। **धिट्ठ** रूप भी चलता है। इससे हमारा ढीठ बना है। **मट्टिआ, मट्टिअ, मट्टी, मृ** का **मि** भी कहीं होता होगा, इसलिए **मिट्टी** और **मट्टी** दो रूप हो गये। —अनु०

† पाठक 'किसान' शब्द से तुलना करें। —अनु०

है (आयार १, २, १, ३, ५, ६), दुक्कड (आयार १, ७, १, ३; सूय० २११।२७५।२८४।१५९; उत्तर० ३१) थियड थिर्येकृ* (आयार १, ८ १, १७; सूय० १४४ उत्तर ५१) सुकड† (आयार १ ७, १ ३, २ ४ २, ३; उत्तर ७६), संखय = संस्कृत (सूय १२४, १५ ; उत्तर १९९), पुरेकड = पुरस्कृत (§ ३ ६ और ३४५) आहाकड‡ = याथाकृत (§ ३३५) : जैन महाराष्ट्री कय (एर्त्सेलुगन और कक्कुक शिलालेख), दुक्कय (आव ५१ : एर्त्सेलुगन), जैन शौरसेनी कद (पवय १८४, ३९ किन्तु पाठ में कय है : मृच्छ० २,२३;४१ १८; ५२,१२; शकुन्तला ३९,१३ १ ५,१५ १४ ,११; विक्रमो १६,१२;११,९;२३८)। मागधी कद (मृच्छ ४०,५; १३१,८; १५६,२२) और कड (मृच्छ १७,८; ३२,५ १२७,२३ और २४ आदि आदि); कड (मृच्छ ११,१,४ ४); पैशाची कत (हेम ४,३२२ और ३२३) अपभ्रंश कम (हेमचन्द्र ४ ४२२,१) कमकम्= कृतकः = कृतः (हेमचन्द्र ४,४२९,१), किन्तु शौरसेनी और मागधी में जो पाठ मिलते हैं वे बहुत शुद्ध हैं और उनकी हस्तलिखित प्रतियों में कृत के लिए बहुधा किद शब्द आया है। शौरसेनी के कुछ उदाहरण ये हैं—(मृच्छ २,२१ ३३ ४,९८ १९; शकु १२४,७ १५८ ९; १६१ ५; विक्रमो ३३,११; ३५ ६, ७२,१६; ८४,२१)। मागधी के उदाहरण—(मृच्छ ११२,१९ १२१,६; १६५ २)। इन दोनों बोलियों के लिए सम्भवतः एक ही शुद्ध रूप है और उस स्थितिमें तो यही रहना चाहिए जब किसी सन्धिवाले पद के अन्त में यह आता है। जैसे शौरसेनी सिक्खीकिद (मृच्छ ९ ११ और ११,७ ५), पुराकिद (शकु १६२ १३), पच्चक्खीकिद (विक्रमो ७२,१२)। मागधी दुस्किद (मृच्छ १९५ १ और ४) महाराष्ट्री में व्यञ्जन और भी कम हो जाते हैं। द्विधाकृत का दुहाव्वय होता है (हेमचन्द्र १ १२६; रावण ८, १ ६) दोहाइय (रावण); जैसे महाराष्ट्री में किम शब्द प्रयुक्त है। अपभ्रंश में अकार और इकार के साथ साथ उकार भी होता है। अकृत के स्थान पर अकिय हो जाता है (हेमचन्द्र ४ ३९६, ४) किदुमउ=कृतकम्=कृतम् (हेमचन्द्र ४ ४०१), किदु (हेम ४, ४४६ इस विषय पर § २१९ की भी तुलना कीजिए)। वसह = वृषभ (भाम १, २७ ; चंड २, ५ पेज ४३ ; ३ ११ ; हेमचन्द्र १ १२६ ; पाइय १५२); महाराष्ट्री में यह रूप है—(गउड०, रावण); अर्धमागधी में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है (विवाह २२५ ; उत्तर ३३८ ; कप्प § ७१२।६२; नायाध § ४७) अर्धमागधी में वसभ शब्द भी काम में लाया गया है (आयार २, १ १२ ; २ ११ ७ और ११ ; विवाह ,

---

उसका नमूना है। अकड शब्द संस्कृत अकृत के स्थान पर आता था। आज भी हिन्दी अकड उसी स्थान पर प्रयुक्त होता है पर अर्थ का विकार और विस्तार हो गया है। हिन्दी में अकड का अर्थ है दिखावा-तनाव काम न करने का भाव जिसके साथ कुछ गर्व भी मिला रहता है। अकड का दूसरा रूप देखो ऐंठन। क्रिया अकड़ना बन गयी है। —अनु

* हिन्दी बिगाड और बिगडना। —अनु

† सुघड शब्द सुकड से निकला है। सुघड वह काम है जो उत्तम रीति से किया गया हो। —अनु

‡ यह क्रिया का औपम्य है। —अनु

आदि), मागधी (मृच्छ० २९,२१, १२८,२, १६९,६, प्रबन्ध० ६३,१५ [यह रूप महाराष्ट्री में पढा जाना चाहिए])। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में हियय काम मे आता है (भग०, उवास०, नायाध०, कप्प०, ओव, आदि आदि, एर्त्से०, कक्कुक शिलालेख), मागधी मे अधिकाश स्थलो में हडक्क आता है (§ १९४) हडक्क, हडअ भी मिलता है (§ २४४), पैशाची में हितप और हितपक कहा जाता है (§ १९१) ।

१ जब और अधिक आलोचनात्मक सस्करण छपने लगेंगे तब इस शब्द के विशुद्ध रूप अलग-अलग पाठों से स्थिर किये जा सकेंगे ।

§ ५१—विशेषतया ओष्ठ्य अक्षरों के अनन्तर और जब ऋ के बाद उ आता है तब ऋकार का उकार हो जाता है। प्राकृत के सभी व्याकरणकार उन शब्दों को, जिनमें ऋ का रूप उ हो जाता है, ऋत्वादिगण में रखते हैं। इस प्रकार् सस्कृत निभृत का महाराष्ट्री में णिहुअ हो जाता है (हेमचन्द्र १,१३१, देशी० ५,५०, मार्कण्डेय पेज १०, हाल, रावण०), अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में इसका रूप निहुय हो जाता है (पाइय० १५; उत्तर० ६२७, ओव०, एर्त्से०), शौरसेनी में णिहुड मिलता है (शकु० ५३,४ और ६, मुद्रा० ४४,६, कर्ण० १८,१९, ३७,१६)। § २१९ से तुलना कीजिए।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में पृच्छति का पुच्छइ* हो जाता है, और इस धातु के अन्य रूपों में भी प में उ लगाया जाता है (हेमचन्द्र ४,९७, हाल, रावण०, उवास०, भग०, कप्प०, आदि आदि; एर्त्से), शौरसेनी में पुच्छदि हो जाता है (मृच्छ० २७,१७, १०५,८, १४२,९, विक्रमो० १८, ८), मागधी में पुश्चदि रूप मिलता है (हेमचन्द्र ४, २९५), पुश्चामि रूप भी है (प्रबन्ध० ५१, १, ६२, ६), अपभ्रश में पुच्छिमि (विक्रमो० ६५, ३) और पुच्छहु† रूप मिलते हैं (हेम० ४,३६४।४६४।४२२,९)।—पृथ्वी शब्द का महाराष्ट्री में पुहई और पुहवी हो जाता है (§ ११५ और १३९, भामह १,२९: चण्ड ३, ३० पेज ५०, हेमचन्द्र १, १३१, क्रमदीश्वर १, ३०, मार्कण्डेय पेज १०, गउड०, हाल, रावण०), अर्धमागधी और जैन शौरसेनी में पुढवी शब्द मिलता है (ठाणग० १३५, उत्तर० १०३४ और १०३६, सूय० १९।२६।३२५।३३२, आयार० १, १, २, २ और उसके बाद, विवाह० ९२० और १०९९, पण्णव० ७४२, दशवे० ६३०, १७, उवास० आदि आदि, कत्तिगे० ४०१, ३४६), जैन महाराष्ट्री में भी यह शब्द मिलता है (एर्त्से०), शौरसेनी मे भी पाया जाता है (शकु० ५९, १२)। कहीं-कहीं यह शब्द और पुहवी भी आया है (एर्त्से०, कक्कुक शिलालेख, द्वारा० ५०१, २३, विक्रमो० ११, ४, प्रबन्ध० ३९, ६), मागधी में भी यह शब्द मिलता है (मृच्छ० ३८, ७) और अपभ्र श में भी यह रूप काम मे आया है (पिंगल १, ३०, विक्रमो० ५५, १८) ।—स्पृशति के स्थानपर अर्धमागधी में फुसइ

* 'पुच्छइ' का हिन्दी रूप 'पूछे' है। पूछता है यह शौरसेनी 'पुच्छदि' से निकला है।—अनु०

† यह रूप अवधी, भोजपुरी आदि के साहित्य में बहुत मिलता है। ध्वनि-परिवर्तन के नियमों के अनुसार इससे ही बाद में पूछो रूप बना। —अनु०

१११, १८ और १९) । अर्धमागधी में गृध्र का गिद्ध० हो जाता है जिसका अर्थ लोभी है (सूय १ ५; विवाह० ४९ और ११२८ उत्तर ५९१; नायाध० ४११ और ६०६); इस शब्द का अर्थ जैन महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी में गीध पक्षी होता है (वररुचि १२ ६; मार्कण्डेय पेज ९; एर्त्से विक्रमो ७५, ११; ७६, १५; ८ २ ; मालवि० २८, १२; शकु० ११६ १) ।—अर्धमागधी में गृध्रिय = गिद्धिय के स्थान पर गिद्धि शब्द आता है (हेमचन्द्र १, १२८; सूय ३६६।३७१ और ४ १ उत्तर ३३३।३३९।५४७।५५४ आदि आदि) और गृद्धि के स्थान पर गिद्धि शब्द आता है (पण्णव १५) ।—महाराष्ट्री अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री, जैन शौरसेनी शौरसेनी और अपभ्रंश में दृष्टि का रूप दिट्ठि हो जाता है (भामह १, २८; हेमचन्द्र १, १२८; क्रमदीश्वर १, १९; मार्कण्डेय पेज १०; गउड ; हाल; रावण ; भग ; उवास० ; एर्त्से ; कक्कुक शिलालेख पद्य १८८, ५ मृच्छ ५७ ११२० और १७; ५९, २४; ६८, २२ १५२ २५; शकु ५३, ८; ५९, ७ ७९ १ आदि आदि; हेमचन्द्र ४ ११ , १) ।—महाराष्ट्री में वृश्चिक का विंचुअ हो जाता है (भामह १, २८; हाल २३७); कहीं विंचुअ भी मिलता है (चण्ड २, १५ हेमचन्द्र १ १२८; २, ११ और ८९ क्रमदीश्वर २ ९८ [पाठ में विच्चुओ शब्द आया है और राजकीय संस्करण में विण्छुओ+ दिया गया है]) ; विंछिअ भी है (हेम १ २६; २, १६) विंचुअ भी काम में लाया गया है (मार्कण्डेय पेज २), अर्धमागधी में वृश्चिक का रूप विच्छिय‡ हो जाता है (उत्तर १ ९४[1]) ।—शृगाल शब्द महाराष्ट्री में सियाल हो जाता है (भामह १, २८ हेमचन्द्र १ १२८; क्रमदीश्वर १, १२; मार्कण्डेय पेज ९); अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में सियाल (आयार २, १ ५, ६; सूय २९६; पण्णव ४९।३६७।३६९; जीवा ३५६; कक्कुक शिलालेख), सियालग भी कहीं-कहीं आता है (नायाध ५११), सियालत्ताए (ठाणंग २९६), सियाली (पण्णव ३६८); शौरसेनी में सिआल मिलता है (मृच्छ ७२, २२ शकु १५ १) मागधी में शिआल हो जाता है (मृच्छ २२ १ , ११३ २ , १२ १२; १२२ ८; १२७, ५; शकु ११९, ३), शिआली भी मिलता है (मृच्छ ११ ९) ।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी जैन महाराष्ट्री और अपभ्रंश में शृंग का रूप सिंग हो जाता है (हेमचन्द्र १ ११ पाइय २१ ; गउड हाल; विवाह १२१ और १०४९; उवास ; ओव ; कप्प ; एर्त्से ; हेमचन्द्र ४, ३३७) हेमचन्द्र १ ११ के अनुसार शृंग के स्थानपर संग भी होता है ।—महाराष्ट्री शौरसेनी मागधी और अपभ्रंश में हृदय के लिए हिअअ काम में आता है (भामह १ २८; हेमचन्द्र १ १२८; क्रमदीश्वर १,१२, मार्कण्डेय पेज १ ; गउड ; हाल; रावण ; और मृच्छ १७ १५, २७ ४, १९ और २१; १७ १६ आदि

* यह शब्द हिन्दी में आज भी ज्यों-का-त्यों है। —अनु

† बिच्छू का आदि-प्राकृत रूप भी हिन्दी में आता है। —अनु

‡ कई स्थानीय हिन्दी बोलियों में यह रूप रह गया है। इनमें बिच्छिया या बिच्छी रूप चलता है। इनमें एक बोली कुमाउनी है जिसमें इस शब्द का बहुत उपयोग होता है।—अनु

आदि), मागधी (मृच्छ० २९,२१, १२८,२, १६९,६, प्रबन्ध० ६३,१५ [यह रूप महाराष्ट्री मे पढा जाना चाहिए])। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में हियय काम में आता है (भग०, उवास०, नायाध०, कप्प०, ओव, आदि आदि, एर्त्से०, कक्कुक शिलालेख), मागधी मे अधिकाश स्थलों में हडक्क आता है (§ १९४) हडक, हडअ भी मिलता है (§ २४४), पैशाची में हितप और हितपक कहा जाता है (§ १९१) ।

१ जब और अधिक आलोचनात्मक सस्करण छपने लगेंगे तब इस शब्द के विशुद्ध रूप अलग-अलग पाठो से स्थिर किये जा सकेंगे ।

§ ५१—विशेषतया ओष्ठ्य अक्षरों के अनन्तर और जब ऋ के बाद उ आता है तब ऋकार का उकार हो जाता है । प्राकृत के सभी व्याकरणकार उन शब्दों को, जिनमें ऋ का रूप उ हो जाता है, ऋत्वादिगण मे रखते है । इस प्रकार सस्कृत निभृत का महाराष्ट्री मे णिहुअ हो जाता है (हेमचन्द्र १,१३१, देशी० ५,५०, मार्कण्डेय पेज १०, हाल, रावण०), अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में इसका रूप निहुय हो जाता है (पाइय० १५, उत्तर० ६२७, ओव०, एर्त्से०), शौरसेनी में णिहुड मिलता है (शकु० ५३,४ और ६, मुद्रा० ४४,६, कर्ण० १८,१९, ३७,१६)। § २१९ से तुलना कीजिए ।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में पृच्छति का पुच्छइ* हो जाता है, और इस धातु के अन्य रूपों में भी प में उ लगाया जाता है (हेमचन्द्र ४,९७, हाल, रावण०, उवास०, भग०, कप्प०, आदि आदि; एर्त्से), शौरसेनी में पुच्छदि हो जाता है (मृच्छ० २७,१७, १०५,८, १४२,९, विक्रमो० १८, ८), मागधी में पुश्चदि रूप मिलता है (हेमचन्द्र ४, २९५), पुश्चामि रूप भी है (प्रबन्ध० ५१, १, ६२, ६), अपभ्रश में पुच्छिसि (विक्रमो० ६५, ३) और पुच्छहु† रूप मिलते हैं (हेम० ४,३६४।४६४।४२२,०) ।—पृथ्वी शब्द का महाराष्ट्री में पुहई और पुहवी हो जाता है (§ ११५ और १३९, भामह १,२९ : चण्ड ३, ३० पेज ५०, हेमचन्द्र १, १३१, क्रमदीश्वर १, ३०, मार्कण्डेय पेज १०, गउड०, हाल, रावण०), अर्धमागधी और जैन शौरसेनी में पुढवी शब्द मिलता है (ठाणग० १३५, उत्तर० १०३४ और १०३६, सूय० १९।२६।३२५।३३२, आयार० १, १, २, २ और उसके बाद, विवाह० ९२० और १०९९, पण्णव० ७४२, दशवे० ६३०, १७, उवास० आदि आदि, कत्तिगे० ४०१, ३४६), जैन महाराष्ट्री में भी यह शब्द मिलता है (एर्त्से०), शौरसेनी में भी पाया जाता है (शकु० ५९, १२) । कहीं-कही यह शब्द और पुहवी भी आया है (एर्त्से०, कक्कुक शिलालेख, द्वारा० ५०१, २३, विक्रमो० ११, ४, प्रबन्ध० ३९, ६), मागधी में भी यह शब्द मिलता है (मृच्छ० ३८, ७) और अपभ्रश में भी यह रूप काम में आया है (पिंगल १, ३०, विक्रमो० ५५, १८) ।—स्पृशति के स्थानपर अर्धमागधी में फुसइ

* 'पुच्छइ' का हिन्दी रूप 'पूछे' है । पूछता है यह शौरसेनी 'पुच्छदि' से निकला है ।—अनु०

† यह रूप अवधी, भोजपुरी आदि के साहित्य में बहुत मिलता है । ध्वनि-परिवर्तन के नियमों के अनुसार इससे ही बाद में पूछो रूप बना । —अनु०

आया है।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, शौरसेनी और अपभ्रंश में मृणाल शब्द का मुणाल हो जाता है (भामह १ २९ हेमचन्द्र १ १३१; क्रमदीश्वर १, ३०; मार्कण्डेय पेज १ ; गउड ; हाल; रावण शकु ८८, २; जीवा० २९ ; राय ५५ ओव ; मृच्छ ९८ २४; शकु० ६१, २ और १५; कर्पूर ४१, १; वृषभ ५ , १ हेमचन्द्र ४, ४४४ २) ।—महाराष्ट्री में मृदंग का मुइंग होता है (हेमचन्द्र १ ४६ और १३७; मार्कण्डेय पेज १) । अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में इस शब्द के रूप मुर्यिंग और मुइंग होते हैं (पण्हा० ५१२; ठाणंग ४८१ ; विवाह ७९७ [टीका में यह शब्द आया है] और ९२० ; राय २ और २३१ ; जीवा २५१ ; पण्णव ९९ और १ १ ; एत्सें); शौरसेनी में मुदंग लिखा जाता है (मालवि ११, १ ; हेमचन्द्र १, १३७ ; मार्कण्डेय पेज १ , [इस ग्रन्थ में मिदंग शब्द भी आया है]) । मागधी में मिदंग (मृच्छ १२२, ८ इसमें मुदंग शब्द भी मिलता है । गौडबोले ३३७ ७) ।—जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में पृथ्वास्त के स्थान पर पुत्तन्त शब्द आता है (भामह १, २९ हेमचन्द्र १ १३१; एत्सें ; कक्कुक शिलालेख शकु ४१ ६; विक्रमो ५२ १ ५२ ११; ८१; २) ।—अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में वृष्टि शब्द का वुट्ठि हो जाता है (हेमचन्द्र १ १३७ पाइय २२७; विवाह० ३११; कप्प ; एत्सें); महाराष्ट्री में विट्ठि भी होता है (हेमचन्द्र १, १३७ ; क्रमदीश्वर १, ३२ हाल २६१); वृष्ट के स्थान पर वुट्ठ हो जाता है (हेमचन्द्र १ १३७); महाराष्ट्री में उव्वुट्ठ शब्द भी मिलता है (गउड ३७१) अर्धमागधी में सिलावुट्ठ शब्द भी पाया जाता है (दस ११ , २१); शौरसेनी में पवुट्ठ शब्द मिलता है (शकु १३१, १५) ।—महाराष्ट्री जैन महाराष्ट्री और अपभ्रंश में तथा कहीं कहीं अर्धमागधी में भी कृणाति अथवा वैदिक कृणाति के स्थान पर कुणई मिलता है और शौरसेनी में कुणदि पाया जाता है (§ ५ ८) मृसा॰ मोसा और मुसा कुणदि=मृसा कृणाति के लिए § ७८ देखिए ।

§ ५२—ऊपर दिये गये शब्दों के अतिरिक्त अन्य बहुत से शब्दों में एक ही शब्द के स्वर नाना रूपों में बदलते हैं । संस्कृत ऋक् के लिए महाराष्ट्री अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री शौरसेनी और मागधी में रिक्क० होता है और जैन शौरसेनी शौरसेनी तथा अपभ्रंश में रुक्ख शब्द का भी प्रयोग किया जाता है (§ ३४२) ।—घृष्ट के के लिए कहीं घट्ठ (हेमचन्द्र १ ११) और कहीं घिट्ठ होता है (हेमचन्द्र १ ११ पाठ १ २८ पेज ४१) ।—निवृत्त के लिए महाराष्ट्री में णिअत्त लिखा जाता है (हेमचन्द्र १ ११२; गउड ; हाल; रावण) और कहीं-कहीं णिवुत्त पाया जाता है (हेमचन्द्र १ ११२) ।—मृत्यु के लिए अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में मच्चु शब्द आता है (हेमचन्द्र १ ११ ; सूय ४५; पण्हा ८ १ द्वारा ५ १

इस शब्द का प्रचार अभी तक उन व्यक्तियों में है जिनमें प्राकृत का जोर है । कुमाउनी में ऋ का रु हो जाता है और व्यंजनान्त का एक नियम है और उ का परस्पर स्थान-परिवर्तन है इसके अनुसार मुदा = मदद् का भी है तो जाता बदल है ।—अनु

२५, एर्त्से) और शौरसेनी में यह शब्द मिच्चु* हो जाता है (हेमचन्द्र १,१३०, मालवि० ५४,१६, कर्ण० ३२, १७) ।—मसृण शब्द के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी मे मसिण शब्द का प्रयोग है (हेमचन्द्र १, १३०, क्रमदीश्वर १,३२, मार्कण्डेय पेज १०, पाइय० २६१, गउड०, हाल, रावण०, ओव०, एर्त्से, उत्तर० ११,८, १६१,४) और कभी कभी मसण भी मिल जाता है (हेमचन्द्र १,१३०) ।—अर्धमागधी और शौरसेनी मे मृदु के स्थान पर मिउ होता है (विवाह० ९४३ और ९४९, ओव०, कप्प०, वृषभ० १३,१३ [पाठ मे मिदु मिलता है जो नकल करनेवाले की अशुद्धि है]), किन्तु महाराष्ट्री में वह सदा मउअ रूप में मिलता है, अर्धमागधी मे मृदुक के लिए मउय भी मिल्ता है (हेमचन्द्र १,१२७, हाल, रावण०, विवाह० ९४३ और ९५४, उत्तर० १०२२, जीवा० ३५० और ५४९, अणुओग० २६८; नायाध०), अर्धमागधी में कहीं-कही मउग भी मिल्ता है (जीवा० ५०८), महाराष्ट्री में मउइअ भी मिलता है जो सम्भवतः मृदुकित के स्थान पर हो, और मृद्वी के स्थान पर मउई भी मिल्ता है (गउड०) ।—वृन्दारक शब्द के लिए कहीं वन्दारअ आता है (हेमचन्द्र १, १३२) और कहीं वुन्दारअ मिल्ता है (हेमचन्द्र १, १३२, क्रमदीश्वर १, ३०) ।—अर्धमागधी वृक के लिए वग आता है (आयार० २, १, ५, ३, विवाह० २८२ और ४८४ [पाठ में वग्ग लिखा है और टीका में विग लिखा है], पण्णव० ३६७), वृकी के स्थान पर वगी आया है (पण्णव० ३६८) और विग शब्द भी मिलता है (आयार० २, १, ८, १२, नायाध० ३४४), शौरसेनी में विअ हो जाता है (उत्तर० १०५, १२ । § २१९ से भी तुलना कीजिए)।—हेमचन्द्र २, ११० के अनुसार कृष्ण शब्द का अर्थ जब काला होता है तब इसके प्राकृत रूप कसण, कसिण और कण्ह होते है, पर जब व्यक्ति के नाम के लिए यह शब्द आता है तो इसका रूप सदा कण्ह रहता है। भामह ३, ६१ के अनुसार जब इसका अर्थ काला होता है तो सदा कसण रूप काम में आता है, और यदि इसका अभिप्राय कृष्ण भगवान से हो तो केवल कण्ह रूप होता है, 'प्राकृत कल्पलतिका' पेज ३३ के अनुसार इसके दो रूप होते हैं: कण्हट और किण्ह, इसमें कसण और कण्ह का भेद नहीं माना गया है, पर हेमचन्द्र के अनुसार एक ही रूप कण्ह होता है (मार्कण्डेय पेज २९ और क्रमदीश्वर २, ५६ के अनुसार कसण और कण्हट में कोई भेद नहीं माना गया है) । महाराष्ट्री और शौरसेनी में जहाँ काले से तात्पर्य होता है वहाँ कसण आता है (गउड०, हाल, रावण०, प्रचण्ड० ४७, ४, मृच्छ० २, २१; विक्रमो० २१, ८, ५१, १०, ६७, १८, रत्ना० ३११, २१, मालती० १०३, ६, २२४, ३, महा० ९८, ४, वेणी० ६१, १०), अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री में कसिण का प्रयोग मिलता है (पण्णव० १०१, पण्हा० २८५, सूय० २८२, उत्तर० ६४४, ओव०, भग०, द्वारा० ५०३, ६, एर्त्से०, वृषभ०)। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह भी अशुद्ध रूप है, महाराष्ट्री में भी यह रूप पाया जाता है (गउड० ५६३), और शौरसेनी में भी यह रूप मिलता है (मल्लिका० १२२, ६), महाराष्ट्री,

* इसका रूप अवधी में मीच्चु मिलता है ।—अनु०

आता है।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, शौरसेनी और अपभ्रंश में मृणाल शब्द का मुणाल हो जाता है (भामह १ २९; हेमचन्द्र १ १३१; क्रमदीश्वर १, १; मार्कण्डेय पेज १। गउड०; हाल रावण; शकु० ८८, २; जीवा २९; राय० ५५ ओव। मृच्छ ९८ २४; शकु० ६१, २ और १५; कर्पूर ४१ १; वृषभ ५, १ हेमचन्द्र ४, ४४४ २)।—महाराष्ट्री में मृदंग का मुइंग होता है (हेमचन्द्र १ ४६ और १३७, मार्कण्डेय पेज १०)। अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में इस शब्द के रूप मुयिंग और मुइंग होते हैं (पण्हा ५१२, ठाणग ४८१; विवाह ७९७ [टीका में यह शब्द आया है] और १२; राय २ और २११; जीवा २५१; पण्णव ९९ और १ १; एर्त्से०); शौरसेनी में मुदंग लिखा जाता है (मालवि १९, १; हेमचन्द्र १, १३७; मार्कण्डेय पेज १, [इस ग्रन्थ में मिदंग शब्द भी आया है])। मागधी में मिदंग (मृच्छ १२२, ८ इसमें मुदंग शब्द भी मिलता है। गौडबोले ३३७ ७)।—जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में घृतास्त के स्थान पर घुसान्त शब्द आता है (भामह १, २९; हेमचन्द्र १ १३१; एर्त्से०; कक्कुक शिलालेख ५ ९; विक्रमो ५२ १ ५२ १२ ८१, २)।—अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में वृष्टि शब्द का वुट्ठि हो जाता है (हेमचन्द्र १, १३७ पाइय २२७, विवाह १११; कप्प; एर्त्से); महाराष्ट्री में विट्ठि भी होता है (हेमचन्द्र १, १३७। क्रमदीश्वर १ ३२ हाल २११); वृष्ट के स्थान पर वुट्ठ हो जाता है (हेमचन्द्र १ १३७); महाराष्ट्री में उव्वुट्ठ शब्द भी मिलता है (गउड ३७५) अर्धमागधी में सिलावुट्ठ शब्द भी पाया जाता है (दस ११०, २१); शौरसेनी में पवुट्ठ शब्द *मिलता* है (शकु १११ १५)।—*महाराष्ट्री* जैन महाराष्ट्री और अपभ्रंश में तथा कहीं कहीं अर्धमागधी में भी कृणाति अथवा वैदिक कृणोति के स्थान पर कुणई मिलता है और शौरसेनी में कुणदि पाया जाता है (§ ५०८) मूसा॰ मोसा॰ और मुसा-कुणदिम्मूसा कृणोति के लिए § ७८ देखिए।

§ ५२—ऊपर दिये गये शब्दों के अतिरिक्त अन्य बहुत से शब्दों में एक ही शब्द के स्वर नाना रूपों में बदलते हैं। संस्कृत वृद्ध के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी जैन महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी में वुड्ढ* होता है और जैन शौरसेनी शौरसेनी तथा अपभ्रंश में वड्ढ शब्द का भी प्रयोग किया जाता है (§ २४२)।—घृष्ट के के लिए कहीं घट्ठ (हेमचन्द्र १, १३) और कहीं घिट्ठ होता है (हेमचन्द्र १ १३ पाइय १ २४ पेज ४१)।—निपुण के लिए महाराष्ट्री में णिउण लिखा जाता है (हेमचन्द्र १ १३१, गउड; हाल; रावण), और कहीं-कहीं णिउण पाया जाता है (हेमचन्द्र १ १३२)।—मृत्यु के लिए अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में मच्चु शब्द आता है (हेमचन्द्र १ १३ सूय ४५; पण्हा ४ १; द्वारा ५ १

* इस शब्द का प्रचार अभी तक कुछ बोलियों में है जिनमें प्राकृत का जोर है। कुमाउनी में इसका रूप बुड़ो है और अभिव्यक्ति का एक नियम वु और व का परस्पर वर्ण-परिवर्तन है, इसके अनुसार गुजराती मनबूत या मोरे को आबो कहते हैं।—अनु

२५, एर्त्से) और शौरसेनी में यह शब्द **मिच्चु*** हो जाता है (हेमचन्द्र १,१३०, मालवि० ५४,१६, कर्ण० ३२, १७)।—**मसृण** शब्द के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में **मसिण** शब्द का प्रयोग है (हेमचन्द्र १, १३०, क्रमदीश्वर १,३२, मार्कण्डेय पेज १०, पाइय० २६१, गउड०, हाल, रावण०, ओव०, एर्त्से, उत्तर० ११,८, १६१,४) और कभी कभी **मसण** भी मिल जाता है (हेमचन्द्र १,१३०)।—अर्धमागधी और शौरसेनी में **मृदु** के स्थान पर **मिउ** होता है (विवाह० ९४३ और ९४९, ओव०, कप्प०, वृषभ० १३,१३ [पाठ में **मिदु** मिलता है जो नकल करनेवाले की अशुद्धि है]), किन्तु महाराष्ट्री में वह सदा **मउअ** रूप में मिलता है, अर्धमागधी में **मृदुक** के लिए **मउय** भी मिलता है (हेमचन्द्र १,१२७, हाल, रावण०, विवाह० ९४३ और ९५४, उत्तर० १०२२, जीवा० ३५० और ५४९, अणुओग० २६८, नायाध०), अर्धमागधी में कहीं कहीं **मउग** भी मिलता है (जीवा० ५०८), महाराष्ट्री में **मउइअ** भी मिलता है जो सम्भवतः **मृदुकित** के स्थान पर हो, और **मृद्वी** के स्थान पर **मउई** भी मिलता है (गउड०)।—**वृन्दारक** शब्द के लिए कहीं **वन्दारअ** आता है (हेमचन्द्र १, १३२) और कहीं **वुन्दारअ** मिलता है (हेमचन्द्र १, १३२, क्रमदीश्वर १, ३०)।—अर्धमागधी **वृक** के लिए **वग** आता है (आयार० २, १, ५, ३, विवाह० २८२ और ४८४ [पाठ में **वग्ग** लिखा है और टीका में **विग** लिखा है], पण्णव० ३६७), **वृकी** के स्थान पर **वगी** आया है (पण्णव० ३६८) और **विग** शब्द भी मिलता है (आयार० २, १, ८, १२, नायाध० ३४४), शौरसेनी में **विअ** हो जाता है (उत्तर० १०५, १२ । § २१९ से भी तुलना कीजिए)।—हेमचन्द्र २, ११० के अनुसार **कृष्ण** शब्द का अर्थ जब काला होता है तब इसके प्राकृत रूप **कसण**, **कसिण** और **कण्ह** होते हैं, पर जब व्यक्ति के नाम के लिए यह शब्द आता है तो इसका रूप सदा **कण्ह** रहता है। भामह ३, ६१ के अनुसार जब इसका अर्थ काला होता है तो सदा **कसण** रूप काम में आता है, और यदि इसका अभिप्राय कृष्ण भगवान से हो तो केवल **कण्ह** रूप होता है, 'प्राकृत-कल्पलतिका' पेज ३३ के अनुसार इसके दो रूप होते हैं: **कण्हट** और **किण्ह**, इसमें **कसण** और **कण्ह** का भेद नहीं माना गया है, पर हेमचन्द्र के अनुसार एक ही रूप **कण्ह** होता है (मार्कण्डेय पेज २९ और क्रमदीश्वर २, ५६ के अनुसार **कसण** और **कण्हट** में कोई भेद नहीं माना गया है)। महाराष्ट्री और शौरसेनी में जहाँ काले से तात्पर्य होता है वहाँ **कसण** आता है (गउड०; हाल, रावण०, प्रचण्ड० ४७, ४, मृच्छ० २, २१, विक्रमो० २१, ८, ५१, १०, ६७, १८, रत्ना० ३११, २१, मालती० १०३, ६, २२४, ३, महा० ९८, ४, वेणी० ६१, १०), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **कसिण** का प्रयोग मिलता है (पण्णव० १०१, पण्हा० २८५, सूय० २८२, उत्तर० ६४४, ओव०, भग०, द्वारा० ५०३, ६, एर्त्से०, वृषभ०)। ऐसा मालूम पडता है कि यह भी अशुद्ध रूप है, महाराष्ट्री में भी यह रूप पाया जाता है (गउड० ५६३), और शौरसेनी में भी यह रूप मिलता है (मल्लिका० १२२, ६), महाराष्ट्री,

* इसका रूप अवधी में मीचु मिलता है।—अनु०

अर्धमागधी और शौरसेनी में कण्ह भी मिलता है (गउड०; आयार० २,४,२ १८; पण्णव० ४९९ और उसके बाद; जीवा० १२०; चण्डक० ८६,८।९।१० [इस ग्रन्थ में कण्हाहि शब्द भी आया है; पाठ में कह्ण शब्द है और कण्ह भी है]) अर्धमागधी में कहीं-कहीं किण्ह भी मिलता है (आयार० २,५ १,५ विवाह० १ ११, ठाण० ५०।५११। ४।१२ ।१२६।२२८; पण्हा० २८५ [यह शब्द कसिण के साथ आया है]; पण्णव० ४९६ और उसके बाद [इस ग्रन्थ में यह शब्द कण्ह है कभी किण्ह है]; जीवा० २५५।२७२।२७४।४५१।४५७); महाराष्ट्री, अर्धमागधी जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में व्यक्तिविशेष के नाम के लिए कण्ह शब्द का प्रयोग होता है (हाल; आयार० पेज १२६, १; पण्णव० ९१; निरया० § १; [इस ग्रन्थ में व्यक्ति विशेष के नामों के लिए सुकण्ह महाकण्ह, वीरकण्ह रामकण्ह, सेणकण्ह, महासेणकण्ह शब्द आये हैं]; ओव० कप्प०; द्वारा० ४९७,९ और ११; ४९८, १४; ४९९, १७ आदि आदि; चैतन्य० ७१,१४; ७७ १; ७८ १ , ७९,१ और १४; ९२,११ [इसमें अधिकांश स्थलों में कण्ह छापा गया है, कहीं कण्हअ रूप भी मिलता है]; वृषभ० ९ ४; १८, १५; १२, १८ आदि आदि [इस ग्रन्थ में भी अधिकांश स्थलों में कण्ह कण्हअ और कह्ण छपा है]), किसण रूप (हाल १४१ १; कर्पूर० ५ , १२ [बम्बई संस्करण में किसण छपा है किन्तु कोनो द्वारा सम्पादित संस्करण के पेज ४८ में केवल कसण छपा गया है]) और किण्ह (निरया० ७९) अशुद्ध रूप है। कृष्णायित के स्थान पर कसणिय और कृष्णपक्ष के स्थान पर कसण पक्ख (पाइय० १९८ और २१८), कृष्णसित के स्थान पर कसणसिय (देशी० ९ २१) होता है।—वृष्टि जब बढ़ने के अर्थ में आती है तब उसका रूप प्राकृत में वुट्ठि हो जाता है (हेमचन्द्र १ १३१; २ ४ ; मार्कण्डेय पेज २४ अर्धमागधी रूप उवास० § ५ में आया है) और जब यह शब्द ब्याज के अर्थ में आता है तब अर्धमागधी में वड्ढि हो जाता है (उवास०)। महाराष्ट्री में परिवड्ढि शब्द भी मिलता है (मार्कण्डेय पेज २४; रावण० ५, २) और जैन महाराष्ट्री में बढ़ती के अर्थ में विढि शब्द भी आता है (कक्कुक शिलालेख २)। और इस विषय पर § ५१ भी देखिए।

§ ५१—कभी कभी किसी बोली में एक ही शब्द में तीन-तीन स्वर पाये जाते हैं। प्राकृत शब्द के लिए अर्धमागधी में पायय काम में लाया जाता है (हेमचन्द्र १ ६७, नायाध० § १४५) जैन महाराष्ट्री में इसके लिए पागय शब्द मिलता है (एर्त्से० २, २८) और कहीं-कहीं पायय भी आता है (हेमचन्द्र १ ६७; आव० एर्त्से० की कल्पचूर्णी टीका १ २९) महाराष्ट्री में पाइम शब्द है और जैन महाराष्ट्री में पाइय शब्द काम में आता है (हेमचन्द्र १ १८१ का उदाहरण; वज्जालग्ग १२५ २ ; पाइय० १) और महाराष्ट्री में पाउअ भी होता है (हाल २ और ६९८; वज्जालग्ग १२४ २ ; कर्पूर० ५, १) शौरसेनी पाउद (कर्पूर० ५, १; मुद्रा० ८२, २, ५; विद्ध० २५ ८ [इस ग्रन्थ में सर्वत्र पाउअ पाठ पढ़ना चाहिए])। मागधी में प्राकृत शब्द के लिए पाकिद लिखा जाता है

(वेणी० ३४, २०) ।—महाराष्ट्री में संस्कृत रूप **पृष्ठ** का **पट्ठी** हो जाता है (हेमचन्द्र १, १३१, गउड०), कही **पुट्ठ*** मिलता है (भामह ४, २०, रावण०), कहीं कहीं **पुट्ठी** भी मिलता है (भाम० ४, २०, हाल, रावण०, कर्पूर० ५७, ६), अर्धमागधी में **पिट्ठ** रूप मिलता है (हेमचन्द्र १, ३५, सूय० १८०।२८५।२८६, नायाध० § ६५, पेज ९३८।९५८।९५९।९६४ और ११०७, उत्तर० २९ और ६९, उवास०, ओव०), कहीं-कहीं **पिट्ठी**† भी आता है (हेमचन्द्र १, ३५ और १२९, आयार० १, १, २, ५, नायाध० ९४०, दस० ६३२, २४), और कहीं **पुट्ठ** का प्रयोग भी मिलता है (निरया० § १७), **पुट्ठी** भी कहीं-कहीं लिखा गया है (सूय० २९२), जैन महाराष्ट्री में **पृष्ठ** शब्द के **पिट्ठ, पिट्ठी** और **पुट्ठी** रूप चलते हैं (एर्त्से०), शौरसेनी और दाक्षिणात्य में **पिट्ठ** रूप भी मिलता है (विक्रमो० २९, ३, मालवि० ३३, २, ५९, ३, ६९, ६, मल्लिका० १४५, २१, १९१, ५, मुद्रा० २५४, १, मृच्छ० १०५, २५), कहीं **पिट्ठी** मिलता है (कंस० ५७, ९), और **पुट्ठ** भी देखा जाता है (प्रसन्न० ४४, १४ , रत्ना० ३१६, २२), **पुट्ठी** भी काम में लाया गया है (बाल० २३८, १०), मागधी में **-पृष्ठ** का रूप **पिस्ट** मिलता है (मृच्छ० ९९, ८ , १३०, १, वेणी० ३५, ५ और १०), कुछ स्थानों पर **पिस्टी** भी आया है (मृच्छ० १६५, ९), अपभ्रंश में इस शब्द के रूप **पट्ठि, पुट्ठि** और **पिट्ठि** मिलते हैं (हेमचन्द्र ४, ३२९)। हेमचन्द्र के १, १२९ के अनुसार जब **पृष्ठ** शब्द किसी सन्धिवाले शब्द के अन्त में जोडा जाता हो तब **ऋकार** केवल **अकार** में बदल जाता है। इस नियम के अनुसार महाराष्ट्री और जैन महाराष्ट्री में **महिवट्ठ** शब्द मिलता है (हेमचन्द्र १, १२९ , प्रताप० २१४, ९ [इस ग्रन्थ में **वट्ठ** के स्थान पर **पट्ठ** मिलता है], आव०, एर्त्से० १२, २३), शौरसेनी में उक्त शब्द के स्थान पर **धरणिवट्ठ** पाया जाता है (उत्तर० ६३, १२, बाल० २४८, ५, २८७, १६), जैन महाराष्ट्री में **धरणिविट्ठ** शब्द भी पाया जाता है (सगर० ७, १२), जो सम्भवतः अशुद्ध‡ है, शौरसेनी में **धरणीपिट्ठ** भी मिलता है (यह शब्द हस्तलिखित प्रति में **धरणिपिट्ठ** लिखा हुआ है, बाल० २४५, १५, वेणी० ६४, १८) में उसके छपे ग्रन्थों और हस्तलिखित प्रतियों में कहीं **काल पुट्ठ** कहीं **काल वुट्ठ** और कहीं **कालपिट्ठ** शब्द मिलता है।— **बृहस्पति** शब्द के **वहप्फई, विहप्फई** और **बुहप्फई**+ (चण्ड २, ५ पेज ४३, हेमचन्द्र १, १३८,

* हिन्दी की स्थानीय बोलियों में अब भी कहीं **पूठ** बोला जाता है। कुमाउनी मे इस रूप का ही प्रचार है। **पेट** के लिए मराठी में **पोट** शब्द काम मे आता है, वह भी **पुट्ठ** का एक रूप मालूम पड़ता है। **पृष्ठ** के अर्धमागधी रूप **पिट्ठ** से **पीठ** हुआ है। इसी **पीठ** का एक रूप **पेट** तो नहीं है ? ध्वनिशास्त्र के अनुसार **ई ए** बन जाता है। शरीर के दो पृष्ठ होते हैं। एक का नाम पोट और पेट पड़ा, दूसरे का पाठ। भाषाशास्त्रियों के लिए यह विचारणीय है।—अनु०

† अवधी पीठी। —अनु०

‡ इस नियम के अनुसार हिंदी की कुछ बोलियों में **शिलापृष्ठ** के लिए **सिलवट** शब्द काम में आता है। —अनु०

+ हिन्दी बिरफै, कुमाउनी बाप। —अनु०

सिंहराज पेज १६), तथा बहुत से दूसरे रूप मिलते हैं जिनमें इसी प्रकार स्वर बदलते रहते हैं (§ ११२)। अर्धमागधी में पद्वरसाइ रूप होता है (सूय० ७ ९ [इसमें व के स्थान पर व लिखा गया है]; ठाणंग ८२; पण्णव ११६ [इस ग्रन्थ में भी व के स्थान पर ध पाया जाता है]), कहीं विहरसइ मिलता है (अणुओग १५६ [इस ग्रन्थ में वि के स्थान पर वि है] ओव § ३५ [इसमें भी वि आया है]) शौरसेनी में बहप्पदि होता है (मल्लिका ५७,३ १८४ १ [ग्रन्थ में ब लिखा गया है]); कहीं विहप्पदि मिलता है (रत्ना ११ २५)। वृन्त शब्द सब प्राकृत बोलियों में बुन्त हो जाता है (भाम २,५; ३, १६ पर ४१; १,२६ हेमचन्द्र १ १३१; २ ४ और ९ , मार्कण्डेय पेज २४; हाल; आयार २ २ १ १४; भो एत्सें) शौरसेनी के लिए (मृच्छ ४४,४; ६६,२ ; ७१,२२; अनर्घ १५६, ५) देखिए। अर्धमागधी के लिए (मृच्छ ११७ २१; १२ ९; १२४, ४ आदि आदि) देखिए। भामह १,२७ के अनुसार मागधी में इसका यह रूप होता है (हेमचन्द्र १ १२८ और २ ४ के अनुसार इसका रूप विन्ट भी होता है) ।—वृन्त शब्द का अर्धमागधी में विण्ट हो जाता है (हेमचन्द्र १, १३९ सम ९८ पण्णव ४ [पाठ में वि के स्थान पर बि आया है]) एक स्थान पर तालविण्ट शब्द भी आया है (पण्हा ११) पत्तविण्ट भी है (जीवा ६८१) जो मिले हुए (संयुक्त) व्यञ्जनों के पहले जब यह शब्द आता है तब इकार एकार में बदल जाता है और विण्ट का वे ॅण्ट हो जाता है (§ पारा ११९); इस नियम के अनुसार महाराष्ट्री में वे ॅण्ट मिलता है (हेमचन्द्र १ ११९; २,३१; मार्कण्डेय पत्र २६; हाल धकु १११ ६), तालवेण्ट मिलता है (कपूर ८२,२), अर्धमागधी में भी वे ॅण्ट शब्द है (जीवा ३२९ [पाठ में वें मिलता है]; पण्णव ४ [पाठ में वें मिलता है]), तालवे ॅण्ट भी मिलता है (नायाध § १३३) पत्तवे ॅण्ट भी आया है (जीवा ५४९ [पाठ में वें के स्थान पर वें आया है]) शौरसेनी में भी वे ॅण्ट शब्द मिलता है (विद्ध १४,११) तालवे ॅट भी मिलता है (मिल्लमो ७५,१ ; उत्तर १६ ७; विद्ध ६१ १ वेणी ९२ २२ [इसका यह पाठ होना चाहिए]: बाल १११,११ [इसमें भी यही पाठ होना चाहिए]) तालवे ॅण्ट पाठ भी मिलता है (मृच्छ १८४; ५९,७) मागधी में भी यह शब्द मिलता है (मृच्छ २१ १६) हेमचन्द्र ने २ ३१ में तालवे ॅण्ट लिखा है और १ ६७ में तालवॅण्ट भी दिया है। भामह १ १ में तालवॅण्टअ के साथ साथ तालवॅण्टअ भी मिलता है। हेमचन्द्र ने १,१३९ में वॉण्ट शब्द भी दिया है, १६७ में तालवोॅण्ट और तलवण्ट भी दिया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वृन्त का रूप किसी प्राकृत बोली में वुण्ट* रहा होगा और फिर दुहरे व्यंजन ण्ट के आगे व का वों हो गया (§ १२५)। अर्धमागधी में बहुधा तालियण्ट शब्द काम में आता है (आयार २ १ ७ ५; पण्हा २३६ और ५३३; अणुत्तरो १ ; नायाध २७७; विवाह ८ ७।८११ और ९६४ ; ओव ५९ [इसका पाठ तालियण्ट होना चाहिए] रत ६११ १८; ६२६,१), कहीं-कहीं तालियण्टक

* राम पाणिवाद ने अपनी ग्रंथ 'कंसवहो' में तालवुण्टकपरिधि का प्रयोग किया है।—अनु

आता है (पण्हा ४८८)। तालियन्टक, तालिवृन्त से निकला प्रतीत होता है इसमें ऋकार अकार में परिणत हो गया। वृन्त शब्द पाली में वण्ट लिखा जाता था, शायद यह उसका प्रभाव हो।

§ ५४—महाराष्ट्री में मृगतृष्णा के लिए मअतण्हा आता है (रावण०), कहीं-कहीं मअतण्हिया* मिलता है (सरस्वती० १७२,१८ इस शब्द के बगल में ही मुद्धमिअ आया है), शौरसेनी में मिअतण्हा का प्रयोग मिलता है (धूर्तस० ११,६), कहीं-कहीं मिअतण्हा मिलता है (अनर्घ० ६०,४), कहीं मअतण्हिआ है (विक्रमो० १७,१), मअतिण्हआ मिलता है (विद्ध० ४७,९ कलकत्ते के संस्करण में यह ३६,१ में है, लेकिन वहाँ मिअतण्हिआ का प्रयोग है), मिअतिण्हिआ शब्द शौरसेनी में भी मिलता है (विद्ध० ११५,५)। महाराष्ट्री में मृगाङ्क के लिए मिअंक, मृगेन्द्र के स्थान पर मइन्द, विशृंखल के स्थान पर विसंखल और शृंखला के स्थान पर सिंखला काम में लाया जाता है (§ २१३)। महाराष्ट्री और शौरसेनी में मृगलांछन† के स्थानपर मअलांछण होता है। जैन महाराष्ट्रीमें यह शब्द मयलाछेण लिखा जाता है (हाल, कर्पूर० ६५, १०, १०५, ७, मृच्छ० १६९, १४, विक्रमो० ४३, ११, ४५, २०[१], पाइय० ५, द्वारा० ५००, १८, एर्त्से०)। मयंक के स्थानपर मअंक (हेमचन्द्र १, १३०, अपभ्रश प्राकृत के वर्णन में इसी ग्रन्थ में ४, ३९६, १), और जैन महाराष्ट्री में यह शब्द मयंक रूप में काम में आता है (एर्त्से०), महाराष्ट्री, दाक्षिणात्य, शौरसेनी और मागधी में यह शब्द साधारण रूप से मिअंक लिखा जाता है (हेमचन्द्र १, १३०, गउड०, हाल, रावण०, कर्पूर० ६०, १, ८४, ८), दाक्षिणात्या का उदाहरण (मृच्छ० १०१, ११) में मिलता है। शौरसेनी के उदाहरण (विक्रमो० ५८, १०, विद्ध० १०९, ५ ; कर्पू० १०५, ७ में मिलते हैं), मागधी का उदाहरण (मृच्छ० ३७, २५) में मिलता है। जैन महाराष्ट्री में मियक शब्द भी देखने में आता है (एर्त्से०)। मृग के लिए शौरसेनी में मअ के साथ साथ मिअआ भी मिलता है, इस मिअआ से मृगया का तात्पर्य है (शकु० २९, २ और ३) और महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में मृगी के लिए मई काम में आता है (शकु० ८५, २ और प्रबन्ध० ६७, १२)। शौरसेनी में मृगवधू के लिए मअवहू‖ शब्द काम में लाया जाता है (शकु० ८६, ४) और इसके साथ साथ शाखामृग के लिए साहामिअ[२] शब्द भी चलता है (मृच्छ० ६९, ११, विक्रमो० ८१, १३),

* इस विषय पर इन शब्दों को देखकर वौल्लेनसन ने एक नियम बनाया जिसका नाम उसने रखा अंगीकरण का नियम (Rule of Assimilation)। —अनु०

† ये शब्द देखकर औल गौल्डस्मित्त ने पृथक्करण का नियम (Rule of Dissimilation) बनाया। ये दोनों नियम पूरे प्रमाणित न हो सके। —अनु०

‡ भाषाशास्त्रज्ञ विद्वान अध्यापक श्री विधुशेखर भट्टाचार्य ने यह बताया है कि लांछन शब्द लक्षण का प्राकृत रूप है, जो संस्कृत में चलने लगा था। इस शब्द का प्रयोग कालिदास ने भी किया है। —अनु०

‖ राम पाणिपाद 'कंसवहो' में शौरसेनी में मअलक्षणो के भीतर मअ रूप का प्रयोग किया है, जो उचित है। —अनु०

अधमागधी में इहामिय शब्द है (ओव ४८१।४९२।५ ८; नायाध ७२१ राय ५८ [इसमें मिय के स्थानपर मिग है]) अर्धमागधी में वैसे मिग मिय सर्वत्र एक समान चलते हैं (आयार २ १, १, १ २; ५, १, ५; विवाह पेज ११९ और उसके बाद; उत्तर ११२८।४१२।४९१।५९५।६ १; दस ६४८ ७; सूय० ५२, ५४ ५६, ११७; ओव § ३७) मृगशिराः के स्थानपर मियसिरामो आता है (ठाणग ८१), मृगव्य के लिए मिगव्य शब्द है (उत्तर ४१८), जैन महाराष्ट्री में मृग के लिए मयग* शब्द आता है (द्वार ५ १, ११), मृगाक्षी के लिए मयच्छी (काग्रम २९) महाराष्ट्री में इसके लिए मअच्छी शब्द है (कपूर ६५,४)। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनमें शब्दों में लेखकों ने स्वरों की मधुरता पर भी ध्यान दिया होगा जिससे एक ही स्थान के लिए नाना स्वर काम में आये गये।

१ विक्रमो १० १ पेज ११६। — २ स्पेसिमेन डेस संतुबन्ध (गोएटिंगन १८७३) पेज ८१ १ १ पर। उक्त पुस्तक में मिश है और चित्रशालाकर्मविक में भी यही पाठ है।

§ ५५—उन संज्ञा शब्दों का जिनका अन्त ऋ में होता है, अन्त में क प्रत्यय लगने से और जब यह संज्ञा शब्द किसी सन्धि या समास में पहला शब्द हो तब ऋकार का अधिकांश स्थलों में उकार हो जाता है (हेमचन्द्र १, १३४); पल्लव दानपत्र में आमातृकस्य के स्थान पर आमातुकस आया है (६ १४) और मातृकाणाम् की जगह मातुकाण आया है (६ १८), महाराष्ट्री में जामातृक के लिए जामाउअ होता है (भामह १ २९; हेमचन्द्र १ १३१; मार्कण्डेय पेज १ ; हाल); जैनमहाराष्ट्री में जामाउय हो जाता है (एर्से); शौरसेनी में यही शब्द जामातुअ होता है (महावी २७ २२; मल्लिका २ ९ २२), इस प्राकृत में जामातृ शब्द के लिए जामादुस‡ हो जाता है (मल्लिका २ ९ १); जैन महाराष्ट्री में भ्रातृवत्सल शब्द के लिए भाउवच्छल्ल† आता है (द्वार ५ १ १८ ५ ७ १), इसी प्राकृत में भाउघायग और भाउय शब्द भी व्यवहृत हुए हैं, (एर्से) शौरसेनी में भ्रातृघात के स्थान पर भादुसम आया है (वेणी ५ ५, १),शौरसेनी में भादुअ शब्द काम में लाया गया है(विक्रमो ७५, ८)। मागधी में पश्चित भ्रातृक के स्थान पर बंधिद भादुक आया है (मृच्छ १२९ ६); अधमागधी में पुष्मपत्रपरियार के लिए पुष्मसुपरियार लिखा गया है (विवाह ४८२); अर्धमागधी में अस्मापितृसम्मिय (आयार २ १५, १५) व्यवहार में आया है और एक स्थान पर अम्मपिउसुस्सूसग भी मिलता है (विवाह

* हिन्दी के कवियों ने सर्वत्र शब्द में इस रूप का बहुत व्यवहार किया है। अब का रूप हिन्दी में मय हो गया है। हिन्दी में ब के स्थान में ब और कहीं व रूप मिलता है। यह नियम आया जाये, जायेगा जायेगा आदि में स्पष्ट देखा जाता है।—अनु

† इस रूप की परम्परा में महाराष्ट्री और मराठी भाऊ शब्द है जो कुमाउनी में भी बोला जाता है।—अनु

‡ =भातृघातक।—अनु

६०८), अन्य एक स्थल में **माउ-पिउ-सुजाय** शब्द मिलता है (सूय० ५८५; ओव० § ११), **मात्रोजः पितृशुक्र** के लिए **माउओय पिउसुक्क** शब्द आया है (सूय० ८१७, ८२२ , ठाणग० १५९ , विवाह० १११), और **माउया** भी मिलता है (नायाध० १४३०), शौरसेनी में **मादुघर** शब्द मिलता है (मृच्छ० ५४, ४), मागधी में **मादुका** होता है (मृच्छ० १२२, ५), महाराष्ट्री में **पितृवध** के लिए **पिउवह** शब्द काम में आता है (गउड० ४८४), जैन महाराष्ट्री में **नप्तृक** के स्थान पर **नत्तुय** हो जाता है (आव०, एर्त्से ८, ३१), अर्धमागधी में **नप्तृकी*** के स्थान पर **नत्तुई** का प्रयोग मिलता है (कप्प० § १०९) । इस **नप्तृ** शब्द के प्राकृत रूप में इकार भी मिलता है, महाराष्ट्री में **नप्तृक** के लिए **णत्तिय** मिलता है (हेमचन्द्र १, १३७, सरस्वती० ८, १३), इस प्राकृत में **त्वष्टृ घटना** के लिए **तट्ठिघढना** मिलता है (गउड० ७०४), हेमचन्द्र० १, १३५ में **माइहर**† शब्द मिलता है, अर्धमागधी में **माइमरण** और **भाइमरण** शब्द मिलते हैं (सूय० ७८७), **माइरक्खिय** शब्द भी मिलता है (ओव० § ७२), शौरसेनी में **मादिच्छल** शब्द आया है (शकु० १५८, १२) । अर्धमागधी में **पैतृक** के लिए **पेइय** का प्रयोग किया गया है (विवाह० ११३), जैन महाराष्ट्री में **भाइवच्छल** ओर **भाइघायय** शब्द मिलते हैं (द्वारा० ५०१, ३ और ३८), कहीं-कही **भातृवधक** के लिए **भाइवहग** शब्द मिलता है (एर्त्से० १४, २८, २३, १९), **भ्रातृशोक** के लिए **भाइसोग** शब्द आया है (एर्त्से० ५३, ११) । अर्धमागधी में **अम्मापिइसमाण** और **भाईसमाण** शब्द मिलते हैं (ठाणग २८४), अपभ्रंश में **पितृमातृमोषण** के लिए **पिइभाइमोसण**+ (एर्त्से० १५८, ३) है , अर्धमागधी में **भर्तृदारक** के लिए **भट्टिदारय** शब्द आया है (पण्णव० ३६६), शौरसेनी में **भट्टिदारअ** मिलता है (महावी० २८, ३, ३२, २२), शौरसेनी में **भट्टिदारिआ** शब्द भी मिलता है (ललित विग्रह० ५६०, ९, ५६१, ६ और १२, ५६२, २२, ५६३, ५, माल्ती० ७२, २, ४ और ८ , ७३, ५, ८५, ३, नागा० १०, ९ और १३, १२,५ और १०, १३, ४ आदि आदि) । जब पुल्लिग सज्ञा शब्दों में विभक्तियाँ जोडी जाती हैं तब उनके रूप **अ, इ** और **उ** में अन्त होनेवाले शब्दों के समान होते हैं और स्त्रीलिंग के रूप **आ** में अन्त होनेवाले शब्दों के समान होते हैं। **मातृ** शब्द के रूप **ई** और **ऊ** में समाप्त होनेवाले शब्दों के समान होते हैं (§ ३८९–३९८) ।

§ ५६—आरम्भ का **ऋ** नियमित रूप से **रि** में परिणत हो जाता है (वररुचि १,३०, चड २,५, हेमचद्र १,१४०, क्रमदीश्वर १, २८, मार्कण्डेय पेज ११) । यह **रि** मागधी में **लि** वन जाता है । अतः **ऋद्धि** महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री, जैन शौरसेनी, शौरसेनी और अपभ्रश में **रिद्धि** रूप में पाया जाता है (पाइय० ६२, गउड०, हाल, सूय० ९५४, ओव०, कक्कुक शिलालेख १२, एर्त्से०, कालका०,

---

* हिंदी में इस रूप से **नाती** शब्द बना है । —अनु०

† हिंदी रूप 'मैहर' । —अनु०

+ पिइ-घर = पी हर = पीहर । —अनु०

ऋषभ ; कर्पूर० ४ ०,३२५; ४०३,१७०; मृच्छ० ६, ४; २१, ७; ७७, १०; ९४, १९; हेमचंद ४,४१८, ८) । ऋक्ष का महाराष्ट्री अर्धमागधी जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में रिच्छ रूप मिलता है (हेमचन्द्र २ १९; पाइय ९६; हाल; नायाध०; ओव ; कप्प ; एर्से बाइरा० ३२१,५; ३५ ,१८) तथा महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी में रिच्छ* रूप भी चलता है (वररुचि १,३ ; १३ ; हेमचन्द्र १,१४ ;२,१९; पाइय १२८;रावण ; राय १२४; शकु १५,९;अनर्घ० १५६,५)। ऋण का महाराष्ट्री और जैन महाराष्ट्री में रिण हो जाता है (भामह १,१०; चंड २,५; हेमचन्द्र १, १४१; मार्कण्डेय पेज ११; हाल; कालका) ऋनुण का शौरसेनी में अरिणं होता है (मृच्छ ६४ २२; शकु २४,१३; १४१,१)। मागधी में ऋण का क्षीण रूप मिलता है, इसमें छन्द की मात्राएँ ठीक रखने के लिए ह्रस्व इ दीर्घ कर दी गयी है (मृच्छ २१ १९ वॉकर § ७१) । ऋतु का अर्धमागधी में रिउ रूप देखने में आता है (हेमचन्द्र १,१४१ और २ ९; पाइय २ ८;सम १९९;निरयाव ८१); शौरसेनी में इसका रूप रिदु है (बाल १११,१२) । अर्धमागधी में ऋग्वेद को रिउव्वेय कहते हैं (ठाणंग १६६; विवाह १४९ और ७८७; निरयाव० ४४; ओव० § ७७ (यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) कप्प § १) । ऋषभ महाराष्ट्री और अर्धमागधी में रिसह रूप रख लेता है (चण्ड २,५ पेज ४१; हेमचन्द्र १, १४१ रावण [इसमें यह व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में आया है]; पण्हा २७ ; विवाह १ ; उवास; ओव); अर्धमागधी और शौरसेनी में इसका रूप रिसभ भी मिलता है (ठाणंग २६६ [इस ग्रन्थ में यह शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में आया है], शकु १५ ७) ।—ऋचः शब्द शौरसेनी में रिचाइं हो गया है (रत्ना १ २ ११) । —ऋषि शब्द अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में रिसि हो जाता है (हेमचन्द्र १,१४१; पाइय ३१; सूय २ २ एर्से मृच्छ १२६,१४ [यह शब्द इसमें क्षेपक है]) मागधी में इसका रूप लिशि हो जाता है (प्रबन्ध ४६ १५ और १६ ४७ १) अर्धमागधी में महारिसि शब्द भी मिलता है (सूय २ ३; नायाध १४७५) । ऐसे स्थानों में जैसे राजर्षि के लिए अर्धमागधी में रायरिसि (विवाह ९ ८,९१९ और ९१६; नायाध ६ और उसके बाद, १०२२; उत्तर २७९ और उसके बाद तथा ५६१) महर्षि के लिए माहणरिसि (§ २५ ; निरयाव ४८ और पेज ५ के बाद) तथा महर्षि के स्थान पर जैन महाराष्ट्री रूप महारिसि (एर्से) और सप्तर्षि के लिए शौरसेनी रूप सत्तरिसि (विद्ध ४९, ४; ६ और ८) तथा द्वीपायनर्षि के लिए जैन महाराष्ट्री दीवायणरिसि (द्वार ४९६ ७ और १८; ४९७ १, स्वरभक्ति का सिद्धान्त मानना पड़ेगा) (§ १३५) । ये रूप संस्कृत मूल से सम्बन्ध रखते हैं ।

---

* हिन्दी का रीछ शब्द शौरसेनी रिच्छ से निकला है । संयुक्त अक्षर च्छ का मान ठीक रखने के लिए रि री में बदल गया है । —अनु

† हिन्दी में संस्कृत ऋ का जो अ होता है वह प्राकृत-काव्य से चला है परन्तु इसका निश्चित नियम नहीं है । जैसे मसान, भला, मलाई आदि अमहित आदि इस अनिश्चितता के प्रमाण हैं । —अनु

§ ५७—रि के अतिरिक्त शब्द के आरम्भ में आनेवाला **ऋकार** बहुत स्थानों पर अ,इ,उ में परिणत हो जाता है। इस नियम के अनुसार संस्कृत **ऋच्छति** महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री, आवन्ती और अपभ्रंश में **अच्छइ** हो जाता है तथा पैशाची मे **अच्छति** होता है (§ ४८०)।—**ऋक्ष** शब्द अर्धमागधी मे **अच्छ** बोला जाता है (आयार० २,१,५,३, विवाह० २८२ और ४८४, नायाध० ३४५ [इस ग्रन्थ में **अच्छ** के साथ-साथ **रिच्छ** शब्द भी है], पण्णव० ४९ और ३६७), कहीं **अच्छी** मिलता है (पण्णव० ३६८), संस्कृत शब्द **अच्छभल्ल** से इसकी तुलना कीजिए।—**ऋण** शब्द अर्धमागधी में **अण** हो जाता है (हेमचन्द्र १, १४१, पण्हा० १५०)।—**ऋद्धि** शब्द अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में **इढ्ढी** हो जाता है (ठाणग० ८० और १७८ , उत्तर० ११६ और ६६६ , विवाह० ५५ और २२१, नायाध० ९९०, ओव० § ३३ और ६९ , उवास०, कप्प० , निरयाव० § १६ , दस० ६३५, ३८ , ६४०, ५ , दस० नि० ६५२, २८)। जैसा लौयमान ने 'औपपत्तिक सुत्त' में ठीक ही लिखा है कि **इढ्ढी** पुराने ग्रन्थों के पाठों में मिलता है और **रिद्धी** बाद के लिखे गये ग्रन्थों में काम में लाया गया है। अर्धमागधी में भी यही बात लागू होती है और अन्य रूपों के लिए भी, जो रि से आरम्भ होते हैं, और उन शब्दो के लिए, जो स्वरों से आरम्भ होते हैं, यही नियम लागू होता है।—**ऋषि** शब्द अर्धमागधी और शौरसेनी मे **इसि** हो जाता है (वररुचि १, २८, चण्ड० २,५ , हेमचन्द्र १, १४१ , क्रमदीश्वर १, ३२ , मार्कण्डेय पेज १० , पण्हा० ४४८ [इस ग्रन्थ में **सुइसि** शब्द आया है], उत्तर० ३७५-३७७ और ६३० , विवाह० ७९५ और ८५१ , शकु० ४१, १ , ६१, ११ , ७०, ६ , ७९, ७ ९८, ८ , १५५, ९ , विक्रमो० ८०, १७ , उत्तर० १२३, १० , उन्मत्त० ३, ७ आदि आदि), व्यक्तिवाचक संज्ञा में अर्धमागधी में **इसिगुत्त, इसिगुत्तिय, इसिदत्त, इसिपालिय** शब्द पाये जाते है (कप्प०) और सन्धिवाले शब्दों में अर्धमागधी और शौरसेनी में **महर्षि** के लिए **महेसि** काम मे आता है (सूय० ७४ और १३७ , उत्तर० ७१७, ७२० और ८१५ , अनर्घ० १५१, १० , उन्मत्त० ४, १८): **राजर्षि** शब्द के लिए महाराष्ट्री और शौरसेनी में **रायेसि** शब्द काम में लाया जाता है (गउड० , शकु० १९, ५ , २०, १२ , २१, ४ , ५०, १, ५२, १६, ५७, १२, विक्रमो० ६, १३ और १६, ७, २, ८, १४ , १०, २, ४ और १४ आदि आदि)।—**ऋतु** शब्द के लिए अर्धमागधी में उउ आया है (हेमचन्द्र १, १३१, १४१ और २०९ , विवाह० ४२३ और ७९८ , पण्हा० ४६४ और ५३४, नायाध० ३४४, ९१२, ९१६, ९१८, अणुओग० ४४२ और ४३२, दस० ६२७, ११, दस० नि० ६४८, १४), शौरसेनी में यह शब्द **उदु** हो जाता है (शकु० २, ८)। § १५७ से भी तुलना कीजिए। तथाकथित महाराष्ट्री उदु के लिए § २०४ भी देखिए।—अर्धमागधी और शौरसेनी में **ऋजु** का उज्जु हो जाता है (हेमचन्द्र १, १३१ और १४१, २, ९८ , पण्णव० ८४७; अणुओग० ५४१, ५४२, ५५२ और ६३३, उत्तर० ६९८ और ६९९ , ओव०;

कंस० ५७, २); ऋजुकृत अर्धमागधी में उज्जुकड हो जाता है (आयार० १, १, ३, १)।—ऋजुक का सामान्य रूप से उज्जुअ हो जाता है (वररुचि १, ५२); महाराष्ट्री में भी यही रूप होता है (हाल)। शौरसेनी में भी यही रूप है (मृच्छ० ८८, १८; ९, २१[1]; शकु० ८, ४; ११०, ५; रत्ना० ३०२, ११; ३०८, ७; मुद्रा० १९२, ११; अनर्घ० ३११, ५; कर्पूर० २०, ११ आदि आदि); अविउज्जुअ भी आया है (रत्ना० ३०९, २४; प्रिय० ४१, १५); अर्धमागधी में उज्जुग शब्द भी देखा जाता है (पण्हा० २८०, उवास०); उज्जुय का भी प्रयोग किया गया है (पाइय० १७५; आयार० २, १, ५, ३; २, ३, २, १४ और १५; उत्तर० ११०; ओव०; कप्प०); अणुज्जुय भी मिलता है (उत्तर० ९९)।—ऋषभ शब्द के लिए उसह शब्द का प्रयोग हुआ है (चण्ड० २, ५ पेज ४३; ३, १४ पेज ५१; हेमचन्द्र १, १३१ और १४१); अर्धमागधी में ऋषभ का उसभ भी हो जाता है (आयार० २, १५, २१; नायाध०; ओव०; कप्प०); जैन महाराष्ट्री में भी उसभ काम में लाया जाता है (हेमचन्द्र १, २४; कप्प०; ओव०; एर्त्से० ४६, २१; एर्त्से०); जैन महाराष्ट्री में उसभय भी दिखाई देता है (ओव०; एर्त्से० ४६, २१); अर्धमागधी में उसभदत्त (आयार० २, १५, २; कप्प०) और उसभसेण नाम भी मिलते हैं (कप्प०)।—क्रमदीश्वर १, ११ के अनुसार ऋष्य शब्द का प्राकृत रूप सदा उप्प होना चाहिए, किन्तु अब तक प्राप्त ग्रन्थों में रिप्प (§ ५९) और अप्प (§ ५७) शब्द मिलते हैं।

१. इसका यही पाठ होना चाहिए, पिशल का हेमचन्द्र पर निबन्ध १, ९४ की तुलना कीजिए। गौडवहो २११, ९; २५९, १ में उज्जअ लिखा मिलता है। इसका अनुवाद टीकाकार उज्ज्वल और उद्धत करता है।

§ ५८—जिस प्रकार ऋ का रूप प्राकृत में इ हो जाता है वैसे ही ऋ का रूप अन्त में ऋ आनेवाले शब्दों की रूपावलि में इ और उ होता है। अर्धमागधी में अम्मापिईणम्, अम्मापिऊणम्, माईणम् रूप मिलते हैं (§ ३९१ और ३९२)। प्राचीन ऋ से उत्पन्न इर् और उर् के रूप बहुधा नियमित रूप से प्राकृत के ध्वनि-नियमों के अनुसार बदलते हैं। तीर्यते का महाराष्ट्री और जैन महाराष्ट्री में तीरइ, तीरए हो जाता है (§ ५३७)। महाराष्ट्री में प्रकीर्ण का पइण्ण हो जाता है (गउड०; हाल; रावण०); विकीर्ण का विइण्ण (हाल); विप्रकीर्ण का विवइण्ण (हाल; रावण०); विस्तीर्ण का जैन महाराष्ट्री में वित्थिण्ण रूप मिलता है (एर्त्से०); महाराष्ट्री में पूर्यते का पूरइ मिलता है (§ ५३७); पूर्ण का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में पुण्ण हो जाता है (हाल; रावण०; उवास०; कप्प०; कालका०; प्रबन्ध० ६७, २)। जीर्ण के प्राकृत में नाना रूप मिलते हैं। महाराष्ट्री और शौरसेनी में जिण्ण शब्द काम में आता है (हेमचन्द्र १, १०२; हाल; प्रताप० २११, ११; मृच्छ० ७१, ९)। किन्तु मागधी में इसका रूप यिण्ण भी मिलता है (मृच्छ० १६२, २१)। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में बहुधा यह शब्द जुण्ण रूप में भी मिलता है। यह वैदिक जूर्ण शब्द से

सीधे जनता की बोली में चला आया है[1] (हेमचद्र १,१०२, गउड०, हाल, कर्पूर० ८८, ३, आयार० २,१६,९, विवाह० १३०८, नायाध० ३२१, ९८३, ९८५, ९८७, उत्तर० ४४०, राय० २५८ और बाद का पेज, अणुओग ५९२, आव० एर्त्से० ३७, २६, ४०, १६, एर्त्से०, शकु० ३५ ९, कर्पूर० ३५, ५, विद्ध० ११४, ६, मल्लिका० ८८, २३, हास्या० २५, ५)। अर्धमागधी में **परिजुण्ण** रूप भी मिलता है (आयार० १, ७, ६, १, ठाणग० ५४०, उत्तर० ६३)। अर्धमागधी मे **जुण्णिय** (नायाध० ३४८), जैनमहाराष्ट्री में **जुण्णग** रूप भी पाया जाता है (आव० एर्त्से० ४१, १)। **तीर्थ** के लिए महाराष्ट्री में **तित्थ** के साथ साथ **तूह** भी चलता है। इस **तूह** का मूल **तूर्थ** सस्कृत में कभी और कहीं चलता होगा (हेमचन्द्र १, १०४, हाल, सरस्वती० ४४, १२)। **उत्तूह** = **उत्तूर्थ** (ऊपर को छूटनेवाला फव्वारा) हेमचद्र की 'देशीनाममाला' १, ९४ में दिया गया है। पल्लव दानपत्र ५, ५ में **तूथिके** शब्द का प्रयोग मिलता है । इसका मूल सस्कृत **तूर्थिकान्** या **तीर्थिकान्** होगा। अर्धमागधी में **अण्णउत्थिय** रूप पाया जाता है, जो **अन्यतूर्थिक** के स्थान पर होना चाहिए (विवाह० १२९, १३०, १३७, १३९, १४२, १७८, ३२३, ३२४ आदि आदि, नायाध० ९८४ और बाद के पेजों में, ठाणग० १४७, ओव०)। **परउत्थिय** = **परतूर्थिक**[2] । **तूह** को **तृथ** से निकला बताना[3] भूल है[4] ।

१ वेबर : इण्डिशे स्टूडियन १६, १४ और ४६, नोट २, लौयमान औपपातिक सुत्त पेज ९५।—२ लौयमान की उपर्युक्त पुस्तक।—३ वाकरनागल आल्टइण्डिशे ग्रामाटीक § २४।—४ बार्टोलोमाए का त्साइटश्रिफ्ट डेर मौरगेनलैण्डिशन गेजेलशाफ्ट ५०, ६८०।

§ ५९—व्यजनों के बाद जब **ऌ** आता है तब प्राकृत में उसका रूप **इलि** हो जाता है। **क्लृप्त** का **किलित्त** रूप बन जाता है (वररुचि १,३३, हेमचन्द्र १,१४५, क्रमदीश्वर १,३३, मार्कण्डेय पन्ना ११)। **क्लृप्ति** का **किलित्ति** होता है (क्रमदीश्वर १,३३, मार्कण्डेय पन्ना ११)। क्रमदीश्वर ५,१६ के अनुसार अपभ्रश में **ऌ** जैसे का तैसा रह जाता है अथवा कभी **ऌ** का **अ** हो जाता है। **क्लृप्त** का अपभ्रश में या तो **क्लृप्त** ही रह जाता है या यह **कत्त** रूप धर लेता है। हेमचन्द्र १,१४५, ४,३२९ में **क्लिन्न** (=भीगा) में **ऌ** मानता है (हेमचन्द्र पर पिशल का निबन्ध १,१४५)। उसने इस शब्द के जो प्राकृत **किलिन्न** और अपभ्रश **किण्ण** रूप दिये हैं उनकी उत्पत्ति प्राकृत नियमों के अनुसार **क्लिन्न** से भी सिद्ध हो सकती है (§ १३६)। **ऌ** जब स्वतन्त्र अर्थात् किसी व्यजन की मिलावट के विना आता है तब वह **लि** में परिणत हो जाता है। **ऌकार** के प्राकृत रूप **लिआर** (मार्कण्डेय पन्ना ११), **लिकार** (कल्प० पेज ३६) पाये जाते हैं।

अध्याय २

स्वर

(अ) द्विस्वर ऐ ओ औ

§ ६०—ऐकार प्राकृत में केवल विस्मयबोधक शब्द के रूप में रह गया है, यह भी केवल कविता में पाया जाता है (हेमचन्द्र १,१६९)। किन्तु इस ऐ के स्थान पर महाराष्ट्री और शौरसेनी में अइ लिखा जाता है जो संस्कृत अयि की जगह काम में आता है (वररुचि ९,१२; हेमचन्द्र १ १६९; २,२ ५; हाल; मृच्छ ११,११; १४ २५; ८७,२१; विक्रमो २८,१ ; ४२,१९; ४५,२; मालती ७४ ५; २४७,१; २६४ १; आदि आदि)। कुछ लेखकों ने हेमचन्द्र १,१; प्राकृतचन्द्रिका १४४ ५; चण्ड २,१४ पेज १७ के अनुसार प्राकृत में ऐ भी चलाया जैसा कैतव के लिए कैअव और ऐरावत के लिए ऐरावण का प्रयोग (भट्टिकाव्य १३,११)। किन्तु जहाँ कहीं यह ऐकार पाया जाता है इसे अशुद्ध पाठ समझना चाहिए (हेमचन्द्र १,१ पिशल की टीका)। मार्कण्डेय, पन्ना १२ में, बहुत स्पष्ट रूप से इस प्रयोग की निन्दा करता है। ऐ नियमित रूप से ए हो जाता है और संयुक्त व्यंजनों से पहले उसका उच्चारण एॅ होता है। पल्लव-दान पत्र में संस्कृत शब्द विजय वैजयिकाम् के लिए विजय वेजयिके शब्द का प्रयोग हुआ है (६,९)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में ऐरावण का एरावण हो जाता है (भामह १,३५; वररुचि २ ११ हेमचन्द्र १,१४८ और २ ८; क्रमदीश्वर २ ११; मार्कण्डेय पन्ना १५; रावण ; सूय १७ ; कप्प०; एर्त्से० ; मृच्छ ९८ २४); अपभ्रंश में ऐरावत का एरावइ हो जाता है (पिंगल १,२४); इस सम्बन्ध में § २४६ भी देखिए। अर्धमागधी में ऐश्वर्य का एसज्ज हो जाता है (ठाणंग ४५)—जैनशौरसेनी में एकाग्र का एयग्ग हो जाता है (पव ३८८, १)।—शौरसेनी में ऐतिहासिक के लिए एदिहासिअ काम में लाया जाता है (अद्भुत ५५५,२)।—महाराष्ट्री में कैटभ के लिए केढव शब्द आया है (वररुचि २ २१ और २९; हेमचन्द्र १,१४७, १९६ और २४ ; क्रमदीश्वर २,११; मार्कण्डेय पन्ना १६)।—महाराष्ट्री में गैरिक शब्द का गेरिअ होता है (कर्पूर ८ ,१), अर्धमागधी में गेरुय हो जाता है (आयार २ १,६ ६; सूय ८३४; पण्णव २६; उत्त ६११४१)—

ऐसा मालूम पड़ता है कि गेरुय शब्द गैरिक से न निकला होगा। इसकी व्युत्पत्ति किसी रूपनविधान में बाद में आनेवाले गैरुक शब्द को मानने से ही ठीक बैठेगी।—अर्धमागधी में नैयायिक (जो सम्भवतः यहाँ नैयायुक बोला जाता हो) के लिए नेयाउय आता है (सूय ११७ और १६१ ; ९९४ और उसके बाद [इस

• यह लेख का पूर्वरूप है —अनु

स्थान में ने के स्थान पर णे शब्द आया है], नायाध० § १४४, उत्तर० १५८, १८०, २३८ और ३२४, ओव०), एक-दो स्थान पर अणेयाउय शब्द भी मिलता है (सूय० ७३६)।—अर्धमागधी में मैथुन के लिए मेहुण शब्द मिलता है (आयार० २, १, ३, २ और ९, १, २, २, १, १२ और २, १०, सूय० ४०९, ८१६, ८२२, ९२३ और ९९४ ; भग०, उवास०, ओव०), जैनमहाराष्ट्री में यह शब्द मेहुणय* है (एर्त्से०), जैनशौरसेनी में मेधुण मिलता है (कत्तिगे० ३९९ और ३०६ [पाठ में हु है जो अशुद्ध है])।—महाराष्ट्री में वैधव्य के लिए वेहव्व आता है (गउड०, हाल०, रावण०)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में वैताढ्य के स्थान पर वेयड्ढ लिखा जाता है (चण्ड० २, ६ ; विवाह० ४७९ ; ठाणग० ७३, विवाग० ९१, निरया० ७९, एर्त्से०)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे शैल का सेल हो जाता है (भामह १, ३५, पाइय० ५०, गउड; रावण०, मृच्छ० ४१, १६, कर्पूर० ४९, ६; आयार० २, २, २, ८, २, ६, १, २, कप्प०, ओव०, एर्त्से०, ऋषभ०), किन्तु चूलीपैशाचिक में यह शब्द सैल हो जाता है (हेमचन्द्र ४, ३२६)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी में तैल शब्द का रूप ते॑ल्ल हो जाता है (§ ९०)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में चैत्र का चे॑त्त हो जाता है (कर्पूर० १२, ४ और ९, विद्ध० २५, २, ऋषभ० १९, आयार० २, १५, ६, कप्प०)।—महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में मैत्री का मे॑त्ती हो जाता है (हाल, रावण०, कक्कुक शिलालेख ७, एर्त्से०)।—महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में वैद्य का वे॑ज्ज हो जाता है (हेमचन्द्र १, १४८; २, २४, हाल, आव० एर्त्से० १६, ८, एर्त्से०, विक्रमो० ४७, २, मालवि० २६, ५, कर्पूर०, १०४, ७)।—महाराष्ट्री और शौरसेनी में सैन्य शब्द का रूप सेण्ण मिलता है (§ २८२)।

§ ६१—ए के स्थान पर प्राकृत व्याकरणकार कुछ शब्दों के लिए सदा और अन्य शब्दों के लिए विकल्प से अइ लिखने का नियम बतलाते हैं। जिन सस्कृत शब्दों के प्राकृत रूप मे अइ होना चाहिए वे सब दैत्यादिगण में एकत्र किये गये हैं (वररुचि १, ३६, हेमचन्द्र १, १५१, क्रमदीश्वर, १,३७, मार्कण्डेय पन्ना १२, प्राकृतकल्पलता पेज ३६)। सब प्राकृतों में एक समान प्रयोग में आनेवाले निम्नलिखित शब्द हैं—दैत्य का महाराष्ट्री रूप दइच्च (पाइय० २६ और ९९, गउड०), वैदेह का वइदेह (क्रमदीश्वर में वइदेही रूप मिलता है); अर्धमागधी में वैशाख का वइसाह रूप पाया जाता है (आयार० २, १५, २५ [साथ ही वेसाह रूप भी प्रयोग में आया है), विवाह० १४२६, निरयाव० १०, उत्तर० ७६८, कप्प०)। हेमचन्द्र और चड ने ऐश्वर्य के स्थान पर अइसरिअ दिया है। इस शब्द का मागधी में पसज्ज रूप दिखाई देता है (§ ६०)। केवल हेमचन्द्र ने दैन्य का दइन्न रूप दिया है, और साथ ही वैजवन का वइजवण, दैवत का दइवय, वैतालीय का वइआलीअ, वैदर्भ का वइदब्भ, वैश्वानर का वइस्साणर और वैशाल का

* सम्भवत इसका मूल सस्कृत रूप मैथुनक शब्द हो। —अनु०

अध्याय २

स्वर

(अ) द्विस्वर ऐ औ औ

§ ६०—ऐकार प्राकृत में केवल विस्मयबोधक शब्द के रूप में रह गया है, वह भी केवल कविता में पाया जाता है (हेमचन्द्र १,१६९); किन्तु इस ऐ के स्थान पर महाराष्ट्री और शौरसेनी में अइ लिखा जाता है जो संस्कृत अयि की जगह काम में आता है (वररुचि ९,१२; हेमचन्द्र १,१६९; २,२ ५; हाल; मृच्छ ४१,११; ९४, २५;८०,२१; विक्रमो २८,१ ; ४२,१९; ४५,९; मालती ७४ ५; १४७ १; २६४ १; आदि आदि)। कुछ लेखकों ने हेमचन्द्र १,१, प्राकृतचन्द्रिका १४४ ५, पन्ना २,१४पेज ३७ के अनुसार प्राकृत में ऐ भी चलता जैसा कैतव के लिए कैअव और ऐरावत के लिए ऐरावण का प्रयोग (मल्लिकाम्य ११,११)। किन्तु जहाँ कहीं यह ऐकार पाया जाता है इसे अशुद्ध पाठ समझना चाहिए (हेमचन्द्र १,१ पिशल की टीका)। मार्कण्डेय, पन्ना १२ में, बहुत स्पष्ट रूप से इस प्रयोग की निन्दा करता है। ऐ नियमित रूप से ए हो जाता है और संयुक्त व्यंजनों से पहले उसका उच्चारण एँ होता है। पल्लव-दानपत्र में संस्कृत शब्द विजय वैजयिकाम् के लिए विजय वेजइके शब्द का प्रयोग हुआ है (५,९)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में ऐरावण का एरावण हो जाता है (भामह १,३५; वररुचि २ ११; हेमचन्द्र १,१४८ और २ ८; क्रमदीश्वर २ ११; मार्कण्डेय पन्ना १५; रावण ; सूय १७ ; कप्प ; एर्से० ; मृच्छ ६८ १४); अपभ्रंश में ऐरावत का एरावइ हो जाता है (पिंगल १,२४); इस सम्बन्ध में § २४६ भी देखिए। अर्धमागधी में ऐश्वर्य का एसज्ज हो जाता है (ठाणंग ४५)—जैनशौरसेनी म एकाग्र्य का एयग्ग हो जाता है (पव १८८, १)।—शौरसेनी में ऐतिहासिक के लिए एदिहासिअ काम में लाया जाता है (कर्पूर ५५५,२)।—महाराष्ट्री में कैटभ के लिए केढव शब्द आता है (वररुचि २,२१ और २९; हेमचन्द्र १,१४७ १९६ और २४ ; क्रमदीश्वर २,११; मार्कण्डेय पन्ना १६)।—महाराष्ट्री में गैरिक शब्द का गेरिअ होता है (कपू ८ ,१), अर्धमागधी में गेरुय हो जाता है (आयार २ १,६ ६; सूय ८१४; पण्हव २९; दस ६११४१)—

ऐसा मालूम पड़ता है कि गेरुय शब्द गैरिक से न निकला होगा। इसकी व्युत्पत्ति किसी स्थानविशेष में बोले जानेवाले गैरुक शब्द को मानने से ही ठीक बैठेगी।—अर्धमागधी में नैयायिक (जो सम्भवतः यहाँ नैयायुक बोला जाता हो) के लिए नयाउय आता है (सूय ११७ और १६१ ; ११४ और उसके बाद [इस

---

* यह अंक का पूर्वरूप है। —अनु

स्थान में ने के स्थान पर णे शब्द आया है], नायाध० § १४४, उत्तर० १५८, १८०, २३८ और ३२४, ओव०), एक-दो स्थान पर अणेयाउय शब्द भी मिलता है (सूय० ७३६)।—अर्धमागधी में मैथुन के लिए मेहुण शब्द मिलता है (आयार० २, १, ३, २ और ९, १, २, २, १, १२ और २, १०, सूय० ४०९, ८१६, ८२२, ९२३ और ९९४, भग०, उवास०, ओव०), जैनमहाराष्ट्री में यह शब्द मेहुणय* है (एर्त्सें०), जैनशौरसेनी में मेधुण मिलता है (कत्तिगे० ३९९ और ३०६ [पाठ में हु है जो अशुद्ध है])।—महाराष्ट्री में वैधव्य के लिए वेहव्व आता है (गउड०, हाल०, रावण०)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में वैताढ्य के स्थान पर वेयड्ढ लिखा जाता है (चण्ड० २, ६ ; विवाह० ४७९ ; ठाणग० ७३, विवाग० ९१, निरया० ७९, एर्त्सें०)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में शैल का सेल हो जाता है (भामह १, ३५, पाइय० ५०, गउड, रावण०, मृच्छ० ४१, १६, कर्पूर० ४९, ६, आयार० २, २, २, ८, २, ६, १, २, कप्प०, ओव०, एर्त्सें०, ऋषभ०), किन्तु चूलीपैशाचिक में यह शब्द सैल हो जाता है (हेमचन्द्र ४, ३२६)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी में तैल शब्द का रूप ते॑ल्ल हो जाता है (§ ९०)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में चैत्र का चे॑त्त हो जाता है (कर्पूर० १२, ४ और ९, विद्ध० २५, २; क्रम० १९, आयार० २, १५, ६, कप्प०)।—महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में मैत्री का मे॑त्ती हो जाता है (हाल, रावण०, कक्कुक शिलालेख ७, एर्त्सें०)।—महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में वैद्य का वे॑ज्ज हो जाता है (हेमचन्द्र १, १४८, २, २४, हाल, आव० एर्त्सें० १६, ८, एर्त्सें०, विक्रमो० ४७, २, मालवि० २६, ५, कर्पूर०, १०४, ७)।—महाराष्ट्री और शौरसेनी में सैन्य शब्द का रूप सेण्ण मिलता है (§ २८२)।

§ ६१—ए के स्थान पर प्राकृत व्याकरणकार कुछ शब्दों के लिए सदा और अन्य शब्दों के लिए विकल्प से अइ लिखने का नियम बतलाते हैं। जिन संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूप में अइ होना चाहिए वे सब दैत्यादिगण में एकत्र किये गये हैं (वररुचि १, ३६, हेमचन्द्र १, १५१, क्रमदीश्वर, १,३७, मार्कण्डेय पन्ना १२, प्राकृतकल्पलता पेज ३६)। सब प्राकृतों में एक समान प्रयोग में आनेवाले निम्नलिखित शब्द हैं—दैत्य का महाराष्ट्री रूप दइच्च (पाइय० २६ और ९९, गउड०), वैदेह का वइदेह (क्रमदीश्वर में वइदेही रूप मिलता है), अर्धमागधी में वैशाख का वइसाह रूप पाया जाता है (आयार० २, १५, २५ [साथ ही वेसाह रूप भी प्रयोग में आया है), विवाह० १४२६, निरयाव० १०, उत्तर० ७६८, कप्प०)। हेमचन्द्र और चड ने ऐश्वर्य के स्थान पर अइसरिअ दिया है। इस शब्द का मागधी में एसज्ज रूप दिखाई देता है (§ ६०)। केवल हेमचन्द्र ने दैन्य का दइन्न रूप दिया है, और साथ ही वैजवन का वइजवण, दैवत का दइवय, वैतालीय का वइआलीअ, वैदर्भ का वइदब्भ, वैश्वानर का वइस्साणर और वैशाल का

* सम्भवत इसका मूल संस्कृत रूप मैथुनक शब्द हो। —अनु०

थइसाल रूप दिये हैं। भामह, हेमचन्द्र, मार्कण्डेय और प्राकृतकल्पलता स्वैर के स्थान पर सइर बतलाते हैं। यह रूप 'पाइयलच्छी' ने भी दिया है। भामह, हेमचन्द्र और मार्कण्डेय वैदेश के लिए वइएस रूप देते हैं। भामह, हेमचन्द्र, मार्कण्डेय और प्राकृतकल्पलता कैतव के स्थान पर महाराष्ट्री रूप कइअव देते हैं (गउड । हाल)। यह शब्द जैनमहाराष्ट्री में कइयव पाया जाता है (पाइय १५७; एर्से)। क्रमदीश्वर' और 'प्राकृतकल्पलता' में चैत्य का प्राकृत रूप चइत्त है (विवाग १५२; उवास० ७५४), इसके साथ साथ अर्धमागधी में चेत्त रूप भी चलता है (सूय १७२), इसके अतिरिक्त चैत्येय का चइत्तेसिय हो जाता है और चैत्यिक का चेतइय। केवल क्रमदीश्वर में चैत्यम्य का चइत्तम्म रूप मिलता है। केवल प्राकृत कल्पलता' में स्तैन का सइत्त बताया गया है। अन्य शब्दों के रूपों के विषय में मतभेद है। वररुचि १,३७ और क्रमदीश्वर १ ३८ केवल दैव शब्द में इस बात की अनुमति देते हैं कि इसमें लेखक की इच्छा के अनुसार ऐ या ए लगाया जा सकता है। इस शब्द के विषय में हेमचन्द्र ने १ १५१ में एक विशेष नियम दिया है यद्यपि यह इस प्रकार अपने स्वर बदलनेवाले अन्य कई शब्दों से भलीभाँति परिचित है। 'प्राकृतकल्पलता' पेज ३७ और त्रिविक्रम १ २,१ २ में यह शब्द दैत्यादि गण में शामिल किया गया है। मार्कण्डेय पन्ना १२ में इस शब्द को दैत्यादि गण में शामिल किया गया है। वररुचि १ ३७ की टीका में भामह का मत है कि यह शब्द दइव बोला जाता है, किन्तु जब व का द्वित्व हो जाता है तब अइ के स्थान पर ए आ जाता है। वररुचि ने इसका उदाहरण दे ́व्व दिया है (१ ५२)। क्रमदीश्वर ने भी ये दोनों रूप दिये हैं, किन्तु हेमचन्द्र ने तीन रूप दिये हैं—दे ́व्व दइव्व और दइव मार्कण्डेय ने देव्व, दे ́व रूप सिखाये हैं। यह दे ́व्व और दइव संस्कृत दैव्य के रूप हैं। अपभ्रंश दइव (हेमचन्द्र ४, ३३१; ३४ २ ३८९) होता है। मार्कण्डेय पन्ना ६९ के और 'रामतर्कवागीश' के अनुसार (हेमचन्द्र १,२५३ पर पिशल की टीका देखिए) शौरसेनी प्राकृत में इस शब्द में अइ का प्रयोग नहीं किया जाता और 'रामतर्कवागीश' का मत है कि शौरसेनी में अइ स्वरों का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता। सच बात यह है कि जो सबसे उत्तम हस्तलिखित प्रतियाँ पायी जाती हैं (हेमचन्द्र १ १४८ पर पिशल की टीका देखिए) उनमें शौरसेनी और मागधी भाषा के रूपों में ऐकार का एकार दिया गया है और जिन शब्दों में अन्य प्राकृत भाषाओं में केवल अइ स्वरों का प्रयोग होता है उनमें भी उपर्युक्त प्राकृतों में अइ काम में नहीं आता। इस कारण शौरसेनी में कैतव का केदव हो जाता है (शकु १ ९, ९) चैत्राल का चेत्ताह होता है (विद्ध ७७ ७) और स्वैर का सेर होता है (मृच्छ १४१, १५; मुकुन्द १७ १८ और १९)। जिन शब्दों में कभी अइ और कभी अ ए होता है उनमें शौरसेनी और मागधी में सदा ए का प्रयोग किया जाता है। इसलिए शौरसेनी और मागधी में दे ́व्व शब्द आता है (मृच्छ २ ९४; शकु ९ १७, ७१४; १६१ १२; मालवि ५७ १९; रत्ना ३१७,१२; मृच्छ १४ ,१)।—भामह १,३५ के अनुसार फलास शब्द का फेलास

हो जाता है और हेमचन्द्र, मार्कण्डेय तथा प्राकृतकल्पलता के अनुसार **कइलास*** अथवा **केलास** होता है, पाइयलच्छी ९७ में **कइलास** शब्द है, महाराष्ट्री (गउड०, रावण०, बाल० १८१,१४) और शौरसेनी (विक्रमो० ४१,३, ५२,५, विद्ध० २५,९) में **केलास** मिलता है। —भामह १,३६ और चण्ड० २,६ के अनुसार **वैर** शब्द का प्राकृत रूप **वइर** होता है और हेमचन्द्र, मार्कण्डेय तथा प्राकृतकल्पलता का मत है कि इसका दूसरा रूप **वेर** भी होता है। इस प्रकार जैन-महाराष्ट्री में **वइर** (एर्त्से०), **वइरि** (एर्त्से०, कालेयक०), इसके साथ-साथ महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **वेर** शब्द काम में लाया जाता है (रावण०, सूय० १६, ३५९, ३७५, ४०६, ८७२ और ८९१, आयार० १,२,५,५; भग०, एर्त्से०, कालेयक०, मृच्छ० २४,४, १४८,१, महावीर० ५२, १८ और १९, प्रबन्ध० ९,१६), मागधी में **वइर** के लिए **वेल** शब्द है (मृच्छ० २१,१५ और १९, १३३,९, १६५,२), महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में **वे`रि** शब्द मिलता है (गउड०, एर्त्से०, कालेय०), जैनमहाराष्ट्री में **वैरिक** के लिए **वेरिय** शब्द आया है (कालेय०), अपभ्रंश **वेरिअ** है (हेमचन्द्र ४,४३९,१), मागधी में **वेलिय** लिखा जाता है (मृच्छ० १२६,६)।—क्रमदीश्वर के अनुसार **कैरव** का प्राकृत रूप **कइरव** होता है, किन्तु हेमचन्द्र, मार्कण्डेय और प्राकृतकल्पलता के अनुसार **केरव** भी इसका एक रूप है। क्रमदीश्वर ने बताया है कि **चैत्र** शब्द का प्राकृत रूप **चइत्त** है, किन्तु हेमचन्द्र, मार्कण्डेय और प्राकृतकल्पलता कहते हैं कि इसका एक रूप **चे`त्त** भी होता है और महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री में (§ ६०) इसके लिए **जाइत्र** शब्द है। मार्कण्डेय ने इसे **जइत्त** और **जैत्त** लिखा है। भामह, हेमचन्द्र और क्रमदीश्वर **भैरव** शब्द के स्थान पर प्राकृत में **भइरव** लिखते हैं, किन्तु मार्कण्डेय और प्राकृत-कल्पलता का मत है कि इसका दूसरा रूप **भेरव** भी है। महाराष्ट्री में **भइरवी** का प्रयोग हुआ है (गउड०), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **भेरव** पाया जाता है (सूय० १२९ और १३०, आयार० १,६,२,३, १,७,६,५, २,१५,१५, ओव०, कप्प०, एर्त्से०), शौरसेनी में **महाभेरवी** शब्द मिलता है (प्रबन्ध० ६५,४, ६६,१० [यहाँ **महाभेरवी** पाठ ही पढा जाना चाहिए क्योंकि यही शुद्ध है]), मागधी में **महाभेलव** का प्रयोग होता है (प्रबन्ध० ५८,१८ [यहाँ भी **महाभेलवी** पढा जाना चाहिए])। —व्यक्तिवाचक नामों में जैसे **भैरवानन्द**, जो 'कर्पूरमजरी' २४, २ में मिलता है, इसके स्थान पर हस्तलिखित प्रतियों में तथा 'कर्पूरमजरी' के बम्बइया सस्करण के २५, ४ तथा उसके बाद अधिकतर **भै`र** का प्रयोग ही मिलता है, किन्तु कोनो ने इस शब्द का शुद्ध रूप **भे`र** दिया है जैसा 'कालेयकुतूहलम्' के १६, १४ में मिलता है। भामह, क्रमदीश्वर, मार्कण्डेय और 'प्राकृतकल्पलता' के अनुसार **वैशम्पायन** का **वइसम्पाअण** होता है और हेमचन्द्र ने बताया है कि इसका दूसरा रूप **वे`सम्पाअण** भी होता है। हेमचन्द्र ने बताया है कि **वैश्रवण** के **वइसवण** और **वेसवण** दो रूप होते हैं। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में

* हिंदी, विशेष कर अवधी में इसकी परिणति **कविलास** में हुई। —अनु०

इसका रूप **येसमण** ही चलता है (नायाध० ८५२ और ८५३; उत्तर० ३७७; भग ; ओव०; कप्प ; एर्त्से)। इन शब्दों के अतिरिक्त हेमचन्द्र ने लिखा है कि **वैतालिक** तथा **वैशिष्ठिक** शब्दों में भी **अइ** और **ए** बदलते रहते हैं। इस स्थान पर भामह के मत से केवल **अइ** होना चाहिए। अर्धमागधी में इस शब्द का एक ही रूप **वेसिय** पाया जाता है (अणुओग०)। व्याकरणकारों के सब गण आकृतिगण हैं; यह प्राकृत का इस की नयी नयी पुस्तकें निकलने के साथ साथ संख्या में बढ़ते जाते हैं। ऐसे उदाहरण अर्धमागधी में **वैरोचन** के स्थान पर **वइरोयण** मिला है (सूय ३ १; भग) और **वैकुण्ठ** के लिए **वइकुण्ठ** आदि आदि।

§ ६१ अ—जैसा एकार के विषय में लिखा गया है उसी प्रकार हेमचन्द्र १ १; प्राकृतचन्द्रिका ३४४,५; और चण्ड २, १४ पेज ३७ में बताया गया है कि कुछ शब्दों में **औ** ही रहता है। **सौन्दर्य** का **सौअरिय**, **कौरव** का **कौरव**, **कौशल** (चण्ड) होता है, हस्तलिखित प्रतियों में ऐसी अशुद्धियाँ बहुधा देखने में आती हैं। साधारण नियम यह है कि **औ** का **ओ** हो जाता है (वररुचि १,४१; चण्ड २,८; हेमचन्द्र १ १५९; क्रमदीश्वर १,३९; मार्कण्डेय पन्ना १२), और मिले हुए दो व्यंजनों के पहले आने पर **ओ** के स्थान पर **ओं** हो जाता है। पल्लवदानपत्र में **कौशिका** के स्थान पर **कोसिका** आया है (६,३९), **कौशिक** के स्थान पर **कोसिक** है (६, ३९); महाराष्ट्री में इस शब्द के लिए **कोसिअ** आया है (हेमचन्द्र ; गउड १ ६) शौरसेनी में भी **कोसिअ** रूप ही मिलता है (शकु २ ,१२)। —**औरस** शब्द के लिए शौरसेनी में **ओरस** पाया जाता है (विक्रमो ८ ,४)।—**औपम्य** के लिए अर्धमागधी में **ओवम्म** चलता है (ओव)। —**औषध** के लिए महाराष्ट्री अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में **ओसह** शब्द काम में आता है (§ २२३)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **कौतुक** के लिए **कोउय** और **कोउग** चलता है (पाइय १५६; सूय ७३ ; ओव ; कप्प ; एर्त्से)। —महाराष्ट्री अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **कौमुदी** के लिए **कोमुई** आता है (भामह १,४१; हेमचन्द्र; क्रमदीश्वर, हाल; ओव ; एर्त्से) शौरसेनी में **कोमुदी** शब्दका प्रचार है (विक्रमो ११२ ; प्रिय ११ ११; ४ ५)। —शौरसेनी में **कौशाम्बी** के लिए **कोसम्बी** शब्द आता है (भामह; हेमचन्द्र; रत्ना ११ , २१) किन्तु शौरसेनी में **कौशाम्बिका** के लिए **कोसंबिआ** आया है। —**कौतूहल** शब्द महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **कोऊहल** हो जाता है (गउड उत्तर ३११; एर्त्से ; कालेय) और शौरसेनी में इसका रूप **कोदूहल** मिलता है (मृच्छ ६८ १४; शकु १९,१ ; १२१ १ ; १२९,१; विक्रमो १९,७; मालती २५७,१; मुद्रा ४३ ५; विद्ध १५ २; प्रबोध ११,४; चैतन्य ४२,१ और ४४ १२); शौरसेनी में **कोदूहल्लिम** भी पाया जाता है (बाल १९८, १); महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **कौतूहल्य** के लिए **कोउहल्ल** शब्द मिलता है (हेमचन्द्र १,११७ और १७१; २ ९९; पाइय १५६; गउड ; हाल; कर्पूर ५७ ३; विवाह ११ १२ और ८१२)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **कोउहल्ल** भी मिलता है

(ओव०, कालेय०) । कोहल के विषय में § १२३ देखिए । —द्यौ शब्द का महाराष्ट्री अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, दाक्षिणात्या और अपभ्रंश में दो हो जाता है (§ ४३६) । —जैनमहाराष्ट्री मे द्यौष्पति के लिए दोवइ शब्द चलता है (कालका०) । —अर्धमागधी मे द्रौपदी का प्राकृत रूप दोवई हे (नायाध० १२२८), मागधी में दोवदी होता है (मृच्छ० ११,७, १६, २३, १२८,१४ [यह पाठ अधिकतर हस्तलिखित प्रतियों मे सर्वत्र पढा जाना चाहिए, इस ग्रन्थ के १२९,६ मे द्रौपदी के लिए दोॅप्पदी पाठ आया है जो अशुद्ध है बल्कि यह दोॅप्पदी दुष्पतिः के स्थान पर आया हे ।]) ।—जैनशौरसेनी मे धौत शब्द के लिए धोद मिलता है (पव० ३७९,१) । —पौराण के लिए महाराष्ट्री और अर्धमागधी में पोराण चलता है (हाल, ओव०, कप्प० राय० ७४ और १३९, हेमचन्द्र ४, २८७), जैनमहाराष्ट्री मे इसका प्राकृत रूप पोराणय है (एर्त्से०) । —सौभाग्य के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी मे सोहग्ग है (गउड०, हाल, रावण०, ओव०, एर्त्से०, मृच्छ० ६८,१७, शकु० ७१,८, विक्रमो० ३२,१७, महावी० ३४,११, प्रबन्ध० ३७,१६, ३८,१, ३९,६) । —कौस्तुभ के लिए महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में कोॅथ्थुअक्ष होता है (भाम०, हेमचन्द्र, गउड०, हाल, रावण०, एर्त्से०) । —यौवन (§ ९०) के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश में जोॅव्वण मिलता है । —महाराष्ट्री में दौत्य के स्थान पर दोॅच्च होता है (हाल ८४) ।—दौर्बल्य के लिए महाराष्ट्री और शौरसेनी में दोॅव्वल होता है (गउड०, हाल, रावण०, शकु० ६३,१) । —जैनमहाराष्ट्री में प्रपौत्र के लिए पवोॅत्त होता है (आव०, एर्त्से० ८,३१) । —मौक्तिक शब्द के लिए महाराष्ट्री और शौरसेनी में मोॅत्तिअ तथा जैनमहाराष्ट्री में मोॅत्तिय काम में आता है (गउड०, हाल, रावण०, मृच्छ० ७०,२५, ७१,३, कर्पूर० ७३,५, ८२,८, विद्ध० १०८,२, एर्त्से०) ।—सौख्य शब्द के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी, शौरसेनी और अपभ्रंश में सोॅक्ख होता है (मार्क०, गउड०, हाल, रावण०, ओव०, कप्प०, एर्त्से०, और कक्कुक शिलालेख ९, पव० ३८१,१९ और २०,३८३,७५, ३८५,६९, कत्तिगे० ४०२, ३६१, ३६२ और ३६९, मालती० ८२, ३, उत्तर० १,२१, ४, हेमचन्द्र ४, ३३२, १) और मागधी में शोॅक्ख होता है (प्रबन्ध० २८, १५, ५६, १, ५८, १६) । – सौम्य शब्द महाराष्ट्री, जैनमहाराष्टी और शौरसेनी से सोॅम्म हो जाता है (गउड०, रावण०, कक्कुक शिलालेख ७, रत्ना० ३१७,३१, महावी० ६,८, उत्तर० ३१,२० , ६२,८, ७१,८, ९२, ८, अनर्घ० १४९,९, कंस० ९,२), इस रूप के साथ-साथ अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में सोम शब्द भी चलता है (नायाध०, कप्प०, एर्त्से०) । जैसा संस्कृत ऐ का प्राकृत में अइ हो जाता है वैसे ही अनेक शब्दों में औकार अउकार में परिणत हो जाता है । व्याकरणकारों ने ऐसे शब्दों को आकृतिगण पौरादि में संगृहीत किया है (वररुचि १,४२, हेमचन्द्र १,१६२, क्रम० १,४१, मार्क० पन्ना १३; प्राकृत० पेज ३८) । किन्तु जहाँ वे ऐकार

* शौरसेनी में यह कोत्हल पाया जाता है (कंसवहो) —अनु०

वाले बहुत से शब्दों में अउ के साथ-साथ ए लिखने की भी अनुमति देते हैं, यहाँ अउ के साथ साथ ओ वाले शब्दों की अनुमति बहुत थोड़ी दी गयी है। वररुचि के १,४१ पर टीका करते हुए भामह ने लिखा है कि कउसल के साथ साथ कोसल भी इच्छानुसार लिखा जा सकता है। हेमचन्द्र, क्रमदीश्वर, मार्कण्डेय और प्राकृतकल्पलता में केवल कउसल शब्द आया है। हेमचन्द्र १ १६१ और १६२ में कउच्छेअय के साथ-साथ कोच्छेअय दिया गया है। मार्कण्डेय पन्ना ११ में मउण के साथ-साथ मोण लिखने की अनुमति दी गयी है और हेमचन्द्र का भी यही मत है। मार्कण्डेय ने मउलि के साथ-साथ मोलि लिखने की भी आज्ञा दी है क्योंकि उसका आधार कर्पूरमञ्जरी ९ १ है जहाँ यह शब्द मिलता है। हेमचन्द्र और प्राकृतकल्पलता ने भी यही अनुमति दी है। मार्कण्डेय के मतानुसार कौरव और गौरव में शौरसेनी में अउ नहीं लगता और प्राकृतकल्पलता में बताया गया है कि शौरसेनी में पौर और कौरव में अउ नहीं लगाया जाता। भामह, हेमचन्द्र, क्रमदीश्वर, प्राकृतकल्पलता और मार्कण्डेय में बताया गया है कि पौर शब्द में प्राकृत में ओ नहीं बल्कि अउ लगाया जाता है और इन व्याकरणकारों के मत से कौरव में भी अउ लगना चाहिए। इस विषय पर चण्ड का भी यही मत है। चण्ड और क्रमदीश्वर को छोड़कर सब व्याकरणकार पौरुष में भी अउ लगाना उचित समझते हैं। हेमचन्द्र और चण्ड सौर और कौल के लिए भी यही नियम ठीक समझते हैं। हेमचन्द्र और प्राकृतकल्पलता गौड़ के लिए (अर्धमागधी अपभ्रंश रूप गोड) मार्कण्डेय और प्राकृतकल्पलता सौरित के लिए, हेमचन्द्र शौध के लिए, मार्कण्डेय क्षौर के लिए और प्राकृतकल्पलता मौखिर्य के लिए अउ का प्रयोग ठीक समझते हैं। महाराष्ट्री में कौल का (गउड) कउल और कोल होता है (कर्पूर २५,२; बालरा ११,२१ [पाठ में कौ है जो कउ होना चाहिए।])। —महाराष्ट्री में गउड (गउड) मिलता है किन्तु अर्धमागधी और अपभ्रंश में गोड़ आया है (पण्हा ४१ [पाठ में गौ है किन्तु इस विषय पर वेबर, फेर्त्साइशनिस २ २ ५१ देखिए]; पिंगल २, ११२ और ११८)। —महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में पौर के लिए पउर होता है (गउड कक्कुक शिलालेख १२ एर्त्सें आवस) किन्तु शौरसेनी में पोर होता है (शकु ११८ ११ मुद्रा ४२,१ [मूल पाठ में पौ छपा हुआ है]; १६१,१ मालती २८८ १ उत्तर २७ १ बाल १४९ २१ कालेय २५ ५)। मागधी में पौर का पोल हो जाता है (मृच्छ १६७ १ और २ [ग्रन्थ में पौ छपा है]) इसलिए मृच्छकटिक १६ ११ में पौला शब्द सुधार कर पोल पढ़ा जाना चाहिए। —भामह हेमचन्द्र मार्कण्डेय और प्राकृतकल्पलता के अनुसार पौरुष का पौरिस होना चाहिए किन्तु जैनमहाराष्ट्री म पोरिस आता है (एर्त्सें) और अर्धमागधी में पोरिसी मिलता है (आयार १ ८ १ ४ सम ७४; उवास कप्प) पोरिसीय भी मिलता है (सूय २८१) अपोरिसीय (विवाह ४८७ नायाध ११११) शब्द भी मिलता है। इस विषय पर § १२४ भी देखिए। —मौन शब्द के लिए हेमचन्द्र और मार्कण्डेय ने मउण रूप दिया है और शौरसेनी में भी यही रूप

मिलता है (विद्ध० ४६, ११), पर यह रूप अशुद्ध है, इस स्थान पर **मोण** रूप होना चाहिए, जैसा महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अर्धमागधी में होता है (मार्क०, हाल, आयार० १, २, ४, ४, १, २, ६, ३, सूय० १२०, १२३, ४९५ और ५०२, पण्हा० ४०३, एर्से०, ऋषभ०)।—**मौलि** शब्द के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री में **मउलि** होता है (गउड० कर्पूर० २, ५, सूय० ७३० और ७६६, ठाणग० ४८०, ओव० § ३३, कालका०) और महाराष्ट्री में **मोलि** होता है (कर्पूर० ६,९)। शौरसेनी में भी **मोलि** आता है (कर्पूर० ११२, ३, मल्लिका० १८३,५, प्रसन्न० ३३,६ [पाठ मे **मौ** है]), किन्तु **मउलि** भी मिलता है (विक्रमो० ७५, ११, मालती० २१८, १)। विक्रमोर्वशी के सन् १८८८ ई० मे छपे वम्बई-संस्करण १२२, १ और शकर परब पण्डित की इसी पुस्तक के १३१, ४ के तथा 'मालतीमाधव' की एक हस्तलिखित प्रति और मद्रास के सस्करण से **मोलि** मिलता है और सन् १८९२ ई० के बम्बई के सस्करण १६७, २ मे **मउलि** मिलता है। नियम के अनुसार इन दोनो स्थानों पर **मोलि** शब्द होना चाहिए।—हेमचन्द्र के अनुसार **शौध** के लिए प्राकृत मे **सउह** होना चाहिए, किन्तु शौरसेनी में **सोध** रूप पाया जाता है (मालती० २९२, ४)। इन सब उदाहरणो से यह पता चलता है कि बोली-बोली मे शब्दो के उलटफेर अधिक है, किन्तु व्याकरण-कारो मे इतना अधिक मतभेद नहीं है। शौरसेनी और मागधी के लिए शुद्ध रूप **ओ** वाला होना चाहिए। **गौरव** के लिए वररुचि १, ४३, हेमचन्द्र १, १६३, क्रमदीश्वर १,४२ में बताया गया है कि **गउरव** के साथ-साथ **गारव** भी चलता है और मार्कण्डेय पन्ना १३ के अनुसार इन रूपों के अतिरिक्त **गोरव** भी चलता है जो केवल शौरसेनी मे काम में लाया जा सकता है, जैनमहाराष्ट्री मे **गउरव** है (एर्से०), महाराष्ट्री और शौरसेनी में **गोरव** भी पाया जाता है (हाल, अद्भुत द० ५४, १०), महाराष्ट्री, अर्ध-मागधी और जैनमहाराष्ट्री में **गारव** भी पाया जाता है (गउड०, हाल, रावण०, दस० ६३५, ३८, पण्हा० ३०७, उत्तर० ९०२, एर्से०), जैनमहाराष्ट्री मे **गारविय** भी मिलता है (कक्कुक शिलालेख ६)। **गारव** शब्द पाली **गरु** और प्राकृत **गरुअ** और **गरुय** से सम्बन्ध रखता है जो सस्कृत शब्द **गुरुक** § १२३, **गरीयस** और **गरिष्ठ** से सम्बन्ध रखते है। **औ** से निकले हुए **ओ** के स्थान पर कहाँ **'उ'** हो जाता है, इस विषय पर § ८४ देखिए।

(आ) ह्रस्व स्वरों का दीर्घीकरण

§ ६२—**र** के साथ दूसरा व्यजन मिलने पर विशेषत **श ष** और **सकार** (उष्म वर्ण) मिलने से और **श ष** और **सकार** तथा **य र** और **व** (अतस्थ) मिलने से अथवा तीनों प्रकार के **सकार** (श, ष, स) आपस में मिलने से दीर्घ हो जाते हैं और उसके बाद सयुक्त व्यजन सरल बना दिये जाते हैं। यह दीर्घीकरण महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में शौरसेनी और मागधी से बहुत अधिक मिलता है। शौरसेनी और मागधी में ह्रस्व स्वर ज्यों-के-त्यों बने रहते है और व्यजन उनमें मिल जाते है। **र** के साथ मिले हुए व्यजन के उदाहरण 'पल्लवदान-पत्र' में **°कर्त्वानम्** के

लिए कातूणम्; पैशाची में कातूनम् और अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री में काऊणम् हैं (§ ५८५ और ५८६) 'विजयबुद्ध वर्मन्' के दानपत्र में कातूण मिलता है। जैनशौरसेनी में कादूण आया है (§ २१)। महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में काऊण रूप भी मिलता है जो सम्भवतः 'कर्त्वान से निकला है (§ ५८६) महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में काउं, शौरसेनी और मागधी में कादुं मिलता है जो कर्तुम् के रूप हैं (§ ५७४)। महाराष्ट्री में कायव्व, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में कायव्व जैनशौरसेनी शौरसेनी में कादव्व रूप मिलते हैं जो कर्तव्य शब्द के प्राकृत भेद हैं (§ ५७०)। संस्कृत गर्गरी (देशी २, ८९) के गायरी (जो °गागरी के समान है) और गग्गरी° रूप मिलते हैं।—महाराष्ट्री में दुर्भग के लिए दूहव रूप मिलता है (हेमचंद्र १ ११५ और १९२ कर्पूर ८६, २)। इस रूप की समानता के प्रभाव से शौरसेनी में सुभग का सूहव हो जाता है (हेमचंद्र १, ११३ और १९२ मल्लिका १२६, २)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में निर्यापयति का नीणेइ होता है (निरया § १७ उत्तर ५७८ एर्त्से) जैनमहाराष्ट्री में निर्यापयत का नीणेह हो जाता है (द्वारा ४९९ ५) निर्यापयमाण का नीणिज्जन्त और नीणिज्जमाण रूप हैं (आव एर्त्से २४, ४ २५, २४), निर्णाययति का नीणेहिइ होता है और निर्णीय का णीणेऊण होता है (एर्त्से), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में निर्णीत का णीणिय होता है (नायाध ५१६ एर्त्से)।—अपभ्रंश में सर्व का साव हो जाता है (हेमचंद्र ४ ४२, ५ सरस्वती १५८ २२)। —र के साथ अंतिम ध्वनि अथवा अनुस्वार या अनुनासिक व्यंजन से स्वर नियमित रूप से ह्रस्व ही रह जाता है और व्यंजन शब्द में मिल जाते हैं।—अर्धमागधी में परिमर्शिन् के लिए परिमासि रूप है (ठाणंग ३११)।—अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी में स्पर्श के लिए फास* शब्द है (हेमचंद्र २, ९२ आयार १, २, ३, २ १, ४ २ २ और ३, २ १ ५ ४ ५ १ ३, ३, २ सूय १७, १७२, २५७ और ३३७ पण्णव ८ १, ३६ अणुओग २६८ ओव कप्प एर्त्से पव ३८४, ४७)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री में वर्ष का वास होता है (हेमचंद्र १ ४३ हाल सूय १४८ विवाह ४२७, ४७ और १२४३ उत्तर ३७१ दस ६१२ ४२ सम १६६ उवास एर्त्से)। अर्धमागधी में वर्षति के लिए वासइ चलता है (दस नि ६४८ ७ और ११ तथा १४) वर्षिमुकाम के लिए वासिउकाम होता है (ठाणंग १५५) किन्तु शौरसेनी में वर्षर्तु के लिए वस्सारित्तु मिलता है (विद्ध ९९ १ [इसी ग्रन्थ में एक पाठ वासारित्तु भी है])। मागधी में वस्सवित्ति रूप मिलता है (मृच्छ ७९, १)।—सर्षप शब्द के लिए अर्धमागधी रूप सासव है (आयार २, १ ८, ३)।—अर्धमागधी में कहीं कहीं 'ष' के साथ संयुक्त व्यंजन से पहले ह्रस्व स्वर का रूप दीर्घ हो

---

* हिंदी में 'फास' और कुमाउनी में 'फासिए' रूप आज भी वर्तमान है। —अनु

† हिंदी फांस फांसी आदि से इसका संबंध है। ये शब्द स्पर्श-व्याख्य और फंस के ही विकार हैं। —अनु

जाता है, अर्धमागधी में **फल्गुन** शब्द **फागुण** हो जाता है (विवाह० १४२६), इसके साथ-साथ **फग्गुण** शब्द भी चलता है, **फग्गुमित्त** (कप्प०), **फग्गुणी** (उवास०) भी मिलते हैं। महाराष्ट्री में **फग्गु*** शब्द आया है (हाल), शौरसेनी में **उत्तरफग्गुणी** और **फग्गुण** रूप मिलते हैं (कर्पूर० १८, ६, २०, ६, धनजय० ११, ७)। अर्धमागधी में **वल्कल** के लिए **वागल** रूप है (नायाध० १२७५, निरया० ५४), **वल्क** के लिए **वाग** आता है (ओव० § ७४, [पाठ में वाक् है]), किन्तु महाराष्ट्री और शौरसेनी में **वक्कल** आता है (गउड०, शकु० १०, १२, २७, १०, विक्रमो० ८४, २०, अनर्घ० ५८, ११), महाराष्ट्रीमें **अपवल्कल** के लिए **अववक्कल** शब्द आया है (गउड०) तथा मागधी में **निरवल्कल** के लिए **णिव्वक्कल** मिलता है (मृच्छ० २२, ७)।

§ ६३—इस स्थान पर **श-ष-स**-कार और **य** के मेल से बने द्वित्व व्यञ्जन का प्राकृत में क्या रूप होता है उसके उदाहरण दिये जाते हैं, अर्धमागधी में **नश्यसि** का रूप **नाससि** होता है (उत्तर० ७१२), महाराष्ट्री मे **णासइ, णासन्ति** और **णासउ** रूप मिलते हैं (हाल, रावण०), जैनमहाराष्ट्री मे **नासइ** और **नासन्ति** रूप पाये जाते हैं (एर्त्से०), अर्धमागधी में **नस्सामि** रूप भी मिलता है (उत्तर० ७१३), अर्धमागधी मे **नस्सइ** (हेमचन्द्र ४, १७८ और २३०, आयार० १,२,३,५ [ऊपर लिखा **नासइ** देखिए]), **नस्समाण** (उवास०), **विणसइ** (आयार० १, २, ३, ५) रूप भी काम में आये हैं, जैनमहाराष्ट्री मे **नस्सामो, णस्स** हैं (एर्त्से०)। शौरसेनी में **णस्सदि** (शकु० ९५, ८) और मागधी में **विणश्शदु** (मृच्छ० ११८,१९) रूप मिलते हैं।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **पश्यति** का रूप **पासइ** चलता है (आयार० १,१,५,२, सूय० ९१, विवाह० १५६, २३१, २७४, २७५, २८४ और १३२५, विवाग० १३९, नन्दी० ३६३ और ३७१, राय० २१ और २४०, जीवा० ३३९ और उसके बाद, दस० ६४३, १३ आदि-आदि, एर्त्से०)। अर्धमागधी में एक वाक्य है, **पासियव्वं न पासइ, पासिउ कामे न पासइ, पासित्ता वि न पासइ** (पण्णव० ६६७)। इस प्राकृत मे **अणुपस्सिया** भी है (सूय० १२२), **पास** आया है (इस शब्द का अर्थ आँख है, देशी० ६,७५, त्रिविक्रम में जो बेत्सेनबर्गर्स बाइत्रैगे ६, १०४ में छपा है, ये रूप आते हैं)।—अर्धमागधी में **क्लिश्यन्ते** शब्द के लिए **कीसन्ति** (उत्तर० ५७६) रूप मिलता है, किन्तु जैनमहाराष्ट्री में **कीलिस्सइ** हो जाता है (एर्त्से०), शौरसेनी में **अदिकिलिस्सदि** रूप पाया जाता है (मालवि० ७, १७)।—**शिष्य** के लिए अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **सीस**† शब्द का प्रचलन है (हेमचन्द्र १, ४३, ४, २६५, पाइय० १०१, दस० नि० ६४५, १२ और १३, कप्प०, आव०, एर्त्से० ४०,८ और उसके बाद, ४१, ११, द्वारा० ४९९,१३, एर्त्से०)। **शिष्यक** के लिए **सीसग** रूप मिलता है (आव०, एर्त्से० ४०,२२, द्वारा० ४९८,१३), इस शब्द के साथ-साथ जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **सिस्स** रूप भी मिलता है

* यह रूप 'फागुन' और 'फाग' रूप में हिंदी में वर्तमान हैं।—अनु०

† यह **सीस** प्राचीन हिंदी कवियों ने धड़ल्ले से व्यवहृत किया है—अनु०।

(आव०; एर्त्से० ११, २१; प्रिय० १५, ५; हास्य० १८, ११; २७, १९; ३४, ३ और ६, १० मल्लिका १५६, २१ कालेय १८, ३ और ९; १९, ११; २४, १४; १६, ८ [इस स्थान पर अशुद्ध शब्द सीस आया है]); शौरसेनी में सुशिष्य के लिए सुसिस्स है (शकु० ७७, ११) और शिष्या के स्थान पर सिस्सा रूप आया है (मल्लिका २११, ८) इस शब्द के लिए अर्धमागधी में सिस्सणी का प्रयोग मिलता है (विवाह १४२ [पाठ में सिसिणी आया है] नायाध० १४९८; सम २४१)।—महाराष्ट्री में तूसइ (वररुचि ८, ४६ हेमचंद्र ४, २३६ ; क्रमदीश्वर ४, ६८ हाल) आया है। जैनशौरसेनी में तूसेदि (कत्तिगे ४ ,३९२), किन्तु शौरसेनी रूप तुस्सदि मिलता है (मार्कण्डेय ८,१) ।—मनुष्य के लिए अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में मणूस आया है (हेमचंद्र १, ४३ सूय० १८ । विवाह ७९, १४१,१६१ और ४२५ उत्तर १०५ पण्णव ७०६ दस नि० ६५१, ११ ओव भाव एर्त्से २६, १४ एर्त्से), अर्धमागधी में मणुसी० (पण्णव० ७ ६), किंतु साथ-साथ मणुस्स शब्द भी मिलता है (विवाह १६२ और ७१७ पण्णव १६७ उवास) यही शब्द जैनशौरसेनी में भी मिलता है (कत्तिगे ३९९, ३ ८) और महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में सदा मणुस्स† का प्रयोग होता है (चण्ड २, २६ पेज ४२ पाइय ६ हाल मृच्छ ४४ २ और ३; ७१, ९; ११७, १८ १३६, ७), मागधी में मणुश्श (मृच्छ ११, २४ १३, ४ १७ १७ १ , २१; १२०, २१ और १६४ ६)। मणुश्शक (मृच्छ १३१ १) और मणुश्शक (मृच्छ ११३ २१) मिलते हैं।—मागधी के सम्बन्धकारक में भी दीर्घीकरणका यही नियम लागू होता है। कामस्य के स्थान पर उसमें कभी कामाश रूप चलता होगा इस रूपका फिर कामाह हो गया इसी प्रकार चारित्रस्य का चालित्ताह हो गया और शरीरस्य शब्द का शलीलाह रूप चला। अपभ्रंश में भी कनकस्य शब्द का कणआह रूप बन गया और चण्डालस्य का चण्डालाह हो गया। बाद को आ ह्रस्व होकर अ बन गया इसके उदाहरण § २६४ ३१५ और ३६६ में देखिए और कस्य यस्य तथा तस्य का सम्बन्धकारक अपभ्रंश में कैसे कासु, जासु और तासु रूप हो गये उसके लिए § ४ ५ देखिए। अपभ्रंश में करिष्यामि का करिष्यम् (= करिष्यामि) और उससे करीसु तथा प्राप्स्यामि का प्राविष्यम्‡ और उससे पावीसु, प्रेक्षिष्ये का प्रेक्षिष्यामि और उससे प्रेक्खीहिमि सहिष्ये का सहीहिमि तथा करिष्यसि से करीहिसि बना इसके लिए § ३१५, ५२ , ५२०, ५३१ और ५३१ देखिए।

§ ६४—श ष और सकार में र मिले हुए द्वित्व व्यंजनवाले संस्कृत शब्दों से अनुस्यूत प्राकृत शब्दों के उदाहरण नीचे § में दिये जाते हैं महाराष्ट्री में श्मश्रु शब्द का

* यह रूप नेपाली शब्द मान्छे (= मनुष्य) में पाया जाता है। —अनु

† इसकी तुलना पाठक बँगला रूप मानुष से करें। —अनु

‡ इन प्राकृत रूपों का प्रभाव आज भी मारवाड़ी करस्यूं पास्यूं और गुजराती करसी जासी आदि भविष्यत्कालसूचक धातुओं के रूपों में स्पष्ट है।—अनु

सासू होता है (हाल) और शौरसेनी में **सासुए** होता है जो सम्भवतः किसी स्थान-विशेष में बोले जानेवाले संस्कृत रूप **श्वश्रुके** से निकला हुआ प्रतीत होता है (बाल० १५३, २०)।—संस्कृत शब्द **मिश्र** का महाराष्ट्री में **मीस** हो जाता है (हेमचंद्र १, ४३, २, १७०, हाल)। अर्धमागधी में **मिश्रजात** का **मीसजाय** होता है (ओव०), **मिश्रक** का **मीसय** होता है (ठाणंग० १२९ और उसके बाद, कप्प०), **मीसिज्जइ** (उवास०), **मीसिय** (कप्प०), **मीसालिय** भी अर्धमागधी में मिलते हैं, साथ ही हेमचन्द्र ४, २८ में **मिस्सइ** शब्द भी मिलता है, शौरसेनी में **मिस्स** (मृच्छ० ६९, १२, शकु० १८, ३), **मिश्रिका** के लिए **मिस्सिया**† (शकु० १४२, १०) और **मिस्सिद** (प्रबन्ध० २९, ८) मिलते हैं। मागधी मे **मिश्श** चलता है (मृच्छ० ११, ६, ११७, ८)।—अर्धमागधी में **विस्र** शब्द के लिए **वीस** आता है (सूय० ७५३)।—**विश्रामयति** के लिए महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री मे **वीसमइ** मिलता है और शौरसेनी में **विस्समीअदु** आया है (§ ४८९)।—**विस्रम्भ** के लिए महाराष्ट्री मे **वीसम्भ** होता है (हेमचद्र १,४३,हाल, रावण०) किन्तु शौरसेनी मे **विस्सम्भ** होता है (मृच्छ० ७४,८,शकु०१९,४,माल्ती० १०५,१ [A और D हस्तलिखित में यह पाठ है], २१०,७)।—शौरसेनी मे **उस्रा** शब्द का **ऊसा** हो जाता है (ललित० ५५५,१)।—**उच्छ्रपयत** शब्द का अर्धमागधी मे **ऊसवेह** होता है,**उच्छ्रपयत** शब्द सम्भवत. °**उत्श्रपयत** से निकला है (विवाह० ९५७), °**उच्छ्रपित** से **ऊसविय** हुआ है (ओव०, कप्प०), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **उच्छ्रत** शब्द का **ऊसिय** हो जाता है (सूय० ७७१ और ९५८ [पाठ मे दीर्घ **ऊ** के स्थान पर ह्रस्व **उ** लिखा गया है], पण्हा० २८७, नायाध० ४८१, उत्तर० ६६४, नन्दी० ६३ और ६८, ओव०; कप्प०, एर्त्से०), किन्तु अर्धमागधी मे **ऊसिय** के साथ साथ **उस्सिय** (सूय० ३०९) और **समुस्सिय** (सूय० २७५) तथा **उस्सविय** (आयार० २, १, ७, १) भी मिलते हैं, शौरसेनी में **उच्छ्रापयति** के लिए **उस्सावेदि** होता है (उत्तर० ६१, २)।—**श-ष-**और **स**—कार के साथ **व** मिले हुए द्वित्व व्यञ्जनवाले संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूपोंके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं, **अश्व** शब्द का प्राकृत रूप महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **आस** हो जाता है (भामह १, २, हेमचद्र १, ४३, रावण०, आयार० २, १, ५, ३, विवाह० ५०३, विवाग० ६१, उत्तर० १९५, २१७, ३३६, ५००, ५०१, नायाध० ७३१, ७८०, १२३३ १२६६, १३८८ और १४५६, पण्णव० ३६७, अणुओग० ५०७, निरया० , ओव०, आव० एर्त्से० ३५, १२ और १३, १६, २१ और २४, एर्त्से०, कालका०), इस शब्द के साथ-साथ **अस्स** भी चलता है (भामह १, २, आयार० २, १०, १२, २, ११, ११ और १२, २, १५, २०, सूय० १८२, उत्तर० ६१७, आव० एर्त्से० ११, १८ और उसके बाद), **अस्स** शब्द शौरसेनी में सदा ही चलता है (मृच्छ० ६९, १०, बाल० २३८, ८)।—संस्कृत **नि.**-

---

* हिंदी की एक बोली कुमाउनी में इन प्राकृत रूपों का आज भी प्रचलन है। मिसणें, मिसाल आदि रूप मराठी में चलते हैं। स्वयं हिंदी में इन रूपों का बाहुल्य है। —अनु०

† इससे **मिस्सा मिस्सी** शब्द बने हैं। हिंदी में इनका अर्थ है—अनेक दालों का मिलाकर बनाया हुआ आटा।—अनु०

श्वस्य के लिए महाराष्ट्री में नीससइ, अर्धमागधी में नीससन्ति और जैनमहाराष्ट्री में नीससिऊण० रूप मिलते हैं (एर्से)। शौरसेनी में णीससदि, मागधी में णीश शदु आता है। उत्श्वस् धातु के रूप प्राकृत में, महाराष्ट्री में ऊससइ, अर्धमागधी में ऊससन्ति और मागधी में ऊशशदु मिलते हैं।† श्वस् धातु के पहले नि, उद् और वि लगने से (§ ३२७ अ और ४९६) नाना रूप महाराष्ट्री में वीससइ अर्धमागधी में वीससे, शौरसेनी में वीससदि, अर्धमागधी में उस्ससइ, निस्ससइ मिलते हैं (§ ३२७ अ और ४९६)।—विश्वस्त शब्द का अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में वीसत्थ होता है (ओव कप्प० एर्से मृच्छ ९९, २४ १ , ४ १ ६ १ शकु ७ , ९ विक्रमो ८, ८ २१, ९ और ८७, १)।—अपभ्रंश में शाश्वत शब्द का साहु हो जाता है (हेमचन्द्र ४,३६६ और ४२२, २२) हेमचन्द्र ने शाश्वत शब्द का पर्याय सर्व लिखा है।—संस्कृत 'त्स' का प्राकृत में 'स्स' हो जाता है उत्सव शब्द का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में ऊसव और ऊसम हो जाता है। अधिक सम्भव यह लगता है कि पहले इन शब्दों का रूप उस्सव और °उस्सम रहा होगा (§ १२७ अ)।—उत्सुक शब्द का महाराष्ट्री में ऊसुअ, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में उस्सुय तथा शौरसेनी में उस्सुअ होता है (§ १२७ अ)। —विस्मृत शब्द का महाराष्ट्री में वीसरिअ, जैन शौरसेनी में वीसरिद और जैनमहाराष्ट्री में विस्सरियx होता है (§ ४७८)। निःशंक का महाराष्ट्री में णीसंक (गउड हाल), अर्धमागधी में नीसंक (आयार १ ५, ५ २) और अपभ्रंश में पद्यों में छन्द मात्रा ठीक बैठने के कारण णिसंक (हेमचन्द्र ४ ३९६, १ ४ १ २) और जैनमहाराष्ट्री में निस्संका रूप मिलते हैं (एर्से)।—निःसह के लिए महाराष्ट्री और शौरसेनी में णीसह आता है (हेमचन्द्र १ ४३ गउड हाल रावण उत्तर ९२ १) और णिस्सह रूप भी चलता है (हेमचन्द्र १ १३)।—दुस्सह के लिए महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री शौरसेनी और अपभ्रंश में दूसह रूप मिलता है (हेमचन्द्र १ १३ और ११५ क्रम २,१११ पाइय २१४ हाल रावण ; भाव एर्से १२ ३१ कर्पूर ८२, ७ मालती ७९ २ विक्रमो ६ १८) शौरसेनी में दुस्सहत्त्व का दूसहत्तण मिलता है (मालती ८१,२) और इसके साथ-साथ दुस्सह शब्द भी चलता है (हेमचन्द्र १ १३ और ११५ क्रमदीश्वर २ १११ प्रबन्ध ८४ १) तथा महाराष्ट्री में कविता में ह्रस्व रूप दुसह भी आता है (हेमचन्द्र १ ११५ गउड और हाल)। —तेजस्कर्मन् के लिए अर्धमागधी में तेयाकम्म मिलता है (ओव)। —मनःशिला के लिए मणसिला होता है

---

* निसासी‚ निसासको आदि रूप कुमाउनी में वर्तमान हैं, प्राचीन हिंदी में निसासन्मारो का अर्थ खास। नीसासी—जिसका श्वास न चलता हो।—अनु

† हिंदी में इसके वर्तमान रूप उसास और उसासी चलते हैं।—अनु

x इसका हिन्दी रूप बिसारना है। —अनु

‡ हिन्दी में 'निसंक' शब्द देखने में आता। ध्यान रखना चाहिए कि संस्कृत रूप 'निश्शंक' या 'निःशंक' है और तद्भव रूप 'निसंक' होना चाहिए। —अनु

(हेमचन्द्र १, २६ और ४३), इसके साथ-साथ **मणोसिला, मणसिला** (§ ३४७) और **मणसिला** भी चलते हैं (§ ७४)।

§ ६५—अन्य शब्दों के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि स्वरों का दीर्घाकरण अपवाद रूप से मिलता है और आंशिक रूप से यह स्थान-विशेष की बोलियों का प्रभाव है। **गव्यूत** शब्द का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **गाउय** हो जाता है (§ ८०)।—**जिह्वा** शब्द का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी मे **जीहा** होता है (वररुचि १, १७, हेमचन्द्र १, ९२, २, ५७, क्रम० १, १७, मार्क० पन्ना ७, पाइय० २५१, गउड०, हाल, रावण०, आयार० पेज १३७, ७ और ९, विवाह० ९४३, पण्णव० १०१, जीवा० ८८३, उत्तर० ९४३ [इस ग्रन्थमे **जीहा** के साथ-साथ **जिब्भा** रूप भी आया है, देखिए § ३३२], उवास०, ओव०, कप्प०, एर्त्से०, कालका०, कत्तिगे० ४०३,३८१, विक्रमो० १५, ३, १६,१२, १८,१०, कर्पूर० ६६, ५, वृषभ० २०, ९, चण्ड० १७, ३, मल्लिका० ९०, २३, कस० ७, १७), मागधी में **यीहा** मिलता है (मृच्छ० १६७, ३)।—**दक्षिण** शब्द का, जो सम्भवतः कहीं की बोली में °**दाखिण** रूप में बोला जाता होगा, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन-महाराष्ट्री और शौरसेनी मे **दाहिण** रूप होता है (हेमचन्द्र १, ४५, २, ७२, गउड०, हाल, रावण०, रत्ना० २९३, ३, आयार० १, ७, ६, २, २, १, २, ६, जीवा० ३४५, भग०, ओव०, कप्प०, एर्त्से०, मृच्छ० ९७, १५, ११७, १८, वेणी० ६१, ६, बाल० २४९, ७), अर्धमागधी में **दाहिणिल्ल** शब्द मिलता है (ठाणग० २६४ और उसके बाद, ३५८ , विवाग० १८०, पण्णव० १०२ और उसके बाद, विवाह० २१८, २८०, १२८८ और उसके बाद, ३३१ और उसके बाद और १८७४, नायाध० ३३३, ३३५, ८६७ और १३४९, जीवा० २२७ और उसके बाद तथा ३४५, राय० ७२ और ७३), अर्धमागधी में **आदक्षिण** और **प्रदक्षिण** के लिए **आयाहिण** और **पायाहिण** रूप मिलते हैं (सूय० १०१७, विवाह० १६१ और १६२, निरया० § ४ , उवास०, ओव०, [पाठ में **आदाहिण** है जो **आयाहिण** होना चाहिए]), **पायाहिण** (उत्तर० ३०२) में आया है , पल्लवदानपत्रमे **दखिण** शब्द आया है (६, २८), मागधी, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और आवन्ती में **दक्खिण*** रूप मिलता है (हेमचन्द्र १, ४५, २, ७२, गउड०, हाल, रावण०, प्रताप० २१५, १९, सूय० ५७४, एर्त्से०, मृच्छ०, ९, ९, १५५, ४, विक्रमो० २०, २, ३१, ५, ४५, २ और ७६, १७, बाल० २६४,४, २७८, १९, मृच्छ० ९९, १९), शौरसेनी में **दक्खिण** शब्द मिलता है (चण्ड० ३,१६), अर्धमागधी में **दाहिणिल्ल** के साथ-साथ **दक्खिणिल्ल** भी मिलता है (सम० १४४, नायाध० ८६६, ९२१, ९२९, ९३० और १३५०)।—पल्लवदानपत्र में **दुग्ध** के स्थान

---

* यह रूप हिंदी की कई बोलियों में इस समय भी वर्त्तमान है और अँगरेजों द्वारा सुना गया रूप भी यही रहा होगा क्योंकि उन्होंने **दक्खिन** का Deccan बनाया। यदि इस शब्द में क्ख या दक्षिण हिंदी (हिंदवी) (जिसका नाम उर्दू लिपि में लिखी जाने के कारण उर्दू बना दिया गया है) क्ख न रहता तो उक्त अँगरेजी रूप में दो 'c न होते, एक ही रखी जाती। —अनु०

जिससे **सेढि** बना (ठाणग० ४६६, ५४६ और ५८८, पण्हा० २७१ और २७२, सम० २२०, विवाह० ४१०, ४८१, ९११, १३०८, १६६९, १६७५, १८७० और १८७५, राय० ८९, ९० और २५८, जीवा० ३५१, ४५६, ७०७ और ७०९, अणुओग० २१८, २२१, २८५, ३८१ आदि आदि, पणव० ३९६, ३९८, ४०१, ७२७ और ८४७, नन्दी० १६५ और ३७१, उत्तर० ८२९, ८८२ और ८८७, ओव० एत्सें०), अधमागधी में **सेढीय** शब्द भी मिलता है (पणव० ८४६, ओव०), **अणुसेढि** (विवाह० १६८० और १८७७), **पसेढि** (राय० ४९, ९०) और **विसेढि** (विवाह० १६८०, १८७७, नन्दी० ३७३[१]) रूप भी पाये जाते है।—**स्वर्णकार** शब्द से **सुण्णार*** हुआ (हाल १९१) और उससे कभी **सोण्णार** बना होगा। इस शब्द से महाराष्ट्री **सोणार** बना।—**ऑक्खल** शब्द से (वररुचि १, २१, हेमचद्र १, १७१; क्रमदीश्वर १, २४) **ओहल** बन गया (हेमचद्र १, १७१ , मार्क० पन्ना ८) । अर्धमागधी मे **उक्खल** मिलता है (देशी० १, ३०, मार्क० पन्ना ९, पण्हा० ३८), अर्धमागधी में **उक्खलग** रूप भी आया है (सूय० २५०)।—यह **उक्खल**† **उदूखल** के समान है, मागधी में इसका रूप **उदूहल** भी है (आयार० २,१,७,१), महाराष्ट्री में **उऊहल** होना चाहिए (हेमचन्द्र १, १७१)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **क्षुब्ध** का दीर्घ होकर **छूढ**‡ हो जाता है (हेमचन्द्र २, १९, ९२ और १२७, हाल, रावण०, पण्हा० २०१, १०, ६४१, १५, उत्तर० ७५८, आव० एत्सें० १४, १८, १८, १३, २५, ४, ४१, ७, एर्त्से०) और महाराष्ट्री तथा अर्धमागधी मे उपसर्गवाला रूप **उच्छूढ** (हेमचन्द्र २, १२७, हाल, पण्हा० २६८, नायाध० § ४ और ४६, उवास०, ओव०) मिलता है। अर्धमागधी में **पर्युत्क्षुब्ध** के लिए **पलिउच्छूढ** शब्द आया है (ओव० पेज ३०, ३)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **विच्छूढ** मिलता है (विवाग० ८४ और १४३, नायाध० ८२५, ८३३, ११७४, १३१३ और १४११, पणव० ८२८ और ८३५, नन्दी० ३८०, पण्हा० १५१, आव० एर्त्से० १६, १ और २१, ५ [यह शब्द हस्तलिखित प्रतियो में इस रूप में ही पढा जाना चाहिए])। महाराष्ट्री में **परिच्छूढ** (देशी० ६, २५, रावण०) और **विच्छूढ** (पाइय० ८४, गउड०, रावण०) तथा **विच्छूढव्वा** (रावण०), **ऊढ, गूढ, मूढ** और **रूढ** के नियमों के अनुसार ही बने हैं, **क्षुभन्ति** शब्द के लिए (पण्हा० ५६ पाठ में **ब्भ** है) **'भ'** रह गया है, **छुभेज्ज** (दस० ६५२, २४), **छुभित्ता** (उत्तर० ४९९), **उच्छुभइ** (नायाध० ३२५), **उच्छुभ** (पण्हा० ५९, इसकी टीका भी देखिए), **निच्छुभइ**× (नायाध० १४११, विवाह० ११४, पणव० ८२७, ८३२ और ८३४), **निच्छुभन्ति** (नायाध० ५१६, विवाग० ८४),

* यह रूप हिंदी में सरलीकरण के कारण **सुनार** हो गया है।—अनु०

† हिंदी में सरल रूप 'ऊखल' है जिसमें अक्षरों की मात्राएँ समान रखने के लिए क्ख के ख हो जाने पर ह्रस्व उ, ऊ हो गया।—अनु०

‡ हिन्दी **चुलबुलाहट** इस **छूढ** से निकला जान पड़ता है। कुमाउनी में बेचैनी के लिए **चुबभुबाट** शब्द है। **चुलबुलाहट** का **चुल** उसका दूसरा रूप है। —अनु०

× प्राचीन हिंदी में इसके **निछोह** और **निछोही** रूप मिलते हैं।—अनु०

यालीस है और अर्धमागधी मे **अढयाल** भी मिलता है। अढसठ के लिए **अढसत्तिम्** (=६८) है। अपभ्रंश में **अठाईस** के लिए **अढाइस** है और **अढतालीस** के लिए **अढआलिस** भी है, **अट्ठारहवें** के लिए अर्धमागधी मे **अढारसम** है (§ ४४२ और ४४९)।—**स्रज्** धातु से निकले हुए **स्रष्ट** के सन्धि और समासो के रूप इस प्रकार हैं: अर्धमागधी में **उत्सृष्ट** के लिए **उसढ** चलता है (आयार० २, २, १७)। **उत्सृष्ट** शब्द का अर्थ है 'अलग कर देना' या 'अलग निकाल देना'। कहीं-कहीं इसका अर्थ 'चुना हुआ' या 'उत्तम' होता है (आयार० २, ४, २, ६ और १६, दस० ६२३, १३)। **निसृष्ट** के लिए अर्धमागधी मे **निसढ** का प्रयोग होता है (नायाध० १२७६)। **विसृष्ट** के लिए महाराष्ट्री मे **विसढ*** का प्रयोग है। इस विसृष्ट का अर्थ है 'किसी पदार्थ से अलग किया हुआ' (रावण० ६, ६६), दूसरा अर्थ है 'किसी पदार्थ का त्याग कर देना' (रावण० ११, ८९), तीसरा अर्थ है 'ऊबड-खाबड' अथवा जो समतल न हो (हेमचद्र १, २४१, पाइय० २०७), चौथा अर्थ है 'कामवासना से रहित' अर्थात् स्वस्थ (देशी० ७, ६२[1]), **समवसृष्ट** के लिए अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री मे **समोसढ** आता है। इस शब्द का अर्थ है 'जो मिला हो' और 'जो आया हुआ हो' (विवाह० २११, २५७ और ६२२, नायाध० ५५८, ५६७, ६१९, ६७१, ८७४, ९६७, १३३१, १४६६, १४५४ आदि आदि, विवाग १०३, निरया० ४१, ४३, ७४, दस० ६२८, २१, उवास०, ओव०, आव० एर्त्से० १६, २०, द्वारा० ४९७, २७[2])।

१ हेमचन्द्र इस शब्द की व्युत्पत्ति जब इसका अर्थ ऊबड़-खाबड़ होता है, विषम से बताता है। एस० गौल्डस्मित्त इसका अर्थ 'रावणवहो' में 'ढीला-ढाला' और 'थककर चूर करता है' बताता है और इसे स्पष्ट करने के लिए कहता है कि यह शब्द संस्कृत 'विश्लथ' के कहीं बोले जानेवाले रूप '°विश्रथ' से निकला है।—२ भारतीय संस्करणों में बहुधा 'समोसढ्ढ' मिलता है (विवाह० ५११, ५१४, ७८८, ९१२, ९३४, ९७१, ९७८, ९८८ आदि आदि, विवाग० १६०, २००, २१४ और २४८, नायाध० ९७३, ९८२, १०१८, १०२५ आदि आदि)। कहीं 'समोसड्ढ' भी मिलता है (राय० १२ और २३२) और कहीं 'समोसढ्ढ' मिलता है (राय० २३३)। § २३५ भी देखिए।

§ ६८—प्रत्यय **एव** शब्द के पहले **अम्** में जो 'अ' है उस पर जोर डालने के लिए अर्धमागधी में उसे बहुधा दीर्घ कर दिया जाता है और § ३४८ में बताये हुए नियम के अपवादस्वरूप **म्** बना रहता है। **एवामेव = एवाम् एव** (विवाह० १६२, उवास० § २१९), **खिप्पामेव = खिप्पाम् एव = क्षिप्रम् एव** (आयार० २, ६, २, ३, पेज १३०, १, विवाह० १०६, १५४, २४१, सम० १००, उवास०, निरया०, नायाध०, कप्प०), **जुत्तामेव = जुत्ताम् एव = युक्तम् एव** (विवाह० ५०३ और ७९०, उवास०, निरया०), **भोगामेव** (आयार० १,२,४,२), **पुव्वामेव = पूर्वम् एव** (आयार० २,१,२,४), **संजयाम् एव = संयतम् एव** (आयार० २, १,

* यह प्राकृत शब्द हिंदी 'बिछुड़ने' का आरंभिक रूप है।—अनु०

१, २ और ४ ५, २, ४ तथा ६ आदि आदि)। विशुद्ध प्राकृत अनुस्वार ( ) के पहले भी ऐसा ही होता है और अनुस्वार का म् बन जाता है, जैसे ताम् एव-जाणप्पवरम् = तदेव-यानप्रवरम् (उवास § २११)। गौण अनुस्वार के पहले भी यही नियम लगता है। यहाँ भी गौण अनुस्वार का हलन्त 'म्' हो जाता है, जैसे जेणाम् एव-याछम्पण्टे आसरहे, तेणाम् एव उवागच्छइ = येनैव चतुर्घण्टो-ऽश्वरथस् तेनैवोपागच्छति (नायाध १०१) जेणाम् एव सोहम्मे कप्पे तेणामेव उवागच्छइ (कप्प § २९)। इस दशा में § ८१ में दिये गये नियम के विरुद्ध आ ज्यों-का-त्यों रह जाता है। जाम् एवदिसम्पाउब्भूया ताम् एव दिसम् पडिगया = याम् एव दिशम् प्रादुर्भूताः ताम् एव दिशम् प्रतिगताः (विवाह १९ ; विवाग २८ [इसमें 'दिसिम्' शब्द लिखा है]) बहुधा स्त्रीलिंग—भूता, प्रादुर्भूता और प्रतिगता अर्थात् पाउब्भूया और पडिगया रूप मिलते हैं (विवाग ४ उवास § ६१, २११ और २४९ निरया० § ५ ओव § ५, ९ नायाध § ५) इस सम्बन्ध में सूय १ १२; ओव § ६ और ६१ कप्प § २८ ताम्एवपइसेज्जम् = ताम्एवपतिशय्याम् (ओव ७२ का उद्धरण भी देखिए)। अर्धमागधी में अवि शब्द के पहले भी इसी प्रकार स्वर दीर्घ हो जाता है किसाम् अवि = कथामपि (सूय १) तणामवि = तृणमपि (उत्तर २११)- अन्नयराम् अवि = अन्यतरम् अपि, अणुदिसाम् अवि = अणुदिशामपि (दस ६२९, १५ और १७)।

§ ६९—संस्कृत में पंचमी एकवचन में लगनेवाले चिह्न—तस् के पहले भी ह्रस्व स्वर दीर्घ कर दिये जाते हैं (प्राकृत में इस तस् के स्थान पर हि और हिन्तो हो जाता है)। ह और उ बहुवचन में व्यंजन में समाप्त होनेवाले प्रत्यय के पहले भी दीर्घ हो जाते हैं (§ ३६५; ३७९ ३८१)। तस् (प्राकृत—हि, हिन्तो) के पहले अ आने से यदि यह अ मूल संस्कृत में भी ह्रस्व हो और ऐसा शब्द हो जो क्रियाविशेषण के काम में आनेवाले शब्दों से निकला हो, उसमें अ ह्रस्व ही रह जाता है। अग्रतस् के स्थान पर अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में अग्गाओ (हेमचंद्र १, ३७ नायाध ११ ७ उवास ; कप्प एर्त्से)। शौरसेनी में अग्गादो (मृच्छ ४ १४ १५१ १८; ३२७ १ शकु १७ ७- १११ १ विक्रमो २५ १५ ३३ ४ ४१ ११ ४२ १८ रत्ना ३१७ १२ और १४)। मागधी में अग्गादो (मृच्छ ११९, ३ और ६ १२१, १ १२६ १४; १३२, ३; १३६, २१) रूप मिलते हैं।—अन्यतः का शौरसेनी मागधी और दाक्षिणात्या में अण्णदो (शकु १७ ४ मृच्छ २९, ११ ९६ २५; १ २, १८) आता है।—शुद्ध क्रियाविशेषण के रूप में काम में लाया गया अर्धमागधी रूप पिट्ठओ है (सूय १८ १८३, २ ४, २११ नायाध § ६५ पेज ११ ७ उत्तर २९ और ६९ उवास ओव)। इसी प्रकार का क्रियाविशेषण रूप जैन महाराष्ट्री में भी पिट्ठओ है (एर्त्से)। शौरसेनी और दाक्षिणात्या में यह रूप पिट्ठदो है (मालवि ३३, २; ५९, ३ ६९, ६ मल्लिका १४५ २१; मुद्रा

२५४,१, मृच्छ० १०५, २५)। इसका संस्कृत रूप **पृष्ठात्** है। शौरसेनी में **पुट्टदो** रूप भी पाया जाता है (रत्ना० ३१६, २२)। मागधी में यह रूप **पिस्टदो** है (मृच्छ० ९९, ८, १३०, १, वेणी० ३५, ५ और १०)।—अर्धमागधी **दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ = द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतो, गुणतः** (विवाह० २०३ और २०४ और १५७ [इस स्थान पर **गुणओ** नहीं है], ओव० § २८, कप्प० ११८), **दव्वओ, वण्णओ, गन्धओ, रसओ, फासओ०** (विवाह० २९), **सोयओ, घाणओ, फासओ = श्रोत्रतो, घ्रणतः,स्पर्शतः**। इसके साथ-साथ **चक्खुओ, जिब्भाओ, जीहाओ = चक्षुतः जिह्वातः** (आयार० २,१५,५,१ से ५ तक)।—शौरसेनी में **जन्मतः** का **जम्मदो** होता है (रत्ना०३१८,११), किन्तु शौरसेनी में **कारणतः** का सदा **कारणादो** और मागधी मे **कालणादो** होता है (मृच्छ० ३९, १४ और २२, ५५,१६,६०,२५,६१,२३,७४,१४,७८,३,१४७,१७ और १८ आदि आदि), मागधी के उदाहरण (मृच्छ० १३३, १, १४०, १४, १५८, २१, १६५, ७)। जैन-महाराष्ट्री में **दूराओ** (एर्त्से०), शौरसेनी में **दूरादो** (हेमचद्र ४, २७६), पैशाची में **तूरातो** होता है (हेमचद्र ४, ३२१), और मागधी में **दूलदो** होता है (मृच्छ० १२१, ११)। सर्वत्र **अ** का **आ** हो जाता है, किन्तु मागधी मे **अ** बना रहता है। **पश्चात्** शब्द का महाराष्ट्री में **पच्छओ** होता है (रावण०), साधारण रूप से **पच्छा** की ही भरमार है (गउड०, हाल, रावण०), किन्तु शौरसेनी में इसका रूप **पच्छादो** है (मृच्छ० ७१, २२)।—मृच्छकटिक ९, ९ में **दक्खिणादो, वामादो** शब्द मिलते है जो पचमी स्त्रीलिंग के रूप हैं। ये **छाआ = छाया** के विषय में आये हैं, किन्तु अन्य स्थानों पर शौरसेनी और मागधी में **वामदो** शब्द आया है (मृच्छ० १४, ८, १३, २५, १४, ७)। शुद्ध पचमी के रूप मे स्वरों की ह्रस्वता के विषय में § ९९ देखिए।

§ ७०—सधियुक्त शब्द में अन्तिम शब्द के पहले का ह्रस्व स्वर कभी-कभी दीर्घ हो जाता है। इसके अनुसार—**मय, °मइक** से पहले भी अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री में ऐसा होता है। अर्धमागधी में **रजतमय** का रूप **रययामय** हो जाता है (उवास०), **स्फटिकरत्नमय** का **फलिहरयणामय** हो जाता है (विवाह० २५३)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **सर्वरत्नमय** का **सव्वरयणामय** (विवाह० १३२२, १३२३ और १४४८, जीवा० ४८३, कप्प०, ओव० एर्त्से०) और **सव्वरयणामइ** रूप मिलते हैं (ठाणग० २६६)। अर्धमागधी मे **वज्रमय** के लिए **वइरामय** आता है (विवाह० १४४१, जीवा० ४९४, ५६३ और ८८३, सम० १०२ और १३२, राय० ६३, ६९, १०५, ओव०)। **अरिष्टमय** के लिए **रिट्ठामय** मिलता है (जीवा० ५४९, राय० १०५), **वैडूर्यमय** के लिए **वेरुलियामय** आया है (जीवा० ४९४, राय० १०५), **सर्वस्फाटिकमय** के लिए **सव्वफालियामय** लिखा गया है (पण्णव० ११५), **आकाशस्फटिकमय** के लिए **आगास-फालियामय** दिया गया हे (सम० ९७, ओव०)। जैनमहाराष्ट्री मे **रयणमय** के साथ-साथ (एर्त्से०) **रयणामय** मिलता हे (तीर्थ० ५, १२)। अर्धमागधी मे

नाणामणिमय (जीवा ४९४), **आहारमइय** (दस ६३१, ३४), **परमाणुचिचि-मइय** (दस नि० ६६१, ५) शब्द मिलते हैं। जैनशौरसेनी में **पुग्गलमइय**, **उवओगमय**, **पोग्गलदव्वमय** शब्द मिलते हैं जो *पुद्गलमयिक, उपयोगमय, पुद्गलद्रव्यमय के प्राकृत रूप हैं (पव ३८४, ६६ और ४९ तथा ५८)। **मणुइमय** (कत्तिगे ४ , ३१७); **वारिमई** तथा **वारीमई** (हेमचन्द्र १, ४) मिलते हैं। महाराष्ट्री में *स्नेहमयिक के लिए **णेहमइअ** शब्द आया है (हाल ४)। ५ से लेकर ८ तक संख्या शब्दों के साथ सन्धि होने पर भी इन संख्या शब्दों का अन्तिम स्वर दीर्घ हो जाता है, जैसे **पणा** छा **सत्ता** अट्ठा (§ ४४ और उसके बाद)। इसी प्रकार **अवणा** जो संस्कृत **अगुण** का प्राकृत रूप है, उसके अन्त में भी ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है और **अट्ठा** का जो **अर्द्ध** शब्द का प्राकृत रूप है, भी अन्तिम ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है (§ ४४ और ४५)। इसी प्रकार उपसर्गों का अन्तिम स्वर और विशेषकर उपसर्ग **प्र** का, क्योंकि इसकी मात्राएं स्थिर नहीं रहतीं जैसा कि **प्रदेश** है, जिसका दूसरा रूप **प्रादेश** (पुरुषोत्तम द्विरूपकोष २५) भी पाया जाता है, वहाँ इन उपसर्गों का अन्तिम स्वर दीर्घ हो जाता है। इस नियम से **प्रकट** शब्द महाराष्ट्री में **पअड** (गउड) तथा महाराष्ट्री और मागधी में **पाअड** हो जाता है (भामह १, २ हेमचंद्र १ ४४ क्रमदीश्वर १ १ मार्कण्डेय पन्ना ४ और ५ गउड हाल रावण कप्प १२५ २१ मृच्छ ४०, ९)। जैनमहाराष्ट्री में इसका **पयड** रूप मिलता है (एर्त्से काल्का)। अर्धमागधी में **पागड** देखा जाता है (ओव कप्प)। **प्रकटित** के लिए महाराष्ट्री में **पाअडिअ** (हाल) अर्धमागधी में इसका रूप **पागडिय** है (ओव)।—**प्रारोह** का महाराष्ट्री में **पारोह** होता है (हेमचंद्र १,४ गउड हाल रावण)। **प्रसुप्त** का महाराष्ट्री में **पसुत्त** और **पासुत्त** रूप होते हैं (भामह १ २ हेमचंद्र १ ४४ क्रम० १,१ मार्कण्डेय पन्ना ४,५ गउड हाल रावण) किन्तु शौरसेनी में केवल एक रूप **पसुत्त** मिलता है (मृच्छ ४४, १८;५ , २१)।—**प्रसिद्धि** के लिए महाराष्ट्री में **पसिद्धि** (गउड) और **पासिद्धि** (भामह १,२ हेमचंद्र १,४४; क्रमदीश्वर १,१ मार्कण्डेय ४,५) रूप मिलते हैं। **प्रवचन** के लिए अर्धमागधी में **पावयण** मिलता है (हेमचंद्र १ ४४ भग ; उवास ओव)। **प्रस्विद्यते** का महाराष्ट्री में **पसिज्जइ** होता है (हाल ७७१)। अर्धमागधी में **प्रस्रवण** शब्द का रूप **पासवण**● पाया जाता है (उवास)। यह शब्द § ६४ में भी आ सकता था पर इस स्थान पर ठीक बैठता है।—**अभिजित्** का अर्धमागधी में **अभीइ** होता है (कप्प) **व्यति-व्रजित्वा** का **वीईवइत्ता** (ओव § ६१) होता है इस प्राकृत में **वीईवयमाणे** शब्द भी मिलता है (उवास § ७९ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]; § १५१ भी देखिए)। कई स्थलों पर क्यों ह्रस्व स्वर दीर्घ किया जाता है उसका कारण यह है कि कविता में मात्रा न घटे, छन्द-दोष न आये, इसलिए स्वर लम्बा कर दिया जाता

● पाली में पस्सवण रूप है जिससे पाली पस्साव पेशाब के अर्थ में आता है। पेशाब फारसी शब्द है जिसके मूल में आर्यभाषा जेन्द है। दोनों शब्दों में साम्य देखकर ही जनता ने पेशाब शब्द अपना लिया है।—अनु

है, जैसा महाराष्ट्री में **दृष्टिपथे** के लिए **दिट्ठीपहम्मि** (हाल ४५६), **नाभि-कमल** के लिए **नाहीकमल, अरतिविलास** के लिए **अरईविलास** (गउड० १३ और १११) आया है। अर्धमागधी में **गिरीवर** दिया गया है (सूय० ११०), जैनमहाराष्ट्री में **वैडूर्यमणिमौल्य** के स्थान पर **वेरुळियमणीमोल्ल** लिखा हुआ है (एर्त्से० २९, २८) । **पतिघर** का **पईहर*** हो जाता है, साथ-साथ **पइहर** भी चलता है (हेमचद्र १, ४), शौरसेनी में **पदिघर** मिलता है (मालती० २४३, ४) । **वेणुवन** के लिए **वेलूवण** और **वेलुवण** दोनों चलते हैं (हेमचद्र १, ४) । **शकार** बोली में मृच्छकटिक के भीतर—**क** प्रत्यय के पहले कुछ शब्दों में कहीं-कहीं ह्रस्व स्वर दीर्घ कर दिये गये हैं, **चालुदत्ताके** (मृच्छ० १२७, २३, १२८, ६, १४९, २५), **चालु-दत्ताकम्** (१२७, २५, १६६, १८), **चालुदत्ताकेण** (१३३, १, १३७, १, १५१, २३), **वाशुदेवाकम्** (१२१, १६), **गुडक** के लिए **गुडाह** शब्द मिलता है (११६, २५), इस विषय पर § २०६ भी देखिए । **सपुत्रकम्** के स्थान पर **सपुत्ता-कम्** शब्द आया है (१६६, १८) ।—मागधी मे भी '**क**' प्रत्यय के पहले इसी प्रकार ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है। **मुहूर्तक** के लिए **मुहुत्ताग** शब्द मिलता है (आयार० १, ८, २, ६), **पिटक** के लिए **पित्ताग** (सूय० २०८), **क्षुद्रक** के लिए **खुड्डाग** और **खुड्डाय** आते हैं (विवाह० १८५१, ओव०, आयार० २, १, ४, ५, इस विषय पर § २९४ भी देखिए), और **अनादिक** के लिए अर्धमागधी में **अणादीय** और **अणाईय** रूप मिलते हैं (सूय० ८४ और ८६७, ठाणग० ४१ और १२९, पण्हा० ३०२, नायाध० ४६४ और ४७१, विवाह० ३९, ८४८ और ११२८), **अणादिय** (सूय० ७८७, उत्तर० ८४२, विवाह० १६०) और **अणाइय** भी पाये जाते हैं। जैनमहाराष्ट्री मे भी ये रूप आये है (एर्त्से० ३३, १७) । जैनशौरसेनी मे **आदीय** रूप आया है (कत्तिगे० ४०१, ३५३) । पल्लवदानपत्र मे **आदीक** रूप है (५, ४, ६, ३४) । इस सम्बन्ध मे वैदिक शब्द **जहक** और उसके स्थान पर अन्यत्र आये हुए शब्द **जहाक**† विचारणीय है (वेदिशे स्टुडियन १, ६३ और § ७३ तथा ९७ भी देखिए) ।

§ ७१—सम्बोधन एकवचन और सम्बोधक शब्दों के अन्तिम स्वर दीर्घ हो जाते है। इसे सस्कृत में **प्लुति** कहते है। **रे रे चप्फलया , रे रे निग्घणया , हे हरी , हे गुरू , हे पहू** में सभी अन्तिम स्वर दीर्घ कर दिये गये है (हेमचन्द्र ३,३८), अर्धमागधी मे **आणन्दा** (उवास० § ४४ और ८४), **कालासा** (विवाह० १३२), **गोयमा** (हेमचन्द्र ३, ३८, विवाह० ३४, १३११, १३१५ और १८१६, ओव० § ६६ और उसके वाद, उवास० आदि आदि), **कासवा** (हेमचन्द्र ३, ३८, विवाह०

---

* हिंदी **पीहर** इस दीर्घाकरण का फल है तथा मात्राओं का मान समान रखने के लिए भी दीर्घाकरण का उपयोग किया गया है ।—अनु०

† ऋग्वेद में ऐसे प्रयोगों का तांता बँधा है। **भूमि, बूमि, बूम** जगत् अथात् धरा के स्थान पर आये हैं, कहीं आत्मने है तो कहीं केवल त्मने है। इससे पता चलता है कि वैदिक कविता जनता की बोलियों में की गयी है। —अनु०।

१२१७ और उसके बाद) चमर, असुरेन्द्र, असुरराज मप्राम्र्यप्रार्थिक के लिए सम्बोधन में चमरा असुरिन्दा, असुररायाा और अप्पत्थियपत्थिया का व्यवहार हुआ है (विवाह २५४)। हन्ता मन्वियपुत्ता (विवाह २९८) पुत्र के स्थान पर पुत्ता (उवास० नायाध), हन्त के स्थान पर हन्ता (मग उवास ; ओव), सुमुही (नायाध० ९९७ ९९८ और १ ३), महरिसी (सूय १८२) महामुनि के स्थान पर महामुणी (सूय ४१९) जम्बू (उवास) ऐसे उदाहरण हैं। शौरसेनी में दास्याःपुत्र के स्थान पर दासीएउत्ता (मृच्छ ४ १ ८ ,११ और २१ ८१,१२ ८२,४ और १ ८,१६),कर्णेलीसुत राजश्याल संस्थानक उच्छृंखलक के स्थान पर अरे रे कणलीसुदा रामसाल-संठाणआ उस्सलक्खा हो गया है (मृच्छ १९१, १६)। मागधी में हन्जे, कुम्भिलक का रूप हन्जे कुम्भिलआ आया है(शकु ११३, २)। रामविष्णुदत्तक के स्थान पर छेअगम्भिलेदआ किया गया है (शकु ११५ ४), रे थर के लिए ले थला दिया गया है (ललित ५६६ १४ और १८) पुत्रक् हृदयक् के लिए पुत्तका हदक्का (मृच्छ ११४ १६) आये हैं। वररुचि ११ १३ के अनुसार मागधी में अ में समाप्त होनेवाले सभी संज्ञा शब्दों में अ के स्थान पर आ हो जाता है किन्तु मागधी के ग्रन्थ इस नियम की पुष्टि नहीं करते मागधी में भ्रातृकी के लिए भादू रूप मिलता है (मृच्छ ९, २४ १७, १; १२७, ७)- आवन्ती में अरे रे पवहणवाहआ रूप मिलता है (मृच्छ १ १७)- ढक्की में विप्रलम्भक के लिए विप्पलम्भआ का प्रयोग किया गया है। परिवेपितांगक के लिए पलिवेविदंगआ, स्नान क स्थान पर सावस्तआ कुर्वन् के स्थान पर कलेन्तआ का व्यवहार पाया जाता है (मृच्छ १ ९ और उसके बाद)। अपभ्रंश में भ्रमर के लिए भमरा (हेमचंद्र ४ ३८७, २) मित्र के लिए मित्तडा (हेमचंद्र ४ ४२२, १) हंस के लिए हंसा (विक्रमो ६१ २), हृदय के लिए हियडा (हेमचंद्र ४ ३५७,४ और ४२२ १२ और ४३ ४३९ १) का प्रयोग है। इस प्रकार के शब्दों में क्रिया के आज्ञाकारक रूप में अन्तिम अ का दीर्घ किया जाता है उसका उल्लेख भी यहाँ पर किया जाना चाहिए जैसा अर्धमागधी में कुरुत का जो कभी *कुर्वत रूप रहा होगा उसका कुव्वहा हो गया (आयार १,१ २ १) पश्यत का पासहा बन गया (आयार १, ६ ५ ५; सूय १४४ और १४८), संबुध्यध्वम् का संबुज्झहा बन गया (सूय ११५)। जैनमहाराष्ट्री में अन्तिम व्यंजन के लुप्त हो जाने के बाद अन्तिम ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है। संस्कृत धिक् शब्द का भी रूप मिलता है (हाल ९ १ ११)- शौरसेनी में हाधिक्, हाधिक् का हद्धी हद्धी हो जाता है (मृच्छ १२ ६; १६ ६ ५ २१ ११७, १ शकु २७, १; ६२,

---

* हिंदी में यह बधी का रूप अब संस्कृत के ... 'हद्धी' ... ध्यान ... हा ... रहता। यही रूप मनोरंजक ... र ... रे रे भी होता है। मागधी प्राकृत में र का ल होने ... है। हिंदी में ... वाली कुमाऊनी में ... का अर्थ अपमान भी है। उसकी ... का ... अर्थ है उसकी ... हो गयी। यह अर्थ ... और ... के लिए विचारणीय है। —अनु०

७२, ७, विक्रमो० २५, १४ और ७५, १० । इस विषय पर § ७५ भी देखिए)। अर्धमागधी में प्रति-ध्वनिवल्युक्त शब्द **णम्** से पहले **होउ** (= **भवतु**) का **उ** दीर्घ हो जाता है—**भवतु ननु** का **होऊ णम्** हो जाता है (नायाध० १०८४, १२२८ और १३५१, ओव० § १०५) ।

§ ७२—शब्द के अन्तिम वर्ण में जब विसर्ग रहता है तब विसर्ग के लुप्त होने पर **इः** और **उः** का प्राकृत रूप **ई** और **ऊ** हो जाता है । यह रूप पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के कर्त्ता एकवचन के शब्दों का होता है । महाराष्ट्री में **अग्निः** का **अग्गी** रूप है (हाल १६३), अर्धमागधी में **अगणी** (सूय० २७३, २८१, २९१) । मागधी में **रोषाग्नि** का प्राकृत रूप **लोशग्गि** पाया जाता है (मृच्छ० १२३, २) । महाराष्ट्री और अर्धमागधी में **असिः** का **असी** बन जाता है (गउड० २३९, सूय० ५९३) । मागधी में **अशी** मिलता है (मृच्छ० १२, १७) । जैनमहाराष्ट्री में °**सखिः** का **सही** रूप मिलता है । यह °**सखिः** = संस्कृत **सखा** (कक्कुक शिलालेख १४) । शौरसेनी में **प्रीतिः** का **पीदी** रूप है (मृच्छ० २४, ४) । महाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में **दृष्टिः** का **दिट्ठी** पाया जाता है (हाल १५, पव० ३८८, ५, मृच्छ० ५७,१०) । दाक्षिणात्या में **सेनापतिः** का **सेणावई** चलता है (मृच्छ० १०१, २१) । महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में **तरुः** का **तरू** होता है (हेमचन्द्र ३, १९, हाल ९१३, एर्त्से ४, २९) । अर्धमागधी और शौरसेनी में **भिक्षुः** का **भिक्खू** रूप है (आयार० १, २, ५, ३, मृच्छ० ७८, १३) । जैनमहाराष्ट्री में **गुरुः** का **गुरू** रूप पाया जाता है (कक्कुक शिलालेख १४), **बिन्दुः** का **बिंदू** (आव० एर्त्से० १५, १८) । जैनमहाराष्ट्री और दाक्षिणात्या में **विष्णुः** का **विण्हू** होता है (आव० एर्त्से० ३६, ४१, मृच्छ० १०५, २१) । हेमचन्द्र के सूत्र ३, १९ के अनुसार कई व्याकरणकार इस दीर्घ के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग बताते हैं, जैसे **अग्गिं, निहिं, वाउं, विहुं** । **-भिः** में समाप्त होनेवाले तृतीया बहुवचन और इसके साथ ही, अपभ्रंश को छोड़ और सब प्राकृत भाषाओं में इसके समान ही **-भ्यः** में समाप्त होनेवाले पंचमी बहुवचन में विसर्ग लुप्त होने पर मात्रायें दीर्घ नहीं होतीं वरन् ह्रस्व मात्रा के साथ यह अनुस्वार हो जाता है **-हि, -हिं, -हिँ** (§ १७८) । अपभ्रंश में पंचमी में **हु, हुं** और **हुँ** होता है (§ ३६८, ३६९, ३८१, ३८७ आदि-आदि) । शौरसेनी और मागधी में केवल **हिं** का प्रयोग है ।

§ ७३—छन्दों में केवल यतिभंग-दोष बचाने के लिए भी ह्रस्व स्वर और मात्रायें दीर्घ कर दी जाती हैं । ये स्वर भले ही शब्द के बीच में या अन्त में हों । ऐसा विशेष कर अर्धमागधी और अपभ्रंश में होता है । महाराष्ट्री में **अश्रु** का **अंसू** हो जाता है (हाल १५३) । अर्धमागधी में **धृतमतः** का **धीमओ** प्रयोग मिलता है (आयार० २, १६, ८), **मतिमान्** का **मईयं** (सूय० ३९७), **मतिमता** का **मईमया** (आयार० १, ८, २, १६, सूय० ३७३), °**अमतिमत्कः** का **अमईमया** (सूय० २१३), **प्रांजलिकः** का **पंजलीओ** (दस० ६३४, २३), **जातिजरामरणैः** का **जाईजरामरणेहिं** (सूय० १, ५६), **प्रव्रजित**, का **पव्वईए** (सूय० ४९५), **महर्धिकाः** का

महिड्डीया (आयार० २ १५, १८, ४)· शोणितम् का **शोणीयं** (आयार १ ७, ८, ९) और **साधिका** का **साहिया** (ओव § १७४) होता है। मागधी में **ग्रसम्** का **ग्रीसे** होता है (मृच्छ २१, १९)। आधे या पूरे श्लोक के अंत में आनेवाली इ का बहुधा ई हो जाता है और यह विशेषकर क्रियापदों में। अर्धमागधी में **सहते** का **सहई** रूप मिलता है (आयार १, २, ६, १)· स्मरति का **सरई** (सूय १७२ उत्तर २७७)· **कुर्वति** = करोति का **कुव्वई** (दस ६२१ ११); **भाषते** का **भासई** (सूय० १ १) म्रियते का **मरई** मरति रूप बन गया होगा उससे **मरई** हो गया (उत्तर २ ७); **क्रियते** का **किच्चई** (सूय १ १) **बध्यते** का **बज्झई** (उत्तर ४४५) **करिष्यसि** का **करिस्सई** (दस ६२७, २४) **आजग्मि** और **अनुमवन्ति** के **आयाणी** और **अणुहोन्ती** (ओव § १७९ और १८८) **अस्पेहि** का **अम्पेही** (सूय १८८) हो जाता है। अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री में **भुनक्ति** का **भुजई** (सूय १११; आव एर्त्से ८, ४ और २४)। मागधी में **अपवस्नाति** का **ओवग्गावी** (मृच्छ १ , ५) होता है। इसके अतिरिक्त अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में संस्कृत–य– का, जिसका अर्थ हिन्दी में 'कर' या 'करके' होता है, उसके स्थान पर प्राकृत शब्दों के अन्त में आनेवाला –अ–भी दीर्घ हो जाता है। संस्कृत शब्द **प्रतिलेख्य** के लिए अर्धमागधी में **पडिलेहिया** आता है **ज्ञात्वा** के लिए *मुणिया* *सम्प्रेक्ष्य के लिए* **सपेहिया** *और* *विधूय के लिए* **विहूणिया** (आयार १ ७ ८ ७ और ११ तथा २१ और २४) रूप हैं। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में °**पश्य** के लिए **पासिया** शब्द प्रयोग में लाया जाता है (उत्तर ३६१; एर्त्से १८, १५)। **विहाय** के लिए अर्धमागधी में **वियाजिया** है (दस ६३७ ५ ६४२ १२ आदि आदि)। इस सम्बन्ध में § ५९ और ५९१ भी देखिए। अन्य कई अवसरों पर शब्दों का अन्तिम स्वर दीर्घ हो जाता है जैसे **जगति** शब्द अर्धमागधी में **जगई** हो जाता है (सूय १ ४) और **केचित्** का **कई** हो जाता है (ओव ९१ २); **कदाचित्** शब्द का जैनमहाराष्ट्री में **कयाई** रूप पाया जाता है (आव एर्त्से ८, ७ १७ १७)।

§ ७४—संयुक्त व्यञ्जन के सरल करने पर अर्थात् जहाँ दो संयुक्त व्यञ्जन मिले हों उनमें से संयुक्त व्यञ्जन को जहाँ केवल एक-एक व्यञ्जन का रूप दे दिया *जाता हो वहाँ स्वर को दीर्घ करने के स्थान पर ह्रस्व और अनुनासिक स्वर अर्थात्* यह स्वर जो नाक से बोला जाता है आ जाता है। ऐसे स्थलों पर ये नियम लागू होते हैं जिनका उल्लेख § ६२ से ६५ तक में किया गया है। व्याकरणकारों के मत से (वररुचि ४ १५; हेमचन्द्र १ २६; मार्कण्डेय पन्ना १४ प्राकृतकल्पलतिका पेज १) ऐसे शब्द **वक्रादिगण** में शामिल किये गये हैं। क्रमदीश्वर २ १२२ में **वक्रादि** के स्थान पर **अश्वादिगण** दिया गया है। **कर्कोट** शब्द के लिए हेमचन्द्र ने **कंकोड** शब्द दिया है। महाराष्ट्री में **कंकोल** शब्द आता है (प्राकृतमनोरमा १२१ २ [पाठ में **ल** के स्थान पर **ळ** दिया गया है]) और महाराष्ट्री तथा अर्धमागधी में **कंकाल** भी आता है (गउड ५८२; पण्हा ५२७

[पाठ में 'ळ' के स्थान पर ल है], इस सम्बन्ध में § २३८ भी देखिए)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी, शौरसेनी और अपभ्रंश में **दर्शन** शब्द के लिए **दंसण** का व्यवहार है (भामह, हेमचन्द्र, क्रमदीश्वर, मार्कण्डेय, प्राकृतकल्प०, गउड०, हाल, रावण०, सूय० ३१२ और ३१४, भग०, नायाध०, उवास०, कप्प०, आदि आदि, एर्त्से०, कालका०, ऋषभ०, पत्र० ३७१, २, ३८०, ६, ३८७, १३, ३८९, ९ और ४, कत्तिगे० ४००, ३२८ और ३२९, ललित० ५५४, ७ और ८, मृच्छ० २३, १४ और २१, २९, ११, ९७, १५, १६९, १८, शकु० ५०, १, ७३, ९, ८४, १३, विक्रमो० १६, १५, १९, ३ आदि आदि, हेमचद्र ४, ४०१, १),मागधी में **दंशण** होता है (मृच्छ० २१, ९, ३७, १०, प्रबन्ध० ५२, ६, ५८, १६), इसी प्रकार **दर्शिन** का **दंसि** (विक्रमो० ८,११), **दंसइ, दसेइ** (§ ५५४) आदि हो जाता है। महाराष्ट्री और शौरसेनी में **स्पर्श** का **फस** हो जाता है (भामह, क्रमदीश्वर, मार्कण्डेय, प्राकृतकल्प०, गउड०, हाल, रावण०, विक्रमो० ५१,२, मालती० ५१७,५, २६२, ३, उत्तर० ९२,९, ९३, ७, १२५, ७, १६३, ४, विद्ध० ७०, १०, बाल० २०२, ९)। शौरसेनी में **परिफस** भी आया है (बाल० २०२, १६), मागधी में **स्फंश** मिलता है (प्रबन्ध० ५७, ८) और **फसइ** भी (हेमचन्द्र ४, १८२)।—**पर्शु** के लिए **पंसु** शब्द मिलता है (हेमचन्द्र)।—महाराष्ट्री में **निघर्षण** के लिए **णिहंसण** (गउड०, रावण०) और **निघर्ष** के लिए **णिहंस** शब्द आया है (गउड०)।—अपभ्रंश में **वर्हिन्** के लिए **वंहिण** शब्द मिलता है (विक्रमो० ५८, ८)।—मार्कण्डेय ने किसी व्यञ्जन से पहले आये हुए ल के लिए भी अनुस्वार का प्रयोग किया है। उसने **शुल्क** के स्थान पर **सुंक** शब्द दिया है। अर्धमागधी में **उस्सुंक** शब्द मिलता है (कप्प० § १०२ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] और २०९, नायाध० § ११२, पेज १३८८ [यहाँ भी यही पाठ पढा जाना चाहिए])। विवागसूय २३० में **सुंक** शब्द आया है। **श + -ष** और **स + -य** के स्थान पर भी अनुस्वार आता है, अर्धमागधी में **नमस्यति** के लिए **नमंसइ** का प्रयोग हुआ है (आयार० २, १५, १९, नायाध० § ७, पेज २९२, उवास०, भग०, कप्प०, ओव० § २०, ३८ और ५० आदि-आदि की भी तुलना कीजिए)।—जैनमहाराष्ट्री में °**नमस्यित्वा** के लिए **नमंसित्ता** (पव० ३८६, ६) पाया जाता है।—जैनमहाराष्ट्री में **निवसत**, जिसका कभी वर्तमान काल का रूप °**निवस्यत** बोला जाता होगा, **नियंसह** हो गया (एर्त्से० ५९, ३०) और इसका अर्धमागधी रूप **नियंसेइ** होता है (जीवा० ६११), कहीं-कहीं **नियंसेह** भी आता है (विवाह० १२६२), **नियंसित्ता** (जीवा० ६११), **नियंसावेइ** (आयार० २, १५, २०) और वर्तमान काल के रूप से निकला हुआ स्वर-भक्तिवाला रूप **निअंसण** भी महाराष्ट्री में मिलता है (हाल)। **विनिअंसण** भी काम में आया है (हाल), अर्धमागधी में **नियंसण** भी पाया जाता है (पण्णव० १११ [टीका में दिया हुआ यही रूप पढा जाना चाहिए], राय० ८७, ओव० § ३५), **विअंसण** (मार्क०), **पडिणिअंसण*** = रात के कपड़े,

---

* पाली में **पटिनिवासन** का अर्थ कपड़ा है। वहाँ पटि = प्रति है। देशी प्रयोग में अर्थ बदल जाता है। —अनु०

(देशी० ६, ३६)।—महाराष्ट्री में वयस्य का वअंस हो जाता है (हेमचंद्र मार्क० प्राकृत०)। वयस्यी का वअंसी भी मिलता है (कर्पूर ४६,८)। जैनमहाराष्ट्री में वयंस (एर्त्से)है।—अपभ्रंश में वयस्यिकाभ्यः का वअंसिअहु होता है (हेमचंद्र ४,३५१)। महाराष्ट्री में वअस्स शब्द भी आया है (हाल) और शौरसेनी में तो सदा यही शब्द चलता है (मृच्छ० ७, ३ और १४ तथा १९ शकु० २९, ३ ३ , ६ विक्रमो १६, ११ १८, ८)।—श + –, ष + – और स – कार + र के स्थान पर भी अनुस्वार हो जाता है; महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश में अश्रु का अंसु हो जाता है (भामह; हेमचंद्र क्रम० मार्क० प्राकृतक० गउड० हाल रावण० कर्पूर० ८४, २ एर्त्से द्वारा० ५ १, ३२ पिंगल १, ६१ (अ)), किन्तु शौरसेनी में अस्सु होता है (वेणी ६६, ७ सुभद्रा १७ ३ मुकुन्द १५, १ और इसी प्रकार विक्रमोर्वशी ८३, १२ [पंडित द्वारा सम्पादित बम्बइया संस्करण १५ , १२ पिशल द्वारा सम्पादित ६६३, १ में अंसु के स्थान पर अस्सु पढ़ा जाना चाहिए]; मुद्रा २६ , ३; विद्ध ७९ ६ ८ , २)।—अर्धमागधी में श्मश्रु के स्थान पर मंसु होता है (भामह; हेमचंद्र क्रम ; मार्क पाइय ११२ आयार १, ८, ३ ११ २, ८, ५; पण्हा ३५१ मग ओव) णिश्मश्रु के लिए णिम्मंसु आता है (अणुत्तर १२ [पाठ में सु के स्थान पर स है]) जैनशौरसेनी में श्मश्रुक के लिए मंसुग आता है (पव ३८६, ४)। इस सम्बन्ध में § ३१२ भी देखिए।—महाराष्ट्री और अर्धमागधी में त्र्यस्र का तंस होता है (भामह हेमचंद्र मार्क कर्पूर ३७ ७ ४ , ३ आयार १ ५ ६, ४; सूय ५९ ठाणंग ४९५ और ४९३)। अर्धमागधी में चतुरस्र का चउरंस (आयार १, ५ ६ ४; सूय ५९ ठाणंग २ और ४९३; उवास ओव), षडस्र का छलंस (ठाणंग ४९३) मिलता है षडस्रिक, अष्टास्र के लिए छलंसिय और अट्ठंस शब्द काम में आये हैं (सूय ५९)।— श– ष– स–कार में संस्कृत में जब य लगता है तब प्राकृत में वहाँ भी अनुस्वार हो जाता है अश्व का अंस हो जाता है (भामह) और अर्धमागधी में अश्वत्थ का अंसोत्थ आता है (विवाह १५३) कहीं-कहीं असोत्थ भी मिलता है (ठाणंग ५५५) आसोत्थ भी पाया जाता है (आयार २ १, ८, ७ पण्णव ३१) और आसत्थ (सम २३३) भी है।—महाराष्ट्रीमें मनस्विन् के लिए मणंसि आता है (हेमचन्द्र मार्क ; हाल)। मनस्विनी के लिए मणंसिणी प्रयोगमें आता है (भामह क्रम प्राकृतक) और महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में माणंसिणी रूप भी आया है (हेमचन्द्र हाल शकु १४२ ३ २४९, ४) इसी प्रकार संस्कृतके जो विशेषण शब्द—विन्—में समाप्त होते हैं उनमें भी अर्धमागधीमें अनुस्वार आता है, जैसे ओजस्विन् का ओयंसि हो जाता है (आयार २, ४, २ २; नायाध ओव); यशस्विन् का जसंसि तेजस्विन् का तेयंसि और तेअंसि होता है (आयार २ ४ २, २ नायाध) वर्चस्विन् का वच्चंसि हो जाता है (नायाध ओव)।—ह्रस्व का हंस हो जाता है (भामह; इस ग्रन्थका § ३५४ भी देखिए)।—जहाँ श–, ष– स–कार आता है वहाँ भी अनुस्वार आ

जाता है, **मनःशिला** का **मणंसिला** होता है, किन्तु इसके साथ **मणासिला, मणोसिला** और **मणसिला** रूप भी मिलते है (§ ६४ और ३४७)। अर्धमागधीमें ध्वनिका यह नियम कुछ अन्य शब्दोंपर भी लागू होता है जब सयुक्त अक्षरोंमेंसे एक **श-, ष-, स**-कार हो। इस प्रकार **शष्कुलि** शब्द में **ष्क** होने के कारण इसका रूप **संकुलि** हो जाता है (आयार० २, १, ४, ५, पण्हा० ४९०), साथ-साथ **सक्कुलि** रूप भी चलता है (ठाणग० २५९ [टीका में **संकुली** शब्द आया है], दस० ६२१, २), **पाणौ** शब्दका किसी समय भूलसे °**पाणिष्मिन्** रूप हो गया होगा उसका **पाणिंसि** हो गया, यह **स्+म** का प्रभाव है। **लेष्टौ** शब्द का कभी कही °**लेष्टुष्मिन्** हो गया होगा, उसका अर्धमागधी में **लेलुंसि** हो गया (§ ३१२ और ३७९) और **अस्मि** का **अंसि** हो जाता है (§ ३१३ और ४९८)। उक्त दोनों शब्दों में अनुस्वार आया है वह **स्+म** का प्रभाव है। सर्वनामों के सप्तमी एकवचन और सर्वनामों की नकल मे बने हुए सज्ञा शब्दों की सप्तमी मे भी अनुस्वार आ जाता है, जैसे **कस्मिन्, यस्मिन्, तस्मिन्** के अर्धमागधी रूप **कसि, जंसि, तसि** हो जाते हैं, **लोके** शब्द का **लोगंसि** हो जाता है। **तादृश** और **वासघरे** का **तारिसगंसि** और **वासघरंसि** हो जाता है (§ ३१३, ३६६ (अ) और ४२५ तथा उसके बाद), **क्+ष (क्ष)** आने पर भी अनुस्वार आ जाता है। **प्लक्ष्य** का **पिलंखु** हो जाता है (आयार० २, १, ८, ७), इसके स्थान पर कई जगहों में **पिलक्खु** मिलता है (विवाह० ६०९, १५३०), **पिलुक्ख** (पण्णव० ३१), **पिलुंक** (सम० २३३) रूप भी देखे जाते हैं, आयारगसुत्त में **पिलक्खु** है। **पक्ष** के स्थान पर **पंख** शब्द भी आया है (उत्तर० ४३९), **पक्षिन्** का **पंखि** (राय० २३५), **पक्षिणी** का **पंखिणी** (उत्तर० ४४५) हो जाता है। **त्+स् (त्स)** अक्षर आने पर भी अनुस्वार हो जाता है। **जिघत्सा** शब्द के लिए **दिगिंछा** होता है (उत्तर० ४८ और ५० [टीका में **दिगंछा** शब्द दिया गया है])। **विचिकित्सा, विचिकित्सती** और **विचिकित्सित** के लिए **वितिगिंछा** (आयार० १, ३, ३, १, १, ५, ५, २), **वितिगिंछइ** (सूय० ७२७) और **वितिगिञ्छिय** (विवाह० १५०) रूप मिलते हैं (§ २१५ और ५५५)। **प्+स (प्स)** सयुक्त अक्षर किसी शब्द में आने से भी अनुस्वार आ जाता है। **जुगुप्सा** के लिए **दुगंच्छा** शब्द आता है (ठाणग १५१, विवाह० ११०, उत्तर० ९६०), **दुगुंछा** भी मिलता है (पण्हा० ५३७), **दुगुछण** भी व्यवहार मे आया है (आयार० १,१,७,१, उत्तर० ६२८ [इसमें **दुगंछा** छपा है]), **जुगुप्सिन्** के लिए **दोगंछि** का प्रयोग मिलता है (उत्तर० ५१ और २१९ [यहाँ **दोगुछि** छपा है]), **दुगंछणिज्ज** भी मिलता है (उत्तर० ४१०), जैनमहाराष्ट्री मे **दुगंछा** शब्द भी है (पाइय० २४५, एर्त्से०), अर्धमागधी मे **दुगुछइ, दुउंछइ, दुगंछमाण** और **दुगुछमाण** (§ २१५ और २५५) रूप भी आये हैं। **प्रतिजुगुप्सिन्** के लिए **पडिदुगुंछि** मिलता है (सूय० १३३)। **ष्+ट (ष्ट)** सयुक्त स्वर आने पर भी अनुस्वार आ जाता है। **गृष्टि** शब्द के लिए **गंठि** (मार्क०), **गिंठि** (हेमचन्द्र) और **गुंठि** (भामह) मिलते है। किन्तु शौरसेनी मे **गिट्ठि** शब्द आया

है (मृच्छ ४४, १), हेमचन्द्र ने भी यही बताया है। ऐसे स्थल जहाँ अनुस्वार या हो गया है किन्तु न तो र व्यञ्जन और न श-ष सकार ही उन शब्दों में आते हैं, वे यहाँ दिये जाते हैं। संस्कृत शब्द गुच्छ का हेमचन्द्र के मतानुसार गुंछ हो जाता है, किन्तु शौरसेनी में गुच्छ शब्द का ही प्रयोग है (रत्ना ११८)। —महाराष्ट्री में पुच्छ शब्द का पिच्छ होकर पिंछ हो जाता है (गउड रावण), महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी में पिच्छ शब्द भी काम में आता है (कर्पूर ४६, १२ आयार १, १, ६, ५; अणुओग ५ ७ उवास विक्रमो १२, ७)। पुच्छ शब्द का हेमचंद्र तथा मार्कण्डेय के अनुसार पुंछ * भी हो जाता है, किन्तु अर्धमागधी में पुच्छ ही काम में आता है (आयार १, १, ६, ५)· मागधी में पुश्च हो जाता है (मृच्छ १ , ४)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में सनत् कुमार का सणंकुमार हो जाता है (ठाणंग १ और २ सम १, ११ और १८ पण्हा ११४ पण्णव १२१ और १२४; विवाह ४४१ और २४२ ओव एत्सें)। यह अनुस्वार § ७५ में बताये नियम के अनुसार लगा है। अर्ध मागधी में महाश्च का महब्भास होता है (विवाह ८१ ओव)। लौयमान के अनुसार यह मह महन्त+ से निकला है¹ जो प्राकृत में अन्यत्र महंत रूप में ही आता है। इस सम्बन्ध में § १८२ भी देखिए। मक्षा शब्द का अर्धमागधी और जैनमहा राष्ट्री में पाली शब्द मिञ्जा के प्रभाव से मिंजा हो जाता है। यह § ११ १ के नियम के अनुसार म के स्थान पर आमी है (आयार १ १, ६, ५ सूय ७७१ ठाणंग १८६ और ४११ पण्हा २६ पण्णव ४ विवाह ११२, १११ २८ और १२६ जीवा ४६४ उवास ओव एत्सें), मिंजिया रूप भी मिलता है (पण्णव ५२१ विवाह ८८)। ये रूप आदि-आर्य शब्द मज्जा और मज्जिका तक पहुँचते हैं। शुल्म का प्राकृत रूप सुंभ है (हेमचंद्र)। अपनी बनावट और तात्पर्य के हिसाब से अपभ्रंश वंक = वक्र से मिलता है। दूसरी ओर यह जैन्दिन शब्द फुच्छस से मिलता है और इस दृष्टि से इसका सुंभ रूप ठीक ही है। महाराष्ट्री अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश में वक्र का वंक हो जाता है (वर हेम क्रम मार्क प्राकृतक हाल; आयार १,१,५,१ पण्णव ४७१ और ४८२ निरया एत्सें कालका पिंगल १ २ हेम ४ ११ १,३५६ और ४१२)। इसका सम्बन्ध वक्रित = वंकिय से है (रावण)। महाराष्ट्री और अपभ्रंश वंकिम (पिङ ५१७ हेम ४ १३४) और अपभ्रंश वंकुडम (हेम ४ ४१८,८) का सम्बन्ध वैदिक वंकु से है। यह धातु कौटिल्ये (धाप ४ १४) का रूप है इसलिए इसका मूल रूप तक मिला जाना चाहिए। वक्र से शौरसेनी वक्क बना है (रत्ना १ २, ११ १ ८,

---

* इससे हिंदी में पूछ हो गया। पिंछ रूप पाली में भी आता है, इसलिए यह विचारणीय हो जाता है कि महाराष्ट्री पिंछ पर पाली का प्रभाव तो नहीं पड़ा है। —अनु

\+ महन्त शब्द वैदिक है। ऋग्वेद के श्रोत्रकार 'मातमाम' का यह मत है कि यह मह, धातु की भावव्युत्पत्तिक व्युत्पत्ति है। कुछ विद्वान् समझते हैं महत् का प्राचीनतम वेश व अप्रयुक्त महन्त ही है। अवेस्ता में भी इसका रूप मजन्त आया है, जैनिन मागुस् में भी न है। पाली रूप भी महन्त है। इसलिए निष्कर्ष निकलता है कि महन्त शब्द वेद कालिक है।—अनु

७, वृषभ० २४,७, २६,९, मल्लिका० २२३,१२, कस० ७,१८)। इसके रूप **वक्कदर** (प्रसन्न० १४०,१), **वक्किद** (बाल० २४६,१४), **अणुवक्क** (मालवि० ४८,१९) मिलते है, अर्धमागधी **वक्कय = वक्रक** (ओव०) है। कर्णसुन्दरी २२,१९ मे **वंक** रूप अशुद्ध दिया गया है। 'प्रसन्नराघव' ४६,५ में **वक्कुण** का स्त्रीलिंग **वंकुणी** आया है। कसवध ५५,११ में **तिवंकुणी** नाम आया है। § ८६ भी देखिए। **विछुअ, विंछिअ** और **विंचुअ** के बारे मे § ३०१ भी देखिए।

१. औपपत्तिक सूत्र देखिए। —२ हेमचद्र पर पिशल का लेख १, २६, गेल्दनर का वेदिशे स्टुडियन २, १६४ और २५८।

§ ७५—प्लुति के अतिरिक्त (§ ७१) अतिम व्यजन का लोप हो जाने पर किसी-किसी प्राकृत बोली मे कभी अनुस्वार के साथ दीर्घीकरण का रूप उल्टा हो जाता है (देखिए § १८)। अर्धमागधी और महाराष्ट्री में **विंशति** का °**विंशत्** होकर **वींस** रूप बन जाता है, **त्रिंशत्** का **तीसा** और **तींस, चत्वारिंशत्** का **चत्तालीसा** और **चत्तालीसम्** रूप बनते है। अपभ्रश मे ये शब्द अन्तिम वर्ण को ह्रस्व करके **वीस, तीस, चउआलीस** और **चोआलीस** रूप धारण कर लेते है (§ ७५ और ४४५)। अर्धमागधी में **तिर्यक्** का रूप **तिरिया** हो जाता है (हेमचद्र २,१४३) और साथ-साथ **तिरियं** भी चलता है (आयार० १,१,५,२, १,५,६,२, १,७,१,५, १,८,४,१४, सूय० १९१, २७३, ३०४, ३९७, ४२८, ९१४, ९३१, उत्तर० १०३१, पण्णव० ३८१, कप्प०), सधि में भी यही रूप रहता है। **तिर्यग्वात** का **तिरियंवाय** हो जाता है, **तिर्यग्भागिन्** का **तिरियंभागि** हो जाता है (सूय० ८२९)। अर्धमागधी में **सम्यक्** का **समिया** हो जाता है (सूय० ९१८, आयार० १, ४, ८, ६; १, ५, २, २ और ५, ३), साथ साथ इसी प्राकृत मे **समियं** भी चलता है (आयार० १, ५, ५, ३, सूय० ३०४)। अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी मे **सम्मं** का भी प्रचलन है (हेमचद्र १, २४, आयार० १, २, १, ५, १, ५, ५, १ और ६, १, सूय० ८४४, ९५८; ९९४, ९९६, ठाणग २४२, विवाह० १६३, १६५, २३८, उत्तर० ४५०, एर्त्से०, काल्का०, पव० ३८९, ३, कत्तिगे० ३९९, ३०८ और ३०९, कालेयक० २१, १५, २४, १८)। अर्धमागधी में **समियाए** भी होता है (आयार० १, ५, ५, ३ और ५)। § ११४ से भी तुलना कीजिए। **यस्मिन्** के लिए अर्धमागधी में **जंसि** के साथ साथ **जंसी** भी काम में आता है। **यस्याम्** के भी ये ही रूप हैं (सूय० १३७, २७३, २९७)। अपभ्रश में **यस्मिन्** का **जही, जहि, जहिं** होता है (पिंगल २, १३५ और २७७) और **कि** के साथ ही **किं, की** रूप भी चलते हैं (पिगल २, १३८)। सभवत ये रूप सीधे **जस्सि, जहिं** और **किं** से सबध रखते हैं और इनका दीर्घीकरण केवलमात्र छद की मात्राये ठीक करने के लिए है।

§ ७६—यदि कोई स्वर अनुस्वारवाला हो और उसके ठीक बाद ही **र, श, ष, स** और **ह** हो तो स्वर कभी-कभी दीर्घ हो जाता है और अनुस्वार का लोप हो जाता है। **विंशति** का °**विंशत्** होकर अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **वीसा,**

वीस हो जाता है। इसी प्रकार त्रिंशत् का तीसा, तीस होता है, चत्वारिंशत् का चत्ताळीसा चत्ताळीसं हो जाता है आदि आदि। अपभ्रंश में ये शब्द अन्तिम अक्षरको ह्रस्व करके वीस, तीसा चउआळसा और बेआळीसा रूप धारण कर लेते हैं (§ ७९ और ४४५)। संस्कृत शब्द दंष्ट्रा का पाली में दाठा हो गया, चूलिका पैशाची में ताठा तथा महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी में यह रूप बदलकर दाढा बन गया (वररुचि ४, ११; चण्ड ३, ११; हेमचन्द्र २, १३९; क्रम २, ११७; मार्क० पन्ना ३; गउड० हाल; रावण०; आयार० १, १, ६, ५; जीवा० ८८१; अणुओग० ५७; उवास०; कप्प०; मालती २५१, १; चण्डकौ० १७, ८; बाल० २४९, ८; २५०, १७; २७०, ६)। अर्धमागधी और शौरसेनी में दंष्ट्रिन् का दाढि बन गया (अणुओग० १४९; देशी० ४४, ७ [यहाँ यही पढ़ा जाना चाहिए])।—सिंह शब्दका महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री, अर्धमागधी और अपभ्रंश में सीह हो जाता है (वररुचि १, १७; हेमचंद्र १, २९ और २ तथा २६४; क्रम १, ७७; मार्क० पन्ना ७; पाइय० ४१; गउड०; हाल; रावण०; आयार० २, १५, २१; सूय० २२५, ४१४ और ७४८; पण्णव० ३६७; राय० ११४; उत्तर० ३३८; दस० नि० ६४७, १६; एर्त्सें०; कालका०; हेमचन्द्र ४, ४४६, १; ४१८, १), सिंही का अर्धमागधीमें सिही हो जाता है (पण्णव० ३६८) और सिंघ (§ २६७) तथा सिंह रूप भी चलते हैं। शौरसेनी में भी सिंह रूप चलता है (बाल० २९, ११ में सिंहणाद आया है; २४४, ८ में णरसिंह शब्द मिलता है; चण्डकौ० १७, १ में णरसिंह पाया जाता है)। इन संधि शब्दों के अनुसार ही हेमचन्द्र १, ९२ में सिंघदत्त और सिंघराअ मिलता है। इसी प्रकार मागधी में भी सिंघशावक के लिए सिंहशावअ आता है (शकु० १५४, ६) किन्तु अर्धमागधी में सीहगुहा शब्द मिलता है (नायाध० १४२७ तथा उसके बाद)। बालरामायण ५, ११ में शौरसेनी भाषा में सीहसंहा मिलता है [१ शायद °सहा] (मल्लिका० १४३, १४ में मागधी में सीहमुह मिलता है, किन्तु १४४, १ में सिंघमुह आया है)।—किंशुक के लिए किंसुअ (गउड०; हाल; कर्पूर० १, ७) और फिर कहीं-कहीं कॅसुअ रूप रहा होगा (§ ११९) और इससे केसुअ हो गया है जिससे हिंदी में यह शब्द केसू है।*
—पिनष्टि का कभी °पिंसति हुआ होगा जिसका शौरसेनी में पीसेदि बना फिर उससे पीसइ० हो गया (§ ५६; हेमचन्द्र ४, १८५; मृच्छ० ३, १, २१) कभी कहीं °पिंसन रहा होगा जिससे अर्धमागधी में पीसणा† बन गया (पण्हा० ७७) अर्धमागधी में मूंडयेत् रूप से मूढए हो गया (सूय० ८९४); मणुमूढए आया है (नायाध०; कप्प०) दुप्पडिमूहय और पडिमूहण भी मिलते हैं (आयार० १, २, ५, ४ और ९)। अर्धमागधी में सम उपसर्ग बहुधा दीर्घ हो जाता है, जैसे—संरक्षण का सारक्खण हो गया (ठाणंग० ५५६) संरक्षणता का सारक्खणया बन जाता है (ठाणंग० ३११) संरक्षिन् का सारक्खी (ठाणंग० ३११) रूप

* यह रूप पीसे रूप में हिन्दी में आ गया है।—अनु

† हिन्दी पीसना, पिसन-हारी, पिसाय आदि इसीके बाद रूप हैं।—अनु

मिलता है **सारक्खमाण** भी आया है (आयार० १,५,५,१०, उवास०, निरया०), जैनमहाराष्ट्री में **सारक्खणिज्ज** और **सारक्खन्तस्स** रूप आये हैं (आव० एर्त्से० २८, १६ और १७), अर्धमागधी में **संरोहिन्** का **सारोहि** हो गया है (ठाणग० ३१४) और **संहरति** का **साहरइ** (कप्प०) देखा जाता है। उसमें **साहरेज्जा** (विवाह० ११५२), **साहरन्ति** (ठाणग० १५५) और **साहट्टु=संहर्तु** रूप भी मिलते हैं (§ ५७७), **पडिसाहरइ** (पण्णव० ८४१, नायाव०, ओव०), **साहणन्ति** और **साहणित्ता** शब्द भी आये हैं (विवाह० १३७, १३८ और १४१)। यही नियम **संस्कृत** शब्द के लिए महाराष्ट्री में, जो **सक्कअ**, अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री में **सक्कय** और शौरसेनी में भी **सक्कद** रूप आता है, उस पर भी लागू होता है (चण्ड० २, १५ पेज १८, हेमचन्द्र १, २८, २, ४, मार्क० पन्ना ३५, कर्पूर० ५, ३, ५, १, वज्जाल० ३२५, २०, मृच्छ० ४४, २), **असंस्कृत** के लिए अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **असक्कय** शब्दका प्रयोग होता है (पण्हा० १३७, वज्जाल० ३२५, २०), इनके अतिरिक्त **संस्कार** के लिए **सक्कार** शब्द काममे लाया जाता है (हेमचन्द्र १, २८, २, ४, मार्क० पन्ना ३५, रावण० १५, ९१), जैनमहाराष्ट्री में **संस्कारित** के लिए **सक्कारिय** आता है (एर्त्से०)। इसकी व्युत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—**संस्कृत**, **सांस्कृत**, **साक्कअ** और **सक्कअ**। इस सम्बन्धमे § ३०६ भी देखिए। मार्क० पन्ना ३५ और ऋषिकेष पेज १२ के नोट में वामनाचार्य के अनुसार **संस्तुत** का **सत्थुअ** और **संस्तव** तथा **संस्ताव** का क्रमशः **सत्थव** और **सत्थाव** हो जाता है, किन्तु अर्धमागधी में इसका रूप **संथुय** मिलता है (आयार० १, २, १, १)। इस सम्बन्ध में § १२७ मे **कोहण्डी** और **कोहण्ड** शब्दो से तुलना कीजिए।

§ ७७—सस्कृत में कभी-कभी उपसर्गों का पहला स्वर शब्दो के पहले जुडने पर दीर्घ कर दिया जाता है, **अभिजाति** का **आभिजाति** हो जाता है, **परिप्लव** का **पारिप्लव** बन जाता है, **प्रतिवेश्य** **प्रातिवेश्य** हो जाता है। यही नियम प्राकृत भाषाओं में भी पाया जाता है (वररुचि १, २, हेमचन्द्र १, ४४, क्रम० १, १, मार्क० पन्ना ४, ५, प्राकृत कल्प० पेज १९), **अभिजाति** का **अहिजाइ** हो जाता है और महाराष्ट्री में इसका रूप **आहिजाइ** (हाल) और **आहिआइ** (रावण०) होता है, **प्रतिपद** का महाराष्ट्री मे **पडिवआ** और **पाडिवआ** होता है, **प्रत्येक** शब्द का महाराष्ट्री और अर्धमागधी मे **पाडिएक्क** होता है (§ १६३), **प्रतिस्पर्धिन्** का प्राकृत में **पडिप्फद्धि** और **पाडिप्फद्धि** हो जाता है (हेमचन्द्र, क्रम० १, १, २, १०१), °**प्रतिसिद्धि** (जिसका अर्थ जुए का जोश है) प्राकृत मे **पडिसिद्धि** और **पाडिसिद्धि** हो जाता है (हेमचन्द्र २, १७४, देशी० ६, ७७, शौरसेनी के उदाहरण, कर्पूर० १८, १, २१, ५, ४४, ९), °**प्रतिस्मार** (=चालाकी) का प्राकृत मे **पडिसार** और **पाडिसार** रूप होते है (देशी० ६, १६), **समृद्धि** का महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री मे **समिद्धि** (गउड०, हाल, ऋषभ०) और महाराष्ट्री मे **सामिद्धि** भी होता है (हाल), **अध्युपपन्न** का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **अज्झोववन्न**, **अज्झोववण्ण** होता है (आयार० १, १, ६, ६, २, १, ७, २, सूय० १८५, २१०,

वीस हो जाता है। इसी प्रकार **त्रिंशत्** का **तीसा**, **तीस** होता है, **चत्वारिंशत्** का **चत्तालीसा** **चत्तालीसं** हो जाता है आदि आदि। अपभ्रंश में ये शब्द अन्तिम अक्षरको ह्रस्व करके **वीस**, **तीसा** **चउआलसा** और **चोआलीसा** रूप धारण कर लेते हैं (§ ७१ और ४४५)। संस्कृत शब्द *वृद्ध* का पाली में *वाठ* हो गया, चूलिका पैशाची में **ठाठा** तथा महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी में यह रूप बदलकर **दाढा** बन गया (वररुचि ४, ३३ चण्ड० ३, ११; हेमचन्द्र २, १३९ क्रम २, ११७ मार्क० पन्ना ३१ गउड० हाल० रावण० आयार० १, १ ६, ५ जीवा० ८८३ अणुओग० ६ ७ उवास० कप्प० ; मालती २५१, ५ चण्डको० १७, ८ माल० १४९, ८ २५९, १०; २७ , ६) अर्धमागधी और शौरसेनी मे **दंष्ट्रिन्** का **दाढि** बन गया (अणुओग० ३४९ देशी० २४, ७ [यहाँ यही पढ़ा जाना चाहिए]) ।—**सिंह** शब्दका महाराष्ट्री जैनमहाराष्ट्री अर्धमागधी और अपभ्रंश में **सीह** हो जाता है (वररुचि १, १७ हेमचंद्र १, २९ और २ तथा २६४ क्रम १, ७७ मार्क० पन्ना ७ पाइय० ४१ गउड० हाल० रावण० ; आयार २, १५ २१ सूय० २२५, ४१४ और ७४८ पण्णव० ३६७ राय० ११४ उत्तर० ३३८; एत्सें ; कालका० हेमचन्द्र ४, ४ ६, १; ४१८, ३), **सिंही** का अर्धमागधीमें **सिही** हो जाता है (पण्णव० ३६८) और **सिंघ** (§ २६७) तथा **सिंह** रूप भी चलते हैं। शौरसेनी में भी **सिंह** रूप चलता है (शकु० २ ९, ११ म **सिंहणाद** आया है २१४, ८ में **नरसिंह** शब्द मिलता है चण्डको० १७, १ में **धणसिंह** पाया जाता है)। इन सन्धि शब्दों के अनुसार ही हेमचन्द्र १ २ में **सिंघदत्त** और **सिंघराअ** मिलता है। इसी प्रकार मागधी में भी **सिंघसावक** के लिए **सिंहशावअ** आता है (शकु० १५४, ९) किन्तु अर्धमागधी मे **सीहगुहा** शब्द मिलता है (नायाध० १४२७ तथा उसके बाद)। बालरामायण ५ ११ में शौरसेनी भाषा मे **सीहसंघा** मिलता है [! शायद *°संघा*] (मल्लिका० १४३, १४ में मागधी में **सीहमुह** मिलता है किन्तु १४४ १ मे **सिंघमुह** आया है) ।—**किंशुक** के लिए **किंसुअ** (गउड० हाल० कर्पूर० १ ७) और फिर कहीं-कहीं **केंसुअ** रूप रहा होगा (§ ११९) और इससे **केसुअ** हो गया है हिन्दी में यह शब्द **केसू** है। —*पिनष्टि* का कभी *पिंसति हुआ होगा जिसका शौरसेनी में **पीसेदि** बना फिर उससे **पीसइ०** हो गया (§ ५ ६ हेमचन्द्र ४ १८५ मृच्छ० ३ १ २१)· कभी कहीं **पिंसन** रहा होगा जिससे अर्धमागधी म **पीसण**† बन गया (पण्हा० ७७) अर्धमागधी में **बृंहयेत्** रूप से **वूहए** हो गया (सूय० ८९४) **अणुवूहइ** आया है (नायाध० कप्प०) **तुप्पविवूहण** और **परिवूहण** भी मिलते हैं (आयार १ २ ५, ४ और ५)। अर्धमागधी मे सम् उपसर्ग बहुधा दीर्घ हो जाता है जैसे—**संरक्षण** का **सारक्खण** हो गया (ठाणंग ५ ६) **संरक्षणता** का **सारक्खणया** बन जाता है (ठाणंग ३११), **संरक्षिन्** का **सारक्खी** (ठाणंग ३१३) रूप

---

* यह रूप पीसे रूप में हिन्दी में आ गया है। —अनु

† हिन्दी पीसना पिसनहारी पिसान आदि इसीके अन्य रूप है।—अनु

मिल्ता है **सारक्खमाण** भी आया है (आयार० १,५,५,१०, उवास०, निरया०), जैनमहाराष्ट्री मे **सारक्खणिज्ज** और **सारक्खन्तस्स** रूप आये हैं (आव० एर्त्से० २८, १६ और १७), अर्धमागधी में **संरोहिन्** का **सारोहि** हो गया है (ठाणग० ३१४) और **संहरति** का **साहरइ** (कप्प०) देखा जाता है। उसमे **साहरेज्जा** (विवाह० ११५२), **साहरन्ति** (ठाणग० १५५) और **साहट्टु = संहर्तु** रूप भी मिल्ते हैं (§ ५७७), **पडिसाहरइ** (पण्णव० ८४१, नायाध०, ओव०), **साहणन्ति** और **साहणित्ता** शब्द भी आये है (विवाह० १३७, १३८ और १४१)। यही नियम **संस्कृत** शब्द के लिए महाराष्ट्री में, जो **सक्कअ**, अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री में **सक्कय** और शौरसेनी मे भी **सक्कद** रूप आता है, उस पर भी लागू होता है (चण्ड० २, १५ पेज १८, हेमचन्द्र १, २८, २, ४, मार्क० पन्ना ३५, कर्पूर० ५, ३, ५, १, वज्जाल० ३२५, २०, मृच्छ० ४४, २), **असंस्कृत** के लिए अर्ध-मागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **असक्कय** शब्दका प्रयोग होता है (पण्हा० १३७, वज्जाल० ३२५, २०), इनके अतिरिक्त **संस्कार** के लिए **सक्कार** शब्द काममे लाया जाता है (हेमचन्द्र १, २८, २, ४, मार्क० पन्ना ३५, रावण० १५, ९१), जैनमहाराष्ट्री मे **संस्कारित** के लिए **सक्कारिय** आता है (एर्त्से०)। इसकी व्युत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है—**संस्कृत**, **सांस्कृत**, **साक्कअ** और **सक्कअ**। इस सम्बन्धमे § ३०६ भी देखिए। मार्क० पन्ना ३५ और ऋषिकेश पेज १२ के नोट में वामनाचार्य के अनुसार **संस्तुत** का **सत्थुअ** और **संस्तव** तथा **संस्ताव** का क्रमशः **सत्थव** और **सत्थाव** हो जाता है, किन्तु अर्धमागधी में इसका रूप **संथुय** मिल्ता है (आयार० १, २, १, १)। इस सम्बन्ध में § १२७ मे **कोहण्डी** और **कोहण्ड** शब्दों से तुल्ना कीजिए।

§ ७७—सस्कृत में कभी-कभी उपसर्गों का पहला स्वर शब्दो के पहले जुडने पर दीर्घ कर दिया जाता है, **अभिजाति** का **आभिजाति** हो जाता है, **परिप्लव** का **पारिप्लव** बन जाता है, **प्रतिवेश्य प्रातिवेश्य** हो जाता है। यही नियम प्राकृत भाषाओं में भी पाया जाता है (वररुचि १, २, हेमचन्द्र १, ४४, क्रम० १, १, मार्क० पन्ना ४, ५, प्राकृत कल्प० पेज १९), **अभिजाति** का **अहिजाइ** हो जाता है और महाराष्ट्री में इसका रूप **आहिजाइ** (हाल) और **आहिआइ** (रावण०) होता है, **प्रतिपद** का महाराष्ट्री में **पडिवआ** और **पाडिवआ** होता है, **प्रत्येक** शब्द का महा-राष्ट्री और अर्धमागधी में **पाडिएक्क** होता है (§ १६३), **प्रतिस्पर्धिन्** का प्राकृत में **पडिप्फद्धि** और **पाडिप्फद्धि** हो जाता है (हेमचन्द्र, क्रम० १, १, २, १०१), °**प्रतिषिद्धि** (जिसका अर्थ जुए का जोश है) प्राकृत मे **पडिसिद्धि** और **पाडिसिद्धि** हो जाता है (हेमचन्द्र २, १७४, देशी० ६, ७७, शौरसेनी के उदाहरण, कर्पूर० १८, १, २१, ५, ४४, ९), °**प्रतिस्मार** (=चालाकी) का प्राकृत में **पडिसार** और **पाडिसार** रूप होते है (देशी० ६, १६), **समृद्धि** का महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री मे **समिद्धि** (गउड०, हाल, ऋषभ०) और महाराष्ट्री मे **सामिद्धि** भी होता है (हाल), **अद्ध्युपपन्न** का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **अज्झोववन्न**, **अज्झोववण्ण** होता है (आयार० १, १, ६, ६, २, १, ७, ?, सूय० १८५, २१०,

७५१ और ९२१; नायाध १ ६, १३८७, १४६१, १४६९ विवाग० ८७ और ९२ उवास आव एत्सें २६, २५ १०, २६ एत्सें) और ये शब्द भी मिलते हैं—**अज्झोववज्जइ अज्झोववज्जइ** (नायाध ८४१ और १३४१), **अज्झोवव ज्जिहिइ** (ओव) अर्धमागधी म **आभ्युपगमिकी** का **अब्भोवगमिया** होता है (भग० [औपपातिक सूत्र के शब्द **आहेवच्च** की तुलना कीजिए])। महाराष्ट्री में उपसर्ग का अन्तिम स्वर दीर्घ करने का प्रयत्न दिखाई देता है, उसमें **विसारइत्तुम्** और **विसारयसे** का **वेमारिउं वेमारिज्जसि** होता है (हाल २८९ और ९०९); **वेमारिअ** भी मिलता है किन्तु इसका अर्थ **कोश** और ठगा हुआ है (देशी ७, ९५); अर्धमागधी में **आधिपत्य** का **आहेवच्च** होता है (सम० ११४ नायाध २५७, ११ , १२६, ४८१, ५२६, १४१७, १५ ७ विवाग २८ और ५७ [इसमें **आहेवच्च** की जगह **अहेवच्च** है] पण्णव ९८, १ , १ १ अन्तग १ [इसमें भी **अहेवच्च** मिलता है] ओव कप्प)। ऐसे स्थलों पर जहाँ ***अनुपाम-इनक** अर्धमागधी में **अणोवाहणग** अथवा **अणोवाहणय** (सूय ७५९ विवाह ११५ ओव) अथवा अर्धमागधी और जैनशौरसेनी में **अनुपम** के स्थान पर **अणोवम** (पण्णव ११६ ओव पव ३८ , १३) या **अनुद्धुक** के स्थान में **अणोउय** (ठाणंग १६९) अथवा **अनुपनिहित** के लिए **अणोवनिहिय** (अणुओग २२८, २४१ और २४२) या **अनुपसंख्य** के स्थान पर **अणोवसंख** आता है, वहाँ दीर्घीकरण का नियम लागू नहीं होता बल्कि यहाँ अण जिसका अर्थ नहीं होता है, उसके आरम्भ में आने के कारण ये रूप हो जाते हैं। यह तथ्य एस गौल्दश्मित्त[1] ने सिद्ध कर दिया है और यही नियम अर्धमागधी **अणाईए= अनादीति**[2] जैनशौरसेनी **अणउदय** (कत्तिगे ३९९, १ ९), महाराष्ट्री **अणाहिमअ= अहत्व** (हाल ; रावण) **असमर्थ** के लिए महाराष्ट्री रूप **अणहो**˘**ंत०** (हाल) है, **अणरसिअ** (हाल) **अवीर्य** के लिए **अणवीहर** (रावण) आया है **अमिलित** के लिए **अणमिलिअ** (देशी १ ४४) और **अरति** से निकले हुए, कभी कहीं बोले जाने वाले ***अरामक** के रूप **अणराम** (देशी १ ४५) आदि आदि इस नियम के उदाहरण हैं।† इस विषय पर § ७ भी देखिए।

१ त्साइटुंग डेर मौर्गेन लैण्डिशन गेजेलशाफ्ट, ३१ ९९ और उसके बाद। कून त्साइटश्रिफ्ट १९ २१६।— २ लीयमान औपपातिक सूत्र।— १

---

* यह रूप हिन्दी में अनहोता, अनहोनी आदि में मिलता है। कुमाउनी में इसका रूप अनहुति हो गया है।—अनु

† इन रूपों से हिन्दी की एक परंपरा पर प्रकाश पड़ता है। हिन्दी के पुराने साहित्यिक यह न भूले होंगे कि कभी अहेव रत बाबू बालमुकुन्द गुप्त जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी और पं महावीरप्रसाद द्विवेदी में अस्थिरता अनस्थिरता और अपढ़ तथा अनपढ़ पर भयंकर शास्त्रार्थ चल पड़ा था। तथ्य यह है कि प्राकृत के नियम से गोस्वामी तुलसीदास ने अनमल अनहित आदि का प्रयोग किया है। हिन्दी में अनहोनी अनरीति आदि रूप प्राकृत परिपाटी के साथ और संस्कृत व्याकरण के नियम के विरुद्ध चलते हैं।—अनु

पिशल, वेत्सेनबैरगैर्स बाइत्रैगे ३, २४३ और उसके बाद, वेबर, हाल ४१ में। योहान्नेस श्मित्त, कून्स त्साइटश्रिफ्ट २३, २७१ और उसके बाद।

§ ७८—प्राकृत भाषाओ में कई अन्य अवसरों पर सस्कृत के नियमों के विपरीत भी स्वर दीर्घ कर दिये जाते हैं। इस प्रकार **परकीय** का **पारकेर** हो जाता है (हेमचन्द्र १, ४४), किन्तु शौरसेनी में **परकेर** (मालवि० २६, ५) और **परकेरअ** (शकु० ९६, १०) रूप होते है, मागधी मे स्वभावतः **पलकेलअ** हो जाता है (मृच्छ० ३७, १३, शकु० १६१, ७)।—महाराष्ट्री मे **मनस्विन्** और **मनस्विनी** का **मांणसि** और **माणंसिणी** हो जाता है (§ ७४)।—**तादृक्ष, यादृक्ष** के जोड के शब्द **°सादृक्ष**' का महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी में **सारिच्छ** हो जाता है (भाम० १, २, हेमचन्द्र १, ४४, क्रम० १, १, मार्क० पन्ना ५, प्राकृतकल्प० पेज १९, हाल, एर्त्से०, काल्का०, कत्तिगे० ४०१, ३३८)।—**चतुरन्त** का अर्धमागधी में **चाउरन्त** हो जाता है (हेमचन्द्र १, ४४, सूय० ७८७ और ७८९, ठाणग० ४१, १२९ और ५१२, सम० ४२, पण्हा० ३०२, नायाध० ४६४ और ४७१, उत्तर० ३३९, ८४२ और ८६९, विवाह० ७, ३९, १६०, ८४८, १०४९, ११२८ आदि आदि) और **चतुष्कोण** का **चाउकोण** हो जाता है (नायाध० १०५४, जीवा० २८९ और ४७८)। प्राकृत मे **चाउघण्ट** शब्द मिलता है (नायाध० § १३०, पेज ७३१, ७८०, ७८४, ८२६, १०६०, १२३३, १२६६ और १४५६, विवाह० ११४, ८०१, ८०२ और ८३०, राय० २३१, २३७, २३९, निरया० § २१), **चतुर्याम** का **चाउज्जाम** रूप होता है (विवाह० १३५), **चतुरंगिणि** का **चाउरंगिणी** (नायाध० § ६५, १०० और १०३, पेज ५३१ और ५४८, ओव०, निरया०) बन जाता है।—**चिकित्सा** का अर्धमागधी में **तेइच्छा** रूप है (§ २१५)। यह दीर्घत्व **ऋ** वाले शब्दों में भी मिलता है। इस प्रकार **गृहपति** का **गाहावइ** हो जाता है, इस शब्द में **गृ** और **ह** दोनों दीर्घ हो गये हैं [यह § ७० के नियम के अनुसार हुआ है] (आयार० १, ७, २, १ और २, ३, ३, ५, २, २, १, १ और उसके बाद, सूय० ८४६, ८४८, ८५० और और ९५७ तथा उसके बाद, विवाह० १६२, २२७, ३४५, ३४६ और १२०७ तथा उसके बाद, निरया० ४१ और ४३, उवास०, कप्प०), **गृहपत्नी** का **गाहावइणी** हो जाता है (विवाह० १२६६, १२७० और १२७१, नायाध० ५३०, उवास०)।—**मृषा** के लिए अर्धमागधी मे **मुस** (सूय० ७४, ३४० और ४८९, दस० ६१४, २९, उत्तर० ११६), और **मुसावाद** होते हे (सूय० २०७, उवास० § १४ [पाठ मे **मूसवाद** शब्द है], और ४६ इसमें **मूसावाय** शब्द है), **मुसावादि** भी पाया जाता है (आयार० २, ४, १, ८) और बहुधा **मोप** शब्द भी काम मे आता है (उत्तर० ३७३, ९५२ और ९५७), **मोस, सच्चामोस** और **असच्चामोस** भी मिलते ह (आयार० २, ४, १, ४, पण्णव० ३६२, ठाणग० २०३, ओव० § १४८ और १४९), **तच्चमोस** भी आया है (ठाणग० १५२, पण्णव ३६२), **परयामोस** भी काम में लाया जाता है (ठाणग० २१, विवाह०

१२६ ; पण्हा० ८६ ; पण्णव ११८ ; कप्प० § ११८ ; ओव)। रुद्, धौ और स्वप् धातु के वर्तमान काल तृतीय वचन के रूप रोयइ, धोयइ और सोयइ होते हैं (§ ४७१, ४८२ और ४९७); सोयण शब्द भी मिलता है (देशी० ८, ५८); भयस्वापनी का अर्धमागधी में ओसोयणी रूप है (कप्प § २८), स्वापनी का सोयणी भी मिलता है (नायाध० १२८८)। —पृथक्त्व शब्द का अर्धमागधी में पेसल्लग रूप होता है (सूय ७२९), स्वपाक का सोवाग पाया जाता है (आयार १, ८, ४, ११ ; उत्तर १४°, ३७१, ४ २, ४ १ और ४१), स्वपाकी का सोवाकी पा जाता है (सूय ७ १)। —अर्धमागधी में ग्लान्य शब्द का गेलन्न रूप पाया जाता है (ठाणग ३११) और ग्लान शब्द का (जिससे ग्लानि शब्द निकला है) गिलाण बन जाता है (§ '१३)। —वाहि का महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में जो वाहिं रूप हो जाता है उसके सम्बन्ध में § १८१ देखिए। अर्धमागधी में अन्तिम व्यंजन का लोप होकर उसके स्थान पर जो स्वर आता है वह निम्नलिखित शब्दों में दीर्घ हो जाता है। पृथक् शब्द का कभी पुढु बन गया होगा उसका फिर पुढो हो गया (आयार १, १, २, १ और २ ; १, ४ और उसके बाद १, २ ६, २ आदि आदि सूय० ८१ और १२१ ठाणंग ११२); पृथक्कथित शब्द का पहले पुढोसिय रूप मिलता है (आयार १ १, २, २ ६, १ सूय ३१२ और ४६८), पुढोछन्द शब्द भी मिलता है (आयार १, ५, २, २ सूय ४१२ से भी तुलना कीजिए) पृथग्जीव के लिए पुढोजिय शब्द मिलता है (सूय ४६) पृथक्सत्त्व के लिए पुढोसत्त शब्द आया है (सूय ४२५ ४ १ से भी तुलना कीजिए)। पुढ शब्द के लिए जो कभी कभी पुहु आता है उसमें अन्तिम अकार उ के उ की नकल पर उ कर दिया गया है जैसा पृथकत्व के लिए पुहुत्त आता है (ठाणंग २१२ अणुओग ४५ और ४ ५ तथा उसके बाद नन्दी १६ , १६१ और १६८); इस शब्द के लिए कहीं कहीं पुहत्त[1] भी मिलता है (पण्णव ६ २ और ७४४ विवाह १८१, १८२ और १ ५७) पोहत्त भी आता है (सम ७१ विवाह १७८) पोहत्तिय भी देखा जाता है (पण्णव ६१९, १४ और ६६४) इसमें उकार दीर्घ होकर ओ बन गया है। यह ढंग पाली भाषा से निकला है जिसमें पृथक् के लिए पुथु[1] मिलता है। पाली में पुथुज्ज शब्द आया है और अर्धमागधी में इसका पुढोज्जा रूप है संस्कृत रूप पृथग्जन है (सूय १ ८ और १४२) पाली के पुथुज्जन शब्द के लिए अर्धमागधी में पुढोजण रूप आया है (सूय १६६)। हेमचन्द्र १ २४, १३७ और १८८ के अनुसार पिहं पुहं पिढं और पुढ रूप भी होते हैं। इस नियम के अनुसार जैनमहाराष्ट्री में पिहप्प तथा पिहं रूप भी मिलते हैं (आव एत्सें ७ ८ और १७) अर्धमागधी में पृथग्जन के लिए पिहज्जण शब्द मिलता है (ठाणंग ११२)।

1 समिलित शब्दों के अन्त में अधिकतर स्थलों पर सारिकत्त आता है और यहाँ वह संज्ञा के रूप में लिया जाता है। यह शब्द कभी क्रियाविशेषण

भी रहा होगा, इसका प्रमाण महाराष्ट्री एर्त्सेलुगन ७१, ३२ से मिलता है। इस विषय पर § २४५ भी देखिए। — २ वेबर ने भगवती २, २०० के नोट (१) में बताया है कि हस्तलिखित प्रतियों में पुहुत्त रूप भी पाया जाता है। —३. एर्नेस्ट कून, बाइत्रैगे पेज २३, ई० म्युलर, सिम्प्लिफाइड ग्रैमर पेज ६।

दीर्घ स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर का प्रयोग

§ ७९—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और अपभ्रंश में तथा अपवाद रूप से अन्य प्राकृत भाषाओं में भी दीर्घ स्वर ह्रस्व कर दिये जाते है, **ए** इ में परिणत हो जाता है जब मूल शब्दों में दीर्घ स्वर से पहले के या बाद के अक्षर पर बल पडता था। — वररुचि १, १०, क्रम० १, ९, मार्क पन्ना ६, प्राकृतकल्प० पेज २२ में **आ** वाले शब्दों को **आकृतिगण यथादि** में सचित किया गया है, हेमचन्द्र ने १, ६७ में इनके दो विभाग किये हैं, एक तो साधारण रूप से क्रिया-विशेषण है, जिसे उसने अव्यय कहा है और दूसरा विभाग **उत्खनादि आकृतिगण** है तथा उसने १, ६८ में कुछ शब्द उपर्युक्त शब्दों से अलग कर दिये हैं। ये शब्द है— **प्रवाह, प्रहार, प्रकार** आदि जो कृदन्त उपसर्ग — अ (घञ्) से बनाये जाते हैं तथा जिनमें वृद्धि हो जाती है। त्रिविक्रम तथा अन्य व्याकरणकार (१, २, ३७ और ३८) उसका अनुसरण करते है। वररुचि १, १८, हेमचन्द्र १, १०१, प्राकृतकल्प० पेज २८ में **ई** वाले शब्द **पानीयादिगण** में रखे गये है। मार्कडेय ने पन्ना ८ **गृहीतादिगण** में ये शब्द सम्मिलित किये हैं (त्रिविक्रम १, २, ५१ तथा अन्य व्याकरणकार एक **गभीरकगण** भी बताते हैं और ई-वाले शब्दों को जैसे **पानीय, अलीक, करीष, उपनीत, जीवित** आदि शब्दों को **पानीयगण** में रखते है। क्रमदीश्वर ने १, ११ में वे शब्द, जिनके दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है, **पानीयादिगण** में रखे हैं और जिन शब्दों में विकल्प से ऐसा होता है अर्थात् यह लेखक की इच्छा पर छोड दिया जाता है कि वह चाहे तो दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दे अथवा ह्रस्व ही रहने दे, ऐसे शब्दों को उसने **गभीरादिगण** में (१, १२) शामिल किया है। हेमचन्द्र यह मानता है कि इन शब्दों के इन नियमों के अपवाद भी हैं। **ऊ**-वाले शब्दों के लिए व्याकरणकारों ने कोई गण नहीं दिया है।

§ ८०— नीचे दिये गये शब्दों में उन शब्दों का दीर्घ स्वर ह्रस्व कर दिया गया है जब ध्वनि का बल दीर्घ स्वर से पहले के अक्षर पर पडता है, महाराष्ट्री में **उत्खात** का **उक्ख** और जैनमहाराष्ट्री मे **उक्खय** हो जाता है (सब व्याकरणकार, गउड०, रावण०, एर्त्से०), महाराष्ट्री में **समुखअ** मिलता है (हाल) और साथ-साथ **उक्खाअ** भी पाया जाता है (हाल), अर्धमागधी में **कुलाल** (जिसका अर्थ उल्लू है) के लिए **कुलल** आता है (सूय० ४३७, उत्तर० ४४७, दश० ६३२, ३७), **निःसाख** के लिए महाराष्ट्री में **नीसह** रूप है (हाल), **वराकी** के लिए **वरई** है (हाल)। इस रूप के साथ-साथ बहुधा — **वराअ** और **वराई** भी आता है (हाल), **श्यामाक** के लिए **श्यामअ** मिलता

है (हेमचन्द्र १, ७१ पिदूसूत्र २, २१ १, १८) । भौर्त्य, द्विस्प कोष ४८ तथा संस्कृत में यह शब्द स्वामक रूप में है । — अर्धमागधी में अलीक के लिए अलिय चलता है (ठाणंग १५७ ; ओव) अलीकाधिपति के लिए अलिया हिवइ आया है (ठाणंग १२५ और १५७) पायत्ताणिय पीढाणिय, कुञ्जराणिय महिसाणिय और रहाणिय शब्द अर्धमागधी में चलते हैं (ठाणंग १५७) साथ-साथ अणीय शब्द भी चलता है (निरया आव ; नायाध) महाराष्ट्री में अलीक के लिए अलिअ और अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री में अलिय रूप चलता है (सब व्याकरणकार गउड हाल रावण० विवाह १५२ और ६८७ पण्हा १३४ उत्तर १९ ; द्वारा ४९७, १९ ; एर्से) । शौरसेनी में भी यही शब्द चलता है (मृच्छ २४, २५ ५७, १४, १५ ९५, १७ १५१, १८ विक्रमो ३ , २१ मालवि ४१, १८ रत्ना ३२४, ११ चण्डको ९, १७, ५२, १ ८६, १ ; ८७, ११ और १६ आदि आदि) और मागधी में भी यह शब्द मिलता है (मृच्छ १४५, १६ १६५, १) । किन्तु शौरसेनी और मागधी के लिए कविता को छोड़कर अन्यस्थलों में अलिय शब्द उचित तथा भाषिक रूप से अधिक प्रामाणिक दिखाई देता है (मृच्छ १४५, १६, १५३, १८) । इस अलिय रूप को व्याकरणकारों की अनुमति भी मिली हुई है तथा शौरसेनी में भी यह शब्द आया है (प्रबन्ध १७ १६ [१८, १ में अलियवत्तण शब्द मिलता है]; नागानं ४५ ११ १ १, १ ; मुद्रा ५९, १ प्रसन्न ३७, १७ ; ४४, ११ ४६, १४ ; ४७, ११ और १२ , १ वेणी २४ ४ ; ९७, ९ १ ७, ८ आदि आदि); महाराष्ट्री पत्लेंइंगन में अलीय शब्द मिलता है । अवसीदत्त के लिए महाराष्ट्री में ओसियन्त शब्द आया है (रावण) प्रसीद के लिए पसीय* चलता है (हेमचन्द्र हाल) किन्तु शौरसेनी में पसीद रूप है (मृच्छ ४ ५ प्रबन्ध ४४ २ नागानं ४६ ११ ८७, ६) ; मागधी में पशीद का प्रचलन है (मृच्छ ९ २४ ; १११ १८ १७ १८ और १७६, ९) ; अर्धमागधी में करीष का करिस् होता है (सब व्याकरणकार ; उवास) ; महाराष्ट्री में इसका रूप करीस हो जाता है (गउड) वल्मीक का महाराष्ट्री में वम्मीअ (गउड) और अर्धमागधी में वम्मिय चलता है (हेमचन्द्र सूय ६११ विवाह १२२६ और उसके बाद [इस ग्रन्थ में अधिकतर स्थलों में वम्मीय आया है ।] पुरुषोत्तम के द्विरूप कोष ८ के अनुसार वाल्मीक शब्द मिलता है भौर्त्य द्विरूप कोष (५१) और संस्कृत में यह शब्द वल्मिक मिलता है । उज्ज्वलदत्त ने उणादि सूत्र ४, २५ की टीका में इसे वाल्मीक लिखा है । शिरीष का शिरिस हो जाता है (हेमचन्द्र), किन्तु महाराष्ट्री में सिरीस मिलता है (शकु २ १५) । — उलूक का अधमागधी में उलुग और महाराष्ट्री में उलुअ होता है (सरस्वती १६, १ ; सूय ६ ५) ; अधमागधी और जैनमहाराष्ट्री में गव्यूत का गाउय होता है (ठाणंग

---

* हिंदी पसीजना इसका रूप है जिसमें द नियमानुसार ज बन गया है । द का भी ज होना स्वाभाविक ध्वनिक्रिया है । —अनु

८३, ८८ और ८९, विवाह० ४२५ और १५२९, जीवा० २७६, अणुओग० ३८१, ३८५, ३९७ और ४०७, पण्णव० ५२, ६०१ और ६०२, नन्दी० १६०, १६३ और १६८, ओव०, एर्त्से०)।

वैडूर्य का महाराष्ट्री और शौरसेनी मे **वेरुलिअ** तथा अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री मे **वेरुलिय** होता है (हेमचन्द्र २, १३३, क्रम० २, ११७, [पाठ में **वेरुणिय** रूप दिया गया है], मार्क० पन्ना ३, ९, पाइय० ११९, गउड०, मृच्छ० १७, २५, ७१, ३ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए), कर्पूर० ३३, १, सूय० ८३४, ठाणग० ७५, ८६, ५१४ और ५६८, पण्हा० ४४०, विवाह० ११४६, १३२२ और १३२४, पण्णव० २६ और ५४०, नन्दी० ७२, राय० २९, ५४, ६९, जीवा० २१७, ४९४ और ५४९, उत्तर० ६२९, ९८१ और १०४२, एर्त्से०), इस विषय पर § २४१ भी देखिए।—**विरूप** का **विरुअ** हो गया है (देशी० ७, ६३)।—**चपेटा** का **चविडा** और **चविला** हो गया है (हेमचन्द्र १, १४६ और १९८), इन रूपों के साथ महाराष्ट्री और अर्धमागधी में **चवेडा** रूप भी मिलता है (हेमचन्द्र, हाल, उत्तर० ५९६)।

§ ८१—नीचे वे शब्द दिये जाते है जिनमे दीर्घ स्वर के अनन्तर आनेवाले अक्षर पर ध्वनिबल पडने के कारण दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है। **आचार्य** का अर्ध-मागधी और जैनमहाराष्ट्र मे **आयरिय** हो जाता है (§ १३४)[1], **अमावस्या** का अर्धमागधी में **अमावसा** होता है (कप्प०), **स्थापयति** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **ठवेइ** होता है तथा कुछ अन्य शब्द होते है (§ ५५१ और ५५२)। महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री मे **कुमार** का **कुमर** हो जाता है (सब व्याकरणकार, एर्त्से०)। महाराष्ट्री में **कुमारी** का **कुमरि** हो जाता है (गउड०, कर्पूर० ८०, ६), **कुमारपाल** का महाराष्ट्री मे **कुमरवाल** हो जाता है (देशी० १, १०४, ८८), इसके साथ-साथ महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश मे **कुमार कुमारी** रूप भी आते है (गउड०, हाल, एर्त्से०, हेमचन्द्र ४, ३६) और शौरसेनी में सदा ही **कुमार** शब्द चलता है (विक्रमो० ५२, १६, ७२, १५ और २१, ७९, १५, मुद्रा० ४४, ३, प्रसन्न० ३५, २ और ७), **कुमारअ** भी आता है (शकु० ४१, २, १५५, ९ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], १५६, ६ और १४, मुद्रा० ४३, ५ और ४४, १), **कुमारि** भी मिलता है (मालवी० ६८, १०), अर्धमागधी में **कुमाल** आता है (नागान० ६७, १ और १४ [यहाँ **कुमाल** पाठ पढा जाना चाहिए])।—**खादित** का **खइअ** हो जाता है तथा जैनमहाराष्ट्री में यह रूप **खइय** हो जाता है (भाम०, मार्क०, प्राकृतकल्प०, एर्त्से०) और **खादिर** का **खइर** हो जाता है (सब व्याकरणकार)।—अपभ्रंश में **तादृश** का **तइस** और **यादृश** का **जइस** हो जाता है (हेमचन्द्र ४, ४०३ और ४०४)।—**पर्याय** का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **पज्जव** हो जाता है (आयार० १, ३, १, ४, २, १५, २३, पण्णव० २३७ और उसके बाद, जीवा० २३८, २६२, ४५० और ४५१, उत्तर० ७९७ और ८९५, अणुओग० २७०, विवाह० १२८, ओव०, आव० एर्त्से० ४३, ४ और ९), जैन-

शौरसेनी में **पसाय** रूप मिलता है—(पद्म १८८, ४ कत्तिगे० ११८, १ २)।—**प्रवाह** का महाराष्ट्री में **पवह** हो जाता है (सब व्याकरणकार गउड हाल रावण)। इसके साथ-साथ महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में **पवाह** शब्द भी चलता है (सब व्याकरणकार गउड एर्से काल्का) शौरसेनी में भी यह रूप है (मृच्छ २, २)।—**मारजार** का महाराष्ट्री में **मंजर** होता है (चण्ड २, १५ ; हेमचन्द्र २, १३२ हाल २८६), **मजर** भी देखा जाता है (मार्क पन्ना ६) इसके साथ साथ **मजार*** भी आया है (हेमचन्द्र १ २६) और अर्धमागधी, जैनशौरसेनी तथा शौरसेनी में **मजार** शब्द मिलता है (पण्ह २ , ६४ और ५२८ नायाध ७५६ कत्तिगे ४०१, ३४७ ; शकु १४५ १) महाराष्ट्री और शौरसेनी में **मजारी** शब्द भी मिलता है (पाइय १५ देशी १, ९८ ८२ ; विद्ध ११४, १६), **मजारिया** भी आया है (कर्पूर १५ ५)।—**शाकम्** शब्द का **सहुँ** रूप अपभ्रंश में होता है (§ २ ६)।—महाराष्ट्री में **हारिक** का **हलिम** होता है (सब व्याकरणकार हाल)।—**गभीर** का महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में **गहिर** होता है (सब व्याकरणकार ; गउड रावण एर्से), साथ-साथ **गहीर** शब्द भी चलता है (गउड)।—**नीत** शब्द का महाराष्ट्री में **णिअ** हो जाता है (रावण), अर्धमागधी में **निय** (उत्तर ६१७) और सन्धि में भी यही रूप चलता है जैसे **अतिनीत** का **मइणिअ** (देशी १ २४) महाराष्ट्री में यह रूप **आणिअ** (सब व्याकरणकार; गउड रावण) जैनमहाराष्ट्री में **आणिय** होता है (द्वारा ४९६, १ और और १२ एर्से), महाराष्ट्री में **समाणिअ** शब्द भी मिलता है (हाल), **उणिअय** शब्द भी आया है (रावण) **उवणिअ** भी मिलता है (हेमचन्द्र मार्क रावण) अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **निणिय** रूप आया है (नायाध ५१६ एर्से) इसके साथ साथ महाराष्ट्री में **णइअ** (हाल) और जैनमहाराष्ट्री में **नीय** मिलता है (एर्से) शौरसेनी में सदा दीर्घ रूप **णीद** (मृच्छ ९५, ७ शकु १२७, ९) और **अवणीद** (विक्रमो ८७ ४), **पच्चवणीद** (विक्रमो १ ४), **उवणीद** (मृच्छ १७ १८ २५, १४ ६१, ७ शकु १९ ७), **परिणीद** (शकु ७६ १) **दुव्विणीद** (शकु १७, ४), **मयिणीद** (शकु ११५ २ १५४, ७), और मागधी में भी **णीद** है (मृच्छ १६२, १९) **अवणीद** (मृच्छ १ ९ १६) और **आणीद** (मृच्छ ९ २ १२४ १९ , १७५ १५) रूप भी मिलते हैं। त्रिविक्रम १ २ ५१ में यह बताया गया है कि स्त्रीलिंग में केवल **आणीत** शब्द दीर्घ होता है। — त्रिविक्रम ने जो **आणीदा—भुवणम्मुवेक्कजणणी** (= **अनीताभुवनाभुवैक जननी**) दिया है भाषा के हिसाब से यह जैनशौरसेनी अथवा शौरसेनी है। — **तूष्णीक्** का **तुण्हिय** हो जाता है (भाम १ ५८ ; हेमचन्द्र २ ९९) इसके साथ-साथ अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में इसका रूप **तुसिणीय** हो जाता है (आयार २ १ १ १६ और उसके बाद आव एर्से २५ २)। — **धूर्णित** का महाराष्ट्री में **घिविभ** हो जाता है (सब व्याकरणकार;

* वर्तमान मराठी में बिल्ली को मंजार कहते हैं। —अनु

देशी० १, २० , ७, ६५ ; रावण० १, ६ , अच्युत० ८२), **विडिअ** रूप भी मिलता है (रावण०), अर्धमागधी मे **सविळिय** रूप आया है (नायाध० ९५८)। — **सरीसृप** का अर्धमागधी मे **सरिसिव** होता है (आयार० २, ४, २, ७ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , सूय० १०५ और ७४७ , पण्णव० ३४ और ३५ [यहाँ **सरिसव** पाठ है] , जीवा० २६३ और २६४ [यहाँ **सरीसव** पाठ है] , निरया० ४४), **सरीसव** पाठ भी मिलता है (आयार० २, ३, ३, ३ , सूय० १२९ और ९४४, सम० ९८) और **सरीसिव** पाठ भी मिलता है (सूय० ३३९ ; राय० २२८ [यहाँ **सरीसव** पाठ है] और २३५)। — महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **त्न** का **इण** हो जाता है (§ ४३१)। — **वेदना** शब्द का महाराष्ट्री मे **विअणा** और जैनमहाराष्ट्री में **वियणा** होता है (वररुचि १, ३४ , हेमचन्द्र १, १४६ , क्रम० १, ३४ , मार्क० पन्ना ११, पाइय० १६१ , गउड , हाल , रावण० , एर्त्से०)।

१ याकोबी ने कून्स त्साइटश्रिफ्ट २३, ५९८ और ३५, ५६९ में इस विषय पर भ्रामक बातें लिखी हैं। ध्वनिबल पर अंश-स्वर तथा स्वरित शब्दों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। § १३१ भी देखिए।

§ ८२—जिन शब्दों का ध्वनिबल हम तक परम्परागत रूप से नहीं पहुँचता है उनमें स्वरों की जो ह्रस्वता आ जाती है उनका कारण भी उनके विशेष वर्णपर जोर पडना है। इस प्रकार महाराष्ट्री मे **अहीर = अभीर** है [यह शब्द हिन्दी मे भी अहीर ही है।] कसवह मे **अहीर अधीर** के लिए और **आहीर आभीर** के लिए आये हैं, जो शौरसेनी में है। यह सम्भवत भूल है और छन्द की मात्राए ठीक करने के लिए हो (१, ५६) —अनु०] (हाल ८११) , **कलअ** और उसके साथ-साथ **कलाअ = कलाय** हैं (गौल्दस्मित्त , त्रिवि० और अद्भुत० १, २, ३७) , हेमचन्द्र में **कालअ = कालक** है , **मरल** (मार्क० पन्ना ६) = **मराल** , जैनमहाराष्ट्री में **महुअ** और उसके साथ साथ **महूअ = मधूक** है (वर० १, २४ , हेमचन्द्र १, १२२, क्रम० १, १३ , मार्क० पन्ना ९ , कक्कुक शिलालेख १८) , अर्धमागधी में **सरडुय = शलाटुक** है (आयार० २, १, ८, ६)। प्राकृत में एक ही शब्द के जो दो-दो या उससे अधिक रूप मिलते हैं, इनके मूल में सस्कृत शब्दों का ध्वनिबल ही है। इस प्रकार **खाइर = खादि॑र** किन्तु **खइर = खादिर** है , **देवर = दे॑वर** है (फिट्सूत्र ३, १८), किन्तु महाराष्ट्री **दिअर** (वर० १, ३४ , हेमचन्द्र १, १४६ , क्रम० १, ३४ , मार्क० पन्ना ११ , हाल), जैनमहाराष्ट्री **दियर** (पाइय० २५२) = **दे॑वर** हैं (उणादिसूत्र ३, १३२) , अर्धमागधी **पायय**, जैनमहाराष्ट्री **पागय, पायय**, महाराष्ट्री **पाइअ**, जैनमहाराष्ट्री **पाइय**, महाराष्ट्री **पाउअ**, शौरसेनी **पाउद** तथा मागधी **पाकिद** (§ ५३) = **प्राकृत** हैं, किन्तु **पअअ** (हेमचन्द्र १, ६७ , त्रिवि० १, २, ३७), **पउअ** (भामह० १, १० , क्रम० १, ९ , मार्क पन्ना ६) = **प्राकृ॑त** हैं (**स॑स्कृत** और **संस्कृ॑त** की तुलना करें)। **वलआ** (हेमचन्द्र १, ६७ , त्रिवि० , अद्भुत० १, २, ३७) तथा इसके साथ-साथ **वलाआ = वलाका** से पता लगता है कि

ओर *धंखाका अथवा *बलाका पर पहुंचा होगा, जैसे अर्धमागधी सुहुम = सूक्ष्म (§ १३०) में ओर *सुक्ष्म पर रहा होगा, किन्तु उणादिसूत्र ४, १७६ में *सूक्ष्म दिया गया है। क्रमवाचक संख्या दुइअ (भाम १, १८ हेमचन्द्र १, ९४ और १ १ क्रम १, ११ मार्क पन्ना ८), जैनमहाराष्ट्री दुइय (एर्से), शौरसेनी दुदिअ (मृच्छ० ५१, १ ६९, ५ और ६ ७८, ८ शकु० १३७, २; विक्रमो० ५, १२ १, १; १९, ८ महावी ५२, १७ आदि आदि[1]), मागधी दुदिअ (मृच्छ० ८१, ५; १३४, २), महाराष्ट्री विइअ (हेमचन्द्र १, ९४ गउड० १ ८; रावण), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री विइय (सूय १७७ उवास नायाध०; कप्प और बहुधा अध्याय शेष के वाक्य में जैसे आयार पेज १, ८, १५, २९, ३४ आदि आदि एर्से), महाराष्ट्री तइअ (भाम० १, १८; हेमचन्द्र १, १ १ क्रम १, ११ मार्क० पन्ना ८; गउड), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री तइय (ओव० § १ ५ और १४४ उवास निरया; कप्प और बहुधा अध्याय समाप्तिसूचक पद में जैसे आयार पेज ४, १, १६, १७, २, २४ आदि आदि एर्से कप्प), शौरसेनी तदिय (मृच्छ ६९, १४ और १५ मुद्रा० ४१, ७ [यहाँ पर यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), मागधी तदिअ (मृच्छ १६६, २४ [पाठ में तइअ आया है])। ये शब्द द्वितीय तृतीय से नहीं निकले बल्कि इनकी व्युत्पत्ति *द्वितय और *तृत्य से है। ऐसे शब्दों में जैसे जीयति के महाराष्ट्री रूप जिअइ और आरोहति के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री रूप आरुहइ के लिए § ४८२ देखिए[1]। पाणिअ के लिए § ९१ देखिए और गृहीत से निकले हुए गहिअ के लिए § ५६४ देखिए। दीर्घ स्वर जब ह्रस्व कर दिये जाते हैं तब वे संयुक्ताक्षर और अपभ्रंश को छोड़कर अन्यत्र ह्रस्व नहीं किये जाते। कालायस से कालाअस हुआ, फिर उससे कालास बन गया (§ १६५); कुम्भकार शब्द से कुम्भआर बना, उससे कुम्भार निकला। कार में अन्त होनेवाले दूसरे शब्द के लिए § १६७ देखिए। चाक्षपाक शब्द से चाक्खाअ बना, फिर उसका चक्खाअ हो गया (§ १६७); पादातिक से पाइक्क बन गया (§ १९४) *द्वित्य और तृत्य का द्विइअ और तिइअ बना और इनसे विअ और तिअ हो गया (§ १६५)। नाराच का णराअ और उसके साथ-साथ महाराष्ट्री रूप णाराअ (रावण) और अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री में नाराय बन गया (उवास आव ; प्रबन्ध पि १ , ७; एर्से हेमचन्द्र १, ६७)। अर्धमागधी पडिन् के लिए § ९९ देखिए।

1 ग्रन्थों में बहुधा दुदीअ शब्द मिलता है। जैसे मुद्रा ७१ ७; मालती ३१ १; ७१ ३; ७१ ४; १ १ ८; बाल १०४ १०; अनर्घ ६१ ६; वृषभ २२ ९ आदि आदि शुद्ध पाठ अधिकतर मालतीमाधव में मिलता है। — २ कल्पसूत्र पर याकोबी का गुजराती का पेज १ १ भाग १८। इस (माइकलिस में पिशल का लेख (१५ १ ४ में) देखिए। इसी पत्रिका के १५ ५० और बाद के पेजों में याकोबी का लेख देखिए। — ३.

याकोबी ने उक्त पत्रिका के ३५, ५६९ और बाद के पेजों में इस क्रम की स्वीकृति के विरुद्ध लिखा है किन्तु लचर प्रमाणों के साथ। — ४. कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५६५ के नोट १ में याकोबी का मत है कि यहाँ पर संकोच का सिद्धान्त स्वीकार करना कोई कारण नहीं रखता। यह सिद्ध करना पड़ेगा। पीटर्सबर्ग के संस्कृत-कोश में **नाराच** ध्वनिबल के साथ दिया गया है। इसका कारण वैदिक **नाराचीं** है। बोएटलिंक के संक्षिप्त संस्कृत शब्द-कोश में ध्वनिबल नहीं है। सम्भवतः मोटी बात यह हो कि इस शब्द के दो रूप रहे हों **नाराच** और **नराच** § ७९–८२ तक के लिए साधारण रूप से कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३४, ५६८ तथा उसके बाद के पेजों में और ३५, १४० तथा उसके भी बाद के पेजों में पिशल के लेख से तुलना कीजिए। इसके विपरीत उक्त पत्रिका के ३५, ५६३ और उसके बाद के पेजों में याकोबी का जो लेख है, वह भ्रमपूर्ण है।

§ ८३—हेमचंद्र १, ८४ के अनुसार कुछ शब्दों में दीर्घ स्वर, ह्रस्व हो जाता है। पल्लवदानपत्र में **राष्ट्रिक** का **रट्ठिक** लिखा गया है (५, ४)। **अमात्यान्** का **अमच्चे** हो गया है (५, ५)। **वास्तव्यानाम्** का रूप **वत्थवाण** है (६, ८)। **ब्राह्मणानाम्** का **बम्हणानम्** बन गया है (६,८, २७, ३०, ३८)। **पूर्व** की सूरत **पुव्व** बन गयी है (६, १२, २८)आदि आदि। पल्लवदानपत्र में निम्नलिखित शब्दोंमें संस्कृताऊपन दिखाई देता है **कांचीपुरात्** के लिए प्राकृत रूप **कंचीपुरा** के स्थानपर **कांचीपुरा** (५, १) और **आत्रेय** के लिए शुद्ध प्राकृत रूप **अत्तेय** के स्थान पर **आत्तेय** (६, १३)। संस्कृत शब्द **चत्वारि** के लिए शुद्ध प्राकृत **चत्तारि** के स्थान पर **चात्तारि** में भी संस्कृताऊपन दिखाया गया है (६, ३९)।—पल्लवदानपत्र, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और ढक्की में **काष्ठ** का **कट्ठ** रूप मिलता है (पल्लवदानपत्र ६,३३, हाल, ओव०, एर्त्से०, मृच्छ० ३०,१६)[१]।—महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **काव्य** का **कव्व** रूप हो जाता है (गउड०, हाल, रावण०, एर्त्से०, विक्रमो०, २१,११, ३५, ५)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **गात्र** का **गत्त** रूप पाया जाता है (रावण०, ओव०, एर्त्से०)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **राज्य** का **रज्ज** हो जाता है (हाल, रावण०, नायाध०, निरया०, ओव०, एर्त्से०, विक्रमो० ७५,५)।—जैनशौरसेनी में **उपशांत** का **उवसंत** बन जाता है (कत्तिगे० ४०३, ३७७)।—मागधी में **श्रांत** का **शंत** रूप है (मृच्छ० १३, ७)।—अपभ्रंश मे **कांत** का रूप **कंत** मिलता है (हेमचन्द्र ४, ३४५, ३५१, ३५७, १, ३५८, १, विक्रमो० ५८, ९)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश में **कीर्ति** **कित्ति** हो जाता है (वर० ३, २४, हेमचन्द्र २, ३०, क्रम० २, ३४, मार्क० पन्ना २२, गउड०, रावण०, उवास, ओव०, कप्प०, एर्त्से०, हेमचन्द्र ४, ३३५), शौरसेनी मे **कीर्तिका** का **कित्तिआ** हो जाता है (विक्रमो० १२, १४)।—**तीर्थ** का अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी तथा अपभ्रंशमें **तित्थ** हो जाता है (ओव०, कप्प०, एर्त्से०, पव० ३७९, १, शकु० ७९, १, १०५, ४, १०८, १०, हेमचन्द्र ४, ४४१, २)।—**ग्रीष्म** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, शौरसेनी, मागधी

और अपभ्रंश में गिम्ह रूप बन जाता है (गउड हाल रावण ओव कप्प ; मृच्छ० ८ , २१ शकु १ , १ मृच्छ० १ , ४ हेमचन्द्र ४, ३५७, १)।—ऊर्ध्व का महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अपभ्रंश में उद्ध होता है (गउड हाल रावण एर्त्से मृच्छ० ११, २ ४१, २२ १२६, १६ हेमचन्द्र ४, ४४४, १), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में उड्ढ रूप मिलता है तथा जैनमहाराष्ट्री में उम्म भी (§ ३०)।—कूर्म शब्द के लिए महाराष्ट्री और अर्धमागधी में कुम्म शब्द आता है (गउड उवास ; ओव कप्प०) महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी मागधी और अपभ्रंश में चूर्ण का चुण्ण हो जाता है (गउड० हाल रावण आयार २, १, ८, १ २, २, १ १ कप्प कालका मृच्छ ६८, २५ ११७, ७ हेमचन्द्र ४, ३९५, २)।—मूल्य शब्द का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में मुल्ल हो जाता है (हाल कर्पू ७१ १ ओव कत्तिगे ४० ११५ मृच्छ ५५, १५ ७८, १ ८२, १५ ८८ २१ और उसके बाद शकु ११९, १२)।—अनुनासिक और अनुस्वारवाले सभी शब्द भले ही संस्कृतमें अनुनासिक अथवा अनुस्वार म से (§ १४८ के अनुसार) प्राकृत में गये हों (हेमचन्द्र १, ७०) किन्तु ऐसे रूपों के लिए भी यही नियम लागू होता है। कांस्यताल के लिए महाराष्ट्री और शौरसेनी में कंसताल होता है (गउड ; मृच्छ ६९, २४ कर्पूर १, १)।—पांसु शब्दका महाराष्ट्री अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में पसु हो जाता है (गउड रावण विवाग १५५ भग एर्त्से माल्ती १४२, १ मल्लिका २५१, १८ ३३६, १)।—मांस शब्द का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में मस* हो जाता है (हाल; सूय २८१; दस ६१२, २४; उवास ओव एर्त्से ; आव एर्त्से २७, १२ कत्तिगे० ४००, ३२८ शकु २९, ६)। मागधी म मंश होता है (मृच्छ १ , १; २१, १७; ११७, ९; १२१, ७, १२६, ५ १६१, ९; वणी ११, ६; १४, २ ११, १२ में मंशाद मिलता है)। यह नियम संस्कृत की विभक्तियाँ –आम् –ईम्, –ऊम् और –आन् भिन्न-भिन्न कारकों में लगती हैं उन पर बहुत अधिक लागू होता है। उदाहरणार्थ पुत्राणाम् का महाराष्ट्री में पुत्ताणम् हो जाता है, अग्नीनाम् का अग्गीणं, वायुनाम् का वाउणं मालाम् का मालं सखिम् का सहिं आदि आदि हो जाता है (§ ३७ और ११६)। क्रियाविशेषणों में भी यह नियम चलता है जैसे इदानीम् का दाणिं (§ १४४), सार्धम् का अर्ध-मागधी और जैनमहाराष्ट्री में सद्धिं हो जाता है (§ १ १)। यह नियम विस्म-यादिवाचक शब्दों के लिए किसी प्रकार लागू नहीं होता। शौरसेनी और मागधी में संस्कृत आम् का आं हो जाता है (मृच्छ २७ १ शकु ७१, ११; विक्रमो ११, २ १९ १ ७५ ५; मालवि ६, १; ८ , ८; माल १२१, १७; मुद्रा ११६, १९)। अपभ्रंश में कुत्र यत्र और तत्र का कहां, जहां और तहां होता है (हेमचन्द्र ४ १५५) इसमें स्वर दीर्घ बन गया है जिसके लिए § ६८ देखिए।

---

* यह हिन्दी की बोलियों में चलता है। कुमाउनी बोली में मांसभक्षी का पर्याय मसखाट है।
—अनु

१. इस प्रकार के नियमों के लिए, जिनके शब्द ग्रन्थों में बार-बार मिलते हैं, थोड़े में महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री की ऐसी पुस्तकों से शब्द लिये गये हैं जिनकी शब्द-सूची अन्त में दी गयी है और ये उदाहरण मुख्यतया उन शब्दों के दिये गये हैं जो यथासम्भव बहुत-सी प्राकृत भाषाओं में एक ही प्रकार के मिलते हैं।

§ ८४—सयुक्ताक्षरों से पहले **ए** आने पर **ऍ** हो जाता है और **ओ** का **ऑ** हो जाता है। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री में कभी-कभी **इ** और **उ** हो जाता है: **प्रेक्षते** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **पेॅच्छइ** होता है (हेमचन्द्र ४, १८१, गउड०, हाल, रावण०, ओव०, एर्त्से०)। अर्धमागधीमें **प्रेक्षणीय** का **पेॅच्छणिज्ज** हो जाता है (नायाध०, ओव०, कप्प०), **प्रेक्षक** का **पेच्छग** बन जाता है (विवाह० ९२९) और अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्रीमें **पिच्छइ** (कप्प०, कालका०)। अर्धमागधीमें **पिच्छणेॅज्ज** भी मिलता है (जीवा० ३५३)। जैनशौरसेनी में **पेॅच्छदि** (पव० ३८४, ४८)। शौरसेनीमें **पेॅक्खदि** आया है (शकु० १३, ६, विक्रमो० ८४, ५), मागधी मे **पेस्कदि** (हेमचन्द्र ४, २९५ और २९७, मृच्छ० ८०, ४, ११२, १७)। महाराष्ट्री में **अपेक्षिन्** का **अवेॅक्खि** हो जाता है (गउड०)। महाराष्ट्री में **दुष्प्रेक्ष** का **दुप्पेॅच्छ** बन जाता है (रावण०)। शौरसेनी मे **दुप्पेॅक्ख** (प्रबोध० ४५, ११) मिलता है। मागधी मे **दुप्पेक्ख** (मृच्छ० ११६, ७)।—**दुर्भेद्य** का **दुब्भेॅज्ज** हो जाता है (मृच्छ० ६८, १९)।—अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश में **म्लेच्छ** का **मेॅच्छ** हो जाता है (ओव० § १८३ [इस ग्रन्थ में **म्लेच्छ** के लिए **मिच्छ** भी मिलता है], आव० एर्त्से० ३९, २, मुद्रा० २२९, ९, चैतन्य० ३८, ६ [ग्रन्थ में **मलेॅच्छ*** शब्द आया है], पिंगल० १, ७७ और ११७ (अ), २, २७२) और **मिलिच्छ**† भी मिलता है (हेमचन्द्र १, ८४), अर्धमागधी में **मिच्छ** चलता है (पण्णव० १३६)।—**क्षेत्र** का महाराष्ट्री में **खेॅत्त** हो जाता है (भाम० ३, ३०, हेमचन्द्र २, १७, गउड०, हाल), अर्धमागधी में **छित्त** रूप आया है (ओव० § १)। अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में **खेत्त** रूप भी आता है (आयार० १,२,३,३, सूय० ६२८, विवाह० ९७, १५७, २०३ और ५८३ तथा उसके बाद, उत्तर० ३५५ और उसके बाद, दस० नि० ६५३, १४, एर्त्से०, पव० ३७९, ३, ३८७, २१, कत्तिगे० ४०१, ३५२, मृच्छ० १२०, ७, अनर्घ० २६१, ५)। अर्धमागधी में **खित्त** रूप भी मिलता है (उत्तर० ५७६ और १०१४)।—महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **ओष्ठ** का **ओॅट्ठ** हो जाता है (गउड०, हाल, रावण०, कर्पूर० ८, ३, ५०, ५, पण्हा० ६३, आव० एर्त्से० ४१, ६ और एर्त्से०) और जैनमहाराष्ट्री में **उट्ठ** (एर्त्से०) तथा अर्धमागधी में **हुट्ठ** आता है

* कुछ बोलियों में मलेॅच्छ का प्रचार रहा होगा क्योंकि आज भी कुमाउनी बोली में इसका प्रचलन है।—अनु०

† हिंदी में मालिच्छ और मलेच्छ रूप पाये जाते हैं। देखिए 'संक्षिप्त हिंदी-शब्द-सागर' आदि कोश।—अनु०

(आयार० १, १, २, ५)।—अन्योन्य का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में अण्णोॅण्ण हो जाता है (गउड०; हाल रावण सूय० १३७ ओव ; एर्त्से मृच्छ २४, १६ ७१, १ और ११ शकु ५९, १५ विक्रमो ५१, १६) और महाराष्ट्री में अण्णुण्ण रूप है (हेमचन्द्र १, १५६ गउड), मालतीमाधव ७१८, ८ में भी शौरसेनी में अण्णुण्ण रूप मिलता है, किन्तु यह अशुद्ध है।—प्रकोष्ठ का महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनीमें पओॅट्ठ हो जाता है (भाम पण्ह ११ कर्पूर ४७, ६ ओव ; मृच्छ ६८, २१ ६९, ५ तथा उसके बाद ७ , ५ और उसके बाद ७१, ११ और १२ ७२, १ बाल ८ १ पिङ्ग० § २७६)।—यह नियम उन ऐ और औ पर भी लागू होता है जो बाद में ए और ओ हो जाते हैं (§ ६ और उसके बाद) और जो सम्प्रसारण० द्वारा भी ए और ओ हो जाते हैं (§ १५३ और १५४) तथा सम्प्रसारण द्वारा अइ और अउ (§ १६६) से निकले हुए हैं। ए और ओ तथा ऐ एवं औ से निकले हुए ए और ओ पर भी यह नियम लागू होता है। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्रीमें संस्कृत ऐ सदा ही एॅ बन फिर इ हो जाता है, ऐक्ष्वाक का इक्खाग रूप हो जाता है (आयार २, १, २, २ ठाणंग ४१४ और ४५८ नायाध ६९२, ७२९, १५ ५ पण्णव ६१ उत्तर ५१२ ओव कप्प आव एर्त्से ४६, १९; एर्त्से)। लौयमान और याकोबीने इस इक्खाग के लिए संस्कृत रूप इक्ष्वाकु दिया है जो स्पष्टतया अशुद्ध है। शौरसेनी में मैत्रेय का मित्तेअ हो जाता है (मृच्छ ४ २२ और २३ ६ १ १७, २ २२ १५ ५३, १८ ७४, १९ १५०, १२) मागधी में भी यही रूप काम में आता है (मृच्छ ८५, १)। सैन्धव का सिन्धव रूप हो जाता है (वररुचि १, ३८ हेमचन्द्र १ १४९ क्रम १, ३६; मार्क पन्ना १२)। महाराष्ट्री और अर्धमागधी में शनैश्चर का सणिच्छर हो जाता है (हेमचन्द्र १, १४९ और उसपर नोट पण्हा ११२ पण्णव ११६ ओव), अर्धमागधी में इसका रूप सणिच्चर (ठाणंग ८२ और १११ भग २ २२५) होता है। यह शब्द त्रिविक्रम ने मेरी हस्तलिखित प्रति १ २,९४ में दिया है, किन्तु छपी प्रति में शणिच्छर है। इसका समाधान इस प्रकार होता है कि या तो इसपर § ७४ में वर्णित नियम लगता है या महाराष्ट्री और शौरसेनी सणिअम् की नकल पर बने हुए किसी सणिअचर से यह शब्द बना हो। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में सणियम् आता है। पाली म सणिकम् और सनिम् (हेमचन्द्र २ १६८; पाइय १५; गउड ; हाल आयार २ १५, १९ और २ तथा २२; विवाह १७२, १७३; उवास ; एर्त्से ; मालती १११ ३; उत्तर १२ ८ मिभद १७ १३; मल्लम ४५, ३; मल्लिका २४२ १)। विद्धशालभंजिका १२ ९ में शौरसेनी में सणिअर शब्द मिलता है।—मार्कण्डेय ने पन्ना १२ में बताया है कि सैन्धव के अतिरिक्त भैक्षाजीविक, नैयायिक और पैण्डपातिक के रूप भी बदलते हैं। इनमें से भिक्खाजीविम की

* सम्प्रसारण उस नियम को कहते हैं जिसके प्रभाव से य का इ, अव का उ, व का उ और अय का ए होता है। इसका पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए § १५१ से § १५५ तक देखिए।—अनु

उत्पत्ति **भिक्षाजीविक** से हो सकती है, **पिण्डवाइअ** की **पिण्डपात्रिक** से। तथा **नैयाइक** का अर्धमागधी मे **नेयानुय** रूप है (§ ६०)। जो शब्द **औ** के स्थान पर **ओ॑** का प्रयोग करने के बाद इस **ओ॑** को भी उ मे बदल देते है उन्हे व्याकरणकारों ने **सौन्दर्यादिगण** मे रखा है (वररुचि १, ४४ , हेमचन्द्र १, ६६ , क्रम० , १, ४३ , मार्क० पन्ना १३ , प्राकृतकल्प० पेज ३७)। मार्कण्डेय और प्राकृतकल्पलता के अनुसार यह (ये ग्रन्थ आपस मे बहुत मिल्ते है) एक आकृतिगण है। त्रिविक्रम १, २, ९७ के अनुसार **शौण्डग** आकृतिगण मे ये रूप दिये गये हैं।

इन शब्दो में **सौन्दर्य** का रूप **सुन्देर** है। महाराष्ट्री शब्द कर्पूरमजरी ६६, ७ में मिलता है और शौरसेनी धूर्त० १०, ९ में। इस शब्द के लिए प्रतापरुद्रिय २२०, ९ में **सो॑ण्डज्ज** मिलता है। हेमचन्द्र ने **सुन्दरिय** रूप भी दिया है। **औपरिष्टक** का **उवरिट्ठअ** होता है (मार्क० , प्राकृतकल्प०), **कौक्षेयक** के लिए **कुक्खेअअ** रूप है (भाम०, क्रम० , मार्क० , प्राकृतकल्प०) इसके लिए हेमचन्द्र १, १६१ और त्रिविक्रम १, २, ९६ में **कुच्छेअअ** और **को॑च्छेअअ** शब्द बताते हैं। **दौवारिक** का **दुवारिय** होता है (भाम० [यहाँ **दुःवारिअ** पाठ है जो **दुवारिअ** पढा जाना चाहिए], हेमचन्द्र , क्रम० , मार्क० , प्राकृतकल्प०)। यह **दुवारिअ** बहुत सम्भव है कि **द्वारिक** से निकला हो। **दौःसाधिक** का **दुस्साहिअ** होता है (मार्क , प्राकृतकल्प०)। **पौलोमी** का **पुलोमी** हो जाता है (हेमचन्द्र , मार्क० , प्राकृतकल्प०)। **पौष्य** का **पुस्स** हो जाता है (मार्क० [इस ग्रन्थ मे **पौस** पाठ है] प्राकृतकल्प० में **पौरुष** पाठ है, जो अशुद्ध है)। **मौञ्ज** का **मुञ्ज** हो जाता है (मार्क० , प्राकृतकल्प०)। **मौञ्जायन** का **मुंजाअण** होता है (भाम० , हेमचन्द्र , क्रम० , मार्क०)। **शौण्ड** का **सुंड** हो जाता है (भाम०, हेमचन्द्र, क्रम० , मार्क०, प्राकृतकल्प०)। **शौण्डिक** का **सुण्डिअ** मिलता है (क्रम०, मार्क० , प्राकृतकल्प०) और इस प्रकार मागधी में **शौण्डिकागार** का **सुंडिकागाल** हो जाता है (शकु० ११८, ७)। **शौद्धोदनि** का **शुद्धोअणि** मिल्ता है (हेमचन्द्र), **सौवर्णिक** का **सुवण्णिय** हो जाता है (हेमचन्द्र)। इस शब्द के लिए यह सम्भावना अधिक है कि यह °**सुवर्णिक** से निकला हो। **सौगन्ध्य** के लिए **सुगन्धत्तण** आता है (हेमचन्द्र)। अधिक सम्भव है कि यह शब्द °**सुगन्धत्वन*** से निकला होगा।

§ ८५—शब्द की समाप्ति में रहनेवाले **ए** और इसी स्थान पर रहनेवाले मौलिक और गौण (§ ३४२ और उसके बाद) **ओ**, ऐसे प्रत्यय से पहले जो सयुक्ताक्षरों से प्रारम्भ होते हैं, अपभ्रश को छोड, दूसरी प्राकृत भाषाओं में **ए॑** और **ओ॑** में परिणत हो जाते हैं, **इ** और **उ** में नहीं, वैदिक प्रयोग **युस्मे-स्थ** का (महाराष्ट्री में) **तुम्हे॑-त्थ** हो जाता है (रावण० ३, ३)। **सागर इति** का **साअरे॑-त्ति** (रावण० ४, ३९), **अणुराग-इति** का **अणुराओ॑त्ति** (गउड० ७१५)। **प्रिय इति** का **पिओ॑-त्ति**

* इस **त्वन** का हिन्दी में **पन हो** गया है। यह उसी नियम से हुआ जिससे **आत्मा** का **अप्पा** बन गया।—अनु०

(आयार १, १, २, ५) ।—अन्योन्य का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में अण्णोण्ण हो जाता है (गउड हाल रावण सूय ११७ ओव ; एर्त्से मृच्छ २४, १६ ७२, १ और ११ शकु ५६, १५ विक्रमो० ५१, १९) और महाराष्ट्री में अण्णुण्ण रूप है (हेमचन्द्र १, १५६ गउड), बालरामायण ७१८, ८ में भी शौरसेनी में अण्णुण्ण रूप मिलता है, किन्तु यह अशुद्ध है ।—प्रकोष्ठ का महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनीमें पओट्ठ हो जाता है (भाम पथा १२ कर्पूर ४७, ६ आव मृच्छ० ९८, २२ ९९, ५ तथा उसके बाद; ७ , ५ और उसके बाद ७१, ११ और १२ ७२, १ बाल ८ , १ विद्ध § २७६) ।—यह नियम उन ऐ और औ पर भी लागू होता है जो बाद में ए और ओ हो जाते हैं (§ ६ और उसके बाद) और जो सम्प्रसारण* द्वारा भी ए और ओ हो जाते हैं (§ १५१ और १५४) तथा सम्प्रसारण द्वारा अइ और अउ (§ १६९) से निकले हुए हैं । ए और ओ तथा ऐ एवं औ से निकले हुए ए और ओ पर भी यह नियम लागू होता है । अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्रीमें संस्कृत ऐ क्ष्वा ही यें बन फिर इ हो जाता है ऐक्ष्वाक का इक्खाग रूप हो जाता है (आयार २, १, २, २; ठाणंग ४१४ और ४५८ नायाध ११२, ७२९, १५ ५ पण्णव ६१; उत्तर ५१२; ओव कप्प आव एर्त्से ४९, १९; एर्त्से) । वेबर और याकोबीने इस इक्खाग के लिए संस्कृत रूप इक्ष्वाकु दिया है जो स्पष्टतया अशुद्ध है । शौरसेनी में मैत्रेय का मित्तेय हो जाता है (मृच्छ ४, २१ और २१ ६ १ १७, २ २२, १५ ५१ १८ ७४ १९ १५ , १२) मागधी में भी यही रूप काम में आता है (मृच्छ ४५, १) । सैन्धव का सिन्धव रूप ही आता है (वररुचि १, ३८; हेमचन्द्र १ १४९ क्रम १, ३६; मार्क पन्ना १२) । महाराष्ट्री और अर्धमागधी में शनैश्चर का सणिच्छर हो जाता है (हेम-चन्द्र १, १४९ और उसपर नोट पण्हा ११२ पण्णव ११६ ओव), अर्ध-मागधी में इसका रूप शणिच्छर (ठाणंग ८२ और १९९; भग २, २२५) होता है । यह शब्द त्रिविक्रम ने मेरी हस्तलिखित प्रति १, २ ९४ में दिया है, किन्तु छपी प्रति में शणिच्छर है । इसका समाधान इस प्रकार होता है कि या तो इसपर § ७४ में वर्णित नियम लगता है या महाराष्ट्री और शौरसेनी सणिअम् की नकल पर बने हुए किसी सणिअचर से यह शब्द बना हो । अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में सणियम् आता है । पाली में सनिकम् और सनिम् (हेमचन्द्र २, १६८ पाइय १५; गउड ; हाल आयार २ १५ १९ और २ तथा २२; विवाह १७२, १७३; उवास ; एर्त्से ; मालती २१९ १; उत्तर १२ ८ प्रिय १७ ११ प्रसन्न ४५, १; मल्लिका १८२, १) । विद्धशालभञ्जिका १२ ९ में शौरसेनी में सणिआर शब्द मिलता है ।—मार्कण्डेय ने पन्ना १२ में बताया है कि सैन्धव के अतिरिक्त सैद्धाजीविक, नैयायिक और पैण्डपातिक के रूप भी बदलते हैं । इनमें से मिण्डवासीयिम की

* सम्प्रसारण उस नियम को कहते हैं जिसके प्रभाव से य का इ, व का उ, र का ऋ और ल का ऌ होता है । इसका पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए § १५१ से § १५५ तक देखिए ।—अनु

एर्त्से० ७, २३)। **मुद्रयांकितः** के स्थान पर **मुद्दाएँअंकिओ** (आव० एर्त्से० ८, १४)। **यूथात्परिभ्रष्टः** का **जूहाओँ परिब्भट्ठो** (एर्त्से० ६९,१४)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे और स्वय स्वरो तथा सरल व्यञ्जनो से पहले कविता मे कई अन्य स्थलो पर **ऍ** और **ओँ** ह्रस्व गिने जाते है, जैसे—**उन्नतो वा पयोदः** के स्थान पर **उन्नऍ वा पओए** हो जाता है। **वृष्टो वलाहक इति** का **वुट्ठे वलाहऍत्ति**(दस०६२९, ३१ और ३२)। **अलोलो भिक्षुः** का **अलोलो भिक्खू** होता है (दस० ६४०-३)। जैनमहाराष्ट्री में **मन्य एप** का **मन्ने एस** * हो जाता है (आव० एर्त्से० ७, ३०), **नीत उज्जयिनीम्** का **निओँ उज्जेणिं** होता है (आव० एर्त्से० ८, १४)। विभक्ति के प्रयोग मे आनेवाले **मिं** के स्थान पर **म्मि** भी पाया जाता है, **से** के लिए अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **सेँ** भी मिलता है और अर्धमागधी में कविता में **सि** का प्रयोग पाया जाता है (§ ४१८ और ४२३), **शक्यः** के स्थान पर **शक्के** के लिए मृच्छ० ४३, ६ और उसके बाद कविता मे **शक्कि** शब्द का व्यवहार किया गया है आदि आदि (§ २६४)[१]। अर्धमागधी में **उताहो** का **उदाहु** (उवास०) अथवा **उयाहु** (आयार० १, ४, २, ६)। इस सम्बन्ध मे § ३४६ भी देखिए। अपभ्रश मे शब्द के अन्त मे आनेवाले **ए** और **ओ** सभी स्थलों पर या तो ह्रस्व हो जाते हैं या इ और उ मे परिणत हो जाते हैं। **प्रिये*दृष्टके** के स्थान पर **पिएँदिट्ठई** देखा जाता है (४, ३६५, १)। **हृदये** के स्थान पर **हिअइ** मिलता है (हेमचन्द्र ४, ३३०, ३ , ३९५, ४ और ४२०, ३)। **प्रिये प्रवसति** के स्थान पर **पिएँ पवसन्तेँ** होता है (हेमचन्द्र ४, ४२२, १२)। **कलियुगे दुर्लभस्य** के स्थान पर **कलिजुगि दुल्लहहोँ** व्यवहार में आया है (हेमचन्द्र ४,३३८)। **अंगुल्यो जर्जरिताः** के लिए **अंगुलिउ जज्जरिआउ** का प्रयोग हुआ है (हेमचन्द्र ४, ३३)। **दिनकर. क्षयकाले** के लिए **दिणअरु खअगालि** हो गया है (हेमचन्द्र ४, ३७७)। **कृतान्तस्य** का **कृदन्तहोँ** रूप बन गया है (हेमचन्द्र ४,३७०, ४)। इस सम्बन्ध में § १२८, १३० और ३४६ भी देखिए। कई ग्रन्थों में सयुक्त व्यञ्जनों से पहले **अ** के स्थान पर **ऍ** और **ओँ** लिखे गये है। यह रूप अशुद्ध है। इस भूल के अनुसार **प्रस्मृतवान् अस्मि** के लिए **पम्हट्ठोँम्हि** होना चाहिए था जिसके लिए लिखा गया है—**पम्हट्ठुम्हि** (रावण० ६, १२। स्वय हेमचन्द्र ३, १०५ में यह अशुद्ध रूप मिलता है)। शौरसेनी में **हतो-ऽस्मि** का **हदम्हि** लिखा पाया जाता है, किन्तु होना चाहिए था—**हदोम्हि** (शकु० २९, २)। मागधी में **कदेँम्हि** के लिए अशुद्ध रूप **कदम्हि** मिलता है (मृच्छ० ३८, १५)[२]। इस सम्बन्ध में § १५ और ३४२ भी देखिए।

१ § २६५, २७५ और ३८५ , लास्सन, इन्स्टीट्यूत्सीओनेस पेज ४८ ; वेबर, त्साइटुंग डेर मौरगेनलैण्डिसन-गेज़ेलशाफ्ट २८,३५२, एस गोल्दस्मित्त, प्राकृतिका, पेज २९। — २. पिशल, गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगेन १८८०,

* **एस** का यह अर्थ हिन्दी के एक सीमित क्षेत्र अर्थात् दो तीन सौ गाँवों के भीतर आज भी प्रचलित है। कुमाऊँ में अल्मोड़े की एक तहसील पिठौरागढ़ में यह को **एस** कहते हैं।—अनु०

(हाल ४६)। पुरुष इति का जैनमहाराष्ट्री में पुरिसो॑-त्ति (आव एर्त्से ११, १) गत-इति का गओ-त्ति (आव एर्त्से० १७, ६)। काष्ठ-इव का कट्ठों॑-व्व (एर्त्से ७१, २७ और ३५) जैनशौरसेनी में सम-इति का समो॑-त्ति (पव० ३८ , ७)। कुछ अशुद्ध पाठ यहाँ दिये जाते हैं : अर्धमागधी में (आयार० १, १, ३, ४) जो मु-त्ति शब्द आया है वह मो॑ त्ति के लिए है। यह पाठ कलकत्ते के संस्करण में छप गया है। ये शब्द संस्कृत स्म-इति के प्राकृत रूप हैं। जैनशौरसेनी माया-चारुव्व माया-चारोव्व का अशुद्ध पाठ है (पव ३८१, ४४)। अर्धमागधी में लोह मारोव्व और गगसोभो॑व्व के लिए अशुद्ध पाठ लो॑हमारुव्व और गंगसोउव्व आये हैं (उत्तर ५८१) और कई अन्य जगहों पर भी ये पाठ मिलते हैं। इस विषय पर § १४६ भी देखिए। शौरसेनी में अवहिदोऽस्मि के स्थान पर अवहिदो॑ म्हि हो जाता है (विक्रमो ७८, १४)। ब्राह्मणस्य के स्थान में बम्हणो॑स्से॑व्व होता है (मृच्छ २७, १८)। एष खलु का मागधी में एशे क्खु होता है (मृच्छ ४ ९)। पुत्रक-इति का पुत्तक॑-त्ति होता है (शकु १६१, ७)। इसके विपरीत महाराष्ट्री में ए और ओ का दीर्घ स्वरों के बाद कारकों की विभक्तियों के अन्त में इ और उ हो जाता है जब कविता में मात्रा का हिसाब ठीक बैठाने के लिए ह्रस्व अक्षर की आवश्यकता पड़ती है पृष्ठायां मुग्धायाः का पुष्टिआइ मुद्धाए होता है (हाल १५)। गोदायास् तीर्थानि का गोलाइ तूहाइं होता है (हाल ५८)। ग्रामतरुण्यो हृदयम् का गामतरुणीउ हिअअं (हाल ५४६) और उदधेर्-निर्गतम् का उअहीउणिग्गअम् (गउड ५६) है। सभी हस्तलिखित प्रतियों में ऍ और ओ॑ बहुत कम लिखे जाते हैं और प्राकृत तथा अपभ्रंश के सभी व्याकरणकार ऍ और ओ॑ लिखने के पक्ष में मत देते है (आव एर्त्से पेज ६ नोट ४; संगीतरत्नाकर ४, ५५ और ५६ पिंगल १, ४)। कुछ उदाहरण इनके प्रयोग के ये हैं : यशोदायाश्चुम्बितम् का जसोआऍ चुम्बिअं मिलता है (गउड २१) अथवा कौस्तुभकिरणायमानाः कृष्णस्य का को॑त्थुहकिरणाअन्तीओ कण्हस्स (गउड २२) है। हस्तलिखित प्रतियाँ अधिक स्थलों पर डाँवाडोल हैं, जैसे गउडवहो ४४ में हरार्लिंगणलज्जियायाँ भज्जायें के स्थानपर सर्वोत्तम हस्तलिपि के पाठ में हरालिंगणलज्जियाइ भज्जाइ मिलता है। प्रायः सर्वत्र पाठों की यही दशा है। अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी पाठों पर भी यही कहा जा सकता है। तो भी अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री के हस्तलिखित पाठों में दीर्घ स्वरों के बाद कभी-कभी ऍ ओ॑ मिल जाता है और बहुधा इनका प्रयोग भी अशुद्ध मिलता है। इस प्रकार : सर्वकर्मावहाः के स्थान पर अर्धमागधी में सव्वकम्मावहाओ॑ मिलता है (आयार १ ८, १ १६)। कलकत्ते के छपे संस्करण में यह अशुद्धि शुद्ध कर दी गयी है और उसमें छपा है सव्वकम्मावहाउ। लेपमायायां संपतः का लेपमायाऍ सम्पए मिलता है (दस ६२२ ११)। निर्ग्रन्थस्थात् अभ्यपति के स्थान पर निग्गन्थत्ताओ॑ अब्भत्ते (दस ६२४ ११)। जैनमहाराष्ट्री में पुष्पैश्चाघ्र पिंधया युक्ता के स्थान पर पुप्फीऍं धऊप्पिहाऍ छुभा॑ आया है (आव

२ और ५, १२, ११, वृषभ० ३९, ३)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **दीहिया** (आयार० २, ३, ३, २, ओव०, एत्सें०), साथ-साथ **दिग्घ** शब्द भी मिलता है (भाम० ३, ५८, हेमचन्द्र २, ९१)। शौरसेनी और मागधी में **दिग्घिआ** रूप है (रत्ना० २९९, १२, नागानन्द ५१, ६, प्रिय० ८, १३, १२, २, १९, १७, २३, ११, २४, ९ और १५, मागधी के लिए, मृच्छ० १३४, ७)। — महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **पार्श्व** का **पास** हो जाता है (हेमचन्द्र २, ९२, गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, १, २, ५, ओव०, कप्प०, एत्सें०, विक्रमो० १७, ११, २४, ४ और ५, ३६, १२, ७५, १५, प्रबन्ध० ६४, २, प्रिय० ८, १४)। — अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **प्रेक्षते** का **पेहइ** रूप चलता है (§ ३२३)। — महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश में **बाष्प** का **बाहा** (=ऑसू) और **बप्फ** (=भाप) होता है। शौरसेनी मे एक रूप **बप्प** (=ऑसू) भी है (§ ३०५)। — **रूक्ष** के अर्धमागधी में **लूह** और **लुक्ख** रूप चलते हैं, **रूक्षपति** का **लूहेइ** होता है (§ २५७)। — **लेष्टुक** का **लेडुक** होता है (§ ३०४)। — **लोष्ट** का अर्धमागधी और जैनशौरसेनी में **लोढ** हो जाता है (§ ३०४)। — **वेष्टते, वेष्टित** का महाराष्ट्री में **वेढइ**, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **वेढेइ**, शौरसेनी में **वेढिद** = पाली **वेठति, वेटित** (§ ३०४)।—**शीर्ष** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश में **सीस** होता है (हेमचन्द्र २, ९२, गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, १, २, ६, उवास०, एत्सें०, मृच्छ० २४, १४ और १६ तथा १७, ६८, १४, ७४, ५, ७८, १०, शकु० ३९, ४, हेमचन्द्र ४, ३८९ और ४४६)। मागधी में **शीश** (मृच्छ० १२, १८, १३, ९, ४०, ६, ११३, १, १२७, १२), **शीशक** (मृच्छ० २०, १७)। — **सौम्य** का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **सोम** और महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में **सो॓म्म** चलता है (§ ६१ अ) — इस विषय पर § २८४ की तुलना कीजिए। अन्य सब प्राकृत भाषाओं से भिन्न अर्धमागधी मे – त्र प्रत्यय से पहले दीर्घ स्वर ज्यों का त्यों रह जाता है, — त का य में रूप-परिवर्तन हो जाता है। **गात्र** का **गाय** बन जाता है (आयार० १, ८, १, १९, २, २, ३, ९, ठाणग० २८९, नायाध० २६७, विवाह० ८२२, १२५७, १२६१, उत्तर० ६१, १०६, १०९, उवास०, ओव०, कप्प०), **गोत्र** का **गोय** हो जाता है (आयार० १, २, ३, १, २, २, ३, ४, पण्णव० ७१६, उत्तर० ९६७, ओव०, कप्प०), साथ-साथ इसके **गो॓त्त** रूप भी चलता है (दस० ६२८, ३, उवास०, ओव०, कप्प०)। **धात्री** का **धाई** लिखा जाता है (हेमचन्द्र २, ८१, आयार० १, २, ५, १, २, १५, १३, सूय० २५५, विवाग० ८१, विवाह० ९५९, नायाध० § ११७, राय० २८८, ओव० [§ १०५])। **पात्र** का **पाय** हो जाता है (आयार० १, ८, १, १८, २, ६, १, १, सूय० १९४, उत्तर० २१९, ओव०), **पात्री** का **पाई** पाया जाता है (सूय० ७८३)। **कांस्यपात्री** का **कंसपाई** होता है (ठाणग ५२८, कप्प०)। **लोहितपूयपात्री** का **लोहियपूयपाई** मिलता है (सूय० २८१)। **मात्रा** का **माया** रूप बन जाता

११४ ; इस विषय पर एस. गोल्दश्मित्त ने अपने ग्रन्थ प्राकृतिका के पेज १७ में जो लिखा है वह भ्रमपूर्ण है।

§ ८६—ऐसे संयुक्ताक्षरों से पहले, जिनमें एक अक्षर र हो, जब कोई दीर्घ स्वर आता है तब कहीं-कहीं अनुस्वारयुक्त ह्रस्व स्वर बन जाता है और संयुक्त व्यञ्जन सरल हो जाते हैं। मार्जार शब्द महाराष्ट्री में मञ्जर (§ ८१), वंजर (हेमचन्द्र २, १३२), मंजार (हेमचन्द्र १, २६) हो जाता है जिनके साथ-साथ मञ्जर शब्द भी चलता है। अर्धमागधी, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में इसका रूप मज्जार हो जाता है (§ ८१)। मूर्धन् शब्द मुंढ हो जाता है (हेमचन्द्र १,२६ ; २, ४१) जो केवल अर्धमागधी में मिलता है। जैनमहाराष्ट्री में यह शब्द मुण्ढ (§ ४०२ एर्त्सें) हो जाता है। यह मुण्ढ* शब्द महाराष्ट्री और शौरसेनी में काम में लाया हुआ नहीं जान पड़ता है (हेमचन्द्र २, ४१ पर पिशल की टीका)। अर्धमागधी में मेंढ शब्द = मेंढा (ठाणंग २५), मिंढ (ठाणंग २ ५ सम ७ ८), मेंढग (ठाणंग २६), मिंढग (ओव० § १ ७), मिंढय (सम १३१)=संस्कृत मेढ्र या मेढ्रक के हैं। ये शब्द मेंढ मेंढक और मेंढय संस्कृत कोशों में भी स्थान पा गये हैं। इसका स्त्रीलिंग मेंढी (देशी ६, १३८), मिंढिया (पाइय २११) होता है। देशीनाममाला ६, १३८ के अनुसार इसका रूप मेंठी† भी होता था।

§ ८७—मूल व्यंजन-समूह से पहले यदि दीर्घ स्वर बना रहे तो मिश्रण से उत्पन्न दो व्यंजनों में से एक व्यंजन शेष रह जाता है या ध्वनितत्व के अनुसार वह व्यंजन इस स्थान पर आ जाता है जो उसका प्रतिनिधि हो। (हेमचन्द्र २, ९२)। यह बहुधा तब होता है जब दो व्यंजनों में से एक र या श, ष, स हो। इस नियम से आस्य का प्राकृत रूप आस हो जाता है (हेमचन्द्र)। ईश्वर का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में ईसर रूप बन जाता है (हेमचन्द्र उवास कप्प एर्त्सें)। मागधी में इसका रूप ईशल होता है (मृच्छ १७, ४ शकु ११६, २), साथ-साथ इस्सर रूप भी चलता है (भाम ३, ५८)। — ईर्ष्या का महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में ईसा हो जाता है (गउड हाल; रावण एर्त्सें मृच्छ ६९,२९)। किन्तु शौरसेनी में इस्सा रूप भी चलता है (प्रबन्ध ३९, २ और ३)। मागधी में इश्शा होता है (प्रबन्ध ४७, १)। — महाराष्ट्री अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री शौरसेनी और मागधी तथा अपभ्रंश में दीर्घ का दीह हो जाता है (भाम ३ ५८ हेमचन्द्र २, ९१ गउड हाल रावण ; नायाध ; कप्प ; एर्त्सें मृच्छ ३९ २ ; ४१, २२ ६९ ८ ७५ २५ रत्ना ३ ७, १ ३१८ २६ मालती ७६ ५ मृच्छ ११६ २० १६८, २ ; हेमचन्द्र ४, ३३ २)। शौरसेनी में दीर्घिका का दीहिआ रूप पाया जाता है (प्रिय ११,

---

* इसका एक विकसित रूप मुण्डू कुमाऊँ में मुखिये के स्थान पर काम में आता है। —अनु

† इन रूपों से भी पुराने रूप पाली में मेंढ और मेंढक पाये जाते हैं। मेंडे के विषय में एक जातक भी है जिसका उल्लेख मिलिन्दपन्हों में है इसका नाम मेंढक-पन्ह अर्थात् 'मेंडे के विषय में प्रश्न' है। —अनु

२ और ५, १२, ११, वृषभ० ३९, ३)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **दीहिया** (आयार० २, ३, ३, २, ओव०, एर्त्से०), साथ-साथ **दिग्घ** शब्द भी मिलता है (भाम० ३, ५८, हेमचन्द्र २, ९१)। शौरसेनी और मागधी मे **दिग्घिआ** रूप है (रत्ना० २९९, १२, नागानन्द ५१, ६, प्रिय० ८, १३, १२, २, १९, १७, २३, ११, २४, ९ और १५, मागधी के लिए, मृच्छ० १३४, ७)। — महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **पार्श्व** का **पास** हो जाता है (हेमचन्द्र २, ९२, गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, १, २, ५, ओव०, कप्प०, एर्त्से०, विक्रमो० १७, ११, २४, ४ और ५, ३६, १२, ७५, १५, प्रबन्ध० ६४, २, प्रिय० ८, १४)। — अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **प्रेक्षते** का **पेहइ** रूप चलता है (§ ३२३)। — महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश में **बाष्प** का **बाह** (= ऑसू) और **बप्फ** (= भाप) होता है। शौरसेनी मे एक रूप **बप्प** (= ऑसू) भी है (§ ३०५)। — **रूक्ष** के अर्धमागधी में **लूह** और **लुक्ख** रूप चलते हैं, **रूक्षपति** का **लूहेइ** होता है (§ २५७)। — **लेष्टुक** का **लेढुक** होता है (§ ३०४)। — **लोष्ट** का अर्धमागधी और जैनशौरसेनी में **लोढ** हो जाता है (§ ३०४)। — **वेष्टते, वेष्टित** का महाराष्ट्री में **वेढइ**, अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री में **वेढेइ**, शौरसेनी में **वेढिद** = पाली **वेठति, वेठित** (§ ३०४)।—**शीर्ष** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रश में **सीस** होता है (हेमचन्द्र २, ९२, गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, १, २, ६, उवास०, एर्त्से०, मृच्छ० २४, १४ और १६ तथा १७, ६८, १४, ७४, ५, ७८, १०, शकु० ३९, ४, हेमचन्द्र ४, ३८९ और ४४६)। मागधी में **शीश** (मृच्छ० १२, १८, १३, ९, ४०, ६, ११३, १, १२७, १२), **शीशक** (मृच्छ० २०, १७)। — **सौम्य** का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **सोम** और महाराष्ट्री तथा शौरसेनी मे **सोॅम्म** चलता है (§ ६१ अ) — इस विषय पर § २८४ की तुलना कीजिए। अन्य सब प्राकृत भाषाओं से भिन्न अर्धमागधी में – **त्र** प्रत्यय से पहले दीर्घ स्वर ज्यों का त्यों रह जाता है, — **त** का **य** में रूप-परिवर्तन हो जाता है। **गात्र** का **गाय** बन जाता है (आयार० १, ८, १, १९, २, २, ३, ९, ठाणग० २८९, नायाध० २६७, विवाह० ८२२, १२५७, १२६१, उत्तर० ६१, १०६, १०९, उवास०, ओव०, कप्प०), **गोत्र** का **गोय** हो जाता है (आयार० १, २, ३, १, २, २, ३, ४, पण्णव० ७१६, उत्तर० ९६७, ओव०, कप्प०), साथ-साथ इसके **गोॅत्त** रूप भी चलता है (दस० ६२८, ३, उवास०, ओव०, कप्प०)। **धात्री** का **धाई** लिखा जाता है (हेमचन्द्र २, ८१, आयार० १, २, ५, १, २, १५, १३, सूय० २५५, विवाग० ८१, विवाह० ९५९, नायाध० § ११७, राय० २८८, ओव० [§ १०५])। **पात्र** का **पाय** हो जाता है (आयार० १, ८, १, १८, २, ६, १, १, सूय० १९४, उत्तर० २१९, ओव०), **पात्री** का **पाई** पाया जाता है (सूय० ७८३)। **कांस्यपात्री** का **कंसपाई** होता है (ठाणग ५२८, कप्प०)। **लोहितपूय-पात्री** का **लोहियपूयपाई** मिलता है (सूय० २८१)। **मात्रा** का **माया** रूप बन जाता

है (आयार० १, २, ५, १ ओव)। मात्राप का मायप्प बन जाता है (आयार० १, २, ५, १ ; १७१२ ; १, ८, १, १९ ; सूय० ६२१, १५ उत्तर ५१)। तन्मात्र तण्मात्र बन जाता है (सूय० ६०८)। मूत्र मूय होता है (आयार० १, ६, १, २)। श्रोत्र का रूप सोय है (आयार १, २, १, २ और ५ ; सूय० ६११)। केवल रात्रि शब्द ऐसा है जिसपर यह नियम अर्धमागधी में ही नहीं (भाम० १, ५८ ; हेमचन्द्र २, ८८ ; मार्क० पन्ना २८) और बोलियों में भी लागू होता है। अर्धमागधी में राइ का प्रयोग हुआ है (विवाह० ९२६ और ९१८), रात्रिभोजन का राईभोयण (दस० १८० ; ओव)। रात्रिंदिव का राइंदिय है (ठाणंग १३३ ; नायाध० ३४७ विवाह० १२९३ ; कप्प०)। रात्र का -राय होता है (कप्प०)। -रात्रिक का रूप -राइय है (सूय० ७११ ओव कप्प)। महाराष्ट्री में भी रात्रि का राइ बन जाता है (हाल), साथ ही रत्ती रूप भी चलता है (हाल ; रावण शकु ५५, १५)। जैनशौरसेनी में राइभोयण मिलता है (कत्तिगे ३९९, ३१९), साथ ही रत्तिम् भी चलता है (कत्तिगे ४०१ ३७४ और १७५), रत्तिदिवहम् का प्रयोग भी है (कत्तिगे ४ २, ३६४)। शौरसेनी में रात्ती आया है (मृच्छ ९१, १२ और १५), रत्ती भी पाया जाता है (मृच्छ ९१, ३ और ७ १४७, ११ १४८, २ शकु २९ ७)। मागधी में रात को लत्ति कहते थे (मृच्छ० २१ १८)। लत्ति, लत्तिंदिव शब्द भी साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं (मृच्छ ८९, २१ १११, ४)।

§ ८८—आ उपसर्ग, ख्या धातु से पहले बहुधा और ज्ञा धातु से पहले सदा, ज्यों का त्यों बना रहता है और धातुओं की प्रारम्भिक ध्वनियों में परिवर्तन के समय ये भीतरी ध्वनियों के समान माने जाते हैं। अर्धमागधी में आख्यात का रूप आघम् है (सूय० १९७) आख्याय का आघाय (सूय १७८)। आघाति, आघातेमाण आघविय, आघवित्तए, आघविज्जंति (§ ५५१) भी मिलते हैं। आख्यापन आघवणा हो जाता है (नायाध § १४१ पेज ५११ उवास § २२२)। शौरसेनी में प्रत्याख्यातुम् का पच्चाअक्खिदुं हो जाता है (विक्रमो ४५ २)। ढक्की में अपक्खतो का प्रयोग पाया जाता है (मृच्छ १४, २४) पर यह अशुद्ध है, इसके स्थान पर आचक्खंतो होना चाहिए (§ ४९२ ४ ९)। अर्धमागधी में भी किन्तु अब्भक्खाइ, अब्भक्खाति और पच्चक्खाइ रूप मिलते हैं (§ ४९२)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में आज्ञापयति के लिए आणवेइ और शौरसेनी तथा मागधी में आणवेदि होता है (§ ५५१) महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में आज्ञा के लिए आणा शब्द आता है (वररुचि १ ५५ हेमचन्द्र २ ९२ क्रम २, ११ मार्क पन्ना २७ गउड हाल रावण सम ११४ ओव कप्प आव एर्त्से ८ १७ और १८; कालका आयम)। विजयवर्मन् दानपत्र महाराष्ट्री अर्धमागधी आवन्ती शौरसेनी और मागधी में आज्ञप्ति का आणत्ति हो जाता है (भाम० १ ५५ हेमचन्द्र २, ९२ ; क्रम २, ११ मार्क पन्ना २७ विजयवर्मन्-दानपत्र १ २, १६ रावण ; निरया प्रिय ११, १ मृच्छ १ ५, १ १६६, २१ ; १७१, १७ ; वेणी ३६, ९)। अर्धमागधी में आणत्तिया शब्द मिलता है (उवास ओव

निरया०)। **आज्ञापन** के लिए **आणवण** रूप आया है (हेमचन्द्र २, ९२ , उवास०), और ***आज्ञापनी** के लिए **आणमणी** लिखा गया है (पण्णव० ३६३ और ३६९)। अन्य स्थलों पर यह नियम स्थिर नही है, जैसे—**आश्वसिति** का महाराष्ट्री में **आससइ** हो जाता है, किन्तु शौरसेनी में **समश्शशदु** मिलता है। इसमें **अस्ससदु** का प्रयोग हुआ है जिसमें **आ** उपसर्ग का **अकार** हो गया है। मागधी में भी संस्कृत शब्द **समाश्वसितु** का **शमश्शशदु** हो गया है (§ ४९६)। **आक्रन्दामि** का शौरसेनी मे **अक्कन्दामि** रूप है (उत्तर० ३२, १), **अक्कन्दसि** रूप भी मिलता है (मुद्रा० २६३, ४)। मागधी में **अक्कन्दामि** मिलता है (मृच्छ० १६२, १७), किन्तु स्टेन्त्सलर द्वारा सम्पादित ग्रन्थ छोडकर अन्य ग्रन्थों तथा अधिकतर हस्तलिखित प्रतियों में **आकन्दामि** रूप मिलता है। यह रूप **आकन्दामि** भी पढा जा सकता है, किन्तु महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में **अक्कमइ, अक्कन्त** और **समक्कन्त** (गउड० , हाल, रावण० , एर्त्से० , काल्का०) रूपों में सदा ह्रस्व ही देखा जाता है। इन भाषाओं में **क्रन्द्** का रूप भी इसी प्रकार का होता है। बिना **र**-कार और **श-ष-स**-कार वाले सयुक्ताक्षर सहित शब्दों के पहले आने वाले दीर्घ स्वर अपवाद रूप से ही अपनी दीर्घता को बनाये रहते हैं। जैनशौरसेनी में **आत्मन्** का **आद** रूप मिलता है (पव० ३८०, ८ और १२ , ३८१, १५ और १६ , ३८२, २३, २४ और २५ , ३८३, ७७ और ७४), अर्धमागधी मे **आय**रूप चलता है (आयार० १, १, १, ३ और ४ तथा ५ , १, २, २, २ और ५ तथा ४ , सूय० २८ , ३५ , ८१ , १५१ , २३१ , ८३८ , विवाह० ७६ , १३२ , २८३ , १०५९ और उसके बाद [पाठ में अधिकतर स्थलों पर **आत** आया है] उत्तर० २५१)।—अर्धमागधी में **शाल्मली** के लिए **सामली** रूप दिया गया है (सूय० ३१५ , ठाणग० ८८ , ५५५ , पण्हा० २७४ , अणुत्तर० ९ , ओव ० § १६ , उत्तर० ६२६ में **कूड सामली** शब्द आया है)। स्थानीय बोली के रूप में **सामरी** मिलता है (पाइय० २६४ , देशी० ८, २३ , त्रिविक्रम० १, ३, १०५ , इस विषय पर § १०९ भी देखिए)।—***स्ताघ्य** और ***अस्ताघ्य** के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी और अपभ्रश मे **थाह** रूप मिलता है जिसका अर्थ गहराई या तल है (पाइय० २४९ , देशी० ५, ३० , रावण० , पण्हा० ३८० , नायाध० ९०४ , ११११ , १३४१ , हेमचन्द्र ४, ४४४, ३)। हेमचन्द्र के अनुसार इस शब्द के अर्थ 'गहरा पानी' और 'चौडा' होते हैं *। इसका एक रूप **थह** भी है जिसका अर्थ 'घर' है (देशी० ५, २४), और **थग्घ** भी है जिसका अर्थ 'गहरा' है (पाइय० २४९ , देशी० ५, २४)[1], अर्धमागधी मे अतल या गहरे के लिए **अत्थाह** शब्द मिलता है (देशी० १, ५४ , नायाध० ११११ , विवाह० १०४ और ४४७), इसके साथ **अत्थग** भी चलता है (देशी० १, ५४)। इस विषय पर § ३३३ भी देखिए।

१ देशीनाममाला ५, २४ मे **थग्घोऽगाधे** और **थग्घोऽगाधः** पढ़ा

---

* हिन्दी में ये दोनों अर्थ इस समय भी चलते हैं। हेमचन्द्र ने ये अर्थ जनता की बोली से लिये हैं।—अनु०

जाना चाहिए। टीकाकार इसका पर्यायवाची शब्द स्ताघ देते हैं। गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगेन, १८८०, ३२७ के अनुसार पाठक इसे उक्त प्रकार से सुधार लें।

§ ८९—किसी किसी प्रादेशिक बोली में § ८१ के नियम के विपरीत कभी-कभी अनुस्वारयुक्त दीर्घ स्वर वो रह जाता है किन्तु अनुस्वार का लोप हो जाता है कांस्य का कास हो जाता है और पांसु का पासु होता है (हेमचन्द्र १, २९ और ७०)। महाराष्ट्री में मांस का मास हो जाता है (वररुचि ४, १६ ; हेमचन्द्र १,२९ और ७० मार्क पन्ना ३४ ; गउड रावण), मांसल का मासल हो जाता है (हेमचन्द्र १, २९ गउड रावण), मासलमन्त और मासलिम शब्द भी मिलते हैं (गउड)। पाली में भी अनुस्वारयुक्त स्वर पर यही नियम लागू होता है। उदाहरण के लिए पाली में पेखुण और पेक्खुण होते हैं, महाराष्ट्री और अर्धमागधी में पेहुण होता है। यह पेहुण और पाली पेखुण शब्द किसी स्थानविशेष में कभी बोले जानेवाले *प्रेंखुण और *प्रेंखुण से निकले ज्ञात होते हैं। इस शब्द का अर्थ पक्षियों के पर (पक्ष) होता है, पांख या हल्क होता है (पण्हाव ५२९ ; नायाध ५ ; जीवा ४६४ ; देशी ६, ५८ गउड ; रावण॰ हाल आयार २, १, ७, ५ ; कप्प॰ ३३, ४८१, ५११)। इस शब्द की व्युत्पत्ति पक्ष्मन् से देना (जैसा कि चाइल्डर्स् ने पेखुण शब्द के साथ की है और एस॰ गोल्दश्मित ने कून्स त्साइटश्रिफ्ट २५, ६११ में लिखा है) या यह कहना कि यह शब्द पक्ष से निकला है (जैसा वेबर ने इण्डिशे स्टाइएन ३, ३१६ में लिखा है) भाषा शास्त्र की दृष्टि से असम्भव है। इसी नियम के अनुसार संस्कृत—आन्‌-इन्‌ उम्‌ के स्थान पर प्राकृत में कर्मकारक बहुवचन में जो आ-ई ऊ में बदल जाते हैं, मागधी, अर्धमागधी और अपभ्रंश में भी उन शब्दों पर यही नियम लागू होता है। गुणान्‌ का महाराष्ट्री में गुणा हो जाता है। अर्धमागधी में दसान्‌ का रूपसा हो जाता है। अपभ्रंश में कुम्भरान्‌ का कुम्भरा होता है, मस्तकीन्‌ का अर्धमागधी में मस्तकाइं रूप बन जाता है और बाहून्‌ का बाहू (§ ३६७ और ३८१)। ये रूप स्पष्ट अनुस्वार वाले संस्कृत रूप गुणाम्‌, गुणां, बाहूम्‌ तथा बाहूं से निकले होंगे, इस बात की थोड़ी-बहुत पुष्टि मागधी शब्द दाशं से होती है जो दाशान्‌ से निकला है (§ ३६७)। यहाँ केसुआ भी गुम्फा भी की जानी चाहिए जो किंसुक से *कसुम होकर केसुअ बना है और कादम्बरी तथा कादम्ब से या कूष्माण्डी और कूष्माण्ड से *कांहँडी और *कांहँड बनकर काहंडी और काहँड रूप में आ गये (§ ७६ और १२७)।

§ ९०—बहुधा यह भी देखने में आता है कि सरल व्यंजनों के पहले दीर्घ स्वर ह्रस्व बना दिया जाता है और व्यंजन का द्वित्व हो जाता है। यह उस दशा में ही

* हिंदी और कुमाउनी तथा अन्य बोलियों में पाखी अर्थ में पेखुण रूप चलता है। पेखुण शब्द मिलता है। इसका अर्थ चिड़िया द्वारा धकेला गया हो जाता है।—अनु

होता है जब मूल सस्कृत शब्द मे अन्तिम अक्षर पर ध्वनिबल का जोर पडता था। कही-कहीं सरल व्यजन वहा भी द्विगुणित कर दिये जाते है जब कि ये व्यजन ह्रस्व स्वर के बाद आते हैं (§ १९४)। वे शब्द जिनमे व्यजन द्विगुणित कर दिये जाने चाहिए, वररुचि ३, ५२, क्रम० २, १११, मार्क० पन्ना० २७ मे **नीड़ादि** आकृतिगण के भीतर दिये गये हैं। हेमचन्द्र २, ९८ और त्रिविक्रम १, ४, ९३ मे इसका नाम **तैलादि**-गण है तथा वे शब्द जिनमे व्यजनों का द्वित्त किया जा सकता है वररुचि ३, ५८, हेमचन्द्र २, ९९, क्रम० २, ११२, मार्क० पन्ना २७ में **सेवादि** आकृति-गण नाम से दिये गये हैं। ऐसे शब्द त्रिविक्रम ने **दैवग** नाम से एकत्र किये हैं (१, ४, ९२)। बहुत से उदाहरण, जो भामह और मार्कण्डेय में मिलते हैं, इस नियम के भीतर नही लिये जा सकते।—महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और ढक्की मे **एवं** का **एॅव्वम्** हो जाता है (हाल, मृच्छ० ४, २०, ९, १, १२, २५, आदि आदि, विक्रमो० ६, १५, १३, १८, १८, ८ आदि आदि, मागधी के लिए मृच्छ० ३१, १७, ३९, २०, २८, १८ आदि आदि, ढक्की के लिए मृच्छ० ३०, १४ और १८, ३१, १९ और २२, ३५, १७)। इस रूप के साथ साथ **एवं** भी चलता है।—शौरसेनी में **कार्च** का **कच्च** रूप चलता है (कर्पूर० १९, ८)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **क्रीडा** का **किड्डा** चलता है (आयार० १, २, १, ३, सूय० ८१, जीवा० ५७७, उत्तर० ४८३, नायाध०, आव० एर्से० १५, १३)। अर्ध-मागधी और जैनमहाराष्ट्री में इसका रूप **खेॅड्ड** होता है (हेमचन्द्र २, १७४, त्रिविक्रम० १, ३, १०५, ओव०, एर्से०)। अपभ्रश में यह शब्द **खेड्डुअ** बन जाता है (हेमचन्द्र ४, ४२२, १०)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **कीडा** रूप भी चलता है (उवास०, एर्से०)।—अर्धमागधी मे **कीळण** (ओव०), **कीलावण** (राय० २८८, ओव०) रूप भी पाये जाते है। महाराष्ट्री और शौरसेनी में **कीळा** आया है (गउड०, चैतन्य० ६९, ९)। शौरसेनी में **क्रीड़ापर्वत** के लिए **कीळापव्वद** आया है (विक्रमो० ३१, १७, मल्लिका० २३५, ५, अद्भुत० ६१, २० [पाठ में **कीडापव्वद** है]), **क्रीडनक** के लिए **कीळणअ** आया है (शकु० १५५, १)। इस सम्बन्धमें § २०६ और २४० भी देखिए। सस्कृत **स्थाणु** शब्द का किसी प्रदेश में कभी ***स्थाणु** रूप बोला जाता होगा जिसका **खण्णु** और **खणु** बन गया (हेमचन्द्र २, ९९, मार्क० पन्ना २१ और २७)। महाराष्ट्री में इसका **खण्णुअ** हो गया (हाल) है। इस सम्बन्ध में § १२० और ३०९ भी देखिए। **खात** शब्द अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **खत्त** बन गया। महाराष्ट्री में **उक्खाअ**, **उक्खअ** के साथ साथ **उक्खत्त** रूप भी चलता है (§ ५६६)। **एव** का शौरसेनी में **जेॅव्व**, पैशाची और मागधी मे **य्येॅव्व** होता है। इनके साथ साथ **जेव** और **एव** रूप भी चलते है (§ ९५ और ३३५)।—**यौवन** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रश में **जोॅव्वण** होता है (सब व्याकरण-कार, गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, २, १, ३, सूय० २१२, ठाणग० ३६९, पण्हा० २८८, पण्णव० १००, विवाह० ८२५ और ८२७, दस० ६४१,

जाना चाहिए। टीकाकार इसका पर्यायवाची शब्द स्ताम देते हैं। गोएटिंगिसे गेलैर्ते आन्त्साइगेन, १८८०, ११७ के अनुसार पाठक इसे उक्त प्रकार से सुधार लें।

§ ८९—किसी किसी प्रादेशिक बोली में § ८१ के नियम के विपरीत कभी-कभी अनुस्वारयुक्त दीर्घ स्वर तो रह जाता है किन्तु अनुस्वार का लोप हो जाता है कांस्य का कास हो जाता है और पांसु का पासु होता है (हेमचन्द्र १, २९ और ७)। महाराष्ट्री में मांस का मास हो जाता है (वररुचि ४, १६ हेमचन्द्र १,२९ और ७ मार्क पन्ना १४ गउड रावण०), मांसल का मासल हो जाता है (हेमचन्द्र १, २९ गउड ; रावण), मासलभस्त और मासलिम शब्द भी मिलते हैं (गउड)। पाली गौण अनुस्वारयुक्त स्वर पर यही नियम लागू होता है। प्रेंखण के लिए पाली में पेखुण और पेक्खुण होते हैं, महाराष्ट्री और अर्धमागधी में पेहुण होता है। यह पेहुण और पाली पेखुण शब्द किसी स्थानविशेष में कभी बोले जानेवाले *पे॑खुण और *प्रेंखुण से निकले ज्ञात होते हैं। इस शब्द का अर्थ पक्षियों के पर (पंख) होता है, पांख या छला होता है (पण्णव ५२९ नायाध० ५०० जीवा ४६४ देशी ६, ५८ गउड ; रावण हाल आयार २, १, ७, ५ पण्हा ११, ४८९, ५११)। इस शब्द की व्युत्पत्ति पक्ष्मन् से देना (जैसा कि चाइल्डर्स् ने पेखुण शब्द के साथ दी है और एस गोल्दश्मित्त ने कूत्स त्साइटश्रिफ्ट २५, ६११ में लिखा है) या यह कहना कि यह शब्द पक्ष से निकलता है (जैसा वेबर ने इण्डिशे स्टुडिएन १, २९९ में लिखा है) भाषा-शास्त्र की दृष्टि से असम्भव है। इसी नियम के अनुसार संस्कृत—आन्-ईम् ऊम् के स्थान पर प्राकृत में कर्मकारक बहुवचन में जो आ-ई ऊ में बदल जाते हैं, मागधी, अर्धमागधी और अपभ्रंश में भी उन शब्दों पर यही नियम लागू होता है। गुणाम् का महाराष्ट्री में गुणा हो जाता है। अर्धमागधी में दस्तान् का दत्था हो जाता है। अपभ्रंश में कुम्भतटान् का कुम्भयडा होता है, मत्स्यकीन् का अर्धमागधी में मच्छई रूप बन जाता है और बाहून् का बाहु (§ ३६७ और ३८१)। ये रूप स्पष्ट अनुस्वार वाले संस्कृत रूप गुणाम्, °गुणां, बाहूम् तथा बाहूं से निकले होंगे, इस बात की थोड़ी-बहुत पुष्टि मागधी शब्द दाले से होती है जो दारान् से निकला है (§ ३६७)। यहाँ केसुआ की तुलना भी की जानी चाहिए जो किंसुक से कॅंसुअ होकर केसुअ बना है ; और कोहण्डी तथा कोहण्ड से भी कूष्माण्डी और कूष्माण्ड से *कोहॅंडी और *कोहंड बनकर कोहंडी और कोहड रूप में आ गये (§ ७६ और १२७)।

§ ९ —बहुधा यह भी देखने में आता है कि सरल व्यंजनों के पहले दीर्घ स्वर ह्रस्व बना दिया जाता है और व्यंजन का द्वित्व हो जाता है। यह उस दशा में ही

---

* रिस डेविड्स और स्टेड् के पाली-अंग्रेजी कोश के सन् १९५१ के तीसरे संस्करण में केवल पेखुण रूप मिलता है। इसका अर्थ रिचर्ड द्वारा बताया गया हो मान्य समझा गया है।—अनु

१, विक्रमो० ६४,४)। अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री मे **पिम्म** भी होता है (राय० २५२, एर्त्से०) और अर्धमागधी मे **पेम** भी चलता है (सूय० ९२३, ९५८, दस० ६२१, १९, उवास०, ओव०)।—**मूर्क** शब्द का **मुक्क** और **मूअ** होता है (हेमचन्द्र २, ९९)।—**लाज** शब्द का महाराष्ट्री मे **लज्जा** हो जाता है (हाल ८१४)।—**व्रीडा** का अर्धमागधी के **विड्डा** हो जाता है (हेमचन्द्र २, ९८, देशी० ७, ६१ ; निरया० § १३)। इस सम्बन्ध मे § २४० भी देखिए।—**सेवा** का **से ॅव्वा** होता है (सभी व्याकरणकार)। इस रूप के साथ-साथ महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री मे **सेवा** भी व्यवहार में आता है (गउड०, हाल, एर्त्से०)।

१ क्रमदीश्वर २, ११९ के अनुसार **युवन्** का व भी द्विगुणित हो जाना चाहिए। इसकी पुष्टि किसी ग्रन्थ से नहीं होती अत यह नियम-विरुद्ध मालूम पड़ता है। कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५६५ मे याकोवी ने लिखा है कि **यौवन** शब्द में 'व' का द्वित्त होता है और 'न' का नहीं, किन्तु इस नियम के अनुसार वे व्यञ्जन ही द्विगुणित किये जा सकते है जिनके ठीक पीछे दीर्घ स्वर स्थित हो। कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७५ और उसके बाद तथा ३५, १४० और उसके बाद के पेजों में याकोबी ने पिशल की कड़ी आलोचना की है। किन्तु इससे तथ्य मे नाममात्र का भी फेरफार नहीं हो पाया। कोई भी विद्वान् इस तथ्य को किसी भी प्रकार से समझाने की चेष्टा क्यों न करे, पर ग्रन्थों से यही सिद्ध होता है कि जिस अक्षर पर जोर दिया जाता है उससे पहले आनेवाला व्यजन द्विगुणित कर दिया जाता है। —२ हेमचन्द्र १, १०६ पर पिशल की टीका देखिए।

§ ९१—धातु के जो इच्छार्थक रूप—**ज्जा**—**ज्ज**—**ऍज्जा**—**ऍज्ज**—**इज्जा** और **इज्ज** लगाकर बनाये जाते हैं उन पर भी § ९० में बताया हुआ नियम लागू होता है। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **कुर्यात्** का **कुज्जा**, **देयात्** का **देज्जा**, **भूयात्** का **हो ॅज्जा**, ***भुञ्ज्यन्** का **भुञ्जेज्जा** (यह शब्द सस्कृत ***भुञ्ज्यात्** से निकला होगा), **जानीयात्** का **जाणेज्जा** और **जाणिज्जा** होता है (§ ४५९ और उसके बाद)। इसके अतिरिक्त मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी, दाक्षिणात्या और अपभ्रश में यह नियम—जहाँ कर्मवाच्य में —**ज्ज** और—**इज्ज** लगता है वहाँ भी—लागू होता है। और पैशाची में, —**य्य** और —**इय्य** होता है, जैसा महाराष्ट्री, जैन-महाराष्ट्री और अपभ्रश में **दीयते**[१] का **दिज्जइ**। जैनशौरसेनी में **दिज्जदि** और पैशाची में **तिय्यते** होता है। अर्धमागधी में **कथ्यते** का **कहिज्जइ** और दाक्षिणात्या में **कहिज्जदि** हो जाता है (§ ५३५ और उसके बाद), यद्यपि शौरसेनी रूप **करणीअ** और **रमणीअ** तथा मागधी रूप **कलणीअ** और **लमणीअ** एव इस प्रकार बने और सज्ञा विशेषण के रूप महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अर्धमागधी में **करणिज्ज**, **रमणिज्ज** आदि है (§ ५७१), इस कारण ये शब्द ***करण्य** और **रमण्य** आदि से निकले प्रतीत होते है। अपभ्रशमें **रमणीय** के लिए **रवण्ण** * शब्द आता है

* विद्वानों के लिए यह शोध का विषय है कि क्या **रवड़ी** **रवण्ण** रूप से तो नहीं निकली

१६, कक्कुक शिलालेख ११ पल्लें० मृच्छ २२, २२ १४१, १५ १४२, १२ १४५, १२ शकु० ११, ४ ११, २ ; प्रबोध० ४१, ५ [इसमें यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] धूर्त १५, ८ मल्लिका० २२१, २ हेमचन्द्र ४, ४२२, ७ विक्रमो ६८, २२)। अर्धमागधी में युग्मम् का जुवयाग (विवाह १४६) और संधि तथा समास में जुय—और जुम—होता है (§ ४ २)। इसी नियम के अनुसार महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में युवति और युवती का जुवइ और जुवई होता है (गउड हाल रावण शकु १२ , ७ रत्ना० २११, ५ प्रताप २१८, ११ , एत्सें)। शौरसेनी में जुवदि रूप है (मृच्छ ६१, २३ ७१, °), और मागधी में युवदि चलता है (मृच्छ १२१, ११[1])। नीड का णेड्ड हो जाता है (सब व्याकरणकार)। इसके साथ-साथ महाराष्ट्री में णीड रूप भी चलता है (गउड हाल[1])।—तूष्णीक का महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में तुण्हिक्क हो जाता है (हाल रावण० आव एत्सें १८, २ एत्सें), साथ-साथ तुण्हिअ रूप भी चलता है। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में तुसिणीय आया है (§ ८१)। —दीर्घ का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी में दें स्थ हो जाता है (सब व्याकरणकार, हाल आयार० २, १, ४, ५, १ तथा १,२ १,१,१ और १२ २, ७, १, ११ २, १२, ४ और १५, २ ; सूय २४८ और ११५ पण्हा० १८१ विवाग २१५ विवाह १२८८ ; ११२७ ११२१ ; राय १६७ आर १७५ ; उवास ओव ; कप्प एत्सें मृच्छ ६१, ७ और १२ ७२, १ ; शकु २९, ४ मृच्छ २५, ११ ; ११७ ८)। अर्धमागधी में दिग्घ रूप भी मिलता है (पण्णव ११ उत्तर ४१२ और ८ ९)। स्त्यानं का थिण्ण और थीण दो रूप होते हैं (हेमचन्द्र १, ७४)। महाराष्ट्री में स्त्यानक का थिण्णअ हो जाता है (रावण)।—स्थूल का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में थुल्ल और अर्धमागधी, जैनशौरसेनी तथा शौरसेनी में थूल रूप आया है (§ १२७)।—स्तोक का थोक्क रूप (हेमचन्द्र १२५) और साथ-साथ थोव और थोअ रूप भी मिलते हैं (§ २१)।—जुगुप्स का अर्धमागधी में दुगुच्छ हो जाता है (हेमचन्द्र १, १११ पाइय २६१ आयार २, ५, १, ४ पण्हा २३८ ; विवाह ७११, १४१, १६२ जीवा ५ ८ और ५५१ आव कप्प)। वररुचि १ २९ ; हेमचन्द्र १ ११९; क्रम १ २५ और मार्कण्डेय पन्ना १ के अनुसार दुगुच्छ रूप भी होता है। इसका महाराष्ट्री और शौरसेनी रूप दुउच्छ है (हेमचन्द्र मार्क ; हाल ; मल्लिका ९८ ५ ; ९९ ११)।—प्रभात शब्द का अर्धमागधी में पाच होता है (नायाध § ९१)।—प्रेमन् महाराष्ट्री अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश में पेम्म हो जाता है (सब व्याकरणकार ; गउड ; हाल ; रावण ; रत्ना २९३,१८; विद्ध ६ १; बाल १२२ ११ और १९ एस० ७७१ ; एत्सें मृच्छ ७२ २५ विक्रमो ४५ २ ; ५१ १६ ; विद्ध ५, २ ; अनघ २ ७,१४ प्रसन्न० ९, १ ; २९, १ ४१ ८ मल्लिका० २६५, १; हेमचन्द्र ४, ३९५, १ और ४२३,

* इसका शुद्ध रूप कुमाउनी में चलता है। —अनु

कपाल का अर्धमागधी मे **कव्रल्ल** और **कभल्ल** होता है तथा पाली मे इसका रूप **कपल्ल** है (§ २०८)। महाराष्ट्री मे और स्वय पाली मे **शेप** का **छेप्प*** (§ २११), **श्रोतस्** का महाराष्ट्री मे **सोत्त** हो जाता है (भामह ३, ५२, हेमचन्द्र २, ९८, मार्क० पन्ना २७, गउड०, हाल, रावण०)। अर्धमागधी मे **प्रतिश्रोतोगामिन्** का **पडिसोत्तगामि** हो गया है (उत्तर० ४४१)। ***विश्रोतर्सिका** का **विसोत्तिया** होता है (आयार० १, १, ३, २)। इसके साथ-साथ **सोय** (ओव०), **पडिसोय** और **विस्सोअसिया** रूप भी मिलते हैं (हेमचन्द्र २, ९८)। महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **मण्डुक्क** (हेमचन्द्र २, ९८, क्रम० २, ११२, मार्क० पन्ना २७, पाइय० १३१, सरस्वती० ३४, १७, ठाणग० ३११ और ३१२, पण्हा० १८, विवाह० ५५२, ५५३, १०४८, आव० एर्त्से० ७, २९), अर्धमागधी में **मण्डुक्किया** (उवास० § ३८) रूप मिलते हैं। ये दोनों रूप श्रीहर्ष रचित 'द्विरूप कोष' ३५ मे आये हुए **मण्डुक** शब्द से निकले हैं। इस **मण्डुक** शब्द पर ध्वनि का बल कहाँ पडता था इसका उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु इतना स्पष्ट है कि ऊपर दिये गये प्राकृत शब्द **मण्डूक** से नहीं निकले हैं। इस दूसरे सस्कृत शब्द से अर्धमागधी मे **मण्डूय**, शौरसेनी और अपभ्रश मे **मण्डूअ** (मृच्छ० ९, १२, गौडबौले के सस्करण में २५, ६, पिंगल १, ६७) शब्द निकले हैं।

१. कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७५ मे याकोबी का मत है कि कर्मवाच्य में नियम के विरुद्ध जो य का द्वित्त हो जाता है वह धातु के एकवचन के साधारण वर्तमान रूप को छोड़कर अन्यत्र इसलिए नहीं होता कि अन्तिम अक्षर पर जोर पड़ता है बल्कि इसलिए कि-इन शब्दों में य स्वरित रहता है जो अन्तिम अक्षरसे पहले आता है। यहाँ वह बात स्वयं शब्दों से ही स्पष्ट है कि यहाँ (§ ९० की नोट संख्या १ देखिए) उस अक्षर का प्रश्न है जो दीर्घ स्वर के तुरत बाद आता है अर्थात् उस अक्षर का उल्लेख है जो धातु के अन्त में आता है। —२. पिशल, कून्स त्साइटश्रिफ्ट ४५, १४२।

§ ९२—दीर्घ स्वर, जिनके बाद शब्द के अन्त में प्रत्यय लगते हैं, बहुधा ह्रस्व कर दिये जाते हैं और प्रत्यय के पहले अक्षर का द्वित्त किया जाता है। **आत्मनाचैव** का महाराष्ट्री में **अप्पणच्चेअ** हो जाता है (गउड० ८३), **तृष्णाचैव** का **तण्हच्चिअ** (हाल ९३), **घरस्वामिनी चैव** का **घरसामिणी च्चेअ** (हाल ७३६), **उन्मीलन्ती चैव** का **उम्मिल्लन्ति च्चेअ** (रावण० १२,२४) होता है। अर्धमागधी में **ह्रीश् चैव** का **हिरि च्चेव** होता है (ठाणग० ७६)। जैनमहाराष्ट्री में **सच्चेव सा** रूप मिलता है (आव० एर्त्से० १८, १९)। **अभंणतश्चैव** का **अभणंत च्चिय** (ऋषभ० १३) और **सहसा चैव** का **सहस च्चिय** हो जाता है (एर्त्से० ८३, ३७)। **गगने चैव** का महाराष्ट्री **गअणे च्चिअ** (गउड० ३१९), **मृतश्चैव** का **मुओ च्चेअ** (हाल ४९७), **आपाते चैव** का **आवाए च्चिअ**, **ते चैव** का **ते**

* छेप्प रूप छिप्प होकर छिप-कली में प्रयोग में आया है। शेप या छेप का अर्थ पूँछ है। लम्बी पूँछ ही उस जीव की विशेषता होने के कारण यह सार्थक नाम पड़ा। —अनु०

(हेमचन्द्र ४, ४२२, ११)। इस शब्द से भी आभास मिलता है कि कभी कहीं संस्कृत शब्द रमणीय का *रमण्य हो गया होगा। यही बात महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अपभ्रंश रूप पाणिअ से पुष्ट होती है जो अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में पाणिय होता है। संस्कृत रूप पानीय का कभी कहीं *पाण्यं कहा जाता होगा, उससे *पाण्य होकर पाणिय हो गया (वररुचि १, १८; हेमचन्द्र १, १०१; क्रम० १, ११; मार्कण्डेय पन्ना ८; प्राकृतकल्प० पेज २८; हाल; रावण; नागान० १ ०९ १ ११ १ १३ १०१२ १ ५२; १ ५८ ११७० १३८६, उवास ओव आव एर्त्सें २५, २ ४, ९ ११५, १ और २; ११६, ११; हेमचन्द्र ४, ३९६, ४ ४१८ ७ और ४३४, १)। हास्यार्णव नाटक में ३७, ७ में शौरसेनी में पाणिअ रूप मिलता है। अर्धमागधीमें उत्तररामचरित ८९५ में सम्भवतः छन्द की मात्रा के कारण पाणीय शब्द आया है।—महाराष्ट्री में बिइज्ज (हेमचन्द्र १, २४८), बिइज्ज (क्रम २, ३६), अपभ्रंश में तइज्जी (हेमचन्द्र ४, ३३९) रूप मिलते हैं और महाराष्ट्री में बिइअ रूप भी होता है जिससे मिलता-जुलता रूप जैनमहाराष्ट्री और अर्धमागधी में बिइय है। महाराष्ट्री में तइअ रूप भी चलता है, इससे मिलता जुलता रूप अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री तइय है। शौरसेनी और मागधी में तदिअ रूप चलता है जिसकी व्याख्या § ८२ में की गयी है।—ईय प्रत्यय में समाप्त होनेवाले शब्दों के समान ही –एय और –य में समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों के रूप-परिवर्तन का नियम भी है जैसा नामधेय शब्दका अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में नामधिॅज्ज होता है (§ ५५२)। अर्धमागधी में पेय का पेॅज्ज होता है (§ ५७२)। यह परिवर्तन बहुत सरलता से हो सकता है क्योंकि ऐसे शब्दों में अधिकांश ऐसे हैं जिनके अन्तिम अक्षर पर जोर पड़ता है (ह्विटनी, संस्कृत ग्रैमर § १२१३ ए तथा अन्य स्थलों में) और याइ-से तर-सूचक विशेषण हैं जिन पर यह नियम लागू होता है। अर्धमागधी में प्रेयस् का पेॅज्जय् होता है और भूयस् का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में भुज्जो रूप मिलता है (§ ४१४)। इस सम्बन्ध में § २५२ भी देखिए।—त्रीणि का तिण्णि होता है (§ ४३८)। किन्तु यह रूप त्रीणि से नहीं बना है। यही रूप त्रीणाम् के प्राकृत रूप तिण्णम् से निकला है। इस तिण्णि के अनुकरण पर दोण्णि, बेण्णि और बिण्णि शब्द बने हैं (इनका संस्कृत रूप द्वौ और द्वे है)। इसी तरह तिण्णम् से दोॅण्णम् रूप भी निकला है (§ ४३६)। कुछ फुटकर शब्दों में, जो प्रत्यक्षतः इस नियम के विरुद्ध जाते हैं व्यञ्जनों का जो द्वित्व हो जाता है, उसका कारण दूसरा है। ऐसा एक शब्द अधीन है जो अपभ्रंश में अहिण्ण हो जाता है (हेमचन्द्र ४, ४२७)। प्रायः सभी बोलियों में साधारणतः एक का एॅक्क हो जाता है। इसके साथ-साथ अर्धमागधी और महाराष्ट्री में एग रूप भी चलता है (§ ४३५)। कर्पाल अथवा

है। इस यही से रवी = रमणीय रमणीय रवणीय, रवी का सम्बन्ध राव से होना भी अधिक सम्भव है। इसका अर्थ देशी प्राकृत में गुड़ का पानी है। राब शब्द हिन्दी में प्रचलित है।—अनु

में ये शब्द आये है। **सुत्तधालि व्व** मागधी मे **शुत्तधालि व्व** मिलता है (मृच्छ० २१, ९, २३, २१)। मागधी मे **चर इव** का **चले व्व, अस्मदेशीया इव** का **अम्हदेशीय व्व, देसीय इव** का **देसीये व्व** (ललित० ५६५, ८ और १२ तथा १४), **गोण व्व** (मृच्छ० ११२, १७) रूप आये है। भारतीय सस्करणों मे इनकी भरमार है।

§ ९३—अर्धमागधी में **इति** से पहलेवाला दीर्घ स्वर बना रहता है जब यह प्लुति स्वर होता है, ओर जब यह **इति वा** से पहले आता हो तो इन स्थलोंपर **इति** का **ति** बनकर **इ**[1] रह जाता है। **अयमुपुला इ** (विवाह० १२६० [पाठ मे **ति** शब्द आया है]), **सीहा इ** (विवाह० १२६८ , [पाठ में **दि** शब्द आया है]), **गोयमा इ** (विवाह० १३११ और १३१५ [पाठ मे दि अक्षर है] , उवास० § ८६)। **आणन्दा इ** (उवास० § ४४), **कामदेवा इ** (उवास० § ११८), **काली इ** (निरया० § ५ [पाठ में **ति** मिलता है]) , **अज्जो इ** (उवास० § ११९ और १७४)।— **मातेति वा, पितेति वा, भ्रातेति वा, भगनीति वा, भार्य्येति वा, पुत्रइति वा, दुहितेति वा, सुपेति वा** का **माया इ वा, पिया इ वा, भाया इ वा, भयिणी इ वा, भज्जा इ वा, पुत्ता इ वा, धूया इ वा, सुण्हा इ वा** होता है (जीवा० ३५५ , सूय० ७५० से भी तुलना कीजिए , नायाध० ११७०)। **उत्तानम् इति वा, कर्मेति वा, बलम् इति वा, वीर्यम् इति वा, पुरुषकार पराक्रम इति वा** के लिए **उट्ठाने इ वा, कम्मे इ वा, बले इ वा, वीरिएइ वा, पुरिसक्कार परक्कमेइ वा** होता है (विवाह० ६७ और ६८ , उवास० § १६६ और उसके बाद), सूय० ७४७, ७५८, ८५७, विवाह० ४१ , ७० , ओव० § ९६ , ११२ , १६५ , कप्प० § १०९ और २१० से भी तुलना कीजिए।

१ हस्तलिखित प्रतियों तथा छपे ग्रन्थों में बहुधा अशुद्ध रूप **ति** और **दि** आया है। वेवर, भगवती १, ४०५ और २, २५६ के नोट देखिए। २९० का बारहवाँ नोट भी देखिए।

§ ९४—पहले आये हुए अक्षरों की ध्वनि के प्रभाव से जब **खलु** शब्द का **खु** रूप बन जाता है तो मागधी और शौरसेनी में **ए** और **ओ** का ह्रस्व हो जाता है और **खु** का रूप **क्खु** हो जाता है। शौरसेनी में **असमयेखलु** का **असमएॅक्खु** (शकु० १४, ६), **एदॅक्खु** (मृच्छ० ८, २ , शकु० ४१, १ , ७९, ६), **माया खलु** का **मएॅक्खु** (विक्रमो० २६, १५) और **महन्तोॅक्खु** मिलता है (विक्रमो० ४५, १, ७३, ११ , ८१, २० , माल्ती० २२, २)। मागधी मे **महन्तेॅक्खु** रूप आया है प्रबोध० ५८, ९)। सस्कृत शब्द **महान् खलु** के ये प्राकृत रूप हैं। शौरसेनी मे **कामोॅक्खु** (मृच्छ० २८०१) और **मअणोॅक्खु** (विक्रमो० २३, २) मिल्ते हैं। मागधी में **अहं खलु** का रूप **हगेॅक्खु** होता है (शकु० ११३, ९) और **हगेक्खु** रूप भी मिलता है जो अशुद्ध है (ललित० ५६६, ६)। **दुष्करःखलु** का **दुक्कलेॅ क्खु** आया है (मृच्छ० ४३, ४)। अन्य दीर्घ स्वर सभी प्राकृत भाषाओं

श्लेष और सर्वेष का सो ॅ श्लेष (रावण० १, ५८ ५, ६७ ६, ६७) रूप मिलते हैं। पल्लवदानपत्र में प्रे इति का ये ॅ त्ति आया है (६, ११), भूयाद् इति का होॅज्जति (७, ४८), छतेति का कड त्ति (७, ५१) आया है। सहसे ति का महाराष्ट्री में सहस त्ति, मिलेति का मिलव त्ति (हाल ४९१ और ५५४), मीलेति का णिम त्ति (रावण ५, ६) त्वाहशा इति का तुम्हा रिस त्ति (गउड ७ ६), माणिणि त्ति (हाल ८ ७), मति त्ति (रावण० ५, २०), सागर इति का सामरेॅ त्ति रूप हैं (रावण ४, ३९)। अनुराग इति का अणुराओॅ त्ति (गउड० ७१८) तयेति का अर्धमागधी में तह त्ति (उवास § ६७, ८७ १२ आदि आदि), त्यागी इति का चाइॅ त्ति (दस ९, ११, १८ और २) मस्तकद् इति का मत्थकडेॅ त्ति (आयार २, १६, १०, ११), त्रसकाय इति का तसकाओॅ त्ति (दस० ६१ , १२) जैनमहाराष्ट्री में सा ता स त्ति (आव एर्त्से १६,[२६), का एसा कमलामेळ त्ति (आव एर्त्से० १ , ५) सर्वज्ञ इति का सव्वन्नु त्ति (आव एर्त्से ११ २१), श्लोक इति का सिलोगोॅ त्ति (आव एर्त्से ८, ५६) होता है।—महाराष्ट्री में सुवर्णकार तुलेव का सोणारतुल व्व (हाल १११), सोहव्व, वणमाला व्व, किंपि व्व, आयव्व संस्कृत शब्द शोमेव, वनमालेव, कीर्तिरिव, आर्ह व के प्राकृत रूप मिलते हैं (रावण १, ४८)। वनहस्तिमीव का वणहत्थिणि व्व (रावण ४, ५९), मतिभ्रमात इव और मन्तविरस इव का मइब्भमाए ॅ व्व और मन्तविरसाॅ व्व होता है (हाल ६८)। अर्धमागधी में गिरिर इव का गिरि व्व (आयार २, १६, १) म्लेच्छ इव का मिलक्खु व्व (सूय ५७), वीप इव का वीवे ॅ व्व (सूय १०४), अयःकोष्ठक इव का अयकोॅट्ठओॅ व्व (उवास § ९४) होता है। जैन महाराष्ट्री में स्तम्भितेव खिलितेव कीलितेव और टङ्कोत्कीर्णेव का थंभिय व्व खिलिय व्व कीलिय व्व और टंकुक्करिय व्व (एर्त्से १७, ८), जननीव का जणणि व्व (कक्कुक शिलालेख ९) तनय इव का तणमा ॅ व्व (कक्कुक शिलालेख १४)। चन्द्र इव और मतीव का चन्दोॅ व्व और मइ व्व आया है (एर्त्से ८४, २)। अर्धमागधी में छन्द की मात्रा ठीक रखने के लिए व को ह्रस्व करने या दो के स्थानों पर एक रखने का भी प्रयोग पाया जाता है। प्रियप्रणवेव का पिय पम्मइ व आया है (इयचन्द्र ४ ४११)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में खेव से पहले आनेवाला दीर्घ स्वर नियमित रूप से ज्यों का त्यों बना रहता है। शौरसेनी और मागधी में न तो खेव आता है न व का ही व्यवहार है। जहाँ कहीं ये शब्द मिलते हैं वहाँ ये अशुद्धियाँ समझी जानी चाहिए जो पोथी के नियम के प्रतिकूल जाती हैं। ऐसी अशुद्धियाँ हैं —गासम्मिचेव जो गोसंचैव का समानार्थी है। तच्चेव का त चेव प्रत्युत्पं चैव का पर्भड्ड चेव कालेय २ ५ और १७१ १, १२); शौरसेनी मामव व्व (ललित ५६ २२); भणिदम् व (विक्रमो २१, ११) पंडित के संस्करण में ये शब्द ४७, २ में और दूसरे बम्बइया संस्करण में ४९ २ में आये हैं जहाँ अशुद्ध रूप दे व्व दिया हुआ है। पिशल के संस्करण ६१९, १८

स्वरो के बाद ये रूप मिलते है : महाराष्ट्री और अर्धमागधी मे **मा हु** रूप आया है (हाल ५२१, ६०७ , रावण० ८, १४ , उत्तर० ४४० [इस ग्रन्थ में **हू** पाठ है] और ६१७), किन्तु शौरसेनी मे **मा खु** मिलता है (मृच्छ० ५४, २१ , शकु० १५३, १३, १५९, ७ , विक्रमो० ४८, ३ , ४९, १)। महाराष्ट्री मे **को खु** (हेमचन्द्र २, १९८), **को हु** (हेमचन्द्र ३, ८४) किन्तु शौरसेनी मे **कोॅ क्खु** भी आता है (मृच्छ० ६४, १८)। महाराष्ट्री मे **सो खु** (हाल ४०१) , जैनशौरसेनी मे **सो हु** (कत्तिगे० ३१७ और ३१८ , ४००, ३२३), किन्तु शौरसेनी मे **सोॅ क्खु** (मृच्छ० २८, २० , १४२, १०) , अर्धमागधी मे **से हु** (आयार० १, १, ७ और २, ६ , १, २, ६, २ , १, ६, ५, ६ , २, १६ , ९ और १०), लेकिन मागधी मे **शे क्खु** आया है (मृच्छ० १२, २०)। शौरसेनी मे **सो खु** अशुद्ध है (ललित० ५६०, १९) और इसके साथ साथ जो **अणिरूद्धेण खु** आया है वह भी शुद्ध नहीं है (५५५, १)। जैनमहाराष्ट्री मे **सा हू** (एर्त्से० ७७, २३) , अर्धमागधी में **एसो हु** (उत्तर० ३६२), शौरसेनी मे **एसोॅ क्खु** (मृच्छ० १८, ८ , २३, १९), मागधी में **एशे क्खु** (मृच्छ० ४०, ९ , वेणी० ३६, ४), अर्धमागधी मे **विमुक्ताः खलु** के स्थान पर **विमुक्का हु** आया है (आयार० १, २, २, १)। **स्यात् खलु** के स्थान पर **सिया हु** मिलता है (उत्तर० २९७ , दस० ६३४, ५) , जैनमहाराष्ट्री में **विषमा खलु** के स्थान पर **विषमा हु** आया है (ऋषभ० १७) , शौरसेनी मे **अवला खु** मिलता है (मृच्छ० १२, २१), **अक्षमा खलु** के स्थान पर **अक्खमा खु**, **बहुवल्लभाः खलु** के लिए **बहुवल्लहा खु**, **एषा खलु** के स्थान पर **एसा खु**, **रक्षिणीया खलु** के लिए **रक्खणीया खु** रूप आये है (शकु० ५३, २ , ५८ , १ , ६७, १ , ७४, ८)। **परिहासशीला खलु** के लिए **परिहाससीला खु**, **मन्दभागिणी खलु** के स्थान पर **मन्दभाइणी खु** (मृच्छ० २२, २५), **दूरवर्त्तिनी खलु** के स्थान पर **दूरवत्तिणी खु** (शकु० ८५, ७) रूप मिलते हैं। मागधी में **आगता खलु** के स्थान पर **आअदा खु** (मृच्छ० ९९, ७), **अवसरोपसर्पणीया. खलु राजान.** के लिए **अवशलोवशप्पणीया खु लाआणो** (शकु० ११५, १०), **नियतिः खलु** के लिए **णिअदी खु** मिलता है (मृच्छ० १६१, ५)। इस नियम के अनुसार शकुन्तला ९९, १६ में **दर्शनीयाकृतिः खलु** के लिए **दंसणीआकिदी खु** शुद्ध पाठ होना चाहिए। पल्लवदानपत्र मे **तस खु** (७, ४१) और **स च खु** (७, ४७) में **खु** प्रस्तर लेखों की लिपि के ढग के अनुसार **क्खु** के लिए आया है। कापेल्लर ने हस्तलिखित प्रतियों के विरुद्ध अपने सस्करणों में, जो **क्खु** दीर्घ स्वरों के बाद आये हैं,उनको सर्वत्र ह्रस्व कर दिया है। वह उदाहरणार्थ **एसा खु** (रत्ना० ३०२, २ , ३१८, ११ , ३२०, १) के स्थान पर **एस क्खु** कर दिया है। **सा खु** (रत्ना० २९२, ३१ , २९५, ८ , २९७, २४ , ३००, ४ आदि, आदि) के लिए **स क्खु, मा खु** (रत्ना० ३०१, १७ , ३२५, १३) के लिए **म क्खु, मुहरा खु** (= **मुखरा खलु**) (रत्ना० ३०५, १९) के स्थान पर **मुहर क्खु, मदनज्वरातुरा खलु** के लिए **मअणज्जराउल क्खु**

में (पैशाची और चूलिका पैशाची के विषय में कुछ मत नहीं दिया जा सकता क्योंकि उसके ग्रन्थ न मिलने के कारण सामग्री का ही अभाव है) बने रहते हैं, और महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री जैनशौरसेनी तथा अपभ्रंश में सब स्वरों के बाद अधिकतर स्थलों पर खु और हु हो जाता है। शौरसेनी और मागधी में ए और ओ छोड़ अन्य दीर्घ स्वरों के बाद क्खु बना रहता है और ह्रस्व स्वरों के बाद क्खु हो जाता है, केवल कहीं-कहीं नाम मात्र हस्तलिखित प्रतियों में क्खु के स्थान पर खु भी मिलता है जैसे शौरसेनी में णखु रूप आया है (मृच्छ० ९०, १ और २४ ; ६१, २३ ११७, १६ और १७ १७ १८ १५३, २ ३२७, ४), णुखु (मृच्छ० ५९, २२) ; मागधी में णखु (मृच्छ० १६१, १७)। इसी पंक्ति में खामणिमोप (यह पाठ इसी रूप में पढ़ा जाना चाहिए) क्खु पाठ आया है, णुखु (मृच्छ० १३३, १४ और १५ तथा २२ १६९, १८) में है। अन्यथा सर्वत्र णक्खु और णुक्खु पाठ सभी ग्रन्थों तथा उनके पाठभेदों में मिलता है। शकुन्तला के भीतर भी आदि से अन्त तक सर्वत्र यही पाठ आता है, केवल ५ , २ में णखु मिलता है। इस स्थान पर भी श्रेष्ठ हस्तलिखित प्रतियों के साथ णक्खु पढ़ा जाना चाहिए। शौरसेनी में भी केवल कविता में (मृच्छ ४ , २७) और मागधी में (मृच्छ , २५ २१ १७ और १९ २९, २२ ; ४१, १ १६१, १४ शकु ११४, ९) हु रूप ठीक हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि महाराष्ट्री और अपभ्रंश में ह्रस्व स्वरों के बाद णखु बोला जाता है (गउड ७१८ ८९४ ९ ; ९ ८ १११ १ ४ ११३५ हाल रावण १, ७ ६, १९ ७, ९ ; हेमचन्द्र ४, १९ विक्रमो ७२, ११)। इसी प्रकार ढक्की में भी यह रूप आया है (मृच्छ १ , १७ ११, १) ; अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में न हु (उत्तर ७८१ ७४१; आव एर्त्से ११, २ एर्त्से ७९, १४ ८१, १९), किन्तु शौरसेनी और मागधी में णक्खु रूप आया है (शकु० ११ ७ ६०, १४ और १७ ; ७२, ९ ; १५६, १४ प्रबोध १ , १७ शकु १६ , १४)। महाराष्ट्री में णु हु रूप मिलता है (गउड १८१ और ६), किन्तु शौरसेनी और मागधी में णु क्खु भी आया है (शकु १४ १ ; १९, १ ३९, १२; ७७, १; ८६, ८ आदि आदि)। अर्धमागधी में न य हु (आयार १, २ ५, ५) महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में वि हु रूप व्यवहार में आता है (गउड ८९७; ८८५; ८८६ आदि आदि हाल रावण १ १७; ५, १७ ७ ६१; एत्स ६१४, २ एर्त्से ८ , ७ ; कक्कुक २७२ १ २७७ २१)। अर्धमागधी में भवति खलु का होइ हु आया है (उत्तर ६ ४ और ६२)। जैनशौरसेनी में हवदि हु हो जाता है (पव १४ , ९)। अस्ति खलु का शौरसेनी में अत्थि क्खु (शकु १२७, १४) ; अर्हति खलु का अरिहदि क्खु खज्जामि क्खु (शकु ५८, ११ ; ११४ ५) स्मर खलु का सुमरसु क्खु और बिभेमि खलु का भामामि क्खु हो जाता है (विक्रमो० १२ ४ ४ १३)। राजशेखर में ण हु मिलता है (उदाहरणार्थ कर्पूर २ ७ ; १२ १ ; ३३, १)। इसके साथ साथ णु क्खु भी आया है (कर्पूर ३ ४)। यह भूल इस बोली के नियम के विरुद्ध है। अन्य

स्वरों के बाद ये रूप मिलते हैं : महाराष्ट्री और अर्धमागधी मे **मा हु** रूप आया है (हाल ५२१, ६०७ , रावण० ८, १४ , उत्तर० ४४० [इस ग्रन्थ में **हू** पाठ है] और ६१७), किन्तु शौरसेनी मे **मा खु** मिलता है (मृच्छ० ५४, २१ , शकु० १५३, १३, १५९, ७ , विक्रमो० ४८, ३ , ४९, १)। महाराष्ट्री मे **को खु** (हेमचन्द्र २, १९८), **को हु** (हेमचन्द्र ३, ८४) किन्तु शौरसेनी मे **कों क्खु** भी आता है (मृच्छ० ६४, १८)। महाराष्ट्री मे **सो खु** (हाल ४०१) , जैनशौरसेनी में **सो हु** (कत्तिगे० ३१७ और ३१८ , ४००, ३२३), किन्तु शौरसेनी मे **सों क्खु** (मृच्छ० २८, २० , १४२, १०) , अर्धमागधी मे **से हु** (आयार० १, १, ७ और २, ६ , १, २, ६, २ , १, ६, ५, ६ , २, १६ ; ९ और १०), लेकिन मागधी मे **शे क्खु** आया है (मृच्छ० १२, २०)। शौरसेनी मे **सो खु** अशुद्ध है (ललित० ५६०, १९) और इसके साथ साथ जो **अणिरूद्धेण खु** आया है वह भी शुद्ध नहीं है (५५५, १)। जैनमहाराष्ट्री मे **सा हू** (एर्से० ७७, २३) , अर्धमागधी में **एसो हु** (उत्तर० ३६२), शौरसेनी मे **एसों क्खु** (मृच्छ० १८, ८ , २३, १९), मागधी में **एशे क्खु** (मृच्छ० ४०, ९ , वेणी० ३६, ४), अर्धमागधी मे **विमुक्ताः खलु** के स्थान पर **विमुक्का हु** आया है (आयार० १, २, २, १)। **स्यात् खलु** के स्थान पर **सिया हु** मिलता है (उत्तर० २९७ , दस० ६३४, ५) , जैनमहाराष्ट्री में **विषमा खलु** के स्थान पर **विषमा हु** आया है (ऋषभ० १७) , शौरसेनी मे **अवला खु** मिलता है (मृच्छ० १२, २१), **अक्षमा खलु** के स्थान पर **अक्खमा खु**, **बहुवल्लभाः खलु** के लिए **बहुवल्लहा खु**, **एषा खलु** के स्थान पर **एसा खु**, **रक्षिणीया खलु** के लिए **रक्खणीया खु** रूप आये है (शकु० ५३, २ , ५८ , १ , ६७, १ , ७४, ८)। **परिहासशीला खलु** के लिए **परिहाससीला खु**, **मन्दभागिणी खलु** के स्थान पर **मन्दभाइणी खु** (मृच्छ० २२, २५), **दूरवर्त्तिनी खलु** के स्थान पर **दूरवत्तिणी खु** (शकु० ८५, ७) रूप मिलते हैं। मागधी में **आगता खलु** के स्थान पर **आअदा खु** (मृच्छ० ९९, ७), **अवसरोपसर्पणीयाः खलु राजानः** के लिए **अवशलोवशप्पणीया खु लाआणो** (शकु० ११५, १०), **नियतिः खलु** के लिए **णिअदी खु** मिलता है (मृच्छ० १६१, ५)। इस नियम के अनुसार शकुन्तला ९९, १६ में **दर्शनीयाकृतिः खलु** के लिए **दंसणीआकिदी खु** शुद्ध पाठ होना चाहिए। पल्लवदानपत्र मे **तस खु** (७, ४१) और **स च खु** (७, ४७) में **खु** प्रस्तर लेखो की लिपि के ढग के अनुसार **क्खु** के लिए आया है। कापेलर ने हस्तलिखित प्रतियों के विरुद्ध अपने सस्करणों में, जो **क्खु** दीर्घ स्वरों के बाद आये हैं,उनको सर्वत्र ह्रस्व कर दिया है। वह उदाहरणार्थ **एसा खु** (रत्ना० ३०२, २ , ३१८, ११ , ३२०, १) के स्थान पर **एस क्खु** कर दिया है। **सा खु** (रत्ना० २९२, ३१ , २९५, ८ , २९७, २४ , ३००, ४ आदि, आदि) के लिए **स क्खु**, **मा खु** (रत्ना० ३०१, १७ , ३२५, १३) के लिए **म क्खु**, **मुहरा खु** (=**मुखरा खलु**) (रत्ना० ३०५, १९) के स्थान पर **मुहर क्खु**, **मदनज्वरातुरा खलु** के लिए **मअणज्जराउल क्खु**

(हास्या० २५, २८), महती खलु के स्थान पर महदि क्खु और पृथवी खलु के स्थान पर पुहुवि क्खु देता है (रत्ना० २९९, ५ ; ३२८, २७) आदि आदि। यह रूप भी अशुद्ध है जैसा कि नाटकों के कई दूसरे संस्करणों में शुद्ध खु के स्थान पर अनुस्वार के बाद कभी-कभी क्खु दे दिया जाता है जैसा शौरसेनी किं क्खु (मृच्छ १२, १), उपकृतम् खलु के लिए उभकिदं क्खु कृत खलु के लिए कदं क्खु, अमृतम् खलु के लिए अमदं क्खु रूप मिलते हैं (विक्रमो० ८, १५ ९, १ और ११)। अनुस्वार के बाद खलु का खु रूप ही आना चाहिए जैसा मार्कण्डेय ने पन्ना ७२ में शौरसेनी के लिए बताया है। महाराष्ट्री और अर्धमागधी में भी यही रूप है। उदाहरणार्थ, महाराष्ट्री में तत् खलु के लिए तं खु रूप मिलता है (गउड ८९ और ८७९ हाल १४२)। एतत् खलु के लिए अर्धमागधी में एवं खु (सूय १५ और १७६) और एयं खु (उत्तर १ ६)[1] आये हैं। महाराष्ट्री, अर्धमागधी और विशेष कर जैनमहाराष्ट्री में खु और हु कम मिलते हैं। अर्धमागधी में बहुधा खलु आता है। यह रूप जैनशौरसेनी में भी मिलता है (पव ३८०, ७ ३८१, १८ और २१ कत्तिगे ४ १, ३८१), जैनमहाराष्ट्री में यह रूप कम दिखाई देता है। उसमें समुद्रेण खलु के लिए एक स्थान में तं सेयं खलु मिलता है (एर्त्से ११ १८)। अर्धमागधी में खलु रूप बहुत मिलता है (नायाध ३११ और ४८२ विवाग २१८ ; उवास § ६६ ११८ १४ और १५१ निरया § १२ १४; १८ २ २१ ओव० § ८५ और ८६; कप्प § २१)। ऐसा जान पड़ता है कि जैनमहाराष्ट्री में यह शब्द किसी दूसरी प्राकृत बोली से लिया गया होगा। अर्धमागधी में इस अव्यय के दोनों रूप साथ-साथ आये हैं। आत्मा खलु दुर्दमः के लिए अप्पा हु खलु दुद्दमो आया है (उत्तर २९)।

1 याकोबी कुल्सीट्सक्रिफ्ट ३५, पेज ५७२ में इसने शुद्ध नहीं दिया है ; बौंल्लें न सेंन द्वारा सम्पादित विक्रमो ११ ५ पेज ९६। — 2 कापेलर, येनायेर लिटेराटूरत्साइटुंग १८७७ पेज १२५। इस विषय पर याकोबी ने अपने उक्त ग्रन्थ में ठीक किया है और स्टेन्त्स्लर ने मृच्छकटिक २ २१ में शुद्ध ही दिया है। — 3 यह मत कि यहाँ सर्वत्र क्खु रूप लिखा जाना चाहिए (पिशल द्वारा संपादित शकुन्तला पेज २१ में टीका देखिए), हेमचन्द्र २ १९८ से पुष्ट किया गया है।

§ ९५—खु के लिए § ९४ में जो नियम बताये गये हैं वे शौरसेनी ओव, ओंव्व पैशाची और मागधी एव येव्व (§ ३३६) के लिए भी लागू हैं। ह्रस्व स्वरों और ए तथा ओ के बाद (ए, ओ इस दशा में ह्रस्व हो जाते हैं) ओव का पहला अक्षर द्वित्त हो जाता है। शौरसेनी में आर्यस्यैव का अज्जस्स ज्जेव्व (मृच्छ ४ ८ और १२) अचिरमेव का अइरं ज्जेव्व पढ़ा जाता है (मल्लिका ५६९,२१) इदमेव का इदं ज्जेव (ज्जेव्व होना चाहिए) (शकु १२, ४ रत्ना २९२ २५ मागधी के लिए मृच्छ ११४ २१) इदमेव पद के लिए वीसदि य्येव (रत्ना २९७ १), सम्पद्यते एव के लिए सम्पज्जदि य्येव्व (शकु १२ २),

संतप्यन्त एव के **संतप्पदि ज्जे व्व** (मृच्छ० ६३,२४) होता है। मागधी मे **तवैव** के स्थान पर **तव य्येव** (मृच्छ० २२, ४), **तेनैव** के लिए **तेण य्ये व्व** (मृच्छ० १३३, ७), पैशाची मे **सर्वस्यैव** के लिए **सव्वस्स य्ये व्व** (हेमचन्द्र ४, ३१६), शौरसेनी मे **भूम्याम् एव** के लिए **भुमीए ज्जे व्व** (मृच्छ० ४५, १५), **मुख एव** के लिए **मुहे ज्जे व, सूर्योदय एव** के लिए **सुज्जोदए ज्जे व्व** (शकु० ७७, ११ , ७९, ९), **इत एव** के लिए **इदो ज्जे व्व** (मृच्छ० ४, २२ , ६, १३), **य एव जन .. स एव** के स्थान पर **जो ज्जे व्व जणो सो ज्जे व्व** आया है (मृच्छ० ५७,१३), **स सत्य एव स्वप्ने दृष्ट इति** का प्राकृत रूप **सो सच्चो ज्जेव सीविणए दिट्ठो त्ति** (ललित० ५५५, १) रूप मिलता है। मागधी में **दर्शयन्नेव** के स्थान पर **दंशअन्ते ज्जेव** (शकु० ११४, ११), ***अनाचक्षित एव** के स्थान पर **अणाचस्किदे य्ये व्व** रूप, **पृष्ठत एव** के स्थान पर **पिस्टदो य्ये व्व** और **भट्टारक एव** के स्थान पर **भस्टालके य्ये व्व** रूप आया है (मृच्छ० ३७, २१ , ९९, ८ , ११२, १८)। पैशाची में **दूराद् एव** का **तूरातो य्ये व्व** (हेमचन्द्र ४, ३२३) रूप होता है। अन्य दीर्घ स्वर इस प्रत्यय से पहले दीर्घ ही रह जाते हैं। शौरसेनी में **अस्मत्स्वामिनैव** का **अम्हसामिणा जेव, तथैव** का **तधा जेव** और **निष्कम्पा एव** का **णिक्कंपा जेव** रूप होता है (शकु० ११६, ८ , १२६, १० और १४ , १२८, ६)। मागधी में **दृश्यमानैव** का **दीशन्ती ये व्व** होता है (मृच्छ० १४, ११)। कापेलर ऐसे स्थलो में भी (देखिए § ९४) ह्रस्व स्वर देता है, जो अशुद्ध रूप है। उदाहरणार्थ रत्नावली २९१, १ , २९५, २३, २९६, २४ आदि आदि। इसी प्रकार ललितविग्रहराज नाटक में भी ऐसी अशुद्धियाँ आयी हैं (५५४, ५ और ६ तथा २१)। इसमें ५५४, ४ और ५५५, १८ में अनुस्वार के पीछे **ज्जेव** भी आया है और ५६७, १ में स्वय **एव** मिलता है। मृच्छकटिक ९६, २४ में मागधी में **शहश ज्जे व्व** गलत है। इस स्थान पर **शहशा ये व्व** रूप होना चाहिए।

§ ९६—अस् धातु के नाना रूपों के अन्त में जहाँ-जहाँ सयुक्त व्यञ्जन आते है उन व्यञ्जनों से पहले के अन्तिम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते है। महाराष्ट्री में **स्थितास्मि** का **ठिअम्हि** हो जाता है। **दूनास्मि** का **दूमिअ म्हि** (हाल २३९ और ४२३), **असत्य स्मः** का **असइ म्ह, क्षपिताः स्मः** का **खविय म्हो, रोदिता स्मः** का **रोविअ म्ह** (हाल ४१७ और ४२३ तथा ८०७), **युष्मे स्थ** का **तुम्हे त्थ** (रावण० ३,३) रूप हो जाते है। **परिश्रान्तोऽस्मि** का जैनमहाराष्ट्री में **परिसन्तो म्हि** (एर्त्से० ६, २५) , **उपोषितास्मि** का **उववसिद म्हि, अलंकृतास्मि** का **अलंकिद म्हि** (मृच्छ० ४, ६ , २३, २५), **आयत्तास्मि** का **आअत्त म्हि, एतदवस्थास्मि** का **एदावत्थ म्हि, असहायिन्यास्मि** का **असहाइणि म्हि** (शकु० २५,३ , ५२,८ , ५९,११), **विरहोत्कंठितास्मि** का **विरहुक्कंठित म्हि, विस्मृतास्मि** का **विम्हरिद म्हि** (विक्रमो० ८२, १६ , ८३, २०), **अपराद्धा स्मः** का **अवरद्ध म्ह, निवृत्ता स्म** का **णिव्वुद म्ह** (शकु० २७, ६ , ५८, ६), **अलंघनीयाः कृता स्म** का **अलंघणीआ कद म्ह** और **उपगता स्म** का **उअगद**

म्ह (विक्रमो० २१, ८ और १४) रूप हो जाता है। ऍ और ओ ँ तथा अशुद्ध रूपों के विषय में जैसे महाराष्ट्री पम्मुट्ठम्हि, शौरसेनी हद म्हि और मागधी कद म्हि § ८५ देखिए। कलता में प्रचलित संस्कृती रूपों के आधार पर बने अशुद्ध प्राकृत रूप नाना हस्तलिखित प्रतियों के भिन्न-भिन्न पाठों में मिलते हैं, जैसे महाराष्ट्री में घ त्ति के स्थान पर घे ँत्ति, सहस त्ति के लिए सहसे ँत्ति (हाल ८५५ और ९३६), पिअ त्ति के स्थान पर पीऍत्ति, णिसण्ण त्ति की जगह णिसण्णे ँत्ति, धीर त्ति के लिए धीरे ँत्ति, पेलध त्ति के स्थान पर पेलधे ँत्ति, सपुम त्ति के लिए सपुऍत्ति (रावण ५, ५ और ६ तथा ८), विहिण व्व की जगह विहिणे ँव्व (रावण० १४, १६) जैनशौरसेनी में मम त्ति के स्थान पर ममे ँत्ति (पव० ३८८, २७); शौरसेनी में पिवर त्ति के लिए पिवरे ँत्ति, ध त्ति के बदले घे ँत्ति, पडियावणिज्जे ँत्ति, पीदे ँत्ति (शकु० बोएटलिंक द्वारा संपादित— ९, ८ ३७, ११ ४१, १४; ८१, ६) और महाराष्ट्री में गलिअ इव के लिए गलिअ व्व को वास्तव में गलिए व्व होना चाहिए था। संवुध व्व के स्थान पर संवुध व्व तथा सेउवध व्व के लिए सेउवंधो ँव्व (रावण १, २ ३, ४८ १५, ६९)[१]।

१ पिशल डे कालीदासाए शाकुन्तलि रैसेन्सिओनिबुस पेज ५१। गोल्द श्मिट्स गेलैर्ते आन्त्साइगेन १८८ ३१५; बुर्कहार्ट शकुन्तला ग्लौसारियुम पेज १२ का नोट; बौल्लेनसेन माळविकाग्निमित्र भूमिका का पन्ना ११ वेबर इण्डिशे स्टुडिएन १४ २९८; होएफर डे प्राकृत डिआलेक्टो पेज ७४; लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज १६८, एस गौल्दश्मित्त प्राकृतिका पेज २० में अशुद्ध रूप हैं।

§ ९७—शब्द के अन्त में जो दीर्घ स्वर आता है वह महाराष्ट्री अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी में सन्धि होते ही ह्रस्व रूप धारण कर लेता है (वररुचि ४, १ हेमचन्द्र १, ४ क्रमदीश्वर २, १४१ मार्कण्डेय पन्ना ३१)। ऐसा बहुधा उन शब्दों में होता है जिनके अन्त में ई आती है (§ ३८४) आ और ऊ में समाप्त होनेवाले शब्दों में बहुत कम ह्रस्व होता है। शौरसेनी और मागधी में गद्य में सदा दीर्घ स्वर दीर्घ ही रह जाता है। महाराष्ट्री में ग्रामणीपुत्र का गामणिउत्त हो जाता है (हाल ३१); नदीपूर का णइपूर, नदीनिकुञ्ज का णइणिउंज, णइफेण (हाल ८५ २१८ ३७१) इसके साथ-साथ नदीकच्छ का णईकच्छ रूप भी आया है (हाल ८१६) नदीतट णइयड हो गया है (गउड ४ ७) नदीस्रोतस् का णइसो ँत्त (रावण १ ५४); नदीतडाग का णइतलाय (नायाध और इस विषयपर § ११८ भी देखिए)। इस शब्द के साथ साथ णईतीर भी मिलता है (कप्प § १२); किन्तु शौरसेनी में नदीवेग का केवल एक रूप णईवेअ होता है (शकु १२ १); मागधी में शाश्विनदीदर्शन का शाश्विणिणईदंशण हो जाता है (मृच्छ १५ ७) अर्धमागधी में स्त्रीवेद का इत्थियवेय रूप मिलता है (सूय २१८ विवाह १७ १८ उत्तर ९६) इसके साथ ही, इत्थीवेय रूप भी आया है (सूय २१७) इत्थिभाव (उपास § २४९),

इत्थिलक्खण* (नायाध० § ११९), **स्त्रीसंसर्ग** के लिए **इत्थिसंसग्गि** (दस० ६३३, १) रूप पाये जाते है। इसके साथ-साथ जैनशौरसेनी मे **इत्थीसंसग्ग** भी मिलता है (कत्तिगे० ४०२, ३५८), अर्धमागधी मे **स्त्रीवचन** का **इत्थीवयण**† (आयार० २, ४, १, ३), **स्त्रीविग्रह** का **इत्थीविग्गह** (दस० ६३२, ३८), जैनमहाराष्ट्री मे **इत्थिलोल** (= स्त्री के पीछे पागल , आव० एर्त्से० १६, ३०) और इसके साथ ही **स्त्रीरत्न** के लिए **इत्थीरयण** (एर्त्से० ३, ३३ , १३, ५) रूप भी आया है , किन्तु केवल शौरसेनी मे **स्त्रीकल्यवर्त** के लिए **इत्थीकल्लवत्त** रूप मिलता है (मृच्छ० ६०, १९), **स्त्रीरत्न** का रूप **इत्थीरदन** हो जाता है (शकु० ३८, ५, १०३, ६), **इत्थीजण** भी आया है (रत्ना० २९८, ४), **पृथ्वीशस्त्र** का अर्धमागधी मे **पुढविसत्थ** रूप पाया जाता है (आयार० १, १, २, २ और ३ तथा ६), **पृथ्वीकर्मन्** के लिए **पुढविकम्म** (आयार० १, १, २, २ और ४ तथा ६), **पुढविजीव** (दस० ६२०, ३४), **पृथ्वीशिलापट्टक** के लिए **पुढविसिलापट्टय** (ओव० § १० , उवास० १६४ , १६६ , १७०), जैनमहाराष्ट्री मे **पुह्वविमण्डल** (एर्त्से० ४१, २४) रूप आया है। **'पृथ्वी में विख्यात'** के लिए **पुह्वविविक्खाय** रूप है (एर्त्से० ६४, २३), महाराष्ट्री मे **पृथ्वीपति** के लिए **पुहवीवइ** मिलता है (गउड०), शौरसेनी मे **पृथ्वीनाथ** के लिए **पुढवीनाढ** पाया जाता है (शकु० ५९, १२)। अर्धमागधी मे **अप्सरागण** का रूप **अच्छरागण** हो जाता है (पण्हा० ३१५ , पण्णव० ९६ , ९९ , निरया० ७८ , नायाध० ५२६ , ओव०)। इस रूप के साथ ही **अच्छराकोडि** रूप भी मिलता है (विवाह० २५४), शौरसेनी में **अप्सरातीर्थ** का केवल **अच्छरातित्थ** रूप है, **अच्छरासंबंध** भी मिलता है (शकु० ११८, १०, १५८, २), **अप्सराकामुक** के लिए **अच्छराकामुअ** आया है, **अप्सराव्यापार** के लिए **अच्छरावावार** पाया जाता है, **अच्छराविरहिद** भी मिलता है (विक्रमो० ३१, १४, ५१, १३, ७५ , १०), **अच्छराजण** (पार्वती० ९, ९ , १०, २) , अर्धमागधी में **क्रीडाकर** का **किड्डुकर** होता है (ओव०) , महाराष्ट्री में **जमुनातट** का **जाऊणअड** और **जाऊणाअड** होता है (भामह ४, १, हेमचन्द्र ४, १ , मार्कण्डेय पन्ना ३१), **जाउणासंगअ** (गउड० १०५३) = हिन्दी **जमुनासंगम** का प्राकृत रूप है। इसका शौरसेनी रूप **जमुणासंगम** है (विक्रम० २३, १३) , महाराष्ट्री में **भिक्षाचर** का रूप **भिच्छअर** होता है (हाल १६२) , अर्धमागधी मे **भिक्खकाल** रूप मिलता है (दस० ६१८, १७)। इस प्राकृत में **मुत्तजाल, मुत्तदाय** और **मुत्ताजाल** शब्द मिलते हैं (ओव०)।—**वधूमाता** का महाराष्ट्री में **वहुमाआ** रूप है (हाल ५०८) , **वधूमुख** का **वहुमुह** और **वहूमुह** रूप पाये जाते हैं (भामह ४, १ , हेमचन्द्र १, ४ , मार्कण्डेय पन्ना ३१) , किन्तु जैनमहाराष्ट्री में **वधूसहाय** का रूप **वहूसहिज्ज** हो जाता है (एर्त्से०, ६, १२) और शौरसेनी में **नववधू केशकलाप** का **नववहू केसकलाव** हो गया है (मृच्छ० ४, १०)। इस संबंध में § ७० देखिए।

* इस रूप की कर्कशता में मृदुता भर कर तुलसीदास ने **लखन** का प्रयोग किया है। —अनु०
† **वयन** का मूल प्राकृत रूप। —अनु०

§ १८—श्री शब्द भले ही नाम, आदरार्थ अथवा गुण बताने के लिए जहाँ भी आया हो, अन्य संज्ञाओं के आगे ह्रस्व हो जाता है। अर्धमागधी में ह्री शब्द भी ह्रस्व हो जाता है (क्रम० २, ५७)। श्रीस्तन शब्द का महाराष्ट्री में सिरित्थण हो जाता है (गउड० २८), श्रीसेवित, सिरिसेविअ बन जाता है (रावण १ २१) श्रीवर्धन का सिरिवड्ढण रूप है (गउड ८१४)। अर्धमागधी में श्रीगुप्त का सिरिगुत्त रूप देखा जाता है श्रीधर का सिरिहर (कप्प) रूप मिलता है। जैनमहाराष्ट्री में श्रीकान्ता का सिरिकन्ता रूप आया है, श्रीमती का सिरिमई हो गया है (एर्त्से)। शौरसेनी में श्रीपर्वत का सिरिपव्वद हो गया है (रत्ना० २९७, ११ मालती० ३, २ और ८)। —महाराष्ट्री में मधुश्रीपरिणाम का महुसिरिपरिणाम होता है (गउड ७११), ममश्रीकंठ का मामसिरिकंठ रूप मिलता है (हाल ७५), राजश्रीभाजन का रामसिरिभाअण रूप पाया जाता है (रावण ४, ५२)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में श्रीवत्स का सिरिवच्छ हो जाता है (ओव ; कप्प० एर्त्से) अर्धमागधी में श्रीधर का सिरिधर रूप मिलता है (विवाह ८२ और ९६२), ह्रिरि सिरि परिवज्जिय रूप भी आया है (विवाह २५), ह्रीश्रीधृतिकीर्ति परिवर्जित का हिरि सिरि धिइ कित्ति परिवज्जिय रूप बन गया है (उवास § ९) सिरिसमुदय भी मिलता है (कप्प० § ८२)। जैनमहाराष्ट्री में श्रीसूचक का प्राकृत रूप सिरिसूयग हो गया है (एर्त्से ९७, १२), श्रीकण्ठ का सिरिकण्ठ मिलता है (कक्कुक २७९, ११), अपभ्रंश में सिरिमाणण्ण शब्द व्यवहार में आया है (हेमचन्द्र ४ ४ १, १)।— श्रीयशोवर्मन के लिए महाराष्ट्री में सिरिजसवम्मय का प्रयोग किया गया है (गउड ९९) सिरिराय का व्यवहार भी हुआ है (हाल ६९८) सिरिकमला शब्द भी मिलता है (गउड ७९८) सिरिरामसेहर भी पाया जाता है (कर्पूर ६, ५)। जैनमहाराष्ट्री में श्रीलक्ष्मण का सिरिलक्खण रूप है, श्रीहरिचन्द्र का सिरिहरियन्द रूप आया है, सिरिरक्खिअ सिरिजाइव सिरिभिल्लुम सिरिकक्क सिरिककुय (कक्कुक शिलालेख २ १ ४ ५ ६ २ २२) नाम भी मिलते हैं। शौरसेनी में सिरि खण्ड दास (रत्ना २९७ ३१), सिरि चारु दत्त (मृच्छ ९४, ५) गौडबोले के संस्करण के २६७ ५ में यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए। मागधी में श्री सोमेश्वर देव का शिलि सोमेशल्लदेव रूप व्यवहार में आया है (ललित ५६६, ६)। जैनमहाराष्ट्रीमें श्रीश्रमणसंघ का सिरिसमण संघ रूप बन गया है (कक्कुक २६६ १ २७, ५ और १८)।—छन्दों में मात्रा के लिए महाराष्ट्री में कभी-कभी दीर्घ रूप भी मिलता है जैसे, सिरीसमुल्लास (गउड ८५६) और इसी प्रकार अर्धमागधी में गद्य में श्रीसमानवेष्या का रूप सिरीसमाणवेसाओ मिलता है (नायाध § ६५; ओव)। इसके साथ ही सिरि समाणवेसाओ रूप भी मिलता है (विवाह ७९१)। कप्पसुत्त § ३५ में वयणसिरीपल्लव पाया जाता है। श्रीक का स्वर स्थिर नहीं है। अर्धमागधी में यह शब्द सिरीय हो जाता है (नायाध) सिरिय भी मिलता है (कप्प), ससिरिय का व्यवहार भी है(पण्हव ९६), साथ ही ससिरीय भी आया है (पण्हव

११६)। बहुधा **सस्सिरीय** शब्द भी मिलता है जो गद्य के लिए एकमात्र शुद्ध रूप है (सम० २१३ , २१४ , पण्हा० २६३ , विवाह० १६८, १९४, जीवा० ५०२, ५०४, ५०६ , नायाध० ३६९ , निरया० , ओव० , कप्प०), शौरसेनी में **सस्सिरिय** रूप आया है (शकुन्तला, बोएटलिक का सस्करण ६२,१३, विक्रमो० ४१,४ [इसमे यही पाठ पढा जाना चाहिए])[1] । **सस्सिरीअदा** का भी प्रयोग पाया जाता है (मृच्छ० ६८, २१ , ७३, ८ और ११ , १०७, २), **सस्सिरीअत्तण** (रत्ना० २९२, १२ पाठ में **ससिरीअत्तण** लिखा है, कलकत्ते के सस्करण मे **सस्सिरीअदा** आया है) ।— अर्धमागधी में **ह्रीप्रतिच्छादन** का **हिरिपडिच्छायण** हो गया है (आयार० १, ७, ७, १) , **सिरिहिरि**—(निरया० ७२), **हिरि**—(ठाणग० १५१) रूप भी मिलते हैं। अर्धमागधी मे व्यक्तिवाचक शब्द **ह्रीरूपव** का **हिरिच्चेव,** (ठाणग० ७६) और बहुवचन रूप **हिरीओ** और साथ ही **सिरीओ** (विवाह० ९६२) । अन्य प्राकृत भाषाओं में मेरे देखने में नही आये[2] । **हिरी** और **अहिरीयाण** विशेषण रूप मे (आयार० १, ६, ३, २) मिलते है। **ह्रीमान्** के लिए **हरिमे** का उपयोग किया गया है (उत्तर० ९६१), किन्तु यहाँ शुद्ध पाठ **हिरिमे** होना चाहिए। इसी प्रकार शौरसेनी में **अपह्रिये** के लिए जो **ओहरिआमि** का प्रयोग हुआ है, उसका शुद्ध रूप **ओहिरिआमि** होना चाहिए (उत्तर० २३, १२)। बोएटलिक द्वारा सम्पादित शकुन्तला मे **हिरियामि** रूप आया है जो शौरसेनी है (१०८, २१)। बगला सस्करण मे शौरसेनी में **हिरियामि** के ढग पर **लज्जामि** भी पाया जाता है। काश्मीरी सस्करण में (१५३, ३) **अर्हामि** के स्थान पर अशुद्ध रूप **अरिहामि** आया है। इस सम्बन्ध मे § १३५ और १९५ भी देखिए।

१ बोएटलिंक ने शकुन्तला ६२, १३ में अशुद्ध रूप दिया है। बोल्लेनसेन द्वारा सम्पादित विक्रमोर्वशी ४१, ४। — २ हेमचन्द्र २, १०४ पर पिशल की टीका ।

§ ९९—कविता में § ६९ के मत के विपरीत **इ** और **उ** कभी कभी दीर्घ नही होते, बल्कि जैसे-के-तैसे रह जाते हैं। महाराष्ट्री में **द्विजभूमिषु** का **दिअभूमिसु** होता है (हेमचन्द्र ३, १६ , गउड० ७२७), **अंजलिभिः,** का **अंजलिहिं** हुआ है (हाल ६७८),—**प्रणतिषु** का **पणइसु, विरहिषु** का **विरहिसु, चतुःषष्ट्याम् सूक्तिषु** का **चऊसट्ठिसु सुत्तिसु** (कर्पूर० २, ३ , ३८, ५ , ७२, ६) मिलता है, अर्धमागधी में **पक्षिभिः** का **पक्खिहिं** रूप हो गया है (उत्तर० ५९३), **वग्नुभिः** का **वग्गुहिं** (सम० ८३), **हेतुभिः** का **हेउहिं** (दस० ६३५, ३४), **प्राणिनाम्** का **पाणिणम्** (आयार० पेज १५, ३३ , ३५६ , उत्तर० ३१२ , ७१५ , ७१७), **कुकर्मिणाम्** का **कुकम्मिणम्** (सूय० ३४१), **पक्षिणाम्** का **पक्खिणं** (उत्तर० ६०१), **चायिणाम्** का **ताइणं** (उत्तर० ६९२), **गिरिषु** का **गिरिसु** (सूय० ३१०), **जातिषु** का **जाइसु, अगारिषु** का **गारिसु, जंतुषु** का **जंतुसु, योनिषु** का **जोनिसु** और **गुप्तिषु** का **गुत्तिसु** हो जाता है (उत्तर० १५५, २०७, ४४६ , ५७८, ९९२)। जैनमहाराष्ट्री में **व्याख्यानादिषु** का **वक्खाणाइसु** रूप

मिलता है (आयार पन्ने ४१, २८)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में सर्वत्र यही नियम चलता है, चतुर्भिः और चतुर्षु का रूप चउहिं तथा चउसु रूप होते हैं (§ ४३९)। इस नियम के विपरीत संस्कृत और प्राकृत में विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं। इस नियम के अनुसार अपादान एकवचन में अर्धमागधी में स्थामात् का ठाणओ रूप होता है, संयमात् के स्थान पर संजमओ आता है (सूय ८६), कुडालात् के लिए कुललओ पाया जाता है, विग्रहात् का रूप विग्गहओ मिलता है (दस ६२२, १७ और १८), श्रियः का सिरिओ हो गया है (दस ६४१, २८), जैनशौरसेनी में उपशमात् का उवसमदो रूप बन गया है (कत्तिगे ३९९, ३०८)। इस विषय पर § ९९ भी देखिए। कर्ता और कर्म कारक के बहुवचन में —महाराष्ट्री में विम्बौपधयः का विम्बोसहिआ रूप मिलता है (मुद्रा ६०, ९)। अर्धमागधी में ओसहिआ है (दस निरया ६४८, १)। इस प्राकृत में स्त्रियः का इत्थिओ हो गया है (आयार १, ८, १, १६ सूय २१८ २२२ २३७ ५४ ; उत्तर० ७६, १२१), इत्थि रूप भी व्यवहार में आया है (उत्तर १७१), नारिओ (उत्तर ६७ [पाठ में नारीओ लिखा है] दस ६१३, ३५ ६१८ १४), कोटयः का कोडिओ (उत्तर ० २ [पाठ में कोडिओ है]), रात्रयः का राइओ रूप आये हैं (सूय १ उत्तर ४१६ और ४१६)। तृतीया (करण) बहुवचन में :—अर्धमागधी में स्त्रीभिः का इत्थिहिं रूप मिलता है (उत्तर ५७०)। षष्ठी (सम्बन्ध) बहुवचन में :—अर्धमागधी में स्त्रीणाम् का रूप इत्थिणं हो जाता है, भिक्षुणाम् का भिक्खुणं और मुनीनाम् का मुणिणं बन जाता है (उत्तर १७ ; २७७ ; ४ ८ ; ९२१)। सप्तमी (अधिकरण) एकवचन में :—अर्धमागधी में राजधान्याम् के स्थान पर रायहाणिए आता है (उत्तर ८६ ; [पाठ में रायहाणीए लिखा है] टीका में शुद्ध रूप ही मिलता है), काशीभूम्याम् का रूप कासिभूमिए बन गया है (उत्तर ४ २)। सप्तमी (अधिकरण) बहुवचन में :—अर्धमागधी में स्त्रीषु का इत्थिसु हो जाता है (सूय १८५ [पाठ में इत्थीसु मिलता है] ; उत्तर २ ४)। इसी प्रकार अपभ्रंश में रत्या का रत्तिए रूप है (हेमचन्द्र ४, ८८६)। कुछ शब्दों के भीतर दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है :—मागधी में भणिशायें माणा का भट्टिशाली भंती के स्थान पर भट्टिशालिभंति होता है (मृच्छ ११, १) अर्धमागधी में प्रतिच्चीनम् का पडीणं के स्थान पर पडिनम् हो जाता है (§ १६६ ; दस ६१८ ३७)। यह § ८२ का अपवाद है। भीडर के हिल्पब्राश १०२ के अनुसार प्राचीनं प्राचिन का स्यात् संस्कृत में प्राचीन और प्राचिम दो रूप रहते हैं जिनमें प्राचिम ह्रस्व है।

§ ९ —अपभ्रंश में ह्रस्व और दीर्घ में भेद नहीं माना जाता। छंद की मात्रा की सुविधा के अनुसार मात्राएँ दीर्घ अथवा ह्रस्व कर दी जाती हैं [*]। तुक मिलाने के लिए भी मात्रा में घट-बढ़ कर दी जाती है। तुक मिलाने के कारण स्वर की ध्वनि

* हिन्दी में तुलसीदास ने राम और रामा लिखा है। रामु रामू भी अपभ्रंश के रूप हैं।—अनु

भी बदल दी जाती है। पिंगल की भाषा इस विषय पर बहुत फेर-फार दिखाती है। **श्यामला धन्या सुवर्णरेखा** के लिए हेमचन्द्र ने **सामला धण सुवण्णरेह** दिया है (४, ३३०, १), **सकर्णा भल्लिः** के स्थान पर **सकण्णी भल्ली** आया है (४, ३३०, ३), **फलानि लिखितानि** का रूप **फल लिहिआ** बन गया है (४, ३३५), **पतिता शिला** का **पडिअ सिल** रूप मिलता है (४, ३३७), **अर्धानि वलयानि मह्यांगतानि अर्धानि स्फुटितानि** को **अद्धा वलआ महीहिं गअ अद्धा फुट्ट** लिखा गया है (४, ३५२) और **विधिर्विनटयतु पीडन्तु ग्रहाः** का अपभ्रंश रूप **विहि विनडऊ पीडंतु गह** हो गया है (४, ३८५)। कालिदास की विक्रमोर्वशी मे **परभृते मधुरप्रलापिनि कांते भ्रमंति** के लिए **परहुअ महुरपलाविणि कंती भमंती** लिखा गया है (५९, ११ और १२)। **सा त्वया दृष्टा जघनभरालसा** का **गइलालस** से तुक मिलाने के लिए **सा पइं दिट्ठी जहणभरालस** कर दिया गया है (६२, १२) और **क्रीडंति धनिका न दृष्टा त्वया** (६३, ५) का **कीलंती धणिअ ण दिट्ठि पइं** रूप दिया गया है। पिंगल मे **सूच्यते मेरुर्निःशंकम्** के लिए **सूइ मेरु णिसंकु** दिया है (१, ४०), **महीधरास्तथा च सुरजनाः** का रूप **महिहर तह अ सुरअणा** हो गया है (१, ८०), **यस्यकंठेस्थितम् विषम् पिधानम् दिशः संतारितः संसार** के स्थान पर अपभ्रंश में **जसु कंठट्ठिअ दीसा पिंधण दीसा संतारिअ संसारा** दिया गया है (१, ८१), **वरिसइ** (वर्षति) के लिए **वरीसए** आया है क्योंकि ऊपर लाइन मे **दृश्यते** के लिए **दीसए** से तुक मिलाना है (१, १४२) और **नृत्यंती संहरतु दुरितम् अस्मदीयम्** का अपभ्रंश रूप **णच्चती संहारो दूरित्ता हम्मारो** आया है (२, ४३) आदि आदि। इस विषय पर § ८५ और १२८ भी देखिए।

§ १०१—जहाँ पहले अक्षर मे ध्वनि पर बल पडता है, ऐसे कई शब्दों मे **अ** का **इ** हो जाता है। हेमचन्द्र ने १, १६ में ऐसे शब्द **स्वप्नादि** आकृतिगण में दिये है और १, ४८ में **मध्यम** और **कतम** शब्द दिये हैं तथा १, ४७ में **पक्व, अंगार** और **ललाट** भी दिया है। १, ४९ मे **सप्तपर्ण** भी गिनाया है। वररुचि १, ३, क्रमदीश्वर १, २ और मार्कण्डेय पन्ना ५ में केवल **ईषत्, पक्व, स्वप्न, वेतस, व्यजन, मृदंग** और **अंगार** शब्द ही इस गण में देते हैं। यह परिवर्तन अधिकतर महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में होता है। शौरसेनी और मागधी में कई अवसरो पर **अ** का **अ** ही रह जाता है, जैसा मार्कण्डेय ने **अंगार** और **वेतस** शब्दों के बारे मे स्पष्ट ही कहा है। इस नियम के अनुसार अर्धमागधी मे **अशन** का **असिण** हो जाता है (आयार० २, १, ५,१)। जैनमहाराष्ट्री में **उत्तम** का **उत्तिम*** रूप मिलता है (हेमचन्द्र १, ४६, कक्कुक शिलालेख ९), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **उत्तमांग** का **उत्तिमंग** बन जाता है (पण्हा० २७४, २८५, ओव०, एर्से०), जैनमहाराष्ट्री में इस रूपके साथ-साथ **उत्तमंग** भी चलता है (पाइय० १११, एर्से०), महाराष्ट्री,

---

* यह उच्चारण हिंदी की कई बोलियों में रह गया है। कुमाऊँ में उत्तिम, मूरिख आदि प्रचलित हैं।—अनु०

अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में उत्तम रूप भी पाया जाता है (गउड० नायाध कप्प एत्सें०) ।—महाराष्ट्री में कतम का कइम० हो जाता है (हेमचन्द्र १, ४८ हाल ११९), किन्तु शौरसेनी और मागधी में कदम चलता है (मृच्छ० ११, ६ शकु ११२, ७ विक्रमो० ३५, १२ मागधी के लिए —मृच्छ० ११, १) ।—कृपण का महाराष्ट्री, मागधी और अपभ्रंश प्राकृतों में किविण रूप पाया जाता है (हेमचन्द्र १, ४६ गउड० हाल मृच्छ० ११, ३ ११६, १८ और १९ हेमचन्द्र ४, ४१९, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), शौरसेनी में अकिविण शब्द मिलता है (मृच्छ० ५७, २५) ।—ध्वंस का अर्धमागधी में विद्धु हो जाता है (§ १७५) ।—चरम शब्द का अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी में चरिम रूप हो जाता है (पण्णव ६५ और उसके बाद विवाह ११२ १७३ ५९८ ११५४ ११९२ एत्सें कत्तिगे ४ १, ३४८), अचरिम रूप भी मिलता है (पण्णव ३६ और उसके बाद) ।—अर्धमागधी में नग्न का नगिण हो जाता है (§ १३३) ।—महाराष्ट्री अर्धमागधी और शौरसेनी में पक्व का पिक्क† हो जाता है (सब व्याकरणकार हाल कर्पूर ६७, ८ विवाह ११८५ बाल २९२, १३), अर्धमागधी में विपक्व का विविक्क रूप होता है (ठाणंग ३७७ ३७८), शौरसेनी में परिपिक्क शब्द आया है (बाल १४२, ४ ; २ ९, ७), इसके साथ-साथ अर्धमागधी और शौरसेनी में पक्क शब्द आया है (हेमचन्द्र १, ४७ आयार २, ४, २ १४ और १५ ठाणंग २१८ पण्णव ४८३ दस ६२८, २९ ६२९, ८ धूर्त १२, ९), शौरसेनी में सुपक्क (मृच्छ ७९, २५), परिपक्क (रत्ना १ १ १९) हैं ।—महाराष्ट्री में पृषत का पुसिअ हो जाता है (= एक प्रकार का हरिण हाल ६२१) । इसका अर्धमागधी में फुसिय रूप हो जाता है (§ २ ८ [फुसिय का अर्थ यहाँ पर बूँद किया गया है] ; आयार १, ५ १ ; नायाध कप्प) हरिण के अर्थ में ; आयार २, ५, १, ५) ।—मध्यम शब्द का महाराष्ट्री अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में मज्झिम हो जाता है (हेमचन्द्र १, ४८ हाल ठाणंग १२८ ; १४१ १५२ १७० सूय ११४ ; पण्णव ७३ जीवा० १७५ ; ४ ८ ; विवाह १४१२ अणुओग २६६ ; उवास ; ओव कप्प ; एत्सें) अर्धमागधी में मध्यमक का मज्झिमय हो गया है (उवास कप्प) । इसका स्त्रीलिंग रूप मज्झिमिया आया है (जीवा० ९ ० और उसके बाद) मज्झिमिल्ल‡ रूप भी मिलता है (अणुओग १८३) किन्तु शौरसेनी में केवल एक रूप मज्झम मिलता है (विक्रमो ६, १ महावी ६५, ० ; १११ चण्डी० ६ ६ ; ६१ ४ ; ६८ २१ ९९, १२) ।—मज्जा का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में मिंजा हो जाता है (§ ७४) ।—मृदंग का अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री में मुइंग रूप मिलता है (आयार २, ११ १ सूय ७३१ पण्हा ५१२ पण्णव ९ ; जीवा २० ; विवाह ७ ७ [पाठ

* इस रूप से कई होकर कई शब्द हिंदी में आया है । —अनु
† पीक शब्द जिसका अर्थ पान का थूक है इसी से निकला प्रतीत होता है । —अनु
‡ मझिल मझिला मझिलक मझिल मझिला और मझ पढ़ना । —अनु

में **मुयंग** शब्द मिलता है परन्तु टीका मे **मुइंग** शब्द आया है], राय० २०, २३१, उवास०, ओव०, कप्प०, एर्त्से०), **मिइंग** शब्द भी मिलता है (हेमचन्द्र १, १३७), किन्तु शौरसेनी मे **मुदंग** शब्द मिलता है (मालवि० १९, १)। मागधी में **मिदंग** रूप मिलता है (मृच्छ० १२२, ८, गौडबोले द्वारा सम्पादित सस्करण ३, ३०७), **मुदंग** रूप भी ठीक मालूम पड़ता है (इस सम्बन्ध मे § ५१ भी देखिए)। —महाराष्ट्री में **वेतर्स** का **वेडिस** हो जाता है (सब व्याकरणकार, हाल), किन्तु पैशाची में **वेतस** रूप आया है (हेमचन्द्र ४, ३०७), शौरसेनी में इस शब्द का रूप **वेदस** हो जाता है (शकु० ३१, १६, १०५, ९)। **शय्या** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **सेज्जा** हो जाता है और यह **सेज्जा** रूप **सिज्जा** से निकला है (तीर्थ० ५, १५, § १०७, **सेज्जा** के लिए, वररुचि० १, ५, ३,१७, हेमचन्द्र १, ५७, २, २४, क्रम० १, ४, २, १७, मार्क० पन्ना ५ और २१, गउड०, कर्पूर० ३५, १, ३९, ३, ७०, ६, आयार० २, २, १, १ और ३, ३४ और उसके बाद, सूय० ९७ और ७७१, पण्हा० ३७२, ३९८, ४१०, ४२४, विवाह० १३५, १८५, ८३९, १३१०, पण्णव० ८४४, उत्तर० ४८९, ४९५, दस० ६४२, ३६, ओव०, कप्प०, एर्त्से०)। मागधी मे **शिय्या** रूप मिलता है (चैतन्य० १४९,१९, [पाठ मे **सेॅज्जा** रूप दिया है])। अर्धमागधी मे **निसेज्जा** (दस० ६४२, ३६), **निसिज्जा** (कप्प० § १२०), **पडिसेॅज्जा** (विवाह० ९६५) रूप मिलते है। जैनमहाराष्ट्री मे **सेॅज्जायर** (कालका०) और **सिज्जायरी** (तीर्थ० ४, १७) शब्द मिलते है[1]।

१. पिशल, कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३४, ५७०। याकोबी, कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७२ के अनुसार कइम शब्द में जो इकार आया है वह उसका सम्बन्ध कति के साथ होने से वहाँ बैठा है, और अन्तिम (यह रूप सस्कृत में भी है), उत्तिम, चरिम और मज्झिम सस्कृत शब्द पश्चिम की नकल पर बन गये है। सिज्जा, निसिज्जा, साहिज्जा और मिंज्जा ज्ज के प्रभाव से बने हैं।

§ १०२—इस नियम के अपवाद केवल देखने मात्र के है। महाराष्ट्री मे **अंगार** (हेमचन्द्र १, ४७, पाइय० १५८), **अगारअ** (हाल २६१), **अंगाराअन्त** जो सस्कृत **अंगारायमाण** का रूप है (गउड० १३६), शौरसेनी और मागधी रूप **अंगाल** (प्रसन्न० १२०, २ और १३, १२१, ८, जीवा० ४३, ९ [इसमें **अंगार** पाठ पढा जाना चाहिए], मृच्छ० १०,१, [शौरसेनी में **अंगारक** रूप भी मिलता है], मालवि० ४८,१८), अर्धमागधी मे **अंगार** (पण्हा० २०२, ५३८), **अंगारक** (पण्हा०३१३, ओव०§ ३६), **अंगारग** (पण्णव० ११६), **अंगारय** (ठाणग० २६३) रूप आये है जो **अगार** और **अंगारक** के प्राकृत रूप है, इनका अर्थ कही कोयला और कहीं मगल ग्रह होता है। इन शब्दो के साथ अर्धमागधी मे **इंगाल** भी मिलता है (सब व्याकरणकार) जिनम चण्ड० २, ४ भी है, (पाइय० १५८, आयार० २, २, २, ८, २, १०, १८, सूय० २१७, ७८३, ठाणग० २३०, ३९०, ४७८, पण्णव० २८, विवाग० १०८, २४१, नायाध० ३७०, विवाह० २३८, २५४,

१९२ ३४८ ४८० ६ ९ ८८१ १२८६ १२९१ ; जीवा ५१ २५७ ; २९२ निरया० ८७ उत्तर ९ ५१ [पाठ में इंगार शब्द आया है] दस० ६१६, ११ ६१८, २९ ६१ , २१ उवास § ५१), सइंगाळ, विइंगाळ (विवाह० ४५ ४५१), इंगालग (ठाणंग ८२), शब्द जो स्वयं संस्कृत में प्राकृत से ले लिया गया है (त्साखारिआए, गोएटिंगिशे गेलेर्टे आन्त्साइगेन १८९४, ८२), अंगुअ और साथ-साथ इंगुअ (= इंगुद हेमचन्द्र १, ८९), इसका शौरसेनी रूप इंगुदी आया है (शकु १९, ४) अंगालिअ और इंगाली (= ईख की गंडेरी देशी० १, २८ और ७) आपस में वैसा ही सम्बन्ध रखते हैं जैसा अंगति और इंगति, अडति और इर्तस्ते तथा अर्था और इर्त्या जो वास्तव में आरम्भ में एक दूसरे के साथ सम्बन्धित थे। ईषत् शब्द के लिए पिशल द्वारा लिखित डे ग्रामा टिकिस प्राकृतिकिस में पेज १३ में प्राकृतमंजरी में बताया गया है कि इसके ईस, ईसि और इसि रूप होते हैं, इनमें से ईस रूप शौरसेनी में मालतीमाधव २१९, ४ में मिलता है और यह सभी संस्करणों में पाया जाता है। यहाँ ईस मण्णुम् (कहीं कहीं मण्णे) उल्लिखित वाक्य मिलता है। वेणीसंहार १२, १ ६१, १५ में ईस विहसिअ आया है। महाराष्ट्री में चिरेहि ईस धुत्ति (प्रताप २ ९ ११ [पाठ में इसि रूप दिया गया है], शायद इसी से भी आया है (हाल ४७४ [कहीं कहीं ईसमपि भी मिलता है])। ईसी सा मणम् कुणन्ति (कर्पूर० ८, ९) शुद्ध रूप है, क्योंकि यहाँ ईसत् स्वतन्त्र रूप में आया है। अन्य स्थलों पर यह शब्द सन्धि के पहले शब्द के रूप में मिलता है, जैसे ईसिज्जळ प्रेषितास के लिए महाराष्ट्री में ईसिज्जअ पेसि अपष्ट होता है। इसपूरओमिस का ईसिरमिण्ण रूप मिलता है; ईषत्स्मित का ईसिसिइ आया है और ईषद्विवृत का ईसिविअत्त हो गया है (रावण २, ११ ११ ४१ १२, ४८ ११ , १७)। ईषत्तरा का ईसिदिइ रूप व्यवहार में आया है (माल० १२ , ५), इषिसंचरण चंचुरा (कर्पूर ८१, १ इसका बम्बई से प्रकाशित संस्करण में ईष सञ्चरण चञ्चुरा रूप मिलता है), इसुम्भिज्जन्त [पाठ में यह शब्द इसुम्भिज्जन्त दिया गया है और यह संस्कृत ईषदुद्भिद्यमान है] (मल्लिका २२ , ५)। जैनमहाराष्ट्री में ईषद्विकासम् का ईसविभासम् रूप मिलता है (कक्कुक शिलालेख ७)। शौरसेनी में ईषत्परि श्रान्ता का ईसिपरिसन्ता रूप है (शकु १११ १), ईषत्पिफलित का ईसिपिफलिअ (मालती १२१ ५) ईषन्मुकुलित का ईसिमउलिअ ईषन् मसृण का ईसिमसिण (महावीर २ ९ २८, ६) रूप मिलते हैं। ईसिपिरल (उत्तर ७२ ५) ईसिपलिअ (नागा ८ १) और ईषद्वारदत्तापित का ईसिद्दार दत्त आपिद रूप काम में लाया गया है (मुद्रा ८३, ८) ईषन्निद्रा मुद्रित के लिए ईसिणिद्दामुद्दिद रूप आया है (माल० २२ ६) ईषच्छिम्पक के लिए ईसिसिरिप्पिद [पाठ में ईसितिरच्छि मिलता है] ईषदुद्भ्रमाण के स्थान पर ईसिमुप्पिज्जन्त मिलता है ईषन्मुरित (१) के लिए ईसिघडरिम व्यवहार में आता है। ईषन्मुकुलायमान का रूप ईसिमउलन्त हो गया है [पाठ

] ईसिम्मुलन्त मिलता है] आदि-आदि (मल्लिका० ७४, २ , १२३, ५ , १४१, ८ , २२५, ८), महाराष्ट्री मे ईसिसि भी चलता है :—ईसीसिवलन्त (हाल ३७०)। शौरसेनी मे ईसीसिजरढाअमाण (कर्पूर० २८, १) शब्द आया है। शौरसेनी मे ईसीसि वेअणा समुपण्णा (कर्पूर० ७३, ६) स्पष्टतः अशुद्ध रूप है। इसका शुद्ध रूप स्टेन कोनो ने सुधार कर ईसिस्स किया है। इस इकार का स्पष्टीकरण उन स्थलो के उदाहरणों से होता है जो पाणिनि ६, २, ५४ के अनुसार सन्धिवाले शब्दों मे पहला शब्द ईषत् आने से अस्वरित होने के कारण अपना अ, इ में बदल देते हैं। इस विषय पर हेमचन्द्र २, १२९ भी देखिए। प्राकृतमजरी मे इसि रूप भी दिया गया है और यह रूप कई हस्तलिखित प्रतियो में भामह १, ३ , मार्कण्डेय पन्ना ५ तथा बहुत से भारतीय सस्करणो मे पाया जाता है। बोएटलिंक द्वारा सम्पादित शकुन्तला ४, ९ में ईसीसि चुम्बिअ रूप मिलता है। शौरसेनी मे ईस संकमिद (जीवा० ४३, ८) रूप अशुद्ध है, इसके स्थान पर ईसिसंकमिद होना चाहिए। ईषत् समीपेभव का ईसिसमीवेहोहि, ईषद् विलम्ब का ईसिविलम्बिअ और ईषद् उत्तानम् कृत्वा के स्थान पर ईसि उत्ताणम् कडुअ रूप आये हैं (मल्लिका० ८७, १८ , १२४, ५ , २२२, ८) तथा जैनमहाराष्ट्री में ईसिं हसिऊण के स्थान पर ईसि हसिऊण रूप मिलता है (एर्त्से० ५७, १७), क्योंकि अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री में जब ईषत् स्वतन्त्र रूप से आता है और सन्धि होने पर बहुधा अनुस्वारित रूप का प्रयोग किया जाता है तब ऐसे अवसरों पर ईषत् का ईसिम् हो जाता है (ठाणग० १३५ , २९७ , आयार० २, १५, २० [यहाँ पाठ में ईसि- रूप मिलता है], २१ , २२ , पण्णव० ८४६ , जीवा० ४४४ , ५०१ , ७९४ , ८६० , ओव० § ३३ , ४९ भूमिका पेज ७ [सर्वत्र ईसि के स्थान पर यही पाठ पढा जाना चाहिए], कप्प० § १५ , आव० एर्त्से० ४८, १४ , नायाध० १२८४, विवाह० २३९ , २४८ , ९२० [पाठ में यहाँ भी ईसि रूप दिया है] , एर्त्से०)। अर्धमागधी में ईषत्क के लिए ईसि मिलता है (नायाध० ९९०)।

§ १०३—इस नियम की नकल पर जैनशौरसेनी और अपभ्रश में किध रूप आया है (पव० ३८४, ४७ , ३८८, २ और ५ , हेमचन्द्र ४, ४०१, १) और अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री तथा अपभ्रश में किह रूप आया है (आयार० १, ६, १, ६, आव० एर्त्से० १०, २३, २५, १८, ४६, ३१,एर्त्से०, हेमचन्द्र ४, ४०१, ३)। वास्तव में यह शब्द वैदिक कथा से निकला है। इस नकल के आधार पर ही अपभ्रश में जिध, तिध, जिह, तिह बन गये हैं (हेमचन्द्र ४, ४०१)। ये शब्द यथा और तथा के रूप हैं। नकल के आधार पर ही इन शब्दों के अन्त में आ का अ हो गया है, जैसे अर्धमागधी, महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रश में जह, तह, जैनशौरसेनी में जध, तध रूप भी बन गये हैं (§ १०३)। इसी प्रकार अर्धमागधी और जैन-महाराष्ट्री में तस्याः और यस्याः के कीसे और किस्सा की नकल पर (§ ४२५ और उसके बाद) तीसे और जीसे तथा महाराष्ट्री में तिस्सा और जिस्सा रूप आ गये हैं[1]। — घंस्ति और घंसति का घिसइ हो गया है (वररुचि ८, २८

[यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] हेमचन्द्र ४, २०४)। — महाराष्ट्री और अपभ्रंश शब्द चंदिमा (= चाँदनी वररुचि २, ६ हेमचन्द्र १, १८५ ; क्रम० २, २९ मार्कण्डेय पन्ना १८ ; पाइय २४४ गउड ; हाल १०९ [इसमें यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] रावण हेमचन्द्र ४, ३४९) के विषय में भारतीय व्याकरणकारों ने लिखा है कि यह रूप चन्द्रिका से निकला है तथा लास्सन', ई कून', एस गौल्दश्मित्त' और याकोबी' कहते हैं कि यह चन्द्रमास् से निकला है। इन विद्वानों के मत के विरुद्ध इस शब्द का लिंग और अर्थ जाते हैं। मेरे विचार से चंदिमा शब्द *चन्द्रिमन्' से निकला है जो हेमचन्द्र १, ३५ के अनुसार स्त्रीलिंग हो सकता है और चन्द्रिमा रूप में संस्कृत में भी बाद में ले लिया गया था (पीटर्सबुर्गर-कोश देखिए)। पाली चन्दिमा (कर्त्ता एकवचन), अर्धमागधी चंदिम- (निरया० १८ ; ओव कप्प०), अर्धमागधी और अपभ्रंश (कर्त्ताकारक) चंदिमा (सूय ४११ [पाठ में चंदमा आया है] ४६ ; दस ६२७, ११ पिंगल १, १ [इसके पाठ में भी चंदमा शब्द है]) । ये दोनों शब्द पुलिंग हैं तथा इनका अर्थ चाँद है। ये चन्द्रिमा (स्त्रीलिंग) शब्द से गौण रूप से निकले हैं और चन्द्रमस् के आधार पर ये नकल किये गये हैं। शौरसेनी में चन्द्रिका का चन्दिआ हो जाता है (चैतन्य० ४ १५ अद्भुत ७१)।—हेमचन्द्र १, ४९ और २६५ तथा मार्कण्डेय पन्ना १८ के अनुसार सप्तपर्ण के दो रूप होते हैं—छत्तवण्ण (वररुचि २, ४१ क्रम २, ४६) और छत्तिवण्ण। भारतीय व्याकरणकार सप्तपर्ण शब्द में सप्त पर जोर देते हैं, इसलिए वे इसे सप्तपर्ण पढ़ते हैं। किन्तु सप्तन् से यह पता चलता है कि अन्यत्र कहीं भी इसके सकार का छकार नहीं हुआ है जहाँ आरम्भ में स आता है यहाँ अम् से निकला हुआ म कभी व नहीं होता, जैसा पंचम सत्तम अट्ठम नवम और दशम के रूप पंचम सत्तम अट्ठम, नवम और दसम होते हैं आदि आदि' (§ ४४९)। इसलिए छत्तवण्ण सप्तपर्ण नहीं हो सकता बल्कि यह छत्रपर्ण से निकला कोई शब्द है और यह भी सम्भव है कि छत्रीपर्ण, जो छत्री शब्द से (हेमचन्द्र उणादिगण सूत्र ४४६) जो स्वयं छत्र से आया है, बना है। अर्धमागधी, में यह शब्द सत्तवण्ण के रूप में आया है (पण्णव ३१ नायाध ९११ विवाह ४१ और १५११ ओव § ६) और कहीं-कहीं सत्तिवण्ण भी मिलता है (ठाणंग २६६ [टीका में सत्तवण्ण दिया गया है] ५५५ विवाह ९८९) यहाँ यह विचारणीय है कि यह पाठ शुद्ध है या अशुद्ध ! हो सकता है कि छत्तिवण्ण की नकल पर यह सत्तिवण्ण बना दिया गया हो। शौरसेनी में इसका रूप छत्तवण्ण है (शकु १८ ५) और सत्तवण्ण भी मिलता है (प्रिय १ ११)।—अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री में पुव्वि शब्द (आयार १ २ १ २ और ३ तथा ४ सूय २ २ २ १ [यहाँ पाठ में पुव्वम् दिया गया है] दस ६४१, ८ ; नायाध उवास ओव कप्प एर्त्से) पूर्वम् का प्राकृत रूप नहीं है बल्कि यह *पूर्वीम् से निकला मालूम होता है। अर्धमागधी पुव्वाणुपुव्विम् (निरया § १) से इसकी तुलना कीजिए। पुव्वाणुपुव्वि शब्द के बारे में वारन ने पूर्व + आनुपूर्वीम् संस्कृत

रूप दिया है।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **सद्धिं** (आयार० १, २, १ २, और ३ तथा ४, नायाध०, उवास०, ओव० § १५ और १६, कप्प०, एर्त्से०) **सार्धम्** का प्राकृत रूप नहीं है बल्कि यह वैदिक शब्द **सध्रींम्** से निकला है।—**अवतंस** और **अवतंसक** शब्दों मे किस अक्षर पर जोर है इसका पता नहीं लगता। अर्धमागधी में इन शब्दो के रूप **वडिंस** (राय० १०२), **वडिंसग** मिलते हैं (सम० १०, १२, १६, २३, राय० १०३, १३९, विवाह० ४१, उवास०, ओव०, कप्प०), इनके साथ ही **वडिंसय** रूप आया है (उवास०, नायाध०, कप्प०)। इकार और आरम्भ के अकार का लोप (§ १४२) बताता है कि इस शब्द मे अन्तिम अक्षर स्वरित होगा। इस नियम के अपवाद केवल अर्धमागधी में मिलते है, उसमे **कुणप** का **कुणिम** और **चिटप** का **विणिम** (§ २४८) हो जाता है। इससे ज्ञात होता है कि इनमें अन्तिम अक्षर स्वरित है। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी **णिडाल** तथा अर्धमागधी और महाराष्ट्री **णिलाड** (=ललाट) के लिए § २६० देखिए। अर्धमागधी **आइक्खइ** § ४९२ और **दिण्ण** के लिए § ५६६ तथा अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री **अविणइ** के विषय मे § ५५७ देखिए।

१ **तिस्सा** आदि षष्ठी रूप के बारे में फ्राके का मत दूसरा है जो उसने नाखिरटन फौन डेर कोएनिगलिशे गेज़ेलशाफ्ट डेर विस्सनशाफ्टन त्सु गोएटिंगन १८९५, ५२९ के नोट में दिया है। — २ इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज २०३। — ३ बाइत्रेगे पेज २२। — ४. रावणवहो पेज १५६, नोट सख्या १। — ५. कल्पसूत्र, कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७३। — ६. पिशल, कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३४, ५७२। — ७. यह बात याकोबी ने कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७२ में नहीं स्वीकार की है। — ८ पिशल, वेदिशे स्टुडिएन २, २३५।

§ १०४—ओष्ठ्य वर्णों के पहले और बाद मे कभी कभी अ उ में परिणत हो जाता है:— **प्रथम** के **पुढम**, **पढुम** और **पुढुम** रूप मिलते है (चण्ड० ३, ९ पेज ४८, हेमचन्द्र १, ५५)। सभी प्राकृतों मे साधारण रूप **पढम** है। महाराष्ट्री में यह रूप (गउड०, रावण०, हाल) मिलता है, अर्धमागधी में (आयार० २, २, ३, १८, २, ५, १, ६, सूय० ४५, उवास०, नायाध०, कप्प०, निरया० आदि-आदि), जैनमहाराष्ट्री में (कक्कुक शिलालेख १, एर्त्से०, कालका०), जैनशौरसेनी में (कत्तिगे० ३९८, ३०४, ४००, ३२२, ४०१, ३४२ और ३४४), शौरसेनी में (मृच्छ० ६८, २३, ९४, ३, १३८, १५, शकु० ४३, ६, ५०, १, ६७, ११, विक्रमो० २२, २०, २७, १३), मागधी में (मृच्छ० १३०, १३ और १८, १३९, १०, १५३, २१), दाक्षिणात्या में (मृच्छ १०२, १९), अपभ्रंश में (पिंगल १, १, १०, २३, ४० आदि-आदि)। **पुढम** महाराष्ट्री में आया है (हाल ८३२), शौरसेनी में (मुद्रा० १८२, ३, २०४, ४ और ६), मागधी में (मुद्रा० १८५, ४) मिलता है, किन्तु अधिकतर और मुद्राराक्षस की हस्तलिखित श्रेष्ठ प्रतियों में **पढम** मिलता है (२५३, ४)। एस गौल्दश्मित्त द्वारा संपादित रावणवहो में कई बार **पढुम** आया है और एस बौल्लेनसेन द्वारा सपादित विक्रमोर्वशी मे भी आया है (२३, १९, २४, १,

२, ८६, क्रमदीश्वर २, ५३, मार्कण्डेय पन्ना २१, पाइय० १५८, गउड०, हाल, कर्पूर० १०१, ७, मृच्छ० ७२, ८, १५५, ४, मालती० ३०, ४, २२४, ३, अनर्घ० २७१, १०, चण्डकौ० ८६, ७, ९२, ११), मागधी मे इस शब्द का रूप **मसाण** है (मृच्छ० १६८, १८, मुद्रा० २६७, २, चण्डकौ० ६१, ११, ६३, ११, ६४, ९ [इस स्थल में **मसाणअ** पाठ है], ६६, १३, ७१, ९ और ११)।—महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अर्धमागधी **मुणइ** और जैनशौरसेनी **मुणदि** के विषय मे § ४८९ देखिए और ध्वनि से निकले अपभ्रंश **झुणि** तथा शौरसेनी **धुणि** के लिए § २९९ देखिए। § ३३७ से भी तुलना कीजिए।

१ हेमचन्द्र १, ५५ पर पिशल की टीका।— २ पिशल, डी रेसेन्सिओनन डेर शकुन्तला पेज १३, पिशल द्वारा सपादित विक्रमोर्वशीय ६२९, २६, ६३०, १८ और २०, ६३३, १८, पार्वती० २८, २२ [ग्लाजर का सस्करण], मल्लिका० १५२, १८, इसमें पुढम और ५६, ११ में पढम रूप मिलता है। हस्तलिखित प्रतियों की शौरसेनी में इस विषय पर भिन्न-भिन्न पाठों के बारे में (कहीं प- और कहीं पु-) मालवि० ३९, ५ और ६ तथा ७ देखिए।— ३. पिशल, वेत्सनबेर्गेर्स बाइत्रैगे ३, २४७।

§ १०५—कुछ बोलियों में अ मे समास होनेवाले कुछ सज्ञा शब्द अपने अन्त मे उ जोडने लग गये हैं, ऐसे शब्द विशेषत. वे है जो **ज्ञ**- और **ज्ञक**-में समाप्त होने वाले हैं। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी में इस **ज्ञ** का **ण्ण** हो जाता है और अर्धमागधी में **न्न** रूप भी मिलता है (हेमचन्द्र १, ५६, मार्क० पन्ना २०)। इस नियम के अनुसार महाराष्ट्री मे **अकृतज्ञक** का **अकअण्णुअ** हो जाता है (हाल, रावण०), **अज्ञक** का **अण्णुअ** हो जाता है (हाल), **अभिज्ञ** का **अहिण्णु** रूप बन जाता है (हेमचन्द्र १, ५६), किन्तु शौरसेनी में **अनभिज्ञ** का **अणहिण्ण** रूप मिलता है (शकु० १०६, ६, मुद्रा० ५९, १ [इस ग्रन्थ में **अणभिण्ण** पाठ है]), **आगमज्ञ** का **आगमण्णु** रूप हो गया है (हेमचन्द्र १, ५६)। **गुणज्ञक** का महाराष्ट्री में **गुणण्णुअ** रूप व्यवहार किया गया है (गउड०), **गुणअण्णुअ** रूप भी मिलता है (हाल), किन्तु शौरसेनी में **गुणज्ञ** का **गुणण्ण** हो गया है (काल्रेय० २५, २२)। अर्धमागधी में **दोषज्ञ** का **दोसन्नु** हो जाता है (दस० ६२७, ३६)। **प्रतिरूपज्ञ** का अर्धमागधी में **पडि-रूवण्णु** रूप का व्यवहार किया गया है (उत्तर० ६९४), **पराक्रमज्ञ** का **पर-क्कमण्णु** मिलता है (सूय० ५७६, ५७८)। **विज्ञ** और **विज्ञक** का अर्धमागधी में **विन्नु** (आयार० २, १६, १ और २, सूय० २६) और महाराष्ट्री में **विण्णुअ** पाया जाता है (मार्क० पन्ना २०)। **विधिज्ञ** का अर्धमागधी में **विहिन्नु** रूप है (नायाध० § १८)। **सर्वज्ञ** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैन-शौरसेनी में **सव्वण्णु** रूप मिलता है (हेमचन्द्र १, ५६, वज्जाल० ३२४, ९, आयार० २, १५, २६, विवाह० ९१६, अणुओग० ९५, ५१८, उत्तर० ६८९, दस० नि० ६५५, ८, ओव०, कप्प०, द्वारा० ४९५, ९, ४९७, ३८, एर्त्से०, पव० ३८१, १६,

कत्तिगे० ३९८, ४०२ और ४०३ [पाठ में **सव्वण्णु** रूप दिया गया है]), किन्तु मागधी में **सव्वञ्ञु** रूप मिलता है (हेमचन्द्र ४, २९३), पैशाची में यह रूप **सव्वञ्ञु** मिलता है (हेमचन्द्र ४, ३०३)। इस विषय पर § २७६ भी देखिए। ऊपर दिये गये शब्दों के अतिरिक्त नीचे दिये गये शब्द भी उ में समाप्त होते हैं।—अर्धमागधी में **प्रसू** शब्द का **पिसु** रूप मिलता है (§ १०१ सूय० २४९ उत्तर० ५८ १ १)। अर्धमागधी में **प्राण** शब्द एक निश्चित समय की अवधि बताता है तब[1] उसका **पाणु** रूप हो जाता है (विवाह० ४२१ अणुओग० ४२१ और ४३२ ओव० ; कप्प०), **आणापाणु** रूप भी देखने में आता है (ठाणंग० १७१ अणुओग० २४२ नंदी० १५४ २; ओव०)। अर्धमागधी में **पश्चार्ध** शब्द का **पिच्छद्धु** और **पिच्छद्धु** रूप होते हैं (§ ७४)। **मर्त्य** शब्द का अर्धमागधी में **मच्चु** रूप आता है (आयार० १, ८, ६, ४; २, १, ८, ७ उत्तर० २४९ दस० ६२२, ८ ६२१, १)। **म्लेच्छ** शब्द का रूप अर्धमागधी में **मिलक्खु** हो जाता है (आयार० २, १, १, ८ सूय० ५५ ५७ ८१७ [§ ८१६ में **मिलुक्खय** पाठ मिलता है] १२८ पण्हा० ५८ पण्ण० ४१ [पाठ में **मिलुक्खु** दिया गया है]। इस विषय पर वेबर के फेर्त्साइशनिस २, २ ५१ से तुलना कीजिए)। पाली में **म्लेच्छ** शब्द के **मिलक्खु** और **मिलिच्छ** दो रूप आते हैं (§ २३२)। अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और अपभ्रंश में इस शब्द का रूप **मेच्छ** हो गया है तथा अर्धमागधी में **मिच्छ** (§ ८४)। **पाउसु** और **पवासु** के लिए § ११८ देखिए। उपर्युक्त सभी शब्द अन्तिम वर्ण में स्वरित हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस स्वरितता पर स्वर का परिवर्तन निर्भर है। उ में परिवर्तित होनेवाले शब्दों में **आर्या** शब्द भी है जिसका अर्थ सास होता है। इसका प्राकृत रूप **अज्जू** हो जाता है (हेमचन्द्र १ ७७)। **आर्यका** भी ऐसा ही शब्द है। इसका अर्थ है घर की मालकिन और शौरसेनी में इसका रूप **अज्जुआ** हो जाता है (मृच्छ० २७, २ और उसके बाद २८, २ और उसके बाद २९, १ और उसके बाद १४, ४ ; १७, १ और उसके बाद आदि-आदि); मागधी में **अय्युआ** रूप मिलता है (मृच्छ० १ २१३ , २ और २४ तथा २५; ४ , २ और ४ तथा १) **अय्युका** भी मिलता है (मृच्छ० १३ ८)। मागधी में **अय्युआ** का अर्थ माता है (शकु० १५७, ११)। इसके सम्बन्ध में चन्द्रशेखर पेज २ ८ के अनुसार शंकर का मत है :—**अज्जुका** शब्दो मातरि देशीय । अर्धमागधी **माउ**, **पियाउ**, **भाइस्सु**, **निण्णक्खु** आदि के लिए § ५१९ देखिए।

1 जीवमाण औपपातिकसुत्त में पाणु शब्द मिलता है और विशेष कर अणुओग० ४३१ में।

§ १०६—अपभ्रंश में शब्द के अन्त में जो अ आता है वह संज्ञा के षष्ठी एकवचन में और इसी प्रकार बने हुए साधारण सर्वनामों के रूपों में सर्वनाम के प्रथम और द्वितीय वचन में आज्ञावाचक धातु के मध्यमपुरुष के एकवचन में, सामान्य और आज्ञा सूचक धातु के मध्यमपुरुष बहुवचन तथा कुछ क्रियाविशेषणों को छोड़कर अन्त्य उ में परिणत हो जाता है। **सुजनस्य** का **सोमणस्सु** रूप बन जाता है **प्रियस्य** का

पिअस्सु, स्कन्धस्य का खन्धस्सु और कान्तस्य का कन्तस्सु रूप हो जाते हैं (हेमचन्द्र ४,३३८ और ३५४ तथा ४४५,३), तस्य, यस्य, कस्य का तस्सु, तासु, तसु, जासु, जसु, कसु, कासु और कसु रूप मिलते हैं (§ ४२५, ४२७, ४२८)। परस्य का परस्सु रूप हो जाता है (हेमचन्द्र ४, ३३८ और ३५४)। मम का महु और मज्झु रूप होते है। तव का *तवु होकर तउ हो जाता है, तव (=तेरा) का तुहु [यही पाठ होना चाहिए] और तुज्झु रूप बनते है (हेमचन्द्र)। पिव का पिउ हो जाता है (हेमचन्द्र ४, ३८३, १), पीवत का पिअहु (हेमचन्द्र ४, ४२२, २०) रूप मिलता है और भण का भणु (हेमचन्द्र ४, ४०१, ४, पिंगल १, १२० और इस ग्रन्थ मे सर्वत्र ही भण के स्थान पर भणु पाठ ठीक है)। शिक्ष का सिक्खु (हेमचन्द्र ४, ४०४), इच्छथ था इच्छहु, पृच्छथ का पुच्छहु (हेमचन्द्र ४, ३८४ और ४२२, ९), कुरुत का कृणुत होकर कुणहु (पिंगल १, ८९ और ११८), दयत का देहु (हेमचन्द्र ३८४ , पिंगल, १, १०), जानीत का जाणेहु (पिंगल १, ५ और १४ तथा ३८), विजानीत का विआणेहु (पिंगल १, २५ और ५०), नमत का णमहु (हेमचन्द्र ४, ४६) , अत्र, यत्र, तत्र का ऍत्थु, जॅत्थु, तॅत्थु (§ १०७ , हेमचन्द्र , पिंगल १, ११४) , यत्र, तत्र का जत्तु और तत्तु (हेमचन्द्र ४, ४०४), अद्य का अज्जु रूप होते हैं (हेमचन्द्र ४, ३४३, २ और ४१८, ७, इस ग्रन्थ मे जहाँ भी अज्ज पाठ है वहाँ अज्जु पढा जाना चाहिए (§ १०७)। कभी कभी ए के स्थान पर जो अ हो गया है, वह आता है। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी में ऍत्थ बहुत अधिक आया है (पल्लवदानपत्र ५, ७) , दाक्षिणात्या (मृच्छ० १०२, १८, १०३, १६, १०५, १५), आवन्ती (मृच्छ० १०२, २५, १०३, ४), अपभ्रंश मे एत्थु रूप हो जाता है (§ १०६)। ये सब रूप न तो अत्र से निकलते हैं (हेमचन्द्र १, ५७)[1] और न ही *इत्र[1] अथवा *एत्र[1] से बल्कि इनका सम्बन्ध इह से है, जैसा तह का तत्थ से, जह का जत्थ से तथा कह का कत्थ से। इसका तात्पर्य यह है कि यह शब्द *इत्थ से निकला है जो वेद मे इत्था[1] रूप से आया है। अपभ्रंश इथी (गौल्दस्मित्त ने एथि पाठ दिया है), इथि (गौल्दस्मित्त का पाठ इत्थि है) जो अत्र के समान है (पिंगल १, ५ अ और ८६) और अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री तथा अपभ्रंश मे वैदिक कथा (§ १०३) शब्द से किह रूप हुआ है तथा जैनशौरसेनी और अपभ्रंश में यह रूप किध भी मिलता है, अपभ्रंश में केँत्थु और साथ-साथ किध तथा किह मिलते हैं। केत्थु में व्यञ्जन का द्वित्व § १९४ के अनुसार हुआ है, इसके अतिरिक्त यहाँ (§ १०३ से तुलना कीजिए) सर्वनामो में बीच तथा अन्त के अक्षरों ने परस्पर एक दूसरे पर प्रभाव डाला है।—महाराष्ट्री में उक्केर (=ढेर और पुरस्कार, भामह १, ५, हेमचन्द्र १, ५८, क्रम० १, ४, मार्क० पन्ना ५, देशी० १, ९६, पाइय० १८, गउड०, कर्पूर० ६९, ६, विद्ध० ११, ६), जो शौरसेनी में भी प्रचलित है (बाल० १२९, ६ और ७ , १६७, १०, २१०, २) जिसके समान ही एक शब्द उक्कर (चण्डकौ० १६, १७) महाराष्ट्री तथा अर्धमागधी में है (गउड०, नायाध०, कप्प०)

१५९, देशी० ८, ३६, हाल) **सुहिल्ली** का रूप है जो **सुख**+प्रत्यय **इल्ल** का प्राकृत रूप है और इसका पर्यायवाची रूप **सुहल्ली** (देशी० ८, ३६) **सुख+अल्ल** का प्राकृत है (§ ५९५), इस प्रकार से ही इनकी सिद्धि हो सकती है।[९]—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री **हेट्ठा** (= **अधस्तात्** : सम० १०१, ओव० § १० और १५२, एर्त्से०) यह प्रमाण देता है कि कभी इसका रूप ***अधेस्तात्** भी रहा होगा। ऐसा एक शब्द **पुरेक्खड** है जो अपने रूप से ही बताता है कि यह कभी कहीं प्रचलित रूप ***पुरेष्कृत** से निकला है। यह तथ्य वेबर[१०] पहले ही लिख चुका है। **क्ख** की व्युत्पत्ति इससे ही स्पष्ट होती है, **पुरस्कृत** से नहीं। पाली में मिलनेवाला शब्द **अधस्तात्** से अलग नहीं किया जा सकता, इसलिए ***अधेष्ठा**[११] रूप से **हेट्ठा** की व्युत्पत्ति बताना भ्रमपूर्ण है। अर्धमागधी **अहे** (= **अधस्**) और **पुरे** (= **पुरस्**) के लिए § ३४५ देखिए। **हेट्ठा** शब्द से महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अर्धमागधी में **हेट्ठ** विशेषण बना है। इससे अर्धमागधी में **हेट्ठम्** रूप निकला है (हेमचन्द्र २, १४१, ठाणग० १७९, ४९२, [ग्रथ मे **हेट्ठिम्** पाठ है]), जैनमहाराष्ट्री में इसका **हेट्ठेण** रूप पाया जाता है (एर्त्से०), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **हेट्ठओ** मिलता है (विवाग० १४३, एर्त्से०)। इस शब्द का रूप पाली में **हेट्ठतो** है। महाराष्ट्री में **हेट्ठम्मि** रूप भी आया है (हाल ३६५), जैनमहाराष्ट्री में **हेट्ठयम्मि** मिलता है (एर्त्से०), **हेट्ठट्ठिअ** (हेमचन्द्र ४, ४४८) और **हिट्ठ** (देशी० ८, ६७) तथा **हिट्ठम्** (ठाणग० १७९, [ग्रन्थ में **हिट्ठि** पाठ है])। इसमें § ८४ के अनुसार **ए** का **इ** हो गया है। इनके अतिरिक्त जैसा पाली में पाया जाता है, अर्धमागधी मे भी चरमतासूचक **हेट्ठिम** शब्द भी मिलता है (ठाणग० १९७, सम० ६६, ६८, ७२, विवाह० ५२४, ५२९, १४१२, अणुओग० २६६)। **हेट्ठिमय** (विवाह० ८२), **हिट्ठिम** (पण्णव० ७६, ठाणग० १९७, उत्तर० १०८६) और एक बार-बार मिलनेवाला विशेषण, अर्धमागधी में मिलता है, वह है **हेट्ठिल्ल** रूप (ठाणग० ३४१, ५४५ ; सम० १३६ और उसके बाद, पण्णव० ४७८, नायाध० ८६७, विवाह० १२८, ३४७, ३९२ और इनके बाद, ४३७, ११०१, १२४०, १३३१ और उसके बाद, १७७७, अणुओग० ४२७ और उसके बाद, जीवा० २४० और उसके बाद, ७१०, ओव०)। इस सम्बन्ध में § ३०८ भी देखिए। —अपभ्रंश **हेल्लि** (= हे सखी हेमचन्द्र ४, ३७९, १ और ४२२, १३), जैनमहाराष्ट्री **हले**, अपभ्रंश **हलि** और महाराष्ट्री तथा शौरसेनी **हला** (§ ३७५) ***हिल्ली** और ***हलि** से निकले हैं। इनमें § १९४ के अनुसार **ल** का द्वित्व हो गया है।

१ चाइल्डर्स का भी यह मत है, एस गोल्दस्मित्त, प्राकृतिका पेज ६। — २ लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज १२९, योहानसोन, शाहबाजगढी १, १३३। — ३. फॉसब्योल, धम्मपद पेज ३५०। — ४ पिशल, वेदिशे स्टुडिएन २, ८८। — ५ ब्यूलर, पाइयलच्छी। — ६ इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज ११८। — ७ पिशल, बेत्सेनबैर्गर्स बाइत्रेगे ३, २५५। — ८ पिशल, बेत्सेनबैर्गर्स बाइत्रेगे ३, २६३। इस विषय पर योहानसोन, इंडिशे फौर्शुंगन

१, २४१ भी देखिए। — २ इस शब्द की व्युत्पत्ति क्षुल्ल-कृति से देना जैसा वेबर ने हाल पेज ४ में कई टीकाकारों के मतों को उद्धृत करके दिया है असंभव है। — ३ भगवती १, ४ ४; इस सम्बन्ध में ई० कून बाइत्रेगे पेज ३१। — ११ योहानसोन ईंडिशे फौर्शुंगन ३, २१८। पाली में पुरे पुरेक्खार, स्वे सुवे आदि शब्द मिलते हैं इसलिए इस मत की कोई आवश्यकता नहीं है कि पाली से पहले भी ए का व्यवहार होना चाहिए।

§ १३०—आ कभी-कभी उन अक्षरों में इ हो जाता है जो स्वरित वर्णों के बाद आते हैं। यह परिवर्तन विशेष कर सर्वनामों के षष्ठी कारक बहुवचन और परस्मैपद धातु के सामान्य रूप के उत्तमपुरुष बहुवचन में होता है। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन-महाराष्ट्री जैनशौरसेनी और अपभ्रंश में बहुधा यह देखा जाता है। तेषाम् का अर्ध-मागधी और जैनमहाराष्ट्री में तेसिं हो जाता है तासाम् का तासिं एतेषाम् का एएसिं, एतासां का एयासिं येषां का जेसिं, यासां का जासिं, केषां का केसिं मूल शब्द इम का इमेसिं, इमासिं अन्येषां का अण्णेसिं और अन्यासाम् का अण्णासिं रूप बन जाते हैं। इनकी नकल पर अन्य सर्वनामों के रूप भी ऐसे ही बन गये और चलने लगे। महाराष्ट्री में कभी-कभी एषाम् का एसिं परेषाम् का परेसिं और सर्वेषाम् का सव्वेसिं हो जाता है (§ ४२५ और उसके बाद)[1]।— वंद्यामः का महाराष्ट्री में वंदियो बन जाता है, महाराष्ट्री और अर्धमागधी में वन्दामहे का वंदिमो, अपभ्रंश में लभामहे का लहिमु होता है आदि आदि। महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में नमामः का नमिमो रूप मिलता और भणामः का भणिमो। इन रूपों की नकल पर पृच्छाम का पुच्छिमो लिखामः का लिहिमो *श्रुणामः का सुणिमो आदि रूप बन गये (§ ४५५)। महाराष्ट्री में धातु के सामान्य रूप में उत्तमपुरुष एकवचन के वर्तमानकाल और अपभ्रंश में सामान्य रूप वर्तमान और भविष्यकाल में भी कभी-कभी यह परिवर्तन हो जाता है (§ ४५४ ५२)। व्याकरणकारों ने प्राकृत धातुओं के कुछ ऐसे रूप बताये हैं जो -अमि -अम -इम -आमो और -अमु में समाप्त होते हैं। इनमें से -अमि में समाप्त होनेवाले रूप जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश में मिलते हैं (§ ४५४)। सादृश्य का महाराष्ट्री अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में जो सारिक्ख और सारेक्ख रूप मिलते हैं वे इस नियम के अनुसार ही बने हैं (पाइय २५५; गउड ११२६ विवाह ५ २ पत्ते)[1]।

१ पिशल कूत्स त्साइटश्रिफ्ट ३४, ५७०; याकोबी कूत्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७२। इस लेख में याकोबी ने भूल से बताया है कि मैंने केवल तीन उदाहरण दिये हैं किंतु मैंने पाँच उदाहरण दिये थे। उसने इस तथ्य की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया कि त- एत- य- क- और इम- की षष्ठी का बहुवचन ही प्रयोग में अधिक आते हैं अन्य सर्वनामों के बहुत कम मिलते हैं। वह स्वयं इ का शब्द में आ हो जाने का कोई कारण न बता सका। — २ याकोबी, कूत्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७४ से पता चलता है कि उसका विधान

है कि मैंने कूनस त्साइटश्रिफ्ट ३४, ५७१ में जो उदाहरण दिये उनसे अधिक उदाहरण नहीं मिल सकते। **गणिमो** और **जाणिमो** के विषय में उसका मत भ्रामक है। इस सम्बन्ध में § ४५५ भी देखिए। याकोबी का विचार है कि **-इमो** प्रत्यय किसी अपभ्रंश बोली से आया है लेकिन अभी तक अपभ्रंश बोलियों में **-इमो** मिला ही नहीं। — ३ याकोबी, कूनस त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७३ और ५७५ के अनुसार यहाँ ज्ञ होना चाहिए जैसा **सिज्जा, निसिज्जा, मिंजा** में इसके कारण ही इ बन गया है। यह विचार पुराना है जो वेबर ने हाल[१] पेज ३८ में दिया है। यहाँ पर वेबर का मत है कि इ य के प्रभाव से आया है। वास्तविकता यह है कि ज्ञ का उक्त स्वर पर नाममात्र का भी प्रभाव नहीं है। इस सम्बन्ध में § २८०, २८४ और २८७ भी देखिए।

§ १०८—कभी-कभी अ (§ १०१) के समान **आ** भी स्वरित वर्ण से पहले इ में बदल जाता है और यह स्पष्ट ही है कि पहले **आ** का अ होता है। इस प्रकार हेमचन्द्र १, ८१ के अनुसार **-मात्र** का **-मत्त** और **-मेत्त** हो जाता है। **मेत्त** होने से पहले **मित्त** रूप हो जाता होगा, जैसे अर्धमागधी में **वितस्तिमात्र** का **विहत्थिमित्त** रूप मिलता है (सूय० २८०), **इत्थामात्र** के लिए **इत्थामित्त** आया है (सूय० ३३९), **विज्ञातपरिणयमात्र** के स्थान पर **विन्नायपरिणयमित्त** रूप हैं (नायाध० § २७, कप्प० § १०, ५२, ८०) और **स्वादनमात्र सायणमित्त** हो जाता है (कप्प० § २६)। **मेत्त** के साथ प्रायः सर्वत्र **मित्त** रूप चलता है (गउड०, हाल, रावण०), अर्धमागधी में (विवाह० २०३, २०४, ४८२, १०४२), जैनमहाराष्ट्री में (एर्त्से०, कालका०), शौरसेनी में (शकु० ३९, १२, ६०, १५, ९६, २, विक्रमो० ७, १२, ४१, १३, ८०, १३, ८४, ६, उत्तर० २१, १०, १००, १ आदि-आदि), **मेत्तक** रूप भी मिलता है (शकु० ३१, ११ [यहाँ यही पाठ शुद्ध माना जाना चाहिए], ७६, ७), **अतिमात्रम्** के लिए **अदिमेत्तं** आया है (मृच्छ० ८९, ४, ९०, १३ और २१), मागधी में **जातमात्रक** के लिए **यादमेत्तक** रूप चलता है (मृच्छ० ११४, ८)[१]। **महामेत्थ** (= **महामात्रक**) और **मेत्थपुरिस** के सम्बन्ध में § २९३ देखिए। **-भासति** का ***भार्सति** और इसका ***भर्सति** तब **भसइ** रूप आया और फिर यह छठे वर्ग का धातु बन गया (§ ४८२)। **ग्राह्य** और **दुर्ग्राह्य** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी में **गेज्झ** और मागधी में **दुग्गेय्ह** तथा अपभ्रंश में **दुग्गेज्झ** वर्तमानकाल से बने हैं अर्थात् ***गृह्य** और ***दुर्गृह्य** से निकले हैं और इस कारण इनका रूप कभी ***गिज्झ** और ***दुग्गिज्झ** रहा होगा (§ ५७२)।—**शाल्मली** का अर्धमागधी में **सामली** और बोलचाल में **सामरी** रूप भी है (§ ८८)। इसके साथ साथ पाया जानेवाला रूप **सिम्बली** (पाइय० २६४, देशी० १, १४६, विवाह० ४४७, उत्तर० ५९० [टीका में शुद्ध रूप आया है], दस० ६२१, ५ [पाठ में **सवली** है]) और **एकसिंबली** (= **शाल्मलीपुष्पैर् नवफलिका**, देशी० १, १४६), वैदिक **सिम्बल** (= रुई

भी मिलता है (हेमचन्द्र १, ८२ , मार्कण्डेय पन्ना २२ , हाल , निरया०, उवास०)। —अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री शब्द **देवाणुप्पिय** जैसा वेबर[3], लौयमान[4], वारन[5], स्टाइनटाल[6] और याकोबी[7] का मत है कि **देवानांप्रिय**[8] का प्राकृत रूप है कर के ठीक नहीं है , यह शब्द **देवानुप्रिय** का प्राकृत रूप है जो **देव + अनुप्रिय** की संधि है। पाली मे **अनुप्पिय**[9] शब्द पाया जाता है। **ऊसार** (= वर्षा , हेमचन्द्र १, ७६) **आसार** से नही निकला है। **आसार** तो महाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश मे **आसार** रूप मे ही प्रचलित है (गउड० , रावण० , चडकौ० १६, १८ , विक्रमो० ५५, १७) बल्कि ***उत्सार** का रूप है। **आर्या** का **अज्जू** रूप के लिए § १०५ देखिए।

१ त्साइटुंग डेर डौयत्शन मौर्गेनलैंडिशन गेज़ेलशाफ्ट २६, ७४१ , हाल , हाल १ में अशुद्ध है। गउडवहो ५२७ में हरिपाल की टीका मे आया है , उल्लिअ इति देशीधातुर् आर्द्रीभावे। — २ पी० गौल्दश्मित्त, स्पेसिमेन २, ८ पेज ८४। — ३ भगवती १, ४०५। — ४ औपपातिक सूत्र , वीनर त्साइट-श्रिफ्ट फ्यूर डी कुण्डे डेस मौर्गेनलाडेस ३, २४४। — ५ निरयावलियाओ। —६ स्पेसिमेन। — ७ कल्पसूत्र और औसगेवैल्टे एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री , इस विषय पर ई० म्युलर, बाइत्रैगे पेज १५ से भी तुलना कीजिए। — ८. उवासगदसाओ, परिशिष्ट ३, पेज ३१। — ९ मौरिस, जोर्नल औफ द पाली टेक्स्ट सोसाइटी, १८८६, पेज ११७।

§ १११—अर्धमागधी **पारेवय** (हेमचन्द्र १, ८० , पण्णव० ५४, ५२६ , जीवा० ४५९ , राय० ५२ [पाठ में **परेव** है] , उत्तर० ९८१), **पारेवयग** (पण्हा० २४ , ५७), स्त्रीलिंग **पारेवई** (विवाग० १०७) पाली मे **पारेवत** है। यह शब्द महाराष्ट्री **पारावअ** का दूसरी बोलियो मे थोडा बहुत बदला हुआ रूप है (हेमचन्द्र १, ८० , पाइय० १२४ , गउड०, हाल , कर्पूर० ८७, १०)। शौरसेनी मे इसका रूप **पारावद** हो गया है (मृच्छ० ७१, १४ , ७९, २४ , ८०, ४ , शकु० १३८, २ , विद्ध० १११, ३) , यह शब्द संस्कृत और पाली मे **पारापत** है। **पारे** सप्तमी का रूप है, जैसे **पारेगंगम्** , **पारेतरंगिणि** आदि। अर्धमागधी **पारेवय** (= खजूर का पेड पण्णव० ४८३ , ५३१) का मूल संस्कृत रूप **पारेवत** है।—अर्धमागधी मे **पश्चात्कर्मन्** का **पच्छेकम्म**– रूप मिलता है (हेमचन्द्र १, ७९)। यह रूप वास्तव मे **पुरेकम्म**– की नकल पर बनाया गया है (§ ३४५)। पण्हावागरणाइ ४९२ मे **पच्छाकम्मं** और **पुरेकम्मं** रूप मिलते हैं। **देर** (= दरवाजा . हेमचन्द्र १, ७९) जिसके अन्य रूप **दार, वार, दुवार, दुआर** (§ २९८ , ३०० , १३९) सिंहली रूप **देर** के समान है, संभवत किसी ***दर्य** से निकला है जो कभी किसी प्रांत मे बोला जाता रहा हो। इस विषय पर **दरी** शब्द विचारणीय है, जिसका अर्थ गुफा होता है। **उक्कोस** जिसे टीकाकार **उत्कर्ष** से निकला बताते हैं तथा वेबर[1] जिसका एक रूप ***उक्कास** भी देता है और जिसे वारन[2] लेख की निरी अशुद्धि समझता है, उसका मूल ***उत्कोप** है जो **कुप् निष्कर्षे** से निकला है (धातुपाठ ३१, ४६)। यह **कुप्** संस्कृत मे **उद्** के साथ नहीं मिलता। साधारणत **उक्कोसेणम्** और **जह**-

श्रेणम् शब्द मिलता है (अणुत्तर ३, ठाणंग० १ ६ १३१ ; सम ८ ; ९ ११ पण्णव ५२ २०५ और उसके बाद विवाह० २६ और उसके बाद ५९ ६ १४१ १८२ ५७२ और उसके बाद ; ३५८ १७३ आदि-आदि जीवा १८ १५ १९ ४९ आदि-आदि अणुओग १६१ और उसके बाद ३०८ और उसके बाद उत्तर २ १ ; भाव)। उक्कोसेणम् का अर्थ 'अति उत्तमता से' और 'अति' है तथा जहन्नेणम् का 'कम-से-कम' है। कभी इसके स्थान पर सक्कोसम् आता है (विवाह १८ १७१ १९ उत्तर ३१२ और उसके बाद)। विशेषण के रूप में (पण्हा १२९) यह मज्झिम और जहन्न के साथ पाया जाता है (ठाणंग १२८ १४१ १५२ १७२)। व्याकरणकार (हेमचन्द्र ४, २५८ त्रिविक्रम० ३, १, १३२) और उनके टीकाकार इसका अर्थ 'उत्कृष्ट' देते हैं। उक्कोसिय (ठाणंग ५ ५ विवाह ८३ ९३ उत्तर ९७६ कप्प) न तो वेबर[1] के अर्थ 'उत्कर्षिक' और न ही याकोबी[4] के 'उत्कृष्ट' का पर्यायवाची प्राकृत रूप है, किन्तु *उत्कोषित है। भाषति के रूप घोषइ के सम्बन्ध में § ४८२ देखिए।

१ भगवती १, ४११ ; इस विषय पर लौयमान का औपपातिक सूत्र भी देखिए। — २ ओवर डे गौडसवीस्सिगो एम बीसगोरिगे बेग्रिप्पाम डेर जैना (एत्सौक्से १८७५) पेज ४१ नोट १। — ३ भगवती १ ४४१। — ४ कल्पसूत्र।

§ ११२—क्रियाविशेषणों में अन्तिम अक्षरित आ महाराष्ट्री में बहुधा और स्वयं कविता में भी तथा अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री जैनशौरसेनी और अपभ्रंश में कभी-कभी ह्रस्व हो जाता है (सब व्याकरणकार § ७९) ; अन्यथा का महाराष्ट्री में अण्णह हो जाता है (हाल), इसके साथ-साथ जैनमहाराष्ट्री और महाराष्ट्री में अण्णहा भी पाया जाता है (गउड कालका) जैनशौरसेनी में अण्णधा रूप मिलता है (मृच्छ २४, ४ ५१, २४ ५२, ११ ६४, २१ ; शकु ७२, १६ ; ७१,८ ७१ ५ विक्रमो १८, ८ ; ४ ,१६) मागधी में भी यही रूप है (मृच्छ १६९ ४)। महाराष्ट्री अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में यथा और तथा के जह और तह रूप हैं (गउड हाल रावण उवास कप्प एर्त्स ; कालका)। जैनशौरसेनी में जध (पव ३८६ ८ ; ३८७, २४ [इस स्थान में जह पाठ है])। अपभ्रंश में जिह जिध तिह और तिध रूप मिलते हैं (हेमचन्द्र ४ ४ १)। इनमें का इकार आया है यह अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश किह की नकल पर। जैनशौरसेनी और अपभ्रंश में किध भी मिलता है जो वैदिक कथा का प्राकृत रूप है। वास्तव में इसके कारण ही महाराष्ट्री कह और प्राकृत जह और तह में अ आया है (गउड हाल रावण § ११)। शौरसेनी और मागधी में गद्य में केवल जधा और तधा रूप पाये जाते हैं (मागधी रूप यधा है)। इन प्राकृतों में कधा नहीं बल्कि गद्य में कधम् रूप आया है। आवन्ती में पद्य में जह आया है (मृच्छ १ १२)। मृच्छकटिक १ ३ ७ में मागधी में जो तह शब्द आया है वह कवियों में तध पढ़ा जाना चाहिए और शौरसेनी में भी यही

पाठ होना चाहिए ।—महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अर्धमागधी में **वा** का **व** हो जाता है (गउड० , हाल , रावण० , एर्सें० , कालका०, दस० ६१८, २५ , ६२०, ३२ और ३३)। शौरसेनी और मागधी में गद्य में **वा** ही होता है। कविता में मात्रा की आवश्यकता के अनुसार ह्रस्व या दीर्घ **व** या **वा** काम मे लाया जाता है। एक ही पद मे दोनों रूप मिल जाते हैं जैसे, महाराष्ट्री में **जह ण तहा** (हाल ६१)। जैनमहाराष्ट्री में **किं चलिओ व्व . किं वा जलिओ** (एर्सें० ७१, २२) है। जैनशौरसेनी में **गुणे य जधा तध वंधो** (पव० ३८४, ४८) है। अर्धमागधी में **पडिसेहिए व दिन्ने वा** (दस० ६२२,३७) है। महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और अर्धमागधी में **सदा** का **सइ** हो जाता है (वररुचि १,११ , हेमचन्द्र १, ७२ , क्रम० १, १०९, मार्कण्डेय पन्ना ७ , पाइय० ८७ , गउड० , रावण० , प्रताप० २२५, १४ , अच्युत० १ , २० , २२ , ६२ , ६६ , ६९ , ९३ , दस० ६२२, २३ , कालका० २५९, २४[1]), इसमें **इ** नियम के अनुसार (§ १०८) आ गयी है। महाराष्ट्री में **सआ** रूप भी पाया जाता है पर बहुत कम (हाल ८६१)। भामह १, ११ में बताया गया है कि **यदा** का **जइ** और **तदा** का **तइ** हो जाता है। इससे पता लगता है कि ये शब्द कभी इस प्रकार रहे होंगे : ***र्यदा** और ***तंदा** जैसा ऋग्वेद में नकारात्मक शब्दों के बाद आने पर **कदा** का **कंदा** हो जाता है। और इस स्वरित शब्द पर ही महाराष्ट्री **कइ** (हाल) का आधार है और इसका प्रभाव **जइ** और **तइ** पर भी पड़ सकता है। **तइयम्** शब्द याकोबी[2] ने **तर्दा** के लिए दिया है और यह उदाहरण उसने यह बताने को दिया है कि अन्तिम वर्ण स्वरित होने से **आ** का **इ** हो जाता है, किन्तु मुझे यह शब्द ही नहीं मिला। यदि यह शब्द कहीं मिलता हो तो यह कहा जा सकता है कि § ११४ के अनुसार **तइआ** का दूसरा रूप है जो **कइआ** और **जइआ** के साथ महाराष्ट्री में प्रयोग में आता है (वररुचि ६, ८ , हेमचन्द्र ३,६५ , मार्कण्डेय पन्ना ४६ , गउड०, हाल , रावण० , केवल **कइआ,** अच्युत० ८६ , ९१ , अर्धमागधी **तइया** उत्तर० २७९ , **जइया** कहीं नहीं पाया जाता है)। इनकी उत्पत्ति ***कयिदा,** ***ययिदा** और ***तयिदा** से है जो **कया, तया** और **यया + दा** से है (§ १२१)। यह रूप परिवर्तन भी नियम के अनुसार ही है। **कृत्वा** और **गत्वा** के स्थान पर शौरसेनी, मागधी और ढक्की में **कदुअ** और **गदुअ** रूप होते हैं, ये पहले ***कंदुचा** और ***गंदुचा** रहे होंगे।

१ याकोबी ने इसे **स्वयं** का पर्यायवाची बताया है जो अशुद्ध है। — २ कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७५ , यह शब्द याकोबी ने हेमचन्द्र के अन्त में दी हुई शब्द-सूची से लिया है। वहाँ **तइयम् = तृतीयम्** के नीचे ही **तइआ = तदा** दिया हुआ है।

§ ११३—अन्तिम **आ** अथवा शब्द के अन्तिम व्यञ्जन के लोप हो जाने पर उसके स्थान पर आये हुए क्रियाविशेषण का **आ** कुछ बोलियों मे अनुस्वार हो जाता है और अपभ्रंश मे अनुनासिक। महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **यथा** का **जहा** और अपभ्रंश मे **जिहां** रूप मिलता है (हेमचन्द्र ४, ३३७)।—सब बोलियों के

मा के साथ साथ अपभ्रंश में मा और ममू रूप मिलते हैं (हेमचन्द्र ४,४१८ हेमचन्द्र के अनुसार सर्वत्र मा और ममु इसे ह्रस्व करना हो तो ममु लिखा जाना चाहिए)। सभी प्राकृत भाषाओं के विणा रूप के साथ साथ अपभ्रंश में विणु* रूप भी आता है (हेमचन्द्र)। यह विना के एक रूप *विणम् से निकला है (§ ३५१)।—मनाक् का मणा हो जाता है (हेमचन्द्र २, १६९)। इसके साथ-साथ महाराष्ट्री और शौरसेनी में मणम् का प्रचलन भी है (मार्कण्डेय पन्ना ३९ हाल; शकु १४१, ८; कर्पूर ३१, ९); जैनमहाराष्ट्री में मणागम् रूप आया है (एर्त्से), अपभ्रंश में मणाउ का व्यवहार है (§ ३५२) और जैनमहाराष्ट्री में मणयम् (हेमचन्द्र २, १६९ कक्कुक शिलालेख १) और मणियम्† रूप मिलते हैं (हेमचन्द्र २, १६९)।—अर्धमागधी में मुधा के लिए मुसम् और मुसा रूप चलते हैं (§ ७८)।—अर्धमागधी में साक्षात् के लिए सक्खम् शब्द मिलता है (हेमचन्द्र १, २४ उत्तर ११६ ३७ ओव) शौरसेनी में इसका रूप सक्खा है (मल्लिका १९, १०)।—अर्धमागधी में द्विधा और इस रूप के साथ साथ अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में हेट्ठा, द्वितीया और इसके साथ साथ पंचमी के रूप है, सम्भवतः सक्खम् शब्द भी इन कारकों का ही रूप हो। अर्धमागधी में तहा के साथ साथ स्वरों से पहले तहम् रूप भी चलता है। एवम्, एतत् तथैतद्, अवितथम्, एतद् का एवम् एयम्, तहम् अवितहम् और एयम् हो जाता है (विवाह १४६ उवास § १२ ओव § ५४ कप्प § ११ ८१)। यह तहम् तई के स्थान पर आता है (§ १४९) और तथा के साथ-साथ कभी किसी प्रदेश में बोले जानेवाले *तथम् का प्राकृत रूप है, जैसे वैदिक कथा के साथ-साथ कथम् रूप भी चलता है। इसी प्रकार अपभ्रंश जिहँ भी यथा के साथ साथ चलनेवाले *यथम् का रूप है। इस सम्बन्ध में § ७२ ७४ ७५ और ८६ से भी तुलना कीजिए। इसी प्रकार भुत्वा और श्रुत्वा के लिए सोच्चा और विस्सा के साथ-साथ सोच्चं और विस्सं के लिए स्वरोंसे पहले अर्धमागधी में सोच्चम् और विस्सम् रूप चलते हैं (§ ३३८ ३४९)। इ, ई और उ ऊ में समाप्त होनेवाले स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में तृतीया एकवचन में लगनेवाला आ और आः से निकले पंचमी, षष्ठी तथा सप्तमी एकवचन में लगनेवाला आ महाराष्ट्री में ह्रस्व हो जाता है —वाप्या का वावीअ, कोटेः का कोडीअ, नगर्याम् का णअरीअ और वध्वा का वहुअ हो जाता है (§ ३८५)। इस प्रकार के अन्य रूप जो अ में तथा स्त्रीलिंग होने पर आ में समाप्त होते हैं और जिनका उल्लेख कई व्याकरणकारों ने किया है प्राकृत ग्रन्थों में न मिलने तथा उनके पक्के प्रमाण न मिलने के कारण यहाँ नहीं दिये गये। कर्पूरमंजरी के पहले के संस्करणों में कुछ ऐसे रूप थे वे अब कोनो के आलोचनात्मक संस्करण से निकाल दिये गये हैं (§ ३७५)।

---

* अवधी आदि बोलियों में बरो बिनु बिनु हो गया है।—अनु

† इस मणियम् का हिन्दी की कुछ बोलियों विशेषतः उत्तरी भारत की पहाड़ी बोलियों में मिणि या मिणी बोला जाता है।—अनु

§ ११४—इ का अ मे परिणत हो जाने का व्याकरणकारों ने उल्लेख किया है (वररुचि १, १३ और १४, हेमचन्द्र १,८८ से ९१ तक, क्रम० १,१८ और १९, मार्कण्डेय पन्ना ७)। इस प्रकार के बहुत कम शब्द ग्रन्थों में मिलते है और जो मिलते भी हैं उन पर दूसरा नियम लागू होता है। **प्रतिश्रुत्** के लिए **पडंसुआ** (हेमचन्द्र १, २६ और ८८ तथा २०६) और **पडंसुअ** रूप (मार्कण्डेय पन्ना ३४) मिलते है, पर ये रूप वास्तव में *__प्रत्याशनुत्__ अथवा *__प्रत्याश्रुत__ से निकले हैं। यह बात इन रूपों से तथा **प्रत्याश्राव** शब्द से मालूम होती है। अर्धमागधी में **प्रतिश्रुत्** शब्द से **पडिसुया** शब्द की उत्पत्ति होती है (ओव०)। **प्रतिश्रुत** शब्द के लिए भामह ने **पडिसुद** रूप दिया है। — **पृथ्वी** के लिए महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और अपभ्रंश में **पुहवी** रूप मिलता है और अर्धमागधी, जैनशौरसेनी, जैन-महाराष्ट्री और शौरसेनी मे **पुढवी** रूप आता है (§ ५१), इसमें **अ** अंश-स्वर है अर्थात् उच्चारण में हलन्त है, जैसा **पुहुवी** रूप में अंश-स्वर है, जो उच्चारण में ह्रस्व से भी ह्रस्व बन जाता है (§ १३९)।—**विभीतक** से **बहेडह** की उत्पत्ति नहीं हुई है, जैसा हेमचन्द्र १, ८८ मे बताया गया है, बल्कि यह शब्द **बहेटक** से निकला है (वैजयन्ती० ५९, ३५१, देखिए बोएटलिक **बहेडक**)।—**सढिल** (हेमचन्द्र १, ८९), अर्धमागधी **पसढिल** (हेमचन्द्र १, ८९, पण्णव० ११८)। महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी **सिढिल** (वररुचि २, २८, हेमचन्द्र १, ८९ और २१५ तथा २५४, क्रम० २, १७, गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, ५, ३, ४, नायाध० ९४९, राय० २५८, विवाह० ३९, १३६९, ३८२, १३०८, उत्तर० १९६, शकु० १३२, १२, विक्रमो० ३०,४)। महाराष्ट्री **सिढिलत्तण** (=*__शिथिलत्वन__ : गउड०), शौरसेनी **सिढिलदा** (शकु० ६३, १), महाराष्ट्री और शौरसेनी **सिढिलेइ** और **सिढिलेदि** (रावण०, शकु० ११, १, बाल० ३६, ५, चण्डकौ० ५८, १०), महाराष्ट्री, अर्धमागधी और शौरसेनी **पसिढिल** (गउड०, हाल, रावण०, विवाह० ८०६, उत्तर० ७७३, नायाध०, ओव०, विद्ध० ६४, ६५) **शिथिल** शब्द से नहीं निकले हैं, ये किसी पुराने रूप *__श्टथिल__[1] से निकले हैं जिसके **ऋकार** का रूप कहीं **अ** और कहीं **इ** हो गया है (§ ५२)।—**हलद्दा** और **हलद्दी*** (सब व्याकरणकार) और महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री **हलिद्दा** (हेमचन्द्र १, ८८, गउड०, हाल, उत्तर० ९८२, १०८५, राय० ५३, एर्त्से०), महाराष्ट्री **हलिद्दी** (हेमचन्द्र १, ८८ और २५४, गउड०, कर्पूर० ६९, ३) **हरिद्रा** से निकले हैं, किन्तु अर्धमागधी **हालिद्द** संस्कृत **हारिद्र** का रूप है (आयार० १, ५, ६, ४ [यहाँ **हालिद्द** पढ़ा जाना चाहिए], पण्णव० ५२५, सम० ६४, जीवा० २२४, ओव०, कप्प०)। ऊपर लिखे गये सब रूपों में **अ** और **इ** स्पष्टतः स्वरभक्ति हैं। **इंगुद** शब्द के रूप **अंगुअ** और **इंगुअ** के विषय में § १०२ देखिए।

१ एस० गौल्दश्मित्त ने रावणवहो में **सिढिल** रूप दिया है। पीटर्सबुर्गर कोश मे **शिथिर** शब्द से तुलना कीजिए और इसी संबंध मे वाकरनागल का आल-इण्डिशे ग्रामाटीक § १६ देखिए।

* हमारी हलदी का प्रारम्भिक प्राकृत रूप। —अनु०

§ ११५—इति शब्द में जो दूसरी इ अर्थात् ति में जो इकार है और जिसके स्थान पर लैटिन में इत रूप है, महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में अ के रूप में ही वर्तमान है जब इति शब्द स्वतंत्र रूप से अथवा किसी वाक्य के आरम्भ में आता हो और अर्धमागधी में सन्धि के आरम्भ में इति आने पर अ ही रह गया है; महाराष्ट्री में इति का इअ रूप मिलता है (वररुचि १, १४ हेमचन्द्र १,९१ क्रम० १,१९; मार्क० पन्ना ७ गउड० हाल ; रावण शाक १११, १७ कर्पूर ६, ४ ; ४८, १४ ५७, ७ विद्ध ९४, ७ अच्युत २२ ; ४५ ८२ ९१ १ ३) अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में इय रूप आता है (चण्ड २,२८ , पाइय० २४४ आयार १, २, १ १ ? २, ३, १ और ५ ; १, ४ ३, २ ; ओव § १८४ १८६ कक्कुक शिलालेख १४ कालका) ; अर्धमागधी में इतिच्छेक, इतिनिपुण, इतिनयवादिन् , इत्युपदेशलब्ध और इतिविज्ञानप्राप्त के रूप इयच्छेय इयनिउण इयनयवादि, इयउवदेसलद्ध और इयविण्णाणपत्त आये हैं (उवास § २११)। अर्धमागधी ग्रन्थों में इय के स्थान पर अधिकतर स्थलों में इइ रूप भी आया है (सूय ११७ २ ३ [इस स्थल में इति पाठ मिलता है] उत्तर ६१ ९० ११६ ३११ ५ ८ ५१२ ५१३ दस ६२६, ११ ६१ , १४ उवास § ११४)। चूँकि जैन हस्तलिखित प्रतियों में इ और य बहुधा एक दूसरेका रूप ग्रहण करते हैं इसलिए यह सन्देह होता है कि ये अशुद्धियाँ कहीं लिखनेवालों की न हों। जैनशौरसेनी में इसका एक रूप इदि भी मिलता है (पव ३८५, ६१ ३८७ १८ और २४ कत्तिगे ३९९ ३१४) पर इस बात का कोई निदान नहीं निकाला जा सकता कि यह रूप शुद्ध है या अशुद्ध। कालेयकुतूहलम् २७, १९ में शौरसेनी में इअ रूप आया है जो स्पष्ट अशुद्ध है। प्रत्यय रूप से इति का ति और त्ति हो जाता है (§ ९२), अर्धमागधी में इसका इ भी हो जाता है।

§ ११६—बाद को आनेवाले उ की नकल पर, इस उ से पहले जो इ आती है वह कभी-कभी उ म परिणत हो जाती है। महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में इक्षु का रूप उच्छु हो जाता है (वररुचि १, १५ भामह १ १ हेमचन्द्र १, ९५ २, १७ क्रम १, २२ मार्क पन्ना ७ पाइय १४३ गउड हाल ; आयार २ १, ८ ९ और १२ ; २ १ १ , ८ ; २, ७ २, ५ ; पण्हा० १२७ ; उत्तर ८ ; दस ६१४,११ ; ६२१, ८ और ४१ दस नि ६६०, ४ ओव आव एर्से २१ २८ एर्त्से)। इसके साथ-साथ अर्धमागधी में इक्खु॰ रूप भी मिलता है (हेमचन्द्र २ १७ ; सूय ५९४ पण्णव ३१ ; ४ जीवा ३५६ ; विवाह १५२९) इक्खुय का प्रयोग भी हुआ है (पण्णव ३२ ४) और शौरसेनी म हस्तलिखित प्रतियों में उच्छु रूप के स्थान पर इक्खु किया जाना चाहिए जो शकुन्तला १८४, १२ में मिलता है। महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में इच्छु रूप का व्यवहार हुआ है (हाल ७४ ७७५ कक्कुक शिलालेख १८) किन्तु यह प्रयोग शायद ही शुद्ध

* ईख का प्रारंभिक प्राकृत रूप यह इक्खु है। —अनु

हो। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में ऐक्ष्वाक के लिए जो **इक्खाग** रूप आता है उसके लिए § ८४ देखिए।—अर्धमागधी में **इषु** का **उसु** हो जाता है (सूय० २७०, २८६, २९३, विवाह० १२१, १२२, ३४८, ५०५, ५०६, १३८८, राय० २५७, निरया० § ५)। अर्धमागधी में **इषुकार** के स्थान पर **उसुगार** (ठाणग० ८६) और **उसुयार** (ठाणग० ३८३, उत्तर० ४२१, ४२२, ४४९, पण्हा० ३१७ [पाठ में रूप **इक्खुयार** मिलता है, किन्तु इसकी टीका से तुलना कीजिए]) । इसके अतिरिक्त **इषुशास्त्र**[1] के लिए अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **ईसत्थ** रूप का प्रयोग किया गया है (पण्हा० ३२२, ओव० § १०७ पेज ७८, ४, एर्सें० ६७, १ और २) । **इष्वासस्थान** के लिए अर्धमागधी में **ईसासट्ठाण** आया है (निरया० § ५), इस ग्रन्थ में इस रूप के साथ साथ **उसु** रूप भी मिलता है) । महाराष्ट्री में **इसु** रूप मिलता है (पाइय० ३६, गउड० ११४५, [कामेसु], कर्पूर० १२, ८, ९४, ८ [पंचेसु]) ।—**शिशुमार** शब्द में **शिशु** शब्द का **सुसु** हो जाता है और सारे शब्द का **सुसुमार** रूप बन जाता है (सूय० ८२१, पण्हा० १९, विवाग० ५०, १८६), और बहुधा इसका रूप **सुंसुमार** मिलता है (पण्णव० ४७, ४८, जीवा० ७१, नायाध० ५१०, उत्तर० १०७२, विवाह० १२८५ [पाठ म **सुंसमार** शब्द है]), स्त्रीलिंग में **सुंसुमारी** रूप मिलता है (जीवा० १११), किन्तु अर्धमागधी में **सिसुपाल** (सूय० १६१), **सिसुनाग** (उत्तर० २०५), महाराष्ट्री में **सिसु** (पाइय० ५८), शौरसेनी में **शिशुभाव** है (विद्ध० २१, १२) और **शिशुकाल** के लिए **सिसुआल** रूप मिलता है (चैतन्य० ३७, ७) ।

१. इस प्रकार पण्हा० ३२२ की टीका में अभयदेव ने शुद्ध रूप दिया है। लौयमान ने औपपातिक सूत्र और याकोबी ने एर्सेलुगन में **इष्वस्त्र** शब्द अशुद्ध दिया है।

§ ११७—**म**-कार से पहले **नि** आने पर **नि** के **इ** का उ-कार हो जाता है और यह उस दशा में जब § २४८ के अनुसार यह **म प** में और फिर § २५१ के अनुसार **व** में परिवर्तित हो गया हो। **निपद्यते** का **णुमज्जइ** (हेमचन्द्र १, ९४, ४, १२३, क्रम० ४, ४६) और **निपन्न** का **णुमण्ण** हो जाता है (हेमचन्द्र १, ९४ और १७४) । **णुवण्ण** (गउड० ११६१) और इसका अर्थ 'सोना' (देशी० ४, २५) साफ-साफ बताता है कि इसमे **प** से **म** और **म** से **व** हो गया। **मज्ज** से इस रूप की उत्पत्ति बताना अशुद्ध है क्योंकि न तो इससे अर्थ ही स्पष्ट ही होता है और न भाषा शास्त्र की दृष्टि से शब्द का प्रतिपादन होता है। हाल की सत्तसई के श्लोक ५३०, ६०८ और ६६९ में वेबर ने हस्तलिखित प्रतियों में **णिमज्जसु, णिमज्जन्त, णिमज्जइ** और **णिमज्जिहिसि** पाठ पढे हैं। श्लोक ६६९ के बारे में वेबर ने लिखा है कि यह शब्द **णुमज्जिसि** भी हो सकता है और हेमचन्द्र, 'ध्वन्यालोक' पेज २० और 'काव्य-प्रकाश' पेज १२३ में पुरानी शारदालिपि[1] में लिखित इन ग्रन्थों में यही पाठ पढा है। शोभाकर, 'अल्कारत्नाकर' ६७ आ (व्यूलर की हस्तलिखित प्रति, 'डिटेल्ड रिपोर्ट' मे जिसकी सख्या २२७ है),

हेमचन्द्र, 'अलंकारचूडामणि' पन्ना ४ अ (कीलहौर्न की हस्तलिखित प्रति रिपोर्ट, बम्बई, १८८१ पेज १०२, संख्या २६५) ; मम्मट, 'शब्दव्यापार विचार' पन्ना ६ अ ; जयन्त, 'काव्यप्रकाशदीपिका' पन्ना ६ आ ; ४९ आ में भी यही पाठ पढ़ा है, किन्तु 'साहित्यदर्पण' में यह शब्द पेज ५ में णि- मिलता है। वास्तव में यह शब्द सर्वत्र णु पढ़ा जाना चाहिए। त्रिविक्रम० १, २, ८८ में णुमण्ण की व्युत्पत्ति निमग्न से दी गयी है, यह शब्द हेमचन्द्र में णुमण्ण है, जो शुद्ध रूप है। णुमइ (हेमचन्द्र ४, १९९) और णिमइ (हेमचन्द्र ४, १९९) रूप भी मिलते हैं तथा महाराष्ट्री में णिमेइ आया है जिसका अर्थ 'नीचे फेंकना या पटकना' है (रावण०)। ये रूप धि धातु से निकले हैं जिसका अर्थ 'फेंकना' है (धातुपाठ २४, ११)। इसके आरंभ में नि उपसर्ग लगाया गया है। इसके दो रूप मिलते हैं : णिमिय और णिमिय'।—कभी-कभी संस्कृत प्रत्यय-इक के स्थान पर -उक रूप मिलता है जिसमें सम्भवतः ही इ के स्थान पर उ आया है। इस नियम के अनुसार वृश्चिक के महाराष्ट्री में विंछुअ, विंचुअ और विच्छुअ रूप होते हैं। अर्धमागधी में यह रूप विच्छुय० हो जाता है। साथ ही महाराष्ट्री में विंछिय रूप भी है जिसमें इकार रह गया है और अर्धमागधी में विच्छियं† है (§ ५)। गैरिक शब्द का अर्धमागधी में गेरुय‡ रूप है और महाराष्ट्री में गेरिअ। अर्धमागधी में नैयायिक का नेयाउय रूप बन जाता है (§ ६)। महाराष्ट्री में *ज्ञानिक का जाणुअ रूप हो जाता है (हाल २८६)। इस प्राकृत में अनृतज्ञ का अणअजाणुअ, विज्ञ का विअजाणुअ, दैवज्ञ का देव्वअजाणुअ आदि रूप मिलते हैं (मार्कण्डेय पन्ना २)। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में भी ये रूप पाये जाते हैं :—शौरसेनी में जाणुअ और मागधी में याणुअ शब्द पाया जाता है (शकु ११५, १ और ० तथा ११)। प्रायासिक महाराष्ट्री में पायासुअ और अपभ्रंश में पवासुअ बन जाता है (हेमचन्द्र १, ९५ ; ४, ३९५, ४) ; प्रवासिन् के पायासु और पवासु रूप पाये जाते हैं (हेमचन्द्र १, ४४)। ये रूप प्रवासं से पवासु बन कर हो गये हैं (§ १ ५), इससे ही पायासुअ रूप भी निकल सकता है।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री दुरुहइ (§ ४८२) की उत्पत्ति अधिरोहति' से नहीं है बल्कि उद्रोहति' से कभी किसी स्थान में *उद्रुहति रूप बना होगा जिससे प्राकृत में दुरुहइ बन गया। होएर्नले का मत है कि वर्णों के उलट-पलट (वर्णविपर्यय) के कारण उद् का दु बन गया, किन्तु यह मत भ्रमपूर्ण है। वास्तविकता यह है कि *उदुरुहइ शब्द से उ उड़ गया और ओ का उ स्वर भक्ति होने से रह गया (§ १३९ १४१)।—हेमचन्द्र १, ९६ १ ७ ; २५४ के अनुसार युधिष्ठिर के दो रूप होते हैं—जहुट्ठिल और जहिट्ठिल (भामह २ ३ ; क्रम २ ३५ मार्कण्डेय पन्ना १७)। किन्तु इस तथ्य का कुछ पता नहीं लगता कि जहु और जहि कैसे बन गये ? अर्धमागधी में यह शब्द जुहिट्ठिल रूप में भी पाया जाता

---

* हिंदी बिच्छू का प्रारंभिक प्राकृत रूप यही है जो आज भी कुमाऊँ में चलता है।—अनु

† हिंदी की कुछ बोलियों में बिच्छी रूप चलता है।—अनु

‡ हिंदी गेरू का प्रारंभिक प्राकृत रूप यही गेरुअ है।—अनु

है (त्साइट्रुग डेर डौयत्शन मौर्गेनलैंडिशन गेजेलशाफ्ट ४२, ५२८ मे छपा अतगडदसाओ, नायाध० १२८७ और उसके बाद , १३५५ और उसके बाद , [पाठ मे बहुधा **जुहिट्ठिल्ल** आया है]) शौरसेनी और अपभ्रंश मे **जुहिट्ठिर** रूप मिलता है (कर्पूर० १८, ४ , वेणी० १०२, ४ , प्रचड० २९, १२ , ३१, १३, ३४, ८ , पिंगल २, १०२) ।

१. हाल ५३० मे वेबर ने यह बात हेमचन्द्र और काव्यप्रकाश के विषय में कह रखी है पर इससे उसने कोई निदान नहीं निकाला है । — २ निमित, निमि या णिमिय से व्युत्पत्ति बताना भ्रामक है , एस० गौल्दश्मित्त ने अपनी पुस्तक रावणवहो में णिम शब्द दिया है । — ३ वेबर, भगवती० १, ४११ , लौयमान, औपपातिक सूत्र , स्टाइनटाल, स्पेसिमेन , ई० म्युलर, बाइत्रैगे पेज ३४ । — ४. होएर्नले, उवासगदसाओ का अनुवाद पेज ३८, नोट १०३ ।

§ ११८—सयुक्त व्यजनो से पहले आने पर इ का रूप ऍ हो जाता है (वररुचि १, १२ , हेमचन्द्र १, ८५ , क्रम० १, १६ , मार्कण्डेय पन्ना ७ , प्राकृतकल्पलता पेज २५ , देशी० १, १७४) , **इत्थं** का पल्लवदानपत्र, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, दाक्षिणात्या और आवती में **ऍत्थ** तथा अपभ्रंश में **ऍत्थु** हो जाता है (§ १०७) । अर्धमागधी में **आगमिष्यंत** का **आगमेँस्स** मिलता है (आयार० १, ४, ३, २) । **चिह्न** के **चेँन्ध** और **चिन्ध** दो रूप पाये जाते हैं (§ २६७ , भामह १, १२) । **निद्रा** का **णेँड्डा** हो जाता है, साथ साथ **णिड्डा** रूप भी चलता है (भामह १, १२) । **धम्मेँल** का एक दूसरा रूप **धम्मिल्ल** भी पाया जाता है (सब व्याकरणकार) । **पिंड** का **पेँड*** और **पिंड** रूप मिलते है (सब व्याकरणकार) । **पिष्ट** के भी रूप **पेँट्ठ** और **पिट्ठ** होते है । अर्धमागधी में **लिच्छवि** का **लेँच्छइ** हो जाता है (सूय० १९५ , ५८५ , विवाह० ८००, निरया० , ओव० , कप्प०) । **विष्टि** का पल्लवदानपत्र में (क्रमदीश्वर , मार्कण्डेय) **वेँट्ठि** रूप दिया गया है (पल्लवदानपत्र ६, ३२ , उत्तर० ७९२) और साथ साथ **विट्ठि** रूप भी आता है । **विष्णु** का **वेण्हु** और **विण्हु** रूप चलते है (सब व्याकरणकार) । अर्धमागधी में **विह्वल** का **वेँब्भल** हो जाता है (पण्हा० १६५) , **सिंदूर** के **सेँदूर** और **सिंदूर** रूप मिलते है (सब व्याकरणकार) । **किंशुक** का **किंसुअ** से***केँसुअ** और तब **केसुअ** हो जाता है (§ ७६) । यह नियम अभी तक प्राप्त प्रमाणो के आधार पर बहुधा ऋ से निकली इ पर अधिक लागू होता है —**मात्र** का **मित्त** और उससे **मेँत्त** बन जाता है (§ १०९) । **गृह्णाति** का **गिण्हइ** रूप के साथ-साथ **गेण्हइ** रूप भी प्रचलित है (§ ५१२) । **ग्राह्य** का ***गृह्य** रूप बना, उससे निकला **गिज्झ** जिससे **गेज्झ** बन गया (§ १०९ , ५७२) । **वृंत** के **वेँट** और **विंट** रूप साथ साथ चलते है (§ ५३) । अर्धमागधी मे **गृध्र** के **गेँद्ध** (ओव० § ७०) और **गिद्ध** रूप बन जाते है (§ ५०) , **गृद्धि** का रूप **गेहि** पाया जाता है जो **गेद्धि** से **गिद्धि** बन कर निकला है (§ ६०) । मार्कण्डेय पन्ना ६६ के अनुसार वररुचि और

* पेड़ा का प्रारंभिक प्राकृत रूप यह पेंड है ।—अनु०

शब्द मिलता है (=थूको विवाह० १२६३), **उट्ठुभंति** (=वे थूकते हैं . विवाह० १२६४ [पाठ **उट्ठुमहंति** है]), **अणिट्ठुभय** (=नहीं थूकता हुआ : पण्हा० ३५० , ओव० § ३०, स्ट ५) इसी बोली में **णिट्ठुहिअ** (=जोर से थूका गया . देशी० ४,४१) भी पाये जाते है, और पाली में **निट्ठुहति, नुट्ठुहति, णुट्ठुभि** और **निट्ठुभन** इसी अर्थ में मिलते है जो **ष्ठिव्** धातु से निकले बताये जाते है, पर वास्तव मे ऐसा नहीं है। ये शब्द **स्तुभ्** धातु से बने है जिसका अर्थ 'खखारना' था (**स्तुंभु निष्कोषणे,** धातुपाठ ३१, ७)। यह धातु संस्कृत म 'ध्वनि बाहर निकालने' के अर्थ मे आया है। इसका पर्यायवाची दूसरा शब्द **क्षुभ्** है (**स्तुम् : क्षुभ् = स्तंभ् . स्कंभ्** = संस्कृत **स्थाणु** = प्राकृत **खाणु** = **दुत्थ** = **दुक्ख** [जघन, चूतड देशी० ५, ४२], § ९० , ३०८ , ३०९), इस धातु का प्राकृत रूप **छुभइ** है जिसका महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री रूप **छुहइ** हो जाता है और यह संवियुक्त शब्दों मे भी पाया जाता है। पाली **निच्छुभति** का अर्थ 'थूकना' (समुद्र का)[1] है जिससे पता चलता है कि इस धातु के अर्थ मे परिवर्तन कैसे हुआ, जैसा स्वय सस्कृत मे **निरसन** शब्द का हुआ है। पहले इसका अर्थ बाहर फेंकना था, फिर बाहर डालना हुआ और तब थूकना (= गले से खखार कर थूक बाहर फेंकना) में परिणत हो गया।—**हूण** (हेमचन्द्र १, १०३), महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनशौरसेनी और अपभ्रंश **विहूण** (हेमचन्द्र १,१०३ , शुकसप्तति १५, ३ , नायाध० ९५० , विवाह० २०२ , ११२३ , १८१६ , १८२५ , निरया० ४४ , उत्तर० ३५७ , ४३९ , ६३३ , ८०९, पव० ३८०, ७ , ३८१, १७ , ३८७, १२ , पिंगल १, ७) और अर्धमागधी **विप्पहूण** (सूय० २७१ , २८२ , नायाध० ३२२, पण्हा० ५६) है। हेमचन्द्र के अनुसार **हीन, विहीन** और **विप्रहीण** से नहीं निकले है वरन् **धून** से बने है (पाणिनि की काशिकावृत्ति ८, २, ४४), जो **धु, धू** (= **कपनं विधूननं च**) के रूप हैं। अर्धमागधी में इसके **धुणाइ,** महाराष्ट्री और अर्धमागधी म **धुणइ** और **विहुणइ** रूप हैं (§ ५०३)।—सब प्राकृत बोलियो में **हा** धातु से **हीण** बनता है। इस प्रकार महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में **हीण** रूप पाया जाता है (गउड० , हाल, उवास० , पव० ३८२, २४ और २५ , ३८८,३ , विक्रमो० २४,२०), जैनमहाराष्ट्री मे **अइहीण** आया है (काल्का०), महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी मे **परिहीण** मिलता है (हाल , कक्कुक शिलालेख ८ , एर्त्से० , काल्का० , कत्तिगे० ४००, ३, २९), अर्धमागधी मे **पहीण** आया है (भग०), शौरसेनी मे **अवहीण** रूप व्यवहार में आता है (शकु० ३०, २), महाराष्ट्री मे एक रूप **अणोहीण** मिलता है (रावण०), जैनशौरसेनी और शौरसेनी मे **विहीण** का प्रयोग भी पाया जाता है (कत्तिगे० ४०४, ३८७ और ३८९ , मृच्छ० १८, १०)।—**जुण्ण** = **जूर्ण** और **तीर्थ** = **तूह** के विषय में § ५८ देखिए।

१ कर्न, बीड्रागे टोट डे फैरक्लारिंग फान एनिगे वोर्डन इन पाली-गेश्रिफटन फोरकोमेंडे (आम्स्टरडाम १८८६) पेज १८ , फौसबोएल, नोगके बेमैर्केनिंगर ओम एनकेल्टे फान्स्केलिगे पाली-ओर्ड इ जातकृ-बोगेन (कोपनहागन १८८८) पेज १९ । ट्रेंकनर, मिलिंदपन्हो पेज ७, २३ मे अशुद्ध रूप दिया गया है।

§ १२०—ईदृश ईदृस और कीदृश, कीदृस में प्रयुक्त ई के स्थान पर अधिकतर प्राकृत बोलियों में ए हो जाता है। अशोक के शिलालेखों में एदिस, हेदिस और हेदिस रूप मिलते हैं (कालसी), एदिश हेदिश पाली में एदिस, एरिस एदिक्ख एरिक्ख और इनके साथ-साथ ईदिस, ईरिस ईदिक्ख रूप मिलते हैं किन्तु कीदृश और कीदृश के केवल कीदिस, कीरिस कीदिक्ख और कीरिक्ख रूप मिलते हैं। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में एरिस रूप मिलता है (वररुचि १, १९ और ३१ ; हेमचन्द्र १ १ ५ और १४२ क्रम० १, १५ मार्कण्डेय पन्ना ८ और ११ ; हाल १ रावण ११, १०४ सूय १९० दस० ६२६, २७ ओव निरया मग आव० एर्त्से २४, १ और उसके बाद, २५, ११ और १२ २७, २ और ३ तथा २५ द्वारा० ७ ८, १ ; एर्त्से० कालका० त्रिविक्र ५५५, ६ ५६२, २२ मृच्छ १५१, २० ; १५५, ५ शकु० ५०, ४ प्रबन्ध ८, ९)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में एरिसय का भी व्यवहार होता है (नायाध १२८४; आव एर्त्से २४, १)। अपभ्रंश में एरिसिम आया है (पिंगल २, १८५)। अर्धमागधी में एलिस (चंड २, ५ पन्ना ४१) और अणेलिस रूप भी काम में लाये गये हैं (आयार १, ६, १, १ , ७, २, ४ ; १, ७, ८, १ और १७ १, ८, १, १५ ; २, १६, २ सूय १ १ ४१४ [पाठ में अणा लिस है] ५३३ ५४८ ५८६ ; ५४१ ; ८४९)। पैशाची में एतिस रूप मिलता है (हेमचन्द्र ४, ३१७ और ३२३)। शौरसेनी में बहुधा ईदिस रूप मिलता है (मृच्छ० २४, २ ; ३६, ११ ५८, १ ; ७२ १ ८०, ९ ; ८२, १२ ; ८८, १६ ; १५१, १६ ; शकु ९ १, ७ १ ८, ७ ; १२३, १२ १२७, ७ ; ११ , १ १३७ १५ विक्रमो २ , ६ ८८, १३ रत्ना ११७, ११ ; ११८, १६ और २२ ; कर्पूर १ , ६ ; २१, ८ आदि आदि)। मागधी में एक ही रूप ईदिश है (मृच्छ० १८, ७ १२९, ७ ; १३१, ७ ; १५८, २८ १६५, ११ ; १६६, २१ ; १७७, १०)। अर्धमागधी में एलिक्ख (उत्तर २१७) और एलि क्खय भी देखे जाते हैं (आयार १, ८, १, ५)। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और शौरसेनी में केरिस रूप काम में आता है (सब व्याकरणकार ; हाल १७८ ; निरया ; भग ; एर्त्से ; मृच्छ १८१ ७ विक्रमो ५ , ६ ; ५२, १ ; प्रबन्ध १ १५ ; ३९, ११)। जैनमहाराष्ट्री में केरिसय पाया जाता है (कालका०)। मागधी में केलिश का प्रचलन है (प्रबन्ध ४६, १४ और १६ ५ , १८ ६१, १५ और १६ ; ६६, १ वेणी ३५ ३)। शौरसेनी में कीदिस रूप भी आया है (मृच्छ २७, १८ शकु ३ , ६ ; विक्रमो २८ १ ; मुद्रा ७८ ६ १८८, ५)। महाराष्ट्री इरिसम (हाल ८) जैनमहाराष्ट्री इदस (एर्त्से) शौरसेनी इदिस (उत्तर ६ ६ [इस सामसाथ २६ ८ में इदिस रूप मिलता है] ; मालवि ६ १ ; ८८ १८ ; ८७ ३ महावीर ११ १२ और १८ तथा २ ; मुद्रा ९११ १) केरिस (मालवि ५ ३ और १७)। मागधी कीलिश (मृ छ० १ ७ २ और ८ ; ११ माग्धी का व्याकरण १८८ ३ १८ १ [इनम

केलिश पाठ है] केवल २६३, २ मे **कीलिश** है) सन्देहपूर्ण रूप है। शौरसेनी मे श्रेष्ठ हस्तलिखित प्रतियो के प्रमाण के अनुसार केवल **एरिस, केरिस** और **ईदिस, कीदिस** रूप शुद्ध हैं। मागधी मे ***एलिश, केलिश** और **ईदिश, *कीदिश** शुद्ध रूप है। इस सम्बन्ध में § २४४ और २४५ भी देखिए। **ए** का कारण अबतक स्पष्ट न हो पाया था[२]। अब ज्ञात होता है कि यह **ए—अयि** और **अइ** से निकला है। **केरिस** वैदिक **कया + दृश्** और **एरिस** वैदिक **अया + दृश्** से निकले हैं, जैसे **कइआ, जइआ, तइआ** वैदिक **कया + दा, यया + दा** और **तया + दा** से निकले हैं (§ ११३)। **अया** पर **कया** का प्रभाव पड़ा है। अपभ्रंश में **ईदृश** का **अइस** और **कीदृश** का **कइस** (हेमचन्द्र ४, ४०३) में यह समझना चाहिए कि ये अपभ्रंश में **तादृश** का **तइस** और **यादृश** का **जइस** की नकल पर बन गये हैं और इनके बीच के रूप **एरिस** और **केरिस** हैं। वैदिक **कयस्य**, अर्धमागधी **अयंसि**, महाराष्ट्री **अअम्मि** तथा अपभ्रंश **आअम्मि** की तुलना कीजिए (§ ४२९)। **ऍद्दह, कॆद्दह, तॆद्दह** और **जॆद्दह** के सम्बन्ध में § १२२ देखिए। संस्कृत में **पीयूष** के साथ साथ एक रूप **पेयूष** भी चलता है, इसी प्रकार प्राकृत में शौरसेनी **पीऊस** (बाल० २६६, १९) के साथ साथ महाराष्ट्री और शौरसेनी **पेऊस** भी चलता है (हेमचन्द्र १, १०५, हाल, शौरसेनी में कर्पूर० ८२, ५, बाल० १५०, १९, २२३, ५, २९४, १०, मल्लिका० २४५, ६)। **बहेडअ = विभीतक** के सम्बन्ध में § ११५ देखिए। अर्धमागधी में **विभेलय = विभेदकः** पण्णवणा ३१ में मिलता है। इस सम्बन्ध में § २४४ देखिए।

१ मालविका० ५, २ से ५ तक पेज १२२ में बौॅल्लेनसेन ने विना आलोचना प्रत्यालोचना के एक संग्रह दिया है। — २. इस सम्बन्ध का साहित्य योहानसोन, शाहबाजगढ़ी १, १३४ में देखिए।

§ १२१—जैसे इ (§ ११९) वैसे ही ई भी संयुक्त व्यजनों से पहले **ऍ** में परिणत हो जाती है, **क्रीडा** का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **खिड्डा**, अर्धमागधी में **खेड्डा**, बोलचाल में **खेड्ड** और अपभ्रंश में **खेड्डअ** हो जाता है (§ ९०)। **णेड्ड** और **णीड** रूप मिलते हैं (§ ९०)। **जानीयात्** का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **जाणिज्जा, जाणेज्जा** रूप आते हैं (§ ९१) महाराष्ट्री में **ईदृश** का **एद्दह** रूप भी पाया जाता है, इसमें § ९० के अनुसार द्वित्व होता है और § २६२ के अनुसार श के स्थान पर ह आ जाता है (वररुचि ४,२५ और एपेंडिक्स बी पेज १०१, हेमचन्द्र २, १५७, मार्कण्डेय पन्ना ४०, देशी० १, १४४, हाल, शौरसेनी में, विद्ध० ७१,१ [सर्वत्र **ईदृशमात्र** के लिए **एद्दहमेत्त'** रूप मिलता है])। **कीदृश** के लिए **केद्दह** रूप है तथा इसकी नकल पर **तादृश** वा **तेद्दह** और **यादृश** के स्थान पर **जेद्दह** का प्रयोग मिलता है (सब व्याकरणकार)। इसी नियम के अनुसार महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **आमेळ** (= बालो की लट वररुचि २, १६, हेमचन्द्र १, १०५ और २०२ तथा २३४, क्रम १, १५, २, ९, मार्कण्डेय पन्ना ८ और १६, पाइय० १४०, देशी० १, ६२, गउड० ११२, पण्णव० १११, ओव०) रूप है।

शकु० १०, ३, मालवि० ३४, ९, ३७, ८, प्रिय० ४, ७, आवती मे मृच्छ० १४८, १, अपभ्रंश में, हेमचन्द्र ४, ३४०, २)। स्त्रीलिंग मे महाराष्ट्री और अर्धमागधी मे **गरुई** रूप आता है (सब व्याकरणकार, गउड०, नायाध०, § १३९ से भी तुलना कीजिए), इससे निकले शब्दों का भी यही रूप मिलता है, जैसे महाराष्ट्री मे ***गुरुत्वन** का **गरुअत्तण** रूप मिलता है (गउड०, हाल, रावण०), **गरुइअ** (गउड०, रावण०) और **गरुएइ** (गउड०) भी हैं, जैनमहाराष्ट्री मे **गुरुत्व** का **गरुक्क** रूप बन जाता है (कक्कुक शिलालेख १३, § २९९ भी देखिए)। शौरसेनी में **गरुदा** और **अगरुदा** रूप मिलते हैं (महावीर० ५४, १९)। **गारव** और **गोरव** रूपों के सम्बन्ध में § ६१ अ देखिए। जैसा हेमचन्द्र ने १, १०९ मे साफ बताया है, **गरुअ** का **अ** इसलिए है कि इस रूप की उत्पत्ति **गुरुक** से है, और **क** का **अ** रूप हो गया है। **गुरु** (= मत्र या शिक्षा देनेवाला) सब प्राकृतो में **गुरु** रूप में ही व्यवहृत होता है, इसमें **उ**, **अ** में परिणत नहीं होता।[१] महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **अगरु** शब्द मिलता है (सब व्याकरणकार, गउड०, सूय० २४८, उवास०, एर्त्से०)। सस्कृत मे भी **अगरु** और **अगुरु** रूप पाये जाते हैं। अर्धमागधी मे **अगलुय** रूप भी काम मे आता है (ओव०), महाराष्ट्री में **कालाअरु** (गउड०) और अर्धमागधी मे **कालागरु** रूप आये हैं (ओव०, कप्प०)।—**गुडूची** का प्राकृत रूप **गळोई** है (§ १,२७)।—**मुकुट** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **मउड** रूप हो जाता है (सब व्याकरणकार, गउड०, आयार० २, १३, २०, पेज १२८, ३, पण्हा० १६०, २३४, २५१, ४४०, पण्णव० १००, १०१, ११७, विवाग० १६१, नायाध० § ३५, ९२, पेज २६९, १२७४, जीवा० ६०५, राय० २१, ओव०, कप्प०, एर्त्से०, वेणी० ५९, २२)।—**मुकुर** का **मउर** हो जाता है (सब व्याकरणकार, किन्तु शौरसेनी में **रदनमुउर** रूप पाया जाता है (मल्लिका० १९४, ४ [पाठ में **रअणमुउर** है]))।—**मुकुल** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **मउल** होता है (सब व्याकरणकार, गउड०, हाल, रावण०, अनर्घ० २०, ३, कस० ९, ३, पण्हा० २८४, पण्णव० १११, उवास०, ओव०, एर्त्से, मुद्रा० ४६, ८ [यहाँ पर यही पाठ पढा जाना चाहिए], मालवि० ६९, २), इससे निकले शब्दों मे भी यही रूप रहता है, जैसे **मुकुलित** का महाराष्ट्री मे **मउलिअ** रूप बनता है (गउड०, हाल, रावण०), अर्धमागधी मे **मउलिय** (ओव०, कप्प०), शौरसेनी मे **मउलिद** रूप मिलता है (शकु० १४, ६, महावीर० २२, २०, उत्तर० १६३, ५)। महाराष्ट्री मे **मउलाइअ** (रत्ना० २९३, २), शौरसेनी मे **मउलाअंत** (माल्ती० १२१, ५, २५४, २) और **मउलाविज्जति** (प्रिय० ११, ३, [यहाँ **मउलावीअति** पाठ है]) पाये जाते है। मागधी और शौरसेनी मे **मउलें ति** रूप आया है (मृच्छ० ८०, २१, ८१, २)। **मुकुलिनः** का अर्धमागधी मे **मउली** हो गया है (पण्हा० ४१९)[२]। **कुतूहल** का प्राकृत रूप जो **कोहल** हो जाता है, उसका भी यही कारण है (हेमचन्द्र १, १७१)। वास्तव में कभी ***कतूहल** रूप रहा होगा।

अवहो, ***उवथस्** का रूप है (§ २१२) जिससे **अवह** और कुछ व्याकरणकारों के अनुसार **उवह** (हेमचन्द्र २, १३८) निकले है। इस प्रकार ***भ्रुवका** से **भमया** (§ १२४) और **उपाध्याय** से **अवज्झाअ**[1] निकला है (देशी० १, ३७, § २८ भी देखिए)।—अर्धमागधी मे **तरक्षु** का **तरच्छ** हो जाता है (आयार० २, १, ५, ३, पण्णव० ४९, ३६७, ३६९, विवाह० २८२, ४८४, नायाध० ३४५), इसका स्त्रीलिंग का रूप **तरच्छी** भी पाया जाता है (पण्णव० ३६८)। **कुत्र** का **कत्थ** रूप और **कुतः** के प्राकृत रूप **कओ, कदो, कत्तो** और **कओहिंतो** के संबध में § २९३ और ४२८ देखिए। **जहिट्ठिल, जुहिट्ठिल = युधिष्ठिर** के लिए § ११८ देखिए।

१ वॉल्लेनसेन ने मालविका० पेज १७२में अशुद्ध बात बतायी है कि **गरु** विशेषण है और **गुरु** सज्ञा। जीवाभिगमसुत्त २२४ में **गरु** पाठ अशुद्ध है, बोएटलिंक द्वारा संपादित शकुतला ७९, ९, ८६, ३ मे भी शुद्ध पाठ नहीं है। — २. **मउड** और **मउल** के सबंध में ई० कून, कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३१, ३२४ देखिए। — ३. त्साखारिआए, वेत्सनबैर्गर्स बाइत्रैगे १०, १३५ और उसके बाद। — ४ पी० गौल्दश्मित्त, स्पेसिमेन पेज ८१, वेबर, त्साइटुंग डेर डौयत्शन मौर्गेनलैंडिशन गेज़ेलशाफ्ट २८, ३९०। — ५. लौयमान, औपपातिक सूत्र।

§ १२३—**तुम्बुरु** के साथ-साथ (=उदुबर का फल) देशी बोली मे **टिंबरु*** रूप भी चलता है (देशी० ४, ३), **टिंबरुय** भी मिलता है (पाइय० २५८)। **पुरुष** के लिए सब बोलियों में **पुरिस** और मागधी में **पुलिस** होता है (वररुचि १, २३, हेमचन्द्र १, १११, क्रम० १, २६, मार्कण्डेय पन्ना ९, महाराष्ट्री उदाहरण . गउड०, हाल, रावण०, अर्धमागधी . आयार० १, ३, ३, ४, सूय० २०२, २०३, पण्हा० २२२, ठाणग० ३६० तथा अन्य अनेक स्थल, जैनमहाराष्ट्री . एर्त्से०, जैनशौरसेनी . कत्तिगे० ४०१, ३४५, शौरसेनी : मृच्छ० ९, १०, १७, १९, २४, २५, २९, ३, शकु० १२६, १४, १४१, १०, विक्रमो० ३५, १२, प्रबध० ३९, १३, मागधी . ललित० ५६५, १३, मृच्छ० ११३, २१, ११६, १७, १४७, १४, प्रबध० ५१, ८, ५३, ११, ६२, ७, दाक्षिणात्या मृच्छ० १०४, ७)। **पउरिस** (सब व्याकरणकार) है, जैनमहाराष्ट्री **पोरिस**, अर्धमागधी **पोरिसी, पोरिसीय** और **अपोरिसीय** रूप मिलते हैं (§ ६१ अ)। उत्तररामचरित, २१७, एर्त्सेलुगन १७, ३५ मे अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री रूप **पोरुस** दिया गया है जो अशुद्ध है। शौरसेनी मे **पुरुसोत्तम** (विक्रमो० ३५, १५) मे जानबूझ कर उ रहने दिया गया है क्योंकि इसकी ध्वनि **पुरूरव** से मिलानी थी, यह अशुद्ध रूप मल्लिकामारुतम् ७३, ६ मे भी रहने दिया गया है। अन्यथा यह शब्द शौरसेनी मे **पुरिसोत्तम** (मालती० २६६, ४, वेणी० ९७, ९) ही ठीक है। मागधी रूप **पुलिसोत्तम** है (प्रबंध० ३२, ७ और १८)।—**भ्रुकुटि** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी,

* वर्तमान बंगाली रूप डिमुर है। —अनु०

जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में भिउडि होता है (हेमचन्द्र १, ११० गउड० हाल रावण विधाग० १ १२१ १८ १५७ ; नायाध ७५२ ११११ १११२ विवाह २३७ २५४ उवास निरया आव० एत्सें १२, २७ एत्सें० मेषी ६ , ५ ६१, १८ बाल २७०, ५), अधमागधी में भिगुडि रूप भी चलता है (पण्ण० १६२ २८५) यह रूप भ्रुकुटि नहीं बल्कि भृकुटि से बना है। महाराष्ट्री में भुउडि रूप (प्रवाप २२ , २) अशुद्ध है और मुहुडि भी (अच्युत० ५८)। किंतु उक्त रूपों के विपरीत भमया में (हेमचन्द्र २, १६७) उ का § १२१ के अनुसार अ हो जाता है। अधमागधी में भमुहा रूप है (§ २ ६ पाइय० २५१ आयार १, १ २, ८ २, १३, १७ [यहाँ यह शब्द नपुंसक लिंग में आया है]; जीवा ५६३ राय १४५ आव कप्प)। अपभ्रंश में इसका रूप भौंहा है (पिंगल २, ९८ § १६६ २०१)। महाराष्ट्री में भुमआ का व्यवहार है (भामह ४, ३३ हेमचन्द्र १, १२१ २, १६७ क्रम० २, ११७ मार्कण्डेय पन्ना ११ गउड हाल रावण)। अर्धमागधी में भुमया (पाइय २५१ उवास ; आव) और भुमगा भी काम में लाये जाते हैं (पण्ण २७२ २८५ [पाठ भूमगा है] उवास)। भुमा रूप भी पाया जाता है (ओव)। इस संबंध में § २ ६ २५४ और २६१ भी देखिए। अर्धमागधी छीय (= वह जिसने छींका हो : हेमचन्द्र १ २१२ २, ११७ नंदी० ३८) क्षुत से नहीं निकला है बल्कि कभी कहीं प्रयोग में आनेवाले *छीत शब्द से। इससे अर्धमागधी में छीयमाण (= छींकता हुआ आयर २ २, १, २७) बना है। छिक्क की व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार की है (देशी ३, ३६)। संस्कृत छिक्का और छिक्कण से भी तुलना कीजिए। सूहव = सुभग के लिए § ६२ देखिए और मूसल = मुसल के संबंध में § ६६ देखिए।

१ विश्मर कून्स त्साइटश्रिफ्ट २१ २१ ; एस गौल्दश्मित कून्स त्साइटश्रिफ्ट २५ ६१५ ; बाकरनागल आल्टइंडिशे ग्रामाटीक § ५१।

§ १२८—जैसे इ ए में परिणत हो जाती है वैसे ही संयुक्त व्यंजनों से पहले उ का ओ हो जाता है (वररुचि १ २ हेमचन्द्र १ ११६ क्रम १, २१ मार्कण्डेय पन्ना ८ प्राकृतकल्पलता पेज ३३)। मार्कण्डेय पन्ना ६६ के अनुसार शौरसेनी में यह नियम केवल मुक्ता और पुष्कर म लागू होता है। इस तथ्य की पुष्टि सब ग्रंथ करते हैं। पल्लवदानपत्रों में स्कंदकुंडिनः का संदकोंडिरा रूप पाया जाता है (६ १९)। महाराष्ट्री में गुच्छ का गोच्छ हो जाता है (हाल रावण) गोच्छअ रूप भी मिलता है (हाल)। महाराष्ट्री में तोंड (सब व्याकरणकार ; हाल ४ २ [यहाँ पर यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) किंतु मागधी में इस शब्द का रूप तुंड है। महाराष्ट्री में मुंड का मोंड० रूप है (सब व्याकरणकार) साथ ही महाराष्ट्री अधमागधी और शौरसेनी में मुंड भी चलता है (गउड ; मृच्छ ८, २ प्रबंध ४० ८ मागधी के लिए मृच्छ १२२ ७ प्रबंध ५१, १४)। शौरसेनी में पुष्कर का पोक्खर रूप मिलता है (सब व्याकरणकार ; मृच्छ २,

* कुमाउनी में इसका रूप मोंड चलता है। —अनु

१६, ५४, २, ९५, ११) और अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री मे **पुक्खर** रूप मिलता है (कप्प०, एर्त्से०)। शौरसेनी में **पुष्कराक्ष** के लिए **पुक्खरक्ख** आया है (मुद्रा० २०४, ३)। अर्धमागधी और शौरसेनी में **पोक्खरिणी** शब्द भी पाया जाता है (आयार० २, ३, ३, २ [पाठ में **पोक्खरणी** रूप है], नायाध० १०६०, धूर्त० ५, १०)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **पुक्खरिणी** भी प्रचलित है (सूय० ५६५, ६१३, तीर्थ० ४, ९)। मागधी में **पो॑स्कलिनी** आया है (मृच्छ० ११२, ११) और साथ **पुस्कलिनी** भी चलता है (मृच्छ० ११३, २२)। **पुंडरीक** के रूप अर्धमागधी मे **पो॑डरीय** (सूय० ८१३, पण्णव० ३४, ओव०), जैनमहाराष्ट्री मे **पुंडरीय** (एर्त्से०) और शौरसेनी में **पुंडरीअ** होते है (माल्ती० १२२, २)। जैनमहाराष्ट्री में **को॑ट्टिम** (सब व्याकरणकार, एर्त्से०) और महाराष्ट्री में **कुट्टिम** रूप चलता है (रावण०)। **पुस्तक** का शौरसेनी में **पो॑त्थअ** (सब व्याकरणकार, मृच्छ० ६९, १७, कर्पूर० १२, ११), अर्धमागधी में **पो॑त्थय** (ओव०) होता है। **लुब्धक** का **लो॑द्धअ** होता है (सब व्याकरणकार, पाइय० २४८)। महाराष्ट्री मे **मुस्ता** का **मो॑त्था** रूप है (हेमचन्द्र १, ११६, सरस्वती० १६, ९)। **मुद्गर** का महाराष्ट्री और शौरसेनी में **मो॑ग्गर** बन जाता है (सब व्याकरणकार, रावण०, बाल० २४५, १८, २५१, ३), साथ-साथ **मुग्गर** रूप भी प्रचलित है (रावण०)। अर्धमागधी और जैनशौरसेनी में **पुद्गल** का **पो॑ग्गल** रूप है (हेमचन्द्र १, ११६, आयार० २, १, १०, ६, भगवती०, उवास०, ओव०, कप्प०, पव० ३८४, ५८)। इसके साथ-साथ जैनशौरसेनी और मागधी में **पुग्गल** रूप भी मिलता है (पव० ३८४, ३६ और ४७ तथा ५९, प्रबध० ४६, १४)। महाराष्ट्री और शौरसेनी मे **मोत्ता** रूप आया है (भामह, क्रम०, मार्कण्डेय, प्राकृतकल्पलता, रावण०, विक्रमो० ४०,१८), साथ साथ इन दोनो प्राकृतों में **मुत्ता** रूप भी चलता है (गउड०, रावण०, मृच्छ० ६९, १, कर्पूर० ७२, २)। शौरसेनी में **मुक्ताफल** के लिए **मुत्ताहल** रूप काम मे लाया गया है (कर्पूर० ७२, ३ और ८, ७३, ९), महाराष्ट्री मे **मुत्ताहलिल्ल** रूप मिलता है (कर्पूर० २, ५, १००, ५), इस प्रकार का गौण ओ॑ कहा-कहा दीर्घ होता है, इस सम्बन्ध मे § ६६ देखिए और § १२७ से तुलना कीजिए।

§ १२५—**दुऊल** और अर्धमागधी **दुगुल्ल** के साथ-साथ सब व्याकरणकारों के मत से प्राकृत भाषाओं में **दुअल्ल** रूप भी चलता है (§ ९०)।—अर्धमागधी **उव्वीढ**, जो हेमचन्द्र १, १२० के अनुसार **उद्व्यूढ** से निकलता है, वास्तव में **विध्** (**व्यध्**) धातु में **उद्** उपसर्ग **उद्विध्यति** से जो **उव्विहइ** रूप बनता है उससे यह रूप बना है (§ ४८९) और यह तथ्य विवाहपन्नत्ति १३८८ में स्पष्ट हो जाता है **से जहा नामए के इ पुरिसे** ' **उसुम्** ' **उव्विहइ उव्विहित्ता** ' '**तस्स उसुस्स उव्वीढस्स समाणस्स** जैसे **लिह्** से **लीढ** और **मिह्** से **मीढ** बना है वैसे ही **विध्** धातु से निकले गौण प्राकृत रूप **विह्** से यह रूप निकला है। **उद्व्यूढ** अर्धमागधी मे नियमित रूप से **उव्वूढ** रूप धारण करता है (हेमचन्द्र १, १२०,

जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में मिवडि होता है (हेमचन्द्र १, ११० गउड हाल रावण० विवाग १ १२१ १८४ १५७ नायाध० ७५१ १३१ ११३२ ; विवाह० २३७ २५४ ; उवास ; निरया० आव एर्त्से० १२, २७, एर्त्से० बेणी० ६ , ५ ६१, १८ बाल० २७ , १), अर्धमागधी में भिगुडि रूप भी मिलता है (पण्हा १६२ २८५) यह रूप भ्रुकुटि नहीं बल्कि भृकुटि से बना है। महाराष्ट्री में भुउडि रूप (प्रताप २२ , २) अशुद्ध है और भुकुटि भी (अच्युत० ५८)। किंतु उक्त रूपों के विपरीत भमया में (हेमचन्द्र २, १६७) उ का § १२१ के अनुसार अ हो जाता है। अर्धमागधी में भमुहा रूप है (§ २ ६ पाइय २५१; आयार १, १, २, ५ १, १३, १७ [यहाँ यह शब्द नपुंसक लिंग में आया है] जीवा ५६३ राय १६५ ओव कप्प)। अपभ्रंश में इसका रूप भौंहा है (पिंगल २, ९८ § १६६ २०१)। महाराष्ट्री में भुमआ का व्यवहार है (भाम ४, ३३ हेमचन्द्र १, १२१ २, १६७ क्रम २, ११७ मार्कण्डेय पन्ना ११ गउड हाल रावण)। अर्धमागधी में भुमया (पाइय २५१ ; उवास० ; ओव) और भुमगा भी काम में लाये जाते हैं (पण्हा २७२ २८५ [पाठ भूमगा है] उवास)। भुमा रूप भी पाया जाता है (ओव)। इस संबंध में § २ ६ २५४ और २६१ भी देखिए। अर्धमागधी छीय (= वह जिसने छींका हो हेमचन्द्र १, २१२ २, ११७ नंदी १८) क्षुत से नहीं निकला है बल्कि कभी कहीं प्रयोग में आनेवाले *छीस शब्द से। इससे अर्धमागधी में छीयमाण (= छींकता हुआ आयर २, २, ३ २७) बना है। छिक्क की व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार की है (देखी ३ ३६)। संस्कृत छिक्का और छिक्कण से भी तुलना कीजिए। सुहत्थ = मुसल के लिए § ९२ देखिए और मूसल = मुसल के संबंध में § ६६ देखिए।

१ त्सिम्मर कून्स त्साइटश्रिफ्ट २४ २२ ; एस गौल्दश्मित्त कून्स त्साइटश्रिफ्ट २५ ६१५ ; बाकरनागल आल्टइंडिशे ग्रामाटीक § ५१।

§ १२४—जैसे इ ए में परिणत हो जाती है वैसे ही संयुक्त व्यञ्जनों से पहले उ का ओ हो जाता है (वररुचि १ २ हेमचन्द्र १ ११६ क्रम १, २१ मार्कण्डेय पन्ना ८ प्राकृतकल्पलता पेज ११)। मार्कण्डेय पन्ना ६६ के अनुसार शौरसेनी में यह नियम केवल मुक्ता और पुष्कर म लागू होता है। इस तथ्य की पुष्टि लेख ग्रंथ करते हैं। पल्लवदानपत्रों में स्कंदकुंडिना का खंदकोंडिश रूप पाया जाता है (६ १)। महाराष्ट्री में गुच्छ का गोच्छ हो जाता है (हाल रावण) गोंच्छम रूप भी मिलता है (हाल)। महाराष्ट्री में तोंड (सब व्याकरणकार हाल ४ २ [यहाँ पर यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), किंतु मागधी में इस शब्द का रूप तुंड है। महाराष्ट्री में मुंड का मोंड* रूप है (सब व्याकरणकार) साथ ही महाराष्ट्री अर्धमागधी और शौरसेनी में मुंड भी चलता है (गउड ; मृच्छ ८ २ प्रबन्ध ४ ४ मागधी के लिए : मृच्छ १२२ ७ प्रबन्ध ५१ १४)। शौरसेनी म पुष्कर का पोक्खर रूप मिलता है (सब व्याकरणकार ; मृच्छ २

* गुजराती में इसका रूप मोढ चलता है। —अनु

१६, ५४, २, ९५, ११) और अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री मे **पुक्खर** रूप मिलता है (कप्प०, एत्सें०)। शौरसेनी में **पुष्कराक्ष** के लिए **पुक्खरक्ख** आया है (मुद्रा० २०४, ३)। अर्धमागधी और शौरसेनी में **पोक्खरिणी** शब्द भी पाया जाता है (आयार० २, ३, ३, २ [पाठ मे **पोक्खरणी** रूप है], नायाध० १०६०, धूर्त० ५, १०)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **पुक्खरिणी** भी प्रचलित है (सूय० ५६५, ६१३, तीर्थ० ४, ९)। मागधी में **पो॑स्कलिनी** आया है (मृच्छ० ११२, ११) और साथ **पुस्कलिनी** भी चलता है (मृच्छ० ११३, २२)। **पुंडरीक** के रूप अर्धमागधी मे **पो॑डरीय** (सूय० ८१३, पण्णव० ३४, ओव०), जैनमहाराष्ट्री मे **पुंडरीय** (एत्सें०) और शौरसेनी में **पुंडरीअ** होते है (माल्ती० १२२, २)। जैनमहाराष्ट्री में **को॑ट्टिम** (सब व्याकरणकार, एत्सें०) और महाराष्ट्री मे **कुट्टिम** रूप चल्ता है (रावण०)। **पुस्तक** का शौरसेनी में **पो॑त्थअ** (सब व्याकरणकार, मृच्छ० ६९, १७, कर्पूर० १२, ११), अर्धमागधी में **पो॑त्थय** (ओव०) होता है। **लुब्धक** का **लो॑द्धअ** होता है (सब व्याकरणकार, पाइय० २४८)। महाराष्ट्री मे **मुस्ता** का **मो॑त्था** रूप है (हेमचन्द्र १, ११६, सरस्वती० १६, ९)। **मुद्गर** का महाराष्ट्री और शौरसेनी में **मो॑ग्गर** बन जाता है (सब व्याकरणकार, रावण०, बाल० २४५, १८, २५१, ३), साथ साथ **मुग्गर** रूप भी प्रचलित है (रावण०)। अर्धमागधी और जैनशौरसेनी में **पुद्गल** का **पो॑ग्गल** रूप है (हेमचन्द्र १, ११६, आयार० २, १, १०, ६, भगवती०, उवास०, ओव०, कप्प०, पव० ३८४, ५८)। इसके साथ साथ जैनशौरसेनी और मागधी में **पुग्गल** रूप भी मिल्ता है (पव० ३८४, ३६ और ४७ तथा ५९, प्रबध० ४६, १४)। महाराष्ट्री और शौरसेनी में **मोत्ता** रूप आया है (भामह, क्रम०, मार्कण्डेय, प्राकृतकल्पलता, रावण०, विक्रमो० ४०,१८), साथ साथ इन दोनो प्राकृतों में **मुत्ता** रूप भी चल्ता है (गउड०, रावण०, मृच्छ० ६९, १, कर्पूर० ७२, २)। शौरसेनी में **मुक्ताफल** के लिए **मुत्ताहल** रूप काम मे लाया गया है (कर्पूर० ७२, ३ और ८, ७३, ९), महाराष्ट्री मे **मुत्ताहलिल्ल** रूप मिलता है (कर्पूर० २, ५, १००, ५), इस प्रकार का गौण ओ॑ कहा-कहा दीर्घ होता है, इस सम्बन्ध मे § ६६ देखिए और § १२७ से तुलना कीजिए।

§ १२५—**दुऊल** और अर्धमागधी **दुगुल्ल** के साथ-साथ सब व्याकरणकारो के मत से प्राकृत भाषाओं में **दुअल्ल** रूप भी चल्ता है (§ ९०)।—अर्धमागधी **उव्वीढ**, जो हेमचन्द्र १, १२० के अनुसार **उद्व्यूढ** से निकल्ता है, वास्तव में **विध्** (**व्यध्**) धातु मे **उद्** उपसर्ग **उद्विध्यति** से जो **उव्विहइ** रूप बनता है उससे यह रूप बना है (§ ४८९) और यह तथ्य विवाहपन्नत्ति १३८८ में स्पष्ट हो जाता है **से जहा नामए के इ पुरिसे ' उसुम् ' उव्विहइ उव्विहित्ता ' 'तस्स उसुस्स उव्वीढस्स समाणस्स** जैसे **लिह्** से **लीढ** और **मिह्** से **मीढ** बना है वैसे ही **विध्** धातु से निकले गौण प्राकृत रूप **विह्** से यह रूप निकला है। **उद्व्यूढ** अर्धमागधी मे नियमित रूप से **उव्वूढ** रूप धारण करता है (हेमचन्द्र १, १२०,

घकु ८८, २ ; बीवा० ८२१), ऊ के स्थान पर ख आधीन किये जाने के सम्बन्ध में § ८ से ८२ तक देखिए ।—नूपुर के लिए सब प्राकृत बोलियों में णेउर रूप चलता है। मागधी में णेउल हो जाता है जो भारत की वर्तमान बोलियों में अब तक सुरक्षित शब्द नेपूर और नेपुर से निकला या जो संस्कृत शब्द केयूर और उसके प्राकृत रूप केऊर की नकल पर बना है। इस नियम पर शौरसेनी शब्द णेउरकेऊरम् (बाल० २४८, १७) तुलना करने लायक है अपभ्रंश में णेउरकेउरओ (पिंगल १, २९) मिलता है। इस प्रकार महाराष्ट्री और शौरसेनी में णेउर रूप मिलता है (वररुचि १, २६ हेमचन्द्र १, १२३ क्रम १, ५ मार्कण्डेय पन्ना ९ गउड ; हाल रावण मृच्छ ४१, २ विक्रमो ३१, ७ मालवि ४ ७ रत्ना २९४ ३२ प्रबन्ध० २९, ८ ; प्रसन्न ३९, १८ ११६, ९ कपूर २१, १ बाल० २४८, १७)। महाराष्ट्री में णउरिल्ल (=नूपुरवत् ; गउड) से आया है। शौरसेनी में सणेउर पाया जाता है (मालवि ३७, १५, ४१, २)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में नेउर रूप है (पंह २, ४ [यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] १, १४ पेज १९; पाइय ११८ पण्हा २३६ ; ५१४ नायाध § ६५ १ २ पेज ९४८ विवाह ७९१ ओव आय एत्सें १२, ६)। मागधी मे णेउल (मृच्छ ९९, ७ और १) और अपभ्रंश में णेउर का प्रचार है (पिंगल १, १७ और २२ तथा २९)। हेमचन्द्र १, १२३ और देशीनाममाला ४, २८ मे णिउर रूप मिलता है और १, १२३ में णूउर आया है। प्रतापरुद्रीय २२ , १४ में शौरसेनी में णूउराइ मिलता है जो अशुद्ध रूप है।

§ १२६—उ की भांति ही (§ १२५) ऊ भी संयुक्त व्यंजनों से पहले आने पर ओँ में परिणत हो जाता है ; कूर्पर का अर्धमागधी में कोँप्पर हो जाता है (हेमचन्द्र १, १२४ विवाग ९) और महाराष्ट्री में कुप्पर चलता है (गउड)। मूल्य¹ का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में मोँल्ल (हेमचन्द्र १, १२४ आयार २; ५, १, ८ ; २, ६ १, २ ; पेज १२८ ६ आव एत्सें ११, १ ; एत्सें ११, १ ; एत्सें)। महाराष्ट्री में अमोँल्ल रूप मिलता है (गउड) और मुल्ल तो बार-बार आता है (§ ८३)। जैसे उ से निकला ओँ वैसे ही ऊ से निकला हुआ ओँ भी दीर्घ हो जाता है जब मूल संयुक्त व्यंजन सरल कर दिये जाते हैं। इस नियम के अनुसार तूण का अर्धमागधी में तोण रूप हो जाता है (हेमचन्द्र १, १२५ पण्णव ७९ ७९ ८१ ८३ ; विवाग ११२ नायाध १४२६)। शौरसेनी में तूणि होता है (वेणी ६२, ४ मुद्रा ६१ १८)। तूणीर का महाराष्ट्री में तोणीर रूप है (हेमचन्द्र १ १२४ ; कर्पूर ७० ८)। स्थूणा का थोणा और थूणा रूप होते हैं (हेमचन्द्र १ १२५)। इनके मूल रूप कभी *टोण्ण *टोण्णीर तथा *थुल्ल *थुल्लीर और *स्थुल्ला रहे होंगे। महाराष्ट्री थोर शब्द भी इसी तरह बना है ; स्थूर का *थोर रूप बन कर यह ८थोर निकला है (हेमचन्द्र १, १२४ और २५५ ; २ ९ ; गउड ; हाल रावण सरस्वती १७१ २२ कर्पूर ५ , ११ ६८ १ ७८ ७ ८१ ८)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में थूल

से **थुल्ल*** हो गया है (हेमचन्द्र २, ९९ , आयार० २, ४, २, ७ , आव० एर्त्से० २२, १५ और ४२), **अइथुल्ल** रूप भी मिलता है (आव० एर्त्से० २२, ३५) और अर्धमागधी, जैनशौरसेनी तथा शौरसेनी मे **थूल** भी व्यवहार मे आता है (आयार० पेज १३३, ३३ , १३६, ३ , सूय० २८६, पण्हा० ४३७, कत्तिगे० ३९८, ३०३ और ३०५ , कर्पूर० ७२, १ , हास्य० ३२, १ [यहॉ यही पाठ पढा जाना चाहिए और आव० एर्त्से० २२, ३४ मे **थुल्ल** और २२, ३३ मे **अइथुल्ल** का भी शोधन होना चाहिए]) । इनके अतिरिक्त अर्धमागधी मे **लांगूल** का रूप **नंगोल** हो जाता है (नायाध० ५०२), **लांगूलिन्** का **णंगोली** (जीवा० ३४५), **लांगूलिक** का **णंगोलिय** (जीवा० ३९२) और साथ साथ **णंगूल** (जीवा० ८८३ , ८८६ , ८८७), **गोणंगुल** (विवाह० १०४८), **णंगूलि**–(अणुओग० ३४९) रूप काम में आये है । महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में **तांबूल** का **तंबोल**† हो जाता है (हेमचन्द्र १, १२४ , मार्कण्डेय पन्ना ८ , गउड० , अणुओग० ६१ , उवास० , ओव० , एर्त्से०, कत्तिगे० ४०१, ३५० , मृच्छ० ७१, ६, मालती० २०१, २ [यहॉ यही पाठ होना चाहिए], कर्पूर० ९८, ४, विद्ध० २८, ७ , कस० ५५, १३ [यहॉ **तंबोल्ल** पाठ मिलता है]) । अर्धमागधी मे **तंबोलय** शब्द भी देखा जाता है (सूय० २५०), **तंबोली** † भी आया है (जीवा० ४८७ , राय० १३७) । इन शब्दों में **ओ** के आने से ज्ञात होता है कि **लांगूल** और **तांबूल** के अन्तिम अक्षर स्वरित रहे होंगे । इसलिए §९०के अनुसार **ल** का द्वित्त होकर **मुल्ल दुगुल्ल** रूप बन गये । इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार सिद्ध होती है, **तांबूर्ल, *तंबुल्ल, *तंबोल**[३] । **कोहंडी** का **ओ** भी गौण है (कोहडी = कूष्माडी : हेमचन्द्र १, १२४ , २, ७३ , क्रम० २, ७३ , पाइय० १४६), अर्धमागधी **कोहंड**= **कूष्मांड** (पण्णव० १११), इसके साथ-साथ **कुहंड** भी चलता है (पण्णव० ११५)। शौरसेनी शब्द **कोहंड** (कर्पूर० [बम्बई का सस्करण] ९९, ३) जिसे मार्कण्डेय शौरसेनी में अस्वीकार करता है, कोनो इसे **कुंभुंड** पढता है, यही पाठ विद्धशालभजिका २३, २ में भी पढा जाना चाहिए , इसकी परपरा यह है · ***कुम्हंडी, *कोम्हंडी, कोंहंडी, को॑हंडी** और **कोहंडी** (§ ७६ , ८९ , ३१२) । **कोहली** (हेमचन्द्र १, १२४, २, ७३) और **कोहलिया** (पाइय० १४६) भी उक्त रीति से **को॑हँडी** से निकलते हैं । मराठी **कोहळॆं** की तुलना कीजिए और **गलोई** (= गुडुची : हेमचन्द्र १, १०७ और १२४ , § १२३) कभी कहीं बोले जानेवाले रूप ***गडोची** से निकला है ।

१ याकोबी ने एर्त्सेलुगन में **मो॑ल्ल=मौल्य** दिया है जो अशुद्ध है । **मौल्य** प्राकृत से सस्कृत बन गया । — २. विंडिश, कून्स त्साइटश्रिफ्ट २७, १६८, सुब्शमान, त्साइट्सुग डेर डौयत्शन मौर्गेनलैंडिशन गेज़ेलशाफ्ट ३९, ९२ और

* इस थुल्ल का मराठी में **थोर** और कुमाउनी में **ठुल्ल** रूप होता है । यह शब्द तिब्बत पहुँच गया है । वहॉ का एक बड़े तीर्थ **ठुलिंग** में इसका प्रयोग हुआ है । —अनु०

† इस तंबोल से हिंदी तंबोली बना । —अनु०

उसके बाद ; फौर्गुमासीय कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३३, ३४ । — ३. लौयमान ने औपपातिक सूत्र में इस शब्द की व्युत्पत्ति ताम्रगुळ से दी है जो असंभव है।

§ १२७—पहले का या बाद का वर्ण स्वरित रहने से ए कभी-कभी इ में परिणत हो जाता है (§ ७९ से ८२ तक) और संयुक्त व्यंजनों से पहले ऍ या इ हो जाता है (§ ८४)। विभक्ति के रूप में ऍ तथा बोलियों में दीर्घ स्वर के अनन्तर इ बन जाता है (§ ८५)। गौण ऍ अर्थात् वह ऍ, जो मूल शब्द में ए, इ या अन्य कोई स्वर के रूप में हो, भी कभी-कभी दीर्घ कर दिया जाता है और शब्द के संयुक्त व्यंजन सरल कर दिये जाते हैं (§ ६६ ; १२२)। अपभ्रंश में तृतीया एकवचन का —एम और बहुवचन —एहिं कभी-कभी ह्रस्व हो जाते हैं (इस सम्बन्ध में संगीत रत्नाकर ४, ५६ से तुलना कीजिए)। इस भाँति के रूप वोल्लिऍण (हेमचन्द्र ४, ३८३, २ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), पाणिऍण (हेमचन्द्र ४, ४१४), कणें ण (हेमचन्द्र ४, ३५१ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) ; अत्थें हिं, सत्थें हिं हत्थें हिं (हेमचन्द्र ४ ३०१), संकें हिं, लोअमअें हिं (हेमचन्द्र ४,३५८) [यहाँ यही पाठ ठीक है], वेंतेहिं (हेमचन्द्र ४, ४१९ ५ [यहाँ भी यही पाठ ठीक है]), अम्मेहिं, तुम्मेहिं (हेमचन्द्र ४ ३७१) हैं। हेमचन्द्र की मेरी छः हस्तलिखित प्रतियों में ये शब्द कई प्रकार से लिखे गये हैं। मैंने हेमचन्द्र के अपने द्वारा सम्पादित संस्करण के पाठों में वोल्लिअऍं, पाणिऍं, संकहिं अथवा संकिहिं, लोअणिहिं आदि दे दिये हैं। जिनमें पाठभेद नहीं मिलता, वे हैं तृतीया बहुवचन के रूप अहिं, अहिं ये अ से बने हैं (§ ३६८)। उत्तम और मध्यमपुरुष सप्तमी बहुवचन के रूप में—एसु के अतिरिक्त कई व्याकरणकारों ने—असु भी बताया है। शाकल्य ने तुम्हिअसुं और तुम्मिसु रूप बताये हैं (§ ४१५ ; ४२२)। जैनमहाराष्ट्री में एत्तूणा, शौरसेनी और मागधी में एदिणा, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी में इमिणा और एएणा रूप होते हैं। शौरसेनी और मागधी में एदेण, इमेण रूप भी आते हैं (§ ४२६ ४१)। ये सब रूप इ से निकले हैं जैसा लास्सनने इन्स्टिट्यूत्सिओनेस § १०७ में बताया है। यह बात केन के क्रिया रूप के सम्बन्ध में निश्चित है और इस क्रिया की नकल पर जिणा, तिणा बने हैं (§ ४२८)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में अउण- अउणा शब्द आये हैं जिन्हें कई विद्वान एकोन का पर्यायवाची मानते हैं पर वास्तव में ऐसा नहीं है। ये दोनों अगुण से निकले हैं (§ ४४४)। जैनमहाराष्ट्री आणासु और अपभ्रंश आणहिं के लिए § ४७४ देखिए। ए के स्थान पर अ में समाप्त होनेवाले प्रेरणार्थक धातु के लिए § ४९१ देखिए।

§ १२८— णाळिअर (= नारिकेल) में ए के स्थान पर अ हो जाता है (देशी २ १) इसके साथ-साथ महाराष्ट्री में णाळिएरी (गउड) और शौरसेनी में णारिएल० रूप मिलते हैं (शकु ७८, १२)। सब व्याकरणकारों ने प्रकोष्ठ के लिए पवट्ठ रूप लिखा है' (वररुचि १ ४ ; हेमचन्द्र १, १५६ क्रम १, ४ ; मार्कण्डेय पन्ना ११) किन्तु यह शब्द प्रकोष्ठ से निकला है और महाराष्ट्री

० हिन्दी नारियल का प्रारम्भिक प्राकृत रूप। —अनु

तथा अर्धमागधी मे **पओट्ठ** लिखा जाता है (कर्पूर० ४७, ६ , ओव०) । इसका एक रूप **पउट्ठ** भी है (गउड०, कप्प०) । जैसा मार्कण्डेयने स्पष्ट रूप से वताया है, शौरसेनी मे केवल **पओट्ठ** चलता है (बाल० ८०, १ , विद्ध० १२६, ३ , ऑगन के अर्थ मे, मृच्छ० ६८, २३ और उसके बाद) ।—**स्तेन** शब्द के **थूण** (हेमचन्द्र १, १४७ , देशी० ५, २९) और **थेण** रूप मिलते है और अर्धमागधी मे इसका रूप **तेण**[२] हो जाता है (§ ३०७) । यह शब्द देशीनाममाला ५, २९ मे घोडे के लिए आया है, इसलिए यह ***स्तूर्ण** = तूर्ण से निकला है जिसका अर्थ जल्दी दौडनेवाला है* । देशीनाममाला ५, ३२ मे **थेणिल्लिअ** = फलवान आया है जिससे उक्त शब्द की तुलना कीजिए और § २४३ मे **वेळ** = चोर भी देखे । अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी मे **दोस** (= घृणा . देशी० ५, ५६ , त्रिविक्रम १, ४, १२१ , आयार० १, ३, ४, ४ , सूय० १९८ , पण्णव० ६३८ , दस० नि० ६५३, ६ , उत्तर० १९९ , ४४६ , ६४८ , ७०७ , ८२१ , ८७६ , ९०२ , ९१० और उसके वाद , विवाह० १२५ , ८३२ , १०२६ , एर्त्से०, ऋषभ० , पव० ३८४, ५४ , ३८५, ६१ , कत्तिगे० ४०४, ३८९), अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी मे **पदोस** भी मिलता है, साथ साथ **पओस** भी चलता है (सूय० ८१, उत्तर० ३६८ , एर्त्से० , पव० ३८५, ६९) । ये शब्द **द्वेप** और **प्रद्वेप** से नहीं निकले हैं वरन् **दोप** और **प्रदोप** से, हॉ इनका अर्थ वदल गया है[३] । ऐसा एक शब्द **दोसाकरण** है (= क्रोध देशी० ५, ५१) । **द्वेप** का प्राकृत रूप **वेस** होता है (§ ३००) ।

१ लास्सन ने इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज १२६ के नोट में यही भूल की है । —२ चाइल्डर्स , वेबर, भगवती , याकोवी, कल्पसूत्र , एर्त्से० भूमिका का पेज २५, नोट , लौयमान, औपपातिक सूत्र , वलाट्ट , ऋषभ० , डे० म्युलर , वाइत्रैगे पेज २३ । — ३. पिशल ; वेत्सनवैर्गर्मं वाइत्रैगे १३, १४ और उसके वाद ।

§ १२९—संयुक्त व्यंजनो से पहले **ओ** का **ओं** और **उ** हो जाता है, दो संयुक्त व्यंजनवाले प्रत्ययों से पहले **ओं** तथा बोलियों मे **ओ**, **उ** मे परिणत हो जाता है (§ ८५ , ३४६) । गौण **ओं** कभी-कभी दीर्घ हो जाता है और शब्द के संयुक्त व्यंजन सरल कर दिये जाते हैं (§ ६६ , १२७) । अपभ्रंश में केवल अन्तिम **ओ** ही नहीं वल्कि शब्द के मध्य का **ओ** भी **उ** वन जाता है । जैसा, **वियोगेन** का **विओएं** के स्थान पर **विउएं** हो जाता है (हेमचन्द्र ४, ४१९, ५) ।—महाराष्ट्री **अण्णण्ण** (हेमचन्द्र १, १५६ , गउड० , हाल), जैनमहाराष्ट्री **अन्नन्न** (एर्त्से०) **अन्योन्य** से नहीं निकले है , **अन्योन्य** का प्राकृत **अण्णोण्ण** या **अण्णुण्ण** (§ ८४) होता है, किन्तु वैदिक **अन्यान्य** से आये हैं ।—**आवज्ज** **आतोद्य** से नहीं निकला है (हेमचन्द्र १, १५६), इससे **आओंज्ज** और **आउज्ज** निकले हैं किन्तु ***आवाद्य** से ।

---

* तुरग, तुरंग, तुरंगम, अश्व आदि शब्दों का अर्थ भी तेज दौडनेवाला है । तुर् का अर्थ है जल्दी करना । —अनु०

इसी भाँति शौरसेनी पक्खाडज्ज† भी पश्चात्तोद्य से नहीं निकला है (कर्पूर १, २)। ओ के स्थान पर पुअमइ, पुलएइ और पुलइय में अ हो गया है। इनके रूप पुलोएइ, पलोएइ, पुलोइअ, पलोइअ भी होते हैं। ये रूप प्रलोकयति तथा प्रलोकित से निकले हैं (§ १४)। पल्हुट्टइ पलोट्टइ (=पल्हत्थ हेमचन्द्र ४, २००), पल्हट्ट (२, ८७ ६८) और पल्होट्ट (हेमचन्द्र ४, २५८) में भी अ का ओ हुआ है। इसके दो या तीन मूल रूप हैं, यही सम्भव लगता है। पवट्ठ = प्रकोष्ठ के लिए § १२९ देखिए। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री थेव (= बूँद, लेशमात्र : पाइय १६४ हेमचन्द्र २, १२५ देशी ५, २९ दस नि ६५२, १२ कक्कुक शिलालेख ७ आव एर्त्से० ४५, २ एर्त्से) का थोव या स्तोक से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु थिप्पइ (हेमचन्द्र ४, १७५) स्तिप् धातु या स्तेप् से निकला है (धातुपाठ १ , १ और ४)। यह बात पाइल्चर्ड ने पाथि थेव के सम्बन्ध में पहले ही लिख दी थी।

§ १३०—प्राकृत में संयुक्त व्यंजन स्वरभक्ति की सहायता से अलग अलग कर दिये जाते हैं और तब सरल व्यंजनों के रूप नाना प्राकृत भाषाओं के ध्वनि-नियमों के अनुसार होते हैं। यह स्वरभक्ति तब दिखाई देती है जब एक व्यंजन य र ल अथवा अनुस्वार और अनुनासिक हो। स्वरभक्ति की ध्वनि अनिश्चित थी इसलिए यह कभी अ, कभी इ और कभी उ रूप में मिलता है। कविता में स्वरभक्ति का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। इस प्रकार अर्धमागधी अग्गणि में अ स्वरभक्ति वर्तमान है : निव्वावमो भगवाँ निवायएँ वा, य पंडिए अगणिँ समारभेज्जा (सूय ४१)। गरहिमो में स्वरभक्ति है : मुसावायो य लोगम्मि सव्वसाहूहि गरहिमो (दस ६११, ८)। इस सम्बन्ध में सूय ११२ और ११४ से तुलना कीजिए। किरियाकिरियम् वेणइयाणुवायम् में किरियाकिरियम् में इ स्वरभक्ति है (सूय ३२२)। किंपुरिस में स्वरभक्ति है :—भसोगो किंनराणाम् च किंपुरिसाणाम् च चपमो (ठाणंग ५ ५ ; सम २१ की टीका में अभयदेव)। अरहइ में स्वरभक्ति : मिवण्णू अभ्याअम् अरिहइ (दस ६११ ८) लोभा सिअम् अरिहइ किरियवायम् (सूय ४७६ यहाँ किरिय- में भी स्वरभक्ति है)। आयरिय में स्वरभक्ति :—आयरियस्स महप्पणो (दस १११ ११)।† स्वरभक्ति के कारण कोई अक्षर स्वरित होने से दीर्घ स्वर के ह्रस्व हो जाने में कोई बाधा नहीं पड़ती जैसा अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में आचार्य का आयरिय होता है (§ ८१;१३४) महाराष्ट्री और शौरसेनी में वैडूर्य का वेरुलिअ तथा अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में वेरुलिय होता है (§ ८)। शौरसेनी में मूर्ख का मुरुक्ख रूप बन जाता है (§ १३९) एवं अर्धमागधी में सूक्ष्म का सुहुम रूप प्रचलित है (§ ८२ पेज ११ हेमचन्द्र १ ११८ २ ११३ आयार २ ४, १, ७

† यह पक्खाउज्ज की पिशल साहब ने पश्चात्तोद्य = पश्च+आतोद्य से निकला बताया है, पखावज का प्रारम्भिक प्राकृत रूप है। हिन्दी कोशकारों ने इसकी व्युत्पत्ति नहीं दी है। कहीं दी भी है तो वह भ्रामक है। —अनु

२, १५, ३, पेज १३१, ३२, सूय० १२८, २१७, ४९३, पण्णव० ७२, ७९, ८१, ८३, पण्हा० २७४, जीवा० ३९, ४१, ४१३, अणुओग० २६०, ३९१, ३९२; विवाह० १०५, ९४३, १३८५, १४३८, उत्तर० १०४०, ओव०, कप्प०)।[२] न तो § १९५ के अनुसार व्यजनो का द्वित्व होना बन्द होता है, न § १०१ के अनुसार अ का इ होना, जैसे **नग्न** का अर्धमागधी में **निगिण** होता है, न **त्य** का **च्च** में और **ध्य** का **ज्ज** मे परिणत होना रुकता है (§ २८०)।

१ याकोबी, कून्स त्साइटश्रिफ्ट २३, ५९४ और उसके बाद में अन्य कई उदाहरण दिये गये हैं। —२ सूयगडगसुत्त १७४ (= ३, २, १) में (मेरे पुस्तकालय के सस्करण मे अह **इमे सुहमा संगा** मिलता है, इसलिए याकोबी का कून्स त्साइटश्रिफ्ट २३, ५९५ में **सुह्मा** रूप स्वीकार नहीं किया जा सकता। § ३२३ से भी तुलना कीजिए।

§ १३१—**अ** केवल अर्धमागधी और अपभ्रश मे स्वरभक्ति के रूप मे आता है। अन्य प्राकृत भाषाओं मे इस स्वरभक्ति का नाममात्र का ही प्रयोग है। अर्धमागधी में **अग्नि** का **अगणि** रूप बन जाता है (हेमचन्द्र २, १०२, आयार० १, १, ४, ६, सूय० २७३, विवाग० २२४, विवाह० १२०, दस० ६१६, ३२ और बहुत ही अधिक सर्वत्र)। **अभीक्ष्णम्** का अर्धमागधी में **अभिक्खणाम्** आया है (कप्प०), **गर्हा** का **गरहा** (विवाह० १३२), **गर्हणा** का **गरहणा** (ओव०), **गरहामो**, **गरहई** (सूय० ९१२, ९१४), **गरहइ** (विवाह० १३२, ३३२) रूप मिलते हैं। जैनमहाराष्ट्री में **गरहसि** (एर्त्से० ५५, २९), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **गरहिय** (सूय० ५०४, दस० ६२५, ३, एर्त्से० ३५, १५) रूप व्यवहार मे आये हैं। अर्धमागधी में **विगरहमाण** (सूय० ९१२), जैनशौरसेनी में **गरहण** (कत्तिगे० ४००,३३१), **गरिह** (वररुचि ३,६२, क्रम० २,५९), अर्धमागधी में **गरिहा** (हेमचन्द्र २, १०४, मार्कण्डेय पन्ना २९, पाइय० २४५, ठाणग० ४०), **गरिहामि*** (विवाह० ६१४), **गरिहसि*** (सूय० ९१२ [पाठ **गरहसि** है]), जैनमहाराष्ट्री में **गरिहसु** (एर्त्से० ४२, १८) रूप भी प्रयोग में आये हैं। **अरत्नि** का अर्धमागधी में **रयणि** (§ १४१),[१] **ह्रस्व** का **रहस्स** होता है। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रश में **दीर्घ** का **दीहर** रूप होता है (§ ३५४)। अर्धमागधी में **सक्थीनि** का **सकहाओ** (§ ३५८), **ह्रद** का **हरय** (हेमचन्द्र २, १२०, आयार० १, ५, ५, १, १, ६, १, २, सूय० १२३, उत्तर० ३७६, विवाह० १०५, १९४, २७०) होता है। अपभ्रश में **ग्रास** का **गरास** (पिंगल २, १४०), **त्रस्यति** का **तरसइ** (पिंगल २, ९६), **प्रमाण=परमाण** (पिंगल १, २८), **प्रसन्न=परसण्ण** (पिंगल २, ४९), **प्राप्नुवंति=परावहीं** (हेमचन्द्र ४,४४२,१) रूप हो जाते हैं। अन्य प्राकृत भाषाओ के कुछ उदाहरण ये है —महाराष्ट्री **रत्न** का **रअण** रूप मिलता है (वररुचि ६०, क्रम० २, ५५, मार्कण्डेय पन्ना २९, गउड०, हाल, रावण०)। अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी मे **रयण** रूप पाया जाता है (§ ७०, चड० ३, ३०, हेमचन्द्र २, १०१, कत्तिगे० ४००, ३२५)। शौरसेनी

* हिन्दी शब्द गलियाना इस **गरहइ** से निकला है। —अनु०

में रुक्ख का व्यवहार होता है (मृच्छ० ५२, ९ ; ९८, २५ ; ७ , २४ ; ७१, १ ; शकु० ३८, ५ ; १ ३,६ ; ११७,७ ; विक्रमो० ७७, १५ आदि-आदि[1] । दाक्षिणात्या में भी रुक्ख प्रचलित है (मृच्छ० १०१, १२), मागधी में लुक्ख (मृच्छ० १४१, ४ ; १५९, १२ ; १६४, २० ; शकु० ११३, १ ; ११७, ५) । शत्रुघ्न के लिए शौरसेनी में सत्तुहण (बाल० ३१०, १५ ; अनर्घ० ३१७, १७) और सत्तुग्घ रूप चलते हैं (बाल० १५१, १) । महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में श्लाघा का सलाहा हो जाता है (वररुचि ३, ६३ ; हेमचन्द्र २, १०१ ; क्रम० २, ५७ ; मार्कण्डेय पन्ना २ ; गउड० ; चंड० ९५, ८) । महाराष्ट्री में श्लाघन का सलाहण बन जाता है (हाल), सलाहन रूप भी पाया जाता है (हेमचन्द्र ४, ८८) । महाराष्ट्री में सलाहमाण (हाल), अहिसलाहमाण (गउड०) और सलाहणिज्ज रूप भी मिलते हैं (हाल) । शौरसेनी में सलाहणीय रूप आया है (मृच्छ० १२८, ४; प्रबन्ध० ४, ८ [यहाँ यही पाठ होना चाहिए] ; रत्ना० १०४, १८ ; ११९, १५ ; मालती० ८२, ८ [यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; रत्ना० ११९,१५) । मागधी में शलाहणीय० मिलता है (मृच्छ० ३८, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । किन्तु शौरसेनी सलाहीमदि रूप भी मिलता है (रत्ना० १०९, ५ ; प्रबन्ध० १२, ११ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । अपभ्रंश में सलहिज्जसु और सलहिज्जइ रूप देखे जाते हैं (पिंगल १, ९५ और ११७) । जैनमहाराष्ट्री में भस्मन् का भसम हो जाता है (एर्त्से०) । गृध्र=गृध्र = गद्दर की प्राकृत भाषा निश्चित करना कठिन है (पाइय० १२६ ; देशी० २, ८४) । प्लक्ष का पलक्ख होता है (चंड० १, २ ; हेमचन्द्र २, १०३), इसके लिए अर्धमागधी में पिलंक्खु, पिलक्खु रूप व्यवहार में आते हैं (§ ७४ ; १०५) । शार्ङ्ग के स्थान पर सारंग रूप मिलता है (वररुचि ३, ६ ; हेमचन्द्र २,१ ; क्रम० २,५५ ; मार्कण्डेय पन्ना २९) । पुरुष शब्द के रूप हेमचन्द्र ४, २७ के अनुसार शौरसेनी और ४, १२३ पैशाची में पुरुष और ४, १ २ के अनुसार मागधी में पुलिश होते हैं ।[2] मुख्य नियम के विरुद्ध कष्ट का पैशाची में कसट हो जाता है (वररुचि १ , ६ ; हेमचन्द्र ४, ३१४ ; क्रम० ५, १ १ ; इस सम्बन्ध में लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज ४४१ से भी तुलना कीजिए) । शौरसेनी में प्राण के लिए परान रूप अशुद्ध है (चैतन्य० ५४ , १ [यहाँ पाण पाठ पढ़ा जाना चाहिए], जैसा मृच्छकटिक १५५, १८ ; १६६, और १४ तथा १५ में आया है । § १४ से भी तुलना कीजिए ।

१ यथार्थनिकाय के लिए अर्धमागधी में अहारायणियाए (सूयगड० १५५, १५६) मिलता है ; यहाँ अहारायणियाए पढ़ा जाना चाहिए । — २ सब संस्करणों में सर्वत्र ही शौरसेनी में रुक्ख तथा मागधी में लुक्ख पाठ दिये हैं जो इन भाषाओं के नियमों के विरुद्ध हैं । — ३ शौरसेनी और मागधी के सम्बन्ध इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते (हेमचन्द्र ४, ३० पर पिशल की टीका देखिए) । सम्भवतः यहाँ शौरसेनी शब्द से अर्धमागधी का तात्पर्य है ।

* उच्चारण का आरम्भिक बाड़ा का उल्लेख है ।—अनु०

§ १३२—स्वरभक्ति के रूप में सबसे अधिक प्रयोग **इ** का पाया जाता है। जिस स्थल में अन्य बोलियों मे व्यजन का एकीकरण हो जाता है वहॉ अर्धमागधी में अशस्वर **इ** का प्रयोग मिलता है। निम्नलिखित अवस्थाओ मे यह स्वरभक्ति आ जाती है। (१) जब एक व्यजन अनुनासिक हो, **उष्ण** का अर्धमागधी मे **उसिण** रूप है (आयार० २, १, ६, ४, २, २, १, ८, २, २, ३, १०, सूय० १३२, ५९०, ठाणग० १३१, १३५, पण्णव० ८, १०, ७८६ और उसके वाद, जीवा० २२४, २९५, विवाह० १९४, १९५, २५०, ४३६, ४६५, १४७० तथा उसके वाद, अणुओग० २६८, उत्तर० ४८, ५७), **अत्युष्ण** का **अच्चुसिण** हो जाता है (आयार० २, १, ७, ५), **शीतोष्ण सीयोशिण** वन जाता है (आयार० १, ३, १, २, विवाह० ८६२, ८६३), साथ साथ इसका रूप **सीउण्ह** भी मिलता है (सूय० १३४)। मागधी में **कोष्ण** का **कोशिण** रूप व्यवहार मे आता है (वेणी० ३४, ४)। इस सम्बन्ध में § ३१२ भी देखिए। **कृत्स्न** का अर्धमागधी में **कसिण** रूप है (हेमचन्द्र २, ७५ और १०४, सूय० २८, १७२, २९२, ४१६, ४३९, ४६०, विवाह० २०५, अणुओग० १०४, उत्तर० २५१, ओव०, कप्प०)। **कृष्ण** के लिए भी **कसिण** आता है। **कसण, कण्ह, किण्ह** रूप भी चलते हैं (§ ५२)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **तूष्णीक** का **तुसिणिय** रूप हो जाता है, साथ-साथ **तुण्हिय** और **तुण्हिक्क** रूप भी चलते हैं (§ ८१, ९०)। **ज्योत्स्ना** का रूप अर्धमागधी में **दोसिणा** वन जाता है। शौरसेनी में **दोसिणी** रूप का व्यवहार है और कहीं कहीं **ज्यौत्स्नी** भी पाया जाता है (§ २१५)। **नग्न** का अर्धमागधी मे **निगिण** रूप मिलता है (आयार० २, २, २, ११, २, ७, १, ११, सूय० १०८ [पाठ में **निगण** रूप है])। इस स्थान में § १०१ के अनुसार **इ** पहले अक्षर में ही है, साथ ही **नगिण** रूप भी मिलता है (आयार० १, ६, २, ३, सूय० १६९, दस० ६२७, १), **नगिणिन** रूप भी मिलता है (उत्तर० २०८), **नगिणिय** भी काम में आया है (१, सूय० ३४४)। ये शब्द **नग्नत्व** के पर्यायवाची है। अर्धमागधी में **प्रश्न** का **पसिण** रूप मिलता है (आयार० २, ३, २, १७, सूय० ३८३, ९१८, नायाध० ३०१, ५७७, ५७८, विवाह० १५१, ९७३, ९७८, १२५१, १२६१, १४०८, नदी० ४७१, उत्तर० ५१३, उवास०, ओव०)। **स्नान** का अर्धमागधी में **सिणाण** रूप मिलता है (मार्कण्डेय पन्ना २९, आयार० २, १, ६, २, २, २, १, ८, २, १, ११, सूय० ३४४, ३८२, दस० ६२६, दस० ६२६, ४०, शौरसेनी में भी अशुद्ध रूप मिलता है, चैतन्य० ४४, ४, ९२, १४, १३४, ९, १५०, ७, १६०, ४)। अर्धमागधी में **असिणाण** होता है (दस० ६२६, ३९), **प्रातःस्नान** का **पाओसिणाण** (सूय० ३३७), **स्नाति** का **सिणाइ** (मार्कण्डेय पन्ना २९, सूय० ३४०)। **असिणाइत्ता** (सूय० ९९४), **सिणायंत, सिणायति** (दस० ७२६, ३७ और ३८), शौरसेनी मे **सिणावेँति** का प्रयोग भी अशुद्ध है (चैतन्य० ४४, १३)। **स्नातक** का **सिणायग** मिलता है (सूय० ९२९, ९३३, ९४०)। **सिणायय** रूप भी है (उत्तर० ७५५, पाठ मे **सिणाइओ** रूप है)। पैशाची

में रद्धण का व्यवहार होता है (मृच्छ० ५२, १ ; ९८, २५ ७ , २४ ७१, १ ; शकु० ३८, ५ १०३,९ ११७,७ विक्रमो ७७, १५, आदि-आदि[1] । दाक्षिणात्या में भी रद्धण प्रचलित है (मृच्छ० १०१, १२), मागधी में लद्धण (मृच्छ० १४९, ४ १५९, १२ १६८, २० शकु० ११३, १ ; ११७, ५)। शाकुन के लिए शौरसेनी में सउण्ण (बाल ११ , १५ अनर्घ ११७, १०) और सउण रूप चलते हैं (बाल० १५१, १) । महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में श्लाघा का सलाहा हो जाता है (वररुचि ३, ६३ हेमचन्द्र २, १ १ क्रम २, ५७ मार्कण्डेय पन्ना १ गउड चंड० ९५, ८) । महाराष्ट्री में श्लाघन का सलाहण बन जाता है (हाल), सलाहइ रूप भी पाया जाता है (हेमचन्द्र ४, ८८) । महाराष्ट्री में सलाहमाण (हाल), अहिसलाहमाण (गउड०) और सलाहणिज्ज रूप भी मिलते हैं (हाल) । शौरसेनी में सलाहणीय रूप आया है (मृच्छ १२८, ४ प्रबन्ध ४, ८ [यहाँ यही पाठ होना चाहिए] रत्ना० १ ४, १८ ३१९, १५ मालवी० ८२, ८ [यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] रत्ना ३११,१५) । मागधी में सलाहणीय* मिलता है (मृच्छ ३८, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । किन्तु शौरसेनी सलाहीअदि रूप भी मिलता है (रत्ना २ ९, ५ प्रब च १२, ११ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । अपभ्रंश में सलहिज्जसु और सलहिज्जइ रूप देखे जाते हैं (पिंगल १, ९५ और ११७) । जैनमहाराष्ट्री में भस्मम् का भसम हो जाता है (एर्सें) । शुभ्र=शूघर = गहर की प्राकृत भाषा निश्चित करना कठिन है (पाइय ११६ देशी २, ८४) । प्लक्ष का पलक्ख होता है (चंड० ३, १० ; हेमचन्द्र २, १ ३), इसके लिए अर्धमागधी में पिलंखु, पिलक्खु रूप व्यवहार में आते हैं (§ ७४ ; १) । शार्ङ्ग के स्थान पर सारंग रूप मिलता है (वररुचि ३ ६ हेमचन्द्र २,१ क्रम २ ५५ मार्कण्डेय पन्ना २९) । पूर्व शब्द के रूप हेमचन्द्र ४ २७ के अनुसार शौरसेनी और ४, ३२३ पैशाची में पुरव और ४, १ २ के अनुसार मागधी में पुलव होते हैं ।[3] मुख्य नियम के विरुद्ध कष्ट का पैशाची में कसट हो जाता है (वररुचि १ , ६ हेमचन्द्र ४ ३१४ क्रम ५, १ १ इस सम्बन्ध में बाउसन इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज ४४१ से भी तुलना कीजिए) । शौरसेनी में प्राण के लिए पराण रूप अशुद्ध है (चैतन्य ५४ १ [यहाँ पाण पाठ पढ़ा जाना चाहिए], जैसा मृच्छकटिक १५ , १८ ; १६६ और १४ तथा १५ में आया है । § १४ से भी तुलना कीजिए ।

१ यथारत्निकाय के लिए अर्धमागधी में अहाराइणियाए (आयार० १५५, १५१) मिलता है यहाँ अहारायणियाए पढ़ा जाना चाहिए । — २ सब संस्करण सर्वत्र ही शौरसेनी में रअण तथा मागधी में लअण पाठ देते हैं जो इन भाषाओं के नियमों के विरुद्ध हैं । — ३. शौरसेनी और मागधी के ग्रन्थ इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते (हेमचन्द्र ४ १० पर पिशल की टीका देखिए) । सम्भवतः यहाँ शौरसेनी शब्द से जनशौरसेनी का तात्पर्य है ।

* श्लाघा का मागधिक प्राकृत रूप सलाहण है ।—अनु

§ १३२—स्वरभक्ति के रूप में सबसे अधिक प्रयोग **इ** का पाया जाता है। जिस स्थल मे अन्य बोलियों मे व्यजन का एकीकरण हो जाता है वहाँ अर्धमागधी में अशस्वर **इ** का प्रयोग मिलता है। निम्नलिखित अवस्थाओ में यह स्वरभक्ति आ जाती है। (१) जब एक व्यजन अनुनासिक हो, **उष्ण** का अर्धमागधी में **उसिण** रूप है (आयार० २, १, ६, ४, २, २, १, ८, २, २, ३, १०, सूय० १३२, ५९०, ठाणग० १३१, १३५, पण्णव० ८, १०, ७८६ और उसके बाद, जीवा० २२४, २९५, विवाह० १९४, १९५, २५०, ४३६, ४६५, १४७० तथा उसके बाद, अणुओग० २६८, उत्तर० ४८, ५७), **अत्युष्ण** का **अच्चुसिण** हो जाता है (आयार० २, १, ७, ५), **शीतोष्ण सीयोशिण** बन जाता है (आयार० १, ३, १, २, विवाह० ८६२, ८६३), साथ साथ इसका रूप **सीउण्ह** भी मिलता है (सूय० १३४)। मागधी मे **कोष्ण** का **कोशिण** रूप व्यवहार मे आता है (वेणी० ३४, ४)। इस सम्बन्ध मे § ३१२ भी देखिए। **कृत्स्न** का अर्धमागधी में **कसिण** रूप है (हेमचन्द्र २, ७५ और १०४, सूय० २८, १७२, २९२, ४१६, ४३९, ४६०, विवाह० २०५, अणुओग० १०४, उत्तर० २५१, ओव०, कप्प०)। **कृष्ण** के लिए भी **कसिण** आता है। **कसण, कण्ह, किण्ह** रूप भी चलते है (§ ५२)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **तूष्णीक** का **तुसिणिय** रूप हो जाता है, साथ-साथ **तुण्हिय** और **तुण्हिक्क** रूप भी चलते है (§ ८१, ९०)। **ज्योत्स्ना** का रूप अर्धमागधी मे **दोसिणा** बन जाता है। शौरसेनी में **दोसिणी** रूप का व्यवहार है और कहीं कहीं **ज्योत्स्नी** भी पाया जाता है (§ २१५)। **नग्न** का अर्धमागधी मे **निगिण** रूप मिलता है (आयार० २, २, २, ११, २, ७, १, ११, सूय० १०८ [पाठ में **निगण** रूप है])। इस स्थान में § १०१ के अनुसार **इ** पहले अक्षर में ही है, साथ ही **नगिण** रूप भी मिलता है (आयार० १, ६, २, ३, सूय० १६९, दस० ६२७, १), **नगिणिन** रूप भी मिलता है (उत्तर० २०८), **नगिणिय** भी काम में आया है (१, सूय० ३४४)। ये शब्द **नग्नत्व** के पर्यायवाची है। अर्धमागधी में **प्रश्न** का **पसिण** रूप मिलता है (आयार० २, ३, २, १७, सूय० ३८३, ९१८, नायाध० ३०१, ५७७, ५७८, विवाह० १५१, ९७३, ९७८, १२५१, १२६१, १४०८, नदी० ४७१, उत्तर० ५१३, उवास०, ओव०)। **स्नान** का अर्धमागधी में **सिणाण** रूप मिलता है (मार्कण्डेय पन्ना २९, आयार० २, १, ६, २, २, २, १, ८, २, १, ११, सूय० ३४४, ३८२, दस० ६२६, दस० ६२६, ४०, शौरसेनी में भी अशुद्ध रूप मिलता है, चैतन्य० ४४, ४, ९२, १४, १३४, ९, १५०, ७, १६०, ४)। अर्धमागधी मे **असिणाण** होता है (दस० ६२६, ३९), **प्रातःस्नान** का **पाओसिणाण** (सूय० ३३७), **स्नाति** का **सिणाइ** (मार्कण्डेय पन्ना २९, सूय० ३४०)। **असिणाइत्ता** (सूय० ९९४), **सिणायंत, सिणायति** (दस० ७२६, ३७ और ३८), शौरसेनी मे **सिणावेंति** का प्रयोग भी अशुद्ध है (चैतन्य० ४४, १३)। **स्नातक** का **सिणायग** मिलता है (सूय० ९२९, ९३३, ९४०)। **सिणायय** रूप भी है (उत्तर० ७५५, पाठ मे **सिणाइओ** रूप है)। पैशाची

में रवण का व्यवहार होता है (मृच्छ० ५२, १ ९८, २५ ७, २८ ७१ १ ; शकु० १८, ५ १०३,६ ; ११७,७ विक्रमो० ७७, १५; आदि-आदि[1] । दाक्षिणात्या में भी रवण प्रचलित है (मृच्छ० १०१, ११), मागधी में लवण (मृच्छ० १४९, ४ १५९, १२ १६४, २० शकु० ११३, ३ ११७, ५)। शत्रुघ्न के लिए शौरसेनी में सत्तुहण (बाल० २१०, १५ अनर्घ० ३१७, १७) और सत्तुग्घ रूप चलते हैं (बाल० १५१, १) । महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में श्लाघा का सलाहा हो जाता है (वररुचि ३, ६३ हेमचन्द्र २, १०१ क्रम० २, ५७ , मार्कण्डेय पन्ना १ गउड० ; चंड ९५, ८) । महाराष्ट्री में श्लाघन का सलाहण बन जाता है (हाल), सलाहन रूप भी पाया जाता है (हेमचन्द्र ४, ८८) । महाराष्ट्री में सलाहमाण (हाल), अहिसलाहमाण (गउड) और सलाहणिज्ज रूप भी मिलते हैं (हाल) । शौरसेनी में सलाहणीय रूप आया है (मृच्छ० १२८, ४; प्रबन्ध ४, ८ [यहाँ यही पाठ होना चाहिए] रत्ना० ३०८, १८ ३१९, १५ मालवी ८२, ८ [यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] रत्ना० ३१९,१५) । मागधी में शलाहणीय० मिलता है (मृच्छ० १८, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । किन्तु शौरसेनी सलाहीअदि रूप भी मिलता है (रत्ना० २०९, ५ प्रबन्ध १२, ११ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । अपभ्रंश में सलहिज्जसु और सलहिज्जइ रूप देखे जाते हैं (पिंगल १, ९५ और ११७) । जैनमहाराष्ट्री में भस्मन् का भसम हो जाता है (पार्से) । गृध्र=*गृधर = गहर की प्राकृत भाषा निश्चित करना कठिन है (पाइय० ११६ देशी २, ८४) । प्लक्ष का पलक्ख होता है (चंड० ३, १०; हेमचन्द्र २, १ ३), इसके लिए अर्धमागधी में पिलक्खु, पिलपक्खु रूप व्यवहार में आते हैं (§ ७४ ; १०) । शार्ङ्ग के स्थान पर सारंग रूप मिलता है (वररुचि ३, ६ ; हेमचन्द्र २,१ क्रम २,५५ ; मार्कण्डेय पन्ना २९) । पूर्व शब्द के रूप हेमचन्द्र ४, २७ के अनुसार शौरसेनी और ४, ३२१ पैशाची में पुरव और ४, ३०२ के अनुसार मागधी में पुरुव होते हैं ।[2] मुख्य नियम के विरुद्ध कष्ट का पैशाची में कसट हो जाता है (वररुचि १०, ६ हेमचन्द्र ४, ३१४ क्रम ५, १ ९ ; इस सम्बन्ध में लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज ४४१ से भी तुलना कीजिए) । शौरसेनी में प्राण के लिए पराण रूप अशुद्ध है (चैतन्य ५४, १ [यहाँ पाण पाठ पढ़ा जाना चाहिए], जैसा मृच्छकटिक १५ १८ ; १९९, ० और १४ तथा १५ में आया है ।[3] १४ से भी तुलना कीजिए ।

१ यथारत्निकाय के लिए अर्धमागधी में अहारायणियाए (पण्णग० १५५ १५६) मिलता है यहाँ अहारायणियाए पढ़ा जाना चाहिए । — २ सब संस्करण सर्वत्र ही शौरसेनी में रअण तथा मागधी में लअण पाठ देते हैं जो इन भाषाओं के नियमों के विरुद्ध हैं । — ३. शौरसेनी और मागधी के ग्रन्थ इस तथ्य की पुष्टि नहीं करते (हेमचन्द्र ४ २० पर पिशल की टीका देखिए) । सम्भवतः यहाँ शौरसेनी शब्द से जैनशौरसेनी का तात्पर्य है ।

* यहाँ का सार्थक प्राकृत रूप सलाहण है ।—अनु

§ १३२—स्वरभक्ति के रूप मे सबसे अधिक प्रयोग **इ** का पाया जाता है। जिस स्थल मे अन्य बोलियों मे व्यजन का एकीकरण हो जाता है वहाँ अर्धमागधी में अशस्वर **इ** का प्रयोग मिलता है। निम्नलिखित अवस्थाओं में यह स्वरभक्ति आ जाती है। (१) जब एक व्यजन अनुनासिक हो, **उष्ण** का अर्धमागधी में **उसिण** रूप है (आयार० २, १, ६, ४, २, २, १, ८, २, २, ३, १०, सूय० १३२, ५९०, ठाणग० १३१, १३५, पण्णव० ८, १०, ७८६ और उसके बाद, जीवा० २२४, २९५, विवाह० १९४, १९५, २५०, ४३६, ४६५, १४७० तथा उसके बाद, अणुओग० २६८, उत्तर० ४८, ५७), **अत्युष्ण** का **अच्चुसिण** हो जाता है (आयार० २, १, ७, ५), **शीतोष्ण सीयोशिण** बन जाता है (आयार० १, ३, १, २, विवाह० ८६२, ८६३), साथ साथ इसका रूप **सीउण्ह** भी मिलता है (सूय० १३४)। मागधी में **कोष्ण** का **कोशिण** रूप व्यवहार मे आता है (वेणी० ३४, ४)। इस सम्बन्ध में § ३१२ भी देखिए। **कृत्स्न** का अर्धमागधी मे **कसिण** रूप है (हेमचन्द्र २, ७५ और १०४, सूय० २८, १७२, २९२, ४१६, ४३९, ४६०, विवाह० २०५, अणुओग० १०४, उत्तर० २५१, ओव०, कप्प०)। **कृष्ण** के लिए भी **कसिण** आता है। **कसण, कण्ह, किण्ह** रूप भी चलते है (§ ५२)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **तूष्णीक** का **तुसिणिय** रूप हो जाता है, साथ-साथ **तुण्हिय** और **तुण्हिक्क** रूप भी चलते हैं (§ ८१, ९०)। **ज्योत्स्ना** का रूप अर्धमागधी में **दोसिणा** बन जाता है। शौरसेनी में **दोसिणी** रूप का व्यवहार है और कहीं कहीं **ज्योत्स्नी** भी पाया जाता है (§ २१५)। **नग्न** का अर्धमागधी मे **निगिण** रूप मिलता है (आयार० २, २, ३, ११, २, ७, १, ११, सूय० १०८ [पाठ में **निगण** रूप है])। इस स्थान में § १०१ के अनुसार **इ** पहले अक्षर में ही है, साथ ही **नगिण** रूप भी मिलता है (आयार० १, ६, २, ३, सूय० १६९, दस० ६२७, १), **नगिणिन** रूप भी मिलता है (उत्तर० २०८), **नगिणिय** भी काम में आया है (१, सूय० ३४४)। ये शब्द **नग्नत्व** के पर्यायवाची हैं। अर्धमागधी में **प्रश्न** का **पसिण** रूप मिलता है (आयार० २, ३, २, १७, सूय० ३८३, ९१८, नायाध० ३०१, ५७७, ५७८, विवाह० १५१, ९७३, ९७८, १२५१, १२६१, १४०८, नदी० ४७१, उत्तर० ५१३, उवास०, ओव०)। **स्नान** का अर्धमागधी में **सिणाण** रूप मिलता है (मार्कण्डेय पन्ना २९, आयार० २, १, ६, २, २, २, १, ८, २, १, ११, सूय० ३४४, ३८२, दस० ६२६, दस० ६२६, ४०, शौरसेनी में भी अशुद्ध रूप मिलता है, चैतन्य० ४४, ४, ९२, १४, १३४, ९, १५०, ७, १६०, ४)। अर्धमागधी में **असिणाण** होता है (दस० ६२६, ३९), **प्रातःस्नान** का **पाओसिणाण** (सूय० ३३७), **स्नाति** का **सिणाइ** (मार्कण्डेय पन्ना २९, सूय० ३४०)। **असिणाइत्ता** (सूय० ९९४), **सिणायंत, सिणायंति** (दस० ७२६, ३७ और ३८), शौरसेनी मे **सिणावें ति** का प्रयोग भी अशुद्ध है (चैतन्य० ४४, १३)। **स्नातक** का **सिणायग** मिलता है (सूय० ९२९, ९३३, ९४०)। **सिणायय** रूप भी है (उत्तर० ७५५, पाठ मे **सिणाइओ** रूप है)। पैशाची

में स्मात का सिमात रूप पाया जाता है (हेमचन्द्र ४, ११४), कृतस्नामेन का कतसिमामेन हो गया है (हेमचन्द्र ४, १२२ यहाँ यही पढ़ा जाना चाहिए)। स्वप्न का सिविण, सिमिण सुमिण, सुमिण रूप पाये जाते हैं (§ १७७)। राजन् शब्द की विभक्ति के रूपों में जैसा कि तृतीया एकवचन में जैनमहाराष्ट्री में राइणा पैशाची में राचिआ हो जाता है (§ ३९९)।

(ए) स्वरों का लोप और दर्शन

§ १४१—जब स्वर ध्वनिबलहीन होते थे तब मौलिक अर्थात् संस्कृत शब्द के आदिस्वर का लोप हो जाता था। इस नियम के अनुसार अन्तिम वर्ण स्वरित होने से दो से अधिक वर्णों के शब्दों में निम्नलिखित परिवर्तन हुए : उदकं शब्द अर्धमागधी में दग बन गया (सूय २ २ २ १ ४१ ; ३३७ १११; १४ ठाणंग ११९ ४ ; पण्ह १५२ ; ५११ विवाह ९४२ दस ६१९, २७ ६१ ११ ओव कप्प), साथ-साथ उदग उदय शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है (ओव § ८३ और उसके बाद के § उवास नायाध)। कभी-कभी दोनों रूप पास-पास में ही पाये जाते हैं जैसे सूयगड ११७ में उदगेण [= दगेण] जे सिद्धि उदाहरंति सायं च पायं उदगं फुसंता। उदगस्स [= दगस्स] फासेण सिया य सिद्धी सिज्झिंसु पाणा बहवे दगंसि ॥ यह लोप अन्य प्राकृत भाषाओं में नहीं देखा जाता। उदक का रूप महाराष्ट्री में उअअ (गौड हाल रावण); जैनमहाराष्ट्री में उदय (एर्त्से); शौरसेनी में उदअ (मृच्छ १७, २१ शकु १, १ ; १८, १ ; ६७, ४ ७२, ११ ; ७४, ९ विक्रमो ५१, ११) और मागधी में उदअ (मृच्छ ४५, १२ ; ११२, १ ; १३१ ७ १३४, ७) मिलता है।—अर्धमागधी में *उद्‌पूर्वति का वुड्ढइ रूप पाया जाता है (§ ११८ ; ३३९ ; ४८२)।—अर्धमागधी में उपानहौ का पाहणाओ हो जाता है (सूय० १८४ [पाठ में पाणहाओ रूप है] ठाणंग १५९ [पाठ में पाहणाओ और टीका में पाहणाओ रूप मिलता है] पण्ह ४८७ [पाठ में पाहणाओ रूप है]; विवाह १५२ [पाठ में पाहणाओ है] १२१२ [पाठ पाणहाओ है]; ओव [पाठ में पाणहाओ और पाणहाओ दोनों रूप चलते हैं])। शौरसेनी में इनके अतिरिक्त उवाणह रूप भी मिलता है (मृच्छ ७२,)। अर्धमागधी में छत्तोवाहण (सूय २४९ [पाठ में छत्तोवाणह रूप है]; विवाह १५१) पाया जाता है। अणोवाहणग और अणोवाहणय शब्द भी देखने में आते हैं (§ ७७)।—उपवसथ के लिए अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी में पोसह रूप काम में लाया जाता है (अणुओग १९ सूय ७७१ ; ९९४ ; उवास नायाध ; भग ओव कप्प एर्त्से कत्तिगे ४ २ ३५९ ; ४ ३,३७६)। अर्धमागधी में उपवसथिक का पोसहिय रूप प्रचलित है (नायाध उवास)। —अरण्नि का अर्धमागधी में रयणि हो जाता है (§ १३२ विवाह १०६१ ;

ओव०)।— अर्धमागधी मे **अलावू** का **लाऊ** और **अलावु** का **लाउ*** हो जाता है (हेमचन्द्र १, ६६ , आयार० २, ६, १, १ ; अणुत्तर० ११ ; ओव०)। इस प्राकृत में **अलावुक** का **लाउय** रूप मिलता है (आयार० २, ६, १, ४ ; ठाणंग० १५१ , विवाह० ४१ , १०३३ , पण्णव० ३१), कहीं-कहीं **लाउं** भी देखने मे आता है (हेमचन्द्र १, ६६), साथ ही **अलाऊ** भी चलता है (सूय० २४५), **अलाउय** का भी प्रयोग है (सूय० ९२६ , ९२८ [पाठ में **अलावुय** है])। शौरसेनी मे **अलावू** रूप है (हेमचन्द्र १, २३७ , बाल० २२९, २१)।

§ १३४—अर्धमागधी में **अगार** का **गार** हो जाता है। इसका कारण भी अन्तिम वर्ण का स्वरित होना ही माना जाना चाहिए (आयार० १, ५, ३, ५ , सूय० १२६ , १५४ , ३४५)। **अगारस्थ** का **गारत्थ** रूप मिलता है (सूय० ६४२ , ९८६ , उत्तर० २०८)। **अगारिन्** का **गारि** (उत्तर० २०७) पाया जाता है। इनके साथ साथ **अगार** शब्द भी चलता है (आयार० १, २, ३, ५ , नायाध०)।— **अरघट्ट** के लिए महाराष्ट्री और अर्धमागधी में **रहट्ट**† का प्रयोग चलता है (हाल ४९० , पण्हा० ६७), इसके साथ साथ महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री मे **अरहट्ट** रूप भी चलता है (गउड० ६८५ , ऋषभ० ३० , ४७ [बंबई के संस्करण में ४७ में जो **पलिलआ रहट्टव्व** छपा है, अशुद्ध है]) ।—**अवतंस** का महाराष्ट्री मे **वअंस** हो जाता है (हाल ४३९)। अर्धमागधी में इसके रूप **वडिंस** और **वडिंसग** (§ २०३) पाये जाते हैं। महाराष्ट्री में इसका एक रूप **अवअंस** भी मिलता है (हाल १७३ , १८०)। महाराष्ट्री में एक प्रयोग **अवअंसअंति** भी पाया जाता है (शकु० २, १५)।—मागधी में ***अहकः** के स्थान पर **हगे** और **हग्गे** काम में आते हैं। अपभ्रंश में **अहकम्** के स्थान पर **हउँ** चलता है (§ ४१७)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **अधस्तात्** के **हेट्ठा** तथा इससे नाना रूप निकलते हैं (§ १०७)।—इस नियम के भीतर ही कुछ अन्य रूप भी आते हैं, जैसे अर्धमागधी में **अतीत तीय** में परिणत हो जाता है (सूय० १२२, ४७०, ठाणंग० १७३, १७४, विवाह० २४, १५५, उत्तर० ८३३, उवास०, कप्प०)। अर्धमागधी मे ***अपिनिधातवे** का **पिणिधत्तए** रूप चलता है (ओव०)।—अर्धमागधी में ***अप्यूढ** का **पूढ** हो जाता है (§ २८६)।—अर्धमागधी में **अपक्रामति** का **वक्कमइ** चलता है, साथ-साथ **अवक्कमइ** भी देखा जाता है। यह शब्द शौरसेनी और मागधी मे **अवक्कमदि** रूप ग्रहण कर लेता है (§ ४८१)। **अपक्रांत** का अर्धमागधी रूप **वक्कंत** है (पण्णव० ४१, कप्प०), **अपक्रांति** का **वक्कंति** रूप मिलता है (कप्प०)। **अवलग्यति** का महाराष्ट्री रूप **वलग्गंति** मिलता है (गउड० २२६, ५५१)। **अवस्थित** का शौरसेनी मे **वट्ठिद** रूप पाया जाता है (मृच्छ० ४०, १४)। **अपस्मारः** का रूप शौरसेनी मे **वंहल** है (हेमचन्द्र २, १७४), इसमें **स्मा** के **आ** का **अ** हो जाने का कारण भी **र.** पर ध्वनिबल का पड़ना है।—संस्कृत से मिलता शब्द

---

* इस लाउ से लाउ+की = लौकी बना। —अनु०

† हिन्दी रहँट या रहट का प्रारम्भिक रूप। —अनु०

पिनद्ध का प्राकृत रूप पिणद्ध है (गउड हाल रावण० ; राय० ८१ और उसके बाद ओव०; नायाध०)। संस्कृत से भिन्न ध्वनिबल महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश शब्द रण्ण में सूचित होता है जो अरण्य से निकला है (वररुचि १, ४; हेमचन्द्र १, ६६ ; क्रमदी १, ३ मार्कण्डेय पन्ना ५ गउड ; हाल; रावण नायाध ११११७ १४११ ओव० एर्त्से विक्रमो ५८,९ ७१, ९ ७२ १०)। साथ-साथ अरण्ण भी देखने में आता है, पर बहुत कम (गउड हाल आयार पेज १११, १२ कप्प एर्त्से०)। शौरसेनी में एकमात्र रूप अरण्ण पाया जाता है (शकु० ३१, ४; रत्ना ३१४, ३२ ; मालती २ , ९ उत्तर ११ , २ धूर्त० ११, १२ कर्ण० ४६, १२ वृष० २८, १९ ५ , ५ चंड० १७, ११ ; ९५, १), इस प्राकृत के नियम के विरुद्ध इस बोली में एक शब्द पारत्तिरण्ण पाया जाता है (विद्ध २१, ९)।—महाराष्ट्री और अपभ्रंश में अरिष्ट का रिट्ठ रूप होता है (रावण १, ३ पिंगल २, ७२)। जैनमहाराष्ट्री में अरिष्टनेमि के स्थान पर रिट्ठनेमि आया है (द्वार ४९६, २ ४९९, ११ ५ २, ६ ५ ५, २७)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में अरिट्ठनेमि रूप पाया जाता है (कप्प द्वार० ४९५, ९ ४९७, २ ५ ८, ११ ; ५ ५, ५)। अर्धमागधी में एक मूल्यवान पत्थर (हीरे) का नाम रिट्ठ है (जीव० २१८ ; राय २९ ; विवाह० २१२ ; ११४६ नायाध ओव ; कप्प) इसका संस्कृत रूप अरिष्ट है जो पाली में अरिट्ठ रूप में पाया जाता है। अर्धमागधी में रिट्ठग (नायाध § ६१ उत्तर ९८०) और रिट्ठय पाये जाते हैं (ओव), ये संस्कृत अरिष्टक के प्राकृत रूप हैं। अरिष्टमय का रिट्ठामय रूप भी मिलता है (जीव ५४९ ; राय १ ५), इनके साथ अरिट्ठ (= एक वृक्ष : पण्ण ३१) भी मिलता है। इस सम्बन्ध में अरिष्टताति की तुलना भी कीजिए। इन शब्दों में तो भी गिना जाना चाहिए जो महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री मागधी और अपभ्रंश में चलता है। इसे प्राकृत व्याकरणकार और उनके साथ एस गोल्दश्मित्त[2] त- का प्राकृत रूप बताते हैं, किन्तु अच्छा यह होता कि यह अतस् का प्राकृत रूप माना जाय।

1 त्साइटश्रिफ्ट डेर मौर्गेनलैण्डिशन गेजेलशाफ्ट ४९ २८५ में पिशल का लेख। इसके स्पष्टीकरण के विरुद्ध स्वयं प्राकृत भाषा प्रमाण देती है। — 2 प्राकृतिका पेज २२।

§ १४५—ध्वनिबल की हीनता के प्रभाव से अव्यय (जो अपने से पहले वर्ण को ध्वनिबलयुक्त कर देते हैं तथा स्वयं बलहीन रहते हैं) बहुधा आरम्भ के स्वर का लोप कर देते हैं। जब ये शब्द उक्त अव्यय रूप में नहीं आते तो आरम्भिक स्वर बना रहता है। इस नियम के अनुसार अनुस्वार के बाद आने पर अपि का पि रूप हो जाता है स्वर के बाद यह रूप वि में परिणत हो जाता है। पल्लवदानपत्रों में अम्याम् अपि का अम्हे पि रूप आया है (५ ६) अस्माभिर् अपि का अम्हेहि पि रूप मिलता है (६ ९९)। महाराष्ट्री में मरणं पि (हाल १२) तं पि (गउड ४२) पाइउं पि (रावण ९, १८),

अज्ज वि (=**अद्यापि** : हाल), **तह वि** (=**तथापि** : रावण० १, १५), **णिम्मला वि** (=**निर्मला अपि** : गउड० ७२), **अम्हे वि** (=**अस्मे अपि** : हाल २३२), **अप्पवसो वि** (**अल्पवशो ऽपि** . हाल २६५) रूप पाये जाते हैं। अन्य प्राकृत भाषाओं में भी यह नियम लागू होता है। वाक्य के आरम्भ में **अ** बना रहता है : पल्लवदानपत्रों में **अपि** (६, ३७) मिलता है , महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **अवि** प्रचलित है (रावण० , आयार० १, ८, १, १० , दस० ६३२, ४२ , कालका० २७०, ४६ , मृच्छ० ४६, ५ , ५७, ६ , ७०, १२ , ८२, १२ , शकु० ४९, ८ , इसमें बहुधा **अवि अ** और **अवि णाम** मिलता है)। यही नियम पद्य में भी चलता है जब **अवि** से पहले **म्** आता है और जब एक ह्रस्व वर्ण आवश्यक होता है, जैसे अर्धमागधी में **मुहुत्तं अवि** (**मुहुत्तमवि**) पाया जाता है (आयार० १, २, १, ३), **कालगं अवि** (कप्प० १३, ३)। यह **अ** तब भी बना रहता है जब अन्य प्राकृत भाषाओं के नियम के विरुद्ध **आम्** हो जाता है (§ ६८)। इसके अतिरिक्त अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री **पुनर् अपि** का **पुनर्** + **अवि** पाया जाता है (§ ३४२)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **य** + **अवि** का **यावि** (=**चापि**) होता है (उदाहरणार्थ, आयार० १, १, १, ५ , १, १, ५, ३ , सूय० १२० , उवास० , कप्प० , आव० एर्त्से० ८, १३ , एर्त्से० ३४, १५)। ऐसे और उदाहरण हैं : महाराष्ट्री और शौरसेनी **केणावि** (हाल १०५ , विक्रमो० १०, १२ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए]), जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी **तेणावि** (एर्त्से० १०, २५ , १७, १७ , २२, ९ , मालती० ७८, ८), शौरसेनी **पत्तिकेणावि** (शकु० २९, ९), शौरसेनी और अर्धमागधी **ममावि** (मृच्छ० ६५, १९ , शकु० ९, १३ , १९, ३ , ३२, ३ , ५०, ४ , मृच्छ० १४०, १), शौरसेनी और मागधी **तवावि** (मालती० ९२, ४ , मृच्छ० १२४, २०), अर्धमागधी **खणं अवि** (=**क्षणं अपि** : नायाध० § १३७), जैनमहाराष्ट्री **एव अवि** (आव० एर्त्से० १६, २४), जैनमहाराष्ट्री **सयलं अवि जीवलोगं** (कप्प० § ४४), महाराष्ट्री **पिअत्तणेणावि** (=***प्रियत्वनेनापि** . हाल २६७), शौरसेनी **जीविदसव्वस्सेणावि** (=**जीवितसर्वस्वेनापि** शकु० २०, ५) देखा जाता है। इन सब उदाहरणों में **अवि** से पहले आनेवाले शब्द पर ही विशेष ध्यान या जोर दिया जाना चाहिए[1]। अर्धमागधी रूप **अप्प** के लिए देखिए § १७४।—अनुस्वार के बाद **इति** का रूप **ति** हो जाता है , स्वरों के अनन्तर इसका रूप **त्ति** बनता है , इससे पहले के दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं (§ ९२) . पल्लवदानपत्र में **चेति** का **च त्ति** रूप आया है (६, ३७)। महाराष्ट्री में **जीवितम् इति** का **जीवियं ति** (रावण० ५, ४) रूप मिलता है , **नास्तीति** का **णत्थि त्ति** हो गया है (गउड० २८१)। अर्धमागधी में **एतद् इति** का **इणं ति** रूप पाया जाता है (आयार० १, ३, १, ३), **अनुपरिवर्तत इति** का **अणुपरियट्टइ त्ति** आया है (आयार० १, २, ३, ६)। शौरसेनी में **लभेयम् इति** का **लहेअं ति** हो गया है (शकु० १३, ९), **प्रेक्षत इति** का **पेक्खदि त्ति** रूप मिलता है (शकु० १३, ६)। सभी प्राकृतों में

ऐसा ही पाया जाता है। अर्धमागधी इ के लिए § १३ देखिए। महाराष्ट्री इअ, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री इय, जो वाक्य के आरंभ में आते हैं, उनके संबंध में § ११६ देखिए, अर्धमागधी इच्चं के संबंध में § १७४ देखिए। महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में अनुस्वार और ह्रस्व स्वर के बाद इव का रूप व हो जाता है। दीर्घ स्वरों के बाद स्वरों के ह्रस्व होने और इव के रूप बदलने के संबंध में § १२ देखिए। पद्यों में ह्रस्व स्वर के बाद भी कभी-कभी इव हो जाता है महाराष्ट्री में कमलम् इव का कमलं व मिलता है (गउड ६६८), उत्कस्येव का उक्कस्स व रूप आता है (हाल ५१), पल्लेर् इव का पक्खोह व हो गया है (हाल २१८), आलान स्तंभेषु इव का आलाणखंभेसु व पाया जाता है (रावण १, १), किंतु मधुमथमनेव का महुमहणेण्व्व पाया जाता है (हाल ४२५), समुच्छ्वसंतीव का प्राकृत रूप समूससंति व्व मिलता है (हाल ६२५), दीर्घ इव का बाद व्व प्रयोग है (हाल १०५)। अर्धमागधी में पुष्पम् इव का पुप्फं व रूप मिलता है (उवास० § ९४)। जैनमहाराष्ट्री में पुष्पम् इव का पुप्फं व हो गया है (एर्त्से ४१, १४), कनकम् इव का कणग व मिलता है (कालका २५८, २९)। शौरसेनी और मागधी में यह रूप नहीं है, इन प्राकृतों में इसके स्थान पर भिन्न रूप चलता है (वररुचि १२, २४)। महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में इव रूप भी प्रचलित है। महाराष्ट्री में यह रूप गउडवहो में आया है ; अर्धमागधी में तकणा इव (सूय १९८) पाया जाता है, मेघम् इव का मेहं इव हो गया है (उवास § १ २) इस संबंध में § १८५ देखिए जैनमहाराष्ट्री में किंनरो इव मिलता है (आव एर्त्से ८, २८), तृणम् इव का तिणं इव रूप है, मन्मथ इव का वम्महो इव आया है (एर्त्से २४, १४ ; ८४, २१)। अपभ्रंश के लिए और महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री तथा पैशाची पिव विव और मिव के लिए § ३३६ देखिए।

१ इस प्रकार की वेबमपद्धति को बौँल्लें नसेन अपनी सम्पादित विक्रमो पेज १५१ और उसके बाद के पेज में बुरा बताता है जो वास्तव में उचित नहीं है।

§ ११६—शौरसेनी और मागधी में इदानीम् प्रत्यय के रूप में काम में लाया जाता है। अधिकतर स्थानों में इसके अर्थ का संकोच अब अच्छा और तब में हो जाता है। इन अर्थों में इसका प्राकृत रूप दाणिम् चलता है (हेमचन्द्र ४ २७७ १ २)। शौरसेनी में व्यापृत इदानीम् अहम् का रूप वावडो दाणिं अहं मिलता है (मृच्छ ४ २४) सा दाणिं सा दाणिं भी आया है (मृच्छ ९ ४ ८ १४०, १६ १७) किं अस्य इदानीम् का किं सु दाणिं हो गया है (मृच्छ ११ १) क इदानीम् सः का को दाणिं सो मिलता है (मृच्छ २८ ११) अनंतरकरणीयम् इदानीम् आज्ञापयत्वार्यः के लिए अर्णतर करणीअं दाणिं आणावेदु अज्जो रूप आया है (हेमचन्द्र ४ २७७=शकु २ ५)। मागधी में आलीविकेदानीम् संवृत्ता का रूप आलीविका दाणिं संवुत्ता मिलता है (मृच्छ १० ९) दो दाणिं के दाणिं भी मिलता है (मृच्छ १०, ११; २५),

एत्थ दाणिं (मृच्छ० १६२, १८) का प्रयोग भी है। **तोषित इदानीम् भर्ता** का **तोशिदे दाणि भट्टा** बन गया है (शकु० ११८, १)। अन्य प्राकृतों में इस रूप का प्रचलन बहुत कम है : पल्लवदानपत्र में **एॅत्थ दाणि** मिलता है (५, ७)। महाराष्ट्री में **अन्यां इदानीम् बोधिम्** का **अण्णम् दाणि बोहिं** रूप पाया जाता है (हेमचन्द्र ४, २७७), **किं दाणि** (हाल ३९०), **तो दाणि** (रावण० ११, १२१) भी प्रयोग में आये हैं। वाक्य के आरम्भ में और जब 'अभी' का अर्थ स्पष्ट बताना होता है तब शौरसेनी और मागधी में भी इ बना रहता है[1] : **इदाणिं** (मृच्छ० ५०,४, शकु० १०, २ , १८, १ , २५, ३ , ५६, ९ , ६७, ६ , ७७, ६ , ८७, १ , १३९, १, विक्रमो० २१, १२ , २२, १४ , २४, १ , २७, ४ आदि-आदि [सर्वत्र यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए])। महाराष्ट्री में इस शब्द का प्रयोग कहीं नहीं पाया जाता, वरन् इसमें **इण्हिम् , एण्हिम् , एत्तहे** काम में आते हैं। ये रूप शौरसेनी और मागधी में नहीं होते। वाक्य के भीतर भी अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी में **इयाणिं** और **इदाणिम्** का प्रयोग होता है (उदाहरणार्थ : आयार० १, १, ४, ३ , उवास० § ६६ , ओव० § ८६ , ८७ , आव० एर्त्से० १६, १४ , ३०, १० , ४०, ५, पव० ३८४, ६०), छन्द की मात्रा मिलाने के लिए अर्धमागधी में **इयाणिं** का प्रयोग भी देखा जाता है (दस० नि० ६५३, ४०)।

१. येनाएर लिटराटूरत्साइटुग १८७७, पेज १२५ में कापेलर का लेख। कापेलर ने अपने सम्पादित 'रत्नावली' के संस्करण में इस भेद के रूप को भली-भाँति बताया है।

§ १३७—प्रथम और द्वितीयपुरुष वर्तमान काल में **अस्** धातु का आरम्भिक अ तब लुप्त हो जाता है जब इनके रूपों का प्रयोग या व्यवहार प्रत्यय रूप से होता है . अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **अस्मि** के लिए **मि** (§ ४९८), महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **म्हि, सि** और मागधी में **स्मि** [पाठ में **म्हि** है] तथा **सि** चलते हैं। उदाहरणार्थ इस नियम के अनुसार अर्धमागधी में **वंचितो स्मीति** के लिए **वंचियो मि त्ति** पाया जाता है (उत्तर० ११६)। जैनमहाराष्ट्री में **विद्धो मित्ति** आया है (आव० एर्त्से० २८, १४)। महाराष्ट्री में **स्थितास्मि** के स्थान पर **ठिअ म्हि** मिलता है (हाल २३९)। शौरसेनी में **इयम् अस्मि** का **इअं म्हि** हो गया है (मृच्छ० ३, ५ , शकु० १, ८ , रत्ना० २९०, २८ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , नागा० २, १६ [यहाँ भी यही पाठ पढा जाना चाहिए], पार्वती० १, १८ [यहाँ भी यही पाठ होना चाहिए])। मागधी में **क्लान्तोऽस्मि** का **किलंते स्मि** रूप मिलता है (मृच्छ० १३, १०) , इस सम्बन्ध में § ८५ और ९६ भी देखिए।—महाराष्ट्री में **अद्यासि** का **अज्ज सि** रूप है (हाल ८६९), **त्वम् असि** का **तं सि** हो गया है (गउड० , हाल , रावण०), **दृष्टासि** का **दिट्ठा सि** मिलता है (रावण० ११, १२९) और **मूढा सि** रूप भी पाया जाता है (गउड० ८८७)। जैनमहाराष्ट्री में **का सि** मिलता है और **मुक्तोऽसि** का **मुक्को सि** (कालका० २६६, २५), **त्वम् असि** का **तं सि** (ऋषभ० ९५) हो गया है।

शौरसेनी में प्रत्यादिष्टोऽसि का पच्चादिट्ठो सि (मृच्छ ५, १), पृष्टासि का पुच्छिदा सि (मृच्छ० २८, २१) रूप मिलता है ; इस प्राकृत में वृतिं सि (मृच्छ ९१, १८), सरीरं सि रूप भी काम में आये हैं (मालवि० ३८,५)। मागधी में भास्तो सि ष्ठास्सो सि का शंते शि किलंते शि० रूप आया है (मृच्छ ११, ७) और दृष्टासि = दश्टा शि० हो गया है (मृच्छ० १७, १)। —अस्ति=अत्थि का प्रयोग प्रत्यय के रूप में कभी नहीं होता क्योंकि इसके भीतर यह है, यह अर्थ सदा वर्तमान है किंतु छिपा रहता है। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री में इसके स्थान पर अन्य क्रियाओं के साथ होइ रूप आता है। जैनशौरसेनी में हावि रूप है शौरसेनी और मागधी में भोदि (= भवति) काम में आता है। यह तथ्य लास्सन ने अपने ग्रन्थ इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए के पेज १९१ में पहले ही सूचित कर दिया है। अर्धमागधी नमो त्थु (र्थ) के संबंध में § १७५ और ४९८ देखिए। महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री त्थि य के विषय में § १७५ में लिखा गया है। अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी, मागधी तथा ढक्की र्ण=नूर्णं के विषय में § १५ में लिखा गया है।

§ ११८—अ में समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों के तृतीया एकवचन का अन्तिम अ अपभ्रंश प्राकृत में लुप्त हो जाता है (पिशल के ग्रन्थ में 'लुप्त हो जाता' के लिए 'गिर जाता है' या 'छूट जाता है', आया है।—अनु)। अग्निक्षेन का अग्गिएँ, यातेन का यार्ये (हेमचन्द्र ४, ३४३, १) ; एवं चिह्नेन का चें चिण्हें रूप मिलता है (विक्रमो ५८, ११)। क्रोधेन का कोहें (पिंगल १, ७७ अ), दयितेन का दइएँ‡ (हेमचन्द्र ४ ३३३ ३४२), वृषेन का वइये (हेमचन्द्र ४, ३३१) प्रहारेण का पहारें (विक्रमो ६५, ४), भ्रमता = भमता का भमंतें (विक्रमो २८ १ ६९, १ ; ७२ १), रूपेण का रूवें (पिंगल १ अ) सहजेन का सहजें (१, ४ अ) रूप मिलते हैं। इ और उ में समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों के तृतीया (करण कारक) एकवचन में आ भी पहले अ में परिवर्त होकर फिर लुप्त हो जाता है जैसे अग्निना का अग्गिणा होकर अग्गिण रूप बनता है। इसके साथ-साथ अग्गि रूप भी प्रचलित है (हेमचन्द्र ४ ३४३)। न् या म् (—) हो जाने के विषय में § ३४८ देखिए। अपभ्रंश में संस्कृत य प्रत्यय का इअ होकर इअ के अ का लोप हो जाता है शौरसेनी दृइअ का अपभ्रंश रूप दइ है‡ (§ ५९४)।

§ ११९—स्त्री शब्द की सरकृत रूपावली से प्रमाण मिलता है कि मूल में इस शब्द में दो अलग अलग अक्षर रहे होंगे। अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री जैनशौरसेनी और शौरसेनी में इस शब्द का रूप इत्थी पाया जाता है (हेमचन्द्र २, १३ इसके उदाहरण ७ और १९ में हैं)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में इत्थिया रूप भी

* इसके द्वारा बनका, मैथिली गुजराती कुमाउनी आदि भाषाओं में ए, ऐ आदि आए, ओ ए आदि रूप आये हैं। —अनु

† प्यारा आदि रूप इस और तथा इसके रूपों से निकले हैं। —अनु

‡ इसका रूप कुमाउनी में इ ही गया है। —अनु

चलता है (दस० ६२८, २ , द्वार० ५०७, २ , आव० एर्त्से० ४८, ४२), शौरसेनी में **इत्थिआ** रूप है (उदाहरणार्थ : मृच्छ० ४४, १ और २ , १४८, २३ , विक्रमो० १६, ९ , २४, १०, ४५, २१ , ७२, १८ , मालवि० ३९, २ , प्रबध० १७, ८ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , ३८, ५ , ३९, ६ आदि-आदि)। अपभ्रश में भी यही रूप मिलता है (मृच्छ० १४८, २२)। मागधी मे **स्त्रीका** से **इस्तिआ** रूप आया है (§ ३१०), यही पता चलता है कि इ किसी पुराने स्वर का अवशेष है। यह तथ्य योहानसोन ने ठीक ही जान लिया था।[1] महाराष्ट्री मे **इत्थी** का प्रयोग बहुत कम देखने में आता है और वह भी बाद के नये कवियो में मिलता है (अच्युत० १५ , प्रताप० २२०, ९ , साहित्यद० १७८, ३), **इत्थिअजण** भी मिलता है (शुकसप्तति ८१, ५)। शौरसेनी के लिए वररुचि १२, २२ मे **इत्थी** रूप ठीक ही बताता है[2]। अर्धमागधी में, विशेषतः कविता में, **थी** रूप भी चलता है (हेमचन्द्र २, १३० , आयार० १, २, ४, ३ , उत्तर० ४८२ , ४८३ , ४८५), **थिया = स्त्रीका** भी पाया जाता है (सूय० २२५), किन्तु फिर भी स्वय पद्य मे साधारण प्रचलित रूप **इत्थी** है। अपभ्रश में भी **थी** चलता है (काल्का० २६१, ४)।

१ शहबाजगढी (अशोक का प्रस्तरलेख—अनु०) १,१४९। किन्तु योहानसोन की व्युत्पत्ति अशुद्ध है। इसकी शुद्ध व्युत्पत्ति बेत्सेनबैर्गर ने नाखिष्टन फौन डेर कोएनिगलिशन गेज़ेलशाफ्ट डेर विस्सनशाफ्टन त्सु गोएटिंगन १८७८, २७१ और उसके बाद के पेजों में दी है। — २ पिशल द्वारा सपादित हेमचन्द्र का संस्करण २, १३० , त्साइटश्रिफ्ट डेर डौयत्शन मौर्गेनलैंडिशन गेज़ेलशाफ्ट २६, ७४५ में एस गौल्दश्मित्त का लेख और हाल[2] पेज ४५४ में वेबर की टिप्पणी देखिए।

(ऐ) स्वर-लोप

§ १४०—ध्वनिबलहीन स्वर, विशेषकर अ, शब्द के भीतर होने पर कभी-कभी उडा दिये जाते हैं **कलत्र** का ***कलत्र** होकर **कत्त** हो जाता है (= धर्मपत्नी . त्रिविक्रम १, ३, १०५ , इस सबध में बेत्सेनबैर्गर्स बाइत्रैगे ३, २५१ भी देखिए)। अर्धमागधी में **पितृष्वसृका** से ***पिउसृसिया** रूप बन कर **पिउसिया** हो गया है (हेमचन्द्र १, १३४ , २, १४२)। महाराष्ट्री में **पिउसिआ** (मार्कण्डेय पन्ना ४०) और अर्धमागधी में **पिउसिया** (विवाग० १०५, दस० ६२७, ४०) रूप है। अर्धमागधी में **माउसिया** (हेमचन्द्र १, १३४ , २, १४२ , पाइय० २५३ , विवाग० १०५ [पाठ में **मासिया** मिलता है, टीका मे शुद्ध रूप आया है] , दस० ६२७, ३९ [पाठ में **माउ सिउ त्ति** है])। महाराष्ट्री में **माउसिआ** (मार्क० पन्ना ४० , हस्तलिखित लिपि मे **माउस्सा आ** पाठ है), यह रूप **मातृष्वसृका** से निकला है। महाराष्ट्री **पिउच्छा, माउच्छा** (हेमचन्द्र १, १३४ , २, १४२ , मार्कण्डेय पन्ना ४०, पाइय० २५३, हाल), अर्धमागधी **पिउच्छा** (नायाध० १२९९, १३०० , १३४८), शौरसेनी मे **मादुच्छआ, मादुच्छिआ** (कर्पूर० ३२, ६ और ८)

§ २११ के अनुसार इस तथ्य की सूचना देते हैं कि प का छ हो गया है। पिउप्फसा से पुप्फा और पुप्फिआ कैसे बने इसका कारण अस्पष्ट है (देशी ६ ५२ पाइय २५१)। प्यूशर ने त्सा मौ गे० ४१, १४६ में और अर्नेस्ट कून ने कून्स त्साइट श्रिफ्ट ३१, ४७८ और उसके बाद के पेज में यह कारण बताने का प्रयास किया है, किंतु इ का लोप हो जाने का कहीं कोई उदाहरण देखने में नहीं आता। पूगफल का महाराष्ट्री में *पून्फल फिर *पुप्फल होकर पो ऍप्फल हो गया है (§ १२५ १२७ हेमचन्द्र १, १७ कर्पूर ९५ १), इसके साथ अर्धमागधी में पूयफल (सूय ९५), महाराष्ट्री और शौरसेनी में पूगफली से निकला रूप पो ऍप्फली (हेमचन्द्र १, १७० छप्पसत्तसि १२३, ९ विद्ध० ७५, २ [पाठ में पोफल्लि है]) मिलते हैं। अर्धमागधी में सनखपद का सणप्फय रूप पाया जाता है (सूय० २८८ ; ८२२ ठाणंग ३२२ पण्णव ४९ पण्हा ४२ उत्तर १ ७५)[1]। इस प्राकृत में सुरभि का सुब्भि रूप मिलता है (आयार १, ६, २, ४ १, ८, २ १ २, १, १, ४ २, ४ २ १८ सूय ४०९ ५९ ठाणंग २ सम १८ पण्णव ८ १ और इसके बाद के पेज ; पण्हा ५१८ ५१८ ; विवाह २९ ५१२ ५४४ उत्तर १ २१ १ २४), इसकी नकल पर दुब्भि शब्द बना दिया गया है और बहुधा सुब्भि के साथ ही प्रयुक्त होता है। विवाहपण्णत्ति २९ में सुब्भि दुरभि का प्रयोग हुआ है और आयार १, ५, ६, ४ में सुरभि दुरभि एक के बाद एक साथ-साथ मिलते हैं। खलु के प्राकृत रूप खु और हु में (§ ९४), जो *खलु से निकले हैं, ल इसलिए उड़ गया है कि खलु का प्रयोग प्रत्यय रूप में होता है। अर्धमागधी रूप उप्पि (उदाहरणार्थ ठाणग १७९ ४९२; विवाग ११७ २१६ २२६ २२७ २३५ ; २५३ विवाह १ ४ १९१ २३१ ; २० ४१ ४१४ ७९७ ; ८४६ जीवा ४३९ ४८१ आदि-आदि) से पता लगता है कि इसके मूल संस्कृत शब्द का ध्वनिबल पहले *उपरि या *उपरिं रहा होगा और महाराष्ट्री अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री उवरि, उंवरि से निकला है। महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में उवरि भी चलता है, मागधी में उवलि और महाराष्ट्री में अवरि का भी चलन है (§ १२३)।—जैनमहाराष्ट्री आउखा में, जो आतुज्जाया से निकला है, आ उड़ गया है (देशी ६, १ १ ; आव एर्त्से २७, १८ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए])। महाराष्ट्री और शौरसेनी मज्झण्ण में जो मध्य दिन से निकला है, इ का लोप हो गया है (वररुचि ३ ७ ; हेमचन्द्र २ ८४ क्रम २ ५४ मार्कण्डेय पन्ना २१ ; हाल ८३९ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; मालवि २७ १८ नागा १८ २ मल्लिका० ९७ ७ ; जीवा ८२ ९ [इसके साथ ४६ १ और १७ में मज्झण्ण से भी तुलना कीजिए], मागधी मय्यण्ण [पाठों में मज्झण्ण है] ; मृच्छ ११६ ६ ; मुद्रा १७५ १) मय्यहण्णिका रूप भी मिलता है (मृच्छ ११० १४)। शौरसेनी में मज्झदिन रूप है (शकु २९, ८)। प्राकृत व्याकरणकार मज्झण्ण की व्युत्पत्ति मध्याह्न से बताते हैं और यूरोपियन विद्वान उनका अनुसरण करते हैं।

ब्लौख[2] ने यह रूप अशुद्ध बताया है, पर उसके इस मत का खण्डन वाकरनागल[3] ने किया है किन्तु वह स्वयं भ्रम में पड़कर लिखता है कि इस शब्द में से ह उड़ जाने का कारण यह है कि प्राकृत भाषाओं में जब दो ह-युक्त व्यंजन किसी संस्कृत शब्द में पास पास रहते हैं तो उनके उच्चारण की ओर अप्रवृत्ति-सी रहती है। इस अप्रवृत्ति का प्राकृत में कहीं पता नहीं मिलता (§ २१४)।—अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **इषुशास्त्र** का **ईसत्थ** रूप मिलता है जिसमें से उ उड़ गया है (सम० १३१, पण्हा० ३२२ [पाठ में **इसत्थ** है], ओव० § १०७, एर्त्से० ६७, १ और २)[4]। अर्धमागधी में **षडुलूक** के लिए **छल्लुय** शब्द आया है (ठाणग० ४७२, कप्प० § ६ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए])। इसमें § ८० के अनुसार **उलूक** का **ऊ** ह्रस्व हो गया है। जैनमहाराष्ट्री **धीया** और शौरसेनी तथा मागधी **धीदा** एक ही हैं (वररुचि ४, ३ में प्राकृतमंजरी का उद्धरण है—**धीदा तु दुहिता मता**)। यह अधिकतर **दासी** से संयुक्त पाया जाता है। जैनमहाराष्ट्री में **दासीएधीया** मिलता है, शौरसेनी में **दासीएधीदा** और मागधी में **दाशीएधीदा** पाया जाता है (§ ३९२)। इस शब्द की व्युत्पत्ति **दुहिता**[5] के स्थान पर ***दुहीता** से हुई होगी। महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी **सुण्हा** (हेमचन्द्र १, २६१, हाल, आयार० १, २, १, १, २, २, १, १२, सूय० ७८७, अन्त० ५५, जीवा० ३५५, नायाध० ६२८, ६३१, ६३३, ६३४, ६४७, ६६०, ८२०, ११९०, विवाग० १०५, विवाह० ६०२, आव० एर्त्से० २२,४२, बाल० १६८,५ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), महाराष्ट्री **सों ण्हा** रूप में जिसमें § १२५ के अनुसार **उ** का **ओ** हो गया है, (वररुचि २, ४७, क्रम० २, ९१, मार्कण्डेय पन्ना ३९, हाल), कालेयकुतूहलम् १४, ७ में शौरसेनी में भी [पाठ में **सोह्णा** मिलता है] यह शब्द आया है। ये संस्कृत **स्नुषा** के रूप हैं और पैशाची **सुनुसा** (§ १३९) तथा ***सुणुहा** (§ २६३)[1] से निकले हैं। यही नियम अर्धमागधी **सुण्हत्त** के लिए भी लागू है, जो ***स्नुषात्व** से निकला है। (विवाह० १०४६), इसके साथ अर्धमागधी **ण्हुसा*** रूप भी चलता है (सूय० ३७७)। शौरसेनी में **सुसा** रूप हो गया है (हेमचन्द्र १, २६१, बाल० १७६, १५ [इसमें दिया गया रूप क्या ठीक है?])। **उदूखल** से निकले **ओहल** और **ओ क्खल** में **ऊ** उड़ गया है और अर्धमागधी रूप **उक्खल** है (§ ६६)। इससे ज्ञात होता है कि इसका ध्वनिबल का रूप **उलूखल*** न रहा होगा। **एत्तो, अण्णो** के सम्बन्ध में § १९७ देखिए।

१ पाठों में बहुधा यह शब्द अशुद्ध लिखा गया है। कून्स त्साइटश्रिफ्ट २४, ५७३ में ठीक ध्यान न रहने से इस शब्द को मैंने अव्ययीभाव बताया है। याकोबी उक्त पत्रिका ३५, ५७१ में ठीक ही इस भूल की निन्दा करता है, किन्तु वह यह बताना भूल गया है कि यह समास बहुव्रीहि है। ऐसा न करने से इसका अर्थ खुलता नहीं और जैसे का तैसा रह जाता है। — २. वररुचि और हेमचन्द्र पेज ३३ और उसके बाद का पेज। — ३ कून्स त्साइटश्रिफ्ट

* इस ण्हुसा का एक रूप नूं पंजाबी में वर्तमान है। —अनु०

११ ५०५ और उसके बाद का पेज ; भास्त्रह्मिंकसे ग्रामाटीक § १ ५ का नोट ; § १ ८ का नोट।—४ लौयमान द्वारा सम्पादित औपपातिक सूत्र तथा याकोबी द्वारा सम्पादित 'औसगेवैल्ते एर्से्लुंगन इन महाराष्ट्री' में तुप्पक्ष रूप देकर इसकी व्युत्पत्ति स्पष्ट की गयी है। किन्तु यह शब्दसामग्री और भाषाशास्त्र के नियम के अनुसार असम्भव है। पण्हावागरणाइं ३११ में इसका शुद्ध रूप अभयदेव ने रखा है अर्थात् यह = तुप्पाक्ष। इस सम्बन्ध में § ११७ भी देखिए। — ५ बे प्राकृत विपाकेमरो पेज ११ में होएफर और त्सा डे डी मौ गे ५ १९१ में इस शब्द की व्युत्पत्ति धै धातु से बने धीता शब्द से बताते हैं, मार्कण्डेयमिश्रित पेज १०२ में अन्य लेखकों के साथ लौयमानसेप भी धुहिदा = धुहिता बताता है इससे धीता की ई का कोई कारण नहीं सूझता। — ६ याकोबी के औसगेवैल्ते एर्से्लुंगन इन महाराष्ट्री की भूमिका के पेज १२ की नोट संख्या १ में बताया गया है कि चुसा से वर्णविपर्यय होकर सुण्हा रूप हो गया है जो अशुद्ध है। अर्धमागधी से प्रमाण मिलता है कि ण्हुसा बोलने में कोई कष्ट नहीं होता होगा जिससे यह शब्द भाषा से उड़ गया हो। इस सम्बन्ध में कून्स त्साइट्श्रिफ्ट ३३ ४०९ की तुलना कीजिए। क्रमदीश्वर २ ९१ में सोण्हा और पोहा दिया गया है। — ७ त्सा डे डी मौ गे २७ ५८२ में याकोबी का मत अशुद्ध है ; कून्स त्साइट्श्रिफ्ट ३४ ५७१ और इसके बाद के पेज में पिशल का मत।

(ओ) वर्णों का लोप और विकृति (अवपतन)

§ १४९—महाराष्ट्री और अपभ्रंश अत्थमण में य उड़ गया है क्योंकि यह अस्तमयन से निकला है (हाल हेमचन्द्र ४, ४४४, २)। संस्कृत में यह शब्द अस्तमन रूप में ले लिया गया है। अर्धमागधी णिम्म = नियम (पिंगल १, १०४ १४१)। इसमें § १९४ के अनुसार म का द्वित्व हो गया है। णिसाणी णिसाणिआ (= सीढ़ी देशी ४, ४१) = निःश्रयणी, निःश्रयणिका हैं। इसके साथ अर्ध मागधी में निस्सेणि० रूप भी चलता है (आयार २, १, ७, १ २ २ १, ४)। — भड़ शब्द में य का लोप हो गया है। यह शब्द भयट का प्राकृत रूप है (हेमचन्द्र १ २०१; पाइय० ११)। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में पयम् का पम् रूप मिलता है। पयम् पद का अर्धमागधी में पम् पद रूप है (ठाणंग ५०१ ; ५०२ दस ६११) जैनमहाराष्ट्री में पयमाइ का पमाइ मिलता है (एर्सें, सगर ८ १२) महाराष्ट्री में इसका रूप पमअ हो जाता है (गउड ; हाल), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री पमय मिलता है (हेमचन्द्र १, २०१ ; पाइय १६६ [यहाँ पाठ में पमय है] आयार २ १ ५ ४ ७, ५ ; २, ५, १ ११ ; उत्तर ४०२ ; ६११ ८ ४ दस नि ६४६, ; ६५ , २८ ; ६५२, ११ ; ६६ , २१ ; ६६२ ४२ आव एर्से १ १७)। जैनमहाराष्ट्री में पयत्तु और पयत्तुग

* हिन्दी में निसेनी और निसनी इस अर्धमागधी रूप से आये हैं। —अनु

(= इतना बड़ा : आव० एत्सें० ४५, ६ और ७), अर्धमागधी का **एमहालय** और स्त्रीलिंग का रूप **एमहालिया** (विवाह० ४१२, ४१५ [स्त्रीलिंग रूप], १०४१, उवास० § ८४), **एमहिड्डिया** (विवाह० २१४), **एसुहुम** (विवाह० ११९१ और उसके बाद, ओव० § १४०) होएर्नले[1] के नियम **ए = एवम्** से सिद्ध नहीं होते, बल्कि वेबर[2] के **इयत्** तथा इससे भी ठीक रूप *अयत् से निकले हैं। यही आधार अर्धमागधी रूप **एवइय** (विवाह० २१२, २१४, ११०३, कप्प०), **एवइखुत्तो** (कप्प०) और इनके समान **केमहालिया** (पण्णव० ५९९ और उसके बाद, जीवा० १८, ६५, अणुओग० ४०१ और उसके बाद के पेज, विवाह० ४१५), **केमहिड्डिय, केमहज्जुईय, केमहाबल, केमहायस, केमहासोॅक्ख, केमहाणुभाग** (विवाह० २११), **केमहेसक्ख** (विवाह० ८८७), **केवइय** (आयार० २, ३, २, १७, विवाह० १७, २६, २०९, २११, २३९, २४२, ७३४, ७३८, १०७६ और इसके बाद), **केवच्चिरं** (विवाह० १८०, १०५०, पण्णव० ५४५ और इसके बाद), **केवच्चिरं** (जीवा० १०८, १२८ और इसके बाद), महाराष्ट्री **केॅच्चिर, केॅच्चिरं** (रावण० ३, ३०, ३३)[3], शौरसेनी **केच्चिरं** (माल्ती० २२५, २ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], २७८, ८, विद्ध० १८, ११, ६१, ८, काल्ये० ९, २२), **केच्चिरेण** (माल्ती० २७६, ६) प्रमाणित करते हैं। वेबर ने पहले ही इन रूपों से वैदिक **ईवत्** की तुलना की है। इसी प्रकार **केव-** की तुलना में वैदिक **कीवत्** है। इस सम्बन्ध में § १५३, २६१ और ४३४ की तुलना कीजिए। **कलेर** (= पसलियाँ देशी० २, ५३, त्रिविक्रम १, ३, १०५) में भी **व** का लोप हो गया है। यह **कलेवर = कलेवर** से निकला है।[4] **दुर्गादेवी** से बना रूप **दुग्गावी** अपने ढंग का एक ही उदाहरण है।

1 उवासगदसाओ **एमहालय**। — २ भगवती १, ४२२। — ३. एस गौल्दश्मित्त लिखित **प्राकृतिका** पेज २३ नोट १। — ४. वेत्सेनबैर्गेर बाइत्रैगे ६, ९५ में पिशल का लेख।

§ १४२—अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, ढक्की और आवन्ती में प्रारम्भिक अक्षर की विच्युति **नूनम्** से निकले **णं** में स्पष्ट है (हेमचन्द्र ४, २८३, ३०२, उदाहरणार्थ . आयार० १, ६, ३, १, १, ७, १, ५, ३, १, ४, १ और २, ६, १ और ३, आदि-आदि, ओव० § २ और उसके बाद, उवास०, नायाध०, निरया०, कप्प०, आव० एर्त्से० १५, ३, १६, १७, १७, १२, एर्त्से०, काल्का०, मृच्छ० ४, १२, १७, २२, २३, २०, शकु० ३, ४, २७, ५, ३७, ७, मागधी मृच्छ० १२, १६, २२, ५, ३१, २, ८१, १५, ढक्की . मृच्छ० ३२, २३, आवती मृच्छ० १०३, १० और १३)। इस शब्द की व्युत्पत्ति **ननु**[1] से बताना, जैसा हेमचन्द्र ने ४, २८३ में किया है, ध्वनिबल के कारण खंडित हो जाता है क्योंकि **णं** शौरसेनी, मागधी और ढक्की में वाक्य के आरम्भ मे भी आता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि यह शब्द सदा ही पादपूरक अव्यय न था। किन्तु अर्धमागधी **णं** को, वेबर के मत के अनुसार, किसी सर्वनाम जाति **न** का अवलोप मानना और

नाटकों के र्ण से अलग समझना असम्भव है क्योंकि सर्वत्र इसका प्रयोग समान ही है। अर्धमागधी में कभी-कभी नूर्ण का प्रयोग ठीक ण के अर्थ में ही होता है, उदाहरणार्थ से नूर्ण (उवास § ११८ १७२ १९२), से र्ण (आयार २, १, १, १७ और उसके बाद का) जैसा ही है। इसके साथ नूर्ण वाक्य के आरम्भ में भी आता है, उदाहरणार्थ, जैनमहाराष्ट्री नूर्ण गहेय गहिय ति तेण तीए मम विन्नाº (आवº एर्से १२, २८) शौरसेनी : नूण एस दे अन्तरगदो मणोरधो (शकु १८, ११), मागधी नूर्ण शक्केमि (मृच्छ १४१, ?) देखिए। इसका यही प्रयोग है जो शौरसेनी और मागधी में र्ण का होता है। अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में र्ण नित्य ही मूर्धन्य ण से लिखा जाता है (§ २२८)। इससे प्रमाण मिलता है कि आरम्भ में यह ण शब्द के भीतर रहा होगा। इसका कारण सम्भवतः इसका वाक्य-पूरक अव्यय होना भी हो।—महाराष्ट्री ढिढलो = शिथिल (§ ११४ ; कर्पूर ८, ५ ; ७०, ८) जैसा भारत की वर्तमान भाषाओं[1] में (ढीला आदि) चलता है, साथ साथ दूसरे प्राकृत रूप सढिल, सिढिल भी चलते हैं (§ ११५)। इसके समान ही हॅस्ण शब्द भी है (= निधन : देशी ४, १६) जिसमें § ११९ के अनुसार इ के स्थानपर ऍ हो गया है।—ओय में अंतिम अक्षर की विच्युति है (= हाथी पकड़ने का गड्ढा : देशी १ १४९)। यह अवपत का प्राकृत रूप है। अर्धमागधी ओवाय (आयार २ १, ५, ४) और आभाम (देशी १, १६६) = अवपात है किसलय से किसल बना है, उसका य भी लुप्त हो गया है (हेमचन्द्र १ २६९) पिसल्ल की भी इससे तुलना कीजिए (§ २१२)। जेय = यत्न के लिए महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री में जं और अपभ्रंश में जि का प्रयोग प्रचलित है (§ ३३६)। यावत् तावत् के लिए महाराष्ट्री में ता काम में आता है : या ता (रावण १ १ और २७) में इसका प्रयोग हुआ है (§ १८५)। मागधी पडुक में भी अंतिम वर्ण उड़ गया है। यह पटोत्क्षेप का प्राकृत रूप है (मृच्छ २९, २)। सहिय=सहृदय में विच्युति नहीं मानी जानी चाहिए (हेमचन्द्र १ २६९)। यह शब्द मूल संस्कृत में *सहृद है जो न म समास हानवाल संज्ञाशब्दों में नियमित रूप स मिल गया है। इसी प्रकार हिअ (मार्कण्डेय पन्ना ११) अर्धमागधी हिय (आयार १, १, २, ५) = हृद है। मागधी रूप हडक्क (§ १ ४) = *हृदक है।

१ कासमल कृत इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए पन्ना १०३ ; बाइर्लिक द्वारा सम्पादित शाकुन्तला ४ ५ पन्ना १४९ आदि। —२ भगवती १ ४११ और उसके बाद के पन्ने। —३ हेमचन्द्र १ ४९ पर पिशल की टीका।

(औ) सम्प्रसारण

१४१ प्राकृत में सम्प्रसारण ठीक उ ही अवस्थाओं पर होता है जिन पर संस्कृत में स्वनिकरहीन अक्षर में य का इ और व का उ हो जाता है : यज् धातु से इट्ठ बना।

* दि ० दीक्षा दिया का रूप — *
† देखा का रूप — *

शौरसेनी मे इसका रूप **इट्ठि** है (शकु० ७०, ६)। **वप्** से **उत्त** बना, महाराष्ट्री मे इसका रूप **उत्त** है (गउड०)। **स्वप्** से **सुत्त** निकला, इसका महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **सुत्त** रूप है (हाल , कप्प० , एर्त्से०)। प्राकृत मे किन्तु कई ऐसे शब्दों मे ध्वनि का यह परिवर्तन दिखाई देता है जिनमे सस्कृत मे **य** और **व** बने रहते है : **य** की ध्वनि **इ** कर देनेवाले कुछ शब्द ये है : **अभ्यन्तर** का अर्धमागधी में **अब्भिंतर** रूप है (नायाध० , ओव० , कप्प०)। **तिर्यक्** शब्द कभी किसी स्थानविशेष मे ***तिर्यक्ष** बोला जाता होगा, उससे अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **तिरिक्ख** हो गया है (ठाणग० १२१ , ३३६ , सूर्य० २९८ , भग० , उवास० , ओव० , कप्प० , एर्त्से०)। महाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश में इसका रूप **तिरिच्छि*** हो जाता है (हेमचन्द्र २, १४३ , ४, २९५ , कर्पूर० ३७, ५ , मल्लिका० ७४, २ [पाठ मे **तिरच्छ** है], हेमचन्द्र ४, ४१४, ३ और ४२०, ३) , मागधी में **तिलिश्चि** (हेमचन्द्र ४, २९५ [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए]), शौरसेनी में **तिरिच्छ*** रूप (बाल० ६८, १४, ७६, १९, २४६, ९ , विद्ध० ३४, १० , १२४, ३)है, अर्धमागधी में **वितिरिच्छ** पाया जाता है (विवाह० २५३)। अर्धमागधी मे **प्रत्यनीक** का **पडिनीय** पाया जाता है (ओव० § ११७) , **व्यजन** का **विअण** रूप है (वररुचि १, ३ , हेमचन्द्र १, ४६ , क्रम० १, २ , मार्कण्डेय पन्ना ५)। महाराष्ट्री मे **व्यलीक** का **विलिअ** (हेमचन्द्र १, ४६ , हाल) पाया जाता है। महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में भविष्यकालवाचक शब्द, जैसे **काहिमि**, जो ***कर्ष्यामि** से निकला है और **दाहिमि**, जो ***दास्यामि** से बना है और **इहिसि-**, **इहिइ-**, जो शब्द के अन्त में जुडते है, इस शीर्षक के भीतर ही आते हैं (§ ५२० और उसके बाद)। **बाहिं** के सम्बन्ध में § १८१ देखिए। अर्धमागधी में कभी कभी गौण **य**, जो किसी दूसरे व्यजन के स्थान पर बैठा हुआ हो, **इ** बन गया है . **आचार्य** के लिए **आइरिय** और **आयरिय** रूप आते है (§ ८१ और १३४)। **राजन्य** का **रायण्ण** रूप होकर **राइण्ण** हो गया है (ठाणग० १२०, सम० २३२, विवाह० ८०० , ओव० , कप्प०)।[१] **व्यतिक्रान्त** = अर्धमागधी **वीइक्कंत** में **य** का **इ** हो गया है (आयार० २, १५, २, २५ [पाठ में **विइक्कंत** है], नायाध० , कप्प० [इसमें **विइक्कंत** भी मिलता है], उवास० [इसमें **वइक्कंत** है])। **व्यतिव्रजमाण** का **वीईवयमाण** हो गया है (नायाध० , कप्प०), ***व्यतिव्रजित्वा** का **वीईवइत्ता** रूप मिलता है (ओव०)।[२] **स्त्यान** = **थीणा** और **ठीणा** में **या** के स्थान पर **ई** हो गया है (हेमचन्द्र १, ७४ , २, ३३ और ९९), इसके साथ साथ **ठिण्ण** रूप भी मिलता है। महाराष्ट्री में **ठिण्णअ** रूप है (रावण०)।

१ कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३४, ५७० से यह अधिक शुद्ध है, याकोबी ने कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५७३ में अशुद्ध लिखा है । जैन हस्तलिखित प्रतियों मे बहुधा य और इ आपस में बदल जाते है, यहाँ इस प्रकार का हेरफेर नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि यह शब्द सदा इ से लिखा जाता है और आइ-

* ये तिरछी, तिरछा के आदि-प्राकृत रूप हैं। —अनु०

रिय शब्द के विषय में प्राकृत व्याकरणकारों ने स्पष्ट रूप से बताया है कि इसमें ह् आ गया है। — २ इससे यह मालूम होता है कि विभिन्न रूप से हमें भी लिखना चाहिए न कि थि या ध। दूसरी ई का दीर्घत्व § ० के अनुसार है।

§ १४४—थ का ध हो जाता है और संयुक्त व्यंजन से पहले ओ भी हो जाता है (§ १२५): अर्धमागधी में अश्वत्थ के अंसोत्थ, अस्सोत्थ और आसोत्थ रूप मिलते हैं (§ ७४)। गवर्य = गउअ होता है और स्त्रीलिंग में गउआ होता है (हेमचन्द्र १, ५४ और १५८ २, १७४ ३, ३५)। अपभ्रंश में यावत् का जाउँ और तावत् का ताउँ (हेमचन्द्र ४, ४ ६ और ४२३, २ ४२६, १ [यहाँ जाउँ पढ़िए])। महाराष्ट्री और अपभ्रंश में त्वरित का तुरिअ पाया जाता है (वररुचि ८,५ हेमचन्द्र ४, १७२; गउड हाल रावण पिंगल १, ५) अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में तुरिय रूप मिलता है (पाइय १७१ विवाह १४९ नायाध ओव कप्प), शौरसेनी में इसका रूप तुरिद होता है (मृच्छ ४, २४ ४१, १२; १७ ४ रत्ना २९७, १२; वेणी० २२, २ मालती २८४ ११ २८९ ६ आदि-आदि), मागधी रूप तुलिद मिलता है (मृच्छ ११, २१ ९६, १८; ९७ १ ९८, १ और २ ११७ १५; ११२, ११ १७१, २; चंड ४१, ८), अपभ्रंश, दाक्षिणात्या और आवंती में तुरिअ रूप प्रचलित है (विक्रमो ५८, ४ मृच्छ० ९९,२४ १ ३ और ११)। चित्वक् का चीसु रूप मिलता है (हेमचन्द्र १, २४ ४१ ५२) स्वपिति से *स्वपति रूप बना होगा जिससे सुअइ, सुवइ रूप बन गये जैनमहाराष्ट्री में सुयइ रूप मिलता है। जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में सुवामि रूप है और अपभ्रंश में सुअहि पाया जाता है (§ ४९७)। अर्धमागधी में स्वप्न का सुविण*, सुमिण हो गया है अपभ्रंश में सुइणअ रूप है (§ १७७)। वास्तव में ये रूप सुअइ सुवइ आदि क्रियाओं पर आधारित हैं। महाराष्ट्री और शौरसेनी में स्वस्ति का सोत्थि रूप मिलता है (क्रम २ १४८ हाल मृच्छ ६ २१; ९५, ४; ५४ ११ और १९ ७१, १८ विक्रमो १५ १६; २९ १ ४४, ५ आदि-आदि), स्वस्तिवाचन का सोत्थि-वाअण (विक्रमो ४१, १४; ४४ ११) सोत्थिवाअणअ (विक्रमो २६, १५) हो गया है, अर्धमागधी में स्वस्तिक का सोत्थिय रूप काम में आता है (पण्हा २८१ और २८६ ओव)। शावनिक (= कुत्ते का रखवाला सूय ७१४ किंतु इसी ग्रंथ के ७२१ में सोवणिय शब्द मिलता है), अर्धमागधी में सोणिय मिलता है। गौण य जो प्राकृत भाषा में ही आविर्भूत हुआ हो, कभी-कभी उप प्रत्यय में ड हो जाता है (§ १५५); इसके अतिरिक्त अपभ्रंश में नाम का *णाथम् रूप बन कर णाउ हो जाता है (हेमचन्द्र ४; ४२६, १)। कभी-कभी गौण उ भी ध में बदल जाता है जैसे सुअइ का सोयइ, जैनमहाराष्ट्री में सोॅत्ति, सोउं रूप मिलते हैं अपभ्रंश में सोयवा सोवण; अर्धमागधी में आसोवणी,

* कुमाउनी बोली में स्वप्न को स्वीण कहते हैं। —अनु

सोवणी रूप है। इन सब का आधार **स्वप्** धातु है (§ ७८ और ४९७), इस प्राकृत में **श्वपाक** का **सोवाग** और **श्वपाकी** का **सोवागी** रूप है (§ ७८) और **उ** से आविर्भूत **ओ॑** भी दीर्घ हो जाता है, जैसे महाराष्ट्री मे **स्वर्णकार = सोणार** (§ ६६)। पल्लवदानपत्र, महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे जहाँ **करके** बताना होता है वहाँ **त्वा** का **ऊ** हो जाता है : वैदिक **-त्वानम्** इन प्राकृत भाषाओं में **-तूणं**, पैशाची में **तूनं**, महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **-ऊणं, तूण**, पैशाची मे **तून**, जैनशौरसेनी मे **-दूण**, महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **-ऊण** रूपों में पाया जाता है। पल्लवदानपत्र मे **कातूणं** पाया जाता है, पैशाची मे **कातूनं**, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **काऊणं**, जैनशौरसेनी में **कादूण**, महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री मे **काऊण** रूप मिलते है , ये सब ***कर्त्वानम्** और ***कर्त्वान** के नाना प्राकृत रूप है (§ ५८४ और उसके बाद)। **दो** और **दु** के विषय में जो सस्कृत **द्वि** के रूप समझे जाते है, § ४३५ देखिए।

§ १४५—सप्रसारण के नियम के अधीन **अय** का **ए** और **अव** का **ओ** मे बदलना भी है। इस प्रकार दसवे गण की प्रेरणार्थक क्रियाओं और इसी प्रकार से बनी सज्ञाओं मे **अय** का **ए** हो जाता है, जैसे पल्लवदानपत्र में **अनुप्रस्थापयति** का **अणुवट्ठावेति** रूप आया है, अर्धमागधी में **ठावेइ** रूप पाया जाता है और महाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा जैनमहाराष्ट्री में **ठवेइ** रूप **स्थापयति** के लिए आते है (§ ५५१ और उसके बाद का §)। **कथयति** के लिए महाराष्ट्री और अर्धमागधी में **कहेइ** और मागधी मे **कधेदि** हो जाता है। **कथयतु** का शौरसेनी मे **कधेदु** रूप है (§ ४९०)। **शीतलयति** का शौरसेनी में **सीदलावेदि** रूप है (§ ५५९)। निम्नलिखित उदाहरणों में भी यही नियम लागू है : **नयति** का महाराष्ट्री रूप **णेइ** और जैनमहाराष्ट्री **नेइ** होता है। शौरसेनी में **नयतु** का **णेदु** रूप है (§ ४७४)। ***दयति** का महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में **देइ** तथा शौरसेनी मे **देदि** होता है। मागधी मे ***दयत** का **देध** होता है (§ ४७४)। **त्रयोदश = *त्रयदश** का अर्धमागधी में **तेरस** और अपभ्रश में **तेरह** हो जाता है (§ ४४३)। **त्रयोविंशति=*त्रयविंशति** का अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **तेवीसम्** और अपभ्रश मे **तेइस** होता है। **त्रयस्त्रिंशत** के अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **ते॑त्तीसं** और **तित्तीसं** रूप होते हैं (§ ४४५)। **निःश्रयणी** का अर्धमागधी मे **निस्सेणी** बन जाता है (§ १४९)।—**लयन** का अर्धमागधी में **लेण** हो जाता है (सूय० ६५८, ठाणग० ४९०, ५१५, पण्हा० ३२, १७८, ४१९, विवाह० ३६१ और उसके बाद का पेज, ११२३, ११९३, ओव०, कप्प०)।—महाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश **पे॑त्तिअ** (हेमचन्द्र २, १५७; गउड०, हाल, मृच्छ० ४१, १९, ६०, १२, ७७, १० और २४, विक्रमो० ४५, ४, मालवि० २६, १०, मालती० ८२, ९, उत्तर० १८, २, ६६, १, ७२, ६, हेमचन्द्र ४, ३४२, २), जैनमहाराष्ट्री **पे॑त्तिय** (आव० एर्त्से० १८, ६, एर्त्से०), शौरसेनी और मागधी **पे॑त्तिक** (शकु० २९, ९, ५९, ३, ७०, १०, ७१, १४, ७६, ६, विक्रमो० २५, ७, ४६, ८, ८४, ९, मागधी मृच्छ० १२५, २४, १६५,

१४ धकु ११४, ११), इत्तिय० (हेमचन्द्र २, १५६) न तो व्लत्स्न¹ के बताये ०मति और न ही एस० गौल्दश्मित्त² की सम्मति के अनुसार हेमचन्द्र से सम्बन्धित सीधे इयत् से निकले हैं बल्कि ये एक ०अयत् की सूचना देते हैं जो ०अयत्तिय की स्वरभक्ति के साथ ०अयत्त से निकला होगा। इससे मिलते जुलते संस्कृत रूप इयत्य, कत्य और तत्रत्य हैं। इसी प्रकार का शब्द महाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश कॅत्तिअ और (हेमचन्द्र २, १५७ हाल मृच्छ ७२, ६ ; ८८, २० विक्रमो १, ८ हेमचन्द्र ४, १८३, १) जैनमहाराष्ट्री कॅत्तिय (एत्सें) है जो कयत्तिय का है और ०कयत्य तथा ०कयत्तिय है। अर्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनी संयुक्त शब्दों के आरम्भ के य-और ये-इस नियम के अनुसार सिद्ध होते हैं (§ १४९)। इस नियम से सिद्ध शब्दों की नकल पर बने शब्द ये हैं : महाराष्ट्री जॅत्तिअ (हेमचन्द्र २,१५७ गउड० हाल रावण०), मागधी यॅत्तिअ और यॅत्तिअ (मृच्छ० १३२, ११ ११९, ११), जित्तिअ (हेमचन्द्र २,१५६), महाराष्ट्री, मागधी और अपभ्रंश तॅत्तिअ (हेमचन्द्र २, १५७ गउड हाल रावण मृच्छ १११, १२ हेमचन्द्र ४, ३९५, ७), मागधी तॅत्तिक (मृच्छ० १३२, १४), तित्तिअ (हेमचन्द्र २, १५६)। इनसे निकले शब्द ये हैं : एॅत्तिल कॅत्तिल, जॅत्तिल और तॅत्तिल (हेमचन्द्र २, १५७), जैनमहाराष्ट्री एत्तिलिय (आव एत्सें ४८, ७) और अपभ्रंश एॅत्तुल कॅत्तुल, जॅत्तुल और तॅत्तुल (हेमचन्द्र ४, ४३५)।

१ इण्डिशेस्टूडिएन ३९५ प्राकृतिकाए पेज १२५। — २ प्राकृतिका पेज २१।

§ १४६—अव अउ होकर ओ बन गया है, उदाहरणार्थ महाराष्ट्री में अवतरण का ओअरण हो गया है (गउड हाल)। अवतार का महाराष्ट्री में ओआर (गउड हाल), शौरसेनी में ओदार (धकु २१, ८) और साथ-साथ अवआर (विक्रमो २१ १) हो गया है। शौरसेनी म अवतरति का ओदरदि रूप है ; मागधी में अवतर का ओदल बन गया है (§ ४७७)। अवग्रह का जैनशौरसेनी में ओग्गह बन गया है (पव ३८१, १२)। अर्धमागधी म अवम का रूप ओम पाया जाता है (ठाणंग १२८ उत्तर १५२ ७१८ ९१८), अवमम का अओम रूप आया है (आयार १, १ २, १), अवमान का ओमाण हो गया है (उत्तर ७९), अवपात का ओवाय रूप चलता है (सूय ५२१)। इस प्रकार सभी प्राकृत भाषाओं में अव उपसर्ग का रूप बहुधा ओ पाया जाता है (वररुचि ४ २१ हेमचन्द्र १ १७२ ; मार्कण्डेय पन्ना ३५)। अवश्याय का अर्धमागधी में ओसा रूप है (सूय ८२१ ; उत्तर ३११ दस ६१६,२१) उस्सा रूप भी मिलता है (ठाणंग १११ ; कप्प § ८१, इसमें ओसा रूप भी है जो सर्वत्र ही पढ़ा जाना चाहिए) जो ओॅस्सा रूप बन कर ठक रूप में परख गया हो। अवओस रूप भी चलता है (आयार २ १, ४ १), अप्पोस (आयार

* इसका एक रूप पुॅस्-क कुमाउनी बोली में सुरक्षित है। दूसरा रूप इधे पंजाबी में चलता है। —अनु

१, ७, ६, ४, २, १, १, २) रूप भी है। महाराष्ट्री और शौरसेनी मे **अवश्याय** का **ओसाअ** रूप मिलता है (रावण०, विक्रमो० १५, ११ [यहाँ तथा पिशल द्वारा सम्पादित द्राविड सस्करण ६२५, ११ मे यही पाठ पढा जाना चाहिए])। **अवधि** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री मे **ओहि** रूप मिलता है (हाल, उवास०, ओव०, कप्प०, एर्त्से०)। **यवनिका** का अर्धमागधी मे **जोणिया** रूप मिलता है (विवाह० ७९२ ; ओव०, नायाध०), किन्तु **जवण** रूप भी पाया जाता है (पण्हा० ४१, पण्णव० ५८), **जवणिया** रूप भी आया है (कप्प०), **नवमालिका** का महाराष्ट्री और शौरसेनी मे **णोमालिआ** मिलता है (हेमचन्द्र १, १७०, हाल, मृच्छ० ७६, १०, ललित० ५६०, ९, १७, २१ [इसमें यह किसी का नाम है], माल्ती० ८१, १, शकु० ९,११, १२, १३, १३, ३, १५, ३), **नवमल्लिका** का **णोमल्लिआ** (वररुचि १, ७) रूप पाया जाता है और **नवफलिका** का महाराष्ट्री में **णोहलिया** रूप है (हेमचन्द्र १,१७०, क्रम० २, १४९ [इसमें **णोहलिअम्** पाठ है], हाल)। **लवण** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश रूप **लोण** है (वररुचि १,७, हेमचन्द्र १,१७१, क्रम० १,८, मार्कण्डेय पन्ना ६, गउड०, हाल, कालेय० १४, १३, आयार० २, १, ६, ६ और ९, २, १, १०, ७, सूय० ३३७, ८३४, ९३५, दस० ६१४, १५ और १६, ६२५, १३, आव० एर्त्से० २२, ३९, हेमचन्द्र ४, ४१८, ७, ४४४, ४), पल्लवदानपत्र और जैनमहाराष्ट्री में **अलवण** का **अलोण*** हो गया है (६, ३२, आव० एर्त्से० २२, ३९), जैनमहाराष्ट्री में **लोणिय*** और **अलोणिय*** रूप मिलते हैं (आव० एर्त्से० २२, १४, ३०, ३१)। मार्कण्डेय पन्ना ६६ के अनुसार शौरसेनी में केवल **लवण** है। **भवति** का महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और अपभ्रंश में **होइ**, जैनशौरसेनी **होदि**, शौरसेनी और मागधी में **भोदि** होता है (§ ४७५ और ४७६)। कभी गौण **अव**, जो **अप** से बनता है, **ओ** मे परिणत हो जाता है (वररुचि ४, २१, हेमचन्द्र १, १७२, मार्कण्डेय पन्ना ३५), जैसा **अपसरति** का महाराष्ट्री और जैनमहाराष्ट्री में **ओसरइ** हो जाता है, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **अपसर** का **ओसर** मिलता है तथा मागधी में **अपसरति** का रूप **ओशलदि** पाया जाता है (§ ४७७)।— महाराष्ट्री **आवलि = ओलि** मे **आव ओ** के रूप में दिखाई देता है (हेमचन्द्र १, ८३, इस व्याकरणकार ने इसे = **आली** बताया है, गउड०, हाल ; रावण०), यही रूपांतर अपभ्रंश **सलावण्य = सलोणं**† (हेमचन्द्र ४, ४४४, ४) और **लावण्य = लोॅण्ण** में दिखाई देता है (मार्कण्डेय पन्ना ६)। यह **लवण=लोण** की नकल पर है। मार्कण्डेय पन्ना ६६ के अनुसार शौरसेनी में केवल **लावण्ण** है, यही रूप शकुन्तला १५८, १० में पाया जाता है।

§ १४७—हेमचन्द्र १, १७३ के अनुसार **उप** प्राकृत मे **ऊ** और **ओ** मे बदल जाता है। उसने निम्नलिखित उदाहरण दिये हैं **ऊहसियं**, **ओहसियं**, **उवहसियं**=

---

* कुमाउनी में अलुणो और अलुणिय रूप में यह रूप आज भी सुरक्षित है। —अनु०

† हिन्दी रूप सलोना=सलावण्यक=अपभ्रंश सलोणअ है। —अनु०

उपहसितम्, उज्झाओ ओज्झाओ, उवज्झाओ=उपाध्यायः। ऊआसो ओआसो, उवयासो=उपवासः। मार्कण्डेय पन्ना ३१ में लिखा गया है कि यह भी किसी किसी का मत है (कस्यचिन् मते)। जैनमहाराष्ट्री पद्य में जो उज्झाअ रूप का प्रयोग पाया जाता है (एर्से० ६९, २८; ७२, ३१) यह *उउज्झाअ से *ऊज्झाअ बनकर हो गया है=महाराष्ट्री और शौरसेनी उवज्झाअ (हाल; कर्पूर ६, ३ विक्रमो १६, १ ५ और १२; मुद्रा ३५, ९ ३६, ८ और १ ३७, १ प्रिय ३४, १८; ३७; ३१; ३५, १५), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री उवज्झाय (आयार २, १, १०, १ ७, १, २, १ और इसके बाद; सम० ८५; ठाणंग ३१८ और बाद का पेज; ३६३; १८४ और उसके बाद के पेज; एर्से)=उपाध्याय। इसमें § १२२ के अनुसार य का उ हो गया है और साथ-साथ आ आनेवाले दो उ दीर्घ हो गये हैं। ऊहसिय में भी यही मार्ग तय किया गया है (हेमचन्द्र) उपहसित=उवहसिय=*उउहसिय=ऊहसिय। इसके साथ-साथ जनता के मुह में इसका एक रूप ऊहट्ठ (=हँसना देशी १, १४०) हो गया। यह उपहसित का उपहस्त होकर बना। इसके अतिरिक्त उपवास=उवआस=*उउआस=ऊआस (हेमचन्द्र) *उपर्तवित=ऊर्णविअ (=आर्द्रित: देशी १, १४१) ऊयट्ठ (पाइय १०७)=उपवृष्ट और ऊसित्त (पाइय १८७)[1] =उपसिक्त। इसके विरुद्ध जो बातें सम रूप उप पर आधारित नहीं है। ओज्झाअ में जिससे वर्तमान भारतीय भाषाओं में ओझा[?] बना है ओ की सिद्धि § १५५ के अनुसार होती है। अर्धमागधी में प्रत्युपकार=पडोयार, प्रत्युपकारयति=पडोयारेइ (§ १६३), यदि यह पाठ शुद्ध हो तो ओ की सिद्धि § ७७ के अनुसार होती है। शेष सभी उदाहरणों में ओ=अव या उप होता है जो § १५४ के अनुसार है भले ही संस्कृत में इसके जोड़ का कोई शब्द न मिले। इस हिसाब से ओहसिअ (हेमचन्द्र)=अपहसित और ओहट्ठ (देशी १ १५१)=*अपहस्त ओआस (हेमचन्द्र)=*अपवास ओसित्त (देशी १ १५८)=अवसिक्त। उम का कभी ओ नहीं होता क्योंकि महाराष्ट्री ओ (राक्षण) को हेमचन्द्र १, १७२ तथा अधिकतर टीकाकार और विद्वान उत का प्राकृत रूप बताते हैं, अन्य इसे अथ या का रूप मानते हैं[1], यह पाली शब्द आदु से निकला है, अर्धमागधी में इसका रूप अदु है (सूय ११८ १७२ १४८ २५३ ५१४ उत्तर ९), अदु वा भी मिलता है (सूय १९ ४६ १२; १४२; उत्तर २८ ११३; १८ १२८; सम ८२ ८३) अदु य रूप भी पाया जाता है (सूय १८२ २४९ सम ८१) शौरसेनी और मागधी में आदु रूप मिलता है (मृच्छ २ २१ १, १४ ४ १ १७ २१ ५१ २४ ७१ ४ मालती ७७ १ प्रिय १ ११ १७ १४; अद्भुत ५१ १ मागधी: मृच्छ २१ १४ १३२, २१ १५८, ७)। यह कभी-कभी ओ=अथ या बताया जाता है। यौ *आउ और *अउ से भी निकला है।

१ अन्तिम दोनों उदाहरणों में ऊ=उद् भी कहा जा सकता है, जो § ११

और ३२७ अ के अनुसार अधिकांश में होता ही है। — २. क्रुक कृत 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द पौप्युलर रिलीजन ऐंड फौकलोर औफ नौर्दर्न इण्डिया' (प्रयाग १८९४), पेज ९६ का नोट। अन्य विद्वानों के साथ पिशल ने भी गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगन १८९४, ४१९ के नोट की संख्या १ में अशुद्ध लिखा है। —३ एस० गौल्दश्मित्त द्वारा सम्पादित रावणवहो में ओ के सम्बन्ध में देखिए। —४. कर्न अपने ग्रन्थ 'वियद्रागे टोट डे फैरक्लारिंग फान एनिगे वोर्डन इन पाली—गेश्रिफ्टन फोरकौमेंडे' (ऐम्सटरडैम १८८६), पेज २५ में इसे वैदिक आद् उ से निकला बताता है जो अशुद्ध है। इस सम्बन्ध में फौसबौल कृत 'नोगले बेमैर्कनिंगर ओम एनकेल्टे फान्सकेलिगे पाली—औड इ जातक वोगेन' (कोपनहागन १८८८), पेज २५ और उसके बाद के पेज। इन शब्दों के अर्थ एक नहीं, भिन्न-भिन्न है। — ५. याकोबी ने त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ४७, ५७८ और कून्स त्साइटश्रिफ्ट ३५, ५६९ में अशुद्ध बात छापी है। पाली ओक = उदक, *उक्क और *ओक्क से बना है। इसकी सिद्धि § ६६ से होती है। अर्धमागधी अदु अतः से नहीं निकला है (वेबर द्वारा सपादित भगवती १, ४२२ , ए० म्युलर कृत बाइत्रैगे, पेज ३६) क्योंकि अर्धमागधी में त का द नहीं होता। § २०३, २०४ से भी तुलना कीजिए।

(अं) स्वर-संधि

§ १४८—समान स्वर जब एक साथ आते है तब उनकी सन्धि हो जाती है और वे सस्कृत के समान ही मिल जाते हैं, अ, आ + अ, आ मिलकर आ हो जाते हैं, इ, ई + इ, ई मिलकर ई हो जाती हैं, उ, ऊ + उ, ऊ मिलकर ऊ बन जाते हैं। पल्लवदानपत्र मे **महाराजाधिराजो** (५, २) आया है, **आरक्षाधिकृतान्** के लिए **आरक्खाधिकते** रूप है (५, ५), **सहस्रातिरेक** का **सहस्सातिरेक** हो गया है (७, ४२), **वसुधाधिपतीन्=वसुधाधिपतये** (७, ४४), **नराधमो** (७, ४७) भी आया है। महाराष्ट्री* में **कृतापराध** के लिए **कआवराह** (हाल ५०) मिलता है। अ० माग० में **कालाकाल** (आयार० १, २,१,१) , जै० महा० में **इंगियाकार** (आव० एर्त्से० ११,२२) , जै० शौर० में **सुरासुर** (पव० ३७९, १) , शौर० में सस्कृत सन्धि **क्लेशानल** का **किलेसाणल** रूप है (ललित० ५६२, २२) , माग० में **द्यूतकरावमान** का **दूदिअलावमाण** मिलता है (मृच्छ० ३९, २५) , अप० मे **श्वासानल** का **सासाणल** (हेमचन्द्र ४, ३९५, २), महा० में **पृथिवीश** का **पुहवीस** रूप है (हाल ७८०) , अप० मे **अश्रूच्छ्वासैः** का **अंसूसासहिँ** है (हेमचन्द्र ४, ४३१)। गौण स्वरों की भी इसी प्रकार सन्धि हो जाती है। महा० मे **ईषत्+ईषत्** के **ईसीस** और **ईसीसि** रूप मिलते हैं (§ १०२)।

* यहाँ तक हमने महाराष्ट्री, अर्धमागधी आदि प्राकृत भाषाओं के पूरे नाम दिये थे। अब इस विश्वास से कि पाठकों को इनका अभ्यास हो चुका होगा, इनके संक्षिप्त रूप दिये जा रहे हैं।—अनु०

§ ८३ के अनुसार व्यंजनों के द्वित्व (संयुक्त व्यञ्जन) के पहले का दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है : महा० में ऊर्ध्वोष्ठ = उद्धच्छ (हाल १६१), कवीन्द्र=कइंद (कर्पूर० ६, ९); जै० शौर० में मतीन्द्रियत्व = मदिंदियत्त (पव० ३८१, २०) अ० माग० में गुणार्थिन् = गुणट्ठि। आयार (१,२,१,१) जै० महा० में एकाक्ष = एगच्छ (आव० एर्त्से० १२,२७) शौर० में अभ्यन्तर=अब्भंतरे (मृच्छ० ४, ५); माग० में अन्यग्रामान्तर = अण्णगामंतल (मृच्छ० १३, ८); पल्लवदानपत्र में अग्निष्टोमवाजपेयस्समेधयाजी मिलता है (५, १)। अ० माग० में पद्य में अर्धमुक्त साधारण व्यंजन से पहले आये हुए दा का ह्रस्व अ हो जाता है : राजामात्य का रायमच्च रूप मिलता है (सूय० १८२ ; दस० ६२४, २२)। बहुधा अ० माग० में और कभी-कभी जै० महा० और जै० शौर० में समान स्वर मिलते नहीं, उनकी संधि नहीं की जाती, विशेषतः द्वंद्व समास में। इस नियम के अनुसार श्रमणब्राह्मणातिथि का समणमाहणअइहि रूप है (आयार० २, १, ११, ९ ; २, २, १, २ और २, ८ ; २, १, ८ भी देखिए), पुव्वविदेहअवरविदेह (जीवा० १६१ ; १७४ और उसके बाद ; २१ , अणुओग ३९६ ; ३९७ भग०), स्वांग = सअंग (सूय० १४६), सार्थ = सअट्ठ (सू० ५०९), वरपरुणासिरवसीलाणिपाशुमाणिपाकासवग्गुमिस्स = वरफलसमसिसिणिवदित्त अणिहुअघुमअप्पियअकंतवग्गुहिं य (नायाध० ७५७) पुढिप्सुवकामि = पुढवीवगअगणि (पण्हा० १५३), इन्द्रनीलातसिकुसुम = इंदणीलअयसिकुसुम (ओव० § १), मनोगुप्ति कायागुप्ति = मणअगुत्ति, कायअगुत्ति (विवाह० १४६२) हैं। अ० माग० में सुरासुरा का सुरअसुरा, जै० महा० में सुरासुरमनुजमहिताः का सुरअसुरमणुयमहिया (आयार० २, १५, १२ ; कालका० २६९,२९)। जै० महा० में एकाक्षर = एगअक्खर (आव० एर्त्से० ७, २७) अतिरेकायवय = अइरेगअणुवास (आव० एर्त्से० ८, ९), सकलास्तमितजीवलोक = सयलअत्थमियजियलोय (आव० एर्त्से० ८, २२) हैं। जै० शौर० में सर्वार्थेषु का सव्वअत्थेसु होता है, संयमार्थम् = संजमअत्थं (कत्तिगे० ३९९,३११ ; ४०२,३५९) हैं।—अ+आ : अ० माग० में अक्रियात्मानः = अकिरियआया (सूय० ४१ ; इसमें § ९७ के अनुसार आ के स्थान पर अ हो गया है) शैलकपक्षारोहण = सेलगअपक्खआरुहण (नायाध० ९९६) हैं।— आ+अ : अ० माग० में महाअटवी (नायाध० १०४९) और साथ-साथ महाडवी रूप मिलते हैं (एर्त्से०) जै० महा० में धर्मकथावसान = धम्मकहाअवसाण (आव० एर्त्से० ७, २७) महास्कन्द = महाअक्खंद (द्वार० ५, ५, २)।—इ + इ : अ० माग० में अतिप्रद्धिगौरव = अइइड्ढिगारव (दस० ६३५, १८) यहाँ दूसरी इ भी गौण है।—उ + उ : अ० माग० में बहूज्झितधार्मिक=बहुउज्झियधम्मिय (आयार० २, १, १, ४ और ११, ९ ; दस० ६२१, ६) बहूदक = बहुउदग (सूय० ५५५) इसके साथ-साथ बहूदय भी मिलता है (ठाणंग० ४), बहूत्पल = बहुउप्पल (नायाध० ५) देवकुरूत्तरकुरु (जीवा० १४७ ; १७४ ; ११४

२०५, २०९, २११, अणुओग० ३९६) **देवकुरुउत्तरकुरुग** (विवाह० ४२५), **देवकुरुउत्तरकुराओ** (सम० १११), **देवकुरुउत्तरकुरयाओ** मिलते है (सम० ११४), **स्वृजुकार=सुउज्जुयार** है (सूय० ४९२), **सुउद्धर** (दस० ६३६, ३०) है, इनमे दूसरा उ गौण है। महा० मे बहुत कम किन्तु शौर० मे बहुधा स्वर बिना मिले रहते हैं, जैसे **प्रवालांकुरक** महा० मे = **पवालअंकुरअ** (हाल ६८०), **प्रियाधर** = **पिआअहर** (हाल ८२७), **धवलांशुक=धवलअंसुआ** (रावण० ९, २५), शौर० में **प्रियंवदानुसूये=पिअंवदाअनुसूआओ** (शकु० ६७, ६), **पुंजीकृतार्य-पुत्रकीर्त्ति** का **पुंजीकदअज्जउत्तकित्ति** (बाल० २८९, २०) होता है, **अग्निशरणालिन्दक = अग्गिसरणआलिन्दअ** (शकु० ९७, १७), **चेटिकार्चनाय = चेडिआअच्चणाअ, पूजार्ह = पूआअरिह** (मुकुद० १७,१२ और १४) है। अप० मे भी ऐसा ही होता है **अर्धार्ध** का **अद्धअद्ध** हो जाता है, **द्वितीयार्ध** = **विअद्ध** (पिगल १, ६ और ५०) है। पिगल १, २४ और २५ के दृष्टांत मे सधि न मानी जानी चाहिए वरन् यहाँ पर शब्द कर्त्ताकारक में है। साधारण नियम हेमचन्द्र १, ५ माना जाना चाहिए।

§ १४९—साधारण व्यजनो से पहले **अ** और **आ** असमान स्वरो से मिलकर सधि कर लेते हैं। यह सधि सस्कृत नियमों के अनुसार ही होती है अ, **आ+इ=ए** , अ, **आ+उ=ओ** । इस नियम के अनुसार महाराष्ट्री मे **दिग् + इभ = दिशा + इभ = दिसा + इभ = दिसेभ** (गउड० १४८), **संदष्टेभमौक्तिक = संदट्ठेभमोॅत्तिअ** (गउड० २३६), **पंचेषु = पंचेसु** (कर्पूर० १२, ८, ९४, ८), **कृशोदरी = किसोअरी** (हाल ३०९), **श्यामोदक = सामोअअ** (रावण० ९, ४०, ४२, ४४), **गिरिलुलितोदधि = गिरिलुलिओअहि** (गउड० १४८) है। अन्य प्राकृत भाषाओं मे भी यही नियम चलता है। गौण **इ** और **उ** की भी सधि हो जाती है, जैसा अ० माग० और शौर० मे **महा + इसि** (= **ऋषि**)=**महेसि**, महा० और शौर० मे **राअ** (= **राज**)+**इसि=राएसि** (§ ५७), अ० माग० में **सर्वर्तुक** के **सर्वका सव्व+ऋतुक** का **उउय** होकर **सव्वोउय** हो जाता है (पण्हा० २४९, सम० २३७, विवाग० १०, विवाह० ७९१, नायाध० ५२७, पण्णव० १११, ओव०, कप्प०), **नित्यर्तुक** का **णिच्चोउग** और **णिच्चोउय** हो जाता है (सम० २३३, ठाणग० ३६९), **अनृतुक=अणोउय** (§ ७७, ठाणग० ३६९) होता है। अ० माग० मे स्वर बहुधा सधि नहीं करते . जैसे, **सघउवरिल्ल** (जीवा० ८७८ और उसके बाद), साथ ही **सघुप्परिल्ल** (जीवा० ८७९) भी पाया जाता है, **प्रथमसमयोपशात** का **पढमसमयउवसत** होता है (पण्णव० ६५), **कक्कोलउसीर** भी आया है (पण्हा० ५२७), **आचार्योपाध्याय = अयरियउवज्झाय** (ठाणग० ३५४ और उसके बाद, ३६६, ३८४ और उसके बाद, सम० ८५) है, **हेट्ठिमउवरिय** (सम० ६८, ठाणग० १९७ [यहाँ पाठ में **हिट्ठिय है**]) भी आया है, **वातघनोदधि = वायधनउदहि** (विवाह० १०२), **कंठसूत्रोरस्थ = कंठसुत्तउरत्थ** (विवाह० ७९१), **अल्पोदक=अप्पउदय** (आयार० २, ३, २, १७), **द्वीपदिगुदधी-**

नाम् = वीयविसासवहीण (विवाह० ८२) महोदक=महाउदग (उत्तर० ७१४) है। गौण दूसरे स्वर के लिए भी यही नियम है ईहामृगर्षभ = ईहामिगउसम (जीवा ४८१ ४९२ ५०८; नायाध ७२१ [पाठ में ईहामिगउसम है] ओव § १० कप्प § ४४) वनकुर्पभ=वणगउसभ (ओव § १७)। अन्य प्राकृत भाषाओं में शायद ही कभी स्वर असंधिक रहते हों, जैसे—जै महा म प्रयत्नमोपघातक=पयत्तपउवघायग, सयमोपघात=संजमउवघाय (कक्का २६१, २५ और २६) शौर मैत्रसतोस्सयोपायण = मसतुस्सवउवायण है (मालवि० २९, १ [यह अनिश्चित है]) गौण दूसरे स्वर में शौर विसर्जितपिं दारक = विसज्जिदइसिदारअ (उत्तर० १२१, १) है।

§ १५०—यदि किसी संधियुक्त शब्द का दूसरा पद इ और उ से आरम्भ होता हो और उसके बाद ही संयुक्त (द्वित्व) व्यंजन हो या उसके आरम्भ में मौलिक या गौण ई या ऊ हो तो पहले पद का अन्तिम अ और आ उड़ जाता है अर्थात् उसका लोप हो जाता है (चंड २, २ हेमचन्द्र १, १ से भी तुलना कीजिए)। इस नियम के अनुसार महा और अप में राजेन्द्र = राइंद (गउड हाल रावण ; विक्रमो ५८ १), अप म राईदम भी होता है (विक्रमो ५९, ८; ६ , २१ ६१, २) जै शौर , शौर और अप में नरेन्द्र = नरिंद (कत्तिगे ४० , १२१ मालती २ ६ ७ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] २९२ ४ पिंगल १, २१ २८), माग में नलिंद रूप है (मृच्छ ४ ६) ; अ माग , शौर और माग० में महेन्द्र = महिंद (ठाणंग २६६ मालती २ १ ५ मृच्छ १२८, ८) है ; अ माग और जै शौर में देवेन्द्र=देविंद (चंड २,२ हेमचन्द्र १, १४२ कत्तिगे ४ १२६) अ माग में ज्योतिषेन्द्र = जोइसिंद (ठाणंग ११८) है अ माग , जै महा और जै शौर में जिनेन्द्र=जिणिंद (ओव § ३७ आव एर्त्से ७,२८ एर्त्से कक्का पव ३८२,४२) शौर में मृगेन्द्र = मइंद (शकु १५५, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] १५६ ७)। सभी प्राकृत भाषाओं में इन्द्र के साथ बहुत अधिक संधियाँ मिलती हैं (§ १५९ से तुलना कीजिए); मायेन्द्रजाल=जै महा माइंदजाल (आव एर्त्से ८ ५१); पञ्चेन्द्रिय=अ माग पंचिंदिय (विवाह १ १ ९ १८४); श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय = अ माग सोइंदिय घाणिंदिय जिब्भिंदिय और फासिंदिय (ठाणंग १ विवाह १२ ओव पेज ४ , भूमिका क उत्तर ८२२) जिह्वेन्द्रिय = अप जिब्भिंदिय (हेमचन्द्र ४ ४२७ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]); तद्दिवसेन्दु का महा मे तद्दिअसिंदु होता है (गउड ७ २) विषमाश = तिसमसीस (हेमचन्द्र १ १) राजेश्वर = जै महा राईसर (एर्त्से) पर्वतेश्वर = शौर पव्वदीसर (मुद्रा ४ , ६ ४१, ९ २१६, ११) कर्णोत्पल = महा कण्णुप्पल (गउड ७६) अ माग और जै महा म नीलुप्पल और शौर म णीलुप्पल रूप मिलते हैं = नीलो त्पल (उवास § ९५ ओव § १ ; कक्कुक शिलालेख १८ [यहाँ नीलुप्पल

पाठ है], एर्त्से० ७९, ८, प्रिय० १५, ८; ३३, २, ३९, २), **नखोत्पल** = माग० **णहुप्पल** (मृच्छ० १२२, १९), **स्कंधोत्क्षेप**=महाराष्ट्री **खंधुक्खेव** (गउड० १०४९), **पदोत्क्षेप** = चू० पैशा० **पातुक्खेव** (हेमचन्द्र ४, ३२६), **गंधोद्धृत** = अ० माग० **गंधुद्धुय** और अप० **गंधुद्धुअ** (ओव० § २, विक्रमो० ६४, १६), **रत्नोज्ज्वल** = जै० महा० **रयणुज्जल** (आव० एर्त्से ८, ४), **मंदमारुतोद्वेलित** = शौर० **मंदमारुदुव्वेलिद** (रत्ना० ३०२, ३१, माल्ती० ७६, ३ से भी तुल्ना कीजिए), **पर्वतोन्मूलित** = **पव्वदुम्मूलिद** (शकु० ९९, १३), **सर्वोद्यान** = माग० **शव्वुय्याण** (मृच्छ० ११३, १९), **कृतोच्छ्वास**= महा० **कऊसास, लीढोष** = **लीढूस** (गउड० ३८७, ५३६), **गमनोत्सुक** = **गमणूसुअ** (रावण० १, ६), **एकोन** = अ० माग० **एगूण*** (§ ४४४), **पंचूण** (सम० २०८, जीवा० २१९), **देमूण** (सम० १५२, २१९), **भागूण, कोसूण** (जीवा० २१८, २३१) रूप भी मिल्ते हैं। **ग्रामोत्सव** = महा० **गामूसव** (गउड० ५९, ८), **महोत्सव** = महा०, जै० महा० और शौर० **महूसव** (कर्पूर० १२, ९, एर्त्से०, मृच्छ० २८, २, रत्ना० २९२, ९ और १२, २८३, १३, २९५, १९, २९८, ३०, माल्ती० २९, ४, ११९, १, १४२, ७, २१८, ३ आदि-आदि, उत्तर० १०८, २, ११३, ६, चंड० ९३, ६, अनर्घ० १५४, ३, नागा० ४२, ४ [पाठ मे **महूस्सव** है], ५३, १९, वृषभ० ११, २, सुभद्रा० ११, ५ और १७), **वसंतोत्सव** का शौर० रूप **वसंतूसव** है (शकु० १२१, ११, विक्रमो० ५१, १४, मालवि० ३९, १० [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए])। यही नियम दूसरे गौण स्वर के लिए भी लागू होता है : अ० माग० मे **उत्तम+ऋद्धि**= **उत्तमिड्ढि** (ठाणंग० ८०), **देविड्ढि** (उवास०), **महिड्ढि** (ठाणग० १७८), **महिड्ढिय** (ओव०) रूप भी देखने मे आते हैं। साधारण अथवा अकेले व्यजनो से पहले यह नियम बहुत कम लागू होता है, जैसे **विशेषोपयोग** = जै० महा० **विसेसुवओगो** (कालका० २७७, ९) और **अर्धोदित** = आ० **अद्धुइअ** (मृच्छ० १००, १२)।

§ १५१— § १५८ में वर्णित उदाहरणों में तब सन्धि होती है जब दूसरा पद संस्कृत में ई और ऊ से आरम्भ होता है और इसके बाद साधारण अथवा अकेला व्यंजन आता है **वातेरित** = शौर० **वादेरिद** (शकु० १२, १), **करिकरोरु** = महा० **करिअरोरु**=**करिअर + ऊरु** (हाल ९२५), **पीणोरु**=**पीणा + ऊरु** (रावण० १२, १६), **प्रकटो**=**पाअडोरु** (हाल ४७३), **वलितोरु** = **वलि-ओरु** (गउड० ११६१), अ० माग० **वरोरु** (कप्प० § ३३ और ३५), **पीवरोरु**, **दिसागइंदोरु** (= **दिग्गजेन्द्रोरु**. कप्प० § ३६), **एगोरुय** (= **एकोरुक**. पण्णव० ५६), किन्तु **एगूरूय** भी है (जीवा० ३४५ और उसके बाद, विवाह० ७१७), जै० महा० में **करिकरोरु** आया है (एर्त्से० १६, २०), शौर० में **मंथरोरु** रूप है

* मारवाड़ी में गुणतीस, गुणचालीस, उनतीस, उनचालीस आदि के स्थान पर चलता है। —अनु०

(मालती० १०८, १), पीवरोरु भी है (मालती० २६ , १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए])। यदि पहला पद उपसर्ग हो तो नियमित रूप से संधि कर दी जाती है : प्रेक्षते = महा०, अ० माग० और जै० महा० पॅच्छइ, जै० शौर० पॅच्छदि, शौर० पॅक्खदि, माग० पॅस्कदि (§ ८४) अनपेक्षित = महा० अणवॅक्खिअ (रावण०), जै० महा० में अवेक्खइ रूप मिलता है (एर्त्से०) अपेक्षते = शौर० अवेक्खदि (शकु० ४१, १ ; १२, २) उपेक्षित = महा० उवॅक्खिअ (हाल)· प्रेरित = महा० पॅल्लिअ (गउड० ; हाल)। बहुत कम स्थलों में दूसरे पद में इ या उ आरम्भ में आने पर और उसके बाद द्वित्त व्यंजन आने पर, संधि भी हो जाती है, जैसे निशाचरेन्द्र = णिसाअरेंद (रावण० ७, ५९) महेन्द्र का महा० और माग० में महेंद रूप मिलता है (रावण० ६, २२ ; ११, २ ; मृच्छ० १११, १२); राक्षसेन्द्र = महा० रक्खसेंद (रावण० १२, ७७) नरेन्द्र का शौर० में णरेंद मिलता है (मालती० ९, ४ ; १७९ ५) रक्तोत्पल = शौर० रत्तोप्पल (मृच्छ० ७१, १२) है। पंचेन्द्रिय = जै० शौर० पंचेंदिय (पव० ३८८, ९) भूल जान पड़ती है। इन संधि शब्दों के पास ही (ऊपर देखिए) सदा इ या उ वाले शब्द भी मिलते हैं, जैसे उदाहरणार्थ शौर० महेंद (विक्रमो० ५, १० ; ६, १९ ; ८, ११ ; ११ ; १५, ९ ; ८१, २ ; ८४ २) के स्थान पर बंगाली हस्तलिपियाँ सर्वत्र महिंद लिखती हैं, जैसे शौर० में साधारणतः यही रूप मिलता है (§ १५८)[1]। निम्नोत्पन्न के लिए शौर० में णिण्णोप्पण्ण रूप देखा जाता है (शकु० १३१ ७); इसे ऊपर दिये नियम के अनुसार णिण्णुण्णद पढ़ना चाहिए, इसका महा० रूप णिण्णुण्णअ मिलता है (गउड० ६८१); शौर० उण्णोंण्ण के स्थान पर (शकु० २९, ६) शुद्ध रूप उण्णुण्ण होना चाहिए, शौर० महुस्सोहाम (= मर्दनोहाम) के लिए (रत्ना० २९२, ११) महुउहाम[2] रूप होना चाहिए। निम्नलिखित उदाहरणों में संधि ठीक ही है : जै० महा० अहेसर, सयरसर, नरसर (एर्त्से०), शौर० परमेसर (प्रबोध० १४, ९ ; १७, २), जिनमें गौण ईसर के साथ संधि की गयी है ; शौर० पुरिसोत्तम और माग० पुलिशोत्तम रूप भी (§ १२४) ठीक हैं क्योंकि ये सीधे संस्कृत से लिये गये हैं, अन्यथा अ० माग० में पुरिसुत्तम रूप मिलता है (उत्त० ४१२ ४ ; [इसके मूल स्थान उत्तर० ६८१ में पुरिसोत्तम है] ; कप्प० § १६ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ओव० § ९२ [यहाँ भी यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए ; नीचे आये हुए लोगुत्तम रूप से भी तुलना कीजिए])।

1. बॉल्लेनसे न त्सा विक्रमोर्वशी ८ ११ पेज १७६ में जोर देकर कहता है कि महिंद रूप मुख्य प्राकृत की जिसस उसका तात्पर्य शौर० से है, सीमा का उल्लंघन करता है तो यह सर्वथा भूल करता है। — 2. भाँ की सिद्धि इन उदाहरणों में § ११५ के अनुसार संपादित करना इसके विरुद्ध उद्धृत उदाहरणों में संभव नहीं रहता। मेरा अनुमान है कि इस प्रकार के उदाहरणों में प्राकृतोऊपन आ गया है इसे शुद्ध करना चाहिए। इस सम्बन्ध में कापेलर : हरिवंशम् ; गर्भोत्तम प्राकृतिकाए, पेज १०५ का नोट देखिए।

§ १५२—इ और उ के बाद भले ही संयुक्त व्यंजन क्यों न आये अ० माग० में अ, आ ज्योंके त्यों रह जाते है, जैसा साधारण या अकेले व्यंजन रहनेपर होता है (§ १५७, § १५६ की भी तुलना कीजिए)। इसके अनुसार **कर्केतनेन्द्रनील** = अ० माग० **कक्केयणइंदणील**, **माडंबिकेभ्य** = **माडंबियइब्भ**, **कौटुंबिकेभ्य** = **कोडुंबियइब्भ** (ओव० § १०, ३८; ४८), **भूतेन्द्र** = **भूयइंद** (ठाणंग० ९०), किंतु एक स्थान पर **भूइंद** भी है (ठाणंग० २२९), साथ साथ **जक्खिंद**, **रक्खसिंद**, **किंनरिंद** आदि रूप भी देखे जाते है (ठाणंग० ९०, § १५८ की भी तुलना कीजिए), **पिशाचेन्द्र** = **पिसायइंद** (ठाणंग० ९०), किंतु **पिसाइंद** रूप भी देखा जाता है (ठाणंग० १३८ और २२९), **अज्ञातोञ्छ** = **अन्नायउंछ** (दस० ६३६, १७), **लवणसमुद्रोत्तरण** = **लवणसमुद्दउत्तरण** (नायाध० ९६६), **प्रेंखणोत्क्षेपक** = **पेहुणउक्खेवग** (पण्हा० ५३३), **नावोत्सिंचक** = **नावाउस्सिंचय** (आयार० २, ३, २, १९ और २०), **इन्द्रियोद्देश** = **इंदियउद्देस**, **दुकूलसुकुमारोत्तरीय** = **दुगुल्लसुगुमालउत्तरिज्ज**, **अनेकोत्तम** = **अणेगउत्तम**, **भयोद्विग्न** = **भयउव्विग्ग**, **सौधर्मकल्पोर्ध्वलोक** = **सोहम्मकप्पउड्ढलोय** (विवाह० १७७ और उसके बाद, ७९१, ८०९, ८३५, ९२०), **आयामोत्सेध** = **आयामउस्सेह** (ओव० § १०)। अन्य प्राकृत भाषाओं में एक के साथ दूसरा स्वर बहुत कम पाया जाता है जैसा महा० में **प्रनष्टोद्योत**=**पणट्ठउज्जोअ**, **खोत्पात**=**खउप्पाअ** (रावण० ९,७७ , ७८), **पीनस्तनोत्थंभितानन**=**पीणत्थणउत्थंभिआणण** (हाल २९४), **मुखोद्व्यूढ**=**मुहउव्वूढ** (शकु० ८८, २) है। **मौक्तिकोत्पत्ति** का प्राकृत रूप **मोॅत्तिअउप्पत्ति** अशुद्ध है (विद्ध० १०८, २)। यह **मोॅत्तिउप्पत्ति** होना चाहिए (ऊपर **मोॅत्तिओॅप्पत्ति** देखिए), जैसा **पितामहोत्पत्ति** = महा० **पिआमहुप्पत्ति** (रावण० १, १७) है। अ० माग० मे **अंकुरुप्पत्ति** मिलता है (पण्णव० ८४८) और प्रबन्धचंद्रोदय १७, २ में **प्रबोधोत्पत्ति** के लिए शौर० **पबोहोॅप्पत्ति** मिलता है जिसका शुद्ध रूप **पबोहुप्पत्ति** होना चाहिए। सभी प्राकृत भाषाओं में **स्त्री** = **इत्थि**, दूसरे शब्दों से मिलता नहीं (§ १४७), अ० माग० में **असुरकुमारइत्थीओ**, **थणियकुमारइत्थीओ**, **तिरिक्खजोणियइत्थीओ**, **मणुस्सइत्थीओ**, **मणुस्सदेवइत्थीओ** (विवाह० १३९४), जै० शौर० में **परस्त्र्यालोक** का **परइत्थीआलोअ** मिलता है (कत्तिगे० ४०१, ३४४), **भूसणइत्थीसंसग्ग** (कत्तिगे० ४०२, ३५८) भी आया है, शौर० में **अंतेउरइत्थी** रूप पाया जाता है (शकु० ३८, ५)। तो भी अ० माग० मे **मणुस्सित्थीओ** रूप भी वर्तमान है, **देवित्थीओ** मिलता है और **तिरिक्खजोणित्थीओ** भी साथ-साथ प्रचलित है (ठाणंग० १२१), जै० शौर० में **पुरिसित्थी** मिलता है (कत्तिगे० ४०१, ३४५)।

§ १५३—ए, ओ से पहले, किन्तु उस ए, ओ से पहले नहीं जो संस्कृत ऐ और औ से निकले हों, अ और आ का लोप भी मानना पड़ता है, भले ही यह मौलिक या गौण हो, **ग्राम**+**एणी** का **गामेणी** रूप पाया जाता है (=बकरी ; देशी० २, ८४), **नव**+**एला** = महा० **णवेला**[1], **फुल्ल**+**एला** = **फुल्लेला** (रावण० १,

९२ और ९१), उत्संगितैकपार्श्व = उच्छंगियेक्कपास (रावण० ५, ४१) भयकम्पितैरावणहस्त = शौर० भयकंपिदेरावणहत्थ (मृच्छ ६८, १४), शिलातलैकदेश = सिलावलॅक्कदेस (शकु० ४१, ११), करुणैकमनस् = करुणेक्कमण (माल्ती २५१, ७) कुसुमावस्तृत = महा० कुसुमोत्थय (रावण १ ३९), प्रथमापसृत = पढमोसरिम (हाल ३११), बाष्पाव मूढ = बाहोमहु (रावण ५, २१), ज्याल (=आळ) + आवलि (=ओलि) = आलोलि (§ १५४ हाल ५८९), जैसे, घन+आवलि = घणोलि (हेमचन्द्र २, १७७ = हाल ५७९, यहाँ घणालि पाठ है), वास + आवलि = वासोलि, प्रमा+आवलि=पहोलि (गउड ५५४, १ ८) ; अ माग० और जै० महा० उदक + ओल्ल (=उद्र) का उदओल्ल रूप देखा जाता है (§ १११ ; एस० ६२५, २७ आव एत्सें ९, १), इसके साथ-साथ अ० माग० में उदक + उल्ल का उदउल्ल रूप भी मिलता है (आयार २, १, ६, ९ ; २, ६, २,४), अ माग० में दर्पण + ओल्ल का रूप दासेणोल्ल है (उत्तर ६७३) अ माग में माळोहड=माळा (=मंच प्लैटफार्म : देशी ६, १४६)[1] + ओहड=अपहृत (आयार ४, १, ७, १ ; दस ६२ ,१६), मृत्तिका + ओलित्त (=अवलिप्त) का रूप मट्टिओलित्त आया है (आयार २, १ ७, १) जलौघ= जै महा जलोह (एत्सें ३, २६) संस्थानावसर्पिणी=संठाणोसप्पिणि (ऋषभ ४७) है गुडौदन = शौर गुडोदण (मृच्छ ३, १२) वसतावतार=वसतोद्दार (शकु २१, ८), करतल + ओरप=करदहोरप (=आक्रमण माल्ती २११, २ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]; देशी १, १७१ से तुलना कीजिए पाइय १९८) है। कभी कभी एक के पास दूसरा स्वर ज्यों का त्यों रहता है, जैसे महा धार्मदोलनभोपथिम = धाराम्दोलनायनमित (हाल ६१७); अ माग० खुड्डगपगावलि = क्षुद्रपिकावलि (ओव [§ १८]) पिप्पहाइयमोलंय = पिप्पमाझितावलंब (ओव § ६) जै महा सभाभोयास = सभावकाश (आव एत्सें १५ १२)।

१ णपेक्षा, जलोह और गुडोदन उदाहरणों के विषय में संदेह उत्पन्न होने की गुंजाइश है। इस नियम की स्वीकृति उन सन्धियों द्वारा प्रमाणित होती है जो गाय में, आ और आ के साथ होती है इस कारण ही मुख्यतया उदाहरणों के लिए ये शब्द चुन गये हैं। — २ इस विषय में याकोबी द्वारा संपादित [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पत्र १ ५ की नोटसंख्या १ से तुलना कीजिए।

§ १५४—निम्नलिखित असमान स्वरों से इ, ई, उ ऊ नियमानुसार कोई संधि नहीं करते (हेमचन्द्र १ ६) : महा पहप्पहायसिअदप्प = नखप्रभावस्वर्ण (हेमचन्द्र १ ६) रविअंधअ = रात्र्यंधक (हाल ६६०), संझावहु अवऊढ = संध्यावधूपगूढ (हेमचन्द्र १, ६); अ माग जाइमारिय = जातमार (सायन ४१४), जाइअंध = जात्यंध (सूय ४१८), सवि

अग्ग = शस्त्यग्र (दस० ६३४, ११), **पुढविआउ = *पृथिव्यापः** (पण्णव० ७४२), **पंतोवहिउवअरण = प्रांतोपध्युपकरण** (उत्तर० ३५०), **पगइ उवसंत = प्रकृत्युपशांत** (विवाह० १००, १७४), **पुढवीउड्ढलोय = पृथिव्यूर्ध्वलोक** (विवाह० ९२०), **कदलीऊसुग = कदली + ऊसुग** (बीच में, भीतर : बोएटलिक २ रूप १ (बी) और (सी) से भी तुलना कीजिए, आयार० २, १, ८, १२), **सुअहिज्जिय = स्वधीत** (ठाणग० १९० , १९१), **बहुअट्ठिय=बह्वस्थिक** (आयार० २, १, १०, ५ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], दस० ६२१, ४), **साहुअज्जव = साध्वार्जव** (ठाणग० ३५६), **सुअलंकिय = स्वलंकृत** (दस० ६२२, ३९), **कविकच्छुअग्गणि=कपिकच्छ्वग्नि** (पण्हा० ५३७), **बहुओस= बह्ववश्य** (आयार० २, १, ४, १), गौण दूसरे स्वर के साथ भी यही नियम लागू होता है, जैसे अ० माग० **सुइसि=स्वृपि** (पण्हा० ४४८), **बहुइड्ढि=बद्वृद्धि** (नायाध० ९९०)। अ० माग० **चक्खुइन्दिय = चक्षुरिन्द्रिय** (सम० १७) के साथ-साथ **चक्खिंदिय = चक्ख=चक्षस् + इन्द्रिय** (सम० ६९ , ७३, ७७ और इसके बाद , विवाह० ३२ , उत्तर० ८२२ , ओव० पेज ४०) हैं। जै० महा० में **ओसप्पिणिउस्सप्पिणि = अवसर्पिण्युत्सर्पिणि** (ऋषभ० ४७), **सुअणुयत्त= स्वनुवृत्त** (आव० एर्त्से० ११, १५), **मेरुआगार** (तीर्थ० ५, ८), शौर० में **संतिउदअ = शांत्युदक** (शकु० ६७, ४), **उवरिअलिदअ = उपर्यलिन्दक** (मालती० ७२, ८ , १८७, २), **उव्वसीअक्खर = उर्वश्यक्षर** (विक्रमो० ३१, ११), **सरस्सदीउवाअण=सरस्वत्युपायन** (मालवि० १६, १९), **सीदाभंडवी- उम्मिला = सीताभांडव्युर्मिला** (बाल० १५१, १), **देहच्छवीउल्लुंचिद्= देहच्छव्युल्लुंचित** (प्रबन्ध० ४५, ११)। अ० माग० **इत्थत्थ** में जो **स्त्र्यर्थ** का प्राकृत रूप है, इ का छूट जाना अपने ढग का अकेला उदाहरण है (दस० ६३८, १८), और इसी प्रकार का **किंचूण** भी है जो ***किंचिऊण=किंचिदून** से निकला है (सम० १५३ , ओव० § ३०), ऐसा एक उदाहरण है **बेंदिय** (ठाणग० २७५, दस० ६१५, ८), **तेंदिय** (ठाणग० २७५ , ३२२) जिनका आरभ का इ उड गया है, इनके साथ-साथ **बेइंदिय, तेइंदिय** शब्द भी पाये जाते हैं (ठाणग० २५ , १२२, ३२२ [यहाँ **बेइंदिय** पाठ है] सम० २२८ , विवाह० ३० , ३१ , ९३ , १४४, दस० ६१५, ८) = **द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय** अ० माग० **ईसास=इष्वास** (§ ११७) सीधा सस्कृत से लिया गया है।

§ १५५—उपसर्गों के अत में आनेवाले **इ** और **उ** अपने बाद आनेवाले स्वर के साथ सस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार सधि कर लेते हैं। इस प्रकार उत्पन्न ध्वनिवर्ग नाना प्राकृत भाषाओं के अपने अपने विशेष नियमों के अनुसार व्यवहृत होता है। महा०, अ० माग०, जै० महा०, जै० शौर० और शौर० **अच्चंत =अत्यंत** (गउड० , निरया० , एर्त्से०, पव० ३८०, १२ , ३८९, १ , मृच्छ० ६०, २५ , मालवि० २८, १३), अ० माग० **अच्चेइ=अत्येति** (आयार० १, २, १, ३), अ० माग० और जै० महा० **अज्झोववन्न=अध्युपपन्न** (§ ७७),

महा० अब्भागअ = अभ्यागत (हाल) जै० महा० अब्भुवगम्मामिय, *अभ्युपगयम्=अभ्युपगामित, अभ्युगत (आव० एर्त्से १०, ९ ; १) शौर और माग अब्भुववण्ण = अभ्युपपन्न (मृच्छ २८, १८ विक्रमो ८,१२ माग मृच्छ १७५, १८) है महा , अ० माग , शौर और अप० पज्जत्त=पर्याप्त (गउड हाल ; रावण उत्तरा० शकु ७१, ७ विक्रमो २५ ६ ; हेमचन्द्र ४, ३६५, २) है महा० और शौर : णिव्वूढ=निर्व्यूढ (गउड हाल रावण मालती० २८१, १) है महा० अण्णेसइ, माग अण्णेशदि = अन्वेषति (गउड० मृच्छ० १२, ३) है, जै० महा , शौर और माग अण्णेसन्त = अन्वेषन्त् (एर्त्से० विक्रमो ५२, २ ; मृच्छ० १४८,७ और ८) है। ध्य और र्य ध्वनिवर्ग बहुधा और विशेषकर अ माग० और महा में स्वरभक्ति द्वारा अलग-अलग कर दिये जाते हैं जिससे अ माग और जै महा में बहुधा तथा अन्य प्राकृत भाषाओं में य सदा लुप्त हो जाता है, और स्वर § १६२ के अनुसार एक दूसरे के पास-पास आ जाते हैं महा अइआअर (हाल), जै महा अइयायर (एर्त्से)= *अतियादर=अत्यादर अ माग आउइ उणह=आत्युष्ण (विवाह ९५४), इसके साथ-साथ अच्चुसिण (आयार २, १, ७ ५) और महा० अच्चुण्ह (हाल) पाये जाते हैं महा अइउज्जुअ (हाल) और शौर अदिउज्जुअ (रत्ना १ ९, २४ प्रिय ४१, १५)= अत्यृजुक अ० माग० अहियासिज्जति=अध्यासते (ओव) जै० महा पडियागय = प्रत्यागत (एर्त्से) है, इसके साथ-साथ महा में पच्चागअ रूप मिलता है (हाल), जै महा० में पच्चागय आया है (एर्त्से०), और शौर में पच्चागद (उत्तर १ ६, १) ; अ माग पडियाइक्खिय = प्रत्याख्यात है, साथ-साथ पच्चक्खाय भी चलता है (§ ५६५) अ० माग पडिउच्चारेयव्व=प्रत्युच्चारयितव्य (विवाह १४) है; अ माग परियायण= पर्यापन्न (आयार० २, १, ९, ६ और ११, ७ तथा ८) है अ माग पलिउ च्छूढ=पर्युत्क्षुब्ध (§ ६६) है महा विओल=व्याकुल (§ १६६) है। अ माग में, पर अन्य प्राकृतों में बहुत कम, प्रति का इ नीचे दिये हुए व्यञ्जन सर्वे से पहले भी उड़ा दिया जाता है : इस नियम के अनुसार महा और अ माग० पाडिऍक्क = प्रत्येक के साथ-साथ (हेमचन्द्र २,२१ रावण० ; नायाध० १२२४ विवाह १२ ६ ओव [पाडियक्क के स्थान पर सर्वत्र पाडिऍक्क पढ़ा जाना चाहिए]) *पाडॅक्क के स्थान पर पाडिक्क मिलता है (§ ८४ हेमचन्द्र २, २१ पईसुअ = प्रत्याश्रुत (§ ११५) पडायाण=प्रत्यादान (§ २५८) है पयइ=प्रकृति के साथ *पडिउअ के स्थान पर पडुअ (§ २ २ ५९), पाडुप्पिय = प्रातीप्सिक (ठाणंग १८) भी है ; अ माग पडुप्पन्न = प्रत्युत्पन्न (आयार १ ८ ११ ; सूय ५११ ; ठाणंग १०१ ; १०८ ; विवाह ६८ ; ७८ ; ७९ ; ८ ; ६५१ ; जीवा ११७ ११८ ; अणुओग ४७१ ; ५१ और उसके बाद उवास) जै महा अपडुप्पन्न (आव एर्त्से १७, ११) ; अ०-

माग० **पडोयार=प्रत्यवतार** (लौयमान द्वारा सम्पादित औप० सु०) और **प्रत्युपचार** के भी (§ १५५ , विवाह० १२३५ , १२५१), **पडोयारेउ=प्रत्युपचारयतु, पडोयारेह=प्रत्युपचारयत, पडोयारेंति=प्रत्युपचारयंति, पडोयरिज्जमाण = प्रत्युपचार्यमाण** (विवाह० १२३५ ; १२५१ , १२५२) है । महा० **पत्तिअइ**, अ० माग० और जै० महा० **पत्तियइ**, शौर० और माग० **पत्तिआअदि** और अ० माग० **पत्तेय** के विषय में § २८१ तथा ४८७ देखिए ।

§ १५६—वह स्वर, जो व्यंजन के लोप होने पर शेष रह जाता है, **उद्वृत्त**[1] कहलाता है । नियमानुसार **उद्वृत्त** स्वर उससे पहले आनेवाले स्वर के साथ सन्धि नहीं करता (चंड० २, १ पेज ३७ , हेमचन्द्र १, ८ , वररुचि ४, १ से भी तुलना कीजिए) । इस नियम के अनुसार महा० **उअअ = उदक** (गउड० , हाल , रावण०[2]) , **गअ = गज** और **गत** , **पअवी=पदवी** (गउड , हाल) , **सअल= सकल** , **अणुराअ=अनुराग** , **घाअ=घात** (हाल , रावण०) हैं , **कइ = कति** (रावण०),**=कपि** (गउड० , हाल , रावण०),**=कवि** (गउड० , हाल) है , **जइ = यदि** , **णई=नदी** , **गाइआ = गायिका** (हाल) , **तउषी=त्रपुषी** (हाल), **पउर=प्रचुर** (हाल) , **पिअ=प्रिय** , **पिअअम = प्रियतम** , **पिआसा=पिपासा** (हाल) , **रिउ=रिपु** , **जुअल = युगल** , **रूअ=रूप** , **सूई=सूची** (गउड० , हाल), **अणेअ = अनेक** (गउड० हाल), **जोअण=योजन** (रावण०); **लोअ=लोक** हैं । प्रत्येक प्रकार की संधि पर यह नियम लागू होता है : महा० **अइर= अचिर** , **अउव्व=अपूर्व** , **अवअंस=अवतंस** (हाल , रावण०) , **आअअ = आयत** (हाल , रावण०) , **उवऊढ=उपगूढ** , **पआव = प्रताप** , **पईव = प्रदीप** , **दाहिणंसअड = दक्षिणांशतट** (गउड० १०४) , **सअण्ह = सतृष्ण** (हाल) , **गोलाअड=गोदातट** (हाल १०३) , **दिसाअल=दिक्तल** (रावण० १, ७) , **वसहइंध = वृषभचिह्न** (गउड० ४२५) , **णिसिअइ = निशिचर** (रावण०) , **सउरिस = सत्पुरुष** (गउड० ९९२) , **गंधउडी = गन्धकुटी** (गउड० ३१९) , **गोलाउर=गोदापुर** (हाल २३१), **विइण्णऊर=वितीर्णतूर्य** (रावण ८, ६५) , **गुरुअण = गुरुजन** (हाल) हैं । ऐसे समान अवसर उपस्थित होने पर सभी प्राकृत भाषाओं के रूप इसी प्रकार के हो जाते हैं ।

१ हेमचन्द्र इस स्वर को **उद्वृत्त** कहता है (१, ८) । चंड० २, १ पेज ३७ में इसका नाम **उद्धृत** दिया गया है (त्रिवि० १, १, २२ , सिंह० पन्ना ३ ; नरसिंह १, १, २२ ; अप्पयदीक्षित १,१,२२ में इसे शेष नाम देते हैं जो उचित नहीं जँचता क्योंकि हेमचन्द्र २, ८९ और त्रिवि० १, ४, ८६ में शेष उस व्यंजन का नाम बताया गया है जो एक पद में शेष रह जाता है । —२ ये उद्धरण नीचे दिये गये उन सब शब्दों के लिए हैं जिनके सामने कोई उद्धरण उद्धृत नहीं किये गये हैं ।

§ १५७—उद्वृत्त स्वर उनसे ठीक पहले आनेवाले समान स्वरों से कभी-कभी संधि कर लेते हैं । इस नियम के अनुसार अ, आ , अ, आ से संधि कर लेते हैं :

अ० मा आर० का अमर से निकला है = अघर (सूय० १ ६; १२२) और पे० महा० में यह आव्र का रूप है (कालका०) : ओमालय (=सूर्यास्त का समय : देशी० १, १६२) = *ओममालय = अपगतातप, जब कि ओलालम (त्रिवि० १, ८, १२१ संपादक ने ओमालय रूप दिया है इस संबंध में बेत्सेनबैर्गर बाइत्रैगे १३, ११ भी देखिए) = अपघातक ; कालास और कालामस का मार्कण्डेय के अनुसार शौर में सदा कालायस होता है (वर० ४, १ हेच० १, २६९); अप० में खाइ और खाअइ = खादति (वर० ८, २७ क्रम० ८, ७७ हेच ४, २२८ ४१९,१)· अप में खंति = खादंति, *खांति† = खादंति (हेच ४,४४५,४), खाउ = खादतु (भाम० ८, २७), इससे एक धातु खा का पता लगता है जिसका भविष्यकाल-वाचक रूप खाहिइ भी मिलता है (§ ५२५), अप० में आज्ञावाचक एकवचन का रूप खाहि भी पाया जाता है (हेच ४, ४२२, ४ और ११) और एक अन्य रूप खाम† = *खास है (हेच० ४, २२८) गामण से गाण हुआ है = गायन (देशी २,१ ८)· गाणी‡ (= वह मंडा जिसमें सना हुआ चारा गाय को खिलाया जाता है देशी २, ८२) *गामाअणी से निकला है, इसका अ माग रूप गयाणी है (आयार २, १०, ११) = गवादनी माग गोमाओ को *गोमा अओ से निकला है = गोमायवः (मृच्छ १६८, २) है ; अप संपायपणी = संपादकपर्णी (हेच० ८,११ ,१); छाण (= पोशाक देशी ३,३८) = छादन; अप० जाइ जाअइ से निकला है = यापति (पिंगल १, ८५ अ)· धाइ और साथ ही धायइ = धावति (वर ८, २७; हेच ४, २२८) महा उद्धाइ = उद्धा वति (रावण)है, इसके खाद् के समान ही एक नये धातु धा का पता लगता है, जिससे निम्नलिखित रूप निकले हैं : धाउ (भाम ८,२७) धाइ (हेच २,११२) धाहिइ (§ ५२५) धामा (हेच ८, २२८) बनाये गये हैं; अ माग और अप पच्छित्त (सम० ९१; हेच ४ ४२८) और इसके साथ अ माग पायच्छित्त (ओव० १८ उवास नायाध ओव ; कप्प) = प्रायश्चित्त है ; पायडण और इसके साथ ही महा पाअपडण (हाल; [पाठ में पअवडण है]) = पाद पतन (भाम ४ १; हेच १, २७ ; मार्क पन्ना ११) है ; महा जै महा और शौर पाइक्क = पादातिक (§ १९४) पावीढ और इसके साथ दूसरा रूप पाअ वीढ = पादपीठ (हेच १ २७ ; मार्क पन्ना ११); अ माग रूप भंते = भदंत (§ १६६); भाणं† = भाजन (वर ४ ४ हेच १, २६७; क्रम २, १५१) जब मार्कण्डेय के कथनानुसार इस शब्द का शौर रूप भाअण है (मृच्छ० ४१, ६; शकु ७२ १६; १ ८ प्रबंध ६१, ४; रत्ना २५ १ और ५; मालती

* यह शब्द कुमाऊँ में अभी तक प्रचलित है। हिंदी और प्राकृत भाषा का रूप है। —अनु

† खांति रूप अवश्य कभी कहीं बोला जाता होगा। कुमाऊँनी बोली में नियमानुसार खांति = खानि प्रचलित है। भाम भी कुमाऊँनी में चलता है। इसी प्रकार गाण कुमाऊँनी में चलता है। खाम शब्द मुझे हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण में नहीं मिला। —अनु

‡ इस गाणी से घाणी निकला है जो अनेक वर्तमान भारतीय आर्यभाषाओं में प्रचलित है। —अनु

२८९, ३ , अद्भु० २, १५) । **गाइ = गायति, झाइ = ध्यायति, जाइ = जायते, पलाइ = पलायते** रूपों के संबंध में § ४७९, ४८७ और ५६७ देखिए । —महा० और अप० में इ, ई की संधि उद्वृत्त इ और ई से कर दी जाती है : **वीअ** (हेच० १, ५ और २४८, २, ७९ , गउड० [इसमे **वीय** पाठ मिलता है] , हाल [इसमे **वीअ** आया है] , रावण० [इसमें **विइअ** है] , पिंगल १, २३ , ४९ , ५६ , ७९ , ८३), अप० मे **विअ** भी मिलता है (पिंगल १, ५०), अ० माग० और जै० महा० रूप **वीय** है (विवाह० ५५ , उवास० , कप्प० , कक्कुक शिलालेख २१ , एर्त्से०), इनके साथ-साथ महा० मे **विइअ,** अ० माग० और जै० महा० में **विइय** (§ ८२) = **द्वितीय** है , अप० मे **तीअ** रूप है जो ***तिइअ = तृतीय** से निकला है (पिंगल १, ४९ , ५९ , ७०) , अ० माग० **पडीण, उडीण = प्रतीचीन, उदीचीन** (आयार० १, ४, ४, ४ , १, ६, ४, २ , ओव० § ४), **पडीण** (विवाह० १६७५ और उसके बाद) का छंदों की मात्रा ठीक रखने के लिए ह्रस्व रूप **पडिण** भी हो जाता है (दस० ६२५, ३७ , § ९९ से भी तुलना कीजिए) , अ० माग० **सीया = शिविका** (आयार० पेज १२७, १५ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] है , ओव० , एर्त्से०) , भविष्यकाल मे, जैसे जै० महा० **होहि** और इसके साथ-साथ महा० और जै० महा० **होहिइ = *भोष्यति = भविष्यति** (§ ५२१) । जै० महा० **विणासिही** (§ ५२७), **जणेहि, निवारेहि** (§ ५२८), **छी,** अप० **एसी** (§ ५२९), जै० महा० **दाही** (§ ५३०), **सक्केही** (§ ५३१), अ० माग० और जै० महा० **काही** (§ ५३३) और अ० माग० **नाही** (§ ५३४) देखिए । महा० **चीअ** (हाल १०४) = ***चिइअ** जो ***चितिय** से निकला है और = **चित्य,** अ० माग० **चीवंदन** का **ची** (जो हेमचन्द्र १, १५१ के अनुसार **चैत्यवदन** का प्राकृत रूप है),यह=***चिइ=चिति** है। अ० माग० **उंबर** मे, जो **उउंवर** से निकला है और ***ऊंवर = उदुंवर** का रूप है, उ, ऊ उद्वृत्त उ और ऊ से सन्धि द्वारा मिल गये है (वर० ४, २ , हेमचन्द्र १, २७० , क्रम० २, १५२ , अणुत्तर० ११ , नायाध० § १३७ , पेज २८९, ४३९ , ठाणग० ५५५ , जीवा० ४६ , ४९४ , निरया० ५५ , पण्णव० ३१ , विवाह० ८०७ , १५३०) ।

§ १५८—कभी कभी अ और आ किसी उद्वृत्त इ और ई तथा उ और ऊ से संधि कर लेते है **केली** निकला ***कइली** से = ***कदिली = कदली,** इसमे इ § १०१ के अनुसार आयी तथा इसके अनुसार **केल** निकला ***कइल** से = ***कदिल = कदल** (हेमचन्द्र १, १६७ और २२०)[१] , महा०, अ० माग०, जै० महा० और शौर० में **थेर** निकला **थइर** से = **स्थविर** (हेमचन्द्र १, १६६ , २, ८९ , पाइय० २ , देशी० ५, २९ , हाल १९७ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए , पाठ मे **ठेर** रूप मिलता है] , सरस्वती० ८, १३ [यहाँ भी पाठ मे **ठेर** रूप है] , अच्युत० ३२ [यहाँ भी **ठेर** है] , ठाणग० १८१ , १५७ , २८६ , विवाह० १३१, १३२, १६९ , १८२ , १७३ , १८५ , ७९२ , उत्तर० ७८६ , ओव० , कप्प० ,

साथ चलनेवाला **चउत्थ = चतुर्थ** (§ ४४९) है, **चों द्दह** और इसके साथ अप० रूप **चउद्दह**, अ० माग० **चों द्दस** और इसके साथ चलनेवाला दूसरा रूप **चउद्दस=चतुर्दश** (§ ४४२), अ० माग० **चों द्दसम=चतुर्दशम्** (§ ४४९); **चों ग्गुण** और इसके साथ ही चलनेवाला दूसरा रूप **चउग्गुण = चतुर्गुण**, **चों व्वार** और इसके साथ काम मे आनेवाला दूसरा रूप **चउव्वार = चतुर्वार** (हेमचन्द्र १, १७१) है, **तोवट्ट** और इसके साथ चलनेवाला **तउवट्ट = त्रपुपट्ट** (कान का एक गहना . देशी० ५, २३ , ६, ८९) हैं, महा० और अ०-माग० **पों म्म = पद्म** (हेमचन्द्र १, ६१ , २, ११२ है, मार्कण्डेय पन्ना ३१, काल्येय० १४, १५ , पार्वती० २८, १५ , उत्तर० ७५२ [पाठ में **पोमं** है], **पों म्मा= पद्मा** (हाल) है, महा० और शौर० **पों म्मराअ = पद्मराग** (मार्कण्डेय पन्ना ३१ , हाल , कर्पूर० ४७, २ , १०३, ४ (शौर०) , १६८, ४ (शौर०) है, महा० **पों म्मासण = पद्मासन** (काल्येय० ३, ११) है , इनसे निकले और इन रूपो के साथ साथ महा०, अ० मा०, जै० महा० और शौर० में **पउम** और **पउमराअ** मिलते हैं (§ १३९) , **वोहारी** और इसके साथ साथ **वउहारी** (झाड़ू: देशी० ६, ९७ , ८, १७) , अप० **भों हा** जो ***भॅउहा** से निकला है=**भमुहा** (पिंगल २, ९८ , § १२४ और २५१) , **मोड** के साथ **मउडी** (सॅवारे हुए बालों की लट : देशी० ६, ११७ , पाइय० ५७) , महा०, अ० माग०, जै० महा०, शौर० और अप० में **मोर** रूप मिलता है (वररुचि १, ८ , क्रम० १, ७ , मार्कण्डेय पन्ना ६ , पाइय० ४२ , हाल , अणुओग० ५०२ , ५०७ , नदी० ७० , पण्णव० ५२६ , राय० ५२ , कप्प० , कक्कुक शिलालेख , शकु० १५५, १० , १५८, १३ , उत्तर० १६३, १० , जीवा० १६, १२ , विक्रमो० ७२, ८ , पिंगल २, ९०), अप० में **मोरअ** रूप भी मिलता है (पिंगल २,२२८) । स्त्रीलिंग में महा० और शौर० में **मोरी** रूप मिलता है (शकु०,८५, २ , शौर० में शकु० ५८, ८, विद्ध० २०, १५), माग० में **मोली** रूप पाया जाता है (मृच्छ० १०,४ [यहाॅ यही पाठ पढा जाना चाहिए]), अ० माग० **मोरग = मयूरक** (आयार० २, २, ३, १८), इससे निकला तथा इसके साथ साथ अ० माग०, जै० महा० और शौर० में **मऊर** रूप भी प्रचलित है (सब व्याकरणकार , गउड० , पण्णव० ५४ , दस० नि० ६६२,३६ , एर्त्से० , विक्रमो० ३२, ७ , मल्लिका० २२०, २०), अ० माग० में **मयूर** भी (विवाग० १८७ , २०२), **मयूरत्त = मयूरत्व** मिलता है (विवाग० २४७), माग० मे **मऊलक** देखा जाता है (शकु० १५९, ३), स्त्रीलिंग में अ० माग० में **मयूरी** (नायाध० ४७५ , ४९० , ४९१) रूप आया है। **मोर** रूप प्राकृत से फिर संस्कृत मे ले लिया गया है, इस कारण हेमचन्द्र १, १७१ मे संस्कृत माना गया है। महा० **मोह = मयूख** (सब व्याकरणकार , रावण० १, १८), महा० और शौर० में साथ-साथ **मऊह** रूप भी चलता है (सब व्याकरणकार , पाइय० ४७ , गउड० , हाल , रावण० , प्रबध० ४६, १) , महा० **विओल** जो ***विआउल** से निकला है=**व्याकुल** (देशी० ७, ६३ , रावण० ,

कप्प०, नायाध०, ऋषभ०), जै० महा० मे **अंधयारिय** रूप भी आया है (एर्त्से०)। महा०, जै० महा० और अप० मे **आअअ** से निकला और उसके साथ साथ चलनेवाला **आअ = आगत** (हेमचन्द्र १, २६८, हाल, आव० एर्त्से० ८, ४७, पिंगल २, २५५ और २६४)। **कंसाल = कांस्यताल** (हेमचन्द्र २, ९२), इसका शौर० रूप **कंसतालअ** है (मृच्छ० ६९, २४)। अ० माग० **कम्मार*** = **कर्मकार** (जीवा० २९५), इसी प्रकार संधि उन सभी पदो की होती है जिनमे **कार** का उद्वृत्त रूप **आर** जोडा जाता है, जैसे अ० माग० मे **कुंभार** = **कुंभकार** (हेमचन्द्र १, ८, मार्क० पन्ना ३२, उवास०), इसके साथ-साथ **कुंभआर** रूप भी चलता है (सब व्याकरणकार), अ० माग० मे **कुंभकार** भी मिलता है (उवास०), जै० महा० मे **कुंभगार** रूप भी आया है (एर्त्से०)। दाक्षि० में **चम्मारअ = चर्मकारक** (मृच्छ० १०४, १९)। महा० में **मालाकारी मालारी** (हाल, देशी० १, १४६, ११४), अ० माग० **लोहार = लोहकार** (जीवा० २९३), **दोधार = द्विधाकार** (ठाणग० ४०१)। महा० मे **वलयकारक = वलआरअ** (हाल), **सोणार = स्वर्णकार** (§ ६६)। अप० **पिआरी = प्रियकारी** (पिंगल २, ३७)। जै० महा० में **खंधार = स्कंधावार** (मार्क० पन्ना ३२, एर्त्से०) इसके साथ साथ **खंधवार** शब्द भी मिलता है (एर्त्से०)। महा० में **चक्काअ = चक्रवाक** (हेमचन्द्र १, ८, क्रम० २, १५१, मार्क० पन्ना ३२, शकु० ८८, २ पेज १९२ की टीका मे चन्द्रशेखर, गउड०, रावण०, शकु० ८८, २), अ० माग० मे इसका रूप **चक्काग** मिलता है (पण्णव० ५४)। अ० माग० **णिण्णार=निर्नगर** (विवाह० १२७७)। अ० माग० **निंबोलिया†** = **निंबगुलिका** (नायाध० ११५२, ११७३), **तलार=तलवार** (देशी० ५, ३, त्रिवि० १, ३ और १०५, पिशल वे० बा० ३, २६१)। **पार** और इसके साथ चलनेवाला दूसरा रूप **पाआर = प्राकार** (हेमचन्द्र १, २६८)। महा० में **पारअ** (हेमचन्द्र १, २७१, हाल, इडिशे स्टुडिएन १६, १७ जो १८४ की टीका है) और इसके साथ-साथ चलनेवाला रूप **पावारअ=प्रावारक, पाराअ** और इसका दूसरा पर्याय **पारावअ=पारावत** (भामह ४, ५, § ११२ से भी तुलना कीजिए)। महा० में **पावालिआ = प्रपापालिका** (हाल)। जै० महा० मे **वरिसाल = वर्षाकाल** (एर्त्से०), **वारण** और इसके साथ चलनेवाला **वाअरण=व्याकरण** (हेमचन्द्र १, २६८), महा० मे **सालाहण = सातवाहन** (हेमचन्द्र १, ८, २११, हाल)। महा० में **साहार = सहकार** (कर्पूर० ९५, १)। अ० माग० मे **सूमाल** और साथ ही **सुकुमाल = सुकुमार** (§ १२३), **सूरिस** और इसका पर्याय **सुउरिस = सुपुरुष** (हेमचन्द्र १, ८)। महा० रूप **जाला, ताला** (हेमचन्द्र ३, ६५, मार्क० पन्ना ४६, ध्वन्यालोक ६२, ४) भी संधियुक्त रूप माने जाते हैं, अशुद्धि से शौर० में भी ये रूप आये है (मल्लिका० ८७, ११, १२४,

---

* यह शब्द **कामार** रूप में बगला में वर्तमान है। —अनु०

† यह शब्द औपपातिक सूत्र में भी आया है। —अनु०

१४) और माग में भी मिलते हैं (मल्लिका १८८, २) = *यावत्कालात् और *तावत्कालात्। कालाद (हेमचन्द्र १, ४५, मार्क० पन्ना ४१) = *कालात् कालमद (पिशल पे० बाइ १६, १७२ में) । § २७४ से भी तुलना कीजिए।

§ १६ —सन्धियुक्त शब्द के पहले पद के अंतमें जो अ आता है वह कुछ अव सरों पर, उसके बादके पदमें जो असमान उद्वृत्त स्वर आता हो, उसमें लुप्त हो जाता है। *इंदओव से निकला इंदोव = इन्द्रगोप (पाइय १५ देशी १, ८१), अ माग में इसका रूप इंदगोव मिलता है (अणुओग० १४४), एक रूप इंद गोवग भी है (उत्तर १ ४२), इंदगोवय भी पाया जाता है (पण्णव० ४५) इंदोवत्त = *इंद्रगोपाळ (= घोंघा : देशी १,८१ [इंदोवत्तो अ इंदोवे कीडेसु अर्थात् कीड़े का नाम इंदोवत्त है। टीका में है इंदोवत्तो इन्द्रगोपकः ।—अनु]); *घरओली से घरोली० रूप बना = *घरगोली = गृहगोली (घरकी दीवारों में चिपका रहनेवाला एक प्रकार का कनखजूरा देशी० २, १ ५) अ माग में घरोलिया रूप है = गृहगोलिका (पण्हा २२ पण्णव० ५३ [पाठ में घरोलग मिलता है]) *घरओल से निकला एक घरोल रूप भी है, *घरगोल = गृह गोल(क) (एक तरह पकवान देशी २, १ ६) । महा , अ माग , जै महा , शौर माग और ढक्की में देउल = देवकुल (हेच १, २७१ ; मार्क पन्ना ११ हाल अणुओग २८७ नायाध ५१५ तीर्थ ४, ९ ७, १८ ; एर्त्से मृच्छ १५१, १४ कर्पू २५, १ मृच्छ २९ २४ ; १ , ११ १२), इसके साथ-साथ और इससे ही निकला एक रूप देवउल भी है (हेच मार्क एर्त्से ; विक्र० ५९ ७ चैतन्य १३४, १ और १४) अ माग में देवकुल का भी प्रयोग हुआ है (आयार २, १ २ ८ २, १ १४ २, ११, ८ पण्हा ५२१ ; नायाध ७८१ कप्प) जै महा देउलिया = देवकुलिका पाया जाता है (आव एर्त्से ११, १) । जै० महा और दाक्षि में राउल = राजकुल (भाम ४, १ ; हेच १ २६७ ; मार्क पन्ना ३२ एर्त्से ; मृच्छ १ ५, ४) माग में लाउल रूप है (ललित ५६ ७ ९ १ ५६६, ११ ; २ ; मृच्छ ३६, २२ ; १३५ २) यह रूप शौर में अशुद्ध है (प्रबोध ४७, ८ और ९ ४९ ११ और १५ ; मद्रासी संस्करण में सर्वत्र लाअउल है पूना संस्करण ४७ ९), इन स्थानों में रायउल पढ़ा जाना चाहिए (सब व्याकरणकार) जैसा शकुन्तला ११५ ९ और ९ ११९ ? रत्नावली ३ ९ ९ नागानंद ५७, ३ प्रियदर्शिका ९, ११ में है। प्रबोधचंद्रोदय १२ ९ में माग का रूप लाअउल दिया गया है (मद्रास संस्करण में रायउल है) ये रूप लायउल पढ़े जाने चाहिए, जै महा में रायउल रूप मिलता है (एर्त्से)[१] ; *लाअउत्त से निकला माग रूप लाउत्त = राजपुत्र (शकु ११४ १ ११५ ७ और ९ ११६ ९ ११७ ५) । लाउत्त और इसके साथ-साथ दूसरा रूप लायउत्त = राजपुत्र (देशी ७ ८८) ।

---

* घरोली का रूप कुमाउनी में घिरोली है। वह कनखजूरा नहीं है बल्कि एक प्रकारकी कमेली चमकदार देह की छोटी छिपकली-सा जन्तु है। —अनु

१. शकुंतला ११४, १ (पेज १९७) पर चंद्रशेखर की टीका की तुलना कीजिए, उसमें आया है **राउल** शब्द (यहाँ यही पढ़ा जाना चाहिए) **ईश्वरे देशी**। इस अर्थ में यह शब्द प्रबोधचंद्रोदय और संस्कृत शिलालेखों में पाया जाता है (एपिग्राफिका इंडिका ४, ३१२ में कीलहौर्न के लेख की नोट संख्या ७)। त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ४७, ५७६ में याकोबीने इस विषय में सोलह आने अशुद्ध लिखा है।

§ १६१—एक वाक्य में स्वर चाहे मौलिक रूप से एक के बाद दूसरा आ जाये या व्यंजन के लुप्त होने पर एक के पास दूसरा स्वर खिसक आये, नियम यह है कि ऐसी अवस्था में शब्द का अंतिम स्वर बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के ज्यों का त्यों बना रहता है। पल्लवदानपत्र में **कांचीपुराद् अग्निष्टोम** का रूप **कांचीपुरा अग्गिठोम** है (५, १), **शिवस्कंदवर्मास्माकम् विषये** का **शिवखंधवमो अम्हं विसये** (५, २), **गोवल्लवान् अमात्यान् आरक्षाधिकृतान्** का **गोवल्लवे अमच्चे आरक्खधिकते** (५, ५) हो गया है। **इतिअपि चापि ट्टीयम्** का **त्ति अपि च आपिट्टीअं** रूप मिलता है (६, ३७)। **इति एव** का **त्ति एव** (६, ३९), **तस्य खल्वस्ये** का **तस खु अम्हे** (७, ४१), **स्वककाल उपरिलिखितम्** का **सककाले उपरिलिखितं** हो गया है (७, ४४)। महा० में **न च म इच्छया** का रूप **ण अ ये इच्छाइ** पाया जाता है (हाल ५५५), **त्वम् अस्य अविनिद्रा** का **तं सि अविणिद्दा** आया है (हाल ६६), **दृष्ट्वोन्नमतः** का **दट्ठूण उण्णमंते** हो गया है (हाल ५३९), **जीवित आशंसा** का **जीविए आसघो** रूप है (रावण० १, १५), **प्रवर्तताम् उदधिः** का **पअट्टउ उअही** मिलता है (रावण० ३, ५८), **अमुञ्चत्य अंगानि, आमुअइ अगाइ** में परिणत हो गया है (रावण० ५,८), **यात पलासुरभौ, जाओ पलासुरहिम्मि** बन गया है (गउड० ४१७), **स एष केशव उपसमुद्रम् उद्दाम** का **सो एस केसव उवसमुद्दम् उद्दाम** रूप देखा जाता है (गउड० १०४५)। अ० माग० मे **अस्ति म आत्मौपपातिकः** का **अत्थि मे आया ओववाइए** बन गया है (आयार० १,१,१,३), **चत्वार एते** का **चत्तारि एए** मिलता है (दस० ६३२, ७), **ता आर्या एयमाना पश्यति** का **ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ** रूप पाया जाता है (निरया० ५९), **एक आह** का **एगे आह** रूप है (सूय० ७४), **क्षीण आयुषि** का **खीणे आउम्मि** रूप आया है (सूय० २१२), **य इमा दिशा अनुदिशोऽनुसंचरति, जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ अणुसंचरइ** बन गया है (आयार० १, १, १, ४)। यही नियम अन्य प्राकृत भाषाओं में भी लागू है।

§ १६२—संधिवाले शब्द में **न** (= नहीं) दूसरे पद के आरम्भिक स्वरके साथ और विशेषतः जब यह पद क्रिया हो तब बहुधा संधि कर लेता है। महा०, अ० माग०, जे० महा०, जै० शौर० और शौर० में **नास्ति = णत्थि*** (गउड०, हाल , रावण० , आयार० १, १, १, ३ , आव० एर्त्से० ९, ९ , पव० ३८०, १० ,

* इसके गुजराती में नथी और कुमाउनी में न्हाति रूप शेष रह गये हैं। —अनु०

मृच्छ० २, २४)। माग० में नास्ति का णत्थि रूप है (उदाहरणार्थ, मृच्छ० १९, ११ [पाठ में णत्थि छपा है])। महा० में णायी रूप मिलता है जो=न+ असी है (गउड २४६), णल्लिअइ भी पाया जाता है जो=न + अल्लिअइ (रावण १४, ५)। महा , जै० शौर और शौर० में णाई रूप आता है जो =न+अहम् है (हाल १७८ पद्य० १८८, ११ विक्रमो० १०,१३)। महा में णाउछभाव = न+माउछभाव (गउड ८११), णागम = न+मागत (हाल ८५१), णाळवइ = न + आळपति (हाल १४७)। अ० माग और जै० शौर० में णेव और णेव रूप मिलते हैं, ये न + एव से निकले हैं (आयार० १, ४, २, २), नामिआणइ = नामिआमाति (आयार १, ५, १, १), नारभे = न+आरभेत (आयार १, ५, १४), नाभिभासिसु=न + अभिभासिसु, नाइवत्तई = न+ अतिवर्तते (आयार १, ८, १, १)। शौर में णागदा = न + आगता (माल्ती ७२, ६)। माग० में णाअच्छदि=न+आगच्छति (मृच्छ० ११६, ५ १९ ; ११७, ११)। अ माग० और जै० महा में नाइदूर (उवास § २०८ ; ओव § ३१ ; नायाध § ७ एर्से २२, ३१) और शौर में इसका रूप णादिदूर हो जाता है (माल्ती ३ , ८), माग में इसका रूप णादिदूल मिलता है (चंड ६६, ११) ये सब रूप=न+अतिदूर और णारिहदि=न+ अर्हति (शकु २४ १२)। महा णेच्छइ = न+ इच्छति (हाल २ ५), शौर में णेच्छदि रूप होता है (शकु ७१ ८), माग० में णेच्छदि (मृच्छ ११, १)। शौर णालंकिदा=न + अलंकृता (मृच्छ १८, १), णोदरदि= न+अवतरति (मृच्छ १ ८, २१)। ऐसे अवसरों में न उपसर्ग-सा बन जाता है और इसका वही उपयोग होता है मानो यह संधि का पहला पद हो। ज्ञा धातु के विषय म भी यही नियम लागू होता है जो न के बाद आने पर ज्ञ छोड़ देता है, अ माग और जै महा में यह ज्ञ एक शब्द के भीतर के अक्षर की भाँति ण में बदल जाता है : महा में ण आणामि ण आणासि, ण आणइ, ण आणिमो, ण आणह और ण आणंति रूप मिलते हैं अ माग और जै महा में ण याणामि (नायाध § ८४ ; आव एर्से २९,१९) जै महा म ण याणसि और ण याणइ० रूप देखे जाते हैं अ माग म ण याणामो और शौर में ण आणामि रूप मिलता है (मृच्छ ५२ १६ ६५ ११ विक्रमो ८१ १४ ; ८९ १) माग० म ण आण्णासि पाया जाता है (मृच्छ १४ १२) शौर और दाक्षि म ण आणादि दाक्षि मे ण आणासि शौर मे ण आणीयदि=न ज्ञायते महा अ माग और शौर मे ण आणे=न जाने। इनके प्रमाण के लिए उद्धरण § ४५७ ५१ और ५४८ में दिये गये हैं। यह शब्द निर्माण प्रक्रिया निम्नलिखित संधि प्रक्रिया के बिलकुल समान है जैसे शौर मे अआणंतेण=अजानता (मृच्छ १८ २२ ; ६१, २४), अआणिअ=अज्ञात्वा (शकु ५ ११) अ माग में पियाणाइ,

---

* हिन्दी में अजाना और सयाना इस नियम और अ माग रूप से महा के अनुरूप है। —अनु

शौ० और माग० मे विआणादि, अ० मा० मे परियाणइ और माग० में पच्चभिआणादि (§ ५१०)। बहुत अधिक अवसरो पर न उपसर्ग के रूप मे प्रयुक्त नही होता, इसलिए यह सब स्वरो से पहले अधिकाश मे अपरिवर्तित रह जाता है, जैसा महा० रूप ण इट्ठं = नेष्टम् (हाल ५०१), ण ईसा=नेर्ष्या (हाल ८२९), ण उत्तरइ = नोत्तरति (हाल २७१), ण एइ = नेति (रावण० १४, ४३), ण ओहसिया = नावहसिता (हाल ९०), अ० माग० रूप न अम्बिले, न उण्हे, न इत्थी, न अन्नहा = नाम्लः, नोष्णः, न स्त्री, नान्यथा, इनके साथ-साथ नत्थि रूप चलता है (आयार० १, ५, ६, ४), सब प्राकृत भाषाओ मे यही नियम है।[1]

1. लास्सनकृत इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतकाए, पेज १९२ से तुलना कीजिए, विक्रमोर्वशी, पृष्ठ १९३ और ३०२ पर बॉल्लें नसेॅन की टीका, त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ३२, १०४ मे एस० गौल्दश्मित्त का लेख भी देखिए।

§ १६३—जैसा सस्कृत में कभी-कभी होता है, वैसा ही प्राकृत में भी सधि के प्रथम पद के रूप मे अ और अन् के स्थान पर न आता है। महा० णसहिआलोअ= असोढालोक (गउड० ३६४), णसहिअपडिबोह = असोढप्रतिबोध (गउड० ११६२), णप्पहुप्पंत = अप्रभवत् (गउड० १६ और ४६), णपहुत्त=अप्रभूत (गउड० ११४), रावणवहो ३, ५७ में इसके स्थान पर णवहुत्त रूप आया है, इसमें छन्द मिलाने और अनुप्रास के लिए, जैसा प्राकृत में बहुधा होता है, प, व मे बदल गया है। नीचे दिये गये अ० मा० दृष्टातों में इसी न को मानने का बहुत झुकाव दिखाई देता है, जैसे तंमग्गं णुत्तरं = तं मार्गम् अनुत्तरम् (सूय० ४१९), दिसं णंतजिणेन = दिशं अनंतजिनेन (आयार० २, १६, ६), दिट्ठीहिं णंताहिं = दृष्टिभिर् अनंताभि., मुत्तिसुहं णंताहिं पि [पाठ मे वि है] वग्गवग्गूहिं = मुक्तिसुखम् अनंतैर् अपि वर्गवग्नुभिः (पण्णव० १३५), अग्गिवण्णाइं णेगसो = अग्निवर्णान्य् अनेकशः (उत्तर० ५९८), एगपए णेगाइं पदाइं =एकपदेऽनेकानि पदानि (पण्णव० ६३), एस्संति णंतसो = एष्यंत्य् अनंतशः (सूय० ४५, ५६, ७१), बंधणेहिं णेगेहिं = बंधनैर् अनेकैः (सूय० २२५), गंडवच्छासु [पाठ मे गंडवत्थासु है] णेगचित्तासु = गंडवक्षःस्व् अनेकचित्तासु (उत्तर० २५२), इत्तो णंतगुणिया=इतोऽनंतगुणिकाः (उत्तर० ५९९), विरायए णेगगुणोववेए=विराजतेऽनेकगुणोपेतः (सूय० ३०९), वुद्धेहिं णाइण्णा = वुद्धैर् अनाचीर्णा (दस० ६२७, १६)। इस भाँति के सभी दृष्टान्तों में किन्तु आरम्भिक अ की विच्युति हो जाती है (§ १५७) और पाठ में सदा ण, न कभी नहीं, लिखा मिलता है, यहाँ भी अ की विच्युति माननी पड़ेगी। फिर भी लेखनशैली कुछ बदल कर मग्गंऽणुत्तरं आदि आदि रूप लिखने से अधिक सुविधा होगी।

§ १६४—न को छोडकर उस अवसर पर वाक्य मे बहुधा सधि हो जाती है जब उसमें एक शब्द सर्वनाम, क्रियाविशेषण, विभक्ति चिह्न अथवा किसी सज्ञा का

कार कारक हो, जो विभक्ति के चिह्न के रूप में व्यवहृत हुआ हो, उसे शब्द के अथवा पादपूरण का रूप मानना चाहिए। इस प्रकार की संधि सबसे अधिक अ०माग० और जै० महा० में होती है। इस तरह : अहावरा = अथापरा (आयार० २,१, ११,४ और उसके बाद २, २, १, ११ और उसके बाद २, ५, १, ७ और उसके बाद आदि-आदि), न याई = न चाइ (आयार १, ७, ६, १), जेणाई= येनाहं (उत्तर० २४१) जै महा में जेणाइ रूप होता है (एर्त्से० १, १४), जेणामीयाइं = येनानीताइं (एर्त्से ८, १३) इहाडवीए = इहाटव्याम् (एर्त्से १, ११) महा सहसागमस्स=सहसागतस्य (हाल १९७) अ० माग पुरासी=पुरासीत् (सूय ८९८) जै महा सहामच्चेण=सहामात्येन (आव० एर्त्से ११,१८) ; अ माग वारिकेयं=वारिकेयम् (दस नि० ४४८,२) महा ण हुखला=न खलूज्ज्वला (हाल ११३ की टीका) अ माग नो हुवणमति=नो खलूपनमति (सूय० १), परमोवरए=अमोपरतः (आयार १, ६, २, ४) ; जै महा सिहरोवरि=शिखरोपरि (तीर्थ ५, १) ; शौर० ममोवरि=ममोपरि (मृच्छ ४१, २२) जै शौर उस्सेध [पाठ म उस्सेह मिलता है]= यस्येह (पव० ३८८ २४)। अक्खाचि, केणाचि तेणाचि आदि के लिए § १४१ देखिए। अन्य अवसरों पर बहुत ही कम संधि होती है, जैसे अ माग समासज्झायितइं=समासाध्यायितयम् (आयार १, ७, ८, १७), आणित्ता यरियस्स=ज्ञात्वाचार्यस्य (उत्तर ४१), कम्माणाणफला=कर्माण्य् अज्ञान-फलानि (उत्तर ११३), तहोसुयारो=तथेषुकारः (उत्तर ४२२), इसिणाहार म् माईणि=अपिणाहारादीनि (दस ६२६, १) जै० महा में माणुसेसूपपया तिरिक्खासूववया=मानुषेषूपपया,*तिर्यक्षूपपया (आव एर्त्से १० २२ और २१) पडिकप्पियपणागओ = प्रतिकल्पितेनागतः (एर्त्से १२ १८), सुपुद्धिनामेणामच्चेण=सुबुद्धिनाम्नामात्येन (एर्त्से १७, १९)। अ माग पद्य में कभी-कभी उन स्वरों की संधि हो जाती है जो अलौकिक अपत् गौण रूप म पास-पास चले आते हैं। इस नियम के अनुसार पसावरए=प्प उपरतः (आयार १,१,५ १) ; उवसग्गा भीमास = उपसर्गा भीमा आसन् (आयार १ ८, २ ७) ; तम्हायिज्जो=तस्माद् अतिविद्या (आयार १, ४, १, १)· पुद्धानुसासंति = पुद्धा अनुशासति (उत्तर ११) ; पराजियायस प्पामा = पराजिता अपसर्पामः (सूय १८६) ; अकयकरणाणभिगया य = अकृतकरणा अनभिगताः च (जीयकप्प ७१)। मग्गं अनुसासंति से निकले रूप मग्गाणुसासंति में माग के अनुस्वार की ध्वनि अस्पष्ट होने से यहाँ संधि हो गयी है। यह शब्द है मागम् अनुशासति (सूय ४९ और ५१७) अर्थ अणुगच्छइ पंथं अणुगामिय से निकले रूप अद्धाणुगच्छइ और पंथाणु गामिय=अध्यानम् अनुगच्छति और पंथानम् *अनुगामिका (सूय ५१)। § १७३ और १७५ से भी तुलना कीजिए।

§ १६७—महा और शौर में सार विभाग जै महा और अ माग० में संधि

युक्त शब्द के प्रथम पद के अंतिम स्वर, दूसरे पद के आरम्भिक स्वर से पहले आने पर उडा दिये जाते हैं : महा० **जेण्' अहं=येनाहम्** (हाल ४४१), **तुज्झ्' अवराहे =तवापराधे** (हाल २७७) , जै० महा० **कुणालेण्' इमं=कुणालेनेमम्** (आव० एर्त्से० ८, १६), **तायस्स्' आणं=तातस्याज्ञाम्** (आव० एर्त्से० ८, १८), **जेण्' एवं=येनैवम्** (एर्त्से० १४, ८), **इह्' एव = इहैव** (आव० एर्त्से० २९, १४ , एर्त्से० १७, ३ , २०, १४), **जाव्' एसा=यावद् एषा** (एर्त्से० ५३, २८), **तह्' एव=तथैव** (आव० एर्त्से० १२, २६ , २७, १९), **तस्स् अण्णेसणत्थं= तस्यान्वेषणार्थम्** (एर्त्से० १३, ८) , जै० शौर० में **तेण्' इह** पाया जाता है (पव० ३८७, २१), **जत्थ्' अत्थि=यत्रास्ति** (कत्तिगे० ४०१, ३५३), **तेण्' उवइट्ठो=तेनोपदिष्टः** (कत्तिगे० ३९८, ३०४), अ० माग० मे **अक्खाय्' अनेलिपं= आख्यातानीदृशम्** (आयार० १, ८, १, १५), **जत्थ्' अत्थमिए, जत्थ्' अवसप्पंति, जत्थ्' अगणी = यत्रास्तमितः, यत्रावसर्पंति, यत्राग्निः** (सूय० १२९ , १८१ , २७३) हैं , **वुड्ढेण अणुसासिए = वृद्धेनानुशासितः** (सूय० ५१५), **उभयस्स्' अंतरेण = उभयस्यांतरेण** (उत्तर० ३२), **विन्नवण्' इत्थीसु = विज्ञापना स्त्रीषु** (सूय० २०८ , २०९), **जेण्' उवहम्मई=येनोपहन्यते** (दस० ६२७, १३), **जह्' एत्थ्=यथात्र** (आयार० १,५,३,२), **विप्पडिवन्न्' एगे = विप्रतिपन्ना एके** (सूय० १७०), **तस्स्' आहरह = तस्याहरत** रूप मिलते हैं (आयार०, २,१, ११, २)। निम्नलिखित अ० माग० और जै० महा० शब्दो में **इ** की विच्युति पाई जाती है, उदाहरणार्थ : **णत्थ' ऍत्थ = नास्त्य् अत्र** (आयार० १, ४, २,५ , एर्त्से० १०, २१), इसके विपरीत शौर० में **णत्थि ऍत्थ** मिलता है (शकु० १२१, ५), अ० माग० **जंस्' इमे=यस्मिन्निमे** (आयार० १,२,६,२), **संत्' इमे = संतीमे** (आयार० १,१,६,१ , सूय० ६५ , उत्तर० २०० , दस० ६२५,२५ , ६२६, ३६), **वयंत्' एगे = वदंत्य् एके** (सूय० ३७), **चत्तार्' इत्थियाओ = चतस्रः स्त्रियः** (ठाणग २४७), **चत्तार अंतरदीवा = चत्वारो' न्तरद्वीपाः** (ठाणग० २६०) हैं। **चत्तार** रूप पद्य में मिलता है, इसके साथ गद्य में **चत्तारि, चत्तार** रूप चलते हैं **चत्तारि अगणिओ = चतुरो' ग्नीन्** (सूय० २७४) यह भी पद्य में आया है, **कीळंत' अन्ने = क्रीडंत्य् अन्ये, तरंत्' एगे=तरंत्य् एके** (उत्तर० ५०४, ५६७), **तिन्न्' उदही, दोन्न्' उदही=त्रय उदध्यः, द्वाव् उदधी** (उत्तर० ९९६, १०००), **दलाम्' अहं=दलाम्य (ददाम्य्) अहम्** (उत्तर० ६६३) हैं। निम्नलिखित शब्दों में **ए** की विच्युति है, उदाहरणार्थ . अ० माग० **स्' एवं=स एवम्** (आयार० १, ७, ३, ३ , २, ३, १, १ और उसके बाद), **पढम्' इत्थ=प्रथमो' त्र** (नदी० ७४), **तुब्भ्' ऍत्थ = युष्मे अत्र, इम्' एए = इम एते, मन्न् एरिसम्=मन्य ईदृशम्** (उत्तर० ३५८ , ४३९ , ५७१), **इम्' एयारूवे=अयम् एतद्रूपः** (विवाग० ११६, विवाह० १५१, १७०, १७१ , उवास०) है। अ० माग० **गुरुण्' अंतिए=गुरुणो अंतिए=गुरोर् अतिके** मे **ओ** की विच्युति है (उत्तर० २९ ; दस० ६३२, २२)। नीचे दिये शब्दों मे नाक की (नासिक) ध्वनि विगडने पर

अनुस्वार की विच्युति हो गयी है, उदाहरणार्थ अ माग में णिओयजीवाण्' अणंताणम्=नियोगजीवानाम् अनंतानाम् (पण्णव ४२), चरिस्स्' अहं, चरिस्स अहं के लिए आया है = चरिष्याम्य् अहम् (सूय० २११), पुच्छिस्स्' अहं, पुच्छिस्सं अहं के लिए आया है = अप्राक्षम् अहम् (सूय २५९), वेणइयाण् उ वायं=वैनयिकानाम् उ वादम् (सूय ११२), विप्परियास्' उवेंति=विपर्यासम् उपयंति (सूय ४९८ ४९७) दुक्खाण्' अंतकर = दुःखानाम् अंतकरः (उत्तर १०५), सिद्धाण्' ओगाहणा = सिद्धानाम् अवगाहना (ओव § १७१) पढम् इत्थ = प्रथमम् अत्र (कप्प § १), इम् एयारूव = इयम् एतद्रूपम् (आयार २,१५,२४ कप्प० § ४), इम् एरिसम् अणायारं = इमम् ईदृशम् अनाचारम् (दस ६२६, २७) हैं जै महा० में मोरियवंसाण् अम्ह = मौर्यवंशानाम् अस्माकम् (आव एर्त्से ८, १७), इम् एरिसम् = इमम् ईदृशम् (आव एर्त्से २५, २६) हैं। इस प्रकार के प्रायः सभी उदाहरण पद्य में मिलते हैं। अ माग के बार-बार दुहराये जानेवाले वाक्य णो इण्' अट्ठे समट्ठे (सूय ८९२ ९८६ ; ९९२ पण्णव ३६६ नायाध ५७० विवाह ३७ ४४ ४६ और उसके बाद ७९ ; १ ६ ११२ और उसके बाद २ ४ ओव § ६९ ; ७४ उवास [इसमें समट्ठ मिलता है]), इसके साथ-साथ णो इणम् अट्ठे समट्ठे भी देखा जाता है (§ ओव ९४) = 'ऐसी बात नहीं है' में इण्' हेमचंद्र ३, ८५ के अनुसार नपुंसक लिंग का कर्ता एकवचन माना जाना चाहिए और यह वैसे अ माग में (§ ३५७) पुलिंग के साथ भी संबंधित है।[1] अन्य प्राकृत भाषाओं में अंतिम स्वर की विच्युति बहुत कम देखने में आती है, जैसे, शौर में एत्थ् अंतरे आया है (मृच्छ० ४ , २१ जो महा में भी एर्त्सेलुंगन १७, १ में यह रूप पाया जाता है) माग तथ् यव्वंण = सर्वेतन (मृच्छ १२, १९) पद्य में पाया गया है।

1 वेबर द्वारा संपादित भगवती १ ४ ९ में जहाँ विपाहपन्नत्ति स संधियुक्त शब्दों का संग्रह किया गया है वहाँ यह अशुद्ध दिया गया है। ए म्युलर कृत बाइत्रैगे पेज ५ , होएर्नले द्वारा संपादित उवासगदसाओ, अनुवाद की नोटसंख्या १ ० । बी सा कु मा ३ ३४४ और उसके बाद में लीयमान के निर्णय से भी तुलना कीजिए।

§ १६६—अ माग में अपि और इति के अंतिम स्वर कभी कभी उन स्थलों में जहाँ संस्कृत में व्याकरण के नियमों में संधि हो जाती हो, दूसरे पद के आरंभिक और असमान स्वर से संधि कर लेते हैं। अपि = अप्प् यह एक के साथ घुलमिलकर एक शब्द ०अप्पेकइय का रूप धारण कर लेता है जैसा पाली में होता है : अप्पेगे = ०अप्येके (आयार १ १ २ और उसके बाद) अप्पेगे = ०अप्येके (आयार १ १ ६), अंसि तंसि प्पेगे = यस्मिन् तस्मिन्, ०अप्येके (आयार १ ८ २ ११) इसके साथ साथ शब्द के भीतर की इ के तनिपरि वर्तन के उदाहरण भी मिलते हैं : वि एगे (आयार १, ५, ४, १), वि एए

(उत्तर० १०१६) और व् ' एगे (आयार० १, ५, ५, २ , १, ६, ४, १ , सूय० २३४), व् ' एए (विवाह० १०१ , १८०), व् ' एग् ' एवम् आहंसु = *अप्येक एवम् आहुः (सूय० २४०), एवं प् ' एगे (आयार० १, ६, १, १ और २), पुव्वम् प् ' एयं पच्छा व् ' [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] एयं = पूर्वं अप्य् एतत् पश्चाद् अप्य् एतत् (आयार० १, ५,२,३), अ० माग० मे अप्पेगइया = पाली अप्पेकच्चे = *अप्येकत्याः (ओव०) हैं, जै० महा० मे भी इओ 'प्प' एव = इतो 'प्य् एव (आव० एर्त्से० ११,२३) है। इसी प्रकार इति शब्द है . अ० माग० में इच्चाइ = इत्यादि (कप्प० § १९६ और उसके वाद), इच्चेव रूप भी मिलता है (आयार० १, ५, ५, ३ , सूय० ५५७), इच्चेव् ' एगे (आयार० १, ३, २, २), इच्चत्थं (आयार० १, २, १, १), इच्चेवं (आयार० १, २, १, ३), इच्चेए (आयार० १, १, ३, ७ , ४, ७ , १, ५, ४, ५), इच्चेहि (आयार० १, २, १, ५), इच्चेयाओ, इच्चेयासि (आयार० २, १, ११, १० और ११), इच्चेयावंति (आयार० १, ५, ६, ४) रूप मिलते हे । शौर० मे एतद् से पहले नु आने पर इसका रूप ण्व् हो जाता है और फिर यह ण्व् एतद् के साथ एक शब्द वन कर घुल मिल जाता हे . शौर० मे एवं (ऍव्वं) णेदम् = एवम् ण्व् एतत् (मृच्छ० २२, १६ , ५७, २० , शकु० २, ५ , ४५, १३ , ७१, ६ , प्रबोध० ८, ६ , रत्ना० २९२, ८), कि णेदम् = किं ण्व् एतत् (मृच्छ० ३, २ , २७, १७ , ४०, १७ , ५४, १५ , ६०, ४ , ९७, १४ , ११७, १७ , १६९, २० , १७१, ४ , १७२, २२ , विक्रमो० २५, १८ , ३१,४ , रत्ना० ३०१, २८), इसी प्रकार माग० में (मृच्छ० ४०, ८ , १३४, १७ , १७१, ५) तथा इस प्राकृत के इस नियम के विपरीत शब्दों के लिए § ४२९ देखिए। तं णिद = तन् ण्व् इदम् (ललित० ५६६, २०) है।

§ १६७—पद्य में शब्द का आरम्भिक अ जब वह ए और ओ के वाद आया हो तब संस्कृत के समान ही कभी कभी लुप्त कर दिया जाता है। महा० में पिओ ' ज्ज = प्रियो 'द्य (हाल १३७) है, अ०माग० में आसीणे 'णेलिसं = आसीनो 'नीदृशम् (आयार० १, ७, ८, १७), फासे 'हियासए = स्पर्शान् अध्यासयेत् (आयार० १, ७, ८, १८), से 'भिन्नायदंसणे = सो 'भिन्नातमदर्शनः (आयार० १, ८, १, १०), सीसं से 'भितावयंति = शीर्षम् अस्याभितापयंति (सूय० २८०), से 'णुतप्पई = सो 'नुतप्यते (सूय० २२६), उवसंते 'णिहे = उपसांतो 'नीहः (सूय० ३६५), तिप्पमाणो 'हियासए = तृप्यमाणो 'ध्यासयेत् (आयार० १, ७, ८, १०), इणयो 'व्ववी = इदम् अब्रवीत् (सूय० २५९), आभोगओ 'इवहुसो = आभोगतो 'तिवहुशः (जीयकप्प० ४४), वालो 'वरज्झई = वालो 'पराध्यते (दस० ६२४, ३२) , मागधी मे स्नादे 'हं = स्नातो 'हम् (मृच्छ० १३६,११) है। गद्य में अ का लोप अ० माग० में अभिवादन के लिए सदा चलनेवाले रूप णमो ' त्थु णं = नमो 'स्तुनूनम् (§ ४९८) और जै० महा० मे अहम् के साथ पाया जाता है, जैसे तीए 'हं = तस्याम्

प्राकृतों का **अच्छरिज्ज** और **अच्छअर**=आश्चर्य (§ १३८) है। महा० **केर**=कार्य[1] (=का [तुलसी रामचरितमानस का केर, केरा आदि—अनु०], मार्क० पन्ना ४०, कस० ५२,११), **केरं** (=के लिए . काव्यप्रकाश २८, ७)भी है, शौर० **अम्हकेर** (हेमचन्द्र २, १४७, जीवा० १९, ९), **तुम्हकेर** (हेमचन्द्र २, १४७, जीवा० १०४, ६), **परकेर** (मालवि० २६, ५), उक्त रूपों के अतिरिक्त शौर० में **केरक**, **केरअ** (मृच्छ० ४, ३, ३८, ३, ५३, २०, ६३, १६, ६४, १९, ६५, १०, ११, ७४, ८, १५३, ९, शकु० ९६, १०, १५५, ९, माल्ती० २६७, २, मुद्रा० ३५, ८, प्रिय० ४३, १६, ४४, ६, जीवा० ९, १, कस० ५०, ११), आव० में भी **केरक** रूप मिलता है (मृच्छ० १००, १८), स्त्रीलिंग में . शौर० में **केरिका**, **केरिआ** (मृच्छ० ८८, २४ [यहाँ **केरिकात्ति** पढना चाहिए], ९०, १४, ९५, ६, विद्ध० ८३, ४)हैं, आव० में भी **केरिका** (मृच्छ० १०४, ९) रूप पाया जाता है, शौर० में **परकेरअत्तण**=*परकार्यत्वन (माल्ती० २१५, ३), माग० में **केलक**, **केलअ** (मृच्छ० १३, ९, ३७, १३, ४०, ९, २१ और २२, ९७, ३, १००, २०, ११२, १०, ११८, १७, ११९, ५, १२२, १४ और १५ [यहाँ **केलकाइं** पढिए], १३०, १०, १३३, २, १४६, १६, १५२, ६, १७३, ९, शकु० ११६, ११, १६१, ७), प्रबोधचंद्रोदय ३२, ८ में जहाँ दो, ३४ और ११५ के अनुसार **भट्टालककेलकेहिं** पढा जाना चाहिए, इसी रूप की प्रतिष्ठा करनी पडेगी, स्त्रीलिंग के रूप **केलिका**, **केलिआ** (मृच्छ० २१, २१, २३२, १६ [यहाँ **केलिकाए** पढिए], १३९, १६ [यहाँ **केलिका** पढिए], १६४, ३ और ८, १६७, ३ और २१) रूप देखे जाते हैं, अप० में **केर** [हेमचन्द्र ४, ४२२, २०) और **केरअ** रूप है (हेमचन्द्र ४, ३५९ और ३७३)। महा०, अ० माग० और शौर० में **पेरत**=**पर्यन्त** (वर० ३, १८, भामह १, ५, हेमचन्द्र १, ५८, २, ६५ और ९३, क्रम० १, ४, २, ७९, मार्क० पन्ना ५ और २२, पाइय० १७३, गउड०, हाल, ओव०, ललित० ५५५, ११, ५६७, २३, विक्रमो० ३१, १७, माल्ती० ७६, ५, १०३, ३, ११८, ६, २४८, ५, महावीर० ९७, १३, बाल० ४९, २, ६७, १५, ७६, १६, २२६, ३, २७८, २०, २८७, ९, अनर्घ० ५८, ९, मल्लिका० ५५,१०, ५७,१७) है, अ०माग०मे **परिपेरंत** रूप भी मिलता है (नायाध० ५१३, १३८३ और उसके बाद, विवाग० १०७), **वम्हचेर** (हेमचन्द्र १, ५९, २, ६३, ७४ और ९३), अ० माग० और अप० रूप **वम्भचेर** (हेमचन्द्र २, ७४; आयार० १, ५, २, ४, १, ६, २, १, १, ६, ४, १, २, १५, २४, सूय० ८१, १७१, ३१८, ६४३, ६५२, ७५९, ८६६, विवाह० १०, १३५, ७२२, ७२६, दस० ६१८, ३३, दस० वि० ६४९, ३८, उवास०, ओव० § ६९, नायाध०, निरया०, एर्त्से० ३, २४) तथा इनके साथ साथ काममे आनेवाला **वम्हचरिअ** (हेमचन्द्र २,६३ और १०७)=**ब्रह्मचर्य** है। अ० माग० और जै० महा० **मेरा**=**मर्या**[2] (=मेड हेमचन्द्र १, ८७, आयार० २, १, २, ५, २, ३, १, १३, २, ५, १, २, २, ६, १, १, आव० एर्त्से० ४७, २३ और २५, कालका०) है,

भइम् (एर्से० १२,२२), समो 'हं=ततो 'हम् , आओ 'हं=जातो 'हम् (एर्से १, १४ ५३, १४) हैं। अ माग० में और जै० महा० तथा महा० में बहुत कम शब्दों का आरम्भिक अ, ए और ओ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद भी बहुधा लोप हो जाता है। इसके अनुसार आ के बाद पक्खिसमाणा 'इत्तरं= पात्यमाना मार्तरम् में अ उड़ गया है (सूय० २८२), आइसरामरणेहि 'मिदुद्धमा=सातिजरामरणैर् ममभिदुताः में इ के बाद अ उड़ा दिया गया है (सूय १५६), चिट्ठंति 'भितप्पमाणा=तिष्ठन्त्य अभितप्यमानाः (सूय० २७४), सूराहि' भितावयंति=शूराभिर् अभितापयन्ति (सूय० २८ २८१), जावति 'विज्जापुरिसा=यावन्तो विद्यापुरुषाः (उत्तर २१५), लोयसमामि 'हं=लोपदमे 'हम् (उत्तर ७७५), चत्तारि भोज्जाइं=चत्वार्य् अमो ज्यानि (दस ६२६, ६), जइ हं=यद्य् अहम् (दस ६४१ २१) हैं। रायणवहो १५, ८८ में महा में भी ऐसा रूप पाया जाता है, अगुणेहि साहू= अगुणैर् असाधून् (दस ६३७, १) है नीचे दिये अ० माग० की सन्धियों में ई के बाद अ का लोप हुआ है : वेयरणी 'भिदुग्गा=वैतरण्य् अभिदुर्गा (सूय २७०) जहाँ 'भिदुग्गे=क्षमते 'भिदुग्गे (सूय २७७), जंसी भिदुग्गे= यस्मिन् अभिदुर्गे (सूय २८७ २९७ [यहाँ 'भिदुग्गंसि पाठ है]) हैं, नदी 'भिदुग्गा रूप भी मिलता है (सूय २९७) जै महा० मे निम्नलिखित उदाहरण में ब के बाद अ छोड़ दिया गया है दोसु 'भिग्गहो=द्वयोर् अभिग्रहः (आव एर्से १९ ३६) नासिक ध्वनि कुछ बिगड़ने पर अनुस्वार के बाद जैसे अ माग० में कहं 'भितावा=कथं अभितापाः (सूय २५९) वेयरणिं 'भिदुग्गं= वैतरणीम् अभिदुर्गाम् (सूय २७), वयणं 'भिउंजे=वचनम् अभियुञ्जे (सूय ५२९) हैं। गद्य में तेसिं तिए (आयार० १,१,४ १) अशुद्ध रूप है, टीका कार बताते हैं कि इसके स्थान पर तेसिं अतिए लिखा जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में § १७१ १७२ और १७३ की भी तुलना कीजिए। अ माग में ए, ओ के बाद कभी-कभी अ के सिवा अन्य स्वरों का भी लोप हो जाता है : इस प्रकार ये इमे के स्थान पर जे मे (सूय ४९८) आया है जो जे इमे का रूप है, जे इह के स्थान पर से ह आया है (सूय २ ४)=य इह अ माग अकारिणो 'त्थ= अकारिणो'त्र में ए उड़ गया है (उत्तर २९) अन्नो'त्थ=अन्यो'त्र (उत्तर ७९१) महा मे को'त्थ रूप मिलता है (हाल २६४) और महा तथा जै महा में नासा ध्वनि बिगड़ने के कारण उसके बाद किं थ=किं ऍत्थ=किम् अत्र (हाल आव एर्से २६ ९) हो गया है।

§ १७८—ध्वनिबल यें मे (§ १३४) यें की स्वरभक्ति की अभिव्यक्ति, जो अंशस्वर इ है, वह अपने से पहले पद के साथ जुड़ जाती है और उसके अ या आ के साथ युक्त मिलकर ए बन जाती है ; महा और अ माग अच्छेर अ माग और जै महा अच्छेरय अ माग अच्छेरग इनके साथ-साथ महा और शौर० अच्छरिअ जै महा अच्छरिय, शौर अच्छरीअ माग अश्चलिअ तथा अन्य

१७९, ९, बाल० २३८, १४, कर्पूर० ७०,३, ११, १२, ७१,१, ७३, ४, वेणी० १८, १३, २०; २१, नागा० १२, ११, १३, ४, २३, ३, कर्ण० १६, ९ और १२), महा० मे **पडिसिविणअ = प्रतिस्वप्नक** (कर्पूर० ७५, ५) है, **सिमिण** (चंड० ३, १५ अ पेज ४९, हेमचन्द्र १, ४६ और २५९), इस रूप के साथ अ० माग० और जै० महा० **सुविण** (सूय० ८३८ और उसके बाद, विवाह० ९४३ और उसके बाद, १३१८ और उसके बाद, उत्तर० २४९ और ४५६, नायाध०, कप्प०, एर्त्से०), अप० **सुइण** (हेमचन्द्र ४, ४३४, १) और अ० माग० तथा जै० महा० **सुमिण** (हेमचन्द्र १, ४६, ठाणग० ५६७, नदी० ३६५, सम० २६, विवाह० ९४७, १३१८, नायाध०, कप्प०, एर्त्से०) रूप मिलते है। जै० महा० **सुविणग, सुमिणग** (एर्त्से०) = **स्वप्नक** (§ १३३, १५२, २४८) है। **किलिम्मइ, किलिम्मिहिइ, किलिंत** और इनके साथ साथ **किलम्मइ, किलंत** जैसे रूप एस० गौल्दश्मित्त[1] के मतानुसार शुद्ध न समझे जाने चाहिए, वरन् ये रूप प्राकृत में बहुधा काम में आनेवाले **किलिस्सइ**[2] पर भूल से आधारित है। भविष्यकालवाचक रूप, जैसे **भविस्सिदि** के सम्बन्ध में § ५२० देखिए।

१ त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ३१, १०७। — २ गे० गो० आ० १८८०, ३२८ और उसके बाद के पेज में पिशल का लेख। § १३६ की भी तुलना कीजिए।

(अः) अनुस्वार और अनुनासिक स्वर

§ १७०—अनुस्वार के साथ साथ प्राकृत मे दो प्रकार के अनुनासिक स्वर है, जिनमें से एक अनुस्वार के चिह्न द्वारा और दूसरा अनुनासिक द्वारा व्यक्त किया जाता है। अनुस्वार और पहले अनुनासिक में जो भेद है वह सब अवसरों पर निश्चित रूप मे सामने नहीं आता, विशेष कर शब्द के अन्त में आने पर जहा इसका व्यवहार अधिकतर शब्दों में एक सा रहता है, किंतु इसके मूल का पता नहीं मिलता। उदाहरणार्थ, इस प्रकार तृतीया (= करण) बहुवचन **-हिं** का जहाँ प्रयोग किया जाता है वहाँ **हिँ** और **हि** का भी व्यवहार किया जाता है। यदि हम शौर० **देवेहिं** (शकु० २१, ५) = वैदिक **देवेभिः** मानें और मैं इस समानता को ठीक समझता हूँ, तो मानना पड़ेगा कि इसमें अनुनासिक है, किन्तु जब हम यह मान ले कि **देवेहिं** = ग्रीक **देओफिन्**, जैसा प्रायः सब मानते हैं, तो अनुस्वार होना सभव है। इसी प्रकार दृष्टान्तों में, जैसे **अग्गिं = अग्निः** और इसके साथ साथ **अग्गी** और **वाउं = वायुः** तथा इसके साथ **वाऊ** (§ ७२) में अनुनासिक मानना पड़ेगा[1]। इन रूपों के साथ साथ ठीक **देवेहिं, देवेहिँ** और **देवेहि** के समान ही **देवाणा** और **देवाण** रूप पाये जाते है। क्रिया विशेषणों मे, जैसे **उवरिं** और इसके साथ चलनेवाले दूसरे रूप **उवरिँ = उपरि** मे अनुस्वार और **वाहिं = बहिः** में अनुनासिक का होना सभव है। जहाँ अनुस्वार ( ) का पता लग जाता है कि यह **न्** या **म्** से निकला है, उस शब्द मे मैं अनुस्वार मानता हूँ अन्यथा नियमित रूप से अनुनासिक मानता हूँ[2]।

मध्य में भी आनेवाले हुं और इं का उच्चारण लघु हो जाता है अर्थात् उसमें उच्चारण का हल्कापन आ जाता है (आव० एर्त्से० पेज ६, नोट ४, सगीतरत्नाकर ४, ५५ और ५६, पिंगल १, ४, हेमचन्द्र ४, ४११)। इनके अनुसार पुराने आचार्यों ने, जब उनको लघु मात्रा की आवश्यकता पडती थी, स्वरो और व्यजनो से पहले इन पादपूरक अक्षरो को जोडकर उन्हे लघु बना दिया। वेबर[1] का मत है कि इन अवसरों पर सर्वत्र बिंदु छोड देना चाहिए और सभी प्राकृत पुस्तको के यूरप के सम्पादकों ने उसका अनुकरण किया है।[2] श० प० पडित ने अपने गउडवहो के सस्करण मे लाघव का चिह्न बिंदु के ऊपर ˘ दिया है, उदाहरणार्थ १, १६ मे अङ्गाइं˘ विण्हुणो भरिआइं˘ व छापा है और इसी प्रयोजन के लिए दुर्गाप्रसाद, शिवदत्त और परब ने अपनी सत्तसई, रावणवहो, पिंगल और कर्पूरमजरी के सस्करणों में अर्धचद्र (˘) का प्रयोग किया है।[3] बौ˘ल्ले˘नसे˘न[4] पहले ही मात्रालाघव का चिह्न अर्धचद्र को मानना चाहता था, इसका वेबर[5] ने ठीक ही खडन किया। जब उच्चारण लाघव की आवश्यकता हो तब हेमचन्द्र ३, ७ और २६ में बताता है कि -हि, -हि˘, -हिं और इ˘ तथा इं का प्रयोग करना चाहिए और रावणवहो की हस्तलिखित प्रति आरएच (R^H) मे इ˘ और हि˘ ही लिखा गया है[6]। समवायगसुत्त के सस्करण मे पद्य मे (पेज २३२, २३३, २३९) इसी ढग से लिखा गया है, जैसे तिहि˘ तिहि˘ सएहिं, छहि˘ पुरिससएहि˘ निक्खंतो, सवेइया तोरणेहि˘ उववेया = त्रिभिस् त्रिभिः शतैः, षड्भिः पुरुषशतैर् निष्क्रान्तः, सवेदिकातोरणैर् उपेताः है। निस्सदेह उक्त उद्धरण अर्धचद्र के प्रयोग के लिए आवश्यक प्रमाण पेश करता है। यह वहॉ लिखा जाना चाहिए जब लघुमात्रा की आवश्यकता पड़े और उसके बाद आनेवाले शब्द के आरभ में कोई स्वर हो या पहले अथवा बाद के शब्द की समाप्ति ˘ में हो, जैसा समवायगसुत्त से उद्धृत ऊपर के उदाहरणो में से दो मे हुआ है। इसके अनुसार हमें लिखना चाहिए : सालंकराणॅ गाहाणं (हाल ३), सीलुम्मूलिआइॅ कूलाइं (हाल ३५५), तुम्हेहि˘ उवे˘क्खिओ (हाल ४२०), -पसाहिआइॅ अंगाइं (हाल ५७८), पंडूइॅ सलिलाइॅ (गउड० ५७७), वेविरपओहराणं दिसाणॅ-तणुमज्झाणं.. णिमीलिआइॅ मुहाइं (रावण० ६, ८९), धूसराइॅ मुहाइं (रावण० ८, ९), खणचुंबिआइॅ भमरेइॅ उअह सुउमारकेसर-सिहाइं (शकु० २, १४)। अर्धचद्र ऐसे अवसरो पर भी लिखा जाना चाहिए, जैसे तणाइं सोत्तुं दिण्णाइॅ जाइॅ (हाल ३७९), जाइॅ वअणाइॅ (हाल ६५१), ऐसे अवसरों के लिए इसका प्रयोग स्पष्ट रूप से बताया गया है (§ १७९), इसके अतिरिक्त ऐसे अवसरों पर, जैसे अप० तरुहुॅ वि (हेमचन्द्र ४, ३४१, २), अत्थे˘हि˘ सत्थे˘हि˘ हत्थे˘हि˘ वि (हेमचन्द्र ४, ३५८, १), मुक्काहॅ वि (हेमचन्द्र ४, ३७०, १), इन स्थलों पर बिंदु अशुद्ध होता। बिंदु लगाने पर यहाँ वि के स्थान पर पि रहना चाहिए। ँ कभी ˘ का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता (§ ३४८, ३५०)[7]।

१ हेमचन्द्र ३ पर टीका। — २ जैसा एस० गोल्दश्मित्त ने रावणवहो

१ यह समीकरण या तुकना केवल अंतिम अक्षर तक सीमित है। —
२ अनुस्वार और अनुनासिक के विषय में व्याकरणागत कुछ बातें इंडिशे स्टुडिएन के § २११ और २२४ की साहित्य-सूची देखिए।

§ १७१—जैसा वेद[1] में मिलता है वैसा ही प्राकृत में भी हस्तलिखित प्रतियों अधिकांश में अनुनासिक का चिह्न नहीं मिलता, इसलिए बहुत अधिक अवसरों पर उसका अस्तित्व केवल व्याकरणकारों का वर्णन देखकर ही जाना जा सकता है। इस कथन के अनुसार हाल ६५१ में हस्तलिखित प्रतियों में आइ यमण्याइ मिलता है, बंबइया संस्करण में आणि यमणाणि मिलता है, किन्तु हेमचन्द्र १, २६ में जाइँ यमणाइँ को प्रधानता दी गयी है [पिशल द्वारा संपादित और पूना के भंडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट द्वारा प्रकाशित १९३६ के संस्करण में जाइँ यमणाइँ छपा मिलता है। —अनु०] और यह वेबर ने[2] छन्द की मात्रा के विरुद्ध बताया है, किंतु यह उसकी भूल है क्योंकि अर्धचन्द्र[3] से मात्रा घटती बढ़ती नहीं है। शकुंतला ११९, २ में मागधी में शक्कुणाणं मुहं = स्वकुलानां मुखम्, इसकी हस्तलिखित प्रति जेड् (= Z) में सअणाणं मुहं = स्वजनानां मुखम् मिलता है, किन्तु हेमचन्द्र ४, १ के अनुसार यह रूप स्पष्ट ही शअणाइँ मुहं होना चाहिए और यह रूप किसी हस्तलिखित प्रति में नहीं मिलता। वररुचि २, २ क्रमदीश्वर २, ५ और मार्कण्डेय पन्ना १४ में ये व्याकरणकार बताते हैं कि यमुना में म् उड़ जाता है। इसके विपरीत हेमचन्द्र १, १७८ में लिखता है और निस्सन्देह ठीक ही लिखता है कि इस म् के स्थान पर अनुनासिक आ जाता है : जउँणा रूप हो जाता है। हस्तलिखित प्रतियों और छपे पाठ दोनों महा और अ माग मे केवल जउणा और शौर में जमुणा लिखते हैं (§ २५१)। शकुंतला की हस्तलिखित प्रति में कभी-कभी अर्धचन्द्र मिलता है। इस स्थान पर शेष हस्तलिखित प्रतियाँ बिंदु देती हैं पर सदा उचित स्थान पर नहीं।[4] हेमचन्द्र ४, ३९७ में बताता है कि अप में म् के स्थान पर वँ आता है, उदाहरणार्थ कवँलु और उसके साथ-साथ काम में आनेवाला रूप कमलु = कमलम् है। अप की हस्तलिखित प्रतियाँ सदा म्व् लिखती हैं। इसलिए हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस स्थान पर अर्धचन्द्र का प्रयोग उचित नहीं जँचता।

१ ऋग्वेद प्रातिशाख्य १७ पर मैक्सम्युलर की टीका, वाजसनेयिप्राति शाख्य ४ ९ और १६ पर वेबर की टीका। — २ हाल ६५१ की टीका। — ३ हाल पेज ४ में इस चिह्न को मैं वेबर के मतानुसार अनुनासिक मानता हूँ। राम-तापनीय-उपनिषद् (बर्लिन १८६४) पेज ३३४ में वेबर के मतानुसार बापूदेव और रोट ने अर्धचंद्र = अनुस्वार लिखा है जो अशुद्ध है। अनुस्वार के चिह्न का नाम बिंदु है जैसा ऊपर कहा जा चुका है और आगे के पाराओं में कहा जायेगा। — ४ वेबर द्वारा संपादित हाल, पेज ४; हाल २०४, २८९, ३९९, ४४९, ५ ०, ५२४, ५५३, ५७२, ५९७)।

§ १७२—व्याकरणकार बताते हैं कि प्राकृत और अप में पद के अंत में आनेवाले –इँ –हिँ –उँ –हुँ और–हँ तथा संगीतरत्नाकर के अनुसार अप में पद के

१. होएर्नले द्वारा सम्पादित उवासगदसाओ के अनुवाद की नोट-संख्या २१७ से भी तुलना कीजिए।

§ १७४—अ से समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों के पुलिंग और नपुंसक लिंग की तृतीया एकवचन में शब्द के अन्तिम अ के स्थान पर कभी कभी महा० में अनुस्वार आ जाता है (हेमचन्द्र १, २७) : **सब्भावेणं = सद्भावेन** (हाल २८६) है, **पसण्णेणं मुहेणं = प्रसादितेन मुखेन** (हाल ३५४) है, **समअवसेणं** [पिशल के व्याकरण में **समअअवसेणं** छपा है जो स्पष्ट ही कंपोजिटर और प्रूफरीडर की भूल है। —अनु०] = **समयवशेन** (हाल ३९८) है, **-लोअणेणं, -सेएणं = -लोचनेन, स्वेदेन** (हाल ८२८) है, **कवाडंतरेणं = कपाटान्तरेण** (गउड० २१२) है, **पंजरेणं** (गउड० ३०१) भी है, **-विसअंसेणं = -विशदांसेन** (रावण० ३, ५५) है। यह आगम अ० माग० और जै० महा० में अति अधिक है। अ० माग० में **तेणं कालेणं तेणं समएणं = तेन कालेन तेन समयेन** (आयार० २, १५, १, ६, १७ और २२, उवास० § १ और उसके बाद के §, ९, ७५ और उसके बाद, नायाध० § १, ४, ६, ओव० § १, १५, १६, २३ और उसके बाद, कप्प० § १, २, १४ आदि-आदि) है, अ० माग० **समणेणं भगवया महावीरेणं = श्रमणेण भगवता महावीरेण** (नायाध० § ८ [इस § में इसके अतिरिक्त तृतीया एकवचन के २२ और रूप हैं जो **णं** में समाप्त होते हैं]. उदाहरणार्थ उवास० § २ और ७८ तथा ९१) है, **कोहेणं माणेणं लोभेणं = क्रोधेन मानेन लोभेन** (विवाह० ८५) हैं, **सक्केणं देविंदेणं देवरण्णेणं = शक्रेण देवेन्द्रेण देवराजेन** (नायाध० ८५२), **परवागरणेणं = परव्याकरणेन** (आयार० १, १, १, ४, १, ७, २, ३), **हिरण्णेणं=हिरण्येन** (आयार० १, २, ३, ३) हैं, जै० महा० में **वच्चंतेणं=व्रजता, वड्ढेणं, सद्देणाम् = वर्ध्रेण, शब्देन, उप्पहेणं=उत्पथेन, खुरेणं=खुरेण** (आव० एर्त्से० ११, १९, २३, १४, ३६, ३२ और ३७), **सणंकुमारेणं नायामच्चवुत्तंतेणं कोवं उवगएणं=सनत्कुमारेण ज्ञातामात्यवृत्तान्तेन कोपम् उपगतेन** (एर्त्से० ३, २९) है। ऐसा ही उन अवसरों पर होता है जब तृतीया का उपयोग क्रियाविशेषण रूप से किया जाता है, जैसे अ० माग० मे **आणुपुव्वेणं = आनुपूर्व्येन** (आयार० १, ६, ४, १, १, ७, ७, ५ [यहाँ पाठ में **अणुपुव्वेणं** है], निरया० § १३, नायाध० § ११८ [यहाँ भी पाठ में **अणुपुव्वेणं** मिलता है]) है, **परंपरेणं** (कप्प० एस० § २७) आया, अ० माग० और जै० महा०में **सुहेणं = सुखेन** (विवाग० ८१, ओव० § १६, निरया०, नायाध०, एर्त्से०) है, अ० माग० **मज्झेणं=मध्येन** (उवास०, नायाध०, कप्प०, निरया०, विवाह० २३६, ओव० § १७)[१] है। नपुंसक लिंग के प्रथमा और द्वितीया बहुवचन में वररुचि ५, २६ के अनुसार शब्द के अन्त में इ लगना चाहिए **वणाइ, दहीइ** और **महूइ = वनानि, दधीनि** तथा **मधूनि**, पर मार्कण्डेय पन्ना ४३ के अनुसार अंत में इं आना चाहिए। **वणाइं, दहीइं** और **महूइं**, क्रमदीश्वर ३, २८ में लिखता है कि इं के अतिरिक्त जैसे **धणाइं, जसाइं** और **दहीइं** कई व्याकरणकारों की सम्मति में **धणांइं,**

की भूमिका के पेज १९ में लिखा है। इसके विपरीत याकोबी ने त्सा डे० डी० मी गे ३३, ३५१ और उसके बाद अपने निबंध में लिखा है। — ५ हेमचन्द्र १, ९ टीका पर नोट संख्या ३ देखिए। — ६ पेज ५२१ में विक्रमोर्वशी की टीका पर नोट देखिए ; पेज ५२५ और उसके बाद के नोट देखिए। — ७ हेमचन्द्र ४८१ पर टीका देखिए। — ८ एस गौल्दश्मित द्वारा संपादित रावणवहो की भूमिका के पेज १९ की नोट संख्या २। — ९ बिंदु द्वारा जो अनुनासिक व्यक्त किया जाता है वह निश्चय ही अर्धचंद्र द्वारा चिह्नित नासिक ध्वनि से अधिक जोर का होता है। इतने तक बीम्स ने कोई बड़ी भूल नहीं की जैसा बर्नोम्स का मत है (मेम्बार द ला सोसिएटे द लिंग्विस्टीक द पारी (= पेरिस) २ २ ४, नोट संख्या १)।

§ १७६—मौलिक अंतिम स्वरों या व्यंजन के स्थान पर, और शब्द के अंत में आये हुए उदात्त स्वरों के स्थान में § ७५ और ११४ में दिये गये उदाहरणों को छोड़ कर, अन्यत्र क्रियाविशेषणों में बहुधा अनुस्वार हो जाता है। महा अज्जं (हाल ; रावण) और उसके साथ चलनेवाला अज्ज = अद्य ; अ माग और जै महा इह और उसका पर्याय इहं=इह है, इसका एक रूप इहयं भी मिलता है (हेमचन्द्र १ २४) अ माग और जै महा में ईसिं और साथ ही महा और शौर में ईसि रूप पाया जाता है (§ १ २) अ माग और जै० महा पभिइं = प्रभृति (उवास कप्प ; एर्त्से कालका) अ माग उप्पिं, महा , अ माग और जै महा उवरिं, महा अवरिं तथा इसके साथ-साथ महा , जै महा० और शौर उवरि, माग उवलिं = उपरि (§ १२३ और १४८) अ माग० सइं = सकृत् (आयार २, १, १, ५ उत्तर २ १ और २२५) है, असइं = असकृत् (आयार १ २ ३, १ ; जीवा १ ८ उत्तर ९ १) है ; अ माग जुगवं = युगपत् (ठाणंग २२७ विवाह १४४ उत्तर ८१ ८७८; ८८१ ; १ १२ ओव) अ माग जावं तावं=यावत्, तावत् (विवाह २६८ और २६९) हैं। महा अ माग और जै महा० में बाहिं=बहिः (हेमचन्द्र २, १४ मार्कण्डेय पन्ना ४ ; पाइय २२४ ; गउड आयार २, ७, २, १ ; २, १ , ३ ; सूय ७५३; नायाध § १२२ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; एर्त्से) बाहिंसल्ल में भी जो = बहिःशल्य है अनुस्वार आया है (ठाणंग ३१८) और बाहिंहिंतो में भी यही हुआ है (ठाणंग ४ ८) और अ माग में पाउं = प्रादुः (§ ३४१) तथा मुहुं = मुहुः (उत्तर १ ७) में भी अनुस्वार का आगमन मानना पड़ता है (§ १०८)। § ३५१ के अनुसार यह भी संभव है कि बाहिं = बाह्यम् हो। चूँकि मार्कण्डेय पन्ना ८ में बहिं रूप भी बताया गया है, इसलिए यह प्रतिपादन अवश्य ही अधिक शुद्ध होगा। सबसे ठीक तो यह जँचता है कि बाहिं और बहिं अलग-अलग रूप समझे जायें। इसी सिलसिले में सक्खिणं (§ ८४) और § ३४९ को भी तुलना कीजिए।

पुंछणीओ = उपरिपुच्छिन्यः (राय० १०८ , पाठ मे–**पुच्छणीउ** है) है, ये रूप § १८१ के अनुसार सिद्ध होते हैं। अ० माग० **तिरियवाय = तिर्यग्वात, तिरियं-भागी=तिर्यग्भागिन्** (सूय० ८२९) § ७५ के अनुसार व्युत्पन्न होते है।

१. **एणम्** में समाप्त होनेवाले इस तृतीया या करण कारक से दोनों वैदिक तृतीया के रूप **घने॑न** और **ते॑जनेना** की तुलना करनी चाहिए (लेन-मैन, नौन-इन्फ्लेक्शन, पेज ३३१),–**एना** में समाप्त होनेवाले तृतीया की तुलना करना कठिन है (लेनमैनका उपर्युक्त ग्रंथ, पेज ३३२)।—२ लौयमान द्वारा सपादित औपपातिक सूत्र, पेज ५८, नोटसंख्या ९।

§ १७५—शब्द के अन्तिम **न्** और **म्** नियमित रूप से अनुस्वार मे परिणत हो जाते हैं, और यह अनुस्वार महा०, अ० माग० और जै० महा० में स्वरों और व्यजनों से पहले बहुधा लुप्त हो जाता है (§ ३४८ और उसके बाद)। लघु अनुनासिक और अनुस्वार बहुधा अननुनासिक दीर्घ स्वरो से बदल जाते हैं (§ ७२, ७४, ७५, ८६, ११४)। **इ** और **हृ** के ठीक बाद जब श, ष और स आते हैं तब ये **इ** और **हृ** लघु अनुनासिक स्वर हो जाते है और बहुधा अनुनासिक की ध्वनि के लुप्त हो जाने पर दीर्घ हो जाते हैं (§ ७६)। दीर्घ अनुनासिक स्वर और दीर्घ स्वर, जिनके बाद अनुस्वार आये, व्यजनों से पहले और शब्द के अन्त में या तो ह्रस्व कर दिये जाते है (§ ८३) अथवा उनकी अनुनासिक ध्वनि लुप्त हो जाती है (§ ८९)। शब्द के अन्त में ह्रस्व स्वर की भी यही दशा होती है (§ ७२, १७३, १७५, ३५०)।

धणाइं आदि रूप भी होते हैं। हेमचंद्र ३, २६ में इस अवसर पर इँ और इं का प्रयोग बताता है। गद्य में सभी प्राकृतों में केवल इं का प्रयोग दिखाई देता है, जैसा अ० माग० में से खाइं कुलाइं = स यानि कुलानि (आयार २, १, २, २) है, इसके सिवा कुलाणि' रूप भी पाया जाता है (§ ३६७) जै महा० में पंच पगूणाइं महागसयाइं पक्खित्ताइं = पंचैकोनान्य् आवर्शशतानि "प्रक्षि सानि (आव० एर्से १७, १५) है ; शौर में रामरक्खिदाइं तपोवणाइं = रामरक्षितानि तपोवनानि (शकु १६, १२) है माग में -शयलाइं पुप्फ-गंधिभाइं चीवलाइं = -शयलानि पुष्पगन्धिकानि चीवराणि (मृच्छ १११, २२) है ; व में भूआइं सुवण्णाइं = भूतानि सुवर्णानि (मृच्छ ११ २१) है। छंदों में जब लघु मात्रा की आवश्यकता पड़ती है तब इस अवसर पर इ लिखा भी जाता है। यह प्रयोग अधिकतर स्थानों पर ही नहीं वरन् सर्वत्र (§ १७९ और १८०) पाया जाता है, किंतु अशुद्ध है। हेमचंद्र इस स्थान पर इँ बताता है और वररुचि ५,२६ में जो इ मिलता है यह बहुत संभव है कि इ का अशुद्ध पाठ हो। क्रमदीश्वर ३, २८ में जो बताया गया है कि कइ व्याकरणकार इं से पहले भी अनुस्वार लगाना ठीक मानते हैं उसका तात्पर्य अधिक शुद्ध यह जान पड़ता है कि वे व्याकरणकार पाठ में दिये गये धणाइं, वणाइं के स्थान पर धणांइं, वणांइं रूप सिखाते हैं जो अ माग० महं मास से मिलता जुलता रूप है। यह महमास, महंत + अद्य से निकला है और = महाद्य (§ ७४) है। यहाँ अनुस्वार दीर्घमात्रा का द्योतक है। सब संज्ञाओं के सप्तमी बहुवचन में-सु के साथ साथ -सुं भी चलता है और शौर० तथा माग में इसका बड़ा जोर है (§ ३६७)। नपुंसक लिंग की प्रथमा और द्वितीया के एकवचन में-इ और उ के स्थान पर बहुधा -इं और उं भी चलता है, जैसे दहिं, महुं और इन रूपों के साथ दहि, महु भी काम में लाये जाते हैं (§ ३७९), इस इं, उं का आधार नपुंसकलिंग का चिह्न-अं है। हेमचन्द्र १, २९ म बताया गया है कि कुछ व्याकरण-कार दहिं महुं रूप सिखाते हैं। सम के साथ महा०, अ० माग० और जै० महा में सम रूप भी पाया जाता है (§ ४१८ ; हाल विभाग १२१ और १२२ ; उवास०; भग ; आव एर्स १२, २८)। आज्ञाकारक रूप के चिह्न -हि के लिए कई छपे ग्रंथ हस्तलिखित प्रतियों की नकल करके -हिं देते हैं (उदाहरणार्थ, आयार २, १, ५, ५ में परिभाएहिं आया है और इसी ग्रंथ में -हि भी आया है ; वेब १२६, ७ में पव्वत्तहिं आया है और उसी में पयत्तहि भी छपा है नायाध० § १४४ ; विवाह० ११ और ११३ म भुंजाहिं मिलता है साथ ही भुंजाहि भी छपा है ; कप्प० § ११४ म झियाहि है और यहीं झियाहि पसाहिं छपा है झियाहि निहाहिं और निहाहि भी छपा है विवाह ११२ और ११३ म दलयाहिं और यहीं दलयाहि भी पाया जाता है)। कभी कभी अनुस्वार छंद में मात्रा ठीक करने के लिए भी जोड़ा जाता है । दुर्वनागसुवण्ण = दुपनागसुपण्ण (हेमचन्द्र १, २६) है। अ माग म इंदंनिसाइण = इन्द्रनिराधन (उपर ११५) है। संधियों, जैसे महा उवरिंभूमिणिहण = उपरिभूमिनिपन्न (गउड १८) अ माग उवरिं

पुंछणीओ = उपरिपुच्छिन्यः (राय० १०८ , पाठ मे-**पुच्छणीउ** है) है, ये रूप § १८१ के अनुसार सिद्ध होते है । अ० माग० **तिरियवाय = तिर्यग्वात, तिरियंभागी=तिर्यग्भागिन्** (सूय० ८२९) § ७५ के अनुसार व्युत्पन्न होते हैं ।

१. **एणम्** में समास होनेवाले इस तृतीया या करण कारक से दोनों वैदिक तृतीया के रूप **घनें न** और **तें जनेना** की तुलना करनी चाहिए (लेनमैन, नौन-इन्फ्लेक्शन, पेज ३३१),-**एना** में समास होनेवाले तृतीया की तुलना करना कठिन है (लेनमैनका उपर्युक्त ग्रंथ, पेज ३३२) ।—२ लौयमान द्वारा सपादित औपपातिक सूत्र, पेज ५८, नोटसंख्या ९ ।

§ १७५—शब्द के अन्तिम **न्** और **म्** नियमित रूप से अनुस्वार मे परिणत हो जाते हैं, और यह अनुस्वार महा०, अ० माग० और जै० महा० मे स्वरों और व्यजनों से पहले बहुधा लुप्त हो जाता है (§ ३४८ और उसके बाद)। लघु अनुनासिक और अनुस्वार बहुधा अननुनासिक दीर्घ स्वरो से बदल जाते है (§ ७२ , ७४ , ७५ , ८६ , ११४) । **ऱ्** और **ह्** के ठीक बाद जब श, ष और स आते हैं तब ये **ऱ्** और **ह्** लघु अनुनासिक स्वर हो जाते है और बहुधा अनुनासिक की ध्वनि के लुप्त हो जाने पर दीर्घ हो जाते हैं (§ ७६) । दीर्घ अनुनासिक स्वर और दीर्घ स्वर, जिनके बाद अनुस्वार आये, व्यजनों से पहले और शब्द के अन्त में या तो ह्रस्व कर दिये जाते हैं (§ ८३) अथवा उनकी अनुनासिक ध्वनि लुप्त हो जाती है (§ ८९)। शब्द के अन्त मे ह्रस्व स्वर की भी यही दशा होती है (§ ७२ , १७३ , १७५ , ३५०) ।

व व्यंजन

(एक) युक्त स्वरों पर व्यंजन

१—साधारण और सब अथवा अधिकांश वर्गों से सम्बद्ध नियम

§ १७६—न्, य्, श और स् को छोड़ शब्द के आरम्भ में आनेवाले अन्य व्यंजन नियमित रूप से अपरिवर्तित रहते हैं। संधि के दूसरे पद के आरंभ में आने पर और स्वरों के बीच में होने पर ये § १८६ और १८८ के अनुसार शब्द के भीतरी व्यंजनों के नियमानुसार चलते हैं, हाँ धातु का रूप, भले ही उससे पहले स्वर में समाप्त होने वाला प्रत्यय' उसमें क्यों न जुड़े, बहुधा अपरिवर्तित रहता है। महा में पआसेइ = प्रकाशयति (गउड) भमरउल = भ्रमरकुल (हाल ५६८) है इसके साथ महुअरउल = मधुकरकुल भी चलता है (गउड ४९८)। आइण्ण = आकीर्ण (गउड); पइण्ण = प्रकीर्ण (गउड हाल, रावण) है आअअ (हाल) = आगत, इसके साथ साथ आगअ रूप भी पाया जाता है (गउड ; हाल ; रावण०); वसहइंघ = वृषभचिह्न (गउड) है इसके साथ-साथ अणुमरण में उपचिन्ध भी प्रचलित है (गउड ४७९)। करअल = करतल (हाल १७) है इसके साथ साथ चलणअल = चरणतल (रावण १, १७) का भी प्रयोग मिलता है; उवइसइ = उपदिशति (हाल) अवसारिअ = अपसारित; विअलपसारिअ = विदलप्रसारित (रावण ११ ११ २७) है और इस प्रकार § १८९ के विपरीत पल्लवदानपत्र में भी अणुवट्ठावेति = अनुप्रस्थापयति (७, ४५)' है; गहवइ = गृहपति (हाल) वसवत्त = वंशपत्र (हाल ५७६) है, इसके साथ-साथ अकारवत्त रूप भी देखने में आता है (हाल १११); शौर में अज्जउत्त = आर्यपुत्र (उदाहरणार्थ, मृच्छ ७१, १८) इसके साथ-साथ माग में अय्य पुलिश = आर्यपुरुष रूप भी है (मृच्छ ११२ २१)। ह—युक्त व्यंजन § १८८ के अनुसार केवल ह रह जाते हैं: जैसे महा में धाउहिक्क = धातुलिप्त (गउड), रइहर = रतिधर (हाल), अलहर = जलधर (गउड ; हाल रावण०), मुत्ताहल = मुक्ताफल (गउड) ठणहर = स्तनभर (हाल), इसके साथ-साथ सरिसवखल = सर्षपखल (हेमचन्द्र १, १८७), पलअघण = प्रलयघन (रावण ५ २२) वम्महधणु = मन्मथधनु (रावण १ २९), विसफल आया है (हाल २८८) रक्खाभुअग = रक्षाभुजंग (गउड १७८) है। इसी प्रकार आरम्भ या अंत में आनेवाले अधिकांश पारस्परिक अन्य स्वरों के बाद शब्द के भीतरी ध्वनियों के अनुसार व्यवहार में आते हैं: शौर, माग और दाक्षि में भध दि = भण दि (उदाहरणार्थ मृच्छ ७, २८; ६, ६; ६७, ११ माग में: मृच्छ १८ ७; २२, १; ११८, २; ४; ५ २६ दाक्षि० में: मृच्छ १ १, १);

महा०, शौर०, माग०, दाक्षि०, आ०, अप० और चू० पै० मे (हेमचन्द्र ४, ३२६) अ० तथा अ० माग०, जै० महा० और जै० शौर० मे य=च , महा० मे इर = किर= सस्कृत किल (वररुचि ९, ५ , हेमचन्द्र २, १८६ , गउड० , रावण०) है , महा०, जै०महा०, शौर० और माग० मे उण = पुनर् है जिसका अर्थ फिर और अब होता है (हेमचन्द्र १, ६५ और १७७ , मार्क० पन्ना ३९ , गउड० , हाल , रावण० , आव० एर्त्से० ८, ३३ , एर्त्से० , काल्का०, शौर० मे . उदाहरणार्थ मृच्छ० ९, ८ , १३,२२ , २५,१ , २९, ६ , आदि-आदि, माग० मे . उदाहरणार्थ मृच्छ० १४,२२ , ३८, ८ , ४३, ४ , १२७, २४ आदि-आदि)। अनुस्वार के बाद भी यह परिवर्तन होता है, जैसे महा० और शौर० में किं उण=कि पुनर् (हाल २५, ४१७ , रावण० ३,२८ , ३२ , ४,२६ , ११,२६ , मृच्छ० ३,२० , १८,३, प्रबोध० १५,९ , ३८,६, ४२, ६) है , महा० मे एण्हिं उण = इदानीं पुनर् (हाल ३०७), हिअअं उण=हृदयं पुनर् (हाल ६६०) है , शौर० में सपदं उण = साप्रतं पुनर् (मृच्छ० २८,२३), अहं उण (मृच्छ० २५,१४), तस्सि उण=तस्मिन् पुनर् (विक्रमो० ३५, ५), कधं उण=कथं पुनर् (विक्रमो० ७३, १४) , शौर० और माग० में किंणिमित्तं उण (मृच्छ० ८८, १६ , १५१, २ है , माग० में १९, ५) , वि= अपि (§ १४३) , महा० मे ण वहुत्तं=न प्रभूत है (रावण० ३, ५७), यहा ध्वनि समान रखने के कारण[१], नहीं तो इसके साथ बिना अनुस्वार का रूप अपहुत्त भी चलता है (हाल २७७ और ४३६)। अप० मे करके के अर्थ में इस प्रकार का त्व से निकला गौण प का व्यवहार होता है (§ ३००) , जैसे पेॅक्खेविणु, पेॅक्खेवि और पेक्खिवि = *प्रेक्षित्वी, भणिवि=*भणित्वी, पिआवि=*पिबत्वी, रमेवि = *रमयित्वी (§ ५८८) है। महा० और अप० णवर, णवरं, जै०महा० नवरं (एर्त्से० , ऋषभ०) का अर्थ 'केवल' है (वर० ९, ७ , हेमचन्द्र २,१८७ , गउड०, हाल , रावण० , हेमचन्द्र ४, ३७७ और ४०१, ६ [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए]) का अर्थ भी गौल्दश्मित्त न परम्[२] बताता है, पर इसे शुद्ध समझने में कठिनाइयॉ आ पडती हैं क्योंकि इसका अनुस्वार गौण मालूम पडता है । महा० और अप० णवरि (वर० ९, ८ , हेमचन्द्र २, १८८ , गउड० , हाल , रावण० , हेमचन्द्र ४, ४२३, २), जै० महा० नवरि (पाइय० १७, एर्त्से० , काल्का०) का अर्थ 'अनतर' और 'किसी घटना के तुरत बाद' है, इसे न परे से व्युत्पन्न करना निश्चय ही अशुद्ध है क्योंकि इकार इसमें अडचन डालता है (§ ८५)। सब प्राकृत भाषाओं में न के बाद ज्ञ का ज निकल जाता है। अ० माग० और जै० महा० में बहुधा इसका य हो जाता है, भले ही यह शब्द दूसरे शब्द के भीतर क्यों न आये (§ १७०)।

१ इस नियम के लिए जो सब प्राकृत भाषाओं में समान रूप से लागू होता है, स्थान की कमी के कारण केवल महाराष्ट्री के प्रमाण दिये गये हैं। —२. ना० गे० वि० गो० १८९५, पेज २११ में पिशल का निबन्ध। —३ जोॅघणाइँ को आरम्भिक व्यंजन की विच्युति और ओघणाइँ रूप हो जाने का

केवल **कि तु** मे (मृच्छ० ५३, २० , शकु० १७, ११ ; ५०, ११ , ५१, १२ , ५४, ९ , ७३, ८ , ७८, ७ , ९८, ७ , ११९, २ , १२६, ८ , विक्रमो० ३३, ११ , ४०, ६) , इसके स्थान पर शकुन्तला के द्राविडी और देवनागरी सस्करण तथा विक्रमोर्वशी का द्राविडी सस्करण अशुद्ध रूप **कि दु** देते है।[1] महा० में (गउड० ९६४), जै० महा० मे (आव० एर्त्से० ७, ३८ , ८, १ [पाठ में **यु** है] , १९, ३० , ३४ , २०, १ , ३ , ७ , एर्त्से० , कालका०) और विशेष रूप से अ० माग० मे (उदाहरणार्थ, सूय० ५० , १७० , २०४ , २९७ , ३१२ , ३१६ , ३३० , ४०३ , ४०६ , ४१० , ४१५ , ४१६ , ४६५ आदि आदि , उत्तर० ४३ , २१९ , २९५ , ३१२ और उसके बाद , ३२९ और उसके बाद , ३५३ , दस० ६२२, ११ , २७ , निरया० § २ , पद्य में सर्वत्र) पाया जानेवाला **उ न** तो श० प० पण्डित[3] और याकोवी[4] के अनुसार **तु** से और न वारन के मतानुसार **च**[5] से व्युत्पन्न होता है वरन् यह = **उ** है जो महा० **कि उ** (कर्पूर० ७८,९ , १३ , १४) मे मिलता है।— द्वितीय पुरुष का सर्वनाम **ते** शौर०, माग०, आ० और दाक्षि० मे स्वरों और अनुस्वार के बाद **दे** रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार शौर० मे **ण दे = न ते** (शकु० ६५, १०), **अणुभव दाव दे** (शकु० ६७, १२) , **मा दे** (विक्रमो० ६, १७), **का वि दे** (मृच्छ० ५, २), **परहीअदि दे = परहीयते ते** (शकु० ९१, ५), **सुट्ठु दे = सुष्ठु ते** (मृच्छ० २९, १४), **अमदं खु द = अमृतम् खलु ते** (विक्रमो० ९, ११), **एसो दे** (मृच्छ० ७, ३), **कुदो दे** (मृच्छ० ३६, ७), **पिदुनो दे = पितुस् ते** (मृच्छ० ९५, १५ , [गौडबोले के सस्करण के पेज २७१ में यही पाठ पढा जाना चाहिए]), **साअद दे = स्वागतं ते** (मृच्छ० ३, ६), **जं दे = यत् ते** (मृच्छ० ५५, ४, विक्रमो० ४८, १८), **मंतिद दे = मंत्रित ते** (विक्रमो० ४४, ९) , शौर० में **मत्थअं दे = मस्तकं ते** (मृच्छ० १८, ५ , २१, २२) हैं, माग० रूप **एदे वि दे = एतेऽपि ते** (मृच्छ० १२८, १२), **तदो दे = ततस् ते** (प्रबोध० ५७, १४), **पण्हं दे = प्रश्नं ते** (मृच्छ० ८०, १८), **एव्व दे = एवं ते** (मृच्छ० १२८, १४) , आ० में **पिदा वि दे = पितापि ते**, **जदि दे = यदि ते** (मृच्छ० १०४,१७,१०५,३) है , दाक्षि० में **अहिण्णाणं दे = अभिज्ञानं ते** (मृच्छ० १०५, ९) है। महा० में भी यह ध्वनिपरिवर्तन होता है, ऐसा आभास मिलता है। इसमे **वि दे = अपि ते** मिलता है (हाल ७३७), **ठ्व दे = इव ते** (रावण० ४,३१) हैं , **परिअणेण दे = परिजनेन ते** (रावण० ४,३३) , **पि दे** (रावण० ११, ८३) , **अ दे = च ते** (रावण० ११, १२६) रूप पाये जाते हैं। हाल के द्राविडी सस्करण को छोड अन्य स्थलों पर सदा **ते** रूप मिलता है अर्थात् स्वय अनुस्वार के बाद भी (हाल के ऊपर के स्थल में **द** है, रावण० में एक स्थान पर **तु** है), इस दशा में पाठ का ढङ्ग सदिग्ध रह गया है। शौर० और माग० में **ते** (= **वे**) भी अन्य सर्वनामों के बाद आने पर **दे** हो जाता है (§ ६२५)। ऐसा ही उदाहरण महा० में **जाला दे = यात् कालात् ते** (ध्वन्यालोक ६२, ४=हाल ९८९) है। महा० मे **दावइ = तापयति** के विषय मे § २७५ देखिए।

१ कापेल्लर का येनाएर लिटेराटूरत्साइटुंग १८७७ पेज १२५ में लेख ; बोएटलिंक द्वारा संस्कृत क्रेस्टोमाटी' पेज ३११। हेमचन्द्र ४, ३३२ पर पिशल की टीका देखिए ; मालविकाग्निमित्र पेज १२२ पर बौँल्लें नसेंन की टीका देखिए। — २ § २०५ से तुलना कीजिए। — ३ गउडवहो देखिए। — ४ औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन इन महाराष्ट्री देखिए। — ५ सिरपाल क्लिमाली देखिए।

§ १७८—अधिकतर प्राकृत भाषाओं में क, ग, च, ज, त और द शब्द के भीतर और साधारणतः स्वरों के बीच में आने पर और प, ब और व कभी-कभी तथा कभी कभी य भी, निकाल दिये जाते हैं (वर० २, २ ; चंड० ३, ३८ ; हेमचन्द्र १, १७७ ; क्रम० २, १ ; मार्क० पन्ना १४)। पल्लवदानपत्र, विजयबुद्धवर्मन् दानपत्र, पै० और चू० पै० में यह नियम देखने में नहीं आता। इस प्रकार महा० में उअअ = उदक (गउड० ; हाल ; रावण०)[1] ; लोअ=लोक ; सअल = सकल (हाल ; रावण०) ; सुअ=शुक (हाल ; रावण०) ; अणुराअ = अनुराग ; जुआल = युगल ; णअर = नगर (गउड० ; हाल) ; तुरअ=तुरग (गउड० ; रावण०) ; णाराअ = नाराच (रावण०) ; पउर = प्रचुर (हाल) ; वीइ=वीचि (गउड० ; रावण०) ; गअ = गज ; णिअ = निज ; भोअण = भोजन (हाल) ; रअअ=रजत (रावण०) ; कअंत = कृतान्त (गउड० ; रावण०) ; णिअंब= नितम्ब ; रसाअल=रसातल (गउड० ; रावण०) ; गआ = गदा (रावण०) ; पाअ = पाद ; मअण=मदन (हाल ; रावण०) ; हिअअ=हृदय ; णिउण = निपुण (हाल ; रावण०) ; रिउ = रिपु ; रूअ=रूप ; आआऊ, आऊ=अलाबू (§ १४१) ; विउह = विबुध (हेमचन्द्र) ; छाआ = छाया ; पिअ = प्रिय ; विओअ = वियोग (हाल ; रावण०) ; जीअ = जीव ; दिअह = दिवस ; लाअण्ण=लावण्य (गउड०) ; वळआवळ=वडवामल (हेमचन्द्र) है। § १९१ से भी तुलना कीजिए।

१ जिन शब्दों के लिए उन ग्रंथों का उल्लेख नहीं किया है जिनसे वे लिये गये हैं वे भी इन्हीं ग्रन्थों से लिये गये हैं। § १४७ की नोटसंख्या १ से भी तुलना कीजिए।

§ १७९—जिन व्यंजनों की विच्युति हो जाती है, उनके स्थान पर लघुप्रयत्नतर यकार अर्थात् हल्की ध्वनि से उच्चारित य बोला जाता है (§ ४५ ; चंड० ३, ३५ ; हेमचन्द्र १, १८० ; क्रम० १, २)। जैनों के द्वारा लिखित हस्तलिपियों को छोड़ यह य लेख में विशेष तौर पर नहीं लिखा जाता अर्थात् साधारण य और इस य में भेद दिखाने के लिए यह लघुप्रयत्नतर यकार भिन्न रूप में व्यक्त नहीं किया जाता। हेमचन्द्र १, १८० में बताता है कि यह केवल अ और आ के बीच में आता है किंतु उसने यह भी माना है कि पियइ=पिबति और सरिया = पाली सरिता =सरित्। मार्कण्डेय ने पन्ना १४ में एक उद्धरण दिया है जिसके अनुसार य श्रुति तब आती है जब एक स्वर अ या इकार हो : अवर्णात् अपिसो वर्णो पठितव्यो यकारवत् इति पाठशिक्षा। क्रमदीश्वर के अनुसार य अर्धमागधी में अकारों के

बीच में आता है, ऐसा बताया गया है, जैसे (१) **सयलाण**, (९) **पया**, (१०) **णाय**, **मणयं पि** (!), (११) **सयलम् पि** (!), इसके विपरीत यह इकार के बाद अधिकाश में देखने में नहीं आता। किंतु इस विषय पर लिपि में गडबड है याने अनियमितता है। **णिय** (९) के साथ साथ **णिअ** (१२) भी दिया गया है, १४ वॉ **इय** है और वहीं १३ वॉ **णेय = नैव** है। अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० की प्राचीनतम हस्तलिपियॉ अ, **आ** से पहले और सभी स्वरों के बाद अर्थात् इनके बीच में **य** लिखती हैं और इन्हीं प्राकृतो की यह **य** खास पहचान है।[1] इस हिसाब से ये लिपिभेद भी शुद्ध है, जैसे **इन्दिय = इन्द्रिय** , **हियय=हृदय** , **गीय=गीत** ; **दीहिया= दीर्घिका** , **रुय=रुत** , **दूय=दूत** , **तेय=तेजस्** और **लोय=लोक**। प्राकृतों में निम्नलिखित उदाहरण भी मिल्ते है :—**पति** के स्थान पर **पइ** बोला जाता है, **लोके** को **लोए** कहते है , **दूतः** के लिए **दूओ** रूप है , **उचित** को **उइय** बोलते हैं और ***ऋतूनि** के लिए **उऊइं** आता है। पहले के तथा बाद में आने वाले पाराओं में बहुत से ऐसे उदाहरण मिलते हैं। जैन लोग ऐसी तथा अन्य लिपिभेदों का भूल से अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० से दूसरी प्राकृत भाषाओं मे भी प्रयोग करते हैं (§ ११ और १५)।

१ त्सा० वि० स्प्रा० ३, २६६ में होएफर का निबंध , वेबर द्वारा संपादित भगवती १, ३९७ और उसके बाद , ए० म्युलर का बाइत्रैगे, पेज ४ और उसके बाद का लेख, पिशल का हेमचन्द्र १, भूमिका के पेज १० और उसके बाद , हेमचन्द्र १, १८० पर उसी की टीका , त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ३३, ४४७ मे क्लात्त का मत , उक्त पत्रिका के ३४, १८१ में याकोबी का मत , कू० त्सा० २५, २९५ में स्टाइनटाल द्वारा संकलित नमूने पेज ३ ।

§ १८०—**छ, झ, ठ** और **ढ** को छोड अन्य ह-युक्त वर्ण (महाप्राण, जैसे **ख, घ, थ, ध, फ** और **भ**। —अनु०) स्वरों के बीच में आने पर **ह** में परिणत हो जाते हैं (वर० २, २७ , हेमचन्द्र १, १८७, क्रम० २, १४, मार्क० पन्ना १६)। इस प्रकार महा० में . **मुह=मुख** (गउड० , हाल , रावण०)[1] , **मेहला = मेखला** , **साहा = शाखा**, **जहण = जघन** , **मेह = मेघ**, **रहुणाह = रघुनाथ** (रावण०) , **लहुअ = लघुक** ; **अह = अथ**, **जूह = यूथ** , **महुमहण = मधुमथन** , **रह=रथ**, **अहर = अधर** ; **रुहिर = रुधिर** (गउड० , रावण०) , **वहू = वधू** , **सीहु = सीधु** (गउड० , हाल) , **सहर = शफर** (गउड०) , **सेहालिआ = शेफालिका** (हाल) , **अहिणव = अभिनव** , **णह = नभस्** और **= नख** , **रहस = रभस** , **सहा = सभा** (रावण०) , **सोरह = सौरभ** (गउड० , हाल) ह। **फ** के विषय मे विशेष बात § २०० मे देखिए। शब्द के आरम्भ मे होने पर इनका दो चार स्थान पर ही **ह** रूप होता हैं , **हम्मइ** और इसकी सन्धियॉं **णिहम्मइ, णीहम्मइ, आहम्मइ, पहम्मइ** (हेमचन्द्र ४, १६२), **णीहम्मिअ** (=बाहर निकल गया या चला गया . देशी० ८, ४३) ह, महा० मे **पहम्मंति** (गउड० ८७१)=पाली **घम्मति**। इस शब्द मे सस्कृत मे भी **ह** है और सुराष्ट्र[2] की भाषा मे है , हरिपाल ने

गउडवहो ८७१ की टीका में इसे कंसोज की भाषा का शब्द बताया है। कई प्राकृत भाषाओं में भू धातु का भ बहुधा ह बन जाता है। इसकी संधियों में भी ह रूप ही रहता है। यह ह रूप उन रूपों से निकला है जो पादपूरक रूप में व्यवहृत हुए हैं। इस प्रकार अ० माग० और जै०महा० में हवइ, जै० शौर० में हवदि, महा०, जै० महा० और अप० में होइ और जै० शौर० होदि = भवति है; महा० में हुय तथा भवन्ति, पल्लवदानपत्र में होज रूप आया है, पै० में हुवस्य = भवेत् मिलता है, माग० में हुवीअदि = अभूयते, शौर० में होयिस्सदि, माग० में हुवदशादि = भविष्यति, अ० माग० और जै० महा० होयव्व, शौर० और माग० में होदव्व, माग० में हुविदव्व = भवितव्य ; महा० और जै० महा० होउं, जै० शौर० होदुं = भवितुम् (§ ४७६ ; ४७६ ; ५२१ और ५७०) है। हाल के तद्गु संस्करण में भ के स्थान पर बहुधा ह आया है ; हद्दु = भद्र ; हविद = भणित ; भणिरी के लिए हणिरी रूप मिलता है ; हंडण = भडन है ; भमिर का हमिर रूप दिया है ; हाआ = भाषा ; हुअग हुभग=भुजग भुजंग ; हुमआ = भुमआ ; हूसण = भूषण ; हंद = मंद और हाअण = भाजन है।[1] संधि के दूसरे पद के आरम्भ में आनेवाले इन ह-युक्त वर्णों के विषय में § १८४ देखिए।

1. § १६६ नोट-संख्या १ स हुमआ कीजिए।—२. पातंजलि व्याकरण महाभाष्य के काबहार्न द्वारा संपादित संस्करण खंड १ पेज ९, ११ ; मेघदूत २, १४ (रोट के संस्करण के पेज १४ और १० = सत्यव्रत सामाश्रमी के संस्करण का खंड १ १२८) ; वेबर ई० स्टु० १३, ३६३ और उसके बाद ; प० कून कुन बाइत्राग पेज ३२। — ३. वेबर द्वारा संपादित हाल।

§ १८९—पल्लव और विजयबुद्धवर्मन् के दानपत्रों में सब व्यंजन और म को छोड़ जिसमें हाउ (§ १८८) रूप मिलता है, द युक्त वर्ण भी अपरिवर्तित रहते हैं। पल्लवदानपत्र में आरखाधिकत गुमिक तू धन = आरक्षाधिकृतान् गुल्मिकान् तीथिकान् (५, ५) है ; उवकारि (६, २१) ; जामातुकस = जामातृकस्य (६ १८) ; भागमविसि = भागभविनः (६, २५) ; प तभाग = प्रतिभाग (६ १२) ; महाराजाधिराजा (५ १) है ; अप्पतिहत = अप्रतिहत (६, १९) परिससतसहस्सातिरेक = पचशतसहस्रातिरेक (७, ४२) ; भाणिदि (६ ८ भार १७) है; भवि (६ १७) ; परिहापतव्य = परिहापयितव्य (६ ११) ; पमुखाणं = प्रमुखाणाम् (६, २० और ३८) ; उपरि लिखितम् (७ ४४) ; अध (६, ४०) ; तूथिक = ताथिकान् (५, ५) ; भस्समेध = अश्वमेध (५ १) ; नराधमो (७ ४०) ; पसुधाधिपतय = पशुधाधिपतीन् (७ ४४) ; -स्सामं = -स्वामम् (६ ३२) ; प-ल्लवमदम (६ ४) रूप आए हैं। भगवद रूप है : कस्सप=काश्यप (६ १८); कारव आ = ः। कातव्य (६ ८), अणुवट्टाव त = अनुवर्तयितव्या (§ १८८) ; वि-भणि (५ ६ ; ६, ३१) ; भड = भट (५ ७ ; ७ ४१) ; कार्ता =

कोटी (६, १०) और **कड = कृत** (७, ५१) है। एपिग्राफिका इडिका १, ३ मे व्यूल्र का मत और § १० से तुल्ना कीजिए।

§ १८२—पै० मे शब्द के आरम्भ और मध्य मे अधिकतर व्यजन बने रहते है (हेमचन्द्र ४, ३२४ , रुद्रट के काव्यालकार २, १२ की नमिसाधु कृत टीका) · **अनेकप , मकरकेतु , सगरपुत्तवचन ; विजयसेनेन लपितं , पाटलिपुत्त ; पताका , वेतस** (हेमचन्द्र ४, ३०७) , **पाप , आयुध ; सुख ; मेघ ; सभा , कमठ , मठ** पै० है।—आरम्भ तथा मध्य मे **द** आने पर उसके स्थान में **त** आ जाता है (हेमचन्द्र ४, ३०७) और नमिसाधु के मतानुसार **द** का **त** इच्छानुसार होता है · **तामोतर = दामोदर , निट्ठ = दृष्ट** (हेमचन्द्र ४, ३१४, ३२१, ३२३) , **तट्टूण, तत्थून** (हेमचन्द्र ४, ३१३ ; ३२३) , **तातिसं = तादृश, यातिस = यादृश** (हेमचन्द्र ४, ३१७) , **तेति = *दयांत** (हेमचन्द्र ४, ३१८) , **तेवर= देवर** (हेमचन्द्र ४, ३२४) , **मतन = मदन, सतन=सदन, पतेस = प्रदेश, वतनक=वदनक** (हेमचन्द्र ४, ३०७) है।—हेमचन्द्र के अनुसार **थ, ध** में परिणत हो जाता है : **अध = अथ** (हेमचन्द्र ४, ३२३) , **कधितून=*कथित्वान** (हेमचन्द्र ४, ३१२) , **पुधुम = प्रथम** (हेमचन्द्र ४, ३१६) , **कधं = कथम्** (हेमचन्द्र ४, ३२३) , नमिसाधु का कथन है कि **थ** बना रहता है **पथम=प्रथम , पुथुवी = पृथ्वी** है।

§ १८३—चू० पै० मे पै० के ही समान वर्गों के पहले दो वर्ण बने रहते हैं, बल्कि तीसरे और चौथे वर्ण शब्द के आरम्भ या मध्य में होने पर यथाक्रम वर्ग के पहले और दूसरे वर्णों मे बदल जाते हैं (हेमचन्द्र ४, ३२५ , क्रम० ५, १०२)[१] · **ककन=गगन ; किरितट=गिरितट ; खम्म = घर्म ; खत=घृत** (§ ४७) ; **चात=जात , चीमूत = जीमूत , छच्छर=झर्झर ; छकार=झंकार , टमरुक= डमरुक , टिम्प= डम्ब ; टक्का = ढक्का , तामोतर=दामोदर ; थूळी = धूली ; पालक=बालक , पिस=दिस , फकवती=भगवती , फूत=भूत , नकर= नगर , मेख = मेघ, राच=राजन् , तटाक = तडाग, काट=गाढ ; मतन = मदन, मथुर=मधुर, साथु=साधु, रफस=रभस** होता है। हेमचन्द्र ४, ३२५ और क्रमदीश्वर ५, १०३ के अनुसार गौण ध्वनियो [उन ध्वनियों से तात्पर्य है जो अन्य प्राकृतों में मूल सस्कृत से बदल कर आयी हों।—अनु०] में भी ध्वनि परिवर्तन का यह नियम लागू होता है, जैसे **चचन** = प्राकृत **जजण** = सस्कृत **यजन** , **पटिमा** = प्राकृत **पडिमा = प्रतिमा** , **ताटा** = प्राकृत **दाढा=दंष्ट्रा** (§ ७६) हैं। हेमचन्द्र और क्रमदीश्वर के मतानुसार चू० पै० में सयुक्त वर्ण भी शब्दों में डाले जाते हैं **तुक्का=दुर्गा , मक्कन=मार्गण, वक्ख=व्याघ्र , चच्चर=जर्जर , निच्छर=निर्झर , कट=गड ; मंटल=मंडल; सट=षंढ , कंतप्प=कंदर्प ; पंथव=बंधव , टिम्प= डिम्ब** और **रम्फा = रंभा** है। वररुचि १०, ३ मे बताता है कि शब्द के आरम्भ के वर्ण और सयुक्त व्यजन चू० पै० में अपरिवर्तित रहते हैं। भामह ने इसके ये उदाहरण दिये हैं : क्रमदीश्वर के **फकन** के विपरीत भामह का मत है कि **गकन = गगन, गमन,**

पेरिस की हस्तलिखित प्रति में भी यही पाठ है ; इस विषय पर § २४३ की भी तुलना कीजिए। — ३. वररुचि में जो अशुद्ध पाठ हितअकं है उसके और क्रमदीश्वर के इस पाठ के स्थान पर हितपकं पढ़ना चाहिए (वररुचि के उस स्थान की तुलना भी कीजिए जहाँ प के स्थान पर भूल से व पढ़ा गया है)।

§ १८४—हेमचन्द्र ४, ३९६ के अनुसार अप० में जब क, त और प स्वरों के बीच में आते हैं तब लोप होने के बजाय क्रमश: ग, द और व में बदल जाते हैं तथा ख, थ, फ और ह में बदलने के स्थान पर क्रमश. घ,ध और भ में परिवर्तित हो जाते हैं। इस नियम के उदाहरण अधिक नहीं मिलते . खअगालि = क्षयकाले (हेमचन्द्र ४, ३७७), णाअगु = नायकः (हेमचन्द्र ४, ४२७), विच्छोहगरु = विक्षोभकरम् (हेमचन्द्र ४, ३९६, १), सुघे = सुखे (हेमचन्द्र ४, ३९६, २), आगदो = आगतः (हेमचन्द्र ४, ३५५ और ३७२), करदि, चिट्ठदि = करोति, तिष्ठति (हेमचन्द्र ४, ३६०), कीळदि = क्रीडति (हेमचन्द्र ४, ४४२, २), कृदन्तहों = कृतान्तस्य (हेमचन्द्र ४, ३७०, ४) ; घडदि, प्रआवदी = घटते, प्रजापतिः , थिदो=स्थितः (हेमचन्द्र ४, ४०५), मदि = मति (हेमचन्द्र ४, ३७२), विणिम्मविदु, किदु, रदिएँ, विहिदु = विनिर्मापितम् , कृतम् , रत्याः, विहितम् (हेमचन्द्र ४,४४६) , गञ्जिदु, मलिदु, हराविदु, भामिदु और हिंसिदु = *गञ्जितम् (=पीडितम् हेमचन्द्र ४, ४०९ , इस सम्बन्ध में आर्यासतशती ३८४, ६८५ की तुलना कीजिए , गीतगोविन्द १, १९), मर्दितुम् , हारितम् , भ्रामितम् , हिंसितम् (कालका० २६०, ४३ और उसके बाद), सवधु = शपथम् , कधिदु = कथितम् , सभलउँ = सफलकम् (हेमचन्द्र ४, ३९६, ३) है। बहुत अधिक अवसरों पर अप०, महा० में चलनेवाले नियमों का ही अनुसरण करती है, पिंगल की अप० तो सदा उन नियमों का ही पालन करती है केवल एक अपवाद है अर्थात् उसमें मदगल=मदकल आया है (§ २०२), कालिदास भी अपनी अप० में महा० के नियमों को ही मानता है, इसलिए ध्वनि का यह नियम स्थान-विशेष की बोली से सम्बन्धित माना जाना चाहिए (§ २८)।

§ १८५—व्यंजनों की विच्युति अथवा ह युक्त वर्णों के ह में बदल जाने के स्थान पर बहुधा द्वित्व हो जाता है। ह-युक्त वर्ण अपने वर्ग के अपने से पहले अक्षर को अपने में मिला लेते हैं, इसलिए वे अपना द्वित्व रूप इस प्रकार का बना लेते है क्ख, ग्घ, च्छ, ज्झ, ट्ठ, ड्ढ, त्थ, द्ध, प्फ और ब्भ (वररुचि ३, ५१ , चंड० ३, २६ , हेमचन्द्र २, ९० , क्रम० २, १०८ , मार्कण्डेय पन्ना २६)। पहले आये हुए तथा आगामी पाराओं में इस नियम के अनगिनत उदाहरण आये हैं। पल्लवदानपत्रों में ह युक्त द्वित्व व्यंजन अन्य शिलालेखों की भाँति ही दिये गये हैं और आंशिक रूप में एक ही ह-युक्त वर्ण देते हैं . आरखाधिकते = आरक्षाधिकृतान् (५, ५) , वधनिके = वर्धनकान् (६, ९) , दखिण = दक्षिण (६, २८) और पुफ = पुष्प (६, ३४) हैं। शिलालेखों में बहुधा हस्तलिखित प्रतियों की नकल होती है अग्गिट्ठोम [यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]=अग्निष्टोम (५, १) , सवत्थ =

सर्वत्र (५, ३) रट्ठिक=राष्ट्रिक (५, ४) एँत्थ=इत्था (५, ७); वत्थ-व्वाण = वास्तव्यानाम् (६ ८) रट्ठे = राष्ट्रे (६, २७) मरट्ठ = मराष्ट्र (६, १२) भट्टारस = महादश (६ १४) वे ट्ठेठ = विष्ट (६, १२); ऋग्गिठोमम्=ग्गिष्टोमम् (६ १२) कट्ठ = काष्ठ (६, ३३) अट्ठिका = अर्थिका (६, ११) अणुवट्ठवेति = अनुपस्थापयति (७, ४५) थिग्घे = थिघ्राम् (७ ४६) सहत्थ = स्वहस्त (७ ५१) और अमरथेमि = अभ्यर्थयामि (६,४४) में दोनों प्रकार की व्यञ्जनपद्धतियाँ सम्मिलित हैं। उन हस्तलिपियों में, जो प्राचीन लिपि में हैं और जो इनसे देवनागरी लिपि में नकल की गयी हैं तथा जो दक्षिण भारत में छापी गयी हैं, ह-युक्त वर्णों को भी द्वित्व में छापा गया है तथा अन्य मौलिक भी द्वित्व में हैं अथवा अधिकांश में ह-युक्त वर्ण के आगे एक छोटा गोल बिन्दु उसी पंक्ति में रखकर द्वित्व का संकेत किया गया है यह रूप अघ्घ अथवा अ घ=अग्घ= संस्कृत अर्घ्यं; अग्घप्पणा अथवा अ०घ थणा = अग्घपणा=संस्कृत अभ्यर्थना; वच्छत्थल अथवा व०च्छ०थल=वच्छत्थल=संस्कृत वक्षःस्थल और घ का द्वित्व बहुत कम देखने में आता है ह-युक्त अन्य वर्णों के लिए हस्तलिपियाँ भिन्न-भिन्न रूप देती हैं एकरूपता नहीं पायी जाती। बंगला हस्तलिपियों में द्वित्व बहुत ही कम पाया जाता है, कभी-कभी पुराने संस्करणों की भी यही दशा है, जैसे प्रबोधचन्द्रोदय, पूना शाके १७७१ में ह-युक्त कुछ वर्ण द्वित्व में पाये जाते हैं ख का द्वित्व, रक्खसी= राक्षसी (पन्ना १३ अ) घ का द्वित्व, उग्घाडीअदि=उद्घाट्यते (पन्ना १२ ब); ठ का द्वित्व, छुठ्ठु = छु ट्ठु (पन्ना १९ ब), फ का द्वित्व, विप्फुरत = विस्फुरत् (पन्ना १६ ब); भ का द्वित्व णिब्भसिद = (विचित्र रूप !) णिब्भच्छिद' के स्थान पर=निर्भर्त्सित (पन्ना ९ अ) है। इस संस्करण में एक स्थान पर संस्कृत रूप उद्दिष्ठ भी आया है (पन्ना ११ अ)। पूना का यह संस्करण स्पष्ट ही दक्षिण भारत के किसी पाठ पर आधारित है क्योंकि यह तंजोर संस्करण से बहुधा मिलता है। अपनी हस्तलिपियों के आधार पर श प पंडित ने मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशी के अपने संस्करणों में इनकी पूरी पूरी प्रतिलिपि छपा दी है और सभी ह युक्त वर्णों का द्वित्व हूबहू दे दिया है उदाहरणार्थ पुछ्छिदुं, विट्ठि पिढ़्ठासमग्गी सिथिथं (मालवि पेज ५) उ म्मत्थ प'च्छ्दा (पेज ६) आदि-आदि रूप छापे गये हैं। यह द्वित्व हाल[1] की हस्तलिखित प्रतियों में भी देखा जाता है और एक भाग ह युक्त वर्णों का खास कर भ का, कलकत्ते से प्रकाशित कुछ जैन पुस्तकों में, जैसे 'उवासगदसाओ' में द्वित्व मिलता है: वोच्छुब्भमाण (१६१ २१); पब्भट्ठ (२११) उब्भा (१११, ८६६) विब्भमो (२२७ ; ४१८); अब्भुण्णय (२८४) विवागसुय में: तुब्भाहिं (१७); तुब्भं (२ २१) वब्भ (२१८) पाभोक्खं (२१५); पाभोक्खाणं पाभोक्खेहिं अब्भुगय (२१६); जीवाभिगमसुत्त में सत्तक्खुत्तो (१२१) दुब्भिक्खभिक्ख (८४२), सब्भब्भतरिक्ख (८७८ और उसके बाद) -भक्खराणां (८८१ ; ८८९ ८८७), म ड्ढमिया (९ ५ और उसके बाद), भयद्धा (१०९५ और उसके

वाद) आदि-आदि रूप पाये जाते हैं। इस लेखनपद्धति का महत्व भाषासम्बन्धी नहीं, शब्दसम्बन्धी है (§ २६)।

१. यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए , एपि० इंडिका० २, ४८४ में लौयमान का लेख। — २. पण्डित द्वारा सम्पादित मालविकाग्निमित्र (बंबई १८८९), भूमिका का पेज ५ और उसके बाद की तुलना कीजिए। —३ वेबर द्वारा सम्पादित हाल का पेज २६ और उसके बाद।

§ १८६—एक व्यंजन, यदि दो स्वरों के बीच मे हो तो लुप्त हो जाने अथवा यदि ह युक्त वर्ण हो तो ह मे बदल जाने के स्थान पर, बहुधा उसका द्वित्व हो जाता है जब वह मूल में (=संस्कृत में।—अनु०) किसी ध्वनिबल्युक्त स्वर से पहले आया हो। अर्धस्वर और अनुनासिक भी इस नियम के अनुसार द्वित्व प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अ० माग० **उक्खा = उखा** (आयार० २, १, २, १), अ० माग० और शौर० **उज्जु = ऋजु** (§ ५७), अप० **कॅत्थु = कथा** (§ १०७), जै० महा० **जित्त = जित** (एत्सें० ३, ६), अ०माग० **णिज्जित्त = निर्जित** (सूय० ७०४), महा० **णक्ख**, अ०माग० **नक्ख** और इसके साथ साथ **णह** और **नह** रूप = **नखं** (भाम० ३, ५८ , हेमचन्द्र २, ९९ , क्रम० २, ११२ , मार्क० पन्ना २७ , पाइय० १०९ , हाल , रावण० , उवास०), अप० **णिम्म = नियमं** (§ १४९), महा०, अ०माग० **णोल्लइ णुल्लइ = नुदति** (§ २४४); महा० **फुट्टइ = स्फुटति** हैं। (हेमचन्द्र ४, १७७ और २३१ , गउड० , हाल , रावण०), अप० **फुट्टु = स्फुटे** (हेमचन्द्र ४, ३५७, ४) : **फुट्टिसु = स्फुटिष्यामि** (हेमचन्द्र ४, ४२२, १२), **फिट्टइ = *स्फिटति** (हेमचन्द्र ४, १७७ और ३७०) है, इसके साथ साथ **फुडइ**, **फिडइ** रूप भी चलते है , **साल्लइ = सूदयति** (§ २४४), **हत्त=हृत**, **ओहत्त = अवहृत** (=नीचे को झुका हुआ ' देशी० १, १५६), **पसुहत्त**, **परसुहत्त = पर्शुहत**, **परशुहत** (=वृक्ष ' देशी० ६, २९), अप० **दुरित्त=दुरित** (पिंगल २, १७ , ३५ , ४३ [पाठ में **दूरित्ता** रूप छपा है], १८६), **मालत्ती = मालती** (पिंगल २, ११६), **व्रत्तु = व्रतम्** (हेमचन्द्र ४, ३९४) है।—**क** उपसर्ग के सम्बन्ध मे यही ध्वनिबल स्वीकार करना पड़ेगा : महा० **सीसक्क = शीर्षक** (रावण० १५, ३०) , **लेड्डक**, **लेड्डुक्क = लेष्टुक** (§ ३०४) , महा०, जै० महा०, शौर० और अप० **पाइक्क = पादातिक** (हेमचन्द्र २, १३८ , रावण० , एत्सें० , मालती० २८८, ६ , बाल० १९९, १० , प्रिय० ४४, १८ [कलकतिया संस्करण ४९, २ के साथ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , पिंगल १, १०७ , १२१, १४३ अ, १५२ अ [**पइक्क** ; पाठ में **पइक** है], २,१३८)[१], माग० में **हडक्क=हृदक** (§ १५० , वर० ११, ६ , क्रम० ५, ८९ [पाठ में **हृदक्को** आया है। लास्सन के इन्स्टि० लि० प्रा० पेज ३९३ में **हृदक्का** दिया गया है] , मृच्छ० ७९, ११ , ११४, १४ , १६ , १८ , ११५, २३), पद्य में **हडक** रूप भी मिलता है (मृच्छ० ९, २५ [शकार] और **हडक** ३०, २१ में आया है) , माग० में **हग्गे = *अहक** (§ १४२ और ४१७) , **अअक्क** और साथ साथ एक ही अर्थ मे चलनेवाला **अअग = अजक**

रिय = सक्रिय (ओव० § ३०, दो, ४ ब , इस हस्तलिपि का यही पाठ पढा जाना चाहिए) , अ० माग० का **सुक्किल*** = **शुक्ल**, जै०महा० मे **सुक्किलिय** = **शुक्लित** (§ १३६) है। जै०महा० के **नमोॅक्कार**, महा० और अ० **अवरोॅप्पर**, महा०, अ० माग०, जै० महा० और शौर० का **परोॅप्पर**=**नमस्कार, अपरस्पर, परस्पर** मे **अस्** का **ओ** रूप हो गया है। साथ ही **स्क** का रूप-परिवर्तन **क्क** मे और **स्प** का **प्प** में हो गया है (§ ३०६ , ३११ और ३४७)। महा० और अ० माग० में **पोॅम्म** = **पद्‌म** और **पोॅम्मा** = **पद्‌मा** महा० और शौर० मे **पोम्मराअ** =**पद्‌मराग** है, इसमें **अ** की सन्धि उद्‌वृत्त स्वर से हो गयी है (§ १३९ और १६६), इसके विपरीत भी द्वित्वीकरण इसमे हो गया है।[२] **य** के स्थान पर **–ज्ज** के सम्बन्ध मे § ९१ देखिए।

१ काव्यप्रकाश ७२, ११ में **जअसिरी** शुद्ध रूप है जैसा **गउडवहो** २४३ में भी **जअसिरीए** रूप मिलता है ; इसमें १० वीं पक्ति में **वलामोडिइ** पढ़ना चाहिए (§ २३८ और ५८९)। तात्पर्य यह है कि यह रूप वेबर द्वारा संपादित हाल[१] अ० २२ , [२]९७७ में दिये शब्द **जअस्सिरी** न लिखा जाना चाहिए। — २. कू० त्सा० ३५, १४६ और उसके बाद में पिशल का लेख। पाली के सम्बन्ध में ना० गे० वि० गो० १८९५, ५३० में फ्राके का लेख देखिए।

§ १८८—समास के दूसरे पद के आरम्भ में जो व्यजन आते हैं, उनके साथ वैसा ही व्यवहार होता है मानो वे एक शब्द के आरम्भ में आये हों और तब वे सरल कर दिये जाते हैं (§ २६८ , वर० ३, ५७ , हेमचन्द्र २, ९७ , क्रम० २, ११९ , मार्क० पन्ना २८). महा० में **वारणखन्ध** = **वारणस्कन्ध** (गउड० १२००), इसके साथ चलनेवाला रूप **महिसक्खन्ध** = **महिषस्कन्ध** (हाल ५६१), महा० मे **हत्थफंस** = **हस्तस्पर्श** (हाल ३३०), इसके साथ ही दूसरा रूप **हत्थप्फंस** भी देखने में आता है (हाल ४६२) , शौर० में **अणुगहिद** = **अनुगृहीत** (मृच्छ० २५, ३), इसी के साथ साथ **परिअग्गहिद** = **परिगृहीत** भी पाया जाता है (मृच्छ० ४१, १०) , **णइगाम** और इसके साथ ही **णइग्गाम** = **नदीग्राम** (भाम० , हेमचन्द्र) है , **कुसुमपअर** और इसका दूसरा रूप **कुसुमप्पअर** = **कुसुमप्रकर** (भाम० , हेमचन्द्र) , **देवथुइ** और साथ मे चलनेवाला दूसरा रूप **देवत्थुइ** = **देवस्तुति** (भाम० , हेमचन्द्र० , क्रम०) , **आणालखम्भ** और इसका दूसरा प्राकृत रूप **आणालक्खम्भ**=**आलानस्तम्भ** (भाम०, हेमचन्द्र)है, **हरखन्दा** और साथ साथ मे **हरक्खन्दा** = **हरस्कन्दौ** (हेमचन्द्र) है। नियम तो द्वित्वीकरण का है अर्थात् दूसरे पद के आरम्भिक अक्षर के साथ मध्य अक्षर के जैसा व्यवहार होना चाहिए, इसलिए इस समानता[१] पर समास के दूसरे पद का आरम्भिक सरल व्यजन अनेक स्थानों पर दिया जाता है शौर० मे **अक्खाइद** = **अखादित** (मृच्छ० ५५,१५) , **अदंसण** = **अदर्शन** (हेमचन्द्र २,९७) , माग० में **अदिट्ठ**=

* इस प्राकृत शब्द के रूप **सुकिलो** और **सुकिल** कुमाउनी बोली में प्रचलित है।—अनु०

(=दानव : देशी० १, ६) ; अप० में कालिक्का = कालिका (पिंगल २, ४१); शौर० में चन्द्रिक्का = -चन्द्रिक (मृच्छ० ७१, २५) ; अप० में णाअक्क = नायक (पिंगल १, २४ ; ५७ ; ११६) ; दीपक्क = दीपक (पिंगल १, १२८) ; रूपक्क = रूपक (पिंगल २, ११७) ; सारंगिक्का = सारंगिका (पिंगल २, ७१ [पाठ में सरंगिका है] ; १८७) । यही नियम प्रत्यय त पर भी लागू होता है । अ० माग० में विउव्वित्त = विकुर्वित (सूय० ७९२ और ८०६), इसके साथ साथ साधारण रूप विउव्विय भी चलता है । इसी नियम के अनुसार ही ल का द्वित्वीकरण भी सिद्ध हो जाता है -अल्ल, -इल्ल, -उल्ल = -अल -इल और -उल (§ ५९५) । इस नियम के विपरीत किन्तु इसकी देखादेखी निम्नलिखित शब्द बन गये हैं : अप० में पउमावत्ती = पद्मावती और मेणक्का = मेनका (पिंगल १, ११६ ; २, २ ९) है । दीर्घ स्वर के बाद भी बहुधा द्वित्वीकरण हो जाता है किन्तु दीर्घ स्वर द्वित्वीकरण के बाद ह्रस्व बन जाता है : जैसे, एॅव्वं = एवम् ; किड्डा = क्रीडा ; जॅव्व = एव ; णॅड्डु = नीडं ; तुण्हिक्क = तूष्णीकं ; तॅल्ल = तैल और दुगुल्ल = दुकूल है आदि-आदि (§ ९०)[1] । शब्द के आरम्भ में पादपूरक अव्ययों के द्वित्वीकरण के सम्बन्ध में § ९२ और उसके बाद देखिए , णिहित्त, णाहित्त आदि पर § २८९ देखिए ।

१. कोपेनहागेन की ऍकाडेमी डेर विस्सनशाफ्टन की मासिक रिपोर्ट (बर्लिन १८७९, ९२२) में एस० गौल्दश्मित्त ने भूल से इस शब्द को फारसी से निकला बताया है । वेबर ने हाल की भूमिका के पेज १० में और याकोबी ने अपने ग्रंथ महाराष्ट्री एर्सेलुंगन में गौल्दश्मित्त का अनुसरण किया है । यह भूल इस कारण हुई कि उस क उपसर्ग के द्वित्वीकरण से अपरिचित रूप ज्ञात न थे । गो० गे० आ० १८८१, १२११ में मैंने पादपूरक शब्द को पादिक से निकला बताया था, मेरी यह व्युत्पत्ति भी अशुद्ध थी, भले ही भाषाशास्त्र की दृष्टि से इस पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की जा सकती । — २. अप्रकट के सम्बन्ध में पोएदक्क की तुलना कीजिए और पुरिल्लदेव = असुर (देशी० ६, ५५) = दैत्य (त्रिवि० १, ४, १२१ ; बे० बाइ० १३, १९ से भी तुलना कीजिए । — ३. कू० त्सा० ३५, १४० और उसके बाद में विषय का निर्णय ; कू० त्सा० ३५, ५७५ और उसके बाद के पेजों में याकोबी ने भिन्न मत प्रकट किया है ।

§ १८७—यदि संयुक्त व्यंजन स्वरभक्ति से अलग कर दिये जायँ तो वे इस स्थिति में सरल कर दिये जाते हैं अथवा § १८६ और १८८ के अनुसार रूप धारण कर लेते हैं । कभी कभी इन स्थितियों में कोई व्यंजन, संयुक्त व्यंजनों के लिए लागू नियमों के अनुसार द्वित्व रूप ग्रहण कर लेता है (§ १११) । अ० माग० का ससिरीय और शौर० का ससिरिअ = सश्रीक ; शौर० में ससिरीअदा, ससिरीअत्तण = सश्रीकता, ०सश्रीकत्वन (§ ९८ ; ११५)[1] ; पुरुव्य = पूर्व ; मुरुक्ख = मूर्ख ; अ० माग० में रिउव्वय = ऋग्वेद (§ १३९) ; शौर० में सक्कणादि सक्कुणादि = शक्नोति (§ १४० और ५०५) ; अ० माग० में सक्क

रिय = सक्रिय (ओव० § ३०, दो, ४ ब , इस हस्तलिपि का यही पाठ पढा जाना चाहिए), अ० माग० का **सुक्किल*** = **शुक्ल**, जै०महा० में **सुक्किल्लिय** = **शु क्लत** (§ १३६) है। जै०महा० के **नमों क्कार**, महा० और अ० **अवरों प्पर**, महा०, अ० माग०, जै० महा० और शौर० का **परों प्पर=नमस्कार, अपरस्पर, परस्पर** में **अस्** का **ओ** रूप हो गया है। साथ ही **स्क** का रूप-परिवर्तन **क्क** में और **स्प** का **प्प** में हो गया है (§ ३०६ , ३११ और ३४७)। महा० और अ० माग० में **पों म्म = पद्म** और **पों म्मा = पद्मा**. महा० और शौर० में **पोम्मराअ =पद्मराग** है, इसमे **अ** की सन्धि उद्वृत्त स्वर से हो गयी है (§ ११९ और १६६), इसके विपरीत भी द्वित्वीकरण इसमे हो गया है।[२] **य** के स्थान पर **–ज्ज** के सम्बन्ध में § ९१ देखिए।

१ काव्यप्रकाश ७२, ११ में **जअसिरी** शुद्ध रूप है जैसा गउडवहो २४३ में भी **जअसिरीए** रूप मिलता है ; इसमें १० वीं पंक्ति में **वलामोडिइ** पढ़ना चाहिए (§ २३८ और ५८९)। तात्पर्य यह है कि यह रूप वेवर द्वारा सपादित हाल[१] अ० २२ , [२]९७७ में दिये शब्द **जअस्सिरी** न लिखा जाना चाहिए। — २. कू० त्सा० ३५, १४६ और उसके बाद में पिशल का लेख। पाली के सम्बन्ध में ना० गे० वि० गो० १८९५, ५३० में फ्राके का लेख देखिए।

§ १८८—समास के दूसरे पद के आरम्भ में जो व्यजन आते हैं, उनके साथ वैसा ही व्यवहार होता है मानो वे एक शब्द के आरम्भ में आये हों और तब वे सरल कर दिये जाते हैं (§ २६८ , वर० ३, ५७ , हेमचन्द्र २, ९७ , क्रम० २, ११५ , मार्क० पन्ना २८): महा० में **वारणखन्ध = वारणस्कन्ध** (गउड० १२००), इसके साथ चलनेवाला रूप **महिसक्खन्ध = महिषस्कन्ध** (हाल ५६१), महा० में **हत्थफंस = हस्तस्पर्श** (हाल ३३०), इसके साथ ही दूसरा रूप **हत्थप्फंस** भी देखने में आता है (हाल ४६२), शौर० में **अणुगहिद = अनुगृहीत** (मृच्छ० २५, ३), इसी के साथ साथ **परिअग्गहिद = परिगृहीत** भी पाया जाता है (मृच्छ० ४१, १०) , **णइगाम** और इसके साथ ही **णइग्गाम = नदीग्राम** (भाम० , हेमचन्द्र) है , **कुसुमपअर** और इसका दूसरा रूप **कुसुमप्पअर = कुसुमप्रकर** (भाम० , हेमचन्द्र) , **देवथुइ** और साथ में चलनेवाला दूसरा रूप **देवत्थुइ = देवस्तुति** (भाम० , हेमचन्द्र० , क्रम०) , **आणालखम्भ** और इसका दूसरा प्राकृत रूप **आणालक्खम्भ=आलानस्तम्भ** (भाम०, हेमचन्द्र)है, **हरखन्दा** और साथ साथ मे **हरक्खन्दा = हरस्कन्दौ** (हेमचन्द्र) है। नियम तो द्वित्वीकरण का है अर्थात् दूसरे पद के आरम्भिक अक्षर के साथ मध्य अक्षर के जैसा व्यवहार होना चाहिए, इसलिए इस समानता[१] पर समास के दूसरे पद का आरम्भिक सरल व्यजन अनेक स्थानों पर दिया जाता है : शौर० में **अपखाइद = अखादित** (मृच्छ० ५५,१५) , **अदंसण = अदर्शन** (हेमचन्द्र २,९७) , माग० में **अदिट्ठ=**

* इस प्राकृत शब्द के रूप सुकिलो और सुकिल कुमाउनी बोली में प्रचलित हैं।—अनु०

भरइ (गउड हाल रावण) महा० में भड्डाम अ०माग और जै महा० में मड्डाग और भड्डाय = ०आदापक' (= आरसी : देशी० १, १४ पाइय० ११९ ; हाल ठाणग० २८४ पण्णव ४३५ और उसके बाद नन्दी ४७१ ; आव एर्से० १७, १ १४ ; १५ १९ एर्से) महा० पब्भुद = प्रबुद्ध (रावण १२, ३४) ; भभुद्धसिरी = प्रबुद्धश्री (देशी १, ४२ ; त्रिवि० १, ४, १२१) महा० अपव्वाडम = अभ्याशित (हाल ६८९) महा भल्लिअइ, जै०महा अल्लियउ, अ माग० उव ल्लियइ, महा समल्लिअइ, जै महा० समल्लियइ (§ ४७४) महा और जै महा० अल्लीण' (गउड० हाल रावण० ; आव० एर्से० १४, २१ २४ १७ २९, २८ एर्से); महा० आणल्लीण (रावण), समल्लीण (हाल) जिसमे आ, उप, अथा के साथ ली है भाल्लिपइ = ०आक्षिप्ति = आक्षिप्यति (हेमचन्द्र ४, १९) अयल्लाय = अपल्लाप (देशी १, ३८) अप रूप उद्धुम्भुम = ऊर्ध्वमुख (हेमचन्द्र ४, ४४४, १) ओगाल और इसका दूसरा प्राकृत रूप ओमाल को ०ओगाल के लिए आया है (= छोटी नदी : देशी १, १५१) = ०अवगाल जिसमे अव के साथ गल् धातु है ; अ माग म कार्यागारा = कायागरा (दस १३४,२४) महा और शौर० त ळॉक (माम म १,१९ ; १, ५८ हेमचन्द्र २, ९७ ; क्रम २, ११४ मार्कण्डेय पन्ना २७ ; रावण धूर्त ४, २ अनर्घ ११७, १६ ; कर्ण ११, ९ और ११ महावीर ११८, १ उत्तर० ६४ ८ [यहाँ त ेल्लाम पाठ है] ; मल्लिका १११ १), इसके साथ साथ महा और अ माग रूप तेळॉक (सब व्याकरणकार ; गउड पण्णव २ और १७८ और इसके बाद [पाठ मे तेलुक रूप है] ; दस नि ६५ , २८ उवास० कप्प) = त्रैलोक्य ; माग पञ्चस्थपा = पञ्चजमाः (मृच्छ ११२ ६) पडिक्कूल और इसके साथ अधिक प्रचलित रूप पडिऊल = प्रतिकूल ; महा पव्वल = प्रबल (रावण) ; प्रम्मुक्क (हेमचन्द्र २, ९७) और इससे भी अधिक प्रचलित रूप पमुक्क = प्रमुक्त (§ ५६६) ; महा , अ माग से महा और शौर परव्वस (हाल ; रावण पन्ना ३११ ; तीर्थ ६ १४ ; एर्से ललित ५ ४ ५ ; विक्रमो० २९,१२ नागा ५ ११); माग पलव्वश (मालती १४३, ११ यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) = परवश ; अ माग अणुव्वस = अनुवश (सूय १९२) ; पव्वाअइ = ०प्रयायात=प्रयाति (हमचन्द्र ४ १८) महा० पव्वाय = प्रयात (हाल रावण) ; महा आणा मल्लप्फल = आज्ञामात्रफल (रावण ३, ६) अहिणवविष्णप्फल = अभिनव दुस्तफल (रावण १ १७) पायपप्फल = पादपफल (रावण० ९, ४ ; रावण १२, १२ के भी तुलना कीजिए ; ११, ८९ ; हाल ५७६) ; पडुप्फल तथा दूसरा रूप पडुप्फुल्ल (हमचन्द्र २, ७ ; मार्कण्डेय पन्ना २९) ; जै महा पडुप्पन्न (आवएत्सें २०१ २), इसके साथ दूसरा रूप पडुप्पन्न (क्रम २ ११६ ; § २ । भी तुलना कीजिए) ; अ माग पुरिसक्कार = पुरुषकार (विवाह ६७, ६८ १६५ ; नायाध १७४ ; उवास० ; आव /,

ठीक जैसे महा० **साहुक्कार = साधुकार** (रावण०) और अ०माग० **तहक्कार = तथाकार** (ठाणग० ५६६), जै०महा० **भत्तिब्भर = भक्तिभर** (कालका० २६९, १४), महा० **मणिक्खइअ = मणिखचित** (मृच्छ० ४१, २), महा० **मलअसिहरक्खंड = मलयशिखरखंड** (हेमचन्द्र २, ९७ = रावण० ८, ६९), महा० **वण्णग्घअ = वर्णघृत** (हाल ५२०), अप० रूप **विज्जज्झर = विद्याधर** (विक्रमो० ५९, ५, § २१६ भी देखिए), अप० **विप्पक्ख = विपक्ष** (पिंगल १, १३८ अ), अ० माग० **सकडब्भि, सगडब्भि = स्वकृतभिद्** (आयार० १, ३, ४, १ और ४), महा० **सज्जीअ = सजीव** (रावण० १, ४५), **सत्तण्ह = सतृष्ण** (रावण० १, ४६), **सप्पिवास = सपिपास** (हेमचन्द्र २, ९७, रावण० ३, २१), **सेसप्फण = शेषफण** (रावण० ६, १९, इसके साथ ६, ६३, ६९, ७२, ७, ५९, ९, १४, ३४ और ४५ की भी तुलना कीजिए), **पहुरप्फेण** (रावण० ८, ९, और इसके साथ ८, ४९, १३, २४, ५३ और ६६ की भी तुलना कीजिए, अ०माग० और जै०शौर० **सच्चित्त = सचित्त** (दस० ६२२,३९, कत्तिगे० ४०३, ३७९) है। **–क्कार** और **क्ख** से आरम्भ होनेवाले शब्दों से और **–प्फल** में सम्भवतः आरम्भ मे आनेवाले **स** के कारण द्वित्व हो गया है, अन्य अनेक अवसरों पर यह द्वित्वीकरण छन्दों की मात्राएँ भग न होने देने के लिए किया गया है, जैसा महा० **तणुल्लआ** (कर्पूर० २७,१२) में अवश्य ही किया गया है, क्योंकि इसका साधारण प्रचलित रूप **तणुलआ = तनुलता** है, अ०माग० **रागद्दोस,** (उत्तर० ७०७, दस० नि० ६५३, ६) जिसका साधारण प्रचलित रूप **रागदोस** (§ १२९) है, का द्वित्वीकरण छन्द ठीक बैठाने के लिए किया गया है, इसी प्रकार जै० शौर० **कुद्दिट्ठि = कुदृष्टि** (कत्तिगे० ३९९, ३१८, ४००, ३२३), इस पर इसके साथ-साथ चलनेवाले **सद्दिट्ठि = सद्दृष्टि** का (कत्तिगे० ३९९, ३१७ और ३२०) प्रभाव पड़ा है, आदि आदि इस प्रकार के अन्य बहुत रूप हैं।

१. कू० त्सा० ३५, १४७ और उसके बाद के पेजों में पिशल का लेख। — २ वे० बाइ० ३, १४७ में दिये रूप से यह अधिक शुद्ध है जैसा जै० महा० रूप **उद्दग** से सिद्ध होता है। सन्धि के विषय मे § १६५ की तुलना कीजिए और **दावद्द** रूप के लिए § ५५४ देखिए, हाल' पेज २९ मे हाल ने अशुद्ध लिखा है, हाल' ४, २०४ पर टीका। — ३ वे० बाइ० १३, पेज १० उसके बाद के पेज में दिये गये रूप से यह अधिक शुद्ध है, कू० त्सा० ३५, १४९ से तुलना कीजिए। — ४ होएर्नले अपने सपादित उवासगदसाओ के अनुवाद के पेज १११, नोट २५४ मे तथा लौयमान वी० त्सा० कु० मौ० २, ३४५ में इस रूप को **वलाक्कार = बलात्कार** की नकल पर बनाना ठीक नहीं समझते। उतने ही अधिकार के साथ हम इसे **सक्कार = सत्कार** के अनुसार बना सकते हैं।

§ १८९—बहुत से उदाहरणों मे व्यजन के द्वित्वीकरण का समाधान प्राकृत के शब्द-निर्माण की प्रक्रिया या रूप बनने का ढङ्ग संस्कृत से भिन्न होने के कारण

पडल = पटल, विडव = विटप ।—**कढिण = कठिन** (गउड०, हाल), **कढिणत्तण = *कठिनत्वन** (रावण०), **कमढ = कमठ** (गउड०, हाल), **जरढ = जरठ** (गउड०, रावण०), **पढइ = पठति** (हाल), **पीढ = पीठ** (गउड०), **हढ = हठ** (गउड०) है। पल्लवदानपत्रों में भी यह अदल-बदल दिखाई देता है, किंतु अपवादरूप से, उनमें **भड=भट** और **कोडी = कोटी** (§ १८९) है। हेमचन्द्र १, १९५ के अनुसार कभी-कभी **ट** ज्यों का त्यों बना रह जाता है, जैसे **अटइ = अटति** का ट, यह अशुद्ध पाठान्तर होना चाहिए।

१ § १८४ की नोट-संख्या १ से तुलना कीजिए, § १८६, नोट १।

§ १९१—लोप होने के बजाय (§ १८६) **प** अधिकांश में **व** का रूप धारण कर लेता है[1]। अप० बोली में इस **व** का **व्व** हो जाता है (§ १९२), जैसा सब लोगों ने पहले इस तथ्य को सामान्यत. स्वीकार कर लिया था (वर० २, १५, हेच० १, २३१, क्रम० २, ८, मार्क० पन्ना १६)। इस नियम से महा० **आअव = आतप** (गउड०, हाल, रावण०)[2], **उवल = उपल** (गउड०), **कोव = कोप**, **चाव = चाप**, **णिव = नृप** (रावण०), **दीव = दीप**, **पआव=प्रताप**, **विविण = विपिन** (गउड०), **सवह = शपथ** (हाल), **सावअ = श्वापद** (गउड०, रावण०) है। अपवादरूप से पल्लवदानपत्रों में भी **अनुवट्टावेति**, **कस्सव** और **कारवेज्जा** में **व** आया है, **वि** के लिए (§ १८९) देखिए। आरम्भिक और गौण **प** के स्थान पर **व** के लिए § १८४ देखिए। हेमचन्द्र ने १, २३१ में बताया है कि **प** का **व** कर देने या **प** उडा देने का एकमात्र कारण श्रुतिसुख है अर्थात् यह हेरफेर ऐसा किया जाना चाहिए कि कानों को अच्छा लगे। वर० २, २ की टीका में भाम० और पन्ना १४ में मार्क० ने बताया है कि यह अदल बदल मुख्यत. § १८६ मे उल्लिखित ध्वनियों की विच्युति के लिए निर्णायक है।[3] साधारण तौर पर **अ** और **आ** से पहले **प** का **व** हो जाता है और इसके विपरीत **उ** तथा **ऊ** से पहले यह लुप्त हो जाता है, अन्य स्वरों से पहले यह नियम स्थिर नहीं रहता। जैन हस्तलिखित प्रतियों में भूल से **व** के स्थान पर बहुधा **व** लिखा मिलता है।

१. कौवेल द्वारा संपादित वर०[2] की भूमिका का पेज १४; गो० गे० आ० १८७३, पेज ५२ में पिशल का लेख, आकाडेमी १८७३, पेज ३९८, ये० लि० १८७५, पेज ३१७, ना० गे० वि० गो० १८७४, ५१२ में भी गौल्दश्मित्त के लेख का नोट। — २. § १८४ का नोट १ और § १८६ का नोट १ की तुलना कीजिए। — ३ हेच० १, २३१ पर पिशल की टीका।

§ १९२—वर० २, २६ के अनुसार शब्द के भीतर आने और स्वरों के बीच मे होने पर **फ** सदा **भ** बन जाता है। भाम० ने इस नियम के उदाहरण दिये है. **सिभा = शिफा**, **सेभालिआ=शेफालिका**, **सभरी = शफरी** और **सभलं= सफलम्** हैं। मार्क० पन्ना १६ मे यह बताया गया है कि यह परिवर्तन **शिफादि**-गण के भीतर ही सीमित है, इस गण के भीतर उसने निम्नलिखित शब्द गिनाये हैं **सिभा= शिफा**, **सेभ = शेफ**, **सेभालिआ = शेफालिका**, उसने **सभरी = शफरी** भी

किलीव = **क्लीव** (आयार० २, १, ३, २), **छाव** = **शाव** (§ २११), महा० मे **थवअ** = **स्तवक** (रावण०), अ०माग० मे **थवइय** = **स्तवकित** (विवाह० ४१, ओव०), महा० मे **दावइ** = **मराठी दावणे** (शकु० ५५, १६)[1], महा० और जै०महा० मे **सव** = **शव** (गउड०, आव० एर्त्से० ३६, ३४), महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे **सवर** = **शवर** (गउड० [पाठ में **सवर** है], विवाह० २४६ [पाठ में **सव्वर** है], पण्हा० ४१ [पाठ में **सबर** है], पण्णव० ५८, एर्त्से०, प्रसन्न० १३४, ६ और ७ [पाठ में **सवर** आया है]), महा० और अ०माग० मे **सवरी** रूप मिलता है (गउड० [पाठ में **सवरी** रूप है], विवाह० ७९२ [यहा भी पाठ मे **सवरी** है), नायाध० § ११७ [पाठ में **सवरी** है], ओव० § ५५ [पाठ में **सबरी** आया है]), महा० में **सवल** = **शवल** (हाल), अ०माग० और जै०महा० में **सिविया** = **शिविका** (§ १६५), जै०महा० मे **सिविर** रूप पाया जाता है (एर्त्से०, पाठ में **सिबिर** मिलता है]), माग० में इसका रूप **शिविल** हो गया है (ललित० ५६५, ६ और ८) = **शिविर**[2] है। **व** बहुत कम लोप होता है, जैसे अ०माग० **अलाउ, अलाउय, लाऊ, लाउ, लाउय** और साथ साथ शौर० रूप **अलावू** = **अलावू**, **अलावु** (§ १४१) हैं; **णिअन्धण** = **निवन्धन** (= वस्त्र : देशी० ४, ३८, त्रिवि० १, ४, १२१)[1], **विउह** (हेच० १, १७७) और इसके साथ इस शब्द का जै०महा० रूप **विवुह** (एर्त्से०) = **विवुध** है। —**व** बहुत ही अधिक स्थलों मे बना रहता है, विशेषकर अ ध्वनियों के मध्य मे, जैसा **प** के विषय में लिखा गया है, इस विषय पर भी श्रुति मधुरता अतिम निर्णय करती है।

१ शकुन्तला ५५, १६ पेज १८४ पर जो नोट है उसे इसके अनुसार बदलना चाहिए। — २. जैसा उदाहरणों से पता लगता है, जैन हस्तलिपियों विशेषकर व के स्थान पर ब लिखा मिलता है। इसे याकोबी अपने ग्रन्थ 'औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन इन महा०' § २०, २ की भूमिका के पेज २८ में ध्वनि का नियम बताता है, पर यह कोई नियम नहीं है, यह तो हस्तलिखित प्रतियाँ लिखनेवालों की भूल है। इसी प्रकार ये लेखक कभी-कभी शब्द के आरम्भ में भी व के स्थान पर ब लिखते हैं (ए० म्युलर, बाइत्रैगे, पेज २९)। अन्य हस्तलिखित प्रतियों की भाँति ललितविग्रहराज नाटक में भी (द्राविडी प्रतियों को छोड) जहा व होना चाहिए वहाँ भी केवल ब लिखा मिलता है। इस विषय मे § ४५, नोट-सख्या ३ की भी तुलना कीजिए। — ३ वे० बाइ० १३, ८ में पिशल का लेख।

§ १९४—§ १९२ और १९८ से २०० तक मे वर्णित स्थलों को छोड अन्यत्र वर्णमाला के वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों का द्वितीय और चतुर्थ वर्णों में बदल जाने अथवा इसके विपरीत द्वितीय और चतुर्थ वर्णों का प्रथम और तृतीय मे बदल जाने के उदाहरण (§ १९० और १९१) एक-आध ही मिलते है और वह भी एक दो बोलियों में। अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे **क** लुप्त होने के

उद्धृत किया है और बताया है कि किसी ने इसका व्यवहार किया है[1]। क्रम० ने २, १६ में बताया है कि शिफा और शफर के फ, भ में बदल जाते हैं। हेच० १, २३६ में अनुमति देता है कि फ के स्थान पर प्राकृत में भ और ह दोनों रखे जा सकते हैं यह बताता है कि रंभ = रंफ और सिभा = शिफा में भ काम में लाया जाता है, मुत्ताहल=मुक्ताफल में ह हो गया है। सभल, सहल = सफल ; सभालिआ, सेहालिआ = शेफालिका समरी, सहरी = शफरी। गुभइ, गुहइ = गुफति में भ और ह दोनों चलते हैं। अभी तक भिन्न-भिन्न शब्दों के प्रमाण मिल पाये हैं, उनसे पता लगता है कि समास के दूसरे पद के आरम्भ में आने पर फ भी मिलता है। इस नियम के अनुसार महा०, जै० महा० और शौर० में मुत्ताहल = मुक्ताफल (गउड० ; कर्पूर० ७३, ९; पद्यों कर्पूर० ७२, १ ७३, २), महा० में मुत्ताहलिल्ल रूप आया है (कर्पूर० २, ५ १०, ५); सहर, सहरी रूप भी देखने में आते हैं (गउड०)। महा० और शौर० में सहालिआ (हाल० मृच्छ० ७३, ९ [इस स्थान पर यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; विक्र० ११, १ १२, १ ; ११, १६) शौर० में विसफलअ=विषफलक (उदाहरणार्थ मृच्छ० ६७, १ ६९, ७ ६६, २१ ; शकु० १२५ ७ ; १११, ८ ; ११६, ६ ; १२२, ११ ; विक्रमो० २८, १८ रत्ना० २९८, ६ ३०१, १९ मालती० १२७, ११) पहुहल = (क्रम० २, ११६) ; शौर० में पहुफल (विक्रमो० ८५, ११), सफल (मालवि० ८८, १ ८९, ११) ; समाफल = श्यामफल (प्रताप० ८२, ५) माग० में पणसफल (मृच्छ० ११५, २) और अन्य रूप मिलते हैं, अप० के विषय में § ११२ देखिए। — फल के विषय में § ११६ देखिए। इस बार में कुछ नहीं कहा जा सकता कि गुमइ और भुमइ = भ्रमति का परस्पर में क्या सम्बन्ध है (हेच० ४, १६१)। द्राविड़ी हस्तलिपियाँ संस्कृत और प्राकृत शब्द भण (= कहना, बकना) के लिए बहुधा फण् रूप लिखती हैं (उदाहरणार्थ विद्ध० शाल० विक्रमो० १२२ १ ११२, १७ और १८ ; ६१ , ८ मल्लिका० ८३, ४)। § २०८ का भी तुलना कीजिए।

1. इसकी हस्तलिखित प्रति में पाया जाता है सर्पादिर् मारदुत (अथवा मारदार) इत्यादि क्वचित्।

[illegible] १ — शब्द के मध्य में [illegible] के स्थान पर प्राकृत में [illegible] हो जाता है (हेच० १५ २१७) महा० [illegible] , जै० महा० [illegible] , [illegible] [illegible] में कसवट्ट = कषपट्ट (गउड० [illegible] ; [illegible] ११०१ [कसवट्ट पाठ है] [illegible] [यहाँ भी कसवट्ट पाठ है] ; [illegible] ११८ [illegible]) [illegible] में [illegible] (मृच्छ० ११८ [illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible] [[illegible] है] [illegible] २, २१) ; [illegible]

२, २८ में **मरअद** रूप अशुद्ध है। हेच० १, १८२ और मार्क० पन्ना १४ के अनुसार **मद्कल** मे भी **क** का **ग** हो जाता है, प्रमाण में केवल अप० रूप **मदगल** मिलता है (पिगल १, ६४, हेच० ४, ४०६, १), इन स्थलो पर यह § १९२ के अनुसार भी सिद्ध होता है। महा० में **पागसासण = पाकशासन** पाया जाता है (गउड० ३८०)। **गे न्दुअ** के विषय में § १०७ देखिए। — अ० माग० **आघावेइ = आख्यापयति, आघवणा = आख्यापना** (§ ८८ और ५५१) और **णिघस = निकष** (§ २०६) में **ख** का **घ** हो गया है। **अहिलंखइ, अहिलं-घइ** में (= इच्छा करना : हेच० ४, १९२) मूल मे **ख** अथवा **घ** है, इसका निर्णय करना टेढी खीर है। —**पिसाजी = पिशाची** में **च** का **ज** बन गया है (हेच० १, १७७)। इसके विपरीत ऐसा मालूम पडता है कि महा० और शौर० **चक्खइ** (=चखना, खाना . वर० परिशिष्ट ए पेज ९९, सूत्र २०)[1], महा० **चक्खिअ** (चखा हुआ · हेच० ४, २५८, त्रिवि० ३, १, १३२, हाल ६०५), **अचक्खिअ** (हाल ९१७), **चक्खन्त** (हाल १७१), शौर० **चक्खिअ** (=चखकर · नागा० ४९, ५), **चक्खिज्जन्त** (शुद्ध रूप **चक्खीअन्त** हैं, चड० १६, १६)[2] **जक्ष** से निकले है, इनमें **ज** का **च** हो गया है। **मच्चइ** और साथ-साथ **मज्जइ = माद्यति** जो **मद्** धातु से निकला है (हेच० ४, २२५), अप० में **रच्चसि = रज्यसे** जो **रज्** धातु का रूप है (हेच० ४, ४२२, २३), महा० और जै०महा० **वच्चइ** (वर० ८, ४७, हेच० ४, २२५, क्रम० ४, ४६, गउड०, हाल, रावण०, एर्त्से०, काल्का०, ऋषभ०), आ० **वच्चदि** (मृच्छ० ९९, १७ [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए], १००, १९, १०१, ७, १४८, ८), दाक्षि० **वच्चइ** (मृच्छ० १००, १५ [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए]), **वच्च, वच्चदि** (मृच्छ० १०५, ४ और ९), ढ० में **वज्जदि** रूप मिलता है, शौर० में **वज्जम्ह** और माग० में **वय्ये न्ति** रूप पाये जाते हैं (§ ४८८)[3]। अ०माग० **पडुच्च** जो *पडिउच्च के स्थान पर आया है (§ १६३ और ५९०) और जो सस्कृत **प्रतीत्य** का ठीक प्रतिरूप है, **वच्चइ** से सबध रखता है। टीकाकार इसके द्वारा ही इसके रूप का स्पष्टीकरण करते है, इसका सबध अप० **विच्च** (=पथ हेच० ४, ४२१) से भी है।

१. वेबर द्वारा सपादित भगवती १, ३८७, त्सा० डे० डौ० मौ० गे० २८, ३९१। — २. हेच० ४, २५८ की पिशल की टीका जहाँ पर भारतीय नयी भाषाओं का उल्लेख भी है। — ३ **वच्चइ** संभवत **व्रात्य = व्रात्यति** का रूप है और **वज्जइ, व्रज्या = *व्रज्यति** का। इस स्थिति में **च्च** ध्वनि नियम के अनुसार ठीक बैठ जाता है। — ४ भगवती १, ३८१, में वेबर ने अशुद्ध लिखा है, ए० म्युलर, बाइ० पेज २१।

§ १९५—यह मानना कि अ०माग० और जै०महा० मे प्रत्येक **त** ज्यों का त्यों बना रह सकता है या लोप हो सकता है[1] अथवा दो स्वरों के बीच मे, जिनमे से एक **इ** हो तो **त** रख दिया जाता है[2], भूल है। जैसा वेबर[3] पहले ही अनुमान लगा चुका

स्थान पर दो स्वरों के बीच में आने पर बहुत अधिक अवसरों पर ग में बदल जाता है, विशेषकर प्रत्यय – क का (हेच १, १७७) ऐसा होता है : अ०माग० और जै०महा में असोग = अशोक (उदाहरणार्थ, विवाह० ४१ उवास० ; नायाध० ओव० कप्प [इनमें शब्दसूची में असोग आया है] एर्त्से०) ; जै०महा० में असोग (आव एर्त्से ८, २ और १२) ; अ माग० और जै महा० में आगास* = आकाश (उवास ; ओव आव एर्त्से० २१, १५) ; अ माग में एगमेग = एकैक (§ ३५३) अ०माग और जै महा में कुम्भगार=कुम्भकार (कप्प आव एर्त्से ४६, २० और २२) अ माग और जै०महा० में जमगसमग = यमकसमक (उवास § १४८ और १५१ कप्प० § १०२ ओव § ५२ ; आव एर्त्से १७, १५) अ०माग०, जै महा और जै शौर० में लोग = लोक है (उदाहरणार्थ, आयार० १, १, १, ५ और ७ १, १, ३, २ एर्त्से ; पव० ३८१, १६ ३८७, २५) जै शौर में लोगालोग आया है (पव० ३८२, २१) इसके साथ ही लोयालोयं (कत्तिगे ३९८, ३ २) रूप भी काम में आया है अ माग में सागपागाए = शाकपाकाय (सूय २४७ और २४९) सिलोगगामी = श्लोककामिन् (सूय ४९७) अ माग० और जै शौर में अप्पग = आत्मक (सूय १८८ पव ३८५ ६६ और ६८) ; जै० शौर में संमुग = स्वमुक (पव ३८६, ४) अ माग म फलग = फलक (सूय २७४ उवास ओव) जै महा० में तिलगचोद्दसग = तिलक चतुर्दशक (आव एर्त्से १७, १ १७, २१ १८ २४) है। इन प्राकृत भाषाओं की एक विशेष पहचान यह है कि इनमें ग का लोप होने के बजाय यह बहुधा बना रहता है। इनको छोड़ अन्य प्राकृत भाषाओं में भी ऐसे विरले उदाहरण मिलते हैं जिनमें क ग में बदल जाता है। इस प्रकार माग में सर्वत्र ही हगे, हग्गे = *अहकः (§ १४२; १९४ ४१७) है इसके अतिरिक्त शावग = श्रावक (मुद्रा १७५, १ और ३ ; १७७ २ १७८, २ ; १८३, ५ ; १८५, १ ; १९, १ १९१, १ [यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए])- प्रबोधचन्द्रोदय ४६, ११ और ४७, ७ में शावगा रूप मिलता है, ५८ १५ में शावगी है पाठ में आये हुए सावका, शावका सावकी और शावकी के लिए ये ही शब्द पढ़े जाने चाहिए क्योंकि ये शब्द अ० माग और जै महा० सावग से मिलते हैं (उदाहरणार्थ, उवास ; एर्त्से) है। इस संबंध में § १७ की भी तुलना कीजिए। महा० और अप पगगय, अ माग और जै महा मरगय और रूप मरगद = मरकत (हेच १ १८२ मार्क पन्ना १८ गउड हाल रावण कर्पूर ४६, ८ ६९, ८ ८ ? ; सूय ८३४ पण्णव २६ ; उत्तर १ ४२ ओव ; कप्प० आव एर्त्से ११ ४२ ; मृच्छ० ७१ १ [पाठ में मरगद् है] ; कर्पूर ५१, २ ६ १ ६१ ७ और ८ ६२ ११ ; मल्लिका २ १ ११ [पाठ में मरगय मिलता है] ; हेच ८ १४) है ; अच्युतशतक ४१ में मरगअ और रूप

* आगास शब्द आज भी कुमाउनी तथा अन्य बोलियों में प्रचलित है।—अनु

ऐसा नही होता है (क्रम० ५, ७४, मार्क० पन्ना ६६)। पल्लवदानपत्र ७, ५१ मे **कदत्ति** = **कृतेति** नकल करने मे छापे की भूल रह गयी है, **कडत्ति** का **कद त्ति** लिखा गया है। **पिधं, पुधं** और इनके साथ **पिहं, पुहं** = **पृथक्** के विषय मे § ७८ देखिए। आ० और दाक्षि० के विषय मे § २६ देखिए।

१ औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री (याकोबी द्वारा सकलित) § २०, १, नोट-सख्या २। — २ ए. म्युलर कृत बाइत्रैगे, पेज ५, स्टाइनटाल कृत स्पेसीमेन, पेज २ की भी तुलना कीजिए। — ३ भगवती १, ४००, इस सम्बन्ध मे इ० स्टु० १६, २३४ और उसके बाद की तुलना कीजिए। — ४. होएर्नले द्वारा सपादित उवासगदसाओ की भूमिका के पेज १७ और उसके बाद। यह स्पष्ट है कि **तवणिज्जमतीउ, कणगमतीउ, पुलकामतीउ, रिट्ठामतीउ** और **वइरामतीउ** (जीवा० ५६३) जैसे शब्दो मे त का कोई अर्थ नही है। यह भी समझ मे आने की बात नहीं है कि एक ही भाषा में एक दूसरे के पास-पास कभी **भवति** और कभी **भवइ** लिखा जाय, कही **भगवता** और कहीं **भगवया** का व्यवहार हो, एक स्थान पर **मातरं** रूप और दूसरी जगह **पियर** लिखा जाय आदि आदि (आयार० १, ६, ४, ३)। यह भी देखने में आता है कि सब हस्तलिपियो मे सर्वत्र एक-सा त नही मिलता। जब भविष्यकालवाचक रूप मे **पही** कहा जाता है तब इससे मालूम हो जाता है इसका रूप पहले **पहिइ** रहा होगा न कि **पहिति** जैसा आयारगसुत्त २, ४, १, २ में पाया जाता है (§ ५२९)। इसलिए वी० त्सा० कु० मौ० ३, ३४० मे लौयमान ने जो मत प्रकट किया है वह पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं माना जा सकता। उवासगदसाओ को छोड़ माग० और जै० महा० के अन्य ग्रन्थों का पाठ अनगिनत भूलो के कारण बिगड़ गया है। § ३४९ की भी तुलना कीजिए। — ५ शौर० के विषय में कू० बाइ ८, १२९ और उसके बाद पिशल का लेख देखिए। अब तक के तथा आगे के पाराओं मे बहुत-से उदाहरण दिये गये हैं। § २२ से २५ तक की भी तुलना कीजिए।

§ १९६—वर० २, ७, क्रम० २, २८ और मार्क० पन्ना १५ में बताया गया है कि महा० में भी अनेक शब्दों मे त का द हो जाता है। इन शब्दों को उक्त व्याकरणकारो ने ऋत्वादिगण मे एकत्र किया है। भाम० इन शब्दों मे **उदु** = **ऋतु**, **रअद** = **रजत**, **आअद** = **आगत**, **णिव्वुदि** = **निर्वृति**, **आउदि** = **आवृति**, **संवुदि** = **संवृति**, **सुइदि** = **सुव्वुति**, **आइदि** = **आकृति**, **हद** = **हत**, **संजद** = **संयत**, **सम्पदि** = **सम्प्रति**, **विउद** = **विवृत**, **संजाद** = **संयात**, **पड़िवद्दि** = **प्रतिपत्ति** और जोडता है। क्रम० ने इसमे ये शब्द शामिल किये हैं: **ऋतु, रजत, आगत, निर्वृत, सुरत, मरकत, सुकृत, संयत, विवृति, प्रवृति, आवृति, आकृति, विधृति, सहति, निवृत्ति, निष्पत्ति, सपत्ति, प्रतिपत्ति, श्रुत, ख्याति, तात** और **साम्प्रतम्**। मार्क० ने ऋत्वादिगण में बताये है: **ऋतु, रजत, तात, संयत, किरात** (**चिलाद** रूप में),

या, ऐसे सब उदाहरण ऐसे लेखकों (= हस्तलिपियाँ लिखनेवालों) के माथे पर मढ़े जाने चाहिए जिन्होंने बहुधा पाठ के भीतर संस्कृत रूप घुसा दिये हैं। इस विषय पर जैन लेखकों ने प्राकृत भाषाओं के विरुद्ध लिपि की महान् भूलें की हैं । जै शौर , शौर , माग और ढ० में बोली के रूप में तथा अप में त का द और थ का ध रूप बन जाता है (§ १९२)। इस प्रकार जै शौर संविद और चोद = सम्वित और चौत (पव ३७९, १) सपज्जदि = सपद्यते ; ममदि = भ्रमदि ; पेच्छदि = प्रेक्षते (पव ३८ , ६ ३८०, १२ ३८४, ४८) भूदो और जादि =भूता और याति (पव ३८१, १५) भजधागहिदत्था एदे = भयथागृहीतार्था एते (पव ३८९, १) वेयद्यदि = वैयत्यति (पव ३८१, ६९) तस्सघाद, कर्णदि कारयदि, इच्छदि और जायदे = त्रसघात, करोति, कारयति इच्छति और जायते (कत्तिगे ४ ,११२) हैं शौर में भविधि = भविथि (शकु १८,१ और ८ २०,५ २१,९ ७१,१२) शौर में कधेदि, कधेसु रूप = कथय, कथेतु = कथयतु, माग में कधेदि = कथयति (§ ४९) शौर॰ में भूदकदिर्म = भूतकृतिकाम् (शकु ११९, ९) जै शौर जध, शौर॰ जधा और माग यधा = यथा जै शौर तध, शौर और माग तधा = तथा (§ ११३) हैं शौर मे पारितोसिअ और माग पालितोशिय = पारितोषिक (शकु ११६, १ और ५) जै शौर हवदि, होदि शौर , माग और ढ भोदि = भवति (§ ४७५ और ४७६) है शौर रूप साअदं (मृच्छ १, ६ ५९ ११ ८ , ७ ८६, २५ ; ९४, २२ शकु ५६,४ ; ८ , १) माग में शाअदं (मृच्छ ११३, ७ ; १२ , १८) = स्वागतम् है ढ में जुदिअल = द्यूतकर (§ २५) ; जूद = द्यूत (मृच्छ १ , १८ ; ३४, २५ [यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ३५ ५ [यहां भी यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; ३९ १७) पडिवेविद = परिवेपित (मृच्छ १ , ७) मआदि, धालेदि भणादि और जिप्पादि = मजति, धारयति भणति और जपति (मृच्छ १ १ ; ३४ ९ ; १२ और २२) हैं ; शौर और ढ में सम्पदं = साम्प्रतम् (मृच्छ ६ २२ १७, १८ १८, २३ शकु २५, २ १ ४ ; ६७, १२ आदि-आदि ढ : मृच्छ १ ४ ३१,९ ३२, ८) ; माग : शम्पदं (मृच्छ १६ २ ३२ २ ; ८ और ५ ३८, ११ ९९, ११ आदि आदि) है। ढ में माधुर = माथुर के विषय में § २५ देखिए। वर १२, ३ और मार्क पन्ना ६९ और उसके बाद के पन्नों मे बताते हैं कि शौर में और उसके साथ माग में भी त का द या ध हो जाता है ; किन्तु हेच ४, २६ और २६७ में तथा उसके बाद के सब व्याकरणकार कहते हैं कि त का केवल द होता है। हेच और उसके बाद के व्याकरणकार यह अनुमति देते हैं कि थ का ध होता है जो ठीक है किन्तु ये ध के स्थान पर ह की अनुमति भी देते हैं जो अशुद्ध है। जै शौर शौर माग और ढ में मौलिक द और ध बने रह जाते हैं उनकी विच्युति नहीं होती और न उनका रूप ह में बदलता है। सर्वत्र मनुष्य

ऐसा नही होता है (क्रम० ५, ७१, मार्क० पन्ना ६६)। पल्लवदानपत्र ७, ५१ मे कदत्ति = कृतेति नकल करने मे छापे की भूल रह गयी है, कडत्ति का कद त्ति लिखा गया है। पिधं, पुधं और इनके साथ पिहं, पुहं = पृथक् के विषय मे § ७८ देखिए। आ० और दाक्षि० के विषय में § २६ देखिए।

१. औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन इन महाराष्ट्री (याकोबी द्वारा संकलित) § २०, १, नोट-संख्या २। — २. ए म्युलर कृत वाइत्रैगे, पेज ५, स्टाइनटाल कृत स्पेसीमेन, पेज २ की भी तुलना कीजिए। — ३ भगवती १, ४००, इस सम्बन्ध मे इ० स्टु० १६, २३४ और उसके बाद की तुलना कीजिए। — ४ होएर्नले द्वारा सपादित उवासगदसाओ की भूमिका के पेज १७ और उसके बाद। यह स्पष्ट है कि तवणिज्जमतीउ, कणगमतीउ, पुलकामतीउ, रिट्ठामतीउ और वइरामतीउ (जीवा० ५६३) जैसे शब्दों में त का कोई अर्थ नहीं है। यह भी समझ में आने की बात नहीं है कि एक ही भाषा में एक दूसरे के पास-पास कभी भवति और कभी भवइ लिखा जाय, कहीं भगवता और कहीं भगवया का व्यवहार हो, एक स्थान पर मातरं रूप और दूसरी जगह पियरं लिखा जाय आदि आदि (आयार० १, ६, ४, ३)। यह भी देखने में आता है कि सब हस्तलिपियों में सर्वत्र एक-सा त नही मिलता। जब भविष्यकालवाचक रूप में एहिं कहा जाता है तब इससे मालूम हो जाता है इसका रूप पहले एहिइ रहा होगा न कि एहिंति जैसा आयारगसुत्त २, ४, १, २ मे पाया जाता है (§ ५२९)। इसलिए वी० त्सा० कु० मौ० ३, ३४० में लौयमान ने जो मत प्रकट किया है वह पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं माना जा सकता। उवासगदसाओ को छोड़ माग० और जै० महा० के अन्य ग्रन्थों का पाठ अनगिनत भूलों के कारण बिगड़ गया है। § ३४९ की भी तुलना कीजिए। — ५ शौर० के विषय में कू० बाइ ८, १२९ और उसके बाद पिशल का लेख देखिए। अब तक के तथा आगे के पाराओं मे बहुत-से उदाहरण दिये गये हैं। § २२ से २५ तक की भी तुलना कीजिए।

§ १९६—वर० २, ७, क्रम० २, २८ और मार्क० पन्ना १५ में बताया गया है कि महा० में भी अनेक शब्दों में त का द हो जाता है। इन शब्दों को उक्त व्याकरणकारों ने ऋत्वादिगण मे एकत्र किया है। भाम० इन शब्दों में उदु = ऋतु, रअद = रजत, आअद = आगत, णिव्वुदि = निर्वृति, आउदि = आवृति, संवुदि = संवृति, सुइदि = सुव्युति, आइदि = आकृति, हद = हत, संजद = संयत, सम्पदि = सम्प्रति, विउद = विवृत, संजाद = संयात, पडिवदि = प्रतिपत्ति और जोडता है। क्रम० ने इसमें ये शब्द शामिल किये हैं : ऋतु, रजत, आगत, निर्वृत, सुरत, मरकत, सुकृत, संयत, विवृति, प्रवृति, आवृति, आकृति, विधृति, सहति, निवृत्ति, निष्पत्ति, संपत्ति, प्रतिपत्ति, श्रुत, ख्याति, तात और साम्प्रतम्। मार्क० ने ऋत्वादिगण मे बताये हैं ऋतु, रजत, तात, संयत, किरात (चिलाद रूप मे),

संहृति, सुसंगत ऋतु, सम्प्रति, साम्प्रतम्, कृति और वृति क्ष इनमें उपसर्ग लगाये जाते हैं तब भी, जैसे : आकृति, धिकृति, प्रकृति, उपकृति, आवृति, परिवृति, निर्वृति, संवृति, विवृति, आवृत परिवृत, संवृत विवृत, प्रभृति [हस्तलिपि में पवुदि रूप है] और व्रत। इसके बाद के सूत्र में मार्क ने बताया है कि सुरत, हृत, आगत इत्यादि में लेखक के इच्छानुसार त या द रह सकता है। इस मत के विरुद्ध हेच ने १, २०९ में कड़ी आलोचना की है। बात यह है कि यह ध्वनि-परिवर्तन शौर० और माग में होता है, महा० में में नहीं यदि महा में कहीं यह ध्वनि-परिवर्तन पाया जाता हो तो यह माना जायेगा कि यहां पर बोली में हेर-फेर हो गया है'। रावणवहो में सर्वत्र उदु काम में लाया गया है (१, १८ १, २९ ; ६, ११ ९, ८५) उउ कहीं भी नहीं। अ माग में उउ के स्थान पर उदु अशुद्ध पाठ है (आयार २,२,२,६ और ७ ठाणंग ५२७)। इसके अतिरिक्त रावणवहो में मड्ड्ढा और साथ-साथ पडिमा रूप मिलते हैं (१, ११) ; एक ही श्लोक में विषण्णदा और रामावो पाये जाते है जिसमें इन रूपों के साथ ही भरई और सेउम्मि रूप भी काम में लाये गये हैं (८, ८) ; इसके समान ही समास में मन्दोदरि रूप मिलता है। मन्दोदरिसुमकुमिमधापर परिभोस में द तो बना रह गया है, पर इस पद में से १ त उड़ा दिये गये हैं। नाटकों की गाथाओं में भी ठीक यही बात देखने में आती है, जैसा मालई के स्थान पर मालदी = मालती (अभिस ५९१, २) है ; मोदंसन्ति = भवर्तसयन्ति (बोएटलिंक द्वारा सम्पादित शकु ४, १) लदाओ = लता (बोएटलिंक द्वारा सम्पादित शकु ५१, ७ पिशल द्वारा सम्पादित संस्करण ८५, २ और बुर्कहार्ड द्वारा सम्पादित कास्मीरी पाठ ८४,१५ की भी तुलना कीजिए) ; उवणदृष्यो=उपनतव्या (मालवि २३, २) ; उवणीदे = उपनीते (हाल ८२७) होदु और इसके साथ ही हाउ रूप (हाल ८७८) कादुं = कर्तुम् (हाल ९२४) इणिदा= भणिता (हाल ९९१) आदि आदि हैं। हाल से हमने जो उदाहरण दिये हैं वे सब तेलुगु पाठों से संकलित हैं। इस बात बताता है कि ऐसे रूप महा में अशुद्ध हैं तो एस गोल्दश्मित्त' के मतानुसार उसके सूत्र में शुद्धिकरणात्मक नियम' न दरसाना चाहिए। असल बात यह है कि इन उदाहरणों से महा भाषा पर चोट पड़ती है। इसके विपरीत शौर० हस्तलिखित प्रतियों में से महा के असल्य रूप दिये जा सकते हैं। वर रुम और मार्क के सूत्र महा से किसी प्रकार से भी सम्बन्ध नहीं रखते। विशेष रूप से टटकनेवाले रूप पडिवदी (भाम) जिसके स्थान पर सम्भवतः पडिवत्ती पाठ ठीक रहेगा और जिसम और एक टटकनेवाले पाद ड के स्थान पर द का होना है तथा सिवड़ी (?), निप्पद्दी (?) सपद्दी और पडिपद्दी (क्रम) हैं य रूप अवश्य ही नाममात्र के पत्र हैं। अ माग भदु और भदुया के विषय में § १५५ और संख्या ५ देखिए।

१ पिशल द्वारा संपादित विक्रमोर्वशीय पन्ना ६१७ और उसके बाद। —२. रावणवहो की भूमिका का पेज १०। रावणवहो १३, ९० पन्ना ३ ९ की और संख्या ७ की भी तुलना कीजिए।

§ १९७—सस्कृत ह युक्त वर्णों से भिन्न रीति का अनुसरण करके प्राकृत में आरम्भिक और शब्द के मध्य का ह-युक्त वर्ण § १८८ के अनुसार ह् रह जाता है। इस ह् करण का कारण सर्वत्र एक नही है। एक असयुक्त र् अथवा स् या सयुक्त र् का निकट मे होना इसका कारण नही है, जैसा बहुधा समझा जाता है[1]। वर्ग के प्रथम दो वर्णों, अनुस्वार और ल मे जो ह् कार आता है उसका कारण मूल सस्कृत में इनसे पहले श्-, ष्- और स-कार का आ जाना है, ये ध्वनियॉ सस्कृत में लुप्त हो गयी हे। मूल ध्वनिवर्ग स्क, स्त, स्प, स्न और स्म शब्द के आरम्भ मे रहने पर, § ३०६ से ३१३ तक के अनुसार ख, थ, फ, ण्ह और म्ह बन जाते हे[2]।

१ लास्सनकृत इन्स्टि लि प्रा, पेज १९७ और उसके बाद और पेज २५१, याकोबी कृत औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन § २१, २ भूमिका का पेज २८। बे बाइ ३, २५३ मे पिशल का लेख। — २ वाकरनागलकृत आल्ट इंडिशे ग्रामाटीक § २३० और २३१।

§ १९८—सस्कृत क, शब्द के आरम्भ मे ख बन जाता है और समास के दूसरे पद के आरम्भ मे तथा शब्द के मध्य मे, ह बन जाता है, यह विशेषकर नीचे दिये गये शब्दों में . जै०महा० मे **खधरा = कधरा** (मार्क० पन्ना १७, एर्त्से० १,१७), किन्तु महा० और शौर० मे **कंधरा** रूप मिलता है (गउड०, मल्लिका० १९२,२२, २०१, ७, २२०, २०), **खप्पर = कर्पर** (हेच० १, १८१), अ०माग० **खसिय = कसित** (हेच० १, १८१), **खासिय = कासित** (हेच० १, १८१, नदी० ३८०), अ०माग० और जै०महा० मे **खिंखिणि = किङ्किणि** (पण्हा० ५१४, राय० १०९, १२९, १४२, जीवा० ३४९ [पाठ में **खकिंणि** रूप मिलता है], ४४३, नायाध० ९४८ [पाठ मे **खंकिणि** हे], उवास०, ओव०, एर्त्से०), **सखिंखिणी** (जीवा० ४६८, आव० एर्त्से० ३५, २५), **खिंखिणिय=किङ्किणीक** (उवास०), **सखिंखिणीय** (नायाध० § ९३, पेज ७६९, ८६१ [पाठ में **सखंखिणीय** है]), किन्तु महा० और शौर० में **किंकिणी** (पाइय० २७३; गउड०, विद्ध० ५६, १, कर्पूर० ५५, ७, ५६, ४, १०२, १, वेणी० ६३, १०, बाल० २०२, १४, शौर० में . कर्पूर० १७, ६, मालती० २०१, ६) है, शौर० में . **किंकिणीआ = किङ्किणीका** (विद्ध० ११७, ३), अ०माग० **खील = कील, इंदखील = इन्द्रकील** पाया जाता है (जीवा० ४९३, ओव० § १), साथ ही जै०महा० मे **इंदकील** रूप आया है (द्वार०), **खीलअ = कीलक** (हेच० १, १८१), महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **खुज्ज = कुब्ज** (वर० २, ३४, हेच० १, १८१, क्रम० २,४०, मार्क० पन्ना १७, पाइय० १५५, हाल, अतग० २२, अणुओग० २५०, जीवा० ८७, नायाध० § ११७, पेज ८३२ और ८३७, पण्णव० ४२८, पण्हा० ७८ और ५२३ [पाठ में **कुज्ज** है], विवाग० २२६, विवाह० ७९१ और ९६४, ओव०, निरया०, आव० एर्त्से० २१, ५ और १२, एर्त्से०, शकु० ३१, १६, मालवि० ७०, ७, प्रसन्न० ४४, १ और उसके बाद), अ०माग० में **अंबखुज्जय = आम्रकुब्जक** (विवाह० ११६), **खुज्जत्त =**

संवृति, सुसगय, भृत्त, सम्मति, साम्प्रतम्, कृति और धृति ।। इनमें उपसर्ग लगाये जाते हैं तब भी, जैसे : आकृति, विकृति प्रकृति, उपकृति, आवृति, परिवृति, निवृति, संवृति, विवृति, आवृत परिवृत सवृत विवृत, प्रभृति [हस्तलिपि में पवुवि रूप है] और मत। इसके बाद के सूत्र में मार्क० ने बताया है कि सुरत, हृत, आगत इत्यादि में लेखक के इच्छानुसार त या द रख सकता है। इस मत के विरुद्ध हेच ने १, २ ९ में कड़ी आलोचना की है। बात यह है कि यह ध्वनि-परिवर्तन शौर और माग में होता है, महा में में नहीं यदि महा में कहीं यह ध्वनि-परिवर्तन पाया जाता हो तो यह माना जायेगा कि यहां पर बोली में हेर-फेर हो गया है। रावणवहो में सर्वत्र उदु काम में लाया गया है (१, १८ १, २९ ; ९, ११ ९, ८५) उउ कहीं भी नहीं। अ माग में उउ के स्थान पर उदु अशुद्ध पाठ है (आयार० २,२ २,१ और ७ ठाणंग ५२७)। इसके अतिरिक्त रावणवहो में महच्छदा और साथ-साथ पडिमा रूप मिलते हैं (१, ११) ; एक ही श्लोक में विसण्णदा और रामादो पाये जाते हैं जिसमें इन रूपों के साथ ही भरई और सेउम्मि रूप भी काम में लाये गये हैं (८, ८०) इसके समान ही समास में मन्दोदरि रूप मिलता है। मन्दोदरिसुमकुसुमिसघाघर परिभोस में द तो बना रह गया है, पर इस पद में से १ त उड़ा दिये गये हैं। नाटकों की गाथाओं में भी ठीक यही बात देखने में आती है, जैसा मालई के स्थान पर मालदी = मालती (कल्पि ५९१, २) है मोदसस्ति = मथसयस्ति (बोएटलिंक द्वारा सम्पादित शकु ४, १) अदाओ = लताः (बोएटलिंक द्वारा सम्पादित शकु ५१, ७ पिशल द्वारा सम्पादित संस्करण ८५ १ और बुर्कहार्ड द्वारा सम्पादित काश्मीरी पाठ ८४,१५ की भी तुलना कीजिए) उवणइदव्यो=उपनतव्या (मालवि २१, १) ; उवणीदे = उपनीते (हाल ८२७) होदु और इसके साथ ही होइ रूप (हाल ८७८) ; कादुं = कर्तुम् (हाल ९२४) हणिदा= भणिता (हाल ९६१) आदि-आदि ह। हाल से हमने जो उदाहरण दिये हैं ये सब तेलुगु पाठों से संकलित हैं। हेच जब बताता है कि एस रूप महा में अशुद्ध हैं तो एस गोल्दस्मित्त' के मतानुसार उसके सूत्र में 'शुद्धिकरणात्मक निषेध' न रखना चाहिए। असल बात यह है कि इन उदाहरणों से महा भाषा पर चोट पड़ती है। इसके विपरीत घोर हस्तलिखित प्रतियों में से महा के असंख्य रूप दिये जा सकते हैं। वर मम और मार्क के सूत्र महा से किसी प्रकार से भी सम्बन्ध नहीं रखते। विशेष रूप से खटकनेवाले रूप पडियही (माग) जिसके स्थान पर सम्भवता पदियवही पाठ ठीक रहेगा और जिसमें और एक खटकनेवाली बात ड के स्थान पर द का होना है तथा निवही (!), निप्पही (!), सपही और पडिपही (कम) हैं य रूप अवश्य ही नागमही के पक्ष हैं। अ माग अदु और अदुवा के विषय में § १५५ नोट संख्या ५ देखिए।

१ पिशल द्वारा संपादित विक्रमोर्वशीय पत्र ६१७ और उसके बाद। —२. रावणवहो की भूमिका का पत्र १० ; रावणवहो १२, ९० पेज २ ९ की नोट संख्या ४ की भी तुलना कीजिए।

लिया गया है, इसके साथ साथ अ०माग० **फलग** चलता है (आयार० २, २, १, ६, २, ३, १, २, उवास०, ओव०) और **फलय** रूप भी मिलता है (आयार० २, ७, १, ४), महा०, अ०माग० और शौर० मे **फलिह = स्फटिक** (वर० २, ४ और २२ ; हेच० १८६, १९७, क्रम० २, २४, मार्क० पन्ना १४, गउड० ; हाल, रावण०, विवाह० २५३, राय० ५३, नायाध०, कप्प०, मृच्छ० ६८,१८ ; ६९, १, विक्रमो० ३९,२, ६६,१३, मालवि० ६३, १, नागा० ५४, १२, कर्पूर० ५४, १, विद्ध० २४, ९, २८, ५, ७४, ७), जै०महा० मे **फलिहमय** (एर्त्से०) तथा इसके साथ ही अ०माग० मे **फालिय** (नायाध० § १०२, ओव० [§ ३८], कप्प० § ४०), **फालियामय** (पण्णव० ११५, सम० ९७, ओव० § १६ पेज ३१, १९), शौर० मे **फडिय** रूप है (रत्ना० ३१८, ३०, प्रसन्न० १०, २० ; § २३८ मे भले ही **फालिअ** पढा जाना चाहिए), **फलिहगिरि = स्फटिकगिरि = कैलास** (पाइय० ९७), अ०माग० **भमुहा** = पाली **भमुक = *भ्रवुका** (§ १२४)[१], जै०महा० **सिरिहा = श्रीका** (एर्त्से० ८६, १९), महा०, अ०माग०, जै०महा० और दाक्षि० **सुणह** = पाली **सुनख** = सस्कृत **शुनक** (हाल, पण्हा० २०, नायाध० ३४५, पण्णव० १३६, आव० एर्त्से० ३४, २० और २४, एर्त्से०, मृच्छ० १०५, ४), इसके साथ महा० में **सुणअ** (हेच० १, ५२, हाल, सरस्वती० ८, १३), अ०माग० और जै०महा० में **सुणग** रूप मिलता है (जीवा० ३५६ [२५५ की तुलना कीजिए जहा पर पाठ मे **सुणमडे** रूप है], नायाध० ४५० ; पण्णव० ४९, उत्तर० ९८५, आव० एर्त्से० ३५, ६ और १०), **सुणय** भी आया है (आयार० १, ८, ३, ४ और ६, पण्हा० २०१, पण्णव० ३६७ और ३६९, आव० एर्त्से० ३५, ९, ३६, २८ और इसके बाद, द्वार० ४९७, १८), **कोलसुणय** (सूय० ५९१, पण्णव० ३६७), स्त्रीलिंग में **सुणिया** रूप है (पण्णव० ३६८), माग० **शुणहक** (मृच्छ० ११३, २०) और अप० **सुणहउ** (हेच० ४, ४४३) में **सुणह** में एक –**क** और जोड दिया गया है। सम्भवत' लेखकों ने अनुमान लगाया होगा कि **सुणह = सुनख = सु+नख**[१], द० **तुहं** और अप० **तुहुँ = त्वकं** (§ ४८१) जिसमें § १५२ के अनुसार **उ** हुआ और ३५२ के अनुसार **उँ** लगा। अप० **सहुँ = साकम्** (हेच० ४, ३५६ और ४१९), इसमें § ८१ के अनुसार **आ** का **अ** हो गया और § ३५२ के अनुसार **उँ** लगा। अ०माग० **फणिह** (?, कधी०, सूय० २५०) और **फणग** (?, उत्तर० ६७२) की तुलना कीजिए। महा० **चिहुर** (वर० २, ४ ; हेच० १, १८६, क्रम० २, २४, मार्क० पन्ना १४, पाइय० १०९, गउड०, हाल, प्रचड० ४३, १५, कर्पूर० ४८, १० अच्युत० ३५), माग० **चिहुल** (मृच्छ० १७१, २ [यहा यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), महा० में **चिउर** (साहित्य० ७३, ४, विद्ध० २५, १), यह रूप शौर० में शुद्ध ही है इस बात का कोई निश्चय नहीं (प्रबोध० ४५, ११), यह रूप = **चिकुर** नहीं हो सकता। इसका अर्थ 'रगने का मसाला' है और इसका रूप अ०माग० में **विउर** होगा (नायाध० § ६१), प्रत्युत यह = ***चिक्षुर** है जो **क्षुर्** धातु से (= काटना) निकला रूप है और द्वित्व होकर वना है, यह प्राकृत में

खल्लंच भवति चिक्खल्लम्। इसका विशेषण चिक्खिलि है (स्त्रीलिंग ; [?], प्रबंध० ५६, ६)। ये दोनो शब्द, चिहुर (हेच० १, १८६ पर पिशल की टीका) और चिक्खल्ल (त्साखारिआए कृत वाइत्रैगे त्सूर इंडिशन लेक्सिकोग्राफी, पेज ५६) संस्कृत में भी ले लिये गये हैं। — ८. पाइयलच्छी पेज १२ पर व्यूलर का मत। — ९ बे० वाइ० ६, ९१ मे पिशल का लेख। — १०. पाइयलच्छी पेज १२ पर व्यूलर। — ११. बे० वाइ० ३, २५२ और ६, ९१ में पिशल का लेख, ए० म्युलरकृत वाइत्रैगे, पेज ३४। — १२. ना० गे० वि० गो० १८७४, पेज ४७० मे गौल्दश्मित्त का लेख। — १३ बे० वाइ० ६, ९१ मे पिशल का लेख।

§ १९९—अ०माग० चिमिढ = चिपिट मे (§ २४८) ट पहले ड बना और फिर ढ हो गया, वढ = वट (हेच० २, १७४, त्रिवि० १, ३, १०५[२]); सअढ = शकट (वर० २, २१, हेच० १, १९६, क्रम० २, ११, मार्क० पन्ना १६), किन्तु अ०माग० मे इसका रूप सगड पाया जाता है (आयार० २, ३, २, १६, २, ११, १७, सूय० ३५०), शौर० मे सअडिआ = शकटिका आया है (मृच्छ० ९४, १५ और उसके बाद), माग० रूप शअळ है (मृच्छ० १२२, १० ; § २३८), सढा = सटा (वर० २, २१, हेच० १, १९६, क्रम० २, ११, मार्क० पन्ना १६), किन्तु महा० में इसका रूप सडा है (रावण०)। अप० के खल्लिहडउ रूप (§ ११०) की भी तुलना कीजिए। थिम्पइ = तृम्पति में त, थ के रूप में दिखाई दे रहा है (वर० ८, २२), थिप्पइ (हेमचन्द्र ४, १३८, क्रम० ४, ४६) और थे॑प्पइ (क्रम० ४,४६) = तृप्यते = *स्तृम्पति, स्तृप्यते। थिप्पइ (= बूद बूद टपकना : हेच० ४, १७५) इसका समानार्थी नही है, इसका सम्बन्ध थेव (= बूद § १३०) से है जो धातुपाठ १०, ३ और ४ के धातु स्तिप् और स्तेप् से निकला है। महा०, अ०माग० और जैन०महा० रूप भरह = भरत में (वर० २, ९, चड० ३,१२ पेज ४९, हेच० १, २१४, क्रम० २, ३०, मार्क० पन्ना १५, गउड०, रावण०, अन्त० ३, उत्तर० ५१५ और ५१७, ओव०, सगर० २, ६, द्वार०, एर्त्से०, कालका०)। -त प्रत्यय के स्थान में-थ रहा होगा, अ०माग० दाहिणड्ढभरहे = दक्षिणार्धभरते (आयार० २,१,५,२, नायाध० § १३ और ९३), महा०, अ०माग०, जै०महा० और अप० रूप भारह = भारत (गउड०, आयार० २,१५,२, ठाणग० ७० और ७३, विवाह० ४२७ और ४७९, उत्तर० ५१५, ५१७, ५३२, ५४१, नायाध०, उवास०, निरया०, कप्प०, एर्त्से०, हेच० ४, ३९९), महा० में भारही रूप भी मिलता है (गउड०)। भरथ रूप जिससे भरह रूप निकला है, जैसे *भारथ[२] से भारह बना, उणादि सूत्र ३, ११५ के अनुसार बना है और शौर० रूप भरध भी (मार्क०, बाल० १५५, ३, ३१०, ९ [इसमें ५५, १७ और १५०, २१ में भरद पाठ अशुद्ध है], अनर्घ० ३१६, १५ [पाठ में भरद है], किन्तु कलकत्ते से शके १७८२ मे प्रकाशित सस्करण के पेज २३७, ४ में शुद्ध रूप भरध ही है, प्रसन्न० ९१, १२ [पाठ में

०चिक्खुर अथवा चिखुर, चिखुर होना चाहिए चिखुर का चिकुर से वही सम्बन्ध है जो स्कुर् धातु का कुर् धातु से। अ०माग चिक्खल्ल में (= मैला ; चिकट दल्दल : हेच० १, १४२ देशी ३, ११ पण्हा ४७ [पाठ में चिक्खल है] अणुओग १६७), महा और अ०माग चिक्खिल्ल (हाल रावण ; पण्हव ८९ और उसके बाद [९१ में चिक्खल्ल रूप आया है] विवाह ६५८ और उसके बाद [टीका में चिक्खल्ल रूप दिया है] पण्हा १६४ और २११ [टीका में यहां भी चिक्खल्ल रूप है]) और अ माग० रूप चिक्खिल्ल (ओव० § ३२ पाठ में चिक्खल्ल दिया गया है) = चिक्षाल्य जो क्षल् धातु से बना है जिसका अर्थ है 'धोकर साफ किया जानेवाला', 'धोया जाने योग्य'। —महा० णिहाम (= समूह : देशी ४, ४९ पाइय १९; गउड ; हाल ; रावण) = निकाय[2] नहीं है वरन् = निघास है[3]। —णिहेलण (= घर ; निवासस्थान हेच २, १७४; क्रम २, १२ देशी ४, ५१ ५ १७ ; पाइय ४९ [पाठ म णिहेलण है] भिवि १, १, १ ५) = निधेलन[4] नहीं है प्रत्युत अ माग णिमेलण है (कप्प § ४१) और इसका सम्बन्ध धातुपाठ १२, ६६ के मिल धातु से है जिसका अर्थ भेदना है और अ०माग मेलइत्ता (ठाणंग ४२१) में मिलता है[5] पिल् और पिल्ल धातुओं से भी तुलना कीजिए। —पिहल = विकल नहीं है बल्कि पिहल है (§ ३१२)। महा सिहर (पाण्ण २५९ रावण) = शीकर नहीं है (हेच १, १८४)[6], वरन् महा सीभर से निकला है (रावण) जिसे व्याकरणकार (वर २, ५ ; हेच १, १८४ ; क्रम २, २६ मार्क पन्ना १४) इसी भांति शीकर से निकला बताते हैं, किन्तु जो वैदिक शीभम्, शीभ (= शीघ्र) से सम्बन्ध रखता है[7]।

१ ये बाइ १, १५४ में पिसल्ल का लेख। — २ ये बाइ १ १५७ और उसके बाद में पिसल का लेख। खोखदि और खस्खड, खेख धातु के रूप में संस्कृत में मिला लिया गया है। ये बाइ ६ ९२ से मतभेद रखते हुए मैं इस समय अधिकांश दूसरे शब्दों में भी ख को विच्युति मानता हूँ। — ३ टीकाकार अधिकांश में बताते हैं कि णिहस = निघष और णिहसण = निघषण किन्तु यह भाषाशास्त्र की दृष्टि से असंभव है क्योंकि इन शब्दों का सम्बन्ध णिहस और णिहसण से होगा। — ४ सूयगडंगसुत्त १३१ की टीका में अभयदेव ने बताया है : वहां लि प्राकृतशैलेन याम् आकाराम् इति। — ५ लायमान औपपातिक सूत्र में इ को पादपूरक बताता है जो अशुद्ध है। — ६ इ-कार मुख्यतया इस अशुद्ध व्युत्पत्ति पर आधारित है जैसा पाली भाषा में माना गया है (पाली मिसलानी पेज ५८ नोट १) पर यह भ्रमपूर्ण है। इस साथ हा रो प्रायण बनाने के सम्बन्ध में अ माग फलइग भूमियागा (§ १ ४) और मार्क पन्ना १० दखिए। — ७ पिसल की एक सुंदर व्युत्पत्ति उदाहरणार्थ और यह समझाने के लिए कि शब्दों की व्युत्पत्ति कैसे निकाली जानी चाहिए अनुभागदारसुत्त १० में दी गयी है : विच्छ फरालि

१. ग्रन्थप्रदर्शिनी के संस्करण में इसके स्थान पर छपा है (पेज ९३) **पोडो । दोडः । आअणो । डोला ।** ?, वे० बाइ० ६, ८८ और उसके बाद देखिए। — २ वारनकृत ओवर डे गौडसूदीन्स्टिगे एन वाइजगेरिगे वेग्रिप्पन डेर जैनाज (त्स्वौल्ले १८५७), पेज १०६ का नोट। — ३ ना० गे० वि० गो० १८७४, पेज ४७३ में गौल्दश्मित्त ने अशुद्ध मत दिया है। — ४ वे० बाइ० ६, ९२ और उसके बाद में पिशल का लेख, ना० गे० वि० गो० १८७४, पेज ४७३ में गौल्दश्मित्त ने अशुद्ध मत व्यक्त किया है। — ५ ना० गे० वि० गो० पेज ४७३ मे पी० गौल्दश्मित्त का मत। — ६ ना० गे० वि० गो० १८७४, पेज ४७३ में गौल्दश्मित्त का मत। — ७ *विहस्ती रूप स्वीकार करने से यह रूप अधिक सम्भव मालूम देता है (वे० बाइ० ६, ९३)।

§ २००—अ०माग० और शौर० **फणस = पणस** में सस्कृत के **प** के स्थान पर प्राकृत में **फ** हो गया है (वर० २, ३७, हेच० १, २३२, जीवा० ४६, पण्णव० ४८२, ५३१, विवाह० १५३०, ओव०, बाल० २०९, ७, ८ [पाठ में **पणस** है], विद्ध० ६३, २), इसका रूप महा० में **पणस** हो जाता है (कर्पूर० ११५,२), माग० में **पणश** पाया जाता है (मृच्छ० ११५, २०), महा०, अ०माग० और जै०महा० **फरुस = परुष** (वर० २, ३६, चड० ३, ११, हेच० १, २३२, क्रम० २, ४३, मार्क० पन्ना १८, गउड०, हाल [३४४ मे यही पाठ पढा जाना चाहिए, इसकी शब्दसूची भी देखिए और इस विषय में इडि० स्टुडि० १६, १०४ भी देखिए], रावण०, आयार० १, ६, ४, १ और २, १, ८, १, ८, १, ८, ३, ५ और १३, २, १, ६, ३, २, ४, १, १ और ६, सूय० १२२ [पाठ में **परुस** आया है], १७२, ४८५, ५१७, ५२७, ७२९, जीवा० २७३, नायाव० § १३५ पेज ७५७, पण्हा० ३९३, ३९४, ३९६, ५१६, विवाह० २५४, ४८१, उत्तर० ९२, उवास०, ओव०, एर्त्से०), जै०महा० **अइफरुस = अतिपरुष** (कालका०) महा० **फरुसत्तण = *परुषत्वन** (रावण०), अ०माग० **फरुसिय=परुषित** हैं (आयार० १, ३, १, २, १, ६, ४, १), महा०, अ०माग० और जै०महा० **फलिह=परिघ** (वर० २, ३० और ३६, हेच० १, २३१ और २५४, क्रम० २, ४३, मार्क० पन्ना १७ और १८, पाइय० २६७, रावण०; आयार०,२, १, ५, २, २, ३, २, १४, २, ४, २, ११, २, ११, ५, सूय० ७७१, विवाह० ४१६, दस० ६२८, २२, द्वार० ५००, ३०), महा० मे **फलिहा = परिखा** (वर० २, ३० और ३६, हेच० १, २३२ और २५४, क्रम० २, ४३, मार्क० पन्ना १७ और १८, पाइय० २४०, रावण०) है, अ०माग० में इसका रूप **फरिहा** हो जाता है (नायाध० ९९४, १००१ और उसके बाद, १००६, १००८, १०१२, १०१४, १०२३, ये सब **फलिहा** पढे जाने चाहिए), **फालिहद्द = पारिभद्र** (हेच० १, २३२ और २५४), अ०माग० **फरसु** = पाली **फरसु = परशु** (विवाग० २३९) है, किन्तु महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे **परसु** रूप पाया जाता है (गउड०, नायाध० § १३४, पेज ४३८ [पाठ मे **परिसु** आया है], १४३८;

मरद है]) ; माग० माळघ भी (मृच्छ० १२८, ११ [स्टेन्त्सलर के संस्करण में माळिध पाठ है, गौडबोले के संस्करण ३५१, १२ भी देखिए] १२९, ३ [पाठ में माळवे मिलता है]) ।[1] संस्कृत शब्द आवसथ का -थ प्रत्यय के स्थान पर मिलता-जुलता प्राकृत रूप आवसह है (उदाहरणार्थ, आयार १,७,२,१ और उसके बाद ओव); संस्कृत उपवसथ, निवसथ और प्रवसथ आदि-आदि के लिए महा०, अ०माग० और जै० महा० में वसहि = ०वसधि = वसति रूप हैं (वर० २, ९ चंड० ३, १२ पेज ४९ हेच० १, २१४ क्रम० २, ३० ; मार्क० पन्ना १५ पाइय० ४९ गउड० हाल रावण० पण्हा० ३३१, १७८ २१५ ; विवाह० १५२ १२२३ १२९१ नायाध० ५८१ उत्तर० ४४९ ९१८ [इसमें वाय में आवसह रूप भी आया है] दस० नि० ६४७, ४९ ओव० आव० एर्त्से० २७, २५ कालका०)- अ० माग० कुवसहि=कुवसति (पण्हा० १४) है। आज्ञावाचक का द्वितीय बहुवचन में जुड़नेवाला -ह और उसका शौर० तथा माग० रूप -ध भी -थ से निकला है, यहाँ द्वितीय पुरुष बहुवचन आज्ञावाचक के रूप में काम में लाया जाता है (§ ४७१)। —काहल (= कायर डरपोक : चंड० ३,१२ पेज ४९ हेच० १,२१४ = कायर आदमी : देशी० २,५८) जिसे सब व्याकरणकार और पी० गौल्दश्मित्त[2] = कातर बताते हैं काहल (= सुकुमार कोमल : देशी० २,५८) और काहली (= तरुणी : देशी० २, २६) से अलग नहीं किया जा सकता। काहल और काहली संस्कृत में भी काम में लाये जाते हैं किन्तु उसमें ये प्राकृत से घुसे हैं और ऐसा अनुमान होता है कि इनका सम्बन्ध महा० थरथरेइ और शौर० थरथरेदि से है (= थरथराना काँपना, हृदय का धड़कना ; § ५५८) = का + थर के, इसमें का वैसा ही है जैसा संस्कृत कापुरुष कामर्द आदि में कातर का महा० और अप० रूप कायर होता है (गउड० ; रावण० हेच० ४, ३७६ १), अ० माग० रूप कायर (नायाध०) शौर० में कादर (शकु० १७, १२ ; ८४, १९ ; विक्रमो० २७, ६ ; मालवि० ४ , ११) माग० में कादल (मृच्छ० १२ ,) होता है। कातर और ०कायर मूल रूप ०कास्तर से सम्बन्ध रखते हैं।—हेच० १ २१४ के अनुसार मातुलिङ्ग का प्राकृत रूप माहुलिङ्ग होता है और मातुलुङ्ग का माउलुङ्ग जैसा कि अ० माग० और शौर० में पाया जाता है (आयार० २ १, ८, १ पण्णव० ४८२ ; मृच्छ० ९८ ९ [इसमें मातु- का मादु- रूप मिलता है])। माहुलिङ्ग (चंड० ३,१२ पेज ४९ भ भी) मधुकर्कटिका, मधुकुक्कुटिका, मधुजम्बीर, मधुजम्भ मधुबीजपूर, मधुरजम्बीर, मधुरबीजपूर, मधुरवल्ली, मधुवल्ली, मधूल और मधूलक से सम्बन्ध रखता है जो नाना प्रकार के नींबुओं के नाम हैं। इसलिए माहुलिङ्ग=०माधुलिङ्ग हुआ ; पण्णवणा ५३१ में अ० माग० में माउलिङ्ग छपा गया है। अ० माग० विहत्थि (सूय० २८ विवाह० ४२५ ; नंदी १६८ ; अणुओग० १८४ और ४११) = वितस्ति नहीं है (चंड० ३ १२, पेज ४९ ; हेच० १, २१४)[1] प्रत्युत हस धातु से स् की विच्युति हो गयी है इस प्रकार विहत्थि, ०विघस्थि = ०विस्तस्ति के स्थान पर है।

गोस्तूप (ठाणग० २६२ और २६८, जीवा० ७१५ और उसके वाद, ७१८ और उसके वाद ; सम० १०६, १०८, ११३, ११६ और उसके वाद, १२७ ; १४३ और उसके वाद, २३३ में [छन्द की मात्रायें मिलाने के लिए **गोथुभ** रूप आया है] विवाह० १९८) है। इसका वाद का रूप **थूह** (=प्रासादशिखर, चीटियों का ढेर : देशी० ५, ३२) है। लेण बोली के **थुब** रूप की भी तुलना कीजिए (आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इंडिया ५, ७८, १०)। अ०माग० मे **विभासा = विपाशा** (ठाणग० ५४४) है।

१. याकोबी द्वारा सपादित कालकाचार्यकथानकम् में **फासुय** शब्द देखिए इसमें इसके मूल सस्कृत रूप के ये खंड किये गये हैं **प्र + असु + क**। जहां तक मेरा ज्ञान है **प्रासुक** शब्द केवल जैनियों के व्यवहार में आता है। — २. होएर्नले द्वारा सपादित उवासगदसाओ में इसका स्पष्टीकरण अशुद्ध है ; चाइल्डर्सने अपने पाली कोश मे **फासु = स्पार्ह** को ठीक माना है। — ३. त्सा० डे० डो० मॉ० गे० २८, ३७८ मे वेबर का लेख।

§ २०१—वर्गों का तीसरा वर्ण शायद ही कभी चतुर्थ वर्ण मे बदलता हो पर यह भी देखा जाता है, किन्तु बहुत कम **घाअण = गायन** (गायक : हेच० २, १७४ ; देशी० २, १०८, त्रिवि० १, ३, १०५ = बे० बाइ० ३, २५५) में **ग** का **घ** हो गया है, अ०माग० **सिंघाडग = शृंगाटक** (उवास०, नायाध०, ओव०, कप्प०) है। **घिसइ = ग्रसति** नहीं है प्रत्युत ***घर्सति** हे (§ १०३ और ४८२)।— **झडिल** और इसका दूसरा रूप **जडिल = जटिल** में (हेच० १, १९४) **ज**, **झ** के रूप मे दिखाई देता है . **झत्थ** (गत या नष्ट : देशी० ३, ६१) **जस्** धातु का रूप है, इसकी तुलना **झप्** धातु से भी कीजिए। अ०माग० **झूसित्ता** (**त्ता = क्त्वा**, विवाग० २७० और उसके बाद, अत० ६९ [पाठ में **झुसित्ता** है], नायाध० ३८३, ३८८, उवास०, ओव०), **झूसिय** (ठाणग० ५६ [टीका में], १८७ और २७४, नायाध० ३८२, अत० ६९ [पाठ में **झुसिय** है], जीवा० २८९ [पाठ में **झुसिय** है] ; विवाह० १६९, १७३, ३२१, उवास०, ओव०), ये रूप अधिकाश में **क्षीण** या **क्षपित** द्वारा स्पष्ट किये जाते हैं[१], **झूसणा** (नायाध० ३७६, विवाह० १६९ और १७३ ठाणग० ५६, १८७ और २७४, उवास०, ओव०), **परिझूसिय** (ठाणग० २०२) का **झूप्** (**झस्**—अनु०) धातु से सम्बन्ध है जो धातुपाठ १७, २९ में **जुष्** और **युप** धातुओं के साथ उल्लिखित है। **धिप्पइ** और इसके साथ का रूप **दिप्पइ = दीप्यते** (हेच० १, २२३) में **द** का रूप **ध** हो गया है, **कउह**[२] (हेच० १, २२५) जो किसी प्राकृत बोली में **ककुध** रूप में देखा जाता है (त्रिवि० १, ३, १०५) = पाली **ककुध** जो **ककुभ** का एक समानातर रूप है। —अ०माग० **भिम्भिसार = बिम्बिसार** में (ठाणग० ५२३, ओव० [के पाठ **भम्भसार** के स्थान पर यही पाठ पढा जाना चाहिए]) **व** के स्थान पर **भ** हो गया है महा० **भिसिणी=बिसिनी** (वर० २, ३८ ; हेच० १, २३८, क्रम० २, ४४, पाइय० १४९, हाल, साहित्य० ७९, १) है। शौर० में इसका रूप **बिसिणी** (वृषभ० २९, ३, मालवि० ७५, ८)

पण्हा १९८ [पाठ में परिसु है] निरया एत्सें० काळका महावीर २९, १९), माग में पलशु चलता है (मृच्छ १५७, ११), शौर० में परसुराम रूप देखने में आता है (महावीर ५५, १२ ; ९४, २ बाल० १६, ५ और ६) अ०माग रूप फुसिय=पाली फुसित=पृशत (§ १ १) है अ माग० और जै०महा में फासुय रूप है (आयार २, १, १, ४ और ६ २, १, २, १ और उसके बाद पण्हा० ४९७ उवास० स्सा डे डो मौ९ गे १४, २११ ; काळका)=पाली फासुक और व्याकि के अनुसार=प्रासुक, जो अवश्य ही प्राकृत शब्द का अशुद्ध संस्कृतीकरण है' ; अफासुय (आयार० २, १, १, १ १ ; ६ ११ और उसके बाद) पडुफासुय (आयार० २, २, १, २४ और उसके बाद) और फासुय का सम्बन्ध स्पृश धातु से होना चाहिए = *स्पर्शुक' (§ ६२); हेच १, १९८ में फाडेह को = पाटयति बताता है, पर यह वास्तव में=स्फाटयति है।—मार्क पन्ना १८ म एक शब्द के विषय में और बताया गया है कि फलिहि = परिधि है और साथ ही लिखा गया है कि फलम = पलम है जो वास्तव में फणस = पणस होना चाहिए। पन्ना १८ का ऊपर दिया गया पहला शब्द भी विकृत रूप में होना चाहिए। रम्पइ और रम्फइ में (= लकड़ी तराशना छीलना : हेच० ४,१९४) में प या फ मौलिक है या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता इस सम्बन्ध में रम्प = छोटी कुल्हाड़ी (हाल ११९ और १२ और साथ ही साथ, रम्प रूप भी देखिए¹) ।— अ०माग में और कभी-कभी जै महा में शब्द के मध्य में स्थित प, फ बनकर भ में बदल गया है। इस प्रकार अ माग रूप कच्छभ = कच्छप (जीवा ७१ ; २९ ४७८ नायाध ५१ पण्हा १८, ११९ और १७ ; पण्णव ४७ ; विवाग ४९ और १८६ विवाह २४८ ४८१ १ ११ और १२८५ उत्तर १ ७२) कच्छभी = कच्छपी (= वीणा : पण्हा ५१२ नायाध १२७५ और १३७८ राय ८८) अ माग में कमल्ल = कपाल (§ ९१ उवास § ९४ अंत २७ ; अणुत्तर १ [पाठ में कपल्ल है और टीका में कमल्ल]), इसके साथ ही कपल्ल रूप भी पाया जाता है (सूय २७५ विवाह २७ और ९८१) कपल्ली भी देखने में आता है (विवाग १४१), कपाल का प्रचलन भी है (आयार २, १, ३ ४) ; इनके साथ कफल्ल रूप भी है (= गुफा : देशी २, ७) ; अ माग म थूभ = स्तूप (आयार २, १, २, १ २, १ १ १ ; सूय २६ ; पण्हा ११ ; २३४ ; २८६ अणुओग ३८७ ; जीवा ५४६ और उसके बाद पण्णव ११९ ; राय १५१ और उसके बाद और १९० तथा उसके बाद ; विवाह ५६ ; ६५ और १२८९ ठाणग २६६) जै महा में भी यह रूप वर्तमान है (सगर २ ७ ; तीर्थ ५ ११ १३ और १६ ; ६ ११ ; १५ ; ७, ८ ; स्सा डे डो मौ ग १८ २ १, ८७ और ८९) अ माग में थूभिया = स्तूपिका (आयार २ १ १७ ; जीवा ४ २ ; ४९५ और ५ ६ ; नायाध ; भग) और थून अथवा दो प्रत्ययों के साथ थूभियागा = *स्तूपिकाका (सम २११ पण्णव ११६ ; राय ११६ नायाध § १२२) ; अ माग० में गाथूभ =

§ २०२—**ण्हाविय=नापित** (हेच० १, २३० , पाइय० ६१) वास्तव मे =***स्नापित**' में अनुस्वार और अर्धस्वरों में ह–कार आ गया है , अ०माग० **ण्हाविया = स्नापिका** (विवाह० ९६४), **स्ना** धातु से व्युत्पन्न अन्य शब्दों में भी यह नियम लागू होता है (§ ३१३)। शौर० और माग० मे **णाविद = नापित** (हास्या० २८, १९ , मृच्छ० ११३, १०)[२] है।—महा० **पम्हुसइ = *प्रस्मृपति**[१]= **प्रमृष्यति** (हेच० ४, ७५ और १८४ , गउड०), महा० **पम्हसिज्जासु=प्रमृष्येः** (हाल ३४८), महा० **पम्हुसिअ** (गउड०), शौर० मे **पम्हसिद** (महावीर० ६५, १ , बम्बइया सस्करण १८९२, पेज १६१, ८ [पाठ में **-प्पमुसिद** है]), महा० और जै०महा० में यह रूप **पम्हुट्ठ** आया है (हेच० ३, १०५ = रावण० ६, १२ , हेच० ४, २५८ , आव० एर्त्से० ७, ३१) , अप० मे **भुम्हण्डी=भूमि** (हेच० ४, ३९५, ६), इसमे **अड** और स्त्रीलिंग में—**अडी** प्रत्यय लगाया गया है (हेच० ४, ४२९ और ४३१)। —अ०माग० **लहसुन = लशुन** (आयार० २, ७, २, ६ , विवाह० ६०९ , पण्णव० ४० , जीयक० ५४), इसके साथ ही अ०माग० और जै०महा० में **लसुण** रूप चलता है (आयार० २, १, ८, १३ , सूय० ३३७ [पाठ में **लसण** है] , आव० एर्त्से० ४०, १८), **लिहक्कइ** और इसके साथ **लिक्कइ** (=लुकना , छिपना : हेच० ४, ५५) है, महा० **लिहक्क = *श्लिक्क** (हेच० ४, २५८ , गउड०) से सम्बन्धित है, इस सम्बन्ध में **श्लिकु** 'अवलम्बित' और § ५६६ देखिए।

१ कू० वाइ० १, ५०५ में वेबर का लेख। — २. अपने ग्रन्थ प्राकृतिका के पेज ७, नोट संख्या ३ में एस० गौल्दश्मित्त ने बताया है कि संस्कृत शब्द **नापित** प्राकृत रूप **णाविअ** से निकला है, यह कथन अशुद्ध है। आरंभिक अक्षर **स्** का लोप ध्वनिबल पर निर्भर करता है = **नापित**, ठीक जैसा वैदिक **पड्भिः स्पश्** धातु से निकला है (पिशलकृत वैदिशे स्टुडिएन १, २३९)। — ३. हाल १३५८ पर वेबर की टीका, हाल[२] ३४८ , त्सा० डे० डौ० मौ० गे० २८, ४२५ में वेबर का लेख।

§ २०३—सस्कृत शब्दों के आरम्भ में आनेवाले **श–**, **ष–** और **स–**कार में प्राकृत भाषाओं में कभी-कभी **ह**–कार जोड दिया जाता है। ये **श्ह**, **ष्ह** और **स्ह** तब समान रूप से **छ** बन जाते हैं। इस **छ** की व्युत्पत्ति ध्वनि-समूह **क्ष** या **स्क** से निकालने के लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं प्राप्त है। **छमी=शमी** (हेच० १, २६५), अ०माग० में **छाव**=पाली **छाप=शाव** (हेच० १, २६५ , क्रम० २, ४६ , सूय० ५११)[१], **छावअ=शावक** (वर० २, ४१ , मार्क० पन्ना १८), किन्तु माग० में **शावक** रूप मिलता है (मृच्छ० १०, ६) , अ०माग० **छिवाडी = शिवाटी** (आयार० २, १, १, ३ और ४) , महा० और अ०माग० **छे॑प्प**, **छिप्प=शेप** (देशी० ३, ३६ , पाइय० १२८ , गउड० , हाल , विवाग० ६०)[२], इसके साथ-साथ **छिप्पालुअ** (=पूछ . देशी० ३, २९) रूप भी मिलता है , किंतु शौर० में **शुणस्सेह=शुनःशेफ** (अनर्घ० ५८, ५ ; ५९, १२) है , **छिप्पीर** (=पुआल का तिनका।—अनु०), देशी० ३, २८ , पाइय० १४२) इसके साथ

है। वर० २, १८ पर भाम० की टीका और हेच० १, २१८ के अनुसार बिस के ब में ह कार नहीं लगाया जाता और इस कारण महा में इसका रूप बिस ही है (पाइय २५६ ; गउड हाल कर्पूर ९५, १२)। मार्क पन्ना १८ में बताया गया है कि भिस = बिस, किन्तु उदाहरण रूप में हाल ८ दिया गया है जहां भिसिणिसंड आया है। भिस पाली की भांति अ०माग० में भी आया है (आयार २, १, ८, १० ; सूय ८११ ; जीवा० २९० और ३५३ पण्णव ३५, ४ राय ५५)। भाम १, २८ और हेच १,१२८ में बताते हैं कि बृसी के स्थान पर प्राकृत रूप भिसी होता है, पाइय २११ में भिसी रूप है। बृसीका में इ-कार आ गया है प्राकृत में भिसिआ रूप है (देशी० ६, १०५), अ माग में भिसिगा रूप है (सूय ७२९), भिसिया भी पाया जाता है (आयार० २, २, ३, २ नायाध १२७९ और १२८१ ओव)। भुकइ (= भौंकना : हेच ४, १८६), भुक्किय (= भौंकना पाइय १८२), भुक्कण (= कुत्ता देशी ६, ११०) और इसके साथ ही भुक्कइ = गर्जति (हेच ४, ९८), उब्भुक्कइ (= कहता है ; बोलता है : हेच ४, २) बुक्कण (= कौआ : देशी ६ ९४ पाइय ४४) रूप भी हैं। भरसइ, भप्पइ, भप्फइ आदि के संबंध में § २१२ देखिए।—भिब्भल, भिंभल (हेच २, ५८), महा और शौर मेंभल (रावण ६ ३७ चैतन्य १८, ९ [पाठ में भेम्हणो है]), शौर में मेंभलदा रूप (चैतन्य ८४ १) है, और मेंभलिद भी है (चैतन्य ५५, ११ [पाठ में भेम्हलिद आया है]), ये सब रूप हेमचंद्र के कथनानुसार विम्भल = ये म्भल = विह्वल (§ ३३२) से सम्बन्धित नहीं किये जा सकते क्योंकि व के साथ ह जुड़ने से (वि) ह्वल का (वि) ब्भल होना चाहिए, जैसा विब्भल रूप प्रमाणित करता है। मेंभल आदि रूप भंभल (= जड़ मूर्ख अप्रिय देशी ६ ११) से सम्बन्ध रखते हैं जो धातुपाठ १५, ७१ के भर्व हिंसायाम् धातु से बने हैं। इसलिए इसमें अनुस्वार लिखा जाना चाहिए जैसा हेच २, ५८ की टीका में दिया गया है और इसका स्पष्टीकरण § ७४ के अनुसार होता है।

१ इसके अर्थ के सम्बन्ध में लौयमान द्वारा सम्पादित औपपातिक सूत्र में भुसिय शब्द देखिए ; होएर्नले के द्वारा सम्पादित उवासगदसाओ के अनुवाद का नोट संख्या ११ ।— २ होएर्नले का उक्त उवासगदसाओ ; लौयमान द्वारा संपादित औपपातिक सूत्र में इसका उल्लेख नहीं है इस ग्रंथ में भुस शब्द देखिए। अ माग भुसिर के साथ इसका सम्बन्ध बताना अशुद्ध है (बी त्सा कु भी ३ ३०३ में लौयमान का मत)। § २११ से भी तुलना कीजिए। — ३ ककुद स्वभावतः ककुभ से भी व्युत्पन्न हो सकता है। बे बाइ ३, २५० में पिशल के लेख की तुलना कीजिए ; त्सा डे डी मी गे ४ ६६ में कोन भारके का लेख ; याकरनागलकृत आल्ट इण्डिशे ग्रामाटीक § १५६ बी। वा गे वि गो १८७७ पेज ३०३ में पी गौल्द श्मित्त का मत अशुद्ध है।

लेख। **सुषिर** अथवा **शुषिर** में कौन शुद्ध रूप है, यह नहीं कहा जा सकता। श्रीहर्षरचित द्विरूपकोश १५० में **सुषि** और **शुषि** रूप मिलते हैं। त्साखरिआए द्वारा संपादित शाश्वतकोप १८५ में उत्तम-उत्तम हस्तलिपियों के विपरीत **सुषिर** रूप दिया गया है किंतु हेच० के अनेकार्थसंग्रह ३, ६०७ में **शुषिर** रूप है और यही रूप उणादिसूत्र ४१६ में **शुष्** से निकाला गया है। इन शब्दों का अ०माग० **झूस्** (§ २०९) से किसी प्रकार नहीं हो सकता, **शुष्** से इसे व्युत्पन्न करना अनिश्चित है। होएर्नले द्वारा संपादित **उवासगदसाओ** के अनुवाद के नोट, सख्या १७२ में अशुद्ध मत है। जीवानंदन २७३ में **सुसिर** पाठ है। — ५. इस शब्द का सम्बन्ध **क्षारक** से भी जोड़ा जा सकता है।

§ २०४—कुछ उदाहरणों में प्राकृत भाषाओं में शब्द के उस वर्ण में ह कार दिखाई देता है जिसमें सस्कृत में ह-कारहीन वर्ण हैं। किसी किसी शब्द में इसका कारण यह बताया जा सकता है कि सस्कृत शब्द में आरम्भिक और अतिम वर्ण ह-कार-युक्त थे और प्राकृत बोलियो की दृष्टि से यह समाधान दिया जा सकता है कि ध्वनि का ह-कार नाना प्रकार से उड गया। किन्तु अधिकाश वर्णों में यह मानना पडता है कि, और एक यही स्पष्टीकरण शेष रह जाता है कि, 'वर्णों का ह-कार एक से दूसरे वर्ण में चला गया।' महा० शब्द **इहरा** निकला ***इथरता**, ***इहरआ** से = **इतरथा** (§ ३५४), **उवह**, महा० में **अवह**, निकला ***उवथ** से जो स्वय ***उभत** से आया, और इस तथ्य का पता चलता है महा० शब्द **अवहोवासं** और **अवहो-आसं** से = अ०माग० **उभओपासं** = **उभतःपार्श्वम्** (§ १२३) है, **केढव** निकला है **कैटभ** के बदले कभी और कहीं बोले जानेवाले रूप ***कैढव** से (वर० २, २१ और २९, हेच० १, १९६ और २४०, क्रम० २, ११ और २७, मार्क० पन्ना १६ और १७), **गढइ** निकला ***गठति** से = **घटते** (हेच० ४, ११२), इसका अधिक प्रचलित रूप **घडइ** काम में आता ही है, महा०, अ०माग०, जै०महा० और अप० में **घे॑प्पइ** रूप निकला है ***घृप्यति** से = **गृह्यते** (§ ५४८), इसका सामान्य रूप महा० **घे॑त्तु** = ***घृप्तुं** = **ग्रहीतुम्** (§ ५७४) है, इसका 'करके' अथवा 'त्त्वा सूचक' रूप **घेत्तुआणं** और **घेत्तुआण** है (§ ५८४), महा०, अ०माग० और जै०महा० रूप **घेत्तूण** = ***घृत्वानम्** = **गृहीत्वा** (§ ५८६) है, कर्तव्य सूचक रूप **घेत्तव्व** = ***घृप्तव्य** = **ग्रहीतव्य** (§ ५७०) है, जै०महा० भविष्यकाल-वाचक **घे॑च्छायो** (§ ५३४) ***घृप्** धातु से सम्बन्ध रखता है, जो **गृभ्** धातु का समानार्थवाची धातु है (§ १०७)[1], **ढंकुण**, **ढेंकुण** तथा अ०माग० रूप **ढिंकुण** (= खटमल) **डंखुण** से निकले हैं जिसका सम्बन्ध मराठी शब्द **डंखणे** (डसना, डक मारना), **डंख** (=डक) से है = **दंश्** (§ १०७ और २६७) है, महा० **ढज्जइ** (जीवा० ९७, ९), शौर० रूप **ढज्जदि** (मालवि० २८, ८, मल्लिका० ९० २३ [पाठ मे **ढज्जइ** है]), माग० **ढय्यदि*** (मृच्छ० ९, २५) रूप ***डज्झदि**

* हिन्दी शब्द **ढहना** = मकान का गिरना, नष्ट होना, मिट जाना, इस प्राकृत रूप से निकला है। जलने पर स्वभावत मकान गिर कर नष्ट हो जाता है। —अनु०

त्सा० डे० डौ० मौ० गे० २९, ४९३ में एस० गौल्दश्मित्त के लेख की भी तुलना कीजिए। हाल २८६ पर वेबर की टीका देखिए। — २. हेच० १, १३८ पर पिशल की टीका। त्रिविक्रम, सिंहराज और प्राकृतमंजरी में भ के स्थान पर ह से आरम्भ होनेवाले जो रूप दिये गये हैं वे ग्रंथ की नकल करनेवाले की भूलें हैं और ये प्रतियां द्राविडी हस्तलिपियों की नकलें हैं। त्रिविक्रम के संस्करण में भ है।

§ २०५—नीचे दिये शब्दों में ह-कार उड गया है : अ०मा०, जै०महा० और शौर० में **संकला** = श्रृङ्खला (पण्हा० १८३, जीवा० ५०३, ऋषभ० ३२, लटक० १८, ४), अ०माग० और जै०महा० में **संकलिया**=श्रृंखलिका (सूय० २९६; आव० एर्त्से० १४, १७) है, जै०महा० में **संकलिय** = श्रृङ्खलित (आव० एर्त्से० १३, २८) और अ०माग० **संकल**=श्रृङ्खल (हेच० १, १८९, पण्हा० ५३६) हैं। भारत की नवीन आर्यभाषाओं में ये रूप आ गये हैं[1], किन्तु महा० और शौर० में **संखला** रूप मिलता है (गउड०, मृच्छ० ४१, १०), शौर० में **उस्संखल** (मृच्छ० १५१, १७) रूप देखा जाता है, महा० और शौर० मे **विसंखल** (रावण०, मालती० २९१, २) है, माग० मे **शंखला** रूप आया है (मृच्छ० १६७, ६), महा० और शौर० मे **सिंखला** (रावण०, अच्युत० ४१, माल्ती० १२९, १, प्रिय० ४, ५, मल्लिका० १८१, ७, अनर्घ० २६५, २, ३०८, ९, वृषभ० ३८, १०, विद्ध० ८४, ९ [पाठ में **संखल** है], ८५, ३ और ८)[2] है। अ०माग० **ढंक** = पाली **धंक** = सस्कृत **ध्वांक्ष**, इसका रूप कभी किसी स्थान विशेष में ***ढंख** रहा होगा (= कौवा, हस, गिद्ध : देशी० ४, १३, पाइय० ४४, सूय० ४३७ और ५०८, उत्तर० ५९३), **ढिंक** रूप भी पाया जाता है (पण्हा० २४), यह रूप तथा **ढेंकी** (= हसिनी, वलाका : देशी० ४, १५), ***ढिंकी** के स्थान पर आये हैं, **ध्वांक्ष** के ध्वनिबल की सूचना देते हैं। भ्रमरों का प्रिय एक पौधा-विशेष महा० में **ढंख** (= ढाक।—अनु०) रूप में आया है और बोएटलिंक ने इसका सस्कृत रूप **ध्वांक्ष** दिया है (हाल ७५५)[1]। अ०माग० **वीहण** = **भीषण** (पण्हा० ७८), **विहणग** = **भीषणक** (पण्हा० ४८, ४९, १६७ और १७७) हैं किन्तु महा० और शौर० में स्वय **भीषण** रूप भी चलता है (गउड०, रावण०, विक्रमो० २८, ८, महावीर० १२, १, बाल० ५४, ७, अनर्घ० ५८, ५, मल्लिका० ८२, १८, १४१, ९), शौर० में **अदिभीषण** रूप भी आया है (मल्लिका० १८३, ३)। **भीष्** धातु से सम्बन्ध रखनेवाले **वीहइ** और **वीहेइ** रूप भी हैं (§ ५०१)। § २६३ से भी तुलना कीजिए। **पंगुरण** (= प्रावरण, ओढनी : हेच० १, १७५, त्रिवि० १, ३, १०५) के मराठी रूपों : **पांघरूं, पांघरणें** और **पांघुर्णे** मे ह-कार[4] आ गया है। —अ०माग० **सण्डेय** = ***षाण्ढेय** (ओव० § १) जो वास्तव मे **सण्ढेय** लिखने का अशुद्ध ढग है, जैसा स्वय सस्कृत की हस्तलिखित प्रतियों म **षण्ड** और **षण्ढ** बहुधा एक दूसरे से स्थान बदलते रहते है। गौण **क्क, ख, त्त, प्प** के लिए जो **क्ख, च्छ, त्थ** और **प्फ** के स्थान में आते है, § ३०१ और उसके बाद देखिए।

के स्थान पर आये हैं, इनके साथ महा०, अ०माग० और जै०महा० रूप डज्झइ भी प्रचलित है, ये सब रूप = दह्यते से निकले हैं, शौर० विडज्झिम = विदह्य (महावीर ९६,११) है, डज्झन्त–(माल्ती० ७९,२ [इस ग्रन्थ में यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए और मद्रास के संस्करण में भी रुक्मिणी० २०,७ २५, ९ मल्लिका० ५७, ७ ; १११, १३) तथा हाल १७२ के डज्झइ की भी तुलना कीजिए महा० में धिइ शब्द निकला ०धृति से = धृति (हेच० २, १११ साहित्य० २१९, १४) है ; महा धूआ, अ माग और जै महा० धूया और शौर तथा माग० धूदा=दुहिता (§ ६५ और ३९२) है; जै शौर , शौर , माग और अप रूप बहिणी जो बधिणी से निकला है = भगिनी (हेच० २, १२६ ; पाइय २, ५२ ; कप्पिंगे ४०१, १३८ ; माल्ती ११, ५ माग० ; मृच्छ ११, ९ ; १११, १९ ११८, २५ ; १४०, १ और ७ अप हेच ४, ३५१) है, अधिकांश में का स्वार्थे के साथ, शौर० में बहिणिआ=भगनिका (मृच्छ० ९४, ४ १२८, ५ शकु १५, ४ ; ८५, ४ और ६ माल्ती ११ , ३ महावीर ११८, १८ ; ११९, ३ ; रत्ना ३२४, २३ ३२७, ७ और ९ तथा ११ ३२८, २ प्रबोध ६८, ७ चैतन्य० ८८, १२ ९२, १५ ; कर्पूर ३१, ८ और ७ ; ३४, ३ ; ३६, २ आदि आदि), अप में बहिणुएँ रूप भी मिलता है (हेच ४, ४२२, १४) । बृहस्पति के रूप अ माग में बहस्सइ बिहस्सइ और शौर में बहप्पइ तथा बिहप्पदि पाये जाते हैं (§ ५३) । सब व्याकरणकार ऊपर दिये गये तथा बहुत-से अन्य रूप देते हैं : बहस्सइ बिहस्सइ और बुहस्सइ (चंड २, ५ पेज ४३ हेच २, ६९ और १३७ ; सिंह० पन्ना २६), बहप्पइ, बिहप्पइ और बुहप्पइ (चंड० २, ५ पेज २३ ; हेच २, ५३ और १३७ ; सिंह पन्ना १४), बहप्फइ, बिहप्फइ और बुहप्फइ (चंड० २ ५ पेज ४३ ; हेच० १, १३८ ; २, ५३ ; ६९ ; १३७); माग० में बुहस्पदि (हेच० ४, २८९), और बिहस्पदि (रुद्रट के काव्यालंकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका) हैं इनके अतिरिक्त कई रूप हैं जिनके आरम्भ के अक्षर में भ, ह-कारयुक्त अर्थात् भ बन गया है : भअस्सइ (चंड २, ५ पेज ४३ ; हेच २, ६९ और १३७ ; सिंह० पन्ना २६), भिअस्सइ और भुअस्सइ (चंड० २, ५ पेज ४३); भअप्पइ (चंड० २, ५ पेज ४३ हेच २, १३७; मार्क० पन्ना १८; मार्कण्डेय की यह हस्तलिखित प्रति जो पिशल काम में लाया ; के ग्रामा० प्राकृ० पेज १५ ; सिंह पन्ना २६) भिअप्पइ और भुअप्पइ (चंड २ ५ पेज ४३) ; भअप्फइ (वर ४, ३ चं० २ ५ पेज ४३ ; हेच० २, ६९ और १३७ ; क्रम २ ११७ ; सिंह० पन्ना २६) भिअप्फइ और भुअप्फइ (चंड २, ५ पेज ४३) भी मिलते हैं ।

१ कू बाइ ८ १२८ और उसके बाद पिशल का लेख । मा गे वि मा १८०४ पेज ५१२ में पी गोल्दश्मित्त का मत अशुद्ध है । ई० म्युलि १४ ०३ में बबर के अन्य का नोट, संख्या १ ; कू त्सा २८ ३५३ और उसके बाद याकोबी का लेख कू त्सा ३१, ५७० में बाहामसोन का लेख ।

दो ह्-कारयुक्त वर्ण एक के बाद एक आते हैं, उदाहरणार्थ : **खिङ्खिणी, खह्चर, थूभ, कच्छभ** (§ २०६ और २०८) । § ३१२ और उसके बाद के कई § प्रमाणित करते हैं कि याकोबी[4] द्वारा उपस्थित किये गये उदाहरण एक दूसरे के बाद आनेवाले ह्-कारयुक्त दो वर्णों की इस प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रस्तुत नही किये जा सकते ।

१. भगवती १, ४११ । — २. कू० त्सा० ३३, ५७५ और उसके बाद; आल्ट इंडिशे ग्रामाटीक § १०५ का नोट । — ३ वाकरनागल के साथ मैं भी यहां पर संक्षेप करने के लिए ह्ह को ही ह्-कारयुक्त वर्णों में सम्मिलित कर रहा हू । — ४. औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन की भूमिका के पेज सख्या ३२ की नोट संख्या ३ और भूमिका के पेज सख्या ३३ की नोट संख्या २ ।

§ २०७—कई बोलियों में कवर्ग, पवर्ग और व-कार में परिणत हो जाता है (§ २३०, २३१, २६६ और २८६)। तालव्य वर्णों के स्थान पर कई प्राकृतों में दन्त्य आ जाते हैं, **त** के स्थान पर **च** और **द्** के लिए **ज** वर्ण आ जाता है। अ०माग० **तेइच्छा=*चेकित्सा = चिकित्सा** (आयार० १, २, ५, ६, १, ८, ४, १, २, १३, २२, कप्प० एस० § ४९), **तिगिच्छा** (ठाणग० ३१३, पण्हा० ३५६, नायाध० ६०३ और ६०५, उत्तर० १०६), **तिगिच्छय** और **तिगिच्छग** रूप भी मिलते है = **चिकित्सक** के (ठाणग० ३१३, नायाध० ६०३ और ६०५, उत्तर० ६२०) हैं, **तिगिच्छइ, तिगिच्छिय** (§ ५५५), **वितिगिच्छा=विचिकित्सा** रूप भी देखने में आते हैं (ठाणग० १९१, आयार० २, १, ३, ५, सूय० १८९, ४०१, ४४५, ५१४ और ५३३, उत्तर० ४६८ और उसके बाद), **वितिगिंछा, वितिगिंछइ, वितिगिंछिय** (§ ७४ और ५५५), **वितिगिच्छामि** (ठाणग० २४५), **निव्वितिगिच्छ** (सूय० ७७१, उत्तर० ८११, विवाह० १८३, ओव० § १२४) रूप भी चलते हैं। अ०माग० मे **दिगिच्छत्त-** और **दिगिंछा = जिघत्सत्** और **जिघत्सा** हैं, अ०माग० और जै०महा० में **दुगंछा** और **दुगुंछा** रूप पाये जाते हैं, अ०माग० में **दुगुंछण, दुगुंछणिज्ज, दोगंछि-, दोगुंछि-, पडिदुगंछि-, दुगुंछइ, दुगुंछमाण** तथा **अदुगुंच्छियं** रूप मिलते है (§ ७४ और ५५५), इनके साथ-साथ **जुगुच्छा** (भाम० ३, ४०), **जुउच्छइ, जुगुच्छइ** आदि-आदि रूप चलते ही हैं (§ ५५५)। — अ०माग० **दोसिणा = ज्योत्स्ना** (त्रिवि० १, ३, १०५ = बे० बाइ० ३, २५०, ठाणग० ९५, पण्हा० ५३३), **दोसिणाभा** रूप भी आया है (नायाध० १५२३), **दोसिणी=ज्योत्स्नी** (देशी० ५, ५१), शौर० में **वणदोसिणी = वनज्योत्स्नी** (शकु० १२, १३) है, **दोसाणिअ** (= उजाला, साफ · देशी० ५, ५१ [देशीनाममाला में दिया हुआ है · **दोसाणिअं च विमली कयम्मि** और टीका में है:—**दोसाणिअं निर्मलीकृतम्** । -अनु०])। — § २५२ के अनुसार **य** से निकले हुए गौण **ज** के द्वारा **दोग्ग** मे ध्वनि परिवर्तन आ गया है (= युगल, **युग्म** ; देशी० ५, ४९, त्रिवि० १, ३, १०५ = बे० बाइ० ३, २४१), इस स्थिति मे इसे **युग्म** का प्राकृत रूप मानना पड़ेगा (यह शब्द प्रक्रिया यों माननी

दो ह-कारयुक्त वर्ण एक के बाद एक आते हैं, उदाहरणार्थ : **खिङ्खिणी, खहचर, थूभ, कच्छभ** (§ २०६ और २०८) । § ३१२ और उसके बाद के कई § प्रमाणित करते है कि याकोबी[4] द्वारा उपस्थित किये गये उदाहरण एक दूसरे के बाद आनेवाले ह-कारयुक्त दो वर्णों की इस प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रस्तुत नहीं किये जा सकते ।

१. भगवती १, ४११ । — २ कू० त्सा० ३३, ५७५ और उसके बाद; आल्ट इ्डिशे ग्रामाटीक § १०५ का नोट । — ३ वाकरनागल के साथ मैं भी यहा पर सक्षेप करने के लिए ह को ही ह-कारयुक्त वर्णों मे सम्मिलित कर रहा हू । — ४. औसगेवैल्ते एर्त्सैलुंगन की भूमिका के पेज सख्या ३२ की नोट सख्या ३ और भूमिका के पेज सख्या ३३ की नोट संख्या २ ।

§ २०७—कई बोलियो मे कवर्ग, पवर्ग और व-कार में परिणत हो जाता है (§ २३० , २३१ , २६६ और २८६) । तालव्य वर्णों के स्थान पर कई प्राकृतों में दन्त्य आ जाते है , **त** के स्थान पर **च** और **द** के लिए **ज** वर्ण आ जाता है । अ०माग० **तेइच्छा=*चेकित्सा = चिकित्सा** (आयार० १, २, ५, ६, १, ८, ४, १ , २, १३, २२ , कप्प० एस० § ४९), **तिगिच्छा** (ठाणग० ३१३ , पण्हा० ३५६ , नायाध० ६०३ और ६०५ , उत्तर० १०६), **तिगिच्छय** और **तिगिच्छग** रूप भी मिल्ते है = **चिकित्सक** के (ठाणग० ३१३ , नायाध० ६०३ और ६०५ , उत्तर० ६२०) हैं, **तिगिच्छई, तिगिच्छिय** (§ ५५५), **वितिगिच्छा=विचिकित्सा** रूप भी देखने में आते हैं (ठाणग० १९१ , आयार० २, १, ३, ५ , सूय० १८९ , ४०१ , ४४५ , ५१४ और ५३३ , उत्तर० ४६८ और उसके बाद), **वितिगिंछा, वितिगिंछइ, वितिगिंछिय** (§ ७४ और ५५५), **वितिगिच्छामि** (ठाणग० २४५), **निव्वितिगिच्छ** (सूय० ७७१ , उत्तर० ८११ , विवाह० १८३ , ओव० § १२४) रूप भी चल्ते हैं । अ०माग० में **दिगिच्छत्त**- और **दिगिंछा = जिघत्सत्** और **जिघत्सा** हैं, अ०माग० और जै०महा० में **दुगंछा** और **दुगुंछा** रूप पाये जाते हैं, अ०माग० मे **दुगुंछण, दुगुंछणिज्ज, दोगंछि-, दोगुंछि-, पडिदुगंछि-, दुगुंछइ, दुगुंछमाण** तथा **अदुगुंच्छियं** रूप मिल्ते है (§ ७४ और ५५५), इनके साथ-साथ **जुगुच्छा** (भाम० ३, ४०), **जुउच्छइ, जुगुच्छइ** आदि-आदि रूप चल्ते ही हैं (§ ५५५) । — अ०माग० **दोसिणा = ज्योत्स्ना** (त्रिवि० १, ३, १०५ = बे० बाइ० ३, २५० , ठाणग० ९५ , पण्हा० ५३३), **दोसिणाभा** रूप भी आया है (नायाध० १५२३) , **दोसिणी=ज्यौत्स्नी** (देशी० ५, ५१), शौर० में **वणदोसिणी = वनज्यौत्स्नी** (शकु० १२, १३) है, **दोसाणिअ** (= उजाला , साफ ; देशी० ५, ५१ [देशीनाममाला में दिया हुआ है , **दोसाणिअं च विमली-कयम्मि** और टीका में है —**दोसाणिअं निर्मलीकृतम्** । -अनु०]) । — § २५२ के अनुसार **य** से निकले हुए गौण **ज** के द्वारा **दोग्ग** में ध्वनि परिवर्तन आ गया है (= युगल, **युग्म** ; देशी० ५, ४९ , त्रिवि० १, ३, १०५ = बे० बाइ० ३, २४१), इस स्थिति में इसे **युग्म** का प्राकृत रूप मानना पड़ेगा (यह शब्द प्रक्रिया यों माननी

(देशी० ४, ३), **टिम्बरुय = तुम्बुरुक** (पाइय० २५८) हैं, इनके साथ में ही **टिम्बुरिणी** रूप भी शामिल किया जाना चाहिए , **टूवर = तूवर** (हेच० १, २०५) है। इस सम्बन्ध में § १२४ की भी तुलना कीजिए। चू०पै० **पटिमा=प्रतिमा** में शब्द के भीतर आनेवाले **त** के स्थान पर **ट** आया है (हेच० ४, ३२५), इस रूप के स्थान पर अन्य प्राकृत बोलियो में § १२९ के अनुसार **पडिमा** रूप चलता है। हेच० १, २०६ , क्रम० २, २९ और मार्क० पन्ना १५ में वे शब्द दिये गये हैं जिनमें **त** के स्थान पर **ड** आता है और ये सब शब्द प्रत्यादिगण में एकत्र कर दिये गये हैं। हेच० के अनुसार यह आकृतिगण है, क्रम० ने इसमें केवल **प्रतिबद्ध, प्राभृत, वेतस, पताका** और **गर्त** शब्द दिये हैं , मार्क० एक श्लोक मे केवल सात शब्दों के नाम देता है : **प्रति, वेतस, पताका, हरीतकी, व्यापृत, मृतक** और **प्राकृत**। इस अन्तिम शब्द के स्थान पर **प्राभृत** पढा जाना चाहिए। पै० और चू०पै० को छोड सभी प्राकृत भाषाओं में **प्रति** शब्द का **त** बहुत ही अधिक बार **ड** रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार महा०, अ०माग०, जै०महा० और ढक्की में **पडिमा = प्रतिमा** (चड० ३,१२ पेज ४९, हेच० १, २०६ , पाइय० २१७ , गउड० , हाल , रावण०, ठाणग० २६६ , आयार० २, २, ३, १८ और उसके बाद , २, ६, १, ४ और उसके बाद , २, ७, २, ८ और उसके बाद , २, ८, २ और उसके बाद , उवास० , ओव० , एर्त्से० , मृच्छ० ३०, ११ , १६ और १७), अ०माग० , जै०महा० और जै०शौर० **पडिपुण्ण = प्रतिपूर्ण** (नायाध० ४४९ , ५०० , उवास०, कप्प०, एर्त्से० , पव० ३८७,१३) है, महा०, शौर० और माग० में **पडिवअण = प्रतिवचन** (हाल , रावण० , मृच्छ० ३७, ८ , विक्रमो० १८, ११ , माग० में : मृच्छ० ३२, १९) है, महा०, जै०महा० और शौर० में **पडिवक्ख = प्रतिपक्ष** (पाइय० ३५ ; गउड० , हाल , रावण० , एर्त्से० ; विक्रमो० २३, ७ , प्रबोध० ७,९ , १२,५) है , महा०, अ०माग० और शौर० में **पडिबद्ध = प्रतिबद्ध** (गउड० , हाल , रावण० ; मृच्छ० ४१,३ , उवास० , मृच्छ० ६८,२० और २५) है, जै०शौर० में **अप्पडिबद्ध** (पव० ३८७, २५) रूप मिलता है, शौर० मे **पडिबन्धेध** आया है (शकु० ११३, १२), अ०माग० मे **पडिबन्धण** पाया जाता है (दस० ६४३, १६) , महा० और अप० में **पडिहाइ** देखने में आता है, इनके साथ शौर० रूप **पडिहादि** और **पडिहाअदि=प्रतिभाति** (§ ४८७) है, इस प्रकार के रूपों की गिनती नही की जा सकती। इस सम्बन्ध में § १६३ और २२० की भी तुलना कीजिए। **त** का **ड** में यह ध्वनि परिवर्तन हेच० ४, ३०७ और रुद्रट के काव्यालकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका के अनुसार, पै० और चू०पै० भाषाओं में नही होता, (इसमे **प्रतिबिम्ब** का —अनु०) **पतिबिम्ब** होता है (हेच० ४, ३२६), इस नियम का एक अपवाद है **पटिमा** (हेच० ४, ३२५)। अन्य उदाहरण हैं—महा०, अ०माग०, जै०महा० और अप० रूप **पडइ = पतति** (वर० ८, ५१ , हेच० ४, २१९ , गउड० , हाल ; रावण० है, निरया० § ११ , नायाध० १३९४ , सगर० ३, १० , हेच० ४, ४२२, ४ और १८) है , माग० मे **पडदि** रूप पाया जाता हे (मृच्छ० ३१, १० , १५८, ७

और ९ ; १६९, ५) महा० और अ०माग० में पडड = पततु (हाल ; आयार० २, ४, १, १२) है, जै महा० में पडामो = पतामः (माग एर्से० ८, ५०) है; माग में पडेमि मिलता है (मृच्छ० १२५, १२); महा और अप० में पडिअ = पतित (गउड० ; हाल ; रावण० ; हेच ४, ३३७) है जै महा में पडिय रूप है (एर्से०), शौर० और माग० में यह रूप पडिद बन जाता है (मृच्छ ५४, ३; ८१, ९ ९५, ११ ; १२ , ७ ; मुद्रा १ ४, ८ रत्ना० ३१४, २७ ; मृच्छ १ , ३ ; ११३, १० ; १६९, ५ १७०, १९), शौर में णिवडिद = निपतित (शकु १५, १० ; ७७, ११) है अ माग में पवडेज्ज = प्रपतेत्, पवडेमाण = प्रपतमान (आयार २, २, १, ७ २, २, ३, २ और २३ ; २, ३, २, १५) है और पत् धातु तथा उसके नाना रूपों का सर्वत्र यही ध्वनिपरिवर्तन होता है, जैसे महा , जै महा और माग में पडण = पतन (गउड ; हाल ; रावण० ; एर्से० मृच्छ २ ,२३) है, किन्तु चू पै में निपतन्ति रूप आया है (हेच ४, ३२६)। महा और शौर में पडाआ=पताका (सब व्याकरणकार ; गउड० रावण० है मृच्छ० ९८, १७) ; अ माग और जै०महा० में पडागा रूप मिलता है (ठाणंग० २८४ ; जीवा० ४८१ नायाध० § १२२ , पेज ११३८ ; पण्ह १६० राय० ५१; ६८ ; ७ ; विवाह २७१ ; ८३१ निरया ओव एर्से० ; कप्प०) जै महा में पडाया रूप भी मिलता है (पाइय ६८ एर्से) ; अ०माग में सपडाग आया है (राय १२८) किन्तु पै में पताका रूप है (हेच० ४, ३०७)।— पडुडिप्रभृति (हेच १, २ ६), किंतु शौर० और माग में इसका रूप पदुदि मिलता है (मृच्छ २३ १९ और २३ ७३, १ शकु ५२, ५ ८५, ७ विक्रमो १५, ८ और ९ ४५ २ मुद्रा २५३, ८ प्रबोध ९, ५; २८ १७ ; माग० में : मृच्छ १३, २५ १, ११ १३३, २१ ; वेणी० ३५, ५) ; शौर में पहुदिय = प्रभृतिक (मृच्छ ७१ १)।— अ माग और जै०महा में पाहुड = प्राभृत (सब व्याकरणकार ; पाइय २१६ आयार २, २, २, १ और उसके बाद विवाग १२८ और १३२ ; नायाध ८३० ५३९ ; ५४० ; ७७४ और उसके बाद ११८३ और उसके बाद ११७५ और उसके बाद ; १२३१ ; राय० २२६ ; अणुओग० ५५८ ; एर्से) ; पाहुडिय = प्राभृतिक (आयार २ २ १ १ ; अणुओग ५५८) हैं।— महा , अ माग , जै०महा , शौर माग और दाक्षि म वावड = व्यापृत (हेच ; मार्क ; हाल ; रावण० ; उत्तर ८१६ एर्से ; कालका ; मृच्छ ४, २४ ९ , २१ ; १ ४, ८) है, जै महा में वाउळ रूप भी आया है (कालका) ; अ माग में वाउय रूप भी मिलता है (ओव) शौर में वावुड भी चलता है (मालवि ७२, १) वावुदत्ता = व्यापृतता (मृच्छ १२५ १९) है।— महा में पडिस, किंतु पै में वेतस और शौर में वेदस = वेतस (२ १ १) है।— हरडइ = हरीतकी (३ १२) है।

§ २११— अ माग (जिसे जैन आर्षभाषा भी कहते हैं।— अनु) में और किसी अंश तक जै महा म भी मूर्धन्य वर्णों का प्रचार है (हेच १, २ ६)। इन

भाषाओं में इसका प्राधान्य विशेषकर उन रूपों मे है जिनमे **कृत** लगता है, इनमें **कृ** का ऋ, उ मे परिणत हो जाता है, इस प्रकार अ०माग० में **कड=कृत, अकड= अकृत, दुक्कड=दुष्कृत, सुकड=सुकृत, विगड, वियड=विकृत, पगड=प्रकृत, पुरेकड = पुरस्कृत, आहाकड = यथाकृत** हैं, इनके साथ साथ महा० और अप० में (**कृत** का।—अनु०) **कअ** रूप भी चलता है, अ०मा० और जै०महा० में **कय,** पल्लवदानपत्रों और पै० में **कत** हैं , जै०शौर०, शौर० और माग० के **कद** , शौर०, माग० और अप० में **किद,** अप० मे **अकिअ** (§ ४९ , इस सम्बन्ध में § ३०६ से भी तुलना कीजिए) रूप देखने में आते हैं।—अ०माग० मे **पत्थड = प्रस्तृत** (ठाणग० १९७), **वित्थड = विस्तृत** (जीवा० २५३ , ओव० § ५६), **संथड = संस्तृत** (आयार० २, १, ३, ९ , २, १, ६, १) हैं, **असंथड** रूप भी पाया जाता है (आयार० २, ४, २, १४), **अहासथड** भी मिलता है जो **=यथासंस्तृत** के (आयार० २, ७, २, १४) है।—अ० माग० मे **मड*** **= मृत** (विवाह० १३ , उत्तर० ९८५ , जीवा० २५५ , कप्प०), अ०मा० और जै०महा० में **मडय = मृतक** (हेच० १, २०६ , पाइय० १५८ , आयार० २, १०, १७ , आव० एर्त्से० २४, ४), इसके साथ-साथ अ०माग० और जै०महा० मे **मय** (**=मृत** या **मृतक** । —अनु०) रूप भी चलता है (विवाह० १६ , १०४१ , १०४२ , द्वार० ५०३ , ५ और ७ , ५०४, ४ और १७), जै०महा० में **मुय** रूप है (आव० एर्त्से० २८, ८), महा० में **मअ** चलता है (गउड०), **मुअ**† रूप भी पाया जाता है (हाल , रावण०), जै०शौर० में **मद** देखा जाता है (पव० ३८७, १८), शौर० में **मुद** रूप हो गया है (मृच्छ० ७२, २० , कर्पूर० २२, ९)।—**वृत** का रूप अ०माग० में **वुड** है, **अभिनिव्वुड = अभिनिर्वृत** (सूय० ११० , ११७ [यहा **अभिणिव्वुड** पाठ है] और ३७१), **निव्वुड = निर्वृत** (आयार० १, ४, ३, ३ , सूय० ५५०), **पाउड = प्रावृत** (आयार० १, २, २, १ , सूय० १३४ और १७०), **परिनिव्वुड= परिनिर्वृत** (कप्प०) हैं, इसके साथ ही **परिनिव्वुय** रूप भी चलता है (ओव० , कप्प०), **परिवुड = परिवृत** (ओव०), **सपरिवुड = संपरिवृत** (विवाह० १८६ , ८३० , नायाध० § ४ और १३० , पेज ४३१ , ५७४ , ७२४ , ७८४ , १०६८ , १०७४ , १२७३ , १२९० , १३२७ , उवास० , ओव० , कप्प०), **संवुड = संवृत** (आयार० १, ८, ३, १३ , २, १, ९, १ , सूय० ८१ , ११७ , १४४ , विवाह० ९४२ , कप्प०) हैं, **असंवुड** रूप भी मिलता है (सूय० १०८ और ११५), **सुसंवुड** रूप भी आया है (सूय० १४१), इनके साथ साथ महा० मे **णिव्वुअ,** जै०महा० में **णिव्वुय,** शौर० में **णिव्वुद** रूप पाये जाते हैं (§ ५१), महा० में **पाउअ** (हाल) तथा ढक्की और शौर० मे **पावुद** रूप मिलते हैं (मृच्छ०

* यह शब्द और इसके रूप कुमाउनी तथा हिंदी भाषाभाषी राज्यों के कई गावों में अब भी प्रचलित हैं । —अनु०

† उर्दू का साहित्यिक मूल रूप दक्षिण से आने के कारण उसमें मरे मनुष्य के लिए या गाली में **मुआ** रूप बहुत मिलता है । —अनु०

वडिय और साथ साथ **वेयावच्च=वैयापृत्य** (लौयमान द्वारा सम्पादित ओववाइयसुत्त में **वेयावच्च** शब्द देखिए)। माग० रूप **विडत्त, प्पडवदि** (मृच्छ० १६५, ११) का तात्पर्य सदिग्ध है। गौडवोले द्वारा सपादित मृच्छकटिक पेज ४४८ में इन शब्दो का स्पष्टीकरण कि इनके सस्कृत रूप **वितत** और **प्रतपति** है, बहुत तोड़े मरोडे रूप हैं। अनुमान से यह पाठ पढा जाना चाहिए . **विधत्ते चेदे किं ण प्पलवदि = विदग्धस्य् चेतः किं न प्रलपति** है। **विधत्त** की तुलना महा० रूप **डज्झइ**, शौर० **डज्झदि** और **विडज्झिअ** तथा माग० रूप **डय्यदि** से कीजिए (§ २१२) और **प्पलवदि** की गौडवोले के ऊपर दिये गये ग्रन्थ मे **प्पतवदि** से।

§ २१२—कई अवसरों में यह मूर्धन्यीकरण नियमानुसार छिपा सा रहता है : महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे **पइण्णा = प्रतिज्ञा** (हेच० १, २०६ , गउड० , रावण० , ओव० , कप्प० , एर्त्से० , कालका० , मालवि० ६६, १८ , ६९,५) है, इसके साथ-साथ अ०माग० में **अपडिन्न = अप्रतिज्ञ** (आयार० १, ८, १, १९ और २२ , १, ८, २, ५ , ११ , १६ , १, ८, ३, ९ , १२ और १४ , १, ८, ४, ६ , ७ और १४) है, अ०माग० और जै०महा० मे **पइट्ठान = प्रतिष्ठान** (ठाणग० ५१३ , नायाध० ६२३ , विवाह० ४१८ और ४४७ , ओव० , कप्प० , एर्त्से०) है, नगर के नामों में भी जै०महा० और शौर० में यही होता है . **पइट्ठाण** (आव० एर्त्से० २१, १ , कालका० २६९, ४४ [पाठ के **पयट्ठाण** के स्थान पर यही पाठ पढा जाना चाहिए], विक्रमो० २३,१४ , ७३,११ [इसकी सब हस्तलिखित प्रतियों के साथ (पेज २५५) भारतीय तथा द्राविडी सस्करणों में यही पाठ पढा जाना चाहिए]), लेण बोली में इससे पहले ही **पइठाण** और उसके साथ साथ **पतिठाण** रूप मिलते हैं (आर्किऔलैजिकल सर्वे औफ वेस्टर्न इण्डिया ५, ७६, ८), अ०माग० में **पइट्ठा = प्रतिष्ठा** (हेच० १, २०६) , अ०माग० और जै०महा० में **पइट्ठिय = प्रतिष्ठित** (उवास० , ओव० , कप्प० , एर्त्से० , कालका०) है, इसके साथ-साथ महा० **पडिट्ठिअ** रूप भी चलता है (गउड० , रावण०) और अ०माग० में **पडिट्ठिय** (ओव०), **पइट्ठावय=*प्रतिष्ठापक** (ओव०) , जै०महा० **पइट्ठा-विय=प्रतिष्ठापित** (तीर्थ० ७,२ , एर्त्से०) है, इसके साथ साथ महा० में **पडिट्ठविय** रूप मिलता है (रावण०), शौर० में **पडिट्ठावेहि = प्रतिष्ठापय** (रत्ना० २९५, २६) है , जै०महा० में **पडिदिणं=प्रतिदिनम्** (एर्त्से० , कालका०), **पडदियहं= प्रतिदिवसम्** (कालका०), **पडसमयं = प्रतिसमयम्** (हेच० १, २०६), **पडवरिसं=प्रतिवर्षम्** हैं (तीर्थ० ७, १) , स्वतन्त्र और अकेले **प्रति** का रूप जै० महा० में **पइ** (कालका०) और शौर० में **पदि** होता है (चैतन्य० ८८, १२ , ९०, ४ और ५) , **पईव=प्रतीप** (हेच० १, २०६ , पाइय० १५४), इसके साथ-साथ माग० में **विप्पडीव=विप्रतीप** (मृच्छ० २९, २३) है, ढक्की में इसका रूप **विप्पदीव** हो जाता है (मृच्छ० ३०, ११ और १२ , इस विषय पर गौडबोले द्वारा सम्पादित मृच्छकटिक के पेज ८६, १ और २ देखिए) , महा० और जै०महा० में **संपइ= संप्रति** (हेच० १, २०६ , पाइय० ६७ , गउड० , रावण० , एर्त्से० , कालका० ,

अनिश्चित है, जैसे **दहिज्जइ** रूप (हेच० ४,२४६), अ०माग० **दज्झमाण** (विवाह० १३ , १६ , ६१७) है, इस रूप पर इसके पास ही आनेवाले रूप **दड्ढ** का यथेष्ट प्रभाव पडा है, जैसे जै०महा० मे **दहइ** (एर्त्से० ३,१८) पर इससे पहले आनेवाले **निद्दहइ** (एर्त्से० ३, १७) का प्रभाव पडा है। शौर० में दत्य वर्ण सदा ज्यों के त्यों बने रहते है, हा कभी-कभी उनमे ह-कार जुड जाता है (§ २१२) : **दहिदुं** (शकु० ७२, १२), **दड्ढ = दग्ध** (अनर्घ० १५०, ४ , पाठ मे **दद्ध***रूप है , किन्तु इसके कलकतिया सस्करण ३९,२ से भी तुलना कीजिए) है, **विअड्ढ = विदग्ध** (माल्ती० ७६, ६ , २५०, ३ , हास्या० २५, ८ और २२ , ३१, १७)। **दह्** धातु से जो रूप निकलते हैं उनमे मूर्धन्यीकरण हो जाता है, उदाहरणार्थ, महा० और अ०माग० मे **डाह** (पाइय० ४६ , हाल , आयार० २, १०, १७), महा० और जै०महा० में **डहण** रूप पाया जाता है (पाइय० ६ , गउड० , एर्त्से०), इसके साथ-साथ जै०महा० में **दहण** (एर्त्से० , कालका०) भी मिल्ता है। इस प्रकार का एक रूप **डड्ढाडी** (=वनआग, दावानल, दवमार्ग : देशी० ४,८) है जो **दग्ध + वाटी** (=मार्ग) (क्या यह रूप दग्धावली और दग्धावलि से व्युत्पन्न नहीं हो सकता ? — अनु०) से निकला है, इसमें § १६७ के अनुसार सधि हो गयी है। नीचे दिये गये शब्दों में **द** के स्थान पर **ड** आ गया है : जै०महा० में **डंड = दंड** (वर० २, ३५ , चड० ३, १६ , हेच० १, २१७ , क्रम० २, ४१ ; मार्क० पन्ना १८ , आव०एर्त्से० ४७, २६ और उसके बाद) है, इसके साथ-साथ सभी प्राकृत भाषाओं में **दंड** भी चल्ता है (उदाहरणार्थ, महा० में : गउड० , हाल , रावण० , अ०माग० में : आयार० १, ८, १, ७ [इसमें **डंड** पाठ है], १, ८, १, ८ , १, ८, ३, ७ और १० , उवास० , ओव० , नायाध० , जै०महा० में : एर्त्से० , कालका० , जै०शौर० में : कत्तिगे० ४०१, ३४५ और उसके बाद , शौर० में : वर० १२, ३१ , मृच्छ० ४१, ६ , १५५, ५ , शकु० १२५, १ , १३०, ४ , मालवि० ७१, ६ , ७८, ७ , प्रबोध० ४, ३ , माग० में : मृच्छ० १५४, १० , १५५, ५), **डब्भ = दर्भ** (हेच० १, २१७) है, इसके साथ-साथ महा० और अ०माग० में **दब्भ** रूप भी है (गउड० , शकु० ८५, २ , उवास०), **डम्भ** और इसके साथ साथ **दम्भ = दम्भ** (हेच० १, २१७) है, **डंभिअ=दाम्भिक** (= जुआरी , कितव : देशी० ४,८), इसी **दंभ=डम्भ** से सम्बन्ध रखता है , अ०माग० और जै०महा० में **डहर = दहर** (= शिशु : देशी० ४, ८ , पाइय० ५८ , आयार० २, ११, १८ , सूय० १०० , ११३ , ४७२ ; ५१५ , अत० ५५ , दस० ६२३, २० , ६३३, २८ ; ३२ और ३५ , ६३६, १४ , ६३७, ७ , आव० एर्त्से० ४२, १६) , **डोला = दोला** (सब व्याकरणकार, देशी० ४, ११ , पाइय० २३२) है, इसके साथ महा० और शौर० में **दोला** (वर० १२, ३१ , हेच० , मार्क० , गउड० , कर्पूर० २३, ५ , ५४, १० , ५५, ४ , ५७, २ , ५ और ७ , मालवि० ३२, १२ , ३४, १२ , ३९, ७ और १५ , ४०, ५ , कर्पूर० ५४, ५, ५८, १ , विद्ध० ११७, १), महा० में **डोलाइअ = दोलायित** (हाल ९६६ की

* हिन्दी में दग्धाक्षर = दद्धच्छर इसी प्रक्रिया का फल है। —अनु०

मूल धातु भी आरंभिक वर्ण में दन्त्य ध्वनि ज्यों का त्यों बनाये रखता है : शौर० में दसणावदसणि रूप आया है (कटक० ७, ९) दंसवि मिलता है (मृच्छ० १६०, १), दड्ढ और दंसिव रूप पाये जाते हैं (मालवि० ५१, १७ ५४, ९)। इसी प्रकार का रूप दाढा = दंष्ट्रा है (§ ७६)।—दह् से महा० रूप डहइ बनता है (हाल), जै०महा० में डहे पाया जाता है (एर्त्से० ३८, १८), अ०माग० में डहण रूप चलता है (सूय० ५९६), डहेत्ता भी आया है (दस० ६१४, ५), डहिज्जा रूप भी चलता है (सूय० ७८१) महा० में डहिऊण रूप है (हाल ; रावण०) महा०, अ०माग० और जै० महा० में डज्झइ चलता है (हेच० ४, २४६ ; गउड० हाल रावण० आयार० १, २, ३, ५ ; १, २, ४, २ और ३ ; १, १, २ सूय० २७१ ; उत्तर० २८२ और २८४), महा० में डज्झसि और डज्झइ भी काम में आये हैं (हाल), महा० , अ०माग० और जै० महा० में डज्झन्ति भी देखने में आता है (गउड० पण्हा० १८१ ; द्वार० ४८९, २६) महा० में डज्झिहिसि भविष्यत्कालवाचक मिलता है (हाल) ; इसी के लिए जै० महा० में डज्झिहिइ रूप है (आव० एर्त्से० १२, १५) जै० महा० में डज्झए रूप भी देखा जाता है (द्वार० ४९८, २२) ; अ०माग० में डज्झंतु (पण्हा० १२७) है महा० और अ०माग० डज्झंत आया है (गउड० रावण० कर्पूर० ८७, ९ जीवा० ५९१ ; पण्हा० ६३ पण्णव० ९९ नायाध० कप्प०), जै० महा० में डज्झन्ती रूप है (द्वार० ४९९, २१) ; अ०माग० और जै० महा० में डज्झमाण है (सूय० २७ ; २८६ पण्हा० ५९ और २१७ ; उत्तर० ४४९ द्वार० ४९८, २५) डज्झमाणी रूप भी मिलता है (उत्तर० २८४ द्वार० ४९८, २८ ४९९, ७) अ०माग० में विडज्झमाण रूप भी आया है (आयार० १,६,४,१) अणुडज्झइ भी है (ठाणंग० १४६) महा० में दड्ढ पाया जाता है (हाल रावण०) किन्तु केवल रावणवहो ९, ४८ में डड्ढ रूप आया है। इस ग्रन्थ में स्वयं अन्यत्र यह रूप नहीं है और ग्रन्थ भर में सर्वत्र ही दड्ढ मिलता है जो अ०माग० और जै० महा० में भी पाया जाता है (चंड० ३, १६ ; सूय० २८८ और ७८१ पण्हा० १७६ पण्णव० ८४८ ; विवाह० ११ १६ ११७ आव० एर्त्से० ९, १६ और २० ; १९, ११ और १५ ; द्वार० ४९९, २१ और २२ ; ५ १६ ; ५ १ ३४) महा० में उक्त ग्रन्थों को छोड़ रावणवहो में केवल ७, ५२ में यह रूप है। इस सम्बन्ध में क्रमदीश्वर २ १७ की भी तुलना कीजिए। महा० में मूर्धन्यीकरण का प्राबल्य इतना अधिक है कि ऊपर दिये गये उदाहरणों के साथ-साथ रावणवहो १५ ५८ में भी डहिउं पढ़ा जाना चाहिए[1] यद्यपि जै० महा० में दहिउं रूप भी मिलता है (एर्त्से० २४, २५)। समासों में दन्त्य वर्णों का बाहुल्य दिखाई देता है : विदड्ढ (क्रम० २ १७) महा० वियड्ढ=विदग्ध (गउड० ; हाल ; अनर्घ० २ ३) है ; जै० महा० में निद्दड्ढ रूप भी मिलता (एर्त्से० ३,१७) है, अ०माग० में निद्दहिउं रूप देखने में आता है (उत्तर० ३९१) जै० महा० में निद्दड्ढ रूप भी पाया जाता है (द्वार० ५ ४, ९ और १) अ०माग० में समादहमाण आया है (आयार० १, ८ २, १४) ; दह को छोड़ अन्यत्र दन्त्य प्रमाण

अनिश्चित है, जैसे **दहिज्जइ** रूप (हेच० ४,२४६), अ०माग० **दज्झमाण** (विवाह० १३ , १६ , ६१७) है, इस रूप पर इसके पास ही आनेवाले रूप **दड्ढ** का यथेष्ट प्रभाव पडा है, जैसे जै०महा० मे **दहइ** (एर्त्से० ३,१८) पर इससे पहले आनेवाले **निद्दहइ** (एर्त्से० ३, १७) का प्रभाव पडा है। शौर० में दत्य वर्ण सदा ज्यों के त्यों बने रहते हैं, हा कभी-कभी उनमें ह-कार जुड जाता है (§ २१२) : **दहिदुं** (शकु० ७२, १२), **दड्ढ = दग्ध** (अनर्घ० १५०, ४ , पाठ मे **दद्ध*** रूप है , किन्तु इसके कलकतिया सस्करण ३९,२ से भी तुलना कीजिए) है, **विअड्ढ = विदग्ध** (मालती० ७६, ६ , २५०, ३ , हास्या० २५, ८ और २२ , ३१, १७)। **दह्** धातु से जो रूप निकलते हैं उनमें मूर्धन्यीकरण हो जाता है, उदाहरणार्थ, महा० और अ०माग० में **डाह** (पाइय० ४६ ; हाल , आयार० २, १०, १७), महा० और जै०महा० में **डहण** रूप पाया जाता है (पाइय० ६ , गउड० , एर्त्से०), इसके साथ साथ जै०महा० में **दहण** (एर्त्से० , कालका०) भी मिलता है। इस प्रकार का एक रूप **डड्ढाडी** (=वनआग, दावानल, दवमार्ग : देशी० ४,८) है जो **दग्ध + वाटी** (=मार्ग) (क्या यह रूप दग्धावली और दग्धावलि से व्युत्पन्न नहीं हो सकता ? — अनु०) से निकला है, इसमें § १६७ के अनुसार सधि हो गयी है। नीचे दिये गये शब्दों मे **द** के स्थान पर **ड** आ गया है : जै०महा० में **डंड = दंड** (वर० २, ३५ , चड० ३, १६ , हेच० १, २१७ , क्रम० २, ४२ ; मार्क० पन्ना १८ , आव०एर्त्से० ४७, २६ और उसके बाद) है, इसके साथ साथ सभी प्राकृत भाषाओं में **दंड** भी चलता है (उदाहरणार्थ, महा० में : गउड० , हाल , रावण० , अ०माग० में : आयार० १, ८, १, ७ [इसमें **डंड** पाठ है] , १, ८, १, ८ , १, ८, ३, ७ और १० , उवास० , ओव० , नायाध० , जै०महा० में : एर्त्से० , कालका० , जै०शौर० में : कत्तिगे० ४०१, ३४५ और उसके बाद , शौर० में : वर० १२, ३१ , मृच्छ० ४१, ६ , १५५, ५ , शकु० १२५, १ , १३०, ४ , मालवि० ७१, ६ , ७८, ७ , प्रबोध० ४, ३ , माग० में : मृच्छ० १५४, १० , १५५, ५), **डब्भ = दर्भ** (हेच० १, २१७) है, इसके साथ-साथ महा० और अ०माग० में **दब्भ** रूप भी है (गउड० , शकु० ८५, २ , उवास०), **डम्भ** और इसके साथ साथ **दम्भ = दम्भ** (हेच० १, २१७) है, **डंभिअ=दाम्भिक** (= जुआरी , कितव : देशी० ४,८), इसी **दंभ=डम्भ** से सम्बन्ध रखता है , अ०माग० और जै०महा० में **डहर = दहर** (= शिशु : देशी० ४, ८ , पाइय० ५८ , आयार० २, ११, १८ , सूय० १०० , ११३ , ४७२ , ५१५ , अत० ५५ , दस० ६२३, २० , ६३३, २८ , ३२ और ३५ , ६३६, १४ , ६३७, ७ , आव० एर्त्से० ४२, १६) , **डोला = दोला** (सब व्याकरणकार, देशी० ४, ११ , पाइय० २३२) है, इसके साथ महा० और शौर० में **दोला** (वर० १२, ३१ , हेच० , मार्क० , गउड० , कर्पूर० २३, ५ , ५४, १० , ५५, ४ , ५७, २ , ५ और ७ , मालवि० ३२, १२ , ३४, १२ , ३९, ७ और १५ , ४०, ५ , कर्पूर० ५४, ५, ५८, १ , विद्ध० ११७, १), महा० मे **डोलाइअ = दोलायित** (हाल ९६६ की

* हिन्दी में दग्धाक्षर = दद्धच्छर इसी प्रक्रिया का फल है। —अनु०

टीका) है, इसके साथ-साथ शौर० में दोच्छाममाण रूप मिलता है (मृच्छ० ९८,१४); डोळ (= आँख [यह शब्द आँख के लिए मराठी में चलता है। —अनु०] ; देशी० ४, ९ ; त्रिवि० १, ३, १०५), डोलिअ (= कृष्णसार मृग ; देशी० ४,१२)[1] भी इन्हीं शब्दों से सम्बन्ध रखते हैं। अ०माग० और जै०महा० डोहल=दोहद (हेच० १,२१७; मार्क० पन्ना १८ ; नायाध० ; एर्त्से०), इसके साथ-साथ महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में साधारणतया प्रचलित रूप दोहळ है (वर० २,१२ ; हेच० १, २१७ ; मार्क० पन्ना १८ ; हाल ; रावण० ; विद्धा० ११६ ; नायाध० ; कप्प० ; निरया० ; एर्त्से० ; मालवि० १ , १३ ; १४, २१ ; ३५, २ ; ४०, ९ ; ४८, १४ ; कर्पूर० २ , २ और ६ ; ६८, ९ ; ६६, १ ; रत्ना० २९७, १२), महा० और शौर० दोहळअ = दोहदक (हाल ; कर्पूर० ६२, ९ ; विद्ध० १२१, ५ ; रत्ना० ३ , १७) है। इस संबंध में § २०४ और ४१६ की भी तुलना कीजिए। अ०माग० में नीचे दिये गये धातुओं के द्वि-कार का आरम्भिक वर्ण द् के स्थान पर ड हो जाता है : आउड्ड = आवर्धति (ओव० § ४४), आउड्डन्ति = आवर्धन्ति (सूय० २८६)[1]। इस संबंध में § २२३ और ५० की तुलना कीजिए। 'भय' के अर्थ में दर शब्द का रूप डर हो जाता है (हेच० १, २१७), जैसा 'डरने' या 'भय से काँपने' के अर्थ में दरति का डरइ रूप बन जाता है (हेच० ४, १९८)[2] ; इसके विपरीत 'थोड़ा', 'नाममात्र' और 'आधा' के अर्थ में दर प्राकृत में भी दर ही रह जाता है (महा०, जै०महा० और शौर० के लिए—हेच० १, २१७ ; २ , २१५ ; देशी० ५, ३३ ; पाइय० २१२ ; गउड० ; हाल ; रावण० ; कर्पूर० ४६, १४ ; ५६, ७ ; ६६, ११ ; एर्त्से० ; मालती ११८, ५ ; उत्तर० १२५, ४ ; चंड० १६, १६ ; विद्ध० ११७, ४ ; १२६, ३)। रावणवहो ६, ५६ में भय के लिए जो दर रूप आया है, उसका कारण दर और कन्दर का तुक मिलाकर छंद की सुंदरता बढ़ाना है। शब्द के भीतर के द् का नीचे दिये गये शब्दों में ड हो गया है : कदन का प्राकृत रूप कडण और इसके साथ-साथ कमण हो गया है (हेच० १, २१७ [मेरे पास पूना के, भंडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट द्वारा सन् १९३६ ई० में प्रकाशित और स्व० शंकर पांडुरंग पंडित एम० ए० तथा पी० एल० वैद्य एम० ए०, डी० लिट्० द्वारा संपादित जो संस्करण इस ग्रंथ का है, उसमें कमण रूप नहीं है, अपितु कयण मिलता है। —अनु०]) ; महा० में खुडिअ और शौर० रूप खुडिद=*क्षुदित = क्षुण्ण, महा० रूप उप्पखुडिअ = *उत्क्षुदित (§ ५६८) ; अ०माग० खुडिय = *क्षुदित (§ ५६८) ; माग० हडक = हृदक (§ १९४) है। सडइ रूप हेच० ४, २१९ के अनुसार सद् से बना है और वर० ८, ५१ तथा क्रम० ४, ४६ के अनुसार शद् से निकला है। सम्भवतः इसका संबंध शद् से करना चाहिए जिसकी पुष्टि अ०माग० रूप पडिसाडित्ति और पडिसाडित्ता (आयार० २, १५, १८) है तथा जै०महा० पडिसडण (आव० एर्त्से० २६८, ६०) हैं[2]।

1. गो० गे० आ० १८८१, पेज १८७। रावणवहो पेज ३३१ नोटसंख्या ५ में एस० गौल्दश्मित्त ने अशुद्ध मत दिया है क्योंकि उसने यह विचार नहीं

किया कि प्राकृत बोलियों मे क्या-क्या भिन्नता मिलती है। — २. वे० बाइ० ६, ८९ मे पिशल का मत। — ३. से० बु० ई० ४५, २८३ में याकोबी ने टीकाकारों के साथ एकमत होकर जो बताया है कि यह रूप दह् (= जलना) धातु से निकला है, वह अशुद्ध है। — ४. हेच० १, २१७ और ४, १९८ पर पिशल की टीका। — ५. हेच० ४, २१९ से यह मत अधिक शुद्ध लगता है।

§ २१५—महा० ढख और अ०माग० ढंक तथा ढिंक = पाली ढंक = सस्कृत ध्वाक्ष है एव ढेँकी = ध्वांक्षी में शब्द का पहला वर्ण ध, ढ में बदल गया है। अ०माग० निसढ और णिसढ = निषध (हेच० १, २२६, मार्क० पन्ना १७, ठाणग० ७२, ७५, १७६, सम० १९, १६१, १६२, जीवा० ५८३, नायाध० ६६८, निरया० ७९ और उसके बाद, पण्हा० २४३, राय० १७७) है, किंतु साथ ही निसह रूप भी काम में आया है (सूय० ३१३), ओसढ रूप मिलता है (हेच० १, २२७, क्रम० २, १, मार्क० पन्ना १७), इसके साथ साथ महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर० और शौर० में ओसह रूप भी चलता है (चड० २, ८, हेच० १, २२७, हाल, विवाह० ५१६, उत्तर० ६०२ और ९१८, सूय० ७७१, उवास०, ओव०, एर्त्से०, कत्तिगे० ४०२, ३६२, मालवि० २६, १५) और शौर० मे ओसध रूप भी पाया जाता है जो लद्धोसध मे वर्तमान है (शकु० ५६, १६) = औषध है। प्रेरणार्थक रूप आढवइ, विढवइ, आढप्पइ, आढवीअइ, विढप्पइ और विढविज्जइ[1] (§ २८६) और भूतकालसूचक धातु के रूप जैसे, महा०, अ०माग० और जै०महा० रूप आढत्त, महा० रूप समाढत्त, महा०, जै०महा० और शौर० में विढत्त तथा अप० में विढत्तउँ मे शब्द के भीतर मूर्धन्यीकरण हो गया है। हेमचन्द्र २, १३८ के अनुसार आढत्त रूप जो आरब्ध[2] से निकला बताया गया है, भाषाशास्त्र की दृष्टि से असभव है। आढिय (= इष्ट, धनी, आढ्य, सावधान, दृढ : हेच० १, १४३, देशी० १,७४), जै०महा० रूप आढिय (आव० एर्त्से० ४३, २५) = *आधित = आहित, दृ धातु से नहीं किंतु धा धातु से निकले हैं। मूर्धन्यीकरण के विषय में अ०माग० सड्ढा = श्रद्धा, सड्ढ = श्राद्ध और सड्ढि = श्रद्धिन् (§ ३३३) और अ०माग० रूप आडहइ और आडहति की भी तुल्ना कीजिए (§ २२२)।

१ अपने ग्रंथ बाइत्रैगे पेज ५७ में ए० म्युलर भूल से आराधति से आढाइ रूप की व्युत्पत्ति बताता है और उवासगदसाओ के अनुवाद की नोट-संख्या ३०६ में होएर्नले उक्त प्राकृत रूप को अर्धयति अथवा आर्धयति से व्युत्पन्न करता है, यह भी अशुद्ध है। — २ ए० म्युलर-कृत बाइत्रैगे, पेज ५७, वेबर द्वारा सपादित हाल ग्रंथ में आढत्त शब्द देखिए ना० गे० वि० गो० १८७४, पेज ५१२ नोट देखिए, एस० गौल्दश्मित्त द्वारा संपादित रावणवहो में रभ् शब्द देखिए और त्सा० डे० डौ० मौ० गे० २९, ४९४ में भी वही शब्द देखिए। कू० त्सा० ३८, २५३ मे याकोबी द्वारा प्रतिपादित मत अशुद्ध है।

§ २२४—पल्लव और विजयबुद्धवर्मन् के दानपत्रों, अ०माग , जै०महा , जै शौर , पै० और चू पै को छोड़ अन्य सब प्राकृत भाषाओं में न, शब्दों के आरम्भिक और मध्यस्थ (भीतर आये हुए) वर्णों में ण रूप ग्रहण कर लेता है (वर २, ४२ हेच १, २२८ क्रम २, १ ६ मार्क पन्ना १८) : महा में न=ण नअण = नयन (गउड हाल रावण)[१] णलिणी = नलिनी णासण = नाशन (रावण०) णिहण = निधन (गउड० रावण) ; णिहाण=निधान; णिहुअण=निधुवन (हाल) और णूर्ण (हाल), णूण (गउड ; रावण)= नूनम् हैं। यही नियम शौर , माग , ढक्की, आव०, दाक्षि और अप के लिए भी लागू है। अ माग०, जै महा और जै०शौर० में विशुद्ध न शब्दों के आरम्भ में और द्वित्त न (= न्न । —अनु) शब्दों के मध्य में ज्यों के त्यों बने रहते हैं। क्रम० २, १ ७ में शब्द के आरम्भ में मुख्यतया न लिखने की आज्ञा देता है : णई अथवा नई = नदी है। ताड़पत्र में लिखी हस्तलिपियों में स्वयं अ माग और जै०महा में साधारणतया ण लिखा पाया जाता है और कक्कुक शिलालेखों में सर्वत्र ही ण का प्रयोग पाया जाता है, जब कि कागज में लिखी हस्तलिपियां शब्द के आरम्भ में और बहुधा दंत्य न के द्वि-कार (= न्न ।— अनु) को भी बनाये रखती हैं[*]। अव्यय णं = नूनम् में सदा ण लिखा जाता है, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार होता है कि न मूल में शब्द के भीतर था और णं पादपूरणार्थ है (§ १५)। जैन लोग इस लिपिपद्धति को अन्य प्राकृत बोलियों के काम में भी लाते हैं जिससे वे कभी-कभी भूल से महा में भी काम में लाते हैं, उदाहरणार्थ गउडवहो में हस्तलिखित प्रतियों की नकल पर प्रकाशकों ने यही रूप ज्यों का त्यों रहने दिया है। अशुद्ध पाठों के आधार पर ही हेमचन्द्र ने १, १२८ में बताया है कि अ माग में भी शब्द के मध्य में आया हुआ विशुद्ध न कभी कभी वैसा ही बना रह गया है, जैसा आरनाल, अनिल और अनल में। शिलालेखों में शौर रूप णोमालिए = नवमालिके (ललित ५६ , ९ और १७ इसम २१ में उक्त रूप के साथ साथ णोमालिए रूप भी पाया जाता है) और अ माग निज्झर = निर्झर (५६६ ९) है, जब कि ५६१, २ में निरंतर रूप आया है और ५६७, १ में निभ मिलता है, वास्तव में ये न वाले रूप छापे की भूलें हैं[१]। पल्लवदानपत्रों में केवल एक मवेस रूप को छोड़ कर (६ ४) न का विभक्ति के रूप में सर्वत्र मूर्धन्यीकरण हो गया है : पल्लवाण मिलता है (५, २), वत्थवाण=वास्तव्यानाम् (६ ८), बम्हणाणं = ब्राह्मणानाम् (६ ८ ; २७ ; ३ और ३८) कातूणं=कृत्वानम् (६ १ और २९) णातूणं=ज्ञात्वानम् (६,३९) है लिखितेण (७,५१) भी है इसके अतिरिक्त शब्द के भीतर का विशुद्ध न आंशिक रूप में बना रहता है जैसे समापत्ति (५ १) धर्मानिके=धर्मनिकान (६), अनेक (६ १) —पवतायिता = प्रवायिता (६, ११), सातावहनि (६ ३०) विनेसि (६ ११), आंशिक रूप में न का ण हो जाता है जैसे, मणुसाण = मनुष्याणाम् (५ ७) दाणि = इदानीम् (५ ७), अप्पणो =

[*] यह अप्पाण हिंदी अपना का आदि प्राकृत रूप है। इसका रूप आपणो कुमाउनी में वर्तमान है। —अनु

आत्मानः (६, ८), सासणस्स = शासनस्य (६, १०), निवतणं = निवर्तनम् (६, ३८), अणु = अनु (७, ४५) हैं। इसके विपरीत, शब्द के आरम्भ में और शब्द के भीतर का द्वित्व न सदा बना रहता है : नेयिके=नैयिकान् (५, ६), कुमारनदि (६, १७), नंदिजस=नंदिजस्य (६, २१), नागनंदिस=नागनन्दिनः (६, २५), निवतणं=निवर्तनम् (६, ३८), संविनयिक (६, ३२), निगह=निग्रह (७, ४१), नराधमो (७, ४७), अन्ने = अन्यान् (५, ७ , ७, ४३) है। इस प्रकार शिलालेख में ज्ञ से व्युत्पन्न तथा सरलीकृत गौण अनुनासिक में भी भेद किया गया है : आणतं = आज्ञप्तम् (७,४९) है, क्योंकि यहा ज्ञ शब्द के भीतर माना गया है, इसके साथ-साथ नातूणं = *ज्ञात्वानम् आया है (६, ३९), तात्पर्य यह है कि शिलालेख अतिम दो बातों में साधारणत बाद की जैन हस्तलिखित प्रतियों की लिपिपद्धति से मिल्ते जुल्ते हैं[४]। यही परिपाटी विजयबुद्धवर्मन के दानपत्रो में देखी जाती है : पल्लवाणं (१०१, २), नारायणस्स (१०१, ८), वद्धनीयं (१०१, ८), कातूण (१०१, ९), नातूण (१०१,१० , एपिग्राफिका इण्डिका १, २ नोट सख्या २ की भी तुल्ना कीजिए) आये हैं। पै० और चू०पै० मे सर्वत्र न ही रह जाता है। पै० में . धन और मतन = धन और मदन, सतन = सदन,वतनक = वदनक, चिन्तयमानी=चिन्तयमाना, गन्तून=*गन्त्वान, नत्थून=नष्ट्वान आदि-आदि हैं, इनके अतिरिक्त सिनान = स्नान, सिनात = स्नात, सुनुसा = स्नुषा है , चू०पै० में . मतन = मदन, तनु तनु ही रह गया है, नकर = नगर है आदि-आदि (वर० ४, ७ और १३ , हेच० ४, ३०४ , ३०७ , ३१० , ३१२ , ३१३ , ३१४ , ३२५ , ३२८ , रुद्रट के काव्यालकार २, १२ की टीका मे नमिसाधु का मत।

१. § १८६ की नोट सख्या १ की तुलना कीजिए। —२. लौयमान द्वारा सपादित आवश्यक एर्त्सेलुंगन, पेज ६, नोटसख्या ४। हस्तलिपियों के लिपिभेद के विषय में वेबर द्वारा संपादित भगवती १, ४०२ और उसके बाद देखिए, ए म्युलर कृत बाइत्रैगे, पेज २९ और उसके बाद , त्सा डे डौ. मौ गे ३४, १८१ में याकोबी का कथन जिसके अनुसार ठीक सबसे पुरानी हस्तलिपियों में ण कम नहीं पाया जाता , स्टाइनटाल कृत स्पेसिमेन का पेज ३। —३ ना. गे वि. गो १८९४, ४८० में स्टेन कोनो का लेख। —४ एपिग्राफिका इण्डिका १, ३ में ब्यूलर ने अशुद्ध विचार प्रकट किये हैं।

§ २१७—सस्कृत के मूर्धन्य वर्ण बहुत ही कम और केवल कुछ बोलियों में दत्य वर्णों में परिणत होते हैं। पै० में ट्ट का तु होता है (हेच० ४, ३११), इसमें कुतुम्बक और कुटुम्बक दो रूप पाये जाते हैं। पै० और चू०पै० में ण का न बन जाता है। पै० में गुनगनयुत्त = गुणगणयुत्त ; गुनेन = गुणेन ; तलुनी = तरुणी, विसान = विषाण और गहन = ग्रहण (वर० १०, ५ , चड० ३, ३८ , हेच० ४, ३०६ , ३०९ और ३१३ , रुद्रट के काव्यालकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका) है, चू०पै० मे . मक्कन = मार्गण, पनय = प्रणय, नखतप्पनेसुं =

§ २२६—पल्लव और विजयबुद्धवर्मन् के दानपत्रों, अ माग०, जै महा, जै शौर, पै और चू पै को छोड़ अन्य सब प्राकृत भाषाओं में न, शब्दों के आरम्भिक और मध्यस्थ (भीतर आये हुए) वर्णों में ण रूप ग्रहण कर लेता है (वर २, ४२ हेच १, २२८ क्रम २, १ ६ मार्क पन्ना १८) : महा में मअण णअण = नयन (गउड० हाल रावण)[1]; णलिणी = नलिनी णासण = नाशन (रावण) णिहण = निधन (गउड रावण), णिहाण=निधान; णिहुमण=निधुवन (हाल) और णूणं (हाल), णूण (गउड० रावण)= नूनम् है। यही नियम शौर, माग, ढक्की, आव, दाक्षि और अप० के लिए भी लागू है। अ माग, जै०महा और जै शौर में विशुद्ध न शब्दों के आरम्भ में और द्वित्व न (= न्न। —अनु) शब्दों के मध्य म व्यों के त्यों बने रहते हैं। क्रम २, १ ७ म शब्द के आरम्भ में मुख्यतया न लिखने की आज्ञा देता है : नई अथवा नई = नदी है। दानपत्र में लिखी हस्तलिपियों में स्वयं अ माग और जै महा० में साधारणतया ण लिखा पाया जाता है और कल्पसूत्र शिलालेखों में सर्वत्र ही न का प्रयोग पाया जाता है, जब कि कागज में लिखी हस्तलिपियां शब्द के आरम्भ में और बहुधा दंत्य न के द्वित्व-कार (= न्न।— अनु) को भी बनाये रखती हैं[2]। अव्यय णं = नूनम् में सदा ण लिखा जाता है, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार होता है कि न मूल में शब्द के भीतर या और णं पादपूरणार्थ है (§ १५)। जैन लोग इस लिपिपद्धति को अन्य प्राकृत बोलियों के काम में भी लाते हैं जिससे वे कभी-कभी भूल से महा में भी काम में लाते हैं, उदाहरणार्थ गउडवहो में हस्तलिखित प्रतियों की नकल पर प्रकाशकों ने यही रूप ज्यों का त्यों रहने दिया है। अशुद्ध पाठों के आधार पर ही हेमचन्द्र ने १, १२८ में बताया है कि अ माग में भी शब्द के मध्य में आया हुआ विशुद्ध न कभी कभी वैसा ही बना रह गया है, जैसा आरनाल, अनिल और अनल म। शिलालेखों में शौर रूप नोमालिए = नवमालिके (ललित ५६, १ और १७ इसमें २१ में उक्त रूप के साथ साथ णोमालिए रूप भी पाया जाता है) और अ माग निज्झर = निर्झर (५६६, १) है जब कि ५६१, २ में णिरंतर रूप आया है और ५६७, १ में निम मिलता है वास्तव में ये न वाले रूप छापे की भूलें हैं[1]। पल्लवदानपत्रों में केवल एक वचन रूप को छोड़ कर (६, ४) न का विभक्ति के रूप म सर्वत्र मूर्धन्यीकरण हो गया है : पल्लवाण मिलता है (५, २), वत्थवाण=वास्तव्यानाम् (६ ८) बम्हणाणं = ब्राह्मणानाम् (६, ८ २७ ; १ और ३८) कातूणं=कृत्वानम् (६, १ और २९), मातूणं=मात्वानम् (६ ३९) हैं लिखितेण (७,५१) भी है इसके अतिरिक्त शब्द के भीतर का विशुद्ध न आर्थिक रूप में बना रहता है जैसे सेनापति (५, १), वधनिके=वर्धनिकान् (६ ९) अनेक (६ १) —प्पदायिना = प्रदायिनः (६, ११), सातानि (६ २७) विनेसि (६ ३१), आर्थिक रूप में न का ण हो जाता है जैसे, मणुसाण = मनुष्याणाम् (५ ७) दाणि = इदानीम् (५, ७), मप्पणो० =

* यह अपना हिंदी अपना का आदि प्राकृत रूप है। इसका रूप आपको कुमाऊनी में वर्तमान है। —अनु

आत्मानः (६, ८), **सासणस्स** = **शासनस्य** (६, १०), **निवतणं** = **निवर्तनम्** (६, ३८), **अणु** = **अनु** (७, ४५) है। इसके विपरीत, शब्द के आरम्भ में और शब्द के भीतर का द्वित्व **न** सदा बना रहता है : **नेयिके**=**नैयिकान्** (५, ६), **कुमारनंदि** (६, १७), **नंदिजस**=**नंदिजस्य** (६, २१), **नागनंदिस**=**नागनन्दिनः** (६, २५), **निवतणं**=**निवर्तनम्** (६, ३८), **संविनयिक** (६, ३२), **निगह्न**=**निग्रह** (७, ४१), **नराधमो** (७, ४७), **अन्ने** = **अन्यान्** (५, ७ , ७, ४३) हैं। इस प्रकार शिलालेख में ज्ञ से व्युत्पन्न तथा सरलीकृत गौण अनुनासिक में भी भेद किया गया है : **आणतं** = **आज्ञप्तम्** (७,४९) है, क्योंकि यहा ज्ञ शब्द के भीतर माना गया है, इसके साथ-साथ **नातूणं** = **ज्ञात्वानम्* आया है (६, ३९), तात्पर्य यह है कि शिलालेख अतिम दो बातों में साधारणत. बाद की जैन हस्तलिखित प्रतियों की लिपिपद्धति से मिलते जुलते हैं[४]। यही परिपाटी विजयबुद्धवर्मन के दानपत्रों में देखी जाती है : **पल्लवाणं** (१०१, २), **नारायणस्स** (१०१, ८), **वद्धनीयं** (१०१, ८), **कातूण** (१०१, ९), **नातूण** (१०१,१० , एपिग्राफिका इण्डिका १, २ नोट सख्या २ की भी तुलना कीजिए) आये हैं। पै० और चू०पै० मे सर्वत्र **न** ही रह जाता है। पै० में : **धन** और **मतन** = **धन** और **मदन**, **सतन** = **सदन**,**वतनक** = **वदनक**, **चिन्तयमानी**=**चिन्तयमाना**, **गन्तून**=**गन्त्वान*, **नत्थून**=**नष्ट्वान** आदि-आदि हैं, इनके अतिरिक्त **सिनान** = **स्नान**, **सिनात** = **स्नात**, **सुनुसा** = **स्नुषा** हैं , चू०पै० में : **मतन** = **मदन**, **तनु** तनु ही रह गया है, **नकर** = **नगर** है आदि-आदि (वर० ४, ७ और १३ , हेच० ४, ३०४ , ३०७ , ३१० , ३१२ , ३१३ , ३१४ , ३२५ , ३२८ , रुद्रट के काव्यालकार २, १२ की टीका मे नमिसाधु का मत।

१ § १८६ की नोट सख्या १ की तुलना कीजिए। —२. लौयमान द्वारा संपादित आवश्यक एर्त्सेलुगन, पेज ६, नोटसख्या ४। हस्तलिपियों के लिपिभेद के विषय में वेबर द्वारा सपादित भगवती १, ४०२ और उसके बाद देखिए , ए म्युलर कृत बाइत्रैगे, पेज २९ और उसके बाद , त्सा डे डौ. मौ गे ३४, १८१ में याकोबी का कथन जिसके अनुसार ठीक सबसे पुरानी हस्तलिपियों में ण कम नहीं पाया जाता , स्टाइनटाल कृत स्पेसिमेन का पेज ३। —३ ना. गे. वि गो १८९४, ४८० में स्टेन कोनो का लेख। —४ एपिग्राफिका इण्डिका १, ३ में ब्यूलर ने अशुद्ध विचार प्रकट किये हैं।

§ २१७—सस्कृत के मूर्धन्य वर्ण बहुत ही कम और केवल कुछ बोलियो में दत्य वर्णों में परिणत होते हैं। पै० में **टु** का **तु** होता है (हेच० ४, ३११), इसमे **कुतुम्बक** और **कुटुम्बक** दो रूप पाये जाते हैं। पै० और चू०पै० मे **ण** का **न** बन जाता है। पै० में **गुनगनयुत्त** = **गुणगणयुक्त** , **गुनेन** = **गुणेन** , **तलुनी** = **तरुणी**, **विसान** = **विषाण** और **गहन** = **ग्रहण** (वर० १०, ५ , चड० ३, ३८ , हेच० ४, ३०६ , ३०९ और ३१३ , रुद्रट के काव्यालकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका) है, चू०पै० में **मक्कन** = **मार्गण**, **पनय** = **प्रणय**, **नखतप्पनेसुं** =

नमस्वर्पयेषु और पातुम्प्खेपेम = पावोत्क्षेपेण (हेच ४, ३२५ और ३२६) हैं। वाग्भटालंकार २, १२ पर सिंहदेवगणिन् की टीका में बताया गया है कि माग० में भी ण का म हो जाता है तलुन = तरुण है। सिंहदेवगणिन् ने माग० को पै के साथ नत्थी किया है। पै० और चू०पै को छोड़ अन्य प्राकृत भाषाओं की हस्तलिखित प्रतियों के ण्ण के स्थान पर ञ माग , जै महा० और जै शौर० हस्तलिखित प्रतियां मानो ण्ण के स्थान पर (§ २२४) बहुधा ण्ण ही लिखती हैं : निसण्ण = निषण्ण, पडिपुण्ण = प्रतिपूर्ण, और वण्ण = वर्ण ; गौण ण्ण में भी यह परिवर्तन होता है जैसे, अण्ण = महा और शौर अण्ण = संस्कृत अन्य आदि-आदि।

§ २२८—यदि व्याकरणकार ठीक बताते हों, और उत्तर भारत की हस्तलिपियां उनके साथ बिलकुल मिलती-जुलती हैं, तो मूर्धन्य वर्ण बहुत विस्तार के साथ दंत्य वर्ण में परिवर्तित हो जाने चाहिए क्योंकि उनके बताये हुए नियम के अनुसार ट ड और ण का परिवर्तन ळ में हो जाता है (वर २, २२ और २३ ; चंड ३, २१ हेच १, १९७ ; १९८ २ २ २ ३ क्रम २, १२ और १३ ; मार्क पन्ना १६)। किन्तु ळ के स्थान पर सर्वत्र जैसा ऐसे अवसरों पर पाली[1] में भी होता है, ळ लिखा जाता है। उत्तरी भारत की हस्तलिपियां इस ळ और अनुनासिक (§ १७९) को इतना कम जानती हैं कि वे ऐसे स्थलों में भी जैसे हेमचन्द्र ४,३ ८, जिसमें बताया गया है कि पै में ल के स्थान पर ळ हो जाता है वहां भी इस ळ का प्रयोग नहीं करतीं[1]। त्रिविक्रम की ग्रंथ-हस्तलिपियां ऐसे स्थलों पर ३, २, ४८ (हस्तलिपि बी ११) सर्वत्र ळ लिखती हैं परंतु हेमचन्द्र १, १९७ और २ २ में, जो त्रिविक्रम से मिलते-जुलते सूत्र हैं, उनके उदाहरणों में भी कुछ अपवाद छोड़कर, जो लेखक की भूलें हैं ळ लिखा गया है। इसका कारण है लेखकों का एक नियम का पालन न करना और इस विषय पर निश्चित नीति का अनुसरण न करना[1]। उक्त उदाहरणों में अपवाद छोड़ कर सर्वत्र ळ लिखा गया है। ग्रन्थ-प्रदर्शनी के संस्करण में सर्वत्र ळ का ही प्रयोग है। त्रिविक्रम के अपने ही सूत्र १ १ २४ की यही दशा है : उसमें आया है टोड् घडिडाढ्यौ ळः। हस्तलिखित प्रतियों का पाठ और छपे संस्करणों में मेल नहीं है, भिन्नता पायी जाती है उदाहरणार्थ हेमचन्द्र १, २ २ में है कीलइ = क्रीडति किंतु त्रिविक्रम १ ३ ३ में हस्तलिखित प्रति ए में कीलइ है और बी में कीळइ। शकुन्तला १९ , १ में (बंगला और नागरी हस्तलिखित प्रतियों में) है, कीळणयं = क्रीडनकम् और १५५ १२ में आया है कीळिस्सं अथवा अशुद्ध रूप कीडिस्सं = क्रीडिष्यामि। दक्षिणी भारत की हस्तलिपियों में से ग्रंथ्यलिपि एक[1] में कीळ णिज्जं = क्रीडनीयम् है किंतु साथ ही इसमें कीडिस्सं रूप भी मिलता है। तेलुगू हस्तलिपि एफ में किळणिज्जं और कीळिस्स रूप पाये जाते हैं। पूना के संस्करण में कीळणं रूप आया है किंतु साथ ही कीडिस्सं भी है। मलयालम हस्तलिपि पी में किळणीअं रूप देखने में आता है किंतु इसके साथ ही कीळिस्स रूप है। मद्रास में १८७४ में छपे पुस्तक संस्करण २ ४ में कीळणीअम रूप छपा है और ५४ १ ० में कीळिस्सं रूप है। विक्रमोर्वशी ४१ ७, ५२, के कीडिस्सं, कीलमाणा

के स्थान पर दक्षिण भारतीय सस्करण के ६४३, १, ६५०, १७ मे **कीळिस्सं**, **कीळमाणा** रूप आये है, और ३१, १७ के **कीलापव्वदपेरन्ते = क्रीडापर्वतपर्यन्ते** के स्थान पर ६३६, १७ में **कीळापव्वते = क्रीडापर्वते** मिलता है। लदन के इडिया ऑफिस की तेलगू हस्तलिपि मे मालविकाग्निमित्र ६०, ११ में **कीलिस्सं** रूप मिलता है। माल्तीमाधव १४२, १ के **कीलणादो** के स्थान पर तेलगू सस्करण १२३, ८ में **कीळणादो** रूप छपा है आदि-आदि। अन्य शब्दों की भी यही दशा है। दक्षिण भारतीय पाठों मे अधिकाश मे **ळ** है जिसे वे उन शब्दों मे काम में लाते हैं जहा पर सस्कृत में **ण** आता है अर्थात् वे उदाहरणार्थ **तरळ, मराळ, सरळ** आदि रूप लिखते हैं। भट्टिप्रोलु शिलालेख एक ए[5] मे **फाळिग** रूप आया है जो = **स्फाटिक** है, जब कि पल्लवदानपत्र में **पिला=पीडा** (६, ४०) है, इस स्थान पर **पीळा** अपेक्षित है[6]। पाली के समान ही प्राकृत में भी **ट** और **ड** के लिए **ळ** का व्यवहार किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि यहा वर्ण-वर्ग में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जब हेमचन्द्र के अभिधानचिन्तामणि २५८ (बोएटलिक द्वारा सपादित सस्करण का पेज ३२२) की टीका, सरस्वतीकठाभरण पेज ९८, वाग्भट, अलकारतिलक पेज १४, साहित्यदर्पण २६१, ११ में बताया गया है कि **ड** और **ल** एक समान हैं, इनमें भेद नहीं है और कालिदास ने रघुवश ९, ३६ में **भुजलताम्** और **जडताम्** का तुक या मेल ठीक समझा है (इस सबध मे मल्लिनाथ **डलयोर् अभेदः** कहता है), तो इसका स्पष्टीकरण इसी तथ्य द्वारा होता है कि उत्तरभारत की पूर्वमध्यकालीन सस्कृत की लिपि और उच्चारण से **ळ** लुप्त हो चुका था। इससे नवीन भारतीय भाषाओं के विरुद्ध कुछ प्रमाणित नहीं होता केवल प्राकृत[7] के रूप पर प्रकाश पडता है। इस सबध में § २३८ और २४० की तुलना कीजिए।

१ ए० कून कृत बाइत्रैगे पेज ३६ और उसके बाद ए० म्युलर कृत सिम्पलिफाइड ग्रैमर पेज २७। — २ इस नियम पर सिंहराजगणिन् की टीका में उसकी आलोचनात्मक टिप्पणिया। — ३. इस प्रकार, उदाहरणार्थ, १, २, ३० में ए हस्तलिपि में **वलहामुहं** है, बी में **वळहामुहं** रूप है, ए में **गलुलो** है, बी में **गरुळो = गरुडः**, ए में **तलाअं**. बी में **तळाअं = तडाकं** है, १, २, २४ में ए में **वलिस** तथा बी में **वळिसं = बडिशम्** है आदि आदि। — ४. हस्तलिपियों की पहचान के लिए उनके नाम-विभाग के विषय में ना० गे० वि० गो० १८७३, १९० और उसके बाद का पेज देखिए। — ५. एपिग्राफिका इंडिका २, ३२४। — ६ शिलालेखों में **ळ** के प्रयोग के संबध में एपिग्राफिका इंडिका २, ३६८ में ब्यूलर का लेख, फ्लीट CII (?) ३,४,२६९। — ७. गो० गे० आ० १८७३ पेज में पिशल का मत, हेमचन्द्र १, २०२ और ४, ३२६ पर पिशल की टीका।

§ २१९—ढक्की और माग० को छोड अन्य प्राकृत भाषाओं में **श** और **ष**, **स** में परिणत हो जाते हैं, इसका परिणाम यह हुआ है कि अधिकाश प्राकृत भाषाओं में **श, ष** और **स** में से केवल **स** ध्वनि रह गयी है[1] (वर० २, ३, हेच० १, २६०;

क्रम० २, १०१ मार्क० पन्ना १८)। पल्लवदानपत्रों में सिवखंधवमो = शिवस्कन्धवर्मा (५, २), विसये = विषये (५, ३), पेसण = प्रेषण (५, ६), यसो = यशः (६, ९), सासणस्स = शासनस्य (६, १), सत = शत (६, ११), कोसिक = कौशिक (६, १६), साक = शाक (६, १४), विसय = विषय (६,१५) हैं, इत्यादि। महा में असेस = अशेष (गउड० ; हाल), आसी विस = आशीविष (रावण), देस = देश (गउड हाल रावण०), घोस = घोष (गउड हाल), पसु = पशु (गउड), मसी = मषी (हाल ; रावण०), महिस = महिष (गउड० ; हाल रावण) रोस = रोष (गउड हाल ; रावण), सिसिर = शिशिर (गउड हाल रावण), सिसु = शिशु (गउड)। शौर में : किदविसेसमा सोहदि = कृतविशेषका शोभते (मृच्छ २,२१), परिसीलिदासेसदेसंतरव्ववहारो = परिशीलिताशेषदेशांतरव्यवहारः (ललित ५६ , १९), ससिसेहरवल्लहा = शशिशेखरवल्लभा (ललित ५६१, ९) और सुस्सुसिदपुव्वो सुस्सुसिदव्वो = शुश्रूषितपूर्वः शुश्रूषितव्यः (मृच्छ० ११, २१) हैं। यही नियम अ माग , जै महा , जै शौर , पै , चू पै , आ , दाक्षि० और अप में भी लागू है।

§ २२ —दक्की में ष का स हो हो गया है किन्तु श वर्णो का त्यों बना रह गया है पस, पसु और पसो = एष (मृच्छ २ , १ ११, ८ ; १४, १७ ; ३९, १६ ; ३६, २१) ; पुलिसो = पुरुषः (मृच्छ १४,१२); मूसिदो = मूषितः (मृच्छ १८, १८ ३१, १) समविसमं और सकलुसमं [यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए।] = समविषमम् और सकलुषकम् (इसी ग्रंथ में अइक्कसयं = अतिकृष्णम् है मृच्छ १ ८ और ९) हैं किंतु आवंशामामि [यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए।] = आवर्शयामि (मृच्छ १४, २५) ; जशो [यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] = यशः (मृच्छ १ , ९) ; वशासुवण्ण = वशासुवर्ण (मृच्छ २९ १५ ; १ , १ ; ११ ४ आदि-आदि) ; शलणं = शरणम् (मृच्छ १ , ४) ; शुण्णु = शून्यः (मृच्छ १ , ११) और शोल = शौल (मृच्छ १ १७) है। इस संबंध में § २५ भी देखिए।

§ २२१—जब ये असंयुक्त रहते हों तो माग में ष और स-कार शब्द के आरंभ या मध्य में श का रूप धारण कर लेते हैं ; और संस्कृत का श ज्यों का त्यों बना रहता है (वर ११ १ ; चंड ३, ३९ हेच ४, २८८ क्रम ५, ८९ ; मार्क पन्ना ७४ रुद्रट के काव्यालंकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका)। यह नियम उस अवस्था में भी लागू होता है जब उक्त ध्वनियां प र, ल और य के साथ संयुक्त होती हैं अथवा व्यंजन-समूह अंश स्वर द्वारा अलग-अलग हो गया हो या ऐसा हो गया हो कि प्राकृत के ध्वनि नियमों के अनुसार शब्द के संयुक्त अक्षर सरल बन गये हों : ईदिशश्श अकय्यश्श = ईदृशस्याकार्यस्य (शकु ११९ ५) अवश लोयशप्पणीय = अयसरोपसर्पणीय (शकु ११५, १), केशेशु = केशेषु (मृच्छ १२२,२२ ; वेणी ३५,११) ; दुश्शाशणश्श = दुःशासनस्य (मृच्छ

१२, १५ , वेणी० ३५, १२); पुलिश = पुरुप (§ १२४), भूशणशद्द = भूपणशब्द (मृच्छ० १४, २३), महिशमहाशुल = महिषमहासुर (चडकौ० ६८, १६) ; मानुशमंश = मानुपमांस (वेणी० ३३, ३), माशलाशि = माप-राशि (मृच्छ० १४, १०) ; लाएशि = राजर्पि (वेणी० ३४,१), लोशग्गि = रोषाग्नि (मृच्छ० १२३,२), लोशामलिपलव्वश = रोपामर्शपरवश (मल्लिका० १४३, ११), वलिशशद=वर्पशत (वेणी० ३३,४), विशकण्णआ=विपकन्या (मुद्रा० १९३, ३ , १९४, ६), विशेश = विशेप (मृच्छ० ३८, १३), विश्शावशुश्श = *विश्वावसुष्य = विश्वावसोः (मृच्छ० ११, ९), शलिल = सलिल (मृच्छ० १३६, ११ , १५८, १३), शलील = शरीर (मृच्छ० १२४, २१ , १२७, ५ , १४०, १० , १५४, १० , वेणी० ३४, १), सहश्श = सहस्र (§ ४४८), शमश्शशदु = समाश्वसितु (मृच्छ० १३०, १७), शमाशाशी-अदि = समाश्वास्यते (वेणी० ३४, १३), शिलशि = शिरसि (मृच्छ० ११६, १५), शिलिशोमेशलएव = श्रीसोमेश्वरदेव (ललित० ५६६, ६), शिवि-लणिवेश = शिविरनिवेश (ललित० ५६५, ६), शोणिदवशाशमुद्दुश्शंचल = शोणितवशासमुद्रदुःसंचर (वेणी० ३४, ५) और शोशावेदुम् = शोपयितुम् (मृच्छ० १४०, ९) हैं।

२. सरल व्यंजनों के सम्बन्ध में

§ २२२—किरात शब्द के क का च हो जाता है : महा० में चिलाअ रूप है (वर० २, ३३ [भाम० ने इस स्थान पर और २, ३० में चिलाद दिया है] ; हेच० १, १८३ ; २५४ , क्रम० २, ३५ और ४१ , मार्क० पन्ना १७ [चिलाद] ; रावण०), अ०माग० में चिलाय रूप मिलता है (पण्हा० ४२ , पण्णव० ५८), स्त्रीलिंग में चिलाई रूप देखा जाता है (ओव०), चिलाइया भी काम में लाया जाता है (विवाह० ७९१ , राय० २८८ , नायाध० , ओव०), इस सबघ में ऋषभपचाशिका ३८ की टीका में आये हुए चिलातीपुत्र की भी तुलना कीजिए। 'शिव' के अर्थ में हेमचन्द्र और मार्कण्डेय के अनुसार क का च नहीं होता, क ही बना रहता है (इस विषय पर हेमचन्द्र १, १३५ में दिया गया है : किराते चः ॥१८३॥ किराते कस्य चो भवति ॥ चिलाओ ॥ पुलिन्द एवायं विधिः। कामरूपिणि तु नेष्यते। नमिमो हर-किरायं—अनु०)। इस प्रकार महा० में किराअ का व्यवहार है (गउड० ३५), मार्क० के अनुसार जाति के नाम में भी क बना रहता है : किराद जाति के नाम के लिए आया है (बाल० १६८,२ , कर्पूर० ९०, ८)। पाइयलच्छी २७३ में किराय रूप दिया गया है। महा० ओवास में क के स्थान में व बैठ गया है। यह ओवास = अवकाश (पाइय० २६१ , गउड०, हाल , रावण०), इसके साथ साथ ओआस रूप भी चलता है (हेच० १, १७२ , गउड० , हाल ; रावण०), महा० और शौर० में अवआस रूप पाया जाता है (हेच० १, १७२ ; गउड० , मृच्छ० ४४, १९ , विक्रमो० ४१, ८ , प्रबोध० ४६, २)। जै०महा० में

८४, उत्तर० ८८४ ; ओव०, आव० एर्त्से० ११, ४४ और ४५, एर्त्से०), अ० माग० में **तळाय** रूप भी पाया जाता है (ओव०), **तडाग** भी पाया जाता है (आयार० २, १, २, ३), महा० में **तळाअ** रूप है (वर० २, २३, चड० ३, २१ पेज ५०, हेच० १, २०२, क्रम० २, १३, मार्क० पन्ना १६, गउड०, हाल); शौर० में **तडाग** आया है (मृच्छ० ३७, २३, १५१, १५), महा० **दूहव=दुर्भग** (हेच० १, ११५, १९२, कर्पूर० ८६, २) और इस रूप की नकल पर **उ** स्वर को दीर्घ करके **सूहव = सुभग** रूप भी चलता है (हेच० १, ११३ और १९२)। अ० माग० और जै०महा० रूप **अगड = अवट** मे **व** के स्थान पर **ग** आ बैठा है (आयार० २, १, २, ३, ओव०, एर्त्से०), इसके साथ साथ **अयड** रूप भी पाया जाता है (देशी० १, १८, पाइय० १३०) और इसका साधारण प्रचलित रूप **अवड** चलता ही है, अ०माग० **णिण्हग = *नैन्हव**[1] (= नास्तिक : ओव० § १२२), इसके साथ साथ अ० माग० में **निण्हवेज्ज** भी देखने में आता है (आयार० १, ५, ३, १), **निण्हवे** भी है (दस० ६३१, ३१), **अनिण्हवमाण** भी चलता है (नायाध० § ८३), इस सबध में § ४७३ भी देखिए, अ०माग० **अण्हग = आस्रव** (पण्हा० ३२४), इसके साथ साथ **अण्हय** रूप भी काम में आता है (आयार० २, ४, १, ६, पण्हा० ७, ओव०)[3], **पण्हय = प्रस्रव** (विवाह० ७९४) है, अ० माग० में **महाणुभाग = महानुभाव** (भग०, ओव०)[4] है। § २५४ में अ०माग० रूप **परियाग** और **नियाग** की भी तुलना कीजिए।— महा० में **पुण्णाम = पुंनाग** (हेच० १, १९०, रावण०) इसके साथ-साथ अ०माग० में **पुन्नाग** का भी प्रचलन है (आयार० २, १०, २१ ; नायाध० ६९९ [यहा **पुण्णाग** पाठ आया है]), शौर० में **पुण्णाअ** रूप है (मल्लिका० ११६, ९) और **भामिणी = भागिनी** (हेच० १, १९०), इसके साथ-साथ महा० और शौर० में **मन्दभाइणी** रूप भी मिलता है (हाल, मृच्छ० २२,२५, १२०,६, १७०,३ और २५, विक्रमो० ८४, २१ तथा अन्य अनेक स्थलों पर), ये उस रूप-विकास की गति की सूचना देते हैं जो **पुण्णाग**, ***पुण्णाव** और **पुण्णाम** के क्रम से चला (§ २६१)[5]। सस्कृत में जो **पुंनामन्** शब्द आया है वह प्राकृत से लिया गया है।— यह माना जाता है कि **छाल = छाग** और **छाली=छागी** (हेच० १, १९१) ; ये रूप § १६५ के अनुसार **छागल** और **छागली** से व्युत्पन्न हुए हैं। माग० रूप **छेलिआ** के स्थान पर (लटक० १२, १४) **छालिआ** पढा जाना चाहिए। शौर० में **छागला** रूप है (मृच्छ० १७, १५)। **ग** के स्थान पर **घ** आने के सम्बन्ध में § २०९ देखिए। § २३० की तुल्ना कीजिए।

१. आस्कोली कृत क्रिटिशे स्टुडिएन पेज १२६ की नोटसंख्या ३५ अशुद्ध है।—२. ऐसा नहीं, यह = निह्नव (लौयमान द्वारा सपादित औपपातिक सूत्र में यह शब्द देखिए), वहां यह शब्द रखा जाना चाहिए। § ८४ के अनुसार ऐ के स्थान पर इ आ गया है। —३. लौयमान के औपपातिक सूत्र में अशुद्ध है। —४. लौयमान के औपपातिक सूत्र में यह रूप शुद्ध है, इस पुस्तक में अणुभाग शब्द देखिए। भगवती २,२९० में वेबर का ध्यान संस्कृत अनुभाग

की ओर गया है। मैं यह नहीं समझ पाया कि लौयमान के औपपातिक सूत्र में पूसमाणग=पुष्यमानध की समानता क्यों बतायी गयी है। ओववाइयसुत्त § ५५ में पूसमाणग से पहले को वर्धमाणग रूप आया है उससे यह संभव-सा बताया है कि यह शब्द पुष्यमाण + क होगा। लौयमान के मत के अनुसार इसमें ष की विष्पुति किसी प्रकार नहीं मानी जा सकती। —५. एस० गौल्द स्मित कृत प्राकृतिका के पेज १५ की तुलना कीजिए; रावणवहो की शब्द-सूची, पेज १७२ म, नोटसंख्या १ किन्तु इसमें मूल से यह बताया गया है कि व का शब्द में *व्ययसम बीच में छूट का स्थान भरने के लिए हुआ है।* इस संबंध में § २१ की नोटसंख्या २ की तुलना कीजिए।

§ २२४—अ माग० रूप आउण्टम हेमचन्द्र १, १७७ के अनुसार=आकुम्चन नहीं माना जाना चाहिए परन्तु यह =*आकुण्टन है, जो धातुपाठ २८, ७३ के कुट कौटिल्ये धातु से बना है और जो धातुपाठ ९, १७ के कुठि वैकल्ये के समान है। तात्पर्य यह कि उक्त रूप वर्तमानवाचक आकुण्ट से बनाया गया है जो अ माग रूप आउण्टिय और आउण्टेखा में पाया जाता है (विवाह० ११५१ और ११५२)[1]। इसी धातुमें संस्कृत शब्द कुटिल, प्राकृत रूप कुडिल्ल और कुडिल्लम (=कुटिलः देशी २,४०; पाइय १५५) हैं, कोडिल्ल (=पिशुन : देशी० २, ४०) और कुण्टी (=पोटली : देशी २, ३४) निकले हैं।—हेमचन्द्र १, १९१ के अनुसार खसिअ=खचित है, किन्तु अधिक सम्भव है कि यह रूप हेमचन्द्र १, १८१ के अनुसार =कसित हो, इस सम्बन्ध में § २ ६ की तुलना कीजिए।—अ माग० में पिसल्ल (पण्हा० ७९), सपिसल्लग (पण्हा० ५२५) जिन रूपों को हेमचन्द्र १, १९१ में =पिशाच मानता है, ये § १५, १९५ और १९४ के अनुसार=पिशाचालय के होने चाहिए। नियम के अनुसार पिशाच महा और शौर रूप पिसाअ का या मूल रूप होना चाहिए (हाल; प्रबोध ४६, २; मुद्रा० १८६ ४ [यहाँ पिशाच रूप मिलता है] १९१, ५ [यहाँ भी पिसाच आया है]), अ माग और जै महा रूप पिसाय (ठाणंग० ९; ११८; ३२९; पण्हा० १७२; ३१०; ११२; उवास०; ओव०; पर्से०) है।

1. आउट्टावेमि (?; भापाप १ ३ डीज में आउंट्टावेमि रूप है), आउटइ और आउटेहि (?, भापाप १ ५) अशुद्ध रूप हैं इनके स्थान पर क्रमशः आउट्टावेमि आउट्टेइ और आउट्टेन्ति रूप आने चाहिए, जैसा कि आउट्ट रूप (सूयग १५२, सूय ७ १) आउट्टामो (आयार० १, १, २ २) और आउटिसए (कप्प एस § ७९) में आये हैं, इनके दूसरे इसी प्रकार के रूप पिउट्टामि (विवाह ९१७) पिउट्टय (एस ७०९) मिलते हैं। ये रूप गृत् धातु से सम्बन्ध रखते हैं।

§ २२५—शब्द के आरम्भ में छ अपरिवर्तित बना रहता है। शब्द के मध्य में यह संस्कृत के समान ही प्राकृत में भी च्छ रूप ग्रहण कर लेता है। अनुनासिक स्वरों और अनुनासिक के बाद यह छ का छ ही बना रहता है भले ही यह अधिक हो

अथवा गौण। इस रीति से महा० छल (गउड०, हाल), छवि (गउड०, रावण०); छाआ=छाया (गउड०, हाल, रावण०), छेअ = छेद (गउड०; हाल; रावण०), इच्छइ = इच्छति (हाल, रावण०); उच्छंग = उत्संग (गउड०; हाल, रावण०); गच्छइ = गच्छति (हाल); पुच्छइ = पृच्छति (रावण०), मुच्छा = मूर्छा (रावण०), पिंछ=पिच्छ, पुंछ = पुच्छ (§ ७४) और पुञ्छइ= प्रोञ्छति (हेच० ४, १०५) है। माग० को छोड अन्य प्राकृत भाषाओं मे भी यही नियम लागू होता है: अ०माग० में मिलक्खु और इसके साथ साथ मिलिच्छ रूप पाया जाता है, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और अप० में मेंच्छ और अ०माग० रूप मिच्छ = म्लेच्छ (§ ८४; १०५ और १३६) है, इन सब की व्युत्पत्ति इन सब के मूल रूप *म्लस्क[1] से स्पष्ट हो जाती है। माग० मे मौलिक और गौण च्छ का श्च रूप हो जाता है (हेच० ४, २९५, रूद्रट के काव्यालकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका): इश्चीअदि = *इच्छ्यते = इष्यते (शकु० १०८, ६), गश्च=गच्छ (हेच०, ललित० ५६६, १८, शकु० ११५, ४), गश्चम्ह = गच्छाम (शकु० ११८, ७), पुश्चन्दे = पृच्छन् (ललित० ५६५,२०) है, मश्च रूप साधारण प्राकृत शब्द मच्छ से निकला है = मत्स्य (मृच्छ० ११, ११ और १२ [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए], शकु० ११४, २ और ९) है, मश्चली (= मछली : शकु० ११८, २) = गुजराती माछली, हिंदी मछली और सिन्धि मछिड़ि[2], आवण्ण-वश्चल = आपन्नवत्सल, पिश्चिल = पिच्छिल (हेच०, नमिसाधु), उश्चलदि= उच्छलति, तिलिश्चि पेंस्कदि = महा० तिरिच्छि पेच्छइ = तिर्यक् प्रेक्षते, पुश्चदि = पृच्छति (हेच० ४, २९५) हैं, यीवन्तवश्च = जीवद्वत्सा (हेच० ४, ३०२) है। छपे ग्रथों के पाठो में अधिकाश में च्छ छपा है किंतु हस्तलिपियों मे इस नियम के चिह्न स्पष्ट पाये जाते है। इस प्रकार गच्छशि, गच्छ (मृच्छ० २०, १४) के लिए कुछ हस्तलिपियों में गश्चसि रूप लिखा हुआ पाया जाता है, गश्छसि, गश्च रूप भी लिखे मिलते हैं, मच्छाशिका के स्थान पर (मृच्छ० १०, २३) स्टेन्त्सलर द्वारा सपादित मृच्छकटिक पेज २४१ में पृथ्वीधर ने मश्चाशिका रूप दिया है, गच्छ (मृच्छ० १३२, १६) के स्थान पर गश्च और गश्श रूप मिलते हैं, आअच्छामि (मृच्छ० १३२, १७) के लिए आअश्चामि और अअश्वामि रूप आये हैं, आग-च्छदि (मृच्छ० १३३, ८) के लिए आगश्चदि, आगश्छदि रूप लिखे हैं आदि-आदि[3]। निम्नलिखित शब्दों में आरभ का वर्ण ज्यों का त्यो बना रह जाता है: छः छाल (हेच० ४,२९५), छाआ = छाया (मुद्रा० २६७,२)। छेदअ शब्द का छ जो गंठिछेदअ = ग्रंथिछेदक में आया है, शब्द का आरभिक वर्ण माना जाना चाहिए (शकु० ११५, ४ और १२)। रावणवहो का श्छेदआ आभास देता है कि इस छेदअ का रूप भी सभवत. श्चेदअ रहा हो। इस सबध मे § ३२७ भी देखिए।

१ ए० कून का कू० त्सा० २५, ३२७ में लेख। —२. शकुतला पेज १९९ में पिशल की नोटसख्या १। —३ गो०.गे० आ० १८८१, पेज १३१९ में पिशल का मत।

§ २२६—अञ्ज् धातु और उससे निकले उपसर्गवाले नाना रूपों में नाना प्राकृत बोलियों में ञ के स्थान पर इस ञ का प्राचीन और मूल वर्ण ग बना रह गया अ माग० अब्भंगेइ (आयार० २, २, १, ८ ; २, १५, २०), अब्भंगेॅत्ता = अभ्यङ्क्ष्यात्, टीका में लिखा गया है = अभ्यंग्यात् (आयार २, २, १, ८), अब्भंगेत्ता = *अभ्यञ्जित्वा (आयार० २, १, १, १ ; ठाणंग० १२६), अब्भ गावेइ = अभ्यञ्जयति (विवाग २१५ ; पाठ में अब्भिगावेइ है) ; जै०महा में अब्भगिज्जइ = अभ्यज्यते (एर्से ५९, १) है, अब्भंगिउं रूप भी मिलता है (एर्से ५७, १) ; अ माग और जै महा में अब्भंगिय रूप पाया जाता है (ओव [यहां अब्भिगिय पाठ है] कप्प० ; नायाध [यहाँ भी पाठ में अब्भिगिय है], एर्से) उक्त दोनों प्राकृतों में अब्भंगण = अभ्यञ्जन रूप भी देखा जाता है (उवास० ओव कप्प०, एर्से) माग० में अब्भंगिद = अभ्यक्त (मृच्छ ६९, ७) है ; अ०माग में निरंगण रूप आया है (ओव०), इसके विपरीत महा में निरंजन रूप व्यवहार में आता है (गउड हाल)। स्वयं संस्कृत शब्द अभ्यङ्ग = अ माग रूप अब्भंग में कंठ्य वर्ण आया है (ओव)। सूय० २४८ में मुहभिंजाए छपा गया है। इस साधारण धातु और उससे निकले सब प्राकृतों के नाना रूपों में केवल ञ आता है।—अ माग० रूप ओमुग्गनिमुग्गिय जिसका संस्कृत रूप टीकाकार ने मग्नोन्मग्न देकर इस शब्द की व्याख्या की है = *अव-मग्ननिमग्नित ठीक वैसे उम्मग्गा और उम्मुग्गा = *उन्मग्ना (§ १ ४) हैं।

§ २२७—हेमचन्द्र ४, २२९ में बताया है कि सृज् धातु के ज का र हो जाता है। उसने अपने प्रमाण में उदाहरण दिये हैं : निसिरइ, वोसिरइ और वोसिरामि = व्युत्सृजति और व्युत्सृजामि, ये रूप अ माग और जै महा में बार-बार पाये जाते हैं। इस प्रकार अ माग रूप निसिरामि (आयार २,१,१, ७) मिलता है, निसिरइ देखा जाता है (पण्णव १८४ और उसके बाद; विवाह० १२ और उसके बाद ; २१२ २५४ ; १२१७ और १२७१ ; नायाध), निसिरामो आया है (आयार १, १, ०, १ ; २, २, २, १), निसिरिंति काम में आया है (सूय ६८), निसिरेॅज्जा (आयार २, १, १ , १ ; २, ५, २, १ ; २ ६, १ ११ ; सूय ६८२ ; ठाणंग ५९ [यहां पाठ में निसिरिज्जा रूप आया है]) भी देखा जाता है, निसिराहि (आयार २, १, १ , १) भी आया है, निसिर देखने में आता है (दस ६१२, २८), निसिरंत का प्रयोग भी है (सूय ६८) निसिरित्ता० (= निकल करके विवाह १२५१), निसिरिज्जमाण (विवाह १२२), निसिरावे न्ति (सूय ६८) रूप हैं, संज्ञा-रूप निसिरण* (दस नि ६५८, ११) मिलते हैं। अ माग में वोसिराम रूप पाया जाता है (आयार पेज ११२ २ ; १३३, ६ ; १३४, १ ११६ ५ ; नायाध ११६९ ; विवाह १०३ ; दस ६१४, १९ ; ६१६, २ ; ओव) ; जै महा में वोसिरइ

* यह रूप कुमाउनी बोली में आज भी निकलना और डरने के अर्थ में काम में आता है। इससे रिशल की पुष्टि होती है कि यह सृ धातु से व्युत्पन्न है।—अनु

रूप है (एर्त्से० ५०, ३७), अ०माग० में **वोसिरेंज्जा** भी है (आयार० २, १०, १ और उसके बाद), **वोसिरे** (आयार० १, ७, ८, २२ , सूय० २१४ , उत्तर० ७३७ और ९२३ ; दस० ६११, १४), जै०महा० में **वोसिरिय** रूप आया है (आव० एर्त्से० ११, १९ , एर्त्से० ५०, ३६), अ०माग० में **विओसिरे** भी चलता है (आयार० २, १६, १)। इन सब रूपों की व्युत्पत्ति **सृज्**[1] धातु से बताना असभव है। अ०माग० और जै०महा० रूप **समोसरिय = समवसृत** (विवाग० १५१ , उवास० § २ , ९, ७५ और १८९ , निरया० § ३ , आव० एर्त्से० ३१, २२ , इस सबध मे § ५६५ की भी तुलना कीजिए) और इसके साथ साथ बार बार आनेवाला रूप **समोसढ = समवसृष्ट** (§ ६७), इसके अतिरिक्त अ०माग० **समोसरेंज्जा, समोसरिउकाम** (ओव०) तथा **समोसरण** (भग० , ओव०) यह प्रमाणित करते हैं कि अ०माग० और जै०महा० में **सृज्** और **सृ** धातु आपस मे मिल्कर एक हो गये हैं। **सृ** से **सरइ = सरति** रूप बना जिसका अर्थ 'जाना' और 'चल्ना' होता है किन्तु **सिरइ = सरति** का अर्थ है 'किसी को चलाना', 'छोड देना' आदि। इन धातुओं के आपस में मिल जाने का प्रमाण अ०माग० रूप **निसिरिज्जमाण** और इसके पास में ही **निसिट्ठ** (विवाह० १२२) और **निसिरइ** (विवाह० २५४) के पास ही **निसिट्ठ** रूप (विवाह० २५७) आने से भी मिलता है।

1. ए० म्युलर कृत बाइत्रैगे पेज ६५ ; लौयमान द्वारा सम्पादित औपपातिक सूत्र में वोसिर और विओसग्ग रूप देखिये , याकोबी द्वारा सम्पादित औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन में वोसिरइ शब्द देखिए।

§ २३६—माग० में **ज** का **य** हो जाता है (वर० ११, ४ , हेच० ४, २९२, क्रम० ५, ९० , रुद्रट के काव्यालकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका)। **याणिदव्वं = ज्ञातव्यम्, याणिश्शम्ह = ज्ञास्यामः, या [णे] = जाने, याणिय्यदि = ज्ञायते, याणिदं = ज्ञातम्, यम्पिदेन = जल्पितेन** (ललित० ५६५, ७, ९ , १३, ५६६, १ , ८ , १२) रूप मिलते हैं , **याणादि = जानाति** (हेच० , नमिसाधु), **यणवद = जनपद** (हेच०, नमिसाधु) , **यलहल = जलधर** (हेच० ४,२९६) हैं , **यायदे = जायते, याआ = जाआ** रूप देखने में आते हैं (हेच०)। नाटकों की हस्तलिपिया, नाममात्र के अपवाद छोडकर माग० में केवल **ज** लिखती हैं क्योंकि नवीन भारतीय भाषाओ में बहुधा **य** और **ज** आपसे घुलमिल कर एक हो गये है[1]। यह वास्तवमें प्रतिलिपि लिखनेवालों की भूल है,[2] क्योंकि व्याकरणकारों के मतानुसार सर्वत्र **य** बैठाया जाना चाहिए, जैसा कि हमने इस व्याकरण में किया है। इस नियम के अनुसार हमें, उदाहरणार्थ **जाल** (शकु० ११४, २) के स्थान पर हस्तलिपि **आर** के साथ **याल** लिखना चाहिए, **जमदग्गि** (मृच्छ० १२, १२) के लिए **यमदग्गि, जीअदि** (मृच्छ १२, २०) के स्थान पर **यीअदि, जाश्णामाशि** की जगह (वेणी० ३४, १८) **याणाशि, जोइस** के लिए (मुद्रा० १७७, ४) **योइश = ज्योतिष, जिण** के बदले (प्रबोध० ४६, १२) **यिण, जणेहिं जम्मन्तल**–(चंड० ४२, ११)

है), शौर० में **फडिअ** रूप (§ २०६) सभवत. अशुद्ध है। —**फालेइ** (= फाडना ; चीर फाड करना) हेमचंद्र १, १९८ के अनुसार **पट्** धातु से व्युत्पन्न है, किंतु यह व्युत्पत्ति अशुद्ध है, यह रूप **फल्**, **स्फल्** धातु से निकला है। —**चपेटा** से महा० और अ०माग० मे **चवेडा** रूप बनने के अतिरिक्त (हेच० १, १४६ , हाल , उत्तर० ५९६) **चविडा** और **चविळा** रूप भी निकलते हे (हेच० १, १४६ और १९८)। इस सबध मे § ८० की तुलना कीजिए। बोली के हिसाब से भी **ट** का **ळ** मे परिवर्तन हो जाता है, इस **ळ** के स्थान पर उत्तर भारतीय हस्तलिपियाँ **ल** लिखती हे (§ २२६)। इस नियम से महा० और अ०माग० में **कक्कोळ = कर्कोट** (गउड० , पण्हा० ५२७), अ०माग० मे **कलित्त = कटित्र** (ओव० § १०) , अ०माग० में **खेळ** (=कीचड, कर्दम) = **खेट** (आयार० २,१,५,२,२,१,७ ; ठाणग० ४८३ , पण्हा० ३४३ और ५०५ , अत० २३ ; विवाह० १६४ , उत्तर० ७३४ , कप्प०), **खेळेइ = खेटयति** (विवाह० ११२) हे, अ०माग० मे **पिळाग = पिटक** (सूय० २०८) , **यूळक = जूटक** (मृच्छ० १३६, १५) है, माग० में **शअळ=शकट** (मृच्छ० १२२, १०), इसके साथ-साथ शौर० मे **सअडिआ=शकटिका** है, अ०माग० मे **सगड*** रूप मिलता है, बोली के हिसाब से **सअढ** रूप भी है (§ २०७)। पिगल के अप० मे यह ध्वनि-परिवर्तन विशेष रूप से अति अधिक पाया जाता है · **णिअळ=निकट** (१,१२७ अ, १२९ अ , २, ८४) , **पअळ=प्रकट** (१,७२ , २,९७ और २७२) , **पअळिअ= प्रकटित** (२, २६४) , **फुळ=स्फुट** (२, ४८), **फुळे=स्फुटति**, इस स्थान पर इसका आशय **स्फुटन्ति** से है (२, २३०) , **मक्कळ = मर्कट** (१,९१ और ९९), **वहुळिआ = वधूटिका** (२, ८४)। **वलमोळिअ=वलमोटित** (१, १४० अ) के साथ साथ **मोळिअ = मोटितः** (२, ११२) भी मिलता है जो **मोडिआ** पढा जाना चाहिए अथवा उससे तुक मिलाने के लिए आये हुए **छोडिआ** (एस० गौल्दश्मित्त **लोडिआ** के स्थान पर यह रूप देता है) के लिए **छोळिआ = छोटितः** होना चाहिए। रावणवहो० १०, ६४ मे महा० में **वलामोली** रूप आया है , किंतु इस ग्रन्थ में ही **वलामोडीं** रूप भी पाया जाता है और यही रूप यहा पर पढा जाना चाहिए क्योंकि **मुट्** धातु में सदा **ड** लगता है। इस नियम से महा० में **वलमोडि** (हाल) रूप पाया जाता है , महा०, जै०महा० और शौर० में **वलामोडी** है (देशी० ६, ९२ , पाइय० १७४ , त्रिवि० २, १, ३० , काव्यप्रकाश ७२, १० (§ ५८९ की भी तुलना कीजिए) , कालका० २६०, ३५ , मल्लिका० १२२, ८) , शौर० में **वलामोडिय** रूप है जिसका अर्थ है बाराजोरी करके (माल्ती० ७६, ४ , १२८, ८, २५३, ७ , २३५, ३ , रुक्मिणीप० १५, १३ , २१, ६)', **पच्छामोडिअ** (शकु० १४४, ११) रूप काम में आया है , महा० में **आमोडन** है (गउड०) , माग० में **मोडइश्शं** और **मोडइश्शामि** रूप मिलते हैं (मृच्छ० ११३, १ , १२८, १४),

---

* पहियेदार छोटी अँगीठी को कुमाउनी बोली में **सगड** कहते है। **बलामोडी** का प्रचलन कम होने पर ब्रजभाषा में फारसी मिश्रित **बाराजोरी** उसी अर्थ में चला। यहाँ **बारा= बला**। —अनु०

मोडेमि और मोडिम (मृच्छ० १२८, २ १३७, १) भी चलते हैं। आमोड और मोड (= मूढ़ बालों का जूड़ा ; देशी १, ६२ ; ६, ११७) भी इससे ही संबंधित हैं और ग्रोर० मो`ट्टिम भी इनमें ही है (अनर्घ १५२, ९; रुचिपति ने दिया है मोट्टिम बलात्कारे देशी), मोट्टाअइ=रमते भी इन्हीं में है (हेच ४, १६८)।— करसी (=श्मशान : देशी० २, ६)=*कटशी जो कट (=शव : उदाहरणार्थ विष्णुपुराण ३,१३,१)=प्राकृत कड (शीर्ण मृत ; उपरत : देशी २,५१) है शी (शयन करना लेटना) हेमचन्द्र २,१७४ की हस्तलिपियों में इसका रूप करसी लिखा मिलता है, इस प्रकार ट का ड बनकर र वर्ण में परिवर्तित हो गया है। अ०माग० रूप पुरमेयणी (= नगर : उत्तर ११८) = पाली पुटमेदन[1] में यही परिवर्तन है, ठ का र हो गया है। ठ के स्थान पर ड आ जाने के विषय में § २ ७ देखिए।

१ गो ये आ १८८ , पेज ३५१ और उसके बाद में पिशल के मतानुसार ; वेबर हाल[2] पेज २१ , तथा ग्यूलर के मतानुसार जो अपने संपादित ग्रंथ पाइयलच्छी में बलामोडी के प्रथम पद को पंचमी रूप बलात् से निकलना चाहता है, बला के रूप की व्युत्पत्ति व ढूँढी जानी चाहिए। इससे अधिक शुद्ध इसमें आ उपसर्ग मानना होगा जैसे आमोड और आमोडन से प्रमाण मिलता है। —२ याकोबी ने 'सेक्रेड बुक्स औफ द ईस्ट' भाग ४५, १ २ की नोटसंख्या १ में बहुत अशुद्ध लिखा है। पुट शब्द मूल से पुत्र बन गया है (वर १२ ५ से तुलना कीजिए) और संस्कृत रूप पाठलिपुत्र में आया है। § २९२ की तुलना कीजिए।

§ २३९—शब्द के भीतर स्वरों के बीच में ठ का ढ हो जाता है (§ १९८)। यह बोली के हिसाब से ढ रूप बहुत ही कम ग्रहण करता है : अ माग और जै महा में कुहाड=कुठार (सूय २७४ ; उत्तर ५९६ ; तीर्थ ६ १६ ; १७ और १८) जै महा में कुहाडय रूप भी मिलता है (तीर्थ ७, १) पिढड = पिठर (हेच १, २०१), अ माग में पिढरग आया है (जीवा २५१), पिढडय भी है (उवास § १८४) इसके साथ-साथ पिढर रूप भी काम में आता है (हेच १ २ १ ; पाइय १७२) अ माग में पिढरग भी है (आयार २,१,११,५)। ढ और र के परस्पर परिवर्तन के विषय में § २४१ और २५८ देखिए।

§ २४ —ड जब असंयुक्त और दो स्वरों के बीच में आया हो तो यह नियमानुसार ळ हो जाता है। उत्तर भारतीय हस्तलिपियों और छपी पुस्तकें ळ के स्थान पर ड लिखती हैं (§ २२६, वर २ २३ ; चंड ३, २१ ; हेच १, २ २ क्रम २ ११ ; मार्क पन्ना १६)। वररुचि चंड और मार्कण्डेय यह आवश्यक बताते हैं कि इस अवसर पर ड के स्थान पर ळ लिखा जाना चाहिए, भामह का मत है कि इच्छानुसार ड या ळ रखा जा सकता है और वह दाडिम वडिश और निविड में ड बने रहने देने की अनुमति देता है : चळमामुख गरुड, तडाग क्रीडति में ळ होना चाहिए करके बताता है किंतु मत देता है कि वडिश, दाडिम गुड नाडी,

नड और आपीड में इच्छानुसार ळ या ड रखा जा सकता है तथा निविड, गौड, पीडित, नीड, उडु और तडित् में ड का रहना आवश्यक मानता है। त्रिविक्रम हेमचद्र से पूरा सहमत है और उसने इस नियम को दो भागों में बाँटा है, १, ३, २४ (वडिशादौ) और १, ३, ३० । क्रमदीश्वर ने भी त्रिविक्रम के साथ वडिशादि गण का उल्लेख किया है किन्तु इसको वडिश, निबिड और जड शब्दों में ही सीमित रखा है और बताया है कि उक्त गण में ड बना रहना चाहिए। प्राकृत बोलियों को देखने पर इस प्रकार का कोई पक्का विभाग अर्थात् बँधी सीमा नहीं है। उदाहरणार्थ आदमी अ०माग० आदि मे बोल्ते थे **आमेळिय = आम्रेडित** (अणुओग० ३७); अ०माग० में **गवेळग = गवेडक** (ओव०), अ०माग० और जै०महा० मे **गुळ = गुड** (आयार० २,१,४,५, ओव० , एर्से०) है , माग० में **गुळोदण** रूप मिल्ता है (मृच्छ० १६३, २०), **गुड** भी पाया जाता है (हेच० १, २०२), माग० में **गुडाहू= गुडक** (मृच्छ० ११६, २५) , महा० और माग० में **णिअळ=निगड** (गउड० , हाल , रावण० , मृच्छ० १०९, १६ , १३२, २० , १६२, १७) , अ०माग० में **निगड** आया है (जीवा० ३४९ , ओव०) , महा० रूप **णिअळिअ = निगडित** (गउड० , रावण०) है , जै०महा० में **नियळिय** देखने में आता है (पाइय० १९७) , महा० में **णिअळाविय** रूप भी मिल्ता है (हाल) , शौर० में **णिगळवदी** पाया जाता है (मालवि० ५१, २१) । अ०माग० में **पळय = पडक** (उत्तर० ३२,६ है, पण्णव० ३६६ और उसके बाद , ओव०) , महा०, अ०माग० और जै०महा० में **गरुळ = गरुड** (हेच० १,२०२ , पाइय० २५ , गउड०, ठाणग० ७१ और ८५ है, सूय० ३१७ और ७७१ , आयार० २, १५, १२, १३ , पण्हा० २३५ और ३११ , विवाह० १८३ और ९६४ [यहा **गरुड** पाठ है] , पण्णव० ९७ , जीवा० ४८५ और ४८८ , निरया० , ओव० , द्वार० ५०७, ३७) , इसके साथ-साथ महा० में **गरुड** भी चलता है (रावण०) , जै०महा० में **गरुडवूह** और साथ ही **गरुळसत्थ** रूप मिल्ते हैं (एर्से०), शौर० में **गरुड है** (नागा० ६६,१० , ७१, १२ , ९९, १), माग० में **गलुड** आया है (पाठ मे **गरुड** मिल्ता है , नागा० ६८, ४ और १३), अच्युतशतक २ , २९ और ३४ में महा० में **गलुड** पाया जाता है । अ०माग० में **छळंस = षडश्र** (ठाणग० ४९३) है, **छळसिय** (सूय० ५९०), **छळायतण = षडायतन** (सूय० ४५६), **छळसीइ = षडशीति** (विवाह० १९९ , समव० १४३) हैं § २११ और ४४१ की तुल्ना कीजिए, अ०माग० और जै०महा० **सोळस** और अप० रूप **सोळह=षोडश** (§ ४४३) है। **वडवा** (पाइय० २२६) , महा० **वडवामुह** (रावण०), अप० रूप **वडवाणल** (हेच० ४, ३६५, २ और ४१९, ६), इसके साथ साथ महा० **वळवामुह** और **वळआमुह** (रावण०), **वडआणल** (रावण० २, २४ , ५, ७७) और जै०महा० **वळयामुह** हैं। शौर० **दाडिम** (भाम० २, २३ , हेच० १, २०२, विद्ध० १५, २), महा० **दाडिमी** (गउड०) और इनके साथ-साथ अ०माग० में **दाळिम** का प्रचलन था (हेच० १, २०२ , आयार० २, १, ८, १ , विवाह० १५३० ; पण्णव० ४८३ और ५३१ , ओव०) । महा०, अ०माग० और जै०महा० रूप **आमेळ**, महा० **आमेळिअअ**, अ०माग० **आमेळग** और **आमे-**

मोडेमि और मोडिम (मृच्छ० १२८, २ १३७, १) मी चलते हैं। आमोड और मोड (= बृट बालों को जूड़ा : देशी १, ६२ ६, ११७) मी इससे ही संबंधित हैं और घोर मोट्टिम मी इनमें ही है (अनर्घ० १५२, ९; वसिपति ने दिया है मोट्टिमं बलात्कारे देशी), मोट्टायइ=स्मरते मी इन्हीं में है (हेम ४, ११८)। — करसी (= श्मशान देशी० २, ६) = कटशी का कट (= शव : उदाहरणार्थ विष्णुपुराण ३,११,१) = प्राकृत कड (शीय मृत ; उपरत देशी २,५१) है शी (शयन करना ; लेटना) हेमचन्द्र २,१७४ की हस्तलिपियों में इसका रूप करसी दिया मिलता है, इस प्रकार ट का ड बनकर र वर्ण में परिवर्तित हो गया है। अ माग रूप पुरमेयणी (= नगर : उत्तर ६१८) = पाली पुटभेदन[1] में यही परिवर्तन है, ट का र हो गया है। ठ के स्थान पर ढ आ जाने के विषय में § २ ७ देखिए।

1 गो गे आ १४८ पेज १५१ और इसके बाद में पिशल के मतानुसार ; वेबर हाल[2] पेज ११ ; तथा ब्यूलर के मतानुसार जो अपने संपादित ग्रंथ पाइयलच्छी में बलामोडी के प्रथम पद को पंचमी रूप बलात् से मिलाना चाहता है बला के रूप की व्युत्पत्ति म हुई मानी चाहिए। इससे अधिक शुद्ध इसमें आ उपसर्ग मानना होगा जैसे आमोड और आमोडम स प्रमाण मिलता है। —२ चाइल्डर्स ने 'सेलेक्ट सुत्त ऑफ द बुद्धिस्ट' भाग ७५ १ १ की पोदसंख्या १ में बहुत अशुद्ध लिखा है। पुट शब्द मूल से पुड बन गया है (वर १२ ५ से तुलना कीजिए) और संस्कृत रूप पाटलिपुत्र में आया है। § २९१ की तुलना कीजिए।

§ २३९—शब्द के भीतर स्वरों के बीच में ठ का ढ हो जाता है (§ १९८)। यह शैली के हिसाब से ढ रूप बहुत हो कम ग्रहण करता है : अ०माग और जै महा में कुहाड=कुठार (सूय २७४ उत्तर ५९६ ; तीर्थ ६, १६ १७ और १८), जै महा में कुहाडय रूप मी मिलता है (तीर्थ ७, १) पिढड = पिठर (हेम १, २ १), अ माग में पिढडग आया है (जीवा २५१), पिढडय मी है (उवास § १८४) इसके साथ-साथ पिढर रूप भी काम में आता है (हेम १, २ १ ; पाइय १०२) अ माग में पिढरग मी है (आयार २,१,११,५)। ढ और र के परस्पर परिवर्तन के विषय में § २४१ और २५८ देखिए।

§ २४०—ड जब असंयुक्त और दो स्वरों के बीच में आया हो तो यह नियमानुसार ळ हो जाता है। उत्तर भारतीय हस्तलिपियों और छपी पुस्तकों ळ के स्थान पर ल मिलती है (§ २२६ ; वर २, २१ ; चंड ३, २१ ; हेम १, २ २ ; क्रम २ ११ ; मार्क पन्ना १६)। वररुचि, चंड और मार्कंडेय यह आवश्यक बताते हैं कि इस अवसर पर ड के स्थान पर ळ लिखा जाना चाहिए, मामह का मत है कि इच्छानुसार ड या ळ रखा जा सकता है और यह दाडिम, पडिहा और निबिड में ड बने रहने देने की अनुमति देता है : यथाप्रामुख, गरुड, तड़ाग प्रभृति में ळ होना चाहिए करके बताता है, किंतु मत देता है कि पडिहा दाडिम गुड, णाडी,

हेमचन्द्र से सर्वथा मिलता हुआ रूप उड्डु आया है (पाइय० ९६ , कर्पूर० ३६, ३ जीवा० ३५१) , महा० में **गउड** है (गउड०) ; अ०माग० और अप० मे इसके स्थान पर **गोड** रूप चलता है (पण्हा० ४१ , पिंगल २, ११२ , १३८ , § ६१ अ की तुलना कीजिए) , महा० में **णिविड** मिलता है (गउड० , हाल ९९६ की टीका ; कर्पूर० ४९, ११), **णिविडिय** (गउड०) है , जै०महा० में **निविड** है (एर्त्से०)। महा० मे **णीड** और **णेड्डु** रूप मिलते हैं (§ ९०) । महा० और जै०महा० में **तडि** (पाइय० ९८ , गउड० , एर्त्से० १४, २२ , ७१, २३) है, अ०माग० मे **तडिया** है (विवाह० ९४३), किंतु अप० मे **तळि** है (विक्रमो० ५५, २) । महा० में **पीडिअ** (गउड० , रावण०), अ०माग० और जै०महा० मे **पीडिय** (पाइय० ११० , उत्तर० ५७७ , (एर्त्से०), शौर० **पीडिद** (मृच्छ० २२, १३ , शकु० ११, १), इनके अतिरिक्त महा० मे **णिप्पीडिअ** (रावण०), **संपीडिअ** (गउड०), **पीडिज्जन्त—** (हाल ; रावण०) और **पीडण** रूप मिलते हैं (हाल), महा०, जै०महा० और शौर० में **पीडा** आया है (पाइय० १६१ , गउड०, एर्त्से० , मृच्छ० २२,१३ , शकु० २९, ९ , विक्रमो० १८, ५) और शौर० में **पीडीअदि** (मृच्छ० ७२, १५) तथा **पीडेदि** मिलते हैं (विक्रमो० १६, १७) । अ०माग० में किंतु **ळ** का प्राधान्य है : **पीळिय** (उत्तर० ५९०) , **पीळियग** (ओव०) , **पीळेइ** (दस० ६३१,३७ , उत्तर० ९२७ , ९३५ , ९४० , ९४५ और ९५०) , **आवीळए, पवीळए** और **निप्पीळए** हैं (आयार० १,४,४,१) , **उप्पीळवे॑ज्जा** रूप पाया जाता है (आयार० २,३,१,१३) , **परिपीळे॑ज्ज** (सूय० २०८) , **ओवीळेमाण** (विवाग० १०२ , पाठ में **उवीडेमाण** रूप है) , **आवीळियाण** और **परिपीळियाण** (आयार० २, १, ८, १) ; **पीळा*** (पण्हा० ३९४ , ४०२ और ४२६ , उत्तर० ६७५) , **संपीळा** (उत्तर० ९२६ , ९३४ , ९४०, ९४५ और ९५०) , **पीळण** (पण्हा० ५३७ , विवाह० ६१० , उवास०) रूप देखने में आते हैं । उत्तरज्झयणसुत्त ६२० में **पीडई** रूप आया है किंतु इसके साथ ही **आविळिज्ज** भी है । पिंगल १, १४५ अ मे एस० गौल्दश्मित्त के कथनानुसार **पीळिअ** पढ़ना ही ठीक है, इसकी आवश्यकता यहा पर इसलिए भी है कि **मीळिअ** के साथ इसका तुक ठीक बैठता है। अ०माग० **पडेइ** = **पडयति** में सदा **ड** आता है (विवाह० २४८), इसके ये रूप भी मिलते हैं **पडन्ति** (विवाह० २३६), **पडे॑न्ति** (ओव०), **पडित्ता** (विवाह० २३६ और २४८) । अ०माग० **विड्डा** = **व्रीडा** (§ ९०) के साथ साथ इस प्राकृत में एक विशेषण **विड्ड** भी है (विवाह० १२५८) , पर टीकाकार इसे **वेड** पढता है जो ठीक भी होगा और **वेळण्य** (अणुओग० ३३३) से सबध रखता है , यह रूप देशीनाममाला ७, ६५ मे सज्ञा रूप में आया है (**केचित् वेळणयं लज्जेत्याहुः** । टीका मे आया है । —अनु०) और बोली में **वेळूणा** हो गया है (देशी० ७, ६५) । इसका **ए** (= ॆ, अनु०) § १२२ के अनुसार स्पष्ट हो जाता है । महा० में **विडिअ** और साथ-

* यह पीळा, पोला रूप से कुमाउनी में फोडे के लिए आता है । विल्ली के लिए कुमाउनी में बिराळु और स्त्रीलिंग का रूप बिराली चलता है । —अनु०

व्यञ्जनापीडय (§ १२२) हैं, इनके साथ-साथ **आपेड** रूप भी मिलता है (देप १, २ २) और शौर में इसका रूप **आपीड** है (मालती० २ ७, ४)। अ०माग में **तळाग** और **तळाय** तथा इसके साथ-साथ **तडाग=तडाक** (§ २३१) हैं। महा० **कीळेइ** (गउड), अ माग **कीळन्ति** (राम ११८ ; उत्तर ५ ४), **कीळय** (उत्तर० ५७०) **कीळिय** (आयार पेज ११५ १७ ; समव २१), जै महा **कीळे इ**, **कीळन्त**–, **कीळन्ती** और **कीळिऊण** (एर्से०), शौर रूप **कीळसि** (मृच्छ ५४, १ ९५, ११), **कीळ** (मृच्छ ९५, २१), **कीळम्ह** (रत्ना० २९३, २५), शौर , दक्की और माग रूप **कीळेम्ह** (मृच्छ ९४, १९ १, १८ १३१, १८), शौर **कीळिस्स** (विक्रमो० ४१, ७ ४७, ११ [इन दोनों स्थानों पर प्रामिकी पाठ के साथ और उक्त ग्रन्थ के ४७ ११ के साथ **कीडिस्सं** के स्थान पर यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] आवश्य ६ , ११), **कीळिस्ससि** (मृच्छ ९४, ११ ९५, १), माग **कीळिदशम्** (मृच्छ १ , २१ मुकु १५५, १२), माग और आव **कीळिदु** (मृच्छ १ , २१ १४ ,७ १४८, १३), शौर रूप **कीळिद** (मृच्छ ९५,७ ; रत्ना २९३ २९) और **कीळमाण** (विक्रमो ५२,९), अप **कीळइ** (विक्रमो ६४ ५) **कीळदि** (देप ४, ४४२, २), **कीळन्ति** (विक्रमो ६३ ५) **क्रीड्** धातु से सम्बन्ध रखते हैं ; महा और शौर **कीळा = क्रीडा** , शौर में **कीळणअ** और अ माग **कीळण** तथा **कीळावय**, इनके साथ-साथ अ माग और जै महा **कीडा** तथा **किड्डा** (§ ९), उसी प्रकार शौर रूप **खेळदि**, अप **खेळन्त** अ माग **खेल्लावय**, जै महा **खेल्लावेऊण** और **खेल्लळ** तथा अप **खेळन्ति** इनके साथ-साथ अ माग और जै महा **खेडु**, अप **खेड्डुय** **खेडुइ** बोलियों में इस विषय पर अनियमितता का प्रमाण देते हैं (§ ९० और २ ६)। अ माग में **ताळेइ=ताडयति** (नायाध १२३१ ११ ५) **ताळेन्ति** रूप आया है (विवाह २३६), **ताळयन्ति** मिलता है (उत्तर ३६ और ३६५), **ताळेत्ता** (उवास § २), **ताळेइ** (नायाध ११ ५), **ताळेमाण** (विवाग १ २), **ताळिज्जमाण** (पण्हा १९६) **ताळिय** (नायाध १२३६), **ताळण** (पण्हा ५३५ ; उत्तर ५८२; ओव) धकारी माग में **ताळिम** रूप पाया जाता है (मृच्छ १६७ ९) किन्तु अन्यथा महा और माग में **ताडण** आया है (गउड हाल रावण ; कर्पूर १ ७ ६५ ९ ; मृच्छ १२२, २); महा में **ताडिज्जन्ता** (कर्पूर ७ ७), **ताडिम** मिलते हैं (रावण) ; जै महा में **ताडिय** और **ताडिज्जमाण** आये हैं (एर्से) शौर **ताडेदि** (मृच्छ ७९, २२), **ताडिम** (मृच्छ १५५, ४), **ताडिद** (मृच्छ ६९, २१), **ताडियिदुं** और **ताडइस्सं** (मालवि ४४ १९ ६५ २), **ताडीअदि** (मालती २६७, ६) **ताडीअंत– ताडीआमाण** (मुद्रा २११ ५; २१२, २ ; २ ३, १) है ; माग रूप **ताडेध** (मृच्छ १६६, २४ ; १६९, २२), **ताडइस्सं** (मृच्छ ८ , ५) है तथा माग और आव में **ताडिद** रूप पाया जाता है (मृच्छ २९, ११ १ ५, २ ; १४८, १०)। महा और अ माग में

कोल्हू । —अनु०] : देशी० २, ६५ , पाइय० १५२)*कोट्ठुअ से निकला है = क्रोष्टुक¹ , कुळ्ह रूप भी को`ळ्ह से निकला है जो = *क्रोष्ट्र = क्रोष्ट्र और इसीसे सबध रखता है। कोळ्हाहल (= बिबफल : देशी० २,३९) = *क्रोष्टा-फल , इसकी तुलना क्रोष्टुफल रूप से भी कीजिए । इसी प्रकार गोळ्हा = गूढा (=बिंबीफल . देशी० २, ९५) , गोळ्हाफल = गूढफल (पाइय० २५५)² है।

१ गे० एस० आ० ३, ६, ११७ में लौयमान के लेख का नोट। —२. प्राकृत भाषा से प्रमाणित होता है कि बोएटलिंक की भाँति इस शब्द पर सदेह करने का कारण नहीं है, यह भी ध्यान देने योग्य है कि ढ का स्थान ळ्ह् ले लेता है।

§ २३५—वेणु का ण ळ बन सकता है : अ०माग० मे वेळु रूप है (हेच० १, २०३ , पाइय० १४४ , सूय० १९७ और २४८ , पण्णव० ३३ , राय० ३३, ८९ और १८४), इसके साथ-साथ वेणु भी चलता है (आयार० २,११,४ , सूय० १९७ और २४८ , विवाह० १५२६ , पण्णव० ४०), वेणुदेव मिलता है (सूय० ३१७) , इसी प्रकार अ०माग० मे वेळुग और वेळुय = वेणुक (आयार० २, १, ८, १४ , विवाह० १५२६ , दस० ६२३, ४ , पण्णव० ४३) है। क्योकि पाली में वेळु रूप है इसलिए प्राकृत में भी ळ होना चाहिए। सभव यह है कि वेणु और वेळु दोनों का मूल रूप *वेल्लु हो जो प्राकृत मे व्यवहार में बहुत आनेवाले और शाखा-प्रशाखायुक्त धातु वेल्, वेल्ल् से निकला हो (§ १०७ , [इस § मे विल् धातु का उल्लेख है। —अनु०]) । इसी धातु से इस शब्द के अन्य अर्थ भी निकले हैं . वेळु = चोर और 'मुसल'* (देशी० ७, ९४) का अर्थ भी उक्त धातुओं से स्पष्ट होता है , इस सबध में § १२९ में थूण = चोर की तुलना कीजिए।—पै० और चू०पै० मे ण का न हो जाता है (§ २२५)। क्रमदीश्वर ५, १०७ और १०८ मे बताता है कि ण के स्थान पर ल बैठ जाता है फलति=भणति , ध्वलति [?] = ध्वनति , फलितं = भणितम् , ध्वलितं = ध्वनितम् , पलं = प्राकृत वणं=वनम् , फलह [?] = भणत (५, ११३) और फलामो = भणामः (५,११४) हैं। क्रमदीश्वर ने उदाहरणों में दिए हैं . ककण = गगण (५, १०२) , जजण, चचण = यजन (५,१०३) , चलण = चरण, उसण = उष्ण , पसण = प्रश्न तथा सिनाण=स्नान (५, १०९) है, इस प्रकार छपा सस्करण ण देता है और चूँकि बगला लिपि की हस्तलिपियों मे ण, न और ल मे बहुत ही अधिक अदला बदली हुई है, इस कारण यह मानना प्राय. ठीक ही है कि जहा जहा ल आया है, वहा अन्य व्याकरणकारों के साथ न पढा जाना चाहिए। क्रमदीश्वर ५, ११० के अनुसार पै० में ण और न, ञ भी हो जाते हैं कञक = कनक और वञ्ञ = वर्ण ।

§ २३६—कभी-कभी त और द, ळ बन जाते हैं। मध्य प्रक्रिया मे ट और ड का रूप धारण करके (§ २१४ और २१९) फिर ळ बन जाते हैं (§ २२६ , २३८

* देशीनाममाला में वेल=मुसल बताया गया है, पर इसी वेल् धातु से वेलन भी निकला है। इस नियम के अनुसार कुमाउनी में ने = ले हो गया है। —अनु०

शाप विळिम = मीडित रूप हैं, अ माग में सविळिय मिलता है (§ ८१)। देशीनाममाला ७, ६५ में विलूडूण और वेलूण रूप भी दिये गये हैं।

§ २४१—महा० और शौर वेरुलिम में ड का र हो गया है, इसका अ० माग० और जै महा० रूप वेरुळिय = वैडूर्य (§ ८) है। मामह ४, ३३ में वेलुरिम रूप है जिसका वेड्डुरिम से तात्पर्य है जैसा कि वेलुलिम (देशी ७, ७७) और वेड्डुलिम रूप सूचित करते हैं। हेमचन्द्र २,१३३ के अनुसार वेडुज्ज भी है। इसके अतिरिक्त अ माग और जै महा० में बिराल = बिडाल[1] (आयार० २, १, ५, ३ पण्णव १६७ और ३६९ नायाध० ३४५ उत्तर ११८ आव० एर्त्से ४१, २), अप में बिरालअ रूप है (पिंगल १, ६७ बंबइया संस्करण में बिडालअ पाठ है), इसका स्त्रीलिंग बिराली है (नंदी ९२ पण्णव ३६८ आव एर्त्से ४२, ४२), अ०माग में बिरालिया (सूय ८२४) है। और एक पौधे का नाम भी छीरबिराली = क्षीरबिडाली (विवाह १५३२) है, बिरालिय रूप भी (आयार २, १, ८, ३) है। बिडाल (जीवा ३५६) के लिए बिराल पढ़ा जाना चाहिए। शौर में बिडाल है (मालवि ५, १६ इस ग्रंथ में बिडाल पाठ है शकु बोएटलिंक का संस्करण १४, ७, यहां दक्षिण भारतीय हस्तलिपियां और अन्य ग्रंथ बिडाल, बिडाळ बिळाळ और बिलाल के बीच भटकते हैं), इसका स्त्रीलिंग बिडाळी है (हास्या २५, ७), बिडालिया (मालवि ६७, ९; इसी ग्रंथ में बिआरिया, बिआलिमा, और बुडालिया भी हैं) पाली में बिळाल और बिळार रूप हैं।

1. नंदीसुत्त ९१ और सूयगडंगसुत्त ८२४ के अतिरिक्त पाठों में सर्वत्र बिडाल मिलता है। संस्कृत के लिए एकमात्र विश्वसनीय रूप बिडाल है और प्राकृत के लिए भी यही मानने योग्य है।

§ २४४—सब प्राकृत बोलियों में ढ अपरिवर्तित रहता है : अ माग और जै महा आढय = आढ्य (ओव, एर्त्से) अ माग आसाढ = आषाढ (आयार २ १५, २ ; कप्प); महा , जै महा और शौर गाढ = गाढ (पाइय ९ ; गउड ; हाल; कर्पूर ६८,७ ; एर्त्से ; शौर में कर्पूर ३५,५); महा , अ माग , जै महा शौर और माग बढ (पाइय ९ आयार १ ६, २ २ सूय ३६१ और ५४४ ; मृच्छ ६९,११ शकु ११ १ विक्रमो १६ १६ और १ १ ; माग में : मृच्छ ११६, ८) जै शौर शौर और अप दिढ (कत्तिगे ४ ३२९ ; ११ और ३३६ ; ४ १, १० ; मृच्छ ४४ ५ विक्रमो १२ २ २२, १४ ; मल्लिका २२५, ११ प्रिय ४२, ४ ; ४१ ६ ; प्रबोध २८, १ ; पिंगल १, ८६ अ) = दृढ है। महा और जै महा पाढ = पाठ (पाइय ९ ; गउड ; एर्त्से) है। अप शाहिहरुउँ के विषय में § ११ और २ ७ देखिए। गौण ढ जो ष्ट से निकलता है (§ ६६ ६७ और ३ ४) ळ्ह में परिणत हो गया है (लिखित रूप ल्ह पाया जाता है)। यह ध्वनि परिवर्तन केवल नीचे दिये शब्दों में ही दिखाई देता है : कोळ्हुम (=शियार ; [और

कोल्हू। —अनु०] देशी० २, ६५, पाइय० १५२)*कोड्डुअ से निकला है = क्रोष्टुक[1], कुळ्ह रूप भी को`ळ्ह से निकला है जो = *क्रोष्ट = क्रोष्ट्ट और इसीसे सबध रखता है। कोळ्हाहल (=बिबफल : देशी० २,३९) = *क्रोष्टा-फल, इसकी तुल्ना क्रोष्टुफल रूप से भी कीजिए। इसी प्रकार गोळ्हा = गूढा (=बिंबीफल : देशी० २, ९५), गोळ्हाफल = गूढफल (पाइय० २५५)[2] है।

१ गे० एस० आ० ३, ६, ११७ में लौयमान के लेख का नोट। —२ प्राकृत भाषा से प्रमाणित होता है कि बोएटलिंक की भाँति इस शब्द पर संदेह करने का कारण नहीं है, यह भी ध्यान देने योग्य है कि ढ का स्थान ळ्ह् ले लेता है।

§ २३५—वेणु का ण ळ बन सकता है : अ०माग० में वेळु रूप है (हेच० १, २०३, पाइय० १४४, सूय० १९७ और २४८, पण्णव० ३३, राय० ३३, ८९ और १८४), इसके साथ-साथ वेणु भी चल्ता है (आयार० २,११,४, सूय० १९७ और २४८, विवाह० १५२६, पण्णव० ४०), वेणुदेव मिल्ता है (सूय० ३१७), इसी प्रकार अ०माग० मे वेळुग और वेळुय = वेणुक (आयार० २, १, ८, १४, विवाह० १५२६, दस० ६२३, ४, पण्णव० ४३) हैं। क्योकि पाली में वेळु रूप है इसलिए प्राकृत में भी ळ होना चाहिए। सभव यह है कि वेणु और वेळु दोनो का मूल रूप *वेल्लु हो जो प्राकृत मे व्यवहार में बहुत आनेवाले और शाखा-प्रशाखायुक्त धातु वेल्, वेल्ल् से निकला हो (§ १०७, [इस § मे विल् धातु का उल्लेख है। —अनु०])। इसी धातु से इस शब्द के अन्य अर्थ भी निकले हैं : वेळु = चोर और 'मुसल'* (देशी० ७, ९४) का अर्थ भी उक्त धातुओं से स्पष्ट होता है, इस सबध में § १२९ में थूण = चोर की तुल्ना कीजिए।—पै० और चू०पै० में ण का न हो जाता है (§ २२५)। क्रमदीश्वर ५, १०७ और १०८ मे बताता है कि ण के स्थान पर ल बैठ जाता है : फलति=भणति, ध्वलति [?] = ध्वनति, फलितं = भणितम्, ध्वलितं = ध्वनितम्, पलं = प्राकृत वणं=वनम्, फलह [?] = भणत (५, ११३) और फलामो = भणामः (५,११४) हैं। क्रमदीश्वर ने उदाहरणो में दिए हैं : ककण = गगण (५, १०२), जजण, चचण = यजन (५,१०३), चलण = चरण, उसण = उष्ण, पसण = प्रश्न तथा सिनाण=स्नान (५, १०९) है, इस प्रकार छपा सस्करण ण देता है और चूँकि बगला लिपि की हस्तलिपियों मे ण, न और ल में बहुत ही अधिक अदला बदली हुई है, इस कारण यह मानना प्राय ठीक ही है कि जहा जहा ल आया है, वहा अन्य व्याकरणकारों के साथ न पढा जाना चाहिए। क्रमदीश्वर ५, ११० के अनुसार पै० में ण और न, ञ भी हो जाते हैं : कञक = कनक और वञ्ञ = वर्ण।

§ २३६—कभी-कभी त और द, ल बन जाते हैं। मध्य प्रक्रिया मे ट और ड का रूप धारण करके (§ २१४ और २१९) फिर ळ बन जाते हैं (§ २२६, २३८

* देशीनाममाला में वेलू=मुसल बनाया गया है, पर इसी वेल् धातु से वेलन भी निकला है। इस नियम के अनुसार कुमाउनी में ने=ले हो गया है। —अनु०

और अ०माग० **णोॅल्लइ** और **णुल्लइ = नुदति**, इसमें ल का जो द्वित्व हुआ है वह § १९४ के अनुसार है (वर० ८, ७ , हेच० ४, १४३ , क्रम० ४, ४६ , [पाठ में **णोष्ण** रूप है] , मार्क० पन्ना ५३) , महा० मे **णोॅल्लेइ** (हाल, रावण०), **णोॅल्लेॅन्ति** (गउड०), **णोॅल्लिअ** (रावण०) और **पणोल्लिअ** (गउड० , रावण०) रूप मिलते है , अ०माग० मे **णोॅल्लाहिंति, णोल्लाविय** (विवाह० १२८०), **पणोॅल्ल** (सूय० ३६०), **विपणोॅल्लए** (आयार० १,५,२,२) और **पणुल्लेमाण** रूप देखे जाते हैं (नदी० १४६ , टीका में **पणोल्लेमाण** रूप है) ।— जै०महा० में **पलीवेइ = प्रदीपयति** (हेच० १, २२१ , आव०एर्त्से० ९, १३), **पलीवेसि** और **पलीवेही** भी मिलते है (आव० एर्त्से० ९, १९ , ३२, २१) , इस प्राकृत में **पलीवइ** रूप भी है (हेच० ४, १५२ , मार्क० पन्ना १५ , एर्त्से०) , महा० में **पलीवेसि, पलीविउं** और **पलिप्पमाण** (हाल), **पलिवेइ** (रावण० ५, ६७)[४] , महा० और अ०माग० में **पलित्त** (वर० २, १२ , हेच० १, २२१ , क्रम० २, २० , हाल , रावण० , नायाध० १११७) , महा० में **पलीविअ** (हाल) , जै० महा० में **पलीविय** (पाइय० १६ , आव० एर्त्से० ९, १५ , ३२,२२ और २६) रूप पाये जाते हैं । अ०माग० मे **आलीविय** (विवाग० २२५) , **आलीवण = आदीपन** (देशी० १, ७१) है, जै०महा० **पलीवणग** (आव० एर्त्से० १९, ९) , किंतु बिना उपसर्ग के महा० **दिप्पन्त–**(रावण०), **दिप्पन्ति** और **दिप्पमाण** (गउड०), अप० **दीविअ = दीपित** (विक्रमो० ६०,१९) और उपसर्ग के साथ शौर० में **उद्दीवन्ति** (मृच्छ० २, २२) और **पडिवेसी** रूप हैं (उत्तर० ८३, २ , कल्कतिया सस्करण १८३१ पेज ५५, १९ में **पलिवेसी** पाठ है) ।—अ०माग० और० जै०महा० में **दुवालस = द्वादश** (पण्हा० ३४७ , विवाह० १६८ , १७३ , २४९ और ६०८ , उवास० , कप्प०, एर्त्से०), **दुवालसंग** (हेच० १,२५४ , सम० ३ , ठाणग० ५६९ , सूय० ६१६ , नदी० ३८८ और ३९४), **दुवालसविह** भी मिलता है (विवाह० २५९ और ५२४ , पण्णव० ३० और ३७४ , जीवा० ४४), **दुवालसम** भी आया है (आयार० १, ८, ४, ७ , सूय० ६९९) ।—अ०माग० और जै०महा० मे **डोहळ** रूप है, महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे **दोहळ = दोहद** है, महा० और शौर० में **दोहळअ** रूप है (§ २२२) जो पाली के प्रमाण के अनुसार ळ लिखा जाना चाहिए, जैसा कि माग० **हळक** (मृच्छ० ९,२५), **हळअ** (मृच्छ० १६३, २४) और इनके साथ साथ चलनेवाला साधारण रूप **हडक** (§ १९४) सिद्ध करता है । इस सम्बन्ध मे § ४३६ की तुलना कीजिए ।—महा० **मळइ = म्रदते** (वर० ८, ५० , हेच० ४, १२६ , रावण०), **मळेसि** (हाल), **मळेॅइ** (रावण०), **मळिअ** (गउड०, हाल, रावण०), **परिमळसि** (हाल), **परिमळिअ** (हाल, रावण०), **विमळइ** (गउड०), **विमळिअ** (गउड० , रावण०), **ओमळिअ** (रावण०), **मळण** (गउड०) तथा **परिमळण** रूप मिलते हैं (हाल), इन सब मे ळ है जैसा मराठी और गुजराती मे होता है[१] ।—अ०माग० मे **एलिस = ईदृश, अनेलिस = अनीदृश, एलिक्ख** और **एलिक्खय = ईदृक्ष** और **ईदृक्षक** (§ १२१) ।—

और २४०) इस ळ को उत्तर भारतीय हस्तलिपियां ळ लिखती हैं, इसलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अमुक अवसर पर ळ लिखना है अथवा ळ। शौर० में मअळसी = मतसी (हेच १, २११ मल्लिका ८७,१५) किंतु माग० में मयसी रूप है (विवाह ४१ और १५२६ ; पण्णव ३४ और ५२६ उत्तर० ५१२ ओव) ; अ माग में आसिळ = असित (सूय २ ३) ; पळिळ (हेच १ २१२) और इसके साथ-साथ महा रूप पलिअ = पलित (हेच १,२१२ गउड हाल) ; महा विज्जुळा = पाली विज्जुता = विद्युत (हेच २, १७३ मार्क पन्ना ३७ रावण), विज्जुळी = विद्युती (वर० ४, २६ मार्क पन्ना ३७), महा और और अप विज्जुळिआ = *विद्युतिका[1] (हाल ५८४ विक्रमो २७, ११ पिंगल १, १४२ अ) । वररुचि ४ ९ हेमचन्द्र १,१५ क्रमदीश्वर २ १२९ और मार्कण्डेय पन्ना ३३ में बताया गया है कि विज्जुआ रूप महाराष्ट्री में निषिद्ध है, परंतु यह रूप हाल ५८४ में आया है और शायद शुद्ध नहीं है क्योंकि अन्यथा महा में केवल विज्जुळा और विज्जु रूप चलते हैं (गउड हाल रावण) शौर में विज्जुळा (मृच्छ ९१ १९ वेणी ९ ,१७) है। महा में सालवाहण और सालाहण = सातवाहन (हेच १, ८ और २११ ; हाल § १६७ की भी तुलना कीजिए), परंतु जै महा० में सालिवाहण के साथ-साथ सायवाहण रूप भी है (कालका) माग में शुळ = सूत (मृच्छ १७ १) । — अ माग रूप सलिळ (= नदी। सूय ३१७ और ४६ ; उत्तर ३४२ संभवतः विवाह ४७९ में भी यही रूप है) या कोशी के मतानुसार = पाली सरिता = संस्कृत सरित् है वा ठीक नहीं है क्योंकि इसमें छह र रहता है परंतु यह शब्द विशेषण रूप सलिळ (आयार २,१६,१ = सूय ४६८) का स्त्रीलिंग है और संस्कृत सलिल से संबंध रखता है। — माग कळ (मृच्छ ११,१,४ ,८) मळ (मृच्छ ११८,१४ २५ और २४ ११९,२१) में ळ लगाया जाना चाहिए, साथ-साथ कत और मत रूप भी चलते हैं = कृत और मृत (§ २१९) जै महा में पाउळ = व्यापृत (कालका § २१८) अप में पळइ जो पतइ के लिए आया है (§ २१८) = पतति (पिंगल १, ७८ ११६ ; १२ अ १२१; १२५ १२५ अ १११ और ११९ २ ६ ; ११५; २ २; २११ और २६१)। — महा और अ माग कर्यव = कदंब में द का य हो गया है (वर २, १२; हेच १,२२२ क्रम २ २ ; मार्क पन्ना १५ पाइय २५५ गउड हाल ; रावण ; पण्हा १ ; ठाणंग १२१), इसके साथ साथ कअम्ब भी चलता है (हेच १, २२२) अ माग में कयंबग मिलता है (नायाध ३५४ और १ ४५), कयंबय भी है (कप्प ; पाठ में अशुद्ध रूप कयंबुय आया है ; इसी ग्रंथ में कलंबय आया है इसी ग्रंथ में कळंबय कलंब और कयंब रूप भी है) अ माग कालंब (ठाणंग ५ ५) महा कार्यंब (गउड रावण) = कादम्ब है। — महा में गाळा = गाढा (हेच २ १७४ ; मार्क पन्ना १९ ; देशी १ १ ४ ; पाइय ११९ ; त्रिवि १ ३ १ ५ ; हाल) यह रूप स्वयं संस्कृत में ले लिया गया है[1]। त्रिविक्रम की हस्तलिपियां ळ लिखती हैं जिसे हाल का गाढा रूप पुष्ट करता है। महा

और अ०माग० **णोॅल्लइ** और **णुल्लइ = नुदति,** इसमें ल का जो द्वित्व हुआ है वह § १९४ के अनुसार है (वर० ८, ७ , हेच० ४, १४३ , क्रम० ४, ४६ , [पाठ मे **णोण्ण** रूप है] , मार्क० पन्ना ५३), महा० मे **णोॅल्लेइ** (हाल, रावण०), **णोॅल्लेॅन्ति** (गउड०), **णोॅल्लिअ** (रावण०) और **पणोल्लिअ** (गउड० , रावण०) रूप मिलते हैं , अ०माग० में **णोॅल्लाहिंति, णोल्लाविय** (विवाह० १२८०), **पणोॅल्ल** (सूय० ३६०), **विपणोॅल्लए** (आयार० १,५,२,२) और **पणुल्लेमाण** रूप देखे जाते है (नदी० १४६ , टीका में **पणोल्लेमाण** रूप है) ।— जै०महा० मे **पलीवेइ = प्रदीपयति** (हेच० १, २२१ , आव०एर्त्से० ९, १३), **पलीवेसि** और **पलीवेही** भी मिलते है (आव० एर्त्से० ९, १९ , ३२, २१) , इस प्राकृत में **पलीवइ** रूप भी है (हेच० ४, १५२ , मार्क० पन्ना १५ , एर्त्से०), महा० में **पलीवेसि, पलीविउं** और **पलिप्पमाण** (हाल), **पलिवेइ** (रावण० ५, ६७)[४] , महा० और अ०माग० में **पलित्त** (वर० २, १२ , हेच० १, २२१ , क्रम० २, २० , हाल , रावण० , नायाव० १११७) , महा० में **पलीविअ** (हाल) , जै० महा० में **पलीविय** (पाइय० १६ , आव० एर्त्से० ९, १५ , ३२,२२ और २६) रूप पाये जाते हैं । अ०माग० में **आलीविय** (विवाग० २२५) , **आलीवण = आदीपन** (देशी० १, ७१) है, जै०महा० **पलीवणग** (आव० एर्त्से० १९, ९) , किंतु बिना उपसर्ग के महा० **दिप्पन्त**–(रावण०), **दिप्पन्ति** और **दिप्पमाण** (गउड०), अप० **दीविअ = दीपित** (विक्रमो० ६०,१९) और उपसर्ग के साथ शौर० में **उद्दीवन्ति** (मृच्छ० २, २२) और **पडिवेसी** रूप हैं (उत्तर० ८३, २ , कल्कतिया सस्करण १८३१ पेज ५५, १९ में **पलिवेसी** पाठ है) ।—अ०माग० और० जै०महा० में **दुवालस = द्वादश** (पण्हा० ३४७ , विवाह० १६८ , १७३ , २४९ और ६०८ , उवास० , कप्प०, एर्त्से०), **दुवालसंग** (हेच० १,२५४ , सम० ३ , ठाणग० ५६९ , सूय० ६१६ , नदी० ३८८ और ३९४), **दुवालसविह** भी मिलता है (विवाह० १५९ और ५२४ , पण्णव० ३० और ३७४ , जीवा० ४४), **दुवालसम** भी आया है (आयार० १, ८, ४, ७ , सूय० ६९९) ।—अ०माग० और जै०महा० में **डोहळ** रूप है, महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **दोहळ = दोहद** है, महा० और शौर० में **दोहळअ** रूप है (§ २२२) जो पाली के प्रमाण के अनुसार ळ लिखा जाना चाहिए, जैसा कि माग० **हळक** (मृच्छ० ९,२५), **हळअ** (मृच्छ० १६३, २४) और इनके साथ साथ चलनेवाला साधारण रूप **हडक्क** (§ १९४) सिद्ध करता है । इस सम्बन्ध में § ४३६ की तुलना कीजिए ।—महा० **मळइ = म्रदते** (वर० ८, ५० , हेच० ४, १२६ , रावण०), **मळेसि** (हाल), **मळेइ** (रावण०), **मळिअ** (गउड०, हाल, रावण०), **परिमळसि** (हाल), **परिमळिअ** (हाल, रावण०), **विमळइ** (गउड०), **विमळिअ** (गउड० , रावण०), **ओमळिअ** (रावण०), **मळण** (गउड०) तथा **परिमळण** रूप मिलते हैं (हाल), इन सब मे ळ है जैसा मराठी और गुजराती में होता है[१] ।—अ०माग० में **एलिस = ईदृश, अनेलिस = अनीदृश, एलिक्ख** और **एलिक्खय = ईदृक्ष** और **ईदृक्षक** (§ १२१) ।—

सोॅक्लइ (=वह पकाता है : हेच० ४ ९०)=सूर्त्यति, इसमें छ का द्वित्व § १९४ के अनुसार हुआ है। अ० माग० सोॅल्ल (पकाया हुआ भूना हुआ : उवास०; निरया०), सोॅल्लय (उवास०)=सूत+य, सूत+त+क (§ ५६६)[1] और वर्तमान रूप से निकला हुआ सोल्लिय=सुवित (ओव०)।—पेलूणा रूप मिलता है जिसके साथ-साथ पेलुणा और पिलुणा रूप भी हैं (§ २४०)। अ० माग० में विभेलय=विभेदक (§ १२१) है।

1. बौल्लें नसेन द्वारा सम्पादित विक्रमोर्वशी २०, १२ पेज २०९ में यह शुद्ध है। हाल ५८० की टीका में वेबर के विचार अशुद्ध हैं यह इस स्थान पर पिपुल्लता रूप की बात छोड़ता है।—२. सक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट' ४५, १८ नोटसंख्या १। याकोबी ने कुल्ल का स्पष्टीकरण भी अशुद्ध किया है (§ ८ देखिए)।—३. वे० बाइ० ३, २३० और उसके बाद में पिशल का मत।—४. एक ही पाद में पडिवेइ के साथ-साथ पलिप्त भी आया है ३, ५ देखिए ; ५, ४० में पडिप्त रूप है १५, ७२ में केवल पडुप्त है।—अन्यथा ड वाले रूपों के उदाहरण कहीं दिखाई नहीं देते।—५. हेच० ४, १२६ पर पिशल की टीका।—६. होएर्नले उवासगदसाओ में इन शब्दों को=शुल्य और शुल्यक बताता है, यह अर्थ ऐसे स्थलों से जहाँ ओववाइय सुत्त § ७४ का इंगालसोल्लिय स भआत्य सिद्ध हो जाता है।

§ २४७—सत्तरि=सप्तति में (हेच० १, २१०) त, ड होकर (§ २१८) र बन जाता है। अ० माग० और जै०महा० सत्तरिं और सत्तरि है, जै०महा० में सयरि भी है (=७०); अ० माग० में एगूणसत्तरिं (=६९) आया है, एक्कसत्तरिं (=७१) बावत्तरिं (=७२), जै०महा० में इसके लिए विसत्तरि (=७२) मिलता है अ० माग० तेवत्तरिं (=७३), चउवत्तरिं और जै०महा० चउहत्तरि (=७४) आदि आदि। अप० में पहत्तरि (=७१) और छाहत्तरि (=७६) § ४४६ भी देखिए। माग० में द बहुत ही अधिक स्थलों पर ड के द्वारा र बन कर ड हो गया है : अ० माग० में उराल=उदार (आयार० १, ८, १, १२, १५, १४ और १५ [पाठ में =ओराल' है]; सूय० ९५, १५२ ; ४८ और ६३१ ; ठाणंग १०७ ; नायाध० § ४ पेज १६ और ५५६ ; अंत० ५७ विवाह० १ १५५ ; १६८ ; १७ ; २११ २४८ ९४२ १ ३९ और १२२८ तथा उसके बाद उत्तर १ ५९ और १ ५८ ; उवास० ; निरया० ; कप्प० ; इसमें आगाल शब्द देखिए); आरालिय=औदारिक (पण्णव० १९६ ; [पाठ में उरालिय है] ; ४६१ और उसके बाद उत्तर ८८१ ; विवाह० १११ ; १४६ ; ५२८ और उसके बाद तथा ६२ ; ठाणंग ५४ और ५५ ; ओव०)।—फरली= फदली जब कि इसका अर्थ 'हाथी की अबारी पर लगायी गयी पताका' होता है [किन्तु केला के अर्थ में कअली रूप चलता है (हेच० १, २२० [इस सूत्र में कुमाउ रूप के अ भी है जो हिन्दी का का आरम्भिक प्राकृत रूप है।—अनु०]) । घोर पणभाइरिआ (बाल० २२१, १८)=पनकदलिका अशुद्ध है क्योंकि यहाँ

और शौर० मे **कअली** रूप (कर्पूर० ४६, १४ , १२०, ६) है, शौर० में **कदलिआ** है (प्रबोध० ६६, २), अ०माग० और जै०महा० मे **कयली** है (पाइय० २५४ , आयार० २, १, ८, १२ [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए , इस ग्रन्थ में उक्त शब्द की तुलना कीजिए]) ।—**गग्गर = गद्गद्** (वर० २, १३ , हेच० १ , २१९ , क्रम० २,२१ , मार्क० पन्ना १५) है ।—सख्यावाचक शब्दों मे **द्श** के रूप **रस** और **रह** हो जाते हैं, ये सख्याए हैं : **ग्यारह** से **तेरह** तक, **पन्द्रह** और **सत्रह** तथा **अठारह** (वर० २, १४ , हेच० १, २१९ , क्रम० २, २१ , मार्क० पन्ना १५) । इस नियम से : अ०माग० मे **एक्कारस** होता है, अप० मे **एआरह, एग्गारह*** और **गारह** रूप हैं, किन्तु अप० में **एक्कदह** भी आया है, चू०पै० में **एकातस** (= ११), अ०माग० और जै०महा० मे **वारस**, अप० में **वारह** और इसके साथ-साथ अ०माग० और जै०महा० में **दुवालस** भी है (§ २४४) (=१२) , अ०माग० में **तेरस**, अप० में **तेरह** (= १३)है, अ०माग० और जै०महा० **पण्णरस** और अप० **पण्णरह** (=१५) है, अ०माग० और जै०महा० **सत्तरस** (= १७) , अ०माग०, जै०महा० और पल्लवदानपत्रों का **अट्ठारस** , अप० **अट्ठारह** (= १८) है । § ४४३ भी देखिए । क्रम सख्या मे भी यही नियम चलता है (§ ४४९) ।— इसके अतिरिक्त— **दृश्** ,—**दृश** और—**दृक्ष** से मिलकर जो विशेषण अथवा सर्वनाम बनते हैं उनमें भी **द**, **र** का रूप धारण कर लेता है . महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० **एरिस**, अ०माग० और जै०महा० **एरिसय**, अप० **एरिसिअ**, इनके साथ साथ अ०माग० **एलिस**, **अनेलिस**, पै० **एतिस**, शौर० **ईदिश = ईदृश** (§ १२१) हैं , महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० **केरिस**, जै०महा० **केरिसय**, माग० **केलिश** और इनके साथ साथ शौर० **कीदिस = कीदृश** (§ १२१) हैं , जै०महा० **अन्नारिस= अन्यादृश** (हेच० १,१४२ , एर्त्से०)है, शौर० रूप **अण्णारिस** है (विक्रमो० ५२,१९, माल्ती० ८९, ७ , १३८, १० , २१७,४ , महावीर० १२८, ७ , भर्तृहरिनिर्वेद ४, १), किन्तु पै० में **अञ्ञातिस** (हेच० ४, ३१७), अप० में **अण्णाइस** (हेच० ४, ४१३) रूप मिल्ते हैं , महा०, जै०महा० और शौर० में **अम्हारिस = अस्मादृश** (हेच० १, १४२ , हाल , एर्त्से० , मृच्छ० ४, १६ , १७ और २१ , १८, ३ , मुद्रा० ३६, ४ , २४१, ८ , २५९,१, कर्पूर० ९२, ८ , विद्ध० २५, ८) है, स्त्रीलिंग में शौर० में **अम्हारिसी** है (विद्ध० ७१, ९, ११६, ५), किन्तु पै० में **अम्हातिस** है (हेच० ४, ३१७) , महा०, जै०महा० और शौर० में **तुम्हारिस=युष्मादृश** (हेच० १,१४२ , गउड० , रावण० , एर्त्से० , विद्ध० ५१, १२ , १२१,९, कर्पूर० ९३, ९), किन्तु पै० में **युम्हातिस** (हेच० ४, ३१७) है , **एआरिस = एतादृस** (हेच० १, १४२) है, शौर० में **एदारिस** (विद्ध० १०२, २ , यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए) है, स्त्रीलिंग मे **एदारिसी** है (प्रबोध० ४४,१२ , यही पाठ पढना चाहिए) , अ०माग० और जै०महा० **जारिस = यादृश** (हेच० १, १४२ ,

---

* घिसकर इस रूप का हिन्दी में **ग्यारह** हो गया है किन्तु हिन्दी की कई बोलियों में **इग्यारह** और इस प्रकार के अन्य रूप देखे जाते हैं । —अनु०

क्रम० १, २९ उत्तर ७९४ एत्सें०), अ०माग० में जारिसय (नायाध १२८४), किन्तु पै में यातिस (हेच ४,३१७) और शौर जादिस (विद्ध २९,१ १२, १ और २) हैं, स्त्रीलिंग जादिसी (शकु० ५१, ११ और १२ प्रबोध १६, १) और अप० में जइस है (हेच० ४,४०३ और ४ ४) महा , अ०माग , जै महा० और शौर में तारिस = तादृश (भाम १, ३१, हेच १, १४२ क्रम १, २९ रावण कर्पूर ११५, ४ सूम १६५ और ४२९ उत्तर ७९४; एत्सें ६३३, १९ = हेच ४,२८७ आव एत्सें २७,२ ६ और २५ एत्सें० विक्रमो ५२, १९ महावीर १२६ ७ प्रबोध ४४, १२ [यहां तारिसीए है]) है अ माग में अतारिस (आयार १, ६, १, ६), तारिसग (नायाध०, कप्प०), माग तालिश (मृच्छ १७, ११), किन्तु शौर में तादिस है (शकु १२, ५ विक्रमो ५२ ७ ; ५१ ११ प्रबोध १६,१) स्त्रीलिंग तादिसी (शकु ५१, १२ विद्ध १२, १ और २), माग तादिशी (मृच्छ ४ , १२; प्रबोध ६२ ७), पै में तातिस (हेच ४, ३१७) और अप में तइस रूप मिलता है (हेच ४ ४ १) अ माग और अप सरि = सदृक् (हेच १, १४२ नायाध पिंगल १,४२) महा , अ माग जै महा , मैं शौर , शौर , दाक्षि और अप में सरिस = सदृश (भाम १, ३१ हेच १, १४२ ; मार्क पन्ना ११ गउड हाल रावण उवास निरया ; नायाध कप्प कक्कुक शिलालेख १२ ; एत्सें कालिके ३१९, ३१६ ; मृच्छ १७, १८ ; २४, १६ ५५, ४ ९५, ११ १३४, १८ १५२, २१ शकु १३२,१ १६४,८ विक्रमो ६, १ ८, ११ [यहां यही पाठ पढ़ना चाहिए] २ , १२ मालवि ६, २ आदि आदि दाक्षि में : मृच्छ १ २ २१ १ ५, ४ ; अप में : पिंगल १, १) अ माग मे सरिसय और स्त्रीलिंग सरिसया है (नायाध), माग में शलिश (मृच्छ १५४ १४ ; १६८ २ १७६, ५) है, अप में सरिसिय = *सदृशिमम्=सादृश्य (हेच ४ ३९५,१) है; महा और शौर में सरिच्छ=सदृक्ष (हेच १ ४४ और १४२ ; हाल; विद्ध २१ ४) महा जै महा और जै शौर में सारिच्छ भी है (§ ७८) और शौर में सारिक्ख (कर्पूर १ ८ २), सारिक्ख=*सादृक्ष्य (हेच २ १७ गउड ८५२ ; इसमें यह शब्द देखिए) हैं, अ माग और अप में सारिक्ख (हेच २ १७ ४ ४ ४) है शौर में सारिक्खदा (कर्पूर १ ९ ७ और १) रूप भी मिलता है। अवारिस (हेच १, १४२) की भी तुलना कीजिए और इसके साथ अप अवराइस=अपरादृश (हेच ४,४१३ को मिलाइए।

१ ओराल ठीक इसी प्रकार अशुद्ध है जैसा उराविय। दोनों रूपों के ध्वर स्थित वर्ण हस्तलिपियों और छपे संस्करणों में मनमाने रूप से इधर-उधर डाल दिये हैं।

§ २४८—कभी कभी स और द के स्थान में य भासमान-सा होता है। भायण = भाजन नहीं है (हेच १ २६७), परन्तु = *भाषाय (§ ११)।

अ०माग० **उज्जोवेमाण** (पण्णव० १०० , १०२ , ११२ , उवास० , ओव०), **उज्जोविय** (नाया४० , कप्प०) और **उज्जोवेंत** (नायाध०) = भीतर बिठाये हुए व[1] के साथ **उद्योतयमान, उद्योतित** और **उद्योतयन्त** नहीं है, परन्तु **द्यु** धातु से संबंध रखते हैं जो संस्कृत में **द्यु** (=दिन), **दिद्यु** (=वज्र , बिजली की चमक) मे है, संभवतः यह अप० **जोएदि** (=जोहना , देखना है : हेच० ४, ४२२, ६ और उसकी शब्दानुक्रम-सूची मे है) और यह शब्द निश्चय ही नवीन भारतीय आर्य भाषाओं मे है[2] । महा० **रुवइ** और महा० तथा जै०महा० **रोवइ** **रुद्** धातु से नहीं निकले है, परन्तु इनकी व्युत्पत्ति **रु** धातु से है (§ ४७३) । **कवट्टिअ=कदर्थित** नहीं है (हेच० १, २२४ , २, २९), परंतु = **कद्** अर्थ मे **कव = कु+*आर्तित = आर्त** (§ २८९ और ४२८) है । प्राकृत के सभी व्याकरण-कारों द्वारा मान्य ध्वनि परिवर्तन के कई अन्य उदाहरण भी व्युत्पत्ति की दृष्टि से गिर जाते हैं । **एरावण=ऐरावत** नहीं है (वर० २,११ , भाम० १,३५ , क्रम० २, ३१ , मार्क० पन्ना १५), किंतु यह = **ऐरावण** (हेच० १, १४८ , २०८ , § ६०) है । **गब्भिण=गर्भित** नहीं है (वर० २, १० , हेच० १, २०८ , क्रम० २, ३१ , मार्क० पन्ना १५), किन्तु यह = **गर्भिन्** है जिसका हलन्त प्राकृत में अ रूप में परिवर्तित हो गया है (§ ४०६) । हेमचन्द्र १,२६ , १७८ और २०८ के अनुसार **अतिमुक्तक** का **अणिउंतअ** और इसके साथ साथ **अइमुंतअ** हो जाता है (मेरे पास हेमचन्द्र का जो व्याकरण है उसमें **अणिउँतय** और **अइमुंतय** रूप है न कि पिशल द्वारा दिये गये अंतिम स्वर–अ वाले रूप । —अनु०), अ०माग० में यह नियमानुसार **अइमुत्तय** (हेच० १, २६ , और ओव० § ८ , [इस पर अनु० की ऊपर दी हुई टिप्पणी देखिए । –अनु०]), शौर० में **अदिमोँत्तअ** (मृच्छ० ७३, १०), जै०महा० में **अतिमुक्त** के समान **अइमुत्त** (पाइय० २५६) और शौर० में **अदिमुत्त** रूप है (विक्रमो० २१,९ , वृषभ० १५,१७ , ४७, १५ , मल्लिका० ९७,६ , १२८, १५) । मार्कण्डेय पन्ना ३४ में हस्तलिपि में **अइमुत्त** है, इसके स्थान पर **अइमुंत** पढ़ा जाना चाहिए , भामह ४, १५ में **अइमुंक** मिलता है, यह **अहिमुंक** के लिए आया है और **अभिमुक्त** से इसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है । **अणिउंतअ** कहा से आया यह अस्पष्ट है । —अ०माग० में **त** के अशुद्ध प्रयोग के लिए § २०३ देखिए , **त** के स्थान पर **द** के लिए § १९२, २०३ और २०४ देखिए , **त** के स्थान पर **ट** और **ड** के लिए § २१८ और २१९ , **द** के स्थान पर **त** के लिए § १९० और १९१ तथा **द** के स्थान पर **ड** के लिए § २२२ देखिए ।

१ लौयमान द्वारा संपादित औपपातिक सुत्त मे **उज्जोय्** शब्द देखिए । २ हेमचन्द्र ४, ३२२ पर पिशल की टीका ।

§ २३९—**थ** का **ढ** (§ २२१), **ध** का **ढ** (§ २२३) और चू०पै० में **ध** का **थ** बन जाता है (§ १९१) । अ०माग० में **समिला** (उत्तर० ५९२ और ७८८) रूप का स्पष्टीकरण याकोबी[1] इसे **समिध** से निकला बताकर करते हैं । यह ध्वनि के नियमों के अनुसार असंभव है और अर्थ के विपरीत भी है । टीकाकार ने इसका स्पष्टी-

करण कीळिका, युगकी ळिका से किया है, यह साफ संकेत करता है कि यह कसमिता का रूप है समित् और समिति की तुलना कीजिए।—न अधिकांश में ण हो जाता है (§ २२४)। निम्ब में यह ळ बन जाता है : ळिम्ब (हेच १,२१)= मराठी ळिंब, अप ळिम्बडअ रूप है (हेच ४, १८७, २) = गुजराती ळिंबड, इसके साथ साथ महा में णिम्ब भी है (हेच० १, २१ ; हाल), अ०माग णिम्बोळिया = निम्बगुळिका (नायाध ११८२ ११७१ ; § १६७ की तुलना कीजिए)। — ण्हाविय = नापित के विषय में § २१ देखिए।

१ सक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट ४५ पेज ९४ नोटसंख्या ४।

§ २४०—प के स्थान पर नियम के अनुसार व (§ १९९) हो जाता है और बोली के हिसाब से यह व (§ १९२) तथा म (§ २ ९) रूप ले लेता है तथा कभी कभी म बन जाता है महा अ माग० और जै महा० आमेळ = आपीन्य, महा० में आमेळिअअ भी है, अ माग० में आमळग और आमळय भी हैं (§ १२२) णिमळ=णिपीड्य (§ १२२) है; महा में णुमज्जइ = निपद्यते, णुमण्ण = निपद्य (§ ११८) हैं; अ माग आणमणी = आज्ञापनी (पण्णव १६३ और उसके बाद ३६९) है, इसके साथ साथ आणवणी भी है (पण्णव २६८ और उसके बाद) अ माग में चिमिढ = चिपिट (नायाध० ७५१ टीका में चिमिढ रूप है) है, इसके विपरीत चिविढ भी है (नायाध ७४५; पाठ में चिविढ है, टीका में चिमिढ, पाठ में ७५१ की भाँति चिमिढ पढ़ना चाहिए § २ ७ की तुलना कीजिए); अ०माग में कुणिम = कुणप (सूय २८० ; २८२ ; ८८१ ; ८११; ठाणंग १३८ पण्हा १७९; जीवा २५५ ; ओव) है अ माग० तलिम = तल्प (देशी ५, २ ; पाइय १७७ और १२२ नायाध ११९२ और उसके बाद) है; अ माग में नीम और णीम = नीप (हेच १, २३४ ; हाल ६२३ ५ पण्णव ३१ आव ओव § ६ नोटसंख्या १२ की तुलना कीजिए) हैं, इसके साथ-साथ अ माग नीव और अप णीव चलता है (हेच १ २३४ आव ; पिंगल १, ६ २ ८४); अ माग भिण्डिमाल = भिण्डिपाल (जीवा २५७ और २७९ पण्हा ६१ और १ ८ ; ओव), इसके साथ साथ भिण्डिवाल भी है (सूय २ ८६ हच २ ३८ [इस पर पिशल की टीका देखिए] ; ८ ; सम २ ६५ माल पण्हा २६); अ माग मणाम = पाली मनाप (आयार ६९ ; ६६ ; ८२७ सम ९८ ; विवाह १६२ और ४८ नायाध ; निरया ; ओव० कप्प) है स्त्रीलिंग मणामी है (विवाह १९६) अमणाम भी मिलता है (सूय ६३ ; विवाग ८ और उसके बाद सम ११७ ; जीवा २५६ ; विवाह ८ ११७ और १४८) अ माग में वणीमग और वणीमय = वनीपक (आयार २ १ १ १ २ १ ६ १ २ २ ८ और उसके बाद ; २ १, १ २ ; २ ५ १ ९ और उसके बाद ; २ ६ १ ७ २, १ २ और ३ ; २ १५ ११ ; पण्हा ४ २ ठाणंग ३ ७ ; नायाध १ ८६ ; दस ६२२ ११ और १ ; ६२६ १९ ; कप्प) वणीमयगाप = वनीपकतया (पण्हा ३५८ ; पाठ में

चणीययाए है), अ०माग० में विडिय = विटय (= शाखा : आयार० २, ४, २, १२ ; पण्हा० ४३७, जीवा० ५४८ और उसके बाद, दस०, ६२८, २८, ओव० § ४, = पेड, वृक्ष : दस० नि० ६४५, ५, = गेंडा. देशी० ७, ८९, ओव० § ३७। [३७], = बालमृग, शिशुमृग. देशी० ७, ८९), किंतु महा० और शौर० में विडव है (भाग० २, २०, क्रम० २, १०, गउड०, हाल, रावण०, शकु० ६७, २, १३७, ५, विक्रमो० १२, १७, २२, १२, ३१, १), विडवि = विटपिन् (पाइय० ५४), अ०माग० और जै०महा० मे सुमिण और उसके साथ-साथ सुविण, जै०महा० में सुमिणग और इसके साथ-साथ सुविणग, सिमिण और इसके साथ साथ महा० सिविण, शौर० और माग० सिविणअ=पाली सुपिन= संस्कृत स्वप्न (§ १७७)। यह ध्वनि परिवर्तन प्रायः पूर्ण रूप से अ०माग० तक ही सीमित है और इसका स्पष्टीकरण म तथा व के परस्पर स्थानपरिवर्तन से हो जाता है (§ २५१ और २६१)।

§ २४९—शौर० पारद्धि (= आखेट. विद्ध० २३, ९) जिसे हेमचन्द्र १, २३५ मे और नारायणदीक्षित विद्धशालभंजिका २३, ९ की टीका में = पापर्धि बताते हैं = प्रारब्धि, इसका समानार्थक पारद्ध (देशी० ६,७७), जो 'पूर्वकृतकर्मपरिणाम्' और 'पीडित' अर्थ का द्योतक है = प्रारब्ध।

§ २५०—जिस प्रकार प (§ २४८) वैसे ही कभी-कभी व भी म रूप धारण कर लेता है. कमन्ध = कवन्ध (वर० २, १९, हेच० १, २३९, मार्क० पन्ना १६)। हेच० १, २३९, मार्क० पन्ना १६, पिशल द्वारा संपादित प्राकृतमंजरी, डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस, पेज १४ मे बताया गया है कि इसका एक रूप कयंध भी होता है, जो अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० से निकला है, इसलिए यह मानना होगा कि कयंध का य लघुप्रयत्नतर यकार है। महा०, जै०महा० और अप० कवन्ध के उदाहरण मिलते हैं (§ २०१), जो रूप मार्क० पन्ना ६७ के अनुसार शौर० में भी सदा पाया जाता है। —समर = शवर (हेच० १,२५८), किंतु महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में सवर है, महा० और अ०माग० में स्त्रीलिंग सवरी है (§ २०१)। जै०महा० माहण जिसे वेबर[1], ए म्युलर[2], याकोबी[3], लौयमान[4], एस. गौल्दश्मित्त[5], आस्कोली[6] और होएर्नले[7] = ब्राह्मण बताते हैं, भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह समता असंभव है। अ०माग० और जै०महा० में बम्भ = ब्रह्मन्, बम्भयारि= ब्रह्मचारिन्, बम्भण्णय = ब्राह्मण्यक, बम्भलोय = ब्रह्मलोक आदि आदि (§ २६७) के रूपों के अनुसार ब्राह्मण शब्द का प्राकृत बम्भण होना चाहिए था क्योंकि ऊपर इसी प्रकार का ध्वनिपरिवर्तन का क्रम है। और ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, अ०माग० और जै०महा० में बंभण (उत्तर० ७४८, ७५३ और उसके बाद, आव०एर्त्से० १८, १५ ; एर्त्से०, कालका०), अ०माग० में सुबम्भण आया है (पण्हा० ४४८)। कभी कभी ये दोनों शब्द एक साथ मिलते हैं, जैसा औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन १, ७ में माहणस्स रूप है और १, ८ में बम्भणेण लिखा है, कालका० २७६,२५ में बम्भणरूव है किंतु दो, ५०८,१९ मे माहणरूवग है। अ०माग० प्राय.

सर्वत्र माहण का व्यवहार करती है' (उदाहरणार्थ, आयार २,१,१,१२ २, १ १ ११, ९ २, २, १, २ ; २, ८ और ९ २,६,१,१ २, ७, २, १ २, १५ २ ; ४ और ११ सूय १७ ५६ ७४ १ ५ १ ६ ११३ ११८ ; ३७२ ४१९ ४६५ ४*५ ५५१ ६२ ९४२ और उसके बाद विवाह० ११९ ११९ ३४१ विवाग० १५२ और उसके बाद ओव कप्प), महामाहण है (उवास), अ माग और जै महा में स्त्रीलिंग माहणी है (आयार २, १५, २ नायाध ११५१ विवाह ७८८ कप्प आव०एर्त्से १२, १), माहणत्त = ब्राह्मणत्व (उत्तर ७५६) है। मैं इस सम्बन्ध में संस्कृत शब्द मख (=यज्ञ) को अधिक उपयुक्त मानता हूँ, माख का अर्थ होता है यज्ञ सम्बन्धी, इसलिए मेरे विचार से *माखन = 'यज्ञ करानेवाला पुरोहित'।

१ भगवती १, ३१ नोट-संख्या ५। —२ वाइबैगे पेज २६। —३ कल्पसुत्त और औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन में यह शब्द देखिए। —४ औपपातिक सूत्र में यह शब्द देखिए। —५ माकुलिश पेज १५। —६ क्रिटिशे स्टुडियन पेज २२१ नोटसंख्या ८ के साथ। —७ उवासगदसाओ, अनुवाद पेज ११ नोटसंख्या २७३। —८ इस संबंध में उत्तरज्झयणसुत्त ७२४ की तुलना करें जिसमें आया है 'जे लोए बम्भणो वुत्तो तं वयं बूम माहणं।

§ २५१—शब्द के भीतर का म अप में बदल जाता है (हेच ४, ३९७)। पवँल और उसके साथ-साथ कमल है (हेच ४, ३९७) भवँर और उसके साथ-साथ भमर है (हेच ४,३९७); णीसावँण्ण = निस्सामान्य (हेच ४,३४१,१); पर्वाँण=प्रमाण (हेच ४ ४१९, ३), इसके साथ-साथ पमाण (हेच ४,३९९, १) चलता है ; मँवइ = भ्रमति (हेच ४ ४ १ २) वजवँ = वज्रमय (हेच ४, ३९५ ५) सवँ = सम (हेच ४, ३५८, २) सुवँरहि और इसके साथ-साथ सुमरि=स्मर (हेच ४, ३८७)। यह ध्वनिपरिवर्तन अन्य प्राकृत भाषाओं और कुछ अंश मे स्वयं अप में पुँछता हो गया है क्योंकि या तो अनुनासिक के बाद का व या इससे भी अधिक स्वरों पर व से पहले का अनुनासिक लुप्त हो गया है। परिणाम यह हुआ है कि इसका केवल ँ या व शेष रह गया है। इस प्रकार हेमचन्द्र १ १७८ के अनुसार म् के स्थान पर अणिउँतअ=अतिमुक्तक में अनुनासिक आ गया है (§ २४६); काँउअ=कामुक चाँउण्डा=चामुण्डा जँउणा=यमुना। वर २ ३ ; क्रम २ ५ और मार्क पन्ना १४ के अनुसार यमुना के म की विच्युति हो जाती है और इस प्रकार महा अ माग और जै महा में जउणा है (गउड हाल ३७१ की टीका में यह शब्द देखिए ; पंछ ५५, ५ ; प्रबन्ध २७ २ ; ठाणग ५४४ विवाग २ ८ ; हार ४९६, २ ; तीर्थ ४, ८)। अधिकांश हस्तलिपियों में हाल ३७१ में जमुणा पाया जाता है तथा शौर में भी यही रूप है (विक्रमो २१ ११ ; ४१ ३)। महा , अ माग और जै महा में शुद्ध लिपि जउणा होना चाहिए (§ १७९)। काँउअ के स्थान पर महा और शौर में कामुअ है (हाल ; मृच्छ १६, २१ ; ७१, ६ ; विक्रमो २१, १८ ; ११, १४),

जै०महा० में **कामुय** भी मिलता है (एर्त्से०), **चॉउण्डा** के स्थान पर शौर० में **चामुण्डा** है (मालती० ३०,५ , कर्पूर० १०५, २ , १०६, २ , १०७, १)। महा० में **कुमरी** के लिए **कुअरी** रूप जो =**कुमारी** है, अशुद्ध है (हाल २९८) और वेबर के हाल[1] भूमिका के पेज ६१ श्लोक २९८ की टीका में अन्य शब्दों पर जो लिखा गया है वह भी देखिए। अप० में **थाउँ** = **स्थामन्** में यही ध्वनि-परिवर्तन माना जाना चाहिए (हेच० ४, ३५८, १ , पाठ मे **थाउ** है), टीकाकारो के अनुसार इसका अर्थ 'स्थान' है। क्रम० ५, ९९ मे **थाम स्थनि** है। इसके अतिरिक्त **भमुहा** से जो **भोँहा** निकला है (पिगल २, ९८ , पाठ में **भोहा** है , एस० गौल्दश्मित्त **भमुहा** , § १२४ और १६६ की तुलना कीजिए) और **हणुँआ** = **हनुमान** (पिगल १,६३ अ, पाठ में **हणुआ** है) में भी यही ध्वनि परिवर्तन है। —अ०माग० **अणवदग्ग**, अ०माग० और जै०महा० **अणवयग्ग** = पाली **अनमतग्ग** = **अनमदग्र**[1] (सूय० ४५६ [पाठ में **अणोवदग्ग** है] , ७८७, ७८९, ८६७, ठाणग० ४१ और १२९ , पण्हा० २१४ और ३०२ , नायाध० ४६४ और ४७१ , विवाह० ३८ , ३९ , १६० , ८४८ , ११२८, १२९० , १३२४ , उत्तर० ८४२ , एर्त्से०) में **म** के स्थान पर **व** बैठ गया है ; इसका सबध **नम्** धातु से है, इसके महा०, जै०महा० और अप० रूप में भी कभी-कभी **व** मिलता है , **णवइ** (हेच० ४, २२६), महा० **ओणविअ** = ***अवनमित** = **अवनत** (हाल ६३७), जै०महा० में **नवकार** = **नमस्कार** (एर्त्से० ३५, २३ , २५ , २७ और २९), अ०माग० **विप्पणवन्ति** = **विप्रणमन्ति** (सूय० ४७२), अप० **णवहिँ** = **नमन्ति** (हेच० ४, ३६७, ४), **णवन्ताहँ** = **नमन्ताम्** (हेच० ४, ३९९)। अधिकाश में **नम्** सभी प्राकृत भाषाओं में **म** बनाये रहता है। **अहिवण्णु** (हेच० १, २४३) और इसके साथ साथ **अहिमण्णु** (हेच० १, २४३ , ३४, १२ , ६४, १६) रूप मिलते हैं , अप० में **रवण्ण** = **रमण्य** (हेच० ४,४२२, ११), अ०माग० मे **वाणवन्तर**[3] और इसके साथ साथ साधारण प्रचलित **वाणमन्तर** पाये जाते हैं (नायाध० ११२४ ,ठाणग० २२२ , भग० , ओव०, कप्प०)। —शब्द के आरभ में भी कभी कभी **म** का **व** हो जाता है : अ०माग० मे **वीमंसा** = **मीमांसा** (सूय० ५९, ठाणग० ३३२ और उसके बाद, नदी० ३५१, ३८१, ३८३ और ५०५), **वीमंसय** = **मीमांसक** (पण्हा० १७९)[2], **वंजर** (हेच० २, १३२) और इसके साथ साथ **मंजर** (§ ८१, ८६) रूप मिलते हैं [=मार्जार। –अनु०], महा०, जै०महा० और अप० **वम्मह** = **मन्मथ** (वर० २,३९ , चड० ३,२१ , हेच० १,२४२ , क्रम० २, ४५ , मार्क० पन्ना १८ , गउड० , हाल , रावण० , कर्पूर० ३८,११ , ४७,१६ , ५७, ६ , विद्ध० २४; १२ , धूर्त० ३, १३ , उन्मत्त० २, १९ , एर्त्से० , पिगल २, ८८), पद्य में 'माग० में भी यही रूप आया है (मृच्छ० १०, २३ , पाठ में **वम्मह** है , गोडबोले के सस्करण में २८, ४ की नोट सहित तुलना करें), किंतु शौर० में **मम्मध**[4] रूप है (शकु० ५३, २ , हास्या० २२, १५ , २५, ३ और १४ , कर्पूर० ९२, ८ , मालती० ८१, २ , १२५, २ , २६६, ३ , नागा० १२, २ , प्रसन्न० ३२, १२ , ३६, १८ , ८४, ३ , वृषभ० २९, १९ , ३८, ११ , ४२, ११ , ४९, ९ ;

२०५, २१) **जधा = यथा**, किंतु माग० में **यधा** रूप है (§ ११३), महा०, अ०माग० और जै०महा० में **जक्ख = यक्ष** (गउड० , हाल , कर्पूर० २६, १ , आयार० २,१,२,२, सूय० ६७४, पण्णव० ७५ , ठाणग० ९० और २२९, नायाव० , ओव० , आव०एर्त्से० १३, २५ और इसके बाद , एर्त्से०) , जै०शौर० **जदि = यति** (पव० ३८३, ६९) , महा०, अ०माग० , जै०महा० और अप० **जूह**, शौर० **जूध = यूथ** (§ २२१) , महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और अप० **जोॅव्वण = यौवन** (§ ९०) , अ०माग० और जै०महा० **जारिस** और पै० **यातिस = यादृश**, शौर० मे **जादिसी = यादृशी** (§ २४५) । शब्द के भीतर यही परिवर्तन होता है, जब यह § ९१ के अनुसार महा०, अ०माग०, जै० महा०, जै०शौर०, दाक्षि० और अप० में द्वित्व रूप ग्रहण कर लेता है (वर० २, १७ , चड० ३, २५ , हेच० १, २४८, क्रम० २, ३६ और ३७ , मार्क० पन्ना १६) जैसा कि अ०माग०, जै०महा० और अप० में **दिज्जइ**, जै०शौर० में **दिज्जदि = दीयते** किन्तु पै० म **तिय्यते** रूप है, शौर० और माग० में **दीअदि** है (§ ५४५), अ०माग० और जै०महा० में **होॅज्जा = भूयात्**, अ०माग० मे **देॅज्जा = देयात्**, **अहिट्ठेॅज्जा= अधिष्ठेयात्** और **पद्देॅज्जा = प्रद्वेयात्** (§ ४६६) , महा०, अ०माग० और जै०महा० में **करणिज्ज=करणीय**, किन्तु शौर० में **करणीअ** रूप है । अ०माग० में **वन्दणिज्ज** किन्तु शौर० में **वन्दणीअ** रूप मिलता है (§ ५७१) , अ०माग० में **अंगुलिज्जक = अङ्गुलीयक** (नायाध० , पाठ में **अंगुलेॅज्जक** रूप है , ओव० , कप्प०) , अ०माग० और जै०महा० में **कञ्चुइज्ज = कञ्चुकीय** (कमरे की देख-भाल करनेवाला . विवाह० ७९२ , ८०० ; ९६३ , ९६६ , राय० २८९ , नायाध० § १२८ , ओव० , आव० एर्त्से० ८, ८), अ०माग० **कोसेॅज्जं = कौशेय** (ओव०), अ०माग० **गेवेज्ज = ग्रैवेय** (उत्तर० १०८६ , नायाध० , ओव०, कप्प० [पाठ में **गेविज्ज** है]) , अ०माग० और जै०महा० **नामधेज्ज = नामधेय** (आयार० २, १५, ११, १५ , नायाध० § ९२ , ११६ , पेज १२२८ और १३५१ , पाठ में **नामधिज्ज** है , पण्हा० ३०३ और ३२७ ; ओव० § १६ , १०५ और १६५ , निरया० , कप्प० , आव० एर्त्से० १०, २) । शब्द के भीतर आने पर § १८६ के अनुसार **य** की विच्युति हो जाती है । माग०, पै० और चू०पै० मे शब्द के आरम्भ और मध्य में **य** बना रहता है, अ०माग० में शब्द के आदि में केवल तब बना रहता है इसका द्वित्व हो जाता है (हेच० ४, २९२) , माग० में **युग=युग** (हेच० ४, २८८), **यादि = याति**, **यथाशलूव=यथास्वरूप**, **याणवत्त = यानपत्र** (हेच० ४, २९२), **युत्त = युक्त** (हेच० ४, ३०२) , **यक्क = यक्ष** (रुद्रट के काव्यालकार २, १२ की टीका में नमिसाधु) , **यधा – यथा**, **यंयं=यद्-यद्**, **यधस्तं** [पाठ में **यधस्तं** है] = **यथार्थम्** (ललित० ५६६, ५ , ८ और ९ शब्द के भीतर , **अलश्कियम्माण = अलक्ष्यमाण**, **पेश्किय्यन्दि** और **पेश्किय्यसि** [पाठ में **पेश्किय्यशि** है]= **प्रेक्ष्यन्ते** और **प्रेक्ष्यसे**, **याणिय्यादि=ज्ञायते** (ललित० ५६५, ७ , १३ और १५, ४६६, १) । जैसे **ज** के विषय मे वैसे ही (§ २३६) यहाँ भी हस्तलिपियाँ इस नियम

की प्रवृत्ति पुष्टि नहीं करतीं। पै० में युत्त = युक्त यातिस, युम्हातिस और यद् = यादृश, युष्मादृश और यद् (हेच ४, ३ १ ३१७ और ३२३) शब्द के भीतरः गिय्यते = गीयते, तिय्यते = दीयते, रमिय्यते = रम्यते, पढिय्यते = पठ्यते, हुवेय्य = भवेत् (हेच ४, ३१५ ३२ और ३२३) चू०पै० में नियोचित = नियोजित (हेच ४, ३२५ ३२७ की भी तुलना कीजिए)। वाँगम = युग्म के विषय में § २१५ और येव = एव के विषय में § ३३६ देखिए।

§ २५३—जैसा ण के व्यवहार में (§ २२४), वैसे ही य के प्रयोग में भी पल्लवदानपत्रों में मार्कों का भेद दिखाई देता है। नीचे दिये शब्दों में य शब्द के आदि में बना रह गया है :— याजी (५, १)—प्पयुत्ते = प्रयुक्तान् (५, ६) —यसो = यशस् (६, ९) योत्त्वक (१६, ११) यो = यः (७, ४६) इसके विपरीत ७ ४४ में जो रूप आया है और—संजुत्तो = संयुक्तः (७ ४७)। विजयबुद्धवर्मन के दानपत्रों में युध– आया है (१ १, २)। शब्द के मध्य में सरल य पल्लव और विजयबुद्धवमन के दानपत्रों में अपरिवर्तित रह गया है : पल्लवदानपत्र में—वाजपेय—(५, १) विसये = विषये (५, १) नेयिके = नैयिकान् (५ ६) —आयु = आयुस्—, विजयवेजयीके = विजयवैजयिकान् (६, ९) —प्पदायिनो = प्रदायिनः (६, ११) आत्तेय–= आत्रेय–(६, १३); संविनयिकम् (६, १२); विसय– = विषय–(६, १५) आपिट्ठीयं = आपिष्ठ्याम् (६, ३७) भूयो = भूयः (७, ४१) वसुधाधिपतये = वसुधाधिपतीन् (७ ४४); अजातायेः = अ माग अज्झत्ताए (कप्प टाणंग २ एस [३] ६, ७) = अद्यत्वाय (७, ४५)[1] सहस्साय = सहस्राय (७, ४८) विजयबुद्धवमन् के दानपत्रों में : विजय (१ १, १ और ३) नारायणस्स आयुं, पवढमीयं (१ १, ८) गामेयिका (१ १ १ ; एपिग्राफिका इण्डिका १ २ नोटसंख्या २ की तुलना कीजिए); परिहरयं (१ १, ११ ; एपिग्राफिका इण्डिका १ २ नोटसंख्या २ की तुलना कीजिए)। द्वित्व य के विषय में पल्लवदानपत्रों के विषय में वही भेद दिखाई देता है जो शब्द के आरम्भ में य के विषय में देखा जाता है : ६, ८ में कारॅय्य और कारवेज्जा = कुर्यात् और कारवेस् साथ साथ आये हैं ; ७ १ में कारेय्याम = कुर्याम किन्तु ७, ४६ वट्टेज्जा = वर्तयेत् और ७ ४८ में होज = भूयात्। अजातायेः में द्य का जैसा कि § २८ म साधारण नियम बताया गया है ज हो जाता है ; गोलसमंजस, अगिसमंजस्स दत्तजस, वामजस सालसमजस और अगिसमजस (६, १२ १३ २१ २३ २७ और ३७) ये नियमानुसार ज्ज हो गया है, यदि व्यूलर ने अज्ज– = आर्य की व्याख्या ठीक बैठायी हो तो[1] किन्तु नंदिजस और सामिजस (६ २१ और २६) ध्वनि के अनुसार व्यूलर के मत से = नन्द्यायस्य और स्वाम्यायस्य नहीं हो सकते अपितु = नन्दिज्यस्य और स्वामिज्यस्य है। इस प्रकार के अन्य शब्दों के लिए भी ज माना जाना चाहिए।

[1] लौयमान का यह स्पष्टीकरण ठीक है, मा गे वि गा १८९१, ३११

मे पिशल का मत अशुद्ध है। — २ एपिग्राफिका इडिका १, ७ और उसके बाद व्यूलर के मत की तुलना कीजिए। — ३ एपिग्राफिका इण्डिका १, २।

§ २५४—अ०माग० **परियाग=पर्याय** मे भासमान होता है कि य के स्थान पर **ग** हो गया है (आयार० २, १५, १६, विवाग० २७०, विवाह० १३५, १७३, २२०, २२३; २३५, २४१, ७९६, ८४५, ९६८, ९६९, नायाध० १२२५, उवास०, ओव०), इसके साथ **परियाय** भी चलता है (उवास०, ओव०)। होएर्नले के अनुसार (उवास० मे यह शब्द देखिए) **परियाग= पर्यायक,** इसमे § १६५ के अनुसार सन्धि हुई है और इसका पद्य मे प्रयोग सर्वथा असम्भव है। मेरा अनुमान है कि **परियाग=, परियाव** और इसमे § २३१ के अनुसार **व** के स्थान पर **ग** बैठ गया है। इसका प्रमाण अ०माग० और जै०महा० **पज्जव=पर्याय** से मिलता है। इसी प्रकार अ०माग० **नियाग** (आयार० १, १, ३, १, सूय० ६६५ [पाठ मे **णियाग** है])=**न्याव** जो **न्याय** के लिए आया है, टीका मे इसका अर्थ= **मोक्ष-मार्ग, संयम** और **मोक्ष**। — **कइअव = कतिपयम्** मे (हेच० १, २५०) सस्कृत[1] और पाली[2] मे होता है, **य** और **व** मे स्थानपरिवर्तन हो गया है, अ०माग० और जै०महा० **पज्जव = पर्याय** (§ ८१), अ०माग० **तावत्तीसा = त्रयस्त्रिंशत्**, इन प्राकृतों मे **तावत्तीसगा** और **तावत्तीसया=त्रयस्त्रिंशकाः** (§ ४३८), अप० **आवइ = आयाति** (हेच० ४, ३६७, १, ४१९, ३), **आवहि** (हेच० ४, ४२२, १) आर **आव** [गौल्दश्मित्त ने **आउ** रूप दिया है] **=आयाति** (पिगल २, ८८)[3], अप० मे **गाव** [गौल्दश्मित्त ने **गाउ** रूप दिया है] **=गायन्ति** (पिगल २, ८८), **गावन्त** रूप भी मिलता है (पिगल २,२३०), इनके अतिरिक्त अवश्य कर्त्तव्य सूत्र क क्रिया के रूप मे अप० मे **-एवा, -ऍव्वउँ, -इऍव्वउ,** जैसे **-सोएवा = *स्वपेय्य** (§ ४९७), **जग्गेवा = *जाग्रेय्य** मे भी **य** के स्थान पर **व** पाया जाता है, ऐसा ही **करिऍव्वउँ=*कर्येय्यकम्** कर्मवाचक रूप है (§ ५४७), **सहेव्वउँ = सहेय्यकम्** भी ऐसा ही है (§ ५७०)। नीचे दिये गये शब्दों मे गौण **य** के स्थान पर **व** आ गया है। अ०माग० **मुरव *मुरय** के स्थान पर आया है और **=मुरज** (पण्हा० ५१२, विवाह० ११०२, ओव०, कप्प० [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए]), **मुरवी = मुरजी** (ओव०), इसका महा० और शौर० मे **मुरअ** रूप हो जाता है (पाइय० २६६, हाल, मृच्छ० ६९, २३)। **मुरव** जनता के व्युत्पत्तिशास्त्र मे **मु + रव** पर आधारित भी हो सकता है। **य** के स्थान पर गौण **व** का **प** भी हो जाता है पै० मे **हितय = हृदय** और **हितपक=हृदयक** (§ १९१), इस रूप मे **व** का **य** हो गया है जैसा कि **गोविन्त=गोविन्द** और **केसव=केशव** (§ १९१)।

१ वाकरनागल कृत आल्टइ डिशे ग्रामाटीक § १८८ सी। —२ ए क्रून कृत वाइत्रैगे पेज ४२ और उसके बाद, ए म्युलर कृत सिम्प्लीफाइड ग्रैमर पेज ३० और उसके बाद। —३ हेमचंद्र ४, ३६७, १ पर पिशल की टीका, अव् धातु (=जाना) और वैदिशे स्टुडिएन १ भूमिका पेज ६ की तुलना कीजिए।

§ २५५—पाली में नहारु, ग्रीक नेउरौन और लैटिन नेर्वुस् मिलता-जुलता है। अ०माग० और जै०महा० में ण्हारु = स्नायु (ठाणंग० ५५ पण्हा० ४९; विवाह० ८९; ३४९; ८१७; जीवा० ६६ २७१; एत्सें०), अ०माग० में ण्हारुणी = *स्नायुनी (आयार० १, १, ६, ५; सूय० ५७६)। समवायंगसुत्त २२७ में दो बार ण्हाउ रूप आया है। —यष्टि में य का ल हो गया है (वर० २, ३२; चंड० ३, १७अ पेज ४९; हेच० १,२४७; २, ३४; क्रम० २,३१; मार्क० पन्ना १७); महा० जै०महा० और अ०माग० में लट्ठी और लट्ठि रूप मिलते हैं (हाल; रावण०; कर्पूर० ४४, ३; ४९, १२; ५८, ६; ६१, ८; ७३, १; ८, १; विद्ध० ६४, ४; आयार० १, ८, ३, ५; २, ४, २, ११; सूय० ७२, ६; पण्हा० २८२; नायाध० § ११५; ११६ पेज ३४२; विवाह० ८२१; उवास०; ओव०; कप्प०; एत्सें०)। मार्क० पन्ना ६७ के अनुसार शौर० में केवल जट्ठि रूप होता है और यह रूप वृषभ० ३७, २ में है और मल्लिकामारुतम् १२९, १९ में, जहाँ पाठ में तणुयट्ठी है तथा १९२, २२ में जहाँ ग्रंथ में हारयट्ठी है इसी रूप से तात्पर्य है, किंतु राजशेखर शौर० में लट्ठि का प्रयोग करता है (कर्पूर० ११०, ३; विद्ध० ४२, ७; ९७, ११; १२२, १ [यहाँ हारलट्ठी है]; बाल० १ ५, १०) और लट्ठिआ रूप भी आया है (विद्ध० १ ८, १) जो महा० लट्ठिआ से मिलता-जुलता है (चंड० ३, १७अ पेज ४९), अ०माग० में लट्ठिया है (आयार० २, २, १ २)। साहित्य दर्पण ७१, ९ जट्ठि अशुद्ध है। पाली में इस शब्द के लट्ठि० और यट्ठि० रूप मिलते हैं। —हेच० १, २५ के अनुसार कइवाहं = कतिपयम् है और = पाली कति पाहम् = संस्कृत कतिपयाहम् (§ ११७)। —महा० छाहा (= छाया; छो० ३; वर० २ १८; हाल), शौर० रूप सच्छाह (हेच० १, २८९; मृच्छ० ६८, २४) और महा० में छाही (= छाया; स्वर्ग; हेच० १, २४९; मार्क० पन्ना १९; देशी० १ २६; पाइय० २३६; हाल; रावण०) = छाया नहीं है परंतु = *छायारथा = *छायाका अर्थात् ये *छायका और *छायकी के लिए आये हैं जिनमें § १६५ के अनुसार संधि हुई है और § २ ६ के अनुसार ह-कार आ बैठा है। 'कान्ति' के अर्थ में हेच० १ २४९ के अनुसार केवल छाआ रूप काम में लाया जाना चाहिए, जैसा कि महा० शौर० और माग० में छाया का मुख्यतः छाआ रूप हो जाता है (गउड०; हाल; रावण०; कर्पूर० ३९, ५; मृच्छ० ९, ९; शकु० २, ४; ९१, ६; विक्रमो० ५१, ११; कर्पूर० ४१, ८; माग० में मुद्रा० २६७, २) अ०माग० और जै०महा० में छाया रूप है (पाइय० ११२ और २३६; कप्प०; एत्सें०)।

§ २५६—माग० में र सदा ल का रूप ग्रहण कर लेता है (चंड० ३, ३९; हेच० ४ २८८; क्रम० ५ ८७; मार्क० पन्ना ७४, रुद्रट के काव्यालंकार २ १२ पर नमिसाधु की टीका; वाग्भटालंकार २ २ पर सिंहदेवगणिन् की टीका) और इसी

* लट्ठि रूप हिंदी में आया है और लट्ठि जट्ठि बनकर लाठी रूप में कुमाउनी में और नेम रूप में गुजराती में चलता है। कुछ विद्वानों के मत से यष्टि का लाठि का संबंध रहा होगा। —अनु०

मे भी यही नियम है (§ २५)। इस प्रकार माग० मे : **लहशवशणमिलशुलशिलविअलिदमन्दाललाविंदहियुगे वीलयिणे** = **रभसवशनम्रसुरशिरोविचलितमन्दारराजितांह्रियुगो वीरजिनः** (हेच० ४, २८८), **शायंभलीशलशिविल**=**शाकम्भरीश्वरशिविर**, **विग्गहलाअणलेशलशिलीणं** = **विग्रहराजनरेश्वरश्रीणाम्**। (ललित० ५६५, ६ और ११), **णगलन्तल** = **नगरान्तर**, **दलिद्दचालुदत्ताह अणुलत्ता** = **दरिद्रचारुदत्तस्यानुरक्ता**, **अन्धआलपूलिदः** = **अन्धकारपूरित**, **ओवालिदशलील** = **अपवारितशरीर** (मृच्छ० १३, ८ और २५, १४, २२, १२७, २५), **महालदनभाशुल** = **महारन्तभासुर**, **उदलब्भन्तल**=**उदराभ्यन्तर** (शकु० ११३, ३ ; ११४, १०), **रामले पिअभत्तालंलुहिलपिअं** = **समरे प्रियभर्तारमूरुधिरप्रियम्** (वेणी० ३३, ८), **वहुणलकदुक्खदालुणपलिणाये दुक्कले**= **वहुनरकदुःखदारुणपरिणायो दुष्करः** (चड० ४२, ६) मे सर्वत्र **र** का **ल** हो गया है। —ढक्की मे : **अले ले** = **अरे रे**, **लुद्धु** = **रुद्धः**, **पलिवेविद** = **परिवेपित**, **कुरु** = **कुलु**, **धालेदि** = **धारयति** और **पुलिस** = **पुरुष** (§ २५)। —चड० ३, ३८, क्रमदीश्वर ५, १०९ और वाग्भटालकार २, ३ पर सिंहदेवगणिन् की टीका के अनुसार पै० मे भी **र**, **ल** मे वदल जाता है · **अले अले दुट्ठलक्खसा**=**अरे अरे दुष्टराक्षसाः** (चड०), **चलण** = **चरण** (क्रम० ५, १०९), **छकाल** = **झंकार** (क्रम० ५, १०२, **हलि** = **हरि** (क्रम० ५, १११), **लुद्द** = **रुद्र** (एस०)। इसमें नाममात्र सन्देह नहीं कि चड०, क्रमदीश्वर और एस० ने पै० और चू० पै० में अदलावदली कर दी है (§ १९१ नोटसख्या १)। हेच० ४, ३०४, ३०७, ३१४, ३१६, ३१९, ३२०, ३२१, ३२३ और ३२४ में जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें सर्वत्र **र** ही आया है, क्रमदीश्वर ५, १०९ मे भी ऐसा ही है : **उसर** = **उष्ट्र** और **कारिअ** = **कार्य**। हेमचन्द्र ४, ३२६ में इसके विपरीत यह सिखाता है कि चू०पै० में **र** के स्थान पर **ल** आ सकता है : **गोलीचलन** = **गौरीचरण**, **एकातसतनुथलं लुद्दम्**=**एकादशतनुधरम् रुद्रम्**, **हल** = **हर** (हेच० ४, ३२६), **नल** = **नर**, **सल** = **सरस्** (त्रिवि० ३, २, ६४)। सिहराज ने भी पन्ना ६५ में यही बात कही है। किन्तु चू०पै० के अधिकाश उदाहरणों में **र** मिलता है, जैसे **नगर**, **किरितट**, **राच—**, **चच्चर**, **निच्छर**, **छच्छर**, **तमरुक**, **तामोतर**, **मथुर** आदि (हेच० ४, ३२५), इसलिए हेच० ४, ३२६ के उदाहरण निश्चय ही एक तीसरी पैशाची बोली से निकले हैं जिसे मार्कडेय **पांचाल** नाम देता है (§ २७)। ऐसा अनुमान है कि इसमें भी **र** का **ल** में ध्वनिपरिवर्तन उतना ही आवश्यक था जितना माग० और ढक्की में।

§ २५७—माग०, ढक्की और पाचाल को छोडकर अन्य प्राकृत भाषाओं मे (§ २५६) **र** का **ल** में परिवर्तन एक दो स्थानों पर ही मिलता है और वह अनिश्चित है। वर० २, ३०, हेच० १, २५४, क्रम० २, ३५, मार्कडेय पन्ना १७ और प्राकृतकल्पलतिका पेज ५२ में वे शब्द दिये गये है जिनमें यह **ल** आता है, ये आकृतिगण **हरिद्रादि** में एकत्र किये गये हैं। इनके उदाहरण सव प्राकृत बोलियों के लिए

समान रूप से लागू नहीं होवे। किसी में हलद्दा और किसी में हलद्दी बोला जाय है (सब व्याकरणकार), महा०, अ माग और जै महा में हलिद्दा, महा में हलिद्दी, अ०माग में हलिद्द (§ ११५) चलता है। महा से शौर और शौर में दलिद्द=दरिद्र* (सब व्याकरणकार गउड ८५९ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए ; शब्दसूची में यह शब्द देखिए] हाल कर्पूर० ४ ८, १८७ मृच्छ १८, ९ २९, १ और २ ५४, १ ५५, २५ ७०, ७), दलिद्ददा रूप पाया जाता है (मृच्छ ६, ८ १७, १८ ५४, १), किन्तु महा में दरिद्दत्तण रूप भी है (कर्पूर १६, २), शौर में दरिद्दा भी आया है (मालवि २६, १५), अ माग और जै महा० में दरिद्द है (कप्प ; एर्त्से), जै महा० में दरिद्दी=दरिद्रिन् है, दरिद्दिय भी मिलता है (एर्त्से)। जहिट्ठिल (सब व्याकरणकार), जहुट्ठिल (हेच) और अ०माग में जुहिट्ठिल है किन्तु शौर और अप में जुहिट्ठिर=युधिष्ठिर है (§ ११८)। महा०, जै महा और शौर० में मुहल=मुखर (सब व्याकरणकार ; गउड० हाल रावण० एर्त्से प्रबोध० ११, ८)। अ माग और जै महा० में कलुण=करुण (सब व्याकरणकार ; आयार० १, ६, १, २ सूय २२५ २७० ; २७१ ; २८१ ; २८६ ; २८८ २८९ और २९१ नायाध० ; ओव सगर ५, १५ एर्त्से इसमें सर्वत्र क्रियाविशेषण रूप कलुणं है), इसके साथ-साथ जै महा , शौर और अप में करुण है (एर्त्से ; शकु १ ९, ९ विक्रमो ९७, ११) तथा महा , अ माग और जै महा में तथा करुण रूप है (=दया गउड आयार २, २, १, ८ ९, १, १, १९ [यहाँ पाठ में अशुद्ध रूप कलुण- है] ; सगर ५, १८ ; कालका), महा० में करुणम=करुणक (=दया गउड)। महा में चिलाअ अ माग चिलाय=किरात, अ माग में चिलाइ=किराती चिलाइया=किरातिका, इन रूपों के साथ-साथ शौर में किराद, जै महा में किराय और महा रूप किराअ 'शिव' के अर्थ में आते हैं (§ २१)। महा , अ माग और जै महा में फलिह=परिघ, महा और अ माग० में फलिहा=परिखा (§ २ ८) ; फालिहद्द=पारिभद्र (§ २ ८)। चलुण=चरण (हच १, २५४) किन्तु महा में चरण चलता है (हाल) शौर में चारुणी रूप मिलता है (चा० ११४, ११)। अ माग में अन्तलिक्ख=अन्तरिक्ष (आयार० २, १, ७ १ २, २, १, ७ २, ४, १, १३ ; २ ० १, २ और २१ २ ७, १ ७ ; सूय ३९४ और ७ ८ ; उत्तर० ४०६ और ६५१ ; दस ६२ , १३ नायाध § ९१ ; उवास), किन्तु शौर में अन्तरिक्ख पाया जाता है (पादय २७ ; मृच्छ ७४ १९ ; मालवि २९,१४)। अ माग में दलद्द=दरिद्र (सूय ५६५ ; सम २५ [पाठ में दरद्द है] ; ९१ ; पण्हा २६ और २८५ ; पण्णव ११६ ; नायाध ; ओव ; कप्प)। अ माग में लुक्ख (आयार १ २ ६ ३ ; १ ० ३,५ ; १ ६ ५,५ ; १,८ ४ ८ ; सूय० १६९ ;

* हिंदी की बोलचाल में दलिद्दर रूप चलता है। दलिद्द और दलिद्दी कुमाउनी बोली में भी चलते हैं।—अनु

१८५, ५७८, ६६५, पण्हा० ३४८ और उसके बाद, विवाह० २७९ और ८३८, ठाणग० १९८, उत्तर० ५६ और १०६, ओव०), **लुल्लूह** (सूय० ४९७) और **लुक्ख** (आयार० १,५,६,४, १,८,३,३, २,१,५,५, सूय० ५९०, ठाणग० १९८, विवाह० १४७० और उसके बाद, नायाध० १४७० और उसके बाद, पण्णव० ८, ११, १२, १३, ३८०, अणुओग० २६८, जीवा० २८ और २२४, उत्तर० १०२२, कप्प०)= रूक्ष, **लुक्खय** (उत्तर० १०२८), **लुक्खत्त** (ठाणग० १८८, विवाह० १५३१), **लूहेइ** और **लूहित्ता** (जीवा० ६१०, नायाध० २६७, राय० १८५), **लूहिय** (नायाध०, ओव०, कप्प०), **रुक्ख** रूप अशुद्ध है (सूय० २३९) और अ०माग० में भी सदा =**रुक्ष** (=वृक्ष : § ३२०), किंतु अप० में **रुक्ख** आया है (पिंगल २, ९८) और यह रूप जै०महा० में भी जब शब्दों का चमत्कार दिखाना होता है तो **रुक्ख** (=रूखे, के साथ) रुक्ख = वृक्ष (ऋषभ० ३९) का मेल किया जाता है। नीचे दिये शब्दों में अ०माग० में **ल** देखा जाता है : **लाधा** = **राढा** (आयार० १, ८, ३, २) और = **राढा** (आयार० १, ८३, १) और = **राढाः** (आयार० १, ८, ३, ३, ६ और ८, पण्णव० ६१, विवाह० १२५४) = शौर० **राढा** (कर्पूर० ९, ४) = संस्कृत **राढा**, इसके अतिरिक्त **परियाल** = **परिवार** में (नायाध० § १३०, पेज ७२४, ७८४, १२७३, १२९०, १३२७, १४६० [पाठ में **परियार** है], १४६५, निरया०), इसके साथ साथ **परिवार** भी चलता है (ओव०, कप्प०) **ल** आया है, **सूमाल**, **सुकुमाल** तथा इनके साथ साथ महा० **सोमार** और **सोमाल** तथा **सुउमार**, शौर० **सुउमार**, **सुकुमार** और जै०महा० **सुकुमारया** में **ल** अ०माग० में आता है (§ १२३), संख्या शब्दों में अ०माग० और जै०महा० में **चत्तालीसं**, अ०माग० **चत्तालीसा**, जै०महा० **चायालीसं**, **चालीसा**—, अप० **चालीस**=**चत्वारिंशत्** और इस रूप के साथ अन्य संख्या शब्द जुड़ने पर भी **ल** आता है, जैसे अ०माग० और जै०-महा० **बायालीसं** (=४२), **चउयालीसं** और **चोयालीसं** (=४४) आदि-आदि (§ ४४५) हैं। अ०माग० में बहुधा **परि** का **पलि** हो जाता है, यह विशेष कर अत्यन्त प्राचीन बोली में : उदाहरणार्थ **पलिउञ्चयन्ति** = **परिकुञ्चयन्ति** (सूय० ४८९), **पलिउञ्चिय**=**परिकुञ्च्य** (आयार० २, १, ११, १), **पलिउञ्चण**= **परिकुञ्चन** (सूय० ३८१) और **अपलिउञ्चमाण**=**अपरिकुञ्चमान** में (आयार० १, ७, ४, १, २, ५, २, १), **पलियन्त** = **पर्यन्त** (आयार० १, २, ४, १ और ४, सूय० १०८ और १७२), **पलेइ**=**पर्येति** (सूय० ४९५), **पलिन्ति** = **परियन्ति** (सूय० ९५ और १३४), **पलियंक** = **पर्यंक** (आयार० २, ३, १९ और २०, सूय० ३८६, ओव०), **पलिक्खीण**=**परिक्षीण** (सूय० ९७८), **पलिच्छिन्न**=**परिच्छिन्न** (आयार० १, ४, ४, २, सूय० ५६०), **पलिच्छिन्दिय** = **परिच्छिद्य** (आयार० १, ४, ४, ३, २, ५, २, ३ और ५), **पलिओच्छिन्न** = **पर्यवच्छिन्न** (आयार० १, ५, १, ३), **पलिभिन्दियाणं**=**परिभिद्य** (सूय० २४३), **पलिच्छाएइ** = **परिच्छादयति** (आयार० २, १, १०, ६), **पलिम-**

§ २५८—अ०माग० **तुडिय** (आयार० २, ११, १४ , पण्हा० ५१३ ; नायाध० ८७० , राय० २० , २१ , ६० , ८० , निरया० , ओव० , कप्प०) टीकाकारों, याकोबी[1], ए० म्युलर[2], वारन[3] और लौयमान[4] के अनुसार = **तूर्य** है, किन्तु यह = **तूर्य** नहीं = * **तुदित** = **तुन्न** है जो **तुडइ** से निकला है (हेच० ४, ११६) = **तुदति** है जिसके **द** का § २२२ के अनुसार मूर्धन्यीकरण हो गया है। सस्कृत **तुड्**, **तोडी** और **तोडिका** (भारतीय सगीत के एक राग या रागिनी का नाम) तथा **तोद्य** और **आतोद्य** (= मजीरा)। —यह माना जाता है **किडि** और **भेड** = **किरि** और **भेर** (हेच० १, २५१) किन्तु ये = सस्कृत **किटि** और **भेड**[1] के। —अ०माग० **पडायाण** (= पलान, जीन : हेच० १, २५२)। हेच० के अनुसार = **पर्याण** है, किन्तु यह § १६३ के अनुसार=***प्रत्यादान** है , इस विषय मे संस्कृत **आदान** (=जीन की झूल्न या अलकार) की तुलना कीजिए। —अ०माग० और जै०महा० **कुहाड** = **कुठार** में **र** के स्थान पर **उ** आ गया है, यही ध्वनिपरिवर्तन **पिहड** = **पिठर** मे हुआ है (§ २३९)। —अ०माग० **कणवीर*** = **करवीर** (हेच० १, २५३ , पाइय० १४६ , पण्णव० ५२६ , राय० ५२ और उसके बाद , पण्हा० १९४), **कणवीरय** रूप भी पाया जाता है (पण्णव० ५२७ और उसके बाद), § २६० के अनुसार ***कलवीर** अथवा **कलवीर** से सम्भवत यह भी सभव है कि इसका पर्यायवाची शब्द ***कणवीर** भी किसी ग्रथ में मिल जाय। महा० में इसका रूप **करवीर है** (गउड०), माग० **कलवील** (मृच्छ० १५७, ५) है। § १६६ और १६७ के अनुसार **कणवीर** से **कणेर** निकला है (हेच० १, १६८), [यहाँ भडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट के १९३६ के सस्करण में, जो मेरे पास है, **कण्णेर** रूप है। —अनु०]। हेमचद्र बताता है . **कणेर** = **कर्णिकार** और ए०, बी०, सी०, ई० हस्तलिपियाँ तथा त्रिविक्रम १, ३, ३ में **कण्णेरो** है (मेरी प्रति में हेमचद्र भी **कण्णेरो** रूप देता है , उसमें १, १६२ में **कण्णेरो** और **कण्णिआरो** दो रूप है। —अनु०)। इसके अनुसार मेरे सस्करण मे भी यही दिया गया है। किंतु एफ० हस्तलिपि और बबइया सस्करण **कणेरो** पाठ है और मराठी, गुजराती, हिन्दी तथा उर्दू में **कणेर** का अर्थ जो दिया जाता है, किसी प्रकार ठीक नहीं है, क्योंकि **कर्णिकार** § २८७ के अनुसार साधारण **ण** के साथ **कणिआर** रूप ग्रहण कर सकता है इसलिए मालूम होता है कि हेमचद्र ने स्पष्ट ही दो प्रकार के पौधों को एक में मिला दिया है। जै०महा० **कणेरदत्त** (एर्से०) = **करवीरदत्त** होगा। **करवीर**, **करवीरक** और **करवीर्य** मनुष्यों के नामों के लिए प्रसिद्ध हैं। **कर्णिकार** नामों में नहीं आता। **कणेर** को **कर्णिकार** से व्युत्पन्न करना[1] भाषाशास्त्र की दृष्टि से असंभव है।

१ यह शब्द कल्पसूत्र में देखिए। — २ बाइत्रैगे पेज २८। — ३ निरयावलिआओ में यह शब्द देखिए। — ४ औपपातिक सूत्र में यह शब्द

---

* यह एक जगली पौधा है जो कुमाऊँ के पहाड़ों में जंगली दशा में बरसात में होता है। इसका नाम **एकनवीर** है। यह वैदिक शब्द है और ऋग्वेद में आया है। —अनु०

[टीका में **निडाल** है], १२१, १४४, १५७, १६९), महा० में बहुधा अतिम वर्णों के परस्पर स्थान विनिमय के कारण और § ३५४ के अनुसार **णडाल** (हेच० १, २५७, २, १२३, क्रम० २, ११७, मार्क० पन्ना ३८, गउड०), महा०, अ० माग०, जै०महा० और शौर० मे **णिडाल** (अ०माग० और जै०महा० मे कभी कभी **निडाल** रूप मिलता है, भाम० ४, ३३, हेच० १, २५७, हाल, रावण०, कर्पूर० ४८, ६, नायाध० ७५४ ; ७९०, ८२३, विवाह० २२७, राय० ११३, जीवा० ३५१, ३५३, पण्हा० १६२, २८५, उवास०, निरया० ; ओव०, आव० एर्त्से० १२,२७, एर्त्से०, बाल० १०१,६, २५९, ८ [पाठ में **णिडोल** है], चडकौ० ८७,८, मल्लिका० १९५,५)। अप० में **णिडला** आया है (पिंगल २,९८, पाठ में **णिअला** है)। ऐसी सभावना है कि शौर० रूप अशुद्ध हो। शौर० के लिए **ललाड** रूप निश्चित है क्योंकि इसका ध्वनिसाम्य **ललाडे = लाडेसर** से है (बाल० ७४, २१), यह रूप बालरामायण २७०, ५, वेणीसहार ६०, ५ [पाठ में **ललाट** है, इस ग्रथ में **णिडाल, णिडल** और **णिडिल** शब्द भी देखिए] मे भी देखिए। अ०माग० में **लिलाड** (राय० १६५) रूप अशुद्ध है। मार्कडेय पन्ना ३८ मे बताया गया है शौर० मे **लडाल** और **णिडिल** रूप भी चलते है, (पार्वतीपरिणय ४२, १२ में [ग्लाजर के सस्करण के २३, ३१ में **णिडल** रूप आया है, वेणीसहार ६०, ५ में यह शब्द देखिए])। यह रूप **निटल, निटाल** और **निटिल** रूप में सस्कृत में ले लिया गया है[1]। महा० **णाडाल** (= ललाट में रहनेवाला. गउड० २९), **णडाल** से सबध रखता है, **णिडाल** का लोगों के मुँह मे **णेडाली** (=शिरोभूषणभेद., पट्टबाधिता देशी० ४, ४३) बन गया। **जम्पइ = जल्पति** और इससे निकले अन्य रूपों में **ल** का **म** हो गया है (§ २९६)। —पै० और चू०पै० में शब्द के भीतर का **ल ळ** में बदल जाता है. **धूळि = धूलि, पाळक** और **वाळक = बालक, मण्टळ = मण्डल, लीळा = लीला, सइळ = शैल** (हेच० ४,३२५-३२७)। **उच्छळळन्ति** भी (हेच० ४, ३२६) इसी प्रकार लिखा जाना चाहिए। § २२६ की तुलना कीजिए।

1 कू त्सा० ३५, ५७३ में याकोबी ने मत दिया है कि **णिडाल** रूप **ललाटं** से सीधा बिना किसी फेरफार के मिलाने में कठिनाई पैदा होती है।

§ २६१—अप० में कभी-कभी **व वॅ** मे परिणत हो जाता है[1] **एवॅ = एव** और इसका अर्थ है 'एवम्' (हेच० ४, ३७६, १ और ४१८,१), **एवँइ = एव+अपि**, इसका अर्थ है 'एवम् एव' (हेच० ४, ३३२,२, ४२३,२, ४४१,१, [मेरी प्रति में हेच० में **एम्वइ** रूप है। —अनु०])। **एवँहिं, इदानीम्** के अर्थ में वैदिक **एवैः** है (हेच० ४, ३८७, ३, ४२०, ४), **केवॅ** (हेच० ४, ३४३, १ और ४०१, १), **किवॅ** (४, ४०१, २ और ४२२, १४), **कथम्** अर्थ में = ***केव** (§ १४९ और ४३४ की तुल्ना कीजिए), **केवँइ** (हेच० ४, ३९०, ३९६, ४) = **कथम् अपि, तेवॅ** (हेच० ४, ३४३, १, ३९७ और ४०१, ४), **तिवॅ** (हेच० ४,३४४, ३६७, ४, ३७६, २, ३९५,१, ३९७ और ४२२, २ [३६७, ४ में **तिवॅ** रूप नहीं आया है, मेरी प्रति में यह रूप ३६७,३ में है। —अनु०], **तथा** के अर्थ में = ***तेव,**

तेर्वेइ रूप भी है (हेच० ४, ४३९, ४) जेवें (हेच ४, ३९७ ४०१, ४ ; क्रम ५, ९ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), जिवँ (हेच ४, ३३ , ३ ; ३३६ ; ३४४ ; ३७० ; ३९५ ; ३६७, ४ ३७६, २ ३९७ आदि आदि कालका० २७२ ३७ [पाठ में जिंव है] [जिवँ रूप अनुवादक की प्रति में ३६७,१ में है, जिवँ जिवँ और तिवँ तिवँ इस एक ही दोहे में हैं, इनके वर्तमान हिन्दी में ज्यों ज्यों और त्यों त्यों रूप मिलते हैं। —अनु]) । यथा के अर्थ में=*येव और *यिव (§ ३३६) जावँ = यावत् (हेच ४, ३९५, १) ; तावँ = तावत् (हेच० ४, ३९५, १) हैं। अप में इस वँ का विकास पूर्ण म में हो गया है : जाम = यावत् (हेच ४, ३८७, २ ४ ६, १ पद्यास पेज २१७, संख्या ११) ताम = तावत् (हेच ४,४०६,१ पद्याल पेज २१७, संख्या ११) ; जामँहि और मामँहि = यावद्भिः और तावद्भिः किन्तु इनका अर्थ = यावत् और तावत् (हेच ४,४ ६,१ ; पत्रै ८६, १७ और उसके बाद [पाठ में जावहि तावहि है]) । जिन जिन प्राकृत भाषाओं म म व का प्रतिनिधित्व करता है उन-उन में व के विकास का यही क्रम माना जाना चाहिए भञम = भाजय (पिंगि० १ १, १ ५)[1] ; ओहामइ (किसी से बढ़ जाना तुलइ : हेच ४ २१) ओहामिय (अधिक तौला गया : पाइय० १८७), इनके साथ-साथ ओहाइय (हेच ४,१६ ; इसका अर्थ = आक्रमण करना । —अनु) और ओहाइय रूप देखने में आते हैं यह ओहाइय = *ओहायिम (= झुका हुआ मुख ; अधोमुख : देशी १, १५८) = *अपमायति और अपमायित[1] । गमसइ और इसके साथ-साथ गयसइ = गयपति (हेच० ४, १८९) । णीमी और इसके साथ साथ णीवी = नीवी (हेच १, २५९) । णुमइ और णिमइ णी धातु के रूप हैं (§ ११८) । शौर में दमिळ (मल्लिका० १९६,१४) = द्रविड, अ माग में दमिळ्य (विवाह ७९२ ; पण्ह २८८) और दमिळी (नायाध ; ओव) = पाली दमिळी = संस्कृत द्रविडी, इनके साथ-साथ अ माग में दविळ भी है (पण्हा ४१) और का दविड (मृच्छ १ १ ६ ; विद्ध १०५, २) = द्रविड, महा दविडी = द्रविडी (विद्ध० २८, १२) । अ माग और जै महा का पत्तमय = पैभयण (§ ६) । कमवाच्य में गौण व का म में ध्वनिपरिवर्तन इसी क्रम से हुआ है घिम्मइ और इसके साथ साथ घिप्पइ घीप् धातु के रूप हैं और जै महा सुम्मउ तथा इसके साथ सुप्पइ स्वप् धातु से निकले हैं (§ ५३६) ; इसके अतिरिक्त अ माग में भूमा = *भ्रुवा = भ्रू, महा भुमआ, अ माग भुमया भुमगा और भुमहा = *भ्रुवका (§ १२४ और २ ६) । —प और ब के ध्वनिपरिवर्तन के विषय में § १८८ और २५ देखिए ; म के स्थान पर व आ जाने के विषय में § २५१ और २७७ देखिए ; य के लिए व आ जाने के विषय में § २५४ । य के स्थान पर व के विषय में § १९१ तथा २५४ और य के लिए व परिवर्तन पर § २५४ देखिए ।

1 इस अंशों में व के स्थान पर महा म्र लिखा है कहीं कहीं व भी मिलता है अतः व के साथ-साथ म का पढ़ना ठीक ही जाना है। —अनु

६, ९४ में पिशल का मत । —३ एस० गौल्दश्मित्त कृत प्राकृतिका पेज १४ आर उसके बाद, इसमे वह भूल से **अवभू** मानता है । § २८६ की तुलना कीजिए ।

§ २६२—**श, ष** और **स**–कार कभी जनता के मुँह मे **ह**– रूप में बाहर निकलते हैं, विशेष करके दीर्घ स्वर और स्वरों के द्वित्व के बाद । वररुचि २,४४ ओर ४५, चड० ३, १४ , क्रम० २, १०४ और १०५ , मार्क० पन्ना १९ के अनुसार महा० में **दशन्** का **श दशन्** और उन सख्या शब्दों मे, जिनके साथ यह **दशन्** जुडता है, निश्चय ही **ह** में परिणत होता है और व्यक्तियों के नाम में इच्छानुसार **ह** बन जाता है , हेच० १, २६२ के अनुसार **ह** की यह परिणति स्वय सख्या शब्दों मे इच्छानुसार या विकल्प से है, इस मत की सभी पाठ पुष्टि करते है । महा० **दस** (रावण० [इस ग्रन्थ में बहुधा **दह** मिलता है] , कर्पूर० ७३, ९ , ८७,१), **दह** (कर्पूर० १२,७) , **दस-कन्धर** (गउड० , रावण०) , **दसकण्ठ, दहकण्ठ** (रावण०) , **दहमुह, दहरह, दासरहि, दहवअण** और **दसाणण** (रावण०) में इच्छानुसार **स** या **ह** है । अप० में भी **ह** है (पिंगल १, ८३ [एस० गौल्दश्मित्त ने यही दिया है] , १२३ , १२५ , १५६ , २ १९६) , **दस** (विक्रमो० ६७,२०) भी है । अ०माग० और जै०महा० मे केवल **दस** रूप है (§ ४४२) । मार्कण्डेय पन्ना ६७ के अनुसार शौर० मे **दशन्** और **चतुर्दशन्** का **श, स** या **ह** रूप ग्रहण कर लेता है । इसके विपरीत नामों में **स** ही आता है तथा **दश** सख्यायुक्त शब्दों में स्वय **दशन्** और **चतुर्दशन्** को छोड सब में **ह** आता है । **दस** मिलता है (कर्पूर० ७२, ३ , प्रसन्न० १९,५) और **दह** (रत्ना० २९२, १२) में , **दसकन्धर** रूप भी आया है (महावीर० ११८, ३), **दासरध** भी है (उत्तर० २७, ४ [पाठ मे **दासरह** है] , बाल० १५२, १० [पाठ में **दासरह** है] , अनर्घ० १५०,१२ [पाठ मे **दासरह** है]) , **दासरधि** (अनर्घ० १५७, १० [पाठ **दासरहि** है]), **दसमुह** (महावीर० २२,२० , प्रसन्न० १४३,६, बाल० २०, १५), **दसाणण** (बाल० ५७, २ , १२३, १७ , १२५, १० , १३९, १३), **दसकण्ठ** (बाल० १२२, १५ , १४३, १७) रूप मिलते हैं । माग० और ढक्की में केवल **दश** रूप है (मृच्छ० ११, १ , ३२, १८ , ३८, १७ , १२१, २५ , १२२, १९; १३३, २० , १३४, १३, ढक्की में . मृच्छ० २९, १५ , ३०, १ , ३१, ४ , ३२, ३ , ३४, ९ , १२ , १७ , ३५, ७ , ३९, १३), माग० में **दशकन्धल** मिलता है (मृच्छ० १२, १३), माग० मे **दह** (ललित० ५६६, ११) अशुद्ध है । दस सख्यायुक्त अन्य शब्दों मे महा० और अप० में **ह** लगता है । अन्य प्राकृतों म **स** है (§ ४४३) । महा० और शौर० **एॅद्दहमेत्त=ईदशमात्र**, महा० **तेॅद्दह = तादश, जेद्दह = यादश** (§ १२२), अप० **एह, केह, जेह** और **तेह** तथा इनके साथ चलने वाले **अइस, कइस, जइस** और **तइस = ईदश, कीदश, यादश** और **तादश** (§ १२१ और १६६) , अप० **साह = शाश्वत** (§ ६४) में भी **श** ने **ह** रूप ग्रहण कर लिया है । क्रमदीश्वर २, १०४ के अनुसार **पलाश** का **पलाह** हो गया है । उदाहरण रूप से महा०, अ०माग० और शौर० मे **पलास** (गउड० , हाल ,

कप्प मृच्छ० १२७, २१) तथा माग० रूप पखाश (मृच्छ० १२७, २४) देखने में आते हैं।

§ २६३—नीचे दिये गये उदाहरणों में ष ने ह रूप धारण कर लिया है : महा० में धणुह = *धनुष = धनुस् (हेच १, २२ ; कर्पूर० ३८, ११ ; प्रताप ६५, ५), धणुहो = धनुषः (बाल० ११३, १७)। —महा० पच्चूह = प्रत्यूष, इसका अर्थ है 'प्रातःकाल का सूर्य' (हेच २, १४ ; देशी० ६, ५ ; पाइय ४ ; हाल ६, ६ [इस रूप के अन्य ग्रन्थों के तथा टीकाकारों के अनुसार यह रूप पढ़ा जाना चाहिए]) किन्तु महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर० और शौर० में पच्चूस रूप 'प्रातःकाल का सूर्य' के अर्थ में आया है (हेच २, १४ ; पाइय ४९ ; गउड० ; हाल ; रावण० ; नायाध० ; कप्प० ; एर्से० ; कत्तिगे० ४०१, ३७१ ; ३७५ ; शकु० २९, ७ ; मल्लिका० ५७, १६ ; विद्ध० ११५, ४)। —महा०, अ०माग० और जै०महा० पाहाण = पाषाण (चंड० ३, १४ ; हेच १, २६२ ; क्रम० २, १४ ; मार्क० पन्ना १९ ; गउड० ; हाल० ; उवास० ; एर्से०), जै०महा० में पाहाणग (एर्से०) और इसके साथ-साथ पासाण रूप है (हेच० ; मार्क०), जो मार्क० पन्ना ६७ के अनुसार शौर० में सदा ही होता है। —अ०माग० विहण = भीषण और वीहणग = भीषणक ; महा० और जै०महा० में बीहइ (= भय करता है बिभेति का रूप है। —अनु०), इनके साथ-साथ महा० और शौर० में भीसण रूप है बोम्भीसण (§ २११ और ५०१)। —अप० में पहो, पह और पहुप्पइ, पश और *प्रपम् = प्रतद् (हेच ४, ४१२ और ग्रन्थ सूची ; पिंगल १, ४ [बाल्लेनसेन विक्रमो० की टीका में पेज ५२७] ६१ ८१ ; २, ६४ ; विक्रमो० ५५, १९)। — अप० अपिक्खहि जो *अक्खिसि से निकला है = *आक्षिस्मिम् आक्षि (§ ३१२ और ३७९) —अ० एह = *एष = एषः जिसके रूपों के अन्त में अ आ गया है (पिंगल १, ९५ ; ९६ और ९७)। महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० रूप सुण्हा महा०, सोण्हा जो पै० सुनुसा जो वास्तव में सुणुहा (§ १४८) के स्थान पर आया है, इनका ह भी इसी प्रकार व्युत्पन्न या सिद्ध किया जा सकता है। काहावण (वर० ३, ३९ ; हेच २, ७१ ; क्रम० २, ७१ ; मार्क० पन्ना २५) जो *कारसावण से निकला है (§ ८७) = कार्षापण आदि-अक्षर के आ के ह्रस्वीकरण के साथ भी (§ ८२) कहावण रूप में मिलता है (हेच २, ७१), अ०माग० में कूडकहावण रूप आया है (उत्तर० ६१९)। भविष्य कालवाचक रूप काहिमि, होहिमि, काहामि, काहं और होहामि = *कर्ष्यामि, *भोष्यामि (§ ५२० और उसके बाद) भूतकाल में जैसे काही और इसके साथ साथ कासी (§ ५१६) में भी ष का ह हो जाता है। —टीकाकारों के मत से बढ़कर याकोबी ने अ०माग० में सिह (आयार० १, ७, ४, २) = स्निग्ध लिखा है जो भूल है। यह शब्द आयारंगसुत्त २, १, १, ११ ; २, १, २, १४ ; २, ५, २, ७ में बार-बार आया है और टीकाकारों ने अधिकांश स्थलों पर इसका अर्थ = अरवी रखा है जो जंगल का पयार है, इसलिए स्पष्ट ही = सिल है जिसका शाब्दिक अर्थ 'बिना आकाश के' = 'ऐश

स्थान जहाँ मनुष्य आकाश नहीं देखता' (= घना जगल । —अनु०) है। आयारागसुत्त १, ७, ४, २ का अनुवाद इस व्युत्पत्ति के अनुसार यों किया जाना चाहिए : 'तपस्वी के लिए यह अधिक अच्छा है कि वह अकेला जगल जाय।' महा०, अ०माग०, जै०-महा० और शौर० मे **विष** का रूप **विस** होता है (गउड० ; हाल , रावण० , उवास० , निरया० , ओव० , एर्त्से० , ऋषभ० , प्रिय० ५१, १ , ८ ; १५ , १६ ३३, १४ , मुद्रा० ४०, ६ , मालवि० ५६, ८ , ६५, १०) ; माग० में **विश** है (मृच्छ० १३६, १७ , १६४, १ , मुद्रा० १९३, ३ , १९४, ६), जै०महा० **निव्विस = निर्विस** (सगर० ६, २)।

१ सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट २२, पेज ६८ ।

§ २६४—नीचे दिये गये शब्दों मे **स**, **ह** में परिणत हो गया है : **णीहरइ** और इसके साथ-साथ **णीसरइ = निःसरति** (हेच० ४, ७९)। वररुचि २, ४६ के अनुसार **दिवस** में **स** का बना रहना आवश्यक है, किंतु हेमचद्र १, २६ , क्रम-दीश्वर २, १०५ , मार्कंडेय पन्ना १९ , पिशल द्वारा सपादित प्राकृतमजरी , डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज १४ में बताया गया है कि इस शब्द में विकल्प से **ह** भी रखा जा सकता है। महा० में **दिअस**, **दिवस** (गउड० , रावण०) और **दिअह** (गउड० , हाल , कर्पूर० १२, ७ , २३, ७ , ४३, ११ आदि-आदि) , अ०माग० में केवल **दिवस** रूप है (नायाध० , निरया० , उवास० , कप्प०) , जै०महा० में भी **दिवस** है (एर्त्से० , काल्का०), **दियस** भी मिलता है (प्राकृतमजरी), **दियसयर** भी आया है (पाइय० ४), साथ ही **दियह** भी है (पाइय० १५७ , एर्त्से०), **अणुदियहं** है (काल्का०), जै०महा० में **दिवह** है (कत्तिगे० ४०२, ३६४) , शौर० में केवल **दिवस** और **दिअस** है (मृच्छ० ६८, ४ , शकु० ४४, ५ , ५३,९ , ६७, १० , १२१,६ , १६२,१३ , विक्रमो० ५२,१ , मुद्रा० १८४, ५ , कर्पूर० ३३,७ , १०३, ३ , ११०, ६), **अणुदिवसं** (शकु० ५१, ५), इसके विपरीत महा० में **अणुदिअहं** है (हाल , कर्पूर० ११६, १ [पाठ में **अणुदिअहँ** है]) , माग० में **दिअश** है (शकु० ११४, ९), **दिअह** (वेणी० ३३, ५) अशुद्ध है , अप० में **दिअह** (हेच० ४, ३८८ , ४१८, ४), **दिअहउ** (हेच० ४, ३३३ और ३८७, ५) आये हैं। —**दूहल** (= दुर्भग , अभाग्य : देशी० ५, ४३) तथा इसके साथ-साथ **दूसल** (देशी० ५, ४३ , त्रिवि० १, ३, १०५ = बे बाइ. ६, ८७) = **दुःसर**।—महा० और जै० महा० **साहइ = *शासति**[1] (हेच० ४, २ , हाल , रावण० ; एर्त्से०)। —अ०माग०, जै०महा० और अप० **—हत्तरि**, अ०माग० **—हत्तरिं** = ***सप्तति**, जैसे जै०महा० **चउहत्तरि** (७४), अ०माग० **पञ्चहत्तरि** (७५), **सत्तहत्तरिं** (७७), **अट्ठहत्तरिं** (७८), अप० में **एहत्तरि** (७१), **छाहत्तरि** (७६) (§ २४५ और ४४६)। —भविष्यकालवाचक जैसे **दाहिमि**, **दाहामि** और **दाहं** = **दास्यामि** (§ ५२० और उसके बाद) तथा भूतकाल के रूप जैसे **ठाही** और इसके साथ साथ **ठासी** (§ ५१५) रूप पाये जाते हैं। **स** का **ह** सर्वनाम के सप्तमी एक-वचन में भी पाया जाता है, **त—**, **य—** और **क—** के रूप **तहिं**, **जहिं** और **कहिं** होते

हैं, इनके साथ-साथ तस्सिं, अस्सिं और कस्सिं भी चलते हैं (§ ४२५ ४२७ और ४२८) और माग में इनकी नकल पर बने संज्ञा की सप्तमी के रूप में ह आता है जैसे, कुलाहिं = कुले ; पवहणाहिं = प्रवहणे तथा अप में जैसे अंतहिँ = अंते, चित्तहिँ = चित्ते घरहिँ = घरे सीसहिँ = शीर्षे (§ ३६६) इसी प्रकार सर्वनाम के रूपों की नकल पर बने माग और अप षष्ठी बहुवचन के रूपों में जिनके अंत में संस्कृत में —साम् आता है, जैसे माग शमणाहँ = श्रमणानाम् ; अप तणहँ = तृणानाम् , मुक्काहँ = मुक्तानाम् , लोअणहँ = लोचनयोः, सउणहँ = शकुनानाम् (§ ३७०) में भी स का ह रूप हो जाता है। इन षष्ठी रूपों में जो हेमचंद्र ४, ३०० के अनुसार महा० में भी पाये जाते हैं जैसे सरिआहँ = सरिताम् , कम्माहँ = कर्मणाम् , ताहँ = तेषाम् , तुम्हाहँ = युष्माकम् , अम्हाहँ = अस्माकम् (§ ३६५ ४२४ ४२१ और ४२२) माग० में षष्ठी एकवचन में—जो आह में समाप्त होते हैं और —अआस से निकले हैं = —आस्य, जैसे कामाह = कामस्य ; चलिदाह = चरित्रस्य पुत्ताह = पुत्रस्य और उन अप रूपों में जो —आह, —आहो में समाप्त होते हैं, जैसे कणआह = कनकस्य, चण्डालह = चण्डालस्य कामहो = कामस्य, सेसहो = शेषस्य (§ ३६६) और अप में द्वितीयपुरुष एकवचन वर्तमानकाल में जो —हि —सि में समाप्त होते हैं जैसे मीसरहि = मिसरसि ; रुअहि = वैदिक रुदसि ; लहहि = लभसे (§ ४५५)। विशेष व्यंजनों के अभाव से ह = स के विषय में § ११२ और उसके बाद देखिए।

१ पी गौल्दश्मित्त कृत स्पेसिमेन पेज ७२ ; त्सा डे डी मौ गे २८ ३११ में वेबर का मत।

§ २६५—षष्ठि के ष (=६) और सप्तति (७०) के स के स्थान पर, छ, स और ह के (§ २११ और २६४) साथ साथ अ माग और जै महा में दहाइयों के जुड़ने पर व भी आता है : बावट्ठि (= ६२), तेवट्ठि (= ६३), चउवट्ठि (= ६४) ; छावट्ठि (= ६६), बावत्तरिं (= ७२), तेवत्तरिं (= ७३), चावत्तरिं (= ७४) छावत्तरिं (= ७६) ; (§ ४४६)। अ माग में तिवि संवट्ठाइं पायाउयसयाइं (= १६३ धनु) ; जै महा में तिण्हं तेवट्ठीणं नयर सयाणं (= १६३ नगर) ; (§ ४४७) है। यह व संख्यावाचक ५ की नकल पर है जैसे एगावण्णं (= ५१) बावण्णं (= ५२) तेवण्णं (= ५३) चउवण्णं (= ५४) पणवण्णं (= ५५) सत्तावण्णं (= ५७), अट्ठावण्णं (= ५८)। अप रूप है : बावण्ण (= ५२) सत्तावण्णाइं (= ५७) ; (§ २७३) इन शब्दों में यह नियमानुसार (§ २७३) *पञ्चत् के प के स्थान पर आया है। अउणट्ठि (= ५९) अउणत्तरिं (= ६९) (§ ४४४) पण्णट्ठि (= ६५) ; (§ ४४६) *अगुणषष्टि, *अगुणाषष्टि *अगुणाष्टि, *अगुणसप्तति *अगुण-सप्तति *अगुणासप्तति *पञ्चषष्टि *पञ्चाष्टि, *पञ्चाष्टि § १६७ और ८१ के अनुसार इन निर्दिष्ट रूपों के स्थान पर आये हैं। पिशशार पेज राउगणी = राजगणपद् (वेबर द्वारा संपादित भगवती १, ४२५), पाउसम = पादश (रूप

५६२), होॅक्खइ = *मोप्यति (§ ५२१) प्राकृत रूपों का सस्कृतीकरण है जिनका लिपिप्रकार भ्रमपूर्ण है क्योंकि यहा क्ख ष* के लिए आया है। आज भी उत्तर भारत में ये ध्वनिया एक हो गयी हैं[1]। इसी आधार पर अ०माग० में अशुद्ध पाठभेद (पढने का ढग) पाखण्ड पाया जाता है (ठाणग० ५८३), यह शब्द **पाहण्ड = पाषण्ड** है (प्रबोध० ४८,१)। मद्रास से प्रकाशित सस्करण (५९, १४) और बबइया सस्करण (१०३, ३) मे शुद्ध रूप **पासण्ड** दिया गया है, अ०माग० में भी शुद्ध रूप आया है (अणुओग० ३५६ , उवास० , भग०)[2] और जै०महा० मे **पासण्डिय = पाषण्डिक** है (कालका०)।

१ बीम्स कृत कपेरैटिव ग्रैमर औफ मौडर्न इडियन लैंग्वेजेज १, २६१ और उसके बाद , होएर्नले, कपेरैटिव ग्रैमर § १९ पेज २४ , वाकरनागल, आल्टइण्डिशे ग्रामाटीक § ११८। —२ वेबर, भगवती २,२१३ नोटसख्या ६ , कर्न, यारटेलिंग पेज ६७ का नोट , ए म्युलर, बाइत्रैगे पेज ३२ और उसके बाद।

§ २६६—ह की न तो विच्युति होती है और नहीं यह कोई रिक्त स्थान भरने के लिए शब्द के भीतर इसका आगमन होता है। सभी अवसर जहाँ उक्त बाते मानी गयी है[1], वे आशिक रूप में अशुद्ध पाठभेदों पर और कुछ अश में अशुद्ध व्युत्पत्तियों[2] पर आधारित हैं। जहाँ सस्कृत शब्दों मे दो स्वरों के बीच में ह कार के स्थान पर ह युक्त व्यजन आता है, उसमें ह का कठिनीकरण[3] न देखना चाहिए अपितु यह प्राचीन ध्वनि-सपत्ति है[4]। इस प्रकार शौर०, माग० और आव० **इध = इह** (शौर० : मृच्छ० २, २५ , ४, १४ , ६, ९ , ९, १० और २४, २० , ५१,२४ , ५७, १७ , ६९, ६ और १५ आदि-आदि , शकु० १२, ४ , २०, ३ ; ६७, ५ , ११५, ५ , १६८, १५ , विक्रमो० ३०, १७ , ४८,४ , माग० में : मृच्छ० ३७,१० , १००, २० , ११३, १७ , ११४, २१ , १२३ , २१ , १३३, १५ और १६ , १६४, १० , शकु० ११४, ११ , आव० मे . मृच्छ० १००, १८) है। शौर० और माग० में कभी-कभी अशुद्ध रूप **इह** दिखाई देता है, जैसे शौर० मे (मृच्छ० ७०, १२ ,७२, १३ , विक्रमो० २१, १२), **इहलोइओ** (मृच्छ० ४, १), माग० में (मृच्छ० ३७, १० [इसके पास मे ही **इध** भी है] , १२२, १२), ये सब स्थल शुद्ध किये जाने चाहिए[5]। शेष प्राकृत बोलियों में **इह** है , स्वय दाक्षि० में भी यही रूप है (मृच्छ० १०१, १३) और जै० शौर० में भी इह मिलता है (पव० ३८९,२), **इहलोग** भी आया है (पव० ३८७, २५), **इहपरलोय** भी देखा जाता है (कत्तिगे० ४०२, ३६५)। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हेमचद्र ४, २६८ में शौर० में इह और **इध** दोनों रूपों की क्यों अनुमति देता है (§ २१)। ढक्की में आशा की जाती है कि **इध** रूप रहना चाहिए किंतु इसमें इसके प्रयोग के उदाहरण नहीं मिलते। —**दाघ = दाह** (हेच० १, २६४) , सस्कृत शब्द **निदाघ** की तुलना कीजिए। अ०माग० में **निभेलण** के साथ साथ **णिहेलण** रूप मिलता है और महा० में **सीभर** और इसके साथ साथ **सीहर** है (§ २०६)। —अ०माग० के **मघमघन्त** और **मघमघेॅन्त** के साथ साथ

* तुलसीदास ने पक्ख के आधार पर भाषा आदि शब्दों का प्रयोग किया है। —अनु०

(आयार० १,४,२,६ , सूय० ५७९ , विवाह० २५४ , दस० ६४०, २७ , नायाध० ७४० , ७६१ , ७६७ , ७६९ , १३३७ , उवास० , निरया०) = शौर० और माग० हंहो* (विद्ध० ९७, १० , माग० में : मृच्छ० १४०, १२ , १४१, १ , १४९, १७ , १६३, २ , १६५, ८ , १६७, २) = संस्कृत हंहो* । —अनुनासिक के बाद ह के स्थान पर ह-कारयुक्त वर्ण आ जाता है, महा०, अ०माग० और जै० महा० चिन्ध रूप में जो *चिन्ह से निकला है (§ ३३०) = चिह्न (वर० ३,३४ , हेच० २, ५० ; क्रम० २, ११७ [पाठ में चिण्णं है] , मार्क० पन्ना २५ , पाइय० ६८ , ११४ , गउड० , आयार० २, १५, १८ , नायाध० § ६४ , पेज १३१८ , पण्णव० १०१ , ११७ , विवाह० ४९८ , पण्हा० १५५ , १६७ , ओव० , उवास० , निरया० , आव० एर्त्से० १३, ५ , द्वार० ५०७, ३८), जै०महा० में चिन्धिय = चिह्नित (आव० एर्त्से० २७, १) बोली में चिन्धाल शब्द भी चलता था (= रम्य, उत्तम : देशी० ३,२२), महा० में समासों में -इन्ध है (गउड०), इसके साथ साथ महा०, शौर०, माग० और अप० में चिण्ह है (हेच० २, ५० , रावण० , नागा० ८७, ११ , माग० में मृच्छ० १५९, २३ , नागा० ६७, ६ , अप० में : विक्रमो० ५८, ११) । मार्कंडेय पन्ना ६८ के अनुसार शौर० में केवल चिण्ह रूप है । भामह १, १२ में चिन्ध के साथ साथ चेन्ध रूप भी बताता है (§ ११९) । इन रूपों के अतिरिक्त अ०माग०, जै०महा० और अप० में बम्भ = ब्रह्मन् (जीवा० ९१२ , सूय० ७४ , ओव० , कप्प० , एर्त्से० , तीर्थ० ५,१५ , हेच० ४,४१२) , अ०माग० में बम्भ = ब्रह्मन् (उत्तर० ९०४ , ९०६ , दस० नि० ६५४, ३९), बम्भ = ब्राह्म (आयार० पेज १२५, ३४), स्त्रीलिंग में बम्भी है (विवाह० ३ , पण्णव० ६२, ६३) , महा० बम्भण्ड = ब्राह्माण्ड (गउड०) , अ०माग० में बम्भलोय = ब्रह्मलोक (उत्तर० १०९० , विवाह० २२४ , ४१८ , ओव०) , अ०माग० में बम्भचारि- (आयार० २,१,९,१ , उत्तर० १६४ , उवास०), अ०माग० और जै०महा० में बम्भयारि = ब्रह्मचारिन् (दस० ६१८, ३४ , ६३२, ३८ , उत्तर० ३५३ , ४८७ , ९१७ और उसके बाद , नायाध० , ओव० , कप्प० , एर्त्से०) , अ०माग० और अप० में बम्भचेर = ब्रह्मचर्य (§ १७६) , अ०माग० और जै० महा० में बम्भण = ब्राह्मण (§ २५०) , अ०माग० में बम्भण्णय = ब्रह्मण्यक (ओव० कप्प०) इत्यादि । और बोलियों में केवल बम्ह- और बम्हण रूप है (§ २८७ , ३३०) । यही ध्वनिपरिवर्तन गौण अर्थात् श-, ष- और स-कार से निकले ह में हुआ है . आसंघा = *आसंहा = आशंसा (देशी० १,६३ [=इच्छा, आस्था । —अनु०]), इसमें लिंग का बहुत फेरफार है (§ ३५७)[१], महा० और शौर० में आसंघ रूप है (त्रिवि० १,३,१०५ = बे० बाइ० ३, २५० , गउड० , रावण० , शकु० १६०, १४ , विक्रमो० ११, २ , विद्ध० ४२, ७ , कंस० ७, २०), शौर० में अणासंघ है (मल्लिका० ९३,९) , महा० आसंघइ = आशंसति (हेच० ४,३५ ,

* यह हंहो रूप में कुमाउनी में वर्तमान है । कुमाउनी में 'किसी प्राणी या स्थान की विशेष पहिचान के चिह्न' के लिए चिंधाली है । —अनु०

गउड० रावण०) सघइ = शासति (हेच० ४, २)। अ०माग० हिंकुण जो मोसी में ढकुण और ढेंकुण हो गया है — *ढंखुण जो दंश धातु का एक रूप है (§ १ ७ और २१२)[1]। अ माग०, जै०महा० और अप० सिम्भ- के साथ साथ (हेच० २, ७४ पन्ना० ४९८ एत्सें० हेच० ४, ४१२), अ माग० में सेम्भ- (वेबर, भग० १, ४२९) इसका स्त्रीलिंग रूप सेम्भा भी मिलता है (मार्क० पन्ना २७) = श्लेष्मन्। यह सेम्भा *सेम्ह- और *सिम्ह- से निकला है। अ माग० सेम्भिय रूप है (वेबर, भग० १, ४१५ ; २, १७४ २७१), सिम्भिय भी है (ओव०) = श्लेष्मिक अ माग० में गौण अनुनासिक स्वर के साथ सिंघाण- रूप भी है जो *श्लेष्माण- से निकला है (§ ४ १), इसका यह क्रम है : *सेम्हाण-, *सिम्हाण- और अंत में *सिंहाण- (आयार० २,२,१,७ [यहां भी यह पाठ होना चाहिए] ठाणंग० ४८३ पन्ना ५ ९ विवाह० १६४ ; दस० ६११, १ उत्तर० ७३४ ; सूय० ७ ४ ओव० कप्प० भग०)। यह शब्द सिंघाण और श्रृंघाणिका रूप में संस्कृत में ले लिया गया है। इसका एक रूप अ० माग० में सिंघाणइ है (विवाह० ११२)। अप० में भी गिम्म = ग्रीष्म है (हेच० ४, ४१२)। कम्भार = काश्मीर के विषय में § १२ देखिए। सेफ = श्लेष्मन् पर § ३१२ और मरइ = स्मरति के लिए § ३११ देखिए।

1. पिशल : ११ १ पेज १९६ पर यों एस्से मसेस की टीका ; पिशल : ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस पेज आर उसके बाद में पिशल के मत की तुलना कीजिए ; हेमचंद्र २ ३९ पर पिशल की टीका ; बे बाइ ३, २५ । —२ बे बाइ ३ २५५ ; ६ ८७ और उसके बाद में पिशल के मत की तुलना कीजिए।

दो—संयुक्त व्यंजन

§ २६८—भिन्न-भिन्न वर्गों के संयुक्त व्यंजन या तो अंश-स्वर द्वारा अलग अलग कर दिये जाते हैं (§ १३१ १४) या मिला लिये जाते हैं। शब्द के आरम्भ में ण्ह म्ह और ल्ह और बोली की दृष्टि से व्यंजन र को छोड़कर केवल सरल व्यंजन ही रहते हैं; शब्द के भीतर उसमें मिला लिये जाने वाले संयुक्त व्यंजन में से आरम्भ में केवल दूसरा व्यंजन रहता है। समास या सन्धि के दूसरे शब्द का आरम्भिक वर्ण साधारणतया ध्वनि नियमों के व्यवहार के लिए शब्द के भीतर का वर्ण माना जाता है (§ १९६) : महा० में कवइ = क्रपति, कीळइ = क्रीडति, खन्ध = स्कन्ध ; गण्ठि = ग्रन्थि ; जलइ = ज्वलति ; थउ = स्थल ; थामरथाम- = स्थामस्थाम-(गउड०) ; दिभ = द्विज ; भमइ = भ्रमति ; ण्हाण = स्नान ; ण्हाविय = स्नापित और म्हसइ = स्मरति । —म्हि = अस्मि ; म्ह और म्हा = स्मः हो सकते हैं, क्योंकि ये प्रायः स्वरों से पहले आते हैं और इनके साथ ऐसा व्यवहार होता है मानो ये शब्द के भीतर के वर्ण हों। व्यंजन + र प्राकृत व्याकरणकारों के अनुसार शब्द के आदि या मध्य में भी रह सकता है (वर० ३, ४ ; हेच० २, ८ ; मार्क० पन्ना २) ;

दोह और द्रोह=द्रोह (भामह ३, ४), दह और द्रह=ह्रद (§ ३५४, भामह, हेच० २, ८०, देशी० ८, १४), चन्द और चन्द्र दोनों रूप हैं (सब व्याकरणकार), रुद्द और रुद्र साथ साथ चलते हैं (भाम०, हेच०), इन्द और इन्द्र (मार्क०), भद्द और भद्र (हेच०, मार्क०), समुद्द और समुद्र (हेच०) दोनों रूप साथ साथ एक ही अर्थ में काम में आते हैं। महा० में वोद्रह आया है (पाइय० ६२, देशी० ७,८० की तुलना कीजिए) अथवा वोद्रह रूप आया है (= तरुण पुरुष, तरुण ' हेच० २, ८०, देशी० ७, ८०, हाल ३९२)[2] (इस वाद्रह या वोद्रह का एक ही रूप है।—अनु०), जै०महा० में चन्द्र (= वृन्द, गुड हेच० १, ५३, २, ५३, २, ७९, देशी० ७, ३२, एर्त्से० २६, ३), इसके रूप वन्द्र और बुन्द्र भी होते हैं[1]। अप० में व्यंजन+र बहुधा आता है और कभी-कभी यह गौण भी रहता है। इस प्रकार हेच० में • त्रं = तद् तथा इससे भी शुद्ध त्यद् है (४, ३६०), द्रम्म = ग्रीक द्राख्मे (४, ४२२, ४), द्रवक्क (भय; दवक (ना), (४, ४२२, ४), द्रह = ह्रद (४, ४२३, १), द्रेहि = *देखि = दृष्टि (४, ४२२, ६, § ६६ की तुलना कीजिए), ध्रुं यद् और यस्मात् के अर्थ में (४, ३६०, ४३८, १), क्रमदीश्वर ५, ४९ में ट्रुं = तद्, त्रुं = यद् और ५, ६९ के अनुसार ये रूप व्राचड अपभ्रंश में काम में आते हैं, ध्रुवु = ध्रुवम् (४, ४१८, क्रम० ५, ५ की तुलना कीजिए जहाँ ध्रुव और ध्रु रूप छपे हैं); प्रङ्गण = प्राङ्गण (४, ३६०, ४२०, ४), प्रमाणिअ = प्रमाणित (४, ४२२, १), प्रआवदि = प्रजापति (४, ४०४), प्रस्सदि = पश्यति (४, ३९३), प्राइव, प्राइवॅ और प्राउ=प्रायः (४, ४१४), प्रिअ = प्रिय (४, ३७०, २, ३७७, ३७९, २, ३९८, ४०१, ६, ४१७), ब्रुवह = ब्रूत, ब्रोॅप्पि और ब्रोॅप्पिणु = *ब्रूत्वा (४, ३९१, क्रम० ५, ५८ भी), भ्रन्त्रि = भ्रान्ति (४, ३६०), व्रत्त=व्रत (४, ३९४), व्रास = व्यास (४, ३९९, क्रम० ५, ५)। क्रमदीश्वर में उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त भ्रास = भाष्य मिलता है (५, ५)। शब्द के भीतर अन्त्रडी = अन्त्र (हेच० ४, ४४५, ३), भ्रन्ति = भ्रान्ति (४, ३६०), पुत्र (क्रम० ५, २), संभवत जत्रु, तत्रु = यत्र, तत्र (हेच० ४, ४०४) में भी यही नियम है और एत्रुल, केत्रुल, जेत्रुल तथा तेत्रुल में भी = इयत्, कियत्, यावत् और तावत् (हेच० ४, ४३५) जिनके विषय में हस्तलिपियाँ त और त्र के बीच अदला बदली करती रहती हैं। क्रमदीश्वर के संस्करण में ५, ५० में यद्रु और तद्रु रूप आये हैं जो = यत्र तथा तत्र। —माग० और अप० में बोली में शब्द के आरंभ में य्च और य्ज (= य्‌च और य्‌ज) आये हैं (§ २१७)।

१ इनके उदाहरण उन पाराओं में हैं जिनमें इनके विषय में लिखा गया है। — २ हेमचन्द्र २, ८० के अनुसार यह है। वेबर की हाल ३९२ की टीका और इंडिशे स्टुडिएन १६, १४० और उसके बाद के अनुसार हस्तलिपियों में र नहीं है। — ३ हेमचंद्र १, ५३ पर पिशल की टीका।

§ २६९—शब्द के भीतर संयुक्त व्यंजनों में से केवल नीचे दिए गए रहते हैं : (१) द्वित्तीकृत व्यंजन और वह संयुक्त व्यंजन जिसमें एक व्यंजन के वर्ग

ध्वनिपरिवर्तन हो जाता है। अनुनासिक+अनुनासिक में किसी प्रकार का अपवाद करना है या नहीं अर्थात् **परम्मुह** और **छम्मासिय** लिखना चाहिए या नहीं, यह अनिश्चित ही रह गया है। (५) माग० में शब्द के भीतर **श्च, य्ह, ष्ठ, श्क, श्ख, स्क, स्ख, स्त, स्ट, स्त, स्प, स्फ** और **ह्क** पाये जाते हैं (§ २३३, २३६, २७१, २९०, ३०१ और उसके बाद और ३३१)।

१ भामह द्वारा इस नियम की भ्रान्तिपूर्ण धारणा के विषय में वररुचि पेज १३४ में नोटसंख्या पर कौवेल की टीका देखिए। — २ पिशल, देशीनाममाला की भूमिका का पेज ८ और उसके बाद। — ३ हेमचन्द्र १, २५ पर पिशल की टीका।

§ २७०—नाना वर्गों के संयुक्त व्यंजनों की शेष ध्वनि में संयुक्त व्यंजनों में से पहला व्यंजन लुप्त हो जाता है और दूसरे व्यंजन का रूप धारण कर उससे मिल जाता है (वर० ३, १ और ५०, चंड० ३, ३ और २४, हेच० २, ७७ और ८९, क्रम० २, ४९ और १०८, मार्क० पन्ना १९ और २६)। (१) क्+त=त्त हो जाता है. महा० में **आसत्त**=**आसक्त** (गउड०, हाल), **जुत्त**=**युक्त** (हाल, रावण०), **भत्ति**=**भक्ति** (गउड०, हाल), **मोॅत्तिय**=**मौक्तिक** (गउड०, हाल, रावण०)। यही नियम अन्य प्राकृत भाषाओं में भी है[१]। **मुक्क** और उसके साथ-साथ कभी-कभी व्यवहार में आनेवाला रूप **मुत्त**=**मुक्त**, ***मुक्क** से निकला है, जैसे **रग्ग** और उसके साथ-साथ चलनेवाला **रत्त**=**रक्त**, ***रग्ण** से निकला है (§ ५६६)। **सक्क** जो हेमचंद्र २,२ के अनुसार=**शक्त** बताया गया है, सर्वत्र ही=**शक्य** (क्रम० २,१)[२]। **नक्कंचर** (हेच० १, १७७)=**नक्तंचर**, किंतु यह समानता यदि ठीक होती तो इसका रूप **णत्तंचर** होना चाहिए था किंतु यह ***नर्का** से निकले रूप ***नक्का** से संबंधित है (§ १९४ और ३, ५५)=वैदिक **नक** तक पहुँचता है[३]।—(२) क्+थ, त्थ हो जाता है : जै०महा० में **रित्थ**=**रिक्थ** (पाइय० ४९, एर्त्से०, कालका०), अ०माग० में **सित्थ**=**सिक्थ** (हेच० २, ७७, ओव०, कप्प०), **सित्थअ**=**सिक्थक** (भाम० ३,१, पाइय० २२८)। —(३) क्+प=प्प : महा० में **वप्पइराअ**=**वाक्पतिराज** (गउड०)। —(४) ग्+ध=द्ध महा० में **दुद्ध**=**दुग्ध** (गउड०, हाल), महा० में **मुद्ध**=**मुग्ध** (गउड०, हाल, रावण०), महा० **णिद्ध** (हाल, रावण०), **सिणिद्ध**=**स्निग्ध** (गउड०)।—(५) ग्+भ=ब्भ हो जाता है. महा० में **पब्भार**=**प्राग्भार** (गउड०, रावण०)[४]।—(६) ट्+क=क्क बन जाता है. अ०माग० **छक्क**=**षट्क** (§ ४५१), अ०माग० **छक्कट्ठग**=**षट्काष्ठक** (नायाध०)। —(७) ट्+च=च्च : अ० माग० **छच्**+**च**=**षट् च**, **छच्चरण**=**षट्चरण** (§ ४४१)। —(८) ट्+त=त्त हो जाता है. अ०माग० **छत्तल**=**षट्तल**, **छत्तीसं** और **छत्तीसा**=**षट्त्रिंशत्** (§ ४४१)।—(९) ट्+प=प्प हो जाता है महा० **छप्पअ** और जै०महा० **छप्पय**=**षट्पद**, अ०माग० **छप्पण्णं** और अप० **छप्पण**=***षट्पञ्चत्** (=५६; § ४४१ और ४४५)।—(१०) ट्+फ=प्फ बन जाता है. **कप्फल**=**कट्फल** (हेच० २, ७७)। **ङ्**—(११) +ग=ग्ग हो जाता है महा० रूप **खग्ग**=**खड्ग** (गउड०, हाल,

वेबर, नक्षत्र २, २९८ की तुलना कीजिए) अथवा नक्ष् से (=पहुँचना। —अनु०)। इसकी व्युत्पत्ति बताना (ग्रासमान के वैदिक कोश मे यह शब्द देखिए) सब भाँति इसके अर्थ को तोड़ना मरोड़ना है। — ४ इसकी जो साधारण व्युत्पत्ति दी जाती है उसके अनुसार यह रूप दिया गया है। त्वाख्यारिआए (बाइत्रैगेत्सूर इंडिशन लेक्सिकोग्राफी, पेज ६० और उसके बाद में) प्राग्भार में ठीक ही पाता है कि संस्कृत में यह शब्द पब्भार का संस्कृत रूप बनाकर फिर भरती कर लिया गया है। वह पब्भार को जो अ०माग० में बहुत आता है (उदाहणार्थ उत्तर० १०३४, अणुओग० ४१६, विवाह० २४८ और ९२०, ठाणग० १३५ और २९७, ओव०, निरया०) और जै०महा० में भी पाया जाता है (कालका०) तथा शोर० में भी मिलता है (अनर्घ० १४९, १०) *प्रहार से व्युत्पन्न करना चाहता है। इसका साधारण अर्थ 'ढेर, राशि' दिशा दिखाता है कि इससे अच्छा *प्रभर शब्द है (याकोबी, कालकाचार्यकथानक में यह शब्द देखिए)। इसमें § १९६ के अनुसार द्वित्व हो जाना चाहिए।

§ २७१—एक ही वर्ग के संयुक्त व्यंजनों की शेष ध्वनियाँ § ३३३ में बताये गये नियम को छोड़ अन्यत्र लोगों की बोली में ही बदला जाता है। माग० में ट्ट स्ट का रूप धारण कर लेता है (हेच० ४, २९०) पस्ट = पट्ट, भस्टालिका = भट्टारिका, भस्टिणी = भट्टिनी। स्टेन्तसलर ने मृच्छकटिक में ट्ट के लिए श्ट रूप दिया है। भश्टक = भट्टक (१०, ५, १६, १८, २२, ३ और ५, ११४, १६, ११८, ८, १२, २२, १११, ९, १२२, १०, १२४, १२ और उसके बाद, १२५, १, ३, ८, २४, १३२, ११, १५ और १८), भश्टालअ और भश्टालक = भट्टारक (२२, ५, ३२, ४, ११२, १८, ११९, १३, १२१, १२, १५४, ९, १६४, १२, १६५, १ और ५, १७६, ४), पिश्टदु = *पिट्टतु = पिट्टयतु (१२५,८)। जैसा कि अन्यत्र बहुधा किया है, इस संबंध में भी गौडबोले ने उसका साथ दिया है। यद्यपि हस्तलिपियों में सर्वत्र भट्टक, भष्टक, भष्ठक, भट्टालक और भष्टालक (भष्टालअ) रूप आये हैं, केवल एक दो हस्तलिपिया १०, ५, २२, ३ और ५, ३२, ४, ११९, १३, १२४, २४, १३२, ११ में –श्ट– लिखती हैं। सब हस्तलिपियों में पिश्टदु के स्थान पर पिट्टदु' रूप है, कहीं विट्टदु भी है, इसी प्रकार अट्टहाशश्श आया है (१६८, २१), इस रूप के स्थान पर हेमचद्र के अनुसार अस्टहाशश्श लिखा जाना चाहिए। कलकत्ते के संस्करणों में सर्वत्र ट्ट आया है। इस प्रकार सभी संस्करणों में शकुन्तला ११४, १२; ११६, ११, ११८, ४, प्रबोधचन्द्रोदय ३२, ८, १०, ११ और १२, चडकौशिक ६०, १२ आदि आदि। मृच्छकटिक में श्ट स्ट के स्थान पर बोली का एक भेद माना जाना चाहिए जैसा श्क और उसके साथ-साथ ह्क=क्ष। किंतु अन्यत्र हेच० के अनुसार ट्ट के स्थान पर स्ट लिखा जाना चाहिए[१]। § २९० की तुलना कीजिए। हेच० २, १२ के अनुसार कृत्ति (=चमड़ा, खाल) का रूप किच्चि होना चाहिए। इसके उदाहरण केवल महा० में कत्ति (पाइय० ११०, ११०, गउड०, हाल) और कित्ति (हाल) मिलते हैं। हाल

१९१ में हस्तलिपि कन्दु = कन्दिभो के स्थान पर कन्दी भ लिखा गया है, ध्वन्यालोक के छपे संस्करण में १२८, ९ में कन्दी अ लिखा है और काव्यप्रकाश के छपे संस्करण में २२९, १ में भी यही रूप है तथा उत्तम हस्तलिपियों में यही देखने में आता है। कवि और किवि यह सूचना देते हैं कि इनका संस्कृत मूल कत्स्या =कत्स्यो:* रहा होगा, (= लपा) 'बानवरों का काट कर उतारा गया चमड़ा।' अ माग विधिक्षार = विछन्त्यति (§ ४८५) की तुलना कीजिए। च्छ के स्थान पर माग में श्च आने के विषय में § २११ देखिए।

१ गौडबोले पेज १४५ श्लोकसंख्या ९ में पिट्टु छपने की भूल है। —२ स्ट=ट्ठ के विषय में निम्नलिखित विद्वानों का मत अशुद्ध है: भारडोकी क्रिटिशे स्टुडिपन पेज २११ का नोट; सेन्हर पिवदसी १ २९ और उसके बाद; २ ४१८ और उसके बाद; योहान्ससोम शाहबाजगाढ़ी १ १८ श्लोकसंख्या १। मो गे सा १८८१ ११६ और उसके बाद में पिशल का मत देखिए।

§ २७२—दो संयुक्त व्यंजनों में से पहला यदि अनुनासिक हो तो नियम के अनुसार ध्वनिसमूह में अपरिवर्तित रहता है, जब कि अनुनासिक पहले आया है: महा अंक (गउड ; हाल रावण) रूप है महा और शौर में संखला = शृंखला (§ २११); महा में सिंग = शृंग (गउड ; हाल) महा में जंघा है (गउड) महा में कौञ्ञ = क्रौञ्च (गउड); महा में लम्छण = लाम्छन (गउड हाल रावण), महा में मञ्जरी रूप आया है (गउड हाल) महा में कण्ठ का कण्ठ ही है (गउड हाल रावण) और खण्ड खण्ड रूप में ही बना रह गया है (गउड• हाल ; रावण) तथा भन्त जैसे का वैसा बना हुआ है (गउड हाल, रावण)। मन्थर मन्थर रूप से चलता है (गउड ; हाल रावण) महा में मअरन्द = मकरन्द (हाल, रावण) बन्ध बन्ध रूप में बंधा है (गउड हाल रावण) तथा जम्बू अपने मूल रूप में स्थित है (गउड हाल)। यदि अनुनासिक अपने वर्ग से बाहर का आता है तो इसका रूप ‿ हो जाता है (§ २६९)।

§ २७३—पञ्चदशन् और पञ्चाशत् में ञ्च का ण्ण हो जाता है (वर १, ४४ हेच २ ४३; क्रम २ ६६ मार्क पन्ना २९) इस प्रकार: पण्णरह (=१५: सब व्याकरणकार अप में पिंगल १ ११२ और ११४); अ माग और जै महा में पण्णरस रूप है और कहीं कहीं पन्नरस भी पाया जाता है (हेच १ १२१; कप्प ; भग एर्स्से पेज भूमिका का ४१), पण्णरसी (कप्प) पण्णासा (=५ : वर १ ४४; हेच २, ५३; मार्क पन्ना २१; कप्प) अ माग और जै महा में पण्णासं रूप भी आता है (क्रम २ ६६; उवास २६६ भग ; एर्से), पन्ना रूप भी है (पव १ १२), पचास के अन्य सख्यायुक्त शब्दों मे पचास का पचर्न हो जाता है और पर्ण्ण

* इस कत्स्यों का एक रूप कत्तो और कत्तीं इसी अर्थ में कुमाउनी बोली में है इसे पर कत्तन भी मिलने की सम्भावना है। —अनु

भी : एक्कावन्नं (इसका संपादन **एकावन्नं** भी हुआ है, =५१ सम० ११२), **बावण्णं** (=५२), **तेवण्णं** (=५३), **चउवण्णं** (=५४), **पणवण्णं** (=५५), **छप्पण्णं** (=५६); **सत्तावण्णं** (=५७), **अट्ठावण्णं** (=५८ वेबर; भगवती १, ४२६, मम० ११३–११७, एत्सें० भूमिका का पेज ४१), **अउणापण्ण** (=४९. ओव० § १६३), **पणवण्णइम** (=५५ वॉ कप्प०), अप० मे **बावण्ण** (=५२), **सत्तावण्णई** (=५७ पिंगल १, ८७ और ५१)। इसी प्रकार अ०माग० में भी **पण्णट्ठि** (=६५. कप्प०) और **पन्नत्तरि** (=७५ : सम० १३३)। २०–६० तक संख्या शब्दो से पहले अ०माग० और जै०महा० मे **पञ्च** का **पण्ण** और अधिकाश स्थलों मे इसका छोटा रूप **पण** हो जाता है. **पणवीसं** (=२५), **पणतीसं** (=३५), **पणयालीस** (=४५), **पणवण्णं** (=५५), इसका रूप **पणवण्णा** भी मिलता है (चड० ३, ३३ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], हेच० २, १७४, देशी० ६, २७, त्रिवि० १, ३, १०५ =बे० बाइ० ३, २४५, इम ग्रथ मे इस रूप के साथ-साथ **पञ्चावण्णा** भी है), **पणसट्ठि** (वेबर, भगवती १, ४२५, सम० ७२—१२३, एत्सें० भूमिका का पेज ४१)। इसी प्रकार अ०माग० में भी **पणपण्णइम** (=५५ वां. कप्प०) और अप० मे **छप्पण** मिलता है (=५६ पिंगल १, ९६)। पाली रूप **पण्णुवीसति** और **पण्णुवीसं** (=२५) के समान ही अ०माग० मे **पणुवीसाहि** रूप है (इसमे **हि** तृतीया की विभक्ति है, आयार० पेज १२७, २५), **पणुवीसं** भी देखा जाता है (राय० ११४ और उसके बाद, जीवा० ६७३, जीयक० १९, २०), जै०महा० मे **पणुवीसा** मिलता है जिसका **उ** § १०४ के नियम से सिद्ध किया जाना चाहिए। पाली में भी **पन्नरस, पन्नरसी, पण्णरस, पण्णास** और इनके साथ साथ **पञ्ञास** रूप है। ए० कुन का अनुमान है (कू० त्सा० ३३, ४७८) कि '**ञ्च, च** और **श** के बीच भेद की गडबडी से स्पष्ट होता है और उसके अनुसार यह उस काल तक पीछे पहुँचता है जब **श** का दत्य **स**–कार नहीं हुआ था परतु जन लोगों के मुँह मे (उच्चारण म) स्पष्ट ही **च** से सबधित था।' यह तथ्य **पण** के लिए सभव नहीं है। पजाबी और सिंधी **पंजाह्**, **प–चंजा**, सिंधी–**चंजाह** (होएर्नले, कपैरैटिव ग्रैमर २५९) सकेत करते है कि ये रूप **ञ्च** से **ञ्ञ**, **ञ्य** और **न्य** बनकर आये है। पाली **आणा=आज्ञा** और **आणापेति** = **आज्ञापयति** और § २७४, २७६, २८२ तथा २८३ की तुलना कीजिए। अप० मे **पचीस** (=२५), **पचआलीसहिं** (=४५, तृतीया) में अनुनासिक लुप्त हो गया है। § ४४५ देखिए। अ०माग० **आउण्टण** जो=**आकुञ्चन** माना जाता है। § २३२ देखिए।

§ २७४—हेमचन्द्र ४, २९३, सिंहराज पन्ना ६२, रुद्रक के काव्यालकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका के अनुसार अ०माग० में **ञ्ञ** का रूप **ञ्ञ** में परिवर्तित हो जाता है **अञ्जलि=अञ्जलि, धणञ्जअ=धनंजय, पञ्जल=प्राञ्जल**। इसके अनुसार **ज** मानो शब्द के आदि में **य** हो गया हो। मृच्छकटिक १९, ६ में **अञ्जलि** रूप है।

§ २७५—हेमचंद्र ४ और ३०२ ; रुद्रट के काव्यालंकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका और अमरचंद्र की काव्यकल्पलतावृत्ति पेज ९ के अनुसार शौर० और माग० में न्त न्द में परिवर्तित हो जाता है। व्याकरणकारों ने नीचे दिये उदाहरण प्रस्तुत किये हैं : शौर० में अन्देउर = अन्तःपुर, णिच्चिन्द = निश्चिन्त महन्द = महत्। माग० में भी महन्द मिलता है इसके साथ शौर० में तथाकथित रन्दूण = रत्वा (हेच ४, २७१) और त्रिविक्रम १, २, १ में सउन्दले = शाकुन्तले हैं। ललितविग्रहराज नाटक से माग० में सर्वत्र न्त के स्थान पर सर्वत्र न्द आया है पयन्दे = पर्यन्ते (५६५, ७), अपय्यन्दिदा = अपर्यन्तिता (५६५, १२) पेस्कन्दि = प्रेक्ष्यन्ते (५६५, ११) पुच्छन्दे और णि [लिस्कन्दे] दे = पृच्छन् और निरीक्षमाणः (५६५ २) पब्भमन्दस्स = भ्रमतः (५६६ ७) जब कि शौर० में बिना अपवाद के न्त बना रहता है पिडोस्कादि = पिडोपचन्ते (५५४, ११) पेक्खिज्जंति = प्रेक्ष्यन्ते (५५४, २२), सुणंता सुणीयन्ति = श्रूयन्ताः श्रूयन्ते (५५५, २) हुर्वति = भवन्ति (५५५, ५); परंतसु = पर्यन्तेषु (५५५ ११) देसंतर = देशान्तर (५६ ११) आदि-आदि। होएफर¹ और लास्सन ने प्राचीन पाठों से पहले ही बहुत से ऐसे उदाहरण एकत्र कर रखे हैं जो नये संस्करणों से आंशिक रूप में नये संस्करणों से उड़ गये हैं, जैसे मफ्फन्दि जिसके स्थान पर स्टेन्त्सलर मृच्छकटिक ६९, २ में अपनी हस्तलिपियों के अनुसार मफ्फन्ति = मक्षयन्ति रूप देता है ; संदाव रूप है जिसके स्थान पर मृच्छकटिक ७८, ८ शकुंतला ५५ १ ६८, ? रत्नावली २ ८, १ २९९ १ में संताव रूप मिलता है। प्रबोधचंद्रोदय के पूना बंबई और मद्रास के छपे संस्करण साथ ही ब्रोकहौस के संस्करण में बहुधा न्द मिलता है। ब्रोकहौस के संस्करण में आये रूपों के अतिरिक्त अन्य संस्करणों म न्द वाले नये शब्द भी देखने में आते हैं जैसे बंबइया संस्करण ३९, २ में रमन्दी आया है, मद्रास तथा पूना के संस्करण म रमंदी छपा है, ब्रोकहौस ९ में समायमन्दी है और मद्रास तथा पूनावाले में संह्रायमंदी छपा है, बंबइया में संमायपंदी आया है किन्तु ब्रोकहौस ४ में चिट्ठन्ति, मद्रास में चिट्ठन्दि पूना म चिट्ठन्दि रूप आये हैं ; बंबइया में तुस्सन्ति है। ब्रोकहौस में पडीछन्ति है बंबइया और मद्रासी में पडिच्छन्ति और पूनावाले में पडिच्छन्ति छपा है, इन सब में न्ति आया है। यहाँ भी यही अस्थिरता बहुत मिलती है और भारतीयों द्वारा प्रकाशित कई संस्करणों में भी पायी जाती है। इस प्रकार शंकर पांडुरंग पंडित मालविकाग्निमित्र ७ २ में ओआसमासी १, ३ में अन्तरे किंतु ५ में उवभाराजन्दरे रूप देता है (बौल्लें नसेन ने ५ ९ में शुद्ध रूप उवभाराजन्तरं दिया है); ६६ १ में पञ्चरत्तम्पन्दर दिया है (बौल्लें नसेन ने १४ ११ म पञ्चरत्तम्मन्तर दिया है) किंतु ६६ ५ मे आमन्तर्य छापा है आदि आदि तारा कुमार चक्रवर्ती ने उत्तररामचरित ५९ ५ ; ६९ १ ; ७७ ४ ; ८९, ११ में यासन्दी = यासन्ती छापा है ; तैलंग ने मुद्राराक्षस ३६ ४ में जाणन्दि किंतु ३८ १ में जाणन्तं छापा है ; १ ४ में महन्दि परन्तु ३९ ७ में निपदिमन्ति है। दुर्गाप्रसाद और परब ने उन्मत्तराघव १ २ और ५ तथा ७ ४ म वीसन्द दिया है किन्तु ५, ८ में

दीसन्ति = **दृश्यन्ते** छापा है , ७, ४ में **अण्णेसन्दीए** दिया है = **अन्वेषन्त्या** किन्तु ५, ४ में **संभमन्ता** रूप आया है = **संभ्रमन्तः** , मुकुन्दानन्द भाण १३, २ में **किंदि** = **किम् इति** है, परन्तु १३, १८ में **अन्दरेण** = **अन्तरेण** है , १७, १४ में **सन्दि** = **शान्ति** है किन्तु २१, १२ मे **अक्कन्दो** = **आक्रान्तः** पाया जाता है । लिखने का यह ढग पार्वतीपरिणय के दोनों सस्करणों मे बहुत प्रयुक्त हुआ है, जैसे **निरन्दरं चिन्दाउल** (२, १५ और १६), **वासान्दिए** (९, ३), **वासन्दिआ** (९, १५), **अहिलसन्दी** (२४, १६ , २८, ४) आदि । लास्सन का झुकाव कुछ ऐसा था कि वह इसमें शौर० की विशेषता देखता था[३] । किन्तु **न्द** माग० मे मिलता है और महा० में भी उदाहरणार्थ **जाणन्ता** के स्थान पर **जाणन्दा** मिलता है (हाल ८२१) , **किंदेण** (हाल ९०५), **भणन्दि** (पार्वती० २८, २), **मन्दि** = **रमन्ति** , **उज्झन्दो**= **उज्झन्तः** , **रज्जन्दि**=**रज्यन्ते** (मुकुन्द० ५, २ , २३, २)। हेच० २, १८० में बताया गया है कि **हन्दि** का प्रयोग विषाद, विकल्प, पश्चात्ताप, निश्चय और सत्य को व्यक्त करने के लिए किया जाता है और २, १८१ में कहता है कि **हन्द** 'ले' और 'ध्यान दे' के अर्थ में काम मे लाया जाता है। **हंद** = **हन्द**=सस्कृत **हन्त** के । हेच० द्वारा दिया गया उदाहरण हाल २०० है जहॉ हस्तलिपि में **गे ण्हह**, **गिण्हह** और **मंद** है, जैन हस्तलिपि आर० में यहॉ **हन्दि** है, भुवनपाल (इण्डिशे स्टुडिएन १०, ७० श्लोक १३५ की टीका) इस स्थान पर **हंत** पाठ पढता है। अ०माग० में **हंद ह हंद हं** रूप देखे जाते हैं (आयार० २, १, १०, ६ , ११, १ और २ , ठाणग० ३५४) , अन्यथा महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **हन्त** मिलता है, अ०माग० में एक रूप **हन्ता** भी है (गउड० , आयार० २, ५, ०, ४ , नायाध० १३३२, विवाग० १६ , उवास० , भग० , ओव० , कालका० , विक्रमो० ३१, ७)। अ०माग० **हंदि** (सूय० १५१ , दस० ६२४, २६ [पाठ में **हन्दि** है] , दस०नि० ६४७, ४१ [पाठ में **हन्दि** है] , ६५३, १३ [पाठ मे **हन्दि** है] , ठाणग० ४८८ , अणुओग० ३२३ , नायाध० ११३४) । जै०महा० रूप **हंति** से निकला है और **हम् इति** है। § १८५ और § २६७ में अ०माग० **हभो** की तुलना कीजिए। हाल के उदाहरण **हन्द** को छोडकर शेष सब तेलगू सस्करण से आये हैं और जैसा कि ह-कार युक्त वर्णों का द्वित्व होता है (§ १९३), वैसे ही **न्त** के स्थान पर **न्द** लेखनशैली द्रविड से आयी है जहा **न्त** का उच्चारण **न्द** किया जाता है । इसलिए **न्द** द्राविडी और द्राविडी हस्तलिपियों के आधार पर बनायी गयी प्रतिलिपियों में अधिकतर पाया जाता है। द्राविडी हस्तलिपिया कभी कभी **न्त** के स्थान पर **न्त** लिखती हैं । उदाहरणार्थ, शकुन्त्तला[४] ताकि **न्त** का उच्चारण सुरक्षित रहे और दक्षिण-भारतीय पल्लवदानपत्र ७,४३ की प्राकृत मे यही लेखनशैली व्यवहृत हुई है। उसम **महंत्ते**, **महते** = **महतः** के स्थान पर आया है (द्वितीया बहुवचन)[५] । यह ठीक वैसा ही है जैसे प्राकृत की प्राचीन हस्तलिपिया — के बाद के **त** का द्वित्त करना पसद करती थी ।[६] महा० मे **संदाव** रूप बहुत अधिक पाया जाता है (हाल ८१७ , परिशिष्ट ९९४), और शौर० में (मालती० ७९, १ , ८१, २ , २१९, १ , उत्तर० ६, १ , ९२, ९ , १६३, ५ , नागा०

८७, १२ ; विद्ध० ८१,४ प्रिय० ४, ७ २२,१२ २४, ७ २५, ११ मल्लिका २१८ १० ; २२१, १६ ; ११ , १७ ; रुक्मिणी २७, ६ और ११ ११, ११), संतावेदि (प्रिय २०,७ मुकुन्द ७१, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), सन्तावेदि (मालती ७९, १) रूप मिलते हैं। शकुंतला ५५, १ में भी अधिकांश हस्तलिपियाँ सन्ताव लिखती हैं, दो हस्तलिपियाँ ६८, १ में यही रूप देती हैं, १२७,७ में अधिकांश न सन्तावेदि रूप दिया है। महा० में एक क्रिया तावइ = ताप्यति है (शकु ५१, १६, नोट के साथ, पेज १८४ किंतु § २ ? नाठ संख्या १ की तुलना कीजिए), इसलिए संताय उससे संबंधित किया जा सकता है। किंतु महा० में भी संताव रूप है जो सबसे अधिक प्रमाणित है (गउड हाल ; रावण) और यही शौर० में भी एकमात्र शुद्ध रूप है। आअम्बइ = अपक्रतम्सि (§ ४८५) और चिडुंडुम = चिर्तुतुद (दण्डी ७, ६ । त्रिवि १,३,१ ५ = बे बाइ० १, २५२) में भी बोली की दृष्टि से वही ध्वनिपरिवर्तन आ गया है।

१ वे प्राकृत विपाकेन्स्य पेज ५४। — २ हस्तिरक्ष्यूलिनोमेस माकृतिम्ब पेज २६६ ; मार्क्संख्या ३०८। — ३ ऊपर उद्धृत ग्रंथ पेज २३८। — ४ गा गे वि गा १८०३, २११ आर उसके बाद तथा कू बाइ ८ ॰ १६ और इसके बाद में पिशल का मत ; विक्रमोर्वशीय पेज ६१५। — ५. गा गे वि यो १८९५ २१ में पिशल। — ६ एस गोल्डश्मिल्ट त्सा डे डो मो गे २९, ४९४, नोटसंख्या १; रावणवहो की भूमिका का पेज ११।

§ २७६—यदि अनुनासिक संयुक्त व्यंजनों का दूसरा म्न हो तो यह अंतिम म्न और म पहले आये हुए वर्ण में घुल जाते हैं : महा० में अग्गि = अग्नि (गउड ; हाल रावण) महा० अ माग , जै महा० और शौर० में उव्विग्ग = उद्विग्न (गउड हाल रावण उवास एत्सें मृच्छ ११ , १६ ; १५१ २)। उव्विग्गण जिसे हेमचन्द्र २ ७८ में = उद्विग्न के बताता है वह बहुत करके = ०उदुयूग्ण जो वैदिक धातु मत् और ०यूग् धातु का रूप है जिसमें उद् उपसर्ग लगाया गया है। मौलिक रूप घुण्ण (= भीत उद्विग्न ; दण्डी ७, ९४ पाइय ७६) और उव्वुण्ण (= उद्विग्न ; उद्भट दण्डी ? १२१) रूप ठीक हैं। जै महा० म नग्ग = नग्न (एत्सें), महा० मे रुग्ग = रुग्न (गउड) महा० में विग्घ = विघ्न (रावण), अ माग में सयग्घी = शतघ्नी (उत्तर ९ ८५ ; ओव); सुरुग्घ = सुरुघ्न (हेच २, ११३) अ माग में पत्ती = पत्नी (उत्तर ३११ ; ४२२) महा० में सवत्त = सपत्न (गउड ; रावण), महा० जै०महा० और शौर० मे सवत्ती = सपत्नी (हाल , माव एत्सें २८, ९ ; अनर्घ० २८७ १ ; कंसी १२ ३); शौर० मे णीसवत्त = निस्सपत्न (मृच्छ ५ १) महा० में पमत्त = प्रयत्न (हाल) ; अ माग मैं पप्पाइ और जै शौर० पप्पोव = प्राप्नोति (२ ५ ४) । § ५६६ देखिए। ध्वनिसमूह ग्न नियम के अनुसार ण्ण बन जाता है और यह शब्द के आरंभ में हो तो इसका रूप ण हो जाता है (वर ३ ४४ हेच २, ५२ क्रम २, १ २ , मार्क० पन्ना २५) : महा० में अहिण्णाण =

अभिज्ञान (रावण०), महा० में **जण्ण = यज्ञ** (हाल), **पण्णा = प्रज्ञा** (हेच० २,४२), महा० मे **सण्णा*** = **संज्ञा** (रावण०), महा०, अ०माग० और जै०महा० में **आणा = आज्ञा**, अ०माग० और जै०महा० में **नज्जइ = ज्ञायते** (§ ५४८), अ०माग० **णाण = ज्ञान** (आयार० १, ६, १, ६)। हेच० २, ८३ में आज्ञा देता है कि **अज्जा = आज्ञा** भी हो सकता है, और **पज्जा = प्रज्ञा**, **संजा = संज्ञा**, **जाण = ज्ञान** और इसके साथ साथ **ण्ण** और **ण्णु** भी होता है (§ १०५), **ज्ज** भी होता है जब ज्ञ एक समास का दूसरा पद होता है. **अप्पण्णु** और **अप्पज्ज = आत्मज्ञ**, **अहिण्णु** और **अहिज्ज = अभिज्ञ**, **इंगिअण्णु** और **इंगिअज्ज = इंगितज्ञ**, **दइवण्णु** और **दइवज्ज = दैवज्ञ**, **मणोण्ण** और **मणोज्ज = मनोज्ञ**, **सव्वण्णु** और **सव्वज्ज=सर्वज्ञ** किन्तु एकमात्र **विण्णाण = विज्ञान**। वररुचि ३, ५, क्रम० २, ५२ और मार्क० पन्ना २० के अनुसार **सर्वज्ञ** के रूप के शब्दों में केवल **ज्ज** को ही काम मे लाया जाता है : **सव्वज्ज, अहिज्ञ, इंगिअज्ज, सुज्ज = सुज्ञ**। इसके विपरीत शौर०में वररुचि १२,८ के अनुसार **केवल सव्वण** और **इंगिदण्ण** का व्यवहार है और १२,७ के अनुसार **विज्ञ** और **यज्ञ** मे इच्छानुसार **ज्ज** भी होता है, क्रम० ४, ७६ के अनुसार इच्छानुसार **अहिज्जो** और **अहिञ्ञो** रूप होते हैं, ५, ७७ के अनुसार **पलिञ्ञा = प्रतिज्ञा** है। शुद्ध लिपि प्रकार क्या है इसका वररुचि और क्रमदीश्वर में पता नहीं चलता। वह सदिग्ध है। अनुमान यह है कि **ज्ज** और **ण्ण** अनुमत माने जायें। शौर० **अणहिण्ण=अनभिज्ञ** (शकु० १०६,६, मुद्रा० ५९, १), **जण्ण = यज्ञ** (शकु० १४२, ३, मालवि० ७०, १५), **पइण्णा** (§ २२०) के सप्रमाण उदाहरण मिलते हैं। अ०माग० में **ण्णु** और **न्नु** के साथ साथ **ण्ण** तथा **न्न** भी चलते है . **समणुण्ण = समनुज्ञ** (आयार० १, १, १,५), **खेयन्न = खेदज्ञ** (आयार० १, १, ४, २, १, २, ३, ६, १, २, ५, ३, १, २, ६, ५; १, ३, १, ३ और ४, १, ४, १, २, १, ५, ६, ३, सूय० २३४ [यहाँ पाठ में **खेदन्न** है], ३०४ और ५६५), **मायन्न = मात्रज्ञ** (आयार० १, २, ५, ३, १, ७, ३, २, १, ८, १, १९, दस० ६२३, १५, उत्तर० ५१), **कालन्न, बलन्न, खणयन्न, खणन्न, विणयन्न, समयन्न** और **भावन्न** (आयार० १, २, ५, ३, १, ७, ३, २), **मेयन्न** (उत्तर० ५०८), **पन्न = प्रज्ञ** (उत्तर० ३३), **आसुपन्न = आशुप्रज्ञ** (उत्तर० १८१), **महापन्न** (उत्तर० २००), **मणुन्न** और **अमणुन्न = मनोज्ञ** और **अमनोज्ञ** (आयार० २, १, १०, २, ११, २, २, ४, २, ६, पेज १३६, ७ और उसके बाद, सूय० ३९०, ओव० § ५३ और ८७), किन्तु शौर० में **मणोज्ज** रूप है (मल्लिका० १०५, ५)। इसी प्रकार अ०माग० में भी **जन्न=यज्ञ** (उत्तर० ७४२), **जण्णइ=यज्ञकृत्** (ओव०)। —माग० में **ज्ञ** का **ञ्ञ** हो जाता है (हेच० ४, २९३), **अवञ्ञा = अवज्ञा**, **पञ्ञाविशाल = प्रज्ञाविशाल**, **शव्वञ्ञ = सर्वज्ञ**। वररुचि, क्रमदीश्वर और मार्कण्डेय में यह नियम नहीं मिलता और हस्तलिपियाँ केवल **ण्ण**

* इस सण्णा का हिन्दी रूप सैन और कुमाउनी सान है। —अनु०

में (गउड० ६३ , ९६ , कर्पूर० ८२,२), महा० मे अत्त- मिलता है। अन्य बोलिया डावाडोल रहती हैं (हेच० २,५१ , मार्क० पन्ना २६)। अ०माग० और जै०महा० में पास पास अप्प और अत्त रूप मिलते हैं , स्वय समासो में भी पाये जाते हैं, जैसे अ० माग० मे अज्झप्प- = अध्यात्मन् (आयार० १,५,४,५ , पण्हा० ४३७) , अ० माग० और जै०महा० मे अत्तय = आत्मज (विवाह० ७९५ , एर्त्से०), अ०माग० अत्तया = आत्मजा (नायाध० ७२७ , १२२८ , १२३२) , अ०माग० मे *आत- के स्थान पर आय रूप भी है , जै०महा० मे इसका पर्याय आद- है (§ ८८), इनके साथ जै०शौर० मे अप्प- रूप है , शौर० और माग० मे कर्ता एकवचन अप्प बहुत आता है, अन्य कारकों मे सदा केवल अत्त पाया जाता है। कर्मकारक मे अत्ताणअं रूप है , ढक्की मे अप्प- है (§ ४०१ और ४०३)। गिरनार के शिलालेखों मे पाया जानेवाला रूप आत्त- जिसे आस्कोली[2] और सेनार[3] बताते है कि आत्प पढा जाना चाहिए[4], इस दिशा की ओर सकेत करता है कि अप्प- जब अपने क्रमविकास में आगे बढ रहा था तो आत्म-, *आत्व (§ २५१ और ३१२), *आत्प हो गया। यह आत्प- अतिम ध्वनि के स्थान परिवर्तन से बना और अत्त- आत्मन् का नियम पूर्वक क्रमविकास है[5]। क्म = प्प के बीच में एक रूप त्म भी रहा होगा रुक्म, *रुत्म = रुप्प। —द्म का म्म हो जाता है , छम्म = छद्म (हेच० २,११२)। इसके साथ साथ साधारण प्रचलित रूप छउम भी है (§ १३९) , पोॅम्म = पद्म (§ १६६ और १९५)। इसके साथ साथ पउम रूप भी चलता है (§ १३९)।

१ हाल २०१ मे अत्तणो के स्थान पर, जैसा बंबइया सस्करण मे भी है, हस्तलिपि एस के अनुसार अप्पणो पढ़ा जाना चाहिए , इसी प्रकार गउडवहो ९० मे सर्वोत्तम हस्तलिपि जे. के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए। संभव तो यही है कि महा० में सर्वत्र अत्तणो के स्थान पर अप्पणो पढ़ा जाना चाहिए। — २ क्रिटिशे स्टुडिएन पेज १९७, नोट-सख्या १०। — ३ पियदसी १, २६ और उसके बाद। — ४. भगवानलाल इन्द्रजी, इडियन एण्टिक्वेरी १०, १०५ , पिशल, गो गे आ १८८१, पेज १३१७ और उसके बाद , ब्यूलर, त्सा डे डौ मौ गे ३७, ८९। — ५ पिशल, गो गे आ १८८१, पेज १३१८।

§ २७८—यदि भिन्न वर्गो के अनुनासिक आपस में मिल जाते हैं तो ण्म और ह्म - म में परिवर्तित हो जाते है (§ २६९), न्म म्म बन जाता है (वर० ३, ४३ , हेच० २, ६१ , क्रम० २, ९८ , मार्क० पन्ना २५) और म्न का ण्ण हो जाता है, अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० में यह रूप न्न भी हो जाता है (वर० ३, ४४ , हेच० २, ४२ , मार्क० पन्ना २५) महा० में उम्मुह=उन्मुख (गउड० , रावण०), उम्मूल = उन्मूल (हाल) , उम्मूलण = उन्मूलन (रावण०) , जम्म=जन्मन् (हाल , रावण०) , मम्मण = मन्मन् (हेच० २, ४२) , महा०, जै०महा० और अप० मे वम्मह = मन्मथ (§ २५१) , महा० णिण्ण=निम्न (हेच० २, ४२ , गउड०) , णिण्णआ=निम्नगा (गउड०) , अ०माग० में निण्ण है (विवाह०

१२४४) ईसिंसिणिण्णयर=ईषत्खिन्नतर (विद्धा २३१) मिलता (प्रबो० ४४) महा० और शौर० में पज्जुण्ण=प्रद्युम्न (भाम ३, ४८ हेच० २ ४२; रत्ना २९५ २६ २९६, ५ और १७)। हेमचंद्र २, ९४ के अनुसार धृष्टद्युम्न का म्न, ण में परिवर्तित हो जाता है : धट्ठज्जुण। शौर में धट्ठज्जुण्ण रूप है (प्रचंड ८ १९) माग० में धिट्ठज्जुण (वेणी ३५ २९), इस स्थान पर धिट्ठज्जुण्ण पढ़ा जाना चाहिए। यदि धट्ठज्जुण केवल मात्र छंद की मात्राएं ठीक करने के लिए न आया हो तो संभवतः यह *धृष्टार्जुन रूप में ठीक किया जाना चाहिए क्योंकि द्युम्न के स्थान पर उसका पर्यायवाची अर्जुन है।

§ २७९—जब अन्तिम ध्वनि या शेष वर्ण अथवा अनुनासिक, अर्धस्वर से टकराते हैं तो जब तक उनके बीच में अंशस्वर न आये (§ १३०—१४) नियम यह है कि अधस्वर शब्द में मिला लिया जाता है। (१) जहाँ एक ध्वनि य है (वर ३, २ चंड ३, २ हेच २, ७८ क्रम २, ५१; मार्क पन्ना १९) क्य=क्क : शौर में चाणक्क=चाणक्य (मुद्रा ५१ ८ और उसके बाद) पारक्क=पारक्य (हेच १, ४४; २, १४८); अ माग में वक्क=वाक्य (हेच २, १७४ सूय ८१८ ८४१ ८४२ ८४४; उत्तर ६७४; ७५२ दस ६३३, १ और १९ दस नि ६४४, २१; ६४९, २६ ६५८ २१ और ३३ ६५९, २२ और २३); शौर में शक्क=शक्य (शकु ७३, ११ १५५,८; विक्रमो १, ११ १२,२ १८, १६ | २२ १४ ४, ७)। —क्य=क्ख : महा में अक्खाणअ=अक्यानक (हाल) अ माग अक्खाइ=अक्याति (§ ४९१); शौर पक्खाणइस्सं=अप्याक्यानयिष्यामि=क्याक्यास्ये (लिय ६१, १ रुक्मिणी १९ १) महा अ माग, जै महा जै शौर, शौर और अप में सॉक्ख=सौख्य (६१ अ)। अ माग रूप आघायेइ के विषय में § ८८ और २५१ देखिए। ग्य=ग्ग जॉग्ग=योग्य (गउड हाल; रावण), अ माग और जै महा वेरग्ग=वैराग्य (ओव; एत्सें); महा सॉहग्ग=सौभाग्य (गउड हाल रावण)। — च्य=च्च : अ माग में चुय=च्युत (आयार १ १ १ ३। कप्प); महा में मुच्चइ=मुच्यते (गउड); अ माग में मुच्चइ और शौर में मुच्चदि=उच्यते (§ ५४४)। — ज्य=ज्ज : महा जुज्जइ=युज्यते (हाल); मुज्जन्त=मुज्यमान (गउड) रज्ज=राज्य (हाल; रावण) — ट्य=ट्ट : शौर णट्टअ=नाट्यक (मृच्छ ७, १); महा में तुट्टइ आता है (हेच ४ ११६) महा और अप में तुट्टइ (§ २९२)=त्रुट्यति; महा लुट्टइ=लुट्यति (हेच ४ १८९ कपूर ३९, १)। —ड्य=ड्ड : महा कुड्ड=कुड्य (हेच २ ७८ हाल); अ माग पिड्डइ=पीड्यते (आयार १ २ ५ ४)।—ढ्य=ड्ढ : महा और अ माग अड्ढ=आढ्य (गउड मुद्रा० ९५७; उवास ओव; निरया); अ माग और जै महा येयड्ढ=वैताढ्य (१६)। —प्य=प्प : अ माग अप्पेग=*अप्यके, अप्पेगइया=*अप्यकाया=पाली अप्पेकच्चे (§ १७४)। महा कुप्पइ=कुप्यति (हाल,

गउड०), सुप्पउ = सुप्यताम् (हाल)। —भ्य = ब्भ : महा० अब्भन्तर = अभ्यन्तर (गउड०, हाल, रावण०), शौर० और माग० अब्भुववण्ण = अभ्युपपन्न (§ १६३), अ०माग० और जै०महा० में इब्भ = इभ्य (ठाणग० ४१४ और ५२६, पण्हा० ३१९, नायाध० ५४७, १२३१, विवाग० ८२, ओव०, एर्स०)। ज्य् के स्थान पर द्द् आने के विषय मे § २१५ देखिए।

§ २८०—दत्य वर्णों के साथ य् तब मिलता है जब यह पहले अपने से पहले आनेवाले दत्य वर्ण को तालव्य बना देता है। इस प्रकार त्य = च्च (वर० ३, २७, हेच० २, १३, क्रम० २, ३२, मार्क० पन्ना २३), थ्य = च्छ (वर० ३, २७, हेच० २, २१, क्रम० २, ९२, मार्क० पन्ना २३), द्य = ज्ज (वर० ३, २७, हेच० २, २४, क्रम० २, २२, मार्क० पन्ना २३), ध्य = ज्झ (वर० ३, २८, हेच० २, २६, क्रम० २, ८७, मार्क० पन्ना २३)। —त्य = च्च : महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर० और शौर० मे अच्चन्त = अत्यन्त (§ १६३), णच्चइ = नृत्यति (वर० ८, ४७, हेच० ४, २२५, हाल), महा० दो च्च = दौत्य (हाल), अ०माग० वेयावच्च = वैयापृत्य (ओव०), महा० सच्च = सत्य (गउड०, हाल)। —थ्य = च्छ : महा० और शौर० णेवच्छ तथा अ०माग० और जै०महा० नेवच्छ = नेपथ्य (गउड०, रावण०, विक्रमो ७५, १४, रत्ना० ३०९,१६ [पाठ मे णेवत्थ है], माल्ती० २०६,७, २३४,३ [दोनों स्थानों में णेवत्थ है, प्रसन्न० ४१, ७, मालवि० ३३, १८, ३६, ३, ३८, ३, ७३, १७, ७४, १७ [सर्वत्र णेवत्थ है], प्रिय० २७, १८, २८, १ और ४], विद्ध० ३०, ८, १२०, ११ [दोनों स्थानों में णेवत्थ है], रुक्मिणी० ३७, १५, ४१, ११ [णेवच्च रूप है], ८२, ५, ४३, ५ और ९, आयार० २, १५, १८ [पाठ मे नेवत्थ है], नायाध० ११७ [पाठ में नेवत्थ है], ओव०, आव०एर्से० २७, १७, एर्स०, अ०माग० और जै०महा० नेवच्छिय मे रूप भी मिलता है (विवाग० १११, पण्हा० १९६ [दोनों पाठो म नेवत्थिय है], आव०एर्स० २८, ५) = *नेपथ्यित, जै०महा० में नेवच्छेत्ता (= नेपथ्य मे करके : आव० एर्से० २६, २७) रूप भी मिलता है, अ०माग० पच्छ = पथ्य (सब व्याकरणकार, कप्प०), महा० और शौर० रच्छा = रथ्या (गउड०, हाल, मृच्छ० २, २०, कर्पूर० २०, ४, ३०, ७)। —द्य = ज्ज : पल्लवदानपत्र मे अजाताए = आद्यत्वाय (§ २५३), महा० मे अज्ज = अद्य (गउड०, हाल, रावण०), महा० मे उज्जाण = उद्यान (गउड०, रावण०), छिज्जइ = छिद्यते (रावण०), विज्जुज्जोअ = विद्युद्योत (गउड० ९०७), महा० जै० महा० और शौर० मे वे`ज्ज = वैद्य (§ ६०)। —ध्य = ज्झ : महा० और शौर० मे उवज्झाअ, अ०माग० और जै०महा० मे उवज्झाय = उपाध्याय (§ १५५), महा० मज्झ = मध्य (गउड०, हाल, रावण०), महा०, अ०माग० जै०महा० और शौर० में विंझ = विन्ध्य (§ २६९), महा०, जै० महा० और शौर० में संझा = सन्ध्या (§ २६९)। § ५३६ में बताये ढग से माग० में द्य का य्य हो जाता है (हेच० ४, २९२, क्रम० ५, ९०, रुद्रट

के काव्यालंकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका) : मच्च=मद्य मयच्च=मयय ; मच्च = *मद्य ; विच्चाहल = विद्याधर । इसकी समानता पर रय का च्च हो जाता है : मार्कण्डेय का मच्चकुण्ण रूप मिलता है (§ १८८ २१४ ; २१६) । माग की हस्तलिपियां अन्य प्राकृत भाषाओं की भांति ज्ज और ज्झ लिखती हैं इस प्रकार ललितविग्रहराजनाटक ५६६, ११ में युज्झ = *युज्झ्य = युज = महा , अ माग जै०महा शौर और अप जुज्झ (गउड हाल ; बाल १८ , ५ ; नायाध १३११ और १३१६ एत्सें ; कलिय ५६८,४ ; बाल० २४६,५ जीवा० ८६, १ हेच ४, १८६) । अपवादस्वरूप व्याकरण में कोई भाषा नहीं बताता : अ माग चियत्त जो तियक्त से निकला है = त्यक्त (ठाणंग ५२८ [पाठ में वियत्त है] ; कप्प § ११७ इस संबंध में § ११४ देखिए), चिया, चे'चा, चिच्चाण और चेच्चरण = *तियक्त्वा, *तिकित्वा *तिप्त्वा = त्यक्त्वा (§ ५८७) ये रूप ठीक वैसे ही हैं जैसे चयइ = त्यजति (हेच ४,८६ उत्तर १ २ ; दस ६२८,१८) चयन्ति = त्यजन्ति (आयार १ ४,३,१ ; १,६ १,२ सूय १० [पाठ में चियान्ति है] १७४) चए = त्यजेत् (आयार० १,५,६,५), चयाहि= त्यज (आयार १,६,१,५) चइस्सन्ति = त्यक्ष्यन्ति (सूय ३६१), चत्त= त्यक्त (आयार २,१६,२१ और २४), जै महा मे चाई = त्यागी (कै जे ५) । अ माग में चियाइ = त्याति वैसा ही है जैसे महा रूप झाइ (§ ४७९) ।

१ जैसा कि पाठ से देखा जाता है इन शब्दों को केवल जैन हस्तलिपियां जो निरंतर च्च और त्य को आपस में बदलती रहती हैं बहुत अधिक बार त्य से लिखती हैं अपितु नाटकों की हस्तलिपियां भी ऐसा ही करती हैं । इसमें केवल च्चयच्च रूप सर्वत्र शुद्ध लिखा गया है ।

§ २८१—§ २८ के नियम का एक अपवाद वाशि वशिखामत्ता=वाशि व्यास्या है (मृच्छ १ १, ५) । § २६ देखिए । इसके अतिरिक्त अ माग में मत्त (सूय १६४) अमत्त (सूय १६९ ; १८३) यदि टीकाकारों के अनुसार ये =धात्य और आधात्य के । § ९ के अनुसार मत्त = मात भी हो सकता है, इसमें § १५७ के अनुसार लिंग का परिवर्तन हुआ है यह बात अधिक संभव दीखती है । अन्य उदाहरण का अपवाद केवल आभास देते हैं । चइत्त (हेच १ १५१ ; २ ११ ; मार्क पन्ना २१) = चैत्य[1] नहीं है, परंतु = चैत्र जिसका अर्थ चैत्य है (बोएटलिंक और रोट के संस्कृत शब्दकोश में चैत्र शब्द देखिए) ।—महा पत्तिअइ, अ माग और जै महा पत्तियइ, शौर और माग पत्तिआअदि (§ ४८७)= प्रतियाति और अ माग पत्तेय = प्रत्यक (हेच २,२२ आयार १,१ ६ २ १ २ १ ५ सूय २८ ७८३ जीवा ८४ ; ८७ ४३६ ८७८ और उसके बाद ; पण्णव १ ; १२ १५ ८ ; राय ५८ १२४ ; १२६ ; १३८ ; १३९ ; १५२ और उसके बाद ; नायाध § ४२ पेज १२६८ आव ; कप्प) ; *पत्तेयबुद्ध= प्रत्येकबुद्ध (नंदी ८५ ; पण्णव १९) पत्ति = *परति *पर्ति जिसमें प्रति का अंपसार भी है (§ ११२) । प्रति और *पति मौलिक रूप मोति और पोर्ति के

समान है। अ०माग० -चत्तियं (ओव०) को लौयमान[1] = प्रत्ययम् बताता है, परतु यह = वृत्तिकम् है। अ०माग० पडुच्च और पडुपन्न आदि आदि के विषय में § १६३ देखिए। —अ०माग० और जै०महा० तच्च (हेच० २,२१, उवास०, कप्प०, कत्तिगे० ४००, ३२४) होएर्नले के विचार से = तत्त्व, हेमचद्र और टीकाकारों के अनुसार = तथ्य है, परतु वेबर[2] और होएर्नले[3] के अनुसार तत्त्व है, किंतु इसका इससे भी अधिक शुद्ध रूप *तात्त्व है जिसकी बीच की कडी *तात्य है (§ २९९)। अ०माग० में तथ्य का रूप अशस्वर के साथ तहिय है = *तथिय, कभी कभी यह तच्च के पास पास आता है, जैसे तच्चाणं तहियाणं (नायाध० १००६, उवास० § ८५), तच्चेहिं तहिएहिं (उवास० § २२० और २५९)। —सामत्थ और इसके साथ साथ चलनेवाला रूप सामच्छ (हेच० २, २२) = सामर्थ्य नही है, परतु इससे पता लगता है इसका मूल रूप *सामर्थ रहा होगा। —महा० कुत्थसि और कुत्थसु = कथ्यसे और कथ्यस्व (हाल ४०१) अशुद्ध पाठ है (हाल में यह शब्द देखिए) और कड्ढसि तथा कड्ढसु के स्थान पर आया है और कढइ = कथति का कर्मवाच्य है (§ २२१)।

१ वेबर त्सा डे डॉ मौ गे २८, ४०९ में हेमचद्र के अनुसार मत देता है, वेबर की हाल २१६ पर टीका। —२ हेमचद्र २, २१० पर पिशल की टीका, होएर्नले, उवासगदसाओ में पत्तिय शब्द देखिए और उसकी तुलना कीजिए। बौँल्लेँनसेन विक्रमोर्वशीय पेज ३३१ और उसके बाद मे इससे भिन्न मत रखता है, हाल ३१६ पर वेबर की टीका, ए म्युलर, बाइत्रैगे पेज ६४। —३ औपपातिक सूत्र मे यह शब्द देखिए। —४ भगवती १, ३९८, नोटसख्या २। —५ उवासगदसाओ, अनुवाद पेज १२७, नोटसख्या २८१।

§ २८२—एक अनुनासिक के साथ य मिल जाता है, ण्य और न्य, ण्ण बन जाते हैं, अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० में इसका रूप न्न भी हो जाता है, माग० में (हेच० ४, २९३, रुद्रट के काव्यालकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका), पै० और चू०पै० (हेच० ६,३०५ में ञ्ञ रूप मिलता है। इस प्रकार महा० दक्खिण्ण = दाक्षिण्य (गउड०, हाल, रावण०), पुण्ण=पुण्य (हाल, रावण०), अ०माग० और जै०महा० में हिरण्ण = हिरण्य (आयार० १, ३, ३, ३, २, १५, १०, १२, १७, १८, उवास०, कप्प०, नायाध०, एर्से०), माग० शहिलण्ण = सहिरण्य (मृच्छ० ३१, ९), अ०माग० में पिन्नाग=पिण्याक (आयार० २, १, ८, ८, सूय० ९२६, ९२८, ९३१, दस० ६२३, ७), पन्न = पण्य (सूय० ९२१), महा०, शौर० और माग० अण्ण=अन्य, महा० णास = न्यास (हाल), विण्णास=विन्यास (गउड०), महा० और शौर० मण्णे=मन्ये (§ ४५७), महा० और शौर० सेँण्ण = सैन्य (गउड०, रावण०, अद्भुत० ५६,६ और १९)। —माग० में अवम्हञ्ञ=अब्राह्मण्य, पुञ्ञ=पुण्य, अहिमञ्ञु=अभिमन्यु (§ २८३ की तुलना कीजिए), अञ्ञदिशं=अन्यदिशम्, कञ्का = कन्यका, शामञ्ञ = सामान्य (हेच०, नमिसाधु)। नाटकों की हस्तलिपियों में केवल ण्ण आता है। —

पै में पुञ्ञ = पुण्य । अभिमञ्ञु = अभिमन्यु ; कञ्ञका = कन्यका (देच)। वररुचि १ , १ के अनुसार पै में कन्या का कञ्ञा हो जाता है, १२ ७ के अनुसार शौर में ब्राह्मण्य का बम्हञ्ञ और कन्यका का कञ्ञका रूप होता है। क्रम ५, ७६ के अनुसार शौर में ब्राह्मण्य का बम्हण्ण अथवा बम्हञ्ञ हो जाता है, कन्या के रूप कण्णा अथवा कञ्ञा होता है। वररुचि और क्रमदीश्वर का पाठ-रूप अति सन्देहास्पद है। सप्रमाण उदाहरण शौर में बम्हण्ण (मृच्छ ८१, १२), अब्बम्हण्ण = अब्राह्मण्य (शकु १४२, ८ और १४ ; विक्रमो० ८४, १३ कंस १ , ३ ; ११, १) कण्णआ (शकु १ , १ ७१, २ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] १३४, ८ मालती ७१, ८ ८०, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; २२३, १ २४३, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] मुद्रा २०, ६ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; रत्ना २९९, ६ नागा० १ , १४ [पाठ में कञ्ञका है] ; ११, १ और १ आदि आदि) माग में भी कण्णआ रूप मिलता है (मुद्रा १९१, ३ १९४, ६ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । —म्य का म्म हो जाता है और दीर्घ स्वर के बाद म : महा० किलम्मइ, शौर किलम्मदि = क्लाम्यति (§ १३६) महा तामइ = ताम्यति (हाल) शौर उत्तम्म = उत्ताम्य (शकु० १९, ८) ; उत्तम्मिअ = उत्ताम्य (शकु ५६, ९) महा और शौर सा॑म्म, अ माग० और जै महा सोम=सौम्य (§ ६१) ; शौर० कामाए = काम्यया (मृच्छ० ४९, १४)।

§ २८३—वर ३ १७ क्रम २, ७ और मार्क० पन्ना २१ के अनुसार अभिमन्यु का अहिमञ्ञु भी हो जाता है और देच० २, २५ में बताया गया है कि इस शब्द के रूप अहिमञ्ञु, अहिमज्जु और अहिमण्णु होते हैं। शौर में अहिमण्णु रूप है (मार्क पन्ना ६८ वणी ६४, १३), यही रूप माग में भी है (वणी १४१२) इसके स्थान पर § २८२ के अनुसार अहिमञ्ञु होना चाहिए था। महा और शौर मण्णु के साथ साथ (हाल ; रावण वणी ९, ११ ; ११ १९ ; १२ १ ; ६१ २२) हेच २, ४४ के अनुसार मन्यु के लिए मन्तु भी काम में लाया जाता था। हाल के वेबर् संस्करण में इस मन्तु रूप का मण्णु[1] के स्थान पर बार-बार प्रयोग हुआ है। पाइय १६५ के अनुसार लज्जा और अप्रिय[2] है, देशी ६ १४१ में मन्तक्ख के ये दो अर्थ दिये गये हैं (= लज्जा और दुःख । —अनु)। मन्तु रूप सरस्वती[2] में भी है। रूप की दृष्टि से यह मन्तु से मिलता है (= मन्तु ; काम देशी २, १)।

[1] हाल १८३ पर हाल का लेख। [2] —ब्यूलर द्वारा संपादित पाइय लच्छी में यह शब्द देखिए।

§ २८४—म्य का उन्न हो जाता है (वर ३ १७ ; हेच २, २४ ; क्रम २ ७ ; मार्क पन्ना २१), महा , अ माग और जै महा में रम्मा = रम्या (§ १ १) माग पै और चू पै में म्य हो रहता है (§ २५२)। माग और अन्य सब प्राकृत भाषाओं में य का ज्ज हो जाता है (वर ३, १७ ; चंड ३

१५, हेच० २, २४, क्रम० २, ८९, मार्क० पन्ना २१), महा० में **अज्ज = आर्य** (गउड०), **अज्जा = आर्या** (हाल), **कज्ज = कार्य** (गउड०, हाल), **मज्जा = मर्यादा** (हाल, रावण०)। हेच० ४, २६६ और ३७२ के अनुसार शौर० और माग० में र्य का ज्ज और य्य हो जाता है : शौर० में **अय्यउत्त पय्या-कुलीकदम्हि = आर्यपुत्र पर्याकुलीकृतास्मि सुय्य = सूर्य** और इसके साथ साथ **पज्जाउल=पर्याकुल, कज्जपरवस = कार्यपरवश**, माग० में **अय्य=आर्य**। य्य लिपिभद कभी-कभी दक्षिण भारतीय हस्तलिपियों मे पाया जाता है, किन्तु अधिकाश हस्तलिपियाँ य्य या ज्ज के स्थान पर एक विंदु ० दे देती हैं, **अ० अ = आर्य**, **प०अवट्ठावेहि = पर्यवस्थापय, सु० अ=सूर्य**, इस लेखनशैली से यह पता नहीं चलता कि इस विंदु (=०) से य्य का तात्पर्य है या ज्ज का और यहाँ कौनसा उच्चारण होना चाहिये[१]? अथवा इससे इनके बीच की किसी ध्वनिसमूह का प्रतीक है? यह गोलाकार विंदु जैसा ए. म्युल्र ने ठीक ही कहा है[२] वही अर्थ रखता है जैसा जैन हस्तलिपियों का विचित्र ध्वनिचिह्न जिसे वेबर[३] य्य पढने के पक्ष मे था किंतु जिसे अब याकोबी[४] और ए. म्युलर[५] के अनुसार ज्ज पढा जाता है। सभवत. गोलाकार विंदु दोनों के बीच की ध्वनिविशेष है। इस कारण हेच० का नियम जैनों के उच्चारण का स्पष्टीकरण करता है। नाटकों की हस्तलिपिया उक्त दोनों प्राकृत भाषाओं में ज्ज का प्रयोग करती हैं। शौर० के लिए ज्ज, माग० के लिए य्य शुद्ध रूप है जिन्हें वर० ११,७ मे बताता है : **कय्य = कार्य** और ललितविग्रहराज नाटक मे नीचे दिये उदाहरण पाये जाते हैं : **पय्यन्दे = पर्यन्ते** (५६५, ७), **अवय्यन्ददा = अपर्यन्तता** (५६५,१२)। ज्ज के स्थान पर अशस्वर द्वारा उत्पन्न रूप **रिअ** और **रिय** के अतिरिक्त (§ १३४) **र** भी आ जाता है अर्थात् § ८७ के अनुसार **य** का लोप हो जाता है (वर० ३,१८, १९, हेच० २,६३, क्रम० २,७९, मार्क० पन्ना २२) : महा० **गम्भीर = गाम्भीर्य** (रावण०), महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और अप० में **तूर = तूर्य** (सब व्याकरणकार, गउड०, हाल, रावण०, आयार० पेज १२८, ३२, एर्त्से०, विक्रमो० ५६, ५, महा० १२१,७, वेणी० २३, ११, ६४, २, ७३, १६, बाल० १४७, १८, २००,१०; पिंगल १,१५), महा० में **सोडीर = शौटीर्य** (मार्क०, रावण०), शौर० में **सोडीरत्तण** रूप भी मिलता है (कर्पूर० ३०, ७), **सॉण्डीर= शौण्डीर्य** (हेच०, मल्लिका० १४६, ६), **सोण्डीरदा** रूप भी आया है (मृच्छ० ५४, ४, ७४, १२)। यह **र** विशेष कर कर्मवाच्य में पाया जाता है, जैसे **जीरइ = जीर्यते**, महा० और जै०महा० में **तीरइ, तीरए = तीर्यते**, महा० और जै०महा० **हीरइ = ह्रियते** (§ ५३७), महा०, अ०माग० और जै०महा० में **कीरइ=क्रियते** (§ ५४७)[१]। सब प्राकृत भाषाओं में बार बार आनवाला रूप **सूर**, माग० **शूल**, हेच० २,६४ के अनुसार **सूर** से व्युत्पन्न हुआ है (हेच० ने लिखा है **सूरो सुज्जो इति तु सूरसूर्य प्रकृतिभेदात्**। —अनु०)। वर० १०, ८ के अनुसार पै० में आवश्यक रूप से तथा हेच० ४, ६१४ के अनुसार कभी कभी शब्द में अशस्वर आ

११, १०८) **पच्चत्थरण** के स्थान पर है और पाठ में अशुद्ध रूप है, जैसा कि सीके में है = *प्रत्यास्तरण , **प्रत्यास्तार** (= गलीचा) से तुलना कीजिए।

१. वेबर, भगवती १, ४०९, नोटसख्या २ , पी० गौल्दश्मित्त, ना० गे० वि० गो० १८७४ पेज ५२१ , ए० म्युलर, बाइत्रैगे पेज ४५ और ६४ , एस० गौल्दश्मित्त, रावणवहो से दूसरा अस् देखिए। रां० प० पंडित गउडवहो में अस् शब्द देखिए , याकोबी के कल्पसूत्र में **पल्हत्थ** शब्द देखिए, योहान्ससोन, कू० त्सा० ३२, ३५४ और उसके बाद , होएर्नले, कम्पैरेटिव ग्रैमर § १३७ और १४३ ।

§ २८६—**ल्य** का **ल्ल** हो जाता है : महा० **कल्ल** = **कल्य** (गउड० , हाल), महा० **कुल्लाहि तुल्ला** = **कुल्याभिस् तुल्याः** (कर्पूर० ४४, ६) , महा०, अ०माग०, जै०शौर० और शौर० में **मुल्ल**, अ०माग० और जै०महा० **मो॑ल्ल** = **मूल्य** (§ ८३ और १२७)। — **व्य** का **व्व** हो जाता है : **ववसाय** = **व्यवसाय** (गउड० , रावण०), **वाह**=**व्याध** (गउड० , हाल), **कव्व** = **काव्य** (गउड०, हाल, रावण०) , अवश्य कर्तव्यसूचक **तव्य** का भी अ०माग० और जै०महा० में एक रूप **होयव्व** , शौर० और माग० मे **होदव्व**, जै०शौर० और शौर० में **भविदव्व**, माग० **हुविदव्व**=**भवितव्य** (§ ५७०)। अ०माग० **पित्तिज्ज** (कप्प०) **पितृव्य**[१] नहीं है, किन्तु = **पित्रिय**। अ०माग० में **पूह** (नायाध० § १८ , पेज ३३१ , ३५३ , ८४५ , ओव०) = **व्यूह**[२] नहीं है किन्तु = *अप्पूह के स्थान पर *प्यूह रूप है जो **उह्** धातु में **अपि** उपसर्ग जुड कर बना है (§ १४२)। कुछ कर्मवाच्य रूपों में जो **प्प** आता है, जिसे पी० गौल्दश्मित्त[३] और एस० गोल्दश्मित्त[४] **व्य** से स्पष्ट करना चाहते हैं, जिसे इन विद्वानों से भी पहले वेबर[५] ने बताया था, यह **य्य** की अशुद्ध प्रतिलिपि है तथा जिसे याकोबी[६] और उसके बाद योहान्ससोन[७] भ्रमपूर्ण मिलान से इसकी व्युत्पत्ति देना चाहते थे, वास्तव में नियमानुसार **प्य** से उत्पन्न हुआ है। महा०, जै०महा०, अ०माग० और अप० **घे॑प्पइ** = ***घृप्यते** जो ***गृभ्यते** = **गृह्यते** के स्थान पर आया है (§ २१२ और ५४८)। जै०महा० **आढप्पइ** (हेच० ४, २५४, आव०एर्त्से० १२, २१) और इसके साथ साथ **आढवीअइ** (हेच० ४, २५४) और महा० **विढप्पइ** (हेच० ४, २५१ , रावण०) और इसके साथ-साथ **विढ-विज्जइ** (हेच० ४, २५१) **आढवइ** के नियमानुसार कर्मवाच्य रूप है (हेच० ४, १५५ , क्रम० ४, ४६) और **विढवइ** (हेच० ४, १०८ **घा** धातु का प्रेरणार्थक रूप है (§ ५५३), इनमें § २२३ के अनुसार मूर्धन्यीकरण हो गया है। महा०, अ०माग० और जै०महा० **आढत्त**, महा० **समाढत्त**, महा०, जै०महा० और शौर० **विढत्त** तथा अप० **विढत्तउँ** (§ ५६५ प्रेरणार्थक रूप बताये जा सकते हैं मानो **आढत्त** = *-**आधप्त** हों, ठीक जैसे **आणत्त** = **आज्ञप्त** हैं , इससे भी अच्छा यह है कि इन्हें वर्तमान रूप से व्युत्पन्न किया जाय (§ ५६५)[८]। —**सिप्पइ** = **स्निह्यते** और **सिच्यते** (हेच० ४, २५५), महा० रूप **सिप्पन्त** (हाल १८५ में यह शब्द देखिए) का सम्बन्ध **सिप्पइ** (हेच० ४, ९६) से है, जिससे मराठी रूप **शिंपणें**

और गुजराती सिपुटु निकले हैं और सूचना देता है कि कभी एक धातु *सिप् वर्तमान था जो *सिफ् से निकले सिप् धातु का समानार्थी था। अर्थात् यहाँ कण्ठ्य और ओष्ठ्य वर्णों का परस्पर में परिवर्तन हुआ है (§ २१५)। महा , अ०माग और शौर सिप्पी (=सीप हेच २, १३८ मार्क पन्ना ४ हाल रायण० कर्पूर २, ४ विद्ध ६१, ८; उवास बाल १९५, ५ २६४, १ विद्ध १ ८ २)=पाली सिप्पी, मराठी में इसके रूप शीप और शिंप हैं, गुजराती में सीप है, हिन्दी में सीपी और सीप है और सिन्धी में सिप' चलता है। वाहिप्पइ (हेच ४ २५३) और जै महा वाहिप्पन्तु (आव एर्सें १८, ६), जिसे विद्वान् हेच के अनुसार इ धातु निकला तथा =व्याहृयते मानते हैं, उसकी अधिक सम्भावना व्याक्षिप्यते की है जिसका अर्थ संस्कृत से कुछ भिन्न और विशेष है जैसा कि स्वयं संस्कृत मे संयोगवश संक्षिप् का अर्थ है। इस नियम का प्रमाण महा जिहिप्पन्त (रावण ८, ९७) से मिलता है जो=निक्षिप्यमाण और जिसे भूल से एस गौल्दश्मित्त धा धातु का एक रूप बताता है। इसी से सम्बन्धित महा णिहित्त, अ माग और जै महा निहित्त (भाम १, ५८; हेच २, ९९; क्रम २ ११२ मार्क पन्ना २७ गउड रावण कर्पूर २, ५; विक्रमो० ११६ एर्सें), अप णिहित्तउ (हेच ४ ३९५, २) और महा, अ माग और जै महा वाहित्त (हेच १, १२८; २, ९९; पाइय २४७ हाल उत्तर २९; आव एर्सें १८, ६) शब्दों में ये शब्द दिये जा सकते हैं" और ये=निक्षिप्त और व्याक्षिप्त। § १९४ के अनुसार यह भी संभावना है कि उक्त रूपों का स्पष्टीकरण निहित और व्याहृत से हो। —अब तक प्प वाले कई रूप भूल से कर्मवाच्य समझे जाते रहे हैं क्योंकि न तो इनके रूप के अनुसार और न ही इनके अर्थ के अनुसार ये कर्मवाच्य हैं। खुप्पइ (=गोता मारना डूब जाना [वास्तव में खुप्प का अर्थ शरीर में किसी हथियार का घुसना है, इस अर्थ में ही इसका तात्पर्य डूबना है, कुमा उनी में खापणो इसी प्रयोजन में आता है, हिन्दी में इसका रूप खुभना है जिसके अर्थ कोश में चुभना, घुसना और धँसना है। —अनु] वर ८, ६८ है हेच ४, १ १; क्रम ४, ५१)। महा रूप खुप्पन्त (रावण) महा और अ०माग खुत्त (रावण ; पण्हा २ १) जिसे एस गौल्दश्मित्त ने" *खुप्यइ द्वारा स्पष्ट और खुराप किया है और खु=क्षत् से सम्बन्धित किया है वास्तव में=*क्षुप्यति जो क्षुप् अवसादन सादृ स निकला है (वस्टरगार्ड, राडिचेस पेज १११)। —जुप्पइ (=योग करना, बाधना हेच ४ १ ९)=युप्यति जो युप् एकीकरणे, समी करण से बना है (बोएटलिंक-रोट के कोश में यह शब्द देखिए), इसके साथ अ० माग जुयल, जुयलय और जुयलिय की तुलना कीजिए। महा पहुप्पइ (हेच १ ७४२; ४ ६३; मार्क पन्ना ५३; गउड ; हाल ; रावण) जो वेवर' के अनुसार प्र के साथ भू का एक रूप है। प्रभुत्व=*प्रभुत्यति से बनी क्रिया है, इसका अर्थ है राज करना किसी काम के योग्य होना'। इसका प्रमाण अप पहु चइ। मिलता है (हेच ४ ३९ ४१९) जो बताता है कि इसका रूप संस्कृत में

प्रभुत्यति और इसमें § २९९ में बताया गया ध्वनिपरिवर्तन भी हो गया। इसी प्रकार का रूप महा० ओहुप्पन्त है (रावण० ३, १८) = *अपभुत्यन्त–। टीकाकार इसके अर्थ का स्पष्टीकरण आक्रम्यमाण और अभिभूयमान लिख कर करते हैं। इसका सम्बन्ध ओहावइ = *अपभावति = अपभावयति जिसका तात्पर्य आक्रामति है (हेच० ४, १६०), इसी रूप से ओहाइअ, ओहामइ, ओहामिय (§ २६१) और ओहुअ = *अपभूत निकले हैं। —महा० अप्पाहइ (= सन्देश देता है : हेच० ४, १८०), अप्पाहेइ, अप्पाहेॅन्त, अप्पाहेउँ, अप्पाहिज्जइ और अप्पाहिअ (हाल , रावण०) रूप जिन्हे एस० गौल्दश्मित्त[14] कृत्रिम ढग से भाषाशास्त्र की दृष्टि से एक असम्भव रूप *अभ्याहृत से व्युत्पन्न करता है और वेबर[15] सदिग्ध मन से = हृ् अभ्या से निकला बताता है नियमानुसार = *आप्राथयति जो प्रथ प्रख्याने से बना है (धातुपाठ ३२, १९), विप्रथयति और संप्रथित की तुलना कीजिए।

१ याकोबी, कल्पसूत्र में यह शब्द देखिए , ए० म्युलर, बाइत्रैगे पेज १७ और ३५। — २ लौयमान, औपपातिक सूत्र में टीकाकारो के अर्थ सहित यह शब्द देखिए। — ३ ना० गे० वि० गो० १८७४ पेज ५१२ और उसके बाद। — ४ त्सा० डे० डौ० मौ० गे० १९, ४९१ और उसके बाद, प्राकृतिका पेज ३ और १३ नोटसंख्या १ और १७ तथा उसके बाद। — ५. त्सा० डे० डौ० मौ० गे० २८, ३५० , हाल पेज ६४ , इडिशे स्टुडिएन १४, ९२ और उसके बाद। — ६ कू० त्सा० २८, २४९ और उसके बाद। — ७ कू० त्सा० ३२, ४४६ और उसके बाद, यहाँ इस विषय पर विस्तार के साथ साहित्य-सूची भी दी गयी है। — ८ इस रूप को रभ् से व्युत्पन्न करना भाषाशास्त्र की दृष्टि से असभव है। —९ हेच० ४, ९६ पर पिशल की टीका। — १० हेच० २,१३८ पर पिशल की टीका। — ११ पी० गौल्दश्मित्त, ना० गे० वि० गो० १८७४, पेज ५१३ के नोट की तुलना कीजिए , याकोबी, ऑसगेवैल्ते एर्त्सैलुगन में निहित्त शब्द देखिए। — १२ प्राकृतिका पेज १७ और उसके बाद, इसके विपरीत योहान्ससोन, कू० त्सा० ३२, ४४८, नोटसख्या १। — १३ हाल, ७ की टीका। — १४ रावणवहो में यह शब्द देखिए। — १५ हाल में यह शब्द देखिए।

§ २८७—(दो) र, एक ध्वनि है [जिसका भले ही वह वर्ण के ऊपर या नीचे हो २८५ ।लोप हो जाता है। —अनु०] (वर० ३, ३, चड० ३, ९, हेच० २, ७९ , क्रम० ९, ५० , मार्क० पन्ना १९), र्क = क्क . महा० में अक्क = अर्क (गउड०), अ०माग० में कक्केयण = कर्केतन (ओव० , कप्प०), शौर० में तक्केमि = तर्कयामि (§ ४९०)। महा० में कंकोड, ककोळ और इनके साथ-साथ ही महा० और अ०माग० रूप कक्कोड = कर्कोट , § ७४ देखिए। —क्र = क्क , अप० में किज्जइ = क्रियते (§ ५४७) , महा० चक्क = चक्र (गउड०) , विक्कम = विक्रम (गउड०)। महा०, अ०माग०, जै०महा० और अप० मे वंक = वक्र , § ७४ देखिए। —र्ख = क्ख , शौर० और माग० में मुक्ख = मूर्ख (§ १३९)। —

ग = ग्ग : शौर० में जिग्गममग्गा = निगममार्ग (ललित ५६७ २४) ; महा० दुग्गम=दुगम (गउड रावण०) ; सग्ग = सर्ग (गउड० हाल ; रावण०)। —ग्र = ग्ग : पल्लवदानपत्र में गामागामभोजके = ग्रामग्रामभोजकान् (५, ४) गामे = ग्रामे (६ २८) गहणं = ग्रहणम् (६, ११ १३ और १४) ; निगह = निग्रह (७, ४१) महा में गाह = ग्रह (गउड ; हाल रावण) अ माग और जै महा म नग्गोह और णग्गोह = न्यग्रोध (चंड १,९ आयार २, १, ८, १ और ७ जीवा० ४६ पण्णव ३१ विवाह ४१ [पाठ म निग्गोह है] ; १५३० कप्प § २१२ [पाठ में निग्गोह है, इस ग्रन्थ में यह शब्द देखिए]; भाव एर्त्से ४८, २० एर्त्से) अ०माग और जै शौर में निग्गन्थ = निर्ग्रन्थ (उदाहरणार्थ, आयार २, १५, २९ पेज १३२ ८ ६ ; १५ और उसके बाद उवास , ओव कप्प कत्तिगे ४ ८,१८६) । —घं = ग्घ : महा० णिग्घिण = निघृण (हाल) णिग्घोस = निर्घोष (रावण) शौर और माग में दिग्घिआ = दीर्घिका (§ ८७) । —घ्र = ग्घ । आइग्घइ = आजिघ्रति, जिग्घिअ = ०जिघ्रित ; महा और अ माग अग्घाइ = आघ्राति, अग्घाइअ = ०आघ्रायित (§ ४ ८ § ४०८ में इस का विषय है, वहाँ अग्घाइ पर कुछ नहीं है। —अनु)। —च = च्च महा में अच्चा = अर्चा (गउड) जै महा , शौर० और दाक्षि में कुच्च = कूर्च (एर्त्से); बाकु १३८, ४ ; कपूर २२, ८ ; दाक्षि : मृच्छ० १ ८, ७) ; शौर चच्चरी = चर्चरी (रत्ना० २०१, १७ और १८) । —छ = च्छ : महा मुच्छा = मूर्छा (रावण) । —छ्र = च्छ : शौर समुच्छिद = समुच्छ्रित (मृच्छ ६८, १५) । —ज = ज्ज : महा भज्जुण = भर्जुन (गउड) ; गज्जिअ=गर्जित (गउड ; हाल रावण) अज्जर = अजर (गउड ; हाल) । भुज्ज (= भूर्ज : दशी ६ १ ६) = भूज नहीं है, परन्तु = भुज्ज* (पिशेल्स्की ८८, ८), महा भुज्जपत्त भी (गउड ६४१) = *भुज्जपत्र । माग म ज का य्य रूप हो जाता है (वर ११ ७ हेच ४, २९२) : अय्युण = अर्जुन । कय्य=कार्य ; गय्यदि = गर्जति गुणवय्यिद = गुणवर्जित । दुय्यण = दुर्जन । नाटकों की हस्तलिपियों में केवल ज्ज पाया जाता है जैसे कज्ज (मृच्छ १२६ ६ १३९ २३) ; दुज्जण (मृच्छ ११५ २३) । —ज्र = ज्ज : महा म वज्ज = वज्र (गउड ; हाल ; रावण) । —ज्झ=ज्झ : महा० में णिज्झर = निर्झर (गउड ; हाल) । —ण = ण्ण : महा में कण्ण = कर्ण (गउड०; हाल ; रावण) चुण्ण = चूर्ण (गउड ; हाल रावण) ; वण्ण = वर्ण (गउड हाल) । फणिकार का फणिभार के साथ साथ फणिभार रूप भी बन सकता है (भाम ३ ५८ ; हेच ; क्रम २ ११४ ; मार्क पन्ना २७) । इस प्रकार अ माग में फणियार रूप होता है (आयार पेज १२८ १८) भत में फणिभार है (देच ८ २ १ ५) । इन रूपों से प्रमाणित होता है कि ०फणिवार अन्तिम रूप पर है = ०फाणकार्र । फणार के लिए § १५८ देखिए । आ रूप घूट (देच

* यह रूप में भुजपत्र वर्तमान है ; हिन्दी में इस का भोजपत्र हो गया है । —अनु

४, ३७७) = **चूर्ण** नहीं है, इसका अप० मे **चुण्ण** भी होता है (हेच० ४, ३९५, २) परन्तु = *चूर्य । —**र्प** = **प्प** : माग० **कुप्पर**, अ०माग० **कोॅप्पर** और महा० **कुप्पास** = **कूर्पास** (गउड०, हाल) , **दप्प** = **दर्प** (गउड० , हाल , रावण०) । —**प्र** = **प्प** : पल्लवदानपत्र मे, **अम्हपेसणप्पयुत्ते** = **अस्मत्प्रेषणप्रयुक्तान्** (५,६), **अप्पतिहत** = **अप्रतिहत** (६, १०), **सतसहस्सप्पदायिनो** = **शतसहस्र-प्रदायिनः** (६, ११), **पतिभागो** = **प्रतिभागः** (६, १२ आदि) आदि-आदि , महा० में **पिअ** = **प्रिय** (गउड० , हाल , रावण०), **अप्पिअ*** = **अप्रिय** (हाल) । **र्व** = **व्व** : अ०माग० मे **कव्वड** = **कर्वट** (आयार० १, ७, ६, ४ , २, १, २, ६, सूय० ६८४ , ठाणग० ३४७ , पण्हा० १७५ , २४६ , ४०६ , ४८६ , नायाध० १२७८ , उत्तर० ८९१, विवाह० ४० , २९५ , ओव० , कप्प०) , शौर० मे **णिव्वन्ध** = **निर्बन्ध** (मृच्छ० ५, ४ , शकु० ५१,१४) , महा० मे **दोॅव्वल्ल** = **दौर्बल्य** (गउड० , हाल , रावण०) । —**ब्र** = **व्व** : पल्लवदानपत्र में **वम्हणाणं** = **ब्राह्मणानाम्** (६, ८, २७, ३०, ३८), अ०माग० और जै०महा० मे **बम्भण** है (§ २५०), शौर० और माग० में **वम्हण** है (उदाहरणार्थ, मृच्छ० ४, १६ , १८ , २१ ; २४ , ५, ५ , ६, २ , माग० में : मृच्छ० ४५, १७ , १२१, १० , १२७, ४ , शकु० ११३, ७), शौर० में **अव्वम्हण्ण** = **अब्राह्मण्य** (§ २८२) । —**र्भ** = **ब्भ** : महा० में **गब्भ** = **गर्भ** (गउड० , हाल , रावण०) , **णिब्भर** = **निर्भर** (गउड०, हाल , रावण०), शौर० **दुब्भेॅज्ज** = **दुर्भेद्य** (मृच्छ० ६८, ९) । —**भ्र** = **ब्भ** : पल्लवदानपत्र में, **भातुकाण** = **भ्रातृकाणाम्** (६,१८) , महा० में **परिब्भमइ** = **परिभ्रमति** (गउड० , हाल) , **भमर**=**भ्रमर** (गउड० , हाल , रावण०) । —**र्म** = **म्म** : अ०माग० मे **उम्मि** = **उर्मि** (ओव० , कप्प०), पल्लवदानपत्र और महा० में **धम्म** = **धर्म** [**धम्म** रूप पाली से चला आ रहा है । —अनु०] (५,१ , गउड० , हाल , रावण०), पल्लवदानपत्र मे **धमायुबल** = **धर्मायुर्बल**-(६, ९), **सिवखंदवमो** = **शिवस्कन्दवर्मा** (५, २) , शौर० मे **दुम्मणुस्स** = **दुर्मनुष्य** (मृच्छ० १८, ८ , ४०, १४) है । —**म्र** = **म्म** : महा० में **धुम्मक्ख** = **धूम्राक्ष** (रावण०) , अ०माग० **मक्खेइ** = **म्रक्षयति** (आयार० २,२,३,८) , **मक्खेज्ज** = **म्रक्षयेत्** (आयार० २, १३, ४) है। —**र्ल** = **ल्ल** : महा० मे **णिल्लज्ज** = **निर्लज्ज** (हाल , रावण०) , **दुल्लह** = **दुर्लभ** (हाल) । —**र्व** = **व्व** : पल्लवदानपत्र में, **सव्वत्थ** = **सर्वत्र** (५, ३) , **पुव्वदत्तं** = **पूर्वदत्तम्** (६, १२ और २८), महा० में **पुव्व** = **पूर्व** और **सव्व** = **सर्व** (गउड० , हाल , रावण०) है । —**व्र** = **व्व** : शौर० में **परिव्वाजअ** = **परिव्राजक** (मृच्छ० ४१, ५ ७ , १० , १७), महा० में **वअ**=**व्रज** (हाल) , अ०माग० में **वीहि**=**व्रीही** (आयार० २, १०, १०, सूय० ६८२ , ठाणग० १३४ , विवाह० ४२१ और ११८५ , जीवा० ३५६) है । **र्य** के विषय में § २८४ और २८५ देखिए ।

* **अप्पिअ** = **अर्पित** भी होता था, इसका रूप गुजराती में आपना = देना प्रचलित है । इस रूप की तुलना फारसी आर्य रूप **दुश्मन** से कीजिए । —अनु०

§ २८८—दंत्य वर्णों के साथ संयुक्त होने पर र उनसे एकाकार हो जाता है। त = त्त : पल्लवदानपत्र में, निवत्तणं=निवर्तनम् (६, ३८) महा० में आवत्त = आवर्त (गउड ; रावण०) कित्ति = कीर्ति (गउड रावण० § ८३ की तुलना कीजिए); ढक्की में धुत्त = धूर्त (मृच्छ० ३०, १२ ३२, ७ ३४, २५ ; ३५, १ ; ३६, २१); महा में मुहुत्त=मुहूर्त (हाल रावण०) है। —त्र = त्त : पल्लवदानपत्र में, गो॑त्तस = गोत्रस्य (६, ९ आदि) महा में कलत्त = =कलत्र (हाल ; रावण), चित्त = चित्र, पत्त = पत्र और सत्तु = शत्रु (गउड ; हाल) है। —र्थ=त्थ महा० में अत्थ = अर्थ (गउड० हाल ; रावण०) पत्थिव= पार्थिव (गउड० ; रावण) सत्थ=सार्थ (गउड ; हाल रावण०); समत्थ = समर्थ (हाल ; रावण) है। —र्द = द्द वट्टिवद्द = वर्द्धीवर्द (पल्लव दानपत्र ६, ३१) महा में कद्दम = कर्दम (गउड हाल रावण०) दद्दुर= दर्दुर (गउड); दुद्दिण = दुर्दिन (गउड० रावण) है। —द्र = द्द : पल्लव दानपत्र में, भाचंद्द = आचन्द्र (६, २९) महा में इन्द=इन्द्र ; णिद्दा=निद्रा (गउड हाल ; रावण) भद्द = भद्र (गउड हाल); समुद्द=समुद्र (गउड हाल ; रावण) है। —र्ध=द्ध पल्लवदानपत्र में, धम्मनिकद्ध=धर्मनिकाय (६, ९) ; महा अद्ध=अर्ध (गउड० हाल ; रावण) णिद्धूम=निर्धूम (हाल रावण) अ०माग में मुद्ध॑=मूर्धन् (§ ४ २) है। —ध्र = द्ध : अ माग में सद्धिं = सध्रीम् (§ १ १) है।

§ २८९—जिस वर्णसमूह में र रेफ रूप में व्यंजन से पहले आता हो उसमें दंत्य वर्णों के स्थान पर बहुधा मूर्धन्य वर्ण आ जाते हैं। यह ध्वनिपरिवर्तन विशेषतः अ माग में होता है। व्याकरणकारों के अनुसार (वर १, २२ हेच २, १० ; क्रम २ १८ मार्क पन्ना २२) त में मूर्धन्यीकरण का नियम निश्चित है। वे शब्द जिनमें इस वर्ण रहते हैं उन्हें वररुचि १ २८ हेमचन्द्र; क्रमदीश्वर और मार्कण्डेय आकृतिगण धूर्तादि में एकत्र करते हैं। नाना प्राकृत बोलियों में इस विषय पर बहुत अस्थिरता है। कभी-कभी एक ही शब्द के नाना रूप दिखाई देते हैं : अ माग और जै महा में अट्ट=आर्त (आयार १ १ २ १ ; १,२,५, ५ ; १ ८, २, २ ; ५, ६ १ ८ सूय ८ ५ ; नायाध निरया ; उवास ; ओव० कप्प ; एर्स) ; अ माग में अट्टतरं आया है (सूय २८२) अ माग अट्टिय= ०आर्तित (आर) इसके साथ साथ पत्थट्टिअ भी है (३ २८९) ; किन्तु शौर० में अत्ति=आर्ति (शकु ५७ ८) है। —अ माग किट्टइ=कीर्तयति (आयार० १ ५ ८ ३ ; १ ६ ५ १) किट्ट (सूय ६६१) किट्टमाण (सूय ६६१), किट्टित्ता (आयार पत्र ११७ ६७ कप्प) और किट्टिय का मिलते हैं (आयार० पत्र ११२ ३१ ; ११७ २१ सूय ७७८ और ६६१), किन्तु अन्य सभी प्राकृत बोलियों में कित्ति=कीर्ति (§ ८३ और २८८) है। —वट्टइ=वर्तते (हेच मार्क) और वट्टइ भी मिलता है (भाम)। —महा , अ माग और जै महा में सट्टपाहि=पदमपालन् (कपूर ७ १ ; ७९, ८ ; ११५, १ ; ठाणग० ८ और

१८७, सम० ४२, विवाह० ७ और १०४९, नायाध०, ओव०, कप्प०, एर्त्से०), किन्तु शौर० में **चक्कवत्ति** रूप है (चड० ८७, १५, १४, १०, हास्या० २१, ७), जैसा कर्पूरमजरी १०४, २ और ४ मे इसी रूप के अनुसार पढना चाहिए। — अ०माग० **नट्टग=नर्तक** (ओव०, कप्प०), **णट्टअ** (भाम० ३,२२, मार्क० पन्ना २२), **णट्टई=नर्तकी** (भाम० ३, २२, हेच० २, ३०) है। — शौर० और ढक्की में **भट्टा=भर्ता** जिसका अर्थ 'पति' या 'स्वामी' होता है, किन्तु सब प्राकृत भाषाओं में 'दूल्हा', 'वर' के अर्थ में **भट्टा** आता है (§ २९०), अ०माग० में **भट्टिदारय** और शौर० मे **भट्टिदारअ** तथा **भट्टिदारिआ** रूप पाये जाते हैं (§ ५५)। — **वृत्** धातु से महा० में **वट्टसि** (हाल), **वट्टइ** (रावण०), अ०माग० और जै०महा० में **वट्टइ** (विवाह० २६८ और १४०८, एर्त्से० ६, ३), अ०माग० रूप **वट्टन्ति** है (आयार० २, २, २११ और १२, कप्प० एस० § ३५), महा०, अ०माग० और जै०महा० **वट्टन्त**—(रावण०, उत्तर० ७१२, एर्त्से० २२, ९), अ०माग० और जै०महा० **वट्टमाण** (आयार० २, २, २, १, विवाह० २६८, उवास०; ओव, नायाध०, कप्प०, एर्त्से०), जै०शौर० और शौर० में **वट्टदि** रूप मिलता है (पव० ३८२, २७, ललित० ५६०, १५, मृच्छ० २, २०, ३, १ और २०, १६९, २१, शकु० ३७, ७, ५९, १२, विक्रमो० २१, १०, ५२, १, चड० ८६, ४, हास्या० २१, ८, २५, ३, २८, २० आदि-आदि), जै०शौर० में **वट्टदु** (पव० ३८७, २१) और माग० में **वट्टामि** रूप हैं (मृच्छ० ३२, २२)। उपसर्गों के साथ भी यही नियम लागू होता है, उदाहरणार्थ, महा० में **आअट्टन्त** और **आवट्टमाण** (रावण०), अ०माग० में **अणुपरिवट्टमाण** (सूय० ३२८), **अणुपरियट्टइ** (आयार० १, २, ३, ६, १, २, ६, ५), **नियट्टइ** (उत्तर० ११६), **नियट्टन्ति** (आयार० १, २, २, १, १, ६, ४, १), **नियट्टमाण** (आयार० १, ६, ४, १), **निवट्टएज्जा** (सूय० ४१५), **उव्वट्टेज्ज** (आयार० २, २, १, ८), **उव्वट्टेन्ति** (आयार० २, २, ३, ९), जै०महा० **उव्वट्टिय** (एर्त्से०), शौर० में **पअट्टदि=प्रवर्तते** (मृच्छ० ७१, ७), अप० **पअट्टइ** (हेच० ४, ३४७) और इससे निकले नाना रूप जैसे **परियट्टणा** (आयार० १, २, १, १; २, १, ४, २, ओव०) और **परियट्टय** (कप्प०) किन्तु महा० और शौर० में **परिअत्तण** और **परिवत्तण** रूप मिलते हैं (गउड०, रावण०, मृच्छ० २, २०, विक्रमो० ३१, ६), अ०माग० में **परियत्त=परिवर्त** (ओव०), अ०माग० में **संवट्टग** रूप भी है (उत्तर० १४५६) जैसा कि व्याकरणकारों के उदाहरणों से पता लगता है उपसर्गों से सयुक्त होने पर दंत्य वर्णों की प्रधानता रहती है। इस प्रकार उदाहरणार्थ, महा० में **उव्वत्तइ** (गउड०), **णिअत्तइ** (गउड०, हाल, रावण०), **परिअत्तइ** (गउड०), **परिवत्तसु** (हाल), **परिअत्तन्त**– और **परिवत्तिउं** (रावण०), अ०माग० में **पवत्तइ** (पण्णव० ६२), शौर० में **णिअत्तीअदि** (विक्रमो० ४६, १९), **णिअत्तीअदु** (मृच्छ० ७४,२५, ७८, १० [पाठ में **णिवत्तीअदु** है]), **णिवत्तिस्सदि** (विक्रमो० १७,२), **णिअत्तइस्सदि**

(शकु० ११, ६), णिअत्तावेहि और णिअत्तदु (शकु० ११, ५ और ६), णिवत्तदु (शकु० ८७, १ और २ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), णिवत्त माण (विक्रमो० ५,११), णिव्वत्तेहि और णिव्वत्तेदु (मृच्छ २७,१२ और १५), णिव्वत्तमइ (शकु ७८, १) आदि आदि रूप पाये जाते हैं। इनसे निकले रूपों के लिए भी यही नियम लागू होता है। —अ०माग वट्टग = वर्त्तक (= बतक। आयार २ १ , १२ सूय १० ; उवास), वट्टग रूप भी है (सूय० ६८१ ; ७ ८ ७२२ ७८७), वट्टिया (मार्क) के विपरीत किन्तु वत्तिआ = वर्तिका भी रूप है (भाम० हेच)। —अ माग म वट्टि = वर्ति (हेच २, १), यह रूप चन्दवट्टि में भी आया है (ओव कप्प नायाध), इसके विपरीत महा में वत्ति रूप है (हाल)। —करके अथवाले रूपों म सदव मूर्धन्य वर्ण आते हैं : कट्टु = कर्तु–, आहट्टु = आहर्तु–, समाहट्टु = साहट्टु आदि-आदि (§ ५७७) हैं। —काउं और कातुं = कर्तुम् आदि-आदि के विषय म § ६२ देखिए। —अ माग० गड्डु = गर्त में र्त का ड्डु हो गया है (वर ३, २५ हेच २, १५ मार्क पन्ना २१ ; विवाह २४६ और ४७९) ; गड्डा = गर्त्ता (हेच २, १५) है।

§ २९१—अ माग और जै महा में थ का ट्ठ हो जाता है : 'कारण', मूल-कारण', 'पदार्थ और 'इतिहास' के अर्थ में अट्ठ = अर्थ, किन्तु 'संपत्ति' और 'धन के अर्थ में इसका रूप अत्थ मिलता है (हेच० २, ३३)। इस प्रकार विशेषतः अ माग पाठ्यों में जो इण्' अट्ठे समट्ठे (§ १७३) और क्रियाविशेषण रूप से काम में आये हुए शब्द म जैसे, से तेण' अट्ठेणं (विवाह० १४ और उसके बाद ; ८० और उसके बाद उवास § २१८ और २१९), से केण' अट्ठेणं (उवास § २१८ और २१९) अ माग और जै महा में अट्ठाए (उत्तर २११ उवास ; ओव ; नायाध निरया एत्सें) है ; अट्ठयाए भी मिलता है (नायाध० भाव ; एत्सें) ; जै महा में अट्ठा रूप है (एत्सें)। शो भी 'पदार्थ' और इतिहास के अर्थ में इस वणवाला रूप मिलता है (आव) और साथ ही क्रिया विशेषणके तौर पर काम में आये हुए रूप में भी दन्त्य वर्ण ही रहता है जैसे इणत्थं (आयार १ २,१,१), तथा जै महा० में यह अधिक बार आता है (एत्सें)। इनको छोड़ अन्य प्राकृत भाषाओं में इस शब्द' के सभी अर्थों में दन्त्य वर्णों का जोर है। अ माग में अणट्ठ रूप भी है जिसका अर्थ है 'निमत्तहव', निरर्थक' (उवास ; भाव) एक दूसरा रूप निरट्ठग है (उत्तर १११) समट्ठ भी है (§ १११)। महा अ माग जै महा और अप में चउत्थ=चतुर्थ, किन्तु हेमचंद्र २, ३३ में बताता है कि इसका चउट्ठ भी होता है और शौर में चतुत्थ रूप है जिसके साथ-साथ चदुट्ठ रूप भी काम म आता है (§ ४४)। अ माग अवुट्ठ = अप + चतुर्थ (३ ८०)। फणट्ठिम जिसका यथार्थित अर्थ = फणर्धिन है इसके विषय में § २८६ और २८ ८ १५। — माग म थ का स्त हो जाता है (हेच ४,२९१ ; १२ के काव्यालंकार २ १९ पर नमिसाधु की टीका) : यस्तो मस्त = यथार्थः था (नमिसाधु) ; अस्तवदी = अर्थवती शस्तवाह = सार्थवाहः (हेच ४,२९१);

तिस्त = **तीर्थ** (हेच० ४, ३०१) है। इसके अनुसार ललितविग्रहराजनाटक ५६६, ९ में **यहस्तं** रूप आया है (इसे **यधस्तं** पढ़िए) = **यथार्थम्**, किंतु ५६६, ७ में **शश्तश्श** रूप है = **सार्थस्य** और ५६६, ८ मे **पश्तिदुं** है = **प्रार्थयितुम्** जिसमे **श्त** है। मृच्छकटिक १३१, ९, १३३, १, १४०, १३, १४६, १६, १५२, ६, १६८, २ में सब हस्तलिपियों में **अत्थ** रूप है, यही रूप चंडकौशिक ६०, ११ और प्रबोधचंद्रोदय २८, १४ में भी है, बल्कि मद्रास के संस्करण में **पलमञ्चो** पाठ है। मृच्छकटिक १४५,१७ में गौडबोले के संस्करण में **अच्छ** है, और एक उत्तम हस्तलिपि ई (E) में इसके स्थान पर **अश्त** है। मृच्छकटिक १३८, १७ में हस्तलिपियो में **कय्यस्ती** के स्थान पर **कज्जत्थी** पाठ मिलता है, शकुतला ११४,११ में **विक्कअत्थं** = **विक्रयार्थम्** आया है और ११५, ७ मे **शामिप्पशादत्थं** = **स्वामिप्रसादार्थम्** है, प्रबोधचिंतामणि २८, १५ में **तित्थिएहिं** = **तीर्थिकैः** है और २९, ७ मे **तित्थिआ** = **तीर्थिकाः** है। मृच्छकटिक १२२, १४, १२८, ३ और १५८, १९ में स्टेन्त्सलर ने **सत्थवाह** = **सार्थवाह** दिया है, १३३, १ मे **शट्ठवाह** आया है। हस्तलिपिया बहुत अस्थिर हैं, नाना रूप बदलती रहती हैं और १२८,३ में गौडबोले की हस्तलिपि ई (E) ने शुद्ध रूप **शस्तवाह** दिया है, जिसकी ओर हस्तलिपि बी (B) का **शस्यस्तवाह** और हस्तलिपि एच. (H) का **शत्छवाह** भी सकेत करते हैं[२]। हस्तलिपियाँ सर्वत्र ही व्याकरणकारों के नियमों के अनुसार सुधारी जानी चाहिए।

१ हेमचद्र २, ३३ की पिशलकृत टीका। लौयमान, औपपातिक सूत्र में **अत्थ** शब्द देखिए, इसमें इस शब्द की व्याख्या पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं है। — २. गो० गे० आ० १८८१, पेज १३१९ और उसके बाद में पिशल का मत।

§ २९१—**कवड्ड** = **कपर्द** में र्द का ड्ड हो गया है (हेच० २, ३६, मार्क० पन्ना २३)। — **गड्डह** = **गर्दभ** (वर० ३, २६, हेच० २, ३७, क्रम० २, २३, मार्क० पन्ना २३), इसके साथ साथ **गद्दह** रूप भी चलता है (हेच० २, ३७, पाइय० १५०), केवल यही एक रूप अ०माग०, जै०महा०, शौर०, माग० और ढक्की से प्रमाणित किया जा सकता है और मार्क० पन्ना ६७ में स्पष्ट बताया गया है कि शौर० में यही रूप है (सूय० २०४, ७२४ और उसके बाद, ७२७ [यहाँ **गद्दभ** पाठ है], सम० ८३, उत्तर० ७९४, कालका०, शौर० मे : मृच्छ० ४५, १६, माग० में : मृच्छ० ७९, १३, १७५, १४), जै०महा० में **गद्दभी** = **गर्दभी** और **गार्दभी** (कालका०), **गद्दभिल्ल** रूप भी आया है (कालका०), **गद्दब्भ** = ***गार्दभ्य** (कटुध्वनि, वेसुरी ध्वनि देशी० २, ८२, पाइय० २०४), **गद्दह** (= कुमुद। —अनु० । देशी० २, ८३), **गद्दहय** (पाइय० ३९, श्वेत कमल, कुमुद) और ढक्की में **गद्दही** रूप पाये जाते हैं। कालेयकुतूहल २५, १५ में शौर० रूप **गड्डुहो** (?) छापा गया है। — **छड्डइ** = **छर्दति** (हेच० २, ३६), अ०-माग० में **छड्डेज्जा** (आयार० २, १, ३, १), **छड्डसि** (उवास० § ९५), जै०महा० में **छड्डिज्जइ** (आव० एर्त्से० ४१, ८), **छड्डेइ**, **छड्डिज्जउ** और **छड्डिय** (एर्त्से०) रूप मिलते हैं। अप० में **छड्डेविणु** रूप पाया जाता है (हेच० ४, ४२२,

१); जै शौर० में छड्डिद रूप भी आया है (पव० ३८७, १८ [पाठ में छड्डिय है]) छड्डि = छर्दि (हेच २, ३६); जै०महा में छड्डी = छर्दिस् (एर्से); अ माग में छड्डियल्लिया रूप भी है (ओव)। महा०, जै महा और शौर में विच्छड्ड = विच्छर्द (हेच २, ३६ मार्क पन्ना २१ पाइय ६२ देशी ७, ३२ गउड हाल रावण ; कालका एर्से अनर्घ २७७, १ [कलकतिया संस्करण के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) विच्छड्डि = विच्छर्दि (वर ३, २६ क्रम २, २१) अ०माग में विच्छड्डइत्ता (ओव कप्प); महा में विच्छड्डिअ (रावण) अ माग और जै महा में विच्छड्डिय (ओव पाइय ७९) और शौर० में विच्छड्डिद रूप मिलते हैं (उत्तर० २, ११ ; मालती २४१, ५ २५४, ४ २७३, १ ; अनर्घ० १४९, १ [इस ग्रंथ में सर्वत्र यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए])। —मड्डइ = मर्दते (हेच ४,१२६), किन्तु शौर में मड्डीभदि = मर्द्यते (मृच्छ ९९, ९) मड्डिअ = मर्दित (हेच २, ३६) संमड्ड = संमर्द (वर ३, २६ हेच २ ३६ क्रम २, २१; मार्क पन्ना २१) रूप हैं, किन्तु महा , जै महा और शौर में समद्द रूप मिलता है (गउड एर्से मृच्छ १२५, १७) संमड्डिअ = संमर्दित (हेच २, ३६) है। इसके विपरीत शौर में उवमद्द = उपमर्द (मृच्छ १८, ११); अ माग में पमद्दण रूप आया है=प्रमर्दन (ओव कप्प), पमद्दि = प्रमर्दिन् (नायाध ओव) पामद्दा = *पादमर्दा (= पादाभ्यां धान्यमर्दनम् ; धान को पाँव से कुचलना ; देशी ६ ४) अ माग में परिमद्दण = परिमर्दन (नायाध ; ओव ; कप्प), पीढमद्द = पीठमर्द (ओव कप्प), शौर में पीढमद्दिआ रूप मिलता है (मालवि १४, ९ अद्भुत ७२, ११ ; ९१ ९) अ माग में वामद्दण = व्यामर्दन (ओव कप्प) है। — विअड्डि = वितर्दि (वर ३, २६ हेच २ ३६ क्रम २ २१)। — कुड्डिअ = कूर्दित, सखुड्डइ = संकूर्दति (§ २ ९), इसके साथ-साथ अ माग० में उक्कुद्दइ रूप है (उत्तर ७८८)। मार्क पन्ना २१ के अनुसार कुछ व्याकरणकार तड्डइ = तर्दू भी सिखाते थे। — निम्नलिखित शब्दों में र्ध=ड्ढ हो गया है : अ माग और जै महा में अड्ड = अर्ध, इसके साथ-साथ अद्ध रूप भी चलता है और यह रूप अन्य सभी प्राकृत बोलियों में एक मात्र काम में आता है (हेच २ ४१ § ४५) अड्ड अ माग में अन्य शब्दों से संयुक्त रूप में भी चलता है जैसे अवड्ड = अपार्ध (जीवा ५५ और उसके बाद; विवाह १ ५७ और ११ ६) समड्ड अणड्ड (विवाह १५४); दिवड्ड (§ ४५) जै महा में अड्डमास रूप (एर्से) रूप है इसके साथ साथ अद्धमास भी चलता है (कालका) और अ माग में मासद्ध भी है (विवाह १९८) जै महा में अड्ढरत्त = अर्धरात्र (एर्से) आदि आदि महा , अ माग जै महा शौर माग आव और अप में अद्ध रूप चलता है (गउड ; हाल ; रावण ; सम १५६ १५८ ; ठाणग २६९ ; जीवा २११ और ६१२ तथा उसके बाद ; विवाह २ ९ ; ११०८ § ४५ ; एर्से ;

कालका० , ऋषभ० , मृच्छ० ६९, १६ , चड० ५१, ११ , कर्पूर० ६०, ११ , माग० में . मृच्छ० ३१, १७ , २० ; २३ ; २५ , ३२, ५ , १३३, १० , १६८, २० और २१ , शकु० ११८, ४ , आव० मे . मृच्छ० १००; १२ , अप० में ' हेच० ४, ३५२ , पिगल १, ६ और ६१ तथा उसके बाद) । — महा०, अ०माग० और जै०महा० वड्ढइ = वर्धते (वर० ८, ४४ , हेच० ४, २२० , क्रम० ४, ४६ , मार्क० पन्ना २३ , हाल , रावण०, आयार० २, १६ , ५ [पाठ मे वड्ढई रूप है] , सूय० ४६० , विवाह० १६० , कालका०) , शौर० मे वड्ढदि का प्रचलन है (विक्रमो० १०, २० , १९, ७ , ४९, ४ , ७८, १५ , ८८, १४ , मालवि० २५, ४) । उपसर्ग के साथ प्रेरणार्थक मे और इससे निकले अन्य रूपों मे भी यही नियम चलता है । व्यक्तिवाचक नाम वर्धमान अ०मा०, जै०शौर० और शौर० मे वड्ढमाण हो जाता है (आयार० २, १५, ११ , पव०३७९, १ , मृच्छ० २५, १८ , ४४, २४ , ४५, ५ आदि आदि), किंतु अ०माग० मे वद्धमाण रूप भी मिलता है (चट० ३, २६ , आयार० २, १५, १५ , आव० , कप्प०), जैसे अ०माग० मे नंदिवद्धण रूप भी है (आयार० २, १५, १५ , कप्प०) और वद्धावेइ भी चलता है (ओव० , कप्प० , निरया०) । मार्कंडेय पन्ना २४ में बताया गया है कि गोवर्द्धन के स्थान पर प्राकृत में गोवद्धण होना चाहिए । शौर० मे गोवड्ढण मिलता है (वृषभ० १९, ५) ।

§ २९२—नीचे दिये गये उदाहरणों मे त्र का ट्ट हो गया है . महा० और अप० मे तुट्टइ = त्रुट्यति (रावण० , पिगल १, ६५ और ६८) है । इसके साथ साथ अ०माग० में तुट्टइ (सूय० १०० , १०५ , १४८) भी चलता है, तुट्टन्ति (सूय० ५३९) और तुट्टइ (हेच० ४, २३०) रूप भी मिलते हें , अप० में तुट्टउ देखा जाता है (हेच० ४, ३५६) । वररुचि १२, ५ के अनुसार शौर० मे कभी कभी (क्वचित्) पुत्र का रूप पुड भी होता है । सभवत. यह पाटलिपुत्र के नाम के प्राचीन रूप के विषय में कहा गया है जो कभी *पालटिपुट कहा जाता होगा (§ २३८, नोट सख्या २) और प्राकृत के नियमो के अनुसार *पाडलिउड हो जाना चाहिए था । इसका सस्कृत रूप महा० और माग० पाडलिउत्त से मिलता है (हेच० २, १५० , मृच्छ० ३७, ३) , जै०महा० मे पाडलिपुत्त रूप है (आव० एर्त्से० ८, १ , १२, १ और ४०, एर्त्से०), शौर० में पाडलिपुत्तअ है (मुद्रा० १४९, ३) । स्टेन्त्सलर मृच्छकटिक ११८, १ , ११९, ११ और २१ , १२४, ५ , १२९, १८, १३२, ९ , १६४, १६ , १६५, ३ में पुश्थक = पुत्रक लिखता है । इस रूप के विषय में हस्तलिपियाँ बहुत अस्थिर है, कभी कोई रूप लिखती हैं कभी कोई, किन्तु वे दो रूपों को विशेष महत्त्व देती हैं, पुस्तक अथवा पुश्तक । प्राय सर्वत्र यह रूप पुत्तक पाया जाता है, और यह माग० में मृच्छकटिक में पुत्त लिखा गया है (१९, १९ , ११६, ८ , १२९, ७ , १३३, १ , १६०, ११ , १६६, १ , १६७, २४ , १६८, ३), पुत्तक भी आया है (मृच्छ० ११४, १६ , १२२, १५ , १५८, २०) , रापुत्ताक भी है (मृच्छ० १६६, १८ और २१) । स्टेन्त्सलर चाहता है कि

मृच्छकटिक पेज २९४ में ११४, १६ में पुस्तक के स्थान पर सुधार कर पुस्थक रूप रखा जाय, किन्तु केवल १५८, २ में इनी-गिनी हस्तलिपियों में पुस्तके, पुस्तके और पुस्थकं रूप आये हैं अन्यथा सब में पुस्तक आया है जो शुद्ध होना चाहिए। १५८, ११ में पत्थिके = मस्तृका और भिन्न भिन्न हस्तलिपियों में पाठभेद से पत्थिके (स्टेन्सलर और गौडबोलेके तथा कलकत्तिया संस्करण में यही पाठ है), पस्तिके और पस्तिके रूप दिये गये हैं। इनसे ऐसा लगता है कि र्थ (§ २९) के क्रमविकास में ध्वनिपरिवर्तन हुआ होगा। अ माग में दीर्घ स्वर के बाद त्र का त्त बनकर बहुधा य हो गया है जैसे, गाय = गात्र ; गोय = गोत्र ; धाई = धात्री ; पाई = पात्री (§ ८७)। धात्री के विषय में महा और शौर में भी यह नियम लगाया जाता है (§ ८७)। धारी (= धाई : हेच २, ८१) = धात्री नहीं है अपितु धे (= छाती से दूध चूसना) धातु में र प्रत्यय लगाकर बना है = 'स्तन का दूध पिलानेवाली' है। इस सम्बन्ध में धारु की तुलना कीजिए।

§ २९२ — § २८८ के विपरीत—त्र में समाप्त होनेवाले क्रियाविशेषणों में य देखने में त्थ का रूप धारण कर लेता है जैसे अण्णत्थ = अन्यत्र (हेच २, १६१ १,५९) शौर और अत्थमयं में अत्थ = अत्र (शकु० ११, १ ३५, ७ विक्रमो १०, ९), अत्थमयवदो (मालवि २७, ११) और अत्थभोदि रूप भी मिलते हैं (विक्रमो २८, १७ ; ८१, १३ मालवि २९, १)। महा , अ माग० और जै महा कत्थ = कुत्र (भाम ४, ७ ; हेच २, १६१ गउड हाल ; रावण ; कप्प ओव ; एत्सें , कालका) महा , अ माग०, जै महा , जै शौर शौर और दाक्षि में जत्थ = यत्र (भाम ४, ७ हेच २, १६१ ; हाल रावण कप्प एत्सें ; कालका ; कत्तिगे ४ १, ३९३ ; उत्तर २ , ११ ; २१ १ ; दाक्षि में : मृच्छ १ १) ; महा , अ माग , जै महा शौर और माग में तत्थ = तत्र (भाम ४ ७ ; हेच २ १६१ ; क्रम १ ४२ ; गउड हाल ; रावण ; आयार १ १ १ ७ ; १, १, २, १ और २ आदि आदि ; नायाध ; उवास कप्प ; कालका विक्रमो ४८, १४ माग में प्रबोध १२ ४), शौर में तत्थभवं (विक्रमो ४६ ४ ८७, २ ; ७५, ३ और १५) तत्थभवदा (शकु ३ २ ; विक्रमो १६, ११ ८ , १४ ८४, १९ ; मालवि १ ११) ; तत्थभवदो (मृच्छ ४ ४ ; २२, १२ विक्रमो १८ १८ ; ५१, ११ ; ७९ १६) और तत्थभोदी (मृच्छ ८८ १३ ; शकु ९६, ११ १२९ ७ १३२ ७ १३८ ११ ; विक्रमो १६ ४ ; ७ और ११ १८, ५ आदि आदि) रूप पाये जाते हैं ; इअरत्थ = इतरत्र (भाम ४ २) और महा तथा जै महा में सव्वत्थ = सर्वत्र रूप मिलता है (भाम ४ २ ; हेच १, ५९ और ६ ; गउड ; हाल ; रावण ; एत्सें)। इनमें पल्लवदानपत्र महा , अ माग , जै महा शौर माग दाक्षि और आव में थैत्थ तथा अप में एत्थु (§ १ ७) य के कारण=अत्र नहीं हो सकते अपितु ये रूप वैदिक है और=इत्था हैं। इन क्रिया विशेषण वैदिक शब्दों से अलग नहीं किये जा सकते क्योंकि ये कत्थ = कत्था और

जत्थ :-**यत्था** तक पहुचाये जाने चाहिए[1]। अप० में **यत्र, तत्र** के क्रमविकसित नियमानुसार रूप **जन्तु** और **तन्तु** होते है (हेच० ४, ४०४ , § २६८ की तुलना कीजिए) , **अन्यत्र** का ढक्की मे **अण्णत्त** रूप होता है (मृच्छ० ३६, २३ , ३९, १०) । मृच्छकटिक १६१, १७ , १६७, १७ मे **अत्त = अत्र** आया है जो अशुद्ध है । डी (D) हस्तलिपि मे पहले के स्थान पर **ऍत्थ** है, दूसरे के स्थान पर अधिकाश हस्तलिपियो मे यह है ही नहीं । **अत्तभवं** और **तत्तभवं** लिपिप्रकार जो शकुतला और मालविकाग्निमित्र के द्राविडी और देवनागरी सस्करणो मे पाया जाता है[2] तथा जो कभी कभी अन्यत्र भी सयोग से पाया जाता है, अशुद्ध है[3] । अप० रूप **केत्थु, जेत्थु** और **तेत्थु** के विषय मे § १०७ देखिए । शौर० रूप **महामें त्थ = महामात्र** (मृच्छ० ४०, २२) **महामें त्त** का अशुद्ध पाठ है, जैसा कि गौडवोले के सस्करण के पेज १, २० में डी (D) ओर एच (H) हस्तलिपियों का पाठ बताता है, और **में त्थ पुरिस** = -मात्रपुरुष (मृच्छ० ६९, १२) यह रूप = **महामेत्तपुरिस** (गौडवोले के सस्करण में पेज १९६ मे हस्तलिपि डी (D) की तुलना कीजिए) क्योंकि **मात्र** के प्राकृत रूप केवल **में त्त** और **मित्त** होते है (§ १०९) । **में ण्ठ** और जै०महा० **मिण्ठ** (= महावत . देशी० ६, १३८ , एर्त्से०), पाली में **में ण्ड** है । — महा० **पत्थी** (हाल २४०), जिसे वेवर = **पात्री** मानना चाहता है, **पच्छी** का अशुद्ध रूप है। — (= पिटिका —अनु० । देशी० ६, १), पाली में भी यह शब्द **पच्छि** है , त्साइटश्रिफ्ट डेर डौयत्शन मौर्गेनलैडिशन गेजेलशाफ्ट २८, ४०८ और इडिशे स्टुडिएन १६, ७८ में श्लोक १८५ की टीका मे इस शब्द की तुलना कीजिए ।

१. एस गौल्दश्मित्त प्राकृतिका पेज २२ मे भिन्न मत देता है , रावणवहो मे कत्थ शब्द देखिए , हाल २४० पर वेवर की टीका । वे वाइ ३, २५३ में पिशल । — २. शकुतला २०, ११ पेज १७७ पर वोएटलिंक की टीका । —३ पिशलकृत दे० कालिदासाए शकुतलि रेमेन्सिओनिवुस, पेज ३४ और उसके वाद ।

§ २९४—नीचे दिये शब्दो में **द्र** का **ड्ड** हो गया है . अ०माग० और जै० महा० **खुड्ड = क्षुद्र** (देशी० २, ७४ , आयार० २,२,३,२ , सूय० ४१४), ठाणग० ५४६ , उत्तर० १३ , जीवा० ४७६ और उसके वाद , ५५९, ६२२, ६६३ , १०१३ और उसके वाद , कप्प० , एर्त्से०), **खुड्डअ** रूप भी मिलता है (हेच० २, १७४ , त्रिवि० १,३,१०५), अ०माग० और जै०महा० में **खुड्डय** तथा स्त्रीलिंग में **खुड्डिया** रूप मिलते हैं (आयार० १,२,३,२ , २,२,१,४ , २,२,३,२ , ठाणग० ६७ , पण्हा० ५२० , विवाह० ११०० , कप्प० , आव० एर्त्से० २३, ६), अ०माग० में **खुड्डग** भी पाया जाता है (सूय० ८७२, ठाणग० ५४५, विवाह० ११०१ , ओव०), **खुड्डाग** भी है (§ ७०), बहुत ही कम पर माग० मे **खुद्द** (सूय० ५०४) और **खुद्दाय** (कप्प०) रूप भी देखने में आते हैं । — जैसे साधारण **द**, **ल** में परिवर्तित हो जाता है (§ २४४), वैसे ही **द्र** के रूपपरिवर्तन से व्युत्पन्न **द्द** भी **ल्ल** में परिवर्तित हो जाता है . महा० और अ०माग० में **अल्ल** और इसके साथ-साथ महा०, अ०माग०,

में महा० और शौर० का अड्ड = आर्द्र (§ १११) और छिल्ल (= छिद्र; कुटिया। देशी० ३, ३५), उच्छिल्ल (= छिद्र : देशी० १, ९९) तथा इसके साथ साथ महा०, अ माग० और जै महा० छिड्ड (हाल ; उवास० ; एत्सें०) और अ०माग० तथा जै महा छिड्ड (निरया० ; आव० एत्सें० ४१, ४ और ५ ; एत्सें० [इसमें यह शब्द देखिए]) और महा में छिड्डिय = छिद्रित है (गउड०)। छुल्ल के विषय में § १२५ देखिए। महा रूप मलइ = मर्दति नहीं है, किंतु म्रदते है (§ २४४)। इसका समानार्थी मढइ (हेच ४, १२६) = मठति या मठ मर्दनिवासयो से निकला है (धातुपाठ ९, ८७ पर बोपदेव की टीका) तथा जो मध और मंथ से संबंधित है। द्र और इसके साथ साथ ड्ड के विषय में § २६८ देखिए।

§ २९५—आम्र और ताम्र रूपों में म और र के बीच में व जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार उत्पन्न म्ब्र में या तो अंश स्वर द्वारा वर्ण अलग-अलग कर दिये जाते हैं जैसे, अस्थिर और सस्थिर (§ १३७) या र शब्द में घुल-मिल जाता है। इस प्रकार महा , अ माग और जै०महा में अम्ब रूप होता है (वर ३, ५३; चंड ३, १ हेच २, ५६ क्रम २,५४ ; मार्क पन्ना २७; पाइय १४५ ; हाल आयार २,१,८,१ ४ और ६ ; २ ७,२,२ और उसके बाद ; २,१०,२१ अणुओग० २ ५ पण्णव ४८२ और ५११ विवाह ११६ और १२५४ एत्सें०); अ० माग में अम्बग मिलता है (अणुत्तर ११ उत्तर० २११ और ९८१ तथा उसके बाद) ; अ माग में अम्बाडग भी है = आम्रातक (आयार० २, १, ८, १ और ४ पण्णव ४८२)।— महा और अ०माग० में तम्ब = ताम्र (सब व्याकरणकार ; पाइय० ९१ ; गउड हाल रावण सूय २८२ और ८३४ ; उत्तर० ५९७ विवाह ११२६ ; ओव कप्प०); अ माग० में तम्बग (उत्तर० १ ६५), तम्बिय (ओव) भी देखने में आते हैं; महा और शौर० में तम्बवण्णी = ताम्रपर्णी (कर्पूर १२, ४ ७१ ८ बाल० २६४, १ और ४ ; अनर्घ० २९७ १९ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) महा में आअम्ब और अ० माग में आयम्ब = आताम्र (गउड हाल, शकु ११९ ६ ; ओव); तम्बकिमि = ताम्रकृमि (= इन्द्रगोप : देशी० ५, ६) तम्बरत्ती = *ताम्र रक्ती (= गेहूँ की बाली ; गेहुँआ रंग : देशी ५ ५), तम्बसिहा = ताम्रशिखा (= अरुणशिखा ; मुर्गा : पाइय १२५) ; महा में तम्बा = ताम्रा (= ताँबे के रंग की गाय यह शब्द गाय के लिए उसी प्रकार प्रयुक्त होता होगा जैसे, धौली, काली आदि नाम — अनु ; देशी ५ १ ; पाइय ४५ ; हाल)।— मार्कंडेय पन्ना २७ के अनुसार कम्र का कम्ब रूप हो जाता है। इसी प्रकार की प्रक्रिया म्ल की भी है। अम्ल का रूप या तो अम्बिल होता है (§ १३७ या अम्ब) ; अ माग में सेहम्बवाडियस्थाहिं = सेधाम्लवाटिकाम्ला (उवास § ४०) ; अप में अम्बणु = आम्लत्वम् है (हेच ४, ३७६, २)।

§ २९६—(तीन) ओष्ठ होनेवाला एक वर्ण ल्ह है (वर ३, १ चंड १ १ ; हेच० २, ७९ ; क्रम २, ५० ; मार्क० पन्ना १९) : लक्ष = वक्क : महा० में

उक्का = उल्का (गउड० , रावण०) , कक्क = कल्क (विवाह० १०२५) ; महा० और शौर० वक्कल = वल्कल (§ ६२) । — क्ल = क्क ' अ०माग० मे किलिस्सन्ति = = क्लिश्यन्ति (उत्तर० ५७६), केस = क्लेश (उत्तर २०२ और ५७५), कीव = क्लीव (ठाणग० १८१), विक्कव = विक्लव (भाम० ३, ३ , हेच० २, ७९) । शुक्ल अ०माग० रूप सुक्क (सूय० ३१३ , ठाणग० २५ और उसके बाद), के साथ साथ सुइल रूप भी ग्रहण करता है, अ०माग० में सुक्किल भी है (§ १३६) और हेमचद्र २, ११ के अनुसार इसका एक रूप सुङ्ग भी है । यदि यह रूप शुल्क* से निकला हो तो इसका रूप सुंग होना चाहिए, जो सुंक = शुल्क से (§ ७४) से मिलता-जुलता है । — ल्ग = ग्ग महा० मे फग्गु = फल्गु , अ०माग० और शौर० में फग्गुण = फल्गुन (§ ६२) , अ०माग० मे वग्गइ और वग्गित्ता = वल्गति और वल्गित्वा (विवाह० २५३), वग्गण = वल्गन (ओव०) और वग्गु = वल्गु (सूय० २४५) । — ल्प = प्प अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे अप्प = अल्प (सूय० ३७१ , उवास० , नायाध० , निरया० , ओव० , कप्प० , एर्त्से० , कालका०, मृच्छ० १५०, १८) , महा०, अ०माग०, जे०महा० और शौर० मे कप्प= कल्प (गउड० , हाल , रावण० , उवास० , नायाध० , ओव० , कप्प० , एर्त्से० , कालका०, विक्रमो० ११, ४), महा०, अ०माग० और जै०महा० मे सिप्प† = शिल्प (हाल , नायाध० , उवास० , कप्प०, एर्त्से० , ऋषभ०), अ०माग० और शौर० में सिप्पि = शिल्पिन् (उवास० , ओव० , मृच्छ० १५२, २५ , १५३, ३) । जल्प और इससे निकले रूपोंमे ल् का म् मे परिवर्तन हो जाता है : महा० और जै०महा० में जम्पइ = जल्पति (वर० ८, २४ , हेच० ४, २ , क्रम० ४, ४६ , गउड० , हाल , रावण० , एर्त्से० , कालका०) , जै०महा० में जम्पिअ (?) और जम्पन्तेण रूप मिलते हैं (कक्कुक शिलालेख ८ और १५) , अ०माग० मे जम्पन्ता आया है (सूय० ५०) , जै०महा० मे पयम्पए = प्रजल्पते (एर्त्से०) है, ढक्की में जम्पिदुं और जम्पसि मिलते हैं (मृच्छ० ३४, २४ , ३९, ९) , शौर० में भी जम्पसि आया है (विक्रमो० ४१, ११), जंपिज्जदि (ललित० ५६८, ६), जम्पिस्सं (मालती० २४७, २) रूप पाये जाते हैं । जम्पण (= अकीर्त्ति , वक्त्र , मुख : देशी० ३, ५१), जै०महा० में अजम्पण (= विश्वास की बात बाहर न कहना . एर्त्से० १०, ३४) , महा० और अप० मे जम्पिर रूप देखा जाता है (हेच० २, १४५ , हाल , हेच० ४, ३५०, १) , अ०माग० में अवजम्पिर का प्रयोग है (दस० ६१९, २२ , ६३१, १३ , ६३२, २८) , अ०माग० में पजम्पावण = *प्रजल्पापन (बोलना सिखाना : ओव०) , माग० में यम्पिदेण (ललित० ५६६, १२) चलता है , अप० में पजम्पइ आया है (हेच० ४, ४२२, १० , यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए) । म्प के स्थान पर बहुधा प्प हो जाता है ' अ०माग० में जप्पन्ति (सूय० २६) , शौर०

* यह रूप कुमाउनी में इसी रूप में चलता है , हिंदी प्रान्तों में शुक्ल का शुकिल, शुकुल रूप बोली में चलते हैं । —अनु०

† सिप्प पाली से आया है और कुमाउनी में वर्तमान है । — अनु०

अप्पेमि (हास्या २१, २१), अप्पासि (कंस ४१, ७), अप्पेसि (हास्या० २५, १ और १२ ३८, १ और ७), अप्पिस्ससि (प्रसन्न १४४, २), अप्पिदुं (हास्या ११, ११), अप्पइंती (प्रबोध ४४, १ बंबई, पूना और मद्रास के संस्करणों में यही पाठ है),—अप्पिणि (प्रसन्न० १७, १६ ; वृषभ २६, ७) और अप्पिद आदि-आदि रूप मिलते हैं (प्रसन्न० १२०, १) आदि-आदि। इन स्थलों पर अवश्य ही सर्वत्र रूप पढा जाना चाहिए जैसा कि रत्नावली १२२, ८ के जै महा० रूप अप्पियण के स्थान पर निश्चय ही अप्पियण होना चाहिए कर्पूरमंजरी १८, ४ में इसका ठीक रूप अप्पिए आया है और अप में शुद्ध रूप अप्पिअ मिलता है (पिंगल १, ६)। — प्लु = प्प महा में पवंग = प्लवंग, पवंगम = प्लवंगम (रावण) परिप्पवन्त = परिप्लवंत — (गउड रावण) पप्पुअ = प्रप्लुत (गउड) अ माग में पविउं = प्लवितुम् (सूय ५ ८) विप्पव=विप्लव (हेच २, १ ६)। — स्फ=प्फ : अ०माग में गुप्फ = गुल्फ (आयार १, १, २, ५ ओव)। — ल्व = व्व : महा में उव्वण = उल्वण (गउड ७१४ पाठ में उव्वण है) अ माग में किव्विस = किल्बिष (उत्तर १५६ [पाठ में किव्विस है] दस ६२४, ११ और १२), किव्विसिय = ०किल्बिषिक (ओव) सुव्व = शुल्ब (हेच २, ७९)। — ल्भ = ब्भ : अ माग में पगब्भइ=प्रगल्भते (आयार १, ५, ३ १ [पाठ में पगब्भई है] सूय ११४ और १५), पगब्भिय (सूय ११ १४६ और १९८), पागब्भिय (सूय ५९६), पगब्भिया (सूय ३५८) विप्पगब्भिय (सूय ५) पगब्भि — (सूय ११२), पागब्भिय (सूय २६८ और २९६) रूप प्रयुक्त हुए हैं। इसलिए पगब्भई (उत्तर २ २) छपे की भूल है जो पगब्भइ = पगब्भई के लिए भूल से आयी है। — ल्म = म्म : कुम्मास=कल्माष (हेच २, ७९ पाइय ५१); अ माग में कुम्मास = कुल्माष पाया जाता है (आयार १, ८ ४ ४ और १३) अ माग और और माग में गुम्म = गुल्म (आयार २, १, २ १५ नायाध मृच्छ ९७, २२ ; मुद्रा १८५, ८ ; १ ७, ५ प्रिय १२, १ ११ १ १९ २७ ; २३, १४ कर्ण २८ ७ ; सुभद्रा १२, ५; माग में ; मृच्छ ६१, ११) पल्लवदानपत्र में गुमिके = गुल्मिकान् है (५, ५)। महा में वम्मिअ अ माग में वम्मिय = वल्मीक (§८); और में वम्मीइ = वाल्मीकि (बाल ९, १५)। — ल्ह = म्ह : अ माग, जै महा और और अप में मेच्छ = म्लेच्छ (§ ८४ और १ ५)। — ल्य के नियम में § २८९ देखिए और र्ल के सम्बन्ध में § २८७। — ल्व = ल्ल और में गल्लक्क = गल्वर्क (मृच्छ १ १) महा में पल्लल = पल्वल (गउड); अ माग में विल्ल = बिल्व (हच १ ८९ ; मार्क पन्ना ७ ; पाइय १४८ ; पण्णव ५११ निरया १२३ [पाठमें बिल्ल है], दस ६२१, ५), यह रूप हेमचंद्र और मार्कंडेय के अनुसार बॅल्ल भी होता है (§ ११९)।

§ २९७—एक ध्वनि य है जिसका लोप हो जाता है (वर १, १; चंड०

३, २, हेच० २, ७९, क्रम० २, ५०, मार्क० पन्ना २९): क्व = क्क: महा० में **कढइ = क्वथति,** शौर० **कढिद** और अ०माग० में **सुकढिया** रूप मिलता है (§ २२१)। महा० में **कणक्कणिअ=क्वणक्वणित** (कर्पूर० ५५, ७) महा०, अ०माग० और शौर० मे **पिक्क** और अ०माग० तथा शौर० में **पक्क = पक्व** (§ १०१)। — **दिव्वासा = दिग्वासाः** में **ग्ग** के स्थान पर **ग्व** का **व्व** हो गया है (चामुडा०, देशी० ५, ३९)। — **ज्व=ज्ज** महा० में **ज्जलइ = ज्वलति, उज्जल = उज्ज्वल, पज्जलइ = प्रज्वलति** (गउड०, हाल, रावण०)। महा० मे **जर=ज्वर** (हाल)। — **ण्व = ण्ण**. महा० में **किण्ण = किण्व** (गउड०), शौर० **कण्ण = कण्व** (शकु० ०, १०, १४, १, १५, १ आदि-आदि), शौर० **रुमण्णदो=*रुमण्वतः** (रत्ना० ३२०, १६)। **व्य** के विषय में § २८६, **र्व** और **व्र** के विषय में § २, ८७ तथा **ल्व** के सम्बन्ध मे § २९६ देखिए।

§ २९८—शब्द के अन्तिम दत्य वर्ण के साथ **व** आने पर यह **व** दत्य वर्ण से घुल मिल जाता है। **त्व = त्त**. पल्लवदानपत्र, महा०, अ०माग०, जै०महा० में **चत्तारि,** माग० **चत्तालि = चत्वारि** (§ ४३९), महा० और शौर० में **सत्त= सत्व** (हाल, शकु० १५४, ७), प्रत्यय **त्त = त्व**: जैसे **पीणत्त = पीनत्व**, अ०माग० में **भट्टित्त=भर्तृत्व, भट्टित्तण = भर्तृत्वन** जैसे महा० **पीणत्तण = पीन-त्वन**, शौर० में **णिउणत्तण=*निपुणत्वन**, अप० **पत्तत्तण = *पत्रत्वन** (§५९७)। — **द्व = द्द**: महा०, अ०माग० और जै०महा० **दार = द्वार** (चड० ३, ७, हेच० १, ७९, २, ७९ और ११२, गउड०, हाल, रावण०, सूय० १२९, नायाध०, ओव०, एर्त्सें०), महा०, शौर० और अप० में सदा **दिअ** रूप काम में आता है और जै०महा० में **दिय=द्विज** (हेच० १, ९४, पाइय० १०२, गउड०, एर्त्सें०, कक्कुक शिलालेख ११ [यहाँ **दिअ** पाठ है], चड० ३, १६, ५२, ६, ५६, ६, ९३, १३, पिंगल २, ४८), **दिआहम = द्विजाधन** (भासपक्षी : देशी० ५, २९) = **द्विप** भी है (हेच० २, ७९), शौर० में **दिउण = द्विगुण** (शकु० १४०, १३), **दिउणदर = द्विगुणतर** (मृच्छ० २२, १३), **दिउणिद = द्विगुणित** (नागा० १८, २), माग० में **दिउण** रूप मिलता है (मृच्छ० १७७, १०), **दिरअ = द्विरद** (हेच० १, ९४), अ०माग० में **दावर = द्वापर** (सूय० ११६), **दन्द = द्वन्द्व, दिगु = द्विगु** (अणुओग० ३५८), अ०माग० और जै०महा० **जम्बुद्दीव = जम्बुद्वीप** (उवास०; निरया०, नायाध०; ओव०, कप्प०, कालका०), पल्लवदानपत्र में **भरद्दायो = भरद्वाजः** (५, २), **भारदाय** और **भारदायस** रूप भी मिलते हैं (६, १६ और १९), महा० में **सद्दल = शाद्वल** (गउड०)। — **ध्व = द्ध**. **धत्थ = ध्वस्त** (हेच० २, ७९), महा० **उद्धत्थ = उद्ध्वस्त** (गउड० ६०८, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए)। **व** से आरम्भ होनेवाले किसी शब्द में यदि **उद्** उपसर्ग आ जाय तो उसका **द्व, व्व** में परिणत हो जाता है महा० में **उव्वत्तण = उद्वर्तन** (गउड०, हाल, रावण०), अ०माग० में **उव्वट्टण** (उवास०) रूप आता है और जै०महा० में **उव्वट्टिय**

मिलता है (मार्क०)। नागानन्द २७, १४ में **अदिसद्धसेण** रूप आया है जो कलकतिया संस्करण १८७३, पेज ३७,१ में **अदिसज्झसेण** है। —**माउक्क = मृदुत्व** नहीं है (हेच० २, २, मार्क० पन्ना २६) परंतु **मार्दुक्य** है जिसका संबंध **मृदुक** से है (§ ५२ की तुलना कीजिए), जैसे जै०महा० में **गरुक्क** है (कक्कुक शिलालेख १३) = ***गुरुक्य** जो **गुरुक** से संबंधित है (§ १२३)।

§ ३००—**त** के बाद **व** आने से यह **व, प** का रूप धारण कर लेता है। **द** के बाद **व** आने से **व** में परिणत हो जाता है। इस क्रम से बोली में **त्व** का **प्प** रूप हो जाता है और **द्व** का **व्व**'। **त्व=प्प**. महा० में **पहुप्पइ = प्रभुत्वति** (§ २८६), अप० **पइँ = त्वाम्, त्वया** और **त्वयि** (§ ४२१), अप० में — **प्पण = त्वन** जैसे, **वड्डप्पण** और इसके साथ साथ **वड्डत्तण=*भद्रत्वन, मणुसप्पण=*मनुषत्वन** (§ ५९७), अप० में **-प्पि = -त्वी** (=करके) जैसे, **जिणॅप्पि** और **जेॅप्पि=*जित्वी; गम्पि=*गन्त्वी** = वैदिक **गत्वी, गमेॅप्पि = *गमित्वी** और **-प्पिणु = -त्वीनम्,** जैसे, **गमेॅप्पिणु** और **गम्पिणु=*गमित्वीनम्, करेप्पिणु = *करित्वीनम्** (§ ५८८)। यह गौण **प, व** भी हो जाता है जैसे, **करेवि** जिसके साथ साथ **करेॅप्पि** भी चलता है, **लेविणु** है और **लेॅप्पिणु** भी है, **रमेवि** और **रमेॅप्पि** है। **त्म** से निकले **प्प** के विषय में § २७७ देखिए। **द्व = व्व**. पल्लवदानपत्र, महा० और अ०माग० में **बे***, अप० में **वि = द्वे, वेॅण्णि** और **विण्णि = *द्वेनि** (§ ४३६ और ४३७), महा० में **विउण = द्विगुण** (हेच० १,९४, २, ७९, गउड०, हाल, रावण०)[२], किंतु शौर० और माग० में **दिउण** रूप मिलता है (§ २९८)। अ०माग० और जै० महा० में **बारस**, अप० में ***बारह = द्वादश** (§ ४४३), जैसा कि अ०माग०, जै० महा० और शौर० में प्रधानतया **बा = द्वा**⁎ होता है (§ ४४५ और उसके बाद), महा० में **विइअ, वीअ** और **विइज्ज** रूप, अ०माग० और जै०महा० में **विइय** और **बीय**, अप० में **बीय = द्वितीय** (§ ८२, ९१,१६५, ४४९)। महा० में **बार = द्वार** (चंड ३, ७, हेच० १, ७९, २, ७९, ११२, हाल, हेच० ४, ४३६), अ०माग० और जै०महा० में **बारवई = द्वारवती** (नायाध० ५२४, १२९६ और उसके बाद, निरया० ७९, द्वार० ४९५, १ और उसके बाद), **विसंतवा = द्विशंतप** (हेच० १, १७७)। महा० में **वेस = द्वेष** (गउड०), महा० और अ०माग० में **द्वेष्य** (हेच० २,९२, गउड०, हाल, पण्हा० ३९७, उत्तर० ३३)। छंद की मात्रा ठीक करने के लिए अ०माग० में **वइस्स** भी आया है (उत्तर० ९६१)। — **ध्व = ब्भ**. जै०महा० में **उब्भ = ऊर्ध्व** (हेच० २, ५९, एर्त्से०), जै०महा० में **उब्भय = ऊर्ध्वक** (पाइय० २३४), महा० में **उब्भिअ** और जै० महा० में **उब्भिय = *ऊर्ध्वित** (रावण०, एर्त्से०), **उब्भेह = *उर्ध्वयत** (एर्त्से० ४०, १५)। इसके साथ-साथ महा०, जै०महा०, शौर०, माग० और अप० में **उद्ध** रूप भी काम में आता है (§ ८३)। अ०माग० और जै०महा० में **उड्ढ** का भी प्रच-

---

* **बे**—दो के लिए गुजराती में चलता है। **द्वा** का **बा** और तब **द्वादश** का **बारस** के माध्यम से **बारह** बनकर अप० से अब तक हिंदी में वर्तमान है। —अनु०

निश्चल (हेच० २, २१ और ७७ , मार्क० पन्ना २५ , गउड० , हाल , रावण० , मृच्छ० ५९, २४ , मुद्रा० ४४, ६ , हेच० ४, ४३६) है, अ०माग० और जै०महा० में **निच्चल** आया है (उवास० , कप्प० , एर्त्से०) । महा० और अ०माग० में **णिच्चेॅट्ठ** = **निश्चेष्ट** (रावण०, निरया०) । महा० मे **दुच्चरिअ**, जै०महा० मे **दुच्चरिय** और शौर० में **दुच्चरिद** = **दुश्चरित** है (हाल , एर्त्से०, महावीर० ११८, ११) , अ०माग० **दुच्चर** = **दुश्चर** (आयार० १, ८, ३, २) है, **दुच्चण** रूप भी है (आयार० १, ८, ३, ६) । जै०महा० और शौर० में **तवच्चरण** = **तपश्चरण** (द्वार० ४९६, १९ , ५०२, ३६ , ५०५, १५ और ३८ , मृच्छ० ६८, ८ और ९ , ७२, ६ , पार्वती० २४, ३ , २५, १९ , २६, १३ , २७, २ और १०) है । — **णहअर** = **नमश्चर** क्रम० २, ११० नहीं है परन्तु ***नभचर** है (§ ३४७) । — महा०, जै०महा० और शौर० में **हरिअन्द** (गउड० , कक्कुक शिलालेख , कर्पूर० ५८, ४) है, जै०महा० का **हरियन्द** रूप (द्वार० ५०३, १६ , हेच० २, ८७ , क्रम० २, ११० [पाठ में **हरिअण्णो** तथा लास्सन ने **हरिअंडो** रूप दिया है]) है, और जिसका माग० रूप **हलिच्चन्द** (चड० ४३, ५) होता है = **हरिश्चन्द्र** नहीं है किन्तु = **हरिचन्द्र**, जैसा कि महा० **हारिअन्द** (गउड०) = **हारिचन्द्र** है । — **चुअइ**=***श्चुतति** (हेच० २, ७७, § २१० का नोट सख्या २ की तुलना कीजिए) अथवा = ***च्युतति** हो सकता है । — महा० में **विंछुअ**, **विंछिअ** और इनके साथ साथ **विच्छुअ** तथा अ०माग० **विच्छुअ** और **विच्छिय** रूप = **वृश्चिक**(§ ५० और ११८) है, इसमें महा० रूप **पिंछ** = **पिच्छ**, **गुंछ** = **गुच्छ** और **पुंछ** = **पुच्छ** की भाँति ही अनुनासिक स्वर का आगमन होता है (§ ७४) । **विंचुअ** रूप समास और सधि के लिए लागू होनेवाले नियम के अनुसार § ५० में वर्णित किया गया है । — पुराना **च्छ**, ***श्च** में बदल जाता था । इस नियम के अनुसार (§ २३३) माग० मे **श्च** बना रह जाता है । इसमें परिवर्तन नहीं होता **अश्चलिअ** = **आश्चर्य** (§ १३८) , **णिश्चअ**= **निश्चय** (मृच्छ० ४०, ४ , पाठ में **णिच्चअ** है) है , **णिश्चल** रूप भी मिलता है (मृच्छ० १३५, २) , **पश्चादो**=**पश्चात्** (वेणी० ३५, १० , जिसे हेच० ने ४, २९९ में उद्धृत किया है , बगाल के सस्करण मे **पच्चादो** रूप है)[२] , **पश्चा** भी दिखाई देता है (मुद्रा० १७४, ८ [पाठ में **पच्छा** है , इस नाटक में यह शब्द देखिए] , चड० ४२, १२ [यहाँ भी पाठ मे **पच्छा** रूप है]) , **पश्चिम** (=पीछे । —अनु०) रूप भी पाया जाता है (मृच्छ० १६९, २२ , [पाठ में **पच्छिम** है], इस नाटक में **पच्चिम** और **पश्चिम** रूप भी देखिए) , **शिलश्चालण**=**शिरश्चालन** (मृच्छ० १२६, ७) । — **श्छ** का **च्छ** हो जाता है , महा० मे **णिच्छलिअ** = **निश्छलित** (गउड०) , अ०माग० मे **णिच्छोडेॅज्ज** = **निश्छोटेयम्** (उवास० § २००) , जै०महा० में **निच्छोलिऊण** = **निश्छोड्य** (एर्त्से० ५९, १३) है ।

१ लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज २६१ और २६४ । — २ हेच० ४, २९९ की पिशल की टीका ।

§ ३०२—नियम के अनुसार **श्क** और **श्ख**, **क्ख** बन जाते है (वर० ३, २९ ,

निष्कम्प (गउड० ; रावण० , शकु० १२६, १४ , महावीर० ३२, २१) , महा० और जै०महा० में **णिक्कारण = निष्कारण** (गउड० , रावण० , द्वार०) , अ०माग० में **णिच्चण=निष्कण** (विवाग० १०२) है। **निक्कंकड=निष्कंकट** (पण्णव० ११८ , ओव०), महा० और शौर० में **णिक्किव=निष्कृप** (पाइय० ७३ , हाल , शकु० ५५, १६ , चड० ८७, २) है। महा०, अ०माग०, शौर० और अप० में **दुक्कर = दुष्कर** (हेच० २, ४ , गउड० , हाल , रावण० , विवाह० ८१७ , उवास० , मृच्छ० ७७, १४ , हेच० ४, ४१४, ४ और ४४१) है , अ०माग० में **निक्खमइ** (§ ४८१) आया है, **निक्खम्म = निष्क्रम्य** (आयार० १, ६, ४, १, कप्प०), **निक्खमिस्सन्ति, निक्खमिंसु** और **निक्खमिन्ताए** रूप भी मिलते हैं (कप्प०) , अ०माग० और जै०महा० में **निक्खन्त** रूप पाया जाता है (आयार० १, १, ३, २ , एत्सें०) , अ०माग० में **पडिनिक्खमइ** है (§ ४८१), अ०माग० और जै०महा० में **निक्खण** देखा जाता है (कप्प० , एत्सें०) , महा० में **णिक्कमइ** भी मिलता है (हाल), **विणिक्कमइ** भी (गउड०) और इसके साथ-साथ **विणिक्खमइ** भी चलता है (गउड०) । इस रूप के सम्बन्ध में हस्तलिपियाँ कभी एक और कभी दूसरा रूप लिखती हैं। शौर० में केवल **णिक्कमदि** रूप है (§ ४८१), **णिक्कमिदुं** भी मिलता है (मुद्रा० ४३, ६), **णिक्कमन्त** भी काम में आया है (मुद्रा० १८६, २), **णिक्कन्त** (मृच्छ० ५१, ५ , ८ और १२), **णिक्कामइस्सामि** (मृच्छ० ३६, २३) रूप भी मिलते हैं , दाक्षि० में **णिक्कमन्तस्स** पाया जाता है (मृच्छ० १०५, २४) ।
—माग० में ष्क का **स्क** हो जाता है और ष्ख, **स्ख** बन जाता है (हेच० ४,२८९) : **शुस्क=शुष्क** , **धणुस्खण्ड=धनुष्खण्ड** । रुद्रट के काव्यालंकार २, १२ की टीका में बताया गया है कि ष्क और ष्ख के स्थान में माग० में **श्क** और **श्ख** वर्ण आ जाते हैं और इस विषय के अनुसार ललितविग्रहराजनाटक में **तुलुश्क = तुरुष्क** (५६५ १४ और १७), **शुश्के = शुष्क**. (५६६, १२) है। हस्तलिपियोंमें **क्ख** और **क्व** पाठ मिलता है। इस प्रकार मृच्छकटिक २१, १७ में **शुक्खे** है, किंतु हस्तलिपि ए. (A) में **शुस्खे** है , १३२, २४ और १३३, १७ में **शुक्ख** रूप आया है , १६१, ७ में **शुक्खा** है , इस नाटक में **शुष्का** और **शुष्कः** शब्द देखिए , १३३, १५ और १६ में **शुक्खावइश्शं** आया है , ११२, ११ में **पोॅक्खलिणीए** और ११३, २२ में **पुक्खलिणीए** मिलता है , १३४, १ , १६५, २२ और १६६, २२ में **णिक्कमदि** और **णिक्कम** साथ ही १३३, २१ में **णिष्कम** और **णिक्खम** रूप मिलते हैं, १७३, ९ में **णिक्किदे** है और १३४, १३ में **णिक्किदं = निष्क्रीतः** है और **निष्क्रीतम्** , ४३, ४ और १७५, १५ में **दुक्कल = दुष्कर** है और १२५, १ और ४ में **दुक्किद = दुष्कृत** और साथ ही **दुक्खिद, दुक्खिद** और **दुःकिद** आदि रूप भी आये हैं। **शुस्क, पोॅस्कलिणी, णिस्कीद, दुस्कल, दुस्किद** आदि-आदि रूप भी पढने को मिलते हैं।

§ ३०३—ष्ट और ष्ठ, **ट्ठ** बन जाते हैं (वर० ३, १० और ५१ , चड० ३, ८ और ११, हेच० २, ३४ और ९० , क्रम० २, ८६ और ४९ , मार्क० पन्ना २१

और ११) : पल्लवदानपत्र में अगिट्ठोम = अग्गिष्टोम (५, १ ; ब्यूमान, एपि-ग्राफिका इंडिका २, ४८४ की तुलना कीजिए), अट्ठारस = अष्टादश (६, ३४), घॅट्ठि = घिष्टि (६, ३२), महा० में इट्ठ = इष्ट (हाल), इट्ठि = इष्टि (गउड० हाल ; रावण०) और मुट्ठि = मुष्टि (गउड० ; हाल ; रावण०) रूप आये हैं। — पल्लवदानपत्र में कट्ठ = काष्ठ (६, ३३) ; महा० में गॉट्ठी = गोष्ठी (गउड०) ; णिट्ठुर = निष्ठुर (गउड० ; हाल ; रावण०) तथा सुट्ठु = सुष्ठु (गउड० ; हाल ; रावण०) है। माग० को छोड़ अन्य प्राकृत भाषाओं में भी यही नियम चलता है। माग० में ष्ट और ष्ठ का स्ट हो जाता है (हेच० ४, २९१ और २९०) : कस्ट = कष्ट ; कोस्टागाल = कोष्ठागार ; शुस्टु = शुष्ठु रूप मिलते हैं। रुद्रट के काव्यालंकार २, १२ की टीका में नमिसाधु बताता है कि व्यंजन समूह में ष के स्थान पर श हो जाता है (§ ३०२ की तुलना कीजिए) : इस प्रकार में कोश्टागाल रूप है (हस्तलिखित प्रतियों में कोस्ठगाल, कोष्ठागाल तथा छपे संस्करण में कास्टगाल रूप मिलता है)। नाटकों की हस्तलिपियाँ अनिश्चित हैं और रूप बदलती रहती हैं। पाठ में बहुधा ट्ठ मिलता है जो अशुद्ध है। स्टेन्त्सलर अपने संपादित मृच्छकटिक में अधिकांश स्थलों पर स्ट देता है। इस प्रकार इस मृच्छकटिक में कस्ट = कष्ट (२९, १८ ; १२७, ११) ; हस्तलिपियों में कष्ट, कट्ठ, कह, वषटूण, पम्मशट्टे और तुस्ट = तुष्ट रूप मिलते हैं (११, ५ ; २१, १७ ; २१, ८ ; ६, १ ; ७९, १७ ; १८ ; ११२, १४ और २१ ; ११३, १९ ; ११३, ७ ; १५१, २५) ; हस्तलिपियों में अधिकांश में तुट्ठ रूप आया है जैसे तुष्ट, तुष्ठ, तुस्ष तुह, तुह ; तुस्ट और तुठ रूप लिखे गये हैं। पणस्टा = प्रनष्टा (१४, ११)। हस्तलिपियों में पणष्ट्रा ; पणस्टा ; पणष्टा और पणष्टा रूप लिखे मिलते हैं। पलामिस्टा = परामृष्टा (१४, २१) ; हस्तलिपियों में पलामिश्ता, पलामिश्ता पलामिष्ठा पलामिष्टा पलामिस्टा, पलामिष्ठा और पलामिष्टा लिखा मिलता है। उपविस्टे ; उपविस्टा और उप्पविस्टम् = उपविष्टा और उपविष्टम् (१४, १ ; २१ १२ ; २१ ; २१)। हस्तलिपियों में उपविस्चे ; उपविट्ठ, उपविस्टे, उपविष्टम्, उपविष्ट, उपविट्ठ, उपविष्टम् ; उपविष्ठा, उपविस्टा उपविष्टा आदि रूप लिखे गये हैं। लस्टिअ = राष्ट्रिय (१२१, १२ ; १२५ २१ ; ११, १३ ; १३८ १४) ; हस्तलिपियों में लट्ठिअ लट्ठिअ लष्ठिअ और लष्टिअ रूप पाये जाते हैं। शयेस्टणम् (११, २१) किन्तु शयेस्टणम भी लिखा मिलता है (१ ७ १२) = सवेष्टनम् ; सवेष्टनेन। हस्तलिपियाँ इस रूप के विषय में भेद की ओर निर्देश करती हैं (स्टेन्त्सलर पेज २४२ और ३ १ ; गौडबोले पेज १२ और १९ तथा ३ १ ४ देखिए) और गौडबोले १२ ; में हस्तलिपियों में शयेष्टणं आदि आदि रूप पाया है। प्रबोधचंद्रोदय में : मिट्ठ = मिष्टम् (४६ १७), पणट्ठस्स = मनष्टस्य (५ ; १४) ; उपविट्ठे = उपविष्टा (५१ २) ; तुट्ठ = तुष्ट (१ १) ; दिट्ठम्त्न (१ ; ५१ १ ; मद्रास्या संस्करण दिट्ठा ; मराठी में विट्ठम्त्र और पूना से संस्करण में विट्ठम्त्र रूप छपा है) है ; मंबरया और मराठी

सस्करणों में इसी प्रकार के रूप आये हैं, पूना में छपे सस्करण में सदा—ट्ठ वाले रूप आये हैं। ब्राकहौस ये रूप नहीं देता। वेणीसहार में **पणट्ठ = प्रनष्ट** (३५, २ और ७) है। यह बिना किसी दूसरे रूप के सदा चलता है, मुद्राराक्षस मे : **पवे॑ट्ठुं = प्रवेष्टुम्** (१८५, ६), किन्तु यह छपा है **पवेठ्ठुं**, उत्तम हस्तलिपियों में और कलकतिया सस्करण १५६, ८ **पविसिदुं**, इस स्थान पर **पविस्सिदुं** है (कहीं कहीं **पविशिदुं** रूप भी है) आदि-आदि। — **ष्ठः** मृच्छकटिक मे : **को॑श्टके = कोष्ठक** (११३, १५), हस्तलिपियों में **कोघटके** (?), **कोष्ठके, को॑ट्ठके, कोशके** और **कोष्ठके** रूप मिलते हैं, दूसरी ओर वेणीसहार ३३, ६ मे **गोट्ठागाले** रूप आया है, कलकतिया सस्करण पेज ६९, १ में **कोट्ठागाले** है तथा हस्तलिपियों मे अधिकाश में **कोट्ठागाले** मिलता है। इनमें हेमचद्र के सभवतः इन्हीं हस्तलिपियों से लिये गये रूप **को॑स्टागालं** (हेच० ४, २९०) का कही पता नही चलता और न कही नमिसाधु द्वारा उद्धृत **को॑श्ठागालं** का। **पिश्ति** और **पुश्टि = पृष्ठ** ([इसकी फारसी आर्य शब्द **पुश्त=पीठ** से तुलना कीजिए। —अनु०], ७९, ९, १६५, ९), हस्तलिपियों मे **पिट्ठि** और **पुट्ठि*** रूप मिलते हैं तथा वेणी-सहार ३५, ५ और १० में यही रूप है . **पिट्ठदो 'णुपिट्ठं = पृष्ठतो' 'तुपृष्ठम्** यहाँ **पिस्टदो अणुपिस्टं** रूप पढा जाना चाहिए। **शुश्टु = सुष्ठु** (३६, ११, ११२, ९, ११५, १६, १६४, २५) है, हस्तलिपियाँ हेमचद्र द्वारा उद्धृत **शुस्टु** रूप के विपरीत **सुट्ठु** और **शुष्टु** रूप देते है, **शौ॑ट्टकं** (२१, २०) के स्थान पर **शौ॑स्टुकं=*सुष्ठुकम्** पढा जाना चाहिए, हस्तलिपियों में **शोणुक्कं, शोणुकं, शौ॑ट्टिकम्, शौ॑ट्टुकं** और **शोस्तकं** रूप लिखे गये हैं, कलकतिया सस्करण में **शौट्टिकं** रूप छपा है जिसे = **स्वस्तिकम्** वनाकर स्पष्ट किया गया है। **शेश्टि = श्रेष्ठि**–(३८, १) है, हस्तलिपियों में **शेट्ठ**–रूप मिलता हैं, जैसा कि मुद्राराक्षस २७५, ५ में। कलकतिया सस्करण २१२, १० में **शेट्ठि** [इस रूप से द्रविड भाषाओं में **सेठ** के स्थान पर **चेट्टि** और फिर इससे **चेट्टियर** बना है। —अनु०], छपा है, आदि-आदि। **चिष्ठदि = तिष्ठति** में वररुचि० ११, १४, हेमचद्र ४, २९८ के अनुसार **ष्ठ** बना रहता है। स्टेन्त्सलर अपने द्वारा सपादित मृच्छकटिक में सर्वत्र **चिष्टदि** रूप देता है (उदाहरणार्थ, ९, २२ और २४, १०, २ और १२, ७९, १६ ; ९६, ३, ९७, २ आदि-आदि), किंतु हस्तलिपियों मे अधिकाश में **चिष्ठ, चिष्ट** और बहुत ही कम स्थलों मे **चिश्ट** रूप भी लिखा देखने में आता है। प्रबोधचद्रोदय ३२, ११ और मुद्राराक्षस १८५, ८ तथा २६७, २ में **चिट्ठ–,चिट्ट–**और **चिठ्ठ** उक्त नाटकों के नाना सस्करणों में आये हैं। क्रमदीश्वर ५, ९५ में छपे सस्करण में **चिट्ट** छपा है और लास्सन के इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३९३ में **चिट्ठ** है। क्रमदीश्वर के अनु-सार पै० में भी यही रूप है। वाग्भटालंकार २, २ की सिंहदेवगणिन् की टीका में **चिट्ठ** छापा गया है। हेमचद्र ४, ३१३ के अनुसार *ष्ठान = करके के स्थान पर पै०

* कुमाउनी में पीठ को पुठि कहते है। इनसे यह पता चलता है कि बोलचाल में व्याकरण की चिंता कम की जाती थी और गुजराती में इसका शेठ और हिंदी में सेठ है। — अनु०

(वर० ८, ४० , हेच० ४, २२१ , क्रम० ४, ६७) । इस प्रकार महा० मे **वेढिअ** और **आवेढिअ** रूप मिलते हे (हाल), अ०माग० मे **वेढेमि** (उवास० § १०८), **वेढेइ** (नायाध० ६२१ , उवास० ११० , निरया० § ११ , विवाह० ४४७), **वेढेॅन्ति** (पण्हा० ११२) , **उव्वेढेज्ज वा निव्वेढेज्ज वा** (आयार० २,३,२,२), **वेढित्ता** (राय० २६६), **वेढावेइ** (विवाग० १७०) और **आवेढिय** तथा **परिवेढित** रूप पाये जाते हे (ठाणग० ५६८ , नायाध० १२६५ , पण्णव० ४३६ , विवाह० ७०६ और उसके बाद, १३२३), जै०महा० मे **वेढेॅत्ता, वेढिय***, **वेढिउ, वेढेउं** (कालका०), **परिवेढिय** (ऋषभ० २०), **वेढियय** (पाइय० १९९), **वेढाविय** और **परि-वेढाविय** (तीर्थ० ७, १५ और १७) रूप देखने मे आते हैं , शौर० मे **वेढिद** (मृच्छ० ४४, ५ , ७९, २० [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए , इस नाटक में यह शब्द देखिए]) , महा०, अ०माग० और शौर० मे **वेढ = वेष्ट** (गउड० , हाल , रावण० , अणुओग० ५५७ , जीवा० ८६२ , नायाध० १३२३ , १३७० , राय० २६६ , बाल० १६८, ६ , २६७, १) , महा० में **वेढण = वेष्टन** (हाल , रावण०) है , माग० मे **शवेढण** रूप देखने में आता है (मृच्छ० ११, २२ , १२७, १२ , [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , § ३०३ भी देखिए) । अ०माग० में **वेढिय** (आयार० २, १२, १ , २, १५, २० , अणुओग० २९ , पण्हा० ४९० और ५१९ , ठाणग० ३३९ , नायाध० २६९ , विवाह० ८२३ , जीवा० ३४८ , ६०५ , राय० १८६ , नदी० ५०७ , दस० नि० ६५१, १० , ओव०) , महा० और अ०माग० में **आवेढ** (रावण० , पण्हा० १८५) आया है और महा० में **आवेढण** भी मिलता है (गउड०) । इसी प्रकार बने हुए नीचे लिखे शब्द भी हैं : अ०माग० में ***कोट्ठ** और ***कुट्ठ** से **कोढ = कुष्ट** निकला है, **कोढि** [कुमाउनी में इससे निकले **कोढि–** और **कोढ़ि** रूप चल्ते हैं], **कोॅट्ठि–, कुट्ठि–** और **कोढिय** के साथ साथ चलता है और इन रूपों से ही निकला है = ***कुष्टिक** (§ ६६) । अ०माग० मे **सेढि, *सेट्ठि** और ***सिट्ठि** से निकलकर = **श्लिष्टि**, इस शब्द के अन्य रूप **सेढीय, अणुसेढि, पसेढि** और **विसेढि** है (§ ६६) । अ०माग० और जै०शौर० मे **लोढ = लोष्ट** (दस० ६२०, १४ , पव० ३८९, १०), इसके साथ साथ शौर० में **लोट्ठक** रूप है (मृच्छ० ७९, २१), माग० मे **लोस्टगुडिआ** रूप मिलता है (मृच्छ० ८०,५) । नियमानुसार बने अ०माग० रूप **लेट्ठु = लेष्टु** (पण्हा० ५०२ , ओव० , कप्प०), जै०महा० में **लेट्ठुय = लेष्टुक** (एत्सें०), शौर० में **लेट्ठुआ=लेष्टुका** (मृच्छ० ७८, १२) । इन रूपों के साथ **लेड्डुक्क** भी मिलता है (देशी० ७, २४ , पाइय० १५३) जिसमें § १९४ के अनुसार **क** का द्वित्व हो गया है । इसके अतिरिक्त **ह** कार का लोप हो जाने पर **लेड्डु** रूप भी देखने में आता है (पाइय० १५३), **लेड्डुअ** रूप आया है (देशी० ७, २४ , पाइय० १५३), **लेड्डुक्क** भी मिलता है (देशी० ७,२९ [यहा पाठ में **लेड्डुक्को लम्पडलुट्ठपसु लोढो अ**, मेरे विचार में **लेड्डुक्क** का एक अर्थ **लोढा** हो सकता है, अन्यथा **लम्पड = लम्पट** और **लुट्ठअ** में **लुट्ठअ** को **लोष्टक** या **लेष्टुक** का

---

* वेढिय रूप **वेढिय** और **वेढुअ** रूप में कुमाउनी बोली में प्रचलित है । —अनु०

रूप समझना उचित इसलिए नहीं जान पड़ता कि क्षुद्र आटे या रोग के अर्थ में अभी तक देखने में नहीं आया। भले ही यह छेरे के लिए आया हो। छोड़ने या इसी के छोड़ने से लेड्डक का अर्थ छोड़ा भी हो जाता है। —अनु]) = पाली लेड्डु और अ माग रूप लेट्टु भी जो लेट्ठु लिखा जाता है (§ २२६ आयार १,८,३,१ २, १, ३, ८ ५, २ २, १, ८; सूय ६८७ ६९२ दस ६१८, १४ १३, १०) इसी से संबंधित है। कोट्टइल्ल = कोष्ठक, कुप्पल = कापृ और कोल्हाहल = *कोष्ठाफल (§ २४२)। बिना स्वर को दीर्घ किये यही ध्वनि परिवर्तन महा में मरट्ठी = महाराष्ट्री अ माग में मट्ठ = मृष्ट; उस्सठ = उत्सृष्ट और निसट्ठ = निसृष्ट में पाया जाता है महा में विसट्ठ = विसृष्ट अ माग और जै महा में समोसढ = समवसृष्ट (§ ६७)। § ५६४ की भी तुलना कीजिए।

§ ३ ५—ष्प और ष्फ, प्फ रूप धारण कर लेते हैं (वर ३, १५ और ५१ हेच २ ५३ और ९ ; क्रम २ १ और ४९ मार्क २ और १९) ; पल्लवदानपत्र में पुफ जिसका तात्पर्य है पुप्फ = पुष्प (६, ३४), महा अ माग, जै महा और शौर में भी पुप्फ रूप आता है (हाल रावण आयार २ १ ३, ९ उत्तर ९८१ ; कप्प एत्सें हास्या ११, १२), शौर में पुप्फक = पुष्पक (मृच्छ ६८, ९) ; शौर और माग मे पुप्फकरण्डअ = पुष्पकरण्डक (मृच्छ ९३, ९; १ ७, २ १ २४) ; अप मे पुप्फवइ= पुष्पवती (हेच ४ ४३८,३)। सप्फ = शष्प (माम ३ ३५ हेच २ ५३) है। 'आंसुओं' के अर्थ में § ८७ और १८८ के अनुसार बाप्प शब्द का उदात्त रूप के द्वारा बाह बन जाता है तथा 'धुएँ' के अर्थ में इसका रूप बप्फ हो जाता है (वर ३, ३८ हेच २ ७ मार्क पन्ना २५)। इस प्रकार महा, जै महा शौर और अप में बाह (=आंसू ; गउड हाल रावण अच्चुत ६ ; विक्रमो ५१ ८; ५३ ६; ५४ १ कर्पूर ४३, १२; ४८ ६ बाल १५३, १६ एत्सें ८ ९ [यहां बाह पाठ है] द्वार ५ ७,१६; समर ८ १४; ऋषभ १२ मुच्छ १२९ १५; धूर्त ८२ ११ मालती ८९ ७; उत्तर ७८,१ रत्ना ११८, २६; बाल २८१ २; कपूर ८१ २; मल्लिका १६१ ११ १९६, १८ [पाठ म बाह है] चैतन्य १८ १ [पाठ में बाह है]; हेच ४, ३९५, २; विक्रमो ५९, ६ ६ १७ ६१ ५; ६१ २१); शौर मे बप्फ पाया जाता है (= धुआं ; जीवा ४१ १)। बप्फ के स्थान पर मार्कण्डेय पन्ना २९ म बप्प रूप सिखाता है जैसा कि पाली म है और उसने जिस पाद में शौर पर लिखा है उसम पन्ना ६८ म बताया है कि शौर में आंसुओं के अर्थ में बप्प का भी प्रयोग किया जा सकता है। निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि यह बप्प रूप बप्फ के स्थान पर भूल से हस्तलिपियों म लिखा गया था नहीं ! वेणीसंहार ६२ ११; ६३ १० ७१ ८ मे बप्फ रूप छापा गया है, किंतु १८७ के कलकतिया संस्करण मे बाप्प और बाप्प छपा है; मुद्राराक्षस २६, ४ में पाठ में बाह आया है। सबसे

अच्छी हस्तलिपियों में **बापा** देखा जाता है। पै० मे **वाप्फ** रूप है [इस **वाप्फ** की तुलना फारसी रूप **भाप** से कीजिए। —अनु०], संवत् १९२६ के कलकतिया संस्करण के पेज २१४, ६ मे **बाप्प** रूप छपा है, रुक्मिणीपरिणय ३०, १ पाठ में **वप्फ** रूप मिलता है, यही रूप मल्लिकामारुतम् ८५,१४, १२४,२२ [यहाँ पाठ में **वप्फ** रूप है] में पाया जाता है। **वप्प** अथवा **वप्फ** की ओर नीचे दिये गये रूप भी निर्देश करते हैं: **वस्प, वास्प** और **वाप्फ**। शकुन्तला १४०, १३ और प्रियदर्शिका ४२,२ की टीका में भी **वप्फ** रूप आया है। कलकतिया संस्करण ४७, १ में **वप्प** मिलता है। चैतन्यचद्रोदय ४४, ८ में **वास्प** रूप पाया जाता है। शकुन्तला ८२, ११ की टीका में (हस्तलिपि जेड (Z) में **वाप्फ** आया है, इसलिए शौर० में भी **वप्फ** रूप शुद्ध माना जाना चाहिए) **वप्प** की भी सम्भावना है। इनके साथ साथ 'आसुओं' के अर्थ में **वाह** रूप भी शुद्ध माना जाना चाहिए। पाइयलच्छी ११२ में 'आसुओं' के अर्थ में **वप्फ** और **बाह** दोनो रूप दे दिये गये है। —सधिया कभी **प्प** और कभी **प्फ** रूप देती हैं। एक स्थिर रूप उनमें नहीं दिखाई देता, किन्तु यह स्पष्ट है **प्प** का बोलबाला है : अ०माग० और जै०महा० रूप **चउप्पय,** अ०माग० **चउपय** और अप० **चउपअ = चतुष्पद** (§ ४३९), शौर० में **चदुप्पध =चतुष्पथ** (मृच्छ० २५,१४, पाठ में **चउप्पह** आया है) है। अ०माग० में **दुप्पधंसग = दुष्प्रधर्षक** (उत्तर० २८६), महा० में **दुप्परिइअ=दुष्परिचित** (रावण०), महा० और जै०महा० में **दुप्पेच्छ** और शौर० में **दुप्पेक्ख=दुष्प्रेक्ष्य** (रावण०, एर्त्से०, ललित० ५५५,११, प्रबोध० ४५,११) है। महा० में **णिप्पच्छिम, णिप्पच्च** और **णिप्पिवास = निष्पश्चिम, निष्पच्च** और **निष्पिपास** (हाल), **णिप्पक्ख = निष्पक्ष** (गउड०), **णिप्पअम्प, णिप्पसर** और **णिप्पह = निष्प्रकम्प, निष्प्रसर** तथा **निष्प्रभ** (रावण०), अ०माग० में **निप्पंक = निष्पंक** (पण्णव० ११८; ओव०), महा० में **णिप्पण्ण=निष्पन्न** के साथ साथ (हाल), महा० में एक साधारण[1] बोलचाल का रूप **णिप्फण्ण** भी चलता था। जै०महा० और अ०माग० में **निप्फन्न** रूप है (रावण०, एर्त्से०, कालका०, ठाणंग० ५२५, दस० नि० ६३३, २०, ६५७, ५, नायाध०, कप्प०), **निप्फेस = निष्पेष** (हेच० २, ५३), अ०माग० में **निप्पाव = निष्पाव** (ठाणग० ३९८) किन्तु बार बार आनेवाला रूप **निप्फाव** (भाम० ३,३५, हेच० २, ५३, सूय० ७४७, पण्णव० ३४), जै०महा० में **निप्फाइय=निष्पादित** (एर्त्से०), महा० और शौर० में सदा ही **णिप्फन्द** रूप आता है। अ०माग० **निप्फन्द,** जो **= निष्पन्द** के रखा जाना चाहिए (हाल, रावण०, अत० ४८, नायाध० १३८३, उवास०, कप्प०, महावीर० १४, २०, मल्लिका० ८५, १४, ८७, ९, १२४, ६, १५४, २१, २२१, १२, चैतन्य० ४३, ४)। — **ष्फ = प्फ** : महा० में **णिप्फुर = निष्फुर** (गउड०), महा० और शौर० में **णिप्फल** और जै०महा० में **निप्फल = निष्फल** (हाल, रावण०, द्वार० ५०१, ३०, ऋषभ० १४, ललित० ५५५,८, मृच्छ० १२०,७, मुद्रा० २६६,२, चंड० ८, ११, मल्लिका० १८१, १७, २२४, ५)। — माग० में **ष्प** का **स्प**

और ष्फ का स्फ हो जाता है (हेच ४, २८९) : शस्पकवल = शप्पकवल। पिस्फल=निष्फल है। रुद्रट के काव्यालंकार २,१२ की टीका में नमिसाधु ने बताया है कि टक स्पों के स्थान में ष्प और ष्फ लिखा जाना चाहिए। मृच्छकटिक में पुष्फकलण्ड=पुष्पकरण्ड (१११, २), पुष्फकलण्डअ रूप भी मिलता है (९६, १८ ; ९९, ४ १ , २१ १५८,२२), पुष्फकलण्डक भी देखा जाता है (१२९, ५ ; १३२, २ ; १३३, २ १४ , ८ और १४, १४६, १६ १६२, १८ १७३ ११)। हस्तलिपियों में भाविक पुष्प और भाविक पुष्फ मिलते हैं। ११६, ७ में शुप्पे ष्कर्ण=शुष्पे स्यः, कहीं शुप्पे ष्छे भी पाया जाता है। इस स्थान पर पुस्य और शुस्पे स्के रूप पढ़े जाने चाहिए।

१ शकुन्तला ९ ११ के अनुवाद में एस गौल्दश्मित्त इस विषय पर ठीक लिखा है ; गो गे आ १४८ पेज ३१९ में पिशल ने जो मत दिया वह अशुद्ध है।

§ ३ ६—स्क और स्ख, क्ख बन जाते हैं (वर ३, २९ और ५१ चंड ३, ३ हेच २, ४ और १० ; क्रम २, ८८ और ४९ ; मार्क० पन्ना २४ और २९) : महा , अ माग० और जै महा में खन्ध=स्कन्ध (गउड हाल रावण आयार २, १, ७, १ और ८, ११ उवास नायाध ; निरया० ; ओव कप्प ; एत्सें) पल्लवदानपत्रों में खंधकोंडिस=स्कन्दकुण्डिक (६, १९) महा०, अ माग , जै महा , शौर और अप में खम्भ=स्कम्भ (गउड ; रावण अच्चुय ४२ और ५१; सूय १६१ जीवा ४४८ और ४८१; पण्हा २७१ सम १ १ ; विवाह ६५८ ६६ और ८२१ ; राय ५८ और १४४ नायाध § २१ और १२२ ; वेब १ ५४ ; ओव , एत्सें मृच्छ ४ , २२ और ६८, १८, विद्ध ६ २ धूर्त ६,५ ; हेच ३ ३९९) है। व्याकरणकार (वर ३, १४ माम ३ ५ चंड ३, ३ और १९ हेच २, ८७ २, ८ और ८९ ; क्रम २ ७७ ; मार्क पन्ना २१) खम्भ रूप को स्तम्भ से निकला बताते हैं क्योंकि वे संस्कृत को ही प्राकृत का आधार मानते हैं। किन्तु यह स्वभावतः वैदिक स्कम्भ का रूप है। अयक्खम् = अयस्कम् (हेच २, ४) ; अ माग में अमणक्ख और समणक्ख = अमनस्क और समनस्क (सूय ८४२) मक्खर = मस्कर (क्रम २,८८) है। हेमचन्द्र २ ५ और मार्कण्डेय पन्ना २४ के अनुसार स्कन्द में ह कार कभी-कभी नहीं रहता : कन्द और साथ साथ खन्द रूप भी चलता है। नियम यह है कि सन्धि होने पर ह-कार नहीं रहता (§ ३ २) : यक्कार = भयस्कार (हेच १, १६६) अ माग और जै महा में नमोक्कार = नमस्कार (हेच २, ४ ; आयार २ १५ २२ एत्सें कालका), इसके साथ-साथ णमोयार और णमयार (चंड ३ २८ पेज ५१) रूप भी चलते हैं तथा महा में णमक्कार रूप भी देखा जाता है (गउड) ; § १९५ की तुलना कीजिए अ माग और जै महा में तक्कर = तस्कर (पण्हा १२ ; नायाध १४१७ उत्तर २९९ ; उवास ; ओव , एत्सें), अ माग रूप तक्करत्तण भी मिलता है (पण्हा १४०);

शौर० मे **तिरक्कार**=**तिरस्कार** (प्रबोध० १५, १), शौर० में **तिरक्करिणी**= **तिरस्करिणी** (शकु० ११९,३) है। काश्मीरी संस्करण में यही पाठ है (११२,१४)। परन्तु बोएटलिक द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण ७७, ९ में और दक्षिण भारतीय संस्करण २५६, १७ में हस्तलिपि में **तिरक्खरणी** पढते हैं, जैसा कि बौ`लें`नसेन ने विक्रमोर्वशीय २४, ४, ४२, १९ में किया है, यह उसने अपनी श्रेष्ठ हस्तलिपियों के विपरीत छापा है क्योंकि उनमे **तिरक्करिणी** पाठ है, बबइया संस्करण १८८८ के ४१, ६ और ७२, १ मे शुद्ध पाठ **तिरक्करिणी** है, शकुन्तला और विक्रमोर्वशीय इस विषय पर अनिश्चित है। वे कभी **तिरक्खरिणी** और कभी **तिरक्करिणी** पाठ देते है। महा० में **सक्कअ**, अ०माग० और जै०महा० में **सक्कय** और शौर० में **सक्कद**= **संस्कृत**, अ०माग० और जै०महा० में **असक्कय**=**असंस्कृत** है, महा० में **सक्कार** =**संस्कार**, जै०महा० में **सक्कारिय**=**संस्कारित** (§ ७६) है। अ०माग० में **पुरक्कड**=**पुरस्कृत** (सूय० ६९२) है, इसका एक रूप **पुरकेड** भी है (सूय० २८४ और ५४०, दस० ६२७, ७ और ६३३, १७, ओव०)। इसके साथ साथ अ०माग० में **संखय** (§ ४९) और **संखडि** रूप=**संस्कृति** (कप्प०) है। **उवक्खड** =**उपस्कृत** (उत्तर० ३५३), **पुरेक्खड** रूप भी देखा जाता है (पण्णव० ७९६ और उसके बाद)। § ४८ और २१८ की तुल्ना कीजिए। **णिक्ख*** (=चोर : देशी० ४, ३७)=***निष्कि** इसी नियम से सम्बन्धित है। अ०माग० में **नक्क*** (=नाक. देशी० ४, ४६, आयार० २, ३, २, ५, सूय० २८० और ७४८) =***नास्क** है जो वैदिक **नास्** का रूप है और जिसका लिंग बदल गया है। इससे **नक्कसिरा** (=नाक के छेद - नथने. पाइय० ११४) भी सम्बन्धित है। — **स्ख**= **क्ख** : महा० और जै०महा० मे **खलइ**, शौर० में **खलदि**=**स्खलति** (रावण०, द्वार० ५०४, ३४, शकु० १३१,६), ढक्की में **खलन्तआ** रूप आया है (मृच्छ० ३०, ८), महा० में **खलिअ** मिलता है, जै०महा० में **खलिय** और शौर० में **खलिद** =**स्खलित** (गउड०, हाल, रावण०, एर्त्से०, विक्रमो० ३५,९), महा० और शौर० में **परिक्खन्त** रूप भी पाया जाता है (हाल, रावण०, मृच्छ० ७२, ३), महा० में **परिक्खलिअ** आया है (गउड०, रावण०)। हेच० ४, २८९ के अनुसार माग० में **स्क** और **स्ख** ज्यों के त्यों बने रहते हैं : **मस्कलि**=**मस्करित्**; **पस्खलदि**= **प्रस्खलति** है। रुद्रट के काव्यालंकार की नमिसाधु की टीका के अनुसार **स** का **श** हो जाता है। पाठों में **क्ख** पाया जाता है. **खलन्ती** रूप है (मृच्छ० १०, १५), **पक्खलन्ती** रूप भी आया है (मृच्छ० ९, २३, १०, १५) और **खन्धेण** भी देखा जाता है (मृच्छ० २२, ८)। इस रूप में फेरफार नहीं है। **हत्थिक्खन्धं** (शकु० ११७, ४) जहाँ हस्तलिपि आर (R) में **हत्थिस्कन्धं** है। इनके रूप **स्खलन्ती**, **पस्खलन्ती**, **स्कन्धेण** और **हष्तिस्कन्धं** होने चाहिए। सभी अवसरों पर यही नियम लागू होना चाहिए।

§ ३०७—**स्त** और **स्थ**, **त्थ** बन जाते हैं (वर० ३, १२ और ५१, हेच०

---

* णिकव का नको रूप होकर कुमाउनी में 'बुरे आदमी' के अर्थ में आता है। —अनु०

२, ४५ और ९० ; क्रम २, ८५ और ८९ ; मार्क पन्ना २१ और १९)। महा० में थण = स्तन (गउड० ; हाल ; रावण०), थुइ = स्तुति (गउड० ; रावण०), थोअ = स्तोक (गउड० ; हाल ; रावण), अत्थ = अस्त (गउड० ; रावण) और = मत्थ (रावण०), मत्थि = मस्ति (§ ४९८) है। पत्थर = प्रस्तर (हाल), हत्थ = हस्त (गउड० ; हाल ; रावण) पल्लवदानपत्रों में वत्थवाण = वास्तव्यानाम् (६, ८) और सहत्थ = स्वहस्त (७, ५१) है। अन्य प्राकृत भाषाओं में भी यही नियम चलता है। संधिवाले रूपों में नियमानुसार ह-कार नहीं आता (§ ३ १) : अ० माग० और जै० महा० में दुत्तर = दुस्तर (आयार० २, १६, १ ; सूय० २११ ; पत्तें); महा० में दुत्तार = दुस्तार, दुत्तारत्तण = *दुस्तारत्वम (रावण) अ० माग० में सुदुत्तार रूप मिलता है (ओव०)। अ० माग० में निस्तुस = निस्तुस (पण्हा० ४१५) है। इसी प्रकार महा० और अ० माग० में समत्त = समस्त (हेच० २, ४५ ; रावण ; नायाध० ; ओव० ; कप्प०)। इसके साथ साथ महा०, जै० महा० और शौर० में समत्थ भी काम में आता है (रावण ; पत्तें ; कालका० ; महा० २७, ६ ; २८, १ ; किन्तु बंबइया संस्करण ५९, ४ तथा ६२, १ में समत्त रूप दिया गया है)। क्रमदीश्वर २, ११ में उत्थड = उत्स्तट बताता है किन्तु इसका स्पष्टीकरण जैसा कि ब्लस्सन[1] ने पहले ही बता दिया था उद रूप से होता है (§ ४ ७ [इस § में उद का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः यह छापे की भूल हो और यह प्रसंग किसी दूसरे § में आया हो। —अनु०])। थेण = स्तेन के साथ साथ (= चोर : हेच० १, १४७ ; देशी० ५, २९ ; पाइय० ७२) थेणिल्लिअ (= लिया हुआ ; भीत : देशी० ५ ३२ [देशी नाममाला में लिखा है थेणिल्लिअं हरिअपीएसु और टीका में हेमचन्द्र ने कहा है थेणिल्लिअं हृतं भीतं च, इस कारण ज्ञात होता है थेणिल्लिअ का अर्थ रहा होगा 'चोरी में खोयी गयी संपत्ति'। इस का अर्थ बंगाल में आज भी 'हाय' होता है, इसलिए थेणिल्लिअ = 'हायधन'। कुमाउनी में भी हृत से प्राकृत में यो हरिअ रूप बना है उसका यही तात्पर्य है। हरिइ रूप का अर्थ है 'खोया हुआ या चोरी में गया माल'। इस निदान के अनुसार थेणिल्लिअ का सम्बन्ध थेण से स्पष्ट हो जाता है। —अनु०])। थूण भी है (§ १२९ [थूण का अर्थ देशीनाममाला में तुरग है। इससे पता लगता है कि § १२९ के अनुसार यह शब्द तूण से निकला होगा। तुरग अर्थात् 'शीघ्रता से जानेवाला'। हेमचंद्र १ १४७ में दिया है। ऊ स्तेन था " टीका में दिया है थूणा थणा इसमें अवश्य ही हेमचंद्र दो भिन्न-भिन्न शब्दों की गड़बड़ी से भ्रम में पड़ गया है क्योंकि थण रूप तो स्तेन का प्राकृत है पर उसके समय में चोर को थूण भी कहते होंगे और उसने समझ लिया कि जनता के मुख में ए का ऊ हो गया होगा। पर वस्तुस्थिति यह है कि चोर के नामकरण के तरह में भाग निकलने के कारण उसका एक नाम थूण पड़ गया होगा, जो असंभव है])। अ० माग० और जै० महा० में बिना अपवाद के तेण रूप काम में आता है (आयार० २, १, ३ ४ ; २ १ १ और १ २ ४ १, ८ पण्हा० ११२ और उसके

वाद , सम० ८५ , उत्तर० २२८ , ९९० , दस० ६२३, ३६ और ४० , ६२४, १० , ६२७, ३४ , उवास० , आव० एर्त्से० ४४, ७), अ०माग० में **अतेण = अस्तेन** रूप पाया जाता है (आयार० २, २, २, ४), **तेण** है (ओव०), **तेणिय** रूप भी काम में आया है (जीयक० ८७ , कप्प०) जो = **स्तैन्य** है। **थेण** का **तेण** से वही सम्बन्ध है जो **स्तायु** का **तायु** से है। **तेन** (= चोरी) रूप जैन लोगों की सस्कृत भाषा में भी ले लिया गया है[२]। हेच० २, ४६ और मार्क० पन्ना २१ के अनुसार **थव = स्तव** के साथ साथ **तव** भी काम में लाया जा सकता है। वर० ३, १३ , हेच० २, ४५ और मार्क० पन्ना २१ में बताया गया है कि **स्तम्ब** का रूप **तम्ब** हो जाता है। — **स्थ = त्थ** : महा० में **थउड = स्थपुट** (गउड०), **थल = स्थल** (गउड० , हाल), **थिर = स्थिर** (गउड० , हाल), **अवत्था = अवस्था** (हाल , रावण०) और शौर० में **काअत्थअ = कायस्थक** (मृच्छ० ७८, १३)।

१. इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए § ८२, पेज २७१। — २. ए. म्युलर, बाइत्रैगे, पेज १७।

§ ३०८—दत्य **त्थ** के स्थान पर कभी-कभी **स्त** और **स्थ** के लिए मूर्धन्य **ट्ठ** आ जाता है। बीच-बीच में **त्त** और **ट्ठ** दोनों रूप पास पास में ही एक साथ देखने मे आते हैं और एक ही प्राकृत बोली के एक ही धातु से निकले नाना शब्दों के भिन्न-भिन्न रूपोंमें भी यह प्रक्रिया चलती है। परिणाम यह हुआ कि इसका नियम स्थिर करना असम्भव हो गया है कि कहा **त्थ** ध्वनि आनी चाहिए और कहा **ट्ठ**। महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **अट्ठि = अस्थि** (वर० ३, ११ , हेच० २, ३२ , क्रम० २, ६९ , मार्क० पन्ना २१ , गउड० , हाल , अणुत्तर० ११ और २२ , आयार० १, १, ६, ५ , २, १, १, २ , ३, ४ , सूय० ५९४ , विवाग० ९० , विवाह० ८९, ११२, १६८ , १८३ , २८० , ९२६ , ठाणग० ५४ और उसके वाद , १८६ और ४३१ ; उवास० , ओव० , कप्प० , एर्त्से० , चड० ८७, ९), महा० में **अट्ठिअ** और जै०महा० में **अट्ठिय = अस्थिक** (हाल , आयार० २, १, १०, ६), शौर० में **अट्ठिअ = अस्थिज** (मृच्छ० ६९, १२ , यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए), अ०माग० में **बहुअट्ठिय** रूप भी देखनेमें आता है (आयार० २, १, १०, ५ और ६)। — **स्तम्भ** के दो रूप बनते हैं—**थम्भ** और **ठम्भ**। यह केवल तब होता है जब इसका अर्थ 'अस्पन्द' या 'अटलता' होता है (हेच० २, ९)। मार्कंडेय पन्ना २१ में केवल **थम्बम्भ** रूप आया है और महा० में इसी का व्यवहार है (रावण०) , जै०महा० में **गईथम्भ = गतिस्तम्भ** रूप मिलता है (एर्त्से० ८२, २१), **मुहत्थम्भ = मुखस्तम्भ** भी है (एर्त्से० ८२, २२), शौर० में **ऊरुत्थम्भ** रूप देखा जाता है (शकु० २७, १ , प्रिय० १७, १२)। 'खभे' के अर्थ में महा०, अ० माग० और शौर० में केवल **थम्भ** शब्दका प्रयोग होता है (चड० ३, ११ , हेच० २, ८ , रावण०, विवाह० १३२७ , मालवि० ६३, १ , विद्ध० ७४, ७ , [हेमचद्र २, ८ में बताया गया है कि काठ आदिका खम्भा होनेपर **खम्भ** और **थम्भ** रूप काम में

पाये जाते हैं स्त के स्थान पर स्स आ जाने का अर्थ 'काशादिमय' समझा है। —अनु०])। थम्मिसाइ = स्तभ्यते के साथ-साथ हेमचन्द्र २, ९ में ठम्मिज्जइ रूप भी सिखाता है [हेमचन्द्र ने पिशल के स्तभ्यते के स्थान पर स्तम्भ्यते रूप दिया है, हस्तलिपि बी (B) में स्तम्भ्यते भी लिखा है। —अनु])। बहुत अधिक उदाहरण इनस थ-वाले ही मिलते हैं, जैसे महा में थम्मिम, अ०माग और जै महा में थम्भिय (गउड ; नायाध ओव कप्प एर्से कालका) पाये जाते हैं महा में उत्तम्भिज्जइ और उत्तम्भिज्जन्ति रूप भी देखने में आते हैं (गउड ; रावण); महा में उत्तम्भिअ रूप भी है (हाल रावण०); और में उत्तम्भिद् का प्रयोग है (मृच्छ ४, ७); अप रूप उट्ठम्भइ में एक ही मूर्धन्य ठ-कार का व्यवहार किया गया है (हेच ४, ३९५, १)[१]। स्तम्भ के विषय में § ३ ६ देखिए। — थेर के साथ-साथ बहुधा ठेर भी पाया जाता है = स्थविर (§ १६६) है। — अ माग में तत्थ = त्रस्त के साथ-साथ (उवास०), महा० में उत्तत्थ (हाल) संतत्थ (गउड) देखने में आते ही हैं किंतु हेमचन्द्र २, ११६ के अनुसार तट्ठ रूप भी चलता है। महा में हित्थ (हाल रावण) और माहित्थ रूपों को व्याकरणकार (वर ८ ६२ ; परिशिष्ट ए. (A) ९७ ; हेच २ १३६ देशी ८ ६७ ; पाइय २६ त्रिवि १, १, ११२) इसी त्रस्त से निकला बताते हैं। एस गौल्दश्मित्त[१] हित्थ को भीष् से जोड़ता है। वेबर[२] इसे त्वरत या अधस्तात् से सम्बन्धित मानता है। इस अधस्तात् से महा , अ माग० और जै महा हेट्ठ और हिट्ठ बनते हैं (§ १ ७)। होएफर का विचार था कि त्रस्त के आरम्भिक वर्ण त का ह-कारयुक्त हो जाने के कारण हित्थ रूप बन गया। जनता में प्रचलित बोली में यह रूप चला गया था और हित्थ देशीभाषा में भी मिलता है (= लज्जा : पाइय १६७), हित्था (=लज्जा : देशी ८ ६७), हित्थ (= लज्जित ; भयकर : देशी ८, ६७ पर गोपाल की टीका हाल ३८६ की टीका में उल्लिखित देशीकोष की तुलना कीजिए), माहित्थ (= चकित ; कुपित आकुल : देशी १ ७१ पाइय १७१ [हित्थ का बंगला में हातुलि, हाथा हाँति आदि रूप वर्तमान हैं और कुमाउनी में हिठणो रूप है। यह रूप हिन्दी में हठकना हकना आदि में आया है। प्राकृत में इसी अर्थ का एक शब्द ओहट्टइ अपसरति मक्षिप्त कर में मिलता है। इसमें ओहट्ट = अपहट्ट और इसका अर्थ है 'अलग हट जाना'। यह हट् धातु = भट् गमने। माहित्थ या हित्थ का इसका अर्थ 'त्रस्त होता है' तो यह पीत ०मिस्त ०हित्त और इससे हित्थ बना है। इसको इसी प्रकार मुत्पन्न किया जा सकता है। —अनु]) और इसका मूर्धन्यीकरण होकर इसके रूप हिट्ठ और हिट्ठाहिट्ठ मिलते हैं (= आकुल : देशी ८, ६७)। त्थ से ट्ठ में ध्वनिपरिवर्तन से ऐसा निर्देश होता है कि इसमें स्त रहा होगा और मेरा यह मानना है कि इस रूप का अधस्तात् से निकलना शुद्ध है [इसमें एक आपत्ति यह की जा सकती है कि हित्थ अधस्तात् से ह का आगमन कैसे हो गया। —अनु]। शौर में पल्लत्थ और इसके साथ-साथ जनता की बोली के रूप पल्लट्ट और पल्लट्टइ (§ २८५) = पर्यस्त।

पल्लट्ट में ह-कार लोप हो गया है, जैसे **समत्त** और इसके साथ साथ चलनेवाले रूप **समत्थ = समस्त** (§ ३०७) [प्राकृत में **पर्यस्त** से बना **पल्हत्थ** रूप, जिसमें ह कार है, मिल्ता है] है। रावणवहो ११,८५ मे **पल्हथा** आया है। इस पर ए० सी० बुलनर ने अपने ग्रंथ 'इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत', पेज १२१ में यह टीका की है, **पल्हत्थ** टीकाकार के अनुसार = **पर्यस्त** अर्थात् आकुल, पर यह रूप **पल्लत्थ** होना चाहिए (र थ को अपने में मिला लेता है और फिर ल रूप ग्रहण कर लेता है)। **पल्हत्थ = *प्रह्लस्त** जो **ह्लस् = ह्रस** धातु से बना है जिसका अर्थ 'ह्रास होना' अर्थात् 'घटना' है [न मालूम उक्त उदाहरण महाविद्वान लेखक पिशल की दृष्टि से कैसे बच गया। —अनु०]। महा०, शौर० और अप० मे **विसंठुल = विसंस्थुल**, इसका एक रूप **विसंस्ठुल** सस्कृत मे भी इसका एक रूप **विसंस्ठुल** लिखा जाता है (हेच० २, ३२, मार्क० पन्ना २१, पाइय० २६४, गउड०, हाल०, रावण०, मृच्छ० ४१, १०, ११७, १९, विक्रमो० ६०, १८, प्रबोध० ३९, ८ मल्लिका० १३, ३, हेच० ४, ४३६ [हेच० २, ३२ और ४, ४३६ में प्राकृत के **विसण्ठुल** रूप के उदाहरण दिये गये हैं, न कि किसी **विसंठुल** रूप के, जो सस्कृत में भी लिखा जाता हो —अनु०]।

१ पिशल, बे० बा० १५, १२२। — २ रावणवहो में भीष् शब्द देखिए। — ३ हाल २८६ की टीका। — ४. त्सा० वि० स्प्रा० २, ५१८।

§ ३०९—एक ही शब्द मे कभी **त्थ** और कभी **ट्ठ** की अदला-बदली विशेष-कर **स्था** धातु और उससे निकले रूपों मे दिखाई देती है। इसमें इस बात की आवश्यकता नहीं है कि हम ओस्टहोफ[1] की भाँति झूठी समानता के आधार पर **ठ** को शुद्ध सिद्ध करें। लोग बोल्ते थे, पल्लवदानपत्रों में **अणुवट्टावेति=अनुप्रस्थापयति** (७, ४५, § १८४ और १८९ की तुल्ना कीजिए), महा० और जै०महा० में **ठाइ= *स्थाति**, महा० में **णिट्ठाइ** और **संठाइ** रूप मिल्ते है, जै०महा० मे **ठाह** रूप आया है, अ०माग० में **अब्भुट्ठन्ति** देखने मे आता है तथा जै०महा० में **ठायन्ति** रूप है, किन्तु अप० में **थन्ति** पाया जाता है, अप० मे **उट्ठेइ**, जै०महा० में **उट्ठह**, अ०माग० और जै०महा० में **उट्ठेइ**, जै०महा० और शौर० मे **उट्ठेहि** रूप मिलते हैं, किन्तु शौर० **में** **उत्थेहि** और **उत्थेदु** रूप भी प्रचलित है (§ ४८३), महा० मे **ठिअ**, अ०माग० और जै०महा० में **ठिय** तथा शौर० में **ठिद** रूप = **स्थित** (गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, ६, ५,५, नायाध०, कप्प०, एर्त्से०, कालका०, विक्रमो० ४२, १८, ५२, २), किन्तु साथ ही **थिअ** रूप भी काम में आता है। शौर० में **थिद** चल्ता है (हेच० ४, १६, विक्रमो० ८३, २०), महा०, अ०माग० और जै०महा० में **ठवेइ**, अप० में **ठवेह्नु**, अ०माग० में **ठावेइ** और जै०महा० में **ठावेमि** रूप देखे जाते हैं। अप० में **पट्ठावियइ**, शौर० में **पट्ठाविअ** आये हैं, इसके साथ-साथ शौर० में **समवत्थावेमि** भी काम में आता है और **पज्जवत्थावेहि** रूप भी चलता है (§ ५५१), महा० में **उट्ठिअ** आया है, अ०माग० और जै०महा० में **उट्ठिय** रूप का प्रचार है (हेच० ४, १६, रावण०, अणुओग० ६०, विवाह० १६९, आयार० १, ५, २, २, नायाध०,

कप्प एत्सें०), परन्तु उत्थिय रूप भी चलता है और शौर० में उत्थिद आता है (हेच० ४,१६; विक्रमो० ७२, १५ इस नाटक में उट्ठिद शब्द भी देखिए)। पट्ठिअ = प्रस्थित (हेच० ४, १६), किन्तु महा० में परिथअ रूप आया है (हाल रावण), शौर में परिथद मिलता है (शकु० १३६,१६ विक्रमो० १६, २; २२,१०; माल्ती० १ २, ८ १०४, २ और १ १२४, ६ मुद्रा० २२८, ५ ; २६१, १ प्रबोध १७, १ प्रिय० ८, १६)। अ०माग० और जै० महा० में उवट्ठिय = उपस्थित (सम०; एत्सें० कालका), पर शौर में उवत्थिद रूप मिलता है (शकु ११७, १ विक्रमो ६,११ १ ,२ ४११)। महा , अ माग , जै महा शौर , जै शौर और अप में ठाण=स्थान (हेच ४, १६ ; पाइय २६१ ; गउड हाल रावण ; आयार० १,२,१,१ ; २,२,१,१ और उसके बाद सूय० १८८ ; उत्तर १७५ विवाह० ११११० उवास ; नायाध ओव कप्प एत्सें० ; कालका ; ऋषभ २१ पद १८१ ४४ मृच्छ ७ , २५ ; १४१, २ शकु १२१, ७ १५४, ८ विक्रमो २१ १५ ; ८४ ७ आदि-आदि हेच ४, १६२) है, परन्तु महा में थाण रूप भी चलता है (हेच ४, १६ रावण) अ माग में ठाणिज्ज (= गौरवित प्रतिष्ठित : देशी ४,५ निरया § ३) है। इसके साथ-साथ थाणिज्ज रूप भी चलता है (देशी ४,५ ; देशी ४, ५ की टीका में दिया गया है : अर्थं वस्त्वादिपीत्येके। थाणिज्जो [इसके ऊपर श्लोक में ठाणिज्जो गोरवियम्मि लिखा है। —अनु]) = स्थानीय [इसकी तुलना हिंदी के स्थानीय शब्द के अर्थ से कीजिए। —अनु] महा , अ माग और जै महा में ठिइ तथा शौर में ठिदि = स्थिति (हाल ; रावण ; उवास ओव ; निरया ; नायाध कप्प ; एत्सें) हैं, किन्तु साथ-साथ महा में थिइ और शौर में थिदि रूप भी मिलते हैं (रावण विक्रमो १८, ११ ; ७२, १६ ; शकु १ ७, १२ की टीका) और इसी भाँति और बहुत से उदाहरण हैं। सन्धि के अन्त में -स्थ सदा त्थ का रूप धारण कर लेता है : महा में कमलत्थ और करत्थ रूप मिलते हैं (हाल), दूरत्थ रूप भी पाया जाता है (रावण) अ माग में आगारत्थ आया है (आयार १ ८, १, ६), गारत्थिय देखने में आता है (आयार २ १, १ ७) ; जै महा में आसन्नत्थ, अॅपणत्थ, सहा यत्थ और हिययत्थ रूप मिलते हैं (एत्सें) शौर में एकत्थ (मृच्छ ७१ १ ; शकु २६ १०) है। पअत्थ = पदस्थ (शकु १४१, १) और पदत्थिद = प्रकृतिस्थ रूप काम में आते हैं (शकु १६ , ११) ; महा अ माग , जै महा जै शौर और शौर में मज्झत्थ = मध्यस्थ (§ २१४) है। संस्कृत स्थ की समानता में अभ्यत्थ अ माग में अंसत्थ, अरसत्थ आसत्थ और आसत्थ रूप ग्रहण करता है (§ ७४) अ माग और माग में कपित्थ का रूप कावत्थ बन जाता है (आयार २ १ ८ १ तथा ६ मृच्छ २१, २२), किन्तु अ० माग में अधिकांश में कविट्ठ रूप ही चलता है (निरया ४५ ; पण्णव ३१ और ४८२ ; जीवा ४६ ; दस ६२१ ८ उत्तर ८१ और उसके बाद)। — 'पीठ' के अर्थ में स्थाणु का प्राकृत रूप वररुचि ३ १५ ; हेमचंद्र २, ७ ; क्रमदीश्वर २,

७८ और मार्कंडेय पन्ना २१ के अनुमार **थाणु** होता है और 'खंभ, थूनी तथा ठूठ' के अर्थ में **खाणु** हो जाता है [हेच० २, ७ के पाठ में **खाणू** रूप छपा है। मेरे पास मार्कंडेय का जो प्राकृतसर्वस्वम् है और जो बवई का छपा लगता है, उसमे पेज १९ और ३, १८ मे **खण्णू** रूप छपा है। —अनु०]। इसके अनुमार **थाणु = शिव** (पाइय० २१ , गउड०) , अ०माग० मे 'ठूठ या खभ' के अर्थ मे **खाणु** मिलता है (पण्हा० ५०९ , नायाध० ३३५ , उत्तर० ४३९) , परतु जै०महा० मे 'पेड के ठूठ' और 'खभ' अर्थ मे **थाणु** रूप काम में आता है (पाइय० २५९ , द्वार० ५०४, ९)। **खाणु** रूप जिसके साथ साथ **खण्णु** रूप भी बोला जाता था (हेच० २, ९९ ; मार्क० पन्ना २१ और २७ , इन सूत्रों मे भी हेच० मे **खण्णू** , **खाणू** और मार्क० मे **खण्णू** रूप आया है [ग्रन्थों में दीर्घ का ह्रस्व रूप बहुधा हो जाता है, इस कारण ही विद्वान लेखक ने ह्रस्व रूप दिया होगा। —अनु०])। **स्थाणु** के एक दूसरे पर्याय ***स्खाणु** से निकले हैं। **थाणु** का **खाणु** से वही सबध है जो **स्तुभ्** का **क्षुभ्** से है तथा **स्तम्भ** का **स्कम्भ** से। यही सबध प्राकृत **दुत्थ** का **दुक्ख** से है (§ ९० , १२० , ३०६ और १३१)। — **स्थग्** के महा० रूप का आरभिक वर्ण दत्य है : **थएइ** (रावण०) रूप आया है, **थएसु**, **थइस्सं** और **थइउं** भी काम मे आते हैं (हाल), **थइअ** भी पाया जाता है (हाल , रावण०), **उत्थइअ** और **समुत्थइउं** भी पाये जाते हैं (हाल), **ओ॑त्थइअ** और **समो॑त्थइअ** रूप भी चलते हैं (रावण०), किन्तु जै०महा० में मूर्धन्यीकरण हो गया है . **ठइय** और **ठाइऊण** रूप देखने में आते हैं (आव० एर्त्से० ३०, ४)। **स्थार** के पर्याय धातु ***स्थक्** से पाली मे **थकेति** रूप बना है। इसके रूप महा०, जै०महा०, शौर० और माग० में **ढक्कइ** और **ढक्कदि** (§ २२१) होते हैं। इस पर भी जै०महा० में **थक्किस्सइ** रूप भी मिलता है (तीर्थ० ५, १९)।

१ येनाएर लितेरातूर त्साइटुंग १८७८, पेज ४८६ ।

§ ३१०—माग० में **स्त** बना रहता है (हेच० ४, २८९) और **स्थ** के स्थान में **स्त** आ जाता है (हेच० ४, २९१ , रुद्रट के काव्यालकार २, १२ पर नमिसाधु की टीका) . **हस्ति = हस्तिन्** , **उवस्तिद = उपस्थित** , **समुवस्तिद = समुपस्थित** और **शुस्तिद = सुस्थित** । नमिसाधु ने बताया है कि **स्त** का **श्त** बन जाता है। ललितविग्रहराजनाटक में नीचे दिये रूप आये हैं : **तत्थ स्तेहिं = तत्रस्थैः** (२६५, २०) , **उवस्तिदाणं = उपस्थितानाम्** , **कडस्तलाणं = कटस्थलानाम्** , **पाशस्तिदे=पार्श्वस्थित** , **णिअस्ताणादो = निजस्थानात्** (५६६, ३ , ९ , १२ और १५), **स्तिदा = स्थिताः** और **अस्ताणस्तिदे = अस्थानस्थितः** (५६७, १ और २) हैं। स्टेन्त्सलर और गौडबोले, जो यहा पर तथा बहुधा अन्य स्थलों पर भी स्टेन्त्सलर का अनुसरण करता है, मृच्छकटिक में **स्त** के स्थान पर अधिकाश स्थलों में **श्त** लिखता है, पर **स्थ** के लिए **त्थ** ही देता है। इस ढग से **हश्त = हस्त** (१२, १४ , १४, १ , १६, २३ , २१, १२ , २२, ४ , १२१, २५ , १२२, २० , १२६ २४) है, किन्तु उक्त नियम के विपरीत **हत्थ** रूप भी मिलता है (३१, १८ , ३९, २०,

११४, १ ; २ और ३ ; ११५, १ और २ १६०, ३ १७१, ३) और हत्थि- = हस्तिन् (४ , ९ १६८, ४) जैसा कि शकुन्तला ११७, ४ तथा वर्णीसंहार ३४, १४ में आया है। मृच्छकटिक की हस्तलिपियों में अधिकांश स्थलों पर -त्थ- आया है, केवल एक हस्तलिपि में ११, २१ तथा २१, १२ में -स्त मिलता है। एक दूसरी हस्तलिपि में हत्थे भी देखने में आता है तथा एक बार हत्थे रूप भी पाया जाता है। इसके विपरीत एक हस्तलिपि में १४, १ में हस्तादो रूप लिखा गया है। २२, ४ में ९ हस्तलिपियों ने हस्ते रूप प्रयुक्त किया है और १२१, २४ में हस्तलिपियों न हस्त लिखा है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि स्त से स्त के अधिक प्रमाण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त एक उदाहरण थुणु है जो = स्तुहि के (११३, १२ ११५, १), किन्तु हस्तलिपियों में स्तुणु और स्तुण अथवा थुणु, सुणु तथा इसी प्रकार के रूप मिलते हैं जो = शृणु हैं मस्त और मस्तक = मस्त और मस्तक है (१२, १०; २ , १० २१, २२ १४१, २५ ; १५१, २४), परन्तु मत्थ रूप भी आया है (१६१, ७); हस्तलिपियों में अधिकांश स्थलों पर -स्त-, बहुत कम स्थलों में -त्थ- और केवल एक बार १६१, ७ में -स्त- लिखा मिलता है हस्तलिपि ए. (A) १२, १७ और १४१, २५ में मस्थक रूप लिखती है, जैसा कि स्टेन्त्सलर ने हस्थिभा = हस्थिभा-स्तीका में लिखा है (१२, ३ और ५ ११९, २३ ; १३६, ११ ; १४ , १ ; १४५, १ और ४ १४६, ८ ; १६४, २०)। इसके विपरीत उसने हत्थिभा रूप भी दिया है (११२, ६ ११८, १ और ५)। हस्तलिपियाँ अधिकांश स्थलों में -त्थि- देती हैं, केवल ११२, ६ बी (B), १४ , १ ई (C) और १८५, ४ डी (D) में -स्थि- आया है। इन रूपों के विपरीत ११९, ६ एच (H) में हिस्थिभ, सी में -स्थि-, ११६, ११ डी और ई (D-E) १४ , १ डी (D) में -स्ति- लिखा है जिसकी ओर भी हस्तलिखित प्रति का -स्थि- निर्देश करता है। हस्तलिपि ए. में ११९, २१ और १८ , १ -स्थि- की ओर निर्देश करते हैं। यहां हम हस्तिभा पढ़ना चाहिए। प्रबोधचंद्रोदय ६२ ७ में हस्थिभा रूप मिलता है, मृच्छकटिक में भी यह रूप पाया जाता है और वर्णीसंहार तथा मुद्राराक्षस में सदा यही रूप आया है। मृच्छकटिक में बहुधा -स्त- के स्थान पर -स्थ- मिलता है। मृच्छकटिक में स्थ के लिए स्थ मिलता है, उदाहरणार्थ थावसभ और थावलक = स्थावरक (९६, १७ ; ११६ ८ ११८, १ ; ११ ११ और २१ ; १२१ ९ १२२, ९ आदि आदि), ९६ १७ का पाठ यहां हस्तलिपियां बी, सी, डी, एफ (B C D F) स्थावसभ रूप देती हैं हस्तलिपियों में सर्वत्र ही यह रूप पाया जाता है ; थामं = स्थामम् (१५० ९) ; अपस्थिद = अपस्थित: (९ , २) ; उपस्थिद = उपस्थित (११८ २१ १२८ ११ ; १७५, १७); और ष्ठ के उदाहरण भी मिलते हैं : पष्ठाविभ = प्रस्थाप्य (२१ १२) ; संठावहि = संस्थापय (११ , ११); संष्ठिद (इस नाटक में संधिद शब्द भी देखिए) = संस्थित (१५९, १५) ; आहरणष्ठाणहिं (इस नाटक में आहरणस्थाणहिं भी देखिए) = आभरणस्थानक (१४१ २) है। इस व्याकरणकार ने जो अनिश्चितता और अस्थिरता, कुछ भाषायी

को छोड़, सभी नाटकों में दिखाई देती है, जैसे—**मस्तिए = मस्तिके**, **वस्तिए = वस्तिके** और इसके साथ साथ –**हत्थिए = –हस्तिके** (चड० ६८, १६, ६९, १), **अस्तं** रूप आया है (चड० ७०, १४)। इसके साथ ही **समुत्थिदे** भी पाया जाता है (७२, १), **पस्तिदे = प्रस्थितः**, **णिवस्तिदे = निवस्थितः** (मल्लिका० १४४, ४ और ११) है। इन नाटकों मे और अधिक उदाहरण भरे पडे हैं। इन स्थानों में हेमचन्द्र के अनुसार सर्वत्र **स्त** लिखा जाना चाहिए।

§ ३११—**स्प** और **स्फ**, **प्फ** बन जाते हैं (वर० ३, ३६ और ५१, हेच० २, ५३ और ९०, क्रम० २, १०० और ४९, मार्क० पन्ना २५ और १९)। **स्प = प्फ** : महा० और शौर० मे **फंस = स्पर्श**, शौर० मे **परिफंस** रूप भी मिलता है (§ ७४), महा० और अ०माग० मे **फरिस** पाया जाता है, अ०माग० में **फरिसग** रूप भी है (§ १३५), अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० मे **फास** रूप देखा जाता है (§ ६२), **फन्दन = स्पन्दन** (हेच० २, ५३), **पडिप्फद्धि– = प्रतिस्पर्धिन्** (§ ७७) है। अ०माग० मे **ह**-कारयुक्त वर्णका लोप हो जाता है : **पुट्ठ = स्पृष्ट** (आयार० १, १, ४, ६, ७, ४, १६, २, ३, १, ८, ३, ६ और ४, १, सूय० ६५, १११, १२२, १४४, १७०, ३५०, उत्तर० ४८, ५१, ६१, १०६, १२६, विवाह० ९७ और इसके बाद, ११६, १४५, पण्णव० १३४, ओव०), **अपुट्ठ** (आयार० १, ८, ४, १, विवाह० ८७ और उसके बाद), **अपुट्ठय** (सूय० १०४) है। उपर्युक्त रूप कई बार **फरिस** या **फास** और **फुसइ = स्पृशति** के साक्षात् पास में ही आते हैं (§ ४८६)। आयारगसुत्त १, ६, ५, १ में **पुट्ठो** आया है। इसी प्रकारके रूप **फुसइ** और **पुसइ** (= पोछना : § ४८६) है। सन्धि में नियमानुसार **ह**–कार का लोप हो जाता है (§ ३०१). महा० और अप० में **अवरोप्पर = अपरस्पर** (गउड०, हेच० ४, ४०९), महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **परोप्पर = परस्पर** (हेच० १, ६२, २, ५३, गउड०, कर्पूर० ७७, १०, १०१, १, पण्हा० ६८, पण्णव० ६४६, विवाह० १०९९, आव०एर्त्से० ७, ११, एर्त्से०, प्रबोध० ९, १६; बाल०, २१८, ११, मल्लिका० १२४, ८, १५८, १९, १६०, ८, २२३, १२), शौर० में भी **परप्पर** रूप देखने में आता है, भले ही यह अशुद्ध हो, (मालती० ११९, ६, ३५८, १, उत्तर० १०८, १, मल्लिका० १८४, २०)। § १९५ की तुलना कीजिए। अ०माग० में **दुप्परिस = दुःस्पर्श** (पण्हा० ५०८) है। — **निप्पिह = निःस्पृह** (हेच० २, २३) है। **बृहस्पति** के शौर० रूप **बिहप्फदि** और **बहप्पदि** के साथ-साथ अ०माग० में **बहस्सइ** और **बिहस्सइ** रूप मिलते हैं (§ ५३) और व्याकरणकार इसके बहुसख्यक अन्य रूप भी देते हैं (§ २१२)। इसी प्रकार अ०माग० में **वणप्फइ = वनस्पति** के साथ साथ (हेच० २, ६९, पण्हा० ३४१, पण्णव० ३५, जीवा० २१३, २१६, विवाह० ९३ और १४४), जै०शौर० में **वणप्फदि** रूप मिलता है (कत्तिगे० ४०१, ३४६) और स्वय अ०माग० में **वणस्सइ** आया है (हेच० २, ६९, मार्क० पन्ना २५, आयार० १, १, ५, ४, २, १, ७, ३ और ६, २, २, २, १३, सूय० ७९२, ८५७, पण्हा० २९, जीवा० १३, ३१६

[पणप्फइ के पास ही यह पणस्सइ रूप मिलता है] १६९ और उसके बाद; पण्णव० ४४ और ७४२; उत्तर० १ ११ १०४८ विवाह० १ ; ४१ ; ४६९ और उसके बाद; ठाणंग २५; २६ ५२)। स्स—वाले रूप यह सूचना देते हैं कि पति शब्द मानो स्वरों के बाद और संधि के दूसरे पद के आरम्भिक वर्ण के रूप में बह बन गया है जिस कारण स्स = स्व हो गया। § १९५ और ४ ७ की तुलना कीजिए। इसके समान ही ध्वनिपरिवर्तन सिहइ = *स्पृहति में आता है (हेच ४, १४ और १९२ मार्क० पन्ना २९)। यह सिहइ रूप *स्पिहइ के लिए आया है। अ०माग० में पीहेज्जा = स्पृहयेत् रूप भी है (ठाणंग १५८)। छिहा = स्पृहा (हेच० १, १२८ २, २३ मार्क पन्ना २५) नहीं है परन्तु छिहइ के साथ-साथ (= छूना : हेच ४, १८२) *क्षिम धातु का एक रूप है जो क्षुम् धातु का पर्याय-वाची धातु है (§ ६६)। स्फ = प्फ : महा अ माग और शौर में फलिह = स्फटिक (§ २ १), महा में फुड = स्फुट (गउड० ; हाल रावण) महा में फुलिंग = स्फुलिंग (गउड ; रावण); अप्फोडण = आस्फोटन (गउड), अप्फालिअ = आस्फालित (गउड ; रावण); पप्फुरइ = प्रस्फुरति (गउड ; हाल) रूप मिलते हैं। खोडअ = स्फोटक (वर १, १६ हेच० २ ६ क्रम २, ७६ मार्क पन्ना २१) तथा खेडअ = स्फेटक और खेडिअ = स्फेटिक (हेच २, ६) नहीं है, किन्तु इन रूपोंसे पता चलता है कि स्फ्रटक, स्फेटक और स्फेटिक के प्रतिरूप रहे होंगे जो स्क्ष से आरम्भ होते होंगे। § १ । १२ १ ६ और १ १ की तुलना कीजिए। मार्क पन्ना ६७ के अनुसार शौर में केवल फाडअ रूप की अनुमति है इस प्रकार विप्फोडअ=विस्फोटक (शकु १ , १) है। — ४, २८९ में हेमचन्द्र बताता है कि माग में स्प और स्फ बने रहते हैं : बुहस्पति = बृहस्पति रुद्रट के काव्यालंकार २, १२ की टीका में नमिसाधु लिखता है स्प और स्फ, ष्प तथा ष्फ बन जाते हैं, बिहस्पदि रूप हो जाता है। मृच्छकटिक ११३, २४ शकुन्तला ११५, ११ में फुरन्ति = स्फुरन्ति रूप मिलता है, प्रबोधचन्द्रोदय ५८ १ फलस रूप है ५८ ८ में फंस ; बम्बई और पूना के संस्करणों में दोनों बार फलस रूप मिलता है, मद्रा में एक रूप फलिदा है। इन स्थानों पर हमें स्फुलन्ति और स्पलिश पढ़ना चाहिए तथा इस प्रकार के अवसरों पर यही पाठ ठीक है।

§ ३१२—श ष और स के बाद आनेवाला व्यंजन यदि अनुनासिक हो तो उक्त वर्ण ह में परिवर्तित हो जाते हैं (§ २६२—२६४) तथा वर्णों के स्थान में अदल-बदल हो जाता अर्थात् वर्णों का स्थानपरिवर्तन भी हो जाता है। इस नियम के अनुसार श्न ष्ण और स्न जब कि ये अंशस्वर द्वारा अलग अलग न किये जायं (§ १३१ और उसके बाद) तो समान रूप से ण्ह में परिवर्तित हो जाते हैं और श्म ष्म तथा स्म समान रूप से म्ह में बदल जाते हैं (वर ३, ३२ और ३३; चण्ड ३ ६; हेच २ ७४ और ७५; क्रम २ ९ और ९०; मार्क पन्ना २५ और २६)। — श्न=ण्ह : अण्हइ और अ माग में अण्हाइ = अश्नाति (§ ५१२);

अ०माग० और जै०शौर० में **पण्ह = प्रश्न** (सूय० ५२३ , कत्तिगे० ३९९, ३११), **सिण्ह = शिग्न** (भाम० ३, ३३, हेच० ३, ७५) है। — **श्म = म्ह : कम्हार**, शौर० में **कम्हीर = काश्मीर** (§ १२०), **कुम्हाण = कुश्मान** (हेच० २, ७४) है। **रश्मि** का सदा **रस्सि** हो जाता है (भाम० ३, २, हेच० १, ३५, २, ७४ और ७८, पाइय० ४७) , अ०माग० और शौर० मे **सहस्सरस्सि = सहस्ररश्मि** (विवाह० १६९, राय० २३८, नायाध०, ओव०, कप्प०, रत्ना० ३११, ८, प्रबोध० १४, १७ , प्रिय० १८, १५) है। शब्द के आदि में आने पर **श्**, **म** में घुलमिल जाता है : अ०माग० में **मंसु = श्मश्रु** , **निम्मंसु = निःश्मश्रु** , जै०शौर० में **मंसुग = श्मश्रुक** (§ ७४) है , इसका रूप **मस्सु** भी होता है (भाम० ३, ६ , हेच० २, ८६ , क्रम० २, ५३) और **मासु** रूप भी चलता है (हेच० २, ८६)। महा० और शौर० **मसाण** तथा माग० में **मशाण = श्मशान**, इसके विपरीत अ०माग० और जै०महा० **सुसाण** मे **म**, **स** में घुलमिल गया है (§ १०४)। — **ष्ण = ण्ह** महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **उण्ह = उष्ण** (गउड०, हाल , रावण०, कर्पूर० ४५, ५, आयार० १, ५, ६, ४, उत्तर० ५८, कप्प०, एत्सें०, ऋषभ०, शकु० २९,५ और ६, ७८,९, विक्रमो० ४८, ११), शौर० में **अणुण्हदा = अनुष्णता** (मालवि० ३०, ६) , अप० मे **उण्हअ = उष्णक** और **उण्हत्तण = *उष्णत्वन** (हेच० ४, ३४३, १) , अ०माग० में **सीउण्ह = शीतोष्ण**, किन्तु अ०माग० मे साधारणतया **उसिण** रूप आता है (§ १३३)। — **उण्हीस = उष्णीष** (हेच० २, ७५) , महा०, अ०माग० और शौर० मे **कण्ह**, अ०माग० में **किण्ह**, इनके साथ साथ महा० और शौर० मे **कसण**, अ०माग० और जै०महा० **कसिण = कृष्ण** है , महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे **कण्ह = कृष्ण** (§ ५२) है। जै०महा० और दाक्षि० में **विण्हु = विष्णु** (§ ७२ और ११९) है। — **ष्म = म्ह** : महा० मे **उम्हा = ऊष्मन्** (सब व्याकरणकार , गउड०), **उम्हविअ** और **उम्हाल** रूप भी मिलते है (गउड०)। महा०, अ०माग०, शौर०, माग० और अप० मे **गिम्ह = ग्रीष्म** (§ ८३) है। महा०, जै०महा० और शौर० में **तुम्हारिस = युष्मादृश** (§ २४५) , महा०, जै०महा०, शौर० और अप० में **तुम्हे = युष्मे** (§ ४२२) है। — **माहिष्मती** का शौर० में **महिस्सदि** हो गया है (बाल० ६७, १४)। — हेमचद्र २, ५४ के अनुसार **भीष्म** का **भिप्फ** और **श्लेष्मन्** का हेमचद्र २, ५५ और मार्कण्डेय पन्ना २५ के अनुसार **सेफ-** और **सिलिम्ह** दो रूप होते हैं तथा अ०माग०, जै०महा० और अप० में **सिम्भ-** एव अ०माग० में **सेंम्भ** रूप चलते हैं (§ २६७)। ये रूप अपनी ध्वनिपरिवर्तन की प्रक्रिया के मध्यवर्ती रूपों का क्रम यों बताते हैं ***भीष्व, *भीष्प** , ***श्लेष्मन्** और **श्लेष्पन्** (§ २५१ और २७७)। **कोहण्डी = कूष्माण्डी**, अ०माग० रूप **कोहण्ड**, **कूहण्ड** और **कुहण्ड = कूष्माण्ड** के विषय में § १२७ देखिए, अप० में **गिम्भ = ग्रीष्म** के विषय में § २६७ देखिए। — सर्वनाम की सप्तमी (हिन्दी में अधिकरण) की विभक्ति **ष्मिन्** में, जो बोली में **इ** और **उ** में समाप्त होनेवाली सज्ञाओं में जोडी जाने

लगी, प, म में पुष्मिळ गया है महा में उवरिम्मि जै०महा० में उवरिम्मि = उवरी अ०माग० सहस्सरस्सिम्मि = सहस्सरस्सी अ माग० में उउम्मि = ऋतौ महा में पदुम्मि = प्रमी (§ १६६ और १७९) है। अ० माग० में -म्मिन् अधिकांश स्थलों में — सि रूप धारण कर लेता है : कुच्छिसि = कुक्षौ पाणिसि = पाणौ ; छेलुसि = छेलौ (§ ७४ और ३७९) अप में रिंस से निकल कर हिँ रूप काम में आता है (§ २६२ और ३१३) : अक्खिहिँ = अक्षिण, कलिहिँ = कलौ [अप० का यह हिँ कुमाउनी में रह गया है और वर्तमान समय में भी काम में आ रहा है। —अनु] (§ १०९) है। —ष्म और ष्म की भाँति ही क्ष्म और क्ष्म के रूप भी होते हैं लक्ख = लक्ष्म (§ ३१५) ; महा और अ०माग में पम्ह = पक्ष्मन् (वर १, ३२ हेच २, ७४ क्रम० २, ९४ ; गउड० ; हाल रावण उवास ओव) महा अ माग और शौर० में पम्हल = पक्ष्मल (हेच० २, ७४ ; मार्क पन्ना २५ गउड हाल रावण ; विवाह ८२२ नायाध ओव ; कप्प मालती २१७, ४ मल्लिका २४९, १ [पाठ में पक्ष्मल है] चंड ८०, ८) ; शौर में पम्हलिद रूप मिलता है (महावीर० १ १, १०)। तिण्ह = तीक्ष्ण (भाम ३, ३३ चड ३, ६ पेज ५४ ; हेच० २, ७५ और ८२ क्रम २ ९) के साथ साथ दूसरा रूप जिसके उदाहरण मिलते हैं यह महा , अ माग , जै महा , शौर , माग और अप रूप तिक्ख है (चंड २, १ ; ३, ६ पेज ४८ हेच २, ८२ हाल कपूर २८, ७ ९८, ११ ; ९९, ७ ९५, २ ; सूय २८ और २८९ उत्तर ११८ ; दस० ६२५, ११ ; कप्प ; एत्सें ; शकु १३५, १८ ; प्रबोध ४, ८ [यही रूप शुद्ध है और बंबई, मद्रास तथा पूना के संस्करण में छपा है] ; वेणी ६१, १४ ; महावीर १ १, १६ ; बाल १८९ ११ मल्लिका ८२ १८ ; हास्या० ३२ ४ माग में : मृच्छ १६८, १५; अप में : एत्स ८ ३९६, १) ; अ माग० में सुतिक्ख रूप मिलता है (विवाह० ४२४) ; शौर में तिक्खत्तण आया है (विद्ध ९९, ९) अप में : तिक्खेइ पढ़ा है (हेच ८ ३४४) तथा इसका दसी रूप तिक्खालिअ (= तीला किया हुआ : दशी ५, १३ ; पाइय २ [यहा दिया हुआ है — तिक्खीकयम्मि निसियासिअं इस प्रकार इस एक ही श्लोक में तिण्ह और तिक्ख दोनों रूप आये हैं। —अनु])। मार्कण्डेय पन्ना २६ के अनुसार इसके शाब्दिक अर्थ में तिक्ख रूप काम में आता है और इससे निकला गौण प्रयोग में तिण्ह चलता है, जैसे तिण्हा रहभरा का अर्थ है तेज घूप [मार्कण्डेय २ ९८ (= पन्ना २६) का पाठ यह है : तीक्ष्ण निशितार्थे न निशितार्थे तीक्ष्ण गुणस्य या स्यात्। तिक्खा सरा। अन्यत्र तिण्हा रहकिरणा ॥ रहभरा = रविकरा, इस दृष्टि से यह = रह किरणा के। अतः रहभरा और रहकिरणा पाठभेद हैं। —अनु]। किन्तु कर्पूरमंजरी में शोध अर्थ । अन्यत्र भी निकले हुए अ । में तिक्खर का ही प्रयोग देखने में आता है। लक्ष्मी महा ही में । ही यह नाम के लिए काम में आये महा , अ माग अ महा अ शौर और और दाक्षि में लच्छी (भाम ३, ३० ; चंड०

३, ६ और ३६, हेच० २, १७, क्रम० २, ८२, मार्क० पन्ना २४, पाइय० ९६, गउड०, हाल; रावण०, कर्पूर० ३१, २, ४९, २, नायाध०; ओव०, कप्प०, एर्त्से०, कालका०, ऋषभ० १२, कत्तिगे० ३९९, ३१९ और ३२०, ४०१, २४४, शकु० ८१, ११, विक्रमो० ३५, ६ और ११, ५२, ५, मालवि० ३३, १७, प्रबोध० ४, ८, माल्ती० २१८, २, कर्पूर० २२, ५, ३५, ३, ११०, ८, अनर्घ० २७७, १, मल्लिका० ७३, ६, दाक्षि० मे : मृच्छ० ९९, २५, अप० मे : हेच० ४, ४३६) है, इसके विपरीत **लक्ष्मण** महा०, जै०महा० और शौर० मे सदा **लक्खण** रूप ग्रहण करता है (चड० ३, ६, मार्क० पन्ना २४, रावण०, कक्कुक शिलालेख २; उत्तर० ३२, ५, १२७, ५, १९०, १, २०४, ११, महावीर० ५२, १४, अनर्घ० ११५, १२; ३१७, १६, उन्मत्त० ६, २, प्रसन्न० ८८, ६)।

§ ३१३—अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे जो अधिकाश अवसरों पर और स्वय शब्द के आदि वर्ण में भी **स्न** का केवल **न** वर्ण बनाये रहती हैं [**ण** नहीं। —अनु०], **स्न** का सदा **ण्ह** हो जाता है (§ २२४) **ण्हाइ** = **स्नाति** (हेच० ४, १४), जै०महा० **ण्हामो** = **स्नामः** (आव०एर्त्से० १७, ७), **ण्हाइत्ता** रूप मिलता है (आव० एर्त्से० ३८, २), **ण्हाविऊण** आया है (एर्त्से०), **ण्हावेसु** और **ण्हाविंत्ति** रूप भी पाये जाते हैं (तीर्थ० ६, ५), अ०माग० मे **ण्हाणेइ** और **ण्हाणित्ता** रूप हैं (जीवा० ६१०), **ण्हाणेॅन्ति** भी मिलता है (विवाह० १२ ६५), **ण्हावेइ** भी आया है (निरया० § १७), **ण्हावेॅन्ति** (विवाह० ८२२) और **ण्हावेइ** रूप भी देखने में आते है (विवाह० १२६१), शौर० में **ण्हाइस्सं** (मृच्छ० २७, ४), **ण्हादुं** (मल्लिका० १२८, ११) और **ण्हाइय** रूप पाये जाते है (नागा० ५१, ६, प्रिय० ८, १३, १२, ११), महा० में **ण्हाअ**, अ०माग० और जै०महा० में **ण्हाय** तथा शौर० मे **ण्हाद** = **स्नात** (पाइय० २३८, हाल, सूय० ७३०, विवाह० १८७ और ९७० और उसके बाद, उवास०, नायाध०, ओव०, कप्प०, निरया०, आव० एर्त्से० १७, ८, एर्त्से०, मृच्छ० २७, १२), महा० मे **ण्हावअन्तो** [पाठ में **ण्हावयन्दो** है] = **स्नापयन्** (मल्लिका० २३९, ३), अ०माग० और जै०महा० में **ण्हाविय** = **स्नापित** (उवास०, एर्त्से०), अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर०, शौर० और अप० मे **ण्हाण** = **स्नान** (वर० ३, ३३, क्रम० २, ९०, राय० ५६, नायाध०, ओव०, एर्त्से०, कत्तिगे० ४०२, ३५८, मृच्छ० ९०, १४, विक्रमो० ३४, ६, मल्लिका० १९०, १६, हेच० ४, ३९९), अ०माग० में **अण्हाण** = **आस्नान** (पण्हा० ४५२), **अण्हाणय** रूप भी है (ठाणग० ५३१, विवाह० १३५), जै०महा० में **ण्हवण** = **स्नपन** (तीर्थ० ६, १, ३, ६ [पाठ में **न्हवण** है], काल्का०), शौर० में **ण्हवणअ** = **स्नपनक** (नागा० ३९, ४ और १३), अ० माग० में **ण्हाविया** = **स्नापिका** (विवाह० ९६४) है। इसी प्रकार **ण्हाविअ** = ***स्नापित**, किंतु शौर० और माग० में इसका रूप **णाविद** है (§ २१०)। शौर० में **पण्हुद** = **प्रस्तुत** (महावीर० ६५, ४, उत्तर० ७३, १०) है। **स्नेह** और **स्निग्ध** शब्दों में महा०, अ०माग०, जै०महा० और अप० में नियम है कि **स्**, **न** के साथ घुल-

अ), जैसा अ०माग० में **अंसि = अस्मि** बोला जाता है (§ ७४ और ४९८)। **स्सि**, ***सिं** के द्वारा सभी प्राकृत बोलियों मे सर्वनाम की रूपावली में और माग० तथा अप० में सज्ञा की रूपावली में **हिं** भी हो गया है, जैसे **तहिं, जहिं** और **कहिं = तस्मिन्, यस्मिन्** और **कस्मिन्**, माग० में **कुलहिं = कुले** और अप० में **घरहिं = घरे** (§ २६४ ; ३६६ अ , ४२५, ४२७ और ४२८) है। हेमचद्र १, २३ में बताता है कि **म्मि** के स्थान पर **मिं** भी हो सकता है अर्थात् ऐसा करने की अनुमति देता है : **वणम्मि** और **वणंमि = वने**। ऐसी लेखपद्धति अ०माग० हस्तलिपियों में बहुत अधिक मिलती है और बहुत से छपे सस्करणों में ज्यों का त्यों रहने दिया गया है तथा सभवतः यह ठीक है। —निम्नलिखित रूपों में **स, म** के साथ घुलमिल गया है : अ०माग० मे **मि = *स्मि = अस्मि**, अ०माग० और जै०महा० मे **यो = स्यः**। इन रूपों के साथ साथ **म्हि, म्ह** और **म्हो** भी चलते हैं (§ ४९८), इसके विपरीत जै० महा० रूप **सरामि** और **सरइ**, अ०माग० **सरई** और जै०महा० **सरसु** में जो = **स्मरामि, स्मरति** और **स्मर** है, **म, स** के साथ घुलमिल गया है। नीचे दिये गये रूपों में भी यही नियम चलता है : महा० **वीसरिअ, विसरिअ**, जै०शौर० **वीसरिद = विस्मृत**, इनके साथ-साथ जै०महा० में **विस्सरिय** रूप भी पाया जाता है। बोली में **विम्हरइ** भी चलता है जो = **विस्मरति, सुमरइ**, शौर० में **सुमरेदि** और **विसुमरामि** तथा माग० में **शुमलेदि** और **विशुमलेदि** साधारण रूप हैं (§ ४७८)। **सेरं = स्मेरम्** (हेच० २, ७८) है। महा० में [**स्मरति** के स्थान पर। —अनु०] **मरइ** भी काम में आता है (वर० ८, १८, हेच० ४, ७४, क्रम० ४, ४९, मार्क० पन्ना ५३, गउड० [इसमें **स्मृ** शब्द देखिए], हाल, रावण० [इसमे **स्मर्** शब्द देखिए]), जै०महा० में **मरिय = स्मृत** (पाइय० १९४, एर्त्से०), **मलइ** भी दिखाई देता है (हेच० ४, ७४), महा० में **सभरण** रूप आया है (गउड०), ये रूप ***म्हरइ**, ***म्भरइ** के स्थान पर आये हैं (§ २६७)। मार्कंडेय पन्ना ५४ के अनुसार कुछ विद्वानों ने बताया है कि **मरइ विभरइ** (हस्तलिपि में पाठ **विभंरइ** है) रूप भी चलते हैं।

§ ३१४—हेमचद्र ४, २८९ के अनुसार माग० में **ष्ण** और **स्न, स्ण** हो जाते हैं तथा **ष्म** और **स्म, स्य** बन जाते हैं, केवल 'ग्रीष्म' शब्द का **स्म, स्ह** रूप धारण कर लेता है : **विस्णु = विष्णु, उस्म = ऊष्मन्** [मेरी प्रति में **उस्मा** छपा है। —अनु०], **विसअ = विसय** किंतु **गिम्ह=ग्रीष्म** है। **स्म** के विषय में शीलाक प्रमाण प्रस्तुत करता है क्योंकि वह **अकस्मात्** (आयार० १, ७, १, ३), **अकस्माद्दण्ड** (सूय० ६८२) और **अस्माकं** (सूय० ९८३) के विषय में टीका करता है कि ये शब्द मगध देश में सब लोगों द्वारा यहा तक कि ग्वालिनें भी सस्कृत रूप में ही बोलती हैं। इस प्रकार ये शब्द यहा भी उसी रूप में उच्चरित किये गये है। इसी प्रकार की सम्पत्ति अभयदेव ने ठाणगसुत्त ३७२ में **अकस्माद्दण्ड** शब्द पर दी है। अ०माग० के लिए **अकम्हाभय** (हेच० १९, ठाणग० ४५५) जैसे रूप ही केवलमात्र विशुद्ध रूप माने जाने चाहिए। जिन रूपों मे **स्म** आता है वे सस्कृत से

अंसु = अश्रु और मंसु=श्मश्रु के विषय में § ७४ देखिए। — श्र=स्स और = माग० में श्श : महा० और अ०माग० में सण्ह = श्लक्ष्ण[1] (भाम० ३,३३ , हेच० १, ११८ , २, ७५ और ७९ , मार्क० पन्ना २१ और २६ , हाल , रावण० , विवाह० ४२६ , उत्तर० १०४० , नायाध० , ओव० , कप्प०), महा० में परिसण्ह = परिश्लक्ष्ण (रावण०), किन्तु यह रूप महा० में लण्ह भी मिलता है (हेच० २, ७७ , मार्क० पन्ना २१ , कर्पूर० ८८, २ , ९६, २), लण्हअ भी आया है (कर्पूर० ४९, ११), इन रूपों में स्, ल के साथ घुलमिल गया है। अ०माग० में कभी कभी दोनों रूप एक दूसरे के बाद साथ साथ आते हैं, जैसे : सण्ह लण्ह (सम० २११ और २१४ , पण्णव० ९६ , ओव० § १६६) है। अ०माग० में सग्घ = श्लाघ्य (सूय० १८२) , साहणीअ = श्लाघनीय (मालवि० ३२,५), किन्तु इसी अर्थ में लाहइ भी आता है जो = श्लाघते (हेच० १,१८७) है। अ०माग० में सेॅम्म, अ०माग०, जै०महा० और अप० में सिम्भ तथा बोली में चलनेवाला रूप सेफ = श्लेष्मन् (§ २६७ और ३१२) है, किन्तु अ०माग० में लिस्सन्ति* = श्लिष्यन्ते (सूय० २१८) है। — अ०माग० में लेसणया लौयमान[2] के अनुसार = (सं) श्लेपणता होना चाहिये पर ऐसा नही है, यह = रेषणता (= हानि पहुँचाने का भाव) है। साधारणतया यह ध्वनिसमूह अ तथा इ द्वारा पृथक् कर दिया जाता है (जैसे 'श्लाघनीय' का हिन्दी रूप 'सराहनीय' है। —अनु०)। — श्व=स्स और माग० में = श्श : महा०, अ०माग० और जै०महा० में आस, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में अस्स = अश्व (§ ६४) है। महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में पास=पार्श्व (§ ८७), शौर० में पस्स रूप अशुद्ध है [पस्स रूप पाली भाषा का है। —अनु०] (प्रिय० २३, १६)। जै०शौर० में विणस्सर = विनश्वर (कत्तिगे० ४०१, ३३९) है। शौर० में विस्सावसु = विश्वावसु (मल्लिका० ५७, १), माग० में इसका विश्शावशु रूप है (मृच्छ० ११, ९)। महा० में ससइ, आससइ = श्वसिति और आश्वसिति , महा० में ऊससइ = उच्छसिति , महा० में णीससइ, अ०माग० में निस्ससइ और शौर० रूप णीससदि = निःश्वसिति , माग० में शसदि, ऊशशदु, णीशशदु और शमश्शसदु रूप पाये जाते है (§ ४९६)। महा० सावअ, जै०महा० सावय और शौर० तथा अप० रूप सावद = श्वापद (गउड० , रावण० , एत्सें० , शकु० ३२, ७ , मृच्छ० १४८,२२) है। — ष्य = स्स और माग० में = श्श : शौर० में अभुजिस्सा = अभुजिष्या (मृच्छ० ५९, २५ , ६०, ११ , ६५,१) है। अ०माग० में आरुस्स = आरुष्य (सूय० २९३), इसके साथ-साथ आरुसीयाणं रूप भी पाया जाता है (आयार० १, ८, १, २)। शौर० में पुस्सराअ = पुष्यराग (मृच्छ० ७०, २५ , यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिये)[3] है। अ०माग० और जै०महा० में मणूस, महा०, अ०माग० और शौर० में मणुस्स तथा माग० मे मणुश्श = मनुष्य (§ ६३) है। अ०माग० और जै०महा०

* इस लिस् से कुमाउनी में कई शब्द बने हैं, जैसे लिसो = चीड के पेड़ की राल, लसो = तेल का चिक्कट और चिक्कटपना और लेसीणो = चिपकना। —अनु०

सीस, जै० महा० और शौर० सिस्स = शिष्य (§ ६३) है। भविष्यत्कालवाचक रूपों में जैसे, अप० में करीसु = करिष्यामि (हेच० ४, ३९६, ४), फुट्टिसु = = स्फुटिष्यामि (हेच० ४, ४२२, १२), इसी प्रकार जै०महा० में भविस्सइ, शौर० में भविस्सदि, माग० में भविश्शदि, महा० में होस्सं और अप० में होस्सइ रूप हैं (§ ५२१)। महा०, अ०माग०, जै०महा० और अप० में दीर्घ स्वर से पहले और बहुधा ह्रस्व स्वर से पहले भी सरल स बनकर ह रूप धारण कर लेता है, जैसे काहिमि, काहामि और काहं = ०कार्ष्यामि = करिष्यामि। होहामि और होहिमि = ०भाष्यामि। कित्तइहिमि = कीर्तयिष्यामि और अप० में पक्खी हिमि = ०प्रक्षिष्यामि (§ २६३ और ५२० तथा उसके बाद) है। — ष्प = स्स और = माग० में श्श : अ०माग० में ओसक्कइ और पद्मासक्कइ = ०अपष्वष्कति और ०प्रत्यपष्वष्कति। महा० में परिसक्कइ = ०परिष्वष्कति (§ ३०२); शौर० में परिस्सजदि = परिष्वजते (माल्ती १८, ३; मृच्छ० ३२७, १ = गोडबोले संस्करण का ४८४, १२), परिस्सअध = परिष्वजध्वम् (शकु० ९, ८ विक्रमो० ११, २; उत्तर० २४, ५), परिस्सइअ = परिष्वज्य (शकु० ७७, ९ माल्ती ११०, ७) है। अ०माग० पिउसिया, महा० पिउस्सिआ, अ०माग० पिउस्सिया तथा महा० और अ०माग० पिउच्छा = पितृष्वसा और अ०माग० में माउसिया, महा० माउस्सिआ एवं माउच्छा = मातृष्वसा जो भागों की बोली में पुप्फा और पुप्फिआ बन गये हैं। इनके विषय में § १४८ देखिए। — स्य = स्स और = माग० श्श : महा०, जै०महा० और शौर० में रहस्स = रहस्य (गउड०; हाल; कर्पूर० ६६, ११; पार्से०; मृच्छ० ६, ७ विक्रमो० १९, १ और २२ १९, १; ११ और १८; ७१, ९ कर्पूर० ६०, १) है। महा० और शौर० में पअस्स महा० में पअंस तथा जै०महा० रूप पयंस = पयस्य (§ ७४) है। शौर० में हस्स = हास्य (मृच्छ० ४४, १) है। षष्ठी एकवचन में अ० -स्स बनता है, जो महा० और शौर० फामस्स = फामस्य (हाल २; १४८ १२६; ५८६; शकु० १२, ६ प्रबोध० १८, १२ कर्पूर० ९१, १) में भी स्य का स्स हो जाता है। भागों की बोली में स्स हाय (§ २६४) इसका रूप ह हो जाता है : माग० में कामाह (मृच्छ० १ , २८) अप० में कामहाँ (हेच० ४, ४४१), इनके साथ-साथ महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और दक्षी में तस्स, माग० में तश्श, अप० में तस्सु, तसु और तासु, महा० में ताम, माग० रूप ताह और अप० ताहाँ = तस्य (§ ४२५) है। भविष्यत्कालवाचक क्रिया में भी यही नियम है, जैसे अ०माग० दाहामी और इसका पर्याय दास्समा = दास्यामः (§ ५३१); जै०महा० में पाहामि और अ०माग० रूप पाहं = पास्यामि तथा अ०माग० पाहामो = पास्यामः (५२४) है। — स्र = स्स और = माग० श्श : शौर० में उस्सा = उस्रा ([illegible] ५५६ १); जै०महा० में तमिस्सा = तमिस्रा ([illegible]); महा० में वीसम्भ और शौर० में विस्सम्भ = विस्रम्भ (§ ६४); महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर० और शौर० में सहस्स। माग० में

शहश्श = सहस्र (§ ४४८) है। —स्व = स्स और = माग० श्श : पल्लव-दानपत्रो मे वप्पसामीहि = वप्पस्वामिभिः (६, ११), सककाले = स्वककाले (७, ४४), सहत्थ = स्वहस्त (७, ५१), जै०महा० और शौर० मे तवस्सि-, माग० में तवश्शि = तपस्विन् (एर्त्से०, कालका०, शकु० २२, ७, ७६, ८), जै०महा० और शौर० मे तवस्सिणी तथा माग० मे तवश्शिणी = तपस्विनी (कालका०, शकु० ३९, ४; ७८, ११, १२३, १२, १२९, १६, माग० में : (मृच्छ० १५२, ६), महा० और जै०महा० मे सरस्सइ और शौर० मे सरस्सदी = सरस्वती (गउड० ; एर्त्से०, विक्रमो० ३५, ५), महा० में सिण्ण = स्विन्न (गउड०, हाल), शौर० मे साअदं और माग० मे शाअदं = स्वागतम् (§ २०३) है। महा० रूप मणसि = मनस्विन् और अ०माग० ओयंसि = ओजस्विन् तथा अन्य इसी प्रकार रूपों के लिए § ७४ देखिए। हंस = ह्रस्व और इसके साथ साथ ह्रस्स, रहस्स आदि के लिए § ३५४ देखिए।

१. हेमचन्द्र और कू० त्सा० २३, ५९८ मे याकोबी अशुद्ध रूप मे सण्ह का सबध सूक्ष्म से बताता है और हेमचन्द्र २, ७५ मे स्पष्ट ही इसके दो भेद करता है, सण्ह = सूक्ष्म, सण्ह = श्लक्ष्ण। त्सा०डे०डौ०मौ०गे० २८, ४०२ मे वेबर ने इस विषय पर ठीक ही लिखा है, पी० गौल्दश्मित्त, स्पेसीमेन पेज ६८, चाइल्डर्स [के पाली कोश मे। — अनु०] सण्हो शब्द देखिए। — २ औपपत्तिक सूत्र मे यह शब्द देखिए। — ३ रुद्रट के शृगारतिलक, पेज १०२ और उसके बाद मे पिशल का मत, महाव्युत्पत्ति २३५, २८।

§ ३१६— क, त, प + श, ष, स की सन्धि होने पर संस्कृत व्याकरणकारों के अनुसार क, त और प की ध्वनि जनता की बोली मे ह-कार युक्त हो जाती है. क्षीर का रूप ख्षीर हो जाता है, वथ्स होता है और साथ साथ वत्स भी तथा अफ्तरस् हो जाता है और साथ-साथ अप्सरस् चलता है[1]। प्राकृत में सर्वत्र ही त्स और प्स के लिए इस उच्चारण की सूचना मिलती है। मौलिक क्ष पर यह नियम तब लगता है जब क्ष, प्श तक पहुँचता है[2]। इस दशा में ह-कार श, ष और स में आ जाता है और § २११ के अनुसार च्छ हो जाता है। इसके विपरीत मौलिक क्ष में ह-कार का लोप हो जाता है और ध्वनियाँ पलट जाती हैं, जैसे माग० रूप स्क और ह्क प्रमाणित करते हैं और क्ष के स्थान पर ष्क होकर क्ख बन जाता है (§ ३०२)। आस्कोली[3] का यह मानना कि ष बाद को ख बन गया है प्राकृत भाषाओं से पुष्ट नहीं किया जा सकता (§ २६५), इसी भाँति योहानसोन[4] के इस सिद्धान्त को भी कोई पुष्टि नहीं मिलती। भिन्न-भिन्न ध्वनिपरिवर्तनों का आधार उच्चारण, वर्ण-पृथक्त्व और ध्वनिबल पर स्थिर है[5]।

१ योहानसोन, शाहबाजगढी २, २१ और उसके बाद में साहित्य-सूची, वाकरनागल, आल्ट इंडिशे ग्रामाटीक § ११, ३। — २. वाकरनागल, आल्ट इंडिशे ग्रामाटीक § ११६। — ३ क्रिटिशे स्टुडिएन, पेज २३१ और उसके बाद। — ४ शाहबाजगढी २, २२। — ५ गो०गे०आ० १८८१, पेज १३३२ और उसके बाद में पिशल का मत।

§ ३१७—प्राकृत व्याकरणकार क्ष का क्ख में ध्वनिपरिवर्तन को नियमानुसार मानते हैं (वर ३, २९; हेच २, ३; क्रम २, ८८ मार्क० पन्ना २४) और उन्होंने वे शब्द जो क्ष की ध्वनि छ में नहीं प्रस्तुत छ में परिवर्तित करते हैं, आकृतिगण क्षयादि में एकत्रित किये हैं (वर ३, ३ हेच० २, १७ क्रम० २, ८२ प्राकृतकल्पलतिका पेज ६)। मार्क पन्ना० २४ में उन शब्दों की सूची दी गयी है जो क्ष के स्थान पर छ रूप ग्रहण कर लेते हैं इनको मार्कडेय ने आकृतिगण क्षुरादि मे एकत्रित किया है और इसमें ये शब्द गिनाये हैं : क्षुर, मक्षि, मक्षिका क्षीर, सदृक्ष, क्षेत्र, कुक्षि, इक्षु, क्षुधा और क्षुभ् । मार्कडेय उन शब्दों को जिनमें क्ष, छ और ख दोनों रूप धारण करता है आकृतिगण क्षमादि में एकत्रित करता है। व्याकरणकारों ने जिन शब्दों के लिए ये गण दिये हैं महा के ही लिए ये प्रयुक्त हो सकते हैं। अन्य प्राकृत भाषाओं में ध्वनि बदलती रहती है, यहाँ तक कि एक प्राकृत बोली में ख—और छ वाले रूप पास-पास में दिखाई देते हैं। यह सब इस प्रकार होता है कि ध्वनि-परम्परा को कोई दोष नहीं दिया जा सकता (§ ३२१)। इसकी मूल परिस्थिति क्या थी इसके उत्तम निदर्शन 'अवेस्ता' में मिलते हैं।

§ ३१८—संस्कृत क्ष आदिकाल में क्ष्य तक पहुँचता है जो अवेस्ता में इसका रूप श्रें हो जाता है और प्राकृत में मौलिक *ख्ष और *छ्ष के द्वारा क्ख रूप ग्रहण कर लेता है : छम = अवेस्ती शॅंत जो दुर्शॅत में पाया जाता है और = क्षत जो क्षन् धातु का एक रूप है (हेच २, १७ [इसमें छय = क्षत दिया गया है। पुरानी हिन्दी में छय रूप मिलता है, कुमाउनी में क्षय रोग को छे कहते हैं। —अनु]) इससे सम्बन्धित अ०माग में छण (=हत्या) रूप है जो = क्षण के (आयार १, २, ४ ५ १, १, १, ४ १, ५, १, ५), छणं = *क्षणेत् (आयार १, १, २, १ १, ७, ८, ९), छणायए और छणावेंत = *क्षणापयेत् और *क्षणत्तम् (आयार १, १, २, १ [कुमाउनी बोली छन का अर्थ हत्या होता है। यह अ माग शब्द इसमें रह गया है। अनु]) किन्तु महा में खम = क्षत (गउड ; हाल रावण), परिक्खम रूप मिलता है (रावण)। अ माग में खणइ रूप है = *क्षणत (आयार १, ७, २, ४); अ माग में अक्खय रूप भी है और जै शौर में अक्खद आया है (सूय १ ७; पव० ३८५, ६९); शौर में परिक्खद (मृच्छ ५१, २५ ६१, २४; शकु २७, ९), अपरिक्खद (विक्रमो १ ४) अपरिक्खद (मृच्छ ५१, १८ और २४) रूप पाये जाते हैं। — महा , अ माग और जै महा छुहा = अवेस्ती शुॅध = क्षुधा (सब व्याकरणकार; हाल ठाणंग १२८; विवाह ४ और १६७; उप २५८ नायाध १४८ ओव ; द्वार ५ , ७; एसें), छुहाइय (= भूखा : पाइय १८१) रूप भी देखने में आता है ; किन्तु अ माग , जै महा और शौर मे खुहा रूप भी चलता है (ठाणंग ५७२; विवाह० १६२; ४९३, ८१६ पण्हा २ नायाध ; ओव ; दस ६१५, १६ [पाठ में क्षुप्पिपासाए है] दस नि ६६२ १ और २; एसें ; कर्पूर बंबइया संस्करण

७६, ९ जब कि कोनो ७५, ६ में छुहा पढ़ता है), अ०माग० में खुहिय = क्षुधित (पण्हा० ३४०) है। — महा० में छे॑त्त और अ०माग० में छित्त = अवेस्ती शो॑इथ्र = क्षेत्र किन्तु अ०माग०, जै०महा०, जै० शौर० और शौर० में खे॑त्त तथा अ०माग० में खित्त रूप भी है (§ ८४)। — महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में अच्छि = अवेस्ती अशि॑ = अक्षि (सब व्याकरणकार, गउड०, हाल; रावण०, आयार० १, १, २, ५, १, ८, १, १९, २, २, १, ७, २, ३, २, ५, विवाग० ११, विवाह० ११५२; आव० एर्त्से० ८, २०, ३०, ४, शकु० ३०, ५, ३१, १३, विक्रमो० ४३, १५, ४८, १५, रत्ना० ३१९, १८, कर्पूर० ११, २, नागा० ११, ९, जीवा० ८९, ३), किन्तु अ०माग०, जै०महा०, शौर० और अप० में अक्खि भी मिलता है (सूय० ३८३; एर्त्से०, विक्रमो० ३४, १, अनर्घ० ३०५, १३, हेच० ४, ३५७, २)। — अ०माग० अच्छ (§ ५७), महा०, अ०माग० और शौर० रिच्छ (§ ५६) = अवेस्ती अरे॑शो = रिक्ष, किन्तु महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में रिक्ख रूप भी मिलता है (§ ५६)। — महा० कच्छ = अवेस्ती कशो = कक्ष (हाल), किन्तु अ०माग० और जै०महा० में कक्ख रूप भी मिलता है (गउड०, रावण०, नायाध० ४३४)। — तच्छइ (हेच० ४, १९४), अ०माग० में तच्छिय (उत्तर० ५९६ [पाठ में तत्थिय है]) = अवेस्ती तशो = तक्षति और *तक्षित, किन्तु तक्खइ रूप भी पाया जाता है (हेच० ४, १९४), तक्खाण = तक्षन् (§ ४०३) है।

§ ३१९—मौलिक क्ष अवेस्ता में ह्रश॑ (उच्चारण में प्राय क्ष। —अनु०) और प्राकृत में क्ख हो जाता है : अ०माग० में खत्तिय और शौर० में खत्तिअ = क्षत्रिय (सूय० १८२, ३७३, ४९५, ५८५, सम० २३२, उत्तर० १५५ और उसके बाद, ५०६, ७५४, विवाग० १५२ और उसके बाद, विवाह० १३५, ओव०, कप्प०, महावीर० २८, १४, २९, २२, ६४, २१, उत्तर० १६७, १०, अनर्घ० ५८, ८, ७०, १, १५५, ५, १५७, १०, हास्या० ३२, १, प्रसन्न० ४७, ७, ४८, ४ और ५), जै०महा० में खत्तिआ रूप आया है (कक्कुक शिलालेख ३), अ०माग० खत्तियाणी = क्षत्रियाणी (कप्प०), खत्ति = क्षत्रिन् (सूय० ३१७), शौर० में णिःखत्तीकद रूप = निःक्षत्रीकृत (महावीर० २७, ६), इन सबका सम्बन्ध अवेस्ती ह्रशॉथ्र से है। — अ०माग० और जै०महा० में खीर = अवेस्ती ह्रशी॑र = क्षीर (हेच० २, १७, सूय० ८१७ और ८२२, विवाह० ६६० और ९४२, पण्णव० ५२२, उत्तर० ८९५, उवास०, ओव०, कप्प०, नायाध०, आव० एर्त्से० २८, २३, ४२, २), खीरी = क्षीरी (पाइय० २४०), महा० खीरोअ और जै०महा० खीरोय = क्षीरोद (गउड०, हाल, एर्त्से०), अ०माग० में खीरोदय रूप भी मिलता है (ओव०), शौर० में खीरसमुद्द = क्षीरसमुद्र (प्रबोध० ४, ७), किन्तु महा० में छीर रूप भी है (सब व्याकरणकार, पाइय० १२३, गउड०, हाल), अ०माग० में छीरबिराली = क्षीरविडाली (विवाह० १५३२, [पाठ में छीरविराली है]) है। मार्कण्डेय पन्ना ६७ में स्पष्ट रूप में लिखता

है कि घोर में खीर रूप ही आना चाहिए। — खिवइ = क्षिपति का सम्बन्ध अवेस्ता के ह्शिप् से है (हेच० ४, १४१), महा में अक्खिवइ = आक्षिपति (रावण), उक्खिवइ = उत्क्षिपति (हाल), समुक्खिवइ रूप भी पाया जाता है (गउड) ; जै०महा में खिवति रूप मिलता है (एत्सें ८१, १८), खिवेइ भी आया है (एत्सें) अ०माग में खिवाहि देखा जाता है (आयार २, ३, १, १६), पक्खिवइ भी है (आयार २, १, ९, ३), पक्खिवेज्जा (आयार २, १, २, ३ विवाह २७), निक्खियव्व (पण्हा १७१), पक्खिप्प (सूय० ९८ ; २८२ २८८ ३७८) ; शौर० का खिविदुं = क्षप्तुम् (विक्रमो २९, १६), खित्त = क्षिप्त (मृच्छ० ४१, ६ और २२ [यह रूप कुमाउनी में प्रच लित है, इसके नाना रूप चलते हैं। —अनु]), अक्खित्त = आक्षिप्त (विक्रमो० ७५, २ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), उवक्खिव = उपक्षिप (मृच्छ० ७२ १४), उक्खिविअ = उत्क्षिप्य (मृच्छ० १, १७), णिक्खिविदुं = निक्षे प्तुम् (मृच्छ २४ २२) रूप पाये जाते हैं, णिक्खित्त भी मिलता है (मृच्छ ९१, ११ ; १९५, ११ शकु ७८, १२ ; विक्रमो ८४ ८ ; [इसका कुमाउनी में निखित्त और मिक्खित्त रूप बुरे के अर्थ में वर्तमान हैं। —अनु]), णिक्खि विअ भी आया है (विक्रमो ७५, १), परिक्खिवीआमो = परिक्षिप्यामहे (चंड २८, ११) आदि आदि ; किन्तु उच्छित्त रूप भी देखने में आता है जो = उत्क्षिप्त (माम १, १ ; देशी १ १२८ पाइय० ८४) और महा में छिप्पइ रूप भी है (= छूता [यह रूप स्पृश् से निकला है न कि क्षिप् धातु से। —अनु] : हेच ४, १८२ ; गउड ; हाल ; रावण०), छित्त (= छुआ हुआ : हेच ४, २५८ ; पाइय ८९ ; हाल) भी आया है। — अ माग और जै०महा० में खुड्ड = क्षुद्र, खुड्डय और अ माग खुड्डग = क्षुद्रक (§ २९४ [पाठक इसकी तुलना पारसी रूप खुर्द से करें जो खुर्दबीन में है। —अनु]) = अवेस्ता ह्शुद्र (= बीज वीर्य) है। — महा में खुण्ण = क्षुण्ण (देशी २, ७५ ; पाइय २२२ ; हाल) इसका सम्बन्ध अवस्ता के ह्शुस्त से है ; किन्तु उक्खुण्ण रूप भी मिलता है जो = उत्क्षुण्ण के (पाइय २ १) है। — महा में खुम्भइ = क्षुभ्यति (हेच ४ १५४ रावण), संखुहिअ भी देखा जाता है (गउड०), अ माग में खामइउं = क्षमयितुम् है (उत्तर १२१), खामित्तए (उवास०) खुभिय (भाग) फागुम्भमाण (§ ५६६ रूप भी पाये जाते हैं ; शौर में संखाहिद = सक्षोभित (शकु १२ ८) है आ में खुहिम आया है (विक्रमो ६७ ११) ; महा में खाम = क्षाम (रावण) जे शौर में माहक्खाम आया है (पव १८ ७) किन्तु पल्लवदानपत्र में छामं = क्षामम् (६, १२) है ; [विच्छुदिर = विक्षुभ्यान्त (हेच २ १४२) ; अ माग में खुभन्ति उक्खुभइ और विक्खुभइ रूप मिलते हैं जैसे महा में छुभइ और छुहइ रूप काम में आते हैं ; महा में पिच्छुहइ तथा अन्य इसी प्रकार के रूप हैं (§ ६६) । — महा में णिच्छाइ = निःक्षाति (हाल) ; महा और आ० में सिक्खिराम , जे महा में

सिक्खिय तथा शौर० में **सिक्खिद** रूप = **शिक्षित** (गउड० , हाल , एर्त्से० , मृच्छ० ३७, ५ , विक्रमो० ६२, ११) , जै०महा० और शौर० मे **सिक्खन्त** रूप आया है (एर्त्से०, मृच्छ० ७१, २१) , शौर० में **सिक्खीअदि** और **सिक्खिदुकाम** रूप देखे जाते हैं (मृच्छ० ३९, २२, ५१, २८) । **सिक्खावेमि** भी पाया जाता है (प्रिय० ४०, ४) । इन सबका सम्बन्ध अवेस्ता के **असिह्शॉन्त** से है ।

§ ३२०— कभी कभी अवेस्ता की भाषा और प्राकृत भिन्न भिन्न पथ पकडते हैं । **उच्छ = उशन्** (भाम० ३,३० , हेच० २,१७ , ३,५६), **उच्छाण** भी मिलता है, किन्तु अवेस्ता में **उह्शॉन्** रूप है, किन्तु मार्कण्डेय पन्ना २४ मे **उक्ख** तथा इसके साथ-साथ **उच्छ** रूप काम में लाने की अनुमति देता है । — पल्लवदानपत्र, महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और आव० में **दक्खिण = दक्षिण** (§ ६५), शौर० में **दक्खिणा** = **दक्षिणा** (मृच्छ० ५, १ , कर्पूर० १०३, ६), किन्तु अवेस्ती में **दशिॉन** रूप है । तो भी अ०माग० में **दच्छ** (उवास० रूप मिलता है [कभी इस **च्छ** युक्त रूप का यथेष्ट प्रचार रहा होगा क्योंकि प्राचीन तथा सुरक्षित और प्राकृत रूप बहुत कुमाउनी बोली में **दक्षिण** को **दच्छिण** और **दक्षिणा** को **दच्छिणा** कहते हैं । —अनु०], इसके साथ-साथ अ०माग० तथा जै०महा० में **दक्ख** भी पाया जाता है (नायाध० , ओव० , एर्त्से०) । — महा० **मच्छिआ** (सब व्याकरणकार , हाल), अ०माग० और जै०महा० **मच्छिया** (विवाग० १२, उत्तर० २४५, १०३६ , १०६४ , ओव० , द्वार० ५०३, ६) और अ०माग० **मच्छिगा** (पण्हा० ७२) = अवेस्ता का **मह्शिॉ=मच्छिका** , किन्तु शौर० में **णिम्मक्खिअ = निर्मक्षिक** है (शकु० ३६, १६ , १२४, ७ , विद्ध० ६२, २) । — महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **रक्खस = राक्षस** (रावण०, सूय० १०५ , ३३९, ४६८ , उत्तर० ६९६ , १०८४, ठाणग० ९० , ओव० , एर्त्से० , मृच्छ० ६८८ , शकु० ४३, ६ , ४५, १ , महावीर० ९६, १२ , ९७, ७ , १५ , ९९, २ , बाल० २२१, ५) , अ०माग० मे **रक्खसी= राक्षसी** (उत्तर० २५२) का सम्बन्ध अवेस्ता के **रश्** और **रॅशंह** से है । — महा० और जै०महा० में **वच्छ = वृक्ष** (सब व्याकरणकार , पाइय० ५४ , गउड०, कर्पूर० ६४, २ , एर्त्से० , दस० नि० ६४५, ६ [इस स्थान पर यह एक सूची में गिनाया गया है जिसमें **वृक्ष** के पर्यायवाची शब्दों की तालिका दी गयी है]) है । इसका सम्बन्ध अवेस्ता के **उर्वाश्** (= उर्वरा होना , पेड पौधों का बढना) से है । वर० ३, ३१ , हेच० २, १२७ , क्रम० २, ८३ और मार्क० पन्ना २४ के अनुसार **वृक्ष** शब्द से **वच्छ** के अतिरिक्त **रुक्ख** रूप भी बनता है तथा रामतर्कवागीश और मार्कण्डेय पन्ना ६६ के अनुसार शौर० में केवल **रुक्ख** रूप ही काम में लाया जाता है (हेच० १, १५३ ; २, १७ पर पिशल की टीका) । अ०माग० और शौर० में केवल **रुक्ख** काम में आता है (आयार० १, ७, २, १ , १, ८, २, ३ , २, १, २, २ , २, ३, २, १५ , २, ३, ३, १३ , २, ४, २, ११ और १२ , सूय० १७९ , ३१४ , ३२५ , ४२५ ; ६१३ , विवाह० २७५ और ४४५ , सम० २३३ , पण्णव० ३०, राय० १५४ , जीवा० ५४८ और ५५० तथा उसके बाद दस० नि० ६४५, ५ , नायाध०, ओव०, कप्प०, मृच्छ०

५८

४, २४ ७२, ८ ७१, ६ और ७ ७७, १६ ८७, ११ और १२ ; प्रबु० ९, १० १, २ १२ २ और ६ मालवि ७२, १) अ माग और शौर में कप्परुक्ख = कल्पवृक्ष रूप मिलता है (आयार० २ १५, २० मल्लिका २११, २) महा० और जै०महा० में भी रुक्ख रूप पाया जाता है (हाल रावण आव एर्से ४७, ११ और उसके बाद ऋषभ २९ ; एर्से) जै महा में कप्परुक्ख देखा जाता है (एर्से) किन्तु इस प्राकृत में वच्छ रूप भी चलता है। रुक्ख रूप का वृक्ष से नाममात्र का सम्बन्ध नहीं है परन्तु रुक्ख = रुक्ष, जिसको रोट ने 'फूबर गोएबिस्से स्युत्सुगन डेस वौर्टेस इम वेदा' पेज २ में प्रमाणित कर दिया है। इस शब्द का अर्थ वेद में पेड़ था।

§ ३२१—ऊपर दिये गये शब्दों के अतिरिक्त भी अन्य शब्दों में कभी क्ख और कभी च्छ देखा जाता है। ऐसा एक रूप महा, अ माग, जै०महा में उच्छु है, अ माग और शौर में इक्खु है जो = इक्षु है [उच्छु से मराठी में ऊंस के लिए ऊस शब्द बना है और शौर रूप इक्खु से हिन्दी का ईख बना है, कभी पल्लु वर्ण के प्रभाव से शौर० में बोली में *उक्खु रूप चलता होगा जिससे हिन्दी में ऊख भी हो गया है। —अनु], अ माग और जै महा में इक्खाग = ऐक्ष्वाक (§ ११७ और ८४) है। — महा, अ माग और जै महा में कुच्छि = कुक्षि (गउड, आयार २ १५, २ ; ४, १० और १२ ; पण्हा० २८१ ; विवाह २९५ १ १५ १२७४ उवास कप्प एर्से) कुच्छिमई = कुक्षिमती (गर्भिणी : देशी० २, ४१), इसके साथ-साथ अ माग और शौर में कुक्खि रूप भी चलता है (नायाध० १ पण्हा २१७, मालवि ६५, १६), हेच ने देशीनाममाला २, १४ में इस रूप को देशी बताया है [कुक्खी शब्दावेक्षा हेच २, १४। —अनु]। — छुर = क्षुर (सब व्याकरणकार), छुरमडि- और छुरहत्थ=क्षुरमर्दिन् और क्षुरहस्त (= नाई देशी १, २१)। इसके साथ साथ महा और अ माग में खुर भी मिलता है (कपूर ९४, ४ सूय ५४६ विवाह १५१ १ ४१ नायाध उवास ; कप्प)। खुरपत्त = क्षुरपत्र (उपांग ३२१) है। —अ माग और अप में छार = क्षार (= नमक का सार ; पोटाश [इसका अर्थ राख होना चाहिये जैसा कि हेच ४, ३६५, १ से सिद्ध होता है यहाँ अइउज्झह सो छारु पद है जिसका अर्थ हुआ 'यदि जल जाय तो राख हो जाय। —अनु] सब व्याकरणकार, उवास हेच ४ ३६५, १) छारीभूय = क्षारीभूत (विवाह २३७) क्षारिय = क्षरित (विवाह १२२ और उसके बाद; १८८) इसके साथ-साथ अ माग और जै महा में खार मिलता है (सूय० २९ और २८१ ; आव ; कालका)। — § ३२६ की तुलना कीजिए। — महा, अ माग और जै महा में पेच्छइ रूप आता है किन्तु शौर में पक्खदि = प्रक्षते (§ ८४)। — महा, अ माग और जै महा में वच्छ = वक्षस् (सब व्याकरणकार गउड ; हाल रावण ; कर्पूर ८१, ८ उवास ; नायाध ; आव ; कप्प० ; एर्से), किन्तु शौर में वक्खत्थल = वक्षस्थल

(मृच्छ० ६८, १९ , धनजयवि० ११, ९ , हास्या० ४०, २२)। यह प्रयोग बोली में काम में लाये जानेवाले रूप **वच्छथल** के विपरीत है (बाल० २३८, ९ ; मल्लिका० १५६, १० [पाठ में **वच्छट्ठल** है] , [पाठ में **वच्छट्ठल** है], चैतन्य० ३८,११ , ४९, ९)। — महा०, जै०महा० और जै०शौर० रूप **सारिच्छ**, किन्तु अ०माग०, शौर० और अप० में **सारिक्ख = *सादृक्ष्य** (§ ७८ और २४५) है। रूप की यह अस्थिरता यह सिद्ध करती है कि भारतीय भूमि में स्वयं एक ही बोली में बिना इसका नाममात्र विचार किये कि **क्ष** की भिन्न भिन्न व्युत्पत्तियाँ हैं दोनों उच्चारण [**च्छ** और **क्ख**। — अनु०] साथ-साथ चलने लगे[1]। उदाहरणार्थ लोग **अक्षि** और **अक्षि** उच्चारण करते थे और इसकी परम्परा प्राकृत में **अच्छि** और **अक्खि** रूप में व्यक्त हुई।

१ इस दृष्टि से क्रिटिशे स्टुडिएन, पेज २३८ और उसके बाद में आस्कोली ने शुद्ध लिखा है , योहानसोन, शाहबाजगढ़ी २, २०। गो० गे० आ० १८८१, पेज १३२२ और उसके बाद में पिशल के विचार की तुलना कीजिए।

§ ३२२—**क्ष** पर नाना दृष्टि से विचार करने के साथ साथ यह बात ध्यान देने योग्य है कि **क्षण** और **क्षमा** में अर्थ की विभिन्नता जुड़ी हुई है। भाम० ३, ३१, हेच० २, २० और मार्क० पन्ना २४ के अनुसार **क्षण** का जब **छण** रूप होता है तब उसका अर्थ 'उत्सव' होता है। इसके विपरीत जब **खण** होता है तब उसका अर्थ 'समय का छोटा भाग' या 'पल' होता है (गउड० , हाल , रावण० , नायाध० § १३५ , १३७ , पेज ३००, दस० ६१३, ३९ , कप्प० , एर्से० , कालका० , ऋषभ० , शकु० २, १४ , १२६, ६ , विद्ध० ९९, १ , कर्पूर० ५८, ३ , ५९, ६ , १०५, ४)। मार्कण्डेय पन्ना ६७ के अनुसार शौर० में **छ** आता ही नहीं है [मेरे पास मार्कण्डेय के 'प्राकृतसर्वस्वम्' की जो प्रति है उसका आवरणपृष्ठ फट जाने से तिथि और प्रकाशनस्थान का कुछ पता नहीं चलता किन्तु छपाई यथेष्ट शुद्ध और साफ है। इससे पता नहीं लगता कि **छ** शौर० में आता ही नहीं है, क्योंकि इस आशय का सूत्र नहीं छपा है। इसमें इस विषय पर दो सूत्र हैं। एक में है (आदौपदस्य) **शावे छो न स्यात्** [**शाव, शाव** होना चाहिए], **साचो** , दूसरा है **क्षण क्षीर सदृक्षाणां छः** (न स्यात्), **खणो, खीरं** और **सरिक्खो** इनमें **छ** के स्थान पर **ख** आता है, इससे यह अर्थ लगाना चाहिए कि शौर० में **क्ष** का **छ** नहीं होता, जैसे **प्रेक्षते** का **पेक्खदि** होता है, **पेच्छदि** नहीं, किन्तु इस विषय पर कोई स्पष्ट और विशेष सूत्र नहीं दिया गया है। —अनु०]। शकुन्तला ११८, १३ में भी तीन हस्तलिखित प्रतियों में **उवत्थिदक्खणे** आया है। क्रमदीश्वर २, ८३ में **खण** और **छण** रूप देता है, पर अर्थ में कोई भेद नहीं बताता। हेमचंद्र २, १८ के अनुसार **क्षमा** का रूप जब **छमा** होता है तब उसका अर्थ 'पृथ्वी' होता है और जब **खमा** होता है तब उसका अर्थ 'क्षान्ति' या 'शांति' होता है। वररुचि ३, ३१ , क्रमदीश्वर २, ८३ और मार्कंडेय पन्ना २४ में **खमा** और **छमा** पास पास में आये हैं और इनके अर्थ में कोई भिन्नता नहीं बतायी

गयी है ; पंडु० १, ४ में केवल खामा रूप दिया गया है। अ माग में छमा = 'पृथ्वी' के अर्थ में आया है (दस० ६४१, १०) महा , अ०माग और जै महा० में खमा = क्षांति (हाल ; विवाह० १६२ ; द्वार० ५०२, १९) अ माग में खमासमण = क्षमाश्रमण (कप्प०) है।

§ १२१—अ०माग और महा० में कभी कभी ह्र के आगे अथात् ह्र के बाद का दीर्घ स्वरबना रह जाता है। इस दशा में क्ख, ख रूप धारण करके (§ ८७) ह रूप धारण कर लेता है (§ १८८)। यह परिवर्तन बहुत अधिक ईक्ष् धातु तथा इससे निकले नाना रूपों में होता है : अ माग में ईहा = ईक्षा' (नायाध ओव० कप्प); अ माग० में अणुप्पेहन्ति = अनुप्रेक्षन्ते (ओव० § ११) अणुप्पेहाए रूप आया है (आयार २, १, ४, २), अणुप्पेहा = अनुप्रेक्षा (ठाणंग २११ और २१९ ; उत्तर ८९, ९ ओव), उवेहइ आ भी मिलता है (आयार २, १, ५, ५ और ६ २ २, १, १, १६ और १८ २, १, २, १ और १, ८), उवेहमाण = उपेक्षमाण (आयार १, २ १, १ १, ४, ४, ४ ; २, १६, ४), पेहे = प्रेक्षेते (उत्तर ७२६), पेह = प्रेक्षस्व (सूय ११९) पेहमाण भी है (आयार १, ८, २, ११ १ ८, ४, ६ ; २ १ १, ६) जै महा में पेहमाणीओ रूप पाया जाता है (आव एर्त्से १७,१); अ माग में पेहाए चलता है (आयार १ २, ५ ५ ; १, ८, १, २ १, ८ ४ १ २, १, १, १ ; २, १, ४, १ और ४ तथा उसके बाद २, १, ९, २ ; २, ४, २, ६ ; उत्तर ११) पेहिय भी काम में आया है (उत्तर ११९), पेहिया (सूय १ ४), पेहियं (दस ६११, १), पेहा = प्रेक्षा (दस ६११, २१) पेहि = प्रेक्षिन् (आयार १,८,१,२०; उत्तर १), पहिणी (उत्तर ६६१), समुप्पेहमाण (आयार १ ४, ४, ४), समुपेहमाण (सूय ५०६), समुपेहिया (दस ६१९,१९), संपेहेइ (विवाह १५२ ; २४८ ८४१ ९१६ उवास ; नायाध ; निरया ; कप्प), संपेहाई (दस ६४१, १) सपेहाए (आयार १ २, ४, ४ ; १, ५, १, २ ; १, ६, १, १ [पाठ में संपेहाए है] सूय ६६९), संपेहिया (आयार १ ७, ८, २१) और संपेहित्ता रूप पाये जाते हैं (विवाह १५२ और २४८)। इसके अतिरिक्त अ माग लूह और इसके साथ-साथ लुक्ख = रूक्ष लूहेइ और लूहिय = रूक्षयति तथा रूक्षित' (§ ८७ और २५७); अ माग और जै महा में सेह = पाली सेख = संस्कृत शैक्ष (आयार २ २ १ २४ ; सूय १६५ ; ५११ और ५९ ; ओव ; कप्प ; कालका) अ माग म सेहन्ति = *शैक्षन्ति (सूय ११५) सेहावेइ = शैक्षापयति' (विवाह ७९७ ; ओव ; नायाध), सेहाविय रूप भी मिलता है (विवाह १२४६)। — यही ध्वनिपरिवर्तन अ माग में गौण ह्रस्व स्वर मे भी हुआ है : सुहुम और सुहम = सूक्ष्म (§ ८२ ; १११ और १४); महा अ माग जै०महा और शौर में गौण दीर्घ स्वर में भी यही परिवर्तन हुआ है दाहिण = दक्षिण ; अ माग में दाहिणिल्ल, आयाहिण,

पयाहिण, पायाहिण (§ ६५) और **देहई, देहए** = *दक्षति, *दक्षते तथा अप० में **द्रेहि** ऐसे ही रूप हैं (§ ६६ और ५४६)।

१. लौयमान द्वारा संपादित औपपत्तिक सूत्र मे यह शब्द देखिए, इस नियम के अनुसार लौयमान ने ठीक ही लिखा है ; कल्पसूत्र में यह शब्द देखिए, याकोबी ने=ईहा अशुद्ध लिखा है और स्टाइनटाल ने भी अशुद्ध लिखा है, उसका स्पेसिमेन देखिए। — २. इस नियम के अनुसार लौयमान ने शुद्ध लिखा है। उसके औपपत्तिक सूत्र में यह शब्द देखिए, याकोबी और स्टाइनटाल ने अपने उक्त ग्रन्थों में=लूषित अशुद्ध लिखा है। — ३. इस नियम के अनुसार लौयमान ने शुद्ध लिखा है, औपपत्तिक सूत्र में यह शब्द देखिए , स्टाइनटाल ने अपने ऊपर दिये गये ग्रन्थ में = **सेधयति** लिखा है जो अशुद्ध है।

§ ३२४— वररुचि ११, ८ के अनुसार माग० में **क्ष** का **स्क** हो जाता है : **लस्कशे = राक्षसः , दस्के = दक्षः**। हेच० ४, २९७ में तथा रुद्रट के काव्यालंकार २, १२ की टीका में नमिसाधु बताते हैं कि यह ध्वनिपरिवर्तन केवल **प्रेक्ष्** (अर्थात् **प्र** उपसर्ग समेत **ईक्ष्**) और **आचक्ष** (अर्थात् **आ** समेत **चक्ष्**)का होता है : **पेॅस्कदि = प्रेक्षते, आचस्कदि = आचष्टे** है। इनके अतिरिक्त अन्य सब शब्दों में उनके (हेच० ४, २९६) अनुसार शब्द के भीतर आने पर **क्ष** का रूप **क**[१] हो जाता है **यके = यक्षः , लःकशे = राक्षसः ; पःक = पक्ष** (हेच० ४, ३०२ [हेच० ने इस विसर्ग का रूप **प कं** दिया है। —अनु०])। शब्द के आरम्भ में **क्ष** अन्य प्राकृत बोलियों पर लगनेवाले नियमों के अनुसार अपना रूप बदलता है . **खअयलहला = क्षयजलधराः** है। पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट पेज ३४४ में उद्धृत कृष्णपंडित[२] के मत के अनुसार **क्ष** के स्थान पर **श्क** आना चाहिए . **पश्क = पक्ष ; लश्का = लाक्षा , पश्कालदु = प्रक्षालयतु**। इस रूप के स्थान पर चंड० ३,३९ पेज ५२ और हेच० ४, २८८ में एक ही श्लोक के भीतर **पक्खालदु** रूप देते हैं। इसमें **क्ष** के ध्वनिपरिवर्तन से पता लगता है कि यहाँ **क्ष** की शब्द-प्रक्रिया इस प्रकार चली है मानो **क्ष** शब्द के आदि में आया हो। ललितविग्रहराज नाटक मे सर्वत्र **श्क** मिलता है **अलश्किय्यमाण = अलक्ष्यमाण** (५६५, ७) , **लश्किदं=लक्षितम्** (५६६, ४), **भिश्कं=भिक्षाम्** (५६६, ८) , **युज्झश्कमाणं = युद्धक्षमाणाम्** (५६६, ११) , **लश्कं** और **लश्काइं = लक्षम्** और **लक्षाणि** (५६६, ११) रूप हैं। इसी प्रकार **पेॅश्किय्यंन्दि, पेॅश्किय्यशि** [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] और **पेॅश्किदुं = प्रेक्ष्यन्ते, प्रेक्ष्यसे** और **प्रेक्षितुम्** हैं (५६५, १३ , १५ और १९ , ५६६, ७)। उक्त बोली के विपरीत **पच्चक्खीकदं = प्रत्यक्षीकृतम्** रूप खटकता है (५६६, १)। नाटकों की हस्तलिपियाँ और उनके अनुसार ही छपे संस्करण माग० मे **क्ष** के लिए वही प्रक्रिया काम में लाते हैं जो अन्य प्राकृत भाषाओं में **क्ष** के लिए काम मे लायी जाती है, यह भी शब्द के केवल आदि में नहीं जैसे, **खण = क्षण** (मृच्छ० १३६, १५ और १६ , १६०, ११ , प्रबोध० ५०, ९), परन्तु शब्द के भीतर भी सर्वत्र वैसा ही व्यवहार करते हैं। कुछ हस्तलिपियों में, जो नाममात्र

§ ३२६—क्ष यदि प्राचीन ज्ज्ञ से निकला हो तो [यह ज्ज्ञ अवेस्ता में मिलता है, आर्यों के भारत पहुँचने पर इसका लोप हो गया था। वैदिक और सस्कृत भाषाओं में इसका अवशेष यही क्ष है। —अनु०], इसका प्राकृत मे ज्झ् होकर ज्झ और फिर ज्झ[1] हो गया है . झरइ = क्षरति (हेच० ४, १७३), जै०महा० में झरेइ आया है (एर्से०), णिज्झरइ=नि क्षरति (हेच० ४, २०), महा० में ओज्झर = अवक्षर (हेच० १७, ९८, देशी० १, १६०, पाइय० २१६, हाल, रावण०), हेमचन्द्र के मत में = निर्झर है, किन्तु स्वय यह निर्झर शब्द प्राकृत है[1] और महा० तथा शौर० णिज्झर (गउड०, हाल, प्रसन्न० १२४, ७, शौर० में : मल्लिका० १३४, ७, बाल० २४१, ६, २६३, २२ [पाठ मे णिज्जर है])', अ०माग० और जै०महा० में इसका रूप निज्झर हो जाता है (पाइय० २१६)। अ०माग० में पण्णव० ८०, ८४ और उसके बाद तथा ९४ में [पाठ मे उज्झर और अधिक बार निज्जर है] ओज्झर और निज्झर साथ-साथ आये है। अप० में पज्झरइ = प्रक्षरति (हेच० ४, १७३, पिंगल १, १०२), पज्झरिश्च रूप भी मिलता है (क्रम० २, ८४), शौर० में पज्झरावेदि आया है (कर्पूर० १०५, ८)। झरअ रूप भी अवश्य इन रूपो के साथ सम्बन्धित है (= सुनार : देशी० ३, ५४ [झरअ झरने से कैसे सम्बन्धित है, यह बताना कठिन है, किन्तु सोनार अवश्य ही गहनों को झलता है अर्थात् उनमें धोकर चमक लाता है, इसलिए यह क्षर् का नहीं क्षालक* का प्राकृत रूप होना चाहिए, क्षल् और क्षाल् पर्यायवाची धातु हैं।—अनु०])। —अ०माग० में *झाइ के स्थान पर झियाइ रूप = *क्षाति = क्षायति[1] (= जलाना [अकर्मक] : सूय० २७३, नायाध० १११७, ठाणग० ४७८), झियायन्ति (ठाणग० ४७८ [कुमाउनी में जब बच्चा आग के पास जाता है तब 'पास मत जा, आग है' बताने के लिए ('झि झि हो जायगी' कहते है, इसका वास्तव में अर्थ है 'जल जायगा'। —अनु०]), महा० में विज्झइ रूप है (हेच० २, २८, हाल), विज्झाअन्त भी मिलता है, महा० में विज्झाअ (गउड०, हाल, रावण०), अ०माग० और जै०महा० में विज्झाय (नायाध० १११३, दस० ६४१, २९, आव० एर्त्से० २५, ३) पाये जाते हैं, महा० में विज्झवइ (गउड०), विज्झवेइ (हाल, रावण०) और विज्झविअ रूप भी देखने में आते हैं (हाल, रावण०), अ०माग० में विज्झवेज्झ, विज्झवेन्तु (आयार० २, २, १, १०) और विज्झाविय रूप आये हैं (उत्तर० ७०९)। समिज्झइ रूप, जो उपर्युक्त रूपों की नकल पर बना है, इन्ध[1] धातु से सम्बन्ध रखता है। — अ०माग० में झाम = क्षाम (जला हुआ, राख : आयार० २, १, १०, ६, २, १०, २२), झामेइ (सूय० ७२२, विवाह० १२५७), झामावेइ और झामत्त रूप है (सूय० ७२२), अ०माग० और जै०महा० में झामिय (देशी० ३, ५६, विवाह० ३२१, १२५१, आव० एर्त्से० २५, १, २६, १७) पाया जाता है, जै०महा० में निज्झामेमो मिलता है (द्वार० ५०५, ९), इनके साथ साथ महा०

---

* इस क्षलक या क्षालक से सबधित झला = मृगतृष्णा, झलुक्किअ = दग्धं शब्द देशीनाममाला ३, ५३ और ३, ५६ में यथाक्रम मिलते हैं। — अनु०

और शौर में खाम रूप मिलता है (= बलकर सूखा ; दुबला पतला : गउड कर्पूर ४१, १)। — महा और अ माग के झिज्जइ=क्षीयते (वर० ८, १७ ; हेच० २ १ ४, २ हाल ; रावण ललित० ५६२, २१ उत्तर० १११) ; महा में झिज्जए, झिज्जामो [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], झिज्जिहिसि (हाल) और झिज्जन्ति रूप मिलते हैं (गउड हाल) जै महा में झिज्जामि पाया जाता है (ऋषभ० १५ [बंबइया संस्करण के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) ; अप में झिज्जउं देखा जाता है (हेच ४, ४२५, १) महा और जै०महा० में झिज्जन्त-(गउड० हाल रावण ; कालका तीन (III), ६८) रूप हैं और में झिज्जन्ती आया है (विद्ध ११, २) महा०, शौर और अप० में झीण=क्षीण (हेच २, ३ ; क्रम २ ८४ ; पाइय १८१ गउड हाल ; रावण ; मृच्छ २१, ५ ; ६१, २१ ७४, २ ; अप में विक्रमो ५६, २१) ; इन झ वाले रूपों के साथ-साथ महा , अ माग और शौर में खीण भी चलता है (हेच २, ३ हाल ; अणुओग २८२ और उसके बाद सूय० २१२ सम ८८ ; कप्प ; अनर्घ २९१, १ ; किन्तु इसके कलकतिया संस्करण २१६, ६ में झीण रूप आया है) और छीण रूप भी है (हेच २, ३ [यह रूप कुमाउनी में बहुत चलता है और प्राचीन हिन्दी में प्रयुक्त हुआ है। —अनु]) । झोडइ= क्षोटयति (फेंकना सड़ाना और से फेंकना : धातुपाठ १५, २१) ; यही धातु झोडिअ में भी है (= शिकारी ; व्याध : देशी ३, ६) पिज्झोडइ झइ = ०निःक्षोभ्यति (पकड़ना ; छेदना : हेच ४, १२४), संभवतः इसी धातु से झोण्डलिआ (= रास के समान एक खेल : देशी ३, ६) भी निकला हो। बहुत संभव है कि झम्पइ (भ्रमण करना : हेच० ४, १६१) भी इसी से सम्बद्ध हो, क्योंकि यह क्षप् धातु से (बाहर भेजना : धातुपाठ, १५ ८४ सी (C) संबंधित होना चाहिए। यही धातु अ०माग झम्पित्ता = मर्मप्रवचनावकाशाम् कृत्वा (गाली देना : सम ८१) और झम्पिय (टूटा हुआ ; घट्टा हुआ छिपाया हुआ : देशी ३, ६१; पाइय ८५ २८) और झम्पणी में है (= पक्ष्म ; भौं : देशी ३, ५४ ; पाइय २५)[1]। — झसअ (मटक मच्छड़ : देशी ३, ५४) क्षट् धातु से निकाला गया प्रतीत होता है जिसमें उक्त प्रत्यय जोड़ा गया है (§ ११८ और ५९९) इसका सम्बन्ध क्षार (= तेज ; तीखा ; तीखी धारवाला ; कटु) से है जो खारी मिट्टी और रेह के अर्थ में आता है अ माग और अप में इसका रूप छार है, अ माग० और जै महा मे इसका खार रूप हो जाता है (§ ३२१)। — भयस्झइ = ०भयध्यासि (§ ४९९) के साथ साथ हेमचन्द्र ४, १८१ में भयमज्झइ रूप भी देता है।

1. वाकरनागल कृत आल्टइंडिशे ग्रामाटीक § १ ९ ; — २ त्साखारिआए कृत बाइत्रेगे त्सूर इंडिशन लेक्सिकोग्राफी पेज ५९ में याकोबी का मत। — ३ इस रूप को अ माग झियाइ = ध्याति से मिलाना न चाहिए (§ १२१ ; १६ ।

४७९)। — ४. त्सा०डे०डौ०मौ०गे० २८,३७४ और ४२८ में वेवर का मत, हाल १०९, ३३३ और ४०७ पर वेवर की टीका, एस० गौल्दश्मित्त, प्राकृतिका, पेज १६ और उसके वाद, विज्झाइ, विध्या रूप में जैनो की संस्कृत में भी ले लिया गया है। त्साखरिआए के 'अनेकार्थसंग्रह' के छपे संस्करण की भूमिका पेज १ और उसके वाद (विएना, १८९३)। — ५ व्यूलर द्वारा सपादित पाइयलच्छी मे अंपणाउ शब्द देखिए।

§ ३२७—त्स, थ्स, त्श और त्च रूपो से होकर (§ ३१६) च्छ बन जाता है (वर० ३, ४०, चड० ३, ४, हेच० २, २१, क्रम० २९२, मार्क० पन्ना २५), माग० मे इसका रूप श्च हो जाता है (§ २३३): अ०माग० मे कुच्छणिज्ज = कुत्सनीय (पण्हा० २१८), कुच्छिअ = कुत्सित (क्रम० २, ९२), चिइच्छइ = चिकित्सति, शौर० में चिकिच्छिदव रूप आया है। अ०माग० में तिगिच्छई और वितिगिच्छामि रूप पाये जाते हैं (§ २१५ और ५५५), अ०माग० में तेइच्छा और तिगिच्छा = चिकित्सा, वितिगिच्छा = विचिकित्सा और तिगिच्छग = चिकित्सक (§ २१५), शौर० में इसका रूप चिइच्छअ है (मालवि० २७, १२, इस प्रकार वगला हस्तलिपियों और बौ`ल्लें`नसेन की तेलगू हस्तलिपि के साथ पडित के सस्करण ५२,२ में चिकिस्सअ और चिइस्सअ के स्थान पर वही पाठ पढा जाना चाहिए)। अ०माग०, जै०महा० और शौर० में वीभच्छ (उवास० § ९४, आव०एर्त्से० ८, १९, द्वार० ५०६,२१, कालका० २६४, २६, माल्ती० २१५, १), शौर० रूप वीहच्छ (प्रबोध० ४५, ११, यहॉ वही पाठ पढा जाना चाहिए) और माग० वीहश्च (मृच्छ० ४०, ५, यहॉ यही पाठ पढा जाना चाहिए) = वीभत्स है। महा०, जै०महा०, शौर० और अप० में मच्छर = मत्सर (चड० ३,४, हेच० २, २१, गउड०, हाल, रावण०, एर्त्से०, शकु० १६१, १२, मालवि० ६४, २०, हेच० ४, ४४४, ५) है। जै०महा० और शौर० में वच्छ = वत्स (भाम० ३, ४०, एर्त्से०, कालका०, मृच्छ० ९४, १५, १५०, १२, विक्रमो० ८२, ६, ८ और १३, ८७, १७), माग० में इसका वश्च रूप है (हेच० ४, ३०२), अ०माग० और जै०महा० में सिरिवच्छ = श्रीवत्स (पण्हा० २५९, सम० २३७, ओव०, एर्त्से०) है। महा०, जै०महा० और शौर० में वच्छल = वत्सल (गउड०, हाल, द्वार० ५०१, ३, ५०३, ३८, ५०७,३०, एर्त्से०, शकु० १५८, १२), माग० में इसका रूप वश्चल है (मृच्छ० ३७, १३, यहॉ यही पाठ पढा जाना चाहिए)। — अ०माग० में छरु = त्सरु है (पाइय० ११९, देशी० ५, २४, पण्हा० २६६, सम० १३१, ओव०, नायाध०)। यही शब्द लोगों की जबान पर चढकर थरु=*स्तरु हो गया है (देशी० ५, २४, [यह शब्द इस स्थान पर मिला है किन्तु ऊपर जो छरु शब्द दिया गया है वह न तो ५, २४ में है और न छ-वाले शब्दों में मिला है। यह रूप अवश्य ही कही न कहीं होगा पर यहॉ वर्ग और श्लोक सख्या में कुछ भ्रम है। —अनु०])। पण्हावागरणाइ ३२२ में पाठ में च्छरु और टीका में त्थरु रूप आया है।

§ ३२७ अ—संधि में जिसमें एक पद के अंत में त् हो और उसके बाद के पद के आदि का वर्ण मौलिक श अथवा स से आरम्भ हो तो ध्वनिसमूह च्छ और स्स, स्स रूप धारण कर लेते हैं, नहीं तो त् के आगे के स्वर का दीर्घीकरण हो जाता है और स्स के स्थान पर स रह जाता है। त्+श : अ माग में ऊसवेइ = उच्छ्रपयत जो उच्छ्रपयत से निकला है, ऊसविय = उच्छ्रपित ; अ माग और जै महा में ऊसिय = उच्छ्रित, अ माग में उस्सिय, समुस्सिय और उस्सविय रूप भी पाये जाते हैं और में उस्सावेवि (§ ६४) आया है। महा में उस्सुन=उच्छून (गउड) है। अ माग में उस्सुंक = उच्छुल्क (§ ७४) है। महा में ऊससइ=उच्छ्वसिति, अ माग में इसका रूप ऊससन्ति है माग में ऊशशदु रूप मिलता है ; अ माग में उस्ससइ रूप भी देखा जाता है (§ ६४ और ४९६)। अ माग में उस्सास = उच्छ्वास (नायाध ; भग ओव) महा और अप में ऊसास आया है (गउड रावण हेच ४, ४३१, २) ऊससिर = उच्छ्वसिर (हेच २ १४५); ऊसीस (पाइय ११८) और जै महा ऊसीसग (आव एर्त्सें १६,१८) = उच्छीर्षक है। इसी का पर्यायवाची रूप ऊसअ (देशी १, १४) = उच्छ्रय के है जो = उद्+शय है। ऊसुअ = उच्छुक जो उद्+शुक से बना है (हेच १, ११४)। अ माग में तस्सकिणा = तच्छंकिन जो तद् + शंकिणः से बना है (सूय ३३६)। —त् + स : अ माग में उस्सग्ग = उत्सर्ग (भग कप्प) है। अ माग और जै महा में उस्सप्पिणी = उत्सर्पिणी (कप्प आव) है। अ माग में उस्सेह = उत्सेध (पाइय १६८ ; भग उवास ओव) है। अ माग में तस्संधि = तत्संधिन् (आयार १, ५, ४२) और तस्संधिचारि = तत्संधिचारिन् (आयार २,२, २४) है। ऊसरइ = उत्सरति (हेच १ ११४) ऊसारिअ = उत्सरित (हेच २, २१) जै महा में उस्सारित्ता रूप आया है (एर्त्सें १७ २८ इस ग्रंथ में ऊसारित्ता शब्द देखिए)। अ माग में ऊसत्त = उत्सक्त (क १) और ऊसित्त = उत्सिक्त (हेच १ ११४ पाइय १८७) है किंतु उस्सिक्कइ रूप भी मिलता है जो = उत्सिक्त्यति (मुक्त करना छोड़ देना ; ऊपर को फेंकना : हेच ४,९१ १४४) है। —हेमचंद्र १ ११४ के अनुसार उस्साह और उत्सन्न में उस शब्द में बदल जाता है : महा घोर और अप में उच्छाह रूप है (गउड रावण घकु ३६ १२ ; मालवि ८ १९ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; पिंगल १,९६ अ); उच्छव है (हेच १ ११४) ; शौ में उच्छाविद = उत्साहित मिलता है (मुच्छ ३८ १८ ; ३९ १)। वर १, ४२ ; क्रम २ ९१ मार्क पन्ना २६ के अनुसार उत्सुक और उत्सव में च्छ कभी नहीं आता पर हेमचंद्र २,२२ में बताया गया है कि स के साथ-साथ विकल्प से च्छ भी यहाँ काममें लाया जा सकता है। इस नियमसे महा में उच्छुअ रूप आया है (हेच हाल ९८४ की टीका) किंतु महा में अधिक सर्वों में ऊसुअ मिलता है (सब व्याकरणकार गउड ; हाल ; रावण ; घकु ८७, १४ ; कर्पूर ५८, २), घोर में उस्सुअ रूप भी है, अ माग और

जै०महा० में **उस्सुय** रूप भी है (शकु० ८४, १३ , मालवि० ३५, १ , ३७, २० ; ओव० एर्त्से०), शौर० में **पज्जुस्सुअ = पर्युत्सुक** (शकु० १९, ६ , ५७, १) और **पज्जूसुअ** (विक्रमो० २१,१९) रूप भी पाया जाता है , शौर० में **समूसुअ = समुत्सुक** (शकु० १४२,४ , विक्रमो० ६७,१२) , महा० में **ऊसुइअ = उत्सुकित** (हाल) , अ०माग० में **ओसुय = औत्सुक्य** (ओव०) है। —महा० और शौर० मे **ऊसव = उत्सव** (गउड० , हाल , रावण० , शकु० १२१, १२ , चैतन्य० २४४, १८), अ०माग० में **उस्सव** रूप है (विवाह० ८२२) और **ऊसअ** भी काम में आता है (निरया०) , महा० में **गामूसव = ग्रामोत्सव** (गउड०) , महा०, जै० महा० और शौर० में **मह्रसव = महोत्सव** , शौर० में **वसन्तूसव = वसन्तोत्सव** (§ १५८), इनके साथ साथ महा० और शौर० में **उच्छव** रूप भी चलता है (हाल ३६९ , मल्लिका० २०९,१८ , [यह रूप कुमाउनी में वर्तमान है तथा गुजराती भापामें इन रूपोका बहुत प्रचलन है। पुरानी हिंदी मे यह आया है। —अनु०]) , शौर० में **णिरुच्छव** भी मिलता है (शकु०११८,१३)[१]। —**उत्संग** महा०, अ०माग० जै०महा० और अप० में सदा **उच्छग** रूप धारण करता है (गउड०, हाल , [श्लोक ४२२ पढिए] , रावण० , ओव० , एर्त्से० , हेच० ४,३३६ , विक्रमो० ५१,२) । — महा० और चू०पै० में **उच्छल्लइ** रूप है (गउड० , हाल , रावण० , हेच० ४,३२६), जै०महा० में **उच्छल्लिय** रूप आया है (एर्त्से०), इसके साथ-साथ **ऊसलइ** रूप भी मिलता है (हेच० ४,२०२), **ऊसलिअ** (देशी० १, १४१), **ऊसलिय** (पाइय० ७९) के विषय में भारतीयों से सहमत हूँ कि ये **उद् + शल्** से निकले हैं, किंतु त्साखरिआए[२] की अपेक्षा, जिसने इसे **उद् + *सल्** से व्युत्पन्न किया है, मैं भारतीय व्युत्पत्ति ठीक मानता हू । —**उत्थल्लइ** (हेच० ४, १७४ , क्रम० ४, ४६ की तुलना कीजिए) , **उत्थल्लिय** (पाइय० १७९) और **उत्थलिअ** रूप (देशी० १, १०७), ब्यूलर[४] के मत से **स्थल + उद्** से निकले हैं तथा यह मत ठीक है। —अ०माग० में **त् + श** के समान ही **ट् + श** का रूपपरिवर्तन हुआ है . **छस्सय = षट्शत** (कप्प०) है।

१ हाल ४७९ की टीका और ठीक इसके समान ही वररुचि ३, ४ में इस शब्द का रूप देखकर पता लगता है कि **उस्सुअ** से **ऊसुअ** के अधिक प्रमाण मिलते हैं अर्थात् **ऊसुअ** रूप अधिक शुद्ध है। — २ लास्सन ने अपने इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए , पेज १५१ में इस रूप पर सदेह प्रकट करके अन्याय किया है और इसे शकुतला ७७, ६ में अशुद्ध बताकर बोएटलिंक ने लास्सन का साथ दिया है। — ३ कू० त्सा० ३३, ४४४ और उसके बाद। — ४ पाइयलच्छी में **उत्थल्लियं** शब्द देखिए।

§ ३२८—अतरिम काल में **फ्स, पूश, पूछ** रूपों से गुजर कर **प्स** और **च्छ** रूप धारण कर लेता है (§ ३१६ , वर० ३, ४०, चड० ३, ४ , हेच० २, २१ , क्रम० २, ९२ , मार्क० पन्ना २५)[१] . **छाअ** = पाली **छात = प्सात** (भूखा , दुबला-पतला . देशी० ३, ३३ , पाइय० १८३) है। दुबले-पतले के अर्थ में (देशी०

हो जाते हैं : शौर० मे **अन्तक्करण = अन्तःकरण** (विक्रमो० ७२,१२) , **णिक्खत्ती-कद् = निःक्षत्रीकृत** (महावीर० २७, ६) है। महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै०-शौर०, शौर०, माग०, दाक्षि० और अप० मे **दुक्ख = दुःख** (गउड० , हाल , रावण० , आयार० १, १, १, ७ , २, ३ , ३, ५ , ६, २ आदि-आदि , उवास० , कप्प० , निरया० , नायाध० , आव० एर्त्से० ९, ६ , १०, २० , एर्त्से० ; काल्का०, ऋषभ० , पव० ३८०, १२ , ३८१, १४ और २० , ३८३, ७५ , ३८५, ६७ और ६९ , मृच्छ० २८, ११ , ७८, १२ , शकु० ५१, १४ , ८४, १४ , १३६, १३ , विक्रमो० ९, १९, ५१, १२; ५३, ११, माग० मे : मृच्छ० १५९, २२, प्रबोध० २८, १७ , २९, ७ , दाक्षि० मे : मृच्छ० १०१, १२ , अप० मे : हेच० ४, ३५७, ४ , विक्रमो० ५९, ६ और ६०,१८) है , शौर० मे **णिद्दुक्ख = निर्दुःख** (शकु० ७६,८) है , शौर० में **दुक्खिद = दुःखित** (विक्रमो० १६, ६ , २४, ?) है। —अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **दुक्ख** के साथ साथ **दुह** रूप भी पाया जाता है (सूय० १२६ , १५६ , २५९ और ४०६ , उत्तर० ५०५ , ५७४ , ५९९ और ६२६ , पण्हा० ५०४ , दस० नि० ६४६, ६ और १४ , नायाध० ४७८ , एर्त्से० , काल्का० , कत्तिगे० ४०१, ३४९)। इसी भाँति महा० में **दुहिअ** (हेच० १, १३ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , क्रम० २, ११३ [यहाँ भी यही पाठ पढा जाना चाहिए], हाल , रावण०) , अ०माग० और जै०महा० मे **दुहिय** रूप है (उत्तर० ५९९ , विवाह० ११६ , तीर्थ० ६, १० , द्वार० ५०१, १०, काल्का०) तथा जै०महा० का दूसरा रूप **दुहिद** (पव० ३८३, ७५) = **दुःखित** है , महा० में **दुहाविअ** रूप भी पाया जाता है (गउड०) और अ०माग० में **दुहि- = दुखिन्** देखा जाता है (सूय० ७१ , उत्तर० ५७७)। दुःख के ह-युक्त प्राकृत रूप प्राय. विना अपवाद के पद्य मे पाये जाते है और **दुह** रूप बहुधा **सुह** के ठीक बगल में आता है [अर्थात् **सुह- दुह** रूप में। —अनु०] = **सुख** है। इसकी नक्ल पर **दुह** बना है[१] ठीक इसके विपरीत **सुग्ग** (= आत्मकुशल, निर्विघ्न . देशी० ८ ५६), जो **दुग्ग = दुर्ग** (= दुःख . देशी० ५, ५३ , त्रिवि० १, ३, १०५) की नकल पर बना है[१] । — **पुणपुणक्करण = पुन.पुन.करण** (देशी० १,३२) है। **अन्तप्पाअ = अन्तःपात** (हेच० २,७७) है। माग० में सयुक्त वर्ण अर्थात् ध्वनिसमूह हस्तलिपियों में व्याकरण के नियमों के अनुसार लिखे गये हैं, यह सदिग्ध है। § ३४२ और ४४७ की तुलना कीजिए। — **:श, :ष** और **:स, स्स** बन जाते हैं तथा माग० में **स्स** के स्थान में **श्श** आता है अथवा इससे पहले आनेवाले स्वर का दीर्घीकरण होने पर **स** आता है जो माग० मे **श** रूप धारण करता है (§ ६४) . शौर० में **चदुस्साल = चतु.शाल** (मल्लिका० २०९ , १९ ; २१५, ५ , पाठ में **चउस्साल** है), **चदुस्सालअ = चतु.शालक** (मृच्छ० ६, ६ ; १६, ११ , ४५, २५ ; ९३, १६ , १८ , धूर्त० ६, ५), शौर० मे **चदुस्समुद्द= चतुःसमुद्र** (मृच्छ० ५५, १६ , ७८, ३ ; १४७, १७) है। माग० में **णिश्शलिद = निःसृत** (ललित० ५६६, १५) है। महा० में **णीसंक = निःशंक**, जै०महा० में यह **निस्संक** हो जाता है (§ ६४)। महा० और शौर० में **णीसह = निःसह**,

इसके साथ-साथ निस्सह रूप भी काम में आता है (§ ६४)। जै महा में नीसेस = निःशेष (कक्कुक शिलालेख १) है। शौर में दुस्सत्त = दुःसत्त्व (शकु० ११, १२; ७६,१), माग० में दुश्शस्त हो जाता है (शकु ११, १)। दुस्सचर और दुसंचर = दुःसंचर (क्रम २,११३) है। शौर में दुस्सिलिट्ठ = दुःश्लिष्ट(महावीर २३, १९) है। महा , जै०महा , शौर और अप में दूसह और इसके शौर० रूप दुस्सह = दुःसह (§ ६४) है। शौर में शुणस्सेह = शुनःशेफ (अनर्घ० ५८५ ; ५९,१२) है। दुस्सील = दुःशील (देशी ६,६) है। § ६४ की तुलना कीजिए।

१ हू स्सा २५, ७३८ और उसके बाद के पन्नों में याकोबी के विचारों की तुलना कीजिए, किन्तु इनमें बहुत कुछ अशुद्ध भी है। २ — पिशल बे० बाइ० ३ ५५।

§ ३३० — संयुक्त वर्ण ह्न, ह्म ह्य और ह्र व्यञ्जनों के स्थानपरिवर्तन के द्वारा क्रमशः ण्ह, म्ह और यह रूप धारण कर लेते हैं (वर ३, ८ ; हेच २, ७४ ७५ और ७६; क्रम० २, ५ ९६ और ९९; मार्क पन्ना २१)। महा , अ माग , जै० महा , जै०शौर और शौर में अवरह्ण = अपराह्ण (माग ३, ८ हेच २, ७५ गउड ; हाल अणुओग ७४ माग एर्से ; कत्तिगे ४ २, ३५८ ; ४०३, १७३ ; गउम ८१, २) है। अ माग और जै शौर में पुव्वह्ण= पूर्वाह्ण (भाम ३ ८ हेच २,७५) मार्क पन्ना २१ ; ठाणंग २८४ अणुओग ७४ भग ; कत्तिग ४ २,३५८) है अ माग में पुव्वावरह्ण रूप भी आया है (नायाध १११ और ८८१ ठाणंग २८४; कप्प० § २१२ और २२७ ; निरया ५३ और ५५ ; विवाग १२४ [पाठ में पव्वावरह्ण है])। महा०, अ०माग , जै महा , जै शौर० और शौर में मज्झह्ण = मध्याह्न (हेच २ ८४ हाल ४४९ कपूर १६, ६ ; ६, २ ठाणंग० २४१ भाव एर्से० ८६ ३ ; एर्से ; कत्तिग ४ २, ३५४ रत्ना ३२१, ३२ प्रबो ७, २ कपूर० ५९, ४ ; विद्ध ४ , ९ ; चैतन्य १२, १३ जीवा ८६ ७ और १७) है। मज्झण्ण=मध्यंदिन के विषय में § १४८ और २१४ देखिए। — महा , अ०माग , जै महा और अप में गण्हइ, जै शौर० गिण्हदि और शौर तथा माग गेण्हदि = गृह्णाति (§ ५१२) है। — महा , शौर माग और अप में चिण्ह = चिह्न, इसके साथ साथ महा अ माग और जै महा में चिन्ध रूप भी चलता है (§ २६७)। — जण्हु = जह्नु (भाम ३ ३३ ; हेच २ ७५) है। — निण्हवए= निह्नुते, अ माग० में निण्हवेज्जा, निण्हवे और अणिण्हवमाण रूप पाये जाते हैं महा में णिण्हुविज्जन्ति और शौर में णिण्हुवीअदि और णिण्हुविद रूप मिलते हैं (§ ४७३)। — अ०माग , जै महा और शौर में पण्ह = प्रश्न (भाम ३, ३३ ; हेच २, ७५; क्रम २, ९ ; विवाह ८१० एर्से मृच्छ २५१ ८) है। — महा और शाकि में वम्ह— ब्रह्मन् (हेच २ ७४ हाल ; मुच्छ १ ५ २१); पसन्नराघव , शौर० और माग में बह्मण = ब्राह्मण (§ २८७); शौर में बम्हण्ण = ब्राह्मण्य (§ २८२); बम्हयारि = ब्रह्मचर्य (§ १७६) इसके साथ-साथ पाली में बम्भ बम्भण

और **बम्भचेर** रूप भी चलते हैं (§ २५० और २६७)। — **सुम्हा = सुह्माः** (हेच० २, ७४) है। — **अल्हाद = आह्लाद** (भाम० ३, ८) है। अ०माग० में **कल्हार = कह्लार** (भाम० ३, ८ , हेच० २, ७६ , क्रम० २, ९५ , मार्क० पन्ना २१ , पण्णव० ३५ , सूय० ८१३) है। **पल्हाअ = प्रह्लाद** (हेच० २,७६) ; अ०-माग० में **पल्हायणिज्ज = प्रह्लादनीय** (जीवा० ८२१ , नायाव० § २३), अ०माग० मे **पल्हायण = प्रह्लादन** (उत्तर० ८३८) है। महा०, अ०माग और शौर० मे **पल्हत्थ = ? प्रह्लस्त** , महा० मे **पल्हत्थइ** रूप है और अ०माग० में **पल्हत्थिय** आया है (§ २८५)। अ०माग० और जै०महा० में **पल्हव = पह्लव** (पण्हा० ४२ [पाठ मे **पह्लव** है] , द्वार० ४९८, १७) , अ०माग० में **पल्हवी** (नायाध० § ११७) और **पल्हविया** (विवाह० ७९२ , ओव० § ५५) रूप आये हैं। **ल्हसइ** और **परिल्हसइ = ह्लसति** और **परिह्लसति** (हेच० ४, ४९७) हैं, अप० में **ल्हसिउँ** रूप मिलता है (हेच० ४, ४४५, ३)।

§ ३३१— हेच० २, ११४ के अनुसार **ह्य** ध्वनिपरिवर्तन अर्थात् वर्णव्यत्यय के कारण **य्ह** रूप धारण कर लेता है **. गुय्ह = गुह्य** और **सय्ह = सह्य** है। व्याकरण-कार यही नियम सर्वनाम द्वितीय वचन के लिए भी बताते हैं : **तुय्ह** और **उय्ह** (§ ४२० और उसके बाद)। यह ध्वनिपरिवर्तन पाली में बहुत होता है किन्तु प्राकृत में इसके उदाहरण अभी तक नहीं मिले हैं। सम्भवत. यह माग०, पै० और चू०पै० के लिए बनाया गया होगा क्योंकि इन बोलियों के अन्य ध्वनिपरिवर्तनो के साथ इनका मेल है (§ २३६ , २५२ , २८० और २८७)। छपे सस्करण माग० में **ज्झ** देते हैं , तोभी मृच्छ० १७०, १८ = गौडबोले के सस्करण का ४६३, ८ में पाठ के **शज्झ** के स्थान पर हस्तलिपियॉ **सह्य, सत्थ, शत्थ** और **स्सत्थ** देती हैं। इन रूपों से यह आभास मिलता है कि यहॉ पर **शय्ह** लिखा जाना चाहिए। शेष सभी बोलियों में **य** § २५२ के अनुसार बदल कर **ज** बन गया है। इस कारण **ह्य** का **झ** रूप हो गया है और शब्द के भीतर यह **झ**, **ज्झ** में परिणत हो जाता है (वर० ३, २८ , चड० ३, २० , हेच० २, २६ , १२४ , क्रम० २, ८७ , मार्क० पन्ना २३)। शौर० में **अणुगेज्झा = अनुग्राह्या** (मृच्छ० २४, २१) , अ०माग० में **अभिरुज्झ = अभिरुह्य** (§ ५९०), **अभिणिगिज्झ = अभिनिगृह्य, परिगिज्झ = परिगृह्य** (§ ५९१) , **नज्झइ = नह्यते** (हेच० २, २६), महा० में **संणज्झइ** रूप आया है (रावण०)। जै०महा० मे **गुज्झ = गुह्य** (हेच० २, २६ , १२४ , एर्से०) है , **गुज्झअ = गुह्यक** (भाम० ३, २८) है। **दुज्झ = दोह्य** (देशी० १, ७) है। **वज्झ = वाह्य**(चड० ३, २० , क्रम० २, ८७) , **वज्झअ = वाह्यक** (भाम० ३, २८) है। शौर० में **सज्झ = सह्य** (हेच० २, २६ , १२४ , शकु० ५१, १५), महा० में **सज्झ = सह्य** (रावण०) है। **ह्विज्जो** और शौर० **ह्विओ = ह्यस्** के विषय में § १३४ देखिए।

§ ३३२— **र्ह** और **ह्** अधिकतर अशस्वर द्वारा अलग-अलग कर दिये जाते हैं (§ १३२—१४०)। **दशार्ह** का अ०माग० में **दसार** रूप हो जाता है (हेच०

२, ८५ ; अंत० १ ; ठाणंग० ८ और १११ नायाध० ५२८ ; ५१७ १२१५ ; १२६१ ; १२७७ ; निरया ७८ और उसके बाद सम २१५ उत्तर ६६५ ६७१)। अ माग में हद का ह्रस्व हो जाता है (§ ११२) अथवा ध्वनि के स्थानपरिवर्तन या कहिए वर्णव्यत्यय के कारण अ माग और अप में द्रह और अ माग में दह हो जाता है (§ २६८ और ३५४)। — ह्रष की ध्वनि का स्थानपरिवर्तन होकर हह हो जाता है जो म गनहर शब्द के भीतर म्म बन जाता है (चंड १, १ २१ और २६ हेच २, ५७ ; क्रम २, १७ मार्क पन्ना २१)। गम्भर = गह्वर (क्रम० २ १७) है। — अ०माग० और जै महा० में जिम्भा = जिह्वा (चंड १, १ २१ और २६ हेच० २, ५७ , मार्क पन्ना २१। आयार १, १, २, ५ पेज ११७, १ सूय० २८० और ६१९ उत्तर ९४१ और ९८६ उवास० ओव आव एर्से ४२, १) ; अ माग में जिब्भिन्दिय रूप भी है (विवाह १२ और ५११ ठाणंग १ पण्णव ५२९), अप में जिभिन्दिउ है (हेच ४, ४२७ १ यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए), इनके साथ साथ महा , अ माग जै महा , जै शौर और शौर में जीहा रूप पाया जाता है और इसका माग में यीहा हो जाता है (§ ६५)। — विम्भल = विह्वल (चंड १, १ हेच २ ५८ क्रम २, ७२) ; अ माग में सॅम्भल रूप है (माम १, ४० पण्णा १६५), इनके साथ साथ महा और जै महा में विहल है (सब व्याकरणकार ; गउड० हाल रावण कालका), जै महा में विहलिय = विह्वलित मिलता है (एर्से)। सिम्भल सिंभल महा में सिंभल और शौर में मसन्दा के विषय में § २ ९ देखिए।

§ ३३३—जैसा कि अकेले आनेवाले व्यंजनों में होता है (§ २१८ और उसके बाद) वैसे ही एक ही वर्ग के संयुक्त अंतिम वर्णों में संस्कृत दन्त वर्णों के स्थान पर मूर्धन्य वर्ण आ जाते हैं। — त्त = ट्ट : शौर में मट्टिया = मृत्तिका (§ ४९) है। — अ माग में वट्ट = वृत्त (=गोल : § ४९) अ माग में आविषट्ट = आवर्तिवृत्त (कप्प) विषट्ट = विवृत्त (ओव) इसके साथ साथ अ माग में इसका वत्त हो जाता है (ओव) निव्वत्त रूप भी पाया जाता है (ओव); जै महा में जहावत्त = यथावृत्त (एर्से) है। अन्य सभी प्राकृत भाषाओं में सर्वत्र त्त दिखाई देता है। — संस्कृत में साथ साथ और एक ही अर्थ में चलनेवाले शब्दों शब्दों पत्तन और पट्टन में से अ माग , जै महा और अप में केवल पट्टण काम में आता है (वर ३ २३ हेच २ २९ मार्क पन्ना २३ आयार १ ७ ६ ८; २ ११ ७ ; ठाणंग १४० पण्हा १७५ ; २४६ ४ ६ ४८६ उत्तर ८९१ विवाह ४ २९५ ; उवास ; ओव नायाध कप्प एर्से ; हेच ८, ४ ७)। — त्थ = ट्ठ : अ माग और जै महा में उट्ठ रूप में उट्ठइ=उत्थाति महा मे उट्ठिअ रूप आया है, अ माग और जै महा में उट्ठिय इसके साथ-साथ शौर मे उत्थेहि, उत्थेदु और उत्थिद रूप चलते हैं। अ माग० कट्ठिइ तथा इसके साथसाथ अ माग और माग रूप

कविस्थ = **कपित्थ** (§ ३०९) है। — **द्ध** = **ड्ढ** : अ०माग० और जै०महा० में **इड्ढि** और इसके साथ-साथ दूसरा रूप **रिद्धि** भी चलता है (§ ५७)। — अ०माग० मे **वड्ढि** और **वुड्ढि** = **वृद्धि**, महा० में **परिवड्ढि** = **परिवृद्धि**, महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और माग० में **वुड्ढ** = **वृद्ध** (§ ५३) है। — अ०माग० में **सड्ढा** = **श्रद्धा** (हेच० २, ४१ , सूय० ६०३ , ६११ , ६२० , नायाध०, भग० , ओव० , कप्प०), **जायसड्ढ** रूप पाया जाता है (विवाह० ११ , १०१ , ११५ , १९१), **उप्पण्णसड्ढ** और **संजायसड्ढ** रूप भी काम में आते है (विवाह ११ और १२) , अ०माग० में **सड्ढि–** = **श्रद्धिन्** (आयार० १, ३, ४, ३ , १, ५, ५, ३ , सूय० ७१ , कप्प०) , अ०माग० में **महासड्ढि** भी चलता है (आयार० १, २, ५, ५) , **सड्ढिय** = **श्राद्धिक** (ठाणग० १५२), **सड्ढइ–** = ***श्राद्धकिन्** (ओव०), इसके साथ-साथ महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **सद्धा** रूप भी काम में आता है (हेच० १, १२ , २, ४१ , हाल , आयार० १, १, ३, २ , उवास० , एर्त्से० , शकु० ३८, ५ , प्रबोध० ४२, २ और ८ , ४४,११ , ४६, ८ , ४८, १ और २ आदि-आदि), माग० में **शद्धा** रूप है (प्रबोध० ४७,२ ; ६३, ४), महा० में **सद्धालुअ** आया है (हाल) और अ०माग० में सदा ही **सद्दहइ** रूप काम में आता है (वर० ८, ३३ , हेच० ४, ९ , क्रम० ४,४६ , मार्क० पन्ना ५४ , विवाह० ८४५ , १२१५ , उत्तर० ८०५), **सद्दहाइ** रूप भी देखने में आता है (उत्तर० ८०४), जै०शौर० में **सद्दहदि** रूप है (कत्तिगे० ३९९, ३११), अ०माग० में **सद्दहामि** भी पाया जाता है (विवाह० १३४ , नायाध०, § १५३), महा० में **सद्दहिमो** है (गउड० ९९०) , अ०माग० में **सद्दहन्ति** (विवाह० ८४१ और उसके बाद), **सद्दहे** (आयार० १, ७, ८, २४ , उत्तर० १७०), **सद्दहसु** (सूय० १५१) और **सद्दहाहि** (विवाह० १३४) रूप पाये जाते हैं। जै०महा० मे **आसद्दहन्त** आया है (आव० एर्त्से० ३५, ४) , अ०माग० में **सद्दहाण** (हेच० ४, २३८ , सूय० ३२२), **असद्दहाण** (सूय० ५०४) , अ०माग० और जै०शौर० मे **सद्दहमाण** (हेच० ४, ९ , सूय० ५९६ , ६९५ , पव० ३८८, ६) , अ०माग० में **असद्दहमाण** (विवाह० १२१५) , महा० मे **सद्दहिअ** (भाम० ८,३३ , रावण० १, ३८) तथा जै०शौर० में **सद्दहण** रूप है (पव० ३८८, ६)। — **न्त** = **ण्ट** : अ०माग० मे **विण्ट** और **तालविण्ट**, महा० में **वे॑ण्ट**, महा०, अ०माग० और शौर० में **तालवे॑ण्ट** और अ०माग० में **तलियण्ट** = **वृत्त** और **तालवृन्त** है (§ ५३)। — **न्थ** = **ण्ठ** : **गण्ठइ** = **ग्रथ्नाति** (हेच० ४, १२०), इसके साथ साथ **गन्थइ** रूप भी काम में आता है (मार्क० पन्ना ५४) , महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै० शौर०, शौर० और दाक्षि० मे **गण्ठि** = **ग्रन्थि** (हेच० ४, १२० , गउड० , हाल , कर्पूर० १०, २ , ७६, ४ , सूय० ७१९ , विवाह० १०४ , उत्तर० ८७७ , ओव० , एर्त्से० , पव० ३८५, ६९ , शकु० १४४, १२ , प्रबोध० १८, १ , बाल० ३६, ३ , १२०, ६ , १४८, १६ , २९७, १६ , २९९, १ , विद्ध० ७१, १ , ८३, १ , कर्पूर० २३, २ , ८६, १० , ११२, ५ , कर्ण० ११, १ , दाक्षि में मृच्छ० १०४, ७),

अ०माग में गण्ठिच्छ रूप है (विवाह ११०८) अ०माग गण्ठिग = ग्रन्थिक (सूय ८६९) अ०माग० में गण्ठिमेय आया है (विवाग १ उत्तर १८९ ; पण्हा १५१ [पाठ में गण्ठिमेद है]) किंतु गण्ठिमेय भी पाया जाता है (पण्हा १२१) गण्ठिच्छेय = ग्रन्थिच्छेद (देशी २ ८६ १, ९) अ माग० में गण्ठिच्छेदय रूप है (सूय ७१४), गण्ठिच्छेद भी मिलता है (सूय ७१९) माग में गण्ठिच्छेदम रूप देखा जाता है (शकु ११५, ४ और १२ यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) शौर में जिम्हाण्ठिवगण्ठिर रूप है (बाल १११,१४)- जै शौर में दुमाण्ठि आया है (पव १८५, ६८) ; अ माग में नियण्ठ = निर्ग्रन्थ (सूय ९६२ ९८६ ९८९ ; ९९२ विवाह १४९ और उसके बाद), महानियण्ठ भी देखने में आता है (उत्तर ६३५), किंतु अ माग० में गंथिम रूप भी चलता है (आयार २, १२, १ २, १५, २ पण्हा ५१, ९ विवाह ८२१ जीवा १४८ दस नि ६५१, १ अणुओग २९ नंदी० ५ ७ ; ओव § ७९, प्यारह [XI] यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए), बहुत ही कम गण्ठिय भी देखा जाता है (नायाध २६९) अ०माग और जै शौर में गन्थ = ग्रन्थ (आयार १, ७, ८, ११ ; पण्हा ५ ६ ; कप्प कत्तिगे ३९९, ३१७ ; ३१८ और ४ ४,३८६ ; ३८७) ; अ माग में सगन्थ है (आयार १ ९,११) अ माग० और जै शौर निग्गन्थ = निर्ग्रन्थ (आयार २, ५, १, १ २, ६, १, १ ; २,१५,२९ पेज १३२, ४ और उसके बाद ; सूय ९१८ ; ९५८ ; ९६४ ९९२ विवाह १८१ ; उवास० ; ओव कप्प आदि आदि ; कत्तिगे ४ ४, ३८६) अ माग में निग्गन्थी भी है (आयार २,५,१,१) । — न्द् = न्द : कन्दलिआ = कान्दरिका (देश २ १८), इसका अर्थ अनिश्चित है [संभवतः यह शब्द किसी जाति की स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होता था जिसके पुरुष कन्दरिय या कन्दरिय इस कारण कहलाते होंगे कि वे लोग जंगल आबाद करते होंगे और कंदराओं में रहते होंगे । इस जाति का नाम वर्तमान हिंदी में पुल्लिंग कंजड़ और स्त्रीलिंग में कंजड़िन है । हमारे कोषकारों ने भ्रम से बताया है कि यह शब्द देशज है अथवा कालंजर से निकला है । इसका अर्थ प्रायः ठीक दिया है : एक घूमनेवाली जाति ; रस्सी बटने सिरकी बनाने का काम करनेवाली एक जाति । इसका एक रूप स्त्रीलिंग में कन्दलिआ या कन्दरिआ से कंजड़ी भी है । आजकल भी यह जाति घास-फूस के मकानों में रहती है प्राचीनकाल में अवश्य ही कन्दराओं में रहती होगी । इस जाति का एक काम जंगलों से घास-फूस लाकर उसकी टट्टी बनाना भी है । द का ज में ध्वनिपरिवर्तन का नियम प्रसिद्ध ही है उद्योत = उजोग ; पूत = जूआ आदि-आदि इसके उदाहरण हैं । —अनु] । कन्दुल्लि रूप की तुलना कीजिए जो पिसलम व्य- पिपदलेय के स्थान पर आया है (हाल ४१ [यह कण्डुल्लि एक कंदमूल है जो जंगल में पानी के किनारे बहुतायत से पाया जाता है । इसके पत्ते और मूल की भूख से गाय बनाने और उसे खाने पर ऐसा लगता है मानो किसी ने गले के भीतर गुरप डाला हो । यह एक प्रकार का जंगली पंदा है । कुमाउनी में इसका नाम गंडली है ।

—अनु०]) । — अ०माग० में **भिण्डिमाल** और इसके साथ-साथ साधारण रूप **भिण्डिवाल = भिन्दिपाल** (§ २४९) है । — § २८९ और उसके बाद तथा § ३०८ और उसके बाद के § में वर्णित उदाहरणों को छोड भिन्न भिन्न वर्गों के संयुक्त वर्णों का मूर्धन्यीकरण **थड्ढ** के **ग्ध** में है (पाइय० ७५), महा० में **ठड्ढ** (हेच० २, ३९, हाल ५३७) = ***स्तग्ध** जो ***स्तघ्** धातु से बना है । पाली **ठहति** (स्थिर रहना), प्राकृत रूप **थाह** (= आधारभूमि, फर्श, तला), **थह** (=निवासस्थान), **थग्घ** (गहरा), **अत्थाह** तथा **अत्थग्घ** (= अतल , गहरा) (§ ८८) और **उत्थंघइ** (ऊपर को फेंकना या सहारा लगाकर ऊपर को उठाना) है । महा० में **उत्थंघिअ** (§ ५०५), **उत्थंघण** और **उत्थंघि-** (गउड०) इसी के रूप हैं । **छूढ** और इसके संधि-समास= **क्षुब्ध** इसकी नकल पर बने हैं (§ ६६) ।

§ ३३४—दो से अधिक व्यंजनों से संयुक्त वर्णों के लिए ऊपर के पाराओं मे वर्णित नियम लागू होते हैं । उदाहरणार्थ, **उप्पावेइ = उत्प्लावयति** (हेच० २, १०६), महा० में **उप्पुअ = उत्प्लुत** (हाल) है । महा० में **उत्थल = उत्स्थल** (रावण०) है । महा० में **उच्छेवण = उत्क्षेपण** (रावण०) है । अ०माग० में **णिट्ठाण = निःस्थान** (विवाग० १०२) है । अ०माग० में **कयसावत्ता = कृतसापत्न्या** (देशी० १, २५) है । माग० में **माहप्प = माहात्म्य** (गउड० , रावण०) है । महा०, अ०माग० और शौर० में **मच्छ = मत्स्य** (रावण० , सूय० ७१ , १६६ , २७४ , उत्तर० ४४२ , ५९५ , ९४४ , विवाग० १३६ , विवाह० २४८ और ४८३) , माग० में यह रूप **मश्च** हो जाता है (§ २३३) , अ०माग० में **मच्छत्ताए** रूप मिलता है (विवाग० १४८) और जै०महा० में **मच्छबन्ध** आया है (एर्त्से०) । महा० में **उज्जोअ = उद्योत** (गउड० , हाल , रावण०) है । महा० और शौर० मे **अग्घ = अर्घ्य** (हाल , शकु० १८, ३ , ७२, ३) है । महा० मे **सामग्गय = सामग्र्यक** (रावण०) है । महा० और अ०माग० में **तंस = त्र्यस्त** (§ ७४) है । जै०महा० में **वट्टा = वर्त्मन्** (= वाट : देशी० ७, ३१ , एर्त्से०) है । महा० , अ०माग०, जै०महा०, शौर० और अप० मे **पंति = पंक्ति** (§ २६९) है । महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **विंझ = विन्ध्य** (§ २६९) है । महा० में **अत्थ=अस्त्र** (रावण०, आदि-आदि) है । अपने अपने उक्त स्थान पर इनके अनगिनत उदाहरण दिये गये हैं । **ज्योत्स्ना**, महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर०, दाक्षि० और अप० मे **जोॅण्हा** रूप धारण करती है (हेच० २, ७५ , गउड० , हाल , रावण० , कर्पूर० १, ४ , २, ५ , २९, १ , ८८, २ , मल्लिका० २३९, ३ , जीवा० ७८७ , काल्का० , शकु० ५५, २ , मालवि० २८, २० , वाल० २९२, १५ , अनर्घ० २६७, ३ , मल्लिका० १२४, ७ , २४३, १५ , २५२, ३ , कर्ण० २६, ८ ; दाक्षि० मे मृच्छ० १०१, ९ , अप० मे हेच० ४, ३७६, १), **जोॅण्हाल = *ज्योत्स्नाल** [यह **जोॅण्हाल** रूप कुमाउनी में वर्तमान है । —अनु०] (हेच० २, १५९), शौर० मे **जोण्हिआ = ज्योत्स्निका** [यह रूप कुमाउनी म ज्यूनि रूप मे है । —अनु०] (मल्लिका० २२८, ९) अथवा अ०माग० में **दोसिणा** रूप है (§ २१५),

शौर० में दोसिणी रूप भी है = ज्योत्स्नी (§ २१५) है। महा० और जै०महा० में सामत्थ (हाल० २, २२ गउड० हाल ; रावण० ; एत्सें० ; कालका) जो अपने पूर्व रूप *सामर्थ की सूचना देता है (§ २८१)। सामर्थ्य नियम के अनुसार शुद्ध रूप सामच्छ बनाता है (देश० ९, २२)। — पाली में दिस्सा = दृष्ट्वा इससे यह सम्भव मालूम पड़ता है कि अ माग० दिस्सा में (सूय० ७२८ विवाह० १४१४) और पदिस्सा = प्रदृष्ट्वा में (विवाह० १४१५) दीर्घ स्वर मौलिक है और दिस्स रूप में ह्रस्व स्वर (सूय० १७४ १८८ उत्तर० २११ ४४७ ६६६ ६९५ दस० ६२९, १४ ; ६३१, २७) छन्द की मात्रा ठीक करने के लिए लगाया गया है। इसी तथ्य का निर्देश अ माग० दिस्सम् मागयं = दृष्ट्वागतम् (उत्तर० ६९९) करता है, जहाँ § ३४९ के अनुसार दिस्सम्, दिस्सं के स्थान पर आया है और यह दिस्सं § ११४ के अनुसार दिस्सा के लिए आया है। दृष्ट्वा का नियमानुसार रूप *दिट्ठा होना चाहिए था। संयुक्त व्यंजनों के इ–कार के लोप के विषय में § २११ देखिए।

तीन—शब्द के आदि में व्यंजनों की विच्युति का आगमन

§ ३३५—समास के द्वितीय पद का आदि व्यंजन जब वह दो स्वरों के बीच में आया हो तब उसकी विच्युति हो जाती है इसी प्रकार पूर्वाधार आदि के अव्ययों तथा अग्राचारों के बाद भी विच्युति हो जाती है, क्योंकि इनके एक साथ समन्वित शब्द एक समास समझे जाते हैं (§ १८४) अन्यथा आदि में आनेवाले व्यंजनों की विच्युति दो-चार ही मिलती है और वह भी जनता की बोली में आकर यह हुआ है : ऊआ = पाली ऊका = यूका (देशी० १ १३९ ; त्रिवि० १, ३ १ ५) इसके साथ-साथ जूआ रूप भी मिलता है (देशी० १, १५९), अ०माग० में जूया रूप है (आयार० २ ११ १८ वेबर द्वारा सम्पादित अणुओग० मग० २ २६५ पर नोट), जूव भी पाया जाता है (§ २१)[1] ओकणी = *यूकनी (= युकां : देशी० १ १५९) है। — अ माग० में अहा– = यथा–(हेच० १, २४५, [इसमें हेच० ने टीका में बताया है कि आर्षभाषा में यथा के य का लोप भी हो जाता है, उदाहरण में अह–और अहा दिये हैं। —अनु]), उदाहरणार्थ, अहासुयं = यथाश्रुतम् (आयार० १ ८ १ १ ; पेज ११७, २६) अहासुत्तं अहाकप्पं और अहामग्गं = यथासूत्रं यथाकल्पं और यथामार्गम् (आयार० पेज ११७, २६ ; पाठ में अहासुयं है ; नायाध० १६९ विवाह० १६५ ; उवास० ; कप्प०) अहारायणियाए = *यथारात्निकाय (आयार० २ १ १ ५ ; ठाणंग० १५९ और उसके बाद) ; अहाणुपुव्वीए = यथानुपूर्व्या (आयार० २ १५, ११ ; ओव०) अहारिहं = यथार्हम् (आयार० २ १५ १६ ; सूय० ६९९ उवास०) अहासंथडं = यथासंस्तृतम् (आयार० २ ७ २ १४) ; अहासुहुमं = यथा सूक्ष्म (आयार० २ १५ १८ विवाह० २११); अहातच्चीयं = *याथातथ्यीयम्

(सूय० ४८४ , ५०६), **आहाकडं** = ***याथाकृतम्** (आयार० १, ८, १, १७ , सूय० ४०५ और ४०८) , **आहापरिग्गहिय** = ***याथापरिगृहीत** (ओव०) है। — अ०माग० में **आव-** = **यावत्** : **आवकहा-** = ***यावत्कथा-** (सूय० १२०) , **आवकहाए** = ***यावत्कथायै** (आयार० १, ८, १, १ , ठाणग० २७४) , **आवकहं** = **यावत्कथाम्** (आयार० १, ८, ४, १६) , **आवकहिय** = ***यावत्कथिक**, इन सब में **आह** या **आहा** का अर्थ 'जब तक', 'लगातार' है। — अ०माग० **आवन्ती** = **यावन्ति** (आयार० १, ४, २, ३ , १, ५, १, १ और उसके बाद) है। **उथ्ह**, **उज्झ**, **उब्भ** और **उम्ह** में शब्द के आदिवर्ण **त** अथवा **य** की विच्युति वर्तमान है (§ ४२० और उसके बाद) । § ४२५ में **याइं** की तुलना कीजिए।

१ पिशल, बे० बाइ० ३, २४१।

§ ३३६—पाली की भाँति माग० और पै० में **एव** से पहले **य** जोडा जाता है, जैसे **येव** , लघु अथवा ह्रस्व स्वरों के बाद यह **येव**, **य्येव** रूप धारण कर लेता है। माग० में **इदो य्येव** और **यम य्येव** रूप पाये जाते हैं (हेच० ४, ३०२), **एव** रूप अशुद्ध है (ललित० ५६७, १) , पै० में **सघस्स य्येव** = **सर्वस्यैव** , **तूरातो य्येव** = **दूराद् एव** (हेच० ४, ३१६ , ३२३) है, जैसे कि मौलिक [= संस्कृत । —अनु०] **य** के विषय में नाटकों की हस्तलिपियाँ **जेव**, **ज्जेव**, **जॆव्व** और **ज्जॆव्व** लिखती हैं जो रूप केवल शौर० में काम में आया है (§ ९५) । वर० १२, १३ में बताता है कि शौर० में **य्यॆव** रूप का प्रयोग किया जाता है और हेच० ४, ४८० के अनुसार इस स्थान पर **य्येव** होना चाहिए जो दक्षिण भारतीय हस्तलिपियों के कुछ ही नाटकों में पाया जाता है[१]। अप० में **जेव** के **व** की विच्युति हो जाती है (§ १५०) और **ए** का परिवर्तन **इ** में होकर (§ ८५) **जि** रूप हो जाता है (चड० २, २७ ब , हेच० ४, ४२० शब्दसूची सहित) । इसका प्राचीन रूप **जे** महा० में पाया जाता है (हाल ५२४ का यह रूप = हेच० २, २१७ , रावण० ४, ३६), अ०माग० में भी (उत्तर० ६६९) **जे** पाया जाता है और जै०-महा० में भी (आव०एत्सें० १२, २४) तथा व्याकरणकारों ने इसे पादपूरक बताया है (हेच० २, २१७ , चड० २, २७ अ, पेज ४६ की तुलना कीजिए , क्रम० ४, ८३) । शुद्ध रूप **चिअ** हाल ५२६ में देखा जाता है। **य्** अप० में भी **इव**[२] के पहले आता है जो फिर **जिवॅ** और **जेवॅ** = ***यिव** बन जाता है (§ २६१) । ऐसा लगता है कि अप० रूप **जिवॅ** रूप साधारण नियम के अनुसार पाली **विय** से निकला हो जो लोगों की जबान पर चढकर ध्वनियों के स्थान के परिवर्तन के कारण ***यिव** बन गया है। किन्तु पाली **विय** महा०, शौर० और माग० **विअ** तथा अ०माग० और जै०महा० **विय** से अलग नहीं किया जा सकता और ये रूप अ०माग० और जै०महा० **विव** और **पिव** तथा बोली के अभाव से बना **मिव** रूप से पृथक् नहीं किये जा सकते, इसलिए हमें पाली का **विय** महा०, शौर० और माग० का **विअ** तथा अ०माग० और जै०महा० का **विय**, **विव** से बना मानना पड़ेगा और इसे § ३३७ के अनुसार

विरुद्ध लिखता है , कोनो, गो० गे० आ० १८९४, पेज ४७८ । — ६ वेबर, हाल १ पेज ४७ में इसके स्पष्टीकरण अन्य रूप से दिये गये हैं , पी० गौल्द-श्मित्त, स्पेसिमेन, पेज ६९, एस० गौल्दश्मित्त द्वारा सम्पादित रावणवहो में यह शब्द देखिए , विण्डिश का उपर्युक्त ग्रंथ, पेज २३४ । वररुचि ९, १६ में **म्मिव** के स्थान पर अच्छा यह है कि **पिव** पढ़ा जाना चाहिए । — ७ एस० गौल्द-श्मित्त, प्राकृतिका०, पेज ३१, त्सा० डे० डो० मौ० गे० ३२, ४५९ में क्लान्त का मत , वेबर, हाल में **मि** शब्द देखिए । जै०महा० में शिलालेख (कक्कुक शिला-लेख १० में **वि** और **पि** के साथ ही आया है) में भी यह रूप आया है ।

§ ३३७—निम्नलिखित शब्दों में शब्द के आदिवर्ण **उ** में **व** जोड दिया गया है : महा०, शौर० और माग० में **विअ**, अ०माग० और जै०महा० में **विय** तथा अ०-माग० और जै०महा० में **विव** = **इव** (§ ३३६) अ०माग० में **वुच्चइ** और शौर० तथा माग० में **वुच्चदि** = **उच्यते** (§ ५४४) , अ०माग० और जै०महा० में **वुत्त** = **उक्त** (सूय० ७४ , ८४४ , ९२१ , ९७४ , ९८६ और ९९३ , उत्तर० ७१७ , उवास० , निरया०, ओव० , कप्प० , तीर्थ० ४, १९ , ५, २ , आव० एर्त्से० ११, २२ , एर्त्से०) , महा०, अ०माग० और जै०महा० में **वुब्भइ** = **उह्यते** (§ २६६ और ५४१) है । **वुच्चइ**, **वुत्त** और **वुब्भइ** वर्त्तमान काल के रूप से भी बनाये जा सकते हैं,[1] इस दशा में ये = ***वच्यते**, **वक्त** और **वभ्यते** हैं । इनमें **अ** का **उ** हो गया है जो § १०४ के अनुसार है । यह नियम महा० रूप **वुत्थ** के लिए प्रमाणित हो गया है, यह **वुत्थ** = ***वस्त**=**उषित** जो **वस्** धातु (= रहना, घर बसाना : § ३०३ और ५६४)[2] और अ०माग० **परिवुसिय** में भी यही नियम काम करता है जो **वस्** (= पहनना : आयार० १, ६, २, २ और ३, १ , १, ७, ४, १ , ५, १) धातु से बना है । जै०शौर०, शौर० और माग० में **उत्त** रूप है (पव० ३८२, ४२ , चैतन्य० ४१, १० ; ७२, ५ , १२७, १७ , कालेय० २३, ११ , माग० में : मृच्छ० ३७, १२), और यही रूप सर्वत्र सन्धि और समास में भी चलता है, जैसे महा० मे **पच्चुत्त** = **प्रत्युक्त** (हाल, ९१८) , अ०माग० में **निरुत्त** = **निरुक्त** (पण्हा० ४०६) ; महा० और शौर० में **पुणरुत्त** रूप है (गउड० , हाल , रावण० , मृच्छ० ७२, ३ , शकु० ५६, १६ , मालवि० ८६, ४, बाल० १२०, ६, वृषभ० १५, १६ , मल्लिका० ७३, ३), अ०माग० में **अपुणरुत्त** रूप भी पाया जाता है (जीवा० ६१२ , कप्प०) । — अप० में **वुट्ठुए** = **उत्तिष्ठन्ति** (पिंगल १, १२५ अ) , महा० और जै०महा० में **वूढ** = **ऊढ** (रावण० , एर्त्से०), इसके साथ-साथ महा० मे **ऊढ** रूप भी चलता है (गउड०)[3], जै०महा० में **वुप्पन्त** = **उप्यमान** (आव० एर्त्से० २५,२९), **वोच्चत्थ** (= विपरीत रति · देशी० ७, ५८) = ***उच्चस्थ** जो **उच्च** से सम्बन्धित है, जैसा अ०माग० रूप **वुच्चत्थ** (= पर्यस्त , भ्रष्ट उत्तर० २४५) बताता है ।

१ वे० को० सै० गे० वि० १८९३, २३० की नोटसंख्या १ में विण्डिश का मत । — २ ए० कून, बाइत्रैगे, पेज ३७ की तुलना कीजिए । — ३ कभी-कभी निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि रावणवहो में **वूढ**, जैसा

अन्य स्थलों पर बहुधा पाया जाता है = स्थूल न हो। बहुधा थु और थों = वि+उत् है।

§ ३३८—हुरे (हेच २, २०२ क्रम ४, ८३) और हिरे में (वर ९,१५), जिनके साथ-साथ अरे' भी चलता है, इ जोड़ा गया है [कुमाउनी में यह हेरे रूप में चलता है। —अनु०]। हिर (हेच २,१८६, § २५९) में भी, जिसका महा० रूप इर है और जो = किर (§ १८४) है इ जुड़ गया है। अ माग बुद्ध = भोष्ठ (आयार १,१,२,५) है। अ माग में हव्याए का अर्धमाग का संप्रदानकारक है = आर्वाञ्च (आयार १, २ २, ?; सूय० ५६५, ५७५; ५७८ ६ १; ६०९; ६१६; ६२५ और उसके बाद) है। यह रूप तथा अ माग क्रियाविशेषण हव्वं (= शीघ्र) जिसका स्पष्टीकरण टीकाकार शीघ्रम् अथवा अर्वाक् स करते हैं, वारन' तथा ल्येम मान' के मतानुसार ठीक ही अर्वाक् तक संबंधित किये जाने चाहिए। याकोबी' सदेह करता हुआ इसं = भव्यम् बताता है और वेबर' ने पहले, इसी भांति संदिग्ध मन से सव्वं = सर्वम् बताया था, बाद में = ह्व्यम्' बताया जिसका अर्थ 'पुकारने पर' है (ठाणंग १२४; १२५ १२७, १५५ और उसके बाद; २ ७ २ ८ २८५ और उसके बाद; ५१९ ५८५ अंत १४ १८ और उसके बाद १ ; ४२ सम ८९ ९१ ११ ; विवाग० १८ और उसके बाद; १३ नायाध० § ९८ पेज ३ ६; ३७८ ५५५; ६२ ; ६२४ और उसके बाद ७३७; ७९२; ८२१ आदि आदि विवाह ९६ और उसके बाद १२५ और उसके बाद; १४६ और उसके बाद १५४ और उसके बाद १७ १८१ और उसके बाद; ३३४ आदि-आदि; राय २४८ और उसके बाद जीवा २६ ३५६; ४११; अणुओग ३९८; ४१६; ४५४ ४९९; पण्णव ८३८ निरया उवास ; ओव ; कप्प)।

१ विवाग सु याइ ० ४११; पी गोल्दश्मिस्त ना गे वि गो १८७४ पेज ४७४। — २ ओवर डे माइसहीस्टिगे एम वाइसगोरिगे बेग्रिफ्फन डेर जनाज पेज ५२ और उसके बाद। —३ आयारंगसुत्त में यह शब्द देखिए। — ४ कप्पसुत्त में यह शब्द देखिए। — ५. भगवती १ ४३६ नोटसंख्या १। — ६ सब्दसूची २ २ ४३३ नोटसंख्या ३।

शब्द के अंत में व्यंजन

§ ३३९—प्राकृत में शब्द के अंत में साधारण अथवा अनुनासिक युक्त स्वर ही रहता है। अनुनासिक को छोड़ अन्य व्यंजनों को शब्द के अंत में विस्मृति हो जाती है: मणा = मनाक् (देश १ ११ ; [मणा, मणि = बहुत कम; यह रूप कुमाउनी में चलता है। —अनु]); महा, अ माग, जै महा और शौर और माग में ताव = तावत् (§ १८५); महा० अ माग, जै महा० और शौर में पच्छा = पश्चात् (§ ३ १; [यह रूप भी कुमाउनी में चलता है। —अनु]);

अ०माग० **अभू = अभूत्** ; **अकासी = अकार्षीत्** (§ ५१६), अ०माग० मे **आकरिंसु = अकार्षुः** (§ ५१६) है। § ३९५ की तुलना कीजिए। जो स्वर शब्द के अन्त में आते हैं वे कभी कभी सानुनासिक कर दिये जाते हैं (§ ७५, ११४ और १८१), ह्रस्व स्वर दीर्घ भी कर दिये जाते हैं (§ ७५ और १८१)।

§ ३४०—किसी सन्धि या समास के पहले पद की समाप्ति का व्यजन, दूसरे पद के आदिवर्ण के साथ नियमानुसार घुलमिल जाता है (§ २६८ और उसके बाद), जबतक कि अ की रूपावली के अनुसार चलनेवाले व्यजन में समाप्त होनेवाली जाति के शब्द न आये (§ ३५५ और उसके बाद)। कभी कभी दूसरे पद के व्यजन के पहले, प्रथम पद के अन्तिम वर्ण के साथ पूर्णतया अन्तिम वर्ण के नियम के अनुसार व्यवहार होता है, मुख्यतया पद्य में। इस भाँति महा० में **उअमहिहर = उदक+महीधर** (गउड० ६३१), महा० में **उअसिन्धु = उदक+सिन्धु** (गउड० ३९५), महा० में **एअगुणा = एतद्गुणाः** (हेच० १, ११), महा० में **जअरक्खण = जगद्रक्षण** (गउड० और जगत् का सन्धि या गउडवहो और रावणवहो समास में अधिकतर यही रूप बन जाता है), अ०माग० में **तडितडिय = तडित्तडित** (ओव० § १६, पेज ३१, १३), महा० में **तडिभाव = तडिद्भाव** (गउड० ३१६), महा० में **विअसिअ = वियत्+श्रित,** छद में तुक मिलाने और चमत्कार पैदा करने के लिए इसके साथ **विअसिअ = विकसित** रूप आता है (रावण० ६, ४८), महा० में **विज्जुविलसिअ = विद्युद्विलसित** (रावण० ४, ४०) और गउडवहो तथा रावणवहो में बहुधा **विद्युत** शब्द का यही रूप देखा जाता है। महा० **सरिसंकुल = सरित्संकुल,** पद्य में चमत्कार दिखाने और तुक मिलाने के लिए **सरिसं कुलम् = सदृशंकुलम्** काम में लाया जाता है (रावण० २, ४६), महा० में **सउरिस = सत्पुरुष** (गउड० ९९२), इसके साथ साथ बार बार **सप्पुरिस** रूप भी आया है, **सभिक्खु = सद्भिक्षु** (हेच० १, ११) है। **दुस्** के **स्** की विच्युति विशेष रूप से अधिक देखने में आती है जिसका आधार **सु**–युक्त सन्धियाँ हैं जो बहुधा इसके बगल में ही पायी जाती हैं : महा०, अ०माग० और जै०महा० में **दुलह = दुर्लभ** (क्रम० २, ११४, मार्क० पन्ना ३२, गउड० ११३३, हाल ८४४, कर्पूर० ९२, ४, दस० ६१८, १२ [यहाँ **दुलह** रूप **सुलह** के जोड में आया है जो १४ में है], कालका० २७१, ३३), महा० में **दुलहत्तण = दुर्लभत्व** पाया जाता है (गउड० ५०३), अ०माग० में **दुचिण्ण = दुश्चीर्ण** (ओव० § ५६, पेज ६२, १४), यह रूप इससे पहले आनेवाले दूसरे रूप **सुचिण्ण = सुचीर्ण** के बाद आया है, अ०माग० मे **दुमुह = दुर्मुख** (पण्हा० २४४), यहाँ भी उक्त रूप **सुमुह** के साथ आया है, अ०माग० में **दुरूव = दूरूप** (सूय० ५८५, ६०३, ६२८, ६६९, ७३८, विवाह० ११७, ४८०, ठाणग० २०)। यह अधिकाश स्थलों पर **सुरूव = सुरूप** के साथ आया है, अ०माग० में **दुवन्न = दुर्वर्ण** (सूय० ६२८, ६६९, और ७३८, विवाह० ४८० [पाठ मे **दुवण्ण** है]), यह **सुवन्न** के साथ आया है, महा० में **दुसह = दुःसह** (हेच० १, ११५, गउड० १५८, ५११, हाल ४८६),

दुहव = दुर्भग (हेच० १, ११५ § २११ की तुलना कीजिए) और महा० में दोहम्ग = दौर्भाग्य (हाल) है।

§ ३४१—इसके विपरीत, विशेषकर स्वरों से पहले कभी-कभी अन्तिम व्यंजन बना रह जाता है। यह समासों में नहीं होता, खासकर पादपूरक अव्ययों के पहले होता है। अ०माग० में छप् च = षट् च ; छच् चेव = षड् एव ; छप् पि = षट् अपि (§ ४४१) है। अ०माग० में असिणाद् इ वा अवहाराद् इ वा = अशनाद् इति वा अपहाराद् इति वा (आयार० २, १, ५, १) ; अ०माग० में सुचिराद् अवि = सुचिराद् अपि (उत्तर० २१५) अ०माग० में तम्हाद् अवि इक्खु = तस्माद् अपीक्षस्व (सूय० ११७) जद् अ०माग० में अत्थि = यद् अस्ति (ठाणंग० ११) अ०माग० में अणुसरणाद् उवत्थाणा = अनुसरणाद् उपस्थानात् (दस० नि० ६५६, १) माग० में यद् इच्चसे = यद् इच्छसे महद् अंतलं = महद् अंतरम् (मृच्छ० १२१, ५ ; १३६, १८) है। समासों में अ०माग० में तदावरणिज्ज = तदावरणीय (उवास० § ७४) अ०माग० में तदज्झवसिया, तदप्पियकरणा और तदट्ठोवउत्ता = तदध्यवसिताः, तदर्पितकरणाः और तदर्थोपयुक्ताः हैं (ओव० § ३८, पेज ५, ११ और उसके बाद) अ०माग० में तदुभय रूप मिलता है (ओव० § ११७ तथा १२२) जै०महा० में तदुपिक्खाकारिणो = तदुपेक्षाकारिणः (कालका० २६१, २७)। इनके साथ-साथ ऐसे उदाहरण हैं जैसे, महा० में एआवत्था = एतदवस्था (रावण० १, ११२), अ०माग० में एयाणुरूव = एतदनुरूप (कप्प० § ९१ और १०७) हैं। अ०माग० में तारूवत्ताए, तायत्ताए और तारिसत्ताए = तद्रूपत्वाय तद्वत्त्वाय और तादृशत्वाय हैं (पण्णव० ५२१ और उसके बाद ५४), तागन्धत्ताए और तारसत्ताए = तद्गन्धत्वाय और तद्रसत्वाय (पण्णव० ५४) और बहुत ही बार अ०माग० और जै०महा० में एयारूव = एतद्रूप (आयार० २, १५, २१ और २४ ; सूय० ९२ ; विवाग० ११६ ; विवाह० १५१ ; १७० ; १७१ ; उवास० ; कप्प० ; एर्त्से०)। इन रूपों का या तो § ६५ या § ७० के अनुसार स्पष्टीकरण किया जा सकता है। अ०माग० में छडंगवी = षडङ्गवित् (आय० कप्प०) है। दुस् और निस् के स् स्वरों से पहले बना रहता है (हेच० १, १४ ; क्रम० २, १२४) : दुस्सगाह रूप आया है (हेच० १, १४) ; अ०माग० में दुरइक्कम = दुरतिक्रम (आयार० १, २, ५, ४) है ; महा० में दुरारोह रूप आया है (हाल) जै०महा० में दुरणुचर, दुरन्त और दुरप्प = दुरात्मन् (एर्त्से० (; अ०माग० में दुरहियास = दुरधिवास (उवास०) और में दुरागद = दुरागत (विक्रमो० १२, ११) है ; महा० और जै०महा० में दुरिअ = दुरित (गउड० ; कक्कुक शिलालेख १, २२) ; दुरुत्तर रूप पाया जाता है (हेच० १, १४) [कुमाउनी में दुरत्तर का दुरंतर बना है = दुस्तर। —अनु०] ; महा० और शौर० में णिरंतर और जै०महा० में निरंतर रूप मिलता है (हेच० १, १४ ; गउड० ; हाल ; एर्त्से० ; मृच्छ० ६८, ११ ;

७३, ८, प्रबोध० ४,४), महा० में **णिरवेक्ख = निरपेक्ष** (रावण०), महा० में **णिरालंब** (हाल) देखने मे आता है। महा० में **णिरिक्खण = निरीक्षण** (हाल) है, अप० का **णिरुवम** रूप और जै०महा० का **निरुवम = निरुपम** (हेच० ४, ४०१, ३, एर्त्से०), महा० मे **णिरूसुअ = निरुत्सुक** (गउड०) है। **प्रादुस्** में यही नियम लगता है : **पादुरेसए = प्रादुरेषयेत्** (आयार० १, ७, ८, १७), **पादुरकासि = प्रादुरकार्षीत्** (सूय० १२३), इसके साथ साथ अ०माग० में **पाउब्भूय** रूप आता है जो **= प्रादुर्भूत** (विवाग० ४, ३८, विवाह० ११०, कप्प०), **पाउब्भवित्था** (विवाह० १२०१) है और **पाउकुज्जा = प्रादुष्कुर्यात्** है (सूय० ४७४), **पाउकरिस्सामि = प्रादुष्करिष्यामि** (उत्तर० १)। इसके विपरीत **कारिस्सामि पाउं** (सूय० ४८४), **करेन्ति पाउं** [पाठ में **पाउ** है] और **करेमि पाउं** (सूय० ९१२ और ९१४) रूप आये है। § १८१ की तुलना कीजिए। इसी प्रकार महा० में **वाहिर् उण्हाइं** भी है **= वाहिर् उष्णानि** (हाल १८६) है। मौलिक **र्** के विषय में § ३४२ और उसके बाद तथा **म्** के बारे में § ३४८ और उसके बाद देखिए।

§ ३४२—मौलिक **अर्** से निकला **अः** सब प्राकृत बोलियों में अधिकांश स्थलों पर **ओ** बन जाता है : महा० और अ०माग० में **अन्तो = अन्तः** जो **अन्तर्** से निकला है (गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, २, ५, ५, २, १, २, ७ और ३, १०, २, ७, २, १, सूय० ७५३, उवास०), अ०माग० में **अहो = अहः** जो **अहर्** से निकला है (§ ३८६), अ०माग० में **पाओ = प्रातः** जो **प्रातर्** से निकला है (कप्प०)। **पुनर्** से निकला **पुनः** महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै० शौर०, शौर०, माग०, ढक्की और आव० में 'फिर', 'दूसरी बार' के अर्थ में **पुणो** हो जाता है (गउड०, हाल, रावण०, आयार० १, १, ५, ३, १, २, १, १ और २, २, १, ४, १, ३ और २, २, १, ६, ४, २, सूय० ४५, १५१, १७८, २७७, ४३३, ४६८, ४९७, उत्तर० २०२, आव० एर्त्से० २८, १४, एर्त्से० ; काल्का०, पव० ३८३,२४, ३८४, ४९, ३८६, १०, ३८८, ८, कत्तिगे० ४०३, ३७५, मृच्छ० २९, ११, ५८, ८ और १३, माग० में : १७६, ५ और ९, प्रबोध० ५८, ८, ढक्की में : मृच्छ० ३९,१७, आव० में : मृच्छ० १०३, ३), महा०, जै० महा०, जै०शौर०, शौर०, माग० और दाक्षि० में विशेष कर संयुक्त रूप **पुणो वि** बहुत ही आता है (क्रम० २, १२६, गउड०, हाल, आव० एर्त्से० ८, ३४ और ५२, १२, २५, एर्त्से० २७, ६, ३३, ३७, कत्तिगे० ४०२, ३६७, मृच्छ० २०, २४, २१, ७, ४१, ६, ४५, १६, ८१, ९, ९४, १९, शकु० २२, २, ६८,२, विक्रमो० ११, २, १३, १८, २८, १, ८२, १७, महावीर० ६५, २, चड० ९३, १४, माग० में : मृच्छ० ८०, ५, ११५, ९, ११७, ३, १३२, २२, १४८, १४, १६२, ९, दाक्षि० मे : मृच्छ० १०३, १७), जिसके स्थान पर अ०माग० में **पुणर् अवि** का अधिक व्यवहार किया जाता है (क्रम० २, १२६, आयार० १,८, २, ६, २, १, ७, ३, सूय० १००, ६४३, ८४२, विवाह० १०३८, १४९६ ;

जीवा २८७ २८८ २९६ पण्णव० ८४८ नायाध ; ओव कप्प०), जै महा० में भी इसका प्रचलन है किंतु अ०माग० से कम (आव एत्सें ११, २४ ; द्वार ४९६, २६ ४९८, १४ एत्सें) क्रम २, १२६ के अनुसार लोग पुण थि बोलते थे। महा में स्वरों और अनुस्वार के पीछे उणो रूप भी चलता था, इसमें § १८४ के अनुसार प् की विच्युति हो जाती है (गउड हाल रावण)। 'किंतु' तथा 'अब' के अर्थ में अ माग०, जै महा , जै शौर० में पुनः का रूप पुण हो जाता है (आयार० १, ४, २, ५ ; २,१,१,१ १ ४ १४ ; २, २ ३, १ सूय ४६ २९२ विवाह ११९ दस ६४२,२ ; दस नि ६४८,११ , ६६२, ११ ; नायाध० ओव० ; कप्प ; आव० एत्सें० ८, ५ ; १२, २ ; एत्सें ; कालका कत्तिगे ४ ४, १८७ और १८९)। महा में भी कभी-कभी अनुस्वार के पीछे पुण रूप आता है (गउड हाल), किंतु अधिकांश स्थलों पर उण रूप आता है जैसा शौर और माग में भी होता है (§ १८४)। माग में किं पुण के स्थान पर (मृच्छ १६, ८) जो गौडबोले के संस्करण के ४५८, ९ में आये हुए शुद्ध रूप के साथ किं उण पढ़ा जाना चाहिए। 'किंतु' और अब अर्थ में पुणो और उणो रूप भी पाये जाते हैं। अप में ऊपर दिये गये दोनों प्रकार के अर्थों में पुणु रूप काम में आता है (हेच ४ ४२६ और शब्दसूची ; पिंगल १,११ ; १४ ३७ ; ४२ और उसके बाद ; ७७ ; ८४ ९ ९५ १ विक्रमो ७१, १)। अंतिम र् की विच्युति के बाद जो रूप हो जाता है वह कभी-कभी अ में समाप्त होनेवाले संज्ञाओं में माना जाता है तथा उसकी रूपावली भी उसी भाँति की गयी है। इसके अनुसार अ माग में अन्तं है (आयार २, १ , ६)। अंतसा, अंतेण संयुक्त शब्द में अतेण रूप आया है (आयार २, ५, १ १४ ; २, ६, १, ११), अतामा भी है (आयार २,१ ,६)। अ माग में पायं = प्रातर् (सूय २१७ और १४१); न उणा = म •पुनात् (हेच १, ६५) ; अ माग में पुणाई रूप पाया जाता है (पण्हा १८९ उवास § ११९ और १७४), पुणाइ (हेच० १, ६५ ; पण्हा ४१४) है म उणाइ भी मिलता है (हेच १, ६५)। ये सब रूप कर्मकारक बहुवचन माने जाने चाहिए। § १४५ की तुलना कीजिए। अन्तो से अ माग० में अन्तोहिंतो रूप भी बनता है जो अपादानकारक का रूप है = भीतर से है (आयार २ ७, २, १ ; ठाणंग ४ ८ ; पण्ण २५४ और उसके बाद)। § १४१ और १६५ की भी तुलना कीजिए।

§ ३४२—दूसरे पद का आरंभिक वर्ण स्वर होने पर समासों में मौलिक र् गौण र् अधिकांश स्थलों पर बनकर रह जाता है (§ १४१) : अन्तरप्पा = अन्तरात्मन् (हेच १ १४) महा में –अन्तरिम अ०माग और जै महा में अन्तरिय और शौर में अन्तरिद = अन्तरित (गउड० ; हाल ; रावण ; नायाध आव कप्प ; एत्सें शकु ६७ २ ; ६३, १ ; विक्रमो २१, १ ; ४१ १७ ; ४२ ७)। महा और शौर में पुणरुत्त = पुनरुक्त है ; अ माग में अपुणरुत्त रूप पाया जाता है (§ ११७), अ माग में

अपुणरावत्ति = **अपुनरावर्तिन्** (उत्तर० ८५९ , कप्प०), **अपुणरावत्तग** रूप देखने में आता है (ओव०)। अ०माग० और जै०महा० में **पुणर् अवि** (§ ३४२) आता है और ऐसे स्थल देखे जाते हैं, जैसे अ०माग० **पुणर् एइ** और **पुणर् एन्ति** = **पुनर् एति** और **पुनर् यन्ति** (आयार० १, ३, १, ३ , २, १)। यदि समास का दूसरा पद व्यजन से आरम्भ होता हो तो नियम के अनुसार उसके साथ पूर्ण अन्तिम वर्ण का सा व्यवहार होता है : महा० में **अन्तोमुह** = **अन्तर्मुख** (गउड० ९४), **अन्तोवीसम्भ** = **अन्तर्विश्रम्भ** (हेच० १, ६०) , महा० मे **अन्तोहुत्त** रूप मिलता है ([=**अधोमुख**। —अनु०] , देशी० १, २१ , हाल ३७३), **अन्तोसिन्दूरिअ** भी पाया जाता है (हाल ३००) , अ०माग० में **अन्तोजल** आया है (नायाध० ७६४), **अन्तोज्झुसिर** = **अन्तःसुषिर** (नायाध० ३९७ , § २११ की तुलना कीजिए), **अन्तोदुट्ठ** = **अन्तर्दुष्ट** (ठाणग० ३१४), **अन्तोमास** भी काम में आता है (ठाणग० ३६४) , अ०माग० और जै०महा० में **अन्तोमुहुत्त** रूप मिलता है (विवाह० १८० और २७३ , सम० २१५ , जीवा० ४९ और ३२२ , उत्तर० ९७७ और उसके बाद , ९९७ , १००३ , १०४७ और उसके बाद , कप्प० , ऋषभ० ४३) , अ०माग० में **अन्तोमुहुत्तिय** भी है (विवाह० ३०), **अन्तोमुहुत्तूण** भी देखने में आता है (सम० २१५), **अन्तोसाला** = **अन्तःशाला** (उवास०), **अन्तोसल्ल** = **अन्त शल्य** (सूय० ६९५ , ठाणग० ३१४ , सम० ५१ , विवाह० १५९ , ओव०) , जै०महा० में **अन्तोनिक्खन्त** = **अन्तर्निष्क्रान्त** (ऋषभ० ४५) है। अ०माग० में **पाओसिणाण** = **प्रातःस्नान** (सूय० ३३७) है। कभी-कभी स्वरों से पहले भी यही रूप पाया जाता है . महा० मे **अन्तोउवरिं** = **अन्तरुपरि** (हेच० १, १४), इसके स्थान पर गउड० १०५६ में (अर्थात् हेच० द्वारा बताये गये स्थान में) **अन्तोवरिं** पाठ है, किन्तु (हस्तलिपि पी में हस्तलिपि जे (J) की तुलना कीजिए) **अन्तो अवरिं च परिट्ठिएण** आया है, जो पाठ पढा जाना चाहिए। अ०माग० में **अन्तोअन्तेउर** (§ ३४४) रूप भी है। महा० **अन्तोवास** = **अन्तरवकाश** में (§ २३०), **अन्त**– बनाया जाना चाहिए। यह रूप व्यजनों से पहले भी आता है, जैसे अ०माग० में **अन्तभमर** = **अन्तर्भ्रमर** (कप्प०), **अन्तरायलेहा** = **अन्तर्राजल्लेखा** (कप्प०), अ०माग० में **पुणपासणयाए** = *__पुन.पश्यन्तायै__* (विवाह० ११२८) है। व्यजनों से पहले दो वर्णों का योग भी पाया जाता है . शौर० में **अन्तक्करण** = **अन्तःकरण** (विक्रमो० ७२, १२) , **अन्तग्गअ** = **अन्तर्गत** (हेच० २, ६०) , **अन्तप्पाअ** = **अन्तःपात** (हेच० २,७७) है। जै०महा० और शौर० में **पुणण्णव** = **पुनर्नव** (द्वार० ५०४, ५ , कर्पूर० ८३, ३) , जै०शौर० में **अपुणब्भव** = **अपुनर्भव** (पव० ३८६, ५) , **पुणपुणक्करण** ([=अभिसधि , षडयत्र। —अनु०] , देसी० १, ३२) भी आया है। अपादान रूप **पुणा** = *__पुनात्__* (§ ३४२) है। यह महा० रूप **अपुणगमणाअ** में वर्तमान माना जाना चाहिए (गउड० ११८३), अ०माग० में **अपुणागम** भी देखा जाता है (दस० ६४०, २२), **अन्तावेइ** = **अन्तर्वेदि** में (हेच० १, ४), इसके भीतर **अन्ता** माना जाना चाहिए। आ के दीर्घत्व का कारण § ७० के अनुसार भी स्पष्ट किया जा सकता है।

§ ३४४—अन्तःपुर और इससे न्युत्पन्न रूपों में सभी प्राकृत बोलियों में जैसा कि पाली में भी होता है, ओ के स्थान पर ए हो जाता है : महा , अ माग , जै महा० और शौर में अन्तेउर रूप काम में आता है (हेच १, ६ ; गउड रावण सूय ७५१ पण्हा० २८२ नायाध § ११ और १ २ पेज १ ७५ ; १ ७९ और उसके बाद ; १२७२ १२९ ; ११२७ १८६ और १४६५ विवाग १५६ १५९ ; १७२ और उसके बाद विवाह ७९२ और १२७८ निरया ओव कप्प आव एर्त्से० १५, ११ ; एर्त्से० ; शकु० ३८,५ ; ५०, ११ ७ , ७ ; ११७, ८ ११८, १ मालवि १२ १ १८ १ ७४, ७ ८४, १६ ८५ ६ बाल २४३, १२ विद्ध ८३, ७ कर्पूर० ३५, १ ४५, १ ९१, ४ प्रसन्न ४५, ४ और ११ जीवा० ४२, १६ कंस ५५ ११ ; कर्ण० १८, २२ ३७ १६ आदि आदि) महा में अन्तेउरअ रूप भी पाया जाता है (हाल ८ की टीका) अ माग और जै महा में अन्तेउरिया है तथा शौर में अन्तेउरिआ = अन्तःपुरिका (नायाध १२२९ एर्त्से ; कालका विद्ध ११, १ [प्राकृत में सर्वत्र अन्ते आने से यह सूचना भी मिलती है कि कभी और भारत के किसी आयभाषाभाषी भाग में इसका रूप *अन्तेपुर रहा होगा। इस प्रकार का एक रूप अन्तवासी चलता ही है इस रूप से कुछ ऐसा भी आभास मिलता है कि प्राकृत भाषाओं में अन्तेउर प्रचलित हो जाने के बाद अन्तःपुर रूप संस्कृत में प्रचलित हुआ हो। यह रूप कुछ शोध करने पर निश्चित किया जा सकता है। —अनु]) । अ माग में अन्तोअन्तेउर में अन्तो आया है (नायाध ७२१ और १३ १ विवाह ७९१ ओव) अन्तोअन्तेपुरिया रूप भी देखने में आता है (ओव) । विवाग १४५ में संपादक ने अन्तेपुरियंसि रूप छापा है। –अन्ते आरि- = अन्तश्चारिन् में (हेच १, ६) भी अः के लिए ए आया है।

§ ३४५—अ माग और माग मे –अ के समास होनेवाले कर्त्ताकारक एक वचन और अ माग के बाद-से क्रियाविशेषणों को छोड़ सब प्राकृत बोलियों में अस् से निकला अः , ओ रूप ग्रहण कर लेता है अ माग और जै महा में इस अः का ए रूप हो जाता है। अ माग और जै महा में अम्माओ, शौर और माग में अम्मादो = अमतः (§ ६) ; अ माग पिट्ठाओ = पृष्ठात् अ माग और जै महा पिट्ठओ और शौर तथा दाक्षि पिट्ठदो = पृष्ठतः (§ ६९) पल्लव दानपत्र म कर्त्ता एकवचन में पतिभागो = प्रतिभागः (§ १६१) , महा में राओ = रागः है (हाल १२) ; जै महा में पुत्तो = पुत्रः (एर्त्से १, २) ; जै शौर में धम्मो = धर्मः (पव ३८ ७) है ; शौर में णिओओ = नियोगः है (मृच्छ १ ७) है ; दक्षी में पुलिसो = पुरुषः है (मृच्छ ३४, ११) ; आव और दाक्षि में गोवालदारओ = गोपालदारकः (मृच्छ ९९, १६ ; १ २ १५) पै में तामोतरो = दामोदरः (हेच ४ ३ ७) ; चू पै में मघो = मघः (हेच ४ ३२५) ; अप मे कामो = कामः (पिंगल २, ४) ; किन्तु अ माग में पुरिसे और माग में पुलिशे = पुरुषः (आयार १, १, १,

६ , मृच्छ० ११३, २१) है । इसी प्रकार महा० में **मणो = मनः, सरो = सरः** तथा **जसो = यशः** है (§ ३५६) । अ०माग० के कर्त्ताकारक के पद्य में भी अ. के स्थान में **ए** के बदले **ओ** भी पाया जाता है (§ १७) और गद्य मे भी **ओ** रूप **इव** से पहले आता है . **खुरो इव = क्षुर इव, वालुयाकवलो इव = वालुकाकवल इव, महासमुद्दो इव = महासमुद्र इव** (नायाध० § १४४) , **कुम्मो इव = कूर्म इव, कुञ्जरो इव = कुञ्जर इव, वसभो इव = वृषभ इव, सीहो इव = सिंह इव, मन्दरो इव, साणो इव, चन्दो इव** और **सूरो इव** रूप पाये जाते हैं (सूय० ७५८ = कप्प० § ११८) । उपर्युक्त स्थान मे कल्पसुत्त के **संखो इव** रूप के स्थान में सूयगडगसुत्त मे **संख [?] इव** रूप आया है , कप्पसुत्त में **जीवे [?] इव** है, पर इसके साथ ही सूयगडगसुत्त में **जीव [?] इव** रूप मिलता है , दोनों ग्रन्थों में **विहग [?] इव** आया है और इसके साथ-साथ विशेषण सदा – **ए** में समास होते हैं । ये सब बाते देखकर यह सम्भव प्रतीत होता है कि यहाँ सस्कृताऊपन आ गया है और सर्वत्र **ए**– वाला रूप ही लिखा जाना चाहिए । यह अनुमान ठीक लगता है कि **इव** के स्थान पर **व** लिखा जाना चाहिए क्योंकि अ०माग० में इसके बहुत कम उदाहरण मिलते हैं और इसकी स्थिति अनिश्चित है (§ १४३) । उन सब अवसरों पर यही ध्वनिपरिवर्तन होना चाहिए जिनमें का सस्कृत **अः , अस्** से व्युत्पन्न हुआ हो, जैसा कि **तस्** में समाप्त होनेवाले अपादान–कारक एकवचन में : महा० में **कोडराओ** और जै०महा० में **कोॅट्टराओ = *कोट-रातः = कोटरात्** (हाल , ५६३) , एर्त्से० १, १०) , अ०माग० में **आगाराओ = आगारात्** (उवास० § १२), जै०शौर० में **चरित्तादो = चरित्रात्** (पव० ३८०, ६) , जै०शौर० में **मूलादो = मूलात्** (शकु० १४, ६) , माग० मे **हडक्कादो = *हृदकात्** (मृच्छ० ११५, २३) है । प्रथमपुरुष बहुवचन साधारण वर्तमान काल में **मः = मस्** : महा० मे **लज्जामो** , अ०माग० मे **वड्ढामो** , जै०महा० में **तालेमो** , शौर० में **पविसामो** पाये जाते हैं (§ ४५५) , अ०माग० में **भविस्सामो** , जै०महा० में **पेॅच्छिस्सामो** तथा अ०माग० और शौर० में **जाणिस्सामो** रूप पाये जाते हैं (§ ५२१, ५२५ और ६३४ आदि-आदि) । अ०माग० में सदा **वहवे** बोला जाता है जो = **वहवः** और **बहून्** (§ ३८० और उसके बाद) है । महा० और अ०माग० में **णे = नः** (§ ४१९) है । अ०माग० के ग्रन्थों में क्रियाविशेषणों के सम्बन्ध में कभी कभी अस्थिरता देखी जाती है । **अधः** का महा० और अ०माग० में **अहो** रूप हो जाता है (गउड० , एर्त्से० ५०, ३० [हस्तलिपि ए (A) के अनुसार यह रूप ही पढा जाना चाहिए] , ऋषभ० ३०), अ०माग० में किन्तु अधिकाश स्थलों पर **अहे** रूप मिलता है (आयार० १, ५, ६, २ , १, ६, ४, २ , १, ८, ४, १४ , २, १, १, २ , ३, २ , १०, ६ , २, १५, ८ , सूय० ५२ , २१५ , २२२ , २७१ , २७३ , ३०४ , ३९७ , ४२८ , ५२० , ५९०, उत्तर० १०३१ और १०३३, विवाह० १०५ और उसके वाद , २६० , ४१० , ६५३ , उवास० , ओव० , कप्प०) , **अहेदिसाओ = अधोदिश** (आयार० १, १, १, २) , **अहेभाग** रूप

भी मिलता है (आयार १, २, ५, ४), अहेभागी- = अधोभागिन् (सूय० ८२९), अहेचर भी देखा जाता है (आयार० १, ७, ८, ९), अहेगामिनी पाया जाता है (आयार २, १, १, ११), अहेवाय = अधोवात (सूय ८२९), अहेसिर = अधमशिरः (सूय० २८८) किन्तु इसके साथ साथ अहोसिरं रूप भी देखने म आता है (सूय० २९८ ; ओव नायाध०), अहेलोग और इसके साथ-साथ अधोलोग रूप काम में आते हैं (ठाणग ६१ और उसके बाद) और अहे-अहोलोगे रूप भी चलता है (ठाणंग १८९), स्वतन्त्र रूप में किन्तु अशुद्ध रूप अहो भी प्रचलित है (सूय ७०६ उत्तर ५११)। पुरं = पुरः (आयार २, १, ४ ५ ९, २) पुरेकम्म = *पुरस्कर्मन् (हेच १, ५७ आयार २, १, ६ ४ और ५ ; पण्ह ४९२) पुरेकड पुरक्खड और पुरक्खड = पुरस्कृत (§ ४९ और १ ६) है। पारेकथ = *पौरःकृत्य (ओव कप्प), पारेवच्च = *पौरोवृत्य (पण्णव ९८ १ १ १ ; विवाग २८ और ५७ सम ११४ ओव कप्प)। उक्त रूप सर्वत्र आहेवच्च = आधिपत्य के साथ-साथ आया है (§ ७७) रहे = रहः (उत्तर १११ और १११), किन्तु साथ ही रहोकम्म - भी चलता है (ओव)। और में सुधो = सुखः किन्तु अ माग में सुधे और सुए रूप हैं (§ ११९), इसके साथ-साथ अ माग में सुयराए = श्वोपाये रूप मिलता है (आयार २, ५, १, १)। जैसा सुयराए में दिखाई देता है वैसा ही अ माग में अर्घ = अधः (आयार० १ १, ५, २ और १) में इसका परिवर्तन अ में समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों में हो गया है। अहं रूप भी मिलता है (आयार १, २, ६, ५ ; १ ४ २, १ और ४ १ ७, १, ५) और पुरं = पुरः (नायाध)। § १४२ की तुलना कीजिए। यह अनिश्चित ही रह गया है कि सधन और स्वयं समासों में भी अहे - रहे - रूप पढ़े जाने चाहिए या नहीं। अ माग और जै महा हेट्ठ और उससे निकले रूपों के विषय में § १ ७ देखिए।

§ ३४६—अप में अः का जो ध्वनिपरिवर्तन ओ में होता है उसका अधिकांश स्थलों में उ रूप बन जाता है (हेच ४ ३३१ ; क्रम ५, २२) : जणु = जनः (हेच ४ ३३६) खोड = क्षोभः (हेच ४ ३६६ ; ४२० ४) ; सीहु = सिंहः (हेच ४ ४१८ १) भमरु = भ्रमरः , मक्कडु = मर्कटः चामरु = चामरः (पिंगल १ ६७) णिसिमरु = *निशिचरः [इस निशिचरः शब्द णिसिभरु का अर्थ बहुधा निशाकर या चंद्रमा होता है। —अनु] ; धाराहरु = धाराधरः है। इन रूपों के साथ साथ सामलो = श्यामलः भी मिलता है (विक्रमो ५५, १ और २) तसु = तपः सिरु = शिरः (हेच ४, ४४१, २ ; ४४५, १) अंगुलिउ जज्जरिआउ = अंगुल्यो जर्जरिताः (हेच ४ ३३) ; विउ सिप्पीउ = पिवासितीः (हेच ४ ३४८) ; सत्तइंच = सात्यकीः (हेच ४ ३८७ १) है। ढक्की में भी साधारणतया यही ध्वनिपरिवर्तन चलता है : जुदजूदिअनु पपलीणु = द्यूता धूतकरः प्रपलायितः (मृच्छ ३ , १) विप्प दीगु पादु = विप्रतीपः पादः (मृच्छ ३ , ११) ; एसु विहडु = एष विभवः

(मृच्छ० ३४, १७), इनके साथ-साथ कर्त्ताकारक **ओ** में भी समाप्त होता है (§ २५ और ३४५) । इनके अतिरिक्त पै० में अपादान एकवचन मे भी उ का प्रयोग किया जाता है : **तूरातु, तुमातु** और **ममातु** तथा इनके साथ-साथ **तूरातो , तुमातो** और **ममातो = दूरात् , त्वत्** तथा **मत्** (हेच० ४, ३२१) है । महा० में **णहअलाउ = नभस्तलात् , रण्णाउ = अरण्यात्** (§ ३६५) , जै०शौर० मे **उदयादु** (पव० ३८३, २७), जिसका रूप देख हेमचद्र ने इसको शौर० और माग० में भी अनुमत किया है, देखा जाता है (§ ३६५) , प्रथमपुरुष बहुवचन साधारण वर्तमान काल की क्रिया मे : अ०माग० में . **इच्छामु, अच्चेमु, दाहामु, वुच्छामु** रूप आये है और अप० में **लहिमु** मिलता है (§ ४५५) । § ८५ की तुलना कीजिए ।

§ ३४७—समास के पहले पद के अन्त मे व्यजनों से पहले सस्कृत के **अस्** और **अः** के साथ ऐसा व्यवहार होता है मानों वे शब्द के अन्तिम वर्ण हो और इस प्रकार उसके स्थान पर **ओ** का आगमन होता है । किन्तु महा०, अ०माग० और जै०महा० मे यह साधारणत. **अ** में समाप्त होनेवाली सज्ञा के रूप में दिखाई देता है (§ ४०७) और कभी-कभी यह घुलमिल जाता है : महा० मे **जसवम्म = यशोवर्मन्** (गउड०), जै०महा० में **जसवद्धण = यशोवर्धन** (कक्कुक शिलालेख, ४), इसके साथ-साथ **जसोआ = यशोदा** रूप भी देखा जाता है (गउड० , हाल) । अ०माग० और जै०महा० में **नमोक्कार** और इसके साथ साथ **नमोयार** और **णवयार,** महा० में **णमक्कार** रूप पाये जाते हैं (§ ३०६) । **णहअर = नभश्चर** (§ ३०१) , महा० **णहअल = नभस्तल** (गउड० , हाल , रावण०), **णहवट्ट = नभःपृष्ठः** (गउड०), **तमरअणिअर = तमोरजोनिकर** (रावण० ३, ३४) है । अ०माग० में **तवलोव = तपलोप** (ओव०), इसके साथ-साथ अ०माग० और जै०महा० में **तवोकम्म = तप.कर्मन्** (उवास० , ओव० , कप्प० , एर्त्से०), शौर० में **तवोवण = तपोवन** (शकु० १६, १३ , १८,१० , १९,७ , ९०, १४ , विक्रमो० ८४, २०) , जै०महा० और शौर० में **तवच्चरण = तपश्चरण** (§ ३०१) है । महा० और अप० में **अवरोॅप्पर = अपरस्पर,** महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **परोॅप्पर = परस्पर** (§ १९५ और ३११) है। महा०, अ०माग० और जै०महा० में **मणहर = मनोहर** (हेच० १, १५६ , गउड० , हाल , राय० ११४ , ओव० , कप्प० , एर्त्से०), इसके साथ साथ अ०माग०, जै०महा० और अप० में **मणोहर** रूप भी चलता है (हेच० १, १५६ , कप्प० , एर्त्से० , विक्रमो० ६६, १५) , महा० में **मणहरण** रूप भी है (कर्पूर० ५१, ६ , ५५, ४ , [मराठी भाषा में **मनहर** आज भी प्रचलित है। इस समय भी बबई में प्रसिद्ध गायक मनहर बर्वे की गायनशाला चलती है । —अनु०]) । अ०माग० मे **मणपओग = मनःप्रयोग, मणकरण** (ठाणग० ११४) तथा इसके साथ साथ **मणोजोग** रूप भी चलता है (ठाणग० ११३) । **उरअड = उरःस्तट** (क्रम० २,११०), अ०माग० में **उरपरिसप्प = उरःपरिसर्प** है (ठाणग० १२१) । अ०माग० में **मिहोकहा = मिथ.कथा** है (आयार० १, ८, १, ९) । अ०माग० में **मणोसिला**

जलं, जलहिं और वहुं = जलम्, जलधिम् और वधूम् है (हाल १६१, गउड० १४७, हेच० ३, १२४)। शौर० में अंगाणम् = अंगानाम्, देवीणं = देवीनाम् और वधूणं = वधूनान् है (शकु० ३२,८, ४३,११, ८९,६), माग० में देवदाणं वम्हणाणं च = देवतानां ब्राह्मणानां च (मृच्छ० १२१,१०) है। महा०, अ०माग० और जै०महा० में काउं और शौर० तथा माग० में कादुं = कर्तुम् (§ ५७४) है। § ७५, ८३ और १८१ की तुलना कीजिए। विंदु के साथ जो स्वर होता है (§ १७९, नोटसख्या ३) वह दीर्घ स्वर के समान माना जाता है (§ ७४, ७५, ८३, ८६, ११४)। इस कारण यदि पद्य में हृस्व वर्ण की आवश्यकता पडती है तो आगे आने वाले स्वर से पहले का म् बना रहता है, इसमें परिवर्तन नहीं होता (वर० ४, १३, हेच० १, २४, मार्क० पन्ना ३४)[1]. महा० में सुरहिम इह गन्धम् आसिसिर-वालमउलुग्गमाण जम्वूण मअरन्दम् आरविन्दं च = सुरभिम् इह गन्धम् आशिशिरबालमुकुलोद्गमानां जम्बूना मकरन्दम् आरविन्दं च (गउड० ५१६), महा० में तम् अंगम् एण्हि = तद् अंगम् इदानीम् (हाल ६७), अ०माग० में अणिच्चम् आवासम् उवेन्ति जन्तुणो = अनित्यं आवासम् उपयन्ति जन्तवः (आयार० २, १६, १), अ०माग० मे चित्तमत्तम् अचित्तं वा मिलता है (सूय० १), जै०महा० में कारविअं अचलम् इमं भवणं (कक्कुक शिलालेख २२) है, अप्पिअम् एअं भवणं भी पाया जाता है (कक्कुक शिलालेख २३), विस्सरियं तुहम् एगम् अक्खरं = विस्मृतं त्वयैकम् अक्षरम् (आव० एर्से० ७, ३३) है, जै०महा० में तवस्सिणिम् एयं = तपस्विनीम् एताम् (काल्का० २६२, १९), जै०शौर० में अदिसयम् आदसमुत्थं विसयादीदं अणोवमम् अणन्तम् = अतिशयम् आत्मसमुत्थं विषयातीत अनुपमम् अनन्तम् (पव० ३८०, १३), माग० मे मअणम् अणंगम् = मदनम् अनंगम्, संकलम् ईशलं वा = शंकरम् ईश्वर वा (मृच्छ० १०, १३, १७, ४)[2]।

१ वेवर, हाल १, पेज ४७। —२ हस्तलिपिया और उनके साथ भारतीय छपे सस्करण स्वर के साथ विंदु के स्थान पर भूल से अशुद्ध रूप अनुनासिक देते हैं। शिलालेखों मे इसी ढग से लिखा गया है, कक्कुक शिलालेख १०, ११, १२, पल्लवदानपत्र ७, ४५ और ४९। नन्सो (कक्कुक शिलालेख २) और रोहिन्सकूअ (कक्कुक शिलालेख २० और २१) रूप भी अशुद्ध हैं। § १० की तुलना कीजिए।

§ ३४९—अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० में अनुस्वार में बदल जाने के स्थान पर उस दशा में म् बना रहता है जब म् में समास होनेवाले शब्द पर जोर देना और उसको विशेष रूप से महत्व देना होता है। यह विशेष कर एव के पहले होता है। इस स्थिति में पहले ह्रस्व स्वर बहुधा दीर्घ कर दिया जाता है और दीर्घ स्वर § ८३ के नियम के विपरीत बना रहता है (§ ६८). अ०माग० में एवम् एयं भन्ते, तहम् एयं भन्ते, अवितहम् एयं भन्ते, इच्छियम् एयं भन्ते, पडिच्छियम् एयं भन्ते,

हस्तलिपियाँ शुद्ध की जानी चाहिए। केवल एक बात सदिग्ध रह जाती है कि अति निकट-सम्बन्धी शब्दों में **म्** शुद्ध है या नहीं? याकोबी इसे शुद्ध मानता है। पर हस्तलिपियाँ इस मत को पुष्ट नहीं करती है **उपरिलिखितम् अजाताये = उपरिलिखितम् *अद्यत्वाय** (पल्लवदानपत्र ७, ४५) और **सयम् आणतं = स्वयम् आज्ञप्तम्** (पल्लवदानपत्र ७, ४९) सस्कृताऊपन के उदाहरण हैं, जब कि **एवमादीकेहि = एवमादिकैः** (पल्लवदानपत्र ६, ३४) समास के रूप में माना जा सकता है। — के स्थान में **म्** के विषय में लास्सन[2] की तुलना में होएफर[3] का निर्णय अधिक शुद्ध है।

१ त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ३५, ६७७ , एर्त्से० § २४, भूमिका का पेज ३०। याकोबी के उदाहरणों मे से बहुत अधिक सख्या में कविता में से हैं, इसलिए वे अधिकारयुक्त नही माने जा सकते, जैसे **मुहुत्तम् अवि** (आयार० १, २, १, ३) , **इणम् एव** (आयार० १, २, ३, ४) , **अत्ताणम् एव** (आयार० १, ३, ३, ४) जहाँ **एव** को काट देना है। इसी भाँति **सच्चम्** के बाद भी **एव** उड़ा देना चाहिए जिससे इस श्लोक का रूप यह हो जाता है : **सच्चं समभियाणाहि मेहावी मारं तरइ , सत्थारम् एवं** (आयार० १, ६,४,१) आदि-आदि। पूर्ण सदिग्ध एक सस्कृताऊपन **तेणम् इति** है (आयार० २, २, २, ४)। **म्** के विषय में भी वही बात कही जा सकती है जो **त्** के लिए (§ २०३)। — २ इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए § ५३। — ३ डे प्राकृत ढिआलेक्टो § ६६।

§ ३५०—मौलिक **न्** और **म्** से निकला अनुस्वार महा०, अ०माग०, जै०-महा० और जै०शौर० मे स्वरों और व्यजनों के आगे बहुधा लोप हो जाता है। महा०, अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० में **तम्मि, जम्मि** और **कम्मि** तथा अ०माग० में **तंसि, जंसि** और **कंसि = तस्मिन्, यास्मिन्** और **कस्मिन्** (§ ४२५ और उसके बाद) , महा० **जोव्वणम्मि = *यौवनस्मिन् यौवने** , अ०माग० **लोगंसि = लोके** [**लोगंसि तैसिं, कैसिं** आदि–**सि** या – **सि** में समास होनेवाले रूप लोगों से, लोगों में, लोगों का आदि अर्थ में कुमाऊँ के कुछ भागों की बोलियों में प्रचलित हैं। —अनु०], जै०महा० में **तिहुयणम्मि = त्रिभुवने,** जै०शौर० में **णाणम्मि = ज्ञाने** (§ २६६ अ) है। प्रथमपुरुष एकवचन इच्छावाचक रूप में भी यह नियम लगता है . **कुप्पेज्ज = कुप्येम्**। अ०माग० में भी यह नियम है किन्तु उसमें शब्द का अन्तिम वर्ण दीर्घ कर दिया जाता है . **हणेज्जा = हन्याम्**। शौर० में भी विच्युति होती है : ***कुप्येम् = कुप्येयम्** से निकल कर **कुप्पे** रूप मिलता है (§ ४६०)। करके-वाचक धातु के ***त्वानम्** वाले रूप में भी **न्** और **म्** से निकले अनुस्वार का लोप हो जाता है अ०माग० में **चिट्ठित्ताण** रूप आया है (§ ५८३), **काउआण** भी पाया जाता है (§ ५८४) , महा०, अ०माग० और जै०महा० में **गन्तूण** है (§ ५८६) , जै०शौर० में **कादूण** (§ २१ और ५८४) देखने में आता है [कुमाउनी मे **कादूण** के स्थान पर **करूण** रूप वर्तमान है ,

इसकी शब्द-प्रक्रिया कुछ इस प्रकार रही होगी करस्यौन, करमणाम, करर्षण, करूण। करूण का अर्थ है करसाना। —अनु]। इसी प्रकार अ माग में —णाम और —याण रूप मिलते हैं जिनके साथ साथ —णाणं और —याणं रूप भी चलते हैं (§ ५८७ और ५९२)। महा में षष्ठी (सम्बन्धकारक) बहुवचन में बिना अनुस्वार के रूप का ही बोलबाला है (§ १७)। यह रूप अ०माग में भी पाया जाता है और विशेषतः पादपूरक अव्ययों से पहले आता है जैसे, तुबाण य सुबाण य = तुब्भाणं च सुबाणं च (उत्तर ९२६) सुमइप्पमुहाण य देवीणं = सुमग्गप्रमुखाणां च देवीनाम् (ओव § ४०, ४७ और ५९), इसके विपरीत सुमइप्पमुहाणं देवीणं रूप भी मिलता है (ओव § ४१) वसण्ण वि वट्टमाणाणं = वत्सानाम् अपि वर्तमानानाम् (उवास § २७५) है। इनके अतिरिक्त मे महा में भी इस नियम का प्रचलन देखा जाता है जैसे, —पुरिसाण मब्भुरस्स पगाइम्मस्सराण = पुरुषाणाम् अभ्यासरामप्रत्ययस्मरराणाम् (आव एत्सें १२, ४४ और ४५) दो ण्ह-विरुद्धाण नरवरिन्दाण = द्वयोर्-विरुद्धयोर् नरवरेन्द्रयोः (आव एत्सें २९ ७) सवणाण = श्रवणयोः (एत्सें २, ११); पुत्ताण = पुत्राणाम् (एत्सें २९, ८) और जै शौर में भी ये रूप मिलते हैं जैसे, संगासत्ताण तह [पाठ में तह है] अमगाणं = संगासक्तानां तथा संगानाम् (कत्तिगे ३९८, ३ ४) रयणाण [पाठ में रयणाण है], सव्वजोयाण रिसीण = रत्नानाम् सर्वयोतानाम् ऋषीनाम् है (कत्तिगे ४ , ३२५) विसाण सव्वाण सुप्पसिद्धाणं = विशां सर्वासां सुप्रसिद्धानाम् है (कत्तिगे ४ १ ३४२) [यह बिना अनुस्वार का रूप अवश्य ही बोला जाता रहा होगा। इसका प्रमाण कुमाउनी बोली में आज भी इस रूप का उक्त प्राचीन अर्थ में व्यवहार है। इस बोली में बामणान दियौ = ब्राह्मणों को दीजिये, मास्तरान बुलावौ = मास्तरों को बुलाइये आदि रूप वर्तमान हैं। इस दृष्टि से कुमाउनी बोली अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसने प्राकृत बोली के बहुत शब्द सुरक्षित रखे हैं। हिंदी की शायद ही किसी बोली में प्राकृत की इतनी बड़ी शब्द संपत्ति एक स्थान पर एकत्र मिले। —अनु]। ऊपर दिये गये उदाहरणों और इसी प्रकार के रूपों में जहां एक ही शब्द अनुस्वार सहित और रहित साथ साथ आता हो (§ १७), अन्य समान शब्दों की भांति ही (§ १८) अननुनासिक रूपों के स्थान पर अर्धचंद्रयुक्त रूप लिखा जाना चाहिए। इसकी आवश्यकता विशेष करके मुझे उस स्थान पर मालूम होती है जहां छंदों की मात्रा मिलाने के लिए करणकारक और कर्मकारक के एकवचन में पाठों में इस समय अननुनासिक रूप मिलता है। इस नियम के अनुसार महा में णीससिअं परद्दंभ = निःश्वसितं पराधया (हाल १४१), यह पाठ णीससिअँ परद्दंभ पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि अर्धचंद्र की मात्रा नहीं गिनी जाती। अ माग में सयं सं च जहाइ संरयं = स्वयं सां च जहाति स्वैरकम् (सूय ११८); पाणाहि णं पावें विओजयन्ति = प्राणैर् नूनं पापं वियोजयन्ति (सूय २७८); अप्पगं पावें जुञ्जन्ति = आत्मकं अवद्यं (= पापं) युञ्जन्ति (सूय १६९);

वासं वयं विर्त्ति पकप्पयामो = वर्षं वयं वृत्तिं प्रकल्पयामः (सूय० १४८) ; **तं इसिँ तालयन्ति = तम् ऋषिं ताडयन्ति** (उत्तर० ३६०), इस ग्रथ में **तं जणॅ तालयन्ति** भी आया है (उत्तर० ३६५), **अन्नं वा पुप्फॅ सच्चित्तं = अन्यद् वा पुष्पं सचित्रम्** (दस० ६२२, ३९), **तिलपिट्ठँ पूहपिन्नागं = तिलपिष्टं पूतिपिण्याकम्** (दस० ६२३, ७), माग० में **गअणॅ गश्चत्ते = गगनं गच्छन्** (मृच्छ० ११३, ११), **खणॅ मूलके = क्षणं जूटकः** (मृच्छ० १३६, १५), **खणॅ उद्धचूडे = क्षणम् उद्धर्वचूडः** (मृच्छ० १३६,१६), अप० मे **मइँ जाणिॲ मिअलोअणिँ = मया ज्ञातं मृगलोचनीम्**, **णवतलिँ = नवतडितम्**, **पुहविँ** और **पिॲ = पृथ्वीम्** तथा **प्रियाम्** (विक्रमो० ५५,१ , २ और १८) है। सभी उदाहरणों मे जहा – आया है और छद की मात्रा ठीक बैठाने के लिए ह्रस्व वर्ण की आवश्यकता हो तो यही होना चाहिए जैसे, अ०माग० मे **अभिरुज्झं कायॅ विहरिउसु आरुतियाणॅ तत्थ हिंसिसु = अभिरुह्य कायं व्यहार्षुर आरुष्य तत्राहिंसिषुः** (आयार० १, ८, १, २) है, अ०माग० में **संवच्छरॅ साहियं मासं = संवत्सरं साधिकं मासम्** (आयार० १, ८, १, ३) है, अ०माग० मे **न विज्जई वन्धणॅ जस्स किंचि वि = न विद्यते वन्धनम् यस्य किंचिद् अपि** (आयार० २, १६, १२) है। यही नियम विन्दु द्वारा चिह्नित अनुनासिक स्वर के लिए भी लागू है। इन नियमों के अनुसार ही महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर० और अप० में तृतीया बहुवचन में **–हिं, –हिँ** और **–हि** में समाप्त होनेवाले रूप एक दूसरे के पास पास पाये जाते है (§ १८० और ३६८) और अ०माग० तथा जै०महा० में पादपूरक अव्ययों से पहले अननुनासिक रूप काम मे लाया जाता है। इस भाति अ०माग० में **कामेहि** [पाठ मे **कामेहिं** है] **य संथवेहि य = कामैश् च संस्तवैश् च** (सूय० १०५) है, अ०माग० में **हत्थेहि पाएहि य = हस्ताभ्यां पादाभ्यां च** (सूय० २९२) है, अ०माग० में **वहूहिं डिम्भएहि य डिम्भियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य सद्धिं** आया है (नायाध० ४३१ और १४०७), अ०माग० में **परियणणयरमहिलियाहिं सद्धिं = परिजननगरमहिलिकाभिः सध्रीम्** (नायाध० ४२९) किंतु **परियणमहिलाहि य सद्धिं** भी साथ ही में मिलता है (नायाध० ४२६), अ०माग० में **वहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य विण्णवणाहि य सण्णवणाहि य = वह्वीभिर् आख्यापनाभिश् च प्रज्ञापनाभिश् च विज्ञापनाभिश् च सज्ञापनाभिश् च** है (नायाध० ५३९ ; नायाध० § १४३ की तुलना कीजिए , उवास० § २२२)।

§ ३५१—शब्द के अत में आनेवाला **–अम्** = प्राकृत अं, उ में परिवर्तित हो जाता है। यह पुलिंग के कर्मकारक एकवचन में और **–अ** में समाप्त होनेवाले नपुसक लिंग की सज्ञाओं के कर्त्ताकारक और कर्मकारक एकवचन में , प्रथम और द्वितीय पुरुष के सर्वनामों की षष्ठी (सबधकारक) एकवचन में, परस्मैपद में भविष्यकालवाचक एकवचन में करके वाचक रूप में जो मूल में **त्वीनम्** से निकला हो और कुछ क्रियाविशेषणों में पाया जाता है , **वाअसु = वायसम्** (हेच० ४,३५२), **भरु = भरम्**

(हेच० ४,४४०,२) ; हत्थु = हस्तम् (हेच ४,४२२,१) वणवासु = वनवासम् (एत्सें १,२२) अंगु = अंगम् (हेच० ४,३३२,२) ; धणु = धनम् (कालका० २७२, ३५) फलु = फलम् (हेच ४,३४१,२) मझु और मज्झु = माह्यम् (हेच में म देखिए मझु रूप उदाहरणार्थ विक्रमो ५९,१ ५९,११ और १४ में भी मिलता है) तुज्झु = *तुह्यम् (हेच में तु देखिए [ये म और तु रूप ला शंकर पांडुरंग पंडित द्वारा संपादित और पी एल वैद्य द्वारा संशोधित ग्रंथ में नहीं दिये गये हैं । मज्झु तो अस्मद् के नीचे दिया गया है, पर तुज्झु नहीं मिलता । यह रूप युष्मद् के नीचे दिया जाना चाहिए था किंतु मेरे पास जो ग्रंथ है उसमें हेमचंद्र के शब्दानुशासन के अष्टम परिच्छेद की सूची नहीं है जो हेमचंद्र का प्राकृत व्याकरण है । पिशल ने हेमचंद्र के इस अष्टम अध्याय अथवा प्राकृत व्याकरण का छपा संस्करण स्वयं संपादित कर टीका सहित छपाया, उसकी शब्दसूची में तुज्झु रूप भी तु के नीचे होगा । मेरे पास जो संस्करण है उसमें हेमचंद्र के प्राकृत द्वाश्रय काव्य कुमारपालचरित की शब्दसूची है उसमें तुज्झ मिलता है । —अनु] पावीसु करीसु और पइसीसु = प्राकृत पाविस्सं करिस्सं तथा पविसिस्सं = प्राप्स्यामि, करिष्यामि और प्रवेक्ष्यामि (हेच ४ ३९६, ४) गम्पिणु और गमेप्पिणु = *गन्त्वीनम् और *गमित्वीनम् ; करेप्पिणु = करित्वीनम् प्रॉप्पिणु = *प्रूत्वीनम् (§ ५८८) निच्चु = नित्यम् (एत्सें १,२१) निसंकु = निःशंकम् (हेच ४, ३९६, १) परमत्थु = परमार्थम् (हेच ४, ४२२ १) समाणु = समानम् (हेच ४, ४१८, १) है । इसी नियम के अनुसार विणु (हेच ४, ४२६ और विक्रमो ७१, ७ में यह शब्द देखिए) जो विना = *विणम् से निकला है, बना है (§ ११४) । इसी में भी अं का उ हो जाता है पडिमागुण्णु वंजम्मु = प्रतिमा गुण्यं वंशकुलम् ; प्रम्मु = प्रम्यम् ; वरासुवण्णु कलुवण्णु = वरासुवर्ण कल्य सर्तम् (मृच्छ १ ११ ११ १६ १८, १७) किंतु इनके साथ साथ बहुत अधिक स्थलों पर कर्मकारक के अंत में अं रूप रहता है समविसयं = समविषयम् ; कुलं, वेअलं, जूदं सव्व सुवण्णं ; वरासुवण्णं कलुवण्णं आदि आदि रूप मिलते हैं (मृच्छ १ ,८ १ १२ और १८ १२८ ; १४,१२) । पिशल और कालिदास के अप में अं और अँ रूपों का बोलबाला है ।

§ ३५२—संस्कृत शब्द के अंत का —कम् अप में —उँ और उँ हो जाता है । इस भांति —अ में समाप्त होनेवाली नपुंसक लिंग की संज्ञा के कर्ताकारक और कर्मकारक एकवचन में प्रथम तथा द्वितीय पुरुष के सर्वनामों के कर्ताकारक एकवचन में साधारण वर्तमान काल के प्रथम पुरुष एकवचन में और कुछ क्रियाविशेषणों में यह ध्वनिपरिवर्तन पाया जाता है : हिअउउ = हृदयकम् (हेच ४ ३५ २ और शब्दसूची भी देखिए) ; रूअउउ = रूपकम् ; कुडुम्बउ = कुटुम्बकम् (हेच ४ ४१९ १ ४२२ १४) हउँ = *अहकम् (हेच ४ ३७५ और शब्दसूची भी देखिए) ; तुहुँ = त्वकम् (§ २ १) जाणउँ = *जानकम् = जानामि ; जीवउँ = जीवामि ; चअउँ = त्यजामि (§ ४५४) मणाउँ = जै मना मणागे

(§ ११४) = सस्कृत *मनाकम् = मनाक् (हेच० ४, ४१८ और ४२६), **सहुं** और **सहुँ** = **सार्कम्** है (§ २०६)। इनके अतिरिक्त वह सज्ञा जो तद्धित रूप में व्यवहृत होती है और जिसमे सस्कृत में **-कम्** लगता है जैसे, **अक्खा णउँ** = **आख्यानकम्** (§ ५७९) और **एहउँ** मे जो = *एपकम् और जिसका अर्थ **एतद्** है (हेच० ४, ३६२)।

(पॉच)—संधि-व्यंजन

§ ३५३—जैसा कि पाली[१] मे होता है उसी प्रकार बोली की दृष्टि से प्राकृत में भी सधि व्यजन रूप से सस्कृत शब्दो के अन्त में जडनेवाले व्यजन, जो दो शब्दो के बीच के रिक्त स्थनों को भरने के लिए मान्य किये गये हैं, चल्ते हैं। इसका श्रीगणेश (§ ३४१, ३४३, ३४८ और ३४९ में दिये गये उदाहरण करते हैं। इस काम के लिए विशेष कर बहुत अधिक वार **म्** काम में लाया जाता है : अ०माग० मे **अन्न,म्-अन्न-** और **अण्ण म्-अण्ण-**[२] = **अन्योन्य-**(आयार० २, १४,१, उत्तर० ४०२, विवाह० १०५ और १०६), **अन्न-म्-अन्नो** (आयार० २, १४, १), **अन्न-म्-अन्नं** (आयार० २, ७, १, ११, सूय० ६३०, पण्हा० २३१, विवाह० १८०, उत्तर० ४०२, कप्प० § ४६, **अण्ण-म्अण्णेणं** (विवाह० १२३, कप्प० § ७२, निरया० § ११), **अण्ण-म्-अण्णाए** (विवाह० ९३१), **अन्न-म् अन्नस्स** (आयार० २, ५, २, २, ३ और ५, २, ८, ६,२, विवाह० १८७, ५०८, २८, उवास० § ७९, ठाणग० २८७, निरया० § १८, ओव० § ३८ और ८९), **अन्न-म्-अन्नेहिं** (सूय० ६३३ और ६३५, निरया० § २७), **अण्ण म्-अण्णाणं** (विवाग० ७४) और जै०शौर० में **अण्ण-म्-अण्णेहिं** (पव० ३८४, ४७) रूप मिल्ते हैं। जब कि वैदिक भाषा में **अन्यान्य**, महा० **अण्णण्ण** और जै०महा० में **अन्नन्न** § १३० पाया जाता है सस्कृत में **अन्योन्य** रूप है तथा महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **अण्णोॅण्ण** (§ ८४), यहॉ कर्त्ताकारक जम गया है . अ०माग० और जै०महा० में कर्मकारक यदि जम गया हो तो मौलिक **म्** यहॉ ठीक ही है। यही बात महा०, अ०माग० और अप० रूप **एक्क-म्-ऍक्क** के विषय में कही जा सकती है, अ०माग० में **एग-म्-एग** रूप भी चलता है जो = **एकैक**, महा० में **एक्क-म्-एक्क**—आता है (रावण० ५, ८५ और ८७, १३, ८७), महा० मे **एक्क-म-एक्कं** रूप भी पाया जाता है (हेच० ३, १, रावण० ५, ४८, ८, ३२), अ०माग० में **एग-म्-एगं** देखने में आता है (सूय० ९४८ और ९५०, नायाध० § १२५), अप० में **ऍक्क-म्-ऍक्कडं** मिल्ता है (हेच० ४, ४२२, ६), **ऍक्क-म्-एक्केण** रूप भी है (हेच० ३, १), अ०माग० में **एग-म्-एगाए** देखने में आता है (विवाह० २२४, नायाध० § १२५), महा० और अ०माग० मे **ऍक्क-म्-एक्कस्स** पाया जाता है (हाल ४१६, ५१७, शकु० १०१, १४, उत्तर० ४०१), अ०माग० में **एग-म्-एगस्स** भी चलता है (ठाणग० ४५६, विवाह० २१५ और

२२२); महा० में पक्क-म्-पक्के काम में आया है (रावण० १, ५६) अ०माग० पग-म्-पगसि का भी प्रचार है (विवाग० ५० विवाह० १०४१ और उसके बाद ११९१); अ माग में पग-म् पगे (विवाह २१४) और महा० में पक्क म्-पक्का भी है (रावण ७, ५९ १ , ४१)। नीचे दिये गये रूपों में यधि व्यंजन म् वर्तमान है अंग-म्-अगम्मि = अंगे-ऽङ्गे (हय १, १) अ माग० में विरायवग-म्-भगे = विराजितागागः और उम्मोइयंग-म्-भगे = उद्योतितांगांग (ओव § ११ और १६) हट्ठतुट्ठचित्त-म्-आणन्दिय = हृष्टतुष्टचित्तामंदित (नायाध § २१ ओव § १७ कप्प § ५ और १५ भग १, २६) इसके साथ-साथ-चित्ते आणंन्दिये भी है (कप्प § ५)। मादि से पहले भी संधि व्यंजन म् बहुधा आता है : अ०माग में हय-म्-माइ, गोय-म्-माइ, गय-म्-माइ और सीह-म्-माइणो = हयादयो, गवादयो, गजादयो और सिंहादयो (उत्तर १ ७५); अ०माग में सुगन्धतेल-म्-आइएहिं = सुगन्धतैलादिकैः (कप्प § ६); अ माग में वत्थण-म्-मादिएहिं मिलता है (उवास § २९) अ माग में आहार-म्-आइणि रूप भी आया है (दस ६२६, ६) अ माग में-रयण-म्-माइएणं = रत्नादिकेन (कप्प० § ९ § ११२ की तुलना कीजिए ; ओव § २३); जै महा में पञ्चकुलसुय-म्-माईहिं रूप पाया जाता है (आव एर्से ४०, १८) जै महा में कामभेगु-म्-माईण और लोगपाल-म्-माईयं रूप पाये जाते हैं (कालका २७ , २९; २७५, १७) जै शौर में रूव-म्-मादीणि = रूपादीनि (पव ३८४, ४८) है। अन्य उदाहरण ये हैं : अ माग में आरिय-म्-आणारियाणं मिलता है (सम ९८ ; ओव § ५६) ; अ माग में सारस्सय-म्-भाइच्चा = सारस्वतादित्यौ (ठाणंग ५१६) अ माग म एस-म्-अट्ठे = एषों र्थः (विवाह १९१ नायाध § २९ ओव § ९ कप्प § ११) एस-म्-आघामो = एष-आघातः (दस ६२५ ११) एस-म्-अग्गी = एषों ग्निः (उत्तर २८२), एय-म्-अट्ठस्स रूप भी चलता है (निरया § ८), आयार-म्-अट्ठा = आचाराधात् (दस ६३६ ९), लाभ-म्-अट्ठिभा = लाभार्थिका (दस० ६४१ ४२) अ माग यत्थगन्ध-म्-अलंकारं रूप पाया जाता है (सूय १८१ ; ठाणग ८५ ; दस ६११ २०) अ माग में सव्वजिण-म्-अणुण्णाभ = सर्वजिनानुज्ञात (पण्हा ४६९ और ५११) अ माग में तीय उप्पन्न-म्-अणागयाइं = अतीतोत्पन्नानागतानि (सूय ४७ ; विवाह १५५ की तुलना कीजिए दस ६२७ २७); अ माग में दीह-म्-अद्ध- = दीर्घाध्व- (ठाणंग ४१ ; १२९ ; ३७ ; ५७ सूय ७८७ और ७८९ ; विवाह ३८ ; ३९ ; ८४८ ; ११२८ ; १२२५ और उसके बाद ; १२९ पण्हा १ २ ; १२६ ; ओव § ८१ ; नायाध ४६४ और ११३७); अ माग भरधाद-म्-भतार-म् भपारिसीयंसि उदयंसि = *भसाधातागपारुषीय उदके (नायाध ११११); अ माग में भाउक्खमस्स-म्-अप्पणो = आयुःक्षेमस्यात्मनो

(आयार० १,७, ८,६), जै०महा० में अट्ठारस-म्-अग्गलेसु = अष्टादशार्गलेषु (कक्कुक शिलालेख १९), ऊरु-म्-अन्तरे भी आया है (आव० एर्त्से० १५, १८), अ०माग० में पुरओ-म्-अग्गयो य = पुरतो'ग्रतश् च है (विवाह० ८३०)। य और र बहुत ही कम स्थलों पर सधिव्यंजन के रूप में काम में लाये जाते हैं। अ०-माग० में एमाहेण वा दुयाहेण वा तियाहेण वा चउयाहेण वा पाया जाता है (आयार० २, ३, १, ११, २, ५, २, ३ और ४)। — एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा की तुलना कीजिए (जीवा० २६१, २८६ और २९५)। — चउयाहेण = चतुरहेण, दुयाहेण = द्व्यहेन और तियाहेण = त्र्यहेण से प्रभावित हुआ है, जैसा कि स्वर की दीर्घता अपने को एगाहेण और एगाहं की नकल पर स्पष्ट कर देती है। अ०माग० में किं अणेण भो-य्-अणेण रूप मिलता है (आयार० १, ६, ४, ३), अ०माग० में सु-य्-अक्खाय = स्वाख्यात (सूय० ५९० , ५२४), इसके साथ साथ सुअक्खाय रूप भी चलता है (सूय० ६०३ और ६२०) , अ०माग० में वेयवि-य्-आयरक्खिए = वेदविदात्मरक्षितः है (उत्तर० ४५३) , वद्ध-य्-अट्ठिय = वद्धास्थिक (आयार० २, १, १०, ५ , § ६ की भी तुलना कीजिए जहाँ विना य् की संधि है), अ०माग० महु-य्-आसव = मध्वास्रव (ओव० § २४) , जै०महा० में राया-य्-उ = राजा + उ (आव० एर्त्से० ८, १) , जै०महा० में दु-य्-अंगुल = द्व्यंगुल (एर्त्से० ५९, १३) है। र् व्युत्पत्ति-शास्त्र की दृष्टि से अ०माग० रूप वाहि-र्-इवोसहेहिं = व्याधिर् इवौषधैः (उत्तर० ९१८), सिहि-र्-इव (दस० ६३३, ३४) और वायु-र्-इव (सूय० ७५८ , कप्प० § ११८) में बैठा हुआ है जहाँ र् कर्त्ताकारक का प्राचीन समाप्तिसूचक वर्ण है अर्थात् मानो ये रूप वाहिर् इवो-, सिहिर् इव (यह लौयमान का मत है), वायुर् इव (यह याकोबी का मत है) लिखा जा सकता है। नीचे दिये गये अ०-माग० के उदाहरणों की नकल पर र् सधिव्यंजन बन जाता है : अणु-र्-आगयम् = अन्वागतम् (विवाह० १५४)[३] , अ०माग० में दु-र्-अंगुल = द्व्यंगुल (उत्तर० ७६७ , टीका में दुअंगुल रूप है , ऊपर आये हुए जै०महा० रूप दुयंगुल की तुलना कीजिए , [यह र् कुमाउनी रूप एकवच्चा, दुर्-वच्चा और ति-र्-वच्चा में सुरक्षित है। वच्चा = वाच है। —अनु०]) , अ०माग० और जै०महा० में धि-र्-अत्थु = धिग् अस्तु (हेच० २, १७४ , त्रिवि० १, ३, १०५ , नायाध० ११५२ और ११७० तथा उसके बाद , उत्तर० ६७२ और ६७७ , दस० ६१३, ३१ , द्वार० ५०७, २१) है। अ०माग० में सु-र्-अणुचर = स्वनुचर (ठाणग० ३५०), ऊपर आये हुए रूप दुरणुचर[४] की नकल पर बन गया है, इसके विपरीत दुआइक्खं (ठाणग० ३४९), यदि पाठ परपरा शुद्ध हो तो सुआइक्खं की नकल पर बनाया गया होगा।

१ ए० कून, बाइत्रैगे, पेज ६१ और उसके बाद , ए० म्युलर,—सिम्प्लिफाइड ग्रैमर पेज ६३ , विंडिश, बे०को०सै०गे०वि०, १८९३, २२८ और उसके बाद।
— २ इन उदाहरणों के विषय में पाठ अस्थिर है, उनमें कभी म और कभी

पण रूप एक ही शब्द के रूपों में मिलता है। — १ अभयदेव कहता है : रेफस्यागमिकत्वाद् अभ्यागतम् अनुरूपम् आगमनं हे स्कन्दक तवेति हृदयम्। — ४ अभयदेव रेफः प्राकृतत्वात्। वेबरकृत भगवती १, ३४४; वेबर, बे०बाइ० ३, २४५ और त्सा०डे०डौ०मौ०गे० २ की तुलना कीजिए।

(छ)—वर्णों का स्थानपरिवर्तन (व्यत्यय)

§ ३५४—कुछ शब्दों में एक दूसरे के बगल में ही रहनेवाले वर्ण स्थानपरिवर्तन कर लेते हैं। यह स्थानपरिवर्तन इस भाँति होता है कि ध्वनिनियमों में इसका कोई आधार नहीं मिलता : महराहा = अचिराभा और महहारा (= बिजली : देशी० १ ३४) है। — मलचपुर [= एलिचपुर, बरार में। — अनु] = अचलपुर (हेच० २, ११८) है। — आणाळ = आलान (वर ४, २९; हेच २, ११७; क्रम० २,११७), आणाळक्खम्भ और आणालक्खम्भ = आलानस्तम्भ (हेच २, ९७) है। — कणेरु = करेणु (वर ४, २८; हेच २, ११६; क्रम २, ११९; मार्क० पन्ना १८) है। व्याकरणकार बताते हैं कि शब्दों के वर्णों का यह स्थानपरिवर्तन स्त्रीलिंग में ही होता है। यह तथ्य पाली भाषा[1] के नियम से पूरा-पूरा मिलता है। अ०माग० में स्त्रीलिंग रूप में (नायाध० १२७; १२८; ११७ और ३३८; उत्तर ११७ और ५४), जैसा कि शौर० में पुल्लिंग रूप में (पाइय० ९; मालवी० २ १ ४) करेणु ही बरता जाता है। इसी भाँति जै०महा० में भी करेणुया = करेणुका रूप है (पाइय० ९; एर्सें०)। मार्कंडेय पन्ना १८ के अनुसार शौर० में यह स्थानपरिवर्तन होता ही नहीं। महा० में णडाल, महा०, अ०माग० में और जै०महा० णिडाल = ललाट, इसके साथ-साथ णलाड रूप भी चलता है तथा महा० और अ०माग० में णिलाड एवं शौर० में ललाड रूप भी पाये जाते हैं (§ २६०)। — पै०महा० और अप० में द्रह = ह्रद (हेच २, ८०; देशी० ८ १४; पाइय० एर्सें० ४२,२७; हेच ४ ४२३ १), अ०माग० में इसका रूप दह है (हेच २, ८ और १२०; आयार० २, १, २, ३; २ ३, ३, २; अणुओग० ३८६; पण्णव० ८०; नायाध० ५०८ और उसके बाद; विवाह० ११९; ३६१; ९६९; ठाणंग० १७६)। समासों में भी यह स्थानपरिवर्तन (वर्णव्यत्यय) बहुधा रहता पाया जाता है जैसे पउमद्दह तिगिच्छद्दह (ठाणंग ७५ और ७६), पउमद्दह और पुण्डरीयद्दह (ठाणंग ७५ और उसके बाद; जीवा० ५८२ और उसके बाद); महा० और अ०माग० में महद्दह मिलता है (हाल १८९; ठाणंग ७५ और १८२)। अ०माग० और अप० में महादह रूप पाया जाता है (ठाणंग १७६; हेच ४ ४४४ १) इसके साथ साथ अ०माग० में अंतरवर के साथ हरय रूप भी आता है (२ ११२)। — महा०, अ०माग० जै०महा०, शौर० और अप० में दीहर रूप है जो •दीरघ के स्थान पर आया है (§ १३२) और जो = दीर्घ है (हेच २ १७१; गउड०; हाल; रावण०; कर्पूर० ४२ ११; नदी० १०७; एर्सें०; उत्तर० १२५ ६; बाल० २३५, १९; मल्लिका० ८२, १२२ १९।

१६१, ८, १९८, १७; २२३, ९, हेच० ४, ४१४, १, ४४४, ४)। — अ०-माग० में **पाहणाओ = उपानहौ**, **अणोवाहणग** और **अणोवाहणय** रूप भी पाये जाते हैं। अ०माग० में **छत्तोवाहण** है, पर इसके साथ साथ शौर० में **उवाणह** भी मिलता है (§ १४१)। —जै०महा०, शौर० और अप० में **मरहट्ठ = महाराष्ट्र** (हेच० १, ६९, २, ११९, कालका० २६९, ४४, बाल० ७२, १९, १, ९१, ११६ अ, १४० अ), महा० में **मरहट्ठी** (विद्ध० २५, २) और इसके साथ साथ **मराठी** रूप आये हैं (§ ६७)। — अ०माग० में **रहस्स** रूप है जो ***हरस्स** के स्थान पर है और = **ह्रस्व** है (ठाणग० २०, ४०, ४४५, ४५२), इसके साथ-साथ **ह्रस्स** रूप भी चलता है (आयार० १, ५, ६, ४, २, ४, २, १०, विवाह० ३८, ३९), **ह्रस्सीकरेंन्ति** भी पाया जाता है (विवाह० १२६)। हस्तलिपियों और पाठों में बहुधा **ह्रस्स** रूप आया है (ठाणग० ११९, नन्दी ३७७, वेबर, भग० १, ४१५)। भाम० ४, १५ के अनुसार लोग **ह्रस्व** को **हंस** भी कहते थे (§ ७४)। अ०माग०, जै०महा० और अप० में **वाणारसी = वाराणसी** (हेच० २, ११६, अंत० ६२, नायाध० ५०८, ७८७, ७९१, १५१६, १५२८ [पाठ में **वाराण-सीए** है], निरया० ४३ और उसके बाद, पण्णव० ६०, ठाणग० ५४४, उत्तर० ७४२, विवाग० १३६, १४८ और उसके बाद, विवाह० २८४ और उसके बाद, एर्त्से०, पिंगल १, ७३ [यहाँ **वणरसि** पाठ है और गौल्दश्मित्त द्वारा संपादित संस्क-रण में **वरणसि** है], हेच० ४, ४४२, १) है। शौर० में **वाराणसी** रूप पाया जाता है (बाल० ३०७, १३, मल्लिका० १५, २४, १६१, १७, २२४, १०), माग० में भी यही रूप है (प्रबोध० ३२, ६,९), जिसके स्थान पर बंबइया संस्करण ७८, ११ में **वालाणसी** पढ़ा गया है, इसे सुधारकर **वालाणशी** पढ़ना चाहिए। — **हलिआर** और इसके साथ साथ **हरिआल = हरिताल** (हेच० २,१२१) है। — **हलुअ** और इसके साथ-साथ **लहुअ = लघुक** (हेच० २, १२२, [हिंदी में इसके **हलुक**, **हौले**, **हरुआ** आदि रूप हैं, पर अर्थ शीघ्रता के स्थान पर धीमे धीमे हो गया है। मराठी में **लहुअ** का प्रचार है। इस भाषा में **लहुअ** का **लौ** बनकर **लौकर** शब्द बन गया है जिसका अर्थ शीघ्र है। —अनु०])। — **हुलइ** और इसके साथ साथ **लुहइ** रूप चलता है (= पोंछना . हेच० ४, १०५)। वर० ८, ६७ और क्रम० ४, ५३ में **लुहइ** का अर्थ **लुभइ** दिया गया है। इससे यह संभावना सामने आती है कि **हुलइ** = ***भुलइ** रखा जाना चाहिए और **हुलइ** (फेंकना . हेच० ४, १४३) इसी स्थिति में है, वह **भुल्लइ** (नीचे गिरना : हेच० ४, १७७) से जो अकर्मक है और जै०महा० और शौर० **भुल्ल** (भूलना, भूल करने की बान, पढ़ा हुआ, भ्रांत . आव०एर्त्से० ४६, ५, कर्पूर० ११३, १) से निकला प्रतीत होता है[1]। — महा० में **इहरा** (पाइय० २४१, गउड०) व्याकरणकारों के अनुसार (हेच० २, २१२, मार्क० पन्ना ३८) = **इतरथा** होना चाहिए, किन्तु मार्कंडेय और वेबर[2] के अनुसार यह स्थानपरिवर्तन करके ***इअरहा** से निकला है, पर ध्वनिनियमों से यह असंभव है। महा० हस्तलिपियों में अधिकांश स्थलों पर **इअरा** रूप आया है (हाल ७११,

रावण० ११,२९), यह जैसा कि § २१२ में मान लिया गया है *दुद्धरता से निकल कर दुहरा बन गया। मार्कंडेय पन्ना ६८ में बताया गया है कि शौर० में केवल एक ही रूप दुहरधा है।

१ हेच २ ११६ पर पिशल की टीका। —२ एस गौल्दश्मित द्वारा संपादित रावणवहो में यह शब्द देखिए। —३. हेच ४ ११० पर पिशल की टीका। —४ हाल ७११ की टीका।

तीसरा खंड—रूपावली-शिक्षा

(अ) संज्ञा

§ ३५५—इस नियम के फलस्वरूप कि प्राकृत में शब्द के अत के वर्णों की विच्युति हो जाती है (§ ३३९), व्यजनात शब्दों की रूपावली प्राय सपूर्ण रूप से लुप्त हो गयी है। रूपावली के अवशेष **त्**, **न्**, **श्** और **स** में समाप्त होनेवाले शब्दो में पाये जाते है। अन्य शब्दों की रूपावली के अवशेष इधर उधर बिखरे हुए थोड़े से पद्य मे पाये जाते हैं। इस प्रकार महा० मे **विवआ = विपदा** (शकु० ३३, ७), अ०माग० म **धम्मविओ = धर्मविदः** (कर्त्ताकारक, बहुवचन, सूय० ४३), अ० माग० में **वाया = वाचा** (दस० ६३०, ३२, उत्तर० २८), अ०माग० मे **वेय-विदो = वेदविदः** (कर्त्ताकारक, बहुवचन, उत्तर ४२५) है। व्यजनों मे समाप्त होने वाले शब्दों की रूपावली के अवशेप रूप मे **आओ** (= पानी) भी है जो = **आपः** (बे० बाइ० ३,२३९ में त्रिविक्रम शीर्पक लेख) है। उणादिसूत्र २, ५४ मे उज्ज्वलदत्त द्वारा वर्णित और अनेक भाति प्रमाणित किया जा सकनेवाला[१] नपुसकलिंग **आपस्** कर्त्ताकारक बहुवचन से सबधित है[१]। अ०माग० में **आओ** पुल्लिंग रूप **आउ** में (हेच० २,१७४, देशी० १,६१) परिवर्तित हो गया है, ठीक उसी भाति जैसे **तेओ = तेजस्** **तेउ** मे। यह उ स्वर **वाउ = वायु** की नकल पर आया है क्योंकि अ०माग० मे रीतिबद्ध रूप से **आउ, तेऊ, वाऊ** का क्रम सयोग पाया जाता है जो = **आपस्, तेजो, वायुः** के और जिसके अ०माग० रूप में **वाऊ** की नकल पर **आउ** और **तेउ** [दीर्घ **ऊ** को ह्रस्व बनाकर। —अनु०] रूप बने। इसी नियम से **कायेण** के स्थान पर **मनसा, वयसा** के साथ साथ **कायसा** रूप मिलता है तथा **सहसा** के साथ साथ **वलेण** के लिए **वलसा** रूप लिखा गया है (§ ३६४), इस प्रकार के अन्य शब्दों के रूपों की नकल पर बने अनेक कारक है (§ ३५८, ३६४, ३६७, ३७५, ३७९, ३८६)। **आऊ, तेऊ** और **वाऊ** इसी प्रकार बना (सूय० ६०६, सम० २२८ [पाठ में **तेओ** है], दस० ६१४, ४० [पाठ में **तेउ** है], आयार० २, २२, १३ [पाठ में **आओ, तेओ, वाउ** है]), **वाऊ, तेऊ, आऊ** रूप भी है (विवाग० ५०); **आउ, तेऊ** वा **वाउ** भी मिलता है (सूय० १९), **आउ तेऊ य तहा वाऊ य** भी पाया जाता है (सूय० ३७), **आऊ अगणी य वाऊ** रूप भी देखने में आता है (सूय० ३२५), **पुढवी आउ गणि वाऊ** भी चलता है (सूय० ३७८), **आउ-तेउवाउवणस्सइसरीर** है (सूय० ८०३), **आउतेउवाउवणस्सइणाणाविहाणं** भी पाया जाता है (सूय० ८०६), **आउसरीर तेउसरीर वाउसरीर** भी आया है (सूय० ७९२), **आउतेउवणस्सइ–** (विवाह० ४३०), **तेउवाउवणस्सइ–** (आयार० २,१,७,३), **आउकाइय**[१], **तेउकाइय, वाउकाइय** (विवाह० १४३८ और उसके बाद [पाठ में **आऊ–, तेऊ–, वाऊ–** है], अणुओग० २६०, दस०

(गउड० ५८३), खुडिओ महेॅन्दस्स जसो = *क्षुदित महेन्द्रस्य यशः (रावण० १, ४), अण्णो अण्णस्स मणो = अन्यद् अन्यस्य मनः (रावण० ३, ४४), मारुअलद्धत्थामो महिरओ = मारुतलब्धस्थाम महीरजः (रावण० ४, २५); तमालकसणो तमो = तमालकृष्ण तमः (रावण० १०,२५), तारिसो अ उरो = तादृश चोरः (मुभद्रा० ८, २) है। जै०महा० में बारसाइच्चोदयाहिओ तेओ = द्वादशादित्योदयाहित तेज. (एत्से० २६, ३३), तवो कओ = तप. कृतम् (एत्से० २६, ३५) है। व्याकरणकारो के अनुसार नभस् और शिरस् शब्द (वर० ४, १९ , हेम० १, ३२ , क्रम० २, १३४ , मार्क० पन्ना ३५) केवल नपुसकलिंग में और–अ में समाप्त होनेवाले शब्दों की रूपावली के अनुसार काम में लाये जाते हैं महा० में णह चलता है (गउड० ४५१ , ४९५ ; १०३६ , रावण० ४, ५८ , ५, २ , ६ , ३५ , ४३ , ७४ आदि-आदि) , महा० में सिरं आया है (रावण० ४, ५६ , ११, ३६ , ५६ , १३२ आदि-आदि)। अ०माग० में भी–अस् में समाप्त होने वाले नपुसकलिंग के शब्द पुलिंग में काम में लाये जाते हैं और कुछ कम सख्या म नहीं और अ०माग० में आकर ये शब्द के अन्त में –ए जोड कर कर्त्ताकारक एकवचन बन जाते हैं (§ ३४५) . माउ ओये = मात्रोज. (ठाणग० १५९) , तमे = तम. (ठाणग० २४८) , तवे = तपः (सम० २६) , मणे = मन (विवाह० ११३५ और उसके बाद) , पेॅज्जे = प्रेयः और वच्छे रूप = वक्षः है (उवास० § ९४)। एएसोया = एतानि स्रोतांसि (आयार० १,५,६,२) है। इसके साथ साथ अस् में समाप्त होनेवाले नपुसकलिंग के शब्द–अ में समाप्त होने वाले नपुसकलिंग के सज्ञा–शब्दों की भाँति भी बरते जाते हैं अ०माग० में अयं = अयस् (सूय० २८६), अ०माग० सेयं = श्रेयस् (हेच० १, ३२ § ४०९), वयं = वयस् (हेच० १, ३२), इसके साथ साथ अ०माग० में वाओ रूप भी चलता है (आयार० १, २, १, ३ , यह रूप पद्य म आया है), सुमणं = सुमनः (हेच० १, ३२) है। शौर० और अ०माग० में प्रायः विना अपवाद के ऐसे रूप बनते हैं (§ ४०७)। अप० में मणु (हेच० ४, ३५० और ४२२, ९) तथा सिरु रूप (हेच० ४, ४४५, ३) जो ध्वनि की दृष्टि से मनः और शिरः के समान हैं (§ ३४६), *मनम् और *शिरम् रूपों के समान रखे जा सकते हैं (§ ३५१)। सम्बोधन का रूप चेउ = चेतः (पिंगल १, ४ व , पाठ में चेज है , कहीं चेड भी आया है , बौॅल्लेॅनसेन, विक्रमो०, पेज ५२८ की तुलना कीजिए)।

§ ३५७—जैसे अस् में समाप्त होनेवाले नपुसकलिंग के शब्द वैसे ही –अ में समाप्त होनेवाले नपुसकलिंग के शब्द प्राकृत बोली में पुलिंग बन गये हैं। इस लिंग-परिवर्तन का प्रारम्भ कर्त्ताकारक और कर्मकारक के बहुवचन के रूप से हुआ है जिसकी समाप्ति वेद की भाँति –आणि और आइं होने के साथ साथ –आ में भी होती है और यह पुलिंग के समान है (§ ३६७)। अ०माग० में लोग इस प्रकार बोलते थे. तओ थाणाणि (ठाणग० १४३), तओ ठाणाइं (ठाणग० १५८) और तओ ठाणा (ठाणग० १६३ और १६५) = त्रीणि स्थानानि है। ऊपर दिये गये अन्तिम रूप से

कर्त्ताकारक एकवचन ठाणे का रास्ता खुल गया होगा। अ माग० में एस ठाणे अणारिए = एतत् स्थानम् अनार्यम् है (सूय ७२६)। अ माग० में इसके अनगिनत उदाहरण पाये जाते हैं : एस उवगरणे = एतद् उपकरणम् (नायाध १ ११) उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए = उत्थानं कर्म बलं वीर्यम् है (विवाह १७१ ; नायाध १७४ उवास § ७३) दुविहे दंसणे पन्नत्ते = द्विविधं दर्शनं प्रज्ञप्तम् (ठाणंग ८४) है मरणे = मरणम् (सम० ५१ और ५२), मत्तए = मात्रकम्, इसके साथ-साथ बहुवचन में मत्तगाइं रूप मिलता है (कप्प एस § ५६ [मत्तए रूप मतो बन कर मारवाड़ी बोली में इसी अर्थ में वर्तमान है। मतो का एक अर्थ मारवाड़ी में 'मों ही', 'स्वयं में' है। —अनु]) और इस भाँति के बहुत से अन्य शब्द मिलते हैं[1]। आयार १,२,१,३ में पद्य में एक के पास एक निम्नलिखित शब्द आये हैं वओ अच्चेइ जो व्वणं च जीविए = वयोऽत्येति यौवनं च जीवितम् है। अ माग में कभी-कभी नपुंसकलिंग के सर्वनाम पुंलिंग के साथ सम्बन्धित कर दिये जाते हैं : अ माग में एयावन्ति सव्वावन्ति लोगंसि कम्मसमारंभा = एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारम्भाः (आयार १, १, १, ५ और ७) आवन्ती के यावन्ती लोगंसि समणा य माहणा य = यावन्तः के च यावन्तो लोके श्रमणाश् च ब्राह्मणाश्च च है (आयार १ ४ २, ३ ; १, ५ २ १ और ४ की तुलना कीजिए) याई सुमाई याई ते जणगा = एत् सर्वे यो ते जनकी (आयार २, ४, १, ८) है याई (§ ४२५ और ४५३) भिक्खू = ये भिक्षव (आयार २ ७ १, १) जावन्ति विज्जापुरिसा सव्वे ते दुक्खसंभवा = यावन्तो विद्यापुरुषाः सर्वे ते दुःखसंभवाः (उत्तर २१५ [वियना विश्वविद्यालय में प्रोफेसर ब्रिक्षियान के नेतृत्व में एक इसके लिए ही बने हुए सूक्ष्म यन्त्र द्वारा ध्वनियों के माप और तुलना के उद्देश्य से चित्र लिये जाते थे। अनुवादक ने भी तीन महीने इस विभाग में चित्र द्वारा ध्वनि मापन और उसकी तुलना का ज्ञान सीखा। उसमें दुक्ख और दुःख के चित्र लिए थे और इन दोनों को मापने और उनकी तुलना करने पर पता लगा कि दोनों ध्वनियों में लेशमात्र का भेद हो या अन्यथा चित्र एक से ही आये। —अनु]) जे गरहिया सणियाणप्पओगा ण ताणि सेवन्ति सुधीरधम्मा = ये गर्हिताः सनिदानप्रयोगा न तान् सेवन्ते सुधीरधर्माः है (सूय ५ ४)। इस नियम के अनुसार णा इणं भट्टे और णा इणं भट्टे के लिंग प्रयोग का भी स्पष्टीकरण हो जाता है (§ १७३), से और माग शे = सद् की भी तुलना कीजिए (§ ४२३)। जै महा में साधारणतः जब भिन्न-भिन्न लिंगों के व्यक्तियों के विषय में कम या पूरक आता है तब वह नपुंसकलिंग में रहता है : तथा सागरचन्दो कमलामेला य गहियाणुव्वयाणि सावगाणि संवुत्ताणि = ततः सागरचन्द्रः कमलापीडा च गृहीतानुव्रतौ श्रावकौ संवृत्तौ (आव एत्सें ११, २२) और इससे पहले (११ २१ म) इसी विषय पर कहा गया गया है। पच्छा इमाणि भोग भुञ्जमाणाणि विहरन्ति = पश्चाद् इमौ भोगान् भुञ्जानौ विहरतः। आवश्यक एत्सेंलुंगन १८ १ में मायापियरो = मातापितरौ

के लिए **ताणि** रूप आया है, **ताणि अम्मापियरो पुच्छियाणि = तौ अम्बापितरौ पृष्टौ** (एर्से० ३७, २९, [इस स्थान में **अम्मा** शब्द ध्यान देने योग्य है। यह अब उर्दू में अधिक प्रयोग में आता है। हिन्दी में यह शायद ही काम में आता हो, किन्तु यह वास्तव में संस्कृत शब्द नहीं है अपितु द्राविड भाषा से लिया गया है और संस्कृतीकरण है। ऐसा भी मत है कि यह इंडो-ऑस्ट्रिक शब्द है जो अन्य अनेक शब्दों की भाँति अवशेष रूप में द्रविड में रह गया है। इसके **अम्म, अम्मल** आदि रूप द्राविडी भाषाओं में आज भी चलते हैं (हेच० ने देशी० १, ५ **अव्वा** और **अम्मा** रूपों को देशी बताया है। उसे पता रहा होगा कि यह शब्द द्राविडी भाषाओं की देन है, इस कारण उसने इसे देशी माना। —अनु०]), **ताहे राया सा य जयहत्थिम्मि आरूढाइं = तदा राजा सा च जयहस्तिन्य् आरूढौ** है (एर्से० ३४, २९), [**मयमञ्जरिया कुमारो च**] **नियमभवने गयाई सानन्दहिययाइं** = [मदनमञ्जरिका **कुमारश् च**] **निजकभवने गतौ सानन्दहृदयौ** है (एर्से० ८४, ६)। याकोबी ने अपने औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन की भूमिका के पेज ५६ § ८० मे और बहुत-से उदाहरण दे रखे हैं। —अ वर्ग के नपुंसकलिंग के शब्दों का पुलिंग मे परिवर्तन माग० में भी बार बार देखने में आता है, अन्य प्राकृत बोलियों में नाममात्र ही मिलता है। इसके अनुसार माग० में **एशे शे दशणामके मइ कले = एतत् तद् दशनामकं मया कृतम्** (मृच्छ० ११, १), **आमलणन्ति के वेले = आमरणान्तिक वैरम्** (मृच्छ० २१, १४), **दुआलए = द्वारकम्** (मृच्छ० ७९, १७), **पवहणे = प्रवहणम्** (मृच्छ० ९६, २२, ९७, १९ और २०, ९९, २, १००, २० आदि आदि), **एशे चीवले = एतच् चीवरम्** है (मृच्छ० ११२, १०), **शोहिदे = सौहृदम्** (शकु० ११८, ६), **भोअणे संचिदे = भोजनं संचितम्** (वेणी० ३३, ३) है। **उस्णे लुहिले = उष्णं रुधिरम्** (वेणी० ३३, १२), **भत्ते = भक्तम्, एशे शे शुवण्णके = एतत् तत् सुवर्णकम्** (मृच्छ० १६३, १९, १६५, ७) है। शौर० और दाक्षि० में पुलिंग रूप **पवहणो** पाया जाता है (मृच्छ० ९७,७, दाक्षि में १००, १५)। इसके साथ साथ इससे भी अधिक चलनेवाला नपुंसकलिंगवाचक रूप **पवहणंच** है, शौर० में **पभादो** रूप मिलता है (मृच्छ० ९३, ७), किन्तु इसके साथ-साथ **पभादं = प्रभातम्** भी आया है (मृच्छ० ९३, ५ और ६), शौर० में बहुधा **हिअओ = हृदयम्** और विशेषकर जब हृदय के विषय में कुछ कहा जाता हो (विक्रमो० २०, २१ [ए (A) हस्तलिपि में लिखे हुए के अनुसार यही पढा जाना चाहिए], २३, १०, ४६, १७ और १९ की तुलना कीजिए, रत्ना० २९८, ११ और १२, माल्ती० ३४८, ६, [इसी ग्रन्थ में आये हुए उक्त रूप के अनुसार यहाँ भी यही पढा जाना चाहिए], विद्ध० ९७, १०, प्रिय० २०, २, नागा० २०, १३ और १५)[२]। **चत्तो = चत्रम्** (= तकली देशी० ३, १) की बोली कौन है, इसका पता नहीं चलता। § ३६० की तुलना कीजिए।

१ होएर्नले, उवासगदसाओ, अनुवाद की नोटसंख्या ५५। — २ पिशल, डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिटिकिस, पेज ५।

§ ३५८—व्याकरणकारों के अनुसार – अन् में समाप्त होनेवाले नपुंसकलिंग के शब्द (वर ४, १८ हेच १, ३२ क्रम २, १३३ ; मार्क पन्ना ३५)—अ में समाप्त होनेवाले पुलिंग शब्द बन जाते हैं कम्मो = कर्म ; जम्मो = जन्म पम्मो = नर्म मम्मो = मर्म ; धम्मे = धर्म है। इस नियम के अनुसार पल्लवदानपत्र में सम्मो = शर्म (७, ४९) पाया जाता है ; अ माग में कम्मे = कर्म है (सूय ८३८ ८४१ और उसके बाद ८४४ ८४८ ८५४ ; नायाध १७४ ; उवास § ५१ ७१ १६६) माग में चम्मे = चर्म (मृच्छ ७९ १) है। किन्तु ये शब्द सभी प्राकृत भाषाओं में अ—वर्ग के नपुंसकलिंग बन जाते हैं, जैसा कि वामन् के विषय में हेमचन्द्र और प्रेमन् के बारे में मार्कण्डेय बताता है। इस नियम से महा में कम्मं रूप बना है (रावण १४, ४६) महा और शौर में धम्मं रूप है (हाल ४५२ और ९ ५ विक्रमो १ , ९) महा में दामं रूप आया है (हाल १७२) महा में पेॅम्म भी है (रावण ११, २८ ; रत्ना० २९३, १८) महा में रोमम् चलता है (रावण ९, ८७) चम्मं सम्मं भी पाया जाता है (हेच १ ३२)। –इमन् में समाप्त होनेवाले पुलिंग संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग रूप ग्रहण करके स्त्रीलिंग बन सकते हैं, इनको कर्त्ताकारक –आ में आने के कारण इस लिंग परिवर्तन में सुविधा हो जाती है : एसा गरिमा, महिमा, निलज्जिमा और धुत्तिमा ऐसे ही रूप हैं (हेच १, ३५ मार्क पन्ना ३५ की भी तुलना कीजिए)। इस नियम के अनुसार महा और अप में चन्दिमा = *चन्द्रिमन् है (§ १ १) अ माग में महिमासु रूप आया है (ठाणंग २८८)। इसी प्रक्रिया से नीचे दिये शब्द स्त्रीलिंग बन गये हैं : अ माग अम्हा = अश्मा जो अश्मन् से निकला है (ओव) महा में उम्हा = ऊष्मा जो ऊष्मन् से निकला है (भाम १, ३२ ; हेच २ ७४ गउड रावण) ; जै महा में पम्हा = पक्ष्मा जो पक्ष्मन् से निकला है (देशी ७, ११ एर्से १ , १ १४ ३१ ; § ३१४ की तुलना कीजिए) सेॅम्हा = श्लेष्मा जो श्लेष्मन् से निकला है (मार्क पन्ना २९ ; § २६७ की तुलना कीजिए)। अ माग में सकहाओ = सक्थीनि (सम १ २ ; जीवा ४२१)। यह *सक्थम् से निकला है और इसका कर्त्ताकारक के एकवचन का रूप *सकहा है। इसमें § ३१२ के अनुसार अंशस्वर आ गया है। जैन लोग प्राचीन पद्धति से ऋतुओं का विभाग वर्ष में तीन ऋतु मान कर करते थे—ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त[1]। जैसा कि अन्य अवसरों पर (§ ३५५ ३६४ ; ३६७ ; ३७१ ; ३८९) होता है, अ माग में भी रीति के अनुसार तीन ऋतुओं के एक साथ रहने के कारण ग्रीष्म और हेमन्त के लिंग और वचन जब कि इन तीनों को गिनाया जाता हो तो स्त्रीलिंग बहुवचन के रूप वर्षा के अनुकरण पर स्त्रीलिंग बन गये हैं और बहुवचन भी। बोली में कहा जाता था : गिम्हाहि = *ग्रीष्माभिः (सूय १६६) गिम्हासु = *ग्रीष्मासु है (विवाह ४६५) हेमन्तगिम्हासु वासासु रूप भी मिलता है (कप्प एस (S) § ५५) गिम्हाणं भी पाया जाता है (आयार २ १५ २ ; ६ और २५ नायाध ८८ कप्प § २ ; ६ १२ ; १५ ;

१५९, आदि-आदि), **हेमन्ताणं** रूप भी देखने में आता है (आयार० २, १५, २२, कप्प० § ११३, १५७, २१२, २२७)। बोली के हिसाब से बहुधा **–अ** मे समाप्त होनेवाले पुल्लिग शब्दों से कर्त्ताकारक और कर्मकारक बहुवचन में नपुसकलिंग के रूप बना दिये गये जिसमें यहाँ भी अन्त मे आनेवाले **–आ** रूप के कारण (§ ३५७) लिंगपरिवर्तन में सुविधा हो गयी होगी। इस ढग से महा०, अ०माग० और शौर० मे **गुणाइ = गुणान्** (हेच० १, ३४, मार्क० ३५, गउड० ८६६, सूय० १५७, विवाह० ५०८, मृच्छ० ३७, १४), महा० मे **कण्णाइं = कर्णौ** (हाल ८०५) है, महा० में **पवआइ, गआइं, तुरआइ** और **रक्खसाइ = प्लवगान्, गजान्, तुरगान्** और **राक्षसान्** है (रावण० १५, १७)[१], अ०माग० में **पसिणाणि = प्रश्नान्** (आयार० २, ३, २, १७), **पसिणाइं** (नायाध० ३०१ और ५७७, विवाह० १५१, ९७३, ९७८, नन्दी० ४७१, उवास० § ५८, १२१, १७६) रूप पाये जाते है, जैसा कि स्वय सस्कृत में **प्रश्न** नपुसकलिंग है (मैन्युपनिषद १, २), अ०माग० में **मासाइं = मासान्** (कप्प० § ११४) है, अ०माग० में **पाणाइं** (आयार० १, ६, ५, ४, १, ७, २, १ और उसके बाद, २, १, १, ११, पेज १३२, ६, २२), **पाणाणि** (आयार० २, २, ३, २, पेज १३२, २८), इसके साथ साथ साधारण रूप **पाणे** भी चलता है (उदाहरणार्थ, आयार० १, १, ६, ३, १, ३, १, ३, १, ६, १, ४) = **प्राणान्**, अ०माग० में **फासाइं** (आयार० १, ४, ३, २, १, ८, २, १०, ३, १, सूय० २९७) और इसके साथ-साथ **फासे** भी चलता है (आयार० १, ६, २, ३, ३, २, ५, १, १, ७, ८, १८) = **स्पर्शान्** है। अ०माग० में **रुक्खाइ** (हेच० १, ३४) तथा **रुक्खाणि = रुक्षान्** (= पेड [बहुवचन]. आयार० २, ३, २, १५, § ३२० की तुलना कीजिए), **देवाइं** (हेच० १,३४) और **देवाणि** (चड १,४) = **देवा.**, जै०शौर० में **णिबन्धाणि = निबन्धान्** (पव० ३८७,१२), माग० मे **दन्ताइं = दन्तान्** (शकु० १५४,६), **गोणाइं = गा.** (मृच्छ० १२२,१५, १३२,१६), इसके साथ साथ साधारण पुल्लिग रूप भी चलता है (§ ३९३)। हेमचद्र १, ३४ में एकवचन के रूपों का भी उल्लेख करता है' **खग्ग** और इसके साथ साथ **खग्गो = खड्गः, मण्डलग्गं** तथा इसके साथ साथ **मण्डलग्गो = मण्डलाग्रः, कररुहं** और इसके साथ साथ **कररुहो = कररुहः**, जैसा कि मार्क० ने पन्ना ३५ में ठीक इसके विपरीत बताया है कि **वअणो** और इसके साथ साथ **वअणं = वदनम्, णअणो** और इसके साथ साथ **णअणं = नयनम्**। **–इ** और **–उ** में समाप्त होनेवाले पुल्लिग सज्ञा शब्दों में से भी बने हुए नपुसकलिंग के बहुवचन के रूप पाये जाते हैं अ०माग० में **सालीणि वा वीहिणिवा = शालीन् वा व्रीहिन् वा** है (आयार० २,१०,१०, सूय० ६८२), अ०माग० मे **उऊइं = ऋतून्**, इसमें **तू** के प्रभाव से **ऋ = उ** हो गया है (कप्प० § ११४), **बिन्दूइं** (हेच० १, ३४, मार्क० पन्ना ३५) रूप भी है, अ०माग० में **हेऊइं = हेतून्**, इसके साथ साथ **पसिणाइं** भी चलता है (विवाह० १५१)। स्त्रीलिंग स नपुसकलिंग के रूप कम बने हैं। ऐसा एक रूप **तयाणि** है (आयार०

२, ११, २१ नायाध ११३७ विवाह० ९ ८)। इसका संबंध एकवचन के रूप तया से है (पण्णव० १२ ; विवाह ११ ८ ; १२९९) ; इनसे तयापाकप की तुलना कीजिए (विवाह १२५५) और तयासुहाए की भी (कप्प § ६) = *त्वचा = त्वक् है अ माग में पाउयाई = पादुका' (नायाध १४८४) और में रिक्खाई जिसका संबंध *रिक्खा से है = लक्ष् है (रत्ना १ २, ११) अ माग में पंतियाणि (आयार २, १, १ २ २, ११ ५) और इसके साथ साथ पंतियाओ (विवाह १६१ ; अणुओग ३८६) = *पंक्तिका अ माग मे भमुहाई (आयार २ ११, १७) और इसके साथ साथ भमुहाउ (जीवा ५११) = *भ्रुमुके (§ १२४ और २ ६) यहांतक कि अ माग में इत्थीणि वा पुरिसाणि वा = स्त्रियो वा पुरुषा वा (आयार २ ११ १८) । अवश्य ही इन शब्दों का अर्थ 'कुछ स्त्रैण' और 'कुछ पुंसत्वयुक्त' समझा जाना चाहिए। अक्खि स्त्रीलिंग रूप में काम में लाया जा सकता है (वर ४, २० हेच १, ११ और ३५ ; क्रम २ ११२ मार्क पन्ना ३५) । हेच १, ११ के अनुसार यह शब्द पुलिंग रूप में भी काम में लाया जा सकता है। १, ३५ में हेच बताता है कि पुलिंग शब्द अञ्जलि कुच्छि, गण्ठि, निहि, रस्सि बलि और विहि जिन्हें उसने अञ्जल्यादि गण मे एकत्रित किया है, स्त्रीलिंग में भी परिवर्तित किये जा सकते हैं। इस सूत्र से अ माग के रूपों अयं अट्ठी और अयं दही = इदम् अस्थि और इदम् दधि का स्पष्टीकरण होता है (सूय ५९४) जिसका अपादानकारक का रूप अट्ठीए है (§ ३६१) और इसी नियम के भीतर कर्त्ताकारक सप्पी = सर्पिः (सूय २९१) और दही = दधि (दस नि ६४८, ९) माने जाने चाहिए क्योंकि सान्त (स् में समाप्त होनेवाले) संज्ञा शब्द स् की विच्युति के बाद इ में समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों की रूपावली में सम्मिलित हो जाते हैं। पण्हो = प्रश्न: के साथ साथ प्राकृत में पण्हा रूप भी है (वर ४ २ ; हेच १, ३५ ; क्रम २, ११२ मार्क पन्ना ३५ सिंह पन्ना १४) जो अ माग में पण्हावागरणाई शब्द में (नंदी ४७१ ; सम) जो दसवें अंग का नाम है, वर्तमान है। चंड १, ९ में इस रूप के उल्लेख में पण्हं भी दिया गया है ; अ माग बहुवचन के रूप पसिणाई और पसिणाणि का उल्लेख ऊपर हो चुका है। अर्शांसि के अर्थ में अ० माग में अंसियाओ = *अर्शिकाः (विवाह ११ ९) आया है। पट्ठ, पिट्ठ और पुट्ठ = पृष्ठ के साथ-साथ पट्ठी पिट्ठी और पुट्ठी भी बार बार पाये जाते हैं (§ ५३ ; [इन रूपों में पिट्ठ = हिंदी पीठ ; पुट्ठ कुमाउनी में पूठ रूप से तथा पिट्ठी और पुट्ठी पिठी पुठि रूप से चलते हैं। —अनु] । स्त्रीलिंग का रूप भार्यासा महा और शौर में भारसया बन गया है (§ २६७) ; प्रावृष् महा , अ माग जै महा और शौर में पुलिंग रूप पाउस = पाली पावुस (वर ४ १८ हच १ ३१ क्रम २ १३१ मार्क पन्ना ३५ गउड ; हाल नायाध ८१ ; ६१८ और उसके बाद ; ६४४ और १२ ; विवाह ७९८ एत्सें ; विक्रमो ३१ १४ [पाउस रूप मराठी और गुजराती में वर्षा के अर्थ में वर्तमान है।

—अनु०]), हेच० १, ३१ के अनुसार तरणि केवल पुल्गि मे काम में आता है[४]।
दिसो = दिक्, सरओ = शरद् के विषय मे § ३५५ देखिए और २—४ तक
सख्याशब्दों के लिए § ४३६, ४३८ और ४३९ देखिए।

१ एस गौल्दश्मित्त, रावणवहो, पेज १५१ नोटसंख्या २।—२ कल्पसूत्र § २, पेज ९ मे याकोबी की टीका। —३. ये रूप अन्य विषयो से अधिक यह प्रमाणित करते है कि रावणवहो १५, १६ और १७ मे रूपो की अशुद्धिया है। यह मत एस गौल्दश्मित्त ने रावणवहो, पेज ३१८ नोटसख्या ९ मे माना है, पर यह इतना निश्चित नहीं है। —४. पिशल, डे ग्रामाटिकिस प्राकृतिकिस, पेज ५१ की सिहावलोकन की दृष्टि से तुलना कीजिए।

§ ३५९—अप० में अन्य प्राकृत बोलियों की अपेक्षा लिगनिर्णय और भी अधिक डावाडोल है, इस पर भी, जैसा कि हेच० ४, ४४५ म मत देता है। यह सर्वत्र पूर्ण अनियमित नहीं है। पद्य में छद की मात्राए और तुक का मेल खाना लिंग का निर्णय करता है: जो पाहसि सो लेहि = यत् प्रार्थयसे तल् लभस्व (पिंगल १, ५अ, विक्रमो० पेज ५३० और उसके बाद की तुलना कीजिए), मत्ताइं = मात्राः (पिंगल १, ५१; ६०, ८३, १२७) है, रेहाइं = रेखाः (पिंगल १, ५२), चिक्कमं = विक्रमः (पिंगल १, ५६), भुअणे = भुवनानि (कर्मकारक: पिंगल १, ६२बी), गाहस्स = गाथायाः (पिंगल १, ११८), सगणाइ = सगणान् (पिंगल १,१५२), कुम्भइँ = कुम्भान् (हेच० ४,३४५), अन्त्रडी = अन्त्रम् (हेच० ४, ३४५, ३), डालइँ (हेच० ४, ४४५, ४)। यह डाला (= शाखा. पाइय० १३६, देशी० ४, ९, यहा डाली रूप है) का बहुवचन का रूप है, अ० माग० में भी डाल रूप मिलता है। एगंसि रुक्खडालयंसि ठिच्चा पाया जाता है (नायाध० ४९२) और इसमें डालग रूप भी आया है (आयार० २,७,२,५), खलाइं = खलाम्। यह रअणाइं के साथ तुक मिलाने के लिए भी आया है (हेच० ४, ३३४), विगुत्ताइं = *विगुप्ताः = विगोपिताः (हेच० ४, ४२१, १), णिच्चिन्तइँ हरिणाइँ = निश्चिन्ता. हरिणाः (हेच० ४, ४२२, २०), अम्हाइं और इसके साथ साथ अम्हे = अस्मे है (हेच० ४, ३७६)।

§ ३६०—द्विवचन के रूप प्राकृत में केवल सख्या-शब्दों में रह गये हैं: दो = द्वौ और दुवे तथा बे = द्वे और कहीं नहीं मिलते। पूरे के पूरे लोप हो गये हैं। सज्ञा और क्रिया में इसके स्थान पर बहुवचन आ गया है (वर० ६, ६३, चड० २, १२, हेच० ३, १३०, क्रम० ३, ५, आव०एर्त्से० ६, १२) जो स्वय सख्या शब्द दो के लिए भी काम में लाया जाता है (§ ४३६ और ४९७)। महा० मे वलकेसवाण = बलकेशवयो. (गउड० २६), हत्था थरथरन्ति = हस्तौ थरथरयेते (हाल १६५), कण्णेसु = कर्णयोः (रावण० ५, ६५), अच्छिइं = अक्षिणी है (गउड० ४४), अ०माग० में जणगा = जनकौ (आयार० १, ६, १, ६), पाहणाओ = उपानहौ (ठाणग० ३५९), भुमगाओ, अच्छीणि, कण्णा, उट्ठा, अग्गहत्था, हत्थेसु, ठणया, जाणूइं, जंघाओ, पाया

अतिपाताय (सूय० ३५६), **ताणाय = त्राणाय** (सूय० ३९९), **कूडाय = कूटाय** (उत्तर० २०१) है और ये सभी रूप पद्य मे पाये जाते है। अ०माग० और जै०महा० मे सम्प्रदान कारक साधारणत - आए मे समाप्त होता है (§३६४) और अ०माग० मे यह रूप असाधारणतया अधिक है। अ०माग० मे **परिवन्दणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए = परिवन्दनमाननपूजनाय जातिमरणमोचनाय** है (आयार० १, १, १, ७), पद्य मे **ताणाय** रूप के साथ साथ गद्य मे **ताणाए** रूप पाया जाता है (आयार० १, २, १, २, ३ और ४) और यही **ताणाए** पद्य मे भी मिलता है (उत्तर० २१७), **मूलत्ताए कन्दत्ताए खन्धत्ताए तयत्थाए सालत्ताए पवालत्ताए पत्तत्ताए पुप्फत्ताए फलत्ताए बीयत्ताए विउट्टन्ति = मूलत्वाय कन्दत्वाय स्कन्धत्वाय त्वक्त्वाय शालत्वाय प्रवालत्वाय पत्रत्वाय पुष्पत्वाय फलत्वाय बीजत्वाय विवर्तन्ते** (सूय० ८०६) है, **पय णे पेच्चभवे इहभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए अणुगामियत्ताए भविस्सइ = एतन् न. प्रेत्यभव इहभवे च हिताय सुखाय क्षमायै नि.श्रेयसायानुगामिकत्वाय भविष्यति** है (ओव० § ३८, पेज ४९, विवाह० १६२) आदि आदि, अ०माग० और जै०महा० मे **वहाए = वधाय** (आयार० १, ३, २, २, विवाह० १२५४, आव०एर्त्से० १४, १६, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए) है, **वहट्ठयाए = वधार्थकाय** (एर्त्से० १, २१), **हियट्ठाए = हितार्थाय** (आव०एर्त्से० २५, २६), **मम् 'अत्थाए = ममार्थाय** है (एर्त्से० ६३, ‹२)। शौर० और माग० मे सम्प्रदानकारक केवल पद्यों मे ही शुद्ध रूप में आता है क्योकि इन प्राकृत बोलियों में स्वय -अ वर्ग का सम्प्रदानकारक का रूप लुप्त हो गया है. माग० मे. **चालुदत्तविणासाअ = चारुदत्तविनासाय** है (मृच्छ० १३३, ४)। हेच० के देवनागरी—, द्राविडी—और काश्मीरी पाठों में ४, ३०२ के उदाहरणो मे शकुन्तला ११५, ७ से **शामिपसादाअ = स्वामिप्रसादाय** [मेरी प्रति में **शामि-पसादाय** पाठ है। —अनु०] है। इस स्थान मे बगला पाठ मे **शामिप्पशादत्थं** रूप आया है। सभी अच्छे पाठों मे शौर० और अ०माग० के गद्य में लिपिभेद **अत्थं = अर्थम्** और **णिमित्तं = निमित्तम्**[1] है। नीचे दिये शब्दों में जो गद्य मे मिलते है, सम्प्रदानकारक अशुद्ध है. **णिव्वुदिलाहाअ = निर्वृतिलाभाय** (मालवि० ३३, १४), **आसिसाअ** (?) **= आशिषे** (मालवि० १७, १३), **सुहाअ = सुखाय** (कर्पूर० ९, ५, ३५, ६, ११५, १), **असुसंक्खणाअ = असुसंरक्षणाय** है (वृषभ० ५१, ११), **विवुधविजआअ = विवुधविजयाय** (विक्रमो० ६, २०), **तिलोदअदाणाअ = तिलोदयदानाय** (मृच्छ० ३२७, ४) और **चेडिआअच्चणाअ** [पाठ में **-अच्चणाअ** के स्थान पर **-अच्चणाय** है]**= चेटिकार्चनाय** (मुकुन्द० १७, १२) है। अशुद्ध पाठों में से अन्य उदाहरण बोएटलिंक[2] और बौ`ल्लें`नसेन[3] ने एकत्र किये हैं। राजशेखर में यह दोप स्वय लेखक का है प्रतिलिपि करनेवाले का नहीं (§ २२)। -अ वर्ग के सज्ञा शब्दों को छोड अन्य वर्गों के सम्प्रदानकारक के रूप भी पाये जाते हैं जैसे, अ०माग० में **-अप्पेगे -अच्चाए हणन्ति अप्पेगे अजिणाए वहन्ति अप्पेगे मंसाए अप्पेगे सोणियाए**

§ ५५) इस रूपावली के भीतर नहीं लिये गये हैं। वे रूप जो सभी या सबसे अधिक प्राकृत बोलियों में पाये जाते हैं, उनके लिए कोई विशेष चिह्न काम में नहीं लाया गया है। इस रूपावली मे आव०, दाक्षि० और ढक्की जैसी अप्रधान बोलियों का उल्लेख नहीं है।

(१) —अ में समाप्त होनेवाला वर्ग

(अ) पुलिंग तथा नपुंसक लिग

§ ३६३—पुलिग **पुत्त** = **पुत्र** है।

एकवचन

कर्त्ता० **पुत्तो**, अ०माग० और माग० **पुत्ते**; अ०माग० पद्य मे **पुत्तो** भी है, अप० अधिकाश **पुत्तु** है।

कर्म० **पुत्तं**, अप० **पुत्तु** है।

करण० महा०, अ०माग० और जै०महा० **पुत्तेण, पुत्तेणं**, जै०शौर०, शौर०, माग०, पै०, चू०पै० **पुत्तेण**, अप० **पुत्तेण, पुत्तिण, पुत्तें** और **पुत्तें** हैं।

सम्प्रदान० महा० **पुत्ताअ**, अ०माग० **पुत्ताय** पद्य मे अन्यथा, अ०माग० और जै०महा० **पुत्ताए**, माग० **पुत्ताअ**, पद्य मे है।

अपादान० महा० **पुत्ताओ, पुत्ताउ, पुत्ता, पुत्ताहि, पुत्ताहिंतो, [पुत्ततो]**, अ०माग० और जै०महा० **पुत्ताओ, पुत्ताउ, पुत्ता; पुत्तादो, पुत्तादु, पुत्ता**; शौर०, माग० **पुत्तादो**, पै०, चू०पै० **पुत्तातो, पुत्तातु**, अप० **पुत्तहें, पुत्तहु** हैं।

सबंध० **पुत्तस्स**, माग० **पुत्तश्श, पुत्ताह; अप० [पुत्तसु], पुत्तहों, पुत्तहो, पुत्तह** है।

अधिकरण० महा०, जै०महा०, जै०शौर० **पुत्तम्मि**, **पुत्ते**, अ०माग० **पुत्तंसि, पुत्तम्मि, पुत्तंमि, पुत्ते**, शौर०, पै० और चू०पै० **पुत्ते**, माग० **पुत्ते, पुत्ताहिं**; अप० **पुत्तें, पुत्ते, पुत्ति, पुत्तहिं** हैं।

सम्बोधन० **पुत्त**, महा० में **पुत्ता** भी, अ०माग० **पुत्त, पुत्ता, पुत्तो**, माग० **पुत्त, पुत्ते** हैं।

बहुवचन

कर्त्ता० **पुत्ता**, अ०माग० **पुत्ताओ** भी, अप० **पुत्त** भी।

कर्म० **पुत्ते**, महा०, अ०माग० और अप० **पुत्ता** भी, अप० **पुत्त** भी।

करण० महा०, अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० **पुत्तेहि, पुत्तेहिं, पुत्तेहिँ**, शौर० और माग० **पुत्तेहिं**, अप० **पुत्तहिं, पुत्ताहिँ, पुत्तहि, पुत्तेहिं, पुत्तेहिँ, पुत्तेहि** हैं।

नपुसकलिंग मे, कर्मकारक **निवतणं** ६, ३८, **वारण** [—] ७, ४१, उपरिलिखित ७, ४४, **आणतं** ७, ४९।

वहुवचन

कर्त्ता० **पतीभागा** ६, १३–१८, २०–२२, **अद्धिका, कोलिका** ६, ३९, **गामेयिका आयुत्ता** विजयबुद्धवर्मन् १०१, १०।

कर्म० **देसाधिकतादीके, भोजके** ५, ४, **वलुवे गोवल्लवे अमच्चे आरखाधिकते गुमिके तूथिके** ५, ५, और ऐसे रूप नीचे दिये हुए स्थानों मे भी आये हैं : ५, ६, ६, ९, ७, ३४ और ४६।

करण० **पवमादिकेहि** ६, ३४, **परिहारेहि** ६, ३५, विजयबुद्धवर्मन् १०१, ११, अधिक सम्भावना यह है कि यहाँ हि से हिं का तात्पर्य है। सम्बन्ध **पल्लवाणं** विजयबुद्धवर्मन् १०१, २, **पल्लवाण** ५, २, **मणुसाण** ५, ८, **वत्थवाण-वम्हणाणं** ६, ८, **भातुकाण**, ६, १८, **वम्हणाणं** ६, २७, ३०, ३८, **पमुखाणं** ६, २७ और ३८ (यहाँ पाठ में **पमुखाण** है)। वात यह है कि इन दानपत्रों मे सर्वत्र **–णं** होना चाहिए।

§ ३६४— –अ मे समाप्त होनेवाले सज्ञा शब्दों की रूपावली के लिए वर० ५, १-१३, ११, १०, १२ और १३, चड० १, ३, ५, ७, ८, १३-१६, २, १०, हेच० ३, २–१५, ४, २६३, २८७, २९९, ३००, ३२१, ३३०–३३९, ३४२, ३४४–३४७, क्रम० ३, १–१६, ५, १७, २१–२५ और २८–३४, ७८, मार्क० पन्ना ४१, ४२, ६८, ६९, ७५, सिंह० पन्ना ५–९ देखिए। अप० में बहुधा मूल सज्ञा शब्द कर्त्ता–, कर्म० और सम्बन्धकारक एकवचन और बहुवचन के काम में आता है। –अ वर्ग को छोड अन्य वर्गों मे भी ऐसा होता है (हेच० ३४४, ३४५, क्रम० ५, २१)। अप० में अन्तिम स्वर, छन्द बैठाने और तुक मिलाने के लिए इच्छानुसार दीर्घ और ह्रस्व कर दिये जाते हैं (§ १००), इसलिए कर्त्ताकारक में बहुधा एकवचन के स्थान में बहुवचन और बहुवचन के स्थान में एकवचन आ जाता है। इस नियम के अनुसार **फणिहारा, वीसा, कन्दा, चन्दा,** और **कन्ता = फणिहारः, विष., कन्दः, चन्द्रः** और **कान्तः** (पिंगल १, ८१), **सीअला = शीतलः, दड्ढा = दग्धः** और **घरु = गृहः** से सम्बन्धित है (हेच० ४, ३४३), **गअ = गजाः, गजान्** और **गजानाम्** (हेच० ४, ३३५ और ४१८, ३ तथा ३४५), **सुपुरिस = सुपुरुषाः** (हेच० ४, ३६७) है। अन्य प्राकृत भाषाओं में भी अवसर आ पडने पर पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल सज्ञाशब्द काम में लाया जाता है। इस नियम से अ०माग० **वुद्धपुत्त = वुद्धपुत्र** जो **वुद्धपुत्तो** के स्थान में आया है (उत्तर० १३), **पाणजाइ = प्राणजातय.** जो **पाणजाईओ** के लिए प्रयुक्त हुआ है (आयार० १, ८, १, २), **पावय = पावक** जो **पावओ** के स्थान में आया है (दस० ६३४,५), माग० में **पञ्चयण = पञ्चजनाः, गामा = ग्रामा, चण्डाल = चण्डालः, णल = नरः; शिल = शिरः** (मृच्छ० ११२,

६—९) है। मार्क० ने पन्ना ७५ में हस्तलिपि में शिशि रूप पढ़ा है और इसलिए यह बताया है कि भाग में कर्त्ताकारक ए और इ में समाप्त होता है [कभी शिशि या शिरि रूप सिर के लिए काम में आता होगा। इसका आभास कुमाउनी सिरि शब्द से मिलता है जिसका अर्थ कटे जानवर का सिर है। — अनु]। वर० ने ११, ९ में यही बात सिखायी है कि कर्त्ताकारक के स्थान में केवल मूल संज्ञाशब्द भी काम में लाया जा सकता है। § ८५ के अनुसार शिशि सिले रूप के लिए आया है इसी प्रकार शक्के = शक्यः के स्थान में शक्कि आया है (मृच्छ ४१ ६—९)। समाप्तिसूचक वर्ण –ओ और ए– = –आः के विषय में § ३४५ देखिए और –उ = –आः के संबंध में § ३४६। अप में –उ = –अम् के लिए § ३५१ देखिए। — अ माग में करणकारक एकवचन में कई रूप पाये जाते हैं जो –सा में समाप्त होते हैं। ये ऊपर दिये हुए स्– वर्ग के करणकारक की समानता पर बनाये गये हैं। इनमें एक विशेष रूप कायसा है जो काय से बना है किंतु मनसा वयसा कायसा की जोड़ी में = मनसा वचसा कायेन (आयार पेज १३२, १ १३३ ५ सूय १५८; ४२८; ५४६ विवाह १ ३ और उसके बाद; ठाणंग ११८ ११९ १८७; उत्तर २४८ उवास § ११—१५ दस ६२५, १) कायसा वयसा रूप भी मिलता है (उत्तर २ ४) मनसा वयसा काएण बहुत कम पाया जाता है (सूय २८७) और कहीं कहीं मनसा कायवक्केणं भी देखा जाता है (सूय ३८ ; उत्तर २२२ ; ७५२)। इसके अतिरिक्त सहसा बलसा = सहसा बलेन (आयार २,३ २ १ ठाणंग० ३६८) है पओगसा = पयोगेण। यह विससा की समानता पर बना है जो विस्रस् का एक रूप है (विवाह ६८ और ६९)। ऐसे रूपों की समानता पर पद्य में नीचे दिये हुए रूप बनाये गये हैं : नियमसा = नियमेन (ओव § १७७) ; जोगसा = योगेन (दस ६११, १ ; सूरियपण्णत्ति में शब्दसूची ५,२,२,५७५,४) है ; भयसा = भयेन (दस ६२९, १७), इनके साथ कहीं भी स्– वर्ग का रूप नहीं आया है। § ३५५ ; ३५८ ; ३९७ ३७९। ३७९ और ३८६ की तुलना कीजिए। महा अ माग और जै महा रूप पुत्तेणं के विषय में § १८२ अर पुत्तेण के बारे में § १२८ और पुत्ते के संबंध में § १४६ देखिए। — पल्लवदानपत्रों अ माग और जै महा में (§ ३६१) संप्रदान-कारक के रूप –आए का संस्कृत भाषा के संप्रदानकारक के रूप –आय से संबंधित नहीं किया जा सकता। यह पल्लवदानपत्रों में बना रहता है। अ माग में इसका रूप –आए और महा –आअ हो जाता है (§ ३६१)। ध्वनि का रूप देखते हुए अ माग रूप सागपागाए (सूय २४७ २४९) *शाकपाकायै से मिलता जुलता है अर्थात् संस्कृत चतुर्थी के स्त्रीलिंग रूप से। अ माग में संप्रदानकारक का यह रूप भाववाचक नपुंसकलिंग के उन रूपों में लगाया जाता है जिनके अंत में –त्ता = –त्वा आता है। जैसे इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए में हुआ है (सूय ८१७) ; वयत्ताए = वयस्त्वाय (आयार २ १५ १६ सम ८; १, १६; उवास ; ओव) ; रुक्खत्ताए = वृक्षत्वाय (सूय ७ २; ८ ३)।

गोणत्ताए = गोत्वाय (विवाग० ५१), **हंसत्ताए = हंसत्वाय** (विवाग० २४१), **णेरइयत्ताए दारियत्ताए** और **मयूरत्ताए = नैरयिकत्वाय, दारिकात्वाय** और **मयूरत्वाय** है (विवाग० २४४), **अट्ठिचम्मच्छिरत्ताए = अस्थिचर्मशिरात्वाय** है (अणुत्तर० १२) आदि आदि । § ३६१ की तुलना कीजिए । इनके साथ साथ —ता में समाप्त होनेवाले भाववाचक स्त्रीलिंग शब्दों के रूप हैं जिनमें —आए लगता है जैसे, **पडिवूहणयाए = प्रतिबृंहणतायै, पोसणयाए = पोषणतायै** (सूय० ६७६), **करणयाए = करणतायै** (विवाह० ८१७, १२५४, उवास० § ११३), **सवणयाए = श्रवणतायै** (नायाध० § ७७, १३७, ओव० § १८, ३८), **पुणपासणयाए = *पुनःपश्यनतायै** है (विवाह० ११२८, नायाध० § १३७) तथा अन्य अनेक रूप पाये जाते हैं । § ३६१ से देखा जाता है कि वैसे बहुधा पुलिंग और नपुसकलिंग के सम्प्रदानकारकों के बीच में स्त्रीलिंग का सम्प्रदानकारक आता है । स्त्रीलिंग के द्वारा अन्य लिंगों पर प्रभाव पडना भी सभव है और अ०माग० में **देवत्ताए** का एक उदाहरण ऐसा मिलता है कि उसका **त्त** नपुसकलिंग **देवत्व** के **त्व** का रूपपरिवर्तन है और अतिम वर्णों पर स्त्रीलिंग **देवता** का प्रभाव है । किंतु पुलिंग और नपुसकलिंग के **—आए** में समाप्त होनेवाले सम्प्रदानकारक इतने अनगिनत है कि यह स्पष्टीकरण सम्भव नहीं मालूम पडता । यह मानना पडता है कि बोली में पुलिंग और नपुसकलिंग के सम्प्रदानकारक के अन्त में —ए भी काम में लाया जाता रहा होगा । **वहाइ = वधाय** (हेच० ३, १३२), यह सख्या छापे की भूल ज्ञात होती है, क्योंकि यह रूप हेच० ३, १३३ में मिलता है । ऊपर जो —ए दिया गया है उसके स्थान में भी —आइ रूप होना चाहिए । यह ३, १३३ सूत्र इस प्रकार है ' **वधाड्डाइश्च** [टीका में ये रूप दिये गये हैं : **वहाइ, वहस्स** और **वहाय** । —अनु०] रूप या तो अ०माग० और जै०महा० रूप **वहाए** (§ ३६१ से § ८५) के अनुसार सम्बन्धित हो यदि यह रूप कहीं पद्य में पाया जा सके तो अन्यथा यह अवेस्ता के **यस्नाइ** और ग्रीक **हिप्पोइ = हिप्पो** [में ओ दीर्घ । —अनु०] से सम्बन्धित है ।

§ ३६५—महा० में अपादानकारक एकवचन के रूप वर० ५, ६ से लिये जा सकते हैं, वर० के टीकाकार भामह से नहीं जिसने **वच्छादो** और **वच्छादु** रूप दिये है, क्रम० ने भी ऐसे ही रूप दिये हैं (३, ८) । यह बात हेच० ३, ८ तथा मार्क० पन्ना ४१ से पुष्ट होती है [हेच० ने ये रूप दिये हैं . **वच्छत्तो, वच्छाओ, वच्छउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो, वच्छा** । **दकारकरणं भाषान्तरार्थम्** भी जोड दिया है । —अनु०] । रावण० के रचयिता ने अपने ग्रन्थ के ८, ८७ में **रामादो** रूप लिखा है जिससे स्पष्ट होता है उसने भाम० का अनुसरण किया है जैसा उसने **उदु = ऋतु** रूप भी लिखा है (§ २०४) । महा०, अ०माग० और जै०महा० में अपादान कारक एकवचन में **—आओ** में समाप्त होता है = ***—अतः** (§ ६९, ३४५) । इस **—आआ** के साथ साथ छन्द की मात्राएँ ठीक बैठाने के लिए **—आउ** रूप भी चलता है । इस नियम के अनुसार , **सीसाउ = शीर्षात्** (गउड० २७), **णहअलाउ =**

नमस्तलाउ (हाल ७५) ; रण्णाउ = अरण्यात् (हाल २८०) अ माग० में पायाउ = पापात् (सूय० ४१५), इसके साथ साथ पावाओ रूप भी चलता है (सूय ११ और ११७) तुमत्ताउ = तुमत्तात् है (उत्तर २१८)। हेच० ने ४, २७६ में शौर के अपादानकारक के लिए भा –दु बताया है। उसका सम्बन्ध भी शौर से है (§ २१)। इस बोली मे उदयादु = उदयात् मिलता है (पव १८१, २७), इसके साथ साथ अणउदयादो रूप भी आया है (कत्तिग ३९९, ३ ९) और इस बोली में नीचे दिये हुए रूप भी पाये जाते हैं : चरित्तादो - चरित्रात् (पव० ३८ , ७), णाणादो = ज्ञानात् है (पव १८२, ५), विसयादो = विषयात् है (१८२, ६) और वसादो = वशात् है (कत्तिग ३९९, ३११)। शौर और माग में अपादानकारक में सदा अन्तिम वर्ण –दो रहता है (क्रम ५, ७९ मार्क पन्ना ६८ [इसमें दिया गया है : दो पद स्याद्वाम्ये। —अनु]; § ६९ और ३४५)। जिन रूपों के अन्त में ह्रस्व –अओ आता है जैसे अ माग मे गामओ रूप उनके विषय मे § ९९ देखिए। महा , अ माग और जै महा में अपादानकारक की समाप्ति –आ = संस्कृत आत् में कम नहीं होती। इसके अनुसार महा में वसा = वशात् , भआ = भयात् गुणा = गुणात् , वेआ = वेगात् भयणा = भवनात्, देहत्तणा = देहत्वमात् और मारुव्वहणाभरा = मारोद्वहनाद्भरात् है (गउड २४ ४२ ; ८४ ; १२५ २४२ ; ३९ ; ७१६ ८४८ ८५४ ९२४) ; घरा = गृहात् और वला = बलात् है (हाल ४९७ ८९८) अइरा = अचिरात् (रावण ३, १५) है पाचिरा रूप भी पाया जाता है (शाक १७१, २); मिसा = मिषात् , णिवेसा = निवेशात् (कर्पूर १२, ८ ७५, २) ; अ माग में मरणा रूप आया है (आयार १, २ १, ३ २, १), दुक्खा भी पाया जाता है (आयार १, ३ १, २ उत्तर २२) कोहा, माणा और लोहा = क्रोधात्, मानात् तथा लोभात् (आयार २, ४, १, १) है ; वला भी मिलता है (सूय २८७ ; २९१ ; उत्तर ५९१) ; आरम्भा भी काम में आता है (सूय० १ ४) णायपुत्ता है (सूय ३१८) भया = भयात् , लाभा , मोहा भी पाये हैं, पमाया = प्रमादात् है (उत्तर २ ७ २९१ ४१४ ; ६२७) ; कोहा हासा, लोभा भया आये हैं (उत्तर ७११; दस ६१५ २८ की तुलना कीजिए)। ये रूप भावकाल रचनाओं पर पद्य में आये हैं ; जै महा में नियमा आया है (काक्का २५९ ६ १८) अ माग और जै महा में बहुत मिलता है (दस ६२ २ पढ़ें) जै शौर में णियमा रूप मिलता है (कत्तिग ४ ३९८; ४ १ ३८१)। शौर से मुझे केवल बला (मृच्छ ६८, २२) तथा माग से केवल कालुणा (मृच्छ १५२ ७ १८५ १७ की भी तुलना कीजिए) मिला है। ये भी उन संस्करणों में है जिनमें शब्दों पर भी विचार किया गया है। हस्तलिपियों में कालणा के स्थान पर कालणे पाया जाता है ; शकु १०९२ में प्रकाशित कलकत्तिया संस्करण के पत्र १२४ ११ और गौडबोले के संस्करण पत्र ४११ १ में इसका शुद्ध रूप कालणादो छापा गया है। स्टेन्त्सलर ने भी यही पाठ स्वीकृत किया है (३११

१, १६०, २४, १५८, २१, १६५, ७)। मार्क० पन्ना ६९ में बताया गया है कि शौर० में अपादानकारक के अन्त में –आ भी लगाया जा सकता है और मार्क० ने इसका उदाहरण कारणा दिया है। महा० में अपादानकारक एकवचन के अन्त में बहुधा –हि जोड़ा जाता है : मूलाहि, कुसुमाहि, गअणाहि, वराहि रूप मिलते हैं और बीआहि = बीजात् (गउड० १३, ६९, १९३, ४२६, ७९२, श्लोक १०९८, ११३१, ११७८ की भी तुलना कीजिए, [बीआ का मराठी में बी हो गया है, कुमाउनी में त्रिया बी रूप चलते हैं। —अनु०]), दूराहि मिलता है, हिअआहि = हृदयात् है, अगणाहि रूप भी आया है, णिक्कम्माहि खेत्ताहि भी आया है, वि छेत्ताहि = निष्कर्मणो 'पि क्षेत्रात् (हाल ५०, ९५, १२०; १६९, श्लोक १७९, ४२९, ५९४, ६६५, ८७४, ९२४, ९९८ की भी तुलना कीजिए) धीराहि = धैर्यात्, दन्तुज्जोआहि = दन्तोद्योतात्, पच्चक्खाहि = प्रत्यक्षात्, घडिआहि = घटितात् और अणुहूआहि = अनुभूतात् है (रावण० ३, २, ४, २७, इनके अतिरिक्त ८, ४५ और ५६, ६, १४ और ७७, ७, ५७, ८, १८, ११, ८८, १२, ८ और ११, १४, २० और २९, १५, ५० की भी तुलना कीजिए), हिअआहि रूप भी आया है (कर्पूर० ७९, १२, इसी नाटक में अन्यत्र हिअआउ रूप भी देखिए), दण्डाहि = दण्डात् (बाल० १७८, २०, पाठ में छन्दों की मात्रा के विरुद्ध दण्डाहिं रूप है) है। अ०माग० में पिट्ठाहि रूप है जो = पृष्ठात् है (नायाध० ९५८ और उसके बाद), इसके साथ साथ पिट्ठाओ रूप भी चलता है (नायाध० ९३८ और ९६४)। –हिंतो में समाप्त होनेवाला अपादानकारक बहुत कम मिलता है : कन्दलाहिंतो = कन्दलात् (गउड० ५), छेप्पाहिंतो = शेपात्, हिअआहिंतो = हृदयात्, रइहराहिंतो = रतिगृहात् हाल २४०, ४५१, ५६३) है, मूलाहिंतो = मूलात् (कर्पूर० ३८, ३), रूआहिंतो = रूपात् (मुद्रा० ३७, ४) है। राजशेखर शौर० में भी –हि और –हिंतो में समाप्त होनेवाला अपादानकारक काम में लाता है, जो अशुद्ध है। चन्दसेहराहि = चन्द्रशेखरात् (बाल० २८९, ८ पाठ में, चन्दसेहराहिं है), पामराहिंतो = पामरात्, चन्दाहिंतो = चन्द्रात्, जलाहिंतो = जलात्, तुम्हारिसाहिंतो = युष्मादृशात् है (कर्पूर० २०, ६, ५३, ६, ७२, २, ९३, ९), पादहिंतो = पादात्, गमागमाहिंतो = गमागमात्, थणहराहिंतो = स्तनभरात् (विद्ध० ७९, २, ८२, ४, ११७, ४) है। सर्वनाम के इनसे मिलते जुलते रूपों के लिए § ४१५ और उसके बाद देखिए। महा०, अ०माग० और जै०महा० में –हि में समाप्त होनेवाले क्रियाविशेषण मिलते हैं। अलाहि = अलम्[१] (वर० ९, ११, हेच० २, १८९, क्रम० ४, ८३ [पाठ में अणाहि है], हाल १२७, विवाह० ८१३, ९६५, १२२९, १२५४, तीर्थ० ५, ६ [पाठ में अलाहिं है], अ०माग० में क्रियाविशेषणों में –हिंतो है जैसे, अन्तोहिंतो = अन्तरात् है (§ ३४२) और बाहिंहिंतो = बहिष्टात् है (ठाणंग० ४०८)। –हि में समाप्त होनेवाले रूप जैसा ए० म्युलर[२] ने पहले ही ताड़ लिया था, क्रियाविशेषण

(मृच्छ० २१, १३ और १४ , २४, ३ , ३२, ४ और ५ , ४५, १ , ११२, १० , १२४, २१)। अप० मे इसके स्थान पर सम्बन्धकारक का रूप –ह आया है जैसे, **कणअह = कनलस्य , चण्डालह = चंडालस्य , कव्वह = का०यस्य , फणिन्दह = फणीन्द्रस्य , कण्ठह = कण्टस्य** और **पअह = पदस्य** (पिंगल १,६१ , ७० , ८८ बी , १०४ , १०९ , ११७) है। सम्बन्धकारक एकवचन का रूप अप० में साधारणतया –हो और अधिकांश स्थलों पर –हों है (हेच० ४, ३३८ , क्रम० ५, ३१), **दुलहहों = दुर्लभस्य , सामिअहों = स्वामिकस्य ; कृदन्तहों = कृतान्तस्य , कन्तहों = कान्तस्य , साअरहों = सागरस्य** और **तहों विरहहों णासन्तअहों = तस्य विरहस्य नश्यतः** (हेच० ४, ३३८ , ४४० , ३७० , ३७९ , ३९५, ७ , ४१६ , ४१९, ६ , ४३२) है। ध्वनिनियम के अनुसार एक **कन्तहों**, एक ***कन्तस्यः** के बराबर है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह रूप अ– वर्ग और व्यजनान्त रूपावली का गड्डमड्ड है। इसकी प्रक्रिया वैसी ही है जैसी –**आओ** में समाप्त होनेवाले कर्त्ताकारक बहुवचन की (§ ३६७)। अप० में ऊपर दिये रूप के साथ-साथ सम्बन्धकारक में –**स्सु** वाला रूप भी है जो –**स्स = स्य** से निकला है (§ १०६) जैसे, **परस्सु = परस्य , सुअणस्सु = सुजनस्य , खन्धस्सु = स्कन्धस्य , तत्तस्सु = तत्त्वस्य** और **कन्तस्सु = कान्तस्य** (हेच० ४, ३३८ , ४४० , ४४५, ३)। हेमचन्द्र ४, ३३८ और क्रमदीश्वर ५, ३१ के अनुसार सम्बन्धकारक का एक रूप जो –**सु** मे समाप्त होता है, काम में लाया जाता है : **रुक्खसु** (क्रम० ५, ३१ , लास्सन, इन्स्टि० प्रा०, पेज ४५१ में **वच्छसु**) है। इस रूप को मैं कहीं कहीं सर्वनामों में उदाहरण देकर प्रमाणित कर सकता हूँ (§ ४२५ और ४२७)।

१. हेच० ४, २९९ पर पिशल की टीका।

§ ३६६ अ—महा०, जै०महा० और जै०शौर० में अधिकरणकारक एकवचन के रूपों के अन्त में –**ए** लगता है और इसके साथ साथ सर्वनामों की रूपावली से ले लिया गया –**म्मि = स्मिन्** भी जोडा जाता है (§ ३१३ और ३५०) और बहुधा ये दोनों रूप पास-पास में आते हैं। इस तथ्य के अनुसार महा० में **मुक्के वि णरमइन्दत्तणम्मि = मुक्ते ऽपि नरमृगेन्द्रत्वे** है (गउड० १०), **दिट्ठे सरिसम्मि गुणे = दृष्टे सदृसे गुणे** (हाल ४४) है, **णइपूरसच्छहे जोव्वणम्मि = नदीपूरसदृशे यौवने** (हाल ४५) है, **सुणहपउरम्मि गामे = शुनकप्रचुरे ग्रामे** (हाल १३८) है , **देवाअत्तम्मि फले = दैवायत्ते फले** है (हाल २७९), **हत्तव्वम्मि दहमुहे = हन्तव्ये दशमुखे** (रावण० ३, ३), **अपूरमाणम्मि भरे = अपूर्यमाणे भरे** (रावण० ६, ६७), **गअम्मि पओसे = गते प्रदोषे** (रावण० ११, १) और **णिहअम्मि पहत्थे = निहते प्रहस्ते** है (रावण० १५,१)। जै०महा० मे निम्नलिखित रूप मिलते हैं, **पाडलिपुत्तम्मिपुरे** (आव०एर्त्से० ८, १) और **पाडलिपुत्ते नगरम्मि** (आव०एर्त्से० १२, ४०), **दुल्लहलम्भम्मि माणुसे जम्मे = दुर्लभलम्भे मानुषे जन्मनि** (आव०एर्त्से० १२, १३), **कए कए वा वि कज्जम्मि = कृते ऽपि वापि कार्ये** (आव०एर्त्से० १२, १८) और

चेत्तम्मि पक्खम्मे विहुरये = चैत्रे नक्षत्रे विधुहस्ते (कक्कुक शिलालेख १९) है। जै०शौर में तिविहे पत्तम्मि = त्रिविधे प्राप्ते (कत्तिगे ४ २, ११ ; पाठ में तिविहम्मि है) अच्चुदम्मि सग्गे = अच्युते स्वर्गे (कत्तिगे ४ ४, ३११ ; पाठ में अच्चुदम्मि है) । उक्त सब रूप पद्य में मिलते हैं। गद्य में जै०महा में अधिकरणकारक अधिकांश स्थलों पर -ए में समाप्त होता है, जैसे गिरिनगरे नयरे (आव एर्त्से० ९, १२) मत्थए = मस्तक है (आव एर्त्से ११, १) पुरत्थिमे दिसीभाए आरामसज्झे = ०पुरस्तिमे दिग्भाग आराममध्ये है (आव एर्त्से ११, १४) -म्मि और - मि में बहुत काम समाप्त होता है जैसे, रइघरम्मि = रतिगृहे (आव एर्त्से ११,१३) कोमुईमहूसवंमि = कौमुदीमहोत्सवे है (एर्त्से २, ७); मज्झंमि रूप भी आया है (एर्त्से ९, १) । कभी कभी गद्य में भी दोनों रूप साथ साथ चलते हैं जैसे विन्नाणनिम्मियंमि सियरत्तपडायाभूसिए पासाए = विज्ञाननिर्मिते शितरक्तपताकाभूषिते प्रसादे है (एर्त्से ८ २४) । पद्य में दोनों रूप काम में लाये जाते हैं। छंद में जो रूप ठीक बैठता है वही उसमें रख दिया जाता है जैसे, भरहम्मि = भरते, तिहुयणम्मि = त्रिभुवने और सीसम्मि = शीर्षे है (आव०एर्त्से० ७, २२ ; ८, १७ ; १२, २४) । साथ ही गुणसिलुज्जाणे = गुणशिलोद्याने है अयसाणे है तथा सिहरे = शिखरे है (आव एर्त्से ७,२४ ; ११ और २९) । शौर में भी दोनों प्रकार के अधिकरणकारक के रूप काम में लाये जाते हैं। कत्तिगेयाणुवेक्खा में हस्तलिपि में -म्मि के स्थान में बहुत बार -म्हि लिखा गया पाया जाता है कालम्हि (३९९,३२१), इसके विपरीत कालम्मि भी आया है (४ , ३२२) ; पत्तम्हि रूप मिलता है (४ २, ११) अच्चुदम्हि पाया जाता है (४ ४ १ १); सर्वनामों की भी यही दशा है : तम्हि = तस्मिन् (४० , ३२२) । इसके साथ साथ उसी पंक्ति में तम्मि रूप भी आया है, यहीं जम्मि भी मिलता है (३९९, ३२१) । यह हस्तलिपिक की भूल है। पवयणसार में केवल एक ही रूप -म्मि देखा जाता है : ठाणम्मि रूप आया है (३८३, ६९) ; सुहम्मि, असुहम्मि भी मिलते हैं (३८५,६१) ; कायचेट्ठम्मि (३८६,१ ; ३८७,१८); जिणमदम्मि काम में आया है (३८६, ११) आदि-आदि। कत्तिगेयाणुवेक्खा में इ अशुद्ध प्रयोग की एक भूल और दिखाई देती है। शुद्ध रूप सम्पण्णू के स्थान में उसमें सम्पण्हू लिखा मिलता है। पवयणसार ३८१, १६ में भी यही भूल है = सवण्हू (कत्तिगे ३९८, ३ २ और ३ ३) है। § ८१६ की तुलना कीजिए। — अ०माग० में सबसे अधिक काम में आनेवाला रूप -ंसि में समाप्त होनेवाला है जो = स्मिन् है (§ ७४ और ३१३) सागंसि = शाके (आयार १, १, ९, ५ और ७ ; १, १, १ १ और २, १ ९, ८, २, १ ; १, ५, ८, ४ ; १, १, २, १ ; १, ७, १ १ ; सूय २१३, १८ ; १८१ ४९३ ; ४६९ आदि आदि) है। सुसाणंसि वा सुन्नागारंसि वा गिरिगुहंसि वा रुक्खमूलंसि वा कुम्भारायणंसि वा = श्मशाने वा शून्यागारे वा गिरिगुहायां वा वृक्षमूले वा कुम्भकारायतने वा है (आयार १, ७, २, १) ; इमंसि वारगंसि जावज्जि समाणंसि = अस्मिन्

दारके जाते सति है (ठाणग० ५२५, विवाह० १२७५, विवाग० ११६ की तुलना कीजिए, [-ंसि वाला रूप कुमाउनी में कहीं-कहीं अब भी चलता है। यहा के बनियों की बोली में एक कहावत का प्रचार है कि अमावस के दिन किसी बनिये के घर कोई ब्राह्मण दान मागने गया और उसने सेठ से कहा—'आज अमूँसी है' (= कुमाउनी बोली में **आज अमूँसी छ**)। इस पर बनिया बोला 'अमूँसी न्हाते हमूँसि छ' अर्थात् आज अमावस नहीं बल्कि **हममें** या यह **हमपर** आयी है, तात्पर्य यह कि दान-दच्छिना अपने ही गाठ से हमें देनी होगी। विद्वान पाठक **हमूँसि** से **इमांसि** की तुलना करें जो ऊपर के उद्धरण में आया है। —अनु०])। अ०माग० मे **-म्मि** और **-ंमि** का प्रयोग पद्य में कुछ कम नहीं है . **समयंमि** आया है (आयार० १, ८, १, ९, २, १६, ९), **बम्भम्मि य कप्पम्मि य = ब्राह्मे च कल्पे च** (आयार० पेज १२५, ३४) है, **दाहिणम्मि पासम्मि** (?) = **दक्षिणे पार्श्वे** (आयार० पेज १२८, २०), **लोगंमि = लोके** (सूय० १३६ और ४१०), **संगाममंमि = संग्रामे** (सूय० १६१) है. **आउयंमि = आयुषि** (उत्तर० १९६) है, **मरणंतम्मि = मरणान्ते** (उत्तर० २०७) और **जलणम्मि = ज्वलने** (नायाध० १३९४) है। बाद को ये रूप **-ए** के साथ-साथ अधिकरणकारक व्यक्त करने के लिए गद्य में भी प्रयुक्त होने लगे पर इनका प्रयोग शायद ही शुद्ध हो जैसे, **दारुणम्मि गिम्हे** (नायाध० ३४०) आया है, **उट्ठियंमि सूरे सहस्सरस्सिमि दिणयरे तेयसा जलन्ते = उत्थिते सूर्ये सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति** (विवाह० १६९, अणुओग० ६०, नायाध० § ३४, कप्प० § ५९) और इनके साथ साथ -ंसि वाला अधिकरण का रूप चलता है जैसे, **गिम्हकालसमयसि जेट्ठामूलमासम्मि = ग्रीष्मकालसमये ज्येष्ठामूलमासे** है (ओव० § ८२)। प्राचीन गद्य में -ंसि में समाप्त होनेवाले अधिकरणकारक की तुलना मे **-ए** वाले रूपों की सख्या कम है. **हरए = ह्रदे** (आयार० १, ६, १, २), **वियाले = विकाले** (आयार० २, १, ३, २, [हिंदी का **ब्याल्** इससे ही निकला है और कुमाउनी मे सध्याकाल को **ब्याल** कहते हैं। **व = ब** उच्चारण में। बगला मे इसका संस्कृतीकरण होकर फिर **विकाले** (उच्चारण **विकाल**) रूप चलता है। —अनु०]), **लाभे सन्ते = लाभे सति** (आयार० २, १, १, १ और उसके बाद, [**सन्ते** का उत्तर भारत की कई पहाडी बोलियों में **छनै** रूप हो गया है। —अनु०]), **पडिपहे = प्रतिपथे, परक्कमे = पराक्रमे** (आयार० २, १, ५, ३), **सपडिदुवारे = स्वप्रतिद्वारे** है (आयार० २, १, ५, ५), **लिद्धे पिण्डे = लब्धे पिण्डे** (आयार० १, ८, ४, १३), **लोए = लोके** (आयार० १, ८, ४, १४, २, १६, ९, उत्तर० २२ और १०२) है, ऐसा बहुधा पद्य में भी होता है **आरामागारे, नगरे, सुसाणे** [कुमाउनी में **स्मशान** को **मसाण** और **सुसाण** कहते है, बगला में लिखा जाता है **स्मशाण** पर इसका उच्चारण करते हैं **शॅशाण**। —अनु०], **रुक्खमूले** (आयार० १, ८, २, ३), **मरणन्त** (उत्तर० २१३) और **धरणितले** रूप आये हैं (सूय० २९६)। ये रूप -ंसि और **-म्मि** में समाप्त होनेवाले अधिकरणकारकों के पास मे ही

दिखाई देते हैं जैसे, सिसिरंसि अद्धपडिवन्ने = शिशिरे अर्धप्रतिपन्ने (आयार १, ८, १, २१) संसारंमि [मि रूप में के लिए कुमाउनी में बहुत चलता है। —अनु] भवन्तगे मिलता है (उत्तर० २१५ और २२२) तथा पत्तम्मि आएसे = प्राप्त आदेशे है (उत्तर २२७)। बाद के गद्य में इनके साथ-साथ —ंसि में समाप्त होनेवाला अधिकरणकारक का रूप भी आने लगा जैसे, तंसि तारिसंसि वासघरंसि अब्भिन्तरओ सचित्तकम्मे बाहिरओ दूमियघट्टमट्टे—। इसके पश्चात् सात —ए वाले अधिकरणकारक एक साथ एक के बाद एक लगातार आये हैं — तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टीए— इसके बाद आठ —ए वाले अधिकरणकारक एक साथ एक के बाद एक लगातार और भी आये हैं— पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि भी मिलता है (कप्प § १२)। लोगों की बोली में —स्सिम् से निकले हुए रूप —हिं में समाप्त होनेवाले अधिकरणकारक के रूप भी मिलते हैं (§ ६५ और २६४) माग में पवहणार्हि गळुकप्पमाणाहि कुलार्हि' आया है जो = प्रवहणके गल्लर्कप्रमाणे कुले है (मृच्छ १२६, १) माग में पवहणहिं मिलता है जो = प्रवहणे है (मृच्छ ११९, २१)। इनके साथ-साथ अप का अधिकरणकारक है जिसके अंत में —हिँ जोड़ा जाता है : देसहिँ = देशे ; घरहिँ = गृहे (हेच ४, ४८६ ४२२ १५) है इदर्हि = इदे पढमहिँ = प्रथमे, तीए पाए = तृतीये पादे समपामाहे = समपादे ; सीसहिँ = शीर्षे ; अन्तहिँ = अन्ते ; चित्तहिँ = चित्ते और वंसहिँ = वंशे है (पिंगल १, ४बी ७ ७१ ८१ए १२ ; १५५ए; २, १ २)। शौर तथा अधिकांश स्थलों पर माग में भी अधिकरणकारक गद्य में —ए में समाप्त होता है, यह तथ्य मार्कंडेय ने पन्ना ६९ में शौर के विषय में साफ रूप से बताया है : शौर में गेहे रूप मिलता है, आवणे = आपणे है (मृच्छ १ १; २४; १५) मुहे = मुखे है (शकु १५ १) माग में हस्ते आया है विहवे विहडिदे = विभवे विघटिते है (मृच्छ २१, १२ ; १२, २१) शामले = समरे (वेणी ३३, ८) है। माग के पद्य में —स्मि वाला अधिकरणकारक भी पाया जाता है। कभी कभी तो इस —स्मि वाले रूप के बदले में ही —ए वाला रूप भी मिलता है : पण्डशाळउळम्मि = पण्यशालाकुले ; कूवम्मि = कूपे है (मृच्छ १६१, १४ ; १६२, ७) शोमम्मि गहम्मि = सौम्ये गृहे। शेविदे मपणम्मि = सेवितं पर्ण्णे (मुद्रा १७७, ५, २५७, २ इसकी भी गे १९, १२५ और १२८ की तुलना कीजिए) है। इस विषय पर भी राजशेखर बोली के नियमों के विरुद्ध जाता है क्योंकि उसने शौर में गद्य में भी —म्मि में समाप्त होनेवाले अधिकरणकारक का प्रयोग किया है : मज्झम्मि आया है (कपूर ६, १) और इसके साथ-साथ मज्झे भी दिया है (कपूर १२ १ ; २२,) ; कव्वम्मि मिलता है जो = काव्ये है (कर्पूर १६, ८) ; रामम्मि = रामे ; सेतुसीमन्तम्मि = सतुसीमन्ते (बाल ९६, १ १९४ १८) है। भारत में छपे संस्करणों में शौर में अधिकरणकारक का रूप बहुधा —म्मि में समाप्त होनेवाला पाया

जाता है। इसमें सम्भवतः हस्तलिपियों का दोष नहीं है परन्तु ग्रन्थ रचनेवालों का दोष है जिन्हें शौर० में लिखने का कम ज्ञान था। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित स्थलों की तुलना कीजिए—प्रसन्नराघव ३५, ३, ३९, २, ४४, ८ और ९, ४५, ५; ४७, ६, ११३, ८ और १२; ११९, १४ और १५, कर्णसुन्दरी २५, ३; ३७, ६, कंसवहो ५०, २ और १८, मल्लिका० ८७, ४, ८८, २३। नीचे दिये रूप भी स्वभावतः पूर्ण अशुद्ध हैं: **चाणक्कम्मि अकरुणे** (मुद्रा० ५३, ८), **हिअअणिव्विसेसम्मि जणे** = हृदयनिर्विशेषे जने हैं (विद्ध० ४२, ३) और **गन्छत्तम्मि देवे** (चैतन्य० १३४, १०) है। अप० में साधारणतया अधिकरणकारक अन्त में -ए से निकला हुआ रूप -इ आता है. **तलि** = तले [यह रूप कुमाउनी में वर्तमान है। —अनु०], **पत्थरि** = प्रस्तरे, **अन्धारि** = अन्धकारे, **करि** = करे, **मूलि विणट्ठइ** = मूले विनष्टे [**मूलि** रूप इसी अर्थ में कुमाउनी में पाया जाता है। —अनु०] तथा **वारि** = द्वारे रूप पाये जाते हैं (हेच० ४, ३३४, ३४४, ३४९, ३५४, ४२७, ४३६)। कभी-कभी इसके अन्त में -ए भी देखा जाता है: **अप्पिएँ दिट्ठइ** और **पिएँ दिट्ठइ** = अप्रिये *दृष्टके तथा पिएँ *दृष्टके, **पिए दिट्ठें** = प्रिये दृष्टे और **सुघे** = सुखे है (हेच० ४, ३६५, १, ३९६, २)।

१. यह इसी रूप में पढ़ा जाना चाहिए, मृच्छ० १२९, २३, गौडबोले ३४८, ३ में यही रूप और लास्सन के इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतकाए, पेज ४३० की तुलना कीजिए। — २. कलकतिया संस्करण, १८२६, पेज २२७, ६ और गौडबोले का संस्करण पेज ३३१, ८ के अनुसार यह शब्द पढ़ा जाना चाहिए।

§ ३६६ ब— अ- वर्ग के सम्बोधनकारक एकवचन में बहुधा प्लुति पायी जाती है (§ ७१)। हेच० ३, ३८ और सिंह० पन्ना ५ के अनुसार सम्बोधनकारक के अन्त में पुलिंग में -अ और -आ के साथ साथ -ओ वर्ण भी आता है. **अज्जो** = आर्य, **देवो** = देव, **खमासमणो** = क्षमाश्रमण (हेच०), **रुक्खो** = रुक्ष और **वच्छो** = वृक्ष (सिंह०) है। ऐसे सम्बोधनकारक अ०माग० में पाये जाते हैं। उस भाषा में ये केवल सम्बोधन एकवचन के ही काम में नहीं आते परन्तु पुलिंग के सम्बोधन के बहुवचन के लिए भी प्रयोग में आते हैं जिससे हम इस रूप को सम्बोधन के काम में आनेवाला कर्त्ताकारक पुलिंग एकवचन नहीं मान सकते, भले ही कर्त्ताकारक पुलिंग एकवचन सदा ही गद्य में -ए में समाप्त होता है। इसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं: अ०माग० **अज्जो** = आर्य (सूय० १०१६, उत्तर० ४१५, विवाह० १३२ और १३४, कप्प० थ. (Th) § १ और एस (S) § १८ और ५२), बहुवचन में = आर्याः (ठाणग० १४६ और १४७, विवाह० १३२ और १८८ तथा उसके बाद, १९३, ३३२, उवास० § ११९ और १७४), **ताओ** = तात (नायाध० § ८३, ८५, ९८), **देवो** = देव (नायाध० § ३८), **पुरिसो** = पुरुष (सूय० १०८), **अम्मयाओ** = अम्बातातौ। बहुवचन में भी यही रूप है (अंत० ६१ और ६२, विवाह० ८०४, ८०५, ८०८ और उसके बाद [यहाँ पाठ में बहुधा **अम्मताओ** है], नायाध० § १३४, १३८, १४५, पेज २६०, ८६२,

८८७ आदि-आदि)। अ माग और जै महा० में स्त्रीलिंग में भी यही रूप काम में आता है, अम्मो = अम्बा (हच० ३, ४१ ; उवास § १४ ; आव एर्त्से० ११, ३१ १४, २७) बहुवचन में भी यह रूप चलता है किन्तु बहुवचन में अम्मो 'मा-बाप' के लिए प्रयुक्त होता है (नायाध § १३८ उत्तर ५७४)। हच ने जो उदाहरण दिया है अम्मो भणामि भणिए यह हाल ४७६ से लिया गया है। इस स्थान में वेबर और बंबइया संस्करण भणिए भणामि अत्ता देते हैं टीकाकारों में अत्ता भणामि भणिए पाठभेद है भुवनपाल में यह श्लोक ही उड़ गया है। हेच ने महा में भी अम्मो पाया है। सम्भवतः ओ के भीतर उ छिपा है जो कोशकारों के अनुसार आमंत्रण और सम्बोधन में रहता है। इसके विपरीत अ माग अम्हे = भवन्तः[1] सम्बोधन के स्थान पर प्रयुक्त कर्त्ताकारक माना जाना चाहिए (§ १६५) माग में ऐसे रूप भावे = भाव (मृच्छ १०, २२ ११, २४ १२, १ १३, ६ और २४ १४, १ आदि आदि) चेडे = चेट (मृच्छ २१ २५) और इसके साथ-साथ चेडा रूप (मृच्छ ११८, १, ११९, ११ और २१ १२१, ९, १२२ ९ आदि आदि) उवासके = उपासक (मृच्छ २१४, ७) ; भट्टके = भट्टक (शकु ११४, ५ ; ११६, ११) ; लाउत्ते = राजपुत्र (शकु ११७, ५) पुत्तके = पुत्रक (शकु १६१ ७)[2] हैं। यदि अप भमरु = भ्रमर (हेच ४, ३६८) महिहरु = महीधर (विक्रमो ६६, १६) में भी कर्त्ताकारक का रूप मानना चाहिए या नहीं यह संदिग्ध है, क्योंकि अप में अन्तिम रूप अ का उ हो जाता है (§ ३ ६)। माग रूप मय शिले दाळखण्डं कलशि = मम शिरः सतखण्डम् करोषि (मृच्छ १५१, २५) में अन्त में -ए वाला रूप कर्मकारक एकवचन में काम में लाया गया है। लास्सन[3] ने जिन अन्य उदाहरणों का उल्लेख किया है वे नवीनतर संस्करणों से उड़ा दिये गये हैं। १६७ में की तुलना कीजिए। पर्णीशहार ११ १२ में कलकतिया संस्करण के अनुसार छम्मदि पढ़ा जाना चाहिए न कि मिश्र का दिया रूप छम्मद जिससे § १५७ के अनुसार मंताए, उक्त [पाठ में उप्पण्हे] और जुहिले कर्त्ताकारक बन जायं।

1 यह सुद्ध स्पष्टीकरण है। वेबर भगवती २ १५१ की नोटसंख्या १ की तुलना कीजिए ; हच ४ २८० पर पिशल की टीका। ए. म्युलर बाइत्रेगे पत्र ५ में अशुद्ध मत देता है। इस स्थान में इस विषय पर अन्य ग्रंथों की सूची भी है। — २ एस गोल्दश्मित्त ने प्राकृतिका पत्र २८ में इसे ठीक नहीं समझा है। त्सा दे डो मो गे १८९ पेज ३१६ में पिशल का मत देखिए। — ३ इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ४१९।

§ ३६७—सभी प्राकृत भाषाओं में कर्त्ताकारक बहुवचन पुलिंग के अन्त में -आ = आः आता है : महा अ माग और जैर म दया = दयाः (हाल १५५ और ३१३ ; एर्त्से ८, ११ ; मृच्छ १, ११) है ; जै शौर में भद्दा = भद्राः है (पव ३८२, २६) माग में पुलिशा = पुरुषाः (ललित ५६६, १३) है ; ऐ में समुद्दा और दाळा = समुद्राः और दालाः (हच० ४, ३२६)

है, दाक्षि० में **दक्खिणत्ता = दाक्षिणात्याः** (मृच्छ० १०३, ५), आव० में **वीसद्धा = विश्रब्धाः** है (मृच्छ० ९९, १६), अप० मे **घोडा = घोटाः** है (हेच० ४, ३३०, ४) । अ०माग० मे पद्य में भी कर्त्ताकारक बहुवचन पुलिंग के अन्त मे -आओ लगता है . **माणवाओ = मानवाः** (आयार० १, ३, ३, ३, सूय० ४१२), **तहागयाओ = तथागताः** (आयार० १, ३, ३, ३), **हयाओ = हताः** (सूय० २९५), **समत्थाओ = समर्थाः**, **ओमरत्ताओ = अवमरात्राः**, **सीसाओ = शिष्याः**, **आउजीवाओ = अजीवा·** (उत्तर० ७५५, ७६८, ७९४, १०४५), **विरत्ताउ** [टीका में यह रूप दिया गया है, पाठ में **विरत्ताओ** है] = **विरक्ताः** और **सागराउ = सागराः** हैं (उत्तर० ७५८, १०००) । अन्य उदाहरण उत्तरज्झयणसुत्त ६९८, ८९५, १०४८, १०४९, १०५३, १०५९; १०६१, १०६२, १०६४, १०६६, १०७१ और १०८४ में हैं। पिंगल १, २ (पेज ३, ५) की टीका में लक्ष्मीनाथ भट्ट ने व्याकरण का एक उद्धरण दिया है जिसमें महा० अथवा जै०महा० का रूप **वण्णाओ** और इसके साथ-साथ **वण्णा** आता है जो = **वर्णाः** हैं। भारतीय सस्करणों मे बहुवचन का यह रूप शौर० मे भी दिया गया है जो अशुद्ध है, उदाहरणार्थ धनञ्जयविजय ११, ७ और उसके बाद, १४, ९ और उसके बाद, चैतन्यचन्द्रोदय ४३, १८ और उसके बाद। शब्द के अन्त में **-आओ** जुडकर बननेवाले इस बहुवचन रूप का, जिसका स्त्रीलिंग का रूप नियमित रूप से **-आ** में समाप्त होता है (§ ३७६), वैदिक **-आसस्** से सम्बन्धित करना अर्थात् प्राकृत रूप **जणाओ** को वैदिक **जनासः** से निकालना भाषाशास्त्र की दृष्टि से असम्भव है। इसकी सीधी परम्परा में माग० सम्बोधन का रूप **भस्टालका** हो और अप० रूप **लोअहों** हैं (§ ३७२) । प्राकृत से यह स्पष्ट हो जाता है कि **आसस्**, **आस्+अस्** है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अ वर्ग के सज्ञाशब्दों के बहुवचन के रूप में व्यञ्जनात शब्दों का बहुवचन का समाप्तिसूचक रूप **अस्** भी आ गया है। इस प्रकार प्राकृत रूप **माणवाओ** दुहरा रूप है जैसा अपादानकारक एकवचन का रूप **वच्छत्तो** है (§ ३६५) । अप० में समाप्तिसूचक **-आ** बहुधा ह्रस्व रूप में देखा जाता है (§ ३६४) **गअ = गजाः**, **सुपुरिस = सुपुरुषाः**, **बहुअ = बहुकाः**, **काअर = कातराः** और **मेह = मेघा** (हेच० ४, ३३५, ३६७, ३७६, ३९५, ५, ४१९, १६) हैं। नपुसकलिंग के कर्ता- और कर्मकारक बहुवचन में सबसे अधिक काम में आनेवाला समाप्तिसूचक रूप -इं है जिससे पहले का अ दीर्घ कर दिया जाता है अर्थात् आ रूप ग्रहण कर लेता है। पद्य में इसके साथ-साथ और इसके स्थान में **-इँ** और **-इ** का प्रयोग भी किया जाता है (§ १८० और १८२) । ५,२६ में वररुचि बताता है कि महा० में केवल **-इ** का व्यवहार किया जाना चाहिए। १, ३ में चड० केवल **-णि** का प्रयोग ठीक समझता है। हेच० ३, २६ और सिंह० पन्ना १७ में **-इँ**, **-इं** और **-णि** तीनों रूपों का व्यवहार सिखाते हैं और क्रम० ३, २८ तथा मार्क० पन्ना ४३ में कहा गया है कि इस स्थान में केवल -इं काम में लाया जाना चाहिए। महा० में -इं, -इँ और -इ का प्रयोग मिलता है; हाल

णाई = मयनानि है (हाल ५) अंगाई वि पियाई रूप काम में आया है (हाल ४) रअणाइ च गरुअगुणसआइ = रत्नानीव गुरुकगुणशतानि (रावण २, १४) है। अ०माग० में सब से पुराने पाठों में –ई और उसके साथ साथ –णि पूर्व ह्रस्व रूप मान कर काम में आया गया है पाणाई भूयाई जीवाई सत्ताई = प्राणान् भूतानि जीवानि सत्त्वानि (आयार १, ६, ५, ४ ; १, ७, २, १ ; २, २, १,११), इसके साथ साथ पाणाणि वा भूयाणि वा जीवाणि वा सत्ताणि वा आया है (आयार० पेज ११२, २८) ; उदगपसूयाणि कन्दाणि वा मूलाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा भी पाया जाता है (आयार २, २, १, ५) । दोनों रूप बहुधा साथ साथ मिलते हैं : से ज्जाइं पुण कुलाइं जाणेज्जा तं जहा उग्गकुलाणि वा भोगकुलाणि वा राइण्णकुलाणि वा इसके पश्चात् कुलाणि वाले नौ समास और इस वाक्यांश में आये हैं (आयार० २ १, २, २) अगाराई खेयाई तं जहा आएसणाणि वा आयतणाणि वा देवकुलाणि वा—इसके बाद अन्त में –आणि वाले ग्यारह रूप हैं—तहप्पगाराई आएसणाणि वा भवणगिहाणि वा(आयार० २, २, २, ८) भी आया है अण्णाणि य बहूणि गब्भादाणजम्मण-म्-आइयाई कोउयाई (ओव [§ १०५]) भी मिलता है। एक ही श्लोक में खेत्ताई और खेत्ताणि रूप आये हैं = क्षेत्राणि (उत्तर २५, ६) है। शब्द के अन्त में –णि आनेवाला रूप जै०महा० [1] ही की भाँति ध्वनिबलहीन पूर्वाधार वर्णों से पहले चुना जाता है। अ० माग० में पद्य के भीतर शब्द की मात्राएं भी –ई, ईं और इ के चुनाव में निर्णायक हैं। इस तथ्य को ध्यान में रख कर उत्तरज्झयणसुत्त ६५७ पढ़ा जाना चाहिए। ताई तु खत्ताई सुपावयाई = तानि तु क्षेत्राणि सुपापकानि है ; दसवेयालियसुत्त ६१९, १७ में पुप्फाइ बीयाई विप्पइण्णाइं रूप आया है ६२१ १ में सत्तु चुण्णाई कोलचुण्णाई आयणे पढ़ा जाना चाहिए। जै०महा० में इनका आपस का सम्बन्ध वही है जो अ० माग० में है : पञ्च पगुणाई अट्टागसयाइं पक्खित्ताई = पञ्चैकानाम् अष्टकशतानि प्रक्षिप्तानि है ; निग्घिट्टाइं दाराई = निर्घृष्ट द्वाराणि द्वाराणि है (आव० एर्त्से० १७, १५ और १९) ताणि वि पञ्चसार सयाणि संथाढियाणि पव्वइयाणि = तान्य् अपि पञ्चचारशतानि संगाधितानि प्रव्रजितानि (आव० एर्त्से० १९, २) है ; बहूणि वासाणि (एर्त्से० १८, १) और इसके साथ-साथ बहूई वासाई = बहूनि वर्षाणि है (एर्त्से० १४ १७) । वाक्यांश जैसे वत्थाभरणाणि रायसन्तियाई (एर्त्से० ५२, ८) अवश्य ही पद्य में अशुद्ध हैं, भले ही ये दोनों रूप बहुधा बहुत निकट पास-पास में आते हों जैसे, पत्ताहिं आणदि । तीए रत्तणाणि भामियाणि (एर्त्से० ११,८) है। वर० १२ ११ ; क्रम० ५ ७८ ; मार्क० पन्ना ६९ के अनुसार शौर० में –ई के साथ साथ –णि भी काम में लाया जा सकता है। इस नियम के अनुसार गुडाणि = गुणानि (शकु० ९ ४) और भअवदिणिय्यिममाणि सत्ताणि = भगवन्निर्दिशानि सत्त्वानि रूप आये हैं (शकु० १५४, ७)। अधिकांश हस्तलिपियों

में येही रूप हैं। **वअणाणि = वचनानि** के स्थान में (विक्रमो० २७, २२) उत्तम हस्तलिपियो में **वअणाइं** लिखा पाया जाता है और इस प्रकार शौर० और माग० के सभी आलोचनापूर्ण पाठ केवल -इं[1] देते हैं। बोली में कर्त्ता- और कर्मकारक बहुवचन के अन्त मे भी **-आ** आता है। यह बहुधा ऐसे रूपों के साथ जिनके अन्त में-इं अथवा **-णि** आता हो : अ०माग० में **उदगपसूयाणि कन्दाणि वा मूलाणि वा तया पत्ता पुप्फा फला बीया** आया है (आयार० २, ३, ३, ९), **बहुसंभूया वणफला** भी है (आयार० २, ४, २, १३ और १४), **पाणा य तणा य पणगा य हरियाणि य** (कप्प० एस. (S) § ५५) भी पाया जाता है। उपर्युक्त दूसरे उदाहरण में **तया = *त्वचाः = त्वचः** हो सकता है (किन्तु ***तयाणि** की भी तुलना कीजिए, § ३५८)। तीसरे उदाहरण में **पाणा = प्राणाः** ने उसके बाद आनेवाले **तणा** शब्द पर अपना प्रभाव डाला होगा। अन्य स्थलों पर यह मानने की नाममात्र भी सम्भावना नहीं है : **माउयंगा = मात्रंगानि** (ठाणग० १८७), **ठाणा = स्थानानि** (ठाणग० १६३ और १६५), **पञ्च कुम्भकारावणसया = पञ्च-कुम्भकारावणशतानि** (उवास० § १८४) है , **नहा = नखानि, अहरोॅट्ठा** और **उत्तरोॅट्ठा = अधरोष्ठे** और **उत्तरोष्ठे** है (कप्प० एस (S) § ४३), **चत्तारि लक्खणा आलम्बना = चत्वारि लक्षणानि, आलम्बनानि** है (ओव० पेज ४२ और उसके बाद)। जै०महा० में **पञ्च सया पिण्डिया** (आव०एर्त्से० १७, १) आया है, किन्तु इसके साथ-साथ **पञ्च पञ्च सुवण्णसयाणि** भी मिलता है (आव० १६, ३०) , शौर० मे **मिधुणा** (मृच्छ० ७१, २२) और इसके साथ-साथ **मिधुणाइं** (मृच्छ० ७१, १४) भी पाया जाता है , **जाणवत्ता = यानपात्राणि** (मृच्छ० ७२, २३ और ७३, १) है , **विरइदा मए आसणा = विरचितानि मयासनानि** है (मृच्छ० १३६, ६)। इसके साथ साथ **आसणाइं** रूप भी देखने में आता है (मृच्छ० १३६, ३) और माग० में भी यही रूप आया है (मृच्छ० १३७, ३), **दुवे पिआ उअणदा = द्वे प्रिये उपनते** है (विक्रमो० १०, ३) और **अणुराअ-सूअआ अक्खरा = अनुरागसूचकानि अक्षराणि** है (विक्रमो० २६, २)। १, ३३ में हेमचन्द्र निम्नलिखित रूपों का उल्लेख करता है . **नअणा = नयनानि** ; **लोअणा = लोचनानि** , **वअणा = वचनानि** , **दुक्खा = दुःखानि** और **भाअणा = भाजनानि**। वह उक्त शब्दों में पुलिंग का रूप देखता है, जो सभव है। बहुसख्यक नपुसकलिंग के शब्द जो पुलिंग बन गये हैं, मेरे विचार से इस तथ्य का पता देते हैं कि जिस रूप के अंत में **-आ** आता है वह इससे मिलते जुलते वैदिक रूप के समान माना जाना चाहिए और इसके कारण ही इस लिंगपरिवर्तन का अवसर मिला है। अप० में समाप्तिसूचक अथवा अंतिम विभक्ति के रूप **-इं** और **-इँ** से पहले बहुधा ह्रस्व स्वर आता है . **अहिउलइँ = अहिकुलानि, लोअणइँ जाईसरइँ = लोचनानि जातिस्मरानि** , **मणोरहइँ = मनोरथाः** और **णिच्चिन्तइँ हरिणाइँ = निश्चिन्ताः हरिणा.** है (हेच० ४,३५३ , ३६५,१,४१४,४ , ४२२,२०)।

१. लास्सन का यही मत था, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३०७।

— २ बीसगोबेस्के पलेंसुंगन की भूमिका का पेज १६ § १६। अ माग में बारबार ऐसे उदाहरण मिलते हैं ; पै महा में मले ही मैंने अंत में -णि वाले रूप इतनी अधिक संख्या म उद्धृत किये हैं तो भी मैं इस नियम को प्रमाणित नहीं कर सकता। — ३ पिशल के कालिदासाए शाकुन्तलि रेसेन्सियोनिबुस पेज २९ और उसके बाद ; कू बाइ ८, १२१। लास्सन के इन्स्टिट्यूत्सिओनेस पेज १४१ और भूमिका के पेज ९ में प्यॅस्वॅस्सेल ने अशुद्ध मत दिया है।

§ ३६७ अ—पुलिंग के कर्मकारक बहुवचन में सभी प्राकृत बोलियों में विभक्ति का रूप -ए अंत में लगाया जाता है। यह रूप सर्वनाम की रूपावली से ले लिया गया है। महा० में घलणे = चरणौ, जीअअमे और गरुअअरे = जीवितमान् तथा गुरुकतरान् हैं दोसे = दोषान् है (गउड २४ ८८ ८८७) दोसगुणे = दोषगुणौ ; पाए = पादौ ; हत्थे = हस्तौ है (हाल ४८ १३० ६८) धरणिहरे = धरणिधरान् ; महिहरे = महीधरान् है सिण्णमहे अ गरुए तरंगप्पहरे = सिन्धदाश च गरुकास्तरंगप्रहारान् है (रावण ६, ८५ १ ; १, ५१); अ माग में समणमाहणअतिहिकिवणवणीमगे = श्रमणब्राह्मणा तिथिकृपणवनीपकान् (आयार २,२,२,८ और ९) ; साहिए मासे = साधिकान् मासान् (आयार १,८,१ २ ; ४६) है इमे एयारूवे उराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे = इमान् एतद्रूपान् उदारान् कल्याणान् शिवान् धन्यान् मांगल्यान् सश्रीकांश चतुर्दश महास्वप्नान् (कप्प § ३) है जै महा में भोए = भोगान् (आव एत्सें ८ २४ १६, १४ और २ ; द्वार ४९५ ७) है ते नगरलोए उक्कण्णसंभमुप्फुल्ललोयणे पलायमाणे = तान् नगरलोकान् उत्कर्णसंभ्रमोत्फुल्ललोचनान् पलायमानान् है (आव एत्सें १९, १) ते य समागए = तांश् च समागतान् (कालका २६१ २२) ; शौ और में सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्ध विसुद्ध सब्भावे समणे य -वीरियायारे = शेषान् पुनस् तीर्थकरान् सर्वसिद्धान् विशुद्ध सद्भावान् श्रमणान् च -वीर्याचारान् है (पव ३७९, २) ; विविधे विसए = विविधान् विषयान् है (पव ३८४४९) ; शौर में अविक्कन्तकुसुम समए वि रुक्खए = अतिक्रान्तकुसुमसमयान् अपि रुक्षकान् है (शकु १, २) पुरा पडिण्णादे दुवे वरे = पुरा प्रतिज्ञातौ द्वौ वरौ (महावीर० ६५, ५) है दारके = दारकौ (उत्तररा १११ ५) है माग में अवडे = अपरान् है (मृच्छ ११८, २४) ; णिअमाणे विहवे कुले कळत्ते = निजमाणान् विभवान् कुलानि कलत्राणि च (मुद्रा २६९,५) ; ढक्कि में सुम्मणिसुम्मे = शुम्भनिशुम्भौ है (मृच्छ १ ५, २२) । इस बात का स्पष्टीकरण कि शब्द के अंत में नपुंसकलिंग में भी यही -ए आता है, जैसे अ माग में बहवे जीवे = बहूनि जीवानि है (उवास § २१८) ; शौर में दुवे रुक्खसेअणके = द्वे रुक्षसेचनके (शकु २४,१) है अप में भुअणे = भुवनानि है (पिंगल १,६२ बी), § ३५८ और उसके बाद के § में वर्णित लिंगपरिवर्तन से होता है। बोली में पुलिंग का कर्म-

कारक बहुवचन के अंत में भी **–आ** पाया जाता है जो = **–आन्** है (§ ८९, सिंह० पन्ना ६) : महा० में **गुणा = गुणान्** और **णिद्धणा = निर्धनान्** है (शकु० ५७, ५ और ६), सिंहासन जो इडिशे स्टुडिएन १५, ३३५ मे छपी है [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए], वेताल०, पेज २१९ सख्या १७, सस्करण, जले (हेच० २, ७२ की टीका), **दोसा = दोषान्** है (शकु० ५७, ५ और ६), अ०माग० मे **रुक्खा महल्ला = रुक्षान् महतः** (आयार० २, ४, २, ११ और १२)[3], **पुरिसा** और **आसा = पुरुषान्** तथा **अश्वान्** हैं (नायाध० १३७८, १३८८ और उसके बाद), **बन्धवा = बान्धवान्** (उत्तर० ५७६) है, **संफासा = स्स्पर्शान्** है (आयार० १, ८, २, १४), **उवस्सया = उपाश्रयान्** [(कप्प० एस. (S) § ६०) है, छद की मात्राएं ठीक करने के लिए **गुण = गुणान्** हो जाता है (दस० ६३७, ४)। अप० म **–आ** और **–अ** वाले रूप काम मे लाये जाते है : **सरला सास = सरलाञ् श्वासान्**, **णिरक्खअ गअ नीरक्षकान् गजान्**, **देसडा = देसान्**, **सिद्धत्था = सिद्धार्थान्** है (हेच० ४, ३८७, १, ४१८, ३, ६, ४२३, ३), **मण्डा = मण्डकान्**, **विपक्खा = विपक्षाद्**, **कुञ्जरा = कुञ्जरान्** और **कवन्धा = कवन्धान्** है (पिंगल १, १०४ ए, ११७ ए, १२० ए, २, २३०)। अनुस्वार स्वर के साथ कर्मकारक का एकमात्र रूप माग० मे **दालम् = दारान्** अवशेष के रूप में रह गया है (प्रबोध० ४७, १ = ५०,५ पूना सस्करण = ५८, १६ मद्रासी सस्करण), यदि इसका पाठ शुद्ध होतो। बंबइया सस्करण १०२, ३ में व्याकरण और छन्द की मात्राओं के विरुद्ध **लिसिण दालाणं** रूप छपा है।

१ वेबर, हाल[1], पेज ५१, एस गौल्दश्मित्त, कू० त्सा० २५, ४३८।— २ यह पद इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए · **यइ मह्ध ल><किदुं णिअपाणे विहवे कुले कलत्ते अ** (हिल्लेब्रांदूत, त्सा० डे० डॉ० मौ० गे० ३९, १२८)। § ३६६ ब के अनुसार **कुले** और **कलत्ते** कर्मकारक एकवचन भी माने जा सकते है। —३ § ३५८ और ३६७ के अनुसार नपुंसकलिंग कर्मकारक बहुवचन भी माना जा सकता है।

§ ३६८—सभी प्राकृत भाषाओ में करणकारक बहुवचन के रूप के अंत में **–एहिं** आता है जो = वैदिक **एभिस्** के (§ ७२) जो पद्य मे **–एँहि** और **एहि** रूपों में बदल जाता है (§ १७८), अ०माग० और जै०महा० में गद्य में भी ध्वनिबलहीन पृष्ठाधार अव्ययों से पहले **–एहि** में परिवर्तित हो जाता है (§ ३५०) : महा० में **अमूललहुएहि सासेहिं = अमूललघुकैः श्वासैः** है (गउड० २३), **अवहत्थिअसब्भावेहि दक्खिणणभणिएहिं = अपहस्तितसद्भावैर् दाक्षिण्यभणितैः** (हाल (३५३) है, **कञ्चणसिलाअलेहिं छिण्णाअवमण्डलेहि = काञ्चनशिलातलैरिछन्नातपमण्डलैः** है (रावण० ९, ५५)। अधिक सभव यह लगता है कि ऐसे स्थलों पर **–हि** के स्थान मे **–हिँ** पढा जाना जाहिए (§ १७८, § ३७० की तुलना कीजिए)। अ०माग० में **तिलएहिं लउएहिं छत्तोवेहिं सिरीसेहिं सत्तवण्णेहिं**— इसके अनन्तर और १९ करणकारक एक के बाद एक लगातार आते हैं— = **तिलकैर**

छकुवेदाड्छध्रापीः शिरीषैः सप्तपर्णैः है (औस० § ६) सत्तेहिं तव्वेहिं तत्तिपहिं सम्मूपहिं अणिट्ठेहिं अकन्तेहिं अप्पियएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं = सधिम् ऽतास्यैस् (§ २८१) सत्यैः सभूतैर् अनिष्टैर् अकान्तैर् अप्रियैर् अमनोज्ञैर् ऽअमनापैर् व्याकरणैः है (उवास § २५९) जै०महा में मायन्द महुमयिन्देहिं = माकन्दमधुकरवृन्दैः है (कक्कुक शिलालेख १८) पत्थाभरणेहिं = पत्राभरणैः (भाय एत्सें २६, २७); तेहिं कुमारेहिं = तैः कुमारैः (भाव एर्से १ , ९); अ घोर० में विहवेहिं = विभवैः ; सहस्सेहिं = सहस्रैः हैं (पव ३८ , ६ और १२) मणपयकायएहिं = मनोवचःकायैः (कत्तिगे ४ ,३३२) है शौर में जणेहिं = जनैः (अवि० ५९८, ६ ; मृच्छ २५, १४), आदसंकेहिं वेवेहिं = आतशंकैर् देवैः है (शकु २१, ५) भमर संघयिहडिएहिं कुसुमेहिं = भ्रमरसंघविघटितैः कुसुमैः (विक्रमो २१, ९) माग में तत्तत्थेहिं = तत्रस्थैः है (वेणि ५६९, २) अत्तणकेलकेहिं पादेहिं = आत्मीयाभ्याम् पादाभ्यां है (मृच्छ० १३,९); मश्चयग्घणोवायेहिं = मत्स्यघनोपायैः है (शकु ११४, २) ढक्की में, पिप्पलीखेहिं पादेहिं = पिप्पलीयाभ्यां पादाभ्याम् है अप में लक्खेहिं = लक्षैः । सरहिं सरवरहिं, उज्जाणवणहिं, णियसत्तेहिं और सुअणएहिं = शरैः, सरोवरैः, उद्यानवनैः, नियतसर्वैः तथा सुजनैः (हेच ४, ३३५ ४२२, ११) हैं। अप में करणकारक के अन्त में बहुधा –अहिं लगाया जाता है : गुणहिँ = गुणैः ; पआरहिँ = प्रकारैः ; सव्वहिँ पच्छिमहिँ = सर्वैः पश्चिमैः हैं (हेच ४, ३३५ ; ३६७, ५; ४२ , १) ; सग्गहिँ = खड्गैः ; गअहिँ, तुरअहिँ और रहहिँ = गजैः, तुरगैः तथा रथैः (पिंगल १, ७ ; १४५ अ प.) हैं। इस विषय पर और अन्त में –एँहि और –इँहि लगानेवाले करणकारक के विषय में § १२८ देखिए।

§ ३६९—व्याकरणकारों ने अपादानकारक बहुवचन के जो बहुसंख्यक रूप दिये हैं उनमें से अप तक केवल एक रूप जिसके अन्त में –एहिंतो आता है, प्रमाणित किया जा सका है। यह रूप अप में बहुत अधिक आता है और स्वयं ही इस बात के प्रमाण पाये जाते हैं कि यह करणकारक बहुवचन प्रत्यय –तस् से निकला है जो अपादानकारक एकवचन की विभक्ति है जैसा –सुंतो वाला रूप अधिकरण बहुवचन तम् स निकला है : तिलहिंतो = तिलेभ्यः (सूय ५९४) ; मणुस्सेहिंतो या पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वाणुमंतरेहिंतो वा = मनुष्येभ्यो वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकेभ्यो वा गुविधर्वाकायिकेभ्यो वा है (अणंग ५८); नरएहिंतो या तिरिक्खजोणिएहिंतो या मणुस्सेहिंतो या देवेहिंतो वा भी आता है (अणंग २३६ विवाह १५२४ की तुलना कीजिए और यह रूप अन्य स्थलों पर भी बहुत मिलता है) ; मरिसेएहिंतो रायकुलेहिंतो = महद्भ्यः राजकुलेभ्यः (नायाध ' १२३) है ; कामपरियेहिंतो पव्वएहिंतो = कौलपृष्ठिकेभ्यः पर्वतेभ्यः (उवास § २८२ और २८३) है। एम स्थलों पर जैसे धरहिंतो वा गामामहितो कामपणाएहिंतो ; " गुरुपुएहिंतो पाहगुरुहिंतो कासियगास

हिंतो आदि-आदि में बहुवचन का वृहत् रूप माना जाना चाहिए। इसके साथ साथ अ०माग० और जै०महा० मे एक और अपादानकारक हैं जिसके अन्त में **-एहिं** लगता है = सस्कृत **एभ्यः** है। इसमे करणकारक और अपादानकारक एक में मिल गये है : अ०माग० में : **-नामधेज्जेहिं विमाणेहिं ओइण्णा = -नामधेयेभ्यो विमानेभ्यो' वतीर्णः** है (ओव० § ३७), **सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निग्गच्छन्ति = स्वकेभ्यः स्वकेभ्यो गृहेभ्यो निर्गच्छन्ति** है (कप्प० § ६६ , नायाध० १०४८ की तुलना कीजिए , विवाह० १८७ , ९५० , ९८३), **सएहिं सएहिं णगरेहिंतो णिग्गच्छन्ति = स्वकेभ्यः स्वकेभ्यो नगरेभ्यो निर्गच्छन्ति** (नायाध० ८२६) है, **गारत्थेहि य सव्वेहिं साहवो संजमुत्तरा = गृहस्थेभ्यश् च सर्वेभ्यः साधवः संयमोत्तराः** है (उत्तर० २०८), जै०महा० मे **झरेइ रोमकूवेहिं सेओ = क्षरति रोमकूपेभ्यः स्वेदः** है (एर्त्से० ४, २३ , याकोबी § ९५ की तुलना कीजिए)। § ३७६ की तुलना कीजिए। अप० में अपादानकारक के अन्त में **-अहुँ** आता है . **गिरिसिंगहुँ = गिरिशृंगेभ्यः, मुहहुँ = मुखेभ्यः** है (हेच० ४, ३३७ , ४२२, २०), **रुक्खहुँ = रुक्षेभ्यः** है (क्रम० ५, २९)। **-हुं** और **-हुँ** ध्वनि की दृष्टि से अपादानकारक द्विवचन के विभक्ति के रूप **-भ्याम्** पूर्णतया मिल्ता है। यह **-हुं** और **-हुँ** सतो का सक्षिप्त रूप है करके लास्सन का मत है (लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ४६३), किन्तु यह मत अशुद्ध है।

§ ३७०—सम्बन्धकारक वहुवचन के अन्त में सभी प्राकृत भाषाओं में **आणं** आता है = सस्कृत **-आनाम्** है। किन्तु महा० में अनुनासिकहीन रूप **-आण** का बहुत अधिक प्रचलन है। यह रूप अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० में भी पाया जाता है। अ०माग० में यह विशेष कर ध्वनिबलहीन पृष्ठाधार अव्ययों के पहले आता है (§ ३५०), पर कभी कभी अन्यत्र भी देखने में आता है जैसे, **गणाण मज्झे = गणानाम् मध्ये** (कप्प० § ६१ = ओव० § ४८, पेज ५५, १३) = नायाध० § ३५) है। महा० में जिन स्थलों पर दोनों रूप एक के बाद एक आते हों जैसे, **कुडिलाण पे`म्माणं = कुटिलानां प्रेमणाम्** (हाल १०) है , **मआण ओणिमिल्लच्छाणं = मृगानाम् अवनीमिलिताक्षाणाम्** (रावण० ९, ८७) है , **सज्जणाणं पम्हुसिअदसाण = सज्जनानां विस्मृतदशानाम्** (गउड० ९७१) में जैसे कि नपुसकलिंग के कर्त्ता— और कर्मकारक, करण— और अधिकरणकारक बहुवचन के इसी प्रकार के स्थलों पर, **-आण** के स्थान में **-आणॅ** पढा जाना चाहिए (§ १७८)। इसकी ओर रावण० से उद्धृत ऊपर के उदाहरण की तुकबन्दी भी निर्देश करती है। शौर० और माग० में पद्य को छोड सर्वत्र केवल **-आणं** रूप काम में आता है। ४, ३०० में हेच० ने बताया है कि माग० में सम्बन्धकारक बहुवचन का एक और रूप **-आहँ** भी चल्ता है। उसने शकुतला से जिस पद का उल्लेख उदाहरण में किया है वह किसी हस्तलिपि में नहीं पाया जाता है (§ १७८), स्वय ललितविग्रहराजनाटक में, जो हेच० के नियमों से सबसे अधिक मिल्ता है, अन्त में **-आणं** वाला सम्बन्धकारक है (५६५, १४ , ५६६, ३ , १० और ११)। इसके विपरीत अप० में अपादानकारक

बहुवचन व्यक्त करने के लिए शब्द के अन्त में –आईं और इसका ह्रस्व रूप –अइं सबसे अधिक काम में लाया जाता है। इसका सम्बन्ध सर्वनाम की विभक्ति –साम् से है : णिवहाईं = निवहानाम् ; सोक्खाईं = सौख्यानाम् ; तणाईं = तृणानाम् ; मुत्ताईं = मुक्तानाम् ; मत्ताईं मअगलाईं = मत्तानां मदकलानाम् ; सउणाईं = शकुनानाम् है (हेच ४, ३३२ ३३९ ; ३७ ४ ६ ४४५, ४) ; फंकड फणक्कहँ लोअणहँ = यत्कटाक्षयोर् लोचनयो है (वेताल पेज २१७ संख्या ११) महप्पमउहँ = महामठानाम् है (कालका २६१, ७) । पंड २ ५ के अनुसार इस कारक को व्यक्त करने के लिए कहीं-कहीं शब्द के अन्त में –ह और इसके साथ-साथ –णं भी आता है : वृक्षाहँ और इसके साथ-साथ वृक्षाणं तथा ताहँ और इसके साथ-साथ ताणं रूप चलते हैं [इन शब्दों और विभक्तियों के रूप कुमाउनी में तनन्, हमम्, घामतन् आदि काम में आते हैं । –हँ का यथेष्ठ प्रचार है किन्तु इससे दूसरे कारक का बोध होता है । —अनु] । पंड के शेष उदाहरण –आ, –अ और सर्वनाम की रूपावली हेमचन्द्र ४, ३ में दिये गये हैं, जो हेमचन्द्र ने महा के रूप बताये हैं।

§ ३७१—महा , अ माग और जै महा में अधिकरण बहुवचन के अन्त में –एसु = संस्कृत में –एषु बहुत अधिक पाया जाता है इसके साथ कभी-कभी एसुं काम में लाया जाता है जैसे, महा मे सचन्दलेसु आरोविअरोअणेसु (पाठ में सुं है § ३७) = सचन्दनेष्व् आरोपितरोचनेषु है (गउड २११) ; घणेसुं = घनेषु (हाल ७७) अ माग में नायाधम्मकहा § ६१ — ६१ में –सु से नाना रूपों का प्रयोग किया गया है । इस विषय पर हस्तलिपियों और कलकत्तिया संस्करण पेज १ ६ और उसके बाद सब्ज भापस में नहीं मिलते इसलिए सर्वत्र –सु पढ़ा जाना चाहिए । शौर के पाठों में आधिक रूप से –सु मिलता है (अक्लित ५५५ ११ और १२ ; मृच्छ १ २ २४ २८ २५, १ ३७ २३ ; ७ १ ; ७१ १७ १७, २२ १ २ आदि आदि मालवि १९, १२ १ , ६ ४१, ११ और २ ६७ १ ७५, १ ; विक्रमो ११, ६ ७१, १ और ६) और आधिक रूप में सुं आया है (विक्रमो २१, ११ ५२, १ और ५ तथा ७' शकु १, १२ ; २ , २ ; ५ ११ ५१, ५ ; ५३, ९ ; ६ , ८ ६४ २ ७२ १२ आदि-आदि ; यह बंगाली पाठों में मिलता है जब कि काश्मीरी, द्राविडी और देवनागरी पाठों में केवल –सु मिलता है) । भारतीय छपे संस्करणों में सबसे अधिक –सु मिलता है । माग में मृच्छकटिक १९, ६ में पाएशु रूप है किन्तु १२१ २ और २२ में पाऐशुं रूप दिया गया है । इनके साथ-साथ पद्य में १२१, २४ में वाखाणेशु और १२२, २१ में कोशेशु रूप मिलते हैं । वेणीसंहार ३५,१९ में कोशेशु रूप आया है। मुद्राराक्षस १९१, ९ में कम्मेशु = कर्मसु है और प्रबोधचन्द्रोदय ६२ ७ में पुलिशेशु पाया जाता है । करण– तथा सम्बन्धकारक की नकल पर जिनके अन्त में सदा –आल है गद्य में सुं और पद्य में सुं शुद्ध माना जाना चाहिए । अप में अपादान– और अधिकरण कारक अपस में एक हो गये हैं : सग्गहिँ = शतेषु । मग्गहिँ = मार्गेषु ।

गअहिँ = गतेषु, केसहिँ = केशेषु और अण्णहिँ तरुअरहिँ = अन्येषु तरुवरेषु है (हेच० ४, ३४५, ३४७; ३७०, ३, ४२२, ९)। हेमचद्र ४, ४२३, ३ में गवक्खेहिं के स्थान मे गवक्खहिँ पढा जाना चाहिए। ४४५, २ [मेरी प्रति में यह ४४५, १ है। —अनु०] में भी [डुंगरिहिं। —अनु०] के स्थान पर डुंगरहिँ होना चाहिए। अ०माग० में भी करणकारक का प्रयोग अधिकरण के अर्थ मे भी होता है जैसे, जगनिस्सिएहिँ भूएहिं तसनामेहि थावरेहिं च नो तेसिम् आरभे दण्डं है (उत्तर० २४८)। § ३७६ की तुलना कीजिए।

१ पिशल, डे कालिदासाए शाकुतलि रेसेन्सिओनिबुस, पेज १२० की तुलना कीजिए।

§ ३७२—प्राकृत भाषाओं मे सबोधनकारक कर्त्ताकारक के समान है। अ०माग० में अज्जो और अम्मयाओ शब्द भी सबोधनकारक के बहुवचन रूप में व्यवहृत होते हैं (§ ३६६ व)। माग० के सबधकारक बहुवचन के लिए क्रमदीश्वर ५, ९४ में बताया गया है (इस सबध मे लास्सन, इस्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३९३ की तुल्ना कीजिए)। इसके अत में —हु रूप भी आता है और मार्कडेय पन्ना ७५ में कहा गया है कि —हो आता है और मूल शब्द का —अ जो इस विभक्ति से पहले आता हो वह दीर्घ कर दिया जाता है : बम्हणाहु = ब्राह्मणाः (क्रम० ५, ९७) है। यही सबोधनकारक का रूप भस्टालकाहो में है, जो मृच्छकटिक १६५, १ और ५ मे आया है पर भश्टालकाहो छापा गया है। यह भस्टालकाहो पढा जाना चाहिए। यह अप० में भी साधारण रूप है जिसमे सबोधन बहुवचन के अत में —हों आता है किंतु मूल शब्द का अ दीर्घ नही किया जाता : तरुणहों = तरुणाः, लोअहों = लोकाः है (हेच० ४, ३४६, ३५०, २, ३६५, १)। अप० में सभी वर्गों के अत मे —हों लगाया जाता है : तरुणिहों = तरुण्यः (हेच० ३, ३४६) है, अग्गिहों = अग्नयः; महिलाहों = महिला· (क्रम० ५, २०), चउम्मुहहों = चतुर्मुखाः, हारिहों = हरयः और तरुहों = तरवः है (सिह० पन्ना ६८ और उसके बाद)। लास्सन ने इस्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३९९ में पहले ही ठीक पहचान कर ली थी कि माग० के रूप —आहु (—आहो) के भीतर वैदिक विभक्ति —आसस् छिपी है। चूकि उसने क्रमदीश्वर का मागधी का नियम भूल से कर्त्ताकारक बहुवचन पर लगा दिया, इस कारण उसने पेज ४६३ में अप० रूप को मागधी से अलग कर दिया और हो सम्बोधन का रूप हो ढूँढ लिया जैसा लोग अबतक मृच्छकटिक १६५, १ और ५ के विषय में कर रहे हैं। अप० में —अ वर्ग के अन्त में आनेवाली विभक्ति को शेष सभी स्वरों के वर्गों में ले लिया गया है, जो अ०माग० सज्ञाए —उ वर्ग मे चली गयी हैं जैसे, घिंसु—, पाणु—, पिलंखु—, मन्थु— और मिलक्खु के लिए § १०५ देखिए।

§ ३७३—पल्लव— और विजयबुद्धवर्मन् के दानपत्रों में अ— वर्ग की रूपावली शौर० से हूबहू मिलती है। कुछ भिन्नता देखी जाती है तो सम्प्रदानकारक एकवचन में, जो शौर० में काम में नहीं लाया जाता। पल्लवदानपत्रों में यह दो रूपों में देखा

जाता है जिनमें से शब्द के अन्त में –आये जोड़नेवाला रूप अ॰माग॰ और जै॰महा॰ के सम्प्रदानकारक के समान है (§ ३६१ और ३६४) किन्तु दूसरे रूप के अन्त में –आ आता है जब कि शौर में सदा इस रूप के अन्त में –आदो लगाया जाता है (§ ३६५)।

(आ) आ–वर्ग के स्त्रीलिंग की रूपावली

§ ३७४—माला।

एकवचन

कर्ता—माला।

कर्म—मालं।

करण—महा॰ में मालाए, मालाइ, मालाअ, शेष प्राकृत बोलियों में केवल मालाए है, अप में मालएँ।

सम्प्रदान—मालाए केवल अ माग में।

अपादान—महा , अ माग और जै महा में मालाआ, मालाउ [मालाहिंतो, मालाइ, मालाअ, मालत्तो], शौर और माग में मालादो तथा मालाए, अप में मालहे ँ है।

सम्बन्ध और अधिकरण—महा में मालाए, मालाइ, मालाअ ; शेष प्राकृत बोलियों में केवल मालाए पाया जाता है अप में सम्बन्धकारक का रूप मालहे ँ और अधिकरण [मालहिं] है।

सम्बोधन—माले, माला।

बहुवचन

कर्ता, कर्म तथा संबोधन—महा , अ माग और जै महा में मालाओ, मालाउ, माला ; शौर और माग में मालाओ, माला है।

करण—महा , अ माग और जै महा में मालाहि, मालाहिँ, मालाहिं ; शौर और माग में मालाहिं है।

अपादान—महा और अ॰माग में मालाहिंतो [मालासुंतो, मालाओ, मालाउ], अप में [मालाहु] है।

संबंध—महा , अ माग और जै महा में मालाण, मालाणँ मालाणं ; शौर और माग॰ में मालाणं ; अप में [मालाहु] है।

अधिकरण—महा , अ माग और जै महा में मालासु, मालासुँ, मालासुं ; शौर और माग में मालासु, मालासुं है।

पल्लवदानपत्रों में कर्त्ताकारक एकवचन जैसे पट्टिका (७, ४८ और ५१) ; कड सि = कृतानि (७, ५१) और कर्मकारक एकवचन (अथवा बहुवचन) पाया जाता है। पिडा बाधा = पीडां बाधाम् (अथवा = पीडा बाधाः) है (६,४), साथ साथ कर्मकारक एकवचन सीमं = सीमाम् मिलता है।

§ ३७५—आ–वर्ग की रूपावली के विषय में वररुचि ५, १९—२३, चड० १, ३, ९, १०, हेच० ३, २७, २९, ३०, ४, ३४९–३५२, क्रम० ३, ७, २३, २५, २७, मार्क० पन्ना ४३, सिंह० पन्ना १४ और उसके बाद देखिए। अप० के कर्त्ताकारक एकवचन में –आ को ह्रस्व करने के विषय में § १०० देखिए। इस प्रकार से माग० रूप शेविद = सेविता है (मृच्छ० ११७, १)। इसमें करण–, सबध– और अधिकरणकारक आपस मे मिलकर एक हो गये हैं। व्याकरण-कारों के अनुसार आशिक रूप में अपादानकारक भी इनमे मिल गया है। इसका साधारण रूप मालाए = संस्कृत मालायै है। इसका तात्पर्य यह है कि यह = यजुर्वेद और ब्राह्मणों में काम में आनेवाला सबध और अपादानकारकों का साधारण रूप, जिसका प्रचलन अवेस्ता मे भी है[1]। पद्य में कभी कभी –आए और –आइ में समाप्त होनेवाले रूप एक दूसरे के पास पास पाये जाते हैं जैसे, पुच्छिआइ मुद्धाए = पृष्टायाः मुग्धायाः (हाल १५) है। महा० में छदों की मात्राए ठीक करने के लिए –आइ रूप की प्रधानता दिखाई देती है। यही रूप सर्वत्र जहा तहा पाठों में –आए पढा जाता हो, रखा जाना चाहिए। अधिकाश स्थलों पर शुद्ध पाठ –आइ पाया जाता है जैसे, गउड० ४४, ४६, ५६, ६५, ७१, २१२, २२२, २४३, २९०, ४५३, ४७४, ६८४, ८७०, ९३१ और ९५४ में। कुछ व्याकरणकार (हेच० ३, २९, क्रम० ३, २७, सिंह० पन्ना १४) –आअ में समाप्त होनेवाला एक और रूप बताते है। कुछ अन्य व्याकरणकार (वर० ५, २३, मार्क० पन्ना ४३) इसका निषेध करते हैं। ऐसे रूप बीच-बीच में महा० में पाये जाते हैं। इस प्रकार : जोॅण्हाअ = ज्योत्स्नया है, णेवच्छकलाअ = नेपथ्यकलया, हेलाअ = हेलया, हरिद्दाअ = हरिद्राया और चंगिमाअ = चंगिमत्वेन (कर्पूर० बबइया सस्करण ३१, १, ८६, ४, ५३, ९, ५५, २, ७१, ४, ७९, १२) है। कोनो ने इनके स्थान में यह पाठ पढा है : जोॅण्हाइ, णेवच्छकलाइ, हेलाइ, हलिद्दीअ और चंगिमाइ (२९, १, ८६, ९, ५१, २, ५२, ४, ६९, ३, ७८, ९) है। कुछ हस्तलिपियों में कभी-कभी अत में –आअ लगानेवाला रूप भी मिलता है। चूकि गउडवहो, हाल और रावणवहो यों –आअ से परिचित नहीं हैं इसलिए तिअडाय = त्रिजटायाः (रावण० ११, १००) और णिसण्णाअ = निषण्णायाः रूपों को एस० गौल्दश्मित्त के मत के अनुसार 'पडितों का पाठ' न मानना चाहिए परतु –आइ के स्थान में अशुद्ध रूप समझना चाहिए जैसा चंड ने किया है। यह –आअ रूप सस्कृत के अपादान– और सबधकारक की विभक्ति –आयाः से निकली है जिस कारण जोॅण्हाअ = ज्योत्स्नायाः है और जिसका पूर्णतया मिलता जुलता रूप *जोॅण्हाआ, वररुचि ५, २३, हेमचन्द्र ३,३०, सिंहराज० पन्ना १४ में निषिद्ध है। अप० में –आए का ह्रस्व रूप –आएँ हो गया है णिद्दए = निद्रया, चन्दिमएँ = चन्द्रिमया, उड्डावन्तिअएँ = उड्डापयन्त्या और मज्जिट्ठएँ = मज्जिष्ठया हैं (हेच० ४, ३३०, २, ३४९, ३५२, ४३८, २)। — अ०माग० में शब्द के अंत में –आए लगाकर बननेवाले सप्रदानकारक के विषय मे § ३६१ और ३६४ देखिए।

व्याकरणकारों ने अपादानकारक एकवचन के जो-जो रूप दिये हैं उनमें से मैं केवल –आओ में समाप्त होनेवाले तथा शौर० और माग में –आदो वाले रूपों के प्रमाण बहुधा पाता हूं : अ०माग में पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहं अंसि दाहिणाओ वा दिसाओ पच्चत्थिमाओ उत्तराओ उड्ढाओ = *पुरस्तिमातो या दिश आगतो ऽहम् अस्मि दक्षिणातो वा दिशः *प्रत्यस्तिमातः उत्तरातः ऊर्ध्वातः है (आयार १, १, १, २) जिब्भाओ = जिह्वातः है (आयार पेज १३७,१) ; सीयाओ = शिविकातः है (नायाध ८७ १ ९७; ११८९ ११५४ १४९७) छायाओ = छायातः है (सूय ६११) ; भद्दपसालाओ = भद्रनशालातः है (कप्प § ६ ; ओव० § ४८) ; मायाओ = मायातः (सूय ६५४ ओव § १२३) ; सुण्णाओ = सूनातः हैं (निरया० § १०) है शौर में सुसुम्भादो = सुसुक्षातः दक्खिणादो और वामादो = दक्षिणातः और वामातः तथा पदो छिकोदा = प्रदोछिकातः हैं (मृच्छ २, २१ ; ९, ९ १६२ २३) माग में रच्छादो = रथ्यातः (मृच्छ १५८, ११) है। शब्द के अन्त में –आए लगा कर बननेवाला अपादानकारक (चंड० १, ९ ; हेच ३, २९ सिंहराज पन्ना १४) ; शौर और माग में पाया जाता है : शौर में इमाए मअतण्हिआए = अस्याः मृगतृष्णिकायाः (विक्रमो १७,१), जो बौं ल्लें नसेन के मत के अनुसार करणकारक नहीं माना जा सकता ; माग में रां च्छाए (पाठ में सॅ च्छाए है) = रथ्यायाः है (वेणी० ३४९, १९) । —मालसा रूप हेच ३, १२४ से निकाला जा सकता है और त्रिविक्रम २, २,३४ में स्पष्ट ही सिखाया गया है। यह रूप पुलिंग और नपुंसकलिंग की नकल पर बनाया गया है (§ ३६५)। अप में अपादानकारक एकवचन, संबन्धकारक के साथ घुलमिल कर एक हो गया है। समाप्ति में आनेवाला –हे सर्वनाम के अन्त के रूप –स्याः समान है, इसलिए तहें धणहें (हेच ४, ३५) = ठीक तस्याः धन्यस्याः के तस्या धन्यायाः है। हेच ने ४, ३५ में पालहें को अपादानकारक जैसा माना है। इस दृष्टि से विसमथण को बहुव्रीहि समास मानना पड़ेगा [मेरी प्रति में यह पद इस प्रकार है : पालहे (उच्चारण हें होना चाहिए) आया विसम थण । —अनु] = उस बाला स्त्री के सामने जिसके स्तन भयंकर हैं है। इसी कविता में निम्नलिखित संबन्धकारक रूप हैं : तुच्छमज्झहें अभिरहें तुच्छअरहासहें भअहंगितहें, पम्महनिवासहें और मुद्धहें = तुच्छमध्यायाः, अहरातरीज्ञायाः, तुच्छतरहासायाः, असमसमानायाः, मन्मथ निवासायाः तथा मुग्धायाः है (हेच ४, ३५) ; तिसहें सागायाः ; मुणालिअहें = मृणालिकायाः (हेच ४,३ ९७ ; ४४४) है। —अधिकरणकारक के उदाहरण निम्नलिखित हैं महा में दुक्खदुक्खराए पअवीए = दुःखोत्तरायां पदव्याम् है ; गामरच्छाए = ग्रामरथ्यायाम् (हाल १ ७ और ४२१) है ; अ माग में सुदम्माए सभाए = सुधर्मायां सभायां है (कप्प § १४ और बहुधा) ; अ माग , जै महा अ चम्पाए = चम्पायां (ओव ३ २ और ११ ; एत्सें २४,२५) ;

जै०महा० में **सयलाए नयरीए = सकलायां नगर्याम्** (द्वार० ४९७, २१) है ; **इक्किक्काए मेहलाए = एकैकस्यां मेखलायाम्** (तीर्थ० ५, ११), शौर० मे **सुसमिद्धाए = सुसमृद्धायाम्** , **एदाएपदोसवेलाए = एतस्यां प्रदोपवेलायाम्** है , **रुक्खवाडिआए = रक्षवाटिकायाम्** (मृच्छ० ४, २० , ९, १० , ७३, ६ और ७), माग० मे **अन्धआलपूलिदाए णासिआए = अन्धकारपूरितायां नासिकायां** है , **पदोलिआए = प्रतोलिकायाम्** है तथा **सुवण्णचोलिआए = सुवर्णचोरिकायाम्** (मृच्छ० १४, २२ ; १६३,१६ , १६५,२) है। अ०माग० मे **गिरिगुहंसि** जो **गिरिगुहाए** के स्थान मे आया है = **गिरिगुहायाम्** है (आयार० १, ७, २,१)। यह इसके पास में ही आये हुए पुलिग और नपुसकलिंग के अन्त में **-सि** लगकर वननेवाले अधिकरणो से प्रभावित होकर वन गया है। § ३५५ , ३५८ , ३६४, ३६७, ३७९ , ३८६ मे ऐसे उदाहरणों की तुलना कीजिए। सम्बोधन कारक एकवचन के अन्त मे नियमानुसार सस्कृत के समान ही **-ए** आता है। इस रूप का प्रयोग केवल वर० ने ५, २८ मे वताया है, जव कि हेच० ३, ४१ , मार्क० पन्ना ४८ , सिंह० पन्ना १४ मे **-आ** में समाप्त होनेवाले कर्त्ताकारक के रूप को भी सम्बोधन के गाम मे लाने की अनुमति देते है। शब्द के अन्त मे **-आ** लगकर वननेवाले ऐसे सम्बोधन निम्नलिखित हैं महा० में **अत्ता** (= सास : मार्क० पन्ना ४४ , हाल ८ , ४६९ , ५४३ , ५५३ , ६५३ , ६७६ , ८११), महा० और अ०माग० मे **पिउच्छा = पितृष्वसः** है (हेच० , मार्क० , हाल , नायाध० १२९९ , १३४८), महा० मे **माउआ = मातृके** है (हाल), महा० मे **माउच्छा = मातृष्वसः** है (हेच० , मार्क० , हाल), अ०माग० में **जाया** (उत्तर० ४४२), **पुत्ता = पुत्रि** (नायाध० ६३३ और उसके बाद , ६४८ और उसके वाद , ६५५ , ६५८) और महा० तथा शौर० मे वार वार आनेवाला रूप **हला** (हेच० २, १९५ , हाल) है। यह सम्बोधन शौर० में जव व्यक्तिवाचक सज्ञा के साथ आता है तव अधिकाश स्थलों पर व्यक्ति के नाम के अन्त मे **-ए** लगता है जैसे, **हला सउन्तले** (शकु० ९, १०), **हला अणुसूये** (शकु० १०, १२), **हला णोमालिए** (ललित० ५६०, ९ , पाठ में **नोमालिए है**), **हला चित्तलेहे** (विक्रमो० ९, ३), **हला मअणिए** (रत्ना० २९३, २९), **हला णिउणिए** (रत्ना० २९७, २८) आदि-आदि रूप पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के साथ भी सम्बोधन का यह रूप आता है जिनके अन्त में अन्य स्वर हों जैसे, **हला उव्वसि** (विक्रमो० ७, १७) अथवा उन विशेषणों के साथ यह **हला** लगता है जो सज्ञा के स्थान में काम में लाये गये हों जैसे, **हला अपण्डिदे** (प्रिय० २२, ७), महा० और शौर० में यह बहुवचन में भी आता है (हाल ८९३ और ९०१ , शकु० १६, १० , ५८, ९ , ६, १३ , ७, १ , ११, १, कर्पूर० १०८, ५)। जै०महा० में **हले** रूप भी पाया जाता है (हेच० २, १९५ , एर्त्से०)। इस रूप को क्रमदीश्वर ५, १९ में अप० बताता है और अप० में **हलि** के उदाहरण मिलते हैं (हेच० ४, ३३२ ; ३५८, १)। शौर० रूप **अम्ब** (= माता . बुर्कहार्ड द्वारा सम्पादित शकु० २०१,

और १६), भज्जा = भार्याः है (उत्तर० ६६०), नवाहि तारिमाओ त्ति पाणिपे ज्जत्तिनो वए = नौभिस् *तारिमा इति पाणिपेया इति नो वदेत् (दस० ६२९, १) है, शौर० में पूइज्जन्ता देवदा = पूज्यमाना देवताः, गणिआ = गणिकाः (मृच्छ० ९, १ और १०) है, अगहिदत्था = अगृहीतार्थाः है (शकु० १२०, ११), अदिट्ठसुज्जपाआ···णागकण्णा विअ = अदृष्टसूर्यपादाः . नागकन्या इव है (मालवि० ५१, २१, इस वाक्यांश की इस नाटक में अन्यत्र तुलना कीजिए)। मार्कंडेय पन्ना ६९ मे शौर० रूपों के अन्त मे केवल -आओ लगाने की अनुमति दी गयी है और इस नियम के अनुसार इसे सर्वत्र सुधार लेना चाहिए। मृच्छकटिक २५, २ मे इस -आओ रूप की एक के बाद एक लगातार झडी-सी लग गयी है : ताओ पदीविआओ अवमाणिदणिद्धणकामु आविअ गणिआ णिस्सिणेहाओ दाणिं संवुत्ता = ताः 'प्रदीपिका अवमानितनिर्धनकामुका इव गणिका निःस्नेहा इदानीं संवृत्ताः। संवुत्ता रूप स्टेन्त्सलर ने ए. और बी. (A and B) हस्तलिपियों के अनुसार संवुत्ताओ रूप में शुद्ध कर दिया है, गणिआ के स्थान मे डी. और एच.(D and H) हस्तलिपियो में गौडबोले के संस्करण पेज ७२ मे गणिआओ दिया गया है, इस प्रकार कामुआ के स्थान पर भी कामुआओ पढा जाना चाहिए। अ०माग० में भी कभी-कभी दोनों रूप एक साथ रहते हैं . इन्दभूइपयोक्खाओ चो द्दससमणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया = इन्द्रभूतिप्रमुख्याश् चतुर्दशश्रमणसाहस्र्य *उत्कोशिताः श्रमणसंपदः है (कप्प० § १३६; § १३५ और उसके बाद की तुलना कीजिए)। आयारगसुत्त २, ४, २, ९, १५ और १६ की तुलना कीजिए। — करण, सम्बन्ध और अधिकरणकारकों के अन्त में आनेवाले रूपों के लिए § १७८ और ३५० लागू है, § ३६८, ३७० और ३७१ की तुलना कीजिए। — माग० में अम्बिकमादुकेहि = अम्बिकामातृकाभिः है। -आहिं के स्थान मे अधिकरणकारक में -एहिं आना चाहिए था (मृच्छ० १२२, ५) किन्तु शकार के मुह मे यह अशुद्धता समझ में आ जाती है, क्योंकि नाटककार ने यहाँ सोच-समझकर लिंगपरिवर्तन चुना है। इसके विपरीत रावणवहो ७, ६२ में अच्छरा वर्ग के अच्छरेहिं = अप्सरोभि में करणकारक नहीं है (§ ४१०)[1] जैसा पहले विक्रमो० ४०, ११ में भी पढा गया था[2], परन्तु पहला समुच्छरेहिं, सम+च्छरेहिं में बाँटना चाहिए जो = सम + प्सरोभिः बन जाता है (§ ३३८)[3]। — पुलिंग और नपुंसकलिंग के समान ही (§ ३६९) स्त्रीलिंग में भी अपादानकारक में शब्द के अन्त में -हिं लगकर बननेवाला रूप ही काम में लाया जाता है, किन्तु हेमचन्द्र ३, १२७ में इसका निषेध करता है महा० में धाराहिं = धाराभ्यः है (हाल १७०) और अधिकरणकारक का रूप भी है (§ ३७१) : महा० मे मेहलाहि (कर्पूर० १६, १) मेहलासु के अर्थ में आया है, जैसा इस शब्द का प्रयोग काव्यप्रकाश ७४, १ में हुआ है = मेखलासु है। अ०माग० में हत्थुत्तराहिं = हस्तोत्तरासु (आयार० २, १५, १, २, ५, ६, १७, २२, २५, कप्प०), गिम्हाइ (सूय० १६६) रूप भी आया है जिसका अर्थ गिम्हासु है (विवाह० ४६५) = *ग्रीष्मासु (§

१९८) है ; भणन्ताहिं ओसप्पिणीउस्सप्पिणीहिं विइक्कन्ताहिं = भगवन्तास्व अवसर्पिण्युत्सर्पिणीषु व्यतिक्रान्तासु है (कप्प § १९) विसाहाहिं = विशाखासु है (कप्प § १४९) और चित्ताहिं = चित्रासु है (आयार० १९३ कप्प० § १७१ और १७४) उत्तरासाढाहिं और आसाढाहिं रूप भी पाये जाते हैं (कप्प § २०५ और २११) छिआहि साहाहि = छिन्नासु शाखासु (उत्तर० ४२९ पाठ में छिन्नाहिं साहाहिं है) है। — अ माग० में निम्नलिखित अपादानकारक शब्द के अंत में –हिंतो जोड़कर बनाये गये हैं : अन्तोसालाहिंतो = अन्तःशालाभ्यः (उवास § १९५) और इत्थियाहिंतो = स्त्रीकाभ्यः (जीवा २६१ और २६५) है। अप० में शब्द के अंत में –हु = भ्यः लगा हुआ अपादानकारक भी है : वयंसिअहु = वयस्याभ्यः (हेच ४,३५१) है। हेमचंद्र के अनुसार यहाँ सम्बन्धसूचक –हु सम्बन्धकारक बहुवचन के लिए काम में लाया जाता है। § ३८१ की तुलना कीजिए। यहां भी अधिकरणकारक में (§ ३७१ की तुलना कीजिए) अंत में –सु लगा हुआ रूप सबसे अधिक काम में आता है। शौर० में धर्मुत्तम २९, ४ में विरलपादवच्छायासु = थमराईसुं = विरलपादपच्छायासु घनराजिषु है, यह बंगाल्य संस्करण में आया है, अन्य संस्करणों और पाठों में –आसु और –ईसु रूप पाये जाते हैं। — संबोधनकारक में शब्द के अंत में –ओ लगाकर बननेवाला रूप ही की प्रधानता है : शौर० में देवदाओ रूप आया है (बाल १६८, ७ अनर्घ १ ,१) ; दारिआओ = दारिकाः है (विक्रमो ८५,६) और भअवदीओ वाउष्वरक्खिदाओ = भगवत्यः क्षितायुरक्षिते है (मालती २८४, ११)। इत्था के विषय में § ३७१ देखिए। — अज्जू = आर्या के विषय में § १ ५ देखिए [कुमाउनी में अज्जू का इजू और इज्यू रूप हो गए हैं। —अनु]।

१ एस गौल्दश्मित्त द्वारा रावणवहो पेज २१७ नोटसंख्या ४ में जो प्रश्न उठाया गया है कि क्या इसको एक नपुंसकलिंग का रूप अच्छार भी मानना होगा ? इसका उत्तर साफ ही नकारात्मक है। — २ विक्रमोर्वशी पेज ३११ पर बौ`ल्लें नसेन की टीका ; होएफर डे प्राकृत डिआलेक्टो पेज १५ और उसके बाद की तुलना कीजिए ; लास्सन इंस्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३१६ और उसके बाद तथा § ७१ । — ३ पिशल ब्रा डे बो. भी गे ९१ ९६ और उसके बाद। — ४ यहाँ करणकारक उपस्थित है इसका प्रमाण निम्नलिखित उदाहरण हैं : हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगोवगएणं (आयार २ १५, ६ आर १० ; कप्प § २ की तुलना कीजिए) है। कप्पसुत्त § १५० ; १०७ ; २११ तथा इसपर वेबिसे उन्द ऑसङ्गसिबिर्दसस (स्लासुर्गे १८९३ ; मुण्डभिन १ ६) § ५२।

(२) –इ, –ई और –उ, –ऊ वर्ग

(अ) पुलिंग और नपुसकलिंग

§ ३७७—पुल्लिंग अग्गि = अग्नि।

एकवचन

कर्त्ता—अग्गी [अग्गिं]।

कर्म—अग्गिम्।

करण—अग्गिणा, अप० में अग्गिण और अग्गिं भी।

अपादान—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गीओ, अग्गीउ, अग्गिणो, अग्गिहिंतो [अग्गीहि, अग्गित्तो], जै०शौर० [शौर०माग०] में अग्गीदो, अग्गिहे॑।

सबंध—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गिणो, अग्गिस्स, [अग्गीओ], शौर० और माग० में अग्गिणो, अप० में [अग्गिहे॑]।

अधिकरण—अग्गिम्मि, अ०माग० में सबसे अधिक अग्गिंसि, अ०माग० और जै० महा० में अग्गिंमि भी, अप० में अग्गिहिँ।

संबोधन—अग्गि, अग्गी।

बहुवचन

कर्त्ता—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गिणो, अग्गी, अग्गीओ, अग्गओ, अग्गउ, शौर० में अग्गीओ, अग्गिणो।

कर्म—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गिणो, अग्गी, अग्गओ।

करण—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गीहि अग्गीहिँ, अग्गीहिं, शौर० और माग० में अग्गीहिं।

अपादान—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गीहिंतो [अग्गीसुंतो, अग्गित्तो, अग्गीओ]; अग्गिहुँ।

सम्बन्ध—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गीण, अग्गीणँ, अग्गीणं, शौर० और माग० में अग्गीणं, अप० में अग्गिहिँ, अग्गिहुँ।

अधिकरण—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गीसु, अग्गीसुँ, अग्गीसुं, शौ० और माग० में अग्गीसु, अग्गीसुं, अप० में अग्गिहिँ।

सम्बोधन—महा०, अ०माग० और जै०महा० में अग्गिणो, अग्गी, अप० में अग्गिहोँ।

नपुसकलिंग के रूप भी इसी प्रकार चलते हैं जैसे, दहि = दधि, केवल कर्त्ता- और कर्म- कारकों के एकवचन में महा०, अ०माग० और जै०महा० में दहिं, दहिँ और दहि रूप आते हैं, शौर० और माग० में दहिं और दहि रूप आते हैं, सम्बोधन में दहि है, कर्त्ता-कर्म- और सम्बोधनकारकों में के बहुवचन में दहीइं, दहीइँ (शौर० और माग० में ये रूप नहीं होते), दहीणि (शौर० और माग० में यह रूप नहीं आता) और दही (शौर० और माग० में यह रूप भी नहीं है) हैं। —पल्लवदानपत्र में कर्मकारक एकवचन नपुसकलिंग उदकादिं रूप मिलता है [६, २९), सम्बोधनकारक एकवचन पुलिंग में सत्तिस्स रूप मिलता है जो = शक्तेः है (६, १७), भट्टिस = भट्टेः भी आया है (६, १९) और

कर्मकारक बहुवचन पुंलिंग में वसुधाधिपतये = वसुधाधिपतीन् है (७, ४४) (स्टेनकोनो, एपिग्राफिका इंडिका २, ४८४ की तुलना कीजिए) ।

§ ३७८—पुंलिंग वाउ = वायु ।

एकवचन

कर्ता—वाऊ [वाउं] ।
कर्म—वाउं ।
करण—वाउणा ; अप० में वाउण और वाउं भी होते हैं ।
अपादान—महा०, अ० माग० और जै० महा० में वाऊओ, वाऊउ, [वाउणो, वाऊहिंतो और वाउत्तो] ; अप० में वाउहे है ।
सम्बन्ध—महा०, अ०माग० और जै० महा० में वाउणो और वाउस्स, [वाऊओ]; शौर० और माग० में वाउणो, माग० पद्य में वाउश्श भी [अप० में वाउहे] है ।
अधिकरण—वाउम्मि, अ०माग० में वाउंसि भी, अ०माग० और जै०महा० में वाउंमि भी ।
सम्बोधन—वाउ, वाऊ ।

बहुवचन

कर्ता—महा०, अ०माग० और जै० महा० में वाउणो, वाऊ, वाऊओ, वाअवो, वाअओ, वाअउ ; शौर० में वाउणो, वाअओ हैं ।
कर्म—महा०, अ० माग० और जै०महा० में वाउणो, वाऊ ; अ० माग० में वाअवो भी ।
करण—महा०, अ० माग० और जै० महा० में वाऊहि, वाऊहिँ, वाऊहिं ; शौर० और माग० में वाऊहिं है ।
अपादान—[वाऊहिंतो, वाऊसुंतो, वाउत्तो, वाऊओ] ; अ०माग० में वाऊहिं भी ; अप० में वाउहुं है ।
सम्बन्ध—महा०, अ० माग० और जै० महा० में वाउण, वाउणं, वाऊणं ; शौर० और माग० में वाऊणं ; अप० में वाउहं, वाउहुं हैं ।
अधिकरण—महा०, अ० माग० और जै० महा० में वाऊसु, वाऊसुँ, वाऊसुं ; शौर० और माग० में वाऊसु, वाऊसुं ; अप० में वाऊहिँ है ।
सम्बोधन—अ० माग० में वाअवो ; अप० में वाउहो है ।

नपुंसकलिंग की भी रूपावली इसी प्रकार की होती है जैसे, महु = मधु ; केवल कर्ता- और कर्मकारक एकवचन में महुं, महु और महू रूप होते हैं। शौर० और माग० में महुं और महु रूप होते हैं ; सम्बोधन में महु ; कर्ता- और कर्म- तथा सम्बोधनकारक बहुवचन में महूइं, महूइँ (शौर० और माग० में नहीं) महूणि (शौर० और माग० में नहीं) और महू (शौर० और माग० में नहीं) रूप होते हैं। — व्यञ्जनान्तरूपों में उ वर्ग नहीं पाया जाता ।

§ ३७९— -इ और -उ में समाप्त होनेवाले संज्ञाशब्दों की रूपावली के संबंध में वररुचि ५, १४—१८, २५—२७, ३०, चंड० १, ३ और ११—१४, हेमचंद्र ३, १६—२६, ४, ३४०, ३४१, ३४३—३४७, क्रमदीश्वर ३, ८, ११, १३, १५, १७—२२, २४, २८, २९, ५, २०, २५—२७, ३३—३५, ३७, मार्कंडेय पन्ना ४२—४४, सिंहराजगणिन् पन्ना ९—१२ देखिए। हेमचंद्र ३, १९ के अनुसार कुछ व्याकरणकार बताते हैं कि कर्त्ताकारक एकवचन में दीर्घ रूप के साथ-साथ [जैसे **अग्गी, णिही, वाऊ** और **विहू**। —अनु०] उतनी ही मात्रा का अनुनासिक रूप भी आता है (§ ७४) : **अग्गिं, णिहिं, वाउं** और **विहुं**। त्रिविक्रम० और सिंहराजगणिन् ने इस रूप का उल्लेख नहीं किया है, पण्हावागरणाइ ४४८ में **सुसाहुं** का नपुंसकलिंग मानकर संपादन किया गया है जो अशुद्ध रूप है और **सुसाहू** के स्थान में रखा गया है, क्योंकि उक्त शब्द **सुइसी** और **सुमुणी** के साथ ही आया है जो = **स्वृषिः** और **सुमुनिः** है। -ई और -ऊ में समाप्त होनेवाले कर्त्ताकारक के विषय में § ७२ देखिए। सखि का कर्त्ताकारक एकवचन जै०महा० में सही पाया जाता है (कक्कुक शिलालेख १४)। नपुंसकलिंग कर्त्ताकारक में अननुनासिक वाले रूप की प्रधानता है और कर्मकारक में अनुनासिकयुक्त की, किंतु अ०माग० में कर्मकारक का रूप **तउ = त्रपु** (सूय० २८२) छंद की मात्रा का हिसाब बैठाने पर निश्चित है, यहां पर संभवतः **तउँ** पढ़ा जाना चाहिए। अ०माग० और शौर० में कर्त्ताकारक में **दहिं** रूप आया है (ठाणंग० २३०, मृच्छ० ३,१२, [**दहीं** पाठ के स्थान पर **दहिं** पढ़ा जाना चाहिए]), किंतु अ०माग० में **दहिं** भी पाया जाता है (ठाणंग० ५१४), अ०माग० और शौर० में **वत्थु = वस्तु** है (उत्तर० १७२, ललित० ५१६, १२), शौर० में **णअणमहु = नयनमधु** है (मालवि० २२, ३)। अ०माग० रूप **अट्ठी** और **दही** के विषय में § ३५८ देखिए। कर्मकारक रूप है : अ०माग० और शौर० में **अच्छिं** (आयार० १, १, २, ५, शकु० ३१, १३) मिलता है, **अट्ठिं = अस्थि** है (सूय० ५९४), अ०माग० में **दहिं** रूप आया है (आयार० २, १, ४, ५, ओव० § ७३, कप्प० एस. (S) § १७, अ०माग० और शौर० में **महुम्** रूप देखने में आता है (आयार० २, १, ४, ५, ८, ८, ओव० § ७३, कप्प० एस. (S) § १७, शकु० ८१, ८, [**महु** का कुमाउनी में **मउ** और **मौ** रूप हैं। **मौ** रूप उत्तरप्रदेश की सरकार ने मान्य कर लिया है। बंगला में भी **मौचाक** आदि में **मौ** वर्तमान है। यह रूप प्राचीन आर्य है। फारसी में **मै** रूप में इसने अपना राज आज तक जमा रखा है जो उर्दू में भी एकछत्र राज जमाये बैठा है। इसके कोमल रूप **मेओल** आदि फ्रेंच और इटालियन भाषाओं में मिलते हैं। अंगरेजी में **मधु** का रूप भाषा के स्वभाव और स्वरूप के अनुकूल **मीड** बन गया। जर्मन भाषा में यही हिंगल-सा रूप है। पाठक जानते ही हैं कि **मधु** का एक रूप **मद्** भी है। अंगरेजी आदि में इसके रूपों का प्रचार है। इसका **महु** से कुछ संबंध नहीं। प्राचीन हिंदी में **मधुमक्खी** के लिए **मुमाखी** रूप पाया जाता है। इसका **मु- = महु** है। —अनु०])। जै० शौर० में **वत्थुं** रूप आया है (कत्तिगे० ४००, ३३५)। संस्कृत में बहुत अधिक

रूप में मिलते हैं : महा० में **उअहीउ = उदके:** है (गउड० ५६ और ४७०), अ०माग० में **कुच्छीओ = कुक्षे:** (कप्प० § २१ और ३२), **दहीओ = दध्नः** है (सूय० ५९४, पाठ में **दहिओ** है), जै०शौर० में **हिंसाईदो = हिंसादे** है (पव० ३८६, ४, पाठ में **हिंसातीदो** है), जै०माग० में **कम्मग्गिणो = कर्माग्नेः** (आव०एर्त्से० १९, १६), अ०माग० में **इक्खूओ = इक्षोः** (सूय० ५९४, पाठ में **इक्खूतो** है), जै०महा० में **सूरीहिंतो** रूप आया है (कालक, अध्याय दो ५०९, ४), अप० में **गिरिहे** रूप पाया जाता है (हेच० ४, ३४१, १)। — महा०, अ०माग० और जै०महा० मे सम्बन्धकारक के **अग्गिणो** की भाँति के रूप होते हैं अर्थात् ये वे रूप है जो सस्कृत में नपुसकलिंग में आते हैं किन्तु स्पष्ट ही **-नान्त** वर्ग (अर्थात् वे नपुंसक शब्द है जिनके अन्त में **न्** आता है) से ले लिये गये हैं जो **-नान्त** वर्ग **-इ** -वर्ग से घुलमिल गया है (§ ४०५) और **अग्गिस्स** रूप है जो अ- वर्ग की समानता पर बना लिया गया है। ये दोनों रूप एक दूसरे के पास-पास में काम मे लाये जाते हैं, उ- वर्ग की भी यही दशा है, जै०शौर० में भी : महा० में **गिरिणो** रूप मिलता है (गउड० १४१) तथा महा० और अ०माग० में **गिरिस्स** भी चलता है (गउड० ५१०, सूय० ३१२), महा० में **उअहिणो** आया है (रावण० ५, १०) और **उअहिस्स** भी पाया जाता है (रावण० ४, ४३ और ६०)। ये दोनों रूप = **उदधेः** हैं, महा० मे **रविणो** आया है (गउड० ५० और २७२, हाल २८४) और इसके साथ साथ **रविस्स** तथा **रइस्स** रूप भी पाये जाते हैं (रावण० ४, ३०, कर्पूर० २५, १३) = **रवेः** हैं, महा० मे **पइणो** (हाल ५४, ५५ और २९७) आया है और **पइस्स** भी काम में आता है (हाल ३८ और २००) = **पत्युः** हैं, महा० में **पसुवइणो = पशुपतेः** (हाल १) और **पआवइणो = प्रजापतेः** है (हाल ९६९), **भुअंगवइणो = भुजंगपतेः** (गउड० १५५), **नरवइणो = नरपते.** है (गउड० ४१३) [यह **-णो** लगा कर सबधवाचक रूप गुजराती भाषा में वर्तमान है। गुजराती में रणछोडलाल का भाई = रणछोडलाल्नो भाई है। प्रयागजीभाई की मा = प्रयागजीभाईनी बा रूप चलते हैं। —अनु०], किंतु अ०माग० और जै०महा० में **गाहावइस्स = गृहपतेः** (सूय० ८४६, विवाह० ४३५ और उसके बाद, १२०७ और उसके बाद, उवास० § ४, ६, ८, ११, कप्प० § १२०, आव०एर्त्से० ७, ७, अ०माग० में **मुणिस्स = मुनेः** (आयार० २, १६, ५, सूय० १३२), **इसिस्स = ऋषेः** (उत्तर० ३६३, निरया० ५१), **रायरिसिस्स = राजर्षेः** (विवाह० ९१५ और उसके बाद, नायाध० ६०० ; ६०५, ६११, ६१३), **सारहिस्स = सारथेः** (उत्तर० ६६८), **अन्धगवण्हिस्स** (अत० ३) औ **अन्धगवण्हिणो** (उत्तर० ६७८, दस० ६१३, ३३) = **अन्धकवृष्णे**, **अग्गिस्स** है (विवाह० ९०९, दस०नि० ६५४, ६, निरया० ५०), जै०महा० मे **पञ्चालाहिवइणो = पञ्चालाधिपतेः** (एर्त्से० ८, ८), **हरिणो = हरेः** (आव०एर्त्से० ३६, ३०, ३७, ४९), **नाभिस्स = नाभेः** (आव० एर्त्से० ४८, १३ और ३३) है। — महा० में **पहुणो** (गउड० ८४७, १००६,

१०६५) और पहुस्स (हाल २४१) = प्रभोः है ; अ०माग० में भिक्खुणो (आयार० १, ५, ४, १ २, १६, ८ सूय० १११ और १४४ उत्तर २८४) और अ० माग० तथा जै० महा० में भिक्खुस्स रूप बहुत ही अधिक काम में आता है (आयार १ ७, ५, १ और उसके बाद ; पव० १८७, १९) ; अ० माग० में उसुस्स = इषोः (विवाह० ११८८) ; मच्चुस्स = मृत्योः (पण्हा ४ १) साहुस्स = साधोः (उत्तर ४१८ और ५७१) वत्थुस्स = वस्तुनः (पण्हा० ११८) है ; जै० महा० में धम्मुस्स = धन्वोः है (सगर ८, ५) ; महा० में विण्हुणो = विष्णोः (गउड० १६) सव्वंसुणो = सर्वांशोः (कर्पूर १५, ७) और भम्मुणो = भस्मुनः है (गउड० ११९६)। शौर० और माग० के गद्य में -स्स लगाकर बननेवाला संबंधकारक काम में नहीं लाया जाता : शौर० में रायसिणो = राजर्षेः (शकु० २१, ४ ५, १ ११ १ ; विक्रमो० ७, २ ; २२, १६ २१, १४ ३६, ८ ; ८, ४ ; उत्तररा० १०६,१ १७३,१ ; प्रसन्न ४६,१ अनर्घ ३११,११) विहिणो = विधेः है (विक्रमो० ५२,१८ मालती १६१,१) ; सहस्सरस्सिणो = सहस्ररश्मेः है (प्रबोध १४, १७ वेणी २५,६) ; पआवइणो = प्रजापतेः (रत्ना १०६, २ मालती ६ ६) उवरंभरिणो = उदरंभरेः है (जीवा ४१, १९) ; दासरहिणो = दाशरथेः (महावीर० ५२, १८ अनर्घ० १५७,१) गुरुणो = गुरोः है (शकु २२, ११ ; १९८, ६ विक्रमो ८३, १ अनर्घ २६७, १२) ; सुहमहुणो = सुखमधोः (शकु० १०८, १) मअम्मभीरुणो = मदनभीरोः है (शकु १२ ,, १६) ; पिअमअयाहुणो = प्रियमयवाहोः (रत्ना १२२, ११) ; सत्तुणो = शत्रोः है (वेणी ६२, १ ९५, १९ ; जीवा १ १) पहुणो = प्रभोः (प्रबोध १८, १ जीवा ९, १) इन्दुणो = इन्दोः है (जीवा० १९ १) ; महुणो = मधुनः (हास्या ४१,२१) है ; माग० में लाअशिणो = राजर्षेः (वेणी ३४, १) शत्तुणो = शत्रोः (शकु ११८, २) है। माग० पद्य में विदशाधगुरुश्श = विद्यागुरोः है (मृच्छ० ११,९)। दधि का संबंधकारक रूप महा० में दहिणो आया है (कर्पूर १५, १)। पल्लवदानपत्रों में इन रूपों के लिए § ३७७ देखिए। — जैसा -अ- वर्ग के लिए वैसा ही अन्य वर्गों के लिए भी अप० में संबंधकारक के अंत में वही विभक्ति मानी जानी चाहिए जो अपादानकारक के काम में आती है, इसलिए इस प्रकार के रूप बनेंगे जैसे गिरिहे, तरुहे आदि। — महा०, जै० महा० और जै० शौर० में अधिकरणकारक स्मि लगाकर बनाया जाता है और जै० महा० में इसके स्थान में ंमि का भी प्रयोग किया जाता है : महा० में पइम्मि = पत्यौ (हाल १२४ और ८४९) ; जलहिम्मि = जलधौ ; गिरिम्मि = गिरौ और असिम्मि = असौ है (गउड १४६ ; १६१ २२२) ; उअहिम्मि = उदधौ और जलणिहिम्मि = जलनिधौ है (रावण २, १९ ७, २ ; ७ और १२ ; ५, १) ; जै०महा० में गिरिम्मि (कक्कुक शिलालेख १७), विहिम्मि = विधौ और उयहिम्मि = उदधौ है (सगर ७, १ ; ९ १)। अ० माग० में -म्मि लगाकर बननेवाला रूप ही साधारणतया काम में आता है।

कुच्छिसि = कुक्षौ (आयार० २, १५, २ और उसके बाद, विवाह० १२७४; कप्प०), **पाणिंसि = पाणौ** (आयार० २, १, ११, ५, २, ७, १, ५, विवाह० १२७१, कप्प० एस. (S) २९) और **रासिंसि = राशौ** है (आयार० २, १, १,२)। इनके साथ-साथ अ०माग० में निम्नलिखित वाक्यांश भी पाया जाता है : **तंमि रायरिसिंमि नमिंमि अभिनिक्खमन्तमि = तस्मिन् राजर्षौ नमाव् अभिनिष्क्रामति** (उत्तर० २७९), **अच्चिंमि** और **अच्चिमालिमि** रूप मिलते हैं (विवाह० ४१७), **अगणिम्मि** भी पाया जाता है (दस ६२०, २४) और **सह-स्सरस्सिमि** तो बार बार आता है (§ ३६६ अ)। उ- वर्ग के भी इसी भाँति के रूप होते हैं : महा० मे **पहुम्मि = प्रभौ** (गउड० २१०) और **सेउम्मि = सेतौ** है (रावण० ८, ९३), जै०महा० मे **मेरुमि** रूप आया है (तीर्थ० ५, ३), जै० शौर० में **साहुम्मि = साधौ** है (कत्तिगे० ३९९, ३१५, हस्तलिपि में **साहम्मि** है), अ०माग० में **लेळंसि = लेष्टौ** है (आयार० २, ५, १, २१), **बाहुंसि** और **उरुसि = बाहौ** और **उरौ** है (दस० ६१७, १२), **उउंमि = ऋतौ** (ठाणग० ५२७, पाठ में **उदुंमि**) है। **राओ = रात्रौ** की समानता पर (§ ३८६) अ०माग० में **घिंसु** रूप भी मिलता है जो ***घिंसो = ग्रंसे** के स्थान मे आया है (§ १०५, सूय० २४९, उत्तर० ५८ और १०९)। यह रूप पद्य मे पाया जाता है। माग० पद्य में **केदुम्मि = केतौ** रूप देखने मे आता है (मुद्रा० १७६, ४)। शौर० में **वत्थुणि = वस्तुनि** का प्रयोग मिलता है (बाल० १२२, ११, धूर्त० ९, १०)। मार्कंडेय पन्ना ६९ के अनुसार [९, ६३ छपा संस्करण। —अनु०] शौर० में शुद्ध रूप **अग्गिम्मि** और **वाउम्मि** है। — अप० में अधिकरणकारक की विभक्ति **—हिँ** है जो **अस्मिन्** के : **कलिहिँ = कलौ**, **अक्खिहिँ = अक्ष्णि**; **संधिहिँ = संधौ** (हेच० ४, ३४१, ३, ३५७, २, ४३०, ३) है, **आइहिँ = आदौ** (पिंगल १, ८५ और १४२) है। अप० में उ- वर्ग के उदाहरण मुझे नहीं मिल पाये है, हेमचन्द्र ४, ३४१ में बताता है कि इ- और उ- वर्गों के लिए अधिकरणकारक में **—हि** विभक्ति लगायी जानी चाहिए। — सम्बोधनकारक में ह्रस्व के साथ-साथ दीर्घ स्वर भी पाया जाता है (§ ७१) : महा० मे **गहवइ** (हाल २९७) किन्तु अ०माग० मे **गाहावई** (आयार० १, ७, २, २, ३, ३, ५, २, २,३,३,१६) = **गृहपते**, अ०माग० में **मुणी = मुने** (आयार० १, ६, १, ४, उत्तर० ७१३, ७१४, ७१९) है; अ०माग० और जै०महा० में **महामुणी** रूप पाया जाता है (सूय० ४१९, कालका० अध्याय दो ५०५, २५), अ०माग० में **महरिसी = महर्षे** (सूय० १८२), अ०माग० में **सुबुद्धी = सुबुद्धे** (नायाध० ९९७, ९९८, १००३) और अ०माग० में **जम्बू = जम्बो** है (उवास०, नायाध० और अन्य बहुत से स्थानों में)। वररुचि ५, २७ में दीर्घ स्वर का निषेध करता है, इस कारण अधिकांश स्थलों पर केवल ह्रस्व स्वर पाया जाता है. महा० में **खविअसव्वरि = क्षपितशर्वरीक** और **दिणवइ = दिनपते** है (हाल ६५५), महा० में **पवंगवइ = प्रवंगपते** है (रावण० ८, १९), जै० महा० में **पावविहि = पापविधे** (सगर ७, १५) और **सुरवइ = सुरपते** है

आया है (सूय० ६२८) , अ०माग० मे **रागद्दोसादयो = रागद्वेषादयः** है (उत्तर० ७०७) , जै०महा० मे **भवत्तादयो** रूप पाया जाता है (एर्से० १७, २८) , अ०माग० मे **रिसओ = ऋषयः** है (ओव० § ५६, पेज ६१, २९) , जै०महा० मे **महरिसओ** रूप आया है (एर्से० ३,१४), अ०माग० मे **–प्पभियओ = प्रभृतयः** है (ओव० § ३८, पेज ४९, ३२ , ७३ यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए , इस ग्रन्थ में अन्यत्र भी यह शब्द देखिए) , अ०माग० मे **जन्तवो** रूप आया है (पद्य में है ! आयार० १, ६, १, ४ , उत्तर० ७१२ , ७९८ , ७९९ , सूय० १०५), इसके साथ-साथ **जन्तुणो** रूप भी मिलता है (आयार० २, १६, १) , अ०माग० मे **साहवो = साधवः** है (उत्तर० २०८) । **वहु (= वहुत)** का कर्त्ताकारक वहुवचन का रूप अ०माग० मे सदा **वहवे** होता है (§ ३४५ , आयार० १, ८, ३, ३ , ५ और १० , २, १, ४, १ और ५ , २, ५, २, ७ , २, १५, ८ , सूय० ८५२ ; ९१६ , उत्तर० १५८ , १६९ , उवास० , नायाध० , कप्प० आदि आदि) । जै०महा० में भी यह रूप आया है (एर्से० १७, २८), किन्तु यह अशुद्ध है । इस स्थान में **वहवो** होना चाहिए (एर्से० ३८, २४) अथवा **वहू** होना चाहिए (एर्से० ३८, २१) । शौर० में जिन शब्दों के अन्त में **–ई** और **–ऊ** आता है और जो अपना कर्त्ताकारक वहुवचन अ–वर्ग की नकल या समानता पर बनाते हैं, काम में नहीं लाये जाते । इ–वर्ग के सज्ञाशब्द अपना कर्त्ताकारक बहुवचन स्त्रीलिंग शब्दोंकी भाँति बनाते है जो कुछ तो शब्द के अन्त मे **–ईओ** लगा कर बनाये जाते है जैसे, **इसीओ = ऋषयः**, **गिरीओ= गिरयः** है (शकु० ६१, ११ , ९८, ८ , ९९, १२ , १२६, १५) , **रिसीओ = ऋषय** (मृच्छ० ३२६, १४) है , और कुछ के अन्त मे **–णो** लगता है जैसे, **कइणो = कपयः** है (बाल० २३८, ५) , **महेसिणो = महर्षयः** है (बाल० २६८, १) , **इसिणो = ऋषयः** है (उन्मत्त० ३, ७) , **चिन्तामणिपहुदिणो = चिन्तामणिप्रभृतयः** है (जीवा० ९५, १) । शौर० मे उ–वर्ग में शब्द के अन्त में **–णो** लग कर बननेवाले रूपों के जैसे, **पंगुणो = पंगवः** (जीवा० ८७, १३) , **वालतरुणो = वालतरवः** (कर्पूर० ६२, ३) , **तरुणो** (कर्पूर० ६७, १) , **विन्दुणो** (मल्लिका० ८३, १५) के साथ-साथ **विन्दओ = विन्दवः** (मृच्छ० ७४, २१) के समान रूप भी पाये जाते हैं । **वंधू = वंधवः** (शकु० १०१, १३) शौर० रूप नहीं है प्रत्युत महा० है । माग० प्राकृत के साहित्य में से केवल एक शब्द **दीहगोमाओ** जो ***दीहगोमाअओ** से निकला है (§ १६५) = **दीर्घगोमायवः** एक पद में आया हुआ मिलता है (मृच्छ० १६८, २०) अन्यथा **इ–** और **उ–** वर्ग के उदाहरण नाम को भी नही मिलते ।

§ ३८१—वर० ने ५,१४ में बताया है कि कर्मकारक में **अग्गिणो** और **वाउणो** की भाँति के रूप ही काम में लाये जा सकते है । प्राकृत बोलियों में किन्तु वे सभी रूप इसके लिए काम में लाये जाते हैं जो कर्त्ताकारक के काम में आते हैं : महा० में **पइणो = पतीन्** है (हाल ७०५) , जै०महा० में **सूरिणो = सूरीन्** (कालका० २६७, ३८ , २७०, २) , अ०माग० में **महेसिणो = महर्षीन्** है (आयार० १,

भी है (रावण० ६, ६४ , ७८ और ९४) , अ०माग० में **किमीहिं = कृमिभिः** है (सूय० २७८) , जै०महा० मे **आईहिं = आदिभिः** है (आव०एर्त्से० ७, १२) , शौर० में **इसीहिं = ऋषिभिः** है (शकु० ७०, ६) , माग० मे **-प्पहुदीहिं = -प्रभृतिभिः** है (शकु० ११४,२) , महा० में **अच्छीहिं, अच्छीहिँ** और **अच्छीहि** रूप मिल्ते है (हाल ३३८ , ३४१ , ४५७ , ५०२) , शौर० में **अच्छीहिं** होता है (विक्रमो० ४८,१५ , रत्ना० ३११,१८) , माग० मे **अक्खीहिं** पाया जाता है (मृच्छ० १२०, १३ , १५२, २२) = **अक्षिभ्याम्** है , महा० में **रिऊहिं = रिपुभिः** (हाल ४७१ , गउड० ७१८) , महा० मे **सिसुहिँ = शिशुभिः** (गउड० १०४६) है , अ०माग० में **वग्गूहिं = वल्गुभिः** है (विवाह० ९४६ , नायाध० § २५ और ७९ , पेज ३०२ , ७३६ , ७५७ , ११०७ , राय० २६६ और उसके बाद , उत्तर० ३०० , ठाणग० ५२७ , ओव० § ५३ और १८१ , कप्प०) , अ०माग० में **ऊरूहिं = ऊरुभ्याम्** है (ठाणग० ४०१) , शौर० मे **गुरूहिं = गुरुभिः** (हास्या० ४०, १७) , शौर० मे **विन्दूहिं = विन्दुभिः** (वेणी० ६६, २१ , नागा० २४, १३ , कर्पूर० ७२, १) है । — महा० रूप **अच्छीहिंतो = अक्षिभ्याम्** (गउड० २२३) में अपादान-कारक वर्तमान है , जै०महा० रूप **उज्जाणाईहिंतो = उद्यानादिभ्यः** (द्वार० ४९८, २०) और अ०माग० रूप **कामिड्ढीहिंतो = कामर्द्धे**. मे भी अपादानकारक है (पूर्ण बहुवचन , कप्प० टी एच. (T H.) § ११) । जैसा अ- वर्ग में होता है वैसे ही इ- और उ- वर्ग में भी करणकारक का उपयोग अपादानकारक की भाति होता है . **सन्ति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था संजमुत्तरा = सन्त्य् एकेभ्यो भिक्षुभ्यो गृहस्थाः संयमोत्तराः** है (उत्तर० २०८) । — अप० में **तरुहुँ = तरुभ्यः** (हेच० ४,३४१) वास्तव में **तरुषु** है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह = अधिकरण के जिससे अपादानकारक घुलमिल गया है और जिसके साथ हेमचद्र ४, ३४० के अनुसार सबधकारक भी उसमें मिल गया है , फिर भी इस स्थान में अधिक उपयुक्त यह ज्ञात होता है कि इसे अधिकरणकारक माना जाय जब **विहुँ = द्वयोः** (हेच० ४, ३८३, १) सब बातों को ध्यान मे रखते हुए सबधकारक के रूप में आया है । — सबधकारक के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं . महा० में **कईणं = कवीनाम्** (हाल ८६) , **कईण = कपीनाम्** (रावण० ६, ८४) है , **गिरीण** रूप भी पाया जाता है (गउड० १३७ , ४४९ , रावण० ६, ८१) , अ०माग० में **धम्मसारहीणं = धर्मसारथीनाम्** है (ओव० § २० , कप्प० § १६) , छद की मात्राए ठीक बैठाने के लिए **इसीण = ऋषीणाम्** है (सूय० ३१७) और **इसिँणं** भी इसके स्थान में आया है (उत्तर० ३७५ और ३७७) , **उदहिण = उदधीनाम्** है (सूय० ३१६) और **वीहीणं = व्रीहीणाम्** है (विवाह० ४२१) , जै०शौर० में **जदीणं = यतीनाम्** (पव० ३८५, ६३) और **अईणं = आदीनाम्** है (कत्तिगे० ४०१, ३४०) , शौर० में **महीवदीणं = महीपतीनाम्** (ललित० ५५५, १४) और **अच्छीणं = अक्ष्णोः** है (विक्रमो० ४३, १५ , नागा० ११, ९) , महा० में **चक्खूणं = चक्षूणाम्** (हाल ७४०) , **रिऊण = रिपूणाम्** (गउड० १०६ , १६६ ; २३७) और **तरूण =**

तरूणाम् है (गउड १४) । अ माग में भिक्खूण = भिक्षूणाम् (आयार १, ७, ७, २) ; सव्वण्णूणं = सर्वज्ञानाम् (ओव § २) और मिलक्खूणं = म्लेच्छानाम् है (सूय ८१७) । माग० में बाहूण = बाहोः (यह पद्य में आया है ; मृच्छ० १२९, २) और पहूणं = प्रभूणाम् है (कंस ५ ४) । जै शौर में साहूणं = साधूनाम् है (पव ३७९, ४) । अप में संबंधकारक बनाने के लिए शब्द के अंत में -हुँ लगता है जो = -साम् के और यह चिह्न सर्वनामों का है : सउणिहुँ = शकुनीनाम् (हेच० ४, ३४) है । -हुँ के विषय में ऊपर लिखा गया है । — निम्नलिखित रूपों में अधिकरणकारक पाया जाता है ; उदाहरणार्थ, महा में गिरीसु रूप पाया जाता है (गउड ११८) ; महा और अ माग में अच्छीसु मिलता है (हाल १२२ आयार २, १, २, ५) ; शौर में अच्छीसु रूप है (मृच्छ ३, ५) । महा में रिऊसु = रिपुषु है (गउड २४१) ; जै शौर पद्य में भाविसु = भाविषु है (पव ३८१, ९९) । अ माग में ऊरूसु = ऊरुषु है (नायाध १४४) ; शौर में ऊरूसु = ऊर्वोः है (बाल २३८, ७ पाठ में ऊरुसु है) । अप का गुरुँ रूप *गुरुषु का समानांतर है (स्त्रीलिंग हेच ४, ३४) अप्प सिहिँ (हेच ४, ३४७) वास्तव में = शिखिः के है अर्थात् = अप— वग के करणकारक के (§ ३७१) । — नीचे दिये शब्दों में संबोधनकारक बहुवचन है : जै महा में सुयसगुणनिहिणो = सकलगुणनिधयः है (सगर ७, १२) ; अ माग में अत्तयो रूप है (सूय ११५ ४२४), भिक्खवो भी पाया जाता है (सूय १५७ ; पाठ में भिक्खुवो है) । जै महा गुरुओ (कालका अध्याय तीन, ५१३, २२) के स्थान में गुरुओ पढ़ा जाना चाहिए । अप के विषय में § ३७२ देखिए ।

§ ३८२—अ माग० में बहु के बहुवचन रूप जो पुंलिंग में काम में आये जाते हैं वे अधिकांश स्थलों पर स्त्रीलिंग में भी काम में आते हैं : बहवे पाणजाइ = बहुकाः प्राणजातयः (आयार १, ८, १ २) है ; बहवे साहम्मिणीओ = बह्व्यः *साधर्मिण्यः (आयार २, १ १, ११ ; २, २, १, २ ; २, ५, १, २ ; २ १ २) है ; बहवे देवा य देवीओ य वाक्यांश मिलता है (आयार २, १५ ८) ; बहवे खुज्जाखुज्जियाओ पाईओ = बहुकाः कुब्जाकुब्जिका धात्र्यः है (जीवा ४७१) ; बहूणं समणा णं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं साविया णं बहूणं देवाणं बहूणं देवीणं पाया जाता है (कप्प एस (S) § ६४ ; नायाध ४९८ ; ५१८ ; ६१९ ; ६५४ ; विवाह० २४२) ; बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य विण्णवणाहि सण्णवणाहि य = बहुभिर् *आख्यापनाभिश् च *प्रज्ञापनाभिश् च *विज्ञापनाभिर् च संज्ञापनाभिर् च (नायाध § १४३ ; पेज ५३९ और ८८९ ; उवास § २२२ ; निवाह ८१४) है ; बहूहिं खुज्जाहिं = बह्वीभिः कुब्जाभिः है (निरया० § ८ ; विवाह ७९१ नायाध § ११७ ; पेज ८१२ और ८१७ ; विवाग २२९) ; बहूसु पाईसु = बह्वीषु धात्रीषु (नायाध ११९) है ; बहूसु विज्जाहरीसु =

वहुरिपु विद्याधरीपु (नायाध० १२७५ , टीका में यह वाक्यांश आया है ; पाठ मे **वहूसु विज्ञासु** है) है। ओववाइयसुत्त § ८ की भी तुलना कीजिए। जो संस्कृत रूप रह गये हैं जैसे, **गिरिसु** और **वग्गुहिं** उनके विषय में § ९९ देखिए। महा० और अ०माग० मे अ– वर्ग मे जो उ– वर्ग की रूपावली आ गयी है उसके लिए § १०५ देखिए। अ०माग० में **सकहाओ = सक्थीनि** के विषय में § ३५८ देखिए।

§ ३८३—हेमचन्द्र ३, ४३ , मार्कंडेय पन्ना ४२ और ४३ तथा सिंहराजगणिन् पन्ना १२ के अनुसार –ई और –ऊ में समाप्त होनेवाले रूपावली बनने से पहले ह्रस्व हो जाते हैं और तब –इ और –उ के कर्त्ताकारक की भाँति उनके रूप किये जाते हैं। इसके अनुसार **गामणी = ग्रामणीः** कर्त्ताकारक है। इसका कर्मकारक **गामणिम्** ; करण **गामणिना** , सम्बन्ध **गामणिणो** और **गामणिस्स** तथा सम्बोधन **गामणि** होता है। कर्त्ताकारक **खलपू = खलपूः** है , कर्मकारक **खलपु** है , करण **खलपुणा** ; सम्बन्ध **खलपुणो** और सम्बोधन **खलपु** है (हेच० ३, २४ , ४२ , ४३ , १२४)। सिंहराजगणिन् ने कर्त्ताकारक बहुवचन के ये रूप भी दिये हैं , **खलवउ, खलवओ, खलवुणो** और **खलनू** । प्राप्त उदाहरण ये हैं महा० में **गामणी** और **गामणिणो = ग्रामणीः** तथा **ग्रामण्यः** है (हाल ४४९ , ६३३) , **गामणीणं** (रावण० ७, ६०) , जै०महा० में **असोगसिरी** और **असोगसिरिणो = अशोकश्री** तथा **अशोकश्रियः** है (आव०एर्त्से० ८, २ और ३२) , शौर० में **चन्दसिरिणो** और **चन्दसिरिणा = चन्द्रश्रियः** तथा **चन्द्रश्रिया** है (मुद्रा० ३९, ३ , ५६, ८, २२७, २ और ७) , शौर० मे **माहवसिरिणो = माधवश्रियः** है (माल्ती० २११, १), शौर० में **अग्गाणी = अग्रणीः** (मृच्छ० ४, २३ , ३२७, १) है। **सअंभुं** और **सअंभुणो = स्वयभुवम्** तथा **स्वयंभुवः** (गउड० १, ८१३) है , **सअंभुणो, सअंभुस्स** और **सअंभुणा** (मार्क० पन्ना ४२) का सम्बन्ध **स्वयंभू** अथवा **स्वयंभु** से हो सकता है।

(आ) स्त्रीलिंग

§ ३८४—प्राकृत भाषाओं में कहीं-कहीं इक्के-दुक्के और वे भी पद्यों में –इ तथा –उ वर्ग के स्त्रीलिंग के रूप पाये जाते हैं जैसे, **भूमिसु** और **सुत्तिसु** (§ ९९)। अन्यथा –इ और –उ वर्ग के स्त्रीलिंग जिनके साथ –ई और –ऊ वर्ग के शब्द भी मिल गये हैं, एक वर्णवालों और अनेक वर्णवालों में बाँटे गये हैं। इनकी रूपावली –**आ** मे समाप्त होनेवाले इन स्त्रीलिंग शब्दों से प्रायः पूर्ण रूप से मिलती है जिनका वर्णन § ३७४ और उसके बाद किया गया है और इनकी विभक्तियों के विषय में वही नियम चलते हैं जो वहाँ दिये गये हैं। विस्तार में ध्यान देने योग्य बातें नीचे दी गयी हैं।

§ ३८५— करण–, अपादान–, सम्बन्ध– और अधिकरण–कारक एकवचन के रूप व्याकरणकारों ने निम्नलिखित दिये हैं : **णई = नदी** के रूप ये हैं, **णईइ , णईए, णइअ, णईआ** (भाम० ५, २२ , क्रम० ३, २६ , मार्क० पन्ना ४३) , **रुइ = रुचि**

के, इईआ, इइइ, इइए रूप मिलते हैं (सिद्धहेम० पन्ना १९) बुद्धि के रूप हैं, बुद्धीअ बुद्धीआ, बुद्धीइ और बुद्धीए ; सही = सखी के रूप हैं, सहीअ, सहीआ, सहीइ और सहीए ; धेणु = धेनु के रूप हैं, धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ और धेणूए ; वहू = वधू के रूप हैं, वहूअ, वहूआ, वहूइ और वहूए (हेम० ३, २९) । उक्त रूपों में से –ईआ और –ऊआ के प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये जा सकते और –ईइ तथा –ऊइ के प्रमाण भी पाठों में नाममात्र के हैं : महा० में णईइ = नद्याः (गउड० १) है ; अ माग में महीइ = मह्याः (सूय० ११२) । इस ग्रन्थ में यह रूप बहुधा –ईए के स्थान में शुद्ध आया है जैसे, पउड़वहो १३१ ; ८६ और १२२ में है । गब्भिणीइ = गर्भिण्याः के स्थान में जो हाल १६६ में आया है, वबर ने इधर ठीक ही इसे गब्भिणीअ पढ़ा है । पाठों में जहाँ जहाँ –इए और –ऊए रूप आये हैं वहाँ-वहाँ छंद में ह्रस्व मात्रा की आवश्यकता है, जैसे, महीए, सिरीए, तरङ्गणीए पवित्तरङ्गणीए, णअरीए, पिअसिरीएँ, सच्छीएँ आदि आदि (गउड० १२२ ; २१२ २४७ ; २६८ ५ १ ११८) वहूए (हाल ८७४ ; ९८१) रूप –ईअ अथवा –ईइ और –ऊअ अथवा –ऊइ में समास होनेवाले माने जाने चाहिए जैसा कि वबर ने हाल ६९ संशोधन किया है और हाल ९४ में सगृहीत उदाहरणों की हस्तलिपियों ने भी पुष्टि की है । हाल ८६ में एक रूप हसंतीइ आया है और इसके साथ-साथ इसी ग्रन्थ में हसतीअ और हसंतीए रूप भी पाये जाते हैं (इण्डिश स्टुडीएन १६, ५१ की भी तुलना कीजिए) । वहूए के स्थान में (हाल ८७४ और ९८१) काव्यप्रकाश की शारदा लिपि में लिखी गयी हस्तलिपियों ८७४ की टीका में वहूआ और वहूअ रूप मिलती हैं तथा ९८१ की टीका में वहूइ और वहूइ रूप देती है अथात् यह रूप वहूअ अथवा वहूइ लिखा जाना चाहिए जैसा कि हाल ७८६ ; ८४ और ८७४ में भी होना चाहिए । हाल ८९० ६ ८ ; ६६९ और ६४८ में वहूअ रूप आया है । ग्रंथ में कहीं कहीं इन स्थानों में वहूए अथवा वहूए रूप भी मिलते हैं । § ३७५ की भी तुलना कीजिए । –इअ– और –उअ– वाले रूप भी ठीक जैसे इसा –ईइ– और –ऊइ– वाले रूपों की है, केवल पद्य तक सीमित हैं, किन्तु महा में –इ और –इ पदों में इस रूप की भरमार है यक । पम्हीअ = पद्माया ; वाहीअ = व्याध्या और सहिअगुणीअ = नलिपांगुल्या है (हाल ११८ ; १२१ ४९८) ; आहिआइआ = अभिजात्या ; राअसिरीअ = राजश्रिया ; दिट्ठीअ = दृष्ट्या ; ठिइअ = स्थित्या और जाणइअ = जानत्या (रावण १ ११ ; १३ और ४५ ; ४, ४१ ; ६, ६) ; सिप्पीअ = शुक्त्या ; मुट्ठीअ = मुष्ट्या और र्ईअ = रत्या (कर्पूर० २, ८ ; ११, ८ ; ४८, १४) है ; सम पद्यांश में कारीअ = कार्या ; घरिणीअ = गृहिण्या और गिरिणइ = गिरिनद्याः है (हाल ३ ; ११ ; १४ और १७); धणसिरीअ सिरीअ अ सलिलुग्गमाइ पाणीअ अ धमहवाः पियान च सलिलालापवाया षाडवान च है (रावण १ १७) ; धरणीअ = धरण्याः (रावण २ २, ७, ६०) है ; तारअगइअ = तारकगत्या और रईअ = रत्या (कर्पूर १, १ ;

५१, ३), अधिकरण मे **पाणउडीअ = प्राणकुट्याम्** है (हाल २२७, इसके अर्थ के लिए पाइय० १०५ तथा देशी० ६, ३८ की तुलना कीजिए, [देशी० ६, ३८ में **पाण** का अर्थ श्वपच है। इस दृष्टि से **पाणउडी** = श्वपचकुटी हुआ। —अनु०]); दाक्षि० में **णअरीअ = नगर्याम्** है (मृच्छ० १००, २)। अपादानकारक के उदाहरण नहीं पाये जाते। अप० को छोड अन्य प्राकृत बोलियो मे **–ईए** और **–ऊए** लग कर बननेवाला केवल एक ही रूप है जो एकमात्र चड० ने १, ९ मे बताया है किन्तु जो रूप अपादानकारक में कहीं न मिलने से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। करण कारक के रूप ये है : **भणतीए = भणन्त्या** (हाल १२३), अ०माग० मे **गईए** मिलता है, शौर० रूप **गदीए** है = **गत्या** (कप्प० § ५, शकु० ७२, ११), माग० में **शत्तीए = शक्त्या** (मृच्छ० २९, २०) है, पै० मे **भगवतीए = भगवत्या** है (हेच० ४, ३२३), सम्बन्धकारक में **लच्छीए = लक्ष्म्याः** (गउड० ६८) है, अ०माग० में **नागसिरीए माहणीए = नागश्रिया ब्राह्मण्याः** (नायाध० ११५१) है, शौर० में **रदणावलीए = रत्नावल्याः** है (मृच्छ० ८८, २१), माग० में **मज्जालीए = मार्जार्या है** (मृच्छ० १७, ७), अधिकरण में **पअवीए = पदव्याम्** है (हाल १०७), अ०माग० में **वाणारसीए णयरीए = वाराणस्या नगर्याम्** है (अत० ६३, निरया० ०३ और ४५, विवाग० १३६ ; १४८ और १४९, विवाह० २८४ और उसके बाद, नायाध० १५१६ और १५२८)। अ०माग० और जै०महा० में **अडवीए = अटव्याम्** है (नायाध० ११३७, एर्से० १, ४, १३, ३०, २१, २१), शौर० में **मसाणवीधीए = श्मशानवीथ्याम्** है (मृच्छ० ७२, ८), माग० मे **धलणीए = धरण्याम्** है (मृच्छ० १७०, १६)। यह रूप **–इएँ** ह्रस्व रूप मे अप० में भी पाया जाता है : करणकारक मे **मरगअकन्तिएँ = मरकत कान्त्या**, सम्बन्धकारक में **गणन्तिएँ = गणन्त्या** और **रदिएँ = रत्याः** है (हेच० ४, ३४९, ३३३ और ४४६)।

§ ३८६—करणकारक में क्रियाविशेषण रूप से प्रयुक्त शौर० रूप **दिट्ठिआ = दृष्ट्या** में (उदाहरणार्थ मृच्छ० ६८, २, ७४, ११, विक्रमो० १०, २०, २६, १५, ४९, ४ आदि आदि) **–आ** में समाप्त होनेवाला एक प्राचीन करणकारक सुरक्षित है। पिंगल के अप० में **–ई** में समाप्त होनेवाला एक करणकारक पाया जाता है : **कित्ती = कीर्त्या** (१, ६५ अ, २, ६६), **भत्ती = भक्त्या** है (२, ६७) और इसी प्रकार का शब्द **एअवीसत्ती** है जो **एअवीसत्ता** के स्थान में आया है (एस० गौल्दश्मित्त ने यह रूप **एअवीसत्ति** दिया है) = **एकविंशत्या** पढा जाना चाहिए (१, १४२)। — अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **–ईए** लग कर बननेवाले सम्प्रदानकारक के विषय में § ३६१ देखिए। — अपादानकारक में अप० को छोड जिसमें हेच० ४, ३५० के अनुसार सम्बन्धकारक के समान ही समाप्तिसूचक **हे** लगता है, **–ईओ** और **–ऊओ** चिह्न भी जोड़े जाते हैं तथा जै०शौर०, शौर० और माग० शब्दों के अत में **–ईदो** और **–ऊदो** भी आते हैं : अ०माग० में **अरइरईओ = अरतिरतेः** है (सूय० ६५४, ओव० § १२३), **कोसिओ = कोश्याः**

के, रईमा, रईद, रईए रूप मिलते हैं (विद्धशाल पन्ना १५); बुद्धि के रूप हैं, बुद्धीअ बुद्धीआ, बुद्धीइ और बुद्धीए; सही = सखी के रूप हैं, सहीअ, सहीआ, सहीइ और सहीए; धेणु = धेनु के रूप हैं, धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ और धेणूए; बहू = वधू के रूप है, बहूअ, बहूआ, बहूइ और बहूए (हेच ३, २९)। उक्त रूपों में से –ईआ और –ऊआ के प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये जा सकते और –ईइ तथा –ऊइ के प्रमाण भी पाठों में नाममात्र के हैं; महा में णईइ = नद्याः (गउड १) है अ माग में महीइ = मह्याः (सूय ११२)। इस ग्रन्थ में यह रूप बहुधा –ईए के स्थान में शुद्ध आया है जैसे, गउडवहो ११९ ८६० और ९२२ में है। गम्भिणीइ = गर्भिण्याः के स्थान में जो हाल २६६ में आया है, वेबर ने इधर ठीक ही इसे गम्भिणीअ पढ़ा है। पाठों में जहाँ जहाँ –ईए और –ऊए रूप आये हैं वहाँ-वहाँ छंद में ह्रस्व मात्रा की आवश्यकता है जैसे, महीऍ सिरीऍ, तरुणीऍ पविरलरणीऍ, णअरीऍ, पिअसिरीऍ इच्छीऍ आदि आदि (गउड ११२; २१२ २४७; २६८; ५ १; ९२८) बहूए (हाल ८७४ ९८१) रूप –ईअ अथवा –ईइ और –ऊअ अथवा –ऊइ में समास होनेवाले माने जाने चाहिए जैसा कि वेबर ने हाल ६९ संशोधन किया है और हाल[1] पेज ४ में संग्रहीत उदाहरणों की हस्तलिपियों ने भी पुष्टि की है। हाल ८६ में एक रूप इसंतीइ आया है और इसके साथ-साथ इसी ग्रन्थ में हसन्तीअ और हसंतीए रूप भी पाये जाते हैं (इण्डिशे स्टुडिएन १६,५१ की भी तुलना कीजिए)। बहूए के स्थान में (हाल ८७४ और ९८१) काव्यप्रकाश की शारदा लिपि में लिखी गयी हस्तलिपियों ८७४ की टीका में बहूओ और बहूअ रूप लिखती हैं तथा ९८१ की टीका में बहूई और बहूइ रूप देती हैं अर्थात् यह रूप बहूअ अथवा बहूइ लिखा जाना चाहिए जैसा कि हाल ७८६ ८४ और ८७४ में भी होना चाहिए। हाल ४०७ ६ ८ ६११ और ६४८ में बहूअ रूप आया है। ग्रंथ में कहीं-कहीं इन स्थानों में बहूए अथवा बहूए रूप भी मिलते हैं। § १७५ की भी तुलना कीजिए। –ईअ– और –ऊअ– वाले रूप भी ठीक वैसी दशा –ईइ– और –ऊइ– वाले रूपों की है, केवल पद्य तक सीमित हैं किन्तु महा में –ई और –ई वर्गों में इस रूप की भरमार है एक। वन्दीअ = वन्द्या, वाहीअ = व्याप्या और करिमंगुलीअ = करिमांगुल्या है (हाल ११८, १२१ ४५८) आहिजाईअ = अभिजात्या; रामसिरीअ = राजश्रिया; विहूईअ = रन्ध्या; ठिईअ = स्थित्या और आवईअ = आपत्या (रावण १, ११, ११ और ४५; ४, ४१; ६ ६) सिप्पीअ = शुक्त्या, मुट्ठीअ = मुष्ट्या और देवीअ = देव्या (कर्पूर २ ४; २६, ४; ४८, १४) है; सम्मकारक में कोडीअ = कोटेः; घरिणीअ = गृहिण्याः और गिरिणई = गिरिनद्याः है (हाल ६ ११; १४ और १७); धम्परिक्षीअ सिरीअ अ सलिलुप्पप्पाद पाअवीअ अ = धनश्रियो श्रियश्च सलिलोत्पन्नाया पादपायाः च है (रावण ९, १७) धरणीअ = धरण्याः (रावण २ २, ७, २८) है; सरस्सईअ = सरस्वत्याः और कईअ = कवेः (कपूर १ १;

५१, ३), अधिकरण मे **पाणउडीअ = प्राणकुट्याम्** है (हाल २२७, इसके अर्थ के लिए पाइय० १०५ तथा देशी० ६, ३८ की तुलना कीजिए, [देशी० ६, ३८ मे **पाण** का अर्थ श्वपच है। इस दृष्टि से **पाणउडी** = श्वपचकुटी हुआ। —अनु०]); दाक्षि० मे **णअरीअ = नगर्याम्** है (मृच्छ० १००, २)। अपादानकारक के उदाहरण नहीं पाये जाते। अप० को छोड अन्य प्राकृत बोलियों मे **–ईए** और **–ऊए** लग कर बननेवाला केवल एक ही रूप है जो एकमात्र चड० ने १, ९ मे बताया है किन्तु जो रूप अपादानकारक मे कहीं न मिलने से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। करण कारक के रूप ये है. **भणतीए = भणन्त्या** (हाल १२३), अ०माग० मे **गईए** मिलता है, शौर० रूप **गदीए** है = **गत्या** (कप्प० § ५, शकु० ७२, ११), माग० मे **शत्तीए = शक्त्या** (मृच्छ० २९, २०) है, पै० मे **भगवतीए = भगवत्या** है (हेच० ४, ३२३), सम्बन्धकारक मे **लच्छीए = लक्ष्म्याः** (गउड० ६८) है, अ०माग० में **नागसिरीए माहणीए = नागश्रिया ब्राह्मण्याः** (नायाध० ११५१) है, शौर० मे **रदणावलीए = रत्नावल्याः** है (मृच्छ० ८८, २१), माग० में **मज्जालीए = मार्जार्या है** (मृच्छ० १७, ७), अधिकरण में **पअवीए = पदव्याम्** है (हाल १०७), अ०माग० में **वाणारसीए णयरीए = वाराणस्या नगर्याम्** है (अत० ६३, निरया० ०३ और ४५, विवाग० १३६, १४८ और १४९, विवाह० २८४ और उसके बाद, नायाध० १५१६ और १५२८)। अ०माग० और जै०महा० में **अडवीए = अटव्याम्** है (नायाध० ११३७, एर्से० १, ४, १३, ३०, २१, २१), शौर० मे **मसाणवीधीए = श्मशानवीथ्याम्** है (मृच्छ० ७२, ८), माग० में **धलणीए = धरण्याम्** है (मृच्छ० १७०, १६)। यह रूप **–इएँ** ह्रस्व रूप मे अप० म भी पाया जाता है. करणकारक मे **मरगअकन्तिएँ = मरकत कान्त्या**, सम्बन्धकारक म **गणन्तिएँ = गणन्त्या.** और **रदिएँ = रत्याः** है (हेच० ४, ३४९, ३३३ और ४४६)।

§ ३८६—करणकारक मे क्रियाविशेषण रूप से प्रयुक्त शौर० रूप **दिट्ठिआ = दृष्ट्या** में (उदाहरणार्थ मृच्छ० ६८, २, ७४, ११, विक्रमो० १०, २०, २६, १५, ४९, ४ आदि आदि) **–आ** मे समाप्त होनेवाला एक प्राचीन करणकारक सुरक्षित है। पिंगल के अप० में –ई में समाप्त होनेवाला एक करणकारक पाया जाता है. **कित्ती = कीर्त्या** (१, ६५ अ, २, ६६), **भत्ती = भक्त्या** है (२, ६७) और इसी प्रकार का शब्द **एअवीसत्ती** है जो **एअवीसत्ता** के स्थान में आया है (एस० गौल्दश्मित्त ने यह रूप **एअवीसत्ति** दिया है) = **एकविंशत्या** पढा जाना चाहिए (१, १४२)। — अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **–ईए** लग कर बननेवाले सम्प्रदानकारक के विषय में § ३६१ देखिए। — अपादानकारक में अप० को छोड जिसमें हेच० ४, ३५० के अनुसार सम्बन्धकारक के समान ही समाप्तिसूचक हे लगता है, **–ईओ** और **–ऊओ** चिह्न भी जोड़े जाते हैं तथा जै०शौर०, **शौर०** और माग० शब्दों के अंत में **–ईदो** और **–ऊदो** भी आते हैं. अ०माग० में **अरइरईओ = अरतिरतेः** है (सूय० ६५४, ओव० § १२३), **कोसिओ = कोश्याः**

के, रुइआ, रुईए, रुईए रूप मिलते हैं (सिंहराज० पन्ना २५) बुद्धि के रूप हैं, बुद्धीम बुद्धीआ बुद्धीइ और बुद्धीए; सही = सखी के रूप हैं, सहीअ, सहीआ, सहीइ और सहीए; घेणु = धेनु के रूप हैं, धेणूअ, धेणूआ, घेणूइ और घेणूए; वहू = वधू के रूप हैं, वहूअ, वहूआ, वहूइ और वहूए (हेच ३, २९)। उक्त रूपों में से –ईआ और –ऊआ के प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये जा सकते और –ईइ तथा –ऊइ के प्रमाण भी पाठों में नाममात्र के हैं : मरा में णईइ = नद्याः (गउड १ ०) है; अ माग० में महीइ = मह्याः (सूय० ३१२)। इस ग्रन्थ में यह रूप बहुधा –ईएँ के स्थान में शुद्ध आया है जैसे, गउडवहो ११९ ८६० और १२२ में है। गम्भिणीइ = गर्भिण्याः के स्थान में जो हाल १६६ में आया है, वबर न इधर ठीक ही इस गम्भिणीअ पढ़ा है। पाठों में जहाँ जहाँ –ईए और –ऊए रूप आये हैं वहाँ-वहाँ छंद में ह्रस्व मात्रा की आवश्यकता है, जैसे, महीए सिरीए, तरुणीएँ पविरत्थरणीए, णअरीएँ, णिअसिरीएँ लच्छीएँ आदि आदि (गउड ११२; २१२ २८७; २९८; ५ १; ९२८); वहूए (हाल ८०४; ९८१) रूप –ईअ अथवा –ईइ और –ऊअ अथवा –ऊइ में समाप्त होनेवाले माने जाने चाहिए जैसा कि वेबर ने हाल ६९ संशोधन किया है और हाल[१] पेज ४ में सगद्दीव उदाहरणों की हस्तलिपियों ने भी पुष्टि की है। हाल ८६ में एक रूप हसंमन्तीइ आया है और इसके साथ-साथ इसी ग्रन्थ में हसंतीअ और हसंतीए रूप भी पाये जाते हैं (इण्डिशे स्टुडिएन १६,५१ की भी तुलना कीजिए)। वहूए के स्थान में (हाल ८०४ और ९८१) काव्यप्रकाश की शारदा लिपि में लिखी गयी हस्तलिपियाँ ८०४ की टीका में वहूआ और वहूअ रूप मिलती हैं तथा ८१ की टीका में वहूइ और वहूइ रूप देती हैं अथवा यह रूप वहूअ अथवा वहूइ लिखा जाना चाहिए जैसा कि हाल ७८६; ८४ और ८०४ में भी होना चाहिए। हाल ४५७; ६०८; ६१५ और ६४८ में वहूअ रूप आया है। ग्रंथ में कहीं-कहीं इन स्थानों में वहूए अथवा वहूए रूप भी मिलते हैं। § ३७५ की भी तुलना कीजिए। –इअ– और –उअ– वाले रूप भी ठीक वैसी दशा –ईइ– और –ऊइ– वाले रूपों की है, केवल पद तक सीमित हैं, किन्तु मरा में –इ और –इ वर्गों में इस रूप की भरमार है : एक। पम्हीअ = पक्ष्मा; वाईअ = व्याख्या और सहिअंगुलीअ = सहिअंगुल्या है (हाल ११८; १२१ ४५८) आहिआइआ = अभिजात्या; राअसिरीअ = राजश्रिया; दिट्ठीअ = दृष्ट्या, ठिइअ = स्थित्या और आणइअ = आज्ञप्त्या (रावण १, ११; ११ और ८९; ४, ४१; ६ ९); सिप्पीअ = शुक्त्या; मुट्ठीअ = मुष्ट्या और दुहीअ = दृष्ट्या (कर्पूर० २, ४; ९, ४ ८८, १४) है मम्मथवारक में काईअ = काठ्या; परिणीअ = गृहिण्या और गिरिणइ = गिरिनद्याः है (हाल १; ११; १४ और ३७); धम्मरिद्धीअ सिरीअ भ सद्धिगुणाइ पारणीअ अ = धमद्धया श्रिया च सविज्ञातपापाया पादस्थान च है (यशस्त १ १७) धरणीअ = धरण्याः (रावण १, २, ७ १८) है; सरस्सइअ = सरस्वत्याः और रुईअ = रुदः (कर्पूर १, १;

५१, ३), अधिकरण में **पाणउडीअ = प्राणकुट्याम्** है (हाल २२७, इसके अर्थ के लिए पाइय० १०५ तथा देशी० ६, ३८ की तुलना कीजिए, [देशी० ६, ३८ में **पाण** का अर्थ श्वपच है। इस दृष्टि से **पाणउडी** = श्वपचकुटी हुआ। —अनु०]); दाक्षि० में **णअरीअ = नगर्याम्** है (मृच्छ० १००, २)। अपादानकारक के उदाहरण नहीं पाये जाते। अप० को छोड अन्य प्राकृत बोलियों मे **–ईए** और **–ऊए** लग कर बननेवाला केवल एक ही रूप है जो एकमात्र चंड० ने १, ९ मे बताया है किन्तु जो रूप अपादानकारक में कहीं न मिलने से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। करण कारक के रूप ये हैं : **भणतीए = भणन्त्या** (हाल १२३), अ०माग० मे **गईए** मिलता है, शौर० रूप **गदीए** है = **गत्या** (कप्प० § ५, शकु० ७२, ११), माग० में **शत्तीए = शक्त्या** (मृच्छ० २९, २०) है, पै० मे **भगवतीए = भगवत्या** है (हेच० ४, ३२३), सम्बन्धकारक में **लच्छीए = लक्ष्म्याः** (गउड० ६८) है, अ०माग० में **नागसिरीए माहणीए = नागश्रिया ब्राह्मण्याः** (नायाध० ११५१) है, शौर० में **रदणावलीए = रत्नावल्याः** है (मृच्छ० ८८, २१), माग० में **मज्जालीए = मार्जार्या** है (मृच्छ० १७, ७), अधिकरण में **पअवीए = पदव्याम्** है (हाल १०७), अ०माग० में **वाणारसीए णयरीए = वाराणस्या नगर्याम्** है (अंत० ६३, निरया० ०३ और ४५, विवाग० १३६, १४८ और १४९, विवाह० २८४ और उसके बाद, नायाध० १५१६ और १५२८)। अ०माग० और जै०महा० में **अडवीए = अटव्याम्** है (नायाध० ११३७, एर्त्से० १, ४, १३, ३०, २१, २१), शौर० में **मसाणवीधीए = श्मशानवीथ्याम्** है (मृच्छ० ७२, ८), माग० में **धलणीए = धरण्याम्** है (मृच्छ० १७०, १६)। यह रूप **–इऍ** ह्रस्व रूप में अप० में भी पाया जाता है : करणकारक में **मरगअकन्तिऍ = मरकत कान्त्या**, सम्बन्धकारक में **गणत्तिऍ = गणन्त्याः** और **रदिऍ = रत्याः** है (हेच० ४, ३४९, ३३३ और ४४६)।

§ ३८६—करणकारक मे क्रियाविशेषण रूप से प्रयुक्त शौर० रूप **दिट्ठिआ = दृष्ट्या** में (उदाहरणार्थ मृच्छ० ६८, २, ७४, ११, विक्रमो० १०, २०, २६, १५, ४९, ४ आदि आदि) **–आ** में समाप्त होनेवाला एक प्राचीन करणकारक सुरक्षित है। पिंगल के अप० में **–ई** मे समाप्त होनेवाला एक करणकारक पाया जाता है : **कित्ती = कीर्त्या** (१, ६५ अ, २, ६६), **भत्ती = भक्त्या** है (२, ६७) और इसी प्रकार का शब्द **पअवीसत्ती** है जो **पअवीसत्ता** के स्थान में आया है (एस० गौल्दश्मित्त ने यह रूप **पअवीसत्ति** दिया है) = **एकविंशत्या** पढा जाना चाहिए (१, १४२)। — अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **–ईए** लग कर बननेवाले सम्प्रदानकारक के विषय में § ३६१ देखिए। — अपादानकारक में अप० को छोड जिसमें हेच० ४, ३५० के अनुसार सम्बन्धकारक के समान ही समाप्तिसूचक हे लगता है, **–ईओ** और **–ऊओ** चिह्न भी जोड़े जाते हैं तथा जै०शौर०, शौर० और माग० शब्दों के अंत में **–ईदो** और **–ऊदो** भी आते हैं। अ०माग० में **अरइईओ = अरतितः** है (सूय० ६५४, ओव० § १२३), **कोसिओ = कोश्याः**

है (सूय ५११) णयरीओ = नगर्याः है (निरया § १९ पेज ४४ और ४५ नायाध ११३०) ; पोक्खरिणीओ = पुष्करिण्याः और चोरपल्लीआ = चोरपल्ल्याः है (नायाध १ ४० १४२७ ; १४२९) ; गंगासिन्धूओ = गंगासिन्ध्वोः है (ठाणंग ५४४ विवाह ४८२ और उसके बाद) ; शौर में मअडीदो = मटव्याः (शकु १५, ८) है उज्जइणीदो = उज्जयिन्याः (रत्ना ३२१, २२ ३२२, ९) सचीदो = शच्याः है (विक्रमो ४४, ८) माग० में णमळीदो = नगर्याः है (मृच्छ १५९, ११) । — जैसा अ–वर्ग में होता है (§ ३७५) अप में भी सम्बन्धकारक बनाने के लिए शब्द के अन्त में –हे* लगाया है या स्वरों से पहले ह्रस्व कर दिया जाता है : ओभग्गिहे = पद्ग्यस्याः ; मेळ ग्गिहें* = मुञ्चन्त्याः, गोरिहे* = गौर्याः ; तुच्छिणिहे* = तुच्छिण्याः है (हेच ४, ३१२ २ ३० ४ ३९९, १ ४२७, १) ; कंगुहे* = कंगाः है (हेच ४, ३६७, ४) । — अ माग में अधिकरणकारक में बहुधा राओ = रात्रौ पाया जाता है जो जैस में भी मिलता है (आयार १, ८, २, ९ ; सूय० २४७ ; २९५ ; ५११ नायाध १ और ३७४) और समास के भीतर अन्य शब्दों के साथ भी आया है जैसे अहो य राओ (आयार १, २ १, १ और २ २ १, ४ १, १ ; सूय २९५ ; ४१२ ४८५ ; उत्तर० ४१) अथवा अहो य राओ य = अहश् च रात्रौ च है (पण्हा० ३७१) । राओ या वियाले या पाठभेद आया है (आयार० २, १, १ २ ; २, २, ३, २ और २१ [कलकतिया संस्करण पेज १२६ के अनुसार यही पाठ शुद्ध है]) दिया य राओ य = दिवा च रात्रौ च है (आयार १, ६ ३, १ ; ४, १ ; उत्तर ८४७) दिया वा राओ वा भी पाया जाता है (सूय ८४६ दस० ६११, ११) । कभी-कभी अ माग में पुंलिंग और नपुंसकलिंग के समाप्तिसूचक चिह्न स्त्रीलिंग शब्दों में भी अन्त्य लग गये हैं । पिढ़ी से संबंधित पिट्ठिंसि रूप है (§ ५३ ; नायाध ९४) भित्तिसि = भित्तौ (आयार २, १ १, २१) है ; रायहाणिसि = राजधान्याम् है (आयार २ १ २ ६ २, १, १, ४ २, १, १, २) । § ३५५ ३५८ ; ३६४ ; ३६७ ; ३७५ और ३७९ की तुलना कीजिए । शौर में रत्तिम्मि = रात्रौ है (अंबा० ९, २१ ; १०, २१ मल्लिका २२६, ४) भूमिम्मि = भूमौ है (मल्लिका ३३० २१) । अप में अधिकरणकारक में शब्द के अंत में –हि* लगता है जो = स्याम् के महिहि* = मह्याम्, कलिहि* = कस्याम्, सासहि* = स्यस्याम् ; पाणारसिहि* = वाराणस्याम् और उज्जणिहि* = उज्जयिन्यां (हेच ४ ३५२ ४१८ ८ ४२२ ४४२ १) ; णदिहि* = नद्याम् (पिंगल १, ५अ) । पिंगल की अप में इ– वर्ग में अधिकरणकारक शब्द के अंत में –इ और इसके ह्रस्व रूप –इ लगकर बनता है : पुहवी = पृथिव्याम् है (१ १२१ ; पाठ में पुहमी है) धरणी = धरण्याम् है (१ ११०अ) ; पुहवि = पृथिव्याम् (१ ११२अ) और महि = मह्याम् है (१ १४१अ) । शब्द के अंत में –इ और –उ लगकर संबोधनकारक बनता है : महा में माइवि = मातृपि ; भइरपि = भगिपि ;

देवि = देवि है (गउड० २८५, २८७, २९०, ३३१), थोरत्थणि = स्थूलस्तनि (हाल ९२५), शौर० में भवदि भाईरधि = भगवति भागीरथि (बाल० १६३, १०, प्रसन्न० ८३, ४), जै०महा० और शौर० में पुत्ति = पुत्रि है (आव०एर्त्से० १२, ११ और १७, बाल० १६५, ३, १७४, ८), शौर० म सहि मालदि = सखि मालति है (मालती० ९४, २), माग० मे वुड्ढकुस्टणि = वृद्धकुट्टनि है (मृच्छ० १४१, २५, १५२, २२), कच्चाइणि = कात्यायनि है (चड० ६९, १), महा० मे वेवन्तोरु = वेपमानोरु (हाल ५२) और सुअणु = सुतनु है (गउड० १८८, हाल), करिअरोह = करिकरोह (हाल ९२५), माग० मे प्लुति होती है जैसे, चाशू है (मृच्छ० १२७, ७)।

§ ३८७— कर्त्ता-, कर्म- और संबोधनकारक शब्द के अत मे -ईओ और -ऊओ लगते है जो पद्य मे -ईउ और -ऊउ रूप मे परिवर्तित हो जाते है . कर्त्ता- महा० में कत्तीओ = कृत्तयः (हाल ९५१) और रिद्धीओ = ऋद्धयः है (गउड० ९२), लुम्बीओ = *लुम्ब्यः (हाल ३२२), णईओ = नद्यः और णअरीओ = नगर्यः है (गउड० ३६०, ४०३), अ०माग० मे महाणईओ = महानद्यः (ठाणग० ७६, ७७ और ७९), हिरण्णकोडीओ = हिरण्यकोट्यः (उवास० § ४) है, इत्थीओ = स्त्रियः (ठाणग० १२१) है, महा० में तरुणीउ = तरुण्यः है (गउड० ११३, हाल ५४६), जै०महा० में पलवन्तीओ अवरोहजुवईओ = प्रलपन्त्यः अवरोधयुवतयः (सगर ४,१३), वसहीओ = वसतय. (तीर्थ० ४,२२) है, गीदीओ = गीतय. (महावीर० १२१, ७) है, महुअरीओ = मधुकर्यः है (मृच्छ० २९, ५ और ७, ७०, २), आइदीओ = आकृतयः है (शकु० १३२, ६), पइदीओ = प्रकृतयः (विक्रमो० ७३, १२, मुद्रा० ३९, १, ५६, ८) है। अप० मे अंगुलिउ = अंगुल्यः (हेच० ४, ३३३) है, इसमें ह्रस्व स्वर आया है जो पद्य मे है और छंद की मात्राएं ठीक करने के लिए काम में लाया गया है। अन्य प्राकृत बोलियों में भी ऐसा होता है (§ ९९)। महा० मे कुलवहूओ = कुलवध्व. है (हाल ४५९), अ०माग० में सुरवधूओ भी आया है (ओव० § [३८]), रज्जूओ = रज्जवः है (जीवा० ५०३)। — कर्मकारक में : महा० में सहिरीओ = सहनशील. है (हाल ४७)। अ०माग० में वल्लीओ = वल्लीः (आयार० २, ३, २, १५) है, ओसहीओ = ओषधी. है (आयार० २, ४, २, १६, सूय० ७२७, दस० ६२८, ३३), सवत्तीओ = सपत्नीः (उवास० § २३९), सयग्घीओ = शतघ्नीः (उत्तर० २८५) है। जै०महा० में गोणीओ रूप पाया जाता है (आव० एर्त्से० ७, १०)। शौर० में भअवदीओ = भगवतीः (शकु० ७९,१३) है, अप० में विलासिणीउ = विलासिनीः और -इ के साथ सल्लइउ = शल्लकीः है (हेच० ४, ३८७, १)। अ०माग० में वहूओ चोरविज्जाओ = वह्वीश् चोरविद्याः है (नायाध० १४२१) किंतु इसके साथ साथ में बहवे साहम्मिणीओ = वह्वीः *साधर्मिणीः भी देखने में आता है (§ ३८२)। — संबोधनकारक में जै०महा० में भयवईओ देवयाओ = भगवत्यो देवताः (द्वार० ५०३,२५) है, महा० और

है (सूय ५९१) णयरीओ = नगर्याः है (निरया § १९ पेज ४४ और ४५; नायाध ११३५) पोक्खरिणीओ = पुष्करिण्याः और घोरपल्लीओ = घोरपल्ल्याः है (नायाध १ ६० १४२७ ; १४२९) गंगासिन्धूओ = गंगासिन्धोः है (ठाणंग ५४४ मिथाइ ४८२ और उसके बाद) शौर में महाँवो = भटव्याः (शकु १५, ८) है उज्जाणीदो = उज्जयिन्याः (रत्ना १२१, १२ १२२, ९) सखीदो = शय्याः है (विक्रमो ४४, ८) माग० में णअलीदो = नगर्याः है (मृच्छ १५९, ११)। — जैसा अ- वर्ग में होता है (§ ३७५) अप में भी सम्बन्धकारक बनाने के लिए शब्द के अन्त में –हे॑ लगता है या स्वरों से पहले ह्रस्व कर दिया जाता है : आभीरिहे = पद्मस्याः, मेखलिहे॑ = मुग्धस्याः, गोरिहे॑ = गौर्याः, तुम्भिणिहे॑ = तुम्भिण्याः है (हेच ४, ३५२, २ ; ३७ , ४ ३९५, १ ४२७, १) कंगुहे॑ = कंगोः है (हेच ४, ३६७, ४) । — अ माग में अधिकरणकारक में महुआ राओ = रात्रौ पाया जाता है जो अकेले में भी मिलता है (आयार १, ८, २, ६ सूय २४७ २५५; ५११ ; नायाध १ और १७४) और वाक्य के भीतर अन्य शब्दों के साथ भी आया है जैसे, अहो यह राओ (आयार १, २, १, १ और २ ; २ १, ४ १, १ सूय २९९ ४१२ ४८५ ; उत्तर ४१) अथवा अहो यह राओ य = अहश् च रात्रौ च है (पण्हा १७१)। राओ वा वियाले वा वाक्यांश आया है (आयार २ १, ३, २ १ २, १, २ और २१ [कलकत्ता संस्करण पेज १२६ के अनुसार यही पाठ शुद्ध है]) दिया य राओ य = दिवा च रात्रौ च है (आयार १, ६, १, १ ; ४ १ उत्तर ८४७) दिया वा राओ वा भी पाया जाता है (सूय ८४९ ; दस ६२६, ११) । कभी कभी अ माग में पुल्लिंग और नपुंसकलिंग के समासिसूचक चिह्न स्त्रीलिंग शब्दों में भी अपना लिए गये हैं। पिट्ठी से संबंधित पिट्ठिंसि रूप है (§ ५३ ; नायाध ९४); मिसिंसि = मिश्रौ (आयार २ ५ १ २१) है रायहाणिंसि = राजधान्याम् है (आयार २ १, २, ६ २, १, १, ८ २ ३, १, २)। § १५५ १५८ १६८ १६७ ; १७५ और १७९ की तुलना कीजिए। शौर में रत्तिंमि = रात्रौ है (जीवा ९ २१ ; १७, ११ ; मल्लिका २२६, ४) भूमिम्मि = भूमौ है (मल्लिका ११७ २१)। अप म अधिकरणकारक में शब्द के अंत में –हि॑ लगता है जो = –याम् के : महिहि॑ = मह्याम्, कलिहि॑ = कल्यौ, सलरहि॑ = शाललयाम् ; वाणारसिहि॑ = वाराणस्याम् और उज्जणिहि॑ = उज्जयिन्यां (हेच ४ ३५२ ; ४१८ ८ ; ४२२ ९ ४४२ १); णइहि॑ = नद्याम् (पिंगल १, ५४)। पिंगल की अप में इ- वर्ग में अधिकरणकारक शब्द के अंत में –ई और इसके ह्रस्व रूप –इ लगकर बनता है : पुहवी = पृथिव्याम् है (१, १२१ पाठ में पुहमी है) धरणी = धरण्याम् है (१ ११७ अ) ; पुहवि = पृथिव्याम् (१ १३१ अ) और मदि = मह्याम् है (१ १४१ अ)। शब्द के अंत में –इ और –उ लगकर संबोधनकारक बनता है : महा में माहवि = माधवि । भइरवि = भैरवि ;

देवि = देवि है (गउड० २८५ ; २८७ , २९० , ३३१), थोरत्थणि = स्थूलस्तनि (हाल ९२५) , शौर० में भअवदि भाईरधि = भगवति भागीरथि (बाल० १६३, १० , प्रसन्न० ८३, ८) , जै०महा० और शौर० में पुत्ति = पुत्रि हे (आव०एर्से० १२, ११ और १७ ; बाल० १६५, ३ , १७४, ८) , शौर० म सहि मालदि = सखि मालति है (मालती० ९४, २) , माग० मे वुड्ढकुस्टणि = वृद्धकुट्टनि है (मृच्छ० १४१, २५ , १५२, २२) , कच्चाइणि = कात्यायनि है (चड० ६९, १) , महा० मे वेवन्तोरु = वेपमानोरु (हाल ५२) और सुअणु = सुतनु है (गउड० १८८ , हाल) , करिअरोह = करिकरोह (हाल ९२५) , माग० मे प्लुति होती है जैसे, वाशू है (मृच्छ० १२७, ७) ।

§ ३८७— कर्त्ता-, कर्म- और सबोधनकारक शब्द के अत मे -ईओ और -ऊओ लगते है जो पद्य मे -ईउ और -ऊउ रूप मे परिवर्तित हो जाते है . कर्त्ता- महा० में कत्तीओ = कृत्तयः (हाल ९५१) और रिद्धीओ = ऋद्धयः है (गउड० ९२) , लुम्बीओ = *लुम्ब्यः (हाल ३२२) , णईओ = नद्यः और णअरीओ = नगर्यः है (गउड० ३६० , ४०३), अ०माग० मे महाणईओ = महानद्यः (ठाणग० ७६ , ७७ और ७९) , हिरण्णकोडीओ = हिरण्यकोट्यः (उवास० § ४) है , इत्थीओ = स्त्रियः (ठाणग० १२१) है , महा० मे तरुणीउ = तरुण्य. है (गउड० ११३ , हाल ५४६) , जै०महा० म पलवन्तीओ अवरोहजुवईओ = प्रलपन्त्यः अवरोधयुवतयः (सगर ४,१३) , वसहीओ = वसतय. (तीर्थ० ४,२२) है , गीदीओ = गीतयः (महावीर० १२१, ७) है , महुअरीओ = मधुकर्यः है (मृच्छ० २९, ५ और ७ , ७०, २) , आइदीओ = आकृतयः है (शकु० १३२, ६) , पइदीओ = प्रकृतयः (विक्रमो० ७३, १२ , मुद्रा० २९, १ , ५६, ८) है । अप० में अंगुलिउ = अंगुल्यः (हेच० ४, ३३३) है, इसमें ह्रस्व स्वर आया है जो पद्य मे है और छद की मात्राए ठीक करने के लिए काम में लाया गया है। अन्य प्राकृत बोलियों मे भी ऐसा होता है (§ ९९)। महा० मे कुलवहूओ = कुलवध्व है (हाल ४५९) , अ०माग० में सुरवधूओ भी आया है (ओव० § [३८]) , रज्जूओ = रज्जव. है (जीवा० ५०३) । — कर्मकारक में : महा० मे सहिरीओ = सहनशील. है (हाल ४७) । अ०माग० में वल्लीओ = वल्लीः (आयार० २, ३, २, १५) है , ओसहीओ = ओषधीः है (आयार० २, ४, २, १६ , सूय० ७२७ , दस० ६२८, ३३) , सवत्तीओ = सपत्नीः (उवास० § २३९) , सयग्घीओ = शतघ्नीः (उत्तर० २८५) है । जै०महा० में गोणीओ रूप पाया जाता है (आव० एर्से० ७, १०) । शौर० में भअवदीओ = भगवतीः (शकु० ७९,१३) है , अप० में विलासिणीउ = विलासिनीः और -इ के साथ सल्लइउ = शल्लकीः है (हेच० ४, ३८७, १) । अ०माग० में बहूओ चोरविज्जाओ = बह्वीश् चोरविद्याः है (नायाध० १४२१) किंतु इसके साथ साथ में बहवे साहम्मिणीओ = बह्वीः *साधर्मिणीः भी देखने में आता है (§ ३८२) । — संबोधनकारक में जै०महा० में भयवईओ देवयाओ = भगवत्यो देवताः (द्वार० ५०३,२५) है , महा० और

है (सूय ५११) णयरीओ = नगर्याः है (निरया § १९ पेज ४४ और ४५ नायाध ११३५) पोक्खरिणीओ = पुष्करिण्याः और चोरपल्लीओ = चोरपल्ल्याः है (नायाध १०६ ; १४२७ १४२९); गंगासिन्धूओ = गंगासिन्ध्वोः है (ठाणंग० ५४४ ; विवाह ४८४ और उसके बाद) शौर में मअरंदो = अटव्याः (शकु ३५, ८) है उज्जइणीदो = उज्जयिन्याः (रत्ना १२१, २२ १२२, १) सच्चीदो = शच्याः है (विक्रमो ४४, ८); माग में णअलीदो = नगर्याः है (मृच्छ १५९, ११)। — जैसा अ- वर्ग में होता है (§ ३७५) अप में भी सम्प्रदानकारक बनाने के लिए शब्द के अन्त में -हे* लगता है जो स्वरों से पहले ह्रस्व कर दिया जाता है : ओभत्तिहे = पद्यस्याः। मेद्धत्तिहे* = मुग्धस्याः, गोरिहे* = गौर्याः, तुरियणिहे* = तुरियण्याः है (हेच ४, ३१२, २ ; ३७० ४ ३९५, १ ४२७, १) कशुहे* = कंगोः है (हेच ४, ३६७, ४)। — अ माग में अधिकरणकारक में बहुधा राओ = रात्रौ पाया जाता है जो अकेले में भी मिलता है (आयार १, ८, २, ६ सूय २४७ २५५; ५११ नायाध १ और ३५४) और वाक्य के भीतर अन्य शब्दों के साथ भी आता है जैसे अहो यह राओ (आयार १, २, १, १ और २ ; २ १ ४ १, १ ; सूय २९५ ४१२ ४८५ उत्तर ४२) अथवा अहा यह राओ य = अहश् च रात्रौ च है (पण्हा १७१)। राओ वा वियाले वा वाक्यांश आया है (आयार २ १, १ २ ; २, २ १ २ और २१ [कलकतिया संस्करण पेज १२६ के अनुसार यही पाठ शुद्ध है]) दिया य राओ य = दिवा च रात्रौ च है (आयार १, ६ १ १ ४, १ ; उत्तर ८४०) दिया वा राओ वा भी पाया जाता है (सूय ८४६ दस ६११, ११)। कभी कभी अ माग में पुलिंग और नपुंसकलिंग के समाप्तिसूचक चिह्न स्त्रीलिंग शब्दों में भी काम में लिए गये हैं। पिट्ठी से संबंधित पिट्ठिंसि रूप है (§ ५३ नायाध ९४) भिसिंसि = भिसौ (आयार २ ५ १ २१) है ; रायहाणिंसि = राजधान्याम् है (आयार २ २, ६ २ १, १, ८ २ १ १ २)। § ३५५ ३५८ ३६४ ३६७ ; ३७५ और ३७९ की तुलना कीजिए। शौर में रत्तिम्मि = रात्रौ है (जीवा ९, २१ ; १७ २१ ; मल्लिका २२६, ४) भूमिम्मि = भूमौ है (मल्लिका ११७ २१)। अप में अधिकरणकारक में शब्द के अन्त में -हि* लगता है जो = स्याम् के : महिहि* = मह्याम् ; पविहि* = पत्न्यौ ; सालहि* = शालायाम् धारावरिसिहि* = धारावर्षस्याम् और उज्जेणिहि* = उज्जयिन्या (हेच ४ ३५२ ४१८ ८ ४२२ ९ ४४२ १), णविहि* = नद्याम् (पिंगल १, ५अ)। पिंगल की अप में इ- वर्ग में अधिकरणकारक शब्द के अंत में -ई और इसके ह्रस्व रूप -इ लगाकर बनता है : पुहवी = पृथिव्याम् है (१ १२१ ; पाठ में पुहमी है) ; धरणी = धरण्याम् है (१ १३७अ) पुहवि = पृथिव्याम् (१, १२२अ) और महि = मह्याम् है (१ १४१अ)। शब्द के अंत में -इ और -उ लगकर संबोधनकारक बनता है : महा में माहवि = माधवि। भइरवि = भैरवि ;

देवि = देवि है (गउड० २८५, २८७, २९०, ३३१), थोरत्थणि = स्थूलस्तनि (हाल ९२५), शौर० में भवदि भाईरधि = भगवति भागीरथि (बाल० १६३, १०, प्रसन्न० ८३, ४), जै०महा० और शौर० में पुत्ति = पुत्रि है (आव०एर्त्से० १२, ११ और १७; बाल० १६५, ३, १७४, ८), शौर० में सहि मालदि = सखि मालति है (माल्ती० ९४, २), माग० में वुड्डकुस्टणि = वृद्धकुट्टनि है (मृच्छ० १४१, २५, १५२, २२), कच्चाइणि = कात्यायनि है (चड० ६९, १), महा० मे वेवन्तोरु = वेपमानोरु (हाल ५२) और सुअणु = सुतनु है (गउड० १८६, हाल), करिअरोह = करिकरोह (हाल ९२५), माग० में प्लुति होती है जैसे, वाशू है (मृच्छ० १२७, ७)।

§ ३८७— कर्त्ता-, कर्म- और सबोधनकारक शब्द के अत मे -ईओ और -ऊओ लगते है जो पद्य मे -ईउ और -ऊउ रूप मे परिवर्तित हो जाते है. कर्त्ता- महा० मे कत्तीओ = कृत्तयः (हाल ९५१) और रिद्धीओ = ऋद्धयः है (गउड० ९२), लुम्बीओ = ५लुम्ब्यः (हाल ३२२), णईओ = नद्यः और णअरीओ = नगर्यः है (गउड० ३६०, ४०३), अ०माग० मे महाणईओ = महानद्यः (ठाणग० ७६, ७७ और ७९), हिरण्णकोडीओ = हिरण्यकोट्यः (उवास० § ४) है, इत्थीओ = स्त्रियः (ठाणग० १२१) है, महा० में तरुणीउ = तरुण्यः है (गउड० ११३, हाल ५४६), जै०महा० म पलवन्तीओ अवरोहजुवईओ = प्रलपन्त्यः अवरोधयुवतयः (सगर ४,१३), वसहीओ = वसतय. (तीर्थ० ४,२२) है, गीदीओ = गीतय. (महावीर० १२१, ७) है, महुअरीओ = मधुकर्यः है (मृच्छ० २९, ५ और ७, ७०, २), आइदीओ = आकृतयः है (शकु० १३२, ६), पइदीओ = प्रकृतयः (विक्रमो० ७३, १२, मुद्रा० ३९, १, ५६, ८) है। अप० में अंगुलिउ = अंगुल्यः (हेच० ४, ३३३) है, इसमें ह्रस्व स्वर आया है जो पद्य मे है और छद की मात्राए ठीक करने के लिए काम में लाया गया है। अन्य प्राकृत बोलियों मे भी ऐसा होता है (§ ९९)। महा० में कुलबहूओ = कुलवध्व है (हाल ४५९), अ०माग० में सुरवधूओ भी आया है (ओव० § [३८]), रज्जूओ = रज्जव. है (जीवा० ५०३)। — कर्मकारक में : महा० में सहिरीओ = सहनशीलः है (हाल ४७)। अ०माग० में वल्लीओ = वल्लीः (आयार० २, ३, २, १५) है, ओसहीओ = ओषधीः है (आयार० २, ४, २, १६, सूय० ७२७, दस० ६२८, ३३), सवत्तीओ = सपत्नीः (उवास० § २३९), सयग्घीओ = शतघ्नीः (उत्तर० २८५) है। जै०महा० में गोणीओ रूप पाया जाता है (आव० एर्त्से० ७, १०)। शौर० में भअवदीओ = भगवतीः (शकु० ७९,१३) है, अप० में विलासिणीउ = विलासिनीः और -इ के साथ सल्लइउ = शल्लकीः है (हेच० ४, ३८७, १)। अ०माग० में बहूओ चोरविज्जाओ = बह्वीर् चोरविद्याः है (नायाध० १४२१) किंतु इसके साथ साथ में बहवे साहम्मिणीओ = बह्वीः *साधर्मिणीः भी देखने में आता है (§ ३८२)। — संबोधनकारक में जै०महा० में भयवईओ देवयाओ = भगवत्यो देवताः (द्वार० ५०३,२५) है, महा० और

है (सूय० ५९१) णयरीओ = नगर्याः है (निरया § १९ पेज ४४ और ४५; नायाध० ११३५) पोक्खरिणीओ = पुष्करिण्याः और चोरपल्लीओ = चोरपल्ल्याः है (*नायाध* १ १० ; १४२७ ; १४२९) *गंगासिन्धूओ* = गंगासिन्ध्वोः है (ठाणंग ५४४ ; विवाह ४८२ और उसके बाद) शौर में भअईदो = भटन्याः (शकु ११, ८) है उज्जइणीदो = उज्जयिन्याः (रत्ना १२१, २२ २२२, ९) सत्तीदो = शक्त्याः है (विक्रमो ४४, ८) ; माग० में णअलीदो = नगर्याः है (मृच्छ १५९, ११) । — जैसा अ- वर्ग में होता है (§ ३७५) अप में भी सम्बन्धकारक बनाने के लिए शब्द के अन्त में –हे* लगता है या स्वरों से पहले ह्रस्व कर दिया जाता है : जोअन्तिहे = पश्यन्त्याः, मेल्ल न्तिहे* = मुञ्चन्त्याः, गोरिहे* = गौर्याः, मुद्धिणिहे* = मुग्धिन्याः है (हेच ४, ३३२, २ ३७ ४ ३९५, १ ४२७, १) ; कंगुहे* = कंगाः है (हेच ४, ३५७, ४) । — अ माग में अधिकरणकारक में अदुआ राओ = रात्रौ पाया जाता है जो अकेले में भी मिलता है (आयार १, ८, २, ६ सूय० २८७ २९९ ५१९ ; नायाध० १ और १७८) और वाक्य के भीतर अन्य शब्दों के साथ भी आता है जैसे अहो य राओ (आयार १, ५, १ १ और २ २ १ ४ १, १ सूय २९५ ४१२ ; ४८५ उत्तर ४२) अथवा अहो य राओ य = अहश् च रात्रौ च है (पण्ण १७१) । राओ वा वियाले वा वाक्यांश आया है (आयार० २ १, १, २ २, २, १, २ और २१ [कलकतिया संस्करण पेज १२३ के अनुसार यही पाठ शुद्ध है]) दिया य राओ य = दिवा च रात्रौ च है (आयार १, ६ १, १ ; ४, १ उत्तर ८८७), दिया वा राओ वा भी पाया जाता है (सूय ८४६ दस ६१६, ११) । कभी-कभी अ माग में पुलिंग और नपुंसकलिंग के समाप्तिसूचक चिह्न स्त्रीलिंग शब्दों में भी अपना लिए गये हैं । पिट्ठी से संबंधित पिट्ठिंसि रूप है (§ ५१ ; नायाध० ९४) ; भिसिंसि = भिसौ (आयार २ ५,१,२१) है रायहाणिंसि = राजधान्याम् है (आयार २ १ २, ६ २, १, १, ४ ; २, १ १ २) । § ३५५ ३५८ ३६४ ; ३६७ ; ३७५ और ३७९ की तुलना कीजिए । शौर में रत्तिं मि = रात्रौ है (जीवा ९, २१ ; १७, २१ मल्लिका १२६ ४) भूमिम्मि = भूमौ है (मल्लिका ३३७ २१) । अप में अधिकरणकारक में शब्द के अंत में –हि* लगता है जो = स्याम् के : महिहि* = मह्याम् ; कलिहि* = कलौ ; सत्तहि* = शत रूयाम् पाणारसिहि* = वाराणस्याम् और उज्जेणिहि* = उज्जयिन्यां (हेच ४ ३५२ ४१८ ८ ४२२ ९ ; ४४२ १) ; णविहि* = नद्याम् (पिंगल १, ५अ) । पिंगल की अप में इ- वर्ग में अधिकरणकारक शब्द के अंत में –ई और इसके ह्रस्व रूप –इ लगकर बनता है : पुहवी = पृथिव्याम् है (१, १२१ ; पाठ में पुहमी है) ; धरणी = धरण्याम् है (१ १३७अ) पुहवि = पृथिव्याम् (१, ११२अ) और महि = मह्याम् है (१, १४१अ) । शब्द के अंत में –इ और –उ लगकर संबोधनकारक बनता है : महा में माइयि = मातृके ; महराधि = मैरधि ,

दिसु किंतु साथ साथ **दुहुँ = द्वयोः** है (हेच० ४, ३४०, § ३८१ की तुलना कीजिए)।

§ ३८८—पल्लवदानपत्रों मे केवल अधिकरणकारक एकवचन पाया जाता है। **आपिट्टीयं** (६, ३७) अर्थात् **आपिट्टियं = आपिट्टयाम्** है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह पाली का रूप है। — शब्द के अत मे –इ, –उ, –ई और –ऊ लगकर बननेवाले स्त्रीलिग रूप जब एक समास के अत में आते हैं तब वे स्वभावतः सस्कृत के समान ही पुलिंग अथवा नपुसकलिंग के समासिसूचक चिह्न जोड लेते हैं जब कि उनका सबध पुलिग या नपुसकलिंग से होता है। इसके अनुसार . महा० में **करेण व पञ्चंगुलिणा** आया है (गउड० १७), महा० में **ससिअलासुत्तिणा कवालेण = शशिकलाशुक्तिना कपालेन** (गउड० ४०) भी पाया जाता है, शौर० में **मए मन्दबुद्धिणा = मया मन्दबुद्धिना** (शकु० १२६, १०) देखने में आता है, शौर० मे **मोहिदमदिणा = मोहितमतिना** है और **णीदिणिउबुद्धिणा = नीतिनिपुणबुद्धिना** है (मुद्रा० २२८, १, २६९,३), शौर० में **उज्जुमदिणो = ऋजुमतेः** है (प्रसन्न० ४६, ९)। हमें माग० के **मुस्टीए मुस्टिणा = मुष्टामुष्टि,** विशेषतः **= मुष्ट्या मुष्टिना** है (मृच्छ० १७०, १५)।

शब्द के अंत में –ऋ वाला वर्ग

§ ३८९—सस्कृत में जो भेद विशुद्ध कर्त्ताकारक तथा सगे-सबधियों को व्यक्त करनेवाले शब्दों में किया जाता है वह प्राकृत में सुरक्षित बना रह गया है। सस्कृत के समान ही व्वनिवाले रूप प्राकृत बोलियों में केवल कर्त्ता– और कर्मकारक एकवचन तथा कर्त्ताकारक बहुवचन में रह गये हैं। अन्यथा **ऋ** के **इ** अथवा **उ** में ध्वनिपरिवर्तन के साथ साथ (§ ५० और उसके बाद) **ऋ–** वर्ग **इ–** अथवा साधारणतया **उ–** वर्ग में चला गया है अथवा कर्मकारक एकवचन का वर्ग नये रूप में सामने आता है और जिसकी रूपावली **अ–** वर्ग की भाति चलती है . **पिइ–, पिउ–** और **पिअर = पितृ–, भट्टि–, भत्तु–** और **भत्तार–** रूप हैं। सगे-सबधियों को व्यक्त करनेवाले शब्दों की रूपावली भी **आ–** वर्ग की भाति चलती है। इस रूपावली का सूत्रपात कर्त्ताकारक एकवचन में हुआ : **माआ–, माई–, माऊ–** और **माअरा** रूप हैं [इन रूपों में से **माई** हिंदी में वर्तमान है और **माअरा** से बना **मैडो, मयाडो** रूप कुमाउनी में चलते हैं तथा **माऊ** से **मौ** निकला है जो सयुक्त शब्द **मौ–परिवार** में मिलता है। इसका अर्थ है **मा–** और **परिवार**। इस शब्दके पीछे कुमाऊ के खसों और अन्य अनेक वर्णों का इतिहास छिपा है। —अनु०]। इस कारण व्याकरणकार (वर० ५, ३१—३५, हेच० ३, ४४—४८, क्रम० ३, ३०—३४, मार्क० पन्ना ४४, सिंहराज० पन्ना १३, १६, १८) **ऋ–** वर्ग के लिए वही रूपावली देते हैं जो **अ–** वर्ग की होती है और इस दृष्टि से ही **आ–** वर्ग और **उ–** वर्ग में चलनेवाले रूप देते हैं जिनमें से अब तक सभी के उदाहरण और प्रमाण नहीं पाये गये है। जिन रूपों के प्रमाण और उदाहरण मिलते हैं वे इस रूपावलीका निम्नलिखित चित्र सामने रखते हैं।

शौर में सहीओ = सख्यः है (हाल १११ ; ६११ शकु० १२, १ ९०, ८ चैतन्य० ७१ १ ; ८१ १२ आदि आदि) शौर में मोदीओ = भवत्यः (विद्ध० १२१,१) भअवदीओ = भगवत्यः है (उत्तररा १९७,१ अनर्घ० २ ०,१); महा में सहीउ रूप पाया जाता है (हाल ४१२ और ७४२)। अप में संबोधन कारक रूप के अंत में –हो लगता है तरुणिहो = तरुण्यः (हेच ४, ३४६)। हेमचंद्र ने ३ २७ और १२४ में शब्द के अंत में -इ और –ऊ लगकर बननेवाले जो रूप बताये हैं उनके उदाहरण और प्रमाण मिलते हैं कर्त्ताकारक महा० में असइ म्ह = असत्या स्मः (हाल ४१७) है ; संबोधनकारक महा में पिअसही = प्रियसख्यः (हाल ९ ३) है कर्मकारक अ माग० में इत्थी = स्त्रीः (पद्य में ! उत्तर २५१) है। अन्य शेष बहुवचन कारकों के लिए मोटे-से उदाहरण पर्याप्त हैं करणकारक महा और शौर में सहीहिं = सखीभिः है (हाल १४४ ; शकु० १६७, ९) महा० में विद्धीहिं रूप मिलता है (गउड ७५२) सहीहि॑ और साथ साथ सहीहि रूप आये हैं (हाल १५ ६ ६१ ८१ ८४) ; जै शौर० में धूलीहिं रूप देखने में आता है (पव० ३८४, ६) अ माग में चिलाईहिं वामणीहिं वडमीहिं बब्बरीहिं बमळीहिं सिंहलीहिं = किरातीभिर् वामनीभिर् वडमीभिर् बर्बरीभिर् प्रवळीभिः सिंहलीभिः है (ओव § ५५) शौर में अंगुळीहिं = अङ्गुलीभिः (मृच्छ० ६,७ शकु १९, १) है। आयारंगसुत्त १, २ ४, १ में थीभि = स्त्रीभिः है अप में पुप्फवईहिं = पुष्पवतीभिः है (हेच ४, ४३८ ३) और ह्रस्व स्वर के साथ : असइहि॑ = असतीभिः ; वॅण्विहि॑ = वधूसीभिः (हेच ४, ३९६ १ ; ४१९, ५) है। — सम्बन्धकारक महा में सहीण = सखीनाम् (हाल ४८८) है ; थुईण = स्तुतीनाम् (गउड ८२) है ; तरुणीणं रूप भी पाया जाता है (हाल ५४५); हाल १०४ की तुलना कीजिए ; अ माग में सवत्तीणं = सपत्नीनाम् (उवास § २३८ ; २३९) ; महा और शौर में पामिणीणं रूप पाया जाता है (हाल ५६६ ; मृच्छ ७१ २२) ; महा में वहूणं = वधूनाम् है (गउड ११९८ हाल ५२६ रावण ९, ७१ और ९३) और साथ ही वहूण रूप भी पाया जाता है (रावण ९ ८ और ९६ ; १९, ७८)। अधिकरणकारक महा० में राईसु = रात्रिषु है (हाल ४५) गिरिअडीसु = गिरितटीषु है (गउड १०४) ; अ माग में इत्थीसु = स्त्रीषु है (आयार २ १६ ७ ; सूय ४ ५ और ४ ९) जै महा में कुआवीसु = कूपेभिषु (सगर ११, ४) हैं ; महा और अ०माग में वावीसु = वापीषु है (गउड १६६ ; नायाध ९११) महा० में –त्थलीसुं रूप पाया जाता है (गउड २५६) और इसके साथ ही –त्थलीसु रूप भी मिलता है (गउड १९ और ४२१) = –स्थलीषु है ; शौर में धमणयासु = धमनाविषु है (शकु २९, ४ ; उत्तररा २१, ११ ; पाठ में धमणदासु है) ; इथीसुं भी देखने में आता है (शकु १४१, ९)। अप में अधिकरण- और करण-कारक एकाकार हो गये हैं : दिसिहि॑ = •दिशीषु =

दिक्षु किंतु साथ साथ **दुहुँ = द्वयोः** है (हेच० ४, ३४० , § ३८१ की तुलना कीजिए)।

§ ३८८—पल्लवदानपत्रों में केवल अधिकरणकारक एकवचन पाया जाता है। **आपिट्टीयं** (६, ३७) अर्थात् **आपिट्टियं = आपिट्टयाम्** है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह पाली का रूप है। — शब्द के अत मे –इ, –उ, –ई और –ऊ लगकर बननेवाले स्त्रीलिंग रूप जब एक समास के अत में आते हैं तब वे स्वभावतः सस्कृत के समान ही पुलिंग अथवा नपुसकलिंग के समासिसूचक चिह्न जोड लेते हैं जब कि उनका सबध पुलिंग या नपुसकलिंग से होता है। इसके अनुसार : महा० में **करेण व पश्चंगुलिणा** आया है (गउड० १७), महा० में **ससिअलासुत्तिणा कवालेण = शशिकलाशुक्तिना कपालेन** (गउड० ४०) भी पाया जाता है , शौर० में **मए मन्दबुद्धिणा = मया मन्दबुद्धिना** (शकु० १२६, १०) देखने में आता है , शौर० में **मोहिदमदिणा = मोहितमतिना** है और **णीदिणिउबुद्धिणा = नीतिनिपुणबुद्धिना** है (मुद्रा० २२८, १ , २६९,२) , शौर० में **उज्जुमदिणो = ऋजुमतेः** है (प्रसन्न० ४६, ९)। इसमें माग० के **मुस्टीए मुस्टिणा = मुष्टामुष्टि,** विशेषतः **= मुष्ट्या मुष्टिना** है (मृच्छ० १७०, १५)।

शब्द के अंत में –ऋ वाला वर्ग

§ ३८९—सस्कृत में जो भेद विशुद्ध कर्त्ताकारक तथा सगे-सबधियों को व्यक्त करनेवाले शब्दों में किया जाता है वह प्राकृत में सुरक्षित बना रह गया है। सस्कृत के समान ही ध्वनिवाले रूप प्राकृत बोलियों में केवल कर्त्ता– और कर्मकारक एकवचन तथा कर्त्ताकारक बहुवचन में रह गये हैं। अन्यथा ऋ के इ अथवा उ में ध्वनिपरिवर्तन के साथ साथ (§ ५० और उसके बाद) ऋ– वर्ग इ– अथवा साधारणतया उ– वर्ग में चला गया है अथवा कर्मकारक एकवचन का वर्ग नये रूप में सामने आता है और जिसकी रूपावली अ– वर्ग की भाति चलती है : **पिइ–, पिउ–** और **पिअर = पितृ–, भट्टि–, भत्तु–** और **भत्तार–** रूप है। सगे-सबधियों को व्यक्त करनेवाले शब्दों की रूपावली भी आ– वर्ग की भाति चलती है। इस रूपावली का सूत्रपात कर्त्ताकारक एकवचन में हुआ . **माआ–, माई–, माऊ–** और **माअरा** रूप हैं [इन रूपों में से **माई** हिंदी में वर्तमान है और **माअरा** से बना **मैडो, मयाडो** रूप कुमाउनी में चलते हैं तथा **माऊ** से **मौ** निकला है जो सयुक्त शब्द **मौ–परिवार** में मिलता है। इसका अर्थ है **मा–** और **परिवार**। इस शब्दके पीछे कुमाऊ के खसों और अन्य अनेक वर्णों का इतिहास छिपा है। —अनु०]। इस कारण व्याकरणकार (वर० ५, ३१—३५ , हेच० ३, ४४—४८ , क्रम० ३, ३०—३४ , मार्क० पन्ना ४४ , सिंहराज० पन्ना १३ ; १६ , १८) ऋ– वर्ग के लिए वही रूपावली देते हैं जो अ– वर्ग की होती है और इस दृष्टि से ही आ– वर्ग और उ– वर्ग में चलनेवाले रूप देते हैं जिनमें से अब तक सभी के उदाहरण और प्रमाण नहीं पाये गये है। जिन रूपों के प्रमाण और उदाहरण मिलते हैं वे इस रूपावलीका निम्नलिखित चित्र सामने रखते हैं।

§ ३९ —विशुद्ध कर्ता—भत्तु = भर्तृ।

एकवचन

कर्ता—भत्ता। अ माग में भत्तारे भी है जै०महा में भत्तारो भी है।
कर्म—भत्तारं माग में भत्ताळं।
संबंध—भत्तुणो अ माग में भत्तारस्स भी है।
अधिकरण—जै महा और शौर में भत्तारे।
संबोधन—भत्ता।

बहुवचन

कर्ता—महा और अ माग में भत्तारो ; अ माग में भत्ता भी होता है।
करण—अ माग में भत्तारेहिं।
अधिकरण—अ माग में भत्तारेसु।
सम्बोधन—अ माग में भत्तारो।

स्वामी के अर्थ में भर्तृ शब्द शौर० में इ- वर्ग में रखा गया है (§ ५५ और २८०) और इस ध्वनिपरिवर्तन के कारण इसकी रूपावली नीचे दी जाती है : शौर में कर्ता — भट्टा (मृच्छ ५६३, २३ रत्ना २९३, ३२ ; २९४, ११ आदि आदि) कर्म— भट्टारं (मालवि ४५, १९ ; ५५, १ ६, १); करण— भट्टिणा (शकु ११६, १२ ; ११७, ११ मालवि ६, २ और ९ ; ८, ७) ; सम्बन्ध— भट्टिणो (शकु ४३, १० ; ११७ ७ ; मालवि ६, २२ ४, १८ ; ४१, ९ और १७ मुद्रा ५४ ९ ; १४९ २) ; सम्बोधन— भट्टा (रत्ना १५, १७ और २३ ; शकु १४४, १४)। यह रूप दक्की में भी पाया जाता है (मृच्छ ३८, ११ और १७)। —इससे मिलते-जुलते कारकों के उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं : कर्ता—अ०माग में नेया = नेता है (सूय ५१९ पाठ में णेता है); कण्टच्छेत्ता रूप पाया जाता है (उत्तर ६११) ; जै महा में दाया = दाता है (एर्त्से ५८ १) ; महा जै महा और शौर० में भत्ता मिलता है (कर्पूर ४१, ४ ; आव एर्त्से ११, ९ ; एर्त्से ; मृच्छ० ४, ४ और ५) जै शौर में णादा = ज्ञाता और झादा = ध्याता है (पव ३८२, ४२ ; ३८६, ७); कत्ता = कर्ता है (पव ३८४ ३६ ; ५८ और ६) ; शौर में सासिदा = शासिता, दादा = दाता है (कालेय २४, ११ ; २५, २२) ; शौर में रक्खिदा = रक्षिता है (शकु ५२,५ मुकुन्द १५५) अ माग में उवगायारो [पाठ में उवगाइसारो है]= उपकर्ता है (ओव § ८६) ; अ माग में भत्तारं रूप पाया जाता है (नायाध १२३१) ; अ माग में उयरक्खियारे [पाठ में उयरक्खे-यारा है]= उपरक्षयिता (सूय ५११) है ; जै महा में भत्तारो = भर्ता है (आव०एर्त्से १२ ५ ; १२ ; १६ और १७ ; एर्त्से ३, ११ ; ८५, २२)। — कर्म— महा अ माग जै०महा और शौर में भत्तारं रूप पाया जाता है (हाल १९ ; सम ८४ ; एर्त्से ; मालती २४ २) ; माग में भट्टालं आया है

(वेणी० ३३, ८), अ०माग० में **उदगदायारं** = **उदकदातारम्** (ओव० § ८५), **पसत्थारं नेयारं** = **प्रशास्तारं नेतारम्** (सम० ८४) और **सत्थारं** = **शास्तारम्** है (आयार० १, ६, ४, १), अ०माग० और जै०शौर० में **कत्तारं** = **कर्तारम्** है (उत्तर० ४१२, पव० ३७९, १)। — सम्बन्ध— महा०, जै० महा० और शौर० में **भत्तणो** रूप पाया जाता है (कर्पूर० ७, १, एर्त्से० ४१, २३ ; शकु० ८१, १०, विक्रमो० ५२, १४, ८२,६ और १६, ८८, १४ आदि-आदि), अ०माग० मे **उदगदायारस्स** = **उदकदातुः** (ओव० § ८५)। — शौर० में अधि करणकारक का रूप **भत्तरि** (शकु० १०९, १०) इसी ग्रन्थ मे अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार **भत्तारे** पढा जाना चाहिए। यही रूप हेमचन्द्र ३, ४५ में सिखाता है और जै०महा० में भी यह रूप वर्तमान है (आव०एर्त्से० २३, ५)। काश्मीरी सस्करण को (१०५, १५) **भट्टरि** पाठभेद, देवनागरी सस्करण का पाठभेद **भत्तुणि** और द्राविडी सस्करण का पाठभेद **भत्तुम्मि** अशुद्ध हैं (बोएटलिंक का सस्करण ७०, १२, मद्रासी सस्करण २४८, ६)। द्राविडी सस्करण की हस्तलिखित प्रतियॉ **भत्तुम्मि**, **भट्टरि**, **भत्तरि** तथा **भत्तंमि** के बीच में डावाडोल है। सम्बोधन— **भट्टा** है। इससे पहले इसका जो उल्लेख किया गया है वह भी देखिए। — बहुवचन : कर्त्ता— महा० में **सोआरो** = **श्रोतारः** (वज्जालग्ग ३२५, १७), अ०माग० में **पसत्थारो** = **प्रशास्तारः** (सूय० ५८५, ओव० § २३ और ३८) और **उववत्तारो** = **उपपत्तारः** है (सूय० ६९९, ७६६, ७७१, विवाह० १७९, ५०८, ६१०, ओव० § ५६, ६९ और उसके बाद), **अक्खायारो**, **आगत्तारो** और **णेयारो** और [पाठ में **णेतारो** है] **पन्नत्तारो** रूप देखने मे आते हैं जो = **आख्यातारः**, **आगन्तारः**, **नेतारः** और *__प्रज्ञातारः__ है (सूय० ८१, ४३९, ४७०, ६०३), अ० माग० में **गन्ता** = **गन्तारः** है (सूय० १५०), **सविया** = **सवितारौ** और **तट्ठा** = **त्वष्टारौ** है (ठाणग० ८२)। अ०माग० में **भयंतारो** का उक्त रूपों से ही सम्बन्ध है, यह ओववाइयसुत्त § ५६ में **भवन्तारो**[1] रूप में दिखाई देता है और कर्त्ताकारक एकवचन (आयार० २, १, ११, ११, २, २, २, ६—१४, २, ५, २, ३, सूय० ५६२, ७६६, ओव० § ५६ और १२९) और सम्बोधन में भी (आयार० २, १, ४, ५, सूय० २३९, ५८५, ६०३, ६३०, ६३५) काम में लाया जाता है। इसका अर्थ = **भवन्तः** अथवा **भगवन्तः** है। टीकाकार उक्त शब्द का अर्थ अन्य पर्यायों के साथ साथ इन शब्दों को भी देते हैं तथा यह सर्वनाम रूप से काम में आनेवाला कृदत रूप **भवन्त** से ठीक उसी प्रकार निकाला गया है जैसे, सम्बोधन का रूप **आउसन्तारो** = **आयुष्मन्तः** है (आयार० २, ४, १, ९, यहाँ पर इसका प्रयोग एकवचन में किया गया है) और **आयुष्मंत** से निकाला गया है। इसका सम्बन्धकारक का रूप **भयन्ताराणं** भी पाया जाता है (आयार० २, २, २, १०, सूय० ६३५)। करणकारक में **दायोरेहिं** भी मिलता है जो = **दातृभिः** (कप्प० § ११२)। —अधिकरण में **आगन्तारेसु**[1] = **आगन्तृषु** (आयार० २, ७, १, २, ४ और ५ ; २, ७, २, १, ७ और ८) और **दायारेसु** = **दातृषु** है (आयार० २, १५, ११,

§ ३९ —विशुद्ध कर्ता—भत्तु = भर्तृ ।

एकवचन

कर्ता—भत्ता। अ०माग में भत्तारे भी है जै०महा में भत्तारो भी है।
कर्म—भत्तारं ; माग में भत्ताळं।
संबंध—भत्तुणो अ माग में भत्तारस्स भी है।
अधिकरण—जै महा और शौर में भत्तारे।
संबोधन—भत्ता।

बहुवचन

कर्ता—महा और अ माग में भत्तारो, अ माग में भत्ता भी होता है।
करण—अ०माग में भत्तारेहिं।
अधिकरण—अ माग में भत्तारेसु।
सम्बोधन—अ माग में भत्तारो।

'स्वामी' के अर्थ में भर्तृ शब्द शौर में इ-वर्ग में चला गया है (§ ५५ और २८९) और इस ध्वनिपरिवर्तन के कारण इसकी रूपावली नीचे दी जाती है। शौर० में कर्त्ता — भट्टा (ललित ५६३, २१ रत्ना २९३, ३२ ; २९४, ११ आदि आदि) कर्म— भट्टारं (मालवि ४५, १६ ; ५९, ३ ६ , १) ; करण— भट्टिणा (शकु ११६, १२ ११७, ११ ; मालवि ६, २ और ९ ; ८, ७) ; सम्बन्ध— भट्टिणो (शकु ४३, १ ११७ ७ ; मालवि ६, २२ ४०, १८ ; ४१ ९ और १७ मुद्रा ५४ २ १४९, २) ; सम्बोधन— भट्टा (रत्ना ३ ५, १७ और २३ ; शकु १४४, १४) । यह रूप ढक्की में भी पाया जाता है (मृच्छ ३४ ११ और १७) । —इनके-तुल्य कारकों के उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं : कर्त्ता—अ माग में णेया = नेता है (सूय ५११ ; पाठ में णेता है) ; कप्पच्छायता रूप पाया जाता है (उत्तर ६११) ; जै महा में दाया = दाता है (एर्से ५८ १) ; महा जै महा और शौर में भत्ता मिलता है (कर्पूर ४३, ४ ; आव एर्से ११, २ ; एर्से ; मृच्छ० ४, ४ और ५) ; जै शौर में णादा = ज्ञाता और झादा = ध्याता है (पव ३८२, ४२ ; ३८९ ७) ; कत्ता = कर्त्ता है (पव ३८४, ३६ ५८ और ६) ; शौर में खासिदा = शासिता। दादा = दाता है (काव्य २४, १६ ; २५, २२) ; शौर में रक्खिदा = रक्षिता है (शकु ५२,५ मुकुन्द० १५ ५) अ माग में उवगाधारे [पाठ में उवगावासारो है] = उपस्थाता है (ओव § ८६) ; अ माग में भत्तारे रूप पाया जाता है (नायाध ३११) ; अ माग में उपदंसेत्तारे [पाठ में उवदसे त्तारो है] = उपदर्शयिता (सूय० ५९१) है ; जै महा में भत्तारो = भर्ता है (आव एर्से १२ ५ ; १२ ; १६ और १७ ; एर्से ३, १६ ; ८५, २२) । — कर्म— महा अ माग जै महा और शौर में भत्तारं रूप पाया जाता है (हाल १९० ; सूय ८४ ; एर्से ; मालवी २८ २) ; माग में भट्टालं आया है

२५)। कर्म : अ०माग० में **पियरं** चलता है (आयार० १, ६, ४, ३ , सूय० १७६ ; २१७ , ३३० , ३४५) , **अम्मापियरं** रूप भी आया है (ठाणग० १२६ ; उत्तर० ३७३) , शौर० में **पिदरं** पाया जाता है (विक्रमो० ८१, १० , ८२, ८ , मालवि० ८४, ५ , वेणी० ६१, ४ , कालेय० १८, २२ , कस० ५०, १२ आदि आदि) , आव० में यही रूप है (मृच्छ० १०१, १७) और ढक्की में भी (मृच्छ० ३२,१०) । जै०महा० मे **भायरं** और शौर० में **भादरं** रूप पाया जाता है = **भ्रातरम्** है (एर्त्से० ८५, ४ , वेणी० ९५, १४ , १०४, १२ , माल्ती० २४०, २) । — करण : महा० और अ०माग० में **पिउणा** रूप पाया जाता है (गउड० ११९७ , विवाह० ८२० और ८२७), माग० में **पिदुना** रूप है (मृच्छ० १६७, २४), अप० मे **पिअर** काम में आता है (शुक० ३२, ३) । जै०महा० में **भाउणा** आया है (एर्त्से० ४५, २८), शौर० मे **भादुणा** चलता है (मालवि० ७१, २ , माल्ती० २४४, २) । शौर० में **जामादुना** रूप पाया जाता है (रत्ना० २९१, २) । — सम्बन्ध : महा० और अ०माग० में **पिउणो** रूप मिलता है (रावण० ८, २८ ; कालका० २६२, २८ , नायाध० ७८४ , कप्प० टी एच. (T. H.) § ३), अ०माग० में **अम्मापिउणो** आया है (ठाणग० १२५), इसके साथ साथ **अम्मापिउस्स** रूप भी आया है (ठाणग० १२६) , जै०महा० मे **पिउणो** ही चल्ता है (एर्त्से० ९, १९ , १७, १७) और साथ ही **अम्मापियरस्स** (एर्त्से० ७७, ३०) ; शौर० में **पिदुणो** का प्रचलन है (मृच्छ० ९५, २ और १५ , उत्तररा० ७३, १० , मुद्रा० २६२, ६ , पार्वती० ११, ४ , २८,६ , मुकुन्द० ३४, ३) । शौर० में भाषा के स्वभाव के अनुसार **भादुणो** रूप है (मालती० २४२, १ , २४५, ५ ; २४९, ४ , बाल० ११३, ७ , १४८, १० , वेणी० ६०, २१ , ६४, ७ , मुद्रा० ३५, ९) , शौर० में इसी प्रकार **जामादुनणो** रूप आया है (वेणी० २९, १२ , मल्लिका० २१, ४ , २१२, १७ , विद्ध० ४८, ९) । अप० में **पिअरह** रूप चलता है (पिंगल १, ११६ , यह कर्मकारक का रूप है) । — बहुवचन : कर्त्ता— अ०माग० में **पियरो** है (ठाणग० ५११ और ५१२) । यह रूप समास में बहुत आता है जैसे, **अम्मापियरो** (आयार० २, १५, ११ और १६ , विवाह० ८०९ और ९२६ , ठाणग० ५२४ और ५२५ , अत० ६१ , नायाध० § ११४ , ११६ , पेज २९२ , ८८७ , ९६५ और बहुत अधिक बार), अ०माग० और जै०महा० में **भायरो** रूप है (सूय० १७६ , सम० २३८ , कालका० २६७, ३६ , एर्त्से०) , अ०माग० में **भायरा** भी मिल्ता है (उत्तर० ४०२ , ६२२) तथा अ०माग० में **दो पिई = द्वौ पितरौ** (तारों के नाम के अर्थ में , ठाणग० ८२) , शौर० में **भादरो** रूप बन जाता है (उत्तर० १२, ७ , वेणी० १३, ९) । शौर० में **मादरपिअरा** (? , कस० ५०, १४) और **भाअरा** (? , कस० ५०, १०) अशुद्ध हैं । इनके स्थान में **मादापिदरो** और **भादरो** पढा जाना चाहिए । — कर्म— अ०माग० और जै०महा० मे **अम्मापियरो** चल्ता है (अत० ४ , २३ , ६१ , नायाध० § १३४ और १३८ , पेज २६० और ८८७ , विवाह०

और १७)। — सिंहराज पन्ना १८ के अनुसार नपुंसकलिंग की रूपावली या तो मूल शब्द को अ- वर्ग बनाकर, उदाहरणार्थ कत्तार- से चलती है या मूल शब्द को उ-वर्ग में परिणत करके चलती है, उदाहरणार्थ कत्तु-से।

१ ओपपातिक औपपातिकसूत्र में यह शब्द देखिए। वह इस शब्द को भवस्त और मविद् का वर्णसंकर मानता है। —२ स्टाइनटाल का यह कथन कि (स्पेसीमेन डेर नायाधम्मकहा पेज ४) जैन प्राकृत (अर्थात् अ॰माग में) में विशुद्ध कर्त्ताकारक का अभाव है भ्रमपूर्ण है। ठीक इस मत के विपरीत अ॰माग एकमात्र बोली है जिसमें इसका बहुधा प्रयोग देखने में आता है।

§ ३९१—ज्ञातिवाचक शब्द— पिउ = पितृ।

एकवचन

कर्त्ता—पिआ, [पिअरो] शौर और माग में पिदा।
कर्म—पिअरं ; अ माग और जै महा में पियरं ; शौर में पिदरं ; माग॰ में पिदुर्क।
करण—पिउणा [पिअरेण] ; शौर और माग में पिदुणा ; अप में पिअर।
सम्बन्ध—पिउणो ; अ माग मे पिउणो और पिउरस्स ; जै महा में पिउणो ; पिउरस्स ; शौर और माग में पिदुणो॰ अप में पिअरह।
संबोधन—[पिअ, पिआ, पिअरं, पिअरो और पिअर]।

बहुवचन

कर्त्ता—[पिअरो] [पिउणो] ; अ माग और जै महा में पियरो ; अ माग॰ में पिई भी ; शौर में पिदरो।
कर्म— [पिअरे, पिउणो] ; अ माग में पियरो ; शौर में पिदरो, पिदरे।
करण—अ माग॰ मे पिऊर्हि और पिईहिं भी [पिअरेहिं]।
सम्बन्ध—अ माग में पिऊणं और पिईणं भी।
अधिकरण—[पिऊसुं]

एकवचन : कर्त्ता के रूप बहुधा निम्नलिखित प्रकार के होते हैं : महा में पिआ (रावण १५,२६); अ माग और जै महा में पिया (सूय॰ १७७ ६३५ ; ७५ ; ओवा ३९५ ; नायाध १११० एर्से १४, ११) रूप मिलता है ; शौर॰ में पिदा रूप चलता है (शकु २१, २ उत्तररा ११३,६ ; कालेय २४,१८) ; माग में भी पिदा रूप है (मृच्छ १ ८, १७) माग में भी पिदा ही है (मृच्छ १२, ११)। अ माग और जै महा में भाया = भ्राता (आयार २ १६, १५ ; सूय १७७ ; ६३५ ७५ उत्तर ३१७ ; एर्से १४, ११) ; शौर और माग में भादा पाया जाता है (उत्तररा १२८, १ ; प्रबोध॰ ८३, ६ कर्पू १ २ ८ ; १ १, २२ ; माग में मृच्छ १ ४, १८) ; शौर में जमादा = जामाता (मालती २४५, ४ ; मल्लिका॰ २१ , २१ ; प्रिय २७, ४ [पाठ में जामादा है]) ; माग में यामादा रूप पाया जाता है (मृच्छ ११९,

२५)। कर्म : अ०माग० में **पियरं** चलता है (आयार० १, ६, ४, ३ , सूय० १७६ , २१७ , ३३० , ३४५) , **अम्मापियरं** रूप भी आया है (ठाणग० १२६ ; उत्तर० ३७३) , शौर० में **पिदरं** पाया जाता है (विक्रमो० ८१, १० , ८२, ८ , मालवि० ८४, ५ , वेणी० ६१, ४ , कालेय० १८, २२ , कस० ५०, १२ आदि आदि) ; आव० में यही रूप है (मृच्छ० १०१, १७) और ढक्की में भी (मृच्छ० ३२,१०) । जै०महा० में **भायरं** और शौर० में **भादर** रूप पाया जाता है = **भ्रातरम्** है (एर्से० ८५, ४ , वेणी० ९५, १४ , १०४, १२ , माल्ती० २४०, २)। — करण . महा० और अ०माग० में **पिउणा** रूप पाया जाता है (गउड० ११९७ , विवाह० ८२० और ८२७), माग० मे **पिदुना** रूप है (मृच्छ० १६७, २४), अप० मे **पिअर** काम मे आता है (शुक० ३२, ३)। जै०महा० में **भाउणा** आया है (एर्से० ४५, २८), शौर० मे **भादुणा** चलता है (मालवि० ७१, २ , मालती० २४४, २)। शौर० मे **जामादुना** रूप पाया जाता है (रत्ना० २९१, २)। — सम्बन्ध · महा० और अ०माग० में **पिउणो** रूप मिलता है (रावण० ८, २८ , कालका० २६२, २८ , नायाध० ७८४ , कप्प० टी एच. (T. H.) § ३), अ०माग० में **अम्मापिउणो** आया है (ठाणग० १२५), इसके साथ साथ **अम्मापिउस्स** रूप भी आया है (ठाणग० १२६) , जै०महा० मे **पिउणो** ही चल्ता है (एर्से० ९, १९ , १७, १७) और साथ ही **अम्मापियरस्स** (एर्से० ७७, ३०) , शौर० में **पिदुणो** का प्रचलन है (मृच्छ० ९५, २ और १५ , उत्तररा० ७३, १० ; मुद्रा० २६२, ६ , पार्वती० ११, ४ , २८,६ , मुकुन्द० ३४, ३) । शौर० में भाषा के स्वभाव के अनुसार **भादुणो** रूप है (मालती० २४२, १ , २४५, ५ , २४९, ४ , बाल० ११३, ७ , १४८, १० , वेणी० ६०, २१ , ६४, ७ , मुद्रा० ३५, ९) , शौर० मे इसी प्रकार **जामादुनणो** रूप आया है (वेणी० २९, १२ , मल्लिका० २१, ४ , २१२, १७ , विद्ध० ४८, ९)। अप० में **पिअरह** रूप चलता है (पिंगल १, ११६ , यह कर्मकारक का रूप है) । — बहुवचन : कर्त्ता— अ०माग० में **पियरो** है (ठाणग० ५११ और ५१२) । यह रूप समास में बहुत आता है जैसे, **अम्मापियरो** (आयार० २, १५, ११ और १६ , विवाह० ८०९ और ९२६ , ठाणग० ५२४ और ५२५ , अत० ६१ , नायाध० § ११४ , ११६ , पेज २९२ , ८८७ , ९६५ और बहुत अधिक बार), अ०माग० और जै०महा० में **भायरो** रूप है (सूय० १७६ , सम० २३८ , कालका० २६७, ३६ , एर्से०) , अ०माग० में **भायरा** भी मिलता है (उत्तर० ४०२ , ६२२) तथा अ०माग० में **दो पिई = द्वौ पितरौ** (तारों के नाम के अर्थ में , ठाणग० ८२) , शौर० में **भादरो** रूप बन जाता है (उत्तर० १२, ७ , वेणी० १३, ९)। शौर० में **मादरपिअरा** (? , कस० ५०, १४) और **भाअरा** (? , कस० ५०, १०) अशुद्ध हैं। इनके स्थान में **मादापिदरो** और **भादरो** पढा जाना चाहिए। — कर्म- अ०माग० और जै०महा० में **अम्मापियरो** चल्ता है (अंत० ४ , २३ , ६१ , नायाध० § १३४ और १३८ , पेज २६० और ८८७ , विवाह०

८०८ ; एर्त्से० १७, २९) और मैं पिदरो रूप काम में आता है (पिङ्गो० ८७, १७) अ०माग में अम्मापियरे रूप भी पाया जाता है (उत्तर ४४१ ; टीका में अम्मापियर है) और मैं मादापिदरे = मातापितरौ है (शकु० १५९,१२ ; [यह रूप कमकारक में गुजराती में वर्तमान है, उसम घेरे आऊंछुं = घर को आता हूं। बंगाली में भी चलता है, आमि कालेजे जाइ = मैं कालेज को जाता हूं आदि आदि। —अनु])। — करण— अ माग में अम्मापिऊहिं रूप पाया जाता है (आयार २, १५, १७ नायाध § ११८ ; पेज ८८९) और अ माग० तथा जै महा० में अम्मापिईहिं रूप भी आया है (कप्प § ९४ इस ग्रंथ में अन्यत्र अम्मापिऊहिं भी देखिए ठाणंग ५२७ विवाह ११ ९ ; आव एर्त्से० १७,२ १८, २) ; जै महा में मायापिईहिं मिलता है (आव०एर्त्से १७, ११) अ० माग० में पिईहिं और माईहिं रूप देखने में आते हैं (सूय ६९४ पाठ में पिईहिं तथा माइइहिं है) अ माग० में पियाहि (१ ४) और पिताहि रूप अशुद्ध हैं (६९२) और मैं मादरहिं रूप काम में आता है यह मृच्छकटिक १ १, १ में है और केवल अवकाशपन्नू है। — संबंध— अ माग० में अम्मापिऊणं रूप है (कप्प § ९ ; नायाध § १२० ; पत्र ९ ५ और ९६५) तथा इसके साथ साथ अम्मापिईणं रूप भी मिलता है (आव § ७२ इस ग्रंथ में अन्यत्र अम्मापिऊणं रूप भी देखिए ; § १०३ और १ ७) जै०महा में मायापिईणं पाया जाता है (आव एर्त्से १७, २१)। अ माग में व्यक्ति का नाम चुल्लणीपिय = चुल्लणीपितृ और इस मूल शब्द के अनुसार इसकी रूपावली की जाती है : कर्ता— चुल्लणीपिया, कर्म— चुल्लणीपियं, संबंध— चुल्लणीपियस्स और संबोधन— चुल्लणीपिया होता है (उवास में यह शब्द देखिए)।

§ ३९२—माद (= मा) की रूपावली यों चलती है : कर्ता— महा में माआ (हाल ४ और ५ ८) ; अ०माग और जै महा में माया रूप पाया जाता है (आयार १ २, १ १ सूय १२५ ; १६१ ३०७ ; ६३५ ७५० ; नायाध १११ जीवा २५५ ; कप्प § ८६ और १ ९ एर्त्से० ५, १९ ; १०, ४ और ७) ; शौर , आव और माग में मादा रूप है (उत्तररा० ११६, ६ ; वणी० २९, १२ आव में मृच्छ १००, १७ ; माग में मृच्छ० १२९, ६ ; [अम्मापभरा मादरपिभरा, मादापिदरा और मादा रूपों की फारसी और उसके लिए गये अम्मा, मादा मादर और पिदर शब्दों की तुलना कीजिए। इनका इतना अधिक साम्य बताता है कि प्राकृत और फारसी रूप एक ही मूल से आये हैं। इस दृष्टि से हमें फारसी के प्रति भावना रख ठीक करना होगा। अपभ्रंश और फारसी की भाषाओं की समानता भाषाशास्त्र के क्षेत्र में एक भारी लाभदायक आविष्कार है। इसका कुछ आभास § ११६ और उसके बाद के एक दो § में मिलता है। —अनु])। हमचंद्र ३ ४६ के अनुसार जब देवी को मा कहा जाता है तो उस अवसर पर रूपावली का मूल शब्द माअरा बन जाता है जिसके अंत में –आ लगाकर बननेवाले स्त्रीलिंग रूप के समान ही रूपावली चलती है। —कर्म— महा० में इसका

रूप **माअरं** होता है (हेच० ३, ४६), अ०माग० और जै०महा० में **मायरं** मिलता है ; ढक्की तथा शौर० में **मादरम्** है (आयार० १, ६, ४, ३ , सूय० १७६ , २१७ , ३३० , ३४५ , एर्त्से० , ढक्की में मृच्छ० ३२, १२ , शौर० में मृच्छ० १४१, ११ , शकु० ५९, ७ , विक्रमो० ८२, ३ , ८८, १६ आदि-आदि) , महा० में **माअं** रूप भी पाया जाता है (हाल ७४१) । इस भाति यह शब्द सदा और सर्वत्र **आ–** वर्ग की रूपावली पर चलता है . एकवचन . करण— जै०महा० में **मायाए** (आव०एर्त्से० ११,३ और ९), सबध— शौर० में **मादाए** है (कर्पूर० १९,५) , सबोधन— महा० मे **माए** पाया जाता है (हाल मे **माआ** शब्द और उसके रूप देखिए), शौर० में **मादे** चलता है (वेणी० ५८,१७ , विद्ध० ११२, ८) । बहुवचन . करण— अ० माग० मे **मायाहिं** पाया जाता है (सूय० १०४) और सबध— अप० में **माअहॅं** रूप मिलता है (हेच० ४, ३९९) । कर्त्ता बहुवचन अ०माग० मे **मायरो** है (ठाणग० ५१२ , सम० २३० , कप्प० § ७४ और ७७) । इसके अतिरिक्त अ०माग० और जै० महा० में **ई–** और **ऊ–** वर्ग के शब्द हैं (हेच० ३, ४६ [हेच० ने इनके उदाहरण **माईण** और **माऊए** रूप दिये है । —अनु०]) , सबध और अधिकरण एकवचन में **माऊए** रूप है (कप्प० § ९३ , आव०एर्त्से० १२,९ , अधिकरण में विवाह० ११६) , करण बहुवचन— **माईहिं** रूप पाया जाता है (सूय० ६९२ , [पाठ मे **माइहिं** है], ६९४) , सबध बहुवचन— **माईणं** और **माईण** रूप पाये जाते हैं (हेच० १,१३५ , ३,४६) । ये रूप समासों में बहुधा दिखाई देते हैं (§ ५५) । सबोधन एकवचन— पिंगल के अप० में **माई** रूप आया है (१, २ , [सबोधन एकवचन का यह रूप हिंदी में पिंगल के समय से आज तक चल रहा है । —अनु०]) । **दुहितृ** का कर्त्ताकारक शौर० में **दुहिदा** है (मालवि० ३७, ८ , रत्ना० २९१, १ , विद्ध० ४७, ६ और १० , प्रिय० ५२, ६), शौर० में कर्मकारक का रूप **दुहिदरं** पाया जाता है (शकु० १२८, २) , शौर० में सबोधन का रूप **दुहिदे** मिलता है (विद्ध० ३८, ३ , कलकतिया सस्करण) । अधिकाश स्थलों पर जै०महा० में **धीया** रूप आता है । शौर० और माग० में **धीदा** है और महा० में **धूआ** पाया जाता है । अ०माग० और जै०महा० में **धूया** मिलता है, शौर० और माग० मे **धूदा** भी काम में लाया जाता है (§ ६५ और १४८) । इन सभी रूपों में **आ–** वर्ग की रूपावली चलती है । जै०महा० **धीया** और शौर० तथा माग० **धीदा** विशेषकर समास के भीतर सयुक्त होकर (**दासीएउत्त** की तुलना कीजिए), जै०महा० में **दासीएधीया,** शौर० में **दासीएधीदा** और माग० में **दाशीएधीदा** जैसे रूप बनाते हैं । हस्तलिपियों और पाठों में शौर० और माग० में अधिकाश स्थलों पर अशुद्ध रूप **धीआ** पाया जाता है । कर्त्ता– शौर० में **दासीएधीदा** मिलता है (रत्ना० ३०२, ८) , अ०माग० और जै०महा० में **धूया** का प्रचलन है (आयार० १, २,१, १ , २,१५,१५ , सूय० ६३५ और ६५७ , विवाग० १०५ , २१४ और २२८ , अत० ५५ , नायाध० ५८६ , ७८१ , १०६८ , १०७० , १२२८ , विवाह० ६०२ और ९८७ , जीवा० ३५५ , आव०एर्त्से० १०, २३ , ११, १० , १२, ३ , २९, १४ , ३७, २६ और उसके

बाद एर्त्से ५, १८)। शौर० में मज्जाधूता = आर्याधुहिता (मृच्छ० ५१, २१ ५४ ७; ९४,११; १२५,१४) कर्म— महा० में धूअं रूप है (हाल १८८), अ०माग० में धूयं रूप चलता है (विवाग २२८; २२९; नायाध ८२०) करण— महा में धूआए रूप पाया जाता है (हाल १७) धूआए भी है (हाल ८१४); शौर में दासीएधीदाए आया है (नागा ५७, ८); माग में दाशीएधीदाए देखा जाता है (मृच्छ० १७, ८) सम्बन्ध— शौर में दासीएधीदाए रूप है (मृच्छ० ७७, १२ नागा० ४७, १०) शौर० में मज्जाधूदाए भी पाया जाता है (मृच्छ० ५१, १५ ९४, ८) अधिकरण— अ माग में धूयाए आया है (नायाध० ७२७) सम्बोधन— जै महा में दासीएधीए रूप है (एर्त्से ९८, २); शौर में दासीएधीए पाया जाता है (मृच्छ ५१, ७ और १; ७२, १९ कर्पूर० ११, २ [कोनो के संस्करण में दासीएधूदे है] विद्ध ८१, ११ प्रसन्ना २९४ १; १ १, १८ नागा ५७, १ चंड ९, ११) माग० में दाशीएधीदे मिलता है (मृच्छ ११७, २१)। बहुवचन : कर्ता— और कर्म अ०माग और जै महा में धूयाओ रूप होता है (आयार० २, १, ४, ५; २, २, १, १२; विवाग २१७ आव एर्त्से १, २१; १२,१; एर्त्से १४, १२); करण— जै०महा० में धूयाहिं आया है (एर्त्से १८, १९) सम्बन्ध— अ माग० में धूयाणं मिलता है (आयार १, २, ५, १) शौर में धीदाणं पाया जाता है (मालती० २८८, ५), सम्बोधन— शौर में दासीएधीदाओ होता है (चैतन्य ८४, ७)। मूल शब्द धूयरा से अ माग कर्मकारक एकवचन का रूप धूयरं पाया जाता है (उत्तर० ९४१) और करणकारक बहुवचन का रूप धूयराहिं आया है (सूय० २२९)। — स्वसृ शब्द के कर्ताकारक एकवचन का रूप अ माग० में ससा मिलता है (हेच १, १५ पाइय २५२ दस १७९)।

(४) ओ और औ वर्ग

§ ३९३—गो शब्द की पुरानी रूपावली बहुत थोड़े अवशेष अ माग में ऐसे रह गये हैं जिनके प्रमाण वर्तमान हैं : कर्ता— सुयगो = अभिनवप्रसूतागौः (सूय १८०)। कर्ता बहुवचन— गावो = गावः है (दस ६२८ १५) कर्म बहुवचन— गावो = *गावः = गाः (आयार २, ४, २ ९ और १); करण बहुवचन— गोहिं = गोभिः (अणुओग १५१); सम्बन्ध बहुवचन— गवं = गवाम् (सम० ८३; उत्तर ९११) है। अ०माग० में कर्ता एकवचन का रूप गवे = *गवः है (आयार २, ४, २, १० दस ६२८,१) और यही रूप सूयगडंगसुत्त १४७ में आये हुए रूप गवं के स्थान में पढ़ा जाना चाहिए अ०माग में कर्ता बहुवचन का रूप गवा है जो अरण्याखा में है और यह = अरण्यगवाः है (सूय १८५)। पुंलिंग में अ माग और माग० में अधिकांश रूपों पर गोणा रूप काम में लाया जाता है (हेच० २ १७४; देशी २, १ ८; पिंगि १, १, १ ५; आयार २, १, ५ ३; २, १, ४, ८ और ११; २ ४, २, ७; सूय ७ ८;

७२० , ७२४ और उसके बाद , ७२७ , जीवा० ३५६ , पण्हा० १९ , सम० १३१ , नायाध० , ओव० , उवास० , मृच्छ० ९७, २१ , ९८, २० , ९९, १२ , १००, १३ , १०७, १८ , ११२, १७ , ११७, १५ , ११८, ५ , १२ , १४ और २४ , १२२, १५ , १३२, १६ , दो अन्तिम स्थानो में **गोणाइं** पाठ है जिसमें § ३५८ के अनुसार लिंगपरिवर्तन हो गया है) , अ०माग० में **गोणत्ताए = गोत्वाय** (विवाग० ५१) है । स्त्रीलिंग का रूप जै०महा० मे **गोणी** (आव० ७, १० और १२ , ४३, १०) अथवा महा० मे **गाई** है (हेच० १, १५८ , हाल), अ०माग० और जै०-महा० में **गावी** है (चड० २, १६ ; हेच० २, १७४ , आयार० २, १, ४, ३ और ४ , विवाग० ६७ , जीवा० ३५६ , दस० ६१८, ३९ , दस०नि० ६५८, ७ , आव०एर्त्से० ४३, ११ और २० , द्वार० ५०४, १२ और १४ , एर्त्से०) । हेमचन्द्र १, १५८ में पुलिंग रूप **गाउओ** और **गाओ** देता है तथा स्त्रीलिंग के रूप **गाउआ** और **गाई** देता है । इनमें से **गाउओ = गवयः** , **गोणो** या तो = ***गोॅण्णो** के जो ***गुण्णो** के स्थान में आया है और = ***गूर्णः** जो § ६६[1] के अनुसार **गुर्** धातु से निकला है या = ***गवन** है । § ८ और १५२ की भी तुलना कीजिए ।

१. वे०बाइ० ३, २३७ से यह रूप अधिक अच्छा है ।

§ ३९४—**नौ** शब्द (= नाव) ध्वनिबलयुक्त मूल शब्द से स्त्रीलिंग का एक रूप **णावा** बनाता है जिसकी रूपावली नियमित रूप से आ– वर्ग के अनुसार चलती है (हेच० १,१६४ , सिंहराज० पन्ना १६) . अ०माग० में कर्त्ता, एकवचन में **नावा,** शौर० में **णावा** (नायाध० ७४१ और १३३९ , विवाह० १०५ , उत्तर० ७१६ , मृच्छ० ४१, २०) और अप० में **णाव** रूप है (हेच० ४, ४२३, १) , कर्म– महा० में **णावं** रूप है (गउड० ८१२), अ०माग० मे **नावं** आया है और **णावं** भी (आयार० २, ३, १, १५ और उसके बाद , सूय० ६८ , २७१ , ४३८ , विवाह० १०५ , नायाध० ७४१) , करण और सम्बन्ध– अ०माग० में **नावाए** रूप है (आयार० २, ३, १, १५ और उसके बाद , नायाध० १३३९ और उसके बाद , उवास० § २१८) , अपादान– अ०माग० **नावाओ** रूप है (आयार० २, ३, २, २ और ३) , करण बहुवचन– अ०माग० में **नावाहि** रूप पाया जाता है (दस० ६२९, १) ।

(५) अंत में –त् लगनेवाले मूल संज्ञा शब्द

§ ३९५—वे सज्ञा शब्द, जिनके अन्त में **–त्** आता है और जिस **त्** से पहले कोई स्वर आता हो, वे शब्द के अन्त में आनेवाले **त्** की विच्युति के बाद जो स्वर रह जाता है उससे मिलती रूपावली में सम्मिलित या परिवर्तित हो जाते हैं : महा० में **इन्दइणा = इन्द्रजिता** (रावण० १४, १६) , सम्बन्ध— **इन्दइणो** रूप आया है (रावण० १०, ५८ और ८४) और साथ ही **इन्दइस्स** पाया जाता है (रावण० १५, ६१) , अधिकरण— **इन्दइम्मि** है (रावण० १३, ९९) । **तडी = तडित्** (हेच० १, २०२), अप० में **तळी = तडितम्** है (विक्रमो० ५५, २) । **मारू =**

मारुत् (क्रम २, १२३) है ; महा में विज्जू = विद्युत् है (वर ४, ९ भाम ४, २६ ; हेच १, १५ क्रम० २, १२९ हाल ५८९)। जगत् का कर्ताकारक एकवचन महा में जर्ये है (रावण ५, २ ९, ७१) अ माग० में जगे रूप है (सूय ७४), अप में जगु मिलता है (हेच० ४, ३४३, १) अ माग में कर्मकारक का रूप जगं पाया जाता है (सूय० ४ ५ और ५१७) अप में सम्बन्धकारक का रूप जगस्सु आया है (हेच० ४, ४४०) महा में अधिकरणकारक में जअम्मि देखा जाता है (हाल ११४ रावण ३, १२ कर्पूर ७८, ४ और ८ , ४) तथा इसके साथ-साथ जए भी पाया जाता है (गउड २३१; हाल १ १) अ माग० में जगई रूप है (सूय १ ४ ; पाठ में जगती है) और इसके साथ-साथ जगंसि भी चलता है (सूय १ ६) जै शौर में इस कारक में जगदि का प्रचलन है (पव० ३८२ २६ पाठ में जगति है) और अप में जगि मिलता है (हेच ४, ४ ४ ; कालका २६१, १)। स्त्रीलिंग के शब्द अधिकांश में शब्द के अन्त में –आ जोड़ देते हैं : सरित् का रूप पाली की भाँति ही सरिता हो जाता है, महा० में सरिआ रूप आया है (गउड हाल रावण), जै महा में सरिया है (एर्त्से) अप में सरिअ पाया जाता है (विक्रमो ७२, ९) महा में सम्बन्धकारक बहुवचन का रूप सरिआइँ है (हेच ८, १) अप में करणकारक बहुवचन का रूप सरिहिँ = *सरिभिः = सरिद्भिः है (हेच ४, ४२२, ११)। सब व्याकरणकारों ने विद्युत् के लिए आ– रूपावली में इसका आगमन निषिद्ध माना है । § २४४ की तुलना कीजिए। हेच १, ११ के अनुसार विज्जुए के साथ-साथ विज्जुणा भी पाया जाता है और चंड १, ४ के अनुसार कर्ताकारक बहुवचन का रूप विज्जुणो भी होता है।

§ ३९६—जिन शब्दों के अंत में –अत् मत् और वत् आते हैं उनकी रूपावली आंशिक रूप में संस्कृत के अनुसार चलती है, विशेषतः अ माग में और आंशिक रूप में स्पष्ट रूप –अन्त –मन्त और –वन्त की अ– रूपावली के ढंग पर चलती है। इसके अनुसार संस्कृत रूपावली के ढंग पर : अ माग में कर्ताकारक एकवचन आयं = आनम् है (सूय १ १२२); विज्जं = विद्वान् है (सूय १२१ ; १ ६ , २८ और उसके बाद) चक्खुमं = चक्षुष्मान् (सूय ५४६); धिट्ठिमं = धृतिमान् है (सूय २ और ५११) ; आयवं नाणवं धम्मवं बम्भवं = आत्मवान् ज्ञानवान् धर्मवान् ब्रह्मवान् है (आयार १, ३, १, २), पुट्ठवं = स्पृष्टवान् है (आयार १ ७ ८ ८ ; यह कर्मवाच्य है), थामवं = स्थामवान् (उत्तर ९ और ९) चिट्ठं और अचिट्ठं = तिष्ठन् और अतिष्ठन् है (आयार १ ४ २ २) कुव्वं = कुर्वन् है (सूय ११ और ८११) किणं, हणं और पयं = क्रीणन्, घ्नन् और पचन् है (सूय १ १) अ माग और जै महा में महं रूप पाया जाता है (आयार १, ७, १, ४ सूय ५८२ ; ओव § ५ ; कालका २७१ ११), जै महा० में मरुयं = मरुत्वान् है (द्वार ४९६, ९)। इस रूप के उदाहरण और प्रमाण मुझे महा में नहीं मिले। शौर० और माग में

इस रूप के उदाहरण केवल **भगवत्** और **भवत्** (सर्वनाम) में ही सीमित हैं (हेच० ४, २६५)। इसके अनुसार शौर० में **भअवं** रूप आया है (मृच्छ० २८, १, ४४, १९, मुद्रा० २०, ७, १७९, ३, रत्ना० २९६, ५ और २३, विक्रमो० १०, २, २३, १९, ४३, ११ आदि आदि), माग० में भी यही रूप है (मुद्रा० १७८, ६, चंड० ४३, ७), शौर० में **भवं** भी पाया जाता है (मृच्छ० ४, २४, ६, २३ ; ७, ३, १८, २५, शकु० ३७, १ आदि-आदि), **अत्थभवं** = **अत्रभवान्** (शकु० ३३, ३, ३५, ७), **तत्थभवं** = **तत्रभवान्** है (विक्रमो० ४६, ६, ४७, २, ७५, ३ और १५), इसी प्रकार पै० में **भगवं** रूप है (हेच० ४, ३१३) जैसा कि अ०माग० में भी है (आयार० १, ८, १, १ और उसके बाद, उवास० और बहुत अधिक स्थलों पर)।—अ०माग० में करणकारक का रूप **मइमया** = **मतिमता** है (आयार० १, ७, १, ४ और २, ५), **मईमया** भी पाया जाता है (आयार० १, ८, १, २२, २, १६, ३, १४ और ४, १७, सूय० २७३), अ०माग० में **जाणया पासया** = **जानता पश्यता** है (आयार० १, ७, १, ३), अ०माग० और जै०महा० में **महया** = **महता** (आयार० १,२, ११, सूय० ७१८, विवाग० २३९, नायाध० § १५, १३५ आदि-आदि, कालका० २५९, ३७), आगे आनेवाले पुंलिंग और नपुंसकलिंगों के रूपों की समानता से स्त्रीलिंग में भी ऐसे ही रूप (§ ३५५) काम में लाये गये हैं : **महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं** = **महत्यर्द्ध्या महत्या द्युत्या महता बलेन** (जीवा० ५८८ [पाठ में **जुत्तीए** है], कप्प० १०२, ओव० § ५२), महा० में **भअवआ** रूप मिलता है (गउड० ८९६), अ०माग० और जै०महा० में **भगवया** रूप पाया जाता है (आयार० १, १, १, १ और ७ तथा ३, ५ आदि आदि, उवास०, और अधिकांश स्थलों पर, कालका० २६८, १७), शौर० में **भअवदा** = **भगवता** (ललित० २६५, १८, शकु० ५७, १७, विक्रमो० २३, ६, ७२, १४, ८१, २), शौर० में इसी प्रकार **भवदा** = **भवता** रूप भी पाया जाता है (शकु० ३६, १६, विक्रमो० १९, १५), **अत्थभवदा** और **तत्थभवदा** रूप प्रचलित हैं (विक्रमो० १६, ११, ३०, ९, ८०, १४, ८४, १९, शकु० ३०, २)। सम्बन्धकारक में भी यह पाया जाता है : शौर० में **भअवदो** रूप मिलता है (शकु० १२०, ५, रत्ना० २९४, ५, २९५, ६), माग० में भी यही रूप चलता है (प्रबोध० ५२, ६, चंड० ४२, ६), शौर० में **भवदो** आता है (शकु० ३८, ६ और ८, ३९, १२, मृच्छ० ५२, १२, विक्रमो० १८, १०, २०, १९, २१, १९ आदि-आदि), **अत्थभवदो** आया है (विक्रमो० २१, १०), **तत्थभवदो** मिलता है (मृच्छ० ६, ४, २२, १२ ; विक्रमो० ३८, १८, ५१,१३, ७९, १६)। व्यक्तिवाचक संज्ञा की भी यही दशा है : शौर० में सम्बन्धकारक **रुमण्णदो** = **रुमण्वतः** है (रत्ना० ३२०, १६)। इसका कर्त्ताकारक **रुमण्णो** उच्चारित होता है अर्थात् यह संज्ञाशब्द न-वर्ग का है (प्रिय० ५, ५)। अन्यथा विशेषणों और कृदंतों में शौर० और माग० में केवल -अ वर्ग के रूप काम में आते हैं। इस कारण शौर० रूप **गुणवदी** (शकु० ७४, ८ संस्करण बुर्क-

हाई) जिसके स्थान में बोएटलिंक के संस्करण के ४१, १४, मद्रासी संस्करण के १८९, ११ और काश्मीरी संस्करण के ७२, १५ में अपादानकारक में अशुद्ध रूप गुणवदे आया है। शाधि रूप भवदे के विषय में § ३६१ देखिए। — अ०माग० सम्बन्ध कारक में महओ = महतः (सूय ११२), भगवओ = भगवतः है (आयार० १, १, २, ४ ; २ १५, ९ और उसके बाद कप्प § ११ और २८ विवाह० १२७१ उवास० और अनेक स्थलों पर), पडिवयओ = *प्रतिपद्यतः, विहरओ = विहरतः है (उत्तर० ११६), अविजाणओ = अविजानतः है (आयार १, १, ६, २ १, ४, ४, २ १ ५, १, १), अकुव्वओ = अकुर्वतः (सूय ५४), पकुव्वओ = प्रकुर्वतः (सूय० १४०), करओ = कुर्वतः (आयार १, १, १, ५), हणओ = घ्नतः (आयार १ ६, ४, २ १, ७, १,१), कित्तयओ = कीर्तयतः (उत्तर ७२६) और धीमओ = धृतिमतः है (आयार० २, १६, ८)। शौर और माग रूपों के विषय में इससे पहले देखिए। — अधिकरण शौर में सदि = सति (शकु १४१, ७) ; महा० में हिमवइ = हिमवति (मुद्रा ४, ९) है। — सम्बोधन : अ माग और जै०महा में भगवं और भयवं रूप पाये जाते हैं (विवाह० २ ५ कप्प० § १११ एत्सें २, १२ ४४, १८ ; द्वार ४९५ ११) शौर में भअवं आया है (रत्ना २९६, २४, २९८, १४ १ , ११ ; प्रबोध ५९, ४ ; शकु ७१, ५ विक्रमो ८६, १ ; उत्तररा० २०४, ८ आदि आदि) प में भगवं रूप है (हेम ४, ३२३)। अ माग में आउसं = आयुष्मन् रूप के साथ-साथ (आयार १, १, १ १ सूय ७९२ ; सम १) अ माग० में आउसो रूप बहुत ही अधिक देखा जाता है (आयार १, ७, २, २ ; २, २, २ ६—१४ २ ५, १, ७ और ११ ; २, ३, १, ५ और १ तथा ११ ; २, ७, १, २ ; २, ७ २, १ और २ ; सूय ५९४ ; उवास० ; ओव ; कप्प० ; आदि आदि) ; इसके अतिरिक्त समणाउसो रूप भी बहुत प्रचलित है (सम ११ ; ओव० § १४ ; नायाध० ५१८ ; ६१४ ; ९१७ ; ९९२ और उसके बाद) जो बहुवचन के काम में भी आता है (सूय० ५७१ और ५८२ ; नायाध ८१७ और ५ ४)। लौयमान ने औपपातिक सूत्र में (इस ग्रन्थ में यह शब्द देखिए) आउसो रूप को ठीक ही = *आयुष्मस् माना है। इस दृष्टि से यह शब्द के अन्त में –मस् लगनेवाले वैदिक सम्बोधन से सम्बन्धित (ह्विटनी § ४५४) माना जाना चाहिए। बहुवचन में यह रूप वाणी की परम्परा के अनुसार कर्ताकारक और सम्बोधन में प्राचीन रूपावली के अनुसार बनाया जाता है। कर्ता– : अ माग में सीलमन्ता गुणमन्ता वयमन्ता पाया जाता है (आयार० २, १, ९, १) ; मूलमन्ता कन्दमन्ता खन्धमन्ता तयामन्ता सालमन्ता पवालमन्ता आदि आदि भी इसके मे आता है (ओव § ४), भगवन्ता आया है (आयार १, ४, १, १ ; २, १, ,, १ ; विवाह १ ३५ ; कप्प एस (S) § ६१) और इसी प्रकार शौर में कर्त्ताकारक का रूप भअवन्तो मिलता है (मुद्रा १ , ५)। शौर० में किदवन्ता = कृतवन्तः के स्थान में किदवन्तो पढ़ा जाना चाहिए। इसके विपरीत

सम्बोधनकारक **भवन्ता** (शकु० २७, १६, बोएटलिंक का संस्करण) के स्थान में मद्रासी संस्करण १३५, ७ के अनुसार **भवन्तो** पढा जाना चाहिए जैसा कि वेणीसंहार १०२, २ में वर्तमान है। — कर्त्ताकारक बहुवचन नपुंसकलिंग में अ०माग० में **परिग्गहावन्ती** रूप आया है (आयार० १, ५, २, ४ , १, ५, ३, १ की तुलना कीजिए) , **बलवन्ति** भी पाया जाता है (उत्तर० ७५३) , **एयावन्ति सव्वावन्ति** = **एतावन्ति** ***सर्वावन्ति** है (आयार० १, १, १, ५ और ७) , **आवन्ती** = **यावन्ति** है (आयार० १, ४, २, ३ , १, ५, २, १ और ४ , § ३५७ की तुलना कीजिए , [**यावन्ति** का कुमाउनी रूप सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए आशीर्वाद में = **अवैति** है। —अनु०]) , इसका एक रूप **जावन्ति** भी पाया जाता है (उत्तर० २१५)। एकवचन का रूप **अभिद्दवं** = **अभिद्रवन्** आयारंगसुत्त २, १६, २ में छन्द की मात्राएं ठीक रखने के लिए बहुवचन में आया है। इस सम्बन्ध में पिशल कृत [यह ग्रन्थ वास्तव में पिशल और गेल्डनर द्वारा लिखा गया है। इसमें वैदिक शब्दों पर उक्त दोनों विद्वान लेखकों के शोधपूर्ण निबन्ध हैं। —अनु०] वेदिशे स्टुडिएन २,२२७ की तुलना कीजिए। सम्बोधनकारक में जै०महा० में पद्य के भीतर **भयवं** रूप आया है (तीर्थ० ४, १४ और २०) जो बहुत से भिक्खुओं को सम्बोधित करने के लिए काम में लाया गया है। —जैसे अ०माग० रूप **समणाउसो** बहुवचन के काम में भी आता है उसी प्रकार बहुवचन का रूप **आउसन्तो** बहुत अधिक अवसरों पर एकवचन के लिए भी प्रयोग में लाया जाता है अर्थात् यह साधारण बहुवचन माना जाना चाहिए। हाँ, गद्य में कर्त्ताकारक एकवचन **आवसन्तो** होना चाहिए . **आउसन्तो समणा** = **आयुष्माञ् श्रमण** और **आउसन्तो गाहावइ** = **आयुष्मन् गृहपते** है (आयार० १, ७, २, २ , ५, २ , २, १, ३, २ , २, ३, १, १६ और उसके बाद , २, ३, २, १ , २ , १६, २, ३, ३, ५ और उसके बाद आदि आदि), **आउसन्तो गोयमा** = **आयुष्मन् गोतम** (सूय० ९६२ , ९७२ , ९८१), इसके साथ साथ **आउसो गोयमा** रूप भी चलता है (सूय० ९६४) , **आउसन्तो उदगा** = **आयुष्मान्न् उदक** (सूय० ९६९ , ९७२ , १०१२ , १०१४) है। असंदिग्ध बहुवचन उदाहरणार्थ **आउसन्तो नियण्ठा** = **आयुष्मन्तो निर्ग्रन्था** है (सूय० ९८२, ९९२)। अशक्त मूल शब्दों से **जाणओ** और **अजाणओ** रूप बनाये गये हैं (आयार० २, ४, १, १)। यदि हम टीकाकारों और याकोबी (सेक्रेड बुक्स औफ द ईस्ट, ग्रन्थमाला तेरहवीं, १४९ के मतानुसार इस रूप को कर्त्ताकारक बहुवचन मानना चाहें तो गद्य के सम्बन्ध में यह बात सम्भव नहीं है, इसलिए इन रूपों का स्पष्टीकरण इन्हें सम्बन्धकारक एकवचन मानने से होता है। ऐसा मानने से अर्थ भी अधिकतर उपयुक्त हो जाता है।

§ ३९७— § ३९६ में दिये गये उदाहरणों को छोड़कर सभी प्राकृत बोलियों में **-अन्त**, **-मन्त** और **वन्त** से बने रूपों की ही प्रधानता है : एकवचन कर्त्ता— महा० में **पिअन्तो** = **पिबन्** , **चलन्तो** = **चलन्** , **बहुगुणवन्तो** = **बहुगुणवान्** और **कुणन्तो** = **कृण्वन्** है (हाल १३ , २५ , २०३, २६५) , अ०माग० में **सासन्तो**

और इसके साथ-साथ सासं = शासत् है (उत्तर १८); अणुसासन्तो भी पाया जाता है (उत्तर० ११) किणन्तो और विक्किणन्तो = क्रीणन् तथा विक्रीणन् हैं (उत्तर० १०१); मूलमन्ते और कन्दमन्ते = मूलवान् और कन्दवान् हैं (ओव § ५); वण्णमन्ते और गन्धमन्ते = वर्णवान् और गन्धवान् हैं (भग १ ४२) विरायन्ते = विराजन् है (ओव § ४८) विसीयन्तो = विसीदन् और रमन्तो = रमन् है (दस ६११, १६ ६४१, २१) वुच्चाडियमन्ते = वुच्चाडिमयाम् (ठाणंग १७६); जै महा में संथुव्वन्तो = संस्तूयमाना गायन्तो = गायन् ; दें न्तो = *ददन् ; मग्गन्तो = मार्गन् और पलोयेन्तो = प्रलोकयन् हैं (आव०एत्सें ७, २५ ८, २६ ; ९, ५ और ६ ; १५, २१) कन्दन्तो = क्रन्दन् है (एत्सें ४२, १२); जै महा और शौर० में महन्तो रूप पाया जाता है (एत्सें ८, ५ ५, ५ ; ६१, २८ कालका २७४, ४ ; विक्रमो ४५, १ ; मल्लिका २४५, ५ मुद्रा ४३, ८) शौर० में करें न्तो = कुर्वन् है (मृच्छ० ६, ११ ४, २१), सामन्तो रूप भी मिलता है (मृच्छ १८ २३ ; १ ४, १) पुलोअन्तो = प्रलोकयन् (महावीर ९९, १) और चिन्तयन्तो = चिन्तयान् है (शकु ८७, ११) माग में पुच्छन्ते = पृच्छन् (ललित ५६५, १०) है ; महन्ते = महान् है (मृच्छ ११२, ११ ; १६९, १८ ; प्रबोध ५८, ९ ; वेणी० ३५, १७ ३६, १) घोलअन्ते = घोरयम् है(मृच्छ० १६५ ९) वंशमन्ते = वदायम् है (शकु ११४, ११) । मन्तमन्ते = मन्त्रयम् है (प्रबोध १२, १ । यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए ; बंबइया संस्करण ७८, १२ में मन्त छपा आया है) ढक्की में आअच्छन्तो = *आगच्छन् है (§ ८८ ; मृच्छ १४, २८) ; पै में चिन्तयन्तो = चिन्तयन् और परिब्भमन्तो = परिभ्रमन् हैं (हेच ४, ३२३) अप में हसमणु = हसन् तथा संसिज्जमणु = दह्यमान् (हेच ४, ३८३ १ ; ४१८, ६) है, आगदा = आगतम् (पिंगल १, ६२ अ) है, चलन्त = चलन् और उल्लसन्त = उल्लसन् तथा गुणवन्त = गुणवान् है (पिंगल १ ४ बी ; १, ४५) ; कर्ताकारक नपुंसकलिंग में भणन्तं = भणत् (हाल २१८) है फिरन्तं = फिरत् है (गउड० ११८२) ; शौर में वीसन्त = दह्यमानम् है (उत्तरा ७७, ६) और अप में धणमन्त = धनवत् है (पिंगल २, ८९) । माग में वहन्ते (इसका शुद्धतर रूप वहडहन्ते होना चाहिए । इसका यह रूप ग्रन्थ में अन्यत्र पाया जाता है ; वेणी ३५, २१) नपुंसकलिंग के रूप शासिर्द = शासितम् से सम्बन्ध रखता है । कर्मकारक पुलिंग में संस्कृत का रूप प्राकृत के नवनिर्मित रूप से मिलता है : अ माग और शौर में महन्तं रूप आया है (आयार १ १ ९, १ दस ६४४ ; मृच्छ ४ १२) ; महा० में पिअन्तं, अणुणिज्जन्तं अवउज्झिज्जन्तं और पभासन्तं = पीयमानम्, अनुनीयमानम्, अपवस्यमानम् और प्रकाशयन्तम् हैं (गउड० ४६६–४६९) ; अ माग में समारम्भन्तं = समारभमाणम् किणन्तं = क्रीणन्तम् और गिण्हन्तं = गृह्णन्तम् (आयार १ १ २, १ ; १ २ ५ १ ; २ ७, १, १) ज०महा० में

जम्पन्तं = जल्पत्तम् है (कालका० २६२, ५), शौर० में जाणन्तं, सन्तं और असन्तं रूप पाये जाते हैं (मुद्रा० ३८, २, ६३, ९ और १०), कप्पिज्जन्तं = कल्प्यमानम् है (मृच्छ० ८, १०) और उव्वहन्तं = उद्वहत्तम् है (मृच्छ० ४१, १०)। शौर० में भअवन्तं के स्थान में भअवदं रूप अशुद्ध है (विक्रमो० ८७, १७)। माग० में मालन्तं = मारयत्तम् और यीअन्तं = जीवत्तम् हैं (मृच्छ० १२३, २२, १७०, ५), अलिहन्तं = अर्हत्तम् है (लटक० १४, १९), अप० में दारन्तु = दारयन्तम् है (हेच० ४, ३४५), नपुंसकलिंग . महा० में सन्तम् असन्तं रूप पाया जाता है (हाल ५१३), शौर० में महन्त आया है (मृच्छ० २८, ११)। — करण : महा० में पिअन्तेण = पिबता और पडन्तेण = पतता हैं (हाल २८६ और २६४), अ०माग० में विणिमुयन्तेणं = विनिमुञ्चता है (ओव० § ४८), अणुकम्पन्तेणं = अनुकम्पता है (आयार० २, १५, ४), जै०महा० में जम्पन्तेण = जल्पता (कक्कुक शिलालेख १५, एर्त्से० १०, २६); कुणन्तेण = वैदिक कृण्वता है (कक्कुक शिलालेख १५), वचन्तेणं = व्रजता है (आव०एर्त्से० ११, १९), जै०शौर० में अरहन्तेण = अर्हता है (पव० ३८५, ६३), शौर० में चलन्तेण = चलता है (ललित० ५६८, ५), गाअन्तेण = गायता और करेन्तेण = कुर्वता है (मृच्छ० ४४, २, ६०, २५, ६१, २४), हरन्तेण रूप भी पाया जाता है (उत्तररा० ९२, ९), भुत्तवन्तेण = भुक्तवता है (जीवा० ५३, ११), माग० में गश्चन्तेण = गच्छता है (मृच्छ० १६७, २४) और आहिण्डन्तेण = आहिण्डमानेन है (चंड० ७१, १२), अप० में पवसन्तेण = प्रवसता (हेच० ४, ३३३), भमन्तें = भ्रमता है (विक्रमो० ५५, १८, ५८, ९, ६९, १, ७२, १०) और रोअन्ते = रुदता (विक्रमो० ७२, ११)। हे अपादान : अ०माग० में चुल्लहिमवन्ताओ = चुल्लहिमवतः है (ठाणंग० १७७)। — सम्बन्ध . महा० में आरम्भन्तस्स = आरभमाणस्य, रमन्तस्स = रमतः और जाणंतस्स = जानतः है (हाल ४२, ४४, २४३), विसहन्तस्स = *विपहतः और वोच्छिन्दन्तस्स = व्यवच्छिन्दतः है (रावण० १२, २३, १५, ६२), अ०माग० में आउसन्तस्स = आयुष्मतः है (आयार० २, ७, १, २, २, ७, २, १), भगवन्तस्स = भगवतः है (कप्प० § ११८), वसन्तस्स = वसत. (उवास० § ८३), चयन्तस्स = त्यजतः है (ओव० § १७०), चुल्लहिमवन्तस्स रूप भी मिलता है (जीवा० ३८८ और उसके बाद), कहन्तस्स = कथयतः है (सूय० ९०७), जिणन्तस्स = जयतः है (दस० ६१८, १४), जै०महा० में अच्छन्तस्स = ऋच्छतः है, धूवेन्तस्स = धूपयतः और सारक्खन्तस्स = संरक्षतः है (आव०एर्त्से० १४, २५, २५, ४, २८, १६), करेन्तस्स और कुणन्तस्स = कुर्वतः है (एर्त्से० १,२४, १८,१०), जै०महा० में चिन्तन्तस्स रूप पाया जाता है, शौर० में भी चिन्तन्तस्स = चिन्तयतः है (एर्त्से० ११, ८, १८, १६, शकु० ३०, ५), शौर० में महन्तस्स भी आया है जो = महत. है (उत्तररा० १०५,५), मग्गन्तस्स = मार्गमाणस्य और णिक्कमन्तस्य = निष्का-

है (उत्तररा० १०८, २) , माग० मे शशन्ता = श्वसन्तः और पडिवशन्ता = प्रतिवसन्तः हैं (मृच्छ० ११६, १७ , १६१, ३) , अप० में फुक्किज्जन्ता = फूत्क्रियमाणाः है (हेच० ४, ४२२, ३) , गुणमन्त = गुणवन्तः है (पिंगल २, ११८) , नपुसकलिंग : अ०माग० में वण्णमन्ताइं गन्धमन्ताइं रसमन्ताइं फासअन्ताइं = वर्णवन्ति गन्धवन्ति रसवन्ति स्पर्शवन्ति है (आयार० २, ४, १, ४ , विवाह० १४४ , जीवा० २६) , कर्म . महा० में उण्णमन्ते = उन्नमतः (हाल ५३९) है ; अ०माग० मे अरहन्ते भगवन्ते = अर्हतो भगवतः (विवाह० १२३५ , कप्प० § २१), समारम्भन्ते = समारभमाणान् है (आयार० १, १, ३, ५) , जै०शौर० में अरहन्ते रूप मिलता है (पव० ३७९, ३) , नपुसकलिंग . अ०माग० में महन्ताइं रूप पाया जाता है (विवाह० १, ३०८ और उसके बाद) । — करण : महा० में विसंघडन्तेहिं = विसंघटद्भिः है (हाल ११५), विणिन्तेहिं = विनिर्गच्छद्भिः है (गउड० १३८) , अ०माग० मे जीवन्तेहि = जीवद्भिः और ओवयन्तेहिं य उप्पयन्ते हि य = अपपतद्भिश् चोत्पतद्भिश् च हैं (कप्प० § ९७) , पन्नाणमन्तेहिं = प्रज्ञानमद्भिः है (आयार० १, ६, ४, १) , आवसन्तेहिं = आवसद्भिः है (आयार० १, ५, ३, ४) , भगवन्तेहिं = भगवद्भिः (अणुओग० ९५) , अरहन्तेहिं = अर्हद्भिः है (ठाणग० २८८ , अणुओग० ५१८ [पाठ मे अरिहन्तेहिं है]) , सन्तेहिं = सद्भि है (उवास० § २२० , २५१ , २६२) , जै०महा० में आपुच्छन्तेहिं = आपृच्छद्भि . है (आव०एर्त्से० २७, ११) , मग्गन्तेहिं = मार्गमाणै. (आव०एर्त्से० ३०, १७) है , गायन्तेहिं = गायद्भिः , भणन्तेहिं = भणद्भिः और आरुहन्तेहिं = आरोहद्भिः है (एर्त्से० १, २१ , २, १५ और २१) , शौर० में गच्छन्तेहिं = गच्छद्भिः है (मुद्रा० २५४, ३) , अणिच्छन्तेहिं = अनिच्छद्भिः (बाल० १४४, ९) , गाअन्तेहिं = गायद्भि (चैतन्य० ४२, २) , माग० मे पविशन्तेहिं = प्रविशद्भिः है (चड० ४२, ११) , अप० में णिवसन्तहिँ = निवसद्भि और वलन्तहिँ = वलद्भि. हैं (हेच० ४, ४२२, ११ और १८) । — सम्बन्ध : महा० में एॅन्ताणं = आयताम् और चिन्तन्ताण = चिन्तयताम् है (हाल ३८ , ८३) , अ०माग० में अरहन्ताणं भगवन्ताणं भी पाया जाता है (विवाह० १२३५ , कप्प० § १६ , ओव० § २० और ३८) , सन्ताणं = सतां (उवास० § ८५) , पन्नाणमन्ताणं = *प्रज्ञानमताम् है (आयार० १, ६, १, १,) , जै०महा० में आयरन्ताणं = आचरताम् (द्वार० ५०२, २८) और चरन्ताणं = चरताम् है (आव० एर्त्से० ७, ९), कुणन्ताणं = कुर्वताम् (कालका० २७०, ४०) और जोयन्ताणं = पश्यताम् है (एर्त्से० ७३, १८) , जै०शौर० में अरिहन्ताणं रूप पाया जाता है (पव० ३७९, ४ , ३८३, ४४ [पाठ में अरहन्ताणं है]) , शौर० में पेॅक्खन्ताणं = प्रेक्षमाणानाम् है (वेणी० ६४, १६ , नागा० ९५, १३) , माग० में अलिहन्ताणं = अर्हताम् और णयन्ताणं = नमताम् है (प्रबोध० ४६, ११ , ४७, १) , णिस्कयन्ताणं = निष्क्रामताम् है (चड० ४२, १२) , अप० में पेॅच्छन्ताण = प्रेक्षमाणानाम् , चिन्तन्ताहँ = चिन्तय-

मतो (मृच्छ० ९५, ७ ; १०५, २४) और हणुमन्तस्स = हनुमतो (महावीर० ११५, १४) माग० में यम्बदृदश = भजतः (ललित० ५६६, ७) और अभिहसदश = अहसः (प्रबोध० ५२,७) चू पै में पचायन्तस्स = नृत्यतो है (हेच० ४, ३२६) ; अप० में मॅल्लन्ताहँ = त्यजतां, दॅन्ताहँ = *ददतां, जुज्झन्ताहं = *युध्यतः और करन्ताहं = कुर्वतः है (हेम ४, ३७ , ४ ; ३७९, १ ४०) । — अधिकरण महा में समारुहन्तम्मि = समारोहति, हॉन्तम्मि = भवति और रुअन्तम्मि = रुदति रूप पाये जाते हैं (हाल ११ ; १२४ , ५९६) ; हणूमन्त और हणुमन्तम्मि = हनुमति (रावण १, ३९ ; २, ४९), अ माग० में जलन्त = ज्वलति (कप्प § ५९ नायाध० § १४ ; उवास § ६६ ; विवाह० १६९), सन्ते = सति (आयार २, ५, १, ५ ; २, ८, १ ; २, ९, १), हिमवन्ते = हिमवति (उवास० § २७७) है भरहन्तसि = महति (कप्प § ७४ ; नायाध § ४९) अभिनिक्खमन्तम्मि = अभिनिष्क्रामति है (उत्तरा० ९७) धार में महन्त = महति है (शकु २९, ७) दाधि में जी अन्ते = जीयति है (मृच्छ १००, ९) और अ में पयसन्ते = प्रयसति है (हेच ४, ४२२, १२) । — कर्ताकर्म : महा० में आलाअन्त ससन्त जम्भन्त गच्छ रामन्त मुच्छन्तपडन्त खलन्त = आलापयन् श्वसन् जृम्भमाण गच्छन् रुदन् मूर्छन् पतन् स्खलन् है (हाल ५४७) ; महन्त रूप भी आया है (= इच्छा रखता हुआ) मुअन्त = मुञ्चन् है (हाल ५१ और ६४२) ; माग में अलिहन्त = अर्हन् है (प्रबोध० ५४ ९ ; ५८, ७ ; कर्क० १२, ११) । — कर्म बहुवचन : महा में पडन्ता और निवडन्ता = पतन्तः तथा निपतन्तः हैं (गउड १२१ ; १२९ ; ४४२) ; भिन्दन्ता = भिन्दन्तः और आगमन्ता = आगमन्तः है (हाल ३२६ और ८२१) ; अ माग में सीलमन्ता = शीलमन्तः (आयार १ ६, ४ १) और उवसन्ता = उपशान्ताः हैं (सूय ९) पायन्ता य गायन्ता य नच्चन्ता य भासन्ता य सासन्ता य सावेन्ता य रक्खन्ता य = पाययन्तः च गायन्तः च नृत्यन्तः च आभाषमाणाः च शासतः च श्रावयन्तः च रक्षन्तः च है (ओव० ३ ४ पेज) ; चुंपन्ता पॅच्छन्ता उवॉयन्ता और करेन्ता = नृत्यन्तः प्रेक्षमाणाः उपायन्तः और कुर्वन्तः है (ओव० [३ २७]) ; सुविमन्ता = सुविमन्तः है (सूय ९११) ; अरहन्ता = अर्हन्तः है (कप्प ३ १७ और १८) । [illegible] में [illegible] का पाया जाता है [illegible], अरहन्ता भगवन्ता [illegible] पाया जाता है (आयार० १ ४ १ १; २,४,१ ४ [यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; विवाह १२१५) ; इसी प्रकार का [illegible] भगवन्ता सीलमन्ता पाया जाता है (आयार १ ४ १ १) ; जै महा में हिंडन्ता [illegible] है ([illegible] १ १५) ; [illegible] = [illegible] और पारियन्ता = पार[illegible] है ([illegible] १३१ ४२ ; १३४, ३) ; [illegible] और पावेन्ता = प्रापयन्तः है ([illegible] १ ११ [illegible] ११) ; [illegible] में गृह्णन्ता = गृह्णमाना और [illegible] = [illegible] है (मृच्छ , १ ; ७१ २१) तथा [illegible] = [illegible]

है (उत्तररा० १०८, २) , माग० में **शशन्ता = श्वसन्तः** और **पडिवशन्ता = प्रतिवसन्तः** हैं (मृच्छ० ११६, १७ , १६९, ३) , अप० मे **फुक्किज्जन्ता = फूत्क्रियमाणाः** है (हेच० ४, ४२२, ३) , **गुणमन्त = गुणवन्तः** है (पिंगल २, ११८) , नपुंसकलिंग . अ०माग० में **वण्णमन्ताइं गन्धमन्ताइं रसमन्ताइं फासअन्ताइं = वर्णवन्ति गन्धवन्ति रसवन्ति स्पर्शवन्ति** है (आयार० २, ४, १, ४ , विवाह० १४४ , जीवा० २६) , कर्म . महा० मे **उण्णमन्ते = उन्नमतः** (हाल ५३९) है ; अ०माग० मे **अरहन्ते भगवन्ते = अर्हतो भगवतः** (विवाह० १२३५ , कप्प० § २१), **समारम्भन्ते = समारभमाणान्** है (आयार० १, १, ३, ५), जै०शौर० में **अरहन्ते** रूप मिलता है (पव० ३७९, ३) , नपुंसकलिंग : अ०माग० में **महन्ताइं** रूप पाया जाता है (विवाह० १, ३०८ और उसके बाद) । — करण : महा० में **विसंघडन्तेहिं = विसंवटद्भिः** है (हाल ११५), **विणितेहिं = विनिर्गच्छद्भिः** है (गउड० १३८) , अ०माग० मे **जीवन्तेहिं = जीवद्भिः** और **ओवयन्तेहिं य उप्पयन्ते हि य = अपपतद्भिश् चोत्पतद्भिश् च** है (कप्प० § ९७), **पन्नाणमन्तेहिं = प्रज्ञानमद्भिः** है (आयार० १, ६, ४, १) , **आवसन्तेहिं = आवसद्भिः** है (आयार० १, ५, ३, ४), **भगवन्तेहिं = भगवद्भिः** (अणुओग० ९५) , **अरहन्तेहिं = अर्हद्भिः** है (ठाणग० २८८ , अणुओग० ५१८ [पाठ मे **अरिहन्तेहिं** है]) , **सन्तेहिं = सद्भि** है (उवास० § २२० , २५९ , २६२) , जै०महा० में **आपुच्छन्तेहिं = आपृच्छद्भिः** है (आव०एर्त्से० २७, ११), **मग्गन्तेहिं = मार्गमाणैः** (आव०एर्त्से० ३०, १७) है , **गायन्तेहिं = गायद्भिः** , **भणन्तेहिं = भणद्भिः** और **आरुहन्तेहिं = आरोहद्भिः** है (एर्त्से० १, २९ , २, १५ और २१) , शौर० में **गच्छन्तेहिं = गच्छद्भिः** है (मुद्रा० २५४, ३) , **अणिच्छन्तेहिं = अनिच्छद्भिः** (बाल० १४४, ९) , **गाअन्तेहिं = गायद्भि** (चैतन्य० ४२, २) , माग० मे **पविशन्तेहिं = प्रविशद्भिः** है (चड० ४२, ११) , अप० में **णिवसन्तहिँ = निवसद्भिः** और **वलन्तहिँ = वलद्भिः** हैं (हेच० ४, ४२२, ११ और १८) । — सम्बन्ध : महा० मे **एॅन्ताणं = आयताम्** और **चिन्तन्ताण = चिन्तयताम्** है (हाल ३८ , ८३) , अ०माग० में **अरहन्ताणं भगवन्ताणं** भी पाया जाता है (विवाह० १२३५ , कप्प० § १६ , ओव० § २० और ३८) , **सन्ताणं = सता** (उवास० § ८५) , **पन्नाणमन्ताणं = *प्रज्ञानमताम्** है (आयार० १, ६, १, १,) , जै०महा० में **आयरन्ताणं = आचरताम्** (द्वार० ५०२, २८) और **चरन्ताणं = चरताम्** है (आव० एर्त्से० ७, ९), **कुणन्ताणं = कुर्वताम्** (कालका० २७०, ४०) और **जोयन्ताणं = पश्यताम्** है (एर्त्से० ७३, १८), जै०शौर० में **अरिहन्ताणं** रूप पाया जाता है (पव० ३७९, ४ , ३८३, ४४ [पाठ में **अरहन्ताणं** है]) , शौर० में **पेॅक्खन्ताणं = प्रेक्षमाणानाम्** है (वेणी० ६४, १६ , नागा० ९५, १३) , माग० में **अलिहन्ताणं = अर्हताम्** और **णयन्ताणं = नमताम्** है (प्रबोध० ४६, ११ , ४७, १) , **णिस्कयन्ताणं = निष्क्रामताम्** है (चड० ४२, १२) , अप० में **पेॅच्छन्ताण = प्रेक्षमाणानाम्** , **चिन्तन्ताहँ = चिन्तय-**

ताम्, पणमन्ताईं = नमताम् और ओमन्ताईं = पश्यताम् हैं (हेच ४, २४८; ३६२ ३९९ और ४ ९)। — अधिकरण महा में धवलश्रामन्तेसु = ०धवलश्रायत्सु (हाल ९) जै महा में नच्चन्तेसु = नृत्यत्सु (एत्सें० २, २), गच्छन्तेसु = गच्छत्सु (आव एत्सें ७, २१ एत्सें ७, १९) और कीडन्तेसु = क्रीडत्सु (एत्सें १६, १६) शौर में परिहरीअन्तेसु = परिह्रियमाणेषु (मुद्रा १८, १) और वट्टन्तेसु = वर्तमानेषु हैं (पार्वती २, ५; पाठ में वत्तेसु है)। — सम्बोधन : अ माग में आउसन्ता = आयुष्मन्त हैं (आयार० २, १, २, १७)।

§ ३९८—शब्द के अन्त में -अत् -मत् और -वत् लगाकर बननेवाले रूपों में इसके तुल्के ऐसे रूप भी पाये हैं जो अशक मूल शब्द बनाये गये हैं कक्षा— महा में धणवो रूप मिलता है (एत्सें २५, ११); माग में हणुमे = हनूमान् (मृच्छ ११, ८) माग रूप हणूमशिहले की तुलना कीजिए (मृच्छ ११३, १२) और महा रूप –वरिभद्दणुयं की भी (रावण १२, ८८) अ माग में असं = असत् (सूय १५) क्रम : अ माग में महं = महन्तम् बार बार आता है और साथ ही महत् भी चलता है (आयार २, १५, ८ उत्तर १२५ विवाग २२१; विवाह ११२५; उवास में मह शब्द देखिए नायाध § २२ और १२२), इसका स्त्रीलिंग रूप भी पाया जाता है (विवाह १ १) और भगवं = भगवन्तम् है (उवास में यह शब्द देखिए कप्प § १५ १६ और २१; भग १ ४२० ओव § ११ १८ ४ आदि आदि)। — अंत में –नृ लगाकर बननेवाले अधक अथवा दुर्लभ मूल शब्दों के अ-रूपावली में परिणत रूप भी पाये जाते हैं। इसके अनुसार कर्ता एकवचन में अ माग में अजाणओ = ०अजानतः = अजानन् है (सूय २७१ पाठ में अविजाणओ है), वियाणओ = विजानन् है (नन्दी १) कर्ता बहुवचन स्त्रीलिंग : अमईमया = ०अमतिमता = अमतिमत्यः है (सूय २११) संबंध बहुवचन पुलिंग : मयपमाणं = ०मपतानाम् = मवताम् (उत्तर ३५४) है। शौर रूप हिम पदस्स (पार्वती २७ ११; १२ १९ १२ १) के स्थान में हिमवन्तस्स पढ़ा जाना चाहिए जैसा कि ग्लाजर द्वारा संपादित संस्करण के अंतिम स्थान में यही रूप दिया गया है (११ १५)। –अर्हत् का अ माग कर्ताकारक में सदा अरहा और अरिहा रूप बनाये जाते हैं, मानो ये मूल शब्द अर्हन् से बने हों (उदा हरणार्थ, उवास § १८७; कप्प ओव); महा में इसी प्रकार का रूप हणुमा पाया जाता है (हेच २ १५९; मार्क पन्ना ३७; रावण ८, ४१)। § ६ १ की भी तुलना कीजिए। — अ माग रूप आउसन्तारो और भयन्तारो के विषय में § ३ देखिए।

(६) –न् में समाप्त होनेवाला वर्ग

§ ३९९—(१) -अन् -मन् और –वन् वाले वर्ग। — राअ- अ माग० और जै महा० राय- माग में लाअ- = राजन् है। राजन् की रूपावली में

प्राचीन न्- वर्ग और समासके आरंभ में प्रकट होनेवाली अ- रूपावली पास पास चलती हैं। इसके अतिरिक्त मौलिक अशस्वर इ (§ १३३) में से एक इ- वर्ग आविष्कृत होता है।

एकवचन

कर्त्ता—**राआ** [**राओ**]; अ०माग० और जै०महा० में **राया**, माग० **लाआ**; पै० **राजा**, चू०पै० **राचा**।

कर्म—**राआणं** [**राइणं, राअं**], अ०माग० और जै०महा० **रायाणं, रायं**; माग० **लाआणं**।

करण—**रण्णा, राइणा**, जै०महा० में **राएण** भी [**राअणा**; **राणा**], माग० **लञ्ञा**, पै० **रञ्ञा, राचिञा**।

अपादान—[**रण्णो, राइणो, राआओ, राआदो, राआउ, राआदु, राआहि, राआहिंतो, राआ, राआणो**]।

संबंध—**रण्णो, राइणो**, अ०माग० और जै०महा० में **रायस्स** भी [**राआणो, राअणो**], माग० **लञ्ञो, लाइणो**, पै० **रञ्ञो, राचिञो**।

अधिकरण—[**राइम्मि, राअम्मि, राए**]।

संबोधन—[**राअ, राआ, राओ**], अ०माग० और जै०महा० **राय, राया**, अ०माग० मे **रायं** भी, शौर० **राअं**, माग० [**लाअं**], पै० **राजं**।

बहुवचन

कर्त्ता—**राआणो**, अ०माग० और जै०महा० **रायाणो, राइणो** [**राआ**], माग० **लाआणो**।

कर्म—**राआणो**, अ०माग० और जै०महा० **रायाणो** [**राइणो, राए, राआ**]।

करण—**राईहिं** [**राएहिं**]।

अपादान—[**राईहिं, राईहिंतो, राईसुंतो, राआसुंतो**]।

संबंध—**राईणं** [**राइणं, राआणं**], जै०महा० **राईणं, रायाणं**।

अधिकरण—[**राईसुं, राएसुं**]।

संबोधन = कर्त्ता के हैं।

राजन् शब्द की रूपावली के सम्बन्ध में वर० ५, ३६–४४, हेच० ३, ४९–५५; ४, ३०४, क्रम० ३, ३५–४०, मार्क० पन्ना ४४ और ४५ और सिंहराज० पन्ना २० देखिए। § १३३; १९१, २३७, २७६ की तुलना कीजिए। अधिकांश कारक अ०माग०, जै०महा० और शौर० से उद्धृत और प्रमाणित किये जा सके हैं : एकवचन : कर्त्ता– शौर० में **राआ** (मृच्छ० २८, २ और १२, ६८, ८, शकु० ४०, ७; विक्रमो० १५, ४; ३९, १३; ७५, ३, ७९, ७ आदि-आदि), अ०माग० और जै०महा० में **राया** रूप पाया जाता है (सूय० १०५, ओव० § ११ और १५; उवास०, कप्प०, आव०एर्त्से० ८, २७, २१, १ और उसके-बाद; एर्त्से०); माग० में **लाआ** पाया जाता है (मृच्छ० १२८, १०; १३९, २५, १४०, १;

पंच ४१, ५) पै में राजा और चू पै० में राचा रूप है (हेच० ४, ३०४ ३२३ और ३२५) । — कर्म जै महा में रायाणं रूप पाया जाता है (एर्त्से० २, ५ ; २४, २६ काक्का ढीन ५१, १२) और साथ साथ में रायं भी चलता है (उत्तर ४४१ ओव० § ५५ ; नायाध० § ७८ निरया० ८ और २२, एर्त्से ११, २१) माग में लाआणं हो जाता है (मृच्छ० ११८, २५) । — करण अ०माग और जै महा में रण्णा और रन्ना रूप पाये जाते हैं (नायाध० § २१ ओव § ४१ कप्प आव एर्त्से ८, २१, १ ; ११ ४० ५१ एर्त्से० २४, २१ ; २५, ११) तथा जै महा में राइणा रूप भी देखने में आता है (आव एर्त्से ८ १५ और १८, १ १७ एर्त्से १, २२ १८, १९, २४ २८ ; २५, ६ काक्का २६०, १ २६१ ७ २७ ४२ ; ढीन, ५१, ६) जै महा० में रायण भी होता है (आव एर्त्से ८, ६) शौर में रण्णा रूप है (मृच्छ ४, १ २ २, १ १ ३, १५ शकु ५७, ४) माग में लञ्ञा पाया जाता है (शकु ११३, ७ ११७, १), यह हेच० ४, ३ २ से पूर्ण रूप से मिलता हुआ रूप है क्योंकि मृच्छ १५८ २१ और २५ में लण्णा रूप देखने में आता है पै में रञ्ञा और राचिञा रूप होते हैं (हेच ४ ३ ४ और ३२) । —सम्बन्ध अ माग और जै महा में रण्णो और रन्नो रूप होते हैं (उवास § २११, ओव § १२ ११ ; ४७ और ४९ ; कप्प आव एर्त्से ८,१२ २७ २९ और ५८ ; एर्त्से १, २ ; १२, ११ ११, २५) ; जै महा० में राइणो भी चलता है (एर्त्से ६, २४ ४७,१ और ४, ४९, १) और रायस्स भी पाया जाता है (काक्का थो, ५ १७ ढीन ५१२ १४) ; शौर० में रण्णो का प्रचार है (मृच्छ ९९, २५ १ १ २१ और २३ ; शकु २९, १ ; ५४, २ ; विक्रमो २८ १९) और इसके साथ साथ राइणो भी काम में आया जाता है (मालती ९, ६ ; ९९, ४ ; कंस ४९, १) ; माग लञ्ञो आता है, लण्णो लिखा मिलता है (मृच्छ० १६८ ३) और लाइणा भी प्रचलित है (मृच्छ १७१, ११) ; पै में रञ्ञो और राचिञो रूप मिलते हैं (हेच ४,३ ४) ।—सम्बोधन : अ माग में राया रूप है (निरया § २२), अधिकांश स्थलों पर रायं रूप मिलता है (उत्तर ४ ९ ४, १४ ; ४१७ ; ४१८ ; ४४४ और ५ ३ आदि आदि) ; जै महा में राय रूप है (काक्का २६१, १२) ; शौर में राअं पाया जाता है (हेच ४, २६४ ; शकु ११, १०) माग में लाअं काम में आता है (हेच० ४ ३ २) ; पै में राजं चलता है और अप में राअ प्रचलित है (हेच ४, ४ २) । — कर्ता और सम्बोधन में राआ, करणकारक में राअणा, अपादान और सम्बन्धकारक में राआणो केवल त्रिविक्रम ने बताये हैं और अपादानकारक के रूप राआओ तथा राआदु भामह ने दिये हैं । क्रम ३, ४ में करणकारक के रूप राएणा का उल्लेख है, पंच ३ ३९ पेज ४९ में भी इसी से तात्पर्य है । इस स्थान में राआ के लिए शुद्ध रूप राणा पढ़ा जाना चाहिए । — बहुवचन : कर्ता— अ माग और जै महा में रायाणो रूप पाया जाता है (आयार १, २, ३, ५ ;

सूय० १८२ , नायाध० ८२८ और ८३० , जीवा० ३११ , एर्त्से० १७, २९ , ३२, २४ और ३२ , कालका० २६३, १६), जै०महा० में **राइणो** रूप भी मिलता है (एर्त्से० ९, २० , कालका० तीन, ५१२, १३ [**रायणो** के स्थान में यही रूप पढ़ा जाना चाहिए]) , शौर० में **राआणो** रूप प्रचलित है (शकु० ५८, १ , १२१, १२ , मुद्रा० २०४, १) , माग० में **लाआणो** आता है (शकु० ११५, १०) । — कर्म– अ०माग० और जै०महा० मे **रायाणो** मिलता है (नायाध० ८३८ , कालका० २६३ , १६) । — करण : अ०माग० और जै०महा० मे **राईहिं** पाया जाता है । नायाध० ८२९ और ८३३ , एर्त्से०३२, १२) । — सम्बन्ध : अ०माग० और जै०महा० में **राईणं** काम में लाया जाता है (आयार० १, २, ५, १ , नायाध० ८२२ और उसके बाद , ८३२ और उसके बाद , आव०एर्त्से० १५, १० , कालका० २६३, ११) , जै०महा० में **रायाणं** भी पाया जाता है (एर्त्से० २८, २२)।

§ ४००—समासों के अन्त में संस्कृत की भाँति अ– वर्ग का प्राधान्य नहीं रहता परन्तु नाना प्राकृत बोलियों में अनमिल शब्द में सभी वर्गों का आगमन देखा जाता है : कर्त्ता एकवचन—अ०माग० में **इक्खागराया = ऐक्ष्वाकराजः** है (ठाणग० ४५८ , नायाध० ६९२ और ७२९) , **देवराया = देवराजः** है (आयार० २, १५, १८ , उवास० § ११३ , कप्प०) , जै०महा० में **विक्कमराओ = विक्रमराजः** (कालका० दो, ५०७, १२) किन्तु **दीहराया = दीर्घराजः** है (एर्त्से० ६, २), शौर० में **महाराओ = महाराज** (शकु० ३६, १२ , ५६, ११ , ५८, १३ , विक्रमो० ५, ९ , ९, ४ , १०, २०) , **जुअराओ = युवराजः** (शकु० ४५, ६) है , **अंगराओ** भी पाया जाता है (वेणी० ६६, १३) , **वच्छराओ = वत्सराजः** है (प्रिय० ३२, २ , ३३, ७) और **वल्लहराओ णाम राआ** भी काम में आया है (कर्पूर० ३२, ४) । — कर्म : जै०महा० में **गद्दभिल्लरायाणं** मिलता है (कालका० २६१, २९) , शौर० में **महाराअं** रूप पाया जाता है (विक्रमो० २७, १७) । — करण अ०माग में **देवरन्ना** आया है (कप्प०) , शौर० में **अंगराएण** पाया जाता है (वेणी० ६०, ५) , **णाअराएण = नागराजेन** है (नागा० ६९, १८) , **महाराएण** भी देखने में आता है (विक्रमो० ८,९ , २९,१३) । नायाधम्मकहा ८५२ में अ०माग० में मिश्रित रूप **देवरण्णेणं** पाया जाता है। —सम्बन्ध : अ०माग० में **असुरकुमाररण्णो** और **असुररण्णो** रूप पाये जाते हैं (विवाह० १९८) तथा **देवरण्णो** (विवाह० २२० और उसके बाद) और **देवरन्नो** (कप्प०) रूप मिलते हैं , जै०महा० मे **सगरन्नो = शकराज्ञः** है (कालका० २६८, १५) , **वइरसिंहरायस्स** रूप भी देखने में आता है (कालका० दो, ५०५, १७) , शौर० में **वच्छराअस्स** भी पाया जाता है (प्रिय० ३३, ९) , **कलिंगरण्णो** (प्रिय० ४, १५) भी आया है , **रिउराइणो = रिपुराजस्य** है (ललित० ५६७, २४) , **महाराअस्स** भी मिलता है (विक्रमो० १२, १४ ; २८, १) , **अंगराअस्स** भी देखने में आता है (वेणी० ६२, १३) , माग० में **महालाअश्श** पाया जाता है (प्रबोध० ६३, ४) । सम्बोधन : अ०माग० में **पञ्चालराया** आया (उत्तर० ४१४) , **असुरराया** भी

चंड ४१, ५) पै में राआ और चू०पै० में राचा रूप है (हेच० ४, १ ८ १२१ और ३२५)। — कर्म जै महा में रायाणं रूप पाया जाता है (एर्से २, ५ २८, २६ ; कालका० तीन ५१ , १२) और साथ साथ में रायं भी चलता है (उत्तर ४४१ ; ओव § ५५ नायाध § ७८ निरया ८ और २२ एर्से ११, २१) माग० में लाआणं हो जाता है (मृच्छ १३८, २५)। — करण : अ माग और जै महा में रण्णा और रन्ना रूप पाये जाते हैं (नायाध § २१ ओव § ४१ कप्प० आव एर्से ८, २१ १० ११ ; ४ ५१ एर्से २४, २१ २५, ११) तथा जै महा में राइणा रूप भी देखने में आता है (आव एर्से ८ ११ और १८, ९ १७ एर्से १, २२ १८ १९, २४, २८ ; २५, ६ कालका० २६ , १ २६१ ७ ; २७ ४२ तीन, ५१ , ६) जै महा० में रायण भी होता है (आव एर्से ८, ६) शौर में रण्णा रूप है (मृच्छ ४, १ १ २, १ १ १ १५ ; शकु ५७, ४) माग में लण्णा पाया जाता है (शकु ११३ ७ ११७, १), यह हेच० ४, ३ २ से पूर्ण रूप से मिलता हुआ रूप है जबकि मृच्छ १५८, २३ और २५ में लण्णा रूप देखने में आता है पै में रञ्ञा और राचिना रूप होते हैं (हेच ४, ३०८ और ३२)। — सम्बन्ध : अ माग और जै महा में रण्णो और रन्नो रूप होते हैं (उवास § ११३, ओव § १२ ; २१ ४७ और ४९ कप्प० आव एर्से ८ १२ ; २७ २९ और ५४ एर्से १, २ १२ ११ ११ २८) ; जै महा में राइणो भी चलता है (एर्से ४६, २८ ४७ १ और ४ ४६, १) और रायस्स भी पाया जाता है (कालका दो, ५ ६, १७ तीन ५१२ ३४) ; शौर में रण्णो का प्रचार है (मृच्छ० ९९, २५ ; १ १ २१ और २१ शकु २९, ३ ; ५४ २ ; विक्रमो० २८, १९) और इसके साथ-साथ राइणो भी काम में लाया जाता है (मालती १ , ६ ; ११ ४ ; चंड ४६, १) ; माग लञ्ञो आता है, लण्णो लिखा मिलता है (मृच्छ १६८ १) और लाइणो भी प्रचलित है (मृच्छ १७१, ११) पै में रञ्ञो और राचिनो रूप मिलते हैं (हेच ४ १ ४)।—सम्बोधन : अ माग में राया रूप है (निरया § २२) अधिकांश स्थलों पर रायं रूप मिलता है (उत्तर ४ ९ ४, १४ ; ४१७ ; ४१८ ; ४४४ और ५ १ आदि आदि) ; जै०महा में राय रूप है (कालका १६१ १२) ; शौर में राअं पाया जाता है (हेच ४, २६४ शकु ३१, १०) माग में लाअं काम में आता है (हेच ४,३ २), पै में राजं चलता है और अप में राअ प्रचलित है (हेच ४, ४ २)। — कर्ता और सम्बोधन में राआणो करणकारक में राअणा अपादान और सम्बन्धकारक में राआणो केवल सिंहराजगणिन् ने बताये हैं और अपादानकारक के रूप राआओ तथा राआउ भामह ने दे रखे हैं। क्रम ३, ४ में करणकारक के रूप राणा का उल्लेख है चंड १ १९ पेज ४९ में भी इसी से तात्पर्य है। इस स्थान में राआ के लिए शुद्ध रूप राणा पढ़ा जाना चाहिए। — बहुवचन : कर्ता— अ माग और जै महा में रायाणो रूप पाया जाता है (आयार० १, २ १, ५ ;

(मृच्छ० ३२७, ३ , प्रिय० ४१, १४), अप्पाणं (प्रिय० १२, ९ , २३, १० , २८, १ और ५) तथा अप्पाणअं रूप (चैतन्य० ७५, १६)[१] अशुद्ध हैं। — करण : महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में अप्पणा पाया जाता है (गउड० ७८ , ८३ , ९१० , हाल १५९ , रावण० , आयार० २, ५, २, २ और ३ , सूय० १७० , विवाह० ६७ आर १७८ , कप्प० एस. (S) § ५९ , एर्त्से० , विक्रमो० ८४, ७)। — अपादान · अ०माग० में आयओ = *आत्मत (सूय० ४७४) और सूयगडंगसुत्त ४७२ में पाठ के आत्तओ के स्थान में उक्त रूप अथवा अत्तओ पढा जाना चाहिए , जै०महा० म अप्पप्पणो रूप पाया जाता है (तीर्थ० ५, १८)। — सबंध : महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर०, दाक्षि० और आव० मे अप्पणो रूप काम मे लाया जाता है (हाल ६ , २८१ , २८५ , रावण० , आयार० १, २, ५, १ और ५ , १, ३, २, १ , सूय० १६ , कप्प० § ८ , ५० , ६२ , ११२ , एस (S) २ , नायाध० , एर्त्से० , पव० ३८०, ७ ; दाक्षि० में : मृच्छ० १०३, २० , आव० में . मृच्छ० १०४, ९) , महा० में अत्तणो भी पाया जाता है (गउड० ६२ , ९० [इस ग्रन्थ मे अन्यत्र अप्पणो भी है] , ९६ , हाल २०१ [इस ग्रथ में भी अन्यत्र अप्पणो है] और यही रूप शौर० और माग० में सदा आता है (मृच्छ० १४१, १५ , १५०, १३ , १६६, १५ , शकु० १३, १० , १५, १ , ३२, १ और ८ , ५१, ४ , ५४, ७ आदि-आदि , माग० में : मृच्छ० ११४,१४ , ११६, १९ , १५४, २० , १६४, ४)। — सबोधन : अप्पं रूप मिलता है (हेच० ३, ४९)। — कर्त्ता बहुवचन . अप्पाणो = आत्मानः (भाम० ५, ४६ , हेच० ३, ५६ , क्रम० ३, ४१ , मार्क० पन्ना ४५)। — समास के आदि में दिखलायी देनेवाले मूल शब्द या रूप अप्प- = आत्म- से एक अप्प आविष्कृत हुआ है जिसकी रूपावली अ- वर्ग के अनुसार चलती है (हेच० ३, ५६ , मार्क० पन्ना ४५) : कर्त्ता- अप्पो , अपादान — अप्पाओ, अप्पाउ, अप्पाहि, अप्पाहिंतो और अप्पा , अधिकरण— अप्पे , सम्बोधन— अप्प और अप्पा , करण बहुवचन अप्पेहि , अपादान— अप्पासुंतो , सम्बन्ध— अप्पाण , अधिकरण— अप्पेसु है। उक्त शब्दों के निम्नलिखित उदाहरण शौर प्रमाण मिल्ते हैं : कर्म— अ०माग० में अप्पं पाया जाता है (सूय० २८२), करण— अ०माग० मे अप्पेण (सूय० २८२) और साथ ही अप्पेणं रूप मिलते हैं (सूय० २०७) , सम्बन्ध— अप० में अप्पहों = *आत्मस्यः रूप देखा जाता है (हेच० ४, ३४६) , अधिकरण— अ०माग० में अप्पे (उत्तर० २९३) आया है , बहुवचन— महा० में सुहंभरप्प च्चिअ = सुखंभरात्मान एव (गउड० ९९३) में अप्पा रूप मिल्ता है। कः स्वार्थे के साथ यही मूल शब्द जै०महा० अप्पयं (एर्त्से० ५२, १०) में भी पाया जाता है और अप्पउँ (हेच० ४, ४२२, ३) = आत्मकम् में भी मिल्ता है। प्राचीन दुर्बल और सबल मूल शब्दों से, उक्त रूपों के अतिरिक्त अ- वर्ग के नये नये रूप दनाये गये। इस रीति से सबल मूल शब्द से · कर्त्ता एकवचन— महा० में अप्पाणो = आत्मानः = आत्मा है (वर० ५, ४५ , हेच० ३, ५६ , मार्क० पन्ना ४५ , गउड० ८८२ , हाल १३३ , रावण० , सगर १०, १),

पाया जाता है (विवाह २५४)। इन दोनों रूपों में पहुचि है शौर० में अंगराअ (वेणी ११, १४) और महाराअ रूप मिलते हैं। —कर्ता बहुवचन : अ माग में गणरायाणो काम में आया है (कप्प० § १२८) जै महा में छाइयविस रायाणो = छादकविषयराजा है (कालका २६४, १८) शौर० में भीमसेर्ग गराआ = भीमसेनागराजौ है (वणी ६४, १)। —कर्म : अ माग में गयरायाणो रूप पाया जाता है (निरया § २५)। —करण : अ माग० में देवरा‍ईहिं पाया जाता है (विवाह २४१)। —संबंध अ माग में वुषराईणं रूप आया है (विवाह० २४ और उसके बाद कप्प) ; जै महा० में सगराईणं रूप है (कालका २६६, ४१) । शौर और माग के लिए केवल अ— वर्ग के रूप ही शुद्ध माने जाने चाहिए।

§ ४ १—आत्मन् की रूपावली इस प्रकार चलती है : कर्ता एकवचन— अ०माग में आया मिलता है (आयार १, १, १, ३ और ४ सूय० २८ १५ ; ८१ ८१८ ; उत्तर २५१ विवाह ११२ और १ ५९ और उसके बाद वण० नि० ६४९, ११) जै०शौर० में आदा रूप पाया जाता है (पव १८ ८ आदि आदि § ८८) महा , अ माग , जै महा और जै शौर में अप्पा रूप का बहुत प्रचलन है (गउड ३११ ७१८ ; ८८७ ८९९ ९५२ ; ९९६ ११२० ; हाल ३९ १११ ३६१ ६७२ ७५४ ; ८८ ; रावण ; उत्तर० १९ दस० नि ६४५, ५ ; नायाध मय १,४२ एत्सें० कालका पव १८ , ११ ३८२, २७ ३८५, ६१ ; मृच्छ० १२, ७ ७८, ११ ; शकु ११, ७ ; ११७, ६ ; १४ ७ रत्ना २९१ २ २९५, १ ; २९९, १७ ३०७, ११ आदि-आदि) ; शौर० और माग में अत्ता मिलता है (शकु १ ४ ४ ; माग में मृच्छ १४ , २१)[१]। —कर्म : महा अ माग , जै महा वे शौर और ढक्की में अप्पाणं रूप काम में लाया जाता है (गउड २४ , ८६ ; ८९८ ; ९६१ ; १ ७ ; १२ १ हाल ५१६ ; ७१ ७५६ ; ९ २ ; ९६१ ; रावण आयार १ १ १, २ ९, १ १, २१ सूय ४२१ [पाठ में अप्पाणा रूप है] विवाह १७८ कप्प § १२ नायाध ; निरया आव एत्सें १७, और १ एत्सें ; कालका० ; पव ३८२ २७ ; ३८५, ६५ ; ३८६, ७ , कत्तिगे ३९९, ३११ ; मृच्छ ३२ १४) अ माग में अत्ताणं रूप भी पाया जाता है (आयार १ १ १, १ ; १ १ १, ४ १, ६, ५ ४ २, ५, २, २ [पाठ के अत्ताणं के स्थान में यही पढ़ा जाना चाहिए] ; सूय ७७८ [पाठ में अत्ताणं है]) और आयाणं रूप भी साथ साथ चलता है (सूय ११७) ; शौर और माग में केवल अत्ताणअं रूप काम में आता है जो = *आत्मानकम् के (मृच्छ ९ , २१ ; ९५, ८ ; ९९ ७ ; १ और १४ ; १८१, २७ ; शकु २४, १ [यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; २४ १ ; ५०, ८ ; ६१, ९ ६४, २ ; ७८, ५ ; ११६, ८ ; ११७, १२ ; १५९, १२ विक्रमो ७ १७ ; २१, ११ आदि-आदि ; माग में : मृच्छ १७, ११ ; १३३, २१ ; १६२ २१ और २४ ; १६९, ७) ; अत्ताणं

अद्धाणपडिवण्ण = अध्वप्रतिपन्न है (विवाह० १५३)। **अद्धा** रूप अ०माग० में साधारणतया स्त्रीलिंग (§ ३५८) रूप में बरता जाता है, कर्मकारक का रूप **अद्धं** स्त्रीलिंग मे भी लिया जा सकता है। — दाक्षि० कर्त्ता एकवचन मे **वम्हा** रूप पाया जाता है (वर० ५, ४७, हेच० ३, ५६, मृच्छ० १०५, २१), जै०महा० मे **वम्भो** काम मे लाया जाता है (एर्त्से० ३०, २०), अ०माग० में **वम्भे** चलता है (कप्प० टी. एच. (TH) पर § ६) = **ब्रह्मा**, कर्म-महा० में **वम्हं** चलता है (हाल ८१६), सबध अ०माग० मे **वम्भस्स** रूप पाया जाता है (जीवा० ९१२), कर्त्ता बहुवचन-अ०माग० में **वम्भा** रूप पाया जाता है। यह ठीक वैसे ही चलता है जैसे **अज्जमा = अर्यमणो** है (ठाणग० ८२)। — कर्त्ता एकवचन में **मुद्धा** तथा **मुद्धाणो = मूर्धा** है (हेच० ३, ५६, मार्क० पन्ना ४५), कर्म-अ०माग० में **मुद्धाणं** रूप है (ओव० § १९, कप्प० § १५), करण-अ०माग० मे **मुद्धेण** पाया जाता है (उत्तर० ७८८) और **मुद्धाणेणं** चलता है (उवास० § ८१ और (८३), अधिकरण अ०माग० में **मुद्धि = मूर्ध्नि** (सूय० २४३) है, इसके साथ-साथ **मुद्धाणंसि** रूप भी चल्ता है (विवाह० १४४२), कर्त्ता बहुवचन-अ०माग० मे **-कयमुद्धाणा = कृतमूर्धानः** है (नायाध० § ४०)। — महा० में **महिमं = महिमानम्** (गउड० ८८५)। — महा० में **सव्वत्थामेण = सर्वस्थाम्ना** है (हाल ५६७)। — शौर० में **विजअवम्मा = विजयवर्मा** है (रत्ना० ३२०,१६)। इस शब्द का सम्बोधन मे **विजअवम्मं** रूप होता है (रत्ना० ३२०, १९ और ३२), शौर० में **दिढवम्मा = दृढवर्मा** है (प्रिय० ४,१५), किन्तु पल्लवदानपत्रों में **सिवखन्दवमो = शिवस्कन्दवर्मा** है (५, २), **भट्टिसम्मस = भट्टिशर्मणः** (७, ५०), विजयबुद्धवर्मन् के दानपत्रों में **सिरिविजयबुद्धवमस्स** रूप पाया जाता है (१०१, ३), शौर० में **चित्तवम्मो = चित्रवर्मा** है (मुद्रा० २०४,२), शौर० में **मिअंकवम्मो** (विद्ध० ७३,२) और **मिअंकवम्मस्स** (विद्ध० ४३, ७, ४७, ६, ११३, ५) रूप देखने में आते हैं, अप० में **वंकिम = वक्रिमाणम्** (हेच० ४, ३४४), **उच्छा** और **उच्छाणो = उक्षा** है (हेच० ३, ५६, मार्क० पन्ना ४५), उक्त रूपों के साथ साथ **उक्खाणो** भी चल्ता है (मार्क० पन्ना ४५), **गावा** और **गावाणो = ग्रावा** है, **पूसा** और **पूसाणो = पूषा** है (हेच० ३, ५६, मार्क० पन्ना० ४५), **तक्खा** और **तक्खाणो = तक्षा** है (हेच० ३, ५६)। इसी प्रकार का स्पष्टीकरण **सिंघाण = श्लेष्मन्** का है (§ २६७)। बहुव्रीही समास के अन्त में अधिकाश स्थलों पर अ— रूपावली के शब्द आते हैं जो समास के मूल शब्द से लिये जाते है, विशेषकर जब अन्तिम पद नपुसकलिंग होता है (§ ४०४ की तुलना कीजिए), महा० में **थिरपेम्मो = स्थिरप्रेमा** (हाल १३१, यहाँ पर हाल १, १३४ के अनुसार यही पाठ पढा जाना चाहिए, जैसा स्वयं भुवनपाल (इण्डिशे स्टुडिएन १६, ११७]) ने **थिरपिम्मो** रूप दिया है), महा० में **अण्णोण्णप्परूढपेम्माणं** रूप पाया जाता है (पार्वती० ४५, १३), अ०माग० में **अकम्मे = अकर्मा** है (आयार० १, २, ३, १), अ०माग० में **कयबलिकम्मे**

अत्ताणो भी है (मार्क पन्ना ४५) ; अ माग० में आयाणे रूप आया है (विवाह १३२)। — करण : अ माग में अप्पाणेण पाया जाता है (आयार १, १, ७, ३ १, ५ ५, २ २, १, १ ३ और ५ २, १५, २ और २४; विवाह १९८)। —सम्बन्ध : जै०महा में अप्पाणस्स रूप मिलता है (एत्सें)। — अधिकरण : महा में अप्पाणे रूप आया है (रावण)। —कर्ता बहुवचन अ०माग में आयाणा रूप का प्रयोग हुआ है (सूय० ६५) अप्पाणा भी चलता है (हेच ३, ५६)। का स्वार्थे के साथ : कर्म— जै महा में अत्ताणयं (एत्सें) रूप पाया जाता है और और माग मे अत्ताणअं प्रचलित है (इसका उल्लेख आ चुका है)। — सम्बन्ध : महा० में अप्पाणअस्स रूप आया है (गउड १९५)। अ माग में समास के पहले पद में इसका मूल शब्द दिखाई देता है। अप्पाणरक्खी = आत्मरक्षी है (उत्तर १९७) ; जै शौर में अप्पाणसमं रूप पाया जाता है (कत्तिगे ४ , ३११)। दुर्बल वर्ग के रूप : कर्ता एकवचन— अप्पणो रूप मिलता है (क्रम १,४१)। — कर्म अप में अप्पणु रूप पाया जाता है (हेच ४, ३५ , २) संबंध— माग० में अत्तणअदशा रूप का प्रयोग किया जाता है (मृच्छ १६१ २)। — शौर में समास के पहले पद में दुर्बल वर्ग आता है इसमें अत्तणकेरक रूप आया है (मृच्छ ७४, ८ ; ८८,२४) ; माग० में अत्तण केलक रूप पाया जाता है (मृच्छ० ११, ९ २१, २ ११८, १७ १३ ,१० ; ११६, १६ १२८, ३ १६७, २) अप में अप्पणच्छन्दउँ = आत्मच्छन्दकम् मिलता है (हेच ४,४२२,१४)। करणकारक के रूप अप्पणिआ और अप्पणइआ में यही वर्तमान है (हेच ११४ और ५७)। इसका स्पष्टीकरण अनिश्चित है और जै महा रूप सव्वप्पणयाए = सर्वात्मतया में भी यह है (एत्सें ५८ ११) क्योंकि अ माग कर्ता एकवचन का रूप आया स्त्रीलिंग माना गया था (§ ३५८) इस कारण लोगों ने अ माग में करणकारक एकवचन के रूप आयाए = आत्मना (विवाह ७६ और ८८५) तथा अनत्ताए = अनात्मना बना लिये (विवाह ७६)।

१ शकुंतला १ २ ३ में करणकारक में अप्पा पढ़ा जाना चाहिए। — २. हेमचंद्र ३. ५६ पर पिशल की टीका। इंडिशे स्टुडिएन १७ ३१५ में वेबर ने अशुद्ध किया है।

§ ४ ९—जैसा कि आत्मन् के विषय में कहा जा चुका है (§ ४ १), वैसा ही -मन् में समाप्त होनेवाले अन्य पुलिंग शब्दों का भी होता है जो संस्कृत समासों में दिखाई देते हैं। इनमें सबल वर्ग की रूपावली अ- वर्ग के समान होती है तथा इसके साथ साथ संस्कृत की प्राचीन रूपावली भी काम में लायी जाती है। इसके अनुसार कर्ता एकवचन में अम्हा और अम्हाणो = अश्मा है (भाम ५,४७ ; हेच १,५६ मार्क पन्ना ४९) ; कर्म में अ माग में अर्द्ध के स्थान में अम्हं रूप पाया जाता है (§ १०२ ; सूय ५९) और बहुव्रीहि समास में दीह-म्-अद्ध = दीर्घाध्वानम् है (§ ३५३) ; अ माग में अधिकरण में अम्हाणे रूप पाया जाता है (उत्तर ७३१)। किसी समास के पहले पद में अ०माग० में सबल वर्ग आता है जैसे,

२, ४, १, ८), अप० में **साण** मिलता है (पिंगल १,९९) अर्थात् यह मूल रूप है जो अ०माग० में भी इसी प्रकार ध्वनित होता है (पण्हा० २०), सम्बन्ध अ०-मा० में **साणस्स** रूप काम मे आता है (उत्तर० १२)। — भिन्न भिन्न मूल शब्दो से जिनके भीतर लोग **पन्थन्** अथवा **पथिन्** अथवा **पथि** अथवा **पथ** सम्मिलित या एकत्रित करते हैं, इनकी रूपावली **पथ** सहित नीचे जाती है : कर्त्ता एकवचन-**पन्थो** पाया जाता है (हेच० १, ३०) और इसके साथ साथ **पहो** भी चलता है (वर० १, १३ , हेच० १, ८८ , क्रम० १, १८ , मार्क० पन्ना ७), कर्म-अ०-माग० और जै०महा० मे **पन्थम्** मिलता है (हेच० १, ८८ , आयार० १, ७, १, २ , ठाणग० २४८ , आव०एर्त्से० २२, २६ , ४६, ५ , ११ और १५), अ०माग० में **पन्थ'**=**पन्थं** (§ १७३ , सूय० ५९), अ०माग० से **पहं** रूप भी चलता है (सूय० ५९ , उत्तर० ३२४) ; करण महा० और जै०महा० मे **पहेण** पाया जाता है (गउड० ४२३ , कालका० २६९, २९ , आव०एर्त्से० २६, ३३), अ०माग० में **पहेणं** रूप काम में लाया जाता है (उत्तर० ६३५) , अपादान-जै०महा० मे **पन्थाओ** मिलता है (कालका० २६६, ४) , अधिकरण-जै०महा० मे **पन्थे** आया है (एर्त्से० ३६, २८), अप० मे **पन्थि** रूप है (हेच० ४, ४२९, १), अ०माग० में **पहे** चलता है (उत्तर० ३२४) और जै०महा० में **पहम्मि** पाया जाता है (द्वार० ५०४, १) , कर्त्ता बहुवचन-महा० में **पन्थाणो** आया है (हाल ७२९), अ०-माग० और जै०महा० मे **पन्था** मिलता है (सूय० ११० , एर्त्से० ७, ३), सम्बन्ध अ०माग० मे **पन्थाणं** है (सूय० १८९) , अधिकरण अ०माग० मे **पन्थेसु** पाया जाता है (उत्तर० ५३)। समासों में निम्नलिखित मूल शब्द पाये जाते हैं : महा० और जै०महा० में **पन्थ** और **–वन्थ** लगते हैं (हाल , रावण० , आव० एर्त्से० ४६, ६) और **पह** तथा **–वह** भी प्रयोग मे आते हैं (गउड० , हाल , रावण०, कालका०, एर्त्से०)।

§ ४०४—अन्त में **–अन्** लगकर बननेवाले नपुसकलिंग के शब्द प्राकृत बोलियों में कभी-कभी पुलिंग बन जाते हैं (§ ३५८) , किन्तु अधिकाश स्थलों पर उनकी रूपावली **–अ** में समाप्त होनेवाले नपुसकलिंग के शब्द ही की भाँति चलती है। इसके अनुसार उदाहरणार्थ **पे॑म्म**=**प्रेमन्** है . कर्त्ता एकवचन महा० और शौर० में **पेम्मं** रूप है (हाल ८१ , ९५ , १२४ , १२६ , २३२ , रत्ना० २९९, १८ , कर्पूर० ७८, ३ और ६), कर्म महा० और शौर० **पे॑म्मं** मिलता है (हाल ५२२ , विक्रमो० ५१, १६ , कर्पूर० ७६, ८ और १०) , करण-**पे॑म्मेण** पाया जाता है (हाल ४२३ , ७४६ , ९६६), सम्बन्ध महा० और शौर० में **पेम्मस्स** चलता है (हाल ५३ , ३९० , ५११ , ९१० , ९४० , कर्पूर० ७५, ९), अधिकरण महा० में **पेम्मम्मि** रूप आया है (कर्पूर० ७९, ५), महा० और शौर० में **पे॑म्मे** रूप भी मिलता है (हाल ३०४ , कर्पूर० ७५ १०) , कर्त्ता बहुवचन-महा० में **पेम्माइं** है (हाल १२७ , २३६ , २८७) , सम्बन्ध महा० में **पेम्माणं** रूप पाया जाता है (हाल १०)। —कर्त्ता एकवचन . महा०, शौर० और माग० में

= कृतबलिकर्मा है (ओव § १७)। इसका स्त्रीलिंग रूप कयबलिकम्मा है (कप्प § ९५) जै॰ शौर॰ में रइदपरिकम्मो = रचितपरिकर्मा है (पव ३८८, २७) अ॰माग॰ में सब्भूयकम्मस्स = सद्भूतकर्मणः (सूय १४४) है अ॰माग॰ में बहुकूरकम्मा = बहुक्रूरकर्मणः है (सूय २८२) जै॰महा॰ में कयपावकम्मा = कृतपापकर्माणः है (द्वार ५, १९) अ॰माग॰ में आयथामे = आत्मस्थामा है (कप्प § ११८); अ॰माग॰ में इत्थियाओ परूढनहकेसकक्खरोमाओ = स्त्रियः प्ररूढनखकेशकक्षरोमाणः है (ओव § ७२); जै॰महा॰ में नमुईनामो = नमुचिनामा (एर्त्से १ २) किन्तु चित्तसंभूयनामाणो = चित्रसंभूतनामानौ है (एर्त्से १,११) शौर॰ में उप्पलणामस्स = उत्पलनाम्नः है (रत्ना ३२१, २९); शौर॰ में अप्पसंकप्पेम्मा = अप्यसंकल्पप्रेमाणः (विक्रमो ४५,२); शौर॰ में किदाभारपरिकम्मं = कृताभारपरिकर्माणम् है (शकु १, ९) माग॰ में विप्पकलुदीवदामे = वृत्तकरवीरदामा है (मृच्छ १५७, ५), उद्दामे = उद्दामा (मृच्छ १७५, १४)। माग॰ रूप उद्दामेव्व किशोली (मृच्छ १११, ५) =, उद्दामव्व किशोली पढ़ा जाना चाहिए।

§ ४०१—मघवन् का कर्ता एकवचन का रूप मघोणो है (हेच २, १७४) जो विस्तृत दुर्बल वर्ग से बना है। अ॰माग॰ में इसका कर्मकारक का रूप मघवं है (विवाह २४९)। — युवन् की रूपावली नीचे दी जाती है : कर्ता एकवचन महा॰, जै॰महा॰ और शौर॰ में जुवा और जुआ रूप मिलते हैं (भाम ५, ४७ ; हेच ३,५६ ; हाल ; द्वार ५ १,१५ ; मृच्छ २८,५ और ९ ; पार्वती ३१, ८), इनके साथ साथ महा॰ और जै॰महा॰ में जुवाणो भी मिलता है (भाम ५ ४७ ; हेच ३, ५६ ; क्रम ३ ४१ ; मार्क पन्ना ४९ ; हाल ; प्रबोध ३८, १ ; द्वार ५ ६, ११ तथा समासों के अन्त में); अ॰माग॰ में जुवाणो पाया जाता है (विवाह २१२ ; २१४ ; २१८ ; २२२ ; २८ ; २८७ ; १४९) और जुवं भी चलता है मानो यह रूप अ- वर्ग का हो (§ ३९९ ; आयार २, ४, २, १ ; २, ५ १, १) क- स्वार्थे के साथ : महा॰ में हंसजुआणअो रूप पाया जाता है (विक्रमो ६८, ५ ; ७४, ४) महा॰ में स्त्रीलिंग का रूप -जुआणा है (हाल) करण-महा॰ में जुआणेण पाया जाता है (हाल), जै॰महा॰ में जुवाणेण मिलता है (एर्त्से ४१ १८) सम्बोधन-महा॰ में जुआण आया है (हाल); कर्ता बहुवचन— महा॰ में जुआणा रूप पाया जाता है और अ॰माग॰ में जुवाणा रूप आये हैं (हाल ; समासों के अन्त में भी यह रूप आता है ; ठाणंग॰ ३७१ अन्त ५५) ; करण-महा॰ में -जुआणेहि चलता है (हाल) सम्बन्ध अ॰माग॰ में जुवाणाणं रूप देखने में आता है (अणुओग १२८) सम्बोधन अ॰माग॰ में हे जुवाण सि में जुवाणा रूप मिलता है (ठाणंग ४८८ ; अणुओग १२४)। — श्वन् के रूप नीचे दिये जाते हैं : कर्ता एकवचन साणो है (भाम ५, ४७ ; हेच ३ ५६) अ॰माग॰ में इसका रूप साणे पाया जाता है (आयार

२, ४, १, ८), अप० में **साण** मिलता है (पिंगल १,९९) अर्थात् यह मूल रूप है जो अ०माग० में भी इसी प्रकार ध्वनित होता है (पण्हा० २०), सम्बन्ध अ०-मा० में **साणस्स** रूप काम मे आता है (उत्तर० १२)। — भिन्न भिन्न मूल शब्दो से जिनके भीतर लोग **पन्थन्** अथवा **पथिन्** अथवा **पथि** अथवा **पथ** सम्मिलित या एकत्रित करते हैं, इनकी रूपावली **पथ** सहित नीचे जाती है : कर्त्ता एकवचन-**पन्थो** पाया जाता है (हेच० १, ३०) और इसके साथ-साथ **पहो** भी चलता है (वर० १, १३, हेच० १, ८८, क्रम० १, १८, मार्क० पन्ना ७), कर्म-अ०-माग० और जै०महा० मे **पन्थम्** मिलता है (हेच० १, ८८, आयार० १, ७, १, २, ठाणग० २४८, आव०एर्त्से० २२, २६ ; ४६, ५, ११ और १५), अ०माग० में **पन्थ'**=**पन्थ** (§ १७३, सूय० ५९), अ०माग० से **पहं** रूप भी चलता है (सूय० ५९, उत्तर० ३२४), करण महा० और जै०महा० मे **पहेण** पाया जाता है (गउड० ४२३ ; कालका० २६९, २९, आव०एर्त्से० २६, ३३), अ०माग० में **पहेणं** रूप काम में लाया जाता हे (उत्तर० ६३५), अपादान-जै०महा० मे **पन्थाओ** मिलता है (कालका० २६६, ४) ; अधिकरण-जै०महा० में **पन्थे** आया है (एर्त्से० ३६, २८), अप० म **पन्थि** रूप है (हेच० ४, ४२९, १), अ०माग० में **पहे** चलता है (उत्तर० ३२४) और जै०महा० मे **पहम्मि** पाया जाता है (द्वार० ५०४, १), कर्त्ता बहुवचन-महा० मे **पन्थाणो** आया हे (हाल ७२९), अ०-माग० और जै०महा० मे **पन्था** मिलता है (सूय० ११०, एर्त्से० ७, ३), सम्बन्ध अ०माग० मे **पन्थाणं** है (सूय० १८९), अधिकरण अ०माग० में **पन्थेसु** पाया जाता है (उत्तर० ५३)। समासों में निम्नलिखित मूल शब्द पाये जाते हैं : महा० और जै०महा० में **पन्थ** और **—वन्थ** लगते हैं (हाल, रावण०, आव० एर्त्से० ४६, ६) और **पह** तथा **—वह** भी प्रयोग मे आते हैं (गउड०, हाल, रावण०, कालका०, एर्त्से०)।

§ ४०४—अन्त में **—अन्** लगकर बननेवाले नपुसकलिंग के शब्द प्राकृत बोलियों में कभी-कभी पुलिंग बन जाते हैं (§ ३५८), किन्तु अधिकाश स्थलों पर उनकी रूपावली **—अ** में समाप्त होनेवाले नपुसकलिंग के शब्द ही की भॉति चलती है। इसके अनुसार उदाहरणार्थ **पे॑म्म**=**प्रेमन्** है. कर्त्ता एकवचन महा० और शौर० में **पेम्मं** रूप है (हाल ८१, ९५, १२४, १२६, २३२, रत्ना० २९९, १८, कर्पूर० ७८, ३ और ६), कर्म महा० और शौर० **पे॑म्मं** मिलता है (हाल ५२२, विक्रमो० ५१, १६, कर्पूर० ७६, ८ और १०), करण-**पे॑म्मेण** पाया जाता है (हाल ४२३, ७४६, ९६६), सम्बन्ध महा० और शौर० में **पेम्मस्स** चलता है (हाल ५३, ३९०, ५११, ९१०, ९४०, कर्पूर० ७५, ९), अधिकरण महा० में **पेम्मम्मि** रूप आया है (कर्पूर० ७९, ५), महा० और शौर० में **पे॑म्मे** रूप भी मिलता है (हाल ३०४, कर्पूर० ७५ १०), कर्त्ता बहुवचन-महा० में **पेम्माइं** है (हाल १२७, २३६, २८७), सम्बन्ध महा० में **पेम्माणं** रूप पाया जाता है (हाल १०)। —कर्त्ता एकवचन : महा०, शौर० और माग० में

णामं रूप है अ माग और जै महा में नामं मिलता है (हाल ४९२ ; कप्प० § १ ८ आव एत्सें० ११, २९ १४, १९ एर्त्से ४, ३४ विक्रमो १०, ९ माग में : मुद्रा० १९१,५ १९४, ७) कर्म-शौर और माग में णामम् पाया जाता है (मृच्छ २८, २१ ३७, २१) करण-शौर० और माग में णामेण आया है (विक्रमो ४१, ९ ; मृच्छ १६१, २), जै महा में नामेण रूप मिलता है (आव एर्त्से ८, ५), अ माग में णामेणं पाया जाता है (ओव० § १०५) । इसके साथ साथ नामेणं भी चलता है (कप्प § १ ७) ; अधिकरण महा में णामे देखा जाता है (गउड ८९) ; कर्ता बहुवचन जै महा में नामाणि आया है (आव एर्त्से १३, २८) और अ माग० तथा जै महा में नामाइ भी चलता है (उवास § २७७ आव एर्त्से १४, १८) । संस्कृत शब्द नाम (= नाम से ; अर्थात्) महा शौर० और अ माग में णाम रूप में पाया जाता है (गउड ; हाल ; रावण मृच्छ २१, २२ ; २८, २१ ; ४ २२ ९६, २५ ; १४२ १२ आदि-आदि माग में मृच्छ २१, १० १८ २ ; ४ , ९), जै महा में नाम होता है (आव एर्त्से १५, ८ ; १६, २९ १९, २ एर्त्से १, १ और २ ११ १७ आदि आदि) किन्तु अ माग में नामं भी चलता है (आव § ११ कप्प § १२८ उवास मग ; नायाध ; निरया) और साथ साथ नाम का प्रचलन भी है (ओव § १ और १२ कप्प § ४२ और १२९) । — कर्ता एकवचन : अ माग और जै शौर में जम्मं = जन्म है (उत्तर ६१६ कत्तिगे ३९९, ४०१) कर्म महा और अ माग में जम्मं रूप पाया जाता है (हाल ८४४ ; आयार १, १, ४ ४ ; सूय ६८९) ; करण शौर० में जम्मणा रूप चलता है (शकु १४१, १) ; अपादान अ माग में जम्माओ रूप है (सूय ६८९ ७५९) सम्बन्ध अ माग में जम्मस्स रूप आया है (सूय) ; अधिकरण जै महा और शौर में जम्मे रूप काम में आया है (आव एर्त्से १२, ११ ; २५, ३७ नागा ९९ ५) और अप में जमि रूप मिलता है (हेच ४ ३८३, १ यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) । — कर्ता एकवचन : महा और अ माग में कम्मं = कर्म है (रावण १४, ४६ ; उत्तर २४७ ४११ ; ५ ५) ; कर्म अ माग और जै शौर में कम्मं रूप पाया जाता है (सूय ३८१ ३८२ ; ४५९ ; ४९६ ; कत्तिगे ३९९, ३१९ ; ४ ३९७ ४ १ ४०१ ; ४०४ और ४०७) ; करण अ माग में कम्मणा मिलता है (विवाह ११८ और १ ; उवास § ७२ और ७६) ; सम्बन्ध महा अ माग और जै शौर में कम्मस्स आया है (हाल ६१४ ; उत्तर १७८ ; पण्णव ६६५ ; ६०१ और उसके बाद कप्प § १ ; पव ३८३,२७), माग में कम्माह रूप चलता है (हेच ४ २९९ और इसके साथ जो टिप्पणी है उसके साथ ; शकु के बाम्बई संस्करण के १ ८ ११ में कम्मणा रूप दिया गया है) ; अधिकरण अ माग में कम्मंसि है (ठाणग २ ८ ; सूय २८९) जै महा में कम्मे पाया जाता है (एर्त्से १८ ११), शौर में इन भाषा के नियमों के विरुद्ध कम्मम्मि

देखने मे आता है (कस० ५०, २) जो शुद्ध रूप **कम्मे** (कालेय० २५, ८) के स्थान मे आया है , कर्त्ता बहुवचन अ०माग० मे **कम्मा** रूप पाया जाता है (उत्तर० ११३) , कर्म-अ०माग० मे **कम्माइं** मिलता है (सूय० २८४ , उवास० § १३८ , ओव० § १५३) और इसके साथ-साथ **कम्मा** भी चलता है (उत्तर० १५५), **अहाकम्माणि** रूप भी आया है (सूय० ८७३) , जै०शौर० मे **कम्माणि** देखने मे आता है (पव० ३८४, ५९) , करण-अ०माग० मे **कम्मेहिं** का प्रचलन दिखाई देता है (आयार० १, ४, २, २ , ३, ३ , १५, २, ३ , सूय० ५१६ , ७१८ , ७१९ , ७२१ , ७७१ , उत्तर० १५५, १७५, २०५, २१८ , २२१ , ५९३, विवाह० १४७ , १६८ , १८५), **अहाकम्मेहिं** रूप भी पाया जाता है (उत्तर० १५५ और २०५) , सम्बन्ध अ०माग० में **कम्माणं** आया है (सूय० १०१२ , उत्तर० १५६ और २०५ , सम० ११२ , उवास० § ७४)। इसके साथ **कम्माण** रूप चलता है (उत्तर० १७७) , हेच० ४, ३०० के अनुसार महा० में **कम्माहॅं** रूप पाया जाता है , अधिकरण-शौर० मे **कम्मेसु** मिलता है (विद्ध० २८, ६), माग० में **कम्मेशु** पाया जाता है (मुद्रा० १९१, ९) । शौर० कर्त्ताकारक **कम्मे** के विषय में § ३५८ देखिए । जो रूप इक्के दुक्के कहीं-कहीं देखने में आते हैं वे नीचे दिये जाते हैं अधिकरण एकवचन-अ०माग० में **चम्मंसि = चर्मणि** है (कप्प० § ६०), **रोमंसि = रोम्णि** (उवास० § २१९), **अहंसि = अह्नि** (आयार० २, १५, ११) है : शौर० में **पव्वे पव्वे = पर्वणि पर्वणि** है (कालेय० १३, २०) , कर्म बहुवचन महा० में **चम्माइं** रूप पाया जाता है (हाल ६३१) , करण-अ०माग० में **लोमेहिं = लोमभिः** है (उवास० § ९४ और ९५) , अ०माग० और शौर० मे **दामेहिं = दामभिः** है (जीवा० ३४८ , राय० ६३ , मृच्छ० ६९, १) , अधिकरण महा० मे **दामेसु** रूप पाया जाता है (गउड० ७८४) , जै०शौर० में **पव्वेसु = पर्वसु** है (कत्तिगे० ४०२, ३५९) । जनता की बोलियों मे कभी कभी प्राचीन सस्कृत रूप बने रह गये है : कर्त्ता एकवचन महा० में **चम्म = चर्म** है (हाल ९५५) कर्त्ता और कर्म अ०माग०, जै०शौर०, शौर० और माग० में **कम्म = कर्म** है (आयार० १, ४, ३, २ , २, २, २,१३ और १४ , सूय० २८२ , उत्तर० ११३ और १७८ , पव० ३८६,४ , वेणी० ६२,५ , उत्तररा० १९७,१०, माग० में : शकु० ११४,६ [पद्य में आया है] , वेणी० ३३,५) । यह रूप शौर०और माग० में पद्य को छोड कर अन्यत्र अशुद्ध है। इस स्थान में **कम्मं** पढा जाना चाहिए जो शुद्ध रूप है । मृच्छ० ७०, २० में **अमूइं कम्मतोरणाइं** पढा जाना चाहिए जिसकी ओर अन्य स्थान पर गौडबोले के सस्करण पेज २०१ मे निर्देश किया गया है , शौर० रूप **पेम** (प्रबोध० ४१, ६) के स्थान में बबइया सस्करण ९१, ६ में **प्पेमा** पाठ आया है जिसके स्थान में **पेॅम्म** पढा जाना चाहिए (कर्पूर० ७७, १० बबइया सस्करण), कोनो ने ७६, ८ में शुद्ध रूप **पेॅम्मं** दिया है। करण-अ०माग० में **कम्मणा** आया है (आयार० १, ३, १,४) । यह वास्तव में **कम्मुणा** के स्थान में अशुद्ध रूप है जो अ०माग और जै०महा० में साधारणत. चलता है (§ १०४ , आयार० १, ४,४, ३१,

१, ८, १, ११ और १७ ; सूय० १०८ ; १५१ ; १७७ ५४२ ८७१ ; ९७८ ; उत्तर १८ ८ एर्से० २५, २ ; सगर २, ९) । करणम एकवचन के अ माग रूप कम्मुणो में अ के स्थान में उ आया है (उत्तर १७० ; २२१ ११२), संबंध बहुवचन अ माग रूप कम्मुणं में (सूय० ५४२) भी ऐसा ही हुआ है तथा करण एकवचन अ माग रूप धम्मुणा में भी, जो धर्मन् से निकला है, और धम्मसमूह कालधम्मुणा संजुत्ता = कालधर्मेणा संयुक्ता में मिलता है अ के स्थान में उ आ गया है (ठाणंग १५७ विवाग ८२ और उसके बाद ११७ ; १५५ २०७ ; २१७ ; २२५, २३८ नायाध १२९ १ ९९ १४२१) । संस्कृत कर्मतः से मिलता जुलता अ०माग में कम्मओ रूप है (उवास० § ५१) और शौर रूप जम्मदो (रत्ना २९८ ; ११) = संस्कृत जन्मतः है । अधिकरण का शौर रूप कम्मणि (शकु २५१, ८) अशुद्ध होना चाहिए । अ माग म अधिकरण बहुवचन का रूप कम्मसु = कर्मसु सूयगडंगसुत्त ४ १ में पद्य में आया है । — जैसे पुलिंग शब्द अंत में -आण लगाकर एक नया मूल शब्द बनाते हैं वैसे ही नपुंसकलिंग भी -अण लगाकर नये मूल शब्द बनते हैं : अ माग में जम्मणं = जन्म (हेच २, १७४ जीवा १२२ ; १२१ ११६ और उसके बाद) अ माग और जै महा में जम्मण- रूप पाया जाता है (उत्तर ११ ५ ; पण्हा ७२ और उसके बाद नायाध २९ ; विवाह ११५९ १७१८ १७४१ और उसके बाद ; १७७१ ; सगर १ १ एर्से) जै महा में कम्मणं = कर्म (एर्से ५२, १७ ५६ ११) कम्मण- भी देखने में आता है (एर्से २४, २१) । जैसा कि कर्मन् के रूप करण- और सम्प्रदान-कारक एकवचन तथा सम्बंध बहुवचन में उ जुड़ कर देखा जाता है वैसा ही रूप अ माग अपादानकारक एकवचन कम्मुणाउ में वर्तमान है (आयार १ ७, ८ २ ; सूय १७)[१] । बम्हण = ब्रह्मन् भी नपुंसकलिंग माना जाना चाहिए । (क्रम १ ४१) ।

१ हस्तलिपियों के पाठों के विपरीत और कलकतिया संस्करण के अनुसार याकोबी कम्माणि रूप ठीक समझता है इस कारण उसने विवश होकर सफलं शब्द को उक्त रूप से मिलाने के लिए कर्मकारक बहुवचन माना है (सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, पुस्तकमाला की पुस्तक बाईसवीं पेज ७१) । इस स्थान में हस्तलिपियों के अनुसार कम्मुणा पढ़ा जाना चाहिए और सफलं = स्वफलम् माना जाना चाहिए । — २ इस इस शब्द को कम्मुणा उ में विभाजित कर सकते हैं । तो भी उपर्युक्त रूप अधिक अच्छा है ।

§ ४०५— (२) शब्द के अन्त में -इन्, -मिन् और -विन् लगा कर बनने वाले वर्ग । -इन्, -मिन् और विन् में समाप्त होनेवाले वर्गों की रूपावली आंशिक रूप में संस्कृत की भाँति चलती है और आंशिक रूप में समास के आरम्भ में आनेवाले वर्ग के आधार पर समास के अन्त में इ लगा कर इ की रूपावली के अनुसार चलती है । कर्ता एकवचन महा , अ माग , जै महा और शौर रूप हत्थी, माग में हस्ती और अप रूप हत्थि = हस्ती है (गउड ८, १६ , कोष § ११;

एर्से० १६, १८, मृच्छ० ४०, २२ और २५, माग० में : हेच० ४, २८९, मृच्छ० ४०, ९ ; १६८, ४, अप० में : हेच० ४, ४३३), महा० में **सिहि = शिखी** है (हाल १३), अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **तवस्सी** तथा माग० में **तवश्शी = तपस्वी** है (कप्प० एस (S.) § ६१, आव०एर्से० ३२, १८, एर्से० २५, ६, शकु० १३२, ८, माग० में मृच्छ० ९७, ३), अ०माग० मे **मेहावी = मेधावी** (आयार० १, २, १, ३, १, २, ६, २ और ५, १, ६, ४, २ और ३), पद्य में छन्द की मात्राए ठीक बैठाने के लिए **मेहावि** रूप भी पाया जाता है (सूय० ४१४), जै०शौर० मे **णाणी** और अ०माग० मे **नाणी ज्ञानी** है (कत्तिगे० ४०२, ३५८ और ३६०, ४०३, ३७७, ३७९, ३८२, ३८४, ४०४, ३८६, सूय० ३१८), महा० में नपुसकलिंग **चिआसि** रूप पाया जाता है (मुकुन्द० १४, १०), शौर० मे **कारि** आया है (बाल० ५६, १४)। कर्मकारक मुख्यतः इ की रूपावली के अनुसार बनाया जाता है : महा०, अ०माग० और जै० महा० में **हत्थिं = हस्तिनम्** (मृच्छ० ४१, १६, आयार० २, १, ५, ३, विवाह० ८५०, निरया० § १८, एर्से० ७२, २१), अ०माग० में **तवस्सिं** है (आयार० २, २, २, ४, विवाह० २३२), **बम्भयारिं = ब्रह्मचारिणम्** (उत्तर० ४८७), **ओयस्सिं तेयस्सिं वच्चस्सिं जसस्सिं = ओजस्विनं तेजस्विनं वर्चस्विनं यशस्विनं** है (आयार० २, २, १, १२), **पक्खिं = पक्षिणं** (आयार० २, ३, ३, ८, २, ४, २, ७) और **सेट्ठिं = श्रेष्ठिनम्** हैं (सम० ८४), जै०महा० में **सामिं = स्वामिनम्** है (आव०एर्से० ३२, १४, ३२, ३३, ६), शौर० में **कञ्चुइं = कञ्चुकिनम्** (विक्रमो० ४५,१०, प्रिय० ४८, २१), किन्तु वैसे शौर० मे **पिअआरिणं** (विक्रमो० १०, १४), **उअआरिणं** (विक्रमो० १२, ११, १३, १८) और **जालोवजीविणं = जालोपजीविनम्** जैसे रूप आते हैं (शकु० ११६, ७), **वालिणं** रूप भी पाया जाता है (महावीर० ५५, १२)। — करण : महा० में **ससिणा** रूप आया है (रावण० २, ३, १०, २९ और ४२), **अवलम्बिणा** भी देखने में आता है (गउड० ३०१), अ०माग० में **गन्धहत्थिणा** पाया जाता है (निरया० § १८), **नीहारिणा = निर्हारिणा** (ओव० § ५६) है और **ताम-लिणा वालतवस्सिणा** रूप मिलता है (विवाह० २३५), जै०महा० और शौर० में **सामिणा** तथा माग० में **शामिणा = स्वामिना** हैं (आव०एर्से० ३२, २४, कालका० २६०, २९, शकु० ११६, ८, महावीर० १२०, १२, वेणी० ६२, २३, ६४, ५, ६६, ८, माग० में : मृच्छ० ११८, २१, १६२, १७ और १९, वेणी० ३५, १२), जै०महा० में **वीसम्भघाइणा = विस्रम्भघातिना** है (एर्से० ६८, ४), **मन्तिणा = मन्त्रिणा** के स्थान में पद्य में छद की मात्राए पूरी करने के लिए **मन्तीणा** रूप भी आया है (आव०एर्से० १३, १३), शौर० में **कण्णोवघादिणा = कर्णोपघातिना** है (शकु० २९, ८), माग० में **कालिणा = कारिणा** है (मृच्छ० १५८, २१, प्रबोध० ५४, ६)। — अपादान : अ०माग० में **सिहरीओ = शिखारिणः** (ठाणंग० १७७)। — सबध : महा० में **पिणाइणो = पिनाकिनः**

ठीक एक के बाद एक आनेवाले पद्यों में आये हैं (ओव० § ४९, पाँच), **आगारिणो** रूप पाया जाता है। **दंसिणो = दर्शिनः** है (सूय० ३०१ , ३६८ , ३७०), **तस्संकिणो = तच्छंकिनः** है (सूय० १३६), **अवम्भचारिणो = अब्रह्मचारिणः** है (उत्तर० ३५१), **पारगामिणो** और **धुवचारिणो** रूप पाये जाते हैं। **सम्मत्तदंसिणो = सम्यक्त्वदर्शिनः** है (आयार० १, २, २, १ , १२, ३, ४ , १, २, ६, ३), इनके साथ साथ शब्द के अन्त में —ई लगकर बननेवाला कर्त्ताकारक बहुत पाया जाता है जैसे, **नाणी = ज्ञानिनः**, **अक्कन्दकारी = आक्रन्दकारिणः** और **पक्खी = पक्षिणः** हैं (आयार० १, ४, २, ३ , १, ६, १, ६ , २, ३, ३, ३), **हत्थी = हस्तिनः** (आयार० २, ३, २, १७ , सूय० १७२ , नायाध० ३४८), **ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी = ओजस्विनस् तेजस्विनो वर्चस्विनो यशस्विनः** (विवाह० १८५) है, **रूवी य अरूवी य = रूपिणश् चारूपिणश् च** (विवाह० २०७), **चक्कवट्टी = चक्रवर्तिनः** और **चक्कजोही = चक्रयोधिनः** (ठाणंग० १९७ और ५१२) है। जै०महा० मे भी सम्बन्धकारक के दोनों रूप पास पास में चलते हैं : **मन्तिणो = मन्त्रिणः** (कालका० २६२, ३०) और **दरिद्दिणो = दरिद्रिणः** (एर्त्से० ५०, २) है, **महातवस्सी = महातपस्विनः** (कालका० २६९, २४) तथा **हत्थी = हस्तिन** है (एर्त्से० ३२, ६)। शौर० में और जहाँ तक देखने में आता है माग० में भी —ई लगनेवाला रूप काम में नाममात्र ही आता है, उतना ही कम आता है जितना इ— वर्ग (§ ३८०) : शौर० में **पक्खिणो = पक्षिणः**, **सिप्पिणो = शिल्पिनः** और **अव्वत्तभासिणो = अव्यक्तभाषिणः** (मृच्छ० ३८, ३१ , ७१, २ , १०३, ६) हैं, **कुसुमदाइणो = कुसुमदायिनः** तथा **धम्मआरिणो = धर्मचारिणः** हैं (शकु० १०, २ , २०, १), **परिवन्थिणो = परिपन्थिनः** है (विक्रमो० ८, ९) और **कञ्चुइणो = कञ्चुकिनः** है (मल्लिका० १८६, १६)। शौर० में बहुत कम काम में आनेवाला और अशुद्ध पाठभेद —ईओ में समाप्त होनेवाले रूप हैं : **सामीओ = स्वामिनः** (कंस० ४८, १९ , ५०, १)। नपुसकलिंग अ०माग० में **अकालपडिवोहीणि अकालपडिभोईणि = अकालप्रतिबोधिन्य् अकालप्रतिभोगीनि** (आयार० २, ३, १, ८), **रायकुलगामीणि** रूप भी आया है (निरया० § २१)। — कर्म . अ०माग० में **पाणिणो = प्राणिणः** (सूय० २६६), **मउली = मुकुलिनः** (पण्हा० ११९) और **ठाणी = स्थानिनः** है (सूय०), जै०महा० में **भरहणिवासिणो** रूप भी पाया जाता है (सगर ९, ८)। — करण : अ०माग० में **पक्खीहिं = पक्षिभिः** (सूय० २८९), **सव्वदरिसीहिं = सर्वदर्शिभिः** (नदी० ३८८), **परवाईहिं = परवादिभिः** (ओव० § २६) और **मेहावीहिं = मेधाविभिः** (ओव० § ४८ , कप्प० § ६०) है। **हत्थीहि** रूप भी पाया जाता है (नायाध० ३३० और ३४०); जै०महा० में **मन्तीहि = मन्त्रीभिः** है (आव० एर्त्से० ८, ३६ , कालका० २६२, १७) , माग० में **वंदीहिं = वंदिभिः** है (ललित० ५६५, १३)। — अपादान— अ०माग० में **असण्णीहिंतो = असंज्ञिभ्य.** और **पक्खीहिंतो = पक्षिभ्य** हैं (जीवा० २६३ और २६५) , अप० में **सामिहुं =**

है (गउड० ८१), ससिणो रूप भी पाया जाता है (गउड १० ; ९५१ ; ११ ८ ; ११९२ हाल ३१९ रावण १ , ४९), गुणसालिणो वि करिणो = गुणशालिनोऽपि करिणः है (हाल ७८८) अ माग में जसस्सिणो = यशस्विनः (सूय १ ८), गिहिणा = गृहिणः है (उवास § ८१ और ८४) ; जै महा० में सामिणा रूप चलता है (तीर्थ० ५, १२) और अ माग तथा जै महा में सामिस्स पाया जाता है (विवाह १८८ आव एर्त्से १२ २७) जै महा में पगागिणो = प्रकाशिनः है (एर्त्से ६, १६) । अ माग और जै महा में कारक का चिह्न –इस्स बार-बार आता है जो अन्यत्र केवल जै०शौर में प्रमाणित किया जा सकता है : अ माग में मायिस्स और अमायिस्स = मायिनः तथा अमायिनः हैं (ठाणंग १५) वम्भयारिस्स = ब्रह्मचारिणः है (नायाध § ८७ उत्तर ११७ और उसके बाद) चरणचारिस्स = चरणचारिणः (आयार २ ५, २, १) और अभिकंखिस्स = अभिकांक्षिणः हैं (उत्तर ९२१), तवस्सिस्स (विवाह २११ ; २१३ ; २१६) और हत्थिस्स रूप भी आये हैं (राय २७) सम्बन्धकारक के ये दोनों रूप अ माग में साथ साथ एक दूसरे के बाद आये हैं जैसे, पगन्तचारिस्स = तवस्सिणो में (सूय ९ ९) जै महा में पणइस्स = प्रणयिनः और विरहिस्स = विरहिणः है (कक्कुक २७ , २१ ; २७४, ८), कामिस्स = कामिनः (एर्त्से ७१, ४) और से हिस्स = प्रेमिणः हैं (आव एर्त्से १७ २६) जै शौर में केवल णाणिस्स = केवलज्ञानिनः है (पव ३८१ २) शौर में विरोहिणो = विरोधिनः , वासिणो भी मिलता है, परिभोइणो = परिभोगिनः है (मृच्छ १८, ११ ; २१, ८ ; ३८, २) अहिणिवेसिणा = अभिनिवेशिनः (मालवि ४१, १७) तथा साहिणो = शालिनः हैं (रत्ना० २ १२ १२) ; माग में सामिणो = स्वामिनः (मृच्छ ११७, ९) और अणुमग्गागामिणो = अनुमार्गगामिनः हैं (वेणी ३५, ६) । — अधिकरण– अ माग में रुप्पिम्मि = रुक्मिणि और सिहरिम्मि = शिखरिणि हैं (ठाणंग ७५) चाउरन्तिसि = चातुरन्तिनि है (नायाध § ४६) । — संबोधन : अ माग और जै महा में सामी पाया जाता है (कप्प § ८९ ; नायाध § ४६ और ७१ आव एर्त्से ११ २६) ; जै महा में सामि रूप है (आव एर्त्से १५, २४ ; एर्त्से ६ १४ ८ १९) ; शौर में कञ्चुइ रूप देखा जाता है (विक्रमो ८५ १५ रत्ना १२७ ७ ; प्रिय ५ ८ [पाठ में कञ्चुइ है] । — कर्त्ता बहुवचन : महा में करिणो विरहिणो सक्खिणो रूप पाये जाते हैं (गउड १९ ; ९११ ; ८११ ; ८८), गुणिणो = गुणिनः तथा चाइणो = त्यागिनः हैं (हाल ९७१) सामी जैसा रूप भी = स्वामिनः के स्थान में आया है और साहि शिलम में मिलता है (हाल ११), वणहत्थी = वनहस्तिनः (रावण ८ १६) ; अ माग में तुयावसंगिणो = प्रावचनिगिनः है (ओव § २९) दण्डिमाणा मुण्डिणो सिहण्डिणो जडिणो पच्छिणो और इसके साथ-साथ दण्डी मुण्डिसिहण्डी पिच्छी एक ही अर्थ में और

ठीक एक के बाद एक आनेवाले पद्यों में आये हैं (ओव० § ४९, पाँच), **आगारिणो** रूप पाया जाता है। **दंसिणो = दर्शिनः** है (सूय० ३०१ , ३६८ , ३७०), **तस्संकिणो = तच्छंकिनः** है (सूय० ९३६), **अबम्भचारिणो = अब्रह्मचारिणः** है (उत्तर० ३५१), **पारगामिणो** और **धुवचारिणो** रूप पाये जाते हैं। **सम्मत्तदंसिणो = सम्यक्त्वदर्शिनः** है (आयार० १, २, २, १ , १२, ३, ४ , १, २, ६, ३), इनके साथ साथ शब्द के अन्त में –ई लगकर बननेवाला कर्त्ताकारक बहुत पाया जाता है जैसे, **नाणी = ज्ञानिनः, अक्कन्दकारी = आक्रन्दकारिणः** और **पक्खी = पक्षिणः** हैं (आयार० १, ४, २, ३ , १, ६, १, ६ , २, ३, ३, ३), **हत्थी = हस्तिनः** (आयार० २, ३, २, १७ , सूय० १७२ , नायाध० ३४८), **ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी = ओजस्विनस् तेजस्विनो वर्चस्विनो यशस्विनः** (विवाह० १८५) है, **रूवी य अरूवी य = रूपिणश् चारूपिणश् च** (विवाह० २०७), **चक्कवट्टी = चक्रवर्तिनः** और **चक्कजोही = चक्रयोधिनः** (ठाणग० १९७ और ५१२) है। जै०महा० में भी सम्बन्धकारक के दोनों रूप पास पास में चलते हैं : **मन्तिणो = मन्त्रिणः** (कालका० २६२, ३०) और **दरिद्दिणो = दरिद्रिणः** (एर्त्से० ५०, २) हैं, **महातवस्सी = महातपस्विनः** (कालका० २६९, २४) तथा **हत्थी = हस्तिनः** है (एर्त्से० ३२, ६)। शौर० में और जहाँ तक देखने में आता है माग० में भी –ई लगनेवाला रूप काम में नाममात्र ही आता है, उतना ही कम आता है जितना इ– वर्ग (§ ३८०) . शौर० में **पक्खिणो = पक्षिणः, सिप्पिणो = शिल्पिनः** और **अव्वत्तभासिणो = अव्यक्तभाषिणः** (मृच्छ० ३८, ३१ , ७१, २ , १०३, ६) हैं, **कुसुमदाइणो = कुसुमदायिनः** तथा **धम्मआरिणो = धर्मचारिणः** हैं (शकु० १०, २ , २०, १), **परिवन्थिणो = परिपन्थिनः** है (विक्रमो० ८, ९) और **कञ्चुइणो = कञ्चुकिनः** है (मल्लिका० १८६, १६)। शौर० में बहुत कम काम में आनेवाला और अशुद्ध पाठभेद **–ईओ** में समाप्त होनेवाले रूप हैं : **सामीओ = स्वामिनः** (कस० ४८, १९ , ५०, १)। नपुसकलिंग अ०माग० में **अकालपडिवोहीणि अकालपडिभोईणि = अकालप्रतिबोधिन्य् अकालप्रतिभोगीनि** (आयार० २, ३, १, ८), **रायकुलगामीणि** रूप भी आया है (निरया० § २१)। — कर्म . अ०माग० में **पाणिणो = प्राणिणः** (सूय० २६६), **मउली = मुकुलिनः** (पण्हा० ११९) और **ठाणी = स्थानिनः** है (सूय०), जै०महा० में **भरहणिवासिणो** रूप भी पाया जाता है (सगर ९, ८)। — करण : अ०माग० में **पक्खीहिं = पक्षिभिः** (सूय० २८९), **सव्वदरिसीहिं = सर्वदर्शिभिः** (नदी० ३८८), **परवाईहिं = परवादिभिः** (ओव० § २६) और **मेहावीहिं = मेधाविभिः** (ओव० § ४८ , कप्प० § ६०) है। **हत्थीहि** रूप भी पाया जाता है (नायाध० ३३० और ३४०) , जै०महा० में **मन्तीहि = मन्त्रीभिः** है (आव० एर्त्से० ८, ३६ , कालका० २६२, १७) , माग० में **वंदीहिं = वंदिभिः** है (ललित० ५६५, १३)। — अपादान– अ०माग० मे **असण्णीहिंतो = असंज्ञिभ्य.** और **पक्खीहिंतो = पक्षिभ्य** हैं (जीवा० २६३ और २६५) , अप० में **सामिहुँ =**

स्वामिभ्याः है (हेच ४, १४१, २)। — संबंध : महा में वराहीण = वर्हिणाम् है (गउड १४९) अ०माग में महाहिमवन्तरुप्पीणं = महाहिमवद्रुक्मिणोः है (सम ११४ और ११७), पक्खीणं = पक्षिणाम् (जीवा १२५), गन्ध हत्थीणं, चक्कवट्टीणं तथा सम्मद्दरिसीणं रूप भी पाये जाते हैं (ओव § २ कप्प § १६) जै महा० में कामत्थीण = कामार्थिनाम् और थाईणं = वादिनाम् हैं (एर्त्से २९, ३१ ; ६९, २), पणईण = प्रणयिनाम् है (कक्कुक शिलालेख १५) जै शौर में देहीणं रूप मिलता है (कत्तिगे ४ २, ३६१) माग में शामीणं = स्वामिनाम् है (कंस ८८, १७) ८९, १२ पाठ के शामिणं के स्थान में यही रूप पढ़ा जाना चाहिए)। — अधिकरण : महा में पणईसु = प्रणयिषु है (गउड ७२८); अ माग में हत्थीसु = हस्तीषु और पक्खीसु = पक्षिषु है (सूय ११७) तथा तवस्सीसु = तपस्विषु (पण्हा ४१) शौर में सामीसु रूप देखने में आता है (महावीर ११९, १४ ; यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए)। — सम्बोधन : शौर में शंकरघराधिवासिणो आया है (मालती १२८, ७) माग में वंदिणो रूप पाया जाता है (अद्भुत ५६५,१७ ५६६, ५ और १५)। पद्य में और विशेषकर अ माग में संस्कृत रूपावली के रूपों की समानता के बहुत संख्यक रूप बने रह गये हैं (§ ९९)।

§ ४ ६— -इन् में समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों म कभी-कभी अ द्वारा परिवर्धित मूल शब्द देखने में आता है : सक्खीणो = साक्षी (हेच २,१७४), किन्तु जै महा और शौर में सक्खी रूप पाया जाता है तथा माग में सत्तकी (आव एर्त्से १८,५ मृच्छ ५१ ११ १६४,२५); शौर में सक्खीकदुअ = *साक्षी कृत्वा (विक्रमो ४५, २), कर्त्ता बहुवचन में महा और शौर में सप्पिणो रूप आया है (कर्पूर ८९, ५ ; शौर में उत्तररा ७७ ४ ; कर्पूर १४ २); महा में सिहिणं = शिखि है इसका कर्त्ता बहुवचन सिहिणा होता है और करण कारक सिहिणेहिँ है (= स्तन : देशी ८ ३१ त्रिवि १ ४ १२१ ; कर्पूर ३१ ७ ७९ १ ; ९५, १) अ माग में किमिण = कृमिन् तथा सकिमिण = सकृमि हैं (आयार ९९५ ; पण्हा० ५२५ और ५२९); अ माग में वरहिण तथा अप में बरहिण = बर्हिम् है (पण्णव ५४ ; ओव § ४ ; आयार § ३१ और ६२ ; पेज ११४ ; उत्तरा २१, ; अप में : विक्रमो ५८८), अप में बरिहिण रूप भी पाया जाता है (हेच ४, ४२२ ८ ; [यहाँ ८ के स्थान में ७ होना चाहिए। —अनु]) इसके साथ-साथ महा और शौर में बरहि- मिलता है (गउड ; विद्ध ९१, ७), महा और जै महा में गम्भिण = गर्भिन् (पर २ १ हेच १ २ ७ ; क्रम २, ११ मार्क पन्ना १५ ; गउड ; एत्स एत्सर ४ ११ ; § २४६ की तुलना कीजिए)। — पल्लवदानपत्रों में नीचे दिये गये रूप देखने में आते हैं :— पाजी- (५, १), सम्म-प— -प्पदायिनो = प्रदायिनः (६ ३१), किन्तु खंधकोंडिस = स्कन्दकुण्डिनः (६, १९), नागनंदिस = नागनन्दिनः (६ ९५), गोलिस = गोडिनः (६, ९५) जो गाड = गाण्ड

(२) से सम्बन्धित है। यह शब्द बोएटलिंक और रोट के संस्कृत-जर्मन बृहत्कोश में है, करण बहुवचन में **-सामीहि = -स्वामिभिः** है (६, ११) और **-वासीहि = वासिभिः** है (६, ३५ और ३६)।

§ ४०७—जैसा कि **-त्** और **-न्** में समाप्त होनेवाले सज्ञा शब्दों के विषय में कहा जा चुका है, वैसे ही **-स्** में समाप्त होनेवाले सज्ञा शब्दों के भी तीन वर्ग हैं: (१) शब्द के अन्त में **-स्** लगकर बननेवाला वर्ग, (२) **स्** की विच्युति के बाद एक वर्ग जिसके अन्त में **-आ**, **-इ** अथवा **-उ** का आगमन हो जाता है, स्वर का यह आगमन और ध्वनि का निर्णय **स्** से पहले आनेवाले स्वर के अनुसार होता है और (३) एक वर्ग जो **अ** द्वारा परिवर्धित वर्ग जिसके अन्त में **-स** आता है। इसके अनुसार महा० में **सिरोअम्प = शिरःकम्प** है (रावण० १२, ३१), **सिरकवलण = शिरःकवलन** है (गउड० ३५१), अ०माग० में **देवीओ -रइयसिरसाओ = देव्यः -रचितशिरस्काः** है (ओव० § ५५), माग० में **शिलश्चालण** रूप पाया जाता है (मृच्छ० १२६, ७)। § ३४७ की तुलना कीजिए। अ०माग० में **जोइठाण = ज्योतिःस्थान** और **जोइसम = ज्योतिःसम** है (उत्तर० ३७५ और १००९), पल्लवदानपत्र में **धमायुबलयसोवधनिके = धर्मायुर्बलयशोवर्धनकान्** है (६, ९, विजयबुद्धवर्मन के दानपत्र १०१, ८ की तुलना कीजिए), महा० और जै०महा० में **आउक्खए = आयुःक्षये** है (हाल ३२१, एर्से० २४, ३६), जै०महा० में **आउदलाणि = आयुर्दलानि** है (कालका० २६८, २२)। महा०, जै०महा० और अ०माग० में शब्द के अन्त में **अस्** लग कर बननेवाले नपुसकलिंग के शब्द नियम के अनुसार पुलिंग रूप में काम में लाये जाते हैं (३५६)।

§ ४०८—**अस्** में समाप्त होनेवाले सज्ञा शब्द। — प्राचीन **स्-** वर्ग से बनाये गये रूप नीचे दिये जाते हैं: कर्त्ता एकवचन पुलिंग अ०माग० में **दुम्हणा** और **सुमणा** रूप आये हैं (सूय० ६९२), शौर० में **दुव्वासा = दुर्वासाः** है (शकु० ७२, १०), **दुव्वासासावो = दुर्वासःशापः** (शकु० ७६, ५) समास में भी यही वर्ग आया है। इसमें § ६४ के अनुसार दीर्घीकरण हुआ है, शौर० **पुरूरवा = पुरूरवाः** है (विक्रमो० ४०, २१), माग० में **शमश्शशिदमणा = समाश्वस्तमनाः** है (मृच्छ० १३४, २३)। महा०, जै०शौर० और शौर० रूप **णमो** तथा अ०माग० और जै०महा० रूप **नमो = नमस्** को हमे नपुसकलिंग मानना पड़ेगा क्योंकि शौर० और माग० में **-अस्** में समाप्त होनेवाले नपुसकलिंग के शब्द पुल्गि नहीं बनते (उदाहरणार्थ, महा० में : गउड०, हाल, अ०माग० में : विवाह० १७२, ओव०, कप्प०, जै०महा० में : कक्कुक शिलालेख, ऋषभ०, जै०शौर० मे : पव० ३७४, ४, ३८९, ४; शौर० में. मृच्छ० १२८, १८ और २१, शकु० १२०, ५, माग० में मृच्छ० ११४, १० और २२, १३३, १७, प्रबोध० ४६, ११)। § १७५ और ४९८ की तुलना कीजिए। जै०शौर० में **तओ = तपः** भी नपुसकलिग है (पव० ३८७, २६)। कर्म- शौर० **पुरूरवसं** रूप है (विक्रमो० ३६, ९), अ०माग० और जै०शौर० रूप **मणो** नपुसकल्गि है = **मनस्** (कप्प० § १२१, पव० ३८६, ७०)। —अ०माग०

और जै महा में करणकारक में बहुत अधिक बार प्राचीन रूप आते हैं : अ॰माग॰ और जै महा में तेयसा = तेजसा है (आयार २, १६, ५ पण्हा , ५ ७ ; ठाणंग ५६८ ओव § २२ ; विवाह १६१ राय॰ २३८ ; कप्प § ११ ; ५९, ११८ ; एर्से॰ ३९, ८) अ माग में मणसा वयसा = मनसा वचसा है (ठाणंग ४), बहुधा मणसा वयसा कायसा एक साथ आते हैं (§ ३६४) न चक्खुसा न मणसा न वयसा वाक्यांश भी पाया जाता है (पण्हा ४६१) अ॰माग और जै शौर में तवसा = तपसा है (सूय १४८ उत्तर १७४ ; उवास § ७६ और २६४ ओव § ३१ ; २८ ४८ ; ६२ ; पव १८८, २०) ; अ माग॰ में रयसा = रजसा (आयार॰ २, १, १, १ १, ४ ; सूय॰ ५६१), सहसा रूप भी पाया जाता है (ठाणंग॰ ३६८), श्रेयसा और जससा रूप मिलते हैं (सम॰ ८१ ; ८२ ८५), सिरसा भी देखने में आता है (कप्प ; ओव), शौर में भी ऐसे रूप देखने में आते हैं (विक्रमो २७, १७) । अ– वर्ग के –सा लगा कर बननेवाले करणकारक के विषय में § ३६४ देखिए । — अधिकरण : उरसि, सिरसि और सरसि रूप मिलते हैं (हेच ४, ४४८) अ माग॰ में तमसि आया है (आयार १, ६, १, ३) ; शौर में पुरूरवसि पाया जाता है (विक्रमो १५, १५) और सरसि भी आया है (शकु॰ २१, ५) ; माग में शिलशि देखा जाता है (मृच्छ १७, २ ११६, १५) ।

§ ४०९—शेष संज्ञा शब्दों की रूपावली अ– वर्ग की ही है : कर्ता– महा में विमणो मिलता है (रावण॰ ५, १६) अ॰माग में उम्मालणो = उन्मलना है (उत्तर ३६२), तम्मणे = तन्मनाः (विवाह ११४) और पीइमण = प्रीतिमनाः है (कप्प § १५ और ५ ; ओव § १७), उम्मालवे विक्कलवे तत्तलवे महालवे घोरतवे वाक्यांश पाया जाता है (ओव॰ § ६२) ; –रइयवच्छे = –रचितवक्षाः है (ओव § ३१) ; जै महा में तम्मणो = तन्मनाः और भासुर सिरो = भासुरशिराः है (एर्से १२, १ ; ३१ १) ; जै शौर में अधिकतेजो = अधिकतेजाः है (पव॰ ३८१, १९) ; महा॰ में स्त्रीलिंग में विमणा रूप आया है (रावण ४ ११), अ माग में पीइमणा पाया जाता है (कप्प §५) ; शौर में –संकन्तमणा = –संक्रान्तमनाः है (मृच्छ॰ २१, ३) पज्जुस्सुअमणा = पर्युत्सुकमनाः है (शकु ९ २) ; महा में नपुंसकलिंग में सुमणं रूप पाया जाता है (रावण ११, २४) अ माग और जै महा में सेयं = श्रेयः (उत्तर २ ४ ; ६७२ ; ६७८ विवाग २१८ ; विवाह २३२ ; नायाध ११३ ; ४८२ ; ५७८ ९ १ ; ११६ उवास ; ओव ; कप्प ; एर्से) । माग में शिले = शिरः के स्थान में छंद की मात्राएं ठीक करने के लिए शिल आया है (मृच्छ ११२, ८ और ९) । § ३६४ की तुलना कीजिए । पुलिंग में –यस् में समाप्त होनेवाला तर– वाचक रूप अ माग और जै महा में आधिक रूप में सघोष वर्गों को अ द्वारा परिवर्धित कर देता है जैसे सेयसे = श्रेयान् और पावीयंसे [पाठ में पाँव से है] = पापीयान् है (ठाणंग ११४ और ११५) और आधिक रूप में अघोष वर्गों की

सहायता से बनता है जैसे, **कणीयसे = कणीयान्** (कप्प० टी. एच. (TH) § १ , अन्त० ३२) है, जै०महा० में **कणीयसो** रूप आया है (द्वार० ५०१,२९), किन्तु यह अ०माग० और जै०महा० कर्मकारक के रूप **कणीयसं** के समान ही = सस्कृत **कनीयस** के रखा जा सकता है, परन्तु यह रूप स्वय वास्तव मे गौण है। प्राचीन तुलना- या तर-वाचक रूप **वलीयस्** विशेषण का एक रूप *वलीय और शौर० में कर्त्ताकारक का रूप **वलीओ** विकसित हुआ है (शकु० ५०, ५ , ५१, २) जिसने नियम के अनुसार ई पर प्राचीन ध्वनिबल के प्रभाव से ह्रस्व इ को अपना लिया है : **वलिअ** रूप मिलता है (= मोटा , सबल : देसी० ६, ८८ , माग० मे . मृच्छ० १४, १० , जै०महा० और आव० में ३५, १७ , एर्त्से० ९, १७ , कालका० २६१, ४२) और इसका नपुसकलिग का रूप **वलिअं** 'अधिक' के अर्थ मे व्यवहृत होता है (पाइय० ९०, महा० मे : शकु० ५५, १६ , शौर० मे : विक्रमो० २७, २१, ५१, १५ , मालवि० ६१, ११ , माग० मे : शकु० १५४, १३ ; वेणी० ३४, ३)। — अ०माग० कर्मकारक पुलिंग मे **दुम्मणं** रूप पाया जाता है (कप्प० § ३८), **जायवेयं = जातवेदसं** है (उत्तर० ३६५), **जायतेयं = जाततेजसम्** है (सम० ८१) ; महा० में स्त्रीलिंग रूप **विमणं** मिलता है (रावण० ११, ४९), यह कारक नपुसकलिग में अधिक देखने में आता है : महा० और अ०माग० में **उरं** पाया जाता है (रावण० १, ४८ , ४, २० और ४७ , आयार० १, १, १, ५ , विवाग० १२७), महा० और अ०माग० में **जसं = यशस्** है (रावण० २, ५ , ४, ४७ , उत्तर० १७०), ढक्की में **जश** रूप है (मृच्छ० ३०, ९) , महा० में **णहं** और अ०माग० में **नहं** रूप पाये जाते हैं (रावण० १, ७ , ५, २ और ६४ , ओव०) , अ०माग मे **तमं** मिलता है (सूय० ३१ और १७०) , महा० में **सिरं** काम मे आता है (रावण० ११, ३५ , ६४ , ७३ , ९० और ९४) , अ०माग० और माग० में **मणं** आया है (उत्तर० १९८ , मृच्छ० ३०, २८) , अ०माग० में **वयं = वयस्** है (आयार० १, २, १, २ और ५ , इसके साथ साथ कर्त्ताकारक का रूप **वओ** भी पाया जाता है, १, २, १, ३) , जै०महा० में **तेयं = तेजस्** है (एर्त्से० ३, १० , ८, २४) , अ०माग० और जै०शौर० में **रयं = रजस** (सूय० ११३ , पव० ३८५, ६१) , अप० में **तउ** और **तवु = तपस्** है (हेच० ४, ४४१, १ और २)। — करण : महा० में **वच्छेण = वक्षसा** है (गउड० ३०१) और **सिरेण = शिरसा** हैं (हाल ९१६) , अप० मे भी यह रूप आया है (हेच० ४, ३६७, ४ [अपनी प्रति में यह हेच० ४, ३६७, ३ में हैं]), शौर० में यह रूप पाया जाता है (बाल० २४६, ६), अ०माग० में **शिरेणं** रूप है (ठाणग० ४०१) , महा० में **तमेण = तमसा** है (रावण० २, ३३) , अ०माग० में **तेएण** रूप मिलता है (उत्तर० ३६३) और **तेएणं = तेजसा** है (उत्तर० ३४१ , विवाह० १२५० , उवास० § ९४) , महा० और अ०माग० में **रएण** मिलता है और अ०माग० में **रएणं = रजसा** है (हाल १७६ , उत्तर० १०९ , ओव० § ११२) , महा० में **मणेण** रूप पाया जाता है तथा अ०माग० में **मणेण = मनसा** है (गउड० ३४७ , सूय० ८४१ और उसके बाद , ८४४ , पण्हा०

११८); जै॰ महा॰ में परितुट्ठमणेणं = परितुष्टमनसा है (पुलिंग ; एर्से १९, १) और में पुरूरवेण आया है (विक्रमो॰ ८, १४) अप में छन्देण = छन्दसा है (पिंगल १, १५); महा॰ सौभिम म विमणाइ रूप मिलता है (हाल ११८); शौर॰ में समागमणाए = तद्गतमनस्कया (विद्ध॰ ४१, ८)। — अपादान : महा॰ में सिराहि आया है (गउड ५८); जलाहि भी पाया जाता है (गउड॰ ११६४ ; रावण ११, ५१) अ॰माग में तमाओ और पद्य में छन्द की मात्रा मिलाने के लिए तमसा रूप भी = तमसः है (सूय ११ और १७), पेँखाओ = प्रेंपसः है (ओव § १२१)। — सम्बन्ध : महा में असुद्धमणस्स = अशुद्धमनसः है (पुलिंग ; हाल२८); शौर में पुरूरवस्स रूप मिलता है (विक्रमो २२ १६), तमस्स और रजस्स रूप भी आये हैं (प्रबोध॰ ८८, १ ५६, १४); जै॰महा॰ म जसस्स देखा जाता है (कक्कुक शिलालेख २१) और अप में जसहु = यशसः है (एर्से ८६, १९)। — अधिकरण : महा और अ माग में उरे रूप का प्रचार है (गउड ७११ हाल ११ २०६ ; २९९ ; ६७१ ; रावण ११, ७६ १२, ५६ और ६२ ; १५ ५० ; ५३ और ६८ , विवाग॰ १६८), महा॰ में उरम्मि भी पाया जाता है (गउड॰ १ २२ ; रावण ११, १ ० ; १५, ४६) तथा अ॰माग में उरंसि रूप भी पाया जाता है (कप्प एस (S) § २९ ; उवास॰); महा में णहम्मि रूप आया है (गउड ११५ ; ४७६ ; ८१९ ; ८२९ ; रावण ११, ५१ ; १४, २१ और ८१), णहे भी मिलता है (रावण ११, ५८), अ माग में णभे पाया जाता है (सूय॰ ३१०); अ॰ माग में तमंसि मिलता है (आयार १, ४, ४, २); शौर॰ में सोँत्ते = स्रोतसि है (कपूर ७१ १) अ माग में तवे = तपसि है (विवाह॰ १९८) महा॰ और अ माग में सिरे रूप आया है (रावण ८ ४ ; उत्तर ६६४); जै महा में सिरम्मि पाया जाता है (एर्से ५८, १ कालका २६८, ३९); महा॰ में सरम्मि = सरसि है (हाल ८९१ और ९२४); महा॰, जै महा और शौर में मणे = मनसि है (रावण ५, ९ एर्से ७९, १८ मृच्छ १ ८, १) अ माग और अप में वच्चे = वर्चसि है (विवाह॰ १४९ ; पिंगल १, ९१); अप में मणि और सिरि रूप पाये जाते हैं (हेच ८ ४२२ १५ ; ४२३ ४)। — बहुवचन : कर्ता— महा में सरा = सरांसि (पुलिंग ; गउड ५१४); अ माग में महासिरा = महाशिरसः महायसा = महायशसः और हारविराइयवच्छा = हारविराजितवक्षसः है (ओव॰ § ३३ और ३३), शून्यमणा = शून्यमनसः (उत्तर १५) तथा पावचया = पापचेतसः है (सूय २८९); अप में भासलमणा = भास्वल्मनसः है (कालका २६१ ८); स्त्रीलिंग— महा में गअवआओ = गतवयस्काः है (हाल २१२); अ माग में —दद्दरसिरसाओ = दर्दरशिरस्काः (ओव § ५५) और मियसिराओ = मृगशिरसः है (ठाणंग ८२)। — कर्मकारक पुलिंग : शौर में सुमणाओ = सुमनसः है (मृच्छ १, १ और २१); नपुंसकलिंग : अ माग॰ में सरांसि मिलता है (आयार २, १,

३, २)। — करण : महा० मे **सरेहि** पाया जाता है (हाल ९५३), **सिरेहि** और **सिरेहिं** रूप भी मिलते हैं (हाल ६८२ ; रावण० ६, ६०), **-मणेहिँ** भी आया है (पुलिग , गउड० ८८), **उरेहि** का भी प्रचलन है (रावण० ६, ६०) ; स्त्री-लिंग : महा० में **विमणाहिं** रूप मिलता है (रावण० ११, १७), **मंगलमणाहि** भी पाया जाता है (रावण० १५, ४३)। — सम्बन्ध : महा० में **सराण** रूप पाया जाता है (हाल ९५३) , जै०महा० मे **गयचयाण** मिलता है (कक्कुक शिलालेख १४) , स्त्रीलिंग : महा० मे **गअवआण** आया है (हाल २३३)। — अधिकरण : अ०माग० मे **तवेसु** रूप आया है (सूय० ३१८), **सरेसु** भी पाया जाता है (नायाध० ४१२)। जैसे **आपस्** का **आऊ** और **तेजस्** का **तेऊ** रूप बन जाता है, उसी भाँति अ०माग० में **वचेस्** का **वऊ** रूप हो जाता है (स्त्रीलिंग में) . **इत्थीवऊ** = **स्त्रीवचः** है (पण्णव० ३६३ , ३६८ , ३६९) , **पुंवऊ** रूप भी आया है (पण्णव० ३६३), **पुमवऊ** भी देखने में आता है (पण्णव० ३६३ , ३६८ , १६९), **नपुंसगवऊ** भी पाया जाता है (पण्णव० ३६३ , ३६९), **एगवऊ** और **बहुवऊ** रूप भी मिलते हैं (पण्णव० ३६७)। — -**अस्** लग कर बननेवाले शब्दों में **-स** वर्ग बहुत कम मिलता है अ०माग० में **अदीणमणसो** = **अदीनमनाः** है (उत्तर० ५१) , जै०महा में **विउसो** = ***विदुष.** = वैदिक **विदुः** = **विद्वान्** (एर्त्से० ६९, १८)।

§ ४१०—सभी प्राकृत भाषाओं में **अप्सरस्** शब्द की रूपावली **आ-** वर्ग की भाँति होती है जो स्वय सस्कृत में भी इसी प्रकार से चलती है : कर्त्ता एकवचन—अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **अच्छरा** पाया जाता है (पण्हा० २२९ , ठाणग २६९ और ४८९ , नायाध० १५२५ , एर्त्से० ६४, २६ , शकु० २१, ६ , विक्रमो० १६, १५ , कर्ण० १५, २) , शौर० में **अणच्छरा** रूप मिलता है जो = **अनप्सराः** (विक्रमो० ७, १८) , कर्त्ता बहुवचन ' अ०माग० और शौर० में **अच्छराओ** रूप है (ओव० [§ ३८] , पण्हा० २८८ , विवाह० २४५ और २५४ , बाल० २१८, ११) , करण . अ०माग० और शौर० मे **अच्छराहिं** आया है (विवाह० २४५ , रत्ना० ३२२, ३० , बाल० २०२, १३) और विक्रमोर्वशी ४०, ११ के **अच्छरोहिं** के स्थान में भी यही पाठ पढा जाना चाहिए। तथाकथित **अच्छरेहिं** के सम्बन्ध में जो रावण० ७, ४५ में **धाराहरेहिं** से सम्बन्धित एक बहुव्रीहि के अन्त मे आया है और ठीक है के विषय में § ३२८ और ३७६ देखिए , मूल शब्द **अच्छरा-** और अ०माग० **अच्छर** के विषय में § ९७ और ३४७ देखिए। हेच० १, २० और सिंहराजगणिन् पन्ना २५ के अनुसार मूल शब्द **अच्छरसा** बनाया जाता है . कर्त्ता एकवचन— **अच्छरसा** है, कर्त्ता बहुवचन— **अच्छरसाओ** होता है। महा० रूप **अच्छरसं** इसी से सम्बन्धित कर्मकारक है जो रावण० १३, ४७ में आया है।

§ ४११—(२) अन्त में **-इस्** और **-उस्** लग कर बननेवाले सज्ञा शब्द। प्राचीन रूप जो प्राप्त हैं वे नीचे दिये जाते हैं : करण एकवचन— अ०माग० में **चक्खुसा** = **चक्षुषा** है (पण्हा० ४६१ , उत्तर० ७२६ , ७३४ , ७७९) , अ०माग० में **विउसा** = **विदुपा** (हेच० २, १७४ पेज ६८ [भडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट द्वारा

प्रकाशित 'कुमारपालचरित परिशिष्टे च सिद्धहेमव्याकरणस्याष्टमाध्यायेन सहितम्' के द्वितीय संस्करण का पेज ४९१। — अनु])। — सम्बन्ध : शौर में आउसो = आयुषः है (विक्रमो ८, ४), धणुषो = धनुषः है (§ २६३ बाल १११ १७ छूट है !)। — सम्बन्ध बहुवचन : अ माग में जोइसं = ज्योतिषाम् है (ओव § ३९ प बी [बी] की तथा बी हस्तलिपियों के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए), जोइसाम् अयणे में (विवाह १४९ कप्प § १, ओव § ७७) जोइसाम् रूप भी पाया जाता है। –ऊ में समाप्त होनेवाला कर्ता एकवचन या तो इस § में या ऊ– वर्ग में वर्णित किया जा सकता है अ माग में विऊ = वैदिक विदुः[1] (सूय ८९; १८७ १४२ ५६ ६६६ उत्तर ६४४ और ६९१ आयार २, १६, ५), धम्मविऊ = धर्मविदुः (आयार १ १, १, २), एग विऊ = एकविदुः, धम्मविऊ = धर्मविदुः, मग्गविऊ = मार्गविदुः और पारविऊ = पारविदुः है (सूय ५६ ५५५ ; ६६६) एक्कारसंगविऊ = एकादशांग विदुः (नायाध ९६७), बारसंगविऊ = द्वादशांगविदुः (उत्तर० ६९१), चक्खु एगचक्खु और तिचक्खु = चक्षुः, एकचक्षुः, द्विचक्षुः और त्रिचक्षुः है (ठाणग १८८); धणू = धनुः (देय १, २९) शौर में आऊ = आयुः (विक्रमो ८१, २ आउसो = आयुषा ८२, ११ की तुलना कीजिए); शौर० में दीहाऊ = दीर्घायुः (देच० १ १ ; मृच्छ १४१, १६ १५४, १५ शकु १६६, १२ विक्रमो ८, १२ ८४, ; उत्तररा ७१, ८ आदि आदि) है। — इ– तथा उ– वर्ग से निम्नलिखित रूप निकाले गये हैं : कर्ता एकवचन– अ माग में सप्पि = सर्पिः (सूय २९१ नपुंसकलिंग) जोई = ज्योतिः (उत्तर १७४ और उसके बाद पुलिंग) § ३५८[1] की तुलना कीजिए। महा में हविं = हविः (हाल० ५, ९१); महा में धणुं = धनुः (हाल ६ १ ; ६२ रावण १ १८ ८९ ; ८५) और अ माग में आउं = आयुः है (आयार १, २, १ २)। — कर्म : अ माग में जोई = ज्योतिः है (उत्तर १७५ ६७७ १ ९ ; नन्दी १४६), सजोई = सज्योतिषम् है (सूय २७) सप्पि = सर्पिः है (आयार २ १, ८ ८ ; कप्प एस (S) § १७ ; ओव § ७१), चक्खु = चक्षुः है (आयार १ ८ १ ४) इसका रूप चक्खुं भी मिलता है (सूय २२१), यह कर्ताकारक के समान ही है (उवास § ५ ; यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) परमाउं रूप भी पाया जाता है (ओव § ५१ ; सम ११२); महा , अ माग तथा शौर में धणुं = धनुः (हाल १७० ; ४११ ; निरया § ५ ; पवी ९२, १७) शौर में दीहाउं = दीर्घायुषम् है (उत्तररा ११२ ९)। — करण : अ माग में जोइणा = ज्योतिषा (आयार २ १६ ८ ; सूय ४९० और ७११) और अच्चीए = अर्चिषा है जो अर्चिस् का एक रूप है और स्त्रीलिंग बन गया है (ओव § ३३ और ५६); शौर में दीहाउणा रूप पाया जाता है (शकु ८४, ६ यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए)। — अपादान : अ माग में चक्खूओ रूप पाया जाता है (आयार० २, १५, ५, २)। — सम्बन्ध : अ माग में आउस्स (सूय ५ ४)

और **चक्खुस्स** (उत्तर० ९२४ और उसके बाद) रूप पाये जाते हैं। — अधि-करण : अ०माग० में **आउम्मि** (सूय० २१२) रूप मिलता है और जै०महा० में **चक्खुम्मि** आया है (आव०एर्त्से० १५, १७)। — कर्त्ता बहुवचन पुलिंग : अ० माग० में **वेयविऊ, जोइसंगविऊ** और **विऊ** रूप पाये जाते हैं (उत्तर० ७४३ और ७५६), **धम्मविदू** रूप भी मिलता है (आयार० १, ४, ३, १), **अणाऊ = अनायुषः** है (सूय० ३२२), नपुसकलिंग में : **चक्खूइं** रूप मिलता है (हेच० १, ३३), अ०माग० में **चक्खू** रूप आया है (सूय० ५४९, ६३९)। — करण : **धणूहिं** रूप पाया जाता है (निरया० § २७)। — नीचे दिये गये शब्दों में अन्त में **-स** लगकर बननेवाला वर्ग पाया जाता है : कर्त्ता — **दीहाउसो = दीर्घायु** है (हेच० १, २०, मालवि० ५५, १३), महा० में **अदीहराउसो** रूप काम में आया है (हाल ९५०), **धणुहं = धनुः** जो वास्तव में कभी कहीं बोले जानेवाले ***धनुषम्** का प्राकृत रूप है (§ २६३, हेच० १, २२), इसके साथ साथ महा० के अधिकरण में **धणुहे** पाया जाता है (कर्पूर० ३८, ११)। इनका मूल शब्द **धणुह-** होना चाहिए (प्रसन्न० ६५, ५), जै०महा० में **चिराउसा** रूप मिलता है (तीर्थ० ७, ८, स्त्रीलिंग)। त्रिविक्रम १, १, ३, ३ के अनुसार **आशिस्** कर्त्ताकारक का रूप प्राकृत में **आसी = आशीः** बनता है अथवा **आशिस्** से निकलता रूप **आसीसा** होता है जिसे हेमचद्र भी २, १७४ में सिखाता है। यह जै०महा० में भी कर्मकारक में पाया जाता है। इस प्राकृत में **आसीसं** रूप पाया जाता है (एर्त्से० ८०, ११)। इसके अतिरिक्त **लद्धासीसो = लब्धाशीः** भी पाया जाता है (एर्त्से० ८४, २५), शौर० में करणकारक में **आसीसाए** रूप मिलता है (वेणी० २३, १७), करण बहुवचन में **आसीसाहिं** आया है (मल्लिका० ७९, ३)। इसके साथ साथ **आसिसा** रूप भी निश्चित है जो दुर्बल वर्ग के विस्तार से बना है . शौर० कर्त्ता- **आसिसा** है (शकु० ८३, १), कर्म- **आसिसं** (मालती० ३५१, ७), सबध- **आसिसाए** है (नागा० ८४, १५, पाठ में **आसिसं** के स्थान में इसी ग्रन्थ में अन्यत्र मिलनेवाले रूप **आसिसाए** के अनुसार यही रूप पढा जाना चाहिए), सम्बन्ध बहुवचन- **आसिसाणं** है (मालती० बम्बइया सस्करण १०७, १२, भण्डारकर के सस्करण पेज ३६३ में इस शब्द की तुलना कीजिए, महावीर० १३३, ५)।

१ पिशल, वेदिशे स्टुडिएन २, २६६। — २ विऊ [पाठ में विदू है] **नए धम्मपयं अणुत्तरं** शब्द श्लोक ४ के हैं। याकोबी द्वारा अटकल से बनाया गया शब्द **विदूणते** जो **विदुन्वतः** के अर्थ में लिया गया है (सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, खण्ड बाईसवाँ, २१२ नोटसख्या २) भाषाशास्त्र के अनुसार असम्भव है। **नते नये** के स्थान में (§ २०३) = **नयेत्**, अशुद्ध रूप है (§ ४९३, नोटसख्या ४)। — ३ यहाँ **सप्पी** को काट डालना चाहिए।

§ ४१२—'पुस' शब्द के प्राकृत में चार वर्ग हैं (१) **पुं** जो **पुंस-** से निकला है और महा०, अ०माग० तथा जै०महा० में **पुंगव** में पाया जाता है (गउड० ८७, उत्तर० ६६६, नायाध० १२६२, १२७२, एर्त्से० ४, २५), अ०माग० में **पुचेय**

रूप पाया जाता है (सम ५२ [पाठ में पुंवेद है] भग०), पुवऊ = *पुंवका भी मिलता है (पण्णव ३६१) (२) पुमांस जो अ०माग० के कर्ता एकवचन में पुमं = पुमान् में पाया जाता है (दस ६२८, ९) (३) उक्त दोनों वर्गों से निकला अथवा आविष्कृत वर्ग पुम– अ माग के कर्ता एकवचन में पुमे रूप आया है (ठाणंग ४७९ और ४८२), अ माग के कर्म एकवचन में पुमं देखने में आता है (आयार० २ ४, १, ८ और ९ दस ६१७, ८), यह रूप इससे मुख्यतः शब्दों और समासों में भी पाया जाता है जैसे, अ माग में पुमवऊ = *पुंवक (पण्णव ३६१ [पाठ में पुमवेऊ है] ३६८ ३६९) है पुमआणमणी = *पुमाज्ञापनी है (पण्णव ३६१ और उसके बाद ; ३६९), पुमपन्नवणी = *पुंप्रज्ञापनी (पण्णव० ३६४) है, पुमित्थियेय = पुस्त्रीवेद (उत्तर ९६) पुमत्तं = पुंस्त्वम् (उत्तर ४२१) पुमत्ताए = पुंस्त्वाय (ओव § १ २ ठाणंग० ४७९ ४८२ ५२१) और पुमवयण = पुंवचन है (पण्णव १७ और ३८८ ठाणंग १७४ [पाठ में पुम्मवयण है]); (४) पुंस्– का विस्तार से बना हुआ वर्ग पुस– जिसके रूप अ माग में पुंसकोइलग = पुंस्कोकिलक है (ठाणंग ५९८), मपुंसवेय रूप भी मिलता है (उत्तर ९६०)। पल्लवदानपत्रों में स्– वर्गों में से केवल भूयो मिलता है (७, ४१)।

(८) शेष व्यंजनों के वर्ग

§ ४११— त्– न्– और स्– वर्ग को छोड़ केवल श्– वर्ग के और उसमें से भी विशेष कर दिश् के नाना रूप प्राचीन रूपावली के अनुसार बने रह गये हैं और इनमें से अधिकांश परम्परा की रीति से बोले जानेवाले वार्तालाप में पाये जाते हैं जैसे, अ माग में दिसो दिसं रूप आया है (आयार २ १६, ६) ; अ माग और जै महा में दिसो दिसिं भी पाया जाता है (पण्हा १९७ ; उत्तर ७९१ नायाध १४८ ; एर्से ११ ६ १८, २६ ६१२५) ; [illegible] जै महा में दिसि-दिसि रूप मिलता है ([illegible] ५ ; एर्से ७, २९) [illegible] में पदिसो दिसासु आया है ([illegible] २) ; यह रूप [illegible] । [illegible] का महा का रूप पुष्पादि [illegible] है (बाल १० [illegible]) में दिसि रूप मिलता है (मृच्छ [illegible] पद्य में आया है [illegible] दुकर रूप मिल [illegible] ७ / ६ १५५) [illegible] करण एकवचन [illegible] पाया है ([illegible]

[illegible] ६१, [illegible] ; दस ६ [illegible] सभी [illegible] सदा अ– [illegible] स्त्रीलिंग में [illegible] हैं । इस । [illegible] आप् [illegible] ४ [illegible] अ माग [illegible] और ९

शौर० और माग० मे **वाआए** रूप पाया जाता है (गउड० ६२ , प्रसन्न० ४६, १४ , ४७, १ , माग० मे : मृच्छ० १५२, २२), महा० मे **वाआइ** भी देखने में आता है (हाल ५७२) , अ०माग० मे **वायाए** रूप मिलता है (दस० ६३१, ३४ , पण्हा० १३४) , सम्बन्ध- माग० में **वाआए** पाया जाता है (मृच्छ० १६३, २१) , अधिकरण- महा० में **वाआइ** पाया जाता है , कर्त्ता बहुवचन- महा० में **वाआ** और **वाआओ** रूप हैं (गउड० ९२) ; कर्म- अ०माग० मे **वायाओ** आया है (आयार० १, ७, १, ३) , करण- अ०माग० में **वायाहि** मिलता है (आयार० २, १६, २) , अधिकरण- महा० में **वाआसु** पाया जाता है (गउड० ६२)। इसके साथ साथ अ०माग० मे बहुधा **वई** रूप मिलता है जो = ***वची** के और ***वाची** से निकला है। इसमे § ८१[१] के अनुसार **आ** का **अ** हो गया है, इसका : कर्त्ता एकवचन- **वई** है (आयार० पेज १३२, १५ और १७ , विवाह० ७०), कर्म- **वइं** मिलता है (आयार० १, ५, ३, १ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] ; २, ३, १, २१ , २, ३, ३, १६ , पेज १३२, १५ और १७ , सूय० १६९ [यहाँ **वइँ** पढिए] और ८६६), **वइ**- भी पाया जाता है (आयार० १, ५, ५, ४ ; १, ७, २, ४ , २, १३, २२ , पेज १३३, २ , सूय० १२८ ; उत्तर० ६४६ , जीवा० २५ और २७६ , विवाह० १४३१ , १४५३ , १४६२ , कप्प० § ११८ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए])। — **त्वच्** की रूपावली निम्नलिखित प्रकार है . कर्त्ता एकवचन- अ०माग० मे **तया** = ***त्वचा** है (सूय० ६३९ , विवाह० १३०८ और १५२९) ; अपादान-अ०माग० मे **तयाओ** पाया जाता है (सूय० ६३९) , सम्बन्ध बहुवचन- अ०माग० में **तयाणं** रूप मिलता है (सूय० ८०६) , कर्त्ता- अ०माग० में **तयाणि** होता है (§ ३५८)। यह वर्ग बहुधा समासों में पाया जाता है जैसे, अ०माग० में **तयप्पवाल-** = **त्वक्प्रवाल** है (पण्हा० ४०८), **तयासुह** = **त्वक्सुख** है (नायाध० § ३४ , ओव० § ४८ , कप्प० § ६०), **तयामन्त** रूप भी मिलता है (ओव० § ४ और १५), **सरित्तया** = **सदृक्त्वचः** है (विवाह० १२३ , कर्त्ता बहुवचन)। **ऋच्** का केवलमात्र एक रूप शौर० में मिलता है अर्थात् **ऋचाइं**, जो कर्म बहुवचन है (§ ३५८)। **भिषज्** का कर्त्ता एकवचन **भिसओ** पाया जाता है (हेच० १, १८), **यकृत्** का सम्बन्ध एकवचन का रूप अ०माग० में **जगयस्स** = ***यकृतस्य** है (विवाह० ८६९), **शरद्** का कर्त्ता एकवचन **सरओ** पाया जाता है (§ ३५५)। — **विद्** का कर्त्ता एकवचन में अ०माग० में **सडंगवी** रूप देखने में आता है (विवाह० १४९ , कप्प० § १० , ओव० § ७७), **वेयवी** = **वेदवित्** है (आयार० १, ४, ४, ३ , १, ५, ४, ३ , १, ५, ५, २ , उत्तर० ७४२), **परिषद्** का कर्त्ता एकवचन अ०माग० में **परिसा** पाया जाता है जो ***परिषदा** से निकला है (विवाग० ४ , १३ , १५ , ५८; १३८ , २४२ , ओव० , उवास० और यह रूप बहुत अधिक जै०महा० में भी मिलता है . एर्त्से० ३३, १०), करण-, सम्बन्ध- और अधिकरण कारकों में अ०माग० में **परिसाए** पाया जाता है (कप्प० § ११३ , ओव० § ५६) , कर्त्ता बहुवचन-अ०-माग० में **परिसाओ** रूप आया है (विवाह० ३०३), करण- **परिसाहिं** है (नायाध०

रूप पाया जाता है (सम० ६२ [पाठ में पुंवेद है] मग०), पुंवक्र = *पुंवक्त्रा भी मिलता है (पण्णव० १६१) (२) पुमांस ओ अ माग के कर्त्ता एकवचन में पुमं = पुमान् में पाया जाता है (दस ६२८, ९) (३) उक्त दोनों वर्गों से निकला अथवा अविकृत वर्ग पुम- अ माग के कर्त्ता एकवचन में पुमे रूप आया है (ठाणंग ४७९ और ४८२), अ०माग के कर्म एकवचन में पुमं देखने में आता है (आयार २ ४, १, ८ और ९ दस० ६३०, ८), यह रूप इससे व्युत्पन्न शब्दों और समासों में भी पाया जाता है जैसे, अ माग में पुमवऊ = *पुंवक्त्र (पण्णव० १६१ [पाठ में पुमवेऊ है] १६८ १६९) है, पुमआणमणी = *पुमाज्ञापनी है (पण्णव ३६१ और उसके बाद ३६९), पुमपन्नवणी = *पुंप्रज्ञापनी (पण्णव ३६४) है, पुमित्थिवेय = पुंस्त्रीवेद (उत्तर ९६) पुमत्तं = पुंस्त्वम् (उत्तर ४२१), पुमत्ताए = पुंस्त्वाय (ओव § १ २ ठाणंग० ४७९ ४८२ ; ५२३) और पुमवयण = पुंवचन है (पण्णव ३७ और ३८८ ठाणंग १७४ [पाठ में पुम्मवयण है]) (४) पुस्- के विस्तार से बना हुआ वर्ग पुंस- जिसके रूप अ०माग० में पुसकोइलग = पुसकोकिलक है (ठाणंग ५६८), नपुंसवेय रूप भी मिलता है (उत्तर ९६)। पल्लवदानपत्रों में स्- वर्गों में से केवल भूयो मिलता है (७ ४१)।

(८) शेष व्यंजनों के वर्ग

§ ४११— त्- म्- और स्- वर्ग को छोड़ केवल श्- वर्ग के और उसमें से भी विशेष कर दिश् के नाना रूप प्राचीन रूपावली के अनुसार बने रह गये हैं और इनमें से अधिकांश परम्परा की रीति से बोले जानेवाले वाक्यालाप में पाये जाते हैं जैसे, अ०माग में दिसा दिसं रूप आया है (आयार २, १६, ६) ; अ माग और जै महा में दिसा दिसिं भी पाया जाता है (पण्हा १९७ ; उत्तर ७९१ नायाध १४८ ; एर्त्से ११ ६ ; १८, २९ ६१ २५) ; महा और जै महा में दिसि-दिसि रूप मिलता है (विद्ध ९ ९ ; एर्त्से ७, २९) ; अ माग में पविसो दिसासु आया है (आयार १ १ ६, २) ; कई रूप विरल हैं जैसे सम्बन्धकारक का महा का रूप पुव्वादिसाः = पूर्वदिशः है (बाल १०९, २) और माग में पिदिश रूप मिलता है (मृच्छ १ ४ ; यह पद्य में आया है)। अन्यथा इसके-इनके रूप मिलते हैं (§ ३५५) जैसे अ माग में करण एकवचन का रूप वाया = वाचा है (उत्तर २८ ; दस ६१ १२) और कायगिरा = कायगिरा (§ ३५६ ; दस ६३४, २४)। अन्य सभी व्यंजनों के वर्ग प्रायः सदा अ- रूपावली में तथा स्त्रीलिंग में आ- अथवा इ- की रूपावली में ले लिये गये हैं। इस नियम के अनुसार वाच् *वाचा के द्वारा महा में वाआ बन गया है (भाम ४ ७ गउड ६९), अ माग में इसका वाया बन जाता है (सूय ९११ और ९३६) ; कमकारक में वाअं और अ माग में वायं पाया जाता है (गउड ६, ७ ; सूय ९१२) ; करण- महा ,

शौर० और माग० में **वाआए** रूप पाया जाता है (गउड० ६३, प्रसन्न० ४६, १४, ४७, १, माग० में : मृच्छ० १५२, २२), महा० में **वाआइ** भी देखने में आता है (हाल ५७२), अ०माग० मे **वायाए** रूप मिलता है (दस० ६३१, ३४, पण्हा० १३४), सम्बन्ध- माग० में **वाआए** पाया जाता है (मृच्छ० १६३, २१), अधिकरण- महा० में **वाआइ** पाया जाता है, कर्त्ता बहुवचन- महा० में **वाआ** और **वाआओ** रूप हैं (गउड० ९३); कर्म- अ०माग० मे **वायाओ** आया है (आयार० १, ७, १, ३), करण- अ०माग० में **वायाहि** मिल्ता है (आयार० २, १६, २), अधिकरण- महा० में **वाआसु** पाया जाता है (गउड० ६२)। इसके साथ साथ अ०माग० में बहुधा **वई** रूप मिलता है जो = ***वची** के और ***वाची** से निकला है। इसमें § ८१[१] के अनुसार **आ** का **अ** हो गया है, इसका : कर्त्ता एकवचन- **वई** है (आयार० पेज १३२, १५ और १७, विवाह० ७०), कर्म- **वइं** मिल्ता है (आयार० १, ५, ३, १ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], २, ३, १, २१, २, ३, ३, १६, पेज १३२, १५ और १७, सूय० १६९ [यहाँ **वइँ** पढिए] और ८६६), **वइ**- भी पाया जाता है (आयार० १, ५, ५, ४, १, ७, २, ४, २, १३, २२, पेज १३३, २, सूय० १२८, उत्तर० ६४६, जीवा० २५ और २७६, विवाह० १४३१, १४५३, १४६२, कप्प० § ११८ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए])। — **त्वच्** की रूपावली निम्नलिखित प्रकार है : कर्त्ता एकवचन- अ०माग० में **तया** = ***त्वचा** है (सूय० ६३९, विवाह० १३०८ और १५२९), अपादान-अ०माग० में **तयाओ** पाया जाता है (सूय० ६३९), सम्बन्ध बहुवचन- अ०माग० में **तयाणं** रूप मिल्ता है (सूय० ८०६), कर्त्ता- अ०माग० में **तयाणि** होता है (§ ३५८)। यह वर्ग बहुधा समासों में पाया जाता है जैसे, अ०माग० में **तयप्पवाल**- = **त्वक्प्रवाल** है (पण्हा० ४०८), **तयासुह** = **त्वक्सुख** है (नायाध० § ३४, ओव० § ४८, कप्प० § ६०), **तयामन्त** रूप भी मिल्ता है (ओव० § ४ और १५), **सरित्तया** = **सदृक्त्वचः** है (विवाह० १२३, कर्त्ता बहुवचन)। **ऋच्** का केवलमात्र एक रूप शौर० में मिलता है अर्थात् **ऋचाइं**, जो कर्म बहुवचन है (§ ३५८)। **भिषज्** का कर्त्ता एकवचन **भिसओ** पाया जाता है (हेच० १, १८), **यकृत्** का सम्बन्ध एकवचन का रूप अ०माग० में **जगयस्स** = ***यकृतस्य** है (विवाह० ८६९), **शरद्** का कर्त्ता एकवचन **सरओ** पाया जाता है (§ ३५५)। — **विद्** का कर्त्ता एकवचन में अ०माग० में **सडंगवी** रूप देखने में आता है (विवाह० १४९, कप्प० § १०, ओव० § ७७), **वेयवी** = **वेदवित्** है (आयार० १, ४, ४, ३, १, ५, ४, ३, १, ५, ५, २, उत्तर० ७४२), **परिषद्** का कर्त्ता एकवचन अ०माग० में **परिसा** पाया जाता है जो ***परिषदा** से निकला है (विवाग० ४, १३, १५, ५८; १३८, २४२, ओव०, उवास० और यह रूप बहुत अधिक जै०महा० में भी मिलता है . एत्सें० ३३, १०), करण-, सम्बन्ध- और अधिकरण कारकों में अ०माग० में **परिसाए** पाया जाता है (कप्प० § ११३, ओव० § ५६), कर्त्ता बहुवचन-अ०-माग० मे **परिसाओ** रूप आया है (विवाह० ३०३), करण- **परिसाहिं** है (नायाध०

भी इस काम मे आता है (उवास० § ५०), इसी नियम जै०शौर० में सबधकारक बहुवचन का रूप **दिसीणं** है (कत्तिगे० ४०२, ३६७) और इसके साथ साथ **दिसाण** रूप भी पाया जाता है (४०१, ३४२), अधिकरण- कारक में जै०शौर० मे **दिसिसु** रूप मिलता है (कत्तिगे० ४०१, ३४१), अप० में **दिसिहिँ** है (हेच० ४, ३४०, २)। — **प्रावृष्** का रूप **पाउसो** बन जाता है (§ ३५८), **उपानह्** के स्थान में शौर० मे **उवाणह** वर्ग है (मृच्छ० ७२, ९), कर्त्ता- और कर्म- कारक बहुवचन में अ०माग० में **पाहणाओ** और **वाहणाओ** रूप पाये जाते हैं (§ १४१)।

१ वेबर (भगवती १, ४०४) मूल से वइ- की व्युत्पत्ति **वचस्** से बताता है।

—तर और —तम के रूप

§ ४१४—प्राकृत में 'एक से श्रेष्ठ' और 'सब से श्रेष्ठ' का भाव बताने के लिए **—तर, —तम, —ईयस्** और **—इष्ठ** का ठीक वैसा ही प्रयोग किया जाता है जैसा सस्कृत में : महा० में **तिक्खअर = तीक्ष्णतर** है (हाल ५०५), जै०महा० में **उज्जलतर = उज्ज्वलतर** (आव०एर्त्से० ४०, ६), **दढतर = दृढतर** (एर्त्से० ९, ३५); अ०माग० में **पग्गहियतर = प्रगृहीततर** है (आयार० १, ७, ८, ११) तथा **थोव-तर = स्तोकतर** है (जीयक० ९२), शौर० में **अधिअदर = अधिकतर** है (मृच्छ० ७२, ३, ७९, १, मालती० २१४, १, वृषभ० १०, २१, नागा० २४, ५) और **णिहुददर = निभृततर** है (विक्रमो० २८,८)। स्त्रीलिंग में **दिउणदरा = द्विगुणतरा** है (मृच्छ० २२, १३), **दिउणदरी** रूप भी मिलता है (प्रिय० २५, ७), जै०महा० और शौर० में **महत्तर** पाया जाता है (एर्त्से०, उत्तररा० ११८, ५), माग० मे **मह-त्तल** आया है (शकु० ११८, ५), महा० मे **पिअअम** काम में आया है (हाल, रावण०), जै०महा० मे **पिययम** रूप बन जाता है (द्वार० ४९८, २६, एर्त्से०), शौर० में इसका रूप **पिअदम** देखने में आता है (विक्रमो० २८, ९, ५२, २०, ५८, ५, प्रबोध० ३९, २), अप० में भी **पिअअम** का प्रचलन है (विक्रमो० ६६, १६)। ये सब रूप **= प्रियतम** है, अ०माग० में **तरतम** पाया जाता है (कप्प०), अ०माग० और जै०महा० में **कनीयस्** रूप मिलता है (§ ४०९, [इस **कनीयस्** से कुमाउनी में **कॉसो** और **कॉसी** रूप बन गये हैं, नेपाली में **कान्छा** और **कान्छी**]), शौर० में **कणीअसी** का प्रयोग है (स्त्रीलिंग, मालवि० ७८, ९), अ०माग० में **कणिट्ठग** रूप है (उत्तर० ६२२), अ०माग० में **सेयं = श्रेयस्** है (§ ९४), **सेयंस** रूप भी पाया जाता है (§ ४०९), पल्लवदानपत्रों में **भूयो** मिलता है (७, ४१), अ०-माग० और जै०महा० में इसका रूप **भुज्जो** बन जाता है (§ ९१, आयार० १, ५, ४, २, १, ६, ३, २, २, २, २, ७, सूय० ३६१, ५७९, ७८७, ७८९, ९७९, उत्तर० २१२, २३२, २३८, २३९, ३६५, ४३४, ८४२, विवाह० १८, २७, ३० और उसके बाद, १४५, २३८ और उसके बाद, ३८७ आदि-आदि, उवास०; नायाध०, ओव०, कप्प०, एर्त्से०), शौर० में **भूओ** पाया जाता है (शकु० २७,

कर्म—**मं, ममं, महं, मे** [**मि, मिमं, अम्मि, अम्हं, अम्ह, मम्ह, अहं, अहम्मि, णे, णं**] , अप० में **मईं** ।

करण—**मए, मइ** [**ममए, ममाइ, मआइ**], **मे** [**मि, ममं, णे**] , अप० मे **मईं** ।

अपादान—[**मत्तो, ममत्तो, महत्तो, मज्झत्तो, मइत्तो**], **ममाओ** [**ममाउ, ममाहि**], **ममाहिंतो** आदि आदि (४१६) , पै० मे [**ममातो, ममातु**] , अप० में [**महु, मज्झु**] ।

सम्बन्ध—**मम, मह, मज्झ, ममं, महं, मज्झं, मे, मि** [**मइ, अम्ह, अम्हम्**] , अप० में **महु, मज्झु** ।

अधिकरण—[**मए**], **मइ** [**मे, मि, ममाइ**], **ममम्मि** [**महम्मि, मज्झम्मि, अम्हम्मि**] , अप० में **मईं** ।

बहुवचन

कर्त्ता—**अम्हे** [**अम्ह, अम्हो, मो, भे**] , दाक्षि० मे **वअं** , अ०माग० और जै०-महा० में **वयं** भी होता है , माग० में [**हगे** भी] , पै० में **वयं, अम्फ, अम्हे,** अप० में **अम्हे, अम्हइं** ।

कर्म—**अम्हे, अम्ह** [**अम्हो**], **णो, णे** , अप० में **अम्हे** [**अम्हइँ**] ।

करण—**अम्हेहिं** [**अम्हाहिं अम्हे, अम्ह**], **णे** , अप० में **अम्हेहिँ** ।

अपादान—[**अम्हत्तो, अम्हाहिंतो, अम्हासुंतो, अम्हेसुंतो, महत्तो, ममाहिंतो, ममासुंतो, ममेसुंतो** , अप० में **अम्हहँ**] , जै०महा० में **अम्हेहिंतो** ।

सम्बन्ध—**अम्हाणं, अम्हाण, अम्हं, अम्ह, म्ह** [**अम्हाहँ**], **अम्हे** [**अम्हो, ममाणं, ममाण, महाणं, महाण, मज्झाणं, मज्झ, णे**], **णो, णे** , अप० में **अम्हहँ** ।

अधिकरण—**अम्हेसु अम्हासु** [**अम्हसु, ममेसु, ममसु, महेसु, महसु, मज्झेसु, मज्झसु**] , अप० में **अम्हासु** ।

वर० ६, ४०–५३ , ११, ९ , १२, २५ , चंड० १, २६–३१ , २, २७, ३, १०५–११७ , ४, ३०१ , ३७५–३८१ , क्रम० ३, ७२–८३ , ५, ४०–४८ , ९७ , ११४ , मार्क० पन्ना ४९ , ७० , सिंहराजगणिन् पन्ना ३०–३२ की तुलना कीजिए ।

§ ४१६—व्याकरणकारों द्वारा सिखाये गये रूपों का एक बहुत बड़ा अंश ग्रन्थों में नहीं मिलता, इसलिए अब तक प्रमाणित नहीं किया जा सका किन्तु इससे इनकी शुद्धता पर सन्देह नहीं किया जा सकता[1] । सिंहराजगणिन् द्वारा दिये गये कुछ रूपों के विषय में सन्देह किया जा सकता है क्योंकि ऐसा लगता है कि ये अन्य रूपावलियों के अनुकरण पर आविष्कृत किये गये हैं । सिंहराजगणिन् हेमचन्द्र की भाँति ही केवल अपादान एकवचन में ऊपर दिये गये सभी वर्गों के निम्नलिखित रूप ही नहीं बताता : **ममत्तो, ममाओ, ममाउ, ममाहि, ममहिंतो, महत्तो, महाओ, महाउ, महाहि, महाहिंतो, मज्झत्तो, मज्झाओ, मज्झाउ, मज्झाहि, मज्झाहिंतो, मइत्तो, मईओ,**

६ ; १०, १४ १२३, ११ मालवि ४८, ७), शौर में भूयिट्ठ रूप भी आया है (शकु १७, ५ ; मालवि ७१ ८) = भूयस और भूयिष्ठ हैं। इनके साथ साथ शौर० में बहुदर रूप भी बहुत चलता है (मृच्छ १७, २१ शकु ७१, १ उत्त-ररा० ६६, १ ; चैतन्य० ४२, २ ४१, ५ ४५, ११) ; अ माग में पेज्ज = प्रेयस् (§ ९१ आयार० १, ३, ४, ४ ; सूय ८८५ ; पण्णव ६३८ विवाह० १२५ १ २६ उत्तर १९९ उवास), पिज्ज- रूप भी पाया जाता है (उत्तर ८२२ और ८७६) अ माग में पावीयंस = पापीयान् है (§ ४ ०), जै महा में पाविट्ठ = पापिष्ठ है (कालका) अ माग०, जै०महा० और शौर में जेट्ठ = ज्येष्ठ (आयार २, १५, १५ विवाह १३३ और ५११ उत्तर ६२१ [पाठ में जिट्ठ है] उवास कप्प० नायाध ; हार ४९५, २६ पर्से विक्रमो ८८, १६ ; उत्तररा १२८ १२ ; अनर्घ २९७ ११) अ माग में धम्मिट्ठ = धर्मिष्ठ है (सूय ७९७) जै महा मंदुप्पिट्ठ = दर्पिष्ठ है (कालका २७ , १) ; शौर में अदिप्पिट्ठ रूप पाया जाता है (प्रबोध ८१ १)। अ माग रूप हेट्ठिम के विषय में § १ ७ देखिए। द्विस्व रूप यहाँ दिये जाते हैं : अ०माग में उत्तरतर मिलता है (आव), बलियतरं पाया जाता है (विवाह ८३९) जेट्ठयर और कणिट्ठयर रूप भी मिलते हैं (देय २ १७२)। एक ध्यान देने योग्य और मार्के का द्विस रूप अ माग० क्रियाविशेषण भुज्जतरो, भुज्जयरो है जिसमें तर-वाचक रूप भुज्ज = भूयस् में दूसरी बार –तर प्रत्यय जोड़ा गया है, किन्तु साथ ही अन्त में भुज्जो = भूयस् का –ओ रहने दिया गया है। इसके अनुकरण पर[1], जैसा कि बहुत से अन्य स्थानों में अप्पतरा का प्रयोग किया जाता है, यह अप्पतरो = अल्पतरम् और इसका प्रयोग निम्नलिखित संयुक्त शब्दावलि में हुआ है, अप्पतरो या भुज्जतरो या अथवा अप्पयरो या भुज्जयरा था (आयार २, ३, १, ११ सूय ६२८ ; ६९९ ; ७५१ ; ९८६ ; विवाह ८ आव § ६)। — कभी कभी साधारण शब्द तर-वाचक शब्द के स्थान में काम में लाया जाता है : महा में ओसणाहि यि कडुअं मिलता है, इसका अर्थ है नीच का पतन से भी बीमतर' (रावण ६ ७७) सउदन्धअकुसुमं का अर्थ है 'सेतु बाँधने से भी मधुरतर' (रावण ८ १९) ; शौर में तत्तो पि पिअ त्ति आया है जिसका अर्थ है 'तुमसे भी प्रियतर (शकु ९ १) पढुमदंसणादो वि सपिसेसं पिअदंसणा का अर्थ है 'प्रथम दर्शन से भी प्यारतर' (विक्रमो २४ १)।

[1] लौयमान औपपातिक सूत्र में अप्पतरो शब्द देखिए। — २ ३५५ में आऊ।

आ—सर्वनाम

§ ४१५—उत्तमपुरुष का सर्वनाम।

एकवचन

कर्ता—अहं अहअं जै महा में अहयं, हं [अम्हि अस्मि, म्मि, अहम्मि]; माग० में हगे हग्गे [हके, अहके]; अप० में हउँ।

कर्म—मं, ममं, महं, मे [मि, मिमं, अम्मि, अम्हं, अम्ह, मम्ह, अहं, अहम्मि, णे, णं], अप० में मइँ ।
करण—मए, मइ [ममए, ममाइ, मआइ], मे [मि, ममं, णे], अप० मे मइँ ।
अपादान—[मत्तो, ममत्तो, महत्तो, मज्झत्तो, मइत्तो], ममाओ [ममाउ, ममाहि], ममाहिंतो आदि आदि (४१६), पै० मे [ममातो, ममातु], अप० में [महु, मज्झु] ।
सम्बन्ध—मम, मह, मज्झ, मम, महं, मज्झ, मे, मि [मइ, अम्ह, अम्हम्], अप० में महु, मज्झु ।
अधिकरण—[मए], मइ [मे, मि, ममाइ], ममम्मि [महम्मि, मज्झम्मि, अम्हम्मि], अप० में मइँ ।

बहुवचन

कर्त्ता—अम्हे [अम्ह, अम्हो, मो, भे], दाक्षि० मे वअं, अ०माग० और जै०-महा० में वयं भी होता है, माग० में [हगे भी], पै० में वयं, अम्फ, अम्हे, अप० में अम्हे, अम्हइँ ।
कर्म—अम्हे, अम्ह [अम्हो], णो, णे ; अप० में अम्हे [अम्हइँ] ।
करण—अम्हेहिं [अम्हाहिं अम्हे, अम्ह], णे, अप० में अम्हेहिँ ।
अपादान—[अम्हत्तो, अम्हाहिंतो, अम्हासुंतो, अम्हेसुंतो, महत्तो, ममाहिंतो, ममासुंतो, ममेसुंतो, अप० में अम्हहँ], जै०महा० में अम्हेहिंतो ।
सम्बन्ध—अम्हाणं, अम्हाण, अम्हं, अम्ह, म्ह [अम्हाइँ], अम्हे [अम्हो, ममाणं, ममाण, महाणं, महाण, मज्झाणं, मज्झ, णे], णो, णे, अप० में अम्हहँ ।
अधिकरण—अम्हेसु अम्हासु [अम्हसु, ममेसु, ममसु, महेसु, महसु, मज्झेसु, मज्झसु], अप० में अम्हासु ।

वर० ६, ४०-५३, ११, ९, १२, २५, चंड० १, २६-३१, २, २७, ३, १०५-११७, ४, ३०१, ३७५-३८१, क्रम० ३, ७२-८३, ५, ४०-४८, ९७, ११४, मार्क० पन्ना ४९, ७०, सिंहराजगणिन् पन्ना ३०-३२ की तुलना कीजिए ।

§ ४१६—व्याकरणकारों द्वारा सिखाये गये रूपों का एक बहुत बड़ा अंश ग्रन्थों में नहीं मिलता, इसलिए अब तक प्रमाणित नहीं किया जा सका किन्तु इससे इनकी शुद्धता पर सन्देह नहीं किया जा सकता[1] । सिंहराजगणिन् द्वारा दिये गये कुछ रूपों के विषय में सन्देह किया जा सकता है क्योंकि ऐसा लगता है कि ये अन्य रूपावलियों के अनुकरण पर आविष्कृत किये गये हैं । सिंहराजगणिन् हेमचन्द्र की भाँति ही केवल अपादान एकवचन में ऊपर दिये गये सभी वर्गों के निम्नलिखित रूप ही नहीं बताता : **ममत्तो, ममाओ, ममाउ, ममाहि, ममहिंतो, महत्तो, महाओ, महाउ, महाहि, महाहिंतो, मज्झत्तो, मज्झाओ, मज्झाउ, मज्झाहि, मज्झाहिंतो, मइत्तो, मईओ,**

मईउ मईहि, मईहिंतो ममा, मह्म और मज्झा। अपितु इनके अतिरिक्त और स्त्रीलिंग के रूप ममाअ, ममाआ, ममाइ तथा ममाए रूप बताता है। इसी प्रकार मह, मज्झ तथा मह वर्गों के नाना रूप देता है, जिससे अपादानकारक के ११ रूप पाये जाते हैं। अधिकरण एकवचन में उक्त रूपों के अतिरिक्त अम्मत्थ, अम्हस्सिं, अम्हम्मि, अम्हहिं और अम्ह रूप देता है। इनके अतिरिक्त उसने स्त्रीलिंग के रूप दिये हैं अम्हाअ, अम्हाआ। अम्हाइ तथा अम्हाए और मम, मह तथा मज्झ वर्गों के भी उक्त सब रूप दे दिये गये हैं अर्थात् ये सब मिलकर ४१ रूप हो जाते हैं। यही दशा द्वितीय पुरुष के सर्वनाम की भी है, जिसमें तुम, तुध, तुह तुम्ह, तुम्म, तुज्झ, तुह और तइ वर्गों के रूप दिये गये हैं। इसकी खोज भविष्य ही करेगा कि इन रूपों में से कितने साहित्य में काम में लाये जाते रहे होंगे।

१ वररुचि उण्ड हेमचन्द्रा ३६ में ब्लौख ने भलि कर दी है। गो गे आ १८९४ ७७८ में कोनो के लेख की तुलना कीजिए।

§ ४१७—एकवचन : कर्त्ताकारक में सभी प्राकृत बोलियों में, स्वयं ढक्की में (मृच्छ ३२, ७ ३४, २५; ३५, १) आव में (मृच्छ १ १, १७ १०१ १ ; १ ५ १) और दाक्षि में (मृच्छ १ २, २१ १ ४, ११ १ ६, १) अहं = अहम् है, माग में इसके स्थान में हगे आया है (उदाहरणार्थ, मृच्छ १२, १४; ११६, ११; १७९, १५; ललित ५६५, १७ ५६६, ६ और १६ प्रबु १११, ५ और ९ ११४ २ मुद्रा १९३ ८ १९४ ९ आदि-आदि)। वररुचि ११, ९ में यह रूप बताया गया है और इसके साथ हके और अहके रूप भी दिये गये हैं। हेमचन्द्र ने ४ ३ १ में हगे रूप दिया है सिंहराजगणिन् ने पन्ना ६१ में, क्रमदीश्वर ने ५, ९७ में इसका उल्लेख किया है तथा साथ साथ हके रूप भी दिया है मार्कण्डेय ने पन्ना ७५ में हगे और इसके साथ ही हक्के हके तथा हम्मो रूप दिये हैं। मृच्छकटिक में उल्लिखित तीन स्थलों के अतिरिक्त जो पद्य में हैं, अन्यत्र सभी स्थानों में स्टेन्सलर ने हम्गे रूप दिया है (१२ ५; १३ ४ और ८ १६, १८ २ १४ २१ २ ३७, ४ आदि आदि), हास्यार्णव ३१ १ में भी यही रूप पाया जाता है प्रबोधचंद्रोदय ३२ ६ और १४ में भी यही मिलता है किन्तु इस ग्रंथ के ५५ १५; ५८, १७ में हम्गो पाठ के स्थान में हक्के पढ़ा जाना चाहिए; पूना के संस्करण में ५८ १७ में हक्के पाया जाता है, जब कि उसमें ५५ १५ में हं रूप दिया गया है बंबइया संस्करण में ५५, १५ में अहं मिलता है ५८, १७ में हम्गे देखा जाता है, मद्रास के संस्करण में दोनों स्थानों में अहं दिया हुआ मिलता है मुद्राराक्षस १७८ २ में भी अहं आया है (इस ग्रंथ में अन्यत्र हगे भी दिया गया है) १८७ १; १९३ १ (अन्यत्र हगे भी है) २६७ २ में भी अहं मिलता है; वेणीसंहार ३५, ४ में भी यह रूप पाया जाता है तथा आफ्रेक्टनारहित संस्करणों में इसका ही बोलबाला है। गौडबोले द्वारा संपादित मृच्छकटिक की सभी हस्तलिपियों में सारे नाटक में हगे ही आया है इसलिए इस पुस्तक में यही पढ़ा जाना चाहिए। दोनों रूप शुद्ध हैं क्योंकि ये किसी *अहकं से व्युत्पन्न हैं (§ १४२ और १९४) अर्थात् अहकं से निकले हैं (व्याकरण महाभाष्य एक, ९१,

११)। अशोक के शिलालेखों में **हकं** रूप पाया जाता है, जिसमें माग० में बहुधा चलने-वाला लिंगपरिवर्तन दिखाई देता है (§ ३५७)। अप० रूप **हउँ** भी अपनी व्युत्पत्ति में **अहकं** तक पहुँचता है (हेच० **हउं** , पिंगल १, १०४ अ , २, १२१ [इन दोनों पद्यों में **हउ** पाठ है, **हउँ** नहीं। —अनु०] , विक्र० ६५, ३ [**हइ** और **दंइं** के स्थान में यही पढा जाना चाहिए]) तथा महा० में **अहअं** भी इसी से व्युत्पन्न है (हाल , रावण०), जै०महा० में **अहयं** रूप पाया जाता है (आव०एर्त्से० ७, ३४ , ३६, ४९ , एर्त्से०)। स्वरों के बाद (§ १७५) महा०, अ०माग०, जै०महा० और माग० में **हं** रूप पाया जाता है (रावण० १५, ८८ , कर्पूर० ७५, २ , उत्तर० ५७५ और ६२३ , सम० ८३ , एर्त्से० १२, २२ , ५३, ३४ ; मृच्छ० १३६, ११)। शेष चार रूपों में से वररुचि और मार्कंडेय में केवल **अहम्मि** पाया जाता है, क्रमदीश्वर ने केवल **अम्हि** दिया है, हेमचन्द्र ने केवल एक रूप **म्मि** का उल्लेख किया है। इन चारों रूपों को ब्लौख[1] व्याकरणकारों की नासमझी मानता है। किन्तु यह तथ्य निश्चित है कि स्वय सस्कृत में **अस्मि** रूप 'मैं' के अर्थ में काम में लाया गया है[2]। यह प्रयोग **अस्मि** के मौलिक सहायक अर्थ 'मैं हूँ' से व्युत्पन्न हुआ है जैसा बहुधा उद्धृत **रामो' स्मि सर्व सहे** के अर्थ से स्पष्ट है। बोएटलिंक और रोट के सस्कृत-जर्मन कोश के पेज ५३५ मे १ **अस्** के नीचे **अस्ति** पर दिये गये उदाहरणों में इसके प्रयोग की तुल्ना कीजिए। यही प्रयोग प्राकृत में भी पाया जाता है . अ०माग० मे **अत्थि णं भन्ते गिहिणो ओहिनाणे णं समुप्पज्जइ** पाया जाता है (उवास० § ८३) , **अत्थि णं भन्ते जिणवयणे...आलोइज्जइ** भी मिलता है (उवास० § ८५) , **अत्थि णं भन्ते .. सिद्धा परिसन्ति** भी आया है (ओव० § ६२) , **त अत्थि याइं ते कहिं पि** [इसका सपादन **चि** किया गया है] **देवाणुप्पिया परिसप ओरोहे दिट्ठपुव्वे** देखा जाता है (नायाध० १२८४) , **तं अत्थि याइं** [इसका सम्पादन **या** किया गया गया है] **इत्थ केइ भे** [इसका सम्पादन **ते** किया गया है] **कहिं पि** [इसका सम्पादन **चि** किया गया है] **अच्छेरए दिट्ठपुव्वे** वाक्याश मिलता है (नायाध० १३७६) , शौर० में **अत्थि एत्थ णअरे तिण्णि पुरिसा सिरिं ण सहन्ति** पाया जाता है (मुद्रा० ३९, २)। इसी प्रकार का प्रयोग **सन्ति** का भी है (आयार० २, १, ४, ५ , सूय० ५८५) और बहुधा **सिया = स्यात्** (जैसे पाली में **सिया** और **अस्स** का है) का भी ऐसा ही प्रयोग किया जाता है (आयार० १, १, २, १ , १, १, ६, ३ , १, २, ६, १ , १, ५, ५, २ , २, ५, १, ११ , २, ६, २, २ , दस० ६१३ २२)। निश्चय ही ठीक इसी भाँति **अम्हि = अस्मि** का प्रयोग भी किया गया है। **अम्मि** और **म्मि** भी नये आविष्कृत रूप नहीं है जैसा अ०माग० रूप **मि** ; **मो** और **मु** (§ ४९८) प्रमाणित करते हैं, यद्यपि भले ही हेमचन्द ने ३, १०५ में दिये गये उदाहरण अशुद्ध पाठ भेद पर आधारित है[3]। **अहम्मि** रूप = **अह मि** होना चाहिए।

१ वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ३८। — २ गो० गे० आ० १८९४, ४७८ में कोनो का मत , याकोबी, कम्पोजिटुम् उन्ट नेबनजात्स (बौन १८९७), पेज ६२, नोटसंख्या २। — ३ ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ३७। हेच० ३,

मईउ मईहि, मईहिंतो ; ममा, मझ्हा और मज्झा ; अपितु इनके अतिरिक्त और स्त्रीलिंग के रूप ममाअ, ममाआ, ममाइ तथा ममाए रूप बताता है। इसी प्रकार मह, मज्झ तथा मइ वर्गों के नाना रूप देता है, जिससे अपादानकारक के ११ रूप पाये जाते हैं। अधिकरण एकवचन में उक्त रूपों के अतिरिक्त ममस्सि, अम्हस्सि, अम्हम्मि, अम्हहि और अम्हे रूप देता है। इनके अतिरिक्त उसने स्त्रीलिंग के रूप दिये हैं अम्हाअ, अम्हाआ, अम्हाइ तथा अम्हाए और मम, मह तथा मज्झ वर्गों के भी उक्त सब रूप दे दिये गये हैं अर्थात् ये सब मिलकर ४१ रूप हो जाते हैं। यही दशा द्वितीय पुरुष के सर्वनाम की भी है, जिसमें तुम, तुव, तुह, तुम्ह, तुम्म, तुज्झ, तुइ और तइ वर्गों के रूप दिये गये हैं। इसकी खोज भविष्य ही करेगा कि इन रूपों में से कितने साहित्य में काम में लाये जाते रहे होंगे।

१ वररुचि उक्त हेमचन्द्र ३६ में ब्लौख ने भ्रांति कर दी है। गो गे आ १८९४ ४०८ में कोनो के लेख की तुलना कीजिए।

§ ४१७—एकवचन : कर्त्ताकारक में सभी प्राकृत बोलियों में, स्वयं ढक्की में (मृच्छ ३२, ७ ३४, १५ ३५, १) आव मे (मृच्छ १ १, १७ ; १ १ १ १ ५ १) और दाक्षि में (मृच्छ १ २, २१ १ ४, १९ ; १ १, १) अहं = अहम् है, माग में इसके स्थान में हगे आता है (उदाहरणार्थ, मृच्छ १२, १४ ; ११६, १६ ; १७१, १५ ; ललित ५६५, १७ ; ५६६, ६ और १६ ; शकु ११३, ५ और ९ ११४, २ मुद्रा १९३ ८ १९४, २ आदि आदि)। वररुचि ११, ९ में यह रूप बताया गया है और इसके साथ हके और अहके रूप भी दिये गये हैं। हेमचन्द्र ने ४ ३ १ में हगे रूप दिया है सिंहराजगणिन् ने पन्ना ६१ में, क्रमदीश्वर ने ५, ९७ में इसका उल्लेख किया है तथा साथ साथ हके रूप भी दिया है मार्कडेय ने पन्ना ७५ में हगे और इसके साथ ही हग्गे, हके तथा हग्गो रूप दिये हैं। मृच्छकटिक में उल्लिखित तीन स्थलों के अतिरिक्त जो पद्य में हैं अन्यत्र सभी स्थानों में स्टेन्सलर ने हग्गे रूप दिया है (१२, ५ ; १३ ४ और ८ १६ १८ ; २, १४ २१, २ ३७, ४ आदि आदि), हास्यार्णव ३१ ३ में भी यही रूप पाया जाता है ; प्रबोधचंद्रोदय ३२ ६ और १४ में भी यही मिलता है किन्तु इस ग्रंथ के ५५, १५ ५८ १७ में हग्गे पाठ के स्थान में हग्गे पढ़ा जाना चाहिए पूना के संस्करण में ५८ १७ में हग्गे पाया जाता है जब कि उसमें ५५, १५ में हं रूप दिया गया है बंबइया संस्करण में ५५, १५ में अहं मिलता है, ५८, १७ में हग्गे देखा जाता है, मद्रास के संस्करण में दोनों स्थानों में अहं दिया हुआ मिलता है मुद्राराक्षस १७८ ९ में भी अहं आया है (इस ग्रंथ में अन्यत्र हगे भी दिया गया है) ; १८७ १ ; १९३ १ (अन्यत्र हगे भी है) २६७ २ में भी अहं मिलता है ; वेणीसंहार ३५ ४ में भी यह रूप पाया जाता है तथा आलोचनारहित संस्करणों में इसका ही बोलबाला है। गौडबोले द्वारा संपादित मृच्छकटिक की सभी हस्तलिपियों में सारे नाटक में हगे ही आया है इसलिए इस पुस्तक में यही पढ़ा जाना चाहिए। दोनों रूप शुद्ध हैं क्योंकि ये किसी *अहकं से व्युत्पन्न हैं (§ १४२ और १९४) अर्थात् अहकं से निकले हैं (व्याकरण महाभाष्य एक, ९१,

में लाया जाता है (मृच्छ० १५, २५ , शकु० २७, ९ और १० , विक्रमो० ८, १५), **मज्झ** भी देखने में आता है, पर मार्क० पन्ना ७० में बताता है कि शौर० के लिए यह रूप निषिद्ध है (कर्पूर० १०, १० , ५८, १) । यह बोली की परपरा के विरुद्ध है और **मम** अथवा **मह** के स्थान में प्रयुक्त किया गया है , माग० में **मम** काम में आता है (मृच्छ १४, १ , २१, ८ और १२ , ३०, २५), **मह** भी चलता है (मृच्छ० ११४, १८ , वेणी० ३०, १३), **मे** भी देखने में आता है (मृच्छ० ९, २५ , १०, ३ और ५ , वेणी० ३४, २२ , ३५, २ , ८ , १४), ढक्की में **मम** पाया जाता है (मृच्छ० ३१, १ , ३४, १७), आव० में **मह** का प्रचलन है (मृच्छ० १०२, २५ , १०३, २२) । इसी प्रकार दाक्षि० में **मह** चलता है (मृच्छ १०४, २ और ११), अप० मे **मह्रु** रूप मिलता है (हेच० ४, ३३३ , ३७०, २ , ३७९, १, विक्रमो० ५९, १३ और १४), **मज्झु** भी काम में आता है (हेच० ४, ३६७, १ , ३७९, २), जब किसी पद के अन्त में **पइँ** शब्द आता है तो तुक मिलाने के लिए लाचारी **मइँ** रूप भी देखने मे आता है (विक्रमो० ६३, ४) । — जिस प्रकार **मज्झ** रूप **मह्यम्** से व्युत्पन्न हुआ है, वैसे ही **मह** भी उससे निकला है। छद की मात्राए ठीक करने के लिए अ०माग० में उत्तरज्झयणसुत्त ४८९ में **मे** के स्थान मे **मि** पाया जाता है। जै०महा० में **मुज्झ** और **मुह** अशुद्ध पाठभेद हैं (एर्से०) । पै० के **यति मं** (हेच० ४, ३२३) के स्थान में **मद् इमं** पढा जाना चाहिए [§ ४१७ की नोटसख्या ३ मे दी हुई शुद्धि अर्थात् **तेण हं दिट्ठा** के स्थान में कुमारपालचरित के परिशिष्ट रूप से दिये गये सिद्ध—हेम— शब्दानुशासन के आठवें अध्याय अर्थात् प्राकृत व्याकरण में के द्वितीय सस्करण में शुद्ध रूप **जेण हं विद्धा** दे दिया गया है, किन्तु ४, ३२३ में अशुद्ध **यतिमं** ही बना रह गया है। — अनु०] । अधिकरण मे महा० और जै०महा० में **ममम्मि** होता है (रावण० , एर्से०) , शौर० मे **मइ** मिलता है (मालवि० ४१, १८) , अप० में **मइँ** चलता है (हेच० ४, ३७७) ।

१ ये प्रमाण एकवचन के शेष सब कारकों के लिए लागू हैं। इसके अतिरिक्त स्टाइनटाल द्वारा सपादित नायाधम्मकहा में यह शब्द देखना चाहिए । जहाँ कोई विशेष टिप्पणी न दी गयी हो वहाँ पुराने पाठो में जैसे आयारङ्गसुत्त, सूयगडङ्गसुत्त, उत्तरज्झयणसुत्त और आवश्यक एर्सेलुङ्गन में वही रूप हैं । शौर० और माग० के बहुत कम उद्धरण प्रमाण रूप से दिये गये हैं क्योंकि अधिकाश रूप बार-बार आते हैं । शेष सर्वनामों के लिए भी यह लागू है । — २ पिशल, त्सा०डे०डौ०मौ०गे० ३५, ७१४ में मत ।

§ ४१९—कर्त्ता बहुवचन सब प्राकृत बोलियों में, जिनमें पल्लवदानपत्र भी सम्मिलित है (६,४१), **अम्हे** रूप काम में लाया जाता है । इसके स्थान में माग० मे **अस्मे** लिखा जाना चाहिए (§ ३१४) = वैदिक **अस्मे**[१] : महा० में **अम्हे** पाया जाता है (गउड० १०७२ , हाल में **अम्ह** शब्द देखिए) , अ०माग० में भी इसी का प्रचार है (आयार० २, ६, १, १० , नायाध० § १३७ , विवाग० २२९ , सूय० १०१६ ; विवाह० १३४) , जै०महा० में यही चलता है (एर्से० ३, २८ , १२, १३ और १९ ;

१ ५ में तेण इं विण्हु के स्थान में बंबइया संस्करण के पाठ के अनुसार जेण इं दिया पढ़ा जाना चाहिए (हाल ७७१ की टीका में वेबर)। किन्तु जेण् आई (§ १०२) को अलग करके पढ़ना शुद्ध है।

§ ४१८—कर्मकारक में अप० को छोड़ अन्य सब प्राकृत बोलियों में काम में आनेवाला रूप मं = माम् है (हाल रावण उवास में म- शब्द देखिए एर्त्से काल्का में माइं शब्द देखिए; ऋषभ में म शब्द देखिए' और में : उदाहरणार्थ, मृच्छ २ २२ और २५ ; शकु १९, १ ; विक्रमो १६ ६ ; माग में : मृच्छ ११, १ २९, २३ १२ ५ और १५)। अप में मइं रूप है (हेच ४, ३७७ ; ४१४,४ विक्रमो ६०, २) । महा अ माग और जै महा में ममं रूप भी पाया जाता है (हाल १६ रावण ११, ८४ ठाणंग ४७७ नायाध में मइ शब्द देखिए; पेज ११२ ; उत्तर ७११ विवाह २५७ और १२१५ ; उवास § ६८ [मम के स्थान में हस्तलिपियों के अनुसार यही रूप पढ़ा जाना चाहिए] ; १४ ; २१९ द्वार ५ ८ एर्त्से ४३, २९) । माग में मम (मृच्छ १२९ ४) के स्थान में जो पद्य में आया है ममं पढ़ा जाना चाहिए। ममं के अनुकरण में अ माग में स्त्री लिंग का एक रूप ममिं भी बनाया गया है : उसमें ममं या ममिं का मिलता है (सूय ६८)। क्रम १ ७१ के मस्मि और अस्स्मि के स्थान में अम्हि और अहम्मि पढ़ा जाना चाहिए। महा और अ माग में मइं विरल है (रावण १५, ९ ; विवाग २२१) पर यह रूप व्याकरणकारों की दृष्टि से बच गया है, अ माग में बहुधा मे होता है जिसका प्रयोग वेद में भी पाया जाता है (आयार १, १, ६, ५; उत्तर १६२ और ७१ ; ठाणंग १५८, १६ और १६१ ; कप्प § १६)। — अप को छोड़ अन्य सभी प्राकृत बोलियों में करणकारक का रूप मए होता है, अप में मइं रूप है (हेच ४, ११ , २ ; ३४६ ; ३६६ आदि आदि विक्रमो ५५, १) । जै महा में करणकारक के अर्थ में म पाया जाता है (एर्त्से ७२ १२ ८३, १२ ; माग में : मृच्छ ४ ५ ; माग में मइ रूप भी है मृच्छ ११, १ [यहाँ यह पद्य में आया है]) । — अपादानकारक में अ माग और जै महा से केवल ममाहिंतो रूप प्रमाणित किया जा सकता है (विवाह १२४५ ; नायाध ११२९ ; एर्त्से ५४ २) और जै महा से ममाओ (आव एर्त्से २७ २५ ; द्वार ४९५ ११) ।— महा में सम्बन्धकारक में मम का प्रयोग विरल है। हाल के १२१वें श्लोक में इसी ग्रन्थ में अन्यत्र मिलनेवाले रूपों के अनुसार ममं ति पढ़ा जाना चाहिए (§ १८२)। इसका परिणाम यह निकलता है कि म उ और हाल और रावण में हाल ६१७ के अतिरिक्त मम कहीं नहीं मिलता ; यह महा में शकु ५५ १५ में भी मिलता है। महा में मह मइं मज्झ, मज्झं और मे काम में आते हैं अ माग और जै महा में इनके अतिरिक्त बहुधा मम और ममं भी काम में लाये जाते हैं (विवाग १२१ और उसके बाद ; उवास ; भग ; आव एर्त्से १२ २८), शौर में मम का प्रचलन है (मृच्छ ९ ७ ; शकु ९, ११ ; विक्रमो १९ ९), मह भी पाया जाता है (ललित ५५४, ७ ; प्रबन्ध ८१ ६ ; ; १२३, ३ ; वेणी ११, २५), मे भी काम

६१६, विवाह० २३३ और ५११, आव०एर्त्से० ८, १७, १४, १६, १७, १७, एर्त्से० ६, ३५, १२, ३४-), महा० और जै०महा० में **अम्ह** भी काम में आता है (हाल, आव०एर्त्से० ११, ९, १७, ७, एर्त्से०, कालका०)। यह रूप शौर० मे भी मिलता है, पर अशुद्ध है (विक्र० ७३, १२), इसके स्थान में पूना सस्करण शुद्ध रूप **अम्हे** पढा जाना चाहिए और वह भी कर्मकारक मे (द्राविडी सस्करण **मं** रूप की तुलना कीजिए) माना जाना चाहिए अथवा बबइया सस्करण के ११९, ७ के अनुसार **अम्हाणं** पढा जाना चाहिए। महा० मे केवल **'म्ह** रूप भी मिलता है (हाल)। अ०माग० और जै०महा० में **अम्हं** रूप की प्रधानता है। यह रूप पल्लवदानपत्रों मे भी पाया जाता है (५, ३, ७, ४२)। यह सस्कृत के समानान्तर रूप ***अस्माम्** का जोड़ है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह **अस्म-** वर्ग का एक रूप है जिसकी समाप्ति अन्त मे व्यजनवाले शब्द की रूपावली की भाँति हुई है और यह सम्बन्धकारक है जब कि **अम्हाणं** सूचना देता है कि इसका सस्कृत रूप ***अस्मानाम्** रहा होगा और हेच० ने ४, ३०० में जिस महा० रूप **अम्हाहँ** और अप० रूप **अम्हहँ** का उल्लेख किया है (हेच० ४, ३७९, ३८०, ४३९) वह किसी ***अस्मासाम्** की सूचना देते हैं जिसकी समाप्ति सर्वनाम की रूपावली की भाँति हुई है। अ०माग० रूप **अस्माकं** के विषय में § ३१४ देखिए। अ०माग० और जै०महा० में **अम्हे** भी पाया जाता है (सूय० ९६९, तीर्थ० ५, ६), शौर० में बहुत अधिक बार **णो = नः** मिलता है (शकु० १७, ११, १८, ८, २६, १२, विक्र० ५, ११, ६, १६, १०, ३), अ०माग० में **णे** रूप चलता (विवाह० १३२ और उसके बाद)। — अधिकरण : शौर० में **अम्हेसु** रूप पाया जाता है (शकु० २०, १, मालवि० ७५, १, वेणी० ७०, २)। हेच० ३, ११७ में किसी अज्ञातनाम व्याकरणकार के नाम से उद्धृत और सिंहराजगणिन् द्वारा पन्ना ३२ में उल्लिखित तथा स्वय हेच० द्वारा ४, ३८१ में अप० बताया हुआ रूप **अम्हासु** [= **अस्मदः**। —अनु०] महा० मे रावण० ३, ३२ में पाया जाता है।

१ पिशल, त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ३५, ७१६। — २ पिशल, कू० बाइ० ८, १४२ और उसके बाद।

§ ४२०—द्वितीय पुरुष का सर्वनाम।

एकवचन

कर्त्ता— **तुमं, तुं, तं** [**तुह, तुवं**], ढक्की में **तुहं**, अप० मे **तुहुं**।

कर्म— **तुमं** [**तुं, तं**], **ते** [**तुह, तुवं, तुमे, तुए**], शौर० और माग० मे **दे** भी, ढक्की में **तुहं**, अप० में **तइँ, पइँ**।

करण— **तए, तइ, तुए, तुइ** [**तुमं**], **तुमए** [**तुमइ**], **तुमाइ, तुमे, ते, दे** [**दि, भे**], अप० में **तइँ, पइँ**।

अपादान— **तत्तो, तुमाहि, तुमाहिंतो, तुमाओ** [**तुमाउ, तुमा, तुमत्तो, तइत्तो, तुइत्तो**], **तुवत्तो** [**तुहत्तो, तुब्भत्तो, तुम्हत्तो** [**तुब्भत्तो** और **तुम्हत्तो**

कालका० २७१, ७) ; शौर० में इसका ही प्रयोग है (मृच्छ० २ , १८ ; शकु० ११, १२ ; विक्र० ६, ११) ; माग० में यही काम में आता है (मृच्छ० १५८, २१ ; १११, १४ और १७ ; १६८, ११ ; वेणी० ३५, २१) ; अप० में इसका प्रचलन है (हेच० ४, ३७६, १) । अ०माग० में वयं = वयम् भी बहुधा चलता है (आयार० १, ४, २, ५ ; १, ७, १, ५ ; २, १, ९, ११ ; २, २, २, १ ; २, ३, १, १० ; २, ५, १, १० ; २, ६, १, १ ; सूय० ५८५ ; ६११ ; ६११ ; ९१० ; ९४८ ; ९७२ ; उत्तर० ४१२ ; ८४१ ; ७८८ ; विवाह० ११८ ; दस० ६११, ११), जै०महा० में भी इसका प्रचार पाया जाता है (कालका० २७, १) । वररुचि १२, २५ और मार्कण्डेय पन्ना ७० में बताते हैं कि शौर० में भी वयं रूप होता है । मृच्छकटिक १०१, ५ में दाक्षि० में भी यह रूप देखा जाता है ; शौर० में यह केवल अशुद्धियों से पूर्ण पाठों में पाया जाता है (मालवि० ८१, १२ ; ८८, १८ में भी)[१] । माग० के विषय में हेमचन्द्र ४, ३०१ में बताता है कि बहुवचन में भी हगे काम में लाया जाता है और ४, ३०२ में विक्रमोर्वशीय से लिए गये एक वाक्यांश [नुणघ वाणि हगे शक्कावयालतित्थ-णिवाशी धीवले ॥ —अनु०] को उद्धृत कर के प्रमाणित किया गया है । अप० में अम्हइँ रूप भी मिलता है (हेच० ४, ३७६, ६) । क्रमदीश्वर ५, ११४ में बताया गया है कि पै० में वयं, अम्फ और अम्ह रूप काम में आते हैं । — चंड० १, २७ के अनुसार सब कारकों के बहुवचन के लिए मे का प्रयोग किया जा सकता है । — कर्म : महा० में ण = नस्, इसमें अ में समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों के अन्त में –ए लगता है (§ ११७ अ) (रावण० १, ११ ; ५, ८ ; आयार० १, ६, १, ५ [पाठ में ने है] ; सूय० १७८ ; १७६ ; २११) किन्तु शौर० में णा पाया जाता है (शकु० २६, १२) । जै०महा० और शौर० में अम्हे भी व्यवहार में आता है (तीर्थ० ५, २ ; मालती० ३११, २ ; उत्तररा० ७, ५ ; एत्सें० ७, ५), माग० में अस्मे है (वेणी० ३५, ५) ; महा० में अम्ह मिलता है (हाल १५६) तथा अप० में अम्ह चलता है (हेच० ४, ४२२, १) ; हेमचन्द्र ४, ३७६ के अनुसार अम्हइँ भी काम में आता है । — करण : महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में अम्हेहिं रूप पाया जाता है (हाल ५, ९ ; नायाध० § ११७ ; आव० एर्त्से० ११, १ ; एर्त्से० ५, १ ; मृच्छ० २१, २१ ; विद्ध० २७, ८ ; मालती० २८१, २), महा० में अम्हाहि भी काम में आता है (हाल ; रावण०), यह रूप कर्पूरमंजरी में भी आया है (६, २१) ; माग० में अस्मेहिं है (मृच्छ० ११, १ ; २१, ११) ; अ०माग० में णे भी चलता है (आयार० १, ८, ९, ३) । अप० में अम्हेहिँ का प्रयोग होता है (हेच० ४, ३७१) । — अपादान : जै०महा० में अम्हेहिंतो पाया जाता है (आव० एर्त्से० ८७, २) । — सम्बन्ध : महा०, जै०महा० और शौर० में अम्हाणं है (हाल ५१ [पाठ में अम्हाण है] ; एर्त्से० ९, १७ ; कालका० ; मृच्छ० २, १८ ; १९ ; २४) माग० में अस्माणं चलता है ([पाठों में अम्हाणं है] ; ललित० ५६५, १८ ; मृच्छ० ११, १५ ; ११, ११ ; शकु० ११६, २) ; महा०, अ०माग० और जै०महा० में अम्ह रूप है (हाल ; उत्तर० ३५६ और ३५८ ; विवाह० ११७ और २२८ ; नायाध० § २६ और १११ ; वेणी० ८८१ ; ६, ९ ;

६१६, विवाह० २३३ और ५११, आव०एर्त्सें० ८, १७, १४, १६, १७, १७, एर्त्सें० ६, ३५, १२, ३४-), महा० और जै०महा० में **अम्ह** भी काम में आता है (हाल, आव०एर्त्सें० ११, ९, १७, ७, एर्त्सें०, कालका०)। यह रूप शौर० में भी मिलता है, पर अशुद्ध है (विक्र० ७३, १२), इसके स्थान में पूना संस्करण शुद्ध रूप **अम्हे** पढा जाना चाहिए और वह भी कर्मकारक मे (द्राविडी सस्करण **मं** रूप की तुलना कीजिए) माना जाना चाहिए अथवा बबइया सस्करण के ११९, ७ के अनुसार **अम्हाणं** पढा जाना चाहिए। महा० में केवल **'म्ह** रूप भी मिलता है (हाल)। अ०माग० और जै०महा० में **अम्हं** रूप की प्रधानता है। यह रूप पल्लवदानपत्रों मे भी पाया जाता है (५, ३, ७, ४२)। यह सस्कृत के समानान्तर रूप ***अस्माम्** का जोड है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह **अस्म-** वर्ग का एक रूप है जिसकी समाप्ति अन्त में व्यजनवाले शब्द की रूपावली की भाँति हुई है और यह सम्बन्धकारक है जब कि **अम्हाणं** सूचना देता है कि इसका सस्कृत रूप ***अस्मानाम्** रहा होगा और हेच० ने ४, ३०० में जिस महा० रूप **अम्हाहँ** और अप० रूप **अम्हहँ** का उल्लेख किया है (हेच० ४, ३७९, ३८०, ४३९) वह किसी ***अस्मासाम्** की सूचना देते हैं जिसकी समाप्ति सर्वनाम की रूपावली की भाँति हुई है। अ०माग० रूप **अस्माकं** के विषय में § ३१४ देखिए। अ०माग० और जै०महा० में **अम्हे** भी पाया जाता है (सूय० ९६९, तीर्थ० ५, ६), शौर० में बहुत अधिक बार **णो** = **नः** मिलता है (शकु० १७, ११, १८, ८, २६, १२, विक्र० ५, ११, ६, १६, १०, ३), अ०माग० में **णे** रूप चलता (विवाह० १३२ और उसके बाद)। — अधिकरण : शौर० में **अम्हेसु** रूप पाया जाता है (शकु० ३०, १, मालवि० ७५, १, वेणी० ७०, २)। हेच० ३, ११७ में किसी अज्ञातनाम व्याकरणकार के नाम से उद्धृत और सिंहराजगणिन् द्वारा पन्ना ३२ में उल्लिखित तथा स्वय हेच० द्वारा ४, ३८१ में अप० बताया हुआ रूप **अम्हासु** [= **अस्मदः**। —अनु०] महा० मे रावण० ३, ३२ में पाया जाता है।

१ पिशल, त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ३५, ७१६। — २ पिशल, कू० बाइ० ८, १४२ और उसके बाद।

§ ४२०—द्वितीय पुरुष का सर्वनाम।

एकवचन

कर्त्ता— **तुमं, तुं, तं** [**तुह, तुवं**], ढक्की में **तुहं**, अप० में **तुहुं**।

कर्म— **तुमं** [**तुं, तं**], **ते** [**तुह, तुवं, तुमे, तुए**], शौर० और माग० में **दे** भी, ढक्की में **तुहं**, अप० में **तइँ, पइँ**।

करण— **तए, तइ, तुए, तुइ** [**तुमं**], **तुमए** [**तुमइ**], **तुमाइ, तुमे, ते, दे** [**दि, भे**], अप० में **तइँ, पइँ**।

अपादान— **तत्तो, तुमाहि, तुमाहिंतो, तुमाओ** [**तुमाउ, तुमा, तुमत्तो, तइत्तो, तुइत्तो**], **तुवत्तो** [**तुहत्तो, तुब्भत्तो, तुम्हत्तो** [**तुब्भत्तो** और **तुम्हत्तो**

कालका० २७१, ७) ; शौर में इसका ही प्रयोग है (मृच्छ २ ,१८ शकु ११, ११ ; विक्र० ६, ११) माग में यही काम में आता है (मृच्छ १५८ २१ ; १६१, १४ और १७ ; १६८, ११ वेणी ३५, २१) अप० में इसका प्रचलन है (हेच० ४, ३७६, १) । अ माग में षष्ठं = षषम् भी बहुधा चलता है (आयार १,४ २, ५ ; १ ७, १, ५ २, १, १, ११ ; २, २, २, १ २, १, १, १७ २, ५, १, १० ; २, ६, १, १ सूय ५८१ ६ ३ ६११ ; ६३५ ९४८ ९७२ उत्तर ४१२ ; ४४६ ७४८ ; विवाह ११८० वस० ६१३, ११), जै महा में भी इसका प्रचार पाया जाता है (कालका २७ , १) । वररुचि १२, २५ और मार्कण्डेय पन्ना ७० में बताते हैं कि शौर में भी षष्ठं रूप होता है। मृच्छकटिक १ ३, ५ में दाक्षि में भी यह रूप देखा जाता है शौर में यह केवल अशुद्धियों से पूर्ण पाठों में पाया जाता है (मालवि ४६, १२ ४८, १८ में भी)[1] । माग के विषय में हेमचन्द्र ४, ३ १ में बताया है कि बहुवचन में भी हुगे काम में लाया जाता है, जो ४, ३ २ में विग्रम्ममीम से लिए गये एक वाक्यांश [शुणध दाणि हगे शक्कावदालतित्ख-णिवाशी घीवले ॥ —अनु] को उद्धृत कर के प्रमाणित किया गया है अप में अम्हइँ रूप भी मिलता है (हेच ४, ३७, ६) । क्रमदीश्वर ५, ११४ में बताया गया है कि पै में षष्ठं अम्फ और अम्हे रूप काम में आते हैं। — चंड २, २७ के अनुसार सब कारकों के बहुवचन के लिए णे का प्रयोग किया जा सकता है। — कर्म : महा में णे = नस्, इसमें अ में समाप्त होनेवाले संज्ञा शब्दों के अन्त में -ए लगता है (§ ११७ अ) (रावण १, ११ ५, ४ ; आयार १ ६, १, ५ [पाठ में णे है] ; सूय १७४ ; १७६ २१९) किन्तु शौर में णो पाया जाता है (शकु २६, १२) ; जै महा और शौर में अम्हे भी देखने में आता है (वीर्य ५ १ ; मालवी १६१ २ ; उत्तरा ७ ५ वणी ७ ५) माग में अस्मे है (वेणी ३६, ५), महा० में अम्ह मिलता है (हाल ३५६) तथा अप में अम्हे चलता है (हेच ४ ४२२, १), हेमचन्द्र ४, ३७६ के अनुसार अम्हइँ भी काम में आता है। — करण : महा अ माग जै महा और शौर में अम्हेहि रूप पाया जाता है (हाल ५ ९ नायाध § १३७ ; आव एर्से १६ ६ ; एर्से ५, १ मृच्छ २१ २१ ; विक्र २७, ४ मालवी २८२ २), महा में अम्हाहि भी काम में आता है (हाल रावण), यह रूप पल्लवदानपत्र में भी आया है (६ ११) ; माग में अस्मेहि है (मृच्छ ११ १९ २१ ११) ; अ माग में णे भी चलता है (आयार १ ४ २ १) ; अप में अम्हहिँ का प्रयोग होता है हेच ४ ३७१) । — अपादान : जै महा में अम्हाहिंतो पाया जाता है (आव एर्से ४७ २) । — सम्बन्ध : महा ; जै महा और शौर में अम्हाणं है (हाल ९५१ [पाठ में अम्हाण है] ; एर्से ९, १७ ; कालका ; मृच्छ २ १८ ; ११ ; २४), माग में अस्माणं चलता है ([पाठों में अम्हाणं है] ; ललित ५६५, १४ ; मृच्छ ११ १९ ; ११६, ११ ; शकु ११६, २) ; महा , अ माग और जै महा में अम्हे रूप है (हाल ; उत्तर ३५६ और ३५८ ; विवाग २१७ और २१८ ; नायाध § २६ और ११६ ; वेब ४८२ ; ६ ९ ;

इस सम्बन्ध मे वर० ६, २६–३९, चड० १, १८–२५, २, २६, हेच० ३, ९–१०४, ४, ३६८–३७४, क्रम० ३, ५९–७१, ५, ११३, मार्क० पन्ना ४७–४९, ७०, ७५, सिंहराज० पन्ना २६–३० की तुलना कीजिए और § ४१६ ध्यान से देखिए।

§ ४२१—एकवचन : कर्त्ता–ढक्की और अप० को छोडकर सभी प्राकृत बोलियों में सबसे अधिक चलनेवाला रूप **तुमं** है जो मूल शब्द (वर्ग) **तुम** से निकला है. (महा० मे गउड०, हाल, रावण०, अ०माग० में, उदाहरणार्थ, आयार० १,५,५,४ [**तुमं सि** पढिए], उवास०, कप्प०, जै०महा० मे, उदाहरणार्थ, आव०एर्त्से० ८, ३३, १४, २९, एर्त्से०, कालका०, शौर० में, उदाहरणार्थ, ललित० ५६१, ५, ११ और १५, मृच्छ० ४,५, शकु० १२,८, माग० में, उदाहरणार्थ, ललित० ५६५, १५, मृच्छ० १९,८, प्रबोध० ५८,१, मुद्रा० २६७,१, आव० में मृच्छ० ९९,१८ और १९, १०१, २३, १०३, २, दाक्षि० में मृच्छ० १०१, १० और २१, १०३, १७ और १८)[१]। अ०माग० में कर्त्ताकारक रूप मे **तुमे** आता है, ऐसा दिखाई देता है (नायाध० § ६८ **तुमं** के विपरीत § ७०, पेज ४४८ और ४५०) जिसका सम्बन्ध **तुमं** से होना चाहिए जैसा माग० रूप **हगे** का सम्बन्ध **अहकं** से है (§ ४१७)। महा० में **तं** का प्रयोग बहुत अधिक है (गउड०, हाल, रावण०), यह रूप अ०-माग० में भी दिखाई देता है (उत्तर० ६३७, ६७०, ६७८ ; ७१२) और जै०महा० मे भी (ऋषभ०, एर्त्से०) किन्तु पद्य में आया है, इसके साथ साथ बहुत कम **तुं** भी दिखाई देता है (हाल, शकु० ७८, ११, बोएटलिंक का सस्करण)। ढक्की में **तुहं** रूप पाया जाता है (मृच्छ० ३४, २४, ३५, १ और ३, ३९, ८), अप० में **तुहुँ** का प्रचार है (हेच० में **तु** शब्द देखिए, पिंगल १,४ आ) जिसकी व्युत्पत्ति **त्वकम्** से है (§ २०६)[२]। पिंगल १,५ आ में **तइँ** दिया गया है (गौल्दश्मित्त **तइं** देता है, पाठ मे **तइ** है [अनुवादक के पास प्राकृतपिङ्गलसूत्रम् का १८९४ का बबई से प्रकाशित जो सस्करण है उसमे यह रूप १,५ अ मे मिलता है, ५ आ में नहीं, जैसा पिशल ने बताया है। वह पद इस प्रकार है 'तइ इथिँ णदिहिँ सँतार देइ जो चाहसि सो लेहि।' —अनु०], विक्र० पेज ५३० में बौँल्लेँनसेन की टीका की तुलना कीजिए) जिसका व्यवहार कर्त्ता-कारक में हुआ है। —कर्म. उक्त सब प्राकृत बोलियों में **तुमं** का प्रयोग कर्त्ताकारक की भाँति कर्मकारक में भी होता है (शौर० में : मृच्छ० ४,९, शकु० ५१,६, विक्र० २३, १, माग० में. मृच्छ० १२, १०, मुद्रा० १८३, ६), ढक्की में **तुहं** रूप काम में आता है (मृच्छ० ३१, १२), अप० में **तइँ** रूप का प्रचलन है (हेच० ४, ३७०) और **पइँ** भी देखने में आता है (हेच० ४, ३७०, विक्र० ५८, ८, ६५, ३)। **प** के विषय में § ३०० देखिए। **ते** अ०माग० में कर्मकारक है (उवास० § ९५ और १०२, उत्तर० ३६८, ६७७, ६९६), शौर० में भी इसका यही रूप है (मृच्छ० ३, १३) और शौर० में **दे** भी काम में आता है (मृच्छ० ५४, ८) तथा माग० में भी इसी का प्रयोग किया जाता है (मृच्छ० १२८, १२ और १४)[१]। — करण : महा० में **तइ, तए, तुइ, तुए, तुमए, तुमाए, तुमाइ** और **तुमे** रूप पाये जाते हैं (गउड०, हाल,

रूपों से कुमाउनी में तु थट (वत) रूप बन गया है। —अनु], तुज्झत्तो, इनके अतिरिक्त इन सब वर्गों के अन्त में –ओ और –उ लगाकर बननेवाले रूप (पौर और माग में –दो और –दु लगाकर बननेवाले रूप), –हि और –हिंतो वाले रूप, इनके साथ तुमा, तुवा, तुहा, तुम्भा तुम्हा, तुज्झा, तुम्ह, तुय्ह, तुम्म [तुज्झ, तहिंतो] प में [तुमातो, तुमातु] अप में तुम्हु, तउ तुध]।

संबंध— तव, तुज्झ, तुह, तुहं, तुम्भ, तुम्भं, तुम्ह, तुम्हं ते, द [तह], तु [तुय, तुम], तुमं, तुम्म [तुमे, तुमो, तुमाइ, दि, इ, ए, उम्भ, उम्ह, उय्ह, उज्झ] शौर में तुह, दे माग मे तव, तुह, दे अप में तउ, तुज्झु, तुज्झह, तुध, तुह।

अधिकरण— तइ तुमस्मि, तुमे, तुवि, तुइ [तुए, तए, तुमए, तुमाइ, तुम्मि, तुवस्मि तुहस्मि, तुम्भस्मि, तुम्हस्मि, तुज्झस्मि] अ माग में तुमंसि शौर० में तुइं, तुइ अप में तइँ, पइँ।

बहुवचन

कर्ता— तुम्हे, तुम्भे [तुम्भ, तुम्ह, तुज्झे तुज्झ, तुम्हे, उय्हे, भे] अ० माग में तुम्भे वै महा० में तुम्हे, तुम्भे शौर और माग (?) में तुम्हे अप में [तुम्हे, तुम्हइँ]।

कर्म— कर्ता जैसा होता है और वो अ माग में भे।

करण— तुम्हेहिं, तुम्भेहिं [तुज्झेहिं, तुम्हेहिं, तुय्हेहिं, उम्भेहिं, उज्झेहिं, उय्हेहिं], भे ; अ माग में तुम्भेहिं, तुमेहिं, तुम्भे, भे जै महा में तुम्हेहिं, तुम्भेहिं ; शौर में तुम्हेहिं अप में तुम्हेहिं।

अपादान—[तुम्हत्तो [इस रूप का कुमाउनी में तुमुँ बाँति हो गया है और कारक बदल गया है। —अनु] तुम्भत्तो [इसका तुमुँ थट (वत) हो गया है। —अनु], तुज्झत्तो, तुम्हत्तो उम्हत्तो उय्हत्तो उज्झत्तो, उम्हत्तो इनके अतिरिक्त इन सब वर्णों के अन्त में –ओ और –उ लगाकर बननेवाले रूप (शौर और मा में –दो और –दु लगाकर बननेवाले रूप), –हि, –हिंतो और –सुंतो वाले रूप]; अप में तुम्हहँ।

संबंध— तुम्हाणं तुम्हाण [तुम्भाणं तुम्भाण तुज्झाणं तुज्झाण, तुवाणं, तुवाण, तुवाणं तुवाण तुमाणं तुमाण], तुम्हं तुम्ह, तुम्भं [तुम्भ, तुम्हं तुज्झ तु], भे वो ; अ माग में तुम्भं तुम्भाणं, तुम्भे, भे ; जै महा में तुम्हाणं तुम्भं, तुम्ह, तुम्हं ; शौर और माग में तुम्हाणं ; अप में तुम्हहँ।

अधिकरण— [तुम्हेसु, तुम्भेसु, तुज्झेसु, तुवेसु, तुमेसु, तुसु [इसका कुमाउनी में तुमुँ और तुवेसु का त्यसुँ रूप बन गया है], तुम्हसु आदि आदि, तुम्हासु आदि आदि, तुम्भिसुं, तुम्हिसुं ; अप में तुम्हासु]।

इस सम्बन्ध मे वर० ६, २६-३९, चड० १, १८-२५, २, २६, हेच० ३, ९-१०४, ४, ३६८-३७४ ; क्रम० ३, ५९-७१ ; ५, ११३, मार्क० पन्ना ४७-४९, ७०, ७५ ; सिंहराज० पन्ना २६-३० की तुलना कीजिए और § ४१६ ध्यान से देखिए।

§ ४२१—एकवचन : कर्त्ता-ढक्की और अप० को छोडकर सभी प्राकृत बोलियों मे सबसे अधिक चलनेवाला रूप **तुमं** है जो मूल शब्द (वर्ग) **तुम** से निकला है : (महा० में गउड०, हाल, रावण०, अ०माग० मे, उदाहरणार्थ, आयार० १,५,५,४ [**तुमं सि** पढिए] ; उवास०, कप्प०, जै०महा० मे, उदाहरणार्थ, आव०एर्त्से० ८, ३३, १४, २९, एर्त्से०, कालका०, शौर० मे, उदाहरणार्थ, ललित० ५६१, ५, ११ और १५, मृच्छ० ४,५, शकु० १२,८, माग० में, उदाहरणार्थ, ललित० ५६५, १५, मृच्छ० १९,८, प्रबोध० ५८,१, मुद्रा० २६७,१, आव० मे मृच्छ० ९९,१८ और १९, १०१, २३, १०३, २, दाक्षि० में मृच्छ० १०१, १० और २१, १०३, १७ और १८)[१]। अ०माग० मे कर्त्ताकारक रूप मे **तुमे** आता है, ऐसा दिखाई देता है (नायाध० § ६८ **तुमं** के विपरीत § ७०, पेज ४४८ और ४५०) जिसका सम्बन्ध **तुमं** से होना चाहिए जैसा माग० रूप **हगे** का सम्बन्ध **अहकं** से है (§ ४१७)। महा० में **तं** का प्रयोग बहुत अधिक है (गउड०, हाल, रावण०), यह रूप अ०-माग० में भी दिखाई देता है (उत्तर० ६३७, ६७०, ६७८ ; ७१२) और जै०महा० मे भी (ऋषभ०, एर्त्से०) किन्तु पद्य में आया है, इसके साथ साथ बहुत कम **तुं** भी दिखाई देता है (हाल, शकु० ७८, ११, बोएटलिंक का सस्करण)। ढक्की में **तुहं** रूप पाया जाता है (मृच्छ० ३४, २४, ३५, १ और ३, ३९, ८), अप० में **तुहुँ** का प्रचार है (हेच० में **तु** शब्द देखिए, पिंगल १,४ आ) जिसकी व्युत्पत्ति **त्वकम्** से है (§ २०६)[२]। पिंगल १,५ आ में **तइँ** दिया गया है (गौल्दश्मित्त **तइं** देता है, पाठ में **तइ** है [अनुवादक के पास प्राकृतपिङ्गलसूत्रम् का १८९४ का बबई से प्रकाशित जो सस्करण है उसमें यह रूप १,५ अ में मिलता है, ५ आ में नही, जैसा पिशल ने बताया है। वह पद इस प्रकार है 'तइ इथि णदिहिँ सँतार देइ जो चाहसि सो लेहि।' —अनु०], विक्र० पेज ५३० में बौ ल्लें नसेन की टीका की तुलना कीजिए) जिसका व्यवहार कर्त्ता-कारक में हुआ है। —कर्म . उक्त सब प्राकृत बोलियों में **तुमं** का प्रयोग कर्त्ताकारक की भाँति कर्मकारक में भी होता है (शौर० में : मृच्छ० ४,९, शकु० ५१,६, विक्र० २३, १, माग० मे . मृच्छ० १२, १०, मुद्रा० १८३, ६), ढक्की में **तुहं** रूप काम में आता है (मृच्छ० ३१, १२), अप० में **तइँ** रूप का प्रचलन है (हेच० ४, ३७०) और **पइँ** भी देखने में आता है (हेच० ४, ३७०, विक्र० ५८, ८, ६५, ३)। **प** के विषय में § ३०० देखिए। **ते** अ०माग० में कर्मकारक है (उवास० § ९५ और १०२, उत्तर० ३६८, ६७७, ६९६), शौर० में भी इसका यही रूप है (मृच्छ० ३, १३) और शौर० में **दे** भी काम में आता है (मृच्छ० ५४, ८) तथा माग० में भी इसी का प्रयोग किया जाता है (मृच्छ० १२८, १२ और १४)[१]। — करण : महा० में **तइ**, **तए**, **तुइ**, **तुए**, **तुमए**, **तुमाए**, **तुमाइ** और **तुमे** रूप पाये जाते हैं (गउड०, हाल,

रावण०) जै०महा० में तए, तुमए और तुमे चलते हैं ; अ०माग० में तुमे आता है (उवास० § १११ और १६७ में, इसी ग्रन्थ में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) शौर० में तए का प्रचार है (ललित० ५५४, ६ ; ५५५, ५ ; शकु० १२, १२ ; रत्ना० २९९, १ और २), तुए भी चलता है (मृच्छ० ७, ५ ; विक्र० २५, ५ ; महावीर० ५६, ३) । माग० में तए रूप पाया जाता है (ललित० ५६६, ४), तुए भी काम में लाया जाता है (मृच्छ० १९, २१ और २५ ; वेणी० ३४, ३ ; प्रबोध० ५, ९) । इस सम्बन्ध में नाटक कभी कुछ और कभी कुछ दूसरा रूप देते हैं : मृच्छकटिक, विक्रमोर्वशी, वेणीसंहार तथा अधिकांश दूसरे नाटकों में तुए रूप पाया जाता है (विक्र० ४२, ६ में तुए रूप लेकर उसका संशोधन किया जाना चाहिए), शकुन्तला और रत्नावली में तए दिया गया है । हस्तलिपियाँ एक ही स्थान में कभी कुछ और कभी कुछ देती हैं, यथा और आव० में भी तुए रूप मिलता है (मृच्छ० १ २, १ ; १ ३, ९ ; १ ५, १), दाक्षि० में भी तुए पाया जाता है (मृच्छ० १ १, २५) और तए रूप भी देखा जाता है (१ ५, ४), किन्तु इस स्थान में गोडबोले के संस्करण पेज २९९, ५ शुद्ध रूप तुए दिया गया है । — ते और दे सर्वत्र सम्प्रदानकारक में माने जाने चाहिए । कभी-कभी, किन्तु, इसे करणकारक में मानना आवश्यक जान पड़ता है जैसे, शौर० में मृच्छ० ९, २४ में ण हु दे साहसं करन्तेण आचरिदं = न खलु त्वया साहसं कुर्वता आचरितम् है अथवा अधिक सम्भव यह भी है कि जैसा शौर० में मृच्छ० २९, १४ में सुट्ठु दे जाणिदं = सुष्ठु त्वया ज्ञातम् हो २७, २१ और २८, २४ से तुलना करने पर उक्त वाक्यांश सुट्ठु तुए जाणिदं हो । अप० में तइँ और पइँ काम में आते हैं (हेच० ४, ३७० ; ४२२, १८ ; विक्र० ५५, १८ ; ५८, ९) । कर्मकारक में भी ये ही रूप हैं । — अपादान : महा० में तुमाहि, तुमाहिंतो और तुमाओ रूप चलते हैं (गउड० ; हाल०) शौर० में तत्तोस्सरूप है (शकु० ९, १) तुमत्तो रूप भी पाया जाता है (मल्लिका० २११, ८) और इसमें नाममात्र सन्देह नहीं कि यह एकवचन में है किन्तु यह रूप शौर० बोली के प्रयोग के विपरीत है जिसमें तुम्हाहिंतो रूप चलता है (कर्पूर० ५१, ९ ; विद्ध० ७१, ६ ; १११ ६) ; पै० में तुमातो और तुमातु रूप हैं (हेच० ४, ३२१) । — सम्बन्ध : महा० में तुह, तुहं, तुम्ह, तुम्हं, तुम्हँ, तुम्म, तु, ते और दे रूप काम में आते हैं (गउड० ; हाल० ; रावण०) ; अ०माग० में तव, ते, तुब्भं और तुहं रूपों का प्रचार है (उवास० ६८४ और ५९७ और उसके बाद), तुमं भी पाया जाता है (आयार० १, ३, १, ४ ; उत्तर० १५८) ; जै०महा० में तुह, तुम्ह, तुज्झ, तव और तुम्हं रूप प्रयोग में आते हैं (आव० एर्त्से० ७, ११ ; १२, ५) तुहं रूप भी चलता है (आव० एर्त्से० ७, ३१ ; १२, १४) ; शौर० में तुह काम में आता है (ललित० ५५८, ५ ; मृच्छ० २२, २५ ; शकु० १५, ९ ; विक्र० २६, ९) ; शौर० में ते रूप केवल मृच्छ० १, १६ में मिलता है (इसी ग्रन्थ में अन्यत्र दे भी पाया जाता है ; ८, २ ; विक्र० २८, ७, अन्यथा तव और तथा दे रूप आया है (§ १८५), कहीं-कहीं ते मिलता है

जो रूप अशुद्ध है[1]। बोली के व्याकरण के विरुद्ध **तव** तथा **तुज्झ** रूप भी देखने में आते हैं। विक्रमो० २७, २१ में **तव** का प्रयोग पाया जाता है, किन्तु हस्तलिपियाँ बी. और पी. (B. P.) इस स्थान में **तुह** रूप देती हैं। यही रूप बंबइया संस्करण ४८, ५ में छापा गया है, मृच्छ० १७, २१ तथा २४, ३ में भी यह रूप आया है। यहाँ शकार के शब्द दुहराये गये हैं, १३८, २३ में भी **तव** आया है। यहाँ संस्कृत शब्द उद्धृत किये गये हैं, १५१, २१ में भी सम्बन्धकारक में यह आया है। रत्नावली की पहली (= पुरानी) प्रतियों में जहाँ-जहाँ **तव** अथवा **तुह** दिये गये थे कापेलर ने वहाँ-वहाँ **तुह** पाठ पढ़ा है, इस कारण रत्नावली में केवल **तुह** (२९४, २१, २९९, ३, ३०५,८, ३०९,६, ३१३,१२ और २७, ३१८,२६) और **दे** रूप हैं। प्रबोधचन्द्रोदय ३७, १४ और ३९, ५ में छपे संस्करणों के **तुव** और **तुअ** के स्थान में **तुह** पढ़ा जाना चाहिए, जैसा बंबइया संस्करण में ३९, ५ के स्थान में छापा गया है। नाटकों में **तुज्झ** रूप शुद्ध है, मृच्छ० १००, ११ (आव०), १०४, १ (दाक्षि०), १७ (आव०), शकुन्तला ५५, १५ (महा०); नागानन्द ४५, ७ (महा०), शौर० में यह रूप केवल शकु० ४३, ९ में देखा जाता है जो वास्तव में अशुद्ध। इस विषय में ललितविग्रहराज नाटक ५५४, ४, कर्पूर० १०, ९, १७, ५, नागानन्द ७१, ११, कर्णसुन्दरी ५२, १३ तथा अन्य भारतीय संस्करण ध्यान देने योग्य नहीं माने जा सकते। इसके विपरीत माग० में अ०माग० और जै०महा० की भाँति **तव** रूप मिलता है (मृच्छ० १२, १९, १३, ९, १४, १, ११, ३, २२, ४ आदि-आदि, शकु० ११६, ११), **ते** भी पाया जाता है (मृच्छ० ३१, १७, ११३, १), इस पर ऊपर लिखी बात लागू होती है, अन्यथा **दे** रूप बहुत अधिक आता है (उदाहरणार्थ, मृच्छ० २१, २२, शकु० ११३, ७, मुद्रा० १८४, २)। इस प्राकृत बोली में **तुज्झ** रूप अशुद्ध है (मृच्छ० १७६,६, इसके स्थान में गौडबोले द्वारा सम्पादित संस्करण के ४७८, १ में छपे **तुए** रूप के साथ यही शुद्ध रूप पढ़ा जाना चाहिए, नागा० ६७, १, इसके स्थान में भी कलकतिया संस्करण के ६३, १ के अनुसार **ते** [**दे**] पढ़ा जाना चाहिए, प्रबोध० ५८, १७, इस स्थान में ब्रौकहौस ने केवल **उज्झ** रूप दिया है और इसी ग्रन्थ में अन्यत्र पाया जानेवाला रूप **तुह** पढ़ा जाना चाहिए), ढक्की में **तुह** रूप चलता है (मृच्छ० ३९, ५), अप० में **तउ** और **तुज्झु** रूप काम में आते हैं (हेच० ४, ३६७, १, ३७०, ४, ३७२, ४२५), साथ ही विचित्र रूप **तुध्र** का भी प्रचलन है (हेच० ४, ३७२), **तुज्झह** भी देखा जाता है (विक्र० ७२, १०, इस पर बौॅल्लेॅनसेन की टीका देखिए), **तुह** भी मिलता है (हेच० ४, ३६१, ३७०, १, ३८३, १, पिंगल १, १२३ अ), **तुम्ह** भी आया है (पिंगल १, ६० अ), पद्य में **जुज्झे** = **युधि** के साथ तुक मिलाने के लिए **तुज्झे** रूप भी आया है (पिंगल २, ५, [यहाँ **जुज्झे तुज्झे सुभं देऊ** = (शम्भु) 'तुझे शुभ अर्थात् कल्याण देवे' है, जिससे पता चलता है कि यह **तुज्झे** = **तुझे** है। —अनु०])। अ०माग० में **तुब्भं** = **तुभ्यम्** है, **तुह**, **तुज्झ** और **तुम्ह** रूपों से यह निदान निकलता है कि इनका रूप कभी ***तुह्यम्** (**मह्यम्** की तुलना कीजिए) रहा होगा।

रावण०) वे०महा में तए, तुमए और तुमे चलते हैं ; अ माग० में तुमे आता है (उभास § ११९ और १६७ में, इसी ग्रन्थ में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) शौर में तए का प्रचार है (ललित० ५५४, ६ ५५५, ५ शकु १२, १२ ; रत्ना २९९, १ और २), तुए भी चलता है (मृच्छ० ७, ५ विक्र० २५, ५ महावीर ५६, ३) ; माग में तए रूप पाया जाता है (ललित० ५६६, ४), तुए भी काम में लाया जाता है (मृच्छ० ३१, २१ और २५ ; वेणी० ३४, ३ प्रबोध ५०, ९) । इस सम्बन्ध में नाटक कभी कुछ और कभी कुछ दूसरा रूप देते हैं मृच्छकटिक, विक्रमोर्वशी, वेणीसंहार तथा अधिकांश दूसरे नाटकों में तुए रूप पाया जाता है (विक्र ४२, ३ में तुए रूप रखकर उसका संशोधन किया जाना चाहिए), शकुन्तला और रत्नावली में तए दिया गया है । हस्तलिपियाँ एक ही स्थान में कभी कुछ और कभी कुछ देती हैं, महा और आव में भी तुए रूप मिलता है (मृच्छ १ २, १ ; १ १, २ १ ५, १), दाक्षि में भी तुए पाया जाता है (मृच्छ १ १, २५) और तए रूप भी देखा जाता है (१ ५, ४), किन्तु इस स्थान में गौडबोले के संस्करण पेज २९९, ५ शुद्ध रूप तुए दिया गया है । — ते और दे सर्वत्र सम्बन्धकारक में माने जाने चाहिए । कभी-कभी, किन्तु, इसे करणकारक में मानना आवश्यक जान पड़ता है जैसे, शौर में मृच्छ ९०, २४ में ण हु दे साहसं करॅन्तेण आचरिदं = न खलु त्वया साहसं कुर्वता आचरितम् है अथवा अधिक सम्भव यह भी है कि जैसा शौर में मृच्छ २९, १४ में सुट्ठु दे जाणिदं = सुष्ठु त्वया ज्ञातम् हो, २७ २१ और २८ २४ से तुलना करने पर उक्त वाक्यांश सुट्ठु तुए जाणिदं हो । अप में तइँ और पइँ काम में आते हैं (हेच० ४, ३७ ; ४२२, १८ विक्र ५५, १८ ५८ ९) । कर्मकारक में भी ये ही रूप हैं । — अपादान : महा में तुमाहि, तुमाहिंतो और तुमाओ रूप चलते हैं (गउड हाल) ; शौर में तत्तोत्तवत्ता है (शकु ९१), तुवत्तो रूप भी पाया जाता है (मल्लिका २१९, ८) और इसमें नाममात्र सन्देह नहीं कि यह एकवचन में है किन्तु यह रूप शौर बोली के प्रयोग के विपरीत है जिसमें तुम्हाहिंतो रूप चलता है (कर्पूर ५३ ३ ; विद्ध ७१, ३ ; ११३ ३) ; पै में तुमातो और तुमातु रूप हैं (हेच ४, ३ ७ ३२१) । — सम्बन्ध : महा में तुह तुहं, तुज्झ तुज्झं तुम्हं तुम्म, तु, ते और दे रूप काम में आते हैं (गउड ; हाल ; रावण) अ माग में तव ते तुब्भं और तुहं रूपों का प्रचार है (उत्तर ४४४ और ५९७ और उसके बाद) तुमं भी पाया जाता है (आयार १, ३, ३, ४ उत्तर १५८) ; जै महा में तुह तुम्ह तुज्झ तव और तुज्झं रूप प्रयोग में आते हैं (आव एर्से ७ ११ ; २२, ५) तुहं रूप भी चलता है (आव एर्से ७ ३३ ; १२ १४) ; शौर में तुह काम में आता है (ललित ५५४, ५ ; मृच्छ २२ २५ ; शकु १५ १ ; विक्र २६, ९) ; शौर में ते रूप केवल मृच्छ ३, १३ में मिलता है (इसी ग्रन्थ में अन्यत्र द भी पाया जाता है ; ८ , २ ; विद्ध २४ ७, अन्यथा सर्वत्र और सदा दे रूप आया है (§१८५), कहीं-कहीं तो मिलता है

है, जो शुद्ध नहीं जान पड़ता । — अनु०], क्रम० ५, १३ के अनुसार पै० में **तुम्फ, तुफ्फ** और **तुम्हे** रूप चलते हैं । — कर्म **तुम्हे** . महा० में **तुम्हे** पाया जाता है (रावण० ३, २७), शौर० में यही रूप मिलता है (मृच्छ० २४, १७, नागा० ४८, १३), जै०महा० में **तुब्भे** रूप चलता है (द्वार० ४९७, १८, ४९८, ३८) और **तुम्हे** भी पाया जाता है (तीर्थ० ५, ३), अ०माग० में भी **तुब्भे** रूप ही देखा जाता है (उवास०) और दूसरा **भे**[1] मिलता है जो **तुब्भे** की ध्वनिबलहीनता के कारण उससे ही निकला है (नायाध० ९३८, ९३९, उत्तर० ३६३), हेच० ४,३६९ के अनुसार अप० में **तुम्हे** ओर **तुम्हइँ** रूप होते हैं । —करण : महा० में **तुम्हेहि** पाया जाता है (हाल ४२०), अ०माग० में **तुब्भेहिं** आया है (विवाग० १७, उत्तर० ५७९ [पाठ में **तुभ्भेहिं** है], उवास० ; कप्प०, नायाध० में यह रूप देखिए, पेज ३५९, ३६१, ३६३, ४१९ आदि आदि) । इस प्राकृत में **तुम्हेहिं** रूप भी देखा जाता है (नायाध० ४५४, यदि यह पाठभेद शुद्ध हो तो), **तुब्भे** भी है (सूय० ९३२) और **भे** का भी प्रचार है (आयार० १, ४, २, ४, नायाध० १२८४ और १३७६ [पाठ में **ते** है]), जै०महा० में **तुम्हेहिं** मिलता है (एर्त्से०), **तुब्भेहिं** भी आया है (आव०एर्त्से०, ११, २६, १८, २७, एर्त्से०), शौर० में भी **तुम्हेहिं** है (महावीर० २९, ४, विद्ध० ४८, ५), अप० में **तुम्हेहिँ** रूप हो गया है (हेच० ४, ३७१) । — सम्बन्ध सब प्राकृत बोलियों में इसका रूप **तुम्हाणं** पाया जाता है, महा० में यह रूप चलता (हाल ६७६, पाठ में **तुम्हाण** है), अ०माग० में भी इसका प्रचार है (सूय० ९६४), जै०महा० में भी यही पाया जाता है (एर्त्से०, कालका०), शौर० में भी (ललित० ५६८, ५, मृच्छ० १७, २३, विक्र० ४८, ४, मालती० २८५, २), माग० में यही रूप देखा जाता है (ललित० ५६६, ९, शकु० ११८, ४, मुद्रा० १७८, ४, २५८, ४) । महा० में बहुधा **तुम्ह** भी काम में आता है (रावण०), अ०माग० में प्रधान रूप **तुब्भं** है (सूय० ९६७, १०१७, नायाध० § ७९, पेज ४५२ और ५९०, उत्तर० ३५५, विवाह० १२१४, विवाग० २० और २१, उवास०, इसी प्रकार कप्प० § ७९ में, इसी ग्रन्थ में अन्यत्र आये हुए **तुब्भं** के साथ, **तुम्हं** के स्थान में यही पाठ पढा जाना चाहिए) और अ०माग० में बहुधा **भे** भी आता है (आयार० १, ४, २, ६, २,१,५,५, ९, ६, सूय० २८४, ७३४, ९७२, नायाध० ९०७, उत्तर० ५०, विवाह० १३२) । यह रूप जै०महा० में भी है (आव०एर्त्से० २४, ८ और १२) । महा० और शौर० में बहुधा **वो** = **वः** भी काम में आता है (गउड०, हाल, रावण०, शकु० २०, ७, ५२,१५, विक्र० ५१, १६), पल्लवदानपत्र में भी यह रूप आया है (७, ४६) । अन्य प्राकृत बोलियों में तथा मृच्छकटिक में मुझे यह रूप नहीं मिला । आवश्यक एर्त्सेलुगन ४१, १८ में **केण भे किं गहियं** पढा जाना चाहिए । अप० में **तुम्हहँ** है (हेच० ४, ३७३) । हेमचन्द्र ४, ३०० के अनुसार महा० में **तुम्हाहँ** भी पाया जाता है । अधिकरणकारक के किसी रूप के प्रमाण और उद्धरण मुझे नहीं मिले हैं । मार्कंडेय पन्ना ४८ और उसके बाद में यह उल्लेख

इससे तुम्म, तुम्ह और उम्ह रूप आविष्कृत हुए, जो बहुवचन में दिखाई देते हैं। तुह और उम्ह या तो माग० से अथवा माग० से सम्बन्धित किसी प्राकृत बोली से निकले चाहिए (§ २१६ और १११)। — अधिकरण : महा० में तइ, तुवि, तुमस्मि और तुमे काम में आते हैं (गउड० ; हाल ; रावण०) ; अ०माग में तुमंसि रूप मिलता है (निरया § १५) जैसे महा में तइ और तुमस्मि रूप काम में आते हैं शौर० में तइ चलता है (विक० १, १ ८४, ४), तुइ भी पाया जाता है (मालवि० ४१, १९ ; मनो० ११, ८ [कलकत्ते के १८७ के संस्करण के पेज २६, ५ के अनुसार यही रूप पढ़ा जाना चाहिए]) ; अप में तइँ और पइँ रूप देखे जाते हैं जैसा क्रम- और करणकारकों में पाये जाते हैं (हेम० ४, १०)। कामधेनुवाधिका और मै महा० में भी भनपाल ने पईं और पइं रूपों का व्यवहार किया है ।

1 § ४१८ की नोटसंख्या १ देखिए। — २ विक्रमोर्वशी पेज ५२८ में बॉल्लें नसन ने तुहुं रूप दिया है और पेज ५२९ के बाद में इस तुम्हं से म्युत्पन्न किया है। — ३ पिशल गो ग आ १८०० १ १६ ; बे पाद १, २५ का नोट ; त्सा डे डो मी० गे० २५, ०१४। — ४ हार्नले के उवासगदसाओ अनुवाद नोट ११२। — ५ बोपर्टलिंक द्वारा संपादित शाकुन्तला के संस्करण में १ ० १३ में वाक्य के आरम्भ में ही तू रूप अशुद्ध है यह तथ्य विक्रमोर्वशी १०१ में बॉल्लें नसेन ने ताड़ किया था। — ६ मारविका १ १ में कर्म का कुछ दूसरा मत है। प म्युलर बाइत्रेगे ५५, नोटसंख्या १। — ७ क्लाच त्सा डे डा मी गे ३३ ४४८।

§ ४२२—बहुवचन कर्ता- अ माग को छोड़ और सभी प्राकृत बोलियों में काम में आनेवाला रूप तुम्हे = *तुप्मे है : महा में यह रूप है (हाल ; रावण०), जै०महा में (एर्से) ; शौर० में भी है (मृच्छ २४, १६ ७ , १९ ; शकु १०६, २ ; १ ९, ७) ; माग में यह चलता है (मृच्छ १६, १९ १८९, १७) ; यह अप में भी आया है (हेच ४, ३६९)। माग में *तुस्मे अथवा तुम्हे रूप भी शुद्ध हो सकता है। बहुवचन के अन्य कारकों में यही बात, इस प्राकृत बोली के लिए यह सूचित करते हैं कि इसके ये रूप हैं जिनमें इस समय के संस्करणों में मह आया है। अ माग में सदा तुम्मे रूप मिलता है जो = अशोक के शिलालेखों के तुफे के (आयार १ ६, २, ४ ; २, ३, ३, ५ और ७ ; सूय १९२ ; १९८ ; ७८३ ; ९७२ ; विवाह ११२ और ११२ ; नायाध [इसमें § ११८ भी सम्मिलित है जिसके तुम्हे के स्थान में इसी ग्रन्थ में अन्यत्र आया हुआ रूप तुम्भे पढ़ा जाना चाहिए] ; उवास ; कप्प ; निरया)। अनादरसूचक सम्बोधन में तुमाई का प्रयोग किया जाता है (आयार २, ४ १, ८)। जै महा में तुम्ह के साथ-साथ तुम्भे रूप भी चलता है (आव एर्से १८, २८ और ३० ; ४२, ११ ; पाले०, कालका) हेच ४ ३६९ के अनुसार अप में तुम्हइँ भी होता है [भंडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट द्वारा प्रकाशित हेम के नूतन संस्करण में यह रूप तुम्हइँ दिया गया

है, जो शुद्ध नहीं जान पड़ता। — अनु०], क्रम० ५, १३ के अनुसार पै० में **तुम्फ, तुफ्फ** और **तुम्हे** रूप चलते है। — कर्म **तुम्हे** : महा० में **तुम्हे** पाया जाता है (रावण० ३, २७), शौर० मे यही रूप मिलता है (मृच्छ० २४, १७, नागा० ४८, १३), जै०महा० में **तुब्भे** रूप चलता है (द्वार० ४९७, १८, ४९८, ३८) और **तुम्हे** भी पाया जाता है (तीर्थ० ५, ३), अ०माग० मे भी **तुब्भे** रूप ही देखा जाता है (उवास०) और दूसरा **भे**[1] मिलता है जो **तुब्भे** की ध्वनिबलहीनता के कारण उससे ही निकला है (नायाध० ९३८, ९३९, उत्तर० ३६३), हेच० ४,३६९ के अनुसार अप० में **तुम्हे** और **तुम्हइँ** रूप होते हैं। —करण : महा० में **तुम्हेहि** पाया जाता है (हाल ४२०), अ०माग० में **तुब्भेहिं** आया है (विवाग० १७; उत्तर० ५७९ [पाठ में **तुब्भेहि** है], उवास०, कप्प०, नायाध० मे यह रूप देखिए, पेज ३५९, ३६१, ३६३, ४१९ आदि-आदि)। इस प्राकृत में **तुम्हेहिं** रूप भी देखा जाता है (नायाध० ४५४, यदि यह पाठभेद शुद्ध हो तो), **तुब्भे** भी है (सूय० ९३२) और **भे** का भी प्रचार है (आयार० १, ४, २, ४, नायाध० १२८४ और १३७६ [पाठ में **ते** है]), जै०महा० में **तुम्हेहिं** मिलता है (एर्त्से०), **तुब्भेहिं** भी आया है (आव०एर्त्से०, ११, २६, १८, २७, एर्त्से०), शौर० में भी **तुम्हेहिं** है (महावीर० २९, ४, विद्ध० ४८, ५), अप० में **तुम्हेहिँ** रूप हो गया है (हेच० ४, ३७१)। — सम्बन्ध . सब प्राकृत बोलियों में इसका रूप **तुम्हाणं** पाया जाता है, महा० में यह रूप चलता (हाल ६७६, पाठ में **तुम्हाण** है), अ०माग० में भी इसका प्रचार है (सूय० ९६४), जै०महा० में भी यही पाया जाता है (एर्त्से०, कालका०), शौर० में भी (ललित० ५६८, ५, मृच्छ० १७, २३, विक्र० ४८, ४, मालती० २८५, २), माग० में यही रूप देखा जाता है (ललित० ५६६, ९, शकु० ११८, ४, मुद्रा० १७८, ४, २५८, ४)। महा० में बहुधा **तुम्ह** भी काम में आता है (रावण०), अ०माग० में प्रधान रूप **तुब्भं** है (सूय० ९६७, १०१७, नायाध० § ७९, पेज ४५२ और ५९०, उत्तर० ३५५, विवाह० १२१४, विवाग० २० और २१, उवास०, इसी प्रकार कप्प० § ७९ में, इसी ग्रन्थ में अन्यत्र आये हुए **तुब्भं** के साथ, **तुम्हं** के स्थान में यही पाठ पढा जाना चाहिए) और अ०माग० में बहुधा **भे** भी आता है (आयार० १, ४, २, ६, २,१,५,५, ९, ६, सूय० २८४, ७३४, ९७२, नायाध० ९०७, उत्तर० ५०, विवाह० १३२)। यह रूप जै०महा० में भी है (आव०एर्त्से० २४, ८ और १२)। महा० और शौर० में बहुधा **वो** = **व.** भी काम में आता है (गउड०, हाल, रावण०, शकु० २०, ७, ५२,१५, विक्र० ५१, १६), पल्लवदानपत्र में भी यह रूप आया है (७, ४६)। अन्य प्राकृत बोलियों में तथा मृच्छकटिक में मुझे यह रूप नहीं मिला। आवश्यक एर्त्सेलुगन ४१, १८ में **केण भे किं गहियं** पढा जाना चाहिए। अप० में **तुम्हहँ** है (हेच० ४, ३७३)। हेमचन्द्र ४, ३०० के अनुसार महा० में **तुम्हाहँ** भी पाया जाता है। अधिकरणकारक के किसी रूप के प्रमाण और उद्धरण मुझे नही मिले हैं। मार्कंडेय पन्ना ४८ और उसके बाद मे यह उल्लेख

१६५, ७), **शे कम्म = तत् कर्म** है (शकु० ११४, ६) , अप० में **सो सुक्खु = तत् सौख्यम्** है (हेच० ४, ३४०, १) । — कर्म : अ०माग० में **ये** (§ ४१८) और **ते** (§ ४२१) के जोड का **से** रूप मिलता है जो **से स्' एवं वयन्तं = स तम् एवम् वदन्तम्** में आया है (आयार० २, १, ७, ८ , ९, ६), जब कि **से स' एवं वयन्तस्स** (आयार० २, १, २, ४ , ६, ४ , ७, ५ , ९, २ , २, ५,१, ११ , २, ६, १०) में दूसरा **से** सम्बन्धवाचक है, इसलिए यह वाक्यांश **श = स तस्यैवम् वदतः** है , अप में **सु** आता है (हेच० ४, ३८३, ३ , पुलिंग में), **सो** भी चलता है (पिंगल १, ५ अ , नपुसकलिंग में) । — करण : अ०माग० मे **से** रूप पाया जाता है (सूय० ८३८ , ८४८ , ८५४ , ८६०) । — सम्बन्ध : महा०, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **से** रूप मिलता है, माग० में यह **शे** हो जाता है, 'यह रूप भी **मे** और **ते** के समान ही पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में काम में आता है (वर० ६, ११ , चंड १, १७ , हेच० ३, ८१ , क्रम० ३, ४८ , सिंहराज० पन्ना २२ , शौर० पुलिंग के लिए : मृच्छ० १२, २४ , शकु० ३७, १० , विक्र० १५, १० , स्त्रीलिंग : ललित० ५६१, ९ , मृच्छ० २५, ८ , शकु० २१, २ , विक्र० ४६, १ , माग० पुलिंग के लिए : मृच्छ० ३६, १० , १६१, ७ , स्त्रीलिंग . मृच्छ० १३४, ८ , वेणी० ३४, १२), अ०माग० और जै०महा० में छद की मात्राए पूरी करने के लिए **सें** रूप भी पाया जाता है (दस० ६३३, १७ , ६३५, ४ , आव०एर्त्से० ८, २ और १६) और अ०माग० में **सि** भी देखा जाता है (सूय० २८२)[२] । — बहुवचन : कर्ता– अ०माग० में **से** रूप मिलता है (आयार० १, ४, २, १ [कलकतिया सस्करण में **ते** है] , सूय० ८५९), माग० में **शे** रूप है (मृच्छ० १६७, १)[४] । — कर्म : जै०शौर० में **से** रूप पाया जाता है (पव० ३८८, ४ , साथ-साथ कर्त्ताकारक में **ते** आया है) । — सम्बन्ध : जै०महा० में **से** रूप है (चड० १, १७ , हेच० ३, ८१ , सिंहराज० पन्ना २२ , कालका० २७३, २९ , § ३४ की तुलना कीजिए) और **सिं** रूप भी पाया जाता है (वर० ६, १२, हेच० ३, ८१ , सिंहराज० पन्ना २२) । — सबोधन : अ०माग० में **से** रूप आया है (आयार० १, ७, २, १) । जैसा अथर्ववेद १७, १, २० और उसके बाद ५, शतपथब्राह्मण में (बोएटलिंक और रोट के सस्कृत–जर्मन कोश में पेज ४५२ में **स** शब्द देखिए), पाली **सचे** (= यदि) **स** में और **सेंय्यथा से** में उसी भाँति अ०माग० **से** में यदि यह रूप सर्वनाम अथवा सर्वनाम से बने क्रिया-विशेषण से पहले आये तो इसके कारण अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पडता । इसके बाद यदि **त–** सर्वनाम का **त्** आये अथवा **य** का **ज्** रहे तो ये द्वित्व कर दिये जाते हैं । इसके अनुसार अ०माग० में **सेंत्तम्** मिलता है (आयार० २, १, १, २ , ४, ४ , ५, २ , ५ , २, ३, १, १४ , २, ४, २, ७ और ८ , जीवा० ३६ और उसके बाद , ३१६ और उसके बाद, विवाह० १६० और ५९६ , पण्णव० ७ और उसके बाद, ६३, ४८०) , **से तं** रूप भी देखने में आता है (आयार० १, २, ५, ५ , कप्प० टी एच, (T. H) § ७–९) , **से तेण अट्ठेणं** भी पाया जाता है (विवाह० ३४ और उसके बाद . २७ और उसके बाद) , **से ज्जं** भी है (आयार० १, २, ६, ५ , २, १, १,

१, ४ और ११ २, १, २, १ ; १, ४ और उसके बाद ; २, १, १, २ और उसके बाद ; २, ७, २, २ और उसके बाद) से स्वाई आया है (आयार० १, २, १, १४ २, २ ; १, १० ; २, ५, १, ४); से स्वाणं इमाणि पाया जाता है (आयार० २, २, २, १०) से सो इमे (ओव० § ७ ७१ ; ७१ और उसके बाद) ; से आमो पक्खा है (आयार २, १, १, १ ओव § ७२) से जं (आयार १, १,१, ४) ; से किं तम् (अणुओग १५६ नन्दी० ४७१ पण्णव १२ और ४८ ; ओव § १ ; कप्प टी एच (T H) § ७-९) से के पं देखा जाता है (नायाध § ११८) से कहं पर्व भी है (विवाह १४२) से केइ मिलता है (सूय १ १) और से किं तु ह आया है (सूय ८४६), पाली सेय्यथा के नियम के विपरीत अ०माग में अहा का ज् से के बाद कभी द्वित्व नहीं किया जाता; से ज्जं बार-बार आया है (आयार १, ९, १ २ ; सूय ५११ और उसके बाद ; ५११ ; ७४७ विवाह ११४ १६१ और उसके बाद २७ ; १२१ उवास० § १२ और २१० ; ओव § ५४ नायाध० § १११)। टीकाकार बताते हैं कि से का अर्थ सद् उदाहरणार्थ शिलांक[1] ने आयारंगसुत्त के पेज २१ में बताया है से- त्ति तच्छब्दार्थे और पेज २ में लिखा है सेशब्दस् तच्छब्दार्थे स च वाक्यो पन्यासार्थः ; यह स्पष्टीकरण याकोबी[1] और लॉयमान[2] के स्पष्टीकरण से शुद्ध है [हिन्दी में जो है सो का शुद्धरूप कोई विशेष अर्थ नहीं रखता किन्तु बोलते समय काम में आता है ; उल्लिखित वाक्योपन्यासार्थः से उपन्यास की व्युत्पत्ति और उसका शुद्ध प्रयोग स्पष्ट होता है अर्थात् उप = निकट और न्यास न्यस् से निकला है, जो शब्द कोई अर्थ नहीं रखता वाक्य समझाने के काम में आता है। यह वाक्योपन्यासार्थ है। हिन्दी में उपन्यास कहानी की पुस्तक का वाचक बन गया है। मराठी में अंगरेजी शब्द नावेल का नवल कथा रूप उपन्यास के लिए काम में आता है। कोश में भी कहा गया है उपन्यासस्तु वाङ्मुखम् इसका अर्थ है कि उपन्यास भूमिका को कहते हैं। अस्तु, हिन्दी उपन्यास शब्द उस पदार्थ का द्योतक किसी प्रकार नहीं है, जिसके लिए यह प्रयुक्त होता है। वास्तव में यह बिना जाने समझे बंगला से हिन्दी में ले लिया गया है। —अनु]। प्राकृत में स् और ज् का तथा पाली सेय्यथा में य् का द्विती- करण बताता है कि हमें से को अ माग का कर्ताकारक का रूप स नहीं मानना चाहिए। यह तथ्य पाली भाषा में से के प्रयोग से असम्भव बन जाता है। यदि यह आवश्यक न भी हो तो स मजुत करके = वैदिक सेद् अर्थात् स + इद् है, जिसका उपयोग ठीक और सब प्रकार से स की भाँति होता है। इसका प्रमाण ऋग्वेद ४,१७ ९ में मिलता है : सेद् ऋभवो यं अवथ यूयम् इन्द्रश् च मर्त्यम्। स धीभिर् अस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता जिसमें सद् यं स = अ माग से जं से है (= हिन्दी जो है सो)। इसका अर्थ यह हुआ कि पाली सेय्यथा और सेय्य १ ७ अ माग रूप से सर्वं आदि रूप अधिक मष्ठ है।

1 आयारंगसुत्त छ एस २४ ६ और उसके बाद। वेद में अधिकरण- कारक का रूप सस्मिन् भी पाया जाता है। — २ यह § ३१८, औपपातिकसूत्र

१ में कथित बातों के लिए लागू है। — ३ यह से है, इसलिए बोएटलिंक द्वारा संपादित शकुंतला २५, ६ और (§ ४२१, नोटसंख्या ५) दे पाठभेद अशुद्ध हैं। — ४. शे सम्बन्धकारक एकवचन नहीं हो सकता क्योंकि पेज १६६, २४ के अनुसार दोनों चाण्डाल बोलते हैं। कलकत्ते के छपे संस्करण (कलकतिया संस्करण १८२९, ३१६, १०, शकुंतला का कलकतिया संस्करण १७९२, ३५७, १) और गौडबोले का संस्करण, पेज ४५२,६ में **एशे** छपा है, जो प्राचीन कलकतिया संस्करण और गौडबोले के संस्करण में **एते** द्वारा अनुवादित किये गये हैं और यह अर्थ शुद्ध है। — ५ अबतक यह तथ्य किसी के ध्यान में नहीं आया था, स्वयं डेलब्रूयुक के आल्ट इंडिशे सिन्टाक्स, पेज १४० में इसका उल्लेख नहीं है। — ६. पाली-कोश में **स** शब्द देखिए। — ७. भगवती १, ४२१ और उसके बाद, जहाँ विवाहपन्नत्ति से कई और उदाहरण दिये गये हैं। — ८ ए० कून, बाइत्रैगे, पेज ९। — ९. वैदिक ध्वनिबल से **से** की अग्राधारिता और उसमें द्वित्तीकरण मनाने का निषेध प्रकट होता है जो § १९६ के अनुसार होना चाहिए था।

§ ४२४—**तद्, यद्** आदि सर्वनाम जिनका कोई पुरुष नहीं होता आंशिक रूप में सर्वनाम के विशेष समाप्तिसूचक रूप ग्रहण करते हैं जैसा संस्कृत में होता है और आंशिक रूप में उनकी रूपावली संज्ञा शब्दों की भाँति चलती है। अधिकरण एकवचन पुलिंग और नपुंसकलिंग तथा कर्त्ता बहुवचन पुलिंग में केवलमात्र सर्वनामों के समाप्तिसूचक रूप **एहउं** भी मिलता है = *एपकम् (हेच० ४, ३६२)। — कर्म पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग : महा० में **एअं** है, अ०माग० और जै०महा० में **एयं** पाया जाता है, शौर० तथा माग० में **एदं** आया है और अप० पुलिंग में **एहु** मिलता है (पिंगल १, ८१)। — करणकारक में महा० में **एएन** रूप मिलता है (हाल, रावण०) अ०-माग० में **एएणं** है, जै०महा० में **एएण** के साथ साथ **एइणा** रूप भी चलता है (शौर० के लिए. मृच्छ० ४२, १२, विक्र० ३१, १४, उत्तररा० ७८, ३, १६३, ३, माग० के लिए · मृच्छ० ११८, ११, १२३, १९, १५४, ९), **एदिणा** रूप बहुत अधिक मिलता है (शौर० के लिए मृच्छ० ५, ५, १८, ३, शकु० १०, १२, विक्र० ५३, १, उत्तररा० १३, ११, मालती० ३१, ४, ७३, ३, १००, ३, रत्ना० २९३,२१, माग० के लिए . मृच्छ० ३९, २५, ४०, ११, वेणी० ३६, १), § १२८ देखिए। स्त्रीलिंग में जै०महा० में **एयाए** के साथ-साथ हेमचंद्र द्वारा ३, ३२ में उल्लिखित रूप **एईए** भी चलता है जो स्त्रीलिंग के वर्ग **एई** = *एती से निकला है। ये दोनों रूप अपादान–, सम्बन्ध– और अधिकरणकारकों में भी काम में आते हैं। शौर० और माग० में करण–, सम्बन्ध और अधिकरणकारकों में केवल **एदाए** होता है। करण के लिए (शौर० में मृच्छ० ९४, १६, ९५, ८, विक्र० २७, १५, ४१, ७, रत्ना० २९९, ८, माग० में . मृच्छ० १७३, ८, प्रबोध० ६१, ७), सम्बन्धकारक रूप में प्रयोग के लिए (माग० में · मृच्छ० १२३, ३), अधिकरण रूप में प्रयोग के लिए (शौर० में . मृच्छ० ९, ९, ४२, ११)। — अपादानकारक के रूप वररुचि ने ६,

२० में एत्तो, एत्ताओ, एत्ताउ और एत्ताहि दिये हैं हेमचन्द्र ने १, ८२ में एँत्तो, एँत्ताहे, एआओ, एआउ एआहि, एआहिंतो और एआ दिये हैं, क्रमदीश्वर ने ३, ११ में एत्तो, एत्तो (!), एत्ताउ और एत्ताहि रूप लिखे हैं। इनमें से एत्ता = *एतत्त है (§ १९७)। यह रूप महा०, अ० माग० और जै०महा० में 'यहाँ से', 'वहाँ से' और 'अब' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अ० माग० में भी यह विशुद्ध अपादान के काम में लाया जाता है : एँत्तो उवसग्गाओ = एतस्मात् उपसर्गात् है (नायाध० ७६१) ; एँत्तो अन्नयरं = एतस्मात् अन्यतरम् है (आयार० २, १, २, ४ ; ९, ८, ७, ८ ; २, २, १, १८ ; २, ६, १, ५)। शौर० में एत्तो का इस भाँति का प्रयोग अशुद्ध है। भारतीय संस्करणों में जहाँ कहीं यह देखने में आता है, जैसा मालतीमाधव के बंबइया संस्करण १०, ९ ; २५५, १ में यहाँ इमादो पाठ पढ़ा जाना चाहिए जैसा कलकतिया संस्करण, १८६६ पेज ३७, ११ में प्रथम स्थान में और भण्डारकर के संस्करण में ९२, १ में पाया जाता है। अ० माग० में इत्तो रूप भी देखा जाता है (सूय० ११ ; उत्तर० ५ ९)। एत्ताहे किंतु एत्ता = एतां वर्ग से निकला है और ताहे (§ ४२५) की भाँति स्त्रीलिंग का अधिकरण एकवचन का रूप माना जाना चाहिए। यह महा० में 'इदानीम्' के अर्थ में काम में लाया जाता है (हेच० १, १३४ ; गउड० ; हाल ; रावण०), अप० में इस एत्तहे का अर्थ 'यहाँ से' होता है (हेच० ४, ४१९, ६ ; ४२०, ६) और इसका दूसरा अर्थ 'इधर' है (हेच० ४, ४३६)। इसके अनुकरण पर अप० में तेत्तहे रूप बना है जिसका अर्थ 'उधर' है (हेच० ४, ४३६)। जै०महा० में एयाओ रूप मिलता है (द्वार० ४९५, २७)। — सम्बन्ध : महा० में एअस्स होता है ; अ० माग० और जै०महा० में एयस्स चलता है ; शौर० में एदस्स पाया जाता है (शकु० २१, २ ; विक्र० १२, २ ; उत्तररा० ६७, ६) ; माग० में एदश्श रूप आया है (ललित० ५६५, ८ ; मृच्छ० १९, ५ ; ७, १९) तथा एदाह भी देखा जाता है (मृच्छ० १६९, ४ ; १३४, ४)। — अधिकरण : हेमचन्द्र ने ३, ६० में एअस्सि रूप दिया है और ३, ८४ में एअम्मि आया है ; अ०माग० और जै०महा० में एयम्मि तथा एयंसि रूप मिलते हैं ; अ० माग० में एयंसि भी चलता है (सूय० ७ ; विवाह० ११६ ; ५११ [पाठ में एयंसि है, टीका में शुद्ध रूप है] ; ११११) ; शौर० में एदस्सि है (शकु० ७८, १२ ; विक्र० ६, ३ ; २३, १७ ; रत्ना० ३ १ ५ ; प्रिय० ११, १९ ; प्रबोध० ३६, १) ; माग० में एदश्शि मिलता है (ललित० ५६५, ९ ; मृच्छ० ११४, २२ और १३७, ४ ; मुद्रा० १८५, १)। अअम्मि और इअम्मि के विषय में § ४२९ देखिए। — बहुवचन : कर्त्ता — महा०, अ० माग० और जै०महा० में एए रूप है ; जै०शौर० और शौर० में एदे (पव० ३८४, ८ ; ३८०, १ ; मृच्छ० ८, ९ ; शकु० ४१, १ ; मालती० २८१, ३ ; १८४, १) ; माग० में एदे चलता है (मृच्छ० २०, ११ ; ३८ १९ ; ७१, १२) ; एक स्थान पर नाग० पद्धति एदे अप्फाउ है जो मृच्छ० ९१६ ४, २ में आया है (यह सभी संस्करणों में है) = एतानि अप्राप्तानि है। अप० में एइ का प्रचलन है (हेच० ४, ३३०, ४ ; ३६३) ; स्त्रीलिंग — महा० में

एआओ है, अ०माग० और जै०महा० में **एयाओ** चलता है, शौर० मे **एदाओ** काम मे आता है (चडकौ० २८, १० , मल्लिका० ३३६, ८ और १३), जै०महा० में **एया** का भी प्रचलन है, नपुसकलिग — महा० में **एआइ** है और अ०माग० तथा जै०-महा० में **एयाइं** , अ०माग० और जै०महा० मे **एयाणि** भी है। (सूय० ३२१, एत्सें०), शौर० मे **एदाइं** मिलता है (मृच्छ० १२८, ४ , १५३, ९ और १३) , माग० में भी **एदाइं** आया है (मृच्छ० १३२, १६ , १६९, ६) । — कर्म पुलिग अ०माग० तथा जै०महा० में **एए** रूप है और अप० मे **एइ** (हेच० ४, ३६३) । — करण पुलिंग और नपुसकलिग : महा० और जै०महा० मे **एएहिं** और **एएहि** रूप है तथा शौर० और माग० में **एदेहिं** (शौर० मे : मृच्छ० २४, १ , प्रबोध० १२, १० , १४, १० , माग० मे : ललित० ५६५, १३ , मृच्छ० ११, १२ , १२२, १९ , १३२, १५) , स्त्रीलिंग : अ०माग० और जै०महा० मे **एयाहिं** रूप है। — सम्बन्ध पुलिग और नपुसकलिंग : महा० मे **एआण** मिलता है (हेच० ३, ६१ , गउड० , हाल), पल्लवदानपत्र मे **एतेसि** आया है (६, २७) , अ०माग० और जै०महा० मे **एएसिं** तथा **एएसि** रूप चलते हैं , जै०महा० मे **एयाणं** भी है , शौर० मे **एदाणं** पाया जाता है (मृच्छ० ३८, २२ , उत्तररा० ११, ४ , १६५, ३ , १९७, १०) , स्त्रीलिंग : महा० में **एआण** है (हाल ८९), हेमचन्द्र ३, ३२ के अनुसार महा० मे **एईणं** और **एआणं** रूप भी काम में आते है , अ०माग० और जै०महा० मे **एयासि** चलता है, जै०महा० मे **एयाणं** भी , शौर० में **एदाणं** मिलता है (रत्ना० २९३, १३ , कर्पूर० ३४, ३ और ४) । — अधिकरण महा० और अ०माग० रूप आयारगसुत्त १, २, ५, ३ मे आया है , जै०महा० मे **एएसु** और **एएसुं** हैं , शौर० मे **एदेसुं** चलता है (शकु० ९, १२ और १४) और **एदेसु** भी है (मुद्रा० ७२, ३), काम में लाये जाते हैं। अपादान एकवचन पुलिग और नपुसकलिग अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण एकवचन स्त्रीलिंग तथा सम्बन्ध बहुवचन पुलिग, स्त्रीलिंग और नपुसकलिग में दोनों प्रकार के समासिसूचक रूप चलते हैं। हाँ, बोली में इनमें कुछ भिन्नता आ गयी है। **तद्** , **एतद्** , **यद्** , **किम्** और **इदम्** के स्त्रीलिंग के वर्ग में अन्त में **-आ** अथवा **-ई** लगाया जाता है (हेच० ३, ३२ , क्रम० ३, ४५) . इनके **ता-**, **ती-**, **एआ-**, **एई-**, **जा-**, **जी-**, **का-**, **की-**, **इमा-** और **इमी-** रूप होते हैं। किन्तु **तद्** , **यद्** और **किम्** कर्त्ता- और कर्मकारक एकवचन तथा सम्बन्धकारक बहुवचन में केवल **आ** लगाते है (हेच० ३, ३३) , शौर० और माग० में सभी सर्वनामों में केवल **आ** लगता है। वर० ६, १ और उसके बाद , हेच० ३, ५८ और उसके बाद , क्रम० ३, ४२ और उसके बाद , मार्क० पन्ना ४५ और उसके बाद, सिंहराज० पन्ना १९ और उसके बाद की तुलना कीजिए।

१ एस० गौल्दश्मित्त, प्राकृतिका, पेज २२ ।

§ ४२५—सर्वनाम **त-** । कर्त्ता और कर्म नपुसकलिंग में महा०, अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर०, शौर०, माग०, ढक्की, आव०, दाक्षि० और अप० में **तं** रूप पाया जाता है (जै०शौर० में : पव० ३८१, २० और ३८५, ६१ , शौर० में : ललित०

५६१, ११ और ५६२, २३ मृच्छ २, १८ शकु० २७, ६ माग में : ललित० ५६५, १९ मृच्छ ४, ९ ; ढक्की में : मृच्छ ११, ८ १२, ३ और ८ ३५, ७; आव में : मृच्छ० १ २,१ दाक्षि में मृच्छ १ २,११ अप० में : मृच्छ १ २, १९ अप में : हेच ४, ११) अप में 'इसलिए' के अर्थ में दर्स मी मिलता है (हेच० ४, ११ § २१८ देखिए और § ४२७ की तुलना कीजिए [इस दर्स शब्द नाम से मिलकर जर्मन शब्द दारुम् (Darum) है। इसकी तुलना महत्त्वपूर्ण है। —अनु]) और तं तु शब्द संयोग में तु पाया जाता है (विक्र ५१, १९) । यह तु § ४२७ में वर्णित तु के जोड़-तोड़ का है । — कर्म पुलिंग और स्त्रीलिंग : सभी प्राकृत बोलियों में तं है । — करण : तेण है, अ माग में तेणं पाया जाता है, अप तें रूप देखने में आता है (हेच में त- शब्द देखिए) हेच १, ६९ के अनुसार तिणा रूप भी होता है ; स्त्रीलिंग : महा में तीए और तीअ रूप आये हैं अ माग और जै महा में तीए तथा ताए रूप हैं ; शौर में ताए चलता है (ललित ५५५, १ मृच्छ ७९, १ शकु ४ ४ [ताए पाठ के स्थान में यही रूप पढ़ा जाना चाहिए, जैसा की (D) हस्तलिपि के अनुसार मृच्छ ७७, १ में भी यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] विक्र ४५, २१) ; माग में ताए का प्रचलन है (मृच्छ १११, २१) ; पै में तीए चलता है (हेच ४, ३२३) और अप में तार्ऍ रूप है (हेच ४, ३७ ,२) । — विशुद्ध अपादानकारक के रूप में अ माग और जै महा० में ताओ रूप मिलता है (उदाहरणार्थ, ओव § २ १ उवास § ९ और १२५ आव एर्से ८, ४८ ; सगर ६, ४) । यह रूप अ माग में स्त्रीलिंग में भी चलता है (दस ६१३, २४) । व्याकरणकारों द्वारा (वर ६,९ और १ हेच २ ११ १, ११ और १७ ; मार्क पन्ना ४६) बताये गये रूप तत्तो और तत्तो तथा शौर और माग में तदो (क्रम १ ५ यहाँ तदत्तो रूप भी दिया गया है), तो और तम्हा का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में किया जाता है तम्हा केवल अ माग और जै शौर में काम में आता है (पव ३८ ८ ; ३८१, २ ३८२, २१ और २७ ३८४ ३६) तो जो महा अ माग जै महा और अप के अतिरिक्त (हेच में यह शब्द देखिए), माग के पद्य में भी चलता है (मृच्छ ११, ११) समवत् = अतस् (§ १४२) । इनके साथ-साथ अ माग तम्मोहिंतो रूप मिलता है (विवाह १ ४० ११२९ ; १२४ और उसके बाद ; १२८१ ; १२८८ और उसके बाद ; नायाध ११७८) और महा जै महा तथा जै शौर में ता भी चलता है (पव ३९८, १ १) ; शौर में भी यह रूप पाया जाता है (ललित ५५५ २ और ५६१ १५ ; मृच्छ २ ११ ; १८ और २२ ; १ २) ; माग में देखा जाता है (ललित ५६५, ८ और १५ ; ५६७ १ ; मृच्छ २ २१ ; २१, १२) ; ढक्की में भी आता है (मृच्छ २९, १५ १ ११ ; ३२,८) ; आव में है (मृच्छ १ १, २१ और १ ५ २) ; दाक्षि में भी है (मृच्छ १ ११ और ९ ; १ २ १८ ; १ १ १६ १ ८ १९) ; अप में इसका प्रचलन है (हेच० ४, ३७ , १) । ता = वैदिक तात् किन्तु भूल से = तावत् बनाया जाता है। अप में हेच ४, १५५ में तहां

रूप भी देता है। — सम्बन्ध पुलिंग और नपुसकलिंग : महा०, अ०माग०, जै०-महा०, जै०शौर०, शौर० और ढक्की मे **तस्स** रूप पाया जाता है और पल्लवदानपत्रो में **तस** प्रयुक्त हुआ है (७,४१ और ४५), माग० मे **तश्श** चलता है (मृच्छ० १४, १ और ७ ; १९, १०, ३७,२५) और **ताह** भी मिलता है (मृच्छ० १३, २५, ३६, १३, ११२, ९, १६४, २), महा० मे **तास** भी है (वर० ६, ५ और ११, हेच० ३, ६३, वेताल० पेज २१८ कथासख्या १५), अप० मे **तस्सु**, **तसु**, **तासु** और **तहो॑** रूप काम मे लाये जाते हैं (हेच० में **त-** शब्द देखिए), स्त्रीलिंग : महा० में **तिस्सा**, **तीए** और **तीअ** रूप आये है, वर० ६, ६, हेच० ३, ६४ के अनुसार **तीआ** और **तीइ** रूप भी होते है, अ०माग० और जै०महा० मे **तीसे** है (यह रूप वर० और हेच० मे भी मिलता है), **ताए** और **तीए** रूप भी चलते है, शौर० मे **ताए** (मृच्छ० ७९, ३, ८८, २०, शकु० २१, ८, विक्र० १६, ९ और १५), माग० मे भी **ताए** ही चलता है (मृच्छ० १३३, १९ और १५१, ५), पै० में **तीए** है (हेच० ४, ३२३) और अप० मे **तहे॑** का प्रचलन है (हेच० मे **त** शब्द देखिए), **तासु** भी आया है (यह कर्मकारक मे है और **जासु** का तुक मिलाने के लिए पद्य में आया है, पिगल १, १०९ और ११५)। — अधिकरण पुलिंग और नपुसकलिंग : महा० और जै०महा० मे **तम्मि** होता है, अ०माग० मे **तंसि** है, **तम्मि** और **तंमि** भी चलते है (आयार० १,२,३,६ मे भी), शौर० में **तस्सिं** पाया जाता है (मृच्छ० ६१, २४, शकु० ७३, ३, ७४, १, विक्र० १५, १२), माग० मे **तश्शिं** चलता है (मृच्छ० ३८, १६, १२१, १९, प्रबोध० ३२, ७), हेच० ३, ११ के अनुसार इस प्राकृत बोली में **तं** रूप भी काम में आता है। जै०शौर मे **तम्हि** रूप अशुद्ध है (कत्तिगे० ४००, ३२२)। इसके पास में ही शुद्ध रूप **तम्मि** भी आया है। क्रम० ५, ५ के अनुसार अप० में **तद्रु** रूप भी है जो इसके जोड के सर्वनाम **-यद्रु** के साथ आता है (§ ४२७)। 'वहॉ' और 'वहॉ को' के अर्थ में **तहिं** का बहुत अधिक प्रचार है (वर० ६, ७, हेच० ३, ६०) और यह प्रचार सभी प्राकृत बोलियों में है। जैसा सस्कृत मे **तत्र** का होता है वैसा ही प्राकृत में **तत्थ** का प्रयोग अधिकरण के रूप में होता है (वर० ६, ७, हेच० २, १६१, हेच० ने **तह** और **तहि** रूप भी दिये हैं)। स्त्रीलिंग मे **तीए** और **तीअ** रूप मिलते है तथा हेच० ३, ६० के अनुसार **ताहिं** और **ताए** भी होते हैं, अ०माग० में **तीसे** चलता है (ओव० § ८३, नायाध० ११४८)। महा०, अ०माग० और जै०महा० **ताहे** भी जो **तासे** के स्थान में है (यह **तीसे** का समानार्थी और जोड का है) अधिकरण स्त्रीलिंग माना जाना चाहिए। यह अधिकाश में **जाहे** के साथ आता है और इसका अर्थ 'तब' = **तदा** होता है (वर० ६, ८, हेच० ३, ६५, गउड० ; रावण०, एत्सें० में **ताहे** और **जाहे** शब्द देखिए, उवास० में **त-** और **ज-** देखिए, नायाध० § १४३, पेज ७६८, ९४४, १०५२, १४२०, १४३५ आदि आदि)। — बहुवचन . कर्त्ता **-ते**, स्त्रीलिंग **ताओ** और नपुसकलिंग **ताइं** होता है तथा **स** भी प्राकृत बोलियों में ये ही काम मे आते हैं, अ०माग० और जै०महा० में **ताणि** भी

५६१, ११ और ५६२, २१ ; मृच्छ० २, १८ शकु २७, ६ माग० में : ललित ५५५, १९ ; मृच्छ ४ , ९ ढक्की में : मृच्छ ११, ४ ; १२, ३ और ८; १५, ७; आव में मृच्छ १०२,१ दाक्षि में : मृच्छ० १ २,१९; अप में : मृच्छ १ २, १९ अप में : हेच० ४, १६) ; अप में 'इसलिए' के अर्थ में ते भी मिलता है (हेच० ४, १६ § २६८ देखिए और § ४२७ की तुलना कीजिए [इस तं सर्व नाम से मिलकर जर्मन शब्द दारुम् (Darum) है। इसकी तुलना महत्वपूर्ण है। —अनु]) और तं तु शब्द संयोग में तु पाया जाता है (विक्र ५१, १९)। यह तु § ४२७ में वर्णित ग्रु के जोड़-तोड़ का है। — कर्म पुलिंग और स्त्रीलिंग सभी प्राकृत बोलियों में तं है। — करण : तेण है, अ माग में तेण पाया जाता है, अप तें रूप देखने में आता है (हेच में त– शब्द देखिए) हच १ ६९ के अनुसार तिणा रूप भी होता है ; स्त्रीलिंग : महा में तीए और तीअ रूप आये हैं, अ माग और जै महा में तीए तथा ताए रूप हैं शौर में ताए चलता है (ललित ५५५, १ ; मृच्छ ७९, १ शकु ८ , ४ [तए पाठ के स्थान में यही रूप पढ़ा जाना चाहिए, जैसा डी (D) हस्तलिपि के अनुसार मृच्छ ७७, १ में भी यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] विक्र ४५, २१) ; माग में ताए का प्रचलन है (मृच्छ १११, २१) पै में तीए चलता है (हेच ४, ३२३) और अप में ताएँ रूप है (हेच ४, ३७ ,२)। — विशुद्ध अपादानकारक के रूप में अ माग और जै महा मे ताओ रूप मिलता है (उदाहरणार्थ, ओव § २ १ ; उवास § ९ और १२५ ; आव एर्त्से ८, ४८ ; सगर ६, ४)। यह रूप अ माग में स्त्रीलिंग में भी चलता है (दस ६१ , २४)। व्याकरणकारों द्वारा (वर ६,९ और १ हेच २ १६ ; १ ६६ और १७ ; मार्क पन्ना ४६) बताये गये रूप तत्तो और तओ तथा शौर और माग० में तदो (क्रम १, ५ ; यहाँ तदुओ रूप भी दिया गया है), तो और तम्हा का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में किया जाता है तम्हा केवल अ माग और जै शौर में काम में आता है (पव १८ , ८ ; ३८१ २ ; ३८२ २१ और २७ ; ३८४, ३६) तो जो महा अ माग जै महा और अप के अतिरिक्त (हेच में यह शब्द देखिए), माग के पद्य में भी चलता है (मृच्छ ११, ११) समभत् = असत् (§ १४२)। इनके साथ-साथ अ माग तओहिंतो रूप मिलता है (विवाह १ ४७ ११८ १२४ और उसके बाद १२८१ १२८८ और उसके बाद ; नायाध ११७८) और महा जै०महा तथा जै शौर में ता भी चलता है (पव ३९८, १ १) शौर में भी यह रूप पाया जाता है (ललित ५५५ २ और ५६१ १५ मृच्छ ९ १६ १८ और २२ ३, २) ; माग में देखा जाता है (ललित ५६५, ८ और १९ ; ५६७ १ ; मृच्छ २ २१ २१ १२) ; ढक्की में भी आया है (मृच्छ २९ १५ ३ ११ ; ३२८) ; आव में है (मृच्छ १ १, २१ और १ ५ २) ; दाक्षि में भी है (मृच्छ १ १,१ और ९ ; १ २, १८ ; १ ३ १६ ; १ ८ ११) ; अप में इसका प्रचलन है (हेच ४, ३७ , १)। ता = वैदिक तात्[1] किन्तु भ्रम से = तावत् बनाया जाता है। अप में हेच ४, ३५५ में तहां

रूप भी देता है। — सम्बन्ध पुलिग और नपुसकलिंग : महा०, अ०माग०, जै०-महा०, जै०शौर०, शौर० और ढक्की में **तस्स** रूप पाया जाता है और पल्लवदानपत्रो में **तस** प्रयुक्त हुआ है (७,४१ और ४५), माग० मे **तश्श** चलता है (मृच्छ० १४, १ और ७, १९, १०, ३७,२५) और **ताह** भी मिलता है (मृच्छ० १३, २५, ३६, १३, ११२, ९, १६४, २), महा० में **तास** भी है (वर० ६, ५ और ११, हेच० ३, ६३, वेताल० पेज २१८ कथासख्या १५), अप० मे **तस्सु**, **तसु**, **तासु** और **तहो** रूप काम मे लाये जाते है (हेच० में **त-** शब्द देखिए), स्त्रीलिग : महा० मे **तिस्सा**, **तीए** और **तीअ** रूप आये हैं, वर० ६, ६, हेच० ३, ६४ के अनुसार **तीआ** और **तीइ** रूप भी होते है, अ०माग० और जै०महा० में **तीसे** है (यह रूप वर० और हेच० मे भी मिलता है), **ताए** और **तीए** रूप भी चलते हैं, शौर० मे **ताए** (मृच्छ० ७९, ३, ८८, २०, शकु० २१, ८, विक्र० १६, ९ और १५), माग० मे भी **ताए** ही चलता है (मृच्छ० १३३, १९ और १५१, ५), पै० में **तीए** है (हेच० ४, ३२३) और अप० मे **तहे** का प्रचलन है (हेच० में **त** शब्द देखिए), **तासु** भी आया है (यह कर्मकारक मे है और **जासु** का तुक मिलाने के लिए पद्य में आया है, पिगल १, १०९ और ११५)। — अधिकरण पुलिंग और नपुसकलिंग : महा० और जै०महा० मे **तम्मि** होता है, अ०माग० मे **तंसि** है, **तम्मि** और **तमि** भी चलते है (आयार० १,२,३,६ मे भी), शौर० में **तस्सिं** पाया जाता है (मृच्छ० ६१, २४, शकु० ७३, ३, ७४, १, विक्र० १५, १२), माग० मे **तश्शिं** चलता है (मृच्छ० ३८, १६, १२१, १९, प्रबोध० ३२, ७), हेच० ३, ११ के अनुसार इस प्राकृत वोली मे **तं** रूप भी काम मे आता है। जै०शौर मे **तम्हि** रूप अशुद्ध है (कत्तिगे० ४००, ३२२)। इसके पास में ही शुद्ध रूप **तम्मि** भी आया है। क्रम० ५, ५ के अनुसार अप० मे **तद्र** रूप भी है जो इसके जोड के सर्वनाम **-यद्र** के साथ आता है (§ ४२७)। 'वहॉ' और 'वहॉ को' के अर्थ में **तहिं** का वहुत अधिक प्रचार है (वर० ६, ७, हेच० ३, ६०) और यह प्रचार सभी प्राकृत बोलियों मे है। जैसा सस्कृत मे **तत्र** का होता है वैसा ही प्राकृत में **तत्थ** का प्रयोग अधिकरण के रूप में होता है (वर० ६, ७, हेच० २, १६१, हेच० ने **तह** और **तहि** रूप भी दिये हैं)। स्त्रीलिंग मे **तीए** और **तीअ** रूप मिलते है तथा हेच० ३, ६० के अनुसार **ताहिं** और **ताए** भी होते हैं, अ०माग० में **तीसे** चलता है (ओव० § ८३, नायाध० ११४८)। महा०, अ०माग० और जै०महा० **ताहे** भी जो **तासे** के स्थान में है (यह **तीसे** का समानार्थी और जोड का है) अधिकरण स्त्रीलिंग माना जाना चाहिए। यह अधिकाश में **जाहे** के साथ आता है और इसका अर्थ 'तब' = **तदा** होता है (वर० ६, ८, हेच० ३, ६५, गउड०, रावण०, एर्से० में **ताहे** और **जाहे** शब्द देखिए, उवास० में **त-** और **ज-** देखिए; नायाध० § १४३, पेज ७६८, ९४४, १०५२, १४२०, १४३५ आदि आदि)। — बहुवचन : कर्त्ता **-ते**, स्त्रीलिंग **ताओ** और नपुसकलिंग **ताइं** होता है तथा **स** भी प्राकृत बोलियों मे ये ही काम में आते हैं, अ०माग० और जै०महा० में **ताणि** भी

मिलता है। शौर० और माग० में से के साथ-साथ दे का व्यवहार भी किया जाता है, विशेषतः अन्य सर्वनामों के पीछे : शौर० में एदे दे मिलता है (मृच्छ० ३९, १ उत्तररा० ९८, ८ ; माल्ती० २४१, २ [यहाँ यही पढ़ा जाना चाहिए] २७३, ४) ; माग० में भी एदे दे मिलता है (मृच्छ० १८, ११), ये दे भी है (मुद्रा० १८३, २); अन्यथा शौर० में ते भी आता है (उत्तररा० ७७, ४ और ५ ; मुद्रा० २६०, १), जैसा कि ताओ भी चलता है (मृच्छ० ९५, २० ; २१, ७ ; माल्ती० ८, १ प्रबोध० १७, ८) और ताइं का भी प्रचार है (उत्तररा० ६, ५)। — कर्म : ते रूप पाया जाता है, जै०शौर० (पव० ३७९, १ ; ३८२, २१) और अप० में भी (हेच० ४, ३३६) वाक्य के आदि में शौर० में दे अशुद्ध है (उत्तररा० ७२, ५); स्त्रीलिंग का रूप अ०माग० में ताओ होता है (निरया० ५९)। — करण : तेहिं है स्त्रीलिंग में ताहिं होता है जो महा०, अ०माग० और जै०महा० में मिलता है, तेहि और ताहि रूप भी पाये जाते हैं (शौर० पुलिंग में : मृच्छ० २५, १४ ; प्रबोध० १, ९ ; १२, ११)। — अपादान : अ०माग० में तेब्भो रूप है (सूय० ११ ; क्या यह रूप शुद्ध है ?) अ०माग० और जै०महा० में तेहिंतो मिलता है (पण्णव० १८ और उसके बाद ; आव० एत्सें० ४८, १४) और जै०महा० में तेहिं भी होता है (एत्सें० १२, ५)। — सम्बन्ध : महा० में ताणम् और ताण रूप हैं ; शौर० में केवल ताणं काम में आता है (उत्तररा० ७१, १) स्त्रीलिंग में भी यह रूप मिलता है (प्रबोध० ३९, २) ; अ०माग० में तेसिं और तेसि चलते हैं, इनके स्त्रीलिंग में तासिं और तासि रूप हैं ; जै०महा० में तेसिं जिसका स्त्रीलिंग का रूप तासिं पाया जाता है और ताणं रूप भी चलता है जो पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में चलता है ; जै०शौर० में पुलिंग का रूप तेसिं है (पव० ३७९, ५ ; ३८३, ४४) ; अप० में ताण, ताहँ और तहँ हैं (हेच० में त- शब्द देखिए) ; हेमचन्द्र ४, ३ के अनुसार ताहँ महा० में भी चलता है और ३, ६२ के अनुसार तास बहुवचन के काम में भी आता है। — अधिकरण : तेसु है (हेच० ३, १३५ ; महा० में : रावण० १४, ११ ; जै०महा० में : एत्सें० ४, १) ; शौर० में भी तेसु चलता है (विक्र० १५, ६ ; मुद्रा० १८, १ ; १९, २) और तेसुं भी है (शकु० १६२, ११) ; जै०महा० और शौर० में स्त्रीलिंग का रूप तासु है (एत्सें० १५, १४ ; माल्ती० १, ५, १) अप० में ताहिँ मिलता है (हेच० ४, ४२२, १८)। अ०माग० में ताम् और तेणं के विषय में § ६८ देखिए और अ०माग० से त्ते के विषय में § ४२१।

१ हौएफर, डे प्राकृत डिआलेक्टो पेज १०१ ; पिशल, बे बाइ १९, १०१ और उसके बाद। — २ विक्रमोर्वशी पेज १०१ में बौँल्लें नसेन दे की सीमा बहुत संकुचित बाँधी है क्योंकि उसने बताया है कि यह रूप केवल जे के अनन्तर आता है, यह सम्बन्धवाचक सर्वनाम के रूप में भी नहीं आता।

§ ४२६—सर्वनाम एत- की मुख्य मुख्य बातों में त- के समान ही रूपावली की जाती है (सम्बन्धकारक के लिए एतद् देखिए ; हाल ; रावण० में एअ- देखिए ; उवास० कप्प०, नायाध०, एत्सें०, कालका० में एय- शब्द देखिए)। कर्त्ता पुलिंग

एकवचन, महा०, जै०महा०, जै०शौर०, शौर०, आव० और दाक्षि० में **एसो** रूप है (जै०शौर० में : कत्तिगे० ३९८, ३१४ , शौर० मे : मृच्छ० ६, १० , शकु० १७, ४ , विक्र० ७, २ , आव० मे: मृच्छ० ९९, १९ , १००, २३ , दाक्षि० में : मृच्छ० १०२, १६), अ०माग० मे **एसे** चलता है, पद्य में **एसो** भी आया है (उत्तर० ३६१ और उसके बाद), माग० मे **एशे** का प्रचलन है (ललित०५६५ ,६ और ८ , ५६७, २ , मृच्छ० ११, १ , प्रबोध० ३२, १० , शकु० ११३, ३ , वेणी० ३३, १५), ढक्की मे **एसु** पाया जाता है (मृच्छ० ३१, १२ , ३४, १७ , ३५, १५), अप० में **एहों** है (हेच० में **एह** शब्द देखिए) । **स** से भेद करने के लिए (§ ४२३) इसके साथ-साथ बहुधा **एस** (हेच० ३, ३) आता है, जो रूप हेमचन्द्र ३, ८५ के अनुसार स्त्रीलिंग और नपुसकलिंग के लिए काम मे आता है . **एस मही** , **एस सिरं** । **एस** का प्रयोग सज्ञा शब्दों से पहले विशेपण रूप से ही नही होता किन्तु पूर्ण सज्ञा शब्द के रूप मे भी होता है और वह भी पद्य तथा गद्य दोनों में होता है (उदाहरणार्थ, जै०शौर० में : पव० ३७९, १ , शौर० मे : मृच्छ० ५४, १३ , विक्र० ८२, १४) । माग० मे **एष** है, पर बहुत विरल है (मृच्छ० १३९, १७), ढक्की मे : **एस** रूप मिलता है (मृच्छ० ३६, २३) । इसका स्त्रीलिंग का रूप **एसा** है (शौर० में . ललित० ५५५, २), मृच्छ० १५, २४ , विक्र० ७,१३ , शकु० १४, ६) ,पै० मे (हेच० ४,३२०), दाक्षि० में भी यह रूप है (मृच्छ० १०२, २३) , माग० में **एशा** है (मृच्छ० १०, २३ और २, ५ , १३, ७ और २४ , प्रबोध० ३२, ९), अप० में **एह** (हेच० में यह शब्द देखिए , पिगल २, ६४), पल्लवदानपत्र में नपुसकलिंग का रूप **एतं** है (६, ३०), महा० में **एअं** है, अ०माग० और जै०महा०मे **एयं** पाया जाता है, शौर०, माग०, आव० और दाक्षि० में **एदम्** आया है (शौर० में . ललित० ५५५, १८ , मृच्छ० २, १८ , विक्र० ६, १ , कर्मकारक : मृच्छ० ४१, ८ और १४ , शकु० २५, १ , विक्र० १३, ४ , माग० में : कर्त्ता- मृच्छ० ४५, २१ , १६८, १८ , १६९, ७ , कर्म- मृच्छ० २९, २४ , १३२, २१ , आव० में . कर्त्ता-मृच्छ० १००, १८ , दाक्षि० में : कर्म- मृच्छ० १००, १६), अप० मे **एहु = *एपम्** (हेच० में **एह** शब्द देखिए) कर्मकारक में ।

§ ४२७—सर्वनाम **ज-**, माग० में **य-** की रूपावली ठीक निश्चयबोधक सर्वनाम **त-** की भाँति चलती है । कर्त्ता-और कर्म कारक एकवचन नपुसकलिंग मे अप० में बहुत अधिक काम में आनेवाले **जं** (हेच० में **जो** शब्द देखिए) के साथ-साथ **जु** भी चलता है (हेच० ४, ३५०, १ , ४१८, २) , **जं जु** में (विक्र० ५५, १९ , § ४२५ में **तं तु** की तुलना कीजिए) दोनों रूप एक साथ आये हैं । अप० में इनके अतिरिक्त **ध्रुं** रूप भी काम में आता है (हेच० ४, ३६० , § ४२५ में **त्रं** की तुलना कीजिए , [**ध्रुं** और **दारुम्** भी, जिसकी तुलना **त्रं** से की गयी थी, तुलना करने योग्य है । —अनु०]) । क्रम० ५, ४९ के अनुसार कर्मकारक एकवचन में **ज्जुं** रूप भी काम में लाया जाता है और निश्चयबोधक सर्वनाम के लिए **त्रुं** [पाठक देखें कि यह जर्मन **दारुम्** का मिलता-जुलता रूप है । —अनु०] । इसका उदाहरण मिलता है : **ज्जुं**

चित्तेसि प्र पावसि = यच् चिन्तयसि तद् प्राप्नोषि। अ माग जद् मत्थि और माग यद् इसमें मैं प्राचीन रूप यद् बना रह गया है (§ ४२१)। —हेच० १, ६९ के अनुसार करणकारक एकवचन में जिणा भी होता है अप मे जे रूप है (हेच ४, ३५०, १) तथा इसके साथ-साथ जेण भी चलता है [यह रूप बंगला में चलता है, लिखा जाता है येन और पढ़ा जाता है जेनो। —अनु०] (हेच में जो शब्द देखिए) पिंगल २, २७२ और १८० में जिणि रूप आया है इस स्थान में जिण = जिणा पढ़ा जाना चाहिए [यह रूप बाद को हिन्दी में बहुवचन जिन बन गया। — अनु]। अपादान में जाओ, जओ, जदो, जत्तो और जम्हा के (वर ६, ० हेच २, १६० १, ६६), जिनका उल्लेख § ४२५ में हो चुका है के साथ साथ जा = वैदिक यात् (ने० बाइ ११, १७२) भी है, अप में जहां भी मिलता है जिसका उल्लेख हेच ने ४ ३५५ में किया है। — सम्बन्धकारक में माग में यश्श के (मृच्छ १९, १ १६५ ७) साथ साथ याह रूप भी मिलता है (मृच्छ० ११२, ९) अप में जासु और जसु रूप हैं (हेच में जो शब्द देखिए, पिंगल १ ६८ ; ८१ अ ; ८९ अ १३५ आदि आदि), यह रूप स्त्रीलिंग में भी चलता है (हेच ४, ३६८ ; पिंगल १, १ ९ और १११ तथा उसके बाद), इसके स्थान में महा में जीअ और जीए (गउड ; हाल में ज — शब्द देखिए तथा जिस्सा रूप आते हैं (वर ६, ६ ; हेच० ३, ६४ ; कर्पूर० ४९, ४ और ७ ; ८४, ११) वर० और हेच के अनुसार जीआ, जीइ और जीसे भी काम में लाये जाते हैं अप० में जाहे है जो *जास्ते के स्थान में आया है (हेच० ४,३५९) शौर० में जाए है (मृच्छ० १० २५ ; १७२, ५ प्रबोध ३९ ६)। — अ माग में अधिकरणकारक में जंसि - यस्मिन् है पद में जंसी रूप भी पाया जाता है (§ ७५), यह कभी कभी स्त्रीलिंग के लिए भी काम मे आता है जंसी गुहाए आया है (सूय २७३), यह नइ = नदी के लिए (सूय २९७ में) और माया = मौः के लिए भी प्रयुक्त हुआ है (उत्तर ७१६ में) अप जस्सम्मि = यस्याम् आया है (पिंगल १ ५१ में) अ माग में जस्संसि है किन्तु यह सम्बन्धकारक है (विवाह २६४)। हेच ३, ६ के अनुसार जाए और जीए के साथ-साथ स्त्रीलिंग में जाहिं रूप भी काम में आता है जैसे पुलिंग और नपुंसकलिंग में जहिं जो सभी प्राकृत बोलियों में बहुत अधिक आता है और जिसके अप जहाँ और जिधर का ईं। अप में जहां और जहिं रूप भी हैं (§ ७५) क्रम ५ ५ के अनुसार यत्र रूप भी चलता है जैसा में तत्र (§ ४२५) ठीक यह जँचता है कि यत्र के स्थान में जत्र लिखा जाना चाहिए। जाहे के विषय मे § ४२५ देखिए। वर ६ ७ के अनुसार अधिकरण के स्थान में जत्थ भी काम मे आता है ; इसके साथ साथ हेच २ १६१ में बताया है कि यत्र के अर्थ में जहि और जह रूप भी चलते हैं। कर्त्ता बहुवचन में अप मे साधारण रूप जे (हेच आ शब्द देखिए) के साथ-साथ जि भी मिलता है (हेच ४, ३८७, १) अ माग में नपुंसकलिंग में जाई के साथ साथ याई भी चलता है (आयार० १, १, १, ४ ; ५, ९ ; ९, १ ; २, १, २, १० ; २, ३, १, ८ २, ४, १, ८ ; २, ५, १,

१०, २, ४, २, ७, १, १, नायाध० ४५०, १२८४, १३७६ की भी तुलना कीजिए), जिसका प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में होता है और **जो = यद्** है और नायाध० ४५० के टीकाकारों के अनुसार **आइं** समझा जाना चाहिए क्योंकि यह केवल इ पहले (**पि, अवि, इद** और **अत्थि**) आता है, जिसका स्पष्टीकरण **यावि** के **य** से होता है (§ ३३५)। — अपादान बहुवचन मे अ०माग० मे **जेहिंतो** रूप पाया जाता है (पण्णव० ३०८ और उसके बाद), सम्बन्ध बहुवचन मे महा० और जै०महा० **जाण** और **जाणं** रूप मिलते है, जै०महा० में जो कि अ०माग० में सदा ही होता है, **जेसिं** और **जेसि** रूप भी चलते है, शौर० में **जाणं** है (उत्तर० ६८, ९) और अप० में **जाहँ** आता है (हेच० ४, ३५३, ४०९), स्त्रीलिंग में अ०माग० में **जासिं** है (विवाग० १८९)। अ०माग० **जाम्** और **जेणां** के विषय में § ६८ देखिए, अ०माग० **सें ज्जं** और **से जहा** के विषय मे § ४२३ देखिए। पल्लवदानपत्र में केवल कर्त्ता एकवचन का रूप **जो** पाया जाता है।

§ ४२८—प्रश्नवाचक सर्वनाम के सस्कृत की भाँति दो वर्ग हैं : **क-** और **कि-** । — **क-** वर्ग की रूपावली **त-** और **ज-** की भाँति चलती है (§ ४२५ और ४२७)। अपादानकारक के रूप **काओ, कओ, कदो, कत्तो** और **कम्हा** (वर० ६, ९, हेच० २, १६०, ३, ७१, क्रम० ३, ४९) **त-** और **ज-** की रूपावली के अनुसार विभक्त हो जाते हैं। अप० में **कउ-**(हेच० ४, ४१६-४१८) और **कहां** (हेच० ४, ३५५) रूप भी हैं, अ०माग० में **कओहिंतो** भी है (जीवा० ३४ और २६३, पण्णव० ३०४, विवाह० १०५० और उसके बाद, १३४०, १४३३, १५२२, १५२६, १५२८, १६०३ और उसके बाद)। सम्बन्धकारक में वर० ६, ५, हेच० ३, ६३, क्रम० ३, ४७ और मार्क० पन्ना ४६ में **कस्स** के साथ-साथ **कास** रूप भी दिया गया गया है (क्रम० के सस्करण मे **कासो** छपा है) जो अप० में **कासु** (हेच० ४, ३५८, २) और माग० में **काह** के रूप में सामने आता है (मृच्छ० ३८, १२), हेच० ३, ६३ के अनुसार यह स्त्रीलिंग में भी काम में आता है। अधिकरण, महा० में **कम्मि** है और अ०माग० में **कंसि** (आयार० १, २, ३, १) और **कम्हि** हैं (उत्तर० ४५४, पण्णव० ६३७), शौर० मे **कस्सिं** मिलता है (मृच्छ० ८१, २, महावीर० ९८, १४), माग० में **कश्शि** का प्रयोग किया जाता है (मृच्छ० ८०, २१, प्रबोध० ५०, १३), सभी प्राकृत बोलियों में **कहिं** और **कत्थ** रूप बहुत अधिक चलते हैं (३९३, [ये रूप **कत्थ-प, कति, कित्थे, कोथा, कुठे** रूपों में कुमाउनी, नेपाली (पर्वतिया), पंजाबी, बगाल, मराठी आदि में बोले जाते हैं तथा **कहीं, कणं** आदि रूपों में हिन्दी और गुजराती में चलते है। —अनु०], इनका अर्थ 'कहाँ को' और 'कहाँ' होता है, इनके साथ साथ हेच० ने २, १६१ मे **कह** और **कहि** रूप दिये हैं जैसा उसने स्त्रीलिंग के लिए ३, ६० मे **काए** और **काहिं** रूप दिये हैं। अ०माग० में **काहे** का अर्थ 'कब' है (वर० ६, ८, हेच० ३, ६५, क्रम० ३, ४४, मार्क० पन्ना० ४६, विवाह० १५३) जिसका स्पष्टीकरण **ताहे** और **जाहे** की भाँति ही होता है (§ ४२५ और ४२७)। यह अप० **काहे** में सबधकारक के

रूप में दिखाई देता है (हेच० ४, १५९)। कर्ता बहुवचन स्त्रीलिंग में शौर० में बहुधा काओ के स्थान में का का प्रयोग पाया जाता है, जो बोलचाल में मुहावरे की भाँति काम में आता है : का अम्हे [का वयं]; यह सम्बन्ध- और अधिकरण कारकों अथवा सामान्य धातु (infinitive) के साथ आता है (शकु० ११, १२ मालवि ४१, १२ ६५, १)। इस दृष्टि से काओ का संशोधन किया जाना चाहिए (§ ३७६)[1] । अप० नपुंसकलिंग काइँ (हेच में यह शब्द देखिए प्रबन्ध १ १, ५) किं की भाँति काम में आता है, 'क्यों' और 'किस कारण' के अर्थ में इसका प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में होता है, इसी भाँति कहँ भी काम में आता है (हेच ४, ४२६ पिङ्ग० ५२, ११)। सम्बन्ध- महा में कार्ण और काण है [कुमाउनी में कार्ण का कनन् हो गया है। —अनु] (गउड० में किं देखिए) अ०माग और जै०महा में केत्ति रूप है। पल्लवदानपत्र में कर्ता एकवचन में कोचि में को रूप मिलता है (६ ४०)। — सभी प्राकृत बोलियों में कि- वर्ग के कर्ता- और कर्मकारक एकवचन नपुंसकलिंग में किं = किम् पाया जाता है। शौर० किंति (कवि ५५५, ८) जिसे बोहटलिंक और बेनी[1] *किंवृति (किव्वृति) का रूप मानते हैं और जो शकुंतला १६, ४ में और कहीं कहीं अन्यत्र भी पाया जाता है, किं ति' का अशुद्ध रूप माना जाना चाहिए। करणकारक का रूप किणा (हेच० ३, ६९ क्रम ३, ५५ ; मार्क० पन्ना० ४५) महा० किणा वि (गउड ४११) में मिलता है और अ माग में 'किस प्रकार से' और 'किसके द्वारा' अर्थ में क्रियाविशेषण रूप में काम में आता है (उवास § १६७)। इसके अनुकरण पर ही जिणा और तिणा बनाये गये होंगे। अपादानकारक के रूप में हेमचन्द्र ने ३, ६८ में किणो और कीस रूप दिये हैं, हेमचन्द्र २, २१६ में भी किणो आया है यह रूप क्रमदीश्वर ४ ८१ में महा की भाँति (गउड १८२ ; हाल में यह शब्द देखिए) प्रश्नसूचक शब्द के काम में लाया गया है। कीस जिसका माग रूप कीश होता है महा में रावण में आता है (हाल ; रावण § किन्तु गउड में नहीं), जै महा में यह रूप पाया है (आव एर्त्से १८, १८ एर्त्से) अ माग में भी यह काम में आता है (हाल रावण § ११ ; दस नि ६४८, ३१ और ३२), शौर और माग में यह विशेषकर बहुत अधिक आता है (शौर के लिए : मृच्छ २१ ८ ; ९९, १८ ; १५१ १२ ; १५२ १२; १६१,१६ ; रत्ना ३० ,१ ; २९५,११ ; २९९ १ और १५ ; १ १ १५ ; १ २५ ; १ २ ३१ और १० ; १ ५ २८ ; ११ , ९१ ; ११८, १२ ; ११९ ३१ ; ११७ ११ ; मालती २५१, ५ ; २६६, ६ आदि-आदि ; माग के लिए : मृच्छ ११ १७ , ११८, ८ ; १२१ २ ; १५१, २४ ; १० , १९ ; पबो ३२ १६), किन्तु कालिदास के ग्रन्थों में यह रूप नहीं है (इस ३, ६८ पर पिशल की टीका)। यद्यपि यह कीस रूप बाद को अपादानकारक के रूप में काम में लाया गया है और माग में कीश काशकाला = कस्मात् कारणात् है (वेणी ४९, ६) किन्तु यह अपने मूल रूप के अनुसार सम्प्रदानकारक है और पाली किस्स के समान ही है, यह रूप क्रमदीश्वर ने ३, ८६ में दिया है। इसका अर्थ क्रियाविशेषण व कारण

रखनेवाला 'किस लिए' है, जैसा क्रमदीश्वर ने ४, ८३ में उल्लेख किया है। मृच्छ० ११२, ८ मे इसका अर्थ 'क्या' है जो वास्तव में ध्यान देने योग्य है। इसके अनुसार **किणो** सम्बन्धकारक में माना जाना चाहिए। सम्बन्धकारक एकवचन स्त्रीलिंग के रूप वररुचि ६,६, हेमचन्द्र ३,६४, क्रमदीश्वर ३, ४६ और मार्कंडेय पन्ना ४६ में **किस्सा, कीसे, कीअ, कीआ, कीइ** और **कीए** रूप दिये गये है। इनमें से अन्तिम रूप हेमचन्द्र ने ३,६० में बताया है कि अधिकरणकारक के रूप **कीअ** के स्थान में आता है और हाल ६०४ में भी आया है तथा गउडवहो ११२३ और ११५२ में **कीए** के स्थान में यही रूप पढा जाना चाहिए पर गउडवहो ११४४ में शुद्ध रूप आया है। — अप० में प्रश्नवाचक सर्वनाम **कवण** भी है [इससे हिन्दी रूप **कौन** निकला है। — अनु०], इससे कर्त्ता एकवचन पुलिंग का रूप **कवणु**, स्त्रीलिंग का रूप **कवण**, करण एकवचन नपुसकलिंग **कवणेण**, सम्बन्ध एकवचन पुलिंग **कवणहें** (हेच० में **कवण** शब्द देखिए) और कर्म एकवचन नपुसकलिंग में **कवणु** मिलता है (प्रबन्ध० ७०, ११ और १३)। इस सम्बन्ध मे सस्कृत **कवपथ, कवाग्नि, कवोष्ण** और प्राकृत **कवट्टिअ** से तुलना कीजिए (§ २४६)।

१. लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३२० में यह शुद्ध रूप दे गया था ; मालविकाग्निमित्र, पेज १९१ मे बौँल्लें नसेन का मत अशुद्ध है। — इडिशे स्टुडियन १४, २६२ मे वेवर की दृष्टि से यह तथ्य छूट गया है, शकुतला के देवनागरी–सस्करण की सभी हस्तलिपियों में उन सभी स्थलों में, जो उसने पेज २६३ में उद्धृत किये है, केवल **आ** है और **आओ** बोएटलिंक की अटकल है। — २. शाहवाजगढ़ी, १, १७६। — ३. गो०गे०आ० १८९४, ४८०। — ४. ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, ३५ में यह शुद्ध रूप में ही दिया गया है। — ५ गउडवहो १८९ की हरिपालकृत टीका से तुलना कीजिए. **किणो इति कस्मादर्थे देशीनिपात**।

§ ४२९—सस्कृत में 'इदम्' सर्वनाम के भीतर जितने वर्ग सम्मिलित हैं वे सभी प्राकृत बोलियों में बने रह गये है। अ– वर्ग बोलचाल के काम में बहुत ही सीमित रह गया है किन्तु **इम**– वर्ग, अप० को छोड, जिसमें इसका पता तक नहीं रह गया है, अन्य सभी प्राकृत बोलियों में प्रधान रह गया है। अ– और इ– वर्ग से बने निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं. कर्त्ता एकवचन पुलिंग में अ०माग० और जै०महा० में **अयं** है (उवास०, नायाध०, निरया० में यह शब्द देखिए, कप्प०, कालका० में **इम** देखिए), शौर० और ढक्की में **अअं** रूप चलता है (शौर० के लिए : मृच्छ० ३, २४; शकु० १३,३, विक्र० २९,१२, ढक्की के लिए : मृच्छ० ३४,९ और १२)। यद्यपि शौर० में **अअं** बहुत अधिक देखने में आता है, महा० से यह रूप सर्वथा लुप्त हो गया है। यह केवलमात्र रावणवहो १४, १४ **अहवाअं कअकज्जो = अथवायं कृतकार्य** में देखने में आता है। इसी वाक्याश को हेमचन्द्र ने भी ३,७३ में उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है, **अन्या** इस रूप के स्थान पर **इमो** ने अपना अधिकार जमा लिया है। माग० में इसका नाममात्र नहीं रह गया है। इस बोली में इसके स्थान में **एशे** काम में

आता है। अतएव ही हेच ने ४, ३०२ में अयं दाव शो आगमे = शकु ११४, ११ उद्धृत किया है, किन्तु इस स्थान में केवल द्राविडी और देवनागरी संस्करणों में अयं दिया गया है जो रूप यहाँ तथा सर्वत्र इस बोली के मुहावरे के विरुद्ध जाता है। बंबइया संस्करण में येंतके मिलता है और काश्मीरी में इत्तके है। अ माग० में अय पया रूपे = अयं प्रजत् पा काम्यामें पूरा अव्यय बन गया है यहाँ तक कि इस बोली में अयमेयारूवं, अयमेयारूवस्स और अयमेयारूवंसि रूप भी मिलते हैं'। पाली के समान ही अ माग में भी अयं स्त्रीलिंग में भी काम में लाया जाता है : अयं कोसी= इयं कोशी है और अयं अरणी = इयम् (!) अरणिः है (सूय० ५१३ और ५१४) अथवा यह पुलिंग भी माना जाता है (§ ३५८)। इनके अतिरिक्त अय मकुी = इयम् अस्थि है और अयं वट्टी = इदं (!) वृत्ति है (सूय ५१४)। अ०माग में अयं तेल्लं = इद तैलं (सूय ५१४) में यह नपुंसकलिंग में आया है अर्थात् अय– वर्ग से बनाया गया है। स्त्रीलिंग का रूप इयम् केवल शौर० में सुरक्षित रखा गया है : इमं रूप है (मृच्छ ३, ५ और २१ शकु० १४, ९ विक्र० ४८, १२) क्योंकि माग में सदा यही रूप काम में आता है, इसलिए मृच्छ १९, २ (सभी संस्करणों) मे इमं अशुद्ध पाठभेद है। यहाँ पर ठीक इसके अनन्तर आनेवाले शौर रूप इमं के अनुकरण पर आ गया है और यह कथा के साथ एक ही संयोग में आया है। नपुसकलिंग इदं महा अ माग० और शौर म सुरक्षित रह गया है और वह भी केवल कर्त्ताकारक में (कर्पूर १२, ९ [ठीक है!]; सूय ८७५ [ठीक है!] मृच्छ १ २ [सी (C) हस्तलिपि के अनुसार इमं के स्थान में यही रूप पढ़ा जाना चाहिए] ७, ८; ४२, ८; शकु १६, १; विक्र १९, १९; ४९, १५ ८६ ६) निम्नलिखित स्थलों में इसका प्रयोग कर्मकारक में हुआ है (मृच्छ २४, २१; १८ २१; ३९, १४ ४२, १ ६१, २४ १ ५, ९; १४७ १८ शकु ५७, ८; ५८ ११)। विक्रमोर्वशी ४ २ में जो इदं रूप आया है उसके स्थान में ए (A) हस्तलिपि के अनुसार एदं पढ़ा जाना चाहिए और विक्रमोर्वशी ४७ १ के इदं के बदले, जहाँ पुलिंग के लिए यह रूप आया है, बंबइया संस्करण ७९, ३ और शंकर पांडुरंग पण्डित द्वारा सम्पादित विक्रमोर्वशी के संस्करण के अनुसार इमं पढ़ा जाना चाहिए। माग में इदं तें पिर्हं में देखने में आया है जो ललितविग्रहराजनाटक ५६६ २ में मिलता है तथा तें पेरें का अशुद्ध रूप है। माग में कर्त्ता– और कर्म– कारक नपुंसकलिंग में केवल इमं रूप है (मृच्छ १ ८, ११ १६६ २४; १६९ १२) जो पे मे कर्त्ताकारक के काम में आता है (देख ४, ३६१)। — करण : महा में एण रूप है (रावण १४, ४७) अप म एं रूप मिलता है (पिंग ५८, ११)। — अपादान : महा में आ है आ = वैदिक रूप आत् और यह तावत् की भाँति आया है। — सम्बंध महा और जै महा में अस्स = अस्य है (हेच ३, ७४; क्रम ३ ५६ गाउ पद्य ४७; कर्पूर ३ ५; प्रचलो १ १५; कालका लिखा लेख ४ ५); संस्करणों और अन्य हस्तलिपियों में मिलनेवाले उरस्स के स्थान में वेबर ने हाल ७९ की टीका में यह रूप अशुद्ध दिया है। विक्रमोर्वशी २१, १ में शौर में

भी यह रूप अशुद्ध आया है, यहाँ **-सूइदं अस्स** के स्थान में बी और पी. (B.P.) हस्तलिपियों के अनुसार और १८३३ के कलकतिया संस्करण के साथ **-सूइदस्स** पढा जाना चाहिए। यह रूप प्रबोधचन्द्रोदय ८,७ में भी अशुद्ध दिया गया है। यहाँ **जदो स्स** (चारों संस्करणों में) के बदले **जदो से** पढा जाना चाहिए। — अधिकरण : **अस्सि** = **अस्मिन्** है (वर० ६, १५, हेच० ३, ७४, क्रम० ३,५६, मार्क० पन्ना ४७); अ०माग० में यह पद्य में आया है (आयार० १, ४, १, २, सूय० ३२८, ५३७, ९३८, ९४१, ९५०, उत्तर० २२) और गद्य में भी पाया जाता है (आयार० १, १, २, १, १, ५, ३, ३, २, २, १, २, २, २, ९, सूय० ६९५; विवाह० १६३, जीवा० ७९७, ८०१), जैसा पल्लवदानपत्र ७, ४६ में[1] **चस्सि = चास्मिन्** है। शौर० वाक्यांश **कणिट्ठमादामह अस्सि** (महावीर० ९८, ४) के स्थान में बबइया संस्करण २११, ८ के अनुसार **-मादामहस्स** पढा जाना चाहिए। यह शुद्ध रूप शौर० में पार्वतीपरिणय ५, १० और मल्लिकामारुतम् २११, २३ में आया है। — करण बहुवचन : **एहि** है, अ०माग० और ढक्की में **एहिं** आया है (राय० २४९, मृच्छ० ३२, ७), स्त्रीलिंग में **आहि** रूप है। अधिकरणकारक में जै०महा० में **एसु** रूप है (हेच० ३, ७४, तीर्थ० ७, १६)। महा० में सम्बन्धकारक का रूप **एसिं** मिलता है (हाल ७७१)। — अधिकरणकारक के **अअस्मि** और **ईअम्मि** रूप इनके साथ ही सम्मिलित किये जाने चाहिए न कि व्याकरणकारों के (हेच० ३,८४, सिंहराज० पन्ना २२) **एतद्** के साथ। त्रिविक्रम २, २, ८७ और सिंहराज० पन्ना २२ में **ईअम्मि** के स्थान में इसका शुद्ध रूप **इअम्मि** देते हैं, जैसा हेमचन्द्र ३,८९ में **अदस्** के प्राकृत रूप **अअम्मि** और **इअम्मि** देता है [भण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट के संस्करण में इस स्थान पर **अयम्मि** और **ईअम्मि** रूप हैं। —अनु०]। इनमें से **अअम्मि** का सम्बन्ध **अद = अदस्** से भी लगाया जा सकता है और **अअ- = अय-** से भी (§ १२१) जैसा कि अ०माग० अधिकरणकारक एकवचन **अयंसि** (उत्तर० ४९८) तथा अ०माग० कर्त्ताकारक एकवचन नपुंसकलिंग **अयं** (सूय० ५९४, इस विषय पर ऊपर भी देखिए) और कम से कम अर्थ के अनुसार अप० रूप **आअ-** भी प्रमाणित करता है। इस **आअ-** के निम्नलिखित रूप मिलते हैं : **आएण = अनेन, आअहों = अस्य, आअहिं = अस्मिन्** और **आअइ = इमानि** (हेच० ४, ३६५, ३८३, ३)। **इअम्मि** इद से सम्बन्धित है अर्थात् इसका सम्बन्ध **इअ- = इद्-** वर्ग से है। किसी **इ-**वर्ग का अधिकरणकारक का रूप **इह** है जिसका अर्थ (यहाँ) होता है और = ***इत्थ** है (§ २६६, वर० ६, १७, हेच० ३, ७५ और ७६), अप० में यह पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों रूपों में चलता है = **अस्मिन्** और **अस्याम्**, अप० का **इत्थिं** रूप जो सब प्राकृत बोलियों में **ऍत्थ** है = वैदिक **इत्था** (§ १०७) है, और महा०, अ०माग० तथा जै०महा० रूप **ऍण्हि** जिसका अर्थ 'अभी' है (भाम० ४, ३३, हेच० २, १३४) और जो हस्तलिपियों में **इण्हि** लिखा गया है और ग्रंथों में भी कहीं-कहीं आया है (गउड०, हाल, रावण० में यह शब्द देखिए) वैसा ही अशुद्ध है जैसा **इत्थ** जिसे वररुचि ६, १७ और हेमचन्द्र ३, ७६ में स्पष्ट शब्दों में निषेध करते हैं। इसलिए

आता है। अवश्य ही हेच ने ४, ३०२ में अयं दाव सो आगमे = शकु ११४, ११ उद्धृत किया है, किन्तु इस स्थान में केवल द्राविड़ी और देवनागरी संस्करणों में काम लिया गया है जो रूप यहाँ तथा सर्वत्र इस बोली के मुहावरे के विरुद्ध जाता है। बंगला संस्करण में पेक्खके मिलता है और काश्मीरी में इक्खके है। अ माग में अयं पया रूये = अयं प्रजा रूपः वाक्यांश में पूरा अव्यय बन गया है यहाँ तक कि इस बोली में अयमेयारूवं, अयमेयारूवस्स और अयमेयारूवंसि रूप भी मिलते हैं[1]। पाली के समान ही अ माग में भी अयं स्त्रीलिंग में भी काम में लाया जाता है : अयं कोसी = इयं कोशी है और अयं अरणी = इयम् (!) अरणिः है (सूय० ५११ और ५१८) अथवा यह पुल्लिंग भी माना जाता है (§ ३५८)। इनके अतिरिक्त अयं अट्ठी = इयम् अस्थि है और अयं वुट्ठी = इयं (!) वृष्टि है (सूय ५९४)। अ माग में अयं तेल्लं = इदं तैलं (सूय ५९४) में यह नपुंसकलिंग में आया है अर्थात् अय- वर्ग से बनाया गया है। स्त्रीलिंग का रूप इयम् केवल शौर० में सुरक्षित रखा गया है : इअं रूप है (मृच्छ १, ५ और २१ शकु १४, १ विक्र ४८, १२) क्योंकि माग में सदा यही रूप काम में आता है, इसलिए मृच्छ ११ २ (सभी संस्करणों) में इअं अशुद्ध पाठभेद है। यहाँ पर ठीक इसके अनन्तर आनेवाले शौर रूप इअं के अनुकरण पर आ गया है और यह कस्सा के साथ एक ही संयोग में आया है। नपुंसकलिंग इदं महा अ माग० और शौर में सुरक्षित रह गया है और यह भी केवल कर्ताकारक में (कर्पूर० ९२ ६ [ठीक है !] सूय ८७५ [ठीक है !] मृच्छ १ २ [सी (C) हस्तलिपि के अनुसार इअं के स्थान में यही रूप पढ़ा जाना चाहिए]; ७, ८ ४२, ८ शकु १५ १; विक्र १९, १५ ४५, १५; ८१, ६) निम्नलिखित स्थलों में इसका प्रयोग कर्मकारक में हुआ है (मृच्छ २४, २१; १८ २१; ११ १४ ४२ १ ६१, २४ १ ६, ९; १४७, १८; शकु ५७, ८ ५८, ११)। विक्रमोर्वशी ४ , २ में जो इदं रूप आया है उसके स्थान में ए. (A) हस्तलिपि के अनुसार एदं पढ़ा जाना चाहिए और विक्रमोर्वशी ४७ १ के इदं के बदले, यहाँ पुल्लिंग के लिए यह रूप आया है, बंबइया संस्करण ७९, २ और शंकर पाण्डुरंग पण्डित द्वारा सम्पादित विक्रमोर्वशी के संस्करण के अनुसार इमं पढ़ा जाना चाहिए। माग में इदं से यिदं में देखने में आता है जो ललितविग्रहराजनाटक ५६६, २ में मिलता है तथा सं यदं का अशुद्ध रूप है। माग में कर्ता- और कर्म- कारक नपुंसकलिंग में केवल इमं रूप है (मृच्छ १ ८, ११; १६६ २४; १६९ २२) जो पे में कर्मकारक के काम में आता है (हेच ४ ३२३)। — करण : महा में एण रूप है (रावण १८, ७०), अप में एं रूप मिलता है (पिङ्ग ५८, ११)। — अपादान महा में आ है जो = वैदिक रूप आत् और यह साधन् की भाँति आया है। — सम्बन्ध : महा और जै महा में अस्स = अस्य है (हेच ३,७४; गउड ३ ५६; मार्क पन्ना ४७; कर्पूर ६ ५; पार्वती १ १५; कक्कुक शिला लेख ८ ९); संस्करणों और कुछ हस्तलिपियों में मिलनेवाले जास के स्थान में बवर ने हाल १०९ की टीका में यह रूप शुद्ध किया है। विक्रमोर्वशी २१, १ में शौर में

५, ४८, ३ आदि आदि मे मिलता है। ये बोली की परम्परा और व्याकरण की भूलें हैं। अप० में केवल नपुंसकलिंग का रूप **इमु** है। अ०माग० मे वाक्यांश **इम् पयारूव में इमे** का प्रयोग ठीक **अयं** की भाँति किया गया है (§ ४१९), जिस कारण लेखकों द्वारा **इम्' पयारूवा** (कर्त्ता एकवचन स्त्रीलिंग, उवास० § ११३, १६७ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए, इस ग्रन्थ में अन्यत्र यह रूप देखिए, १६८]) और **इम्' पयारूवेणं** (उवास० § ७२ मे अन्यत्र यह रूप देखिए) का भी प्रयोग किया गया है। इस पर § १७३ मे बताये गये नियम कि अनुनासिक ध्वनि से ध्वनित वर्ण के अनन्तर अनुस्वार का लोप हो जाता है, का भी बहुत प्रभाव पडा है। — कर्म पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग का रूप **इमं** है (पुलिंग : शौर० मे मृच्छ० ४५, १८, शकु० १४, २, रत्ना० २९७, २३, नपुसकलिंग § ४२९), अप० मे नपुसकलिंग मे **इमु** रूप है (हेच०, क्रम० ५, १०)। — करण पुलिंग और नपुसकलिंग : महा० मे **इमेण** है, अ०माग० मे **इमेणं** और **इमेण** मिलते हैं, जै०महा० में **इमेण** और **इमिणा** चलते है, शौर० और माग० में केवल **इमिणा** रूप पाया जाता है (शौर० के लिए मृच्छ० २४, १६, शकु० १६, १०, विक्र० २४, १०, माग० के लिए : वेणी० ३५, १), स्त्रीलिंग : महा० में **इमीए** और **इमीअ** रूप है (शकु० १०१, १३), शौर० में **इमाए** रूप हैं (मृच्छ० ९०, १६, शकु० ८१, १०, रत्ना० २९१, २)। विद्धशालभंजिका ९६, ८ में अशुद्ध रूप **इमीअ** मिलता है। यह इसी ग्रन्थ में अन्यत्र मिलनेवाले रूप के अनुसार **इअं** पढा जाना चाहिए, जैसा कि **णिज्झाअदि** = **निर्ध्यायति** से पता लगता है। — अपादान : अ०माग० में (सूय० ६३० और ६३५), जै०महा० में **इमाओ** रूप है, शौर० और माग० में **इमादो** मिलता है (शौर० में : मृच्छ० १२, २५, ७४, २५, मुद्रा० ५७, ३, रत्ना० २९९, ११, माग० में : ललित० ५६५, ८), यही रूप स्त्रीलिंग मे भी काम में आता है (अ०माग० में : आयार० १, १, १, ४, शौर० मे रत्ना० ३१५, १२, माग० में : मृच्छ० १६२, २३)। शौर० **इमाए** के सम्बन्ध में (विक्र० १७, १) यह वर्णन लागू होता है जो § ३७५ में किया गया है। — सम्बन्ध **इमस्स** है (शौर० में : १४८, १२, शकु० १०८, १, विक्र० ४५, ४), माग० में **इमश्श** चलता है (मृच्छ० ३२, १७, १५२, ६, शकु० ११८, २), स्त्रीलिंग : महा० मे **इमीए** है और **इमीअ** भी चलता है (कर्पूर० २७, १२), अ०माग० में **इमीसे** रूप है, जै०महा० में **इमीए** और **इमाए** का प्रचलन है, शौर० में **इमाए** आया है (शकु० १६८, १४)। — अधिकरण पुलिंग और नपुसकलिंग : महा० में **इमम्मि** है, अ०माग० के पद्य में **इमम्मि** मिलता है (उत्तर० १८०, आयार० २, १६, १२), अ०माग० गद्य में **इमंसि** चलता है (आयार० २, ३, १, २, २, ५, २, ७, विवाह० १२७५, ओव० § १०५), शौर० में **इमस्सिं** पाया जाता है (मृच्छ० ६५, ५, शकु० ३६, १६, ५३, ८, विक्र० १५, ४), माग० में **इमश्शिं** है (वेणी० ३३, ७), स्त्रीलिंग : अ०माग० में **इमीसे** है (विवाह० ८१ और उसके बाद, उवास० § ७४, २५३, २५७, ठाणग० ३१ और ७९, सम० ६६), जै०महा० में **इमाइ** चलता है (ऋषभ० ७, इस स्थान

प्रबोधचन्द्रोदय ४६, ८ में स्वयं शौर में और पै० में भी हेच ४, ३२३ में आये हुए पत्थ के अनुसार उक्त दोनों में पत्थ [यह पत्थ बंगला और कुमाउनी पेथा, कुमाउनी पथा, पर्था आदि का मूल रूप है। —अनु] पढ़ा जाना चाहिए। माग में पर्विह [कुमाउनी में ण का ल होकर, इसका रूप पेल (= अभी) हो गया है। —अनु] केवल पद्य में आता है (मृच्छ २९, २२ ४ , ६), शौर० में यह रूप है ही नहीं। इसके स्थान में इदाणिं और दाणिं चलते हैं (हेच ४, २७७ § १४४)। इस कारण हास्यार्णव २६, ११ और कर्पूर ६२, १ तथा भारतीय संस्करणों में बहुधा इनका उपयोग अशुद्ध है। यह शब्द अप में नहीं पाया जाता। उसमें पर्वेहि रूप है जिसका अर्थ 'अभी' है [भंडारकर रिसर्च इन्स्टि ट्यूट वाले संस्करण में पम्वहिं है जो कई कारणों में अशुद्ध लगता है। —अनु]। देशी नाममाला १, ९ में आया हुआ रूप अज्झो (द्रोण के कोश के उद्धृत) [जिसका अर्थ एष अर्थात् 'यह' है तथा इसका स्त्रीलिंग का रूप अज्झा [= एषा। —अनु] जिनके द्वारा अपने सम्मुख उपस्थित व्यक्ति बताया जाता है, सम्प्रकारक अस्य का अशुद्ध होकर निकाला गया होगा।

१ स्त्साइटुङ डेर डौयत्शेन मौर्गेनलैण्डिशेन गेजेलशाफ्ट ४७, ५८८ और उसके बाद। — २ पिशल के बेडायत्रैगे २४ १०२। — ३ पिशल : गोएटिंगिशे गेलैर्ते आन्त्साइगेन १८९१, ३३१ और उसके बाद।

§ ४२९ — अयम् का कर्ता केवल करणकारक के रूप अणेण में बचा रह गया है और यह भी अ माग के पद्य में (आयार १, ६, ४, १), जै महा में भी है (एर्से १ , १४) और में मिलता है (मृच्छ ९५, २ ; शकु १६१ ८ विक ४१, ११) और माग में भी पाया जाता है (मृच्छ १४५, २४ मुद्रा १९२, १) ; अ माग में अणेणं रूप भी देखने में आता है (उत्तर ४८७)। — सबसे अधिक काम में आने वाला वर्ग इम– है, जिसका स्त्रीलिंग का रूप इमा– अथवा इमी– होता है (हेच ३, ७२); शौर और माग में केवल इमा– रूप पाया जाता है जैसा कि कर्ता– और कर्म–कारक एक– और बहुवचन में प्राकृत की सभी बोलियों में पाया जाता है। यह एक– और बहुवचन के सभी कारकों में काम में आया जाता है (गउड में इमम् शब्द देखिए हाल रावण ; एर्से कालका ; ऋषभ ; नायाध में इम– शब्द देखिए)। कर्ता एकवचन : इमो है अ०माग इमे हो जाता है, पद्य में इमो भी देखने में आता है (उत्तर २४७ ; दस नि ६५४, २६ ; नन्दी ८४)। स्त्रीलिंग में इमा रूप होता है और इमिआ = अइमिका रूप भी चलता है (हेच ३, ७३) नपुंसकलिंग में इमं पाया जाता है। शौर और माग में भेद लेखकों द्वारा य रूप स्वयं नपुंसकलिंग में भी नहीं (§ ४२९), काम में नहीं लाये जाते। बाद के बहुत-से नाटकों में शौर में इमा रूप भी पाया जाता है और इतना अधिक कि इनके संस्करणों की भूल का ध्यान भी छोड़ देना पड़ता है जैसा कि प्रसन्न राघव ११ ११ और १८ ; १२ ५ ९ ; १३ ; १४ ९ ; १७ ९ ; १४, ६ ; १९ १ ; ४५ १ : १२ ; १८ ; ८६, १ और २ आदि आदि ; मुकुन्दानन्द भाण १४, १९ और १७ ; १९, १४ ; ७ , १९ ; उन्मत्तराघव ८, १२ ; वृषभानुजा ३३, ९ ; २६,

५, ४८, ३ आदि आदि में मिलता है। ये बोली की परम्परा और व्याकरण की भूलें हैं। अप० में केवल नपुसकलिंग का रूप **इमु** है। अ०माग० मे वाक्याश **इम् पया-रूत्र में इमे** का प्रयोग ठीक **अयं** की भाँति किया गया है (§ ४१९), जिस कारण लेखकों द्वारा **इम्' पयारूवा** (कर्त्ता एकवचन स्त्रीलिंग , उवास० § ११३ , १६७ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए , इस ग्रन्थ में अन्यत्र यह रूप देखिए , १६८]) और **इम्' पयारूवेणं** (उवास० § ७२ में अन्यत्र यह रूप देखिए) का भी प्रयोग किया गया है। इस पर § १७३ में बताये गये नियम कि अनुनासिक ध्वनि से ध्वनित वर्ण के अनन्तर अनुस्वार का लोप हो जाता है, का भी बहुत प्रभाव पडा है। — कर्म पुलिंग, स्त्रीलिग और नपुसकलिंग का रूप **इमं** है (पुल्गि : शौर० में मृच्छ० ४५, १८ , शकु० १४, २ , रत्ना० २९७, २३ , नपुसकलिग § ४२९) , अप० में नपुस-कलिंग में **इमु** रूप है (हेच०, क्रम० ५, १०)। — करण पुलिग और नपुसकलिंग : महा० में **इमेण** है , अ०माग० में **इमेणं** और **इमेण** मिलते हैं , जै०महा० में **इमेण** और **इमिणा** चलते है , शौर० और माग० मे केवल **इमिणा** रूप पाया जाता है (शौर० के लिए . मृच्छ० २४, १६ , शकु० १६, १०, विक्र० २४, १० , माग० के लिए : वेणी० ३५, १), स्त्रीलिंग : महा० में **इमीए** और **इमीअ** रूप हैं (शकु० १०१, १३) , शौर० में **इमाए** रूप हैं (मृच्छ० ९०, १६, शकु० ८१, १० , रत्ना० २९१, २)। विद्धशालभजिका ९६, ८ में अशुद्ध रूप **इमीअ** मिलता है। यह इसी ग्रन्थ में अन्यत्र मिलनेवाले रूप के अनुसार **इअं** पढा जाना चाहिए, जैसा कि **णिज्झाअदि** = **निर्ध्यायति** से पता लगता है। — अपादान . अ०माग० मे (सूय० ६३० और ६३५), जै०महा० में **इमाओ** रूप है, शौर० और माग० मे **इमादो** मिलता है (शौर० मे : मृच्छ० १२, २५ , ७४, २५ , मुद्रा० ५७, ३ , रत्ना० २९९, ११ , माग० में : ललित० ५६५, ८), यही रूप स्त्रीलिंग में भी काम में आता है (अ०माग० में : आयार० १, १, १, ४ , शौर० में रत्ना० ३१५, १२ , माग० मे : मृच्छ० १६२, २३)। शौर० **इमाए** के सम्बन्ध में (विक्र० १७, १) यह वर्णन लागू होता है जो § ३७५ में किया गया है। — सम्बन्ध **इमस्स** है (शौर० में . १८८, १२ , शकु० १०८, १ , विक्र० ४५, ४) , माग० मे **इमश्श** चलता है (मृच्छ० ३२, १७ , १५२, ६ , शकु० ११८, २) , स्त्रीलिग . महा० में **इमीए** है और **इमीअ** भी चलता है (कर्पूर० २७, १२) , अ०माग० में **इमीसे** रूप है , जै०महा० में **इमीए** और **इमाए** का प्रचलन है , शौर० में **इमाए** आया है (शकु० १६८, १४)। — अधि-करण पुलिग और नपुसकलिंग . महा० में **इमम्मि** है , अ०माग० के पद्य में **इमम्मि** मिलता है (उत्तर० १८० , आयार० २, १६,१२), अ०माग० गद्य में **इमंसि** चलता है (आयार० २, ३, १, २ , २, ५, २, ७ , विवाह० १२७५ , ओव० § १०५), शौर० में **इमस्सिं** पाया जाता है (मृच्छ० ६५, ५ , शकु० ३६, १६ , ५३, ८ , विक्र० १५, ४) , माग० में **इमश्शिं** है (वेणी० ३३, ७) , स्त्रीलिग . अ०माग० मे **इमीसे** है (विवाह० ८१ और उसके बाद , उवास० § ७४ , २५३ , २५७ , ठाणग० ३१ और ७९ , सम० ६६) , जै०महा० में **इमाइ** चलता है (ऋषभ० ७ , इस स्थान

में आये हुए इमाई के स्थान में बंबइया संस्करण के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि एर्से० ३५, १८ में इमार्ए के लिए भी इमाइ रूप पढ़ा जाना चाहिए); शौर में इमस्सि पाया जाता है (शकु १८, ५) जिसके स्थान में इमाए की प्रतीक्षा की जानी चाहिए। — बहुवचन कर्ता पुलिंग में इमे है (शौर० में : मृच्छ० ६९, १८ विक ४१, १०; मालती १२५, ५; माग में मृच्छ ९९, ८) स्त्रीलिंग : इमाओ रूप आता है (शौर में मृच्छ० ७, १ और ७१, ८ में भी पाठ के इमा के स्थान में इमाआ पढ़ा जाना चाहिए) महा में इमा भी चलता है (कर्पूर १ १, ४) और इमीउ रूप भी मिलता है (कर्पूर १०, ९); नपुंसकलिंग इमाई होता है (शौर में : मृच्छ ९९, १६ मालती १२५, १), अ०माग और जै महा में इमाणि रूप भी मिलता है (आयार २, २, ९, १० आव०एर्से० २१, २१)। — कर्म पुलिंग : इमे रूप है; स्त्रीलिंग में जै महा में इमीओ मिलता है करण पुलिंग और नपुंसकलिंग : महा में इमहि है; अ माग और शौर में इमहिं चलता है (सूय ७७८ शकु ६२, ६; विक ४५, १; रत्ना० २९६, २१) स्त्रीलिंग में अ०माग में इमाहिं रूप मिलता है (आयार० २, २, १, १८; २, ७, २ ७)। — सम्बन्ध पुलिंग और नपुंसकलिंग में महा में इमाण है और अ माग० में इमेसिं (हेच १, ६१); स्त्रीलिंग में महा० में इमार्ण पाया जाता है और इमीणं भी (हेच १, १२); अ माग में इमासिं रूप है (उवास० § २१८) शौर में इमाणं मिलता है (शकु ११९, १; वृषभ० १९, ८)। — अधिकरण : महा में इमेसु है; शौर में इमेसुं (शकु ५१, ९ विक० ५२, १) और इमेसु भी देखने में आता है (मालती १२५, १)।

§ ४३१—एन- वर्ग केवल कर्मकारक एकवचन में पाया जाता है और यह भी केवल महा शौर और माग में, किन्तु इनमें भी बहुत कम देखने में आता है। पुलिंग- महा में एणं है (रावण ५, ६) शौर में भी यही रूप है (मृच्छ ५१ ९) माग में भी एणं (मुद्रा २६५, १) स्त्रीलिंग- भी एणं है, शौर में यह रूप चलता है (मृच्छ २४ २ ढकार की माग बोली के शब्दों को दुहराने में इस रूप का व्यवहार किया गया है) माग में (मृच्छ २१, १२; १२४, १७)। पन्ना ४७ में मार्कडेय बताता है कि इसके करणकारक एकवचन के रूप भी होते हैं [एएणा, एएण वा ५, ७५। —अनु] किन्तु ये दोनों रूप नपुंसकलिंग के हैं। ध्वनिबल (एणं) के प्रभाव अथवा प्राचीन ध्वनिबलहीन रूप एन के प्रभाव के अधीन महा, अ माग और जै महा में इण रूप बन गया है, जिसका कर्त्ता- और कर्म- कारक एकवचन नपुंसकलिंग का रूप इणं है (वर ६, १८; हेच १, ७९ क्रम ३, ५७) जो बहुत चलता है और विशेषकर अ माग में (गउड में इदम् शब्द देखिए; हाल; एर्से काल्का म इणं शब्द देखिए; आयार १, १ २, २ और ४; १ १, १ ४ ५ ४ और ६ १ तथा ७, २; १, २ ४, १; १ २ ५, ५; १, १ १ १; १, ४ २ २ आदि आदि उत्तर २८१ और उसके बाद ३५१; ३५५; ओव § ९४)। § ८१ और १७३ की तुलना कीजिए। अ माग में इणं

रूप कर्मकारक पुलिंग मे भी काम में आता है (सूय० १४२ , ३०७)। सम्भवतः यहाँ **इमं** पढा जाना चाहिए। महा०, अ०माग० और जै०महा० में कर्त्ता– और कर्मकारक नपुसकलिंग में **इणमो** भी काम में लाया जाता है (वर० ६, १८ , हेच० ३, ७९ , क्रम० ३, ५७ , मार्क० पन्ना ४७ , गउड० में **इदम्** शब्द देखिए और **एतत्** भी , सूय० २५९ , दस०नि० ६५८, ३० , ६६१, २७ , ओव० § १२४ , आव०एर्त्से० ७, २१ और २९ , १३, ११)। दसवेयालियनिज्जुत्ति ६४७, १२ में इसका प्रयोग बहुवचन में भी किया गया है : उसमें **इणमो उदाहरणा** आया है। आवस्यक एर्त्से-लुगन में लौयमान ने **इणम्– ओ** दिया है जिसका शुद्ध होना कठिन है। इस रूप का स्पष्टीकरण अनिश्चित है। इनके अतिरिक्त **इण** के द्वारा यह वर्ग दुर्बल होकर **ण–** और पै० **न** बन गया है, जो कर्मकारक एकवचन पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुसकलिंग कर्मकारक बहुवचन पुलिंग, करणकारक एकवचन और बहुवचन पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुसकलिंग में काम में लाया जाता है (हेच० ३, ७० और ७७)। कर्मकारक एकवचन पुलिंग में **णं** रूप भी मिलता है (महा० में : गउड० १०७१ , हाल १३१ ; रावण० में **ण** शब्द देखिए , अ०माग० में उत्तर० ६०१ और ६७० , शौर० में : मृच्छ० ६८, ५ , शकु० १२, २ , विक्र० १५, १३ , माग० में : मृच्छ० १६४, ११ , प्रबोध० ३२, ११ , ५३, १२ , अप० मे . हेच० ४, ३९६), स्त्रीलिग में भी **णं** होता है (महा० में : हाल , रावण० मे **ण** शब्द देखिए , शौर० में : शकु० ७७, ९ , विक्र० १२, १९, माग० मे : मृच्छ० १२३, ४ , १३२, २३), नपुसकलिंग में भी **णं** है (महा० में : रावण० में **ण** शब्द देखिए , शौर० में मृच्छ० ४५, २५ , शकु० ११, १ , विक्र० ३१, ९ माग० में : मृच्छ० ९६, १२ , ढक्की में : मृच्छ० ३१, ९)। — करणकारक पुलिंग और नपुसकलिग : महा०, जै०महा० और अप० में **णेण** रूप है (रावण० , एर्त्से० में **ण** शब्द देखिए , आव०एर्त्से० ११, २१ , १५, ३१ , १६, १५ , २८, १० , द्वार० ५०१, ३ , पिंगल १, १७), पै० में **नेन** मिलता है (हेच० ४, ३२२)[1], स्त्रीलिंग में **णाए** चलता है (हेच० ३, ७० , एर्त्से० में **ण** शब्द देखिए), पै० में **नाए** होता है (हेच० ४, ३२२)। —बहुवचन . कर्मकारक में **णे** है (हेच० ३, ७७)। — करणकारक पुलिंग और नपुसकलिग जै०महा० में **णेहिं** है (आव०एर्त्से० १८, ४ , एर्त्से० ३, २८ , द्वार० ५००, ३१ और ३५ , ५०५, २७), स्त्रीलिंग में **णाहिं** पाया जाता है (हेच० ३, ७०)। ४, ३२२ में हेमचन्द्र के कथनानुसार यह वर्ग पै० में करणकारक एकवचन तक ही सीमित है। शौर० और माग० में यह वर्ग सुसम्पादित और सुआलोचित सस्करणों में केवल कर्मकारक एकवचन में दिखाई देता है , शकुन्तला के बोएटलिंक के सस्करण ६८, १० और १०८, ८ में पाठभेद **णेण** अशुद्ध है।

१. **तत्थ च नेन। कतसिना नेन, तत्थ च नेन कतासिनानेन** पढा जाना चाहिए = **तत्र च तेन कृतस्नानेन** [हेमचन्द्र के भण्डारकर इन्स्टिट्यूट-वाले सस्करण में **तत्थ च नेन कत– सिनानेन** छपा है जो शुद्ध है। —अनु०]। § १३३ की तुलना कीजिए।

§ ४३२—सर्वनाम **अदस्** की रूपावली वररुचि ६, २३ , हेच० ३, ८८ और

में आये हुए इमाई के स्थान में बंबइया संस्करण के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि एर्त्सें २५, १८ में इमायें के लिए भी इमाइ रूप पढ़ा जाना चाहिए) शौर० में इमस्सिं पाया जाता है (शकु० १८, ५) जिसके स्थान में इमाए की प्रतीक्षा की जानी चाहिए। — बहुवचन : कर्त्ता पुल्लिंग में इमे है (शौर० में : मृच्छ० ६९, १८ ; विक्र० ४१, १९ ; माल्ती० १२५, ५ ; माग० में : मृच्छ० ९९, ८) स्त्रीलिंग : इमाओ रूप आता है (शौर० में : मृच्छ० ७, १ और ७१, ८ में भी पाठ के इमा के स्थान में इमाओ पढ़ा जाना चाहिए) महा० में इमा भी चलता है (कर्पूर० ११, ४) और इमीउ रूप भी मिलता है (कर्पूर० १०, ६) नपुंसकलिंग : इमाई होता है (शौर० में : मृच्छ० ६९, २६ ; माल्ती० १२०, १), अ०माग० और जै०महा० में इमाणि रूप भी मिलता है (आयार० २, २, २, १० ; आव०एर्त्सें० ११, २१) । — कर्म पुल्लिंग : इमे रूप है ; स्त्रीलिंग में जै०महा० में इमीओ मिलता है ; करण पुल्लिंग और नपुंसकलिंग : महा० में इमेहि है, अ०माग० और शौर० में इमेहिं चलता है (सूय० ७७८ ; शकु० ६२, ६ ; विक्र० ४५, १ ; रत्ना० २९६, २१) स्त्रीलिंग में अ०माग० में इमाहिं रूप मिलता है (आयार० २, २, १, १८ ; २, ७, २, ७) । — सम्बन्ध पुल्लिंग और नपुंसकलिंग में महा० में इमाण है और अ०माग० में इमेसिं (हेच० ३, ६१) स्त्रीलिंग में महा० में इमाणं पाया जाता है और इमीणं भी (हेच० ३, १२) ; अ०माग० में इमासिं रूप है (उवास० § २१८) शौर० में इमाणं मिलता है (शकु० ११९, १ ; वृषभ० १५, ८) । — अधिकरण : महा० में इमेसु है ; शौर० में इमेसुं (शकु० ५१, ९ ; विक्र० ५२, १) और इमेसु भी देखने में आता है (माल्ती० १२५, १) ।

§ ४३१ — एम- वर्ग केवल कर्मकारक एकवचन में पाया जाता है और यह भी केवल महा०, शौर० और माग० में, किन्तु इनमें भी बहुत कम देखने में आता है : पुल्लिंग- महा० में एणं है (रावण० ८, ६) ; शौर० में भी यही रूप है (मृच्छ० ५१, ९) माग० में भी एणं है (मुद्रा० २६५, १) स्त्रीलिंग- भी एणं है शौर० में यह रूप चलता है (मृच्छ० २४, २ ; शकार की माग० बोली के शब्दों को दुहराने में इस रूप का व्यवहार किया गया है) ; माग० में (मृच्छ० २०, १२ ; १२८, १७) । पन्ना ८७ में मार्कण्डेय बताता है कि इसके करणकारक एकवचन के रूप भी होते हैं [एएणा, एएण या ५ ७५ । — अनु०] किन्तु ये दोनों रूप नपुंसकलिंग के हैं । ध्वनिबल (स्वर) के प्रभाव अथवा प्राचीन ध्वनिबलहीन रूप एन के प्रभाव के अधीन महा०, अ०माग० और जै०महा० में इण रूप बन गया है, जिसका कर्ता- और कर्म- कारक एकवचन नपुंसकलिंग का रूप इणं है (वर० ६, १८ ; हेच० ३, ७९ ; क्रम० ३ ५३) जो बहुत चलता है और विशेषकर अ०माग० में (गउड० में इदम् शब्द देखिए ; हाल० एर्त्सें० कालका० में इणं शब्द देखिए ; आयार० १, १, २, २ और ४ ; १ १, ३ ८ ; ५ ८ और ६ १ तथा ७, २ ; १, २ ४, ३ ; १ २ ५, ५ ; १, ३, ३, १ ; १, ४ १ २ आदि आदि ; उवास० २८१ और उसके बाद ; ३५१ ; ३५० ; आव० § ८) । § ८१ और १७३ की तुलना कीजिए । अ०माग० में इणं

रूप कर्मकारक पुलिंग मे भी काम में आता है (सूय० १४२ , ३०७) । सम्भवतः यहाँ **इमं** पढा जाना चाहिए । महा०, अ०माग० और जै०महा० में कर्त्ता- और कर्मकारक नपुसकलिंग में **इणमो** भी काम में लाया जाता है (वर० ६, १८ , हेच० ३, ७९ , क्रम० ३, ५७ , मार्क० पन्ना ४७ , गउड० में **इदम्** शब्द देखिए और **एतत्** भी , सूय० २५९ , दस०नि० ६५८, ३० , ६६१, २७ , ओव० § १२४ , आव०एर्त्से० ७, २१ और २९ , १३, ११) । दसवेयालियनिज्जुत्ति ६४७, १२ में इसका प्रयोग बहुवचन में भी किया गया है : उसमें **इणमो उदाहरणा** आया है । आवश्यक एर्त्से-लुगन में लौयमान ने **इणम्- ओ** दिया है जिसका शुद्ध होना कठिन है । इस रूप का स्पष्टीकरण अनिश्चित है । इनके अतिरिक्त **इण** के द्वारा यह वर्ग दुर्बल होकर **ण-** और पै० **न** बन गया है, जो कर्मकारक एकवचन पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुसकलिंग कर्मकारक बहुवचन पुलिंग, करणकारक एकवचन और बहुवचन पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपु सकलिंग में काम में लाया जाता है (हेच० ३, ७० और ७७) । कर्मकारक एकवचन पुलिंग में **णं** रूप भी मिल्ता है (महा० में : गउड० १०७१ , हाल १३१ ; रावण० में **ण** शब्द देखिए , अ०माग० में उत्तर० ६०१ और ६७० , शौर० में : मृच्छ० ६८, ५ , शकु० १२, २ , विक्र० १५, १३ , माग० में : मृच्छ० १६४, ११ , प्रबोध० ३२, ११ , ५३, १२ , अप० में . हेच० ४, ३९६) , स्त्रीलिंग में भी **णं** होता है (महा० में : हाल , रावण० में **ण** शब्द देखिए , शौर० में : शकु० ७७, ९ , विक्र० १२, १९, माग० में : मृच्छ० १२३, ४ , १३२, २३) , नपु सकलिंग में भी **णं** है (महा० में : रावण० में **ण** शब्द देखिए , शौर० में मृच्छ० ४५, २५ , शकु० ११, १ , विक्र० ३१, ९ , माग० में : मृच्छ० ९६, १२ , ढक्की में : मृच्छ० ३१, ९) । — करणकारक पुलिंग और नपु सकलिग : महा०, जै०महा० और अप० में **णेण** रूप है (रावण० , एर्त्से० में **ण** शब्द देखिए , आव०एर्त्से० ११, २१ , १५, ३१ , १६, १५ , २८, १० , द्वार० ५०१, ३ , पिंगल १, १७), पै० में **नेन** मिल्ता है (हेच० ४, ३२२)[१], स्त्रीलिंग में **णाए** चलता है (हेच० ३, ७० , एर्त्से० में **ण** शब्द देखिए) , पै० में **नाए** होता है (हेच० ४, ३२२) ।—बहुवचन . कर्मकारक में **णे** है (हेच० ३, ७७) । — करणकारक पुलिंग और नपु सकलिंग जै०महा० में **णेहिं** है (आव०एर्त्से० १८, ४ , एर्त्से० ३, २८ , द्वार० ५००, ३१ और ३५ , ५०५, २७) , स्त्रीलिंग में **णाहिं** पाया जाता है (हेच० ३, ७०) । ४, ३२२ में हेमचन्द्र के कथनानुसार यह वर्ग पै० मे करणकारक एकवचन तक ही सीमित है । शौर० और माग० में यह वर्ग सुसम्पादित और सुआलोचित सस्करणों में केवल कर्मकारक एकवचन में दिखाई देता है , शकुन्तला के बोएटलिंक के सस्करण ६८, १० और १०८, ८ में पाठभेद **णेण** अशुद्ध है ।

१. **तत्थ च नेन । कतसिना नेन, तत्थ च नेन कतासिनानेन** पढा जाना चाहिए = **तत्र च तेन कृतस्नानेन** [हेमचन्द्र के भण्डारकर इन्स्टिट्यूट-वाले सस्करण में **तत्थ च नेन कत- सिनानेन** छपा है जो शुद्ध है। —अनु०]। § १३३ की तुलना कीजिए।

§ ४३२—सर्वनाम **अदस्** की रूपावली वररुचि ६, २३ , हेच० ३, ८८ और

मार्कंडेय पन्ना ४७ के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से की जाती है : एकवचन– कर्त्ता पुलिंग और स्त्रीलिंग : अमू है नपुंसकलिंग में अमुं पाया जाता है कर्मकारक में भी अमुं रूप मिलता है करण– अमुणा है अपादान– अमूओ, अमूउ और अमूहिंतो है सम्बन्धकारक अमुणो तथा अमुस्स रूप चलते हैं ; अधिकरण– अमुम्मि पाया जाता है बहुवचन : कर्त्ता– अमुणो है, जैसा वर ६, २१ के अमूओ के स्थान में भी यही रूप पढ़ा जाना चाहिए (वर में अन्यत्र यह रूप देखिए); स्त्रीलिंग में अमूउ तथा अमूओ रूप चलते हैं नपुंसकलिंग में अमूणि और अमूइं पाये जाते हैं ; करणकारक अमूहिं है अपादानकारक में अमूहिंतो और अमूसुंतो रूप मिलते हैं, सम्बन्ध– अमूणा और अधिकरण– अमूसु हैं। ग्रन्थों में बहुत कम रूपों के प्रमाण मिलते हैं। अ माग कर्त्ता एकवचन असो = असौ है (सूय ७४), अमुगे = *अमुकः है (आयार० २, ४, १, ९ नन्दी ३६१ ३६३ ; ३६४), जै महा० में अमुगो रूप मिलता है (आव०एत्सें १८, १) ; अप में कर्मकारक पुलिंग का रूप अमुं है (हेच ४, ४३९, ३) और में नपुंसकलिंग का रूप अमुं (मृच्छ ७ ,२४) ; करणकारक में महा० में अमुणा है (कपूर २७,४) अ०माग में अधिकरणकारक का रूप अमुगम्मि है = *अमुकस्मिन् है (पण्हा ११) बहुवचन कर्त्ता पुलिंग—महा में अमी है (गउड० २४९) । वररुचि ६, २४ और हेच ३ ८७ के अनुसार तीनों लिंगों में कर्त्ताकारक एकवचन का रूप अह भी होता है : अह पुरिसो, अह महिला, अह वणं । प्राकृत साहित्य से उद्धृत आरम्भ के दोनों उदाहरण जो हेच ने प्रमाण के रूप में दिये हैं उनका मूल भी मिलता है = गउडवहो ८९२ और रावणवहो ३,१६, इनमें अह = अथ, इसी भाँति यह रूप गउडवहो में स्पष्ट आया है (इस ग्रन्थ में एतद् देखिए) और हाल में भी (इस ग्रन्थ में अह देखिए) और टीकाकार इसे = अयम् , इयम् , एतद्, एषा असौ मानते हैं, जिससे यह निदान निकलता है कि एक सर्वनाम अह मानने की कहीं कोई आवश्यकता नहीं है । क्रमदीश्वर ३, ५८ में कर्त्ताकारक एकवचन का रूप अहो दिया गया है जो § २६८ के अनुसार = असौ हो सकता है । अप में कर्त्ता– और कर्मकारक बहुवचन में ओइ रूप मिलता है [यह अह कुछ अन्य रूपों के प्रभाव से हिन्दी में यह और यह बन गया है । ओइ का कुमाउनी रूप यी है । —अनु] (हेच ३ ३६४) ; यह = *अमय है जो अय– वर्ग से निकला है, जो ईरानी भाषाओं में काम में आता है । —अधिकरण एकवचन अअम्मि और इअम्मि के विषय में § ४२९ देखिए ।

§ ४३३—शेष सब सर्वनामों की रूपावली § ४२४ तथा ४२५ के अनुसार चलती है । उदाहरणार्थ अपादानकारक एकवचन में सेतक महा० में पराहिंतो = परस्मात् मिलते हैं (गउड १७१) अ माग में सव्वाओ = सर्वस्मात् है (सूय ७८१) और स्त्रीलिंग में भी यही होता है (आयार १ १,१,४) ; अ माग में स्त्रीलिंग का रूप अन्नयरीओ आया है (आयार १ १ १, २ और ८) ; अधिकरणकारक में जै महा में अन्नम्मि मिलता है (आव एत्सें २ , ५ ; सगर १ , १९) ; और में अण्णस्सिं = अन्यस्मिन् (महावीर ९८,१८; मालती ११३,७ ; रत्ना २९८,

२४), शौर० में **कदरस्सिं = कतरस्मिन्** (अनर्घ० २७१, ९), किन्तु अ०माग० में **कयरंसि** (विवाह० २२७) और **कयरम्मि** रूप पाये जाते हैं (ओव० § १५६ और उसके बाद), शौर० में **कदमस्सिं = कतमस्मिन्** है (विक्र० ३५, १३) , शौर० में **अवरस्सिं = अपरस्मिन्** (चैतन्य० ४०,१०) , शौर० में **परस्सिं = परस्मिन्** है (ललित० ५६७,१८), किन्तु अ०माग० में **परंसि** रूप है (सूय० ७५०), इसका रूप जै०शौर० में **परम्मि** है (पव० ३८७,२५), अ०माग० में **संसि = स्वस्मिन्** (विवाह० १२५७) तथा इसके साथ साथ अपादानकारक का रूप **साओ = स्वात्** है (विवाग० ८४) , अ०माग० में **अन्नयरे = अन्यतरस्मिन्** भी देखने में आता है (ओव० § १५७) । बहुवचन : कर्म—पल्लवदानपत्रो और अ०माग० में **अन्ने** है और जै०शौर० तथा शौर० में **अण्णे = अन्यान्** है (पल्लवदानपत्र ५, ६ , ७,४२ , आयार० १, १, ६, ३ , १, १, ७, २ , पव० ३८३, २४ , बाल० २२९, ९) , अपादान– अ०माग० में **कयरेहिंतो = कतरेभ्यः** (पण्णव० १६० और उसके बाद, विवाह० २६०, २६२, ४६० , १०५७ और उसके बाद), **सएहिं = स्वकेभ्यः** , **सव्वेहिं = सर्वेभ्यः** है (§ ३६९) , सम्बन्ध– अ०माग० और जै०महा० मे **अन्नेसिं = अन्येषाम्** (आयार० १, १, १, ४ और ७, १ , १, ५, ६, १ , १, ७, २, ३ , १, ८, १, १६ , सूय० ३८७ और ६६३ , नायाध० ११३८ और ११४० , कप्प० § १४ , आव०एर्त्से० १४, ७) , अ०माग० और जै०महा० में **सव्वेसिं = सर्वेषाम्** (आयार० १, १, ६, २ , १, २, ३, ४ , १, ४, २, ६ , १,६,५, ३ , उत्तर० ६२५ और ७९७ , आव०एर्त्से० १४,१८) , अ०माग० और जै०शौर० में **परेसिं = परेषां** (उत्तर० ६२५ और ७९७, पव० ३८५, ६५), किन्तु महा० में **अण्णाणं** रूप है (मुद्रा० ८३,३ , कर्पूर० १, २), शौर० में स्त्रीलिंग का रूप भी यही है (प्रिय० २४,८) , शौर० में **सव्वाणं** रूप मिलता है (विक्र० ८३, ८) , **अवराणं = अपरेषाम्** है (मृच्छ० ६९, १०) । हेच० ३, ६१ के अनुसार **अण्णेसिं सव्वेसिं** आदि रूप स्त्रीलिंग मे भी काम में लाये जाते हैं और इस नियम के अनुसार जै०शौर० में **सव्वेहिं इत्थीणं = सर्वेषाम् स्त्रीणाम्** है (कत्तिगे० ४०३, ३८४) । अ०माग० और जै०महा० में नियमित रूप **अण्णासिं** और **सव्वासिं** हैं । अप० में, अधिकरण बहुवचन का रूप **अण्णाहिँ** है (हेच० ४,४२२, ९ [भंडारकर इन्स्टिट्यूट के संस्करण में यह रूप **अण्णहँ** और **अण्णाहिं** छपा है और ४, ४२२, ८ में है —अनु० ।]) । **कति** के विषय में § ४४९ देखिए ।

§ ४३४—**आत्मन्** (§ ४०१) और **भवत्** (§ ३९६) संस्कृत की भाँति ही काम में लाये जाते हैं । सर्वनामों जिन रूपों के अन्त में **ईय** लगता है, उनमें से **मईअ=मदीय** का उल्लेख हेच० ने २, १४७ में किया है । इन रूपों के स्थान में अन्यथा **केर, केरअ** और **केरक** काम में लाये जाते हैं (§ १६७ [इसके उदाहरण हेच० ने **युष्मदीयः तुम्हकेरो ॥ अस्मदीयः । अम्हकेरो** दिये हैं । —अनु०] । **कार्य** का ***कार** रूप बना और इससे अप० में **महार** और **महारउ = *मह्कार** निकले । यह रूप सम्बन्ध-कारक एकवचन के रूप **मह** (§ ४१८) **+कार** से बना (हेच० ४, ३५१ , ३५८, १, ४३४) , इसका अर्थ **मदीय** है । इसी भाँति **तुहार = त्वदीय** (हेच० ४, ४३४),

अम्हार = अस्मदीय (हेच १४५ और ४३४) है । अप० में हमार (पिंगल २, १२१) छन्द की मात्राएं ठीक करने के लिए हम्मार भी इसी अम्हार से निकले हैं (पिंगल २,४३) । यह रूप *अम्हार (§ १४१) पार करके बना है (§ ३३२, हमार), *महार (§ ३५४) । अप रूप तोहर = युष्माकम् (पिंगल २ २५) छन्द की मात्राएं भंग न होने देने के लिए *तोहार के स्थान में आया है और तुम्हार, *तुम्हार (§ १२५), तो ँहार, तोहार हुआ है (§ ७६ ८९ १२७), ठीक उसी भाँति जिस प्रकार कुष्माण्डी से कोहण्डी बना है (§ १२७) । –दृश ,–दृश और –दृक्ष से निकले नाना रूपों के लिए § १२१ १२२ २४५ २६२ देखिए एँत्तिअ, इत्तिअ, एँत्तिल, एँत्तुल, ते ँत्तिअ, तित्तिअ, ते ँत्तिल, ते ँत्तुल, जे ँत्तिअ, जित्तिअ, जे ँत्तिल, जेत्तुल, के ँत्तिअ, कित्तिअ, के ँत्तिल, कित्तिल के विषय में § १५३ देखिए अप साह = शाश्वत् के विषय में § ६४ और २६२ देखिए अ माग एवइय और केवइय के विषय में § १४९ देखिए । इयत् के अर्थ में अप एवड्ड (हेच ४,४ ८) = *अयवड्ड = मै महा एवड्ड (§ १४९) जैसे कि केवड्ड (हेच ४, ४ ८) = *कयवड्ड [एवढा, केवढा रूप मराठी में चलते हैं । —अनु] । इनके अनुकरण में जेवड्ड तेवड्ड रूप बने हैं (हेच ४, ४ ० ७ ४ ७) । मृच्छकटिक १३४, ५ में माग० रूप एवड्डे के स्थान में एवड्डे पढ़ा जाना चाहिए।

इ—संख्याशब्द

§ ४३५—१ सभी प्राकृत बोलियों में एँक = एक है (§ ९१), स्त्रीलिंग का रूप एँक्का है, अ माग और जै॰महा॰ में बहुधा एग चलता है । इसकी रूपावली सर्वनामों की भाँति चलती है । इस नियम से महा में अधिकरण एकवचन का रूप एँक्कम्मि मिलता है (गउड १५३ । ४४१ ; हाल ८२७), संज्ञाशब्दों की रूपावली के अनुसार बना रूप एँक्के (हाल ८४६) बहुत ही कम काम में आता है अ माग में एगंसि चलता है (विवाह ११९४ और उसके बाद) और जै महा॰ में एगंमि भी आया है (पण्णव ५२१ एर्से २, २१) अ माग और जै महा में एगम्मि रूप भी है (विवाह ९२१ और उसके बाद; १२८; १३१ ११५८ और उसके बाद १०३६ ; १०५२ ; आव एर्से १ २२ ११ १२ और १८ ; १७, २२ ; १९, ९ और १८; २२,१ आदि आदि); जै महा एँक्कम्मि भी आया है (आव एर्से २०, १९) ; शौर में एँक्कस्सिं है (कर्पूर २१,७) ; माग में एँक्कर्शिं हो जाता है (मृच्छ ८१ ११) ; अप में एँक्कहिँ चलता है (हेच ४ ३५७, २), स्त्रीलिंग में भी यही रूप चलता है (हेच ४,४२२,९) बहुवचन : कर्ता पुल्लिंग में महा और जै महा रूप एक्के है (गउड ७२१ ८३६ ; ९ ९ ; कालका २७१, ३१) ; अ माग में एगे है (आयार १ १,२ २; १४; ४३; सूय ७४; २ ४; २८ ; ४३८; ५९७; उत्तर २३१; § १७४ की तुलना कीजिए)· सम्प्रदान पुल्लिंग में अ माग रूप एगसिं है (आयार १ १ १, १ और २ ; १ १ २ ४ ; १, २ १, २ और ४ ; १,२,१ १ आदि-आदि; सूय ४६ और ८१) और एगसि भी चलता है (सूय ११ ;

३५, ७४)। जो रूप अधिक काम में नहीं आते पर कई बार पाये जाते हैं उनमें से नीचे लिखे रूपों का उल्लेख होना चाहिए : करण एकवचन– अ०माग० में **ऍक्केणं** आया है (विवाह० २५८ और उसके बाद), जै०महा० में **एगेणं** पाया जाता है (आव०एर्त्से० ३३, २८), सम्बन्ध– माग० में **एक्काह** चलता है (मृच्छ० ३२, ४)। जै०शौर० और ढक्की साहित्य में **एक्कं** पाया जाता है (कत्तिगे० ४०३, ३७० और ३७७, मृच्छ० ३०, ५)। सब संख्याशब्दों से अधिक **एक्क–** वर्ग मिलता है, अ०माग० और जै०महा० में **एग–** वर्ग भी है, किन्तु **एक्का** रूप भी मिलता है। अ०माग० और जै०महा० में **एगा–** वर्ग भी पाया जाता है, अप० में **एआ–**,**एगा–**, **ऍक्कारस** में मिलते हैं, अ०माग० और जै०महा० में **एगारस** होता है, अप० में **एआरह** और **ऍग्गारह** (= ११) और **ऍक्कारसम** (= ग्यारहवाँ) रूप पाये जाते हैं (§ ४४३ और ४४९), अ०माग० में **एक्काणउइं** (= ९१) रूप भी है (§ ४४६)। **एक्का–** का **आ** § ७० के अनुसार स्पष्ट होता है। पल्लवदानपत्र में **अनेक** रूप पाया जाता है (६, १०) जिसमें के **क** का द्वितीकरण नहीं होता। महा० और शौर० में **अणेअ** रूप मिलता है (गउड०, हाल, मृच्छ० २८, ८, ७१, १६, ७३, ८), अ०माग० और जै०महा० में **अणेग** चलता है (विवाह० १४५, १२८५, नायाध०, कप्प०, एर्त्से०, कालका०), जै०महा० में **अणेय** का प्रचलन है (एर्त्से०), अ०माग० में **'णेग** भी दिखाई देता है (§ १७१), शौर० में **अणेअसो** = **अनेकशः** (शकु० १६०, ३), अ०माग० में **'णेगसो** भी है।

§ ४३६—२ कर्त्ता– और कर्मकारक में **दो, दुवे, वे** बोला जाता है, नपुंसकलिंग में **दोॅण्णि, दुण्णि, वेण्णि** और **विण्णि** होता है (वर० ६, ५७, यहाँ **दोणि** पाठ है, चण्ड० १,१० अ पेज ४१, हेच० ३, ११९ और १२०, क्रम० ३, ८५ और ८६, मार्क० पन्ना ४९)[1]। **दो** = **द्वौ** और **दुवे** तथा **वे** = **द्वे** (नपुंसक) पुराने द्विवचन हैं किन्तु जिनकी रूपावली बहुवचन की भाँति चलती और इसी भाँति काम में आती थी। कर्त्ता– और कर्मकारक का रूप **दो** महा० में बहुत अधिक चलता है (गउड०, हाल, रावण०), अ०माग० में भी यही आता है (उवास० में **दु** शब्द देखिए, कप्प० में भी यह शब्द देखिए, वेबर, भग० १,४२४), जै०महा० में भी (एर्त्से०)[1], अप० में भी इसके अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं (पिंगल १, ५) और दाक्षि० में भी (मृच्छ० १०१, १३), शौर० और माग० में अभी तक इसके उदाहरण और प्रमाण नहीं मिले हैं। शौर० **दो वि** (प्रसन्न० ८४,४, बाल० २१६,२०, २४६,५) **दुवे वि** के स्थान में अशुद्ध रूप है, शकुन्तला १०६, १ में शुद्ध रूप **दुवे वि** है। **दो** सभी लिंगों के काम में लाया जाता है। स्त्रीलिंग में यह उदाहरणार्थ महा० **दो तिण्णि** [**महिलाओ**] में मिलता है (हाल ५८७), **दो तिण्णि रेहा** = **द्विया रेखा** (हाल २०६), अ०माग० में **दो गुहाओ** = **द्वे गुहे**, **दो देवयाओ** = **द्वे देवते**, **दो महाणईओ** = **द्वे महानद्यौ**, **दो कत्तियाओ दो मिगसिराओ दो अद्दाओ** = **द्वे कार्त्तिकेयौ द्वे रोहिण्यौ द्वे मृगसिरसी द्वे आर्द्रे** है (ठाणंग० ७३, ७५, ७६, ७७, ७९, ८१), **दो दिसाओ** = **द्वे दिशौ** है (कर्मकारक, ठाणंग० ५५), नपुंसकलिंग में, महा० में **दो वि दुक्खाइ** =

द्वे अपि दुक्खे (ठाण २८) है अ०माग दो दो पयाणि = द्वे द्वे पदे (ठाणंग २७), दो सयाई = द्वे शते (सम १५७), दो खुड्डाई भयग्गहणाई समयूणाई = द्वे क्षुद्रे भवग्रहणे समयोन है (जीवा १ २७ और १११०), दो नामधेज्जा = द्वे नामधेये है (आयार २, १५, १५)। समास के आरम्भ में भी दो आता है ; महा में दोअंगुलअ = द्व्यंगुलक है (हाल ६२२), अ माग और जै महा में दोमासिय = द्विमासिक है (आयार २, १, १ ; सूय ७५८ (विवाह १६६ ठीथ ८, ९) अ माग में दोकिरिया = द्विक्रिया है (विवाह ५२ आव § १२२) महा और जै महा मे दोजीह = द्विजिह्व है (प्रबोध २८९, १ ; एर्से ८२ १७) दोमुह = द्विमुख है (एर्से ११, २१), दोवयण = द्विवदन है (हेच १, ९४ एर्से ११, १३) । ऐसा ही एक शब्द दोघट्ट है (= हाथी : पाइय ९ पर ४, ११ पर प्राकृतमंजरी एर्से ११ २८ ; बाल ९ , १ ८६, १२), यह शब्द और में मल्लिकामारुतम् ५५, ७ में आया है और १४४ १ में माग में है जिसका रूप दो घट्ट है देशीनाममाला ५ ४४ मे दुग्घुट्ट रूप आया है और त्रिविक्रम २ १ १ म दुग्घो ट्ट दिया गया है ; यह घट्ट- घुट्ट-, घो ट्ट (= पीना)' से बना है ; दोहद दोहळ (§ २२२ और २४४) = *द्विहृद' है । ऐसे स्थानों में दो के साथ-साथ बहुधा दु आता है । यह उन समासों से निकला है जिनमें ध्वनिबल पहले वर्ण पर नहीं पड़ता । इस नियम के अनुसार दुउण = द्विगुर्ण है (रावण० ११ ४७); अ माग में दुगुण रूप है (आयार २, २, २ ७ ; सूय २४१; विवाह १६१) आइ = द्विआशि है (हेच १, ९४ २ ७९) अ माग और जै०महा में दुपय = द्विपद है (आयार २, १, ११, ९ उवास § ८० ; काळका २६५ ४ और ५ तीन (III) ५११, १२) ; अ माग में दुविह = द्विविध है (ठाणंग ८८ आयार १ ७ ८, २ १ ८ १ १५ उवास), दुखुर = द्विखुर (उत्तर १ ७५ ; टीका देखिए ; जीवा ७५) दुपक्ख = द्विपक्ष (सूय ४५६) दु-प-आहेण = द्व्यहेन (आयार २, ५, २ १ और ४), दु-प्-आई = द्व्यहम् (जीवा २६१ ; ८६ २९५) और दुवस्थ = द्विवस्त्र (ठाणंग २ ८) है, जै महा में दुगाउय = द्विगव्यूत और दु-प्-अगुल = द्व्यंगुल है (एर्से म दु शब्द देखिए) । महा दोहाइय और दाहाइअइ = द्विधाकृत और द्विधक्रियते (रावण में दुहा शब्द देखिए) अ माग में दाधार = द्विधाकार आया है (ठाणग ४ १) अ माग में दुहा = द्विधा है (सूय ११९ और १५८) महा दुहाइय रूप भी मिलता है (रावण ८ १ १); अ माग में दुहाकिज्जमाण है (विवाह ११७) म माग म दुहओ = *द्विधातस् (= दो प्रकार का ; दो भागों में ; आयार १ १ १ ५ ; १ ७ ८, ४ ; उत्तर २१४ ; सूय १५ और ६८ ठाणग १८६ ; विवाह १८१ और २८२) आदि-आदि । द्वि की नियमित ध्वनि दि (§ १) और दि हैं जो कुछ शब्दों में तथा दिखाई देते हैं जैसे दिअ और जै महा दिय = द्विज और दिरअ = द्विरद है (§ २९८) और यह रूप और तथा माग में अमपाश्च संस्कृतशब्दों को छोड़ सर्वत्र मिलता है

(§ ४४९)। बोएटलिक द्वारा सपादित शकु० ७८, ८ में शौर० का **दुधा** रूप अशुद्ध है। इसी भाँति **दुउणिअ** रूप है (मल्लिका० २२४, ५) जो **दिउणिद** पढा जाना चाहिए। नपुसकलिंग का रूप **दोंण्णि,** जो कभी कभी **दुण्णि** रूप मे भी आता है, **तिण्णि** के अनुकरण पर बना है'। यह पुलिंग और स्त्रीलिंग के साथ भी लगाया जाता है जैसे, महा० पुलिंग रूप **दों ण्णि वि भिण्णसरूआ = द्वाव् अपि भिन्नस्वरूपौ** है (गउड० ४५०), **दों ण्णि वि बाहू = द्वाव् अपि बाहू** (हेच० ३, १४२) , अ०-माग० मे **दों न्नि वि रायाणो = द्वाव् अपि राजानौ, दों न्नि वि राईणं अणीया = द्वाव् अपि राज्ञाम् अनीकौ** (निरया० § २६ और २७) तथा **दों न्नि पुरिस-जाए = द्वौ पुरुषजातौ** है (सूय० ५७५) , जै०महा० में **दुन्नि मुणिसीहा = द्वौ मुनिसिंहौ** है (तीर्थ० ४, ४), **ते दों न्नि वि** पाया जाता है (एर्त्से० ७८, ३५), शौर० मे **दों ण्णि खत्तिअकुमारा = द्वौ क्षत्रियकुमारौ** है (प्रसन्न० ४७,७ , ४८,४ की तुलना कीजिए) , स्त्रीलिंग . अ०माग० में **दों ण्णि संगहणगाहाओ = द्वे संग्र-हणगाथे** (कप्प० § ११८), शौर० मे **दों ण्णि कुमारीओ = द्वे कुमार्यौ** है (प्रसन्न० ४८, ५)। — **दो** के करणकारक के रूप **दोहिं** और **दोहि** होते हैं (चड० १, ७ पेज ४० में), इनका प्रयोग स्त्रीलिंग मे भी होता है जैसे, महा० में **पंतीहिँ दोहिं = पंक्तिभ्याम् द्वाभ्याम्** है (कर्पूर० १०१,१) , अ०माग० में **दोहिं उक्खाहिं = द्वाभ्याम् उखाभ्याम्** है (आयार० २, १, २, १), जै०महा० मे **दोहि वि बाहाहिं = द्वाभ्याम् अपि बाहाभ्याम्** (द्वार० ५०७, ३३)। — हेच० ३, ११९ और १३० के अनुसार अपादानकारक के रूप **दोहिंतो** और **दोसुंतो** हैं, चड० १, ३ पेज ३९ के अनुसार केवल **दोहिंतो** है ओर मार्क० पन्ना ४९ के अनुसार **दोसुंतो** है। — २–१९ तक के सख्याशब्दों में [बीस से आगे इनमें कुछ नहीं लगता। हेच० के शब्दों में **बहुलाधिकाराद् विंशत्यादेर्न भवति** । — अनु०], वर० ६, ५९ , हेच० ३, १२३, हेच०के अनुसार **कति** (= कई। —अनु०) में भी [**कतीनाम्** का हेच० ने **कइण्हं** रूप दिया है। —अनु०] , चड० १,६ के अनुसार सब सख्याशब्दों में और क्रम० ३, ८९ के अनुसार केवल २–४ तक में, **-ण्ह** और **ण्हं** लग कर सम्बन्धकारक का रूप बनता है। इस नियम के अनुसार महा०, अ०माग० और जै०महा० में **दोण्ह** और **दोण्हं** रूप होते हैं (आयार० २, ७, २, १२ , ठाणग० ४७ , ६७ , ६८ , कक्कुक शिलालेख १०), स्त्रीलिंग में भी ये चलते हैं, अ०माग० में **तासिं दोण्हं** (टीका में यही शुद्ध रूप मिलता है , पाठ मे **दुण्हि** है) = **तयोर् द्वयोः** है (उत्तर० ६६१)। इसके विरुद्ध शौर० और सम्भवत माग० मे भी अत मे **ण्णं** लगाया जाता है। यह रूप लेण बोली और पाली की भाँति है' . **दों ण्णं** (शकु० ५६, १५ , ७४, ७ [स्त्रीलिंग में] , ८५, १५ [स्त्रीलिंग मे] , वेणी० ६०, १६ [पाठ के **दोहिणं** के स्थान में इसी ग्रन्थ में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार यही रूप पढा जाना चाहिए], ६२, ८ , मालवि० ७७, २० [ग्रन्थ में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार यही पढा जाना चाहिए]) , महा० में भी बहुधा पाठभेद देखा जाता है जिसमे यह शुद्ध रूप भी मिलता है (हाल में **दो** शब्द देखिए) और मार्कंडेय पन्ना ४९ मे भी हस्तलिपियाँ

द्वे अपि तुक्खे (हाल २४) है अ माग दो दो पयाणि = द्वे द्वे पदे (ठाणंग २७), दो सयाई = द्वे शते (सम १५७), दो खुड्डाई मयग्गहणाई समयूणाई = द्वे क्षुद्रे भवग्रहणे समयोने है (जीवा १ २७ और १११), दो नामधेज्जा = द्वे नामधेये है (आयार २, १५, ११)। समास के आरम्भ में भी दो आता है। महा में दोअंगुलअ = द्व्यंगुलक है (हाल ६२२), अ माग और जै महा में दोमासिय = द्विमासिक है (आयार २, १, १, १ सूय ७५८ (विवाह १६६ जीव ४, ६) अ माग में दोकिरिया = द्विक्रिया है (विवाह ५२ ओर § १२२) महा और जै महा में दोजीह = द्विजिह्व है (मजोन २८९, १ एत्सें० ८२ १७) दोमुह = द्विमुख है (एत्सें १९, २१) दोवयण = द्विवदन है (हेच १, ९४ एत्सें १९, ११)। ऐसा ही एक शब्द दोघट्ट है (= हाथी : पाइय ९ ; वर ४, ११ पर प्राकृतमंजरी एत्सें १५, २८ ; पाल ५ १ ८६, १२), यह शब्द और में मल्लिकामारुतम् ५५, ७ में आया है और १४४ १ में माग में है जिसका रूप दो˘घट्ट है देशीनामधाला ५, ८४ में दुग्घुट्ट रूप आया है और त्रिविक्रम २, १ १ में दुग्घो˘ट्ट दिया गया है यह घट्ट–, घुट्ट–, घो˘ट्ट (= मीना)' से बना है दोहद दोहळ (§२२२ और २४४) = *द्विहृद[1] है। ऐसे स्थानों में दो के साथ-साथ बहुधा दु आता है। यह उन समासों से निकला है जिनमें ध्वनिबल पहले वर्ण पर नहीं पड़ता। इस नियम के अनुसार दुउण = द्विगुर्ण है (रावण ११, ४७); अ माग में दुगुण रूप है (आयार २ २, २, ७ ; सूय २४१; विवाह १६९) आइ = द्विजाति है (हेच १, ९४ २ ७९) अ माग और जै महा में दुपय = द्विपद है (आयार २, १, ११, ९ उवास § ४९ कालका २६५ ४ और ५ तीन (III) ५११, १२) ; अ माग में दुविह = द्विविध है (ठाणंग ८८ ; आयार १ ७ ८,२ १ ८, १ १९ उवास), दुखुर = द्विखुर (उत्तर १ ७५ टीका देखिए ; जीवा ७५) दुपक्ख = द्विपक्ष (सूय० ८५६) दु-य-आहेण = द्व्यहेन (आयार २, ५ २ १ और ४), दु-य-आई = द्व्यहम् (जीवा २६१ ; २८६ २९५) और दुहत्थ = द्विहस्त (ठाणंग २ ८) है जै महा में दुगाउय = द्विगव्यूत और दु-य-अंगुल = द्व्यंगुल है (एत्सें में दु शब्द देखिए)। महा दोहाइय और दोहाइज्जइ = द्विधाकृत और द्विधक्रियते (रावण में दुहा शब्द देखिए) अ माग में दोधार = द्विधाकार आया है (ठाणग ८ १) अ०माग में दुहा = द्विधा है (सूय १५१ और १५८) महा दुहाइय रूप भी मिलता है (रावण ८ १ १) अ माग में दुहाकिज्जमाण है (विवाह ११७) ; अ माग में दुहओ = *द्विधातस् (=दो प्रकार का दो भागों में ; आयार १ १, १ ५ ; १ ७ ८, ४ ; उत्तर २३४ ; सूय २५ और ६४ ; ठाणंग १८६ ; विवाह १८१ और २८२) आदि-आदि। द्वि की नियमित स्थान वि (§ १ ०) और दि हैं जो कुछ शब्दों में सदा दिखाई देते हैं जैसे दिअ और जै महा दिय = द्विज और दिरअ = द्विरद है (§ ११८) और यह रूप और तथा माग में क्रमवाचक संख्याशब्दों को छोड़ सर्वत्र मिलता है

कभी-कभी देखने में आता है (हाल ७५२), अ०माग० में यह समास के आदि में देखा जाता है जैसे, **वेइन्दिय** और **वेन्दिय** = **द्वीन्द्रिय** है (§ १६२) और **वेदोणिय** = **द्विद्रोणिक** है (उवास० § २३५) , जै०शौर० मे यह मिलता है (कत्तिगे० ३९९, ३१० , कर्मकारक) , यह अप० में भी पाया जाता है (हेच० ४३९ , पिंगल १, ९ और १८) , अप० मे इसका सक्षिप्त रूप **वि** भी चलता है (पिंगल १, १५३)। इसका नपु सकलिंग **विण्णि** है (चण्ड० १, १० अ पेज ४१ , हेच० ३, १२० : अप० मे : हेच० ४,४१८,१ , पिंगल १, ९५)। चण्ड० १,३ पेज ३९ , १,६ पेज ४० , १,७ पेज ४०, हेच० ३,११९ के अनुसार **वे** की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है : करण– **वेहि**, अपादान– **वेहिंतो**, सम्बन्ध– **वेण्हं**, और अधिकरण– **वेसु** तथा **वेसुं** है। अप० मे करणकारक **विहिँ** है (हेच० ४, ३६७, ५), सम्बन्धकारक का **विहुँ** होता है (हेच० ४, ३८३, १) और अधिकरण में **वेहिँ** है (हेच० ४, ३७०, ३)। सस्कृत **द्वा–** के स्थान मे **वा** है जो अन्य सख्याशब्दों के साथ आता है, उदाहरणार्थ, अ०माग० में **वारस** (= १२), **वावीसं** (= २२ [यह रूप अर्थात् **वावीस** गुजराती भाषा मे है। —अनु०]), **वायालीसं** (= ४२) और **वावत्तरिं** (= ७२) । § ४४३ और उसके वाद की तुलना कीजिए।

§ ४३८— **३** का कर्त्ता- और कर्मकारक पुलिंग और स्त्रीलिंग का रूप **तओ** = **त्रयः** है, नपु सकलिंग में **तिण्णि** = **त्रीणि** है, यह **ण्ण** सम्बन्धकारक के रूप **तिण्णं** की नकल पर है। इसके रूप विना किसी प्रकार के भेद के तीनों लिंगों मे काम में आते हैं। प्राकृत व्याकरणकारों ने (वर० ६, ५६ , हेच० ३, १२१ , क्रम० ३, ८५ [पाठ में **तिण्हि** है] , मार्क० पन्ना ४९) इसका उल्लेख कहीं नहीं किया है और केवल अ०-माग० में मिलता है : अ०माग० पुलिंग मे यह है (ठाणग० ११०, ११२, ११८, १९७, कप्प० में **तओ** देखिए , उवास० में **ति** शब्द देखिए , सूय० २९३ (कर्मकारक) और बहुधा) , छन्द की मात्राएँ ठीक करने के लिए **तउ आयाणा** = **त्रीण्य् आदानानि** में **तओ** के स्थान मे **तउ** रूप आया है (सूय० ६५), स्त्रीलिंग में **तओ परिसाओ** = **तिस्रः परिषदः** है (ठाणग० १३८ , जीवा० ९०५ , ९१२ , ९१४ , ९१७) , **तओ कम्मभूमीओ** = **तिस्रः** , कर्म– **कर्मभूम्यः** (ठाणग० १६५ , § १७६ की तुलना कीजिए) , **तओ अन्तरणईओ** = **तिस्रो ऽन्तर्नद्यः** (ठाणग० १७७) , **तओ उच्चारपासवणभूमीओ** आया है (कप्प० एस (S) § ५५ , कर्मकारक) , नपु सकलिंग में **तओ ठाणाणि** = **त्रीणि स्थानानि** (ठाणग० १४३) है और साथ साथ **तओ ठाणाइं** (१५८) भी मिलता है और **तओ ठाणा** देखा जाता है (१६३ और १६५), **तओ पाणागाइं** = **त्रीणि पानकानि** है (ठाणग० १६१ और १६२ , कप्प० एस (S) § २५) , **तओ वत्थाहिं** = **त्रीणि वस्त्राणि** है और **तओ पायाइं** = **त्रीणि पात्राणि** है (ठाणग० १६२)। इसी भाँति **तिण्णि** भी सब प्राकृत बोलियों मे काम में आता है . महा० में **तिण्णि रेहा** = **तिस्रो रेखाः** और **तिण्णि** (महिलाओं) भी मिलता है (हाल २०६ , ५८७) , नपुसकलिंग में भी इसका व्यवहार है (रावण० ९, ९१) , अ०माग० पुलिंग में **तिण्णि पुरिसजाए** = ***त्रीन् पुरुषजातान्** है

पर रूप देती हैं। यहाँ दोण्णं, तिण्णं = त्रीणाम् के अनुकरण पर बना है, ऐसा दिखाई देता है कि समासिसूचक -ण्हं संख्या के अनुकरण पर बने *दोण्ह और सर्वनाम के रूप *दोसं के मेल से निकला है। इससे सूचना मिलती है कि कभी *द्वीष्णाम् रूप भी रहा होगा। — अधिकरण में दोसुं और दोसु रूप हैं (चण्ड १, ३, पेज ३९ में), शौर० में भी ये होते हैं (कथिगे ४ २, ३९१) और स्त्रीलिंग में भी वैसे महा० में दोसु दोकन्दलीसुं = द्वयोर् दोःकन्दल्योः है (कर्पूर० ९९, १२), अप० में दुहुँ है (हेच ४, ३४ २)।

१ ये उद्धरण जब कि उनमें स्पष्ट रूप से कोई विशेष बोध न दिया गया हो तो सब कारकों पर लागू होते हैं। क्रमदीश्वर ३, ८५ में दोण्णि है और ३, ८६ में दोणी दिया गया है। इस ग्रन्थ में ये नहीं पाया जाता। — २ हेमचंद्र ४ १० पर पिशल की टीका ; क्रमदीश्वर ४ ७६ में भी। — ३ ग्यूटर्स गा० गे०वि गो १८९८ २ और उसके बाद। — ४ पिशल कू त्सा ३५ १४४। — ५. पिशल कू्त्सा ३५, १४४ और उसके बाद।

§ ४२०—तुये = द्वे सभी प्राकृत बोलियों में कर्ता- और कर्मकारक में तथा तीनों लिंगों में काम में लाया जाता है : महा में यह रूप है (हाल ८४६ ; नपुसक लिंग) अ माग में भी पाया है (आयार २, ८, ८, ६ [कर्मकारक में] ; सूय २९३ [कर्मकारक में] ९२ ८५३ ९७२ उत्तर २ सम २१८ कप्प टी एच (T H) § ४ ; उवास में दु देखिए) स्त्रीलिंग में भज्जा दुवे = भार्ये द्वे (उत्तर ३३०) जै महा में दुए वि मिलता है (आव एर्त्से ८, ४९) दुवे वि भी आया है (एर्त्से २१ ६) दुवे जणा देखा जाता है (आव एर्त्से १९, १) दुवे चारसणायदणा = द्वौ चारसंतापस्री है (एर्त्से ११, ४) अप में दुइ मिलता है (विक्र १, ११ और ४२)। यद्यपि यह इन प्राकृत बोलियों में अर्थात् महा० और अप में दो रूप की तुलना में, इससे अधिक काम में नहीं आता, किन्तु शौर और माग में यही एकमात्र रूप है। इसके अनुसार, शौर पुलिंग में यही रूप आया है (मृच्छ २४, १५ ; शकु २४, १ ४१ १ विक्र ६१, ११ ; मालवि ३७, ८ ; १८, २२ ; १ , १ ; मालती १५८, १ ; विद्ध ६६, १ ; मल्लिका २२१ ५ ; २२७, १२ २५ , १ ; कालेय० २५ २) स्त्रीलिंग में (विद्ध ७४ ७) नपुंसकलिंग में (मृच्छ ६१, १ ; मालवि ५४, ७) ; नपुंसकलिंग में (मृच्छ १५३, १८ ; विक्र १ १) ; माग में यही रूप है (मृच्छ ८०, ११ ; कर्मकारक नपुंसकलिंग)। शौर में इससे एक करणकारक दुवेहिं भी बनता है (मृच्छ ८८, १ ; ५१ २१ ; १२७, १ ; मुद्रा २१२, ७) = *द्वभिः ; सम्बन्धकारक का रूप दुवेणं भी मिलता है। बापरलिंग की शकुन्तला १८ ५ ; ८० २१ ; ५१ १० [किन्तु काश्मीरी संस्करण में द्वा यहाँ दिखाई देता है और बंगला में दुवेण्णं] ; मल्लिका १ २ ६ कालेय २१, १ ; ३१ ११) ; अधिकरण का रूप दुवेसु भी बना है (मल्लिका ११५, १)। — पल्लवदानपत्र ६ १४ ; २ ; ११ ; २ में य शब्द पाया जाता है, महा में यह

कभी-कभी देखने में आता है (हाल ७५२), अ०माग० में यह समास के आदि में देखा जाता है जैसे, **वेइन्दिय** और **वेन्दिय = द्वीन्द्रिय** है (§ १६२) और **वेदोणिय = द्विद्रोणिक** है (उवास० § २३५) , जै०शौर० में यह मिलता है (कत्तिगे० ३९९, ३१० , कर्मकारक) , यह अप० में भी पाया जाता है (हेच० ४३९ , पिंगल १, ९ और १८) , अप० में इसका सक्षिप्त रूप **बि** भी चलता है (पिंगल १, १५३)। इसका नपुसकलिंग **विण्णि** है (चण्ड० १, १० अ पेज ४१ , हेच० ३, १२० : अप० में : हेच० ४,४१८,१ , पिंगल १, ९५)। चण्ड० १,३ पेज ३९ , १,६ पेज ४० , १,७ पेज ४०, हेच० ३,११९ के अनुसार **वे** की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है . करण– **वेहि**, अपादान– **वेहिंतो**, सम्बन्ध– **वेण्हं**, और अधिकरण– **वेसु** तथा **वेसुं** है। अप० मे करणकारक **विहिँ** है (हेच० ४, ३६७, ५), सम्बन्धकारक का **विहुँ** होता है (हेच० ४, ३८३, १) और अधिकरण में **वेहिँ** है (हेच० ४, ३७०, ३)। सस्कृत **द्वा**– के स्थान में **बा** है जो अन्य सख्याशब्दों के साथ आता है, उदाहरणार्थ, अ०माग० में **वारस** (= १२), **वावीसं** (= २२ [यह रूप अर्थात् **वावीस** गुजराती भाषा में है। —अनु०]), **वायालीसं** (=४२) और **वावत्तरिं** (=७२)। § ४४३ और उसके बाद की तुलना कीजिए।

§ ४३८— **३** का कर्त्ता– और कर्मकारक पुलिग और स्त्रीलिंग का रूप **तओ** = **त्रयः** है, नपुसकलिंग में **तिण्णि = त्रीणि** है, यह **ण्ण** सम्बन्धकारक के रूप **तिण्णं** की नकल पर है। इसके रूप बिना किसी प्रकार के भेद के तीनों लिंगों में काम में आते है। प्राकृत व्याकरणकारों ने (वर० ६, ५६ , हेच० ३, १२१ , क्रम० ३, ८५ [पाठ में **तिण्हि** है] , मार्क० पन्ना ४९) इसका उल्लेख कहीं नहीं किया है और केवल अ०-माग० में मिलता है : अ०माग० पुलिग मे यह है (ठाणग० ११०, ११२, ११८, १९७, कप्प० में **तओ** देखिए , उवास० में **ति** शब्द देखिए , सूय० २९३ (कर्मकारक) और बहुधा) , छन्द की मात्राएँ ठीक करने के लिए **तउ आयाणा = त्रीण्य् आदानानि** में **तओ** के स्थान में **तउ** रूप आया है (सूय० ६५), स्त्रीलिंग में **तओ परिसाओ** = **तिस्र॰ परिषदः** है (ठाणग० १३८ , जीवा० ९०५ , ९१२ , ९१४ , ९१७) , **तओ कम्मभूमीओ = तिस्र॰** , कर्म– **कर्मभूम्यः** (ठाणग० १६५ , § १७६ की तुलना कीजिए) , **तओ अन्तरणईओ = तिस्रो ऽन्तर्नद्यः** (ठाणग० १७७) , **तओ उच्चारपासवणभूमीओ** आया है (कप्प० एस (S) § ५५ , कर्मकारक) , नपुसकलिंग मे **तओ ठाणाणि = त्रीणि स्थानानि** (ठाणग० १८३) है और साथ साथ **तओ ठाणाइं** (१५८) भी मिलता है और **तओ ठाणा** देखा जाता है (१६२ और १६५), **तओ पाणागाइं = त्रीणि पानकानि** है (ठाणग० १६१ और १६२ , कप्प० एस (S) § २५) , **तओ वत्थाहिं = त्रीणि वस्त्राणि** है और **तओ पायाइं = त्रीणि पात्राणि** है (ठाणग० १६२)। इसी भाँति **तिण्णि** भी सब प्राकृत बोलियों मे काम में आता है . महा० में **तिण्णि रेहा = तिस्रो रेखा॰** और **तिण्णि** (महिलाओं) भी मिलता है (हाल २०६ , ५८७) , नपुसकलिंग मे भी इसका व्यवहार हे (रावण० ९, ९१) , अ०माग० पुलिग में **तिण्णि पुरिसजाए = *त्रीन् पुरुषजातान्** है

(सूय० ५७९) आमा तिन्नि = यामास् त्रयः है (आयार १, ७, १, ४); तिन्नि आलावगा = त्रय आलापका है (सूय० ८१४ और ८१५ [पाठ में तिण्णि है]) इमे तिन्नि नामधेज्जा = इमानि त्रीणि नामधेयानि है (आयार० २, १५, १५) तिण्णि वि उवसग्गा = त्रयो ऽप उपसर्गाः है (उवास० § १७८) तिण्णि वणिया = त्रयो वणिजाः है (उत्तर २११) स्त्रीलिंग में पत्ताओ तिन्नि पयडीओ = प्राप्तास् तिस्रः प्रकृतयः है (उत्तर० ९७) तिन्नि लेसाओ = तिस्रो लेश्याः है (ठाणंग २६) तिन्नि सागरोवमकोडाकोडीओ = तिस्रः सागरोपमकोटाकोट्यः है (ठाणंग १११) नपुंसकलिंग के उदाहरण (आयार १, ८, ४ ५ पेज १२५, २६; सूय ७७८; सम १५७; विवाह ९ कप्प § ११८ टी एच (T H) § १)। जै महा स्त्रीलिंग में तिन्नि थूणाओ = तिस्रो स्थूणाः (आव एर्त्से १२, १); तिन्नि भेरीओ = तिस्रो भेर्यः और तिन्नि वि गोसीसचन्दणमईओ देवयापरिग्गहियाओ = तिस्रो ऽपि गोशीर्षचन्दनमय्यो देवतापरिगृहीता है (आव एर्त्से १४, ७ और ८); नपुंसक में ताणि तिण्णि वि = तानि त्रीण्य् अपि (एर्त्से १७,११); और पुलिंग में तिण्णि पुरिसा = त्रयः पुरुषाः, एदे तिण्णि वि = एते त्रयो ऽपि, एदे क्खु तिण्णि वि अलंकारसंजोआ = एते खलु त्रयो ऽलंकारसंयोगाः और तिण्णि रासाणो = त्रयो राजानः है (मुद्रा० १९, १ ७२, १ १ ८,९; २ ४,४), इमे तिण्णि मिअंगा = एते त्रयो मृदङ्गाः, वाळत्तवणो तिण्णि = वालतरवस् त्रयः (कर्पूर १, २ ६२ १) है स्त्रीलिंग में तिण्णि आइदीओ = तिस्र आकृतयः (मृच्छ ११२, ६) जै और नपुंसकलिंग में भी यह रूप चलता है (कत्तिगे ४ १, ३६१); अप में वो तिण्णि वि = द्वौ त्रयो ऽपि और तिण्णि रेहाइं = तिस्रो रेखाः मिलते हैं (पिंगल १, ५ और ५२)। करण कारक का रूप तीहिं है (वर ६ ५५ चंड १ ७ पेज ४; हेच ३ ११८; क्रम १ ८४; मार्क पन्ना ४९; गउड ९९५; कप्प० § २२७; नायाध १ २६; उत्तर ९८७), अ माग और जै महा में इस रूप का समर्थन तिहिं किया गया है (सूय ९७ आयार २, १, २ १; ठाणंग ११४ ११६ ११७ सम २१२; ओव § १३६ एर्त्से ४९, २२) यह ऐसा रूप है जो अवसर ही छन्द की मात्राएं ठीक बैठाने के लिए पद्य में ठीक है जैसा कि अप में (हेच ४ ३४७); § ४११ में चउहिं की तुलना कीजिए। — अपादानकारक तीहिंतो है (चंड १, १ पेज ३९; हेच ३ ११८ मार्क पन्ना ४९) क्रम १ ८४ और मार्क पन्ना ४९ के अनुसार तीसुंतो भी चलता है। — सम्बन्धकारक के विषय में वर ६, ५९; चंड १, ६ पेज ४; हेच ३ ११८ और १२३ में तिण्हं और तिण्ह रूप बताये गये हैं और इस नियम के अनुसार अ माग तथा जै महा में तिण्हं रूप पाया जाता है (ठाणंग ११९; आयार २ ७ २ १२ विवाह ५१ और १४; कप्प § १४; एर्त्से० २८, २१)। स्त्रीलिंग में यही रूप चलता है अ माग में पसत्थलेसाण तिण्हं पि = प्रशस्तलेश्यानां तिसृणाम् अपि है (उत्तर० ९८६ और उसके बाद); जै महा०

में **तिण्हं परिसाण = तिसृणां परिषदाम्** है (कालका० २७५,३१) । मार्क० पन्ना ३९ में एक रूप **तिण्णं = त्रीणाम्** बताता है जिसके विषय में ऐसा आभास मिलता है कि इसकी प्रतीक्षा शौर० और माग० में की जानी चाहिए (§ ४३६) । —अधिकरण का रूप महा० में **तीसु** है (वर० ६, ५५; चंड० १,३ पेज ३९, हेच० ३, ११८, रावण० ८, ५८) और **तीसुं** भी चलता है (चंड० १, ३ पेज ३९) तथा पद्य में छंदों की मात्राएं ठीक करने के लिए **तिसु** भी देखा जाता है (हेच० ३, १३५) । —समासों के आरम्भ में सभी प्राकृत बोलियों में **ति-** रूप आता है, अ०माग० में **ते-** भी आता है = **त्रय-, तेइन्दिय** और **तेंन्दिय = त्रीन्द्रिय** (§ १६२) और सब संख्या शब्दों से पहले यही आता है जैसे, **तेरह = त्रयोदश, तेवीसं = त्रयोविंशति, तेत्तीसा = त्रयस्त्रिंशत्** और **तेआलीसा = त्रयश्चत्वारिंशत्** आदि-आदि (§१५३)। अ०माग० में **तायत्तीसा** रूप भी है (= ३३ , कप्प० : ठाणग० १२५) और **तावत्तीसा** भी आया है (विवाह० २१८) तथा अ०माग० और जै०महा० में ३३ देवता **तायत्तीसगा, तावत्तीसया** और **तावत्तीसगा** कहे जाते हैं = **त्रयस्त्रिंशका** हैं (कप्प० § १४ , विवाह० २१५ , २१८ , २२३ , काल्का० २७५, ३४) । § २५४ भी देखिए ।

§ ४३९— ४ कर्त्ता पुलिंग है। **चत्तारो = चत्वारः** (वर० ६, ५८ , चंड० १, ३ पेज ३९ , हेच० ३, १२२ , क्रम० ३,८७ , मार्क० पन्ना ५९ , शौर० में : उत्तररा० १२,७) । सब व्याकरणकार बताते हैं कि कर्मकारक में भी यही रूप चलता है । इस भाँति कर्मकारक मे **चउरो = चतुरः** रूप होगा (चंड० १, ३ पेज ३९ , हेच० ३, १२२, अ०माग० में : उत्तर० ७६८), अ०माग० में कर्त्ताकारक में भी इसका व्यवहार पद्य में किया जाता है (हेच० ३, १२२ , उत्तर० १०३३ , विवाह० ८२) । हेच० ३, १७ में बताता है कि **चऊओ** और **चउओ** जो **चउ-** वर्ग से बने हैं, कर्त्ता-कारक में काम में लाये जाते हैं । शौर० में प्रबोध० ६८, ७ में कर्त्ताकारक स्त्रीलिंग का रूप सब संस्करणों में **चतस्सो** सम्पादित किया गया है, इसके स्थान में कम से कम **चदस्सो = चतस्रः** लिखा जाना चाहिए । जैसा २ और ३ का होता है (§ ४३६ और ४३८), ४ का नपुंसकलिंग का रूप भी **चत्तारि = चत्वारि** बनेगा (वर० ६, ५८ , चंड० १, ३ पेज ३९ , हेच० ३,१२२ , क्रम० ३,८७ , मार्क० पन्ना ४९), यह रूप सभी लिंगों के साथ काम मे लाया जाता है • पुलिंग— पल्लवदानपत्र में **चत्तारि पत्तिभागा = चत्वारः प्रतिभागाः** है (६, १८) और **अद्धिका चत्तारि = अर्धिकाश् चत्वारः** है (६,३९) , महा० में **चत्तारि पक्कलवइल्ला** रूप मिलता है (हाल ८१२) , अ०माग० में **चत्तारि आलावगा = चत्वार आलापका** है (आयार० २, १, १, ११ , सूय० ८१२) , **चत्तारि ठाणा = चत्वारि स्थानानि** है (सूय० ६८८) , **चत्तारि पुरिसजाया = चत्वारः *पुरुषजाता** है (सूय० ६२६), **इमे चत्तारि थेरा = इमे चत्वारः स्थविराः** है (कप्प० टी एच (T H) § ५ और ११) , **चत्तारि हत्थी = चत्वारो हस्तिनः** है (ठाणग० २३६) , कर्मका-कारक में **चत्तारि अगणिओ = चतुरो ’ग्नीन्** है (सूय० २७४) , **चत्तारि मासे**

= चतुरो मासान् (आयार १, ८, १, २) है चत्तारिमहासुमिणे = चतुरो महास्वप्नाम् (कप्प § ७७ नायाध § ४९) है जै महा में महारायाणो चत्तारि = महाराजाश् चत्वारः है (एर्त्से ४, ११) माग में चत्ताळि इमे मिलता है (मृच्छ १५८, ४)। स्त्रीलिंग में : अ॰माग॰ में इमाओ चत्तारि साहाओ = इमाश् चतस्रः शाखाः है (कप्प टी एच (T H) § ५) चत्तारि किरियाओ = चतस्रः क्रियाः है (विवाह ४७) और चत्तारि अग्गमहिसीओ = चतस्रो 'ग्रमहिष्यः (ठाणंग २२८ और उसके बाद) कर्मकारक में चत्तारि संघाडीओ = चतस्रः सघाटी (आयार २, ५, १, १) है; चत्तारि मासाओ = चतस्रो माषाः (ठाणंग २ १) है। नपुंसकलिंग में अ माग में चत्तारि समोसरणाणि = चत्वारि समवसरणानि है (सूय ४४५) चत्तारि सयाई = चत्वारि शतानि है (सम १५८); जै महा में चत्तारि अंगुलाणि मिलता है (एर्त्से १७, २)। — करणकारक में अ माग में सर्वत्र चउहिं आता है (हेच १, १७ क्रम ३,८८ मार्क पन्ना ४९ विवाह ४३७ ठाणंग २ ७ ; सम १४ उवास § १८ और २१ ओव § ५६) स्त्रीलिंग में भी यही रूप चलता है : चउहिं पडिमाहिं आता है (आयार २ २,३ १८ २,६,१,४ २,८,२) चउहिं किरियाहिं = चतसृभिः क्रियाभिः है (विवाह १२ और उसके बाद) चउहिं उक्खाहिं = चतसृभिर् उखाभिः है (आयार २,१ २ १) और चउहिं हिरण्णकोडीहिं -पउत्ताहिं = चतसृभिर् हिरण्यकोटीभिः -प्रयुक्ताभिः है (उवास § १७)। गद्य में चउहिं की प्रतीक्षा होनी चाहिए जो सिंहराजगणिन् ने पन्ना १८ मे चऊहि, चउहि और चउहिं के साथ दिया है। हेमचन्द्र १ १७ में भी चउहि के साथ-साथ चऊहि रूप दिया है। § ४३८ में तिहिं की तुलना कीजिए। अपादान– चउहिंतो है (मार्क पन्ना ४९) और चऊसुंतो भी चलता है (क्रम १ ८८ ; मार्क पन्ना ४९ ; सिंहराज पन्ना १८), कहीं चऊसुंतो भी देखा जाता है (सिंहराज पन्ना १८)। — सम्बन्धकारक में पल्लव दानपत्र में चतुण्णं पाया जाता है (६, १८), महा , अ माग और जै महा में चउण्हं आया है (वर ६ ५९ चंड १ ६ पेज ४ हेच ३ १२३ [यहाँ चउण्ह भी है] क्रम ३ ८९ ; आयार २ ७ २ १२ कप्प § १ और १४ विवाह १४९ और ७८७ ; एर्त्से ९ १८) स्त्रीलिंग में भी यही रूप काम में आता है पयार्स (पयार्सि) चउण्हं पडिमाणं = प्रवार्सा चतसृणां प्रतिमानाम् है (आयार २, २ ३ २१ ; २ ५, १ ; २, ६, १ ७ ; २ ८ ६) और पोरिसीणं चउण्हं = पौरुषीणां चतसृणाम् है (उत्तर ८९१)। वॉर्ण्णं और तिण्णं के अनुकरण पर ओर और माग में चउण्णं की प्रतीक्षा करनी चाहिए और ऐसा आभास मिलता है कि मार्कंडेय इस रूप को पन्ना ४९ में बताता है। इसके उदाहरण अप्राप्त हैं। अधिक रण में अ माग और जै महा में चउसु रूप है (उत्तर ७६९; विवाह ८२; एर्त्से ४१ ३५) चउसुं रूप भी चलता है (एर्त्से ७८,८) स्त्रीलिंग में भी यही रूप आता है चउसु विदिसासु = चतसृषु विदिक्षु है (ठाणंग २५९ ; जीवा २२८ ;

विवाह० ९२५ और ९२७), **चउसु वि गईसु = चतसृष्व् अपि गतिषु** (उत्तर० ९९६)। **चऊसु** रूप की भी प्रतीक्षा होती है, इसका उल्लेख हेमचन्द्र ने ३, १७ में किया है और **चउसु** के साथ यह रूप भी दिया है तथा सिंहराजगणिन् ने पन्ना १८ में **चऊसुं,चउसुं** और **चउसु** के साथ **चऊसु** भी दिया है। — समास में स्वरों से पहले **चउर्** रूप आता है जैसे, माग० मे **चउरंस = चतुरस्र** (ठाणग० २० और ४९३ ; उवास० § ७६), **चउरंगगुलिं** भी आया है (ठाणग० २७०), **चउरिन्दिय** मिलता है (ठाणग० २५ , १२२ , २७५ , ३२२ , सम० ४० और २२८ , विवाग० ५० आदि-आदि) , महा० मे **चउरानन** आया है (गउड०) , अन्य सख्याशब्दों से पहले भी **चउर्** आता है जैसे, अ०माग० में **चउरासिमसीइं** (= ८४, कप्प०) । व्यजनों से पहले आशिक रूप मे **चउर्** आता है जो नियमित रूप से व्यजनादि शब्द के साथ घुलमिल जाता है जैसे, महा० रूप **चउद्दिसं = चतुर्दिशम्** है (रावण०), अ०माग० और जै०महा० मे **चउम्मुह = चतुर्मुख** है (ओव० , एर्त्से०) , शौर० मे **चदुस्सालअ = चतुःशालक** (मृच्छ० ६, ६ , १६, ११ [पाठ में **चदुसाल** है] , ४५, २५), **चतुस्समुद्द = चतुःसमुद्र** है (मृच्छ० ५५,१६ , ७८,३ , १४७,१७), आशिक रूप से **चउ**– काम मे आता है जैसे, महा० मे **चउजाम = चतुर्याम** है (हाल , रावण०), **चउमुह = चतुर्मुख** (गउड०), अ०माग० में **चउपय = चतुष्पद** (आयार० २, १, ११, ९), इसके साथ साथ **चउप्पय** भी है (उत्तर० १०७४ , उवास०), अप० में **चउमुह** रूप है (हेच० ४, ३३१ , 'देसी-भासा' का प्राय बारह सौ वर्ष पहले गर्व करनेवाले, हिन्दी मे प्राप्त पहली रामायण के रचयिता 'सयभु' **चउमुह सयंभु** कहे जाते थे, दूसरे रामायणकार पुप्फदत ने इनके विषय में लिखा है **चउमुह चारि मुहाहिँ जाहिँ**। —अनु०]), **चउपअ** भी पाया जाता है (पिगल १, ११८), दाक्षि० में **चउसाअर** है (पद्य में , मृच्छ० १०१, १२) = **चतुःसागर** है। § ३४० और उसके बाद की तुलना कीजिए। अन्य सख्याशब्दों के साथ लगाते समय दोनों रूप दिखाई देते हैं : अ०माग० मे **चउद्दस=चतुर्दशन्** है (कप्प० § ७४), इसके साथ-साथ पद्य में **चउदस** काम में आता है (कप्प० § ४६ आ) तथा सक्षिप्त रूप **चोॅद्दस** भी चलता है (कप्प० , नायाध०), महा० मे **चोॅद्दह** रूप है, **चोद्दसी** भी मिलता है, जैसा कि **चोॅग्गुण** और उसके साथ-साथ **चउग्गुण = चतुर्गुण** है। **चोॅव्वार** और साथ साथ **चउव्वार = चतुर्वार** है, आदि-आदि (§ १६६ और १४३ और उसके बाद)। अ०माग० में **चो** रूप देखने में आता है जो केवल समासों और सधियों से पहले ही नहीं आता किन्तु स्वतन्त्र रूप मे भी काम में आता है (पिंगल १, ६५ , § १६६ की तुलना कीजिए) । अप० मे नपुसकलिग का रूप **चारि** है (पिंगल १, ६८ , ८७ , १०२) जो **चत्वारि, *चात्वारि** (§ ६५), ***चातारि** (§ ८७), ***चाआरि** (§ १८६) रूप ग्रहण कर **चारि** बना है (§ १६५) । यह समासों में पहले पद के रूप में भी काम में आता है . **चारिपाअ = चतुष्पाद्** और **चारिदहा = चतुर्दश** (पिंगल १,१०२ , १०५ , ११८), जैसा कि **चउरो** अ०माग० में आता है, **चउरोपञ्चिन्दिय = चतुष्पञ्चेन्द्रिय** (उत्तर० १०५९)। अ०माग० रूप **चउरासीइं** और **चोरासीइं = चतुरशीति** तथा

= चतुरो मासान् (आयार १, ८, १, २) है चत्तारिमहासुमिणे = चतुरो महास्वप्नान् (कप्प § ७७ नायाध § ४९) है जै० महा० में महारायाणो चत्तारि = महाराजाश् चत्वारः है (एत्सें ४, १६) माग० में चत्तालि इस मिलता है (मृच्छ० १५८, ४); स्त्रीलिंग में : अ० माग० में इमाओ चत्तारि साहाओ = इमाश् चतस्रः शाखाः है (कप्प टी एच (T H) § ५); चत्तारि किरियाओ = चतस्रः क्रियाः है (विवाह ४७) और चत्तारि अग्गमहिसीओ = चतस्रो 'ग्रमहिष्यः (ठाणंग २२८ और उसके बाद); कर्मकारक में चत्तारि संघाडीओ = चतस्रः संघाटीः (आयार २, ५, १, १) है चत्तारि भासाओ = चतस्रो भाषाः (ठाणंग० २०१) है। नपुंसकलिंग में : अ० माग० में चत्तारि समोसरणाणि = चत्वारि समवसरणानि है (सूय ८०९) चत्तारि सयाइं = चत्वारि शतानि है (सम १५८); जै० महा० में चत्तारि अंगुलाणि मिलता है (एर्से १७, २)। — करणकारक में अ० माग० में रूप चउहिं आता है (हेच १, १७ क्रम १,८८ ; मार्क० पन्ना ४९ विवाह ८१७ ठाणंग २०७ ; सम १४ उवास § १८ और २१ भाव § ५९) स्त्रीलिंग में भी यही रूप चलता है : चउहिं पडिमाहिं आया है (आयार २,२,१, १८ ; २,६,१,८ २,८,२); चउहिं किरियाहिं = चतसृभिः क्रियाभिः है (विवाह १२ और उसके बाद); चउहिं उवक्खाहिं = चतसृभिर् उपाख्याभिः है (आयार २,१,२, १) और चउहिं हिरण्णकोडीहिं -पउत्ताहिं = चतसृभिर् हिरण्यकोटीभि -प्रयुक्ताभिः है (उवास § १७)। गद्य में चउहिं की प्रतीक्षा होनी चाहिए जो शिहरचन्द्रन् ने पन्ना १८ में चऊहिं, चउहिं और चउहिं के साथ दिया है। हेमचन्द्र १ १७ में भी चउहिं के साथ-साथ चऊहिं रूप दिया है। § ४१८ में तिहिं की तुलना कीजिए। अपादान- चउहिंतो है (मार्क० पन्ना ४९) और चउसुंतो भी चलता है (क्रम १ ८८ ; मार्क० पन्ना ४९ ; शिहराज पन्ना १८), कहीं चऊसुंतो भी देखा जाता है (शिहराज पन्ना १८)। — सम्बन्धकारक में पल्लवदानपत्र में चतुण्हं पाया जाता है (६, १८), महा०, अ० माग० और जै० महा० में चउण्हं आया है (वर ६,५ ; चंड १ ६ पेज ४ ; हेच १,१२३ [यहाँ चउण्ह भी है] क्रम १, ८९ ; आयार २ ७ २, १२ ; कप्प § १ और १४ विवाह १४ और ७८७ एर्से ,१८), स्त्रीलिंग में भी यही रूप काम में आता है, पयाणं (पर्याणं) चउण्हं पडिमाणं = पञ्चानां चतसृणां प्रतिमानाम् है (आयार २, २ ३ २१ ; २ ५, १ ; २, ६ १, ० ; २, ८ १) और पारिसीणं चउण्हं = पौरुषीणां चतसृणाम् है (उत्तर ८११)। दोण्णं और तिण्णं के अनुकरण पर शौर० और माग० में चदुण्णं की प्रतीक्षा करनी चाहिए और ऐसा आभास मिलता है कि मार्कण्डेय हम को पन्ना ४९ में बताता है। इनके उदाहरण अज्ञात हैं। अधिकरण में अ० माग० और जै० महा० में चउसु रूप है (उत्तर ७९१ ; विवाह० ८२ ; एर्से० ४१, ३५) चउसुं रूप भी चलता है (एर्से ८४,८) स्त्रीलिंग में भी यही रूप आता है चउसु विदिसासु = चतसृषु विदिक्षु है (ठाणंग १५१ ; नायाध० ९२८ ;

विवाह० ९२५ और ९२७), **चउसु वि गईसु = चतसृष्व् अपि गतिषु** (उत्तर० ९९६)। **चऊसु** रूप की भी प्रतीक्षा होती है, इसका उल्लेख हेमचन्द्र ने ३, १७ में किया है और **चउसु** के साथ यह रूप भी दिया है तथा सिंहराजगणिन् ने पन्ना १८ मे **चऊसुं,चउसुं** और **चउसु** के साथ **चऊसु** भी दिया है। — समास मे स्वरो से पहले **चउर्** रूप आता है जैसे, माग० मे **चउरंस = चतुरस्र** (ठाणग० २० और ४९३, उवास० § ७६), **चउरंगगुलि** भी आया है (ठाणग० २७०), **चउरिन्दिय** मिलता है (ठाणग० २५, १२२, २७५, ३२२, सम० ४० और २२८, विवाग० ५० आदि-आदि), महा० मे **चउरानन** आया है (गउड०), अन्य सख्याशब्दो से पहले भी **चउर्** आता है जैसे, अ०माग० में **चउरसिमसीइं** (=८४, कप्प०)। व्यजनों से पहले आशिक रूप मे **चउर्** आता है जो नियमित रूप से व्यजनादि शब्द के साथ घुलमिल जाता है जैसे, महा० रूप **चउद्दिसं = चतुर्दिशम्** है (रावण०), अ०माग० और जै०महा० मे **चउम्मुह = चतुर्मुख** हे (ओव०, एर्त्से०), शौर० मे **चदुस्सालअ = चतुःशालक** (मृच्छ० ६, ६, १६, ११ [पाठ मे **चदुसाल** है], ४५, २५), **चतुस्समुद्द = चतुःसमुद्र** है (मृच्छ० ५५,१६, ७८,३, १४७,१७), आशिक रूप से **चउ-** काम मे आता है जैसे, महा० में **चउजाम = चतुर्याम** है (हाल, रावण०), **चउमुह = चतुर्मुख** (गउड०), अ०माग० मे **चउपय = चतुष्पद** (आयार० २, १, ११, ९), इसके साथ साथ **चउप्पय** भी है (उत्तर० १०७४, उवास०), अप० में **चउमुह** रूप है ([हेच० ४, ३३१, 'देसी-भासा' का प्राय बारह सौ वर्ष पहले गर्व करनेवाले, हिन्दी में प्राप्त पहली रामायण के रचयिता 'सयभु' **चउमुह सयंभु** कहे जाते थे, दूसरे रामायणकार पुष्फदत ने इनके विषय में लिखा है **चउमुह चारि मुहाहिँ जाहिँ**। —अनु०]), **चउपअ** भी पाया जाता है (पिगल १, ११८), दाक्षि० में **चउसाअर** है (पद्य में, मृच्छ० १०१, १२) = **चतुःसागर** है। § ३४० और उसके बाद की तुलना कीजिए। अन्य सख्याशब्दों के साथ लगाते समय दोनों रूप दिखाई देते हैं : अ०माग० में **चउद्दस=चतुर्दशन्** है (कप्प० § ७४), इसके साथ-साथ पद्य में **चउदस** काम में आता है (कप्प० § ४६ आ) तथा सक्षिप्त रूप **चोॅद्दस** भी चलता है (कप्प०, नायाध०), महा० मे **चोॅद्दह** रूप है, **चोद्दसी** भी मिलता है, जैसा कि **चोॅग्गुण** और उसके साथ-साथ **चउग्गुण = चतुर्गुण** है। **चोॅव्वार** और साथ साथ **चउव्वार = चतुर्वार** है, आदि-आदि (§ १६६ और १४३ और उसके बाद)। अ०माग० में **चो** रूप देखने मे आता है जो केवल समासों और सधियों से पहले ही नहीं आता किन्तु स्वतन्त्र रूप में भी काम में आता है (पिगल १, ६५, § १६६ की तुलना कीजिए)। अप० मे नपुसकलिंग का रूप **चारि** है (पिंगल १, ६८, ८७, १०२) जो **चत्वारि**, ***चात्वारि** (§ ६५), ***चातारि** (§ ८७), ***चाआरि** (§ १८६) रूप ग्रहण कर **चारि** बना है (§ १६५)। यह समासों में पहले पद के रूप में भी काम में आता है : **चारिपाअ = चतुष्पाद्** और **चारिदहा = चतुर्दश** (पिंगल १,१०२, १०५, ११८), जैसा कि **चउरो** अ०माग० में आता है, **चउरोपञ्चिन्दिय = चतुष्पञ्चेन्द्रिय** (उत्तर० १०५९)। अ०माग० रूप **चउरासीइं** और **चोरासीइं = चतुरशीति** तथा

चउरासीइम = चतुरशीत में चउर– रूप दिखाई देता है (कप्प सम० १३९ १४२)। चाउर के विषय में § ७८ देखिए।

§ ४४ — ५ की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है : कर्त्ता– और कर्म– कारक— अ माग , जै महा और शौर० में पञ्च है (विवाह ११८ और १४१ ठाणंग १६१ कप्प उवास० एर्त्से मुद्रा० २ ४, १) करण– अ०माग में पञ्चहिं होता है (उत्तर १७४ विवाह १२ और उसके बाद ; ठाणंग १५१ नायाध ; उवास आदि आदि), अप में पञ्चहिँ है (हेच ४, ४२२, १४) संबंध– अ माग में पञ्चण्हं है (हेच १, १२३ आयार २, ७, २, १२ सम १६), अप में पञ्चहँ है (हेच ४,४२२, १४) अधि करण– जै महा में पञ्चसु है (एर्त्से भूमिका का पेज एकतालीस), अ०माग पद्य में पञ्चे भी आता है (उत्तर० ७ ४)। लास्सन ने अपने ग्रन्थ इन्स्टिट्यू त्सिओनेस प्राकृतिकाए के पेज ३१९ की नोटसंख्या में उल्लेख किया गया है कि रामतर्क वागीश ने अपादानकारक के रूप पञ्चाहिंतो, पञ्चसुंतो भी दिये हैं, सम्बन्धकारक में पञ्चण्ह और अधिकरण में पञ्चसुं तथा अधिकरण स्त्रीलिंग का एक रूप पञ्चासुं दिया है, रविकेश ने पेज १२८ में कर्त्ता स्त्रीलिंग का रूप पञ्चा दिया है, करण में पञ्चाहिं का भी उल्लेख किया है। समासों के पहले पद के रूप में अधिकांश में पञ्च– आता है, अ माग और जै महा में पञ्चा– भी मिलता है जो विशेषतः पञ्चाण- उई (= ९५) में पाया जाता है (ठाणग २६१; सम १५ और १५१ कप्प २६३, ११ ; १६ और १७ बहुत बार अणुप्र रूप पञ्चाणउई आया है)। इसी भाँति पञ्चावण्णा में भी आदि में पञ्चा लगा है"(=५५ हेच १, १७४; देशी ६, २७ त्रिवि १, १ १ ५=बे बाइ १ २४५)। आ का स्पष्टीकरण § ७ के अनुसार होता है। अन्य संख्याशब्दों के साथ पण्ण रूप दिखाई देता है जो अ०माग , जै महा और अप में काम में लाया जाता है, इसका रूप कभी पण्ण (पन्न), पण और पणु भी दिखाई देता है (§ २७३)।

§ ४४१— है षष का § २११ के अनुसार छ हो जाता है। इसकी रूपावली निम्नलिखित प्रकार चलती है : कर्त्ता– और कर्मकारक :– अ माग में छ है (कप्प § १२२ विवाह ५४ सम १५९ और १६३ , उवास) करण– अ माग में छहिं रूप है (सूय १८ और ८४४ ; सम २३२ ; ठाणंग १९४ ; मम १, ४२५ नायाध ८१३ ; उत्तर ७६८ और ७७८); सम्बन्ध– अ०माग और जै शौर छण्हं रूप है (हेच ३ १२३ ; आयार २ १५, १६ ; विवाह ८२ ; ८९; १३१ ; उत्तर ७७६ और ९७९ ; जीवा २७१ ; नायाध ८१२ ८१४ ; ८४४ ; कत्तिगे ३९९ ३ ९), छण्ह रूप भी पाया जाता है (हेच ३१२३); अधि करण– छसु है (ठाणंग २७ ; उत्तर ९८७)। व्यञ्जनों से पहले कर्त्ता- कारक का प्राचीन रूप षट् बना रह गया है : अ माग में छप् पि = षड् अपि है (आयार १ ८, ४ ६ , निरया० ८१ , विवाह ७१८ ; दस ६१९, २ ; नायाध ८२८; ८३ , ८१६; ८४५ और उसके बाद), छब् बोधआया है (उत्तर

१०६५), **छच्च** मिलता है (अणुओग० ३९९ , जीवा० ९१४ , जीयक० ६१ , विवाह० १२३७ , कप्प० टी. एच. (T H.) § ७)। लास्सन ने इन्स्टिट्यूत्सिओने प्राकृतकाए पेज ३२० मे बताया है कि रामतर्कवागीश ने कर्त्ताकारक का रूप **छा** और स्त्रीलिंग में **छाओ** दिया है , करण– **छएहिं**, स्त्रीलिंग मे **छआहिं** और **छाहिं** हैं , अपादान– **छआहिंतो** है [यही पाठ पढा जाना चाहिए] , सम्बन्ध– **छअण्णं** (इस स्थान में **छण्णं** आया है) , अधिकरण– **छसु** (**छासु**) और **छीसु** है । समासों के पहले पद के रूप में **छ**– का प्रयोग बहुत कम दिखाई देता है, जैसे कि जै०महा० में **छखण्ड** आया है (एर्से० १८,८ , यह वास्तव में **छक्खण्ड** के स्थान मे अशुद्ध पाठ भेद है), अधिकाश मे **षट्**– का ही प्रयोग मिलता है जो स्वरों से पहले **छड्** रूप धारण कर लेता है जैसे, **छक्खर = पडक्षर** (= स्कन्ध . देशी० ३, २६), अ०माग० **सड्** भी देखने में आता है जो **सडंगवी = षडंगविद्** मे पाया जाता है (विवाह० १४९ , कप्प० , ओव०) अथवा **छळ्** आता है जैसे, **छळंस = पडश्र** (ठाणग० ४९३ , § २४० देखिए), यह रूप व्यजनों से पहले आता है जिस प्रक्रिया में व्यजन नियमित रूप से आपस में घुलमिल जाते है (§ २७०), जैसे कि महा० और शौर० में **छग्गुण** और **छग्गुणअ = षड्गुण** और **षड्गुणक** हैं (मुद्रा० २३३, ९ , अनर्घ० ६७, ११) , अ०माग० में **छद्दिसिं** रूप मिलता है (विवाह० ९७ और उसके बाद; १४५) , अ०माग० में **छब्भाय = षड्भाग** (उत्तर० १०३६ , ओव० [पाठ में **छब्भाग** है]) , महा० मे **छप्पअ** और जै०महा० में **छप्पय** रूप मिलते हैं (चड० ३, ३ ; हेच० १, २५५ , २, ७७ , गउड० , हाल , कालका०) , अ०माग० में **छत्तल = षड्तल** (ठाणग० ४९५), महा० और अप० में **छंमुह = षण्मुख** हैं (भाम० २, ४१ , चड० ३, ३ और १४ , हेच० १, २५ और २६५ , कर्पूर० १, १० , हेच० ४, ३३१) , महा० और जै०महा० में **छंमास = षण्मास** (हाल , एर्से०) है , अ०माग० में **छंमासिय = षण्मासिक** (आयार० २, १, २, १) , महा० और शौर० में **छंमासिअ = षण्मासिक** (कर्पूर० ४७,१० , ८२, ८) , शौर० में **छच्चरण** रूप आया है (बाल० ६६७)। इसी भाँति यह रूप सख्याशब्दों से पहले जोडा जाता है. अ०माग० **छळसीइ** है (=८६, सम० १४३, विवाह० १९९), अ०माग०, जै०महा० और अप० में **छव्वीसं** आया है (= २६ : उत्तर० १०९२ , एर्से०, पिंगल १, ६८) , अ०माग० मे **छत्तीसं** और **छत्तीसा** रूप पाये जाते है (= ३६ . कप्प०, ओव० , उत्तर० १०४३), **छप्पणं** भी है (= ५६ : § २७३), अ०माग० में **छण्णउइं** है (सम० १५१), जै०महा० **छण्णवई** आया है (कालका० तीन, ५१४, २४) । ४०, ६० और ७० के पहले अ०माग० में **छा**– जोडा जाता है, जिसमें **आ** § ७० के अनुसार आता है : **छायालीस** (= ४६ कप्प०), **छावट्ठिं** (= ६६: सम० १२३), **छावत्तरिं** (= ७६ सम० १३३) रूप मिलते हे । — अप० में **छह = *षष** (§ २६३) जो **छहवीस** में दिखाई देता है (= २६ पिंगल १, ९५ [गौल्दश्मित्त के अनुसार **छव्वीस** है] , ९७ [गौल्दश्मित्त के अनुसार **चउव्वीस**]) और **छह** में आया है (= ६ पिंगल १, ९६)। सस्कृत **षोडश** से पूरा मिलता जुलता प्राकृत रूप **सोळस** है और अप० मे **सोळह** (§ ४४३)।

§ ४४२—७ की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है : कर्त्ता- और कर्मकारक- महा , अ०माग० और जै०महा० में सत्त है (हाल १ ; एत्सें० १५, २९; आयार २, १, ११, २ और १ ठाणंग ४४५ एर्से १४, ४) करण- अ माग में सत्तहिं है (ठाणंग ४४६) सम्बन्ध- अ माग , जै महा और जै शौर में सत्तण्हं होता है (हेच ३, १२३ आयार २, १, ११, ११ कप्प § १४ ; विवाह २६ और २२२; ठाणंग ४४५ कालका २७५, ११; कत्तिगे ३९९, ३ ८), सत्तण्ह रूप भी (मिलता है (हेच ३ १२३) ; अधिकरण- सत्तसु है (ठाणंग ४४५ उत्तर ९ ८) । सन्धि और समास में यह संख्याशब्द सत्त-, सत्ता- और भाग में सत्त बन जाता है (मृच्छ ७९ ११ प्रबोध ५१, ८) । छत्तवण्ण और छत्तिवण्ण = सप्तपर्ण के विषय में § १ १ देखिए । — ८ की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है : कर्त्ता- और कर्मकारक — अ माग में अट्ठ है (ओव ; कप्प उवास), अट्ठ भी चलता है (विवाह ८२ पद्य में ; पाठ में अठ है § ६७ भी देखिए) अप में अट्ठाइँ रूप है (पिंगल १, ९ और ८१) और अट्ठाआ भी आया है (१, ११६ [यह पद्य में आया है और तुक मिलने के लिए कृत्रिम रूप लगता है । —अनु ।]) करण- अ माग मे अट्ठहिं है (उवास § २७ विवाह ४४७ उत्तर ७६८ ठाणंग ४७५); सम्बन्ध- अ माग और जै महा में अट्ठण्हं रूप है (हेच ३ १२३ कप्प § १४ ; विवाह ४१६ और ४४७ एर्से १२ २१) अट्ठण्ह भी चलता है (हेच ३ १२३) ; अधिकरण- अ०माग में अट्ठसु आया है (विवाह ४१६ और ४१७) । सन्धि और समास में अट्ठ- दिखाई देता है अ माग में अट्ठविह = अष्टविध है (उत्तर ८९५) ; शौर में अट्ठपओट्ठ = अष्टप्रकोष्ठ है (मृच्छ ७१ २) और अट्ठा- भी काम में आता है : अ माग और जै महा में अट्ठावय = अष्टापद है (ओव ; एर्से) । अन्य संख्याशब्दों से पहले अट्ठ- रूप जुड़ता है, अ माग में अट्ठुत्तरिं आया है (=७८ : सम ११४ और ११५) ; जै महा में अट्ठतीसं मिलता है (=३८) अट्ठसट्ठी (=६८ : एर्से भूमिका का पेज एकतालीस), इसके विपरीत निम्नलिखित संख्याशब्दों में अट्ठा- आता है : अट्ठारस और अप रूप अट्ठारह (=१८ : § ४४३) ; अ माग और जै महा रूप अट्ठावीसं (=२८), अट्ठावण्णं (=५८) अट्ठाणउइं (=९८) (सम ७८ ; ७९ ; ११७ ; १५२ १५३ ; एर्से भूमिका का पेज एकतालीस) तथा अ माग में अड- भी जुड़ता है अडयालीसं (=४८ : सम १११), अ माग मे अडयाल भी आया है (सम २१), अडसट्ठिं है (=६८ : सम १२६ ; पाठ में अट्ठष अड आया है) । इसी प्रकार अप में अडारह रूप भी मिलता है (पिंगल १ १२७ [श्री स्टेनसेन की लिंक ५४९ में पाठ में यह रूप है गौल्दश्मित्त ने अट्ठारह दिया है] ; १४४ [पाठ में अठरह है गौल्दश्मित्त ने अट्ठारहओ रूप दिया है जो पाठ में अठरह पाअओ है]) अडआलिस भी मिलता है (पाठ में अठआलीस है ; =४८ : पिंगल १ ९५) इनके साथ साथ अट्ठारस भी है (=२८ पिंगल १ ९४ और ८६) तथा अट्ठासट्ठा भी देखने में आता है (=

६८ . पिगल १,१०६) । § ६७ देखिए । — ९ की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है : कर्त्ता- और कर्मकारक- अ०माग० और जै०महा० में **नव** है (कप्प० § १२८ , एर्त्से० ४, १४) , करण- अ०माग० मे **नवहिं** होता है (उत्तर० ९९८) , सम्बन्ध- अ०माग० में **नवण्हं** (हेच० ३, १२३ , आयार० २, १५, १६ , ओव० § १०४ , कप्प० , नायाध०) और **नवण्ह** भी पाया जाता है (हेच० ३,१२३) । सन्धि और समास के आदि मे **णव-** रूप आता है · **णवणवाणण** आया है (गउड० ४-२६), अन्य सख्याशब्दों से पहले भी यही रूप लगता है . अप० मे **णवदह** आया है (= १९ . पिगल १,१११) , अ०माग० मे **णवणउई** मिलता है (= ९९ : सम० १५४) । — १० महा० में **दस** अथवा **दह** होता है , अ०माग०, जै०महा० और शौर० मे **दस,** माग० तथा ढक्की मे इसका रूप **दश** हो जाता है (§ २६), इसकी रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है · कर्त्ता- और कर्मकारक- महा०, अ०माग० और शौर० रूप **दस** (कर्पूर० १२,७ , उवास० , सम० १६२ , १६५ , १६६ , प्रसन्न० १९,५) , माग० मे **दश** के स्थान में **दह** (ललित० ५६६, ११) अशुद्ध है , करण— अ०माग० और जै०महा० मे **दसहिं** रूप है (कप्प० § २२७ , एर्त्से० ३२,१२), महा० में **दसहि** भी चलता है (रावण० ११,३१ , १५,८१), माग० मे **दशेहिं** हैं (मृच्छ० ३२,१८), सम्बन्ध- अ०माग० और जै०महा० मे **दसण्हं** और **दसण्ह** रूप पाये जाते हैं (हेच० ३, १२३ , उवास० § २७५ , एर्त्से० २८, २२), माग० में **दशाणं** है (मृच्छ० १३३, २० [कुमाउनी मे यही रूप चलता है : **दसान** , इस बोली में अधिकाश में **स, श** बोला जाता है, इसलिए गावों में **दशाण** रूप चलता है । —अनु०]) । अ०माग० मे **उवासगदसाणं** रूप पाया जाता है (उवास० § २ और ९१)। इस सबधकारक मे स्त्रीलिंग का रूप **दसा** = **दशा** आया है । अधिकरण- महा० और अ०माग० में **दससु** है (रावण० ४, ५८ , उवास० पेज १६८, ७), चू०पै० में **तससु** होता है (हेच० ४, ३२६) । सन्धि और समास में महा० तथा अप० मे **दस-** और **दह-** रूप लगते है, अ०माग०, जै०महा० और शौर० में **दस-** तथा माग० में **दश-** काम में आता है (§ २६२) , अप० में अन्य सख्याशब्दों के साथ सयुक्त होने पर **दह-** काम में में लाया जाता है : **एक्कदह** (= ११ . पिंगल १, ११४), **चारिदह** और **दहचारि** (= १४ : पिंगल १, १०५ तथा ११०), **दहपञ्च** और **दहपञ्चई** (= १५ : पिंगल १, ४९ , १०६ , ११३), **दहसत्त** (= १७ . पिंगल १, ७९ , १२३) और **णवदह** रूप मिलते हैं (= १९ : पिंगल १, १११ , [पिंगल अर्थात् प्राकृत पिंगलसूत्राणि जैसा पिशल ने माना है विशेष विश्वस्त सामग्री नहीं उपस्थित करता, यह ग्रन्थ छन्द में होने के कारण, इसकी अप० भाषा अनगिनत स्थानों में कृत्रिम बन गयी है, सख्याशब्दों को और भी तोडा मरोडा गया है, उदाहरणार्थ २, ४२ में **वाराहा मत्ता जं कण्णा तीआ होतम्** को लीजिए । **१२** के लिए **वाराह** रूप किसी प्राकृत में नहीं मिलता । **३** के लिए **तीआ** भी दुर्लभ है , दूसरा उदाहरण लीजिए **अक्खरा जे छआ** में **छआ** देखिए (२, ४६), **खडावण्णवद्धो** मे **खडा** का अर्थ छ है, २, १२७ में ९६ को **छण्णावेआ** कहा गया है, अप० में यह **छण्णवइ** है, आदि-आदि । इसका कारण पिंगल के ग्रथ का

§ ४४२—७ की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है : कर्ता- और कर्मकारक- महा , अ माग० और जै महा में सत्त है (हाल ३ ; उवास० १५, २९ आयार २, १, ११ १ और १ ठाणंग ४४० ; एत्सें १४ ४) करण- अ माग में सत्तहिं है (ठाणंग० ४४६) सम्बन्ध- अ माग०, जै महा और जै शौर में सत्तण्हं होता है (हेच ३, १२३ आयार २, १, ११ ११ कप्प § १४ ; विवाह० २६ और २२२ ठाणंग ४४५ कालका २७५, ११ कत्तिगे ३९९, ३ ८), सत्तण्ह रूप भी (मिलता है (हेच ३, १२३) अधिकरण- सत्तसु है (ठाणंग ४४५ उत्तर० ९ ४) । सन्धि और समास में यह संख्याशब्द सत्त-, सत्ता- और भाग में सत्त बन जाता है (मृच्छ ७९, १३ प्रबोध ५१, ८) । छत्तवण्ण और छत्तिवण्ण = सप्तपर्ण के विषय में § १ ३ देखिए । — ८ की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है कर्ता- और कर्मकारक — अ माग में अट्ठ है (ओव ; कप्प उवास०), अट्ठ भी चलता है (विवाह ८२ पद्य में ; पाठ में अठ है § ६७ भी देखिए) अप में अट्ठाई रूप है (पिंगल १, ९ और ८३) और अट्ठाआ भी आया है (१ ११६ ; [यह पद्य में आया है और तुक मिलने के लिए कृत्रिम रूप बनाया है । —अनु ।]) ; करण- अ माग में अट्ठहिं है (उवास § २७ विवाह ४४७ ; उत्तर ७६८ ठाणंग ४७५); सम्बन्ध- अ माग और जै महा में अट्ठण्हं रूप है (हेच ३,१२३; कप्प § १४ ; विवाह ४१६ और ४४७ ; एत्सें १२, २१), अट्ठण्ह भी चलता है (हेच ३ १२३) अधिकरण- अ माग में अट्ठसु आया है (विवाह ४१६ और ४१७) । सन्धि और समास में अट्ठ- दिखाई देता है : अ माग में अट्ठविह = अष्टविध है (उत्तर ८९५) और में अट्ठपमाॅट्ठु = अष्टप्रकोष्ठ है (मृच्छ ७३,२) और अट्ठा- भी काम में आता है : अ माग और जै महा में अट्ठापय = अष्टापद है (ओव ; एत्सें) । अन्य संख्याशब्दों से पहले अट्ठ- रूप जुड़ता है अ माग में अट्ठहत्तरिं आया है (= ७८ : सम ११४ और ११५) ; जै महा में अट्ठतीसं मिलता है (= ३८) अट्ठसट्ठी (= ६८ : एत्सें भूमिका का पेज एकतालीस), इसके विपरीत निम्नलिखित संख्याशब्दों में अट्ठा- आया है : अट्ठारस और अप रूप अट्ठारह (= १८ : § ४४३) ; अ माग और जै महा रूप अट्ठावीसं (= २८) अट्ठावण्णं (= ५८) अट्ठाणउइं (= ९८) (सम ५८ ; ७९ ; ११७ १५२ ; १५३ ; एत्सें० भूमिका का पेज एकतालीस) तथा अ माग में अड- भी पुख्ता है, अडयालीसं (= ४८ : सम १११), अ माग में अडयाल भी आया है (सम २१), अडसट्ठिं है (= ६८ : सम १२६ ; पाठ में अट्ठ अड आया है) । इसी प्रकार अप में अडाइस रूप भी मिलता है (पिंगल १ १२७ [बौ`ल्लें`नसेन की विक ५४९ में पाठ में यह रूप है गौल्दश्मित्त ने अट्ठाइस दिया है] : १४४ [पाठ में अठइस है गौल्दश्मित्त ने अट्ठाइसआ रूप दिया है जब पाठ में अठइस पामओ है]) अडआलिस भी मिलता है (पाठ में अठतालीस है ; = ४८ : पिंगल १ ९५) इनके साथ साथ अट्ठारस भी है (= २८ : पिंगल १, ६४ और ८६) तथा अट्ठासट्ठा भी देखने में आता है (=

करणकारक में अप० में **एआरहहिँ** होता है (पिंगल १, ६६ [पाठ में **एआरहहि** है], १०९ और उसके बाद, बौँल्लेँनसेन, विक्रमोर्वशी पेज ५३८ में **एग्गारहहि** दिया गया है), अ०माग० में **बारसहिं** मिलता है (सूय० ७९०, उत्तर० १०३४), अप० में **बारहहिँ** रूप है (पिंगल १, ११३), अ०माग० में **चोँद्दसहिं** भी है (जीवा० २२८, ओव० § १६, पेज ३१,२१), अ०माग० में **पण्णरसहिं** भी आया है (जीवा० २२८), सम्बन्ध- अ०माग० में **दुवालसण्हं** मिलता है (उवास०), अ०माग० में **चउद्दसण्हं** भी है (विवाह० ९५२), **चोद्दसण्हं** आया है (कप्प०), **पण्णरसण्हं** है (हेच० ३ १२३), अ०माग० और जै०महा० में **सोळसण्हं** आया है (विवाह० २२२, एत्सें० २८, २०), **अट्ठारसण्हं** है (हेच० ३, १२३) और **अट्ठारसण्ह** भी देखा जाता है (एत्सें० ४२, २८), अधिकरण- **पण्णरससु** है (आयार० पेज १२५, ३३, विवाह० ७३४)।

१. ये उद्धरण, जहाँ-जहाँ दूसरे उद्धरण न दिये गये हों, वहाँ नीचे आयी हुई संख्याओं के लिए भी उपयुक्त हैं। अधिकांश संख्याशब्द ११-१०० तक अ०माग० द्वारा सप्रमाण उद्धृत किये जा सकते हैं, विशेषत. सन्धि और समास में, इसके बाद इनके उदाहरण और प्रमाण जै०महा० तथा अप० में प्राप्त हैं। अन्य प्राकृत बोलियों में उदाहरणों का अभाव है।

§ ४४४— १९ अ०माग० में **एगूणवीसं = एकोनविंशति** है (§ ४४५ की तुलना कीजिए, विवाह० ११४३, नायाध० § १२), अप० में **एगूणविंसा** है (पिंगल २,२३८) और **णवदह** भी पाया जाता है (§ ४४२)। इन रूपों के साथ-साथ अ०माग० और जै०महा० में **अउणवीसइ** और **अउणवीसं** रूप मिलते हैं (उत्तर० १०९१, एत्सें० भूमिका का पेज एकतालीस)। ये दोनों प्रकार के रूप अ०माग० और जै०महा० में अन्य दशकों (त्रिशत्, चत्वारिंशत, पञ्चाशत = ३०,४०,५० आदि) के साथ-साथ में चलते हैं। इस नियम से **एगूणपन्नासइम** (= उनपचासवाँ, सम० १५३) और **अउणापण्ण** (= ४९, ओव० § १६३, विवाह० १५८) साथ साथ चलते हैं, **एगूणसट्ठिं** (= ५९, सम० ११८) और **अउणट्ठिं** हैं (कप्प० § १३६, इसी ग्रन्थ में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए), **एगूणसत्तरिं** (= ६९, सम० १२६) और **अउणत्तरिं** दोनों चलते हैं (कप्प० § १७८ [गुजराती **ओगणीस्** और मारवाडी **गुन्नीस** (=१९), **गुनतीस** = २९ आदि रूप इस **एगूण-** से निकले हैं और **उन्नीस, उनतीस** आदि में **अउण-** का **उन्** आया है। —अनु०])। इनके अतिरिक्त जनता अ०माग० में **अउणतीसं, अउणत्तीसं** भी बोलती थी (= २९ : उत्तर० १०९३, एत्सें० भूमिका का पेज एकतालीस), साथ ही अ०माग० **एगूणासीइं** (= ७९ · सम० १३६) और **एगूणणउइं** भी चलते थे (= ८९ · सम० १४६)। ए० म्युलर[१] और लौयमान[२] के अनुसार **अउण-** और **अउणा-** (§ ७०) **एकोन** से निकले हैं, किन्तु यह मत अशुद्ध है तथा **अउण = अगुण** जैसा **द्विगुण, त्रिगुण** इत्यादि में पाया जाता है। महा० मे **दुउण** है और अ०माग० में **दुगुण** रूप मिलते हैं (§ ४३६), अ०माग० मे **अणंतगुण** भी आया है (विवाह० १०३९)। प्राचीन हिन्दी रूप **अगुनीस** और

पद्य में होना भी एक है, दूसरा कारण यह है कि इसके उदाहरणों में ठीक सम्पादन न होने से भाषा का कोई प्रमाणवत्व नहीं मिलता, इसलिए पिशल ने § २९ में ठीक ही लिखा है 'यह ग्रन्थ बहुत कम काम का है।' —अनु])।

§ ४४३—११ १८ तक के संख्यावाचकों के रूप निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :— ११ अ माग में इसका रूप एक्कारस और इक्कारस हो जाता है (विवाह० ८२ और १६५ कप्प ; उवास), महा और अप में एगारह है (भाम २, ४४ मार्क पन्ना १९ पिंगल ५, ६६ १ ९–११२) और एगारह भी मिलता है (पिंगल १, ७७ ७८ १ ५ ११४), गारहाई भी है (२, १११) तथा एआवह भी मिलता है (§ ४४२) चू पै मे एकातस रूप है (हेच ४, ३२५)। —१२ का अ माग, जै महा और जै शौर में बारस रूप है [संभू की रामायण (पउमचरिउ) में ११ के लिए इस बारस में मिलता रूप एयारस मिलता है। —अनु] (आयार २,१५,२१ और २५ पण्णव ५२ विवाह ८२; उत्तर० ६९१ ; उवास कप्प एर्से कत्तिगे ४ २, ३६९; ४ १, ४०१ [पाठ में बारस है]) स्त्रीलिंग में जै महा में बारसी (तीर्थ० ६, ७) है और अ माग तथा जै महा० में दुवालस (§ २४४) तथा महा और अप में बारह है (भाम २, ४४ मार्क पन्ना १९; पिंगल १, ४१ ; ६९ आदि आदि)। —१३ अ०माग में तेरस (सूय० ६९९ उवास० ; कप्प), स्त्रीलिंग में तेरसी (आयार २,१५, ४ ; कप्प) है ; महा और अप में तेरह है (भाम० २, ४४ मार्क पन्ना १९; पिंगल १, ९ ; ११ ५८, ६६)। —१४ चों इह है (हेच १, १७१) अ माग और जै महा रूप चोद्दस है (उवास ; कप्प०; एर्से ¹) तथा चउद्दस भी मिलता है (कप्प), छन्द की मात्राएं ठीक करने के लिए चउदस काम में आता है (कप्प § ४६ आ), अप में चउदह है (पिंगल १,१११ और ११४) चाउद्दहा भी आया है (२ ६५) और चारिदृहा तथा दहचारि रूप भी चलते हैं (§ ४४२)। —१५ अ माग और जै महा में पण्णरस [पण्णा—वाले रूप मराठी में चलते हैं। —अनु] है (§ २७३), अप० में पण्णरह होता है जैसा हर और हच स्पष्टतया बताते हैं (§२७३), अप० में दहपञ्च और दहपञ्चाई रूप भी आये हैं (§ ४४२)।—१६ अ माग और जै महा में सोलस है, अ माग० में सोलसय भी देखा जाता है (जीवा ९२८) अप में सोळह है (पिंगल १,१ १ ; १ ४ और १०५), सोळा भी आया है (२, ९७ और ९७ [अप के सोळह और सोळा रूप सोलह और सोला पढ़े जाने चाहिए, पिंगल के ग्रन्थ में ल के स्थान में सर्वत्र ळ दिया गया है; ळ और ल के उच्चारण में कोई भेद नहीं रखा गया है। —अनु])। —१७ अ०माग और जै महा में सत्तरस है (विवाह १९८ ; एर्से), अप में दहसत्त है (§ ४४२)। — १८ अ माग और जै महा में अट्ठारस है। यही रूप पल्लवदानपत्र ६ २४ में भी मिलता है, अप में अट्ठारह चलता है (पिंगल १, ७९)। दृ के स्थान में र के लिए § २४५ देखिए और दृ के स्थान में ल के लिए § २४४ देखिए। उपर्युक्त संख्यावाचकों की रूपावली वचन् के अनुसार चलती है (§ ४४२) अर्थात् उदाहरणार्थ

करणकारक में अप० में **एआरहहिँ** होता है (पिंगल १, ६६ [पाठ में **एआरहहि** है], १०९ और उसके बाद ; बौ ल्लें नसेन, विक्रमोर्वशी पेज ५३८ में **एग्गारहहि** दिया गया है), अ०माग० में **बारसहिं** मिलता है (सूय० ७९०, उत्तर० १०३४) , अप० में **वारहहिँ** रूप है (पिंगल १, ११३), अ०माग० में **चोँद्दसहिं** भी है (जीवा० २२८ , ओव० § १६, पेज ३१,२१), अ०माग० मे **पण्णरसहिं** भी आया है (जीवा० २२८) , सम्बन्ध- अ०माग० में **दुवालसण्हं** मिलता है (उवास०), अ०माग० मे **चउद्दसण्हं** भी है (विवाह० ९५२), **चोद्दसण्हं** आया है (कप्प०), **पण्णरसण्हं** है (हेच० ३ १२३) , अ०माग० और जै०महा० में **सोळसण्हं** आया है (विवाह० २२२ , एर्त्से० २८, २०), **अट्ठारसण्हं** है (हेच० ३, १२३) और **अट्ठारसण्ह** भी देखा जाता है (एर्त्से० ४२, २८) , अधिकरण- **पण्णरससु** है (आयार० पेज १२५, ३३ , विवाह० ७३४) ।

१. ये उद्धरण, जहाँ-जहाँ दूसरे उद्धरण न दिये गये हों, वहाँ नीचे आयी हुई संख्याओं के लिए भी उपयुक्त है। अधिकांश संख्याशब्द ११-१०० तक अ०-माग० द्वारा सप्रमाण उद्धृत किये जा सकते हैं, विशेषत. सन्धि और समास में, इसके बाद इनके उदाहरण और प्रमाण जै०महा० तथा अप० में प्राप्त हैं। अन्य प्राकृत बोलियों मे उदाहरणों का अभाव है।

§ ४४४— १९ अ०माग० में **एगूणवीसं = एकोनविंशति** है (§ ४४५ की तुलना कीजिए , विवाह० ११४३, नायाध० § १२), अप० मे **एगूणविंसा** है (पिंगल २,२३८) और **णवदह** भी पाया जाता है (§ ४४२)। इन रूपों के साथ-साथ अ०माग० और जै०महा० में **अउणवीसइ** और **अउणवीसं** रूप मिलते हैं (उत्तर० १०९१ , एर्त्से० भूमिका का पेज एकतालीस) । ये दोनों प्रकार के रूप अ०माग० और जै०महा० में अन्य दशकों (त्रिशत्, चत्वारिंशत, पञ्चाशत = ३०,४०,५० आदि) के साथ-साथ में चलते है। इस नियम से : **एगूणपन्नासइम** (= उनपचासवाँ , सम० १५३) और **अउणापण्ण** (= ४९ , ओव० § १६३ , विवाह० १५८) साथ साथ चलते हैं , **एगूण-सट्ठिं** (= ५९ , सम० ११८) और **अउणट्ठिं** हैं (कप्प० § १३६ , इसी ग्रन्थ में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए) , **एगूणसत्तरिं** (= ६९ , सम० १२६) और **अउणत्तरिं** दोनों चलते हैं (कप्प० § १७८ [गुजराती **ओगणीस्** और मारवाडी **गुन्नीस** (=१९), **गुनतीस** = २९ आदि रूप इस **एगूण-** से निकले हैं और **उन्नीस, उनतीस** आदि में **अउण-** का **उन्** आया है। —अनु०]) । इनके अतिरिक्त जनता अ०माग० में **अउणतीसं, अउणत्तीसं** भी बोलती थी (= २९ : उत्तर० १०९३ , एर्त्से० भूमिका का पेज एकतालीस), साथ ही अ०माग० **एगूणासीइं** (= ७९ . सम० १३६) और **एगूणणउइं** भी चलते थे (= ८९ सम० १४६) । ए० म्युलर[१] और लौयमान[२] के अनुसार **अउण-** और **अउणा-** (§ ७०) **एकोन** से निकले हैं, किन्तु यह मत अशुद्ध है तथा **अउण = अगुण** जैसा **द्विगुण, त्रिगुण** इत्यादि में पाया जाता है। महा० में **दुउण** है और अ०माग० में **दुगुण** रूप मिलते हैं (§ ४३६), अ०माग० में **अणंतगुण** भी आया है (विवाह० १०३९) । प्राचीन हिन्दी रूप **अगुनीस** और

गुणीस (=१९) और गुजराती ओगणीस की तुलना कीजिए जो = *ऊनगुण विंशति है।

१ बाइत्रेगे पेज १७। —२ औपपातिक सूत्र में अउणापन्न देखिए।

§ ४४१—१९ ५८ तक के संख्याशब्द अ माग और जै॰महा में कत्ताकारक, नपुंसकलिंग में शब्द के अन्त में –अं जोड़कर बनाते हैं अथवा अंत –आ लगाकर स्त्रीलिंग बनाते हैं, अप में उ–अ लगाया जाता है तथा ५९ ९९ तक के संख्याशब्द नपुंसकलिंग रूप में अन्त में –इं लगाकर बनते हैं अथवा अन्त में –ई जोड़कर स्त्रीलिंग बन जाते हैं। शेष कारकों में स्त्रीलिंग एकवचन की भाँति इनकी रूपावली चलती है और संस्कृत की भाँति गिने हुए पदार्थ या तो सम्बन्धकारक बहुवचन में होते हैं अथवा साधारणतः संख्या के कारक में ही बहुवचन में आते हैं। —२० का रूप वीसइ = विंशति भी होता है (कप्प ; उवास) कत्ता– वीसई और वीसई हैं (एर्स्से भूमिका का पेज एकतालीस[१]), अ माग में अउणवीसई (=१९) आया है और वीसई भी (=२), एक्कवीसइ है (=२१) और पणवीसइ (=२५) तथा सत्तवीसई भी (=२७ : उत्तर १०११ १ ११ तक), अप में चउवीसइ मिलता है (=२४ : पिंगल १, ८७)। वीसइ रूप विशेष करके २१ २८ तक में जोड़ा जाता है और वीसम् रूप में भी मिलता है (कप्प एर्स्से) अथवा वीसा रूप में दिखाई देता है (हेच १, २८ और ९२ एर्स्से), अप में वीस रूप आता है (पिंगल १ ९५ हेच ४ ४२३,४) इसके ठीक विपरीत तीसई = त्रिंशत् है जो अ माग में पाया जाता है (उत्तर १ ९१) और वीसइ = विंशति के साथ साथ जुड़ा हुआ आया है। इसके बाद अन्य संख्याशब्द आते हों तो इस प्रकार जोड़े जाते हैं अ माग॰ और जै महा में एक्कवीसं, एगवीसा और इगवीसं (=२१ : उत्तर १ २; विवाह॰ १ ८; एर्स्से) बावीसं [गुजराती में २२ को बावीस कहते हैं। —अनु] (=२२ : उत्तर १ ७० १ ९१ और १ ९२ विवाह १९८ एर्स्से) अप में बाइस है (पिंगल १,६८); तेवीसं मिलता है (=२३ उत्तर १ ९२ सम ६६ एर्स्से) अप में तेइस है (पिंगल १ ९५) चउवीसं है (=२४ : हेच १, १३७ ; विवाह १८ उत्तर १ ९२ ठाणंग २२) चउव्वीसं भी है (विवाह १९८ एर्स्से) अप में चउवीसह मिलता है (पिंगल १ ८७ [बंबई के संस्करण में चउवीसइ है किन्तु गोल्दश्मित्त ने उक्त रूप ठीक माना है]), चोवीस भी आया है (२, २९१) और चोविस भी पाया जाता है (२ २७९ [पाठ में चौविस है। —अनु]) ; पण्णवीसं, पणुवीसं और पणुवी– [पाठ में चोवीसा है। —अनु] साहि में पणुवीसा भी मिलता है (= २५ : § २७३), अप में पचीस रूप है (पिंगल १, १२) ; छव्वीसं मिलता है (=२६ : उत्तर १ ९२; एर्स्से) अप में छइवीस और छव्वीस रूप मिलते हैं (§ ४४१) अ माग में सत्तवीसं रूप है (=२७ : उत्तर १ ९१) और सत्तावीसं भी आया है (विवाह ८५ और उसके बाद) ; सत्तावीसा देखने में आता है (हेच १ ४) ; अप में सत्ताइसा है (पिंगल १ ५१ ५२ और

५८), **अट्ठावीसं** और **अट्ठावीसा** रूप हैं (विवाह० ८२), अप० में **अट्ठाइस** और **अढाइस** रूप हैं (= २८ : § ४४२) , **उनतीस** के प्राकृत रूप **अउणतीसं** और **अउणतीसं** रूप आये है (= २९ : § ४४४)। — **३०** का रूप **तीसं** है (कप्प० , नायाध० , एर्त्से०) और **तीसा** भी (हेच० १, २८ और ९२), अप० में **तीसा** चलता है (पिंगल १,५१ और ६०), यह रूप **तीसक्खरा = त्रिंशदक्षरा** में भी आया है (१, ५२), **तीसं** भी है (१, ६१) । इसके बाद आनेवाले सख्याशब्दो के रूप जैसे कि सभी आगे आनेवाले दशकों के होते हैं, ठीक **२०** के बाद आनेवाले २१-२९ तक के रूपों की भाँति चलते हैं । उनमे केवल ध्वनिनियमों के अनुसार आवश्यक परिवर्तन होते हैं । इसके अनुसार : **बत्तीसं** (= ३२ : विवाह० ८२ , एर्त्से०) होता है और **बत्तीसा** भी (कप्प०), अप० मे **बत्तीस** आया है (पिंगल १,६२ और ६९), **बत्तीस** के लिए महा० में **दोसोळह = द्विषोडशन्** भी बोला जाता है (कर्पूर० १००,८) , **तेंतीस** के **तेत्तीसं** और **तित्तीसं** रूप हैं (= ३३ : कप्प० :विवाह० १८,३३ , ३९१ , उत्तर० ९०९ , ९९४ , १००१ , १०७० , १०९४ , एर्त्से०), अ०माग० में **तायत्तीसा** भी मिलता है, अ०माग० में **तावत्तीसग** रूप भी है और जै०महा० मे **तावत्तीसय** (§ ४३८) , **–३४ = चोॅत्तीसं** (ओव० , सम० १००) , **–३५ = पणत्तीसं** है (विवाह० २००) , **–३६ = छत्तीसं** और **छत्तीसा** है (कप्प० , ओव०) , **–३८ = अट्ठत्तीसं** (कप्प०) और **अट्ठतीसं** भी चलता है (एर्त्से०) । — **३९ = चत्तालीसं** है (कप्प० , विवाह० १९९ , एर्त्से०) और **चत्तालीसा** भी आया है (विवाह० ८२), **चायालीसं** भी चलता है (एर्त्से०) जो सक्षिप्त होकर जै०महा० मे **चालीस** बन जाता है और **चालीससाहस्स = चत्वारिंशत्साहस्य** में आया है (एर्त्से० १०, ३५) तथा अप० में स्वतन्त्र रूप से **चालीस** है (पिंगल १, १५३ और १५५) । यह ऐसा रूप है जो अ०माग०, जै०महा० और अप० में सर्वत्र देखा जाता है जब कि उसके अनन्तर अन्य सख्याशब्द आते हों जैसे, अप० में **इआलीस** (= ४१ : पिंगल १,१२५) , **–४२** का अ०माग० और जै०महा० में **बायालीसं** रूप है (विवाह० १५८ , कप्प० , नायाध० , ठाणग० २६२ , एर्त्से०) , **–४३ = तेआलीसा** (हेच० २, १७४) , जै०महा में **तेयालीसं** रूप है (एर्त्से०) , **–४४** रूप **चउआलीसं** और **चोयालीसं** है, **चोयालीसा** भी मिलता है (सम० १०८ और १०९, विवाह० २१८, पण्णव०, उसके बाद), अप० में **चउआलीस** है (पिंगल १, ९० [गौल्दश्मित्त प [**पञ्चतालीसा**] , ९७) और **चोआलीसह** है (पिंगल २, २३८) , **–४५** = अ०माग० **पणयालीसा** (पण्णव० ५५) और **पणयालीसं** है (विवाह० १०९ , ओव०), अप० **पचतालीसह** (पिंगल १,९३ और ९५) **पचआलीसहिँ** पढा जाना चाहिए , **–४६ = छयालीसं** (कप्प०) , **–४७** = अ०माग **सीयालीसं** (विवाह० ६५३)[१] , **–४८** = अ०माग० और जै०महा० रूप **अढयालीसं** है, **अढआलीस** मिलता है (§ ४४२), अ०माग० में **अट्ठचत्तालीसं** भी देखा जाता है (विवाह० ३७२), **–४९** के लिए माग० मे **एॅक्कणपण्ण** रूप है (जीवा० ६२) । अ०माग० पद्य मे सक्षित रूप **चाली** (उवास० § २७७, ६) तथा अ०माग०, महा० में **चत्ता** रूप भी आया है (=४० । —अनु०] उवास०

§ २७७, ६ एत्सें), अन्य संख्याशब्दों के साथ संयुक्त होने पर इस प्रकार के रूप आते हैं, जैसे, जै॰महा में बियाला (एत्सें) और अ माग॰ दुयाल में बाल रूप में पाया जाता है (पाठ में दुयुयाल है विवाह॰ १९९), जै महा में ४२ =बायाल (एत्सें), अप॰ में वेआल है (पिंगल १, ९५) ४९=अ माग में पणयाल (सम १ ९) पणयालसयसहस्सा (=४५ •• उत्तर॰ १ १४) -४८=अ माग में अडयाल (सम ११ पण्णव ९९ [पाठ में अडयाल है] विवाह २९ [पाठ में अडयाल है]) । — ५०=पञ्चाशं, पण्णासा और पन्ना है, ५१ ५९ तक के -वन वाले संख्याशब्दों -पण्ण और -वण्ण लगाकर बनाये जाते हैं (§ २७३) । ये संक्षिप्त रूप पञ्चाशत् , पञ्चशत् , ०पञ्चशत् और पञ्चत् से व्युत्पन्न हुए हैं (§ ८१ और १४८) ।

१ यह उद्धरण पूरे पाराग्राफ और इसके बाद आनेवाले पाराग्राफों के लिए लागू है । याकोबी ने जो निष्कर्ष निकाले हैं वे अधिक रूप में अप्रकाशित मौलिक सामग्री की सहायता से इस कारण मैं सर्वत्र उनकी जाँच नहीं कर सकता । — २. § ७७६ में सयरी की तुलना कीजिए ।

§ ८८६— ६०=अ माग सट्ठि (सम॰ ११८ और ११९), संधि और समास में सट्ठि आता है सट्ठिसत्त रूप मिलता है (विवाह १४९ कप्प ओव) जै महा में सट्ठि और सट्ठी हैं (एत्सें) और में छट्ठि पाया जाता है (कमलारक मृच्छ ५८ १६), अधिक सम्भव यह लगता है कि अधिकतर हस्त लिपियों और छपे संस्करणों के अनुसार यह रूप सट्ठि पढ़ा जाना चाहिए अप में सट्ठि है (पिंगल १, १ ५ दूसरे शब्द से संयुक्त होने में भी यही रूप है, १, ९१) । अन्य संख्याशब्दों के साथ संयुक्त होने में -सट्ठि, -षट्ठि और -भट्ठि के साथ बदलते रहता है (§ २६५) : अ माग तथा जै महा में ६१=एगूणसट्ठि और अउणट्ठि, इगसट्ठि और एग ट्ठि रूप भी हैं ; ६२=बासट्ठि और बावट्ठि ; ६३=तेसट्ठि और तेवट्ठि है ; ६४=चउसट्ठि और चोसट्ठी (विवाह ८२) तथा चउवट्ठि- ; ६५= पणसट्ठि और पण्णट्ठि (कप्प) ; ६६=छावट्ठि ६७=सत्तसट्ठि और ६८= अडसट्ठि और अट्ठसट्ठि- है (वेबर, भग १,४२६ सम ११८-१२६ एत्सें) । —७०=अ माग और जै महा में सत्तरि और सत्तरि- है, जै महा में -सयरी और सयरि- भी हैं (सम १२७ और १२८ प्रबन्ध २०१, १२ ; एत्सें) । र के विषय में § २४५ देखिए । अन्य संख्याशब्दों के साथ संयुक्त होने पर कभी -सत्तरि, कभी -हत्तरि कभी -यत्तरि और कभी -भत्तरि- रूप आता है : अ माग में एगूणसत्तरि और अउणत्तरि रूप चलते हैं (=६९ : § ४४४) ; ७१= एक्कसत्तरि (सम ; पाठ में एक्कसत्तरि है) ; ७२=बावत्तरि, जै महा॰ में बिसत्तरि- भी है ; ७३=तेवत्तरि और ७४=चावत्तरि, जै महा में चउहत्तरि भी है ; ७५=अ माग में पण्णहत्तरिए (कालकारक ; कप्प § २) पणत्तरि भी मिलता है (यह रूप सम में तीन बार आया है ; इसी ग्रंथ में अन्यत्र पणत्तरि रूप भी है) जै महा में पणसयरी है (प्रबन्ध २०१, १२) ; ७६=छावत्तरि है ;

७७ = **सत्तहत्तरिं** हैं और ७८ = **अट्ठहत्तरिं** तथा जै०महा० मे **अट्ठत्तरि**– है (वेबर, भग० १, ४२६, २, २४८, सम० १२६–१३५, एर्त्से०)। अप० में **पहत्तरि** मिलता है (=७१ : पिंगल १, ९५, ९७, १००) और **छाहत्तरि** भी आया है (=७६ : पाठ में **छेहत्तरि** है, २,२३८)। — ८० = अ०माग० में **असीइं** है, जै०महा० मे **असीई** और **असीइ**– (सम० १३७, विवाह० ९४ और ९५, एर्त्से०)। अन्य सख्याशब्दों के साथ सयुक्त होने पर : अ०माग० मे **एगूणासीइं** है (= ७९), जै०महा० मे **ऍक्कासीई**, अ०माग० में **वासीइं**, अ०माग० में **तेसीइं**, करणकारक मे **तेयासीए** रूप मिलता है (सम०), जै०महा० मे **तेसीई**, अ०माग० में **चउरासीइ, चोरासीइं** और **चोरासी** रूप मिलते है, जै०महा० मे **चउरासीइ**– और **चुलासीइ**– पाये जाते हैं, अ०माग० मे **पञ्चासीइं, छलासीइं, सत्तासीइं** और **अट्ठासीइं** रूप हैं (सम० १३६–१४५, कप्प०, एर्त्से०)। अप० में **असि** (= ८०) भी आया है, **वेआसी** (= ८२) और **अट्ठासि** (= ८८ : पिंगल १, ८१, ९८, २, २३८)। —९० = अ०माग० **नउइं** और जै०महा० रूप **नउई** है (सम० १४७, एर्त्से०)। अन्य सख्याशब्दो के साथ सयुक्त होने पर : अ०माग० में **एगूणणउइं** (= ८९) और **ऍक्काणउइं** रूप आये है (सम०, पाठ में **एकाणउइं** है), **बा–, ते–, चउ–, पञ्च–** और **छण्णउइं** तथा **छण्णउइं** रूप मिलते हैं (विवाह० ८२), **सत्ताणउइं** और **अट्ठाणउइं** रूप भी पाये जाते हैं, जै०महा० में **बाणउई, तेणउई, पञ्चणउई** और **पणणउई** तथा **छन्नउई** रूप देखने में आते हैं (सम० १४६-१५३, एर्त्से०)। अप० में **छण्णवइ** है (=९६ : पिंगल १, ९५)।

§ ४४७—१९-९९ तक के सख्याशब्दों की रूपावली और रचना के निम्नलिखित उदाहरण पाये जाते है : अ०माग० मे : कर्त्ताकारक में **तेवीसं तित्थकरा** = **त्रयोविंशतिम् तीर्थकराः** है (सम० ६६), **वायालीसं सुमिणा तीसं महासुमिणा बावत्तरिं सव्वसुमिणा** = **द्वाचत्वारिंशत् स्वप्नास् त्रिंशन् महास्वप्ना द्वासप्तति. सर्वस्वप्ना** है (विवाह० ९५१ [पाठ मे **बावित्तरिं** है], नायाध० § ४६, कप्प० § ७४), **तायत्तीसा लोगपाला** = **त्रयस्त्रिंशल् लोकपाला.** है (ठाणग० १२५)। — कर्मकारक में **वीसं वासाइं** = **विंशति वर्षाणि** है (उवास० § ८९, १२४, २६६), **पण्णासं जोयणसहस्साइं** = **पञ्चाशतं योजनसहस्राणि** है (ठाणग० २६६), **पञ्चाणउइं** (पाठ मे **पञ्चाणउयं** है) **जोयणसहस्साइं** = **पञ्चनवतिं योजनसहस्राणि** है (ठाणग० २६१)। — करण में **पञ्चहत्तरीए वासेहिं ऍक्कवीसाए तित्थयरेहिं तेवीसाए तित्थयरेहिं** = **पञ्चसप्तत्या वर्षै एकविंशत्या तीर्थकरै त्रयोविंशत्या तीर्थकरै.** है, **तेत्तीसाए, सत्तावन्नाए दन्तिसहस्सेहिं** = **त्रयस्त्रिंशता, सप्तपञ्चाशता दन्तिसहस्रै.** है (निरया० § २४ और २६)। — सम्बन्धकारक में **एएसिं तीसाए महासुमिणाण** = **एतेषां त्रिंशतो महास्वप्नानाम्** है (विवाह० ९५१, नायाध० § ४६, कप्प० § ७४), **बत्तीसाए –समसाहस्सीणं चउरासीइए** [यहाँ यही पढा जाना चाहिए] **सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउहं लोग-**

पाळाणं = द्वात्रिंशतः —शतसाहस्रीणां चतुरशीत्याः सामानिकसाहस्रीण्यं त्रयस्त्रिंशतस् त्रयस्त्रिंशकाना चतुर्णां लोकपालानाम् है (कप्प § १४ विवाह २११ की तुलना कीजिए)। — अधिकरण में तीसाए निरयावाससयस हस्सेसु = त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु है (विवाह ८३ और उसके बाद) एगवीसाए सयलेसु बावीसाए परीसहे (पद्य में छन्द की मात्राएं ठीक करने के लिए परीसहेसु के स्थान में) = एकविंशत्यां शबलेषु द्वाविंशत्यां ✶परीसहेषु है (उत्तर १ ७)। — जै महा में पञ्चमतर्ई राईण और रायाणो आया है (काल्का २६१ ११ और १७)। इन संख्याशब्दों की रूपावली बहुवचन में बहुत कम चलती है। चंड १, ६ के अनुसार, २–१९ तक संख्याशब्दों की भाँति ही (§ ४३६) सम्बन्धकारक अन्त में –ण्ह लगा कर बनाया जाता है : वीसण्हं, तीसण्हं आदि। अ माग में तिण्णि तेवट्ठाई पावादुयसयाई = त्रीणि त्रयः पष्टानि प्रावादुकशतानि है (सूय ७७८) पणुवीसाहि य भावणाहिं = पञ्चविंशत्या च भावनाभिः है (आयार पेज ११७ २५); पञ्चहिं छत्तीसेहिं अणगारस एहिं = पञ्चभिः षट्त्रिंशैर् अनगारशतैः है (कप्प § १८२) जै महा में तिण्हं तेवट्ठाणं नयरसयाणं = त्रयाणां त्रयःषष्टानां नगरशतानाम् है (एर्से २८, २१) महा में चउसट्ठिसुसुत्तिसु = चतुःषष्ट्यां शुक्तिषु है (कर्पूर ७९, ६)। यह रूपावली अप में साधारणतया काम में आती है : एआसेहिँ और यार्‍ सेहिँ रूप मिलते हैं (पिंगल १, ५८ और ६९), छहवीसउ आया है (पिंगल १, ९७) सत्तासाई पाया जाता है (पिंगल १, ९) पञ्चमालीसहिँ है (पिंगल १, ९३ और ९५ § ४४५ देखिए) एहत्तरिउ (कर्मकारक) और एहत्तरिहिं रूप भी चलते हैं (पिंगल १ ९५ और १) § । ४४८ की भी तुलना कीजिए।

§ ४४८— १०० महा में सअ (हाल रावण), अ माग और जै महा में सय रूप है (कप्प ओव ; उवास एर्से), शौर में सद चलता है (मृच्छ ६ ६ १३१ २२ विक्र ११,४), माग में शद मिलता है (मृच्छ १२५ ११६ ८ १२२ २ वेणी ३३ ८)। इसकी रूपावली नपुंसकलिंग के रूप में अ– वर्ग की भाँति की जाती है। शेष शतक [दो सौ तीन सौ आदि। —अनु] इस प्रकार बनाए जाते हैं कि १ के बहुवचन के रूप से पहले इकाई रख दी जाती है : अ माग में २ ० = दो सयाई, ३०० = तिण्णि सयाई, ४०० = चत्तारि सयाई है (सम १५७ और १५८) ५०० = पञ्च सया मिलता है (कप्प § १४२), ६०० छ सयाई छ सया भी पाया जाता है (सम १५९) और छस्सया भी आया है ; अप में ८ के लिए चउसअ आया है (पिंगल १, ८१)। महा में सत्तसअ एक नपुंसक है (हाल)। —१००० के लिए महा , अ माग , जै महा , जै शौर और शौर में सहस्स है (गउड ; हाल ; रावण ; कप्प ; उवास ; एर्से ; पव ३८ , १२ ; मृच्छ ७१ २२ ; प्रबोध ४ ४ और ५), माग में दाहश्श बन जाता है (ललित ५६६ १ वेणी ३३ ३; ३४ २१ ; ३५, ८)। इसकी रूपावली भी नपुंसकलिंग के रूप में अ– वर्ग की भाँति चलती है। अ माग में

इसके स्थान में **दस सयाइं** भी बोला जाता था (सम० २६२) अथवा **दस सया** भी कहते थे (कप्प० § १६६), जैसा कि ११०० के लिए **एक्कारस सयाइं** चलता था (सम० १६३) अथवा **एक्कारस सया** भी कहते थे (कप्प० § १६६), १२०० के लिए **बारस सया** आता था और १४०० के लिए **चउद्दस सया** चलता था (कप्प० § १६६) तथा १७२१ के लिए **सत्तरस एक्कवीसे योजनसए** आया है (= १७२१ योजन, कर्मकारक, विवाह० १९८) । शेष सहस्रक ठीक शतकों की भाँति बनाये जाते हैं अ०माग० में २००० = **दो सहस्साइं** है (सम० १६३), कर्मकारक में **दुवे सहस्से** रूप आया है (सूय० ९४०), **तिण्णि, चत्तारि, छ** और **दस सहस्साइं** मिलता है (सम० १६३–१६५), **अउणट्ठिं सहस्सा** (= ५९००० : कप्प० § १३६), जै०महा० में **पुत्ताणं सट्ठी सहस्सा** देखा जाता है (= ६००००: सगर १, १३) और **सट्ठिं पि तुह सुयसहस्सा** भी मिलता है (७, ७ , १०, ४ की तुलना कीजिए , ११, ५), सम्बन्धकारक में **सट्ठीए पुत्तसहस्साणं** है (८, ५), ऐसा वाक्यांश **साहस्सी** = **साहस्री** के साथ भी आया है जैसे, अ०माग० में **चोद्दस समणसाहस्सीओ, छत्तीसं अज्जिआसाहस्सीओ, तिण्णि सयसाहस्सिओ** आदि-आदि (कप्प० § १३४–१३७ , § १६१ और उसके बाद की तुलना कीजिए , विवाह० २८७) जब शतकों और सहस्रकों का इकाई के साथ संयोग होता है तो इकाई आदि में लगा दी जाती है और एक समास सा बना दिया जाता है : **अट्ठसयं** = १०८ है (विवाह० ८३१ , कप्प० , ओव०), **अट्ठसहस्सं** = १००८ (ओव०) । दहाइयां उनके बाद निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त की जाती हैं : **तीस च सहस्साइं दोण्णिय अउणापण्णे जोयणसए** = ३०२४९ योजन है (विवाह० १५८) , **सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए** = १७२१ योजन , **चत्तारि तीसे जोयणसए** = ४३० योजन , **दस बावीसे जोयणसए** = १०२२ योजन , **चत्तारि चउव्वीसे जोयणसए** = ४२४ योजन, **सत्त तेवीसे जो०** = ७२३ यो०, **दस तिण्णि इगयाले जो०** = १३४१ यो० है, **दोण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य छडसीए जो०** = २२८६ यो० (विवाह० १९८ और १९९) , **सीयालीसं जो० यणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जो०** = ४७२३२ यो० है (विवाह० १९८) , **बावण्णुत्तरं अढयालीसुत्तरं, चत्तालीसुत्तरं, अट्ठतीसुत्तरं, छत्तीसुत्तरं, अट्ठावीसुत्तरं जोयणसयसहस्स** = १०००५२, १०००४८,१०००४४,१०००३८,१०००३६ और १०००२८ यो० है (जीवा० २४३) तथा **च** के साथ भी आते हैं जैसे, **छक्कोडिसए पणवण्णं च कोडीओ** = ६५५ कोटि (विवाह० २००) । ऊपर सर्वत्र कर्मकारक के रूप हैं । १००००० पल्लवदानपत्रों में **सतसहस्स** लिखा गया है (६, ११ ; ७, ४२ और ४८), अ०माग० में **एगं सयसहस्सं** बोला जाता है (सम० १६५) अथवा इसे **एगा सयसाहस्सी** भी कहते हैं (कप्प० § १३६), शौर० रूप **सुवण्णसदसाहस्सिओ** = **सुवर्णशतसाहस्रिक** की तुलना कीजिए (मृच्छ० ५८, ४) , अ०माग० और जै०महा० में **लक्खं** = **लक्षम्** है (कप्प० § १८७ , कक्कुक शिलालेख १२ , एत्सें०), माग० में यह **लश्कं** बन जाता है (ललित० ५६६, ११) ।—

७०, ५ और ६, दाक्षि० रूप : मृच्छ० १००,७ , अप० में : पिंगल १,५९)। स्त्रीलिंग के रूप के अन्त में –ई जोड़ा जाता है, अ०माग० में –आ आता है (आयार० पेज १३२ और उसके बाद)। — ६ का रूप सभी प्राकृत बोलियों में **छट्ठ** [यह रूप कुमाउनी बोली में वर्तमान है। —अनु०], स्त्रीलिंग के अन्त में –ई लगता है (वर० २, ४१ , हेच० १, २६५ , २, ७७ , क्रम० २, ४६ , हाल , सूय० ६०६ और ६८६ , विवाह० १६७ , कप्प० , उवास० , ओव० , एर्त्से० , शौर० रूप : मृच्छ० ७०, २२ और २३ , शकु० ४०,९ , दाक्षि० में : मृच्छ० १००,७ और ८ , अप० रूप . पिंगल १, ५०), अ०माग० मे स्त्रीलिंग मे **छट्ठा** भी आता है (आयार० २, १, ११, ९), इसका आधार इससे पहले आनेवाले संख्याशब्दों के रूप हैं। माग० रूप **सट्ठ** (?) जो प्रबन्धचन्द्रोदय के २८, १६ मे मिलता है और इस ग्रन्थ के पूना संस्करण ३१, ४ में आया है तथा जिसके स्थान मे बबइया संस्करण ७३, १ मे **सट्ठ** दिया गया है और मद्रास के संस्करण ३६, १३ में केवल **सट्ट** छपा है, सुधार का **छट्ठ** पढा जाना चाहिए। इसका एक महा० रूप शकुन्तला १२०, ७ में **पञ्चब्भहिअ = पञ्चाभ्यधिक** रूप द्वारा व्यक्त किया गया है। — ७ का क्रमवाचक रूप महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और अप० में **सत्तम** है (हाल , उवास० , कप्प० , एर्त्से० , मृच्छ० ७१, ११ और १२ , पिंगल १,५९)। — ८ का अ०माग०, जै०महा०, शौर० और दाक्षि० में **अट्ठम** है (विवाह० १६७ , उवास० , ओव०, कप्प० , एर्त्से० , मृच्छ० ७२, १ , दाक्षि० मे . मृच्छ० १००, ६)। — ९ का रूप अ०माग० और जै०महा० में **नवम** है (उवास० , कप्प० , एर्त्से०), दाक्षि० में **णवम** है (मृच्छ० १००,८)। — १० का महा०, अ०माग० और जै०महा० में **दसम** रूप है (रावण० ; विवाह० १६७ , उवास० , एर्त्से०), अ०माग० में स्त्रीलिंग का रूप **दस–** भी है (कप्प०)। ११–१९ तक अंकों के क्रमवाचक रूप क्रमश. अपने-अपने गणनावाचक शब्द में पुल्गि में **–म** और स्त्रीलिंग में **–मी** जोडने से बनते हैं। इनके उदाहरण इस समय तक केवल अ०माग० और जै०महा० में उपलब्ध हैं। इस भाँति : ११ का रूप अ०माग० में **एक्कारसम** है (सूय० ६९५ , विवाह० १६७ , उवास० , कप्प०)। — १२ अ०माग० और जै०महा० में **बारसम** रूप है (सूय० ६९९ , विवाह० १६७ , एर्त्से०), अ०माग० मे **दुवालसम** रूप भी देखा जाता है (आयार० १, ८,४,७ , सूय० ६९९ और ७५८)। — १३ अ०माग० में **तेरसम** रूप बनता है (आयार० २, १५, १२, विवाह० १६७ , सूय० ६९५ , कप्प०)। — १४ का **चउद्दसम** रूप है (सूय० ७५८) और **चोॅद्दसम** भी होता है (विवाह० १६७)। — १५ का **पन्नरसम है** (विवाह० १६८)। — १६ का क्रमवाचक **सोळसम** होता है (विवाह० १६७)। — १८ अ०माग० में **अट्ठारसम** रूप बनाता है (विवाह० १६७ , नायाध० १४५० और १४५१) और **अढारसम** भी होता है (विवाह० १४२९ , नायाध० १४०४)। — १९ का **एगूणवीसम** रूप है (नायाध० § ११) और **एगूणवीसइम** भी है (विवाह० १६०६)। **खोडसम** के विषय में (= १६ [**सोलहवाँ** । —अनु०]) § २६५ देखिए। — २० **वीसइम** अथवा **वीस** रूप होता है , ३० का **तीसइम**

७०, ५ और ६, दाक्षि० रूप : मृच्छ० १००,७, अप० में : पिंगल १,५९)। स्त्रीलिंग के रूप के अन्त में -ई जोड़ा जाता है, अ०माग० में -आ आता है (आयार० पेज १३२ और उसके बाद)। — ६ का रूप सभी प्राकृत बोलियों में **छट्ठ** [यह रूप कुमाउनी बोली में वर्तमान है। —अनु०], स्त्रीलिंग के अन्त में -ई लगता है (वर० २, ४१, हेच० १, २६५, २, ७७, क्रम० २, ४६, हाल, सूय० ६०६ और ६८६, विवाह० १६७, कप्प०, उवास०, ओव०, एत्सें०, शौर० रूप : मृच्छ० ७०, २२ और २३, शकु० ४०,९, दाक्षि० में : मृच्छ० १००,७ और ८, अप० रूप : पिंगल १, ५०), अ०माग० में स्त्रीलिंग में **छट्ठा** भी आता है (आयार० २, १, ११, ९), इसका आधार इससे पहले आनेवाले संख्याशब्दों के रूप हैं। माग० रूप **सट्ठ** (?) जो प्रबन्धचन्द्रोदय के २८, १६ में मिलता है और इस ग्रन्थ के पूना संस्करण ३१, ४ में आया है तथा जिसके स्थान में बबइया संस्करण ७३, १ में **सट्ठ** दिया गया है और मद्रास के संस्करण ३६, १३ में केवल **सट्ट** छपा है, सुधार का **छट्ठ** पढ़ा जाना चाहिए। इसका एक महा० रूप शकुन्तला १२०, ७ में **पञ्चव्भहिअ** = **पञ्चाभ्यधिक** रूप द्वारा व्यक्त किया गया है। — ७ का क्रमवाचक रूप महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और अप० में **सत्तम** है (हाल, उवास०, कप्प० ; एत्सें०, मृच्छ० ७१, ११ और १२, पिंगल १,५९)। — ८ का अ०माग०, जै०महा०, शौर० और दाक्षि० में **अट्ठम** है (विवाह० १६७, उवास०, ओव०, कप्प०, एत्सें०, मृच्छ० ७२, १, दाक्षि० मे. मृच्छ० १००, ६)। — ९ का रूप अ०माग० और जै०महा० में **नवम** है (उवास०, कप्प०, एत्सें०), दाक्षि० में **णवम** है (मृच्छ० १००, ८)। — **१०** का महा०, अ०माग० और जै०महा० में **दसम** रूप है (रावण०, विवाह० १६७, उवास०, एत्सें०), अ०माग० में स्त्रीलिंग का रूप **दस-** भी है (कप्प०)। **११**–**१९** तक अंकों के क्रमवाचक रूप क्रमश अपने-अपने गणनावाचक शब्द में पुलिंग में **-म** और स्त्रीलिंग में **-मी** जोड़ने से बनते हैं। इनके उदाहरण इस समय तक केवल अ०माग० और जै०महा० में उपलब्ध हैं। इस भाँति : **११** का रूप अ०माग० में **एक्कारसम** है (सूय० ६९५, विवाह० १६७, उवास०, कप्प०)। — **१२** अ०माग० और जै०महा० में **बारसम** रूप है (सूय० ६९९, विवाह० १६७, एत्सें०), अ०माग० में **दुवालसम** रूप भी देखा जाता है (आयार० १, ८,४,७, सूय० ६९९ और ७५८)। — **१३** अ०माग० में **तेरसम** रूप बनता है (आयार० २, १५, १२, विवाह० १६७, सूय० ६९५, कप्प०)। — **१४** का **चउदसम** रूप है (सूय० ७५८) और **चोंद्दसम** भी होता है (विवाह० १६७)। — **१५** का **पन्नरसम** है (विवाह० १६८)। — **१६** का क्रमवाचक **सोळसम** होता है (विवाह० १६७)। — **१८** अ०माग० में **अट्ठारसम** रूप बनाता है (विवाह० १६७, नायाध० १४५० और १४५१) और **अढारसम** भी होता है (विवाह० १४२९, नायाध० १४०४)। — १९ का **एगूणवीसम** रूप है (नायाध० § ११) और **एगूणवीसइम** भी है (विवाह० १६०६)। **ग्वोडसम** के विषय में (= १६ [**सोलहवाँ** । —अनु०]) § २६५ देखिए। — **२०** **वीसइम** अथवा **वीस** रूप होता है, **३०** का **तीसइम**

§ ४५१—१ × अ०माग० में **सइं** = **सकृत्** है (§ १८१), जै०महा० में **एक्कवारं** = **एकवारम्** है (कालका० २६६, २५ , २७४, २१) और **ऍक्कसि** रूप भी पाया जाता है (सगर ४, ४), यह रूप हेच० २, ६२ मे **एक्कसि** और **एक्कसिअं** लिखा है और यह = **एकदा** के बताया है। शेष गुननेवाली सख्याओं के साथ अ०-माग० मे **खुत्तो** = **कृत्व.** रूप लगता है (§ २०६) : **दुक्खुत्तो** और **दुक्खुत्तो** = **द्विकृत्व.** (ठाणग० ३६८ , आयार० २, १, १, ६), **तिखुत्तो** और **तिक्खुत्तो** = **त्रिकृत्वः** (ठाणग० ५ , ११ , १७ , ४१ , ६० और ३६४ , आयार० २,१, १, ६ , २,१५, २० , अत० ५ , ११ , १७ , ४१ , ६० , विवाह० १२ , १५६, १६१ आदि-आदि , उवास० , कप्प०), **सत्तक्खुत्तो** और **सत्तखुत्तो** रूप भी मिलते है (नायाव० ९१० , ९२५ और ९४१, जीवा० २६० और ६२१), **तिसत्तक्खुत्तो** = **त्रिसप्तकृत्व** है (ओव० § १३६ ; विवाह० २३० [पाठ में **तिसत्तखुत्तो** है] , ४११), **अणेगसयसहस्सक्खुत्तो** = **अनेकशतसहस्रकृत्वः** है (विवाह० १४५ और १२८५), **अणत्तखुत्तो** भी मिलता है (जीवा० ३०८ , विवाह० १७७, ४१४ , ४१६ , ४१८), **पवइखुत्तो** = ***प्रवतिकृत्वः** (कप्प०) है। महा० में इस शब्द का रूप **हुत्तं** है : **सअहुत्तं** और **सहस्सहुत्त** रूप पाये जाते हैं (हेच० २, १५८ , ध्वन्यालोक ५२, ६)। 'दो वार में' के लिए अ०माग० मे **दोच्चं** और **दुच्चं** रूप आये हैं (आयार० २, १५, २१ , विवाह० १६६ , २३४ और २३५ , ओव० § ८५ , उवास०, कप्प०), 'तीन वार में' के लिए **तच्चं** रूप चलता है (विवाह० १६६, २३४ और २३५ , उवास०)। '–प्रकार' बताने के लिए प्राकृत में सस्कृत की भाँति काम लिया जाता है, विशेषण मे **–विह** = **–विध** से और क्रियाविशेषण में **–हा** = **–धा** से . अ०माग० मे **दुविह, तिविह, चउव्विह, पञ्चविह, छव्विह, सत्तविह, अट्ठविह, नवविह** और **दसविह** रूप आये ह (उत्तर० ८८५–९००), **दुवालसवि** भी मिलता है (जीवा० ४४ , विवाह० १५९), **सोळसविह** देखने मे आता है (उत्तर० ९७१, ठाणग० ५९३ [पाठ में **सोळसविधा** है]), **अट्ठावीसविह** भी है (उत्तर० ८७७) और **वत्तीसइविह** पाया जाता है (विवाह० २३४) , जै०महा० में **तिविह** मिलता है (कत्तिगे० ४०२, ३६०) आदि-आदि , अ०माग० मे **दुहा, पञ्चहा** और **दसहा** मिलते हे (उत्तर० १०४६ , ८८९ , ७०४), **दुहा, तिहा, चउहा, पञ्चहा, छहा, सत्तहा, अट्ठहा, नवहा, दसहा, संखेज्जहा, असंखेज्जहा** और **अणंतहा** रूप भी पाये जाते हैं (विवाह० ९९७–१०१२)। —अ०माग० और जै०महा० में **एगओ** है (विवाह० २७७ , २८२ ९५० , आव०एर्त्से० ४६, २४), यह = **एकतः** के, बार बार काम में आनेवाला रूप **एगयओ** (विवाह० १३७–१४१, १८७, ५१० , ५१३ , ९७० , ९८३ , ९९६ और उसके बाद , १४३० और १४३४) = ***एकतः** है , **दुहओ** के विषय में § ४३६ देखिए। — जैसा कि सस्कृत में चलता है वैसे ही अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० में **दुग** (ठाणग० ५६८ और ५६९ , एर्त्से० , कत्तिगे० ४०३, ३७१) और **दुय** मिलते हैं (उत्तर० ९०३) जो = **द्विक** है , अ०माग० और जै०महा० में **तिय** = **त्रिक** भी पाया जाता है (उत्तर० ९०२ ,

और तीस है ४० का चत्तालीसइम है ४९ का अउणापन्न है ; ५१ का एगपन्नइम है (कप्प) ७२ का बावत्तर रूप है ८० का असीइम है और ९७ का सत्तामउय है। यदि एक संख्यावाचक के आगे दूसरा अंक आता हो तो कभी दीर्घ और कभी ह्रस्व रूप काम में लाया जाता है जैसे, २३ जै महा में तेवीसइम है (तीर्थ० ४, २) २४ का अ०माग० में चउवीसइम रूप मिलता है (विवाह० १६७) और चउवीस भी होता है (ठाणंग ११) ८४ का चउरासीइम मिलता है, ८१ का एक्कासीइम है (कप्प)। वेबर, भगवती १, ४२६ की तुलना कीजिए। कति की रूपावली इस प्रकार से चलती है अ०माग०, जै महा और अप० में कइ रूप आता है (विवाह० २८९ १ १ ; ४११ और उसके बाद ; ८१६ ; ८५५ ८७८ और उसके बाद एत्सें १७, २१ हेच० ४, ३७६ १ ; ४२ १) करणकारक में अ माग में कइहिं रूप है (पण्णव ६६२ ; विवाह ७४ और ११२) ; सम्प्रदान में कइण्हं चलता है ([कुमाउनी में कइन रूप है। —अनु] इस ३,१२३) ; अधिकरण में अ माग और जै महा में कइसु है (पण्णव ५२१ ५१ विवाह ७३६ और उसके बाद ; १५३६ ; एत्सें ६६, १६)।

§ ४५ —½ को स्पष्ट करने के लिए अ माग में अद्ध अथवा अड्ढ = अर्ध मिलता है, जैसा संस्कृत में होता है वैसा ही प्राकृत में डेढ़, आढ़ाई आदि बनाने के लिए पहले अद्ध या अड्ढ रूप उसके बाद जो संख्या बतानी होती है उससे ऊँचा गणना-अंक रखा जाता है (§ २९१) : अड्ढाइज्ज अड्ढ + तिज्ज, ०तीज्ज, तिज्ज से प्रारम्भ होता है = अर्धतृतीय (§ ४४९ ; = २½ सम १५७ ; जीवा २६८ ; २७ ; ६६० ; ९१७ ; ९८२ ; नायाध १४० ; पण्णव ५१ ५५ ; ८१ ; ६११ और उसके बाद ; विवाह १९९ २ २ ; ७१८ ; १७८६ नन्दी १०८ और २ कप्प) ; अद्धुट्ठ अद्ध + अट्ठ से बना है = अर्धचतुर्थ (= ३½ ; कप्प) ; अद्धट्ठम = अर्धाष्टम (= ७½ ; आयार २, १५, ६ [यहां यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; कप्प आदि) ; अद्धनवम (= ८½ ; कप्प) ; अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं (= ५५) अड्ढाइज्जाइं भिक्खासयाइं (= २५), अड्ढुट्ठाइं भिक्खासयाइं (= ३५) और अद्धपञ्चमाइं भिक्खासयाइं (= ४५ ; सम १५६-१५८) ; अद्धछट्ठाइं जोयणा (= ५½ योजन ; जीवा २११) है। इसके विपरीत १½ अंक दिवड्ढ द्वारा व्यक्त किया जाता है (विवाह ११७ और ११११ ; सम १५७ ; जीवा २६९ ; पण्णव ६८९ और उसके बाद, ६९१, ६९८) जो न तो = अपार्धं है और न जैसा इसके शब्दों का क्रम बताता है = द्वितीय + अर्ध है[1] किन्तु = द्व्यर्ध है (§ २१)। इस भांति दिवड्ढ -सयम् का आया है (= १५० ; सम १५७)।

1. वेबर भगवती १ २९६ ; १ ९ ; ४११ ; अर्नेस्ट कून बाइत्रेगे, पेज ७१। —२ वाइडबर्ग के पाली कोश में यह शब्द देखिए ; बीम्स कंपैरेटिव ग्रामर १ १३० और उसके बाद ; ए म्युलर बाइत्रेगे, पेज १४।

§ ४५१—१ × अ०माग० मे **सइं** = **सकृत्** है (§ १८१), जै०महा० में **एक्कवारं** = **एकवारम्** है (कालका० २६६, २५ , २७४, २१) और **ऍक्कसिं** रूप भी पाया जाता है (सगर ४, ४), यह रूप हेच० २, ६२ में **एक्कसि** और **एक्कसिअं** लिखा है और यह = **एकदा** के बताया है। शेष गुननेवाली संख्याओं के साथ अ०-माग० में **खुत्तो** = **कृत्वः** रूप लगता है (§ २०६). **दुक्खुत्तो** और **दुक्खुत्तो** = **द्विकृत्वः** (ठाणग० ३६४ , आयार० २, १, १, ६), **तिखुत्तो** और **तिक्खुत्तो** = **त्रिकृत्वः** (ठाणग० ५ , ११ , १७ , ४१ , ६० और ३६४ , आयार० २,१, १, ६ , २,१५, २० , अत० ५ , ११ , १७ , ४१ , ६० , विवाह० १२ , १५६, १६१ आदि-आदि , उवास० , कप्प०) , **सत्तक्खुत्तो** और **सत्तख्खुत्तो** रूप भी मिलते हैं (नायाध० ९१० , ९२५ और ९४१, जीवा० २६० और ६२१), **तिसत्तक्खुत्तो** = **त्रिसप्तकृत्वः** है (ओव० § १३६ , विवाह० २३० [पाठ में **तिसत्तख्खुत्तो** है] , ४११) , **अणेगसयसहस्सक्खुत्तो** = **अनेकशतसहस्रकृत्वः** है (विवाह० १४५ और १२८५) , **अणन्तखुत्तो** भी मिलता है (जीवा० ३०८ , विवाह० १७७, ४१४ , ४१६ , ४१८), **पवइखुत्तो** = *__पवतिकृत्वः__ (कप्प०) है। महा० में इस शब्द का रूप **हुत्तं** है . **सअहुत्तं** और **सहस्सहुत्त** रूप पाये जाते है (हेच० २, १५८ , ध्वन्यालोक ५२, ६)। 'दो वार मे' के लिए अ०माग० में **दोच्चं** और **दुच्चं** रूप आये हैं (आयार० २, १५, २१ , विवाह० १६६ , २३४ और २३५ , ओव० § ८५ , उवास०, कप्प०), 'तीन वार में' के लिए **तच्चं** रूप चलता है (विवाह० १६६, २३४ और २३५ , उवास०)। '–प्रकार' बताने के लिए प्राकृत में संस्कृत की भाँति काम लिया जाता है, विशेषण मे **–विह** = **–विध** से और क्रियाविशेषण मे **–हा** = **–धा** से : अ०माग० मे **दुविह, तिविह, चउव्विह, पञ्चविह, छव्विह, सत्तविह, अट्ठविह, नवविह** और **दसविह** रूप आये है (उत्तर० ८८५–९००), **दुवालसवि** भी मिलता है (जीवा० ४४ , विवाह० १५९), **सोळसविह** देखने मे आता है (उत्तर० ९७१, ठाणग० ५९३ [पाठ में **सोळसविधा** है]), **अट्ठावीसविह** भी है (उत्तर० ८७७) और **बत्तीसइविह** पाया जाता है (विवाह० २३४) , जै०महा० में **तिविह** मिलता है (कत्तिगे० ४०२, ३६०) आदि-आदि , अ०माग० मे **दुहा, पञ्चहा** और **दसहा** मिलते है (उत्तर० १०४६ , ८८९ , ७०४), **दुहा, तिहा, चउहा, पञ्चहा, छहा, सत्तहा, अट्ठहा, नवहा, दसहा, संखेज्जहा, असंखेज्जहा** और **अणंतहा** रूप भी पाये जाते हैं (विवाह० ९९७–१०१२)। —अ०माग० और जै०महा० में **एगओ** है (विवाह० २७७ , २८२ ९५० , आव०एर्त्से० ४६, २४), यह = **एकतः** के, बार बार काम में आनेवाला रूप **एगयओ** (विवाह० १३७–१४१, १८७, ५१० , ५१३ , ९७० , ९८३ , ९९६ और उसके बाद , १४३० और १४३४) = *__एकतः__ है , **दुहओ** के विषय में § ४३६ देखिए। — जैसा कि संस्कृत में चलता है वैसे ही अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० में **दुग** (ठाणग० ५६८ और ५६९ , एर्त्से० , कत्तिगे० ४०३, ३७१) और **दुय** मिलते हैं (उत्तर० ९०३) जो = **द्विक** है , अ०माग० और जै०महा० में **तिय** = **त्रिक** भी पाया जाता है (उत्तर० ९०२ ,

एर्से०) छक्क = षट्क (उत्तर० १०४) आदि आदि इसी प्रकार जै०महा० में सहस्समो = सहस्रशः है (सगर ६, ५) शौर० में मणेअसो तथा अ०माग० में 'णेगसो = अनेकशः' है (§ ४३५)।

ई–क्रियाशब्द

§ ४५२—प्राकृत में संज्ञाशब्द तो घिसे ही हैं किन्तु क्रियाशब्द इनसे भी अधिक घिसकर बहुत अधिक अपभ्रष्ट हुए हैं। जैसा संज्ञाशब्दों के विषय में कहा जा चुका है (§ ३६५), ध्वनिपरिवर्तन के नियमों के कारण अ– वर्ग की ही धूम है जिसका फल यह है कि रूपावली की दूसरी सारणी अपेक्षाकृत कम अपवादों को छोड़ पहले के अनुकरण पर ही बनी है। इससे धातुओं के गण घुल-घुलकर साफ हो गये हैं। आत्मनेपद का भी प्राकृत बोलियों में अंश क्रिया (Participle) का रूप ही अधिक मिलता है अन्यथा इसका कुछ प्रयोग महा०, अ० माग०, जै० महा० और जै० शौर० में पाया जाता है किन्तु यह भी एकवचन और तृतीय (अन्य) पुरुषवाचक में साधारण वर्तमान काल तक सीमित है, शौर० में पूर्णतया और माग० में प्रायः बिना अपवाद के आत्मनेपद प्रथम (उत्तम) पुरुष सामान्य वर्तमान तक ही सीमित है। शौर० में जो उदाहरण पाये जाते हैं वे व्याकरणसम्मत बोली के उद्गार हैं (§ ८९७)। अनेक क्रियाशब्द जिनकी रूपावली संस्कृत में केवल आत्मनेपद में चलती है, प्राकृत में उनमें परस्मैपद के समाप्तिसूचक रूप मिलते हैं यही बात अधिकांश में कर्मवाच्य के विषय में भी कही जा सकती है। महा०, अ० माग०, जै० महा० और शौर० में अभी तक अपूर्णभूत का रूप आसि अथवा आसी = आसीत् रह गया है जो प्रथम, मध्यम और तृतीय पुरुष एकवचन और तृतीय बहुवचन में काम में लाया जाता है अ० माग० में इसके अतिरिक्त अन्यथी रूप भी चलता है (§ ५१५)। व्याकरण के नियमों (§ ५१६) और अ० माग० में अमा और स्–वाला भूत तथा आत्मनेपद के कुछ रूप बहुत काम में लाये गये हैं (§ ५१७), पूर्णभूत केवल अ० माग० में दिखाई देता है (५१८); हेतुहेतुमद्भूत एकदम उड़ गया है। ये सब काल अंशक्रियाओं में सहायक क्रियाएं अस् और भू लगाकर बना लिये जाते हैं [यह परम्परा हिन्दी में भी चली आयी है, (मैं) खड़ा हुआ में खड़ा = स्थित और हुआ = अभूत्; यहाँ स्थित का उद्गम प्राकृत की इस शैली से है। —अनु] अथवा कर्मवाच्य की अंशक्रिया से बनाये गये हैं। परस्मैपद आत्मनेपद और कर्मवाच्य में सामान्य भविष्यत् का रूप भी पाया जाता है जो क्रिया के साधारण रूप (Infinitive) से बने कृदन्त से बनाया जाता है। यह कर्मवाच्य में भी होता है (§ ५८), कृदन्त का रूप भी मिलता है, परस्मैपद में वर्तमानकालिक अंशक्रिया और आत्मनेपद में भी यह रूप है तथा कर्मवाच्य में भी कर्मवाच्य में पूर्णभूतकालिक अंशक्रिया भी मिलती है एवं कर्तव्यवाचक अंशक्रिया भी है साधारण वर्तमानकाल के नाना प्रकार (Mood), इच्छावाचक (सार्वनामवाचक भी) और आज्ञावाचक रूप पाये जाते हैं। नाना शब्दों से निकली हुई क्रियाओं के रूपों में संस्कृत की भाँति प्रेरणार्थक इच्छार्थक, घनत्वार्थक और बहु–

सख्यक अन्य रूप है। द्विवचन की जड ही उखाड दी गयी है। समाप्तिसूचक चिह्न, अप० को छोड, अन्य सब प्राकृत बोलियो मे साधारणतः सस्कृत से मिल्ते-जुल्ते ही हैं। जहॉ जहॉ सस्कृत से भिन्नता आ गयी है उसका उल्लेख आगे आनेवाले § मे किया गया है। प्राकृत की एक मुख्य विशेषता यह है कि अन्य सब कालों से वर्तमानकाल के मूल-शब्दों का महत्व बहुत अधिक बढ गया है, इनसे नामधातु (क्रियात्मक सज्ञा) और कर्मवाच्य के रूप बनाये जा सकते है। सज्ञा निकाल्ने या बनाने के काम मे भी इसका उपयोग है।

(अ) वर्तमानकाल

परस्मैपद का सामान्य रूप

§ ४५३—इस रूपावली में प्रथम गण वट्ट- = वर्त- की रूपावली का चित्र दिखाया गया है। सस्कृत में इसकी रूपावली केवल आत्मनेपद में चल्ती है :

	एकवचन	बहुवचन
१	**वट्टामि**	**वट्टामो**
२	**वट्टसि**	**वट्टह**, जै०शौर०, शौर०, माग० और ढक्की में **वट्टध**, पै० औ चू०पै० **वट्टथ**, **वट्टन्ति**
३	**वट्टइ**, जै०शौर०, शौर०, माग० और ढक्की मे **वट्टदि** रूप है, चू०पै० और पै० मे **वट्टति**	

अप० में साधारण रूपावली इस प्रकार है :

	एकवचन	बहुवचन
१	**वट्टउँ**	**वट्टहुँ**
२	**वट्टसि** और **वट्टहि**	**वट्टहु**
३	**वट्टइ**	**वट्टहिं**

§ ४५४—अप० को छोड प्राकृत की अन्य सभी बोलियों में सामान्य समाप्ति-सूचक रूप **-आमि** के साथ साथ व्याकरणकार (वर० ७, ३० , हेच० ३, १५४ , मार्क० पन्ना ५१, सिंहराज० पन्ना ४७) -अमि भी बताते हैं : **जाणमि = जानामि**, **लिहमि = लिखामि** , **सहमि = सहे**, **हसमि = हसामि** है। इसके उदाहरण अप० में भी मिल्ते हैं **कड्ढमि = कर्षामि** (हेच० ४, ३८५), **पावमि = *प्रापामि = प्राप्नोमि** , **भाममि = भ्रमामि** (विक्र० ७१, ७ और ८), **भणमि = भणामि** (पिगल १, १५३) है। यहाँ स्वर द्वितीय और तृतीय पुरुष के रूप के अनुसार हो गया है। कुछ उदाहरणों में प्रथमपुरुष बहुवचन के अनुसार (§ ४५५) अ स्थान में इ आ गयी है . महा० में **जाणिमि = जानामि** (हाल ९०२) , **अणुणिज्जिमि = अनुनीये** (हाल ९३०), अप० में **पुच्छिमि = पृच्छामि**, **करिमि = *करामि = करोमि** (विक्र० ६५, ३ , ७१, ९) है। **-म्हि** और **-म्मि** में समाप्त होनेवाले

पल्लवे०) छक = षट्क (उत्तर १०४) आदि आदि इसी प्रकार के महा में सहस्समो = सहस्रशः है (कगर १, ५) शौर० में अणेअसो तथा अ०माग० में 'णेगसो = अनेकशः है (§ ४१५)।

ई–क्रियाशब्द

§ ४५२—प्राकृत में संज्ञाशब्द जो घिसे ही हैं किन्तु क्रियाशब्द इनसे भी अधिक घिसकर बहुत अधिक अपभ्रष्ट हुए हैं। जैसा संज्ञाशब्दों के विषय में कहा जा चुका है (§ ३५५), ध्वनिपरिवर्तन के नियमों के कारण अ– वर्ग की ही धूम है जिसका फल यह है कि रूपावली की दूसरी सारणी अपेक्षाकृत कम अपवादों को छोड़ पहले के अनुकरण पर ही बनी है। इससे धातुओं के गण घुल-घुलाकर साफ हो गये हैं। आत्मनेपद का भी प्राकृत बोलियों में अंश क्रिया (Participle) का रूप ही अधिक मिलता है अन्यथा इसका कुछ प्रयोग महा , अ माग , जै महा और जै शौर में पाया जाता है किन्तु वह भी एकवचन और तृतीय (अन्य) पुरुषवाचक में साधारण वर्तमान काल तक सीमित है, शौर में पूर्णतया और माग में प्रायः बिना अपवाद के आत्मनेपद प्रथम (उत्तम) पुरुष सामान्य वर्तमान तक ही सीमित है। शौर में जो उदाहरण पाये जाते हैं वे व्याकरणसम्मत बोली के उद्गार हैं (§ ८०७)। अनेक क्रिया शब्द जिनकी रूपावली संस्कृत में केवल आत्मनेपद में चलती है प्राकृत में उनमें परस्मैपद के समाप्तिसूचक रूप मिलते हैं, यही बात अधिकांश में कर्तृवाच्य के विषय में भी कही जा सकती है। महा , अ माग , जै महा और शौर में अभी तक अपूर्णभूत का रूप आसि अथवा आसी = आसीत् रह गया है जो प्रथम, मध्यम और तृतीय पुरुष एकवचन और तृतीय बहुवचन में काम में लाया जाता है ; अ माग में इसके अतिरिक्त अन्यवर्ती रूप भी चलता है (§ ५१५)। व्याकरण के नियमों (§ ५१६) और अ माग में सकार और स् –वाला भूत एवं आत्मनेपद के कुछ रूप बहुत काम में लाये गये हैं (§ ५१७), पूर्णभूत केवल अ माग में दिखाई देता है (५१८) शेषरेखाभूत एकदम उड़ गया है। ये सब काल अंशक्रियाओं में सहायक क्रियाएं अस् और भू जोड़कर बना लिये जाते हैं [यह परम्परा हिन्दी में भी चली आयी है, (मैं) खड़ा हुआ में खड़ा = स्थित और हुआ = अभूत्। यहाँ पिशल का उद्देश्य प्राकृत की इस शैली से है। —अनु] अथवा कर्मवाच्य की अंशक्रिया से बनाये गये हैं। परस्मैपद, आत्मनेपद और कर्मवाच्य में सामान्य भविष्यत् का रूप भी पाया जाता है जो क्रिया के साधारण रूप (Infinitive) से बने कृदन्त से बनाया जाता है। यह कर्मवाच्य में भी होता है (§ ५८), कृदन्त का रूप भी मिलता है, परस्मैपद में वर्तमानकालिक अंशक्रिया और आत्मनेपद में भी यह रूप है तथा कर्मवाच्य में भी कर्मवाच्य में पूर्णभूतकालिक अंशक्रिया भी मिलती है एवं कर्तव्यवाचक अंशक्रिया भी है साधारण वर्तमानकाल के नाना प्रकार (Mood), इच्छावाचक (प्रार्थनावाचक भी) और आज्ञावाचक रूप पाये जाते हैं। नाना शब्दों से निकाली गयी क्रियाओं के रूपों में संस्कृत की भाँति प्रेरणार्थक, इच्छार्थक, यङन्तकर्मक और बहु–

सख्यक अन्य रूप हैं । द्विवचन की जड ही उखाड दी गयी है। समाप्तिसूचक चिह्न, अप० को छोड, अन्य सब प्राकृत बोलियों में साधारणतः सस्कृत से मिलते-जुलते ही हैं। जहाँ जहाँ सस्कृत से भिन्नता आ गयी है उसका उल्लेख आगे आनेवाले § में किया गया है। प्राकृत की एक मुख्य विशेषता यह है कि अन्य सब कालों से वर्तमानकाल के मूल-शब्दों का महत्व बहुत अधिक बढ गया है, इनसे नामधातु (क्रियात्मक सज्ञा) और कर्मवाच्य के रूप बनाये जा सकते हैं। सज्ञा निकालने या बनाने के काम में भी इसका उपयोग है।

(अ) वर्तमानकाल

परस्मैपद का सामान्य रूप

§ ४५३—इस रूपावली में प्रथम गण **वट्ट-** = **वर्त-** की रूपावली का चित्र दिखाया गया है। सस्कृत में इसकी रूपावली केवल आत्मनेपद में चलती है :

	एकवचन	बहुवचन
१	**वट्टामि**	**वट्टामो**
२	**वट्टसि**	**वट्टह**, जै०शौर०, शौर०, माग० और ढक्की में **वट्टध**, पै० औ चू०पै० **वट्टथ**, **वट्टन्ति**
३	**वट्टइ**, जै०शौर०, शौर०, माग० और ढक्की में **वट्टदि** रूप है, चू०पै० और पै० में **वट्टति**	

अप० में साधारण रूपावली इस प्रकार है :

	एकवचन	बहुवचन
१	**वट्टउँ**	**वट्टहुँ**
२	**वट्टसि** और **वट्टहि**	**वट्टहु**
३	**वट्टइ**	**वट्टहिं**

§ ४५४—अप० को छोड प्राकृत की अन्य सभी बोलियों में सामान्य समाप्ति-सूचक रूप **–आमि** के साथ साथ व्याकरणकार (वर० ७, ३० , हेच० ३, १५४ , मार्क० पन्ना ५१, सिंहराज० पन्ना ४७) **–अमि** भी बताते हैं : **जाणमि** = **जानामि**, **लिहमि** = **लिखामि** , **सहमि** = **सहे**, **हसमि** = **हसामि** है। इसके उदाहरण अप० में भी मिलते हैं **कड्ढमि** = **कर्षामि** (हेच० ४, ३८५), **पावमि** = ***प्रापामि** = **प्राप्नोमि** , **भामभि** = **भ्रमामि** (विक्र० ७१, ७ और ८) , **भणमि** = **भणामि** (पिगल १, १५३) है। यहाँ स्वर द्वितीय और तृतीय पुरुष के रूप के अनुसार हो गया है। कुछ उदाहरणों में प्रथमपुरुष बहुवचन के अनुसार (§ ४५५) अ स्थान में इ आ गयी है महा० में **जाणिमि** = **जानामि** (हाल ९०२), **अणुणिज्जिमि** = **अनुनीये** (हाल ९३०), अप० में **पुच्छिमि** = **पृच्छामि**, **करिमि** = ***करामि** = **करोमि** (विक्र० ६५, ३ , ७१, ९) है। **–म्हि** और **–म्मि** में समाप्त होनेवाले

रूप जो कभी-कभी हस्तलिपियों और कुछ संस्करणों में मिलते हैं[1] अशुद्ध हैं[2] जैसे, पिबे वेमि के स्थान में पिबेदेमि (नाग २, १ २, १ की तुलना कीजिए), पसारेमि के स्थान में पसारेमि आया है (नाग० ४४, ८) और गच्छामि के स्थान में गच्छम्हि और गच्छम्हि रूप आये हैं (मालवि ५, ; वृषभ २, १७)। — अप में रूप के अन्त में -अउँ लगता है : कड्डउँ = कर्षामि है (हेच० ४, ३८५), किज्जउँ = क्रियै यहाँ इसका अर्थ करिष्यामि है (हेच ४, ३८५, ४४९ १) जाणउँ = जानामि है (हेच ४, ३९१ ४३९, ४ [जाणउँ कुमाउनी बोली में जाणूँ हो गया है। —अनु]) आइउँ = विलोकये, वेक्खउँ = प्रेक्षामि [कुमाउनी में देखूँ रूप है जिसमें प्रेक्षामि का अर्थ निहित है। —अनु] झिज्जउँ = क्षीये है (हेच ४, ३५६ ३५७, ८ ४२५) पावउँ = प्राप्नोमि है [कुमाउनी रूप पुँ है। —अनु०] पक्कावउँ = *पक्कापयामि = पचामि, जीवउँ = जीवामि, चज्जउँ (पाठ में चज्जउ है) = त्यजामि है (पिंगल १, ९ म; २, १४); पिआवउँ (पाठ में पिआवउ है) = *पिवापयामि = पाययामि है [कुमाउनी रूप पियूँ है। —अनु] (प्रबन्ध ७, ११ और ११)। अप० के ध्वनिनियमों के अनुसार आणउँ रूप केवल *जानकम् से उत्पन्न हो सकता है (§ ३५२)। *जानकम् के साथ व्याकरणकारों द्वारा दिये गये उन रूपों की तुलना की जानी चाहिए जिनके भीतर अक् आता है जैसे, पचतकि, जल्पतकि, स्वपितकि, पठतकि, अद्दकि और पड्कि हैं, इनके साथ भाण्डेय ने कीर्तितकि ग्रासम २७, १ से यामकि = यामि ढूँढ निकाला है[3] जो प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है। यहाँ यह बात स्वीकार करनी होगी कि जैसे भविष्यत्काल में (§ ५२), मुख्यकाल-वाचक रूप के समाप्तिसूचक चिह्न के स्थान में सहायककाल वाचक समाप्तिसूचक चिह्न आ गया है[4]।

१ मालविकाग्निमित्र पेज ३१ में बौँ स्लेँनसन की टीका ; हाल ४१० पर वेबर की टीका। — २ ब्लाख वररुचि उण्ड हेमचन्द्र पेज ४७। उत्तररामचरित ७९ में भ माग रूप भणुसासेमि या *भनुसासामि = अनुशासिम के स्थान में आया है कठिनता से ही शुद्ध माना जा सकता है। — ३. त्सा डे डौ मा गे० ३४ १०५ और उसके बाद। — ४ होएर्नले, कंपरेटिव ग्रामर § ४९० में इस रूप में भाववाचक का समाप्तिसूचक चिह्न देखता है।

§ ४५५—द्वितीयपुरुष वर्तमानकाल में अप में समाप्तिसूचक चिह्न -सि के साथ साथ -हि भी चलता है (§ २६४) : मरहि = *मरसि = म्रियसे, रुअहि = वैदिक रुदसि = रोदिषि, लहहि = लभसे, विसूरहि = खिद्यसे और नीसरहि = निःसरसि है (हेच० ४, ३६८; ३८३ १; ४२२, २; ४३९, ४)। माग में स्वप्न चल समाप्तिसूचक चिह्न -शि है : याशि, धावशि, गशाभशि, मर्शीअशि और गश्चाशि रूप मिलते हैं (मृच्छ ९ २१ और २४; १ १)। — तृतीय (= अन्य) पुरुष वर्तमानकाल में अ माग और अप के पद्य में -अइ का -ए बन जाता है (§ १६६); शौर माग और ढक्की में समाप्तिसूचक चिह्न -दि है, जै और प

पै० मे -ति . महा०, अ०माग० और जै०महा० में **वट्टइ** है किन्तु जै०शौर० और शौर० मे **वट्टदि** मिलता है (§ २८९), महा० मे **वड्ढइ = वर्धते** है किन्तु शौर० में **वड्ढदि** आता है (§ २९१), माग० में **चिलाअदि = चिरायति** है (शकु० ११५, ९), ढक्की मे **वज्जदि = व्रजति** है (मृच्छ० ३०, १०) , पै० मे **लपति** और **गच्छति** रूप मिल्ते हैं (हेच० ४, ३१९) । — अप० को छोड सभी प्राकृत बोलियों प्रथमपुरुष बहुवचन वर्तमानकाल के रूप के अन्त मे **-मो** आता है, पद्य मे **-मु** तथा **-म** भी जोडा जाता है जो वर्तमानकाल का सहायक चिह्न है (वर० ७, ४ , हेच० ३, १४४ , १६७ , क्रम० ४, ७ , मार्क० पन्ना ५१) **हसामो, हसामु** और **हसाम** रूप हैं। पल्लवदानपत्र ५, ७ के **वितराम** रूप महाभविष्यत्काल के रूप **दच्छाम = द्रक्ष्यामः** (रावण० ३, ५०) और **म्ह = स्मः** (§ ४९८) को छोड, **-म** अभी तक केवल रूपातर ही प्रमाणित हो सका है[१] तथा यह रूप गद्य के लिए शुद्ध नहीं है। महा० में **लज्जामो, वच्चामो** और **रमामो** रूप पाये जाते है (हाल २६७ , ५९० , ८८८), **कामेमो = कामयामः** है (हाल ४१७), कर्मवाच्य में **मुसिज्जामो = मुष्यामहे** है (हाल ३३५) , अ०माग० में **वड्ढामो = वर्धामहे** है (कप्प० § १९ और १०६), **जीवामो** आया है (नायाध० § १३७), **आचिट्ठामो = आतिष्ठामः** है (सूय० ७३४), **इच्छामु** रूप भी देखा जाता है (उत्तर० ३७६), **उवणेमो = उपनयामः** और **आहारेमो = आहारयामः** है (सूय० ७३४), **अच्चेमु** और इसके साथ साथ **अच्चिमो = अर्चयामः** और **अर्चामः** है (उत्तर० ३६८ और ३६९), भविष्यत्काल में **दाहामु = दास्यामः** है (उत्तर० ३५५ और ३५८), भूतकाल में भी **वुच्छामु = अवात्स्म** (उत्तर० ४१०) है , जै०महा० में **ताळेमो = ताडयामः** है (द्वार० ४९७, १), **पेच्छामो = प्रेक्षामहे** (आव०एर्त्से० ३३, १५) और **वच्चामो = व्रजामः** (कालका० २६३, १६ , २७२, १८) है, **पज्जोसवेमो** रूप भी मिल्ता है (कालका० २७१, ७) , शौर० में **पविसामो = प्रविशामः** (शकु० ९२, १), **जाणामो = जानीमः** (§ ५१०), **सुमरामो = स्मरामः** (माल्ती० ११३, ९), **उवचरामो = उपचरामः** (माल्ती० २३२,२ , पाठ में **तुवराम** है , इस ग्रन्थ में ही पाये जानेवाले दूसरे और १८६६ के कलकतिया संस्करण के पेज ९१, १७ में छपे रूप की तुलना कीजिए), **वड्ढामो = वर्धामहे** (मल्लिका० १५३, १० , महावीर० १७, ११ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए , बबइया संस्करण ३८, ३ की तुलना कीजिए]), **चिन्तेमो = चिन्तयामः** (महावीर० १३४, ११), **वन्दामो = वन्दामहे** और **उवहरामो = उपहरामः** है (पार्वती० २७, ११ , २९, १३) , दाक्षि० में **वोल्लामो** रूप मिल्ता है (मृच्छ० १०५, १६)। शब्द के अन्त में **-म्ह** लग कर बननेवाला रूप जो कभी-कभी पाठ में पाया जाता है जैसे, **चिट्ठम्ह** (रत्ना० ३१५, १), **विण्णवे म्ह, संपादे म्ह, पारे म्ह** और **करे म्ह** (शकु० २७,७ , ५३,५, ७६, १० , ८०, ५) अशुद्ध है। यह आज्ञावाचक क्रिया से सम्बन्ध रखता है (§ ४७०) । महा० और जै०महा० में तथा अ०माग० के पद्य में ध्वनिबलयुक्त अक्षर के पश्चात् आनेवाले वर्ण में **आ** बहुधा **इ** हो गया है। फल यह हुआ कि समाप्तिसूचक

चिह्न –इमो बन गया है (§ १०८) : महा में अच्छिमो = अत्स्यामः (हाल ६६१)· महा० और जै०महा में णमिमो = नंमामः (गउड० १५ और १९९ काल्का० २७७, ३०) महा और जै महा० में भणिमो = भणामः (हेच १, १५५ ; हाल प्रकम १० ,८ काल्का० २६९ १४), इसके साथ साथ भणामो भी चलता है (हाल) महा और अ माग में वन्दिमो = वन्दामहे (हाल ६५९ ; नन्दी ८१) है ; पचिमो = पचामः है (मार्क पन्ना ५१); महा० में सविमा = शपामः है (गउड० २४); महा में सहिमा = सहामहे है, जो रूप विसहिमो में मिलता है (हाल ३७६) और हसिमो = हसामः है (माम ७, ११) । इसी प्रकार महा० में गमिमो = ०गमामः है (हाल ८९२), जाणिमा, ण आणिमो = ०जानामः, न ०जानामः (हाल), मरिमा = ०मरामः और संभरिमो भी मिलता है (= अपने को स्मरण दिलाना हाल में स्मर् शब्द देखिए; गउड २११), माअच्छिमा = माकांक्षामहे है (गउड० १८८) तथा इनका उदाहरण पकड़ कर : पुच्छिमो = पृच्छामः (हाल ८५२), लिहिमो = लिखामः (हाल २४४) और सुणिमो = शृणुमः है (हाल ५१८ ; शकु० १ १, ५ में यह शौर में आया है जो अशुद्ध है)। व्याकरणकार (वर ७, ४ और ११ ; हेच ३, १५५ मार्क० पन्ना ५१ ; सिंह राज पन्ना ८७) ऐसे रूप भी बताते हैं जिनके अन्त से –अमु, –अम, इमु–, इम- लगते हैं पढमु, पढम, पढिमु, भणमु भणम, भणिमु, भणिम, सहमु, सहम, सहिमु, सहिम, हसमु, हसम, हसिमु और हसिम । — अप में साधारण समाप्तिसूचक चिह्न –हुँ है : लहहुँ = लभामहे, चडाहुँ = आरोहामः और मराहुँ = म्रियामहे है (हेच ४, ३८६ ४१९, १) । यही समाप्तिसूचक चिह्न अ- वर्ग के संज्ञाशब्द के अपादानकारक बहुवचन के अन्त में भी लगता है, इस स्थिति में इसकी व्युत्पत्ति –भ्याम् तक जाती है (§ ३६९) । इस क्रिया के मूल का रूप पूर्ण अन्धकार में है[१] । इन रूपों के साथ लहिमु भी पाया जाता है (हेच ४, ३८६) ।

१ विद्धशालभंजिका शौर में जैसे मर्यादाकम्ब्राह्मण ६८ ४ में पढाम रूप है जिसके स्थान में पूना के संस्करण पत्र ६९ अ पठामं छपा गया है मद्रास के संस्करण पेज ८५, १५ में पठामह आया है और बंबइया संस्करण १२० ० में अहियदुआ पाया जाता है । इसे इसका संशोधन कर के पढामो अथवा पठामा पढना चाहिए, विरएम = विरचयामः है जो पीपुटर्स्किन द्वारा सम्पादित चक्र- मलका ५९, १० ; तुपराम माक्लीमाधव २१२ २ आदि-आदि । — २ अपने ग्रन्थ डेपरटिब ग्रामर § ४९० पत्र ३३५ में हाफर्मन का स्पष्टीकरण असम्भव है।

§ ४५६—महा अ माग और जै महा में द्वितीय (= प्रचलित मध्यम) पुरुष बहुवचन के अन्त में समाप्तिसूचक चिह्न ह लगता है, शौर , माग और आव में –ध अप में –हु अथवा –ह आता है : रमह, पढह, हसह (वर ७, ४); हसह वयह (हेच ३ १९९) ; पचह, संडह (क्रम ४ ६), हाह (मार्क० पन्ना ५१) रूप मिलता है ; महा में ण आणह = न जानीथ और वे प्पिरह = प्रस्यथ (रावण ३, १३ आर २२) है, तरह (= तुम कर सकते : हाल ८९७) ; जै महा०

में **जाणह** आया है (कालका० २७३, ४४), **कुप्पह** = **कुप्यथ** है और **पयच्छह** भी पाया जाता है (एर्त्से० १०, २० , १५, ३६) , अ०माग में **आइक्खह**, **भासह** और **पन्नवेह** रूप मिलते हैं (आयार० १, ४, २, ४), **भुञ्जह** आया है (सूय० १९४), **वयह** = **वदथ** है (कप्प० , ओव० , उवास० , नायाध०), **आढाह**, **परियाणह**, **अघायह**, **उवणिमन्तेह** रूप भी पाये जाते हैं (नायाध० § ८३), शौर० में **पेक्खध** = **प्रेक्षध्वे** (मृच्छ० ४०,२५ , शकु० १४,८) और **णेध** = **नयथ** है (मृच्छ० १६१, ९)[1], माग० मे **पेस्कध** देखा जाता है (मृच्छ० १५७,१३ , १५८, २ , १६२,६), **पत्तिआअध** = **प्रत्ययध्वे** (मृच्छ० १६५, ९) , आव० में **अच्छध** रूप आया है (मृच्छ० ९९,१६) , अप० में **पुच्छह** और **पुच्छहु** रूप मिलते हैं (हेच० ४,३६४ , ४२२, ९) , **इच्छहु** और **इच्छह** भी पाये जाते हैं (हेच० ४, ३८४) तथा **पअम्पह** = **प्रजल्पथ** है (हेच० ४, ४२२, ९) । बहुत सम्भव यह है कि सर्वत्र **-हु** पढा जाना चाहिए। समाप्तिसूचक चिह्न **-इत्था** के विषय में § ५१७ देखिए। — सभी प्राकृत बोलियों में तृतीयपुरुष बहुवचन के अन्त में **-न्ति** लगाया जाता है। महा० में **मुअन्ति** = ***मुचन्ति**, **रुअन्ति** = **रुदन्ति** और **हों न्ति** = **भवन्ति** हैं (हाल १४७) , जै०महा० मे **भवन्ति** रूप मिलता है और **दें न्ति** = **दयन्ते** है (एर्त्से० ३, १४ और १५), अ०माग० मे **चयन्ति** = **त्यजन्ति**, **थनन्ति** = **स्तनन्ति** और **लभन्ति** = **लभन्ते** हैं (आयार० १, ६, १, २) , शौर० में **गच्छन्ति**, **प्रसीदन्ति** और **संचरन्ति** रूप पाये जाते है (मृच्छ० ८, ४ , ९, १ और ११) , माग० में **अण्णे-शन्ति** = **अन्वेषन्ति** और **पियन्ति** = **पिबन्ति** हैं (मृच्छ० २९, २३, ११३, २१), चू०पै० में **उच्छल्लन्ति** और **निपतन्ति** रूप आये हैं (हेच० ४, ३२६) , अप० में **विहसंति** = **विकसन्ति** तथा **करन्ति** = **कुर्वन्ति** हैं (हेच० ४,३६५ , ४४५, ४)। तथापि अप० में साधारण समाप्तिसूचक चिह्न **हिँ** है जिसकी व्युत्पत्ति अन्धकार में है[2] : **मउलिअहिँ** = **मुकुलयन्ति**, **अणुहरहिँ** = **अनुहरन्ति**, **लहहिँ** = **लभन्ते**, **णवहिँ** = **नमन्ति**, **गज्जहिँ** = **गर्जन्ते**, **धरहिं** = **धरन्ति**, **करहिँ** = **कुर्वन्ति**, **सहहिँ** = **शोभन्ते** हैं, आदि-आदि (हेच० ४, ३६५, १ , ३६७, ४ और ५ , ३८२)। कर्मवाच्य में : **घेप्पहिँ** = **गृह्यन्ते** (एर्त्से० १५८, १४)। यही समाप्ति-सूचक चिह्न अ०माग० **अच्छहिं** = **तिष्ठन्ति** में पाया जाता है (उत्तर० ६६७)[3]। यह रूप पद्य में आया है तथा गद्य में **आढाइं** और **परिजाणाहिं** भी मिलते हैं (विवाग० २१७ ; § २२३ , ५०० और ५१० की तुलना कीजिए)।

१ हेमचन्द्र ४, २६८ और ३०२ के अनुसार शौर० और माग० में **-ह** भी आ सकता है। इस विषय में किन्तु पिशल, कू०बाइ० ८, १३४ तथा उसके बाद देखिए। — २. होएर्नले, कम्पैरेटिव ग्रामर § ४९७, पेज ३३७ में इसका स्पष्टीकरण असम्भव है। — ३ याकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट सिरीज ४५, ११४, नोटसंख्या २ के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए। इस संस्करण में पाठ और टीका में **अत्थिहिं** पाठ है, टीकाकार ने दिया है **अइत्थहिं** (?) इति **तिष्ठन्ति**। § ४६१ में **अस्सासि** की तुलना कीजिए।

चिह्न –इमो बन गया है (§ १०८) : महा० में जम्पिमो = जल्पामः (हाल ६६१); महा और जै महा० में णमिमो = नमामः (गउड० ३५ और ९९९ ; कालका० २७७, ३०) महा और जै महा में भणिमो = भणामः (हेच० ३, १५५ ; हाल ग्रन्थ १ ,८ कालका २६६,१४), इसके साथ साथ भणामो भी चलता है (हाल) महा और अ०माग में वन्दिमो = वन्दामहे (हाल ६५९ नन्दी ८१) है पभिमो = पंचामः है (मार्क पन्ना ५१) महा में सभिमो = शपामः है (गउड० २४) महा में सहिमो = सहामहे है, जो रूप विसहिमो में मिलता है (हाल २७१) और हसिमो = हसामः है (भाम ७, ११)। इसी प्रकार महा में गमिमो = *गमामः है (हाल ८९२), जाणिमो, ण आणिमो = *जानामः, न *आनामः (हाल), भरिमो = *भरामः और संभरिमो भी मिलता है (= अपने को स्मरण दिलाना हाल में स्मर् शब्द देखिए गउड २११), मालक्खिमो = मालक्षामहे है (गउड १८८) तथा इनका उदाहरण पकड़ कर : पुच्छिमो = पृच्छामः (हाल ४५२), लिहिमो = लिखामः (हाल २४४) और सुप्पिमो = स्वपामः है (हाल ५१८ बाल १ १, ५ में यह घोर० में आया है जो अशुद्ध है)। व्याकरणकार (वर ७, ४ और ११ हेच ३, १५५ मार्क पन्ना ५१ सिंह राज पन्ना ८७) ऐसे रूप भी बताते हैं जिनके अन्त में –अमु, –अम, इमु–, इम– लगते हैं : पढमु, पढम, पढिमु, भणमु भणम भणिमु, भणिम, सहमु सहम, सहिमु, सहिम हसमु, हसम, हसिमु और हसिम। — अप में साधारण समाप्तिसूचक चिह्न –हुँ है : लहहुँ = लभामहे, चडाहुँ = आरोहामः और मराहुँ = म्रियामहे है (हेच ४, ३८६ ; ४३९, १)। यही समाप्तिसूचक चिह्न अ– वर्ग के संज्ञाशब्द के अपादानकारक बहुवचन के अन्त में भी लगता है, इस स्थिति में इसकी व्युत्पत्ति –भ्याम् तक जाती है (§ ३६९)। इस क्रिया के मूल का रूप पूर्व अन्धकार में है[1]। इन रूपों के साथ लहिमु भी पाया जाता है (हेच ४, ३८६)।

1. पिशेल्स घोर में वैसे प्रबोधचन्द्रोदय १४ ८ में यहाम रूप है जिसके स्थान में पूना के संस्करण पन्ना ११ में यसंम छापा गया है मद्रास के संस्करण पन्ना ४५, १५ में यसमह आया है और बम्बइया संस्करण १३० ० में अहियहद्धा पाया जाता है। इसे इसका संशोधन कर के यहामो अथवा यसामो पढ़ना चाहिए, थिरएम = थिरयामः है जो बोएटलिंक द्वारा सम्पादित शकुन्तला ४५, १० ; तुपराम माल्लतीमाधव २६२ २ आदि-आदि। — २ अपने मन्थ वेपराडिष मामर § ४९० पेज ११५ में हापूर्व का स्पष्टीकरण असम्भव है।

§ ४५६—महा , अ माग और जै महा में द्वितीय (= प्रचलित मध्यम) पुरुष बहुवचन के अन्त में समाप्तिसूचक चिह्न ह लगता है, घोर , माग और ढाक में –ध, अप में –हु अथवा –ह आता है : रमह, पढह हसह (वर० ७, ४); हसह पयह (हेच १, १११); पयह, सफह (क्रम ४, ६); होह (मार्क पन्ना ५१) रूप मिलते हैं महा में ण आणह = न जानीथ और दें चिट्ठह = द्रष्टुपथ (पवण १, ११ और २१) है, तरह (= तुम कर सकते : हाल ८९७), जै महा०

मणे रूप भी होता है (हाल , रावण० , हेच० २, २०७)। क्रियाविशेषण रूप से काम मे लाया जानेवाला रूप **वणे** (हेच० २, २०६) भी ऐसा ही है, आदि मे यह प्रथमपुरुष एकवचन आत्मनेपद का रूप था और =**मणे** रहा होगा (§ २५१-) अथवा =**वने** भी हो सकता है (धातुपाठ की तुलना कीजिए, जिसका उल्लेख बोएटलिक और रोट के संस्कृत-जर्मन कोश मे 'व' **वन्** के साथ किया गया है)। एस० गौल्दश्मित्त ने इस रूप को हेच० के अनुसार ठीक किया है (रावण० १४, ४३, त्सा० डे० डौ० मौ० गे० ३२, १०३)। वर० ९, १२ मे **वले** दिया गया है [इसका रूप कुमाउनी मे **वलि** और **वली** बन गया है, जो एक विस्मयादिबोधक शब्द के काम मे आता है। यह शब्द प्राकृत मे भी प्राय इसी रूप मे देखा जाता है। —अनु०]। अ०माग० में **रमे** आया है (उत्तर० ४४५, शौर० मे **लहे**=**लभे** है (विक्र० ४२,७)। **इच्छे** रूप भी मिलता है (मृच्छ० २४, २१ , २५, १०), माग० में **वाए**=**वामि** और **वादयामि** है तथा **गाए**=**गायामि** है (मृच्छ० ७९, १२ और १३)। —(२) महा० में **मग्गसे, जाणसे, विज्झसे, लज्जसे** और **जम्पसे** मिलते है (हाल ६, १८१ , ४४१ , ६३४ , ९४३), **सोहसे** भी पाया जाता है (गउड० ३१६), अ०माग० में **पब्भाससे**=**प्रभाषसे, अववुज्झसे**=**अववुध्यसे** है (उत्तर० ३५८ और ५०३), अ०माग० मे **इच्छसे**=**इच्छसे** भी आया है (मृच्छ० १२३, ५), पै० मे **पयच्छसे**=**प्रयच्छसे** (हेच० ४, ३२३)। — (३) महा० मे **तणुआअए, पडिच्छए, वच्चए, पॅच्छए, दावए, णिअच्छए, पलम्बए, अन्दोलए, लग्गए, परिसक्कए** और **विकुप्पए** रूप मिलते है (हाल ५९ , ७०१ , १४० , १६९ , ३९७ , ४८९ , ४०७ , ५८२ , ८५५ , ९५१ , ९६७), कर्मवाच्य मे **तीरए** =**तीर्यते** है (हाल १९५, ८०१, ९३२), **जुज्जए**=**युज्यते, झिज्जए**=**क्षीयते, णिवरिज्जए**=**निर्वृयते** और **खिज्जये**=**क्षीयते** हैं (हाल १२ , १४१ , २०४ , ३६२) , जै०महा० मे **भुञ्जए**=**भुक्ते** और **निरिक्खए**=**निरीक्षते** मिलते हैं (एर्त्से० २५, ३० , ७०, ७) , **चिन्तए** रूप भी आया है (आव०एर्त्से० ३६, २५ , एर्त्से० ७०, ३५ , ७४, १७) , **चिट्ठए**=**तिष्ठते** है और **विउव्वए**=***विकुर्वते**=**विकुरुते** है (आव०एर्त्से० ३६, २६ और २७) , कर्मवाच्य मे **मुच्चए**=**मुच्यते** है (एर्त्से० ७१ , ७) , **तीरए**=**तीर्यते** और **डज्झए**=**दह्यते** है (द्वार० ४९८, २१ और २२) अ०माग० में **लहए, कीळए** और **भञ्जए** रूप मिलते हैं (उत्तर० ४३८ , ५७० , ७८९) **तितिक्खए**=**तितिक्षते** है और **संपवेवए**=**संप्रवेपते** है (आयार० २, १६, ३) , जै०शौर० में **मण्णदे**=**मन्यते, बन्धदे**=**बध्नीते, जयदे**=**जयते, भासदे**=**भाषते, भुञ्जदे**=**भुंक्ते** और **कुव्वदे**=***कुर्वते**=**कुरुते** हैं (कत्तिगे० ३९९, ३१४ , ४०० , ३२७ , ३३२ और ३३३, ४०३ , ३८२ और ३८४ , ४०४, ३९०) , कर्मवाच्य में **आदीयदे** रूप मिलता है (पव० ३८४, ६०), ६० **थुव्वदे**=**स्तूयते, जुज्जदे**=**जुज्यते** और **सक्कदे**=**शक्यते** हैं (कत्तिगे० ४०१, ३५१ , ४०३, ३८० , ४०४, ३८७), दाक्षि० में **जाअए**=**जायते** है और **वट्टए**=**वर्तते** पाया जाता है (मृच्छ० १००, ३ और ६)। हेच०

(२) आत्मनेपद का वर्तमानकाल

§ ४५७—रूपावली इस प्रकार है :

एकवचन	बहुवचन
१ वट्टे	नहीं है।
२ वट्टसे	नहीं है।
३ वट्टए, वे और में वट्टई	वट्टन्ते

वररुचि ७, १ २ और ५ हेमचन्द्र ३, १३९ १४ और १४५ ४, २७४ ३ २ और ११९ क्रमदीश्वर ४, २ और ३ मार्कंडेय पन्ना ५ की तुलना कीजिए। वररुचि और हेमचन्द्र स्पष्ट बताते हैं कि समाप्तिसूचक चिह्न —से और ए केवल अ— गण के काम म आते हैं, इसका उल्लेख मार्कंडेय भी करता है। हेमचन्द्र ४, २७४ के अनुसार शौर० में और ४, २ ४ के अनुसार माग में भी अ— गण में —न्ते = —न्ते समाप्तिसूचक चिह्न भी चलता है, किन्तु उत्तम पाठों में भी इस नियम की पुष्टि नहीं की गयी है। यहाँ तक कि स्वयं हेमचन्द्र ने वेणीसंहार ३५ १७ और ३६, १ स माग के जो उदाहरण दिये हैं उसकी सभी हस्तलिपियों और पाठ नुणीभदे = भूयते के स्थान में ग्रुणीभवि देते हैं [भण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट के दूसरे संस्करण मे जो अनुवादक के पास है ४ १ २ पेज ५८९, १ में भरतो नेदृत्व (४, २७४) अले कि पद्ये मह दे कलपत्त गुणीभदे' दिया गया है। इससे पता चलता है किसी हस्तलिपि में यह रूप भी मिलता है। भरतो नेदृत्व में भी इस संस्करण में भी भवन्ते , गच्छन्ते रमन्ते क्रिज्जन्त उदाहरण दिये गये हैं। —अनु]। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य स्थानों की भाँति (§ २१) यहाँ भी शौर स हेमचन्द्र का अर्थ जै शौर स है। वररुचि १२, २७ और मार्कंडेय पन्ना ७ में शौर और माग० में आत्म नेपद का प्रयोग एकदम निषिद्ध करते हैं। फिर भी पद्य म इसके कुछ प्रयोग मिलते हैं और कहीं कहीं गद्यों में बल और प्रधानता देने के लिए भी आत्मनेपद काम में लाया गया है। प्राकृत की नाना बोलियों स निम्नलिखित उदाहरण दिये गये हैं महा में जाण भाया है (हाल २) पर जाण भी है (रावण १, ४४ ; शकु ५१, १९), जाण शौर में बारबार मिलता है (शकु १११, ९ मालवि ६१, ८ ; कालि ५६८, ४ अनघ ६६ ५ उत्तरा १२ १३ ; ६४, ७ ; विद्ध ३७, १ ; ९१, १) और ण भाण है जो ग्रन्थ में आये हुए इस रूप के अनुसार ही सभव जहाँ जहाँ पाठ म कभी-कभी ण जाण आया है पढ़ा जाना चाहिए (शकु ७ ११ १२३, १४ विक्र १५ ५ मालवि १ ८ ; १४, ; गणो ५९, ५) अ माग में भी यह रूप मिलता है (उत्तर ५१२) ; महा में मण्णए = मन्यते (गउड० ; हाल गउड) यह रूप और म भी आया है (गुम्फ० २२ १३ ; मच्छिका० ५६ १ ; १ ७ ; ७४ २२ ; ८ १९ ; ८१ ५ ; भर्त्तृ ६१, १ ; ६६ १० ; विद्ध ६) और भणुमण्ण भी देखा गया है (शकु ५ ११) तथा अ माग में मन्ने रूप है (उत्तर ५७१) और महा में प्रथम गण के अनुसार

मणे रूप भी होता है (हाल , रावण० , हेच० २, २०७)। क्रियाविशेषण रूप से काम में लाया जानेवाला रूप **वणे** (हेच० २, २०६) भी ऐसा ही है, आदि में यह प्रथमपुरुष एकवचन आत्मनेपद का रूप था और = **मणे** रहा होगा (§ २५१) अथवा = **वने** भी हो सकता है (धातुपाठ की तुलना कीजिए, जिसका उल्लेख बोएटलिंक और रोट के संस्कृत-जर्मन कोश में **'व' वन्** के साथ किया गया है)। एस० गौल्दश्मित्त ने इस रूप को हेच० के अनुसार ठीक किया है (रावण० १४, ४३, त्सा० डे० डो० मौ० गे० ३२, १०३)। वर० ९, १२ में **वले** दिया गया है [इसका रूप कुमाउनी में **वलि** और **वली** बन गया है, जो एक विस्मयादिबोधक शब्द के काम में आता है। यह शब्द प्राकृत में भी प्राय इसी रूप में देखा जाता है। —अनु०]। अ०माग० में **रमे** आया है (उत्तर० ४४५, शौर० में **लहे** = **लभे** है (विक्र० ४२,७)। **इच्छे** रूप भी मिलता है (मृच्छ० २८, २१ , २५, १०), माग० में **वाए** = **वामि** और **वाद्यामि** है तथा **गाए** = **गायामि** है (मृच्छ० ७९, १२ और १३)। —(२) महा० में **मग्गसे, जाणसे, विज्झसे, लज्जसे** और **जम्पसे** मिलते हैं (हाल ६, १८१ , ४४१ , ६३४ , ९४३), **सोहसे** भी पाया जाता है (गउड० ३१६), अ०माग० में **पब्भाससे** = **प्रभाषसे, अवबुज्झसे** = **अवबुध्यसे** है (उत्तर० ३५८ और ५०३), अ०माग० में **इच्छसे** = **इच्छसे** भी आया है (मृच्छ० १२३, ५), पै० में **पयच्छसे** = **प्रयच्छसे** (हेच० ४, ३२३)। —(३) महा० में **तणुआअए, पडिच्छए, वज्जए, पेॅच्छए, दावए, णिअच्छए, पलम्बए, अन्दोलए, लग्गए, परिसक्कए** और **विकुप्पए** रूप मिलते हैं (हाल ५९ , ७०१ , १४० , १६९ , ३९७ , ४८९ , ४०७ , ५८२ , ८५५ , ९५१ , ९६७), कर्मवाच्य में **तीरए** = **तीर्यते** है (हाल १९५, ८०१, ९३२), **जुज्जए** = **युज्यते, झिज्जए** = **क्षीयते, णिवरिज्जए** = **निर्वृयते** और **खिज्जये** = **क्षीयते** है (हाल १२ , १४१ , २०४ ; ३६२) , जै०महा० में **भुञ्जए** = **भुङ्क्ते** और **निरिक्खए** = **निरीक्षते** मिलते हैं (एर्त्से० २५, ३० , ७०, ७) , **चिन्तए** रूप भी आया है (आव०एर्त्से० ३६, २५ , एर्त्से० ७०, ३५ , ७४, १७) , **चिट्ठए** = **तिष्ठते** है और **विउव्वए** = ***विकुर्वते** = **विकुरुते** है (आव०एर्त्से० ३६, २६ और २७), कर्मवाच्य में **मुच्चए** = **मुच्यते** है (एर्त्से० ७१ , ७) , **तीरए** = **तीर्यते** और **डज्झए** = **दह्यते** है (द्वार० ४९८, २१ और २२) अ०माग० में **लहए, कीळए** और **भज्जए** रूप मिलते हैं (उत्तर० ४३८ , ५७० , ७८९) **तितिक्खए** = **तितिक्षते** है और **संपवेवए** = **संप्रवेपते** है (आयार० २, १६, ३), जै०शौर० में **मण्णदे** = **मन्यते, वन्धदे** = **वध्नीते, जयदे** = **जयते, भासदे** = **भाषते, भुञ्जदे** = **भुंक्ते** और **कुव्वदे** = ***कुर्वते** = **कुरुते** हैं (कत्तिगे० ३९९, ३१४ , ४०० , ३२७ , ३३२ और ३३३, ४०३ , ३८२ और ३८४ , ४०४, ३९०) , कर्मवाच्य में **आदीयदे** रूप मिलता है (पव० ३८४, ६०), ६० **थुव्वदे** = **स्तूयते, जुज्जदे** = **जुज्यते** और **सक्कदे** = **शक्यते** हैं (कत्तिगे० ४०१, ३५१ , ४०३, ३८० ; ४०४, ३८७), दाक्षि० में **जाअए** = **जायते** है और **वट्टए** = **वर्तते** पाया जाता है (मृच्छ० १००, ३ और ६)। हेच०

४, २७४ में शौर में गच्छदे, गच्छदे और रमदे रूप देता है तथा ४, ३१९ में पै० रूप छपते, गच्छते, गच्छते और रमते देता है, शौर में कर्मवाच्य के लिए करूते = क्रियते दिया गया है (४, २७४), पै में गिय्यते, तिय्यते [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], रमिय्यते और पढ़िय्यते रूप दिये गये हैं (४, ३१५); ४, ३१६ में कीरते = क्रियते है। — प्रथमपुरुष बहुवचन में कभी-कभी कामम्हे = कामयामहे जैसे रूप पाये जाते हैं जो अच्छी हस्तलिपियों से पुष्ट नहीं होतीं (हाल ४१७ पर वेबर की टीका)। —तृतीयपुरुष बहुवचन में महा० में गज्जन्ते = गर्जन्ते है (हेच १ १८७ [अनुवाद देखिए]; ३, १४२), वीइन्ते = *वीयन्ते है और उप्पज्जन्ते = उत्पद्यन्ते है (हेच १ १४२), उच्छाहन्ते = उत्साहयन्ते (हाल ११८) अ०माग० में उवलभन्ते रूप मिलता है (सूय० ७५१), रीयन्ते भी आया है (आयार १, ८, २, १६ दस ६११,१२), चिट्ठन्ते = तिष्ठन्ते है (आयार० १, ८ ४, १)। अ माग के सभी उदाहरण और ये महा के उदाहरण बहुत अधिक अंश में पद्य से लिये गये हैं।

§ ४५८—समाप्तिसूचक चिह्न —न्ते के साथ-साथ प्राकृत में वैदिक संस्कृत और पाली[1] के समान समाप्तिसूचक चिह्न इरे भी पाया जाता है : पहुप्पिरे = *प्रभुस्विरे (§ २९८) है जो धात्वाग्र वाँ च्चिअ वि न पहुप्पिरे बाहू = ग्राप् अपि न प्रभवतो बाहू में आया है विच्छुहिरे = *विक्षुभिरे है (हेच १ १४२)। हसेइरे हसइरे और हसिरे = हसन्ते है सहइरे, सहइरे और सहिरे = सहन्ते है और हुवइरे, हुअइरे, हुइरे, हावइरे, हामइरे तथा होइरे = भवन्ते है (सिंहराज० पन्ना ४६ और ४७)। सिंहराज पन्ना ४९ में इन समाप्तिसूचक चिह्नों का प्रयोग धातु के ऐच्छिक रूप के लिए भी बताता है : हुआइरे, हुज्जाइरे, हुएज्जाइरे और हुएज्जाइरे = भवरन् हैं और पन्ना ५१ में भविष्यत्काल के लिए भी इनका प्रयोग बताता है : हसहिइरे और हसिहिइरे = हसिष्यन्ते हैं। हेमचंद्र ३, १४२ में बताता है कि तृतीयपुरुष एकवचन में भी —इरे काम में लाया जाता है : सूसइरे गामचिक्खल्ल = शुष्यति ग्रामचिक्खल्लः। यही नियम त्रिविक्रम २, ३, ४ में बताता है और उसने उदाहरण दिया है : सुसइरे ताण तारिसा कच्छा = शुष्यति तासां तादृशा कच्छा।

[1] ए कून बाइत्रगे पत्र ९७। म्युल्लर, सिम्प्लिफाइड ग्रामर पेज १०। विण्डिश द्वारा कौलिज्यार्मन मित बस कारावेरर र् इम भारिसन इस बिमाग उन्ट प्रसिलिश। काइएसिंग १८८७ जिसमें इस विषय पर अन्य साहित्य का भी उल्लेख है।

(२) ऐच्छिक रूप

§ ४५९—अ माग और जै महा में ऐच्छिक रूप असाधारण रूप से बार बार आया है महा में यह बहुत कम पाया जाता है और प्राकृत की अन्य बोलियों में कहीं-कहीं, इसके इक्के-दुक्के रूप काम में आता है। इसकी रूपावली दो प्रकार से चलती है।

महा०, अ०माग० और जै०महा० में साधारण रूपावली चलती है, पै० में भी यही आती है, माग० और अप० में कभी-कभी देखी जाती है :

	एकवचन	बहुवचन
१	**वट्टें ज्जा, वट्टें ज्ज, वट्टें ज्जामि**	**वट्टें ज्जाम**
२	**वट्टें ज्जासि, वट्टें ज्जसि, वट्टें ज्जाहि, वट्टें ज्जहि, वट्टें ज्जासु वट्टें ज्जसु, वट्टें ज्जा**	**वट्टें ज्जाह, वट्टेज्जह**
३	**वट्टें ज्जा, वट्टें ज्ज** [**वट्टें ज्जइ**]	**वट्टेज्जा**, **वट्टें ज्ज**

इसके साथ साथ इन बोलियो मे अर्थात् अ०माग० और जै०महा० में, विशेषतः पद्य में, जै०शौर० मे प्राय. सदा, शौर० में बिना अपवाद के तथा माग० और अप० में इक्के दुक्के निम्नलिखित रूपावली चलती है :

	एकवचन	बहुवचन
१	शौर० **वट्टेअं, वट्टे**	नहीं मिलता
२	अ०माग० और अप० मे **वट्टे** [अवधी में **वाटे** का मूल रूप यही है। —अनु०], अप० में **वट्टि**	नहीं मिलता
३	अ०माग०, जै०महा०, जै०शौर०, शौर० और माग० में **वट्टे**	अ०माग० और शौर० में **वट्टे**

ऐच्छिक काल की इन दोनों रूपावलियों को अन्त में **-एयम्** लगाकर बननेवाले पहले गण से व्युत्पन्न करना, जैसा याकोबीस ने किया है, ध्वनिशास्त्र के अनुसार असम्भव है। निष्कर्ष स्पष्ट ही यह निकलता है कि अन्त में **ए** लगकर बननेवाला प्रथमपुरुष का एकवचन द्वितीय- और तृतीयपुरुष के अनुकरण पर बना है। यह रूप ऐसा है जो तृतीयपुरुष बहुवचन के काम में भी लाया जाता है। ठीक इसी प्रकार —**ऍज्जा** और **-ऍज्ज**-वाला रूप भी काम में लाया जाता है। रूप के अन्तिम स्वर की दीर्घता मूल रूप से चली आयी है। गद्य में जो ह्रस्व पाया जाता है वह ऐसे वर्णों से पहले आता है जिनके ध्वनिबल का प्रभाव उसके पिछले वर्ण पर पडता है, जैसे . **आगच्छें ज्ज वा चिट्टें ज्ज वा निसीऍज्ज तुयट्टें ज्ज वा उल्लघें ज्ज वा = आगच्छेद् वा तिष्टेद् वा निषीदेद् वा शयीत वा उल्लघेद् वा प्रलंघेद् वा** (ओव० § १५०, विवाह० ११६ की तुलना कीजिए, आयार० १, ७, २, १, —अन्य उदाहरण आयार० २, २, १, ८, २, ३, २, ७ आदि-आदि), इसके साथ-साथ दीर्घ स्वरवाला रूप भी दिखाई देता है जैसे, **अवहरें ज्जा वा विक्खिरें ज्जा वा भिन्धेज्जा वा अच्छिन्देज्जा वा परिट्ठवें ज्जा वा = अपहरेद् वा विष्किरेद् वा भिन्द्याद् वा आच्छिन्द्याद् वा परिष्ठापयेद् वा** है (उवास० § २००) अन्यथा यह रूप पद्य में ही काम में आता है। महा० में तो सदा पद्य मे ही इसका व्यवहार किया जाता है। यदि हम अ०-माग० रूप **कुज्जा = कुर्यात्** (§ ४६४), **दें ज्जा = देयात्** और **हों ज्जा = भूयात्** की तुलना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि **कुव्वें ज्जा** किसी ***कुर्यात्**, **करेज्जा** किसी ***कर्यात्** और **हवेज्जा** किसी ***भव्यात्** रूप की सूचना देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्त में **-एज्जा** लगकर बननेवाला ऐच्छिक रूप **-या** समाप्तिसूचक चिह्न से

४, २७४ में शौर० में भण्णदे, गच्छदे और रमदे रूप देखा है तथा ४, ३१९ में पै० रूप भणते, भच्छते, गच्छते और रमते देखा है, शौर० में कर्मवाच्य के लिए करादे = क्रियते दिया गया है (४ २७४), पै० में गिय्यते, तिय्यते [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], रमिय्यते और पढिय्यते रूप दिये गये हैं (४, ३१५); ४, ३१६ में कीरते = क्रियते है। — प्रथमपुरुष बहुवचन में कभी-कभी कामस्ते = कामयामहे जैसे रूप पाये जाते हैं जो अच्छी हस्तलिपियों से पुष्ट नहीं होतीं (हाल ४१७ पर वेबर की टीका)। —तृतीयपुरुष बहुवचन में महा० में गज्जन्ते = गर्जन्ते है (हेच० १ १८७ [अनुवाद देखिए] १, १४२), वीहन्ते = भीयन्ते है और उप्पज्जन्ते = उत्पद्यन्ते है (हेच० ३,१४२), उच्छाहन्ते = उत्साहयन्ते (हाल ११८) अ० माग० में उवक्कमन्ते रूप मिलता है (सूय० ७५२), रीयन्ते भी आया है (आयार० १, ८, २, १६ ; दस० ६११ १२), चिट्ठन्ते = तिष्ठन्ते है (आयार० १, ८ ४, १)। अ० माग० के सभी उदाहरण और जै०महा० के उदाहरण बहुत अधिक अंश में पद्य से लिये गये हैं।

§ ४५८—समाप्तिसूचक चिह्न –न्ते के साथ-साथ प्राकृत में वैदिक संस्कृत और पाली[1] के समान समाप्तिसूचक चिह्न इरे भी पाया जाता है : पहुप्पिरे = *प्रभुत्विरे (§ २८६) है जो धातुपाठ वाँ प्फिर प्रिथ न पहुप्पिरे बाहु = प्राप् अपि न प्रभवता बाहु में आया है चिन्दुहिरे = *चिखुमिरे है (हेच० १ १४२), हसेइरे, हसइरे और हसिरे = हसन्ते है सहेइरे, सहइरे और सहिरे = सहन्ते है और हुपइरे, हुमइरे, हुइरे, होपइरे, होमइरे तथा होइरे = भवन्ते है (सिंहराज० पन्ना ४६ और ४७)। सिंहराज० पन्ना ४९ में इन समाप्तिसूचक चिह्नों का प्रयोग धातु के ऐच्छिक रूप के लिए भी बताता है : हुज्जइरे, हुज्जाइरे, हुवेज्जइरे और हुवेज्जाइरे = भवेरन् हैं और पन्ना ५१ में भविष्यत्काल के लिए भी इनका प्रयोग बताता है : हसेहिइरे और हसिहिइरे = हसिष्यन्ते हैं। हेमचंद्र ३, १४२ में बताता है कि तृतीयपुरुष एकवचन में भी –इरे काम में आया जाता है : सूसइरे गामचिक्खल्लो = शुष्यति ग्रामचिखल्लः। यही नियम त्रिविक्रम २, २, ४ में बताता है और उसने उदाहरण दिया है : सूसइरे साण सारिसो कण्ठो = शुष्यति तासां तादृशः कण्ठः।

1 ए. कून बाइत्रैगे पेज १४; म्युलर, सिम्प्लिफाइड ग्रामर पेज १०; विण्डिश द्यूबर डी वैबफ्रोर्मेन मिट डेम कारास्टर र् इम आरिशन इन फिशम उन्ट कैल्टिशन। लाइपत्सिख १८८७ जिसमें इस विषय पर अन्य साहित्य का भी उल्लेख है।

(२) ऐच्छिक रूप

§ ४५९—अ० माग० और जै० महा० में ऐच्छिक रूप असाधारण रूप से बार बार आया है, महा० में यह बहुत कम पाया जाता है और प्राकृत की अन्य बोलियों में कहीं-कहीं, इक्के-दुक्के देखने में आता है। इसकी रूपावली दो प्रकार से चलती है।

रूप विरल हैं : अ०माग० में **उदाहरिज्जा** = उदाहरेः (सूय० ९३२), **उवदंसेज्जा** = **उपदर्शयेः** है (आयार० १, ५, ५, ४) और **विणएज्ज** = **विनयेः** (दस० ६१३, २७)। अ०माग० में साधारणतया समाप्तिसूचक चिह्न **–सि** लगता है : **पयाए-ज्जासि** = **प्रजायेथा** है (नायाध० ४२०), **निवेदिज्जासि** = **निवेदये** है (ओव० § २१), **संमणुवासेॅज्जासि** = **समनुवासयेः** , **उवलिम्पिज्जासि** = **उपलिम्पेः** और **परक्कमेॅज्जासि** = **पराक्रामेः** है (आयार० १, २, १, ५, ४, ४, ५, ३, ६, २ आदि-आदि), **वत्तेजासि** = **वर्तेथाः** (उवास० § २००) है। इसके साथ साथ अन्त मे **–ए** लगनेवाला रूप भी चलता है : **दावे** = **दापयेः** तथा **पडिगाहे** = **प्रतिग्राहयेः** है (कप्प० एस (S) § १४ १६)। ये रूप प्राय. सदा ही केवल पद्य मे पाये जाते हैं . **गच्छे** = **गच्छे**. है (सूय० १७८), **पमायए** = **प्रमादये**., **आइए** = ***आद्रिये** = **आद्रियेथा**. और **संभरे** = **संस्मरेः** हैं (§ २६७ और ३१३ की तुलना कीजिए), **चरे** = **चरेः** है (उत्तर० ३१० और उसके बाद , ३२२ , ४४० , ५०४)। कभी-कभी **–ऍज्जासि** में समाप्त होनेवाले रूप श्लोकों के अन्त मे छन्द की मात्राओं के विरुद्ध, गद्य में आये हुए वाक्यांशों के अनुसार, **–ए** और **–एज्जा** में समाप्त होनेवाले रूपों के स्थान में रख दिये जाते हैं[२]। इसके अनुसार **आमोॅक्खाए परिव्वएज्जासि** आया है जिसमें छन्दोभग भी है और **परिव्वए** के स्थान मे ऊपर दिया गया रूप आया है (सूय० ९९ , २०० , २१६), **आरम्भं चसुसंवुडे चरे-ज्जासि** में छन्दोभग है और **चरे** के स्थान में **चरेज्जासि** है (सूय० ११७), **नो पाणिणं पाणे समारभेज्जासि** मे भी छन्दोभग दोष है और **समारभेज्जा** के स्थान मे ऊपर दिया हुआ रूप आया है (आयार० १, ३, २, ३)। इस विषय में गद्य में निम्नलिखित स्थलों की तुलना कीजिए : आयारगसुत्त १, २, १, ५ , ४, ४ , ५, ३, ६, २ , १, ३, १, ४ , १, ४, १, ३ , ३, ३ , १, ५, २, ५ , ४, ५ , ६,१, आदि-आदि। **–ऍज्जासि** में समाप्त होनेवाला द्वितीयपुरुष एकवचन का रूप जै०महा० में भी है . **विलग्गेॅज्जासि** = ***विलग्येः** है (एर्त्से० २९, १२), **आहणेज्जासि** रूप मिलता है (आव०एर्त्से० ११, १), **वट्टेज्जासि** भी पाया जाता है (आव०एर्त्से० ११, ११) और **पेच्छेज्जासि** भी देखने में आता है (आव०एर्त्से० २३, १८)।

१ पिशल, डी रेसेन्सिओनन डेर शकुन्तला, पेज २२ और उसके बाद , मालविकाग्निमित्र, पेज २८८ में बौॅल्लें नसेन की टीका। — २ याकोबी ने अपने आयारंगसुत्त के संस्करण में –ऍज्जासि में समाप्त होनेवाले रूप को नहीं पहचाना है। उसका मत है कि **सि** अलग किया जा सकता है और वह **से** = अ– **सौ** के स्थान में आया है (सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, २२, १७ नोटसख्या १)। इस विषय पर टीकाकारों ने ग्रथों में शुद्ध तथ्य दिये हैं।

§ ४६१—अ०माग० में, **ऍज्जासि** को छोड़, **–ऍज्जसि** भी पाया जाता है। **आओसेॅज्जसि** = **आक्रोशेः**, **हणेज्जसि** = **हन्या** और **ववरोवेॅज्जसि** = **व्यप-रोपये** है (उवास० § २००)। इसके अतिरिक्त द्वितीयपुरुष एकवचन में आज्ञावाचक के समाप्तिसूचक चिह्न लगते हैं **–हि** और महा०, जै०महा० तथा अप० मे विशेषतः

बननेवाली दूसरी रूपावली से व्युत्पन्न होता है'। ये के स्थान में हस्तलिपियों में बहुत अधिक बार इ पायी जाती है जिसका § ८४ के अनुसार स्पष्टीकरण करना सम्भव नहीं है क्योंकि इसका विकास प्रथमपुरुष एकवचन से नहीं हुआ है अर्थात् –एय संस्कृत में इस रूप में पाया ही नहीं जाता था। अधिक सम्भव तो यह है कि ये § ११९ के अनुसार इ से व्युत्पन्न हुआ है और यह इ अपवाद है अ०माग में मुञ्जे॑ज्जा = *भुञ्जियात् = भुञ्ज्यात् है, करे॑ज्जा = *करियात् = *कर्यात् है इसी प्रकार अ०माग में जाणिज्जा और जाणे॑ज्जा = जानीयात् है। इसमें जो ए का प्रमुख प्रभाव दिखाई देता है वह प्रथम गण के प्रभाव से हो सकता है। इसीसे जा– तथ ज्ज[1] के द्वित्वीकरण का स्पष्टीकरण होता है। दूसरी रूपावली के प्राचीन रूपान्तरों के अन्य रूपों के तथा प्रार्थना-(Precative) रूपों के विषय में § ४६४, ४६५ और ४६६ देखिए।

1 कू०त्सा ३१ ५०० । — २ चाहे हम कर्यात् को याकोबी के अनुसार कर्– के वर्तमानकाल के रूप से व्युत्पन्न मानें अथवा पिशल कू त्सा ३५, १४१ के अनुसार = मार्थना –रूप क्रियात् मानें इसके स्पष्टीकरण में इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। मैं भी ठीक याकोबी के समान ही मत रखता था इसका प्रमाण कू त्सा ३५, १४१ में कर्मवाच्य रूप *कर्यते का देना है याकोबी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। अब केवल यह समानता सिद्ध करना रह गया है करिज्जइ : क्रियते = करेज्जा : क्रियात् (कू त्सा ३५ १४१)। —३ पिशल कू त्सा ३५ १४२ और उसके बाद।

§ ४६ —एकवचन : प्रथमपुरुष में अ०माग० में भासे॑ज्जा या हर्ये॑ज्जा या पच्चे॑ज्जा या मह॑ज्जा या सज्जे॑ज्जा या ताळे॑ज्जा या मिच्छाबे॑ज्जा या निम्मच्छज्जा या पयगावे॑ज्जा = भाषयेयं या हर्षयं या पचेयं या मर्थीयां या तसयेयं या ताडयेयं या मिथ्याटयेयं या निर्मत्सयेयं या व्यपगापयम् है (उवास ९) पासिज्जा = पश्येयम् है (निरया § ३), सुच्चे॑ज्जा = मुच्येय है (कप्पसूत्र उत्तर ६२४), अइवाएज्जा और अइवा याये॑ज्जा = अतिपातयेयम् और समणुजाणे॑ज्जा = समनुजानीयाम् हैं (दस ३, १०३) जै महा मे लंघे॑ज्जा मिलता है (आव एर्त्से ८, २८) महा में कुप्पे॑ज्जा = कुप्येयम् है (हाल १७) शौर में भयेअं रूप मिलता है (विक्र० ८०, २१ पार्वती २९, ९) और भय भी देखने में आता है (शकु ६९ १ ; मालवि ३० १०) = भयेयम् है पहय = प्रभवेयम् है (शकु २९, १), लहअं मिलता है (शकु ११ १ १ ९ ; पार्वती २७ ११ ; २९, ८) और लहइ भी आया है (मुद्रा १८ २ ; विक्र० २४ ७१ की तुलना कीजिए) = लभेय है जीवेअं = जीवेयम् है (मालवि ५५, ११) और कुप्पं = कुप्येयम् (मालवि ३०, १)[1]। इसके अन्त में –मि बहुत कम लगता है। महा में णे॑ज्जामि = नयेयम् (रावण ३ ५५) अ माग में करे॑ज्जामि = कुर्याम् (विवाह १२८१)। — (२) द्वितीयपुरुष एकवचन में अन्त में –एज्जा और –एज्जा लगकर बननेवाले

रूप विरल है : अ०माग० में **उदाहरिज्जा** = **उदाहरेः** (सूय० ९३२), **उवदंसेज्जा** = **उपदर्शयेः** है (आयार० १, ५, ५, ४) और **विणएज्ज** = **विनयेः** (दस० ६१३, २७)। अ०माग० में साधारणतया समाप्तिसूचक चिह्न **–सि** लगता है : **पयाएज्जासि** = **प्रजायेथाः** है (नायाध० ४२०), **निवेदिज्जासि** = **निवेदये.** है (ओव० § २१), **संमणुवासें ज्जासि** = **समनुवासयेः** , **उवलिम्पिज्जासि** = **उपलिम्पे.** और **परक्कमें ज्जासि** = **पराक्रामेः** है (आयार० १, २, १, ५ , ४, ४ , ५, ३ , ६, २ आदि-आदि) , **वत्तेजासि** = **वर्तेथाः** (उवास० § २००) है। इसके साथ साथ अन्त में **–ए** लगनेवाला रूप भी चलता है , **दावे** = **दापयेः** तथा **पडिगाहे** = **प्रतिग्राहये.** है (कप्प० एस. (S) § १४ १६)। ये रूप प्राय. सदा ही केवल पद्य मे पाये जाते है : **गच्छे** = **गच्छेः** है (सूय० १७८) , **पमायए** = **प्रमादये.**, **आइए** = ***आद्रिये** = **आद्रियेथा** और **संभरे** = **संस्मरेः** है (§ २६७ और ३१३ की तुलना कीजिए), **चरे** = **चरेः** है (उत्तर० ३१० और उसके बाद , ३२२ , ४४० , ५०४)। कभी-कभी **–ऍज्जासि** में समाप्त होनेवाले रूप श्लोकों के अन्त में छन्द की मात्राओं के विरुद्ध, गद्य में आये हुए वाक्याशो के अनुसार, **–ए** और **–एज्जा** में समाप्त होनेवाले रूपों के स्थान मे रख दिये जाते हैं[२]। इसके अनुसार **आमोॅक्खाए परिव्वएज्जासि** आया है जिसमे छन्दोभग भी है और **परिव्वए** के स्थान में ऊपर दिया गया रूप आया है (सूय० ९९ , २०० , २१६), **आरम्भं चसुसंवुडे चरेज्जासि** में छन्दोभग है और **चरे** के स्थान में **चरेज्जासि** है (सूय० ११७) , **नो पाणिणं पाणे समारभेज्जासि** में भी छन्दोभग दोष है और **समारभेज्जा** के स्थान में ऊपर दिया हुआ रूप आया है (आयार० १, ३, २, ३)। इस विषय मे गद्य में निम्नलिखित स्थलो की तुलना कीजिए : आयारगसुत्त १, २, १, ५ , ४, ४ , ५, ३ , ६, २ , १, ३, १, ४ , १, ४, १, ३ , ३, ३ , १, ५, २, ५ , ४, ५ , ६,१, आदि-आदि। **–ऍज्जासि** मे समाप्त होनेवाला द्वितीयपुरुष एकवचन का रूप जै०महा० मे भी है . **विलग्गेॅज्जासि** = ***विलग्येः** है (एत्सें० २९, १२), **आहणेज्जासि** रूप मिलता है (आव०एत्सें० ११, १), **वट्टेज्जासि** भी पाया जाता है (आव०एत्सें० ११, ११) और **पेच्छेज्जासि** भी देखने में आता है (आव०एत्सें० २३, १८)।

१. पिशल, डी रेसेन्सिओनन डेर शकुन्तला, पेज २२ और उसके बाद , मालविकाग्निमित्र, पेज २८८ में बौॅल्लेॅनसेन की टीका। — २ याकोबी ने अपने आयारगसुत्त के सस्करण में –ऍज्जासि में समाप्त होनेवाले रूप को नहीं पहचाना है। उसका मत है कि **सि** अलग किया जा सकता है और वह **से** = अ– **सौ** के स्थान में आया है (सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, २२, १७ नोटसख्या १)। इस विषय पर टीकाकारों ने ग्रथों में शुद्ध तथ्य दिये हैं।

§ ४६१—अ०माग० में, **ऍज्जासि** को छोड, **–ऍज्जसि** भी पाया जाता है। **आओसेॅज्जसि** = **आक्रोशेः**, **हणेज्जसि** = **हन्या** और **ववरोवेॅज्जसि** = **व्यपरोपये** है (उवास० § २००)। इसके अतिरिक्त द्वितीयपुरुष एकवचन मे आज्ञावाचक के समाप्तिसूचक चिह्न लगते हैं **–हि** और महा०, जै०महा० तथा अप० मे विशेषतः

–सु (§ ४६७), जिनसे पहले का स्वर भले ही कभी ह्रस्व और कभी दीर्घ आता हो। महा में हसेज्जाहि = हसेः (हेच० ३,१७५ सिंहराज पन्ना ५०) अ०माग० में वन्देज्जाहि = वन्देथाः , पज्जुवासेज्जाहि = पर्युपासीथाः और उवणिमन्तेज्जाहि = उपनिमन्त्रये हैं (उवास १८७) ये महा० में वज्जेज्जासु = व्रजेः है (आव एर्से० २५,२), भणेज्जासु = भणेः है (आव एर्से २५,११ और ४१); महा० और जै महा० में करेज्जासु रूप है (हाल १५४ ; १८१ ; ६३४ एर्से० ८१, १), जै महा० में करेज्जसु आया है (सगर ७, ५), महा में कुणिज्जासु मिलता है (शुकसप्तति ४८, ४), ये रूप = कुर्याः हैं , अप० में करिज्जसु है (पिंगल १, ३९ ८१ ; ९५ १०४ आदि आदि) , जै०महा० में साहिज्जसु = साधय है, इस साधय का अर्थ कथय है (कालका० २७२, ११) ; महा० में गमिज्जासु = गच्छेः पम्हसिज्जासु = प्रस्मरेः तथा परिहरिज्जासु = परिहरेः हैं (हाल १०१ ; १४८ ५११) अप० में सलहिज्जसु = श्लाघस्व, भणिज्जसु = भण और ठविज्जसु = स्थापय हैं (पिंगल १, ९५ १०९ १४४) । अप में कर्मवाच्य रूप कर्तृवाच्य के अर्थ में भी काम में लाया जाता है, इसलिए इन रूपों में से अनेक रूप कर्मवाच्य में भाववाचक अर्थ में भी ग्रहण किये जा सकते हैं जैसे, सुणिज्जसु और इसके साथ-साथ सुणिआसु (§ ४६७), दिज्जसु (§ ४६६) ; यह इ आने के कारण हैं, इसके साथ साथ वे ज्जहि रूप भी मिलता है। पिंगल का एक सुसमालोचित और सुसंपादित संस्करण ही इस तथ्य पर ठीक-ठीक प्रकाश डाल सकता है कि इस स्थान में इ पढ़ा जाना चाहिए अथवा ऍ। हेच द्वारा ४, १८७ में –ऍ और –इ में समाप्त होनेवाले जिन रूपों को अप में आज्ञावाचक बताया गया है, इसी भाँति प्राचीन ऐच्छिक रूप भी हैं : करें = करे = करेः = कुर्याः है (हेच ४, १८७) और इससे करि रूप हो गया (प्रबन्ध ६३, ७ ; शुकसप्तति ४९, ४) । यह ध्वनिपरिवर्तन § ८५ के अनुसार हुआ। इस नियम से : अप में : विआरि = विचारयेः, ठवि = स्थापयेः और धरि = धारयेः हैं, वस्तुतः = ०विचारेः, ०स्थापेः और ०धारेः हैं (पिंगल १, ६८ ; ७१ और ७२) आइ = पोतेः = पश्य है (हेच ४, ३६४ और ३६८), राइ = ०रायः = रयाः चरि = चरः, मल्लि का अर्थ त्यजेः है [यह शब्द गुजराती में चलता है। —अनु], करि = ०करेः = कुर्याः है और कहि = ०कथेः = कथयेः है (हेच ४ ३६८ ; ३८७, १ और ३ ; ४२२, १४)। अ०माग पद्य में जो भस्सासि रूप मिलता है उसमें भी यही बनावट पायी जाती है (पाठ में भसासि है, टीकाकार ने ठीक रूप दिया है) : एयं भस्सासि अप्पाणं है (उत्तर १११), टीकाकार ने इसका अर्थ यों बताया है, एवम् आत्मानम् अभ्यासय। इस सम्बन्ध में मण्णाहि, आणाहि और परिजाणाहि की तुलना § ४५६ में कीजिए। पुच्छ = प्रच्छ (हाल १ ५२) दाँ-उच्च रूप का स्पष्टीकरण भी इस ही होता है इस प्रकार में भागवत २८ ९ में पुच्छासि की भी तुलना कीजिए। दूसरी बनावट का एक रूप जिसमें दोनों ध्वनियों का ऐच्छिक रूप रह गया है, हेच १, १७५ और सिंहराज गणिन् द्वारा पन्ना ५ में आज्ञावाचक बताया गया हसेंज्ज = हसेः है। सिंहराज

गणिन् ऐसे तीन रूप और देता है : **हसेइंज्जइ, हसेइज्जसु** और **हसेइज्जे**।

§ ४६२—तृतीयपुरुष एकवचन में पल्लवदानपत्र में **करे॑य्य कारवे॑ज्जा** आया है (६, ४०), महा० में **जीवे॑ज्जा = जीवेत्** है (हाल ५८८), **पअवे॑ज्ज = प्रतपेत्**, **धरे॑ज्ज = ध्रियेत**, **विहरे॑ज्ज = विहरेत्** और **णमे॑ज्ज = नमेत्** है (रावण० ४, २८, ५४, ८, ४), जै०महा० में **विवज्जे॑ज्जा = विपद्येत**, **निरक्खिज्जा = निरीक्षेत** और **सके॑ज्जा = शक्येत्** है (एर्त्से० ४३, २२, ४९, ३५ और ७९, १), **अइक्कमिज्जा = अतिक्रामेत्** (कालका० २७१, ७), अ०माग० में **कुप्पे॑ज्जा = कुप्येत्** और **परिहरे॑ज्जा = परिहरेत्** हैं (आयार० १, २, ४, ४ ; ५, ३), **करेज्जा = *कर्यात् = कुर्यात्** है (आयार० २, ५, २, २ ; ४ और ५; पण्णव० ५७३, विवाह० ५७, १५२४, १५४९ और उसके बाद), **करेज्ज** भी मिलता है (आयार० २, २, २, १), **लभेज्जा = लभेत** (कप्प० एस. (S) § १८), कर्मवाच्य में : **घे॑प्पे॑ज्जा = गृह्येत** है (पण्हा० ४००), पद्य में इस रूप के अन्त में बहुधा ह्रस्व स्वर आते हैं : **रक्खे॑ज्ज = रक्षेत्**, **विणएॅज्ज = विनयेत्** और **सेवे॑ज्ज = सेवेत** हैं, कर्मवाचक में : **मुच्चे॑ज्ज = मुच्येत** है (उत्तर० १९८, १९९ और २४७) पै० में **हुवेय्य = भवेत्** है (हेच० ४, ३२० और ३२३), अप० में **चएॅज्ज = त्यजेत्** है तथा **भमेज्ज = भ्रमेत्** मिलता है (हेच० ४, ४१८, ६)। सिंहराजगणिन् पन्ना ५१ में **हसे॑ज्जइ** रूप भी देता है। **-एज्जा** और **-एज्ज** में समाप्त होनेवाले रूपों के अतिरिक्त, अ०माग० और जै०महा० में **-ए** में समाप्त होनेवाला रूप भी पाया जाता है। यह **-ए = -एत्** : **गिज्झे = गृध्येत्**, **हरिसे = हर्षेत्** और **कुज्झे = क्रुध्येत्** हैं (आयार० १, २, ३, १ और २), **किणे** और **किणावए = *क्रीणेत्** और ***क्रीणापयेत्** हैं (आयार० १, २, ५, ३)। यह रूप विशेषकर पद्य में आता है : **चरे = चरेत्** है (आयार० १, २, ३, ४, उत्तर० ११० और ५६७), **चिट्ठे = तिष्ठेत्** और **उवचिट्ठे = उपतिष्ठेत्** हैं (उत्तर० २९ और ३०), इनके साथ साथ **उवचिट्ठेज्जा** और **चिट्ठेज्जा** रूप मिलते हैं (उत्तर० ३४ और ३५), **लभे = लभेत** है (उत्तर० १८०), कभी कभी एक ही पद्य में दोनों रूप दिखाई देते हैं : **अच्छि पि नो पमज्जिया नो वि य कण्डुयए मुणी गायं = अक्ष्य् अपि नो प्रमार्जयेत् नो अपि च कण्डूययेन् मुनिर् गात्रम्** है (आयार० १, ८, १, १९), जै०महा० में **परिक्खवे = परीक्षेत**, **डहे = दहेत्** और **विनासए = विनाशयेत्** हैं (एर्त्से० ३१, २१, ३८,१८)। शौर० और माग० में केवल **-ए** पाया जाता है : शौर० में बार बार **भवे = भवेत्** के रूप में आता है (मृच्छ० २, २३, ५१, २३, ५२, १३, शकु० २०, ३ और ४, ५०, ३, ५३, ४, विक्र० ९, ३, २३, ५ और १६ आदि-आदि), **पूरए = पूरयेत्** है (मालवि० ७३, १८) और **उद्धरे = उद्धरेत्** है (विक्र० ६,१६)[1], माग० में **भवे = भवेत्** है (मृच्छ० १६४, ६, १७०, १८ और १९), **मूशे = मूषेत्** है और **खय्ये = *खाद्येत् = खादेत्** है (मृच्छ० ११९, १६ और १७)[2]। एक **हो॑ज्जा** रूप को छोड़ (§ ४६६) जै०शौर० में भी ऐच्छिक रूप केवल **-ए** में समाप्त होता है. **हवे = भवेत्** (पव० ३८७, २५,

–ज्जु (§ ४६७), जिनसे पहले का स्वर भले ही कभी ह्रस्व और कभी दीर्घ आया हो : महा० में हसेज्जाहि = हसेः (हेच० ३,१७५; सिंहराज० पन्ना ५०)। अ०माग० में धन्नेज्जाहि = धन्येथाः, पज्जुवासेज्जाहि = पर्युपासीथाः और उवणिमन्तेज्जाहि = उपनिमन्त्रयेः हैं (उवास० १८७)। जै०महा० में भज्जेज्जासु = भजेः है (आव०एर्त्से० २५,२), भणेज्जासु = भणेः है (आव०एर्त्से० २५,११ और ४१); महा० और जै०महा० में करेज्जासु रूप है (हाल १५४; १८१; ६३४; एर्त्से० ८१, १०), जै०महा० में करेज्जसु आया है (सगर ७, ५), महा० में कुणिज्जासु मिलता है (शुकसप्तति ४८, ४), ये रूप = कुर्याः हैं, अप० में करिज्जसु है (पिंगल १, ११ ४१; ९५ १४४ आदि आदि); जै०महा० में साहिज्जासु = साधय है, इस साधय का अर्थ कथय है (कालका० २७२, ११)। महा० में गच्छिज्जासु = गच्छेः, पम्हसिज्जासु = प्रस्मरेः तथा परिहरिज्जासु = परिहरेः हैं (हाल १०१; १४८; ५११); अप० में सलहिज्जसु = श्लाघस्व, भणिज्जसु = भण और ठविज्जसु = स्थापय हैं (पिंगल १, ९५; १०९; १४४)। अप० में कर्मवाच्य रूप कर्तृवाच्य के अर्थ में भी काम में लाया जाता है, इसलिए इन रूपों में से अनेक रूप कर्मवाच्य में आज्ञावाचक अर्थ में भी ग्रहण किये जा सकते हैं जैसे, सुणिज्जसु और इसके साथ-साथ सुणिमासु (§ ४६७), दिज्जसु (§ ४६६) यह इ आने के कारण हैं, इसके साथ साथ देज्जहि रूप भी मिलता है। पिंगल का एक सुसमालोचित और सुसंपादित संस्करण ही इस तथ्य पर ठीक-ठीक प्रकाश डाल सकता है कि इस स्थान में इ पढ़ा जाना चाहिए अथवा ए। हेच० ४, १८७ में –ऍं और –इ में समाप्त होनेवाले जिन रूपों को अप० में आज्ञावाचक बताया गया है, इसी भाँति प्राचीन ऐच्छिक रूप भी हैं : करें = करे = करेः = कुर्याः है (हेच० ४, १८७) और इससे करि रूप हो गया (प्रबन्ध० ११२, ७; शुकसप्तति ८९, ४)। यह ध्वनिपरिवर्तन § ८५ के अनुसार हुआ। इस नियम से : अप० में विआरि = विचारयेः, ठवि = स्थापयेः और धरि = धारयेः हैं, वस्तुतः = *विचारेः, *स्थापेः और *धारेः हैं (पिंगल १, १८ ७१ और ७२)। जाइ = यातेः = पश्य है (हेच० ४, ३६४ और ३६८), राइ = *राजेः = रज्यः, चरि = चरेः, मेल्लि का अर्थ त्यज है [यह शब्द गुजराती में चलता है। —अनु०] करि = *करेः = कुर्याः है और कहि = *कथेः = कथयेः है (हेच० ४ ३६८; ३८७, १ और ३; ४२२, १४)। अ०माग० पद्य में भी अस्सासि रूप मिलता है उसमें भी यही बनावट पायी जाती है (पाठ में असासि है, टीकाकार ने ठीक रूप दिया है) : एयं अस्सासि अप्पाणं है (उत्तर० १११), टीकाकार ने इसका अर्थ यों बताया है एवम् आत्मानम् आश्वासय। इस सम्बन्ध में अप्पाहि आराहि और परिआणाहि की तुलना § ४९१ में कीजिए। पुच्छ = पृच्छ (देशी० १, ५१) ऐच्छिक रूप का स्पष्टीकरण भी इस ही होता है इस सम्बन्ध में धातुपाठ ३८, ९ में पुच्छस्सगों की भी तुलना कीजिए। दूसरी बनावट का एक रूप जिसमें सभी स्थानों का ऐच्छिक रूप रह गया है हेच० ३, १७५ और सिंहराज गणिन् ५३ पन्ना ५ में आज्ञावाचक बताया गया हसेज्ज = हसेः है। सिंहराज

गणिन् ऐसे तीन रूप और देता है : हसेइंज्जइ, हसेइज्जसु और हसेइज्जे।

§ ४६२—तृतीयपुरुष एकवचन में पल्लवदानपत्र में **करे ॅय्य कारवे ॅज्जा** आया है (६, ४०), महा० में **जीवे ॅज्जा** = **जीवेत्** है (हाल ५८८), **पअवे ॅज्ज** = **प्रतपेत्** , **धरे ॅज्ज** = **ध्रियेत**, **विहरे ॅज्ज** = **विहरेत्** और **णमे ॅज्ज** = **नमेत्** हैं (रावण० ४, २८ , ५४ , ८, ४) ; जै०महा० में **विवज्जे ॅज्जा** = **विपद्येत**, **निरक्खिज्जा** = **निरीक्षेत** और **सके ॅज्जा** = **शक्येत्** है (एर्त्से० ४३, २२ , ४९, ३५ और ७९, १), **अइक्कमिज्जा** = **अतिक्रामेत्** (कालका० २७१, ७) , अ०माग० में **कुप्पे ॅज्जा** = **कुप्येत्** और **परिहरे ॅज्जा** = **परिहरेत्** हैं (आयार० १, २, ४, ४ ; ५, ३), **करेज्जा** = ***कर्यात्** = **कुर्यात्** है (आयार० २, ५, २, २ ; ४ और ५, पण्णव० ५७३ , विवाह० ५७ , १५२४ , १५४९ और उसके बाद), **करेज्ज** भी मिलता है (आयार० २, २, २, १), **लभेज्जा** = **लभेत** (कप्प० एस. (S) § १८) , कर्मवाच्य में : **घे ॅप्पे ॅज्जा** = **गृह्येत** है (पण्हा० ४००) , पद्य में इस रूप के अन्त में बहुधा ह्रस्व स्वर आते हैं : **रक्खे ॅज्ज** = **रक्षेत्** , **विणएॅज्ज** = **विनयेत्** और **सेवे ॅज्ज** = **सेवेत** हैं, कर्मवाचक में : **मुच्चे ॅज्ज** = **मुच्येत** है (उत्तर० १९८, १९९ और २४७) पै० में **हुवेय्य** = **भवेत्** है (हेच० ४, ३२० और ३२३) , अप० में **चएॅज्ज** = **त्यजेत्** है तथा **भमेज्ज** = **भ्रमेत्** मिलता है (हेच० ४, ४१८, ६)। सिंहराजगणिन् पन्ना ५१ में **हसे ॅज्जइ** रूप भी देता है। **–एज्जा** और **एज्ज** में समाप्त होनेवाले रूपों के अतिरिक्त, अ०माग० और जै०महा० में **–ए** में समाप्त होनेवाला रूप भी पाया जाता है। यह **–ए** = **–एत्** : **गिज्झे** = **गृध्येत्** , **हरिसे** = **हर्षेत्** और **कुज्झे** = **क्रुध्येत्** हैं (आयार० १, २, ३, १ और २), **किणे** और **किणावए** = ***क्रीणेत्** और ***क्रीणापयेत्** हैं (आयार० १, २, ५, ३)। यह रूप विशेषकर पद्य में आता है : **चरे** = **चरेत्** है (आयार० १, २, ३, ४ , उत्तर० ११० और ५६७), **चिट्ठे** = **तिष्ठेत्** और **उवचिट्ठे** = **उपतिष्ठेत्** हैं (उत्तर० २९ और ३०), इनके साथ साथ **उवचिट्ठेज्जा** और **चिट्ठेज्जा** रूप मिलते हैं (उत्तर० ३४ और ३५), **लभे** = **लभेत** है (उत्तर० १८०) , कभी कभी एक ही पद्य में दोनों रूप दिखाई देते हैं : **अच्छि पि नो पमज्जिया नो वि य कण्डुयए मुणी गायं** = **अक्ष्य् पि नो प्रमार्जयेत् नो अपि च कण्डूययेन् मुनिर् गात्रम्** है (आयार० १, ८, १, १९), जै०महा० में **परिक्खवे** = **परीक्षेत**, **डहे** = **दहेत्** और **विनासए** = **विनाशयेत्** हैं (एर्से० ३१, २१ , ३८,१८)। शौर० और माग० में केवल **–ए** पाया जाता है : शौर० में बार बार **भवे** = **भवेत्** के रूप में आता है (मृच्छ० २, २३ , ५१, २३ , ५२, १३ , शकु० २०, ३ और ४ , ५०, ३ , ५३, ४ , विक्र० ९, ३ , २३, ५ और १६ आदि-आदि), **पूरए** = **पूरयेत्** है (मालवि० ७३, १८) और **उद्धरे** = **उद्धरेत्** है (विक्र० ६,१६)[१] , माग० में **भवे** = **भवेत्** है (मृच्छ० १६४, ६, १७०, १८ और १९), **मूशे** = **मूषेत्** है और **खय्ये** = ***खाद्येत्** = **खादेत्** है (मृच्छ० ११९, १६ और १७)[२]। एक **हो ॅज्जा** रूप को छोड़ (§ ४६६) जै०शौर० में भी ऐच्छिक रूप केवल **–ए** में समाप्त होता है . **हवे** = **भवेत्** (पव० ३८७, २५ ,

अ०माग० **सिया = स्यात्** के विषय में कही जा सकती है (उदाहरणार्थ, आयार० १, १, २, २ , ६, ३ , विवाह० ३९ , ४० , १४६ और उसके बाद , आदि-आदि , कप्प०), **असिया = न स्यात्** रूप भी मिलता है (आयार० १, ५, ५, २) , अ०-माग० में **कुज्जा = कुर्यात्** (उदाहरणार्थ, आयार० १, २, ६, १ , उत्तर० २८ , २९ और १९८ , दस० ६१३, १५ , कप्प० आदि आदि), यह बनावट **पाकुज्जा = प्रादुष्कुर्यात्** में भी देखी जाती है (सूय० ४७४) , अ०माग० में **बूया = ब्रूयात्** है (उदाहरणार्थ, आयार० १, ४, २, ६ , १, ५, ५, ३), विशेषत. संयुक्त शब्द **केवली बूया** में (आयार० पेज ७२, ७७ और उसके बाद , १३२ और उसके बाद), इसके अतिरिक्त अ०माग० पद्य मे इक्के दुक्के **हणिया = हन्यात्** काम मे आया है (आयार० १, ३, २, ३), इसके साथ साथ **हणिज्जा** (जीवा० २९५ , उत्तर० १९८) और **हणेॅज्जा** (पण्हा० ३९६ और ३९७) पाये जाते हैं , जै०महा० मे **आहणेज्जासि** (आव०एर्त्से० ११, १) और अ०माग० में **हणे** मिलता है (आयार० १, २, ६, ५ , १, ३, २, ३)। द्वितीयपुरुष एकवचन का एक रूप समाप्तिसूचक चिह्न **-हि** लगकर बनता है और आज्ञावाचक है : अ०माग० और जै०महा० में **एज्जाहि = एयाः** (आयार० २, ५, १, १० , एर्त्से० २९, ५)।

§ ४६५—एक प्राचीन ऐच्छिक रूप, अब तक सभी को गोरखधन्धे में डालने-वाला पाली, अ०माग० और जै०महा० **सक्का** है। चाइल्डर्स[1] इसे अश-क्रिया के रूप **शक्** से बना मानता था जो बाद को अव्यय बन गया। पिशल[2] इसे अपादानकारक एकवचन का सक्षिप्त रूप समझता था। फ्राके[3], योहानसोन[4] के साथ सहमत था कि यह रूप प्राचीन कर्त्ताकारक एकवचन स्त्रीलिंग है जो बाद को कर्त्ताकारक बहुवचन तथा नपुंसकलिंग बन गया। यह वास्तव में ठीक = वैदिक **शक्यात्** है और प्राचीनतम हस्तलिपियों में अब भी स्पष्ट ही ऐच्छिक रूप में देखा जाता है। इस निष्कर्ष के अनुसार : **न सक्का न सोउं सद्दा सोयविसयं आगया** वाक्य मिलता है जिसका अर्थ है, 'हम लोग ध्वनियाँ नहीं सुन सकते जो श्रुति के भीतर (गोचर में) आ गयी हों' (आयार० पेज १३६, १४) , **न सक्का रूवं अदट्ठुं चक्खुविसयं आगयं** आया है, जिसका अर्थ है, 'मनुष्य उस रूप को नहीं, नहीं देख सकते जो ऑख के गोचर में आ गया हो' [अर्थात् नहीं, नहीं = हाँ है। —अनु०] (आयार० पेज १३६, २२ , पेज १३६,३१ , पेज १३७,७ और १८ की तुलना कीजिए), **एगस्स दोॅण्ह तिण्ह व संखेज्जाण व पासिउं सक्का दीसन्ति सरीराइं णिओयजीवाण' अणंताणं** आया है जिसका अर्थ है, 'मनुष्य एक, दो, तीन अथवा गिनती करने योग्य ('णिओयजीवों' के) शरीर देख सकता है, अनन्त 'णिओयजीवों' के शरीर भी देखे जा सकते हैं।', **किं सक्का काउं जे जं नेच्छइ ओसहं मुहा पाउं** मिलता है, जिसका अर्थ है, 'कोई वहाँ क्या कर सकता है जब तुम यों ही औषध पीना नहीं चाहते'। (पण्हा० ३२९ , दस० नि० ६४४, २८ की तुलना कीजिए)। नायाधम्मकहा § ८७ की तुलना कीजिए। जै०महा० में **किं सक्का काउं** आया है = 'कोई क्या कर सके या कर सकता है' (आवएर्त्से० ३०, १०) , **न सक्का एएण उवाएणं** = 'इन उपायों से कुछ नहीं

प्राणी को लेशमात्र [= किंचि = कुछ । —अनु०] भी भय और दुख न पाना चाहिए' है (पण्हा० ३६३; अभयदेव ने दिया है : लभ्या योग्यो [?, पाठ मे योग्याः है], न ताइं समणेण लब्भा दट्ठुं न कहेउं न वि य सुमरेउं = 'किसी श्रमण को वह न देखना चाहिए, न उस विषय पर बात करनी चाहिए और उसका स्मरण भी करना चाहिए' है (पण्हा० ४६६ , अभयदेव लब्भा त्ति लभ्यानि उचितानि); दुगंछावत्तिया वि लब्भा उप्पाएउं पाया जाता है (सम्पादन उप्पातेउ है , पण्हा० ५२६ , अभयदेव ने = लभ्या उचिता योग्येत्य् अर्थः दिया है)। इसके स्थान में ५३७ और उसके बाद मे निम्नलिखित वाक्य आया है : न दुगुंछावत्तियव्वं लब्भा उप्पाएउं = 'उसे जुगुप्सा की भावना उत्पन्न करनी चाहिए' है।

१. पाली-कोश में पेज ४२० मे सक्को शब्द देखिए। — २. वेदिशे स्टुडिएन १, ३२८। — ३ बे० बाइ० १७, २५६। — ४. बे० बाइ० २०, ९१। — ५. मौरिस, जोर्नल औफ द पाली टेक्स्ट सोसाइटी १८९१–९३, पेज २८ और उसके बाद जिसमें से पेज ३० में भूल से लिखा गया है कि मैंने हेच० ४, ८६ की टीका में चअइ् = त्यजति माना है, जब कि मैंने उक्त स्थल पर केवल हेच० का अनुवाद दिया है और चअइ् को अन्य पर्यायवाचक शब्दों से पूर्ण रूप से अलग कर रखा है। कर्न यारटेलिंग, पेज ९६ की तुलना कीजिए। ग्रियर्सन ने एकेडेमी १८९०, सख्या ९६४, पेज ३६९ में भूल की है। वाकरनागल, आल्टइंडिशे ग्रामाटीक, भूमिका का पेज बीस, नोटसंख्या ९ में इसकी तुलना ग्रीक शब्द तेख्ने से की गयी है।

§ ४६६—प्रार्थना के लिए काम में आनेवाले धातु के वे रूप जो इच्छा व्यक्त करने के अर्थ में काम में लाये जाते थे बहुत ही कम शेष रह गये हैं। ये विशेषकर अ०माग० और जै०महा० में पाये जाते हैं। पल्लवदानपत्र में होज मिलता है (७, ४८), महा० में हो`ज्ज ( रावण० ३, २२, ११, २७ , २८ , और १२० ), अ०माग० और जै०महा० मे हो`ज्जा और हो`ज्ज रूप हैं, ये सब रूप = भूयात् हैं (ठाणग० ९८ , विवाह० ७२९ और उसके बाद , दस० ६२०, २७ तथा २८, ६२१, ३६, एर्त्से० ३५, १८ , ३७, ३७ , ७०, १४)। जै०महा० में प्रथमपुरुष एकवचन में भी धातु का रूप पाया जाता है : चक्कवट्टी होज्जाहं आया है (एर्त्से० ४, २८) और अ०माग० तथा जै०महा० में तृतीयपुरुष बहुवचन में मिलता है : सव्वे वि ताव हो`ज्जा कोहोवउत्ता, लोभोवउत्ता = सर्वे 'पि तावद् भूयासुः क्रोधोपयुक्ताः, लोभोपयुक्ताः ( विवाह० ८४ [ जहा पाठ में हो`ज्ज है , वेबर, भाग० १, ४३० की तुलना कीजिए], ९२ और १०९), केवइया होज्जा = कियन्तो भूयासुः है (विवाह० ७३४ और ७३८, ७५३ और उसके बाद की तुलना कीजिए), जै०महा० में किह धूयाओ सुहियाओ हो`ज्ज = कथं दुहितरः सुखिता भूयासुः है ( आव०एर्त्से० १०, २३ , १२, २ की तुलना कीजिए )। अ०माग० और जै०महा० में किन्तु प्रथमपुरुष एकवचन का रूप हो`ज्जामि भी मिलता है (दस० ६२१, ४३ , एर्त्से० २९, १९), जै०महा० में द्वितीयपुरुष एकवचन हो`ज्जासि है (एर्त्से० २९,

कर सकते' हैं (आव एर्से ३५, ११) न या सक्का पाउं सो वा अन्ने वा = 'न तो वह और न अन्य लोग इसे पी सकते हैं (आव॰एर्से॰ ४२ ८ ४२, २८ में न वि अप्पणो पियइ न वि अन्नं सक्केइ जूइ पाउ की तुलना कीजिए)। सक्कइ = शक्यते के साथ ध्वनि की समानता के कारण बाद को इस धातु का सामान्य रूप (infinitive) कर्मवाच्य के अर्थ में काम में आया जाने लगा। इस प्रकार णो खलु से सक्का केणइ सुवाहुएण वि उरं उरेणं गिण्हित्तए = 'निश्चय ही वह किसी विधाक मुबाथाके से भी छाती से छाती मिला सका है (विवाग १२७); णो खलु से सक्का केणइ निग्गन्थाओ पावयणाओ चालि त्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा = 'वह जैन मत में किसी से डिगाया, हिलाया अथवा उससे अलग न किया जा सका' है (उवास § १११) और ऐच्छिक रूप में प्रथमपुरुष एकवचन तथा अन्य वचन में क्रिया के अन्त में –आ जोड़ कर भी यही अर्थ निकाला गया है, जिसका एक उदाहरण णो खलु अहं सक्का चालित्तए (नायाध ७६५ और ७) है। इस सम्बन्ध में उवासगदसाओ § ११९ और १७४ दसवेयालियसुत्त ६१६, २५ की भी तुलना कीजिए। इसके प्रमाण के रूप में ठीक इसी काम के लिए अ माग चक्किया का प्रयोग भी किया जाता है जिसके एच्छिक रूप पर नाममात्र सन्देह नहीं किया जा सकता। इस प्रकार : पर्यापि णं भन्ते धम्मत्थिकायंसि चक्किया केइ आसित्तए वा चिट्ठित्तए वा = 'हे भदन्त, क्या इस धर्म की काया में कोई बैठा या खड़ा रह सकता है ?' है (विवाह॰ ५१३ १११९; ११२; १३४६ और ११८९ की तुलना कीजिए) एरावई कुणा लाए जत्थ चक्किया सिया एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा एवं चक्किया = 'जब यह (एक नदी है) जो कुणाल की ऐरावती नदी के बराबर है जहाँ वह (दूसरी पार जा) सकता हो। वह भी हो सकता है कि वह एक पाँव जल में और पाँव थल में रख सकता हो और तब वह (पार) कर सके' है (कप्प एस (S) § १२; § १३ की भी तुलना कीजिए)। § १९५ के अनुसार चक्किया, शक्किया के स्थान में आया है जो = शक्यात् है और महा धातु चअइ (= सकना; किसी काम करने के योग्य होना से बना है : वर ८, ७० [पाठ के चअइ के स्थान में यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] हेच ४, ८६; क्रम ४ ८६; रावण)= शक्नोति है जिससे अशोक के शिलालेखों का चकति जो शक्नोति के लिये काम में आया है तथा जिसमें § २ ६ के अनुसार ह–कार आया है, सम्मिलित है'। मैं चअइ = शक्नोति रखता हूँ जो तकि सहने से सम्बन्ध रखता है (धातुपाठ ५, २ [मुझे भी कीलिंग द्वारा सम्पादित 'धातुपाठ' में तक् हसने मिला है तकि सहने देखने में नहीं आया। हिन्दी में तकना का जो अर्थ है उसका स्पष्टीकरण तक् हसने से ही होता है। —अनु]; कील्होर्न द्वारा सम्पादित २,८९ में पाणिनि १,१,८७ पर पतञ्जलि का भाष्य देखिए) इसमें दन्त्य वर्ण के स्थान में § २१६ के अनुसार तालव्य वर्ण आ गया है। —इसके अनुसार ऐच्छिक रूप पाली और अ माग में भी सक्का = शक्यात् है, जैसा कि अ माग सज्झे पाणा न अपत्पुवर्ण व किंचि सक्का पावेउ ='किसी

होहीअं (वर० ७, २४ , हेच० ३, १६२ , क्रम० ४, २३ और २४ , मार्क० पन्ना ५१) भूतकाल के रूप है। लास्सन ने अधिकाश मे शुद्ध तथ्य पहले ही देख लिया था कि (इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३५३ और उसके बाद) –ईय में समाप्त होने-वाले रूप प्रार्थनावाचक घोषित किये जाने चाहिए। इसके विपरीत अ०माग० रूप अच्छे और अब्भे (आयार० १, १, २, ५) जो इच्छावाचक रूप में = आच्छिन्द्यात् और आभिन्द्यात् के स्थानों मे आये है, प्राचीन भूतकाल हैं जो वैदिक छेद्म और अभेत् से निकले है। यह रूप भी तृतीयपुरुष एकवचन अपूर्ण– और पूर्णभूत[१] का स्पष्टीकरण उतना अन्धकार मे ही रखता है जितना इच्छावाचक के अर्थ का[२]।

१ वेबर, भगवती १, ४३०, और उसके बाद ए० म्युलर, बाइत्रैगे, पेज ६०, याकोबी, आयारगसुत्त की भूमिका का पेज १२, ये दोनों लेखक वेबर के अनुसार करे रूप देते हैं, भले ही यह भगवती २, ३०१ के अनुसार स्पष्ट ही करेत्ति के स्थान में अशुद्ध रूप है (हस्तलिपि में करेति है), भगवती के संस्करण के पेज १७३ में करेइ है। — २ हस्त्यायुर्वेद २, ६०, २ में प्रब्रूयात् भूतकाल के अर्थ में आया है ; इसके समान अन्य स्थानों में इस रूप के स्थान पर प्रोवाच अथवा अब्रवीत् शब्द आये हैं।

(४) आज्ञावाचक

§ ४६७—इसका रूप नीचे दिया जाता है .

	एकवचन	बहुवचन
१	[वट्टामु, वट्टमु]	अ०माग० और जै०महा० मे वट्टामो , महा०,
२	वट्ट, वट्टसु, वट्टेसु, वट्टेहि अ०माग० मे वट्टाहि भी, अप० में वट्टु और वट्टहि	शौर०, माग० और ढक्की में तथा जै०महा० में भी वट्टम्ह और वट्टेम्ह वट्टह , शौर० और माग० [ढक्की] मे वट्टध और वट्टेध, अप० में वट्टहु और वट्टेहु , चू०पै० वट्टथ
३	वट्टउ , शौर०, माग० और ढक्की में वट्टदु	वट्टन्तु, अप० में वट्टहिँ भी

प्रथमपुरुष एकवचन केवल व्याकरणकारों के ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है, जो उदाहरण के रूप में हसामु और पेच्छामु (हेच० ३, १७३), हसमु (भाम० ७,१८ , क्रम० ४,२६ , सिंहराज० पन्ना ५१) देते हैं। इनकी शुद्धता के विषय में बहुत कम सन्देह हो सकता है और न ही अन्त में –सु लग कर बननेवाले और सभी प्राकृत बोलियों में प्रयुक्त होनेवाले द्वितीयपुरुष एकवचन के विषय में कोई सन्देह है, विशेषत. यह महा० में काम में आता है और स्वय इच्छावाचक रूप में भी (§ ४६१)। अभी तक लोग इसे आत्मनेपद मानते हैं और समाप्तिसूचक चिह्न –सु = संस्कृत –स्व समझते हैं अर्थात् रक्खसु = रक्षस्व लगाते हैं[१]। यह भूल है कर के यह परिस्थिति बताती है कि यह समाप्तिसूचक चिह्न उन क्रियाओं में भी पाया जाता है जिनकी रूपावली संस्कृत में कभी आत्मनेपद में नहीं चलती। इसके अतिरिक्त यह चिह्न शौर० और माग० मे

१४ १७, ९), होँ आहि भी आया है (आव॰एत्सें १०, ४२) और होँ अह भी देखा जाता है (एत्सें २१, ४), जैसा कि ऐच्छिक रूप का वर्तमानकाल का रूप होता है। अ माग॰ में होआइ रूप भी पाया जाता है (विवाह॰ १०४२) और अंश क्रिया का एक रूप होँ अमाण भी मिलता है जो वर्तमानकाल के काम में आता है (विवाह ७१३ और उसके बाद १७३६ और उसके बाद ; पण्णव ५२१)। जै॰-शौर में होँ ज्जा रूप पाया जाता है (पव ३८५, ६९ पाठ में होँ ज्जं है)। शौर में जहाँ-जहाँ होँ ज्ज रूप आया है (मल्लिका ८४, १ ८७, ५ १ ९, ४ ११४, १४ ; १५६, २) यह इस बोली की परम्परा के विरुद्ध है। अ माग में दॅ ज्जा = दद्यात् है (आयार २, १, २, ४ ११, ५) जिसके स्थान में जै महा मे द्वितीय-पुरुष एकवचन का रूप दॅ ज्ज आया है (आव एत्सें १२, ६), दॅ ज्जासि भी पाया है (एत्सें ३७, ९) अप मे दें ज्जहि होता है (हेच ४, ३८३, ३), दिज्जसु भी मिलता है (पिंगल १ ३६ और १२१ ; २, ११९ § ४६१ की तुलना कीजिए), जै महा मे द्वितीयपुरुष बहुवचन मे दॅ ज्जाह आया है (एत्सें॰ ६१, २७)। अ माग में संधॅ ज्जा = सन्धेयात् है (सूय २२१), अहिट्ठॅ ज्जा = अधिष्ठेयात् है (ठाणंग॰ १९८) और पहॅ ज्जा = प्रहेयात् है (उत्तर १९९)। अप रूप किज्जसु सम्भवतः = क्रियाः है, यदि यह कर्मवाच्य के आज्ञावाचक रूप से उत्पन्न न माना जाय (§ ४६१ ४६७ ; ५४७ ५५)। व्याकरणकार (वर ७, २१ ; हेच॰ ३, १६९ और १७८ क्रम ४, २९ और ३ सिंहराज पन्ना ४८) होँ ज्जा और होज्ज को अन्य मन्यों में थोड़ा-बहुत मिलनेवाले रूप होँ ज्जइ, होँ ज्जाइ, होँ ज्जउ होँ ज्जाउ, होँ ज्जसि और होँ ज्जासि भी सिखाते हैं। क्रमदीश्वर ने ४ २९ में होँ ज्जाइम और होज्जाइम रूप दिये हैं। सिंहराज न होएँज्ज, होएँज्जा, हुएँज्ज, हुएँज्जा हुज्ज, हुज्जा हुज्जइ, हुज्जाइ, हुएँज्जइ, हुएँज्जाइरे रूप दिये हैं (§ ४९८) और रामचन्द्र १ १७७ तथा सिंहराज पन्ना ४९ के अनुसार होँ ज्जा और होँ ज्ज वर्तमानकाल, इच्छा-वाचक आज्ञावाचक, अपूर्ण वर्तमान, पूर्णभूत प्रार्थनावाचक भूत, भविष्यत्काल प्रथम-और द्वितीयपुरुष तथा हेतुहेतुमद्भूत में काम में आते हैं। इस भाँति वास्तव में अ माग रूप दॅ ज्जा का अर्थ अदात् होता है (उत्तर ६२१) और संयुक्त सम्प्रदायी केवली वूया (§ ४६४) का वूया अवोचित और अब्रवीत् दोनों के अर्थ में प्रयुक्त होता है और इसके द्वारा यह सम्भव दिखाई देता है, भले ही इसका स्पष्टीकरण न हो सके कि निश्चित रूप से भूतकाल में पढ़नेवाला अ माग चरे (उत्तर ५१२ ; ५४९ ; ५५२) पहणे (उत्तर ५६१) उदाहरे (उत्तर १७४) और पुच्छे भी (विवाह १४९ और १५ रामचन्द्र के अनुसार = पृच्छाम् है) इसी के भीतर हैं। इनके अतिरिक्त ये रूप जिन्हें व्याकरणकारों ने सामान्य-, अपूर्ण और पूर्णभूत के अर्थों में काम में आनेवाला रूप बताया है जैसे अच्छीअ [= आसिष्ट, आस्त और आसांचक्रे। —अनु], गेण्हीअ [= अग्रहीत् अगृह्णात् और जग्राह। —अनु], वृच्छिहीअ मरीअ हसीअ, हुवीअ और हवीअ (वर ७ २३ ; हेच ३ १६३ ; क्रम ४ २२, २३ और २५ मार्क पन्ना ५२) इच्छावाचक वर्तमानकाल के रूप हैं तथा काहीअ, ठाहीअ और

होहीअं (वर० ७, २४ , हेच० ३, १६२ , क्रम० ४, २३ और २४ , मार्क० पन्ना ५१) भूतकाल के रूप हैं । लास्सन ने अधिकाश मे शुद्ध तथ्य पहले ही देख लिया था कि (इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३५३ और उसके बाद) –ईय मे समाप्त होनेवाले रूप प्रार्थनावाचक घोषित किये जाने चाहिए । इसके विपरीत अ०माग० रूप अच्छे और अब्भे (आयार० १, १, २, ५) जो इच्छावाचक रूप में = आच्छिन्द्यात् और आभिन्द्यात् के स्थानो मे आये है, प्राचीन भूतकाल हैं जो वैदिक छेद्म और अभेत् से निकले हैं । यह रूप भी तृतीयपुरुष एकवचन अपूर्ण– और पूर्णभूत[1] का स्पष्टीकरण उतना अन्धकार मे ही रखता है जितना इच्छावाचक के अर्थ का[2]।

१. वेबर, भगवती १, ४३०, और उसके बाद ए० म्युलर, बाइत्रैगे, पेज ६०, याकोबी, आयारंगसुत्त की भूमिका का पेज १२, ये दोनों लेखक वेबर के अनुसार करे रूप देते है, भले ही यह भगवती २, ३०१ के अनुसार स्पष्ट ही करेत्ति के स्थान में अशुद्ध रूप है (हस्तलिपि में करेति है) , भगवती के संस्करण के पेज १७३ में करेइ है । — २ हस्त्यायुर्वेद २, ६०, २ में प्रब्रूयात् भूतकाल के अर्थ में आया है ; इसके समान अन्य स्थानो में इस रूप के स्थान पर प्रोवाच अथवा अब्रवीत् शब्द आये हैं ।

(४) आज्ञावाचक

§ ४६७—इसका रूप नीचे दिया जाता है :

	एकवचन	बहुवचन
१	[वट्टामु, वट्टमु]	अ०माग० और जै०महा० में वट्टामो , महा०,
२	वट्ट, वट्टसु, वट्टेसु, वट्टेहि अ०माग० मे वट्टाहि भी, अप० में वट्टु और वट्टहि	शौर०, माग० और ढक्की में तथा जै०महा० में भी वट्टम्ह और वट्टेम्ह वट्टह , शौर० और माग० [ढक्की] मे वट्टध और वट्टेध, अप० में वट्टहु और वट्टेहु , चू०पै० वट्टथ
३	वट्टउ , शौर०, माग० और ढक्की में वट्टदु	वट्टन्तु, अप० में वट्टहिँ भी

प्रथमपुरुष एकवचन केवल व्याकरणकारों के ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है, जो उदाहरण के रूप मे हसामु और पेच्छामु (हेच० ३, १७३), हसमु (भाम० ७,१८ , क्रम० ४,२६ , सिंहराज० पन्ना ५१) देते हैं । इनकी शुद्धता के विषय में बहुत कम सन्देह हो सकता है और न ही अन्त में –सु लग कर बननेवाले और सभी प्राकृत बोलियों में प्रयुक्त होनेवाले द्वितीयपुरुष एकवचन के विषय में कोई सन्देह है, विशेषत. यह महा० में काम में आता है और स्वय इच्छावाचक रूप में भी (§ ४६१)। अभी तक लोग इसे आत्मनेपद मानते है और समाप्तिसूचक चिह्न –सु = सस्कृत –स्व समझते हैं अर्थात् रक्खसु = रक्षस्व लगाते हैं[1] । यह भूल है कर के यह परिस्थिति बताती है कि यह समाप्तिसूचक चिह्न उन क्रियाओं में भी पाया जाता है जिनकी रूपावली संस्कृत में कभी आत्मनेपद में नहीं चलती । इसके अतिरिक्त यह चिह्न शौर० और माग० में

१४ १७, ९), होॅज्जादि भी आया है (आव एत्सें० १ , ४२) और होॅज्जसु भी देखा जाता है (एत्सें० २१, ४), जैसा कि ऐच्छिक रूप का वर्तमानकाल का रूप होता है। अ माग में होज्जाइ रूप भी पाया जाता है (विवाह १ ४२) और संयुक्त क्रिया का एक रूप होॅज्जमाण भी मिलता है जो वर्तमानकाल के काम में आता है (विवाह ७११ और उसके बाद ; १७११ और उसके बाद पण्णव ५२१)। जै० शौर में होॅज्ज रूप पाया जाता है (पव० ३८५, ६९ ; पाठ में होॅज्जं है)। शौर में जहाँ-जहाँ होॅज्ज रूप आया है (मल्लिका ८४, १ ८७, ५ १ ९, ४ ; ११४, १४ १५९, २) वह इस बोली की परम्परा के विरुद्ध है। अ माग में दॅज्जा = दयात् है (आयार २, १, २, ४ ११, ५), जिसके स्थान में जै महा में द्वितीय पुरुष एकवचन का रूप दॅज्ज आया है (आव एत्सें १२ ६), दॅज्जासि भी चलता है (एत्सें १७ १) अप में दॅज्जहि होता है (हेच ४, ३८३, १), दिज्जसु भी मिलता है (पिंगल १, ११ और १२१ २, ११ § ४६१ की तुलना कीजिए), जै०महा में द्वितीयपुरुष बहुवचन में दॅज्जाह आया है (एत्सें ६१, २७)। अ०माग० में संधॅज्जा = संधेयात् है (सूय २२१), अहिट्ठॅज्जा = अधिष्ठेयात् है (ओयव ११८) और पहॅज्जा = प्रहेयात् है (उत्तर ११९)। अप० रूप किज्जसु संम पताः = क्रियाः है, यदि यह कर्मवाच्य के आज्ञावाचक रूप से उत्पन्न न माना जाय (§ ४६१ ; ४६७ ; ५४७ ५५)। व्याकरणकार (वर ७, २१ हेच ३, १११ और १७८ ; क्रम ४, २९ और १ सिंहराज पन्ना ४८) होॅज्ज और होज्ज को छोड़, ग्रन्थों में थोड़ा-बहुत मिलनेवाले रूप होॅज्जइ होॅज्जाइ, होॅज्जउ, होॅज्जाउ होॅज्जसि और होॅज्जासि भी सिखाते हैं। क्रमदीश्वर ने ४ २९ में होॅज्जहिम और होज्जाहिम रूप दिये हैं। सिंहराज ने होएॅज्ज होएॅज्जा, हुएॅज्ज, हुएॅज्जा, हुज्ज, हुज्जा, हुज्जइरे, हुज्जाइरे, हुएॅज्जइरे, हुएॅज्जाइरे रूप दिये हैं (§ ४५८) और हेमचन्द्र ३, १७७ तथा सिंहराज पन्ना ४९ के अनुसार होॅज्जा और होॅज्ज वर्तमानकाल, इच्छावाचक आज्ञावाचक अपूर्ण वर्तमान, पूर्णभूत प्रार्थनावाचक भूत भविष्यत्काल प्रथम-और द्वितीयपुरुष तथा हेतुहेतुमद्भूत में काम में आते हैं। इस भाँति वास्तव में अ माग रूप दॅज्जा का अर्थ अदात् होता है (उत्तर ६२१) और संयुक्त शब्दमाली देवदत्ती बूया (§ ४६४) का बूया प्रतीति और अब्रवीत् दोनों के अर्थ में प्रयुक्त होता है और इसके द्वारा यह सम्भव दिखाई देता है, भले ही इसका स्पष्टीकरण न हो सके कि निश्चित रूप से भूतकाल में चलनेवाला अ माग वरे (उत्तर ५१२ ; ५४९ ; ५५२), पहणे (उत्तर ५६१) उदाहरे (उत्तर १७४) और पुच्छे भी (विवाह १४९ और १५ रामचन्द्र के अनुसार = पृच्छयात् है) इसी के भीतर है। इनके अतिरिक्त वे रूप जिन्हें व्याकरणकारों ने सामान्य–, अपूर्ण और पूर्णभूत के अर्थों में काम में आनेवाला रूप बताया है जैसे अच्छीअ [= आसिष्ट, आस्त और आसांचक्रे। —अनु], गेण्हीअ [= अग्रहीत अगृह्णात् और जग्राह। —अनु], वज्जिहीअ मरीअ हसीअ हुवीअ और वहीअ (वर ७ २१ ; हेच ३ १६३ ; क्रम ४ २२ ; २१ और २९ ; मार्क पन्ना ५२) इच्छावाचक वर्तमानकाल के रूप हैं तथा काहीअ, ठाहीअ आर

१. लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज १७९ और ३३८, वेबर, हाल[1] पेज ६१, याकोबी, औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री § ५४, ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ४३। — २ रावणवहो के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए, ब्लौख की उक्त पुस्तक में पेज ४३ की तुलना कीजिए।

§ ४६८—धातु का यदि ह्रस्व स्वर में समाप्ति हो तो नियम यह है कि संस्कृत के समान ही इसका प्रयोग द्वितीयपुरुष एकवचन आज्ञावाचक मे किया जाता है और यदि उसके अन्त में दीर्घ स्वर आये तो उसमें समाप्तिसूचक चिह्न -हि का आगमन होता है। अ०माग० में -अ में समाप्त होनेवाले धातु अधिकांश में, महा०, जै०महा० और माग० में कभी-कभी अन्त में -हि लगा लेते हैं, जिससे पहले का अ दीर्घ कर दिया जाता है। ऐसा रूप बहुधा अप० में भी पाया जाता है किन्तु इस बोली में आ फिर ह्रस्व कर दिया जाता है। शौर० और माग० में समाप्तिसूचक चिह्न -आहि दिखाई देता है जिसके साथ-साथ नवीं श्रेणी के धातुओं में -अ लगता है और इसके अनुकरण पर बने हुए तृतीयपुरुष एकवचन के अन्त में -आदु जोड़ा जाता है। ढक्की और अप० में यह समाप्तिसूचक अ, उ में परिणत हो जाता है (§ १०६): महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और माग० में **भण** रूप आया है, अप० में यह **भणु** हो जाता है (हाल १६३ और ४००, नायाध० २६०, आव०एर्से० १५, ३, शकु० ५०, ९ और ११४, ५, पिंगल १, ६२, हेच० ४, ४०१, ४), किन्तु दाक्षि०, शौर० और माग० में **भणाहि** रूप भी चलता है (दाक्षि० में: मृच्छ० १००, ४, शौर० और माग० के विषय में § ५१४ देखिए), अप० में **भणहि** भी है (विक्र० ६३, ४), आव० में **चिट्ठ = तिष्ठ** है, **एहि** और **वाहेहि** रूप भी पाये जाते हैं (मृच्छ० ९९, १८ और २०, १००, १८), अ०माग० और शौर० में **गच्छ** पाया जाता है (उवास० § ५८ और २५९, ललित० ५६१, १५, शकु० १८, २, मृच्छ० ३८, २२, ५८, २), माग० में **गश्च** है (मृच्छ० ३८, २२, ७९, १४) किन्तु अ०माग० में **गच्छाहि** रूप भी है (उवास० § २०४), महा० और जै०महा० में **पेॅच्छ** मिलता है (हाल ७२५, आव०एर्से० १८, १२), शौर० और दाक्षि० में **पेॅक्ख** हो जाता है (शकु० ५८, ७, मृच्छ० १७, २०, ४२, २, दाक्षि० में. १००, १४), माग० मे **पेॅस्क** है (मृच्छ० १२, १६, १३, ६, २१, १५), अप० में **पेॅक्खु** मिलता है (हेच० ४, ४१९, ६) और **पेक्खहि** भी देखा जाता है (पिंगल १, ६१), महा० और शौर० में **हस** आया है (हाल ८१८, नागा० ३३, ५), माग० में **हश** है (मृच्छ० २१, ४), माग० में **पिव = पिब** है (प्रबोध० ६०, ९) और **पिवाहि** रूप भी मिलता है (वेणी० ३४, २ और १५), **पलित्ताआहि = परित्रायस्व** है (मृच्छ० १७५, २२, १७६,५ और १०), महा० मे **रुअ** है (हाल ८९५)। इसके साथ साथ **रुएहि** भी पाया जाता है (७८४) और **रुअसु** रूप भी मिलता है (१४३, ८८५, ९०९), शौर० में **रोद** चलता है (मृच्छ० ९५, १२, नागा० २४, ८ और १२) = **रुदिहि**, अ०माग० मे **विगिञ्च = *विकृन्त्य = विकृन्त** है (आयार० १, २, ४, ३, उत्तर० १७०), **जाणाही = जानीहि** (आयार० १, २, १, ५), **वुज्झाहि = बुध्यस्व**,

बहुत काम में आता है, जिन बोलियों में आत्मनेपद कम काम में आता है। ये अभिप्राय में समाप्तिसूचक चिह्न –मु, –सु और –उ तथा वर्तमानकाल के रूप –मि, –सि और –इ के समान हैं। महा० में विरमसु = विरम और रक्खसु = रक्षस्व हैं (हाल १८९), रक्खसु = रक्ष है (हाल २९७), परिक्खसु = परिरक्ष है (रावण ६, १५), ओसरसु = अपसर है (हाल ८५१); महा, में महा० और शौर में करेसु = कुरु (हाल ४८ सगर ३, १२ कालका २७३, ४१ रत्ना २९९, ५ ३१६, ६ ३१८, २४ कर्पू २१, ७ १, ५; १७ २ वणी ९८, १५ प्रसन्न ८४, ९ आदि-आदि); महा में अणुणेसु = अनुनय है (हाल १५२ और ९४६) शौर में आणेसु = आनय है (शकु १२५, ८' कर्पू ५१, १७), अवणेसु = अपनय है (विद्ध ४८, १) महा, अ माग, जै महा० और शौर० में मुञ्चसु = मुंच्चि है (हाल ११९ उत्तर० १६१ बाल पत्रों १२, १४; मृच्छ ७, १२) अ माग में आसु = याहि (सूय १७७) अ माग० में कहसु रूप देखा जाता है शौर में कधेसु आया है (बाल ५१, १२ १६४, १७ २१८, १६ कर्पू १७ ७ और १२) = कथय; अ माग में सहसु = मर्षे है है (सूय १५१) जै महा में खमसु = क्षमस्व है (सगर १, १२; द्वार ४९७, ११) वरसु = वृणीष्व (सगर १, १५) और सरसु = स्मर (बाल पर्व० ७, १४) हैं; महा और जै महा में कुणसु = कुरु (हाल ६ ७ और ७७१, सगर ६, २; ११ और १२ कालका २६६, ११ और २७४, २७) माग में ल>कशु = रक्ष (चंड ६९, १) और आगश्चेशु (मृच्छ ११६, ५) = आगच्छ है वेशु रूप मिलता है (प्रबोध ५८, ८; बंबइया संस्करण वेसु पूना तथा मद्रास का और बंबइया बी (B) संस्करण वेहि) वि>कशु (प्रबोध ५८, १८; बंबइया संस्करण विक्खस्सु, पूना संस्करण विक्खस्स मद्रासी संस्करण विक्खेहि बंबइया बी (B) संस्करण विक्खय) = वीक्षय है, धालेशु (प्रबोध ६, १; बंबइया संस्करण धालेस्सु पूना और बंबइया बी (B) संस्करण धालेसु और मद्रासी संस्करण धारय = धारय है; अप में किज्जसु = कुरु है (कर्मवाच्य जो कर्तृवाच्य के अर्थ में आया है, § ५५ ; पिंगल १, १९ २ १११ और १२) मुणिआसु आया है, जो छन्द की मात्रा ठीक करने के लिए मुणीअसु के स्थान में आया है और मुण् धातु का कर्मवाच्य है (§ ४८९) तथा कर्तृवाच्य के अर्थ में काम में लाया गया है (पिंगल २ १११ और ११२)। इसके साथ-साथ मुणिज्जसु रूप भी पाया जाता है (२, ११९) सुमरसु = सुमरस्व है (पिंगल २, १२)। शौर में पाठों में अनेक बार अन्त में –स्स लगाकर बननेवाले आत्मनेपद के रूप पाये जाते हैं जैसे, उवालहस्स (शकु ११, ४) अवलम्बस्स (शकु ११९ ११ १३३, ८), पेक्खस्स (प्रबोध ५९ १४), पडिवज्जस्स (वेणी ७२, १९) और परिरम्भस्सु भी है (विद्ध ११८ ६) तथा भारतीय संस्करणों में और भी अनेक पाये जाते हैं। इनमें संशोधन की छाप देखी जानी चाहिए जो पाठों में से हटा दिये जाने चाहिए। इन संस्करणों के भीतर अन्यत्र शुद्ध रूप भी मिलते हैं। अ माग में अन्त में –सु लगकर बननेवाला आज्ञावाचक रूप केवल पद्यों में प्रमाणित होता है।

१. लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज १७९ और ३३८, वेबर, हाल[१] पेज ६१, याकोबी, औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन इन महाराष्ट्री § ५४, ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ४३। — २ रावणवहो के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए, ब्लौख की उक्त पुस्तक में पेज ४३ की तुलना कीजिए।

§ ४६८—धातु का यदि ह्रस्व स्वर में समाप्ति हो तो नियम यह है कि सस्कृत के समान ही इसका प्रयोग द्वितीयपुरुष एकवचन आज्ञावाचक मे किया जाता है और यदि उसके अन्त में दीर्घ स्वर आये तो उसमे समातिसूचक चिह्न **–हि** का आगमन होता है। अ०माग० में **–अ** में समाप्त होनेवाले धातु अधिकाश में, महा०, जै०महा० और माग० में कभी-कभी अन्त में **–ह्नि** लगा लेते हैं, जिससे पहले का **अ** दीर्घ कर दिया जाता है। ऐसा रूप बहुधा अप० में भी पाया जाता है किन्तु इस बोली में **आ** फिर ह्रस्व कर दिया जाता है। शौर० और माग० में समातिसूचक चिह्न **–आहि** दिखाई देता है जिसके साथ-साथ नवीं श्रेणी के धातुओं में **–अ** लगता है और इसके अनुकरण पर बने हुए तृतीयपुरुष एकवचन के अन्त में **–आदु** जोडा जाता है। ढक्की और अप० में यह समातिसूचक **अ**, **उ** में परिणत हो जाता है (§ १०६): महा०, अ०माग०, जै०महा०, शौर० और माग० में **भण** रूप आया है, अप० में यह **भणु** हो जाता है (हाल १६३ और ४००, नायाध० २६०, आव०एर्त्से० १५, ३, शकु० ५०, ९ और ११४, ५, पिंगल १, ६२, हेच० ४, ४०१, ४), किन्तु दाक्षि०, शौर० और माग० में **भणाहि** रूप भी चलता है (दाक्षि० मे. मृच्छ० १००, ४, शौर० और माग० के विषय में § ५१४ देखिए), अप० में **भणहि** भी है (विक्र० ६३, ४), आव० में **चिट्ठ** = **तिष्ठ** है, **एहि** और **वाहेहि** रूप भी पाये जाते हैं (मृच्छ० ९९, १८ और २०, १००, १८), अ०माग० और शौर० में **गच्छ** पाया जाता है (उवास० § ५८ और २५९, ललित० ५६१, १५, शकु० १८, २, मृच्छ० ३८, २२, ५८, २), माग० में **गश्च** है (मृच्छ० ३८, २२, ७९, १४) किन्तु अ०माग० में **गच्छाहि** रूप भी है (उवास० § २०४), महा० और जै०महा० में **पे॑च्छ** मिलता है (हाल ७२५, आव०एर्त्से० १८, १२), शौर० और दाक्षि० में **पे॑क्ख** हो जाता है (शकु० ५८, ७, मृच्छ० १७, २०, ४२, २, दाक्षि० में: १००, १४), माग० में **पे॑स्क** है (मृच्छ० १२, १६, १३, ६, २१, १५), अप० में **पे॑क्खु** मिलता है (हेच० ४, ४१९, ६) और **पेक्खहि** भी देखा जाता है (पिंगल १, ६१), महा० और शौर० में **हस** आया है (हाल ८१८, नागा० ३३, ५), माग० में **हश** है (मृच्छ० २१, ४), माग० में **पिव** = **पिब** है (प्रबोध० ६०, ९) और **पिवाहि** रूप भी मिलता है (वेणी० ३४, २ और १५), **पलित्ताआहि** = **परित्रायस्व** है (मृच्छ० १७५, २२, १७६,५ और १०), महा० में **रुअ** है (हाल ८९५)। इसके साथ साथ **रुयहि** भी पाया जाता है (७८४) और **रुअसु** रूप भी मिलता है (१४३, ८८५, ९०९), शौर० में **रोद** चलता है (मृच्छ० ९५, १२, नागा० २४, ८ और १२) = **रुदिहि**, अ०माग० में **विगिञ्च** = ***विकृन्त्य** = **विकृन्त** है (आयार० १, २,४, ३, उत्तर० १७०), **जाणाही** = **जानीहि** (आयार० १, २, १, ५), **बुज्झाहि** = **बुध्यस्व**,

बहुत काम में आता है, किन बोलियों में आत्मनेपद कम काम में आता है। ये अधिकांश में समाप्तिसूचक चिह्न –सु, –स्सु और –उ तथा वर्तमानकाल के रूप –मि, –सि और –इ के समान हैं। महा में विरमसु = विरम और रक्खसु = रक्षस्व है (हाल १४९), रक्खस्सु = रक्ष है (हाल २९७), परिक्खसु = परिरक्ष है (एत्सें॰ ६, २५), ओसरसु = अपसर है (हाल ४५१) महा , जै॰महा॰ और शौर में करेसु = कुरु (हाल ४८ सगर १, १२ काल्का २७१ ४१ , रत्ना ११९, ५ ११६, ६ ११८, २४ कर्पूर २१, ७ १ , ५ १७ २ वेणी ९८, १९; प्रसन्न ८४, ९ आदि-आदि) ; महा में अणुणेसु = अनुनय है (हाल १५१ और १४६) शौर में आणेसु = आनय है (शकु १२५, ८' कर्पूर ५१, १७), अवणेसु = अपनय है (विद्ध ४८, १) ; महा , अ॰माग , जै महा और शौर॰ में मुञ्चसु = मुंचिय है (हाल १११ उत्तर॰ १६१ आव एर्से १२, १६; मृच्छ ७ , १२) अ माग में आसु = याहि (सूय १७७) अ॰माग॰ में कहसु रूप देखा जाता है, शौर में कधेसु आया है (बाल ५१, १२ १६४, १७ २१८, १६ कर्पूर १७ ७ और १२) = कथय ; अ माग॰ में सद्दहसु = श्रद्धे है (सूय १५१) जै महा में खमसु = क्षमस्व है (सगर १, ११ द्वार ४९७, ११), धरसु = धृणीष्व (सगर १, १५) और सरसु = स्मर (आव एर्से॰ ७, १४) हैं ; महा॰ और मै महा में कुणसु = कुरु (हाल ६ ७ और ७७१ सगर ४, २ ११ और १२ ; काल्का २६१ १६ और १७४ २७) माग में क>कधु = रस (चंड ४९, १) और आगाश्वेसु (मृच्छ ११६, ५) = आगच्छ है, देसु रूप मिलता है (प्रबोध ५८, ८ ; बंबइया संस्करण देस्सु ; पूना तथा मद्रास का और बंबइया भी (B) संस्करण देहि), वि>कधु (प्रबोध ५८, १८ बंबइया संस्करण विक्कस्सु, पूना संस्करण विक्कस्स, मद्रासी संस्करण विक्कोहि, बंबइया भी (B) संस्करण विक्खय) = वीक्षय है धालेशु (प्रबोध॰ ६०, १ ; बंबइया संस्करण धालेस्सु पूना और बंबइया भी (B) संस्करण धालेशु और मद्रासी संस्करण धारय = धारय है ; अप में किज्जसु = कुरु है (कर्मवाच्य की कर्तृवाच्य के अर्थ में आया है, § ५५ ; पिंगल १,१९ ; २, ११९ और १२), मुणिमासु आया है जो छन्द की मात्रा ठीक करने के लिए मुणीअसु के स्थान में आया है और मुण धातु का कर्मवाच्य है (§ ४८९) तथा कर्तृवाच्य के अर्थ में काम में आया गया है (पिंगल १ १११ और ११२)। इसके साथ साथ मुणिज्जसु रूप भी पाया जाता है (२, ११९), जुज्झसु = युध्यस्व है (पिंगल २ १२)। शौर में पाठों में अनेक बार अन्त में –स्स लगकर बननेवाले आत्मनेपद के रूप पाये जाते हैं जैसे, उवालहस्स (शकु ११ ४), अवलम्बस्स (शकु ११९ ११ ; १११, ८), पॅक्खस्स (प्रबोध ५६, १४), पडिवज्जस्स (वेणी॰ ७२ १) और परिरम्भस्सु भी है (विद्ध १२८ ६) तथा मद्रासीय संस्करणों में और भी अनेक पाये जाते हैं। इनमें संस्कृताऊपन की छाप देखी जानी चाहिए जो पाठों में स हटा दिये जाने चाहिए। इन संस्करणों के भीतर अन्यत्र शुद्ध रूप भी मिलते हैं। अ माग में अन्त में –सु लगकर बननेवाला आज्ञावाचक रूप केवल पद्यों में प्रमाणित होता है।

१४, ८०, १२, वेणी० १२, ५, ५९, २३ आदि-आदि), दाक्षि० में **गच्छदु** रूप आया है (मृच्छ० १०१,१), माग० में **मुञ्चदु = मुञ्चतु**, **शुणादु = शृणोतु** और **णिशीददु = निषीदतु** हैं (मृच्छ० ३१, १८ और २१, ३७, ३, ३८, ९), अप० में **णन्दउ = नन्दतु** (हेच० ४, ४२२, १४) है, **दिज्जउ = दीयताम्** और **किज्जउ = क्रियताम्** है (पिंगल १, ८१ अ), महा०, जै०महा०, अ०माग० और अप० में **होउ**, शौर०, माग० और ढक्की में **भोदु = भवतु** है (महा० के लिए : हाल, रावण०, हेच० में **भू** शब्द देखिए, जै०महा० के लिए : एर्त्से० १८, १२, कालका० में **हो** शब्द देखिए, अ०माग० के लिए : कप्प०, नायाध० में **हो** शब्द देखिए, शौर० के लिए : मृच्छ० ४, २३, शकु० २४, १३, विक्र० ६, १७, माग० के लिए : मृच्छ० ३८, ८, ७९, १८, ८०, ४, ढक्की के लिए : मृच्छ० ३०, १४ और १८, ३१, १९ और २२, ३४, २०)।

§ ४७०—अ०माग० और आंशिक रूप में जै०महा० में भी प्रथमपुरुष बहुवचन आज्ञाकारक के स्थान में प्रथमपुरुष बहुवचन वर्त्तमानकाल काम में लाया जाता है : अ०माग० में **गच्छामो वन्दामो नमंसामो सक्कारेमो संमाणेमो पज्जुवासामो = गच्छामः वन्दामहे नमस्याम सत्कारयाम संमानयाम पर्युपासाम** है (विवाह० १८७ और २६३, ओव० § ३८), **गिण्हामो = गृह्णाम**, **साइज्जामो = *स्वाद्याम = स्वाद्याम** है (ओव० § ८६) और **जुज्झामो = युद्ध्याम** है (निरया० § २५), जै०महा० में **हरामो = हराम** (एर्त्से० ३७, ११), **गच्छामो = गच्छाम** तथा **पवियामो = प्रविशाम** है (सगर ५, १ और ६)। वर० ७, १९ और हेच० ३, १७६ मे केवल एक रूप **–आमो** बताते हैं। **हसामो** और **तुवरामो** उदाहरण दिये है, सिंहराजगणिन् ने पन्ना ५१ में **हसिमो**, **हसेमो** और **हसमो** रूप अतिरिक्त मिल्ते हैं, ये भी वर्तमानकाल के ही हैं। इसके अनुसार अ०माग० में **भुञ्जिमो = भुञ्जाम** है (पद्य में, उत्तर० ६७५), जै०महा० में **निज्झामेमो = निक्षामयाम** है (द्वार० ५०५, ९), **करेमो** मिलता है (एर्त्से० २, २७, ५, ३५), **पूरेमो = पूरयाम** है (सगर ३, १७), अ०माग० में **होमो** रूप पाया जाता है (उत्तर० ६७८ = दस० ६१३,३४)। आज्ञावाचक का अपना निजी समाप्तिसूचक चिह्न **–म्ह** है जो अ०माग० में प्रमाणित नहीं किया जा सकता है और महा० तथा जै०महा० में विरल हैं, इस कारण ही वर०, हेच० और सिंहराज० इसका उल्लेख नहीं करते[१] किन्तु इसके विपरीत शौर०, माग० और ढक्की में एकमात्र यही रूप काम में लाया जाता है। मार्क० पन्ना ७० में बताता है कि यह शौर० में काम लाया जाना चाहिए। ब्लौख ने मृच्छ०, शकु०, विक्रमो०, माल्ती० और रत्ना० से इस रूप का एक उत्तम संग्रह तैयार किया है[२]। महा० में **अब्भत्थेम्ह = अभ्यर्थयाम** है (रावण० ४, ४८), जै०महा० **चिट्ठम्ह = तिष्ठाम** और **गच्छम्ह = गच्छाम** हैं (एर्त्से० १४, ३३, ६०, २१)[३], शौर० में **गच्छम्ह** रूप चलता है (मृच्छ० ७५, ३, शकु० ६७, १०, ७९, ८, ११५, ३; विक्र० ६, १४ और १८, १३, मालवि० ३०, १२ और ३२, १३, रत्ना० २९४, ८, २०५, ११, ३०३, २०, ३१२, २४ आदि आदि), **उवविसम्ह = उपविशाम**

१४ ; ८०, १२ ; वेणी० १२, ५ , ५९, २३ आदि-आदि) , दाक्षि० में **गच्छदु** रूप आया है (मृच्छ० १०१,१) , माग० में **मुञ्चदु = मुञ्चतु , शुणादु = शृणोतु** और **णिशीददु = निषीदतु** है (मृच्छ० ३१, १८ और २१ , ३७, ३ , ३८, ९) , अप० में **णन्दउ = नन्दतु** (हेच० ४, ४२२, १४) है, **दिज्जउ = दीयताम्** और **किज्जउ = क्रियताम्** है (पिंगल १, ८१ अ) , महा०, जै०महा०, अ०माग० और अप० में **होउ**, शौर०, माग० और ढक्की मे **भोदु = भवतु** है (महा० के लिए : हाल ,रावण०, हेच० में **भू** शब्द देखिए , जै०महा० के लिए . एर्से० १८, १२ , कालका० में **हो** शब्द देखिए , अ०माग० के लिए : कप्प० , नायाध० मे **हो** शब्द देखिए , शौर० के लिए . मृच्छ० ४, २३ , शकु० २४, १३ , विक्र० ६, १७ ,माग० के लिए : मृच्छ० ३८, ८ , ७९, १८ , ८०, ४ , ढक्की के लिए : मृच्छ० ३०, १४ और १८ , ३१, १९ और २२ , ३४, २०) ।

§ ४७०—अ०माग० और आशिक रूप में जै०महा० में भी प्रथमपुरुष बहुवचन आज्ञाकारक के स्थान मे प्रथमपुरुष बहुवचन वर्त्तमानकाल काम में लाया जाता है : अ०माग० में **गच्छामो वन्दामो नमंसामो सक्कारेमो संमाणेमो पज्जुवासामो = गच्छामः वन्दामहै नमस्याम सत्कारयाम संमानयाम पर्युपासाम** है (विवाह० १८७ और २६३ , ओव० § ३८), **गिण्हामो = गृह्णाम, साइज्जामो = *स्वाद्याम = स्वाद्याम** है (ओव० § ८६) और **जुज्झामो = युद्ध्याम** है (निरया० § २५) , जै०महा० में **हरामो = हराम** (एर्से० ३७, ११), **गच्छामो = गच्छाम** तथा **पवियामो = प्रविशाम** है (सगर ५, १ और ६)। वर० ७, १९ और हेच० ३, १७६ मे केवल एक रूप **–आमो** बताते है : **हसामो** और **तुवरामो** उदाहरण दिये है, सिंहराजगणिन् ने पन्ना ५१ में **हसिमो, हसेमो** और **हसमो** रूप अतिरिक्त मिलते हैं, ये भी वर्तमानकाल के ही हैं । इसके अनुसार अ०माग० में **भुञ्जिमो = भुञ्जाम** है (पद्य में , उत्तर० ६७५) , जै०महा० में **निग्घामेमो = निःक्षामयाम** है (द्वार० ५०५, ९), **करेमो** मिलता है (एर्से० २, २७ , ५, ३५), **पूरेमो = पूरयाम** है (सगर ३, १७), अ०माग० में **होमो** रूप पाया जाता है (उत्तर० ६७८ = दस० ६१३,३४)। आज्ञावाचक का अपना निजी समाप्तिसूचक चिह्न **–म्ह** है जो अ०माग० में प्रमाणित नहीं किया जा सकता है और महा० तथा जै०महा० में विरल हैं, इस कारण ही वर०, हेच० और सिंहराज० इसका उल्लेख नहीं करते[1] किन्तु इसके विपरीत शौर०, माग० और ढक्की में एकमात्र यही रूप काम में लाया जाता है । मार्क० पन्ना ७० में बताता है कि यह शौर० में काम लाया जाना चाहिए । ब्लौख ने मृच्छ०, शकु०, विक्रमो०, मालती० और रत्ना० से इस रूप का एक उत्तम संग्रह तैयार किया है[2]। महा० में **अब्भत्थेम्ह = अभ्यर्थयाम** है (रावण० ४, ४८) , जै०महा० **चिट्ठम्ह = तिष्ठाम** और **गच्छम्ह = गच्छाम** हैं (एर्से० १४, ३३ , ६०, २१)[3], शौर० में **गच्छम्ह** रूप चलता है (मृच्छ० ७५, ३ , शकु० ६७, १० , ७९, ८, ११५, ३ , विक्र० ६, १४ और १८, १३ , मालवि० ३०, १२ और ३२, १३ , रत्ना० २९४, ८ , २०५, ११ , ३०३, २०, ३१२, २४ आदि-आदि), **उवविसम्ह = उपविशाम**

पसाहि = प्रस, हराहि = हर, पच्चाहि = पच्चस्व और अक्कमाहि = आक्रम (कप्प० § १११ तथा ११४ ओव § ५३ उवास० § ५८ और २ ८ ; निरया० § २२) जै महा० में विहराहि = विहर है (आव एर्त्से ११, ९) महा०, जै महा०, अ माग और शौर में करेहि रूप है (हाल २२५ और ९ ० आव एर्त्से ११, ४ कालका० में कर् शब्द देखिए, ओव § ४ मृच्छ ६९, १४ १२५, १८ १२६, १ ; शकु ७८, १४ ; १५३, १३), माग में करेहि है (मृच्छ० ११, ८ ; १२१, १ ; १७९, ५), अप में कराहि और करहि रूप हैं (पिंगल १, १४१ हेच० ४, १८५) और करु भी देखा जाता है (हेच० ४, ३३०, २) दाक्षि में ओणामहि = अवनामय है (मृच्छ १०९, २) अ०माग में पडिकप्पाहि = प्रतिकल्पय, सन्नाहेहि = सनाहय उवट्ठावेहि = उपस्थापय और कारवेहि = कारय हैं (ओव § ४), रोएहि = रोचय है (विवाह १३४) ; जै महा में पुच्छेहि = पृच्छ है (कालका २७२, ११), मग्गेहि = मार्गय और वियाणहि = विजानीहि हैं (एर्त्से ५९, ३ ; ७१, १२) शौर में मन्तेहि = मन्त्रय और कधेहि = कथय हैं (ललित० ५५४ ८ ५६५, १५), सिढिलेहि = शिथिलय है (शकु ११, १ वेणी० ७१, ४), आलेहि = स्थापय है (मृच्छ २५, १८) माग में मालेहि = मारय है (मृच्छ० १२३, १५ १६५, २४) और घोसहि = घोषय है (मृच्छ १६२, ९) ; ढक्की में पसलु = प्रसर है (पाठ में पसर है ; मृच्छ ३२, १६) जब कि सभी हस्तलिपियाँ भूल से शब्द के अन्त में –अ देती हैं ; गॅण्ह रूप आया है (३९, १६ १ , २), पमच्छ मिलता है (३१, ४ ७ और ९ ३२, ३ ८ ; ३३ ; ३४ ३४,२४ ३५, ७), आमच्छ भी देखा जाता है (३९, ७), देहि भी पाया है (३२, २३ ३६, १५) अप में सुणहि = शृणु है (पिंगल १, ६२) महा , जै महा और शौर में होहि = *भाधि = वैदिक बोधि = भव है (हाल २५१ और ३७२ ; एर्त्से ११, ११ और १, २४ मृच्छ ५४, १२ ; शकु० ६७, २ ; ७०, ९ ; विक्र ८, ८ ; १२, १२ ; २१, ६ आदि आदि) । शब्द के अन्त में –ए और –इ लगाकर बननेवाले तथाकथित अप आज्ञावाचक रूप के विषय में § ४६१ देखिए ।

§ ४६९—तृतीयपुरुष एकवचन क्रिया के अन्त में –उ लगाकर बनता है शौर०, माग दाक्षि और ढक्की में –दु जोड़ा जाता है = –तु है ; महा में मरउ = म्रियताम् है (हाल में मर् शब्द देखिए), पसट्टउ = प्रयसताम् है (रावण १, ५८), एउ = *अयतु (गउड ५८) अ माग में पासउ = पश्यतु (कप्प० § ११), आपुच्छउ = आपृच्छतु (उवास § ५८) और पियउ = पिबतु है (नायाध § ७ और ९८) ; जै महा में कीरउ = क्रियताम् और सुव्वउ = श्रूयताम् हैं (एर्त्से १५ ९ ; १७ १४) ; एउ = *अयतु (कालका ३ ५ ८, २९), सुयउ = स्वपितु है (द्वार ५ ३, ३) ; शौर में पसीददु = प्रसीदतु (ललित० ५६१, ९ ; शकु १२ ११), आरादु = आराधतु (उत्तररा १२, ६ और ७) कधेदु = कथयतु (शकु १२ १०) और सुणादु = शृणोतु है (विक्र ५ ९ ; ७२,

१४, ८०, १२, वेणी० १२, ५, ५९, २३ आदि-आदि), दाक्षि० में **गच्छदु** रूप आया है (मृच्छ० १०१,१), माग० में **मुञ्चदु = मुञ्चतु**, **शुणादु = शृणोतु** और **णिशीददु = निषीदतु** हैं (मृच्छ० ३१, १८ और २१, ३७, ३, ३८, ९), अप० में **णन्दउ = नन्दतु** (हेच० ४, ४२२, १४) है, **दिज्जउ = दीयताम्** और **किज्जउ = क्रियताम्** है (पिंगल १, ८१ अ), महा०, जै०महा०, अ०माग० और अप० में **होउ**, शौर०, माग० और ढक्की में **भोदु = भवतु** है (महा० के लिए : हाल, रावण०, हेच० में **भू** शब्द देखिए, जै०महा० के लिए : एर्त्से० १८, १२, कालका० में **हो** शब्द देखिए, अ०माग० के लिए : कप्प०, नायाध० में **हो** शब्द देखिए, शौर० के लिए : मृच्छ० ४, २३, शकु० २४, १३, विक्र० ६, १७, माग० के लिए : मृच्छ० ३८, ८, ७९, १८, ८०, ४, ढक्की के लिए : मृच्छ० ३०, १४ और १८, ३१, १९ और २२, ३४, २०)।

§ ४७०—अ०माग० और आंशिक रूप में जै०महा० में भी प्रथमपुरुष बहुवचन।आज्ञाकारक के स्थान में प्रथमपुरुष बहुवचन वर्त्तमानकाल काम में आया जाता है : अ०माग० में **गच्छामो वन्दामो नमंसामो सक्कारेमो संमाणेमो पज्जुवासामो = गच्छामः वन्दामहे नमस्याम सत्कारयाम संमानयाम पर्युपासाम** है (विवाह० १८७ और २६३, ओव० § ३८), **गिण्हामो = गृह्णाम**, **साइज्जामो = *स्वाद्याम = स्वाद्याम** है (ओव० § ८६) और **जुज्झामो = युद्धायाम** है (निरया० § २५), जै०महा० में **हरामो = हराम** (एर्त्से० ३७, ११), **गच्छामो = गच्छाम** तथा **पवियामो = प्रविशाम** है (सगर ५, १ और ६)। वर० ७, १९ और हेच० ३, १७६ में केवल एक रूप **–आमो** बताते हैं : **हसामो** और **तुवरामो** उदाहरण दिये हैं, सिंहराजगणिन् ने पन्ना ५१ में **हसिमो, हसेमो** और **हसमो** रूप अतिरिक्त मिलते हैं, ये भी वर्तमानकाल के ही हैं। इसके अनुसार अ०माग० में **भुञ्जिमो = भुञ्जाम** है (पद्य में, उत्तर० ६७५), जै०महा० में **निज्झामेमो = नि क्षामयाम** है (द्वार० ५०५, ९), **करेमो** मिलता है (एर्त्से० २, २७, ५, ३५), **पूरेमो = पूरयाम** है (सगर ३, १७), अ०माग० में **होमो** रूप पाया जाता है (उत्तर० ६७८ = दस० ६१३,३४)। आज्ञावाचक का अपना निजी समाप्तिसूचक चिह्न **–म्ह** है जो अ०माग० में प्रमाणित नहीं किया जा सकता है और महा० तथा जै०महा० में विरल हैं, इस कारण ही वर०, हेच० और सिंहराज० इसका उल्लेख नहीं करते[1] किन्तु इसके विपरीत शौर०, माग० और ढक्की में एकमात्र यही रूप काम में लाया जाता है। मार्क० पन्ना ७० में बताता है कि यह शौर० में काम लाया जाना चाहिए। ब्लौख ने मृच्छ०, शकु०, विक्रमो०, माल्ती० और रत्ना० से इस रूप का एक उत्तम संग्रह तैयार किया है[2]। महा० में **अब्भत्थेम्ह = अभ्यर्थयाम** है (रावण० ४, ४८), जै०महा० **चिट्ठम्ह = तिष्ठाम** और **गच्छम्ह = गच्छाम** हैं (एर्त्से० १४, ३३, ६०, २१)[3], शौर० में **गच्छम्ह** रूप चलता है (मृच्छ० ७५, ३, शकु० ६७, १०, ७९, ८, ११५, ३, विक्र० ६, १४ और १८, १३, मालवि० ३०, १२ और ३२, १३, रत्ना० २९४, ८, २०५, ११, ३०३, २०, ३१२, २४ आदि-आदि), **उवविसम्ह = उपविशाम**

घसाहि = घस, हराहि = हर, पन्दाहि = पन्दस्व और भक्खमाहि = भाक्रम (कप्प० § १११ तथा ११४ ओव० § ५३ ; उवास० § ५८ और २ ४ ; निरया० § २२) ; जै महा में विहराहि = विहर है (भाव एर्से० ११, ६) महा०, जै०महा , अ माग और शौर में करेहि रूप है (हाल २२५ और ९ ० भाव एर्से ११, ४ काल्का० में कर् शब्द देखिए, ओव § ४ मृच्छ० ६६, १४ १२५, १८ १२६, १ शकु ७८, १४ १५३, १३), माग में कलेहि है (मृच्छ० ११, ८ १२१, १ १७६, ५), अप में कराहि और करहि रूप हैं (पिंगल १, १४९ हेच० ४, ३८५) और करु भी देखा जाता है (हेच० ४, ३३०, २) धाक्षि में ओणामेहि = अवनामय है (मृच्छ १ २, २) ; अ माग में पडि कप्पेहि = प्रतिकल्पय, संणाहेहि = सनाहय उवट्ठावेहि = उपस्थापय और कारवेहि = कारय हैं (ओव § ४) रोएहि = रोचय है (विवाह ११४) ; जै महा में पुच्छेहि = पृच्छ है (काल्का० २७२, ११), मग्गेहि = मागय और पियाणहि = पिवामीहि हैं (एर्से ५१, ६ ; ७१, १२) शौर में मन्तेहि = मन्त्रय और कधेहि = कथय हैं (ललित ५५४, ८ ५६६, १५), सिढिलेहि = शिथिलय है (शकु ११, १ वेणी० ७६, ४), जालेहि = ज्वालय है (मृच्छ २५, १८) माग में मालेहि = मारय है (मृच्छ १२३, १५ ; १६५, २४) और घोसहि = घोषय है (मृच्छ १६२ ९) ; ढक्की में पसलु = प्रसर है (पाठ में पसद है ; मृच्छ ३२, १६) अब कि सभी हस्तलिपियों भूल से शब्द के अन्त में –अ देती हैं ; गं'च्छ रूप आया है (२९, १६ १ , ९), पमच्छ मिलता है (३१, ८ ; ७ और ९ ३२, १ ८ ; १२ ; १४ ३४,२४ ३५, ७), आमच्छ भी देखा जाता है (३९, ७) देहि भी मिलता है (३२, २३ ; ३६, १५) ; अप में सुणहि = शृणु है (पिंगल १ ६२) ; महा , जै महा और शौर में होहि = *भोधि = वैदिक बोधि = भव है (हाल २५९ और ३७२ एर्से ११, ३१ और १ , २८ ; मृच्छ ५४ १२ ; शकु ३७, २ ; ७ , ९ ; विक्र० ८, ८ ; १२, १२ ; २३, ६ आदि-आदि) । शब्द के अन्त में –ए और –इ लगकर बननेवाले तथाकथित अप आज्ञावाचक रूप के विषय में § ४६१ देखिए ।

§ ४६९—तृतीयपुरुष एकवचन क्रिया के अन्त में –उ लगकर बनता है शौर०, माग दाक्षि और ढक्की में –दु जोड़ा जाता है = –तु है ; महा में मरउ = म्रिय ताम् है (हाल में मर् शब्द देखिए), पभउउ = प्रवर्तताम् है (रावण १, ५८), वउ = *व्रयतु (गउड ५८) ; अ माग में पासउ = पश्यतु (कप्प § १६), आपुच्छउ = आपृच्छतु (उवास § ६८) और पियाउ = पिबयतु है (मायाव ३ ७ और १८) ; जै महा में कीरउ = क्रियताम् और सुण्यउ = श्रूयताम् हैं (एर्से १६, ३ ; १७ १४) ; दउ = *दयतु (काल्का ३1 ५ ८ २९), सुवउ = स्वपितु है (द्वार ५ ३, ३) ; शौर में पसीददु = प्रसीदतु (ललित० ५६१, ९ ; शकु २९ ११), भादददु = भाराधदु (उत्तररा० ३२, ६ और ७) कधेदु = कथयतु (शकु २२ , ९) और सुणादु = शृणातु है (विक्र ५, ९ ; ७९,

इस रूप का उल्लेख नहीं किया है जिस पर ब्लौख ने वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा में बहुत फटकार बतायी है। — २. उक्त ग्रन्थ का पेज ४४, खेद है कि अनेक उद्धरण भ्रमपूर्ण हैं और तीनों बोलियों में कुछ भेद नहीं किया गया है। ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, इस विषय का ध्यान रख कर चुने गये हैं। — ३. याकोबी ने 'औसगेवैल्ते एर्त्सेलुंगन इन महाराष्ट्री' की भूमिका के पेज ४७ में इस ओर ध्यान ही नहीं दिया है। — ४. हेच० ४, २८९ के अनुसार अण्णे-शस्म, पिवस्म, कले॑स्म आदि-आदि की प्रतीक्षा की जानी चाहिए, किन्तु § ३१४ की तुलना कीजिए। — ५. इस विषय पर अधिक विस्तार ब्लौख की उक्त पुस्तक के पेज ४५ में है। — ६ बौप, फरग्लाइषन्दे ग्रामाटीक एक १, १२०, बुर्नूफ ए लास्सन, एसै स्यूर ल पाली (पेरिस १८२६), पेज १८० और उसके बाद, होएफर, डे प्राकृतिका डिआलेक्टो § १८७ नोटसख्या तीन, लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए ११७, २, ब्रुगमान, ग्रुण्डरिस दो १, १३५४, नोटसंख्या १, ब्लौख का उक्त ग्रन्थ, पेज ४६ और उसके बाद।

§ ४७१—आज्ञावाचक द्वितीयपुरुष बहुवचन के रूप मे द्वितीयपुरुष बहुवचन सामान्यवर्तमान का प्रयोग किया जाता है : महा० में **णमह** रूप पाया जाता है (गउड०, हाल, रावण०, कर्पूर० १, ७), अप० में **नमहु** आता है (हेच० ४, ४४६) और चू०पै० में **नमथ** (हेच० ४, ३२६), महा० में **रञ्जेह = रञ्जयत, रएह = रचयत** और **देह = *दयत** है (हाल ७८०), महा० में **उअह = *उपत**[1] **= पश्यत** है (भाम० १, १४, देशी० १, ९८, त्रिवि० २, १, ७५, गउड०, हाल, शकु० २, १४), **उवह** रूप भी मिलता है (सिंहराज० पन्ना ४५, कर्पूर० ६७, ८, प्रताप० २०५, ९, २१२, १०, हाल में यह रूप देखिए), अ०माग० में **हणह खणह छणह डहह पयह आलुम्पह विलुम्पह सहसक्कारेह विपरामुसह = हत खनत क्षणुत दहत पचत आलुम्पत विलुम्पत सहसात्कारयत विपरामृशत** है (सूय० ५९६, आयार० १, ७, २, ४ की तुलना कीजिए), **खमाह = क्षमध्वम्** है (उत्तर० ३६६ और ३६७) और **तालेह = ताडयत** है (नायाध० १३०५), जै०महा० में **अच्छह = ऋच्छत** है (आव०एर्त्से० १४, ३०), **कण्डूयह** मिलता है (एर्त्से० ३६, २१), **चिट्ठह, आइसह** और **गिण्हह = तिष्ठत, आदिशत** और **गृह्णीत** हैं (कालका० २६४, ११ और १२), **ठवेह** और **दंसेह = स्थापयत** और **दर्शयत** हैं (कालका० २६५, ७, २७४, २१), शौर० में **परित्ताअध = परित्रायध्वम्** है (शकु० १६, १०, १७, ६, विक्र० ३,१७, ५,२, मालती० १३०, ३), माग० में **पलित्ताअध** रूप हो जाता है (मृच्छ० ३२, २५), अ०माग० तथा जै०महा० में **करेह** रूप मिलता है (कप्प०, उवास०, नायाध०; कालका० २७०, ४५), अ०माग० में **कुव्वहा** भी होता है (आयार० १, ३, २, १), अप० में **करेहु** (पिंगल १, १२२), **करहु** (हेच० ४, ३४६, पिंगल १, १०२ और १०७), **कुणेहु** (पिंगल १, ९० और ११८) और **कुणहु** रूप होते हैं (पाठ में **कुणह** है, पिगल १, १६, ५३ और ७९), माग० में **कलेध** है (मृच्छ० ३२, १५, १२२, २, १४०,२३), शौर० में **पअत्तध = प्रयत-**

(शकु० १८, ९), उवसप्पम्ह = उपसपामि (शकु ७९, ११ विक्र २४, १ ४१, १४ ; नागा० ११, ८ ; चड० २१६, १), पे॑क्खाम = प्रेक्षाम है (मृच्छ० ४९, १४ विक्र० ११, १४ १२, ५ ; रत्ना ३०१, २५ आदि-आदि), करेम्ह = करवाम (शकु ८१, १५ ; विक्र ६, १५ १०, १९ ; ५१, १४ रत्ना० ३ १, २१ प्रबोध० ६३, ११ वेणी ९, २१ आदि-आदि), णिवेदेम्ह = निवेदयाम (शकु १६, ७ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] मालवि० ४५, १९; रत्ना० २९३, २९ ; ३०९, २९), अदिवाहे॑म्ह = अतिवाहयाम (रत्ना० २९९, १२ और हो॑म्ह = भवाम हैं (शकु० २६, १४ विक्र १६, १२) माग० में अण्णेशम्ह॑ = अन्वेषयाम (मृच्छ० १७१, १८), पिवम्ह = पिबाम (वेणी० ३५, २२) और पलाअम्ह = पलायाम है (चंड ७२, २) तथा इनके साथ साथ करेम्ह रूप भी पाया जाता है (मृच्छ० १७९, ११ ; १६८, ७ ; १७, २१ चंड ६८, १५ वेणी ३६, ९) ; ढक्की में अणुसल॑म्ह = अनुसराम है (मृच्छ ३०, १३ ३६, १९) ढक्की, माग और शौर में कीलेम्ह = क्रीडाम (मृच्छ ३ , १८ ९४, १९ १३१, १८) ढक्की और माग में णिवेद॑म्ह में पाया जाता है (मृच्छ ३६, २२ ; १७१, ११)। –मो और –म में समाप्त होनेवाले रूप जो कभी-कभी हस्तलिपियों और नाना संस्करणों में देखने में आ जाते हैं, जैसे कि पे॑क्खामो (मालवि २५, १७), माग रूप पे॑स्कामो (मृच्छ ११९, १), पविसामो (मालवि० ११, १९ ; इसी नाटक में अन्यत्र पविसम्ह भी देखिए ; शंकर पाण्डुरंग पंडित के संस्करण ७५, २ में शुद्ध रूप पविसम्ह आया है ; रत्ना २९८, १७ १ २, २९ नागा० २७, ७ ; महावीर ३९, १७ की तुलना कीजिए) अपक्कमाम (मालवि० ४८, १८ ; शुद्ध रूप अपक्कमम्ह मृच्छ २२, २ में मिलता है), णिवारेम (मालवि ६२, ११ ; इसी नाटक में अन्यत्र णिवारेम्ह है) और माग रूप पविशामो (प्रबोध० ६१, ७ ; मद्रासी संस्करण ७५, २२ में शुद्ध रूप पविशम्ह आया है)[१] आज्ञावाचक के स्थान में उतने ही अशुद्ध हैं जितने कि –म्ह में समाप्त होनेवाले रूप सामान्य वर्तमानकाल के लिए (§ ४५५)। इसका कारण यह हुआ कि –म्ह यदि क्रियाओं के आज्ञावाचक रूपों में लगता हो तो इसे इमः (= हम हैं)[२] से स्पष्ट करना भूल है। –म्ह = –स्म को पूर्णरूप में स्पष्ट है और गम्ह = गम्म (§ ४७४) केवल आज्ञावाचक रूप के काम में लाये गये वैदिक जम्म गम्म और गृम्म की ठीक बराबरी में बैठता है और द्वितीयपुरुष एकवचन भी गम और गय की तुलना में जोड़ का है (ह्विट्नी § ८१४ सी (C) और ८ ६ ; ५ बार २ , ७ और उसके बाद में न्यायस्तर के विचारों की भी तुलना कीजिए)। अप में प्रथमपुरुष बहुवचन वर्तमानकाल में जाहुँ = याम है (हेच ४, ३८६)।

१ शौर और माग में शब्द के अन्त में –म्ह लगा कर बननेवाला आज्ञावाचक के रूप बहुत अधिक पाये जाते हैं व्याकरणकारों ने इस तथ्य को अति संक्षेप में रख दिया है। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्होंने

इस रूप का उल्लेख नहीं किया है जिस पर ब्लौख ने वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा में बहुत फटकार बतायी है। — २. उक्त ग्रन्थ का पेज ४४, खेद है कि अनेक उद्धरण भ्रमपूर्ण हैं और तीनों बोलियों में कुछ भेद नहीं किया गया है। ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, इस विषय का ध्यान रख कर चुने गये हैं। — ३. याकोबी ने 'औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री' की भूमिका के पेज ४७ में इस ओर ध्यान ही नहीं दिया है। — ४ हेच० ४, २८९ के अनुसार **अण्णेशस्म, पिवस्म, कले˘स्म** आदि-आदि की प्रतीक्षा की जानी चाहिए, किन्तु § ३१४ की तुलना कीजिए। — ५ इस विषय पर अधिक विस्तार ब्लौख की उक्त पुस्तक के पेज ४५ में है। — ६ बौप, फरग्लाइपन्दे ग्रामाटीक एक १, १२०, बुर्नूफ ए लास्सन, एसै स्यूर ल पाली (पेरिस १८२६), पेज १८० और उसके बाद, होएफर, डे प्राकृतिका डिग्रालेक्टो § १८७ नोटसंख्या तीन, लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए ११७, २, बुगमान, ग्रुण्डरिस दो १, १३५४, नोटसंख्या १, ब्लौख का उक्त ग्रन्थ, पेज ४६ और उसके बाद।

§ ४७१—आज्ञावाचक द्वितीयपुरुष बहुवचन के रूप में द्वितीयपुरुष बहुवचन सामान्यवर्तमान का प्रयोग किया जाता है : महा० मे **णमह** रूप पाया जाता है (गउड० ; हाल, रावण०, कर्पूर० १, ७), अप० में **नमहु** आता है (हेच० ४, ४४६) और चू०पै० मे **नमथ** (हेच० ४, ३२६), महा० में **रञ्जेह = रञ्जयत, रएह = रचयत** और **देह = *दयत** हैं (हाल ७८०), महा० में **उअह = *उपत**[1] **= पश्यत** है (भाम० ८, १४, देशी० १, ९८, त्रिवि० २, १, ७५, गउड०, हाल, शकु० २, १४), **उवह** रूप भी मिलता है (सिंहराज० पन्ना ४५, कर्पूर० ६७, ८, प्रताप० २०५, ९, २१२, १०, हाल में यह रूप देखिए), अ०माग० में **हणह खणह छणह डहह पयह आलुम्पह विलुम्पह सहसक्कारेह विपरामुसह = हत खनत क्षणुत दहत पचत आलुम्पत विलुम्पत सहसात्कारयत विपरामृशत** है (सूय० ५९६, आयार० १, ७, २, ४ की तुलना कीजिए), **खमाह = क्षमध्वम्** है (उत्तर० ३६६ और ३६७) और **तालेह = ताडयत** है (नायाध० १३०५), जै०महा० में **अच्छह = ऋच्छत** है (आव०एर्त्से० १४, ३०), **कण्डूयह** मिलता है (एर्त्से० ३६, २१), **चिट्ठह, आइसह** और **गिण्हह = तिष्ठत, आदिशत** और **गृह्णीत** हैं (कालका० २६४, ११ और १२), **ठवेह** और **दंसेह = स्थापयत** और **दर्शयत** हैं (कालका० २६५, ७, २७४, २१), शौर० में **परित्ताअध = परित्रायध्वम्** है (शकु० १६, १०, १७, ६, विक्र० ३, १७, ५, २, मालती० १३०, ३), माग० में **पलित्ताअध** रूप हो जाता है (मृच्छ० ३२, २५), अ०माग० तथा जै०महा० में **करेह** रूप मिलता है (कप्प०, उवास०, नायाध०, कालका० २७०, ४५), अ०माग० में **कुव्वहा** भी होता है (आयार० १, ३, २, १), अप० में **करेहु** (पिंगल १, १२२), **करहु** (हेच० ४, ३४६, पिंगल १, १०२ और १०७), **कुणेहु** (पिंगल १, ९० और ११८) और **कुणहु** रूप होते हैं (पाठ में **कुणह** है, पिंगल १, १६, ५३ और ७९), माग० में **कलेध** है (मृच्छ० ३२, १५, १२२, २ ; १४०, २३), शौर० में **पअत्तध = प्रयत-**

(शकु० १८, ९), उवसप्पम्ह = उपसर्पाम (शकु ७९, ११ विक्र० २४, १ ; ४१, १४ ; नागा ११, ८ माल० २१६, १), पे`क्खाम = प्रेक्षाम है (मृच्छ ४९, १४ ; विक्र० ११, १४ १२, ५ ; रत्ना १ १, २५ आदि-आदि), करेम्ह = करवाम (शकु ८१, १५ विक्र १, १५ १ , १५ ; ५१, १४ रत्ना १ ३, २१ प्रबोध ६३, ११ वेणी० ९, २१ आदि-आदि), णिवेदेम्ह = निवेदयाम (शकु १६ , ७ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] मालवि० ४५, १५; रत्ना २९१, २९ १ ९, २६), अदिवाहे`म्ह = अतिवाहयाम ( रत्ना० २९९, १२ और हो`म्ह = भवाम हैं (शकु २६, १४ विक्र १६, १२) माग में अण्णेसम्ह = अन्वेषयाम (मृच्छ १७१, १८), पिवम्ह = पिबाम (वेणी० ३५, २२) और पळाअम्ह = पलायाम है (चंड० ७२, २) तथा इसके साथ साथ कलेम्ह रूप भी पाया जाता है (मृच्छ १७१, ११ १६८, ७ १७ , २१ चंड ६८, १५ ; वेणी ३६, ६) ढक्की में अणुसले`म्ह = अनुसराम है ( मृच्छ० १ , २३ ३६, २० ) ढक्की, माग और शौर में कीळेम्ह = क्रीडाम ( मृच्छ १ , १८ ; ९४, १५ १३१, १८ ) ढक्की और माग में णिवेदे`म्ह में पाया जाता है (मृच्छ ३६, २२ १७१, ११) । –मो और –म में समाप्त होनेवाले रूप को कभी-कभी हस्तलिपियों और नाना संस्करणों में देखने में आ जाते हैं, जैसे कि पे`क्खामो ( मालवि १९, १७ ), माग रूप पे`स्कामो (मृच्छ ११९, १), पविसामो (मालवि ३९, १९ ; इसी नाटक में अन्यत्र पविसम्ह भी देखिए ; शंकर पाण्डुरंग पंडित के संस्करण ७५, २ में शुद्ध रूप पवि सम्ह आया है रत्ना २९४, १७ ; १ २ २९ ; नागा २०, ७ ; महावीर ३९ १७ की तुलना कीजिए), अवक्कमाम (मालवि ४८, १८ ; शुद्ध रूप अवक्कमम्ह मृच्छ २२ २ में मिलता है) णिवारेम (मालवि ६२, ११ ; इसी नाटक में अन्यत्र णिवारेम्ह है) और माग रूप णच्चामो (प्रबोध ६१, ७ ; मद्रासी संस्करण ७५, २१ में शुद्ध रूप णच्चम्ह आया है)[१] आज्ञावाचक के स्थान में उतने ही अशुद्ध हैं जितने कि –म्ह में समाप्त होनेवाले रूप सामान्य वर्तमानकाल के लिए (§ ४५५) । इसका तात्पर्य यह हुआ कि –म्ह यदि क्रियाओं के आज्ञावाचक रूपों में लगता हो तो इसे स्मः (= हम हैं)[२] से व्युत्पन्न करना भूल है । –म्ह = –स्म को पूर्वसूत्र में लगता है और जेम्ह = जेष्म (§ ४७४) केवल आज्ञावाचक रूप के काम में आने गये वैदिक जेष्म नेष्म और दृष्म की ठीक बराबरी में बैठता है और द्वितीयपुरुष एकवचन भी नेष और पर्ष की तुलना में ठीक का है (ह्विट्नी, § ८९४ सी (C) और ८९६ ; वे बाइ २ , ७ और उसके बाद में नाइस्सर के विचारों की भी तुलना कीजिए) । अप में प्रथमपुरुष बहुवचन वर्तमानकाल में जाहुँ = याम है (हेम ४, ३८६) ।

१ शौर और माग में धातु के अन्त में –म्ह लगा कर बननेवाला आज्ञावाचक के रूप बहुत अधिक पाये जाते हैं व्याकरणकारों ने इस तथ्य को अति संक्षेप में दरका दिया है । इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उन्होंने

इस रूप का उल्लेख नहीं किया है जिस पर ब्लौख ने वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा में बहुत फटकार बतायी है। — २ उक्त ग्रन्थ का पेज ४४, खेद है कि अनेक उद्धरण भ्रमपूर्ण हैं और तीनों बोलियों में कुछ भेद नहीं किया गया है। ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, इस विषय का ध्यान रख कर चुने गये हैं। — ३. याकोबी ने 'औसगेवेल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री' की भूमिका के पेज ४७ में इस ओर ध्यान ही नहीं दिया है। — ४. हेच० ४, २८९ के अनुसार **अण्णेशस्म, पिवस्म, कलेॅस्म** आदि-आदि की प्रतीक्षा की जानी चाहिए, किन्तु § ३१४ की तुलना कीजिए। — ५. इस विषय पर अधिक विस्तार ब्लौख की उक्त पुस्तक के पेज ४५ में है। — ६ बौप, फरग्लाइषन्दे ग्रामाटीक एक १, १२०, बुर्नूफ ए लास्सन, एसै स्यूर ल पालीं (पेरिस १८२६), पेज १८० और उसके बाद, होएफर, डे प्राकृतिका डिआलेक्टो § १८७ नोटसंख्या तीन, लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए ११७, २, ब्रुगमान, ग्रुण्डरिस दो १, १३५४, नोटसंख्या १, ब्लौख का उक्त ग्रन्थ, पेज ४६ और उसके बाद।

§ ४७१—आज्ञावाचक द्वितीयपुरुष बहुवचन के रूप में द्वितीयपुरुष बहुवचन सामान्यवर्तमान का प्रयोग किया जाता है। महा० में **णमह** रूप पाया जाता है (गउड०, हाल, रावण०, कर्पूर० १, ७), अप० में **नमहु** आता है (हेच० ४, ४४६) और चू०पै० में **नमथ** (हेच० ४, ३२६), महा० में **रञ्जेह = रञ्जयत, रएह = रचयत** और **देह = *दयत** हैं (हाल ७८०), महा० में **उअह = *उपत¹ = पश्यत** है (भाम० १, १४, देशी० १, ९८, त्रिवि० २, १, ७५, गउड०, हाल, शकु० २, १४), **उवह** रूप भी मिलता है (सिंहराज० पन्ना ४५, कर्पूर० ६७, ८, प्रताप० २०५, ९, २१२, १०, हाल में यह रूप देखिए), अ०माग० में **हणह खणह छणह डहह पयह आलुम्पह विलुम्पह सहसक्कारेह विपरामुसह = हत खनत क्षणुत दहत पचत आलुम्पत विलुम्पत सहसात्कारयत विपरामृशत** है (सूय० ५९६, आयार० १, ७, २, ४ की तुलना कीजिए), **खमाह = क्षमध्वम्** है (उत्तर० ३६६ और ३६७) और **तालेह = ताडयत** है (नायाध० १३०५), जै०महा० में **अच्छह = ऋच्छत** है (आव०एर्त्से० १४, ३०), **कण्डूयह** मिलता है (एर्त्से० ३६, २१), **चिट्ठह, आइसह** और **गिण्हह = तिष्ठत, आदिशत** और **गृह्णीत** हैं (कालका० २६४, ११ और १२), **ठवेह** और **दंसेह = स्थापयत** और **दर्शयत** हैं (कालका० २६५, ७, २७४, २१), शौर० में **परित्ताअध = परित्रायध्वम्** है (शकु० १६, १०, १७, ६, विक्र० ३, १७, ५, २, मालती० १३०, ३), माग० में **पलित्ताअध** रूप हो जाता है (मृच्छ० ३२, २५), अ०माग० तथा जै०महा० में **करेह** रूप मिलता है (कप्प०, उवास०, नायाध०, कालका० २७०, ४५), अ०माग० में **कुव्वहा** भी होता है (आयार० १, ३, २, १), अप० मे **करेहु** (पिंगल १, १२२), **करहु** (हेच० ४, ३४६, पिंगल १, १०२ और १०७), **कुणेहु** (पिंगल १, ९० और ११८) और **कुणहु** रूप होते हैं (पाठ में **कुणह** है, पिंगल १, १६, ५३ और ७९), माग० में **कलेध** है (मृच्छ० ३२, १५, १२२, २, १४०, २३), शौर० में **पअत्तध = प्रयत-**

ध्वम् है (शकु ५२, १२), समस्ससध = समाश्वसित है (विक्र० ७ १), भपणेध = अपनयत, होध = भवत और मारेध = मारयत हैं (मृच्छ० ४, २४ १७, २१ ; १६१, १६) ; माग० में ओशलध = अपसरत है (मृच्छ० ९६, २१ और २१ ९७, १ १३४, २४ २५ १५७, ४ और १२ आदि-आदि मुद्रा० १५३, १ २५६, ४ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] चंड० ६४,५), सुणाध = शृणुत है (ललित ५६५, १७ और ५६६ ५ मृच्छ १५८, १९ प्रबोध० ४६ १४ और १६) और मालेध = मारयत है (मृच्छ १६५ २१ ; १६६, १) । इसी में रमह (मृच्छ ९९ १७) रूप श्लोक के अनुसार रमध्व में सुधार जाना चाहिए अप में पिमहु = पियत (हेच ४ ४२२, २०), ठवहु = स्थापयत और कहेहु = कथयत है (पिंगल १ ११९ और १२२) । दाक्षि में आमच्छध = आगच्छत है और इसके साथ-साथ अच्छेह = पतध्वम् है, करआह = कुरुत है तथा ओदह रूप भी आया है (मृच्छ ९९, २४ ; १ , १) । —इसका तृतीय-पुरुष सभी प्राकृत बोलियों में –न्तु में समाप्त होता है : महा० में वॅन्तु = व्रजन्तु है (गउड ४४), पम्वन्तु और खिज्जिन्तु रूप भी पाये जाते हैं (कर्पूर १, १ और ४) अ माग में भवन्तु आया है (विवाह ९ ८) निज्जन्तु = निर्यान्तु और फुसन्तु = स्पृशन्तु है (ओव § ४७ और ८७) तथा सुणन्तु = शृण्वन्तु है (नायाध ११३४) ; शौर में पसीदन्तु = प्रसीदन्तु(मुद्रा २५१,४), पॅक्खन्तु = प्रेक्षन्ताम् (मृच्छ ४, १) और होन्तु = भवन्तु हैं (विक्र ८७, २१) ; माग में पशीदन्तु = प्रसीदन्तु है (शकु ११३ ५) ; अप में पीअन्तु[1] मिलता है (हेच ४ ३८५) और सामान्य वर्तमान का रूप लेहिँ इसके लिए प्रयोग में आया है[2] ।

1 हेमचन्द्र १ २११ पर पिशल की टीका । हाल १ पेज ११ और संख्या ३ और हाल १४ में अशुद्ध मत दिया है । — २ शौर के सम्बन्ध में पिशल कू बाइ ८ १६२ और उसके बाद की तुलना कीजिए । — ३ वररुचि उण्ड हेमचन्द्रा पेज ४५ । — ४ यदि ज़े के स्थान में ज पढ़ा जाय तो हमारे सामने सामान्य वर्तमान का रूप उपस्थित हो जाता है ।

§ ४७२—जैसा कि § ४५२ में कहा गया है प्रथम और द्वितीय रूपावलियों के एक साथ मिल जाने से अ– वर्ग की प्रधानता हो गयी है । इसके साथ-साथ अप को छोड़ अन्य प्राकृत बोलियों में ए– वर्ग का विस्तार बहुत बढ़ गया है । वररुचि ७, १४ और क्रमदीश्वर ४ १७ १९ तक में अनुमति देते हैं कि सब कालों में ए का प्रयोग किया जा सकता है हेमचन्द्र भी ३, १५८ में मार्कण्डेय पन्ना ५१ से पूरा सहमत दिखाई देता है इसका आगमन सामान्यवर्तमान आज्ञावाचक तथा अंशक्रिया वर्तमान परस्मैपद में सीमित कर देता है । भामह ये उदाहरण देता है : हसेइ, हसइ; पढेइ, पढइ ; हसेॅत्ति, हसन्ति ; हसेउ हसउ ; हेमचन्द्र में हसेइ, हसइ, हसेम, हसेमु हसेमो ; हसेउ हसउ ; सुणेण सुणउ ; हसेॅन्तो हसन्तो रूप पाये जाते हैं ; क्रमदीश्वर में हसइ, हसेइ ; पढइ, पढेइ दिये गये हैं[3]; मार्कण्डेय में भणइ,

भणेइ, **भणासि**, **भणेसि** उदाहरण देखने मे आते है। **ए-** वाले ये रूप सभी गणों मे ढेर के ढेर पाये जाते है। इनके पास पास मे ही **अ-** वाले रूप भी मिलते है। यद्यपि हस्तलिपियाँ इस विषय पर बहुत डावाडोल हैं तोभी यह निर्णय तो निश्चय रूप से किया जा सकता है। इन **ए-** वाली क्रियाओं को प्रेरणार्थक और इ के साथ एक पक्ति में रखना, उसकी सर्वथा भिन्न बनावट इसकी अनुमति नहीं देती। **कृ** धातु के रूप **करइ** और **करेइ** बनाये जाते है, जै०शौर०, शौर० और माग० मे **करेदि** है किन्तु इनमें प्रेरणार्थक रूप **कारेइ** पाया जाता है। शौर० और माग० मे **कारेदि** भी पाया जाता है। जै०शौर० मे **कारयदि** भी मिलता है (कत्तिगे० ४०३, ३८५)। **हसइ** और **हसेइ** दोनो रूप काम मे लाये जाते हैं किन्तु प्रेरणार्थक मे **हासेइ** मिलाता है, शौर० में **मुञ्चादि** और **मुञ्चेदि** रूप देखने मे आते है किन्तु पेरणार्थक का रूप **मोआवेदि** है, आदि आदि। इसलिए यह कहना ठीक है कि **-ए** वर्ण जो प्राकृत मे ली गयी क्रियाओं में **-अय** का रूप हैं, सीधीसाधी क्रियाओं मे भी आ सकता है[१]। ब्लौख के अनुसार रूप जैसे कि शौर० में **गच्छे॑म्ह** (मृच्छ० ४३, २०, ४४, १८), ढक्की में **गे॑ण्हे॑म्ह** (मृच्छ० ३६, २४), **अणुसले॑म्ह** (मृच्छ० ३०, १३, ३६, १९), ढक्की, शौर० और माग० रूप **कीले॑म्ह** (मृच्छ० ३०, १८, ९४, १५, १३१, १८) तथा शौर० मे **सुवे॑म्ह** (मृच्छ० ४६, ९) को निश्चित रूप से अशुद्ध समझना, मैं ठीक नही समझता।[२]

१. याकोबी, औसगेवेल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री, § ५३, दो, जहाँ **नेमि** और **देमि** एकदम उडा दिये जाने चाहिए (§ ४६४)। — २ लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए § १२०, ३। — ३ वररुचि उन्ट हेमचन्द्रा, पेज ४५।

§ ४७३—प्रथम गण की क्रियाए जिनकी धातुओं के अन्त में **-इ** अथवा **-उ** आता है उनकी रूपावली अधिकाश मे सस्कृत की भाँति चलती है **जि** धातु का रूप महा० में **जअइ** बनता है (हेच० ४, २४१, गउड०, हाल मे **जि** देखिए, कर्पूर० २, ६), अ०माग० और जै०महा० मे **जयइ** रूप है (नन्दी० १, २२, एर्त्से०), शौर० में **जअदि** चलता है (विक्र० ४४, ४, मुद्रा० २२४, ४, ५ और ६)। आज्ञावाचक में शौर० रूप **जअदु** चलता है (शकु० ४१, १, ४४, ३, १३८, ६, १६२, १, विक्र० २७, ८, २८, १४, ४४, ३, ८७, २०, ८२, ८ और ९, रत्ना० २९६,१, ३०५, १५, ३२०, १६, ३२१, २८ आदि-आदि)। **जेदु** रूप जो बहुधा **जअदु** के साथ-साथ पाया जाता है, उदाहरणार्थ वेणी० ५९, १३ में जहाँ इसके साथ साथ २९, ११ में **जअदु** रूप मिलता है इसके अतिरिक्त प्रबोधचन्द्रोदय ३२, १२ में भी माग० **येदु** आया है तथा पास ही में ४०, ८ में शौर० रूप **जअदु** दिया गया है और शकु० के देवनागरी सस्करण में भी देखा जाता है (बोएटलिंक द्वारा सम्पादित शकु० २७, १२, २९,१७, ८९,१५, ९०,९, १०७,८), शुद्ध नही जान पडता तथा इसके ठीक प्रमाण नहीं दिये गये हैं[१]। महा०, जै०महा०, अ०माग०, ढक्की और अप० **जि** की रूपावली नवें गण की भाँति भी चलती है। महा०, जै०महा०, अ०माग० और अप०

ष्यम् है (शकु० ५२, १२), समस्ससध = समाश्वसित है (विक्र० ७ १), अवणघ = अपनयत, होध = भवत और मारघ = मारयत है (मृच्छ ४, २४ ; १७, २१ ; १६१, १६) माग० में ओशलध = अपसरत है (मृच्छ १९, २१ और २२ ९७, १ ११४, २४ २५ ; १५७, ४ और १२ आदि-आदि मुद्रा० १५३, ६ ; २५६, ४ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] चंड० ६४,५), सुणाघ = शृणुत है (ललित ५६५, १७ और ५६६, ५ मृच्छ० १५८, १९ प्रबोध० ६१, १४ और १५) और मालेध = मारयत है (मृच्छ० २१ , २१ १६६, १) । इसी में रमह (मृच्छ० ३९, १७) रूप स्टेन्त्सलर के अनुसार रमम्ह में सुधार जाना चाहिए अप में पिअहु = पिबत (हेच० ४, ४२२, २), ठवहु = स्थापयत और कहहु = कथयत है (पिंगल १, ११९ और १२२) । दाक्षि में आअच्छध = आगच्छत है और इसके साथ-साथ अत्तेह = पश्यथम् है, करेब्बाह = कुरुत है तथा जोहह रूप भी आया है (मृच्छ ९९, २४ ; १०० , १) । —इसका तृतीय पुरुष सभी प्राकृत बोलियों में -न्तु में समाप्त होता है : महा में द्गन्तु = व्ययन्तु है (गउड ४४), पत्तन्तु और पिसिहन्तु रूप भी पाये जाते हैं (कपूर १, १ और ४) अ माग में भवन्तु आया है (विवाह ५०८) निज्जन्तु = निर्यान्तु और फुसन्तु = स्पृशन्तु है (ओव § ४० और ८७) तथा सुणन्तु = शृण्वन्तु है (नायाध ११३४) शौर में पसीदन्तु = प्रसीदन्तु(मुद्रा० २५१,६), पेक्खन्तु = प्रेक्षन्ताम् (मृच्छ० ४, १) और होन्तु = भवन्तु हैं (विक्र० ८७, २१) ; माग० में पशीदन्तु = प्रसीदन्तु है (शकु ११३, ५) ; अप में पीडन्तु[1] मिलता है (हेच ४, ३८५) और सामान्य वर्तमान का रूप लहँहि इसके लिए प्रयोग में आया है ।

1 हेमचन्द्र १ २११ पर पिशल की टीका । हाल १ पेज १९ वारमंवरा ४ और हाल २४ में अमुद्ध मत दिया है । — २ शौर के सम्बन्ध में पिशल कू बाइ० ८ १२४ और उसके बाद की तुलना कीजिए । — ३ वररुचि उप्र हेमचन्द्रा पेज ४५ । — ४ यदि उ के स्थान में उँ पढ़ा जाय तो हमारे सामने सामान्य वर्तमान का रूप उपस्थित हो जाता है ।

§ ४७२—जैसा कि § ४५२ में कहा गया है प्रथम और द्वितीय रूपावलियों के एक साथ मिल जाने से अ- गण की प्रधानता हो गयी है । इसके साथ-साथ अ का एक अन्य प्राकृत बोलियों में ए- गण का विस्तार बहुत बढ़ गया है । वररुचि ७, १४ और क्रमदीश्वर ४ १७-१९ तक में अनुमति दी है कि सब धातुओं में ए का प्रयोग किया जा सकता है, हेमचन्द्र ने ३, १५८ में मार्कंडेय पन्ना ५१ से पूरा समर्थन किया है इसका आगमन सामान्यवर्तमान, आज्ञावाचक तथा भविष्यत वर्तमान पर जोर से आ गया कर देता है । भामह ने उदाहरण दिये है : हसए, हसाद; पढइ, पढह ; हसन्ति, हसन्ते ; हसेउ हसउ ; हेमचन्द्र में हसद, हसइ, हसमु, हसामु हसमो ; हसेउ हसउ ; सुणेउ सुणउ हसेन्ता हसन्ता रूप पाये जाते हैं ; क्रमदीश्वर में हसइ हसइ ; पाभइ, पाभइ दिये गये हैं ; मार्कंडेय में भणइ,

रोवइ मिलता है (हेच० ४,२३८), महा० में **रोवन्ति** आया है (हाल ४९४), जै०महा० में **रोवामि** पाया जाता है (द्वार० ५०३,१७)। व्याकरणकार **रुद्** के इस रूप को अधिक अपनाते हैं क्योंकि इसकी रूपावली औरों के समान ही चलती है (§ ४९५) तथा यह समान अर्थ में काम में आता है। इसके साथ जिप्सी भाषा के **रुवाव** और **रोवाव** की तुलना कीजिए जिनका अर्थ **रोना** है और अंगरेजी शब्द **टु क्राइ** (to cry) = रोना और चिल्लाना की भी तुलना कीजिए[2] [क्राइ शब्द लैटिन में **कुइरिटारे** (उच्चारण **किरि-टारे**) था। अब भी इटालियन में **ग्रिदारे**, स्पैनिश में **ग्रितार** तथा पोर्तुगीज में **ग्रितार** है। अंगरेजी में **क्राइ** और फ्रेंच में **क्रिए** (crier) रूप हैं। —अनु०]। — अ०माग० में **लुएॅज्जा** = ***लुवेज्जा** = **लुनीयात्** है (विवाह० ११८६), **पुवन्ति** = **प्लुवन्ते** है (विवाह० १२३२)। इनकी रूपावली छठे गण के अनुसार चलती है। ४९४, ५०३ और ५११ की भी तुलना कीजिए।

१ रत्नावली पेज ३६९ में कापेलर की टीका, इस नाटिका में प्राय. सर्वत्र पाठ के **जेदु** के पास सर्वोत्तम लिपियों में पाया जानेवाला रूप **जअदु** भी पाया जाता है, उदाहरणार्थ, मुद्रा० ३८, ४, ४६, ४, ५४, ६, ८४, ७ आदि-आदि की तुलना कीजिए। — २. हाल १४१ पर वेबर की टीका, हेच० ४, २२६ पर पिशल की टीका।

§ ४७४—अन्त में **-इ** वाले प्रथम गण के धातु सम्प्रसारण द्वारा **-अय** का **-ए** में परिवर्तन कर देते हैं **णेसि** और **णेइ** = **नयसि** तथा **नयति** (हाल ५५३, ९३९, ६४७), **आणेइ** रूप भी मिलता है (रावण० ८, ४३), अ०माग० और जै०शौर० में **नीणेइ** = **निर्णयति** (उत्तर० ५७८, एत्सें० २९, ६), जै०महा० में **नेइ** रूप आया है (एत्सें० ११, ११), महा० में **परिणेइ** देखा जाता है (कर्पूर० ७, ४), शौर० में **परिणेदि** है (विद्ध० ५०, १), **आणेदि** भी पाया जाता है (कर्पूर० १०९, ८)। इसके अनुसार जै०महा० में प्रथमपुरुष एकवचन में **नेमि** आया है (सगर ९, ६), महा० में **आणेमि** मिलता है (कर्पूर० २६, १), शौर० में **अवणेमि** = **अपनयामि** है, **अणुणेमि** और **पराणेमि** रूप भी देखने में आते हैं (मृच्छ० ६, ७, १८, २३, १६६, १६), तृतीयपुरुष बहुवचन में महा० में **णेॅन्ति** रूप आया है (रावण० ३, १४, ५, २, ६, ९२)। आज्ञावाचक में जै०महा० और शौर० में **णेहि** रूप है (एत्सें० ४३, २४, विक्र० ४१, २), अ०माग० और शौर० में **उवणेहि** = **उपनय** है (विवाग० १२१ और १२२, मृच्छ० ६१, १०, ६४, २० और २५, ९६, १४, विक्र० ४५, ९), शौर० में **आणेहि** चलता है (विक्र० ४१, १) तथा **आणेसु** है (शकु० १२५, ८ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], कर्ण० ५१, १७), **अवणेसु** = **अपनय** है (विद्ध० ४८, १०), शौर० में **णेदु** है (मृच्छ० ६५, १९, ६७, ७), शौर० और माग० में **णेॅम्ह** आया है (मुद्रा० २३३, ५ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], इसी नाटक में अन्यत्र और इसके कलकतिया संस्करण में **णेह्म** भी मिलता है), माग० में (मृच्छ० १७०, १२), जै०महा० में **नीणेह** पाया जाता है (द्वार० ४९६, ५), माग० और शौर० में **णेध** है (मृच्छ० ३२, १५, १६१, ९)। पद्य में जै०महा० में

में उक्त रूपावली के साथ-साथ यह पहले गण की रूपावली में चला गया। इसी में जिणादि रूप है (मृच्छ० ३४, २२); अ माग में जिणामि आया है (उत्तर ७०४); महा में जिणइ पाया जाता है (वर ८, ५६ हेच ४, २४१ सिंहराज पन्ना ४१), अ माग में पराइणइ है (विवाह १२१ और १२४); अप में जिणइ चलता है (पिंगल १, १२१ अ) महा मे जिणन्ति मिलता है (रावण १, ४) अ माग में जिणॅज्ज है (उत्तर २९१), जिणाहि भी आया है (ओव० ६ २; कप्प § ११४ ओव § ५१) और जिणन्तस्स = जयतः है (दस० ६१८, १८) जै महा में जिणिउं मिलता है (= जित्वा : आव एर्त्से ११,४२) अप में जिणिम है (= जित् पिंगल १,१ २ अ)। कर्मवाच्य के रूप जिणिज्जइ और जिव्वइ के विषय में § ५३६ देखिए। मार्क० पन्ना ७१ में धौर के लिए जिणव् रूप देता है, पता नहीं चलता कि वह इसकी अनुमति देता है अथवा निषेध करता है [मार्क पन्ना ७, ८७ = पन्ना ७१ में मेरे पास की छपी प्रति में जि धातु में णकारागम का आदेश है, उदाहरण के रूप में जिणइ दिया गया है। —अनु]। धौर में समस्सइम रूप मिलता है (शकु २ ८)। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसका वर्तमानकाल का रूप *समस्सभइ = समाश्रयति रहा होगा। अ माग में श्रि की भाँति ही श्रि की भी रूपावली नवें गण की भाँति चलती है : समुस्सिणामि और समुस्सिणासि मिलते हैं (आयार १, ७, २, १ और २)। — श्रि और मि धातु के संधियुक्त रूप पाये जाते हैं (§ ५ २)। –उ और –ऊ में समाप्त होनेवाले धातुओं के विषय में हेच ४ २३१ में सिखाता है कि इनमें बिना गण के भेद के –उ और –ऊ के स्थान में अव आदेश होता है : निण्हवइ और निहवइ = निह्नुते चवइ = च्यवते, रवइ = रौति, कवइ = कवते, सवइ = सूते और पसवइ = प्रसूते हैं। इस नियम से अ माग पसवइ रूप पाया जाता है (उत्तर ६८१), निण्हवॅज्ज भी मिलता है (आयार १, ५ १ १) निण्हवे आया है (दस ६११, ११), अनिण्हवमाण है (नायाध § ८१); जब कि कर्मवाच्य में महा रूप णिण्हुविज्जन्ति है (हाल ६५७), धौर में णिण्हुवीअदि पाया जाता है (रत्ना १ १, ९) और भूतकालिक अंशक्रिया शौर में णिण्हुविदा है (शकु ११७, ९)। यह छठे गण की रूपावली के अनुसार है = ०णिण्हुवइ है करके माना जाना चाहिए; महा में पण्हुअइ = प्रस्नौति है (हाल ४ ९ और ४६१ में पण्हुअइ रूप देखिए); अ माग और अप में रवइ आया है (ठाणंग ८९ ; पिंगल २ १४६)। रवइ रूप के साथ साथ रु की रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती है : रुवइ आया है (हेच ८ २३८); महा में रुवइ रुवन्ति और रुवसु रूप मिलते हैं (हाल में रुव् देखिए)। पडिरुवन्ति भी देखा जाता है (रावण), कर्मवाच्य में रुव्वइ और रुविज्जइ रूप काम में आये हैं (हेच ८ २४९) महा में रुव्वसु भी है (हाल १)। इससे रूप मिला कि प्राकृत में एक नयी धातु रुप् भी बन गयी थी जो धा और स्याम् की भाँति है (§ ४८२ और ४९७)। इस गौण धातु की रूपावली प्रथम गण में चलती है।

रोवइ मिलता है (हेच० ४,२३८), महा० मे **रोवन्ति** आया है (हाल ४९४), जै०महा० में **रोवामि** पाया जाता है (द्वार० ५०३,१७)। व्याकरणकार **रुद्** के इस रूप को अधिक अपनाते हैं क्योंकि इसकी रूपावली औरों के समान ही चलती है (§ ४९५) तथा यह समान अर्थ में काम में आता है। इसके साथ जिप्सी भाषा के **रुवाव** और **रोवाव** की तुलना कीजिए जिनका अर्थ **रोना** है और अगरेजी शब्द **टु क्राइ** (to cry) = रोना और चिल्लाना की भी तुलना कीजिए[2] [**क्राइ** शब्द लैटिन में **कुइरिटारे** (उच्चारण **किरिटारे**) था। अब भी इटालियन में **ग्रिदारे**, स्पैनिश में **ग्रितार** तथा पोर्तुगीज में **ग्रितार** है। अगरेजी में **क्राइ** और फ्रेंच में **क्रिए** (crier) रूप हैं। —अनु०]। — अ०माग० में **लुपॅज्जा** = *लुवेज्जा = **लुनीयात्** है (विवाह० ११८६), **पुवन्ति** = **प्लुवन्ते** है (विवाह० १२३२)। इनकी रूपावली छठे गण के अनुसार चलती है। ४९४, ५०३ और ५११ की भी तुलना कीजिए।

१ रत्नावली पेज ३६९ में कापेलर की टीका, इस नाटिका में प्राय. सर्वत्र पाठ के **जेदु** के पास सर्वोत्तम लिपियों में पाया जानेवाला रूप **जअद्** भी पाया जाता है, उदाहरणार्थ, मुद्रा० ३८, ४, ४६, ४, ५४, ६, ८४, ७ आदि-आदि की तुलना कीजिए। — २. हाल १४१ पर वेवर की टीका, हेच० ४, २२६ पर पिशल की टीका।

§ ४७४—अन्त में –इ वाले प्रथम गण के धातु सप्रसारण द्वारा **–अय** का **–ए** में परिवर्तन कर देते हैं . **णेसि** और **णेइ** = **नयसि** तथा **नयति** (हाल ५५३, ९३९, ६४७), **आणेइ** रूप भी मिलता है (रावण० ८, ४३), अ०माग० और जै०शौर० में **नीणेइ** = **निर्णयति** (उत्तर० ५७८, एर्त्से० २९, ६), जै०महा० में **नेइ** रूप आया है (एर्त्से० ११, ११), महा० में **परिणेइ** देखा जाता है (कर्पूर० ७, ४), शौर० में **परिणेदि** है (विद्ध० ५०, १), **आणेदि** भी पाया जाता है (कर्पूर० १०९, ८)। इसके अनुसार जै०महा० में प्रथमपुरुष एकवचन में **नेमि** आया है (सगर ९, ६), महा० में **आणेमि** मिलता है (कर्पूर० २६, १), शौर० में **अवणेमि** = **अपनयामि** है, **अणुणेमि** और **पराणेमि** रूप भी देखने में आते हैं (मृच्छ० ६, ७, १८, २३, १६६, १६), तृतीयपुरुष बहुवचन में महा० में **णॅन्ति** रूप आया है (रावण० ३, १४, ५, २, ६, ९२)। आज्ञावाचक में जै०महा० और शौर० में **णेहि** रूप है (एर्त्से० ४३, २४, विक्र० ४१, २), अ०माग० और शौर० में **उवणेहि** = **उपनय** है (विवाग० १२१ और १२२, मृच्छ० ६१, १०, ६४, २० और २५, ९६, १४, विक्र० ४५, ९), शौर० में **आणेहि** चलता है (विक्र० ४१, १) तथा **आणेसु** है (शकु० १२५, ८ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], कर्ण० ५१, १७), **अवणेसु** = **अपनय** है (विद्ध० ४८, १०), शौर० में **णेदु** है (मृच्छ० ६५, १९, ६७, ७), शौर० और माग० में **णॅम्ह** आया है (मुद्रा० २३३, ५ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], इसी नाटक में अन्यत्र और इसके कलकतिया सस्करण में **णेह्म** भी मिलता है), माग० में (मृच्छ० १७०, १२), जै०महा० में **नीणेह** पाया जाता है (द्वार० ४९६, ५), माग० और शौर० में **णेध** है (मृच्छ० ३२, १५, १६१, ९)। पद्य में जै०महा० में

(हेच० में दा शब्द देखिए), क्त्वा- वाला रूप करके- सूचक है , देप्पिणु (हेच० ४, ४४०) आया है तथा देवं है (हेच० ४, ४४१) । *दअइ = दयति रूपावली इस तथ्य की सूचना देती है कि शौर० मे भविष्यत्काल का रूप दइस्स = दइष्ये होना चाहिए (मृच्छ० ८०, २०), इसलिए दाइस्सं (बोएटलिंक द्वारा सम्पादित शकु० २५, ६ , कर्पूर० ११२, ५) अशुद्ध है , दइस्सामो रूप मिलता है (विद्ध० १२१, ३ , इसमें अन्यत्र अन्य रूप भी देखिए) , इस सम्बन्ध में वर० १२, १४ की तुलना कीजिए , माग० में दइश्शं आया है (मृच्छ० २१, ६ , ८ और १५, ३२, ९ और २४ , ३३, २२ , ३५, ८ , ८०, १९ , ८१, ५ , ९७, ३ , १२३, २१ , १२४, ५ और ९) तथा शौर० और माग० मे क्त्वा- वाला रूप दइअ = दयिम = दयित्वा है (मृच्छ० ३२, १९ [अ-दइअ है], ३७, १२ , ५१, १२ , १६८, २) । दा धातु केवल महा० और जै०महा० रूप दाऊण, दाउं और दिज्जइ (गउड०, हाल , रावण० , एत्सें०), अ०माग० में सामान्य धातु के रूप दाउं (उवास० , नायाध०) , शौर० दीअदि (मृच्छ० ५५, १६ , ७१, ६ , यही रूप मृच्छ० ४९, ७ के दिज्जदि के स्थान मे भी पढा जाना चाहिए), दीअदु (कर्पूर० १०३, ७), दादव्व (मृच्छ० ६६, २ , २५०, १४ , कर्पूर० १०३, ६ , जीवा० ४३, १२ और १५) , माग० रूप दीअदि और दीअदु (मृच्छ० १४५, ५) , महा०, जै०महा० और अ०माग० भविष्यत्काल के रूप दाहं और दासं (§ ५३०), भूतकालिक अशक्रिया दिण्ण और दत्त रूपों में शेष रह गया है (§ ५६६) । अ०माग० में अधिकाश में दलयइ रूप चलता है (§ ४९०), जिसके स्थान में बहुधा दूसरा रूप दलइ भी पाया जाता है (होएर्नले द्वारा सम्पादित उवास०, अनुवाद की नोटसख्या २८७) ।

§ ४७५—हेच० ४, ६० में भू के निम्नलिखित रूप देता है . होइ, हुवइ, हवइ, भवइ और सन्धियुक्त रूप पभवइ, परिभवइ, संभवइ और उब्भुअइ, जो सूचना देते हैं कि इनका मूल सीधा सीधा रूप *भुवइ रहा होगा । यह मूल रूप भुवदि में दिखाई देता है जिसे हेच० ४, २६९ में हुवदि, भवदि, हवदि, भोदि और होदि के साथ साथ शौर० बोली का रूप बताता है । इसके अतिरिक्त अ०माग० भुवि (§ ५१६) जो भूतकाल का रूप है यह देखा जाता है तथा पै० रूप फुवति में भी यह मिलता है (क्रम० ५, ११५) । वर० ८, १ , क्रम० ४, ५६ , मार्क० पन्ना ५३ में होइ और हुवइ रूप बताये गये हैं और वर० ८, ३ तथा मार्क० ५३ में भवइ के सधियुक्त रूप दिये गये हैं जैसे, पभवइ, उब्भवइ, संभवइ और परिभवइ । क्रम० नेहवइ का सन्धियुक्त रूप दिया है जैसे, पहवइ । वर० का सूत्र १२, १२ शौर० के विषय में अस्पष्ट है तथा क्रम० ५, ८१ और मार्क० पन्ना ५३ में भोदि का विधान करते हैं, जब कि मार्क० के मतानुसार शाकल्य होदि की अनुमति देता है और सिंहराजगणिन् पन्ना ६१ में भोदि, होदि, भुवदि, हुवदि इत्यादि सिखाता है । संस्कृत भवति से ठीक मिलता जुलता और उसके जोड का रूप भवइ है जो अ०माग० मे बहुत प्रचलित है (आयार० १, १, १, १ और उसके बाद , ठाणग० १५६, विवाह० ११६, १३७ , ९१७, ९२६, ९३५ और उसके बाद , नन्दी० ५०१ और उसके बाद ,

६), शौर० में **भविदव्वं** रूप आया है (शकु० ३२, ६, कर्पूर० ६१, ११), जिसकी पुष्टि जै०शौर० रूप **भविदव्वं** (कत्तिगे० ४०४, ३८८, हस्तलिपि में **भविद्दविय है**) और शौर० **भविदव्वता** (शकु० १२६, १०, विक्र० ५२, १३) करते हैं, सामान्य क्रिया का रूप **भविउं** है (हेच० ४, ६०), शौर० और माग० में **भविदुं** होता है (शकु० ७३, ८, ११६, १ [*यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए*], मालवि० ४७, ७ में अशुद्ध पाठ है[1])। शौर० में **त्वा-** वाला रूप **भविअ** बहुत अधिक काम में आता है (मृच्छ० २७, १२, ४५, ८, ६४, १९, ७८, १०, शकु० ३०, ९, ११९, ३ और १३, १६०, १, विक्र० २४, ५, २५, १५ आदि आदि) तथा यह रूप माग० में भी आया है (मृच्छ० १६, १६, १२४, २२, १३४, २३, १७०, ११), जै०शौर० में **भविय** है (पव० ३८०, १२, ३८७, १२), अ०माग० में **भवित्ता** मिलता है (ओव०, कप्प०), **पाउब्भवित्ताणं** भी आया है (उवास०)। भविष्यत्काल के विषय में § ५२१ देखिए। माग० कर्मवाच्य **भवीयदि** (मृच्छ० १६४, १०) भविष्यत्काल परस्मैपद के काम में आया है (§ ५५०)। महा० रूप **अग्गभवन्तीओ** (गउड० ५८८) **अग्गभरन्तीउ** के स्थान में अशुद्ध रूप है (गउड० पेज ३७६ में इसका दूसरा रूप देखिए)। ऊपर दिये गये अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० के रूपों के अतिरिक्त महा० में **हव-** वर्ग का रूप **हवन्ति** मिलता है (गउड० ९०१, ९३६, ९७६)। उपसर्ग जोडे जाने पर **भव-** वर्ग की ही प्रधानता देखी जाती है। ब्लौख[1] के सग्रह से, जो उसने शौर० और माग० से एकत्र किया है, मुझे केवल दो उदाहरण जोडने हैं, शौर० रूप० **अणुभवन्तो = अनुभवन्** (विक्र० ४१, ९) और **अणुभविद्** (कर्पूर० ३३,६)। केवल **प्र-** उपसर्ग के बाद साधारण रूप से **हव-** वर्ग काम में आता है। इसके अतिरिक्त सज्ञारूप **विहव**[2] में, अन्यथा यह रूप कभी कभी **अनु** के बाद दिखाई देता है, वह भी महा० **अणुहवेइ** (हाल २११), शौर० **अणुहवन्ति** (मालवि० ५१, २२, प्रबोध० ४४, १३) में। अस्तु, मालविकाग्निमित्र मे अन्यत्र **अणुहो`त्ति** रूप है और प्रबोधचन्द्रोदय मे **अणुभवन्ति** भी है जो पाठ पढा जाना चाहिए। इसी प्रकार शकुतला ७४, ६ में इसी नाटक मे अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार **विहावेदि** के स्थान में **विभावेदि** पढा जाना चाहिए। वररुचि वास्तव में ठीक ही बताता है कि सन्धि के अवसर पर **भव-** का प्रयोग किया जाना चाहिए।

१ ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ४१ में मृच्छकटिक, शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र और रत्नावली से **भू** के शौर० और माग० रूप एकत्र किये गये हैं। इस पर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे देखना चाहिए। — २ इसी ग्रन्थ के पेज ३९ और ४०। — ३ ब्लौख का उपर्युक्त ग्रंथ, पेज ४०।

§ ४७६—**हुव-** की अर्थात् छठे गण के अनुसार रूपावली, महा० रूप **हुवन्ति** में पायी जाती है (गउड० ९८८, हाल २८५)। इसका इच्छावाचक रूप **हुवीय** मिलता है (§ ४६६) और पै० में **हुवे`य्य** है (हेच० ४, ३२० और ३२३)। कर्मवाच्य का सामान्य वर्तमान का रूप माग० मे **हुवीअदि** आया है (वेणी० ३३, ६

पण्णव० ६६६ और ६६७ कप्प० एस (S) § १४–१६) भवसि है (विवाह० १२४५ और १४ ६), भवन्ति रूप भी आया है (विवाह० ९२६ और ११०९ ; ओव० § ७० और उसके बाद कप्प), भवउ भी देखने में आता है (कप्प) जै महा० में इसके रूप कम नहीं मिलते भवइ आया है (आव एत्सें १०, २० ; ११, १७ ; २ , ११ और उसके बाद), भवन्ति है (एत्सें ३, २४), भवसु भी मिलता है (एत्सें ११, १)। इनके साथ-साथ अ०माग और जै महा में आरम में –हु वाले रूप भी हैं जै०महा में हवामि आया है (एत्सें ३५, १५), अ० माग और जै महा० में हवइ है (पण्णव० ३२ और ११५ नन्दी० १२९ और ३६१ तथा उसके बाद ; उत्तर ३४२ ; ३४४ ; ७५४ [इसके पास ही होइ रूप आया है]; आव एत्सें ११, ४४) ; अ माग में हवन्ति पढ़ता है (सूय० २५१ और २५५ ; विवाह ११८ पण्णव० ८ ; ४२ ९१ ७४ १०६ ११६ आदि आदि ; नंदी ४६१ ; जीवा० २११ ओव § ११०) इसी भाँति इच्छा वाचक म भी भवेज्जा (ओव § १८२) और द्वितीयपुरुष बहुवचन के रूप भवेज्जाह (नायाध ९१२ ९१५ ; ९१८ ९२०) के साथ-साथ पद्य में हवेज्ज (सूय० ३८१ ; विवाह ४२६ ; आव § १७१), हवेज्जा (उत्तर ४५९) और जै महा में हविज्ज रूप आये हैं (एत्सें ७८, १८)। गद्य में आवश्यक एत्सेंलुगन २९, ११ के हवेज्जा के स्थान में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार हो ज्ज पढ़ा जाना चाहिए। अ माग और जै महा में इच्छावाचक रूप भवे भी आया है (विवाह ४५९ ; उत्तर ६७८ ; नंदी २१७ ; एत्सें)। शौर और माग में प्रथमपुरुष एकवचन का रूप भवामि, प्रथम–, द्वितीय– और तृतीयपुरुष एकवचन तथा तृतीयपुरुष बहुवचन भवे रूप ही केवल काम में आते हैं (§ ४६ –४९२)। अभियुक्त क्रियाओं में शौर में पहुव रूप भी पाया जाता है (शकु २९, १) ; शौर में हुव रूप अशुद्ध है (मालवि ४, १ और ३)। अ शौर में हवदि रूप बहुत अधिक काम में लाया जाता है (पव १८०, १८१, १६ ; १८२, २४ १८४, ५४ और ५८ ; १८५, ६६ ; १८६, ७ और ७४ ; १८७, १८ और १९, १८८, ५ ; कत्तिगे ३९८, ३ ३ ८ , ३३४), हवदि भी मिलता है (कत्तिगे ४ १ ३८१ ; हस्तलिपि में हवेइ है) इसके साथ-साथ हादि आया है (पव १८१, १८ ; १८५, ६८ ; १८६, ६ ; कत्तिगे ३९९, १०८ ; ४००, ३२९ ; ३२८ ; ३२ और ३३ ८ ९, ३६८ ; ८ ३, ३७२ ; ३७६ और ३८१ ८ ८ ३ १), हामि पढ़ता है (पव १८५, ६९), हुन्ति है (कत्तिगे ४ १, ३५२ [इस हुन्ति का कुमाउनी में हुनि हो गया है। —अनु]), हाति रगा जाता है (कत्तिग ८ २, ३६३ और ३६४ ४ ८, ३८७), सामान्य क्रिया हादुं है (कत्तिग० ८ २ ३६७ ; हस्तलिपि में हाउं है)। इसका इच्छावाचक रूप हवे है (प० १८० २५ ; कत्तिगे ३ ८ ३ २ ; ३९९, ३ ९ ; ३११ ; ३१५ ; ८ , ३३६ ; ८ १ ३३८ और ३८५ तथा उसके बाद आदि आदि)। हेमचन्द्र ने अन्न शौर रूप हवदि और हादि पाये होंगे (§ २१ और २२)। ऊपर दिये गये रूपों का धातु भव- वर्ग के अ त रूप विरल हैं। माग में भवामि है (मृच्छ ११७,

६), शौर० में भविदव्वं रूप आया है (शकु० ३२, ६ , कर्पूर० ६१, ११), जिसकी पुष्टि जै०शौर० रूप भविदव्व (कत्तिगे० ४०४, ३८८ , हस्तलिपि में भविदविय है) और शौर० भविदव्वता (शकु० १२६, १० , विक्र० ५२, १३) करते हैं , सामान्य क्रिया का रूप भविउ है (हेच० ४ , ६०), शौर० और माग० में भविदुं होता है (शकु० ७३, ८ , ११६, ४ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], मालवि० ४७, ७ में अशुद्ध पाठ है[1]) । शौर० में स्त्वा- वाला रूप भविअ बहुत अधिक काम में आता है (मृच्छ० २७, १२ , ४५, ८ , ६४, १९ , ७८, १० , शकु० ३०, ९ , ११९, ३ और १३ , १६०, १ , विक्र० २४, ५ , २५, १५ आदि आदि) तथा यह रूप माग० में भी आया है (मृच्छ० १६, १६ , १२४, २३ , १३४, २३ , १७०, ११), जै०शौर० में भविय है (पव० ३८०, १२ , ३८७, १२), अ०माग० में भवित्ता मिलता है (ओव० , कप्प०), पाउब्भवित्ताणं भी आया है (उवास०) । भविष्यत्काल के विषय में § ५२१ देखिए । माग० कर्मवाच्य भवीयदि (मृच्छ० १६४, १०) भविष्यत्काल परस्मैपद के काम में आया है (§ ५५०) । महा० रूप अग्गभवन्तीओ (गउड० ५८८) अग्गभरन्तीउ के स्थान में अशुद्ध रूप है (गउड० पेज ३७६ में इसका दूसरा रूप देखिए) । ऊपर दिये गये अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० के रूपों के अतिरिक्त महा० में हव- वर्ग का रूप हवन्ति मिलता है (गउड० ९०१ , ९३६ , ९७६) । उपसर्ग जोड़े जाने पर भव- वर्ग की ही प्रधानता देखी जाती है । ब्लौख[1] के संग्रह से, जो उसने शौर० और माग० से एकत्र किया है, मुझे केवल दो उदाहरण जोड़ने हैं, शौर० रूप० अणुभवन्तो = अनुभवन् (विक्र० ४१, ९) और अणुभविद् (कर्पूर० ३३,६) । केवल प्र- उपसर्ग के बाद साधारण रूप से हव- वर्ग काम में आता है । इसके अतिरिक्त संज्ञारूप विहव[2] में , अन्यथा यह रूप कभी कभी अनु के बाद दिखाई देता है, वह भी महा० अणुहवेइ (हाल २११), शौर० अणुहवन्ति (मालवि० ५१, २२ , प्रबोध० ४४, १३) में । अस्तु, मालविकाग्निमित्र में अन्यत्र अणुहोॅन्ति रूप है और प्रबोधचन्द्रोदय में अणुभवन्ति भी है जो पाठ पढ़ा जाना चाहिए । इसी प्रकार शकुंतला ७४, ६ में इसी नाटक में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार विहावेदि के स्थान में विभावेदि पढ़ा जाना चाहिए । वररुचि वास्तव में ठीक ही बताता है कि सन्धि के अवसर पर भव- का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

1 ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ४१ में मृच्छकटिक, शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र और रत्नावली से भू के शौर० और माग० रूप एकत्र किये गये हैं । इस पर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे देखना चाहिए । — २ इसी ग्रन्थ के पेज ३९ और ४० । — ३ ब्लौख का उपर्युक्त ग्रंथ, पेज ४० ।

§ ४७६—हुव- की अर्थात् छठे गण के अनुसार रूपावली, महा० रूप हुवन्ति में पायी जाती है (गउड० ९८८ , हाल २८५) । इसका इच्छावाचक रूप हुवीय मिलता है (§ ४६६) और पै० में हुवेॅय्य है (हेच० ४, ३२० और ३२३) । कर्मवाच्य का सामान्य वर्तमान का रूप माग० में हुवीअदि आया है (वेणी० ३३, ६

पण्णव ६६६ और ६६७ कप्प एस (S) § १४–१६) भवसि है (विवाह १२८५ और १४ ६), भवसि रूप भी आया है (विवाह १२६ और १३ १ ओव० § ७ और उसके बाद कप्प०) भवउ भी देखने में आता है (कप्प); जै महा में इसके रूप कम नहीं मिलते : भवइ आया है (आव०एत्सें० १, २० १३, ३७ २०, ११ और उसके बाद), भवसि है (एत्सें० ३, १४), भवसु भी मिलता है (एत्सें० ११, १)। इनके साथ-साथ अ माग० और जै महा में आरंभ में –इ वाले रूप भी हैं : जै महा० में हवामि आया है (एत्सें० २५, १५) अ० माग और जै महा में हवइ है (पण्णव १२ और ११५ ; नन्दी १२१ और १३१ तथा उसके बाद उत्तर० २४२ २४४ ७५४ [इसके पास ही होइ रूप आया है] ; आव एत्सें० ३६, ४४) अ माग में हवन्ति चलता है (सूय० २५१ और २५५ ; विवाह ११८ पण्णव ४ ; ४२ ; ९१ ७४ १ ६ ; ११९ आदि आदि नंदी ४११ जीवा० २१९ ; ओव § ११) ; इसी भाँति इच्छा वाचक में भी भवेँज्जा (ओव § १८२) और द्वितीयपुरुष बहुवचन के रूप भवेँज्जाह (नायाध ९१२ ९१५ ; ९१८ ; ९२) के साथ-साथ पद्य में हवेँज्ज (सूय० १४१ विवाह ८२६ ; ओव § १७१), हवेँज्जा (उत्तर ४५१) और जै महा में हविज्ज रूप आये हैं (एत्सें ७४, १८)। गद्य में आवश्यक एत्सेंलुंगन २९, ११ के हवेँज्जा के स्थान में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार होँज्ज पढ़ा जाना चाहिए। अ माग और जै महा में इच्छावाचक रूप भवे भी आया है (विवाह ४५१ ; उत्तर ६७८ ; नंदी ११७ ; एत्सें)। शौर और माग० में प्रथमपुरुष एकवचन का रूप भवामि, प्रथम– द्वितीय– और तृतीयपुरुष एकवचन तथा तृतीयपुरुष बहुवचन भवे रूप ही केवल काम में आते हैं (§ ८१ –४६२)। संधियुक्त क्रियाओं में शौर में पहले रूप भी पाया जाता है (शकु २५, १) ; शौर० में हवं रूप अशुद्ध है (मालवि ४, १ और ३)। जै शौर में हवदि रूप बहुत अधिक काम में लाया जाता है (पव ३८०, ९ ; ३८१, १६ ; ३८२ २४ ३८४, ५४ और ५८ ; ३८५, ६५ ; ३८६, ७ और ७८ ; ३८७, १८ और १९, ३८८, ५ ; कत्तिगे ३९८, ३ ३ ;४ , ३१४), हवदि भी मिलता है (कत्तिग ४ २ ३८१ ; हस्तलिपि में हवेइ है) इसके साथ-साथ हादि आया है (पव ३८१, १८ ; ३८५ ६८ ; ३८६, ६ कत्तिगे ३९९, ३ ८ ; ४००, ३३६ ; ३३८ ; ३३९ और ३३ ; ४ २, ३६८ ; ४ ३, ३७२ ; ३७३ और ३८१ ४ ४ ३९१), हामि चलता है (पव ३८५, ६५), हुन्ति है (कत्तिगे ४ १, ३५२ [इस हुन्ति का कुमाउनी में हुनि हो गया है। —अनु]), हान्ति देखा जाता है (कत्तिग ४ २, ३६३ और ३६४ ४०४, ३८७) सामान्य क्रिया होदुं है (कत्तिग ४ २ ३५७ ; हस्तलिपि में हार्दु है)। इसका इच्छावाचक रूप हवे है (पव ३८७ १९ ; कत्तिगे ३९८ ३ २ ३९९, ३ ९ ; ३१२ ; ३१५ ; ४ , ३३६ ; ४ १ ३३८ और ३८५ तथा उसके बाद आदि आदि)। हेमचन्द्र ने अन्न शौर का हवदि और होदि पाठ होना (§ २१ और २२)। ऊपर दिये गये रूपों को छोड़ भव– भर्व के अन्य रूप विरल हैं : माग में भवामि है (मृच्छ ११७,

६), शौर० में **भविद्व्वं** रूप आया है (शकु० ३२, ६, कर्पूर० ६१, ११), जिसकी पुष्टि जै०शौर० रूप **भविद्व्वं** (कत्तिगे० ४०४, ३८८, हस्तलिपि में **भविदविय** है) और शौर० **भविद्व्वता** (शकु० १२६, १०, विक्र० ५२, १३) करते हैं, सामान्य क्रिया का रूप **भविउं** है (हेच० ४, ६०), शौर० और माग० में **भविदुं** होता है (शकु० ७३, ८, ११६, १ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], मालवि० ४७, ७ में अशुद्ध पाठ है[1])। शौर० मे **त्का**– वाला रूप **भविअ** बहुत अधिक काम मे आता है (मृच्छ० २७, १२, ४५, ८, ६४, १९, ७८, १०, शकु० ३०, ९, ११९, ३ और १३, १६०, १, विक्र० २४, ५, २५, १५ आदि आदि) तथा यह रूप माग० में भी आया है (मृच्छ० १६, १६, १२४, २३, १३४, २३, १७०, ११), जै०शौर० में **भविय** है (पव० ३८०, १२, ३८७, १२), अ०माग० में **भवित्ता** मिल्ता है (ओव०, कप्प०), **पाउब्भवित्ताणं** भी आया है (उवास०)। भविष्यत्काल के विषय में § ५२१ देखिए। माग० कर्मवाच्य **भवीयदि** (मृच्छ० १६४, १०) भविष्यत्काल परस्मैपद के काम में आया है (§ ५५०)। महा० रूप **अग्गभवन्तीओ** (गउड० ५८८) **अग्गभरन्तीउ** के स्थान में अशुद्ध रूप है (गउड० पेज ३७६ में इसका दूसरा रूप देखिए)। ऊपर दिये गये अ॰माग०, जै०महा० और जै०शौर० के रूपों के अतिरिक्त महा० में **हव**– वर्ग का रूप **हवन्ति** मिलता है (गउड० ९०१, ९३६, ९७६)। उपसर्ग जोड़े जाने पर **भव**– वर्ग की ही प्रधानता देखी जाती है। ब्लौख[1] के संग्रह से, जो उसने शौर० और माग० से एकत्र किया है, मुझे केवल दो उदाहरण जोडने हैं, शौर० रूप० **अणुभवन्तो = अनुभवन्** (विक्र० ४१, ९) और **अणुभविद्** (कर्पूर० ३३,६)। केवल **प्र**– उपसर्ग के बाद साधारण रूप से **हव**– वर्ग काम में आता है। इसके अतिरिक्त संज्ञारूप **विहव**[2] में, अन्यथा यह रूप कभी-कभी **अनु** के बाद दिखाई देता है, वह भी महा० **अणुहवेइ** (हाल २११), शौर० **अणुहवन्ति** (मालवि० ५१, २२, प्रबोध० ४४, १३) मे। अस्तु, मालविकाग्निमित्र में अन्यत्र **अणुहो॔न्ति** रूप है और प्रबोधचन्द्रोदय में **अणुभवन्ति** भी है जो पाठ पढा जाना चाहिए। इसी प्रकार शकुतला ७४, ६ में इसी नाटक में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार **विहावे॔दि** के स्थान मे **विभावे॔दि** पढा जाना चाहिए। वररुचि वास्तव में ठीक ही बताता है कि सन्धि के अवसर पर **भव**– का प्रयोग किया जाना चाहिए।

१ ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ४१ में मृच्छकटिक, शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र और रत्नावली से **भू** के शौर० और माग० रूप एकत्र किये गये हैं। इस पर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे देखना चाहिए। — २ इसी ग्रन्थ के पेज ३९ और ४०। — ३ ब्लौख का उपर्युक्त ग्रंथ, पेज ४०।

§ ४७६—**हुव**– की अर्थात् छठे गण के अनुसार रूपावली, महा० रूप **हुवन्ति** में पायीं जाती है (गउड० ९८८, हाल २८५)। इसका इच्छावाचक रूप **हुवीय** मिल्ता है (§ ४६६) और पै० में **हुवे॔य्य** है (हेच० ४, ३२० और ३२३)। कर्मवाच्य का सामान्य वर्तमान का रूप माग० में **हुवीअदि** आया है (वेणी० ३३, ६

पण्णव० ६६६ और ६६७ कप्प० एस (S) § १४-१६) मयसि है (विवाह० १२४५ और १४ ६), मयसि रूप भी आया है (विवाह १२६ और ११०९ ; ओव० § ७० और उसके बाद कप्प), भवउ भी देखने में आता है (कप्प०) जै महा में इसके रूप कम नहीं मिलते : भवइ आया है (आव०एर्त्से १ , २ ; १३, १७ ; २ , ११ और उसके बाद), भवन्ति है (एर्त्से १, १४), भवसु भी मिलता है (एर्त्से ११, १)। इनके साथ-साथ अ०माग और जै महा में आरंभ में -ह वाले रूप भी हैं : जै महा में हवामि आया है (एर्त्से १५, १५) अ० माग और जै महा में हवइ है (पण्णव १२ और ११५ नन्दी० १२१ और १६१ तथा उसके बाद उत्तर० १४२ १४४ ७५८ [इसके पास ही होइ रूप आया है] आव एर्त्से १६, ४४) अ माग में हवन्ति पाया जाता है (सूय० २५३ और २५५ विवाह ११८ पण्णव ४ ४२ ९१ ; ७४ ; १ ६ ; ११६ आदि आदि नंदी ४११ जीवा २१९ ; ओव § ११) इसी भाँति इच्छा वाचक में भी मवेंज्जा (ओव § १८२) और द्वितीयपुरुष बहुवचन के रूप भवॅज्जाह (नायाध ९१२ ; ९१५ ; ९१८ ; ९२) के साथ-साथ पद्य में हवॅज्जा (सूय० १८१ विवाह ४२६ आव § १७१) हवॅज्जा (उत्तर ४५९) और जै महा० में हविज्ज रूप आये हैं (एर्त्से ७४ १८) । गद्य में आवश्यक एर्त्सेलुंगन २९, १९ के हवॅज्जा के स्थान में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार होॅज्ज पढ़ा जाना चाहिए। अ माग और जै महा में इच्छावाचक रूप भवे भी आया है (विवाह० ४५१ ; उत्तर० ६७८ नंदी ११७ एर्त्से)। शौर और माग में प्रथमपुरुष एकवचन का रूप भवेअं, प्रथम- द्वितीय- और तृतीयपुरुष एकवचन तथा तृतीयपुरुष बहुवचन भवे रूप ही केवल काम में आते हैं (§ ४६ -४६२) । संधियुक्त क्रियाओं में शौर में पहले रूप भी पाया जाता है (शकु २५,१) शौर में हवे रूप अशुद्ध है (मालवि ४, १ और ३)। जै शौर में हवदि रूप बहुत अधिक काम में आया जाता है (पव० १८ , ; १८१, १६ ; १८२, २४ ; १८४, ५४ और ५८ १८५, ६५ ; १८६, ७ और ७४ ; १८७, १८ और १९, १८८, ५ ; कत्तिगे ३९८, ३ ३ ; ४ , ३१४), हवेदि भी मिलता है (कत्तिगे ४ १, ३४१ ; हस्तलिपि में हवेइ है) इसके साथ-साथ हादि आया है (पव १८१ १८ ; १८५, ६४ ; १८६, ६ कत्तिगे ३९९, १ ८ ; ४ ०, ३२६ ; ३२८ ; ३२९ और ३३ ४ १, ३९८ ; ४ ३, ३७२ ; ३७३ और ३८१ ; ४ ६, ३९१), हामि पाया जाता है (पव १८५, ६१), हुन्ति है (कत्तिगे ४ १ ३९२ [इस हुन्ति का कुमाउनी में हुनि हो गया है। —अनु]), हाचि देखा जाता है (कत्तिगे ४ २, ३६१ और ३६४ ; ४ ४, ३८७) सामान्य क्रिया हादुं है (कत्तिगे ४ २ ३५७ ; हस्तलिपि में हाउं है)। इसका इच्छावाचक रूप हवे है (पव १८७, २५ ; कत्तिगे ३९८ ३ ३ १ १ १ ; ३१२ ; ३१५ ; ४ ०, ३३६ ; ४ १ ३३८ और ३४५ तथा उसके बाद आदि आदि)। हेमचन्द्र ने भाव शौर रूप हवदि और हादि पाये होंगे (§ २१ और २२)। ऊपर दिये गये रूपों का धातु भव- वर्ग के अन्य रूप विरल हैं : माग में भवामि है (मृच्छ ११७,

विस्सनशाफ्न त्सु बर्लीन, १८८२, ८११ और उसके बाद तथा इंडिशे स्टुडिएन १६, ३९३ की भी तुलना कीजिए। — २. इनके उदाहरण ब्लौख के उपर्युक्त ग्रन्थ के पेज ४१ में हैं। — ३. पिशल, कू० बाइ० ८,१४१ और ऊपर § ४६९ में, माग० में भोदि आता है, उदाहरणार्थ, मृच्छकटिक १२१, ६, १६८, ३, ४ और ५, १६८, ६ में होदि अशुद्ध है। — ४. ब्लौख के उपर्युक्त ग्रन्थ का पेज ४१, फ्लेक्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज २० और उसके बाद में बुर्कहार्ड ने भी एक संग्रह दिया है। — ५. ब्लौख के उपर्युक्त ग्रन्थ का पेज ४२। भू के रूपों के लिए डेलिउस, राडीचेस प्राकृतिकाए में यह शब्द देखिए और तुलना कीजिए।

§ ४७७—जिन धातुओं के अन्त में ऋ और ॠ आते हैं उनके वर्ग के अन्त में **अर** आ जाता है : **धरइ, वरइ, सरइ, हरइ, जरइ** और **तरइ** रूप बनते हैं (वर० ८, १२, हेच० ४, २३४, क्रम० ४, ३२)। प्राचीन संस्कृत में कुछ ऐसे धातुओं की रूपावली वैदिक रीति से चलती है अथवा बहुत कम पायी जाती है अथवा केवल व्याकरणकारों द्वारा इनकी परम्परा दी गयी है जैसे, **जृ, धृ, मृ, वृ** और **स्तृ**। प्राकृत बोली में इनकी रूपावली नियमानुसार चलती है। इसके साथ-साथ इनकी रूपावली बहुत अधिक **ए** वर्ग की भाँति भी चलती है। इस नियम से महा० और जै०महा० मे **धरइ** और **धरेमि, धरेइ** और **धरें न्ति** रूप मिलते हैं, वर्तमानकालिक अंशक्रिया में **धरन्त** और **धरें न्त** आये हैं (गउड०, हाल, रावण०, एर्त्से०), शौर० मे **धरामि** = **ध्रिये** हैं (उत्तररा० ८३, ९), अप० में **धरइ** (हेच० ४, ३३४, ४३८, ३) और **धरेइ** रूप पाये जाते हैं (हेच० ४, ३३६), **धरहिँ** भी चलता है (हेच० ४, ३८२), आज्ञावाचक में **धरहि** मिलता है (हेच० ४, ४२१, पिंगल १, १४९)। — महा० में **ओसरइ** = **अपसरति** है, **ओसरन्त** = **अपसरत्** और **ओसरिअ** = **अपसृत** है (गउड०, हाल, रावण०), आज्ञावाचक मे **ओसर** और **ओसरसु** रूप चलते हैं (हाल), जै०महा० में **ओसरइ** आया है (एर्त्से० ३७, ३०), माग० में **ओशलदि** हो जाता है (मृच्छ० ११५, २३), **ओशलिअ** = **अपसृत्य** है (मृच्छ० १२९, ८), जै०महा० और शौर० मे आज्ञावाचक रूप **ओसर** = **अपसर** है (एर्त्से० ७१, ३१, विक्र० १०, १२)। यह रूप माग० में **ओशल** हो जाता है (प्रबोध० ५८, २, मद्रासी संस्करण ७३, ६ के अनुसार यही रूप शुद्ध है), **ओसरम्ह** भी मिलता है (उत्तररा० ६६, ७), जै०महा० में **ओसरह** = **अपसरत** है (कालका० २६५, ६, दो, ५०७, १), माग० में आज्ञावाचक रूप **ओशलध** है (§ ४७१), महा० मे **समोसरइ, समोसरन्त** आदि आदि रूप है (गउड०, हाल, रावण०), अ०माग० में आज्ञावाचक रूप **समोसरह** है (नायाध० १२३३ और १२३५), शौर० में **णीसरदि** आया है (धूर्त० ८, ६), महा० और अ०माग० में **पसरइ** का प्रचलन है (रावण०, विवाह० ९०९), शौर० में यह **पसरदि** हो जाता है (शकु० ३१, १०), माग० में **पशलदि** रूप देखा जाता है (मृच्छ० १०, १५), ढक्की में आज्ञावाचक रूप **पसलु** है (मृच्छ० ३२, १६), ढक्की में **अणुसलें म्ह** रूप भी आया है (§ ४७२)। इसके साथ साथ शौर० में **अणुसरम्ह** मिलता है (विद्ध० १०५, ५)।

और ७ १९, ८ ; यहाँ यह रूप परस्मैपद भविष्यत्काल के अर्थ में आया है ; § ४७९ में भवीअदि की तुलना कीजिए) और शौर० तथा माग में इसका प्रयोग विशेषतः भविष्यत्काल में बहुत चलता है (§ ५२१) । एक अशुद्ध और बोली की परम्परा पर आधारित करनेवाला परस्मैपद वर्तमानकालिक अंशक्रिया का स्त्रीलिंग का रूप शौर में हुवन्ती है तथा ऐसा ही रूप कर्तव्यवाचक अंशक्रिया का माग में हुविदव्वं है (कलित ५५५ ५ ; ५६६, ११) । महा , जै महा और अप असंयुक्त सीधे सादे रूप में प्रधान वर्ग हुव– से निकला हो– आया है जो कभी-कभी अ माग में भी आता है और जै शौर में बहुत चलता है : होमि, होसि, होइ, हॉन्ति और हुन्ति रूप मिलते हैं ; आज्ञावाचक में होहि, होउ हाउ, होमो और होन्तु हैं ; कर्मवाच्य के सामान्य वर्तमानकाल में होईअइ और होइज्जइ रूप आये हैं ; परस्मैपद में वर्तमान कालिक अंशक्रिया में हॉन्तो और हुन्तो रूप हैं; आत्मनेपद में होयाणो मिलता है ; सामान्यक्रिया में होउं तथा जै शौर में होदुं चलते हैं क्त्वा– वाला रूप होऊण है और कर्तव्यवाचक अंशक्रिया अ माग तथा जै महा० में होयव्व है¹। हॉज्ज और हॉज्ज के विषय में § ४६६ देखिए। उक्त रूपों के अतिरिक्त अ माग में प्रार्थनावाचक रूप केवल होइ और होउ हैं। ये भी वाक्यांश होउ णं में पाया जाता है और भूतकाल का रूप होत्था का पर्याप्त प्रचलन है । शौर प्रयोग निम्नलिखित प्रकार के हैं : होमि होसि और होन्ति, आज्ञावाचक में होहि, हॉम्ह, होध और हॉन्तु, माग० आज्ञावाचक में होध' चलता है किन्तु शौर , माग तथा ढक्की में केवल भोदि और भोदु रूप देखने में आते हैं¹ । पाठों में अशुद्ध रूप निम्नलिखित हैं : भोमि, होदि, भोदि, हादु और भॉन्तु । पै में फोति रूप पाया जाता है (क्रम ५, ११९) । शौर और माग में कर्तव्यवाचक अंशक्रिया का रूप होदव्व है' ; शौर और जै शौर रूप भविदव्व के विषय में § ४७५ देखिए और माग मे हुविदव्व के सम्बन्ध मे ऊपर देखिए । महा में भूतकालिक अंशक्रिया का रूप हूअ मिलता है (हेच ४, ६४ क्रम ४ ५७ ; मार्क पन्ना ५१) जो मण्डणीहूर्म में आया है (हाल ८), अणुहूअ (हेच ४, ६४ हाल २९) परिहूयप्प (हाल ११४ इस ग्रन्थ में अन्यत्र आये रूप तथा बंबइया संस्करण के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) पहूअ (हेच ४, ६४) तथा अप हुआ (हेच ४, १८४) और हुआ (हेच ४ १५१) में यह रूप आया है । शौर ढक्की और दाक्षि में –भूदा मिलता है (उदाहरणार्थ शौर में : मृच्छ ५५ १६ ; ७८, १ ; शकु ४१ १ ; ८ २ ; विक्र २१ १४ ; ५२, ११ ; ५१ १२ [इस ग्रन्थ में –भूदो भी है] ; ढक्की में : मृच्छ ३६ २१ ; ३९, १६ ; दाक्षि में : मृच्छ १ १ ११), माग में किमप्पाहूद = किंपतप्रभूत है (वेणी ३४ १६) । — सिंहराज पन्ना ७० में ठीक भ– वर्ग की भाँति निम्न लिखित रूप दिये गये हैं : होमइ, होप्पइ, हुभइ और हुपइ ।

१ इनके उदाहरण § २११ में हाउ के साथ दिए गये रूपों और इस क्रिया से सम्बन्धित § में तथा ज शौर के उदाहरण § ४७५ में देखिए । इस सम्बन्ध में वेबर त्सिगुंग्सबेरिष्टे डेर कोएनिगलिशन प्रौयसिशन आकादेमी डेर

विस्मनशाफ्न त्सु वर्लीन, १८८२, ८११ और उसके वाद तथा इंडिशे स्टुडिएन १६, ३९३ की भी तुलना कीजिए। — २. इनके उदाहरण ब्लौख के उपर्युक्त ग्रन्थ के पेज ४१ में हैं। — ३ पिशल, कू० बाइ० ८,१४१ और ऊपर § ४६९ में , माग० में भोदि आता है, उदाहरणार्थ, मृच्छकटिक १२१, ९ , १६८, ३ , ४ और ५, १६८, ६ में होदि अशुद्ध है। — ४. ब्लौख के उपर्युक्त ग्रन्थ का पेज ४१ , फ्लेक्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज २० और उसके वाद मे वुर्कहार्ड ने भी एक सग्रह दिया है। — ५. ब्लौख के उपर्युक्त ग्रन्थ का पेज ४२। भू के रूपों के लिए डेलिउस, राडीचेस प्राकृतिकाए मे यह शब्द देखिए और तुलना कीजिए।

§ ४७७—जिन धातुओं के अन्त में ऋ और ॠ आते हैं उनके वर्ग के अन्त में **अर** आ जाता है · **धरइ, वरइ, सरइ, हरइ, जरइ** और **तरइ** रूप बनते हैं (वर० ८, १२ , हेच० ४, २३४ , क्रम० ४, ३२)। प्राचीन सस्कृत में कुछ ऐसे धातुओं की रूपावली वैदिक रीति से चलती है अथवा बहुत कम पायी जाती है अथवा केवल व्याकरणकारों द्वारा इनकी परम्परा दी गयी है जैसे, **जॄ, धॄ, मॄ, वॄ** और **स्तॄ**। प्राकृत बोली मे इनकी रूपावली नियमानुसार चलती है। इसके साथ-साथ इनकी रूपावली बहुत अधिक **ए** वर्ग की भाँति भी चलती है। इस नियम से : महा० और जै०महा० में **धरइ** और **धरेमि, धरेइ** और **धरें न्ति** रूप मिलते है, वर्तमानकालिक अशक्रिया में **धरन्त** और **धरें न्त** आये है (गउड०, हाल , रावण० , एर्त्से०) , शौर० में **धरामि** = **ध्रिये** हैं (उत्तररा० ८३, ९) , अप० में **धरइ** (हेच० ४, ३३४ , ४३८, ३) और **धरेइ** रूप पाये जाते हैं (हेच० ४, ३३६), **धरहिँ** भी चलता है (हेच० ४, ३८२), आज्ञावाचक में **धरहि** मिलता है (हेच० ४, ४२१ , पिंगल १, १४९)। — महा० मे **ओसरइ** = **अपसरति** है, **ओसरन्त** = **अपसरत्** और **ओसरिअ** = **अपसृत** है (गउड० , हाल , रावण०), आज्ञावाचक मे **ओसर** और **ओसरसु** रूप चलते हैं (हाल) , जै०महा० मे **ओसरइ** आया है (एर्त्से० ३७, ३०) , माग० में **ओश-लदि** हो जाता है (मृच्छ० ११५, २३), **ओशलिअ** = **अपसृत्य** है (मृच्छ० १२९, ८) , जै०महा० और शौर० मे आज्ञावाचक रूप **ओसर** = **अपसर** है (एर्त्से० ७१, ३१ , विक्र० १०, १२)। यह रूप माग० में **ओशल** हो जाता है (प्रबोध० ५८, २ , मद्रासी सस्करण ७३, ६ के अनुसार यही रूप शुद्ध है), **ओसरम्ह** भी मिलता है (उत्तररा० ६६, ७), जै०महा० में **ओसरह** = **अपसरत** हैं (कालका० २६५, ६ , दो, ५०७, १), माग० में आज्ञावाचक रूप **ओशलध** है (§ ४७१) , महा० में **समोसरइ, समोसरन्त** आदि आदि रूप है (गउड० , हाल , रावण०), अ०माग० में आज्ञावाचक रूप **समोसरह** है (नायाध० १२३३ और १२३५) , शौर० में **णीसरदि** आया है (धूर्त० ८, ६) , महा० और अ०माग० में **पसरइ** का प्रचलन है (रावण० , विवाह० ९०९), शौर० में यह **पसरदि** हो जाता है (शकु० ३१, १०), माग० मे **पशलदि** रूप देखा जाता है (मृच्छ० १०, १५), ढक्की में आज्ञा-वाचक रूप **पसलु** है (मृच्छ० ३२, १६), ढक्की में **अणुसलें म्ह** रूप भी आया है (§ ४७२)। इसके साथ साथ शौर० में **अणुसरम्ह** मिलता है (विद्ध० १०५, ५)।

और ७ : १५, ८ यहाँ यह रूप परस्मैपद भविष्यत्काल के अर्थ में आया है ; § ४०५ में अर्धमागधी की तुलना कीजिए) और शौर० तथा माग० में इसका प्रयोग विशेषतः भविष्यत्काल में बहुत चलता है (§ ५२१)। एक अशुद्ध और बोली की परम्परा पर आधार करनेवाला परस्मैपद वर्तमानकालिक अंशक्रिया का स्त्रीलिंग का रूप शौर में हुवन्ती है तथा ऐसा ही रूप कर्तव्यवाचक अंशक्रिया का माग में हुविदव्वं है (ललित ५५५, ५ ; ५६६, ११)। महा , जै महा और अप असंयुक्त सीधे सादे रूप में प्रधान धर्म हुव- से निकला हो- आया है जो कभी कभी अ माग में भी आता है और जै०शौर में बहुत चलता है : होमि, होसि, होइ, हों ति और हुन्ति रूप मिलते हैं आज्ञावाचक में होहि, होसु, होउ, होमो और होन्तु हैं कर्मवाच्य के सामान्य वर्तमानकाल में होईअइ और होइज्जइ रूप आये हैं परस्मैपद में वर्तमान कालिक अंशक्रिया में हों ता और हुन्तो रूप हैं आत्मनेपद में होमाणो मिलता है ; सामान्यक्रिया में होउं तथा जै शौर में होदुं चलते हैं त्वा- वाला रूप होऊण है और कर्तव्यवाचक अंशक्रिया अ माग तथा जै महा में होयव्व है[१]। हों ज्जा और हों ज्ज के विषय में § ४६६ देखिए। उक्त रूपों के अतिरिक्त अ माग में प्रार्थनावाचक रूप केवल होइ और होउ हैं। ये भी वाक्यांश होउ णं में पाया जाता है और भूतकाल का रूप होत्था का पयास प्रचलन है। शौर प्रयोग निम्नलिखित प्रकार के हैं : होमि, होसि और होन्ति, आज्ञावाचक में होहि, हों म्ह, होध और हों न्तु, माग० आज्ञावाचक में होध[२] चलता है किन्तु शौर , माग तथा दक्की में केवल भादि और भादु रूप देखने में आते हैं[१]। पाठों में अशुद्ध रूप निम्नलिखित हैं : भामि, होदि, भादि, होदु और भों न्तु[१]। पै में फोति रूप पाया जाता है (क्रम ५, ११५)। शौर और माग में कर्तव्यवाचक अंशक्रिया का रूप होदव्व है[१] ; शौर और जै शौर रूप भविष्यत्व के विषय में § ५७५ देखिए और माग में हुविदव्व के सम्बन्ध में ऊपर देखिए। महा में भूतकालिक अंशक्रिया का रूप हुअ मिलता है (देस ४, ६८ ; क्रम ८ ५७ ; मार्क पन्ना ५१) जो मणुअीहुअं में आया है (हाल ८), अणुहुअ (रच ४ १८ हाल २९), परिहुअप्प (हाल १३४ ; इस ग्रन्थ में अन्यत्र आये रूप तथा अवश्य संस्करण के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए), पहुअ (रच० ८, ६४) तथा अप हुआ (रच ८, १८४) और हुआ (रच ४, १५१) में यह रूप आया है। शौर , दक्की और दाक्षि में -भूदा मिलता है (उदाहरणार्थ, शौर में : मृच्छ० ५५ १६ ; ७८, ३ ; शकु ४१ ९ ; ८ , ९ ; विक्र २१, १८ ; ५२, २१ ; ५१ १२ [इस ग्रन्थ में -भूदा भी है] ; दक्की में : मृच्छ० १६, २१ ; ३५, १६ ; दाक्षि में : मृच्छ १ १, ११), माग म फिभप्पहूद = कियत्प्रभूत है (मृच्छ १८ १६)। — सिंहराज पन्ना ८० में ठीक भ- धर्म की भाँति निम्नलिखित रूप दिये गये हैं : हुभइ हुवइ हुमइ और हुपइ।

१ इसके उदाहरण § ४९९ में होउ के साथ दिये गये रूपों और इस क्रिया से सम्बन्धित § में तथा ज सार के उदाहरण § ४७५ में देखिए। इस सम्बन्ध में वेबर त्सिगुंग्सबेरिष्टे डेर कोएनिग्लिशन प्रोयसिशन आकाडेमी डेर

§ ४७८—हेमचन्द ४, ७४ के अनुसार **स्मृ** का प्राकृत में **सरइ** बनता है और इस नियम से जै०महा० में **सरामि** पाया जाता है (आव०एर्त्से० ४१, २०), अ०-माग० पद्य में **सरई** रूप मिलता है (उत्तर० २७७), जै०महा० में **सरइ** आया है (आव० ४७, २७), गद्य में **सरसु** भी आया है (आव०एर्त्से० ७, ३४)। सभी प्राकृत बोलियों में इसका साधारण रूप जिसका विधान वररुचि ने १२, १७ और मार्कण्डेय ने पन्ना ७२ मे किया है तथा शौर० के लिए जिस रूप का विशेष विधान है, वह है **सुमर-** जो **स्मर-** के स्थान में आया है। इसमें अशस्वर है (वर० ८, १८ , हेच० ४, ७४ , क्रम० ४, ४९ , मार्क० पन्ना ५३)। इसके साथ-साथ गद्य में बहुत अधिक **ए-** वर्ग **सुमरे-** मिलता है। इस नियम से महा० में **सुमरामि** आया है (रावण० ४, २० [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], २२), जै०महा० में **क्त्वा-** वाले रूप **सुमरिऊण** तथा **सुमरिय** हैं, कर्मवाच्य की भूतकालिक अशक्रिया में **सुमरिय** [=स्मृत : **क्त्वा-** वाला रूप =**स्मृत्वा** है। —अनु०] चलता है (एर्त्से०), अ०माग० में आज्ञावाचक रूप **सुमरह** है (विवाह० २३४), शौर० में **सुमरामि** आया है (मृच्छ० १३४, १५ , उत्तररा० ११८, १), **सुमरसि** भी मिलता है (उत्तररा० १२६, ६), शुद्ध रूप में प्रतिपादित **सुमरेसि** है (मृच्छ० ६६, १५ और १८ , १०३, २० , १०४, १० , १०५, १५ , विक्र० २३, ९), जैसा कि **सुमरेदि** है (शकु० ७०, ७ , १६७, ८ , मालती० १८४, ४ , विद्ध० १२५, ११) और आज्ञावाचक में **सुमरेहि** आया है (रत्ना० ३१७, १७), **सुमरेसु** मिलता है (विक्र० १३, ४), **सुमरेध** चलता है (शकु० ५२, १६), **सुमर** भी काम में आता है (मालती० २५१, २ , सभी पाठों में यही है) तथा अप० में **सुवॅरहि** पाया जाता है (हेच० ४, ३८७), इच्छावाचक में **सुमरि=स्मरेः** है (हेच० ४, ३८७, १,) , शौर० में **सुमरामो** आया है (मालती० ११३, ९) , माग० में **शुमलामि, शुमलेशि** और **शुमलेदि** रूप मिलते हैं (मृच्छ० ११५, २३ , १२७, २५ , १३४, १३), आज्ञावाचक में **शुमल** और **शुमलेहि** रूप आये हैं (मृच्छ० १२८, २० , १६८, ११ , १७०, ८) , कर्मवाच्य की भूतकालिक अशक्रिया शौर० में **सुमरिद** है (मालती० २४९, ६ , प्रबोध० ४१, ७), माग० में यह **शुमलिद** हो जाता है (मृच्छ० १३६, १९) , शौर० में कर्तव्यवाचक अशक्रिया **सुमरिदव्व** है तथा इसका माग० रूप **शुमलिदव्व** है (मृच्छ० १७०, ९)। हेमचन्द्र ४, ७५ में बताता है कि **वि** उपसर्ग लगकर इसका रूप **विम्हरइ** और **वीसरइ** हो जाते हैं, जिनमें से महा० में **वीसरिअ=विस्मृत** आया है (हाल ३६१ , शकु० ९६, २), जै०महा० में **विस्सरिय** पाया जाता है (आव०एर्त्से० ७, ३४) , जै०शौर० में **वीसरिद** है (कत्तिगे० ४००, ३३५ , पाठ में **वीसरिय** है)। मार्कण्डेय पन्ना ५४ में **वीसरइ, विसुरइ** और **विसरइ** रूप बताता है। यह महा० **विसरिअ** (रावण० ११, ५८) और भारतीय नवीन आर्यभाषाओं में पाया जाता है[१]। शौर० और माग० में वही वर्ग है जो दूसरे में है , उदाहरणार्थ, शौर० में **विसुमरामि** रूप आया है (शकु० १२६, ८), **विसुमरेसि** भी है (विक्र० ४९, १) , माग० में **विशुमलेदि** मिलता है (मृच्छ० ३७, १२)। विक्रमोर्वशी ८३, २० में

§ २४५ की तुलना कीजिए । — महा० और जै०महा में मरामि = म्रिये है, मरइ और मरन्ति रूप भी मिलते हैं । आज्ञावाचक में मर, मरसु तथा मरउ रूप आये हैं। वर्तमानकालिक अंशक्रिया में मरन्त है (हाल एर्त्से०) अ माग में मरइ मिलता है (सूय ६१५ उत्तर० २१४ विवाह २६१ और उसके बाद), मरन्ति भी है (उत्तर १ ११ और उसके बाद विवाह० १४३४), मरमाण पाया जाता है (विवाह० १३८५) शौर में मरदि रूप मिलता है (मृच्छ० ७२, २२ ; यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) माग में मलामि है (मृच्छ ११८, ११), इस बोली में मलदु और मलॅन्ति रूप भी आये हैं (मृच्छ ११४, २१ ११८, १२) ; अप० में मरइ और मरहि हैं (हेच ४, ३६८ ४२०, ५) । महा में मरिज्जउ = म्रियताम् है (हाल ९५) जो कर्मवाच्य के अर्थ में काम में आया है । अ माग में सामान्य क्रिया का रूप मरिज्जिउं है (दस ६२४, ४० § ५८ की तुलना कीजिए), यह कर्तृवाच्य के अर्थ में आया है । अ माग में मिज्जइ और मिज्जन्ति रूप आये हैं (सूय २७५ १२८ १३१ ; ५४ ; ९४) । टीकाकारों ने ठीक ही इन्हें = मीयते और मीयन्ते बताया है । — जै महा० में घरसु = जुगुप्स्य है (सगर १, १९) । — महा और जै०महा में हरइ मिलता है (गउड हाल रावण एर्त्से०), जै शौर में हरदि है (कत्तिगे ४ , ३३९), महा में हरसि भी पाया जाता है (हाल ७ ९), अ माग में इच्छावाचक रूप हरेॅज्जाइ आया है (नायाध० ९१५ और ९१८), माग में हलामि और हलदि रूप हैं (मृच्छ ११, ८ ; १ , ११ और २४) ; सभी प्राकृत बोलियों में यह क्रिया सन्धि में बहुत अधिक दिखाई देती है जैसे महा में अहिहरइ और पहरइ रूप हैं (गउड) जै महा में परिहरामि है (कालका २७२ १६), अ माग साहरन्ति = संहरन्ति है (ठाणंग १५५), पडिसाहरइ = प्रतिसंहरन्ति है (विवाह २१०), विहरइ रूप भी मिलता है (कप्प उवास आदि आदि) शौर में उवहर और उवहरन्तु रूप आये हैं (शकु १८ १ ; ४ ९) अवहरदि = अपहरति है (मृच्छ ४५, २४), माग में पलिहलामि = परिहरामि है (मृच्छ १२५ १), समुदाहलामि रूप भी आया है (मृच्छ १२९, २), विहलदि = विहरति भी है (मृच्छ ४०, ९), अप में अणुहरहिँ और अणुहरइ रूप हैं (हेच ४ ३६७ ४ ; ४१८, ८) । — महा में सरइ है (गउड ; हाल) ; अ माग में सरन्ति मिलता है (उत्तर० ५६७), उत्तरइ आया है (नायाध १ ६) और पच्चुत्तरइ भी है (विवाह०) ; शौर में आवदरदि = अपतरति है (मृच्छ ४४, १९ ; १ ८, २१ ; मालती २४५ ६), आज्ञावाचक में आवदरम्ह = अपतराम है (मालवि १ , १ वि १२ ४) ; माग में आज्ञावाचक रूप आदल = अपतर है (मृच्छ० १२२ १४ १५ और १६) कर्मवाच्य रूप आदलिअ (मृच्छ १२२, ११) = शौर रूप आदरिय है (विक्र ११ १७) ; अप में उत्तरइ आया है (हेच ४, ३३९) । — धृ संस्कृत के अनुसार ही धिरति रूप बनाता है महा उद्धिरइ आया है (रावण ११) और धिरन्त- भी मिलता है (गउड ; रावण) ।

§ ४७८—हेमचन्द्र ४, ७४ के अनुसार **स्मृ** का प्राकृत में **सरइ** बनता है और इस नियम से जै०महा० में **सरामि** पाया जाता है (आव०एर्त्से० ४१, २०), अ०-माग० पद्य में **सरई** रूप मिलता है (उत्तर० २७७), जै०महा० में **सरइ** आया है (आव० ४७, २७), गद्य में **सरसु** भी आया है (आव०एर्त्से० ७, ३४)। सभी प्राकृत बोलियों में इसका साधारण रूप जिसका विधान वररुचि ने १२, १७ और मार्कण्डेय ने पन्ना ७२ में किया है तथा शौर० के लिए जिस रूप का विशेष विधान है, वह है **सुमर–** जो **स्मर–** के स्थान में आया है। इसमें अंशस्वर है (वर० ८, १८ , हेच० ४, ७४ , क्रम० ४, ४९ , मार्क० पन्ना ५३)। इसके साथ-साथ गद्य मे बहुत अधिक **ए–** वर्ग **सुमरे–** मिलता है। इस नियम से महा० में **सुमरामि** आया है (रावण० ४, २० [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], २२), जै०महा० मे **त्त्वा–** वाले रूप **सुमरिऊण** तथा **सुमरिय** हैं, कर्मवाच्य की भूतकालिक अंशक्रिया में **सुमरिय** [=स्मृत : **त्तवा–** वाला रूप =**स्मृत्वा** है। —अनु०] चलता है (एर्त्से०), अ०माग० में आज्ञावाचक रूप **सुमरह** है (विवाह० २३४) , शौर० में **सुमरामि** आया है (मृच्छ० १३४, १५ , उत्तररा० ११८, १), **सुमरसि** भी मिलता है (उत्तरा० १२६, ६), शुद्ध रूप में प्रतिपादित **सुमरेसि** है (मृच्छ० ६६, १५ और १८ ; १०३, २० , १०४, १० , १०५, १५ , विक्र० २३, ९),जैसा कि **सुमरेदि** है (शकु० ७०, ७ , १६७, ८ , मालती० १८४, ४ , विद्ध० १२५, ११) और आज्ञावाचक में **सुमरेहि** आया है (रत्ना० ३१७, १७), **सुमरेसु** मिलता है (विक्र० १३, ४), **सुमरेध** चलता है (शकु० ५२, १६), **सुमर** भी काम में आता है (मालती० २५१, २ , सभी पाठों में यही है) तथा अप० में **सुवँरहि** पाया जाता है (हेच० ४, ३८७), इच्छावाचक में **सुमरि**=**स्मरेः** है (हेच० ४, ३८७, १,) , शौर० में **सुमरामो** आया है (मालती० ११३, ९) , माग० में **शुमलामि, शुमलेशि** और **शुमलेदि** रूप मिलते है (मृच्छ० ११५, २३ , १२७, २५ , १३४, १३), आज्ञावाचक में **शुमल** और **शुमलेहि** रूप आये हैं (मृच्छ० १२८, २० , १६८, ११ , १७०, ८) , कर्मवाच्य की भूतकालिक अंशक्रिया शौर० में **सुमरिद** है (मालती० २४९, ६ , प्रबोध० ४१, ७), माग० में यह **शुमलिद** हो जाता है (मृच्छ० १३६, १९) , शौर० में कर्तव्यवाचक अंशक्रिया **सुमरिदव्व** है तथा इसका माग० रूप **शुमलिदव्व** है (मृच्छ० १७०, ९)। हेमचन्द्र ४, ७५ में बताता है कि **वि** उपसर्ग लगकर इसका रूप **विम्हरइ** और **वीसरइ** हो जाते हैं, जिनमें से महा० में **वीसरिअ**=**विस्मृत** आया है (हाल ३६१ , शकु० ९६, २), जै०महा० में **विस्सरिय** पाया जाता है (आव०एर्त्से० ७, ३४) , जै०शौर० में **वीसरिद** है (कत्तिगे० ४००, ३३५ , पाठ में **वीसरिय** है)। मार्कण्डेय पन्ना ५४ में **वीसरइ, विसुरइ** और **विसरइ** रूप बताता है। यह महा० **विसरिअ** (रावण० ११, ५८) और भारतीय नवीन आर्यभाषाओं में पाया जाता है[१]। शौर० और माग० में वही वर्ग है जो दूसरे में है , उदाहरणार्थ, शौर० में **विसुमरामि** रूप आया है (शकु० १२६, ८), **विसुमरेसि** भी है (विक्र० ४९, १) , माग० मे **विशुमलेदि** मिलता है (मृच्छ० ३७, १२)। विक्रमोर्वशी ८३, २० में

विम्हरिदु म्हि आया है जो सभी हस्तलिपियों के विरुद्ध है और बौँ ल्लें नसेन ने भूल से इसे पाठ में रख दिया है बंबइया संस्करण पेज १११, ९ में शुद्ध रूप विसुमरिद म्हि दिया गया है जैसा कि शकुन्तला १८, २ में विसुमरिदु और वृषभानुजा १४, ६ में भी यही मिलता है। मरह पर § ११३ देखिए।

१ हेमचन्द्र ४ ७५ पर पिशल की टीका। — २ यह रूप बोएटलिंक ने शकुन्तला ५९ १ में भूल से दिया है। यहाँ पर बंबइया संस्करण १८८३ पेज ९४ ११ के अनुसार कम से कम विम्हरिओ होना चाहिए।

§ ४७९—जिन धातुओं के अन्त में ऐ रहता है उसकी रूपावली नियमित रूप से संस्कृत की भाँति चलती है (वर ८, २१ ; २५ और २६ ; हेच ४, ६ क्रम ४, ६६ और ७१) : महा में गाअन्ति रूप है (काव्यप्र १, ८ बाल १८१, ६), उग्गाअन्ति = उद्गायन्ति है (धूर्त ४, १४), गाअन्त– भी मिलता है (कपूर २१, ४) जै महा में गायइ है (आव एर्से ८, २९) गायन्ति भी मिलता है (द्वार ४९६, १६), गायन्तेहिं और गाइउं रूप भी चलते हैं (एर्से १, २९ २, २) अ माग में गायन्ति है (जीवा ५९२ राय ९६ और १८८), गायन्ता भी आया है (ओव § ४९, पाँच) तथा गायमाणे भी पाया जाता है (विवाह १२५१) ; शौर में गाआमि मिलता है (मुद्रा ३५, १) गाअदि आया है (नागा ९, ६), गाअध देखा जाता है (विद्ध १२ ४), आज्ञावाचक रूप भी पाया जाता है जो ए वर्ग का है = गाएध है (विद्ध १२२, १ १२८, ४), गाअन्तेण और गाअन्ती रूप भी हैं (मृच्छ ४४, २ और ४) माग में गाए और गाइदं रूप मिलते हैं (मृच्छ ७९, १४ ; ११७ ४)। — शौर म परित्ताअदि = परित्रायते है (मृच्छ १२८, ७) परित्ताअदु भी आया है (महावीर १ , १९ बाल० १७५ १ ; विद्ध ८५ ५), परित्ताआहि पाया जाता है (उत्तररा० ६३, ११), परित्ताअदु भी देखा जाता है (रत्ना ३२५, ९ और १२) तथा परित्ताअध भी भी चलता है (शकु १६ १ ; १७, ६ विक्र १ १७ ५ २ ; मालती ११ , १) माग में पलित्ताअध और पलित्ताअदु रूप आये हैं (मृच्छ १२, २५ ; १२८ ६)। — जै महा में झायसि = ध्यायसि है (एर्से० ८५, २१), झाय माणी रूप भी आया है (एर्से ११, १९) , अ माग में झियायामि, झियायसि, झियायइ, झियायह और झियायमाण रूप आये हैं (नायाध) महा में णिज्झा अइ = निध्यायति है (हाल ७१ और ४१३) । शौर में णिज्झाअदि हो जाता है (मृच्छ ५९, २४ और ८९, ४ ; मालती २५८ ४) णिज्झाअन्ति भी आया है (मृच्छ० ६९, २) णिज्झाअइदो मिलता है (मृच्छ ९३ १९) और णिज्झाअदा भी देखा जाता है (विक्र ५२ ११) संझाअदि काम में आया है (मृच्छ ७३ १२)। — शौर में णिद्दाअदि = निद्रायति है (मृच्छ ४६, ५ और ९६, २ ; मालवि ६५ ८)। — शौर में परिमिलाअदि = परिम्लायति (मालती ११ , २ ; बम्बइया संस्करण १२ २ तथा मद्रासी संस्करण १ ५, १ के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए)। — प्राकृत में उन धातुओं की,

जिनके अन्त में आ रहता है, रूपावली चौथे गण के अनुसार भी चलती है (§ ४८७), इसके विपरीत क्रम से जिन धातुओं के अन्त मे -ऐ रहता है, उनकी रूपावली भी कभी-कभी महा०, जै०महा० और अ०माग० मे -आ -वाले धातुओ के अनुकरण पर चलती है : महा० में **गाइ** है (वर० ८, २६ , हेच० ४, ६ , हाल १२८ और ६९१), **गाउ** मिलता है (भाम० ८, २६) और **गन्त**- चलता है (हाल ५४७) , जै०महा० में **उग्गाइ** रूप देखा जाता है (आव०एर्त्से० ८, २८) , महा० में **झाइ** = महाकाव्यों के रूप **ध्याति** के है (वर० ८, २६ , हेच० ४, ६ , रावण० ६, ६१), जै०शौर० में इसका **झादि** हो जाता है (पव० ३८५, ६८) । इसके साथ साथ **झायदि** भी मिलता है (पव० ३८५, ६५ , ४०३, ३७२) , **झाउ** आया है (भाम० ८, २६) और **णिज्झाइ** देखा जाता है (हेच० ४, ६) , अ०माग० में **झियाइ** (विवाग० २१९ , उवास० § २८० , नायाध० , कप्प०), **झियामि** (विवाग० ११४ और २२० , नायाध०), **झियासि** (विवाग० ११४) और **झाइज्ज** रूप मिलते हैं (यह रूप पद्य में है , उत्तर० १४) । इसी प्रकार अ०माग० में **झियाइ** = **क्षायति** है तथा इसके साथ साथ **झियायन्ति** भी चलता है (§ ३२६) , अ०माग० में **गिलाइ** = महाकाव्यों के रूप **ग्लाति** के है (आयार० २, १, ११, १ और २), इसके साथ साथ **विगिलाएज्जा** भी चलता है (आयार० २, २, ३, २८) , महा० में **निद्दाइ** और **मिलाइ** मिलते हैं (हेच० ४, १२ और १८), इससे सम्बन्धित महाकाव्यों का रूप **म्लान्ति** है । -— शौर० में बार बार **परित्ताहि** रूप देखने मे आता है (शकु० १४५, ८ , प्रबोध० ११, १३ , उत्तररा० ६०, ४ और ५ , मालती० ३५७, ११), माग० में यह रूप **पलित्ताहि** हो जाता है (मृच्छ० १७५, १९) । शौर० ग्रन्थों में अन्यत्र तथा दूसरा रूप जो इस बोली के साहित्य मे प्रायः सर्वत्र ही पाया जाता है शुद्ध रूप **परित्ताआहि** है । **पलाय**- के विषय मे § ५६७ देखिए ।

§ ४८०—प्राचीन -**स्क** -गण की क्रियाओं **इष्**, **गम्** और **यम्** की रूपावलियाँ सभी प्राकृत बोलियों में संस्कृत की भाँति चलती हैं . **इच्छइ**, **गच्छइ** और **जच्छइ** । माग० रूप **साम्यस्मध** (§ ४८८) अ०माग० **उग्गममाण** (पण्णव० ४१) अपने ढग के निराले हैं । हेमचन्द्र ने ४, २१५ में इनके साथ **अच्छइ** भी जोड दिया है जिसे उसने **आस्** और क्रमदीश्वर ने **अस्** (= होना) धातु का रूप बताया है, किन्तु टीकाकार इसका अनुवाद **तिष्ठति** करते है । इसके ठीक जोड के पाली रूप **अच्छति** को आस्कोली बताता है कि यह भविष्यत्काल का एक रूप था जो **आस्** धातु से निकला है । यह कभी *__आत्स्याति__ अथवा **आत्स्यते** था[१], चाइल्डर्स[२] और पिशल[३] इसे **आस्** से निकला बताते हैं तथा इसका पूर्वरूप *__आस्स्कदि__ देते हैं, जैसा कि **आस्** से निकला हेमचन्द्र ने भी बताया है । ए० म्युलर का मत है कि यह **गम्** से निकला है जिसके **ग**[४] की विच्युति हो गयी है, बाद को ट्रेंकनर और टॉर्प के साथ म्युलर का भी यह मत हो गया था कि **आस्**[५] से निकल कर यह उसके भूतकाल के रूप *__आत्सीत्__ से व्युत्पन्न है । ए० कून के विचार से यह **अस्**[६] अस्पष्ट है, योहान्सोन के मत से **अस्**[७] के भविष्यत्काल के रूप *__अस्स्यति__ और *__अत्स्यति__ से

आये है (विवाह० ८४५ और १२५२), **अवक्कमें ज्जा** (आयार० २, १, १०, ६), **निक्खमइ** और **निक्खमन्ति** भी मिलते है (विवाह० १४६ , निरया० § २३, कप्प० § ११), **निक्खमें ज्जा** (आयार० २, १, १, ७ , २, १, ९, २) तथा **निक्खमाण** देखे जाते है (आयार० २, २, ३, २), **पडिणिक्खमइ** और **पडिणिक्खमन्ति** रूप भी पाये जाते है (विवाह० १८७ और ९१६ , नायाध० § ३४ , पेज १४२७, ओव०, कप्प०), **पक्कमइ** (विवाह० १२४१), **वक्कमइ, वक्कमन्ति** (विवाह० १११ और ४६५ , पण्णव० २८ , २९ , ४१ और ४३ , कप्प० § १९ और ४६ बी), **विउक्कमन्ति** (विवाह० ८६५) तथा छन्दो की मात्राए ठीक करने के लिए **कम्मई = क्राम्यति** रूप भी काम मे आते है (उत्तर० २०९) , शौर० मे **अदिक्कमसि** मिलता है (रत्ना० २९७, २९) , शौर० और दाक्षि० मे **अवक्कमदि** आया है (मृच्छ० ९७, २४ , १०३, १५) , शौर० मे **णिक्कमामि** (शकु० ११५, ६), **णिक्कमदि** (मृच्छ० ५१, ४ , विक्र० १६, १), **णिक्कम** (मृच्छ० १६, १० , शकु० ३६, १२) और **णिक्कमम्ह** रूप देखने मे आते है (प्रिय० १७, १६ , नागा० १८, ३ , रत्ना० ३०६, ३०, कर्पूर० ८५, ७)। मालतीमाधव १८८, २ म **परिक्कामदि** रूप आया है जो अशुद्ध है। इसके स्थान मे १८९२ के बम्बइया संस्करण और मद्रासी सस्करण के अनुसार **परिब्भमदि** अथवा **परिब्भमन्ति** होना चाहिए (उक्त दोनो सस्करणो मे **परिब्भमन्दि** है), उक्त ग्रन्थ के २८५, २ मे **परिक्कमेध** है , माग० मे **अदिक्कमदि** आया है (मृच्छ० ४३, १०) और **अवक्कमम्ह, णिस्कमदि** तथा **णिस्कम** रूप पाये जाते है (मृच्छ० २२, २ , १३४, १ , १६५, २२ , १६६, २२)। § ३०२ की तुलना कीजिए।

§ ४८२—बहुत सी क्रियाए जिनकी रूपावलियाँ सस्कृत मे पहले गण के अनुसार चलती है, जैसा कि स्वर बताता है, प्राकृत मे छठे गण के अनुसार रूपावली चलाते है। महा० मे **जिअइ = *जीं वति** जो **जीं वति** के स्थान म आया है, **जीअन्ति, जिअउ** और **जिअन्त-** रूप आये है, किन्तु **जीअसि, जीवें ज्ज** और **जीअन्त-** भी चलते है (हेच० १, १०१ , गउड० , हाल , रावण०)। शौर० और माग० मे केवल दीर्घ स्वर आता है। इस नियम से शौर० में **जीआमि** आया है (उत्तररा० १३२, ७ , १८३१ के कलकतिया सस्करण के पेज ८९, १ के अनुसार यही पाठ पढा जाना चाहिए), **जीवदि** मिलता है (मृच्छ० १७२, ६ और ३२५, १८), **जीआमो** पाया जाता है (मुद्रा० ३४, १०), **जीवेअ** है (मालवि० ५५, ११), **जीव** देखा जाता है (मृच्छ० १४५, ११ , शकु० ३३, ७ , ६७, ७) तथा **जीअदु** का प्रचलन है (मृच्छ० १५४, १५) , माग० म **यीअदि, यीवशि, यीव, यीअन्त-** रूप पाये जाते हैं (मृच्छ० १२, २० , ३८, ७, १६१, १९ , १७०, ५ , १७१, ८ और ९), **यीवेशि** रूप भी आया है (मृच्छ० ११९, २१)। — **घिसइ = *घर्सति** जो **घर्सति = घस्ति** के स्थान में आया है (वर० ८, २८ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], हेच० ४, २०४ , क्रम० ४, ४६ [पाठ में **घसइ** है] , मार्क० पन्ना० ५५)। — **जिमइ** और इसके साथ साथ **जेमइ** तथा **जिम्मइ** के विषय में § ४८८ देखिए। — अ०माग० में **भिसन्त-** (ओव०), **भिसमीण** (नायाध०), **भिसमाण** (राय०

निकला है। किन्तु यह ठीक प्रच्छति के समान है जो संस्कृत में चौथे गण की रूपावली के –एक –वर्ग का है और प्रृ से निकला है। इस प्रृ का अर्थ है 'किसी पर गिरना', 'किसी से टकराना' तथा भारतीय व्याकरणकार इसे प्रच्छ धातु बताते हैं और बोएटलिंक तथा रोट ने अपने संस्कृत जर्मन कोश में अच्छे धातु लिखा है। धातुपाठ २८, १५ के कथन से निदान निकलता है इसका अर्थ 'रहना' 'खड़ा रहना' है ; उसमें बताया गया है कि यह इन्द्रियप्रलय और मूर्तिभाव के अर्थ में काम में आता था [धातुपाठ में दिया गया है गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु। —अनु]। इसकी तुलना ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रच्छति और आच्छेत के प्रयोग से की जानी चाहिए। इस क्रिया के निम्नलिखित उदाहरण मिलते हैं महा में अच्छसि, अच्छन्ति, अच्छउ तथा अच्छिज्जइ (गउड हाल) में महा में अच्छइ, अच्छए, अच्छामो, अच्छसु, अच्छह, अच्छन्तस्स, अच्छिउं, अच्छिय और अच्छियव्व (एर्त्से ; द्वार ४९८, १२ ५ , ९ ५ १, ९ भाम एर्त्से १४, २५ और ३ २४, १७ २६, २८ २१ २२) अ माग में अच्छइ (आयार १, ८ ४, ८ ; उत्तर १ २ और उसके बाद) अच्छाहि (आयार २, ३, १, १ विवाह ८ ७ और ८१७) और अच्छेज्ज आते हैं (हेच ३, १६ ; विवाह ११६ ओर § १८५) ; भाव में अच्छध है (मृच्छ ९९ १६)[१] पै में अच्छति और अच्छते मिलते हैं (हेच ४, ३१९) अप में अच्छउ रूप पाया जाता है (हेच ४, ४ ६, ३)। अच्छीअ के विषय में § ४६६ देखिए।

१ क्रिटिशे स्टुडिएन डेर इण्डोगेर्मानिशन स्प्राखविस्सनशाफ्ट, पेज १६५, नोटसंख्या ११। — २ पाली कोश में अच्छति शब्द देखिए। — ३ ना गो वि गे १८७५, १२० और उसके बाद हेमचन्द्र ४ २१५ पर पिशल की टीका। — ४ बाइत्रगे पेज ३६। — ५. सिग्मिनकाइड ग्रामर पेज १ । — ६ ए म्युलर पाइत्रगे पेज ३६। — ७ बाइबास्नाजी डी ११ ; कु त्सा ३१, ४६ नोटसंख्या २। — ८ बोएटलिंक और रोट के संस्कृत-जर्मन शब्दकोश में अच्छे देखिए ; पिशल ना गे वि गो १८९ ५११। योहान्सोन इस व्युत्पत्ति को अशुद्ध बताता है और स्वयं इस विषय में ग्रीक शब्द हेरखोमाइ की ओर ध्यान देता है। — ९ बरसचि १२ १९ के विषय में कु बाइ ८ १४३ और उसके बाद में पिशल का मत देखिए।

§ ४८१—प्रामाणिक संस्कृत के नियमों से भिन्न होकर क्रम् धातु जैसा कि महाकाव्यों की संस्कृत में भी कुछ कम नहीं पाया जाता, परस्मैपद में ह्रस्व स्वर के साथ रूपावली में दिखाई देता है : महा में कमन्त– अइक्कमसि, अक्कमन्त–, णिक्कमइ, णिप्फमइ, विणिक्कमइ, विणिक्कामइ और संकमइ रूप हैं (गउड ; हाल) ; जे महा में कमइ आया है (कक्कुक १८), अक्कमामो भी है (एर्त्से॰ ३५, ३६), अइक्कमइ और अइक्कमेज्ज देखने में आते हैं (भाव एर्त्से ८७,२३; कालका २७१, २ और ७) ; अ माग में कमइ (विवाह १२८) अइक्कमइ (विवाह ११६ और १२७) अइक्कमन्ति (कप्प एस (S) § ११), अवक्कमइ और अवक्कमन्ति

आये हैं (विवाह० ८४५ और १२५२), **अवक्कमें ज्ञा** (आयार० २, १, १०, ६), **निक्खमइ** और **निक्खमन्ति** भी मिलते हे (विवाह० १४६ , निरया० § २३, कप्प० § १९), **निक्खमें ज्ञा** (आयार० २, १, १, ७ , २, १, ९, २) तथा **निक्खमाण** देखे जाते है (आयार० २, २, ३, २), **पडिणिक्खमइ** और **पडिणिक्खमन्ति** रूप भी पाये जाते हैं (विवाह० १८७ और ९१६ , नायाध० § ३४ , पेज १४२७, ओव०, कप्प०), **पक्कमइ** (विवाह० १२४९), **वक्कमइ, वक्कमन्ति** (विवाह० १११ और ४६५ , पण्णव० २८ , २९ , ४१ और ४३ , कप्प० § १९ और ४६ बी), **विउक्कमन्ति** (विवाह० ४६५) तथा छन्दों की मात्राए ठीक करने के लिए **कम्मई = क्राम्यति** रूप भी काम मे आते हे (उत्तर० २०९) , शौर० में **अदिक्कमसि** मिलता है (रत्ना० २९७, २९) , शौर० और दाक्षि० में **अवक्कमदि** आया है (मृच्छ० ९७, २४ , १०३, १५) , शौर० में **णिक्कमामि** (शकु० ११५, ६), **णिक्कमदि** (मृच्छ० ५१, ४ , विक्र० १६, १), **णिक्कम** (मृच्छ० १६, १० , शकु० ३६, १२) और **णिक्कमम्ह** रूप देखने में आते हैं (प्रिय० १७, १६ , नागा० १८, ३ , रत्ना० ३०६, ३०, कर्पूर० ८५, ७)। मालतीमाधव १८८, २ में **परिक्कामदि** रूप आया है जो अशुद्ध है। इसके स्थान में १८९२ के बबइया सस्करण और मद्रासी सस्करण के अनुसार **परिब्भमदि** अथवा **परिब्भमन्ति** होना चाहिए (उक्त दोनों सस्करणो मे **परिब्भमन्दि** है), उक्त ग्रन्थ के २८५, २ में **परिक्कमेध** है , माग० में **अदिक्कमदि** आया है (मृच्छ० ४३, १०) और **अवक्कमम्ह, णिस्कमदि** तथा **णिस्कम** रूप पाये जाते हैं (मृच्छ० २२, २ , १३४, १ , १६५, २२ , १६६, २२)। § ३०२ की तुलना कीजिए।

§ ४८२—बहुत सी क्रियाए जिनकी रूपावलियाँ सस्कृत में पहले गण के अनुसार चलती हैं, जैसा कि स्वर बताता है, प्राकृत में छठे गण के अनुसार रूपावली चलाते हैं। महा० में **जिअइ = *जी॑वति** जो **जी॑वति** के स्थान मे आया है, **जीअन्ति, जिअउ** और **जिअन्त-** रूप आये है, किन्तु **जीअसि, जीवें ज्ज** और **जीअन्त-** भी चलते है (हेच० १, १०१ , गउड० , हाल , रावण०)। शौर० और माग० में केवल दीर्घ स्वर आता है। इस नियम से शौर० में **जीआमि** आया है (उत्तररा० १३२, ७ , १८३१ के कलकतिया सस्करण के पेज ८९, १ के अनुसार यही पाठ पढा जाना चाहिए), **जीवदि** मिलता है (मृच्छ० १७२, ६ और ३२५, १८), **जीआमो** पाया जाता है (मुद्रा० ३४, १०), **जीवेअ** है (मालवि० ५५, ११), **जीव** देखा जाता है (मृच्छ० १४५, ११ , शकु० ३३, ७ , ६७, ७) तथा **जीअदु** का प्रचलन है (मृच्छ० १५४, १५) , माग० मे **यीअदि, यीवशि, यींव, यीअन्त-** रूप पाये जाते हैं (मृच्छ० १२, २० , ३८, ७, १६१, १९ , १७०, ५ , १७१, ८ और ९), **यीवेशि** रूप भी आया है (मृच्छ० ११९, २१)। — **घिसइ = *घर्सति** जो **घर्सति = घस्ति** के स्थान में आया है (वर० ८, २८ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], हेच० ४, २०४ , क्रम० ४, ४६ [पाठ में **घसइ** है], मार्क० पन्ना० ५५)। — **जिमइ** और इसके साथ साथ **जेमइ** तथा **जिम्मइ** के विषय में § ४८८ देखिए। — अ०माग० में **भिसन्त-** (ओव०), **भिसमीण** (नायाध०), **भिसमाण** (राय०

४७, १०५) विशेष वेगवाचक रूप भिब्भिसमीण और भिब्भिसमाण (§ ५५६), ये रूप भिसइ = *भार्सति से जो भा सति के स्थान में आया है, निकले हैं (§ १०९ हेच ४, २ १)। — उक्खिवइ = *उत्क्षिपते जो उत्क्षेपते के स्थान में आया है (§ २२६)। — महा में अल्लिअइ, उवल्लिअइ तथा समल्लिअइ में ल्ल का द्वित्व करण छठे गण की इसी रूपावली के अनुसार हुआ है। ये रूप = आलीयते, उपाली यते और समालीयते के हैं (§ १९६ और ४७४), अ माग में प्रेरणार्थक रूप अल्लियावेइ इसी दिशा की ओर इंगित करता है। § १९४ की तुलना कीजिए। रुह् में जब उपसर्ग लगाये जाते हैं तब उसकी रूपावली छठे गण के अनुसार चलती है : महा और जै महा० में आरुहइ, समारुहइ और समारुहसु रूप मिलते हैं (गउड०; हाल ; रावण एर्से) अ माग में दुरुहइ = उद्रोहति है (§ ११८ ओव उवास नायाध और बार-बार यह रूप आया है), विवाहपन्नत्ति में सर्वत्र यही रूप पाया जाता है (उदाहरणार्थ १२४ ५ ४, ५ ६ ; ८२४ और उसके बाद ; ९८० ११२८ १२११ ११ १ १३११ १३१७ १३२५ और उसके बाद) और इस ग्रन्थ में बहुधा दुरूहइ रूप भी आया है जो कठिनता से शुद्ध गिना जा सकता है। दुरुहेत्ता रूप भी मिलता है (आयार २, ३, १, १३ और १४) जै०महा० में दुरुहेत्ता है (एर्से) अ माग में पच्चोरुहइ तथा पच्चारुहन्ति मिलते हैं (ओव कप्प ; नायाध [८७ ११२४ १८५६ में भी] विवाह १७१ और ९४८), विरुहन्ति (उत्तर ३५६) और आरुहइ भी पाये जाते हैं (विवाह १२७१) शौर में आरुहध और अरुहइ आये हैं (मृच्छ ४, २४ ९९, १४ और १७), आरुहदि मिलता है (प्रसन्न ३५, ८) और आरुहदु भी है (उत्तररा० १२, ९ और ७); माग में आलुहइ आया है (नागा ६८, १) और आलुहदु अहिलुहइ, तथा अहिलुहदु देखे जाते हैं (मृच्छ ९९, ८ ११९, १ ५ ; ९ १२, ११)। इसकी अनभुक्त दशा में रूपावली यों चलती है : महा और जै महा में रोहन्ति मिलता है (गउड ७२७ हाल ५ १ ७) और इसी प्रकार आरोहसु भी आया है (ऋषभ १९, १२ ; ९७ १८ ; विक्र १९, २)। — घी (= पीना) का रूप हेमचन्द्र ४ २१८ के अनुसार घायइ = संस्कृत धायति होता है। किन्तु महा में इसकी रूपावली छठे गण के अनुसार चलती है : धुयसि रूप मिलता है (हेच २, ११९ = हाल ३६९), धुअसि है (हाल) धुयइ (हेच ४, २१८) और धुअइ भी आये हैं (हाल) धुयन्त- भी है (रावण)। इन रूपों से एक नये धातु धुय् का आविष्कार हुआ जो गम की भाँति पहले गण के अनुसार रूप धारण करता है अर्थात् इसकी रूपावली रु और स्यम् की भाँति चलती है (§ ४७३ और ४९७); अ माग में धायसि धायइ (निरया ७७ ; सूय १७४) आये हैं ; ए- वाली रूपावली के अनुसार धायेइ भी होता है (निरया ७६ और ७७ नायाध १३११; १२२ और १९ १), पधायेन्ति भी मिलता है (आयार २ २, १, १); जै महा में धायन्ति है (आव एर्से ५५ ११); शौर में धाअदि है (मृच्छ ७ ९), सामान्य क्रिया का रूप धाएदुं मिलता है (मृच्छ ७, १)। माग में

धोवेहि तथा भविष्यत्काल में **धोइश्शं** है (मृच्छ० ४५, ७ और २०)। इसी प्रकार पाली मे **धोवति** है। — **हिवइ** रूप जिसे हेच० ४, २३८ में **हवइ** के पास ही रखता है सिंहराजगणिन् पन्ना ४७ में इसका सम्बन्ध **भू** से बताता है। — साधारण रूप **सीअइ**, जै०महा० और अ०माग० **सीयइ**, शौर० **सीददि** और माग० **शीददि** = **सीदति** के साथ साथ हेच० ४, २१९ के अनुसार **सडइ** रूप भी काम मे आता था (हेच० ४, २१९ पर पिशल की टीका)। **पसिअ** के विषय मे § ८० देखिए और **भण्** के सम्बन्ध मे § ५१४ देखिए।

§ ४८३— **घ्रा, पा** और **स्था** वर्तमानकाल का रूप संस्कृत की भाँति ही द्वितीयकरण करते बनाते हैं . **आइग्घइ** = **अजिघ्रति** है (हेच०, ४१३), **जिग्घिअ** = **घ्रात** है (देशी० ३, ४६) । — महा० में **पिअइ, पिअन्ति, पिअउ** और **पिअन्तु** रूप मिल्ते हैं (गउड० , हाल , रावण०), **पिवइ** भी है (नागा० ४१, ५) और **पिआमो** पाया जाता है (कर्पूर० २४, ९ = काल्येयक० १६, १७, यहाँ **पिवामो** पाठ है) , जै०महा० मे **पिवइ** आया है (आव०एर्त्से० ३०, ३६ , ४२, १२, १८ , २०, २८ , ३७), **पियह** = **पिवत** है (द्वार० ४९६, ३५), **पिएइ** भी मिलता है (एर्त्से० ६९, १) , अ०माग० में **पिवइ** है (विवाह० १२५६), **पिव** आया है (नायाध० १३३२), **पिए** मिलता है (दस० ६३८, २६), **पिएँज्ज** (आयार० २, १, १, २) और **पियमाणे** भी देखे जाते हैं (विवाह० १२५३) , शौर० में **पिवदि** रूप है (विद्ध० १२४, ४), **पिअन्ति** आया है (मृच्छ० ७१, १), **पिवदु** (शकु० १०५, १३) और **आपिवन्ति** भी मिलते है (मृच्छ० ५९, २४) , माग० मे **पिवासि, पिवाहि** और **पिवम्ह** हैं (वेणी० ३३, ४ , ३४, २ और १५ , ३५, २२), **पिअन्ति** (मृच्छ० ११३, २१) और **पिव** भी आये है (प्रबोध० ६०, ९) , अप० में **पिअइ, पिअन्ति** और **पिअहु** रूप आये हैं (हेच० ४, ४१९, १ और ६ , ४२२, २०) । — **पिज्जइ** के विषय में § ५३९ देखिए। **स्था** का महा०, अ०माग० और जै०महा० में **चिट्ठइ** होता है (हेच० ४, १६ , हाल , आयार० १, २, ३, ५ और ६ , १, ५, ५, १ , सूय० २१० और ६१३ , नायाध० , कप्प० , एर्त्से० , कालका०) , जै०महा० मे **चिट्ठए** पाया जाता है (आव०एर्त्से० ३६, २६ , कालका०), अ०माग में **चिट्ठन्ति** पाया जाता है (सूय० २७४ , २८२ , २९१ , ६१२ और उसके बाद , कप्प०), **चिट्ठन्ते** है (आयार० १, ८, ४, १०), **चिट्ठेज्ज** (आयार० २, १, ४, ३ [पाठ में अशुद्ध रूप **चेॅट्ठेॅज्ज** है] , २, १, ५, ६ , ६, २ , २, ३, २, ६ , विवाह० ११६ और ९२५) आया है, **चिट्ठे** (आयार० १, ७, ८, १६), **चिट्ठं** और **अचिट्ठं** भी मिल्ते है (आयार० १, ४, २, २) , महा० में **चिट्ठउ** है (हाल) , जै०महा० में **चिट्ठह** आया है (कालका०) , अ०-माग० में सामान्य क्रिया का रूप **चिट्ठित्तए** (विवाह० ५१३ और १११९), इसके साथ साथ दूसरा रूप **ठाइत्तए** भी काम में आता है (आयार० २, ८, १, २) और कर्तव्यवाचक अंशक्रिया **चिट्ठियव्व** है (विवाह० १६२), अ०माग० में **अचिट्ठामो** (सूय० ७३८) और **परिविचिट्ठइ** रूप आये हैं (आयार० १,४,२,२), सज्ञा में इसका

४७, १ ५) विशेष वेगवाचक रूप भिब्भिसमीण और भिब्भिसमाण (§ ५५६), ये रूप भिसइ = *भार्सति से जो भासति के स्थान में आया है, निकले हैं (§ १०९; हेच ४, २ १)। — उक्खिवइ = *उत्क्षिपते जो उत्क्षेपते के स्थान में आया है (§ २३६)। — महा में अल्लिअइ, उवल्लिअइ तथा समल्लिअइ में ल का द्वित्वीकरण छठे गण की इसी रूपावली के अनुसार हुआ है। ये रूप = आलीयते, उपालीयते और समालीयते के हैं (§ १९६ और ४७४), अ माग में प्रेरणार्थक रूप अल्लियावेइ इसी दिशा की ओर इंगित करता है। § १९४ की तुलना कीजिए। रुह् में जब उपसर्ग लगाये जाते हैं तब उसकी रूपावली छठे गण के अनुसार चलती है : महा और शौ महा में आरुहइ, समारुहइ और समारुहसु रूप मिलते हैं (गउड ; हाल ; रावण पर्वे); अ माग में दुरुहइ = उद्रोहति है (§ ११८ ओव उवास नायाध और बार-बार यह रूप आया है), विवाहपन्नत्ति में सर्वत्र यही रूप पाया जाता है (उदाहरणार्थ, १२४; ५ ४; ५ १; ८२४ और उसके बाद ९८; ११२८; १२११ ११ १ ११११ ११'७ ११२५ और उसके बाद) और इस ग्रन्थ में बहुधा दुरूहइ रूप भी आया है जो कठिनता से शुद्ध गिना जा सकता है। दुरुहेंस रूप भी मिलता है (आयार २, १, १, ११ और १४) जो महा० में दुरुहेंता है (पार्वे); अ माग में पच्चारुहइ तथा पच्चारुहन्ति मिलते हैं (ओव कप्प नायाध [८७ ११५४; १४५९ में भी] विवाह १०१ और १४८), विरुहन्ति (उत्तर १५६) और आरुहइ भी पाये जाते हैं (विवाह १२७१); शौर में आरुहध और अरुह आये हैं (मृच्छ ४, २४; ९९, १४ और १७), आरुहदि मिलता है (प्रसन्न ३५ ८) और आरुहदु भी है (उत्तरा १२, ९ और ७) माग में आलुहइ आया है (नागा ६८, १) और आलुहदु, अहिलुह, तथा अहिलुहदु देखे जाते हैं (मृच्छ ९९, ८; ११९, १; ६; ९; ११; ११)। इसकी असंयुक्त दशा में रूपावली यों चलती है : महा और शौ महा में रोहन्ति मिलता है (गउड ७२७; हार ५ १, ७) और इसी प्रकार आरोहदु भी आया है (ऋषु १९, १२; ९७ १८; विक्र ११, २)। — पी (= पीना) का रूप हेमचन्द्र ४ २१८ के अनुसार घावइ = संस्कृत धावति होता है। किन्तु महा में इसकी रूपावली छठे गण के अनुसार चलती है : घुघसि रूप मिलता है (हेच २, ११९ = हाल १६९) घुमसि है (हाल), घुयइ (हेच ४, ११८) और घुमइ भी आये हैं (हाल) घुघन्त- भी है (रावण)। इन रूपों से एक नये धातु घुघ् का आविष्कार हुआ जो गोप की भाँति पहले गण के अनुसार रूप धारण करता है अर्थात् इसकी रूपावली रु और स्वप् की भाँति चलती है (§ ४७१ और ४९७); अ माग में घोपसि घापइ (निरया ७७; सूय १४४) आये हैं; ए- वाली रूपावली के अनुसार घायइ भी होता है (निरया ७१ और ७७; नायाध ११११, ११२ और १५ १), पधावेन्ति भी मिलता है (आयार २, २ १ १); शौ महा में धापन्ति है (आव पर्वे २५ १२); शौर में धाअदि है (मृच्छ ७० १) सामान्य क्रिया का रूप धाउं मिलता है (मृच्छ ७, १); माग में

धोवेहि तथा भविष्यत्काल में **धोइश्शं** है (मृच्छ० ४५, ७ और २०)। इसी प्रकार पाली में **धोवति** है। — **हिचइ** रूप जिसे हेच० ४, २३८ म **हुचइ** के पास ही रखता है सिंहराजगणिन् पन्ना ४७ मे इसका सम्बन्ध **भू** से बताता है। — साधारण रूप **सीअइ**, जै०महा० और अ०माग० **सीयइ**, शौर० **सीददि** और माग० **शीददि** = **सीदति** के साथ साथ हेच० ४, २१९ के अनुसार **सडइ** रूप भी काम मे आता था (हेच० ४, २१९ पर पिशल की टीका)। **पसिअ** क विषय मे § ८० देखिए और **भण्** के सम्बन्ध में § ५१४ देखिए।

§ ४८३— **घ्रा, पा** और **स्था** वर्तमानकाल का रूप संस्कृत की भाँति ही द्वितीयकरण करते बनाते है, **आइग्घइ** = **अजिघ्रति** है (हेच०, ४१३), **जिग्घिअ** = **घ्रात** है (देशी० ३, ४६) । — महा० मे **पिअइ**, **पिअन्ति**, **पिअउ** आर **पिअन्तु** रूप मिलते हैं (गउड० , हाल , रावण०), **पिवइ** भी है (नागा० ४१, ५) और **पिआमो** पाया जाता है (कर्पूर० २४, ९ = काल्येयक० १६, १७, यहाँ **पिवामो** पाठ है) , जै०महा० मे **पिवइ** आया है (आव०एर्त्से० ३०, ३६ , ४२, १२, १८ , २०, २८ , ३७), **पियह** = **पिवत** है (द्वार० ४९६, ३५), **पिएइ** भी मिलता है (एर्त्से० ६९, १) , अ०माग० में **पिवइ** है (विवाह० १२५६), **पिव** आया है (नायाध० १३३२), **पिए** मिलता है (दस० ६३८, २६), **पिएँज्ज** (आयार० २, १, १, २) और **पियमाणे** भी देखे जाते हैं (विवाह० १२५३) , शौर० मे **पिवदि** रूप है (विद्ध० १२४, ४), **पिअन्ति** आया है (मृच्छ० ७१, १), **पिवदु** (शकु० १०५, १३) और **आपिवन्ति** भी मिलते है (मृच्छ० ५९, २४) , माग० मे **पिवामि**, **पिवाहि** और **पिवम्ह** हे (वेणी० ३३, ४ , ३४, २ और १५ , ३५, २२), **पिअन्ति** (मृच्छ० ११३, २१) और **पिव** भी आये हे (प्रबोध० ६०, ९) , अप० मे **पिअइ**, **पिअन्ति** और **पिअहु** रूप आये हैं (हेच० ४, ४१९, १ और ६ , ४२२, २०)। — **पिज्जइ** के विषय में § ५३९ देखिए। **स्था** का महा०, अ०माग० और जै०महा० मे **चिट्ठइ** होता है (हेच० ४, १६ , हाल , आयार० १, २, ३, ५ और ६ , १, ५, ५, १ , सूय० ३१० और ६१३ , नायाध० , कप्प० , एर्त्से० , काल्का०), जै०महा० मे **चिट्ठए** पाया जाता है (आव०एर्त्से० ३६, २६ , कालका०), अ०माग में **चिट्ठन्ति** पाया जाता है (सूय० २७४ , २८२ , २९१ , ६१२ और उसके बाद , कप्प०), **चिट्ठन्ते** है (आयार० १, ८, ४, १०), **चिट्ठेँज्ज** (आयार० २, १, ४, ३ [पाठ में अशुद्ध रूप **चेॅट्ठेॅज्ज** है] , २, १, ५, ६ , ६, २ , २, ३, २, ६ , विवाह० ११६ और ९२५) आया है, **चिट्ठे** (आयार० १, ७, ८, १६), **चिट्ठं** और **अचिट्ठं** भी मिलते हैं (आयार० १, ४, २, २) , महा० में **चिट्ठउ** है (हाल) , जै०महा० में **चिट्ठह** आया है (काल्का०) , अ०-माग० में सामान्य क्रिया का रूप **चिट्ठित्तए** (विवाह० ५१३ और १११९), इसके साथ साथ दूसरा रूप **ठाइत्तए** भी काम में आता है (आयार० २, ८, १, २) और कर्तव्यवाचक अंशक्रिया **चिट्ठियव्व** है (विवाह० १६२), अ०माग० में **अचिट्ठामो** (सूय० ७३४) और **परिविचिट्ठइ** रूप आये हैं (आयार० १,४,२,२), संज्ञा में इसका

जै०महा० मे **उट्ठह** आया है (एर्से० ५९, ३०), अप० में **उट्ठइ** मिलता है (पिंगल १, १३७ अ)। साधारणत **ए-** वाली रूपावली काम मे लायी जाती है : अ०माग० में **उट्ठेइ** आया है (विवाह० १६१, १२४६, उवास० § १९३), **अब्भुट्ठेइ** भी मिलता है (कप्प०), जै०महा० में **उट्ठेमि** (आव०एर्से० ४१, १९), **उट्ठेइ** (द्वार० ५०३, ३२), **उट्ठेहि** (एर्से० ४२, ३) और **समुट्ठेहि** (द्वार० ५०३, २७ और ३१) रूप हैं। शौर० मे **उट्ठेहि** (मृच्छ० ४, १४, १८, २२, ५१, ५ और ११, नागा० ८६, १०, ९५, १८, प्रिय० २६, ६, ३७, ९, ४६, २४, ५३, ६ और ९), **उत्तेहि** (विक्र० ३३, १५), **उत्तेदु** (मृच्छ० ९३, ५, शकु० १६२, १२) और **उट्ठेध** रूप पाये जाते है, माग० में **उट्ठेहि, उट्ठेदु** और **उट्ठेदि** आये हैं तथा **उट्ठत्त** भी पाया जाता है (मृच्छ० २०, २१, १३४, १९, १६९, ५)। § ३०९ की तुलना कीजिए।

§ ४८४—हेमचन्द्र १, २१८ के अनुसार **दंश्** का रूप **डसइ** होता है (§ २२२) जो सस्कृत रूप **दशति** से मिलता है। इस नियम से जै०महा० में **डसइ** मिलता है (आव०एर्से० ४२, १३), अ०माग० में **दसमाणे** और **दसन्तु** रूप पाये जाते हैं (आयार० १, ८, ३, ४)। शौर० में अनुनासिक रह गया है और **दंसदि** काम मे आता है (शकु० १६०, १), वर्तमानकाल के रूप से जो कर्मवाच्य की भूतकालिक अशक्रिया बनी है उसका रूप **दंसिदो** है (मालवि० ५४, ६)। — अ०माग० मूल-धातु में **लभ्** धातु मे अनुनासिक दिखाई देता है। इस बोली में **लम्भामि** आया है (उत्तर० १०३) तथा शौर० और माग० में भविष्यत्काल और कर्मवाच्य में भी अनुनासिक आता है (§ ५२५ और ५४१)। **खाइ = खादति** (यह रूप क्रम० ४, ७७ में भी है) और **धाइ = धावति** के लिए § १६५ देखिए।

§ ४८५—छठे गण की क्रियाओं में जो वर्तमानकाल में अनुनासिक ग्रहण करती हैं, **लिप्, लुप्, विद्** और **सिच्** की रूपावली ठीक सस्कृत की भाँति चलती है। **लिप्** के साथ सम्बन्धित **अलिवइ = आलिम्पति** (§ १९६, हेच० ४,३९) पाया जाता है। इनमें **अ-** वर्ग के साथ **ए-** वर्ग भी काम में लाया जा सकता है, जैसा कि शौर० में **सिञ्चम्ह** और **सिञ्चदि** (शकु० १०, २, १५, ३) के साथ-साथ **सिञ्चेदि** भी आया है, (शकु० ७४, ९)। **सिच्** का रूप **सेअइ = *सेचति** भी बनता है (हेच० ४, ९६)। **मुच्** धातु में महा०, जै०महा० और अ०माग० में अधिकाश में किसी प्रकार का अनुनासिक नहीं आता (हेच० ४, ९१) : महा० में **मुअसि, मुअइ, मुअन्ति, मुअ, मुअसु** और **मुअन्त-** रूप मिलते हैं (गउड०, हाल, रावण०, शकु० ८५, ३), **आमुअइ** रूप भी आया है (गउड०), जै०महा० में **मुयइ** (आव०एर्से० १७, ४, एर्से० ५२, ८), **मुयसु** (कालका० २६२, १९) और **मुयन्तो** रूप आये हैं (एर्से० २३, ३४, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए), अ०-माग० में **मुयइ** है (विवाह० १०४ और ५०८), **ओमुयइ** मिलता है (आयार० २, १५, २२, विवाह० ७९६, ८३५, १२०८, १३१७, कप्प०), **मुयन्तेसुं = मुञ्चत्सु** है (नायाध० § ६२ और ६३), **विणिम्मुयमाण** और **मुयमाण** देखे

पाये जाते हैं (विवाह० २५४), विणिम्मुयमाणी = विनिर्मुञ्चमाना है (विवाह० ८२२)। इसी नियम से जै० शौर० में भी मुयदि पाया जाता है (कत्तिगे० ४०१, ३८१)। महा० और जै०महा० में अनुनासिकयुक्त वर्ग भी विरल नहीं है : महा० में मुञ्चइ है (हाल ११४ ; रावण० १, २ ; ८, ९ ; ७, ४९ ; १२, १४), मुञ्चन्ति भी आया है (गउड० २५८), मुञ्चद मिलता है (रावण० १५, ८ ; कर्पूर० १२, ६), मुञ्चन्तो भी है (कर्पूर० ६७, ६ ; ८९, १) ; जै०महा० में मुञ्च, मुञ्चसु, मुञ्चह (एर्त्से०), मुञ्चइ और मुञ्चन्ति रूप मिलते हैं (कालका० २६१, १२ ; २७२, ७) ; शौर० तथा माग० में एकमात्र अनुनासिकयुक्त रूप ही काम में आता है : शौर० में मुञ्चदि (मुद्रा० २४९, ६), मुञ्च (मृच्छ० १७१, २१ ; शकु० ६, १४ ; रत्ना० ३१९, ४ ; नागा० ३६, ४ ; ३८, ८), मुञ्चदु (विक्र० १०, २) और मुञ्चध रूप पाये जाते हैं (मृच्छ० ३२४, १९ ; ३११, १८) ; माग० में मुञ्चदु, मुञ्चन्ति (मृच्छ० ११, १८ और २१ ; १६८, १०) तथा मुञ्च आये हैं (प्रबोध० ५८, ६)। ए- वर्ग भी विरल नहीं है : महा० में मुञ्चेसि मिलता है (हाल १२८) ; शौर० में मुञ्चेदि, मुञ्चेसि (शकु० ५१, ६ ; १५४, १२), मुञ्चेम्ह (मृच्छ० १६१, २५ ; शकु० ११६, ७) और मुञ्चेहि रूप आये हैं (मृच्छ० ३२६, १ ; वृषभ० २०, १५ ; ५९, १२)। — कृत् (= कतरना ; काटना) धातु का अ०माग० में कत्तइ रूप बनता है (सूय० ३६०), जनता की बोली में ओअन्दइ = अपकृन्तति है (देशी० ४, १५५ = आच्छिनत्ति ; § २७५ की तुलना कीजिए)। अ०माग० में इस धातु की रूपावली उपसर्ग वि से संयुक्त होकर अनुनासिक के साथ छठे गण में चली गयी है : विगिञ्चइ = *विकृन्तति है तथा विगिञ्चमाण रूप भी मिलता है (आयार० १, १, ४, १ ; १, ६, २, ४)। विगिञ्च भी आया है (आयार० १, ३, २, १ ; उत्तर० १७), विगिञ्चिज्ज भी है (आयार० २, १, २, ६) ; क्त्वा- वाला रूप विगिञ्च है (सूय० ५०० और ५०६)। § २७१ में किञ्चि और § ५०७ में विउम्बइ की तुलना कीजिए।

§ ४८६ — स्पृश् अ०माग० में नियमित रूप से फुसइ = स्पृशति बनता है ; फुसन्ति = स्पृशन्ति है ; फुसन्तु = स्पृशन्तु तथा फुसमाणे = स्पृशमाना है (आयार० १, ६, २, ३ ; १, ९, ५, १ ; १, ७, ७, १ ; विवाह० १०, ९८ ; १५८ ; १५५ और १२८८ ; भाव०)। इसके ठीक समान रूपवाले पुसइ और पुंसइ हैं (= पोंछना ; हेच० ४, १०५ ; गउड० ; हाल ; रावण०) और दूसरा फुसइ है (= भ्रमण करना ; हेच० ४, १६१)[१]। हेमचन्द्र ने ४, १८२ में फासइ, फंसइ और फरिसइ का उल्लेख करता है जिससे पता चलता है कि कभी स्पृशति का रूप *स्पर्शति भी रहा होगा। फासइ अ०माग० रूप संफास = *संस्पर्शत् = संस्पृशत् में आया है (आयार० २, १, १, ३ ; ५, ५, १, २ ; ८ ; ५ और ६ ; १, २ और ३ ; २, १, २, १२)। फरिसइ उसी प्रकार बनाया गया है जैसे, करिसइ = कर्षति, मरिसइ = मर्षति, वरिसइ = वर्षति और हरिसइ = हर्षति बनाये गये हैं (वर० ८, ११ ; हेच० ४, २३५ ; क्रम० ४, ७२)[१]। पुंसइ (= पोंछना ;

हेच० ४, १०५) भी इसी प्रकार की रूपावली की सूचना देता है। **उप्पुंसिअ** और **ओप्पुंसिअ** रूप मिलते है (गउड० ५७ और ७७८, इनके साथ साथ ७२३ में **ओप्पुसिअ** भी है), इस धातु का एक रूप **उत्पुंसय**– सस्कृत में भी घुस गया है[२]। — **त्रुट्**, **तुडइ = त्रुटति** के साथ-साथ **तुट्टइ = त्रुट्यति** और **तोडइ = *त्रोटति** रूप बनाता है (हेच० ४, ११६), ठीक जैसे **मिल्** के **मेलइ** और महा० मे **मेलीण** रूप हैं (§ ५६२), अ०माग० मे इसका रूप **मेलन्ति** मिलता है (विवाह० ९५०), अप० में इसका **मेलवि** रूप पाया जाता है (हेच० ४, ४२९, १)। -- **कृ** और **मृ** के विषय में § ४७७, **सृ** के सम्बन्ध में § २३५ तथा **फुट्टइ** के लिए § ४८८ नोट सख्या ४ देखिए।

१ इसका साधारण मूल-अर्थ 'किसी पदार्थ पर फिसलना या उसकी ओर जाना है' जो अर्थ 'छूने' से बिना कठिनता के निकलता है। इसको **प्रोञ्छ** से व्युत्पन्न करना (वेवर, हाल में **पुस्** शब्द देखिए, एस. गौल्दश्मित्त, त्सा०डे०डौ०मौ०गे० ३२, ९९) भाषाशास्त्र की दृष्टि से असम्भव है। — २ लेक्सिकोग्राफी, पेज ५८ में इसके उदाहरण हैं। इसका सानुनासिक रूप **पुंसइ** मौलिक नही है, जैसा कि एस० गौल्दश्मित्त ने त्सा०डे०डौ०मौ०गे० ३२, ९९ नोटसंख्या २ में मत दिया है किन्तु **फंसइ** की भाँति इसका स्पष्टीकरण § ७४ के अनुसार किया जाना चाहिए। हाल ७०६ में धन्यालोक ११५, ११ में **मा पुसतु** के स्थान में **मा पुंस** रूप देता है।

§ ४८७—चौथे गण का विस्तार प्राकृत में सस्कृत की अपेक्षा अधिक हुआ है। बहुत अधिकसख्यक धातुओं की रूपावली, जो सस्कृत मे या तो कभी नहीं अथवा इसके अनुसार बहुत कमचलते हैं[१], प्राकृत में इस गण के अनुसार चलती है। सभी धातु जिनके अन्त में **अ** छोड कोई दूसरा स्वर आता हो ऐसे वर्ग हेमचन्द्र ४, २४० के अनुसार (वर० ८,२१ और २५ तथा २६, क्रम० ४, ६५, ७५ और ७६, मार्क० पन्ना ५४ की तुलना कीजिए) इस रूपावली का अनुसरण कर सकता है : **पाअइ = *पायति** और इसके साथ साथ **पाइ = पाति** भी मिलता है (=बचाना, रक्षा करना); **धाअइ** और **धाइ = दधाति** हैं, **ठाअइ** तथा **ठाइ** और तृतीयपुरुष बहुवचन में **ठाअन्ति** रूप पाया जाता है, जै०महा० मे **ठायन्ति** है और अप० में **थन्ति** मिलता है (§ ४८३), **विक्केअइ** और इसके साथ साथ **विक्केइ = *विक्रयति**[२] है, **होअ-ऊण** और इसके साथ साथ **होऊण** जो **हो** वर्ग = **भव** से निकले हैं और जिसके रूप सिंहराजगणिन् पन्ना ४७ के अनुसार **होआमि, होअसि** और **होअइ** भी होते हैं, इसी गण के अनुसार रूपावली बनाते हैं (§ ४७६)। उक्त दो प्रकार के रूप कहीं-कहीं वेद में देखने में आती है जैसे, **उव्वाअइ** = वैदिक **उद्वायति** और **उव्वाइ** = सस्कृत **उद्वाति** है। — **जम्भाअइ** और **जम्भाइ**, **जृम्भा** से क्रिया रूप में निकले हैं। इस प्रकार की नकल पर अ०माग० में **जाइ** (सूय० ५४०, उत्तर० १७०) तथा इसके साथ साथ महा० में **जाअइ = जायते जन्** धातु से बने हैं। प्राकृत साहित्य में निम्नलिखित उदाहरण मिलते हैं, महा० मे **माअसि, माअइ, माअन्ति** और **अमाअन्त** रूप पाये

जाते हैं (विवाह० २५४), विणिम्मुयमाणी = विनिर्मुञ्चमाना है (विवाह० ८२२)। इसी नियम से जै० शौर० में भी मुयदि पाया जाता है (कत्तिगे० ४ १, ३८१)। महा० और जै० महा० में अनुनासिकयुक्त वर्ग भी विरल नहीं है : महा० में मुञ्चइ है (हाल ६१८ ; रावण० १, २ ; ८, ९ ; ७, ४९ १२, १४), मुञ्चसि भी आया है (गउड० २१८), मुञ्चइ मिलता है (रावण० १५, ८ ; कर्पूर० १२, ९), मुञ्चन्ता भी है (कर्पूर० ६७, ६ ; ८६, १) ; जै० महा० में मुञ्च, मुञ्चह, मुञ्चइ (एर्त्सें०), मुञ्च और मुञ्चन्ति रूप मिलते हैं (कालका० २६१, १२ ; २७२, ७)। शौर० तथा माग० में एकमात्र अनुनासिकयुक्त रूप ही काम में आता है। शौर० में मुञ्चदि (मुद्रा० २४९, ६), मुञ्च (मृच्छ० १७१, २१ ; शकु० ६०, १४ ; रत्ना० ३१६, ४ ; नागा० ३६, ४ ; ३८, ८), मुञ्चदु (विक्र० १०, २) और मुञ्चध रूप पाये जाते हैं (मृच्छ० ३२४, २१ ; ३६१, १८)। माग० में मुञ्चदु, मुञ्चन्ति (मृच्छ० ११, १८ और २१ ; १५८, १९) तथा मुञ्च आये हैं (प्रबोध० ५०, ६)। ए- वर्ग भी विरल नहीं है : महा० में मुञ्चेसि मिलता है (हाल २८) ; शौर० में मुञ्चदि, मुञ्चेसि (शकु० ५१, ६ ; १५८, १२), मुञ्चध (मृच्छ० ३११, २५ ; शकु० ११६, ७) और मुञ्चदि रूप आये हैं (मृच्छ० ३२६, १ ; वृषभ० २, १५ ; ५९, १२)। — स्पृश् (= छूना ; कांटना) धातु का अ०माग० में फुसइ रूप बनता है (सूय० ३६), जनता की बोली में आफुसइ = अपस्पृशति है (देशी० ४, १६५ = आस्फुशति ; § २७५ की तुलना कीजिए)। अ०माग० में इस धातु की रूपावली उपसर्ग वि और नि संयुक्त होकर अनुनासिक के साथ चौथे गण में चली गयी है : विणिम्भइ = ०विनिस्स्पृशति है तथा विणिम्भमाण रूप भी मिलता है (आयार० १, १, ८, १ ; १, ६, २, ४) ; विणिम्भ भी आया है (आयार० १, ६, २, १ ; उत्तर० १७), विणिम्भेज्ज भी है (आयार० २, १, २, ६) ; पद्य- पाठ में रूप विणिम्भ है (सूय० ९० और ९६)। § २७१ में किञ्चि और § ५०७ में विगम्भइ की तुलना कीजिए।

§ ४८८—स्पृश् अ०माग० में नियमित रूप से फुसइ = स्पृशति बनता है, फुसन्ति = स्पृशन्ति है, फुसन्तु = स्पृशन्तु तथा फुसमाण = स्पृशमाना है (आयार० १, ६, १, ३ ; १, २, ५, १ ; १, ७, ७, १ ; विवाह० ९७ ; ९८ ; १५४ ; १५५ और १२८८ आदि)। इसके ठीक समान रूपवाले फुसइ और फुसइ है (= पोंछना : देशी० ६, ८५ ; गउड० ; हाल ; रावण०) और लुप्प फुसइ है (= झूठा बनाना : देशी० ६, १११)[१]। हेमचन्द्र ने ४, १८२ में फासइ, फंसइ और फरिसइ का उल्लेख किया है जिनसे पता चलता है कि कभी स्पृशति का रूप ०स्पर्शति भी रहा होगा। अ०माग० में रूप संफास = ०संस्पर्श = संस्पृश रूप में आया है (आयार० २, १, ३, २ ; ५, ५ ; १, २ ; ८ ; ५ और ६ ; १, २, ५, १, ३ ; ९, १, २, ११)। फरिसइ उसी प्रकार बनाया गया है जैसे, करिसइ = कर्षति, मरिसइ = मर्षति, वरिसइ = वर्षति और हरिसइ = हर्षति बनाये गये हैं (वर० ८, ११ ; हेम० ४, २३५ ; क्रम० ४, ७१)[१]। पुसइ (= पोंछना :

आया है) और महा० मे **पत्तिसु** भी है जो अशुद्ध व्युत्पत्ति = **प्रतीहि** के आधार पर बने हैं (हाल में अन्यत्र देखिए) । शौर० मे **पत्तिज्जामि** (कर्पूर० बबइया सस्करण ४२, १२) और **पत्तिज्जसि** (कर्ण० १३, ११) रूप अशुद्ध है , पहले रूप के स्थान मे कोनो ४०, ९ में **पत्तिआमि** पढता है । — **णहाइ** = **स्नाति** है (हेच० ४, १४), अ०माग० मे **सिणाइ** आया है (सूय० ३४४) , जै०महा० मे **णहामो** = **स्नामः** (आव०एर्से० १७, ७) , माग० में **स्णाआमि** = **स्नामि** है (मृच्छ० ११३, २१) । § ३१३ और ३१४ की तुलना कीजिए । अ०माग० मे **पच्चायन्ति** (ओव० § ५६) **जन्** धातु से सबधित है (लौयामान मे यह शब्द देखिए), इसी भाँति **आयन्ति** भी मिलता है जैसा कि कप्पसुत्त § १७ मे, अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार पढा जाना चाहिए , प्रथमपुरुष एकवचन में इच्छावाचक रूप **पयाएज्जा** है (निरया० ५९), द्वितीयपुरुष एकवचन में **पयाएज्जासि** आया है (नायाध० ४२०) । अ०माग० **जाइ** = **जायते** के विषय में ऊपर देखिए । § ४७९ की भी तुलना कीजिए ।

१ लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज ३४३ , पिशल बे०बाइ० १३, ९ । — २ विक्केअइ, विक्रेय से निकला रूप माने जाने पर शुद्धतर हो जाता है (§ ५११) । — ३ इस स्थान में अन्यत्र आये हुए रूप के अनुसार पढ़ा जाना चाहिए य शच्चक पि ण पत्तिआईअदि । पत्तिआपदि रूप उसी भाँति अशुद्ध है जैसे, शौर० रूप पत्तियापदि जो मृच्छकटिक ३२५, १९ में मिलता है ।

§ ४८८—जिन धातुओं के अन्त में व्यजन आता और वह **य** के साथ सयुक्त होता है तो उसमें ध्वनिशिक्षा में (§ २७९–२८६) बताये गये परिवर्तन होते हैं : **णच्चइ** = **नृत्यति** , **जुज्झइ** = **युध्यते** , **तुट्टइ** = **त्रुट्यति** , **मण्णइ** = **मन्यते** , **कुप्पइ** = **कुप्यते** , **लुब्भइ** = **लुभ्यति** और **उत्तम्मति** = **उत्ताम्यति** है , **णस्सइ** अ०माग० और जै०महा० में **नासइ**, महा० में **णासइ** = **नश्यति** (§ ६३) , **रूसइ**, **तूसइ**, **सूसइ**, **दूसइ**, **पूसइ** और **सीसइ** रूप मिलते हैं (भाम० ८, ४६ , हेच० ४, २३६ , क्रम० ४, ६८), अ०माग० और जै०महा० में **पासइ** = **पश्यति** है (§ ६३) । — **ए**- युक्त शब्द की रूपावली के अनुसार जै०शौर० रूप **तूसेदि** मिलता है (कत्तिगे० ४००, ३३५) । इस वर्ग में कई धातु सस्कृत से दूर पड गये हैं और उनकी रूपावली चौथे गण के अनुसार चलती है । उदाहरणार्थ, **कुक्कइ** और **कोँक्कइ** = ***कुक्यति** = ***क्रुश्यति** = **क्रोशति** (हेच० ४, ७६)[१] , **चल्लइ** = ***चल्यति** = **चलति** (वर० ८, ५३ , हेच० ४, २३१) । इसके साथ-साथ साधारण रूप **चलति** भी चलता है , यह धातु सधि में भी चलता है जैसे, **ओअल्लन्ति** = **अवचलन्ति** है, **ओअल्लन्त**- रूप भी आया है (रावण०), **पअल्लइ** रूप मिलता है (हेच० ४, ७७) और **परिअल्लइ** भी देखा जाता है (हेच० ४, १६२) , **जिम्मइ** = ***जिम्यति** तथा इसके साथ साथ **जिमइ** भी चलता है, **जेमइ** = **जेमति** है (हेच० ४, २३० , ४, ११० की तुलना कीजिए) , **थक्कइ** = ***स्थाक्यति** है (हेच० ४, १६)[२] , ***मिल्लइ** = ***मील्यति** = **मीलति** है और यह सधियुक्त क्रिया मे भी पाया जाता है . **उम्मि**-

आया है (§ ४५७)। महा०, अ०माग०, जै०महा० और अप० रूप **मुणइ** और जै०शौर० **मुणदि** (वर० ८, २३ , हेच० ४, ७ , मार्क० पन्ना ५३ , गउड० , हाल , रावण० , अच्युत० ८२ , प्रताप० २०२, १५ , २०४, १० , विक्र० २६, ८ , आयार० १, ७, ८, १३ , ओव० , कप्प० , एर्त्से० , काल्का०, हेच० , ४, ३४६ , पिंगल १, ८५ , ८६ , ९० , ९५ आदि-आदि , कत्तिगे० ३९८, ३०३ , ३९९, ३१३ और ३१६ , ४००, ३३७) तथा **ए**- वर्ग के अनुसार अ०माग० रूप **मुणेयव्व** (पण्णव० ३३), जै०शौर० **मुणेदव्व** (पव० ३८०, ८ , पाठ में **मुणयदव्व** है), इसी **मन्** से व्युत्पन्न होते हैं। इस व्युत्पत्ति के विरुद्ध इसका अर्थ 'जानना' और पाली रूप **मुनाति** आ खड़े होते हैं। मैं **मुणइ** का सम्बन्ध **कामभूत** शब्द मे वैदिक **मूत** और सस्कृत **मुनि** से जोडना ठीक समझता हूँ। लैटिन रूप **आनिमो मोवेरे** की तुलना कीजिए। — जैसा कि कभी कभी महाकाव्यों की भाषा मे देखा जाता है **शम्** प्राकृत में अपने वर्ग के अनुसार पहले गण में रूपावली चलाता है . **समइ** (हेच० ४, १६७) और **उवसमइ** रूप मिल्ते है (हेच० ४ २३९)। इसी नियम से महा० में **पडिसमइ** आया है (रावण० ६, ४४), अ०माग० म **उवसमइ** है (कप्प० एस. (S) § ५९), जै०महा० में **उवसमसु** (एर्त्से० ३, १३) और **पसमन्ति** रूप मिल्ते हैं (आव० १६, २०) , माग० में **उवशमदि** रूप है (हेच० ४, २९९ = वेणी० ३४, ११), इस स्थान मे ग्रिल **उवसम्मदि** पढता है , इस ग्रन्थ में अन्यत्र दूसरा रूप देखिए तथा कलकतिया सस्करण में ७१, ७ की तुलना कीजिए। बहुत बार इसके रूप, सस्कृत के समान ही, चौथे गण में मिल्ते हैं : महा० में **णिसम्मइ, णिसम्मन्ति, णिसम्मसु** और **णिसम्मन्त**- मिलते हैं (गउड०), **पसम्मइ** और **पसम्मन्त**- आये हैं (गउड० , रावण०) और **परिसामइ** भी देखा जाता है (हेच० ४, १६७)। — **श्रम्** की रूपावली केवल पहले गण में चल्ती है : अ०माग० में **समइ** है (उत्तर० ३८), जै०महा० मे **उवसमन्ति** आया है (आव०एर्त्से० ३५, २९) , महा० और जै०महा० में **वीसमामि, वीसमसि, वीसमइ, वीसमामो, वीसमसु** और **वीसमउ** रूप मिल्ते हैं (गउड० , हाल , रावण० , एर्त्से० , हेच० १, ४३ , ४, १५९) , जै०महा० मे **वीसममाण** आया है [कुमाउनी में इसका रूप **विसॉण** और **विसूँण** मिल्ते हैं। —अनु०] , द्वार० ५०१, ९) , शौर० में **वीसम** चल्ता है (मृच्छ० ९७,१२) और **वीसमम्ह** पाये जाते हैं (रत्ना० ३०२, ३२), कर्मवाच्य मे **वीसमीअदु** आया है (मृच्छ० ७७, ११), **विस्समीअदु** भी है (शकु० ३२, ९ ; विक्र० ७७, १५)। — **विध्** (**व्यध्**) की रूपावली महा०, अ०माग० और जै०महा० में छठे गण के अनुसार चल्ती है और उसमें अनुनासिक का आगमन हो जाता है ' महा० में **विधन्ति** आया है (कर्पूर० ३०, ६) , अ०माग० में **विन्धइ** मिल्ता है (उत्तर० ७८८), इच्छावाचक रूप **विन्धेज्ज** (विवाह० १२२) है , **आविन्धेॅज्ज वा पिविन्धेॅज्ज वा** देखा जाता है (आयार० २, १३, २०)। इसका प्रेरणार्थक रूप **आविन्धावेइ** भी चलता है (आयार० २, १५, २०), जै०महा० मे **आविन्ध** है (आव०एर्त्से० ३८, ७ ,

आया है (§ ४५७)। महा०, अ०माग०, जै०महा० और अप० रूप **मुणइ** और जै०शौर० **मुणदि** (वर० ८, २३ , हेच० ४, ७ , मार्क० पन्ना ५३ , गउड० , हाल , रावण० , अच्युत० ८२ , प्रताप० २०२, १५ , २०४, १० , विक्र० २६, ८ , आयार० १, ७, ८, १३ , ओव० , कप्प० , एर्त्से० , कालका०, हेच० , ४, ३४६ , पिंगल १, ८५ , ८६ , ९० ; ९५ आदि-आदि , कत्तिगे० ३९८, ३०३ , ३९९, ३१३ और ३१६ , ४००, ३३७) तथा **ए**– वर्ग के अनुसार अ०माग० रूप **मुणेयव्व** (पण्णव० ३३), जै०शौर० **मुणेदव्व** (पव० ३८०, ८ , पाठ में **मुणयदव्व** है), इसी **मन्** से व्युत्पन्न होते हैं। इस व्युत्पत्ति के विरुद्ध इसका अर्थ 'जानना' और पाली रूप **मुनाति** आ खड़े होते हैं। मैं **मुणइ** का सम्बन्ध **काममूत** शब्द मे वैदिक **मूत** और सस्कृत **मुनि** से जोडना ठीक समझता हूँ। लैटिन रूप **आनिमो मोवेरे** की तुलना कीजिए। — जैसा कि कभी कभी महाकाव्यों की भाषा में देखा जाता है **शम्** प्राकृत में अपने वर्ग के अनुसार पहले गण मे रूपावली चलाता है . **समइ** (हेच० ४, १६७) और **उवसमइ** रूप मिलते है (हेच० ४ २३९)। इसी नियम से महा० में **पडिसमइ** आया है (रावण० ६, ४४) , अ०माग० में **उवसमइ** है (कप्प० एस (S) § ५९) , जै०महा० मे **उवसमसु** (एर्त्से० ३, १३) और **पसमन्ति** रूप मिलते हैं (आव० १६, २०) , माग० में **उवशमदि** रूप है (हेच० ४, २९९ = वेणी० ३४, ११), इस स्थान मे ग्रिल **उवसम्मदि** पढता है , इस ग्रन्थ में अन्यत्र दूसरा रूप देखिए तथा कलकतिया सस्करण में ७१, ७ की तुलना कीजिए। बहुत बार इसके रूप, सस्कृत के समान ही, चौथे गण मे मिलते हैं . महा० में **णिसम्मइ, णिसम्मन्ति, णिसम्मसु** और **णिसम्मन्त**– मिलते हैं (गउड०), **पसम्मइ** और **पसम्मन्त**– आये हैं (गउड० , रावण०) और **परिसामइ** भी देखा जाता है (हेच० ४, १६७)। — **श्रम्** की रूपावली केवल पहले गण में चलती है : अ०माग० में **समइ** है (उत्तर० ३८), जै०महा० में **उवसमन्ति** आया है (आव०एर्त्से० ३५, २९) , महा० और जै०महा० में **वीसमामि, वीसमसि, वीसमइ, वीसमामो, वीसमसु** और **वीसमउ** रूप मिलते हैं (गउड० , हाल , रावण० , एर्त्से० , हेच० १, ४३ , ४, १५९) , जै०महा० में **वीसममाण** आया है [कुमाउनी मे इसका रूप **विसॉण** और **विसूँण** मिलते हैं। —अनु०] , द्वार० ५०१, ५) , शौर० में **वीसम** चलता है (मृच्छ० ९७,१२) और **वीसमम्ह** पाये जाते हैं (रत्ना० ३०२, ३२), कर्मवाच्य में **वीसमीअदु** आया है (मृच्छ० ७७, ११), **विस्समीअदु** भी है (शकु० ३२, ९ ; विक्र० ७७, १५)। — **विध्** (**व्यध्**) की रूपावली महा०, अ०माग० और जै०महा० में छठे गण के अनुसार चलती है और उसमें अनुनासिक का आगमन हो जाता है ' महा० में **विधन्ति** आया है (कर्पूर० ३०, ६) , अ०माग० में **विन्धइ** मिलता है (उत्तर० ७८८), इच्छावाचक रूप **विन्धेज्ज** (विवाह० १२२) है , **आविन्धेँज्ज वा पिविन्धेँज्ज वा** देखा जाता है (आयार० २, १३, २०)। इसका प्रेरणार्थक रूप **आविन्धावेइ** भी चलता है (आयार० २, १५, २०) , जै०महा० में **आविन्ध** है (आव०एर्त्से० ३८, ७ ;

१० और १५), आविम्भामो और आविम्भसु भी मिलते हैं (आव०एर्त्से० १७, ८ ; १८, ११) तथा ओइम्भेइ भी आया है (आव एर्त्से १८, १९) । अ०माग० में इसकी रूपावली पहले गण के अनुसार भी चलती है, थेइइ = *थेभति है (सूय० १८९) तथा उद् उपसर्ग जुड़ने पर बिना अनुनासिक के छठे गण के अनुसार रूपावली चलती है उब्धिहइ = *उद्धिघाति = उद्विघ्यति है (नायाध ९५८ और ९९१ ; विवाह० ११८८) । — श्लिष पहले गण के अनुसार सिलेसइ = *श्लेषति = श्लिष्यति बनाता है (हेच ४, १९) ।

§ ४९ — दसवें गण की क्रियाएं और इनके नाना तथा प्रेरणार्थक रूप, जहाँ तक उनका निर्माण इस गण के समान होता है, —अय संक्षिप्त रूप ए कर देते हैं : पल्लवदानपत्र में अमत्थेमि = अभ्यर्थयामि है (७, ४४) महा में कहइ = कथयति (हाल) है और कथेसि भी मिलता है (गउड); जै महा में कहमि और कहेहि रूप आये हैं (एर्त्से) अ माग में कहेइ (उवास) और परिकहेमो देखने आते हैं (निरया ६) शौर में कधेहि = कथय है (मृच्छ ४, २४ ६, २ ८, १७ १४२, ९ १४६, ४ १५२, २४; शकु १७, ११ ५, १२ विक्र ५१, ११ आदि-आदि), कथेसु आया है (बाल० ५१, १२ ; १६४,१७ ; २१८,१६), कधदु = कथयतु है (मृच्छ २८,२ शकु ५२,७ ११६, १२) माग में कधेदि पाया जाता है (शकु ११७, ५) । — महा में गणेइ = गणयति है, गणॅन्त भी आया है (रावण) शौर में गणेसि पाया जाता है (शकु १५९, ५) । — महा० में चिन्तेसि, चिन्तेइ, चिन्तॅन्ति तथा चिन्तेउं रूप आये हैं (गउड हाल रावण) अ माग में चिन्तेइ मिलता है (उवास), जै महा में चिन्तेसि (एर्त्से) और चिन्तेन्ति रूप हैं (आव०एर्त्से ४६, २१) ; शौर में चिन्तेमि (विक्र ४ २), चिन्तेहि (शकु ५४,७ विक्र ४६, ८ ; रत्ना १ ९ ११) और चिन्तेमो रूप मिलते हैं (महावीर ११४, ११) । — शौर में तक्केमि आया है (मृच्छ ११ ६ ५९,२५ ; ७९, १ और ४ ९९, १ शकु ९ ११ ९८ ८ ११७ १ १६२, ११ तथा बहुत अधिक बार) । इसी प्रकार माग में भी यही रूप है (मृच्छ ९९ ११ १२२, १२ ; १४१, २ ; १६१, २२ ; १७ १७); अप में तक्कइ रूप है (देच ४, ३७ , १) । — अ०माग में परियावॅन्ति = परितापयन्ति है (आयार १ १,६,२) ; शौर में संतावेदि रूप मिलता है (शकु० १२७, ७) । — अ०माग में पवेहि = पेषयति है (विवाह ४८७ ; नायाध ६२१ ; निरया § ११) घेरमो = घरयामः है (विवाग० २२९) और घेरेमो = धरयामः है (विवाह० ७) । असंक्षिप्त रूप भी बार-बार पाये जाते हैं किन्तु केवल नीचे दिये गये द्वित्व व्यंजनों से पहले, विशेष कर न्त् से, जैसे अ माग में ताळयन्ति = ताडयन्ति है (पद्य में ; उत्तर १६० और ३६९), इसके साथ-साथ ताळेन्ति भी चलता है (विवाह २३६), ताळइ (नायाध १२३६ और ११ ५) तथा ताळइ भी मिलते हैं (नायाध ११ ५); तामयन्ता (जीवा ८८९) और पडिसंवेययन्ति भी देखे जाते हैं (आयार १, ८, ८, २) ; महा०

में **अवअंसअन्ति = अवतंसअन्ति** है (शकु० २,१५), जै०महा० में **चिन्तयन्तो** तथा **चिन्तयन्ताणं** मिलते हैं (एर्त्से०), शौर० में **दंसअन्तीए = दर्शयन्त्या** है, **दंसअम्ह, दंसइस्सं, दंसइस्ससि** तथा **दंसइस्सदि** रूप काम में आते हैं, माग० में **दंशअन्ते** है और इसके साथ साथ शौर० में **दंसेमि, दंसेसि, दसेहि** और **दंसेदुं** है (§ ५५४), शौर० में **पआसअन्तो = प्रकाशयन्** है (रत्ना० ३१३,३३), इसके साथ साथ महा० में **पआसेइ, पआसेन्ति** और **पआसेन्ति** रूप आये हैं (गउड०), माग० मे **पयाशे॑म्ह** (पाठ में **पयासे॑म्ह** है) = **प्रकाशयाम** है (ललित० ५६७, १), शौर० में **पेसअन्तेण = प्रेषयता** है (शकु० १४०,१३), शौर० में **आआसअन्ति = आयासयन्ति** (वृषभ० ५०, १०)। अन्य स्थितियों में इसका प्रयोग विरल है जैसे कि शौर० में **पवेसआमि** आया है (मृच्छ० ४५, २५), इसके साथ-साथ शौर० में **पवेसेहि** भी मिलता है (मृच्छ० ६८, ५), माग० में **पवेशेहि** है (मृच्छ० ११८, ९ और १९), शौर० में **विरअआमि = विरचयामि** है (शकु० ७९, १), शौर० में **आस्सासअदि = आश्वासयति** है (वेणी० १०, ४), शौर० में **चिरअदि = चिरयति** है (मृच्छ० ५९, २२), शौर० में **जणअदि = जनयति** है (शकु० १३१, ८) किन्तु यहाँ पर इसी नाटक में अन्यत्र पाये जानेवाले रूप के अनुसार **जणेदि** पढा जाना चाहिए, जैसे कि महा० में **जणेइ** (हाल) और **जणेन्ति** रूप पाये जाते हैं (हाल, रावण०), महा० में **वण्णआमो = वर्णयामः** है (बाल० १८२, १०)। अ०माग० और जै०महा० में सदा ऐसा ही होता है विशेष कर अ०-माग० में जिसमें **दलय** बहुत अधिक काम में लाया जाता है, इस **दलय** का अर्थ 'देना' है : **दलयामि** आया है (नायाध० § ९४, निरया० § १९, पेज ६२, एर्त्से० ६७, २७), **दलयइ** है (विवाग० ३५, १३२, २११, २२३, नायाध० § ५५ और १२५, पेज २६५, ४३२, ४३९, ४४२, ४४९, राय० १५१ और उसके बाद, आयार० २, १, १०, १, उवास०, कप्प०, ओव० आदि आदि), **दलयामो** मिलता है (विवाग० २३०, नायाध० २९१), **दलयन्ति** है (विवाग० ८४ और २०९, नायाध० § १२०), **दलएज्जा** और **दलयाहि** भी हैं (आयार० १, ७, ५, २, २, १, १०, ६ और ७, २, ६, १, १०), **दलयह** पाया जाता है (निरया० § १९) और **दलयमाणे** आया है (नायाध० § ११३, कप्प० § १०३ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए, जैसा कि § २८ में ए (A) हस्तलिपि में **दलयइ** आया है])। § ४७४ की तुलना कीजिए।

§ ४९१—संस्कृत में बिना किसी प्रकार का उपसर्ग जोडकर संज्ञाशब्दों से क्रियाएं बना दी जाती हैं जैसे, **अंकुर** से **अंकुरति, कृष्ण** से **कृष्णति** और **दर्पण** से **दर्पणति** (कीलहौर्न § ४७६, ह्विट्नी § १०५४)। क्रिया का इस प्रकार से निर्माण जो संस्कृत में बहुधा नहीं किया जाता प्राकृत में साधारण बात है, विशेषकर महा० और अप० में। अन्त में **आ** लगकर बननेवाले स्त्रीलिंग संज्ञाशब्द से निकली हुई क्रियाओं, जैसा कि ऐसे सभी अवसरों पर होता है –**आ** ह्रस्व हो जाता है, की रूपावली पहले गण के अनुसार चलती है। इस नियम से महा० **कहा** = (§ ४८७, ५००, ५१० और

उसके बाद) संस्कृत कथा से निकले रूप कहासि, कहसि, कहइ, कहामो, कहह और कहन्ति रूप मिलते हैं। इसलिए ऐसा होता है कि § ४९ में बताये गये रूपों के साथ-साथ जिनमें ए = अय आता है, जनता में बोली जानेवाली प्राकृत में –अ –वाले रूपों की भी कमी नहीं है। इस नियम से : महा० में कहइ आया है (हेच० १, १८७ ४, २ हाल ५) अ०माग० में कहाहि मिलता है (सूय ४२१), कहसु भी पाया जाता है (उत्तर ७ और ७०२) अप० में कहि = *कथेः = कथयेः है (हेच ४ ४२२, १४)। — महा० में गणइ, गणन्ति और गणन्तीए रूप मिलते हैं (हाल) अप० में गणइ, गणन्ति और गणन्तीयें हैं (हेच० ४, ३५३ भी है)। — महा० में चिन्तइ और चिन्तन्त– रूप आये हैं (हाल), चिइन्तवा = चिचिन्तयन्त्यः है (गउड०) ; अप० में चिन्तइ है, चिन्तन्ताहँ = चिन्तयताम् है (हेच०)। — महा० में उम्मूलन्ति = उन्मूलयन्ति (हाल) है, उम्मूलन्त– भी आया है (रावण०)। इसके साथ उम्मूलेन्ति भी चलता है (रावण०),कामन्तमो = कामयमानाः है (हाल), इसके साथ-साथ कामेइ भी है (हेच ४, ४४), कामेमो भी मिलता है (हाल) और कामेन्ति देखा जाता है (गउड०) पसाअन्ति = प्रसादयन्ति है, इसके साथ-साथ पसाएसि और पसाअमाणस्स (हाल) रूप आये हैं, पप्फोडइ और पप्फोडन्ती = प्रस्फोटयति और प्रस्फोटयन्ति हैं (हाल), मउलन्ति = मुकुलयन्ति (हाल), मउलइ आया है (गउड०), मउलन्त– रूप मिलता है (रावण०)। इसके साथ-साथ मउलेइ और मउलेन्ति (रावण०) और मउलिज्जन्ता रूप पाये जाते हैं (गउड०) अप० में पाइसि = प्रार्थयसि है (विक्र० १, ५ अ बौ ल्लें नसेन द्वारा सम्पादित विक्र० पेज ५३)। स्त से पहले प्रधानतया अ आता है, जैसे कि असंक्षिप्त रूपों का भी होता है (§ ४९०)। इसलिए यह सम्भव है कि इन रूपों के निर्माण की पूर्ण प्रक्रिया इस प्रकार हो गयी हो। गणअन्ति = संस्कृत गणयन्ति, यह *गणअन्ति रूप के द्वारा गणन्ति हो गया है, फिर इससे भाषा में गणामि, गणसि और गणइ रूप आ गये। शौर० और माग० में पद के अतिरिक्त अन्यत्र ये अ– वाले रूप नहीं मिलते। किसी स्थिति में ए से अ में परिवर्तन माना नहीं जा सकता[1]। प्रेरणार्थक धातु के विषय में अन्य विशेष बातें § ५५१ और उसके बाद में देखिए, संज्ञा से बनी क्रियाओं के सम्बन्ध में § ५५७ और उसके बाद देखिए।

[1] वेबर हाल[1] पेज ६ ; इस स्थान में किन्तु मोरसंख्या ७ की तुलना कीजिए।

§ ४९२—जिन धातुओं के अन्त में –आ आता है उनकी रूपावली या तो संस्कृत की भाँति दूसरे गण में चलती है अथवा चौथे गण के अनुसार की जाती है। उपसर्गों से संयुक्त होने पर ख्या धातु की अ० माग० में दूसरे गण के अनुसार रूपावली की जाती है अक्खाइ = आख्याति है (विवाह० १६६) ; अक्खन्ति = आख्यान्ति है (सूय० ८५६ ; ८६५ ; ५२२) ; अयम् = आख्यान् (सूय० ३१७), पच्चक्खामि रूप आया है (उवास०), पच्चक्खाइ भी है (ठाणंग० ११३ ; विवाह० ११९ और ६०७ ; उवास०) पच्चक्खामो रूप पाया जाता है (आव०)। इसी में

अक्खन्तो है (मृच्छ० ३४, २४) किन्तु यह आचक्खन्तो के स्थान में अशुद्ध पाठान्तर है (§ ४९९) । अधिकाश में किन्तु ठीक पाली की भाँति अ०माग० में भी यह धातु द्वित्व रूप धारण करता है और अ मे समाप्त होनेवाले धातु की भाँति इसकी भी रूपावली चलती है जैसे घ्रा, पा और स्था की (§ ४८३)[1] : आइक्खामि = =*आचिख्यामि है (सूय० ५७९ , ठाणग० १४९ , जीवा० ३४३ , विवाह० १३० ; १३९ , १४२ , ३२५ , ३४१ , १०३३), आइक्खइ (सूय० ६२० , आयार० २, १५, २८ और २९ , विवाह० ९१५ , १०३२ , उवास० , ओव० , कप्प०)= पाली आचिक्खति , संचिक्खइ रूप मिलता है (आयार० १, ६, २, २), आइक्खामो है (आयार० १, ४, २, ५), आइक्खन्ति आया है (आयार० १, ४, १, १ , १, ६, ४, १ ; सूय० ६४७ और ९६९ , विवाह० १३९ और ३४१ , जीवा० ३४३), अब्भाइक्खइ और अब्भाइक्खेज्जा (आयार० १, १, ३, ३) तथा अब्भाइक्खन्ति रूप भी पाये जाते हैं (सूय० ९६९) , पच्चाइक्खामि आया है (आयार० २, १५, ५, १), आइक्खे और आइक्खेॅज्जा (आयार० १, ६, ५, १ , २, ३, ३, ८ , सूय० ६६१ और ६६३), पडियाइक्खे (आयार० १, ७, २, २), पडिसंचिक्खे तथा संचिक्खे (उत्तर० १०३ और १०६), आइक्खाहि (विवाह० १५०), आइक्खइ (आयार० २, ३, ३, ८ और उसके बाद , नायाध० § ८३), आइक्खमाण (ओव० § ५९), पच्चाइक्खमाण (विवाह० ६०७) और सचिक्खमाण रूप काम में आये हैं (उत्तर० ४४०) ।

1 पिशल, बे०बाइ० १५, १२६ । चक्ष् की जो साधारण व्युत्पत्ति दी जाती है वह भ्रामक है ।

§ ४९३—अन्त में इ– वाले धातुओं की रूपावली सस्कृत की भाँति चलती है । फिर भी महा० और अ०माग० में तृतीयपुरुष बहुवचन परस्मैपद के अन्त में एन्ति आता है (गउड० , रावण० , कालेयक ३, ८ , आयार० पेज १५, ६), उपसर्गयुक्त धातुओं में भी यही क्रम चलता है : महा० में अण्णेन्ति = अनुयन्ति है (रावण०), महा० में एॅन्ति = आयन्ति है (रावण० , धूर्त० ४,२० , कर्पूर० १०,२), महा० और अ०माग० में उवेन्ति = उपयन्ति है (गउड०, आयार० २,१६,१, सूय० ४६८, दस० ६२७,१२) , अ०माग० में समुवेन्ति आया है (दस० ६३५,२) । अ०माग० में इसके स्थान में इन्ति भी है (पण्णव० ४३), निइन्ति = नियन्ति है, इसका अर्थ निर्यन्ति है (पण्हा० ३८१ और ३८२), पलिन्ति = परियन्ति है (सूय० ९५ और १३४), सपलिन्ति भी आया है (सूय० ५२), उविन्ति मिलता है (सूय० २५९) तथा उविन्ते भी है (सूय० २७१), समन्निन्ति = समनुयन्ति है (ओव० [§ ३७]) । यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि ए मौलिक है और एकवचन के रूप एमि, एसि तथा एइ के अनुकरण पर बना है, इससे § ८४ के अनुसार इ का स्पष्टीकरण होता है । यदि अ०माग० निइन्ति शुद्ध पाठ हो तो इस स्थिति में यह महा० रूप णिन्ति से अलग नहीं किया जा सकता (गउड० , हाल में यह रूप देखिए , रावण०), विणिन्ति भी मिलता है (ध्वन्यालोक २३७, २ = हाल ९५४), अइन्ति है (गउड०), परिअन्ति

उसके बाद) संस्कृत कथया से निकले रूप कहासि, कहसि, कहइ, कहामो, कहह और कहन्ति रूप मिलते हैं। इसलिए ऐसा होता है कि § ४९ में बताये गये रूपों के साथ-साथ जिनमें ए = अय आता है, जनता में बोली जानेवाली प्राकृत में -अ -वाले रूपों की भी कमी नहीं है। इस नियम से : महा में कहइ आया है (हेच १, १८७; ४, २ हाल ५) अ माग में कहाहि मिलता है (सूय ४२२), कहसु भी पाया जाता है (उत्तर ७०० और ७ १), अप में कहि = *कथेः = कथयेः है (हेच ४, ४२२, १४) । — महा में गणइ, गणन्ति और गणन्तीए रूप मिलते हैं (हाल) ; अप० में गणइ, गणन्ति और गणन्तीएँ हैं (हेच ४, ३५१ भी है) । — महा० में चिन्तइ और चिन्तन्त- रूप आये हैं (हाल), विइत्तन्ता = विचिन्तयन्ता है (गउड) ; अप में चिन्तइ है, चिन्तन्ताहँ = चिन्तयताम् है (हेच) । — महा में उम्मूलन्ति = उम्मूलयन्ति (हाल) है, उम्मूलन्त- भी आया है (रावण०) । इसके साथ उम्मूलेन्ति भी चलता है (रावण),कामन्तओ = कामयमाना है (हाल), इसके साथ-साथ कामेइ भी है (हेच ४, ४४), कामम्मा भी मिलता है (हाल) और कामेन्ति देखा जाता है (गउड), पसामन्ति = प्रसादयन्ति है, इसके साथ-साथ पसाएसि और पसाअमाणस्स (हाल) रूप आये हैं, पप्फोडइ और पप्फोडन्ती = प्रस्फोटयति और प्रस्फोटयन्ति हैं (हाल), मउलन्ति = मुकुलयन्ति (हाल), मउलउ आया है (गउड), मउलन्त- रूप मिलता है (रावण) । इसके साथ-साथ मउलेइ और मउलेन्ति (रावण) और मउलिन्ता रूप पाये जाते हैं (गउड) ; अप में पाहसि = प्रार्थयसि है (पिंगल १, ५ अ ; बॉ ल्लें नसन द्वारा सम्पादित विक्र पेज ५३०) । स्त से पहले प्रधानतया अ आता है, जैसा कि अप्रचलित रूपों का भी होता है (§ ४९०) । इसलिए यह सम्भव है कि इन रूपों के निर्माण की पूर्ण प्रक्रिया लुप्त हो गयी हो। गणअन्ति = सकृत गणयन्ति, यह *गणन्ति रूप के द्वारा गणन्ति हो गया हो, फिर इससे भाषा में गणामि, गणसि और गणइ रूप आ गये। और और माग में पद के अतिरिक्त अन्यत्र ये अ- वाले रूप नहीं मिलते। किसी स्थिति में ए से अ में परिवर्तन माना नहीं जा सकता¹। प्रेरणार्थक धातु के विषय में अन्य विचार बातें § ५५१ और उसके बाद में देखिए, तथा ध नाम क्रियाओं के सम्बन्ध में § ५५७ और उसके बाद देखिए।

1 वेबर हाल¹, पेज ९ ; इस स्थान में किन्तु भारतंकता ४ की तुलना कीजिए।

§ ४९२—जिन धातुओं के अन्त में -आ आता है उनकी रूपावली या तो प्रथम की भाँति ५ ४ रूप में चलती है अथवा चौथे गण के अनुसार की जाती है। इसमें से मंजु इ ज्ञान पर यथा धातु को अ माग० में दूसरे गण के अनुसार रूपावली की जाती है : अक्खाइ = आख्याति है (विवाह ६९) ; अक्खन्ति = आख्यान्ति है (सूय ९५ ९९ ; ५३२) ; अथम् = आख्यान् (सूय १३७), पच्चक्खामि भी आया है (उवास०), पच्चक्खाइ भी है (ठाणंग ११९ ; विवाह ११ और १०७ ; उवास) पच्चक्खामो देखा जाता है (आयार) । इसी में

अ०माग० रूप नए = नयेत् मिलता है (§ ४११, नोटसख्या २, आयार० २, १६, ५) रहा होगा, किन्तु इसका णीइ से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि इसके नाना रूप तथा समान रूप अईइ और परीइ बताते हैं। यह मानना कि नि, निः के अर्थ में आया है, यही कठिनाई पैदा करता है। इस सम्बन्ध में अधिक उदाहरण तथा प्रमाण प्राप्त नहीं हैं। वेबर, त्सा०डे०डौ०मौ०गे० २६, ७४१ के अनुसार निस् के बलहीन रूप से नि की व्युत्पत्ति बताना, असम्भव रूप है।

§ ४९४—जिन धातुओं के अन्त मे –उ और ऊ आता है तथा जो दूसरे गण मे है प्राकृत में उनकी रूपावली पहले गण के अनुसार चलती है . पण्हअइ = प्रस्नौति है, रवइ = रौति हो जाता है, सवइ = सूते है, पसवइ = प्रसूते हो जाता है तथा अणिण्हुवमाण = अनिह्नुवान है। ह्नु की रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती है (§ ४७३)। महा०, जै०महा० और अ०माग० में स्तु की रूपावली नवें गण के अनुसार चलती है : महा० मे थुणइ होता है (हेच० ४, २४१, सिंहराज० पन्ना ४९), थुणिमो रूप आया है (बाल० १२२, १३), अ०माग० में संथुणइ मिलता है, त्त्वा– वाला रूप संथुणित्ता पाया जाता है (जीवा० ६१२), अभित्थुणन्ति आया है (विवाह० ८३३), अभित्थुणमाण तथा अभिसंथुणमाण रूप भी देखने मे आते हैं (कप्प० § ११० और ११३), जै०महा० में ए– रूपावली के अनुसार थुणेइ मिलता है (कालका० दो, ५०८, २३), त्त्वा– वाला रूप थुणिय आया है (कालका० दो, ५०८, २६)। शौर० और माग० में इस धातु की रूपावली पाँचवे गण के अनुसार चलती है : शौर० में उवत्थुणन्ति = *उपस्तुन्वन्ति (उत्तररा० १०, ९, २७, ३, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए, लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज २६४ के नोट की तुलना कीजिए), माग० में थुणु पाया जाता है (मृच्छ० ११३, १२, ११५, ९)। कर्मवाच्य का रूप थुव्वइ (§ ५३६) बताता है कि कभी इसकी रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती होगी = *थुवइ = संस्कृत *स्तुवति, जै०महा० में इसका त्त्वा– वाला रूप थोऊण मिलता है (कालका० २७७, ३१, दो, ५०७, २५, तीन, ५१३, ३) जिसका संस्कृत रूप *स्तोवाण रहा होगा। — बहुत अधिक काम में आनेवाले अ०माग० रूप बेमि = ब्रवीमि (§ १६६, हेच० ४,२३८, आयार० पेज २ और उसके बाद, ८ और उसके बाद, सूय० ४५, ८८, ९९, ११७, १५९, २००, ३२२, ६२७, ६४६ और उसके बाद, ८६३, ९५०, दस० पेज ६१३ और उसके बाद, ६१८, १६, ६२२ और उसके बाद)। अ०माग० और जै०महा० में इसका तृतीयपुरुष बहुवचन का एक रूप बे`न्ति मिलता है (दस०नि० ६५१, ५, १६ और २०, ६२८, २५, ६६१, ८, एर्त्से० ४, ५), बिन्ति आया है (सूय० २३६), अ०माग० में प्रथमपुरुष बहुवचन का रूप बूम है (उत्तर० ७८४, पद्य में), आज्ञावाचक रूप बूहि है (सूय० २५९, ३०१, ५५३)। इच्छावाचक रूप बूया के विषय में § ४६४ देखिए। अप० में इसकी रूपावली छठे गण के अनुसार चलती है ब्रुवह = ब्रूत (हेच० ४, ३९१), अ०माग० रूप बुइय (§ ५६५) निर्देश करता है कि अ०माग० में उक्त रूपावली चलती थी।

आया है (रायण०) ; ये सब रूप मिइम्ति, *णीम्ति, *विणिइन्ति, *विणीन्ति, *मइइन्ति, *अईन्ति, *परिइन्ति *परीन्ति से निकले रूप बताने जाने चाहिए। इन्ति को रूप पाली में भी पाया जाता है[1] *इमो और *इइ = संस्कृत इमः और इम के अनुसार बनाया गया है। अंशक्रिया का रूप जो महा० में इन्तो है (हाल० ४११, २७) महा० णिन्त– में भी यह रूप वर्तमान है (गउड ; हाल रायण०), विणिन्त में यह है (गउड), मइन्त– तथा परिन्त में आया है (रायण०) और परिणिन्त में भी है (सरस्वतीकण्ठा ,२१)' = नियन्त–, विनियन्त, मतियन्त–, परियन्त और परिनियन्त हैं। इसके णें न्ति (गउड हाल रायण), विणें न्ति (सर स्वतीकंठा २ १, २५)[1] रूप जिनमें ए पाया जाता है और इसी भाँति ऊपर दिये गये एन्ति, मण्णेन्ति और उवें न्ति रूपों में यह ए § ११९ के अनुसार इ से आया है। बहुवचन के रूप *अइमो, *अईइ = अतीमः तथा अतीय *णीमो और *णीइ = नीमः तथा नीथ और *परीमो तथा परीइ = परीमः और परीथ आदि के समान रूपों से एक एकवचन का रूप आविष्कृत हुआ : महा में अईइ = अतीति है (हेच ४ १६२ रायण), णीसि = *नीषि है (रायण) महा और जै महा में णीइ = *णीसि है (गउड हाल रायण ; आव एर्से ४१, ११ और २२), महा में परीइ = *परीति है (हेच ४, १६२ ; रायण)'। इसका नियमानुसार शुद्ध रूप अ माग मे एइ मिलता है (आयार २ ३, १ १ ; १, ५ १ १ ४, १ ; सूय १२८ और ४६) अच्चेइ भी आया है (आयार० १, २, १ १ ६, ४ ; १, ५, ६ १ ; सूय ५४), उवइ = उदति है (सूय ४६०) उवइ रूप भी आया है (आयार २ ४ १, १२ पाठ में उवेइ है) उवेइ = उपैति (आयार १ ६, ६, १ ; १ ५, १ १ ; सूय २६८ और ५६१) आदि-आदि। अ माग में पेंज्जासि (आयार २ ६ १ ८) = एयाः है। इसका आज्ञावाचक रूप पेंज्जाहि है (आयार २ ५ १ १)। पद्य के साथ इ के विषय में § ५६७ देखिए। — शि के रूप अ माग में सयइ और आसयइ हैं (कप्प § ९५) इच्छावाचक रूप सए मिलता है (आयार १, ७ ८, ११) और सएँज्जा हैं (आयार २, २ ३ २५ और २६), वर्तमानकालिक अंशक्रिया सयमाण है (आयार २, २, ३, २४)। शौर में सेरदे रूप (मल्लिका २९१ ९) भयानक अशुद्धि है।

1 ए कून बाइत्रैगे पेज ९६। — २ त्साखारिआए, कू त्सा २४ ७१७ के अनुसार यह शुद्ध है। — ३. त्साखारिआए, कू त्सा २८ ३१५ के अनुसार यह शुद्ध है। — ४ इन रूपों के विषय में मार्क्सिक रूप स एस गौल्दश्मित्त ने त्सा डे डौ मौ गे ३२, ११ और उसके बाद में तथा त्साखारिआए ने कू०त्सा २८ ४११ और उसके बाद में लिखा है जहाँ इस विषय पर अन्य साहित्य का भी उल्लेख है। एक धातु भी जिसका अर्थ 'बाहर निकल आना' है असम्भव है। शतपथब्राह्मण के उपमयति (बोएटलिंक कू०त्सा १० २४१) और प्राकृत णीमइ + *निर्णयति (देख ४ १६१) से यह निष्कर्ष निकलता है कि एक धातु भी जिसका अर्थ 'जाना' है तथा जिसका

अ०माग० रूप नए = नयेत् मिलता है (§ ४११, नोटसंख्या २, आयार० २, १६, ५) रहा होगा, किन्तु इसका णीइ से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि इसके नाना रूप तथा समान रूप अईइ और परीइ बताते हैं। यह मानना कि नि, निः के अर्थ में आया है, यही कठिनाई पैदा करता है। इस सम्बन्ध मे अधिक उदाहरण तथा प्रमाण प्राप्त नहीं हैं। वेबर, त्सा०डे०डौ०मौ०गे० २६, ७४१ के अनुसार निस् के बलहीन रूप से नि की व्युत्पत्ति बताना, असम्भव रूप है।

§ ४९४—जिन धातुओ के अन्त मे -उ और ऊ आता है तथा जो दूसरे गण मे हैं प्राकृत मे उनकी रूपावली पहले गण के अनुसार चलती है पण्हअइ = प्रस्नौति है, रवइ = रौति हो जाता है, सवइ = सूते है, पसवइ = प्रसूते हो जाता है तथा अणिण्हवमाण = अनिह्नुवान है। ह्नु की रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती है (§ ४७३)। महा०, जै०महा० और अ०माग० मे स्तु की रूपावली नवें गण के अनुसार चलती है. महा० में थुणइ होता है (हेच० ४, २४१, सिंहराज० पन्ना ४९), थुणिमो रूप आया है (बाल० १२२, १३), अ०माग० मे संथुणइ मिलता है, त्त्वा- वाला रूप सथुणित्ता पाया जाता है (जीवा० ६१२), अभित्थुणन्ति आया है (विवाह० ८३३), अभित्थुणमाण तथा अभिसंथुणमाण रूप भी देखने मे आते हैं (कप्प० § ११० और ११३), जै०महा० में ए- रूपावली के अनुसार थुणेइ मिलता है (कालका० दो, ५०८, २३), त्त्वा- वाला रूप थुणिय आया है (कालका० दो, ५०८, २६)। शौर० और माग० मे इस धातु की रूपावली पॉचवे गण के अनुसार चलती है : शौर० में उवत्थुण्णन्ति = *उपस्तुन्वन्ति (उत्तररा० १०, ९, २७, ३, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए, लास्सन, इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए, पेज २६४ के नोट की तुलना कीजिए), माग० मे थुणु पाया जाता है (मृच्छ० ११३, १२, ११५, ९)। कर्मवाच्य का रूप थुव्वइ (§ ५३६) बताता है कि कभी इसकी रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती होगी = *थुवइ = सस्कृत *स्तुवंति, जै०महा० में इसका त्त्वा- वाला रूप थोऊण मिलता है (कालका० २७७, ३१, दो, ५०७, २५, तीन, ५१३, ३) जिसका सस्कृत रूप *स्तोवाण रहा होगा। — बहुत अधिक काम मे आनेवाले अ०माग० रूप बेमि = ब्रवीमि (§ १६६, हेच० ४,२३८, आयार० पेज २ और उसके बाद, ८ और उसके बाद, सूय० ४५, ८४, ९९, ११७, १५९, २००, ३२२, ६२७, ६४६ और उसके बाद, ८६३, ९५०, दस० पेज ६१३ और उसके बाद, ६१८, १६, ६२२ और उसके बाद)। अ०माग० और जै०महा० में इसका तृतीयपुरुष बहुवचन का एक रूप बेॅन्ति मिलता है (दस०नि० ६५१, ५, १६ और २०, ६२८, २५, ६६१, ८, एर्त्से० ४, ५), बिन्ति आया है (सूय० २३६), अ०माग० में प्रथमपुरुष बहुवचन का रूप बूम है (उत्तर० ७८४, पद्य में), आज्ञावाचक रूप बूहि है (सूय० २५९, ३०१, ५५३)। इच्छावाचक रूप बूया के विषय में § ४६४ देखिए। अप० में इसकी रूपावली छठे गण के अनुसार चलती है. ब्रुवह = ब्रूत (हेच० ४, ३९१), अ०माग० रूप बुइय (§ ५६५) निर्देश करता है कि अ०माग० में उक्त रूपावली चलती थी।

वीससइ (हेच० १, ४३ , हाल ५११, इस ग्रन्थ में अन्यत्र देखिए) रूप पाये जा
हैं , अ०माग० मे **उस्ससइ** आया है (विवाह० ११२), **ऊससन्ति** है (विवाह
२६ और ८५२ , पण्णव० ३२० और उसके बाद तथा ४८५), **ऊससेज्ज** औ
ऊससमाणे रूप मिलते है (आयार० २, २, ३, २७), **निस्ससइ** और **नीससन्ति**
(विवाह० ११२ और ८५२ , पण्णव० ३२० और उसके बाद , ४८५), **नीसस**
माण (विवाह० १२५३ , आयार० २, २, ३, २७), **वीससे** (उत्तर० १८१
रूप देखे जाते है , शौर० मे **णीससन्ति** और **णीससदि** (मृच्छ० ३९, २ , ६९
८ , ७०, ८ , ७९, १), **वीससामि** तथा **वीससदि** रूप आये है (शकु० ६५
१० , १०६, १), **समस्सस = समाश्वसिहि** है (विक्र० ७, ६ , २४, २०
रत्ना० ३२७, ९ , वेणी० ७५, २ , नागा० ९५, १८), **समस्ससदु** है (मृच्छ
५३, २ और २३ , शकु० १२७, १४ , १४२, १ , विक्र० ७१, १९ , ८४, ११
रत्ना० ३१९, २८ तथा बार-बार , वेणी० ९३, १६ मे भी यह रूप आया है, जो कल
कतिया सस्करण २२०, १ के अनुसार इसी रूप में पढा जाना चाहिए), **समस्ससध**
भी मिलता है (विक्र० ७, १) , माग० मे **शशदि** और **शशन्त**– आये है (मृच्छ
३८, ८ , ११६, १७), **ऊशशदु** आया है (मृच्छ० ११४, २०), **शमुश्शशदि**
पाया जाता है (मृच्छ० १३३, २२) तथा **णीशशदु** (मृच्छ० ११४, २१) औ
शमश्शशदु रूप भी काम में आये है (मृच्छ० १३०, १७) ।

§ ४९७—**स्वप्** नियमित रूप से छठे गण के अनुसार रूपावली चलाता है
महा० मे **सुअसि** और **सुवसि = *सुपसि** है (हाल), **सुअइ** (हेच० ४, १४६
हाल), **सुवइ** (हेच० १, ६४), **सुअन्ति** (गउड०), **सुवसु** और **सुअह**
(हाल) रूप मिलते हैं , जै०महा० मे **सुवामि** आया है (एर्त्से० ६५, ७), **सुयइ**
(एर्त्से० ७६, ३२), **सुयउ** (एर्त्से० ५०, १३ , द्वार० ५०३, ३), **सुयन्तस्स**
(एर्त्से० ३७, १२) और **सुयमाणो** (द्वार० ५०३, ४) रूप पाये जाते हैं , शौर०
मे **सुवामि** (कर्ण० १८, १९), **सुवे ॅम्ह** (मृच्छ० ४६, ९) और कर्तव्यवाचक
अशक्रिया मे **सुविदव्वं** (मृच्छ० ९०, २०) रूप मिलते हैं , अप० में **सुअहि ॅ =**
स्वपन्ति है (हेच० ४, ३७६, २) । गौण धातु **सुव् = सुप्** है और कभी कभ
इसकी रूपावली पहले गण के अनुसार चलती है, ठीक वैसे ही जैसे **रोवइ** और उसके
साथ साथ **रुवइ** रूप चलता है और **धोवइ** के साथ **धुवइ** भी काम मे आता है
(§ ४७३ और ४८२) : **सोवइ** आया है (हेच० १, ४६), जै०महा० मे **सोवे ॅन्ति**
है (द्वार० ५०३, २८), सामान्य क्रिया का रूप **सोउं** है (द्वार० ५०१, ७) , अप०
में कर्तव्यवाचक अशक्रिया का रूप **सोएवा** आया है (हेच० ४, ४३८, ३) ।

§ ४९८—अ०माग० को छोड और सभी प्राकृत बोलियों में **अस्** धातु के
प्रथम तथा द्वितीयपुरुष एक– और बहुवचन में ध्वनिबलहीन पृष्ठाधार शब्दो के रूप
में काम में आते हैं, इस कारण एकवचन के रूप में आदि के **अ** का लोप हो जाता
है (§ १४५) : महा०, जै०महा० और शौर० में एकवचन में **म्हि** और **सि** रूप
मिलते हैं , माग० में **स्मि** (पाठ में **म्हि** है) और **सि** । वर० ७, ७ के अनुसार

अम्हि, अस्मि और **म्मि** के सर्वनाम रूप में प्रयोग के सम्बन्ध में § ४१७ देखिए। इसके अनुसार **अस्** धातु की रूपावली इस प्रकार से चलती है :

एकवचन	बहुवचन
१. अ०माग० में **अंसि, मि**, महा०, जै०महा० और जै०शौर० में **म्हि**, जै०महा० में **मि** भी, माग० में **स्मि**।	१. महा० में **म्हो** और **म्ह**, शौर० में **म्ह**, माग० में **स्म**, अ०माग० में **मो** और **मु**, जै०महा० में **मो**।
२. महा०, जै०महा० और शौर० में **सि**, माग० में **शि**।	२ महा० मे **त्थ**।
३ महा०, जै०महा०, अ०माग०, जै०-शौर० और शौर० में **अत्थि**, माग० में **अस्ति**। इच्छावाचक अ०माग० मे **सिया**, आज्ञावाचक अ०माग० मे **त्थु**।	३. महा०, अ०माग० और जै०शौर० में **सन्ति**, माग० में **शन्ति**। आसन्नभूत **आसि** के विषय में § ५१५ देखिए।

§ ४९९— शेष संस्कृत धातु जिनके रूप दूसरे गण के अनुसार चलते हैं, वे प्राकृत में अ- रूपावली में चले जाते हैं और उनकी रूपावली पहले गण के अनुसार की जाती है। इस नियम से हम निम्नलिखित रूप पाते हैं . अ०माग० में **अहियासए** = **अध्यास्ते** है (आयार० १, ८, २, १५) और = **अध्यासित** भी है (आयार० १, ७, ८, ८ और उसके बाद), अ०माग० में **पज्जुवासामि** = **पर्युपासे** है (विवाह० ९१६, निरया० § ३, उवास०), **पज्जुवासइ** रूप भी आया है (विवाह० ९१७, निरया० § ४, उवास०), **पज्जुवासाहि** भी है, साथ ही **पज्जुवासे ज्जाहि** चलता है (उवास०), **पज्जुवासन्ति** भी देखा जाता है (ओव०)। महा० में **णिअच्छइ** = ***निचक्षति** = **निचष्टे** है (हेच० ४, १८१, रावण० १५, ४८), **णिअच्छामि** आया है (शकु० ११९, ७), **णिअच्छए, णिअच्छह, णिअच्छन्त**- और **णिअच्छमाण** रूप भी पाये जाते हैं तथा **ए**- रूपावली के अनुसार भी रूप चलते हैं, **णिअच्छेसि** है (हाल), **अवच्छइ, अवअक्खइ, अवक्खइ** तथा **ओअक्खइ** = **अवचष्टे** हैं (हेच० ४, १८१, **अवक्खइ** वर० ८, ६९ में भी है), अ०-माग० में **अवयक्खइ** आया है (नायाध० ९५८), शौर० में **आचक्ख** है (रत्ना० ३२०, ३२), वर्तमानकाल से बनी परस्मैपद की कर्मवाच्य भूतकालिक अशक्रिया **आचक्खिद** है जो = ***आचक्षित** के (शकु० ६३, १५ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए, ७७, १४, १६०, १५), **अणाअक्खिद** भी मिलता है (विक्र० ८०, ४), माग० में **आचस्कदि** (हेच० ४, २९७) और **अणाचस्किद** रूप आये हैं (मृच्छ० ३७, २१), ढक्की में **आचक्खन्तो** है (मृच्छ० ३४, २४, यहाँ यही पाठ पढा जाना जाना चाहिए, गौडबोले के संस्करण पेज १०१, ४ में इसका दूसरा रूप देखिए), अप० में **आअक्खहि** (विक्र० ५८, ८, ५९, १४, ६५, ३) और **आअक्खिउ** रूप पाये जाते हैं (विक्र० ५८, ११), शौर० में सामान्यक्रिया **पच्चाचक्खिदुं** है (शकु० १०४, ८)। § ३२४ की तुलना कीजिए। जै०शौर० में **पदुस्सेदि** (पव० ३८४, ४९)

= प्रद्वेष्टि नहीं है जैसा कि अनुवाद में दिया गया है, किन्तु = प्रतुप्यति है तथा अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० दोस के (§ १२९) स्पष्टीकरण के स्थान में इसका उपयोग किया गया है। साहइ = शास्ते है (हेच० ४, २); महा० और जै०महा० में साहामि, साहइ, साहामो, साहन्ति, और साहसु रूप आये हैं (हाल ; रावण०; एर्त्सें० ; कालका०), ए- रूपावली के अनुसार रूप भी मिलते हैं, साहेमि, साहेन्ति साहेसु, साहेहि, साहेउ और साहेन्ति आये हैं (हाल ; रावण० ; एर्त्सें० ; कालका०); शिष् धातु की रूपावली चौथे गण के अनुसार चलती है : सीसइ मिलता है (हेच० ४,२)। अबतक इसके प्रमाण केवल कर्मवाच्य में पाये जाते हैं इसलिए यह = शिष्यते है (गउड० ; रावण०)। अ०माग० में अणुसासंमी = *अनुसासामि = अनुशास्मि है (उत्तर० ७९)[1], अणुसासन्ति रूप आया है (सूय० ५१७ ; उत्तर० ११)। कर्मवाच्य में दक्षि० का रूप सासिज्जइ है (मृच्छ० १०१, १६) और शौर० में सासी अदि मिलता है (मृच्छ० १५५, ९) ; माग० में शाशीअदि पाया जाता है (मृच्छ० १५८, २५)। — महा० में हणइ = हन्ति है (हाल २१८), णिहणन्ति रूप भी मिलता है और ए- रूपावली के अनुसार णिहणेमि भी है (रावण०)। अ०माग० में हणामि (विवाह० २५४ और ८५ तथा उसके बाद), हणइ है (विवाह० ८४९ और उसके बाद), पद्य में हण्णइ भी काम में आया है (उत्तर० ९१), अभिहणइ (विवाह० १८९), समाहणइ (विवाह० ११४ ; २१२ और उसके बाद ४२ ; नायाध० § ९१ और ९९ ; पेज १३२५ ; कप्प०) रूप पाये जाते हैं। जै०शौर० में णिहणदि (कत्तिगे० ४०१, ३३९) है ; अ०माग० में हण्णइ (उत्तर० १६५), हण्णन्ति (सूय० ११) और समोहण्णन्ति रूप मिलते हैं (ठाण० १२ ; ४९), साहण्णन्ति = संघ्नन्ति है (विवाह० ११७ ; ११८ और १४१), पद्य में विणिहण्णन्ति भी पाया जाता है (सूय० ३११), इच्छावाचक रूप हणिया, हणिज्जा, हणेज्जा और हणे आये हैं (§ ४६७), आज्ञावाचक में हणह रूप है (सूय० ५९६ ; आयार० १, ७, २, ४) ; जै०महा० में आहणामि (आव० एर्त्सें० २८, २) और हणइ (एर्त्सें० ५, १२) रूप आये हैं ; आज्ञावाचक हण = जहि है (एर्त्सें० २, १५), इच्छावाचक में आहणेज्जासि मिलता है (आव० एर्त्सें० ११, १) ; शौर० में पडिहणामि = प्रतिहन्मि है (मुद्रा० १८२, ७ ; इस नाटक में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए), विहणन्ति भी आया है (प्रबोध० १७, १) ; माग० में आहणेध मिलता है (मृच्छ० १६८, १८) ; अप० में हणइ है (हेच० ४, ४१८, १)।

1. याकोबी ने सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट ४५, १५१ नोटसंख्या १ में अणुसासम्मि पाठ पढ़ा है जो अशुद्ध है। § ७४ और १०२ की तुलना कीजिए।

§ ५ — प्राकृत बोलियों में संस्कृत के तीसरे गण के अवशेष बहुत ही कम बच रह गये हैं। दा धातु के स्थान में वर्तमानकाल में द- = दय- काम में आता है (§ ४७४) ; अ०माग० में बहुत अधिक तथा जै०महा० में कभी कभी दलय- रूप काम में लाया जाता है (§ ४९०)। — धा धातु का रूप पुराने वर्ग के समान दहा- = दधा- मिलता है जो सब प्राकृत बोलियों में है किन्तु केवल सद् = श्रद् के साथ में

था इसकी रूपावली बिना अपवाद के अ- रूपावली की भाँति चलती है, जैसा कि भी कभी वैदिक बोली में भी पाया जाता है और महाकाव्यों की संस्कृत में भी आया तथा पाली में भी दहति[1] मिलता है। इस नियम से **सद्दहइ = श्रद्धाति** (वर० ८, ३३ , हेच० ४, ९ , क्रम० ४, ४६ , सिंहराज० पन्ना ५७), महा० में **सद्दहिमो = श्रद्दध्म.** है (हाल २३), वर्तमान काल की कर्मवाच्य की पूर्णभूतकालिक अंशक्रिया का रूप **सद्दहिअ** है (भाम० ८, ३३ , हेच० १, १२ , अच्युत० ८) , अ०माग० मे **सद्दहामि** आया है (विवाह० १३४ और १३१६ , निरया० ६० , उवास० § १२ और २१० , नायाध० § १३२), **सद्दहइ** मिलता है (विवाह० ८४५ , पण्णव० ६४ , उत्तर० ८०५), पद्य मे प्राचीन रूप के अनुसार **सद्दहाइ** है (उत्तर० ८०४) , जै०-शौर० में **सद्दहदि** मिलता है (कत्तिगे० ३९९, ३११) ; इच्छावाचक रूप **सद्दहे** (उत्तर० १७०) और **सद्दहे ज्जा** है (राय० २५० , पण्णव० ५७७ और ५८३), आज्ञा-वाचक मे **सद्दहसु** (सूय० १५१) और **सद्दहाहि** मिलते हैं (विवाह० १३४ , राय० २४९ और २५८), जै०महा० मे **असद्दहन्तो** है (आव०एर्त्से० ३५,४), अ०माग० मे **सद्दहमाण** पाया जाता है (हेच० ४,९ , आयार० २,२,२,८) । अ०माग० में इन रूपों के अतिरिक्त **आडहइ** (ओव० § ४४) और **आडहन्ति** (सूय० २८६) रूप मिलते है। § २२२ की तुलना कीजिए। अन्यथा **धा** धातु की रूपावली –**आ** मे समाप्त होनेवाली सभी धातुओं के समान (§ ४८३ और ४८७) दूसरे अथवा चौथे गण के अनुसार चलती है . **धाइ** और **धाअइ** रूप होते हैं (हेच० ४, २४०) , महा० में **संधन्तेण = संदधता** है (रावण० ५, २४) , अ०माग० और जै०महा० मे यह धातु तालव्यीकरण के साथ साथ (§ २२३) बहुत अधिक काम में आती है **आढामि** रूप आया है (आयार० १, ७, २, २ , विवाह० १२१०), **आढाइ** भी है (ठाणग० १५६ , २८५ , ४७९ और उसके बाद , विवाग० ४६० और ५७५ , निरया० § ८ , १८ , १९ , पेज ६१ और उसके बाद , राय० ७८ , २२७ , २५२ , उवास० § २१५ और २४७ , नायाध० § ६९ , पेज ४६० और ५७५ , विवाह० २२८ और २३४ , आव० एर्त्से० २७, ३), अ०माग० मे **आढन्ति** है (विवाग० ४५८ , विवाह० २३९), **आढायन्ति** आया है (विवाह० २४५ , नायाध० ३०१ , ३०२ और ३०५), **आढाहिं** (विवाग० २१७ , § ४५६ की तुलना कीजिए), **आढाह** (नायाध० ९३८) और **आढह** (विवाह० २३४), **आढ़ामाण** (विवाह० २४०), **आढायमीण** (आयार० १, ७, १, १ , १, ७, २, ४ और ५), **अणाढायमीण** (आयार० १, ७, १, २) और **अणाढायमाण** पाये जाते है (उवास० [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , इस ग्रन्थ में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए , विवाग० २१७ , राय० २८२), कर्मवाच्य में **अणढाइज्जमाण** (विवाह० २३५ , उवास०) रूप आया है। **स्था** के समान ही (§ ४८३) **धा** की रूपावली भी उपसर्ग जुडने पर साधारणतः **ए**– रूपावली के अनुसार चलती है . महा० में **संधेइ** मिलता है (हाल ७३३ , रावण० १५, ७६), **सधे न्ति** (रावण० ५, ५६), **संधिन्ति** (गउड० १०४१ , यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए , इसी काव्य में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए), **विहेसि** (गउड०

= प्रह्वेदि नहीं है जैसा कि अनुवाद में दिया गया है, किन्तु = प्रवृप्यति है तथा अ०-माग , जै० महा और जै०शौर० दोस के (§ १२९) स्पष्टीकरण के स्थान में इसका उपयोग किया गया है। साहइ = शास्ते है (हेच० ४ २) महा० और जै०महा० में साहामि, साहइ, साहामो, साहन्ति, और साहसु रूप आये हैं (हाल रावण ; एर्से० कालका), ए- रूपावली के अनुसार रूप भी मिलते हैं, साहेमि, साहेन्ति, साहेसु, साहेहि, साहेउ और साहेन्ति आये हैं (हाल रावण० एर्से ; कालका); शिष् धातु की रूपावली चौथे गण के अनुसार चलती है सीसइ मिलता है (हेच ४,२) । अबतक इसके प्रमाण केवल कर्मवाच्य में पाये जाते हैं इसलिए सइ = शिष्यते है (गउड ; रावण); अ०माग में अणुसासंमी = *अनुसासामि = अनुशास्मि है (उत्तर० ७९)[1], अणुसासन्ति रूप आया है (सूय ५१७ उत्तर० ११); कर्मवाच्य में वधि का रूप सासिज्जइ है (मृच्छ १०२ १६); शौर में सासी अदि मिलता है (मृच्छ १५५, ६) माग में शाशीअदि पाया जाता है (मृच्छ० १५८, २५) । — महा में हणइ = हन्ति है (हाल २१४), णिहणन्ति रूप भी मिलता है और ए- रूपावली के अनुसार णिहणेमि भी है (रावण) । अ माग० में हणामि (विवाह० २५४ और ८५ तथा उसके बाद), हणइ है (विवाह० ८९ और उनके बाद), पद्य में हणाइ भी काम में आया है (उत्तर ६१), अभिहणइ (विवाह १४९), समोहणइ (विवाह ११४ २१२ और उसके बाद ; ४२ ; नायाध § ९१ और ९६ पेज ११२५ कप्प) रूप पाये जाते हैं। जै शौर में णिहणदि (कत्तिगे ४ १, ३३९) है अ माग में हणह (उत्तर १९९), हणन्ति (सूय० ११) और समोहणन्ति रूप मिलते हैं (ठाण १२ ४९), साहणन्ति = संघ्नन्ति है (विवाह० ११७ ; ११८ और १४१) पद्य में विणिहन्ति भी पाया जाता है (सूय ३३९) इच्छावाचक रूप हणिया हणिज्जा हणेज्जा और हणे आये हैं (§ ४६७) आज्ञावाचक में हणह रूप है (सूय ५९६ ; आयार १, ७, २ ४) जै महा में आहणामि (आव०एर्से २८, २) और हणइ (एर्से० ५ १२) रूप आये हैं, आज्ञावाचक रूप = जहि है (एर्से २ १५), इच्छावाचक में आहणेज्जासि मिलता है (आव एर्से ११, १); शौर में पडिहणामि = प्रतिहन्मि है (मुद्रा १८२, ७ ; इस नाटक में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए), विह णन्ति भी आया है (प्रबोध १७ १) ; माग में आहणेध मिलता है (मृच्छ० १५८, १८) ; अप में हणइ है (हेच ४, ४१८, १) ।

1 पाठमेरी मे सक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट ४५, १५१ नोटसंख्या १ में अणुसससिम पाठ पढ़ा है जो अशुद्ध है। § ७४ और १०२ की तुलना कीजिए।

§ ५० —प्राकृत बोलियों में संस्कृत के तीसरे गण के अवशेष बहुत ही कम बचे रह गये हैं। दा धातु के स्थान में वर्तमानकाल में दे- = दय- काम में आता है (§ ४७४) अ माग में बहुत अधिक तथा जै महा में कभी कभी दलय- रूप काम में लाया जाता है (§ ४९) । — धा धातु का रूप पुराने वर्ग के समान दहा- = दधा- मिलता है जो सब प्राकृत बोलियों में है किन्तु केवल सद् = श्रद् के साथ में

तथा इसकी रूपावली बिना अपवाद के अ– रूपावली की भाँति चलती है, जैसा कि कभी कभी वैदिक बोली में भी पाया जाता है और महाकाव्यों की संस्कृत में भी आया है तथा पाली में भी-दहति' मिलता है। इस नियम से **सद्दहइ = श्रद्धाति** (वर० ८, ३३, हेच० ४, ९, क्रम० ४, ४६, सिंहराज० पन्ना ५७), महा० में **सद्दहिमो** = श्रद्दध्मः है (हाल २३), वर्तमानकाल की कर्मवाच्य की पूर्णभूतकालिक अंशक्रिया का रूप **सद्दहिअ** है (भाम० ८, ३३, हेच० १, १२, अच्युत० ८), अ०माग० में **सद्दहामि** आया है (विवाह० १३४ और १३१६, निरया० ६०, उवास० § १२ और २१०, नायाध० § १३२), **सद्दहइ** मिलता है (विवाह० ८४५, पण्णव० ६४, उत्तर० ८०५), पद्य में प्राचीन रूप के अनुसार **सद्दहाइ** है (उत्तर० ८०४), जै०-शौर० में **सद्दहदि** मिलता है (कत्तिगे० ३९९, ३११), इच्छावाचक रूप **सद्दहे** (उत्तर० १७०) और **सद्दहेॅज्जा** हैं (राय० २५०, पण्णव० ५७७ और ५८३), आज्ञा-वाचक में **सद्दहसु** (सूय० १५१) और **सद्दहाहि** मिलते हैं (विवाह० १३४, राय० २४९ और २५८), जै०महा० में **असद्दहन्तो** है (आव०एर्त्से० ३५,४), अ०माग० में **सद्दहमाण** पाया जाता है (हेच० ४,९, आयार० २,२,२,८)। अ०माग० में इन रूपों के अतिरिक्त **आडहइ** (ओव० § ४४) और **आडहन्ति** (सूय० २८६) रूप मिलते हैं। § २२२ की तुलना कीजिए। अन्यथा **धा** धातु की रूपावली –**आ** में समाप्त होनेवाली सभी धातुओं के समान (§ ४८३ और ४८७) दूसरे अथवा चौथे गण के अनुसार चलती है · **धाइ** और **धाअइ** रूप होते हैं (हेच० ४, २४०), महा० में **संधन्तेण** = **संदधता** है (रावण० ५, २४), अ०माग० और जै०महा० में यह धातु ताल्व्यीकरण के साथ साथ (§ २२३) बहुत अधिक काम में आती है : **आढामि** रूप आया है (आयार० १, ७, २, २, विवाह० १२१०), **आढाइ** भी है (ठाणग० १५६, २८५, ४७९ और उसके बाद, विवाग० ४६० और ५७५, निरया० § ८, १८, १९, पेज ६१ और उसके बाद, राय० ७८, २२७, २५२, उवास० § २१५ और २४७, नायाध० § ६९, पेज ४६० और ५७५, विवाह० २२८ और २३४, आव० एर्त्से० २७, ३), अ०माग० में **आढन्ति** है (विवाग० ४५८, विवाह० २३९), **आढायन्ति** आया है (विवाह० २४५, नायाध० ३०१, ३०२ और ३०५), **आढाहिं** (विवाग० २१७, § ४५६ की तुलना कीजिए), **आढाह** (नायाध० ९३८) और **आढह** (विवाह० २३४), **आढ़ामाण** (विवाह० २४०), **आढायमीण** (आयार० १, ७, १, १, १, ७, २, ४ और ५), **अणाढायमीण** (आयार० १, ७, १, २) और **अणाढायमाण** पाये जाते हैं (उवास० [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], इस ग्रन्थ में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए, विवाग० २१७, राय० २८२), कर्मवाच्य में **अणढाइज्जमाण** (विवाह० २३५, उवास०) रूप आया है। **स्था** के समान ही (§ ४८३) **धा** की रूपावली भी उपसर्ग जुड़ने पर साधारणतः **ए**– रूपावली के अनुसार चलती है · महा० में **संधेइ** मिलता है (हाल ७३३, रावण० १५, ७६), **संधेॅन्ति** (रावण० ५, ५६), **संधिन्ति** (गउड० १०४१, यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए, इसी काव्य में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए), **विहेसि** (गउड०

१३२, यहाँ सम्मोहि व विहेसि पढ़िए और इसी काव्य में अन्यत्र दूसरा रूप देखिए), अ माग॰ में संचेइ आया है (आयार १, १, १, ६), संचेमाण भी मिलता है (आयार १, ६, १, १), इच्छावाचक रूप चिहे है (आयार १, २, ५, १ ; १ ; ८, १, ३), चिट्ठे भी देखा जाता है (सूय॰ १२९) ; जै महा॰ में अइसम्पेइ है (आव॰एत्सें ४६, २५) शौर॰ में अणुसंचेमि (कर्पूर॰ ७, १) और अणु संचेध पाये जाते हैं (कर्पूर २३, १)। अ॰माग में संधइ (सूय ५२७) मिलता है। — हा धातु के अ॰माग में जहासि (सूय॰ १७४ और १७६), जहाई (सूय॰ ११८)- जहइ (ठाणंग २८१), पजहामि (उत्तर॰ १७७), विप्पजहामि (विवाह १२३७ और १२४२) विप्पजहइ (उवास ओव॰), विप्पजहन्ति रूप मिलते हैं (सूय॰ ६११ ; ६३५ ९७८), इच्छावाचक रूप जहे है (आयार २, १६, ९), पयहिज्ज और पयहे रूप आये हैं (सूय॰ १२८ और १४७), पयहे भी मिलता है (सूय॰ ४१०), पजहे (उत्तर ४६१) और विप्पजहे मिलते हैं (उत्तर २८४)। आज्ञावाचक जहाहि है तथा अंशक्रिया विप्पजहमाण है (विवाह १३८५) जै॰शौर में जहादि और जहदि रूप पाये जाते हैं (पव ३८३, ४४ ३८५, ६४)। चौथे गण के अनुसार अ माग में हायइ है (ठाणंग २१४ और उसके बाद शौर में भविष्यत्काल का रूप परिहाइस्सदि = परिहास्यते मिलता है (धक्क २, १)। — मा के विषय में § ४८७ देखिए।

१ पिशल पे पाइ १५, १२१।

§ ५ १—बिहेमि = बिभेमि और बिहेइ = बिभेति में भी प्राचीन रूप उपस्थित करता है (हेच १, १६९ ४, २३८)। भी के साथ सम्भवत किये गये महा और जै महा रूप बीहइ (वर ८, १९ हेच १, ११४ और ११५ ; ४, ५३) बीहन्ते (हेच॰ १ १४२) जै महा॰ बीहसु (एत्सें ८३, ३४) और ए- रूपावली के अनुसार महा में बीहेइ (हाल १११ ७७८), जै महा में बीहेहि (एत्सें ३५, ११ ; ८३, ७) बीहेसु (एत्सें ८२, २०) वास्तव में भी से सम्बन्धित नहीं है किन्तु = ०भीष्यति है जो भीष् धातु का रूप है। संस्कृत में यह धातु केवल प्रेरणार्थक रूप में काम में लाया जाता है। इसके प्रमाण रूप में अ॰माग॰ में बीहण और बीहणग शब्द आये हैं (§ २११ और २६३)। साधारणतः भी की रूपावली ए में समाप्त होनेवाले धातुओं की भाँति (§ ८७) चलती है, शौर और माग में तो सदा यही होता है। इस नियम से : जै महा में भायसु है (एत्सें ११ १८) ; शौर में भाआमि रूप मिलता है (विक्र॰ २८, ११ ; ३३, ११), भाअदि आया है (रत्ना ३०१, १८ ; मालवि ६३, १२) और भाआहि भी है (धक्क १२ मालवि ७८ २ रत्ना ३० १० ; प्रिय॰ १६, १८ ; ११ ५ ; मल्लिका॰ २९१ १५) ; माग में भाआमि तथा भाआशि रूप आये हैं (मृच्छ॰ १२४ १२ और २१ ; १३५ २१)। महा में इसकी रूपावली -आ में समाप्त होनेवाले धातुओं की भाँति भी चलती है (§ ४७९) : भाइ रूप मिलता है (वर ८ १९ ; हेच ४ ५३), भासु और इसके इसी कविताओंग्रह में अन्यत्र

आनेवाला दूसरा रूप **भाहि** आये हैं (हाल ५८३) । — **हु** (= हवन करना) अ०-माग० में नवें गण में चला गया है . **हुणामि** और **हुणासि** (उत्तर० ३७५) तथा **हुणइ** रूप मिलते हैं (विवाह० ९, १०) , द्वित्वीकरण मे भी यही रूपावली चलती है : अ०माग० में **जुहुणामि** मिलता है (ठाणग० ४३६ और ४३७) । बोएटलिंक के सक्षिप्त सस्कृत-जर्मन कोश में **हुन्** (!) शब्द देखिए जिसके भीतर **हुनेत्** भी आया है [कुमाउनी मे यह रूप वर्तमान है, सामान्यक्रिया का रूप **हुणीण** है । —अनु०] ।

§ ५०२—सस्कृत के पॉचवे गण के अवशेष केवल या प्रायः केवल शौर० में मिलते हैं और उसमें भी यह अनिश्चित है। पॉचवें गण के अधिकाश धातु नवे गण में चले गये हैं परन्तु प्रधानतया **-अ** और **ए-** रूपावली के अनुसार रूप बनाते है : अ०माग० में **संचिणु** रूप मिलते हैं (उत्तर० १७०), शौर० मे **अवचिणोमि** आया है (माल्ती० ७२, ५ [१८९२ के बबइया सस्करण पेज ५३, १ और मद्रासी सस्करण ६१, ३ में **अवइणुम्मि** पाठ है] , उन्मत्त० ६, १९), **अवचिणुमो** मिलता है (पार्वती० २७, १४) और **उच्चिणोसि** पाया जाता है (विद्ध० ८१, ९ , दोनों सस्करणों में यही रूप है ; इसपर भी अनिश्चित है) , अशुद्ध रूप भी प्रियदर्शिका ११, ४ , १३, १५ और १७ में देखे जाते हैं । इनके विपरीत **चिणइ** रूप भी आया है (वर० ८, २९ , हेच० ४, २३८ और २४१), भविष्यत्काल मे **चिणिहिइ** मिलता है (हेच० ४, २४३), कर्मवाच्य में **चिणिज्जइ** है (हेच० ४,२४२,२३३), कर्मवाच्य में **चिणिज्जइ** है (हेच० ४, २४२ और २४३) , **उच्चिणइ** भी पाया जाता है (हेच० ४, २४१) , महा० मे **उच्चिणसु** और **समुच्चिणइ** (हाल) तथा **विचिणन्ति** (गउड०) हैं , अ०माग० में **चिणाइ** (उत्तर० ९३१ , ९३७ , ९४२ , ९४८ , ९५२ आदि-आदि , विवाह० ११२ , ११३ , १३६ , १३७), **उवचिणाइ** (उत्तर० ८४२ , विवाह० ११३ , १३६ , १३७), **संचिणइ** (उत्तर० २०५), **उवचिणइ** (विवाह० ३८ और ३९), **चिणन्ति** (ठाणग० १०७ , विवाह० ६२ और १८२) और **उवचिणन्ति** रूप पाये जाते है (ठाणग० १०८ , विवाह० ६२) , शौर० में आज्ञावाचक का रूप **अविचणम्ह** मिलता है (शकु० ७१, ९ , माल्ती० १११, २ और ७ [यहॉ यही रूप पढा जाना चाहिए , इसके दूसरे रूप चैतन्य० ७३, ११ और ७५, १२ में देखिए [पाठ मे **अवचिणुम्ह** है]), कर्मवाच्य में पूर्णभूतकालिक अशक्रिया **विचिणिद** है (माल्ती० २९७, ५), इस धातु के रूप **ए-** रूपावली के अनुसार भी चलते हैं · शौर० मे **उच्चिणेदि** मिल्ता है (कर्पूर० २, ८) और सामान्य क्रिया **अवचिणेदु** है (ललित० ५६१, ८) । महा०, माग० और अप० मे **चि** की रूपावली पहले गण के अनुसार भी चलती है . **उच्चेइ** रूप मिलता है (हेच० ४, २४१ , हाल १५९), **उच्चेॅन्ति** भी है (गउड० ५३६), आज्ञावाचक रूप **उच्चेउ** आया है [कुमाउनी में यह रूप **उचै** है । —अनु०] (सिंहराज० पन्ना ४९), सामान्य क्रिया का रूप **उच्चेउ** है (हाल १५९ [कुमाउनी मे यह रूप **उच्चूण** हे । —अनु०]) , माग० में **शचेहि** रूप मिलता है (वेणी० ३५, ९) , अप० में इच्छावाचक रूप **संचि** है (हेच० ४, ४२२, ४), यही स्थिति **मि** की है, महा० में **णिमेसि** मिलता है (गउड० २९६) । § ४७३ की तुलना कीजिए ।

१११ यहाँ सम्मेहि य विहेसि पढ़िए और इसी काव्य में अन्यत्र दूसरा रूप देखिए); अ माग० में सघेह आया है (आयार० १, १, १, ६), संघेमाण भी मिलता है (आयार १, ६, ३, १), इच्छावाचक रूप सिहे है (आयार १, २, ५, १ १ ४, १, २), पिहे भी देखा जाता है (सूय १२९) ; जै महा में महसन्धो है (आव एत्सें ४६, २६) शौर में अणुसधेमि (कर्पूर० ७ , १) और अणु संधेध पाये जाते हैं (कर्पूर २१, १) । अ माग० में सघाइ (सूय० ५२७) मिलता है। — हा धातु के अ माग० में जहासि (सूय १७४ और १७६), जहाई (सूय ११८) जहइ (ठाणंग २८१), पजहामि (उत्तर १७०), विप्पजहामि (विवाह १२३७ और १२४२) विप्पजहइ (उवास ओव०), विप्पजहन्ति रूप मिलते हैं (सूय० ६३३ ; ६३५ ९७८), इच्छावाचक रूप जहे है (आयार २, १६ ९), पयहिज्ज और पयहेज्ज रूप आये हैं (सूय० १२८ और १४७), पयहे भी मिलता है (सूय ४१), पजहे (उत्तर ४५६) और विप्पजहे मिलते हैं (उत्तर० २४४)। आज्ञावाचक जहाहि है तथा अंशक्रिया विप्पजहमाण है (विवाह ११८५) जै शौर में जहादि और जहदि रूप पाये जाते हैं (पव ३८३, २४ ३८५, ६४)। चौथे गण के अनुसार अ माग में हायइ है (ठाणंग २९४ और उसके बाद शौर में भविष्यत्काल का रूप परिहाइस्सदि = परिहास्यते मिलता है (शकु २, १) । — मा के विषय में § ४८७ देखिए।

१ पिशल वे बाइ १५, १२१ ।

§ ५ १—विहेमि = बिभेमि और विहेइ = बिभेति में भी प्राचीन रूप उपस्थित करता है (हेच १, १६९ ४, २३८)। भी के साथ सम्बन्धित किये गये महा और जै महा रूप भीहइ (वर ८, १९ ; हेच १, ११४ और ११९ ४, ५३) भीहन्ते (हेच १, १४२) जै महा भीहसु (एत्सें ८३, १४) और ए- रूपावली के अनुसार महा में बीहेइ (हाल १११ ७७८), जै महा में बीहेहि (एत्सें १५ ११ ८३, ७) बीहेसु (एत्सें ८२, २) वास्तव में भी से सम्बन्धित नहीं है किन्तु = *भीषयति है जो भीष् धातु का रूप है। संस्कृत में यह धातु केवल प्रेरणार्थक रूप में काम में लाया जाता है। इसके प्रमाण रूप में अ माग में बीहण और बीहणग शब्द आये हैं (§ २११ और २६३)। साधारणतः भी की रूपावली ए में समाप्त होनेवाले धातुओं की भाँति (§ ४७९) चलती है, शौर और माग में तो सदा यही होता है। इस नियम से : जै महा में भायसु है (एत्सें ११ १८); शौर में भाआमि रूप मिलता है (विक्र २४, ११ ; ११, ११), भाअदि आया है (रत्ना १ १, १८ ; मालवि ६१ १२) और भाआदि भी है (शकु ९ , १२ मालवि ७८, २ रत्ना १ , १ प्रिय १६, १८ ; २१, ५ ; मल्लिका० २९३, १५) ; माग में भाआमि तथा भाआदि रूप आये हैं (मृच्छ १२४, १२ और २१ ; १२६, २१)। महा० में इसकी रूपावली –आ में समाप्त होनेवाले धातुओं की भाँति भी चलती है (§ ४७९) : माइ रूप मिलता है (वर ८, १९ ; हेच ४, ५३), भासु और इसका इसी कवितासंग्रह में अन्यत्र

आनेवाला दूसरा रूप **भाहि** आये हैं (हाल ५८३)। — हु (= हवन करना) अ०-माग० में नवें गण में चला गया है : **हुणामि** और **हुणासि** (उत्तर० ३७५) तथा **हुणइ** रूप मिलते है (विवाह० ९, १०), द्वित्वीकरण में भी यही रूपावली चलती है : अ०माग० में **जुहुणामि** मिलता है (ठाणग० ४३६ और ४३७)। बोएटलिंक के संक्षिप्त संस्कृत-जर्मन कोश में **हुन्** (!) शब्द देखिए जिसके भीतर **हुनेत्** भी आया है [कुमाउनी में यह रूप वर्तमान है, सामान्यक्रिया का रूप **हुणीण** है। —अनु०]।

§ ५०२—संस्कृत के पाँचवे गण के अवशेष केवल या प्रायः केवल शौर० में मिलते हैं और उसमें भी यह अनिश्चित है। पाँचवे गण के अधिकांश धातु नवें गण मे चले गये है परन्तु प्रधानतया –अ और **ए**– रूपावली के अनुसार रूप बनाते हैं : अ०माग० में **सचिणु** रूप मिलते है (उत्तर० १७०), शौर० में **अवचिणोमि** आया है (मालती० ७२, ५ [१८९२ के बंबइया संस्करण पेज ५३, १ और मद्रासी संस्करण ६१, ३ में **अवइणुम्मि** पाठ है] , उन्मत्त० ६, १९), **अवचिणुमो** मिलता है (पार्वती० २७, १४) और **उच्चिणोसि** पाया जाता है (विद्ध० ८१, ९ , दोनों संस्करणों में यही रूप है ; इसपर भी अनिश्चित है) , अशुद्ध रूप भी प्रियदर्शिका ११, ४ , १३, १५ और १७ में देखे जाते हैं। इनके विपरीत **चिणइ** रूप भी आया है (वर० ८, २९ , हेच० ४, २३८ और २४१), भविष्यत्काल मे **चिणिहिइ** मिलता है (हेच० ४, २४३), कर्मवाच्य मे **चिणिज्जइ** है (हेच० ४,२४२,२३३), कर्मवाच्य में **चिणिज्जइ** हैं (हेच० ४, २४२ और २४३), **उच्चिणइ** भी पाया जाता है (हेच० ४, २४१), महा० में **उच्चिणसु** और **समुच्चिणइ** (हाल) तथा **विचिणन्ति** (गउड०) हैं, अ०माग० में **चिणाइ** (उत्तर० ९३१ , ९३७ , ९४२ , ९४८ , ९५२ आदि-आदि , विवाह० ११२ , ११३ , १३६ , १३७), **उवचिणाइ** (उत्तर० ८४२ , विवाह० ११३ , १३६ , १३७), **संचिणइ** (उत्तर० २०५), **उवचिणइ** (विवाह० ३८ और ३९), **चिणन्ति** (ठाणग० १०७ , विवाह० ६२ और १८२) और **उवचिणन्ति** रूप पाये जाते है (ठाणग० १०८ , विवाह० ६२), शौर० में आज्ञावाचक का रूप **अविचणम्ह** मिलता है (शकु० ७१, ९ , मालती० १११, २ और ७ [यहाँ यही रूप पढा जाना चाहिए , इसके दूसरे रूप चैतन्य० ७३, ११ और ७५, १२ में देखिए [पाठ में **अवचिणुम्ह** है]), कर्मवाच्य में पूर्णभूतकालिक अंशक्रिया **चिचिणिद** है (मालती० २९७, ५), इस धातु के रूप **ए**– रूपावली के अनुसार भी चलते हैं . शौर० में **उच्चिणेदि** मिलता है (कर्पूर० २, ८) और सामान्य क्रिया **अवचिणेदु** है (ललित० ५६१, ८)। महा०, माग० और अप० में **चि** की रूपावली पहले गण के अनुसार भी चलती है . **उच्चेइ** रूप मिलता है (हेच० ४, २४१ , हाल १५९), **उच्चेॅन्ति** भी है (गउड० ५३६), आज्ञावाचक रूप **उच्चेउ** आया है [कुमाउनी में यह रूप **उचै** है। —अनु०] (सिंहराज० पन्ना ४९), सामान्य क्रिया का रूप **उच्चेउं** है (हाल १५९ [कुमाउनी में यह रूप **उचूण** है। —अनु०]) , माग० में **शंचेहि** रूप मिलता है (वेणी० ३५, ९) , अप० में इच्छावाचक रूप **संचि** है (हेच० ४, ४२२, ४), यही स्थिति **मि** की है, महा० में **णिमेसि** मिलता है (गउड० २९६)। § ४७३ की तुलना कीजिए।

५०१—धु (धू) धातु का रूप महा० में धुणाइ बनाया जाता है (एत्थ में; आयार० १, ८, ४, २) महा० और अ०माग० में साधारणतः धुव्वइ मिलता है (वर० ८, ५६ ; हेच० ४, ५९ और २४१ ; क्रम० ४, ७२ ; गउड० ४३७ ; हाल ५१२ ; रावण० १५, २२ ; विद्ध० ७, २ ; सूय० १२१), अ०माग० में इच्छावाचक रूप धुणे है (आयार० १, २, ६, ३ ; १, ४, ३, २ ; १, ५, ३, ५ ; सूय० ४८ और ५५) ; अ०माग० में विहुण्णामि भी है (नायाध० ११२८) ; महा० में विहुणाइ मिलता है (रावण० ७, १७ ; १२, ४६) महा० और अ०माग० में विहुणन्ति पाया जाता है (गउड० ५५२ ; रावण० ६, ३५ ; ११, ५ ; ठाणंग० १५५) ; अ०माग० में विहुणे (सूय० १२१), विहुणाहि (उत्तर० ३११) और निद्धुणे रूप पाये जाते हैं (उत्तर० १७), त्वा- वाले रूप धुणिय और विहुणिय (सूय० ३११ और ३१३), विहुणिया (आयार० १, ७, ८, २४), संविधुणिय (आयार० १, ७, ६, ५) और विद्धुणित्ताण हैं (उत्तर० ६, ५), आत्मनेपद की वर्तमानकालिक अंशक्रिया विधिविद्धुणमाण है (विवाह० ११, ५३) कर्मवाच्य में धुणिज्जइ है (हेच० ४, २४२) शौर० में त्वा वाला रूप अवधुणिअ आया है (मालती० १५१, ६)। इस धातु की रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती है : धुवइ रूप है (हेच० ४, ५९), इससे संबंधित कर्मवाच्य का रूप धुव्वइ मिलता है (§ ५३६) ; इनके अतिरिक्त ए- वाले रूप भी हैं महा० में विहुवे`न्ति आया है (रावण० ८, ३५) और शौर० में विधुवेदि मिलता है (मृच्छ० ७१, २०)। धूण, विहूण और विप्पहूण के विषय में § १२० देखिए। — श्रु की रूपावली पाँचवें गण के अनुसार शौर० और माग० में चलती है किन्तु इसका केवल द्वितीयपुरुष एकवचन का आज्ञावाचक रूप पाया जाता है। इसके अनुसार शौर० में सुणु रूप है (शकु० ७८, ८ ; विक्र० ४२, १२) माग० में शुणु मिलता है (मृच्छ० १११, २१ ; प्रबो० २८, १ [मद्रास संस्करण ने अशुद्ध रूप शिणु दिया है]), द्वितीयपुरुष बहुवचन का भी रूप शुणुध पाया जाता है (शकु० ११३, ९)। किंतु शौर० में दोनों स्थानों में दूसरा रूप सुण भी है जैसे रत्नावली ३, ८ और २, ९, ९ में है ; विद्धशालभंजिका ११, १ में, जिसमें ७२, ५ में इसके विपरीत सुणु है और यहां पर इस रूप के साथ-साथ सुणाहि भी पाया जाता है (मृच्छ० १, ८, ११ ; शकु० ७७, ६ ; मालवि० ६, ५ ; ४५, १९ ; वृषभ० ८२, ७) प्रथमपुरुष बहुवचन में सुणम्ह देखा जाता है (विक्र० ८१, १७ ; रत्ना० ३, २, ७ ; ३११, २५) अथवा ए- रूपावली के अनुसार सुणे`म्ह चलता है (नागा० २८, ९ ; २९, ७), द्वितीयपुरुष बहुवचन का रूप सुणध भी आता है (शकु० ५५, १२)। इस दृष्टि से शौर० में सर्वत्र सुण पाठ आना चाहिए। इसी भांति माग० में भी शुणु के स्थान में शुण रूप काम में लाया जाना चाहिए। अ०माग० में द्वितीयपुरुष बहुवचन का रूप सुणाथ पाया जाता है (उत्तर० ५५५, १७ ; ५६६, ५ ; नायाध० १४८, १९ ; ११६२, १७ ; प्रबन्ध० ४९, १४ और १७) अथवा सुणेथ भी मिलता है (नायाध० १४८, ९) और इस प्रकार अ० माउल्ला ११३, ९ तथा इसके अन्य रूपों और हेमचन्द्र ४, १ १ में सुणध अथवा [जर. (Z) ... की तुलना

कीजिए] **शुणाध** पढा जाना चाहिए। निष्कर्ष यह निकलता है कि शौर० और माग० में विशेष प्रचलित रूपावली नवें गण के अनुसार चलती है . शौर० में **सुणामि** आया है (माल्ती० २८८, १), माग० में **शुणामि** हो जाता है (मृच्छ० १४, २२), शौर० में **सुणोमि** (वेणी० १०, ५ , मुद्रा० २४९, ४ और ६) अशुद्ध है। इसके स्थान मे अन्यत्र पाया जानेवाला रूप **सुणामि** या **सुणेमि** (मुद्रा०) पढे जाने चाहिए। शौर० में **सुणादि** आया है (माल्वि० ७१,३, मुकुन्द० १३,१७, मल्लिका० २४४,२), **सुणेदि** भी है (मृच्छ० ३२५,१९), माग० में **शुणादि** मिलता है (मृच्छ० १६२,२१)। बोली की परम्परा के विरुद्ध शौर० रूप **सुणिमो** है (बाल० १०१,५), इसके स्थान में **सुणामो** शुद्ध है। शौर० मे तृतीयपुरुष एकवचन आज्ञावाचक रूप **सुणादु** है (मृच्छ० ४०,२१, ७४,५, शकु० २०,१५ , २१,४ , ५७,२ , १५९,१० , विक्र० ५,९ , ७२, १४ , ८०, १२ , ८३, १९ , ८४, १ , मालवि० ७८,७ , मुद्रा० १५९, १२ आदि-आदि)। वास्तव में शौर० में इस रूप की धूम है , माग० में **शुणादु** है (मृच्छ० ३७, ३), तृतीयपुरुष बहुवचन में शौर० में आज्ञावाचक रूप **सुणन्तु** है (मृच्छ० १४२, १०), माग० में **शुणन्त** है (मृच्छ० १५१, २३)। महा० में यह वर्ग **अ**– रूपावली में ले लिया गया है : **सुणइ, सुणिमो, सुणन्ति, सुणसु** और **सुणहु** रूप मिलते हैं (गउड० , हाल , रावण०), इसी भाँति अप० मे द्वितीयपुरुष बहुवचन में आज्ञावाचक रूप **णिसुणहु** पाया जाता है (कालका० , २७२, ३७), जै०महा० मे **सुणई** और **सुणन्ति** आये है (काल्का०), **सुण** मिलता है (द्वार० ४९५, १५) और **सुणसु** भी है (कालका० , एर्से०) , अ०माग० और जै०महा० में **सुणह** मिलता है (ओव० § १८४ , आव०एर्से० ३३, १९) , अ०माग० में **सुणतु** (नायाध० ११३४), **सुणमाण** (आयार० १, १, ५, २) और **अपडिसुणमाण** रूप पाये जाते हैं (निरया० § २५)। जै०महा० और अ०माग० में किन्तु **ए**– रूपावली का बोल-बाला है . जै०महा० में **सुणेइ** है (आव०एर्से० ३५, ३० , ४२, ४१ , ४३, २ , कालका० , एर्से०), अ०माग० मे **सुणेमि** (ठाणग० १४३), **सुणेइ** (विवाह० ३२७ , नन्दी० ३७१ , ३७३ , ५०४ , आयार० १, १, ५, २ , पेज १३६, ८ और १६ , पण्णव० ४२८ और उसके बाद), **पडिसुणेइ** (उवास० , निरया० , कप्प०) और **पडिसुणेन्ति** रूप पाये जाते हैं (विवाह० १२२७ , निरया० , उवास० , कप्प० [§ ५८ मे भी यह रूप अथवा **पडिसुणिन्ति** पढा जाना चाहिए] आदि आदि)। अ०माग० में इच्छावाचक रूप **पडिसुणेॅज्जा** (राय० २५१), **पडिसुणिज्जा** (कप्प०), **पडिसुणे** (उत्तर० ३१ और ३३) हैं। तृतीयपुरुष एकवचन आज्ञावाचक के रूप हेमचन्द्र ३,१५८ में **सुणउ, सुणेउ** और **सुणाउ** देता है। अ०माग० में **सुणेउ** पाया जाता है (सूय० ३६३), द्वितीयपुरुष बहुवचन **सुणेह** है (सूय० २४३ , ३७३ , ३९७ , ४२३ और उसके बाद , उत्तर० १)। महा० और जै०महा० मे कर्मवाच्य का रूप **सुव्वइ** है (§ ५३६)। इससे पता चलता है कि कभी इस धातु की रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती रही होगी अर्थात् ***सुवइ** = ***श्रुवति** भी काम में आता होगा।

§ ५ ४—आप धातु में प्र उपसर्ग लगने पर इसकी रूपावली पाँचवें गण में चलती है : अ०माग० में पप्पोइ [पाठ में पप्पोत्ति है ; टीका में पप्पुत्ति दिया गया है]=प्राप्नोति है (उत्तर० ४१), जै०शौर० में पप्पोदि मिलता है (पव० ३८९, ५) जो पद्य में है। अन्यथा अ०माग० में आप् की रूपावली नवें गण के वर्ग के साथ –ण –वाले रूप में चलती है : पाउणइ = *प्रापुणाति और प्रापुणति है (विवाह० ८४५ ; ओव० § १५३ ; पण्णव० ८४६), पाउणन्ति भी मिलता है (सूय० ४११ ; ७५९ ; ७७१ ; ओव० § ७४ ; ७५ ; ८१ और ११७) तथा संपाउणन्ति भी देखा जाता है (विवाह० १२६), इच्छावाचक रूप पाउणे`ज्जा है (आयार० २, १, १, ११ ; २, ६ ; ठाणंग० १६५ ; ४१६), संपाउण्णेज्जासि भी आया है (पाठ में संपाउण्णेज्जसे है, उत्तर० ३४५) ; सामान्य क्रिया का रूप पाउणित्तए मिलता है (आयार० २, १, २, १९) । महा०, जै०महा० और जै०शौर० में तथा अ०माग० शौर० और अप० पद्य में साधारणतः पहले गण के अनुसार रूपावली चलती है : पावइ = *प्रापति है (हेच० ४, ३९१) । इस प्रकार महा० में पावसि, पावइ, पावन्ति, पाव और पावउ रूप पाये जाते हैं (गउड० ; हाल ; रावण०), ए– रूपावली का रूप पावें`न्ति भी आया है ( गउड० ) ; अ०माग० में पावइ है ( उत्तर० १११ ; ११९ ; १४४ ; १५४ आदि आदि ; पण्णव० १३५ ), इच्छावाचक रूप पाविज्जा आया है ( नन्दी० ४४ ) ; जै०महा० में पावइ मिलता है ( कालका० २७२, ५ ), पावन्ति आया है ( ऋषभ० ८१ ) और ए– रूपावली के अनुसार पावेइ ( एर्त्से० ५, ३४ ) और पावें`न्ति रूप मिलते हैं (कालका० २६३, ४ ; एर्त्से० ४६, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) ; जै०शौर० में पावदि (पव० ३८, ११ ; कत्तिगे० ४ , ३२६ ; ४ १ ३७) पाया जाता है ; शौर० में पावन्ति है (विक्र० ६१, २) ; क्त्वान्त रूप जै०शौर० में पाविय है (कत्तिगे० ४ २, ३३) और ए– रूपावली के अनुसार जै०शौर० और शौर० में पावेदि (कत्तिगे० ३९९, ३ ७ ; रत्ना० ३१३, ५) और पावेहि (मालवि० १ , ११ ; यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) ; अप० में पावमि रूप आया है (विक्र० ७१, ८) । इसी मूल शब्द से भविष्यत्काल बनाया जाता है : शौर० में पाविस्स मिलता है (शकु० ५४, १) । हेमचन्द्र ने १, ४ २ में मुद्राराक्षस १८७ २ उद्धृत किया है इसमें माग० रूप पावेमि पढ़ा है ; हस्तलिपियों और छपे संस्करणों में आवमि ; आवेमि और पविश्शेमि रूप आये हैं । हेमचन्द्र ४ १४१ और १४२ में वावेइ = व्याप्नोति और समावेइ = समाप्नोति का उल्लेख भी है ।

§ ५ ५—शक् की रूपावली संस्कृत के समान ही पहले गण के अनुसार चलती है : अ०माग० में सक्कुणन्ति (सूय० २७४) और सक्किणु रूप पाये जाते हैं (उत्तर० ५९६) । — शक् धातु का शौर० रूप सक्कणोमि = शक्नोमि का बहुत अधिक प्रचार है (§ १४ और १९५ ; शकु० ५१ २ ; रत्ना० ३ ५, ११ ; ३२७ १७ ; उत्तररा० ११२, ८) अथवा सक्कुणोमि (मृच्छ० १६६ ११ ; विक्र० १२ ११ ; १५, ३ ; ४९, १८ ; मुद्रा० २४२, ३ ; २४६, १ ; २५२, २ [सर्वत्र यही पाठ पढ़ा

जाना चाहिए], नागा० १४, ८ और ११, २७, १५ आदि आदि) पाया जाता है। अन्य प्राकृत बोलियों में इसकी रूपावली चौथे गण के अनुसार चलती है • **सक्कइ** = ***शक्यति** (वर० ८, ५२, हेच० ४, २३०, क्रम० ४, ६०)। इस प्रकार जै०-महा० और अप० में **सक्कइ** रूप मिलता है (एत्सें०, हेच० ४, ४२२, ६, ४४१, २), जै०महा० में इच्छावाचक रूप **सक्केज्ज** है (एत्सें० ७९, १) और **ए**– रूपावली के अनुसार जै०महा० में **सक्केइ** (आव०एत्सें० ४२, २८), **सक्केंति** (एत्सें० ६५, १९) और **सक्केह** रूप मिलते हैं (सगर० १०, १३ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए])। इच्छावाचक रूप **सक्का** के विषय में § ४६५ देखिए। **स्तृ** धातु जिसकी रूपावली सस्कृत में पाँचवें और नवें गण के अनुसार चलती है, प्राकृत मे अन्त में **ऋ** लगनेवाले धातुओं के अनुकरण पर की जाती है : महा० में **ओत्थरइ** = **अवस्तृणोति** है और **ओ॑त्थरिअ** = **अवस्तृत** है, **वित्थरइ**, **वित्थरन्त–**, **वित्थरिउं** और **वित्थरिअ** रूप भी पाये जाते हैं (रावण०), जै०महा० मे **वित्थरिय** = **विस्तृत** है (एत्सें०), शौर० में **वित्थरन्त–** आया है (मालती० ७६, ४, २५८, ३), अप० में **ओ॑त्थरइ** मिलता है (विक्र० ६७, २०)। इन्ही धातुओं से सम्बन्धित **उत्थंघइ** भी है (= ऊपर उठाना, ऊपर को फेंकना : हेच० ४, ३६ तथा १४४), कर्मवाच्य की भूतकालिक अंशक्रिया **उत्थंघिअ** है (रावण० में **स्तम्भ** शब्द देखिए) = ***उत्स्तभ्नोति** है (पिशल, बे० बाइ० १५, १२२ और उसके बाद)। § ३३३ की तुलना कीजिए।

§ ५०६—सातवे गण की रूपावली प्राकृत में एकदम लुप्त हो गयी है। अनुनासिक निबल रूपों से सबल रूपों में चला गया है और मूलशब्द (= वर्ग) की रूपावली –अ अथवा **ए**– रूप के अनुसार चलती है : **छिन्तइ** = **छिनत्ति** है (वर० ८, ३८, हेच० ४, १२४ और २१६, क्रम० ४, ४६, मार्क० पन्ना ५६), **अच्छिन्दइ** भी मिलता है (हेच० ४, १२५), महा० में **छिन्दइ** आया है (गउड०) और **वोच्छिन्दन्त–** रूप भी पाया जाता है (रावण०), जै०महा० में **छिन्दामि** और **छिन्देइ** रूप मिलते हैं (एत्सें०), कृदन्त (= **क्त्वा**– वाला रूप) **छिन्दित्तु** रूप आया है (कालका०), अ०माग० में **छिन्दामि** है (अणुओग० ५२८, निरया० § १६), **छिन्दसि** (अणुओग० ५२८), **छिन्दइ** (सूय० ३३२, विवाह० १२३ और १३०६, नायाध० १४३६, उत्तर० ७८९), **अच्छिन्दइ** और **विच्छिन्दइ** (ठाणग० ३६०), **वो॑च्छिन्दसि** तथा **वो॑च्छिदइ** रूप भी पाये जाते हे (उत्तर० ३२१ और ८२४), इच्छावाचक रूप **छिन्दे॑ज्जा** हैं (विवाह० १२३ और १३०६), **छिन्दे** है (उत्तर० २१७), **अच्छिन्दे॑ज्जा** आया है (आयार० २, ३, १, ९, २, ९, २, २, १३, १३) और **विच्छिन्दे॑ज्ज** भी मिलता है (आयार० २, १३, १३), **छिन्दाहि** रूप चलता है (दस० ६१३, २७) तथा **छिन्दह** है (आयार० १, ७, २, ४), वर्तमानकालिक अंशक्रिया **छिन्दमाण** है (अणुओग० ५२८), कृदन्त **पलिच्छिन्दियाण** है (आयार० १, ३, २, ४), शौर० में कृदन्त का रूप **परिच्छिन्दिअ** मिलता है (विक्र० ४७, १)। अ०माग० रूप **अच्छे** के विषय में § ४६६ और ५१६ देखिए। — **पीसइ** जो ***पिंसइ** (§ ७६) के स्थान में आया है =

पिनष्टि है (हेच ४, १८५) शौर० में पीसेइ रूप मिलता है (मृच्छ० ३, १ और २१)। — भञ्जइ = भनक्ति (हेच ४, १ ६) महा० में भञ्जइ और भञ्जन्त– रूप पाये जाते हैं (हाल रावण०) जै०महा० में भञ्जिऊण तथा भञ्जेऊण हैं (एर्से०) अ माग में भञ्जइ और भञ्जए आये हैं (उत्तर० ७८८ और ७८९) शौर में भविष्यत्काल का रूप भञ्जइस्ससि मिलता है (विक्र० २२, २) कृदन्त में भञ्जिअ चलता है (मृच्छ० ४०, २२ ; ९७, २३)। माग में भञ्जदि [पाठ में भञ्जदि है कलकत्तिया संस्करण में भञ्जेदि दिया गया है] (मृच्छ० ११८, १२) कर्मवाच्य माना जाना चाहिए तथा भिभञ्ज [पाठ में भिभञ्ज है] (मृच्छ ११८, २१) इससे सम्बन्धित आज्ञावाचक रूप ; इसके विपरीत शौर में आज्ञावाचक रूप भञ्जेध है (मृच्छ १५५, ४) जो कर्तृवाच्य के अर्थ में आया है, जिसके साथ § ५ ७ में आये हुए रूप छुञ्जइ की तुलना की जानी चाहिए। — भिन्दइ = भिनत्ति है (वर ८ ३८ हेच ४, २१६ क्रम ४, ४९ मार्क पन्ना ५९) महा में भिन्दइ और भिन्दन्त– रूप मिलते हैं (गउड ; हाल ; रावण); जै महा० में भिन्दइ आया है (एर्से) अ माग में भिन्दइ (ठाणंग ३९ ; विवाह ११२७), भिन्देंस्सि और भिन्दमाण रूप पाये जाते हैं (विवाह १२२७ और ११८७), इच्छावाचक रूप भिन्देंज्जा है (आयार २, २, २, १ २, १, १, ९) शौर और माग म कृदन्त का रूप भिन्दिअ है (विक्र १९, १ ; मृच्छ ११२, १७)। अ०माग अभ्मे के विषय म § ४६६ और ५१६ देखिए।

§ ५ ७—भुज के भुञ्जइ (हेच ४ ११ ; मार्क पन्ना ५९) और उवहुञ्जइ रूप बनते हैं (हेच ४, १११) ; महा में भुञ्जसु मिलता है (हाल), जै महा में भुञ्जइ (एर्से), भुञ्जइ (आव एर्से ८ ४ और २४), भुञ्जन्ति (एर्से ; कालका०), भुञ्जए (आत्मनेपद एर्से), भुञ्जाहि (आव एर्से० १० ४), भुञ्जसु (आव एर्से १२, २), भुञ्जइ भुञ्जमाण, भुञ्जिअ और भुञ्जित्ता रूप पाये जाते हैं (एर्से) अ माग में भुञ्जइ (उत्तर १२ ; विवाह १९१), भुञ्जई (सूय २ ९) भुञ्जामो (विवाह ६२४), भुञ्जइ (सूय १९८ ; विवाह ४२३), भुञ्जन्ति (दस ६११ १८), भुञ्जें ज्जा (आयार २, १, १ , ७ ; विवाह ५१५ और ५१६) और भुञ्जे रूप देखने में आते हैं (उत्तर १० ; सूय १८४) आज्ञावाचक रूप भुञ्ज (सूय० १८२), भुञ्जसु तथा भुञ्जिमो (उत्तर ३६९ और ६७५), भुञ्जह (आयार २, १, १ , ७) रूप पाये जाते हैं और भुञ्जमाण भी मिलता है (पण्हा १ १ ; १ २ [पाठ में भुञ्जमाण है] ; १ १ [पाठ में भुञ्जमाण है] ; कप्प) ; जै शौर में भुञ्जइ है (कत्तिग ४ १ ३८१ ; ४ ४ १९), शौर में भुञ्जसु आया है (मृच्छ ७ १२) सामान्य क्रिया भुञ्जिदुं है (धूर्त ९ २१) ; अप में भुञ्जन्ति आया है और सामान्यक्रिया के रूप भुञ्जणहं और भुञ्जणहिं हैं (हेच ४, ३३५ ; ४४१, २)। — युज् का वर्तमानकाल के रूप जुञ्जइ और जुञ्जए होते हैं (हेच० ४, १ ९ [कुमाउनी जुञ्जइ चलता है और हिन्दी में इसका रूप जूझना है। —

अनु०])। इसके साथ **मज्जेध** (§ ५०६) और नीचे दिये गये **रुध्** की तुलना कीजिए। महा० में **पउञ्जइउ** रूप मिलता है (कर्पूर० ७, १)। महा० में **जुज्जए, जुज्जइ** (हाल) और **जुज्जन्त–** (रावण०) कर्मवाच्य के रूप हैं। अ०माग० में **जुञ्जइ** (पण्णव० ८४२ और उसके बाद , ओव० § १४५ और १४६) और **पउञ्जइ** रूप मिलते हैं (विवाह० १३१२ , नायाध० § ८९)। इच्छावाचक रूप **जुञ्जे** है (उत्तर० २९) और **पउञ्जे** भी मिलता है (सम० ८६)। **जुञ्जमाण** भी आया है (पण्णव० ८४२ और उसके बाद)। कृदन्त रूप **उवउञ्जिऊण** है (विवाह० १५११) , जै०महा० में कृदन्त का रूप **निउञ्जिय** है (एर्त्से०) , शौर० में **पउञ्जध** मिलता है (कर्पूर० ६, ७), कर्मवाच्य का वर्तमानकालिक आज्ञावाचक रूप **पउञ्जीअदु** है (मृच्छ० ९, ७), जब कि शौर० में जिस **जुज्जदि** का बार बार व्यवहार किया जाता है (मृच्छ० ६१, १० , ६५, १२ , १४१, ३ , १५५, २१ ; शकु० ७१, १० , १२२, ११ , १२९, १५ , विक्र० २४, ३ , ३२, १७ , ८२, १७ आदि आदि) = **युज्यते** है। जै०शौर० भविष्यत्काल का रूप **अहिउज्जिस्सदि** = **अभियोक्ष्यते** है (उत्तररा० ६९, ६)। — **रुध्** का **रुन्धइ** बनता है (वर० ८, ४९ , हेच० ४, १३३ , २१८ , २३९ , क्रम० ४, ५२ , मार्क० और सिंहराज० पन्ना ५६)। इस प्रकार महा० में **रुन्धसु** मिलता है (हाल) , अ०माग० में **रुन्धइ** आया है (ठाणग० ३६०) , शौर० में **रुन्धेदि** है (मल्लिका० १२६, ३ , पाठ में **रुन्धेइ** है) , अप० में कृदन्त रूप **रुन्धेविणु** आया है (विक्र० ६७, २०), **रुज्झइ** = ***रुध्यति** भी मिलता है (हेच० २, २१८), इसमें अनुनासिक लगा कर **णिरुम्झइ** रूप काम में आता है (हाल ६१८), जै०शौर० में भी कृदन्त **निरुम्झित्ता** पाया जाता है (पव० ३८६, ७०) जिससे अ०माग० **विगिञ्चइ** = **विक्न्त्यति** की पूरी समानता है (§ ४८५)। महा० और अ०माग० में **रुम्भइ** है (वर० ८, ४९ , हेच० ४, २१८ , क्रम० ४, ५२ , मार्क० और सिंहराज० पन्ना ५६ , हाल, रावण० , उत्तर० ९०२), अ०माग० में **निरुम्भइ** आया है (उत्तर० ८३४)। महा० और जै०महा० में कर्मवाच्य का रूप **रुब्भइ** मिलता है (§ ५४६)। ये रूप किसी धातु ***रुम्** के हैं जो कण्ठ्य वर्णों में समाप्त होनेवाले धातुओं की नकल पर बने हैं (§ २६६)। —**हिंस्** का रूप अ०माग० में **हिंसइ** है = **हिनस्ति** है (उत्तर० ९२७ , ९३५ , ९४० , ९४५ , ९५० आदि आदि), **विहिंसइ** भी मिलता है (आयार० १, १, १, ४, ५, ५ , ६, ३) और **हिंसन्ति** भी आया है (आयार० १, १, ६, ५)।

§ ५०८—**कृ** के रूप आठवें गण के अनुसार पाये जाते हैं किन्तु केवल अ०माग०, जै०महा० और जै०शौर० में। इसमें यह होता है कि निबल मूल शब्द **कुरु** **कुर्व** रूप धारण कर लेता है और **अ–** वर्ग में ले जाया गया है अ०माग० में **कुव्वइ** = ***कुर्वति** है (सूय० ३२१ , ३१८ [पाठ में **कुव्वई** है], ३५९ [पाठ में **कुव्वई** है] , ५५० , ५५१ , उत्तर० ४३ , दस० ६१३, १९ [पाठ में **कुव्वई** है]), **पकुव्वइ** मिलता है (आयार० १, २, ६२), **विउव्वइ** आया है (विवाह० ११४ , राय० ६० और उसके बाद , ७९ , ८२ , उवास० , नायाध० ,

पिनष्टि है (हेच० ४, १८५); शौर० में पीसेइ रूप मिलता है (मृच्छ० ३, १ और २१)। — भज्जइ = भनक्ति (हेच० ४, १०६) महा० में भज्जइ और भज्जन्त- रूप पाये जाते हैं (हाल ; रावण०); जै०महा० में भञ्जिऊण तथा भञ्जेऊण हैं (एर्त्से०); अ०माग० में भञ्जइ और भञ्जए आये हैं (उत्तर० ७८८ और ७८९); शौर० में भविष्यत्काल का रूप भञ्जइस्ससि मिलता है (विक्र० २२, २), कृदन्त में भञ्जिअ पाया जाता है (मृच्छ० ४०, २२; ९७, २१)। माग० में भञ्जधि [पाठ में भञ्जदि है ; कलकतिया संस्करण में भञ्जेदि दिया गया है] (मृच्छ० ११८, १२) कर्मवाच्य माना जाना चाहिए तथा विभञ्ज [पाठ में विभज्ज है] (मृच्छ० ११८, २१) इससे सम्बन्धित आज्ञावाचक रूप है ; इसके विपरीत शौर० में आज्ञावाचक रूप भञ्जेध है (मृच्छ० १५५, ४) जो कर्तृवाच्य के अर्थ में आया है, जिसके साथ § ५०७ में आये हुए रूप मुञ्चइ की तुलना की जानी चाहिए। — भिन्दइ = भिनत्ति है (वर० ८, ३८ ; हेच० ४, २१६ ; क्रम० ४, ४६ ; मार्क० पन्ना ५६); महा० में भिन्दइ और भिन्दन्त- रूप मिलते हैं (गउड० ; हाल ; रावण०); जै०महा० में भिन्दइ आया है (एर्त्से०); अ०माग० में भिन्दइ (ठाणंग० ३६० ; विवाह० १३२७), भिन्दन्ति और भिन्दमाण रूप पाये जाते हैं (विवाह० १३२७ और १३२८), इच्छावाचक रूप भिन्देज्ज है (आयार० २, २, ३, ३ ; २, ३, १, ९); शौर० और माग० में कृदन्त का रूप भिन्दिअ है (विक्र० १६, १ ; मृच्छ० ११२, १७)। अ०माग० अब्भे के विषय में § ४८८ और ५१६ देखिए।

§ ५०७—भुज के भुञ्जइ (हेच० ४, ११० ; मार्क० पन्ना ५६) और उपहुञ्जइ रूप बनते हैं (हेच० ४, १११); महा० में भुञ्जसु मिलता है (हाल); जै०महा० में भुञ्जइ (एर्त्से०), भुञ्जई (आव०एर्त्से० ८, ४ और २४), भुञ्जन्ति (एर्त्से० ; कालका०), भुञ्जए (आत्मनेपद ; एर्त्से०), भुञ्जाहि (आव०एर्त्से० ९, ४), भुञ्जसु (आव०एर्त्से० ११, २), भुञ्जइ, भुञ्जमाण, भुञ्जिय और भुञ्जित्ता रूप पाये जाते हैं (एर्त्से०); अ०माग० में भुञ्जइ (उत्तर० १२ ; विवाह० १६१), भुञ्जई (सूय० २०९), भुञ्जामो (विवाह० ६२४), भुञ्जह (सूय० १९४ ; विवाह० ६२३), भुञ्जन्ति (दस० ६११, १८), भुञ्जेत्ता (आयार० २, १, १, ७ ; विवाह० ५१५ और ५१६) और भुञ्जे रूप देखने में आते हैं (उत्तर० ३७ ; सूय० १४४), आज्ञावाचक रूप भुञ्ज (सूय० १८२), भुञ्जसु तथा भुञ्जिमो (उत्तर० ३६९ और ६७५), भुञ्जइ (आयार० २, १, १, ७) रूप पाये जाते हैं और भुञ्जमाण भी मिलता है (पण्हव० ११, १२ [पाठ में भुञ्जेमाण है] ; १, १ [पाठ में भुञ्जेमाण है] ; कप्प०) ; जै०शौर० में भुञ्जदे है (कत्तिगे० ४०१, ३८२ ; ४०४, ३९) ; शौर० में भुञ्जसु आया है (मृच्छ० ७, १२) ; सामान्य क्रिया भुञ्जिदुं है (धूर्त० ९, २१) ; अप० में भुञ्जन्ति आया है और असमापिकाक्रिया का रूप भुञ्जणहं और भुञ्जणहिँ हैं (हेच० ४, ३३५ ; ४४१, १)। — युज् का कर्मवाच्यकाल के रूप जुञ्जइ और जुञ्जइ होते हैं (हेच० ४, १०९ [कुमाउनी जुञ्जइ कहलाता है और हिन्दी में इसका रूप जूझना है। —

अनु०])। इसके साथ **भज्जेध** (§ ५०६) और नीचे दिये गये **रुध्** की तुलना कीजिए। महा० मे **पउञ्जइउ** रूप मिलता है (कर्पूर० ७, १)। महा० मे **जुज्जए**, **जुञ्जइ** (हाल) और **जुज्जन्त**– (रावण०) कर्मवाच्य के रूप हैं। अ०माग० में **जुञ्जइ** (पण्णव० ८४२ और उसके बाद , ओव० § १४५ और १४६) और **पउ-ञ्जइ** रूप मिलते हैं (विवाह० १३१२ , नायाध० § ८९)। इच्छावाचक रूप **जुञ्जे** है (उत्तर० २९) और **पउञ्जे** भी मिलता है (सम० ८६)। **जुञ्जमाण** भी आया है (पण्णव० ८४२ और उसके बाद)। कृदन्त रूप **उवउञ्जिऊण** है (विवाह० १५९१) , जै०महा० मे कृदन्त का रूप **निउञ्जिय** है (एर्त्से०) , शौर० मे **पउ-ञ्जध** मिलता है (कर्पूर० ६, ७), कर्मवाच्य का वर्तमानकालिक आज्ञावाचक रूप **पउञ्जीअदु** है (मृच्छ० ९, ७), जब कि शौर० मे जिस **जुज्जदि** का बार बार व्यवहार किया जाता है (मृच्छ० ६१, १० , ६५, १२ , १४१, ३ , १५५, २१ , शकु० ७१, १० , १२२, ११ , १२९, १५ , विक्र० २४, ३ , ३२, १७ , ८२, १७ आदि-आदि) = **युज्यते** है। जै०शौर० भविष्यत्काल का रूप **अहिउञ्जिस्सदि** = **अभियोक्ष्यते** है (उत्तररा० ६९, ६)। — **रुध्** का **रुन्धइ** बनता है (वर० ८, ४९ , हेच० ४, १३३ , २१८ , २३९ , क्रम० ४, ५२ , मार्क० और सिंहराज० पन्ना ५६)। इस प्रकार महा० में **रुन्धसु** मिलता है (हाल), अ०माग० में **रुन्धइ** आया है (ठाणग० ३६०) , शौर० मे **रुन्धेदि** है (मल्लिका० १२६, ३ , पाठ मे **रुन्धेइ** है) , अप० में कृदन्त रूप **रुन्धेविणु** आया है (विक्र० ६७, २०), **रुज्झइ** = ***रुध्यति** भी मिलता है (हेच० २, २१८), इसमे अनुनासिक लगा कर **णिरुञ्झइ** रूप काम मे आता है (हाल ६१८), जै०शौर० में भी कृदन्त **निरु-ञ्झित्ता** पाया जाता है (पव० ३८६, ७०) जिससे अ०माग० **विगिञ्चइ** = **विकृ-न्त्यति** की पूरी समानता है (§ ४८५)। महा० और अ०माग० में **रुम्भइ** है (वर० ८, ४९ , हेच० ४, २१८ , क्रम० ४, ५२ , मार्क० और सिंहराज० पन्ना ५६ , हाल, रावण० , उत्तर० ९०२), अ०माग० में **निरुम्भइ** आया है (उत्तर० ८३४)। महा० और जै०महा० में कर्मवाच्य का रूप **रुम्भइ** मिलता है (§ ५४६)। ये रूप किसी धातु ***रुभ्** के हैं जो कंठ्य वर्णों में समाप्त होनेवाले धातुओं की नकल पर बने हैं (§ २६६)। —**हिंस्** का रूप अ०माग० में **हिंसइ** है = **हिनस्ति** है (उत्तर० ९२७ , ९३५ , ९४० , ९४५ , ९५० आदि आदि), **विहिंसइ** भी मिलता है (आयार० १, १, १, ४, ५, ५ , ६, ३) और **हिंसन्ति** भी आया है (आयार० १, १, ६, ५)।

§ ५०८—**कृ** के रूप आठवें गण के अनुसार पाये जाते हैं किन्तु केवल अ०-माग०, जै०महा० और जै०शौर० में। इसमें यह होता है कि निबल मूल शब्द **कुरु** **कुर्व** रूप धारण कर लेता है और अ– वर्ग में ले जाया गया है अ०माग० में **कुव्वइ** = ***कुर्वति** है (सूय० ३२१ , ३१८ [पाठ में **कुव्वई** है], ३५९ [पाठ में **कुव्वई** है] , ५५० , ५५१ ; उत्तर० ४३ , दस० ६१३, १९ [पाठ में **कुव्वई** है]), **पकुव्वइ** मिलता है (आयार० १, २, ६२), **विउव्वइ** आया है (विवाह० ११४ , राय० ६० और उसके बाद , ७९ , ८२ , उवास० , नायाध० ,

कुव्व० इत्यादि), कुव्वन्ती = कुर्वन्ती है (सूय० २११ २४० १९९ ४७२ १४९ ; विवाह ४०९), विकुव्वन्ति भी है (विवाह २१४ और २१५), इच्छावाचक कुव्वेज्जा और कुव्वेज्ज रूप हैं (उत्तर १९ और २८९), साधारणतः किन्तु कुज्जा रूप चलता है (§ ४६४), आज्ञावाचक कुव्वह (आयार० १, १, २ १), आत्मनेपद की वर्तमानकालिक अंशक्रिया कुव्वमाण है (आयार १, १, १, १ ; पण्णव १ ४ नायाध ९१), विउव्वमाण (विवाह १ ११ और उसके बाद १ ५४) और पकुव्वमाण भी आते हैं (आयार० १, २, १, ५ १, ५, १ १) जै महा में कुव्वई रूप आया है (काल्का), कुव्वन्ति है (आव० एत्सें ७, ११), विउव्वइ (आव एत्सें १५, ६) और विउव्वए मिलते हैं (आव०-एत्सें १३, २७), इसका विउव्विऊण है , कर्मवाच्य की पूर्णभूतकालिक अंशक्रिया विउव्विय आयी है (एत्सें) ; जै शौर में कुव्वदि रूप मिलता है (कत्तिगे ३९९, ३११ ४ , ३२१ ४ १, ३४ ४ २, ३५७) । आत्मनेपद का रूप कुव्वदे है (कत्तिगे ४ १, ३८४) । पाँचवें गण के अनुसार वैदिक रूपावली महा , जै महा , जै०शौर और अप में रह गयी है । वैदिक कृणोति का रूप § ५ २ के अनुसार कुणइ बन जाता है (वर ८, १३ हेच ४, ६५ क्रम ४, ५४ मार्क पन्ना ५९ [कुमाउनी वैदिक कृणोसि का कणौंछा रूप है । —अनु]) । इस नियम से महा० कुणसि, कुणइ, कुणन्ति, कुण, कुणसु, कुणउ और कुणन्त रूप मिलते हैं (गउड हाल ; रावण) जै महा में कुणइ (काल्का प्रायम), कुणन्ति और कुणइ (काल्का), कुणसु (काल्का ; एत्सें ; सगर १, २ ; ११ १२), कुणन्त- तथा कुणमाण- (काल्का , एत्सें), कुणन्तेण (कक्कुक शिलालेख १९) तथा एक ही स्थान में कुणई मिलता है जो अ माग पद्य में आया है (सम ८९) ; जै शौर में कुणदि पाया जाता है (कत्तिगे १९९, २१ और ३११ ; ४ २, ३५९ और ३६७ ; ४ ३ १७ ; ३७१ ; ३८५ ; ४ ४, ३८८ ; ३८९ ; ३९१) ; अप में कुणहु (पिंगल १, ३६ ५१ ७९ [पाठ में कुणह है]) और कुणेहु रूप मिलते हैं (पिंगल १, ९ और ११८) । शौर और माग कुण- का व्यवहार कभी नहीं किया जाता (वर १२, १५ मार्क पन्ना ७२) । इसलिए नाटकों में इसका व्यवहार केवल महा में रचित गाथाओं में ही शुद्ध है जैसे रत्नावली २९३ ६ ; मुद्राराक्षस ८३, १ ; धूर्तसमागम ४, १९ ; नागानन्द २५, ४ ; ४१, ५; बालरामायण १२ , ६ विद्धशालभंजिका ११, ८ कर्पूर ८, ९ ; १ , १ ; १ ; ५५, ३ ; ६७ ५ आदि-आदि ; प्रतापरुद्रीय २१८, १७ ; २२ , १५ ; ३८९, १४ इत्यादि में भूल से राजशेखर ने शौर में भी कुण- का प्रयोग किया है जैसे, बालरामायण, ६९, १३ ; १६८, ७ ; १९५, ११ ; २ ११ विद्धशालभंजिका ३६, २ ; ४८, ९ और ११ ; ८ १४ ; ८१ ५ ; १२३ १४ । कुणोमि के स्थान में (कर्पूर बम्बइया संस्करण १ ७, ६) कोनो ठीक ही करीअदु पाठ पढ़ता है (कोनो द्वारा सम्पादित संस्करण ११५ ६) और ऐसी आशा की जाती है कि इसके शुभाकांक्षित संस्करण बालरामायण और विद्धशालभंजिका शौर का कुण- निकाल डालेंगे । किन्तु

यह रूप बाद के नाटकों मे भी मिलता है जैसे, हास्यार्णव ३२, १२ , ३९, १४ , चैतन्यचन्द्रोदय ३६, ११ , ३७, ५ , ३९, १ और १० , ४४, १२ , ४७, ७ , ८०, १४ , ९२, १४ , कर्ण० २२, ८ , जीवा० ३९, १५ , ४१, ७ , ८१, १४ , ९५, २, माल्लिकामारुतम् ६९, १ , ३३६, ३ आदि आदि। इनमे बात यह है कि प्रकाशक अथवा सम्पादक की भूल नहीं है, स्वय लेखक इस अशुद्धि के लिए उत्तरदायी है। एक भीषण भूल शौर० **कुम्मो = कुर्मः** है (जीवा० १३, ६)। इसके विपरीत ढक्की रूप **कुलु = कुरु** शुद्ध है (मृच्छ० ३१, १६)।

§ ५०९— ऋ में समाप्त होनेवाली धातुओं के अनुकरण के अनुकरण मे अधिकाश मे **कृ** की रूपावली पहले गण के अनुसार चलती है (§ ४७७) . **करइ** रूप पाया जाता है (वर० ८, १३ , हेच० ४, ६५ , २२४ , २३९ , मार्क० पन्ना ५९), किन्तु महा०, जै०महा०, अ०माग० और जै०शौर० मे प्राय' तथा शौर० और माग० में बिना अपवाद के इसके रूप **ए-** के साथ चलते है। **अ-** वाले निम्नलिखित हैं: पल्लवदानपत्र मे इच्छावाचक रूप **करॅय्य** और **करॅय्याम** आये हैं (६, ४० , ७, ४१) , महा० में **करन्त** मिलता है (रावण०) , जै०महा० मे **करए = कुरुते** है (काल्का० दो, ५०६, ५), **करन्ति** भी है (ऋषभ० ३९ और ४०), अ०माग० मे **करई** है (अनिश्चित है , राय० २३३), **करान्ति** (सूय० २९७ , उत्तर० ११०१ , विवाह० ६२ ; जीवा० १०२ , पण्णव० ५६ , ५७४), **पकरन्ति** (उत्तर० १५ , पण्णव० ५७५), **वियागरन्ति** और **वागरन्ति** (सूय० ५२३ और ६९५) रूप पाये जाते हैं , जै०शौर० मे **करदि** आया है (कत्तिगे० ४००, ३३२), अ०माग० में इच्छावाचक रूप **करे** है (सूय० ३४८ , ३८५ , ३९३), **निराकरे** मिलता है (सूय० ४४२), **करेज्जा** (§ ४६२), **वियागरॅज्जा** (सूय० ५२५ और ५२७) तथा **वागरॅज्जा** रूप भी पाये जाते हैं (आयार० २, ३, २, १७) , अप० में **करिमि** (विक्र० ७१, ९), **करउँ** (हेच० ४, ३७०, २), **करइ, करदि, करन्ति** और **करहिँ** रूप पाये जाते है (हेच० मे **कर्** धातु देखिए)। इच्छावाचक रूप **करि** आया है (हेच० ४,३८७,३ , शुकसप्तति ४९,४ , प्रबन्ध० ६३,७), आज्ञावाचक **करहि** है (हेच० ४, ३८५ , पिंगल १, १४९), **करु** (हेच० ४, ३३०, ३) तथा **करहु** भी आये हैं (हेच० ४, ३४६ , पिंगल १, १०२ , १०७ , १२१ [पाठ में **करह** है]), सामान्यक्रिया **करण** है, कृदन्त मे **करेवि** और **करेप्पिणु** रूप मिलते हैं (हेच० में **कर्** धातु देखिए) जो बहुत चलते हैं। — निम्नलिखित **ए-** वाले रूप उक्त रूपों से भी अधिक काम में आये हैं: महा० मे **करेमि, करेसि, करेइ, करॅन्ति, करेहि, करेसु** और **करॅन्त** रूप आये हैं (हाल , रावण०) , जै०महा० में **करेइ** मिलता है (एर्त्से० , कालका० , आव०एर्त्से० ९, १७ , १४, १४), **करेमो** (एर्त्से० २, २७ , ५, ३५ , कालका० २६४, ११, और १४ , आव०एर्त्से० १७, १४ , सगर० २, १४), **करॅन्ति** (एर्त्से० , कालका०), **करेहि, करेसु** तथा **करेह** (कालका०), **करेन्त, करेमाण** ((एर्त्से०) रूप पाये जाते हैं , अ०माग० में **करेमि** (ठाणग० १४९ और और ४७६ , नायाध० § ९४ , उवास०), **करेइ** (आयार० १, २, ५, ६ , १, ३,

रूप इत्यादि), कुव्वन्ती = कुर्वन्ती है (सूय २११ २४० १५९ ४७२ ६४९ विवाह ४ १), विकुव्यन्ति भी है (विवाह २१४ और २१५), इच्छावाचक कुव्वेज्जा और कुव्वेज्ज रूप हैं (उत्तर १९ और २८९), साधारणतः किन्तु कुज्जा रूप चलता है (§ ४६४), आज्ञावाचक कुव्वहा (आयार १, २, २, १), आत्मनेपद की वर्तमानकालिक अंशक्रिया कुव्वमाण है (आयार १, १, १, १ पण्णव १ ४ ; नायाध ९१०), विउव्वमाण (विवाह १ ११ और उसके बाद ; १ ५४) और पकुव्वमाण भी आये हैं (आयार० १, २, १, ५ १, ५, १, १) ; जै महा में कुव्वई रूप आया है (कालका) कुव्वन्ति है (आव० एर्त्से ७, ११), विउव्वइ (आव एर्त्से १५, ६) और विउव्वए मिलते हैं (आव० एर्त्से १६, २७), कृदन्त विउव्विऊण है , कर्मवाच्य की पूर्णभूतकालिक अंशक्रिया विउव्विय आयी है (एर्त्से) ; जै शौर में कुव्वदि रूप मिलता है (कत्तिगे ३९९, ३१३ ४ , ३२९ ; ४ १, ३४ ४ २, ३५७) । आत्मनेपद का रूप कुव्वदे है (कत्तिगे ४ १, ३८४) । पाँचवें गण के अनुसार वैदिक रूपावली महा , जै महा , जै शौर और अप में रह गयी है । वैदिक कृणोति का रूप § ५ २ के अनुसार कुणइ बन जाता है (वर ८ १३ ; हेच ४, ६५ क्रम० ४, ५४ मार्क पन्ना ५९ [कुमाउनी वैदिक कृणोसि का कर्णौछा रूप है । —अनु]) । इस नियम से महा कुणसि, कुणइ, कुणन्ति, कुण कुणसु, कुणउ और कुणन्त रूप मिलते हैं (गउड हाल रावण); जै महा में कुणइ (कालका ; ऋषभ), कुणन्ति और कुणह (कालका), कुणसु (कालका ; एर्त्से ; सगर १, २ ; ११ १२), कुणन्त- तथा कुणमाण- (कालका ; एर्त्से), कुणन्तेण (कक्कुक शिलालेख १५) तथा एक ही स्थान में कुणई मिलता है जो म माग पद्य में आया है (सम ८५) ; जै शौर में कुणदि पाया जाता है (कत्तिगे ३९९, ३१ और ३९९ । ४ २, ३५९ और ३६७ ; ४ १ ३७ ; ३७१ ३८५ ४ ४, ३८८ ३८९ ; ३९१) ; अप में कुणहु (पिंगल १, १६ ; ५३ ; ७९ [पाठ में कुणह है]) और कुणेहु रूप मिलते हैं (पिंगल १, ९ और ११८) । शौर और माग कुण- का व्यवहार कभी नहीं किया जाता (वर १२, १५ ; मार्क पन्ना ७२) । इसलिए नाटकों में इसका व्यवहार केवल महा० में रचित गाथाओं में ही हुआ है जैसे, रत्नावली २९३, ६ ; मुद्राराक्षस ८३ १ पूर्वसमागम ४, १९ नागानन्द २५, ४ ; ४१, ५ बालरामायण १२ , ६ ; विद्धशालभंजिका १२, ८ ; कर्पूर ८, ९ ; १ , १ ; १ ५५, २ ; ६०, ५ आदि आदि ; प्रतापरुद्रीय २१८, १७ ; २१ , १९ ; ३८९, १४ इत्यादि में भूल से राजशेखर ने शौर में भी कुण- का प्रयोग किया है जैसे, बालरामायण, ६९, ११ १६८, ७ ; १९५, ११ ; २ , ११ ; विद्धशालभंजिका ३६, २ ; ४८, ९ और ११ ; ८ १४ ; ८१ ५ १२१ १४ । कुणोमि के स्थान में (कर्पूर बम्बइया संस्करण १ ७, ६) कोनो ठीक ही करीमसु पाठ पाता है (कोनो द्वारा सम्पादित संस्करण ११५ ६) और ऐसी आशा की जाती है कि इसके गुणानुरूपित संस्करण बालरामायण और विद्धशालभंजिका शौर का कुण- निकाल डालेंगे । किन्तु

यह रूप बाद के नाटकों में भी मिलता है जैसे, हास्यार्णव ३२, १२, ३९, १४, चैतन्यचन्द्रोदय ३६, ११, ३७, ५, ३९, १ और १०, ४४, १२, ४७, ७, ८०, १४, ९२, १४, कर्ण० २२, ८, जीवा० ३९, १५, ४१, ७, ८१, १४, ९५, २, मल्लिकामारुतम् ६९, १, ३३६, ३ आदि आदि। इनमें बात यह है कि प्रकाशक अथवा सम्पादक की भूल नहीं है, स्वयं लेखक इस अशुद्धि के लिए उत्तरदायी है। एक भीषण भूल शौर० कुम्मो = कुर्मः है (जीवा० १३, ६)। इसके विपरीत ढक्की रूप कुलु = कुरु शुद्ध है (मृच्छ० ३१, १६)।

§ ५०९— ऋ में समाप्त होनेवाली धातुओं के अनुकरण के अनुकरण में अधिकांश में कृ की रूपावली पहले गण के अनुसार चलती है (§ ४७७). करइ रूप पाया जाता है (वर० ८, १३, हेच० ४, ६५, २२४, २३९, मार्क० पन्ना ५९), किन्तु महा०, जै०महा०, अ०माग० और जै०शौर० में प्रायः तथा शौर० और माग० में बिना अपवाद के इसके रूप ए- के साथ चलते हैं। अ- वाले निम्नलिखित है: पल्लवदानपत्र में इच्छावाचक रूप करेॅय्य और करेॅय्याम आये हैं (६, ४०, ७, ४१), महा० में करन्त मिलता है (रावण०), जै०महा० मे करए = कुरुते है (कालका० दो, ५०६, ५), करन्ति भी है (ऋषभ० ३९ और ४०), अ०माग० मे करई है (अनिश्चित है, राय० २३३), करन्ति (सूय० २९७, उत्तर० ११०१, विवाह० ६२, जीवा० १०२, पण्णव० ५६, ५७४), पकरन्ति (उत्तर० १५, पण्णव० ५७५), वियागरन्ति और वागरन्ति (सूय० ५२३ और ६९५) रूप पाये जाते है, जै०शौर० मे करदि आया है (कत्तिगे० ४००, ३३२), अ०माग० में इच्छावाचक रूप करे है (सूय० ३४८, ३८५, ३९३), निराकरे मिलता है (सूय० ४४२), करेज्जा (§ ४६२), वियागरेॅज्जा (सूय० ५२५ और ५२७) तथा वागरेॅज्जा रूप भी पाये जाते हैं (आयार० २, ३, २, १७), अप० में करिमि (विक्र० ७१, ९), करउँ (हेच० ४, ३७०, २), करइ, करदि, करन्ति और करहिँ रूप पाये जाते है (हेच० मे कर् धातु देखिए)। इच्छावाचक रूप करि आया है (हेच० ४,३८७,२, शुकसप्तति ४९,४, प्रबन्ध० ६३,७), आज्ञावाचक करहि है (हेच० ४, ३८५, पिंगल १, १४९), करु (हेच० ४, ३३०, २) तथा करहु भी आये हैं (हेच० ४, ३४६, पिंगल १, १०२, १०७, १२१ [पाठ मे करह है]), सामान्यक्रिया करण है, कृदन्त में करेवि और करेप्पिणु रूप मिलते हैं (हेच० में कर् धातु देखिए) जो बहुत चलते हैं। — निम्नलिखित ए- वाले रूप उक्त रूपों से भी अधिक काम में आये हैं. महा० में करेमि, करेसि, करेइ, करेॅन्ति, करेहि, करेसु और करेॅन्त रूप आये हैं (हाल, रावण०), जै०महा० में करेइ मिलता है (एर्त्से०, कालका०, आव०एर्त्से० ९, १७, १४, १४), करेमो (एर्त्से० २, २७, ५, ३५, कालका० २६४, ११, और १४, आव०एर्त्से० १७, १४, सगर० २, १४), करेॅन्ति (एर्त्से०, कालका०), करेहि, करेसु तथा करेह (कालका०), करेन्त, करेमाण ((एर्त्से०) रूप पाये जाते हैं, अ०माग० में करेमि (ठाणग० १४९ और और ४७६, नायाध० § ९४, उवास०), करेइ (आयार० १, २, ५, ६, १, ३,

णाइ रूप मिलते है (उत्तर० ७४५ और ७९१), जै०शौर० में **जाणादि** (पव० ३८२, २५ , ३८८, ४८) और **वियाणादि** रूप है (पव० ३८८, २), शौर० में **जाणासि** रूप पाया जाता है (मृच्छ० ५७, ९ , ६५, १० , ८२, १२ , शकु० १३, ५ , माल्ती० १०२, ३ , मुद्रा० ३७, २), दाक्षि० मे **आणासि** चलता है (मृच्छ० १०१, ८ , ९ और १०) , शौर० मे **जाणादि** देखने मे आता है (विक्र० ९, ४ , माल्ती० २६४, ५ , महावीर० ३४, १ , मुद्रा० ३६, ३ , ४ और ६ ,५५, १ आदि-आदि) , माग०, शौर० और दाक्षि० मे **आणादि** भी मिलता है (मृच्छ० ३७, २५ , ५१, २५ , १०१, ११), शौर० मे **विआणादि** आया है (प्रबोध० १३, १९), **जाणादु** है (मृच्छ० ९४, १३ , मुद्रा० २६, ७) , माग० में **याणासि** (वेणी० ३४, १८), **याणादि** (मृच्छ० ११८, १), **आणादि** (मृच्छ० ३७, २५) तथा **विआणादि** और **पच्चभिआणादि** रूप पाये जाते हैं (मृच्छ० ३८, १३ , १७३, ७)। शौर० और माग० को छोड अन्य सब प्राकृत बोलियों में ज्ञा अधिकाश में अ- रूपावली के अनुसार चलता है : **जाणइ** है (वर० ८, २३ , हेच० ४, ४७ , क्रम० ४, ४७)। इस प्रकार : महा० मे **जाणिमि, जाणसि, जाणसे, जाणइ, जाणिमो** और **जाणामो, जाण** तथा **जाणसु** रूप आये है (हाल), **ण** के बाद : **आणसि, आणइ, आणिमो** और **आणह** रूप मिलते है (हाल , रावण०), जै०महा० में **जाणसि** (द्वार० ५०२, २१), **न याणसि** (एर्त्से० ५२०, १७), **जाणइ** (एर्त्से० ११, २ , काल्का० २७७, १०) और **न याणइ** पाये जाते हैं (आव० एर्त्से० २१, १८ , ३८, ८ , एर्त्से० २०, ३ , ३७, २५), अ०माग० में **जाणसि** (उत्तर० ७४५), **जाणइ** (विवाह० २८४ , ३६३ , ९११ , ११९४ , ११९८ आदि-आदि , सूय० ४७६ और ५४० , उत्तर० २०२ , आयार० १, २, ५, ४ , पण्णव० ३६६ , ४३२ , ५१८ और उसके बाद , ६६६ , जीवा० ३३९ और उसके बाद), **परिजाणइ** (आयार० पेज १३२, ९ और उसके बाद), **अणुजाणइ** (विवाह० ६०३ और उसके बाद), **समणुजाणइ** (आयार० १, १, ३, ६ , १, २, ५, २ और ३), **जाणामो** (विवाह० १३३ , १४४ , ११८० , १४०६ , ठाणंग० १४७ , सूय० ५७८), **जाणह** और **परियाणह** (विवाह० १३२ और २३४) रूप मिलते हैं। इच्छावचक **जाणे** है (सूय० ३६४)। आज्ञावाचक **जाण** है (आयार० १, ३, १, १)। और **जाणाहि** भी मिलता है (सूय० २४९ और ३०४ , कप्प० एस (S) § ५२)। **वियाणाहि** (पण्णव० ३९), **समणुजाणाहि** (सूय० २४७), **अणुजाणउ** (कप्प० § २८) और **जाणह** भी आज्ञावाचक हैं (आयार० १, ४, २, ५)। **जाणमाण** भी पाया जाता है (सम० ८२)। जै०शौर० में **जाणदि** है (कत्तिगे० ३९८, ३०२), **वियाणदि** (पव० ३८१, २१) और **जाण** रूप भी मिलते हैं (कत्तिगे० ४०१, ३४२) , शौर० में **जाणामो** [पाठ में अशुद्ध रूप **जाणीमो** है , इसी ग्रन्थ में अन्यत्र आये हुए दूसरे रूप की तुलना कीजिए] (माल्ती० ८२, ९ , ९४, ३ , २४६, १ , २४८, १ , २५५, ४ , विद्ध० १०१, १), **ण आणध** भी है (माल्ती० २४५, ८)। आज्ञावाचक के **जाण** (कर्पूर० ६३, ८) और **जाणाहि**

२, १ ; सूय ४०१ ; ४०६ ८५१ विवाह० ११५ ११७ १११ ; १४५ निरया ४९ उवास० कप्प०), करेमो (सूय ७१४), करेंति (आयार० १, १, २ १ राय० १८१ जीवा० ५७७ और ५९७ उवास कप्प०) रूप पाये जाते हैं। आज्ञावाचक वियागरेहि (सूय ९६२) और करेह हैं (उवास नायाध ; कप्प), करेमाण आया है (उवास) तथा वियागरेमाण और वियागरेइ भी मिलते हैं (आयार २, २ ३,१)। इनके तुकके मिलनेवाला रूप अ माग में कज्जन्ति है (उवास § १९७ और १९८) जो कर्मवाच्य में आया है ; इसके समान स्थिति में § १८४ में करन्ति दिया गया है शौ शौर० में करदि दिखाई देता है (पव १८४, ५९ कत्तिग ४००, ३२४ ४ २, ३६९ ४ १, ३७७ और १८१) शौर में करमि आया है (ललित ५६१, १५ मृच्छ १६, ४ १ ३, १७ ; १५१, २२; शकु १६६, ८ ; विक ८२, ५ ८३, ५ और ६ आदि-आदि), करसि है (रत्ना १ ३, ३१ मालती २६५,२ प्रबोध २४४, २ [पूने का, मद्रासी और बंबइया संस्करण के साथ यही रूप पढ़ा जाना चाहिए]), करदि (ललित ५६०, ९ मृच्छ ७३ ११ १०७,१८ १५१, १९ और २ ; शकु २ , ५ ; ५६, १६ विक ७५ ५), करमो (शकु० ८ , ९ [यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । मर्द्धकरेंति (मालती २७३, ५ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए ; इस नाटक में अन्यत्र दूसरे रूप भी देखिए), करहि (मृच्छ ६६, १४ १२५, १८ १२६, १०), करेसु (रत्ना० २९९, ५ ३१६, ६ ३२८, २४ ; वेणी ९८, १५ प्रसन्न० ८४, ९ ; कर्ण २१, ७ १ , ५ ; १७ २), करेदु (मालती० १५१, ५), करम्ह (शकु १८ १३ ; विक ६, १९ १ , १५ ५१, १४ ; प्रबोध ६३, ११ ; रत्ना ३०२, २१ ; उत्तररा १ १, ८), करध (मालती २४६, ५) और करेंन्स रूप पाये जाते हैं (मृच्छ ६ १३ ; ८ २१ ; ६ २५ ; ६१, २४ १ ५, १ ; १८८ ८)। — माग में करमि (मृच्छ १२, १९ , ३१, १७ और २ १७, ८ ११३, २१ आदि आदि ; शकु ११८ १), कलशि (मृच्छ १५१, २५ ; ११ , १), कलदि (मृच्छ० ८१ ६ ; १२७, ६ १३५ २ १५८, २५ ; नागा ६८, ५ [यहाँ यही रूप पढ़ा जाना चाहिए]), कलहि (मृच्छ ३१, ८ ; १२१, ० ; १७६, ५), कलेहु (मृच्छ १६७, १९ ; १६८, ७ ; १७० २१ ; वणी ३६ ६ ; चंड ७१ १) कलध (मृच्छ ३२, १५ ; ११२, २ ; १४ , २१) और कलेंतभ रूप आये हैं (गंवाम ; मृच्छ १ , ९ १ ८, १७) ।

§ ५१ —प्राकृत की अधिकांश बोलियों में केवल ज्ञा धातु के भिन्न रूप मिलते हैं जो नवें गण के अनुसार हैं । § १७ के अनुसार इस धातु के रूप न के बाद आने पर आदि का ज उड़ जाता है : महा में जाणाइ आया है (कपूर ३५, ८) ; जै० महा में जाणासि रूप मिलता है (एर्से ५७, ८) ; अ माग में भी जाणासि है (विवाह १२०१ ; राय २६७ ; उत्तर ७८५) अणुजाणाइ आया है (सूय १ और १६) न याणाइ और जाणाइ (सूय१ १६१ और ५१) परियाणाइ (विवाह २२८ ; राय १५२ [पाठ में परिजाणाइ है]), वियाणासि और विया

विक्रेय का एक रूपभेद है अर्थात् यह **य = *विक्रेति** है। — **पू** से **पुणइ** बनता है (हेच० ४, २४१)। इसी भाँति **लू** का **लुणइ** रूप हो जाता है (वर० ८, ५६, हेच० ४, २४१, क्रम० ४, ७३, मार्क० पन्ना ५७)। इसके अतिरिक्त **उ** और **ऊ** में समाप्त होनेवाले धातुओं के अनुकरण पर इन दोनो धातुओं की रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती है : अ०माग० में इच्छावाचक रूप **लुएज्जा** है (विवाह० ११८६), कर्म-वाच्य में **पुव्वइ, लुव्वइ** तथा इनके साथ साथ **पुणिज्जइ** और **लुणिज्जइ** रूप भी मिलते है (§ ५३६)। **क्रिणइ** में जो दीर्घ **ई** ह्रस्व बन जाता है इसका स्पष्टीकरण प्राचीन ध्वनिबल **क्रीणाति** से होता है। यह ठीक उसी प्रकार बना है जैसे **पुणइ = पुणाति** और **लुणए = लुणति**। महा०, जै०महा०, अ०माग० और अप० **जिणइ** ढक्की **जिणादि** तथा अ०माग० रूप **समुस्सिणाइ** के विषय में § ४७३ देखिए और **नुणइ** के सम्बन्ध में § ४८९।

§ ५१२—अ०माग० **अण्हाइ = अश्नाति** मे व्यंजनों में समाप्त होनेवाले धातुओं की पुरानी रूपावली सामने आती है (ओव० § ६४ और ६५)। साधारणतः बननेवाला रूप **अण्हइ** है (हेच० ४, ११०)। इन धातुओं की रूपावली सातवें गण के धातुओं के अनुकरण पर और निबल वर्गों मे **अ–** अथवा **ए–** रूपावली के अनुसार (§ ५०६ और उसके बाद) चलती है। इस स्थिति पर प्रभाव डालनेवाले दो कारण हैं। एक तो यह कि इन धातुओं के कुछ भाग के भीतर आरम्भसे ही अनुनासिक था, जैसे **ग्रन्थ, वन्ध** और **मन्थ**। कुछ भाग में प्राकृत के ध्वनिनियमों के अनुसार अनुनासिक लेना पडा, जैसे **अण्हइ = अश्नाति, गे॑ण्हइ = गृह्णाति**। इस नियम से : **गण्ठइ = ग्रन्थाति** (§ ३३३, हेच० ४, १२०, मार्क० पन्ना ५४), शौर० में **णिग्गण्ठिद** रूप मिलता है (बाल० १३१, १४)। **गे॑ण्हइ = गृह्णाति** (वर० ८, १५, हेच० ४, २०९, क्रम० ४, ६३), महा० में **गे॑ण्हइ, गे॑ण्हन्ति, गे॑ण्ह, गे॑ण्हउ** और **गे॑ण्हन्त–** रूप मिलते हैं (गउड०, हाल; रावण०)। जै०महा० में **गेण्हसि** आया है (आव०एर्त्से० ४४, ६), **गे॑ण्हइ, गिण्हइ** और **गिण्हए** मिलते हैं (कालका०), **गे॑ण्हन्ति** भी है (आव० ३५, ३), **गे॑ण्ह** (एर्त्से०, कालका०), **गेण्हाहि** (आव०एर्त्से० ३१, ११) और **गे॑ण्हेसु** (एर्त्से०), **गे॑ण्हह** तथा **गिण्हह** रूप पाये जाते हैं (आव० ३३, १७, कालका०), अ०माग० में **गे॑ण्हइ** (विवाह० ९१६, १०३२, १६५९, उवास०), **गे॑ण्हेज्जा** (विवाह० २१२ और २१४), **गिण्हइ** (विवाह० १०३५, पण्णव० ३७७ और उसके बाद, नायाध० ४४९, उवास०, निरया०, कप्प० आदि-आदि), **गिण्हेइ** (उवास०), **अभि-गिण्हइ** (उवास०), **ओगिण्हइ** (विवाह० ८३८), **गिण्हह** (विवाह० ६२३), **गिण्हन्ति** (विवाह० २४, निरया०), **गिण्हाहि** (नायाध० ६३३) तथा **गिण्हह** और **उवगिण्हह** रूप पाये जाते हैं (विवाह० ३३२), जै०शौर० मे **गिण्हदि** (पव० ३८४, ५९ [पाठ में **गिण्णदि** है], कत्तिगे० ३९९, ३१०, ४००, ३३५) और **गिण्हेदि** मिलता है (कत्तिगे० ४००, ३३५), शौर० मे **गे॑ण्हसि** (मृच्छ० ४९, १५), **गे॑ण्हदि** (मृच्छ० ४५, ९, ७४, १८, शकु० ७३, ३, १५९, १३),

रूप (मृच्छ ४१, २४ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] १९९, २० विक्र० १५, १ ४१, ७ मालती २१९, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), अणुआणाहि (शकु० २६, १२ विक्र २९, १) रूप पाये जाते हैं। माग में याणाहि (मृच्छ० ८, २१) मिलता है अप में जाणउँ (हेच ४, ३९१ ४३९ ४), जाणइ (हेच ४, ४ १, ४ ४१९, १), जाणु (पिंगल १ २६ [पाठ में जाण है]) और जाणहु रूप पाये जाते हैं (पिंगल १,१ ५ १ ६ और १४४)। शौर और माग में यह रूपावली अ- वर्ग के अनुसार आणामो, जाण और आणाहि तक ही सीमित है, किन्तु ऐसा न माना जाना चाहिए कि ये रूप सबस मूल शब्द से नवें गण के अनुसार बनाये गये हैं और ऐसा ही रूप जाणध भी है। शौर मे जाणसि भाषा की परम्परा के प्रतिकूल है (कालेय ५६, १८), जाणादि भी (नागा ६७ १) अशुद्ध है। इसके स्थान में इसी ग्रन्थ में अन्यत्र आये हुए दूसरे रूप के अनुसार जाणादि पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि माग याणादि के स्थान में (हेच ४,२९२) पच्चहिजाणदि (मृच्छ ११२, २४) के लिए पच्चहिजाणादि पढ़ना चाहिए। इसके विरुद्ध जै महा में ए- रूप जाणेइ शुद्ध है (कालका तीन, ५१२, ४)। जै शौर वियाणेदि (कत्तिगे ३९९, ३१६; पाठ में वियाणइ है) और अप जाणइ में (पिंगल १, ५ और १४) भी ए- रूप शुद्ध हैं। जै शौर० में णादि = ज्ञाति भी आया है (पव० ३८२, २५)।

§५११—क्री का रूप किणइ बनता है (वर ८, ३ ; हेच ४,५२)। वि उपसर्ग के साथ विक्किणइ हो जाता है (वर ८ ३१ हेच ४, ५२; क्रम० ४, ७ ; मार्क पन्ना ५४)। इस प्रकार : महा० में विक्किणइ मिलता है (हाल २३८); जै महा में किणामि (आव एर्त्से ३१,९) और किणइ (एर्त्से २९,२८), पूरक किणिय भविष्यत्काल में किणीहामो (आव एर्त्से ३३, १५) रूप देखने में आते हैं; विक्किणामि और विक्किणइ (आव एर्त्से ३३, २४ और २६), विक्किणन्ति (आव एर्त्से ३३, ७) तथा पडिविक्किणइ भी मिलते हैं (आव ३३, १५)। अ माग में किणइ आया है (ठाणंग ५१६), इच्छावाचक किणे है, वर्तमानकालिक अंशक्रिया किणन्त- है (आयार १, २, ५ १); शौर में आज्ञावाचक रूप किणध है (मृच्छ ५१ १ ११ और १२; ५१ ७), भविष्यत्काल किणिस्सदि है (मृच्छ ५२, ४ और ७), कर्मवाच्य की वर्तमानकाल अंशक्रिया किणिद है (कर्पूर ३१ ९; ७१ २) विक्किणास (मृच्छ ६१ १६) और विक्किणिद रूप भी मिलते हैं (मृच्छ ५ ४; कर्पूर ७४ १ अदूभ ११,१९; १८, १०); माग में किणध और इ- भाग्य भविष्यत्काल कीणिश्शं (मृच्छ ३२, १७; ११८ १४; १२५ १) रूप आते हैं; ग्लौ में विक्किणिम है (मृच्छ १ , १०; १२ और १४)। क्री धातु को व्याकरण वि उपसर्ग के साथ इ- में समाप्त होनेवाले धातुओं के अनुसार पर पहले रूप में भी पढ़ता है। विक्केइ रूप मिलता है (वर ८ ३१; हेच ४ ५२ और २४ क्रम ४ ७१; मार्क पन्ना ५४)। यह रूप महा में हाल २३८ में अन्यत्र यह रूप भी देखिए। विक्केअइ (हेच० ४ २४)

विक्रेय का एक रूपभेद है अर्थात् यह य = *विक्रेति है। — पू से पुणइ बनता है (हेच० ४, २४१)। इसी भाँति लू का लुणइ रूप हो जाता है (वर० ८, ५६, हेच० ४, २४१, क्रम० ४, ७३, मार्क० पन्ना ५७)। इसके अतिरिक्त उ और ऊ में समाप्त होनेवाले धातुओं के अनुकरण पर इन दोनों धातुओं की रूपावली छठे गण के अनुसार भी चलती है : अ०माग० में इच्छावाचक रूप लुपज्जा है (विवाह० ११८६), कर्मवाच्य में पुव्वइ, लुव्वइ तथा इनके साथ साथ पुणिज्जइ और लुणिज्जइ रूप भी मिलते हैं (§ ५३६)। किणइ में जो दीर्घ ई ह्रस्व बन जाता है इसका स्पष्टीकरण प्राचीन ध्वनिबल क्रीणाति से होता है। यह ठीक उसी प्रकार बना है जैसे पुणइ = पुणाति और लुणर = लुणति। महा०, जै०महा०, अ०माग० और अप० जिणइ ढक्की जिणादि तथा अ०माग० रूप समुस्सिणाइ के विषय में § ४७३ देखिए और नुणइ के सम्बन्ध में § ४८९।

§ ५१२—अ०माग० अण्हाइ = अश्नाति में व्यजनों में समाप्त होनेवाले धातुओं की पुरानी रूपावली सामने आती है (ओव० § ६४ और ६५)। साधारणतः बननेवाला रूप अण्हइ है (हेच० ४, ११०)। इन धातुओं की रूपावली सातवें गण के धातुओं के अनुकरण पर और निबल वर्गों में अ– अथवा ए– रूपावली के अनुसार (§ ५०६ और उसके बाद) चलती है। इस स्थिति पर प्रभाव डालनेवाले दो कारण हैं। एक तो यह कि इन धातुओं के कुछ भाग के भीतर आरम्भ से ही अनुनासिक था, जैसे ग्रन्थ, वन्थ और मन्थ। कुछ भाग में प्राकृत के ध्वनिनियमों के अनुसार अनुनासिक लेना पड़ा, जैसे अण्हइ = अश्नाति, गे॑ण्हइ = गृह्णाति। इस नियम से : गण्ठइ = ग्रन्थाति (§ ३३३, हेच० ४, १२०, मार्क० पन्ना ५४), शौर० में णिग्गण्ठिद रूप मिलता है (बाल० १३१, १४)। गे॑ण्हइ = गृहणाति (वर० ८, १५, हेच० ४, २०९, क्रम० ४, ६३), महा० में गे॑ण्हइ, गे॑ण्हन्ति, गे॑ण्ह, गे॑ण्हउ और गे॑ण्हन्त– रूप मिलते हैं (गउड०, हाल; रावण०)। जै०महा० में गेण्हसि आया है (आव०एर्त्से० ४४, ६), गे॑ण्हइ, गिण्हइ और गिण्हए मिलते हैं (कालका०), गे॑ण्हन्ति भी है (आव० ३५, ३), गे॑ण्ह (एर्त्से०, कालका०), गेण्हाहि (आव०एर्त्से० ३१, ११) और गे॑ण्हेसु (एर्त्से०), गे॑ण्हह तथा गिण्हह रूप पाये जाते हैं (आव० ३३, १७, कालका०), अ०माग० में गे॑ण्हइ (विवाह० ११६, १०३२, १६५९, उवास०), गे॑ण्हेज्जा (विवाह० २१२ और २१४), गिण्हइ (विवाह० १०३५, पण्णव० ३७७ और उसके बाद, नायाध० ४४९, उवास०, निरया०, कप्प० आदि-आदि), गिण्हेइ (उवास०), अभिगिण्हइ (उवास०), ओगिण्हइ (विवाह० ८३८), गिण्हह (विवाह० ६२३), गिण्हन्ति (विवाह० २४, निरया०), गिण्हाहि (नायाध० ६३३) तथा गिण्हह और उवगिण्हह रूप पाये जाते हैं (विवाह० ३३२), जै०शौर० में गिण्हदि (पव० ३८४, ५९ [पाठ में गिण्णदि है], कत्तिगे० ३९९, ३१०, ४००, ३३५) और गिण्हेदि मिलता है (कत्तिगे० ४००, ३३५), शौर० में गे॑ण्हसि (मृच्छ० ४९, १५), गे॑ण्हदि (मृच्छ० ४५, ९, ७४, १८, शकु० ७३, २, १५९, १३),

गे`ण्हन्ति ( मृच्छ० ७, १ ), गे`ण्ह (मृच्छ० १६, १ ३८, ४ ५५, १ ७५, २ आदि-आदि ; रत्ना १ ५, ७), गे`ण्हदु ( मृच्छ ४१, ८ ; ७४, १४ ), अणुगे`ण्हदु (शकु ५६, ११ मुद्रा १९, ८), गे`ण्हध ( मृच्छ १७, २४ ) और अणुगे`ण्हन्तु रूप मिलते हैं (मुद्रा० २६२, ५ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । कृदन्त रूप गेण्हिअ है (मृच्छ ४१, १२ ; ५९, ८ ७५, ८ १०५, २ १ ७, १ विक्र १ , ४ ५२ ५ ७२, १५ ; ८४, २) । सामान्यक्रिया का रूप गेण्हिदुं है (मृच्छ १४, १२) । कर्तृमवाचक अंशक्रिया गे`ण्हिदव्व है ( मृच्छ ११ १४ विक्र १ , १ ) माग में गेण्हदि ( मृच्छ १२८ १९ १४५, १७ ), गे`ण्ह (मृच्छ ४५, २१ ११२, ११ मुद्रा २६४, १ २६५, १), गेण्हदु (मृच्छ २२, १ और ५), गे`ण्हिअ ( मृच्छ १२, १४ ; ११ १२ और १८ ११६, ५ ; १२६, १६ १३२, १६ चंड ६४, ८ ) ; ढक्की में गे`ण्ह आया है (मृच्छ २९, १६ १ , २) अप में गृण्हइ (हेच ४, ३३६) और गे`ण्हइ रूप मिलते हैं ( पिंगल १, ६ ) । कृदन्त रूप गृण्हे`प्पिणु है (हेच ४, ३९४ ; ४३८, १) । गृह धातु की रूपावली अप में छठे गण के अनुसार भी चलती है : गृहन्ति रूप भी पाया जाता है (हेच ४, ३४१ २) ।

§ ५१३—बन्ध की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है : महा में बन्धइ (हेच १, १८७ हाल रावण ; प्रचण्ड ४७, ६) णिबन्धइ (रावण) बन्धन्ति (गउड रावण), अणुबन्धन्ति (रावण), बन्धसु (रावण) और आबन्धन्तीए (हेच १ ७) रूप आये हैं । भविष्यत्काल में बन्धिहिइ है । कर्मवाच्य में बन्धिज्जइ आया है (हेच ४, १४७) । ए- वाली रूपावली भी चलती है बन्धे`न्ति रूप मिलता है (रावण), सामान्यक्रिया बन्धेउं है (हेच १, १८१) ; जै महा में बन्धइ, बन्धिऊण और बन्धिय आये हैं (एर्त्से), बन्धिउ और बन्धिन्तु भी पाये जाते हैं (कक्कुक) ; अ माग में बन्धइ (ठाणंग १९ ; विवाह १ ४ १३६ १२७ ; १११ ; १९१ और उसके बाद ; ३३५ और उसके बाद ; १८२ और उसके बाद ; ओव § ६६ पण्णव ६३८ ; ६५२ ६५७ ; ६६१ आदि आदि) पडिबन्धइ (सूय १७९), बन्धन्ति (ठाणंग १ ८ ; विवाह ६६ और १४१५ पण्णव ६३८ ; ६५७ ; ६६१ आदि आदि) बन्धे`ज्जा (विवाह ४२ और ४२१ ; उवास § २) तथा बन्धइ रूप देखने में आते हैं (विवाह २३४ और १२६१) । सामान्यक्रिया का रूप बन्धिउं है (निरया § १५) ; जै शौर में बन्धदे मिलता है (कत्तिगे ४ , ३९७) शौर में बन्धामि (उत्तर १८, २२), अणुबन्धसि (शकु ८९, १४) और अणुबन्धन्ति रूप आये हैं (उत्तर १ ७) कृदन्त बन्धिअ है (मृच्छ १५५ १ ; प्रबोध १४, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] रत्ना ३१७ ११) उब्बन्धिअ भी है (रत्ना ३१५ २८ ; नागा ३४, १५ ३५, ९) । ए- वाले रूप भी मिलते हैं : बन्धेध पाया जाता है (प्रिय ८ १६) तथा ओबन्धेदि = अपबन्धाति है (मृच्छ ८९, ५ १५२, २५) ; माग में कृदन्त का रूप बन्धिअ है (मृच्छ

१६३, १६), कर्मवाच्य की पूर्णभूतकालिक अशक्रिया **वन्धिद** है (मृच्छ० १६२, १७)। आज्ञावाचक में **ए**– वाला रूप **पडिवन्धेवध** है (शकु० ११३, १२)। —**मन्थ्** का रूप **मन्थइ** है (हेच० ४, १२१)। संस्कृत रूप **मथति** अ०माग० के इच्छावाचक रूप **महेॅज्जा** से मिलता है (उवास० § २००), किंतु इस ग्रन्थ में अन्यत्र आया हुआ दूसरा रूप **मन्थेॅज्जा** का निर्देश करता है।

§ ५१४—शौर०, माग० और ढक्की में **भण्** धातु की रूपावली नवें गण के अनुसरण पर चलती है। इस प्रक्रिया में **भणामि** *भ-णा-मि रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए। द्वितीय– और तृतीयपुरुष एकवचन वर्तमानकाल, तृतीयपुरुष एकवचन आज्ञावाचक, द्वितीयपुरुष बहुवचन वर्तमानकाल और आज्ञावाचक में प्रथम० एक० और बहुवचन की भाँति दीर्घ स्वर रहने दिया जाता है। इन रूपों के उदाहरण असाधारण रूप से बहुसंख्यक हैं शौर० में **भणासि** है (मृच्छ० ५१,७ और १०, ५२,११ , ५३, ५४ , ५७, ११ , विक्र० १०, ५ , २२, १४ , मालवि० २७, १३ , मुद्रा० ७१, १ , २ और ४ , ७२, २ और ४ , ७३, २ आदि-आदि), **भणादि** भी आया है (मृच्छ० २३,१९ , ६७,१४ , ७४,१३ , ९४,११ , शकु० ५१,४ , १५८,२ , विक्र० १६,५ , ४६,५ , मालवि० १६,१८ , ६४, २० आदि आदि) तथा **भणादु** भी पाया जाता है (मृच्छ० १८,२५) , माग० में **भणादि** (मृच्छ० १३,७), **भणाध** (मृच्छ० ३२,१८ , ९६, २१ , ९७, १ , प्रबोध० ४६, १६ , चड० ६४, ६ , मुद्रा० १५४, १ , २५७, ६ , २५८, २ [यही पाठ, उत्तररा० १२३, ७ में शौर० पाठ की भाँति सर्वत्र पढ़ा जाना चाहिए]), ढक्की में **भणादि** मिलता है (मृच्छ० ३४,१२)। शौर० और दाक्षि० में द्वितीयपुरुष एकवचन आज्ञावाचक में **भण** (मृच्छ० ८८, १९ , शकु० ५०, ९ , विक्र० ४७, १ , नागा० ३०, १ , दाक्षि० के लिए ' मृच्छ० १००, ८) अथवा शौर० में **भणाहि** रूप है (विक्र० २७, ७ , मालवि० ३९, ९ , वेणी० १०, १२ , १००, १४ , नागा० ४४, ३ , जीवा० १०, ४) , माग० में **भण** है (शकु० ११४, ५) और **भणाहि** भी आया है (मृच्छ० ८१, १३ और १५ , १६५, ४)। इनके साथ साथ इन प्राकृत बोलियों में **ए**– वाले रूप भी मिलते हैं : दाक्षि० और शौर० में **भणेसि** पाया जाता है (मृच्छ० १०५, ८ , शकु० १३७, १२ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) , माग० में **भणेशि** है (मृच्छ० २१, ८ , २० और २२) , ढक्की में **भणेसि** रूप आया है (मृच्छ० ३९, १६) तथा शौर० में **भणेहि** देखने में आता है (मृच्छ० ६१, १३ , ७९, ३)। प्राकृत की अन्य बोलियों में **भण्** की रूपावली नियमित रूप से **–अ** पर चलती है , तो भी जै०महा० में आवश्यक एर्त्सेलुंगन २२, ४१ और ४२ में साधारणतः चलनेवाले **भणइ** के साथ-साथ **भणाइ** भी आया है।

अपूर्णभूत

§ ५१५—एकमात्र अपूर्णभूत का रूप जो प्राकृत में एक से अधिक बोलियों में बना रह गया है वह **अस्** धातु का है (=होना)। यह रूप किन्तु केवलमात्र तृ०एक० में पाया जाता है। **आसी** अथवा **आसि** = **आसीत्** है जो सभी पुरुषों और वचनों

गे॑ण्हन्ति (मृच्छ० ७ , २), गे॑ण्ह (मृच्छ० १६, २ १८, ४ ५५, १ ७५, २ आदि-आदि ; रत्ना १०५, ७), गे॑ण्हदु (मृच्छ० ४१, ८ ; ७८, १४), अणुगे॑ण्हदु (शकु० ५६, ११ मुद्रा० १९, ४), गे॑ण्हध (मृच्छ ९७, २४) और अणुगे॑ण्हम्ह रूप मिलते हैं (मुद्रा २६२, ५ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) । कृदन्त रूप गेण्हिअ है (मृच्छ० ४१, १२ ; ५ , ८ ; ७५, ८ ; १ ५ ९ १ ७, १० विक्र १ , २ ५२ ५ ७२, १५ ; ८४, २) । सामान्यक्रिया का रूप गेण्हिदुं है (मृच्छ० ९४, १२) । कर्मवाचक अंशक्रिया गे॑ण्हिदव्व है (मृच्छ० १५ १४ विक्र १ , ९) माग में गेण्हदि (मृच्छ १२८, १९ १४५, १०), गे॑ण्ह (मृच्छ ४५, २१ ११२, ११ मुद्रा २६४, १ २६६, १), गेण्हदु (मृच्छ २२, ३ और ५), गे॑ण्हिअ (मृच्छ १२, १४ ; ११ १२ और १८ ; ११६, ५ ; १२६, १६ १३२, १६ चंड ६४, ८) ; ढक्की में गे॑ण्ह आया है (मृच्छ २९, १६ १ , २) अप में गृण्हइ (हेच ४, ३३६) और गे॑ण्हइ रूप मिलते हैं (पिंगल १, ६) । कृदन्त रूप गृण्हे॑प्पिणु है (हेच ४, ३९४ ४१८, १) । गृह धातु की रूपावली अप में छठे गण के अनुसार भी चलती है : गृहन्ति रूप भी पाया जाता है (हेच ४, ३४१, २) ।

§ ५१३—बन्ध की रूपावली निम्नलिखित प्रकार से चलती है : महा में बन्धइ (हेच १, १८७ हाल रावण प्रबन्ध ४७, ६) णिबन्धइ (रावण), बन्धन्ति (गउड रावण) अणुबन्धन्ति (रावण), बन्धसु (रावण) और आबन्धन्तीए (हेच १ ७) रूप आये हैं । भविष्यत्काल में बन्धिहिइ है । कर्मवाच्य में बन्धिज्जइ आया है (हेच ४, २४७) । ए- वाली रूपावली भी चलती है : बन्धे॑न्ति रूप मिलता है (रावण०), सामान्यक्रिया बन्धेउं है (हेच १, १८१) । जै महा में बन्धइ, बन्धिऊण और बन्धिय आये हैं (एत्सें), बन्धिउं और बन्धिन्तु भी पाये जाते हैं (कालका) ; अ माग में बन्धइ (ठाणंग १६० विवाह १ ४ १३६ १३७ ; १११ ; ११२ और उसके बाद ; ६३५ और उसके बाद ; १८१ और उसके बाद ; ओव § ६६ पन्नव ६३८ ; ६५३ ६५७ ; ६६३ आदि आदि), पडिबन्धइ (सूय १०१), बन्धन्ति (ठाणंग १ ८ ; विवाह ६६ और १४१५ ; पन्नव ६३८ ; ६५७ ; ६६३ आदि आदि), बन्धे॑ज्जा (विवाह ४२ और ४२१ ; उवास § २) तथा बन्धइ रूप देखने में आते हैं (विवाह २१४ और १२६३) । सामान्यक्रिया का रूप बन्धिउ है (निरया § १९) ; शौरसेनी में बन्धदि मिलता है (कत्तिग ४ , ३८७) ; शौर में बन्धामि (उत्तर १८ २२), अणुबन्धसि (शकु ८६ १४) और अणुबन्धन्ति रूप आये हैं (उत्तर ६ , ७) कृदन्त बन्धिअ है (मृच्छ १५५, ३ ; प्रबोध १४, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] रत्ना ३१७, ११), उब्बन्धिअ भी है (रत्ना० ३१५ २८ ; नागा ३४, १५ ; ३५, ९) । ए- वाले रूप भी मिलते हैं : बन्धावेसि पाया जाता है (प्रिय ८ १६) तथा आबन्धेदि = आबध्नाति है (मृच्छ० ८०, ५ ; १५१ २९) ; माग में कृदन्त का रूप बन्धिअ है (मृच्छ

है उससे पुष्टि और प्रमाण मिलते हैं। यह रूप लौयमान, वी०त्सा०कु०मौ० ५, १३४ के अनुसार **आसीमो** अथवा **आसीमु** नहीं पढ़ा जाना चाहिए किन्तु टीकाकारों के मतानुसार **मो** माना जाना चाहिए जो सर्वनाम है। — ४ मालविकाग्निमित्र, पेज १८८ और २३०। — ५ ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ४६।

पूर्णभूत

§ ५१६—सरल पूर्णभूत के रूप अ०माग० में **अच्छे** = *आच्छेत् है जो छिद् धातु से निकला है और **अब्भे** = वैदिक **आभेत्** है जो **भिद्** धातु का रूप है (आयार० १, १, २, ५)। ये दोनों रूप इच्छावाचक के अर्थ में काम में लाये जाते हैं (§ ४६६) तथा अ०माग० पद्य में **अभू** = **अभूत्** पाया जाता है (उत्तर० ११६), यही रूप उदाहरण से पुष्ट किया जा सकता है जो उक्त स्थान में तृ० बहु० के काम में आया है '**अभू जिणा अत्थि जिणा अदुवा वि भविस्सई** मिलता है। इसके विपरीत अ०माग० में परस्मैपद पूर्णभूत के अनगिनत रूप ऐसे हैं जो **स** लगकर बनते हैं और ये भी बहुधा वर्तमानकाल के रूपों से बनाये गये हैं। बहुत ही कम काम में आनेवाला प्र० एक० परस्मैपद का रूप पाली[1] की भाति **स्स** लगकर बनता है . **अकरिस्सं च**' अहं आया है (आयार० १, १, १, ५), **पुच्छिस्सं**' अहं भी है (पद्य में, सूय० २५९)। **अकासि** = **अकार्षीः** में द्वि० एक० का रूप दिखाई देता है (सम० ८२), **कासी** (उत्तर० ४१५) और **वयासी** = **अवादीः** में (सूय० ९२४) ऐसा रूप पाया जाता है जो **अगमासि** के समान पाली रूपों का स्मरण दिलाता है और उनसे सबंधित है[2]। ये दोनों रूप तृ० एक० में बहुत काम मे आते हैं। इस प्रकार **अकासी** (आयार० १, ८, ४, ८, २, २, २, ४, सूय० ७४, कप्प० § १४६), **अकासि** (सूय० १२०, १२३, २९८) **मा** के बाद **कासी** भी है (हेच० ३, १६२, सूय० २३४, उत्तर० १४), हेमचद्र ३, १६२ और सिहराजगणिन् पन्ना ५४ के अनुसार **काही** रूप और देशीनाममाला १, ८ के अनुसार **अकासि** रूप पाये जाते हैं। इस **अकासि** का देशी अर्थ **पर्याप्तम्** है। ये रूप प्र० एक० में भी काम में आते हैं : **जं अहं पुव्वं अकासि** वाक्यांश आया है = **यद् अहं पूर्वं अकार्षम्** है (आयार० १, १, ४, ३), **अहम् एयम् अकासि** = **अहम् एतद् अकार्षम्** है (सूय० ६२१) तथा प्र० बहु० में भी इसका प्रयोग किया गया है : **जहा वयं धम्मम् अयाणमाणा पावं पुरा कम्मम् अकासि मोहा** मिलता है (उत्तर० ४३३ और उसके बाद)। यह अपूर्णभूत **आसि** के समान ही काम में लाया गया है (§ ५१५)। तृ० एक० के रूप में : **वयासी** (सूय० ५७८, विवाह० १६५, १२६०, १२६८, ओव०, उवास०, कप्प०), यह बार बार तृ० बहु० के अर्थ में प्रयुक्त होता है (आयार० १, ४, २, ४, सूय० ७८३, विवाह० १३१, १८६, २३६, २३८, ३३२, ८०९, ९५१, अत० ६१, नायाध० § ६८ और उसके बाद आदि-आदि), **वयासि** रूप

के काम में आता है (वर ७, २५ हेच ३, १६४ ; क्रम० ४, ११ सिंहराज पन्ना ५८)। इस नियम से अ माग० में प०एक० में के अहं आसी आया है (आयार १, १, १, ३) शौर में अहं खु आसि मिलता है (मृच्छ ५४, १६)[1] शौर० में द्वि एक में तुमं गदा आसि आया है (मृच्छ २८, १४), तुमं किं मन्तअन्ति आसी पाया जाता है (माल्ती ७१, ४), तुमं खु मे पिअसही आसी (माल्ती १८१, ११ और उसके बाद), किलिन्तो आसी (उत्तररा १८, १२), कीस तुमं [संस्करण म तुमं है] मन्तअन्ती आसि (कर्ण १०, ७ और उसके बाद)[2] तृ एक में महा० में आसि है (गउड० हाल) ; जै०महा में आसि और आसी रूप पाये जाते हैं (कक्कुक शिलालेख २ द्वार ४१६ ११ ; ४१६, २ ५०८, ११ एत्सें) अ माग० में आसी मिलता है (सूय ८९६ ; उवास § १९७ ओव § १७), आसि भी आया है (उत्तर ११ ; नाया २११ और ४५२) ; शौर में इस रूप की धूम मची हुई है, उदाहरणार्थ आसि है (ललित ५६ , १८ ; ५६८ १ ; मृच्छ ४१, २१ शकु ८३, ३ १ ५, १ ११७ १२ १२९, १३ १६२ १३ विक्र ११,२ २७ २१ ३५, ७ और ९), आसी भी है (उत्तररा २ , १२ ; ७८, ८ कर्पू० १२, १ और ३) ; दक्की में आसि मिलता है (मृच्छ ३६ १८) अ माग में प्र०बहु में आसि मो और आसी मो[3] आये हैं (उत्तर ४ २), आसि अम्हे भी पाया जाता है (उत्तर ८ ३) ; महा में तृ बहु में जे आसि महानईपवहा है (गउड० ४८९), आसि रखा आया है (रावण १४, ११), जे –गो च्छआ आसि पम्मुला भी देखा जाता है (हाल ८२२) जै महा में महारायाणो चत्तारि मित्ता आसि है (एत्सें ८ ३६) ; अ माग में उवसग्गा भीमासि आया है (आयार १, ८, २, ७) सस्स सज्जा हुए आसि भी मिलता है (उत्तर ६६), शौर में पर्स सखीआ आसि आया है (बाल २८९, २)। — इसके अतिरिक्त केवलमात्र अ० माग में एक और रूप अब्भयी = अभयीत् पाया जाता है (हेच ३, १६२ उत्तर० २७ और २८१ ; सूय २५९) इसका तृ बहु० में भी काम में लाया जाता है : अयम्मघारिणा पावा इमं वयणं अब्भवी आया है (उत्तर १५१)। — तथा कथित पूर्णभूतकाल उदाहट, चर्ड, पहुचे, पुच्छ, अरुहीअ, गेण्हीअ आदि-आदि के विषय में § ५६६ देखिए। यॉस्ते नसन द्वारा प्रतिष्ठित पूर्णभूतकाल अशुद्ध पाठ न्यों और भली-भांति न समझे हुए रूपों का परिणाम है। § ५१७ भी देखिए।

१ पाली में आसि आने पर भी इस स्थान में ग्रंथ में अन्यत्र पाये जाने वाले दूसरे रूप आसि के साथ यह रूप नहीं पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि स्टेंत्सलर अपने संपादन में अनुमान लगाता है। — २ हाल ८ ५ में आसि आया है जिस वेबर के अनुसार = आसीत् मानना न चाहिए किन्तु टीकाकारों के अनुसार = आसीः समझना चाहिए। — ३ पाठ के आसी के स्थान में इसे इस रूप में सुधार लेना चाहिए। इस तरह पद तुरन्त इसके बाद आनेवाला रूप आसी अम्हे और अन्य स्थानों में आसि और आसी का जो प्रयोग किया गया

है उससे पुष्टि और प्रमाण मिलते हैं। यह रूप लॉयमान, वी०त्सा०कु०मौ० ५, १३४ के अनुसार **आसीमो** अथवा **आसीमु** नहीं पढ़ा जाना चाहिए किन्तु टीकाकारों के मतानुसार **मो** माना जाना चाहिए जो सर्वनाम है। — ४. मालविकाग्निमित्र, पेज १८८ और २३०। — ५ ब्लौख, वररुचि उण्ट हेमचन्द्रा, पेज ४६।

पूर्णभूत

§ ५१६—सरल पूर्णभूत के रूप अ०माग० मे **अच्छे** = *आच्छेत् है जो छिद् धातु से निकला है और **अब्भे** = वैदिक **आभेत्** है जो **भिद्** धातु का रूप है (आयार० १, १, २, ५)। ये दोनो रूप इच्छावाचक के अर्थ मे काम मे लाये जाते है (§ ४६६) तथा अ०माग० पद्य मे **अभू** = **अभूत्** पाया जाता है (उत्तर० ११६), यही रूप उदाहरण से पुष्ट किया जा सकता है जो उक्त स्थान मे तृ० बहु० के काम मे आया है **अभू जिणा अत्थि जिणा अदुवा वि भविस्सई** मिलता है। इसके विपरीत अ०माग० मे परस्मैपद पूर्णभूत के अनगिनत रूप ऐसे है जो **स** लगकर बनते हैं और ये भी बहुधा वर्तमानकाल के रूपों से बनाये गये है। बहुत ही कम काम मे आनेवाला प्र० एक० परस्मैपद का रूप पाली[१] की भाति **स्स** लगकर बनता है : **अकरिस्सं च्'** अहं आया है (आयार० १, १, १, ५), **पुच्छिस्सं'** अहं भी है (पद्य मे, सूय० २५९)। **अकासि** = **अकार्षीः** में द्वि० एक० का रूप दिखाई देता है (सम० ८२), **कासी** (उत्तर० ४१५) और **वयासी** = **अवादीः** मे (सूय० ९२४) ऐसा रूप पाया जाता है जो **अगमासि** के समान पाली रूपों का स्मरण दिलाता है और उनसे संबंधित है[२]। ये दोनों रूप तृ० एक० मे बहुत काम मे आते है। इस प्रकार **अकासी** (आयार० १, ८, ४, ८, २, २, २, ४, सूय० ७४, कप्प० § १४६), **अकासि** (सूय० १२०, १२३, २९८) **मा** के बाद **कासी** भी है (हेच० ३, १६२, सूय० २३४, उत्तर० १४), हेमचद्र ३, १६२ और सिंहराजगणिन् पन्ना ५४ के अनुसार **काही** रूप और देशीनाममाला १, ८ के अनुसार **अकासि** रूप पाये जाते है। इस **अकासि** का देशी अर्थ **पर्याप्तम्** है। ये रूप प्र० एक० में भी काम में आते है . **जं अहं पुव्वं अकासि** वाक्यांश आया है = **यद् अहं पूर्व अकार्षम्** है (आयार० १, १, ४, ३), **अहम् एयम् अकासि** = **अहम् एतद् अकार्षम्** है (सूय० ६२१) तथा प्र० बहु० में भी इसका प्रयोग किया गया है **जहा वयं धम्मम् अयाणमाणा पावं पुरा कम्मम् अकासि मोहा** मिलता है (उत्तर० ४३३ और उसके बाद)। यह अपूर्णभूत **आसि** के समान ही काम में लाया गया है (§ ५१५)। तृ० एक० के रूप में **वयासी** (सूय० ५७८, विवाह० १६५, १२६०, १२६८, ओव०, उवास०, कप्प०), यह बार-बार तृ० बहु० के अर्थ में प्रयुक्त होता है (आयार० १, ४, २, ४, सूय० ७८३, विवाह० १३१, १८६, २३६, २३८, ३३२, ८०९, ९५१, अत० ६१, नायाध० § ६८ और उसके बाद आदि-आदि), **वयासि** रूप

भी मिलता है (सूय० ५६५ और ८४१ ओव० § ५३ और ८४ तथा उसके बाद)। दु एक के अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं ठासी और ठाही जो स्था के रूप हैं (हेच १,१६२) पचासी है जो मस् धातु में प्रति लगा कर बना है (आयार १,२, ५,५) अचारी (आयार १८,१,२) है फहेसि है जो कथय- से निकला है (पण्हा १ १ और १२७) । भू का दु एक० भुवि = अभूषीत् है (विवाह ७८ और ८४४ [पाठ में यहां भुवि है] नंदी ५ १ और ५०२ [पाठ में भुवि था है] ; जीवा २१० और ४५२ [पाठ में यहां भुवि है]) अथवा वर्तमानकाल के वर्ग से भव- आता है : भहेसि रूप आया है जो ०अभविषीत् से निकला है और जिसकी ध्वनिप्रक्रिया में ०अभइषीत् तथा ०अभैषीत् रूप भी बने (§ १६६ एवं २, १९४) । हेमचंद्र के अनुसार यह रूप प्र और द्वि एक में भी काम में लाया जाता है और इसके उदाहरण मिलते हैं कि इसका प्रयोग तु यहु में भी किया जाता है : समणा तत्थ विहरत्था पुट्ठपुव्वा भहेसि सुणयर्हि आमा है (आयार० १, ८, १, ९) । अभासी = ०अभाषिषीत् का सरलीकरण भी इसी प्रकार होता है (§ ४८७ की तुलना कीजिए आयार १, २, ६, ५ ; १ ५, ३, १ १, ८ ; १, ८, १, १४) । यह रूप = अभ्येषी नहीं है किन्तु या का पूर्वभूत है, इस तथ्य का अनुमान याकोबी ने पहले ही लगा लिया था । वुच्छामु = अधारसम जो वस (= वास करना रहना) से बना है, उसमें प्र बहु दिखाई देता है (उत्तर ४१) जो पूर्वभूत के एक वर्ग ०वत्स से बनाया गया है । तु बहु के अंत में ईसु = इषु लगता है । इस नियम से : परिविचिर्दिंसु आया है (आयार० १, ४, ६, ४) ; पुच्छिंसु मिलता है (आयार १, ८, २, ११ ; सूय० १ १ [पाठ में पुच्छिसु है]) ; चिर्णिसु और उवचिर्णिसु पाये जाते हैं (विवाह ६२ ठाणग १ ७ और १ ८ [पाठ म चिर्णसु और उवचिर्णसु है]) ; परिंधिसु, उदीरिंसु, वदिंसु तथा निज्जरिंसु इसमें भी आते हैं (ठाणंग १ ८ ; विवाह ६२ [पाठ में उक्त सब रूपों के अंत में -इ सु के स्थान में -एसु है]) सुर्ज्झिसु और पुर्ज्झिसु भी हैं (सूय ७ ; विवाह ७९) भयारिंसु है जो आ- उपसर्ग के साथ अन् का रूप है (कप्प § १७-१ ; § ४८७ की तुलना कीजिए) ; परिविप्पारिंसु (सूय ७) भासिंसु और सयिंसु (सूय ७ ८), अक्करिंसु (सूय ४२४ ; उत्तर ५१७) हिंसिंसु (आयार १, १, १, ५ ; १ ८, १ २ ; १ ८, १, १), विहरिंसु (आयार १ ८ १ २ ; १, ८, १ ९) लुंचिसु तथा निहणिंसु (आयार १, ८ १ ११ और १२) एवं कम्मिंसु जो क्रन्द् से बना है, पाये जाते हैं (आयार १ ८ १ ८ ; १ ८ १ १) ; पियर सु = ०पर्सिषु है (सूय० ८५४) ; भर्मसिंसु (सूय १५७ और ५५१) और गर्हिसु भी आते हैं (विवाह १५७) । साधारण रूप अकरिंसु (ठाणंग १४) करिंसु (विवाह ६२ और ७९ ; नायाध § ११४ ; सूय ७९ [पाठ में करसु है]) ; उवकरिंसु (आयार १ ८ १ ११) के साथ-साथ विकुब्विंसु रूप भी पाया जाता है (विवाह २१४ और ६१५) जो वर्तमान वर्ग के कुव्य- से बना है (§ ५ ८) ।

प्रेरणार्थक निम्नलिखित है : **गिण्हाविंसु** (नायाध० § १२३), **पट्ठवइंसु** है जो प्र उपसर्ग लगकर **स्था** से बना है (कप्प० § १२८) , **संपहारिंसु** है **सम्** (सं ?) और प्र उपसर्ग के साथ **धर्** से निकला है (सूय० ५८५ ; ६२०) , एक उपधातु का पूर्णभूत **रिक्कासि** है (आयार० १, ८, १, ३) जो किसी ***रिक्कय**- से सबधित है। तृ० बहु० का यह रूप अन्य पुरुषों के काम में भी लाया जाता है। इस प्रकार प्र० एक० के लिए : **करिंसु चाहं** आया है (ठाणग० ४७६) , तृ० एक० के लिए **अहिंसिसु** [पाठ में **आहिंसंसु** है] **वा हिंसइ वा हिंसिस्सइ वा** मिलता है (सूय० ६८०) , **पुट्ठो वि नाभिभासिंसु** है (आयार० १, ८, १, ६) , **आसिंसु** [पाठ में **आससु** है] **भगवं** आया है (आयार० १, ८, २, ६) , **सेविंसु** भी पाया जाता है (आयार० १, ८, ३, २) । एक प्राचीन संस्कृत रूप **अद्दक्खु** है (विवाह० ३३२), **अद्दक्खू** रूप भी आया है (आयार० १, ५, १, ३ , यह एकवचन भी हो सकता है) = **अद्राक्षुः** । यह रूप बहुधा तृ० एक० में भी काम में लाया जाता है . **अदक्खु** आया है (आयार० १, २, ५, २ , विवाह० १३०६), **अद्दक्खु** भी है (आयार० १, ८, १, ९), **अद्दक्खू** रूप भी मिलता है (आयार० १, ५, २, १ , ६, १ , १, ८, १, १६ और १७)[४]। कप्पसुत्त एस (S) § में **अदक्खु** रूप आया है जो अशुद्ध पाठान्तर है और **अदट्ठु** के स्थान में आया है जैसा कि इसी ग्रथ में अन्यत्र मिलता है। इसके अनुकरण में तृ०एक० में काम में आनेवाला **निण्णक्खु** बनाया गया है (आयार० २, २, १, ४ , ५ और ६) जो **निः** के साथ **नक्ष्** से सम्बन्धित है।

१ ए० कून, बे०बाइ०, पेज १११ , ए० म्युलर, सिम्पलिफाइड ग्रैमर, पेज ११४ । — २. ए० कून का उक्त ग्रथ, पेज ११४ , ए० म्युलर, उक्त ग्रंथ, पेज ११६ । — ३ सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, बाईस, पेज ४४ नोटसंख्या २ । — ४ कुछ स्थलों में जहाँ इस शब्द का प्रयोग किया है, यह सन्देह पैदा होने लगता है कि यहाँ पर एक विशेषण ***आद्राक्षु** तो काम में नहीं लाया गया है जैसा कि **दक्खु**, **अदक्खु** = ***द्राक्षु** और **अद्राक्षु** है (सूय० १२१) । यह तथ्य निश्चित जान पड़ता है।

§ ५१७—अ०माग० में बहुधा एक तृ०एक० आत्मनेपद का रूप अन्त में **-इत्था** और **इत्थ** लगाकर बनाया जाता है। यह रूप बिना अपवाद के वर्तमानकाल के वर्ग से बनाया जाता है। यह तथ्य तथा दन्त्य की प्रधानता जो पाली भाषा में भी पायी जाती है और जहाँ हमें मूर्धन्य की अपेक्षा करनी चाहिए थी (§ ३०३), हमारे मन में यह शका उत्पन्न करता है कि क्या हमें यह रूप शुद्धता के साथ **से-** वाले पूर्णभूतकाल से सम्बन्धित करना चाहिए[१] अथवा नहीं ? इसके उदाहरण निम्नलिखित है . **समुप्पज्जित्था** मिलता है जो **पद्** धातु से निकलता है तथा जिसमें **सम्** और **उद्** उपसर्ग लगाये गये हैं (विवाह० १५१ और १७० , नायाध० § ८१ और ८७ , पेज ७, ७१ , उवास० , कप्प० इत्यादि) , **रोइत्था** रूप आया है जो **रुच्** धातु से बना है (हेच० ३, १४३) , **वड्ढित्था** और **अभिवड्ढित्था** हैं जो **वृध्** से सम्बन्धित हैं

मी मिलता है (सूय ५६५ और ८४१ ओव० § ५३ और ८४ तथा उसके बाद)। सू० एक के अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं ठासी और ठाही जो स्था के रूप हैं (हेच १,१६२) पव्वासी है जो भस् धातु में प्रति लग कर बना है (आयार १,२, ५, ५) अघारी (आयार १,८,१,२) है ; कहासि है जो कथय- से निकला है (पण्हा १ १ और १२७)। भू का तू एक भुवि = अभूवीत् है (विवाह० ७८ और ८४४ [पाठ में यहां भुवि है] ; नंदी ५ १ और ५ २ [पाठ में भुवि था है] जीवा २३१ और ४५२ [पाठ में यहां भुवि है]) अथवा वर्तमानकाल के वर्ग से भव- आता है : भवेसि रूप आया है जो ०अभविपीत् से निकला है और जिसकी शब्दप्रक्रिया में ०अभवपीत् तथा ०अभैपीत् रूप भी बने (§ १६६ हेच १, १६४)। हेमचंद्र के अनुसार यह रूप प्र और द्वि एक में भी काम में लाया जाता है और इसके उदाहरण मिलते हैं कि इसका प्रयोग तृ बहु मे भी किया जाता है : समणा तस्थ विहरत्था पुट्ठपुव्वा अहेसि सुणएहिं आया है (आयार १, ८, १ ६)। अप्पेसी = ०अप्रतायिपीत् का स्पष्टीकरण भी इसी प्रकार होता है (§ ४८७ की तुलना कीजिए आयार १, २, १ ५ ; १, ५, २, १ १ ४ १, ८ १, १४)। यह रूप = अप्पेषी नहीं है किन्तु धा का पूर्णभूत है, इस तथ्य का अनुमान याकोबी[1] ने पहले ही लगा लिया था। पुच्छासु = अयारम्म जो वस (= वास करना रहना) से बना है, उसमें प्र बहु दिखाई देता है (उत्तर ४१) जो पूर्णभूत के एक वर्ग ०वत्स से बनाया गया है । तृ बहु के अंत में इंसु = इषु आता है। इस नियम से : परिविचिट्ठिंसु आया है (आयार १ ४, ६, ४) पुच्छिंसु मिलता है (आयार १ ८, २, ११ सूय १ १ [पाठ में पुच्छिस्सु है]) ; चिणिंसु और उवचिणिंसु पाये जाते हैं (विवाह ६२ ठाणंग १ ७ और १ ८ [पाठ मे चिणंसु और उवचिणंसु है]) वन्धिंसु उदीरिंसु, वेदिंसु तथा निज्जरिंसु देखने म आते हैं (ठाणंग १ ८ विवाह ६२ [पाठ में उक्त सब रूपों के अंत में –इ सु के स्थान में –ईसु है]) सुज्झिंसु और बुज्झिंसु मी हैं (सूय ७९ ; विवाह ७९) ; अयासिंसु है जो आ- उपसर्ग के साथ जन् का रूप है (कप्प § १७-१९ § ४८७ की तुलना कीजिए) परिणिव्वाइंसु (सूय ७९) भासिंसु ओर सेविंसु (सूय ७ ४), अतरिंसु (सूय ४२४ उत्तर ५६७), हिंसिंसु (आयार १, १ १, ५ ; १ ८ १, २ ; १, ८, १, १), विहरिंसु (आयार १ ८, १ २ १ ८ १, ५) लुंचिंसु तथा निहणिंसु (आयार १ ८, १ ११ और १२) एवं कमिंसु जो क्रम् से बना है पाये जाते हैं (आयार १ ८ १ ४ ; १ ८ १ १) ; विणइंसु = व्यनैषुः है (सूय ८५८) ; अभविंसु (सूय १५७ और ५५१) और भविंसु भी आये हैं (विवाह १५७)। साधारण रूप अकरिंसु (ठाणंग १४९) करिंसु (विवाह ६२ और ७९ ; नायाध § ११८ सूय ७९ [पाठ में करंसु है]) उवकरिंसु (आयार १ ८ १ ११) के साथ-साथ विकुव्विंसु रूप भी पाया जाता है (विवाह २१४ और २१५) जो वर्तमान वर्ग के कुव्व- से बना है (§ ५ ८)।

प्रेरणार्थक निम्नलिखित है : **गिण्हाविंसु** (नायाध० § १२३), **पट्ठवइंसु** है जो प्र उपसर्ग लगकर **स्था** से बना है (कप्प० § १२८), **संपहारिंसु** है **सम्** (**सं** ?) और प्र उपसर्ग के साथ **धर्** से निकला है (सूय० ५८५ ; ६२०), एक उपधातु का पूर्णभूत **रिक्कासि** है (आयार० १, ८, १, ३) जो किसी *रिक्रय- से संबंधित है। तृ० बहु० का यह रूप अन्य पुरुषों के काम में भी लाया जाता है। इस प्रकार प्र० एक० के लिए **करिंसु** चाह आया है (ठाणग० ४७६), तृ० एक० के लिए **अहिंसिंसु** [पाठ में **आहिंसंसु** है] वा **हिंसइ** वा **हिंसिस्सइ** वा मिलता है (सूय० ६८०), **पुट्ठो वि नाभिभासिंसु** है (आयार० १, ८, १, ६), **आसिंसु** [पाठ में **आसंसु** है] **भगवं** आया है (आयार० १, ८, २, ६), **सेविंसु** भी पाया जाता है (आयार० १, ८, ३, २)। एक प्राचीन संस्कृत रूप **अद्दक्खु** है (विवाह० ३३२), **अद्दक्खू** रूप भी आया है (आयार० १, ५, १, ३ , यह एकवचन भी हो सकता है) = **अद्राक्षुः**। यह रूप बहुधा तृ० एक० में भी काम में लाया जाता है . **अद्दक्खु** आया है (आयार० १, २, ५, २ , विवाह० १३०६), **अद्दक्खु** भी है (आयार० १, ८, १, ९), **अद्दक्खू** रूप भी मिलता है (आयार० १, ५, २, १ , ६, १ , १, ८, १, १६ और १७)[४]। कप्पसुत्त एस (S) § में **अद्दक्खु** रूप आया है जो अशुद्ध पाठान्तर है और **अदट्ठु** के स्थान में आया है जैसा कि इसी ग्रंथ में अन्यत्र मिलता है। इसके अनुकरण में तृ०एक० में काम में आने-वाला **निण्णक्खु** बनाया गया है (आयार० २, २, १, ४ , ५ और ६) जो **निः** के साथ **नक्ष्** से सम्बन्धित है।

१ ए० कून, बे०बाइ०, पेज १११ , ए० म्युलर, सिम्पलिफाइड ग्रैमर, पेज ११४। — २ ए० कून का उक्त ग्रंथ, पेज ११४ , ए० म्युलर, उक्त ग्रंथ, पेज ११६। — ३ सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, बाईस, पेज ४४ नोटसंख्या २। — ४ कुछ स्थलों में जहाँ इस शब्द का प्रयोग किया है, यह सन्देह पैदा होने लगता है कि यहाँ पर एक विशेषण *आद्राक्षु तो काम में नहीं लाया गया है जैसा कि **दक्खु**, **अदक्खु** = *द्राक्षु और **अद्राक्षु** है (सूय० १२१)। यह तथ्य निश्चित जान पड़ता है।

§ ५१७—अ०माग० में बहुधा एक तृ०एक० आत्मनेपद का रूप अन्त में **-इत्था** और **इत्थ** लगाकर बनाया जाता है। यह रूप बिना अपवाद के वर्तमानकाल के वर्ग से बनाया जाता है। यह तथ्य तथा दन्त्य की प्रधानता जो पाली भाषा में भी पायी जाती है और जहाँ हमें मूर्धन्य की अपेक्षा करनी चाहिए थी (§ ३०३), हमारे मन में यह शंका उत्पन्न करता है कि क्या हमें यह रूप शुद्धता के साथ **से-** वाले पूर्ण-भूतकाल से सम्बन्धित करना चाहिए[१] अथवा नहीं ? इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं . **समुप्पज्जित्था** मिलता है जो **पद्** धातु से निकलता है तथा जिसमें **सम्** और **उद्** उपसर्ग लगाये गये हैं (विवाह० १५१ और १७० , नायाध० § ८१ और ८७ , पेज ७, ७१ , उवास० , कप्प० इत्यादि), **रोइत्था** रूप आया है जो **रुच्** धातु से बना है (हेच० ३, १४३), **वड्ढित्था** और **अभिवड्ढित्था** हैं जो **वृध्** से सम्बन्धित हैं

(कप्प) रीइत्था रीयते से बना है (आयार १,८,१,१ ; १,८,१,११) पासित्था (आयार० १, ८, ४, १२) विहरित्था (आयार १, ८, १, १२) ; मुज्झित्था (आयार १, ८, १, १७ और १८), सेवित्थ और सेवित्था (आयार० १, ८, २, १ ; १, ८, ४, १) रूप पाये जाते हैं अभिहत्थ और अपिबित्था पच्छे हैं [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] जो पा धातु के रूप हैं और भूतकाल का चिह्न भी जुड़ा है (आयार० १, ८, ४, ५ और ६) अणुजाणित्था (आयार० १, ८ ४, ८), कुव्वित्था वर्तमान के वर्ग कुव्वइ से (§ ५ ८) (आयार १, ८, ४, १५), उदाहरित्था (उत्तर ४५१ और ४ ८), जयित्था, पराजयित्था (विवाह ५) और वलयित्था मिलते हैं (विवाह ५ २)। भू से बना रूप होत्था है जो वर्तमानकाल के वर्ग हो=भव से निकला है (§ ४७६) (विवाह ५ ; १६८ ; १८२ ठाणंग ७९ ; उवास कप्प ; नायाध ओव आदि आदि)। इसके आदि में पद्य में वर्ण आने पर भी यही रूप रहता है, भहोत्था भाषा है (उत्तर ४११) किन्तु प्रादुः आदि में लगने पर भव– भ्व से रूप बनता है, पाउब्भवित्था रूप हो जाता है (विवाह १२ १)। प्रेरणार्थक क्रियाओं के अन्त में -एत्था और एत्थ जोड़ा जाता है : कारेत्था कारे– से बना है=कारय– (आयार १, ८, ४, ८), पहारेत्था, इसमें अधिकांश में –त्थ आता है, जो पहारे–=प्रधारय– से बना है (सूय १ १२ विवाह १५१ और ८११ विवाग १२१ ; ओव § ५ नायाध § ८१ आदि-आदि) किन्तु धायय– से बना आघाइत्था रूप भी पाया जाता है (आयार १, ८, ४, ४) । तृ एक के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के लिए भी यही रूप काम में लाया जाता है। इस प्रकार द्वि०पु के लिए लभित्थ रूप मिलता है [टीकाकार समादृत यही पाठ है ; पाठ में लभेत्था है] : जइ मे ण दाहित्थ इइ [टीकाकार समादृत यही पाठ है ; पाठ में आह है] पसणिर्ज्ञ किम् अज्ज जयाण लभित्थ लाभं (उत्तर ३५९) आया है तृ बहु के लिए विप्पसरित्था मिलता है (नायाध १४०) : बहुय इत्थी दिसा विदिसि विप्प सरित्था है कसाइत्था पायी जाती है जो कशा से बनी क्रिया है (आयार १, ८, १ ११) ; पाउब्भवित्था रूप भी मिलता है (नायाध § ५० ; ओव § ३३ और उसके बाद) : बहवे दवा अन्तियं पाउब्भवित्था ; यह रूप बहुधा होत्था आया है (आयार २, १५, १३ ठाणंग १९७ ; नायाध ३२८ सम ६६ और २११ ; उवास § ८ ; १८४ ; २३१ ; २३४ कप्प टी एच (T H) § ५ और ६ ; ओव § ७७) । —§ ५२ की तुलना कीजिए । मार्जनावाचक रूप के विषय में § ४६६ देखिए ।

१ इस रूप की व्युत्पत्ति के विषय में जो नाना अनुमान लगाये गये हैं उनके लिए कू त्सा ३३ ७५ और उसके बाद के पत्र देखिए ।

पूर्णभूत

§ ५१८—अ माग में पूर्णभूत के रूपों म स तृ बहु परस्मैपद का धातु =

आहु: बना रह गया है (आयार० १,४,३,१ , सूय० ७४ [पाठ में आह है] , १३२ , १३४ , १५० , ३१६ , ४६८ , ५००), **उदाहु** भी आया है (उत्तर० ४२४) , **आह्** (आयार० १, ५, १, ३) और **उदाह्** रूप भी हैं (सूय० ४५४)। किन्तु अधिक चलनेवाला रूप पाली की भाँति नवनिर्मित **आहंसु** है (आयार० २, १,४, ५ , सूय० ३७ , १६६ , २०२ , २४१ , ३५६ , ४४५ , ४५४ , ४५६ , ४६३, ४६५, ७७८, ८४२, विवाह० १३० , १३९ , १४२ , १७९ , ४३८ , १०३३ , १०४२ , ठाणग० १४९ और ४३८ तथा उसके बाद , पण्हा० ९५ और १०६ , जीवा० १२ और १३ , कप्प० एस (S) § २७)। उक्त दोनों रूप अन्य पुरुषों के काम में भी आते हैं। इस प्रकार प्र० एक० के लिए **आहंसु** का प्रयोग किया गया है : **एवम् आहंसु नायकुलनन्दणो महप्पा जिणो वरवीरनामधेॅज्जो कहेसी य** (पण्हा० ३०३ और ३२७), इसी भाँति तृ० एक० के लिए भी **आहु** आया है (सूय० २२७ और ३०१ , उत्तर० ३६५ और ६४६ , कप्प०) और **उदाहु** भी काम में लाया गया है (आयार० १, २, ४, ४ , सूय० १५९ , ३०४ , ३८७ , ५१८ , ९७४ , ९८९ , ९९२ और उसके बाद , उत्तर० ७५६)।

§ ५१९— § ५१५-५१८ तक में आये हुए रूपों को छोड प्राकृत में व्यतीत काल को व्यक्त करने के लिए या तो वर्तमानकाल, विशेषत. कथा-कहानियों मे अथवा साधारणत. कर्मवाच्य में भूतकालिक अशक्रिया को घुमा-फिरा कर काम मे लाया जाता है जिससे जिस पुरुष या पदार्थ के विषय में बात कही जाती है वह सकर्मक क्रिया द्वारा और करणकारक में आता है : महा० में **अबलाण ताण वसिओ अंगेसु सेओ** का अर्थ है 'उन अबलाओं के अंश पर पसीना चिपका था' (गउड० २१०) , **किं ण भणिओ सि वालअ गामणिधूआइ** का अर्थ है 'ऐ बालक ! क्या ग्रामणी की लडकी तुझसे नहीं बोली' (हाल ३७०) , **सीआपरिमट्ठेण व वूढो तेण वि णिरन्तरं रोमञ्चो** का अर्थ है 'उसके (शरीर में) निरन्तर रोमाच हुआ मानो उसे सीता ने छुआ हो' (रावण० १, ४२) , जै०महा० में **पच्छा रन्ना चिन्तियं** का अर्थ है 'बाद को राजा ने सोचा' है (आव०एर्त्से० ३२, १९) , **अन्नया भूयदिन्नेण विन्नायं** का अर्थ है 'एक बार भूयदिन्न को जान पडा' (एर्त्से० १, २४) , अ०माग० में **सुयं मे आउसं तेण भगवया एवम् अक्खायं** का अर्थ है 'मैंने सुना है दीर्घजीविओ ! (कि) भगवान ने यह कहा' (आयार० १, १, १, १) , **उराला णं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणा दिट्ठा** का अर्थ है 'देवानुप्रिय ! तूने उत्तम सपना देखा है' (कप्प० § ९) , शौर० में आया है **ता अआणन्तेण एदिणा एव्वं अणुचिट्ठिदं** का अर्थ 'सो, उसने अनजान में इस प्रकार का व्यवहार किया' (मृच्छ० ६३, २४) , **सुदं खु मए** तादकण्णस्स मुहादो का अर्थ है 'मैंने तात कण्व के मुँह से सुना है' (शकु० १४, १२) , **शुदं तुए यं मए गाइदं** का अर्थ है 'क्या तूने सुना है जो मैंने गाया है' (मृच्छ० ११६, २०) , **अध एॅक्कदिअश मए लोहिदमश्चके खण्डशो कप्पिदे** का अर्थ है 'एक दिन मैंने रोहू (रोहित) मछली के टुकडे-टुकडे बनाये (काटे) थे' (शकु० ११४, ९) , अप० में **तुम्हेॅहिं अम्हेॅहिं**

जं किमउँ विद्धउँ बहुजणेण का अर्थ है 'जो तुमने और हमने किया है, बहुत लोगों ने देखा है' (हेम० ४, ३७१) सवधु करेप्पिणु कधिदु मइँ का अर्थ है मैंने शपथ लेकर कहा है' (हेम ४, ३९६, ३)। इस भाँति प्राकृत बोली में जहाँ पहले आसि (= था) का आगमन होता था वहाँ कर्मवाच्य की आसन्न भूतकालिक अंश-क्रिया से भूतकाल का काम लिया गया ।[1] इस प्रकार महा० में जो सीसम्मि विइण्णो मज्झ जुआणेहि गणवई आसि का अर्थ है 'वह गणपति जिसने मेरे सर पर नौजवान बिठाये थे' (हाल ३७२) जै महा० में तथा य सो कुम्मयारो गामं मज्झे गओ आसि का अर्थ है 'उस समय कुम्हार दूसरे गाँव को चला गया था' (सगर १, १८); अ० से सुकिसयं आसि सुविळेण भयवल्कल्वं का अर्थ है 'वह आप आज जिनका सुदिक ने मुझे वचन दिया था' (एर्से १, २४) शौर में मइं सु रदणछट्ठि उववसिदा आसि का अर्थ है 'मैंने रत्नषष्ठी का उपवास किया था' (मृच्छ ५४, १९) शौर में तुमं मए सह गदा आसि का अर्थ है 'तू मेरे साथ गया था (मृच्छ २८ १४); अज्ज वेषी अज्जगन्धारीए पादवन्दणं कादुं गदा आसि का अर्थ है 'आज रानी गांधारी पादवंदना करने गयी थी' (वेणी० १२, ६) पुणो मन्दस्स वि मे तस्थ पच्चुप्पण्णं उत्तरं आसि का अर्थ है 'यद्यपि मैं मन्द (-बुद्धि) भी हूँ तथापि मेरे पास उसका उत्तर तैयार था' (मालवि ५७, १९); तार्यं पच्चु चित्तफळअं पमादे इत्थीकिदं आसि का अर्थ है 'मैंने प्रमाद (-काल) में ही वह चित्र (फलक) तुम्हारे हाथ में दे दिया था' (मालती० ७८ ३) दक्की में तस्स जुदिमलस्स मुट्ठिप्पहालेण णासिका भग्गा आसि का अर्थ है 'उस जुआरी की नाक घूसा मार कर तोड़ दी गयी थी' (मृच्छ ३९, १८)। अनेक अवसरों पर अंशक्रिया विशेषण के रूप में मान ली गयी थी।

1 किंक सगर पेज ११।

भविष्यत्काल

§ ५२ —प्राकृत बोलियों में व्यंजनों में समाप्त होनेवाले धातुओं के भविष्यत् काल के लिए रूप का सबसे अधिक प्रचार है तथा शौर और माग में जिस रूप का एकमात्र प्रचलन है, यह –इ में समाप्त होनेवाले वर्ग का रूप है। किन्तु प्राकृत बोलियों में केवल इसके ही विशुद्ध रूप का व्यवहार नहीं किया जाता वरन् बहुत अधिक प्रचार वर्तमानकाल के वर्ग का है, साथ ही ए– वाला वर्ग भी चलता है। प्र एक में अ माग और जै महा में बहुधा तथा अन्य प्राकृत बोलियों में इसके धुरके समाप्ति-सूचक चिह्न –मि आता है अधिकांश में उपकाल का समाप्तिसूचक चिह्न –म मिलता है अ अप में धातु के अन्त में –अ के स्थान में उ में ध्वनिपरिवर्तन कर देता है (§ ३५१)। द्वि एक में भविष्यत्काल के अन्त में –इस्ससि और माग में –इदशि तथा तृ एक में –इस्सइ लगाया जाता है, शौर और दक्की में यह समाप्तिसूचक चिह्न –इस्सदि है माग में इसका नियमित रूप –इदशदि है ; शौर, माग और दक्की में कभी कभी पद को छोड़ अन्यथ एकमात्र उक्त रूप ही काम में

आते हैं। महा०, जै०महा० और अ०माग० में इनके स्थान में द्वि०एक० में **–इहिसि** और तृ०एक० में **–इहिइ**, संक्षिप्त रूप **–इही** और छंद मिलाने के लिए संक्षिप्त रूप **–इहि** भी आते हैं। यह ध्वनिपरिवर्तन उन धातुओं और वर्गों से निकला है और मिले हुए द्विस्वरों में समाप्त होते हैं। व्याकरणकार प्र०एक० के लिए समाप्तिसूचक चिह्न **–इहामि** और **–इहिमि** देते हैं : **कित्तइहिमि** और इसके साथ-साथ **कित्तइस्सं** = **कीर्तयिष्यामि** (हेच० ३, १६९), **सोच्छिहिमि** तथा **सोच्छिहामि श्रु** के रूप हैं। **गच्छिहिमि** तथा **गच्छिहामि** और इसके साथ-साथ **गच्छिस्स गम्** से निकले हैं (हेच० ३, १७२), **हसिहिमि** और इसके साथ साथ **हसिस्सं** और **हसिस्सामि** रूप मिलते हैं (सिंहराज० पन्ना ५२)। जिन धातुओं और वर्गों के अन्त में दीर्घ स्वर आते हैं उनके लिए **–हिमि** भी दिया गया है : **कृ** का **काहिमि** रूप मिलता है और **दा** का **दाहिमि** (हेच० ३, १७० , सिंहराज० पन्ना ५२), **भू** का **होहिमि** रूप है (भाम० ७, १४ , हेच० ३, १६७ और १६९ , क्रम० ४, १६), **हस्** के **ए–** वर्ग में **हसेहिमि** और इसके साथ साथ **हसेहामि** तथा **हसेस्सामि** रूप मिलते है (सिंहराज० पन्ना ५२)। इन्हीं से सम्बन्धित एक रूप **हसेहिइ** भी है (भाग० ७, २३ , हेच० ३, १५७)। **ई–** वाले ऐसे रूपों के उदाहरण केवल अप० में पाये जाते हैं : **पेक्खीहिमि = प्रेक्षिष्ये** और **सहीहिमि = सहिष्ये** (विक्र० ५५, १८ और १९)। हेमचन्द्र ४, २७५ के अनुसार तृ०एक० शौर० मे **–इस्सिदि** लगता है : **भविस्सिदि, करिस्सिदि, गच्छिस्सिदि** आये हैं तथा ४, ३०२ के अनुसार माग० में **इश्शिदि** जोड़ा जाता है. **भविश्शिदि** पाया जाता है। दक्षिण भारतीय हस्तलिपियों मे बार-बार भविष्यत्काल के अन्त में **–इस्सिदि** देखने मे आता है, किन्तु छपे पाठों में इनका पता नहीं मिलता। हेमचन्द्र में शौर० से जै०शौर० का अर्थ है, किन्तु इसमें भविष्यत्काल के उदाहरणों का अभाव है। प्र०एक० के अन्त में **–इस्सामो** लगता है, पद्य में विरल किंतु कभी कभी रूप के अन्त में **–इस्साम** देखा जाता है जैसे, महा० में **करिस्साम** मिलता है (हाल ८९७)। यह रूप **–हामो** के दीर्घ स्वरों के अनुसार बना है, पद्य में छन्द की मात्रा ठीक करने के लिए **–हामु** रूप भी पाया जाता है। व्याकरणकार **हसिस्सामो** आदि रूपों के साथ **हसिहिमो** का भी उल्लेख करते हैं (भाम० ७, १५ , हेच० ३, १६७ , सिंहराज० पन्ना ५२), **हसिहिस्सा** और **हसिहित्था** भी बताते हैं (भाम० ७, १५ , हेच० ३, १६८ , सिंहराज० पन्ना ५२), भामह ७, १५ में **हसिहामो** रूप का भी उल्लेख करता है और सिंहराजगणिन् पन्ना ५२ में **हसेहिस्सा, हसेहित्था, हसेस्सामो, हसेस्सामु, हसिस्सामु, हसेस्साम, हसेहाम, हसिहाम, हसेहिमो, हसेहिमु** तथा **हसिहिमु** और इनके अतिरिक्त **सोच्छिमो, सोच्छिमु, सोच्छिम, सोच्छिहिमो, सोच्छिहिमु, सोच्छिहिम, सोच्छिस्सामो, सोच्छिस्सामु, सोच्छिस्साम, सोच्छिहामो, सोच्छिहिस्सा** और **सोच्छिहित्था** हैं (भाम० ७, १७ , हेच० ३, १७२), **गच्छिमो, गच्छिहिमो, गच्छिस्सामो, गच्छिहामो, गच्छिहिस्सा** और **गच्छिहित्था** रूप आये हैं (हेच० ३, १७२) , **होहिमो, होस्सामो, होहामो, होहिस्सा**

तथा होहिरिथा रूप भी मिलते हैं (भाम० ७, ११ और १५ हेच ३, १६८ क्रम० ४, १८), होहिस्सामो और होहिरथामो भी दिये गये हैं (क्रम० ४, १८)। इस सम्बन्ध में § ५२१ ५२१ और ५२१ की भी तुलना कीजिए। समाप्तिसूचक चिह्न –हहिस्सा की व्युत्पत्ति पूर्ण अधिकार में है[1]। समाप्तिसूचक चिह्न –हिरथा और –हहित्था द्वि बहु० में काम में आने के लिए भी उचित बताये गये हैं : होहित्था आया है (हेच ३, १६६) सोच्छित्था, सोच्छिहिरथा भी मिलते हैं (भाम ७, १७ हेच ३, १७२)। इनके साथ-साथ सोच्छिह, सोच्छिहिह गच्छित्था तथा गच्छिहित्था (हेच ३, १७२) और गच्छिह, गच्छिहिह हसेहित्था तथा हसिहित्था रूप भी हैं (सिंहराज पन्ना ५२)। इनके साथ साथ हसेहिह और हसिहिह भी हैं। इन रूपों के उदाहरण अ माग में पाये जाते हैं, दाहित्थं = दास्यथ (उत्तर ३५९)। इस रूप के अनुसार यह द्वि बहु होना चाहिए और फिर प्र बहु के काम में लाया गया होगा। यदि इसका सम्बन्ध समाप्तिसूचक चिह्न –इत्था से हो जिसे भूतकाल बताया है, यह अभी तक अनिर्णीत है। द्वि बहु का साधारण समाप्तिसूचक चिह्न –इस्सह है जो शौर और माग में –इस्सध रूप में मिलता है। प्र बहु के अन्त में –इस्सन्ति लगता है जै महा और अ माग में यह रूप बहुत अधिक बार अन्त में इहिन्ति और –हिन्ति लगाकर बनाया जाता है। सिंहराजगणिन् पन्ना ५१ में –हर चिह्न भी बताता है : हसेहिइरे और हसिहिइरे मिलते हैं।

1 क्रमदीश्वर के होहिरथामो रूप के अनुसार लास्सन इन्स्टिट्यूत्सिओने प्राकृतिकाए के पेज ३५३ में अपना मत देता है कि हाहिस्सा और होहित्था होहिस्सामा तथा होहित्थामा के संक्षिप्त रूप हैं क्योंकि होहित्था द्वि० बहु भी है इसलिए यह स्पष्टीकरण सम्भव नहीं दिखाई देता। आसि, अहंसि, आहु और उदाहु के वेराक्योक प्रयोग और व्यवहार की तुलना की जानी चाहिए और साथ ही अन्त में –इत्था लगाकर बननेवाले तृ एक भूत काल के रूप की भी। इस कोने के कारण ऊपर दू सरा समाप्तिसूचक चिह्न में न लिया गया है।

§ ५२१—भविष्यत्काल के उदाहरण वर्तमानकाल के वर्गों के क्रम के अनुसार रख जाते हैं (§ ४७१ और उसके बाद) जिससे भूल-चूक न होने की सुविधा हो जाती है। जै महा में जि का भविष्यत्काल जिणिस्सइ होता है (एर्से २१,२९), अ माग में पराजिणिस्सइ रूप मिलता है (निरया § १) नी धातु का रूप महा में णइहिइ = नेष्यति है (गउड ९२१); जै महा में नीणइहिइ आया है = निर्णेष्यति (एर्से ५२ ११) नइस्सि भी देखने में आता है (एर्से १९ १५); अ माग में उवणइहिइ है (ओव § १ ७), विणइहिइ (नायाध § ८७) और उवणाइस्सि रूप है (ओव § १ ९); किंतु वर्तमानकालिक वर्ग के शौर में अणुवइस्सं (रत्ना ३१९ १०), अवणइस्सं (शकु १ २,१४; १ ४ ११) उपणइस्सं (शकु ११७, १) णइस्सदि (मृच्छ ५८, २) आणइस्सदि (मल्ली १ ४ १) और णइस्सध रूप पाये जाते हैं (कर्पूर ३१, ८); माग

में णइश्शं है (मृच्छ० १६९, १३)। शौर० दइस्सं और माग० रूप दइश्शं रूप के बारे म, जो दय- से निकले ह, § ४७४ देखिए। — भू के भविष्यतकाल के रूपों मे सभी वर्तमानकालिक वर्ग प्रमाणित किये जा सकते है, हा, इसके प्रयोग के सबध मे नाना प्राकृत बोलिया भिन्नता दिखाती है। महा० और अप० केवल हो- का व्यवहार करती है जिसको शौर० और माग० पहचानती ही नही। जै०महा० मे भविस्सामि रूप है (द्वार० ५०१,३८), शौर० मे भविस्सं आया है (मृच्छ० ९, १२, शकु० ५१, १३, ८५, ७, मालवि० ५२, १९, रत्ना० ३१५, १६, ३१८, ३१, कर्पूर० ८, ७, ५२, २), अणुभविस्सं भी मिलता है (मालती० २७८, ९), माग० में भविश्श पाया जाता है (मृच्छ० ११६,४), शौर० मे भविस्ससि भी है (मृच्छ० ४, ६, रत्ना० २९६, २५), माग० में भविश्शशि हो जाता है (शकु० ११६, ४), अ०माग० और जै०महा० मे भविस्सइ रूप आता है (विवाह० ८४४, जीवा० २३९ और ४५२, उत्तर० ११६, ओव० § १०३, १०९, ११४, [११५], कप्प०, द्वार० ४९५, २७, ०४, ५, एर्त्से० ११, ३५, काल्का० २६८, ३३, २७१, १३ और १५), शौर० में भविस्सदि है (मृच्छ० ५, २, २०, २४, शकु० १०, ३, १८, ३, विक्र० २०, २०, मालवि० ३५, २०, ३७, ५, रत्ना० २९१, २, २९४, ९, मालती० ७८, ९, ८९, ८, १२५, ३ आदि आदि), माग० मे भविश्शदि हो जाता है (प्रबोध० ५०, १४), जै०महा० में भविहिन्ति मिलता है (आव०एर्त्से० ४७,२०), अ०माग० में भविस्सामो आया है (आयार० १, २, २, १, सूय० ६०१), अ०माग० मे भविस्सह भी है (विवाह० २३४), शौर० में भविस्सन्ति आया है (मालती० १२६, ३)। हविस्सदि और हविस्सं रूप (मालवि० ३७, १९, ४०, २२)[१] अशुद्ध हैं क्योंकि हव- मूलशब्द केवल प्र उपसर्ग के बाद काम मे लाया जाता है, जैसे शौर० पहविस्सं (उत्तररा० ३२,४)। शौर० और माग० में हुव- वर्ग (=मूलशब्द) भी काम में आता है : माग० मे हुविश्शम् आया है (मृच्छ० २९, २४, ३२, १९, ४०, १, ११८, १७, १२४, १२), शौर० में हुविस्ससि है (वेणी० ५८, १८), शौर० में हुवस्सदि भी है (मृच्छ० २२, १४, २४, ४, ६४, १८, विक्र० ३६, ६, ४६, ४ और ६, ५३, २ और १३, ७२, १९, मालवि० ७०, ६, वेणी० ९, २१, वृषभ० ४७, ११ आदि-आदि), माग० मे हुविश्शदि होता है (मृच्छ० २१, १४ और १५, ११७, १५, ११८, १६ और १७, वेणी० ३३, ३), शौर० में हुविस्सन्ति पाया जाता है (मृच्छ० ३९,४, चड० ८६,१४)। हो-वर्ग से निम्नलिखित रूप निकाले गये है : होस्सामि (भाम० ७, १४, हेच० ३, १६७, १६९, क्रम० ४, १६), महा० में हों स्स मिलता है (वर० ७, १४, हेच० ३, १६९, क्रम० ४, १७, हाल ७४३), अप० में होसइ आया है (हेच० ४, ३८८, ४१८, ४) और होसे भी मिलता है (प्रबध० ५६, ६, § १६६ की तुलना कीजिए), हों स्सामो, हों स्सामु और हों स्साम भी देखे जाते हैं (भाम० ७, १३ और १५, हेच० ३, १६९, क्रम० ४, १८)। इनमें से अधिकाश का ह्व ष से निकला है (§ २६३) : जै०महा० में

होहामि आया है (माम ७ १४ हेच ३, १६७ क्रम ४, १९ आव० एत्सें २६, १६) होहिमि (माम ७, १४ ; हेच ३, १६७ क्रम ४, १९) और होहिस्सं रूप मिलते हैं (क्रम० ४ १७) जै महा में होहिसि भी है (हेच ३, १६६ और १७८ एत्सें १२, ११) महा और जै महा में होहिइ मिलता है (हेच ३,१६६ और १७८ क्रम ४, १५ गउड हाल० ; रावण० आव एत्सें ४१, ११ एत्सें० १७, १), होही आया है (एत्सें० १, २६ द्वार ४९९, १५ तीर्थ ७, १ कालका २६५ ४१ २७ , ४३) दो संयुक्त व्यंजनों से पहले होहि रूप आया है : होहि त्ति मिलता है (द्वार० ४९५, २४) प्र बहु० में होहामो होहामु, होहाम होहिमा, होहिमु, होहिम, होहिस्सा और होहित्था रूप पाये जाते हैं (माम ७,११ और १५ हेच ३ १६७ और १६८), होहिस्सामो और होहित्थामो भी मिलते हैं (क्रम ४, १८) द्वि बहु० में होहित्था है (हेच ३, १६६ क्रम ४, १५) ; तृ बहु में महा और जै महा रूप होहिन्ति है (माम ७, १२ ; हेच ३, १६६ ; क्रम० ४, १९ ; हाल ६७५ सगर २ १५)। अ माग में हॉक्ख–वग बहुत बार मिलता है हॉक्खामि आया है (उत्तर ११,२ २), हॉक्ख है (उत्तर ११) तथा हॉक्खइ और हॉक्खन्ति पाये जाते हैं (सम २४ और उसके बाद)। यह वर्ग विशुद्ध भूल है जिसका आविष्कार किसी पाठोंकर ०भोप्य से किया गया है (§ २६६)। § ५२ की भी तुलना कीजिए। हेमचंद्र ३, १७८ के अनुसार प्रार्थनावाचक रूप से भी एक भविष्यत्काल निकाला गया है : हॉज्जाहिमि, होज्जहिमि हॉज्जस्सामि, हॉज्जहामि हॉज्जस्सं, हाज्जहिसि, हाज्जहिसि और होज्जाहिइ रूप हैं। सिंहराजगणिन् पन्ना ५३ में बताया गया है कि होज्जहिइ, हॉज्जहिइ तथा हॉज्जा हिइ रूप भी चलते हैं।

१ प्राकृत बररुचि उण्ड हेमचंद्रा पन्ना ४१ में अन्य उदाहरण दिये गये हैं। — २ ये रूप अब भी तक उदाहरण रूप में नहीं दिये गये हैं उनकी बाकियों का नाम नहीं दिया गया है।

§ ५२२—जिन धातुओं के अंत में ऋ और ॠ आते हैं उनकी भविष्यत्काल की रूपावली संस्कृत की ही भांति पहले और छठे गण के अनुसार चलती है : शौर० में अणुसरिस्सं आया है (पिंग ११५ १) विसुमरिस्सं = विस्मरिष्यामि है (शकु १४ १) विसुमरिस्ससि (शकु ८ ७), विसुमरिस्सध (शकु० ८६ १) रूप पाये जाते हैं ; शौर में सुमरिस्ससि है (रत्ना ३११ १) ; शौर में परिहरिस्सं (शकु १९ १) और परिहरिस्सदि रूप आये हैं (विक्र ७१, ७) ; माग म प सिदलिदशदि दा जाता है (प्रबोध ४२, ५ ; ४७, ७) ; विहसिदर्श भी मिलता है (मृच्छ ८ , ६) ; अ माग में विहरिस्सइ (आव § ११४ [§ ११५]) विहरिस्सामो (आयार २ १, १, ३ ; २, ७ १ १ ; निरया १७) और विहरिस्सइ रूप देखने में आते हैं (निरया ११४) ; जै महा में विहरिस्सन्ति रूप मिलता है (कालका० २६ , १८) ; शौर में मरिस्सइ आया

है (मृच्छ० ७२, १८), माग० में **मलीहिशि** रूप है (पद्य में, मृच्छ० ९, २४), महा० में **अणुमरिहिइ** है (रावण० १४, ५५), महा० में **हरिहिइ** भी मिलता है (हाल १४३), अ०माग० में **तरिहिन्ति** आया है (उत्तर० २५३) और **तरिस्सन्ति** भी (उत्तर० ५६७, सूय० ४२४), **निज्जरिस्सन्ति** भी चलता है (ठाणंग० १०८)। अन्त में ऐ लगनेवाले धातुओं में **गै** के निम्नलिखित रूप मिलते हैं : अ०माग० में **गाहिइ = गास्यति** है (ठाणंग० ४५१), महा० में **उग्गाहिइ** आया है (रावण० ११, ८४), इसके विपरीत शौर० में **गाइस्सं** पाया जाता है (शकु० २, ८, विद्ध० १२२, ११, १२८, ४, कंस० ८, १६), माग० में यह **गाइश्शं** हो जाता है (मृच्छ० ११६, २०, ११७, ३), **त्रै** का भविष्यत्काल माग० में **पलित्ताइश्शदि** है (मृच्छ० १२, १०)।

§ ५२३—प्राचीन **स्क**– वर्ग के धातुओं में **ऋ** का जै०महा० में **अच्छिहिसि** रूप मिलता है (आव०एर्त्से० ११, ११), जै०महा० में **यम्** का **पयच्छिस्सामो** रूप आया है (द्वार० ५०३, ४)। **गम्** धातु के रूपों में **गमि**– वर्ग का जोर है, जो शौर० और माग० में तो केवलमात्र एक वर्ग है। हेमचन्द्र ने ४, २७५ में जो शौर० रूप **गच्छिस्सिदि** बताया है, पाठों में उसकी पुष्टि नहीं होती। इस प्रकार जै०महा० में **गमिस्सामि** मिलता है (एर्त्से० ६०, १९), शौर० में **गमिस्सं** आया है (मृच्छ० ८, २४, ९, ७, १५, १०, ५४, १९, शकु० १७, ४, रत्ना० २९३, २४, २९६, २६, २९७, १२, ३१४, २६, कर्पूर० ३५, ३, १०८, ४, १०९, २, नागा० ४२, ७ और १५, ४३, १०, जीवा० ४२, १७ और २३, ४३, १७ आदि-आदि), **आगमिस्सं** है (कर्पूर० २२, ७, १०७. ४), माग० में यह **गमिश्शं** हो जाता है (मृच्छ० २०, १० और १४, ३२, २, ९७, १, ९८, २, ११२, १८), शौर० में **गमिस्ससि** मिलता है (मृच्छ० ३, १७, शकु० २४, १५), अ०माग० में **गमिहिइ** आया है (उवास० § १२५, विवाह० १७५, निरया० § २७), अप० में **गमिही** पाया जाता है (हेच० ४, ३३०, २), महा० में **समागमिस्सइ** चलता है (हाल ९६२); शौर० में **गमिस्सदि** है (मृच्छ० ९४, २, शकु० ५६, १४, मालती० १०३, ७), **आगमिस्सदि** भी है (उत्तररा० १२३, ७, कर्पूर० १०५, ३), ढक्की में भी **गमिस्सदि** मिलता है (मृच्छ० ३६, १३), अ०माग० और शौर० में **गमिस्सामो** रूप आया है (ओव० § ७८, कर्पूर० ३६, ६), अ०-माग० में **उवागमिस्सन्ति** चलता है (आयार० २, ३, १, २ और उसके बाद)। **गच्छ**– वर्ग से निम्नलिखित रूप बनते हैं : जै०महा० में **गच्छिस्सामि** है (आव०-एर्त्से० २१, १०), **गच्छिस्सं, गच्छिहामि, गच्छिहिमि** और **गच्छिहिसि** भी हैं (हेच० ३,१७२), अ०माग० में **गच्छिहिइ** आया है (हेच० ३,१७२, सिंहराज० पन्ना ५२, ओव० § १०० और १०१, उवास० § ९०), **आगच्छिस्सइ** रूप भी है (उवास० § १८८), सिंहराजगणिन् के अनुसार **गच्छेहिइ, गच्छिस्सामो, गच्छिहामो, गच्छिहिमो, गच्छिहिस्सा, गच्छिहित्था** और **गच्छिहिह** भी है (ये रूप अ०माग० के हैं, आयार० २, ३, ३, ५), **गच्छिहित्था** और **गच्छिहिन्ति** भी

दिये गये हैं (हेच ४, १७२)। इनके साथ-साथ अ० माग० में भविष्यत्काल का एक रूप गच्छं भी देखने में आता है (वर० ७, १६ ; हेच० ४, १७१ ; क्रम० ४, ?९ ; सिंहराज० पन्ना ५१ ; ठाणंग० १५६ और २८५)। हेमचन्द्र ने गच्छिमि रूप भी दिया है जिसकी रूपावली व्याकरणकारों के अनुसार इस प्रकार चलती है : गच्छिसि, गच्छिइ, गच्छिमो गच्छिइइ और गच्छिन्ति हैं। सिंहराजगणिन् के अनुसार गच्छिइ रूप भी है। यह मानना कि गच्छं रूप वच्छं, मो`च्छं, छिच्छं, रो`च्छं, वे`च्छं और यो`च्छं के अनुकरण में बना होगा (§ ५२१ ; ५२६ ; ५२९), सुविधाजनक है, किन्तु यह सर्वथा असम्भव है। इसे गच्छइ से आविष्कार किया गया गच्छ- धातु माना जाना चाहिए और गच्छं का सम्बन्ध *गच्छ्स्यामि और *गच्छ्यामि से जोड़ना चाहिए। § ५११ में सोच्छं की तुलना कीजिए।

§ ५२४—पहले गण के जिन धातुओं में आदि वर्ण का विकार होता है उनमें से पा [पा का पपौ आदि विकारवाले रूप होते हैं। —अनु०] का जै० महा० में पाहामि = पास्यामि होता है (आव० एर्त्से० ४२, २७) ; अ० माग० में पाहं (उत्तर० ५९३ [पाठ में पाहि है]), पाहिसि (कप्प० एस. (S) § १८) और पाहामो (आयार० २, १, ५, ५ ; २, १, ९, ६) रूप आये हैं ; महा० में पाहिन्ति आया है (रावण० ३, २१, पाठ में अशुद्ध रूप पाहे`न्ति है) । स्था का भविष्यत्काल महा० में ठाहिइ मिलता है (प्रचंड० ४७, ४) ; शौर० में चिट्ठिस्सं है (शकु० १, ९ ; विक्र० १९, ५ ; नागा० ६१, १४ ; कर्पूर० २२, २) ; माग० में चिष्ठिश्शं हो जाता है (चंड० ४२, ११), अणुचिष्ठिश्शं भी आया है (मृच्छ० ४ ; ११ ; इस नाटक में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए और § ९ ; ३ भी), शौर० में चिट्ठिस्सदि है (विक्र० ४१ ; ८) ; अ० माग० और शौर० में चिट्ठिस्सामो आया है (नायाध० ९ ; ८ और ६६९ ; विद्ध० ६१ ; ८)। — शौर० में उट्ठिस्सामो मिलता है (मृच्छ० २ , २२) जो उट्ठइ से निकला है, अ० माग० में उट्ठेहिन्ति मिलता है (विवाह० १२८) जो उट्ठेइ से बना है (§ ४८१)।

§ ५२५—महा०, जै० महा० और अ० माग० में दृश् का भविष्यत्काल का रूप दच्छं = द्रक्ष्यामि है (वर० ७ ; १६ ; हेच० ३,१७१ ; सिंहराज० पन्ना ५२)। गम् (§ ५२३) के लिए जो नियम चलते हैं वे इस पर भी लागू हैं। निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं : महा० में दच्छामि (रावण० ११ ; ७७) और दच्छिमि (रावण० ११ ; ८५) आये हैं ; महा० में दच्छिहिसि भी है (हाल० ८१९ ; रावण० ११ ; ९१ [सी हस्तलिपि के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए ; वेबर २८६ नोटसंख्या १ में एस गोल्दश्मित्त ने अशुद्ध रूप दिया है]) ; अ० माग० में दच्छिसि मिलता है (उत्तर० ६७९ = दस० ६१३ ; १५, यहाँ ठीक पाठ है) ; जै० महा० में दच्छिही रूप है (एर्त्से० १४ ; १२), महा० में दच्छिमि (रावण० १४, ५५) दच्छाम (रावण० ३ ; ५) और दच्छिइ (रावण० ३ ; २१ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए])। इनके साथ-साथ अ० माग० में पासइ = पश्यति (ओव० § ११५) से निकला रूप पासिहिइ भी आया है। शौर०, माग० और ढक्की में उक्त दोनों क्रियाओं का भवि-

ष्यत्काल में पता नहीं मिलता। वे **प्र** जोड़ कर **ईक्ष्** धातु काम मे लाते है। अन्य प्राकृत बोलियाँ भी इस रूप से ही परिचित हैं। महा० मे **पे॑च्छिस्सं** (हाल ७४३) और **पे॑च्छिहिसि** (हाल ५६६) पाये जाते हैं, जै०महा० मे **पे॑च्छिस्सामो** आया है (द्वार० ५०५, २८), शौर० मे **पेक्खिस्सं** हो जाता है (मृच्छ० ४, ११, ७७, १२, ९३, १६, शकु० ९०, १५, १२५, १५, विक्र० ११, २, १३, १९, प्रबोध० ३७, १३, ३८, १ आदि-आदि), **पेक्खिस्सदि** रूप भी मिलता हे (रत्ना० ३००, १, उत्तररा० ६६, ७), माग० मे **पेक्खिश्शं** (मृच्छ० ४०, १०) और **पेक्खिश्शदि** रूप आये हैं (मृच्छ० १२३, २२), ढक्की में **पेक्खिस्सं** मिलता है (मृच्छ० ३५, १५ और १७), अप० में **पेक्खीहिमि** है (विक्र० ५५, १८)। — वर्तमान काल की भाँति (§ ४८४) भविष्यत्काल मे भी **लभ्** धातु अनुनासिक ग्रहण कर लेता है. शौर० मं **लम्भिस्सं = लप्स्ये** (चैतन्य० ८३, २) पाया जाता है, शौर० में **उवालम्भिस्सं = उपालप्स्ये** आया हे (प्रिय० १९, १५), किन्तु शौर० में **लहिस्सं** रूप भी देखा जाता है (मृच्छ० ७०, १२), शौर० मे **उवालहिस्सं** रूप भी है (शकु० ६१, २, १३०, ४); अ०माग० मे **लभिस्सामि** है (आयार० २, १, ४, ५), जै०महा० मे **लहिस्सामो** मिलता है (एर्त्से० १३, ३०)। अ०माग० में **सह्** का भविष्यत्काल का रूप **सक्खामो** = महाकाव्य का **सक्ष्यामः** (आयार० १, ८, २, १४) देखा जाता है। —संक्षिप्त वर्ग **खा-** और **धा-** के जो **खाद-** और **धाव-** से निकले हैं, भविष्यत्काल के रूप **खाहिइ** और **धाहिइ** बनते हैं (भाम० ८, २७, हेच० ४, २२८)। इस प्रकार माग० में **खाहिशि** (मृच्छ० ११, ११) रूप मिलता है जो पद्य में है और जिसके विपरीत गद्य में **खाइश्शं** आया है (मृच्छ० १२४, १०)।

§ ५२६—छठे गण के धातुओं में से **प्रच्छ्** वर्तमानकाल में **पुच्छइ = पृच्छति** के अनुसार भविष्यत्काल में शौर० मे **पुच्छिस्सं** रूप बनाता है (मृच्छ० ४, २२, ८१, १ और २ तथा १०, शकु० १९, ३, ५०, ४, मालती० १३०, १०, वेणी० ५९, १, कर्पूर० ३, ४), यह माग० में **पुश्चिश्शं** हो जाता है (प्रबोध० ५०, ४ और ६, ५३, १२), अ०माग० में **पुच्छिस्सामो** आया है (आयार० १, ४, २, ६, ओव० § ३८)। — **स्फुट्** के रूप वर्तमानकाल **फुट्टइ** के अनुसार बनते हैं (§ ४८८ नोटसंख्या १), अप० में **फुट्टिसु** रूप है (हेच० ४,४२२, १२), महा० में **फुट्टिहिसि** और **फुट्टिहिइ** रूप मिलते है (हाल ७६८, ८२१ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए])। — **मुच्** का भविष्यत्काल का रूप **मो॑च्छं = मोक्ष्यामि** होता है (हेच० ३, १७२, क्रम० ४, १९, सिंहराज० पन्ना ५३)। उक्त नियम **गम्** धातु (§ ५२३) पर भी लागू होते हैं। इस प्रकार महा० में **मो॑च्छिहिइ** (रावण० ४, ४९) और **मो॑च्छिहि** रूप मिलते हैं (रावण० ३, ३०, ११, १२६)। जै०-महा० में **मुञ्चिहिइ** का भी प्रयोग किया जाता है (द्वार० ५०४, ११), शौर० में **मुञ्चिस्सदि** आया है (विक्र० ७२, २०) ठीक उसी प्रकार जैसे कि शौर० में **सिच्** धातु का रूप **सिञ्चिस्सं** मिलता है (शकु० १५, ४)। **मृ** के सम्बन्ध में § ५२२ देखिए। क्रमदीश्वर ४, १९ में बताता है कि **विश्** धातु का **विच्छं** होता है, जैसा कि

लास्सन ने अपने ग्रन्थ इन्स्टिट्यूत्सिओनेस प्राकृतिकाए पेज १९१ में लिखा है। इसके स्थान में ये रूप की प्रतीक्षा की जानी चाहिए थी। इस विच्छेद का समन्वय अन्य व्याकरणकार सिद् से जोड़ना अधिक संगत समझते हैं। अब इ- वर्ग के रूपों के उदाहरण, जैसे अ माग में अणुपविसिस्सामि और पविसिस्सामि (आयार० २, १, ४, ५), पविसिस्सामो (आयार १, ८, २, १४) जै महा में पविसिहिइ (एर्से २९, १६); माग में पविशिश्शं और उवविशिश्शं (मृच्छ १६, १२४, ८) दिये जाते हैं।

§ ५२७—चौथे गण के धातु वर्तमानकाल के वर्गों का बहुत ही अधिक प्रयोग करते हैं : महा में किलम्मिहिसि आया है (गउड ९५४) और किलम्मिहिइ भी मिलता है (हाल १९९)। ये दोनों रूप किलम्मइ = क्लाम्यति से बने हैं (§ १३६) अ माग में सिव्विस्सामि का सम्बन्ध सीव्यति से है (आयार० १, ६, १ १), महा में कुप्पिस्सं (हाल ८९८) आया है शौर० में कुप्पिस्सदि है (मृच्छ ९४, ७ और ८ उत्तररा ६६, ९); किन्तु शौर० में कुविस्सं रूप भी मिलता है (उत्तररा १२, १ ; विद्ध ७१, १) शौर में णच्चिस्स (विद्ध १२२, ११ ; १२८, ५) णच्चिस्सदि (चैतन्य० ५७, १२) नृत् से सम्बन्धित है ; अ माग रूप सज्जिहिइ रज्जिहिइ, गिज्झिहिइ, मुज्झिहिइ और अज्झोववज्जिहिइ, धातु सज् रज्, गृध् मुह् और पद् से बने हैं (ओव § १११) ; अ महा में मुज्झिहिइ मुह् का रूप है (ओव § ११६), सिज्झिहइ सिध् से बना है (विवाह० १७५ ; निरया § २७ ओव § ११६), सिज्झिहिन्ति रूप मिलता है (ओव § १२८) और सिज्झिस्सन्ति भी आया है (आयार २, १५, १६) ; जै महा में सिज्झिही है (एर्से २८, १६ १४, २ द्वार ५ ८, ८) ; महा और शौर में विपज्जिस्सं वि उपसर्ग के साथ पद् धातु से सम्बन्धित है (हाल ८६५ ; मृच्छ २५, १५) अ माग में पडिवज्जिस्सामि आया है (उवास § १२ और २१) ; शौर में पडिवज्जिस्सं मिलता है (मालती ११७, २५) शौर में पडिवज्जिस्सदि भी देखा जाता है (शकु ७, १२ ; नागा २१ ७) ; अ माग में पडिवज्जिस्सामो है (ओव § १८) ; महा में पपज्जिहिसि रूप मिलता है (हाल ९६१) ; अ माग में उववज्जिहिइ (विवाह १७५ निरया § २७ ; ओव § १ और १ १), उववज्जिस्सइ (विवाह २१४) समुप्पज्जिहिइ (ओव § ११५) और उप्पाज्जिस्सन्ति रूप पाये जाते हैं (ठाणंग ८ और १११) ; शौर में संपज्जिस्सदि मिलता है (विक्र ८१, १२) ; जै महा में पस्सिहिसि आया है (एर्से ७७,११), महा में पच्चिहिइ है (हाल ९१८) जो पच्चइ का रूप है (§ २ २) किन्तु जै महा में पच्चइस्सामि है (आव एर्से १२, २७), अ माग में पच्चाइहिइ (ओव § ११५) प्रजा से सम्बन्धित है ; महा में मण्णिहिसि (गउड ९५४ ; हाल ६६२), जै महा रूप मन्निस्सइ (एर्से १२ १५), शौर में मण्णिस्सदि (उत्तररा ९५, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) रूप देखने में आते हैं जै महा में विणस्सिहिसि (एर्से

१९, १६) और **विणासिही** रूप मिलते हैं (द्वार० ४९५, १७), महा० में **लग्गिस्स** और **लग्गिहिसि** (हाल ३७५ , २१) तथा **लग्गिहिइ** आये है (गउड० ७०), माग० में **अणुलग्गिश्श** मिलता है (चंड० ४२, १२), अप० मे **रूसेसु** है जो **रुष्** धातु का **ए**– वाला रूप है (हेच० ८, ४१४, ४)। यह वैसा ही है जैसे जै०महा० मे **मन्** धातु से **ए**– वाला रूप **मन्नेही** मिलता है (आव०एर्से० १२, १२)। महा० मे **श्रम्** धातु से भविष्यत्काल मे **विसम्मिहिइ** रूप बनता है जो वर्तमानकाल के वर्ग से दूर चला गया है (हाल ५७६ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए])। **जन्** का भविष्यत्काल का रूप वर्तमानकाल **जाइ** के अनुसार चलता है और अ०माग० मे **आयन्ति** और **पच्चायन्ति** मिलता है (§ ४८७), अ०माग० में **पयाहिसि** है (विवाह० ९४६ , कप्प० § ९ , नायाध० § २६), **पयाहिइ** भी आया है (ओव० § १०४ , कप्प० § ७९ , नायाध० § ५१), **पच्चायाहिइ** आया है (विवाह० ११९० , ठाणग० ५२३ , ओव० § १०२) और **आयाइस्सन्ति** रूप भी देखा जाता है (कप्प० § १७)। **शक्** धातु के विषय में § ५३१ देखिए।

§ ५२८—दसवें गण की क्रियाए और इनके समान ही बनाये गये प्रेरणार्थक और नामधातु अधिकाश में सस्कृत ही की भाँति भविष्यत्काल बनाते है जिसमें नियमानुसार **य** का लोप हो जाता है : **कित्तइस्सं** और **कित्तइहिमि** = **कीर्तयिष्यामि** है (हेच० ३, १६९), अ०माग० मे **दलइस्सइ** (विवाह० १२८८) और **दलइस्सन्ति** रूप मिलते हैं (ओव० § १०८), शौर० में **कुट्टइस्सं** है (मृच्छ० १८, ५), **अणुऊलइस्सं** = **अनुकूलयिष्यामि** है (मालती० २६७, ८), **चूरइस्स** भी आया है (कर्पूर० २१, २), **वारइस्सादि** और **चिन्तइस्सदि** रूप आये हैं तथा **निअत्तइस्सदि** = **निवर्तयिष्यति** है (शकु० ५५, २ , ८७, १ , ९१, ६), **पुलोइस्सदि** (वृषभ० २२, ९), **विणोदइस्सामो** (शकु० ७८, १०) और **विसज्जइस्सध** (शकु० ८६, ५) रूप पाये जाते हैं, **सद्दावइस्स** = ***शब्दापयिष्यामि** है (मृच्छ० ६०, १), **मोआवइस्ससि** = ***मोचापयिष्यसि** है (मृच्छ० ६०, १३), माग० में **गणइश्शं** (शकु० १५४, ६), **मडमडइश्शं**, **ताडइश्शं**, **लिहावइश्शं** तथा **दूशइश्शं** रूप मिलते हैं (मृच्छ० २१, २२ , ८०, ५ , १३६, २१ , १७६, ६), **वावादइश्शदि** = **व्यापादयिष्यति** है (वेणी० ३६, ५)। मृच्छकटिक १२८, १४ में **मोडइश्शामि** रूप आया है। जिसके अन्त में **मि** है। इसके साथ ही इस नाटक के ११३, १ में **मोडइश्शं** है जिसके द्वारा श्लोक के छन्द की मात्राए ठीक की गयी है। इनके विपरीत शौर० रूप **णिक्कामइस्सामि** जो मृच्छकटिक ५२, ९ में आया है, **णिक्कामइस्सं** रूप में सुधार दिया जाना चाहिए। महा०, अ०माग० और जै०महा० में भविष्यत्काल गुणित रूप **ए**– वाला भी पाया जाता है महा० में **मारेहिसि** मिलता है (हाल ५, ६७), जै०महा० में **वत्तेहामि** = **वर्तयिष्यामि** है (आव०-एर्से० ४२, २६), **विणासेहामि** = **विनाशयिष्यामि** है (द्वार० ४९५, ३१), **नासेहिइ** मिलता है (तीर्थ० ५, २०), **मेलवेहिसि** = **मेलयिष्यसि** (आव०-एर्से० ३०, ८), **जाणेही** आया है (एर्से० १२, २८), **निवारेही** देखा जाता है

(एत्सें० ८, २१) और फाहेहिम्ति भी पाया जाता है (एत्सें २१, ३१); अ० माग० में सेहायेहिइ = *शैक्षापयिष्यति और सिक्खायेहिइ = *शिक्षापयिष्यति है (ओव० § १ ७), चेयॅस्सामो = चेतयिष्यामः है (आयार २, १, ५, १ २, २, २, १०), सक्कारेहिन्ति संमाणेहिन्ति और पज्जियसक्नेहिन्ति रूप पाये जाते हैं (ओव § १०८), उवणिमन्तेहिन्ति (ओव० § ११), सद्दयेहिन्ति (विवाह १२७६) और णाॅस्तवेहिन्ति भी आये हैं (विवाह० १२८०)। बिना प्रत्यय के बने के भविष्यत्काल के रूप (§ ४११) जिनके साथ प्रेरणार्थक रूप भी सम्मिलित हो जाते हैं (§ ५५१) विरल नहीं हैं। शौर० में कधिस्स भाया है (मृच्छ० ८, २५), महा में कहिस्सं है (हाल १५७) तथा इसके साथ-साथ शौर में साधारण रूप कधइस्सं भी चलता है (मृच्छ १ ,२; शकु ५१, १२; १ ५,७), माग में कधइदशं और कधइदशशि रूप मिलते हैं (मृच्छ ११९, २१ १६९, १५)· अ माग में कारावेस्स = *कारापयिष्यामि = कारयिष्यामि है (आयार० १, १, १, ५); शौर में खण्डिस्सं = खण्डयिष्यामि है (कर्पूर १८, ७) महा में पुलोइस्स = प्रलोकयिष्यामि है (हाल ७४१) आव० में पलोइस्सं हो जाता है (मृच्छ १ ४ २१) शौर में वड्ढाइस्सं = *वर्धपयिष्यामि है (शकु १७, १), विण्णविस्स = विज्ञापयिष्यामि और सुस्सूइस्सं = सुश्रूषयिष्यामि है (मृच्छ ५८, ११ ८८, ११) माग में मालिदशशि = मारयिष्यसि है (मृच्छ १२५, ७); शौर में तक्किस्सदि = तर्कयिष्यति है (विक्र ७१, ९ इसका रूप अन्यत्र चिन्तिस्सदि है), मन्तिस्सदि भी आया है (रत्ना २९९,९)। इसके साथ साथ मन्तइस्सदि भी मिलता है (मृच्छ ५४, १)।

§ ५२९—दूसरे गण की क्रियाओं में जिनके अन्त में –आ आता है, उनमें से ख्या का भविष्यत्काल का रूप अ माग में पच्चाइक्खिस्सामि = *प्रत्याचिक्षिष्यामि है (आयार २ १, ९, २)। या का अ माग में § ४८७ के अनुसार लिज्जाइस्सामि रूप पाया जाता है (ओव § ४ [म्यू (Q) हस्तलिपि के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए; पाठ में लिज्जाहिस्सामि है]), जै महा में जाहिइ है (एत्सें २१ १२ १९ ५)। या का अ माग में परिणिव्वाहिइ मिलता है (विवाह १७५ नायाध १९ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), परिणिव्वाइस्सन्ति रूप भी है (आयार २ १५,१९)। स्ना का शौर में ण्हाइस्सं होता है (§ ४८७ के अनुसार) (मृच्छ २७ १४)। इ धातु का भविष्यत्काल अ माग में एस्सामि है (ठाणंग १४२), एस्सन्ति रूप भी आया है (सूय ४० ; ५६ ; ७१); आ उपसर्ग के साथ महा में एहिसि रूप है (हाल १८५), महा और अ माग में एहिइ मिलता है (हाल ११७ ; ७८४ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ; ८५५ ; ९१८ रावण १ ७९ आयार २, ४ १, २ [यहाँ भी यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]; उवास § १८७) जै महा में एही (एत्सें २४ ११) और एहिन्ति रूप आये हैं (एत्सें २१, ११) अप में एसी है (हेच ४ ४१४, ४)। इनके साथ केवलमात्र एक स्थान में महा में

इच्छावाचक रूप **एहिज्ज** पाया जाता है (हाल १७)। — **रुद्** का रूप **रो ॅच्छं** बनता है जो = *रोत्स्यामि है (वर० ७, १६, हेच० ३, १७१, सिंहराज० पन्ना ५३), क्रमदीश्वर ४, १९ मे **रुच्छं** रूप दिया गया है, परन्तु महा० में **रोइस्सं** है (हाल ५०३), शौर० मे **रोदिस्सं** आया है (मृच्छ० ९५, २३, नागा० ३, १), **रुदिस्सामो** भी मिलता है (मल्लिका० १५४, २३)। — **स्वप्** का भविष्यत् का रूप शौर० मे **सुविस्सं** है (मृच्छ० ५०, ४, प्रिय० ३४, ३), माग० मे यह **शुविश्शं** हो जाता है (मृच्छ० ४३, १२, प्रबोध० ६०, १५)। — **विद्** का भविष्यत्काल **वे ॅच्छं** = *वेत्स्यामि है (वर० ७, १६, हेच० ३, १७१, सिंहराज० पन्ना ५३) किन्तु शौर० में **वेदिस्सदि** आया है (प्रबोध० ३७, १५) और अ०माग० में **वेदिस्सन्ति** मिलता है (ठाणग० १०८)। — **वच्** का रूप **वो ॅच्छं** बनता है (§ १०४, वर० ७, १६, हेच० ३,१७१, सिंहराज० पन्ना ५३)। इस प्रकार महा० और अ०माग० में भी **वोच्छं** रूप है (वज्जालग्ग ३२४, १०, पण्हा० ३३१, ओव० १८४ [पाठ में **वो ॅच्छं** है], नन्दी० ९२ [पाठ मे **वो ॅच्छ** है], जीयक० १,६०) और **वो ॅच्छामि** भी मिलता है (विवाह० ५९, पण्हा० ३३०, उत्तर० ७३७ और ८९७), किन्तु अ०माग० में **वक्खामो** = **वक्ष्यामः** भी है (दस० ६२७, २३), **पवक्खामि** भी आया है (सूय० २७८ और २८४)। क्रमदीश्वर ४, २१ मे **वच्छिहिमि**, **वच्छिमि** तथा **वच्छि** दिये गये हैं। इस ग्रन्थ के ४, २० की भी तुलना कीजिए। **रो ॅच्छ, वे ॅच्छं** और **वो ॅच्छं** तथा इस प्रकार से बने सब रूप शौर० और माग० में काम में नहीं लाये जाते जैसा कि मार्कण्डेय ने पन्ना ७० में शौर० के लिए स्पष्ट रूप से विधान किया है और जिसकी पुष्टि पाठ करते है। इनकी रूपावली **गच्छं** के विषय में जो नियम हैं उनके अनुसार चलती है (§ ५२३)। — **दुह्** के भविष्यत्काल का रूप **दुहिहिइ** है (हेच० ४, २४५)।

§ ५३०—अ०माग० और जै०महा० में **दा** का भविष्यत्काल **दाहामि** होता है (आयार० २, १, १०, १, उत्तर० ७४३, एर्त्से० ५९, २३ और ३४)[1] और **दाहं** भी मिलता है (वर० ७, १६, हेच० ३, १७०, क्रम० ४, १९, एर्त्से० १०, २४), हेमचन्द्र के अनुसार **दाहिमि** भी चलता है, अ०माग० में **दाहिसि** आया है (आयार० २, १, २, ४, २, २, ३, १८, २, ५, १, ७, २, ६, १, ५), जै० महा० में **दाही** आया है (आव०एर्त्से० ४३, २२, एर्त्से०), अ०माग० में **दाहामो** है (आयार० २, ५, १, १०), **दाहामु** (सूय० १७८, उत्तर० ३५५ और ३५८) तथा **दाहित्थ** भी आये हैं (उत्तर० ३५९), जै०महा० में **दाहिन्ति** रूप मिलता है (एर्त्से० ८०, २२)। शौर० और माग० में वर्तमानकाल के अनुसार भविष्यत्काल का रूप **देदि** = *दयन्ति आया है (§ ४७४) जो **दय**– वर्ग से बनाया गया है (मार्क० पन्ना ७१), शौर० में **दइश्शं** पाया जाता है (मृच्छ० ८०, २०), माग० में **दइश्शं** हो जाता है = *दयिष्यामि है (मृच्छ० ३१, ६, ८ और १५, ३२, ९ और २४, ३३, २२, ३५, ८, ८०, १९ आदि-आदि, § ४७४)। शौर० **दाइस्सं** (कर्पूर० ११२, ५, बोएदलिक द्वारा सम्पादित शकुन्तला २५, ६, प्रिय० २३, २४)

के स्थान में द्रहस्सं और द्रेहस्सम्ति के लिए (काळेयक २, ११) द्रहस्सम्ति पढ़ा जाना चाहिए। — घा का भव् के साथ जो भविष्यत्काल बनता है उसमें प्राचीन दुहरे वर्णवाला वर्ग सुरक्षित रखा गया है (§ ५० की तुलना कीजिए) : अ माग में सद्दहिस्सइ मिलता है (नायाध ११११४—१११६)। अन्यथा यह उपसर्गों के साथ संयुक्त होने पर अ माग के भविष्यत्काल में -धाइ और -हइ की रूपावली के अनुसार चलता है (§ ५) : अ माग में पद्य में पेहिस्सामि मिलता है जो पिहिस्सामि के स्थान में आया है जैसा कि कलकतिया संस्करण में दिया गया है (आयार १, ८, १, १) किन्तु शौर में यह चौथे गण के अनुसार इसके रूप बनते हैं : पिधाइस्स रूप मिलता है (विद्ध ७ ८) अ माग में संधिस्सामि और परिहिस्सामि आये हैं (आयार १ ६, १ १) शौर म भी संधिहिसि रूप पाया जाता है (बाल २२ १८)। यह रूप निश्चित ही शौर बोली की परम्परा के विरुद्ध है और इस स्थान म *संधिहाइस्ससि की प्रतीक्षा करनी चाहिए। हा का भविष्यत्काल का रूप अ माग में विप्पजहिस्सामो मिलता है (सूय ४११ और ६१५), भी के रूप भाइस्सं और भाइस्सदि पाये जाते हैं (शकु १४ ११ ; ११५, १४)।

१ आयारंगसुत्त १ ७ ७ २ में याकोबी ने हस्तलिपि में दो बार दासामि पाठ पढ़ा है, २ ५, १ ११ और १३ में दासामो और उसके साथ-साथ दाहामो पढ़ा है। कलकतिया संस्करण पहले स्थान में दइस्सामि देता है जैसा इस ग्रन्थ में अन्यत्र पाया जाता है। दूसरे स्थल में दास्सामो पाठ आया है और तीसरे में दासामो छपा है।

§ ५११—पाँचवें गण की क्रियाओं में से सि धातु शौर में भविष्यत्काल का रूप भयसिणिस्स बनाता है (रत्ना २९५, २१ वृषभ ५८, २ चैतन्य ७१, १), अ माग में चिणिस्सन्ति तथा उवचिणिस्सन्ति रूप आये हैं (ठाणंग १ ७ और १ ८ विवाह ६२)। हेमचन्द्र ४ २४१ के अनुसार कर्मवाच्य का रूप चिणिहिइ है यह रूप के अनुसार परस्मैपदी है। — व्याकरणकारों के अनुसार भु का रूप सा च्छं होता है (वर ७ १६ हेम ३ १७१ और १७२ ; क्रम ४ १९ सिंहराज पन्ना ५१) जिसकी रूपावली गच्छं के अनुसार चलती है (§ ५२३)। यह साच्छं भु से नहीं बना है परन्तु वैदिक भुप् का अर्थात् यह *श्रोष्यामि के स्थान में नियमित रूप से आया है। भु का शौर में भविष्यत्काल का रूप सुणिस्सं (मृच्छ ६ ७ और ९ ; शकु २ ७ विक्र २४, ५ ११, १ और १ मालवि ८१ १ आदि-आदि), सुणिस्सामो भी मिलता है (मल्लिका १२९, १ ११२ १), माग में यह शुणिश्शं हो जाता है (मृच्छ २१, २१), जै महा में सुणिस्सइ पाया जाता है (कालका २६५, ४) अ माग में प-वर्ग का रूप सुपॅस्सामि (ठाणंग १४१) और सुपॅस्सामो भी मिलते हैं (ओव § १८)। — अ माग में आप् धातु का भविष्यत्काल का रूप वर्तमानकाल के वर्ग पाउणइ से (§ ५ ४) पाउणिस्सामि मिलता है (आयार० १, ६ १, १) पाउणिहिइ

रूप भी है (उवास० § ६२ , ओव० § १०० और ११६)[१]। अन्य प्राकृत बोलियाँ इसे वर्तमानकाल के वर्ग **पाव**– से बनाती है : अप० में **पावीसु** रूप आया है (हेच० ४, ३९६, ४) , शौर० मे **पाविस्ससि** मिलता है (कालेयक० ७, ६) , महा० में **पाविहिसि** है (हाल ४६२ और ५१०) और इस नियम के अनुसार विक्रमोर्वशी ४२, १० में शौर० बोली की परम्परा के विरुद्ध रूप आया है , यह माग० मे **पाविहिशि** हो जाता है (मुद्रा० १७७, ६ [**वहेसि** के स्थान में यही रूप पढा जाना चाहिए] , इसी नाटक में अन्यत्र यह रूप भी देखिए तथा त्सा०डे०डौ०मौ०गे० ३९, १२५ देखिए) , महा० में **पाविहिइ** रूप है (हाल ९१८)। — **शक्** चौथे गण के अनुसार भविष्यत्काल बनाता है (§ ५०५) : महा० में **सक्किहिसि** है (विद्ध० ६४, १ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए]) , शौर० में **सक्किस्सामो** आया है (चैतन्य० ७५, १५ , पाठ में **सकिस्सम्ह** है) , जै०महा० में **सक्किस्सइ** मिलता है (कालका० २६५, ११) , इसका **ए**– वाला रूप भी मिलता है . जै०महा० में **सक्केहिइ** आया है (आव०एर्त्से० ४५, ८), **सक्केही** भी देखने में आता है (द्वार० ५०१, ३९) ।

१ इस शब्द के विषय में लौयमान ठीक है । औपपातिक सूत्र मे **पाउण** शब्द देखिए। होएर्नले ने उवासगदसाओ और उसके अनुवाद की नोटसंख्या १०८ में जो बताया है कि यह **वृ** धातु से निकला है, वह भूल है।

§ ५३२—**छिद्** , **भिद्** और **भुज्** के भविष्यत्काल के रूप व्याकरणकारों ने निम्नलिखित रूप से बनाये है : **छे॑च्छं, भे॑च्छं** और **भोच्छं** जो सस्कृत रूप **छेत्स्यामि, भेत्स्यामि** और **भोक्ष्यामि** के अनुसार हैं (हेच० ३, १७१ , सिहराज० पन्ना ५३)। इसकी रूपावली **गच्छं** के अनुसार चलती है (§ ५२३)। **छिद्** के निम्नलिखित रूप पाये जाते हैं : अ०माग० मे **अच्छिन्दिहिन्ति, विच्छिन्दिहिन्ति** और **वो॑च्छिन्दिहिन्ति** रूप पाये जाते है (विवाह० १२७७)। **भिद्** के रूप हैं . अ०माग० में **भिदिस्सन्ति** आया है (आयार० २, १, ६, ९), इसके स्थान पर हमें **भिन्दिस्सन्ति** की प्रतीक्ष करनी चाहिए थी, जैसे कि **भिदन्ति** के स्थान पर अधिक उचित **भिन्दत्ति** जान पडता है। **भुज्** के रूप है : अ०माग० में **भो॑क्खामि** मिलता है (आयार० २, १, ११, १), **भो॑क्खसि** (कप्प० एस (S) § १८) और **भो॑क्खामो** है (आयार० २, १, ५, ५ , २, १, ९, ६)। जै०महा० में **भुञ्जिही** (एर्त्से० ६, २६) और इसी प्रकार **भुञ्जिस्सइ** रूप पाये जाते है (तीर्थ० ५, १८)। हेमचन्द्र ४, २४८ के अनुसार **संरुन्धिहिइ** कर्मवाच्य के भविष्यत्काल का रूप हे , रूप के अनुसार यह परस्मैपदी है ।

§ ५३३—**कृ** धातु का भविष्यत्काल का रूप सभी प्राकृत बोलियों में सस्कृत की भॉति बनाया जाता है अ०माग० और जै०महा० मे **करिस्सामि** आया है (आयार० १, २, ५, ६ , ठाणग० १४९ और ४७६ , दस० ६२७, २८ , नन्दी० ३५४ , उत्तर० १ , एर्त्से० ४६, ७), महा०, जै०महा० और शौर० में **करिस्सं** मिलता है (हाल ७४३ और ८८२ , एर्त्से० ११, ३१ , मुद्रा० १०२, ६ , नागा० ४३, ७) , माग० मे यह **कलिश्शं** हो जाता है (मृच्छ० ९६, १३) , अप० मे **करीसु**

३२,७), जै०महा० और अ०माग० में **काही** भी है (एर्त्से० ८,२१, ७१, ८, द्वार० ४९५, १८ [पाठ मे **काहिस्ति** है], दस० ६१७, २८), जै०महा० में **काहामो** है (एर्त्से० १५, १३, ८०, १८, सगर ३, १५) और **काहिह** भी मिलता है (आव० एर्त्से० ३३, २७), अ०माग० मे और जै०महा० में **काहिन्ति** आया है (ओव० § १०५, उत्तर० २५३, आव०एर्त्से० ४३, ३६)। अप० में **कीसु** आया है (हेच० ४, ३८९) जो सूचना देता है कि इसका कभी **क्रि॰यामि** रूप रहा होगा।

§ ५३४—अ०माग० में ज्ञा का सस्कृत के अनुसार ही **णाहिसि = ज्ञास्यसि** रूप होता है (सूय० १०६), **णाहिइ** (ठाणग० ४५१), **नाहिइ** (दस० ६१७, २८) और **नाही** (दस० ६१७, ३२ और ३४) = **ज्ञास्यति** है। प्राकृत की सभी बोलियों में अधिक काम में आनेवाला वर्ग वर्तमानकाल से निकला **जाण-** है। इस प्रकार : महा० और शौर० में **जणिस्सं** है (हाल ७४९, मृच्छ० ३,२, रत्ना० ३०७, २६), महा० में **जाणिहिसि** आया है (हाल ५२८, ६४३), अप० में भी यही रूप मिलता है (विक्र० ५८, ११), अ०माग० में **जाणिहिइ** मिलता है (ओव० § ११५), शौर० में **जाणिस्सदि** है (मालवि० ८७, ९, रत्ना० २९९,५ और ७, विद्ध० ११४, ५, लटक० ६, ६), **अ॰भणुजाणिस्सदि** आया है (मालवि० ४०, ७), **अहि-जाणिस्सदि** भी पाया जाता है (शकु० १०२, १५), अ०माग० और शौर० में **जाणिस्सामो** मिलता है (सूय० ९६२, विक्र० २३, १८, २८, १२), माग० में **याणिश्शाम्ह** दिखाई देता है जो **याणिश्शामो** के स्थान में अशुद्ध रूप है (ललित० ५६५, ९)। — शौर० में **क्री** का भविष्यत्काल **किणिस्सदि** है (चड० ५२, ४ और ७), माग० में **किणिश्शं** आया है (मृच्छ० ३२, १७, ११८, १४, १२५, १०), जै०महा० में **किणिहामो** मिलता है (आव०एर्त्से० ३३, १५)। **ग्रह्** का शौर० में **गे॑ण्हिस्सं** होता है (मृच्छ० ७४, १९, ९५, १२, रत्ना० ३१६, २२, मुद्रा० १०३, ९), **गे॑ण्हिस्सदि** पाया जाता है (मृच्छ० ५४, ५, ७४, २४, कालेयक० ७, ६) और **अणुहिण्हिस्सदि** आया है (पार्वती० ३०, १८), अ०माग० मे **गिण्हिस्सामो** है (आयार० २, २, ३, २)। जै०महा० रूप **घे॑च्छामो** (आव० एर्त्से० २३, ६) और **घे॑प्पइ** (§ ५४८) किसी ***घृप्** धातु से बने हैं जिसका वर्तमानकाल का रूप ***घिवइ** है (§ २१२) अर्थात् यह **घे॑च्छामो = *घृप्स्यामः** के। **वन्ध्** का भविष्यत्काल अ०माग० **वन्धिस्सइ** होता है (विवाह० १८१० और उसके बाद), **वन्धिस्सन्ति** भी आया है (ठाणग० १०८), शौर० में **अणुवन्धिस्सं** मिलता है (विद्ध० १४, १३)। हेमचन्द्र ४, २४७ के अनुसार कर्मवाच्य में भविष्यत्-काल का रूप **वन्धिहिइ** है, रूप के अनुसार यह परस्मैपदी है। **भण्** धातु नियमित रूप से अ०माग० में **भणिहामि** रूप बनाता है (जीवक० सी. ११), महा० और शौर० में **भणिस्सं** है (हाल १२ और ६०४, मृच्छ० २१, २४, २४, २०, विद्ध० ७२, २, मल्लिका० ८३, ४ [पाठ मे **फणिस्सं** है], मालती० २६५, १, २७६, ७), शौर० में **भणिस्ससि** भी मिलता है (मृच्छ० ५८, ८), महा० मे **भणिहिइ** भी आया है (हाल ८५८, ९१८), शौर० में **भणिस्सदि** भी है (रत्ना० ३०४, १),

जै महा० में भणिस्सइ रूप है (कक्कुक २७४, ११) शौर० में भणिस्सध भी पाया जाता है (मालती० २४६ ७) तथा महा० में भणिहिन्ति पाया जाता है (गउड० १५६)। माग० में द- वर्ग से भणइस्शं बनाया गया है (मृच्छ० १२, २०)।

कर्मवाच्य

§ ५३५—कर्मवाच्य प्राकृत में तीन प्रकार से बनाया जाता है। (१) प्राकृत के ध्वनिपरिवर्तन के नियमों के अनुसार -य वाला संस्कृत रूप काम में आता है इस स्थिति में महा जै महा , जै०शौर अ माग० और अप में स्वरों के बाद -य का -ज्ज हो जाता है और पै में इसकी ध्वनि -य्य हो जाती है, शौर और माग में यह उड़ा दिया जाता है और यदि इसके बाद व्यंजन हों तो इन व्यंजनों में यह ध्वनि मिला दी जाती है अथवा यह -ईय हो जाता है जो महा०, जै महा जै शौर अ माग और अप में -इज्ज रूप धारण कर लेता है तथा शौर में -इअ बन जाता है, पै में इसका रूप -इय्य हो जाता है। (२) धातु में ही इसका चिह्न लगा दिया जाता है अथवा बहुधा (३) वर्तमानकाल के वर्ग में चिह्न जोड़ दिया जाता है। इस नियम से दा के निम्नलिखित रूप मिलते हैं : महा , जै महा , अ माग और अप में दिज्जइ है जै शौर में दिज्जदि, पै में तिय्यते तथा शौर और माग में दीअदि रूप पाये जाते हैं ; गम् के रूप महा , जै महा और अ माग में गम्मइ तथा गमिज्जइ मिलते हैं, पै में गमिय्यते, शौर में गमीअदि और गच्छीअदि तथा माग में गश्चीअदि रूप हैं। शौर में -इज्ज तथा माग में -इय्य वाले रूप (अधिकांश में छपे संस्करणों में -इज्ज है) जो पद्य में दिये गये हैं, शौर और माग मे अशुद्ध हैं[1]। शाक्ति में कढिज्जदि आया है (मृच्छ १ १, १५) किन्तु इस स्थान में कढीअदि होना चाहिए और खासिज्जइ (मृच्छ १ २ १६) के लिए खासीअदि माना चाहिए (१५५ ६)। इस बोली की परम्परा में उक्त अशुद्धियाँ मा'य नहीं की जा सकतीं (§ २६)। विकृत रूप के कर्मवाच्य के रूप' जो रावणवहो मे पाये जाते हैं जैसे आरम्भन्ते (८ ८२ अंधमिया) रुम्मइ, रुम्मन्त (इस ग्रन्थ में रुध धातु देखिए), ओसुम्भन्त और णिसुम्भन्त (रावणवहो में सुध् धातु देखिए) अशुद्ध पाठभेद हैं। इनके स्थान में आरम्भन्ते रुम्भइ,रुम्भन्त ओसुम्भन्त और णिसुम्भन्त रूप पढ़े जाने चाहिए। इस प्रकार के रूप बहुधा हस्तलिपियों में पाये जाते है। इसी भाँति उपसुम्भन्तो (इण्डिशे स्टूडिएन १५ २४१) अशुद्ध है। इसके स्थान में उपसुम्भन्तो पढ़ा जाना चाहिए। ओसुम्भइ रूप अस्पष्ट है (रावण १ , ५५)। इसके स्थान मे हस्तलिपि सी (C) में अप्फुम्भइ रूप आया है। इच्छावाचक रूप में ज्ज सह स और अच्छ ज्ज ; विज्जं स, छड्डिज्ज ज्ज और अच्छिज्ज ज्ज के स्थान में आये हैं (हेच १, ११०) और पद्य मे छन्द की मात्राएँ ठीक करने के लिए संक्षिप्त रूप माने जाने चाहिए, जैसा कि अ माग में कर्मवाच्य भविष्यत्काल में समुच्छिहिन्ति रूप मिलता है जो समुच्छिज्जिहिन्ति के स्थान में काम में लाया गया है तथा छिद् से बना है (§ ५४९)। वररुचि ७ ८ ; हेमचन्द्र ३ १६ ; क्रमदीश्वर

४, १२ और मार्कंडेय पन्ना ६२ में बताते हैं कि बिना किसी प्रकार के भेद के प्राकृत की सभी बोलियों में कर्मवाच्य में –ईअ और –इज्ज लगाकर भविष्यत्काल बनाया जाता है, पन्ना ७१ में मार्कंडेय ने बताया है कि शौर० में केवल –ईअ लगता है और वररुचि ७, ९, ८, ५७ — ५९ तथा हेमचन्द्र ४, २४२ — २४९ तक में दिये गये रूपों को शौर० के लिए निषिद्ध बताता है, पन्ना ६२ में मार्कंडेय ने शौर० के लिए **दुब्भइ** [यह रूप मराठी में चलता है। —अनु०], **लिब्भइ** और **गम्मइ** रूप भी बताये हैं। सब पाठ इसकी पुष्टि करते हैं। 'अनियमित कर्मवाच्य' के रूपों जैसे, **सिप्पइ, जुप्पइ, आढप्पइ, दुब्भइ, रुब्भइ** आदि-आदि की व्युत्पत्ति कर्मवाच्य के भूतकालिक अशक्रिया के भ्रमपूर्ण अनुकरण के अनुसार हुई है ऐसा याकोबी[3] ने माना है तथा जिसका अनुमोदन योहान्सोन[4] ने किया है, पूर्णतया अशुद्ध है। § २६६ और २८६ देखिए। वर्तमानकाल इच्छावाचक तथा आज्ञावाचक रूप कर्मवाच्य मे आ सकते हैं, इसके अतिरिक्त कर्मवाच्य वर्ग से पूर्णभूतकाल, भविष्यत्काल, सामान्यक्रिया, वर्तमानकालिक और भूतकालिक अशक्रियाएँ बनायी जाती हैं। समाप्तिसूचक चिह्न नियमित रूप से परस्मैपद के हैं, तो भी महा०, जै०महा०, जै०शौर० और अ०माग० मे तथा बहुधा पै० में भी और व्याकरणकारों के मत से सदा ही आत्मनेपद के समाप्तिसूचक चिह्न लगाये जाते हैं, विशेष कर अशक्रिया के रूपों मे।

१ मालविकाग्निमित्र, पेज २२३ में बौँल्लें नसेन की टीका। आगे आनेवाले पाराओं में अशुद्ध रूपों के उदाहरण दिये गये हैं। — २ रावणवहो ८, ८२ नोटसंख्या ४, पेज २५६ में एस० गौल्दश्मित्त की टीका। — ३ कू० त्सा० २८, २४९ और उसके बाद। — ४ कू० त्सा० ३२, ४४६ और उसके बाद में इस विषय पर अन्य साहित्य का उल्लेख भी है।

§ ५३६—भविष्यत्काल की भाँति ही (§ ५२१ और उसके बाद) कर्मवाच्य के उदाहरण भी वर्तमानकाल के वर्गों के अनुसार दिये गये हैं (§ ४७३ और उसके बाद)। जिन धातुओं के अन्त में –उ और –ऊ रहते हैं उनकी रूपावली गणों के बिना भेद के संस्कृत के छठे गण के अनुसार चलती है (§ ४७३) और इसके बाद उनके कर्मवाच्य के रूप बनते हैं. महा० मे **णिण्हुविज्जन्ति** आया है (हाल ६५७), शौर० में **णिण्हुवीअदि** है (रत्ना० ३०३, ९), ये दोनों रूप ह्नु से बने हैं, **रुव्वइ** और **रुव्विज्जइ** (हेच० २, २४९) आये हैं, महा० में **रुव्वसु** आया है (हाल १०)। ये रूप रु धातु के हैं, महा० मे **थुव्वसि = स्तूयसे** है (गउड० २९८) और **थुव्वइ = स्तूयते** है (हेच० ४, २४२, सिंहराज० पन्ना ५४, गउड० २५३), जै०शौर० में **थुव्वदे** आया है (कत्तिगे० ४०१, ३५१), अ०माग० में **थुव्वन्ति** [पाठ मे **थुवन्ति** है] = **स्तूयन्ते** है (विवाह० १२३२), जै०महा० मे **थुव्वन्त**– मिलता है (एर्त्से० २४, २) और **संथुव्वन्त**– भी है (आव०एर्त्से० ७, २६), इनके साथ-साथ **थुणिज्जइ** रूप भी पाया जाता है (हेच० ४, २४२), ये रूप स्तु के हैं, **धुव्वइ** और **धुणिज्जइ** रूप हैं, महा० मे **विहुव्वइ, विहुव्वन्त**– और **ओधुव्वन्ति** मिलते हैं (रावण०), अ०माग० मे **उद्धुव्वमाणेहिं** है (ओव०, कप्प०) जो धू धातु

से बना है, पुम्बइ और पुणिज्जइ और अप० में पुणिज्जे रूप मिलते हैं (पिंगल २,१ ७) जो पू से बने हैं। लू के रूप लुव्वइ और लुणिज्जइ होते हैं। धु के धुव्वइ और धुणिज्जइ रूप हैं (वर० ८, ५७ हेच ४, २४२ क्रम ४,७४ मार्क पन्ना ५८; सिंहराज पन्ना ५४)। श्रु के निम्नलिखित रूप मिलते हैं महा और जै महा में सुव्वइ, सुव्वन्ति और सुव्वमाण रूप हैं (गउड हाल रावण ; आव एर्त्से० १७, ४४ एर्त्से ; कालका०), महा में सुव्वन्त– भी है (कर्पूर ५१, १) अ माग में सुव्वए (सूय० १५४), सुव्वई (सूय २७७ पाठ म सुर्व्वा है) आते हैं और सुव्वन्ति मिलता है (उत्तर २८ पाठ में सुव्वन्ति है) इनके साथ-साथ सुणिज्जइ रूप भी देखा जाता है (वर ८, ५७ ; हेच ४, २४२ सिंहराज पन्ना ५४), सुणिज्जए, सुणीअइ और सुणीअए का भी उल्लेख है (सिंहराज० पन्ना ५४) शौर में सुणीअदि (मृच्छ २९, २ ; ६४, ६ ९७, ७ शकु ९ , १२ ; ११६, ६ रत्ना ३११, २१ प्रबोध १४, ९ कर्पूर १, १ २४, १ ४५, ३ वृषभ ४७, १४ ५१ ७ आदि आदि), सुणीयन्ति (! [यद्यपि पिशल साहब को इस रूप की अनियमितता और विचित्रता पर कुछ आश्चर्य अवश्य होना ही चाहिए था, पर कुमाउनी में इसी से निकला सुणीनी रूप बहुत काम में आता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि जनता की बोली में इसका यथेष्ठ व्यवहार होता रहा होगा। —अनु] ; मल्लिका ५५५ २), सुणीअन्त (शकु० ५८,१ उत्तररा १२७, ६ ; प्रबोध ८, ८ [शौर में सुणीअन्ति अधिक चलता है, सुणीयन्ति जै महा और अ माग का य साथ में लिये हुए हैं यह अनियमित है, इससे पिशल साहब को आश्चर्य हुआ वह ठीक ही है। —अनु]), सुणीअदु भी आया है (विक्र ४८, ९) माग में शुणीअदि है (मृच्छ ४५ १ १६३, २२ ; १६९, १८ ; मुद्रा १९१ ५ ; वेणी ३५ १८ ; ३६ ३) ; अप में सुणिज्जे मिलता है (पिंगल २ १ ७)। जै महा में सुम्मउ रूप भी मिलता है (एर्त्से० ११, २६), जो § २६१ के अनुसार एक रूप *सुम्मइ और इसके साथ साथ *सुव्वइ के अस्तित्व की सूचना देता है। — व्याकरणकारों के अनुसार (वर ८, ५७ ; हेच ४ २४२ ; क्रम ४, ७१ मार्क पन्ना ५८) चि धातु का कर्मणि भी इसी प्रकार निर्मित होता है तथा हेमचन्द्र ४ २४३ के अनुसार चि का भी : चिव्वइ तथा चिणिज्जइ रूप मिलते हैं, भविष्यत्काल का रूप चिव्विहिइ है। जि के जिव्वइ और जिणिज्जइ रूप आये हैं। हेमचन्द्र के अनुसार चिम्मइ तथा भविष्यत्काल में चिम्मिहिइ रूप भी बनते हैं जिनका स्पष्टीकरण जै महा सुम्मउ की भाँति ही होता है। याकोबी के साथ, जिसकी सारी विचारधारा और मत भ्रमपूर्ण है¹ और योहान्सोन² के साथ यह मानना कि यह –उ और –ऊ के अनुकरण पर बने हैं, अशुद्ध है। चीयू (धातुपाठ २१ १५ चीवृ आदानसंवरणयोः) का नियमित कर्मवाच्य का रूप चिव्वइ है और जिव् का (धातुपाठ १५ ८९ जिवि प्रीणनार्थः) कर्मवाच्य का सामान्य रूप जिव्वइ है। इसका रूप जिम्मइ बताया जाता है। इस विषय पर तभी कुछ कहा जा सकता है जब इसका अर्थ निश्चित रूप से निर्णीत किया जाय। अ माग०

में **चिज्ञन्ति, उवचिज्जन्ति** और **अवचिज्जन्ति** रूप मिलते हैं (पण्णव० ६२८ और ६२९), शौर० में **विचीअदु** आया है (विक्र० ३०, १५)। — हेमचन्द्र ३, १६० के अनुसार **भू** के कर्मवाच्य के रूप **होईअइ** तथा **होइज्जइ** होते हैं। शौर० में यह रूप **भवीअदि** बोला जाता है और **अणुभवीअदि** (रत्ना० ३१७, ५) में आया है। **अणुहवीअदु** भी मिलता है (नागा० ४, ५), **अणुहुवीअदि** देखा जाता है (कालेयक० ९, २२) और **अभिभवीअदि** भी पाया जाता है (माल्ती० १३०, ५)। अशक्रिया **अहिभूअमाण** है (शकु० १६, १०)। माग० मे **भवीअदि** (मृच्छ० १६४, १०) और **हुवीअदि** मिल्ते हैं (वेणी० ३३, ६ और ७ , ३५, ८)। उक्त दोनों रूप परस्मैपद में भविष्यत्काल के अर्थ में आये हैं (§ ५५०)। **पहुप्पइ** के विषय मे § २८६ देखिए। — **नी** का कर्मवाच्य का रूप महा० मे **णिज्जइ** (गउड० , हाल , रावण०), जै०महा० में **नीनिज्जन्त-** (आव०एर्से० २४, ४), शौर० में **णीअदि** (शकु० ७८, ८), **आणीअदि** (विक्र० ३१, ५ , कर्पूर० २६, ८), **आणीअदु** (कर्पूर० २६, ७), **अहिणीअदु** (शकु० ३, ५) और **अणुणीअमान** रूप आये हैं (मृच्छ० २३, २३ और २५) , माग० में **णीअदि** है (मृच्छ० १००, २२)।

१. कू० त्सा० २८, २५५ । — २. कू० त्सा० ३२, ४४९ । पी० गौल्दश्मित्त, स्पेसिमेन, पेज ७१ का मत भी अशुद्ध है , ना० गे० वि० गो० १८७४, पेज ५१३ , एस० गौल्दश्मित्त, त्सा० डे० डौ० मौ० गे० २९, ४९४ ।

§ ५३७—जिन धातुओं के अन्त में **ऋ** आता है उनका कर्मवाच्य का रूप वर्तमान के वर्ग से बनता है . महा० में **धरिज्जइ** है (रावण०), भविष्यत्काल **धरिज्जिहिइ** मिल्ता है (हाल ७७८ , यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए) , माग० में **धनीअदि** आया है (प्रबोध० ५०, १०) , महा० में **अणुसरिज्जन्ति** रूप है (गउड० ६२७) , महा० में **णिव्वरिज्जए** भी मिलता है (हाल २०४) , महा० तथा अप० में **सुमरिज्जइ = स्मर्यते** है (रावण० १३, १६ , हेच० ४, ४२६), जै०महा० में **सुमरिज्जउ** आया है (एर्से० १५, ३), शौर० मे **सुमरीअदि** मिल्ता है (मृच्छ० १२८, १)। **ऋ** में समाप्त होनेवाले धातु या तो सस्कृत के अनुसार कर्मवाच्य बनाते है अथवा वे **ऋ** में समाप्त होनेवाले धातुओं के अनुकरण पर बनाये जाते है : **क्री** धातु का शौर० में **कीरन्त** रूप मिल्ता है (बाल० १९९, १०) किन्तु यह रूप शौर० बोली की परम्परा के विरुद्ध है, जिसमें **किरीअन्त** की प्रतीक्षा की जानी चाहिए थी , **जीरइ** (यह = **जीर्यति** भी है) और **जरज्जइ** भी देखे जाते है (हेच० ४, २५०), अ०माग० में **निज्जरिज्जई** आया है (उत्तर० ८८५ , टीका में यही आदृत पाठ है) , महा० और जै०महा० में **तीरइ** है (हेच० ४, २५० , गउड० , हाल , रावण० , एर्से०), **तीरए** भी है (हाल , एर्से० , द्वार० ४९८, २१) और महा० मे **तीरज्जइ** भी आया है (हेच० ४, २५० , गउड०)। अ०माग० मे **वियरिज्जइ** है (उत्तर० ३५४)। इसके ठीक विपरीत **हृ –ऋ** वाली धातु के अनुकरण पर रूप बनाता है . महा० और अ०माग० मे **हीरसि** है (गउड० ७२६ , उत्तर० ७११) , महा० और जै०महा० मे **हीरइ** आया है (वर० ८, ६० , हेच० ४, २५० , क्रम ४, ७९ और

§ ५३९— **पा** (=पीना) के कर्मवाच्य के रूप महा० में **पिज्जइ** (हाल), **पिज्जए** (कर्पूर० २४, १२), **पिज्जन्ति** (गउड०) और **पिज्जन्त-** मिलते हैं (कर्पूर० १०, ८), शौर० में **पिवीअदि** आया है (मृच्छ० ७१, ७, विक्र० ९, १९), यही रूप मृच्छ० ८७, १३ में आये हुए **पिईअदि** तथा विक्रमो० ४८, १५ मे भी इसी नाटक में अन्यत्र आये हुए दूसरे रूप के साथ **पीअदि** के स्थान में उक्त शुद्ध रूप पढा जाना चाहिए। आज्ञावाचक में शौर० में **पिवीअदु** है (मृच्छ० ७७, ११)। बोली की परम्परा के विरुद्ध शौर० रूप **पिज्जन्ति** है (शकु० २९, ५) जिसके स्थान में **पिवीअन्ति** अन्ततः शेष पोथियों के अनुसार (काश्मीरी पोथी मे **पीअन्ते** है) **पीअन्ति** पढा जाना चाहिए। प्रबोधचन्द्रोदय २८, १५ मे माग० रूप **पिज्जए** भी जो बबई, मद्रास और पूने के सस्करणों में आया है, अशुद्ध है। इसके स्थान में शुद्ध रूप **पिवीअदि** होना चाहिए था। — **स्था** का शौर० में **अणुचिट्ठीअदि** मिलता है (मृच्छ० ४, १३), आज्ञावाचक में वाचक में **अणुचिट्ठीअदु** है (मृच्छ० ३, ७, शकु० १, ९, रत्ना० २९०, २८, प्रबोध० ३, ५, नागा० २, १७)। क्रम० ४, १४ में **ठीअइ** और **ठिज्जइ** रूप भी बताता है।

§ ५४०—**खन्** के साधारण रूप **खणिज्जइ** (हेच० ४,२४४) और जै०महा० अशक्रिया **खम्ममाण** (एत्सें० ३९,७) के अतिरिक्त **खम्मइ** भी दिया गया है (हेच० ४, २४४, सिंहराज० पन्ना ५६)। इस प्रकार महा० मे **उक्खम्मन्ति, उक्खम्मन्त-** और **उक्खम्मिअव्व** रूप मिलते हैं (रावण०)। ये रूप **जन्** के **जम्मइ** (हेच० ४,१३६) तथा **हन्** के **हम्मइ** रूपों से अलग नहीं किये जा सकते (वर० ८,४५, हेच० ४,२४४, सिंहराज० पन्ना ५६)। इनके साथ साथ **हणिज्जइ** भी मिलता है। इस प्रकार महा० मे **आहम्मिउं, णिहम्मइ, णिहम्मन्ति** और **पहम्मन्त-** रूप मिलते हैं (रावण०), अ०माग० में **हम्मइ** (आयार० १, ३, ३, २, सूय० २८९), **हम्मन्ति** (उत्तर० ६६८ और १००८, पण्हा० २८९ [इसमें टीकाकार का पाठ ठीक है], सूय० २९४ तथा ४३१) और **हम्मन्तु** रूप आये हैं (पण्हा० १२९), **पडिहम्मेज्जा** (ठाणग० १८८) और **विणिहम्मन्ति** देखे जाते हैं (उत्तर० १५६६), अ०माग० और जै०-महा० में **हम्ममाण** रूप आया है (सूय० २७८, २९७, ३९३, ६४७, ८६३, पण्हा० २०२, विवाग० ६३, निरया० ६७, एर्त्से०), अ०माग० में **विहम्ममाण** (सूय० ३५०) और **सुहम्ममाण** मिलते हैं (सूय० २७०)। याकोबी[1] और योहानसोन[2] के साथ यह मानना कि **गम्** धातु से बने **गम्मइ** की नकल पर ये रूप बने है, सोलह आने असम्भव है। **जम्मइ** रूप निर्देश करता है कि यह **जन्मन्** से बना नामधातु है। इसका रूप प्राकृत में **जम्म-** है। इसी प्रकार **हन्मन्** प्राकृत मे **हम्म-** हो गया है [यह **हम्मन्** कुमाउनी में वर्तमान है। बच्चों की बोली में '**हम्मा**' करेंगे का अर्थ है 'मारेंगे'। —अनु०] और ***खन्मन्** का प्राकृत रूप **खम्म-** मिलता है[3]। § ५५० की तुलना कीजिए। **खुप्पइ** के विपय में § २८६ देखिए।

1 कू०त्सा० २८, २५४। — 2 कू०त्सा० ३२, ४४९। — 3 मार्कंडेय पन्ना ५७ में बताया गया है कि **खम्महि** तथा **हम्महि** (§ ५५०) कर्तृ-

वाच्य में काम में आते हैं [सम्म– का एक आज्ञावाचक रूप समकालीन कुमाउनी में कर्तृवाच्य में चलता है। —अनु]।

§ ५४१—हश् का कर्मवाच्य नियमित रूप से संस्कृत रूप दृश्यते के अनुसार ही बनाया जाता है महा और जै महा में दीसइ है (हेच ३, १६१) सिंह राज पन्ना ५६ गउड०; हाल रावण एत्सें ; कालका०) महा० में दीसए (कपूर ५४,१) और अदीसन्त– (हाल रावण) आते हैं महा और अ०माग० में दीसन्ति मिलता है (कपूर ४, ? दस ६२१ १२) अ माग० में दिस्सइ है (आयार० १, २, ३, ३) अदिस्समाण (आयार० १, २, ५, ३ सूय ६०६) भी पाया जाता है; शौर में दीसदि है (मृच्छ ५ , २४; १३८, २३ १३९, ८ विक्र ७ ३ १ , ८; १९, ६; ४ , ६; रत्ना २९५, १०; नागा ५२, ८ आदि-आदि), दीसए (कपूर० ३, ८), दीसन्ति (शकु ६९, १२ विक्र ७०, ९ १११, १२ माल्ती २ १, २) और दीसदु रूप पाये जाते हैं (कपूर ५४, ८) माग में यह दीशदि हो जाता है (ललित ५६५, ८ मृच्छ० ११८, २४ १३९, १ और ११ १००, ४ और १५ १६८, १८) और दीशन्ति भी है (मृच्छ १४, १)। — लभ् महा में लब्भइ = लभ्यते बनाया है (हेच ४, २४९ हाल रावण ; मृच्छ १५३, १७), यो रूप मै०महा लब्भइ (एत्सें ६ , १६) के स्थान में पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि लब्भइ में पढ़ने में अशुद्धि हो गयी है; अ माग में भविष्यत्काल का रूप लब्भिही है जो कर्तृवाच्य में काम में आता है (दस ६२८, १४); शौर में लब्भदि मिलता है (शकु २१, १४); इसके साथ-साथ लहिज्जइ भी देखा जाता है (हेच ४ २४९), यह ठीक अप की भाँति (पिंगल १ ११७)। शौर और माग में वर्तमान काल के सानुनासिक वर्ग से भी इस धातु के रूप बने हैं (§ ४८४ और ५२५); शौर में लम्भीअदि (माल्ती० २१०, १), लम्भीआमो (माल्ती २४ , ४) और उपालम्भीअदि रूप आते हैं (पाठ में उपालम्मिज्जइ है; मल्लिका २१८ ८) माग में आलम्भीअदि (मुद्रा १९४ २ ; यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए इस नाटक में अन्यत्र दूसरे रूप देखिए और संवत् १९२६ के कलकतिया संस्करण के पेज १६२, ८ भी)। — महा , जै महा और अ माग में यह का कर्मवाच्य का रूप घुप्पइ है (हेच ४, २६९ क्रम ४ ७९ [पाठ में घप्पइ है]; मार्क० पन्ना ६२ ; गउड हाल ; एत्सें), महा में णिग्घुप्पइ है (रावण)। हाल २७५ में छपे उज्झसि के स्थान में भी यही रूप अर्थात् घुप्पसि पढ़ा जाना चाहिए (इस सम्बन्ध में वेबर की तुलना कीजिए) तथा दसवेयालियसुत्त ६१५ ८ में मुद्रित धे हुए रूप घुज्झइ के स्थान में भी घुप्पइ पढ़ा जाना चाहिए। § २६६ की तुलना कीजिए। हमचन्द्र ४, २४५ में पहिप्पइ रूप भी बताया है। मार्कण्डेय ने पन्ना ७२ में लिखा है कि शौर में केवल पहीअदि रूप काम में आता है।

§ ५४२—छठ गण के धातुओं में से प्रच्छ निम्नलिखित रूप से कर्मवाच्य बनाता है : महा , जै महा और अ माग में पुच्छिज्जइ है; महा में पुच्छिज्जन्ती

मिल्ता है (अशक्रिया० , हाल), जै०महा० में **पुच्छिज्जामि** आया है (एर्त्से०), अ०माग० में **पुच्छिज्जन्ति** है (पण्णव० ३८८) शौर० में **पुच्छीअसि** पाया जाता है (विद्ध० ११८, ८) और **पुच्छीअदि** रूप भी आया है (मृच्छ० ५७, १८ , ७२, २५)। — **कृत्** का अ०माग० मे **किच्चइ** होता है (उत्तर० १७७)। — महा०, जै०महा० और अ०माग० मे **मुच्** धातु **मुच्चइ = मुच्यते** होता है : महा० में **मुच्चइ, मुच्चन्ति** (गउड०), **मुच्चन्त–** (रावण०) रूप मिलते हैं, जै०महा० में **मुच्चामि** और **मुच्चए** आये है (एर्त्से०) , अ०माग० में **मुच्चइ** (विवाह० ३७), **मुच्चए** (उत्तर० २४३), **मुच्चन्ति** (कप्प० , ओव०), **मुच्चेज्जा** (प्र०एक०, उत्तर० ६२४), **मुच्चेज्ज** (तृ०एक० , सूय० १०४ , उत्तर० २४७), **पमुच्चइ** और **विमुच्चइ** रूप मिलते है (आयार० १, ३, ३, ५ , २, १६, १२ [यह धातु हिन्दी में नही रह गया है, कुमाउनी **मुच्चइ** का **मुचै** तथा **मुच्चन्ति** का **मुचनीँ** रूप चलते हैं। —अनु०]) , जै०शौर० में **विमुच्चदि** रूप आया है (पव० ३८४, ६०) , किन्तु शौर० में **मुञ्चीअदु** मिल्ता है (मुद्रा० २४७, ७ [सस्करणों मे छपे **मुच्चिज्जदु** और **मुञ्चदु** के स्थान में यही पाठ पढा जाना चाहिए]) जिसके विपरीत भविष्यत्काल का रूप **मुच्चिस्सदि** है (शकु० १३८, १ , विक्र० ७७, १६ [यहॉ यही पाठ पढा जाना चाहिए])। — **लुप्** का रूप महा० में **लुप्पन्त–** है (गउड० ३८४), अ०माग० में **लुप्पइ** और **लुप्पन्ति** पाये जाते है (सूय० १०४) , **सिच्** का जै०महा० में **सिच्चन्तो** रूप मिल्ता है (द्वार० ५०४, १०), अ०माग० में **अभिसिच्चमाणी** तथा **परि-सिच्चमाण** (कप्प०) और **संसिच्चमाण** आये है (आयार० १, ३, २, २), शौर० में **सिच्चन्ती** (मुद्रा० १८२, १ [कलकतिया सस्करण के अनुसार यही पढा जाना चाहिए]) और **सिच्चमाणा** रूप हैं (मालती० १२१, २)। **सिप्पइ** के विषय में § २८६ और **मृ** के सम्बन्ध में § ४७७ देखिए। **छिप्पइ** और **छिविज्जइ**, जिनकी व्युत्पत्ति हेमचन्द्र ४, २५७ में **स्पृश्** से बताता है, **क्षिप्** से निकले हैं (§ ३१९)।

§ ५४३—चौथे गण की क्रियाओं के लिए उनकी विशेषता का परिचय देनेवाले उदाहरण नीचे दिये जाते हैं : महा० में **पडिवुज्झिज्जइ = प्रतिवुध्यते** है (गउड० ११७२) , अप० में **रूसिज्जइ = रुष्यते** है (हेच० ४, ४१८, ४)। दसवें गण की क्रियाएं, प्रेरणार्थक रूप और नामधातु सस्कृत की भॉति कर्मवाच्य बनाते हैं या तो कर्मवाच्य के सार चिह्न का धातु के भीतर में आगमन हो जाता है अथवा वर्ग में बिना –य और –अय के बनाते हैं। प्राकृत के –अ और –ए वाले कर्मवाच्य : **कारीअइ, कारिज्जइ, करावीअइ, कराविज्जइ, हासीअइ, हासिज्जइ, हसावीअइ** और **हसाविज्जइ** पाये जाते हैं (वर० ७, २८ और २९ , हेच० ३, १५२ और १५३ , सिंहराज० पन्ना ५५ और ५६)। महा० में **छेइज्जन्ति** है (गउड० ११९८), शौर० में **छेदीअन्ति** आया है (मृच्छ० ७१, ४) = **छेद्यन्ते** है , महा० में **तोसिज्जइ = तोष्यते** (हाल ५०८), **समत्थिज्जइ = समर्थ्यते** है (हाल ७३०), **कवलिज्जइ = कवलीक्रियते** है (गउड० १७२) तथा **पहामिज्जन्त = प्रभ्राम्यमाण** है (रावण० ७, ६९) , जै०महा० में **मारिज्जइ = मार्यते** है (एर्त्से० ५, ३४), **मारिज्जउ**

और मारिज्जामि भी मिलते हैं (एर्त्से० ५, २६ १२, २६) ; अ माग में आघ विज्जन्ति = आख्याप्यन्ते है (नन्दी ३९८ ; ४२७ ४२८ ४९१ ४९४ ; ४५६ ४६५ और उसके बाद), पिज्जइ = पीप्यते है (आयार० १, १ ५, ४) ; शौर में पवोधीआमि = प्रबोध्ये है (शकु० २९, ९), थावीआदि = स्थाप्यते है (मृच्छ ४१, ७ उत्तररा० ९७, १ ; मुद्रा २५, २ ; वेणी ३५, २०), संधारीअदु = संप्रधार्यताम् है (विक्र २२ १९), विण्णवीअदि = विज्ञाप्यते (विक्र १, २१), जीवावीअदि = जीव्यते (मृच्छ० १७६, ७), अवदारीअदु = अपतार्यताम् (कर्पूर २६, ९) और सुक्खवीअन्ति = शोष्यन्ते है (वास्तव में ०शुष्काप्यन्ते है मृच्छ० ७१, ४) ; अप० में ठवीजे = स्थाप्यते है (पिंगल २, ११ और १०१) । महा० में नामधातुओं में अपवाद मिलते हैं कज्जलइज्जइ आया है (रावण ५, ५) ; पल्हाइज्जइ मिलता है (गउड १ २८) कण्डइज्जन्त है (हाल ६७) तथा मण्डलइज्जन्त- पाया जाता है (गउड० १०१४) । कथय- के कर्मवाच्य के नियमित रूप हैं : महा० में कहिज्जइ है (हेच० ४, २४९), कहिज्जन्ति, कहिज्जउ और कहिज्जन्त- आये हैं (हाल) अ माग० में परिकहिज्जइ है (आयार १, २, ५, ५ १, ४, १, ३) शौरसेनी में कहिज्जदि रूप मिलता है (मृच्छ १०२ १५) ; माग में कधीयदु है (? ; ललित ५६६, ९) अप म कहिज्जइ (पिंगल १, ११७) और कहीजे (पिंगल २, ११ और १ १) पाये जाते हैं। इनके साथ साथ हेमचन्द्र ४, २४९ में कत्थइ रूप भी बताता है जो अ माग में पाया जाता है (आयार १, २, ६, ५) तथा ध्वनिपरिवर्तन के नियमों के अनुसार ०कथ्यइ होना चाहिए (§ २८०) । बहुत सम्भव है कि इन रूपों का सम्बन्ध कत्थ् से हो। अ माग में पकत्थइ (सूय० २१४) = ०प्रक थते है। आढप्पइ, आढवीअइ, विढप्पइ, विढविज्जइ और विढप्पीअदि के विषय में § २८६ देखिए।

§ ५४८—दूसरे गण की क्रियाओं में स या का कर्मवाच्य अप० में आइज्जइ है (हेच ४ ४१९, ३) ; माग में पत्तिआइअदि (§ ४८७) पाया जाता है। -उ और -ऊ में समाप्त होनेवाले धातुओं के विषय में § ५३६ देखिए। रुद् का शौर में रुदीअदि होता है (§ ४९६), स्वप् का महा में सुप्पउ = सुप्यताम् है (हाल) शौर में सुवीअदि पाया जाता है (कर्ण १८, २) । वच् का कर्म वाच्य वुच्चइ बनाया जाता है (हच ४, २११ ; § ३३७) । अ माग में वुच्चइ है (उत्तर० ३ विवाह १४ ; ३५ ; १८२ ; ९२८ ; कप्प ; ओव ; उवास० आदि आदि), वुच्चइ (उत्तर ३), पवुच्चइ (आयार १, १, ४, १ ; ५, १ ; ६ १ ; १, २ २, १ ; ६ २ और ४ ; १, ४ १, २ ; १, ५, १ १ ; विवाह० २ १ ; १७४ और उसके बाद ; ४ ९ ; ८४४ ; दस ९४४ और उसके बाद), पवुच्चइ (सूय १५१) ; वुच्चन्ति (सूय० ९७८ ; ९७९ ९ ४ और उसके बाद ; दस ६२०, ६२) और वुच्चमाण (सूय १११ ; विवाह १४९) रूप पाये जाते है। शौर में वुच्चामि (कर्पूर २२, ९) वुच्चदु (शकु० १२, ८), वुच्चदि

(मृच्छ० ७७, १२ , ७९, २ , ८७, १२ , १३८, २ और ३ , विद्ध० १२८, १ [पाठ में उच्चदि है] , बाल० ९६, १२ [पाठ मे उच्चदि है]) और वुच्चन्ति रूप आये है (मृच्छ० २९, ७) , माग० मे उच्चदि है (मृच्छ० ३६, ११)। — दुह् धातु का दुहिज्जइ के अतिरिक्त दुब्भइ रूप भी बताया गया है [इस दुब्भइ का मराठी में दुभणें धातु है। —अनु०] और लिह् का लिहिज्जइ के साथ साथ लिब्भइ भी मिलता है (हेच० ४, २४५ , क्रम० ४, ७९ , मार्क० पन्ना ६२ , इसी प्रकार वर० ८, ५९ में लिब्भइ पढा जाना चाहिए। इस ग्रन्थ में अन्यत्र दूसरे रूप भी देखिए)। इस विपय में § २६६ देखिए। जै०महा० मे दुज्झउ मिलता है (आव०-एर्से० ४३, ११) तथा भविष्यत्काल का रूप दुज्झिहिइ (आव०एर्से० ४३, २०) है, किन्तु उपर्युक्त दोनों रूप दुब्भउ और दुब्भिहिइ के अशुद्ध पाठान्तर हैं। § ५४१ में लज्झइ और वुज्झइ की तुलना कीजिए। महा० सीसइ तथा दाक्षि० सासिज्जइ के विषय मे § ४९९ देखिए और हन् से बने रूप हम्मइ तथा हणिज्जइ के बारे में § ५४० देखिए।

§ ५४५—दा का कर्मवाच्य, सस्कृत रूप दीयते के अनुसार महा०, जै०महा० और अप० मे दिज्जइ होता है (हाल , रावण० , एर्से० , हेच० ४, ४३८, १ , पिंगल १, १२१), महा० में दिज्जए भी पाया जाता है (हाल , कर्पूर० ७६, ७ , ८९, ९), अप० मे दीजे भी आया है (पिंगल २, १०२ और १०५), दिज्जउ (पिंगल २, १०६) कर्तृवाच्य के अर्थ में है तथा तृ० बहु० दिज्जइँ है (हेच० ४, ४२८ , पिंगल २, ५९ [यहा यही पाठ पढा जाना चाहिए]), जै०शौर० में दिज्जदि मिलता है (कत्तिगे० ४०१, ३४५) , शौर० में दीअदि आया है (मृच्छ० ५५, १६ , ७१, ६), अशुद्ध रूप दिज्जदि देखा जाता है (मृच्छ० ४९, ७ ; कर्पूर० ६१, ९), दिज्जन्तु (कर्पूर० ११३, ८), दिज्जन्दु (विद्ध० १२४, १४) और इनके साथ साथ शुद्ध रूप दीअदु भी मिलता है (कर्पूर० १०३, ७) , माग० में दीअदि और दीअदु पाये जाते हैं (मृच्छ० १४५, ५) , पै० में तिय्यते आया है (हेच० ४, ३१५)।— अ०माग० रूप अहिज्जइ = आधीयते (सूय० ६०३ , ६७४ और उसके बाद) तथा आहिज्जन्ति (आयार० २, १५, १५ , जीवा० १२ , कप्प०) धा धातु से सम्बन्धित हैं। टीकाकारों ने इनका अनुवाद आख्यायते और आख्यायन्ते किया है। हा का कर्मवाच्य शौर० में परिहीअसि (शकु० ५१, ५), परिहीअदि (मालती० २१२, ४) और परिहीअमाण मिलते हैं (कर्पूर० ७६, १)। हु धातु से सम्बन्धित हुव्वइ और हुणिज्जइ के विषय में § ५३६ देखिए। पाँचवें गण की धातुओं में से निम्नलिखित धातुओं के कर्मवाच्य के रूप दिये जाते हैं : चि के चिणिज्जइ तथा चिव्वइ होते हैं, अ०माग० में चिज्जन्ति मिलता है और शौर० में विचीअदु है (§ ५३६)। धु के धुणिज्जइ और धुव्वइ रूप पाये जाते है (५३६)। श्रु के रूप सुणिज्जइ और सुव्वइ हैं, जै०महा० में सुम्मउ आया है तथा शौर० में सुणीअदि मिलते हैं, माग० में शुणीअदि हो जाता है (§ ५३६)। अप् का शौर० पावीअदि होता है (विद्ध० ४२, २) तथा अप० में पाविअइ हैं (हेच० ४, ३६६)। शक् के

रूप शौर में सज्जीअदि (विद्ध० ८७, २ चैतन्य० ८४, ५ ८५, ११ १५८, १६) और माग में शज्जीअदि पाये जाते हैं (मृच्छ० ११६, ६)।

§ ५४६—छठवें गण के धातु अधिकांश में संस्कृत की ही भाँति कर्मवाच्य बनाते हैं, वर्तमान वर्ग से बहुत कम : महा में छिज्जइ, छिज्जन्ति और यों छिज्जइ आये हैं (रावण), जै महा और अप में छिज्जइ रूप है (एत्सें हेच० ४, ३५७, १ ४३४, १) शौर में छिज्जन्ति मिलता है (मृच्छ ४१, २), भविष्यत्काल का रूप छिज्जिस्सदि है (मृच्छ ३,१३)। — महा० और जै०महा में मज्जइ, मज्जन्ति और मज्जन्त– रूप मिलते हैं (गउड० ; रावण एत्सें०), महा में भविष्यत्काल का रूप मज्जिहिसि है (हाल २ २); माग में मज्यदि है तथा आज्ञावाचक विमज्य है (मृच्छ ११८, १२ और २१ § ५ ६ देखिए)। — महा में भिज्जइ, भिज्जन्ति और भिज्जन्त रूप मिलते हैं (गउड ; हाल ; रावण) अ माग में भिज्जइ (आयार १, १, १, २); भिज्जउ (विवाह १२३) और भिज्जमाण आये हैं (उवास § १८) ; शौर में उब्भिज्जउ (कर्पूर ८३, १) और उब्भिज्जन्ति हैं (विद्ध ७२, १ पाठ में उब्भिज्जन्ति है)। — महा में मुज्जन्त और उवभुज्जन्त हैं (गउड) जै महा में मुज्जइ आया है (एत्सें) ; अ माग में मुज्जई मिलता है (उत्तर १५४) किन्तु भुञ्जिज्जइ भी आया है (हेच , ४, २४९) ; जै महा में परिभुञ्जिज्जइ है (द्वार ५ , ११) ; शौर में भुञ्जीअदि पाया जाता है (शकु २९ ६)। — महा में जुज्जन्त– है (रावण) और इसका अर्थ है 'यह योग्य है ; यह जँचता है = संस्कृत युज्यते है महा में सदा जुज्जइ मिलता है (हाल १२४), जुज्जए है (हाल १२)· मैं शौर में जुज्जइ आया है (कत्तिगे ४ १, १८) शौर म जुज्जदि रूप पाया जाता है (मृच्छ ६१ १ ; ६५ १२ १४१, १; १५५, २१ शकु ७१, १ ; १२२ ११ ; १२९, १६ ; विक्र २४, १ ; १२, १७; ८२, १७ आदि-आदि), इसके विपरीत साधारण अर्थ में : शौर में णिउज्जीआमि और णिउज्जीअसि (कर्पूर १८ ३ और २), णिउञ्जमदि (मालती २२ ५ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए ; पेज १७२ देखिए]) पउञ्जीअदि (कर्पूर १९, ८) और पउञ्जीअदु रूप पाये जाते हैं (मृच्छ ९, ७)। जुप्पइ के सम्बन्ध में § २८६ देखिए। हेच ४ २४५ में रुध के रुम्भिज्जइ और रुम्भइ रूप बताता है तथा अनु, उप और सम् उपसर्गों के साथ (४, २४८) : अणु उव– और स– –रुम्भइ तथा –रुम्भिज्जइ रूप सिखाता है। महा रूप परिरुम्भइ का दूसरा उदाहरण नहीं मिलता (गउड ८१८) शौर में उवरुज्झदि मिलता है (विक्र० ८२, १५ नाटक में अन्यत्र दूसरा रूप देखिए बंबइया संस्करण में १११ १ की तुलना कीजिए)। महा में रुम्भइ, रुम्भन्त– तथा रुम्भमाण (रावण) और जै महा में रुम्भइ (आव एत्सें ४१ १) रुम् के कर्मवाच्य के रूप हैं (§ ५ ७)।

§ ५४७—महा और जै महा में कृ का रूप साधारणतः कीरइ होता है (वर ८, ६० ; हेच ४, २५ ; क्रम० ४, ७१ ; मार्क पन्ना ६२ ; सिंहराज

पन्ना ५४) अर्थात् यह ह्व के रूप की भाँति है जो ऋ में समाप्त होनेवाली क्रियाओं के अनुकरण पर बनाया गया है (§ ५३७)। इस प्रकार महा० में **कीरइ, कीरए, कीरन्ति, कीरउ** और **कीरन्त-** रूप मिलते हैं (गउड० , हाल , रावण०) , जै०-महा० में **कीरइ** (एर्त्से० , आव०एर्त्से० ९, २३ , १३, २६ , द्वार० ४९७, ७), **कीरउ** (कालका० २६९, ३७ ; यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) , जै०शौर० में **कीरदि** है (कत्तिगे० ३९९, ३२० , ४०१, ३५०)। अ०माग० में भी कभी-कभी यही रूप आया है (विवाह० १३५ और ७९६ , ओव० § ११६ , १२७ और १२८), **कीरमाण** (दस० ६२९, ५) तथा **कीरन्त-** (पद्य में , आयार० १, ८, ४, ८) पाये जाते हैं , हेच० ने ४, ३१६ में **कीरते** रूप में इसे पै० बताया है और राजशेखर ने इसका व्यवहार किया है (उदाहरणार्थ, बाल० १७६, १६ (**कीरदि**) , २२४, १७ (**कीरउ**) , २२८, ८ (**कीरइ**), कर्पूर० बबइया सस्करण २२, ४ (**कीरदि**) और बाद के कवियों मे ये रूप मिलते हैं जैसे, बिल्हण, कर्णसुन्दरी ५२, १६ मे **कीरदि** आया है, शौर० मे भी यह रूप काम में आता है जो सम्भवत. सस्करणों की भूलें हैं जैसे कि कोनो द्वारा सम्पादित कर्पूर० २२, ४ में (पेज १९, ७) शुद्ध रूप **करीअदि** आया है। हेच० ४, २५० में **करिज्जइ** का उल्लेख करता है और इस प्रकार अप० में **करीजे** (पिंगल २, ९३ , १०१ , १०२ और १०५) और **करिज्जसु** रूप मिलते हैं (पिंगल १, ३९ , ४१ ,९५ , १४४ , २, ११९)। हेच० १, ९७ में इसके अतिरिक्त **दुहाकिज्जइ** और **दोहकिज्जइ** में **किज्जइ** = **क्रियते** रूप पाया जाता है तथा हेच० ४, २७४ के अनुसार **किज्जदि** और **किज्जदे** रूप शौर० में काम में लाये जाने चाहिए। इस प्रकार शौर० में ललितविग्रहराज नाटक ५६२, २४ में **किज्जदु** पाया जाता है अन्यथा यह किसी ग्रन्थ में नहीं दिखाई देता। **किज्जइ** महा० में आया है (रावण० १३, १६) और अप० में यही साधारण तौर पर चलता है : भविष्यत्काल कर्तृवाच्य के रूप में (§ ५५०) **किज्जउँ** मिलता है (हेच० ४, ३३८ , ४४५, ३), **किज्जउ** आया है (पिंगल १, ८१ अ) जो कर्तृवाच्य में है और **किज्जहिं** है (यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए , पाठ में **किज्जही** आया है [यह रूप पद्य में है इसलिए छन्द की मात्रा ठीक करने के लिए दीर्घ कर दिया गया है। —अनु०] = **क्रियन्ते** है (पिंगल २, ५९)। अप० **किज्जसु** और **करिज्जसु** के विषय में § ४६१ तथा ४६६ देखिए। अ०माग० गद्य में **कज्जइ** = ***कार्यते** (आयार० १, २, १ ४ , १, २, २, ३ , ५, १ , सूय० ६५६ , ७०४ , ८३८ और उसके बाद , ठाणग० २९१ , विवाह० ५२ , ९९, १३६ , १३७ ; १८२, ३४६ , ४४४ , १४०६ , पण्णव० ६३६ और उसके बाद) का एकच्छत्र राज्य है। **कज्जन्ति** आया है (आयार० १, २, ५, १ , विवाह० ४७ , ५० , ५२ , १३०२ , ओव० § १२३ और १२५), **कज्जमाण** (सूय० ३६८ , विवाह० ८४०), **दुहा-कज्जमाण** और **तिहाकज्जमाण** (विवाह० १४१) भी पाये जाते हैं। शौर० में बिना अपवाद के **करीअदि** काम में लाया जाता है (मृच्छ० १८, ११ , ६९, १० , शकु० १९, ६), **अलंकरीअदि** (शकु० १९, ५); **करीअन्ति** (शकु० ७७, ४ ;

रत्ना० २९३, २१) और करीअदु (शकु ५४, १ ; १६८, १५ कर्पूर० २२, ९ ; २६, १ ; ६१, ६ ९८, २ ; १११, ८ ; विद्ध० ११, ५) रूप पाये जाते हैं ; माग० में यह करीअदि हो जाता है (मुद्रा० १५४, ४ ; १७८, ७) और करीअदु भी मिलता है (मृच्छ १९, २१ १६, ६) ।

§ ५४८—हेमचन्द्र ४, २५२ के अनुसार ज्ञा के रूप णज्जइ, णाइज्जइ, जाणि जइ और णव्वइ बनते हैं ; क्रमदीश्वर ४ ८१ के अनुसार जाणीअइ, जाणी अइ, णज्जीअइ, णव्वीअइ, णज्जइ और णव्वइ होते हैं । इनमें से णज्जइ = ज्ञायते है जो महा में (गउड० ; हाल रावण०), जै महा में (एर्से) और अ माग में (उवास ; निरया) साधारणतः व्यवहार में आनेवाला रूप है (जै महा और अ माग में नज्जइ है) । शौर० में जाणीअदि पाया जाता है (रत्ना १ ०, ८ ११८, १२ नागा ४५, १ ७७, १० कर्पूर १८, २ ; विद्ध० ११९, ४), जाणीअदु आया है (नागा ८४, ५) तथा ण (= नहीं) के अनन्तर आणीअदि पाया जाता है (§ १७ ; मृच्छ ७४, ० ८८, २५ मालती० २८५, ५ नागा० १८, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) इसके अनुसार ही अप० में जाणी अइ मिलता है (हेम ४, ३३०, ४) । णव्वइ के स्थान में त्रिविक्रम १ ४, ८४ और सिंहराजगणिन् पन्ना ५६ में णप्पइ रूप दिया गया है जो आढप्पइ तथा विढप्पइ से समान्वित है अर्थात् = प्राप्यते है । इसके अनुसार प्रेरणार्थक क्रियाओं में से जैसे शौर० के आणवेदि और विण्णवेदि से एक मूलधातु ०णवइ का आविष्कार हुआ जिसका नियमित कर्मवाच्य का रूप णव्वइ है । — शौर में क्री के रूप विक्किणीअदि (कर्पूर १४, ५) और विक्किणीअन्ति पाये जाते हैं (मुद्रा० १०८, १ [यहाँ यही रूप पढ़ा जाना चाहिए]) ; पू के रूप पुव्वइ और पुणिज्जइ हैं ; अप० में पुणिज्जइ मिलता है लू के रूप लुव्वइ तथा लुणिज्जइ हैं (§ ५३६) ; ग्रन्थ् का शौर में गन्धीअन्ति पाया जाता है (मृच्छ० ७१, ३ [पाठ में गन्थीअन्ति है]) । ग्रह् के कर्मवाच्य गेण्हिज्जइ (हेम० ४, २५६ ; क्रम ४ ८२) और गहिज्जइ रूप हैं (सिंहराज पन्ना ५६) ; शौर में अणुगाहीअदु आया है (विक्र० ११, १) । महा जै महा अ माग० और अप में इसके स्थान में घेप्पइ = घर्प्यते है और जिसे भारतीय व्याकरणकार (हेम ४, २५६ ; क्रम ४, ८२ मार्क० पन्ना ११ ; सिंहराज पन्ना ५६) तथा यूरोप के विद्वान् ग्रह् से निकला बताते हैं, किन्तु जो वास्तव में इसके समान दूसरे धातु ०घृप् से समन्वित है (§ २१२) । इसके महा में घेप्पइ घेप्पए, घेप्पन्त और घेप्पन्त- रूप मिलते हैं (गउड० ; हाल रावण ; आनन्दोध्दार ६६, ४ में आनन्दवर्धन ; ध्वन्यालोक, साहित्यदर्पण १७८, ३) ; जै महा में घेप्पइ (काल्का २७१ १७) और घेप्पन्ति आये हैं (एर्से ६७ ११ आव एर्से ३६ ४२) ; अ माग में घेप्पिज्जा है (पण्हा ४ ०) ; अप में घेप्पइ (हेम ४ ३४१ १) तथा घेप्पन्ति पाये जाते हैं (हेम ४, ३३५) । इस रूप का शौर० में प्रयुक्त प्रयोग भी मिलते हैं (मल्लिका १ १, ९ ; १४४, ८) । अ माग रूप में गरुइ = गृह्य मिलता है (हेम नि ६६६, ५

और ६)। क्रमदीश्वर ने ४, ८२ में **घेप्पिज्जइ** भी दिया है। — **वन्ध्** का रूप **वज्झइ** बनता है =**वध्यते** है (हेच० ४, २४७), अ०माग० में **वज्झई** आया है (उत्तर० २४५), जै०शौर० में **वज्झदि** है (पव० ३८४, ४७), शौर० में **वज्झन्ति** मिलता है (मृच्छ० ७१, २), हेमचन्द्र में **वन्धिज्जइ** भी है। — नवें गण के अनुसार वर्तमान वर्ग से बननेवाले **भण्** धातु का (§ ५१४) कर्मवाच्य महा० में **भण्णइ** = **भण्यते** है (हेच० ४, २४९ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], क्रम० ४, १३ ; हाल, रावण०), **भण्णउ** (गउड० , रावण० , शकु० १०१, १६), **भण्णमाण** (हाल), **भण्णन्त-** (रावण०), **भणिज्जइ** (हेच० ४, २४९) और **भणिज्जउ** रूप आये हैं (हाल), अप० में **भणीजे** मिलता है (पिगल २, १०१), सम्भवतः **भणिज्जसु** भी है (पिंगल १, १०९ , § ४६१ की तुलना कीजिए), जै०महा० मे **भण्णइ** है (एर्त्से० , कालका०), शौर० में **भणीअदि** पाया जाता है (मृच्छ० १५१, १२ , प्रबोध० ३९, ३)। शौर० में **भणिज्जन्ती** (प्रबोध० ४२, ५ , पै० में **भणिज्जन्ती** और महा० में **भणिज्जमाण**) अशुद्ध है। इसके स्थान में **भणीअन्ती** आना चाहिए जैसा कि बम्बइया सस्करण ९३, ४ में दिया गया है (पाठ भूल से **भणिअन्ती** छपा है)।

१ एस० गौल्दश्मित्त त्सा०डे०डौ०मौ०गे० २९, ४९१ मे सौ सैकड़ा अशुद्ध है , याकोवी, कू०त्सा० २८, २५५ और योहान्सोन कू०त्सा० ३२, ४४९ और उसके बाद।

§ ५४९—अ०माग० में कर्मवाच्य से सम्बन्धित एक भूतकाल पाया जाता है : **मुच्चिसु** आया है (सूय० ७९०) और प्रायः सभी प्राकृत बोलियों में एक भविष्यत्-काल है जो ठीक इसी प्रकार कर्मवाच्य के वर्ग से बनाया जाता है जैसे, परस्मैपद के वर्तमानकाल के वर्ग से परस्मैपदी भविष्यत्काल बताया जाता है। इस नियम से . महा० में पहले गण के **कल्** का रूप **कलिज्जिहिसि** (हाल २२५ और ३१३), **खद्** का **खज्जिहिइ** (हाल १३८), **दह्** का **डज्जिहिसि** (हाल १०५) और **डज्जिहिइ** (हेच० ४, २४६) और **दीसिहिइ** (हाल ६१९ , रावण० ३, ३३ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए]) और **धरिज्जिहिइ** (हाल ७७८) रूप आये हैं, जै०महा० में **उज्झिहिइ** (आव०एर्त्से० ३२, २५) तथा **खन्** से निकला **खम्मिहिइ** पाये जाते हैं (हेच० ४, २४४)। — अ०माग० में छठे गण में **मुच्चिहिइ** है (ओव० § ११६ , नायाध० ३९० [पाठ में **मुच्चिहिंति** है], विवाह० १७५), **मुच्चिस्सन्ति** भी आया है (आयार० २, १५, १६), किन्तु साथ ही **पमोॅक्खसि** = **प्रमोक्ष्यसे** है (आयार० १, ३, १, २ , १, ३, २४), शौर० में **मुच्चिस्सदि** मिलता है (शकु० १३८, १ , विक्र० ७७, १६ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए]), अ०माग० में **उवलिप्पिहिइ** पाया जाता है (ओव० § ११२)। जै०-महा० में चौथे गण के **खुट्टइ** (हेच० ४, ११६) का **खोॅट्टिज्जिहिइ** हो जाता है (आव०एर्त्से० ३२, २)। प्रेरणार्थक तथा नामधातु दसवें गण के रूप अ०माग० में **मारिज्जिस्सामि** आया है (उवास० § २५६), जै०महा० में **छिद्रय** का **छिड्डि-**

ज्झिहिइ होता है (आव एत्सें ११, २), घायाइज्झिस्सइ भी मिलता है (एत्सें ४१, २२)। दूसरे गण के धातुओं में हन् का हम्मिहिइ मिलता है (हेच० ४, २४४ § ५४ ५५ और ५४७ की तुलना कीजिए) अ माग में पडिहम्मिहिइ रूप आया है (नायाध § १) दुम्मिहिइ है (हेच ४, २४५) तथा जै महा० में दुम्मिहिइ पाया जाता है (आव एत्सें ४२, २ किन्तु § ५४४ की तुलना कीजिए)। — पाँचवें गण के धातुओं में चि के चिम्मिहिइ और चिम्मिहिइ रूप मिलते हैं (हेच ४, २४२ और २४१ § ५३६ की तुलना कीजिए) महा में छि का छिज्जिहिसि होता है (हाल १५१ और १२८); महा० में समप्पिहिइ भी देखा जाता है (हाल ७३४ और ८ ६ रावण० ५, ४)। — सातवें गण में महा में भञ्ज् का भज्जिहिसि मिलता है (हाल २ २) अ माग में छिद् का वो च्छिज्जिहिन्ति रूप आया है, व्युद् साथ में है (सूय १ ११ [यह व्युद् = वि + उद् उपसर्गों के हैं। —अनु]), समुच्छिज्जिहिन्ति के स्थान में छन्द की मात्राएं ठीक करने के लिए समुच्छिहिसि आया है (सूय ८६९); शौर में छिज्जिस्सदि मिलता है (मृच्छ० १ १६) शौर में भहिउज्जदि है जो अभि उपसर्ग के साथ युज् से बना है (उत्तररा ९९, ६) संरुज्झिहिइ भी आया है (हेच ८, २४८)। — आठवें गण के अ माग में कज्जिस्सइ (विवाह ४१२) और जै महा में कीरिहिइ रूप पाये जाते हैं (आव एत्सें १६, ९)। — नवें गण के घज्झिहिइ (हेच ४, २४७) और शौर में बज्झिस्सामो रूप बन्ध् से सम्बन्धित हैं (मृच्छ १ ९, ११ § ४८८, नाटकसंख्या ४ देखिए) जै०महा में *घुप् का रूप घो प्पिहिइ (आव एत्सें० ७, ५)।

§ ५५ —कर्मवाच्य कभी-कभी परस्मैपद के अर्थ में काम में लाया जाता है। ऐसी क्रियाओं को वेबर ने लैटिन के 'देपोनेन्तिआ' से समानता दी है'। इस प्रकार : महा में गम्मिहिसि आया है (हाल ६), गम्मसु अनिश्चित है (हाल ८१९) सम्भवतः यह प्रेरणार्थक रूप में काम में लाया गया है महा में गसि ज्जिहिइ आया है (हाल ८ ४) महा में दीसिहिसि भी है (रावण १५ ८६) किंतु इस स्थान में हस्तलिपि (C) में दक्खिहिसि पढ़ता दच्छिहिसि है (§ ५२५); महा में पिज्जइ आया है (हेच ४ १   हाल ६७८); महा में भण्णिहिसि मिलता है (हाल १ २) हम्मइ = हन्ति है (वर ८ ४५ ; हेच ४, २४४; क्रम ४ ४६ ; मार्क पन्ना ५७ ; सिंहराज पन्ना ५६ ; § ५४ की तुलना कीजिए)। आत्मनेपद की वर्तमानकालिक अंशक्रिया का रूप अ माग में विहम्ममाण रूप आया है (उत्तर ७८७); अ माग में भविष्यत्काल हम्मिहन्ति है (ठाणंग ५१२) अ माग में उम्मिही पाया जाता है (दस ६२४ १४); अप में विज्जिउ और किज्जउ रूप मिलते हैं (§ ५४५ ; ५८७ § ४६१ और ४६६ की तुलना कीजिए)। भविष्यत्काल मुख्यतया कर्तृवाच्य के अर्थ में काम में लाया जाता है। इसमें बहुधा पद्य में छन्द की मात्राएं ठीक करने के लिए भी इसका प्रयोग किया गया होगा। यह तथ्य बहुत मनहर है कि माग और अप में कर्मवाच्य का वर्तमानकाल कभी

कभी परस्मैपद के भविष्यत्काल के काम में लाया जाता है अर्थात् 'मैं बनाऊँगा' के स्थान में 'मैं बनाया जाऊँगा' बोला जाता है। मार्कण्डेय पन्ना ७५ में बताया गया है कि माग० में परस्मैपदी भविष्यत्काल के रूप **भविस्सदि** और **भुवीअदि** हैं। इस प्रकार माग० मे **भुवीअदि** (मृच्छ० १६४, १०) और **हुवीअदि** (वेणी० ३३, ६ और ७, ३५, ८) का अर्थ 'वह होगा' है, **वावादीअशि** का अर्थ है 'तुझे मारना चाहिए' (मृच्छ० १६७, २५), **पिवाशीअशि** (यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए, वेणी० ३४, ६) का अर्थ 'कि तुझे प्यासा रहना चाहिए' है, अप० में **किज्जउँ** का अर्थ है 'मैं बनाऊँगा' (हेच० ४, ३३८, ४४५, ३)।

१ वेबर, हाल, पेज ६४, किन्तु इस स्थान में सभी उदाहरण अशुद्ध हैं। इसी भांति एस० गौल्दश्मित्त, त्सा० डे० डौ० मौ० गे० २९, ४९२ में **समप्पिहिइ** और **दीसिहिसि** को छोड़ और रावणवहो १५, ८६ पेज ३२५ में नोटसंख्या १० के सब उदाहरण अशुद्ध हैं। — २ हाल ६०९ में वेबर की टीका।

§ ५५१—प्रेरणार्थक संस्कृत की भाँति ही प्रेरणार्थक वर्धित धातु (= वृद्धिवाला रूप) में **-ए-** = संस्कृत **-अय** के आगमन से बनता है : **कारेइ = कारयति** है और **पाढेइ = पाठयति, उवसामेइ = उपशामयति** और **हासेइ = हासयति** हैं (वर० ७, २६, हेच० ३, १४९, क्रम० ४, ४४, सिंहराज० पन्ना ५५)। § ४९० की तुलना कीजिए। **-आ** में समाप्त होनेवाले धातुओं में **-वे-** = संस्कृत **-पय** का आगमन होता है. महा० में **णिव्वावेन्ति = निर्वापयन्ति** है (गउड० ५२४, [इसका प्रचलन कुमाउनी में है। —अनु०]), शौर० में **णिव्ववेदि** है (मालती० २१७, ५), भविष्यत्काल में **णिव्वावइस्सं** मिलता है (मालती० २६६, १), कर्मवाच्य में भूतकालिक अंशक्रिया का रूप **णिव्वाविद** है (मृच्छ० १६, ९), अ०माग० में **आघावेइ = आख्यापयति** है (ठाणग० ५६९), माग० में **पत्तिआवइश्शं** मिलता है (मृच्छ० १३९, १२)। यह **प्रति** उपसर्ग के साथ **या** धातु से बना है (§ २८१ और ४८७), पल्लवदानपत्र में **अणुवट्ठावेति = अनुप्रस्थापयति** है (७, ४५), अ०माग० मे **ठावेइ = स्थापयति** है (निरया० § ४, कप्प० § ११६), जै०महा० में **ठावेमि** आया है (एर्त्से० ४३, ३२), शौर० में **समवत्थावेमि = समवस्थापयामि** (विक्र० २७, ६) और **पज्जवत्थावेहि = पर्यवस्थापय** है (विक्र० ७, १७), **पट्ठाविअ** (कृदन्त, मृच्छ० २४, २) और **पडिट्ठावेहि** मिलते हैं (रत्ना० २९५, २६), माग० में **स्तावेमि, स्ताविअ** (कृदन्त), **स्तावइश्शं** (मृच्छ० ९७, ५, १२२, ११, १३२, २०, १३९, २) और **पस्टाविअ** (कृदन्त, मृच्छ० २१, १२) पाये जाते हैं, अप० में **पट्ठाविअइ** रूप है (कर्मवाच्य, हेच० ४, ४२२, ७), अ०माग० में **ण्हावेह = स्नापयत** है (विवाह० १२६१)। **ज्ञा** का प्रेरणार्थक रूप वर्तमानकाल के वर्ग से निकला है. जै०महा० मे **जाणावेइ** (हेच० ३, १४९, एर्त्से०) और **जाणाविय, जाणाविउ** (कालका०) रूप मिलते हैं, महा० में **जाणावेउं** (हाल) आया है। उपसर्गों के साथ ये रूप ठीक संस्कृत की भाँति धातुओं के स्वर ह्रस्व करके बनाये जाते हैं. अ०माग० और जै०महा० में **आणवेइ** आया है

(निरया० कप्प ; एर्त्से) अ०माग० में आणवेमाण (सूय० ७३४) और पण्णवेमाण रूप मिलते हैं (ओव० § ७८) शौर० में आणवेसि (मृच्छ० ९४, ९), आणवेदि (अख्वि० ५६१, २१ और २९ ५६४, २१; ५६८, ११ मृच्छ० ४ ११ ७, १ १६, २ तथा बार-बार यह रूप मिलता है) और आणवेदु पाये जाते हैं (मृच्छ० १, ७ ; शकु० १, ८ ; नागा० २, १६ आदि-आदि), किन्तु आणा विदव्वं (मृच्छ० ५८, १३) आया है और इसके साथ साथ विण्णइदव्वा भी मिलता है (५८ १२), इसलिए इनके स्थानों में गोडबोले १६७, ८ के अनुसार आणविदव्वं और विण्णवेमि (मृच्छ० ७८, १) रूप पढ़े जाने चाहिए, विण्णवेदि (मृच्छ० ७४, ६ ९६, ५ शकु० ११८ १ विक्र० १२, ११ आदि-आदि), विण्णवेमो (यहाँ § ४५५ के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए शकु० २७, ७), विण्णवेहि (मृच्छ० २७, १४ ७४, २१, विक्र० १६, २ , मालती २१८, १), विण्णविस्सं विण्णइदव्वा (मृच्छ० ५८, ११ और १२)। विण्णविदं (यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए विक्र० ४८ ८) और विण्णवीअदि रूप पाये जाते हैं (विक्र० १ , २१) माग० में आणवेदि (शकु० ११४, १) और विण्णाविम आये हैं (कृष्णदा; मृच्छ० १३८,२५ १३९,१)। महा०, जै०महा० और अ०माग० में ष्ठा की भाँति ही अन्य धातु भी, जो –आ– में समाप्त होते हैं, अपने स्वर ह्रस्व कर देते हैं। इस प्रकार यहाँ पर बहुधा अपना स्वर ह्रस्व करनेवाला धातु स्था लीजिए : महा०, जै०महा० और अ०माग० में ठवेइ रूप मिलता है (गउड० हाल ; रावण० ; एर्त्से० काल्का उवास ; कप्प० आदि आदि ; हेच० १, ६७ की तुलना कीजिए) महा० में ठवि ज्जन्ति (गउड० ९९५), उट्ठवेसि (हाल १) और संठवहि रूप मिलते हैं (गउड० ९९७) ; अ०माग० में उवट्ठवेइ (नायाध० § ११) आया है अप० में ठवेइ है (पिंगल० १ ८७ ; १२५ और १४५)। — महा० में णिम्मवेसि = निर्मापयसि है (गउड० २९७) अ०माग० में आघवेमाण = आख्यापयमान (ओव० § ७८) आघविय = आख्यापित (पण्हा० ३७६ ४११ ; ४६१) और आघ विज्जन्ति = आख्याप्यन्ते हैं (नन्दी० ११८ ; ४२७ ; ४२८ ; ४५१ ; ४५४ ; ४५१ ४६५ और उसके बाद) सामान्यक्रिया का रूप आघविप्तए है (नायाध० § १४३)। –इ और –ई में समाप्त होनेवाला कई धातुओं के रूप भी संस्कृत की भाँति बनाये जाते हैं : शौर० कर्मवाच्य जआवीअसि = जाप्यसे है (शकु० ११ ११) अ०माग० में ऊसवेइ आया है (विवाह० ९५७), उस्सवेह (कप्प० § १) = उच्छ्रापयत है ; शौर० में भाआवेसि से भी सम्बन्धित है (§ ५ १ ; मृच्छ० ९१, १९)। अ० माग० में किणावइ (ठाणंग० ५१६), किणावए (आयार० १ २, ५, १) तथा किणावेमाण क्री के रूप हैं और वर्तमानकाल के वर्ग से बने हैं ; शौर० में चिचिण्णा वदि (यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए ; मुद्रा० ५४ १) चि से सम्बन्धित है ; अ० माग० में अल्लियावेइ (नायाध० ४१४) मिलता है जो ली का रूप है।

§ ५५२— –वे– अथवा = संस्कृत –पय– प्राकृत बोलियों में प्रेरणार्थक रूप बनाने के काम में –आ, –इ और –ई में समाप्त होनेवाले धातुओं के अतिरिक्त अन्य

धातुओं के लिए भी प्रयुक्त होता है जिनके अन्त मे दूसरे स्वर, द्विस्वर और व्यजन आते हों। इसका आगमन **-अ** मे समाप्त होनेवाले धातुओ के वर्तमानकाल के वर्ग में नियमित रूप से होता है, जो दीर्घ कर दिया जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि इस प्रक्रिया में **-आ** मे समाप्त होनेवाले धातुओं के अनुकरण ने भी कुछ सहायता पहुँचायी होगी। **-ए-=-अय-** से बननेवाले प्रेरणार्थकों से ये अल्पतर हैं। इस नियम से : **हसावेइ** (वर० ७, २६, हेच० ३, १४९, सिंहराज० पन्ना ५५), **हसाविय** रूप (हेच० ३, १५२) आये हैं, महा० में **हसाविअ** रूप भी पाया जाता है (हेच० ३, १५२= हाल १२३), अ०माग० में **पच्** धातु से **पयावेमाण** बनाया गया है (सूय० ६०९), महा० में **रमावेॅन्ति** और **सहावेॅन्ति** आये हे (हाल ३२५ और ३२७), आव० में **क्लृप** का **कप्पावेमि** रूप है (मृच्छ० १०५, ३), शौर० मे **घडावेहि** है (मृच्छ० ९५, २१), महा० में **विहडाविअ** आया है जो **घट्** से बना है (गउड० ८), शौर० में **जीवावेहि** (उत्तररा० ६३, १४), **जीआवेसु** (विद्ध० ८४, ४), **जीवावेदु** (मृच्छ० ३२६, ३), **जीवावीअदि** (मृच्छ० १७६, ६), **जीवाविअ** (कृदन्त, मालती० २१५, १) और **जीवाविदा** (मृच्छ० १७३, ४, १७७, १६) रूप पाये जाते हैं, माग० में **यीवाविदा** मिलता है (मृच्छ० १७१, १४), अ०माग० में **दलावेइ** (विवाग० १६८) आया है, अ०माग० मे **समारम्भावेइ** (आयार० १, १, २, ३, १, १, ३, ५) और **समारम्भावेज्जा** मिलते है (आयार १, १, २ ६, १, १, ३, ८), शौर० मे **नि णिवत्तावेमि** देखा जाता है (मृच्छ० ७७, १५), माग० में **पलिवत्तावेहि** चलता है (मृच्छ० ८१, १७ और १९), शौर० में **वड्ढावेमि** काम में आता है (कर्ण० २१, ८), शौर० मे **धोवावेदि** भी है (मृच्छ० ४५, ९), जै०महा० में **अभि** और **उप** उपसर्गों के साथ **गम्** से निकला रूप **अब्भुवगच्छाविअ** पाया जाता है (आव०एर्त्से० ३०, ९), अ०माग० मे **पा** से बना **पियावए** है (=पीना : दस० ६३८,२६)। अ०माग० में **निच्छुभावेइ** आया है (नायाध० ८२३, ८२४, १३१३) जिसका सम्बन्ध **निच्छुभइ** से है और जो **नि** उपसर्ग के साथ **क्षुभ्** धातु से निकला है (नायाध० १४११, विवाह० ११४, पण्णव० ८२७, ८३२, ८३४), शौर० में **इष्** धातु का **प्रति** उपसर्ग के साथ **पडिच्छावीअदि** रूप आया है (मृच्छ० ६९, १२), शौर० में **प्रच्छ्** का रूप **पुच्छावेदि** है (विद्ध० ४२, ४), जै०महा० में **मेलवेहिसि** आया है (आव०एर्त्से० ३०, ८, शौर० में **मोआवेमि** और **मोआवेहि** हैं (शकु० २७, ११, २४ [१ —अनु०], २), महा० मे **मोआविअ** पाया जाता है, ये रूप **मुच्** के हैं, माग० में **लिख्** से बना **लिहावेमि** मिलता है (मृच्छ० १३३, १)। — शौर० में **लोहावेदि** भी है (शकु० ६१, ३)। — अ०माग० में **वेढेइ** § ३०४ और ४८० से सम्बन्धित **वेढावेइ** रूप है (विवाग० १७०)। — महा० में **रुआवेइ**, **रुआविअ** और **रोआविअ** रूप मिलते हैं (हाल), शौर० में **रोदाविद** हो जाता है। उक्त दोनों बोलियों के रूप **रुद्** के हैं (मृच्छ० २१, १)। — **दा** का जै०महा० एक दुहरा रूप है **दवावइ** जिसका अर्थ 'अवसर देना' होता है (एर्त्से०)। शौर० में **शुणाविदा** आया है (मालवि० ३१, ८)। — अ०-

माग में छिन्दावए है (दस ६१८, १) । — करावेइ, करावित्र और कारावेइ रूप पाये जाते हैं (वर ७, २७ हेच ३, १४९ १५२ १५३ क्रम० ४, ४४) अ माग० में कारवेमि है (उवास § १३ ; १४ और १५), कारवेइ भी आया है (कप्प० § ५७ और १) ; जै०महा० में कारवेइ (एर्से ३ , ७) और कारावियं मिलते हैं (एर्से०) । जै०महा में गेण्हावेमि भी देखने में आता है (आव एर्से २४, १९) ।

§ ५५३ — -य के स्थान में कुछ प्राकृत बोलियों में -वे पाया जाता है, विशेषत अप में, जिसमें कभी-कभी -आ -था आते हैं । इन अवसरों पर नामधातुओं की भाँति रूप बनते हैं अथवा इनकी रूपावली उन धातुओं की भाँति बनती है जो मूल में ही सक्षिप्त कर दिये गये हों और जिनमें द्वित्व से पहले नियमित रूप से स्वर ह्रस्व कर दिये गये हों । इस प्रकार यह रूप निकला (§ ४९१) । इस प्रकार हसावइ है (हेच ३, १४९ ; सिंहराज पन्ना ५५) पडावइ आया है (हेच ४, १४) और उग्घावइ मिलता है (हेच० ४, ३३), इसके साथ-साथ शौर में पडावेहि पाया जाता है (मृच्छ ९५, २१) विप्पगालइ = विप्रगालयति है (हेच० ८, ३१) ; उद्दालइ = उद्दालयति है (हेच ४, १२५) पाडइ = पातयति है (हेच ३, १५३) । इस रूप के साथ-साथ महा में पाडेइ भी देखा जाता है (रावण ४ ५), माग में पाडेमि मिलता है (मृच्छ १६२, २१) भ्रम् का भमावइ रूप है (हेच ३, १५१) अप में उत्तारहि है (विक्र ६९, २) तथा इसके साथ-साथ शौर में ओदारदि (उत्तररा १६९, १) और पदारदि (यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए प्रबोध १९ १) पाये जाते हैं जै०महा० और अप में मारइ रूप है (हेच ३ १५३ एर्से० ५,३२ हेच ४, ३३ ,१) और इसके साथ-साथ महा में मारेसि, मारेहिसि (हाल) और मारेइ रूप मिलते हैं (मुद्रा १८, २) शौर में मारेध (मृच्छ १६१, १६ १६५, २५) माग० में मालेमि (मृच्छ० १२, ५ १२३, ३), मालेहि (मृच्छ १२३, ५ ; १२४, २ और १७ ; १६५, २८), मालेदु (मृच्छ १६५, ८) और मालेध रूप पाये जाते हैं (मृच्छ १६५ २१ १६६, १ १६८ ८ ; १७१ १८) माग में मालम्हे के स्थान में (मृच्छ १२३, २२) मालेम्हे पढ़ा जाना चाहिए ; अप में मारइ आया है (हेच ४, ३३७), हारावइ भी है (हेच० ४ ३१) अप में पाडइ मिलता है (पिंगल १ ५ अ), इसके साथ साथ आव में पाडहि देखा जाता है (मृच्छ १ १८) माग में पाडदि हो जाता है (मृच्छ १२२, १५) ; मिल् (§ ४८६) का मेलवइ रूप पाया जाता है (हेच ४, २८) । इसके साथ साथ जै महा में मेलवेहिसि आया है (§ ५२८) ; नश् धातु के नासवइ और नासइ रूप मिलते हैं अ माग में पेडवन्ति (पण्णव ७८६ और उसके बाद) आया है पयन्ति = पतयन्ति है (जीवा २८९ और उसके बाद) ; निम्मवइ = निमापयति है (हेच ४ १९) इसके साथ साथ महा में णिम्मवसि है (गउड० २९७) ; धा के (§ २८६ और) रूप माढयइ और विढयइ मिलते हैं ;

महा० में **ठवइ** (गउड० ९८०) और **संठन्ती** मिलते हैं (हाल ३९), **पट्ठवइ** और **पट्ठावइ** भी है (हेच० ४, ३७), अप० में **परिठवहु** और **संठवहु** मिलते है (पिंगल १, १० और ८५), इनके साथ साथ **ठावेइ** तथा **ठवेइ** रूप भी चलते है (§ ५५१), **करावइ** देखा जाता है (हेच० ३, १४९), **विण्णवइ** आया है (हेच० ४, ३८), इसके साथ साथ शौर० मे **विण्णवेदि** देखने में आता है (§ ५५१), **लू** धातु का **प्र** उपसर्ग के साथ **पलावइ** रूप मिलता है (हेच० ४, ३१) ।

§ ५५४—हेमचन्द्र ४, ३२ मे बताता है कि **दृश्** धातु के प्रेरणार्थक रूप **दावइ, दंसइ, दक्खवइ** और **दरिसइ** होते है । इनमें से **दावइ** (सिंहराज० पन्ना ५७ मे भी) पाया जाता है , महा० मे **दावन्तेण** आया है (हाल) । **–ए** –वाले रूप इससे अधिक चलते है : महा० मे **दावेमि** है (रत्ना० ३२२, ५ , **तं ते दावेमि** धनिक ने दशरूप ४२, ६ की टीका में दिया है जो छपे संस्करणों में **तं तं दंसेमि** छपा है), **दावेइ, दावे`न्ति, दावए, दावेह, दावे`न्ती** और **दाविअ** रूप मिलते हैं (हाल , रावण०), **दाविज्जउ** (रत्ना० ३२१, ३२) और **दाविआइँ** रूप भी मिलते हैं (कर्पूर० ५६, ७) , जै०महा० में **दाविय** (एर्त्से०), **दाविअ** और **दाविज्जसु** पाये जाते हैं (ऋषभ० १०, ४९) , शौर० में **दाविद** मिलता है (मुद्रा० ४४, १) । यह शब्द = मराठी **दवणें**[1] के । इसकी व्युत्पत्ति **दी** से बताना अशुद्ध है । **दावेइ** और **दावइ, दृप् संदीपने** से बने **दर्पयति** और **दर्पति** के स्थानों में आये हैं (धातुपाठ ३४, १४) और § ६२ के अनुसार इसका यह रूप हुआ है । इसी धातु से संस्कृत शब्द **दर्पण** भी बना है (= आरसी , आयना) और महा० मे **अद्दाअ,** अ०माग० और जै०महा० **अद्दाग** और **अद्दाय** (=आरसी) , § १९६ जहाँ इस प्रकार पढा जाना चाहिए = ***आदापक** = ***आदर्पक**[2] । अ०माग० **दंसन्ति** = **दर्शयन्ति** में **दंसइ** वर्तमान है (सूय० २२२), महा० में **दंसन्ति** = **दर्शयन्तीम्** है (गउड० १०५५) , इसका **–ए** वाला रूप बहुत दिखाई देता है . महा० में **दंसिन्ति** आया है (गउड० १०५४), जै०महा० में **दंसेइ** और **दंसेह** रूप मिलते है (एर्त्से०, काल्का०) , शौर० में **दंसेमि** (मृच्छ० ७४, १६ , मालती० ३८, ९), **दंसेसि** (मृच्छ० ९०,२१ , शकु० १६७, १०), **दंसेहि** (रत्ना० ३२१, २०) और **दंसेदुं** रूप आये है (मुद्रा० ८१, ४) , द्विस्वरों से पहले (§ ४९०) . **दंसअन्तीए** और **दंसअम्ह** रूप पाये जाते हैं (प्रबोध० ४२, ७ , उत्तररा० ७७, ३ , ११३, २) , भविष्यत्काल के रूप **दसइस्सं** (शकु० ६३, ९ , रत्ना० ३११, ४), **दंसइस्ससि** (शकु० ९०, १०) और **दंसइस्सदि** मिलते हैं (मालती० ७४, ३ , ७८, ७) , माग० में **दंसअन्ते** पाया जाता है (शकु० २१४, ११) । — **दरिसइ** (हेच० ३, १४३ मे भी आया है [इसी स्थान के नोट में **दरसइ** पाठातर भी मिलता है । —अनु०]), यह शब्द जै०महा० में **दरिसेइ** बोला जाता है (एर्त्से०) । मार्कंडेय पन्ना ७४ में दिया गया है कि यह आव० में विशेष चलता है, उक्त बोली में इसका रूप **दरिसेदि** है । मृच्छकटिक के जिस भाग में पात्र आव० बोली में नाटक खेलते हैं, उसमें ७०, २५ में विदूषक काम में लाता है . **दरिसअन्ति** , १००, ४ में दाक्षि० मे रूप आया है . **दरिसेसि** —

दुक्खायइ जो सिंहराजगणिन् ने पन्ना ५७ में दुक्खावइ दिया है दुक्ख्याइ का प्रेरणार्थक रूप है और = मराठी दुखावणें तथा गुजराती दुखाववुं[1] ; अप० में दुॅक्खावहि (विक्र ६६, १६) दुॅक्खइ का प्रेरणार्थक रूप है। दक्षिण भारतीय नाटकों की हस्तलिपियाँ दुक्खाइ रूप देती हैं, किन्तु नागरी हस्तलिपियाँ और अधिक रूप से दक्षिणभारतीय हस्तलिपियाँ भी दुॅक्खाइ पाठ देती हैं[2]। हेमचन्द्र ४, १८१ में यह रूप भी देता है तथा यह रूप अप० में बार बार काम में लाया गया है (इस में दुॅक्खाहि शब्द देखिए पिंगल १, ८७ अ) और के लिए अशुद्ध है जिसमें पॅक्खावदि का प्रचार है। दुक्खाइ और दुॅक्खाइ अशोक के शिलालेखों में मिलते हैं। दुक्खाइ रूप सिंहली भाषा में दुकिनय में सुरक्षित है। दुॅक्खाइ को सभी नवीन भारतीय आर्यभाषाएं नये विधियों की भाषा के काम में लाती हैं[3]। दोनों रूपों की व्युत्पत्ति अनुशांति से है जो अमृतस, ईरस, पलाशस, फीरस, तारस और सहस में वर्तमान है। भविष्यत्काल[4] से इसकी व्युत्पत्ति निकालने का प्रयास इसमें ऐं आने के कारण जो इससे निकला है व्यर्थ हो जाता है, नाना भाँति से इन रूपों के स्पष्टीकरण[5] का यत्न भी असम्भव है। इसी प्रकार पेॅक्खाइ के अनुकरण पर वेॅक्खाइ का रूप बना है यह कहना भी भूल है[6]। इस भाषा रूप वेदइ के विषय में § ६६ देखिए। भ्रम् के प्रेरणार्थक रूपों में भामेइ और भमावइ के साथ-साथ हेमचन्द्र ३, १५१ के अनुसार भमावेइ भी चलता है ४ १ में भमाडइ और भमाडेइ भी मिलते हैं, जिनकी तुलना में रूप के विचार से इसी भ्रमण के अर्थ में आनेवाला ताडइ ठीक बैठता है (हेच ४, १)। गुजराती में भी प्रेरणार्थक की बनावट ठीक ऐसी ही है[7]। हेमचन्द्र ४, १६१ में भम्मडइ, भमडइ और भम्माडइ रूप भी सिखाता है, जो उसके विचार से उपसर्ग और प्रत्यय से रहित स्वयं भ्रम् के स्थान में भी आते हैं। — प्रेरणार्थक के भविष्यत् काल के विषय में विशेष रूप से § ५२८ भी देखिए तथा कर्मवाच्य के सम्बन्ध में § ५४१ देखिए।

1 कू० त्सा १८०१ २ १ ४ में गारेज का मत। — २ वेबर त्सा डे डी मी गे ११ २०१ ; २८ ४२७ ; हाल २१५ की टीका। — ३ हेमचन्द्र ४ ३१ पर पिशल की टीका। — ४ पिशल, गा गे आ १८०३ ३१ और उसके बाद ; विक्रमोर्वशीय पेज ६१६ और उसके बाद ; डी रैसेन्सिओनेस डेर शकुंतला पेज ११ और उसके बाद। — ५. पिशल डे कालिदासाए शाकुन्तलि रैसेन्सिओनिबुस पेज १२ और उसके बाद ; कू त्सा ० ३५१ और उसके बाद ; ८ १२४ और उसके बाद। — ६ पिशल कू त्सा ० ४५८ ; ८ १४६ ; योहान्सोन कू त्सा ३२ ४६३ ; बीम्स कम्पैरेटिव ग्रैमर १ १६१ ; पौट, त्सिगोयनर १ ३ ४ ; मिकलोशिश इयूबर डी मुण्डआर्टेन उन्ट डी वान्डेरुंगन डेर त्सिगोयनर आयरोपाज ० ४३। — ७ वेबर कू त्सा ० ४८६। इस विद्वान् ने किन्तु भगवती १ ४१७ ३ में अशुद्ध मत दिया है ; इण्डिशे स्टूडिएन ३ १५ ; हाल १ पेज ६६ ; कू त्सा ० ४८६ ; इण्डिशे स्टूडिएन १७ ६६ और उसके बाद में 'एक प्राचीन किन्तु इस पर भी विचार से रहित

इच्छावाचक रूप' इसके भीतर देखता है। — ८ म्यूर, ओरिजिनल सँस्कृट टेक्स्टस् २, २३ नोटसख्या ४० मे चाइल्डर्स का मत, कू०वाइ० ७, ४५० और उसके वाद, चाइल्डर्स के पाली कोश मे पस्सति देखिए, पिशल, कू०-वाइ० ७, ४५९, ८, १४७। — ९ पी० गौल्दश्मित्त, ना०गे०वि०गो० १८७४, ५०९ और उसके वाद, योहान्सोन, कू०त्सा० ३२, ४६३ और उसके वाद, शाहवाजगढ़ी २, २४। — १० वीम्स, कम्पैरेटिव ग्रैमर १, १६२, किन्तु ३, ४५ और उसके वाद की तुलना कीजिए। — ११ वीम्स, कम्पैरेटिव ग्रैमर ३, ८१, होएर्नले, कम्पैरेटिव ग्रैमर, पेज ३१८ और उसके वाद।

इच्छावाचक

§ ५५५—इच्छावाचक रूप सस्कृत की भॉति ही बनाया जाता है : अ०माग० मे **दिगिच्छन्त** = **जिघत्सत्**- (आयार० १, ८, ४, १०), **जुगुच्छइ** और **जुउच्छइ** (हेच० २, २१, ४, ४) = **जुगुप्सते** हैं, महा० मे **जुउच्छइ** तथा **जुउच्छसु** रूप आये हैं (रावण०), अ०माग० में **दुगुच्छइ**, **दुगुंछइ**, **दुउच्छइ** और **दुउंछइ** मिल्ते हैं (हेच० ४, ४, § ७४ और २१५ की तुल्ना कीजिए), **दुगुंछमाण** (आयार० १, २, २, १, सूय० ४७२ और ५२५), **दुगछमाण**, **दुगंछणिज्ज** (उत्तर० १९९ और ४१०) तथा **अदुगुच्छिय** रूप आये हैं (आयार० २, १, २, २), शौर० में **जुगुच्छेदि** और **जुगुच्छत्ति** (माल्ती० ९०, ५, २४३, ५), **जुउच्छिद** (अनर्घ० १४९, १०, वाल० २०२, १३), **अदिजुउच्छिद** (मल्लिका० २१८, ७ और १२) तथा **जुगुच्छणीअ** रूप पाये जाते हैं (विद्ध० १२१, १०, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए), माग० में **अदियुउश्चिद** (मल्लिका० १४३, ४ और १५, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए) है, **चिइच्छइ** (हेच० २, २१, ४, २४०) = **चिकित्सित** है, अ०माग० में **तिगिच्छई** (उत्तर० ६०१), **तिगिच्छिय** (उत्तर० ४५८), **वितिगिच्छिय** (ठाणग० १९४), **वितिगिच्छामि** (ठाणग० २४५), **वितिगिंछइ** (सूय० ७२७ और उसके वाद) और **वितिगिंछिय** (विवाह० १५०) रूप मिल्ते हैं, शौर० में **चिकिच्छिदव्व** आया है (शकु० १२३, १४)। § ७४ और २१५ की तुल्ना कीजिए। माग० में **पिवाशीअशि** है (वेणी० ३४, ६, § ५५० की तुलना कीजिए), शौर० में **वुभुक्खिद** = **वुभुक्षित** है (वृषभ० १९, ५), **लिच्छइ** = **लिप्सते** है (हेच० २, २१), अ०माग० और जै०महा० में **सुस्सूसइ** (दस० ६३७, ३० और ३२, एर्से० ३१, १३) = **शुश्रूषते** है, अ०माग० में **सुस्सूसमाण** मिल्ता है (दस० ६३६, ६ और १०, ओव०), शौर० में **सुस्सूसइस्सं** (मृच्छ० ८८, ११), **सुस्सूसइदुं** (मालवि० २९, १२) और **सुस्सूसिदव्व** (मृच्छ० ३९, २३), माग० में **शुश्शूशिद** पाया जाता है (मृच्छ० ३७, ११)।

घनत्ववाचक

§ ५५६—घनत्ववाचक रूप सस्कृत के समृद्धिकाल की सस्कृत की भाँति बनाया

जाता है। व्यंजनों के विकार के साथ स्वर भी गुणित हो जाते हैं *व्याकम्माइ = *व्याकम्पते के स्थान मे चक्कम्मइ रूप हो जाता है (हेच ४, १६१)। — अ॰ माग में क्षुभ् खारक्षुम्ममाण आया है (पण्हा १६० और २१ ओव कप्प)। — अ माग में जागरइ = जागर्ति है, जागरमाणीए (विवाह ११६), जाग-रित्ति (आयार १, १, १, १), जागरमाणस्स (विवाह १७), पडिजाग रत्ता (दस ६३६, ६) और पडिजागरमाणी रूप पाये जाते हैं (उवास कप्प); महा में जग्गत्ति (दूला ५ १२), जग्गंसु आये हैं (हाल ११५), पडिमम्मिअ = *प्रतिजग्रुत है (गउड) और में जम्माध है (मृच्छ १११, १) अप में जग्गेवा मिलता है (हेच ४, ४३८, १) अ माग मे प्रेरणार्थक रूप जग्गावई है (१, ८, २, ५) महा मे जग्गाविअ पाया जाता है (रावण १ , ५६) अ माग में भिब्मिसमीण *मेभिसमीण *मेभिसमीण के स्थान में आया है जो भिसइ = भासति के रूप हैं (§ ४८२ नायाध § १२२ ; जीवा ४८१ [पाठ म भिन्नमाण है] ४९१ [पाठ में भिब्भिमाण है] ५४१ [पाठ में भिब्भिसमाणी है]), भिब्भिसमाण भी मिलता है (जीवा १ ५ नायाध § १२२ मे दूसरा रूप भी दखिए) अ माग लालप्पई (सूय ४१४) तथा लालप्प-माण रूप मिलते हैं (आयार १,२,१,१ १,२,६ १)। निम्नलिखित रूपों में विकार व्यंजनों के भीतर अनुनासिक आया है : महा में चंकम्मन्त- (हाल), चंकम्मिअ (रावण) और चंकमिअ (कर्पूर ४७ १९) आये हैं वे महा में चंकमियव्व (आव एत्सें २१ १९) = संस्कृत चंक्रम्यते है दुंदुल्लइ (हेच ४, १६१ और १८९) और ढंढल्लइ (हेच ४, १६१) भी पाये जाते हैं, ढढाला भी आया है (हेच ४ १८)। दुण्दुण्णन्तो के स्थान में (काव्यप्रकाश २७१ ५ = हाल ९८५) विस्वसनीय हस्तलिपियों तथा टीकाकारों द्वारा समर्थित पाठों में जिसमें भ्ल्ना लाक ११६ ७ की टीका भी सम्मिलित है दुंदुल्लन्तो दिया गया है। इस पाठान्तर की पुष्टि अलंकारशास्त्रों के अन्य लेखक जिनके ग्रन्थ अभी नहीं छपे हैं, अपने ग्रन्थों में उद्धृत श्लोकों मे भी करते हैं।

नामधातु

§ ५५७—नामधातु संस्कृत की भाँति बनाये जाते हैं। जिस प्रक्रिया में या तो क्रियाओं के समाप्तिसूचक चिह्न (१) सीधे नामों अर्थात् संज्ञाओं में जोड़ दिये जाते हैं, (२) अन्त में –अ = संस्कृत –य वाली संज्ञाओं में इस अन्तिम स्वर का दीर्घी करण कर दिया जाता है अथवा (३) क्रियाओं के समाप्तिसूचक चिह्न प्राकृत के प्रेरणा र्थक के चिह्न –ए– –वे–और –य–में लगाये जाते हैं। इनमें से प्रथम श्रेणी के नामधातु प्राकृत में संस्कृत से अधिक हैं : महा में अप्पिणामि = *अर्पणामि है (निरया § २१ नायाध १३३१ ; पाठ में अप्पणामि है); जै महा मे अप्पिणइ है (आव एर्त्से ४४ १) जो अर्पण से बना है ; अ माग मे पच्चप्पि णामि = *प्रत्यपणामि है जो प्रत्यर्पण से बना है (निरया § २ ५, पच्चप्पिणइ

(विवाग० २२२ , राय० २३१ , कप्प० § २९ , ओव० § ४२ , ४४ , ४६ [इन सब में यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]), पच्चप्पिणामो (निरया० § २५), पच्चपिणन्ति (विवाह० ५०३ और ९४८ , जीवा० ६२५ और ६२६ , उवास० § २०७ , कप्प० § ५८ और १०१ , नायाध० § ३३ और १०० , पेज ६१० , निरया० § ४ और २४), पच्चप्पिणेज्जा (पण्णव० ८४८ , ओव० § १५०), पच्चप्पिणाहि (ओव० § ४० , ४१ , ४३ , ४५ , निरया० § २२ , कप्प० § २६), पच्चप्पिणह (विवाग० २२२ , विवाह० ५०३ और ९४८, जीवा० ६२५ और ६२६ , कप्प० § ५७ और १०० , निरया० २० , २१ , २४ , उवास० § २०६), पच्चप्पिणिज्जइ (निरया० § २५) और पच्चप्पिणित्ता (नायाध० ६०७ , ६१० , ६१४) रूप पाये जाते हैं , खम्मइ = *खन्मति, जम्मइ = *जन्मति तथा हम्मइ = *हन्मति है (§ ५४०) , महा० में दुःख से दुक्खामि रूप बना है (रावण० ११, १२७), जैसे सुख[2] से सुहामि बना है , धवलइ मिलता है (हेच० ४, २४) , निर्माण से निम्माणइ रूप निकला है (हेच० ४, १९ , क्रम० ४, ४६ , मार्क० पन्ना ५४), अप० में पडिबिम्बि आया है (हेच० ४, ४३९, ३) , अप० में पमाणहु = प्रमाणयत है (पिंगल १, १०५) , पहुप्पइ = *प्रभुत्वति है (§ २८६) , महा० में मण्डन्ति पाया जाता है (गउड० ६७) , मिश्र् से मिस्सइ बना है (हेच० ४, २८) , विक्रेय से विक्केअइ निकला है (हेच० ४, २४०), अप० में शुष्क से सुक्कहिँ रूप आया है (हेच० ४, ४२७, १) । अन्य उदाहरण § ४९१ में देखिए और § ५५२ की तुलना कीजिए ।

१ लौयमान ने पच्चप्पिण् में वर्तमान वर्ग का रूप प्रत्य्-अर्प ढूँढ निकाला है । याकोबी, कू० त्सा० ३५, ५७३, नोटसंख्या २ में इणाइ क्रिया का चिह्न है अर्थात् उसका भी मत वही है जो लौयमान का है । पच्चप्पिण रूप की कोई संज्ञा नहीं पायी जाती, यह मेरे स्पष्टीकरण के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं समझी जा सकती । — २ ये और इस प्रकार के अन्य रूप दुक्खआमि तथा सुहआमि (§ ५५८) के संक्षिप्त रूप भी समझे जा सकते हैं ।

§ ५५८—संस्कृत की भाँति प्राकृत में भी नामधातु का निर्माण –अ– = संस्कृत –य– जोडने से होता है । महा०, जै०महा० और अ०माग० में –आअ– वर्ण कम बार संक्षिप्त भी कर दिये जाते हैं . महा० में अत्थाअइ और अत्थाअन्ति = *अस्तायते और *अस्तायन्ते जो अस्त के रूप हैं (गउड० , रावण०) , महा० में बारबार काम में आनेवाले रूप अत्थमिअ से (गउड० , रावण०) जो = अस्तमित के, अत्थमइ (रावण०) और एक संज्ञा अत्थमण का आविष्कार किया गया है (हाल , रावण०) , अ०माग० में अमरायइ पाया जाता है (आयार० १, २, ५, ५) , महा० में अलसाअइ और अलसाअन्ति रूप पाये जाते हैं (हाल) , महा० में उम्हाइ, उम्हाअन्त और उम्हाअमाण पाये जाते हैं (गउड०) । ये ऊष्माय– से बने हैं , शौर० में कुरवआअदि = कुरवकायते है (मृच्छ० ७३, १०) , गरुआइ और गरुआअइ रूप भी मिलते हैं (= गुरु बनना , गुरु के समान आचरण

१६५ [आर (R) हस्तलिपि के अनुसार यही पाठ पढा जाना चाहिए]) , जै० महा० में **थरथरन्ती** रूप है (आव०एत्सें० १२, २५ , पाठ मे **थरहरन्ति** है), शौर० में **थरथरेदि** मिलता है (मृच्छ० १४१, १७ , गौडबोले द्वारा सम्पादित सस्करण के ३८८, ४ के अनुसार यही पाठ पढा जाना चाहिए) । **थरथराअन्त-** भी है (मालती० १२४, १) = सम्कृत **थरथरायते,** मराठी **थरथरणें,** उर्दू [= हिंदी । —अनु०] **थरथराना**[४] और गुजराती **थरथरवुं** है । अ०माग० मे **धगधगन्त** पाया जाता है जिसका अर्थ **जाज्वल्यमान** है, **धगधगाइय** भी है (कप्प० § ४६) , शौर० में **धगधग्गअमाण** आया है (जीवा० ८९, २) , जै०महा० और अ०माग० में **धमधमें न्त-** है (एत्सें० , उवास०) , शौर० में **धमधमाअदि** आया है (नागा० १८, ३), जै०महा० मे **फुरफुरन्त-** मिलता है (एत्सें० ८५, ५) , शौर० में **फुरफुरा-अदि** पाया जाता है (मृच्छ० १७, १५) , अ०माग० में **मघमघें न्त-** है (ओव० § २ , नायाध० § २१ [पाठ में **मघमघिन्त** है], राय २८ और १११ , जीवा० ५४३ , सम० २१०), **मघमघन्त-** भी आया है (कप्प० [यहाँ भी पाठ मे **मघ-मघिन्त** है] , राय० ६० और १९० , जीवा० ४९९ , विवाह० ९४१) , महा० में **महमहइ** आया है (हेच० ४, ७८ , हाल) , जै०महा० में **महमहिय** (पाइय० १९७) = मराठी **मघमघणें** और गुजराती **मघमघवु**[५] है [यह रूप कुमाउनी में भी है । —अनु०] , अ०माग० में **मसमसाविज्जइ** (विवाह० २७० और ३८३) , अ०-माग० और जै०महा० मे **मिसिमिसन्त-, मिसिमिसें न्त-, मिसिमिसिन्त-** (ओव० , नायाध० , कप्प० , राय० ४४ , आव०एत्सें० ४०, ६) रूप मिलते हैं, साधारणत: **मिसिमिसिमाण** अथवा **मिसिमिसेमाण** का प्रचार है (विवाग० १२१ और १४४ , नायाध० ३२४ , ४५६ , ६१२ , ६५१ , ११७५ , विवाह० २३६ , २३७ , २५१ , २५४ , ५०५ , १२१७ आदि आदि , निरया० , उवास०) । इसका अर्थ टीकाकारों ने **देदीप्यमान** दिया है और यह शब्द **मिषमिषायते** रूप में सस्कृत में भी ले लिया गया है , शौर० में **सिलसिलाअदि** आया है (जीवा० ४३, ३) , महा० में **सिमिसिमन्त-** है (हाल ५६१) , शौर० में **सिमिसिमाअन्त-** (बाल० २६४, २) , महा० में **सुरसुरन्त** (हाल ७४) = मराठी **सुरसुरणें**[६] है [हिन्दी में **सुरसुराना, सुरसुराहट** और **सुरसुरी** इसी के रूप हैं । —अनु०] , जै०महा० में **सुलुसुलें न्त** रूप है (एत्सें० २४, २९) । — दीर्घ स्वरवाले रूप महा० मे **धुकाधुकइ**[७] (हाल ५८४) = मराठी **धुकधुकणें** और अ०माग० **हराहराइय** हैं (पण्हा० १६१) । शौर० रूप **सुसुआअदि** (मृच्छ० ४४, ३) जिसका अर्थ 'सु सु करना' है और **सा** तथा **का** से बनाये गये शौर० **सासाअसि** और माग० **काका-असि** (मृच्छ० ८०, १४ और १५) की भी तुलना करें ।

१ बीम्स, कम्पेरैटिव ग्रैमर ३, ८९ और उसके बाद , त्साखारिआए गो० गे० आ० १८९८, ४६५ और उसके बाद, इसमें प्राकृत उदाहरण, विशेष कर हाल और औसगेवेल्ते महाराष्ट्री एर्सेलुगन से सग्रहीत किये गये हैं । — २. हेमचन्द्र ३, १३८ पर पिशल की टीका । — ३ कप्पसुत्त० § ३६ पेज १०५

पर याकोबी की टीका ; त्साखारिआए, गो गे आ० पेज ४६६ नोटसंख्या १ की तुलना कीजिए। — ४ मृच्छकटिक १४१, १० पेज ३०९ में स्टेन्सलर की टीका। — ५ हेमचन्द्र ४ ७८ पर पिशल की टीका ; कप्पसुत्त § ११ पेज १ २ में याकोबी के मत की तुलना करें। — ६ हाल ७४ पर वेबर की टीका। — ७ हाल ५८७ पर वेबर की टीका।

§ ५५९—प्रेरणार्थक के ढंग से बनाये हुए नामधातु निम्नलिखित हैं अ माग में उच्चारेइ (प्रेरणार्थक) या पासवणेइ या खेलेइ या सिंघाणइ या वन्तेइ या पित्तेइ या आया है (विवाह ११२) अ माग में उवक्खडेइ = *उपस्कृत यति है (नायाध ४२५ और ४४८), उवक्खडिन्ति (नायाध० ८५६), उवक्ख डेत्ता, उवक्खडिए (आयार २, २, २, २), उवक्खडेउ (उवास § १८), उवक्खडेह (नायाध ४८१), बार बार उवक्खडावेइ (विवाग १२४ १११ १९५ ; २ ८ ; २ ९ २३१ और २३१ नायाध ४१ ; ६१२ ७१४ ७१६ १०१२ ; १४१६), उवक्खडाविन्ति, उवक्खडावें न्ति (कप्प § १ ४ नायाध § ११४) और उवक्खडावेत्ता रूप पाये जाते हैं (नायाध § ११४ पेज ४२५ ; ४४८ ४८१ विवाह २२८) ; अ माग में ण्हाणेइ = *स्नानयति है (ओवा ६१), ण्हाणें न्ति भी मिलता है (विवाह १२६५) तेअवइ = *तेजपयति है जो तेअ = तेजः से निकला है (हेच ४, १५२) जै महा में तुप्पावेइ मिलता है जो तुप्पामि का प्रेरणार्थक है (§ ५५७) दुहावइ = *द्विधापयति है (फाड़ना दो टुकड़े करना हेच ४ १२४) जै महा में धीरविय आया है (सगर ८ १४) अ महा में पिअवेइ है (नायाध ७७५ [पाठ मे पिअवइ है] और ७७९) ; शौर मे पिअवाविद मिलता है (शकु ७४, १) महा मे विउणइ (पाठ में विउणइ है ; हाल ९८५) = द्विगुणयति है महा में भस्मन् से निकला रूप भसणेमि आया है (यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए हाल ११२) अ माग मे महालिन्ति (पण्ह १११) और महलिय (विवाह १८७) मिलते हैं ; महा में मइलेइ, मइलें न्ति, मइलन्त और मइ लिअइ पाये जाते हैं जो मइल (= काला)¹ के रूप हैं ; महा में लहुअइ = लघ यति है (गउड ११४८) ; महा मे सवइ = सत्यापयति है (हेच ४ १८१ इंडिशे राडीस पेज ११ मे उद्धृत क्रम १४ ; संस्करण म ४, ६६ है और शुद्ध पाठ सच्चइ है), सच्चविअ (पाइय ७८ गउड ; हाल ; रावण ; शकु १२ ७) शौर में सद्दामेमि = शब्दापयामि है (मृच्छ ५ २४), सद्दा वेसि (शकु ११८ २) भी है ; अ माग में सद्दावेइ मिलता है (कप्प ओव ; नायाध ; निरया आदि आदि) शौर में सद्दावेदि आया है (मृच्छ ५४, ८ ; १४१ ११) सद्दावेहि (मृच्छ ५४ ५) सद्दावइस्स (मृच्छ ६ १) तथा सद्दावीअदि रूप मिलते हैं (मृच्छ १५ १७) ; जै महा और अ माग में सद्दावें त्ता सद्दाविता और सद्दाविय पाये जाते हैं (एर्से ; कप्प आदि आदि) ये रूप सद्देइ = शब्दयति के प्रेरणार्थक हैं ; अ माग में सिञ्चावेइ

(नायाध० १४२१ और उसके बाद) और शौर० में **सिक्खावेहि** (रत्ना० २९३, १७) **शिक्षा** से निकले हे , शौर० में **शीतल** से **सीदलावेदि** निकला है (उत्तररा० १२१, ७) , शौर० में **सुक्खवीअन्ति** आया है (मृच्छ० ७१, ४) और माग० मे **शुस्कावइश्शं** (मृच्छ० १३३, १५) **शुष्क** से बने है , महा० मे **सुख** से **सुहावेसि, सुहावेइ** और **सुहावेन्ति** मिलते हैं (गउड० , हाल), शौर० **सुहावेदि** पाया जाता है (मल्लिका० २०१, १७) ।

१ त्साखारिआए ना० गो० वि० गे० १८९६, २६५ और उसके बाद की तुलना कीजिए जिसमें विद्वान लेखक ने **मृदिल** से **मड्डल** की व्युत्पत्ति बतायी है । § ५९५ की नोटसंख्या ५ भी देखिए ।

धातुसाधित संज्ञा

(अ) अंशक्रिया

§ ५६०—परस्मैपदी वर्तमानकालिक अशक्रिया वर्तमानकाल के वर्ग से बनायी जाती है जिसके अन्त में सबल समाप्तिसूचक चिह्न **-अन्त्** का बर्धित समाप्तिसूचक चिह्न **-अन्त** जोडा जाता है और इसका रूप **-अ** मे समाप्त होनेवाले धातु के समान चलता है (§ ३९७ , ४७३—५१४) । बोली के हिसाब से, विशेष कर अ०माग० में, बहु सख्यक ऐसे रूप मिलते हैं जिनमें सस्कृत रूप दिखाई देते हैं (§ ३९६), कभी कभी एक धातुवाले सज्ञा की भाँति भी बनाया जाता है (§ ३९८) । स्त्रीलिंग का रूप सभी श्रेणियों के लिए **-अन्ती** में समाप्त होता है : अ०माग० में **असन्तीए** = **असत्याम्** (ओव० § १८३), जै०महा० मे **सन्ती** मिलता है (एर्त्से० ८, २२), किन्तु सती साध्वी के अर्थ में, महा० में **सई** (हाल) = **सती** और 'छिनाल' **असई** (हाल) = **असती** , अ०माग० में **पज्जन्ति** = ***पद्यन्तीम्** है (§ ५६१ की तुलना कीजिए , दस० ६३५, १०), **विणिमुयन्ति** = **विनिमुञ्चन्तीम्** है (जीवा० ५४२) और **अणुहोन्ती** = **अनुभवन्ती** है (पण्णव० १३७) , महा० मे **अपावन्ती** = **अप्राप्नुवती** है (हाल ४८३) , शौर० मे **हुवंती, पेक्खंती** और **गच्छन्ती** मिलते है (ललित० ५५५,५ , ५६०, ११ ,५६१, १४), **पससन्तीओ** = **प्रशसन्त्यः** (बाल० २८९,२), **उद्दीवन्ती, भणन्ती** और **पढन्तीए** रूप आये है (मृच्छ० २,२२, ४१,२०, ४४,२) आदि आदि । वररुचि ७,११ और हेमचन्द्र ३,१८२ के अनुसार स्त्रीलिंग का रूप पहले गण की निबल क्रियाओं से बनाया जा सकता है **हसई** = ***हसती** = **हसन्ती** है और **वेवई**=***वेपती**=**वेपमाणा** है (हेमचन्द्र ३,१८२ सूत्र है **'ई च स्त्रियाम्'**। —अनु०]। परस्मैपदी **भविष्यत्कालिक** अशक्रिया के रूप निम्नलिखित है अ०माग० मे **आगमिस्सं** (कर्ता- नपुसकलिंग और कर्मकारक पुलिंग , आयार० १, ३, ३, २) और **भविस्सं** = **भविष्यत्** है (कप्प० § १७) किन्तु यह रूप **भविष्य** से भी सम्बन्धित किया जा सकता है जैसे कि जै०महा० मे **भविस्सचक्कवट्टी** (एर्त्से० १२, २५) और शौर० म **भविस्सकुट्टणि** रूप मिलते है (विद्ध० ५१, १८ , कर्पूर० १३, २) । यही

समाप्तिसूचक चिह्न प्रेरणार्थक (§ ५५२–५५४), इच्छावाचक (§ ५५५), धनत्व वाचक (§ ५५६) और नामधातुओं की परस्मैपदी अंशक्रियाओं में आता है (§ ५५७–५५९) ।

§ ५६१—आत्मनेपदी वर्तमानकालिक अंशक्रिया बिना गणों के भेद के वर्तमानकाल के वर्ग से (§ ४७३–५१४) अधिकांश में अन्त में -माण = संस्कृत मान जोड़कर बनाया जाता है (वर ७, १० हेच ३ १८१) । अ०माग में यह विशेषकर बहुत चलता है, इस बोली में इसके सामने परस्मैपदी वर्तमानकालिक अंशक्रिया बहुत दब गयी है[1] । यह रूप अ माग में बहुधा परस्मैपदी पूर्ण क्रिया के साथ पाया जाता है । इस प्रकार के उदाहरण **अच्चमाने अच्चइ** है (विवाह० १९१) **फुसमाणे फुसइ** (विवाह १५४ और २१५) मिलता है **पच्चक्खाइ पच्चक्खमाणे** (विवाह ६ ७) है **हणमाणे हणइ, सहइ असहइमाण, संघँसमाणे संघँसेइ** मिलते हैं (विवाह ८४९ और उसके बाद १२१५ ११२५) ; **पेइ पेइमाणे** आया है (पण्णव ४३५) **विगिञ्चमाणे विगिञ्चइ** देखा जाता है (आयार १ १ ४ १) ; **पासमाणे पासइ, सुणमाणे सुणेइ** और **मुच्छमाणे मुच्छइ** रूप पाये जाते हैं (आयार १, १, ५, २ और ३), **आइक्खमाणा आइक्खइ** भी मिलता है (ओव § ५९) । पाली भाषा की भाँति अ माग और जै महा में भी अस् से एक आत्मनेपदी वर्तमानकालिक अंशक्रिया समाण बनायी गयी है (आयार २ १, २ १ और उसके बाद ; ठाणंग ५२५ और ५२६ ; विवाग ११ ; ११६ ; २३९ पण्हा ६७ विवाह २६१ ; २७१ १२७१ ; १३८८ पण्णव ४३६ उवास कप्प ; निरया एर्से सगर ४ ९ ; आव एर्से २९ १६ १५ २९ आदि आदि) । **पमाण = प्रयितम्** (वेदी १ १४४) है = **मयमाण है,** अ माग में **पँखमाण** आया है (उवास § ८१ ; २१९ ; २६१ ; विवाग २२९; नायाध ८८७ ४११ ५१४ ; ५७२ ; ७१८ ७६ आदि आदि ; विवाह १२ ७) = **पयमाण** है । § ५६ में **पँखमित** की तुलना कीजिए । — **हाँखमाण** (§ ८६) का सम्बन्ध प्रार्थनावाचक से है ।

[1] वेबर भगवती १ ४३२ ।

§ ५६२—यही समाप्तिसूचक चिह्न आत्मनेपदी भविष्यत्कालिक अंशक्रिया में आता है । अ माग में **पसमाण** आया है (ठाणंग १७८) जो प्रेरणार्थक है (§ ५५२–५५४) इच्छावाचक भी है (§ ५५५) घनत्ववाचक (§ ५५६) और नाम धातु भी (§ ५५७–५५९) । कर्मवाच्य में आंशिक रूप से परस्मैपद का समाप्तिसूचक चिह्न काम में लाया जाता है विशेषतः शौर और माग में और आंशिक रूप से आत्मनेपद का समाप्तिसूचक चिह्न लगता है विशेषकर अ माग में (§ ५३५–५४८) । — माण के स्थान में कभी कभी अ माग में मीण काम में लाया जाता है : **आगमीण** है (आयार १ ६ ३ २ ; १ ७ ४, १ ; १ ७ ६ २ ; १ ७ ७, १); **समणुजाणमीण** (आयार १ ६ ४ २ ; १ ७, १ १) आया है ; **आढायमीण** (आयार १ ७ १ १ १ ७ २, ४ और ५) ; **अणाढायमीण** (आयार १,

७, १, २) **अपरिग्गहमीण** पाया जाता है (आयार० १, ७, ३, १), **अममायमीण** मिलता है (आयार० १, ७, ३, २), **आसाएमीण = आस्वादयमाण** है (आयार० १, ७, ६, २), **अणासायमाण** भी आया है (आयार० २, ३, २, ४), **निकायमीण** (सूय० ४०५), **भिसमीण** (नायाध० § १२२, जीवा० ४८१ और ४९३ [टीकाकार द्वारा आदृत पाठ **भिसमाण** है, § ५४१ में **भिसमाणी** की तुलना कीजिए [इसका रूप *भिसवाणि बनकर कुमाउनी मे **भिसौणि** हो गया है। —अनु०]), **भिब्भिसमीण** रूप भी मिलता है (§ ५५६)। वह रूप जो अशोक के शिलालेखों मे पाया जाता है[1] वह भी आयारंगसुत्त तक ही सीमित है और कई स्थलों मे इसका दूसरा रूप का अन्त **–माण** मे होता है। § ११० की तुलना कीजिए। —समाप्तिसूचक चिह्न **–आण** विरल है = संस्कृत **–आन**. अ०माग० मे **वुयावुयाणा = ब्रुवन्तो** 'ब्रुवन्तश्च है (सूय० ३३४)। **विहम्ममाण = विघ्नन्** के स्थान में **विहम्माण** आया है (उत्तर० ७८७)। यदि हम इसे ***विहन्माण** के स्थान मे न रखना चाहें तो (§ ५४० और ५५० की तुलना कीजिए), **वक्कममाण** के स्थान मे **वक्कमाण** आया है (नायाध० § ४६–५०), जैसा कि कप्पसुत्त § ७४, ७६, ७७ में मिलता है किन्तु वहाँ भी § ७४ और ७६ मे दूसरा रूप **वक्कमाण** मिलता है। **–आण** के स्थान में महा० में **–ईण** है जो **मेलीण** में पाया जाता है (हाल ७०२) और **मिल्** के **मेलइ** का रूप है (§ ४८६)। संस्कृत **आसीन** की तुलना कीजिए जो रूप प्राकृत में भी पाया जाता है।

1 ब्यूलर०, त्सा०डे०डौ०मौ०गे० ४६, ७२, इसका स्पष्टीकरण किन्तु शुद्ध नहीं है। § ११० देखिए।

§ ५६३—वररुचि ७,११ के अनुसार स्त्रीलिंग का समाप्तिसूचक चिह्न **–माणा** है किन्तु हेमचन्द्र ३, १८२ के अनुसार यह **–माणी** है। अ०माग० में सर्वत्र समाप्तिसूचक चिह्न **–माणी** का ही प्राधान्य है . **समाणी, संलवमाणी, आहारेमाणी, अभिसिञ्चमाणी** और **उद्धुव्वमाणीहिं** रूप है (कप्प०), **भुञ्जमाणी, आसाएमाणी** और **उवदंसेमाणी** आये हैं (उवास०), **पच्चणुभवमाणी, परिहायमाणी** और **उद्धुव्वमाणीहिं** मिलते हैं (ओव०), **विसट्टमाणिं** (ठाणंग० ३१२), **रोयमाणी** (विवाग० ८४, विवाह० ८०७), **सूयमाणीए** (विवाह० ११६), **देहमाणी** (विवाह० ७९४ और ७९५), **विणिम्मुयमाणी** (विवाह० ८२२), **पॅज्जमाणीओ** (निरया० ५९), **दुरुहमाणी** (दस० ६२०, ३३), **जागरमाणीए** (विवाह० ११६), **पडिजागरमाणी** (कप्प०, उवास०), **डज्झमाणीए** और **दिज्जमाणिं** (उत्तर० २८४ और ३६२), **धिक्कारिज्जमाणी** और **थुक्कारिज्जमाणी** (नायाध० ११७५) रूप भी पाये जाते है। जै०महा० में यही स्थिति है ' **समाणी** है (कालका० २६०, २९, एर्त्से० ३६, १४, ५३, ५ में **समाणा** रूप अशुद्ध है), **करेमाणीओ** और **पेहमाणीओ** आये हैं (आव०एर्त्से० ११, १४, १७, १०), **पडिच्छमाणी, झायमाणी, पलोएमाणी, कुणमाणी, खन्नमाणीए, निवडमाणी** और **रुयमाणी** मिलते हैं (एर्त्से० ८, १४, ११, १९, १७, ८, २३, १३, ३९, ७, ४३, १९), **करेमाणी** भी पाया जाता है (द्वार० ५०३, ३०)। वेबर ने महा० से हाल के निम्नलिखित उदा-

है = *वस्त, अ से फिर दूसरी बार इसका उ में परिवर्तन हुआ है (§ १०४ और ३०३)। इसके साथ साथ महा० का नियमित रूप **उसिअ = उषित** पाया जाता है (गउड० ४८४ और ९३३) और वर्तमानकाल के वर्ग से महा० में **वसिअ** (पाइय० २२५, गउड०, हाल) तथा **उव्वसिअ** और **पवसिअ** भी आये हैं (हाल), शौर० में यह **उववसिद** हो जाता है (मृच्छ० ५४, १६)। — महा० में **णिअत्थ = *निवस्त** है (कर्पूर० ४६, १२), यह **वस्** से बना है (= कपडे पहनना), अ०माग० में **पणियत्थ = *प्रनिवस्त** है (ओव० § [३८])। जै०महा० मे **नियत्थिय** (एर्से० ५९, ३१) = **निवस्त्रित** है। § ३३७ की तुलना कीजिए। जै०महा० में **तुट्ट = त्रुटित** है (एर्से० ७१, २८), अप० में **तुट्टउ** है (हेच० ४, ३५६)। — अ०माग० में **अणालत्त = *अनालप्त** है (उवास० § ५८), जै०महा० में **संलत्त** मिलता है (एर्से०)। — अप० में **तिन्त = तिमित** है (हेच० ४, ४३१, १, [यह शब्द **तिनो** रूप में कुमाउनी में प्रचलित है। —अनु०])। — महा० में **गुत्थ = *गुत्फ = गुफित** (हाल ६३, कर्पूर० ६९, ८, ७३, १०)[1] **ग्रह्** सामान्यक्रिया (§ ५७४) और कृदन्त की भाँति **–ई–** वाले रूप नहीं बनाता है बल्कि **–इ–** वाले बनाता है (हेच० १, १०१) : महा० मे **गहिअ** रूप है (गउड०, हाल, रावण०, शकु० १२०, ६), जै०महा० में **गहिय** मिलता है (उवास०, ओव०, कप्प०, नायाध०), जै०शौर० और शौर० में **गहिद** पाया जाता है (पव० ३८९, १, मृच्छ० ३, २३, १५, ५, ५०, २), ५३, १०, शकु० ३३, १४, ४०, ४, ९६, ९, विक्र० १९, १६, ३१, १३, ८०, १५ और २०), माग० में **गहिद** (मृच्छ० १६, १४, १७ और २१, १३३, ७, १५७, ५) तथा **गिहिद** (मृच्छ० ११२, १०) रूप पाये जाते हैं। नाटकों के पाठों में बहुत अधिक बार **गहीद** और **गिहीद** रूप पाये जाते हैं जो केवल पद्य में शुद्ध हैं जैसे अ०माग० में **गहीद** (मृच्छ० १७, १, १७०, १५)।

१ हाल ६३ पर वेबर का मत भिन्न है।

§ ५६५—सभी प्राकृत बोलियों में परस्मैपदी आसन्न भूतकालिक अशक्रिया बार बार वर्तमानकाल के वर्ग से बनायी जाती है। वर्तमानकाल के वर्ग के क्रमानुसार निम्नलिखित हैं . **तविअ** (हेच० २,१०५) और शौर० में **संतप्पिद** आये हैं (मृच्छ० ७, १८, ८, १६), ये चौथे गण के हैं और साधारण रूप से **तत्त = तप्त** है, अ०माग० में **तसिय** और इसके साथ साथ **तत्थ = त्रस्त** है (विवाह० १२९१), शौर० में **जणिद = जात** (ललित० ५६१, ३, मृच्छ० २८, ८), महा० **असहिअ = असोढ** है (गउड०), अ०माग० मे **जट्ठ = इष्ट** (= यज्ञदत्त, उत्तर० ७५३); अप० में **जिणिअ** मिलता है (§ ४७३), शौर० में **अणुभविद** (कर्पूर० ३३, ६) = **अनुभूत** है, महा० में **वाहरिअ = व्याहृत** (शकु० ८८, १), महा० में **ओसरिअ = अवसृत** है (गउड०, हाल, रावण०), **समोसरिअ** भी मिलता है (गउड०, हाल), अ०माग० और जै०महा० में **समोसरिय = समवसृत** है (हाल, विवाग० १५१, उवास०, निरया०, आव०एर्से० ३१, २२, § २३५

प्रेरणार्थक की ओर खींचें तो (§ २८६) । § २२३ की तुलना कीजिए । यह *धत्त, बहुत सम्भव है, अ०माग० **निधत्त** (इसका दूसरा रूप अन्यत्र **निहत्त** पाया जाता है , ठाणग० ४९६) और इसका टीकाकार द्वारा आहत अर्थ **निकाचित** (?) और निश्चित है , **जढ** भी मिलता है (=त्यक्त , हेच० ४, २५८), अ०माग० में **विजढ** भी आया है (उत्तर० १०४५ , १०४७ , १०५२ , १०५५ , १०५८ , १०६६ , १०७१ , १०७४ , १०७७ , १०९५ , जीवा० २३६ और उसके बाद), **विप्पजढ** देखा जाता है (आयार० १, ६, १, ६ , निरया० § १६ , विवाग० २३९ , नायाध० ४३५ , ४४२ , ११६७ , १४४४ , विवाह० ४५४ , अणुओग० ५० और ५९६ [यहाँ पाठ में **विप्पजड्ढ** है]) । ये सब वर्तमानकाल के रूप **जहइ** से बने हैं (§ ५००), इस प्रकार *जाढ और उसके ह्रस्व रूप के लिए § ६७ के अनुसार **जढ्** धातु का आविष्कार हुआ, अ०माग० मे **विप्पजहिय** भी आया है (नायाध० १४४८), अ०माग० में **तच्छिय** है (उत्तर० ५९६) , जै०महा० में **वित्थरिय** = **विस्तृत** है (एर्त्से०) , शौर० में **विचिणिद** = **विचिद** है (माल्ती० २९७, ५) , अप० में **पाविअ** देखने में आता है (हेच० ४, ३८७, १) , अप० में **भज्जिअ** भी मिल्ता है (पिंगल १, १२० अ) , अ०माग० और जै०महा० में **विउव्विय** (ओव० , नायाध० , आव०एर्त्से० ३०, १८) और **वेउव्विय** भी पाये जाते हैं (आयार० पेज १२७, १४ , द्वार० ५०७, २८) जो **विउव्वइ** से बने हैं (§ ५०८) , **विकुर्वित** की तुल्ना करें , महा० में **जाणिअ** है (हेच० ४, ७), शौर० में **जाणिद** आया है (मृच्छ० २७, २१ , २८, १७ और २४ , २९, १४ , ८२, १५ , १४८, २३ , १६६, ९ , मुद्रा० १८४, ४ , विद्ध० २९, २), **अणभिजाणिद** मिल्ता है (मृच्छ० ५३२, २) और **पच्चभिआणिद** पाया जाता है (उत्तररा० ६१, ७ , ६२, ७) , माग० में **याणिद** हो जाता है (ललित० ५६६, ८) , अप० में **जाणिउ** मिलता है (हेच० ४, ३७७ , ४२३, १ , विक्र० ५५, १ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए]) । महा० में **णाअ** रूप आया है (रावण०), जै०महा० में **नाय** हो जाता है (एर्त्से०, कालका०), शौर० में सधि- समास में **णाद** = **ज्ञात** है, जैसा कि **अब्भणुण्णाद** आया है (शकु० ८४, ११ , विक्र० १२, १४ , २९, १३ , ३९, २० , ४६, ३ , ८४, २ , मुद्रा० ४६, ८), **विण्णाद** (मृच्छ० ३७, २१ , शकु० ७३, ५ , १६८, १५ , विक्र० २९, २१ , ८०, ४ , मालवि० ४६, १६ , ४७, ३), **अविण्णाद** (मालवि० ३४, ७) और **पडिण्णाद** रूप भी पाये जाते हैं (मालवि० १३, ९ , ८५ २), शौर० में **क्री** से बने **किणिद** और **विक्किणिद** रूप मिल्ते है (§ ५११) । **णिअ** = **नीत** तथा सन्धिवाले रूपों के विषय में § ८१ देखिए । **खा** और **धा** के विषय मे § १६५, **आअ** के सम्बन्ध में § १६७, **छ्ढ** तथा उसके **स**- सन्धि रूपों के सम्बन्ध में § ६६, **उव्वीट** के बारे में § १२६, ***वुत्त**, **वूढ** तथा इनके **स**- सन्धि रूपों के लिए § ३३७, अन्त में **-डा** लगकर बननेवाली अ०माग० और माग० की अशक्रिया के सम्बन्ध में § २१९, **उसढ**, **निसढ**, **विसढ** और **समोसढ** के लिए § ६७ और प्रेरणार्थक, इच्छावाचक, घनत्ववाचक तथा नामधातुओं के विषय में § ५११-५५९ देखिए । स्त्रीलिंग के अन्त

में –आ लगाता है, केवल अप में –ई जोड़ा जाता है जैसे, रुद्दी = रुद्दा और विड्डी = इड्डा है (हेच ४, ४२२, १४ ४३१, १)।

§ ५९९— –न प्रत्यय केवल उन शब्दों पर ही जिनमें संस्कृत में इसका प्रयोग किया जाता है, काम में नहीं लाया जाता किन्तु प्राकृत बोलियों में इसका प्रयोग-क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो गया है[¹]: खण्ण (= छेद : देशी० २, ६६ [यह खण्ण कुमाउनी में खाड और खाड़ु तथा हिन्दी में खड्डु और खड्डा बन गया है गड्डा प्राकृत रूप है जो संस्कृत गर्तक से निकला है। —अनु]) अ माग और जै महा में खत्त भी उक्त खण्ण के साथ-साथ चलता है (देशी २, ६६ विवाग १ २ एत्सें [¹] [खत्त कुमाउनी में खत्त ही रह गया है इसका अर्थ है ढेर, इसे कुमाउनी में खत भी कहते हैं देशी प्राकृत में खड्डा रूप भी है जो खान का पर्यायवाची है। —अनु]) अ माग में उक्खत्त भी मिलता है (विवाग २१४), महा में उक्खाअ (हाल) उक्खअ (गउड रावण) और समुक्खअ रूप पाये जाते हैं (हाल) वररुचि १, १ ; हेमचन्द्र १, ६७ की तुलना कीजिए जै महा में खय (एत्सें) और खणिय रूप मिलते हैं (एत्सें), उक्खय भी आया है (एत्सें) शौर में उक्खणिद पाया जाता है (उत्तररा० १ , ७ यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए)। — महा और शौर में *चुक्क से चुक्क रूप बना है (पाइय १९१ हाल रावण ; विद्ध ६१ १) जो चुकइ का रूप है (हेच० ४, १७७), शौर में चुक्कदि मिलता है (विद्ध ११ २) जो भारतीय नवीन आर्यभाषाओं में साधारणतः प्रचलित है[¹] और स्वयं धातुपाठ में चुक्क [= व्यथने। —अनु] के रूप में मिलता है । — महा में छिक्क मिलता है (= छुआ हुआ : पाइय ८९ हेच २ ११८ हाल ४८१ [भार (R) हस्तलिपि के अनुसार यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) = *छिक्क जो *छिक् धातु से बना है यह *छिक् धातु *छिप् और छिवइ[²] का कंठ्यवर्ण रूप है। — महा , जै महा और अ माग में डक्क है (= काटा गया : हेच २, २ हाल में दृष्ट शब्द देखिए एत्सें पण्हा ६९ और ५३७ ठाणंग ४११) = *दक्क, इसका दूसरा अर्थ 'दाँतों से पकड़ा हुआ' भी है (देशी ४ ६)। — प्राकृत में दिण्ण रूप है जो भी महा और अ माग में दिन्न हो जाता है। यह *दिन्न से निकला है जिसमें प्राचीन विकार का स्वर इ[¹] भी आया है। यह प्राकृत की सभी बोलियों में बहुत चलता है (वर ८, ६२ ; हेच १, ४६ ; २ ४३; पाइय १८४) महा में यह मिलता है (गउड हाल ; रावण) ; जै महा में इसका प्रचलन है (कक्कुक शिलालेख ११ और १५ आव एत्सें १७ २ ; २७ ११ ; एत्सें ; कालका ; आगम) ; अ माग में चलता है (उवास कप्प ओव आदि आदि) जै शौर में पाया जाता है (कत्तिगे ४ २ ३६१; ३६८ और ३६९) शौर में आया है (मृच्छ १७ ८ ४४, ३ ५१ २१ चण्ड ९९, ७ १९९ १२ ; विक्र ४८ २ ; रत्ना २९१ १) माग में है (मृच्छ १११ २ ; ११७ ७ ; १२६ ७ ; चण्ड० १११ ८) ; अप में भी इसका बहुत प्रचलन है (विक्र ६७ १९ ; हेच में दा शब्द देखिए)। हेमचन्द्र १ ४६ में दत्त

रूप का भी विधान करता है और यह रूप पल्लवदानपत्र ७, ४८ में **दता** = **दत्ता** में मिलता है अन्यथा केवल व्यक्तिवाचक सज्ञाओं में पाया जाता है जैसे, **दत्तजस** (पल्लवदानपत्र ६, २१), **देवदत्तो** (हेच० १, ४६), शौर० में **सोमदत्तो** पाया जाता है (विक्र० ७, २)[१] । — महा० में **वुड्ड, आवुड्ड, णिवुड्ड** (हाल ३७, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए) और **विणिवुड्ड** रूप मिलते है (गउड० ४९०) जो **ब्रुड** और **ब्रुड्** से बने है, इससे निकले नामधातु **वुड्डइ, आउड्डइ** और **णिउड्डइ** हैं (हेच० ४, १०१, वर० ८, ६८ की तुलना कीजिए) । — ***भुल्ल** के स्थान में **मुल्ल** आया है (कर्पूर० ११३, १) । इसका सम्बन्ध भारतीय नवीन आर्यभाषाओं में बहुत चलनेवाले **भुल्लइ** से है (हेच० ४, १७७) । — महा० मे **उम्मिल्ल** (गउड० ; हाल, रावण०), **णिमिल्ल** (गउड०, रावण०) और **ओणिमिल्ल** (रावण०) = ***उम्मील्ल, णिमिल्ल** और **ओणिमिल्ल** हैं जो **मील्** धातु से बने हैं । — प्राकृत की मुख्य बोलियों मे **मुच्** से **मुक्त** रूप होकर **मुक्क** बना है, जो बार बार देखा जाता है (हेच० २, २) : महा० मे **मुक्क, अवमुक्क, आमुक्क, उम्मुक्क, पामुक्क, पडिमुक्क** और **परिमुक्क** मिलते हैं (गउड०, हाल, रावण०), जै०महा० में **मुक्क** (आव०एर्त्से० २३,२१, एर्त्से०, ऋषभ०, कालका०), **आमुक्क** (आव०एर्त्से० ३८, १२), **पमुक्क** और **परिमुक्क** (एर्त्से०) तथा **विमुक्क** पाये जाते है (एर्त्से०, ऋषभ०), अ०माग० में **मुक्क** (उत्तर० ७०६ और ७०८, उवास०, कप्प०), **उम्मुक्क** (पण्णव० १३६, उत्तर० १०३७), **विणिमुक्क** (उत्तर० ७५५), **विप्पमुक्क** (विवाह० १८६, २६३, ४५५, १३५१ [पाठ में **अविप्पमुक्क** है], उत्तर० १, पण्णव० १३४ और ४८३), **विमुक्क** (पण्णव० १३४, १३६, १३७, ८४८) रूप मिलते हैं, शौर० में **मुक्क** (मृच्छ० ७१, ९, १०९, १९, विक्र० ४३, १५, ४७, २, प्रबोध० ४५, ११, बाल० २४, ९, १९५, ९, २०२, १६, २०४, १९ आदि-आदि), **पमुक्क** (बाल० २४६, १३, उत्तररा० ८४, २) और **विमुक्क** आये है (बाल० १७०, १४, २०३, १४, २१०, २, प्रसन्न० ३५,२, वेणी० ६२,७, ६३, ११ और १२, ६५, ८, ६६, ९), माग० में **मुक्क** पाया जाता है (मृच्छ० २९, १९ और २०, ३१, २३ और २५, ३२, ५, १३६, १६, १६८, ४, प्रबोध० ५०, १४, ५६, १०), ढक्की मे भी **मुक्क** ही मिलता है (मृच्छ० ३१, २४, ३२, १), अप० में **मुक्काहॅं** है (हेच० ४, ३७०, १) । हेमचन्द्र ने २, १२ में **मुत्त** का उल्लेख किया है जो अशुद्ध है और शौर० में **पमुत्त** में वर्तमान है (उत्तररा० २०, १२) । **मुक्ता** (= मोती) का रूप सदा ही **मुत्ता** होता है और **मौक्तिक** का नित्य **मोॅत्तिय** ९, शौर० में **मुक्क-मोॅत्तिय** (बाल० १९५, ९) की तुलना कीजिए । — **रग्ग** (हेच० २, १०) = ***रग्ण** = सस्कृत **रक्त** है, इसी से सम्बन्धित **रगअ** है (= कौसुम्भ वस्त्र : पाइय० २६१, देशी० ७, ३), उदाहरण केवल **रत्त** के मिलते हैं महा०, जै०महा० और शौर० में यह रूप आया है (हाल, एर्त्से०, मृच्छ० ७१, ३, ७३, १२, शकु० १३४, १३, मालवि० २८, १७, ४५, ११), महा० मे **लत्त** भी पाया जाता है (मृच्छ० १२९, १, नागा० ६७, ६) । — **रिक्क** = ***रिक्ण**

जो रिच् से बना है (पाइय० २१८ ; देशी ७, ६ = स्तोक बहुत कम ; हाल) अइरिक्क रूप मिलता है (हाल) और पइरिक्क तथा पविरक्क = *प्रविरिक्त्य हैं (गउड हाल रावण); महा और जै०महा में विरिक्क मिलता है (गउड आव एत्सें० ४७, २१ ; एत्सें), देशीनाममाला ६, ७१ के अनुसार इसके अर्थ विशाल और 'एकान्त' हैं [देशीनाममाला के पूना संस्करण ६, ७१ में विरिक्क के स्थान में पइरिक्क शब्द मिलता है, इसमें दिया गया है पइरिक्कं च विसाले एगन्ते तह य सुण्णम्मि । इतना ही नहीं, छठे वर्ग का श्रीगणेश ॥ अथ पादिः ॥ से किया गया है और इस सारे वर्ग में पवर्ग अर्थात् क्रम से प से म तक देशी शब्द दिये गये हैं । हेमचन्द्र ने ७, ६४ में विरिक्क शब्द भी दिया है और लिखा है फाडिए विरिक्कं अर्थात् विरिक्क का अर्थ 'फाड़ना' है वैसे टीका में विरिक्कं पाटितम् है । —अनु]; अपरिक्क और अवरिक्क भी पाये जाते हैं (= बिना शुभ अवसर [देशीनाममाला में साजरात्रिये अवरिक्कमपरिक्का है इसके अर्थ के लिए १, २ में उदाहरण रूप में उद्धृत श्लोक की तुलना कीजिए । —अनु] देशी १, २) उक्त रूपों के साथ साथ महा में रित्त = रिक्त है (पाइय २१८ देशी ७, ६ = थोड़ा ; हाल) और अइरित्त रूप भी चलता है (रावण १४, ५१ इसी काव्य में अन्यत्र अइरिक्क भी है) । — महा में रुण्ण आया है (वर ८, ६२ हेच १, २ ९ गउड हाल ; रावण) ओरुण्ण और परुण्ण भी हैं (रावण) किन्तु शौर में रुदिद है (शकु ११, ४ रत्ना ३१४, ३२ ; उत्तररा २, १२ ; चंड ९७, १ वृषभ ५, ९ धूर्त १° १२) । महा, जै महा अ माग और शौर में लुक्क मिलता है जो लुञ्च् का रूप है (= छिपा हुआ अलग फेंका हुआ उपाड़े हुए बालवाला अलग किया हुआ और छिपाया हुआ) = *लुक्त है (हेच २ २ ; हाल ; रावण एत्सें ; कप्प ; विद्ध २७, ४) उल्लुक्क पाया जाता है (= टूटा हुआ : देशी १ ९२) महा और शौर में णिलुक्क मिलता है (हाल रावण ; विद्ध ५१ ७); जै महा में निलुक्क हो जाता है (आव एत्सें २१ १४) । इस बोली में इसके नामधातु लुक्कइ, उल्लुक्कइ और णिलुक्कइ भी दखने में आते हैं (हेच ४ ५५ और ११६) जै महा में निलुक्कन्तेहिं, निलुक्कन्तो भी आते हैं (आव एत्सें २१ १७ और १९) । — महा में छिक्क है (= नष्ट ; हेच ४ २५८ ; गउड), इसके साथ साथ *छिक्क भी आया है = *छिक्त है (§ २१), इसके नामधातु छिक्कइ और छिक्कइ भी मिलते हैं (हेच ४ ५५) । — महा में सिच् धातु का रूप सिक्क = सिक्त पाया जाता है (कर्प १४ १४) इसके साथ-साथ साधारण रूप सित्त = सिक्त भी चलता है । — सक्क = *ष्वष्क" है जो ओसक्क में मिलता है (= खिसकना अपसरण ; पाइय १७८ ; देशी १ १४९) इसके साथ-साथ महा में परिसक्किअ भी देखा जाता है (हाल ६ ८) । — अ माग में सोॅह = सुद + न = सुदित सोॅहय है (§ २४४) । — शुष्क और उसके संयुक्त रूपों के लिए § ५८ शुमण्ण के विषय में § ११८, उत्थे दृ के सम्बन्ध में § १ ७ और हृष्य तथा उसके संयुक्त रूपों

के लिए § १२० देखिए। स्त्रीलिग का रूप –आ मे समाप्त होता है, केवल अप० में कभी कभी इसके अन्त में –ई देखी जाती है जैसे **दिण्णी** (हेच० ४, ४०१, ३)।

१ प्राकृत मे –न प्रत्यय के अधिक विस्तार के विषय मे एस० गौल्दश्मित्त, प्राकृतिका पेज ८, नोटसख्या २ तथा योहानसोन, शाहबाजगढी १, १८५ में ठीक निर्णय देते है। अन्यथा, जैसा कि योहानसोन ने पहले ही बता रखा है, एस० गौल्दश्मित्त की सभी व्युत्पत्तियॉ, जो इस सम्बन्ध मे अपने काम की हैं, अशुद्ध है, स्वय पी० गोल्दश्मित्त की जिनका उल्लेख ना० गे० वि० गो० १८७४, ५२० और उसके वाद के पेजों में है। पिशल, वे० वाइ० ६, ८५ और उसके वाद के पेज की तुलना करें। — २ याकोवी ने महाराष्ट्री एर्त्सेलुगन मे यह शब्द =स्रात्र दिया है जो अशुद्ध है, § ९० भी देखिए। — ३ हेमचन्द्र ४, १७७ पर पिशल की टीका। — ४ हाल ४६५ पर वेवर की टीका। — ५ हाल ४८१ पर वेवर की टीका अशुद्ध है। — ६ पिशल, वे० वाइ० १५, १२६। — ७ हेमचन्द्र १, ४६ पर पिशल की टीका। — ८ हेमचन्द्र ४, १७७ पर पिशल की टीका। — ९ मृच्छकटिक २९, २० पर स्टेन्त्सलर की टीका, हेमचन्द्र २, २ पर पिशल की टीका। § ६१ अ की तुलना कीजिए। — १० हाल ४९ पर वेवर की टीका अशुद्ध है। — ११ हाल ६०८ पर वेबर की टीका।

§ ५६७—**पला** के साथ इ धातु की रुपावली सस्कृत की भॉति पहले गण के अनुसार चलती है. महा० में **पलाअइ** (रावण० १५, ८, सी. (C) हस्तलिपि के साथ यही पाठ पढा जाना चाहिए), **पलाअन्त–** (गउड०, हाल), **पलाइअव्व** (रावण० १४, १२, इस काव्य में ही अन्यत्र आये हुए दूसरे रूप के अनुसार यह पाठ पढा जाना चाहिए), **विवलाअइ, विवलाअन्ति, विवलाअन्त–** और **विवलाअमाण** रूप भी पाये जाते है (गउड०, हाल, रावण०), जै०महा० में **पलायइ** मिलता है (आव०एर्त्से० १९, २२, एर्त्से०), **पलायमाण** (आव०एर्त्से० १८, १, एर्त्से०), **पलायसु** (एर्त्से० ९, ३७) और **पलाइउं** रूप भी आये है (आव०एर्त्से० १९, १६), शौर० में **पलाइदुकाम** आया है (मल्लिका० २२५, ११), माग० में **पलाअशि** है (मृच्छ० ९, २३, ११, ७, १३२, ३), आज्ञावाचक में **पलाअम्ह** मिलता है (चंड० ७३, २), वर्तमानकालिक अशक्रिया **पलाअन्ती है** (मृच्छ० १६, २२), कृदन्त **पलाइअ** देखा जाता है तथा भविष्यत्काल का रूप **पलाइश्शं** आया है (मृच्छ० १२२,१३, १७१,१५)। –ऐ तथा –**आ** में समाप्त होनेवाले धातुओं के अनुकरण पर (§ ४७९ और ४८७) इसका सक्षिप्त रूप भी मिलता है : माग० में **पलामि** (मृच्छ० २२, १०) और **पलाशि** (मृच्छ० ११, २१) मिलते हैं, ढक्की में **पलासि** आया है (मृच्छ० ३०, ७), महा० में **विवलाइ है** (गउड० ९३४)। इसके अनुसार साधारण रूप महा० में **पलाइअ** (हाल, रावण०), शौर० में **पलाइद** (विक्र० ४६, ५) और माग० में **पलाइद** (मृच्छ० १२, १९)=सस्कृत में **पलायित** है, किन्तु इन रूपों के साथ साथ सक्षिप्त रूप **पला** एक कर्मवाच्य में भूतकालिक अशक्रिया बनती है जिसका रूप महा० में **पलाअ**=***पलात** और **विवलाअ**=***विपलात** हैं

(रावण०), जै०महा० में यह पलाय हो जाता है (आव एर्त्से० २१, १५ ३२, ५ ; एर्त्से) । इससे ही सम्बन्धित पलाअ भी है (= भाग : देशी० ६, ८) । § ११६ और २४१ की तुलना कीजिए । ये महा० में अंशक्रिया में –अ प्रत्यय भी लगता है : पलाअ रूप पाया जाता है (एर्त्से०) जिसके आ के स्थान में उसकी म ई दिखाई देती है और जो पपलीणु = प्रपलायित में आया है (मृच्छ० २९, १५ १, १) जैसे कि वर्तमानकालिक अंशक्रिया –मीण और –ईण में समाप्त होती है (§ ५६२) ।

§ ५६८—प्राकृत में कुछ धातुओं की भूतकालिक अंशक्रिया कर्मवाच्य में अन्त में –स लगाकर बनती है। संस्कृत में ऐसा नहीं होता। उसमें से रूप –न लगाकर बनाये जाते हैं : महा में खुडिअ (हेच० १, ५३ गउड हाल ; रावण) मिलता है, और में खुडिद है (मृच्छ १६२, ७ अनर्घ० १५७, ९ ; उत्तरा ११, १० [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) = *खुडित = संस्कृत क्षुण्ण[1] महा उक्खुडिअ (हाल रावण०) आया है ; खुड भी मिलता है (= चूर चूर किया हुआ [बोल तुटिए ; टूटा हुआ । —अनु] देशी २ ७४), इसके साथ साथ जै० महा में खुत्त भी पाया जाता है तथा महा में खुण्ण (पाइय २२२ हाल ४४५)। खुण्ण (मढ़ा हुआ : देशी २, ७५) और माग का खुडिद (= भगा दिया गया : मृच्छ० १ १२)[2] दूसरी धातुओं से निकले हैं। छइअ (= छाया हुआ : हेच० २, १७ त्रिवि १, ४, २२) = *छयित है । इन्हें व्याकरणकारों ने = स्थगित बताया है[3] । इसके साथ साथ छण्ण = संस्कृत छन्न के हैं [छाइय कुमाउनी में प्रचलित है । —अनु] । — विद्दाअ (हेच १, १०७) तथा जै महा रूप विद्दाय (आव एर्त्से १७, ११) = *विद्रात = संस्कृत विद्राण है । — अ माग० का अभिज्झाय (कप्प § १०२) = *अभ्यस्थात = संस्कृत अभ्यस्थान है । महा का लुअ (हेच ४ २५८ देशी ७, २१ रावण) = *लूत = संस्कृत लून है ।

1 पिशल बे बाइ १५ ११९ और उसके बाद । — 2 मृच्छकटिक १ १२ पेज २४८ में स्टेन्सलर की टीका । — 3 पिशल बे०बाइ १५, ११९ ।

§ ५६९—अ०माग रूप पुट्ठ = स्पृष्टवान् में एक परस्मैपदी भूतकालिक अंशक्रिया पायी जाती है (आयार १ ७ ८, ८) किन्तु कर्मवाच्य के अर्थ में अन्यथा यह रूप केवल बाद के लेखकों और आलोचनाहीन संस्करणों में देखा जाता है : और में किदवन्तो [!], सुदवन्तेण [!], सुणवन्तेण और उत्तवन्तो पाये जाते हैं (जीवा ८, २६ ; ४२ १५ ; ५१ ११ ; ८७, ९) ; भणिदवन्ता, गविदवन्ता और चलिदवन्तो भी हैं (चैतन्य १८, ११ ; १२८, ५ ; ११ १८) ; पविसदवन्ता [पाठ में पॅसिदवन्तो है], आगदवन्ता, गहिदवाहिदवन्दो [!] और अणुभूदवन्ता भी मिलते हैं (मल्लिका १५५ १८ ; २ ९, १ ; २२२, १२) ; सवादिअवन्दा [!] और पविसदवन्ता भी आये हैं (अद्भुत ५८, १ १११ १५) ; माग में गविदवन्ता [!] और गिळिअवन्ते रूप मिलते हैं (चैतन्य १५ ५ और ६) ; स्त्रीलिंग का रूप और में पडिच्छिदवदी (विद्ध ८१, ९) और पीदवदी (मल्लिका २५९, ३) आये हैं ।

§ ५७०—कर्तव्यवाचक अशक्रिया जिसके अन्त में **–तव्य** जोडा जाता है बहुत बार वर्तमानकाल के वर्ग से बनायी जाती है : **हसेअव्व** और **हसिअव्व** = **हसितव्य** है (हेच० ३, १५७, क्रम० ४, ३९), अ०माग० और जै०महा० में **होयव्व** = **भवितव्य** है (कप्प० , एर्त्से०), शौर० तथा माग० में यह **होदव्व** हो जाता है, जै०शौर० और शौर० में **भविदव्व** भी मिलता है, माग० में **हुविदव्व** भी है (§ ४७५ और ४७६), जै०महा० में **अच्छियव्व** (द्वार० ५००, ९ , ५०१, ८) आया है , शौर० में **अवगच्छिदव्व** मिलता है (मृच्छ० ६६, ३), अ०माग० में **चिट्ठियव्व** (विवाह० १६३) और शौर० में **अणुचिट्ठिदव्व** रूप देखा जाता है (मुद्रा० ५०, ४), अ०माग० मे **पुच्छियव्व** = **प्रष्टव्य** है (सूय० ९८६ , ९८९ , ९९२), **पुच्छेयव्व** भी मिलता है (कप्प०), शौर० में **पुच्छिदव्व** (शकु० ५०, ५ , हास्या० २७, १३) आया है , अ०माग० में **विकृत्** धातु से **विगिञ्चियव्व** बना है (§ ४८५, दस०नि० ६४६, ३), महा० में **रूसिअव्व** है (हाल), अ०माग० में **पश्** धातु से **पासियव्व** निकला है (पण्णव० ६६७ , कप्प०), शौर० में **संतप्पिदव्व** पाया जाता है (मृच्छ० ९४, ३) और **णच्चिदव्व** भी है (प्रिय० १९, ११ और १२ , २६, ६ , २७, ५ , कर्पूर० ४, १) , अ०माग० में **परितावेयव्व** = **परितापयितव्य** है और **उद्दवेयव्व** = **उद्रावयितव्य** है (आयार० १, ४, १, १), **दमेयव्व** = **दमयितव्य** है (उत्तर० १९) , शौर० मे **सुमराइदव्व** (प्रिय० १४, ७) मिलता है , शौर० में **आसिदव्व** भी है (प्रिय० १४, ३) , जै०महा० में **सोयव्व** = **स्वप्तव्य** है (आव०एर्त्से० ३९, १६) , शौर० में यह **सुविदव्व** बन जाता है और **सुइदव्व** भी (मृच्छ० ९०, २० , शकु० २९, ७) , शौर० में **दादव्व** (चैतन्य० ८४, ६ और १३ , जीवा० ४३, १०) और **सुणिदव्व** रूप हैं (मुद्रा० २२७, ६) और इसके साथ साथ **सोदव्व** भी आया है (शकु० १२१, १०), महा० में यह **सोअव्व** हो जाता है (रावण० २, १०) तथा जै०महा० में **सोयव्व** (आव०एर्त्से० ३३, १९) ये सब रूप **श्रु** के हैं , अ०माग० में **भिन्दियव्व** आया है (पण्हा० ३६३ और ५३७) , अ०माग० में **भुञ्जियव्व** भी मिलता है (विवाह० १६३) किन्तु इसके साथ-साथ **भोत्तव्व** भी चलता है (हेच० ४, २१२ , क्रम० ४, ७८) , अ०माग० में **जाणियव्व** (पण्णव० ६६६ , कप्प०) तथा **परिजाणियव्व** पाये जाते हैं (आयार० १, १, १, ५ और ७ , शौर० रूप **जाणिदव्व** हो जाता है (प्रिय० २४,१६) , माग० में इसका रूप **याणिदव्व** है (ललित० ५६५, ७) , जै०शौर० में **णादव्व** है (कत्तिगे० ४०१, ३५२ , पाठ मे **णापव्व** है) , जै०शौर० में **मुणेदव्व** भी आया है (पव० ३८०, ८ , पाठ में **मुणेयव्व** है) , शौर० में **गे ण्हिदव्व** मिलता है (मृच्छ० १५०, १४ , विक्र० ३०, ९) जब कि **घेत्तव्व** (वर० ८, १६ , हेच० ४, २१०) का विधान है , अ०माग० में **परिघे त्तव्व** (आयार० १, ४, १, १ , १, ५, ५, ४ , सूय० ६४७ और उसके बाद , ६९९ , ७८३ , ७८९) और **ओघे त्तव्व** (कप्प०) आये हैं जो ***घृप्** के रूप हैं (§ २१२)। हेमचन्द्र ४, २११ के अनुसार **वच्** की कर्तव्यवाचक अशक्रिया का रूप **वो त्तव्व** होना चाहिए तथा इस विधान के अनुसार शौर०

में विक्रमोर्वशी २१, १५ में यही रूप मिलता है। इस कारण कि शौर में वच् की सामान्यक्रिया का रूप कभी वोत्तु नहीं बोला जाता किन्तु सदा वत्तु रहता है (§ ५७४) इसलिए बम्बइया संस्करण ४, ९, पिशल द्वारा सम्पादित द्राविड़ी संस्करण ९१, १४ = पण्डित का संस्करण १९, ४ के अनुसार वत्तव्व पढ़ा जाना चाहिए, मृच्छकटिक १५१, १५ में भी यही रूप है तथा जै महा और अ माग में भी यही पाया जाता है (एर्से सूय ९९४ और ९९६ ; विवाह ११९ और २ ४ कप्प ; ओव)। महा में इसका रूप वो`त्तव्व होना चाहिए। — वररुचि ८, ५५ तथा हेमचन्द्र ४, २१२ के अनुसार रुद् की कर्मवाचक अंशक्रिया का रूप रो`त्तव्व बनाया जाना चाहिए। किन्तु उदाहरण रूप में महा में रोइअव्व मिलता है (हाल)। कृ का रूप महा में कामव्व आया है (वर ८, १७ हच ४, २१४ ; हाल रावण), अ माग और जै महा में यह कायव्व हो जाता है (आयार २, १ १ ७ ; दस ६१ ११ एर्से) जै शौर और शौर में कादव्व है (पव ३८६, ११ [पाठ में कायव्व है] कत्तिग ५५४, ६ मृच्छ १६६ ४ १२७, १ ; विक ४८ ११ प्रबोध ११, ७ ; प्रिय ११ १), माग रूप काद्व्व = कर्तव्य है (§ ९२)। मुच् के विषय में हेमचन्द्र ४, २१२ में सिखाता है कि मो`त्तव्व = मोक्तव्य है। — अप में इसके समाप्तिसूचक चिह्न –इएव्वउँ, –एव्वउँ और –एवा हैं : करिएव्वउँ = कर्तव्यम् है ; मरिएव्वउँ = मर्तव्यम् है और सहेव्वउँ = सोढव्यम् है ; सोएवा = स्वप्तव्यम् तथा जग्गेवा = जागर्तव्यम् हैं (हेच० ४ ४३८ ; क्रम ५ ५२ की तुलना कीजिए)। इसका मूल या बुनियादी रूप –एव्व माना जाना चाहिए जिससे –एवा निकला है और –एव्वउँ में –क प्रत्यय लगा कर नपुंसकलिंग कर्ता– और कर्मकारकों का –कम् बन जाता है। –एव्व = संस्कृत –एय्य, इसका य का प्रमाणित ढंग से अप में व में परिवर्तन हो जाता है (§ २५४)। वैदिक रूप स्तुषेय्य और बहुत सम्भव है कि शापथेय्य अंशक्रिया के अर्थ में आये हैं विशेष की तुलना कीजिए। क्रमदीश्वर ५ ५५ के अनुसार –एव्वउँ का प्रयोग सामान्यक्रिया के लिए भी किया जाता है।

§ ५७१—महा जै महा और अ माग में –अणीय का रूप –अणिज्ज होता है कर्मवाच्य के रूप के अनुसार (§ ५३५ § ९१ की तुलना कीजिए), शौर और माग में –अणीअ हो जाता है : अ माग में पूयणिज्ज आया है (कप्प । ओव) शौर और दाक्षि में यह पूअणीअ हो जाता है (मृच्छ २८, ७ ; ९ १ ११) अ माग में वन्दणिज्ज मिलता है (उवास कप्प), शौर में वन्दणीअ रूप हो जाता है (मृच्छ ६६, १७) ; महा अ माग और जै महा में करणिज्ज चलता है (हाल ; आयार २, १ १ १९ २ ४ २ ५ एर्से) शौर में इसका रूप करणीअ हो जाता है (विक ११ ८ ; नागा ४ १५) शौर में करणिज्ज आया है (शकु ९ ५ ; विक० ४१ ६)। इन नाटकों में सम्भवतः करणीअ दिया गया है जो शुद्ध है ; जै महा में सारक्खणिज्ज (आव एर्से २८,१६ और १७) = संरक्षणीय है शौर में रक्खणीअ मिलता है (शकु ७४, ८) ;

अ०माग० में **दरिसणिज्ज** आया है (आयार० २, ४, २, २ , ओव०) और **दंस-णिज्ज** भी मिलता है (उवास० , ओव०), शौर० में यह **दंसणीअ** हो जाता है (शकु० १३२, ६ , नागा० ५२, ११)। किन्तु अ०माग० में आयारगसुत्त २, ४, २, २ मे **दरिसणिज्जं** के ठीक अनन्तर **दरिसिणीए** (! , कलकतिया सस्करण में शुद्ध रूप **दरिसणीए** दिया गया है) तथा § ४ में **दरिसणीयं** आया है और सूय-गडग ५६५ मे **दरिसणिय** [?] पाया जाता है और जै०महा० में **दंसणीओ** (एर्से० ६०, १७) तथा महा० में **दूसहणीओ** हैं (हाल ३६५ [यहाँ पर इस उदाहरण का प्रयोजन समझ में नहीं आता है , **दश्** धातु के रूपों के साथ उक्त **सह्** के रूप की सगति नही बैठती । खेद है कि निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित गाथासप्तशती में उक्त स्थान पर इस सम्बन्ध का शब्द ही नही मिला तथा वेबर द्वारा सम्पादित हाल देखने में नहीं आया । —अनु०])। उक्त नियम के विरुद्ध शौर० तथा माग० में बहुधा ऐसे रूप मिलते हैं जिनके अन्त में **–इज्ज** लगता है जैसे, माग० में **पलिहल-णिज्ज** मिलता है (प्रबोध० २९, ८), किन्तु बम्बइया सस्करण ७४, २, पूनेवाले सस्करण पेज ३२ तथा मद्रास मे प्रकाशित सस्करण पेज ३७ मे शुद्ध रूप **पलिहलणीअ** दिया गया है, जैसा कि शौर० में भी **परिहरणीअ** पाया जाता है (शकु० ५२, १५)। मालविकाग्निमित्र ३२, ५ में सभी हस्तलिपियों में शौर० रूप **साहणिज्जे** दिया गया है किन्तु इसी नाटक के सभी अन्य स्थलों पर हस्तलिपियाँ डॉवाडोल हैं, कहीं कुछ और कहीं कुछ लिखती हैं (मालवि० पेज २२३ में बौँल्लेँनसेन की टीका)। निष्कर्ष यह निकला कि हस्तलिपियों के जो रूप नियम से थोडे भी हटे हुए है वे अशुद्ध हैं, जैसा कर्मवाच्य में हुआ है। ये शुद्ध किये जाने चाहिए। वर्तमानकाल के वर्ग से बने रूप अ०माग० में **विप्पजहणिज्ज** (नायाध० § १३८) और शौर० में **पुच्छणीअ** हैं (मृच्छ० १४२, ६)।

§ ५७२— **–य** मूलत. सस्कृत की भाँति काम में लाया जाता है : **कज्ज** का रूप माग० में **कय्य** है = **कार्य** है जो सभी प्राकृत बोलियों में बहुत काम में आता है , जै०महा० में **दुल्लंघ** = **दुर्लंघ्य** है (सगर ३, १६) , **दुज्झ** = **दोह्य** है (देशी० १, ७) , जै०शौर० में **णेय** तथा जै०महा० रूप **नेय** = **ज्ञेय** हैं (पव० ३८१, २० , एर्से०) , अ०माग० में **पेॅज्ज** = **पेय** है (उवास० , दस० ६२९, १), **कायपिज्ज** = **काकपेय** (दस० ६२८, ४८ , यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए), जब कि **पिव्व** (= पानी : देशी० ६, ४६ , इस ग्रथ की भूमिका का पेज ७ की तुलना कीजिए , त्रिवि० २, १, ३०) = ***पिव्य** है जो वर्तमानकाल के वर्ग **पिवसे** निकाला गया है , अ०माग० में **भव्व** = **भाव्य** है (कप्प० § १७ और २२) , अ०माग० में **आणप्प** और **विन्नप्प** = **आज्ञाप्य** और **विज्ञाप्य** हैं (सूय० २५३ और २५६) , अ०माग० में **वच्च** = **वाच्य** है (सूय० ५५३ और उसके बाद [यह **वच्च** कुमाउनी **एकवच्चा, द्विवच्चा, तिर्वच्चा** आदि में वर्तमान है । —अनु०]) , अ०माग० में **वोॅज्झ** है जो ***वह्य** से निकला है और = **वाह्य** है (§ १०४ , नायाध० § ६५), यह भी वर्तमान-काल के वर्ग से निकला है, जैसे कि महा०, अ०माग० और शौर० **गेॅज्झ** है (हेच० १,

७८ ; कर्पूर २९, ४ ८१, ४ बाल० ५०० माल० ७५, १९), महा० में हृत्थ मॉज्झ = हस्तमात्र है (रावण० १ , ४१), महा में घुग्गजझ भी मिलता है (रावण १, १ साहित्यदर्पण ११२, ११ = काव्यप्रकाश १२०, ८ [सर्वोत्तम हस्त-लिपियों के अनुसार घुम्मेज्जं के स्थल में छपे संस्करण में भी यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], यह बहुत अधिक उद्धृत किया जाता है सरस्वती १५५, १ [पाठ में घुम्मॉज्जं है] ; अच्युत ६२ [पाठ में घुग्गज्झ है]), शौर० में अणुगॅज्झ आया है (मृच्छ २४, २१), माग में घुभॉग्ह मिलता है (चंड० ४२, ८ पाठ में घुम्मॉज्झ है, इसी ग्रन्थ में अन्यत्र घुग्गोम भी आया है), अप० में घुम्मॉज्झ (एत्सें० ७१, १९) = ग्रहम् जो वर्तमानकाल के वर्ग गृह्- (§ ५१२) के रूप हैं।

सामान्यक्रिया

§ ५७३—अन्त में -तुं लगाकर सामान्यक्रिया बनायी जाती है। इस सम्बन्ध में संस्कृत और प्राकृत में यह भेद है कि प्राकृत में बहुत अधिक बार समाप्तिसूचक चिह्न स्वयं विशुद्ध वर्ग में ही अथवा वर्तमानकाल के वर्ग में इ जोड़कर लगाया जाता है। इस प्रकार वर्तमानकाल के वर्ग में : ये महा० में गाइउं रूप है (एत्सें), शौर में गाइदुं आया है तथा ये दोनों = गातुम् हैं (मुद्रा ४१, २) शौर में गच्छिदुं (शकु ९२, ११), अणुगच्छिदुं (मुद्रा २६१ २) और इसके साथ साथ गमिदुं रूप हैं (वृषभ ११ ११) और सब प्राकृत बोलियों में काम में आनेवाला गन्तुं भी है ; जै महा में पिविउं (आव एत्सें ४२ ८) तथा इसके साथ साथ पाउं मिलता है (आव एत्सें ४२, ८ ४५, ६) अ माग में भी ये ही रूप हैं (आयार १, २, १, ७) महा में भी ये ही चलते हैं (हाल ; रावण०) और शौर में पादुं आया है (शकु १ ५ १८) शौर० में अणुचिट्ठिदुं मिलता है (मृच्छ १ २ १९), साथ साथ ठादुं रूप भी है (नाया १८,९) तथा जै०महा में उट्ठिउं आया है (आव एत्सें० ११ १४) ; माग में वादुं है (मृच्छ १२१, ७) जो *वाभति = वादति से निकले *वादि से बना है। इसके साथ-साथ जै महा में वाइउं (एत्सें) और शौर में वाविदुं रूप हैं (विक्र ९९, ११) ; जै महा में भिक्खिउं = भिक्षितुम् है जो भक्ष् से बना है (एत्सें ६१ २), हसेउं आया है जो ए-वर्ग का है और इसके साथ-साथ हसिउं भी है ; महा में पुच्छिउं पाया जाता है (सरस्वती १४, १७), शौर में पुच्छिदुं (मृच्छ ८८ २ ; मालवि ५, ४ और १७) और माग में पुश्चिदुं (चंड ४२, ९) = प्रष्टुम् है ; महा में परिमुञ्चिउं मिलता है (रावण १४ २), इसके साथ-साथ मोत्तुं = मोक्तुम् है (हेम ४ २१२) ; महा में मग्गिउं है (हाल) इसके साथ ही ए- रूपावली का मग्गेउं भी है (हाल)। भू धातु की सामान्यक्रिया के सम्बन्ध में § ४ १ तथा ४ २ देखिए। दसवें गण की क्रियाएं तथा इसके अनुसार बने हुए प्रेरणार्थक रूप और नामधातु से सामान्यक्रिया बनाने के लिए पहले वर्तमानकाल के वर्ग में -ए या -वे लगाकर उसमें -तुम् जोड़ देते हैं : महा में आणावेउं है और पिम्मावेउं = निर्मा-

हयितुं है, पासाएउं = प्रसादयितुम् और लंघेउं = लघइतुम् है (हाल), अ०-माग० मे वारेउं=वारयितुम् है (सूय० १७८), परिकहेउं = परिकथयितुम् है (ओव० § १८३), परिभाएउं = परिभाजयितुम् मिलता है (नायाध० § १२४), जै०शौर० में चालेदुं = चालयितुम् है (कत्तिगे० ४००, ३२२), शौर० मे कामेदुं = कामयितुम् है (मालती० २३५, ३) तथा कारेदुं (मुद्रा० ४६, ९) और धारेदुं भी आये हे (मृच्छ० १६६, १४ , ३२६, १२), दसेदुं = दर्शयितुम् है (मुद्रा० ८१, ४), माग० मे अगीकलावेदुं, शोशावेदुं, शोधावेदुं, पॅस्टावेदुं और लुणावेदुं रूप पाये जाते है (मृच्छ० १२६, १० , १४०, ९)। अशक्षित रूप विरल ही मिलता है : शौर० मे णिअत्ताइदुं = निवर्तयितुम् है (विक्र० ४६, १७), ताडयिदुं (मालवि० ४४, १६), सभाजइदुं (शकु० ९८, ८) और सुस्सूसइदुं रूप भी पाये जाते है (मालवि० २९, १२), माग० मे मालइदुं आया है (मृच्छ० १६४, १९)। इसके विपरीत अ– वर्ग से निकाले गये रूप प्रचुर परिमाण मे पाये जाते है (§ ४९१). महा० में धारिउं है (हाल), शौर० में यह धारिदुं हो जाता है (विक्र० १५, ३ , ४०, ७), शौर० में मारिदुं है (मृच्छ० १६०, १४ , शकु० १४६, ८), यह रूप माग० मे मालिदुं हो जाता है (मृच्छ० १७०,२)। इसके साथ साथ मालेदुं मिलता है (मृच्छ० १५८, २४), जै०महा० में मारेउं रूप है (एर्से० १, २५), महा० में वण्णिउं = वर्णयितुम् है तथा वेऊआरिउं = वितारयितुम् मिलता है (हाल), अ०माग० में संवेदिउं आया है (आयार० पेज १३७, १८), जै०महा० में चिन्तिउं, पडिवोहिउं और वाहिउं रूप मिलते हैं (एर्से०), शौर० में कधिदुं (शकु० १०१,९ , १४४,१२) है, अवत्थाविदुं = अवस्थापयितुं है। (उत्तररा० ११२, ९), णिवेदिदुं भी पाया जाता है (शकु० ५१, ३), माग० में पश्तिदुं = प्रार्थयितुम् है (ललित० ५६६, ८)।

§ ५७४—दूसरी रूपावली के उदाहरण निम्नलिखित है . शौर० में पच्चाचक्खिदुं = प्रत्याचष्टुम् है (शकु० १०४,८) , शौर० में अवचिणेदुं रूप मिलता है (ललित० ५६१, ८) और इसके साथ साथ महा० में उच्चेउ आया है (हाल), जै०महा० मे पावेउ = प्राप्तुम् है (एर्से०), शौर० मे सुणिदुं पाया जाता है (विक्र० २६, ५ , मुद्रा० ३८, २ , वेणी० ९९, ६ , अनर्घ० ६१, ६ , ११०, ४), इसके साथ साथ महा०, अ०माग० और जै०महा० में सोउं चलता है (हाल , आयार० पेज १३६, १४ , एर्से० में कृदन्त अर्थ में है § ५७६), शौर० में भुञ्जिदुं मिलता है (धूर्त० ६, २१) और इसके साथ-साथ महा० और अ०माग० में भोत्तुं = भोक्तुम् है (वर० ८, ५५ , हेच० ४, २१२ , क्रम० ४, ७८ की तुलना कीजिए , नायाध० § १२४ , दस० नि० ६४९, १६), अ०माग० में उब्भिन्दिउं आया है (दस० ६२०, १५) इसके साथ साथ भेत्तुं रूप भी है (दस० ६३४, ९) , शौर० में जाणिदुं है (ललित० ५६७, १८ , शकु० ११९, २ , रत्ना० ३०९, २२), इसके साथ साथ जै०महा० में नाउं चलता है (एर्से० , कृदन्त के अर्थ में § ५७६), शौर० में विण्णादुं भी मिलता है (विक्र० ३४, १३), अ०माग० में गिण्हिउं है (निरया० § २० ,

कृदन्त के अर्थ में § ५७६), जै महा० में गे`िण्हउं हो जाता है (एर्से०), शौर० में गेण्हिदुं रूप आया है (मृच्छ १४, १२), महा में गहिउं मिलता है (हाल)। इसके साथ साथ महा में घेत्तुं भी है (वर ८, १६ हेच० ४ २१०; रावण)। ये रूप ० से सम्बन्धित हैं (§ २१२) ; शौर में अणुगण्हिदुं है (मालवि० ६, १८) और इसके साथ साथ महा मे समोत्तुं रूप पाया जाता है (हेच १, १८१ में एक उदाहरण)। रुद् की सामान्यक्रिया महा में रोत्तुं है (वर ८, ५५ हेच ४, २१२ क्रम ४, ७८ की तुलना कीजिए हाल), किन्तु शौर में रोविदुं आया है (शकु० ८ , ८) वररुचि ८, ५५ के अनुसार विद् धातु का घे`त्तुं रूप होता है; वच् का महा , अ माग और जै महा में वो`त्तुं मिलता है (हेच ४, २११; हाल एर्से ; दस नि ६४६, २१), किन्तु शौर में वत्तुं पाया जाता है (शकु २१, २ , ५ , ९ विक्र १ , २ ४७, १) स्वप् का महा० रूप सो`त्तुं है (हाल) = स्वप्तुम् , जै०महा में सोउं हो जाता है (द्वार० ५ १ ७)। ये रूप ०सोत्तुं से सोवइ हो कर निकले हैं (§ ४९७) महा , जै महा० और अ माग मे कृ का रूप काउं = कर्तुम् है (§ ६२ ; वर० ८, १७ हेच ४, २१४ गउड । हाल ; रावण ; एर्से ; आव एर्से० १ १ ; दस नि ६४४, २८), महा० में परिकाउं मिलता है (हाल), शौर में कादुं पाया जाता है (ललित ५६१, ११ मृच्छ ५९, २५ शकु २४, १२ ; विक्र २९, १४ कर्पूर ४१, ६ वेणी १२ ६) और करिदुं भी है (शकु १४४, १२) माग में भी कादुं है (मृच्छ १२१, ७)।

§ ५७५—संस्कृत से सर्वथा भिन्न रूप से ऋ– वर्ग के रूप बनाये जाते हैं। महा और जै महा० में मरिउं = मर्तुम् है (हाल एर्से), शौर में यह रूप मरिदुं हो जाता है (रत्ना ३१६, ५ ३१७, १५ चंड ९३, ९); जै महा में परिहरिउं (एर्से ५८ २४), शौर म विहरिदुं (विक्र ५२, ६) रूप हैं और इनके साथ-साथ महा में वाहर्त्तुं = व्याहर्तुम् है (रावण ११, १३६); जै महा मे समाकरिसिउं = समाकष्टुम् है (द्वार ४९८, ११); महा में उक्खिविउं = उत्क्षेप्तुम् है (हाल), शौर मे खिविदुं पाया जाता है (विक्र २५ १६) णिक्खिविदुं भी आया है (मृच्छ २४ २२); महा और जै महा में लहिउं है (रावण एर्से), शौर में यह रूप लहिदुं हो जाता है (शकु ७२, ११) = लब्धुम् है ; जै महा मे संधिउं = संधातुम् है जो वर्तमानकाल के रूप ०संधइ से निकला है (§ ५), शौर में अणुसंधिदुं मिलता है (मृच्छ ५ ४); शौर मे रमिदुं = रन्तुम् है तथा अहिरमिदुं = अभिरन्तुम् है (मृच्छ० २८, ४ ; ७० २)।

§ ५७६—अ माग मे –तुम् वाला रूप थोड़ा बहुत विरल है। ऊपर के § में जो उदाहरण दिये गये हैं उनके सिलसिले में नीचे कुछ और दिये जाते हैं : जीविउं मिलता है (आयार १, १ ७, १); अदट्ठुं, अग्घाउं और अजाणाउं मिलते हैं (आयार पेज १३६ २२ और ३१ ; पेज १३७, ७) अणुसासिउं भी

आया है (सूय० ५९), **दाउं** = **दातुम्** है (आयार० २, १, १०, ६, २, ५, १, १० ; उवास० § ५८, नायाध० § १२४), **अणुप्पदाउं**=**अनुप्रदातुम्** है (उवास० § ५८) = जै०शौर० **दादुं** (कत्तिगे० ४०३, ३८०. पाठ में **दाउं** है), **भासिउं** = **भाषितुम्** है और **पविउं** = **प्लवितुम्** है (सूय० ४७६, ५३१, ५८०)। उक्त सामान्यक्रियाओं मे से अधिकाश पद्य में आये हैं। बहुत अधिक बार यह रूप कृदन्त में काम में लाया जाता है. **उज्झिउं**, **उज्झित्वा** के अर्थ में आया है (सूय० ६७६), इस अर्थ में **तरिउं** है (सूय० ९५०), **गन्तुम्** आया है (सूय० १७८, आयार० २, ४, २, ११ और १२, कप्प० एस. (S) § १०), **दट्ठुं** = **द्रष्टुम्** है (आयार० १, ४, ४, ३, सूय० १५०), **निद्देट्ठुं** = **निर्देष्टुम्** (दस० नि० ६४३, ३८), **लद्धुं** = **लब्धुम्** है (आयार० १, २, ४, ४, १, २, ५, ३, पेज १५, ३२, सूय० २८९ और ५५०, उत्तर० १५७, १५८, १६९, १७०, दस० ६३१, २६, ६३६, २०), **भित्तुं** = **भेत्तुम्** है (कप्प० § ४०), **काउं** = **कर्तुम्** है (सूय० ८४, दस० नि० ६४३, ३४), **पुरओकाउं** भी आया है (नन्दी० १४६, कप्प० एस (S) § ४६ और ४८, ओव० § २५ और १२६), **आहन्तुं** मिलता है (आयार० १, ८, ३, ४), **परिघेत्तुं** पाया जाता है (पण्हा० ४८९ और ४९५), **गहेउं** भी है (सूय० २९६)। यह रूप इस अर्थ मे मुख्यतया पद्य में काम में लाया गया है किन्तु यह अ०माग० तक ही सीमित नहीं है। इसका जै०महा० में भी बार बार उपयोग पाया जाता है। महा० में यह कम पाया जाता है और यह यह कृदन्त के काम में लाया जाता है[१]। हेमचन्द्र इस अर्थ मे **दट्ठुं**, **मोत्तुं** (२, १४६), **रमिउं** (३, १३६) और **घेत्तुं** देता है (४, २१०)। जै०महा० के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं **गन्तु** है (आव०एर्त्से० ७, ३१, एर्त्से० ५, २२, कालका० दो, ५०८, १८), **दट्ठुं** मिलता है (आव०एर्त्से० २४, ४, कालका० तीन, ५१०, ३१ और ३८), **जिणिउ** = **जेतुम्** है (आव०एर्त्से० ३६, ४२), **कहिउं** = **कथयितुम्** है (एर्त्से० ७, १०), **कहेउ** पाया जाता है (एर्त्से० ७४,३०), **ठविउं** = **स्थापयितुं** है (एर्त्से० ७, ५), **विहेउं** = **विधातुम्** है (कालका० में यह शब्द देखिए), **सोउं** = **श्रोतुम्** है (एर्त्से० २,९, ११,३४, १२,५, कालका० में यह शब्द देखिए), **काउं** है (आव० एर्त्से० ७,१७), **नाउं** = **ज्ञातुम्** हे (एर्त्से० १२, ९१), **घेत्तुं** = ***घृप्तुम्** है (आव० एर्त्से० २२, २९, २३, ७, ३१, ७)। महा० मे निम्नलिखित रूप हैं : **पलीविउं** = **प्रदीपयितुम्** है, **भणिउं**, **भरिउं**, **मोत्तुं**, **वलिउं**, **लहिउं** और **पाविउं** रूप पाये जाते हैं (हाल ३३, २९८, ३०७, ३३४, ३६०, ३६४, ४८४, ४९०, ५१६, ५९५), **जाणिउं** = **ज्ञातुम्** है (रावण० १४, ४८)। इस रूप की व्युत्पत्ति हम अन्त में **-ऊण** लगकर बननेवाले कृदन्त से भी निकाल सकते हैं (§ ५८६) अर्थात् **काउं** को **काऊण** से सम्बन्धित कर सकते है जिसमें अ की विच्युति हो गयी है जैसे, अप० रूप **पुत्तें** = **पुत्रेण** है। अप० में भी इसी के समान अर्थपरिवर्तन होने के कारण (§ ५७९) यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि वास्तव में इन बोलियों में सामान्य-क्रिया कृदन्त के काम में भी लायी जाती रही होगी जैसे कि इसके ठीक विपरीत कृदन्त

भी सामान्यक्रिया के स्थान में काम में लाया जाता था (§ ५८५ ५८८ ९९)।

१ वेबर भगवती १ ४३३ ; हाल १ पेज ६१ ।

§ ५७७—संस्कृत की भाँति प्राकृत में भी काम और मनस् शब्द से पहले सामान्यक्रिया के अन्त में केवल –तु लगता है : अ०माग में अक्खिविउकाम = आक्षेप्तुकाम है गिण्हिउकाम = ग्रहीतुकाम और उद्दालेउकाम = उद्दालयितु काम है (निरया § १९) जीविउकाम रूप पाया जाता है (आयार १, २, १ ३), वासिउकाम = वर्षितुकाम है (ठाणंग १५५), पाउकाम (पा = पीने से बना है ; नायाध० १४३), जामिउकाम और पासिउकाम आये हैं (पण्णव ६६६ और ६६७), संपाविउकाम मिलता है (कप्प § १६ ओव० § २ ; दस ६१८, १९) जै महा० में पडिवोहिउकाम = प्रतिबोधयितुकाम है (एर्से १ १७), कड्ढिउकाम भी देखा जाता है (द्वार ५ ६, ३१) शौर में जीविदुकाम (मुद्रा २२३, १), घेत्तुकाम आलिङ्गिदुकाम (शकु ११ , ११ ; १११, ११), विण्णविदुकाम (महावीर० १ १, ९) तथा सिक्खिदुकाम (मृच्छ ५१, २४) आये हैं, पमज्जिदुकाम = प्रमार्ष्टुकाम है (विक्र १८, १८), वट्टुकाम भी पाया जाता है (मालती ७२, २ ; ८५ १) ; महा में ताडिउमणा = ताडयितुमनाः है (कर्पूर ७०, ७) । –क प्रत्यय आने पर यह स्वतन्त्र रूप से भी काम में लाया जाता है : आलद्धुअं = ०आलब्धुकं = आलेद्धुम् है (§ ३ ३ हच १, २४, २, १६४) ; अ माग में अलद्धुयं = ०अलब्धुकम् है । यह कृदन्त के अर्थ में आया है (दस ६३६, १९) । इस अन्तिम रूप से यह अधिक सम्भव ज्ञात होता है कि कृदन्त के स्थान में काम में लाये गये और अन्त में –टु या –इत्तु लगाकर बनाये गये रूप अ०माग और जै महा० में मूल रूप में सामान्यक्रियाएँ हैं अर्थात् इनकी व्युत्पत्ति –त्वा से सम्भव नहीं है और यह –त्वा निःसन्दिग्ध रूप से प्राकृत में –त्ता रूप में दिखाई देता है (§ ५८२)। इस प्रकार अ माग में : कट्टु = कर्तुं– है जिसका अर्थ है कृत्वा (हच २ १४६ ; आयार १, ४, ३, २ ; ९, १, १ २ ; ११ १ ; ९ ९, २ १ २ १ १, ९ ; २, २१ ; ३, १५ और १६ सूय २८८ और १५८ भग १ ; उवास ; कप्प ओव ; दस ६३१, ९९ ; ६४१ १७ आदि आदि) ; पुरओकट्टु आया है (ओव०) ; –अवहट्टु = अपहर्तुं– है (आयार २, ६ २ १ ; सूय २११ ; ओव ; भग) ; अभिहट्टु पाया जाता है (आयार २, ६ २ १) आहट्टु (आयार० १, ९ ४, १ ; १ ७, २, १ ; २ और २ ; १ ७ ७ ९ ; १ ८ ९ १२ ; २ १ १, ११ ; २ १, २ ४ ; ९ १, ५ ५ ; ६ ४) समाहट्टु (सूय ४१), अब्भाहट्टु (सूय ५४४), नीहट्टु (आयार २ १ १ ४ ; २ ६ २ १) और उवहट्टु रूप आये हैं (आयार २ १ १ ६ ; सूय २०२ और २४३) साहट्टु = संहर्तुं– है (आयार १, १ १ ६ ; विवाह ११७ और १५४ ; विवाग ९ १११ ; १४४ १६७ ; उवास ; कप्प ; ओव ; निरया आदि आदि) ; अवट्टु = अपहर्तुम् है (कप्प एस (S) § १९ ; यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) ; यह रूप भी ८ पाया जाता है (कप्प) ;

चइत्तु = त्युक्तु- है (उत्तर० ४५ और ४११) , **सहॅन्तु** आया है (दस० ६१४, २७) , **पविसित्तु** = प्रवेष्टु- है (दस० ६३१, ५) , आह्वयते का रूप **आइत्तु** मिलता है (आयार० १, ४, १, ३ , टीका में = आदाय, गृहीत्वा) , **तरित्तु** = तरितु- है और **खवित्तु** = क्षपयितु- है (दस० ६३६, ३ और ४) , **पमजित्तु** = प्रमार्ष्टु- है (दस० ६३०, २०) , **विणएॅत्तु** आया है (आयार० १, ५, ६, २) , **उवसंकमित्तु** चलता है (आयार० १, ७, २, १ और २ , १, ७, ३, ३) , हा से बने विजहइ का रूप **वियहित्तु** पाया जाता है (§ ५०० , आयार० १, १, ३, २), **सुणित्तु** = श्रोतु- है (दस० ६४२, १६) , **दुरूहित्तु** भी आया है (सूय० २९३) , **छिन्दित्तु, भुञ्जित्तु** मिलते हैं (दस० ६४०, २१ , ६४१, ३६) , **जाणित्तु** पाया जाता है (आयार० १, २, १, ५ , १, २, ४, २ , १, ४, १, ३ , १, ५, २, २ , १, ६, २, १ , दस० ६३०, ३४) । — जै०महा० में **गन्तु** आया है (कालका० दो, ५०६, ३४) , **कड्ढित्तु** है (एर्त्से० १०, ३८) , **पणमित्तु** है और **ठवित्तु** = स्थापयितु- है, **वन्दित्तु** आया है (कालका० २६०, ११ , २६८, ४ , २७६, ७) , **उत्तरित्तु** मिलता है (कालका० ५०६, २५ , ५११, ७) , **जाणित्तु** है, **पयडित्तु** = प्रकटयितु- है और **थुणित्तु** = स्तोतु- है (कालका० तीन, ५१४, १६ , १७ और २०), **विणिहत्तु** = विनिधातु- है (एर्त्से० ७२, २३) । उक्त सब रूप प्राय निरपवाद पद्य में आये हैं । **त** का द्वित्त इसलिए किया गया है कि अ०माग० की सामान्यक्रिया के अन्त में **-त्तए** = **-तवे** आता है (§ ५७८) जो यह फिर से प्रकट हो गया है । इस रूप का कृदन्त के समाप्तिसूचक चिह्न **-त्ता** = **-त्वा** के आधार पर स्पष्टीकरण होना कठिन है । इससे अधिक उचित तो यह जान पडता है कि इन पर उन शब्दों का प्रभाव पडा हो जिनमें ध्वनिपरिवर्तन के नियमों के अनुसार द्वित्त आया है जैसे, **कट्टु** और **साहट्टु** अथवा इनमें ध्वनिबल का स्थान इधर से उधर खिसक गया हो । § ५७८ की तुलना कीजिए ।

१ वेबर, भगवती १, ४३३ और उसके बाद ।

§ ५७८—अ०माग० में सामान्यक्रिया का सब से अधिक काम में आनेवाला रूप वह है जो **-त्तए** अथवा **-इत्तए** में समाप्त होता है । सामान्यक्रियाएं जैसे **पायए** (आयार० २, १, १, २ , २, १, ९, १ और २ , २, १, १०, ७ , २, २, २, १ , २, ६, १, १० , २, ७, २, ४ , ५ और ६ , नायाध० § १४४ , ओव० § ९६) = वैदिक **पातवे** है, इसके साथ साथ **पिवित्तए** भी मिलता है (ओव० § ८० और ९८), **भोत्तए** (आयार० , नायाध० ऊपर देखिए , ओव० § ९६ , सूय० ४३०) = वैदिक *भोत्तवे, इसके साथ साथ **भुञ्जित्तए** रूप भी आया है (ओव० § ८६), **वत्थए** (आयार० २, २, २, १० , कप्प० एस (S) § ६२) = वैदिक **वस्तवे** [अ०माग० में किन्तु यह **वस्** = 'रहने' से सम्बन्धित है] निश्चित रूप से प्रमाणित करते हैं कि हमें वेबर[१] के साथ कि ये अन्त में **-त्वाय** लगकर बननेवाले वैदिक कृदन्त से निकले हैं कर के न मानना चाहिए, वरन् ए० म्युलर०[२] के अनुसार हमें मानना चाहिए कि ये **लेण** बोली और पाली में मिलनेवाली वैदिक सामान्यक्रिया से निकले हैं जिसके अन्त में **-तवे**

भाता है और जिसमें समाप्तिसूचक चिह्न वर्ग में इ– और ई– जोड़कर लगाया जाता है। ये रूप हैं अंपित्तवे, चरितवे, सवित्तवे और इंवीतवे[1]। त् का द्वित्वीकरण बताया है कि अन्तिम वर्ण में ध्वनिबल है (§ १९४)। इस कारण और भी ध्रुव यह होगा कि इस सामान्यक्रिया का मूल आधार –तवइ क्रिया जाय जिसपर वेद में दुगुना ध्वनिबल है। अ माग इत्तए (कप्प एस (S) § २७) इसलिए = वैदिक एतवई माना जाना चाहिए। इसी भाँति पायवे = पातवई है, गमित्तए की तुलना में वैदिक गमितवई है, पिणिधत्तए की (ओव § ७९) वैदिक धातवई है। यह सामान्यक्रिया मुख्यतः वर्तमानकाल के वर्ग से बनायी जाती है ह्रों त्तए रूप मिलता है किन्तु इसके साथ-साथ पाउब्भवित्तए भी आया है (विवाह नायाध) जो भू से बने हैं; विहरित्तए देखा जाता है (भग उवास कप्प नायाध आदि आदि) सुमरित्तए, सरित्तए आये हैं (आयार पेज १३५, १७ और २) सरित्तए है (आयार १, २, ३, ९), उत्तरित्तए भी आया है (नायाध ११११; ओव § ९६); परिवहित्तए पाया जाता है (उवास § ९५); गच्छित्तए (ओव० § ७९) मारगच्छित्तए (ठाणंग १५५) और उवागच्छित्तए रूप मिलते हैं और इनके साथ-साथ गमित्तए भी चलता है (आयार १, २, ३, ३; भग) चिट्ठित्तए पाया जाता है (विवाह ५११; कप्प), इसके साथ साथ ठाइत्तए रूप भी आया है (आयार २, ८, १ और उसके बाद; कप्प) सद् धातु का नि के साथ निसीइत्तए रूप मिलता है (विवाह ५११) अणुलिम्पित्तए है (ओव § ७९) पुच्छित्तए काम में आया है (भग; नायाध) पासित्तए पाया जाता है (नायाध); कहइत्तए का चलन है (आयार पेज १३५, ३) वूतय– से वूइखित्तए बना है (कप्प; ठाणंग ३५५) परिद्दावित्तए आया है (कप्प) समिसिञ्चावित्तए मिलता है (निरया); पूरइत्तए का प्रचार है (आयार १, १, २, २); आप्यापय– से आपायित्तए बना है (नायाध); धारित्तए काम में आया है (आयार १, ७ ७ १ २, ५, २, ५) धारेत्तए भी है (आयार० २, ५ २ १) पसित्तए आया है (आयार २, २, १, १४ और १८); श्री के रूप आसइत्तए और सइत्तए पाये जाते हैं (विवाह ५११) पडिसुणेत्तए है (आयार २ ५, १ १); धुणित्तए (सूय० ११९) आया है; भक्खित्तए (उवास) भिन्दित्तए (विवाह १२२८) मिलते हैं; वि के साथ कृ का रूप विउव्वित्तए बना है (भग) तथा इसके साथ साथ करित्तए और करेत्तए रूप पाये जाते हैं (ओव § ७९ और ८; नायाध; भग; कप्प) गिण्हित्तए और गेण्हित्तए (भग; निरया ओव § ८६) तथा आगरित्तए मिलते हैं (कप्प)।

1 भगवती १ ४२३; पप्पादइत्तए अशुद्ध पाठभेद है। — २ वाइवने पेज ११। — ३ वकमुड आल्ट इंडिशे वर्गुम § २ ३।

§ ५७९ — हमचन्द्र ४ ४४१ के अनुसार अप की सामान्यक्रिया के समाप्तिसूचक चिह्न –अण, –अणहं –अणहिं और –एवं हैं। क्रमदीश्वर ५,५५ में –एवि,

–एप्पि, –एप्पिणु, अणं, –अउं और एव्वउं बताता है। अन्त में –अन वाली संज्ञा की तुलना कीजिए जिनके अन्त में –अणहँ लगने से उसका रूप सबध बहु० का बन जाता है, –अणहिँ लगने से अधिकरण एक० हो जाता है अथवा करण बहु० बन जाता है। इस प्रकार : एॅन्छण = एष्टुम् है जो इष् से बना है (= चाहना : हेच० ४, ३५३), करण = कर्तुम् है (हेच० ४, ४४१, १), यह –क प्रत्यय के साथ भी आया है जो अक्खाणउँ = आख्यातुम् मे पाया जाता है, यह वास्तव में = आख्यानकम् है (हेच० ४, ३५०, १), भुञ्जाणहँ और भुञ्जणहिँ भी मिलते है (हेच० ४, ४४१, १) तथा लुहणं भी पाया जाता है (क्रम० ५, ५५)। देवं = दातुम् में समाप्तिसूचक चिह्न –एवं देखा जाता है (हेच० ४, ४४१, १)। यह रूप स्पष्ट ही वर्तमानकाल के वर्ग दे– = दय– (§ ४७४) तथा निकाले गये समाप्तिसूचक चिह्न –व से बनाया गया है। यह –वं –वन से आया है जो वैदिक वने से सम्बन्धित है, जिससे यह अप० का देव वैदिक दावने का समरूपी हो सकता है। इन उदाहरणो के विषय में निश्चित निदान तभी निकाला जा सकता है जब अधिक उदाहरण प्राप्त हो सकें। –तु वाली एक सामान्यक्रिया भज्जिउ है (हेच० ४, ३९५, ५), जो भञ्ज् के कर्मवाच्य के वर्ग से कर्तृवाच्य के अर्थ मे बनाया गया है। यह अप० में अन्यत्र भी पाया जाता है (§ ५५०)। यदि हम पूना की एक हस्तलिपि के अनुसार भंजिउ = भञ्जिउ पाठ उचित न समझें तो। सामान्यक्रिया का यह रूप कृदन्त के अर्थ में भी काम में लाया जाता हे (हेच० ४, ४३९) जैसा कि इसके ठीक विपरीत कृदन्त के कई रूप सामान्यक्रिया के स्थान में काम मे लाये जाते हैं (§ ५८८)। क्रमदीश्वर ने ५, ५५ में लहउं (पाठ में लहतुं है) भी दिया है।

§ ५८०—प्राकृत मे कर्मवाच्य की एक अपनी अलग सामान्यक्रिया है[1] : महा० में दीसइ = दृश्यते से दीसिउं रूप बनाया गया है (रावण० ४, ५१, ८, ३०), घेॅप्पइ = *घृप्यते से घेप्पिउं निकला है (रावण० ७, ७१), हत् धातु के रूप हम्मइ से आहम्मिउं बनाया गया है (§ ४४०, रावण० १२, ४५), जै०महा० में दिज्जइ = दीयते से दिज्जिउं निकला है (एर्त्से० ६, ७)। इनके साथ अ०माग० रूप मरिज्जिउं भी रखा जाना चाहिए जो म्रियते से निकला है (दस० ६२४, ४०), साथ ही साधारण व्यवहार का रूप मरिउ भी चलता है, शौर० में मरिदुं है (§ ५७५)। अप० रूप भज्जिउ के विषय में § ५७९ देखिए।

1 एस० गौल्दश्मित्त, त्सा० डे० डौ० मौ० गे० २८, ४९१ और उसके बाद के पेज।

कृदन्त (–त्वा और –य वाले रूप)

§ ५८१—सस्कृत में –त्वा और –य अन्त में आने पर कृदन्त के प्रयोग में जो भेद माना जाता है वह प्राकृत में नहीं मिलता। ये प्रत्यय क्रियाओं में समान रूप से जोड़ दिये जाते हैं, भले ही उनमे उपसर्ग लगा हो अथवा वे बिना किसी उपसर्ग के हों। महा० में –त्वा का प्रयोग किसी दशा में नहीं किया जाता और शौर०, माग०

और अन्तिम स्वर आ निबल हो गया है (§ ११३ और १३९)। **काऊण, आअच्छिऊण, आगन्तूण** तथा इनके समान अन्य रूपों के विषय मे § ५८४ देखिए।

१ पिशल, कू० बाइ० ८, १४०। — २ पिशल, उक्त पत्रिका। मालविकाग्निमित्र ६७, १५ की इ हस्तलिपि में शुद्ध रूप **गदुअ** दिया गया है।

§ ५८२— **-त्वा** प्रत्यय जो प्राकृत मे **-त्ता** रूप ग्रहण कर लेता है और अनुस्वार के अनन्तर **-ता** बन जाता है अ०माग० मे कृदन्त का सबसे अधिक काम मे आनेवाला रूप है, जै०शौर० में भी इसका बार-बार व्यवहार किया जाता है और जै०महा० मे यह विरल नही है[१]। साधारणत. समाप्तिसूचक चिह्न वर्तमानकाल के वर्ग मे लगाया जाता है, फुटकर बातो में वही सब बाते इसके लिए भी लागू हैं जो सामान्यक्रिया के विषय मे कही गयी हैं। इस प्रकार. अ०माग० मे **वन्दित्ता** आया है (हेच० २, १४६, ओव० § २०, नायाध०, उवास०, भग० आदि आदि), **वसित्ता** है (आयार० १, ४, ४, २), **चइत्ता** = *त्यजित्वा है (आयार० १, ४, ४, १, १, ६, २, १, ओव० § २३, उत्तर० ४५०, ५१७, ५४१), **अवक्कमित्ता** (आयार० २, १, १, २) पाया जाता है, **गन्ता** = पाली **गन्त्वा** है (ओव० § १५३) किन्तु इसके साथ साथ **आगमेत्ता** रूप आया है (आयार० १, ५, १, १, १, ७, २, ३), **अणुगच्छित्ता** (कप्प०), **उवागच्छित्ता** (विवाह० २३६[२], ओव०, कप्प०, निरया०), **निग्गच्छित्ता, पडिनिग्गच्छित्ता** रूप पाये जाते हैं (निरया०), **वन्ता** = **वान्त्वा** है (आयार० १, ३, १, ४, १, ६, ५, ५; २, ४, २, १९, सूय० ३२१), **भवित्ता** आया है (विवाह० ८४४, ओव०, कप्प०, उवास० आदि आदि), **जिणित्ता** है (सूय० ९२९), **उवणे॑त्ता** = *उपनीत्वा है (सूय० ८९६), **पिवित्ता** है (आयार० २, १, ३, १), **उट्ठित्ता** (निरया०), **अब्भुट्ठित्ता** (कप्प०), **पासित्ता** (राय० २१, सूय० ७३४, ओव० § ५४, पेज ५९, १५, उवास०, नायाध०, निरया०, कप्प०) मिलते है, **निज्झाइत्ता** = *निध्यात्वा है (आयार० १, १, ६, २), **मुयित्ता** (विवाह० ५०८), **ओमुयित्ता** (कप्प०) **मुच्** से बने हैं, **प्रच्छ्** से सम्बन्धित **आपुच्छित्ता** (उवास०) और **अणापुच्छित्ता** आये हैं (कप्प०), **लुम्पित्ता, विलुम्पित्ता**[३] (आयार० १, २, १, ३, १, २, ५, ६, सूय० ६७६ और ७१६ तथा उसके बाद के § की तुलना कीजिए) मिलते हैं, **अणुलिम्पित्ता** भी है (जीवा० ६१०), **मत्ता** = **मत्वा** है (आयार० १, १, ५, १, १, ३, १, ३, सूय० ४०३ और ४९३ [सर्वत्र यही पाठ पढा जाना चाहिए]), **उत्तासइत्ता** = *उत्त्रासयित्वा है (आयार० १, २, १, ३), **विच्छड्डइत्ता, विगोवइत्ता** और **जणइत्ता** आये हैं (ओव०), **आमन्ते॑त्ता** पाया जाता है (सूय० ५७८), **आफालित्ता** = *आस्फालयित्वा है (सूय० ७२८), **पगप्पे॑त्ता** = *प्रकल्पयित्वा है (सूय० ९३५), **ठवे॑त्ता** = **स्थापयित्वा** है (आयार० २, ७, १, ५, पेज १२९, १६, उवास०), **सिक्खावे॑त्ता** और **सेहावे॑त्ता** = *शिक्षापयित्वा तथा *शैक्षापयित्वा है, **सद्दावित्ता** = *शब्दापयित्वा है (कप्प०, निरया०), **अणुपालित्ता** और **निवेसित्ता** मिलते हैं

(कप्प०) ; अहिज्जा = *अधीत्वा = अधीत्य है (सूय ४५३) विदित्ता आया है (आयार० १ १, ५, १ १, ३, ६ २) स्तु का संथुणित्ता रूप मिलता है (जीवा० ६१२) हन्ता है (आयार १, २, १, १ ; ५, ६ सूय ६५८ ६७६ ७१६ और उसके बाद के § कप्प) परिहित्ता आया है (सूय २१०), परिपिहे त्ता (आयार २, २ ३, २७) परिपिहित्ता (कप्प) और पडिपिहित्ता (सूय ७२८ पाठ में पडिपेहित्ता है) परि उपसर्ग के साथ धा के रूप है और परि प्रति + पी के अहित्ता चाहिए है (उत्तर ७५१) विप्पजहित्ता भी है (आयार पेज १२५ १ उत्तर ८८१), ये दोनों हा से बने हैं ; घु का रूप धुणित्ता है (विवाह ९०) ; आप् का प्र उपसर्ग के साथ पाउणित्ता रूप आया है (सूय ७७१ विवाह ११५ ; २३५ ९६८ ९६० पण्णव ८४६ नायाध ११२५ ओव कप्प उवास आदि आदि) धुणित्ता (उवास) और पडिधुणित्ता पाये जाते हैं (कप्प निरया) अभिधूणित्ता है (सूय ८५०) छें त्ता और भें त्ता मिलते हैं (आयार १, २, १ ३ १, २ ५, ६ सूय ६७६ और ७१६ तथा उसके बाद के §) ; विउव्वित्ता है (भग ; कप्प) इसके साथ साथ करें त्ता और करित्ता आये हैं (आयार २, १५, ५ ; ओव कप्प निरया) ; ज्ञा से जाणित्ता (आयार १, ३, १, २ ३, १ ४, २ ; १, ६ ५ २ दस ६३ , ४) अपरियाणित्ता (ठाणंग ४२) और वियाणित्ता रूप पाये जाते हैं (दस नि ६३५, १४ ओव कप्प) क्री से किणित्ता बना है (सूय ६ ९) अभिगिण्हित्ता (आयार २, १५, २४), ओगिण्हित्ता (ओव) तथा पगिण्हित्ता (नायाध) ग्रह् के रूप हैं। जै महा में नीचे दिये उदाहरण देखने में आते हैं : गन्ता (आव एर्त्से ४२ ७) और चइत्ता आये हैं (आव एर्त्से २ १) करिस्सित्ता = कृष्ट्वा है (आव एर्त्से १८, २) ; संपित्ता आया है (एर्त्से) वन्दित्ता (कालका ; एर्त्से) भंजित्ता (कालका), उट्ठित्ता (आव एर्त्से १ ४१), ज्हाइत्ता (आव एर्त्से १८, २) और उल्लत्ता रिस्या पाये जाते हैं उल्लत्ता = आर्द्रयित्वा है ; ठवित्ता मुच्छावित्ता, मारें त्ता, पढत्ता (एर्त्से) और पडिगाहेत्ता मिलते हैं पायेत्ता = पायित्वा है, पाहित्ता भी है (आव एर्त्से १ १ ; १ २ १८, ६); चिन्तयित्ता आया है (कालका) मयच्छें त्ता = *नपच्छयित्वा है (आव एर्त्से २६ २०) ; भाइणित्ता पाया जाता है (आव एर्त्से २९, ५) पच्चक्खाइत्ता = *प्रत्याख्यायित्वा है (एर्त्से); सुणत्ता (आव एर्त्से ७ ११ एर्त्से) मुञ्चित्ता (एर्त्से), जाणित्ता (कालका) और गिण्हित्ता रूप पाये जाते हैं (सगर २, १७ कालका) । — हेमचन्द्र ४ २७१ के अनुसार शौर में अन्त में -त्ता लगकर बननेवाले रूप भी काम में आते हैं जैसे भो त्ता = भुक्त्वा हों त्ता = भूत्वा पढित्ता = पठित्वा और रन्ता = रन्त्वा है। साधारण शौर के लिए ये रूप एकदम नये हैं। इसके विपरीत जै शौर में इनका बहुत अधिक प्रचार है ; हेमचन्द्र का नियम जै शौर के लिए ही बनाया गया होगा (§ २१)। इस प्रकार : चत्ता = त्यक्त्वा है (पव १८५,

६४, कत्तिगे० ४०३, ३७४), **णमसित्ता** = नमस्यित्वा है (पव० ३८६, ६), **आलोचित्ता** = *आलोचयित्वा है (पव० ३८६, ११), **निरुज्झित्ता** = निरुध्य (पव० ३८६, ७०) है, **णिहणित्ता** = निहत्य है (कत्तिगे० ४०१, ३३९), **जाणित्वा** = ज्ञात्वा है (पव० ३८५, ६८, कत्तिगे० ४०१, ३४०, ३४२, ३५०), **वियाणित्वा** = विज्ञाय है (पव० ३८७, २१) और **वन्धित्ता** = वद्ध्वा है (कत्तिगे० ४०२, ३५५)। अ०माग० रूप **दिस्सा, दिस्सं** और **दिस्स** = दृष्ट्वा तथा **पदिस्सा** = *प्रदृष्ट्वा के विषय में § ३३४ देखिए।

१. याकोबी का यह कथन (एर्त्से० § ६१) कि यह कृदन्त जै०महा० में बहुत कम काम में आता है, भ्रामक है। महाराष्ट्री एर्त्सेलुगन के कुछ रूप ऐसे स्थलों में आये है जो अ०माग० में लिखे गये हैं, किन्तु इनको छोड कर भी अन्य रूप यथेष्ट रह जाते हैं, जैसा कि ऊपर दी गयी सूची से प्रमाणित होता है और उक्त सूची अनायास बढ़ायी जा सकती है। — २ हस्तलिपियाँ बहुत अधिक बार वर्तमानकाल की क्रिया के बाद केवल २ **त्ता** लिख कर कृदन्त का रूप बताती है (वेबर, भग० १, ३८३)। इसलिए इनमें **उवागच्छन्ति २ त्ता उवागच्छित्ता** पढ़ा जाना चाहिए। विवाहपन्नति के सम्पादक ने यह न समझने के कारण **उवागच्छन्तित्ता, निगच्छन्तित्ता, वद्धन्तित्ता, पडन्तित्ता** (२३६), **संपेहेइत्ता** (१५२), **पासइत्ता** (१५६), **दुरुहेइत्ता** (१७२), इतना ही नहीं, **विप्पजहामि** के अनतर २ **त्ता** आने पर **विप्पजहामित्ता** दिया है (१२२१, १२४२ और उसके बाद), **अणुप्पविसामि** १२४२ और उसके बाद २ **त्ता** आने पर उसने **अणुप्पविसामित्ता** कर दिया है आदि-आदि। इसी भाँति **पाउणन्तित्ता** आया है (सूय० ७७१)। ऐसे रूप इस व्याकरण में चुपचाप सुधार दिये गये हैं। — ३ इन तथा इन्हीं प्रकार के अन्य रूपों में टीकाकार बहुधा अकर्मक कर्त्ता देखते है जिनके अन्त में सस्कृत में तृ लगाया जाता है, ये आयारगसुत्त और सूयगडगसुत्त में पाये जाते हैं। कई अवसरों पर शका होने लगती है कि संभवत टीकाकार ठीक हो, किन्तु ऐसा मानने में ध्वनि का रूप कठिनाइयाँ उपस्थित कर देता है। — ४ हेमचन्द्र ४, २७१ पर पिशल की टीका।

§ ५८३—अन्त में **–त्ता** लगकर बननेवाले कृदन्त को छोड अ०माग० मे कृदन्त का एक और रूप पाया जाता है जिसके अन्त में **–त्ताणं** लगता है, इससे सूचना मिलती है कि यह रूप वैदिक *त्वानम्[१] से निकला है **भवित्ताणं** (नायाध०, भग०), **पाउब्भवित्ताणं** (उवास०) आये हैं, **वसित्ताणं** मिलता है (कप्प० § २२७), **अणुपरियट्टित्ताणं** = *अनुपरिवर्तित्वानम् है (ओव० § १३६, भग०), **अभिनिवट्टित्ताणं** है (सूय० ५९३ और उसके बाद), **दुरुहित्ताणं** चलता है (ओव० § ७९, दो और तीन), **चइत्ताणं** = *त्यजित्वानम् है (ओव० § १६९, उत्तर० १२, २१७, २९४, ५३९, ५७६), **पश्य–** का रूप **पासित्ताणम्** मिलता है (विवाह० ९४२, १३२२, निरया० § ७, नायाध० § २२, २३, २४, ४४, ४६,

और उसके बाद ; कप्प § १ ; ५ १ ११ १२ ४७ ७० ७४ और उसके बाद ८७ पेज ९६ नदी १६९) चिट्ठित्ताणं आया है आप्य में छंद की मात्राएं बिठाने के लिए चिट्ठित्ताणं के स्थान में आया है (दस ६२२, २८) आपुच्छित्ताणं मिलता है (कप्प एस § ४८) स्पृश् का रूप फुसित्ताणं पाया जाता है (ओव § १३१ और १४ भग) संपक्खित्ताणं (भग), उवसपज्जित्ताणं (कप्प एस § ५ ; ओव § १ भग उवास) आये हैं पूसित्ताणं (ठाणंग ५६), पडिवज्जित्ताणं (आयार २, १, ११, ११), आयामेत्ताणं (सूय ६८१) और चिट्ठित्ताणं रूप मिलते हैं (आयार १ ७, ८, २) सपिहित्ताणं = *संपिधिरवानम् = संपिधाय है (सम ८१ ; पाठ में सपहित्ताणं है) ; संसिघुसित्ताणं (ओव § २१) करेत्ताणं (दस ६१४, २७), आगिण्हित्ताणं (कप्प एस § ९ उवास) पगिण्हित्ताणं और संगिण्हित्ताणं (नायाध) रूप पाये जाते हैं । ये महा रूप काइत्ताण आया है (कालका २७२ ११) । यह रूप पद्य में एक अ माग उदाहरण में मिलता है ।

१ यूरोपियन व्याकरणकारों द्वारा बताया गया रूप पीत्वानम् (बेनफे, क्लीनस्पाखिगेस प्रामाटीक इत्यादि § ९१४ चार १ ; वेबर भगवती १ ४११ ; हिल्मी १ § ९९१ का आधार जैसा कि बाकरनागल ने आल्ट इंडिशे प्रामाटीक के भूमिका के पेज ९४ नोटसंख्या १ में बताया है पाणिनि ७ १ ४८ में काशिका संस्करण के टीकाकार की छापने में अशुद्धि रह जाना है । काशिका में इसका शुद्ध रूप पीत्वीनम् दिया गया है । यं शब्द के अन्त में लगाया हुआ नहीं है जैसा कि वेबर ने हाल १ पेज ६६ और उसके बाद के पेज में दिया है इस विषय पर आज कुछ लिखना व्यर्थ है । याकोबी तथा कुछ अंश में लौयमान द्वारा सम्पादित अ माग पाठों में शब्द से अलग छपा गया यं सर्वत्र ही पहले आनेवाले कृदन्त के साथ ही जोड़ा जाना चाहिए । यह तथ्य स्टीनसन ने कल्पसूत्र पेज १२६ में पहले ही ताड़ लिया था ।

§ ५८४— -त्ताणं के स्थान में भारतीय व्याकरणकार -तुआणं भी देते हैं जो *तुयाणं = *त्वानम् से निकला है (§ ११९), अनुनासिक लुप्त होने पर इसका रूप तुआण हो जाता है : आरुआणं मिलता है (हेच १ २७) हसिउआण हसिउआणं और घेत्तुआणं रूप आये हैं (सिंहराज पन्ना ५८ और ५९) ; काउआण भी है (हेच १, २७ ; सिंहराज पन्ना ५९) । सोउआण और मेत्तुआण मिलते हैं (हेच २ १४६) , हसेउआण हसिउआण वॉत्तुआण, मॉत्तुआण वॉत्तुआण मॉत्तुआण तथा वह्तुआण पाये जाते हैं (सिंहराज पन्ना ५८ और ५९) घेत्तुआण आया है (हेच ४, २१ , सिंहराज पन्ना ५९) । किन्तु उक्त रूपों के उदाहरण और कोई प्रमाण नहीं मिलते । इसके विपरीत एक प्रत्यय जिसके रूप -तूणं -ऊणं और विशेषकर तूण और ऊण, जै शौर में -तूण जो स्वय शौर में भी वर्तमान है पै में -तून महा जै महा पै शौर तथा पै में साधारणतः सब से अधिक व्यवहार में आनेवाला कृदन्त बनाते हैं, अ माग में भी विशेषतः पद्य में

यह देखा जाता है (§ ५८५ और ५८६)। हेमचन्द्र ४, २७१ और २७२ के अनुसार -दूण शौर० में भी वर्तमान होना चाहिए, उसने इसके निम्नलिखित उदाहरण दिये हैं : **भोदूण, होदूण, पढिदूण, रन्दूण, करिदूण** और **गच्छिदूण**। किन्तु वास्तव में अनेक नाटकों में शौर० तथा माग० रूप अन्त मे **-तूण** और **-ऊण** लग कर बने पाये जाते हैं (**-दूण** वाले विरल ही मिलते है, **-ऊण** की भी यही आशा करनी चाहिए)। इस प्रकार शौर० में **आअच्छिऊण, पेक्खिऊण, कारिऊण** मिलते हैं (ललित० ५६१, १ , २ और ५), **काऊण** (विक्र० ४१, ११ , ८४, ८ , मालती० २३६, २ [पाठ में **काउण** है] , मद्रासी सस्करण मे **कादूण** है), **आगन्तूण** (मालती० ३६३, ७ , पाठ मे **आगअत्तूण** है , मद्रासी सस्करण में **आगन्दूण** है), **घे॑त्तूण** (कर्पूर० ७, ६ , मल्लिका० ५७, १९ , १५९, ९ [पाठ में **घक्कूण** है], १७७, २१ , १९१, १६ [पाठ में **घे॑क्कूण** है], २१९, १३ [पाठ में **घक्कूण** है], २२९, ८ [पाठ में **घे॑क्कूण** है]) और **घेऊण** (मालती० १४९, ४) , इस नाटक में अन्यत्र **घेत्तूण** भी आया है , मद्रासी सस्करण में **घत्तूण** है), **दट्ठूण** (चैतन्य० ३८, ७), **दाऊण** (जीवा० १८, २) आदि आदि रूप मिलते हैं , माग० में **पविशिऊण** पाया जाता है (ललित० ५६६, ७)। बहुत से नाटकों के भारतीय सस्करणों में जैसे चैतन्यचद्रोदय, मल्लिकामारुतम् , काल्येयकुतूहलम् और जीवानद में पग पग पर इस प्रकार के रूप मिलते हैं। पद्य में ये शुद्ध हैं जैसे, माग० में **घे॑त्तूण** (मृच्छ० २२, ८) और निश्चय ही आव० और दाक्षि० में **भेत्तूण** भी ठीक है (मृच्छ० ९९, १७ , १००, ५) तथा दाक्षि० में **हन्तूण** (मृच्छ० १०५, २२ , यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए)। अन्यथा ये रूप सर्वोत्तम पाठों और हस्तलिपियों के प्रमाणानुसार शौर० और माग० मे अशुद्ध हैं। माल्तीमाधव २३६, २ बी (B) हस्तलिपि में भी **कदुअ** रूप शुद्ध है। सोमदेव और राजशेखर बोलियों की मिलावट करके उनमें गडबडी पैदा कर देते हैं (§ ११ और २२)। अन्त में **-दूण** लगकर बननेवाला कृदन्त जै०शौर० में है : **कादूण, णेदूण, जाइदूण, गमिदूण, गहिदूण** और **भुञ्जाविदूण** रूप पाये जाते हैं जिनके स्थान में पाठों में बहुधा अशुद्ध रूप **-दूण** के लिए **-ऊण** वाले रूप दिये गये हैं (§ २१)। इस सम्बन्ध में भी हेमचन्द्र ने जो कुछ कहा है वह शौर० के बदले जै०शौर० के लिए लागू है।

§ ५८५—समाप्तिसूचक चिह्न **तूणं** और **-ऊणं** उदाहरणार्थ पल्लवदानपत्र में भी पाया जाता है। उसमें **कातूणं** = ***कर्त्वानम्** (६, १० और २९) = अ०माग० और जै०महा० रूप **काऊणं** है (दस०नि० ६४५, २५ , आव०एर्त्से० ९, १८ , २७, १८ , ३१, १४ और १५ , एर्त्से० ७२, ४ , ७८, ३)। इसके साथ-साथ जै०महा० में **विउव्विऊणं** भी आया है (आव०एर्त्से० ३१, १३) , पल्लवदानपत्र में **नातूणं** = ***ज्ञात्वानम्** है (६, ३९) = अ०माग० और जै०महा० रूप **नाउणं** है (ओव० § २३ , एर्त्से० ८५, १२) , महा० में **उच्चरिऊणं** आया है (गउड० २६०), **रो॑त्तूणं** (हाल ८६९) और **घे॑त्तूणं** रूप भी पाये जाते हैं (विज्जालग्ग ३२४, २५) , अ०माग० में **उवउञ्जिऊणं, होऊणं** (विवाह० ५५० और १२८१), **नमिऊणं, पन्न-**

गउड०, मुद्रा० ८३, २, द्वार० ४९६, २८), महा० में **वोदूण** पाया जाता है (रावण०), अ०माग० और जै०महा० में **वन्दिऊण** मिलता है (कप्प० टी. एच. (T II) १३, ९, सगर २, ८, ११, १२, कालका०), अ०माग० में **लद्धूण** = *लब्धवान है (सूय० ८४६ और ८४८), जै०महा० में **आपुच्छिऊण** आया है (एर्त्से०, द्वार० ४९६, १८), महा० और जै०महा० मे **मो`त्तूण = *मुक्त्वान** है (हेच० ४, २१२ और २३७, गउड०, हाल, रावण०, विद्ध० ११, ८, एर्त्से०, कालका०, द्वार० ४९७, १८, ४९८, ३८, सगर ७, १३), जै०महा० में **मरिऊण** है (सगर ११, ७ और ९), अ०माग० में **विद्धूण = विद्ध्वान** है (सूय० ९२८), महा० में **पडिवज्जिऊण = *प्रतिपाद्यित्वान = प्रतिपद्य** है (हाल), महा० में **उड्डेऊण** (गउड०) **अवहत्थिऊण, पज्जालिऊण, आफालिऊण** (हाल) रूप मिलते हैं, **उअऊहेऊण = उपगूह्य** है तथा **णिअमेऊण = नियम्य** है (रावण०), जै०महा० में **सम्पणिऊण** (एर्त्से०), **ढक्केऊण** (द्वार० ४९९, ८) और **रञ्जिऊण** रूप आये हैं (कक्कुक शिलालेख ११), **भेसेऊण = *भेषयित्वान** है (कालका०), **ठविऊण** है (सगर १, १०, एर्त्से०), **ठाइऊण = *स्थागयित्वान** (आव०एर्त्से० ३०, ४) है, महा०, दाक्षि० और जै०महा० मे **हन्तूण** आया है (हेच० ४, २४४, रावण०, मृच्छ० १०५, २२ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], एर्त्से०)। इसके साथ साथ महा० में **आहणिऊण** रूप भी मिलता है (मृच्छ० ४१, १६), जै०महा० में **हणिऊण** देखा जाता है (आव०एर्त्से० १७, ३१), महा० में **रोत्तूण** (भाम० ८, ५५, हेच० ४, २१२, रावण०), महा० में **रोऊण** रूप भी है (हाल), जब कि जै०महा० में **रु** धातु का रूप (§ ४७३) **रोविऊण** बनता है (सगर ७, ११), **वे`त्तूण** है (भाम० ८, ५५), महा० में **वच्** का रूप **वो`त्तूण** मिलता है (हेच० ४, २११, रावण०), जै०महा० मे **पिहेऊण** है (सगर १०, १७), महा०, जै०महा० और अ०माग० में **दाऊण** (भाम० ४, २३, गउड०, काव्यप्रकाश २४३, ३, द्वार० ५००, १९, एर्त्से० ७८, १, पण्हा० ३६७) है, महा० में **धुणिऊण** चलता है (रावण० ६, २०), जै०महा० में **पाविऊण** है (एर्त्से०), महा० और जै०महा० में **सोऊण** है (भाम० ४, २३, हेच० ३, १५७, ४, २३७, गउड०, हाल, रावण०, एर्त्से०, कालका०, सगर ७, ८, ११, १२, आव०एर्त्से० १८, २०, ३१, २३)। इसके साथ साथ **सुणिऊण** पाया जाता है (हेच० ३, १५७), जै०महा० में **छे`त्तूण** (एर्त्से०) और **छेदिऊण** रूप मिलते हैं (कालका० दो, ५०७, ११), जै०महा० में **भञ्जिऊण** और **भञ्जेऊण** आये हैं (एर्त्से०), आव०, दाक्षि० और जै०महा० में **भे`त्तूण** मिलता है (मृच्छ० ९९, १७, १००, ५, एर्त्से०), जै०महा० में **भिन्दिऊण** भी आया है (सगर ३, १, ६ और १८), अ०माग० में **भो`त्तूण** काम में आता है (वर० ८, ५५, हेच० ४, २१२, ओव० § १८५), जै०महा० में **उवभुञ्जिऊण** भी है (एर्त्से०), पल्लवदानपत्र में **कातूण** आया है (१०१, ९), जै०शौर० मे **कादूण** (§ २१ और ५८८), महा० और जै०महा० में **काऊण** हो जाता है (भाम० ४, २३, ८, १७, हेच० २, १४६, ४, २१४,

मे पाया जाता है (§ २८१ और २९९)। इस प्रकार : अ०माग० मे **हो ँच्चा** = *भूत्या = भूत्वा है (सूय० ८५९), अ०माग० और जै०शौर० मे **ठिच्चा** = *स्थित्या है (सूय० ५६५, विवाह० ७३९ और ९२७, कत्तिगे० ४०२, ३५५), अ०माग० मे **सुठिच्चा** आया है (सूय० ९३८, ९४१, ९५०), अ०माग० मे **चिच्चा** है (सूय० ११७ और ३७८, उत्तर० ५१५, कप्प० § ११२) और **चे ँच्चा** भी (आयार० १, ६, २, २, २, १५, १७, ओव० § २३), ये *तियक्त्या = त्यक्त्वा से बने हैं, **पे ँच्चा = पीत्वा** है (आयार० २, १, ४, ५) और **अपिच्चा** = अपीत्वा (सूय० ९९४)। अ०माग० मे **पे ँच्चा** (आयार० १, १, १, ३) और **पिच्चा** (सूय० २८) = *प्रेत्या = प्रेत्य है। — अ०माग० मे **अभिसमे ँच्चा** = *अभिसमेत्या = अभिसमेत्य है (आयार० १, १, ३, २ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए], १, ७, ६, २, ७, १), **वच्चा** रूप आया है (सूय० ५६५ और उसके बाद)। वास्तव मे इसका शुद्ध रूप **वुच्चा** है (सूय० ७८३ [कुमाउनी में **एक–वच्चा, द्वि–वच्चा** और **तिर (त्रि)–वच्चा** मे जिसका अर्थ 'कह कर' है, **वच्चा** का प्रयोग बना है। —अनु०]) = *वक्त्या = उक्त्वा है, **दा** धातु का रूप **दच्चा** है (विवाह० २२७), **हा** का **हिच्चा** (= छोड कर . सूय० ३३० और ३४५, आयार० १, ४, ४, १, १, ६, २, १, १, ६, ४, १), **हेच्चा** भी है (आयार० १,६, ४, ३) और पद्य में छन्द की मात्राए ठीक करने के लिए **हे ँच्च** रूप भी मिलता है (सूय० १४४), **श्रु** का **सो ँच्चा** बनता है (हेच० २, १५, आयार० १, १, १, ४, १, १, २, ४, १, ५, ३, १, १, ६,४,१, १,७,२,३, २,४,१,१, सूय० १५८, १८९, २९८, ३२२ आदि आदि, दस० ६३१, १८, ओव०, कप्प०, उवास०), यह रूप जै०शौर० में भी पाया जाता है (पव० ३८६, ६) तथा जै०महा० में भी (काल्का०, **सुच्चा** भी देखा जाता है), अ०माग० मे **सोच्चं** भी है जो **सोच्चं इदं** (§ ३४९, आयार० २, १६, १) मे आया है, **भुज्** का **भो ँच्चा** होता है (हेच० २, १५, आयार० २, १, ४, ५, २, १, ९, ४, २, १, १०, ३, सूय० १९४, २०२, २०३, २२६, विवाह० २२७, कप्प०), **अभो ँच्चा** मिलता है (सूय० ९९४)। पद्य में छद की मात्राए ठीक करने के लिए **अभो ँच्च** भी पाया जाता है (आयार० १, ८, १, १०), अ०माग० और जै०शौर० मे **कृ** का रूप **किच्चा** आया है (आयार० २, ३, १, १४, २, ३, २, ९, सूय० २६, भग०, उवास०, ओव०, कप्प०, पव० ३७९, ४, कत्तिगे० ४०२, ३५६ और उसके बाद और ३७५ और उसके बाद), **ज्ञा** के अ०माग० में **णच्चा** और **नच्चा** रूप मिलते हैं (हेच० २, १५, आयार० १, ३, २, १ और ३, १, ६, १, ३ और ४, १, ७, ८, १ और २५, १, ८, १, ११ और १४ तथा १५, २, १, २, ५ और उसके बाद, सूय० १५५, २२८, २३७, दस० ६२९, ५, ६३१ ३५, ६३३, ३५)। समाप्तिसूचक चिह्न **–च्चाण** और **च्चाणं** अ०माग० **हिच्चाण** (सूय० ८६), **हे ँच्चाणं** (सूय० ४३३) और **णच्चाणं** (सूय० ४३) में तथा पद्य में छद की मात्रा ठीक करने के लिए **हे ँच्चाण** (सूय० ५५१), **नच्चाण** (सूय० १८८), **सो ँच्चाण** (दस० ६३४, ४१, ६३७, १६) और **चिच्चाण**

जै०महा० मे पाये जाते हैं (एर्त्से० ७८, २१, ८१, १९ और २४, ८४, ५) इस बोली से नाममात्र का सम्बन्ध नहीं रखते। ये अप० से सम्बन्धित हैं। अप० में कृदन्त का यह रूप सामान्यक्रिया के अर्थ मे भी काम मे लाया जाता है : **संवरेवि** मिलता है (हेच० ४, ४२२, ६), **जेॅप्पि** आया है, **चएॅप्पिणु** = **त्यजित्वीनम्** है, **लेविणु** और **पालेवि** पाये जाते हैं (हेच० ४, ४४१, २), **लहेवि**, **लहेॅप्पि** और **लहेॅप्पिणु** चलते है (क्रम० ५, ५५)। अब और देखिए कि सामान्यक्रिया **भज्जिउ** कृदन्त के स्थान म बैठी है (§ ५७९)। अन्त मे **-तुम्** और **-तु** लगकर बननेवाली सामान्यक्रिया के विषय मे जो कृदन्त के अर्थ मे काम मे लायी जाती है § ५७६ और ५७७ देखिए।

§ ५८९— अन्त में **-इअ = -य** लगकर बननेवाले कृदन्त महा० मे बहुत विरल है क्योंकि महा० मे समाप्तिसूचक चिह्न **-ऊण** काम मे लाया जाता है। गउडवहो और रावणवहो मे इसका एक उदाहरण भी नहीं आया है। हाल मे इसका एकमात्र उदाहरण **संमीलिअ** है (१३७), इसलिए यहाँ पर **संमीलिअदाहिणअं** = **संमीलितदक्षिणकं** लिखा जाना चाहिए तथा **सम्मीलिअ** क्रियाविशेषण माना जाना चाहिए जो इसके पास ही मे आनेवाले **सुइर** और **अविअण्हं** का समानान्तर रूप है [यहाँ भी वेबर द्वारा संपादित तथा भट्ट मथुरानाथ शास्त्री द्वारा संपादित और निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित गाथासप्तशती मे पाठभेद है। वेबर के **अविअण्हं** के स्थान में बम्बई के संस्करण में **अवि एहं** मिलता है। —अनु०]। **पाडिअ** (८८०) वेबर के अनुसार 'क्रियात्मक संज्ञा' नहीं, किन्तु टीकाकारो के अनुसार कर्मवाच्य की भूतकालिक अंशक्रिया मानी जानी चाहिए। इसी भॉति **अणुणीअ** (१२९) भी वेबर के मत के विरुद्ध और टीकाकारों के अनुसार **अणुणीअपिओ** पढा जाना चाहिए। काव्यप्रकाश ७२, १० = हाल ९७७ में **वलामोडिअ** के स्थान में श्रेष्ठ हस्तलिपियों के अनुसार **वलमोडीइ** (§ २३८) पढना चाहिए, जैसा कि राजानकानन्द ने अपने काव्यप्रकाशनिदर्शन में दिया है, दूसरी श्रेष्ठ हस्तलिपि में, जो काव्यप्रकाशनिदर्शन को प्राप्त है, **वलामोढेसण** रूप दिया है। हाल ८७९ में जिसमें वेबर ने पहले (हाल १ परिशिष्ट संख्या ४४) काव्यप्रकाश ६८, ५ और साहित्यदर्पण १०२, २० के अनुसार **पेॅक्खिअ उण** छापा था, अब इसके स्थान में शुद्ध रूप **पेक्खिऊण** दिया है, यही रूप काव्यप्रकाश के सर्वोत्तम हस्तलिपियों में पाया जाता है तथा सरस्वतीकण्ठाभरण ४८, २१ में भी मिलता है। दशरूप ९१, ९ में धनिक के श्लोक में **णिज्झाअणेहमुद्धं** पढा जाना चाहिए अर्थात् **णिज्झाअ = निध्यति** है। इन कारणों से वेबर ने हाल १ पेज ६७ में जो उदाहरण संगृहीत किये है, उनमें से केवल काव्यप्रकाश ८२, ९ का **गहिअ** खडा रह जाता है, किन्तु इसके स्थान में भी सर्वोत्तम हस्तलिपियों के अनुसार **लहिअ** पढा जाना चाहिए। इनके साथ **विणिज्जिअ = विनिर्जित्य** है जो कर्पूरमंजरी ८, ६ में आया है और **वज्जिअ = वर्ज्य** है जो बालरामायण १५७, ४ में है, जब कि १०, १० में आनेवाला **ओत्थरिअ** जिसका अनुवाद सम्पादक ने **अवतीर्य** किया है = **अवस्तृत** है क्योंकि यहाँ **ओत्थरिअराहु- राहुओत्थरिअ** के स्थान में लिखा गया है, जैसा कि अन्यत्र भी पाया जाता है (§ ६०३)। हेमचन्द्र २, १४६ के उदाहरण

निक्खम्म = **निक्रम्य** है (आयार० १, ६, ४, १) किन्तु शौर० में **निक्कमिअ** रूप चलता है (प्रिय० ३४, ३), अ०माग० में **विउक्कम्म** = **व्युत्क्रम्य** है (आयार० १, ७, १, २) किन्तु शौर० में **अदिक्कमिअ** = **अतिक्रम्य** है (रत्ना० २९५, ९), अ०माग० में **पक्खिप्प** = **प्रक्षिप्य** है (सूय० २८० और २८२), अ०माग० में **पासिय** है (आयार० १, ३, २, ३), छन्द की मात्राए ठीक करने के लिए अ०माग० और जै०महा० में (§ ७३) **पासिया** रूप मिलता है (उत्तर० ३६१, एर्त्से० ३८, ३६) और अ०माग० मे **पस्स** (उत्तर० २२२, २३९, २४०), **अणुपस्सिया** (सूय० १२२) और **संपस्सिय** पाये जाते है (दस० ६४२, ११), अ०माग० और जै०महा० में **परिच्चज्ज** (आयार० १, ३, ३, ३, उत्तर० ५६१, एर्त्से०) आया है, जै०महा० में **परिच्चइय** भी मिलता है (एर्त्से०) और शौर० रूप **परिच्चइअ** (मृच्छ० २८, १०, रत्ना० २९८, १२) = **परित्यज्य** हैं[१], अ०माग० मे **समारब्भ** (सम० ८१) है, जै०महा० में **आरब्भ** आया है (एर्त्से०) तथा शौर० मे **आरम्भिअ** मिलता है (शकु० ५०, २), अ०माग० मे **अभिकंख** = **अभिकाङ्क्ष्य** है (आयार० २, ४, १, ६ और उसके बाद), अ०माग० में **अभिरुज्झ** = **अभिरुह्य** है (आयार० १, ८, १, २), किन्तु आव०, दाक्षि० और शौर० में **अहिरुहिअ** है (मृच्छ० ९९, १९, १०३, १५, विक्र० १५, ५), माग० मे **अहिलुहिअ** मिलता है (मृच्छ० ९९, ४, १२१, ११, १६४, ३), अ०माग० में **पविस्स** = **प्रविश्य** है (आयार० १, ८, ४, ९) किन्तु शौर० में **पविसिअ** है (मृच्छ० १८, १०, २७, ३, ९३, २, शकु० ७०, ७, ११५, ६, १२५, १२, विक्र० ७५, ४), यह माग० में **पविशिअ** हो जाता है (मृच्छ० १९, १०, २९, २४, ३७, १०, ११२, ११, १२५, २२, १३१, १८), जै०शौर० में **आपिच्छ** है (पव० ३८६, १), जै०महा० में **आपुच्छिय** आया है (द्वार० ४९५, ३१, **चिन्तिऊण** और **पणमिउणम्** के बीच में है) और **अणापुच्छिय** भी मिलता है (आव०एर्त्से० ११, २३), शौर० में **सिञ्चिअ** है (मृच्छ० ४१, ६), अ०माग० में **शम्** से **निसम्म** बना है (आयार० १, ६, ४, १ ; कप्प०), शौर० में **श्रम्** का रूप **विस्समिअ** है (मालती० ३४, १), जै०महा० में **पडिवज्जिय** = **प्रतिपद्य** है (एर्त्से०), अ०माग० में **पडिवच्चइ** से सम्बन्धित ***पडिउच्च** से **पडुच्च** रूप बना है (§ १६३, २०२, विवाह० २९, ३५, ९९, १११, १२७, १२८, १३६, २७२ आदि आदि, ठाणग० १८५, १८६, आयार० १, ५, ५, ५, सूय० ३३२, ७७६, उत्तर० १०१९, १०४४, १०४७, १०५१ और उसके बाद, नन्दी० ३९५ और उसके बाद, जीवा० ३३, ११८ और उसके बाद, अणुओग० १४, १५, १५४ और उसके बाद, २३५ और उसके बाद, दस०नि० ६४४, १७, ६४९, ९ आदि आदि), पद्य में **पडुच्चा** रूप भी पाया जाता है (सूय० २६६, दस०नि० ६४४, १३), शौर० में **पट्ठाविअ** और **ठाविअ** रूप आये हैं (मृच्छ० २४, २, ५९, ७), जै०महा० में **आरोविय** (एर्त्से०) और **समारोविय** मिलते हैं (द्वार० ५०३, ३३), शौर० में **वज्जिअ** = **वर्जयित्वा** है (शकु०

और गौडबोले के सस्करण में भी नहीं पाया जाता । अ०माग० और जै०शौर० मे **पप्प** =**प्राप्य** है (आयार० १, २, ३, ६ , ठाणग० १८८ , उत्तर० १०१७ और १०१९, पण्णव० ५२३ , ५४० , ५४१ , ६६५ , ६६७ , ७१२ , ७८१ , दस०नि० ६४९, ५ , ८ और ११ [पाठ में **पप्पा** है] , ६५३, १ , पव० ३८४, ४९) किन्तु जै०-शौर० में **पाविय** भी है (कत्तिगे० ४०२, ३६९), जैसे कि शौर० मे **समाविअ** देखा जाता है (रत्ना० ३२३, २) , शौर० में **भज्जिअ** है (मृच्छ० ४०, २२ , ९७, २३ , शकु० ३१, १३ , चैतन्य० १३४, १२) , अ०माग० में **छिन्दिय** आया है (आयार० २, १, २,७), **छिन्दियछिन्दिया** और **भिन्दियभिन्दिया** रूप भी मिलते हैं (विवाह० ११९२) , शौर० में **परिच्छिन्दिअ** है (विक्र० ४७, १), यह अ०माग० में **पालिच्छिन्दिय** मिलता हे (§ २५७) , शौर० में **भिन्दिअ** (विक्र० १६, १) और **भेदिअ** हैं (मृच्छ० ९७,२४ , § ५८६ की तुलना कीजिए), माग० में भी **भिन्दिअ** है (मृच्छ० ११२, १७) , अ०माग० मे **भुञ्जिय** चलता है (आयार० १, ७, १, २ , २, ४, १, २ , सूय० १०८), शौर० में **भुञ्जिअ** है (चैतन्य० १२६,१० , १२९,१०), अ०माग० में **अभिजुञ्जिय** आया है (सूय० २९३ , ठाणग० १११ , ११२ , १९४ , विवाह० १७८) , जै०महा० में **निउञ्जिय** मिलता है (एर्त्से०) , अ०माग० में **परिन्नाय** (आयार० १, १, २, ६ और उसके बाद , १, २, ६, २ और ५, सूय० २१४ [पाठ में **परिण्णाय** है]) और **परिजाणिया** हैं (सूय० ३८० और ३८१), **जाणिय** (दस० ६४१, २४) तथा **वियाणिया** भी मिलते हैं (दस० ६३१, ३५ , ६३७, ५ , ६४२, १२) , शौर० में **जाणिअ** (रत्ना० ३१४, २५ , प्रिय० १५, १५ , वृषभ० ४६, ७) और **अआणिअ** (शकु० ५०, १३ , मुद्रा० २२६,७, इस नाटक में अन्यत्र दूसरा रूप भी देखिए), माग० मे **याणिअ** हो जाता है (मृच्छ० ३६, १२) , शौर० में **वन्धिअ** (मृच्छ० १५५, ३ , प्रबोध० १४, १० [पूना और मद्रास के सस्करणों के अनुसार यही पाठ पढा जाना चाहिए] , रत्ना० ३१७, ११), **उब्बन्धिअ** भी है (रत्ना० ३१५, २८ , चड० ९२, ११ , नागा० ३४, १५), माग० में **वन्धिअ** हैं (मृच्छ० १६३, १६), जै०महा० में **गे ण्हिय** (द्वार० ५०७, ४), शौर० और आव० में **गे ण्हिअ** (मृच्छ० ४१, १२ , ५९, ८ , १०५, २ [आव० में], १०७, १० , शकु० १३६, १५ , विक्र० १०, २ , ५२, ५ , ७२, १५ , ८४, २० , मालती० ७२, ७ , रत्ना० ३०३, २०), माग० में **गे ण्हिअ** है (मृच्छ० १२, १४ , २०, ३ और १० , १६, १२ और १८ , ११६,५ , १२६, १६ , १३२, १६ , शकु० ११६, २ , चड० ६४, ८), जै०शौर० और जै०महा० में **गहिय** चलता है (कत्तिगे० ४०३, ३७३ , एर्त्से०) किन्तु अ०माग० और जै०महा० में अधिकाश में **गहाय** (आयार० १, ८, ३, ५ , २, ३ , १, १६ और १७ , २, ३, २, २ , २, १० , २२ , सूय० १३६, ४९१ , ७८३ , १०१७ , विवाह० २२९ , ८२५ , ८२६ , उवास० , निरया० , आव०एर्त्से० १७, १० , ३५, १२ , ३७, ३१ , ४६, २ , एर्त्से०) = सस्कृत **ग्रहाय** है (बोएटलिक के सक्षिप्त सस्कृत-जर्मन कोश में यह शब्द देखिए), यह **ग्रहाय** वास्तव में प्राकृत का सस्कृत अनुवाद है, क्योंकि कृदन्त रूप **गहाय** नामधातु ***गहाअइ**,

*गाहाइ (§ ५५८) = *ग्रहायति है। संधियुक्त रूप में अ०माग० में अभिणिगिज्झ = अभिनिगृह्य भी मिलता है (आयार० १, १, १, ४), परिगिज्झ = परिगृह्य है (आयार० १, २, ३, ३ और ५) तथा रूपों के विकार जैसे, अवगिज्झिय, णिगिज्झिय (कप्प०) तथा पगिज्झिय हैं (आयार० २, १, ९, २ २, १, १, १५ २, १, ३, १ — ३ ; ओव०)।

§ ५९२—अन्त में –त्ताणं –त्ताण और इनके साथ-साथ –त्ता और –याणं, –याण तथा इनके साथ-साथ –या लग कर बननेवाले कृदन्त के साथ-साथ अ० माग० में अन्त में –याणं, –याण और साथ-साथ –य तथा पद्य में छन्द की मात्राएं ठीक करने के लिए –यां[1] लग कर बनाया जानेवाला कृदन्त भी मिलता है : आवीलियाण, परिपीलियाण और परिस्साविंयाण पीड् तथा स्रु के रूप हैं (आयार० २, १, ८, १) उद् उपसर्ग के साथ सिच् का रूप उस्सिञ्चियाणं है (आयार० २, १, ७, ८) संसिञ्चियाणं सिच् का रूप है जिसमें सं[2] उपसर्ग जोड़ा गया है (आयार० १, २, ३, ५) ; समुपेहियाणं पद्य में छन्द की मात्राएं ठीक करने के लिए समुप्पेहियाणं के स्थान में आया है। यह ईक्ष् धातु से बना है जिससे पहले समुत् उपसर्ग आयी है जैसे, समुपेहिया है (§ ३२३ और ५९० पण्हें ३८, ११ जो आवस्सयनिर्युक्ति १७, ४१ के एक उद्धरण में आया है)[3] ; लद्धियाण = लब्ध्वा है (उत्तर० ६२७) आरुसियाणं = आरुष्य है (आयार० १, ८ १, २) तक्कियाणं = तर्कयित्वा (आयार० १, ७, २, ४) परिवज्जियाण = परिवर्ज्य है (आयार० १ ८, १, १२ और १८) ; ओभासियाणं = अपवर्त्य (आयार० २, १ ७, ८) ; पलिच्छिन्दियाणं = परिच्छिद्य है (आयार० १, १, २, १) ; पलिभिन्दियाणं = परिभिद्य (सूय० २८१) ; अभिजुञ्जियाण = अभियुज्य है (आयार० १ २, १, ५) और अकियाणं = अकृत्वा है (आव० § १४२)।

1. –याणं को –त्ताण से व्युत्पन्न बताने में ध्वनिसम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ सामने आ जाती हैं। इस अवसरों पर भी याकोबी आयारंगसुत्त के अपने संस्करण में सर्वत्र णं को शब्द से भिन्न स्वतन्त्र रूप से देता है जो ठीक अशुद्ध है –याण वाले रूप से इसका प्रमाण मिलता है। — 2. यों ही इसे लिपि के अनुसार पढ़ा जाना चाहिए जिसकी पुष्टि टीकाकारों के अर्थ संसिच्य से होती है। १ १ १ १ में संसिच्यमाण की तुलना कीजिए। — 3. याकोबी महाराष्ट्री एर्सेलुंगन, पेज १५८।

§ ५९३—अ० माग० में कुछ शब्दों के अन्त में समाप्तिसूचक चिह्न –आए लगता है और ये रूप कृदन्त के काम में लाये जाते हैं : आयाए मिलता है (आयार० १ ३ २ १ और २ ; २ १ १ १ और उसके बाद ; २, १, ९, २ विवाह० ११६ ; निरया० § १७ और १) = आदाय है ; समायाए है (आयार० १, ५, २ ५) ; निगाए (भग० ; कप्प०) निस्साए (भग०) = पाली निस्साय = अ०माग० *निश्राय है जो श्रि के रूप हैं (§ ५९१ में गहाय की तुलना कीजिए) ; संपाए = संप्राप्य है तथा इसके साथ साथ उट्ठाए भी आया है (आयार० १ ८,

, १), **समुट्ठाए** चलता है (आयार० १, २, २, १ , १, २, ६, १), प्र उप-
र्गों के साथ ईक्ष् का रूप पेहाए मिलता है (§ ३२३), **अणुपेहाए** (§ ३२३),
वेहाए (आयार० १, ३, ३, १) और **स्पेहाए** (§ ३२३)[1] रूप देखे जाते हैं
प्राकि ये रूप कर्मकारक से सम्बन्धित पाये जाते हैं जैसे, **एग अप्पाणं संपेहाए**
आयार० १, ४, ३, २), **आउर लोग आयाए** (आयार० १, ६, २, १), इस
ारण इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि इनका अर्थ क्रियात्मक है। किन्तु बहुत
धिक अवसरों पर इनके रूप संज्ञात्मक हैं, जैसे कि बार बार आनेवाले **उट्ठाए उट्ठेइ,**
ट्ठाए उट्ठित्ता (उवास० § १९३ , निरया० § ५ , आव० § ५८ और ६० ,
सवाइ० १६१ और १२३६) तथा **उट्ठाए उट्ठेन्ति** इत्यादि म (ओव० § ६१)।
ीकाकार **उट्ठाए** रूप में स्त्रीलिंग **उट्ठा**[2] का करणकारक एक० देखते हैं , इसके अर्थ
और शब्द के स्थान के अनुसार यह रूप यही हो सकता है[3]। इसी भाँति, उदाहरणार्थ,
अणाणाए पुट्ठा = **अनाशया** (इसका अर्थ यहाँ पर अनाशानेन है) **स्पृष्टाः** है
आयार० १, २, २, १) और ऐसे स्थलों पर, जैसे **अट्ठं एय तु पेहाए अपरिन्नाए**
कन्दइ (आयार० १, २, ५, ५) नाममात्र भी सन्देह का स्थान नहीं रह जाता कि
अपरिन्नाए = **अपरिज्ञया** है = **अपरिज्ञाय** नहीं, जैसा कि टीकाकार इसका अर्थ
देना चाहते हैं[4], जब कि इसके पास ही आया हुआ **पेहाए** इसी भाँति निस्सन्देह कृदन्त
के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु अपने रूप के अनुसार यह = **प्रेक्षया** है। इन कारणों
से मेरा विश्वास है कि ये सब रूप मूल में अन्त में -आ लग कर बननेवाले स्त्रीलिंग के
करणकारक के रूप हैं, जो क्रिया के रूपों में भी काम में लाये जाते थे। इसकी पुष्टि से
ऐसे स्थल जैसे कि **अन्नमन्नवितिगिंछाए पडिलेहाए** (आयार० १, ३,३, १) जिसमें
अन्नमन्न सधि बताती है कि **वितिगिंछाए** का रूप सज्ञा का है, जब कि इसके बगल
म आनेवाले **पडिलेहाए** का अर्थ क्रियात्मक लिया जा सकता है, जो निम्नलिखित
उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है **निग्गन्था पडिलेहाए बुद्धवुत्तम् अहिट्ठगा** (दस०
६२६, २३), यद्यपि यह अन्यथा बहुधा निश्चय ही सज्ञा के काम मे भी आता है
(उदाहरणार्थ, आयार० १, २, ६, २ , १, ५, १, १ , १, ७, २, ३), जब कि
हम किसी किसी अवसरों पर संदिग्ध रह जाते हैं (आयार० १, २, ५, ५ , १, ५, ६,
२)। **पडिलेहित्ता** (आयार० २, २, १, २ और उसके बाद) अथवा **पडिलेहिया**
(आयार० १, ७, ८, ७ , २, १, १, २ [पाठ मे **पडिलेहिय** है]), जब कृदन्त
रूप मे काम मे आते हैं तब इन शब्दों की आकृति के अनुसार इनका अर्थ 'परिष्कार
करना', 'पोंछना' होता है , किन्तु इस **पडिलेहित्ता** का दूसरा तथा मूल से निकाला
हुआ अर्थ 'साहस करना', 'संशय करना' भी हो सकता है (आयार० १, १, ६, २ ,
१, ७, ८, २०)। **पेहाए** और **सपेहाए** का स्पष्टीकरण भी अन्य किसी प्रकार से
नहीं किया जा सकता। कृदन्त रूप जैसे **आयाए** और **नीसाए** इसी प्रकार के नमूनों
के आधार पर ही बनाये जा सके होंगे। **-ए** = **-य** की समानता किसी प्रकार नहीं
की जा सकती[5]। अ०माग० शब्द **अणुवीइ** (आयार० १, १, ३, ७ , १, ४, ३,
१ , १, ६, ५, ३ , २, २, ३, ३ , २, ४, १, ३ , २, ४, २, १९ , २, ७, १, २ ,

२, ७, २, १ और ८ पेज १११, ८ और १ ११४, ५ और उसके बाद ; सूय० ४७४ ५११ दस० ६२१, १५ ६१०, १ दस नि ६६१, ३ [पाठ में अणुवीई है]) और नहीं के अर्थ में अ के साथ अणणुवीइ रूप आया है (आयार० पेज १११,९ और १ ११४,१ और उसके बाद) । इसका अर्थ टीकाकारों ने अनुचिन्त्य अनुविचिन्त्य तथा विचार्य किया है । इन्हीं ग्रन्थों में अन्यत्र इसके जो नाना रूप बार-बार आये हैं जैसे, अणुवीयि, अणुवीयी, अणुवीसि और अणुविति यवाते है कि यहाँ कृदन्त से कोई प्रयोजन नहीं है । अणुवीइ क्रियाविशेषण है जो = *अणुवीसि और इसका अर्थ है 'मूक से', 'बड़ी सावधानी के साथ' तथा इसका सम्बन्ध वैदिक वीति' के साथ है ।

१ याकोबी कभी संपेहाए कभी सपेहाए और कभी स पेहाए लिखता है कभी-कभी तो एक ही § में ये नाना रूप देता है १ ४ ३, २ में जहाँ दसवीं पंक्ति में सपेहाए है और चौदहवीं में स पेहाए । हस्तलिपियाँ इन रूपों के विषय में डाँवाडोल हैं उदाहरणार्थ १ २ १ ४ की तुलना कीजिए । पद्य में सर्वत्र जहाँ ह्रस्व मात्रा की आवश्यकता है संपेहाए रूप आया है पर इसे सँपेहाए पढ़ना चाहिए । — २ वेबर भगवती १ ४१५, नोटसंख्या २ । — ३ होएर्नले उवासगदसाओ और उसके अनुवाद की नोटसंख्या १८६ में अपना मत देता है कि यह रूप पुल्लिंग तद्धु का सम्प्रदान एकवचन है । — ४ कलकतिया संस्करण में अपरिन्नाय आया है किन्तु टीकाकारों द्वारा मान्य पाठ, याकोबी वाला अपरिन्नाए ही है । — ५. ए म्युलर बाइत्रैगे पेज ६१ । — ६ पिशल वेदिशे स्टुडिएन १ २९५ और उसके बाद की तुलना कीजिए ; गेल्डनर उक्त ग्रन्थ के २ १५१ और उसके बाद में लिखता है कि वीति बर्बे चीज की माँग करता है ।

§ ५ ४— अप में –य का –इ हो जाता है (हेच ४, ४३९) जो प्राकृत –इअ मे से अ की विच्युति होने के अनन्तर व्युत्पन्न हुआ है : वइ = घोर वइय है जो वृय– से बना है (पिगल १ ५[अ] [बौँल्लँनसेन की विक्र पेज ३१ की तुलना कीजिए] ; ६८ ३१ ८६[अ] ; १२२), इसका संक्षिप्त रूप भी मिलता है (§ १६६] जो व है (पिगल १ ३१) परिहरि, पस रि रूप मिलते हैं (पिगल १ १२ अ ; १४१ अ) गा का गइ रूप मिलता है (= जाना ; पिगल २, ६४), मइ = *मयि = घोर और माग मयिम जो मू से निकला है (पिगल २, २४१); पसि मिलता है (पिगल २, ८८) ; चकि है (इंडिशे स्टुडिएन १५, ३१४ प्रबन्ध १५९, १) ; कोँप्पि = –कुप्य है (पिगल १ १२३ अ) जो वर्तमान काल के वर्ग से बना है मारि = –मार्य = मारयित्वा है (हेच ४, ४३९, १) ; संचारि और चिन्तारि रूप आये हैं (पिगल १, ४१ १ ७) जा का जाइ हो गया है (= जाना ; पिगल १, ३७ ; ८९ अ ; १ ७ और १२१) करि आया है (हेच ४ ३५७ ४ ; पिगल १ ८१ ; ८२ ; ८९), जा का जाणि रूप चलता है (पिगल १ ११९) । ठवि के साथ-साथ (पिगल १, १ २ और १ ७)

जो = शौर० ठविअ = -स्थाप्य है थप्पि रूप भी पाया जाता है (पिगल १, १२३ अ , १३७ अ) जो द्विकारवाला रूप माना जाना चाहिए। यह द्विकार पद्य मे छन्द की मात्राए केवल मिलाने के लिए भी आ सकता है जैसा कि जि के रूप जिणि = *जिणिअ मे हुआ है (§ ४७३) और श्रु से बने सुण्णि = शौर० सुणिअ मे भी यही प्रक्रिया दिखाई देती है (पिगल २, ११२ , २४२) । यदि -इअ वाले रूप जैसे कड्ढिअ, लइअ (पिगल १, १०७ , १२१), निसुणिअ, सुणिअ (सरस्वती-कण्ठाभरण १४०, १ , २१६, ९) शुद्ध है अथवा नहीं, इसका निर्णय आलोचनायुक्त पाठ ही कर सकेंगे। मुत्ति (पिगल १, ११६ अ) यह सूचना देता है कि इसका रूप कभी *मुक्त्य रहा होगा, इसका अर्थ यह हुआ कि यह मुक्त्वा और -मुच्य का दूसरा रूप है।

(चार) शब्दरचना

§ ५९५—सस्कृत के उपसर्गों के अतिरिक्त प्राकृत मे बहु सख्यक उपसर्ग ऐसे है, इनमें विशेष कर तद्धित उपसर्ग, जिनका सस्कृत मे अभाव है। कुछ ऐसे उपसर्ग भी है, जो सस्कृत मे कम काम मे लाये जाते है और प्राकृत में उनका बोलबाला है। इस वर्ग में ल- उपसर्गों का विशेष प्रचार है। व्याकरणकार (वर० ४, १५ , चड० २, २० और पेज ४५ , हेच० २, १५९ , क्रम० २, १४० , मार्क० पन्ना ३६) बताते है कि -आल, -आलु, -इल्ल और -उल्ल प्रत्यय मत् और वत् के अर्थ में काम मे लाये जाते हैं। इस नियम से महा० मे सिहाल = शिखावत् है (गउड०), अ०-माग० में सद्दाल = शब्दवत् (भाम० ४, २५ , हेच० २, १५९ , ओव०) , धणाल = धनवत् है (भाम० ४, २५), जडाल = जटावत् है (चड० , हेच०), जोण्हाल = ज्योत्स्नावत् है (हेच० [इस जोण्हाल से हिन्दी में जुन्हाई और कुमाउनी में जुन्हालि = चाँदनी निकले है। —अनु०]) , फडाल = *फटावत् है (चड० , हेच०) , रसाल = रसवत् (हेच०), णिद्दाल = *निद्रावत् (क्रम०), सद्धाल = श्रद्धावत् (चड०) तथा हरिसाल = हर्षवत् (मार्क०) है। — नीचे दिये गये अ०माग० रूपों में बिना अर्थ में किसी प्रकार के परिवर्तन के आल + क आया है : महालय = महत् (आयार० २, १, ४, ५ , उवास० , ओव० , भग०), इसका रूप स्त्रीलिंग में महालिया है (उवास० , ओव०) , पमहालिय और स्त्रीलिंग में पमहालिया आये हैं (§ १४९), स्त्रीलिग में केमहालिया भी मिलता है (§ १४९ , जीवा० २१६ तथा २२० और उसके बाद) , अ०माग० और जै०महा० में महइमहालय है (आयार० २, ३, २, ११ , २, ३, ३, १३ , उवास० , नायाध० , एत्सें०) तथा इसका स्त्रीलिग अ०माग० में महइमहालिया मिलता है (उवास० , ओव० , निरया०)। यह रूप घनत्ववाचक है। इसमें दूना स्त्रीलिंग देखना (लौय-मान, औपपात्तिक सुत्त), जैसा कि स्वय लौयमान ने लिखा है सम्भव नहीं है क्योंकि यह शब्द पुलिंग और नपुसकलिग के काम में भी आता है। मीसालिअ (हेच० २, १७०) *मीसाल = मिश्र के कर्मवाच्य मे भूतकालिक अशक्रिया का रूप है। —

महा० और शौर० में छइल्ल (=चतुर, विदग्ध : पाइय० १०१, देशी० ३, २४, हाल, कर्पूर० १, २, ४, ८ [शौर०], ७६, १० [शौर०], बालेय० ३, ७) जिसे वेबर[1] ठीक ही छद् से सम्बन्धित बताता है तथा जो अप० छइल्ल से (=सुन्दर : हेच० ४, ४१२) सर्वथा भिन्न है क्योंकि जैसा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं सिद्ध करती हैं, यह *छविल्ल से निकला है अर्थात् इसका सम्बन्ध छवी से है (=सुन्दरता : पाइय० ११३)=संस्कृत छवि है, जब कि छाइल्ल (=प्रदीप, सदृश, ऊन, सुरूप हेच० २, १५९, देशी० ३, ३५) जो छाया से सम्बन्धित है, त्रिविक्रम इसे २, १, ३० में छइल्ल से सम्बन्धित बताता है जो अशुद्ध है। –इल्ल का एक अर्थ 'वहाँ उत्पन्न अथवा वहाँ पाया जानेवाला' है (तत्रभवे, भवे हैं : चंड० २, २० पेज ४५, हेच० २, १६३, मार्क० पन्ना ३७), गामिल्ल (=किसान : चंड०), गामिल्लिआ (=किसान की स्त्री हेच०), अ०माग० में गामेॅल्लग रूप पाया जाता है (विवाग० ३१), महा० में घरिल्लअ (=घर का स्वामी : हाल) मिलता है, घरिल्ली भी है (=गृहिणी देशी० २,१०६) और महा०, जै०महा० में तथा विशेषत: अ०माग० में बिना उस शब्द का अर्थ बदले जिसमें यह –इल्ल जुडता है इसका प्रयोग किया जाता है (स्वार्थे हेच० २,१६४)। इस प्रकार महा० में मूइल्लअ = मूक है (हाल), अ०माग० में बाहिरिल्ल = बाहिर है (जीवा० ८७९, विवाह० १९८ और १८७६ तथा उसके बाद, ठाणग० २६१ और उसके बाद), महा० में अबाहिरिल्ल आया है (हाल), अन्धिल्लग = अन्ध है (पण्हा० ७९) और पल्लविल्ल = पल्लव है (हेच० २, १६४)। इसमें सर्वप्रथम स्थान विशेषणों का है जो संख्या, काल और स्थान बताते हैं और आंशिक रूप में क्रियाविशेषणों से बनते हैं। इस प्रकार अ०माग० में आदिल्ल = आदि है (विवाह० ४६३, ८५८, ९२३, १११८, १३३०, जीवा० ७८८ और १०४२, पण्णव० ६४२ और ६४६), आदिल्लग रूप भी पाया जाता है (विवाह० १५४७), अ०माग० में पढमिल्ल = प्रथम है (विवाह० १०८ और १७७), पढमिल्लग भी मिलता है (नायाध० ६२४), अ०माग० में उवरिल्ल चलता है (ठाणग० ३४१, अणुओग० ४२७ और उसके बाद, जीवा० २४० और उसके बाद, ७१०, नायाध० ८६७, पण्णव० ४७८, सम० २४, ३६ और १४४, विवाह० १०२, १९८, २२४, ३९२, ४३७, १२-४०, १३३१ और उसके बाद, १७७७, ओव०), इसका अर्थ 'उत्तरीय' (वस्त्र) है, महा० में अवरिल्ल, वरिल्ल हैं (§ १२३), सव्वउवरिल्ल (जीवा० ८७८ और उसके बाद), सव्वुप्परिल भी मिलते हैं (जीवा० ८७९), अ०माग० में उत्तरिल्ल है (ठाणग० २६४ और उसके बाद, ३५८, जीवा० २२७ और उसके बाद, नायाध० १४५२, १५१८, १५२१, पण्णव० १०३ और उसके बाद, ४७८, राय० ६८ और ७१, विवाह० १३३१ और उसके बाद), दाहिणिल्ल और दक्खिणिल्ल = दक्षिण हैं (§ ६५), पुरस्तात् का रूप पुरत्थिमिल्ल[1] है (ठाणग० २६४ और उसके बाद, ४९३, जीवा० २२७ और उसके बाद, ३४५, पण्णव० ४७८; राय० ६७ और ७२ और उसके बाद, सम० १०६, १०८, ११३ और उसके बाद,

माधव ३४८, १ की तुलना कीजिए, अप० में **एकल** रूप भी देखा जाता है (प्रबन्ध० १२१, १०), महा० और अ०माग० में **महल्ल = महत्** है (गउड०, प्रबन्ध० ११३, ३, आयार० २, ४, ३, ११ और १२), अ०माग० मे **महल्लय** है (आयार० २, ४, २, १०)। इसका स्त्रीलिंग रूप **महल्लिया** है (आयार० २, १, २, ७), **सुमहल्ल** भी पाया जाता है (विवाह० २४६), अ०माग० में **अन्धल्ल = अन्ध** है (पण्हा० ५२३), इसके साथ साथ **अन्धल** रूप भी चलता है (हेच० २, १७३), महा० में **पार्श्व** के रूप **पासल्ल** और **पासल्लिय** हैं (गउड०), **नवल्ल = नव** है (हेच० २, १६५), **मूअल्ल** और इसके साथ-साथ **मूअल = मूक** है (देशी० ६, १३७), जिनसे सम्बन्धित महा० रूप **मूअल्लिअअ** (रावण० ५, ४१, यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए) नामधातु है। माग० मे भी **पिसल्ल = पिशाच** का स्पष्टीकरण सम्भवतः शुद्ध ***पिसाअल्ल = पिशाच + अल्ल** से हो सकती है जो **पिशाचालय** से निकला हो (§ २३२)। **सुहल्ली** और **सुहेल्ली** के विषय में § १०७ देखिए। माग० में **गामेलुअ** (मृच्छ० ८७, १) = **ग्राम्य, ग्रामीण** है जिसमें **-एलुअ** अर्थात् **एलु + क** प्रत्यय आया है।

१ हाल ७२० की टीका। इसके पास में ही नीचे दिया हुआ रूप **छउल्ल** मिलता है। — २ हेमचन्द्र ४, ४१२ पर पिशल की टीका। — ३ ग्रन्थों में बहुधा अशुद्ध रूप **पुरच्छिमिल्ल** मिलता है और इसके आधारभूत शब्द **पुरत्थिम** के स्थान में **पुरच्छिम** पाया जाता है। — ४ ग्रन्थों के पाठों में बहुधा **पच्चत्थिमिल्ल** और **पच्चच्छिमिल** मिलते हैं। इस शब्द का **पश्चात्** से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि **पश्चात्** का प्राकृत रूप **पच्छिल्ल** है। § १४९ और होएर्नले, उवासगदसाओ में **पच्चत्थिम** देखिए। — ५. इसके पास में ही आनेवाला रूप **माइलिय = कठिनमलयुक्त** शुद्ध ही जान पडता है, क्योंकि इसका सम्बन्ध अ०माग० **मइलिन्ति** तथा महा० **मइलेइ** से है (§ ५५९)। — ६. उदाहरणार्थ, संस्कृत **तुन्दिलित** की **तुन्दिल** से तुलना कीजिए और इनसे अ०माग० रूप **तुन्दिल्ल** की (उत्तर० २२९)। ल का द्विकार ध्वनिबल पर निर्भर है। उक्त उदाहरण इस बात का निश्चय कर देते है जैसे, **कुडिल्ल = कुटिल** (पाइय० १५५), **कुडिल्लअ** और **कोडिल्ल** भी मिलते हैं (देशी० २, ४०), **तुन्दिल्ल = तुन्दिल** तथा **गण्ठिल्ल = ग्रंथिल** है (उत्तर० २२९, विवाह० १३०८)।

§ ५९६—कुछ प्राकृत बोलियो मे **कृत्** प्रत्यय रूप से बार बार **-इर** पाया जाता है (वर० ४, २४, हेच० २, १४५, क्रम० २, १३८, मार्क० पन्ना ३६), यह धातु के भाव को मनुष्य का 'स्वभाव', 'कर्तव्य' यह बताने के काम मे लाया जाता है। उसने जिस धातु के अन्त मे यह प्रत्यय लगता हो उसका भली-भाँति पालन किया है[१]। इस प्रकार महा० मे **अग्घाइरी** (स्त्रीलिंग) आया है जो **आ** उपसर्ग के साथ **घ्रा** धातु से बना है (हाल), **अन्दोलिर** है (गउड०) इसका स्त्रीलिंग **अन्दोलिरी** बनता है (हाल), **अलज्जिर** आया है (हाल), **अवलम्बिरी** भी देखा जाता है

(स्त्रीलिंग), उल्लयिरि, उल्लाविरी मिलते हैं (स्त्रीलिंग हाल) उद् उपसर्ग के साथ श्वस् का रूप ऊससिर है (हेच), गमिर आया है (हेच क्रम) महा में घोलिर मिलता है (गउड हाल ; रावण०), बाद के लेखकों ने इसका घोर० में भी प्रयोग किया है (मल्लिका १०९, ९ १२२, १२), महा में परिघोलिर भी पाया जाता है (गउड) महा और अप में अस्थिर तथा अ०माग में अथस्थिर अस्थ् से बने हैं (§ २१६) ; अ०माग में मुखिर और मम्मुखिर रूप हैं (§ २११) महा में जम्भिरी (स्त्रीलिंग) है जो जम्भाइ = जृम्भति से बना है (हाल) भमिर भी देखा जाता है (हेच०) ; अ०माग में परि उपसर्ग के साथ ष्वष्क् का रूप परिसक्किर है (नायाध § २ २ की तुलना कीजिए), महा में प्र उपसर्ग के साथ ईस् का रूप पेॅच्छिर हो गया है तथा इसका स्त्रीलिंग पेॅच्छिरी भी मिलता है (हाल सर्वत्र यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए) महा और अप में भ्रम् का भमिर् मिलता है (भाम ; हेच मार्क गउड ; हाल ; रावण हेच ४, ४२२, १५) रासिर आया है (हेच), महा में रोइरी और रुइरी रूप हैं जो रुद से बने हैं (हाल) महा में लम्बिर (गउड), लसिर (रावण) और ललिर (हेच) मिलते हैं, इसका स्त्रीलिंग ललिरी भी पाया जाता है (हाल) ; महा और अप में तथा राजशेखर की शौर में भी वेॅल्लिर और उव्वेॅल्लिर मिलते हैं (§ १ ७) महा और जै महा में वेपते का वेविर रूप है (हेच ; गउड हाल रावण ; एत्सें), बाद के लेखकों ने इसका प्रयोग शौर में भी किया है (मल्लिका ११९, २ १२१ १९) ; सहिर आया है (मार्क), स्त्रीलिंग सहिरी भी है (हाल) ; हसिर मिलता है (भाम ; हेच), महा में स्त्रीलिंग हसिरी भी है (गउड ; हाल) ; अपडिच्छिर (=मूढमति : देशी १ ४१) प्रति उपसर्ग के साथ इष् से बना है। बहुत विरल मह –इर तद्धित प्रत्यय के काम में भी आता है जैसा महा में गव्विर और स्त्रीलिंग गव्विरी गर्व से निकले हैं (हाल) । –इर के स्थान में –उक प्रत्यय के विषय में § ११८ और १९२ [उमुग] तथा १२६ [इरुम] देखिए।

१ हेमचन्द्र २ १४५ पर पिशल की टीका। वेबर हाल[१] पेज १८ की तुलना कीजिए।

§ ५९७— –त्य का प्राकृत में –त्त हो जाता है (§ २९८) अ माग और जै महा में काम में आता है। यह अ०माग में बहुधा संप्रदानकारक में –त्ताए रूप में आता है (§ ३६१ और ३६४) : पीणत्त मिलता है, पुप्फत्त = पुष्पत्व है (हेच २ १५४) ; अ माग में मूलत्त कन्दत्त खन्धत्त, तयत्त सालत्त, पवालत्त, पत्तत्त पुप्फत्त, फलत्त और बीयत्त रूप पाये जाते हैं (सूय ८ ९) ; माणुसत्त भी आया है (ओव § ३८ पेज ४९ ; विवाह १६२) ; देवत्त पाया जाता है (उत्तर ९३५ ; भग ; उवास ; ओव ; कप्प) ; नेरइयत्त = नैरयिकत्व है (विवाग २४४ ; उवास ; ओव) माणुसत्त देखा जाता है (उत्तर ११४ और उसके बाद) ; पुमत्त = पुंसत्व है (§ ४१२), दासत्त = *दासत्व (सूय

८१२, § ८११ की तुलना कीजिए), **सामित्त, भट्टित्त** और **महत्तरगत्त** = **स्वामित्व, भर्तृत्व** और **महत्तरकत्व** हैं (पण्णव० ९८, १००, १०२, ११२), जै०महा० मे **उज्जुगत्त** और **वंकत्त** = **ऋजुकत्व** तथा **वक्रत्व** हैं (आव०एर्त्से० ४६, ३१ और ३२), **मणुयत्त** = **मनुजत्व, मिच्छत्त** = **मिथ्यात्व** तथा **सीयत्त** = **शीतत्व** है (कालका०), **असोयत्त** = **अशौचत्व** है (एर्त्से०)। **मउअत्तया** = ***मृदुकत्वता** मे -त्व मे ता प्रत्यय जोडा गया है (हेच० २, १७२)। अनेक बार, विशेषत महा० और शौर० मे वैदिक **-त्वन** = प्राकृत **त्तण** है, अप० मे इसका **-प्पण** हो जाता है (§ २९८ और ३००, वर० ४, २२, हेच० २, १५४, क्रम० २, १३९, मार्क० पन्ना ३५)। इस प्रकार महा० मे **अमरत्तण** आया है (रावण०), **अलसत्तण, असहत्तण, आउलत्तण, गरुअत्तण, चिरजीवित्तण, णिउणत्तण** (हाल), **णिद्दत्तण, तुच्छत्तण, दारुणत्तण, दीहत्तण** (गउड०) रूप पाये जाते है, **पिअत्तण** मिलता है (हाल), **पीणत्तण** है (भाम०, हेच०, गउड०, रावण०), **महुरत्तण** भी पाया जाता है (गउड०, हाल), आ- वर्ग के उदाहरण : **महिलत्तण** है (गउड०, हाल), **वेसत्तण** = ***वेश्यात्वन** (हाल), इ- और ई- वर्ग के उदाहरण : **असइत्तण** मिलता है (हाल), **जुअइत्तण** है (गउड०), **मइत्तण** = ***मतित्वन** है (गउड०) और **दूइत्तण** = ***दूतीत्वन** है (हाल), उ- वर्ग के उदाहरण . **तरुत्तण** आया है (गउड०), अ०माग० मे **तक्करत्तण** = ***तस्करत्वन** है (पण्हा० १४७), **तिरिक्खत्तण** = ***तिर्यक्षत्वन** है (उत्तर० २३४), **आयरियत्तण** = ***आचार्यत्वन** है, इसके साथ-साथ **आयरियत्त** भी चलता है (उत्तर० ३१६), जै०महा० म **पाडिहेरत्तण** = ***प्रातिहार्यत्वन** है (आव०एर्त्से० १३, २५), **धम्मत्तण** = ***धर्मत्वन** (कालका० २५०, १२), **सावयत्तण** = ***श्रावकत्वन** (द्वार० ५०६, २८), **तुरियत्तण** = ***त्वरितत्तन** (आव०एर्त्से० ४२, २१, ४३, ३) रूप आये है, **परवसत्तण** भी मिलता है (एर्त्से०), शौर० मे **अण्णहिअत्तण** = ***अन्यहृदयत्वन** (विद्ध० ४१, ८ और ९, नागा० ३३, ६), **पज्जाउन्तहिअअत्तण** = ***पर्याकुलहृदयत्वन** (कर्ण० १९, १०), **सुन्नहिअअत्तण** = ***शून्यहृदयत्वन** (मृच्छ० २७, १९, प्रिय० २०, ४, नागा० २१, ६) रूप मिलते हैं, **अहिरामत्तण** आया है (विक्र० २१, १), **णिसंसत्तण** = ***नृशंसत्वन** है (रत्ना० ३२७, १८), **णिउणत्वन** = ***निपुणत्वन** है (ललित० ५६१, १), **दूदत्तण** = ***दूतत्वन** है (जीवा० ८७, १३) रूप पाये जाते हैं, **वालत्तण** आया है (ललित० ५६१, २ [पाठ में **वालत्तण** है], उत्तररा० १२१, ४, मुद्रा० ४३, ५), **वम्हत्तण** (रत्ना० ३०८, ५) और **वम्हणत्तण** भी आये हैं (प्रसन्न० ४६, १२), **सहाअत्तण** = ***सहायत्वन** है (शकु० ५९, १०, जीवा० ३९, १५, ७८, २), **अणुजीवत्तन** मिलता है (महावीर० ५४, १९), **उचिदकारित्तण** काम में आया है (वाल० ५४, १७), **घरणित्तण** है (अनर्घ० ३१५, १०), **भअवदित्तण** पाया जाता है (मालती० ७४, ३), **मेधावित्तण** है (रत्ना० ३३०, ३२), **लज्जालुइत्तण** (महावीर० २९, ६), **सरसकइत्तण**

(कप० ११ १) देखा जाते हैं पहुत्तण = *प्रभुत्वन है (मालवि १४, १ १०, ५) मीलत्तण भाषा है (प्रबंध ८९, ५) माग० में अपिस्तत्तण = *अतिस्पस्तन है (मृच्छ १७७, १०) ; महुलत्तण और सुरहित्तण = *मधुर स्तन और *सुरभित्स्तन हैं (प्रबोध ६ १२ और १३) शाश्वण्णत्तण = *लसकस्तन है (प्रबोध ५१, ६ ५२, ५) सुघलिणित्तण = *सुगृहिणीत्वन है (वेणी ३५ १) ; अप० में पत्तत्तण = *प्रप्रस्तन (हेच ४, ३७ , १) ; पहुत्तण और वड्डप्पण = *प्रवृद्धस्तन हैं (हेच ४, ३६६) सुहडत्तण = *सुभट स्तन (कालका २६ , ४४) और गहिल्लत्तण = *ग्रहिलस्तन है (पिंगल १, २ क) ।

§ ५९८—संस्कृत से भी अधिक प्राकृत में शब्दों के अन्त में, बिना अर्थ में नाममात्र परिवर्तन के, –क प्रत्यय लगाया जाता है (हेच २ १६४ मार्क० पन्ना १७) । पल्लवदानपत्रों, पै , चू पै कभी-कभी शौर और माग में यह –क ही बना रहता है । अ माग , जै महा और जै शौर में इसके स्थान में –ग और –य रहते हैं । अन्य प्राकृत बोलियों में –क का –य हो जाता है । भिन्न भिन्न § में इसके असंख्य उदाहरण दिये गये हैं । कभी-कभी दो –क एक शब्द में जोड़े जाते हैं जैसे, बहुअय (हेच २ १६४), अन्य प्रत्ययों के बाद भी यह लगाया जाता है (§ ५९५), इसके अतिरिक्त क्रियाविशेषण के अन्त में भी यह पाया जाता है जैसे, इहयं (हेच २, १६४) तथा यह सामान्यक्रिया में भी क्यता है जैसे आर्द्रवृधुम (§ १ २ और ५७७) अ में अवसृप्पुय रूप है (§ ५७७) । कभी-कभी तथा किसी किसी प्राकृत बोली में वर्ग अथवा मूल का स्वर इससे पहले दीर्घ कर दिया जाता है (§ ७) । –क के साथ साथ किसी किसी बोली म –ल, –इ (§ २ ६) और –इक तथा अ माग में –इय लगाये जाते हैं जैसे, पल्लवदानपत्र में वधनिक = वधनक है (६, ९) ; अ माग में मधिय = *मर्थिक = मस्यक है (आयार १, २ ५ ४ १ ६, २ १ ; एस ३५१) अ माग में तुम्बवीणिय = तुम्बवीणक (ओव) माग में माळिक = *मारिक = मारवत् है (मृच्छ ९७, ११ और २) महा में सर्व्वगिय ≈ सर्वांगीण है (हेच २ १५२ ; रावण) । — पारक्क में –क्क आया है (हेच २ १४८), राइक्क = राजकीय में –इक्क मिलता है (हेच २, १४८) गत्तेभिक्क (= गोधूमः ; देशी २ १७ ; त्रिवि १ ३ १ ५)[1] शब्दों से बना चम्भिक्क है (= शरीर को सुगंधिपूर्ण पदार्थों से भवित या चर्चित करना ; हेच २ १७४ ; त्रिवि १, ४ १२१) देशीनाममाला १ ४ के अनुसार यह विशेषण भी है जिसका अर्थ 'मच्चित'[2] है ; महिलिक्क मिलता है (महिषीसमूह ; देशी ६ १२४)[3] ।

१ पिशल बे बाइ ३ २३३ । — २ पिशल बे बाइ १३, ११ । — ३ पिशल गो गे आ १८८१ पेज १३२ और उसके बाद का पेज ।

§ ५९९—जैसे –क, वैसे ही अप में –ड = संस्कृत –ट भी अंत में जोड़ दिया जाता है, किन्तु शब्द के अर्थ में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता । इस –ड के

बाद बहुत बार -अ = -क भी देखने में आता है (हेच० ४, ४२९ और ४३०)। इस प्रकार : **कण्णडअ** = **कर्ण** है (हेच० ४, ४३२), **दव्वडअ** = **द्रव्य** है (शुक० ३२, ३), **दिअहड** = **दिवस** है (हेच० ४, ३३३, ३८७, २), **दूअडअ** = **दूत** (हेच० ४, ४१९, १), **देसड** (हेच० ४, ४१८, ६), **देसडअ** (हेच० ४, ४१९, ३) = **देश** है, **दोसड** = **दोष** है (हेच० ४, ३७९, १), **माणुसड** = **मानुष** है (प्रबन्ध० ११२, ८), **मारिअड** = **मारित** (हेच० ४, ३७९, २), **मित्तड** = **मित्र** है (हेच० ४, ४२२, १), **रण्णडअ** = **अरण्य** है (हेच० ४, ३६८ [**मारिअड** का मारवाडी मे **मारयोड़ो** रूप है, यह ड्यो अन्य क्रियाओं में भी जोडा जाता है। **रण्णडअ** का मराठी में **रानटी** रूप है। — अनु०]), **रूअडअ** = **रूपक** है (हेच० ४, ४१९, १), **हत्थड** और **हत्थडअ** = **हस्त** हैं (हेच० ४, ४३९, १, ४४५, ३), **हिअड** = *****हृद** = **हृद्** है (क्रम० ५, १५ और १७, हेच० ४, ४२२, १२), **हिअडअ** भी मिलता है (हेच० ४, ३५०, २ [हिन्दी में **हत्थड** और **हिअडअ** आये हे, बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने 'दु- हत्थड़' का प्रयोग किया है और **हिअडा** या **हियडा** प्राचीन हिन्दी में बार बार आया है। —अनु०])। **मणिअड** = **मणि** में (हेच० ४,४१४,२) -क + -ट हैं = *****मणिकट** माना जाना चाहिए क्योंकि इसमे जो पदच्छेद है वह इसका प्रमाण है, इसलिए इसमें -अड प्रत्यय नहीं है। स्त्रीलिंग के अन्त मे -डी आता है (हेच० ४, ४३१) : **णिद्दडी** = **निद्रा** है (हेच० ४, ४१८, १), **सुवत्तडी** = **श्रुतवार्ता** है (हेच० ४, ४३२)। सस्कृत में जिन शब्दों का स्त्रीलिंग -इ और -ई लगकर बनता है उनके अन्त में अप० में -अडी भी दिखाई देता है : **गोरडी** = **गौरी** है (हेच० में यह शब्द देखिए और **गोरि** भी), **बुद्धडि** = **बुद्धि** (हेच० ४, ४२४), **भुम्हडि** = **भूमि** (§ २१०), **मब्भीसडी**, **मा भैषी**. से बना है (हेच० ४, ४२२, २२), **रत्तडी** = **रात्रि** है (हेच० ४, ३३०, २), **विभन्तडी** = **विभ्रान्ति** है (हेच० ४, ४१४, २), -क के साथ भी यह रूप आता है : **धूलडिआ** = *****धूलकटिका** = **धूलि** है (हेच० ४, ४३२)। सस्कृत का ध्यान रखते हुए यहाँ -अड प्रत्यय नही, मध्यमस्थ प्रत्यय दिखाई देता है। -ड तो अप० बोली की अपनी विशेषता हैं, दूसरे प्रत्ययों के साथ -क रूप में भी जोडा जाता है। **बाहबलुल्लड** = **बाहाबल** तथा **बाहबलुल्लडअ** में -उल्ल की यही स्थिति है (§५९५, हेच० ४, ४३०, ३) अर्थात् अन्तिम उदाहरण में -उल्ल + -ड + -क आये हैं।

§ ६००—सब व्याकरणकारों का मत है कि प्राकृत में तद्धित प्रत्यय **-मत्** और **-वत्** के अर्थ में **-इत्त** भी काम में आता है (वर० ४, २५ [यहाँ **-इन्त** के स्थान में यही रूप पढा जाना चाहिए], चड० २,२० पेज ४५, हेच० २,१५९, क्रम० २, १४०, मार्क० पन्ना ३६). **कव्वइत्त** तथा **माणइत्त** **काव्य** और **मान** से बने हैं (चड०, हेच०), **रोष** का रूप **रोषइत्त** है (भाम० ४, २५ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए], क्रम०), **पाणइत्त** **प्राण** से बना है (भाम० ४, २५ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए])। कः **स्वार्थे** आगमन के साथ कालिदास ने शौर० मे भी इसका प्रयोग किया है। पुल्गि में **-इत्तअ** और स्त्रीलिंग में **-इत्तिआ** लगता है :

पओहरवित्थारइत्तअ = पयोधरविस्तारयुक्त है (चन्द्रशेखर की तुलना कीजिए); उम्मादइत्तअ = उन्मादिन् अथवा उन्मादकारिन् है (इत्तकशब्दो मत्वर्थे; चन्द्रशेखर); उच्छाहइत्तअ = उत्साहशालिन् है (मत्वर्थे इत्तकशब्दः चन्द्रशेखर) आआसइत्तिआ = आयासकारिणी (चन्द्रशेखर) है; संतावणिव्वावइत्तिआ = संतापनिर्वापणकारिणी है बहुमाणसुहइत्तअ = बहुमानसुखयुक्त है (चन्द्रशेखर की तुलना कीजिए); पिअणिवेदइत्तअ = प्रियनिवेदक (चन्द्रशेखर) संतावणिव्वावइत्तअ = संतापनिर्वापक है (चन्द्रशेखर) (शकु ११, १ २१, ८ ३९, ७; ४६, १२; ५१, १२ ५५, १; ७६, १४; ८६, ५; १४ १४) इच्छिदसंपादइत्तअ = इष्टसंपादयिता है (रंगनाथ; विक्र २, ११) जुवदिवेसलज्जावइत्तअ = युवतिवेशलज्जयितृक है (काटयवेम; मालवि ३३, १०); अहिलासपूरइत्तअ = अभिलाषपूरयितृक है (काटयवेम मालवि ३८, १४) तथा असोअविआसइत्तअ = अशोकविकासयितृक है (काटयवेम; मालवि ४१, ३)। बाप्टलिंक[1] के अनुसार ही इसका मूल रूप -यितृ और -यितृक माना जाना चाहिए न कि लास्सन और वेबर[2] के अनुसार -यित्व और -यित्वक। यह नामधातु और प्रेरणार्थक क्रियाओं के रूप बनाता है। वित्थारइत्तअ = *विस्तारयितृक जो विस्तारय से बना है।

1. शकु ९, १ की पेज १६१ पर टीका। विक्रमोर्वशी पेज २१७ में बौँल्लें नसेन की टीका की तुलना कीजिए; पिशल के कालिदासाए शकुन्तलि रेसेन्सिओनिबुस पेज ११ और उसके बाद। — 2. गो गे आ १८५९ पेज १२१६। वेबर ने बताया है कि इसका मूल रूप हेतुक है क्योंकि इसका आधार किसी हस्तलिपि में भूल से लिखा गया अशुद्ध रूप -हुअ था इस भ्रम की ओर लास्सन ने अपने ग्रन्थ इन्स्टिट्यूत्सिओनेस आदि के पेज १६४ के नोट में अपना अनुमान बता दिया था। शकुन्तला ३६, १२ (पेज १८०) में चन्द्रशेखर के मत उत्साहइत्तअं इति शोकापस्याशामम् की तुलना कीजिए।

§ ६०१—सबल वर्णों के साथ -मत् और -वत् के रूप मन्त् और -वन्त् हो जाते हैं तथा ये § ३९७ के अनुसार -मन्त और वन्त बन जाते हैं (वर ४, २५; चंड २, २ पेज ४५; हेच २, १५९; क्रम २, १४; मार्क पन्ना ३७)। प्रत्यय के उपयोग के विषय में संस्कृत और प्राकृत एक दूसरे से सदा संपूर्णतया नहीं मिलते। इस प्रकार अ माग में आयारमन्त है (दस ६११, ११) किन्तु संस्कृत रूप आचारवन्त- है; अ माग का चित्तमन्त- (आयार २, १, ६, २; पेज १११, ११; १११, १) = संस्कृत रूप चित्तवन्त्- है; अ० माग में वण्णमन्त- गन्धमन्त- रसमन्त- और फासमन्त- = वर्णवन्त्- गन्धवन्त्- रसवन्त्- और स्पर्शवन्त्- के हैं (आयार १, ४, १, ४; सूय ५६५; ओव २६; पण्णव १०९; विवाह १४४); अ माग में विज्जामन्त- = विद्यावन्त्- है (उत्तर० ९२); सीलमन्त- गुणमन्त- और वयमन्त- = शीलवन्त्- गुणवन्त्- और व्रतवन्त्- हैं (आयार २, १, ९, १) पुप्फमन्त- = पुष्पवन्त्-, बीय

मन्त = बीजवन्त्-, = मूलमन्त- = मूलवन्त्- और सालमन्त- = शालावन्त्- हैं (ओव०), अप० मे **गुणमन्त-** आया है (पिंगल १, १२२ अ, २, ११८), **धणमन्त-** मिलता है (पिंगल २, ४५ और ११८), **पुणमन्त-** है (पिंगल २,९४)। यह रूप पद्य में छन्द की मात्राए ठीक करने के लिए **पुण्णमन्त-** के स्थान में आया है (चड० , हेच०) = **पुण्यवन्त्-** है। अन्य रूपों के लिए संस्कृत से मिलती जुलती रचना अभी तक सिद्ध नहीं की जा सकी है जैसे, कि अ०माग० में **पन्नाणमन्त-** = *प्रज्ञानमन्त् है (आयार० १, ४, ४, ३ , १, ६, ४, १), **पत्तमन्त** = *पत्र-मन्त् है और **हरियमन्त** = *हरितमन्त् है (ओव०)। **धणमण** में (चड० २, २०, पेज ४५ , हेच० २, १५९) = *धण मन्त्-, *धणमन् में **मण** प्रत्यय में मूल रूप **-मन्त्** ही पाया जाता है जो § ३९८ के अनुसार आया है। — **भत्ति-वन्त-** = भक्तिमन्त् है (हेच० २, १५९)।

§ ६०२—अ०माग० में कृत् प्रत्यय **-इम**[१] द्वारा बहुत से विशेषण बनाये जाते हैं जो आंशिक रूप से वर्तमान वर्ग से बनते हैं तथा जो यह व्यक्त करते है कि धातु में जो अर्थ निहित है उससे कुछ हो रहा है, हो सकता है अथवा होना चाहिए। ये रूप -बार में समाप्त होनेवाले जर्मन विशेषणों से मिलते है [जर्मन में उदाहरणार्थ **गांग-** शब्द में -बार जोडने से **गांगबार** बनता है, **गांग** गम् धातु का रूप है, इसका अर्थ है गम्य, गमनशील इसमें -बार लगने से इसका अर्थ दूसरा हो जाता है, पाठक **गांग** और **गंगा** के अर्थों की तुलना करें। —अनु०]। इस प्रकार : **गन्थिम, वेढिम, पूरिम** और **संघाइम** रूप **ग्रन्थ्, वेष्टपूरय** और **संघातय** से सम्बन्धित है (आयार० २, १२, १ , २, १५, २० , नायाध० २६९ , विवाह० ८२३ , जीवा० ३४८ , नन्दी० ५०७ आदि-आदि , § ३०४ और ३३३ की तुलना कीजिए), **उब्भेइम** = उद्भिद् है (दस० ६२५, १३), **खाइम, साइम** रूप **खाद्** और **स्वादय** के हैं (सूय० ५९६ , विवाह० १८४ , दस० ६३९, १४ , उवास० , नायाध० , ओव० , कप्प०), **पाइम पाचय-** से बना है (आयार० २, ४,२,७), **पूइम, अपूइम, माणिम** और **अमाणिम** रूप **पूजय-** और **मानय-** के हैं (दस० ६४१, १४ और १५), **खाद्** से **खाद्य** बन कर **बहुखज्जिम** रूप है (आयार० २, ४, २, १५), **निस्** उपसर्ग के साथ **वर्तय-** का रूप **बहुनिवट्टिम** है (आयार० २, ४, २, १४ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , दस० ६२८, ३१), **लाइम, भज्जिम** रूप आये हैं (आयार० २, ४, २, १५ , दस० ६२८, ३४), **वन्दिम, अवन्दिम** भी है (दस० ६४१, १२), **वाहिम** मिलता है (आयार० २, ४, २, ९), **वुसिम वशय-** का रूप है (सूय० ५११), **वेहिम** है (दस० ६२८, ३०), **संतारिम, संपाइम** हैं (आयार० २, ३, १, १३ और १४)। अ०माग० में **पुर-स्तात्** और ***प्रत्यस्तम** क्रियाविशेषणों से **पुरत्थिम** = ***पुरस्तिम** निकाला है (भग० , कप्प० , नायाध० , उवास०) और **पच्चत्थिम** = ***प्रत्यस्तिम** है (भग० ; उवास०)। जै०महा० मे भी **पुरत्थिम** पाया जाता है जो **उत्तरपुरत्थिम** में है (आव०एर्त्से० १४, १०)। इनसे भी नये रूप **पुरत्थिमिल्ल** और **पच्चत्थिमिल्ल** निकले हैं (§ ५९५)। — हेमचन्द्र ४, ४४३ के अनुसार किसी का अपना विशेष

शुद्धि-पत्र

आवश्यक निवेदन

[इस शुद्धिपत्र में हम संस्कृत और प्राकृत शब्दों को मोटे अक्षरो में देना चाहते थे, क्योंकि ग्रन्थ के भीतर सर्वत्र यही किया गया है। किन्तु प्रेसवालों का कहना है कि इससे एक पेज में शुद्धिपत्र का एक ही कालम आ सकता है। इससे शुद्धिपत्र का कलेवर वहुत बढ़ जायगा। अतः पाठक पारा, पृष्ठ और पंक्ति देखकर मोटे अक्षरों से मोटे में और पतले अक्षरों से पतले में शुद्धि करने की कृपा करें। जिन अशुद्धियों में मोटे और पतले अक्षर साथ ही आ गये हैं, उनमें गड़वड़ न हो, इसलिए दोनों प्रकार के अक्षर वरते गये हैं। —अनु०]

पा स	पृ.स	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	८	१५	लृ	ळ्ह
६	९	६	दिवै	दिवे
६	९	१२	–भ	खभ
६	९	१२	स्क–भ	स्कभ
७	१०	२१	इसी प्रकार से ''लाइप्त्सिख १८८६), पक्ति २४ के अन्त तक*	
१०	१५	२२	गुम्भिके	गुमिके
१०	१५	२३	कॉचीपुरा	काचीपुरा
१०	१५	२४	आत्ते°	आत्तेय°
,,	,,	,,	अत्ते°	अत्तेय°
,,	१६	१८	वह	यह
,,	,,	१९	आल्ट-इण्डिसे	आल्ट-इण्डिशे
११	१७	८	यथार्धम्	यथार्थम्
११	१७	२२	रयणाई	रयणाइ
,,	,,	२५	पेॅकीअसि	पेॅक्कीअसि
१२	१८	१३	Ema	ema
,,	१९	७	गीजिआ	गीदिआ
,,	,,	११	वीणम्	वीणाम्
,,	,,	,,	'उन्मत्त' 'राघव'	उन्मत्त-राघव
,,	,,	२८	पीर्टसबुर्गर	पीटर्सबुर्गर
,,	,,	,,	होफडिस्टर	होफडिश्टर
१३	२०	२९	मलयशेसर	मलयशेखर
१४	२२	१५	लेखों	लेखकों
,,	,,	,,	जोपरि-हरिउं	जो परि-हरिउ
,,	२३	१	साखारि-आए	त्साखा-रिआए

* उक्त अशुद्ध रूप के स्थान पर यह शुद्ध रूप पढ़िये।—इसी प्रकार पाली लिखापेति, (ओर इस रूप का प्रयोग प्राकृत मे वार वार आता है) (§ ५५२) अशोक के शिलालेखो का लिखापित जैन महाराष्ट्री लिहाविय (औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री ६३, ३१, सपादक, हरमान याकोवी, लाइपत्सिख १८८६) का प्रतिशब्द है।

पा सं	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	,,	६	फिलेक्सि ओनेस	फ्रेक्सि-ओनेस
,,	,,	७	ऐनाऐर	येनाऐर
२३	४५	११	कशवघ	कसवघ
,,	४६	१	एकमत है।	एकमत हैं।
२३	४६	११	ज्जें व्व	ज्जेव
,,	,,	,,	निमुण्डाः	निर्मुण्डाः
,,	४६-४७	३६	उसमें आउत्ते	आवुत्ते
२४	४७	३	दामाद का है	दामाद का शाकारी प्राकृत में है
,,	,,	१७	शाकारी,	शाकारी
,,	,,	१९	ताल्व्य	ताल्व्य
,,	,,	२७	बली में	बोली में
२४	४८	१२	लगाये	लगायी
,,	४९	६	डाएलैक्स	डाएलैक्ट्स
२५	,,	११	ढक्कविभाषा,	ढक्कविभाषा
,,	,,	२६	इस प्रकार	अत.
,,	५०	६	अणुसलेय	अणुसलें म्ह
,,	,,	९	तलीद	तल्दि
,,	,,	१३	उअरोधेण	अउरोधेण
,,	,,	१८	जस	जस
,,	,,	२०	शमविशय	शमविशम
,,	,,	२१	समविसय	समविसम
,,	,,	३४	छुद्ध्	छुद्धु
,,	,,	३५	विप्पदीउपादु	विप्पदीवुपादु
,,	५१	१	प्रावृत्त	प्रावृत
,,	,,	७	वघ्घे	वड्ढे
,,	,,	८	वघ्घो	वड्ढो
२६	५२	१०	पॅच्छदि	पें च्छदि
२७	५३	३४	-पण्ड्ये-	पाण्ड्ये
,,	५४	४	यस्यात्	यस्मात्
,,	५५	३२	ल्ढ	ळ
,,	५६	२८	पतिपातयच्छम्	पटिपातयच्छम्
,,	,,	३०	युण्डआर्टन	मुण्डआर्टन
,,	५७	१	ढूर	घूर
,,	,,	३	एण्डशौ-	रुण्डशौ
२७	५७	१३	गेशिष्ट	गेशिष्टे
२८	५८	११	सकार	शकार
,,	,,	२१	एहुट्ज़े	एहुजे
,,	,,	३६	पउमरिसीत्ररिउ	पउमसिरीचरिउ
,,	५९	३	मज्जाऐ	मज्जारो
२९	६०	३	उदय	उदय-
,,	,,	२९	निकली है	निकला है
,,	,,	३१	द गौल्द-स्मित्त	गौल्दस्मित्त
,,	६१	९	रिचार्ड स्मित्त	रिचार्ड श्मित्त
,,	,,	२३	हेमचन्द्र,	हेमचन्द्रा,
,,	,,	२९	काटालोगोसम	काटालोगोरुम
३०	६२	६	-त्रिका	-तिका
,,	,,	१५	प्रसश	प्रशंसा
३१	६५	३२	कुट	कुर
,,	६६	२९	जुडा	जूडा
,,	,,	३१	दंस दर्शन दशनयो.	दस् दर्श् दसनयोः
,,	,,	३३	पेल्ना	पेल्ना,
,,	,,	,,	(रेल),	(रेल)
,,	,,	,,	बाड्	वाड्
,,	,,	,,	अप्लाव्ये	आप्लावे
३१	६७	१८	लौयमन	लौयमान
,,	,,	२५	नाखिरिखटन	नाखरिख्टन
,,	,,	२९	होल्त्समान	हौल्त्समान
३२	६९	३६	इ यूवर	यूवर
३३	७०	११	टीकाकर	टीकाकार
,,	,,	२४	सच्यावय्	सम्भावम्

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	,,	२३	हवन्ति	हुअन्ति
,,	,,	२५	अड अः	अउ अः
४६	,,	४	द्विज	द्वित्व
४७	९६	५	गृण्हइ= गृहणाति	गृण्हइ= गृह्लाति
,,	,,	,,	गृह्लान्ति	गृह्लन्ति
,,	,,		६-४, ३७०, ४)	-४, ३७०, ४)।
,,	,,	१०	त ठ	तठ
,,	,,	१२	'ई' और 'उ'	'इ' और 'उ'
,,	,,	१८	डौयन्शेश	डौयत्शेश
,,	,,	,,	आल्टाट्रम	आल्टरट्रूम
,,	,,	२०	ज्युस	जमुस
,,	,,	२१	वेष्टल	वेष्ठल
,,	,,	,,	-प्रौब्लेनेडेर	प्रौब्लेम डेर
,,	,,	,,	इलाइशर	श्लाइशर
४८	९६	२	द्यत	घत
४९	९७	२	(हाल=२२)	(हाल,२२)
,,	,,	,,	द्यय	घय
,,	,,	५	गागधी	मागधी
,,	,,	१९	अधिकृतान	अधिकृतान्
,,	९८	२	वियड	विगड
४५	९८	२	वियॅड	वियड
,,	,,	५	याथाकृत	यथाकृत
,,	,,	११	कअऊ	कअउ
,,	,,	१९	पञ्चक्खी–	पच्चक्खी–
,,	,,	२१	द्वियाकृत	द्विधाकृत
,,	,,	,,	दुहाद्दय	दुहाइय
,,	९९	१३	पणहावा०	पण्हावा०
,,	,,	१४	ओवे० :	ओव० .
,,	,,	२०-२१	अन्धकवण्हि	अन्धगवण्हि
५०	,,	१	ई हो	इ हो
,,	१००	८	पर गिद्धि	पर भी गिद्धि
,,	,,	१८	विंछुअ	विच्छुअ

पा.सं.	पृ.सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१	१०१	६	णिहुड	णिहुद
,,	,,	१०	एत्सें),	एत्सें०),
,,	१०२	२२	कुणई	कुणइ
५२	१०२	४	द्द्ढ	दिढ
,,	,,	९	द्वारा०	द्वारा०
,,	१०३	१	एत्सें)	एत्सें०)
,,	,,	३	मर्सिण	मसिण
,,	,,	२६	कण्हट	कण्ह
,,	,,	२९	,,	,,
,,	१०४	१८	रूप है।	रूप हैं।
,,	,,	१९	कृश्नसित	कृष्णसित
,,	,,	२३	वढि्ढ	वड्ढि
५३	१०५	१०	दाक्षिणात्य में	दाक्षिणात्या में
,,	,,	२२	धरणिवट्ठ	धरणीवट्ठ
,,	,,	२४	है,	हैं,
,,	,,	२६	वेणी० ६४, १८) में	वेणी० ६४, १८)। वेणीसहार में
,,	,,	३७	बिइफै,	बिहफै,
,,	१०६	२	बहरसइ	बहस्सइ
,,	,,	४	विहरसइ	बिहस्सइ
,,	,,	७	विह्प्पदि	बिहप्पदि
५४	१०७	४	मिअतण्हा	मिअतिण्हा
५४	१०७	५	मअतिण्हआ	मअति-ण्हिआ
,,	,,	१०	मेअलाछण	मअलाछण
,,	,,	,,	मयलाछेण	मयलाछण
,,	,,	१५	दाक्षिणात्य,	दाक्षि-णात्या,
,,	,,	२८	औल	पौल
,,	,,	३३	मअलं क्षणो	मअलछणो
५६	१०८	९	जामातृ शब्द	जामातृ-शब्द
,,	,,	१७	अम्मपिउ–	अम्मापिउ-

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	१३१	४	स्रज्	सृज्
,,	,,	,,	स्रष्ट	सृष्ट
,,	,,	५	उसढ	ऊसढ
,,	,,	८	निसढ	णिसढ
,,	,,	२३	समोसड्ढु	समोसड्ढ
६८	१३२	५	आसरद्दे,	आसरद्दे
,,	,,	६	ऽश्वरथम्,	ऽश्वरथस्
,,	,,	९	पढिगया	पडिगया
६९	,,	११	१४)। मागधी	१४), मागधी,
,,	,,	१५	पिट्ठओ	पिट्ठाओ
,,	१३३	७	घृणतः	घ्राणतः
,,	,,	८	चक्खुओ	चक्खूओ
,,	,,	१८	वामादो	वामादो
७०	,,	२	मइक	मयिक
,,	,,	६	सव्वरय-णामइ	सव्वरयणा-मइय
,,	१३४	१०	अद्ध	अर्ध
,,	१३५	२	नाहीकमल	णाहीकमल
,,	,,	१५	पित्ताग	पिळाग
७१	,,	२	निग्घणया	निग्घिणया
,,	१३६	१०	हण्डे,	हण्डे
,,	,,	,,	,,	,,
,,	,,	११	रेग्रन्थि–	रे ग्रन्थि–
,,	,,	१२	पुत्रक्	पुत्रक
,,	,,	१३	हृदयक्	हृदयक
,,	,,	२०	हाधिक्	हा धिक्
,,	,,	,,	,,	,,
७२	१३७	१८	निहि,	णिहिं,
,,	,,	२१	–ही	–हिं
७३	,,	५	घृतमत.	घितमत
,,	,,	,,	धीमओ	घिइमओ
७३	१३७	६	मईय	मईस
,,	,,	७	°अमति-मत्क.	ॐअमति-मत्का.

पा.स.	पृ.सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१३८	१	शोणीय	शोणीअ
,,	,,	२	साहिया	साहीया
७४	,,	८	अश्वादिगण	अश्वादि-गण
,,	१३९	९	दर्शिन	दर्शिन्
,,	१४०	६	श + – =ष	श + – ष
,,	,,	२१	छलस	छळस
,,	१४१	८	पाणिसि	पाणिसि
,,	,,	,,	स् + म	ष् + म
,,	,,	१६	प्लक्ष्य	प्लक्ष
,,	,,	२३	विचिकि-त्सती	विचिकि-त्सति
,,	,,	३०	दोगुछि	दोगुछि
,,	,,	३४	पढिदुगुछि	पडिदुगछि
७४	१४२	२१	मज्जा	मज़्ज़ा
,,	,,	२२	मज्जिका	मज़्जिका
,,	,,	३६	मागुस्	माग्नुस्
७५	१४३	३	वींस	वीसा
,,	,,	४	तींस,	तीसम्
७६	१४३	२	ह हो तो	ह हों तो
,,	१४४	३	चउआलसा	चउआलीसा
७६	१४५	५	साहद्दु	साहट्टु
,,	,,	८	में,	में
,,	,,	१७	ऋषिकेष	रिषिकेश
७७	१४६	४	ज्जिहिहिइ	ज्जिहिइ
,,	,,	७	वितारयसे	वितार्यसे
,,	,,	२०	अन्नीति	अनीति
,,	,,	२१	अणउढय	अणउदय
,,	१४७	१	वेत्सेन-वैरगैर्स	वेत्सेनवैरगैर्स
७८	,,	१३	चाउकोण	चाउक्कोण
,,	,,	१४	चाउघण्ट	चाउग्घण्ट
,,	,,	३०	मोष	मोस
,,	,,	३४	परयामोस	मायामोस
७८	१४८	१	रू	रु

पा.सं.	पृ.स.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२	१५४	२६	°तृत्य	*तृतिय
,,	,,	,,	°द्विइअ	*बिइअ
,,	,,	२७	दिअ	बीअ
,,	,,	,,	तिअ	तीअ
,,	,,	२८	नाराअ	णाराअ
,,	,,	३०	पडिन्	पडिण
८३	१५६	२७	वाउण,	वाऊण,
८४	१५७	१२	दुप्पेक्ख	दुप्पेॅक्ख
,,	,,	१३	दुब्भेॅज	दुब्भेॅज्ज
,,	,,	१८	खेॅत्त	छेॅत्त
,,	,,	२१	खेत्त	खेॅत्त
टिप्पणी	,,	३	मालिच्छ	मलिच्छ
८४	१५८	२४	शणिचर	सणिचर
,,	,,	२६	शणिच्छर	सणिच्छर
,,	,,	२७	सणिअचर	*सणिअचर
,,	१५९	१	पिण्डपा-त्रिक से।	पिण्डपा-त्रिक से,
,,	,,	२	नेयानुय	नेयाउय
,,	,,	७	शौण्डग्–	शौण्डग–
,,	,,	८	सौन्दर्य्य	सौन्दर्य
,,	,,	१०	सोॅण्डज्ज	सोॅन्दज्ज
,,	,,	१८	पौस	पौष
,,	,,	२३	सुडिका	शुडिका
,,	,,	२४	शुद्धोअणि	सुद्धोअणि
,,	,,	२५	सुवण्णिय	सुवण्णिअ
,,	,,	२६	°सुवर्णिक	*सुवर्णिक
,,	,,	२७	°सुगन्धत्त्वन	*सुगन्धत्त्वन
८५	१६०	१	(हाल४६)।	(हाल४६),
,,	,,	२	गओ–त्ति	गओॅत्ति
,,	,,	,,	-१७,६)।	१७,६),
,,	,,	३	३८०,७)।	३८०,७)–होता है।
,,	,,	७	माया-चारोव्व	माया-चारोॅव्व
,,	,,	८	–मारोव्व	मारोॅव्व

पा.स	पृ.स.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५	१६०	११	ब्रह्मणो-ज्जेॅव्व	बम्हणो-जेॅव्व
,,	,,	१८	हिअअ	हिअअ
,,	,,	३५	६२४, ३३)।	६२४, ३३) है।
,,	,,	३६	–जुओॅ	जुओ
,,	१६१	६	३२)।	३२) है।
,,	,,	,,	अलोलो	अलोलोॅ
,,	,,	८	उज्जणिय-नीम्	उज्जयि-नीम्
,,	,,	१४	६)।	६) है।
,,	,,	१६	प्रिये*	प्रिये
,,	,,	,,	पिएॅदिढई	पिएॅदिढइ
८६	१६२	९	मेंढ	मेॅढ
,,	,,	१२	मेंढण	मेढ्र
टिप्पणी	,,	३	मिलिन्द-पन्हों–	मिलिन्द-पन्हो
८७	१६३	१३	रुक्षपति	रूक्षयति
,,	,,	१६	वेटित	वेठित
,,	,,	२०	४४६)	४४६),
,,	,,	२३	सोॅम्य	सोॅम
,,	१६४	५	रात्रि	रात्री
,,	,,	७	रात्रिभोजन	रात्रीभोजन
,,	,,	८	ओव०)।	ओव०) है।
८८	,,	४	आघावेमाण	आघवेमाण
,,	,,	५	आख्यापन	आख्यापना
,,	१६५	४	शमश्शशदु	समस्ससदु और मागधी में शमश्शशदु
,,	,,	३२	अत्यग	अत्यग्घ
८९	१६६	२	कान्स्य	कास्य
,,	,,	७	गौंण	गौण
,,	,,	८	पेक्खुण	पेॅक्खुण
,,	,,	१०	*प्रेॅखुण	प्रेङ्खुण
,,	,,	२०	रुक्षान्	रूक्षान्

पा सं.	पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९५	१७७	३	सव्वस्स	सव्वस्स
			य्येॅव्व	य्येव
,,	,,	५	मुहेज्जेॅव,	मुहेज्जेव,
,,	,,	,,	सुज्जोदएॅ	सुज्जोदए
			ज्जेॅव्व	ज्जेव
,,	,,	१३	तूरातोॅ	तूरातोॅ
			य्येॅव्व	य्येव
९६	,,	३	ठिअम्हि	ठिअ म्हि
,,	,,	४	रोदिता स्मः	रोदिताः स्म.
,,	,,	९	असहायि	असहायि
			न्यास्मि	न्यस्मि
,,	,,	१०	विरहु-	विरहु-
			क्कठित	क्कठिद
,,	,,	१२	निवृत्ता	निवृताः
,,	१७८	१०	पिदर त्ति	पिअदर त्ति
नोट	,,		गेलैर्त	गेलैर्ते
,,	,,	१७	बौल्लेन-	बौॅल्लेॅन
			सेन	सेॅन
९७	,,	१४	इत्थियवेय	इत्थिवेय
,,	१७९	१	इत्थि-	इत्थि
			ससग्गि	ससग्गी
,,	,,	८	इत्थीरदन	इत्थीरदण
,,	,,	१६	पुढवीनाढ	पुढवीनाध
,,	,,	२४	१०,२),	१०,२) है,
,,	,,	२५	जाऊणअड	जउणअड
,,	,,	,,	जाऊणाअढ	जउणअढ
,,	,,	२६	जाऊणा-	जउणा-
			सगअ	सगअ
,,	,,	३०	मुत्त दाय	मुत्तदाम
९८	,,	१३	श्रीधर	श्रीघर
,,	,,	,,	सिरिधर	सिरिघर
,,	,,	२०	सिरिज-	सिरिज-
			सवम्मय	सवम्म
,,	,,	२६	खण्ड दास	खण्डदास
,,	,,	२७	चारु दत्त	चारुदत्त

पा सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९८	१७९	३३	ओव०)।	ओव०),
,,	१८१	३	सस्सिरिय	सस्सिरिअ
,,	,,	११	९६२)।	९६२) है,
,,	,,	१२	अहिरीयाण	अहिरीमाणे
,,	,,	१५	ओहरिआमि	ओहरियामि
,,	,,	१७	हिरियामि	हिरिआमि
,,	,,	१८	,,	,,
,,	,,	२१	बोल्लेन-	बोॅल्लेॅन-
			सेन	सेॅन
९९	,,	४	),—	),–
,,	,,	१०	चायिणाम्	त्रायिणाम्
९९	१८२	७	श्रियः	श्रिया.
,,	,,	१३	इत्तिउ	इत्थिउ
,,	,,	२५	इत्थिषु	इत्थिसु
,,	,,	२७	अभिशार्य-	अभिसार्य-
१००	१८३	३	भल्ली	भल्लि
,,	,,	६	मह्यागतानि	मह्या गतानि
,,	,,	,,	महीहिं	महिहिं
,,	,,	१७	कट्ठठिअ	कंट्ठठिअ
			दीसा	वीसा

पेज १८३ पारा १०१ के ऊपर "कुछ अन्य स्वर" शीर्षक छूट गया है, उसे पाठक सुधार लें।

पा सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०१	१८३	१०	उत्तम	उत्तर्म
,,	१८४	५	कृपण	कृपर्ण
,,	,,	१३	नगिण	निगिण
,,	,,	२०	पृथत	पृशर्त
,,	,,	२४	मध्यम	मध्यर्म
,,	१८५	१५	शिय्या	शेॅय्या
,,	,,	१६	निसेज्जा	निसेॅज्जा
१०२	१८६	१५	ईस वृत्ति	इस त्ति
,,	,,	१६	इसी स	इसीस
,,	,,	१७	ईसमपि	ईसम् पि
,,	,,	,,	ईसी स	ईसीस
,,	,,	२०	ईसिज्जल	ईसिजल

पा.सं.	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०७	१९४	३५	विह्ल	विल्न
,,	१९५	९	हेट्ठा	हे˘ट्ठा
,,	,,	११	,,	,,
,,	,,	१२	हेट्ठ	हे˘ट्ठ
,,	,,	,,	हेट्ठम्	हे˘ट्ठम्
,,	,,	१३	हेट्ठिम	हे˘ट्ठिम
,,	,,	१४	हेट्ठेण	हे˘ट्ठेण
,,	,,	,,	हेट्ठओ	हे˘ट्ठओ
,,	,,	१५	हेट्ठतो	हे˘ट्ठतो
,,	,,	१६	हेट्ठम्मि	हे˘ट्ठम्मि
,,	,,	,,	हेट्ठयम्मि	हे˘ट्ठयम्मि
,,	,,	१७	हेट्ठट्ठिअ	हे˘ट्ठट्ठिअ
,,	,,	१८	पाठ है])।	पाठ है])है।
,,	,,	२०	हेट्ठिम	हे˘ट्ठिम
,,	,,	२१	हेट्ठिमय	हे˘ट्ठिमय
,,	,,	२३	हेट्ठिल्ल	हे˘ट्ठिल्ल
	१९६	७	§ १०७	§ १०८
१०८	,,	६	येषा	ये˘षा
,,	,,	,,	यासा	यासा
,,	,,	,,	केषा	के˘षा
,,	,,	७	इम	इर्म
,,	,,	,,	अन्येषा	अन्ये˘षा
,,	,,	,,	अन्यासाम्	अर्न्यासाम्
,,	,,	९	एषाम्	एर्षाम्
,,	,,	,,	परेषाम्	पंरेषाम्
,,	,,	१०	सर्वेषाम्	सर्वेषाम्
,,	,,	११	जपियो	जपिमो
,,	,,	१३	नमाम.	र्नमाम
,,	,,	,,	मिलता और	मिल्ता है और
,,	,,	१४	पृच्छाम.	पृर्च्छाम.
,,	,,	,,	लिखाम	लिर्खाम
,,	,,	१५	*श्रुणाम.	*श्रुर्णाम.
,,	,,	१९	-आमो	-अमो
,,	,,	२०	साहाय्य	र्साहाय्य
	१९७	१२	§ १०८	§ १०९

पा सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०९	१९७	२५	सिम्बल	शिम्बल
,,	१९८	२	कूर्पास	कूर्पास
	,,	७	§ १०९	§ ११०
११०	,,	२	इ हो जाता है	ई हो जाता है
,,	,,	४	आढायमान	आढायमीण
,,	,,	९	ट होकर	ढ होकर
,,	,,	,,	ड रह गया	ड हो गया
	,,	१६	§ ११०	§ १११
१११	,,	९	जलो˘ल्लअ	जलो˘ल्लअम्
	१९९	१८	§ १११	§ ११२
११२	,,	१३	वार,	बार,
,,	२००	११	उत्कर्षिक	उत्कर्षिक
,,	,,	१२	उत्कृष्ट	उत्कृष्ट
	,,	१८	§ ११२	§ ११३
११३	२००	८	यथा	र्यथा
,,	,,	,,	तथा	र्तथा
	२०१	३३	§ ११३	§ ११४
११४	,,	३	अनुनासिक	अनुनासिक भी
,,	२०२	१३	हिट्ठम	हे˘ट्ठम्
,,	,,	१४	हेट्ठा	हे˘ट्ठा
,,	,,	१६	एवम्,	एवम्
,,	,,	,,	एतत्,	एतत्
,,	,,	,,	तथैतद्,	तथैतद्
,,	,,	,,	अवितथम्,	अवितथम्
,,	,,	१७	एवम्,	एवम्
,,	,,	,,	एयम्,	एयम्
,,	,,	,,	तहम्,	तहम्
,,	,,	,,	अवितहम् और	अवितहम्
,,	,,	२४	सोच्च	सो˘च्च
,,	,,	२५	इ, ई और उ, ऊ	इ, ई और उ ऊ
	२०३	१	§ ११४	§ ११५

पा स.	पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२७	२१८	१४	*स्थुल्ला	*स्थुल्ना
,,	,,	१५	*थोर	थोर
,,	,,	१७	स्थूल	स्थूर्ल
,,	२१९	८	णगोली	णगोलि
,,	,,	१९	मुल्ल	थुल्ल,
,,	,,	२०	*तबुल्ल,	*तबुल्ल, तबो॑ल्ल
,,	,,	२५	कोम्हडी,	को॑म्हडी,
,,	,,	२६	कोहली	कोहळी
,,	,,	२७	कोहलिया	कोहळिया
,,	,,	२८	कोहळें	कोह्ळें
,,	,,	,,	गलोई	गळोई
,,	,,	२९	*गढोञ्ची	*गढो॑च्ची
	२२०	३	§ १२७	§ १२८
१२८	,,	८	बोलिऍण	बो॑ल्लिऍण
,,	,,	१३	अम्हेहिं	अम्हे॑हिं
,,	,,	,,	तुम्हेंहि	तुम्हे॑हिं
,,	,,	१९	एइना	एइणा
,,	,,	२०	एदिना	एदिणा
,,	,,	,,	एएणा	एएण
	,,	३१	§ १२८	§ १२९
१२९	२२१	८	फलवान	भयकर
,,	,,	९	वेळ	वेलु
नोट	,,	२१	वलाट्ट,	वलाट्ट,
,,	,,	,,	म्युलर,	म्युलर,
	,,	२४	§ १२९	§ १३०
१३०	२२२	१०	थिप्पइ (	थिप्पइसे (
,,	,,	,,	) स्तिप्	) जो स्तिप्

संशोधित पारा १३१ से पहले २२२ पृष्ठ में 'अंशस्वर' या 'स्वरभक्ति' शीर्षक छूट गया है, पाठक सुधार ले।

पा स.	पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२२२	१३	§ १३०	§ १३१
१३१	,,	५	मिल्ता	मिल्ती
,,	,,	७	निव्वावऔ	निव्वावओ
,,	,,	११	किणराणाम्	किणराणम्
१३१	२२२	१२	किंपुरिसाणाम्	किंपुरिसाणम्
,,	,,	,,	सोभा-	सो भा-
,,	२२३	६	ध्य का ज्ज	ध्य का ज्झ
	,,	१२	§ १३१	§ १३२
१३२	,,	५	अभिक्खणाम्	अभिक्खणम्
,,	,,	६	गरहइ	गरहह
,,	,,	२०	तरसइ	तरासइ
,,	,,	२१	परावहीं	परावहिँ
,,	२२४	१०	सलहणिज्ज	शलाहणिज्ज
,,	,,	१३	सलाहणीय	शलाहणीय
	२२५		§ १३२	§ १३३
१३३	,,	९	सियोशिण	सियोसिण
,,	,,	१६	तुषिणिय	तुसिणीय
,,	,,	२३	नगिणिन	नगिणिण
,,	,,	,,	नगिणिय	नागणिय

१३४ से १४० तक पारा छूट गये हैं, जिनका अनुवाद शुद्धि पत्र के अन्त में दिया गया है।

पा स.	पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२२६	६	और दर्शन	और आगम
	,,	७	§ १३३	§ १४१
१४१	,,	१५	उद्रूर्हति	उद्रुर्हति
,,	२२७	१	अलाबु	अर्लाबु
,,	,,	५	अलाऊ	अलाउ
,,	,,	७	अलाबू	अलावू
	,,	८	§ १३४	§ १४२
	२२८	२९	§ १३५	§ १४३
१४३	,,	६	अन्ते वि	अन्ने वि
,,	२२९	२०	अर्धमागधी	मागधी
,,	,,	३१	जीविय	जीविअ
,,	,,	३५	लभेयम्	*लभेयम्
,,	२३०	१०	महुमहणेणव्व	महुमहणेणव्व
,,	,,	११	दावें	दावें

पा सं	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२१०	२६	§ १३६	§ १४४
१४४	,,	१	प्रत्यय	अव्यय
,,	२११	११	एम्हिम्,	ऍम्हिम्,
,	,	,,	एत्ताहे	ऍत्ताहे
,,	,,	१६	इमाणि	इयाणि
,,	,,	१७	भिट्यदूर	भिट्टयदूर
	,	२	§ १३७	§ १४५
१४५	,,	२	प्रत्यय	अव्यय
,,	,,	१२	किस्ते	किलवि˘
,	,,	१४	इथ त्ति	इत्ताचि
,,		,,	विह्म त्ति	विह्मत्ति
,	२१२	८	भान्तो त्ति	भान्तोत्ति
,,	,,	,	क्यान्तो त्ति	क्यान्तात्ति
,,	,,	५	एगोत्ति	एगात्ति
,,	,,	११	नूर्न	नूर्नम्
	,,	१५	§ १३८	§ १४६
१४६	,,	४	बाएँ	बायं
,,	,,	,,	एँ चिघ्दे˘	ए चिम्दे
,,	,	५	कोहे˘	कोर्हे
,,	,,	६	दइएँ !	दइएं !
,,	,,	,,	दइवे˘	दइवें
	,,	७	पहारे˘	पहारें
,,	,	,,	भमंतें˘	भमंतें
,	,	८	हएँ	हएं
,	,	,	गइवें˘	गइवें
	,,	२९	§ १३९	§ १४७
	२१३	२१	§ १४०	§ १४८
१४८	,	२	कञ्चण	कंचन
,		५	पिउरिसभा	पिउस्सिभा
,,		६	पिउरिसया	पिउस्सिया
,	२१४	४	पेज में	पेजों में
	२१४	२०	प्रत्यय	अव्यय
१४८	२१४	२४	उपरि	उर्परि
,	२१५	१२	स्नु ष	स्नुषा
,,	,	१३	म्नुषाल	मुनुषाल

पा सं	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४८	२१५	२८	एचो,	ऍचो,
	२१६	२०	§ १४१	§ १४९
१४९	,,	६	निस्सर्मा	निस्सनी
,,	,,	१६	केम्भिरेण	केंभिरेण स्स
	,	२५	§ १४२	§ १५
१५	,,	४	साय मूर्न	साय मूर्ने
,,	,,	६	अन्तगदो	अत्यगदो
,,	,,	७	नूर्न	! पूर्न
,,	,,	१६	अवपत	अंबपत
,,	,,	२१	माया	माद्य
,,	,	२५	संज्ञाधम्मी	संज्ञा धम्मी
	२१८	१२	§ १४३	§ १५१
१५१	२१९	५	अभ्भेतर	अभ्भितर
,,	,	११	तिम्मरिच	तिम्मिरिच
,,	,,	१५	पडिनीव	पडिनीय
,,	,,	२४	रायण्ण	रायण्ण
,,	,,	२६	पीढ़स्लंव	पीढ़स्कंव
,,	,,	२९	थीपा	थीप
,,	,,	३	ठीपा	ठीप
,,	,,	११	ठिण्ण	थिण्ण
,,	,,	,,	ठिण्णम	थिण्णम
	२४	५	§ १४४	§ १५२
१५२	,,	६	स्वरित	स्वरिर्ठ
,,	,,	१७	सुभहि	सुभहि
,	२४१	६	तूप	तूर्प
	,,	१३	§ १४५	§ १५३
१५३	२४२	८	कश्मास	कश्मास
	,,	२०	§ १४६	§ १५४
१५४	,,	११	अवस्थाव	अवस्था
	२४३	११	§ १४७	§ १५५
१५५	२४४	१	आम्लाओ	ऑम्लाओ
,,	,,	१४	उपहत्व	उपहत्व
,	,	२	पडोमारइ	पडोमारइ
	२४५	८	पोतवोल	पोतवापल
,,	,,	११	मांक	मों क

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२४५	१८	§ १४८	§ १५६
१५६	,,	११	दूदिअलाव-माण	यूदिअला-वमाण
,,	२४६	४	गुणट्ठि।	गुणट्ठि
,,	,,	४	आयार० (	(आयार०
,,	,,	१७	अशुभ अ-प्पिय	असुभ अ-प्पिय
,,	,,	,,	अकत-वग्गुहिँ	अकंत-वग्गूहि
,,	,,	३२	मतिऋद्धि-गौरव	मत्यर्द्धि-गौरव
,,	,,	३३	बहुज्झित-	बहूज्झित-
,,	२४७	६	धवलअसुआ	धवलअसुअ
	,,	१५	§ १४९	§ १५७
१५७	,,	१०	सर्वका	सर्व का
,,	,,	१५	सघउ-वरिल्ल	सव्वउ-वरल्लि
,,	,,	१६	सघुप्परिल्ल	सव्वुप्परिल्ल
,,	,,	१८	अयरिय-	आयरिय-
,,	,,	१९	हेट्ठिमउ-वरिय	हेट्ठिमउ-वरिम
,,	,,	२०	वातधनो-दधि	वातघनो-दधि
,,	,,	२१	वायधन-उदहि	वायघन-उदहि
,,	,,	,,	कठसूत्रो-रस्थ	कठसूत्रो-र.स्थ
,,	२४८	६	प्रवचनोप-द्यातक	प्रवचनो-पघातक
,,	,,	,,	पवयणउव-द्योयग	पवयणउव-घायग
,,	,,	,,	सयमो-पद्यात	सयमोपघात
,,	,,	,,	सजमउव-द्याय	सजमउव-घाय

पा सं	पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५७	२४८	७	मेंवसतो०	में वसंतो
,,	,,	९	वसतोत्सवो-पायण	वसंतोत्सवो-पायन
,,	,,	,,	वसतुरसव	वसतुम्सव
	,,	१०	§ १५०	§ १५८
१५८	२४९	४	गधोद्धूत	गधोद्धु त
,,	,,	९	मदमारुतो-द्वेलित	मदमारुतो-द्वेल्लित
,,	,,	११	देमूण	देसूण
	,,	२९	§ १५१	§ १५९
१५९	,,	४	पीणा	पीना
,,	,,	५	प्रकटो-	प्रकटोरु-
,,	,,	७	एकोरुक	एकोरुक,
	२५१	१	§ १५२	§ १६०
१६०	२५१	२९	थाणिय	थणिय
,,	,,	,,	-जोणिय-त्थीओ	-जोणियइ-त्थीओ
	,,	३३	§ १५३	§ १६१
१६१	२५२	४	कुसुम-ओत्थअ	कुसुमो-त्थअ
,,	,,	१४	=माला	=माल
	,,	३२	§ १५४	§ १६२
१६२	२५३	६	बहूस्थिक	बह्वस्थिक
,,	,,	,,	कपि-कच्छूग्नि	कपि-कच्छ्वग्नि
,,	,,	१०	बहूवश्य	बह्वश्य
,,	,,	११	बद्वृद्धि	वह्वृद्धि
,,	,,	१६	चक्खु-इन्दिय	चक्खि-न्दिय
,,	,,	१७	-त्सर्पिणि	-त्सर्पिणी
,,	,,	२०	उद्यसी-अक्खर	उव्वसी-अक्खर
	,,	३२	§१५५	§१६३
१६३	२५४	२	अभ्युगत	अभ्युपगत
,,	,,	९	शोर०	शौर०
,,	,,	१८	अध्यासते	अध्यास्यते

पा स.	पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६३	२५४	२२	पयमस्ठाभ	पद्मस्ताभ
"	"	२१	पडिठ्या रेयठ	पडिठ्या रेयम्न
"	,	११	पर्हसुभ	पर्हसुआ
"	"	"	मत्याग्रान	•मत्यादान
	२५५	७	§१५६	§१६४
१६४	"	१७	पिसिभइ	पिसिभर
"	"	१९	गोल्यठर	गोल्यऊर
१६४	२५५	१६	गोदापुर	गोदापूर
"	"	२५	म्यंकन	म्यंकन
	,	१५	§१५७	§१६५
१६५	२५६	६	मकापस होता है	=मकापस है
		११	) मनाये गये हैं	×
"	"	२८	पादपीढ	पादपीठ
"	"	१०	मन मार्क-ण्डय के	मन कि माकण्डय के
"	२५७	१	उडीण	उदीण
	"	१६	हाहि	होही
"		१७	जमेहि	जमेही,
		"	निपारहि	निवारेही
	"	१८	छी	एही
	"	२८	§१५८	§१६६
१६६	"	८	पइर	•पइर
	२५८	२४	गर्भवति	गभवति
		११	चतुवि-पति	चतुर्विपति
	२५६	१	चतुर्दपम्	चतुदपम
१६६	६	७	बदुर	•बदुर
"		"	बदुरी	•बदुरी
	"	२१	§१५६	§१६७
१६७		४	भेजारिय।	भेजारिय है।
	२६१	१२	माआरा	•मामरी
,	"	२	१२००)।	१२००) है।
१६७	२६५	२६	कीजिए)।	कीजिए) है।
"	"	२९	सार्तवाहन	सातवाहन
	२६२	४	§१६०	§१६८
१६८	"	९	•ईम-गोपाभ	•ईम-गोपाम्न
"	"	१४	रूप मी है,	रूप मी है=
	२६३	७	§ १६१	§ १६९
१६९	"	५	अग्निटोम	अग्निष्टोम
१६९	२६३	५	पिवस्कंद वर्मा-	शिवस्कंद वर्मा
"	"	७	आरक्स-पिक्वे	आरक्ख भिक्वे
"	"	"	इविभपि	इवि भपि
"	"		चापि हीयम्	चापिह्यम्
"		८	आपिहीभं	आपिहीयम्
"	"	९	सम्वस्पे	सम्वस्मे
"	"	११	ण भ ये	ण भ मे
"	"	"	अस्य	अस्य्
"	"	१५	अमुश्रय	अमुश्रयू
"	"	१७	फ्सम	कम्सो
"	,	२	आर्या	अर्या
"	"	२१	एश्रमा पीयो	ए्श्रमापीयो
,	"	"	पाश्र्ह	पसह
,	"	२१	दिया	दिय
	"	१२	§ १६२	§ १७
१७	२६४	२	नायी	नामी
"	"	७	(दाम १८७)।	(दाम १४७) है।
"		२	अपवरिव	अपवरवि
"	२६५	२	५१)।	५१) है।
"	,	५	~ नहि	~ नहि
,		६	आदसिया	आदसिभ्य
	"	११	§१६१	§१७१
	"	१५	§१६४	§१७२

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७२	२६६	१२	ऐत्थोवरए	एत्थोवरए
,,	,,	२१	तिरिक्को-	तिरिक्खे-
,,	,,	२३	१६)।	१६) है।
,,	,,	२८	अनुशासति	अनुशासति
,,	,,	२९	अपसपमिः	अपसर्पामि.
,,	,,	३३	अद्धाणु-गच्छइ	अद्धाअणु-गच्छइ
,,	,,	,,	पथाणु	पथाअणु
१७२	२६६	३४	५६)।	५६) हैं।
	,,	३६	§१६५	§१७३
१७३	२६७	१०	अनेलिष	अनेलिसं
,,	,,	२४	चत्वारों'	चत्वरो'
,,	,,	,,	तरद्वीपाः	न्तरद्वीपा
,,	,,	२९	दलाम्य	दलाम्य्
,,	२६८	६	उवेंति	उवेॅन्ति
,,	,,	,,	अतकर	अतकरो
,,	,,	९	इयम्	इमम्
,,	,,	१३	नो-	नो
	,,	२९	§१६६	§१७४
१७४	,,	३	अप्पू	अप्प्य्
,,	,,	६	तसि,	तसि
,,	,,	,,	तस्मिन्न,	तस्मिन्न
,,	,,	,,	#अप्पेके	#अप्प्येके
	२६९	२३	§१६७	§१७५
१७५	,,	३	'णेलिष	'णेलिस
,,	,,	४	स्पर्शन्	स्पर्शान्
,,	,,	७	उपसातो	उपशातो
,,	,,	९	इणयो	इणमो
,,	,,	१३	'त्थु णं	'त्थु ण
,,	२७०	६	'भिट्ठुआ	'भिद्दुआ
,,	,,	,,	अमभिद्रुता	अभिद्रुता
,,	,,	८	सूत्नाहि'	सूलाहि'
,,	,,	९	विद्यापुरुषा	'विद्यापुरुषा
,,	,,	१५	जसी-भिदुग्गे	जसी'भि-दुग्गे
१७५	२७०	२८	अकारिणो'	अकारिणो
	,,	३२	'अपनिहिति' शीर्षक छूट गया है, इसे पाठक जोड़ लें।	
	,,	३३	§१६८	§१७६
१७६	२७१	१०	केरिकात्ति	केरिकत्ति
,,	,,	३३	काममें	काम में
१७६	२७२	५	२५), अ०	२५), अ०
	,,	१८	'स्वर साम्य' शीर्षक छूट गया है, पाठक सुधार लें।	
	,,	१८	§१६९	§१७७
१७७	,,	२	नकली	नकल
	२७३	१९	§१७०	§१७८
	२७४	४	§१७१	§१७९
	,,	३५	§१७२	§१८०
१८०	२७५	१६	तिहि	तिहिँ
१८०	२७५	२३	सीलुम्मूलि-आईँ	सीलुम्मूलि-आइँ
,,	,,	२६	दिसाणाँ	दिसाणँ
,,	,,	,,	णिमीलि-आईँ	णिमीलि-आइँ
,,	,,	२९	दिण्णाइँ	दिण्णाइँ
,,	,,	,,	जाइँ	जाइँ
	२७६	११	§१७३	§१८१
	२७७	३	§१७४	§१८२
१८२	,,	४	प्रसदितेन	प्ररुदितेन
,,	,,	२०	वड्डेण,	वड्डेण
,,	,,	,,	वड्रेण,	वड्रेण
,,	,,	२४	आनुपूर्व्येन	आनुपूर्व्येण
,,	,,	२७	आया,	आया है,
,,	२७८	१६	धणाइ	धणाइ
,,	,,	२४	दहिं	दहिँ
,,	२७९	५	तें जनेना	तें जनेन
	,,	९	§१७५	§१८३
	२८०	४	§१७६	§१८४

पा सं	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९४	२९१	२१	लेप्डुक	लेष्डुक
,,	,,	२५	ह्रदक	*ह्रदक
,,	२९२	२	चचिका	चर्चिक
,,	,,	,,	चचिक	चर्चिक
,,	,,	८	=अलं	=-अलं
,,	,,	१४	=दुकूल	दुकूलं
	,,	२८	§१८७	§१९५
१९५	२९३	३	शुक्ल्त	शुक्लित
,,	,,	७	पोम्मराअ	पोॅम्मराअ
	,,	१८	§ १८८	§ १९६
१९६	,,	८	परिअग्ग-हिद	परिग्ग-हिद
,,	२९४	६	अखाडअ	अखडिअ
,,	,,	१०	आया	समा
,,	,,	,,	आल्लबइ	अल्लिवइ
,,	,,	११	पति	पंति
,,	,,	१२	ऊध्वभुज	ऊर्ध्वभुज
,,	,,	१५	कायाग्ग-रा	कायग्गिरा
,,	,,	,,	कायागरा	कायगिरा
,,	,,	१९	तेलोंक	तेल्लोॅक्क
,,	,,	२१	पचजना.	पञ्चजना·
,,	,,	२३	प्रम्मुक	पम्मुक्क
,,	,,	२५	परब्वस	परव्वस
,,	,,	२७	पलब्वश	पलव्वश
,,	,,	२८	अणुब्वस	अणुव्वस
,,	,,	,,	पब्वाअइ	पव्वाअइ
,,	,,	३०	मेत्तप्फल	मेॅत्तप्फल
,,	,,	३५	कीजिए),	कीजिए) है,
,,	२९५	१९	रागदास	रागदोस
,,	,,	२०	कुद्दिट्ठि	कुदिट्ठि
,,	,,	२२	सादट्ठ	सद्दिट्ठि
,,	,,	२६	अद्दग	अद्दाग
,,	,,	२७	दावइ	दावई
,,	,,	३२	वलाव-कार	वलाक्कार
	२९५	३५	§१८९	§१९७
१९७	२९६	४	इतिः	इतः
,,	,,	२१	कॉप्प	कोॅप्प
,,	,,	२२	२९०),	२९०) कुप्य से
	,,	३१	१९०	§१९८
१९८	२९७	७	अटति का ट	अटित का ट का ढ
१९८	२९७	९	§१९१	§१९९
१९९	,,	२	व का व्व	व का ब
	,,	३१	§ १९२	§ २००
२००	२९८	१४	१६),	१६) है,
,,	,,	१८	४६,११),	४६, ११)है,
,,	,,	२७	इत्याद्पि	इत्याद् अपि
	,,	२८	§ १९३	§ २०१
	२९९	३२	§ १९४	§ २०२
२०२	३००	१६	अल्मक	—आत्मक
,,	,,	३०	परगअ,	मरगअ,
	३०१	३४	§ १९५	§ २०३
२०३	३०२	७	पेच्छदि	पेॅच्छदि
,,	,,	१६	पारितोः	पारितो
	३०३	२६	§ १९६	§ २०४
२०४	३०३	५	सुव्वुति,	सुक्कृति,
	३०५	१	§ १९७	§ २०५
	,,	१३	§ १९८	§ २०६
२०६	३०६	१२	निकला है	निकले हैं
,,	,,	२०	व्हिटनी § ११९९	(व्हिटनी § ११९९)
,,	३०७	३	फलिह	फळिह
,,	,,	७	फलिहमय	फळिहमय
,,	,,	८	फालिय	फाळिय
,,	,,	९	फालिया-मय	फाळियामय
,,	,,	११	फालिअ	फळिअ
,,	,,	,,	फलिह-गिरि	फळिहगिरि

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१९	३२७	,,	चेदे	चेडे
,,	,,	६	विधत्त	विढत्त
	,,	६	§२१२	§२२०
२२०	,,	२०	पडिदिण	पइदिण
,,	,,	,,	पडदियह	पइदियह
,,	,,	२१	पडसमय	पइसमय
,,	३२७	२२	पडवरिस	पइवरिस
	३२८	८	§२१३	§२२१
२२१	,,	५	दकिरश	दकिश्श
,,	,,	२०	६२ है)।	६२)में भी है।
,,	,,	२४	णिसीढ	णिसीध
,,	,,	२७	अनिज्जूढ	अणिज्जूढ
,,	३२९	६	नियूंथित	* निर्यूथित
,,	,,	११	साढिल,	सढिल,
	,,	२०	§२१४	§२२२
२२२	३३०	६	डहअ	डहह
,,	,,	२३	उड्ढुअ	डड्ढुअ
,,	३३१	७	है, वियड्ढ	वियड्ढ
,,	३३२	१२	द्वि-कार	द्विकार
	३३३	६	§२१५	§२२३
२२३	,,	१७	आढिय	आढिअ
	३३४	१	§२१६	§२२४
२२४	३३५	१	आत्मानः	आत्मनः
	,,	३०	§२१७	§२२५
२२५	,,	४	गुणगण-युत्त	गुणगण-युक्त
	३३६	६	§२१८	§२२६
२२६	,,	२५	हस्तलिपि-व्री	हस्तलिपि-वी
,,	,,	२६	किलणीय	किळणीय
,,	,,	२७	कीळणीअ-अ	किळणीअ-अ
,,	३३७	६	शिलालेख-एक	शिलालेख-आइ
	,,	३४	§२१९	§२२७
२२७	३३८	१	सिवखध-वमो	सिवखद-वमो
	,,	१६	§२२०	§२२८
	,,	२७	§२२१	§२२९
२२९	,,	६	केषेशु	केशेषु
२२९	३३९	६	विषकन्या	विषकन्यका
२२९	३३९	१०	सहश्श	शहश्श
	,,	१८	§२२२	§२३०
२३०	३४०	२	*अवक-शिक	*अवकाशिक
	,,	३०	§२२३	§२३१
२३१	३४१	२९	छागला	छागल
	३४२	१०	§२२४	§२३२
२३२	,,	३	कौटिल्ये	कौटिल्ये
,,	,,	४	वैकल्ये	वैकल्ये
,,	,,	६	मे	से
नोट	,,	२०	आउ-ट्टेन्ति	आउट्टेन्ति
,,	,,	२२	आउ-ट्टित्तए	आउट्टित्तए
,,	,,	२३	विउट्टण	विउट्टन
	,,	२५	§२२५	§२३३
	३४४	१	§२२६	§२३४
२३४	,,	२	गयो	गया।
	,,	१६	§२२७	§२३५
२३५	३४५	१२	सरति	संरति
,,	,,	१३	सरति	सरंति
२३६	,,	४	यम्पिदेन	यम्पिदेण
,,	,,	५	याणादि	याणदि
,,	,,	७	जाआ	जाया
,,	,,	१२	श्रार	आर
,,	,,	१४	जाणा-माशि	जाणाशि
,,	३४६	१	जन्मान्तर–	जन्मान्तर-
,,	,,	६	उयृयिह्न्त्र	उयृयिह्अ

पा.स.	पृ.स	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५१	३६२	११	अणिंउतअ	अणिँउंतअ
,,	,,	१२	चानुण्डा	चामुण्डा
,,	,,	१२	यमुना।	यमुना हैं।
,,	३६३	७	स्थनि	स्थाने
२५२	३६४	४	में।	में
,,	,,	७	)अप०	और।अप०में
,,	,,	,,	दाक्षि०	दाक्षि० में
,,	३६५	१८	अङ्गलीयक	अङ्गुलीयक
,,	,,	२१	कोसे˘ज्जं	कोसे˘ज्ज
,,	,,	२२	गेवेज्ज	गेवे˘ज्ज
,,	,,	२८-२९	है इसका	है जब इसका
,,	,,	३२	यधस्त	यहस्त
,,	,,	३५	याणिय्यादि	याणिय्यदि
२५३	३६६	४	—यसो	—यसो
,,	,,	५	—सजुत्तो	—सजुत्तो
,,	,,	६	सयुक्त :	सयुक्तः
,,	,,	,,	(७,४७)।	(७,४७) है।
,,	,,	८	वाजपेय	वाज़पेय
,,	,,	९	नैयिकान्	*नैयिकान्
,,	,,	१०	—प्प-दायिनो	-प्पदायिनो
,,	,,	१२	आपिस्याम्	आपिट्टयाम्
,,	,,	१८	कीजिए)।	कीजिए) हैं।
,,	,,	२०	कारे˘य्य	करे˘य्य
,,	,,	२१	कारेय्याम	करे˘य्याम
,,	,,	२३	गोल्समज्जस,	गो˘ल्स-मजस,
,,	,,	२४	अगिसयजस्स,	अगिस-मजस्स,
,,	,,	२५	३७),	३७) में,
२५४	३६७	६	पद्य	गद्य
,,	,,	११	२५०)	२५०) जेसा
,,	,,	१६	सूत्र क	सूचक
,,	,,	२०	-एॅव्वउॅं,	एॅव्वउँ,

पा सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५४	३६७	२०	-इएॅव्वउ,	-इएॅव्वउँ,
,,	,,	,,	जगोघा	जगो˘व्वा
,,	,,	२१	करिएॅव्वउॅ	करिएॅव्वउँ
,,	,,	२२	सहेव्वउँ	सहे˘व्वउँ
,,	,,	२९	हितय	हितप
,,	,,	३०	गोविन्त	गोपिन्त
,,	,,	,,	केसव	केसप
,,	,,	३१	आल्टइं-डिशे	आल्ट इडिशे
,,	,,	,,	क्रून	कून
,,	,,	३२	सिम्प्ली	सिम्प्लि
२५५	३६८	,,	*छायारवा	*छायाखा
टिप्पणी (अनु०)	,,	१	जोठी	जाँठी
,,	,,	,,	जेठा	जेठी
२५६	३६९	२	-लाविदहि-युगे	-लायिदहि-युगे
,,	,,	,,	-प्रसुर-	-म्रसुर-
,,	,,	४	विग्गहला-	विग्गहला-
,,	,,	६	पूलिद.	पूलिंद
,,	,,	८	महारन्त-	महारत्न-
,,	,,	९	रामले	शामले
,,	,,	,,	लुहिलघिअ	लुहिलप्पिअं
,,	,,	१०	पलिणाये	पलिणामे
,,	,,	११	परिणायो	परिणामो
,,	,,	१७	(एस०)	(सिंह०)
,,	,,	१८	एस० नेपै०	सिंह० नेपै०
,,	,,	२७	राच—,	राच—,
,,	,,	,,	तमरुक	टमरुक
२५७	३७०	३	हल्दि	हाल्दि
,,	,,	१९	करुण	करुणा
,,	,,	२७	वारुणी	वारुणी
,,	३७१	६	रुक्ष,	रुक्ष,
,,	,,	१२	लाधा	लादा
,,	,,	१३	)और—रादा	×

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७०	३८८	२५	उत्थित	उत्क्षित
,,	,,	२८	खुच	खुज्ज
२७१	३६०	६	विणिज्झइ	विगिज्झइ
,,	,,	८	पिट्ठदु	पिठदु
,,	,,	१०	सेन्तर	सेनार
,,	,,	१२	नोट सख्या १	नोट सख्या १,
२७२	,,	५	कोंञ्च	कोँञ्च
,,	,,	,,	कौञ्च	क्रौञ्च
२७३	,,	२	पण्णारह	पण्णरह
,,	३६१	१	एक्कावन्नं	एँक्कावन्न
,,	,,	८	१३३)।	१३३) हैं।
,,	,,	२२	कि 'ञ्च,	किं 'ञ्ञ,
,,	,,	२४	दत्य	दंत्य
,,	,,	२६	प—वजा	पं० -वजा
,,	,,	२८	आज्ञापयति	आज्ञापयति
,,	,,	२६	पच आली-सहि	पचआलीस-सहिँ
,,	,,	३०	माना जाता है।	माना जाता है,
२७४	,,	२	अ० माग०	माग०
२७५	३६२	६	लिम्क	लिक्क
,,	,,	११	विलोज्जति	विलोइज्जति
,,	,,	१३	हुवति	हुवती
,,	,,	१३	भवन्ति	भवन्ती
,,	,,	१४	देशन्तर	देशान्तर
,,	,,	१६	मे नये सस्क-रणो से उड्	मे उड्
,,	,,	,,	मक्खन्दि	भक्खन्दि
,,	,,	२६	ओलोआली	ओलोअन्ती
,,	,,	३१	पञ्चरत्तव्य-न्दरे	पञ्चरत्तम्भ-न्दरे
,,	३६३	२	मुकुन्दातन्द	मुकुन्दानन्द
,,	,,	६	चिन्दाउल	चिन्दाउल
,,	,,	,,	वासान्दिए	वासन्दिए

पा.सं.	पृ.सं.	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७५	३६३	१०	मन्दि	रमन्दि
,,	,,	३०	न्त लिखती हैं	न् त लिख-ती हैं
,,	३६४	६	ताप्यति	तापयति
,,	,,	१०	अपकृतन्ति	अपक्रन्तति
२७६	,,	७	ऋ वुण्ण	ऋ का वुण्ण
,,	,,	६	नग्न = नग्न	नग्ग=नग्न
,,	३६५	४	णाण	नाण
,,	,,	६	होता है।	होते हैं।
,,	,,	६	मणोज्ञ,	मणोँज्ञ,
,,	,,	१२	केवल ज्ञ -को ही	केवल ज्ञ ही
,,	,,	,,	अहिच्च	अहिज्ज
,,	,,	१३	सव्वण	सव्वण्ण
,,	३६६	२	यज्ञसेनी	याज्ञसेनी
२७७	३६७	१४	आत्प	आत्त
,,	,,	१६	छुण्म	छुम्म
२७८	,,	७	मम्यण	मम्मण
,,	३६८	२	पज्जुण	पज्जुण्ण
,,	,,	५	धिट्ठज्जुण	धिट्ठज्जुण्ण
२७६	,,	१	अर्धस्वर से	अर्धस्वरों से
,,	,,	११	अख्यानक	आख्यानक
,,	,,	,,	अख्याति	आख्याति
,,	,,	१४	आधावेइ	अवावेइ
,,	,,	२०	रज्य	रज्ज
,,	,,	२३	लोट्टइ	लोँट्टइ
,,	,,	२५	—द्युद्ध	—द्य
,,	,,	२७	अप्येगे	अप्पेगे
,,	,,	,,	*अप्पेके,	*अप्येके,
,,	,,	,,	अप्येगइया	अप्पेगइया
,,	,,	२८	*अप्पेकत्या	*अप्येकत्या
,,	,,	,,	अप्येकच्चे	अप्पेकच्चे
,,	३६६	१	तुप्पट	तुप्पउ

पा सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८७	४०७	२	हो उसका लोप	हो लोप
,,	,,	६	कक्कोड	कक्कोळ
,,	४०८	१२	निघृ॑ण	निघृ॑ण
,,	,,	१३	अजिघ्रति,	आजिघ्रति,
,,	,,	१४	अग्वइ	अग्घाइ
,,	४०६	६	प्र दायिन,	प्रदायिनः
,,	,,	,,	पतिभागो	पतीभागो
,,	,,	१२	वृ=व्व	व्र=व्व
,,	,,	१६	भातृकाणाम्	भ्रातृकाणाम्
,,	,,	२४	सिवरव-दवमो	सिवखद-वमो
२८८	४१०	१७	मुद्ध॰	मुद्ध
२८९	,,	१७	केवट्ठअ	केवट्टअ
,,	४११	२०	अणुरिव-ट्ठमाण	अणुपरिव-ट्टमाण
,,	,,	२३	निवट्टएज्जा	निवट्टएँज्जा
,,	,,	२६	नाना रूप	नाना अ० माग० रूप
,,	,,	३२	उव्वतइ	उव्वत्तइ
,,	४१२	११	समाहट्टु=	समाहट्टु,
,,	,,	१४	गर्त्ता	गर्ता
२९०	४१३	६	वल्कि	किंतु
,,	,,	१३	सत्यवाह	शत्थवाह
२९१	,,	१५	छड्डिज्जड	छड्डिज्जउ
,	४१४	१७	प्रमर्हिन्	प्रमर्दिन्
,,	,,	३३	अड्डुरत्त	अड्डुरत्त
२९२	४१५	२	दुट्टइ	ड्डट्टइ
,,	,,	३	तुट्टइ	तुट्टई
,,	,,	१३	में पुरथक	में माग० पुरथक
,,	,,	१६	रापुत्ताक	शपुत्ताक
२९३	४१६	४	अत्थभोदि	अत्थभोदी
,,	४१७	२	जन्तु	जत्तु
,,	,,	,,	तन्तु	तत्तु

पा.सं	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९३	४१७	४	१७ में अत्त	१७ में माग० अत्त
,,	,,	१२	महामेत्त-पुरिस	महामे॑त्त-पुरिस
,,	,,	१७	रूप है।—	रूप है—
२९४	४१८	५	छिद्रित्	छिद्रित
२९५	,,	१	रूपो में य	रूपों में म
,,	,,	३	घुल मिल जाता है।	घुल मिल जाते हैं।
,,	,,	१८	ताम्रशिखा	ताम्रशिख
,,	,,	२३	(§१३७या अम्म),	(§१३७) या अम्ब,'
,,	,,	२४	सेधाम्लदा-लिकाम्न.	सेधाम्लदा-लिकाम्लैः
२९६	४१९	३	ल्किश्यन्ति	क्लिश्यन्ति
,,	,,	२३	जम्मिदु	जम्मिदु'
,,	,,	२४	जम्यसि	जम्पसि
,,	,,	३२	पजम्पइ	पजम्पह
,,	४२०	३३	जप्पत्ति	जप्पन्ति
,,	,,	३	जप्पहती	जप्पन्ती
,,	,,	४	),—जप्पिणि	),-जप्पिणि
,,	,,	६	४ के जै० महा० रूप	४ के रूप
,,	,,	१०	परिप्पवत्त	परिप्पवन्त
,,	,,	,,	परिप्लवत	परिप्लवन्त-
,,	,,	२०	पगब्भि—	पगब्भि-
,,	,,	२८	वम्मिअ,	वम्मीअ,
२९७	४२१	२	सुकढिया	सुकढिय
,,	,,	६	ज्व=ज्ज	ज्व=ज्ज ;
,,	,,	,,	ज्जलइ	जलइ
२९८	,,	५	पीनत्वत्त,	*पीनत्वन,
,,	,,	१२	द्विजाधन	द्विजाधम
,,	४२२	१	(एत्तें०),	(एत्तें) है,

पा.स.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०३	४३०	१०	रूप भी है	भी है
,,	,,	११	१६४)।	१६४),
,,	,,	११	आलेँद्ध	आलेँद्धु
,,	,,	१७	*आले-ग्थुकम्	*आले-ग्घुकम्
,,	,,	,,	*आलेग्घुम	*आलेग्घुम्
,,	४३१	४	उव्वेढेज्ज	उव्वेढेँज्ज
,,	,,	,,	निव्वेढेज्ज	निव्वेढेँज्ज
,,	,,	५	परिवेढित	परिवेढिय
,,	,,	१५	वेढिय	वेढिम
,,	,,	२२	चलते हैं],	चलते हैं-अनु०],
,,	,,	२८	लेट्टु	लेँट्ठु
३०४	४३२	४	लेलु	लेळु
,,	,,	६	कोँहलुअ	कोँळ्हुअ
,,	,,	,,	कोष्टुक	क्रोष्टुक
,,	,,	,,	कुल्ह	कुळ्ह
,,	,,	,,	कोष्ट	क्रोष्ट
,,	,,	७	कोल्हाहल	कोळ्हाहल
,,	,,	,,	*कोष्ठाफल	*क्रोष्टाफल
,,	,,	१०	समवस्टष्ट	समवसृष्ट
३०५	,,	८	शष्य	शष्प
,,	४३३	२	फारसी	हिंदी
,,	,,	१४	स्पष्ट है प्प का	स्पष्ट है कि प्प का
,,	,,	१८	दुप्पेच्छ	दुप्पेँच्छ
,,	,,	,,	दुप्पेक्ख	दुप्पेँक्ख
,,	,,	२०	णिप्पिवात	णिप्पिवास
,,	,,	,,	निष्पच	निष्पत्र
,,	,,	२८	३४),	३४) है,
,,	,,	३०	निष्फन्द,	निष्फन्द है,
,,	४३४	१	शस्यकवल	शस्पकवल
,,	,,	८	दुप्पेँक्खं	दुप्पेँक्खे
,,	,,	९	पुस्य	पुस्प

पा सं.	पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०६	४३४	५	खधकोंडिस	खदकोंडिस
,,	४३५	१	तिरछरिणी	तिरक्करिणी
,,	,,	१२	पुरकेड	पुरेकड
,,	,,	२०	नक्कसिश	नक्कसिरा
,,	,,	२५	परिक्खन्त	परिक्खलन्त
,,	,,	२७	मस्करित्	मस्करिन्,
		३३	हष्तिस्कन्ध	हस्तिस्कन्ध
अनु.टिप्प.	,,	१	णिकव	णिक्ख
३०७	४३६	३	अत्थं	अत्थ
,,	,,	११	निस्तुस	निस्तुष
,,	,,	२२	थणिल्लिअ	थेणिल्लिअ
,,	,,	२३	वगाला	बगला
,,	,,	३४	अर्थसगत	अर्थ सगत
३०८	४३७	१६	थम्बम्भ	थम्भ
,,	,,	१८	मुहत्थम्भ	मुहथम्भ
,,	४३८	२५	हाडुनि,	हाट्टनि,
,,	,,	,,	हाटा,	हाँटा,
,,	,,	२८	कट्ट	कट्ठ
,,	,,	२९	हद्	हट्
,,	,,	२९	'त्रस्त होता है'	'त्रस्त' होता-है
,,	,,	३०	पी'त,	भी'त,
,,	,,	३४	हित्थ	हित्थ में
,,	४३९	३	मिलता है] है।	मिलता-है।
	,,	,,	है [न	है न
,,	,,	१०	में भी	में भी इसका एक रूप
,,	,,	१५	विसठुल	विसस्ठुल
३०९	,,	३	ओस्टहौक	ओस्टहौफ
,,	,,	४	अनु प्रस्थापित	अनुप्रस्थापित
,,	,,	८	उट्ठेइ,	उट्ठइ,
,,	,,	१०	प्रचलित है	प्रचलित हैं

पा सं	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०९	४४०	१६	४, ५;- वेशी	४, ५;- [वेशी
,,	,,	१७	पाणिओ[	पाणिओ।
,,	,,	२६	णों वणस्य	णों व्वणस्य
,,	,,	२७	एसे	एसें॰
,,	,,	२८	२६, १४) है।	२६, १४) है
,,	,,	,,	वयस्य	वयस्व
,,	४४१	१६	स्मार	स्मार्
११	,,	५	तस्य स्तोहि	तस्त्तोहि
,	४४२	५	हन्खे	हस्खे
,,	४४१	१	वैसे— मस्तिप	वैसे— मस्तिप
१११	,	१४	४८६) है।	४८६) है।
,,	,,	२१	वफप्फइ	वणप्फइ
,,	४४४	२२	बुहस्पति	बुहस्पदि
११२	४४५	१२	स्तोष्मन्	स्तोष्मन्
,,	,	,,	स्तोष्मन	*स्तोष्मन्
,,	४४६	२	उष्म्मि	उर्ह्मि
,,	,,	४	स्पर्शो में— सि	स्पर्शो में— +सि
,,	,,	५	वोल्लसि	वोल्लु सि
	,,	११	मद्दा	मद्दा
११३	४४७	६	-मिंथि	मिन्थि
	,,	९	व्याहर्स	व्याहस्सं
	,,	१९	भाल्नान	भस्नान
,,		२५	मस्तुत	मस्तुत
	४४८	११	जे मद्दा से	वे मद्दा में
,,	,,	१६	स्तु पा	स्नुपा
,,			पहुसा	पहुसा
,,	४४९	४	कुस्लादि	कुत्पादि
,,	,,	६	पर मि	पर+मि
,,	,	८	दिया गया है	दी गयी है
,,	,,	१	मो—स्पः	मो—स्मः

पा सं	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११३	४४९	१३	स्मर है,	स्मर हैं,
,,	,,	१६	सुमरइ	सुमरए,
,,	,,	१९	मरइ	मरइ
,	,,	२१	मरिव	मरिव
,,	,,	,,	मसइ	मसइ
,,	,,	२४	विर्मरइ	विमरइ
११४	,,	२	स्म	स्म
,,	,,	,,	स्ह स्य	स्ह स्म
,	४५०	२	विषु	विस्नु
,,	,,	,	प के लिए	प म के लिए
,		९	तुष्णीम	तुष्णीम्
,	,,	,	तुष्णीक	तूष्णीक
,	,	१४	आदि है	आदि हैं
११५		५	नस्सइ	नस्सइ
,,	,,	६	नस्सामो	नस्सामो
	,	११	६१) है।	६१) हैं।
		,,	गौर	और
	,	१२	६४) है	६४) हैं
,,	,,	१३	विस्समीभस्	विस्समीभगु
,,	,	१५	२१);- सुमरामिदे	२१)- भाम में सुमराम्यिदे
,	४५१	१	मंसु	मंसु
,,			मंसु	मंसु
,,	,,	,,	स—स	स्स—स
,	,,	५	परिभस्न	परिस्सस्म
,,		१२	सें म्म,	से म्म,
,	,,	२६	गमादि	गमादि,
	४५२	६	पहले भी- सरल	पहले भी- स्स सरल
,,	,,	२५	स्म का स्सं	स्म का स्स
,,		११	स्म	स
,	४५३	७	सरस्सइ	सरस्सई
,,		११	कु त्ता	कू त्ता
११६	,	१	रम्मीर	गम्भीर
,,	,,	४	भप्सरस	भप्सरस

पा सं	पृ स	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१६	४५३	६	च्श	श्च
,,	,,	१२	मिलती। भिन्न	मिलती-कि भिन्न
३१७	४५४	१३	मूल	मूल
३१८	,,	८	छ्णत्त	छ्णन्त
,,	,,	६	#क्षणत्तम्	#क्षणन्तम्
,,	४५५	१२	अरे̆शै	अरे̆श
,,	,,	१४	कशै	कश
,,	,,	१७	तशै	तश
३१९	,,	१	ह्रशॅ	ख्श
,,	,,	६	णि·खत्ती-कद	णिक्खत्ती-कद
,,	,,	१०	ह्रशॅथ्र	ख्शथ्र
,,	,,	११	ह्रशीॅर	ख्शीर
,,	४५६	२	ह्रशिॅव्	ख्शिव्
,,	,,	४	खिवसि	खिवसि
,,	,,	६	पक्खिवइ	पक्खिवह
,,	,,	,,	पक्खिवेज्जा	पक्खिवे̆ज्जा
,,	,,	२४	ह्रशुॅद्र	ख्शुद्र
,,	,,	२५	ह्रशुस्त	ख्शुस्त
,,	,,	२६	५५६ रूप	५५६) रूप
,,	,,	३२	छोभ	-च्छोभ
,,	,,	३३	उच्छुमइ	उच्छुभइ
,,	,,	२६	सक्खइ	सिक्खइ
,,	४५७	२	सिक्खत्त	सिक्खन्त
,,	,,	५	असिह्र्शॅन्त	असिख्शन्त
३२०	,,	२	उशन्	उश्न्
,,	,,	३	उह्र्शॅन्	उख्शन्
,,	,,	७	(उवास० रूप	(उवास०) रूप
,,	,,	८	रूप वहुत कुमाउनी	रूप कुमा-उनी
,,	,,	६	दक्खिण	दच्छिण
,,	,,	१३	मह्र्शिॅ	मख्शि

पा.सं	पृ.सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२०	४५७	२३	उर्वाशि	उर्वाख्श्
,,	४५८	३	कप्परुख	कप्परुक्ख
,,	,,	८	गोविस्से	गेविस्से
,,	,,	,,	वौर्टेस	वौर्टएन्डेस
३२१	,,	६	ऐक्क्ष्वाक	ऐक्ष्वाक
,,	,,	१३	छुरमङ्कि–	छुरमङ्कि–
,,	,,	१६	अइउज्झइ	अइडज्झइ
,,	,,	२१	क्षारिय	छारिय
,,	,,	,,	क्षरित	क्षारित
,,	,,	२४	पेच्छइ	पे̆च्छइ
,,	,,	,,	पेक्खदि	पे̆क्खदि
३२३	४६०	२	स्वरबना	स्वर बना
,,	,,	४	ईस्	ईक्ष्
,,	,,	११	प्रेच्चेते	प्रेच्चेत
#३२४	४६१	२	दश·	दक्ष.
,,	,,	४	ईक्ष	इक्ष्
,,	,,	७	यके	यह्के
,,	,,	१६	पे̆शिक-य्यन्दि	पे̆शिक्य्य-दि
,,	४६२	५	–करिअदि	–करीअदि
,,	,,	१२	चहिए।	चाहिए:
,,	,,	१४	लश्करो	लश्करो
,,	,,	१५	) को	ह्को
,,	,,	१६	शब्दों से	शब्दों में
३२६	४६३	१	प्राचीन ज्ज	प्राचीन ज़्ज़
,,	,,	,,	यह ज्ज	यह ज़्ज़
,,	,,	६	अवक्षर	#अवक्षर
,,	,,	१३	पज्झरिश्च	पज्झरिअ
,,	,,	१४	झरुअ	झरअ
,,	,,	१७	क्षालक#	#क्षलक#
,,	,,	२०	झियायत्ति	झियायन्ति
,,	,,	२३	विज्झइ	विज्झाइ
,,	,,	२६	समिज्झइ	समिज्झाइ
,,	,,	३२	झामत्त	झामन्त

#नोट—§ ३२४ में जहाँ 'क' से पहले है वहाँ ह् पढिए।

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३५	४७६	६	जूव	जूव
"	"	११	आर्यभापा	आर्षभापा
"	"	२८	*याथात-थ्यीयम	*याथात-थीयम्
"	४७७	३	यावत्:	यावत्,
"	"	"	*यावन्कथा-	यावत्कथा-
"	"	८	उय्ह	उय्ह
३३६	"	३	इदो	इदों
"	"	"	यम	मम
"	"	४	सघस्स	सव्वस्स
"	"	८	टयेॅव	जेॅव्व
"	"	१६	अप० रूप-जिवँ	अप०-जिवँ
"	"	२३	अभाव	प्रभाव
"	४७८	१५	निकलने	निकालने
"	"	२४	जिसका	जिसपर
"	"	२७	येव	मेव
"	४७६	६	क्लान्त	क्लान्त
३३७	"	१	आदिवर्ण-उ में	आदिवर्ण-में
"	"	६	वक्त	*वक्त
"	"	,	बम्यते	*बम्यते
"	"	१०	बुत्थे	बुत्थ
"	"	१२	५६४)² -और	५६४)² से-निकला है-और
३३६	४८१	२	आकरिसु	अकरिंसु
३४०	"	६	(गउड०-और	(गउड०५०, और
"	"	"	संधि या-गउडवहो	सधि या-समास में-गउडवहो
"	"	"	रावणहो-समास	रावणहो में अधिकतर
"	"	१५	विद्युत	विद्युत्
"	"	२८	दुरूव	दुरूव

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४१	४८२	७	जद् अ०-माग० में	अ० माग० में जद् अत्थि
"	"	१०	समासों में	संधि मे
"	"	१२	तवट्ठोवउत्ता	तदट्ठोवउत्त
"	"	"	तदध्व-वसिताः,	तदध्य-वसिताः,
"	"	१३	तदर्थे-पियुक्ता	तदर्थो-पयुक्ताः
"	"	१६	तत्स्पर्श-त्वाय है	तत्स्पर्श-त्वाय हैं
"	"	२३	रूपों का	रूपों को
"	"	२६	दुरप्प	दुरप्प
"	"	"	एत्थें० (,	एत्थें०),
"	४८३	१०	कारिस्सामि	करिस्सामि
३४२	"	२	अत्तो	अन्तो
"	"	२०	अन्ते	अन्त
"	"	"	अतो,	अतो
३४३	४८४	१	मौलिक र्	मौलिक र् और
"	"	२	बनकर	बनना
"	"	३	-अन्तरिअ,	अन्तरिअ,
"	४८५	३	पुणर् एइ	पुणर् एइ
"	"	६	अत्तोमुह	अन्तोमुह
"	"	२२	किन्तु (हस्त-लिपि	किन्तु हस्त-लिपि
"	"	"	में हस्तलिपि	में (हस्तलिपि
"	"	"	(J)	J
"	"	२३	अपुणगम-णाअ	अपुणागम-णाअ
३४४	४८६	२०	अन्तोअ-न्तेपुरिया	अन्तोअन्ते-पुरिय
३४५	"	१	अ के समास	अ में समास
"	"	७	पतिभागो	पतीभागो
"	४८७	२	के पद्य	में पद्य
"	"	६	कुञ्जारो	कुञ्जरो

पा.स.	पृ.स.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५०	४९५	७	उद्वचूड.	उर्द्धवचूड.
,,	,,	८	णवतलिँ	णवतळिँ
,,	,,	११	अभिरुज्झ	अभिरुज्झ
,,	,,	,,	विहरिउसु	विहरिसु
,,	,,	१२	आरुतियार्णं	आरुसियार्णं
,,	,,	,,	व्यह्मपुर	व्यह्मपुर्
,,	,,	२८	वट्टीभिर्	वड्डीभिर्
३५१	,,	१	ग्र, उ	ग्र, अप० में उ
,,	४९६	१६	करित्वीनम्	*करित्वीनम्
,,	,,	२१	देउन्तु	देउलु
,,	,,	२२	शू न्य	शून्य
,,	,,	,,	ग्रन्थु	गन्थु
,,	,,	२४	समविसय=	समविसम=
,,	,,	,,	समविपय	समविपमम्,
,,	,,	२५	दशमुवण्ण	दशसुवण्ण
,,	,,	२६	है (मृच्छ०	हैं (मृच्छ०
३५२	,,	२	कर्त्ता कारक	कर्ताकारक
,,	,,	६	रुअडउ=	रुअडउँ=
,,	,,	,,	कुडुम्बउ	कुडुम्बउँ
,,	४९७	२	सार्कम्	साकम्
,,	,,	,,	वहा सज्ञा	वह सज्ञा
,,	,,	३	अक्खा णउँ	अक्खणउँ
३५३	,,	४	(§३४१	§३४१
,,	,,	५	अन्न, म्	अन्न-म्
,,	,,	६	अण्ण-म् अण्णेणं	अण्ण-म्-अण्णेण
,,	,,	१३	अण्ण म्-अण्णाण	अण्णा-म्-अण्णाण
,,	,,	१७	कर्त्ताकारक	कर्ताकारक
,,	,,	२४	ऍक्कउ	ऍक्कउँ
,,	४९८	१	एक्क-म् एक्के	ऍक्क-म् ऍक्के
,,	,,	८	चित्तामदित	चित्तानदित
,,	,,	११	गजादयो.	गजादय.
,,	,,	१२	आइएँहिं=	आइएहिं=
३५३	४९८	१७	कामघेणु	कामधेणु
,,	,,	२०	आणारियाण	अणारियाण
,,	,,	२४	एग्रो' ग्नि	एग्रो' ग्नि:
,,	,,	३१	दर्घाध्न्	दीर्घाध्वन्
,,	४९९	५	एमाहेण	एगाहेण
,,	,,	११	वदुगु	वहु
,,	,,	१३	वदुगु	वहु
,,	,,	१४	वद्वस्थिक	वह्वस्थिक
,,	,,	३४	सिप्लिफा-इड	सिंप्लिफाइड
३५४	५००	१५	अ०माग० में और	अ० माग० और जै० महा० में
३५५	५०३	३	श् और स में	श् और स् में
,,	,,	१५	आउ	आऊ
,,	,,	१८	मनसा	मणसा
,,	,,	१०	रूप भी है	रूप भी हैं
,,	५०४	५	तेउ वाउ	तेऊ वाऊ
३५६	५०५	६	-त्योदयाहित	त्योदयाहित
,,	,,	२२	वाओ	वओ
,,	,,	२६	समान है	समान हैं
३५७	,,	२	पुलिंग	पु लिंग
,,	,,	५	,,	,,
,,	,,	७	स्थानानि है।	स्थानानि हैं।
,,	५०६	४	कर्प	कर्म
,,	,,	१२	पुलिंग	पु लिंग
,,	,,	१३	एयान्ति	एयावन्ति
,,	,,	१४	कर्प समार-म्भा	कर्मसमार-म्भा
,,	,,	१७	जनगा:	जणगा
,,	,,	२३	ध्वनि-मा-पन	ध्वनि-मापन्
,,	,,	२६	हो तो अ-न्यथा	हो तो हो अन्यथा

पा.स.	पृ.स.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६१	५१४	६	विनट्ठाए	किट्ठाए
,,	५१५	६	पुलिंग	पु लिंग
३६३	,,	१	,,	,,
,,	५१५	५	कर्म० पुत्ते,	कर्म० पुत्त,
,,	,,	७	पुत्ते हैं।	पुत्तें हैं।
,,	,,	८	पद्य में - अन्यथा;	पद्य में,- अन्यथा
,,	,,	६	पुत्ताअ,	पुत्ताअ
,,	,,	१०	[पुत्ततो],	[पुत्तत्तो],
,,	,,	११	पुत्ता,	पुत्ता, जै०-शौर०
,,	,,	१४	अप०- [पुत्तसु],	अप० पुत्तस्सु [पुत्तसु],
,,	५१६	१८	फलाइँ	फलाइ
,,	५१७	१	उपरि-लिखित	उपरि लिखित
,,	,,	६	एवमादि-केहि	एवमादी-केहि
,,	,,	,,	विजयबुद्ध-वर्मन्	विजयबुद्ध-वर्मन्०
,,	,,	१०	,,	,
३६४	,,	१२	कत्ता	कन्ता
,,	,,	१३	दट्ठा	दट्ठा
,,	,,	२०	गामा=	गाम=
,,	,,	२१	ग्रामा',	ग्रामः,
,,	५१८	१६	पओगेण	प्रयोगेण
,,	,,	३४	–त्ता	-त्त=
,,	,,	३४	-त्वा	–त्व
,,	५१६	४	चर्मशिरा-त्वाय	चर्मसिरा-त्वाय
३६५	,,	३४	#-अत	#-आतः
,,	,,	३५	–आआ	-आओ
,,	५२०	४	बताया है।	बताया है,
,,	,,	१६	देहत्वनात्	#देहत्वनात्
,,	,,	१८	वला	बला
३६४	५२०	२५	णायपुत्त	नायपुत्ता
,,	,,	३२	कलणा	कालणा
,,	५२१	७	त्रिया र्वी	त्रिया, वीं
,,	,,	८	रवाहि भी आया है	×
,,	,,	११	धीराहि=	रवाहि, धीराहि=
,,	,,	११	दन्तोद्यो-तात्,	दन्तोद्द्यो-तात्,
,,	,,	१६	–हिंण्तो	-हिंतो
,,	,,	२१	छेप्पाहिंतो	छेॅप्पाहिंतो
,,	,,	२६	जलाहितौ	जलाहिंतो
,,	,,	२७	पादहिंतो	पादाहिंतो
,,	,,	२८	स्तवभरात्	स्तनभरात्
,,	,,	३१	मिलते हैं।	मिलते हैं:
,,	५२२	३	नही	न ही
,,	,,	८	हित्तो	हिन्तो
,,	,,	६	पुत्ततो	[पुत्तत्तो]
३६६	५२३	३	कनलस्य	कनकस्य
,,	,,	,,	कल्वह	कव्वह
,,	,,	७	कृदत्तहोँ	कृदन्तहोँ
,,	,,	,,	कृतात्तस्य,	कृतान्तस्य;
,,	,,	८	कत्तहोँ	कन्तहोँ
,,	,,	,,	कत्तस्य,	कान्तस्य,
,,	,,	६	णासत्त-अहोँ	णासन्त-अहोँ
,,	,,	११	कत्तहोँ,	कन्तहोँ,
,,	,,	,,	#कत्तस्यः	#कन्तस्यः
,,	,,	१६	कत्तस्सु	कन्तस्सु
,,	,,	,,	कात्तस्य	कान्तस्य
३६६अ	,,	७	–उत्तम्मि	-उरम्मि
,,	,,	६	हत्तव्वम्मि	हन्तव्वम्मि
,,	,,	,,	हत्तव्ये	हन्तव्ये
,,	,,	१२	-पुखरे	–पुरवरे
,,	,,	१४	कए'	कए

पा सं	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६६अ	५२१	१५	कप्प	'कप्प
,,	,,	,,	कुते'— वापि	कुते 'कुते वापि
,,	५२४	१	विदुत्वे	विदुत्त्वे
,,	,,	६	मस्तक	मस्तके
,,	,,	८	बहुत कम	बहुत कम
,	,,	१२	प्रसाद	प्रासाद
,,	,,	२७	इ अशुद्ध	इ के अशुद्ध
,,	,,	२५	शून्यगारे	शून्यागारे
,	५२५	७	इमांसि	इमंसि
,	,,	१८	चलचे	चलन्ते
,,	,,	२६	वामे सचे	वामे सन्ते
,,	,,	२७	सचे	सन्ते
	,,	१	सिदे	सन्दे
	,	१४	श्मशाण	श्मशान
,,		१५	मरमत्त	मरमन्ते
	५२६	६	—सवि	सर्वा—
,,	,,	,,	अस्मि- चरओ	अस्मिन्त- रओ
,,	,,	६	-पट्ठमहे—।	पट्ठमट्ठे-,
	,	८	-बहीए	बहिए
,,		१२	-प्पमाणाहि	-प्पमाणाहिं
	,,	१६	इवहि	इवहिँ
,,	,,	१७	पठमहि समपाआहेँ	पढमहिँ समपाअहिँ
		१८	चित्त	चित्ते
,,		२१	बतायी है	बताया है
,,	,	२५	अधि करण- कारक	अधिकरण कारक
,,		२८	एदे,	प्रदे,
	,,	१९	अपम्पाम्मि सेविठे'	अपम्पम्मि सेविसे
,,	,		पप्पे	'पप्पे
,,	,,	१५	सेदुसीम चम्मि	सेदुसीमन्त- म्मि
१६६अ	५२६	१५	सेदुसीमचे	सेदुसीमन्ते
,,	५२७	७	गच्छचम्मि	गच्छन्तम्मि
,,	,,	११	पिएँ	पिएँ
,,	,,	१०	पिएँ	प्रिये
१६६-अ	५२८	१४	आदि आदि)-	आदि-आदि) है,
,,	,,	१९	मय	मम
,	,,	२५	उभ्योंं	उभ्ये
१६७	५२९	२	विमभ्याः	विसभ्याः
,,	,,	२	भस्यम का हो	भस्यम काहो
,,	,,	२४	प्रायथाओ	मानथाओ
,	५३	२१	दसवेयालिय-	दसवेयालिय
,,	,	२३	कोलाउ- ण्णा हैं	कोलउण्णाहैं
	५३१	१४	-मण्डवानि	-मण्डवानि
१६७-अ	५३२	८	समवपाए	समवमाए—
	,,	,	वमीपगे	वमीमगी
	,,	११	पठाद् पान्	पठाद् पान
	,,	२४	कलसेभ	कलसे भ
,	,,	१	पु लिंग का	पु लिंग के
,	५३३	१२	गम्म नीरम- मन्	गम्म-नीरम- मन्
,	,,	१४	विपक्षन्	विस्रमन्
,,		१५	कम पा	कमन्पा
१६८	,,	६	-सयावेर	सद्मावेर्
,		७	कामनधि समत्	कामनशिम
,,		८	तवेरिवक्षा	तवेरिक्षा-
		११	विस्कैर	विस्कैर्
,,	५३४	१	सचेहिं	सन्तेहिं
,,	,,	२	भकचेहिं	भकन्तेहिं
		१५	विम्रवी पाम्पा	विप्रवीपाम्पा
,,		१६	उजाणम मेहिं,	उजाणमें- हिं,

पा.स.	पृ.स.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६८	५३४	१६	णिवसत्तेहि	णिवसन्तेहि
”	”	१७	निवसद्भि.	निवसद्भिः
३६९	”	७	वापुढवि	वा पुढवि-
”	”	”	काइएहिंतौ	काइएहिंतो
”	”	१४	गोदासे- हिंतो,	गोदासेहिंतो
”	”	”	छुलुएहिंतो	छुलुएहिंतो
”	५३५	२	हैं जिसके	है जिसके
”	”	५-६	निग्गच्छत्ति	निग्गच्छन्ति
”	”	१४	-हुं और	-हु और
”	”	१४	-भ्याम्	भ्याम् से
”	”	१६	सतो	सु तो
३७०	”	६	५५,१३)=	५५,१३=
”	”	८	प्रेमणाम्	प्रेम्णाम्
”	५३६	१	अह	अहॅं
”	”	७	महब्भउहँ	महब्भडहँ
३७१	”	१९	कम्येशु	कम्मेशु
”	”	२०	तथा सबध- कारक	तथा—सबध कारक
”	”	२१	और अधि- करण	और-अधि- करण
”	५३७	४	डुगरिहि	डुगरिहिँ
३७२	”	५	कीजिए)।	कीजिए),
३७४	५३८	६	मालाएँ	मालाएॅ
”	”	२६	जैसे पट्टिका	पट्टिका
”	”	२८	सीमाम्	सीमाम्- (६, २८)
३७५	५३९	२४	है। कुछ	कुछ
”	”	३०	निकली है	निकला है
”	”	३३	णिद्दए	णिद्दएँ
”	”	३४	मञ्जिट्ठएँ	मञ्जिट्ठएँ
”	५४०	१२	पडो लिकोदा	पदोलिकादो
”	”	१४	१३) है।	१३)।
”	”	२३	-स्या समान	-स्या. के समान

पा.स.	पृ.स.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७५	५४०	२९	जम्मिरहे,	जम्मिरहेँ,
”	”	३१	तिसहेँ	तिसहेँ=
”	”	३१-३२	मूणालिअहेँ	मुणालिअहेँ
”	५४१	६	पढोलिआए	पदोलिआए
”	”	१५	गाम में	काम में
”	”	२५	सउत्तले	सउन्तले
”	”	”	अणुस्ये	अणुसूए
”	५४२	८	अय्यो	अम्मो
३७६	”	३	=देवदाओ, शौर० में	=शौर० में देवदाओ
”	”	६	चतुर्विधाः	चतुर्विधा
”	”	”	है। वर्गणाः	वर्गणाः है।
”	”	१०	घण्णउ	घण्णाउ
”	”	१२	स्नीका	स्त्रीकाः
”	”	१६	अप्पत्तणि-	अप्पत्तणि
”	”	१७	दिशा	दिशः
”	”	२१	सरत्तपवहा	सरन्तपवहा
”	”	”	उढा	ऊढाः
”	५४३	१	नवाहि	नावाहि
”	”	२	जत्तिनो	जत्ति नो
”	”	१०	कामु आ- विअ	कामुआ विअ
”	”	१६	इन्दमूइपर्यों	इन्दभूइ- पमों-
”	”	१८	-साहष्य	साहस्य
”	५४४	१	अणत्ताहिं	अणन्ताहिं
”	”	”	विछत्ताहिं	विइक्कन्ताहिं
”	”	२	व्यतिक्रा- त्तासु	व्यतिक्रा- न्तासु
”	”	७	अन्तोसाल-	अन्तोसाला-
”	”	१४	-च्छाआसु =	-च्छाआसु
”	”	१६	बनानेवाला	बनानेवाले
३७७	५४५	६	अग्गिहितो	अग्गीहिंतो
”	”	१७	अग्गीहिँ,	अग्गीहिँ,
”	”	२०	अग्गीओ],	अग्गीओ], अप०

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८३	५५७	२	पहले ह्रस्व	पहले -ई, -ऊ ह्रस्व
"	"	५	गामणिणी	गामणिणो
"	"	६	खलपु	खलपु
"	"	८	खलवउ,	खळवउ,
"	"	"	खलवओ,	खळवओ,
"	"	९	खलवुणो	खळवुणो
"	"	"	खलवू	खळवू
"	"	१०	ग्रामण्यः है	ग्रामण्यः हैं
"	"	११	अशोक श्री	अशोकश्रीः
"	"	१५	अग्गाणी	अग्गणी
३८४	"	५	इन स्त्रीलिंग	उन स्त्रीलिंग
३८५	"	३	णइअ,	णईअ,
"	५५८	७	महयाः	मह्याः
"	"	२७	एक । - बन्दीश्च	एक, - बन्दीश्च
"	"	"	ललि-अगुलीक	ललि-अगुलीअ
"	"	२८	ललिवा गुल्या	ललिता-गुल्या
"	"	२९	राजश्रिआ	राजश्रिया
"	"	३३	गिरिणई=	गिरिणईअ=
"	"	"	गिरिनयाः	गिरिनद्या
"	५५९	८	भणतीए	भणतीए
"	"	१५	वाराणस्या	वाराणस्या
"	"	२०	-इएँ	-इएँ
"	"	२३	गणन्तिएँ	गणन्तिएँ
३८६	"	१३	कोसिओ	कोसीओ
"	५६०	३	गगा-सिन्धूओ	गगा-सिन्धूओ
"	"	८	-हेँ	-हेँ
"	५६१	८	करिअरोह	करिअरोरु
"	"	"	करिकरोह	करिकरोरु
३८७	"	१०	गीदी-ओ	गो०गी-दीओ
३८७	५६१	१५	कुलवहूओ	कुलवहूओ
"	"	१८	सहनशीलः	सहनशीला
"	"	"	वल्लीओ	वल्लीओ
"	५६२	१०	है । अन्य शेष	है । शेष
"	"	१५	वायणीहिं	वामणीहि
"	"	२१	सखीनामू	सखीनाम्
"	"	२५	वधूनाम्	वधूनाम्
"	"	३३	स्थलीषु	स्थालीषु
३८८	५६३	२	आपिट्टयाम	आपिट्ट्याम्
"	"	१०	णिउ-बुद्धिणा	णिउण-बुद्धिणा
३८९	"	९	कीरूपा-वली	की स्त्रीलिंग कीरूपावली
"	"	११	बना	बने
३९०	५६४	२८	दाता	दादा
"	"	३१	उवदसे-त्तारो	उवदसे॑-त्तारो
"	"	३५	भट्टाल	भत्ताल
"	५६५	५	भत्तणो	भत्तुणो
"	"	२०	पन्नत्तारौ	पन्नत्तारो
"	"	२१	*प्रज्ञातार	*प्रज्ञतार.
"	"	३४	दायोरेहिं	दायारेहि
नोट	५६६	४	भवत्त	भवन्त
"	"	६	नाया-वम्कहा	नाया-धम्मकहा
३९१	"	८	पिउरस्स,	पियरस्स,
"	"	२६	जमादा	जामादा
"	५६७	१२	जामादुना	जामादुणा
"	"	२२	जामादु-नणो	जामा-दुणो
"	५६८	२	अम्मा-पियरे	अम्मा-पियरो
३९२	"	१३	जो	तो
"	"	१४	जिसकी	जिसके
"	५७०	२१	स्वद	स्वसृ

पा सं.	पृ.सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९१	५७	१	स्यामसी	स्यामसी के
,,	,,	७	सूयगडंग सुत्त	सूयगडंग सुत्त
,,	५७१	८	गावी	गावी
,,	,,	१२	गाढम्मो	गढम्मो
१९४	,,	२	णिमित्त	निमम्मित
१९५	,,	७	मारु	मरु
,,	५७२	१	मारुत्	मरुत्
,,	,,	१	पर्मो	घर्मं
,,	,	२	विस्सुए	विस्सूए
१९६	,,	५	बानम्	बानन्
,,	५७३	१४	महया	महया
,,	,,	,,	महया	महया
,,	,,	१६	गुणवती	गुणवतो
,,	५७४	१२	मूलमन्तो	मूलमन्तो
,,	,,	,,	कन्दमन्तो	कन्दमन्तो
,,	,,	,,	खन्धमन्तो	खन्धमन्तो
,,	,,	,,	तयामन्तो	तयामन्तो
,,	,,	,,	सालमन्तो	सालमन्तो
,,	,	,,	पवाल मन्तो	पवाल- मन्तो
,,	,,	१५	मअवन्तो	मअवन्तो
	,,	१६	किदवन्तो	किदवन्तो (बीच ४, २६)
		,	किदवन्ता	किदवन्ता
	५७५	४	परिग्गाह वन्तो	परिग्गाह वन्तो
,,	,	५	एव्यवन्धि	एव्यवन्धि
,		१७	भाउसन्तो	भाउसन्त
		१८	भाउसन्तो	भाउसन्ते
		२६	१४९ के	(१४९) के
१९७	५७६	१	अणुसा सन्तो	अणुसा सन्तो
,,	,,	२	विकि- वन्तो	विकि- वन्तो

पा सं	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९७	५७६	१	कुलसि मवन्ते	कुलसि- मवन्ते
,,	,,	१८	मन्तअन्ते	मन्तभन्ते
,,	,,	२१	परिम्म मन्तो	परिम्म- मन्तो
,,	,,	२३	चमान्तो	चमान्तो
,,	,,	२५	मयन्त	मयन्त
,,	,,	२६	वीसन्त	वीसन्त
,,	,,	२७	पणमन्त	पणमन्त
,,	,,	२८	जयन्तचे	जयन्त
,,	,,	२९	क्रोस्म	का रूप
,,	,,	११	मरन्त	मरन्त
,,	,,	१२	पिवन्त	पिवन्त
,	,,	१३	अणु- पिवन्त	अणु- पिवन्त
,,		,,	अवलम्बि- वन्त	अवलम्बि वन्त
,,	,	,	पभासन्त	पभासन्त
,,	,,	१४	प्रकाश- वम्	प्रकाश न्तम्
,,	,,	१५	समा रम्भन्त	समा रम्भन्त
,,	,	,,	छिन्नन्त	छिन्नन्त
,	,,	,,	क्षीयन्तम्	क्षीयन्तम्
,,	,	,	गिण्हन्तम्	गिण्हन्त
,,	,,	१६	गृह्णन्तम्	गृह्णन्तम्
,,	५७७	२	वमन्त	वमन्त
,	,	,,	करन्त	करन्त
,		२	वसन्त	वसन्त
		१	उवहन्तम्	उवहन्तम्
,		५	मारन्त	मारन्त
	,		मारयन्तम्	मारयन्तम्
	,,	,,	जीवन्तम्	जीवन्तम्
,,		६	मस्तिन्त	मस्तिन्त
,,	,	,	भर्हन्त	भर्हन्त
,	,,	११	अणु- कम्पन्तेयं	अणु- कम्पन्तेयं

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९७	५७७	१२	जम्पत्तेण	जम्पन्तेण
,,	,,	१३	कुणत्तेण	कुणन्तेण
,,	,,	१६	करेॅत्तेण	करेॅन्तेण
,,	,,	१९	अहिण्ड-त्तेण	आहिण्ड-न्तेण
,,	,,	२०	पवसत्तेण	पवसन्तेण
,,	,,	२१	रोअन्ते	रोअन्तें
,,	,,	२२	-हिम-वत्ताओ	-हिम-वन्ताओ
,,	,,	२३	आरम्भ-त्तस्स	आरम्भ-न्तस्स
,,	,,	२४	रमत्तस्स	रमन्तस्स
,,	,,	२५	वोॅच्छि-न्दत्तस्स	वोॅच्छि-न्दन्तस्स
,,	,,	२७	भगवत्तस्स	भगवन्तस्स
,,	,,	२८	वसत्तस्स	वसन्तस्स
,,	,,	,,	चयत्तस्स	चयन्तस्स
,,	,,	२९	-हिमवत्तस्स	-हिमवन्तस्स
,,	,,	,,	कहत्तस्स	कहन्तस्स
,,	,,	३१	सारक्ख-त्तस्स	सारक्ख-न्तस्स
,,	,,	३२	कारेॅत्तस्स	करेॅन्तस्स
,,	,,	३३	कुणत्तस्स	कुणन्तस्स
,,	,,	३४	चिन्त-न्तस्स	चिन्तअ-न्तस्स
,,	५७८	१	हणुमतस्स	हणुमन्तस्स
,,	,,	२	वञ्त्रदशश	वञ्ज दशश
,,	,,	३	अलिह त्तशश	अलिह-न्तशश
,,	,,	,,	णच्चत्तस्स	णच्चन्तस्स
,,	,,	,,	नृत्यत	नृत्यत
,,	,,	४	मेॅल्लत्तहोॅ	मेॅल्लन्तहोॅ
,,	,,	,	देॅत्तहोॅ	देॅन्तहोॅ
,,	,,	,,	जुज्झत्तहो	जुज्झन्तहोॅ
,,	,,	५	करत्तहो	करन्तहोॅ
,,	,,	७	रूअत्तम्मि	रूअन्तम्मि
,,	,,	८	हणुमत्तम्मि	हणुमन्तम्मि

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९७	५७८	९	जलत्ते	जलन्ते
,,	,,	१०	सत्ते	सन्ते
,,	,,	,,	हिमवत्ते	हिमवन्ते
,,	,,	११	अरहत्तसि	अरहन्तसि
,,	,,	१२	अभिनि-क्खमत्तम्मि	अभिनि-क्खमन्तम्मि
,,	,,	१३	महत्ते	महन्ते
,,	,,	,,	महतिँ	महति
,,	,,	१४	पवसत्तेँ	पवसन्तेँ
,,	,,	१६	चृम्भमाण	जृम्भमाण
,,	,,	२०	पडत्ता	पडन्ता
,,	,,	,,	निवडत्ता	णिवडन्ता
,,	,,	,,	पन्तः	पतन्त
,,	,,	२१	भिन्दत्ता	भिन्दन्ता
,,	,,	,,	जाणत्ता	जाणन्ता
,,	,,	२२	सीलमत्ता	सीलमन्ता
,,	,,	२३	जम्पत्ता	जम्पन्ता
,,	,,	,,	वायता	वायन्ता
,,	,,	,,	गायत्ता	गायन्ता
,,	,,	२४	रक्खत्ता	रक्खन्ता
,,	,,	२६	पूरयत्ता	पूरयन्ता
,,	,,	,,	उज्जोॅएन्ता	उज्जोएॅन्ता
,,	,,	,,	करेन्ता	करेॅन्ता
,,	,,	२७	उद्योतन्त	उद्द्योतयन्तः
,,	५७९	२	फुक्किज्जन्ता	फुक्किज्जन्त
,,	,,	४	फासअन्ताइ	फासमन्ताइ
,,	,,	११	विणितेहिँ	विणिन्तेहिँ
,,	,,	१२	ओवयन्तेहि	ओवयन्तेहि
,,	,,	१६	सद्धि	सद्धि
,,	,,	२२	गाअत्तेहि	गाअन्तेहि
,,	,,	२३	पविशत्तेहि	पविशन्तेहि
,,	,,	२४	वलद्धि	वलद्धि
,,	,,	२५	एॅत्ताण	एॅन्ताण
,,	,,	,,	चित्तत्ताण	चिन्तन्ताण
,,	,,	२६	अरहत्ताण	अरहन्ताण
,,	,,	३४	णयन्ताण	णमन्ताण

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१४	६०८	२०	अप्पतरो	अप्पयरो
,,	,,	२४	ओवाणाहि	ओवअणाहि
४१५	,,	३	अहये	अहय
,,	६०९	१८	अम्हेसु ती	अम्हेसु तो
,,	,,	,,	महत्तो	ममत्तो
४१६	,,	७	ममहिंतो,	ममाहिंतो,
,,	,,	७	मसाओ	महाओ
४१७	६११	४	दंइ	हंइं
,,	,,	२०	परिसत्ति	परिवसन्ति
,,	,,	२६	सत्ति	सन्ति
४१८	६१२	११	ममॅ	ममा
,,	६१३	१६	मद्	यद्
४२०	६१६	२०	उय्येहिं],	उय्हेहिं],
४२१	६१८	१७	करेॅत्तेण	करेॅन्तेण
,,	,,	२३	तत्तोत्वत्त·	तत्तो=त्वत्त
,,	,,	२८	तुम्द	तुम्ह
,,	६२०	२	तुह्य	तुय्ह
४२२	६२२	२	तुम्हहॅ	तुम्हासु
,,	,,	५	ह्लह	ह्ह
४२३	६२३	२	ये	मे
,,	६२४	२९	सेंद्	से॑द्
,,	,,	,,	स +	से +
,,	,,	३१	यूयम्	यूयेंम्
,,	,,	,,	इंन्द्रश्॑	इंन्द्रश्
,,	,,	,,	धीमिरें	धीमिर्
,,	,,	३२	अर्वंता	अेर्वंता
,,	,,	,,	सेंद्	से॑द्
,,	,,	,,	य	यें
,,	,,	,,	सेंज्ञ	सेॅज्ञ
४२७	६३३	४	इद	इइ
,,	,,	,,	के य	के य्
४२८	,,	१५	कम्शि	कश्शि
,,	६३५	१३	कवोप्ण	कवोष्ण
४३२	६४२	२२	एल	एष
४३३	६४३	२४	सव्वेहिं	सव्वेसिं
,,	,,	२६	अण्णाहिँ	अण्णहिँ
४३४	६४४	१०	कित्तिल	केॅत्तुल

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३४	६४४	१३	केवड्डु	केवड्डु
,,	,,	१५	जेवड्डु	जेवड्डु
,,	,,	१५	तेवड्डु	तेवड्डु
४३६	६४५	१४	द्विया	द्वित्रा
,,	,,	१६	दोकत्ति-याओ	दोकत्ति-याओ दो-रोहिणीओ
,,	६४६	५	द्वागुलक	द्व्यगुलक
,,	,,	८	द्विजिद्द	द्विजिह्व
,,	,,	१९	आइ	दुआइ
,,	६४७	१७	द्वाभ्यामू	द्वाभ्याम्
४३७	६४८	६	द्वे	द्वे
४३८	६४९	१६	पाणागाइ	पाणगाइं
,,	,,	१७	वत्थाहिं	वत्थाइं
,,	,,	१९	(महिलाओं)	(महिलाओ)
,,	६५०	४	’प्य	’प्य्
,,	६५१	१०	तेत्तीसा	तेत्तीस
,,	,,	१३	त्रयस्त्रि-शका	त्रयस्त्रि-शका
४३९	,,	१५	पक्कलबइ-इल्ला	पक्कलबइ-इल्ला
,,	६५२	१९	—कोटीभि	—कोटीभि
,,	,,	२५	चतुण्इं	चतुण्ह
,,	६५३	४	चऊसु	×
,,	,,	६	चउरग-गुलिं	चउर-गुलि
,,	,,	९	चउरम्मि-सीइ	चउरा-सीइं
४४१	६५५	१०	छक्खर	छडक्खर
,,	,,	१२	छल्	छळ्
४४२	६५६	३३	अठाइस	अठाइस
,,	६५७	२६	चारिदह	चारिदहा
४४३	६५८	६	एक्कादह	एक्कदह
४४४	६५९	४	अउणवी-सइ	अउणवी-सई
४४५	६६०	८	वीसइ	वीसइ
,,	,,	१२	चउवीसइ	चउवीसइ

पा सं	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५७	६७७	३४	जुज्यते	युज्यते
,,	६७८	२	कज्जदे	किज्जदे
,,	,,	६	कामयामेह	कामयामहे
४५८	,,	३	प्रभावतो	प्रभवतो
,,	,,	६	डुएइरे	हुएइरे
४५९	६७९	२५	चिट्टेँज्ज	चिट्ठेँज्ज
,,	,,	,,	वा=	वा पलघेँज्ज वा=
,,	,,	२६	तिष्टेद्	तिष्ठेद्
,,	,,	३४	*कुर्यात्	*कुर्वर्यात्,
,,	६८०	५	मुज्जेँज्जा	भुञ्जेँज्जा
४६०	,,	३	वन्धीया	बध्नीया
,,	,,	४	मन्थीया	मथ्नीया
,,	,	६	सच्चेँज्जा	मुच्चेँज्जा
,,	,,	८	लघेँज्जा	लघेँज्ज
,,	,,	११	लेहअ	लहेअ
टिप्प०	६८१	५	अ—सौ	असौ
४६१	६८२	५	भणेँज्जासु	भणेँज्जसु
,,	,,	१३	स्थपय	स्थापय
,,	,,	१७	देँज्जहि	देँज्जहि
,,	,,	१९	एँ	एँ
,,	,,	,,	,,	,,
,,	,,	२१	करेँ	करेँ
,,	,,	२४	वस्तुत	वस्तुत
,,	,,	३१	अश्वास्य	आश्वासय
,,	६८३	१	हसेइज्जइ	हसेइज्जहि
४६२	,,	१२	विणएँज्ज	विणएँज्ज
,,	,,	२६	अच्छि पि	अच्छि पि
,,	,,	,,	अक्ष्य् पि	अक्ष्यअपि
,,	,,	२७	प्रमार्जयेत्	प्रमार्जयेन्
,,	,,	२८	परिक्खएे	परिक्खए
४६३	६८४	१०	दोँएज्जह	ढोएँज्जह
,,	,,	,,	ढौकध्वम्	ढौकेध्वम्
,,	,,	१३	रक्खेज्जह	रक्खेँज्जहु
,,	,,	१६	एकवचन	एक्वचन
,,	,,	१७	मन्ते	मन्ने

पा. सं	पृ. सं	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६३	६८४	१९	सममिलोक-	समभिलोक-
४६४	६८५	५	पाकुज्जा	पाउकुज्जा
,,	,,	८	बूया	ब्रूया
४६५	,,	१७	नेच्छइ	नेँच्छइ
,,	६८६	२८	*चकित	*चकति
,,	६८७	५	लब्भा	लब्भ
४६६	,,	११	लोभोपपुक्ता:	लोभोपयुक्ताः
,,	,,	१२	कियत्तो	कियन्तो
,,	६८८	१५	पहेँज्जा	पहेँज्ज
,,	,,	,,	संभवत:	सभवत:
,,	६८९	१	होहीअ	होहीअ
,,	,,	६	द्वेज्ञ	छेज्ञ
४६७	,,	३	अ० माग०	१अ० माग०
,,	,,	५-६	वट्टेम्ह वट्टह,	वट्टेँम्ह। २ वट्टह,
,,	,,	८	वट्टन्तु,	३ वट्टन्तु
,,	,,	१५	स्व	स्व
,,	६९०	११	भुज्जु	भुञ्जसु
,,	,,	२४	दावअ	दावअ)
,,	,,	२८	मुणिज्सु	मुणिज्जसु
,,	,,	३२	पडिवज्जस	पडिवज्जस्स
४६८	६९१	१६	चिठ्ठा	चिठ्ठ
,,	,,	२२	पेँस्क	पेँश्क
,,	६९२	२२	*मोधि	*भोधि
४६९	,,	५	विगयतु	विनयतु
,,	,,	९	कथेदु	कधेदु
४७०	६९३	४	समानयाम	सम्मानयाम
,,	,,	५	पर्युंपासाम है	पर्युंपासामहै
,,	,,	६	स्वाद्याम	*स्वाद्यामहै
,,	,,	,,	स्वाधाम है	स्वाद्यामहै
,,	,,	७	युद्धयाम है	युद्धयामहै
,,	,,	१२	निज्झामेमो	निज्झामेमो
,,	,,	२१	अब्भथेँम्ह	अब्भत्थेँम्ह
,,	६९४	१	उपसपमि	उपसर्पामि

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८८	७२०	१७	वञ्जन्दरश	वञ्जन्दश्श
,,	,,	२०	वयंत्ति	वयन्ति
टिप्पणी	,,	१०	वज्जेव	वञ्जेध
,,	,,	,,	वज्जए	वञ्जए
४८९	७२१	३२	विधन्ति	विन्धन्ति
,,	७२२	२	ओइन्धेइ	ओइन्धइ
,,	,,	५	#उद्दिधाति	#उद्दिधंति
४९०	,,	४	कथेत्ति	कहेंन्ति
,,	,,	१०	कथेदि	कथेदि
,,	,,	२२	वेढेहि	वेढेइ
,,	,,	२३	वेरमो	वरेमो
,,	,,	२८	सोमयन्ता	सोभयन्ता
,,	७२३	६	पआसेन्ति	पआसेंन्ति
४९१	७२४	६	विइत्तत्ता	विइन्तन्ता
,,	,,	१०	विच्चित्त-यन्तः	विचिन्त-यन्त
,,	,,	१६	पप्फोडती	पप्फोडन्ती
४९२	,,	५	अवम्	आघम्
,,	७२५	१६	आइक्खइ	आइक्खह
४९३	,,	६	परियति	परियन्ति
,,	,,	१६	परिअन्ति	#परिन्ति
,,	७२६	३	इमः	इमं
,,	,,	८	विणेंन्ति	विणेंन्ति
,,	,,	१३	अतीति	#अतीति
४९४	७२७	२	प्रस्नौति	प्रस्नौति
,,	,,	६	अभित्थुण-माण	अभित्थुण-माणा
,,	,,	,,	अभिसथुण-माण	अभिसथु-णमाणा
४९५	७२८	८	स्यामणि	स्यामाणि
,,	,,	१३	रोयमाणा	रोयमाण
,,	,,	२८	लोदयाण–	लोद्माण–
,,	,,	२९	लउदि	लुअदि
४९८	७३०	२१	सत्ति	सन्ति
,,	,,	२३	हस्तौ	हस्तौ
,,	,,	२९	सत्ति	सन्ति

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९८	७३०	२९	सत्ति	सन्ति
,,	,,	३२	शत्ति	शन्ति
,,	७३१	१	अस्मि	अम्मि
,,	,,	१०	सत्ति	सन्ति
,,	,,	,,	शत्ति	शन्ति
४९९	,,	४	अध्यासित	अध्यासीत
,,	७३२	६	साहेन्ति	साहेंन्ती
,,	,,	२०	समोहणत्ति	समोहणन्ति
,,	,,	२१	सघ्नत्ति	सघ्नन्ति
५००	७३४	१	सम्भेहि	खम्भेहि
,,	,,	८	जहाइ	जहाइ
५०१	,,	१०	ए में	ऐ में
५०२	७३५	१७	कर्मवाच्य—२३३),	×
,,	,,	२५	अविचणम्ह	अवच्चिणम्ह
,,	,,	३०	अवचिणेदु	अवच्चिणेदु
५०३	७३७	१४	शुणन्त	शुणन्तु
,,	,,	१५	सुणहु	सुणह
,,	,,	२०	सुणतु	सुणन्तु
५०४	७३८	५	प्रापुणति	#प्रापुणति
,,	,,	१८	पावत्ति	पावन्ति
,,	,,	७	सपाउणत्ति	सपाउणन्ति
,,	,,	१८	पावत्ति	पावन्ति
,,	,,	१९	पावेंत्ति	पावेंन्ति
५०६	७३९	३	छिन्तइ	छिन्दइ
,,	,,	१३	आच्छि-न्देज्जा	आच्छि-न्देंज्ज
,,	७४०	६	अज्ञिअ	भञ्जिअ
,,	,,	१२	भिनन्ति	भिनत्ति
५०७	,,	१५	भुञ्जत्ति	भुञ्जन्ति
,,	,,	१६	भुञ्जणह्य	भुञ्जणहँ
,,	७४१	२	पउञ्जइउ	पउञ्जइउ
५०८	७४२	१	कुव्वन्ती	कुव्वन्ति
,,	,,	,,	कुर्वन्ती	कुर्वन्ति
,,	,,	१४	कृणीति	कृणोति
५१०	७४४	३	ञ	ञ्
,,	७४५	६	याणाचि	याणाशि

पा.स	पृ.सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५११	७४७	६	हुपर	हुप्पर
,,	,,	,,	सुणेवि	सुणोवि
,,	,,	११	तुम्ह	तुम्ह
५१३	,,	८	वन्धिन्तु	वन्धितु
,,	,,	१४	वन्धिउ	वन्धिउ–
,,	,	२	अवस्पादि	अवस्पादि
,,	७४९	२	-बन्धेवप	-बन्धेप
५१५	७५	१८	महानई-	महाण्णई-
५१६	७५२	४	करेसि	करेसी
,	७५३	४	*रिकय	*रिकम्य
टिप्पणी	,,	६	अग्राहु	*अग्राहु
,,	,,	,	१२१	१५१
५१७	,	५	से	स–
,,	७५४	१८	थावयत्पा	थावइत्प
,,	,,	२१	क्षमें त्था	क्षमें त्थ
५१८	७५५	६	आदंसु	आइंसु

§५१८ के बाद 'परोक्षभूत' शीर्षक छूट गया है, पाठक सुधार लें।

पा.स	पृ.सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१९	,	१८	तावकम्मास्स- मुहावो	तावकम्मस्स मुहावो
,		२	ऐंकारिमरा	ऐंकारिमरा
	७५६	१	वहुअमेम	वहुअअमेण
		२१	गया था	गयी थी
५२	७५७	११	-हसेहिमि	हसेहिमि
,		१४	सेंचिह- हिस्सा	सों चिह- हिस्सा
	७५८	१५	-इस्सवि	-इस्सन्ति
,	,,	२६	-हिवि -हिवि	-हिन्ति -हिन्ति
५२१	,,	४	पवखि- भिस्सइ	पवखि- भिस्सइ
		५	निर्नेप्पवि	निर्नेप्पवि
	७५९	१२	हॉस्स	हॉस्सं
	,,	१६	ह प	ह् और प्
,,	७६	२	होमाहिसि	होमाहिसि
५२२	,,	१	मिमुमा रिसैं	मिमुम रिस्सं

पा.स	पृ.सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२२	७६	११	मरिस्सइ	मरिस्ससि
,,	७६१	५	मन्त में– प–	मन्त में– –मै
५२३	,,	१९	उवागमि स्सवि	उवागमि- स्सन्ति
५२५	७६२	१५	पास्यवि	पस्यवि
५२७	७६४	२२	उप्पाधि–	उप्पधि-
,	,,	२४	मच्छिहिसि	मच्छिहिसि
,,	७६५	२	लगिस्स	लग्गिस्स
,,	,	३	अमुल गिमरा	अमुल मिरम
५२८	,,	६	अनुकम्प-	अनुकूल-
,,	,	७	वारइस्सादि	वारइस्सवि
,,	,,	,,	निभच-	भिअच
,		८	पुलो इस्सदि	पुलोम- इस्सदि
,,		१	सहायस्स	सहायस्सं
,,	,,	२१	˘एसैं	एसैं
		,	चामेली	चमेली
५१	७६७	१	*दयन्ति	*दयति
,,	७६८	२	भव्	भव्
,,	,,	१२	*संधिए	*संधा–
५१२	७६९	९	मिन्दवि	भिन्दन्ति
,,	,,	११	मुक्खिी	मुक्खिी
५१३	७७	१	गम्थं	गम्थं
,,	७७१	६	क्रिप्पामि	*क्रिप्पामि
५१५	७७२	२२	स्मन्त,	स्मन्त
५१८	७७६	११	गमन्ति	गमन्ती
५१९	७७७	४	पिईमदि	पीईमदि
,		७	पिवावि	पिवन्ति
,	,,	८	पिवीअवि	पिवीअन्ति
,,	,,	९	पीअवि	पीअन्ति
५४	,	१	उक्ख मवि,	उक्ख मन्ति
,,	,	७	विहम्मावि	विहम्मन्ति
टिप्पणी		२	लम्मादि	लम्मइ
,	,	,,	हम्मादि	हम्मइ

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४२	७७८	२	पुच्छिज्जई	पुच्छिज्जइ
,,	७७९	८	मुचत्ति	मुचन्ति
,,	,,	१३	मुचिज्जदु	मुञ्चिज्जदु
५४४	७८१	११	वुज्झइ	वुज्झई
५४५	,,	५	दिज्जई	दिज्जहिँ
,,	,,	१४	आरव्यायत्ते	आख्यायन्ते
,,	,,	२२	अप्	आप
५४६	७८२	११	उब्भिज्ञदु	उब्भिज्जदु
,,	,,	२७	-सज्झइ	-रूज्झइ
५४७	७८३	२९	*कार्यते	*कर्यते
५४८	७८४	४	ज्ञायते	ज्ञायते
,,	७८५	१२	भणिज्जन्ती	भणिज्जन्दी
५४९	,,	५	खद्	खाद्
,,	,,	६	डज्जिहिसि	डज्झिहिसि
,,	,,	,,	डज्जिहिइ	डज्झिहिइ
,,	,,	९	उज्झिहिइ	डज्झिहिइ
,,	,,	२०	घोँप्पिहिइ	घेँप्पिहिइ
५५१	७८८	१४	विण्णाविअ	विण्णविअ
५५२	७८९	१८	शौर० में नि	शोर० में
,,	,,	३५	दवाएइ	दवावेइ
,,	,,	,,	अवसर देना-	दिलवाना
५५३	७९०	२२	हारावइ	हारवइ
,,	७९१	१	सठन्ती	सठवन्ती
५५४	,,	१७	दसिन्तिँ	दसिन्ति
,,	७९२	१०	*द्रक्षति	*दक्षति
,,	,,	१८	ताडइ	तमाडइ
,,	,,	२०	भामाडइ	भमाडइ
५५५	७९३	८	जुगुच्छत्ति	जुगुच्छन्ति
,,	,,	१९	सस्सूसइ	सुस्सूसइ
५५६	७९४	२	चक्कम्मइ	चकम्मइ
,,	,,	४	जागरत्ति	जागरन्ति
,,	,,	७	जग्गत्ति	जग्गन्ति
,,	,,	११	*भेमिस-मीण,	*भेभिस-मीण,
५५८	७९६	२०	कुस्कुरि	कुरकुरि
,,	,,	२४	खलक्खलइ	खलक्खलेइ
,,	७९७	२	यरहरन्ति	यरहरन्ती

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५९	७९८	२५	सद्दामेमि	सद्दावेमि
,,	,,	२८	सद्दावइस्स	सद्दावइस्स
	७९९	१०	धातु सधित-सज्ञा	नामधातु
५६२	८००	७	मीण	-मीण
,,	८०१	३	अणासा-यमाण	अणासाय-मीण
,,	,,	४	निकायमीण	निकाममीण
,,	,,	१०	ध्रुवन्ती	ध्रुवन्तो
५६३	,,	११	धुक्कारि-	थुक्कारि-
,,	८०२	२	जमामाणीए	जम्पमाणीए
५६४	,,	१०	प्रधान	प्रधान
,,	८०३	१३	*गुत्फ	*गुफ्त
५६५	८०४	१३	इब	इष्
,,	८०५	१४	भज्जिअ	भज्जिअ
,,	,,	३१	खा	खाअ
,,	,,	,,	धा	धाअ
,,	,,	३२	वड	छूढ
,,	,,	,,	उव्वीट	उव्वीढ
,,	,,	३४	-डा	-ड
५६६	८०७	७	*मुल्ल	*मुल्न
,,	,,	,,	मुल्ल	भुल्ल
,,	,,	११	*उमील्ल	*-मील्न
,,	,,	,,	णिमिल्ल और	×
,,	,,	,,	ओणिमिल्ल	×
,,	,,	१३	पामुक्क	पमुक्क
,,	८०८	२	पविरक्क	पविरिक्क
,,	,,	३४	सूद	सूद्
५६८	८१०	८	खुत्त	खुन्न
५७०	८११	३०	णापव्व	णायव्व
५७२	८१३	८	पिव से	पिव-से
५७३	८१५	१७	वेञ्आरिउ	वेआरिउ
५७४	,,	४	*से	*घृप् से
५७७	८१८	१२	प्रमाष्ढुं-	प्रमाष्टुं-
,,	,,	,,	दट्टकाम	दट्टुकाम
,,	,,	१८	-ट्ठु	-ट्ठु
,,	,,	२५	पुरओकट्ठु	पुरओकट्टु

पा सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५७७	८१८	२५	अभहट्टु	अभहट्टु
,,	,,	२६	अभिहट्टु	अभिहट्टु
,,	,,	२७	माहट्टु	माहट्टु
,,	,,	२६	समाहट्टु	समाहट्टु
,,	,,	,,	अप्पाहट्टु	अप्पाहट्टु
,	,,		नीहट्टु	नीहट्टु
,,	,,	१०	उदहट्टु	उदहट्टु
,,	,,	११	साहट्टु	साहट्टु
,,	८१६	१	सोरेसु	सोरें सु
,,	,,	२	माहयवे	माहयवे
,,	,,	४	पमभिसु	पमभिसु
,	,,	१७	व फ्र	त् फ्र
,,	,,	,,	विस	विस
,,	,,	२२	साहट्टु	साहट्टु
५७८	,,	७	•भोच्चवे,	भोच्चवे
	,,	११	सेय	सेम
,	८२	१८	निसीसए	निसीइसए
५७९	,,	२	-भामहें	-अयहें
,	८२१	१	अम	-अर्ज
,,		६	अस्साणउँ	अस्सणउँ
,,		७	सुआणहें	सुआणहें
,,		८	हुत्पं	सत्पं
५८		१	स्त्	त्त्
५८२	८२३	२४	मत्था	मन्ता
,,	,,	२६	उत्थासइन्ता	उत्थासइत्ता
,,	८२४	६	पउमित्ता	पाउमित्ता
,,	,,	२१	यत्ता	यन्ता
,,	,	२२	इप्पूणा	इप्पूणा
,	,,	२७	मिन्त भित्ता	भिमभित्ता
टिप्प	८२५	६	मउन्विता,	मन्भन्विता,
,,	,	१८	पाउपसित्ता	पाउमन्विता
,,		१७	गु	-गु
५८३	८२६	२	निद्धिसाणं	निद्धियाण
टिप्प	,,	१	पीयनम्	पीत्पानम्
५८४		२	बो•	वा-•
			=•	च-•
,,	,,	१	हुमाण	-हुमाण

पा सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५८४	८२६	१	तूण	-तूण
,,	,	,,	ऊण	-ऊण
,,	८२७	१८	मेन्तूण	मेतूण
५८५	,	१	तूर्ण	-तूर्ण
,,	,,	,	-ऊणो	-ऊर्ण
५८६	८२८	११	हसिऊण	हसिऊण
,,	८२६	८	पिब्भुवान्	•भिब्भुवान्
,,	,,	६	•प्रतिपाधि-	•प्रतिपधि-
,,	,,	१२	सम्मभिऊण	सम्मापेऊण
,,	८३	२१	सन्तून	गन्तून
,,	,,	,,	कट्ठिन	कच्छिन
,,	,,	२२	नद्धून,	वद्धून,
,,	,,	२७	मागचून	मागन्तून
५८७	,,	५	आ	-आ
,,	,	८	-•सामभीर	×
,,	८३१	३१	थार्म	-थार्प
५८८	८३२	११	गत्वीं	मत्वी
,,	,,	२१	मारॅप्पि	मरॅप्पि
५८९	८३३	१६	महमोंदेण	महामोदेण
,,	,,	२१	निप्पवि	निप्पवि
,,		२५	मर्म्म	-मर्म्म
,,	,	२७	पहुभोल्प-रिम	पहुमोॅल्प-रिम
५९	८३५	२५	निसम्म	निसम्म
टिप्प	८३६	१	त्यम्	त्यन्
५९५	८४१	१६	पमहासिय	पमहासिय
,,	८४२	१९	ससिन्त	सासिन्त
,	८४४	११	मवाम	प्रपाम
	,,	१८	अमीत	आनीत
,,	,	२१	भिभ्रयर्	भिभ्ररयर्
,,	,,	१२	सुरम्भम	सुरम्भम
,	,,	१४	-निम्न-	-मस्स निम्न
टिप्प	८४५	८	माइसिय	माइसिय
५९६	,,	६	मा	मा
,,	८४६	१	ईम्	ईत्
५९७	,,	६	पुकम	पुमन
,,	८४७	१	पवास	पवास

पा.सं.	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५९७	८४७	२२	#त्वरितत्तन	#त्वरितत्वन
,,	,,	२५	पज्जाउन्त–	पज्जाउल–
,,	,,	३३	अणुजी-वत्तन	अणुजी-वित्तण
५९८	८४८	९	आलेॅद्धुअ	आलेॅद्धुअ
,,	,,	१४	#मर्यिक	#मर्त्यिक
५९९	,,	१	–त	–ट
,,	८४९	१८	सुवत्तडी	सुअवत्तडी
,,	,,	२१	बुद्धडि	बुद्धडी
,,	,,	२२	भॅषी:	भैषी:
,,	,,	२४	#धूलक-टिका	#धूलटिका
६००	,,	५	रोपइत्त	रोसइत्त
,,	,,	७	क स्वार्थे	क स्वार्थे के
,,	,,	८	पुलिग	पुलिंग
,,	८५०	१०	युवतिवेरा-	युवतिवेष-
नीट	८५०	८	शकरास्या-	शकरस्य-
६०१	,,	५	आयारमन्त	आयारमन्त-
,,	,,	६	आचारवन्त-	आचारवन्त्-
,,	,,	११	गुणवन्त-	गुणवन्त्-
,,	,,	१२	पुष्फवन्त-	पुष्फमन्त-
,,	८५१	१	=मूलमन्त-	मूलमन्त
,,	,,	८	धणमण में	धणमण
,,	,,	९	#धण मन्त्–	#धणमन्त्
,,	,,	,,	प्रत्यय में	प्रत्यय का
६०२	,,	८	वेष्टपूरय	वेष्ट, पूरय
,,	,,	१८	रूप आये	रूप भी आये
,,	८५२	१	लिए–आणश्च	लिए--अप० में -आणश्च
,,	,,	२	वज्ज	वज्ज-
,,	,,	४	क . स्वार्थे	कः स्वार्थे
६०३	,,	९	–मेॅत्ताओ	–मेॅत्ताओ
,,	,,	१०	–पयसम्	–पयसम्

§ १३४ २) एक व्यंजन य है जो अर्धमागधी और जैनशौरसेनी को छोड़ अन्य प्राकृत बोलियों में अंशस्वर 'इ' के बाद छूट जाता है : अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री चेइय=चासी चतिय=चैत्य (आयार २,२,१,७ २,३,१,१ २,१ ,१७ २,१५,२५, सूय १ १४ ठाणंग २६६ समव १ १ २३३ पण्हा ५२१ विवाह० ५,१६४ ६३४ राय १५४ नीय ६ उवास ओव ; कप्प निरया तीर्थ ६,२४ एत्सें कालका) अर्धमागधी विचय=अविचय=स्यात्, विचाइ=स्यादि (§२८) अर्धमागधी सेविय=सौम्य (§३ ७) अर्धमागधी वाकिय=वाक्य (विवाह० १३२) अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री पड़िया=बाह्याद् (आयार १,१ ७,१ सूय १५४ उवास ; ओव कप्प आर्य एत्सें १४,१) अर्धमागधी विवत्त=स्याम (पण्हा २) शौरसेनी विड्रिया=विद्या (हेमचंद्र २,१ ४ मृच्छ १९,२·७४,११ शकु ५२,१ १६७,७ विक्रमो १ ,२ २६,१४,४६,८७५२ आदि आदि) दिवो=ग्राम् (वरो ८,१७ पाइय २११ मिथि १,३,१ ५,व वार्त ३ २५१); शौरसेनी द्विवो (मालवि ५१ ७ प्रिय० १६,१२) यही शब्दों के पूरे वर्गों के साथ हुआ है जैसे उस पूर्वकालिक क्रिया के साथ जिसमें–य लगता है जैसे, अर्धमागधी पासिय जैनमहाराष्ट्री पेंच्छिय शौरसेनी पे क्खिय मागधी पें स्किय दक्की पढिस्सुचिय (५६ ५६१) संभावना सूचक धातु के रूप–या में समाप्त होते हैं। जैसे अर्धमागधी में सिया=स्यात् हविया=हस्यात् भुञ्जँ जा=भुञ्ज्यात् और कर्जा= ० कर्यात् (§४६६), ऐसे ही कृदन्त विशेषणों में –इज्ज लगता है जैसे करणिज्ज, रमणिज्ज (§६१ ५७१), संख्या शब्दों में भी इसका प्रयोग होता है जैसे महाराष्ट्री में बिइय और बिइज्ज अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में बिइय महाराष्ट्री तइय अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री तइय शौरसेनी तथा मागधी तदिअ और क्रमश य में तद्‌यो (§८२ ६१ और ४४९)। अंशस्वर इ संयुक्ताक्षर ये में बहुधा आता है। इस प्रकार के शब्दों को वररुचि ३ २ हेमचंद्र २,१ ७ और क्रमदीश्वर २,८१ में आइ तिगण चौर्यसम में शामिल करते हैं। इन सब में र्य से पहले अधिकांश वैयाकरणों के अनुसार दीर्घ स्वर रहता है। इस प्रकार : अर्धमागधी आरिय=आर्य (आयार १ २ २ ३ १ २ ५,२ और १ १ ४ २ ५, सूय ५४ २ ४ १६३ और ६१४ पण्णव ५६ और उसके बाद समव ६८ विवाह १२४६ उत्तर १ ६ और ५ ६ ओव) अणारिय (आयार १ ४ २ ५ सूय ५६ ५८ १०८,२१ ४१० ४१६, ६२१ ६३१ और ६१५, समव ६८, उत्तर ५११ और ६६) अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री आयरिय=आचार्य (हेमचंद्र १ ७३ आयार २ १ १ १ २ ३ १ ३ तथा इसके बाद समव ८५, ठाणंग १५७ २८६ नन्दी ५१२ और उसके बाद दसवे ३३३ ४१ ३३४ १६ और उसके बाद एत्सें कालका), आइरिय (चंड १ ५ पृष्ठ ४ हेमचंद्र १ ७३ २ १ ७) शौरसेनी आआरिअ (चैतन्य ४४,५८ १२ २२७ १३) मागधी आयारिअ (प्रबोध २८,१४ २६,७ ५८,१७ ६१ ५,६२ १ २ ६ चैतन्य १४६ १७६ और १६ १५ २ १ और १३) महाराष्ट्री और शौरसेनी चोरिअ=चौर्य (सभी वैयाकरण बाल चैतन्य ८२ १) अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री भारिया=भार्या (हेमचन्द्र २ १ ७ सूय १७६ उवास ; कप्प ; एत्सें) अर्धमागधी और जैनशौरसेनी वीरिय=वीर्य (सूय ३५१ ३६

३६५ और ४४२, विवाह० ६७, ६८ और १२५, उवास०, ओव०, कप्प०, पव० ३७९, २, ३८१, १९ और ३८६, १), महाराष्ट्री और शौरसेनी **वेरूलिअ**, अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री **वेरूलिय=वैडूर्य** (§ ८०), अर्धमागधी **सूरिय** (हेमचन्द्र २, १०७, सूय० ३०६, ३१० और ३१२, विवाह० ४५२, १०४०, १२७३, १२८२, ओव० § १६३, कप्प०), **असूरिय** (सूय० २७३); **सोरिअ=शौर्य** (भाम० ३, २०, हेमचन्द्र २, १०७, क्रम० २, ८१)। हेमचन्द्र २, १०७ में निम्नलिखित उदाहरण भी दिये गये हैं, **थेरिअ=स्थैर्य, गम्भीरिअ, गहीरिय=गाम्भीर्य** और ह्रस्व स्वर के बाद **सुन्दरिअ=सौन्दर्य, वरिअ=वर्य, बम्हचरिअ=ब्रह्मचर्य**। अर्धमागधी के अनुसार **मोरियपुत्त=मौर्यपुत्र** (सम० १२३ और १५१, भग०) जैन महाराष्ट्री **मोरियवंस=मौर्यवंश** (आव० एर्से० ८,१७) मागधी में **मोलिअ=मौर्य** (मुद्रा० २६८, १)। ह्रस्व स्वर के बाद र्य ध्वनिवाले शब्दों में अ के स्थान में अर्धमागधी में इ आता है। जैसे: **तिरियं=तिर्यक्** (आयार० १, १, ५, २ और ३, १, २, ५, ४, सूय० १९१, २७३, ३०४, ३९७, ४२८, ९१४ और ९२१, कप्प०), **तिरिया** (हेमचन्द्र २, १४३), अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी **तिरिय** (भग०, उवास०, ओव०, एर्से०, पव० ३८०, १२, ३८३, ७० और ७२), अर्धमागधी **परियाय=पर्याय** (विवाग० २७०, विवाह० २३५, ७९६ और ८४५, उवास०, ओव०, कप्प०), इसके साथ साथ बहुधा **परियाय** शब्द भी मिलता है। अर्धमागधी **विप्परियास=विपर्यास** (सूय० ४६८, ४९७ और ९४८)।

(§ १३५ ३) इस पाराग्राफ मे र्य के अतिरिक्त रेफयुक्त सयुक्त व्यजनों के उदाहरण दिये जाते हैं र्य (§ १३४). पल्लवदानपत्र में **परिहरितवं=परिहर्त्तव्यम्** (६, ३६), महाराष्ट्री **किरिआ**, अर्धमागधी और जैनशौरसेनी **किरिआ=क्रिया** (वररुचि ३, ६०, हेमचन्द्र २, १०४, गउड, सूय० ३२२, ४१२, ४४५ और ४६०, भग०, नायाध०, ओव०, पव० ३८१, २१, ३८६, ६ और १०, कत्तिगे० ४०३, ३७३ और ३७४), अर्धमागधी **दरिसण=दर्शन** (हेमचन्द्र २, १०५ मार्क० पृ० २९, सूय० ४३, भग०, ओव०), **दरिसि=दर्शिन्** (नन्दी० ३८८, भग०, उवास०, कप्प०) **दरिसणिज्ज=दर्शनीय** (पण्णव० ९६, ११८ और १२७, उवास०, ओव०, नायाध०, भग०), **दरिसइ** जैन महाराष्ट्री **दरिसेइ**, आवन्ती और दाक्षिणात्या **दरिसेदि=दर्शयति** (§ ५५४), **आअरिस** (हेमचन्द्र २, १०५, मार्क० पृष्ठ २९), अर्धमागधी **आदरिस** (ओव०)=**आदर्श**, महाराष्ट्री और अर्धमागधी **फरिस=स्पर्श** (वररुचि ३, ६२, मार्क० पृष्ठ २९, पाइय० २४०, हाल०, रावण०, आयार० १, १, ७, ४, नायाध० ओव०), अर्धमागधी **फरिसग=स्पर्शक** (कप्प०), **दुप्परिस=दुःस्पर्श** (पणहा० ५०८), **फरिसइ=स्पर्शयति** (हेमचन्द्र ४, १८२), **मरिसइ=मर्षयति** (वररुचि ८, ११, हेमचन्द्र ४, २३५), महाराष्ट्री **अमरिस=अमर्ष** (हेमचन्द्र २, १०५, गउड०, रावण०), महाराष्ट्री और शौरसेनी **आमरिस=आमर्ष** (अच्युत० ५३, उत्तररा० २०, ११),

मागधी आमलिश (मल्लिका० १८४, ११) शौरसेनी परामरिस (हेमचन्द्र २, १०५ मृच्छ १५, ६ ७, १), मरिसेदु मृच्छ ३, १९ मालवि ८६, ८) मरिसेहि (मालवि० ३८, ४ ५५, १२) मिलाइए शकुन्तला २७, ६ ५८, ९ और ११ ७३, ६ ११५, २) महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में वरिस=वर्ष (हेमचन्द्र २, १०५ गउड हाल ओव कक्कुक शिला-लेख ११ आव एर्से १३, २५ १४, १२ एर्से रिसम बाल्पा० २७६, ३ वेणी० ६५, ३ मल्लिका० २२५ २ २५९, ६) अर्धमागधी वरिसा=वर्षा (हेमचन्द्र २, १०५, निरया ८१) वरिसण=वर्षण (मार्कण्डेय पृ २९)- शौरसेनी वरिसि=वर्षिन् (वेणी ६ , ६ कर्पू ७१, ६) अर्धमागधी और अपभ्रंश वरिसइ (वररुचि ८, ११ हेमचन्द्र ४, २३५ दसवे नि ६४८, १ पिङ्गल १, ६२) अपभ्रंश वरिसेइ (विक्रमो ५५, २) जैनमहाराष्ट्री वरिसिउं=वर्षयितुम् (आव एर्से ४ , ४) शौरसेनी वरिसिदुं (मालवि ६६, २२) वरिसन्त – (प्रबन्ध ४, ३ चण्डको १६ १८) मागधी वलिश (वेणी १०, ४) अर्धमागधी सरिसव=सर्षप (पण्णव ३४ ३५ नायाध § ६१ विवाह १४२४ और उसके बाद का पृष्ठ १५२६ ओव § ७१) महाराष्ट्री, अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी हरिस = हर्ष (वररुचि ३, ६२ हेमचन्द्र २, १०५ क्रमदी २, ५, ९ गउड हाल रावण निरया ओव कप्प एर्से० कालका २था ३ , २१ मुद्रा २६३ ६ वेणी ६२ १२ ; ६०, ७) ; अर्धमागधी लोमहरिस (पण्णव ९) शौरसेनी सहरिस (मृच्छ ७१ १९ वेणी ६५, ७) हरिसइ=हर्षति (हेमचन्द्र ४ २३५) अर्धमागधी हरिसे=हर्षेत् (आयार १, २ ३ २) ; शौरसेनी हरिसाविद (बाल २४२ ६) अर्धमागधी वइर=वज्र (सूय० ८३४ ठाणङ्ग २६५ विवाह ४९१ ११२६ उत्तर ५८९ १ ४१ कप्प) वइरामय=वज्रमय (§ ७)। सिरी=श्री हिरी=ह्री के विषय में (वररुचि ३, ६२ चण्ड ३, ३ पृ ९ ; हेमचन्द्र २, १ ४ ; क्रमदी २, ५७ मार्क पृ २१) इन शब्दों के विषय में § ९८ और § १९५ देखिए।

§ ११६—ऐसा एक व्यंजन ल है (वररुचि ३, ७ और ६२ हेमचन्द्र २ १ ६ ; क्रमदी २ ५१ और १ ४ ; मार्क पृष्ठ २१) : महाराष्ट्री किलम्मइ=क्लाम्यति (हेमचन्द्र २ १ ६ गउड रावण) अर्धमागधी किलामञ=क्लाम्यत् (आयार २, १ ७ १), शौरसेनी किलम्मदि (शकु १२३, ८ माल्ती ११५ ५ मल्लिका ६९, ७ १३३ ११८, १ ५, ८ [पाठ में किलम्मइ है]) महाराष्ट्री और अपभ्रंश किलामिअ=क्लामित (गउड ; रावण विक्रमो ६ १६), महाराष्ट्री अर्धमागधी जैनमहाराष्ट्री शौरसेनी और मागधी में किलन्त=क्लान्त (सब व्याकरणकार ; गउड रावण ; विवाह ११ ८ राय २५८ कप्प ; एर्से उत्तर १८ ११ [पाठ में किलिन्त है] ; मृच्छ ११, ७ और १ [पाठ में किलिन्ते है] इस शब्द को गोडबोले में भी देखिए) ; जैन

महाराष्ट्री और शौरसेनी **किलमन्त** एर्त्से॰ , माल्ती॰ ८१, १), शौरसेनी **किलम्यिद् = *क्लामित** (कर्ण॰ ४७, १२, [पाठ मे **किलिम्मिद** है]), **अदिकिळम्मिद** (मालती॰ २०६, ४) , जैनमहाराष्ट्री **किलिस्सइ=क्लिश्यति** (एर्त्से॰), अर्धमागधी **संकिलिस्सइ = संक्लिश्यति** (ओव॰), शौरसेनी **अदिकिलिस्सदि** (मालवि॰ ७, १७), **किलिस्सन्त** (रत्ना॰ ३०४, ३०), जैनमहाराष्ट्री **किलिट्ठ** (सब व्याकरणकार , एर्त्से॰), अर्धमागधी **संकिलिट्ठ** (ओव॰), **असंकिलिट्ठ** (दसवे॰ ६४२, ४१), शौरसेनी **किलेस=क्लेश** (सब व्याकरणकार , मृच्छ॰ ६८, ८ और १० , ललित॰ ५६२, २२) , महाराष्ट्री और शौरसेनी **किलिण्ण=क्लिन्न** (हेमचन्द्र १, १४५ , २, १०६ , गउड॰ , मुकुन्द॰ १५, १), अपभ्रंश **किलिन्नउ** (हेमचन्द्र॰ ४, ३२९), इसके साथ साथ **किण्णउ** भी मिल्ता है, मिलाइए (§ ५९) , अर्धमागधी **किलीव=क्लीब** (आयार॰ २, १, ३, २) , अर्धमागधी **गिलाइ, विगिलाइ= ग्लायति, विग्लायति** (हेमचन्द्र २, १०६ , विवाह॰ १७०), **गिलाण** (हेमचन्द्र २,१०६ , सूय॰ २०० और २१५ , ओव॰ , कप्प॰) , अर्धमागधी **मिलाइ** (हेमचन्द्र २, १०६ , ४, १८, आयार॰ १, १, ५, ६) , महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी **मिलाण=म्लान** (सब व्याकरणकार , एर्त्से , गउड॰, हाल॰ , मृच्छ॰ २, १६, विक्रमो॰ २६, १३, चैतन्य॰ ७३, ९), शौरसेनी **मिलाअन्त** (माल्ती॰ २४९, ४), **मिलाअमाण** (विक्रमो॰ ५१, १०, मालवि॰ ३०, ७), शौरसेनी **पम्मलाअदि** (मालती॰ १२०, २) के स्थान में मद्रास के सस्करण के १०५, ३ और बम्बई के १८९२ के सस्करण के पृष्ठ ९२, २ के अनुसार **परिमिलाअदि** (§ ४७९) , **मिलिच्छ**, अर्धमागधी **मिलक्खु** और इसके साथ साथ अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश **मेच्छ**, अर्धमागधी **मिच्छ=म्लेच्छ** (§ ८४ और § १०५) , **सिलिम्ह=श्लेष्मन्** (हेमचन्द्र २, १०६) , अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री **सिलिट्ठ=श्लिष्ट** (सब व्याकरणकार , ओव॰ , कप्प॰, आव॰ एर्त्से॰ ३८, १० और १२), **असिलिट्ठ** (आव॰ एर्त्से॰ ३८,८) , शौरसेनी **सुसिलिट्ठ** (मृच्छ॰ ७१, १३ , मालती॰ २३४, ३), **दुस्सिलिट्ठ** (महावी॰ २३, १९), अर्धमागधी **सिलेस=श्लेष** (हेमचन्द्र २, १०६ , विवाह॰ ६५८) , अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री **सिलोग=श्लोक** (सूय॰ ३७० , ४९७ और ९३८ , अणुयोग॰ ५५७, दसवे॰ ६३७, ३१ और ४४ , ६३८, ८ , ६४१, ७ , ओव॰ , एर्त्से॰) अर्धमागधी **सिलोय** (सूय॰ ४०५ , ४१७ और ५०६), शौरसेनी **सिलोअ** (हेमचन्द्र २, १०६ , ललित॰ ५५४, १३ , मुद्रा॰ १६२, ६ , विद्ध॰ ११७, १३ , कर्ण॰ ३०, ३ और ५) , **सुइल** (हेमचन्द्र २, १०६), अर्धमागधी **सुक्किल=शुक्ल** (हेमचन्द्र २, १०६ [यहाँ यही पाठ पढा जाना चाहिए] , ठाणङ्ग॰ ५६९, जीवा॰ २७ , ३३, २२४, ३५० , ४५७ , ४६४ , ४८२ , ५५४ , ९२८ और ९३८ , अणुओग॰ , २६७ , उत्तर॰ १०२१ , १०२४ और १०४१ , ओव॰ , कप्प॰[१]), जैनमहाराष्ट्री में **सुक्किलिय** (आव॰ एर्त्से॰ ७, १६) मिलता है ।

रमणीय , इसके विपरीत महाराष्ट्री, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और जैनशौरसेनी में **करणिज्ज** तथा **रमणिज्ज** = ***करण्य** और ***रमण्य** है (§ ९१ , १२४ तथा ५७१), महाराष्ट्री तथा अर्धमागधी में इनके अन्त में—**मीण** प्रत्यय लगता है, जो संस्कृत प्रत्यय—**मान** के समान है। इस प्रकार अर्धमागधी में **आगममीण** रूप मिलता है (§ ११० और § ५६२)। महाराष्ट्री और शौरसेनी में यह अंशस्वर कभी इ कभी ई हो जाता है, उदाहरणार्थ : शौरसेनी **अच्छरिअ**, जैनमहाराष्ट्री **अच्छरिअ** = **आश्चर्य** (वररुचि १२, ३०, शौरसेनी के लिए , हेमचन्द्र १, ५८, २, ६७ मार्क० पृष्ठ २२ , गउड० , मृच्छ० १७२, ६ , मालवि० ६९, २, ८५, ८ ; विक्रमो० ९, १२ , प्रबन्ध० ४, १ , मालती० २५, १ , ललित० ५६२, १९ आदि-आदि[1] , पाइअ० १६५ , कालका०), मागधी में **अश्चलिअ** (ललित० ५६५, ११ [पाठ में **अश्चलिय** है] , ५६६, ३ , वेणी० ३४, ६), शौरसेनी में **अच्छरीय** भी मिलता है (हेमचन्द्र, मृच्छ० ७३, ८ , शकु० १४, ४, १५७, ५, रत्ना० २९६, २५, ३००, ७ और ११, ३०६, १, ३१३, २३, ३२२, २३ आदि-आदि) , महाराष्ट्री, अर्धमागधी में **अच्छेर** भी होता है (भामह १, ५, ३, १८ और ४० , हेमचन्द्र १, ५८, २, ६७, क्रमदी० १, ४ और २, ७९ , मार्क० पृष्ठ २२ , हाल , पण्हा० ३८० [पाठ में **अच्छर** दिया गया है]), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में **अच्छेरय** पाया जाता है (नायाध० ७७८ और उसके बाद तथा १२७६; कप्प०, आव० एर्त्से० २९, २१, एर्त्से०, कालका०), अर्धमागधी में **अच्छेरग** है (पण्हा० २८८), हेमचन्द्र के अनुसार **अच्छरिज्ज** भी होता है, यह रूप बताता है कि कभी कहीं **आश्चर्य** रूप भी चलता होगा और **अच्छअर** भी मिलता है, जो कहाँ से कैसे आया, कुछ पता नहीं चलता। महाराष्ट्री **पिलोस** (गउड० ५७९, [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]) = **प्लोष**, **पिलुट्ठ** = **प्लुष्ट** के (हेमचन्द्र २, १०६) साथ एक रूप **पीलुट्ठ** भी पाया जाता है (देशी० ६, ५१)। महाराष्ट्री और शौरसेनी में **जीआ** पाया जाता है (वररुचि ३, ६६, हेमचन्द्र २, ११५, क्रमदी० २, ६१, मार्क० पृष्ठ ३०), यह शब्द **ज्या** से नहीं निकला, बल्कि **जीवा** का प्राकृत रूप है। पल्लवदानपत्र में **आपिट्टियं** = **आपित्याम्** (६, २७) के स्थान पर **आपिट्टीयं** खुदा मिलता है, शिलालेखों में बहुधा इ के स्थानपर ई पाई जाती है, यहाँ भी ऐसा ही हुआ है।

१ नाटकों के बहुत-से संस्करणों में **अच्चरिय** अथवा **अच्चरिअ** पाया जाता है, किन्तु यह रूप अशुद्ध है। § ३०१ से तुलना कीजिए।

§ १३९—संयुक्ताक्षरों में यदि एक अक्षर ओष्ठ्य अथवा **व** हो, तो स्वरभक्ति में बहुधा उ आ जाता है : महाराष्ट्री **उद्धुमाइ** = ***उद्धुमाति** (वररुचि ८, ३२, हेमचन्द्र ४, ८), **उद्धुमाअ**=**उद्ध्मात** (गउड०, रावण०) **उद्धुमाइअ** (रावण०) रूप हैं। **खुलह**=**कुल्फ** (देशी० २, ७५, पाइअ० २५०, § २०६ भी मिलाइए), अर्धमागधी में **छउम**=**छद्मन्** (हेमचन्द्र २, ११२), यह नियम विशेष करके **छउमत्थ** = **छद्मस्थ** में देखा जाता है (आयार० १, ८, ४, १५, ठाणङ्ग० ५०, ५१ और १८८, विवाह० ७८ और ८०, उत्तर० ११६, ८०५ और ८१२, ओव०, कप्प०), **तुवरइ** =**त्वरते**

५०, हेमचन्द्र २, ११३, क्रमदी० २, ६२, मार्क० पृष्ठ ३० और उसके बाद), जैसे, **गुरुवि** (सब व्याकरणकार) = **गुर्वी, गरुइ** रूप **गरुअ = गुरुक** से निकला है (§ १२३), इस हिसाब से हेमचन्द्र २, ११३ को—**गुरुवी, तणुवी = तन्वी** (सब व्याकरणकार), महाराष्ट्री रूप तणुई (हाल०) **लहुई = लघ्वी** है (सब व्याकरणकार), महाराष्ट्री और शौरसेनी में **लहुई** रूप का प्रचलन है (गउड०, मृच्छ० ७३, ११), **मउवी = मृद्वी** है (सब व्याकरणकार), महाराष्ट्री में **मउई** चलता है (गउड०), **वहुवी = वह्वी** है (सब व्याकरणकार), **साहुई = साध्वी** (मार्क०) । **पृथु** का स्त्रीलिंग का रूप **पुहुवी** है, यह उसी दशा में होता है, जब इसका प्रयोग विशेषण के स्थान पर किया जाता है (हेमचन्द्र १, १३१, २, ११३), इसके विपरीत महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री, शौरसेनी और अपभ्रंश में **पुहवी** और **पुहई**, अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी और शौरसेनी में **पुढवी** का प्रयोग पृथ्वी के अर्थ में होता है (§ ५१ और ११५) । इसी प्रकार पूर्वकालिक क्रिया के प्रयोग का खुलासा होता है, जैसे शौरसेनी, मागधी और ढक्की **कदुअ = कृत्वा गदुअ = गत्वा**, ये रूप ***कदुवा=*गदुवा** (§ ५८१), होकर बने हैं और जो पूर्वकालिक रूप – **तुअण** और **तुआण** – में समाप्त होते हैं, जैसे **काउआणं, काउआण** ये बराबर हैं = **कर्त्वानम्** के (§ ५८४), जब संयुक्ताक्षर से पहले **उ** अथवा **ओ** से आरम्भ होनेवाला शब्द आता है, तब अंशस्वर **उ** आ जाता है । इस प्रकार, **मुरुक्ख = मूर्ख** (§ १३१, हेमचन्द्र २, ११२), मार्कण्डेय के अनुसार यह प्रयोग प्राच्या भाषा का है, जो विदूषक द्वारा बोली जानी चाहिए, प्रसन्नराघव ४८, १ में शौरसेनी में यह प्रयोग मिलता है । [पाठ में **मुरुख** रूप मिलता है], जब कि और सब स्थानों में इसके लिए **मुक्ख** रूप काम में लाया गया है, (उदाहरणार्थ : शौरसेनी में मृच्छ० ५२, ११ और १५, ८१, ४ कर्पू० १३, ३, प्रियद० १८, ५ और १४, ३८, १ और ८, चैतन्य० ८२, ७, मागधी : मृच्छ० ८१, १७ और १९, प्रबन्ध० ५०, १३), पैशाची में **सुनुसा = स्नुषा** (हेमचन्द्र ४, ३१४), इस पर शेष प्राकृत भाषाओं के **सुण्हा** और **सोॅण्हा** आधारित हैं (§ १४८), **सुरुग्घ = स्रुघ्न** (हेमचन्द्र २, ११३), अर्धमागधी **दुरुहइ = *उद्रुहति** है (§ ११८, १४१ और ४८२) ।

§ १४० **अ** और **इ** के बीच में अंशस्वर कोई नियम नहीं मानता, बल्कि डॉवाडोल रहता है । उदाहरणार्थ **कसण, कसिण=कृष्ण** (§ ५२), महाराष्ट्री और शौरसेनी में **वरहि** – पाया जाता है, अर्धमागधी और शौरसेनी में यह **वरहिण** हो जाता है (§ ४०६)= **वर्हिन्**, इसके साथ-साथ **वरिह = वर्ह** भी मिलता है (हेमचन्द्र २, १०४), अपभ्रंश में **वरिहिण=वर्हिन्** मिलता है (हेमचन्द्र ४, ४२२, ८), **सणेह = स्नेह** (हेमचन्द्र २, १०२), अपभ्रंश **ससणेही** रूप देखने में आता है (हेमचन्द्र ४, ३६७, ५), **सणिद्ध=स्निग्ध** है (हेमचन्द्र २, १०९), किन्तु **स्नेह** का रूप महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में **सिणेह=स्नेह** है । वररुचि और हेमचन्द्र इसका उल्लेख नहीं करते, यद्यपि नाटकों में केवल यही एक रूप देखने में आता है और अन्यत्र भी यह बहुधा पाया जाता है (क्रमदी० २, ५८, मार्क०

पृष्ठ २६ गउड हाल ; रावण एर्त्से० मृच्छ० २७, १७ २८, १० शकु ९, १४, ५५, १५ ९, १२ १३२, १ मालवि २९, ६ मालती० १४, ६ ; उत्तर ६८, ८ रत्ना० ११७, १३), शौरसेनी में णिद्धिस्सणाइ आया है मृच्छ २५, २१) महाराष्ट्री अर्धमागधी, जैनमहाराष्ट्री और शौरसेनी में सिणिद्ध= स्निग्ध (हेमचन्द्र २, १०९ गउड ओव कप्प एर्त्से मृच्छ० २, २१ ; ५७, १ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए] ५१, २४ ७२ ७ शकु ५३, ८ ८४ ११ ११२, ११ मालवि० ५, १० ६, ६) महाराष्ट्री में सिणिद्ध मिलता है (विक्रमो ५१, ७ ५३, ५) अर्धमागधी में ससिणिद्ध=सस्निग्ध है (आयार २, १, ६ ७, ४१ [यहाँ पाठ में ससणिद्ध है] कप्प०)। इन रूपों के साथ-साथ महाराष्ट्री अपभ्रंश में णेह पाया जाता है तथा अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में नेह अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री रूप सिद्ध तथा महाराष्ट्री णिद्ध = स्निग्ध (§ ३११)। म और व के बीच में पुढवी, पुहई, पुहवी और पुहुवी में अंशस्वर स्थिर नहीं है (§ ११०) अर्धमागधी सुहुम (§ १३१) और अर्धमागधी सुहम (हेमचन्द्र २, १ १ सूय १७४) रूप मिलते हैं शौरसेनी में सक्कणोमि और सक्कुणोमि = शक्नोमि है (§ ५ ५)। अह , अर्ह और अर्हन्त में (हेमचन्द्र २ १०४ और १११) नाना प्राकृत भाषाओं में कभी अ कभी इ और कभी उ देखने में आता है। अर्धमागधी अरह (सूय १२१ समवाय १११ उवास ओव कप्प) अर्धमागधी और जैन शौरसेनी में अर्हन्त—पाया जाता है (सूय० १२२ ठाणंग २८८ विवाग १ और १२१५ ओव कप्प पण्ण० ११९, ३ और ४ [यहाँ पाठ में अरिहन्त शब्द मिलता है] ३८३ ४४ १८५ ६१) अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और महाराष्ट्री में अरिहइ भी आया है (आयार १, ३ २, २ सूय १७८, रत्ने ३११ ८, एर्त्से ; शकु १२ ९) शौरसेनी में अरिहदि पाया जाता है (शकु २४ १२, ५७ ८, ५८ ११ ७१ ८, रत्ना ३२३, १) मागधी में अलिहदि (शकु ११६, १), शौरसेनी में अरिह = अर्ह है (वररुचि ३ ६२, मुकुन्द १७, ४) अरिहा = अर्हा (भामही २ ५९), अर्धमागधी और जैनमहाराष्ट्री में महरिह= महार्ह (विवाग १२८ राय १७४ ओव एर्त्से) जैनमहाराष्ट्री में सारिह = पर्याई है (एर्त्से , कालका), शौरसेनी में महारिह रूप मिलता है (शकु ११७, ७), मागधी में महालिह (शकु ११७ ५) मागधी में अलिहन्त—भी देखा जाता है (प्रबन्ध ८६ ११ ५१ १२, ५२ ७ ५४ ९ ८ ७ ५१ १ ६ ११ मुद्रा १८३ २ [यहाँ यही पाठ पढ़ा जाना चाहिए]; चण्ड १२, ११ १४, १९ अमृत ६६, २) जैनमहाराष्ट्री में अरह मिलता है (हेमचन्द्र २ १११ द्वार ५ २ २०, इस ग्रंथ में इसके साथ-साथ अर्हन्ताणं तथा अरिहन्ताणं रूप भी पाये जाते हैं)। शकुन्तला के देवनागरी और द्राविड़ी संस्करणों में (बोएटलिङ्क के संस्करण में १७, ७ और ८ देखिए) और मालविकाग्निमित्र (११, १ ६५, २१) तथा द्राविड़ी हस्तलिपियों पर आधारित प्रियदर्शिका के १४, २ में शौरसेनी में अरुहदि शब्द का प्रयोग किया गया है जो अवश्य ही अशुद्ध है। —अरुहन्त—रूप भी मिलता है (हेमचन्द्र २, १११)।

प्राकृत शब्दों की वर्णक्रम-सूची

(शब्दों के साथ दिये गये अंक पाराग्राफों के हैं ।)

अनुक्रमणिका का

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६७	६ (स्तम्भ १)	अईइ–४९३	अति–४९३
६७	११ (,,)	अकसि, अकासि–५१६	अकासि–५१६
६७	१४ (,,)	अग्गि–१४६	अग्गिं–१४६
६७	१९ (,,)	अच्छरिअ, अच्छरिय अच्छरीअ–१३८७	अच्छरिअ, अच्छरिय अच्छरीअ–१३८
६७	८ (स्तम्भ २)	अनिट्ठुभय–११९	अनिट्ठुभय–१२०
६७	१२ (,,)	अणेल्सि–१२०	अणेलिस–१२१
६७	१७ (,,)	अह्ग–२३१	अण्हग–२३१
६८	३३ (स्तम्भ १)	अव्ववी–५१५	अभवी–५१५
६८	३५ (,,)	अब्मीङ्गय, अब्भङ्गिद–२३४	अब्भगिय, अब्भगिद–२३४
६८	१० (स्तम्भ २)	अम्मयाओ–३६६ ब	अम्मयाओ–३६६ आ
६८	११ (,,)	अम्मो–३६६ ब	अम्मो–३६६ आ
६८	२५ (,,)	अवहोआस–१२३	अवहोआस,अवहोवास–१२३
६९	१७ (स्तम्भ १)	आउहइ–२२२	आडहइ–२२२
६९	२९ (,,)	आदु–११५	आदु–१५५
६९	४ (स्तम्भ २)	आलेॅद्धुर–३०३	आलेद्धु–३०३
७०	४ (स्तम्भ १)	इदाणि–१४४	इदार्नी–१४४
७०	८ (,,)	इयाणिं–१४७	इयाणिं–१४४
७०	११ (,,)	ईसिय–१०२	ईसिय–१०२
७०	२३ और २४ (स्तम्भ २) के बीच	०	उच्ह–३३५, ४२०
७१	२२ (स्तम्भ १)	ऍज्जन्ति–५६०	ऍज्जन्ति–५६०
७२	१ और २ (स्तम्भ२)	०	एलिक्ख–१२१
	के बीच	०	एलिस–१२१, २४४
७२	२ (स्तम्भ २)	एवइक्खुत्त–१४९	एवइखुत्तो–१४९
७१	१८ (स्तम्भ २)	अणिमिल्ल–५६६	ओणिमिल्ल–५६६
७१	३३ (,,)	ओहट्ठ–५६५	ओहट्ठ–५६४
७१	३६ (,,)	ओहामइ–२१६, २८६	ओहामइ–२६१, २८६
७२	१७ और १८ (स्तम्भ १) के बीच	०	कड–२१९

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७२	६ (स्तम्भ २)	कम्मुणा–१ ४, ४०४	कम्मुणा–१ ४, ४ ४
७३	३ और ४ (स्तम्भ १) के बीच		कीरइ–५४७
७३	१६ (स्तम्भ १)	कुक्खइ–२४२	कुक्खइ–२४२
७३	२२ (,,)	केँप्पिर–१४१	कँम्पिर–१४१
७३	१२ और १३ (स्तम्भ २) के बीच		कोइक–१२३
७३	११ (स्तम्भ २)	कोइक्लिआ–१२७	काहली–१२७
७४	५ (स्तम्भ १)	खुड्डु–११९, २ ६	खुड्ड–११९, २ ६
७४	११ (,)	सच्यदि–२ ६	सेअदि–२ ६
७४	१९ (,,)	सेरम्म–२ ६	सेल्वइ–२ ६
७४	१८ (,,)	गउअ–१५२, २११	गउअ–१५२, ३१३
७४	३ और ४ (स्तम्भ २) के बीच		गहिअ–५६४
७४	१७ (स्तम्भ २)	गाव (=गयन्ति)–२५४	गाव=गायन्ति–२५४
७४	३९ (स्तम्भ २)	गो (रूपावली)–२११	गो (रूपावली)–३११
७५	८ और ९ (स्तम्भ १) के बीच		परिल्लम–५ ५
७५	१८ और १९ (स्तम्भ १) के बीच		चेपुआणं–२१२, ५८४
७५	२१ (स्तम्भ १)	चेँपइ–१ ७, २१२, २८९, ५४८	चेँप्पइ–१ ७ २१२ २८९, ५४८
७५	३३ (,,)	चस्स (रूपावली)–४११	चसु (रूपावली)–४११
७६	२ ( )	छिक्क–१२४, ५६४	छिक्क–१२४, ५६६
७६	१५ और १६ (स्तम्भ १) के बीच		छुहिअ–२११
७६	३ (स्तम्भ २)	जडू–५९५	जडु–५९५
७६	१९ और २ (स्तम्भ २) के बीच		जाम–२६१
			जामहिं–२६१
			जाव–१६७
			जि–१५ , २ १
			जि (रूपावली)–४७१
			जिब्भिअ–५९५
			जिणे पि–५८८
			जिम्मि–५९४

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	३५ (स्तम्भ २)	जे–१८५, २३६	जे–१५०, २३६
७७	२१ और २२ (स्तम्भ १) के बीच	०	झरअ–३२६
७७	३० (स्तम्भ १)	झियाइ–१३४, २८०, ३२६	झियइ–१३४, २८०, ३२६
७८	६ (स्तम्भ १)	ढिङ्कुण–२६६	ढिङ्कुण–२६७
७८	७ (,,)	ढिल्लू–१५०	ढिल्ल–१५०
७८	१३ और १४ (स्तम्भ १) के बीच	०	णक्ख–१९४ णङ्गल–२६०
७८	२० (स्तम्भ १)	णज्जिइ–५४८	णज्जइ–५४८
७८	१ (स्तम्भ २)	णालिअर–१३९	णालिअर–१२९
७८	१९ (,,)	णिमइ–११८, २६१	णिमइ–११८, २६८
७९	३६ (स्तम्भ १)	तरच्छ–१२७	तरच्छ–१२३
८०	३३ (,,)	थिया–१४७	थिय–१४७
८०	३ (स्तम्भ २)	थूण–१३९	थूण–१२९
८०	५ (,,)	थूभिया–२०८	थूभिय–२०८
८०	१२ और १३ (स्तम्भ २) के बीच	०	थेरोसण–१६६
८०	२५ (स्तम्भ २)	दक्खिणन्ता–२८१	दक्खिणत्ता–२८१
८०	३०, ३१ (,,)	दम्मिल, दम्मिली–२६१	दमिल, दमिली–२६१
८१	२ (स्तम्भ १)	द्वा–तावत्–१५०	दा–तावत्–१५०
८१	२० (स्तम्भ २)	देउलिया–१६८	देउलिय–१६८
८२	२९ (स्तम्भ १)	नवकार–२९१	नवकार–२५१
८२	३१ (,,)	निज्जुढ–२२१	निज्जूढ–२११
८३	५ और ६ (स्तम्भ १) के बीच	०	पडिलेहित्ता–५९३ पडिलेहिया–५९३
८३	२१ और २२ (स्तम्भ १) के बीच	०	पदुच्च–१६३, २०२, ५९० पदोस–१२९
८३	३१ (स्तम्भ १)	परिपिट्टेत्त–५८२	परिपिट्टेत्ता–५८२
८३	११ (स्तम्भ २)	पल्लक–२८५	पल्लङ्क–२८५
८३	३५ (स्तम्भ २)	पाणीय–९१	पाणिय–९१
८४	११ (स्तम्भ १)	पावउण–१६५	पावडण–१६५
८४	११ और १४ (स्तम्भ २) के बीच	पुढम–२१३ पुढुम–२१३ पुढुवी–९१, ११५, १३९	पुढम–२११ पुढुम–२११ पुढुवी–५८, ११५, १३९

सहायक ग्रन्थों और शब्दों के संक्षिप्त रूपों की सूची

अ

अंतग०=अंतगडदसाओ, कलकत्ता, संवत् १९३१।

अच्युत० = अच्युतशतक, मद्रास, १८७२।

अणुओग० = अणुओगदारसुत्त, राय धनपतिसिंहजी बहादुर, कलकत्ता, संवत् १९३६।

अणुत्तर०=अणुत्तरोववाइअ सुत्त, कलकत्ता, संवत् १९३१।

अद्भुत०=अद्भुतदर्पण, सम्पादक : परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई १८९६ (काव्य-माला-संख्या ५५)।

अनर्घ०=अनर्घराघव, सम्पादक : दुर्गाप्रसाद और परब, बंबई १८८७ ई० (काव्यमाला संख्या ५)।

अ० माग०=अर्धमागधी।

अमृतोदय, सम्पादक : शिवदत्त और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८९७ ई० (काव्यमाला-संख्या ५९)।

आ

आव०=आवन्ती।

आव० एर्त्से०=आवश्यक एर्त्सेलुङ्गन, सम्पादक : लौयमान लाइप्त्सिख, १८९७ ई०।

आयार० = आयारङ्ग सुत्त, सम्पादक : हरमान याकोबी, लन्दन, १८८२ ई०। मैंने १९३६ संवत् में छपे कलकत्ता के संस्करण का भी उपयोग किया है।

आर्कि० स० वेष्ट० इंडि०=आर्कियोलौजिकल सर्वे औफ वेष्टर्न इंडिया।

इ

इं० आल्ट०=इंडिशे आल्टर टूम्स कुंडे।

इं० ऐण्टी०=इंडियन ऐण्टीक्वेरी।

इं० फौ०=इंडोगैर्मानिशे फौर शुङ्गन।

इं० स्टूडी० = इंडिशे स्टूडीएन।

इं० स्ट्रा०=इंडिशे स्ट्राइफन।

इन्स्टि० लि० प्रा०=इन्स्टिट्यूत्सी ओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए (प्राकृत-भाषा के नियम)।

उ

उत्तर०=उत्तरज्झयणसुत्त, राय धनपतिसिंह बहादुर, कल्कत्ता, संवत् १९३६।

उत्तरराम०=उत्तररामचरित, सम्पादक : ताराकुमार चक्रवर्ती, कलकत्ता, १८७० ई०। मैंने कलकत्ता के १८११ के संस्करण तथा वहीं से १८६२ में प्रकाशित प्रेमचन्द्र तर्कवागीश के संस्करण का भी उपयोग किया है।

उन्मत्तरा०=उन्मत्तराघव, सम्पादक : दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई १८८९ (काव्यमाला-संख्या १७)

उवास०=उवासगदसाओ, सम्पादक : हार्नले, कलकत्ता १८९० ।

ऋ

ऋषभ०=ऋषभपञ्चाशिका, सम्पादक योहान क्लाट, त्सा डे डो मो गे. ३३, ४४५ और उसके बाद के पृष्ठों में प्रकाशित। इसके अतिरिक्त मैंने दुर्गाप्रसाद और परब द्वारा सम्पादित बम्बई, १८९० ई० में प्रकाशित संस्करण से सहायता ली है।

ए

एपि० इंडिका=एपिग्राफिका इंडिका।

एर्से०=औसगेवैल्ते एर्सेलुंगन इन महाराष्ट्री, सम्पादक : हरमान याकोबी, लाइप्त्सिख, १८८६ ई०।

ओ

ओ० एस० टी०=ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स, सम्पादक रैमजे म्यूर, लन्दन।

ओव०=ओववाइयसुत्त, राय धनपतसिंह बहादुर, कलकत्ता, संवत् १९३६। इस ग्रन्थ में निम्नांकित संस्करण से भी उद्धरण लिये गये हैं—दास औपपातिक सूत्र, सम्पादक ए. लौयमान लाइप्त्सिख, १८८३ ई०।

क

कंसव०=कंसवध, सम्पादक : दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८८८ (काव्यमाला-संख्या ६)।

कक्कुक शिला०=कक्कुक शिलालेख (दे § १)।

कत्तिगे०=कत्तिगेयाणु पेक्खा (दे § २१)।

कप्पसु०=कप्पसुत्त दे —कल्पसूत्र।

कर्पूर०=कर्पूरमञ्जरी, सम्पादक : दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८८८ (काव्यमाला-संख्या ४)।

कर्पू०=कर्पूरमञ्जरी, सम्पादक : स्टेनकोनो (मिला § २२, नोट-सं ७)।

कल्पद्रु०=प्राकृत कल्पद्रुम।

कल्पसूत्र=सम्पादक : हरमान याकोबी १८७९ : दे —कप्पसु ।

काया० कायाकोश०=कायकोगुत्‌ कायकोगुरम् संकलनकर्त्ता औफरेख्ट-औक्सफोर्ड।

कालका०=कालकाचार्यकथानकम् सम्पादक हरमान याकोबी (त्साइटुङ्ग डेर मौर्गेन लैण्डिशन गेजेलशाफ्ट ३४ २४७ और उसके बाद के पेज)। लौयमान द्वारा प्रकाशित उक्त पुस्तक के खण्ड दो और तीन उपर्युक्त पत्रिका के खण्ड ३७ ४९३ तथा उसके बाद के पृष्ठों में छपे हैं।

कालेयक०—कालेयकुतूहलम्, १८८२।

कू० त्सा० = कून्स त्साइट श्रिफ्ट फ्यूर फर्गलाइशें न्द्रेस्प्राख फौरशुङ्ग (भाषाओं की तुलनात्मक शोध की—कून नामक भाषाविद् द्वारा सम्पादित और प्रकाशित पत्रिका)।

कू० बाइ० = कून्स बाइत्रैगे (कून के निबन्ध)।

क्रमदी० = क्रमदीश्वर का प्राकृत-व्याकरण।

ग

गउड० = गउडवहो, सम्पादक : शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८८७।

गो० गे० आ० = गोएटिङ्गिशे गेलैर्ते आन्त्साइगेन, गोइटिङ्गन (जर्मनी का एक नगर) से निकलनेवाली एक उच्च पत्रिका।

च

चण्ड० = चण्ड का प्राकृत-व्याकरण।

चण्ड० कौ० = चण्ड कौशिकम्, सम्पादक : जगन्मोहन शर्मन्, कलकत्ता, संवत् १९२४।

चूलि० पै० = चूलिका पैशाची।

ज

जि० ए० वि० = जित्सुगस् बेरिष्टे डेर कैजरलिशन आकादेमी डेर विस्सनशाफ्टन इन वीन (विएना)।

जीवा० = जीवाभिगमसुत्त, अहमदाबाद, संवत् १९३९।

जीवानं० = जीवानन्दन, सम्पादक : दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८९१ (काव्यमाला-संख्या २७)।

जूर० आशी० = जूरनाल आशियाटिक (पेरिस की एशियाटिक सोसाइटी की त्रैमासिक पत्रिका)।

जै० म० = जैनमहाराष्ट्री।

जै० शौ० = जैन शौरसेनी।

जौर्न० ए० सो० बं० = जोर्नल औफ द एशियैटिक सोसाइटी औफ बैंगौल, कलकत्ता।

जौर्न० बौं० ब्रां० रौ० ए० सो० = जौर्नल औफ द बौंबे ब्राच औफ द रौयल एशियैटिक सोसाइटी, बंबई।

जौर्न रौ० ए० सो० = जोर्नल औफ द रौयल एशियैटिक सोसाइटी, लंदन।

ठ

ठाणंग० = ठाणंगसुत्त

ड

डे० ग्रा० प्रा० = डे ग्रामाटिकिस् प्राकृतिकिस्, व्रातिस्लावा १८७४ ई०।

ढ

ढ = ढक्की

त

तीर्थ० = तीर्थकल्प = अकौंट ओफ द जैन स्तूप ऐट मथुरा, विएना, १८९७ ई ।

त्रिवि = त्रिविक्रम ।

त्सा० डे० डो० मौ० गे०=त्साइटुंग डेर डोयत्शन मौर्गेन लैंडिशन गेजेल शाफ्ट (जर्मन प्राच्यविद्या-विशारदों की सभा की पत्रिका), बर्लिन ।

त्सा० वि० स्प्रा० = त्साइटुंग फ्यूर डी विस्सनशाफ्टन डेर स्प्राखे (भाषाविज्ञान की पत्रिका) ।

द

दसवे० = दसवेयालियसुत्त, सम्पादक : ए लौयमान, त्सा डे डो मौ० गे० खण्ड ४६, पृष्ठ ५८१ और उसके बाद के पृष्ठों में प्रकाशित ।

दसवे नि० = दसवेयालिय निज्जुत्ति । इसके प्रकाशन के विषय में 'दसवेयालिय सुत्त' देखिए ।

दाक्षि० = दाक्षिणात्या ।

दुर्गाप्रसाद = सम्पादक दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८९१ ई (काव्यमाला-संख्या २८) ।

देशी० = देशी नाममाला (हेमचन्द्र), सम्पादक : पिशल, बंबई-सरकार द्वारा प्रकाशित ।

द्वारा० = डी, जैना लेजेंडे फौन डेम उण्टर गाङ्गे द्वारवती'ज (जैन-मंदिर में चित्रित द्वारावती के डूबने की एक कहानी) ।

ध

धर्मश० = धनञ्जय-विजय सम्पादक : शिवदत्त और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८ ५ (काव्यमाला-संख्या ५४)

धूर्त० = धूर्त-समागम सम्पादक काप्पेलर, येना, जर्मनी ।

ध्वन्या० = ध्वन्यालोक, सम्पादक : दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८९१ ई (काव्यमाला-संख्या २५) ।

न

नंदी० = नंदीसुत्त, प्रकाशक राय धनपतिसिंहजी बहादुर, कलकत्ता, संवत् १९३६ ।

नागा० = नागानन्द सम्पादक : गोविन्द भैरव ब्रह्मे तथा शिवराम महादेव परांजपे, पूना १८९१ ई । इसके साथ साथ मैंने १८७३ ई में छपे जीवानन्द विद्यासागर के संस्करण से भी सहायता ली है ।

ना० गे० वि गो० = नाखरिख्टन फौन डेर कोएनिगलिशन गेजेलशाफ्ट डेर विस्सन शाफ्टन त्सु गोएटिंगन (गोएटिंगन की राजकीय ज्ञानपरिषद् की पत्रिका) ।

नायाध० = नायाधम्मकहा, राय धनपतिसिंहजी बहादुर, कलकत्ता संवत् १९३३ इसके पन्ने नहीं गिने गये हैं, पाराग्राफ दिये गये हैं । जहाँ पर नहीं है, वहाँ

पी० स्टाइन्टाल द्वारा लाइपत्सिख के विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद से दिये गये प्रारम्भिक भाषण के छपे सस्करण 'नायाधम्मकहा' के नमूने से दिये गये हैं।

निरया० = निरयावलियाओ, बनारस, सवत् १९४१। इसमें भी पारामाफों की सख्याएँ दी गई है। जहाँ सख्याएँ नहीं दी गई है, वहाँ के उद्धरण फान एस वारन् के निरयावलियासुत्त से लिये गये हैं, जो आमस्टरडाम मे १८७९ मे छपे सस्करण से लिये गये हैं।

प

पण्णव० = पण्णवणा, बनारस सवत् १९४०।

पण्हा० = पण्हावगारणाइ, कलकत्ता, सवत् १९३३।

पल्लवदानपत्र = (दे० § १०)

पव० = पवयणसार (दे० § २१)

पाइय० = पाइयलच्छी, सम्पादक बूलर, गोएटिङ्गन, १८७८ ई०।

पार्वती प० = पार्वती-परिणय, सम्पादक : मगेश रामकृष्ण तेलग, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १८९२ ई०। इसके साथ-साथ मैंने विएना में १८८३ मे छपे ग्लजर के सस्करण से भी सहायता ली है।

पिङ्गल० = प्राकृतपिङ्गलसूत्राणि, सम्पादक : शिवदत्त और परब, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १८८४ ई० (काव्यमाला-सख्या ४१)।

पै० = पैशाची।

प्रचंड० = प्रचण्डपाण्डव, सम्पादक : कार्ल कप्पेलर स्ट्रासबुर्ग, १८८५। इसके साथ-साथ मैंने बम्बई निर्णयसागर प्रेस मे १८८५ में छपे (काव्यमाला-सख्या ४) के सस्करण का भी उपयोग किया है, जिसके सम्पादक दुर्गाप्रसाद और परब थे।

प्रताप० = प्रतापरुद्रीय, मदरास, १८६८ (तेलुगु अक्षर)।

प्रबोध० = प्रबोधचन्द्रोदय, सम्पादक : ब्रौक हौस, लाइप्त्सिख, १८३५—१८४५ ई०। इसके साथ-साथ पूना में छपे १८५१ ई० के सस्करण से भी मैंने सहायता ली है तथा बबई में १८९८ ई० में छपे वासुदेव शर्मन् द्वारा सम्पादित सस्करण से भी मदद ली है। इसका एक और भी सस्करण, जिसका सम्पादन सरस्वती तिरु वेंकटाचार्य ने किया है, मद्रास से १८८४ ई० मे छपा है। इससे भी सहायता ली है। यह तेलुगु अक्षरों में छपा है।

प्रसन्न० = प्रसन्न राघव, सम्पादक : गोविन्ददेव शास्त्री, बनारस, १८६८ ई०।

प्रा० = प्राकृत।

प्रा० कल्प = प्राकृतकल्पलतिका, ऋषिकेश शास्त्री के उद्धरण पर आधारित एक प्राकृत-व्याकरण। कलकत्ता, १८८३ ई०। इसके पृष्ठों का हवाला दिया गया है।

प्रिय द० = प्रियदर्शिका, सम्पादक विष्णु ताजी गदरे, बबई, १८८४ ई०। इसके साथ ही मैंने जीवानन्द विद्यासागर के उस सस्करण से भी सहायता ली है, जो कलकत्ता में सवत् १९२१ में छपा है।

प्रो० ए० सो० बं० = प्रोसीडिंग्स औफ द एशियैटिक सोसाइटी औफ बंगाल, कलकत्ता।

ब

बालरा० = बालरामायण, सम्पादक गोविन्ददेव शास्त्री, बनारस, १८६९ ई०।

बे० को गे० वि० = बैरिष्टे डेर कोएनिगलिशन गेजेलशाफ्ट डेर विस्सनशाफ्टन।

बे० बाई० या बे० बाइत्रैगे० = बेत्सेन बैर्गर्स बाइत्रैगे त्सूर कुंडे डेर इंडोगैरमानिशन श्प्राखन (भारोपीय भाषाओं के ज्ञान पर बेत्सन बैर्गर का निबन्ध)।

बो० रो० = बोएटलिंक उण्ट रोट, संस्कृत-जर्मन-कोश।

भ

भग० = भगवती की एक प्राचीन लिखित प्रति, सम्पादक: वेबर, बर्लिन, १८६६ १८६७।

भर्तृहरिनिर्वेद = सम्पादक: दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८९२ ई (काव्यमाला-संख्या २९)

भा० = भामह (काव्यालंकार)।

मल्लिका० = मल्लिकामारुतम्, सम्पादक: जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८७८ ई।

महा० = महाराष्ट्री।

महावी० = महावीरचरित, सम्पादक: ट्रीथेन, लन्दन १८४८ ई०। इसके साथ साथ निर्णयसागर प्रेस बंबई में २ में छपी टोडर रङ्गाचार्य और परब द्वारा सम्पादित प्रति का भी उपयोग किया गया है।

माग० = मागधी।

मार्क० = मार्कण्डेय (प्राकृतसर्वस्व)।

मालती० = मालतीमाधव, सम्पादक भंडारकर, बंबई, १८७६ ई। इसके साथ ही मैंने निम्नलिखित संस्करणों से भी सहायता ली है—कैलासचन्द्र दत्त द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, से १८६६ ई में प्रकाशित ग्रन्थ; मंगेश रामकृष्ण द्वारा सम्पादित, बंबई में, १८९२ ई में छपा संस्करण तथा तेलुगु-अक्षरों में छपा एक संस्करण जिसका नामवाला आवरण-पृष्ठ मेरी प्रति में नहीं है।

मालविका० = मालविकाग्निमित्र, सम्पादक बॉल्लेनसेन, लाइप्त्सिख, १८७९ ई। इसके साथ ही मैंने तुलसेन के संस्करण से भी सहायता ली है, जो बोन में १८४० में छपा तथा शंकर पाण्डुरंग पण्डित द्वारा सम्पादित, बंबई, १८८९ ई में प्रकाशित इसके दूसरे संस्करण से भी सहायता ली है।

मुकुन्द० = मुकुन्दानन्द भाण सम्पादक: दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १८८९ ई० (काव्यमाला-संख्या १६)।

मुद्रा० = मुद्राराक्षस सम्पादक: काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग, बंबई १८८४ ई। इसके अतिरिक्त कलकत्ता १८९१ ई में प्रकाशित संस्करण और तारानाथ तर्कवाचस्पति

द्वारा सम्पादित सस्करण, जो कलकत्ता मे सवत् १९२६ मे छपा, काम मे लाये गये है।

मृच्छ० = मृच्छकटिक, सम्पादक · स्टेन्त्सलर, बौन, १८४७ ई०। इसके साथ-साथ मने निम्नाकित सस्करणो से भी सहायता ली है—राममयशर्मा तर्करत्न द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, शकाब्द १७९२ और नारायण बालकृष्ण गोडबोले द्वारा सम्पादित मूल्यवान् सस्करण, बबई, १८९६ ई०।

य

ये० लि० = येनाएर लिटेरादूरत्साइटुग।

र

रत्ना० = रत्नावली, सम्पादक · काप्पेलैर, जो अट्टो बेटलिङ्क द्वारा सम्पादित जॉस्कृत क्रेस्टोमाथी के दूसरे सस्करण मे छपा है, सेटपीटर्सबुर्ग, १८७७, पृष्ठ २९० और उसके बाद के पृष्ठों में।

राम० = रामतर्कवागीश।

रायपसे० = रायपसेणियसुत्त, प्रकाशक : राय धनपतिसिहजी बहादुर, कलकत्ता, सवत् १९३६।

रावण० = रावणवह या सेतुबन्ध. जीग फ्रीड गौल्दस्मित्त स्ट्रासबुर्ग, १८८०। इसके साथ ही मैंने बबई, १८९५ मे प्रकाशित (काव्यमाला-सख्या ४७) तथा शिवदत्त और परब द्वारा सम्पादित सस्करण से सहायता ली है।

रुक्मिणी० = रुक्मिणी-परिणय, सम्पादक · शिवदत्त और परब, निर्णयसागर प्रेस, बबई १८९४ (काव्यमाला सख्या ४०)।

ल

लटक० = लटकमेलक, सम्पादक दुर्गाप्रसाद और परब, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १८८९ (काव्यमाला-सख्या २०)।

ललित = ललितविग्रहराज नाटक, सम्पादक कीलहौर्न, गोएटिगिशे नारिव्रष्टन (गौएटिगन के समाचार) में प्रकाशित, १८९३ ई०, पृष्ठ ५५२ और उसके बाद के पृष्ठों में छपा।

व

वर० = वररुचि का सस्करण, कौवेल द्वारा सम्पादित।

विक्रमो० = विक्रमोर्वशी, सम्पादक · एफ बौ ल्लें नसे न, सेंटपीटर्सबुर्ग, १८४६ ई०।

विजय० = विजयबुद्धवर्मन के दानपत्र के शिलालेख (§ १०)।

विद्धा० = विद्यापरिणय, सम्पादक · शिवदत्त और परब, निर्णयसागर प्रेस, बबई, १८९३ (काव्यमाला सख्या ३९)।

विद्ध० = विद्धशालभञ्जिका, सम्पादक भास्कर रामचन्द्र अर्प्ते, पूना, १८८६। इसके साथ-साथ मैंने कलकत्ता में १८७३ में छपे जीवानन्द विद्यासागर के सस्करण का भी उपयोग किया है।